श्रीकमलाकरभट्ट प्रणीत—

निर्णयसिन्धुः

[प्रथम, द्वितीय, तृतीय-परिच्छेद के सहित]

('सरस्वती' भाषाटीका और 'मनोजाञ्जना' टिप्पणी सहित)

(स्व० महामहोपाध्याय श्री पं० प्रभुदत्तजी शास्त्री आहिताग्नि पौत्र स्व० महामहोपाध्याय

श्री पं० विद्याधरजी गौड आहिताग्नि पुत्र—श्री **दौलतराम** गौड

उत्तरप्रदेशीय सरकार द्वारा संमानित, वेदाचार्य, मीमांसाशास्त्री,

कर्मकाण्डशास्त्री, पौरोहित्यरत्न, प्राध्यापक—श्रीसंन्यासी-

संस्कृत कालेज वाराणसी द्वारा सम्पादित)

प्रकाशक—

ठाकुरप्रसाद एण्ड सन्स बुकसेलर,

राजादरवाजा, ब्राञ्च—कचौड़ीगली,

वाराणसी ।

[मूल्य ४०]

संवत् २०२७

प्रथमबार

समर्पणम्—

पण्डित श्रीहरिद्वारीलालो दीक्षागुरुर्वरः ।
यस्यानुजः प्रसिद्धो मे प्रभुदत्तः पितामहः ॥

आद्यस्तस्य सुतः कृती गुणगणैः संपूरितः सर्वतः
सद्वृत्तो जनकात्परं शिवसमात्साङ्गां त्रयीमध्यगात् ।
अन्ते वासिगणाश्च यस्य कृतयस्तन्वन्ति कीर्तिं भुवि
सोऽयं मज्जनकोऽधुना दिवि वसन् विद्याधरो राजते ॥

गौडान्वयेऽवाप्यजनिं क्रमेण तेभ्यो गुरुभ्यः समवाप्य किञ्चित् ।
विद्वद्विनोदाय कृतः श्रमोऽयं मन्ये भवेत्तुष्टिरितो बुधानाम् ॥

निर्णयसिन्धुटीकेयं दौलतरामशर्मणा ।
कृता समर्प्यते ह्येपा तेषां पादेषु सादरम् ॥

समर्पणम्—

पण्डित श्रीहरिद्वारीलालो दीक्षागुरुर्वरः ।
यस्यानुजः प्रसिद्धो मे प्रभुदत्तः पितामहः ॥

आद्यस्तस्य सुतः कृती गुणगणैः संपूरितः सर्वतः
सद्वृत्तो जनकात्परं शिवसमात्साङ्गां त्रयीमध्यगात् ।
अन्ते वासिगणाश्च यस्य कृतयस्तन्वन्ति कीर्तिं भुवि
सोऽयं सज्जनकोऽधुना दिवि वसन् विद्याधरो राजते ॥

गौडान्वयेऽवाप्यजनिं क्रमेण तेभ्यो गुरुभ्यः समवाप्य किञ्चित् ।
विद्वद्विनोदाय कृतः श्रमोऽयं मन्ये भवेत्तुष्टिरितो बुधानाम् ॥

निर्णयसिन्धुटीकेयं दौलतरामशर्मणा ।
कृता समर्प्यते ह्येषा तेषां पादेषु सादरम् ॥

दो शब्द

भगवान भूत भावन पतित पावन श्री विश्वनाथजी की असीम अनुकम्पा से तथा पूज्य पिताजी के आशीर्वाद से 'निर्णयसिन्धु' की 'सरस्वती' नाम की भाषा और 'मनोजाञ्जना' नाम की टिप्पणी यथामति निर्माण कर सुधीजनों के सम्मुख प्रस्तुत कर रहा हूँ। इसका वास्तविक ज्ञान मुझे इस ग्रन्थ को श्री पूज्य पिताजी से पढ़ते समय तथा सम्पादन काल में हुआ है।

निर्णयसिन्धु पर अत्यन्त विस्तृत समालोचनात्मक भूमिका लिखने की मेरी हार्दिक इच्छा थी, किन्तु अस्वस्थता के कारण बृहद् भूमिका लिखना तो दूर, मूल का सम्पादन ही भगवान ने किसी प्रकार पूरा करवा दिया है। यह उनकी कृपा का फल है। निर्णयसिन्धु में उल्लिखित ग्रन्थ एवं ग्रन्थकारों में से अधिकांश केवल इतिहास के पृष्ठों तक ही वस्तु रह गये हैं, जो कुछ ग्रन्थ राशि बची है, उसका अवलोकन और आलोडन करने एवं जुटाने में ही जहाँ दो वर्ष के अथक परिश्रम की आवश्यकता थी, जो वहाँ तीन वर्ष इसके सम्पादन में लगाने के बाद स्वास्थ्य की गिरावट ने मुझे न करने को विवश कर दिया।

यद्यपि 'निर्णयसिन्धु' इसके पूर्व कतिपय बुक्सेलरों द्वारा प्रकाशित हो चुका था। इसकी विशेषता यह है कि निर्णयसिन्धु में अनुल्लिखित मेरे पूज्य गुरुकल्प पितृचरण महामहोपाध्याय श्री पण्डित विद्याधरजी शर्मा गौड की अपने जीवनकाल मे दी गई शताधिक व्यवस्थाओं का संग्रह था।

पुस्तक की बढ़ती हुई मांग को देखकर तथा उत्तरोत्तर होनेवाले संस्कृत विद्या के ह्रास एवं जनसाधारण के धर्म निर्णय विषयक ग्रन्थों के क्लिष्ट संस्कृत होने से धार्मिक मामलों में बढ़नेवाली उदासीनता लक्ष्य कर स्वर्गीय बाबू साहब ने मुझसे निर्णयसिन्धु को भाषाटीका से विभूषित करने का आग्रह किया। मेरा और बाबू साहब का कोई पूर्वजन्म का स्नेह सम्बन्ध था, जिसका वर्णन शब्दातीत है। कार्य की दुष्करता जानते हुए भी मैं उनका आग्रह टालने में असमर्थ था। अतः कार्य प्रारम्भ हो गया।

सम्पादन काल में मुझे ग्रन्थ की विभिन्न प्रकाशित और अप्रकाशित प्रतियों को देखने का अवसर मिला और अनुभव हुआ कि बड़े बड़े प्रकाशकों के निर्णयसिन्धु भी मण्डूक प्लुत पद्धति से छपे हुए हैं, मैंने उन छूटे हुए स्थलों को तत्तत्स्थलों पर निविष्ट कर दिया है। मेरी यह भी चेष्टा रही है कि 'निर्णयसिन्धु' में उल्लिखित वेद, उपनिषद, पुराण, ब्राह्मण, आरण्यक, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र, स्मृति और निर्णय ग्रन्थों के वचनों को मूल ग्रन्थ के प्रकरण संकेत से युक्त किया जाय मैंने अधिकांश जगहों पर ऐसा किया है। ऐसा करने में मुझे पता चला है कि निर्णयसिन्धु में उद्धृत बहुत से आर्षवचन आजकल की प्राप्त स्मृति आदि में नहीं है। समय और स्थान दोनों के अभाव से मैं उन वचनों को यहाँ नहीं दे सका हूँ भगवत्कृपा होगी तो स्वतन्त्ररूप से उन्हें प्रकाशित करूँगा।

'निर्णयसिन्धु' कार श्री कमलाकर भट्ट को वैदुष्य कुलपरम्परया प्राप्त हुआ। काशी में त्रैपुरुषी विद्या परम्परा वाले इने गिने घरानों में निर्णयसिन्धुकार का घराना शिरोमणि रूप में विख्यात था। इनके प्रपितामह श्रीरामेश्वर भट्ट दक्षिण भारत के प्रतिष्ठानपुर (पैंठण) नामक स्थान से पहले पहल काशी आये थे इनके पुत्र श्रीनारायण भट्ट भारतीय इतिहास में स्मरणीय पुरुष हुए हैं। श्री नारायण भट्ट के समय की शताब्दी में भारत के उत्तर पश्चिम में राजनीतिक परिस्थिति बहुत ही खराब थी। हुमायूँ का और शेरशाह का राज्यकाल था। भारत में मुगल सत्ता का सूर्य आक्रमणकारियों की घनघोर विपद् घटाओं से घिरा रहता था। काशी और काशी से पूर्व मिथिला और बंगाल में कभी-कभी आक्रमण होते थे फिर भी संस्कृत के विद्वान् निर्भीकता पूर्वक धर्मशास्त्रीय निबन्ध ग्रन्थों की रचना में तल्लीन थे। यहाँ के सामन्त एवं राजागण तथा प्रजा धार्मिक विद्वानों का समादर करती थी। इसी समय बंगाल की रत्नगर्भा वसुन्धरा ने गौड सम्प्रदाय के शिरोमणि विद्वान् एवं संस्कृत साहित्य में अपर व्यासावतार श्री रघुनन्दन भट्टाचार्य को उत्पन्न किया था जिन्होंने 'स्मृतितत्त्व' नामक महान् निबन्ध ग्रन्थ की रचना करके पौरस्त्य विद्वत्समुदाय स्मार्त भट्टाचार्य की उपाधि धारण की थी इधर दाक्षिणात्य समुदाय ने तथा तत्कालीन शासकों ने नारायण भट्ट को 'जगद्गुरु' की उपाधि एवं अग्रपूजा प्रदान की थी। यद्यपि इस कालतक दाक्षिणात्य और मैथिल तथा वंगीय विद्वानों ने बहुत से निबन्ध ग्रन्थों की रचना करके अम्बार लगा दिया था फिर भी स्मार्त्त भट्टाचार्य (रघुनंदन) की रचना (स्मृतितत्त्व) ने सबको चमत्कृत कर दिया था। श्री नारायण भट्ट जी भी सुलेखक थे वे केवल स्मृति और पुराणों के वचन संग्राहक मात्र न थे अपि तु, अच्छे मीमांसक और कुशलकर्मठ (कर्मकाण्ड निपुण) भी थे। दिव्यतत्त्व के उपासक और हिन्दू समाज के नेता भी थे। उनमें भगवत् प्रदत्त चमत्कारी गुण थे। उन्होंने अपनी वृद्धावस्था में लगभग १२ वर्ष तक पड़ने वाले अनावृष्टिजन्य अकाल को तपोबल से वृष्टि कराकर दूर किया और मुगल सम्राट् अकबर से विश्वनाथ मन्दिर की पुनः स्थापना का आदेश प्राप्त किया। इनके सुपुत्र श्री रामकृष्ण भट्ट भी अच्छे विद्वान् एवं ग्रन्थ लेखक हुए। लेकिन इनके कुल का मुख उज्ज्वल अनन्य पितृभक्त तथा सकल शास्त्र पारदृश्वा श्री कमलाकर भट्ट से ही हुआ। श्रीकमलाकर भट्ट

श्री रामकृष्ण भट्ट जी के आत्मज थे। ये लौकिक एवं वैदिक कर्मकाण्ड, ज्यौतिष, धर्मशास्त्र, न्याय, मीमांसा, व्याकरण, छन्द आदि के विशेष मर्मज्ञ थे। इनके काल तक अनेक धर्मशास्त्र धुरन्धर विद्वान् हुए और उन्होंने अनेक बृहत् निबन्ध ग्रन्थों की रचना की थी लेकिन प्रायः सब ग्रन्थ क्षेत्रीय परम्पराओं में सिमटे हुए थे। कोई दाक्षिणात्य और कोई गौड तथा कोई मैथिल निबन्ध माना जाता था। अखिल भारतीय संस्कृति की सुरक्षा हेतु 'इदमित्थम्' 'यह बात ऐसी ही है' या यह निर्णय आसेतु हिमाचल हिन्दू मात्र को मान्य है ऐसा निर्णय करने वाला कोई एक धर्मशास्त्रीय निबन्ध ग्रन्थ नहीं था। संयोगवश, यह सौभाग्य श्री कमलाकर भट्ट को 'निर्णयसिन्धु' की रचना से प्राप्त हुआ। यही इस ग्रन्थ का वैशिष्ट्य है! इस ग्रन्थ के वैदग्ध्य पर स्वयं ग्रन्थकार को भी गर्व है—

सन्ति यद्यपि विद्वांसः तन्निबन्धाश्च कोटिशः। तथाप्यमुष्य वैदग्धीं केचिद्विज्ञातुमीशते॥

यद्यपि अनेक विद्वान् और करोड़ों अनेक निबन्ध ग्रन्थ हैं किन्तु, इस (निर्णयसिन्धु) का वैदग्ध्य (पाण्डित्य) तो कुछ लोग ही जान सकते हैं।

निर्णयसिन्धुकार नीर-क्षीर विवेकी थे। उन्होंने तो 'नो संक्षिप्तं न च बहुवृथा विस्तरं शास्त्रतत्त्वम्' वाली नीति अपनाकर इस ग्रन्थ को लिखा है। इन्होंने अपने अगाध पाण्डित्य सिंधु के प्रतीक निर्णयसिन्धु में सुमेरु तुल्य हेमाद्रि माधव और प्रतिभा भास्कर रघुनन्दन भट्टाचार्य, तोडरानन्द पृथ्वीचन्द्रोदयादिकार को विलीन कर लिया। निर्णय सिन्धुकार की अप्रतिम लेखन शैली की चमत्कृति इस ग्रन्थ के ग्रहण निर्णय, जन्माष्टमी और नवरात्रादि व्रतनिर्णय तथा श्राद्धनिर्णय में देखने को मिलती है। इन्होंने समय की गति को पहचाना तथा व्यर्थ के वागाडम्बर एवं विवेक शून्य बातों की कटु आलोचना भी की है जिसके प्रतीक इनका प्रमाण स्वरूप उपस्थित किये जाने वाले शास्त्र विरोधी रुद्रयामल और डामरतन्त्र के वचनों को निर्मूल कह देना तथा बालकों की शुद्धिविषयक प्रकरण तथा इस ग्रंथ में म्लेच्छश्राद्ध विषयक वचनों को समाविष्ट करना है। संभव है कि इनके इन वचनों या परामर्श का ही प्रमाण था जो तत्कालीन मुगल बादशाह जहाँगीर ने अपने पिता अकबर की वार्षिक श्राद्ध तिथियों पर निर्णयसिन्धु सम्मत विधि से ब्राह्मणों को दान पुण्य देकर और कैदियों को छोड़कर पितृकर्म विधि की सम्पन्नता मानी। निर्णयसिन्धुकार ने सबके मतों का खण्डन और अपने पितामह नारायण भट्ट के मत का मण्डन करके 'काशी मध्ये दोऊ पण्डित मैं व माझा भाऊ' वाली उक्ति को चरितार्थ किया है। नारायण भट्ट जी ने भी अपने त्रिस्थलीसेतु में केवल दो स्थलों पर स्मृतिरत्नावली और एक स्थल पर हेमाद्रि का नाम उल्लेख किया है और सर्वत्र पुराण और संहिताओं का ही उदाहरण दिया है, उनको अपने जगद्गुरुत्व का स्वाभिमान था। श्री कमलाकर भट्ट ने उनसे एक कदम आगे बढ़कर निबन्ध ग्रन्थकारों एवं ग्रन्थों का नामोल्लेखकर उन्हें प्रामादिक, भ्रान्त, निर्मूल, परास्त, महोच्च, मूर्ख, प्रलाप, हेय, बौद्धतुल्य, आदि कहकर स्वमत प्रकट किया। भट्टवंश की देन श्रीरामेश्वर भट्ट से लेकर आगे कई पीढ़ी और सैकड़ों वर्षों तक ग्रन्थ लेखन परम्परा को देखकर विद्वत्समुदाय ने उनका गर्वभार वहन किया है यह निःसंकोच स्वीकरणीय है। अस्तु।

श्रीयुत् बाबू ठाकुर प्रसादजी बुकसेलर के जीवन काल में इस ग्रन्थ के ७२ फर्मे छप चुके थे। उनकी मृत्यु से चार, पांच दिन पूर्व उनसे बहुत सी बातें हुई। उनकी इस ग्रन्थ को प्रकाशित देखने की बड़ी इच्छा थी। किन्तु अनभ्र वज्रपात रूप मृत्यु बाधक हो गई। उनकी अमरात्मा जहाँ भी हों भगवान् उन्हें इस प्रकाशन की सूचना दें।

इस पुस्तक के लेखन में मुझे गोयनकासंस्कृतमहाविद्यालय ललिताघाट के पुस्तकालयाध्यक्ष श्री पं० कृष्णपंत जी से पुस्तक एवं शास्त्रीय वचनों के अनुसंधान में और श्री पं० सुब्रह्मण्य शास्त्रीजी अध्यक्ष—धर्मशास्त्र मीमांसाविभाग काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से तथा मेरे प्रियबन्धु देवकीनन्दन शास्त्री ज्योतिष मार्तण्ड अध्यक्ष भृगुज्योतिष कार्यालय सरस्वती-फाटक एवं कैलासचन्द दवे वेदाचार्य, व्याकरणाचार्य से समय समय पर जो सहयोग मिला है। तथा समय २ पर करनाल-मण्डलान्तर्गत 'जाभाला'–ग्राम वास्तव्य श्री पं० बालूरामात्मज श्री पं० रणजीतजी मिश्र गौड साहित्य और व्याकरणाचार्य–साहित्यविभागाध्यक्ष श्रीसन्यासी संस्कृत कालेज, वाराणसी ने अपना परामर्श देकर ग्रन्थ को शुद्ध और सरल करने में जो सहायता प्रदान की है और श्री पं० सुदामा मिश्र ने इस ग्रन्थ के संपादन के समय में स्व० श्री पिताजी का पत्र तथा शाकद्वीपीय ब्राह्मणों का महत्व आदि में जो सहायता की है उन सबके प्रति मैं आभार प्रदर्शन करता हूँ।

अन्त में मैं जिन गुरुओं की कृपा से यह ग्रन्थ निर्विघ्न समाप्त हुआ है उन सर्वतन्त्र स्वतन्त्र श्री विश्वनाथसदृश अपने पितृचरण आदियों के चरण कमलों में ही इस ग्रन्थ को समर्पण करता हूँ, इससे भगवान् उमापति श्री विश्वेश्वर भी प्रसन्न होंगे। शोधन आदि कार्यों में अत्यन्त स्थिरता रहने पर भी इस महानिबन्ध में प्रथम प्रवेश होने से बहुत सी अशुद्धि रह गयीं हैं। इसलिए विद्वानों से सविनम्र प्रार्थना है कि दूसरी बार संस्करण में उन अशुद्धियों को आप सबों के सहयोग से दूर करने का प्रयास करूंगा। अतः इस विषय में सभी विद्वान् अपने विचारों को निःसंकोच मेरे पास भेजें।

वाराणसी
वसन्त पञ्चमी सं० २०२७

श्री दौलतराम गौड

(भट्टवंश-परिचय)

नागपाशभट्ट (वृद्धप्रपितामह)

|

चांगदेव (प्रपितामह)

|

गोविन्ददेवभट्ट (पितामह)

|

रामेश्वरभट्ट (पिता)

ये ऋग्वेदीय आश्वलायन शाखा के विश्वामित्र गोत्रीय ब्राह्मण थे। रामेश्वर-भट्ट सन् १५२१ ई० में काशी आये। उस समय नारायणभट्ट की उमर आठसाल की थी। इनका जन्मकाल सन् १४३५ शकाब्द या १५१३ ई० है।

नारायणभट्ट	श्रीधरभट्ट	माधवभट्ट
(पत्नी का नाम—पार्वती)	(जन्मकाल सन् १५२०)	(इनका जन्मस्थान काशी है) (पत्नी का नाम ललिता)

[1]नारायणभट्ट ने भट्टवंश में सर्वाधिक ख्याति प्राप्त की थी। ये अत्यन्त धर्मनिष्ठ और तपस्वी थे। इनके समय में इनके सदृश पाण्डित्य कम पुरुषों में था। मुगल सम्राट् अकबर ने उनकी धर्मनिष्ठा तथा प्रतिष्ठा से प्रभावित हो इनको 'जगद्गुरु' की उपाधि प्रदान की थी। ऐसी किंवदन्ती है कि—श्रीनारायण भट्ट ने अपने इष्ट के बल से बारहवर्ष व्यापिनी अनावृष्टि को दूर किया था। इससे प्रभावित हो काशी के भक्त श्रीविश्वनाथ मन्दिर के पुनर्निर्माण की उन्हें अनुमति दी थी। (राजा टोडरमल्ल और नारायणभट्ट ने सन् १५८५ ई० में श्रीविश्वेश्वर की स्थापना की। फिर सन् १६६२ ई० में औरंगजेब ने उसको ध्वस्त किया।) और काशी के सर्वाधिकारी वंश ने इनको

माधवभट्ट के पुत्र:

विश्वनाथ	रघुनाथ	प्रभाकर
	(इनकी उपाधि 'सम्राटस्थ-पति' की थी। विश्वनाथ और रघुनाथ जुडवा थे)	(इनकी मृत्यु अल्पसमय में हो गयी)
	कन्या — इसका विवाह विट्ठलभट्ट तत्सत् के साथ हुआ था।	कृष्णभट्ट

१—पुराऽतिहिंस्रैर्यवनैरनार्यैराचारहीनैः श्रुतिबद्धवैरैः। श्रीविश्वनाथस्य च विश्वभूतेः प्रासादकान्तिः सहसा विदद्रे।
दिनेषु गच्छत्स्वथ तत्प्रकोपादवग्रहो भारतवर्षमध्ये। बभूव घोरो जनता विचेरुस्त्यक्त्वा स्वदेशान् विषयान्तराणि॥
श्रेयः कथं स्यान्मम राष्ट्रमध्ये कथं नु वर्षेदिह देवराजः, अन्विष्यतेत्थं यवनेन सार्वभौमेन लेभे द्विजसत्तमोऽयम्।
अथोपविष्टं वरविष्टरे तं प्रोवाच नम्रो यवनाधिकारी, कृताञ्जलिः कातरशब्दगर्भो दुष्टो हि दण्डेन समेति शान्तिम्॥
वृष्टिस्तपस्विन् जनतापहर्त्री भवेत् सुधांशोरिव रश्मिराजिः, भवादृशानामनुकम्पयैव लोका हि दुःखोदधिमुत्तरन्ति।
निशम्य तस्येति गिरं गिरीशं दध्यौ समाधिस्थित एव शान्तः, प्रतीतिमुत्पादयितुं सुरेषु म्लेच्छान् विनेष्यन्निदमाह धीरः॥
अदभ्रमभ्रोत्थितमद्य तोयं सुधोपमं प्राणभृतो लभन्ताम्, वृष्टिस्तदासीद् गिरिशप्रभावादमोघवाचः खलु सज्जना हि।
ततोऽतिहृष्टाद् यवनात् समृद्धिं लेभेऽधिकां मानपुरःसरां यः, ततो महाराजनिदेशतोऽसौ जगद्गुरुः संप्रथितो जगत्याम्॥
वीक्ष्यातिहृष्टं यवनं तदानीं धीरः स ऊचे वचनं महार्हम्, प्रासादभङ्गात् त्रिपुरान्तकस्यानावृष्टिदुःखं बुभुजे प्रजाभिः।
तदस्य निर्माणविधौ भवद्भिर्भूयेत सम्प्रत्यययुक्तचित्तैः, तदाऽनुमेने वचनं स तस्य दृष्टे कथं विप्रतिपत्तिसत्त्वम्॥
ततोऽस्य साहाय्यमुपेत्य शम्भोः अचीकरच्छ्रेष्ठनिकेतनं सः, अतिष्ठपन्मूर्त्तिमुमेश्वरस्य प्रीतिप्रदामास्तिकमानवानाम्।
[भट्टवंशव० का० स० ३]

काशी पण्डितसमाज में अग्रपूजा देने की आज्ञा दी थी। यह सम्मान इस भट्टवंश को भी प्राप्त था।

इनके पुत्र का नाम रामचन्द्र भट्ट था। यह नृसिंह के उपासक थे।

रामकृष्ण
(पत्नी का नाम उमा, यह प्रसिद्धतम विद्वान् थे। सम्भव है कि इन्होंने अपने पिताजी से ही पढ़ा हो।

शङ्करभट्ट
(यह भी काशी में सर्वमान्य विद्वान् माने जाते थे।)

गोविन्द
(इनका देहान्त अड़तालीस वर्ष की उमर में हो गया।)

कमलाकर

लक्ष्मण (इन्होंने कमलाकर अनन्तभट्ट भट्ट से पढ़ा था) (इन्होंने 'रामकल्पद्रुम' ग्रन्थ में विभिन्न स्थलों में कमलाकर के मत का खण्डन किया है।)

गंगा (कन्या) (इसका विवाह कालेवंशज दिवाकर के साथ हुआ था। दिवाकर के पिता महादेवभट्ट काले थे। महादेव काले के पिता का नाम रामेश्वरभट्ट काले था। दिवाकर के बड़े भाई का नाम बालंभट्ट था।)

दिनकर (दिवाकर)
(ये विन्दुमाधव के भक्त थे)

विश्वेश्वरभट्ट (गागाभट्ट)
इन्होंने १६७४ ई० के लगभग महाराष्ट्रनायक छत्रपति शिवाजी के राज्याभिषेक के अवसर पर पौरोहित्य किया था। इन्होंने शिवाजी को क्षत्रिय घोषित किया था।

दामोदरभट्ट

सिद्धेश्वरभट्ट

नीलकण्ठ

शंकरभट्ट

भानुभट्ट

कन्या
(भारद्वाजवंशीय महादेवभट्ट के साथ विवाह हुआ) महादेवभट्ट के पिता का नाम बालकृष्णभट्ट, महादेव के दो पुत्र थे। दिनकर और दिवाकर। दिवाकर की पत्नी का नाम ऊमा था। दिवाकर के दो पुत्र थे—श्रीराम और वैद्य (द्य)नाथ। दिनकर के एक कन्या थी, उसका विवाह नारायण जड़े के साथ हुआ था। नारायण जड़े के पुत्र का नाम गंगाराम जड़े था। ये दिनकर भट्ट के दौहित्र थे। इनके गुरु का नाम श्रीनीलकण्ठ भट्ट था। ये कौन नीलकण्ठ भट्ट थे, यह नहीं कहा जा सकता। दिवाकर भट्ट गंगाराम जडे के मातामह थे। मातामह के ग्रन्थ 'मुक्तावली प्रकाश' (दिनकरी) का निःसंकोच इन्होंने खण्डन किया है। दिनकरी-खण्डन के नाम से उनकी यह प्रसिद्ध रचना है। दिवाकर भट्ट ने तिथ्यर्क में पृ० ६२ लिखा है कि—यत्तु–सिन्धुकारज्येष्ठैर्नित्यत्वमङ्गीकृत्य 'तस्मात्सर्वात्मना सर्वैः कार्यम्' इत्युपक्रम्य अत्र केवलशैवस्य केवल कृष्णभक्तस्यापि नाधिकार इत्युक्तम्, तदुपक्रमोपसंहारविरोधात् प्रामाण्याभावाच्चोपेक्ष्यम्। 'रामनवमीव्रतनिर्णयप्रसङ्गे—यत्तु सिन्धुकारैर्वचनमलेखि—भास्करोदयमारभ्य यावत्तु दशनाडिकाः। प्रातःकाल इति प्रोक्तः स्थापनारोपणाविधौ ॥ इति विष्णुधर्मोत्तम्, तन्महानिबन्धेष्वसत्त्वाद् भ्रान्तिमूलकमेव। तिथ्यर्क० पृ० १२। 'दशहराप्रसंगे'—यत्तत्र उक्तयोगेभ्यो न्यूनयोगे न स्नानमित्युक्तं सिन्धुकारज्येष्ठैस्तत्प्रमाणाभावादुपेक्ष्यम्। पृ० १०६। इत्यादि कमलाकर को ज्येष्ठशब्द से कहकर खण्डन किया है।

दौलतराम गौड़

(भट्टवंश द्वारा निर्मित धर्मशास्त्र आदि ग्रन्थों के नामों का संकेत)

रामेश्वरभट्ट

रामकुतूहल।

नारायणभट्ट

धर्मशास्त्र में—प्रयोगरत्न, धर्मप्रवृत्ति और माधवनिर्मित कालनिर्णयकारिका की व्याख्या की रचना, जीवच्छ्राद्धप्रयोग, अन्त्येष्टिपद्धति, मांसमीमांसा, कृत्यरत्न, उत्सर्गपद्धति, रुद्रानुष्ठानपद्धति। पुराण में—त्रिस्थलीसेतु और काशीप्रकरण। छन्द में—वृत्तरत्नाकर की टीका।

श्रीधरभट्ट

रुद्रपद्धति, देव्यनुष्ठानपद्धति और सापिण्ड्यदीपिका या सापिण्ड्यनिर्णय।

माधवभट्ट

रसप्रदीप, आशौचनिर्णय और सूर्यार्घ्यदानपद्धति।

रघुनाथ

धर्मशास्त्र में—दशमश्लोकी टीका, त्रिंशच्छ्लोकीविवरण, आशौचनिर्णय, आह्निकपद्धति, कालतत्त्वविवेचन, षण्णवतिश्राद्धपद्धति, रविसंक्रान्तिनिर्णय, गोत्रप्रवरनिर्णय, अष्टमद्वादशीनिर्णय, प्रायश्चित्तविवेचन, दर्शश्राद्धपद्धति, पर्वनिर्णय, जीवत्पितृकस्य पितृयज्ञाधिकारनिर्णय।

रामकृष्णभट्ट

जीवित्पितृककर्मनिर्णय, विभागतत्त्वविचार (मिताक्षरासम्मत), श्राद्धगणपति, रुद्रस्नानपद्धति, महाभारतीयअश्विनीस्तुति पर व्याख्यान।

शंकरभट्ट

धर्मशास्त्र में—अद्वैतनिर्णय या द्वैतनिर्णय, धर्मप्रकाश या सर्वधर्मप्रकाश, निर्णयचन्द्रिका, श्राद्धकल्पसार या उसकी विवृत्ति। मीमांसा में—मीमांसाबालप्रकाश, मीमांसासारसंग्रह (पद्यमय), शास्त्रदीपिका टीका प्रकाश, विधिरसायनदूषण या खण्डन। काव्य में—जैमिनीसाम्य से की गई ईश्वरस्तुति और गाधिवंशानुचरित।

दिवाकरभट्ट

मीमांसा में—शास्त्रदीपिका टीका। धर्मशास्त्र में—शान्तिसार, प्रायश्चित्तसार, कर्मविपाकसार। दिनकरोद्योत—इस ग्रन्थ की पूरी रचना नहीं कर सके। इस ग्रन्थ की समाप्ति इनके पुत्र विश्वेश्वरभट्ट या गागाभट्ट ने की थी। भाट्टदिनकर, प्रायश्चित्तसार।

गागाभट्ट या विश्वेश्वरभट्ट

धर्मशास्त्र में—आपस्तम्बपद्धति, आशौचदीपिका, कायस्थधर्मप्रदीप या प्रकाश या पद्धति, दिनकरोद्योत (जिसको पूर्ण किया) सापिण्ड्यविचार, प्रयोगसार और समयनय। पिण्डपितृयज्ञ प्रयोग। मीमांसा में—मीमांसाकुसुमाञ्जलि तथा भाट्टचिन्तामणि, निरूढपशुबन्ध। अलंकार में—राकागम, शिवार्कोदय। कर्मकाण्ड में—तुलादानप्रयोग।

कमलाकरभट्ट

निर्णयसिन्धु (रचनाकाल १६१२), धर्मशास्त्र में—शान्तिकमलाकर या शान्तिरत्न, शूद्रकमलाकर या शूद्रतत्त्व, व्रतकमलाकर, पूर्तकमलाकर, दानकमलाकर, तीर्थकमलाकर, नीतिकमलाकर, तत्त्वकमलाकर या शास्त्रतत्त्वकौतुक, संस्कारकमलाकर, सर्वशास्त्रार्थनिर्णय, कलिधर्मनिर्णय, कर्मविपाकरत्न, कार्तवीर्यपद्धति, आह्निकलोपप्रायश्चित्त, त्रिपिण्डीविधि, गोत्रप्रवरदर्पण, प्रायश्चित्तरत्न, व्यवहाररत्न। वैदिक ग्रन्थों में—सोमप्रयोग, बह्वृचाह्निक और रुद्रपद्धति। वेदान्त में—

वेदान्तकौतुक या वेदान्तकौतुहल और वेदान्तरत्न। मीमांसा में--शास्त्रदीपिका-आलोक, तन्त्रवार्तिक टीका या तात्पर्य, मीमांसा-कुतूहल। भक्ति में--भक्तिरत्न। अलंकार में--काव्यप्रकाश टीका। काव्य में--रामकौतुक (४ सर्ग) और समादर्शकुतूहल।

कमलाकरभट्ट के छोटे भाई लक्ष्मणभट्ट

धर्मशास्त्र में---आचाररत्न, आचारसार और गोत्रप्रवररत्न। गुरुशतक। साहित्य में---गूढार्थप्रकाशिका (नैषधकी-टीका) और पद्यरचना।

कमलाकर का पुत्र अनन्तभट्ट

धर्मशास्त्र में--रामकल्पद्रुमसुबोधिनी और प्रयोगरत्न (अनन्तभट्ट ने सुबोधिनी में भिन्न-भिन्न स्थलों में कमलाकर के मत का खण्डन किया है)।

दामोदरभट्ट

द्वैतनिर्णय पर एक परिशिष्ट लिखा था। कलिवर्ज्यनिर्णय और प्रायश्चित्तनिर्णय।

सिद्धेश्वरभट्ट

संस्कारमयूख या संस्कारभास्कर, संस्कारामृत।

नीलकण्ठभट्ट

आचारमयूख, संस्कारमयूख, काल या समयमयूख, श्राद्धमयूख, नीतिमयूख, व्यवहारमयूख, दानमयूख, उत्सर्गमयूख, प्रतिष्ठामयूख, प्रायश्चित्तमयूख, शुद्धिमयूख और शान्तिमयूख। कुण्डोद्योत, दत्तकनिर्णय, व्यवहारतत्त्व, धर्मशास्त्रप्रकाश और श्राद्धप्रकाश।

शंकरभट्ट (नीलकण्ठपुत्र)

कुण्डभास्कर, व्रतार्क, कुण्डार्क, कर्मविपाकार्क, सदाचारसंग्रह, एकादशीनिर्णय---इत्यादि।

भानुभट्ट

द्वैतनिर्णयसिद्धान्तसंग्रह, एकवस्त्रस्नानविधि और होमनिर्णय।

दिवाकरभट्ट (श्रीकमलाकरभट्ट की बहिन के पति)

आह्निकचन्द्रिका, कालचन्द्रिका या कालनिर्णयचन्द्रिका, दानचन्द्रिका, स्मार्तप्रायश्चित्तसार, श्राद्धचन्द्रिका, पुनरुपनयनप्रयोग और पतितत्यागविधि।

दिवाकर पुत्र वैद्यनाथ भट्ट

गोत्रप्रदानविनिर्णय।

महादेव के पुत्र दिवाकर

आचारार्क, तिथ्यर्क, दानहीरावलीप्रकाश, प्रायश्चित्तमुक्तावली, श्राद्धचन्द्रिका और सूर्यादिपञ्चायतन प्रतिष्ठापद्धति, वृत्तिरत्नाकरादर्श, सिद्धान्तमुक्तावली की टीका प्रकाश तथा अन्त्येष्टिप्रकाश।

गङ्गाराम जडे (ये दिनकर भट्ट के दौहित्र थे)

अलंकार में---रसतरङ्गिणी की नौका व्याख्या। न्यायवैशेशिक में---तर्कामृत पर तर्कामृतचषकव्याख्या और तात्पर्य टीका। मणिमाला, गैरिकसूत्र, मुक्तावलीप्रकाश (दिनकरी) का खण्डन---दिनकरीखण्डन।

रघुनाथभट्ट

वैदिक में---शांखायनगृह्यसूत्र पद्धति (आधानपद्धति)। धर्मशास्त्र में---कृत्यरत्नावली, कालनिर्णयप्रकाश।

—दौलतराम गौड

योगीराज—श्री पं० हरिद्वारीलालजी

निर्णयसिन्धु--

महामहोपाध्याय—श्री पं० प्रभुदत्तजी शास्त्री अग्निहोत्री

संयुक्त प्रांतीय सरकार

प्रमाणपत्र

स्वतन्त्रता-दिवस के अवसर पर, गवर्नमेन्ट हाउस लखनऊ में, हर एक्सेलेंसी श्रीमती सरोजिनी नायडू के संयुक्त प्रान्त के गवर्नर-पद का भार ग्रहण करने का उत्सव हुआ था। उस समारोह में प्राच्य रीति के अनुसार गणेश-पूजन, कलश-स्थापन, वेद-पाठ एवं स्वस्तिवाचन इत्यादि किये गए थे। इस प्रमाणपत्र के द्वारा यह प्रमाणित किया जाता है कि काशी-निवासी कर्मकांडी विद्वान पं० ··दौलत राम गौड़····· ने उपर्युक्त पूजन-कृत्य में भाग लेकर उसे सफल बनाने में पूर्ण सहयोग दिया। पंडित जी ने विशुद्ध राष्ट्रीय भावना, सेवाभाव एवं कर्त्तव्य-बुद्धि से उपर्युक्त मङ्गल उत्सव में भाग लिया और उसकी शोभा तथा सार्थकता बढ़ाई। संयुक्त प्रांत की सरकार उनकी निस्पृह सेवा, तत्परता, कर्त्तव्य-बुद्धि एवं क्रिया-कुशलता के लिये उनकी आभारी है और उन्हें धन्यवाद देती है।

गोविन्द नारायण

प्रधान सचिव,
संयुक्त प्रान्तीय सरकार।

लखनऊ :
स्वतंत्रता-दिवस।

राष्ट्रदाराष्ट्रममुष्मै देहि

आशीराज्य

शिलान्यासोत्सवके अवसरपर काशीके सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान् पण्डित दौलतराम शास्त्रीने अपने सहयोगियों और शिष्योंके साथ इन्हीं वैदिक मन्त्रोंसे मङ्गलाचरण किया था।

वृष्णऽऊर्म्मिरसि राष्ट्रदाराष्ट्रम्मे देहि स्वाहा वृष्णऽऊर्म्मिरसि राष्ट्रदाराष्ट्रममुष्मै देहि वृषसेनोसि राष्ट्रदाराष्ट्रम्मे देहि स्वाहा वृषसेनोसि राष्ट्रदाराष्ट्रममुष्मै देहि ॥

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्मशान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सामाशान्तिरेधि ॥

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसाधियः।
पुनन्तु विश्वाभूतानिजातवेदः पुनीहि मा ॥

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिम्पुष्टिवर्द्धनम्। उर्व्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्। त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिम्पतिवेदनम्। उर्व्वारुकमिवबन्धनादितोमुक्षीय मामुतः ॥

श्रीश्चते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्। इष्णन्निषाणामुम्मऽइषाण सर्वलोकम्मऽइषाण ॥

यथेमां वाचं कल्याणी मावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्याꣳ शूद्राय चार्य्याय च स्वायचारणाय च। प्रियोदेवानान्दक्षिणायै दातुरिह भूया समयम्मेकामः समृद्ध्यतामुपमादोनमतु ॥

हे अतुल शक्तिशाली ब्रह्म, हमारे राष्ट्रमें तेजस्वी और सत्यभाषी ब्राह्मण उत्पन्न हों। स्त्रियां कुल-लक्ष्मी हों, राज्यद्वारा सब प्राणिमात्रको जीवनवृत्ति मिले, हमारे नवयुवक आकर्षणशाली और तेजस्वी हों। हर समय हमारे राष्ट्रमें बादल वर्षा करें। हमारी फसलें तथा ओषधियां फलवती हों। हमारे राष्ट्रमें जो पहले न था वह सब ऐश्वर्य सरलतासे प्राप्त हो और जो सम्पत्ति अब है वह निरन्तर सुरक्षित रहे।

बाहूमे बलमिन्द्रियꣳ हस्तौ मे कर्म्म व्वीर्य्यम्।
आत्मा क्षत्रमुरो मम ॥

१५ अक्टूबर १९४१

विषय-सूची

(निर्णयसिन्धु का प्रथम परिच्छेद)

(निर्णयसिन्धु का दूसरा परिच्छेद)

(निर्णयसिन्धु के तृतीय परिच्छेद का पूर्वार्द्ध)

(निर्णयसिन्धु के तृतीय परिच्छेद के उत्तरार्ध का श्राद्धप्रकरण)

(निर्णयसिन्धु के तृतीय परिच्छेद के उत्तरार्ध का आशौच और संन्यासप्रकरण)

विषय-सूची-समाप्त ।

नोट—टिप्पणी आदि तथा श्लोकसूची का विवरण तत्तत्स्थलों में ही देखिये ।

मङ्गलाचरणम्—

देवं विघ्नगजाङ्कुशं गणपतिं नत्वा च नुत्वा मुहु-
र्विद्याभिर्जनुषा गुरुं धृततनुं वेदं च विद्याधरम्।
टीकानिर्णयसिन्धुपोतसदृशो सेयं कृता भाषया
ग्रन्थग्रन्थिविभेदने पटुतरा विद्वन्मुदे जायताम्॥

दौलतराम गौडः

अथ निर्णयसिन्धुः

(भाषा-टीका-सहित)

प्रथमपरिच्छेदः

दौलतराम गौड

मङ्गलाचरणम्

कारुण्यैकनिकेतं रामं सीतालतायुक्तम् ।
विश्वामित्रान्ववायव्रततिसमालम्बशाखिनं वन्दे ॥ १ ॥

करुणा के निवास-भूमि तथा श्री सीतारूपिणी लता से समन्वित एवं श्री विश्वामित्र जी की वंश-लता के आश्रय के लिए वृक्षरूप श्री रामचन्द्र जी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१॥

लक्ष्मीसहायं कल्पद्रुतलं रञ्जितगोकुलम् ।
बर्हापीडं घनश्यामं महः किञ्चिदुपास्महे ॥ २ ॥

कल्पवृक्ष के तल भाग में गायों को आनन्दित करने वाले मोरपंख को मस्तक पर धारण करने वाले तथा अपनी दिव्य शक्ति श्री लक्ष्मी जी से सुशोभित मेघ के समान श्यामवर्ण के किसी विलक्षण तेज (श्री कृष्ण) की मैं आराधना करता हूँ ॥२॥

वेदार्थधर्मरक्षायै मायामानुषरूपिणम् ।
पितामहं हरिं वन्दे भट्टनारायणाह्वयम् ॥ ३ ॥

वेद एवं धर्म की रक्षाके लिये अपनी माया से मनुष्यरूप को धारण करने वाले हरिरूप अपने पितामह श्री भट्ट नारायण जी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥३॥

यत्पादसंस्मृतिः सर्वमङ्गलप्रतिभूर्मता ।
तान् भट्टरामकृष्णाख्यान् श्रीतातचरणान्नुमः ॥ ४ ॥

जिनके चरण कमलों का स्मरण सम्पूर्ण मङ्गलों को उत्पन्न करने वाला तथा साक्षी है, उन अपने पूज्य पिता श्री रामकृष्ण के चरणों को मैं प्रणाम करता हूँ ॥४॥

सर्वकल्याणसन्दोहनिदानं यत्पदद्वयम् ।
द्युनदीसोदरीमम्बामुमाख्यां नौमि सादरम् ॥ ५ ॥

सम्पूर्ण कल्याणों को उत्पन्न करने वाले स्वर्नदी श्री गंगा जी की सगी बहन उमा नाम से अलङ्कृत अपनी मातुः श्री के चरण कमलों को मैं सादर प्रणाम करता हूँ ॥५॥

बिन्दुमाधवपादाब्जरोलम्बीकृतविग्रहम् ।
ज्यायांसं भ्रातरं भट्टदिवाकरमुपास्महे ॥ ६ ॥

श्री बिन्दु माधव प्रभु के चरण कमल में भ्रमर के समान स्नेह मय शरीर को धारण करने वाले अपने बड़े भाई श्री दिवाकर भट्ट जी की मैं उपासना करता हूँ ॥६॥

हेमाद्रिमाधवमते प्रविचार्य सम्यगालोच्य तत्त्वमथ तीर्थकृतां परेषाम् ।
श्रीरामकृष्णतनयः कमलाकराख्यः काले यथामति विनिर्णयमातनोति ॥ ७ ॥

हेमाद्रि और माधव के मतों को अच्छीप्रकार से विचार कर तथा अन्य धर्मशास्त्रकारों के मतों को भी मन्थन कर मैं श्री रामकृष्ण का पुत्र कमलाकर अपनी बुद्धि के अनुसार और समय को देखते हुए धर्मशास्त्र का निर्णय करता हूँ ॥७॥

सन्ति यद्यपि विद्वांसस्तन्निबन्धाश्च कोटिशः ।
तथाऽप्यमुष्य वैदग्धीं केचिद्विज्ञातुमीशते ॥ ८ ॥

यद्यपि धर्मशास्त्र के अनेकों विद्वान् विद्यमान हैं और उनके बनाये हुए अनेकों ग्रन्थ हैं तथापि इसकी विशेषता को कुछ विद्वान् अवश्य जान सकेगें ॥८॥

(गृहप्रवेश-देवताप्रतिष्ठादि उत्तरायणे)

रत्नमालायाम्–'गृहप्रवेशत्रिदशप्रतिष्ठाविवाहचौलव्रतबन्धपूर्वम्।
सौम्यायने कर्म शुभं विधेयं यद् गर्हितं तत् खलु दक्षिणे च ॥ इति।

रत्नमाला में कहा है—व्रतबन्ध-यज्ञोपवीत, गृहप्रवेश, देवता प्रतिष्ठा, विवाह, चौल-मुण्डन, आदि शुभकार्य उत्तरायण में करे। दक्षिणायन में जो गर्हित-निन्दित कर्म हैं, उन्हें ही निश्चय करे।

(काश्यां विशेषः)

अस्यापवादः काशीखण्डे–सदा कृतयुगं चास्तु सदा चास्तूत्तरायणम्। सदा महोदयश्चास्तु काश्यां निवसतां सताम् ॥ इत्ययनम्।

इसका अपवाद कहा है—काशी में रहने वाले सत्पुरुषों के लिए—निरन्तर कृतयुग है, सदा उत्तरायण,तथा सदा महान् उदय है।

(अथ ऋतुनिर्णयः)

ऋतुर्मासद्वयात्मा। मलमासे तु मासद्वयात्मक एको मासः, तेन मासद्वयात्मकत्वमविरुद्धम्। स द्वेधा चान्द्रः सौरश्च। चैत्रारम्भो वसन्तादिश्चान्द्रः। मीनारम्भो, मेषारम्भो वा सौरः। मीन-मेषयोर्मेषवृषयोर्वा वसन्तः, इति बौधायनोक्तेः।

दो महीने को ऋतु कहते हैं। मलमास में तो दो महीने को एक महीना कहते हैं। इससे मास-द्वयात्मक को ऋतु कहने में कोई आपत्ति नहीं है।

वह ऋतु दो प्रकार की है चान्द्र और सौर। चैत्र से वसन्त आदि ऋतु आरंभ होती है। वह चान्द्र संज्ञक है। मीन या मेष से आरंभ होती है, वह सौर है। बौधायनमत से—मीन, मेष या मेष या वृष से वसन्त का प्रारंभ होता है।

(अनयोर्विनियोगमाह)

त्रिकाण्डमण्डनः—'श्रौतस्मार्तक्रियाः सर्वाः कुर्याच्चान्द्रमासर्तुषु।
तदभावे तु सौरर्तुष्विति ज्योतिर्विदां मतम्।'

त्रिकाण्ड मण्डन ने कहा है—श्रौत और स्मार्त सब क्रियाओं का प्रारंभ चान्द्र ऋतुओं में करे। या अभाव में तो सौर ऋतुओं से करे-यह ज्योतिर्विदों का मत है।

(अथ ऋतुनामानि)

स द्विविधोऽपि षोढा। वसन्तो, ग्रीष्मो, वर्षाः, शरद्, हेमन्तः, शिशिरः। इति ऋतुः।

वह ऋतु दो प्रकार की होती हुई भी उसके छः भेद हैं—वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त और शिशिर।

(अथ मासनिर्णयः)

मासश्चतुर्द्धा। सावनः, सौरः, चान्द्रो, नाक्षत्र इति। त्रिंशद्दिनः सावनः। अर्कसंक्रान्तेः संक्रान्त्यवधिः सौरः। यद्यपि हेमाद्रिमाधवकालादर्शाद्यालोचनेन, 'मेषसंक्रान्त्यां समाप्तायाममा-वास्याकत्वं चैत्रत्वम्' इति लक्षणाच्च मेषसंक्रान्तेश्चैत्रत्वं प्रतीयते, तथापि मेषसंक्रमे दर्शद्वये सति वैशाखस्यैवाधिक्यात् पूर्वभावित्वेन मीनस्यैव चैत्रत्वं युक्तम्। एवं मेषादयो वैशाखाद्याः। अतो मीनसंक्रान्तिमध्यस्थपौर्णमासीकत्वम्, तादृशाद्यतिथिकत्वं वा चैत्रत्वमिति लक्षणात् मीन एव सौरश्चैत्रः। एवं वैशाखादयोऽपि मेषाद्या ज्ञेयाः।

मास के चार भेद हैं—सावन, सौर, चान्द्र और नाक्षत्र। तीस दिन के समय को सावन कहते हैं। सूर्य की संक्रान्तिसे लेकर उसी संक्रान्ति के अवधि तक समय को सौर कहते हैं।

यद्यपि हेमाद्रि, माधव, कालादर्श आदि के मतों को देखने से 'मेष संक्रान्ति की समाप्ति 'अमावास्या' तक चैत्र ही कहा है। इस लक्षण से मेष संक्रान्ति की अवधि तक चैत्र है, यह प्रतीति होती है। फिर भी मेष की संक्रान्ति में दो 'अमावास्या' हो जाय तो वैशाखमास की आधिक्यता से और पूर्वभावित्व होने से मीन को हो चैत्रत्व कहना युक्ति संगत है। इसीप्रकार मेष आदि संक्रान्ति से वैशाख आदि जानना युक्तिसंगत है।

इसलिए मीनसंक्रान्ति के मध्य में पूर्णिमा न हो वह या वर्ष की आदि की तिथि जिसके प्रारंभ में हो उसे चैत्र कहा है। इस लक्षणसे मीन ही सौर चैत्र है। इसीप्रकार वैशाख आदि को मेष आदि जानना चाहिये।

(अथ संक्रान्तिनिर्णयः)

(सौरमासप्रसङ्गात् संक्रान्तिनिर्णय उच्यते।) तत्र 'पूर्वतोऽपि परतोऽपि संक्रमात् पुण्यकालघटिकास्तु षोडश' इति सामान्यतः पुण्यकालः सर्वैरुक्तः।

उस संक्रान्ति के पूर्व और पर सोलह सोलह घड़ी पुण्यकाल सामान्य रीति से सबों ने कहा है।

(अथ कमलाकरादिमतम्)

विशेषस्तूच्यते। अत्र मामकाः सङ्ग्रहश्लोकाः—"प्रागूर्ध्वा दश, पूर्वत षडवनिः, तद्वत्पराः, पूर्वतस्त्रिंशत् षोडश, पूर्वतोऽथ परतः, पूर्वाः पराः स्युर्दश।

पूर्वाः षोडश, चोत्तरा ऋतुभुवः पश्चात् खवेदाः, पुनः पूर्वाः षोडश, चोत्तराः पुनरथो पुण्यास्तु मेषादितः॥'

अस्यार्थः।—मेषे प्रागूर्ध्वं च दशघटिकाः पुण्यकालः। इति। वृषे पूर्वाः षोडश। मिथुने पराः षोडश। कर्के पूर्वास्त्रिंशत्। सिंहे पूर्वाः षोडश। कन्यायां पराः षोडश। तुलायां प्रागूर्ध्वा दश। वृश्चिके पूर्वाः षोडश। धनुषि पराः षोडश। मकरे चत्वारिंशत्पराः। इदं च हेमाद्रिमतेनोक्तम्। माधवमते त्वत्र परा विंशतिः पुण्याः। कुम्भे पूर्वाः षोडश। मीने पराः षोडशेति।

विशेष तो कहते हैं—इस में मेरे (कमलाकर भट्ट के) संग्रह श्लोक हैं—जिनका ये अर्थ हैं—(१) मेष संक्रान्ति में—पूर्व (पहले) और बाद दश घड़ी पुण्यकाल है। (२) वृष संक्रान्ति में—पूर्व सोलह घड़ी पुण्यकाल है। (३) मिथुन संक्रान्ति में—पर सोलह घड़ी पुण्यकाल है। (४) कर्क संक्रान्ति में—पहले तीस घड़ी पुण्यकाल है। (५) सिंह संक्रान्ति में—पहले सोलह घड़ी पुण्यकाल है। (६) कन्या संक्रान्ति में—पर सोलह घड़ी पुण्यकाल है। (७) तुला संक्रान्ति में—पहले और बाद में दश-दश घड़ी पुण्यकाल है। (८) वृश्चिक संक्रान्ति में—पहले सोलह घड़ी पुण्यकाल है। (९) धनु संक्रान्ति में—पर सोलह घड़ी पुण्यकाल है। (१०) मकर संक्रान्ति में—पर चालीस घड़ी पुण्यकाल है। यह हेमाद्रि मत से कहा है। माधवमत से मकर संक्रान्ति में—पर बीस घड़ी पुण्य काल है। (११) कुंभ संक्रान्ति में—पहले सोलह घड़ी पुण्यकाल है। (१२) मीन संक्रान्ति में—पर सोलह घड़ी पुण्यकाल है।

'याप्युत्तरा पुण्यतमा मयोक्ता सायं भवेत्सा यदि साऽपि पूर्वा।
पूर्वा तु योक्ता यदि सा विभाते साऽप्युत्तरा रात्रिनिषेधतः स्यात्॥'
अर्वाङ् निशीथाद्यदि संक्रमः स्यात्पूर्वेऽह्नि पुण्यं परतः परेऽह्नि।
आसन्नयामद्वयमेव पुण्यं निशीथमध्ये तु दिनद्वयं स्यात्॥
कर्के झषेऽप्येवमितिह्युवाच हेमाद्रिसूरिश्च तथाऽपरार्कः।
झषः प्रदोषे यदि वाऽर्धरात्रे परेऽह्नि पुण्यं त्वथ कर्कटश्चेत्॥
प्रभातकाले यदि वा निशीथे पूर्वेऽह्नि पुण्यं त्विति माधवार्यः॥

अत्र मूलवचनानि माधवापरार्कहेमाद्र्यादिषु द्रष्टव्यानि।

कमलाकर भट्ट कहते हैं कि जो मैंने उत्तर (पर) जो भी पुण्यतमा संक्रान्ति कही हैं। वह संक्रान्ति यदि (सायंकाल) सूर्यास्त के पहले समय हो तो उतना ही पहले (पूर्व) घड़ी तक पुण्यकाल होता है। जिस संक्रान्ति का पहले (पूर्व) पुण्यकाल हो वह यदि सूर्योदय के समय हो तो उतनी घड़ी पुण्यकाल बाद में होता है। क्योंकि रात्रि में संक्रान्ति जन्य पुण्य का निषेध कहा है।

यदि आधीरात के पूर्व संक्रान्ति हो तो पहले रोज के दो याम (दो प्रहर) में पुण्यकाल होता है। यदि आधीरात के मध्य में (पर) संक्रान्ति हो तो पर दिन के दो प्रहर में पुण्य काल होता है। इसी प्रकार कर्क संक्रान्ति तथा मीन संक्रान्ति में जानना चाहिये। यह हेमाद्रि और अपरार्क ने कहा है।

यदि मीन संक्रान्ति प्रदोष समयमें या आधीरात के समय हो तो दूसरे दिन में पुण्यकाल होता है। यदि कर्कसंक्रान्ति प्रातःकाल में या रात्रि (आधीरात) में हो तो पूर्वदिन में पुण्यकाल होता है—यह माधव आचार्य का मत है। यहाँ मूलवचन माधव, अपरार्क, हेमाद्रि आदि में देखने चाहिये।

(अथ संक्रान्तिषु दानविशेषाः)

सर्वासु संक्रान्तिषु दानविशेषो हेमाद्रौ दानकाण्डे उक्तः—विश्वामित्रः—

'मेषसंक्रमणे भानोर्मेषदानं महाफलम्। वृषसंक्रमणे दानं गवां प्रोक्तं तथैव च॥

वस्त्रान्नपानदानानि मिथुने विहितानि तु। घृतधेनुप्रदानं च कर्कटेऽपि विशिष्यते॥

ससुवर्णं छत्रदानं सिंहेऽपि विहितं तथा। कन्याप्रवेशे वस्त्राणां वेश्मनां दानमेव च॥

तुलाप्रवेशे तिलानां (धान्यानां) गोरसानामपीष्टदम्। अन्नकीचलिते भानौ दीपदानं महाफलम्॥ (अन्नकी = वृश्चिकः)।

धनुष्प्रवेशे वस्त्राणां यानानां च महाफलम्। झषप्रवेशे दारूणां दानमग्नेस्तथैव च॥

कुंभप्रवेशे दानं तु गवामम्बुतृणस्य च। मीनप्रवेशे स्थानानां मालानामपि चोत्तमम्॥' इति।

मेष आदि संक्रान्ति में दोनों का विशेष महत्व हेमाद्रि दानकाण्ड में कहा है—

(१) मेष संक्रान्ति में—मेष दान का महान् फल है। (२) वृष संक्रान्ति में—गौवों का दान महत्वफल को देने वाला है। (३) मिथुन संक्रान्ति में—वस्त्र, अन्न और सवारी के दान का विधान कहा है। (४) कर्क संक्रान्ति में—'घृतधेनु' (घी से निर्मित गौ) का दान विशेष कर कहा है। (५) सिंह संक्रान्ति में—सुवर्ण सहित छाते का दान कहा है। (६) कन्या संक्रान्ति प्रवेश में—कपड़ों (वस्त्रों) और घर (वेश्म) का दान कहा है। (७) तुला संक्रान्ति में—तिल (धान्य) और गोरस का दान कहा है। जो कि अभीष्ट फल देने वाला है। (८) वृश्चिक संक्रान्ति में—दीप दान का महाफल कहा है। (९) धनु संक्रान्ति में—वस्त्रों को तथा यानों के देने का महाफल है। (१०) मकरसंक्रान्ति में—लकड़ियों के और अग्नि के दान का फल है। (११) कुंभ संक्रान्ति में—गौवों को जल तथा तृणों (घास) को देने को कहा है। (१२) मीन संक्रान्ति में—स्थानों को तथा मालाओं के दान का उत्तम फल कहा है।

(अथ संक्रान्तावुपवासनिर्णयः)

अत्रोपवासमाह हेमाद्रावापस्तम्बः—

'अयने विषुवे चैव त्रिरात्रोपोषितो नरः। स्नात्वा यस्त्वर्चयेद्भानुं सर्वकामफलं लभेत्॥

हेमाद्रि निबन्ध में आपस्तम्ब ने कहा है—कि अयन (दक्षिणायण और उत्तरायण) में तथा विषुव (मेष और तुला) संक्रान्ति में जो प्राणी तीन रात उपवास तथा स्नान कर श्री सूर्य का पूजन करता है, उसके सारे मनोरथ परिपूर्ण होते हैं।

अशक्तौ तु वृद्धवसिष्ठः—"अयने संक्रमे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। अहोरात्रोपितः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

अशक्ति में—तो वृद्ध वसिष्ठ ने कहा है कि—अयन (दक्षिणायन तथा उत्तरायण) में संक्रान्ति में, चन्द्रमा और सूर्यग्रहण में अहोरात्र (दिन-रात) उपवास तथा स्नान करे तो संपूर्ण पापों से, छुटकारा पाता है।

अत्रोपवासः संक्रमदिने, (संक्रान्तिदिने) दानादि तु पुण्यकालदिन इत्याचार्यचूडामणिः। विधिलाघवात्पुण्यकालदिन एवोभयमिति वृद्धाः। इदं च पुत्रिगृहस्थातिरिक्तविषयम्।

यहाँ उपवास है—वह संक्रमदिन में और दानादि तो पुण्यकाल दिन में करे। यह आचार्य चूड़ामणि का कहना है।

विधिलाघव से पुण्यकाल दिन में ही उभय (उपवास तथा स्नान) करे—यह वृद्ध कहते हैं। लेकिन यह अपुत्र युक्त गृहस्थ परक समझना चाहिये।

(अथ पुत्रिणां गृहिणामुपवासनिषेधकथनम्)

आदित्येऽहनि संक्रान्तौ ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। उपवासो न कर्तव्यः पुत्रिणा गृहिणा सदा॥ इति जैमिनिवचनात्।

जैमिनी के वचन से पुत्रवाले गृहस्थ को सदा सूर्य वार (रविवार) दिन में, संक्रान्ति में, चन्द्रमा तथा सूर्यग्रहण में उपवास नहीं करना चाहिये।

(अथ संक्रान्तौ श्राद्धकथनम्)

अत्र श्राद्धमुक्तं हेमाद्रौ विष्णुधर्मे—'श्राद्धं संक्रमणे भानोः प्रशस्तं पृथिवीपते।'

संक्रान्ति पर हेमाद्रि में विष्णुधर्म ने कहा है—कि हे पृथिवीपते, सूर्य की संक्रान्ति में श्राद्ध करना प्रशस्त है।

अपरार्केऽपि विष्णुः–'आदित्यसंक्रमश्चैव[1] विशेषेणायनद्वयम्। व्यतीपातोऽथ जन्मर्क्षं चन्द्रसूर्यग्रहस्तथा॥ एतांस्तु श्राद्धकालान् वै काम्यान्[2]आह प्रजापतिः।' इति।

अपरार्क में विष्णु ने कहा कि—सूर्य की संक्रान्ति में विशेष कर दोनों अयन में, व्यतीपात में, जन्म नक्षत्र में, चन्द्र और सूर्यग्रहण में श्राद्ध करना चाहिये। ये काम्य श्राद्ध हैं, ऐसा प्रजापति का कहना है।

द्वादशादिदिनैरर्वागयनांशप्रवृत्तावपि पुण्यं वक्तुमयनग्रहणम्। अन्यथा संक्रमेण सिद्धेरयन-ग्रहणं व्यर्थं स्यादित्यपरार्कः।

बारह आदि दिनों के पूर्व अयनांश के प्रवेश में भी पुण्य कहने के लिए अयन ग्रहण है। अन्यथा संक्रम सिद्धि अयन ग्रहण व्यर्थ होगा—यह अपरार्क का मत है।

हेमाद्रावपि गालवः—'अयनांशकतुल्येन काले नैव स्फुटं भवेत्। मृगकर्कादिगे सूर्ये याम्योदगयने सति॥ तदा संक्रान्तिकाले स्युरुक्ता विष्णुपदादयः।' इति।

हेमाद्रि में भी गालव का मत है—अयनांशक के तुल्य काल में ही मृग तथा कर्क के सूर्यमें, दक्षिणायन और उत्तरायण स्पष्ट होगा। तब संक्रान्तिकाल में 'विष्णुपद' आदि नाम कहे गये हैं।

अयनांशकच्युतिरूपे संक्रान्तिकालेऽपि विष्णुपदादयः प्रवर्तन्ते। तेन प्रयुक्तं पुण्यकालादि तत्रापि ज्ञेयमिति स एव व्याचख्यौ। तच्च मेषायनं वृषायनमित्यादि सर्वत्र ज्ञेयम्।

अयनांशक च्युतिरूप में संक्रान्ति काल में भी विष्णुपद आदि की प्रवृत्ति होती है। उससे अयनांश प्रयुक्त पुण्यकाल आदि उसमें भी जानना चाहिये। ऐसी व्याख्या उन्होंने की है और भी मेषायन' तथा 'वृषायन' आदि सर्वत्र संक्रान्तियों में जानना आवश्यक है।

माधवीयेऽपि जाबालिः–'संक्रान्तिषु यथा कालस्तदीयेऽप्ययने तथा। अयने विंशतिः पूर्वा मकरे विंशतिः परा॥ इति।

मकरायने पूर्वा विंशतिघटिकाः पुण्याः। मकरसंक्रान्तौ तु पश्चाद्विंशतिः। अन्यत्रायने तत् संक्रान्तिवदित्यर्थः।

---

१. निर्णयसिन्धु में—ऐसा श्लोक मिलता है—आदित्यसंक्रमश्चैव विषुवं चायनद्वयम्।

२. काम्यान् आह—की जगह 'नित्यानाह' यह पाठ शुद्ध है। ऐसा कृष्णंभट्टी की टीका में लिखा है।

माधवीय में भी जाबालिका ने कहा है—संक्रान्तियों में जैसा पुण्यकाल होता है, तद्वत् ही अयन में पुण्यकाल होता है। मकर अयन में बीस घड़ी पहले और मकर में बीस घड़ी बाद पुण्यकाल होता है। अन्यत्र अयन में उस संक्रान्तिवत् अर्थ है।

(अथ विष्णुपदादिस्वरूपम्)

विष्णुपदादिस्वरूपं दीपिकायामुक्तम्–'हर्यङ्घ्रिर्वृपसिंहवृश्चिकघटेष्वर्कस्य यः संक्रमः, कन्यामीनधनुर्नृयुक्षुपडशीत्यास्य, तुलामेषयोः। प्रोक्तं तद्विषुवं, झषेऽयनमुदक्कर्कटिके दक्षिणम् ॥ इति। हर्यङ्घ्रिः– विष्णुपदम्। नृयुक्-मिथुनम्।

विष्णुपदादिका स्वरूप दीपिका में कहा है—वृष, सिंह, वृश्चिक और कुंभ संक्रान्ति को विष्णुपद कहा जाता है। कन्या, मीन, धनु तथा मिथुन की संक्रान्ति की 'षडशीत्यायन' संज्ञा है। तुला और मेष की संक्रान्ति की 'विषुव' संज्ञा है। 'मकर' संक्रान्ति को उत्तरायण एवं 'कर्क' संक्रान्ति को दक्षिणायन कहा जाता है।

(अथ पिण्डरहितं श्राद्धम्)

अत्र च पिण्डरहितं श्राद्धं कुर्यात्। तथा चापरार्के मात्स्ये—'अयनद्वितये श्राद्धं विषुवद्वितये तथा। संक्रान्तिषु च सर्वासु पिण्डनिर्वापणादृते ॥ इति।

संक्रान्ति पर पिण्डरहित श्राद्ध करे। अपरार्क में मत्स्यपुराण का मत है-दोनों अयनों में, दोनों विषुवों में तथा सब संक्रान्ति में पिण्ड रहित श्राद्ध करे।

श्राद्धशूलपाणिस्त्वस्य निर्मूलत्वात्, समूलत्वेऽपि–"ततः प्रभृति संक्रान्तावुपरागादिपर्वसु। त्रिपिण्डमाचरेच्छ्राद्धमेकोद्दिष्टं मृतेऽहनि ॥' इति मात्स्योक्तेर्ग्रहणाग्रहणवद्विकल्प एवेत्याह। तन्न। अस्य पार्वणानुवादकत्वेन पिण्डाविधायकत्वात्। पिण्डो–व्यक्तिः। अन्यथैकपदे पिण्डानुवादे त्रित्वविधौ वषट्कर्तुः प्रथमभक्ष्यवद्वैरूप्यापत्तेः। तथा चोभयसमूलत्वे पिण्डरहितं पार्वणं कर्तव्यमित्युभयवचनयोरर्थः। त्रिपिण्डशब्देनैकोद्दिष्टव्यावर्तनमात्रम्।

श्राद्ध शूलपाणि ने तो कहा है कि यह वचन निर्मूल है। यदि इसे समूल मान भी लें तो—

उससे लेकर संक्रान्ति, चन्द्र और सूर्य के पर्वों में 'त्रिपिण्डश्राद्ध करे तथा 'एकोद्दिष्ट' नामक श्राद्ध मरणदिन पर करे। यह मत्स्यपुराण के कहने पर ग्रहण[1]—और अग्रहणवत् विकल्प ही कहा है। यह ठीक नहीं है।

अन्यथा अर्थ पद स्वीकार करोगे तो क्योंकि–इस वचन का पार्वणानुवादत्व से पिण्डका अविधायकत्व है। अर्थात् पिण्डका विधायक नहीं है। पिण्ड—व्यक्ति का है। प्रकट करना नहीं तो पिण्ड के अनुवाद में और त्रित्व विधि में वषट् कर्ता को प्रथम भक्षणवत् वैरूप्यता की आपत्ति होगी और उभय समूलत्व में पिण्ड रहित पार्वण करना चाहिये। वे यह दोनों वचनों का अर्थ है। त्रिपिण्ड शब्द से एकोद्दिष्ट का व्यावर्तन मात्र है।

(अथ मङ्गलकृत्येषु विशेषमाह)

ज्योतिर्निबन्धे नारदः—'त्याज्याः सूर्यस्य संक्रान्तेः पूर्वतः परतस्तथा।
विवाहादिषु कार्येषु नाड्यः षोडश षोडश ॥' एतत्पुण्यकालोपलक्षणम्।

मांगलिक कृत्यों में ज्योतिर्निबन्ध में नारद ने कहा है—विवाह आदि कार्यों में सूर्य संक्रान्ति के पूर्व (पहले) तथा पर में सोलह सोलह नाड़ी का त्याग करे। यह पुण्य समय का उपलक्षण है।

'भानोः संक्रान्तिभोगश्च कुलिकश्चार्धयामकः। इति ज्योतिःशास्त्रे वर्ज्येषु परिगणनात्। अयनव्यतिरिक्तासु दशसु संक्रान्तिषु रात्रौ स्नानश्राद्धादि न कार्यम्।

---

१. ज्योतिष्टोम संस्थाभूत अतिरात्र में—कहा है कि 'अतिरात्रे षोडशिनं गृह्णाति' अतिरात्र में षोडशी ग्रहण करे। 'नातिरात्रे षोडशिनं गृह्णाति'—अतिरात्र में षोडशी ग्रहण न करे। इस विधि और निषेध से षोडशी संज्ञक पात्र ग्रहण में विकल्प मिलता है।

सूर्य की संक्रान्ति का भोग कुलिक तथा अर्धयाम त्याग दे। यह ज्योति-शास्त्र के वर्जित प्रमाणों में परिगणन है। अयन (दक्षिणायन तथा उत्तरायण) संक्रान्ति को छोड़कर दश संक्रान्तियों में रात के समय स्नान, श्राद्ध आदि न हीं करना चाहिए।

'अह्नि संक्रमणे कृत्स्नमहः पुण्यं प्रकीर्तितम्। रात्रौ संक्रमणे भानोर्दिनार्धं स्नानदानयोः॥
अर्धरात्रादधस्तस्मिन् मध्याह्नस्योपरि क्रिया। ऊर्ध्वं संक्रमणे चोर्ध्वमुदयात्प्रहरद्वयम्॥
पूर्णे चेदर्द्धरात्रे तु यदा संक्रमते रविः। प्राहुर्दिनद्वयं पुण्यं मुक्त्वा मकरकर्कटौ॥'
इति वृद्धवसिष्ठादिवचनैरहः पुण्यत्वोक्त्या,

दिन में संक्रान्ति हो तो सारा दिन पुण्य कहा है। रात में संक्रान्ति सूर्य की हो तो दिन के आधे में स्नान और दान कहा है। आधीरात से पूर्व संक्रान्ति हो तो मध्याह्न काल के बाद कर्म करे। संक्रान्ति आधीरात के बाद हो तो सूर्योदय से दो प्रहर तक पुण्य काल है। पूरी आधीरात के समय रात्रि के आठवें मुहूर्त में संक्रान्ति हो तो दो दिन पुण्य काल होता है। केवल 'मकर' और 'कर्क' को छोड़कर। यह वृद्ध वसिष्ठ आदि वचनों से दिन में कहा गया है।

'रात्रौ संक्रमणे भानोर्दिवा कुर्यात्तु तत्क्रियाम्। पूर्वस्मात्परतो वाऽपि प्रत्यासन्नस्य तत् फलम्॥'
इति वसिष्ठवचनाच्चार्थाद्रात्रौ स्नानादिनिषेधप्रतीतेः।

रात में संक्रान्ति सूर्य की हो तो दिन में उसकी क्रिया करे। इस 'वसिष्ठ' वचन से आधी रात में स्नान आदि का निषेध प्रतीत होता है।

यानि तु-'विवाहव्रत-संक्रान्तिप्रतिष्ठाऋतुजन्मसु। तथोपरागपातादौ स्नाने दाने निशा शुभा॥' इति।

जो कहा है—विवाह में, यज्ञोपवीत में, संक्रान्ति में, प्रतिष्ठा में, ऋतु[1] में, जन्म में, उपराग में पात आदि में स्नान और दान में रात शुभ है।

'राहुदर्शनसंक्रान्तिविवाहात्ययवृद्धिषु। स्नानदानादिकं कुर्युर्निशि काम्यव्रतेषु च॥'
इत्यादीनि विष्णुगोभिलादिवचनानि, तानि मकरकर्कसंक्रान्तिविषयाणि। 'मुक्त्वा मकरकर्कटौ' इति तयोर्दिवानुष्ठानस्य पर्युदस्तत्वादिति हेमाद्रिमाधवादयः।

राहु दर्शन में, संक्रान्ति में, विवाह में, अत्यय (मरण में, वृद्धि में और काम्य व्रतों में) तथा रात में स्नान-दान आदि करे इत्यादि विष्णुगोभिलीय आदि का वचन हैं। वे मकर और कर्कसंक्रान्ति विषयक हैं। हेमाद्रि माधव आदि ने 'मुक्त्वा मकरकर्कटौ' मकर और कर्कसंक्रान्ति छोड़कर दिन में अनुष्ठान का निषेध है।

वस्तुतस्तु प्रागुक्तवचनेन तयोर्दिनद्वयपुण्यत्वादेरेव पर्युदासान्मकरकर्कटयोरपि 'स्नानं दानं परेऽहनि' इत्यादिभिरहः पुण्यत्वोक्तेरहःपुण्यत्वानुपपत्त्या कल्प्यरात्रिनिषेधस्य च प्रत्यक्षरात्रिविधिना बाधात्सर्वसंक्रातिषु रात्रावनुष्ठानविकल्पः। स च देशाचाराद् व्यवतिष्ठत इति युक्तः पन्थाः। अयनयोस्तु वक्तव्यो विशेषः श्रावणे माघे च वक्ष्यते।

तथ्य तो यह है कि—(कमलाकर भट्ट मत से) पूर्व में कहे हुए वचन से 'मकर और कर्क की संक्रान्ति में भी दोनों दिन पुण्य का निषेध हो जाने से स्नान और दान दूसरे दिन करे। इस वाक्य से दिन में पुण्यत्व कहा है। पुण्यत्व की अनुपपत्ति की कल्पना से रात्रिनिषेध का प्रत्यक्ष रात्रिविधि से बाध होने से सब संक्रान्तियों में रात्रि में अनुष्ठान का विकल्प है। वह देशाचार द्वारा स्थित है यही युक्त रास्ता है। इन मकर और कर्क की संक्रान्ति के बारे में श्रावण और माघ मास का जो निर्णय करेंगे उसमें आगे कहेंगे।

ज्योतिर्निबन्धे गर्गः—"यस्य जन्मर्क्षमासाद्य रविसंक्रमणं भवेत्। तन्मासाभ्यन्तरे तस्य वैरक्लेशधनक्षयाः॥

---

१. 'विवाहव्रतसंक्रान्तिप्रतिष्ठामृतिजन्मसु'—ऐसा पाठ भी किसी पुस्तक में मिलता है।

तगरसरोरुहपत्रै रजनीसिद्धार्थलोध्रसंयुक्तैः । स्नानं जन्मर्क्षगते रविसंक्रमणे नृणां शुभदम् ॥"

हेमाद्रौ—अह्नि चेद्रात्रियुग्मं स्याद्रात्रौ चेद्वासरद्वयम् । संक्रान्तिः पद्मिणी ज्ञेया दानाध्ययनकर्मसु ॥

ज्योति निबन्ध में गर्ग मत है—जिन प्राणी के जन्म नक्षत्र में सूर्य संक्रान्ति हो उस मास के भीतर उसे शत्रुता, क्लेश (दुःख) तथा धन का क्षय होता है। वह प्राणी तगर, कमल, हलदी, पीलीसरसों को लोध्र जल से संयुक्त (संमिश्रण) कर उसी जल से स्नान करे तो शुभप्रद है । यह हेमाद्रिने कहा है।

(अथ गौडमतम्)

यत्तु गौडाः—संक्रान्त्यां पक्षयोरन्ते द्वादश्यां श्राद्धवासरे । सायं सन्ध्यां न कुर्वीत कुर्वंश्च पितृहा भवेत् ॥

इति कर्मोपदेशिन्यां व्यासोक्तेः सायं पुण्यकाले सन्ध्यानिषेधमाहुस्तन्निर्मूलम् । अन्यच्च बहु वक्तव्यं विस्तरभीतेर्नोच्यते । इति संक्रान्तिनिर्णयः ।

जो गौडों ने कहा है—संक्रान्ति में, दोनों पक्षों के अन्त में, द्वादशी में और श्राद्धदिन में सायंकाल सन्ध्या न करे। करेंगे तो पितृयोंकेलिए मारनेवाला होता है। यह कर्मोपदेशनी में व्यास के कथन से सायं-कालपुण्यकाल में सन्ध्या का निषेध कहा है, वह निर्मूल है।

(अथ चान्द्रादिमासनिर्णयः)

पक्षयुगजश्चान्द्रो मासः । सद्वेधा । शुक्लादिरमान्तः, कृष्णादिः पूर्णिमान्तश्चेति ।

चान्द्रमास दो पक्ष के योग से होता है। वह दो प्रकार का है—शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से अमावास्या तक तथा कृष्णपक्ष की प्रतिपदातिथि से पूर्णिमातिथि तक ।

तथा च त्रिकाण्डमण्डनः—'चान्द्रोऽपि शुक्लपक्षादिः, कृष्णादिर्वेति च द्विधा । इत्युक्त्वा देशभेदेन तद्व्यवस्थामाह—

कृष्णपक्षादिकं मासं नाङ्गीकुर्वन्ति के च न । येऽपीच्छन्ति न तेषामपीष्टो विन्ध्यस्य दक्षिणे ॥ इति ।

विन्ध्यस्य दक्षिणे कृष्णादिनिषेधादुत्तरत्तो द्वयोरभ्यनुज्ञा गम्यते । तत्रापि शुक्लादिर्मुख्यः, कृष्णादिर्गौणः । शास्त्रेषु चैत्रशुक्लप्रतिपद्येव चान्द्रसंवत्सरारम्भोक्तेः ।

त्रिकाण्ड मण्डन ने भी कहा है—चान्द्रमास भी शुक्लपक्ष आदि तथा कृष्णपक्ष आदि भेद से दो प्रकार का है। यों कहकर देशभेद से उसकी व्यवस्था कहा है—कि कोई लोग (आचार्य) कृष्णपक्ष आदिमास को नहीं अंगीकार करते हैं। जो इच्छा भी करते हैं वे विन्ध्य के दक्षिण नहीं चाहते हैं। विन्ध्य के दक्षिण में कृष्णादि का निषेध होने से उत्तर में दोनों के स्वीकार करने की आज्ञा प्राप्त होती है। उसमें भी शुक्लादि मुख्य हैं, कृष्णादि गौण हैं। शास्त्रों में चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से ही चान्द्र संवत्सर का आरंभ माना है ।

तदुक्तं दीपिकायाम्—'चन्द्रोऽब्दो मधुशुक्लप्रतिपदारम्भः' इति । नहि ये कृष्णादिं मन्यन्ते, तेषां वत्सरारम्भो भिद्यते । अतः शुक्लादिर्मुख्यः, कृष्णादिना मलमासासम्भवाच्च । चन्द्रस्य सर्वनक्षत्रभोगेन नाक्षत्रो मासः ।

सावनादीनां व्यवस्थोक्ता हेमाद्रौ ब्रह्मसिद्धान्ते—अमावास्यापरिच्छिन्नो मासः स्याद् ब्राह्मणस्य तु । संक्रान्तिपौर्णमासीभ्यां तथैव नृपवैश्ययो ॥'

दीपिका में भी कहा है—चान्द्रवर्ष चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से आरंभ होता है। वे लोग कृष्णादि को नहीं मानते हैं। उनका वत्सरारम्भ भिन्न हैं। इसीलिए शुक्लादि मुख्य हैं। कृष्णादि में मलमास असंभव है।

चन्द्रमा के सब नक्षत्रों के भोग से नाक्षत्रमास होता है। सावन आदि की तो व्यवस्था हेमाद्रि के ब्रह्मसिद्धान्त में कहा है—ब्राह्मण के लिए तो अमावास्या तक, क्षत्रिय तथा वैश्य को संक्रान्ति और पूर्णिमा तक मास मानना चाहिये ।

अत्र ब्राह्मणादीनां यत्र कर्मविशेषे वचनान्तरेण 'वसन्ते ब्राह्मणोऽग्नीनादधीत, इत्यादिवत् मास उक्तः, तत्र दर्शान्तत्वमात्रं नियम्यते, न तु सर्वकर्मसु दर्शान्त एवेति। वृष्ट्याद्यर्थं सौरभरे हीषादि निधन नियमवद्विधिलाघवात् त्रैवर्णिकानां सर्वकर्मसु मासविशेषविधेः सावनादीनां शूद्रानुलोमादिपरत्वा पत्तेश्चेति गुरुचरणाः।

इसमें यहाँ पर ब्राह्मण आदियों के कर्म विशेष में वचनान्तर से वसन्त में ब्राह्मण अग्नि का स्थापन करे। इत्यादिके सदृश मास कहा है, वहाँ पर दर्श (अमावास्या) के अन्त मात्र का नियम है। सभी कर्मों में दर्शान्त को ही स्वीकार करने का नियम नहीं है। क्योंकि वृष्टि आदि प्रयोजन के लिए 'सौभर नामक' साम से 'हीष्' आदि सामवेद के अन्तिम भाग के नियम की तरह विधिलाघव समझना चाहिए। त्रैवर्णिकों का सब कर्मों में मास विशेष विधि से सावन आदि का शूद्र अनुलोम आदि परक की आपत्ति होगी—यह गुरुचरणों का मत है।

ज्योतिर्गर्गः—'सौरो मासो विवाहादौ यज्ञादौ सावनः स्मृतः। आब्दिके पितृकार्ये च चान्द्रो मासः प्रशस्यते॥'

ज्योतिर्गर्ग का मत है–विवाहादि में सौरमास, यज्ञादिमें सावनमास तथा पिता के आब्दिक कार्य में चान्द्रमास प्रशस्त है।

ऋष्यशृङ्गः—विवाहव्रतयज्ञेषु सौरं मासं प्रशस्यते। पार्वणे त्वष्टकाश्राद्धे चान्द्रमिष्टं तथाऽब्दिके॥

ऋष्यशृङ्ग का मत है कि—विवाह, व्रत और यज्ञों में सौरमास प्रशस्त है। पार्वण, अष्टकाश्राद्ध तथा वार्षिकश्राद्ध में चान्द्रमास उत्तम है।

स्मृत्यन्तरे—"एकोद्दिष्टविवाहादौ ऋणादौ सौरसावनौ।"

स्मृत्यन्तर में कहा है कि—एकोद्दिष्ट विवाह आदि में तथा ऋणादिमें सौर और सावन मास स्वीकार करे।

ज्योतिर्गर्गः—आयुर्दायविभागश्च प्रायश्चित्तक्रिया तथा। सावनेनैव कर्तव्या शत्रूणां चाप्युपासना॥

ज्योतिर्गर्ग का कहना है कि आयुर्दा, दायविभाग, प्रायश्चित्तक्रिया तथा शत्रुओं की उपासना ये सब कार्य सावन मास में ही करने चाहिये।

विष्णुधर्मे—नक्षत्रसत्राण्ययनानि चेन्दोर्मासेन कुर्याद्भगणात्मकेन। इति।

विष्णुधर्म में कहा है कि—नक्षत्रसत्र, अयन ये सब नक्षत्रों के भोगरूप चान्द्रमास में करे।

ब्राह्मे–तिथिकृत्येषु च कृष्णादिं व्रते शुक्लादिमेव च। विवाहादौ च सौरादिं मासं कृत्ये विनिर्दिशेत्॥

ब्राह्मपुराण में कहा है कि—तिथिकृत्य में कृष्णादि, व्रत में शुक्लादि और विवाहादि कृत्य में सौरादि मास का निर्देश कहा है।

(अथ मलमासः)

तत्रैकमात्रसंक्रान्तिरहितः सितादिश्चान्द्रो मासो मलमासः। एकमात्रसंक्रान्तिराहित्य-मसंक्रान्तत्वेन संक्रान्तिद्वयत्वेन च भवतीति। मलमासो द्वेधा। अधिमासः, क्षयमासश्चेति। तदुक्तं काठकगृह्ये—यस्मिन्मासे न संक्रान्तिः संक्रान्तिद्वयमेव वा। मलमासः स विज्ञेयो मासः स्यात्तु त्रयोदश॥ इति।

एकमात्र संक्रान्ति रहित सितादि चान्द्रमास मलमास है। एकमात्र संक्रान्ति रहित अर्थात् संक्रान्ति का अभाव हो या दो संक्रान्ति हो उसे मलमास कहा जाता है।

मलमास दो प्रकार का है—प्रथम अधिकमास, दूसरा क्षयमास। उसी को काठकगृह्य में कहा है—जिस मास में संक्रान्ति न हो या दो संक्रान्ति हो वह तेरहवाँ मास मलमास जानना चाहिये।

सत्यव्रतोऽपि—राशिद्वयं यत्र मासे संक्रमेत दिवाकरः। नाधिमासो भवेदेष मलमासस्तु केवलम्॥

सत्यव्रत ने भी कहा है—सूर्य भगवान् जिस मास में दो राशियों को संक्रामण करें वह मास अधिकमास नहीं होता है। वह तो केवल मलमास होता है।

(अधिकमासस्य कालनियममाह)

वसिष्ठः—'द्वात्रिंशद्भिर्गतैर्मासैर्दिनैः षोडशभिस्तथा। घटिकानां चतुष्केण पतत्यधिकमासकः॥' इति।

एतच्च सावनादिमानेन संभवार्थं, नतु नियमार्थम्। अन्यथा षोडशदिनाधिकद्वात्रिंशन्मासानन्तरं कृष्णपक्षनियमेन शुक्लादित्वभङ्गापत्तेः तेन न्यूनाधिककाले मलमासपातेऽपि न दोषः। अत एवोक्तं माधवीये—'मासे त्रिंशत्तमे भवेत्' इति।

अधिकमास के काल का नियम वसिष्ठ जी ने कहा है—बत्तीस मास, सोलह दिन चार घड़ी के व्यतीत होने पर अधिकमास होता है। यह बात सावन आदि मान से संभवार्थ है, नियमार्थ नहीं है। अन्यथा सोलह दिन अधिक बत्तीसमास के अनन्तर कृष्णपक्ष के नियम से शुक्लपक्षादित्व भंग हो जायगा। उससे न्यूनाधिककाल में मलमास के आने पर भी दोष नहीं होता है। इसलिए माधवीय ने कहा है कि—तीस मास पर मलमास होता है।

(अथ ज्योतिःशास्त्रमतेन क्षयमासः)

क्षयमासोऽपि ज्योतिःशास्त्रे—'असंक्रान्तिमासोऽधिमासः स्फुटं स्याद् द्विसंक्रान्तिमासः क्षयाख्यः कदाचित्।

क्षयः कार्तिकादित्रये, नान्यतः स्यात् तदा वर्षमध्येऽधिमासद्वयञ्च॥" एकः क्षयात्पूर्वं, परतश्चैकतः, इत्यधिमासद्वयं भवतीत्यर्थः।

ज्योतिःशास्त्र में भी क्षयमास का विधान है। जिस महिने में संक्रान्ति न हो वह अधिक मास होता है तथा जिस मास में कदाचित् दो संक्रान्ति हो वह क्षयमास हो जाता है। उसमें—क्षयमास कार्तिक, मार्गशीर्ष और पौषमास में होता है। अन्य मास में नहीं होता है। जिस साल में क्षयमास हो जाता है उसमें दो अधिक मास होते हैं। एक क्षय मास के पहले दूसरा बाद में।

अत्र विशेषमाह जाबालिः—'मासद्वयेऽब्दमध्ये तु संक्रान्तिर्न यदा भवेत्।

प्राकृतस्तत्र पूर्वः स्यादधिमासस्तथोत्तरः॥' इति। उत्तरे एव कालाधिक्यं, न पूर्वस्मिन्नित्यर्थः।

यहाँ पर विशेष बात जाबालिऋषि ने कहा है कि—जिस साल में दो मास में संक्रान्ति यदि न हो तो उन दोनों महीनों में प्रथम प्राकृत तथा दूसरा अधिक मास होता है। उत्तर में अर्थात् दूसरे में ही कालाधिक्य होता है प्रथम में नहीं होता है।

यत्तु ब्रह्मसिद्धान्ते—'चैत्रादर्वाङ्नाधिमासः परतस्त्वधिको भवेत्॥' इति। तत्र चैत्रात्पूर्वमसंक्रान्तद्वये पूर्वो नाधिकः, किं तु पर इत्यर्थः।

जो[1] ब्रह्मसिद्धान्त में यह कहा है कि—चैत्र महीने से पूर्व अधिक मास नहीं होता ऊपर में होता है।

उसका अर्थ यों है—चैत्र मास से पूर्व संक्रान्ति दो महीने में न हो तो प्रथम अधिक मास नहीं होता लेकिन पर में होता है।

यच्च ज्योतिःसिद्धान्ते—'घटकन्यागते सूर्ये वृश्चिके वाऽथ धन्विनि। मकरे वाऽथ कुम्भे वा नाधिमासो विधीयते॥' इति।

ज्योतिषसिद्धान्त में कहा है कि—घट (तुला), कन्या, वृश्चिक, धनु, मकर तथा कुम्भ के सूर्य हो तो अधिक मास नहीं होता है।

---

१. जहाँ सिद्धान्त से विपरीत बात को कहना होता है वहाँ 'यत्तु' शब्द का प्रयोग होता है।

तत् वृश्चिकादिचतुष्टये मलमासे सति पूर्वं तुलाकन्यागते सूर्ये क्षयात्पूर्वभाव्यधिमासस्य कालाधिक्यमात्रनिषेधार्थं नत्वधिकमासस्य।

'दशानां फाल्गुनादीनां प्रायो माघस्य च क्वचित्। नपुंसकत्वं भवतीत्येष शास्त्रविनिश्चयः॥' इति हेमाद्रौ विष्णुधर्मविरोधात्।

मलमासेऽष्टकादिनिषेधानुपपत्तेश्च। 'मकरे वाथ कुम्भे वा' इति दृष्टान्तार्थम्। प्राप्त्यभावात्।

उस वृश्चिक, धनु, मकर और आदि चतुष्टय में मलमास होने पर पहले तुला तथा कन्या के सूर्य पर क्षयमास के पूर्व निषेध होने वाले अधिक मास से कालाधिक का ही निषेध करता है। अधिक मास का नहीं। फाल्गुन आदि दश तथा क्वचिद् माघमास ये प्रायः ग्यारह महीने ही नपुंसक होते हैं। अर्थात् संक्रान्ति रहित होते हैं। यह शास्त्र का निश्चय है। यह हेमाद्रि में विष्णुधर्मोत्तर का विरोध है। एवं मलमास में अष्टकादि श्राद्ध का निषेध की भी अनुपपत्ति होगी। पहले कहे हुए मकर तथा कुम्भ में। दृष्टान्त के लिए है, अधिक मास नहीं होता है यह वचन।

अभाव—(निषेध) के लिये नहीं है। इनमें दोनों में संक्रान्ति होने पर भी अधिक मास, कहीं होता है।

(अथ क्षयस्यागमनकालः)

सिद्धान्तशिरोमणौ—'गतोऽब्ध्यद्रिनन्दैर्गते शाककाले तिथीशैर्भविष्यत्यथाङ्गाक्षसूर्यैः।
गजाद्र्यग्निभूमिस्तथा प्रायशोऽयं कुवेदेन्दुवर्षैः क्वचिद् गोकुभिश्च॥ इति।

अब्धयः—चत्वारः, अद्रयः—सप्त, नन्दाः—नव, एषां प्रातिलोम्येन पाते ९७४। तैर्मिते वर्षे कश्चित् क्षयमासः पूर्वं जात इत्यर्थः। तिथयः—पञ्चदश, ईशाः—एकादश, १११५ एवं मिते याते कश्चिद्भविष्यतीत्यर्थः। अंग ६, अक्ष ५, सूर्याः १२, एकत्र १२५६, गजाः ८, अद्रयः ७, अग्नयः ३, भूः १, एकत्र १३७८, कुः १, वेदाः ४, इन्दुः १, एकत्र १४१, गावः ९, कुः १, एकत्र १९, एतैर्मिते वर्षे याते कश्चिद्भविष्यतीत्यर्थः।

सिद्धान्तशिरोमणि में लिखा है—अब्धि चार, अद्रि सात, नन्द नौ, अर्थात् (९७४) शक व्यतीत होने पर पहले कोई क्षयमास हो गया और तिथि पन्द्रह, ईश ग्यारह, अर्थात् (१११५) शाक व्यतीत होने पर पहले क्षयमास होगा। एवं अङ्ग छः, अक्ष पाँच, सूर्य बारह, अर्थात् १२५६ शाके व्यतीत हो जाने पर तथा गज आठ, अद्रि सात, अग्नि तीन, भू एक, अर्थात् १३७८ शक बीत जाने पर एवं कु एक, वेद चार, इन्दु एक, अर्थात् १४१ वर्ष व्यतीत होने पर गो नौ, कु एक, अर्थात् १९ वर्ष व्यतीत होने पर कोई क्षयमास होगा।

(अथ मलमासे कार्याकार्यं निरूप्यते)

तत्र जाबालिः—'नित्यनैमित्तिके कुर्याच्छ्राद्धं कुर्यान्मलिम्लुचे। तिथिनक्षत्रवारोक्तं काम्यं नैव कदाचन॥' अयञ्च काम्यनिषेध आरम्भसमाप्तिविषयः।

'असूर्या नाम ये मासा न तेषु मम संमतः। व्रतानां चैव यज्ञानामारम्भश्च समापनम्॥'

इति तेनैवोक्तत्वात्। असूर्या अधिकमासा इत्यर्थः। तत्र 'मण्डलं तपते रवेः' इति वचनात्। कारीयदिः काम्यस्य त्वारम्भसमाप्तौ भवत एवेत्यादिरन्यत्र विस्तरः।

काठकगृह्येऽपि—'मलेऽनन्यगतिं कुर्यान्नित्यां नैमित्तिकीं क्रियाम्॥' इति।

तानि नैमित्तिकानि दीपिकायामुक्तानि—'यन्नैमित्तिकमग्निनष्टयनुगताग्न्याधानमर्चासु वा संस्कारादिविलोपने सति पुनः प्रोक्तं प्रतिष्ठादिकम्' इति। गत्यन्तरयुतं तु सोमादि हेयमेव।

इसके बाद मलमास में होने और न होनेवाले कार्यों का कथन करते हैं। जाबालि ने कहा है मलमास में नित्य नैमित्तिक कार्य जातकर्म आदि तथा श्राद्ध करे। एवम् तिथि, नक्षत्र तथा वार में कहे

हुए काम्य कर्म कभी भी न करे। यह काम्य निषेध आरंभ समाप्ति विषयक हैं। जो महीनें असूर्य (अधिक मास) हैं उनमें व्रत तथा यज्ञों का प्रारम्भ एवं समाप्ति होना सम्मत नहीं है। यह बात जाबालि ने कही है। यहाँ पर यह वचन है कि 'मलमासों में सूर्य का मंडल तपता है। कारीरी आदि काम्य यज्ञों का आरंभ और समाप्ति होती ही हैं। इसका अन्यत्र विस्तार है। काठकगृह्य में भी कहा है मलमास में उस नित्य-नैमित्तिक क्रियाको करे जो पुनः न हो सके। अब नैमित्तिक कर्मों को दीपिका में कहा है 'अग्नि के नष्ट हो जाने पर अग्नि स्थापन तथा संस्कारादि के लोप हो जाने पर फिर कहे हुए प्रतिष्ठा आदि नैमित्तिक कर्म मलमास में भी करे। क्योंकि इनको उसी समय करना चाहिये। एवं जो सोमादि पुनः हो सकते हैं, उन्हें न करे।

(तत्र कर्तव्यान्युक्तानि)

कालादर्शे—'द्वादशाहसपिण्डान्तं कर्म ग्रहणजन्मनोः। 'सीमन्ते पुंसवे श्राद्धं द्वावेतौ, जातकर्म च॥
रोगे शान्तिरलभ्ये च योगे श्राद्धं व्रतानि च। प्रायश्चित्तं निमित्तस्य वशात्पूर्वे परत्र च॥
अब्दोदकुम्भमन्वादि महालययुगादिषु। श्राद्धं दर्शेऽप्यहरहः श्राद्धमूनादिमासिकम्॥
मलिम्लुचान्यमासेषु मृतानां श्राद्धमाब्दिकम्। श्राद्धं तु पूर्वदृष्टेषु तीर्थेष्वेवं युगादिषु॥
मन्वादिषु च यद्दानं दानं दैनन्दिनं च यत्। तिलगोभूहिरण्यानां सन्ध्योपासनयोः क्रिया॥
पर्वहोमश्चाग्रयणं साग्नेरिष्टिश्च पर्वणि। नित्याग्निहोत्रहोमश्च देवताऽतिथिपूजनम्॥
स्नानं च स्नानविधिनाऽऽप्यभक्ष्यापेयवर्जनम्। तर्पणं च निमित्तस्य नित्यत्वादुभयत्र च॥ इति।
एतौ पुंसवनसीमन्तौ। एतच्च गर्भाधानाद्यन्नप्राशनान्तसंस्कारोपलक्षणम्।

तदुक्तं दीपिकायाम्—'गर्भाधानमुखं च चौलविधितः प्राग्जातयागं विना कृच्छ्रेष्वाग्रयणं गजेन्द्रपुरतश्छाया मघानङ्गयोः। तीर्थेन्दुक्षययोश्च पित्र्यमधिके मास्येवमाद्याचरेत्॥' इति।

अलभ्ये योगेऽर्धोदयपद्मकादौ काम्यान्यपि व्रतादीनि कार्याणीत्यर्थः। पूर्वे परत्र-मले शुद्धे चेत्यर्थः। महालयशब्देन मघात्रयोदश्युच्यत इति माधवः। दर्शश्राद्धं मलेऽपि कार्यम्।

मलमास में करने योग्य कर्म कालादर्श में कहे हैं। द्वादशाह, सपिंडपर्यन्त कर्म, ग्रहण, जन्म, सीमन्त पुंसवनमें होने योग्य श्राद्ध, सीमन्त, जातकर्म, रोग में शांति, अलभ्य योगमें श्राद्ध, व्रत एवं प्रायश्चित के लिये कर्म के पूर्व मलमास में पिछले शुद्धमास में करना चाहिये। क्षयतिथि के रोज घटदान, मन्वादि, महालय, युगादि एवं अमावस्या में श्राद्ध, नित्यश्राद्ध, ऊनादि मासिक श्राद्ध मलमास में करे। दूसरे महीनों में मरे हुओं का वार्षिकश्राद्ध करे। पहले कहे हुए तीर्थों युगादियों में भी श्राद्ध करे। मन्वादियों में जो दान है—तिल, गौ, भूमि, सुवर्ण आदि का दान, नित्यदान, संध्या उपासन क्रिया पर्वहोम, आग्रयण, पर्व में साग्निक को इष्टि, प्रतिदिन अग्निहोत्र होम, देवता तथा अतिथि पूजन, स्नानविधि द्वारा स्नान, अभक्ष्य तथा अपेय का वर्जन भी मलमास में करे। नित्य हो जाने मात्र से लोक परलोक के लिये तर्पण का त्याग न करे। इनमें श्लोकों में पुंसवन एवं सीमन्त है। गर्भाधानादि अन्नप्राशन पर्यन्त संस्कार का उपलक्षण है उसीको दीपिका में कहा है 'गर्भाधानादि संस्कार, चौल विधि से पूर्व के जातकर्म, कृच्छ्रों में आग्रयण अगहनी पूर्णिमा का यज्ञ, गजच्छाया यज्ञ, मघा, त्रयोदशी, तीर्थ और इन्दुक्षय अमावास्या में पितरों का श्राद्ध इत्यादि कार्य मलमास में करने चाहिये। अर्धोदय पद्मकादि अलभ्य योगों में काम्य व्रतादि भी मलमास के पूर्व या शुद्ध महिने में करे। माधव का मत है महालय शब्द से मघा त्रयोदशी का ग्रहण करे। मलमास में दर्शश्राद्ध करे।

यत्तु ऋष्यशृङ्गः—'संवत्सरातिरेकेण मासो यः स्यान्मलिम्लुचः। तस्मिंस्त्रयोदशे श्राद्धं न कुर्यादिन्दुसंक्षये॥ इति, तत् काम्यदर्शश्राद्धविषयम्। 'काम्यं नैव कदाचन'इति वचनात्। दर्शे च काम्यं श्राद्धं 'कन्यां कन्यावेदिनश्च' इत्यादिना याज्ञवल्क्येनोक्तम्, नित्यं तु मलेऽपि भवत्येव।

'दर्शेऽप्यहरहः श्राद्धं, दानं च प्रतिवासरम् । गोभूतिलहिरण्यानां मासेऽपि स्यान्मलिम्लुचे ॥'
इति मात्स्योक्तेरिति हेमाद्यादयः ।

जो ऋष्यशृङ्ग ने कहा है—वर्ष के बाद जो मलमास हो तो उसके तेरहवें मास में अमावास्या के रोज श्राद्ध न करे—यह काम्यदर्शश्राद्ध विषयक है। क्योंकि कभी भी काम्यश्राद्ध न करे—यह वचन है। अमावास्या में काम्यश्राद्ध और कन्या के सूर्य में श्राद्ध न करे—यह याज्ञवल्क्य ने कहा है। नित्यश्राद्ध तो मलमास में भी होता है। मत्स्यपुराण में हेमाद्रि आदि ने कहा है—अमावास्या में नित्य श्राद्ध, गौ, भूमि, तिल तथा सोने का दान, ये मलमास मास में भी होते हैं।

दिवोदासीयेऽपि—'अनिन्दुरिन्दुपूर्णा च हरिवारो बुधाष्टमी ।
नाधिमासे परित्याज्याः सीमन्तान्नाशने शिशोः ॥' इति ।

अनिन्दुः—दर्शः । 'द्विविधमप्यमाश्राद्धं न कार्यम्' इति त्वपरार्कः । तत्र यद्विहितं कर्म उत्तरे मासि कारयेत् । इत्युक्तेः । 'षष्ट्या तु दिवसैर्मासः' इति शुद्धमासकरणेऽपि शास्त्रार्थोपपत्तेर्दर्शश्राद्धं मले न कार्यमिति प्राचीनगौडाः, शूलपाणिश्च ।

दिवोदासीय ने भी कहा है—'अमावास्या, पूर्णिमा, द्वादशी, बुधाष्टमी ये सब सीमन्त और बालक का अन्नप्राशन मलमास में न त्याग करे।' अपरार्क ने कहा है—दोनों तरह का श्राद्ध अमावास्या को न करे। क्योंकि उसके जो विहित कर्म है उसे उत्तर मास में करावे ऐसा कहा है। प्राचीन गौडों का कहना है कि साठ दिन का एक महिना होता है। शुद्ध मास के दिन भी शास्त्र चरितार्थ है, तो मलमास में दर्शश्राद्ध न करे। शूलपाणि ने भी कहा है।

संवत्सरप्रदीपेऽपि—'एकराशिस्थिते सूर्ये यदा दर्शद्वयं भवेत् ।
दर्शश्राद्धं तदाऽऽदौ स्यात् न परत्र मलिम्लुचे ॥'

अत्रापि (नित्यकाम्यभेदेन) प्राग्वद् व्यवस्था । यद्यपि कालादर्शे—सर्वं वार्षिकं मासद्वये कार्यम्' इत्युक्तम्, तथापि हेमाद्रिमाधवापरार्कादिमतात् प्रथमाब्दिकम् त्रयोदशे मलमासे, द्वितीयाद्याब्दिकं तु शुद्धमासे एव कार्यम् ।

संवत्सरप्रदीप में भी कहा है—सूर्य एक राशि में स्थित हो यदि दो अमावस्या हो तो दर्शश्राद्ध आदि में होता है, दूसरी में नहीं होगा। यहाँपर भी पूर्ववद् व्यवस्था है। लेकिन कालादर्श में लिखा है—सम्पूर्ण वार्षिक श्राद्ध दोनों मासों में करे। यों कहा है, फिर भी हेमाद्रि, माधव, अपरार्क मत से प्रथमाब्दिक श्राद्ध को तेरहवें मास मलमास में करे। द्वितीयाब्दिक तो शुद्धमास में ही करे।

'असंक्रान्तेऽपि कर्त्तव्यमाब्दिकं प्रथमं द्विजैः । तथैव मासिकं श्राद्धं सपिण्डीकरण तथा ॥' इति हारीतोक्तेः । 'आब्दिकं प्रथमं यत्स्यात्तत्कुर्वीत मलिम्लुचे । त्रयोदशे (चतुर्दशे) तु सम्प्राप्ते कुर्वीत पुनराब्दिकम् ॥' इति स्मृत्यन्तरोक्तेश्च । पुनराब्दिकं द्वितीयादिवार्षिकम् । त्रयोदशे मासेऽतीते चतुर्दशाद्यदिने कुर्यादित्यर्थः ।

क्योंकि द्विजों को हारीत ने कहा है असंक्रान्ति में भी प्रथमाब्दिकश्राद्ध, मासिकश्राद्ध और सपिंडीकरणश्राद्ध करना चाहिए। स्मृत्यन्तर में भी कहा है—प्रथमाब्दिकश्राद्ध मलमास में भी करें। फिर दूसरा आब्दिक तेरहवें महीने के समाप्त हो जाने पर फिर आब्दिक करे। अर्थात् द्वितीयादि वार्षिक श्राद्ध तेरह महीने के बीतने पर चौदहवें महीने के आद्य दिन में करें।

यत्तु सत्यव्रतः—'वर्षे वर्षे तु यच्छ्राद्धं मातपित्रोर्मृतेऽहनि । मलमासे न तत्कार्यं व्याघ्रस्य वचनं तथा ॥' इति, तद् द्वितीयादिवार्षिकविषयम् ॥ 'आब्दिकं प्रथमं यत्स्यात्तत्कुर्वीत मलिम्लुचे।' इति पूर्वोक्तवचनात् । तेन यत्र द्वादशं मासिकं शुद्धमासे भवति, तत्र त्रयोदशेऽधिके एवाऽऽद्याब्दिकं कार्यम् । यत्र त्वधिकमध्ये द्वादशं मासिकं, तत्र तस्य द्विरावृत्तिं कृत्वा चतुर्दशे शुद्धे एव प्रथमा-

ब्दिकमिति निष्कर्षः। तेन द्वितीयादिशुद्धमासे एव पृथ्वीचन्द्रोदये दिवोदासीये मदनपारिजाते चैवम्। मलमासमृतानां तु यदा स एवाधिकः स्यात्तदा तत्रैव प्रतिसांवत्सरिकं कार्यम्। यथाऽऽह पैठीनसिः—'मलमासे मृतानां तु श्राद्धं यत्प्रतिवत्सरम्। मलमासेऽपि कर्तव्यं नान्येषां तु कथंचन ॥' इति।

जो सत्यव्रत ने कहा कि जो श्राद्ध माता-पिता की मृत्यु के दिन पर प्रतिवर्ष होता है, वह व्याघ्र मत से मलमास में न करे। यह कहना उनका द्वितीयादि वार्षिक परक है। क्योंकि पूर्व में कहे हुए वचन से प्रथमाब्दिक श्राद्ध मलमास में भी करने को कहा है। जहाँ द्वादश मास शुद्ध मास में हो वहाँ तेरहवें मास के अधिक में ही जिसका द्वादश मास अधिक मास के मध्य में हो वहाँ उस मास की द्विरावृत्ति कर शुद्ध चौदहवें में ही प्रथमाब्दिक करे—यह निष्कर्ष है। इससे द्वितीयाब्दिक श्राद्ध शुद्धमास में ही करे यह बात पृथ्वीचन्द्रोदय, दिवोदासीय और मदनपारिजात में कही है। मलमास में मृतकों का जब वही अधिक मलमास आये तब ही प्रति सांवत्सरिक करे। यही बात पैठीनसि ने कहा है—मलमास में मरे हुओं का प्रतिवार्षिक श्राद्ध मलमास में भी करे, दूसरों का किसीप्रकार न करे।

हेमाद्रौ व्यासोऽपि—'मलमासमृतानां तु सौरं मानं समाश्रयेत्।
स एव दिवसस्तस्य श्राद्धपिण्डोदकादिषु ॥'

यत्तु वृद्धवसिष्ठः—'श्राद्धीयाहनि सम्प्राप्ते अधिमासो भवेद्यदि। मासद्वयेऽपि कुर्वीत श्राद्धमेवं न मुह्यति ॥' यच्च व्यासः—'उत्तरे देवकार्याणि पितृकार्याणि चोभयोः।' इति तन्मासिकादिविषयम्। 'यौगादिकं मासिकं च श्राद्धं चापरपक्षिकम्। मन्वादिकं तैर्थिकं च कुर्यान्मासद्वयेऽपि च ॥' इति स्मृतिचन्द्रिकोक्तेः। तैर्थिकम्-तीर्थश्राद्धम्। तच्च दैवात् तीर्थप्राप्तौ मासद्वयेऽपि कार्यमिति त्रिस्थलीसेतौ भट्टाः।

जो वृद्धवसिष्ठ ने कहा कि यदि श्राद्ध दिन पर अधिकमास हो तो दोनों मासों में श्राद्ध करे। ऐसा करने से मोह को प्राप्त नहीं होता है। जो व्यास ने कहा कि—'दूसरे मास में देवताओं के कर्म और दोनों में पितरों के कर्म करे। ये वचन मासिकादि श्राद्ध परक हैं। स्मृतिचन्द्रिका में कहा है—यौगादिक, मासिकश्राद्ध, कृष्णपक्षश्राद्ध, मन्वादितिथिश्राद्ध तथा तीर्थश्राद्ध को दोनों महीने में करे। दैवात् तीर्थ की प्राप्ति में दोनों मास में करे। यह बात त्रिस्थलीसेतु में भट्टों ने भी कहा है।

केचित्तु—'प्रतिमासं मृताहे च श्राद्धं यत्प्रतिवसत्सरम्। मन्वादौ च युगादौ च तन्मासोरुभयोरपि ॥' इति मरीचिवचनात् 'वर्षे वर्षे तु यच्छ्राद्धं मातापित्रोर्मृतेऽहनि। मासद्वयेऽपि तत्कुर्याद्व्याघ्रस्य वचनं यथा ॥' इति गालवोक्तेश्च प्रत्याब्दिकं मासद्वये कार्यमित्याहुः। तत्तुच्छम्। प्रतिमासं मृताहे क्रियमाणं मासिकम्, प्रतिसंवत्सरं क्रियमाणं कल्पादिश्राद्धम्, इति मरीचिवचसो मदनरत्ने व्याख्यानात्। गालवीयस्य च 'मासद्वयात्मके क्षयमासे' इति माधवेन व्याख्यानात्।

यच्च कैश्चिदुक्तं प्रथमाब्दिकं मासद्वये कार्यम्। 'आब्दिकं प्रथमं यत्स्यात्तत्कुर्वीत मलिम्लुचे। त्रयोदशे च सम्प्राप्ते कुर्वीत पुनराब्दिकम् ॥' इति यमोक्तेरिति। तदपि चिन्त्यम्। पुनराब्दिकं द्वितीयादिवार्षिकं त्रयोदशेऽतीते चतुर्दशे कुर्यात्।

कोई सज्जन कहते हैं—प्रत्येक मास में मरणदिन में तथा जो प्रतिसंवत्सरश्राद्ध मन्वादि और युगादि का श्राद्ध, दोनों महिनों में होते हैं। यह मरीचि का वचन है। माता पिता के मरण दिन तथा साल साल पर जो श्राद्ध होता है, उसको व्याघ्र के कथनानुसार दोनों महीनों में करे। इसे गालव ने कहा है।

श्राद्ध दोनों महिनों में करे। उनका यह कहना तुच्छ है। प्रत्याब्दिक प्रतिमास मरण दिन में जो किया जाय वह मासिक और हर साल मृत के दिन जो किया जाय वह कल्पादि श्राद्ध होता है। यह मदनरत्न में मरीचि वचन का व्याख्यान है तथा गालवीय के वचन में वे दो मास लिये हैं। 'मास-

द्वयात्मक क्षयमास हो' यह माधव ने अर्थ लिखा है। जो किसी ने यह कहा कि—प्रथमाब्दिक दोनों मास में करना कहा है। यह प्रथमाब्दिकश्राद्ध मलमास में करे। लेकिन तेरहवें मास में पुनराब्दिक श्राद्ध करे। यह यम ने कहा है, वह भी चिन्तनीय है। क्योंकि पुनराब्दिक पद का अर्थ है—द्वितीयादि वार्षिक तेरहवें महीने के बीतजाने पर चौदहवें मास में करे।

अन्यथा—सांवत्सरं न वर्धेत श्राद्धं तत्र मृतेऽहनि। इति पैठीनसिविरोधः स्यादिति हेमाद्रौ पृथ्वीचन्द्रोदये च। एतेन 'न वर्धेत' न छिन्द्यात्, शुद्धेऽपि कुर्यादेव इत्यनन्तभट्टव्याख्या मानाभावात्परास्ता। पूर्वव्याख्यायां तु हारीतीये प्रथमग्रहणमेव मानम्।

अन्यथा पैठीनसि के वचन का विरोध हो जायगा सांवत्सरिक श्राद्ध नहीं बढ़ सकता उसे मरण दिन में ही करे यह बात हेमाद्रि तथा पृथ्वीचन्द्रोदय में लिखी है। इससे प्रमाणाभाव से अनन्तभट्ट व्याख्या भी खंडित हुई 'न वर्धेत' इसका यों अर्थ है कि उसको न बढ़ावे किन्तु शुद्धमास में ही करे। पूर्व व्याख्या से तो हारीत वचन में प्रथम पद का ग्रहण ही प्रमाण है।

यदपि निर्णयामृते पूर्वोक्तकालादर्शवचनात् मलमासे श्राद्धदिनस्य वन्ध्यत्वनिरासार्थं पित्रुद्देशेन ब्राह्मणान् भोजयित्वा शुद्धमासे सपिण्डकं श्राद्धं कुर्यात्। 'पिण्डवर्जमसंक्रान्ते संक्रान्तौ पिण्डसंयुतम्। प्रतिसंवत्सरं श्राद्धमेवं मासद्वयेऽपि च॥' इति वृद्धपराशरोक्तेरिति तदपि चिन्त्यम्। पूर्वोक्तवचनस्य क्षयपूर्वभाव्यधिकमासविषयत्वात्। तत्र हि मासद्वये श्राद्धमुक्तम्। तदाह सत्यतपाः—'एक एव यदा मासः संक्रान्तिद्वयसंयुतः। मासद्वयगतं श्राद्धं मलमासेऽपि शस्यते॥' इति। मासद्वयगतं पूर्वसंक्रान्तिगतं क्षयगतञ्च। मलमासे—क्षयमासे, अपिशब्दात् तत्पूर्वाधिमासे चेति हेमाद्रिः। दीपिकाऽपि—'तत्प्राक् सङ्ग्यधिमासको यदि भवेत्तत्रत्यसांवत्सरं तस्मिञ्छुद्धतया क्षये च वचनात्कुर्याद् द्वयोः कोविदः॥ इति। कालादर्शेऽप्येतद्विषय एवेत्यलं बहुना।

जो निर्णयामृत में पूर्वोक्त कालादर्श वचन से मलमास में श्राद्धदिन के बंध्यत्वनिराशार्थ पिता के उद्देश्य से ब्राह्मणों को भोजन करा कर शुद्ध मास में सपिंडक श्राद्ध करे। क्योंकि वृद्धपाराशर ने कहा है—वर्जित असंक्रान्ति में अपिंड संक्रान्ति हो तो पिण्डसहित श्राद्ध करे। प्रति संवत्सरश्राद्ध ही दोनों मासों में करे—वह भी चिन्तनीय है। क्योंकि पूर्वोक्त वचन का विषय वह अधिकमास है जो क्षयमास से प्रथम हो। उसमें दोनों महिनों में श्राद्ध कहा है। उसी बात को सत्यतपा ने कहा है—'जब संक्रान्तिद्वय से युक्त जब एक मास हो तो उस मलमास में अर्थात् क्षयमास में भी दोनों महिनों का श्राद्ध उत्तम है। हेमाद्रि ने इसका यों अर्थ लिखा है—पूर्व संक्रान्तिवाले महिने का तथा क्षयमास का श्राद्ध, ये दोनों करे। दीपिका में भी लिखा है—यदि अधिकमास हो तो उसका श्राद्ध प्रथम सांवत्सरिक शुद्धमास में तथा क्षयमास में बुद्धिमान् करे। कालादर्श में भी यही कहा है। अब विस्तार करना निष्प्रयोजन है।

(मलमासे वर्ज्यान्युक्तानि)

कालादर्शे-'अनित्यमनिमित्तञ्च दानं च महदादिकम्। अग्न्याधानाध्वरापूर्वतीर्थयात्राऽमरेक्षणम्॥ देवारामतडागादिप्रतिष्ठामौञ्जिबन्धनम्। आश्रमस्वीकृतिः काम्यवृषोत्सर्गश्च निष्क्रमः॥ राज्याभिषेकः प्रथमश्चचूडाकर्म व्रतानि च। अन्नप्राशनमारम्भो गृहाणां च प्रवेशनम्॥ स्नानं विवाहो नामातिपन्नं यत्र देवमहोत्सवः। व्रतारम्भसमाप्ती च कर्म काम्यं च पाप्मनाम्॥ प्रायश्चित्तं तु सर्वस्य मलमासे विवर्जयेत्। उपाकर्मोत्सर्जनं च पवित्रदमनार्पणम्॥ अवरोहश्च हैमन्तः सर्पाणां बलिरष्टकाः। ईशानस्य बलिर्विष्णोः शयनं परिवर्तनम्॥ दुर्गेन्द्रस्थापनोत्थाने ध्वजोत्थानं च वज्रिणः। पूर्वत्र प्रतिषिद्धानि परत्रान्यच्च दैविकम्।' इति। अत्र मूलवचनानि हेमाद्रिमाधवादिभ्यो ज्ञेयानि।

मलमास में वर्जित कर्मों को कहते हैं। कालादर्श में लिखा है—जो नित्य कर्म न हों, कोई निमित्त जिनका न हो महादान, अग्न्याधान, यज्ञ, अपूर्व तीर्थयात्रा, देवदर्शन, देवता, बगीचा, तालाव आदि की प्रतिष्ठा, यज्ञोपवीत, संन्यास आदि आश्रमों का स्वीकार, काम्य वृषोत्सर्ग, निष्क्रमण, राज्याभिषेक, प्रथम चूडाकरण, व्रत, अन्नप्राशन, गृहारंभ और प्रवेश, स्नान, विवाह, नामकरण, देव महोत्सव, व्रतारंभ तथा समाप्ति, काम्यकर्म एवं पापों का प्रायश्चित्त, ये सब मलमास में वर्जित हैं। उपाकर्म, उत्सर्ग, पवित्रदमनार्पण, हेमन्त ऋतु का उत्सव, सर्पों की वलि, अष्टकाश्राद्ध, ईशानबलि, विष्णुशयन और करवट लेना, दुर्गा तथा इन्द्र स्थापन, ध्वजोत्थापन ये सब क्षयमास या अधिकमास में वर्जित हैं। इन सबके मूल प्रमाण वचन हेमाद्रि तथा माधव आदि से जानने चाहिये।

दिवोदासीयेऽपि–'यात्रोत्सवं च देवादिशपथं दिव्यमेव च। मलमासे न कुर्वीत व्यासस्य वचनं यथा॥' इति। अयं निर्णयः क्षयमासेऽपि ज्ञेयः।

दिवोदास ने भी लिखा है—यात्रा, उत्सव, देवादि की शपथ दिव्यकर्म, मलमास में व्यास के वचनानुसार न करे। यही निर्णय क्षयमास में भी जानना चाहिये।

'रविसंक्रमहीने यो वर्ज्यावर्ज्यविधिः स्मृतः। स एव तु द्विसंक्रान्ते मलमासेप्युदीरितः॥ इति काठकगृह्योक्तेः।

काठकगृह्य में कहा है सूर्यसंक्रान्ति से हीन मास में जो वर्जित और अवर्जित विधि कही है, वही विधि ही दो संक्रान्तिवाले मलमास में कही गयी है।

(क्षयमासे मृतानां प्रत्याब्दिके विशेषनिर्णयः)

क्षयमासे मृतानां प्रत्याब्दिके विशेषो हेमाद्रौ–तिथ्यर्धे प्रथमे पूर्वो द्वितीयेऽर्द्धे तथोत्तरः। मासाविति बुधैश्चिन्त्यो क्षयमासस्य मध्यगौ॥ आब्दिकवद्वर्धापनेऽपि ज्ञेयम्।

यन्मलमासे वर्ज्यमुक्तं, तच्छुक्रगुर्वोरस्तादिष्वपि ज्ञेयम्। तदाह बृहस्पतिः–'बाले वा यदि वा वृद्धे शुक्रे वाऽस्तंगते गुरौ। मलमास इवैतानि वर्जयेद्देवदर्शनम्॥' इति। 'अनादिदेवतां दृष्ट्वा शुचः स्युर्नष्टभार्गवे। मलमासेऽप्यनावृत्ततीर्थयात्रां विवर्जयेत्॥' आवृत्ततीर्थे दोषाभावमात्रं, न तु फलमिति वाचस्पतिमिश्राः।

क्षयमास में मरे हुओं का प्रत्याब्दिक विशेप हेमाद्रि में कहा है—जो तिथ्यर्ध में मृत हो उसका पूर्व मास और जो उत्तरार्ध में मृत हो उसका उत्तरमास जाने। पण्डितगण मासों की चिन्ता करते हैं। क्षयमास के दोनों मासों में जानना चाहिये। आब्दिकवत् वर्धापन—वर्षगाँठ भी जानना चाहिये। जो मलमास में वर्जित है वह शुक्र तथा गुरु के अस्त आदि में भी जानना चाहिये। उसी को बृहस्पति ने कहा है—शुक्र या बृहस्पति के बाल, वृद्ध तथा अस्त हो जाने पर मलमास के तुल्य ये कर्म—देवदर्शन वर्जित है। नष्ट शुक्र में अनादि देवता को देखकर मनुष्य अपवित्र हो जाते हैं और मलमास में भी प्रथम यात्रा न की हो उस तीर्थयात्रा को न करे। जिस तीर्थकी यात्रा प्रथम कभी की हो उसमें कुछ दोषाभाव मात्र है तथा न कुछ फल है, यह वाचस्पतिमिश्र का कहना है।

तन्न। असति बाधके फलहेतुत्वाच्चतेः। लल्लोऽपि—'नीचस्थे वक्रसंस्थेऽप्यतिचरणगते बालवृद्धास्तगे वा संन्यासो देवयात्राव्रतनियमविधिः कर्णवेधस्तुदीक्षा। मौञ्जीबन्धोऽङ्गनानां परिणयमनविधिर्वास्तुदेवप्रतिष्ठा वर्ज्याः सद्भिः प्रयत्नात्त्रिदशपतिगुरौ सिंहराशिस्थिते च॥' इति। दीक्षा–यागदीक्षा, न त्वागमदीक्षा। तथा–'उद्यानचूडाव्रतबन्धदीक्षा विवाहयात्राश्च वधूप्रवेशम्। तडागकूपत्रिदशप्रतिष्ठा बृहस्पतौ सिंहगते न कुर्यात्॥' दिवोदासीये–'गुर्वादित्ये गुरौ सिंहे नष्टे शुक्रे मलिम्लुचे। गृहकर्म व्रतं यात्रां मनसापि न चिन्तयेत्॥'

यह ठीक नहीं है क्योंकि असति बाधक में फल हेतुत्व का आक्षेप होगा। लल्ल ने भी कहा है—यदि बृहस्पति नीच का हो, वक्री हो, अतिचारी हो, बालक, वृद्ध या अस्त हो तथा सिंहराशि का हो तो संन्यास, देवयात्रा, व्रत-नियम विधि, कर्णवेध, यज्ञ, वेददीक्षा, यज्ञोपवीत, विवाह, वास्तु, देवताप्रतिष्ठा, इन कर्मों को अच्छे आदमी न करे। 'बगीचा लगाना, मुण्डन, यज्ञोपवीत, विवाह, यात्रा, वधूप्रवेश, कूप एवं देवप्रतिष्ठा, इतने कर्मों को सिंह बृहस्पति में न करे। दिवोदासीय में लिखा है—'गुर्वादित्य में, सिंह गुरु में, शुक्रास्त में, मलमास में, गृहकर्म, व्रत तथा यात्रा को मन से भी न करे।

अस्यापवादस्तत्रैव ब्राह्मे—'मुण्डनं चोपवासश्च गौतम्यां सिंहगे गुरौ। कन्यागते तु कृष्णायां न तु तत्तीरवासिनाम् ॥' तथा—'आद्यासौ गौतमी गङ्गा द्वितीया जाह्नवी स्मृता। सर्वतीर्थफलं स्नानाद् गौतम्यां सिंहगे गुरौ ॥' संहिताप्रदीपे—'स्यात्सप्तरात्रं गुरुशुक्रयोश्च बालत्वमह्नां दशकश्च वार्द्धक्यम्। वृद्धौ सितेज्यावशुभौ शिशुत्वे शस्तौ यतस्तावुपचीयमानौ ॥' वसिष्ठः—'अतिचारगते जीवे वर्जयेत्तदनन्तरम्। व्रतोद्वाहादिकार्येषु अष्टाविंशतिवासरान् ॥'

इसका अपवाद भी उसी ब्रह्मपुराण में लिखा है—मुण्डन तथा उपवास ये दोनों कार्य सिंह गुरु में गौतमी नदी के किनारे पर तथा कन्या के बृहस्पति में कृष्णा नदी के तीरनिवासी न करें। और भी यह गौतमी गंगा है तथा दूसरी गंगा जाह्नवी है। इससे सिंहराशि के बृहस्पति में गौतमी स्नान से सब तीर्थों का फल हो जाता है। संहिताप्रदीप में लिखा है—बृहस्पति तथा शुक्र सात दिन बालक और दस दिन तक वृद्ध हो जाते हैं, ये दोनों वृद्ध तो अशुभ होते हैं। बालकादिक शुभ हो जाते हैं लेकिन आगे बढ़नेवाले होते हैं। वसिष्ठ का कहना है—यदि बृहसति अतिचारी हो तो उसी दिन से अट्ठाईस दिन व्रत तथा उद्वाह आदि कार्य न करे।

(अथ बाल्यादिलक्षणम्)

बाल्यादिलक्षणमुक्तं ब्रह्मसिद्धान्ते—'रविणाऽऽसत्तिरन्येषां ग्रहाणामस्त उच्यते। ततोऽर्वाग्वार्द्धकं प्रोक्तमूर्ध्वबाल्यं प्रकीर्तितम् ॥ इति।

बाल्य आदि का लक्षण ब्रह्मसिद्धान्त में लिखा है—सूर्य के साथ अन्य ग्रह अस्त होते हैं। अतः अस्त से पूर्व वृद्ध और उदय से परे बाल्य होता है।

(अथ बाल्यादिपरिमाणम्)

बाल्यादिपरिमाणं च वृत्तशते—'बालः शुक्रो दिवसदशकं, पञ्चकं चैव वृद्धः, पश्चादह्नां त्रितय मुदितः, पक्षमैन्द्र्यां क्रमेण। जीवो वृद्धः शिशुरपि तथा, पक्षमन्यैः शिशू तौ वृद्धौ प्रोक्तौ दिवसदशकं चापरैः सप्तरात्रम् ॥' पश्चिमत उदये दशदिनानि बालः, अस्ते पञ्चदिनानि वृद्धः, पूर्वतो दिनत्रयं बालः, पक्षं च वृद्ध इत्यर्थः। जीवो—गुरुः।

वृत्तशत में बाल्यादि का प्रमाण लिखा है। यदि शुक्र पश्चिमदिशा में उदय हो तो दस दिन तक बालक और अस्त हो तो पाँच दिन तक वृद्ध हो जाता है। पूर्व दिशा के उदय में तीन दिन तक बालक एवं अस्त में पक्ष भर तक वृद्ध हो जाता है। इसीतरह बृहस्पति भी बालक तथा वृद्ध रहता है। अन्य तो इन दोनों को पक्षभर बालक एवं दस दिन वृद्ध मानते हैं तथा कोई सात तक वृद्ध कहते हैं।

अन्यत्र त्वन्यथोक्तम्—'प्राक् पश्चादुदितः शुक्रः पञ्चसप्तदिनं शिशुः।
विपरीते तु वृद्धत्वं तद्वदेव गुरोरपि ॥' इति।

अन्यत्र तो दूसरा कहा है—पूर्व तथा पश्चिम में उदित शुक्र या बृहस्पति क्रम से पाँच और सात दिन तक शिशु इससे विपरीत वृद्ध हो जाता है।

(एषां पक्षाणां व्यवस्थामाह)

मिहिरः—'बहवो दर्शिताः काला ये बाल्ये वार्द्धकेऽपि वा।
ग्राह्यास्तत्राधिकाः शेषा देशभेदादुतापदि ॥ इति।

मिहिर ने इन पक्षों की व्यवस्था कही है— जो बहुत से काल बाल्य तथा वार्धक के दिखाये हैं। उनमें ग्राह्य अधिक हैं, शेष देशभेद से आपत्काल में मानने योग्य हैं।

(अथ देशभेदः)

मदनरत्ने गार्ग्यः—'शुक्रो गुरुः प्राक् च पराक् च बालो विन्ध्ये दशावन्तिषु सप्तरात्रम्।
वङ्गेषु हूणेषु च पट् च पञ्च शेषे च देशे त्रिदिनं वदन्ति ॥' इति।

मदनरत्न में गर्ग ने कहा है--शुक्र तथा बृहस्पति पूर्व या पश्चिम में विंध्याचल के प्रान्त में दस दिन, अवन्तियों में सात दिन, वंगदेश में छः दिन, हूण देश में पाँच दिन एवं अवशिष्ट देशों में तीन दिन बालक हो जाता है।

(अस्तादेरपवादमाह)

काशीखण्डे—'न ग्रहास्तोदयकृतो दोषो विश्वेश्वरालये।' त्रिस्थलीसेतौ वायवीये—'गोदावर्यां गयायां च श्रीशैले ग्रहणद्वये। सुरासुरगुरूणां च मौढ्यदोषो न विद्यते॥ ग्रहणद्वये–तन्निमित्तककुरुक्षेत्रयात्रादानादावित्यर्थः। तदाह त्रिस्थलीसेतौ लल्लः—उपप्लवे शीतलभानुभान्वोरर्धोदये वै कपिलाख्यपष्ठ्याम्। सुरासुरेज्यास्तमयेऽपि तीर्थे यात्राविधिः संक्रमणे च शस्तः॥ इत्यलं बहुना।

काशीखंड में अस्तादि का निषेध कहा है—विश्वेश्वरालय में ग्रहों के उदयास्त का दोष नहीं है। त्रिस्थलीसेतु में वायुपुराण का वचन है—गोदावरी, गया, श्रीशैल पर्वत, ग्रहणद्वय (चन्द्र तथा सूर्य) में अर्थात्--कुरुक्षेत्र की यात्रा, दान आदि में गुरु एवं शुक्रादि का दोष नहीं होता है। उसीको त्रिस्थलीसेतु में लल्ल ने कहा है—चन्द्र तथा सूर्यग्रहण में, अर्धोदय में, कपिलाषष्ठी एवं संक्रान्ति में गुरु और शुक्रास्त हो जाने पर भी तीर्थयात्रा विधि श्रेष्ठ है। अधिक कहने की कोई आवश्यकता नहीं है।

(अथ मलमासे व्रतविशेषः)

हेमाद्रौ पाद्मे—'अधिमासे तु सम्प्राप्ते गुडसर्पिर्युतानि च। त्रयस्त्रिंशदपूपानि दातव्यानि दिने दिने॥ साज्यानि गुडमिश्राणि अधिमासे नृपोत्तम। अधिमासे तु सम्प्राप्ते त्रयस्त्रिंशत्तु देवताः॥ उद्दिश्यापूपदानेन पृथ्वीदानफलं लभेत्। त्रयस्त्रिंशदपूपान्नं कांस्यपात्रे निधाय च॥ सघृतं च हिरण्यं च ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥ विष्णुरूपी सहस्रांशु सर्वपापप्रणाशनः। अपूपान्नप्रदानेन मम पापं व्यपोहतु॥ नारायण जगद्बीज भास्करप्रतिरूपक॥ व्रतेनानेन पुत्रांश्च संपदं चाभिवर्द्धय। यस्य हस्ते गदाचक्रे गरुडो यस्य वाहनम्॥ शङ्खः करतले यस्य स मे विष्णुः प्रसीदतु। कलाकाष्ठादिरूपेण निमेषघटिकादिना॥ यो वञ्चयति भूतानि, तस्मै कालात्मने नमः। कुरुक्षेत्रमयं देशः, कालः पर्व, द्विजो हरिः॥ पृथ्वीसममिदं दानं गृहाणपु रुषोत्तम। मलानां च विशुद्ध्यर्थं पापप्रशमनाय च॥ पुत्रपौत्राभिवृद्ध्यर्थं तव दास्यामि भास्कर। मन्त्रेणानेन यो दद्यात् त्रयस्त्रिंशदपूपकान्॥ प्राप्नोति विपुलां लक्ष्मीं पुत्रपौत्रादिसंपदः।' इति मलमासनिर्णयः।

हेमाद्रि में पद्मपुराण का मत है—मलमास में व्रतविशेष कहा है--जब मलमास प्राप्त हो तब तेतीस देवताओं के निमित्त मालपुवों के दान द्वारा भूमि दान का फल मिलता है। मलमास में गुड़ एवं घृत के सहित तेतीस मालपुवा प्रतिदिन देना चाहिये। हे नृपोत्तम, मलमास में घृत और गुड़ के सहित तेंतीस मालपुवा कांस्यपात्र में रखकर घृत एवं सुवर्ण सहित ब्राह्मण को दान करे। कहे—सब पापों को नष्ट करने वाले विष्णुरूपी सूर्य, अपूपान्न के देने मात्र से मेरे पापों को दूर करें। नारायण, भास्करप्रतिरूपक जगद्बीज, इस व्रत से मेरे पुत्रों की तथा संपत्ति की अभिवृद्धि करो। जिसके हाथ में गदा, चक्र, गरुड़ जिसका वाहन है, शंख जिसके हाथ में है, वह विष्णु मेरे ऊपर प्रसन्न हो। कला और काष्ठादिरूप

से निमेष घटी आदिरूप से जो सब प्राणियों की वञ्चना करता है उस कालरूप को नमस्कार है। यह देश कुरुक्षेत्र के तुल्य है। काल पर्व के तुल्य है। यह द्विज हरि के तुल्य है। हे पुरुषोत्तम, पृथ्वी के तुल्य इस दान को ग्रहण करो। हे भास्कर, मलों की शुद्धि तथा पापों के प्रशमन के लिए पुत्र-पौत्र आदि की वृद्धि के लिये आपको देता हूँ। इस मन्त्र को कहकर जो तेंतीस मालपूवा देता है उसे प्रचुर लक्ष्मी एवं पुत्र-पौत्र आदि संपत्ति प्राप्त होती रहती है।

(अथ पक्षनिर्णयः)

पक्षनिर्णयस्तु—'दैवे मुख्यः शुक्लपक्षः, कृष्णः पित्र्ये विशिष्यते' इति माधवेनोक्तः।

पक्ष का निर्णय तो माधव ने कहा है कि दैवकर्म में शुक्लपक्ष और पितृकर्म में कृष्णपक्ष मुख्य है।

(अथ तिथिवेधादिनिर्णयः)

तत्र तिथिर्द्वेधा—शुद्धा विद्धा च। दिने तिथ्यन्तरसंबन्धरहिता शुद्धा तत्सहिता विद्धा। तत्र शुद्धायायामसन्देहाद्विद्धा निर्णीयते। तत्र सामान्यतो वेधमाह माधवीये पैठीनसिः— 'पक्षद्वयेऽपि तिथयस्तिथिं पूर्वां तथोत्तराम्। त्रिभिर्मुहूर्तैर्विध्यन्ति सामान्योऽयं विधिः स्मृतः॥' इति।

तिथि के दो भेद हैं—शुद्धा तथा विद्धा। दिन में तिथ्यन्तर सम्बन्ध रहिता शुद्धा है। उसके सहित विद्धा है।

शुद्धा में असंदेह होने से विद्धा का निर्णय करते हैं। माधवीय में पैठीनसि में सामान्यतया वेध कहा है दोनों पक्षों में तिथियाँ अपने से पूर्व तथा उत्तरा तिथि को तीन मुहूर्त से वेधती हैं। यह सामान्यविधि है।

हेमाद्रिमदनरत्नादौ तु द्विमुहूर्तोऽप्युक्तः—'उदिते दैवतं भानौ पित्र्यमस्तमिते रवौ। द्विमुहूर्ता त्रिरह्नश्च सा तिथिर्हव्यकव्ययोः॥' इति विष्णुधर्मोक्तेः। द्विमुहूर्तत्वं चानुकल्पः— 'द्विमुहूर्ताऽपि कर्तव्या या तिथिर्वृद्धिगामिनी।' इति दक्षेणापि शब्दोक्तेः।

हेमाद्रि एवं मदनरत्न आदि में तो दो मुहूर्त भी कहा है—भानु (सूर्य) के उदय होने से दो मुहूर्त तक तिथि में देवकर्म तथा अस्त से तीन मुहूर्त तक तिथि हो तो पितृकर्म एवं शेष दिन हव्य कव्य में उत्तम हैं—यह विष्णुधर्म में कहा है। ये दो मुहूर्त भी अनुकल्प हैं। जो तिथि वृद्धगामिनी हो उसके दो मुहूर्त में कर्म करे। क्योंकि दक्ष ने 'अपि' शब्द से कहा है।

अयं वेधः प्रातरेव सायं तु त्रिमुहूर्तवेध एव। 'यां तिथिं समनुप्राप्य यात्यस्तं पद्मिनी-पतिः। सा तिथिस्तद्दिने प्रोक्ता त्रिमुहूर्तैव या भवेत्॥' इति स्कान्दोक्तेः। दीपिकायामपि—'त्रिमु-हूर्तगा तु सकला सायम्।' इति।

यह वेध प्रातःकाल में जानना चाहिये। सायंकाल में तो तीन मुहूर्त का ही वेध होता है। स्कन्द-पुराण का मत है कि जिस तिथि को प्राप्त होकर सूर्य अस्त हो तो उसी दिन तीन मुहूर्त भी जो तिथि हो वह तिथि उस दिन समझना चाहिये। दीपिका में भी लिखा है—जो तिथि सायंकाल तीन मुहूर्त तक हो।

यानि तु—'व्रतोपवासस्नानादौ घटिकैकापि या भवेत्। उदये सा तिथिर्ग्राह्या विपरीता तु-पैतृके॥' इत्यादीनि स्कान्दादिवचनानि तानि वैश्वानराधिकरणन्यायेनावयवस्तुत्या त्रिमुहूर्तप्रशंसा-पराणि।

जो स्कन्दपुराणादि के वचन हैं व्रत, उपवास, स्नान आदि में वह तिथि ग्रहण करे। जो उदय में

एक घड़ी भी हो तथा पैतृककर्म में इससे विपरीत हो उनको [१]वैश्वानराधिकरणन्याय से अवयव की स्तुति से तीन मुहूर्त प्रशंसापरक है।

(अथ तिथिविशेषे वेधविशेषः)

तिथिविशेषे वेधविशेषः स्कान्दे–'नागो द्वादशनाडीभिर्दिक् पञ्चदशभिस्तथा। भूतोऽष्टादशनाडीभिर्दूषयत्युत्तरां तिथिम् ॥' इति अयं चोपवासातिरिक्तविषय इति वक्ष्यते। इति वेधः।

स्कन्दपुराण में कहा है—सप्तमी बारह घटी से, दशमी और पञ्चमी दस घटी से एवं चतुर्दशी अठारह घटी से अग्रिम तिथियों को वेधकर दूषित करती हैं। यह उपवासातिरिक्तविषयको आगे कहेंगे।

(अथ कर्मकाल व्यापिनीतिथिविचारः)

तत्र सर्वा तिथिर्यदहः कर्मकालव्यापिनी, सैव ग्राह्या। 'कर्मणो यस्य यः कालस्तत्कालव्यापिनी तिथिः। तया कर्माणि कुर्वीत ह्रासवृद्धी न कारणम् ॥' इति विष्णुधर्मोक्तेः। दिनद्वये तद्व्याप्तावेकदेशव्याप्तौ वा युग्मवाक्यान्निर्णयः। तस्य पूर्वाऽबाधेनोपपत्तेः। कर्मकालस्य प्रधानत्वाच्च। युग्मवाक्यं तु निगमः—'युग्माग्नियुगभूतानां षण्मुन्योर्वसुरन्ध्रयोः। रुद्रेण द्वादशी युक्ता चतुर्दश्यां च पूर्णिमा ॥ प्रतिपदाप्यमावास्या तिथ्योर्युग्मं महाफलम्। एतद्व्यस्तं महादोषं, हन्ति पुण्यं पुराकृतम् ॥' इति। अत्र रन्ध्रान्ताः शब्दाः द्वितीयादिनवम्यन्ततिथिवाचकाः। रुद्रः–एकादशी। द्वितीया तृतीयायुता, सा च द्वितीयायुतेति सप्तयुग्मानीत्यर्थः। इदं च शुक्लपक्षे अमाप्रतिपद्युग्मस्य पूर्णिमायाश्च तत्रैव सत्त्वादिति केचित्।

जो तिथि कर्मकाल व्यापिनी हो वही लेनी चाहिये। क्योंकि विष्णुधर्म में कहा है—जिस कर्म का जो काल (समय) हो उस समय तक व्यापिनी जो तिथि हो उसमें कर्मों को करे। क्योंकि उसमें ह्रास तथा वृद्धि कारण नहीं होता है। यदि वह तिथि दो दिन हो या एक समय में हो तो युग्मवाक्य से निर्णय करे। इसप्रकार पहली तिथि के बाध से होगा। उसका कर्म के समय की प्रधानता से द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी इन तिथियों के सात युग्म होते हैं, द्वितीया के सहित तृतीया तथा तृतीया के सहित द्वितीया आदि। एकादशी से युक्त द्वादशी, चतुर्दशी से युक्त पूर्णिमा और प्रतिपदा से युक्त अमावास्या, इन तिथियों का युग्म महाफल को देता है। यदि यह उलटकर हो तो महादोष है। पहले के किये हुए पुण्य को नाश कर देता है। यह युग्म शुक्लपक्ष में समझना चाहिये। अमावास्या एवं प्रतिपद का योग और पूर्णिमा शुक्लपक्ष में ही होती हैं। ऐसा कोई कहते हैं।

तत्त्वं त्वमाप्रतिपद्युग्मात् कृष्णपक्षलिङ्गात् पक्षद्वयपरमिदं तत्तद्विशेषवाक्यैः कृष्णे तिथिविशेषेऽपोद्यते–इति।

सिद्धान्त तो यह है—अमावस्या और प्रतिपदा के युग्म से, कृष्णपक्ष के लिंग से यह पक्षद्वयपरक हैं तथा उन अविशेष वाक्यों से कृष्णपक्ष की तिथिविशेष में इसका अनुवाद है।

(अथ मांगलिककार्येषु प्रतिपदादितिथिविचारः)

दशमी तूक्ता पुराणसमुच्चये—'सम्पूर्णा दशमी कार्या मिश्रिता, पूर्वयाऽथवा।' इति। सम्पूर्णे शुक्लपक्षे त्रयोदशी तु सुमन्तुनोक्ता—'त्रयोदशी तु कर्तव्या द्वादशीसहिता मुने।' इति। कृष्णपक्षे त्वापस्तम्बः—प्रतिपत्सद्वितीया स्यात्, द्वितीया प्रतिपद्युता। चतुर्थीसंयुता या च सा तृतीया

(१) पुत्र उत्पन्न होने पर द्वादशकपाल पुरोडाश से वैश्वानरदेवता का याग करना चाहिये। ऐसा उपक्रम (प्रारंभ) करके अष्टाकपाल, नवकपाल, दशकपाल, एकादशकपाल आदि पवित्रता, ओज-शक्ति, अन्नादि शक्ति तथा इन्द्रियों को सशक्त बनाने वाले होते हैं। ऐसी इन अष्टाकपाल आदि द्वादशकपाल ही से इष्टसिद्धि हो जाने पर अष्टाकपाल आदि अवयवस्तुति के द्वारा अवयवी की भी प्रशंसा की गयी है। उसीप्रकार यहाँ स्कन्दादिवचन त्रिमुहूर्त (तीन मुहूर्तों की) प्रशंसा परक हैं।

फलप्रदा ॥ पञ्चमी च प्रकर्तव्या षष्ठया युक्ता तु नारद। कृष्णपक्षेऽष्टमी चैव कृष्णपक्षे चतुर्दशी ॥ पूर्वविद्धा प्रकर्त्तव्या, परविद्धा न कुत्रचित्। दशमी च प्रकर्तव्या सदुर्गा द्विजसत्तम ॥ षष्ठयष्टमी अमावास्या कृष्णपक्षे त्रयोदशी। एताः परयुताः पूज्याः पराः पूर्वेण संयुता। इति।

पुराणसमुच्चय में दशमी कहा है—शुक्लपक्षमें पूर्वतिथिसे मिश्रित दशमी करे। त्रयोदशी सुमन्तु ने कहा है। हे मुने, द्वादशी के सहित त्रयोदशी तिथि करे। कृष्णपक्ष में तो आपस्तंब ने कहा है—द्वितीया तिथि से सहित प्रतिपदा, प्रतिपदा के सहित द्वितीया एवं चतुर्थी के सहित तृतीया महान् फल को देती है। हे नारद, षष्ठी से युक्त पञ्चमी करे। कृष्णपक्ष में अष्टमी तथा चतुर्दशी ये दोनों पूर्व विद्धा करे। कभी भी परविद्धा न करे। हे द्विजसत्तम, ये परयुता पूज्य हैं एवं दुर्गा के पूजन में दशमी ग्रहण करे। षष्ठी, अष्टमी, अमावास्या तथा कृष्णपक्ष की त्रयोदशी ये परतिथि पूर्वतिथि से संयुक्त पूज्य होती हैं।

(अथ खर्वदर्पहिंसानां तिथिपरत्वे विचारः)

यत्तु व्याघ्रः—'खर्वो दर्पस्तथा हिंसा त्रिविधं तिथिलक्षणम्। खर्वदर्पौ परौ पूज्यौ हिंसा स्यात्पूर्वकालिकी ॥' इति। खर्वः-साम्यं, दर्पो वृद्धिः, तयोः पराः। हिंसा–क्षयस्तत्र पूर्वेत्यर्थः।

एतच्छ्राद्धादिविषयम्। द्वितीयादिकयुग्मानां पूज्यता नियमादिषु। एकोद्दिष्टादिवृद्ध्यादौ ह्रासवृद्ध्यादिचोदना ॥' इति व्यासोक्तेः। नियमादिषु व्रतदानादिदैवकर्मसु। एकोद्दिष्टादितिथिर्वृद्ध्यादावित्यर्थः। कर्मकालव्याप्त्यभावे तु कर्मोपक्रमकालगैव ग्राह्या। 'कर्मोपक्रमकालगा तु कृतिभिर्ग्राह्या न युग्मादरः ॥ इति दीपिकोक्तेः। यानि तु—यां तिथिं समनुप्राप्य उदयं याति भास्करः। सा तिथिः सकला ज्ञेया दानाध्ययनकर्मसु ॥ इत्यादीनि तानि त्रिमुहूर्तादिस्तुतिरिति निर्णयशैली।

जो व्याघ्र ने कहा है—खर्व, दर्प तथा हिंसा ये त्रिविध तिथियों के लक्षण हैं, इनमें खर्व, दर्प पर पूज्य हैं तथा हिंसा में पूर्वतिथि अर्चनीय होती है। यह श्राद्धादि विषयक है। खर्व–साम्य, दर्प=वृद्धि, हिंसा, क्षय। यह एकोद्दिष्टादि वृध्यादि में ह्रास वृद्ध्यादि यह व्यास ने कहा है। द्वितीयादि युग्मों को नियमादियोंमें पूज्यता है। नियमादियों में व्रत, दानादि दैव कर्मों में एकोदिष्टादितिथिका वृद्ध्यादि में यह अर्थ है कर्मकाल व्याप्त्यभावमें तो कर्म (यो यस्य विहितः कालः कर्मणस्तदुपक्रमे। विद्यमाना भवेदङ्गं नोज्झितोपक्रमेण तु ॥) काल ग्रहण करे। कर्म के प्रारम्भ काल की तिथि ही ग्रहण करनी चाहिये। युग्म का आदर न करे—यह दीपिका में कहा है। जो वचन और हैं जिस तिथिको प्राप्त होकर सूर्य उदय को प्राप्त होता है, वह संपूर्ण तिथि दान, अध्ययन कर्मों में ग्राह्य है। ये सब वचन तीन मुहूर्त आदि तिथि की स्तुति परक हैं। यह निर्णयशैली है।

(अथैकभक्तम्)

तत्कालः पाद्मे—'मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या एकभक्ते सदा तिथिः। मध्याह्नश्च पञ्चधाविभक्तदिनतृतीयांशः। तेन यद्यपि द्वादशदण्डानन्तरं प्राप्यते, तथापि–'दिनार्धसमयेऽतीते भुज्यते नियमेन यत्। एकभक्तमिति प्रोक्तमतस्तत्स्याद्दिवैव हि ॥' इति स्कान्दोक्तेः। षोडशसप्तदशादिदण्डमुख्यकालः।

उसका काल पद्मपुराण में कहा है—निरन्तर एक भक्त में मध्याह्नव्यापिनी तिथि ग्रहण करे। मध्याह्न का तो पाँच विभाग किये जाने पर दिन का तीसरा भाग होता है। उससे यद्यपि बारह घड़ी के अनुसार प्राप्त होता है। स्कन्दपुराण में कहा है—फिर भी दिन के आधे बीतने पर नियमवान् होकर भोजन करते हैं, इसी से इसको एकभक्त कहा जाता है, वह दिन में ही होता है। मध्याह्न का मुख्यकाल सोलह तथा सतरह घड़ी होता है।

दीपिकायां तु—'मध्याह्नान्त्यदले त्रिभागदिवसे स्यादेकभक्तम्' इति। ततः सूर्यास्तपर्यन्तं गौणः। 'दिवैव हि' इत्यस्य वैयर्थ्यापत्त्यैतत्परत्वात्।

दीपिका में तो कहा है—मध्याह्न से अन्त्यदल त्रिभागदिनमें तो एकभक्त होता है। फिर सूर्यास्तपर्यन्त गौणकाल होता है। नहीं तो पूर्वोक्त स्कन्द का वचन दिन में ही व्यर्थ होगा।

अत्र, पूर्वेद्युर्व्याप्तिः, अपरेद्युः, उभयेद्युर्व्याप्तिः तदभावः, अंशव्याप्तिः, तत्राऽपि साम्यं, वैषम्यं चेति षट् पक्षाः। तत्राद्ययोरसंदेह एव, तृतीये तु पूर्वेऽह्नि गौणमुख्यव्याप्तेः सत्त्वात् पूर्वा इति माधवः। युग्मवाक्यान्निर्णय इति हेमाद्रिः। चतुर्थपक्षे पूर्वैव। गौणकालव्याप्ते सत्वात्। वैषम्येणांशव्याप्तौ याऽधिका सा ग्राह्या। साम्ये पूर्वा। अयं च स्वतन्त्रैकभक्तनर्णयः। अन्याङ्गे उपवासप्रतिनिधौ च तदनुसारेण निर्णयः।

इसमें छः पक्ष हैं—पूर्व दिन में व्याप्ति—सम्बन्ध (योग) परदिन में तथा उभय दिन में अव्याप्ति, उसके अभाव में अंश व्याप्ति, (थोड़ा रहना) उसके भी साम्य (समान रूपसे दोनोंदिन में तिथिका रहना) तथा वैषम्य (न्यूनाधिक रूपसे योग सम्बन्ध) ये छः पक्ष हैं। इनमें आदि के दोनों में संशय नहीं है, तृतीय पक्ष में पूर्वदिन में गौण एवं मुख्य की प्राप्ति हो जाने से पूर्वदिन करे। यह माधव का मत है। हेमाद्रि का कहना है कि—युग्मवाक्य से निर्णय करे। चतुर्थ पक्ष में गौणकाल की व्याप्ति है। विषमता से अंश-व्याप्ति में हो जो अधिक हो वह ग्रहण करे। साम्य अर्थात् तिथि एकसी हो तो पूर्वतिथि ले। यह निर्णय स्वतन्त्र एकभक्त का है। उपवास प्रतिनिधि में जो एकभक्त है, उसका निर्णय उपवास के अनुसार होता है।

(अथ नक्तम्)

तच्च दिवानशनपूर्वं रात्रिभोजनम्। तत्र प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या। प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या तिथिर्नक्तव्रते सदा॥' इति वत्सोक्तेः। प्रदोषस्तु—'त्रिमुहूर्त्तं प्रदोषः स्यात् भानावस्तं गते सति। नक्तं तत्र तु कर्तव्यमिति शास्त्रविनिश्चयः॥' इति मदनरत्ने व्यासोक्तेः। तत्रापि त्रिदण्डोत्तरं ग्राह्यम्। 'सायंसन्ध्या त्रिघटिका अस्तादुपरि भास्वतः।' इति स्कान्दोक्तेर्दण्डत्रयस्य सन्ध्यात्वात्। तत्र—'चत्वारीमानि कर्माणि सन्ध्यायां परिवर्जयेत्। आहारं मैथुनं निद्रां स्वाध्यायं च चतुर्थकम्॥' इति मार्कण्डेयेन भोजननिषेधात्। 'मुहूर्तोनं दिनं नक्तं प्रवदन्ति मनीषिणः। नक्षत्रदर्शनान्नक्तमहं मन्ये गणाधिप॥' इति माधवीये भविष्योक्तेश्च।

उसमें दिन में भोजन न कर रात में भोजन होता है। उसमें प्रदोषव्यापिनी तिथि ग्राह्य है। वत्स का कथन है—नक्तव्रत में सदैव प्रदोषव्यापिनी तिथि ग्रहण करे। मदनरत्न में व्यास के कथनानुसार सूर्यास्त हो जाने पर तीन मुहूर्त प्रदोष होता है, उसमें रात्रि (नक्त) व्रत करे। यह शास्त्र का निश्चय है। उसमें भी त्रिदण्डोत्तर=तीन घटी के वाद ग्रहण करे। क्योंकि स्कन्दपुराणमें कहा है—सूर्यास्त के वाद तीन घड़ी सायंकाल की सन्ध्या होतीहै। उस सन्ध्याकाल में मार्कण्डेय ने भोजन का निषेध कहा है। सन्ध्याकालके समय ये चार कर्म न करे—भोजन, मैथुन, निद्रा और चतुर्थ स्वाध्याय। माधवीय में भविष्यपुराण का वचन है—एक मुहूर्त न्यून दिन को मनीषीगण नक्त कहते हैं। नक्षत्र दर्शन से मैं नक्त मानता हूँ।

गौडास्तु—'प्रदोषोऽस्तमयादूर्ध्वं घटिकाद्वयमिष्यते।' इति वत्सोक्तः प्रदोषसन्ध्या च दिन-रात्र्योः सन्धौ मुहूर्तः। "अर्वागस्तमयात्सन्ध्या व्यक्तीभूता न तारका यावत्। तेजः परिहा-निवशाद्भानोरर्धोदयं यावत्॥' इति वराहोक्तेरित्याहुः, तन्न। अस्य सन्ध्यावन्दनानध्यायादि-परत्वात्। अत एव तत्र खण्डमण्डलस्य सन्ध्यात्वमुक्तं विज्ञानेश्वरेण।

गौड तो वत्स के कहने से सूर्यास्त के ऊपर दो घड़ी प्रदोष माने। प्रदोष तथा सन्ध्या ये दोनों दिन-रात्रि की सन्धि में मुहूर्त कहा है। जबतक तारोंके न प्रकट होने तक सूर्य के तेज की हानि न हो तब तक तथा सूर्य के अर्धोदय हो जाने तक। यह ठीक नहीं है। क्योंकि यह वचन सन्ध्यावन्दन एवं अनध्यायादि के विषय में है। इसीलिये खण्ड हुए सूर्य के मण्डल को ही सन्ध्या विज्ञानेश्वर ने कहा है।

यच्च मदनरत्ने—'नक्तस्य वैधत्वाद्रागप्राप्तभोजनगोचरो निषेध' इत्युक्तम्। तन्न। विधेर्नि-षेधाविरोधात्। अन्यथा कपिञ्जलानित्यत्र त्रिभ्योऽधिकानां हिंसनं स्यात्।

जो मदनरत्न ने कहा है—नक्तव्रत शास्त्रविहित है इससे रात्रि के भाग में प्राप्त भोजन का यह निषेध है, यह भी उचित नहीं है। क्योंकि विधि का निषेध के साथ विरोध न हो। अन्यथा 'कपिञ्जलान्'[1] यहाँ पर तीन से अधिक की हिंसा हो जायगी।

सायंकाले नक्तं तु दिनद्वये प्रदोषस्पर्शे ज्ञेयम्। अतथात्वेपरत्र स्यादस्तादर्वाग् यतो हि सा। इति जाबालिवचनात्।

यदि दिनद्वय में प्रदोष हो तो सायंकाल समय में नक्त होता है। क्योंकि जाबालि का वचन है—अन्यथा (अतथात्व में) हो तो अस्त से परे नक्त होता है। क्योंकि सन्ध्या अस्त के पूर्व होती है।

प्रदोषव्यापिनी न स्याद्दिवा नक्तं विधीयते। आत्मनो द्विगुणा छाया मन्दीभवति भास्करे। तन्नक्तं नक्तमित्याहुर्न नक्तं निशिभोजनम्॥' इति स्कान्दाच्च।

स्कन्द का कथन है—प्रदोष के समय यदि तिथि न हो तो दिन में नक्त का विधान करे। अपने शरीर से द्विगुणित छाया हो एवं भास्कर मन्द हो उसी को नक्त कहते हैं। उस नक्त को नक्त नहीं कहते न नक्त रात्रि-भोजन को कहते हैं। यति संन्यासी आदिकों का भी नक्त सायाह्न के समय होता है।

यत्यादीनामपि सायाह्ने नक्तम्। 'नक्तं निशायां कुर्वीत गृहस्थो विधिसंयुतः। यतिश्च विधवा चैव कुर्यात्तत्सदिवाकरम्॥' इति तत्रैव स्मृत्यन्तरात्। इदमपुत्रविधुरोपलक्षणम्। पुत्रवतस्तु रात्रावेव। 'अनाश्रमोऽप्याश्रमी स्यादपत्नीकोऽपि पुत्रवान्।' इति संग्रहोक्तेः। सौरनक्तन्तु दिवैव त्रिमुहूर्त-स्पृग्वाह्नि निशि चैतावती तिथिः। तस्यां सौरं भवेन्नक्तमहन्येव तु भोजनम्॥' इति सुमन्तूक्तेः।

वहीं पर स्मृत्यन्तर का कथन है—विधिसे युक्त हो गृहस्थ रात्रि में नक्त करे। संन्यासी एवं विधवा नक्तव्रत को दिन में करें। यह वचन पुत्र (विधुरहीन) का उपलक्षण है। पुत्रवान् तो रात्रि में ही नक्त करे। संग्रह में कहा है—अनाश्रमी हो, आश्रमी हो, सपत्नीक हो या पुत्रवाला हो तो रात्रि में ही नक्त करे। सूर्य का नक्त दिन में ही करे तो सुमन्तु ऋषि के इस वचन से तीन मुहूर्त का स्पर्श हो दिन में रात्रि में उतनी ही तिथि हो तो उसमें सूर्य का नक्त होता है। एवं दिन में ही भोजन होता है।

(अथ हरिनक्ते विशेषः)

कालादर्शे स्कान्दे—'उदयस्था सदा पूज्या हरिनक्तव्रते तिथिः। इति। अन्यनक्तं तु संक्रान्त्यादावपि रात्रावेव। निषेधस्य रागप्राप्तभोजनगोचरत्वेन वेधाबाधकत्वात्। दिनद्वयव्याप्तौ परा। उभयोर्यदि वा तिथ्योः प्रदोषव्यापिनी तिथिः। तत्रोत्तरत्र नक्तं स्यादुभयत्रापि सा यतः॥' इति कालादर्शे जाबालिवचनात्। अन्यपक्षेषु एकभक्तवन्निर्णयः।

विष्णु के नक्त में विशेष कालादर्श में स्कन्द के कथनानुसार कहा है—यह सदा पूजनीय है। अन्य देवताओं का नक्त तो संक्रान्ति आदिकों में भी रात्रि में ही होता है। क्योंकि निषेध का रागप्राप्त भोजनगोचरत्व वेध से अबाधक हो सकता है। यदि दिन द्वय हो तो परा करे। क्योंकि कालादर्श में जाबालि का वचन है—यदि दोनों दिन तिथि प्रदोषव्यापिनी हो तो वहाँ पर दोनों दिन के हो जाने से परतिथि में नक्त करे। अन्य पक्षों में एकभक्त के तुल्य निर्णय होता है।

अथात्र विशेषो मदनरत्ने गारुडे—'हविष्यभोजनं स्नानं सत्यमाहारलाघवम्। अग्नि-

---

(१) रात्रि भोजन का विधान होने से इच्छा प्रमाण भोजन विषयक यह निषेध है—ऐसा कहा गया है। ऐसा नहीं—विधि का निषेध से विरोध न होने से यदि ऐसा नहीं मानेंगे तो अश्वमेधयाग में कपिञ्जलों (पेडकी। कबूतर के सदृश कुछ न्यून पक्षि विशेष) का आलंभन करना चाहिये। 'अश्वमेधे वसन्त देवतायै कपिञ्जलानालभेत्' यहाँ पर तीन कपिञ्जलों का ही आलंभन करने पर बहुवचन (कपिञ्जलान्) की पूर्ति हो जाती है। विरोधी तीन से अधिक का भी हिंस न कर सकता है। क्योंकि 'कपिञ्जलान्' में बहुवचन है। किन्तु 'मा हिंस्यात् सर्वभूतानि' इत्यादि निषेध से तीन कपिञ्जलों से तीन कपिञ्जलों के बहुवचन की पूर्ति करनी चाहिये।

कार्यमधः शय्या नक्तभोगी षडाचरेत् ॥' अग्निकार्यम्–व्याहृतिहोमः। इति नक्तम्। अयाचिते तु विशेषवचनाभावादुपवासवन्निर्णयः।

मदनरत्न में गरुड़पुराण के मत में नक्त भोजी छः बातें करे--हविष्यभोजन, स्नान, सत्य, अल्पहार, व्याहृतिहोम तथा भूमिशयन।

अयाचित--अर्थात् विना मांगे जो मिले तो विशेष वचनों के अभाव से उपवास का निर्णय होता है।

(अथ नक्षत्रव्रतकालः)

विष्णुधर्मे—'उपोषितव्यं नक्षत्रं यस्मिन्नस्तमियाद्रविः।
युज्यते यत्र वा तारा निशीथे शशिना सह ॥' इति।

माधवीये स्कान्दे—'तत्रैवोपवसेदृक्षे यन्निशीथादधो भवेत्।
उपवासे यदृक्षं स्यात्तद्धि नक्तैकभक्तयोः ॥'

अनन्तर नक्षत्र-व्रतका काल कहते हैं। विष्णुधर्म में कहा है—जिस नक्षत्र में सूर्यास्त हो या जो नक्षत्र आधीरात के समय चन्द्रमा के साथ हो उस नक्षत्र में उपवास करना चाहिये। माधवीय में स्कन्द का वचन है—जो नक्षत्र आधीरात से पूर्व हो उसमें उपवास को करे। जो नक्षत्र उपवास में होता है वही एकभक्त और नक्त होता है।

(अथ व्रतपरिभाषा)

तत्राधिकारिणो मदनरत्ने भविष्ये--'अनग्नयस्तु ये विप्रास्तेषां श्रेयो विधीयते। व्रतोपवास-नियमैर्नानादानैस्तथा नृप ॥' अनग्निग्रहणमुपवासविषयम्। अत एव देवलः–'आहिताग्निरनड्वांश्च ब्रह्मचारी च ते त्रयः। अश्नन्त एव सिध्यन्ति नैषां सिद्धिरनश्नताम् ॥' एकादश्यादौ तु वचना-द्भवतीति वक्ष्यामः।

अब व्रत की परिभाषा कही जाती है--उसके अधिकारी मदनरत्न में भविष्यपुराणानुसार कहे जाते हैं। हे नृप, जो ब्राह्मण अग्निहोत्री नहीं हैं उनका श्रेय (कल्याण) व्रत, उपवास, नियम एवं दानों से होता है। अनेक प्रकार के अनग्निका ग्रहण उपवास विषयक है। देवल ने कहा—आहिताग्नि, बैल तथा ब्रह्मचारी, ये तीनों की भोजन से सिद्धि होती है, विना भोजन नहीं होती है। एकादशी आदि में बचन से होती है, यह आगे कहेंगे।

शूद्रस्याप्यधिकारः। 'शूद्रो वर्णश्चतुर्थोऽपि वर्णत्वाद्धर्ममर्हति।
वेदमन्त्रस्वधास्वाहावषट्कारादिभिर्विना ॥' इति व्यासोक्तेः।

व्यास के कथनानुसार शूद्र वर्ण को अधिकार है। चतुर्थ वर्ण होने से वेदमन्त्र, स्वधा, स्वाहा, वषट्कार आदि के विना धर्म को कर सकता है।

प्राच्यास्तु—वैश्याशूद्रयोर्द्विरात्र्यधिकोपवासनिषेधः। 'वैश्याः शूद्राश्च ये मोहादुपवासं प्रकुर्वते। त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा तेषां व्युष्टिर्न विद्यते ॥ चतुर्थभक्षणं वैश्ये शूद्रे चापि विधीयते। त्रिरात्रं तु न धर्मज्ञैर्विहितं ब्रह्मवादिभिः ॥' इति हेमाद्रौ वचनादित्याहुः। यावदुक्तनिषेध इत्येके। प्रकरणात् महातपोविषय इति युक्तम्। एवं स्त्रीणामपि।

प्राच्य तो कहते हैं—हेमाद्रि मत से वैश्य तथा शूद्र को दो रात से अधिक उपवास का निषेध है। वैश्य और शूद्र तीन या पांच रात जो मोह से उपवास करते हैं उनको फल नहीं होता है। वैश्य या शूद्र को चतुर्थ समय में भोजन का विधान है और तीन रात्रि का उपवास तो ब्रह्मवादि धर्मज्ञों ने नहीं बतलाया है। पूर्वोक्त जो निषेध है वह प्रकरण से महातपविषयक है। यही युक्त है। इस प्रकार स्त्रियों का भी धर्म है।

यत्तु स्कान्दे—'नास्ति स्त्रीणां पृथक् यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम्। भर्तुः शुश्रूषयैवैता लोकानिष्ठान् व्रजन्ति हि ॥ यद्देवेभ्यो यच्च पित्रादिकेभ्यः कुर्यात् भर्ताऽभ्यर्चनं सत्क्रियां च। तस्यार्धं वै सा फलं नान्यचित्ता नारी भुङ्क्ते भर्तृशुश्रूषयैव ॥'

आदित्यपुराणे—'नारीखल्वननुज्ञाता भर्त्रा वापि सुतेन वा। विफलं तद्भवेत्तस्या यत्करोत्यौर्ध्वदैहिकम् ॥' इति। और्ध्वदैहिकम्-पारलौकिकम्। तद्भर्त्रननुज्ञाविषयम्। 'भार्या पत्युर्मतेनैव व्रतादीनाचरेत्सदा।' इति कात्यायनोक्तेः।

जो किसी के मत से स्कन्दपुराण में कहा है कि—स्त्रियों को पति से पृथक् यज्ञ, व्रत एवं उपवास नहीं है। लेकिन पति की शुश्रूषा से ही स्त्रियाँ इष्टलोकों को प्राप्त कर लेती हैं। जो पति देवता या पित्रादियों का अर्चन एवं जो सत्कर्म करता है उसके आधे फल में नान्यचित्ता नारी पति की सेवा से ही भोगती है। आदित्यपुराण में लिखा है—नारी पति या पुत्र की बिना आज्ञा से और्ध्वदैहिक (परलोक) करती है वह सब विफल हो जाता है। कात्यायन ने कहा है—सम्बन्धिकर्म को भार्या (पत्नी) सदा पति की आज्ञा से व्रतादि करे।

(अत्र विशेषः)

अत्र विशेषो हरिवंशे—'स्नानं च कार्यं शिरसस्ततः फलमवाप्नुयात्। स्नात्वा स्त्री प्रातरुत्थाय पतिं विज्ञापयेत्सती ॥' तथा—'गृहीत्वौदुम्बरं पात्रं सकुशं साक्षतं तथा। गोशृङ्गं दक्षिणं सिञ्च्य (सिक्त्वा) प्रगृह्णीयाच्च तज्जलम् ॥ औदुम्बरम्-ताम्रमयम्। 'ततो भर्तुः सती दद्यात्स्नातस्य प्रयतस्य च। आत्मनश्चाभिषेक्तव्यं ततः शिरसि तज्जलम्। उपवासेषु कर्तव्यमेतद्धि व्रतकेषु च ॥' इति।

विशेषकर हरिवंश में कहा है—सिर से स्त्री स्नान करे तो फल प्राप्त कर सकती है। सती स्त्री (पतिव्रता) कुश और अक्षत सहित उदुम्बर (ताम्रमय) पात्र को ग्रहण कर प्रातःकाल उठकर स्नान कर पति से प्रार्थना करे। गौ के दाहिने सींग पर जल छिड़क कर फिर उसी जल को ग्रहण करे। तदनन्तर सती स्नान किये हुये उस जल को अपने पति का सेचन कर फिर अपने सिर पर उस जल को छिड़क दे। यही कार्य उपवास तथा व्रतों में करे।

(अथ सर्वव्रतेषु सङ्कल्पविधिकथनम्)

सर्वव्रतेषु सङ्कल्पविधिश्च भारते—'गृहीत्वौदुम्बरं पात्रं वारिपूर्णमुदङ्मुखः। उपवासं तु गृह्णीयाद्यथा सङ्कल्पयेद् बुधः ॥' हस्तेनैवेत्यर्थः। (यथेति पाठे यत्फलमिच्छेदित्यर्थः।)

भारत में—सम्पूर्ण व्रतों में संकल्प विधि कहा है- उत्तरमुख हो जल से उदुम्बर पात्र को पूर्ण लेकर स्वफलेच्छा से ज्ञानी अपने हाथ से संकल्प कर उपवास करे।

(अथ व्रतारम्भकालः)

मदनरत्ने गार्ग्यः—'अस्तगे च गुरौ शुक्रे बाले वृद्धे मलिम्लुचे। उद्यापनमुपारम्भं व्रतानां नैव कारयेत् ॥' रत्नमालायाम्—'सोमसौम्यगुरुशुक्रवासराः सर्वकर्मसु भवन्ति सिद्धिदाः। भानुभौमशनिवासरेषु च प्रोक्तमेव खलु कर्म सिद्ध्यति ॥' तथा—'विरुद्धसंज्ञा इह ये च योगास्तेषामनिष्टः खलु पाद आद्यः। सवैधृतिस्तु व्यतिपातनामा सर्वोऽप्यरिष्टः, परिघस्य चार्धम् ॥ तिस्रस्तु योगे प्रथमे, सवज्रे व्याघातसंज्ञे नव, पञ्च शूले। गण्डेऽतिगण्डे च षडेव नाड्यः शुभेषु कार्येषु विवर्जनीयाः ॥'

अब व्रतारंभ काल कहते हैं। मदनरत्न में गार्ग्य का कथन है—गुरु एवं शुक्रास्त में, बाल में, वृद्ध में तथा मलमास के अरिष्ट कारक में उद्यापन व्रतों का प्रारंभ न करे। रत्नमाला में लिखा है—चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र ये वार सब कर्मों में सिद्धि को देने वाले होते हैं। सूर्य, मंगल, शनि इन वारों में जो कहा है—वही कार्य

सिद्ध होता है और जो योग विरुद्ध संज्ञक हैं उनका आद्यादि अनिष्टकारक है। वैधृति एवं व्यतिपात सम्पूर्ण निषिद्ध हैं और परिघ का अर्धभाग अरिष्टकारक है। विष्कुम्भ तथा व्रज की तीन, व्याघात की नव, शूल की पाँच, गण्ड एवं अतिगण्ड की छ ही घड़ी शुभ कार्यों में वर्जित होती हैं।

(अथ भद्रा)

सङ्ग्रहे—'कृष्णेऽग्निदिशयोरूर्ध्वं सप्तमीभूतयोरधः। शुक्ले वेदेशयोरूर्ध्वं भद्रा प्राग्वसुपूर्णयोः॥' श्रीपतिः—'न सिद्धिमायाति कृतं च विष्ट्यां विषारिघातादिकमत्र सिद्धम्।' व्यवहारसमुच्चये—'दशम्यामष्टम्यां प्रथमघटिकापञ्चकपरं हरिद्यौ सप्तम्यां द्विदशघटिकान्ते त्रिघटिकम्। तृतीयाराकायां खयम (२०) घटिकाभ्यः परभवं शुभं विष्टेः पुच्छं शिवतिथिचतुर्थ्योस्तु विरमे॥' तत्रैव 'सर्पिणी तु सिते पक्षे कृष्णे चैव तु वृश्चिकी। सर्पिण्यास्तु मुखं त्याज्यं वृश्चिक्याः पुच्छमेव च॥' माधवीये—विष्टिर्यदाऽहनि तिथेरपरार्धजाता पूर्वार्धजा निशि तदा शुभदा च पुच्छे।' ब्रह्मयामले—'दिनभद्रा यदा रात्रौ रात्रिभद्रा यदा दिवा। न त्याज्या शुभकार्येषु प्राहुरेवं पुरातनाः॥' श्रीपतिः—'पट्पौष्णतो द्वादश शाङ्कराच्च पौरन्दराद्धानि नव क्रमेण। पूर्वार्धमध्यापरभागयुञ्जि चिरन्तनैर्ज्यौतिषिकैः स्मृतानि॥'

अब भद्रा कहते हैं। संग्रह में कहा है—कृष्णपक्ष में तृतीया तथा दशमी की पिछली, सप्तमी चतुर्दशी की पहली तीस घड़ी, शुक्लपक्ष में चतुर्थी एवं एकादशी की पिछली, अष्टमी तथा पूर्णिमा की पहली तीस घड़ी भद्रा होती हैं। श्रीपति का वचन है—भद्रा में किया हुआ काम सिद्धि को प्राप्त नहीं होता है। विष तथा शत्रु का मारण सिद्धि को प्राप्त हो जाता है। व्यवहारसमुच्चय में लिखा है—दशमी तथा अष्टमी को पहली पाँच घड़ी बाद तीन घड़ी, एकादशी एवं सप्तमी को बारह घड़ी बाद तीन घड़ी, तृतीया और पूर्णिमा को दश घड़ी बाद तीन घड़ी एवं चतुर्दशी तथा चतुर्थी को अंत्य की तीन घड़ी भद्रा की पुच्छ होती है। वहीं यह भी लिखा है—सर्पिणी शुक्ल पक्ष की भद्रा तथा वृश्चिकी कृष्ण पक्ष की होती है। सर्पिणी का मुख और वृश्चिकी की पुच्छ त्याज्य है। माधवीय में लिखा है—जो भद्रा दिन में लगे वही रात्रि में लगे तो पुच्छ में भी शुभदायक होती है। ब्रह्मयामल में लिखा है—कि यदि दिन में लगी भद्रा रात में हो तथा रात में लगी भद्रा दिन में हो तो शुभ कार्यों में न त्यागे, यह प्राचीन आचार्यों ने कहा है। श्रीपति ने कहा है—रेवती से छः नक्षत्र पूर्वभागी, आर्द्रा से बारह नक्षत्र मध्यभागी तथा ज्येष्ठा से नव नक्षत्र परभागी प्राचीन ज्योतिषियों ने माना है।

(अथ व्रतारम्भे च विशेषः)

मदनरत्ने सत्यव्रतेनोक्तः—'उदयस्था तिथिर्या हि न भवेद्दिनमध्यभाक्।
सा खण्डा न व्रतानां स्यादारम्भश्च समापनम्॥' इति।

मदनरत्न में सत्यव्रत ने व्रतारंभ में विशेष कहा है—जो उदयस्थ तिथि दिन के मध्यभाग में न हो वह खण्डा होती है। उसमें व्रतारंभ एवं समाप्ति न करे।

देवलः—'अभुक्त्वाप्रातराहारं स्नात्वाऽऽचम्य समाहितः।
सूर्याय देवताभ्यश्च निवेद्य व्रतमाचरेत्॥'

देवल का कहना है—प्रातः स्नान आचमन कर भोजन बिना सूर्य आदि देवताओं को निवेदन कर व्रत को करे।

मदनरत्ने भविष्ये—'क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। देवपूजाग्निहवनं सन्तोषः स्तेयवर्जनम्। सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो दशधा स्मृतः॥' अग्निहोमस्तद्दैवत्योः व्याहृतिहोमो वेति वर्द्धमानः।

मदनरत्न में भविष्य का कथन है—सब व्रतों में सामान्यतया यह दश धर्म कहा है—क्षमा, सत्य,

दया, दान, शौच, इद्रिय-निग्रह, देवपूजा, अग्नि में हवन, संतोष तथा स्तेय (चोरी) वर्जन। वर्धमान मत से—तद्तद् दैवत्त्यसंज्ञक अग्नि में होग या व्याहृति होम करे।

यत्तु तेनोक्तम्। 'सर्वपदमेतत्पुराणोक्तप्रकृतव्रतपरम्। व्रतान्तरे तु विध्यन्तरसत्वे होमोऽन्यथा न। अत एवैकादश्यां शिष्टानां होमानाचरणम् इति तन्न। 'जपो होमश्च' इति वक्ष्यमाणैकवाक्यत्वेनास्य काम्यव्रतसमाप्तिपरत्वात्। तत्त्वं तु साप्तदशस्य पशुमित्रविन्दादिप्रकरणस्थेनैव तत्तद्व्रतविशेषहोमविधिभिरस्योपसंहार इति।

जो वर्धमान ने कहा है—यह सर्वपद पुराणों में कहे हुए व्रतपरक है। व्रतान्तर में तो यदि कोई विध्यन्तर हो तो होम करे अन्यथा न करे। इसीलिये शिष्ट लोग एकादशी को व्रतान्तर में तो नहीं करते हैं। यह कहना उचित नहीं है। क्योंकि आगे कहे हुए जप और होम को करे। इस वाक्य की एकवाक्यता से[1] उस काम्यव्रत समाप्ति परक है। सिद्धान्त तो यह है--साप्तदशपशुमित्रविन्दादिप्रकरणस्थ से ही उस व्रतविशेष होमविधि का उपसंहार होता है। वैसा ही इस होमविधि का है, अर्थात्—जो होम जहाँ कहा है, वहाँ वहाँ करे।

विष्णुधर्मे—'तज्जप्यजपनध्याने तत्कथाश्रवणादिकम्। तदर्चनं च तन्नामकीर्तनश्रवणादयः। उपवासकृतामेते गुणाः प्रोक्ता मनीषिभिः॥' कौर्मे—'बहिर्ग्रामाऽन्त्यजान् सूतिं पतितं च रजस्वलाम्। न स्पृशेन्नाभिभाषेत नेक्षेत व्रतवासरे॥' पृथ्वीचन्द्रोदये अग्निपुराणे—'स्नात्वा व्रतवता सर्वव्रतेषु व्रतमूर्तयः। पूज्याः सुवर्णमय्याद्याः शक्त्या वै भूमिशायिना॥ जपो होमश्च सामान्यं व्रतान्तु दानमेव च। चतुर्विंशद् द्वादश वा पञ्च वा त्रय एव वा। विप्रा भोज्या यथाशक्ति तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम्॥'

विष्णुधर्म में कहा है—मनीषियों ने उसी देवता का मन्त्र, जप तथा ध्यान, उसी की कथा का श्रवण, उसी का अर्चन, उसी का नाम कीर्तन आदि श्रवण उपवास करनेवालों के इतने गुण कहे हैं। कूर्मपुराण में कहा है--व्रतादि दिन में ग्राम के बाहर अंत्यजों, सूतिका, पतित तथा रजस्वला का न स्पर्श करे, न इनसे भाषण करे न इनको देखे। पृथ्वीचन्द्रोदय में अग्निपुराण का कथन है—व्रती स्नान कर भूमि शायी हो, जिसका व्रत करना हो उस देवता की सुवर्ण आदि की प्रतिमाओं की यथा शक्ति अर्चना करे। व्रतों में जप, होम एवं दान को करे। चौबीस, बारह, पांच या तीन ब्राह्मणों को भोजन करावे तथा यथा शक्ति उनको दक्षिणा भी दे।

अत्र विप्रा इति पुंलिङ्गनिर्देशात् पुमांस एव भोज्या, न तु स्त्रियः। एवं सहस्रभोजनादावपि। विरूपैकशेषस्य प्रमाणान्तरं विनाऽयुक्तत्वात्। अत एव द्वयोर्यजमानयोः प्रतिपदं कुर्यात्, बहुभ्यो यजमानेभ्य इत्यादौ विरूपैकशेषायोगात् पत्न्यभिप्रायं द्वित्वं बहुत्वं वा न सम्भवतीत्युक्तमाचार्यैः, पार्थसारथिना च। एतेनैकस्य ब्राह्मणस्यावृत्त्या भोजनं परास्तम्। बहुत्वस्यैकपदश्रुत्या ब्राह्मणान्वितत्वेन भोजनान्वयाभावादित्यन्यत्र विस्तरः।

शूद्रस्य प्रतिष्ठावद्विप्रद्वारा व्याहृतिहोमः, इति वर्द्धमानः। व्रतमूर्तयो—व्रतदेवताप्रतिमाः।

---

(१) जप और होम इनका एक वाक्य में प्रयोग होने से इसको कामनापरक व्रत समाप्ति का समर्थक समझना चाहिये। तत्त्व यह है कि—जैसे 'सप्तदशसामिधेनी' (सत्रह सामिधेनी नाम की ऋचा में) इस वाक्य का 'पशुयाग और मित्रविन्दा नामकी दर्शपूर्णमास की विकृति इष्टि में' उस प्रकरण में स्थित अग्नि को प्रदीप्त करने वाली सत्रह ऋचाओं का जैसे संकोच होता है। उसी प्रकार उन-उन व्रतविशेषों की होमविधियों के द्वारा 'हवनम्' इसका 'जपो होमश्च सामान्यम्' इस वाक्य में उपसंहार समझना चाहिये।

यहाँ पर 'विप्राः'[१] इस पुँल्लिंग निर्देश से पुरुषों को ही भोजन करावे। स्त्रियों को न करावे। इसीप्रकार हजार भोजन आदि में भी उपरोक्त क्रम करे। क्योंकि विरूप का एक शेष प्रमाणान्तर विना अयुक्त है। इसी लिये दो यजमानों का या बहुत यजमानों का कर्म प्रतिपद-शस्त्र नामक पहली ऋचा से करे। इस वचन में आचार्यों ने कहा है—पत्नी के अभिप्राय से द्वित्व या बहुत्व नहीं होता है। पार्थसारथि ने भी यही कहा है। इससे एक ब्राह्मण की आवृत्ति कर दो बार भोजन उचित नहीं है क्योंकि जिस पद के आगे बहुत्व है उसका अन्वय ब्राह्मण में ही हो जायगा। भोजन में नहीं हो सकता। इसका अन्यत्र ग्रन्थों में विस्तार है।

वर्धमानमत से शूद्र को भी प्रतिष्ठावत् ब्राह्मण द्वारा व्याहृतिहोम का अधिकार है।

(अथ प्रतिमास्वरूपम्)

प्रतिमास्वरूपं च मदनरत्ने भविष्ये—'अनुक्तद्रव्यतत्संख्या देवताप्रतिमा नृप। सौवर्णी राजती ताम्री वृक्षजा मार्तिकी तथा॥ चित्रजा पिष्टलेखोत्था निजवित्तानुरूपतः। आमाषात्पलपर्यन्तं कर्तव्या शाठ्यवर्जितैः॥'

प्रतिमा का स्वरूप मदनरत्न में भविष्यपुराण का लिखा है—हे नाथ, देवता प्रतिमा की संख्या तथा द्रव्य विधान नहीं है। सुवर्ण, चांदी, ताँबा, वृक्ष, मृत्तिका, चित्र, अथवा आटे की बनी हो या अपने वित्तानुरूप शठता को त्यागकर एक मासे से लेकर चार तोले तक निर्माण करे।

(अथ द्रव्यादीनां होमे विचारः)

तत्रैव ब्राह्मे—'आज्यं द्रव्यमनादेशे जुहोतिषु विधीयते।
मन्त्रस्य देवतायाश्च प्रजापतिरिति स्थितिः॥

ब्रह्मपुराण का कथन है—जहाँ होमद्रव्य का विधान न मिलता हो वहाँ घृत से और जहाँ देवता का निर्णय न हो वहाँ पर प्रजापति देवता की स्थिति करे।

(अथ मन्त्रानुक्तौ विचारः)

मन्त्रानुक्तौ—समस्तव्याहृतिरूपो मन्त्रः, प्रजापतिश्च देवतेति कल्पतरुः।

कल्पतरु का मत है—जहाँ मन्त्रों को न कहा हो वहाँ समस्त व्याहृति-रूप मन्त्र और प्रजापति देवता होता है।

(अथ ग्रहादिहोमे विचारः)

वर्धमानधृतदेवीपुराणे—'होमो ग्रहादिपूजायां शतमष्टाधिकं भवेत्।
अष्टाविंशतिरष्टौ वा यथाप्राप्ति विधीयते॥'

मदनरत्ने—'अनुक्तसंख्या यत्र स्याच्छतमष्टोत्तरं शतम्।'

वर्धमान में कथित देवीपुराण का वाक्य है—यथाप्राप्ति ग्रह आदि की पूजा में एक सौ आठ, अट्ठाइस, या आठ मन्त्रों से होम होता है। मदनरत्न में लिखा है—जहाँ संख्या का विधान न हो वहाँ एक सौ आठ संख्या होती है।

(अथ ब्राह्मणाद्युपवासे विचारः)

वर्धमानधृतवृद्धशातातपः—'उपवासं द्विजः कृत्वा ततो ब्राह्मणभोजनम्।
कुर्यात्तेनास्य सगुण उपवासोऽभिजायते।'

वर्धमान में वृद्ध शातातपका वाक्य है—द्विज उपवास को कर ब्राह्मण भोजन करावे। उससे उसके उपवास का फल सफल हो जाता है।

---

(१) हजार ब्राह्मणों के भोजन में भी हजार पुरुषों को ही करावे न कि स्त्रियों को मिलाकर। क्योंकि विरूप-एक शेष (ब्राह्मण्यश्च ब्राह्मणाश्चेति ब्राह्मणाः) अर्थात् भिन्न लिङ्गों का एक शेष बिना किसी प्रमाण के उचित नहीं होताहै। इसीलिए दो यजमानों के लिये शस्त्र नामक ऋचाओं में से पहली ऋचा का पाठ करे। बहुत से यजमानों में भिन्न-भिन्न लिङ्ग का एक शेष अनुपयुक्त होने से यजमान पत्नी को लेकर द्विवचन या बहुवचन नहीं होता है—ऐसा आचार्यों ने कहा है। इसी से एक ही ब्राह्मण को कई दिन भोजन करा कर संख्या पूरी करना भी प्रमाणहीन है। क्योंकि बहुवचन के एक पद्य उच्चारण से उसका ब्राह्मण के साथ अन्वय है। भोजन के साथ नहीं है।

अथ निर्णयसिन्धुः

(भाषा-टीका-सहित)

ग्रहपीठ तथा कुण्ड आदि का विविध प्रकार

दौलतराम गौड

(सूर्यपीठ[1])

(ग्रहों की आकृति बनाने का प्रकार)

एक अंगुल, सात यव और छः यूकाको प्रकालसे नापकर मध्यसे वृत्त बनावे तो द्वादशांगुलात्मक सूर्यका क्षेत्रफल होगा। १ अंगुल, ७ यव, ५ यूका और ४ लिक्षा का वृत्त बतावे। यह लघुपीठमाला का मत है।

(चन्द्रपीठ)

चार अंगुल, सात यव और दो यूका का गज लेकर पूर्वकी तरफ एक लंबी सीधी रेखा दे। उतनी ही दक्षिण दिशा की तरफ, उत्तर को तरफ तथा पश्चिम दिशा की तरफ देने से चतुरस्रपीठ बन जाता है।

रूपनारायण मत से—३ अंगुल, ७ यव, २ यूका और ४ लिक्षाका एक गोलाकार वृत्त बनावे। तदनन्तर उस वृत्तके ठीक मध्यसे दक्षिणोत्तर ७ अंगुल, छः यव और ५ यूका की एक लंबी रेखा दे। ऐसाकरने से दो वृत्तार्ध होंगे। उसमें से पश्चिमहिस्सेके वृत्तार्धको मिटा देने से चौबीस अंगुलात्मक अर्धचन्द्र होजायगा।

(मंगलपीठ)

तीन अंगुल और चार यूकाको गजसे नापकर उत्तरकी तरफ एक सीधी रेखा दे। उस रेखाके अन्तिम सिरोंसे अर्थात् दोनों कोनें से अलग अलग एक एक टेढ़ी रेखा उतनी देनेसे मंगलपीठ बन जाता है या एक यूका, ५ यव और दो अंगुल लंबी दक्षिणाग्र रेखा दे। (दक्षिणाग्र या उत्तराग्रकरे—यह संस्काररत्नमालाका मत है।

मंगलपीठ का दूसरा प्रकार—३ अंगुल ४ यव और छः यूका की एक लंबी रेखा उत्तरदिशा की तरफ दे। तदनन्तर वायव्यकोणसे एक टेढ़ी रेखा २ अंगुल, ४ यव और छः यूका की ठीक दक्षिण दिशामें दे। वैसे ही ईशानकोणसे जो रेखा दे वह भी दक्षिण दिशावाली रेखा में मिलानेसे त्रिकोणपीठ बनेगा।

---

(१) लघुपीठमालायाम्—सूर्यस्यार्काङ्गुलं वृत्तमेकाद्रीषुचतुः कृतम्। तद् व्यासार्धं तेन सम्यक् जायते नेत्रसुन्दरम् ॥१॥ एक १ अद्रि ७ इषु ५ चतु ४ भिः क्रमेण अंगुल-लिक्षाभिर्व्यासाद्‌र्धम्। तद्द्विगुणो व्यासः ३।७। चान्द्रं सिद्‌धाङ्गुलं वेदकोणं वेदाद्रिपक्षयुक् ॥२॥ वेद ४ अद्रि ७ पक्ष २ क्रमेणाङ्गुलादिभिः इदं कोटिमानं भुजमानं च। भौमस्याब्धिफलं त्र्यस्रं त्रिखाम्बुधिराहृतम् ॥३॥ त्रि ३ ख० शून्य अम्बुधय ४ श्चत्वारोङ्गुलाद्याः, तै आहृतं भौमस्य चतुरङ्गलं फलं त्रिकोणं पीठं त्रिकोणे त्रयो भुजाः समप्रमाणाः। तत्राधस्तना भूमिः उपरितनौ भुजौ तन्मानं ३।०।४। चतुर्यवान्तरं वेदाङ्गुलं स्यात्तु भुजद्वयम् ऊर्ध्वाधस्तद्वयर्द्धिश्च प्रत्येकं स्याच्चतुर्यवा। भूमिः पञ्चयववेदाभ्यां भुजाभ्यां षट्‌त्रिकोणकम् तद्युक्तं बाणसमयं बुधपीठं प्रचक्षते ॥४॥ तर्काङ्गुलं गुरोः पीठं दस्रानलभुजद्वयम् ॥५॥ दस्रौ द्व्यङ्गुलौ द्वौ भुजौ अनलौ त्र्यङ्गुलौ द्वौ भुजौ कोटिसंज्ञौ तत्रैकभुजैककोट्यौर्घातः फलं षडङ्गुलं गुरुपीठम् ॥ शुक्रस्य पीठपञ्चास्रं कु न 'गेषु' भिः व्यासेन वृत्ते पूर्वादिसमाज्याः पञ्च मन्वगा। प्रोञ्छिते बाह्यतो वृत्ते नवाङ्गुलफलं मतम् ॥६॥ वेदा 'ब्धि' वेदा 'ब्धि' भूमिर्धनुः पीठं शनेर्भ्रमात् मध्यस्थनतुरस्रस्य मानहीनात् षडङ्गुलम्। चतुरस्रे त्वपते चतुर्धनुः एकं धनुः फलं तत्र ग्राह्यं हात्वा धनुस्त्रिकम् ॥७॥

वेदाङ्गुलैर्वेदकोणे पूर्वतो रेखयोरिह तिर्यग् ह्यग्न्यम्भोधिवृद्धिरयो बाह्वर्धमानतः। वृत्तेद्धे राहुपीठं स्याच्छूर्पं सिद्‌धाङ्गुलं शुभम् ॥८॥ प्रथमत एकं चतुरस्रं तत्र भुजमानं ४।०।०। तदेव कोटिमानं ४।०।०। यत्र पूर्वयो रेखयोः तिर्यग् दक्षिणोत्तर द्वि २ अग्नयः त्रयः अंभोधयः ४, दक्षिणे अर्धम् १।१।६। उत्तरे अर्धम्—१।१।६। अंगुलयवयूकानां वृद्‌धिः। अधो भूमेरर्धं कृत्वा वृत्तद्वयं कार्यम्। चोपरिभूमिः ६।३।४ अधोभूमिः ४।०।०। लंबः ४।०।०। अधोवृत्तव्यासार्धम्–१।०।०। तद्द्विगुणो व्यासः २।०।०। पूर्वापरौ गतौ बाहूकोटिरर्द्धाङ्गुला भवेत् ऊर्ध्वमेकाङ्गुलं हित्वा हित्वा चाधः शराङ्गुलम्। चतुरेकाङ्गुलयवं लग्नास्यं त्र्यस्रमारभ केतोर्ध्वजाभं कुण्डं स्याद् गजाङ्गुलमितं शुभम् ॥९॥ यावा भूमिः सप्तविंशाङ्गुलाब्धि यावावृत्तार्द्धवृत्ताऽन्यातिथेः स्यात्। त्रयोविंशस्तत्र लम्बाङ्गुलश्च राहोः शूर्पे कुण्डमेतद्विचित्रम् ॥ प्रकारान्तरपक्षः—सिद्‌धाऽङ्गुलो भवेल्लम्बः पश्चाद् भूमिर्नखाङ्गुला। पूर्वाऽविंशतिः प्रोक्ता शूर्पे स्यात् ऋजुकोणके ॥ इत्यनेन पश्चाद् वृत्तं नास्तीति ध्वनितम्।

संग्रहोऽर्द्धे सार्धरामेण चापेन्तर्ज्याहः स्याद् वृत्तपादो दिगंकात्। सूत्राद्रौद्राद्बाह्यमौर्व्यर्हमेवं वृत्तं दद्याज्ज्यास्पृगेवं पराद्धम् ॥ इषुवेदमितेन दीर्घदोष्णा गजदोष्णा लघुतापि च त्रिषष्टिः। जिनलम्बगणेन वार्द्धषट्‌त्रि भुसचार्धात्पूवदन्ति केतुकुण्डम् ॥ एकेन युग्मत्रिभिरङ्गुलीभिः परेण धृत्या च मिलेन दोष्णा। सुदीर्घवेदास्रमुशन्तिकुण्डं निगद्यतेऽथो द्विविधं शराभम् ॥

नोट—देखिये–विशेष निर्णयसिन्धु-सटीक कृष्णंभट्टी पृ० १०६१ और लिखित ग्रहपीठमाला की टीका को।

(बुधपीठ)

मध्यसे चार यव छोड़कर एक रेखा दक्षिणसे उत्तरकी तरफ चार अंगुल की लंबी सीधी दे। वैसे ही चार अंगुल की मध्यरेखासे ४ यव छोड़कर उत्तरसे दक्षिणकी तरफ दे। तदनन्तर उत्तरदिशा की तरफ वाली रेखा के अन्तिमसिरेसे दो यव पूर्व दिशाकी तरफ और दो यव पश्चिम दिशाकी तरफ बढ़ा दे। वैसे ही नीचे दक्षिणदिशाका दोनों रेखाओंको दक्षिणकी तरफ बढ़ा दे। फिर पूर्वदिशा में बढ़ी २ यव वाली रेखाके अन्तिम सिरेसे दो अंगुल छः यव की एक रेखा टेढ़ी दे जो उत्तरमें मिले। वैसे ही पश्चिमकी तरफसे रेखा दे। ऐसा करनेसे बुधपीठ बन जाताहै।

रूपनारायण मत से—एक अंगुल, सात यव और छः यूका का एक गोलाकार वृत्त बनावे। तदनन्तर उस वृत्त के ठीक मध्य में एक लंबी रेखा दक्षिणोतर दे। फिर उस आधे दो वृत्तोंमेंसे एक आधे वृत्तको मिटा देनेसे षडङ्गुलात्मक बुधपीठ बन जाताहै।

(गुरुपीठ)

दो अंगुल चार यव और दो यूकाका एक गोलाकार वृत्त बनाकर उस वृत्तमें चार अंगुल, चार यूका तथा दो लिक्षाका दूसरा वृत्त बनावे। तदनन्तर उस वृत्तमें बराबर बराबर के सोलह चिन्ह कर विदिशाके पांचवे चिन्हसे प्रारंभकर आठ पत्र बनानेसे नव अंगुलात्मक पद्माकार आकृति वाला गुरुपीठ बन जाता है।

रूपनारायणमतसे—मध्य से दो अंगुल की दक्षिणदिशाकी तरह एक सीधी रेखा करे तदनन्तर पूर्व और पश्चिम की तरफ तीन तीन अंगुलकी सीधी रेखा दे। फिर उत्तरदिशाकी तरफ दो अंगुल की रेखा दे। ऐसा करनेसे दीर्घ चतुरस्र गुरुपीठ बन जाताहै।

(शुक्रपीठ)

प्रकारान्तर—एक अंगुल, सात यव और पांच यूकाका एक वृत्त बनाकर उस वृत्त में पूर्वदिशासे दो अंगुल, दो यव और तीन यूका पर चिन्ह करनेसे पंचकोणात्मक शुक्रपीठ बन जाताहै।

रूपनारायणमतसे—तीन अंगुल, एक यव, दो यूका और चार लिक्षा को प्रकाल से पूर्वदिशा, पश्चिम और उत्तरदिशासे नाप कर बनानेसे चतुष्कोण (चारकोनवाला) शुक्रपीठ बनजाता है।

प्रकारान्तर—छः यूका छः यव और दो अंगुलके प्रकालसे नापकर एक गोलाकार वृत्त बनावे। तदनन्तर उस वृत्तके पूर्वदिशासे तीन अंगुल २ यव और छः यूका पर एक चिह्न करे। अर्थात्—कुल ५ चिह्न करे। फिर फी चिह्नसे एक चिह्न छोड़कर तीसरे चिह्न पर जो रेखा दी जायगी उस रेखा नाप २ यूका, तीन यव और ५ अंगुल परिमित होगा। उसे बाहू कहते हैं। इसीतरह की ४ रेखा (बाहु) और दे। तदनन्तर कोणोंको छोड़कर बाहुवों और वृत्तको मिटानेसे पंचकोणात्मक शुक्रपीठ बन जायगा।

प्रकारान्तर पक्षसे—एक अंगुल ७ यव और पाँच यूकाका एक वृत्त बनाकर उस वृत्तमे बराबर के पाँचभाग करने से शुक्रपीठ बन जाताहै। यह पक्ष लघुपीठमालाका है।

(शनिपीठ)

चार अंगुल, चार यव, चार यूका और चार लिक्षाका एक गोलाकार वृत्त बनाकर उस वृत्तके ठीक मध्यसे एक जीवा अर्थात् लंबी रेखा छः अंगुल, तीन यव और ५ यूका की (या ६ । ६ । ५) देने से धनुषाकारपीठ बन जाताहै।

अथवा—छः अंगुल, ३ यव और ५ यूका की दक्षिणोत्तर एक जीवा-रेखा दे। तदनन्तर ७ अंगुल, १ यव और तीन यूका के नापकी रस्सी या प्रकाल द्वारा नापनेसे धनुषाकार शनिपीठ होजाता है। या—७।१।३। की दक्षिणोत्तररेखा दे। तदनन्तर ६।३।५ की देने से धनुषाकार शनिपीठ बन जाताहै।

अथवा—छः यूका ५ यव और दो अंगुल का वृत्त बनाकर उस वृत्त के ठीक मध्यसे छः यूका ५ यव और तीन अंगुल की एक लंबी रेखा देनेमे शनिपीठ बनजाता है।

प्रकारान्तर पक्षसे—२ अङ्गुल, ५ यव, ४ यूका और ४ बालाग्रका एक गोलाकार वृत्त बनाकर उस वृत्तके भीतर ठीक मध्यमें—३ अङ्गुल, ६ यव और ४ यूका के परिमाणसे ज्या देनेसे शनिपीठ बन जाता है।

प्रकारान्तरपक्षसे—एक वृत्त ४ अङ्गुल, ४ यव, ४ यूका और ४ लिक्षाका बनाकर उस वृत्तमें एक चतुरस्र बनावे। (उस चतुरस्र की भुजा ६।३।५ होगी और कोटी भी ६।३।५। होगी। अर्थात्—बराबर का चतुरस्र बनेगा)। तदनन्तर वृत्त

(शनि पीठ)

में जो चतुरस्र बनाहै उस चतुरस्रसे बाहर और वृत्तके भीतर पूर्वदिशा, दक्षिण-दिशा और उत्तरदिशामें जो जगह निकलती है उन जगहों को (अर्थात्—वृत्तके सहित जगहोंको चतुरस्रकी तीन रेखाओंको मिटानेसे धनुषाकार पीठ बन जायगा।

अथवा—२ अंगुल की भुजा और तीन अंगुल की कोटी बना कर शनिपीठ बना सकता है। यह लघुपीठमाला का मत है।

*प्रकारान्तर—(१) मुख का व्यास छः यव तीन यूका होगा। अर्थात्—छः यव और तीन यूका का एक गोलाकार वृत्त बनावे। उसी में आँख, कान आदि बनावे। (२) तदनन्तर दक्षिणोत्तर लंबी रेखा तीन अंगुल और चार यव की करे। उसी को पूर्वका भू कहते हैं। (३) फिर मध्य की लम्बाई तीन अंगुल की होती हुई अन्त में सकरी होगी। (४) कन्धे की चौड़ाई एक अंगुल और दो यव की होगी। (५) हाथ की लंबाई सवा दो अंगुलकी होगी। (६) कटीभागकी लंबाई दक्षिणोत्तर दो अंगुल चार यवकी होगी। (७) जांघकी एक अंगुल दो यवकी होगी। (८) चरणकी लंबाई तीन अंगुल की होगी। (९) चरणका भाग ६ यव का होगा।

(राहुपीठ)

चार अङ्गुल पूर्व, चार अङ्गुल पश्चिम, चार अङ्गुल दक्षिण और चार अङ्गुल उत्तर रेखा एक चतुरस्र समकोण बनाकर उस चतुरस्र के बाहर ईशानकोण और अग्निकोण में २ अङ्गुल ३ यव ४ यूकाका आधा १।१।६। दक्षिण दिशाकी तरफ और १।१।६ उत्तर दिशा की तरफ बढ़ा दे। तदनन्तर बढ़े हुए भागों से क्रम से एक एक टेढ़ी रेखा वहाँसे नैर्ऋत्यकोणमें और एक टेढ़ी रेखा वायव्यकोणमें बढ़ा दे। फिर उस चतुरस्र का नीचेकी पश्चिम की) तरफ दो भाग कर (अर्थात् दो दो अङ्गुल पर मध्यकर) उनमें दो वृत्तार्ध अलग २ बनावे। वृत्तका व्यासार्ध १।०।० होगा अलग अलग। अर्थात्—प्रथम भाग में एक वृत्तार्ध दूसरे भाग में दूसरा वृत्तार्ध बनाकर भीतर का चतुरस्र मिटादेनेसे शूर्पाकार पीठ होताहै।

(राहु पीठ)

‡ प्रकारान्तर पक्षसे—(१) मुख-एक अङ्गुल यवाधिक व्यासार्ध से एक वृत्त बनावे। मुख और उदर मध्यमें दो यवका एक चतुरस्र चारो तरफसे गला होगा। मुखके आगे दो यवका ओष्ठ रहेगा। (२) तीन

---

*सार्धत्रयाङ्गुलमिता ३।४। पूर्वभागे भूः। तत्पश्चिमे भागे सार्धाङ्गुलद्वयमित २।४ मुखम्। मध्ये—त्र्यङ्गुलमितो लम्बः। तत्पश्चिमभागे चरणौ कार्यौ। सपादमेकाङ्गुला भूः १।२। षड्यवोन्मितं ६ मुखम्। त्र्यङ्गुलमितो लंबः ३। एतादृशो दक्षिणचरणः। तथैव वामः सपादमेकाङ्गुला १।२ भूः। षड्यवोन्मितं मुखम्, सार्धद्वयमिताङ्गुलो लम्बः। एतादृशो दक्षिणहस्तः। तथैव वामः। तत्पूर्वभागे षड्यवयूकात्रय ६।३ मितेन। कर्कटेन वृत्तं तच्छिरः। एवं कृते सति द्वाविंशत्यङ्गुलक्षेत्रफलात्मकं २२ नराकृतिः शनिमण्डलं भवति।

क्षेत्रफल—(क) उदरक्षेत्रफल ९ अंगुल। (ख) मुख का क्षेत्रफल २ अंगुल। (ग) चरण का क्षेत्रफल ६ अङ्गुल। (घ) हाथ का क्षेत्रफल ५ अङ्गुल। कुल क्षेत्रफल जोड में २२ होगा।

‡ तत्र उदरे अङ्गुलत्रयमितो भुजः। अङ्गुल चतुष्टमिता कोटिः। ऊर्ध्वभागे पार्श्वयोः सार्द्धाङ्गुलदीर्घौ एकाङ्गुलविस्तृतौ द्वौ करौ। तावन्मितावधो भागे पार्श्वयोर्द्वौ चरणौ। यवाधिकैकाङ्गुलव्यासार्धेन कृतं मण्डलं मुखम्। मुखोदरयोर्मध्ये यवद्वयमितश्चतुरस्रो गलः। मुखादग्रे यवद्वयेनोष्ठौ पुच्छे त्रिभुजे अङ्गुलत्रयमिता भूमिः। सार्धाङ्गुलो लम्बः। एवं कृते पञ्चविंशत्यङ्गुलक्षेत्रफलात्मकं मकराकृति राहुमण्डलं भवति।

क्षेत्रफल—(क) भुज और कोटी का क्षेत्रफल १२ अङ्गुल। (ख) मुख का क्षेत्रफल ४ अङ्गुल। (ग) ओष्ठ और गले का—एक अङ्गुल। (घ) हाथ और चरण का क्षेत्रफल ६ अङ्गुल। कुल जोड़ २५ क्षेत्रफल होगा।

अङ्गुल की भुज रहेगी। (३) हाथ की-चौड़ाई एक अङ्गुल चार यवकी होगी। (४) कोटी–चार अङ्गुल की होगी। (५) नीचे पूछ ठीक मध्य में (अर्थात्–पुच्छे त्रिभुजे अङ्गुलत्रयमिता भूमिः) त्रिभुज करने पर ठीक मध्य से एक लंबी रेखा उत्तरदिशा की तरफ जो होगी वह तीन अङ्गुल की होगी।

(प्रकारान्तरपक्ष लघुपीठमाला और संस्काररत्नमालासे)

(१) मध्य से पूर्व दिशामें चार अङ्गुल रेखा सीधी दे। (२) दक्षिणदिशामें—चार अङ्गुल सीधी रेखा दे। (३) पश्चिमदिशामें चार अङ्गुलकी सीधी रेखा दे। (४) और उत्तरदिशा में—चार अङ्गुलकी सीधी रेखा दे। एसाकरनेसे एक चतुरस्र तय्यार होजायगा। तदनन्तर उस चतुरस्रके बाहर अग्निकोणमें दक्षिणकी तरफ एक सीधी रेखा दे जो रेखा छः यूका, १ यव और एक अङ्गुल की हो। उस रेखाके अन्तिमसिरे पर चिन्ह करे। इसीतरह उत्तरकी तरफ (ईशानकोणमें) छः यूका, १ यव एक अङ्गुलकी सीधी रेखा बढ़ा दे। फिर नैर्ऋत्यकोणसे एक टेढ़ी रेखा दे जो दक्षिण दिशा (अग्निकोण) में बढ़े हुए भागके अन्तिमचिह्न पर मिले। वैसे ही–वायव्यकोण से एक टेढी रेखा दे जो उत्तरदिशा में (ईशानकोण) में बढ़े हुए भाग के अन्तिमसिरेमें मिले।

तदनन्तर—उस चतुरस्र के नीचे के हिस्सेमें (अर्थात्–वायव्य और नैर्ऋत्यवाले में) अर्थात् पश्चिमदिशामें उस चतुरस्रका दो दो अङ्गुल का मध्य कर उस मध्यसे एक अङ्गुल के व्यासार्ध पर फिर चिह्न करे। ऐसाकरनेपर प्रकाल द्वारा अलग अलग दो वृत्त बनावे। फिर चतुरस्र के भीतर का अर्धवृत्त और चतुरस्र मिटानेसे शूर्पाकारका बनेगा।

(केतुपीठ)

२ अं०
४ अंगुल भुज
५ अंगुल कोटी
५ अंगुल कोटी
ग्रह संस्कार गणपति का प्रकार
१अं०
१अं० मुष्टिका

(केतुपीठ)

पूर्वदिशासे पश्चिमदिशा में एक लंबी रेखा आठ अंगुलकी दे। तदनन्तर पूर्वदिशा से चार यव अर्थात्—आधा अङ्गुल हटाकर दूसरी लंबीरेखा उस रेखासे हटाकर दक्षिण दिशाकी तरफदे। फिर पश्चिमदिशासे दक्षिणवाली रेखासे अधोभागसे पाँच अङ्गुल पर चिह्न करे और पूर्वदिशासे अर्थात्—ऊपर से एक अङ्गुल छोड़ कर उसी रेखापर चिह्न करे। एक अङ्गुलसे एक सीधी रेखा चार अङ्गुल, एक यव की दक्षिणतरफ वैसे ही पाँचवें भागसे दूसरीरेखा टेढ़ी दे जो ऊपरवाली रेखा ४ अङ्गुल और १ यव में मिले। ऐसाकरनेसे मध्यवाली रेखा होगी। इससे केतुपीठ बन जाता है।

प्रकारान्तर पक्षसे—(१) कोटी पाँच अङ्गुल लंबी। (२) वज्र का त्रिकोण-लंबाई दो अङ्गुल (३) भुजा चार अङ्गुल का। (४) सम चतुरस्र एक अङ्गुल की मध्य में मुष्टिका।

(सूर्यकुण्ड)

२७ अङ्गुल ६ः यूका के आधेको प्रकालद्वारा नाप कर मध्य बिन्दुसे एक गोलाकारवृत्त बनावे। इस कुण्डका नाम सूर्यकुण्ड होता है।

([1]चन्द्रकुण्ड)

३३ अङ्गुल ७ यव और ४ यूका आधा १६।७।६।५। को प्रकालसे नापकर मध्य बिन्दुसे एकगोलाकार वृत्त बनावे। तदनन्तर उस वृत्तमें (क) ईशानकोण से एक सीधी रेखा दे जो अग्निकोणमें मिले। (ख) अग्निकोणसे एक सीधी रेखादे

---

(१) तत्र खड्गाकृतौ फलकस्य चतुरङ्गुलो भुजः। पञ्चङ्गुला कोटिः। खड्गाग्रत्रिकोणे अङ्गुलद्वयमित्त लम्बः। चतुरङ्गुला भूमिः। उपरि समचतुरस्रा अङ्गुलैकामुष्टिका। एवं कृते पञ्चविंशत्यङ्गुलक्षेत्रफलात्मकं खड्गाकृति केतु-मण्डलं भवति।

क्षेत्रफल—(क) भुज और कोटी का २० (ख) त्रिभुज का क्षेत्रफल ४ (ग) मुष्टिका क्षेत्रफल १ कुल २५ क्षेत्रफल हुआ।

(१) ३८ अङ्गुल दो यव और तीन यूकाका आधा कर प्रकालसे नापकर मध्य बिन्दुमे एक गोलाकार वृत्त करे। तदनन्तर उत्तर उस वृत्तमें दिक् साधनार्थ पूर्वदिशा (मुख) से एक लंबी लकीर दे जो पश्चिम (पुच्छ) दिशामें मिले। तदनन्तर उत्तर

जो नैऋ त्यकोणमें मिले। (ग) नैऋ त्यकोणसे एक सीधी रेखा दे जो वायव्यकोणमें मिले। (घ) वायव्यकोणसे एक सीधी-रेखा दे जो ईशानकोणमें मिले। ऐसा करनेसे वृत्तके भीतर एक चतुरस्र बनेगा उस चतुरस्र को चन्द्रकुण्डसे कहा जाता है।

(भौम कुण्ड)

पूर्व

व्यास

४२।१

उत्तर

पश्चिम

(मंगलकुण्ड)

४२ अङ्गुल तथा १ यव का आधा कर प्रकाल द्वारा मध्य बिन्दु से एक गोलाकार वृत्त बनावे। तदनन्तर पूर्व दिशा (मुख) से एक सीधी रेखा दे जो पश्चिम दिशा (पुच्छ) में मिले। फिर दक्षिणदिशा (दक्षपार्श्व) एक सीधी रेखा दे जो उत्तरदिशा (वामपार्श्व) में मिले। वायव्यकोण से एक टेढ़ी रेखा दे जो दक्षिणदिशा में मिले। ईशानकोण से एक टेढ़ी रेखा दे दक्षिणदिशा में मिले। ऐसा करने से त्रिकोणकुण्ड बन जाता है।

अथवा—नैर्ऋव्यकोण से एक सीधी रेखा दे जो वायव्यकोण में मिले। नैर्ऋव्यकोण से एक टेढ़ी रेखा दे जो उत्तरदिशा में मिले। वायव्यकोण से एक टेढ़ी रेखा दे जो उत्तरदिशा में मिले। ऐसा करनेसे त्रिकोणकुण्ड बन जाता है।

(बुधकुण्ड का प्रथमप्रकार)

उत्तर

२४अं

पश्चिम ८अं ४अं ४अं ८अं पूर्व

३६अं ३६अं ३६अं

दक्षिण

(बाणकुण्ड)

यह बुधकुण्ड का प्रथम प्रकार है।

मध्य बिन्दु से चार अङ्गुल हटाकर दक्षिणदिशा की तरफ एक रेखा सीधी ३६ अङ्गुल की दे। [अर्थात् मध्य बिन्दु से चार अङ्गुल हटाकर १८ अङ्गुल इधर और १८ अङ्गुल उधर रेखा देने से ३६ अङ्गुल होगा] वैसे ही मध्य विन्दु से चार अङ्गुल हटाकर उत्तरदिशा की तरफ एक रेखा सीधी दे जो ३६ अङ्गुल की होगी।

तदनन्तर—दोनों रेखाओं की समाप्ति पर उत्तरदिशा की ओर एक रेखा पूर्व से पश्चिमदिशा की तरफ दे जिसका नाप २४ अङ्गुल होगा।

[तात्पर्य यह है कि २४ अङ्गुल की जो रेखा दी जायगी उस रेखा का आधा १२ अङ्गुल होगा। उस बारह अङ्गुल के मध्य विन्दु वाली रेखा के अन्तिम सिरे पर रखने पर पूर्वदिशा की तरफ १२ अङ्गुल रेखा का नाप होगा और पश्चिमदिशा की तरफ भी १२ अङ्गुल रेखा का नाप होगा। यों निश्चयात्मक हो जाने पर मध्य विन्दु से चार अङ्गुल हटाकर दक्षिण दिशा की तरफ जो ३६ अङ्गुलात्मक रेखा दी है और ४ अङ्गुल हटाकर उत्तर दिशा की तरफ जो रेखा दी है उन रेखाओं के मध्य में चार २ अङ्गुल और आ जायगा। ऐसी स्थिति में दोनों छोर में अलग अलग आठ अङ्गुल बचेगा।] इसीप्रकार अन्य प्रकारों में व्यवस्था समझ लेनी चाहिये] फिर मध्यविन्दुमें एक सीधी दे जो दोनों रेखाओंके बराबरके नापकी हो। इसतरह कुल लंबी ३६ अङ्गुलात्मक तीन रेखा हुई ऐसा पूर्ण ज्ञानहोनेपर मध्यवालीरेखाके अन्तिमसिरेसे एक रेखा सीधी उत्तरदिशाकी तरफ २४ अङ्गुल की दे।

दिशा (वामपार्श्व) से एक लकीर लंबी दे जो दक्षिणदिशा (दक्षपार्श्व) में जाकर मिले। फिर दक्षिणसे उत्तरवाली जो रेखा (लकीर) दिक्साधनकेलिये दी है उस लकीरका चार भाग कर उसके चतुर्थ भाग पर (अर्थात् तीसरे चिह्न पर) प्रकालको रख उत्तरदिशासे दूसरावृत्त प्रथमवृत्तकी तरह बनावे। (यह ध्यान रखे की दूसरे वृत्त की रेखा पुच्छ (पश्चिम दिशा) और मुख (पूर्वदिशा) की रेखा को स्पर्श करती आरही है या नहीं) तदनन्तर तीसरे चिन्ह से एक सीधी रेखा पूर्वदिशा और पश्चिमदिशा की तरफ देनेसे अर्धचन्द्र (चन्द्रमा) कुण्ड बन जाता है। तात्पर्य यह है कि—यहाँ पर जो दो वृत्त बनाये गये हैं उस दूसरे वृत्त से ही अर्धचन्द्र बनेगा। प्रथमवृत्तके मध्यसे नहीं बनेगा।

अथवा—एककुण्डपक्षमें वृत्तका दिक् साधन कर उस वृत्तमें दो चिन्ह और करने से चारभाग होंगे। उसके तीसरे चिन्ह से पूर्वदिशाकी तरफ दूसरा वृत्त बनावे। तदनन्तर तीसरे चिन्हसे ही दक्षिणोत्तर एक सीधी रेखादेनेसे अर्धचन्द्र-कुण्ड बन जाता है।

तदनन्तर—पूर्वदिशासे पश्चिमदिशावाली रेखाके दोनों कोनेसे एक एक टेढ़ी रेखा दे जो कि उत्तरदिशामें जाकर मिले ऐसा करने से बाणकुण्ड बन जाता है।

(दूसराप्रकार)

मध्य विन्दुसे ५ अङ्गुल दक्षिणदिशाकी तरफ हटाकर एक सीधी रेखादे जो रेखा ३६ अङ्गुलात्मक होगी। तद्वत् मध्यविन्दु से ५ अङ्गुल हटाकर उत्तरदिशाकी तरफ एक रेखा सीधी ३६ अङ्गुलात्मक दे। अर्थात्—मध्यविन्दुसे ५ अङ्गुल हटा कर पूर्वदिशाकी तरफ ३६ अङ्गुलकी एकसीधी रेखादे। तद्वत् मध्यविन्दुसे पश्चिमदिशाकी तरफ ५ अङ्गुल हटाकर ३६ अङ्गुलकी एकरेखा सीधी दे। तदनन्तर–उत्तरदिशाकीतरफ मध्य विन्दुवाली रेखाको २३ अङ्गुल या २४ अङ्गुल एकसीधीरेखा उत्तरदिशाकी परफ बढ़ा दे। फिर उत्तरदिशाकी तरफ जहाँ ३६ अङ्गुलात्मक रेखायें समाप्त हो चुकी हैं वहाँसे पूर्वदिशासे पश्चिमदिशाकी तरफ १८ अङ्गुशकी एक सीधी रेखा दे। फिर इस १८ अङ्गुलकी रेखा के दोनों छोर से एक एक टेढ़ी रेखा दे जो जो उत्तरदिशामें मिले। ऐसाकरनेसे प्रकारान्तर बाणकुण्ड बनेगा।

(तीसराप्रकार कुण्डरत्नावलीका)

५८ अङ्गुल और ७ यूका के आधे को प्रकाल से नाप कर मध्यविन्दु से ४ अङ्गुल, ५ यव और ५ यूका हटाकर एक सीधी रेखा दक्षिणोत्तर (पूर्व दिशाकी तरफ) दे। जिसकी लंबाई ३८।३।५।१।२।४। अङ्गुल होगी। जिसे 'दण्ड-बृहज्ज्या' शब्दसे कहसकते हैं। तद्वत्—मध्य विन्दुसे दक्षिणोत्तर (पश्चिम दिशाकी तरफ) ५ अङ्गुल, ५ यव और ५ यूका हटाकर एक सीधी रेखा दे। जिसका नाम ३८।५।१।२।४ अङ्गुल होता है।

तदनन्तर मध्यविन्दुमें एकरेखा दक्षिणोत्तरदे जो रेखा पूर्व-रेखाओंके बराबर हो अर्थात् ३८।५।१।२।४ अङ्गुल की अर्थात् तीनों रेखायें बराबर की हुई ऐसा निश्चय होजानेपर उत्तरदिशाकी तरफ मध्य रेखाकी समाप्तिपर बायीं तरफसे ८ अङ्गुल, ३ यव और ४ यूका की एक रेखा दे। ७ यवकी एकसीधी रेखा पूर्वसे पश्चिमकी तरफ दे। दूसरी दाहिनी तरफ ८ अङ्गुल ३ और ४ यूका की एक रेखा दे। (अथात्–वृत्तका आठ भाग कर पूर्व-मुख, अग्निकोण अंश (स्कन्ध) दक्षिणपार्श्व, निर्ऋतिकोण-श्रोणी (कटी) पश्चिम—पुच्छ, वायव्यश्रोणी (कटी) उत्तरपार्श्व, ईशानअंश (स्कधं) तरफ —मुख (पूर्वदिशा) के समीप स्कन्धसे एकसीधी रेखादे जो पुच्छके समीप श्रेणी (कटि) में मिले। उस रेखा का मध्य और मध्यविन्दुसे जो रेखाकी समाप्ति हुई है–मध्य एक होगा। इसके मध्यसे पूर्वदिशाकी तरफ ८ अङ्गुल ३ यव और ४ यूकापर एकचिन्ह करे। वैसे ही मध्य से पश्चिमकी तरफ ८ अङ्गुल ३ यव और ४ यूका पर चिन्ह करे) फिर फिर उत्तरदिशाकी तरफ पार्श्वका बायेंका आधा और दाइनेके आधे पर एक रेखा दे। तद्वत् दक्षिणकी तरफ दे। फिर मध्य विन्दुवालीरेखाके अन्तिमसिरेसे एक सीधी रेखा जो उत्तर दिशाकी तरफ जाय। जिसका नाम १५।७।४।७।२।४ है। यदि मध्यशर २।१।६।७।५४ को १५।७।४।७।२ से घटा दे तो उपरका हिस्सा रेखाका नाप हुआ। तदन्तर दाहिनी तरफ (दक्षिण तरफ) पार्श्वका चार भाग करे। आदिके दो भाग छोड़ कर मध्यके भाग अन्तिम सिरेसे दक्षिणदिशा वाली रेखाके अन्तिमसिरे से एक टेढ़ी रेखा जो मध्य के अष्टाश्रिज्याके भीतर मध्यवाली रेखाके कोनेमें मिले। वैसे ही उत्तरवाली रेखा के अन्तिम सिरे से एक टेढ़ी रेखा दे। फिर मध्यकी बची रेखा मिटा दे और इत्यादि मिटानेसे बाणकुण्ड बनेगा।

(गुरु कुण्ड)

३६ अङ्गुल, ३ यव और ७ यूका का आधा (१८।१।७।४) कर प्रकालले नापकर मध्य विन्दुसे एक गोलाकार वृत्त बनावे। तदनन्तर वृत्तके बराबर के चौबीस चिह्न कर ७ चिह्नको छोड़ कर एक रेखा सीधी (पूर्वदिशाकी तरफ) दक्षिणोत्तर वृत्तके भीतरदे इस रेखा वृत्तके भीतर दे जिसका नाप ३१।४।६।२।५। होगा। सात रेखा छोड़कर (पश्चिमदिशाकी तरफ) दक्षिणोत्तर दे। फिर दोनों कोनोंको (जिसके मध्यमें तीन तीन रेखा रहेगी) रेखा द्वारा मिला दे। इन दो रेखाओं का नाप अलग अलग १७ अङ्गुल, १ यव, ७ यूका और ४ लिक्षा होता है।

तात्पर्य यह है कि—दक्षिणदिशा के समीप दक्षपार्श्वसे एकसीधी रेखादे जो उत्तरदिशाके समीप वामांशमें मिले। जिसका नाप (३१।४।६।२।५) होगा। फिर दक्षश्रोणीसे एकरेखा सीधी देंगे जो वामपार्श्वमें मिलेगी। जिस रेखाका नाप (३१।४।६।२।५) होगा। जिसको 'बृहज्जा' से पुकारा जाता है। तदनन्तर वामपार्श्व एकसीधी रेखा देंगे जो वामांशमें मिलेगी जिसका नाम १८।१।७।४ होगा जिसको 'लघुज्या' से कहा जाता है। फिर दक्षश्रोणीसे एकसीधी रेखा दें जो दक्षपार्श्व में मिलेगी इस रेखाका नाम १८।१।८।४ है जिसे लोग 'लघुज्या' कहते हैं। ऐसाकरनेसे आयत गुरुकुण्ड बन जाता है !

(दूसरा प्रकार)

जो रेखा ऊपर ३१ । ४ । ६ । २ । ५ । की है वह इस दूसरे प्रकार में ३२ अङ्गुलकी रहेगी जिसे 'बृहज्ज्या' शब्द से कहा जाता है। दूसरी रेखा जो ऊपर १८ । १ । ७ । ४ की कही है वह यहाँ दूसरे प्रकार में १८ अङ्गुल की कही है जिसे 'लघुज्या' शब्द से कह सकते हैं।

(शुक्रकुण्ड)

३१ अङ्गुल और १ यवके आधे ध्यासको प्रकालसे नापकर एक वृत्त गोलाकार बनाकर उस वृत्तके बराबर पाँचभाग कर (क) पूर्वदिशासे एक टेढ़ी रेखा दक्षपार्श्व में मिला दे। (ख) दक्षपार्श्वसे एक टेढ़ी रेखा नैर्ऋत्यकोणमें मिलादे। (ग) नैर्ऋत्यकोणसे एक सीधीरेखा वामश्रोणीमें मिलादे। (घ) वामश्रोणीसे एक टेढ़ी वामांशमें मिलादे। (ङ) वामांशसे एक टेढ़ी रेखा पूर्वदिशावाली रेखामें मिला दे। ऐसाकरनेसे 'पञ्चासकुण्ड' बन जाता है।

(दूसराप्रकार)

एक चतुरस्र २४ अङ्गुल का बनाकर उस चतुरस्रके बाहर चारों दिशाओं में पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर २४ अङ्गुलका सातवाँ भाग प्रत्येकदिशामें बढ़ाकर चतुरस्रको मध्य और चतुरस्रके बाहरके बढ़े हुए हिस्सेमें प्रकाल रख एक वृत्त गोलाकार बनाकर पूर्वोक्त व्यवस्था से ५ रेखा करने से पञ्चास्रकुण्ड बन जाता है।

(शनिकुण्ड)

मध्य केन्द्र से २६ । २ । ५ के आधे से (१४।५।२।) से एक गोलाकार वृत्त बनाकर उस वृत्तके दक्षपार्श्वको केन्द्र मानकर दक्षिणदिशा को केन्द्र मानकर प्रथमवृत्तके आधेसे प्रकाल घुमानेसे अर्थात् प्रथमवृत्तके मध्यमें पिनसिन रखे दक्षिण दिशामें प्रकालका शंकु रखकर घुमा देनेसे दूसरा वृत्त बनेगा। तात्पर्य यह है कि दूसरे वृत्त के आधे में चला जायगा। फिर उन दोनों वृत्तों में ज्या दक्षिणोत्तर मध्य से दे। तदनन्तर दोनों वृत्तोंके बाहर मध्य हिस्सेसे ४ अङ्गुल, ७ यव और १ यूका बायों तरफ और ४ अङ्गुल, ७ यव और १ यूका दाहिनी तरफ बढ़ा दे। इसपूर्ण रेखाका नाप ५३ । ५ । ७ होगा और केवल दोनोंतरफ का मिलाकर षष्ठांश ६ । ६ १ होगा अर्थात्— ५३ । ५ । ७ । से ६ । ६ । १ घटादेंगे तो भीतर वृत्तोंकी ज्याका नाप ४३ । ७ । ६ होगा। फिर बायें वृत्तके आठ भाग बराबर बराबरके करे। (१) पूर्वदिशाको मुख कहे। (२) अग्निकोणको स्कन्ध (स्कन्ध) कहे। (३) दक्षिणदिशाको पार्श्व कहे। (४) निर्ऋतिकोणको श्रोणी कहे। (५) पश्चिमदिशाको पुच्छ कहे। वायव्यकोणको श्रोणी (कटी) कहे। (६) उत्तरदिशाको पार्श्व

कहे । ईशानको कुश (स्कन्ध) कहे । इसी प्रकार दाहिने वृत्त में भी आठ भाग की कल्पना करे ।

तदनन्तर—वायें पार्श्वमें बढ़ीरेखा (४।७।१) के अन्तिमसिरेसे एक टेढ़ी रेखा दे जो अश और पार्श्वका जो मध्य है उसमें मिले । वैसे ही दाहिने तरफ रेखा (४।७।१) के अन्तिमसिरेसे अंश और पार्श्वका जो मध्य हो उस मध्य रेखामें मिलादे । फिर कारीगरसे कहकर कुण्डरत्नावलीके नकशे (सिद्धरूप को) को दिखा कर उपरीभाग में अर्थात् पार्श्व और कुश के मध्यमें जो रेखा टेढ़ीदी है वहाँ से धनुष्यके रूपको कुछ उठा दे और दूसरीतरफ वृत्त के ऊपरीभागसे स्कन्ध और पार्श्वके मध्यवाली टेढ़ी रेखासे धनुषका आकार बनावे । फिर सब नीचे के भागको मिटादेनेसे धनुधाकारकुण्ड बन जाता है । यही पक्ष उत्तम है ।

(शनि कुण्ड)

मध्यकेन्द्रसे—दक्षिणदिशाकी तरफ १०।४।५। अङ्गुल हटाकर एकचिन्ह करे । इसचिन्हसे एक वृत्त १४।५।२ का बनावे । तदनन्तर मध्यकेन्द्रसे दक्षिणदिशाकी तरफ १०।४।५ अङ्गुल हटाकर १४।५।२ का वृत्त बनावे । तदनन्तर वृत्तके बराबर बराबरके आठ भाग करे । (१) पूर्वदिशा—मुख होगा (२) अग्निकोण कुश (स्कन्ध) होगा (३) दक्षिणदिशा पार्श्व (४) निर्ऋतिकोण श्रोणी (५) पश्चिम दिशा पुच्छ (६) वायव्यकोण—श्रोणी कटी (७) उत्तरदिशा—पार्श्व (८) ईशानकोण—कुश (स्कन्ध) होगा । इसीप्रकार वायें वृत्त में भी कल्पना करे । तदनन्तर वृत्तके भीतर ठीक मध्यसे एक रेखा दक्षिणोत्तर लंबी सीधी दे । फिर वृत्तके बाईं तरफ (दक्षिणोत्तर लंबी रेखा के अन्तिम सिरे से) दक्षिण दिशा से एक रेखा लंबी—४।७।१ बढा दे । वैसे ही उत्तर दिशा से एक लंबी रेखा ४।७।१। बढ़ा दे । तदनन्तर—दक्षिणदिशामें पार्श्व और स्कन्धके मध्यमें चिन्ह कर —४।७।१। वाली रेखाके अन्तिमसिरेसे एक रेखा टेढ़ी ले जाकर पार्श्व और स्कन्धके मध्य चिन्ह में मिला दे । वैसेही उत्तर दिशामें—पार्श्व और स्कन्ध के मध्यमें चिन्ह कर ४।७।१ वाली—रेखाके अन्तिमसिरे एक रेखाके अन्तिमसिरेसे एक रेखा टेढ़ी ले जाकर पार्श्व और स्कन्धके मध्यचिन्ह में मिला दे । ऐसाकरनेमें धनुषाकारकुण्ड—बन जायगा । इसमें यह बात ध्यान रखना चाहिये कि—कारीगरसे कहकर पार्श्व और स्कन्ध के मध्य में जो टेढ़ी रेखा दे वहाँ से ऊपरकी तरफ (ऊपर के भाग में) अर्थात् पूर्वदिशाकी तरफ धनुषके रूपका आकार कुछ उठा कर बनावे । यह व्यवस्था दक्षिणतरफकी हुई । वैसेही उत्तरभागकी भी व्यवस्था कारीगरसे करा लें तदनन्तर पश्चिमका वत्तका भाग मिटा दे । यह प्रथा उत्तम नहीं मालूम होती है ।

(शनि कुण्ड)

(आगन्तुक चतुरस्र प्रदर्शनाय क्षेत्रम्)

यह लघुपीठ माला का प्रकार है।

नोट—कुण्डरत्नावली में जो १ श्लोक है उसकी जगह 'मध्याद् व्यासाग्नि ३ भागे स्वरविलवविहीने कृते' ऐसा बढ़ा जाय तो अच्छा मालुम होता है । व्यास २६।२।४ का तृतीयांश निकाल कर ६।६।१ को द्वादशांश—अर्थात् स्वमति व्यास का (२६।२।४) का जो द्वादशांशहो उसको तृतीयांश में घटा दे को ७।२।५ होगा ।

[(२) २६।२।४। का आधा १४।५।२ हुआ १४।५।२ को २६।२।४ में जोड़ेंगें तो ४३।७।६ होगा । अर्थात्—सार्द्धव्यासार्ध होगा । उसमें षष्ठांश जोड़ेंगें तो ६।६।१ को ५३।५।७ होगा । इतनी बढ़ी वृत्तोंमें और बाहर ज्या होगी । २६।२।४ का चतुर्थांश ७।२।५ होगा ।]

नोट—व्यास २६।२।४ होगा उसका आधा १४।५।२ होगा व्यास का तृतीययांश ६।६।१ है इसका द्वादशांश ०।६।४। तृतीयांश और द्वादशांश का जोड़ १०।४।५ होगा ।

अ ब=४२॥ अङ्गुल, अ क=३॥ अङ्गुल, क ब=२१ अङ्गुल, □ क इ उ ब=संग्राहार्धफलम्=७३ अङ्गुल ४ यव, इ प क=वृत्तपादफलम्=७८।४, प च ज त्रिभुजफलम् – अ क इ त्रिभुज फल=कोणांशफलम् $\frac{७७}{४}=\frac{४९}{८}=\frac{१५}{८}$ +४९=$\frac{२०३}{८}$=अङ्गुल २५। यव ३। ज्यास्पृक् सूत्रान्तश्चतुरस्रम्=प फ ज उ□तत्फलम् अर्थात्—चतुरस्रफलम्=११०। यह आधेका फलहै। अर्थात्–मध्यसे साढ़े चौबीस अङ्गुल का एक आधा चाप बनावे। इसका फल—२८७।३ होगा। उसी मध्यसे दूसरीतरफ साढ़े चौबीसका आधा चाप बनावे। उसका फल भी २८७।३ होगा। दोनों चापका फल ५७६ होगा। मध्यसे जो एक रेखा पूर्व पश्चिम होगी वह १७ अङ्गुल की होगी।

अर्थात्—प और उ व्यासार्धवृत्तम्। एतत् वृत्तबहिर्गतं यद् चतुरस्रं तदेवागन्तुकं समचतुरस्रम्। तत्रैको भुजः अगु०। ४८४=२२×२२=आगन्तुक चतुरस्रफलम्। ३८०=वृत्तफलम्। यस्य व्यासः=२२। १०४।

(राहुकुण्डका प्रथमप्रकार)

३८ अङ्गुल ३ यव और २ यूकाके आधेको (१९ । १ । ५) प्रकालसे नापकर मध्य विन्दुसे एक गोलाकारवृत्त बनावे। तदनन्तर (१) मुखसे एकसीधी रेखा दे जो वामश्रोणीमें मिले। (२) दशांशसे एक सीधी रेखादे जो पुच्छमें मिले। (३) वामांशसे एक सीधी रेखादे जो दक्षपार्श्वमें मिले। (४) वामपार्श्वसे एकसीधी रेखा दे जो दक्षश्रोणीमें मिले। ऐसाकरनेसे मध्यमें एक चतुरस्र बनजाता है। फिर वामपार्श्वसे एक टेढ़ी रेखादे जो वामांशसे मिले। अर्थात् वामांशवाली रेखा और मुखवाली रेखाके सन्धिमें जाकर मिले। वैसेही दक्षश्रोणीसे एक टेढ़ी रेखादे जो दक्षपार्श्वमें मिले। अर्थात्—पुच्छवालीरेखा और दक्षपार्श्ववाली सन्धिमें जाकर मिले। फिर—जो रेखा वामांशसे दक्षपार्श्वकोणमें गई है उस रेखामें अर्थात्—वामांश और मुखकी सन्धिसे और दक्षपार्श्व पुच्छवाली रेखाकी सन्धि के—बीचके हिस्सेका मध्य साधन कर दो वृत्तार्ध बनावे। अर्थात्—आधे वृत्त बनाने से शूर्पकुण्ड बन जाता है।

दूसरा प्रकार—३६ अङ्गुल ६ यूकका आधा नापकर मध्यबिन्दुसे एक गोलाकार वृत्त बनावे। तदनन्तर पूर्ववत् सब क्रियाकरे। केवल वामांशवाली रेखामें जो दो वृत्तार्ध (शूर्पके आकारकी तरह बने हैं) वे इस दूसरे प्रकारमें न बनकर केवल उतनी जमीनका मध्यसाधनकर मध्यमें प्रकालरख ईशानवालीसन्धिसे घुमाकर दूसरीसन्धिमें मिला देनेसे शूर्पकुण्ड बन जाता है।

(शूर्पकुण्ड)
१५ अंगुल
२३ अंगुल
२३ अंगुल
२७ अंगुल ४ यव
यह लघुपीठ माला का प्रकार है।

(शूर्पकुण्ड)
२० अंगुल
२४ अंगुल
२४ अंगुल
२८ अंगुल
यह लघुपीठ माला का प्रकार है।

---

(१) संग्राहोर्धे सार्धरामेण चापेन्तर्जोर्हः स्याद् वृत्तपादोदिकङ्कात्। सूत्राद्रौद्राद्बाह्यमौर्व्यर्हमेवं वृत्तं दद्याज्ज्यास्पृगेवं परार्धम्॥ चापे यदर्धं तत्र सार्धत्र्यङ्गुलेन संग्राहः भागः कर्तव्यः। ततः दशाङ्गुलात्सूत्रादन्तर्ज्यार्हः वृत्तपादः कर्तव्यः। तथा तत्र एकादशाङ्गुलेन सूत्रेण चापज्यास्पृक् बाह्यज्यार्हं वृत्तं दद्यात्। तथा च व्यासं ग्राहचिन्हयोरन्तरं २१ एकविंशत्यङ्गुलं भवति। एवमेव द्वितीयार्धं भवति। अन्तर्बहिर्ज्यार्हत्वं तदसत्वार्थम्! अत्र फलं संग्राहार्धफलम्—७३।४। वृत्तपादफलम्—७८।४। ज्यास्पृक् सूत्रान्तश्चतुरस्रफलम् तत्र एका कोटिः ११ परा कोटिः १० कोणांशफलम् २६ तत्रागन्तुके चतुरस्रे अंशत्रयं ७८ त्यक्त्वा शेषांशो ग्राह्यः २६। तथा च ७३।४। एवं ७८।४ एवं ७८।४ एवं ११० एकत्र २२८ एवं परार्धस्य २८८ मिलितम्—५७६।

नोट—जोड़ में २८८।७३।४, ७८।४, ११; २५।३, २८८।३ आता है। पाँच यव का फरक पड़ता है।

नोट—मुद्रित संस्कारत्नमाला, संस्कारगणपति, कुण्डरत्नावली, लिखित–ग्रहपीठमाला आदि भी देखिये।

राहु कुण्ड—तात्पर्य यह है–दक्षश्रोणीसे रेखाका नाप २७ अङ्गुल ४ यव है। दक्षपार्श्व से वामांशकी रेखाका नाप १५ अङ्गुल है और चतुरस्रके भीतर वाली रेखा पुच्छ और मुखकी रेखाका नाप अलग अलग २३ अङ्गुल है। दक्षश्रोणी और वामपार्श्व वाली रेखा जो चतुरस्र के बाहर पड़ेगी वह अलग २६ अङ्गुल २ यव है, अर्थात् दोनों छोर दक्षश्रोणी और वामपार्श्व १२ अङ्गुल ४ यव है। वामांशवाली रेखाका अर्थात् चतुरस्रका मध्य (१५ अङ्गुलका आधा ७॥ अङ्गुल का) साधनकर प्रकालसे घुमा दे तो धनुषाकारकुण्ड बनजाता है। यह लघुपीठमालाका प्रकार है। अथवा—२८ अङ्गुल दक्षश्रोणीवाली रेखा, दक्षपार्श्वकी रेखा २० अङ्गुल की। मुख और पुच्छ की रेखा जो चतुरस्र के भीतर है वह अलग अलग २४, २४ अङ्गुल की है। इसमें इतनेही बननेसे शूर्प बनजाता है। यह लघुपीठमालाका दूसरा प्रकार है।

(केतु कुण्ड का प्रथम प्रकार)

(केतुकुण्ड)

पूर्व

उत्तर

२४अं.

पश्चिम

(१) (क) मध्य विन्दु से ३ अङ्गुल हटाकर एक सीधी रेखा पूर्व से पश्चिम अर्थात्—दक्षिण दिशा में दे जिसका नाप ४५ अङ्गुल होगा। (२) मध्य विन्दु से ४ अङ्गुल हटाकर एक सीधी रेखा पश्चिम से पूर्व अर्थात्—उत्तर दिशा में दें जिसका नाप ४५ अङ्गुल होगा। [अर्थात्–मध्य विन्दु से ४ अङ्गुल हटाकर साढ़े बाइस अङ्गुल की रेखा पूर्व दशा में और साढ़े बाइस अङ्गुल पश्चिम दिशा में (दक्षिण दिशा में) दे। वैसे ही साढ़े बाइस अङ्गुल की सीधी रेखा पश्चिम दिशा में और २२॥ अङ्गुल पूर्व दिशा में (उत्तर दिशा में) दे] (३) तदनन्तर दक्षिण दिशा वाली रेखा में—पूर्व दिशा से ६ अङ्गुल पर एक चिह्न करे। (४) उस चिह्न से फिर ६ अङ्गुल पर दूसरा चिह्न करे ऐसा करने से दो चिह्न नव नव अंगुल के अलग २ हुए। वैसे कुल जगह १८ अङ्गुल हुई। (४) तदनन्तर जो पूर्व दिशा से ६ अङ्गुल पर चिन्ह किया है उस चिह्न से २४ अङ्गुल की एक सीधी रेखा दक्षिण दिशा की तरफ ले जाय। (५) दक्षिण दिशा वाली रेखा के पूर्व दिशा से एकटेढ़ी रेखा दे जो दक्षिण दिशा में २४ अङ्गुल वाली रेखा के अन्तिम सिरे में मिले। वैसे ही दूसरे ६ अङ्गुलात्मक चिह्न से एक टेढ़ी रेखा दे जो २४ अङ्गुल वाली रेखा के अन्तिम सिरे में मिले। ऐसा करने से केतु कुण्ड ध्वजाकर बन जाता है। (क) मध्य विन्दु को स्पर्श करती हुई एक रेखा मुख से प्रारंभकर (पूर्व दिशा से) पुच्छ (पश्चिम दिशा तक) में मिला दे।

(दूसरा प्रकार)

जैसे मण्डप १६ हाथ है तो फी भाग ५ हाथ ८ अङ्गुल होगा। तो वायव्यकोण का भाग भी ५ हाथ ८ अङ्गुल का होगा उसका मध्य दो हाथ १६ अङ्गुल होगा। उस मध्य से (२१।०।०।६) इक्कीस अङ्गुल ६ लिक्षा उत्तर की तरफ हटकर एक चिह्न करे उस चिन्ह से २६ अङ्गुल शून्य यव ६ यूका एक गोलाकार वृत्त बनाकर उस मध्य से (यह मध्य की दण्ड बृहज्या ५८।१।४ होगी) दो अङ्गुल और ५ यूका हटाकर एक रेखा दे जो पूर्व में पश्चिम दिशा की तरफ हो अर्थात् दक्षिण दिशा की तरफ हो। वैसे ही उसी मध्य से २ अङ्गुल और ५ यूका हटाकर उत्तर की तरफ एक पूर्व से पश्चिम एक रेखा दे। जिन दोनों रखाओं का नाम अलग अलग ५८।०।३ होगा। तदनन्तर पूर्व दिशा से एक रेखा दक्षिणोत्तर देकर दोनों रेखाओं के अग्रभाग को मिला दे। वैसे ही पश्चिम दिशा से दक्षिणोत्तर दोनों रेखाओं के अग्रभाग से रेखा द्वारा मिला दे।

तदनन्तर दक्षिण दिशा वाली रेखा का ४ भाग बराबर बराबर करे। फी भाग १४ अङ्गुल, ४ यव, शून्य यूका और छः बालाग्र होगा। अर्थात् दक्षिण दिशा का अग्रपूर्व दिशा से एक चिन्ह १४।४।०।६ पर करे। तदनन्तर दूसरा चिन्ह वहाँ से १४।४।०।६ पर मध्य से करे। वही रेखा का मध्य होगा। तदनन्तर पूर्व दिशा जो १४।४।०।६ पर चिह्न किया है वहाँ से एक सीधी रेखा दक्षिण दिशा की तरफ दे जिसका नाप २३।०।४ होगा। अर्थात् वहाँ से जो रेखा चलेगी वह अग्निकोण (दक्षांश) परिधिके २४ अंश में सगेगी। फिर पूर्व दिशा से एक टेढ़ी रेखा दे

नोट—३५ अङ्गुल की जो रेखा दक्षिण दिशा में दी गई है। जिसे 'दण्ड बृहज्या' शब्द से कह सकते हैं। उस रेखा के पाँच भाग करे। फी भाग ७ अङ्गुल का होगा।

नोट—व्यास ५८।१।४। गुणलव १६।३।१।३। इनांश १।४।७।३। गुणलव और द्वादंश का जोड़ २१।०।०।६। होगा।

जो दक्षिण दिशा में दी हुई रेखा के अन्तिम सिरे में मिले। और मध्य में पश्चिम दिशा से एक टेढ़ी रेखा दे जो दक्षिण वाली रेखा के अन्तिम सिरे में मिले। ऐसा करने से ध्वजाकार कुण्ड बनेगा।

(तीसरा प्रकार केतु कुण्ड का कुण्डरत्नावली से)

५८ अगुल, १ यव और ४ यूका के आधे को १४।४।३। प्रकाल से नाप कर मध्यविन्दु से दो अङ्गुल और ५ यूका हटा कर एक रेखा दक्षिण दिशा की तरफ (पूर्व से पश्चिम दिशा की तरफ दे। तद्वत् मध्य बिन्दु से दो अङ्गुल और ५ यूका हटाकर उत्तर दिशा की तरफ (पूर्व से पश्चिम दिशा की तरफ) दे। इस रेखा नाप अलग अलग ५८ अङ्गुल, ३ यूका होगा जिसे ध्वजदण्ड बृहज्ज्या शब्द से कहा जाता है। तदनन्तर पूर्व दिशा से दोनों रेखाओं को मिला दे रेखा द्वारा दक्षिणोचर। वैसी ही पश्चिम तरफ मिला दे दक्षिणोत्तर। ध्वजदण्ड बृहज्ज्या से दक्षिण दिशावाली रेखा जो है जिसका नाप ५८।३। है उसका चार भाग करे प्रत्येक भाग अर्थात्—फी भाग १४ अङ्गुल, ४ यव, शून्य यूका और छः बालाग्र होगा। अर्थात्—पूर्व दिशा से—१४।४।०।६ पर चिन्ह करे। वह प्रथम चिन्ह से १४।४।०।६। पर दूसरी चिन्ह करे। तदनन्तर प्रथम चिन्ह से—एक रेखा दक्षिण दिशा की तरफ दें जिस रेखा का नाप लंबाई २३।०।७।४ होगा। फिर—पूर्व दिशा के कोनें से एक टेढ़ी रेखा दे जो दक्षिण दिशा में बढ़ी हुई रेखा में (२३।१।७।४) में मिले। वैसे ही दक्षिण दिशा से एक रेखा रेखा २३।०।७४ वाली में मिले। ऐसा करने से केतु कुण्ड बन जाता है।

(केतु कुण्ड)

पूर्व

उत्तर

दक्षिण

पश्चिम

व्यास ५८।१।४

व्यासार्ध २९।०।६

२३।०।७।४

विशेष—कुण्डरत्नावली में जो श्लोक है—मध्यात् घायोर्दिशायां ततिगुण ३ लवके स्वेन भागेन हीने कृते। ऐसा पढ़ा जाय तो उत्तम मालुम होता है। व्यास ५८।१।४ तृतीयांश १६।३।१।४ स्वद्वादशांश हुआ। व्यास ५८।१।४ का १२ वाँ भाग ४।६।६।३ हुआ इसको तृतीयायांश से घटाने से १४।४।३।०। होगा। यही पक्ष उत्तम है।

अर्थात् मध्य केन्द्र से १४।४।३। का एक वृत्त बनाकर उस वृत्त में पूर्व–और पश्चिम एक रेखा लंबी दे जिसकी लंबाई ५८।१।१४। होगी। इस रेखा के मध्य भाग से एक रेखा दक्षिण की तरफ (२ अङ्गुल और २ यूका हटाकर होगी। इस रेखा का जो होगा उस मध्य में पूर्व दिशा की तरफ १४।४।३। पर एक चिन्ह होगा। इसकी लंबाई दक्षिण की तरफ—२३।०।७।४ होगी।

(ग्रहकुण्डों मे योनि का स्थान निर्देश)

कुण्डरत्नावल्याम्—पञ्चास्रं च त्र्यस्रकं वाणकुण्डं दीर्घाम्नायास्त्रीति सौम्याग्निकाणि। चापं शूर्पं पश्चिमर्ज्यं च केतुर्दक्षाग्रः स्यात्सौमिकं चोत्तरास्यम् ॥निर्णयसिन्धुटीकायाम्—यष्टिर्वाणैः सौम्यदिश्यग्र एव त्र्यस्रं तादृक्शूर्पकं पश्चिमास्यम्। वार्हस्पत्यं सौम्यदीर्घं धनुस्तत्पश्चाद् दिगर्ज्यं शुक्रियं सौम्यकोणम् ॥

नोट—(१) मध्य विन्दु की रेखा का नाप ५८ अङ्गुल ३ यूका होगा जिसे दण्ड बृहज्ज्या शब्द से कहते हैं। और २५।१।४।४ वाली रेखा का नाप मध्य विन्दु से होगा। दक्षिण दिशा वाली रेखा से तो १३।०।०।४ होगा। पूरी रेखा का नाप दक्षिण से उत्तर जायगी। अर्थात्—पूर्वदिशा से जो मध्य १४।४।०।६ पर करेंगे वही रेखा पूरी ५०।३।१ की होगी।

श्रीः।। महारुद्रादौ तदङ्गत्वेन ग्रहशान्त्यनुष्ठानं यदि कश्चित् पृथक् प्रयोगेणैव
चिकीर्षति तदा आरम्भात्पूर्वं स्वातन्त्र्येण ग्रहशान्तिं कुर्यात्। यदि तु महारुद्रप्रयोगे
ण सह समानतन्त्रेणैवानुष्ठानमभिलषति तदा सत्यपि ग्रहयागस्य तदङ्गत्वे
ऽङ्गानां तन्त्रेणैवानुष्ठानम्। न च शङ्क्यम् - अङ्गप्रधानयोस्तन्त्रता न दृष्टा इति।
वैश्वदेवस्य पौर्णमास्यङ्गत्वेऽपि पौर्णमासस्य समानतन्त्रत्वस्य आपस्तम्बेन विहितत्वा
त्। "समानतन्त्रमेके समामनन्ति" (३.१५.२) इति। एवं 'वैश्वदेवं गां निर्वपेत्'
इत्यनुवाकेन तं बर्हिषं कृत्वा शम्यया ब्रूहेत "इदमहममुं च व्यूहामी"ति (१०-
१-१)। तत्र वैश्वदेविकतन्त्रप्रधानायां सर्वाण्यङ्गानि प्रसङ्गेनोपकुर्वन्ति इति
न पृथक् क्रियन्ते इति शास्त्रदीपिकादौ प्रसङ्गसिद्धेरुपपादितत्वात्। एवं च
अङ्गप्रधानयोस्तन्त्रता प्रसङ्गश्चेत्युभयमपि भवत्येव। अत एव रुद्रयागादौ
ग्रहयागस्य समानतन्त्रेणानुष्ठानेन कोऽपि दोषः। एवं च तदुक्तप्रमाणैरेवा
दिष्टयोस्तन्त्राभावो महता प्रयासेन साधितः स न युक्तः। पूर्वं तन्त्राभावं प्र
साधयतां समानतन्त्रप्रयोगस्य लेखनेन पूर्वोत्तरग्रन्थविरोधाच्चोपेक्ष्य
एवेति।।

श्री [illegible]शर्मा जोडे।

पाराशरस्मृतौ—मन्त्रो हि बीजं सर्वत्र क्रिया तच्छक्तिरुच्यते । मन्त्रतन्त्रसमायुक्तो यज्ञ इत्यभिधीयते ॥ मन्त्रः पुमान् क्रिया स्त्री च तदुक्तं मिथुनं स्मृतम् । मन्त्रक्रियाजुष्टमेव मिथुनं यज्ञ उच्यते । अग्निर्जिह्वा भगवतो वेदा अंगा सदाध्वरे । अस्थीनि समिधः प्रोक्ता रोमा दर्भाः प्रकीर्तिताः ॥ स्वाहाकारः शिरः प्रोक्तं प्राणा एव हवींषि च । सर्ववेदक्रिया भोक्ता मन्त्राः पत्न्यः प्रकीर्तिताः ॥ एवं यज्ञवपुर्विष्णुर्विदित्वैनं हुताशने ।

हमारे शास्त्रों में यज्ञादि में प्रयुक्त मन्त्रों का अत्यन्त महत्व है । मन्त्रोंको 'बीज' तथा क्रिया को उसकी 'शक्ति' माना है । मन्त्र एवं तन्त्र (क्रिया) का समवेत स्वरूप ही यज्ञ है । मन्त्र पुरुषस्वरूप और क्रिया स्त्री स्वरूपा है। दोनों मिलकर ही युगल मूर्ति बनते हैं । मन्व एवं क्रिया का युगलरूप ही यज्ञ कहलाता है । यज्ञ में अग्नि भगवान की जिह्वा, वेद अंग, समिधा अस्थि, कुशा रोम, स्वाहाकार शिर, हवि (आहुति) प्राणस्वरूप है । वैदिक क्रियाएँ भोग वस्तु तथा मन्त्र यज्ञ की पत्नी भगवान विष्णु के इस यज्ञमय शरीर का सम्यक् ज्ञान दारा ही हवन करना श्रेयस्कर होता है । बिना पूर्णमीमांसा के उस विषय के विशेषज्ञों की पूर्व कालिक व्यवस्थाओं की उपेक्षा करके किये गये स्वेच्छाचार को कर्मकाण्ड में अक्षम्य अपराध बतलाया है । ऐसा करने मात्र से यज्ञ पुरुष के उन अंगों पर चोट पहुँचती है जिनका दुरुपयोग अविवेक से किया जाता है ।

विष्णुयागादि हवनात्मकमें ग्रहहोम पूर्वक यागोंका अनुष्ठान होता है । उनमें शास्त्रीय दृष्टि से व्याहृति पूर्वक 'आ कृष्णेन' इत्यादि मन्त्रों दारा ग्रहवेदि पर स्थापन होता है । वहाँ इस प्रकारका संकल्प पढ़ा जाता है—सग्रहमखं विष्णुयागम्, इत्यादि पढ़कर प्रधान संकल्प किया जाता है ।

तदनन्तर हवनारंभ में उन मन्त्रोंसे 'होमो ग्रहादिपूजायां शतमष्टाधिकं भवेत् । अष्टाविंशतिरष्टौ वा यथाप्राप्तिविधीयते ॥ इत्यादि से ग्रहजन्य मन्त्रोंसे एक सौ आठ, अठाइस, या आठ आहुति देनी चाहिये । इसतरह वचन मिलते हैं। इन मन्त्रोंसे प्रधान आहुति के पूर्व आहुति प्रथम ही दिन होती है।

यदि पाँच कुण्ड, नौ कुण्ड, सात कुण्ड, आदि बनेंगे तो ग्रह मन्त्रोंसे आहुति का विभाग किसप्रकार होगा यह अत्यन्त विचारणीय प्रश्न है। विष्णु आदि प्रतिष्ठा में तो पाँच या नौ कुण्डों में ग्रहमन्त्रों का विभाग लिखा मिलता है। उसमें भी कुछ आहुति किसी २ कुण्ड में नहीं होती है ।

ये ग्रहमन्त्र चौवालिस या पैंतालिस हो सकते हैं। यदि खण्डदीक्षितकृत रुद्रयागपद्धति के अनुसार ही ग्रहों का स्थापन करेंगे तो शेष आदि पचास या इक्यावन देवता और हो सकते हैं। पर यह एक देशीय पक्ष होने से हमारे श्री प्रातःस्मरणीय पूज्यतम श्री १०६ पिताजी (महामहोपाध्याय श्री पण्डित विद्याधर जी गौड अग्निहोत्री) को मान्य नहीं था। यह पठित कर्मकाण्डी याज्ञिकगण जानते हैं।

शान्तिमयूख भविष्यपुराण, द्वैतनिर्णय, लिखितकोटिहोमपद्धति, निर्णयसिन्धु की कृष्णंभट्टी, हेमाद्रि आदि ने ग्रहयज्ञको तीन प्रकार का माना है। अयुत, लक्ष और कोटिहोमभेद से। इसमें व्याहृति को ही प्रधान मानकर होम हो ऐसा स्वीकार किया है। 'आ कृष्णेन' इत्यादि मन्त्रों द्वारा आहुति नहीं हो सकती। क्योंकि ग्रहमन्त्रों का विभाग कैसे होगा। कोटिहोमपद्धति। ये ग्रहमन्त्ररेवायुतलक्षहोमाद्याहुतस्तन्निर्मूलम्। नवग्रहमन्त्राणां विभागासंभवात्। भविष्योत्तरेऽपि—होमो व्याहृतिभिश्चैव सर्वस्तत्र विधीयते। नृसिंहपुराणे—ततो व्याहृतिभिः पश्चाज्जुहुयात्तु तिलादिकम्। यावत्प्रपूर्यते संख्या लक्षं वा कोटिरेव च ॥ वाशब्दात् अयुतमपि।

कोटिकोम में एक कुण्ड और सौ कुण्ड आदि विधान मिलता है। यदि एक कुण्डपक्ष स्वीकार करेंगे तो होम बहुत कालीन साध्य होगा। सौ कुण्डपक्ष स्वीकार करने पर इस की समाप्ति शीघ्र ही होगी।

इसमें प्रधान ग्रह होंगे। यदि कथंचित् ग्रहशान्त्यर्थ कामनाकेलिये कोटिहोमादि किये जाय तो 'नवग्रह आकार वाले नौ कुण्डोंमें अयुतादि हवन व्याहृति द्वारा हो सकते हैं। इसमें मध्यप्रदेश का सूर्यकुण्ड आचार्य होगा। सौ और दस कुण्डपक्ष में—नैर्ऋत्यकोण का कुण्ड आचार्य कुण्ड होगा।

स्कन्द पुराणोक्त रुद्र यन्त्रम्

जहाँ मन्त्र आदि की पूर्ण व्यवस्था शास्त्रीय दृष्टि से न हो वहाँ व्याहृति समस्त से हवन का विधान करना मिलता है। अतः शतमुखादि-कोटिहोम में व्यस्त और समस्त दोनों पक्ष समुच्चय कर हवन याज्ञिक करते हैं।

यदि व्याहृति को गायत्री का अङ्ग माने तो प्रथमाहुति गायत्री से शेष आहुति व्याहृति से ही होगी।

कामदेवकृत विष्णुयागकारने ग्रहयज्ञ को चार प्रकार सहस्र, अयुत, लक्ष और कोटिहोम भेद से माना है। इसमें प्रधान विष्णु हैं। मन्त्र 'सहस्रशीर्षा' के सोलह ही केवल हैं।

'अथर्वपरिशिष्टोक्तादि द्वारा गायत्री कोटिहोमादि करना मिलता है। इसमें प्रधान देवता गायत्री रहेगी। इसमें षडंगादिन्यास अक्षरन्यासादि अनावश्यक ही से हैं। (षडंगन्यासः कार्यो न वा कार्यः। न्यासविधेरवैदिकत्वादिति गृह्यपरिशिष्टे स्पष्टम्। एतेन अक्षरन्यासपदन्यासादीनां मुद्रादिविधेः शापमोचनादिविधेश्च तान्त्रिकत्वेनाऽवैदिकत्वादनाश्यकत्वं वेदितव्यम्। धर्मसिन्धु) 'नासान् करोतु वा मा वा गायत्रीमेव चाभ्यसेत्। ध्यात्वा निर्व्याजया वृत्या सच्चिदानन्दरूपिणीम् ॥ देवीभागवत। हवन समय व्याहृतिपूर्वक या अव्याहृतिपूर्वक हवन करे इसमें विकल्प मिलता है।

शान्तिरत्न निबन्धकार श्री कमलाकर ने 'अथ कोटिहोमः' के अनन्तर' 'गायत्र्याद्युतहोमः' की हेडिंग देकर स्वतन्त्र प्रयोगात्मक रूप से लिखा है कि 'होमयेत् शतसाहस्रं मन्त्रैश्च यथाक्रमम्। चतुर्विंशतिगायत्र्या मा नस्तोकेति षट् तथा। त्रिंशद् ग्रहादिमन्त्रैश्च चत्वारि विष्णुदैवतैः ॥ कूष्माण्डैर्जुहुयात्पञ्च किरिकिया तु षोडश। हुनेद्दशसहस्राणि जातवेदस इत्यृचा ॥ पञ्चैव तु सहस्राणि जुहुयादिन्द्रदैवतैः ॥ ये वचन वहाँ पर बृहत्पाराशरस्मृति से उद्धृत किये हैं। ऐसा लिखा है।

गायत्रीमन्त्र से—चौबीस हजार, 'मा नस्तोके' इस मन्त्र से छः हजार ग्रहमन्त्रों से तीस हजार, विष्णसंज्ञक मन्त्रोंसे

चार हजार, (विष्णुसंज्ञक बहुत मन्त्र हैं किन मन्त्रों से और कितने मंत्रों से आहुति हो यह वहाँ स्पष्ट नहीं लिखा है) कूष्माण्डसंज्ञक मन्त्रों से (यद् देवा देवहेडनम् इत्यादि) पाँच हजार किरिक के एक ही मन्त्र से सोलह हजार, जातवेदसे सुनवाम इस मन्त्र से दस हजार, इन्द्र देवतावाले मन्त्र से पाँच हजार (इन्द्र के बहुत मन्त्र हैं किस मन्त्र से दे यह वहाँ नहीं लिखा है) आहुति होगी ! इस प्रकार कुल एक लाख आहुति होगी।

इससे मालुम होता है कि व्याहृतिद्वारा कोटिहोम में, केवल गायत्री कोटिहोम में या पुरुषसूक्त मन्त्रों द्वारा कोटिहोम में बृहत्पाराशरस्मृति के द्वारा आहुति का विधान ग्रन्थकार को सम्मिलित कर अभीष्ट नहीं है। श्री रामकृष्ण भट्ट ने लिखित कोटिहोमपद्धति में लिखा है यत्तु मात्स्ये—एव प्रदेशान्तरे प्रकारान्तरेण लक्षहोम उक्तः—

'गायत्रा दशसाहस्रं मा नस्तोकेन षट् पुनः। त्रिंशद् ग्रहादिमन्त्रैश्च चत्वार्येव च वैष्णवैः॥ कूष्माण्डैर्जुहुयात्पञ्च किरिकानां तु षोडश। होतव्या दश साहस्रं ऋचा वै जातवेदसा॥ श्रिया मन्त्रेण होतव्यं सहस्राणि चतुर्दश। शेषाः पञ्च सहस्रास्तु होतव्यास्त्विन्द्र देवता इति।

गायत्रीमन्त्र से दस हजार, 'मा नस्तोके तनये' से छः हजार, ग्रहादि मन्त्रों से तीस हजार, विष्णुसंज्ञक मन्त्रों से चार हजार, कूष्माण्डसंज्ञक मन्त्रोंसे पाँच हजार, किरिकसंज्ञक मन्त्रों से सोलह हजार, 'जातवेदसे सुनवाम' इस ऋचा से दस हजार, श्रियसंज्ञक मन्त्र से चौदह हजार और इन्द्रदेवताक मन्त्र से पाँच हजार आहुति दे। (कुछ मन्त्रों का उल्लेख नहीं मिलता)

यच्च देवीपुराणे—गायत्र्या ग्रहमन्त्रैश्च कूष्माण्डैर्जातवेदसा। ऐन्द्रवारुणवाह्वेयैर्वायुयाम्यसवैष्णवैः। होमं शतसहस्रं तु कुर्यादष्टोत्तरं तथा।

और जो गायत्रीमन्त्र, ग्रहमंत्र, कूष्माण्डसूक्त, जातवेदससूक्त, ऐन्द्र, वारुण, वासव, आग्नेय, याम्य, सौम्य, वैष्णव मन्त्रों से एक लाख, आठ (अष्टोत्तर शतसहस्र) होम करना चाहिये।

यच्च ब्रह्माण्डपुराणे—गायत्र्या त्र्यंबकेनाथ शंभवायेत्यथापि च। जातवेदस मन्त्रेण महेन्द्रेणापि चैव हि॥ सहस्रशीर्षेण तथा हिरण्येन तथापि च। रुद्रमन्त्रैस्तथा तोये पञ्चरात्रागमोदितैः। लक्षहोमं प्रकुर्वीत कोटिहोममथापि वा। इति राजकर्तृकलक्षहोमादिविषयम्।

और जो गायत्री, त्र्यम्बक, शम्भवाय, जातवेदस, महेन्द्र सहस्रशीर्षा तथा हिरण्य रुद्रमन्त्र, तोयमन्त्र-जिनका पाञ्चरात्र आगम ग्रन्थों में उल्लेख है उनसे लक्ष एवं कोटिहोम करना चाहिये।

लिखित कोटिहोग पद्धतिकार रामकृष्णभट्ट ने लिखा है कि इन मत्स्यपुराणादि वचनों के पूर्व 'यत्तु' (जहाँ सिद्धान्त से विपरीत बात को कहना होता है वहाँ 'यत्तु' शब्द का प्रयोग होता है) शब्द को लिखते हुए लिखा है कि ये वचन राजर्तृकपरक हैं। मत्स्यपुराण में इसप्रकरण से भिन्न प्रकरण में और भिन्न प्रदेश में लक्षहोम में वचन कहा है। इन वचनों से यहाँ ज्ञात होता है कि ब्राह्मण और वैश्य इन मन्त्र से अयुतादि होम न करें। जैसे—श्रौतयज्ञों में दर्शपूर्णमासयाग ब्राह्मणादि त्रैवर्णिको को, वाजपेययज्ञ ब्राह्मण और क्षत्रियको, राजसूययज्ञ क्षत्रिय को सौत्रामणियज्ञ ब्राह्मण को, अश्वमेधयज्ञ सार्वभौम क्षत्रिय को, सत्रयज्ञ ब्राह्मण को तथा पुरुषमेध ब्राह्मण और क्षत्रिय को अधिकार है।

अतः मेरी व्यक्तिगत दृष्टि में पराशरस्मृति आदि के वचनों के साथ पुरुषसूक्त आदि को जोड़कर या अलग जो हवन हैं वह सर्वथा अप्रमाणिक, शास्त्रविरुद्ध तथा लोक विरुद्ध है।

दूसरी बात—यह है कि चलमण्डप जिस याग के लिए बनता है वही याग उसमें होता है। क्योंकि चल मण्डप उसी याग का अंग होता है। जहाँ कहीं व्याहृति, गायत्री या प्रधान पुरुषसूक्त है। वहाँ पुरुषसूक्त आदि मन्त्रों से कोटिमोहादि करने को लिखा है। अतः वही याग उस मण्डप में हो सकता है। क्योंकि एक देवताक एक द्रव्य एक कालिक एक कर्तृक एक देशवाले याग हों तो दो, तीन आदि याग एक मण्डप में एक कुण्ड में युगपत् हो सकते हैं। भिन्न देवताक भिन्न द्रव्य भिन्न कालिक याग नहीं हो सकते। अतः बृहत्पाराशर स्मृति आदि वचनों को जो कोई आधुनिक समुच्चय कर रहे हैं। वह सर्वथा अप्रामाणिक हैं। यहाँ समुच्चय का कोई कारण नहीं दिखता। अतः आहृति आदि से हवन करना निबन्धकारों को इष्ट है। बृहत्पाराशरस्मृति के वचन केवल राजकर्तृक (राजशब्दोऽभिषिक्तक्षत्रियवाची) या कुछ ही अंश में शस्तारूढ़ राजाओं के लिए है। इस बात को कई जगह कहा है।

एक समय (संवत् २००१ सन् १९४४) काशी में 'सार्धद्वयकोटिहोमात्मक एकविंशत्युत्तरशतमुखमहारुद्रयज्ञ' इस नाम द्वारा शतमुख महारुद्रयज्ञ होने जा रहा था। उस समय आपसीय निर्णय विद्वानों में होकर उपरोक्त यज्ञ न होकर ग्यारह प्रधान आचार्यों द्वारा ग्यारह अतिरुद्र और पाँच महारुद्र अलग अलग प्रधान वेदी, मण्डप या छायामण्डप, वास्तु, योगिनी, क्षेत्रपाल और ग्रहवेदी बनाकर हुए थे। यह सर्व विदित है। अतः शास्त्रीयमार्ग से ही होमादि करने से देश तथा समाज का कल्याण हो सकता है।

—दौलतराम गौड

अथ निर्णयसिन्धुः

(भाषा-टीका-सहित)

सहस्त्रब्राह्मणभोजनविधिकथनम्

दौलतराम गौड

❀ अथ दानचन्द्रिकोक्तसहस्रभोजनप्रयोगः ❀

कर्ता सभ्योपदिष्टमात्मशुध्यर्थं पूर्वोत्तराङ्गसहितं प्रायश्चित्तं विधाय तदुत्तरमुपकल्पितदशांशद्रव्यं ब्राह्मणेभ्यो दत्वा मया यदुपकल्पितं द्रव्यं तत्प्रोक्षणेन शुद्धिं कुर्वित्ति ब्राह्मणानामनुज्ञां लब्ध्वा तत् द्रव्यं प्रोक्षयेत् ।

कृतमङ्गलस्नानः सपत्नीकः प्राङ्मुख उपविश्याचम्य प्राणानायम्य पवित्रधारणं कृत्वा आ नो भद्राः—इत्यादि पठित्वा लक्ष्मीनारायणादिदेवान् प्रणम्य देशकालौ सङ्कीर्त्य—मम पञ्चमहापातकादिनिवृत्तिकामो गोवधपरद्वारा परद्रव्यापहारकादिकायिकवाचिकमानसिकतच्छरीरावच्छिन्नसमस्तपापक्षयपूर्वकनानाविधमनोभीष्टसिध्यनन्तरं षष्टिवर्षसहस्राणि विष्णुलोकनिवासान्ते ब्रह्मानन्दावाप्तिकामः श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं सहस्रसंख्यापरिमितब्राह्मणान् यथाशक्त्या यथोपपन्नान्नेन यथाकालं सदक्षिणाकं भोजयिष्ये । तदङ्गत्वेन स्वस्तिपुण्याहवाचनं मातृकापूजनं वसोर्धारापूजनमायुष्यमन्त्रजपं नान्दीश्राद्धमाचार्यादिऋत्विग्वरणं भवानीशङ्करादिदेवानां स्थापनं होमं च करिष्ये । तत्रादौ निर्विघ्नतासिध्यर्थं गणेशाम्बिकयोः पूजनं करिष्ये । तदर्थमाचार्यादिअष्टौ ऋत्विजान् वृणुयात् । तत्राचार्यः यजमानेनवृतोहमाचार्यकर्म करिष्ये—इति सङ्कल्पपूर्वकसर्षपविकिरणादिविष्णो देवयजनं रक्षस्वेत्यन्तं कुर्यात् । ततः शुचौ देशे सुशोभनां चतुरस्रां सुपुष्पैर्भूषितां मण्डपिकां कृत्वा तन्मध्ये हस्तमात्रां वप्रद्वययुतां प्रादेशोच्चां वेदिं विधाय तत्र लिङ्गतोभद्रं विरच्य तत्र ब्रह्मादिमण्डलदेवानां स्थापनं तत्र कलशं संस्थाप्य तदुपरि महान्तं पूर्णपात्रं निधाय तत्र वस्त्रादौ शतकर्णिकात्मकं पद्मरूपं पीठं विरचयेत् । तत्र पद्मस्य मध्यकर्णिकायां कर्षपरिमितां सौवर्णां भवानीशङ्करप्रतिमां मध्ये तद्दक्षिणतो विष्णुं प्रतिमोत्तरतो ब्रह्माणं चावाहयेत् । तद्बहिस्थचतुर्दलेषु प्रागादिक्रमेण—गणेशम्, दुर्गाम्, क्षेत्रपालम्, अभयङ्करञ्चावाहयेत् । तद्बहिस्थषोडशदलेषु प्रागादिक्रमेण गौर्यादिषोडशमातृरावाहयेत् । तद्बहिस्थैकत्रिंशद्दलेषु-ध्रुवम्, अध्वरम्, सोमम्, अपः, अनिलम्, नलम्, प्रत्यूषम्, प्रभासम्—इत्यष्टौ वसून्, वीरभद्रम्, शंभुम्, गिरीशम्, अजैकपादम्, अहिर्बुध्न्यम्, पिनाकिनम्, भुवनाधीश्वरम्, कपालिनम्, विशाम्पतिम्, स्थाणुम्, भगम्—इत्येकादशरुद्रान्, धातारम्, अर्यमणम्, मित्रम्, वरुणम्, ईशम्, भगम्, इन्द्रम्, विवस्वन्तम्, पूषणम्, पर्जन्यम्, त्वष्टारम्, विष्णुम्—इति द्वादशादित्यान् स्थापयेत् ।

तद्बहिस्थाष्टाचत्वारिंशद्दलेषु—सूर्यम्, सोमम्, भौमम्, बुधम्, गुरुम्, शुक्रम्, शनिम्, राहुम्, केतुम्—इति नवग्रहान्, इन्द्रम्, अग्निम्, यमम्, नैर्ऋतम्, वरुणम्, वायुम्, कुवेरम्, ईशानम्, ब्रह्माणम्, अनन्तम्—इति दशदिक्पालान्, कश्ययम्, अत्रिम्, भरद्वाजम्, विश्वामित्रम्, गौतमम्, जमदग्निम्, वसिष्ठम्, इति सप्तर्षीन्, प्राग्भागस्थसमुद्रम्, दक्षिणभागस्थसमुद्रम्, पश्चिमभागस्थसमुद्रम्, उदक्भागस्थसमुद्रम्—इति चतुःसमुद्रान्, भूर्लोकम्, भुवर्लोकम्, स्वर्लोकम्—इति त्रीन् लोकान्, गङ्गाम्, यमुनाम्, गोदावरीम्, सरस्वतीम्, तापीम्, पयोष्णीम्, रेवाम्—इति सप्त नदीः, सत्वम्, रजः, तमः, इति गुणत्रयान्, ऋग्वेदम्, यजुर्वेदम्, सामवेदम्—अथर्ववेदम् इति चतुर्वेदान्, आत्मानं चावाहयेत् ।

ततः भवानीशङ्करादीन् षोडशोपचारैः पूजयेत् । प्रतिमापूजने पवमानी स्वस्त्ययनीत्यादि—अभिषेके विशेषः ।

ततः—ॐ देव देव जगन्नाथ विश्वसाक्षि जगद्गुरोः । गृहाणेमां कृतां पूजां प्रसीद परमेश्वर ॥

इति पूजनं देवाय समर्प्य ग्रहमखं समाप्य प्रधानहोमार्थं कुण्डं स्थण्डिलं वा विधाय स्वगृह्योक्तविधिनाग्निं प्रतिष्ठाप्य भवानीशङ्करं रुद्रमन्त्रेण सहस्रसङ्ख्याकाभिः समिदाज्यचरुतिलमिश्रयवाहुतिभिः, अधिदेवं विष्णुमष्टोत्तरशतसंख्या-

काभिः, प्रत्यधिदेवं ब्रह्माणं पूर्वोक्तसंख्याकाभिः, पूर्वोक्ताभिः प्रजापतिं सहस्राहुतिभिः समस्तव्याहृतिभिः द्विनवत्यधिकनवशतसंख्याकाभिः पूर्वोक्ताभिः परमात्मानं प्रणवेनाष्टसंख्याकाभिः पूर्वोक्ताभिः गणेशाद्यावरणदेवतास्तत्तनाममन्त्रेण एकैकयाज्या ब्रह्मादिमण्डलदेवतास्तत्तन्मन्त्रेण एकैकयाज्या हुत्वा शेषेण स्विष्टकृतमित्यादि आज्यभागपर्यन्तं कुर्यात् । याजुषाणां तु वरुणं दिव्यान्तं कुर्यात् । अथर्त्विजः पूर्वोक्तरुद्रमन्त्रेण पूर्वोक्तद्रव्यैर्यथाद्रव्यविभागसहस्रमाहुतीर्जुहुयुः । स च विभागः प्रतिद्रव्यं मूलसंख्याचतुर्थांशसंख्याकः । एवमग्रेऽपि । ततो विष्णवे ब्रह्मणे च पूर्ववत् । अन्वाधानोक्तसंख्यया तान्येव द्रव्याणि हुत्वा समस्तव्याहृतिभिः चतुर्विंशत्यधिकशतसंख्याका आहुतीः पूर्वोक्तैरेव द्रव्यैः एकैक ऋत्विक् जुहुयात् । ततः प्रणवेन द्वौ द्वावृत्विजौ एकैकां समिधं हुत्वा अन्यौ द्वौ आज्येन एकैकमाहुतिं जुहुयात् । ततः—अपरौ द्वौ चरुणा अवशिष्टौ तिलमिश्रयवैः । ततः—आचार्यः गणपत्याद्यावरणदेवताभ्यो ब्रह्मादिमण्डलदेवताभ्यश्च प्रत्येकमेकैकयाज्याहुतिं हुत्वा स्विष्टकृदादिहोमशेषं समापयेत् । अङ्गहोमादि याजुषाणाम् । ततो यजमानः—आचार्यादीन्समभ्यर्च्य विभवानुसारेण तेभ्योऽपि दक्षिणां दत्वा अन्येभ्यो भूयसीं दत्वा होमकर्म देवाय समर्प्य लेह्यपेह्यादिषड्समन्नं देवायादौ निवेद्य तेनैवान्नेन यावद् तृप्तिमाचार्यादीन्संभोज्य यथाशक्ति अंशतः भोजनाङ्गत्वेन दक्षिणां दद्यात् । ततः—सहस्रब्राह्मणान् पूजापूर्वकमेकस्मिन्दिने भोजयेत् । अथवा—बहुषु दिनेषु ब्राह्मणभोजनं ततस्तेभ्यः यथाशक्ति दक्षिणां च दद्यात् । दीनान्धकृपणादीनामपि प्रत्यहं भोजनं दत्वा प्रत्यहं स्वयं समाहितमनाः सुहृद्युक्तो भुञ्जीत । पूर्णे सहस्रभोजने तु पुनस्तथैव ग्रहमखरहितपूर्ववत् होमः कार्यः । इति दानचन्द्रिकोक्तसहस्रभोजनप्रयोगः ।

(अथ भविष्यपुराणोक्तसहस्रब्राह्मणभोजनविधौ देवतास्थापनादिक्रमकथनम्)

सहस्रभोजनस्येह विधिं नारायणे मुनिः । सर्वेषामेव पुण्यानामब्रवीत्पुण्यमुत्तमम् ॥
यदा चित्तं च वित्तं च भक्तिरात्मनि जायते । तदानीमेव कर्तव्यं प्रीतये परमात्मनः ॥
आषाढं चैव माघं च मलमासं तथैव च । गुरुभार्गवयोरस्तं हित्वान्यस्मिन् शुभे दिने ॥
कृत्वादौ मङ्गलस्नानं शुद्धः सन्भार्यया सह । कृत्वादौ द्रव्यशुद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तं यथाविधि ॥
दशांशद्रव्यमादाय विप्रेभ्यो विनिवेदयेत् । द्रव्यं संप्रोक्षयेत्पश्चात्संपादितं तदाज्ञया ॥
गणेशं पूजयेत्पूर्वं मातॄणां पूजनं ततः । कृत्वाभ्युदयिकं श्राद्धं स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥
आचार्यं पूजयेत्पश्चाद्वस्त्रालङ्कारभूषणैः । ऋत्विजो वरयेदष्टौ वस्त्रगन्धैश्च पूजयेत् ॥
पुष्पमण्डपिकां कृत्वा चतुरस्रां सुशोभनाम् । कृत्वेशस्य सुवर्णेन प्रतिमां कर्षसंमिताम् ॥
सशक्तिकस्य देवस्य भवानीशङ्करस्य च । तस्याधिदेवताविष्णुर्ब्रह्मा प्रत्यधिदेवता ॥
कृत्वा तु प्रतिमाशुद्धिमग्न्युत्तारणपूर्वकम् । षोडशैरुपचारैश्च तत्तन्मन्त्रैः प्रपूजयेत् ॥
ऋग्भिश्च पावमानीभिरभिषिच्य यथाविधि । पुष्पमण्डपिकामध्ये स्थापनं तण्डुलोपरि ॥
प्रतिमां तत्र संस्थाप्य कलशे चाम्बरावृते । समन्ताद्देवदेवस्य क्रमेणैव तु पूर्वतः ॥
तत्तन्मन्त्रेण नाम्ना वा पूजयेदङ्गदेवताः । कर्णिकायां भवानीशो ह्यधिप्रत्यधिसंयुतः ॥
तद्बहिश्चैव चत्वारस्तद्बहिः षोडशक्रमात् । एकत्रिंशद्बहिश्चाष्टचत्वारिंशत्तथा क्रमात् ॥
पद्मस्य दलवच्छ्रस्ताः कर्णिकाशतसङ्ग्रहाः । दश देवताः ऋषयः सप्त सागराः भुवनत्रयम् ॥
नद्यः सप्त गुणाश्चैव वेदाश्चात्मेत्यनुक्रमात् । गन्धपुष्पादिभिश्चैव समभ्यर्च्य यथाविधि ॥
यथाशक्ति कृतं सर्वमर्चनं विनिवेदयेत् । देवदेव जगन्नाथ विश्वसाक्षिन्नमोऽस्तु ते ॥
गृहाणेमां कृतां पूजां प्रसीद भगवन् गुरो । ग्रहयज्ञविधानेन ग्रहपूजां समाप्य च ॥
ऋत्विग्भिः सह वै होमं ततः कुर्याद्यथाविधि । कुण्डे वा स्थण्डिले वापि स्वगृह्य विधिना चरेत् ॥
कृत्वाज्यभागपर्यन्तमुपलेपादिकं ततः । समिदाज्येन चरुणा यवैस्तिलसमन्वितैः ॥
सहस्रं चाहुतीस्तत्र व्याहृतीभिस्ततः क्रमात् । जुहुयादृत्विगेकैकश्चतुर्विंशोत्तरं शुभम् ॥
प्रणवेनाहुतिं चैकां मन्त्रेणैव पृथक् पृथक् । देवतानां च सर्वेषां नामभिर्जुहुयाद् घृतम् ॥
ततः स्विष्टकृतं हुत्वा होमशेषं समापयेत् । आचार्यादीन्समभ्यर्च्य गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥
दद्याद्वित्तानुसारेण दक्षिणां च यथोचिताम् । लेह्यं पेह्यं तथा चोष्यं खाद्यं चैव षड्रसान् ॥

देवायादौ निवेद्याथ द्विजवर्यान्समर्चयेत् । भक्ष्यभोज्यादिकं दद्यात्तृप्तिर्यस्य यथा भवेत् ॥
दक्षिणां च यथाशक्त्या सर्वेषां च समांशतः । ततश्च भोजयेद्विप्रान् सहस्रं सम्यगेव हि ॥
एकस्मिन्नेव काले वा भवेद्वापि दिने दिने । भवेद्यावत्सहस्रं तु तावदेव हि भोजयेत् ॥
तेभ्योऽपि दक्षिणां दद्याद् भुञ्जानेभ्यः स्वशक्तितः । दीनान्धकृपणादींश्च भोजयित्वा स्वयं ततः ॥
समाहितमनाः कर्ता भुञ्जीयात्सह बन्धुभिः । एवं यः कुरुते सम्यक्सहस्रद्विजभोजनम् ॥
समाप्ते तु पुनर्होमं कर्तव्यः पूर्ववत्क्रमात् । ब्रह्महा च सुरापी च परद्रव्यापहारकः ॥
मातृगामी च गोघ्नश्च परदाररतः सदा । ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि पापकारी यथेच्छया ॥
सदाचारविहीनस्तु दमदानविवर्जितः । ईदृशोऽपि नरो यः स्यात्सहस्रद्विजभोजनम् ॥
कुरुते सद्य एवेह स पुनाति न संशयः । ब्रह्मानन्दपदं गच्छेत्तेन पुण्येन चैव हि ॥
सहस्रभोजनाच्चैव नानाविधमनोरथान् । भुङ्क्ते सकामान्सकलान् भोगानपि च पुष्कलान् ॥
अपुत्रो लभते पुत्रं कन्यार्थी चापि कन्यकाम् । यं यं कामयते कामं तं तं [1]प्राप्नोत्यसंशयम्[2] ॥

१—भारते—ब्राह्मणानां सहस्रं तु संभोज्य भारतर्षभ । नरः पापात्प्रमुच्येत पापेष्वभिरतोपि यः ॥
भोजयित्वा दशशतं नरो वेदविदां नृप । न्यायविद्धर्मविदुषां स्मृतिभाष्यविदां तथा ॥
न याति नरकं घोरं संसाराश्च न सेवते । सर्वकामसमायुक्तः प्रेत्य चाप्यश्नुते सुखम् ॥

२—अनेन चैकस्मिन्नेवदिने सहस्रादिभोजनं कार्यमिति प्रतीयते । शिष्टास्तु—अनेकदिनैरपि समापयन्ति । तत्र मूलं विचारणीयमिति दानमयूखे ।

(अथ बौधायनोक्तप्रयोगः)

उदगयनादिकाले स्वग्रहादौ सपत्नीको यजमानः कृतमङ्गलस्नातो युग्मान् ब्राह्मणान् सुप्रक्षालितपाणिपादानाचम्यासनं दत्वा गन्धवस्त्रादिना संपूज्य करसंपुटं कृत्वा मम सङ्कल्पसिद्धिरस्त्विति वाचयीत । सङ्कल्पसिद्धिरस्त्विति प्रति वदेत् । तौ च त्रिवृदन्नेन संभोज्याशिषो गृहीत्वा ताम्बूलादि दत्वा प्रदक्षिणानमस्कारान् कृत्वा पुण्याहवाचनं कुर्यात् । आचम्य 'मम पञ्चमहापातकादिनिवृत्तिकामः गोवधपरदारापरद्रव्यापहारकादिकायिकवाचिकमानसिकस्वशरीराधिष्ठितसमस्तपापक्षयपूर्वकनानाविधमनोभीष्टसिध्यर्थं षष्टिवर्षसहस्राणि विष्णुनिवासान्ते ब्रह्मानन्दावाप्तिकामः श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं स्वशक्त्यानुसारेण यथोपपन्नान्नेन सदक्षिणासहितसहस्रसंख्यापरिमितब्राह्मणभोजनं करिष्ये'इति सङ्कल्प्य तदङ्गगणपत्याद्याचार्यादिवरणान्तं मधुपर्केण संपूज्य आचार्यं ब्रह्मादिमण्डलदेवतान्संपूज्य तत्र सहस्रात्मानमीश्वरं च सौवर्णीं प्रतिमां च संपूज्य तत्र द्वादशविप्रान् अभ्यर्च्य तेन एकस्मै स्वाहेत्यादिं याजुषानुवाकान् दश दश संख्याकान् पठेत् । ततः षड्विप्रान् सदन्नेन सन्तर्प्य तैः पुण्याहं स्वस्ति ऋद्धिमिति वाचयीत । ततः आचार्यः देवयजनोल्लेखनप्रभृति आज्यभागान्तं कृत्वा पक्वान्नेन जुहोति विष्णोर्नुकमिति पुरानुवाक्यामनूच्य विष्णोरराटमसीति याज्यया जुहुयात् । विष्णव इदं न ममेतित्यागः । अथाज्याहुतीर्जुहोति-ॐकेशवाय स्वाहा इदं केशवाय न मम । ॐनारायणाय स्वाहा इदं नारा० । ॐमाधवाय स्वाहा इदं माधवायन० । ॐगोविन्दाय स्वाहा इदं गोविन्दा० । ॐविष्णवे स्वाहा इदं विष्ण० । ॐमधुसूदनाय स्वाहा इदं मधु० । ॐत्रिविक्रमाय स्वाहा इदं त्रिवि० । ॐवामनाय स्वाहा इदं वाम० । ॐश्रीधराय स्वाहा इदं श्रीधरा० । ॐहृषीकेशाय स्वाहा इदं हृषीके० । ॐ पद्मनाभाय स्वाहा इदं पद्मना० । ॐदामोदराय स्वाहा इदं दामोद० । ततः स्विष्टकृत्प्रभृति आधेनुवरदानान्तं कृत्वा द्वादशब्राह्मणेभ्यः पयोदनं मुद्गोदनं दध्योदनं च दत्वा तेषु वस्त्रयुगं कुण्डलद्वयमङ्गुलीयकानि उपानहौ छत्रं च प्रत्येकं दत्वाऽन्नशेषमाज्यशेषं पक्वशेषं च जायापतिभ्यामश्नीयाताम् । ततः सहस्रसंख्याकान् ब्राह्मणान् हृष्टमानसैः संभोजयेत् । ततः सुहृदादीन् भोजयेत् । साङ्गतासिध्यर्थं दीनान्धकृपणादींश्च भोजयेत् । यथाविभवेन भूयसीं दद्यात्तेन सर्वकल्मषैर्महापातकैः प्रमुच्यते ब्रह्मानन्दयुतविष्णुलोकं गच्छतीत्याह बौधायनः । काम्ये तु वेदपारगान् द्विजान् भोजयेत् ।

इति

(अथ व्रतोद्यापनानुक्तौ विचारः)

व्रतोद्यापनानुक्तौ तु पृथ्वीचन्द्रोदये नन्दिपुराणे—'कुर्यादुद्यापनं तस्य समाप्तौ यदुदीरितम्। उद्यापनं विना यत्तु तद् व्रतं निष्फलं भवेत् ॥ यदि चोद्यापनञ्चोक्तं व्रतानुगुणतश्चरेत्। वित्तानुसारतो दद्यादनुक्तोद्यापने व्रते ॥ गाश्चैव काञ्चनं दद्यात् व्रतस्य परिपूर्तये।

जहाँ व्रतोद्यापन को न कहा हो वहाँ पृथ्वीचन्द्रोदय में नन्दिपुराण का कथन है—व्रत की समाप्ति पर जो उद्यापन कहा है उस उद्यापन को करे। क्योंकि उद्यापन के विना व्रत निष्फल हो जाता है। यदि व्रतोद्यापन न कहा हो तो व्रतानुकूल जप आदि करे तथा वित्तानुसार दान दे। व्रत की परिपूर्णता के लिये गौ तथा सुवर्ण का दान दे।

(अथाशक्तौ विचारः)

अशक्तौ तु नारदीये—'सर्वेषामप्यलाभे तु यथोक्तकरणं विना। विप्रवाक्यं स्मृतं शुद्धं व्रतस्य परिपूर्तये ॥ वृथा विप्रवचो यस्तु गृह्णाति मनुजः शुभम्। अदत्त्वा दक्षिणां पापः स याति नरकं ध्रुवम् ॥'

उद्यापनकी अशक्तता होने पर नारदपुराण का कथन है—यदि कुछ भी न हो तो व्रत की समाप्ति के लिये शुद्ध ब्राह्मणवाक्य प्रमाण करे। जो मनुष्य विना दक्षिणा को दिये व्यर्थ ही ब्राह्मण के शुभ वचन को ग्रहण करता है, वह निश्चित पापी नरक को जाता है।

(अथ सर्वकर्मसु दक्षिणाविचारः)

भारते—'वेदोपनिषदे चैव सर्वकर्मसु दक्षिणा। सर्वत्र तु मयोद्दिष्टा भूमिर्गावोऽथ काञ्चनम् ॥'

भारत में लिखा है—मैंने वेद, उपनिषद् तथा सब कर्मों में भूमि, गौ तथा काञ्चन दक्षिणा कही है।

(अथ देवकार्येषु रजतदाने विचारः)

वैजवापः—'शिवनेत्रोद्भवं यस्माद्रजतं पितृवल्लभम्। अमङ्गलं तद्यत्नेन देवकार्येषु वर्जयेत् ॥'

वैजवापका कथन है—शिवनेत्रों से पैदा हुई चाँदी पितरों को प्यारी है। इससे अमंगल होने से उसको देवकार्य में वर्जित करे।

(अथ परान्नभोजने फलविचारः)

टोडरानन्दे देवीपुराणे—'व्रते च तीर्थेऽध्ययने श्राद्धेऽपि च विशेषतः।
परान्नभोजनाद्देवि यस्यान्नं तस्य तत्फलम् ॥'

टोडरानन्द में देवीपुराण का कथन है—हे देवि, व्रत, तीर्थ, अध्ययन, विशेषकर श्राद्ध में तथा परान्न भोजन में (श्वशुरान्नं गुरोरन्नं मातुलान्नं तथैव च। पितृव्यभ्रातृपुत्राणां परान्नं नैव दोषकृत् ॥ इति निर्मूलम्) जिसका अन्न होता है—उसी को फल मिलता है।

पृथ्वीचन्द्रोदयेऽग्निपुराणे—'नित्यस्नायी मिताहारो गुरुदेवद्विजार्चकः। क्षारं क्षौद्रं च लवणं मधु मांसानि वर्जयेत् ॥'

पृथ्वीचन्द्रोदय में अग्निपुराण का कथन है—नित्यस्नायी, परिमित आहार, गुरु, देव, द्विज और अर्चक, इन सबको क्षार, निमक, मधु तथा मांस वर्जित हैं।

(अथ क्षारपदार्थाः)

क्षारास्तु तत्रैवोक्ताः—'तिलमुद्गादृते शिम्ब्यं सस्ये गोधूमकोद्रवौ। धान्यकं देवधान्यं च शमीधान्यं तथैक्षवम्। स्विन्नधान्यं तथा पण्यं मूलं क्षारगणः स्मृतः ॥'

क्षार भी वहीं पर कहे हैं—तिल तथा मूँग को त्यागकर शिम्ब्य-छीमी वाले अन्न, धान्य-गेहूँ, कोदों, धान्य-गेहूँ, चना, मटर आदि, स्विन्नधान्य-उबाला हुआ और खरीदा हुआ, मूली, सलजम, गाजर आदि पण्य धान्य-शमीधान्य-छीमीवाला अन्न, देवधान्य-हवन में प्रयुक्त होने वाले अन्न, जैसे—यव, चावल, तिल आदि, शमीधान्य-छीमीवाला अन्न मटर मूंग आदि ये सब क्षार कहे हैं।

(अथ व्रते गोधूमादिकथनम्)

गोधूमानां तु तत्रैव प्रतिप्रसवः—'व्रीहिषष्टिकमुद्गाश्च कलायाः सतिलं पयः। श्यामाकाश्चैव नीवारा गोधूमाद्या व्रते हिताः ॥' कूष्माण्डालाबुवार्ताकपालङ्कीज्योत्स्निकास्त्यजेत्। चरुभैक्षं सक्तुकणाः शाकं दधि घृतं मधु ॥ श्यामाकाः शालिनीवारा यावकं मूलतण्डुलम्। हविष्यव्रतनक्तादावग्निकार्यादिके हितम्। मधु मांसं विहायान्यद् व्रते च हितमीरितम् ॥' इति। शमीधान्यम्—माषादि। पालङ्की—मध्यदेशे 'पोई' इति प्रसिद्धा। ज्योत्स्निका—पटोलिका (कोशातकी)। मिताक्षरायां गौतमः—'चरु-भैक्ष-सक्तुकण-यावक-शाक-पयो-दधि-घृत-मूल-फलोदकानि—हवींष्युत्तरोत्तरप्रशस्तानि। पयो दधि घृतं च गव्यम्' इति। अन्ये च विशेषा एकादशीचातुर्मास्यादिप्रकरणे वक्ष्यन्ते।

गेहूँ का तो वहीं निषेध का निषेध है। लाल चावल, साँठी चावल, मूँग, मटर, तिल सहित दूध, सांवा, तिन्नी तथा गोधूम आदि श्यामाक, सब व्रत में हितकर हैं। कूष्माण्ड—कोढा पाक वाला, लौकी, बैंगन तथा पालक इनको त्याग दे। चरु भिक्षान्न, सत्तू, टूटा हुआ धान, शाक, दही, घृत, मधु, श्यामाक, शालीधान्य, यव, मूल, तण्डुल, हविष्यान्न ये सब व्रत नक्त आदि में, एवं अग्निकार्यादि में हित हैं। मदिरा और मांस को छोड़कर अन्य व्रत में हित कहा है। मिताक्षरामें गौतम ने कहा है-चरु भिक्षान्न, सत्तूकण, यव, साग, दूध, दही, मूल, फल, जल और हवि ये उत्तरोत्तर प्रशस्त (श्रेष्ठ) हैं। इनमें से विशेष अन्य एकादशी तथा चातुर्मास्यादि प्रकरण में कहेंगे।

(अथ गृहीतव्रतत्यागे विचारः)

गृहीतव्रतत्यागे तु मदनरत्ने छागलेयः—पूर्वं व्रतं गृहीत्वा यो नाचरेत् काममोहितः।
जीवन् भवति चाण्डालो, मृतः श्वा चाभिजायते ॥'

गृहीत व्रत त्याग में मदनरत्न में छागलेय ने कहा है—कि जो मनुष्य व्रत को ग्रहणकर काम से मोहित होकर न करे तो पहले वह इसी जीवन में चाण्डाल होता है और मरने पर कुत्ता हो जाता है।

(तत्र क्रोधाद्यागमने प्रायश्चित्तकथनम्)

तत्र प्रायश्चित्तमुक्तं पृथ्वीचन्द्रोदये अग्निगरुडपुराणयोः—'क्रोधात्प्रमादाल्लोभाद्वा व्रतभङ्गो भवेद्यपि। दिनत्रयं न भुञ्जीत मुण्डनं शिरसोऽथवा ॥' इति। प्रायश्चित्ताम्नातादतिक्रान्तव्रतानुष्ठानं नास्तीति गम्यते।

उसका प्रायश्चित्त भी पृथ्वीचन्द्रोदय में अग्निपुराण और गरुड़पुराण में लिखा है—यदि क्रोध से प्रमाद से या लोभ से व्रत भंग हो जाय तो तीन दिन भोजन न करे या मुण्डन करा दे, अर्थात्—शास्त्र में कहे हुए प्रायश्चित्त के विना भंग हुआ व्रत न करे।

यत्तु—प्रायश्चित्तं ततः कृत्वा पुनरेव व्रती भवेत्—इति वचनादतिक्रान्तमपि व्रतं कार्यमेवेति शूलपाणिः, तत् मध्ये व्रतलोपे व्रतशेषसत्त्वे ज्ञेयम्। एतच्च शक्तविषयम्।

जो यों कहा कि फिर प्रायश्चित्त को कर व्रतवाला हो जाय। शूलपाणि का कहना है—अतिक्रांत व्रत को भी करे। उसके मध्य में व्रत के लोप में व्रत के शेष दिन हो तो जाने। यह बात भी सामर्थ्यवान् के लिये है।

(अथाशक्तौ उपवासे विचारः)

अशक्तौ तु कालहेमाद्रौ पुराणान्तरे—उपवासासमर्थश्चेदेकं विप्रं तु भोजयेत्। तावद्धनादि वा दद्याद् भुक्तश्चेद् द्विगुणं तथा ॥ भुक्तः-कृतभोजनः। ब्राह्मणभोजनं विनेतिशेषः। 'सहस्रसंमितां देवीं जपेद्वा प्राणसंयमान्। कुर्याद् द्वादशसंख्याकान् यथाशक्त्यातुरो नरः ॥' इति।

अशक्ति में तो कालहेमाद्रि में तथा पुराणान्तर में कहा है—यदि उपवास को करने में समर्थता न हो तो एक ब्राह्मण को भोजन करावे या उतना धन आदि दे। जो ब्राह्मण के बिना भोजन कराये भोजन कर ले तो द्विगुणित धन दे या आतुर मनुष्य सहस्र-हजार संख्या परिमित गायत्री जप करे या यथाशक्ति व्रतभंग से व्याकुल प्राणायाम करे।

शुद्धितत्त्वे मात्स्ये—'उपवासेष्वशक्तानां नक्तं भोजनमिष्यते ।'

शुद्धितत्व में मत्स्यपुराण का कथन है—जो उपवासों के करने में अशक्त हैं उनको नक्त भोजन कहा है।

मदनरत्ने वायवीये—'द्रव्यदातोपवासस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम् ।'

मदनरत्न में वायुपुराण का कथन है—द्रव्य को देने वाला उपवास के फल को प्राप्त करता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ।

(अथ व्रतेषु विचारः)

तथाऽपरार्के देवलः—'ब्रह्मचर्यं तथा शौचं सत्यमामिषवर्जनम् ।
व्रतेष्वेतानि चत्वारि वरिष्ठानीति निश्चयः ॥'

अपरार्क में वैसे ही देवल का कथन है—ब्रह्मचर्य, पवित्रता, सत्य बोलना तथा मांस भक्षण न करना, निश्चय चारों कर्म व्रतों में अत्यन्त ही उत्तम हैं ।

मात्स्ये—तस्मात्कृतोपवासेन स्नानमभ्यङ्गपूर्वकम् । वर्जनीयं प्रयत्नेन रूपघ्नं तत्परं नृप ॥' अन्ये च नियमास्तत्र तत्रान्वेषणीयाः ॥

मत्स्यपुराण में कहा है—किया है उपवास को जिसने ऐसा प्राणी अभ्यङ्ग, उवटनपूर्वक स्नान करे। क्योंकि हे नृप, स्नानोत्तर उवटन रूप को नाश करनेवाला होता है । अतः उसे प्रयत्नपूर्वक त्याग दे । अन्य जो नियम हैं वे वहाँ वहाँ पर अन्वेषण करने चाहिये ।

(अथ स्त्रीव्रतेषु विशेषमतकथनम्)

अथ स्त्रीव्रतेषु विशेष उच्यते । तत्र हेमाद्रौ व्रतकाण्डे गारुडे—गन्धालङ्कारताम्बूलपुष्पमालानुलेपनम् । उपवासे न दुष्यन्ति दन्तधावनमञ्जनम् ॥' इति । इदञ्च सभर्तृकोपवासविषयम् ।

इसके बाद स्त्री के व्रतों में विशेष कहा है—हेमाद्रि के व्रतकाण्ड में गरुडपुराण का वचन है—गन्ध, अलङ्कार, ताम्बूल, पुष्पमाला, अनुलेपन, दन्तधावन तथा अंजन, ये सब उपवास में दूषित नहीं होते हैं, यह सभर्तृक उपवास विषयक जानना चाहिये ।

(अथ स्त्रीविषये कथनम्)

अञ्जनं च सुताम्बूलं कुङ्कुमं रक्तवाससी । धारयेत्सोपवासाऽपि अवैधव्यकरं यतः । विधवा यतिमार्गेण कुमारी वा यदृच्छया ॥' इति । तत्रैव भविष्योक्तेः ।

क्योंकि वहीं पर भविष्यपुराण का मत है—उपवास करनेवाली स्त्री अंजन, पान, कुंकुम तथा रक्तवस्त्र धारण करे क्योंकि सौभाग्यवर्धक हैं। विधवा यतिचान्द्रायणमार्ग से तथा कुमारी अपनी इच्छानुसार उपवास करे।

(अथ सर्वेषु उपवासेषु रक्तवस्त्रादिधारणकथनम्)

तथा विष्णुधर्मे—'सर्वेषु तूपवासेषु पुमान् वाऽथ सुवासिनी ।
धारयेद्रक्तवस्त्राणि कुसुमानि सितानि च ।'

विष्णुधर्म में भी यही कहा है—सब उपवासों में पुरुष या सुवासिनी (सौभाग्यवती) स्त्री लाल वस्त्र तथा सफेद फूल आदि धारण करे ।

(अथ विधवानां शुक्लवसनधारणकथनम्)

विधवा शुक्लवसनमेकमेव हि धारयेत् ।

विधवा सफेद वस्त्र ही एक धारण करे ।

(अथ दन्तधावनादीनां उपवासे विशेषकथनम्)

मनुरपि—पुष्पालङ्कारवस्त्राणि गन्धधूपानुलेपनम् । उपवासे न दुष्यन्ति दन्तधावनमञ्जनम् ॥

मनु ने भी कहा है—पुष्प, अलङ्कार (आभूषण), वस्त्र, गन्ध, धूप, अनुलेपन (चन्दन), दन्तधावन तथा अंजन, ये उपपास में दूषित नहीं होते हैं ।

मदनरत्ने व्यासः—'दन्तधावनपुष्पादि व्रतेऽप्यस्या न दुष्यति ।' इति ।

मदनरत्न में व्यास का वचन है—स्त्री को दन्तधावन और वस्त्र आदि का व्रतों में दोष नहीं है।

यद्यपीदं सर्वोपवासविषयं प्रतीयते, तथापि शिष्टाचारात्सौभाग्याद्यर्थं क्रियमाणनवरात्रत्रिरात्राद्युपवासविषयमेव, नत्वेकादश्यादिविषयम् । 'असकृज्जलपानाच्च सकृत्ताम्बूलचर्वणात् । उपवासः प्रणश्येत दिवास्वापाच्च मैथुनात् ॥' इत्यपरार्के देवलेन तन्निषेधात् । न चास्य पुंविषयत्वेन सावकाशत्वात् स्त्रीणां ताम्बूलादि प्राप्नोतीति वाच्यम् । ताम्बूलादिप्रापकस्यैवैकादशीतरविषयत्वेन वैपरीत्यस्यापि सुवचत्वात् ।

यद्यपि यह वचन सब उपवासों के विषय में प्रतीत होते हैं तथापि शिष्टाचार से सौभाग्य के निमित्त करने योग्य नवरात्र या त्रिरात्र उपवास विषयक ही हैं, एकादशी आदि विषयक नहीं हैं। क्योंकि अपरार्क में देवल वचन से उसका निषेध है—वारंवार जलपान से एक वार ताम्बूल भक्षण से, दिन में सोने से एवं मैथुन करने से व्रत भंग हो जाता है। कदाचित् कोई कहे कि यह वचन पुरुषों में सावकाश (चरितार्थ) है। स्त्रियों को ताम्बूलादि भक्षण की प्राप्ति हो जायगी ऐसा कहेंगे। तांबूलादि भक्षण का बोधक वचन ही एकादशी से भिन्न व्रतों में क्यों न मान लिया जाय।

यत्तु हरिवंशे—अञ्जनं रोचनं चैव गन्धान् सुमनसस्तथा । व्रते चैवोपवासे च नित्यमेव विवर्जयेत् ॥ शिरसोऽभ्यञ्जनं सौम्ये नैवमेतत्प्रशस्यते । न पादयोर्न गात्रस्य स्नेहेनेति स्थितिः स्मृता ॥' इति, तत्तत्रैवोक्तपुण्यकव्रतविषयं न तु सर्वत्र, पूर्वोक्तविरोधादिति मदनरत्ने उक्तम् ।

जो हरिवंश में कहा है—अंजन, गोरोचन, गन्ध तथा पुष्प इनको व्रत और उपवास में नित्य ही वर्जित करे।

हे सौम्ये, शिर में आंवला आदि का मर्दन करना पैरों में तथा शरीर में तेल न लगावे। क्योंकि मर्यादा है। यह वहाँ-वहाँ कहे हुए पुण्यक व्रत में हो जाने से पूर्वोक्त विरोध से सर्वत्र न समझे यह मदनरत्न में कहा है।

तत्रैव—'अश्रुप्रपातो रोषश्च कलहस्य कृतिस्तथा । उपवासाद् व्रताद्वापि सद्यो भ्रंशयति स्त्रियम् ।' स्त्रियमित्युपलक्षणम् ।

वहीं पर कहा है—अश्रुपात, क्रोध तथा कलह, ये सब स्त्रियों के उपवास को नाश कर देते हैं। 'स्त्रियम्' यह उपलक्षण है।

मदनरत्ने शिवधर्मे—'दानं व्रतानि नियमा ज्ञानं ध्यानं हुतं जपः ।
यत्नेनापि कृतं सर्वं क्रोधितस्य वृथा भवेत् ॥'

मदनरत्न ने शिवधर्म में कहा है—दान, व्रत, नियम, ज्ञान, ध्यान, होम और जप, ये सब यत्न से भी करने पर क्रोधी मनुष्य के व्यर्थ हो जाते हैं।

(अथ सूतकादौ निर्णयः)

तत्र शावसूत्याशौचयोः सर्वस्मार्तकर्मनिवृत्तिर्निबन्धेषु स्पष्टैव । गौडास्तु क्षताशौचादावपि तामाहुः—'जानूर्ध्वं क्षतजे जाते नित्यकर्म न चाचरेत् । नैमित्तिकं च तदधः स्रवद्रक्तो न चाचरेत् ॥ लोतके च समुत्पन्ने ज्वरकर्मणि मैथुने । धूमोद्गारे तथा वान्तौ नित्यकर्माणि संत्यजेत् । द्रव्ये भुक्ते त्वजीर्णे च नैव भुक्त्वापि किञ्चन । कर्म कुर्यान्नरो नित्यं सूतके मृतके तथा ॥' इति कालिकापुराणात् ।

वहाँ सूतक आदि का निर्णय करते हैं—मरण तथा जननाशौच में स्मार्तकर्मों की निवृत्ति निबन्धों में स्पष्ट है। कालिकापुराणमत से—गौड तो क्षत (घाव) तथा आशौच में भी संपूर्ण कर्मों का त्याग कहते हैं। जानु (घुटनों) के ऊपर रुधिर निकल जावे तो नित्य कर्म न करे। घुटनों के नीचे रक्त (रुधिर) निकल

जाय तो नैमित्तिककर्म न करे। जाल वनानेवाला जन्तु विशेष जिसके मूत्र को स्पर्श होने से पैदा हुआ फोड़ेमें, ज्वर में, मैथुन में, धूमोद्गार (डकार) और वमन हो जाने पर नित्यकर्मों को न करे। किसी द्रव्य के खाने से अजीर्ण हो जाने पर, भोजनोत्तर सूतक या मरण में नित्यकर्म न करे।

(अत्र कमलाकरमतम्)

वस्तुतस्तु पूर्वं देवीपूजोपक्रमात्तन्मात्रविषयत्वमस्येति युक्तं प्रतीमः। तथा हेमाद्रौ पाद्मे—'गर्भिणी सूतिकादिश्च कुमारी वाऽथ रोगिणी। यदाऽशुद्धा तदाऽन्येन कारयेत्, प्रयता स्वयम् ॥' इति। पुंसोऽप्येष विधिः। लिङ्गस्याविवक्षितत्वात्। तेन—'यस्मिन् व्रते यत्पूजाद्युक्तं तदन्येन कारयेत्, शरीरनियमान् स्वयं कुर्यात्' इति हेमाद्रिर्व्याचख्यौ। 'न व्रतिनां व्रते' इति विष्णूक्तेश्च। आरम्भश्च न भवत्येव।

सिद्धान्त तो यह है—पूर्व देवीपूजा का प्रकरण है, अतः यह वचन भी तत् विषयक ही समझना चाहिये—यह युक्त मालुम होता है।

और हेमाद्रि में पद्मपुराण का वचन है—गर्भिणी, सूतिका, कुमारी या रोगिणी ये जब अशुद्ध हों तो अन्य से व्रतों को करा दें। लिंग की अविवक्षा होने से यही विधि पुरुषों के लिये भी है। इससे हेमाद्रि ने यों व्याख्या की है जिस व्रत में जो पूजा आदि कहा है वह अन्य से करा दे। लेकिन स्वयं अपने शरीर के नियमों को करे। विष्णु ने भी व्रतधारियों के व्रत के विषय यही कहा है। प्रथम व्रत का प्रारम्भ सूतकादि में नहीं होता है।

(अथ बहुकालिकसङ्कल्पादौ विचारः)

शुद्धितत्त्वे विष्णुः—'बहुकालिकसङ्कल्पो गृहीतश्च पुरा यदि। सूतके मृतके चैव व्रतं तन्नैव दुष्यति ॥' एतत्काम्यपरम्। नित्यं त्वनारब्धमपि कार्यमिति गौडाः।

शुद्धितत्त्व में विष्णु ने कहा है—यदि पहले बहुकालिक व्रत का संकल्प ग्रहण किया हो तो वह व्रत सूतक या मरण में दूषित नहीं (बहुकालिकसङ्कल्पो गृहीतश्च पुरा यदि। सूतके मृतके चैव व्रतं तन्नैव दुष्यति ॥) होता है—यह काम्यपरक है। नित्यकर्मको पहले से प्रारंभ किए विना भी नित्यकर्म करे—यह गौडमत है।

मदनरत्ने—'पूर्वसङ्कल्पितं यच्च व्रतं सुनियतव्रतैः। तत्कर्तव्यं नरैः शुद्धं दानार्चनविवर्जितम् ॥'

मदनरत्न में कहा है—व्रत नियमधारियों ने जिस व्रत का पूर्व संकल्प किया है वे मनुष्य उस शुद्ध व्रत को दान और अर्चन को आशौचावस्था में त्यागकर करें।

माधवीये कौर्मे—'काम्योपवासे प्रक्रान्ते त्वन्तरा मृतसूतके। तत्र काम्यव्रतं कुर्याद्दानार्चनविवर्जितम् ॥' इति। एतेन साङ्गेऽधिकारात्तद् व्रताङ्गदेवपूजादि कार्यमिति वर्धमानोक्तिः परास्ता प्रारब्धं पूजादिकार्यमेव। नवरात्रे तु तत्रैव विशेषं वक्ष्यामः। एवं रजस्वलापि।

माधवीय में कूर्मपुराण का वचन है—काम्योपवास का प्रारंभ होने पर यदि मध्य में मरणाशौच या जननाशौच हो तो दानार्चन के बिना काम्यव्रत को करें। इससे अङ्ग के सहित अधिकार हो जाने से उस व्रत के अंग-देवपूजन आदि कार्य करे। यह वर्धनानोक्ति परास्त है। प्रारम्भ हुए पूजादि करने ही चाहिये। नवरात्र में तो वहीं पर विशेष कहेंगे। इसीप्रकार रजस्वला भी व्रतों को करे।

यत्तु सत्यव्रतः—प्रारब्धदीर्घतपसां नारीणां यद्रजो भवेत्। न तत्रापि व्रतस्य स्यादुपरोधः कदाचन ॥ इति, तत्प्रतिनिधिना कारयेदित्येतत्परम्। तदुक्तं मदनरत्ने मात्स्ये—'अन्तरा तु रजोयोगे पूजामन्येन कारयेत् ॥' इति।

जो सत्यव्रत ने कहा है—दीर्घव्रत का प्रारम्भ किया है जिन स्त्रियों ने ऐसी नारियों को यदि रजोधर्म हो तो उससे व्रत की रोक नहीं होती है उसे प्रतिनिधि द्वारा करवा दे, तत्परक है। उसी बात को मदनरत्न में मत्स्यपुराण का कथन है—मध्य में रजोधर्म हो जाने पर पूजा अन्य द्वारा करवा दे।

(अथ प्रतिनिधिविचारः)

प्रतिनिधयश्च निर्णयामृते पैठीनसिः--'भार्या पत्युर्व्रतं कुर्याद्भार्यायाश्च पतिर्व्रतम् ।
असामर्थ्ये परस्ताभ्यां व्रतभङ्गो न जायते ॥'
स्कान्देऽपि--'पुत्रं वा विनयोपेतं भगिनीं भ्रातरं तथा ।
एषामभाव एवान्यं ब्राह्मणं वा नियोजयेत् ॥'

निर्णयामृत में पैठीनसि ने प्रतिनिधियों को कहा है—पति के व्रत को भार्या करे। भार्या के व्रत को पति करे। इनके असामर्थ्य होने पर दूसरे करे इससे व्रत भंग नहीं होता है। स्कन्दपुराण में लिखा है—नम्रता से संयुक्त हो पुत्र, भगिनी या भाई को इन सब के अभाव में किसी दूसरे ब्राह्मण को प्रतिनिधि रूप से नियुक्त करे।

कात्यायनः--पितृमातृभ्रातृपतिगुर्वर्थे च विशेषतः। उपवासं प्रकुर्वाणा पुण्यं शतगुणं लभेत् ॥
मातामहादीनुद्दिश्य एकादश्यामुपोषणे। कृते ते तु फलं विप्राः समग्रं समवाप्नुयुः ॥

कात्यायन का कथन है—पिता, माता, भाई, पति और विशेषकर गुरु के लिये उपवास करने वाले को पुण्य (कर्ता शतगुणं पुण्यं प्राप्नोत्यत्र न संशयः। यमुद्दिश्य कृतं सोऽपि संपूर्णं फलमाप्नुयात् ॥) सौगुना मिल जाता है।

मदनरत्ने प्रभासखण्डे--'भर्ता पुत्रः पुरोधाश्च भ्राता पत्नी सखाऽपि च ।
यात्रायां धर्मकार्येषु जायन्ते प्रतिहस्तकाः ॥
एभिः कृतं महादेवि स्वयमेव कृतं भवेत् ।'

मदनरत्न के प्रभास खण्ड में लिखा है—पति, पुत्र, पुरोहित, भाई, पत्नी और मित्र ये सब यात्रा तथा धर्मकार्य में प्रतिनिधि होते हैं। हे महादेवि, इनके द्वारा किया हुआ कर्म अपने ही करने के तुल्य होता है।

तत्रैव वायवीये--'स्वयं कर्तुमशक्तश्चेत्कारयीत पुरोधसा। इदञ्च सर्ववर्णसाधारणम्। अविशेषात्।

वहीं पर वायुपुराण का कथन है—अपने आप करने में असमर्थ हो तो पुरोहित से करवा दे। यह सब वर्णों के लिये साधारण है। क्योंकि इसमें कुछ विशेषता नहीं है।

यत्तु कश्चिन्महोक्ष आह--शूद्रस्य ब्राह्मणादिरेव प्रतिनिधिर्युक्तो न शूद्रः।
जपस्तपस्तीर्थसेवा प्रव्रज्या मन्त्रसाधनम्। विप्रैः सम्पादितं यस्य सम्पन्नं तस्य तत्फलम् ॥'
इति मरीचिवचनात् इति, तत्तुच्छम्। प्रव्रज्यादीनां शूद्रेऽसम्भवात्, 'विषये प्रायदर्शनादिति न्यायेनास्य ब्राह्मणादिगोचरत्वात्।

यदपि--'उपवासो व्रतं होमतीर्थस्नानजपादिकम्। इति पूर्वार्धस्तदपि स एव दोषः। 'स्त्रीशूद्रपतनानि षट्' इति मानवीये जपनिषेधात्।

जो किसी महोक्ष बैल (मूर्ख) ने कहा—कि शूद्र का ब्राह्मण आदि ही प्रतिनिधि होना युक्त है शूद्र नहीं हो सकता है। मरीचि का वचन है—जप, तप, तीर्थ, सेवा, प्रव्रज्या-संन्यास तथा मन्त्र साधन आदि कर्म ब्राह्मणों द्वारा संपादित जिस शूद्र के लिए किये हैं उसको इनका फल होता है। यह कहना तुच्छ है। क्योंकि शूद्र को संन्यास इस न्याय से असंभव है। 'विषये प्रायदर्शनात्' इस सूत्र से जहाँ संशय हो वहाँ प्रसंग वश जिसका अधिक दर्शन हो उस अर्थ को लेना चाहिये। इस न्याय से संन्यास का अधिकार ब्राह्मणादि वर्णों में ही देखा जाता है। शूद्र में नहीं यह ब्राह्मणादि विषयक है। जो यह कहा कि—पूर्वार्ध आधा श्लोक यह है—'उपवास, व्रत, होम, तीर्थ, स्नान, जप आदि में भी वही दोष है। क्योंकि मनु का वचन है स्त्री और शूद्र का जप आदि छः के द्वारा पतन होता है। इससे शूद्र को जप का निषेध है।

'ब्राह्मणो हीनवर्णस्य यः कुर्यात् कर्म किं च न। स तां जातिमवाप्नोति इह लोके परत्र च ॥' इति कालहेमाद्रौ मरीचिनिषेधाच्च। वस्तुतस्तु सम्पूर्णतावचनमात्रमत्रोच्यत इति प्रतिनिधेः का वार्तेत्यलम्।

कालहेमाद्रि में मरीचि के कथनानुसार निषेध है–जो ब्राह्मण हीन वर्ण के लिए जो कुछ कर्म भी करता है वह उस जाति को ही इस लोक और परलोक में प्राप्त कर लेता है।

सिद्धान्त तो यह है कि संपूर्णता को सूचित करनेवाला वचनमात्र ही है तो प्रतिनिधि की क्या बात है।

(अत्र विशेषः)

अत्र विशेषमाह त्रिकाण्डमण्डनः—काम्ये प्रतिनिधिर्नास्ति नित्ये नैमित्तिके च सः। काम्येऽप्युपक्रमादूर्ध्वं केचित् प्रतिनिधिं विदुः॥ न स्यात्प्रतिनिधिर्मन्त्रस्वामिदेवाग्निकर्मसु। स देशकालयोर्नास्ति नारण्योरग्निरेव सा॥ नापि प्रतिनिधातव्यं निषिद्धं वस्तु कुत्रचित्।

इसमें त्रिकाण्डमण्डन ने विशेष कहा है—काम्यकर्म में तथा नित्यनैमित्तिक में प्रतिनिधि नहीं होता है। कोई लोग प्रारम्भ करने बाद काम्यकर्म में भी प्रतिनिधि स्वीकार करते हैं।

मन्त्र, स्वामी, देवता, अग्नि कर्मों में, देश, काल और अरणिमंथन में प्रतिनिधि नहीं होता है—क्योंकि वह अरणी अरणी नहीं है प्रत्युत अग्नि ही है। निषिद्ध वस्तु को कहीं भी प्रतिनिधि नहीं बनाना चाहिये।

हिरण्यकेशिसूत्रेऽपि—'न स्वामित्वस्य भार्यायाः पुत्रस्य देशस्य कालस्याग्नेर्देवतायाः कर्मणः शब्दस्य च प्रतिनिधिर्विद्यते' इति।

हिरण्यकेशिसूत्र में भी लिखा है कि—स्वामी, भार्या, पुत्र, देश, काल, अग्नि, देवता, कर्म और शब्द, इनका प्रतिनिधि नहीं होता है।

(अथ व्रतादिसन्निपाते निर्णयः)

तत्र तिथिद्वयसन्निपाते तत्रोक्तं दानहोमादिक्रमेणानुष्ठेयम्, अविरोधात्। इदं पूर्वारब्धेष्वेव। एकमध्येऽन्यकाम्यकर्मारम्भस्तु न भवत्येव गुणफलादृते। 'यस्य यज्ञे प्रततेऽन्तरा यज्ञस्तायते यज्ञ निर्ऋतिर्गृह्णाति' इति राणकधृतश्रुतेः। यज्ञः-व्रतादिकर्ममात्रम्। अनङ्गेन व्यवधानदोषस्य सर्वत्र साम्यात्।

अब व्रतादि के एक होने पर (मिलाप) में निर्णय करते हैं। यदि व्रत में दो तिथियों का मिलाप हो जाय तो उन तिथियों में कहे हुए दान, होम आदि विरोधाभाव होने से क्रमपूर्वक अनुष्ठान करना चाहिये। यह पूर्वारंभ व्रतों में ही समझे। गुण फल को छोड़कर एक के मध्य में अन्य काम्यकर्म का आरंभ नहीं होता है। जिस यज्ञ के प्रारंभ में दूसरे यज्ञ का विस्तार किया जाय तो उस यज्ञ को निर्ऋति ग्रहण कर लेता है। यह राणकधृत श्रुति का कथन है। यज्ञ-व्रतादि कर्ममात्र है। जो दूसरे यज्ञ के अंगाभाव होने के कारण (अर्थात्—प्रथम यज्ञ के प्रारंभ होने पर बीच में प्रारंभ किया जानेवाला दूसरा यज्ञ पूर्व यज्ञ का अंग नहीं है) होता है। अतः दूसरा यज्ञ व्यवधान दोष स्वरूप है। व्यवधान का दोष सर्वत्र तुल्य है।

शिष्टास्तु माघकार्तिकस्नानादिमध्ये लक्षहोम-तुला-भारतश्रवणाद्याचरन्ति, तन्नित्यमध्येऽस्तु। काम्यमध्ये तु चिन्त्यम्।

यत्र तु नक्तैकभक्तादौ विरोधस्तत्र प्राथम्यादेकभक्तं कार्यम्। नक्तं तु परेद्युस्तत्तिथौ गौणकाले कार्यम्। समकालीनविरुद्धव्रतादौ तु 'एकं स्वयं कृत्वाऽन्यद्भार्यादिना कारयेत्' इति माधवः। यत्र तु शिवरात्र्यादौ तिथिमध्ये पारणयाह्निभोजनं प्राप्तम्, भूताष्टम्योर्दिवा भुक्त्वा रात्रौ भुक्त्वा च पर्वणि। एकादश्यां दिवा रात्रौ भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्॥' इति तन्निषेधश्च, तत्र पारणाया वैधत्वात् दिवैव भोजनम्। निषेधस्तु रागप्राप्तभोजनविषयः। एवमष्टम्यादिनक्तव्रते संक्रान्त्यादौ रवौ सङ्कष्ट-

चतुर्थ्यां च रात्रौ भोजनम्। यत्र त्वष्टम्यादौ दिवा भुजिनिषेधः, संक्रमे च रात्राविति निषेधद्वयं तत्रोपवास एव कार्यः।

शिष्ट सज्जन तो माघ, कार्तिक-स्नानादि के मध्य में लक्षहोम, तुलादान, भारतश्रवणादि का आचरण करते हैं, वह नित्यकर्म के मध्य में हो, काम्य के मध्य में तो विचारणीय है। जहाँ पर नक्त तथा एकभक्तादि में विरोध हो, वहाँ प्रथम होने से एकभक्त व्रत करे। नक्त को दूसरे दिन उस तिथि में गौणकाल में करे। यदि समकालीन व्रतों का विरोध हो तो एक को स्वयं करे दूसरे को भार्या आदि से करवाये यह माधव का कहना है। जहाँ पर शिवरात्रि आदि में तिथि के मध्य में पारणा के लिये दिन में भोजन प्राप्त होता है। वहाँ यह निषेध है चतुर्दशी को दिन में एवं अष्टमी को रात्रि में, पर्व में, दिन में एकादशी को रात्रि में भोजन करके चान्द्रायण व्रत करे। वहाँ पारणाविधि शास्त्रोक्त होने से दिन में भोजन करे तो इच्छा प्राप्त भोजन विषयक निषेध है। इसीतरह अष्टमी आदि नक्तव्रत में, संक्रान्ति आदि में, रविवार तथा संकट चौथ में, रात्रि को भोजन होता है। जहाँ पर अष्टमी आदि में दिन में भोजन निषेध है एवं संक्रान्ति में भोजन का निषेध है, वहाँ उपवास मात्र ही करे।

यद्यपि पुत्रिण उपवासोऽपि निषिद्धस्तथापि—'उपवासनिषेधे तु भक्ष्यं किञ्चित् प्रकल्पयेत्।' इति वचनात् किञ्चिद्भक्षयित्वोपवासः कार्यः।

यद्यपि पुत्रवाले को उपवास का निषेध है फिर भी 'उपवास के निषेध में कुछ भोजन कर ले' इस वचन से कुछ खाकर उपवास करे।

चान्द्रायणमध्ये एकादश्यादौ तु ग्राससंख्या नियमेन भोजनं कार्यमेव। चान्द्रायणस्य काम्यत्वेन नित्यबाधकत्वात्। अबाधेन गत्यसम्भवाच्च। एकादश्यामेकान्तरोपवासादिपारणायां जलपारणां कृत्वोपवसेत्। 'आपो वा अशितमनशितं च' इति श्रुतेः। एवं द्वादश्यां मासोपवासश्राद्ध-प्रदोषादिषु ज्ञेयम्। एवं काम्यनैमित्तिकनित्यत्वादिकृतं बलाबलं स्वयमूह्यमिति दिक्।

फिर भी चान्द्रायण मध्य में एकादशी तिथि आ जाय तो भोजन ही करे। क्योंकि चान्द्रायण काम्य होने से नित्य का बाधक है। बाधक न होने से गत्यन्तर असम्भव है। यदि एकादशी के दिन एक समय उपवासादि पारणा में पड़े तो जल से पारणा को कर उपवास करे। श्रुति में कहा है कि–जल भोजन भी है नहीं भी है। इसीप्रकार द्वादशी, मासोपवास, श्राद्ध, प्रदोष आदि में जानना चाहिये। इसतरह काम्य, नैमित्तिक, नित्य आदि व्रतों में बलाबल कर स्वयं विचार करे।

(अथ प्रतिपदातिथिनिर्णयः)

शुक्ला प्रतिपद् अपराह्णव्यापित्वे पूर्वा ग्राह्या। युग्मवाक्यात्। प्रतिपत्संमुखी कार्या या भवेद-पराह्णिकी। इति स्कान्दोक्तेः। 'शुक्ला स्यात्प्रतिपत्तिथिः प्रथमतश्चेत्साऽपराह्णे भवेत्' इति दीपिको-क्तेश्च। अपराह्णश्च पञ्चधा भक्ते दिने चतुर्थो भागः। तदभावे तु सायाह्नव्यापिनी ग्राह्या। तदभावे तु सायाह्नव्यापिनी परिगृह्यताम्' इति माधवोक्तेः। कृष्णा तु परा। 'कृष्णा तूत्तरतोऽखिला' इति दीपिकोक्तेः। 'कृष्णाऽपि पूर्ववत्' इत्यनन्तभट्टाः।

तिथियों का निर्णय करते हैं—यदि शुक्लपक्ष की प्रतिपदा अपराह्णव्यापिनी हो तो पूर्व (प्रथम) युग्म (प्रतिपदा और अमावास्या) से ग्रहण करे। क्योंकि स्कन्दपुराण तथा दीपिका में कहा है–'जो प्रतिपदा अपराह्ण व्यापिनी संमुखी हो उसी को निस्सन्देह करे।' शुक्लप्रतिपदा तिथि प्रथम होती है, यदि वह अपराह्ण में हो तो। अपराह्णकाल तो–दिन के पाँच भाग करने पर उसके चतुर्थ भाग को कहा है। उसके अभाव में सायाह्नव्यापिनी तिथि ग्रहण करे—यह माधव मत है। कृष्णपक्ष की प्रतिपदा परा होती है यह दीपिका का कथन है। अनन्तभट्ट का तो कहना है कृष्णपक्ष की प्रतिपदा भी पूर्वा ही होती है।

(अथ सर्वतिथिषु वर्ज्यान्युक्तानि)

मुहूर्तदीपिकायाम्—कूष्माण्डं बृहतीफलानि लवणं वर्ज्यं तिलाम्लं तथा। तैलं चामलकं दिवं

प्रवसता शीर्षं कपालान्त्रकम् । निष्पावांश्च मसूरिकान् फलमथो वृन्ताकसंज्ञं मधु द्यूतं स्त्रीगमनं क्रमात्प्रतिपदादिष्वेवमा षोडश ॥ शीर्षम्—नारिकेलम् । कपालम्—अलाबु । अन्त्रम्—पटोलम् ।

स्वर्ग जानेवाला प्रतिपदादि तिथियों में वर्जित वस्तुओं को मुहूर्तदीपिका में कहा है—कूष्माण्ड (रिंगणी) जिसका कोढापाक बनता है मिठीकटेरी के फल, निमक, तिल, (जर्जिलतिल या प्रसिद्ध तिल) खटाई, तैल, आँवला, नारियल, लौकी, परवर, बड़ी सेव सागवाली, मसूर, बैंगन, मदिरा, जुआ खेलना, स्त्री गमन इन सोलहों को क्रम से प्रतिपदा आदि तिथियों में त्याग दे ।

भूपालः—कूष्माण्डं बृहती चारं मूलकं पनसं फलम् । धात्री शिरः कपालान्त्रं नखचर्मतिलानि च ॥ क्षुरकर्माङ्गनासेवां प्रतिपत्प्रभृति त्यजेत् ।

भूपाल का वचन है—कूष्माण्ड, बड़ी कटेहरी, यव, क्षार, फल, मूली, कटहर, आँवला, नारियल, लौकी, पटोल, वड़ी सेम छीमी वाली, मसूर, तिल, क्षौर, स्त्री-प्रसंग, इनको प्रतिपदादि तिथियों में त्याग दे ।

(अथ द्वितीयातिथिनिर्णयः)

द्वितीया तु कृष्णापूर्वा शुक्लोत्तरा इति हेमाद्रिः । 'कृष्णा द्वितीयाऽऽदिमा । पूर्वाह्णे यदि सा सिता तु परतः सर्वा' इति दीपिकोक्तेः । माधवानन्तभट्टमते तु सर्वापि द्वितीया परा । तथा च माधवः—

पूर्वेद्युरसती प्रातः परेद्युस्त्रिमुहूर्तगा । सा द्वितीया परोपोष्या पूर्वविद्धा ततोऽन्यथा ॥' इति ।

हेमाद्रि ने कहा है—द्वितीया तो कृष्णपक्ष की पूर्वा ले तथा शुक्लपक्ष की उत्तरा ले ।

दीपिका में कहा है—कृष्णपक्ष की वह द्वितीया पहली होती है । यदि वह पूर्वाह्न तथा शुक्लपक्ष में हो तो सब परा होती है ।

माधव और अनन्तभट्ट के मत में तो सब द्वितीया परा ही (दूसरी) होती हैं । माधव ने भी कहा है—जो पूर्व दिन प्रातःकाल न हो और दूसरे दिन तीन मुहूर्त हो तो वह द्वितीया उपवास में परा ग्रहण करे । अन्यथा तो पूर्वविद्धा ले ।

(अथ तृतीयातिथिनिर्णयः)

तृतीया तु सर्वमते रम्भाव्यतिरिक्ता परैव । तेन युग्मवाक्यं रम्भाव्रतविषयम् ।

रम्भाख्यां वर्जयित्वा तु तृतीयां द्विजसत्तम । अन्येषु सर्वकार्येषु गणयुक्ता प्रशस्यते ॥'

इति ब्रह्मवैवर्तात् ।

सबके मत से रम्भा नाम की तृतीया को छोड़कर परा ही होती है । इसके युग्मवाक्य रम्भाव्रत विषयक है । ब्रह्मवैवर्तपुराण में कहा है कि—हे द्विजसत्तम, रम्भा को छोड़कर सब कार्यों में चतुर्थी से युक्त तृतीया को श्रेष्ठ कहा है ।

(अथ गौरीव्रते विशेषः)

गौरीव्रते तु विशेषमाह माधवः—'मुहूर्तमात्रसत्त्वेऽपि दिने गौरीव्रतं परे ।

शुद्धाधिकायामप्येवं गणयोगप्रशंसनात् ॥' इति ।

गौरीव्रत में तो माधव ने विशेष कहा है—पर दिन मुहूर्तमात्र के रहने पर भी गौरीव्रत परदिन में होता है । यदि शुद्धतृतीया की वृद्धि भी हो तो चतुर्थी के योग की प्रशंसा से पर दिन में व्रत होता है ।

(अथ चतुर्थीतिथिनिर्णयः)

चतुर्थ्यपि सर्वमते गणेशव्रतातिरिक्ता परैव । युग्मवाक्यात् । 'एकादशी तथा षष्ठी अमावास्या चतुर्थिका । उपोष्याः परसंयुक्ताः पराः पूर्वेण संयुताः ॥' इति माधवीये वृद्धवसिष्ठोक्तेश्च । 'नागचतुर्थी मध्याह्नव्यापिनी पञ्चमीयुता च ग्राह्या' इति निर्णयामृते माधवीये चोक्तम् ।

युगं मध्यन्दिने यत्र तत्रोपोष्य फणीश्वरान् । क्षीरेणाप्याय्य पञ्चम्यां पूजयेत्प्रयतो नरः ॥ विषाणि तस्य नश्यन्ति न तान् हिंसन्ति पन्नगाः । इति माधवीये देवलोक्तेः । युगम्—चतुर्थी । पूर्वत्र-मध्याह्नव्याप्तौ पूर्वा, अन्यपक्षेषु परैव, पञ्चम्यां पूजोक्तेः ।

सबों के मत से गणेशव्रत के अतिरिक्त चतुर्थी परा ही है। युग्मवाक्य से तो माधवीय में वृद्ध वसिष्ठ ने कहा है—एकादशी, षष्ठी, अमावास्या एवं चतुर्थी का उपवास परसंयुक्ता हो परापूर्व से युक्त हो उनमें करे। निर्णयामृत में तथा माधवीय में कहा है—नागचतुर्थी मध्याह्नव्यापिनी एवं पञ्चमीयुता ले।

माधवीय में देवल कथन है—जिस दिन मध्याह्नकाल में चतुर्थी हो, उसी दिन उपवास कर पञ्चमी दिन सर्पों को दूध से स्नान कराकर जो नर सर्पों की पूजा करता है उस व्यक्ति के विष नाश हो जाते हैं और सर्प हिंसा नहीं करते हैं। मध्याह्न व्यापिनी हो तो पूर्वा होती है। अन्य पक्षों में तो परा होती है, क्योंकि पूजा में पञ्चमी तिथि होना युक्त है।

गणेशव्रते तु तृतीयायुतैव। 'चतुर्थी तु तृतीयायां महापुण्यफलप्रदा। कर्तव्या व्रतिभिर्वत्स गणनाथसुतोषिणी ॥' इति हेमाद्रौ ब्रह्मवैवर्तात्। माधवीये तु गणेशव्रते मध्याह्नव्यापिनी मुख्या। 'चतुर्थीगणनाथस्य मातृविद्धा प्रशस्यते। मध्याह्नव्यापिनी चेत्स्यात्परतश्चेत्परेऽहनि ॥' इति बृहस्पतिवचनात्। 'प्रातः शुक्लतिलैः स्नात्वा मध्याह्ने पूजयेन्नृप। इति तत्कल्पेऽभिधानाच्च। तेन 'परदिने सत्त्वे परा, अन्यथा पूर्वा इत्युक्तम्।

गणेशव्रत में तो तृतीयायुक्त ही चतुर्थी ले। क्योंकि हेमाद्रि में ब्रह्मवैवर्त का कहना है—तृतीयातिथि में चतुर्थीतिथि अधिक पुण्य के फल को देनेवाली होती है और गणनाथ गणेशजी को प्रसन्न करती है। हेवत्स, इससे व्रतार्थी उसी दिन करें।

माधवीय में वृहस्पति के वचन से कहा है कि—गणनाथ के व्रत में मध्याह्न व्यापिनी मुख्य है। गणनाथ में चतुर्थी तृतीया युक्त उत्तम है। वह यदि मध्याह्नव्यापिनी हो तो दूसरे दिन होती है। गणेश कल्प में कहा है—प्रातःकाल सफेद तिलों से स्नान करके हे नृप, मध्याह्न में गणेश पूजा करे। इससे परदिन में हो तो परा करे। अन्यथा पूर्वा (पहली) होती है।

वस्तुतस्तु यत्र भाद्रशुक्लचतुर्थ्यादौ गणेशव्रतविशेषे मध्याह्नपूजोक्ता तद्विषयाण्येव प्रागुक्तवचनानि, न तु सार्वत्रिकाणि।

संकष्टचतुर्थ्यादौ बहूनां कर्मकालानां बाधापत्तेः। तेन सर्वत्र गणेशव्रते पूर्वैवेति सिद्धम्। संकष्टचतुर्थी तु चन्द्रोदयव्यापिनी ग्राह्या। दिनद्वये सत्त्वे मातृयोगस्य सत्त्वात्पूर्वेति केचित्।

सिद्धान्त तो यह है—भाद्रपद शुक्लपक्ष की चतुर्थी आदि में गणेश व्रतविशेष में जहाँ मध्याह्न पूजा कही है उसी के लिये पूर्वोक्त वचन है, वह सार्वत्रिक नहीं है। क्योंकि संकटचतुर्थी आदि बहुत कर्म कालों की बाधा की आपत्ति हो जायगी। इससे सर्वत्र गणेशव्रत पूर्वा ही उचित है, यह सिद्ध है। संकटचतुर्थी तो चन्द्रोदय व्यापिनी ले। किसी का मत है कि—यदि दोनों दिन हो तो तृतीया के योग होने से पूर्वा ले।

अन्ये तु दिने मुहूर्तत्रयादिरूपस्य तृतीयायोगस्याभावात् परदिने माधवोक्तमध्याह्नव्यापिसत्त्वात्संपूर्णत्वाच्च परेत्याचक्षते। दिनद्वये तदभावे तु परैव। गौरीव्रते तु पूर्वैव। 'गणेशगौरीबहुलाव्यतिरिक्ताः प्रकीर्तिताः। चतुर्थ्यः पञ्चमीविद्धा देवतान्तरयोगतः ॥' इति मदनरत्ने ब्रह्मवैवर्तात्।

अन्यों का कहना तो यह है कि—यदि प्रथम दिन तीन मुहूर्तत्रयादिरूप तृतीया के अभाव से परदिन में माधवोक्त मत से मध्याह्नव्यापिनी हो तो एवं सम्पूर्ण चतुर्थी हो तो परा ले। यदि दोनों दिन मध्याह्नव्यापिनी न भी हो तो परा ले। गौरी व्रत में पूर्वा ही है। क्योंकि मदनरत्न में ब्रह्मवैवर्त का यह कथन है—गणेश, गौरी तथा बहुला, इनसे भिन्न चतुर्थी देवतान्तर योग से पञ्चमीविद्धा ले।

(अथ पञ्चमीतिथिनिर्णयः)

पञ्चमी तु माधवमते सर्वाऽपि पूर्वा। 'चतुर्थीसंयुता कार्या पञ्चमी परया न तु।
दैवे कर्मणि पित्र्ये च शुक्लपक्षे तथाऽसिते ॥' इति हारीतोक्तेः।

पञ्चमी तो माधव के मत से पूर्वा ही ले। क्योंकि हारीत का कथन है—चतुर्थी से युक्त पञ्चमी को करे। परा न करे। वह दैवकर्म में, पितृकर्म में, शुक्लपक्ष में या कृष्णपक्ष में।

हेमाद्रिमते तु कृष्णा पूर्वा, सिता परा। 'कृष्णा पूर्वयुता, सिता परयुता स्यात्पञ्चमी' इति दीपिकोक्तेः।

हेमाद्रि मत से तो कृष्णपक्ष की पूर्वा ले और शुक्लपक्ष की परा ले। क्योंकि दीपिका में लिखा है—कृष्णपक्ष की पञ्चमी चतुर्थी युक्त और शुक्लपक्ष की षष्ठी से युक्त ग्रहण योग्य है।

वस्तुतस्तु हारीतोक्तिरुपवासविषया। 'प्रतिपत्पञ्चमी चैव सावित्री भूतपूर्णिमा।
नवमी दशमी चैव नोपोष्याः परसंयुताः ॥' इति ब्रह्मवैवर्तात्।

सिद्धान्त तो यह है—हारीत की उक्ति उपवास विषयक है। क्योंकि ब्रह्मवैवर्त में कहा है—प्रतिपदा, पञ्चमी, सावित्री (वटामा), भूतम्=चतुर्दशी, पूर्णिमा, (वटपूर्णिमा) नवमी और दशमी परतिथि युक्त हों तो उपवास न करे।

यत्तु—'पञ्चमी तु प्रकर्तव्या षष्ठ्या युक्ता तु नारद। इत्यापस्तम्बीयं, तत्स्कन्दव्रतपरम्। स्कन्दोपवासे स्वीकार्या पञ्चमी परसंयुता। इति वाक्यशेषादिति माधवः॥ नागपूजाविषयमित्यनन्तभट्टनिर्णयामृतादयः।

जो आपस्तम्बीय वचन है—हे नारद, षष्ठी युक्त पञ्चमी करे। यह स्कन्दव्रत परक है। स्कन्द के उपवास में पञ्चमी परयुक्ता स्वीकर करे—इस वाक्य शेष से यह माधवमत है। वह नागपूजा विषयक है, यह अनन्तभट्ट, निर्णयामृत आदि का कहना है।

चमत्कारचिन्तामणौ च—'पञ्चमी नागपूजायां कार्या षष्ठीसमन्विता। तस्यां तु तुषिता नागा इतरासु चतुर्थिका ॥' इति। तेन नागपूजादौ परैव।

चमत्कारचिन्तामणि में लिखा है—षष्ठीयुक्त पञ्चमी नागपूजा में ले, इससे उसमें नाग प्रसन्न होते हैं इतर कर्मों में चतुर्थीयुक्त पञ्चमी ले। इससे नागपूजा में परा ही का ग्रहण है।

यत्तु—मदनरत्नदिवोदासीययोः—श्रावणपञ्चम्यतिरिक्ता पूर्वेत्युक्तम्। श्रावणे पञ्चमी शुक्ला सम्प्रोक्ता नागपञ्चमी। तां परित्यज्य पञ्चम्यश्चतुर्थीसहिता हिताः ॥' इति संग्रहोक्तेः—

गणेशस्कन्दयोगाभ्यां क्रमान्नागः शुभाशुभः। अरिमित्रे तयोः पुत्रे नागानामाखुबर्हिणौ ॥'

इति षट्त्रिंशन्मताच्च श्रावणपञ्चम्यतिरिक्ताया नागपञ्चम्याश्चतुर्थीयुतत्वमुक्तं, तद् उपवासादिविषयम्। पत्रे-वाहने।

जो मदनरत्न तथा दिवोदासीय में लिखा है कि—श्रावण पञ्चमी से अतिरिक्त पूर्वा ले—यों कहा है। संग्रहमत से श्रावणमासकी शुक्ल पञ्चमी को नागपञ्चमी कहते हैं। उसको छोड़कर सब पञ्चमी चतुर्थी के सहित हितकर होती हैं। चतुर्थी और षष्ठी के योग से क्रम से नाग शुभ तथा अशुभ होते हैं। क्योंकि चतुर्थी और षष्ठी में नागों के वाहन अरि और मित्र होते हैं, षट्त्रिंशत् मतसे। अर्थात्—चतुर्थी युक्त पञ्चमी शुभ फलप्रद है। षष्ठीयुक्त पञ्चमी अशुभ फलप्रद है। इन दोनों का चतुर्थी युक्त पञ्चमी नागका मित्र आखुवाहन है। षष्ठीयुक्त पञ्चमी का शत्रु मयूरवाहन है। श्रावण की पञ्चमी से अतिरिक्त नागपञ्चमी तो चतुर्थी युक्त करे-यों कहा है। वह उपवासादि विषयक है।

(अथ षष्ठीनिर्णयः)

षष्ठी सर्वमते स्कन्दव्रतातिरिक्ता परैव। युग्मवाक्यात्।
'नागविद्धा न कर्तव्या षष्ठी चैव कदाचन। इति स्कान्दाच्च।

स्कन्द व्रत के अतिरिक्त सब से षष्ठी परा ही होती है। युग्म वाक्य से स्कन्दपुराणके कथन से कभी भी पञ्चमीयुक्त षष्ठी न करे।

(अथ सप्तमीनिर्णयः)

सप्तमी पूर्वैव युग्मवाक्यात्। 'षष्ठ्या युता सप्तमी च कर्तव्या तात सर्वदा। इति स्कान्दाच्च।

निर्णयामृते--'षष्ठी च सप्तमी चैव वारश्चेदंशुमालिनः ।
योगोऽयं पद्मको नाम सूर्यकोटिग्रहैः समः ॥'

युग्म वाक्य से सप्तमी पूर्वा ही होती है। स्कन्दपुराण का कथन है--हे तात, सर्वदा षष्ठी युक्त सप्तमी करे। निर्णयामृत में कहा है-षष्ठीयुक्त सप्तमी रविवार को हो तो वह पद्मक नामका योग सूर्य के करोड़ ग्रहण के तुल्य होता है।

(अथाष्टमीतिथिनिर्णयः)

अष्टमी तु सर्वमते कृष्णा पूर्वा सिता परा। 'व्रतमात्रेऽष्टमी कृष्णा पूर्वा, शुक्लाऽष्टमी परा। इति माधवोक्तेः। 'परयुक् शुक्लाऽष्टमी, पूर्वयुक् कृष्णा'इति दीपिकोक्तेश्च।

सबके मत में अष्टमी कृष्णपक्ष की पूर्वा तथा शुक्लपक्ष की परा होती है। माधव ने कहा है—व्रतमात्र में अष्टमी कृष्णपक्ष में पूर्वा एवं शुक्लपक्ष में परा होती है। दीपिका में भी कहा है—शुक्ला अष्टमी परा और कृष्णपक्ष की अष्टमी पूर्वा ले।

(शिवशक्त्युत्सवे विशेषः)

शिवशक्त्युत्सवे तु कृष्णाऽप्युत्तरा। पक्षद्वयेऽप्युत्तरैव शिवशक्तिमहोत्सवे। इति माधवोक्तेः। दिवोदासीये भविष्ये--'यदा यदा सिताष्टम्यां बुधवारो भवेत्क्वचित्। तदा तदा हि सा ग्राह्या एकभक्ताशने नृप ॥ सन्ध्याकाले तथा चैत्रे प्रसुप्ते च जनार्दने। बुधाष्टमी न कर्तव्या हन्ति पुण्यं पुरा कृतम् ॥ अन्त्य पद्यं हेमाद्रौ न धृतम्।

शिव और शक्ति के महोत्सव में तो कृष्णा भी उत्तरा ले। माधवमत से-शिवशक्ति महोत्सव में दोनों पक्ष में उत्तरा ही ले। दिवोदासीय में भविष्यपुराण का मत है—जब-जब शुक्लपक्ष की अष्टमी को कभी बुधवार हो तो तब-तब हे नृप, एकभक्तव्रतवाले उसे ग्रहण करें। संध्याकाल में चैत्र में तथा जनार्दन के शयन में बुधाष्टमी न करे। क्योंकि वह पूर्व किये हुए पुण्य का नाश करती है। इसमें अन्त्यपद हेमाद्रि में नहीं कहा है।

(अथ नवमीतिथिनिर्णयः)

नवमी तु सर्वमते पूर्वा युग्मवाक्यात्, 'न कुर्यान्नवमीं तात दशम्या तु कदाचन। इति स्कान्दाच्च।

नवमी तो सर्वमतसे युग्मवाक्य से पूर्वा करे। स्कन्दपुराण का कथन है—हे तात, दशमीयुक्त नवमी कदापि न करे।

(अथ दशमीतिथिनिर्णयः)

दशमी तु पूर्वा परा वेति हेमाद्रिः। कृष्णा पूर्वोत्तरा शुक्ला दशम्येवं व्यवस्थिता। इति माधवः।

हेमाद्रि मत से दशमी तो पूर्वा या परा करे। [illegible]धव का कथन है—कृष्णपक्ष में पूर्वा तथा शुक्ल पक्ष में उत्तरा करे।

वस्तुतस्तु मुख्या नवमीयुतैव ग्राह्या। दशमी तु प्रकर्तव्या सदुर्गा द्विजसत्तम। इत्यापस्तम्बोक्तेः।

सिद्धान्त तो यह है—नवमी युक्त ही दशमी मुख्य है। आपस्तम्ब का कथन है—हे द्विजोत्तम, नवमी-युक्त दशमी करे।

यत्तु—सम्पूर्णा दशमी कार्या पूर्वया परयाऽथ वा। इत्यङ्गिरसोक्तं, तन्नवमीयुक्तालाभे औदयिकी ग्राह्येति ज्ञेयम्।

जो अंगिरा ने कहा है--पूर्व या पर से युक्त सम्पूर्ण दशमी करे। वह वचन नवमीयुक्त के अलाभ में औदयिकी ग्रहण करे।

(अथैकादश्युपवासनिर्णयः)

तत्रैकादश्युपवासो द्वेधा निषेधपरिपालनात्मको व्रतरूपश्च ।

वहाँ पर औदयकी एकादशी का उपवास दो प्रकारका है—एक निषेधपालनात्मक और दूसरा व्रतरूप।

(अथ शङ्खजलपानादिनिषेधकथनम्)

तत्राऽद्यः—'न शंखेन पिवेत्तोयं न खादेत् कूर्मशूकरौ ।
एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि ॥' इति कौर्मदेवलाद्युक्तेः ।

उनमें पहले को कूर्मपुराण तथा देवलादि ने कहा है—'शंख से जल न पीवे, न कूर्म एवं शूकर का अर्थात्-कन्द विशेषका भक्षण न करे न दोनों पक्ष की एकादशी को भोजन करे। (कूर्म सूकरौ—महाराष्ट्राणां 'कणगे' इति प्रसिद्धः कन्दः कूर्मः । 'गोडारु' इति कोन' इति वा प्रसिद्धः कन्दः सूकरः) ।

(अथ गृहस्थादीनमेकादश्यांभोजननिषेधकथनम्)

अग्निपुराणेऽपि—'गृहस्थो ब्रह्मचारी च आहिताग्निस्तथैव च । एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि ॥' इति । न चात्र पर्युदासेन व्रतविधिः तद्धेतुव्रतादिशब्दाभावात् ।

अग्निपुराण में भी लिखा है—गृहस्थ, ब्रह्मचारी एवं आहिताग्नि ये सब दोनों पक्ष की एकादशी को भोजन न करें। कदाचित् कोई कहे कि यहाँ पर्युदास से व्रतविधि प्राप्त होती है, सो ठीक नहीं। (विधेर्यत्र प्रधानत्वं प्रतिषेधेऽप्रधानता । पर्युदासः स विज्ञेयो यत्रोत्तरपदेन नञ् ॥ इति रीत्या नञः सङ्कल्पलक्षणया) क्योंकि व्रतविधि का हेतुभूतव्रतादि शव्द में नहीं है।

(अथैकादशीव्रतरूपस्तद्भेदश्च)

व्रतरूपस्तु ब्रह्मवैवर्ते—'प्राप्ते हरिदिने सम्यग्विधाय नियमं निशि । दशम्यामुपवासस्य प्रकुर्याद्वैष्णवं व्रतम् ॥' इति । इदश्च शिवभक्तादिभिरपि कार्यम् । 'वैष्णवो वाऽथ शैवो वा सौरोऽप्येतत्समाचरेत् ।' इति सौरपुराणाच्च ।

व्रतरूप तो ब्रह्मवैवर्तपुराण में इसप्रकार कहा है—वैष्णव 'एकादशी तिथि दिन आने के पर्व, दशमी तिथि की रात्रि में उपवास का अच्छी तरह नियम कर व्रत को करे। इसको भी शिव के भक्तादि भी करें। शिवधर्म में कहा है—वैष्णव हो, शैव या सौर हो एकादशी व्रत को करें। सूर्यपुराण में भी लिखा है—वैष्णव हो, शैव या सौर हो इस व्रत को करे।

सोऽपि द्वेधा—नित्यः काम्यश्च। 'उपोष्यैकादशीं नित्यं पक्षयोरुभयोरपि । इति गारुडोक्तेः । 'पक्षे पक्षे च कर्तव्यमेकादश्यामुपोषणम् । इति नारदोक्तेश्च नित्यता। यदिच्छेद्विष्णुसायुज्यं श्रियं सन्ततिमात्मनः । एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि ॥' इति कौर्मादिषु फलश्रुतेश्च काम्यता। उभयैकादशीव्रतं गृहस्थातिरिक्तानामेव नित्यम्। गृहस्थस्य तु शुक्लायामेव व्रतं नित्यं, न कृष्णायाम् ।

वह भी व्रत दो प्रकार का है—नित्य एवं काम्य। गरुड़पुराण में कहा है—नित्य दोनों पक्षों की एकादशी का उपवास करे। नारद के कथन से भी पक्ष-पक्ष में एकादशी का उपवास करे इसमें नित्यता है। कूर्म आदि पुराणों में फलश्रुति से यदि विष्णुसायुज्यता लक्ष्मी तथा आत्मा से सन्तान चाहे तो दोनों पक्ष की एकादशी को भोजन न करे। इसमें काम्य ता है। दोनों एकादशी का व्रत गृहस्थ से अतिरिक्तों को ही नित्य है। गृहस्थ को तो शुक्लपक्ष की ही एकादशी व्रत नित्य है। कृष्णपक्ष की एकादशी नहीं है।

'एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि । वनस्थयतिधर्मोऽयं, शुक्लामेव सदा गृही ॥' इति देवलोक्तेः ।

देवल ने कहा है—दोनों पक्षों की एकादशी को भोजन न करे—यह वानप्रस्थ और यति का धर्म है। गृहस्थ तो सदैव शुक्लपक्ष की एकादशी को व्रत करे।

न चानेन निषेधपालनमेव वनस्थयतिविषये उपसंह्रियते, न तु व्रतमिति वाच्यम्। अस्य पर्युदासेन व्रतविधिपरत्वात्। अन्यथा पूर्वोक्ताग्निपुराणवचने निषेधपालने गृहस्थस्याधिकारो विरोधः स्यात्। निषेधस्य निवृत्तिमात्रफलत्वेन विशेषानपेक्षणादुपसंहारायोगात्।

अभावस्य धर्मत्वाभावाच्च। तस्मादनेन सर्वेषामेकादशीव्रतविधायिनां सामान्यवाक्यानां वनस्थयतिविषये उपसंहारान्न गृहस्थस्य कृष्णायां नित्यव्रतप्राप्तिः। कथं तर्हि—संक्रान्त्यामुपवासं च कृष्णैकादशिवासरे। चन्द्रसूर्यग्रहे चैव न कुर्यात्पुत्रवान् गृही॥' इति नारदादिवचनेषु कृष्णानिषेधः। प्राप्त्यभावादिति चेत् श्रूयताम्। 'शयनीबोधिनीमध्ये या कृष्णैकादशी भवेत्। सैवोपोष्या गृहस्थेन नान्या कृष्णा कदाचन॥' इति पाद्मे गृहस्थस्य आषाढीकार्तिकीमध्यस्था या कृष्णा विहिता, सा पुत्रवतो निषिध्यते। अन्यकृष्णायां तु न विधिः। सर्वविधीनां वनस्थयतिषूपसंहारात्। न निषेधः, प्राप्त्यभावात्। शयन्यादिवाक्यं त्वपुत्रगृहिगोचरमित्यनन्तभट्टहेमाद्र्यादिग्रन्थाः।

कोई यह शंका करे इस वचन से वानप्रस्थ तथा यति के विषय में निषेधपालन का ही उपसंहार है। व्रत का नहीं है क्योंकि यह वचन पर्युदास व्रतविधि परक है, अन्यथा पहले कहे हुए अग्निपुराण के वचन से निषेधपालन (फल) में गृहस्थ को कहे गये अधिकार का विरोध होगा।

निषेध की निवृत्ति में तात्पर्य होने से विशेष की अपेक्षा न होने से उपसंहार में अयोग है। अर्थात् एकादशी व्रत किसी वस्तु के संहार में तात्पर्य नहीं होता है और किसी का अभाव धर्म भी नहीं हो सकता। इससे इस वचन से विधायक सामान्य वाक्यों को वानप्रस्थ तथा संन्यासी के विषय में उपसंहार हो जाने से गृहस्थ को कृष्णपक्ष में नित्यव्रत की प्राप्ति नहीं हो सकती है। यदि ऐसा है तो—नारद आदि के वचनों में कृष्णपक्ष की एकादशी का निषेध कैसे है—संक्रान्ति में, कृष्णपक्ष की एकादशी वाले दिन में, चन्द्र और सूर्यग्रहण में पुत्रवान गृहस्थ उपवास न करे। यदि कहे कि प्राप्ति के विना निषेध नहीं हो सकता है तो सुनो-शयनी और बोधिनी के मध्य में जो कृष्णपक्ष की एकादशी हो उसी से गृहस्थ को उपवास करना चाहिये अन्य कृष्णा न करे। पद्मपुराण के इस वचन से आषाढ़ शुक्ल और कार्तिक शुक्ल के मध्य में जो कृष्णपक्ष की एकादशी विहित है। वही पुत्रवान् को निषेध है। अन्य कृष्ण एकादशी में तो विधि नहीं है। सब विधियों का वानप्रस्थ एवं संन्यासी के विषय में उपसंहार की समाप्ति हो जाने से प्राप्त्य भावसे निषेध नहीं है। शयन्यादि शयनी और बोधिनी वाक्य तो है वह अपुत्रवाले गृहस्थ के विषय में है। यह अनन्तभट्ट और हेमाद्रि आदि ग्रन्थों में कहा है।

दीपिकाऽपि—'असिता तु शयनीबोधान्तरस्थाऽप्यथो न स्यात्साऽऽत्मवतोऽपि' इति।

दीपिका का भी वाक्य है—शयनी (आषाढशुक्ल एकादशी) और बोधिनी (कार्तिकशुक्ल एकादशी) के बीच पडनेवाली कृष्णपक्ष की एकादशी पुत्रवाला (आत्मा वै पुत्रनामासि) भी करे।

मदनरत्ने भविष्ये—'यथा शुक्ला तथा कृष्णा द्वादशी मे सदा प्रिया। शुक्ला गृहस्थैः कर्तव्या भोगसन्तानवर्द्धिनी। मुमुक्षुभिस्तथा कृष्णा न ते तेनोपदर्शिता॥' इति। निषेधपालनं काम्यव्रतं च सर्वकृष्णायां सर्वगृहिणां सम्भवत्येव। 'पुत्रवांश्च सभार्यश्च बन्धुयुक्तस्तथैव च। उभयोः पक्षयोः काम्यव्रतं कुर्यात्तु वैष्णवम्॥' इति नारदोक्तेः। एतच्च सर्वं कालादर्शे उक्तम्—'विधवाया वनस्थस्य यतेश्चैकादशीद्वये। उपवासो, गृहस्थस्य शुक्लायामेव पुत्रिणः॥ भुजेर्निषेधः कृष्णायां, सिद्धिस्तस्य ततो व्रते॥' इति।

मदनरत्न में भविष्यपुराण का भी कथन है—जैसे शुक्लपक्ष वैसे ही कृष्णपक्ष की मुझे द्वादशी सदा प्रिय है। भोग और सन्तान को वर्धन करने वाली गृहस्थगण शुक्ला को सदा करे। इसी प्रकार मुमुक्षु कृष्णा को करे, निषेध का पालन तथा काम्यव्रत सब कृष्णाओं में सब गृहस्थ करें. क्योंकि नारद ने कहा है—वैष्णव पुत्र भार्या एवं बन्धु से युक्त गृहस्थ दोनों पक्षों में विष्णु के काम्यव्रत का कर।

यह सब कालादर्श में कहा है—विधवा, वानप्रस्थ और यति (संन्यासी) ये सब दोनों एकादशी में, पुत्रवाला गृहस्थ शुक्ला में ही उपवास करे। कृष्णा में भोजन का निषेध है। इसी से उसका व्रत सिद्ध होता है।

प्राच्यास्तु वैष्णवगृहस्थानां कृष्णाऽपि नित्या। 'नित्यं भक्तिसमायुक्तैर्नरैर्विष्णुपरायणैः। पक्षे पक्षे च कर्तव्यमेकादश्यामुपोषणम् ॥ सपुत्रश्च सभार्यश्च सजनो भक्तिसंयुतः। एकादश्यामुपवसेत्पक्षयोरुभयोरपि ॥" इति नारदोक्तेरित्याहुः। पुत्रशब्दश्चापत्यमात्रवचनः।

प्राच्यों का कहना है—वैष्णव गृहस्थों को कृष्णा (एकादशी) भी नित्य है। क्योंकि नारद ने कहा है—भक्ति से युक्त मनुष्यों को विष्णु में तत्पर हो पक्ष-पक्ष में एकादशी का उपवास करे। पुत्र तथा आत्मीय जनोंके सहित स्त्री भक्तियुक्त होकर दोनों पक्षों की एकादशी को उपवास करें। इन वचनों में पुत्र शब्द सन्तानमात्र का बोधन कराने वाला है।

नारायणवृत्तौ—'पुमांस एव मे पुत्रा जायेरन्' इत्यत्रापत्यमात्रवाचित्वोक्तेः।

'जनयेद् बहुपुत्राणि' इति लिङ्गात्। 'पौत्री मातामहस्तेन' इति मनूक्तेः। पुत्र्या अपत्यमित्यर्थे तु 'स्त्रीभ्यो ढक्' (पा. सू. ४-१-१२) इति पौत्रेय इत्यापत्तेः। पुमान् पुत्रो जायत इति च।

नारायणवृत्ति में लिखा है कि-'पुरुष ही मेरे पुत्र हों' इससे यहाँ पर अपत्य मात्र का वाची पुत्र शब्द कहा है।

मनु ने भी कहा है—पुत्री के पुत्र से नाना भी पौत्री वाला होता है। पुत्र के लड़के को पौत्र कहते हैं। यदि 'पुत्र्याः अपत्यम्-लड़की का लड़का यह अर्थ होता तो 'स्त्रीभ्यो ढक्' इस सूत्र से ढक् प्रत्यय होने से 'पौत्रेय' हो जाता है। यह आपत्ति होगी। पुमान्-पुरुष, पुत्र होता है ऐसा भी कहा है।

(अथ उपवासनिषेधे विशेषः)

उपवासनिषेधे विशेषो वायवीये उक्तः—'उपवासनिषेधे तु किञ्चित् भक्ष्यं प्रकल्पयेत्।
न दुष्यत्युपवासेन उपवासफलं लभेत् ॥'

उपवास के निषेध में विशेष वायुपुराण में कहा है—उपवास निषेध में कुछ भक्षण कर ले तो उपवास के न करने से दूषित नहीं होता है एवं उपवास के फल को प्राप्त करता है।

(अथ भक्ष्यवस्तुकथनम्)

भक्ष्यं च तत्रैवोक्तम्—'नक्तं हविष्यान्नमनोदनं वा फलं तिलाः क्षीरमथाम्बु चाज्यम्।
यत्पञ्चगव्यं यदि वाऽपि वायुः प्रशस्तमत्रोत्तरमुत्तरं च ॥' इत्यलम्।

वहीं पर भक्ष्य वस्तु भी कही है—नक्त, हविष्यान्न, अनोदन फल, तिल, दूध, जल, घी, पंचगव्य तथा वायु इनमें उत्तरोत्तर प्रशस्त हैं।

(अथ दशमीवेधो द्वेधा कथनम्)

तत्र दशमीवेधो द्वेधा—अरुणोदयवेधः सूर्योदयवेधश्चेति।
आद्यो गारुडे—'दशमी शेषसंयुक्तो यदि स्यादरुणोदयः।
नैवोपोष्यं वैष्णवेन तद्दिनैकादशीव्रतम् ॥' इति।

एकादशी के विषय में दशमी का वेध दो तरह का है-पहला अरुणोदयवेध अन्य सूर्योदयवेध। आद्य को इसप्रकार यों गरुडपुराण में कहा है—यदि दशमी शेष के संयुक्त में अरुणोदय हो तो वैष्णव उस दिन एकादशी व्रत को न करे।

(अथारुणोदयस्वरूपम्)

अरुणोदयस्वरूपं च माधवीये स्कान्दे—'उदयात्प्राक् चतस्रस्तु घटिका अरुणोदयः ॥' इति। यदपि—'उदयात्प्राग्यदा विप्र मुहूर्तद्वयसंयुता। संपूर्णैकादशी नाम तत्रैवोपवसेद् गृही ॥' इति

गारुडसौरधर्मादिवचनम्, यच्च भविष्ये—'आदित्योदयवेलायाः प्राङ्मुहूर्तद्वयान्विता। एकादशी तु सम्पूर्णा विद्धान्या परिकीर्तिता ॥' इति, तदप्युपसंहारन्यायेन दण्डचतुष्टयपरमेव। हेमाद्रावप्येवम्।

माधवीय में अरुणोदय का स्वरुप माधवीय स्कन्ध के कथन से कहा है—सूर्योदय से पहले चारघटिका अरुणोदय होता है। जो भी गरुड सौरधर्मादि वचन हैं-हे विप्र, उदय से पूर्व यदि दो मुहूर्तयुक्त एकादशी हो तो वह संपूर्ण एकादशी नाम वाली होती है। गृहस्थ उसी दिन उपवास करे और जो भविष्य का कथन है—सूर्योदय के समय से पहले दो मुहूर्त हो तो वह एकादशी संपूर्ण है और दूसरी विद्धा है। ये दोनों वचन उपसंहारन्याय से (अर्थात्-तात्पर्य निर्णायक प्रमाण के द्वारा अर्थात्-उपक्रमोपसंहारौ अभ्यासोऽपूर्वताफलम्। अर्थवादोऽपपत्ती च लिङ्गं तात्पर्यनिर्णये ।। इन छः प्रमाणों में उपक्रमोपसंहारन्याय मीमांसाके तृतीयाध्याय चतुर्थपाद प्रथमाधिकरणमें सिद्ध है) चार घड़ी विषय परक है। हेमाद्रि में भी ऐसा ही कहा है।

यत्त ब्रह्मवैवर्ते—'चतस्रो घटिकाः प्रातररुणोदयनिश्चयः। चतुष्टयविभागोऽत्र वेधादीनां किलोदितः ॥ अरुणोदयवेधः स्यात्सार्धं तु घटिकात्रयम्। अतिवेधो द्विघटिकः प्रभासंदर्शनाद्रवेः ॥ महावेधोऽपि तत्रैव दृश्यतेऽर्को न दृश्यते। तुरीयस्तत्र विहितो योगः सूर्योदये बुधैः ॥' इति, तदपि अवयवद्वारा अरुणोदयवेधविशेषपरमेवेति माधवीये मदनरत्ने च। अन्यस्तूदयवेधः।

जो ब्रह्मवैवर्तपुराण में कहा है—प्रातःकाल चार घटिका अरुणोदय का निश्चय है। वेध आदि का विभाग चार प्रकार का है। साढ़े तीन घड़ी अरुणोदय का वेध होता है, सूर्य की प्रभा से दो घड़ी अतिवेध होता है या सूर्य का दर्शन हो या न हो, वह महावेध होता है, तुरीय (चतुर्थ) वेध वहाँ विहित है जो सूर्योदय के समय दशमी हो। वह भी अवयव द्वारा (अरुणोदयवेध विशेष पर) ही है। यह माधवीय तथा मदनरत्न में कहा है। इनसे अन्य को उदयवेध समझे।

तथान्येऽपि वेधा हेमाद्रौ माधवीये गारुडे—'उदयात्प्राक् त्रिघटिका व्यापिन्येकादशी यदा। संदिग्धैकादशी नाम वर्ज्येयं धर्मकाङ्क्षिभिः ॥ उदयात् प्राङ् मुहूर्तेन व्यापिन्येकादशी यदा। संयुक्तैकादशी नाम वर्ज्येयं धर्मवृद्धये।'

वैसे ही अन्य वेध भी हेमाद्रि, माधवीय एवं गरुडपुराण में कहा है—यदि उदय से पहले तीन घड़ी एकादशी हो तो उसे संदिग्ध नाम वाला एकादशी कहा जाता है, उस धर्म में आकांक्षा रखने वाले त्याग दें। यदि एकादशी उदय से पूर्व हो उसे 'संयुक्तैकादशी' कहा है। उस धर्मवृद्धिके लिए त्याग दे।

हेमाद्रौ रात्रेरन्त्योऽष्टमो भागोऽप्यरुणोदय उक्तः-'निशः प्रान्ते तु यामार्धे देववादित्रवादने। सारस्वतानध्ययने चारुणोदय उच्यते ॥' इति स्मृतेः। अत्रैके—एषां सर्वपक्षाणां मुहूर्तद्वयेन क्रोडीकारात् 'निशः प्रान्ते' इति वचनाच्च रात्रिमानवशात्सार्धत्रिदण्डादयोऽनेकेऽरुणोदयाः। तदाह हेमाद्रिः—सार्धघटिकात्रयोक्तिरष्टाविंशतिघटीमितरात्रिविषया। महत्तरास्तु रात्रीरपेक्ष्य चतस्रो घटिका इत्युक्तमिति' इत्याहुः।

हेमाद्रि में तो रात्रि का आठवें भाग का ही अरुणोदय कहा है। स्मृति के वचन से रात्रि के अन्तिम आधा प्रहर जब देवपूजन के निमित्त वाद्यवादन या विद्याका अनध्याय होता हो तब उस कालको अरुणोदय कहा है। यहाँ पर कोई कहते हैं-इन सब पक्षों का मुहूर्त के एकवाक्य से और 'निशः प्रान्ते' इस वचन से रात्रिमानानुसार साढ़े तीन घड़ी आदि अनेक अरुणोदय हो जाते हैं। उसी बात को हेमाद्रि ने कहा है-साढ़े तीन घड़ी के वेध का कहना तो तब है जब रात्रि का मान अट्ठाइस घड़ी परिमित रात्रि विषयक हो। इससे अधिक रात्रि का मान हो तो उसकी अपेक्षा से चार घड़ी अरुणोदय होता है।

तन्न। अरुणोदयशब्दस्यानेकार्थत्वापत्तेः। न च मुहूर्तद्वयमर्थः। दण्डद्वयैकमुहूर्तादिवेधानां तथाऽप्यनुपपत्तेः। न हि तेषां यामार्धत्वमरुणोदयत्वं चास्ति। मुहूर्तद्वयस्य यामार्धस्य च 'चतस्रो घटिकाः' इत्यनेनोपसंहाराच्च न तदर्थः। न च 'सार्धं तु घटिकात्रयम्' इत्यनेनापि तदापत्तिः शङ्क्या। तेन चतुर्दण्डवेधस्यैवोक्तेः। चतुर्दण्डेऽर्धघटीदशमीसत्त्वे हि वेधस्तदर्थः। द्विघटिकादौ तदयोगाच्च।

यह कहना उनका उचित नहीं है। क्योंकि अरुणोदय शब्द का अनेकार्थ हो जाने से आपत्ति हो जायगी। कहो कि दो मुहूर्त ही अरुणोदय का अर्थ है। इसमें भी दो घड़ी एक मुहूर्तादि वेधोंकी और भी अनुपपत्ति हो जाएगी। क्योंकि उनका यामार्धत्व अरुणोदय नहीं हो सकता है। दो मुहूर्त की और यामार्ध की चार घड़ी मानकर उपसंहार किया है। इससे वह अर्थ तथ्य नहीं होता है। कदाचित् कोई कहे भी 'साढ़े तीन घड़ी' इससे भी उस आपत्ति की शंका करे, क्योंकि इसतरह उसने चार घड़ी पर ही वेध कहा है। चार घड़ी के प्रारम्भ में आधी घड़ी दशमी हो तो वेध होता है यह उसका अर्थ है। द्विघटिकादि में दो दण्डादि अरुणोदय में यह नहीं हो सकता है।

यत्तु मतम् कियताऽरुणोदयवेध इत्यपेक्षायां सार्धघटिकात्रयनियमादरुणोदयेऽर्धघटिकातो न्यूनदशमीसत्त्वे न दोषः।' इति। तत्तुच्छम्। द्विदण्डादावपि तदापत्तेः।

जो किसी का मत है—कितने अरुणोदय पर वेध ही जाता है। इस अपेक्षा में हो जाने पर साढ़े तीन घड़ी के नियय से अरुणोदय में आधी घड़ी से न्यून दशमी हो तो कुछ दोष नहीं है। यह उनका कहना तुच्छ है।

'दशमीशेषसंयुक्तो यदि स्यादरुणोदयः। नैवोपोष्यं वैष्णवेन तद्दिनैकादशीव्रतम्॥'

इति गारुडे भविष्ये च योगमात्रे निषेधात्।

दशमी शेष संयुक्त यदि अरुणोदय हो जो वैष्णव को उस दिन एकादशी व्रत नहीं करना चाहिये। यह गरुणपुराण तथा भविष्यपुराण में योगमात्र में निषेध हो जाने से।

नारदीयेऽपि—'लववेधेऽपि विप्रेन्द्र दशम्यैकादशीं त्यजेत्।
सुराया बिन्दुना स्पृष्टं गङ्गाम्भ इव निर्मलम्॥'

नारदपुराण में भी लिखा है—हे विप्रेन्द्र, लववेध भी दशमीयुक्त एकादशी हो तो ऐसी एकादशी को ही त्याग दे, जैसे-सुरा (मदिरा) मात्र बिन्दुस्पर्श किये हुए निर्मल गंगाजल को त्यागते हैं। तद्वत् ही त्याग दे।

स्कान्देऽपि—'कलाकाष्ठादिगत्यैव दृश्यते दशमी विभो।
एकादश्यां न कर्तव्यं व्रतं राजन् कदाचन॥' इति।

स्कन्दपुराण का वचन है—हे विभो, यदि कलाकाष्ठमात्र भी दशमी युक्त दिखाई दे तो, हेराजन् कभी भी एकादशी में व्रतको नहीं करना चाहिये।

माधवोऽप्याह—'सोऽयं कलादिवेधोऽरुणोदयवेधे सूर्योदयवेधे च समानः।' इति।

निगमेऽपि—'सर्वप्रकारवेधोऽयमुपवासस्य दूषकः॥' इति।

माधव ने भी कहा है—यह कलादिभेद अरुणोदय और सूर्योदय वेध में समान है। निगम में भी कहा है—सबतरह का यह वेध उपवास को दूषित करता है।

(माधवमतेन संपृक्तादिभेदकथनम्)

अत एव माधवेन—'अरुणोदयाद्यदण्डेऽल्पदशमीस्पर्शे सम्पृक्ता, कृत्स्नघटीयोगे सन्दिग्धा, मुहूर्तव्याप्तौ संयुक्ता, उदये सङ्कीर्णा' इत्युक्त्वा 'अरुणोदयवेलायां दशमी यदि सङ्गता। सम्पृक्तैकादशीं तां तु मोहिन्यै दत्तवान् प्रभुः॥' इति गोभिलाद्युक्तेः पूर्वोक्तगारुडादेश्च सामान्यतो विशेषतश्चारुणोदयवेधो निषिद्धः। यत्तु—अष्टमभागोऽरुणोदयः' इति हेमाद्रिणोक्तम्, 'यच्च महत्तरा रात्रीः' इति स्तु तत्परमतम् स्वयमेव दूषितम्।

अन्तेऽप्युक्तम्, 'वेधतारतम्यं च दोषतारतम्यादुपपद्यते' इति। दोषतारतम्यं च प्रायश्चित्ततारतम्यादवगम्यते।

इसीलिये माधव ने अरुणोदय के आद्यदण्ड (घड़ी) में अल्प दशमी के स्पर्श में तो सम्पृक्ता कहा है। पूरी घड़ी का योग हो तो सन्दिधा कहा है। मुहूर्तव्याप्तिमें तो संयक्ता कहा है, उदय में हो तो

संकीर्ण कहा है। यों कहकर इस गोभिल की उक्ति से पूर्वोक्त गारुड़ के कथन से कहा है कि-अरुणोदय वेला में यदि दशमी का संग हो तो वह एकादशी सम्पृक्ता हो जाती है—उसे प्रभु ने मोहिनी दिया है। सामान्य और विशेष से अरुणोदयवेध निषिद्ध है।

और जो हेमाद्रि ने रात्रि के आठवाँ भाग को अरुणोदय कहा है। वह (महत्तरा) महान् रात्रि परक है। उसपर मत को स्वयं ही दूषित किया है तथा अन्त में कहा—वेध के तारतम्य न्यूनाधिक से दोष की उपपत्ति होती है। दोष तारतम्य प्रायश्चित्त के तारतम्य से जाना जाता है।

(दशमीशेषसंयुक्तामेकादशीव्रतकरणे प्रायश्चित्तकथनम्)

तच्चोक्तं हेमाद्रौ स्मृत्यन्तरे—'अज्ञानाद्यदि वा मोहात्कुर्वन्नेकादशीं नरः। दशमीशेषसंयुक्तां प्रायश्चित्तमिदं चरेत्॥ कृच्छ्रपादं नरश्चीर्त्वा गां च दद्यात्सवत्सिकाम्। सुवर्णस्यार्धकं देयं तिलद्रोणसमन्वितम्॥'

उसी को हेमाद्रि में स्मृत्यन्तर वचन से कहा है-अज्ञान से या मोह से दशमी शेषयुक्त एकादशी करता हुआ नर प्रायश्चित्त को करे। कृच्छ्रपादव्रत, सवत्सा सहित गौ, आधा तोला सोना तथा द्रोण भर तिल का दान करे।

विधानान्तरं तत्रैव—'ब्राह्मणान्भोजयेत्त्रिंशद् गां च दद्यात्सवत्सकाम्।
धरणस्यार्धकं देयं तिलद्रोणमथापि वा॥' इति।

अन्य भी विधान वहाँ पर है—तीस ब्राह्मणों को भोजन करावे और सवत्सा गौ दे, चालीस मासा सोना या द्रोण भर तिल दान करे।

अत्र वेधतारतम्याद् व्यवस्थेति हेमाद्रिः। 'निशः प्रान्ते' इत्यपि दोषाधिक्यार्थमेव। तस्माच्चतु र्घटिकात्मक एवारुणोदय इति सिद्धम्। तेन षट्पञ्चाशद्दण्डानन्तरं दशमीप्रवेशेऽरुणोदयवेध उक्तो भवति।

यहाँ पर वेध के तारम्यादि से व्यवस्था है—यह हेमाद्रि का कहना है। निशः प्रान्ते' यह पूर्वोक्त वचन भी दोषाधिक्यार्थ ही है। इससे चतुर्घटिकात्मक ही अरुणोदय माना जाता है-यह सिद्ध हुआ। इससे छप्पन दण्ड के अनन्तर दशमी प्रवेश में अरुणोदय वेध कहा गया है।

अन्योऽपि तत्रैव कण्वेनोक्तः—'उदयोपरि विद्धा तु दशम्यैकादशी यदि।
दानवेभ्यः प्रीणनार्थं दत्तवान् पाकशासनः॥' इति।

अन्य वेध भी वहीं पर कण्व ने कहा है-–जो सूर्योदय के अनन्तर दशमी विद्धा एकादशी हो उसको इन्द्र-पाकशासन ने दानवों के प्रसन्नतार्थ दिया है।

स्मृत्यन्तरेऽपि—'दशम्याः प्रान्तमादाय यदोदेति दिवाकरः।
तेन स्पृष्टं हरिदिनं दत्तं जम्भासुराय तत्॥' इति।
तत्रारुणोदयवेधो वैष्णवविषयः। तद्वाक्येषु वैष्णवग्रहणात्।

स्मृत्यन्तर में भी कहा है-–यदि दशमी के अन्त में सूर्योदय हो तो उस (दशमी) से स्पृष्ट (मिला) वह हरिदिन राक्षसों के लिये दिया है। वहाँ पर अरुणोदयवेध वैष्णवविषयक है; क्योंकि उन वाक्यों में वैष्णवपद ग्रहण होनेसे।

तत्स्वरूपं तु माधवीये स्कान्दे—'परमापदमापन्नो हर्षे वा समुपस्थिते। नैकादशीं त्यजेद्यस्तु यस्य दीक्षाऽस्ति वैष्णवी। विष्ण्वर्पिताखिलाचारः स हि वैष्णव उच्यते॥' इति।

वैष्णव का स्वरूप तो माधवीय में स्कन्दपुराण में कहा है—जिसे वैष्णवदीक्षा है वह अत्यन्त ग्रस्त हो या हर्ष (प्रसन्न) युक्त भी हो एकादशी व्रत का त्याग न करे। जिससे सम्पूर्ण आचरण विष्णु को अर्पण किये हो उसे वैष्णव कहा जाता है।

यद्यपि पित्रादेरागमदीक्षायां तन्मात्रस्य वैष्णवत्वं न तु पुत्रादेः, तथापि स्वपारंपर्यप्रसिद्धमेव वैष्णवत्वं स्मार्तत्वं च मन्यन्ते वृद्धाः ।

यद्यपि पिता आदि आगमदीक्षा में तन्मात्र पिता का ही वैष्णव होगा। उसके पुत्र आदि नहीं होंगे। तथापि कुलपरम्परा का प्रसिद्ध ही वैष्णवत्व तथा स्मार्तत्व वृद्ध मानते हैं।

तत्त्वसागरे भविष्ये—'यथा शुक्ला तथा कृष्णा, यथा कृष्णा तथेतरा ।
तुल्ये ते मन्यते यस्तु स वै वैष्णव उच्यते ॥'

तत्त्वसागर में भविष्य का वचन है–जैसी शुक्ला वैसी कृष्णा, जैसी कृष्णा वैसी शुक्ला, लोग इनको जो तुल्य मानते हैं उसको ही वैष्णव कहा जाता है।

केचितु दशम्यां नवमीवेधमपि त्यजन्ति तत्र मूलं मृग्यम् । उदयवेधस्तु परिशेषात् स्मार्तगोचरः ।

कोई लोग तो दशमी में नवमी वेध को भी त्यागते हैं। उसमें मूल अन्वेषणीय है। परिशेष अवशिष्ट या निषेध से उदयवेध स्मार्तो के लिये है।

तदाह माधवः—'अरुणोदयवेधोऽत्र वेधः सूर्योदये तथा ।
उक्तौ द्वौ दशमीवेधौ वैष्णवस्मार्तयोः क्रमात् ॥'

उसे माधव ने कहा है—यहाँ पर वेध अरुणोदय तथा सूर्योदय में दशमी के दोनों वेध क्रम से वैष्णव एवं स्मार्तों के लिये हैं।

(केषाञ्चित् मते दशमीवेधकथनम्)

हेमाद्रिस्तु केषाञ्चिदर्धरात्रेऽपि दशमीवेधमाह—'अर्धरात्रे तु केषाञ्चिद्दशम्या वेध इत्यते । कपालवेध इत्याहुराचार्या ये हरिप्रियाः ॥ न तन्मम मतं यस्मात्त्रियामा रात्रिरिष्यते ॥' इति ब्रह्मवैवर्तात् ।

अस्यार्थः—'अनद्यतने लङ्' (पा. सू. ३।२।१११) इत्यत्र अतीतायाः रात्रेः पश्चिमयामद्वयमागामिन्या रात्रेः पूर्वयामद्वयं दिवसश्च सकल एषोऽद्यतनः कालः' इत्युक्तं महाभाष्ये । स एष वर्तमानः काल एकादश्यहोरात्र उपोष्यः । तन्मध्ये दशमीप्रवेशे विद्धा सा त्याज्या ।

कुछ लोगों के मत से हेमाद्रि ने दशमी वेध ब्रह्मवैवर्तपुराण मत से कहा है–किसीके मतसे आधी रात में भी दशमी वेध प्राप्त है, उसे हरिप्रिय आचार्यगण 'कपालवेध' कहते हैं। वह मत मेरा नहीं है; क्योंकि तीन पहर की ही रात्रि इष्ट है। इसका अर्थ यों है—'अनद्यतने लङ्' (पा० सू० ३।२।१११) इस सूत्र का अर्थ महाभाष्य में कहा है। बीती हुई रात्रि के पिछले दो प्रहर (यामद्वय) तथा आने वाली रात्रि के पूर्व दो प्रहर (यामद्वय) के मध्य का सारा दिवस 'अद्यतन काल' होता है। वह वर्तमान काल होता है। उसी अहोरात्र कालमें एकादशी का उपवास करे। उसी में दशमी का प्रवेश हो तो वह एकादशी विद्धा होती है। उसे त्याग कर दे।

अत एव हेमाद्रौ—'दशम्याः सङ्गदोषेण अर्धरात्रात्परेण तु । वर्जयेच्चतुरो यामान् सङ्कल्पार्चनयोः सदा ॥' इति दोष उक्तः । चतुरो यामान् दिवसस्येत्यर्थः ।

इसी से हेमाद्रि में दोष कहा है—आधी रात से पर दशमी के सङ्गदोष से दिन के चार प्रहरों को सदा संकल्प तथा अर्चन में त्याग दे।

स्वमते तु रात्रेस्त्रियामत्वात् प्रहरत्रयं पूर्वशेषः । तेन चतुर्थप्रहर एव वेधो युक्तः । सोऽप्यरुणोदय एव ।

हमारे मत में तो रात्रि के तीन प्रहर होने से तीन प्रहर पूर्व का शेष होता है, उससे चतुर्थप्रहर में ही वेध युक्त है। वह भी अरुणोदय में ही होता है।

सूर्योदयं विना नैव स्नानदानादिकः क्रमः । इति मार्कण्डेयपुराणात् ; 'प्रत्यूषोऽहर्मुखं कल्यम्'

इति कोशादरुणोदयमारभ्य सूर्यांशुप्रवृत्तेस्तत्रैव निषेधः। तेन मतभेदाद्व्यवस्थेति केचित्। कैमुतिकन्यायेनारुणोदयवेधस्यैवेयं स्तुतिरिति तु माधवः।

मार्कण्डेयपुराण मत से सूर्योदयके विना स्नानदानादि का क्रम नहीं होता है। 'प्रत्यूषोऽहर्मुखं कल्यम्' इस कोश से अरुणोदय से प्रारम्भकर ही सूर्य की किरणें प्रवृत्त होती हैं, उसी में निषेध है। उससे किसी के मतसे व्यवस्थामें भेद है। माधव का कहना है—कैमुतिकन्याय से (जिस जगह पदार्थ की सिद्धि हो जाती है वहाँ कैमुतिकन्याय लगता है। जैसा—प्रकृति में विहित पदार्थ के अभाव से प्रतिनिधि द्रव्य लेने पर सभी अंगों का अनुष्ठान प्रतिनिधि में अर्थात् सिद्ध है) अरुणोदय में ही वेध की यह स्तुति है।

यस्तु 'दिक्पञ्चदशभिस्तथा' इति वेधः, स उपवासातिरिक्तविषय इति माधवः।

जो दश और पन्द्रह घड़ी में वेध कहा है वह उपवासातिरिक्त विषय है—यह माधव मत है।

सर्वप्रकारवेधोऽप्ययमुपवासस्य दूषकः। सार्धसप्तमुहूर्तस्तु योगोऽयं बाधते व्रतम्॥ इति निगमादित्यलम्।

यह सब प्रकार का वेध उपवास का दूषक है। यह साढे सात मुहूर्त का योग व्रत को बाधता है-इस निगम से।

तत्र माधवमते वैष्णवैररुणोदयविद्धा त्याज्या। यदा त्वेकादश्येव शुद्धा सती वर्धते, द्वादशी वा उभयं वा, तदा परोपोष्या।

वहाँ पर माधव मत में वैष्णवगण अरुणोदय विद्धा त्याग दें। उसमें तो जब एकादशी ही शुद्ध होकर बढ़े या द्वादशी बढ़े या दोनों वृद्धि गत हो तो परदिन उपवास करे।

एकादशी द्वादशी वाऽधिका चेत्त्यज्यतां दिनम्।
पूर्वं ग्राह्यं तूत्तरं स्यादिति वैष्णवनिर्णयः॥ इति माधवोक्तेः।

एकादशी या द्वादशी अधिक हो तो पूर्वदिन त्याग दे, दूसरा दिन (उत्तर दिन) ग्रहण करे। यह वैष्णवों का निर्णय है। यह माधव का कहना है।

स्मार्तैस्तु सूर्योदयविद्धा त्याज्या। यदा त्वेकादशी शुद्धा सती वर्धते, द्वादशी च समा न्यूना वा, तदा गृहस्थैः पूर्वा, यतिभिरुत्तरा कार्या।

स्मार्त लोग तो सूर्योदयविद्धा त्याग दें। जब शुद्ध होकर एकादशी बढ़े तो तथा द्वादशी उसके समान या कम हो तो गृहस्थगण पहले करे तथा संन्यासीगण उत्तरा करें।

प्रथमेऽहनि सम्पूर्णा व्याप्याहोरात्रसंयुता। द्वादश्यां च तथा तात दृश्यते पुनरेव च॥ पूर्वा कार्या गृहस्थैश्च यतिभिश्चोत्तरा विभो॥ इति स्कान्दोक्तेः।

स्कन्दपुराण में कहा है—हे तात, पहले दिन सम्पूर्ण अहोरात्रयुक्त व्यापिनी एकादशी हो फिर द्वादशी में भी एकादशी हो तो गृहस्थगण पूर्वा संन्यासीगण उत्तरा करे।

वर्धमानोऽप्येवमाह। उभयवृद्धौ तु शुद्धा विद्धा वा सर्वेषां परैव। सम्पूर्णैकादशी यत्र प्रभाते पुनरेव सा। सर्वैरेवोत्तरा कार्या परतो द्वादशी यदि॥ इति नारदोक्तेः।

वर्धमान ने भी यही कहा है। उभयवृद्धि में तो, शुद्धा या विद्धा हो तो सबों को परा (दूसरी) ही करनी चाहिए। जहाँ संपूर्ण एकादशी हो और प्रातःकाल फिर वही हो तो सबों को उत्तरा करनी चाहिये। यदि पर द्वादशी हो तो। यह नारद ने कहा है।

द्वादशीमात्रवृद्धौ तु शुद्धायां पूर्वैव। न चेदेकादशी विष्णोर्द्वादशी परतः स्थिता। उपोष्यैकादशी तत्र यदीच्छेत्परमं पदम्॥ इति नारदोक्तेः।

क्योंकि नारद का कथन है—द्वादशीमात्र वृद्धि में तो शुद्धा में पूर्वा ही ले द्वादशी परमें स्थित हो तो परमपद इच्छुक विष्णुकी एकादशी दिनमें पर द्वादशी हो तो उसमें उपवास न करे।

द्वादशीमात्रवृद्धौ तु शुद्धाविद्धे व्यवस्थिते। शुद्धा पूर्वोत्तरा विद्धा स्मार्तनिर्णय ईदृशः॥' इति माधवोक्तेश्च। मदनरत्नेऽप्येवम्।

द्वादशी मात्र की वृद्धि में तो शुद्धा और विद्धा की व्यवस्था में पूर्वा शुद्धा होती है। उत्तरा विद्धा की होती है। इसप्रकार का स्मार्त निर्णय है। यह माधव ने कहा है। मदनरत्न में भी यही बात कही है।

'विद्धाऽप्यविद्धा विज्ञेया परतो द्वादशी न चेत् । अविद्धाऽपि च विद्धा स्यात्परतो द्वादशी यदि ॥' इति हेमाद्रौ पद्मपुराणवचनं, तदेकादश्या वृद्धौ ज्ञेयम् ।

जो हेमाद्रिमें पद्मपुराणका वचन है कि—यदि पर द्वादशी न हो तो विद्धा भी अविद्धा होती है और अविद्धा भी विद्धा होती है यदि पर द्वादशी हो तो । उसीको एकादशी की वृद्धिमें जानना चाहिये । अतः स्मार्तों को अविद्धा एकादशी का त्याग युक्त नहीं है ।

तदुक्तं माधवेन—'एकादशी द्वादशी चेत्युभयं वर्द्धते यदा ।
तदा पूर्वदिनं त्याज्यं स्मार्तैर्ग्राह्यं परं दिनम् ॥' इति ।

उसीको माधवने कहा है—जब एकादशी और द्वादशी इन दोनोंकी वृद्धि हो तो स्मार्तलोग पूर्वदिनको त्याग कर पर दिन ग्रहण करें ।

विद्धैकादश्यां द्वादशीमात्रवृद्धौ च सर्वेषां परैव । तत्र चैकादशीमात्रवृद्धौ गृहिणः पूर्वा, यतेरुत्तरा । पूर्वोक्तपाद्मोक्तेः ।

विद्धा एकादशी में तथा द्वादशीमात्र वृद्धिमें सबों को परा ही है । वहाँ पर (विद्ध) एकादशीमात्रकी वृद्धिमें गृहस्थगण पूर्वा और संन्यासी परा पूर्वोक्त (विद्धाऽप्यविद्धा ज्ञेया) पद्मपुराणवचन से करे ।

'एकादशी विवृद्धा चेच्छुक्ले कृष्णेऽविशेषतः । उत्तरां तु यतिः कुर्यात् पूर्वामुपवसेद् गृही ॥' इति प्रचेतसोक्तेः । एतच्छुद्धाविद्धातुल्यमिति माधवः ।

प्रचेताने भी कहा है—शुक्ल या विशेषकर कृष्णपक्ष में एकादशी की वृद्धिहो तो उत्तरा (दूसरी) यति और पूर्वा में गृहस्थ उपवास करें । यह शुद्धा विद्धा तुल्य है । यह माधवमत हैं ।

त्रयोदश्यां न लभ्येत द्वादशी यदि किञ्चन ।
उपोष्यैकादशी तत्र दशमी मिश्रिताऽपि च ॥' इति स्कान्दात् ।

स्कन्दका कथन है-त्रयोदशीमें कुछ भी द्वादशी न मिले तो दशमीमिश्रित एकादशीमें भी उपवास करे ।

'अविद्धानि निषिद्धैश्च न लभ्यन्ते दिनानि तु ।
मुहूर्तैः पञ्चभिर्विद्धा ग्राह्यैवैकादशी तिथिः ॥' इति ऋष्यशृङ्गोक्तेश्च ।

मुहूर्तपञ्चकमरुणोदयमारभ्य ज्ञेयम् । अन्यथोत्तरेऽह्नि एकादश्यभावासम्भवात् । तथा च स एव ।

ऋष्यश्रृंगका कहना है—निषिद्धोंसे अविद्ध दिन नहीं मिलते हैं । इससे पाँच मुहूर्तों से मिश्रित से विद्धा एकादशी तिथि ग्रहण करनी चाहिये ।

अरुणोदय से पाँच मुहूर्त जानना चाहिये । अन्यथा उत्तर—दूसरे दिन एकादशीके अभावका असंभव हो जायगा । उसीतरहसे उसने पुनः कहा है ।

'सर्वत्रैकादशी कार्या द्वादशीमिश्रिता नरैः । प्रातर्भवतु वा मा भूद्यस्मान्नित्यमुपोषणम् ॥' इति ।

मनुष्योंको सब जगह द्वादशी युक्त एकादशी करनी चाहिये प्रातःकाल हो या न हो । क्योंकि उपोषण नित्य है ।

यदपि हेमाद्रिणा 'शुद्धसमा शुद्धन्यूना वा अधिकद्वादशिका चेत्सर्वेषां परैव' इत्युक्तं, तदपि वैष्णवविषयम् । स्मार्तानां तु पूर्वैवेत्यविरोधः ।

जो यह हेमाद्रिने कहा है—शुद्धके समान, शुद्धसे न्यून या अधिक द्वादशीवाली एकादशी हो तो सबोंके मतसे परा ही होती है, वह भी वैष्णवविषयक है । स्मार्तों को तो पूर्वा ही है इसमें किसीका विरोध नहीं है ।

(अष्टादशैकादशीभेद कथनम्)

हेमाद्रिमते तूच्यते । तत्र—'शुद्धा विद्धा द्वयी नन्दा, त्रेधा न्यूनसमाधिकैः ।
षट्प्रकारा पुनस्त्रेधा द्वादश्यूनसमाधिकैः ।' इत्यष्टादशैकादशीभेदाः ।

हेमाद्रिमतमें कहता हूँ—एकादशीके अठारह भेद है—(शुद्धन्यूना न्यूनद्वादशिका १, शुद्धन्यूना समद्वादशिका २, शुद्धन्यूनाऽधिकद्वादशिका ३, शुद्धसमा न्यूनद्वादशिका ४, शुद्ध समासमद्वादशिका ५, शुद्ध-समाऽधिकद्वादशिका ६, शुद्धाऽधिका न्यूनद्वादशिका ७, शुद्धाऽधिका समद्वादशिका ८, शुद्धाऽधिकाऽधिक-

द्वादशिका ९, इति शुद्धाया नवभेदाः। विद्धन्यूना न्यूनद्वादशिका १, विद्धन्यूना समद्वादशिका २, विद्धन्यूना अधिक द्वादशिका ३, विद्धसमा न्यूनद्वादशिका ४, विद्धसमा समद्वादशिका ५, विद्धसमा अधिकद्वादशिका ६, विद्धाधिका न्यूनद्वादशिका ७, विद्धाधिका समद्वादशिका ८, विद्धाधिका अधिकद्वादशिका ९ इति विद्धाया नवभेदाः। सर्वं मिलित्वाऽष्टादशभेदाः)। शुद्धा, विद्धा और शुद्धाविद्धा इसप्रकार तीन भेद हुए। फिर—न्यून, सम और अधिक कथन को मानकर छः भेद हुए। इसीतरह फिर द्वादशी से न्यून, द्वादशी से सम और द्वादशी से अधिक, ये तीन भेद हैं।

तत्र शुद्धाऽधिका न्यूनद्वादशिका, शुद्धाऽधिका समद्वादशिका च सकामैः पूर्वा, निष्कामैरुत्तरा कार्या। 'प्रथमेऽहनि सम्पूर्णा' इति पूर्वोक्तस्कान्दात्।

उसमें शुद्धा अधिक हो और न्यून द्वादशी हो। शुद्धा अधिक हो समद्वादशी हो तो सकामी मनुष्य पूर्वा और निष्कामी उत्तरा—परा करें। 'प्रथमेऽह्नि संपूर्णा' इस पूर्वोक्त स्कन्द वचन से।

ऊनद्वादशिकायां तु विष्णुप्रीतिकामैरुपवासद्वयं कार्यम्।

उन द्वादशी में तो विष्णु की प्रीति के इच्छुक उपवासद्वय करे।

'सम्पूर्णैकादशी यत्र प्रभाते पुनरेव सा। लुप्यते द्वादशी, तस्मिन्नुपवासः कथं भवेत्॥ उपोष्ये द्वे तिथी तत्र विष्णुप्रीणनतत्परैः॥' इति वृद्धवसिष्ठोक्तेः।

वृद्धवसिष्ठने कहा है—जिस पक्ष में संपूर्ण एकादशी हो फिर प्रातःकाल वही हो तो तथा द्वादशीका लोप हो तो उपवास कैसे होगा। तब विष्णुकी प्रसन्नतार्थ दो तिथियों में उपवास करना चाहिये।

शुद्धन्यूना शुद्धाधिका शुद्धसमा विद्धन्यूना विद्धसमा वाऽधिकद्वादशिका चेत्सर्वेषां परैवेति हेमाद्रिः।

शुद्धन्यूना, शुद्धाधिका, शुद्धसमा, विद्धन्यूना या विद्धसमा और अधिकद्वादशिका हो तो सबोंके मतमें परा ही होती है, यह हेमाद्रिका मत है।

मदनरत्ने तु शुद्धाधिका परा। 'सम्पूर्णैकादशी यत्र' इति पूर्वोक्तेः। अन्या पूर्वा।

'शुद्धा यदा समा हीना समा हीनाऽधिकोत्तरा।

एकादशीमुपवसेन्न शुद्धां वैष्णवीमपि॥' इति स्कान्दात्। शुद्धा = एकादशी। उत्तरा = द्वादशी।

मदनरत्न में तो कहा है—'संपूर्णैकादशी यत्र' इस पूर्वोक्त वचन से शुद्धाधिका (अधिक द्वादशिका) परा ही होती है अन्या (शुद्ध न्यूनाशुद्ध समा वाऽधिकद्वादशिका) पूर्वा (पहली) होती है।

स्कन्दका वचन है—जब शुद्धा—एकादशी सम—(द्वितीय सूर्योदय पर्यन्त हो) या हीन हो या उत्तरा—द्वादशी सम, हीन या अधिक हो तो शुद्धा का ही उपवास करें। द्वादशी का उपवास न करें।

'न चेदेकादशी विष्णो।' इति नारदोक्तेश्च।

यत्तु—'अविद्धाऽपि च विद्धा स्यात्' इति पाद्मं तच्छुद्धाधिकापरम्।

'न चेदेकादशीविष्णो' इस नारदवाक्यसे जो कि अविद्धा भी विद्धा होती है यह पद्मपुराण का वचन है। वह शुद्धाधिका परक है।

यत्तु—सम्पूर्णैकादशी त्याज्या परतो द्वादशी यदि।

उपोष्या द्वादशी शुद्धा द्वादश्यामेव पारणम्॥ इत्यादि, तद्वैष्णवपरम्। स्मार्तानां तु पूर्वैवेत्युक्तम्। विद्धन्यूना समद्वादशिका तु मुमुक्षूणां पुत्रवतां च परा। अन्येषां पूर्वा। पुत्रवतोऽपि पूर्वेति

१—यहाँ यह सन्देह है कि एकाधिकारिक दो उपवास किसप्रकार कर सकता है। एकनिमित्तके लिए दो आवृत्ति करना उचित नहीं है, किन्तु इसे गृही और यति इस भेद से निहितपक्ष का अनुवाद मानना चाहिए, ऐसा होने पर किसी एक दूसरे अधिकारी की कल्पना नहीं करनी पड़ेगी। तिथि इस द्विवचन में द्वन्द्वसमास के एक शेष होने पर इतरेतरयोग की प्रतीति होती है। अतः उसके अनुरोध से दूसरे अधिकारी का होना भी उचित है।

मदनरत्ने । विद्धन्यूना न्यूनद्वादशिका च सैव सर्वैः कार्येति हेमाद्रिः । मुमुक्षूणां पराऽन्येषां पूर्वेति मदनरत्ने ।

जो सम्पूर्ण एकादशीका त्याग करे यदि परद्वादशी हो तो, शुद्ध द्वादशी में उपवास तथा द्वादशीमें ही पारणा करे इत्यादि वैष्णवपरक है।

स्मार्तों की तो पूर्वा ही है—यह कहा है। विद्धन्यूना समद्वादशिका तो मुमुक्षुओं को तथा पुत्रवालोंको परा और अन्योंको (पुत्रवद्भिन्नगृहिणाम्) पूर्वा है। मदनरत्न में कहा है—पुत्रवान् भी पूर्वा करें। हेमाद्रि कहना है—विद्धन्यूना और न्यूनद्वादशिका, सबोंको करना चाहिये। मदनरत्नमें लिखा है—मुमुक्षुओं को परा तथा अन्योंको पूर्वा है।

विद्धसमा समद्वादशिकोनद्वादशिका च मुमुक्षुभिः पराऽन्यैः पूर्वा कार्या ।

विद्धसमा समद्वादशिका और ऊनद्वादशिका को करना चाहिये। मुमुक्षुओंको परा तथा अन्य पूर्वा करें।

'दशमीमिश्रिता पूर्वा द्वादशी यदि लुप्यते ।
शुद्धैव द्वादशी राजन्नुपोष्या मोक्षकाङ्क्षिभिः ॥' इति व्यासोक्तेः । मोक्षकांक्षिग्रहणादन्येषां पूर्वैव।

व्यासने कहा है—यदि द्वादशी तिथि वृद्धि को प्राप्त न हो तो हे राजन्, दशमी मिश्रित पूर्वा करे। शुद्ध ही द्वादशी को तो मोक्ष की इच्छावाले उसमें उपवास करें। मोक्षाकांक्षीके ग्रहणसे अन्योंकी पूर्वा ही है।

'सर्वत्रैकादशी कार्या द्वादशीमिश्रिता नरैः ।
प्रातर्भवतु वा मा वा यतो नित्यमुपोषणम् ॥' इति पाद्मोक्तेः । विद्धाधिका समद्वादशिका सर्वेषां पूर्वैव ।

पद्मपुराणमें कहा है—सर्वत्र मनुष्यों को द्वादशी मिश्रित एकादशी करना चाहिये। प्रातःकाल हो या न हो क्योंकि उसमें उपवास नित्य है। विद्धाधिका तथा समद्वादशिका सबोंको पूर्वा ही है।

'पारणाहे न लभ्येत द्वादशी कलयाऽपि चेत् । तदानीं दशमीविद्धाऽप्युपोष्यैकादशी तिथिः ॥' इति ऋष्यशृङ्गोक्तेश्च ।

माधवमते तु अत्र गृहिणां पूर्वा, यतेरुत्तरा। विद्धाधिका न्यूनद्वादशिका मोक्षपापक्षय-विष्णुप्रीतिकामैः परा कार्या । गृहस्थेन तु नक्तं कार्यम् ।

ऋष्यशृंगने भी कहा है—पारणामें द्वादशी एक कला भी न मिलती हो तो एकादशी (दशमीविद्धा एकादशी) में उपवास करे। समद्वादशिका तो सबोंकी पूर्वा ही है।

यदि पारणाके दिन एक कला भी द्वादशी न मिले। अर्थात्—पारणादिन में द्वादशी के अलाभ में तो दशमीविद्धा एकादशी को उपवास करे।

माधवमतमें—यहाँ पर गृहस्थोंको पूर्वा तथा यतिको उत्तरा है। विद्धाधिका (समद्वादशिकाऽधिका-द्वादशिका च सर्वेषां परैवेति पाठः) न्यूनद्वादशी का मोक्ष तथा पापक्षयविष्णुप्रीतिकामनावाले परा करें तथा गृहस्थ तो नक्त (नक्तभोजन) करे।

'एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे त्रयोदशी ।
उपवासं न कुर्वीत पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥' इति कौर्मे 'दिनक्षये उपवासनिषेधात् ।

कूर्मपुराण में लिखा है—यदि एकादशी और द्वादशी हो तथा रात्रिशेष में त्रयोदशी हो तो पुत्र-पौत्रसे युक्त उपवास न करें। दिनक्षयमें उपवास का निषेध है।

'दशम्यैकादशीविद्धा द्वादशी च क्षयं गता ।
क्षीणा सा द्वादशी ज्ञेया नक्तं तु गृहिणः स्मृतम् ॥' इति वृद्धशातातपोक्तेश्च ।

वृद्धशातातपने भी कहा है—यदि दशमी तिथि एकादशी से विद्धा हो और द्वादशीका क्षय हो तो वह द्वादशी क्षीणा जाननी चाहिये, उसमें गृहस्थको नक्तव्रत (नक्तभोजन) कहा है।

गृहिणः पूर्वत्रोपवासः। एकादश्याः शुद्धन्यूनत्वे शुद्धसमत्वे वा द्वादश्या न्यूनसमत्वयोरेकादश्यामुपवासः।

गृहस्थ को पहले में उपवास करना चाहिये। एकादशी में शुद्धन्यून या शुद्धसमत्व में द्वादशी के न्यून समत्व में तो एकादशीमें उपवास करे।

यानि तु—'दशम्यनुगता हन्ति द्वादशं द्वादशीफलम्। धर्मापत्यधनायूंषि त्रयोदश्यां तु पारणम्॥' इति कौर्मादीनि दशमीवेधत्रयोदशीपारणयोर्निषेधकानि तानि विहितभिन्नपराणि। अत्र मूलवचनानि तद्व्यवस्था चाऽऽकरे ज्ञेया।

और जो दशमी में वेध और त्रयोदशी में पारणा के निषेध वचन हैं वह विहित वचनों से भिन्न दूसरे वचन हैं। 'दशमीसे अनुगता एकादशी, त्रयोदशी में पारणा, बारह द्वादशी के फल को नष्ट करती है तथा धर्म, पुत्र, धन और आयु का नाश करती है। यहाँ पर मूल वचनों को एवं उनकी व्यवस्था को आकर ग्रन्थ में समझना चाहिये।

यत्तु कालहेमाद्रौ—'बहुवाक्यविरोधेन सन्देहो जायते यदा। द्वादशी तु तदा ग्राह्या त्रयोदश्यां तु पारणम्॥' इति मार्कण्डेयोक्तेः'

'सन्दिग्धेषु च वाक्येषु द्वादशीं समुपोषयेत्। तथा—

'विवादेषु च सर्वेषु द्वादश्यां समुपोषणम्। पारणं च त्रयोदश्यामाज्ञेयं मामकी मुने॥' इति पाद्मोक्तेश्च वेधसन्देहे ज्योतिर्विदां विप्रतिपत्तौ वा परा कार्येत्युक्तम्, तद्वैष्णवविषयमित्यलं बहुना।

जो कालहेमाद्रि में मार्कण्डेयने कहा है—जब बहुत वाक्यके विरोधसे यदि सन्देह हो जाय तो द्वादशी ग्रहण करे और त्रयोदशी में पारणा करे।

संदिग्ध वाक्यों में द्वादशीको उपवास करे। और पद्मपुराण का वचन है—हे मुने, मेरी यह आज्ञा है—सब विवादोंमें द्वादशीको उपवास तथा त्रयोदशी में पारणा करे। वेध के सन्देह में या ज्योतिर्विदोंके या विप्रतिपत्तिमें परा करे-यों कहा है। वह वैष्णवविषयक है। इसमें विस्तार करना व्यर्थ है।

(अथात्रोपयुक्तं किञ्चिदुच्यते)

अथात्रोपयुक्तं किञ्चिदुच्यते। तत्र दशम्यामेकादशीयोगे दशमीमध्य एव भोजनं कार्यम्। 'एकादश्यां न भुञ्जीत' इति तस्या एव निमित्तत्वात्। 'निषेधस्तु निवृत्त्यात्मा कालमात्रमपेक्षते॥' इति देवलोक्तेश्च।

उसके बाद उपयुक्त कुछ कहना है। दशमी में एकादशी के योग में [1]दशमी के मध्यमें ही भोजन करे। एकादशी में न भोजन करे क्योंकि उसका ही निमित्त होनेसे। देवलने भी कहा है-निषेध निवृत्यात्मक होने के कारण कालमात्र की अपेक्षा करता है।

केचित्तु एकादशीव्रताङ्गत्वेन पूर्वेद्युरेकभक्तविधानाद्विधिस्पृष्टे च निषेधानवकाशान्न काम्यव्रताङ्गे भोजननिषेधः प्रवर्तते। तेनैकादशीमध्येऽपि पूर्वदिने भोजनमित्याहुः।

कोई कहते हैं एकादशी व्रतांग होनेसे पहले दिन (दशम्यामेकभक्तस्तु मांसमैथुनवर्जितः। एकादशीमुपवसेत्पक्षयोरुभयोरपि। देवतास्तस्य तुष्यन्ति कामितं चास्य सिध्यति॥) एकभक्त के विधान से विधि के स्पर्श में निषेध का अवकाश न होने से काम्यव्रतांग में भोजन का निषेध प्रवृत्त नहीं होता है। उससे एकादशी के मध्य में भी पूर्व दिन भोजन कहा है।

१—एकभक्तविधौ चानृतवदनादिनिवृत्तिवद् व्रताङ्गतया द्वितीयभोजननिवृत्तिरेव विधीयते लाघवात्, न तु तद्विशेष्यं भोजनमपि गौरवात्। तेन शुद्धाधिकद्वादश्यामुपवासद्वयं भवति।

(अथाधिकारीविचारः)

अत्राधिकारी माधवीये कात्यायनेनोक्तः—'अष्टवर्षाधिको मर्त्यो ह्यशीतिन्यूनवत्सरः।
एकादश्यामुपवसेत्पक्षयोरुभयोरपि ॥' इति ।

माधवीय में कात्यायन ने अधिकारी कहा है—आठ वर्ष से अधिक और अस्सी वर्ष की अवस्था से न्यून अवस्थावाला मनुष्य दोनों पक्षोंकी एकादशी में उपवास को करे।

भविष्ये—'ब्रह्मचारी च नारी च शुक्लामेव सदा गृही ॥' इति ।

भविष्य का कथन है—ब्रह्मचारी और विधवा स्त्री सदैव शुक्ला में ही उपवास करें।

यत्तु विष्णुः—'पत्यौ जीवति या नारी उपोष्य व्रतमाचरेत् ।
आयुष्यं हरते भर्तुर्नरकं चैव गच्छति ॥' इति तद्भर्त्रननुज्ञाविषयमिति प्रागुक्तम् ।

जो विष्णु ने कहा है—पतिके जीवनकालमें जो नारी उपवासको करती है वह पतिकी आयु को हरती है तथा नरकमें जाती है। वह पतिकी आज्ञाके बिना होनेपर है। यह बात पूर्व भी कही जा चुकी है।

(उपवासाशक्तौ विचारः)

उपवासासामर्थ्ये तु मार्कण्डेयकौर्मयोः—'एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च ।
उपवासेन दानेन न निर्द्वादशिको भवेत् ॥'

अत्र—एकभक्तेन यो मर्त्य उपवासव्रतं चरेत् । इत्येकभक्तादिषूपवासशब्दस्तद्धर्मातिदेशार्थः । तेन तत्प्रयुक्ताः सर्वे धर्माः तत्स्थानापन्नेऽपि भवन्ति । सङ्कल्पमन्त्रे चैकभक्तादिपदेनोहः कार्य इति मदनरत्ने । तथाऽसामर्थ्ये प्रतिनिधिना कारयेदिति प्रागुक्तम् ।

उपवासकी असामर्थ्य में तो मार्कण्डेयपुराण और कूर्मपुराणमें यों कहा है—दिन में एक बार [1]हविष्यान्न भोजन से तथा बिना मांगे अन्न से उपवास एवं दान के द्वारा एकादशी का व्रत होता है। वह निर्द्वादशिक नहीं होता है। यहाँ पर एकभक्त के द्वारा जो मनुष्य उपवासरूपी व्रत को करता है। इस वचन में एक भक्त आदि में उपवासशब्द का प्रयोग है उपवास के धर्मों का अतिदेश करनेवाला है। अर्थात् ले आनेवाला है। इसलिये उपवास में प्रयुक्त सभी धर्म उसके स्थानापन्न में भी होते हैं। संकल्पमन्त्र में एक भक्तादिपदसे ऊह करना चाहिये। यह मदनरत्न में कहा है। सामर्थ्याभाव तो प्रतिनिधिसे करवा दे। यह बात पूर्व कही गई है।

(अथ व्रताकरणे प्रायश्चित्ताकथनम्)

व्रताकरणे प्रायश्चित्तमाह माधवीये कात्यायनः—
'अर्के पर्वद्वये रात्रौ चतुर्दश्यष्टमी दिवा। एकादश्यामहोरात्रं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥' इति।

व्रतके न करनेपर प्रायश्चित्त माधवीयमें कात्यायनने कहा है—रविवार, अमावास्या और पूर्णिमा द्वय पर्व में, रात्रिमें, चतुर्दशी तथा अष्टमीको दिनमें, एकादशी में अहोरात्र भोजन करने पर [2]चान्द्रायण व्रत करे।

(अथ काम्यव्रतविधिप्रकारः)

अथ काम्यव्रतविधिः लघुनारदीये—'दशम्यादि महीपाल त्रिदिनं परिवर्जयेत् । गन्धताम्बूलपुष्पादि स्त्रीसंभोगं महायशाः ॥'

लघुनारदीयमें कहा है कि—हे महीपाल, दशमीसे तीन दिनतक गन्ध, पुष्प, ताम्बूल आदि तथा स्त्रीसम्भोग त्याग करें।

१—'नक्तम्=हविष्यान्नम्, इति नक्तमुक्तम्, तदसंभवे अयाचितमेकभक्तं वा कार्यमित्यत्र तात्पर्यम्। अत्र च एक भक्तेन नक्तेन बालवृद्धातुरः क्षिपेत्। पयोमूलफलैर्वाऽपि न निर्द्वाशिको भवेत् ॥

२—प्रमादादिनाऽकरणे यवमध्यम्, नास्तिक्यादिना तु पिपीलिकामध्यम्, प्रतिनिमित्तं नैमित्तिकावृत्तिश्च। अशक्तस्याकामतश्चार्धं कल्प्यम्। दक्षिणा तु शक्तस्य कामतो वा त्यागेऽष्टगावः। अशक्तादेश्च तस्रः।

(अथ दशम्यां विधिकथनम्)

तत्र दशम्यां विधिः कौर्मे—

'कांस्यं मांसं मसूरांश्च चणकान् कोरदूषकान् । शाकं मधु परान्नं च त्यजेदुपवसन् स्त्रियम् ॥'

तथा—'शाकं मांसं मसूरांश्च पुनर्भोजनमैथुने । द्यूतमत्यम्बुपानं च दशम्यां वैष्णवस्त्यजेत् ॥'

उसमें दशमीविधिमें कूर्मपुराणमें कहा है—कांस्यपात्रमें भोजन, मांस, मसूर, चना, कोदों, शाक, मधु, परान्न और स्त्री इनको उपवासवाला मनुष्य त्याग दे तथा शाक, मांस, मसूर, पुनर्भोजन, मैथुन, जुआ तथा अधिक अम्बुपान इनको वैष्णव दशमी में त्याग दे ।

मदनरत्ने नारदीये—'अक्षारलवणाः सर्वे हविष्यान्ननिषेविणः ।
अवनीतल्पशयनाः प्रियासङ्गमवर्जिताः ॥'

मदनरत्नमें नारदपुराण का वचन है—सब तरह का [1]क्षार और निमक न खाकर हविष्यान्न का सेवन करे । भूमिमें शयन करे । स्त्री के साथ संगम न करें ।

(अथ व्रतघ्नान्याह)

हेमाद्रौ देवलः—असकृज्जलपानाच्च सकृत्ताम्बूलचर्वणात् ।
उपवासः प्रणश्येत दिवास्वापाच्च मैथुनात् ।

हेमाद्रिमें देवलने कहा है—बार बार जलपान से एक बार पान खानेसे, दिनमें सोने से तथा मैथुन से उपवास नष्ट हो जाता है ।

(अथाशक्तौ विशेषः)

अशक्तौ तु मदनरत्ने देवलः—'अत्यये चाम्बुपानेन नोपवासः प्रणश्यति ।' अत्यये = कष्टे ।

अशक्तिमें तो मदनरत्नमें देवलने कहा है—कष्टमें जलपान करने पर उपवासका नाश नहीं होता है ।

विष्णुरहस्ये—'गात्राभ्यङ्गं शिरोऽभ्यङ्गं ताम्बूलं चानुलेपनम् ।
व्रतस्थो वर्जयेत्सर्वं यच्चान्यत्र निराकृतम् ॥'

विष्णुरहस्य में लिखा है—शरीर एवं शिरमें तेल लगाने वाला, ताम्बूल तथा अनुलपेन करनेवाला, व्रतस्थी सब त्याग दे और जो अन्यत्र निराकरण किया है उसे भी त्याग दे ।

(एषु प्रायश्चित्तमुक्तम्)

एषु प्रायश्चित्तमुक्तं निर्णयामृते संग्रहे—'स्तेनहिंसकयोः सख्यं कृत्वा स्तैन्यं च हिंसनम् । प्रायश्चित्तं व्रती कुर्याज्जपेन्नामशतत्रयम् ॥ मिथ्यावादे दिवास्वापे बहुशोऽम्बुनिषेवणे । अष्टाक्षरं व्रती जप्त्वा शतमष्टोत्तरं शुचिः ॥ प्रणवं पूर्वमुच्चार्य नमो नारायणः पदम् । चतुर्थ्यन्तं वदेत्पश्चान्मनुरष्टाक्षरो मतः ॥ ॐ नमो नारायणायेत्यष्टाक्षरः ।

निर्णयामृत तथा संग्रहमें प्रायश्चित्त कहा है—यदि व्रती चोर और हिंसक की मित्रता कर चोरी एवं हिंसा करे तो तीनसौ नाम (नाम्नां=विष्णुनाम्नां शतत्रयं न त्वेवमेव नाम शतत्रय=वारम् । संख्यायाः पृथक्त्वनिवेशात्) मन्त्र का जपकर प्रायश्चित्त करे । झूठ बोलनेपर, दिन में सोनेपर और बहुत बार जलको पीने पर एकसौ आठ बार अष्टाक्षर मन्त्र से 'ॐनमो नारायणाय' इस मन्त्र से जप करने से शुद्ध हो जाता है । प्रणवपूर्वक नमो नारायण पद चतुर्थ्यन्त उच्चारण करे । यह अष्टाक्षर मन्त्र माना गया है ।

वहींपर पैठीनसिने कहा है-ताम्बूलचर्वण में, स्त्रीसंभोगमें एवं मांससेवन में यदि व्रत लोप हो जाता है । तो उस उपवास को न करके कृष्णा एकादशी की तरह किञ्चित् भोजन करे ।

१—अक्षारलवणा इति पाठेऽक्षाराश्च लवणाश्चेति विग्रहः । अक्षारलवणा इति पाठेऽपि क्षाराश्च लवणानि चेति समासानन्तरं नञ् समासः । समान एवार्थः । क्षारलवणं खारीति प्रसिद्धम् । तन्निषेधोऽयमिति केचित् । तन्न, क्षारलवणपदयोः एकवैयर्थ्यात् ।

तत्रैव पैठीनसिः—'ताम्बूलचर्वणे स्त्रीसंभोगे मांसनिषेवणे ।
व्रतलोपो न चेत्कुर्यात्कृष्णावद्भुजिवर्जनम् ॥' इति ।

कृष्णैकादशीवद्भोजननिषेधमात्रपरिपालने तु ताम्बूलचर्वणादावपि न दोष इत्यर्थः । सम्भोगे ऋतुकालादन्यत्र ।

कृष्ण एकादशी की तरह भोजननिषेधमात्रपरिपालनमें तो ताम्बूलचर्वणादिमें भी दोष नहीं है-यह अर्थ है । संभोग तो ऋतुकाल से अन्यत्र का निषेध कहा है ।

रेतःसेकात्मसम्भोगमृतेऽन्यत्र क्षयः स्मृतः ॥' इति कात्यायनोक्तेः ।

कात्यायन ने कहा है कि—ऋतुकाल के अन्यत्र समय में संभोग करने से व्रत क्षय होता है ।

हेमाद्रौ वसिष्ठः—उपवासे तथा श्राद्धे न कुर्याद्दन्तधावनम् ।
दन्तानां काष्ठसंयोगो दहत्यासप्तमं कुलम् ॥ काष्ठग्रहणान्मृल्लोष्ठाद्यानषेध इति हेमाद्रिः ।

हेमाद्रिमें वसिष्ठने कहा है—उपवास तथा श्राद्धमें दन्तधावन न करे । दाँतों में काष्ठका संयोग सात कुलोंको दग्ध करदेता है । हेमाद्रिका मत है—काष्ठग्रहणसे मिट्टी ढेला आदि का निषेध नहीं है ।

विष्णुरहस्ये—श्राद्धोपवासदिवसे खादित्वा दन्तधावनम् ।
गायत्र्या शतसंपूतमम्बु प्राश्य विशुद्ध्यति ॥

विष्णुरहस्यमें लिखा है—जो श्राद्ध और उपवास दिनमें दतवन करताहै वह सौ बार गायत्री से शुद्ध जल को पीकर शुद्ध हो जाता है ।

निर्णयामृते व्यासः—वर्जयेत्पारणे मांसं व्रताहेऽप्यौषधं सदा । इति ।

निर्णयामृत में व्यास का कथन है—सदा पारणा में मांस और व्रतदिन में औषधी त्याग करे । मुख्यरूपसे व्रतदिन में मांस-वसा-रुधिर-आदिका त्याग करे ।

(एकादश्यां श्राद्धप्राप्तौ)

एकादश्यां श्राद्धप्राप्तौ माधवीये कात्यायन आह—उपवासो यदा नित्यः श्राद्धं नैमित्तिकं भवेत् । उपवासं तदा कुर्यादाघ्राय पितृसेवितम् ॥ मातापित्रोः क्षये प्राप्ते भवेदेकादशी यदि । अभ्यर्च्य पितृदेवांश्च आजिघ्रेत्पितृसेवितम् ॥ इति । हेमाद्र्यादिसर्वनिबन्धेष्वप्येवम् । एतेनैकादशी-निमित्तकं श्राद्धं द्वादश्यां कार्यमिति वदन्तः परास्ताः ।

एकादशीमें श्राद्ध की प्राप्तिमें माधवीय में कात्यायन ने कहा है—यदि उपवास नित्य है और श्राद्ध नैमित्तिक है तो पितरोंको दिये हुए पदार्थ का आघ्राणकर उपवास करे । यदि माता-पिता की क्षयतिथि दिन एकादशी हो तो पितर एवं देवताओं का अर्चन कर पितरों को दिये हुए पदार्थो को सूँघ लेवे । हेमाद्रि आदि सब ग्रन्थनिबन्धों में भी ऐसा ही है । इससे एकादशी निमित्त श्राद्धको द्वादशी तिथि में करे । यह कहनेवाले परास्त हुए ।

किञ्च महालये—स पक्षः सकलः पूज्यः श्राद्धषोडशकं प्रति । इति श्रुतं षोडशत्वम्, पौषैका-दश्यांच मन्वादिश्राद्धं, क्षयाहापरिज्ञाने च तत्पक्षैकादश्यां विहितं श्राद्धं बाधितमेव स्यात् ।

और भी महालयमें कहा है—सोलहश्राद्धका संपूर्णपक्ष पूज्य है । ऐसा सुना है षोडशत्व और पौष एकादशी में मन्वादिश्राद्ध सुना गया है । क्षयाह की जानकारी न होने से तो उस पक्ष की एकादशी में विहित श्राद्ध बाधित ही होता है ।

यदपि स्मृतिचन्द्रिकास्थं पठन्ति—अन्नाश्रितानि पापानि तद्भोक्तुर्दातुरेव वा । मज्जन्ति पितरस्तस्य नरके शाश्वतीः समाः ॥ इति । तस्यापि रागप्राप्तिभुजिगोचरस्य वैधं श्राद्धं गोचरयतां महत्साहसमित्यलम् ।

जो स्मृतिचन्द्रिकामें दिये हुए प्रमाण को पढ़ते हैं भोक्ता तथा दाता के पाप अन्नमें रहते हैं । जो व्रत

में अन्न को खाता है उसके पितर बहुत समय तक नरकों में डूबते रहते हैं। यह वचन रागप्राप्त भोजनके निषेध को वैध श्राद्ध माननेवालों का बड़ाही साहस है। अर्थात् उनका प्रलाप ही है।

योऽपि—अकृतश्राद्धनिचता जलपिण्डं विना कृताः। इति लघुनारदीये एकादश्यां श्राद्धादिनिषेधः स मातापितृभिन्नविषयः। पूर्ववाक्ये तद् ग्रहणात्। यद्वाश्राद्धनिचयः = श्राद्धे प्रतिग्रहः।

लघुनारदीय में लिखा है—एकादशीके दिन जो श्राद्धका निषेध है। वह माता-पिताके श्राद्धसे भिन्न समझना चाहिये। क्योंकि पूर्ववाक्यमें माता-पिता का ग्रहण किया गया है अथवा श्राद्ध का प्रतिग्रह लेनेवाले के लिये यह निषेध है। श्राद्ध करनेवाले के लिये नहीं है।

(अथाव्रतघ्नान्याह)

मदनरत्ने देवलः—सर्वभूतभयं व्याधिः प्रमादो गुरुशासनम्।
अव्रतघ्नानि पठ्यन्ते सकृदेतानि शास्त्रतः॥

अब व्रत के नष्ट न करनेवालोंको कहता है। मदनरत्नमें देवलने कहा है कि—सब भूतों से व्रत करने में या मदनरत्न मतसे सर्पादिकों से भय, व्याधिरहित, प्रमाद तथा गुरुशासन (आज्ञा)। ये सब एक वार शास्त्रानुसार अव्रतघ्न होते हैं।

स्कान्देऽपि—अष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः।
हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम्॥ इदं चातिसंकष्टविषयम्।

स्कन्दपुराणमें भी कहा है—ये आठ व्रतघ्न नहीं होते हैं—जल, मूल, फल, दूध, हवि, ब्राह्मणेच्छा, गुरु का वचन तथा औषध—यह अतिसंकटविषयपरक है।

नारदीये—अनुकल्पो नृणां प्रोक्तः क्षीणानां वरवर्णिनि। मूलं फलं पयस्तोयमुपभोग्यं भवेच्छुभे॥ नत्वेव भोजनं कैश्चिदेकादश्यां बुधैः स्मृतम्॥ इति।

नारदपुराणमें कहा है—हे वरवर्णिनि, क्षीण मनुष्योंके लिए व्रत में ये अनुकल्प कहे गये हैं। हे शुभे, मूल-मूली आदि, फल, दूध, जल उपभोग्य हैं। इसतरह एकादशी को किसी भी बुद्धिमानों ने भोजन नहीं कहा है।

(अस्यापवादः)

शयने च मदुत्थाने मत्पार्श्वपरिवर्तने। नरो मूलफलाहारी हृदि शल्यं समार्पयेत्॥ इदं चातिसंकटविषयम्। एते चाविरोधिनी निर्णयाः सर्वत्रतेषु ज्ञेयाः।

इसका अपवाद (निषेध) भी है—मेरे सोने, जागने और करवट लेनेपर जो मनुष्य कन्द मूल या फलहारी होता है वह मेरे हृदयमें बाण अर्पण करता है। यह अत्यन्त सङ्कटविषयक है। सब व्रतोंमें ये सब अविरोधी निर्णय जानना चाहिये।

(अथैकादश्यां सङ्कल्पकथनम्)

तत्रैकादश्यां सङ्कल्पः—गृहीत्वादुम्बरं पात्रं वारिपूर्णमुदङ्मुखः।
उपवासं तु गृह्णीयाद्यद्वावार्येऽव धारयेत्॥ इति माधवीये वाराहोक्तेः।

वहाँ पर एकादशीमें संकल्प यों है—जलसे भरे उदुम्बर पात्रको ग्रहणकर उत्तरमुख हो उपवासका ग्रहण करे या जलमात्र ग्रहण करे। यह माधवीय में वाराहने कहा है।

(अथ मन्त्रकथनम्)

मन्त्रस्तु विष्णुः—एकादश्यां निराहारः स्थित्वाऽहमपरेऽहनि।
भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत॥ इति।

विष्णुने मंत्र यों कहा है—हे अच्युत, मैं एकादशी को [1]निराहारमें स्थित होकर दूसरे दिन भोजन करूँगा। हे पुण्डरीकाक्ष, आप मेरी रक्षा कीजिये।

---

[1] फलाहार इत्याद्यूहो बोध्यः। देशकालौ सङ्कीर्त्य—'विष्णवनुज्ञया एकादशीव्रतमहं करिष्ये' इति।

(अथ शैवादीनां विशेषः)

शैवादीनां तु हेमाद्रौ सौरपुराणे—सावित्र्याप्यथ वा नाम्ना सङ्कल्पं तु समाचरेत् ।
शिवादिगायत्र्यो यजुर्वेदे प्रसिद्धाः ।

शैवादिकोंको तो हेमाद्रिमें सौरपुराण का कथन है–गायत्री या नामसे संकल्प करे । शिव–आदि की भी गायत्री (ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि । तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ॥) यजुर्वेद में प्रसिद्ध है ।

(पुष्पाञ्जलिविचारः)

वाराहे—इत्युच्चार्य ततो विद्वान् पुष्पाञ्जलिमथार्पयेत् । ततस्तज्जलं पिबेत् ।

वाराहपुराण में कहा है—इसप्रकार उच्चारणकर पात्र में या हाथ में संकल्प वाक्योच्चारण सहित जल को धारणकर संकल्प करे । विद्वान् पुष्पाञ्जलि को अर्पण करे । फिर उस जल का पान करे ।

(अष्टाक्षरमन्त्रेणाभिमन्त्रितजलस्य पानकथनम्)

अष्टाक्षरेण मन्त्रेण त्रिर्जप्तेनाभिमन्त्रितम् ।
उपवासफलं प्रेप्सुः पिबेत्पात्रगतं जलम् ॥ इति कात्यायनोक्तेः ।

कात्यायन ने कहा है कि—अष्टाक्षर मन्त्र (ॐ नमो नारायणाय) से तीन वार मन्त्र के द्वारा अभिमन्त्रितकर उस पात्रस्थित जल को उपवास के फल की इच्छा करनेवाला पीजाय ।

(माधवमते सङ्कल्पविचारः)

मध्यरात्रे उदये वा दशमीवेधे रात्रौ सङ्कल्प इति माधवः ।

माधव का मत है कि—मध्यरात्रि में या उदय में दशमीवेध में रात्रि में संकल्प करे ।

(सङ्कल्पार्चनयोः विचारः)

दशम्याः सङ्गदोषेण अर्धरात्रात्परेण तु । वर्जयेच्चतुरो यामान् सङ्कल्पार्चनयोः सदा ॥

नारदपुराण में कहा है कि—आधी रात से पर तो दशमी के संग दोष से सदा संकल्प एवं अर्चन में चारयाम (प्रहर) को वर्जित करे ।

(विष्णुपूजने विचारः)

विद्धोपवासेऽनश्नंस्तु दिनं त्यक्त्वा समाहितः । रात्रौ संपूजयेद्विष्णुं सङ्कल्पं च तदाऽऽचरेत् ॥ इति नारदीयोक्तेः ।

विद्धोपवास में दिन को त्यागकर समाहित अर्थात्–सावधान मन से रात्रि में भगवान् विष्णु का पूजन करे तभी संकल्प करे ।

(देवस्याग्रे जागरणकथनम्)

तत्रैव पूजामभिधाय—देवस्य पुरतः कुर्याज्जागरं नियतो व्रती ।

वहीं पर ही पूजा को कहकर व्रती नियमपूर्वक होकर देवता के आगे रात्रि में जागरण करे ।

(द्वादश्यां निवेदनमन्त्रः)

द्वादश्यां निवेदनमन्त्र उक्तः कात्यायनेन—अज्ञानतिमिरान्धस्य व्रतेनानेन केशव ।
प्रसीद सुमुखो नाथ ज्ञानदृष्टिप्रदो भव ॥ इति ।

कात्यायन ने द्वादशी में निवेदन मन्त्र कहा है—हे केशव, अज्ञानरूपी अन्धकार से अन्धा हुए मुझे इस व्रत से प्रसन्नमुख होकर हे नाथ, ज्ञानरूपी दृष्टि को दें ।

(ब्राह्मणभोजनविचारः)

नारदीये—ब्राह्मणान् भोजयेच्छक्त्या दद्याद्वै दक्षिणां ततः ।

नारदीय में कहा है—यथाशक्ति से ब्राह्मणों को भोजन करावें तथा दक्षिणा दे । (ततः स्वबन्धुभिः सार्धं नारायणपरायणः । कृतपञ्चमहायज्ञः स्वयं भुञ्जित वाग्यतः ॥)

(उपवासं कृत्वा तुलसीमिश्रितभोजने हत्याशमनकथनम्)

स्कान्दे—कृत्वा चैवोपवासं तु योऽश्नाति द्वादशीदिने। नैवेद्यं तुलसीमिश्रं हत्याकोटिविनाशनम्।

स्कन्दपुराण में कहा है—जो उपवास को कर द्वादशी दिन में भोजन करता है। अर्थात्—तुलसी मिश्रित नैवेद्य को खाता है उसकी करोड़ों ही हत्या का विनाश होता है।

(द्वादश्यां वर्ज्यानि)

द्वादश्यां च वर्ज्यान्याह बृहस्पतिः—दिवा निद्रां परान्नं च पुनर्भोजनमैथुने।
क्षौद्रं कांस्यामिषं तैलं द्वादश्यामष्ट वर्जयेत् ॥

और बृहस्पति ने द्वादशी तिथि में वर्जितों की गणना की है—दिनमें शयन करना, परान्न (दूसरेका अन्न) भक्षण करना, (श्वसुरान्नं गुरोरन्नं मातुलान्नं तथैव च। पितृव्यभ्रातृपुत्राणां परान्नं नैव दोषकृत् ॥ —इस वचन का यहाँ उपयोग नहीं हो सकता। इसका तो व्रतादि भिन्न दिन परान्नग्रहण विषयक होने से) फिर से भोजन करना, मैथुन (संभोग) करना, सहत का भक्षण करना, कांस्यपात्र में भोजन करना, मांस भक्षण करना तथा तैल का उपयोग करना ये आठ वस्तु को द्वादशी तिथि में वर्जित[१] करे।

हेमाद्रौ ब्रह्माण्डपुराणे—पुनर्भोजनमध्यायो भार आयासमैथुने।
उपवासफलं हन्युर्दिवा निद्रा च पञ्चमी।

हेमाद्रि में ब्रह्माण्डपुराण का मत है कि—फिर से भोजन करना, पढ़ना, भार (बोझा) उठाना, परिश्रम करना, मैथुन करना तथा दिन में निद्रा करना ये पांचो उपवास के फल का नाश करती हैं।

स्कान्दे—परान्नं कांस्यताम्बूले लोभं वितथभाषणम्। वर्जयेदिति शेषः।

स्कन्दपुराण का मत है—व्रती परान्नभक्षण, कांस्यपात्र को उपयोग में लेना, तांबूल चर्वण करना, लोभ की मात्रा करना तथा मिथ्याभाषण करना, इनका त्याग (द्वादशी में) करे।

(असंभाष्यादिभाषणे विचारः)

विष्णुधर्मे—असम्भाष्यान् हि सम्भाष्य तुलस्यतसिकादलम्।
आमलक्याः फलं वाऽपि पारणे प्राश्य शुद्ध्यति।

विष्णुधर्म में कहा है कि—दिन में असंभाष्य व्यक्तियों से संभाषण—(बहिर्ग्रामाऽन्त्यजान् सूतिं पतितं च रजस्वलाम्। न स्पृशेन्नाभि भाषेत नेक्षेत व्रतवासरे ॥) करने पर तुलसी तथा अतसी (तीसी का पत्र) का दल या आंवले के फल से पारणा में भक्षणकर शुद्ध होता है।

(व्रतादिमध्ये रजस्वलादीनां शब्दश्रवणे विचारः)

बृहन्नारदीये—रजस्वलां च चाण्डालं महापातकिनं तथा। सूतिकां पतितं चैव उच्छिष्टं रजकादिकम् ॥ व्रतादिमध्ये शृणुयाद्येषां ध्वनिमुत्तमम्। अष्टोत्तरसहस्रं तु जपेद्वै वेदमातरम् ॥

बृहन्नारदीयपुराण का मत है—रजस्वला, चाण्डाल, महापातकी, सूतिका, पतित, उच्छिष्ट तथा रजक (धोबी) आदि को उत्तमध्वनि व्रतादि के मध्य में श्रवण करने पर गायत्री जप को एक हजार बार जप करे।

१—ब्रह्माण्डे—कांस्यं मांसं सुरां क्षौद्रं लोभं वितथभाषणम्। व्यायामं च प्रवासं च दिवास्वापमथाञ्जनम् ॥ तिलपिष्टं मसूरं च द्वादशैतानि वैष्णवः ॥ द्वादश्यां वर्जयेन्नित्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ तथा—कांस्यं मांसं सुरां द्यूतं व्यायामं क्रोधमैथुने। हिंसामत्यन्तलौल्यं च तैलं निर्माल्यलङ्घनम्। द्वादशां द्वादशैतानि वैष्णवः परिवर्जयेत्। द्वादश्यां पारणं कुर्याद् वर्जयित्वा ह्युपोदकीम्। उपोदकी=पोई। कांस्यं मांसं मसूरं च चणकं कोरदूषकाः। शाकं मधु परान्नं च हन्युरष्टाविमे फलम् ॥

(सूतकादौ द्वादशीव्रते विचारः)

एतद् व्रतं सूतकेऽपि कार्यम् । सूतके मृतके वापि न त्याज्यं द्वादशीव्रतम् । इति विष्णूक्तेः ।

इसी व्रत को सूतक में भी करना चाहिये । विष्णु ने कहा है कि—सूतक (जननाशौच) में या मृत्यु में द्वादशी व्रत का त्याग न करे ।

(सूतकान्ते दानादिकथनम्)

तत्र त्यक्तं दानादि सूतकान्ते कार्यम् । सूतकान्ते नरः स्नात्वा पूजयित्वा जनार्दनम् । दानं दत्त्वा विधानेन व्रतस्य फलमश्नुते । इति मात्स्योक्तेः ।

उसमें त्यक्तदानादिक को सूतकान्त में करना चाहिये । मत्स्यपुराण का कथन है कि-मनुष्य सूतकान्त में स्नानकर भगवान् जनार्दन का पूजनकर विधान से दान (ब्राह्मणभोजन का भी ग्रहण करे । क्योंकि इसमें अन्नदान होता है) देकर व्रत के फल को प्राप्त करता है ।

(रजोदर्शने एकादश्यां विचारः)

रजोदर्शनेऽपि कार्यम् । एकादश्यां न भुञ्जीत नारी दृष्टे रजस्यपि । इति पुलस्त्योक्तेः ।

रजोदर्शन में भी करना चाहिये । पुलस्त्य का मत है कि—नारी को रजोधर्म दिखने पर भी एकादशी को भोजन न करे ।

यदा द्वादश्यां श्रवणर्क्षं तदा शुद्धामप्येकादशीं त्यक्त्वा तत्रैवोपवासः कार्यः ।

जब द्वादशी तिथि में श्रवणनक्षत्र हो तब शुद्धा एकादशी का भी त्यागकर उसी में ही उपवास करना चाहिये ।

शुक्ला वा यदि वा कृष्णा द्वादशी श्रवणाऽन्विता । तयोरेवोपवासश्च त्रयोदश्यां च पारणम् ॥ इति नारदीयोक्तेः । एते च नियमाः काम्यव्रते नियताः । नित्यव्रते सति संभवे कार्याः । शक्तिमांस्तु पुनः कुर्यान्नियमं सविशेषणम् । इति कात्यायनोक्तेः ।

नारदपुराण में कहा है कि—शुक्लपक्ष की या कृष्णपक्ष की श्रवणनक्षत्र से युक्त द्वादशीतिथि हो तो उसी में ही उपवास करे तथा त्रयोदशी में पारणा करे । इन सबका नियम काम्यव्रत में नियत है । नित्यव्रत में तो सतिसंभव में करना चाहिये । कात्यायन ने कहा है कि-शक्तिशाली व्यक्ति तो फिर विशेष नियम को करे ।

(अशक्तौ विशेषः)

अशक्तौ तु माधवीये ब्रह्मवैवर्ते—इति विज्ञाय कुर्वीतावश्यमेकादशीव्रतम् ।
विशेषनियमाशक्तोऽहोरात्रं भुजिवर्जितः ॥ इति ।

अशक्ति में तो माधवीय में ब्रह्मवैवर्तपुराण का मत है—इसप्रकार जानकर अवश्य एकादशीव्रत को करे । विशेष नियम के करने में अशक्त हो तो अहोरात्र भोजन न करे ।

(अथाष्टौ महाद्वादश्यः)

तत्र शुद्धाधिकैकादशीयुता द्वादशी उन्मीलिनी संज्ञा । द्वादश्येव शुद्धाधिका वर्द्धते चेत्सा वञ्जुली । वासरत्रयस्पर्शिनी त्रिस्पृशा । अग्रे पर्वणः सम्पूर्णाधिकत्वे पक्षवर्द्धिनी । पुष्यर्क्षयुता जया । श्रवणयुता विजया । पुनर्वसुयुता जयन्ती । रोहिणीयुता पापनाशिनी । अत्र मूलं हेमाद्रौ ज्ञेयम् । एताः पापक्षयमुक्तिकाम उपवसेत् ।

इसके बाद आठ महाद्वादशी का परिगणन करते हैं—(१) उसमें शुद्धाधिक एकादशी के सहित द्वादशी का नाम उन्मीलिनी (एकादशी तु संपूर्णा वर्धते पुनरेव सा । तद्युता द्वादशीत्यर्थः । उन्मीलिनी भृगुश्रेष्ठ कथिता पापनाशिनी ॥) है । यह पहली है । (२) द्वादशी में ही शुद्धाधिक वर्धित हो तो वह वञ्जुली (द्वादश्यामुपवासश्च द्वादश्यामेव पारणम् । वञ्जुली नाम सा प्रोक्ता हत्यायुतविनाशिनी ॥) नामवाली दूसरी है ।

(३) वासरत्रय स्पर्शनी (तीन दिनतक स्पर्श करती हो) (अरुणोदय-सूर्योदय) आद्या (एकादशी) स्याद् द्वादशी सकलं दिनम् । अन्ते त्रयोदशी प्राप्तस्त्रिस्पृशा सा प्रकीर्तिता ॥) नामवाली तीसरी है । (४) आगे पर्व ही संपूर्णाधिक्य में पक्षवर्धनी (कुहू राके यदा वृद्धि प्रयाते पक्षवर्धिनी । विहायैकादशीं तत्र द्वादशीं समुपोषयेत् ॥) नाम की चतुर्थ है । (५) पुष्यनक्षत्र से युत जया नाम की पांचवी है । (६) श्रवणनक्षत्र से युक्त विजया नाम की छठी है । (७) पुनर्वसु नक्षत्र से संयुक्त जयन्ती नाम की सातवीं है । (८) रोहिणीनक्षत्र से संयुक्त पापनाशनी नाम की आठवीं है । इसका मूल हेमाद्रि नामक निबन्ध में जानना चाहिये । इन सब आठ-द्वादशियों का पापक्षय तथा मुक्तिकामनावाले उपवास करे ।

एकादशीद्वादश्योरेकत्वे तन्त्रेणोपवासः । पार्थक्ये तु शक्तस्योपवासद्वयम् ।

एकादशी-द्वादशी के एक होने पर तन्त्र से उपवास करे । पार्थक्य में—(प्रक्रान्तद्वादश्युपवासस्य प्रधानभूतद्वादश्युपवासानुरोधेनैकादश्युपवाससाङ्गपारणबाध इत्यर्थः) अर्थात्-दोनों के अलग अलग होने पर समर्थ पुरुष दो उपवास करे ।

एकादशीमुपोष्यैव द्वादशीं समुपोषयेत् । इति विष्णुरहस्यात् । अशक्तौ तु द्वादश्यामेव ।

विष्णुरहस्यमत से—एकादशी में ही उपवास को कर द्वादशी में उपवास करे । अशक्ति में तो द्वादशी तिथि में ही उपवास करे ।

एवमेकादशीं भुक्त्वा द्वादशीं समुपोषयेत् ।
पूर्ववासरजं पुण्यं सर्वं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ इति तत्रैवोक्तेः ।

वहीं पर कहा है कि—इसप्रकार एकादशी को फलाहार कर द्वादशीतिथि को उपवास करता है उसको पहले दिन के पुण्य सब प्राप्त होते हैं । इसमें संशय नहीं है ।

यदा त्वल्पा द्वादशी तदोक्तं मात्स्ये—यदा भवति अल्पाऽपि द्वादशी पारणादिने ।
उषःकाले द्वयं कुर्यात्प्रातर्मध्याह्निकं तदा ॥

जब अल्पद्वादशी हो तो तब मत्स्यपुराण में यों कहा है कि—यदि पारणदिन में अल्पद्वादशी हो तो प्रातःकालीन तथा मध्याह्निक के दोनों कर्मों को उषःकाल में करे ।

नारदीयेऽपि—अल्पायामथ विप्रेन्द्र द्वादश्यामरुणोदये ।
स्नानार्चनक्रियाः कार्या दानहोमादिसंयुताः ॥ इति ।

नारदपुराण में भी कहा है कि—हे विप्रेन्द्र, अरुणोदयकाल में अल्पद्वादशी (महाहानिकरी ह्येषा द्वादशी लङ्घिता नरैः । करोति धर्महरणमस्नातेव सरस्वती ॥) हो तो उसी समय में स्नान, अर्चन, दान, होम आदि क्रियाओं को करना चाहिये ।

सङ्कटे तु माधवीये देवलः—सङ्कटे विषमे प्राप्ते द्वादश्यां पारयेत्कथम् ।
अद्भिस्तु पारणं कुर्यात्पुनर्भुक्तं न दोषकृत् ॥ इति ।

सङ्कटे = त्रयोदशीश्राद्धप्रदोषादौ ।

संकट में तो माधवीय में देवल का कथन है कि-विषम संकट ([1]त्रयोदशी श्राद्ध तथा प्रदोष[2] आदि) के (अर्थात्-पारणा के असंभव में) प्राप्त होने पर द्वादशी में कैसे पारणा होगी । उत्तर यों है—जल से ही पारणा करे । फिर भोजन करने में दोष नहीं है ।

१—मृततिथि-गजच्छाया-वारुण्याद्यलभ्ययोगनिमित्तकम् ।

२—आदिना स्नानदानादिकमन्यद् वा किञ्चिद् ग्राह्यम् । सकलधार्मिकग्रन्थेषु जलपारणं कृत्वा श्राद्धाद्यनुष्ठानलिखनान्न तल्लोपो युक्तः, नापि श्राद्धापकर्ष इति भावः ।

अत्र केचिदाहुः—अपकर्षवाक्यानि अनाहिताग्निविषयाणि। अग्निहोत्रादीनां श्रौतत्वेनापकर्षा-योगात् इति। द्वादश्यां च प्रथमपादमतिक्रम्य पारणं कार्यम्।

यहाँ पर कोई कहते हैं—अपकर्षवाक्य अनाहिताग्नि (औपासनहोम, वैश्वदेवादि) विषयक हैं। अग्निहोत्रादियों का श्रौतत्व के अपकर्ष के योग से। द्वादशी में तो प्रथम पाद का अतिक्रमणकर पारणा करनी चाहिये।

द्वादश्याः प्रथमः पादो हरिवासरसंज्ञितः।

तमतिक्रम्य कुर्वीत पारणं विष्णुतत्परैः॥ इति निर्णयामृते मदनरत्ने च विष्णुधर्मोक्तेः।

निर्णयामृत तथा मदनरत्न में विष्णुधर्म में कहा है कि—द्वादशी तिथि के प्रथमपाद की हरि वासर संज्ञा है। विष्णु में तत्पर (तल्लीन) उसको अतिक्रमणकर पारणा करें।

(अथ पारणाविचारः)

अत्र केचित्सङ्गिरन्ते—यदा भूयसी द्वादशी तदाऽपि प्रातर्मुहूर्तत्रये पारणं कार्यम्।

यहाँ पर कहते हैं—जब बहुत सी द्वादशी हो तब भी प्रातःकाल तीन मुहूर्त में पारणा करनी चाहिये।

सर्वेषामुपवासानां प्रातरेव हि पारणम्। इति वचनात्, इति।

सब उपवासों की पारणा प्रातःकाल ही होती है—इस वचन से।

अस्मद्गुरवस्तु—बहूनां कर्मकालानां विना कारणं बाधापत्तेः प्रागुक्तवचनैश्च अल्पद्वादश्या-मेवापकर्षविधानादपराह्ण एव कार्यम्।

हमारे गुरुजी का कहना है कि—बहुत से कर्मकालों का अर्थात्—कर्मों के समयों का, बिना कारण बाधापत्ति हो जायगी और पहले कहे हुए वचनों से अल्पद्वादशी में ही अपकर्ष विधान से अपराह्ण में ही करना चाहिये।

प्रातः शब्दस्तु—सायं प्रातर्द्विजातीनामशनं श्रुतिचोदितम्। इतिवदपराह्णवाचित्वेऽप्युपपन्नः।

न च वाक्यवैयर्थ्यम्, पुनर्भोजनसायंपारणनिवृत्त्यर्थत्वात्तस्य,—इत्याहुः।

प्रातः शब्द तो—सायं तथा प्रातःकाल में द्विजातियों को भोजन करना वेद में कहा है। इसतरह अपराह्णवाचित्व में उपपन्न हो जायगा। इससे वाक्य में वैयर्थता नहीं होती है। उनके पुनर्भोजन, सायं पारण निवृत्त्यर्थक होने से। यों कहा है।

प्रमादेन एकादश्युपवासातिक्रमेऽपरार्के वाराहे—एकादशी विप्लुता चेद् द्वादशी परतः स्थिता।

उपोष्या द्वादशी तत्र यदीच्छेत्परमं पदम्॥ इति।

केचित्तु विष्णुना चेदिति पठितम्। अत्राविरोधिनो नियमाः सर्वव्रतेषु बोधव्याः। अन्ये च नवरात्रे वक्ष्यन्ते इति दिक्।

प्रमाद से एकादशी के उपवासातिक्रम में अपरार्क में वाराहमत है कि—यदि एकादशी तिथि लुप्त हो गयी हो तो और पर द्वादशी स्थित हो तो परमपद प्राप्त करने की इच्छा करनेवाला मनुष्य उसी द्वादशी में उपवास करे। कोई तो 'एकादशी विप्लुता चेद्' की जगह 'एकादशी विष्णुना चेत्' यों पढ़ते हैं।

यहाँ पर अविरोधि नियमों को सब व्रतों में जानना चाहिये और अन्य वचनों को नवरात्र में कहेंगे।

वैष्णवों के अरुणोदय में शुद्ध एकादशी के नौ भेद

सं.	शुद्धभेद	दशमी घ०	दशमी प०	एकाद. घ०	एकाद. प०	द्वादशी घ०	द्वादशी प०	व्रतनिर्णय
१	एकादशी तथा द्वादशी ये दोनों तिथि न्यून हो	५५	५६	५८	०	५६	५६	एकादशीतिथि और द्वादशीतिथि दोनों अधिक नहीं है। इसलिए स्मार्त तथा वैष्णव एकादशीमें ही उपवास करें।
		५५	०	५७	०	५८	०	
२	एकादशीतिथि न्यून और द्वादशी तिथि सम हो	५५	५६	५८	०	६०	०	यहाँ पर पूर्वोक्त प्रकार से व्यवस्था है।
		५५	०	५७	०	५८	०	
३	एकादशीतिथि न्यून तथा द्वादशी तिथि अधिक हो	५५	५६	५८	०	६०	१	यहाँ पर द्वादशीतिथि अधिक है। इसमें स्मार्तानुयायी एकादशीतिथि में और वैष्णव द्वादशीमें ही उपवास करें—यह माधवमत है। हेमाद्रिमतसे सबोंको द्वादशी में ही उपवास है।
		५५	०	५८	०	६०	१	
४	एकादशीतिथि सम और द्वादशी तिथि न्यून हो	५५	५६	६०	०	५६	५६	एकादशीतिथि और द्वादशीतिथि दोनों अधिक नहीं है। अतः स्मार्त एवं वैष्णव दोनों एकादशीतिथिमें ही उपवास करें।
		५५	०	५७	०	५८	०	
५	एकादशीतिथि तथा द्वादशीतिथि ये दोनों सम हो	५५	५६	६०	०	६०	०	यहाँ पर पूर्वोक्त ही व्यवस्था समझना चाहिये।
		५५	०	५७	०	५८	०	
६	एकादशीतिथि सम और द्वादशी तिथि अधिक हो	५५	५६	६०	०	६०	०	द्वादशीतिथि ही अधिक है। इसलिए स्मार्तानुयायी एकादशीतिथिमें और वैष्णवमतानुयायी द्वादशीतिथि में ही उपवास करें—यह माधवमत है। हेमाद्रिमतसे सबोंको द्वादशीतिथिमें ही उपवास है।
		५५	०	५८	०	३	१	
						६०	१	
७	एकादशीतिथि अधिक तथा द्वादशी तिथि न्यून हो	५५	५६	६०	०	५६	५८	एकादशीतिथि ही अधिक है। इसलिए स्मार्त एकादशीमें तथा वैष्णव द्वादशीतिथिमें उपवास करें—यह माधवमत है।
		५५	०	०	१	क्ष	यः	
					१	५८	०	
८	एकादशीतिथि अधिक और द्वादशी तिथि सम हो	५५	५६	६०	०	५६	५६	यहाँ पर पूर्वोक्त ही व्यवस्था है।
		५५	०	०	१	क्ष	यः	
				६०	१	५८	०	
९	एकादशीतिथि तथा द्वादशीतिथि दोनों ही अधिक हों	५५	५६	६०	१	३	५५	यहाँ पर दोनों तिथि—एकादशी और द्वादशी अधिक है। इसलिए स्मार्त वैष्णव पर एकादशीमें उपवास करें।
		५५	०	६०	१	५	०	

वैष्णवों के अरुणोदय में दशमीविद्ध एकादशीतिथि के नौ भेद

सं.	विद्धभेद	दशमी घ०	दशमी प०	एकाद. घ०	एकाद. प०	द्वादशी घ०	द्वादशी प०	व्रतनिर्णय
१	एकादशीतिथि और द्वादशीतिथि दोनों तिथियां न्यून हो	५६	१	५८	०	५६	५६	यहाँ पर एकादशीतिथि तथा द्वादशीतिथि दोनों अधिक नहीं है। अतः स्मार्त एकादशीतिथि में वैष्णव द्वादशीतिथि में उपवास करें।
		५७	०	५८	०	५६	०	
२	एकादशी तिथि न्यून तथा द्वादशी सम हो	५६	१	५८	०	६०	०	पूर्ववत् व्यवस्था है।
		५७	०	५८	०	५६	०	
३	एकादशीतिथि न्यून और द्वादशी तिथि अधिक हो	५६	१	५८	०	६०	०	द्वादशीतिथि अधिक है। स्मार्त एकादशी में तथा वैष्णव द्वादशी में उपवास करें—यह माधवमत है। हेमाद्रिमत से सब द्वादशीमें ही उपवास करें।
		५८	०	५६	०	१	१	
						६०	१	

सं.	विद्धभेद	दशमी घ०	प०	एकाद. घ०	प०	द्वादशी घ०	प०	व्रतनिर्णय
४	एकादशीतिथि सम तथा द्वादशी तिथि न्यून हो	५८ ५७	५९ ०	६० ५८	० ०	५९ ५९	५९ ०	एकादशीतिथि तथा द्वादशीतिथि दोनों अधिक है इसलिए स्मार्त एकादशी में और वैष्णव द्वादशीमें उपवास करें।
५	एकादशीतिथि और द्वादशीतिथि दोनों ही सम हो	५९ ५७	१ ०	६० ५८	० ०	६० ५९	० ०	यहाँ पूर्ववत् व्यवस्था है।
६	एकादशीतिथि सम तथा द्वादशी तिथि अधिक हो	५७ ५८	१ ०	६० ५९	० ०	६० १ ६०	० ० १	यहाँ पर द्वादशीतिथि अधिक है, इसलिए स्मार्त एकादशी में तथा वैष्णव द्वादशी में उपवास करें। यह माधवमत है। हेमाद्रिनिबन्धमत से सबोंको द्वादशी में ही उपवास करनेका विधान मिलता है।
७	एकादशीतिथि अधिक और द्वादशी तिथि न्यून हो	५९ ५८	१ ०	६० ० ६०	० १ १	५९ क्षयः ५८ क्षयः	० ०	यहाँ एकादशीतिथि की अधिकता है अतः स्मार्त गृहस्थ पूर्व एकादशी में और यति, निष्काम गृहस्थ, वानस्थ, विधवा एवं वैष्णव परा में उपवास करें। किसी का मत है कि विष्णुप्रीति कामनावाले स्मार्त दोनों दिन उपवास करें।
८	एकादशीतिथि अधिक तथा द्वादशी तिथि सम हो	५९ ५८	१ ०	६० ० ६०	० १ १	५९ क्षयः ५८ क्षयः	५९ ०	यहाँ पूर्व निर्णय ही समझना चाहिये।
९	एकादशीतिथि और द्वादशीतिथि ये दोनों ही अधिक हो	५६ ५८	१ ०	६० १ ६०	० ० १	५ ४	० ०	यहाँ पर एकादशीतिथि तथा द्वादशीतिथि की दोनों की अधिकता है अतः स्मार्त एवं वैष्णव पर-एकादशी में उपवास करें।

स्मार्तों के सूर्योदय में दशमी रहित शुद्ध एकादशी के नौ भेद

सं.	विद्धभेद	दशमी घ०	प०	एकाद. घ०	प०	द्वादशी घ०	प०	व्रतनिर्णय
१	एकादशीतिथि तथा द्वादशी ये दोनों ही न्यून हो	५९ ५७	५९ ०	५९ ५८	० ०	५९ ५९	० ०	यहाँ पर दोनों ही अधिक हैं। अतः स्मार्त एकादशी तिथि में ही उपवास करें द्वादशीतिथि में नहीं। वैष्णव द्वादशी में उपवास करें।
२	एकादशीतिथि न्यून और द्वादशी तिथि सम हो	५९ ५७	५९ ०	५९ ५८	४५ ०	६० ५९	० ०	यहाँ पूर्व की तरह व्यवस्था है।
३	एकादशीतिथि न्यून तथा द्वादशी तिथि अधिक हो	५९ ५८	५९ ०	५९ ५९	५९ ०	६० १ ६० ०	० ० ० १	यहाँ पर द्वादशीतिथि अधिक है। इसलिए स्मार्तानुयायी एकादशीतिथिमें ही उपवास करें द्वादशीतिथि में नहीं करें—यह माधवमत है। हेमाद्रिमत से सब द्वादशीतिथि में ही उपवास करें। किसी के मत से मुमुक्षु स्मार्त परा में उपवास करें।
४	एकादशीतिथि सम और द्वादशी तिथि न्यून हो	५८ ५७	५९ ०	६० ५८	० ०	५९ ५९	५९ ०	यहाँ एकादशी तथा द्वादशीतिथि दोनों ही अधिक हैं। इसलिए स्मार्त एकादशी में ही और वैष्णव द्वादशी में ही उपवास करें।
५	एकादशीतिथि तथा द्वादशीतिथि ये दोनों सम हो	५८ ५७	५९ ०	६० ५८	० ०	६० ५९	० ०	यहाँ निर्णय पूर्ववत् समझना चाहिये।

सं.	विद्धभेद	दशमी घ०	दशमी प०	एकाद. घ०	एकाद. प०	द्वादशी घ०	द्वादशी प०	व्रतनिर्णय
६	एकादशीतिथि सम और द्वादशी तिथि अधिक हो	५९ ५८	५९ ०	६० ५९	० ०	६० १ ६० ०	० ० ० १	यहाँ द्वादशीतिथि अधिक है। अतः स्मार्त एकादशी तिथि में ही उपवास करें। वैष्णव द्वादशी में उपवास करें—यह माधवमत है। हेमाद्रिमत से तो सब द्वादशी में ही उपवास करें।
७	एकादशीतिथि अधिक तथा द्वादशी तिथि न्यून हो	५९ ५८	५९ ०	६० १ ६०	० ० १	५८ क्षयः ५८ क्षयः	० ०	एकादशीतिथि की ही अधिकता है। अतः स्मार्त गृहस्थ पूर्व एकादशी में, यति, निष्काम गृहस्थ, वनस्थ, विधवा तथा वैष्णव परा में उपवास करें। विष्णुप्रीतिकामनावाले स्मार्त दोनों दिन उपवास करें—यह किसी का मत है।
८	एकादशीतिथि अधिक और द्वादशीतिथि सम हो	५९ ५८	५९ ६०	६० १ ६०	० ० १	५९ क्षयः ५८ क्षयः	० ०	यहाँ पूर्ववत् निर्णय है।
९	एकादशीतिथि तथा द्वादशीतिथि ये दोनों अधिक हो	५९ ५८	५९ ०	६० १ ६० १	० ० ० ०	३ ४	० ०	यहाँ पर एकादशी तथा द्वादशीतिथि की अधिकता है। इसलिए स्मार्त एवं वैष्णव परा ही में उपवास करें।

स्मार्तों के सूर्योदय में दशमीविद्ध एकादशी के नौ भेद

सं.	विद्धभेद	दशमी घ०	दशमी प०	एकाद. घ०	एकाद. प०	द्वादशी घ०	द्वादशी प०	व्रतनिर्णय
१	एकादशीतिथि और द्वादशी तिथि दोनों न्यून हों	२ २	० ०	५७ क्षयः ५६ क्षयः	५९ ०	५७ ५५	० ०	यहाँ एकादशीतिथि तथा द्वादशीतिथि दोनों अधिक हैं। अतः स्मार्तों के लिए एकादशी में और वैष्णव द्वादशी में उपवास करें।
२	एकादशीतिथि न्यून तथा द्वादशी सम हो	२ २	० ०	५७ क्षयः ५६ क्षयः	५९ ०	६० ५५	० ०	पूर्ववत् व्यवस्था है।
३	एकादशीतिथि न्यून और द्वादशी तिथि अधिक हो	१ १	० ०	५८ ५८	५९ ०	६० १ ६० ०	० ० ० १	द्वादशीतिथि अधिक है। इसलिए स्मार्तों को एकादशीतिथि में उपवास है। द्वादशीतिथि में नहीं यह माधवमत है। वैष्णव को द्वादशी में ही उपवास है।
४	एकादशीतिथि सम तथा द्वादशी तिथि न्यून हो	२ २	० ०	५८ क्षयः ५६ क्षयः	०	५८ ५५	५९ ०	यहाँ दोनों ही अधिक हैं। अतः स्मार्त एकादशीतिथि में तथा वैष्णव द्वादशीतिथि में उपवास करें।
५	एकादशीतिथि और द्वादशीतिथि ये दोनों सम हो	२ २	० ०	५८ क्षयः ५६ क्षयः	० ०	६० ५५	० ०	पूर्वोक्त निर्णय है।
६	एकादशीतिथि सम तथा द्वादशी तिथि अधिक हो	२ १	० ०	५८ क्षयः ५८ क्षयः	० ०	० ०	० ०	द्वादशीतिथि अधिक है। स्मार्त एकादशी में उपवास करें।

सं.	विद्धभेद	दशमी घ०	दशमी प०	एकाद० घ०	एकाद० प०	द्वादशी घ०	द्वादशी प०	व्रतनिर्णय
७	एकादशीतिथि अधिक और द्वादशीतिथि न्यून हो	७ ४	० ०	२ २	० ०	५५ क्ष ५८ क्ष	० यः ० यः	एकादशीतिथि मात्र की अधिक्यता है इसलिए स्मार्त एकादशी तथा वैष्णवादि द्वादशीतिथि में उपवास करें ।
८	एकादशीतिथि अधिक तथा द्वादशीतिथि सम हो	५ ४	० ०	२ २	० ०	५८ क्ष ५८ क्ष	० यः ० यः	पूर्ववत् निर्णय समझना चाहिये ।
९	एकादशीतिथि और द्वादशीतिथि ये दोनों ही अधिक हों	७ २	० ०	४ ३	० ०	३ ४	० ०	यहाँ पर एकादशीतिथि तथा द्वादशीतिथि दोनों ही अधिक है। अतः स्मार्त और वैष्णव परा एकादशी में ही उपवास करें ।

(अथ द्वादशीतिथिनिर्णयः)

द्वादशी तु पूर्वैव युग्मवाक्यात्—द्वादशी तु प्रकर्तव्या एकादश्या युता प्रभो । इति स्कान्दाच्च ।

युग्मवाक्य (एकादशी से युक्त द्वादशी) से द्वादशी तिथि तो पूर्वा (पहली) ही होती है । स्कन्दपुराणमतसे—हे प्रभो, एकादशी से युक्त द्वादशीतिथि को करना चाहिये ।

(अथ त्रयोदशीतिथिनिर्णयः)

त्रयोदशी तु सर्वमते शुक्ला पूर्वा, कृष्णोत्तरा । 'त्रयोदशतिथिः पूर्वः सितोऽथाऽसितः पश्चात्' इति दीपिकोक्तेः ।

सबों के मत से त्रयोदशी तो शुक्लपक्ष में पूर्वा तथा कृष्णपक्षकी त्रयोदशी उत्तरा होती है । दीपिका में कहा है कि—शुक्लपक्षकी त्रयोदशीतिथि पूर्वा तथा कृष्णपक्षकी त्रयोदशीतिथि पीछेवाली होती है ।

(माधवमते त्रयोदशीतिथिनिर्णयः)

शुक्ला त्रयोदशी पूर्वा, परा कृष्णा त्रयोदशी । इति माधवाच्च ।

माधवमतसे—शुक्लपक्षकी त्रयोदशी पूर्वा (पहली) होती है और कृष्णपक्षकी त्रयोदशी पूर्वा होती है ।

(अथ चतुर्दशीतिथिनिर्णयः)

चतुर्दशी तु सर्वमते कृष्णा पूर्वा, शुक्लोत्तरा । उपवासे तु द्वयमपि परेति मदनरत्ने ।

चतुर्दशी तो सबों के मत से कृष्णपक्षकी (कृष्णपक्षेऽष्टमी चैव कृष्णपक्षे चतुर्दशी । पूर्वविद्धैव कर्तव्या परविद्धा न कुत्रचित् ॥ उपवासादिकार्येषु एष धर्मः सनातनः । इत्यापस्तम्बवाक्यात् ।) पूर्वा होती है तथा शुक्लपक्षकी चतुर्दशी उत्तरा होती है । उपवास में (रुद्रोपवासभिन्न उपवास में) तो दोनों ही परा होती हैं । यह मदनरत्न में कहा है ।

(पूर्णिमा-अमावास्यातिथिविचारः)

पौर्णमास्यमावास्ये तु सावित्रीव्रतं विना परे ग्राह्ये । भूतविद्धे न कर्तव्ये दर्शपूर्णे कदाचन । वर्जयित्वा मुनिश्रेष्ठ सावित्रीव्रतमुत्तमम् ॥ इति ब्रह्मवैवर्तात् ।

पूर्णिमातिथि तथा अमावास्यातिथि सावित्री व्रत के विना परा ग्रहण करनी चाहिये । ब्रह्मवैवर्त पुराण का मत है कि—हे मुनिश्रेष्ठ, व्रतों में उत्तम सावित्री व्रत को छोड़कर चतुर्दशी से विद्ध अमावास्या तथा पूर्णिमा कभी भी नहीं करना चाहिये ।

(अमायां विशेषयोगकथनम्)

अमायां योगविशेषमाहाऽपरार्के शातातपः—अमावास्यां भवेद्वारो यदा भूमिसुतस्य वै ।

जाह्नवीस्नानमात्रेण गोसहस्रफलं लभेत् ॥

अमावास्या में योगविशेष अपरार्क में शातातपने कहा है—अमावास्या में यदि मंगलबार हो तो गङ्गा में स्नान करने से एक हजार गोदान का फल प्राप्त करता है।

अमा वा सोमवारेण रविवारेण सप्तमी। चतुर्थी भौमवारेण विषुवत्सदृशं फलम्॥

या अमावास्या सोमवार से युक्त हो, सप्तमीतिथि रविवार से युक्त हो और चतुर्थी मंगलवार से संपन्न हो तो विषुवत् (मेष तथा तुला संक्रान्ति) सदृश फल होता है।

तत्रैव व्यासः—सिनीवाली कुहूर्वापि यदि सोमदिने भवेत्।
गोसहस्रफलं दद्यात्स्नानं चेन्मौनिना कृतम्॥

वहीं पर व्यास ने कहा है कि—सिनीवाली (जिसमें चन्द्रमा दीखता हो) या कुहू (जिसमें चन्द्रमा न दीखता हो) ये दोनों सोमवार दिन में पडती हो तो मौन होकर स्नान करने से एक हजार गोदान करने का फल मिलता हैं।

(व्यतिपातनिर्णयः)

हेमाद्रौ वृहन्मनुः—श्रवणाश्विधनिष्ठार्द्रानागदैवतमस्तकैः। यद्यमा रविवारेण व्यतीपातः स उच्यते॥ नागदैवतम्=आश्लेषा, मस्तको=मृगशिरः प्रथमपाद इत्यन्ये। स च सर्वेषाम्।

हेमाद्रि में वृद्धमनुका कथन है कि—श्रवण, अश्विनी, धनिष्ठा, आर्द्रा, आश्लेषा तथा मृगशिरा नक्षत्र हों और यदि अमावास्या रविवार से युक्त हो तो उसको व्यतीपात कहते हैं। किसी के मत से—मृगशिर का प्रथमपाद लेना चाहिये। वह सब नक्षत्रों का प्रथमपाद होना चाहिये।

(अथेष्टिकालः)

अथेष्टिकालः। गोभिलः—'पक्षान्ता उपवस्तव्या पक्षादयोऽभियष्टव्याः' इति। उपवासोऽन्वाधानम्। तत्र मध्याह्ने तत्पूर्वं वा पर्वप्रतिपत्सन्धौ तद्दिने यागः।

इसके वाद इष्टि का काल (समय) कहते हैं गोभिलमें कहा है कि—पक्षान्त (अमावास्या और पूर्णिमा) की तिथियों में उपवास (अन्वाधान) करे और पक्ष की आदि तिथि (प्रतिपदा) में यज्ञ करना चाहिये। उपवास माने अन्वाधान। वहाँ पर मध्याह्नकाल में या उसके पूर्व पर्व एवं-प्रतिपदा की सन्धि में उसी दिन याग करे।

पूर्वाह्णे वाऽथ मध्याह्ने यदि पर्व समाप्यते।
उपोष्य तत्र पूर्वेद्युस्तदहर्याग इष्यते॥ इति लौगाक्षिवचनात्।

लौक्षाक्षि वचनसे पूर्वाह्ण में या मध्याह्न में यदि पर्व समाप्त होता हो तो पूर्वदिन में उपवास कर उसी दिन में याग करे।

(अत्र द्वेधाविभागः)

अत्र च द्वेधा विभागः—आवर्त्तनात्तु पूर्वाह्णो ह्यपराह्णस्ततः परः।
मध्याह्नस्तु तयोः सन्धिर्यदावर्तनमुच्यते॥ इति मदनरत्ने वचनात्।

मदनरत्न के वचन से यहाँ पर दो तरह का विभाग है। आवर्तन (आवृत्ति) से पूर्वाह्णकाल उसके बाद अपराह्ण काल होता है। पूर्वाह्णकाल तथा अपराह्णकाल की जब सन्धि होती है उसी काल को मध्याह्नकाल कहते हैं—इसी का नाम आवर्तन कहते हैं।

(अत्र लौक्षाक्षिमतम्)

मध्याह्नादूर्ध्वं सन्धौ माधवमते परेऽह्नि यागः। अपराह्णेऽथ वा रात्रौ यदि पर्व समाप्यते। उपोष्य तस्मिन्नहनि श्वोभूते याग इष्यते॥ इति लौगाक्षिणोक्तेः।

माधवमत से मध्याह्न से ऊर्ध्व सन्धि में दूसरे दिन याग होता है। अपराह्ण में या रात में यदि पर्व समाप्त होता हो तो उसी दिन में उपवास कर दूसरे दिन याग करे। यह लौगाक्षि ने कहा है।

(हेमाद्रिमतम्)

हेमाद्रिस्त्वपराह्णसन्धावपि परदिने प्रतिपच्चतुर्थांशे चन्द्रोदये च सति द्वितीयादिष्वत्यन्तक्षये सति पूर्वेद्युर्यागः।

हेमाद्रिनिबन्धकार का कहना है कि—अपराह्न सन्धि में भी दूसरे दिन प्रतिपदा के चतुर्थांश में तथा चन्द्रोदय होने पर द्वितीया आदि का अत्यन्तक्षय हो जाने पर पूर्वदिन में याग करे।

पर्वणोंऽशे द्वितीये तु यष्टव्यं तु द्विजातिभिः। द्वितीयासहितं यस्माद् दूषयन्त्याश्वलायनाः॥ इति। द्वितीये त्विति कैमुतिकन्यायेन तुर्यांशपरम्। तुरीये त्विति शूलपाणिपाठः स्पष्टार्थ एव।

पर्व के द्वितीय अंश में तो द्विजाति को याग करना चाहिये। जिससे आश्वलायन ने द्वितीया के सहित यज्ञ को दूषित किया है। 'द्वितीये तु' यह पद कैमुतिन्याय[1] से चतुर्थांश परक है। शूलपाणि में पाठ 'तुरीये तु' इस वाक्य का स्पष्टार्थक है।

(बौधायनमतम्)

तथा—भूता पञ्चदशीपूर्णा द्वितीया क्षयगामिनी। चरुरिष्टिरमायां स्याद् भूते कव्यादिकी क्रिया॥ इति बौधायनवचनाच्चेत्यूचिवान्।

और—बौधायनवचन ने ऐसा कहा है कि—चतुर्दशी और अमावास्या पूर्णतिथि हो तथा द्वितीयाक्षयगामिनी हो चरु और इष्टि अमावास्या में करे तथा चतुर्दशी में कव्यादिक्रिया (पिण्डपितृयज्ञ) करे।

(मदनरत्नादिमतम्)

मदनरत्नेऽपि—चतुर्दशी चतुर्यामा अमावास्या न दृश्यते।
श्वोभूते प्रतिपच्चेत्स्यात्पूर्वा तत्रैव कारयेत्॥ इति।

मदनरत्न में भी कहा है कि—चतुर्दशी, चार याम (प्रहर) हो और अमावास्या चार याम न दिखती हो तो दूसरे दिन प्रतिपदातिथि हो तो पूर्वा-(यह प्रधानकाल है। उसके अनुरोध से चतुर्दशी में अन्वाधान करना चाहिये) पहली तिथि में करे।

यत्तु माधवः—यस्तु वाजसनेयी स्यात्तस्य सन्धिदिनात्पुरा।
न क्वाप्यन्वाहितिः, किन्तु सदा सन्धिदिने हि सा॥ इत्याह।

जो माधव ने कहा है कि—जो वाजसनेयी है उसका सन्धि दिन से पहले अन्वाहिति—(अन्वाधान) कहीं भी नही है। लेकिन सदा सन्धि दिन में ही (अन्वाधान) है। यों कहा है।

यच्च कालादर्शेऽप्युक्तम्—आवर्त्तनादधः सन्धिर्यद्यन्वाधाय तद्दिने।
परेद्युरिष्टिरित्याहुर्विप्रा वाजसनेयिनः॥ इति।

जो और कालादर्श में कहा है—वाजसनेयी ब्राह्मणगण यों कहते हैं कि आवर्तन (आवृत्ति) से पहले पूर्व सन्धि हो तो उसीदिन में अन्वाधान कर दूसरे दिन इष्टि करे।

यच्च मदनरत्ने—मध्यन्दिनात्स्यादहनीह यस्मिन् प्राक्पर्वणः सन्धिरियं तृतीया।
सा खर्विका वाजसनेयिमत्या तस्यामुपोष्याऽथ परेद्युरिष्टिः॥ इति।

और जो मदनरत्न में कहा है कि—जिसदिन मध्याह्नकाल से पूर्व पर्व की सन्धि हो वह तृतीया वाजसनेयीमतसे खर्विका है। उसदिन में उपवास को करके दूसरे दिन इष्टि करे।

एतत्पौर्णमासीपरमिति तत्रैव। आवर्त्तनोर्ध्वमर्वागस्ताद्रात्रौ वा समाप्तौ द्वे मध्याह्नादर्वाक् समाप्तौ तृतीयेत्यर्थः। तत्कर्कभाष्यदेवजानी-श्रीअनन्तभाष्यादिसकलतच्छाखीयग्रन्थविरोधाद् वृद्धानादराच्चोपेक्ष्यम्।

वहीं पर लिखा है—यह पौर्णिमातिथिपरक है। आवृत्ति के बाद अस्त से पहले या रात्रि के समाप्ति

१–प्रसिद्ध वस्तु की हानिकर शब्द के द्वारा प्रतिपादन किया। वहाँ अप्रसिद्ध वस्तु की हानि अर्थात् सिद्ध होती है। इसीको कैमुतिकन्याय कहा जाता है। 'स जितस्त्वन्मुखेन्दुः का वार्ता सरसीरुहाम्' (कुवलयानन्दे)।

में दो, और मध्याह्न के पूर्व समाप्ति में तृतीय प्रकार यह अर्थ है। वह[1] कर्कभाष्य, देवजानी, श्रीअनन्तभाष्य आदि तत् शाखीय संपूर्ण ग्रन्थविरोध से तथा वृद्धों के अनादर से उपेक्ष्य है।

(पौर्णमास्यां विशेषकथनम्)

पौर्णमास्यां विशेषमाह कात्यायनः—सन्धिश्चेत्सङ्गवादूर्ध्वं प्राक् पर्यावर्तनाद्रवेः।
सा पौर्णमासी विज्ञेया सद्यस्कालविधौ नरैः॥

कात्यायन ने पौर्णमासीतिथि में विशेष कहा है—संगव के बाद सूर्य के पर्यावर्तन के पूर्व यदि सन्धि हो तो वह पौर्णमासी है। मनुष्यों को सद्यस्काल विधि में वही पूर्णिमा जानना चाहिये।

(अमायां विशेषकथनम्)

अमायां विशेषमाह बौधायनः—द्वितीया त्रिमुहूर्ता चेत्प्रतिपच्चापराह्णिकी।
अन्वाधानं चतुर्दश्यां परतः सोमदर्शनात्॥

बौधायन ने अमावास्यातिथि में विशेष कहा है—द्वितीयातिथि तीन मुहूर्त हो और प्रतिपदा अपराह्णकाल में हो तो अन्वाधान चतुर्दशीतिथि में करे। क्योंकि अग्रिम (दिन में) चन्द्रमा का दर्शन होने से।

(कात्यायनादीनां मतकथनम्)

कात्यायनश्च—यजनीयेऽह्नि सोमश्चेद्वारुण्यां दिशि दृश्यते। तत्र व्याहृतिभिर्हुत्वा दण्डं दद्याद् द्विजातये॥ इति। एतच्च बौधायनवाजसनेयिविषयम्।

और कात्यायन ने भी कहा है—यजनीय दिन में वरुण (पश्चिम) दिशा में सोम (चन्द्रमा) दिखता है तो उसमें व्याहृतियों से हवन कर द्विजाति के लिए दण्ड (छडी) दे। यह बौधायन तथा वाजसनेयी शाखा के लिये है।

तैत्तिरीयश्रुतौ तु चन्द्रदर्शनेऽपि याग उक्तः—'एषा वै सुमनानामेष्टिर्यमद्येजानं पश्चाच्चन्द्रमा अभ्युदेत्यस्मिन्नेवास्मै लोकेर्धुकं भवति' इति।

श्रुत्यन्तरेऽपि—यदहः पश्चाच्चन्द्रमा अभ्युदेति तदहर्यजन्निमाँल्लोकानभ्युदेति' इति। इदं बह्वृचापस्तम्बविषयम्। मदनरत्नेऽप्येवम्। आपस्तम्बभाष्यार्थसङ्ग्रहेऽप्येवम्।

अतः पक्षद्वयस्य स्वसूत्राद्व्यवस्थेति तत्त्वम्। 'दूषयन्त्याश्वलायनाः' इति तु पूर्वाह्णसन्धिविषयमिति माधवः।

तैत्तिरीयश्रुति में तो चन्द्रदर्शन में भी याग कहा है। यह सुमना नाम की इष्टि है जिसे करते हुए पश्चिम में चन्द्रमा उदय होगा उसी में ही इसी लोक में उस यजमान का कल्याण होता है। श्रुत्यन्तर (ऐतरेयब्राह्मण) में भी कहा है कि—जिस दिन पश्चिम दिशा में चन्द्रमा का उदय होगा उसी दिन यज्ञ करनेवाला इन लोकों को प्राप्त कर लेता है। यह बह्वृच आपस्तम्ब विषयक है। मदनरत्न ने भी यही कहा है। आपस्तम्ब भाष्यार्थसंग्रह में भी यही कहा है। इसलिये दोनों पक्ष का अपने-अपने सूत्र से व्यवस्था करे यही तत्त्व है। आश्वलायन तो दूषण करते हैं—यह तो पूर्वाह्ण सन्धि विषयक है—यह माधवमत है।

(शेषपर्वणीष्टौ विशेषकथनम्)

शेषपर्वणीष्टौ विशेषमाह माधवीये गार्ग्यः—प्रतिपद्यप्रविष्टायां यदि चेष्टिः समाप्यते।

---

१ वाजसनेयिनामपि पौर्णमास्यां तद्याज्ञिकग्रन्थेषु आवर्त्तनात्प्राक् सन्धौ तद्दिन एव यागोक्तेरितिभावः। कर्कभाष्येत्यादिसकलवाजसनेयियाज्ञिकग्रन्थोपादानं माधवादिवचसां निर्मूलत्वव्यञ्जकम्। 'आवर्त्तनादूर्ध्वमस्तात्पूर्वं समाप्ता पौर्णमासी प्रथमा खर्विका, सूर्यास्तोत्तरं समाप्ता द्वितीया, आवर्तनात्पूर्वं समाप्ता तृतीया। सर्वाऽपि अल्पत्वात् खर्विकेत्युच्यते। अयं च वाजसनेयिनां सन्धिशास्त्रप्राप्तनिर्णयस्य सद्यस्कालत्वस्य चापवादः। तृतीयखर्विकायां वाजसनेयीभिन्नानां यागः। वाजसनेयिनां तु पूर्वेद्युरन्वाधानं, परेद्युर्यागः। स च परेद्युस्तृतीयांशलाभे, न तु चतुर्थांशलाभे, तस्यापराह्णसन्धावेव यागकालत्वात् इति समर्थयन्ते—इति टीकायाम्।

पुनः प्रणीय कृत्स्नेष्टिः कर्तव्या यागवित्तमैः ॥ गृह्याग्नेर्नायं नियम इति मदनरत्नपारिजातः । एवं पर्वान्त्यांशः प्रतिपदश्च त्रयोंऽशा यागकाल उक्तः । क्वचित्प्रतिपत्तुर्यांशेऽपि यागः ।

शेष (अवशिष्ट) पर्व के शेषकाल में याग हो तो (तब) माधवीय में गार्ग्यने विशेष कहा है—प्रतिपदा के प्रवेश न होने पर यदि इष्टि समाप्त हो जाती है तो यागके जानकारों द्वारा फिर से प्रणयन कर संपूर्ण इष्टि करनी चाहिये ।

मदनपारिजात का कहना है कि—यह नियम गृह्याग्नि (स्मार्ताग्नि) के लिए नहीं है। इसप्रकार पर्व का अन्त्य अंश (पाद) तथा प्रतिपदा का तीन अंश यागकाल कहा है। कहीं पर प्रतिपदा के तुर्यांश (चतुर्थपाद) में भी याग कहा है ।

सन्धिर्यद्यपराह्णे स्याद्यागं प्रातः परेऽहनि ।
कुर्वाणः प्रतिपद्भागे चतुर्थेऽपि न दुष्यति ॥

इति वृद्धशातातपोक्तेः । एतत्पूर्णिमापरमिति मदनरत्ने । पर्वणि प्रतिपदः क्षयस्य वृद्धेश्चार्द्धं प्रक्षिप्य सन्धिर्ज्ञेयः ।

वृद्धशातातपने कहा कि—यदि सन्धि पञ्चदशी तथा प्रतिपदा अपराह्णकाल की सन्धि हो तो दूसरे दिन प्रातःकाल में प्रतिपदा के रहते हुए यज्ञ करे क्योंकि चतुर्थ भाग में नहीं दोष होता है ।

मदनरत्नकारका मत है कि यह ('अपराह्णसन्धौ वृध्यादिना परदिने चन्द्रदर्शनासत्वे तु अमायामपि प्रतिपच्चतुर्थांशे याग इति स्मर्तव्यम्' इति टीकायाम्) पूर्णिमातिथि परक है ।

पर्व में प्रतिपदा का क्षय तथा वृद्धि के आधे को मिलाकर (प्रक्षिप्य) सन्धि जाननी चाहिये ।

तदाह माधवः—वृद्धिः प्रतिपदो याऽस्ति तदर्धं पर्वणि क्षिपेत् ।
क्षयस्यार्धं तथा क्षिप्त्वा सन्धिर्निर्णीयतां सदा ॥ इति ।

उसी बातको माधव ने कहा है कि—जो प्रतिपदातिथि की वृद्धि हैं । उस तिथिकी आधी तिथि को पर्व में मिला दे । वैसे ही क्षय तिथि की आधी मिलाकर सन्धि का सदा निर्णय करे ।

कात्यायनोऽपि—परेऽह्नि घटिका न्यूनास्तथैवाभ्यधिकाश्च याः ।
तदर्धक्लृप्त्या पूर्वस्मिन् ह्रासवृद्धी प्रकल्पयेत् ॥ इति । एवं स्मार्तस्थालीपाकेऽपि ज्ञेयम् ।

कात्यायन ने भी कहा है कि—दूसरे[1] दिन एक घड़ी कम हो वैसे ही अधिक हो तो उसके आधे की कल्पना कर पर्व में ह्रास तथा वृद्धि की कल्पना करे । इसीप्रकार स्मार्त स्थालीपाक में भी जानना चाहिये ।

तत्रेष्टिस्थालीपाकावाधानगृहप्रवेशनीयहोमानन्तरभाविन्यां पौर्णमास्यां प्रारम्भणीयौ न तु दर्शे । यद्यारम्भे मलमासपौषमासगुरुशुक्रास्तादि भवति तदाप्यारम्भः कार्यः ।

उसमें इष्टि तथा स्थालीपाकको आधान, गृह प्रवेशनीय होम के अनन्तर भावि पौर्णमासी में प्रारंभ करे। अमावास्या में न करे। यदि आरंभ में मलमास, पौषमास गुरु शुक्र आदि अस्त हो तब भी आरंभ करना चाहिये ।

यानि तु—उपरागोऽधिमासश्च यदि प्रथमपर्वणि । तथा मलिम्लुचे पौषे नान्वारम्भणमिष्यते ॥ गुरुभार्गवयोर्मौढ्ये चन्द्रसूर्यग्रहे तथा ॥ इति सङ्ग्रहवचनानि, तानि आलस्यादिनाऽतिक्रान्त-शुद्धकालप्रारम्भ विषयाणि ।

जो ये संग्रह वचन हैं—यदि प्रथम पर्व में उपराग (ग्रहण) तथा अधिमास हो और पौषमास में मलमास हो तो गुरु तथा शुक्र के मूढता में चन्द्र-सूर्यग्रहण में अन्वारंभ अभीष्ट नहीं है। ये वचन आलस्यादि से अतिक्रान्त (बीतने पर) शुद्धकाल प्रारंभ विषयक है ।

---

१ यत्र चतुर्दशी दशदण्डा, पर्व पञ्चदशदण्डं, प्रतिपत्तु एकोनविंशतिदण्डा, तत्र प्रतिपद्वृद्धेरर्धं दण्डद्वयं पर्वणि क्षिपेत् । ततश्च सप्तदशदण्डा सन्धिः । एवं यत्र चतुर्दशी पञ्चविंशतिदण्डा, पर्व एकोनविंशतिदण्डं, प्रतिपच्चतुर्दशदण्डा तत्र प्रतिपद्ध्रासार्धं सार्धदण्डद्वयं पर्वणि क्षिपेदित्यर्थः । इति टीकायाम् ।

नामकर्म च दर्शेष्टिं यथाकालं समाचरेत्।

अतिपाते सति तयोः प्रशस्ते मासि पुण्यभे॥ इत्यपरार्के गर्गवचनादिति प्रयोगपारिजाते। उक्तं चैतत् प्रयोगरत्ने भट्टैः। कालादर्शे तु—'नामकर्म च जातेष्टिम्' इति पाठः।

अपरार्क में गर्गवचन से प्रयोग पारिजात में कहा है कि—नामकर्म तथा दर्शेष्टि यथासमय करे। अतिपात (अपने काल में न करने पर) होने से दोनों को (नामकर्म और दर्शेष्टिको) शुद्धमास एवं पुण्यनक्षत्र में करे। यह बात प्रयोगरत्न में भट्टों ने कहा है। कालादर्श में तो 'नाम कर्म च [1]जातेष्टिम्' यह पाठ है। (अर्थात्—नामकर्म च जातेष्टिं यथाकालं समाचरेत्) इसी श्लोक के आधे भाग को पढे)।

(याज्ञिकानां मतम्)

याज्ञिकास्तु—आधानानन्तरा पौर्णमासी चेन्मलमासगा। तस्यामारम्भणीयादीन्न कुर्वीत कदाचन॥ इति त्रिकाण्डमण्डनवचनाच्छुद्धकाल एव विभ्रेष्टिं कृत्वाऽऽरम्भं कुर्यादित्याहुः।

याज्ञिकलोग तो कहते हैं कि—आधान के बाद पौर्णमासी मलमास में हो तो उसमें आरंभणीयादि इष्टि कभी भी नहीं करनी चाहिये। इसप्रकार त्रिकाण्डमण्डनवचन से शुद्धकाल में ही 'विभ्रेष्टि' को करके आरंभ करना चाहिये। यों कहा है।

कालादर्शे स्मृतिसङ्ग्रहेऽपि—आरम्भं दर्शपूर्णेष्ट्योरग्निहोत्रस्य चादिमम्।

प्रतिष्ठाः पञ्च कूर्माद्याः मलमासे विवर्जयेत्॥ इति।

कालदर्श में तथा स्मृतिसंग्रह में भी कहा है कि—दर्शेष्टि तथा पौर्णमासेष्टि, अग्निहोत्र का आरंभ पांच कूर्मादि की प्रतिष्ठा मलमास में वर्जित करे।

(अथ विकृतीष्टिकथनम्)

अथ विकृतीष्टिः। तत्रापस्तम्बः—यदीष्ट्या यदि पशुना यदि सोमेन यजेत सोऽमावास्यायां पौर्णमास्यां च इति।

अत्र प्रकृतितः काले सिद्धेऽपि सद्यस्कालता विधेया। तृतीया साङ्गत्वेनोक्तेः। अत्र पौर्णमास्यमावास्याशब्दाभ्यां तदन्त्यक्षणो गृह्यते। तेन तद्वत्यहोरात्र इत्यर्थमाह रामाण्डारः।

अब विकृतिनामवाली इष्टि कहते हैं—उसमें आपस्तंब ने कहा कि—यदि इष्टि से, यदि पशु से, यदि सोम के द्वारा यज्ञ करना चाहता है तो वह अमावास्या तथा पौर्णमासी में करे। यहाँ पर प्रकृति के समय सिद्ध होनेपर भी सद्यस्काल में विधान करे। यहाँ पर तृतीया (विभक्ति) से अङ्गत्व सहित कहा है। यहाँ पर पौर्णमासी और अमावास्या शब्दों से उनके अन्त्यक्षण का ग्रहण करे। उससे अन्तिम क्षणयुक्त 'अहोरात्र' इस अर्थ को कहा है। यह रामाण्डार का मत है।

माधवोऽपि—इष्ट्यादिविकृतिः सर्वा पर्वण्येवेति निर्णयः। इति।

माधव ने भी कहा कि—इष्टि आदि सव विकृति पर्व में ही होती है। यह निर्णय है।

(अथ विशेषकथनम्)

अत्र विशेषमाह त्रिकाण्डमण्डनः, कात्यायनश्च—आवर्तनात्प्राक् यदि पर्वसन्धिः कृत्वा तु तस्मिन् प्रकृतिं विकृत्याः। तदैव यागः, परतो यदि स्यात्तस्मिन् विकृत्याः प्रकृतेः परेद्युः॥ इति।

यहाँ पर विशेष त्रिकाण्डमण्डन तथा कात्यायन ने कहा है कि—आवर्तन के पहले यदि पर्व सन्धि हो तो उसमें प्रकृति को करके तव विकृति याग होता है। पर दिन में यदि हो तो उसमें विकृति का अनुष्ठान कर दूसरे दिन प्रकृति का अनुष्ठान करे।

धूर्तस्वाम्यादयोऽप्येवमाहुः। 'यदीष्ट्या' इति साङ्गाया विकृतेः पर्वकालत्वादावर्तनात्प्राक् सन्धौ 'सन्धिमभितो यजेत्' इति प्रकृतेः प्रतिपदि समाप्तिनियमात्। प्रकृत्यनन्तरं प्रतिपदि विकृत्ययोगात् पूर्वेद्युर्विकृतिरित्युक्तं तन्त्ररत्ने पार्थसारथिना।

१–'वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेत् पुत्रे जाते' (तैत्तरीयसंहितातृ० का० २।२।५।३) पुत्रे जाते पुत्रोत्पत्तौ निमित्तभूतायां वैश्वानरदेवताकेन द्वादशकपालसंस्कृतपुरोडाशेन पुत्रगतपूतत्वादिकं भावयेदित्यर्थः।

यद्यपि 'प्रकृतेः पूर्वत्वादपूर्वमन्ते स्यात्' इत्यापस्तम्बेनोक्तम्, तथाऽपि हेतुवादेन श्रुतिमूलत्वाभावादङ्गं वा समभिव्याहारादितिवदप्रामाण्यमिति तदाशयः। आग्रयणे तु विशेषं वक्ष्यामः।

'अन्वारम्भणीया तु चतुर्दश्यां कार्या' इति हिरण्यकेशिवृत्तौ मातृदत्तीये। अन्येषां पर्वण्येव।

धूर्तस्वामी आदि ने भी यही कहा है। 'यदीऽष्ट्या' इस वाक्य से सांग विकृति का पर्वकालत्व होने से आवर्तन से पहले सन्धि में (ससन्धिमभितो यजेत्) प्रतिपदा में समाप्ति नियम है। प्रकृति के बाद प्रतिपदा में विकृति के असंभव से पूर्व दिन में विकृति को करना चाहिये यह तन्त्ररत्न में पार्थसारथि ने कहा है। यद्यपि प्रकृति का पूर्वत्व होने से अपूर्व का अन्त में होता है—यह आपस्तम्ब ने कहा है।

फिर भी हेतुवाद से श्रुतिमूलत्व अभाव से 'अङ्गं वा समभिव्याहारात्' 'इसकी तरह अप्रामाण्य है। यह उसका आशय है।

आग्रयण में तो विशेष कहेगें। 'अन्वारंभणीया' को चतुर्दशी में करना चाहिये। यह हिरण्यकेशिवृत्ति में तथा मातृदत्तीय में लिखा है। अन्यों के मत में पर्व में ही करे।

(पशौ सोमे च कालान्तरकथनम्)

पशौ सोमे च कालान्तरमप्याह बौधायनः—'अमावास्येन वा हविषेष्ट्वा नक्षत्रे वा' इति। शुक्लपक्षे कृत्तिकादिविशाखान्तेषु देवनक्षत्रेष्विति केशवस्वामी व्याचख्यौ।

चातुर्मास्येष्वपि द्वादशाहयथाप्रयोगपक्षयोर्नक्षत्रेष्वप्यारम्भः। यावज्जीवसांवत्सरप्रयोगयोस्तु फाल्गुन्यां चैत्र्यां वाऽऽरम्भः।

पशुयाग और सोमयाग में तो बौधायन ने कालान्तरपक्ष भी कहा है कि—अमावास्या हविके द्वारा याग करके या नक्षत्र में शुक्लपक्ष में कृत्तिका से लेकर विशाखान्तदेव नक्षत्रों में [2]करे—यह केशवस्वामी ने व्याख्या की। चातुर्मास्ययज्ञों में भी द्वादशाह (आद्येऽह्नि-वैश्वदेवं पर्व, चतुर्थे-वरुणप्रघासम्, अष्टमनवमयोः साकमेधम्, द्वादशे शुनासीयम् इत्येकः पक्षः। क्रमेण पर्वचतुष्टयमिति द्वितीयः। फाल्गुन्यां पौर्णमास्यामारभ्य चतुर्षु मासेषु क्रमेणैकैकं पर्वेत्येवं यावज्जीवमिति तृतीयः। एकवर्षं तथा कृत्वा सवनेष्टिपशुसोमान्यतमेन यजेदिति तुरीयः। एकाहचातुर्मास्यप्रयोगोऽपि शाङ्खायनेनोक्तः—अपि वाऽप्येकपर्वणि' इति।) प्रयोग नक्षत्रों में आरंभ करे। यावज्जीव सांवत्सरप्रयोग में फाल्गुन या चैत्र में प्रारंभ करे।

(अथ पशौ विशेषकथनम्)

पशौ तु विशेषमाह कात्यायनः—अर्धादह्नो भवति नियतं पर्वसन्धिः परस्तात्
कृत्वा तस्मिन्नहनि तु पशुं सद्य एव द्व्यहं वा।
आरभ्याऽथ प्रकृतिरथ चेत्पर्वसन्धिः पुरस्तात्
कृत्वा तस्मिन् प्रकृतिमथ तु स्यात्पशुः सद्य एव ॥

अधिकारपशुस्त्वग्नीषोमीयेन सवनीयेन वा समानतन्त्र कार्यः' इति त्रिकाण्डमण्डनः।

जैसे-पशुयाग में तो कात्यायन ने विशेष कहा है कि—आधे दिन के बाद पर्वसन्धि नियत हो उसमें उसी दिन या दो दिन तक पशुयाग को कर प्रकृति को करे। पर्व सन्धि पहले हो चुकी है तो तब प्रकृति याग का पहले अनुष्ठान कर उसी दिन पशुयाग कर सद्यस्काल में अनुष्ठान करना चाहिये। त्रिकाण्डमण्डन ने कहा कि-अधिकारपशु (ऐन्द्राग्नपशुयाग) अग्नीषोमीय पशु के साथ अथवा सवनीय पशु के साथ समान क्रिया से करना चाहिये।

१–पिण्डपितृयज्ञको दर्शयाग के पहले अनुष्ठान करना चाहिये। क्योंकि पिण्डपितृयज्ञ दर्शांग है। 'पूर्वेद्युः पितृभ्यो-निष्क्रीय प्रातर्यज्ञं प्रतनुते (तै० ब्रा० १।३।१०) इस श्रुति से दर्शयाग के पूर्व ही पिण्डपितृयज्ञ करे। विशेष देखिये—स्वर्गीय-म० म० श्री विद्याधरजी गौड कृत कात्यायन श्रौतसूत्र अ० ४ क० १ सू० २८-३०।

२–(देवनक्षत्र—कृत्तिकानक्षत्र से लेकर विशाखान्त नक्षत्र तक और यमनक्षत्र—अनुराधा नक्षत्र से भरणी नक्षत्रान्त तक)

सोमे त्वाहाऽऽपस्तम्बः—अमावास्यायां दीक्षायजनीये वाऽमावास्यायां यजनीयो वा स्तुत्यमहः, पौर्णमास्यां दीक्षायजनीये पौर्णमास्यां यजनीये वा स्तुत्यमहः' इति ।

सोमयज्ञ में तो आपस्तम्ब ने कहा है कि–अमावास्या में दीक्षा यजनीय में या अमावास्या यजनीय में उसी दिन सुत्या का दिन है। पौर्णमासी में दीक्षा ले या यजनीय में पौर्णमासी में सुत्या का दिन है।

लाट्यायनसूत्रेऽपि—'पूर्वपक्षस्य प्रथमेऽहनि दीक्षेत दृष्ट्वा वा नक्षत्रयोगम्' इति । पूर्वपक्षः = शुक्लपक्षः । नक्षत्रयोगे चेति । अयमर्थः—चैत्र्यादिपूर्णिमायाश्चित्रादिनक्षत्रयोगे दीक्षेतेति । आधानं तु पर्वणि नक्षत्रेषु चोक्तम् । तत्र पर्व 'नक्तं गार्हपत्यमादधाति' इत्यादिकर्मकालव्यापि ग्राह्यम् ।

दिनद्वये तत्त्वे परं ग्राह्यम् । सङ्कल्पस्य पर्वणि लाभात् । पूर्वनक्षत्रयोगे तदेव ग्राह्यम् । 'यत्र त्रीणि सन्निपतितान्यृतुर्नक्षत्रं पर्व च, तत्समृद्धं 'विप्रतिषेधे ऋतुर्नक्षत्रं च बलीयः' इति हिरण्यकेशिसूत्रात् । ऋतुः 'वसन्ते ब्राह्मणोऽग्नीमादधीत' इत्यादिः ।

लाट्यायनसूत्र में भी कहा है कि—पूर्वपक्ष (शुक्ल पक्ष) के प्रथमदिन में दीक्षा ले या पुण्य नक्षत्र योग में। पूर्व पक्षः-शुक्ल पक्ष। नक्षत्रयोग-चैत्री पूर्णिमा से लेकर चित्रादि नक्षत्र योग में दीक्षा ले। आधान को पर्व में तथा नक्षत्रों में कहा है। उसमें पर्व (नक्तं गार्हपत्यमादधाति) नक्त (रात्रि में) गार्हपत्य का आधान करे।

इत्यादि कर्मकालव्यापि ग्रहण करना चाहिये। दो दिन हो तो दूसरे दिन की ग्रहण करनी चाहिये। क्योंकि संकल्प का पर्व में लाभ होने से। पहले नक्षत्र योग में उसी को ग्रहण करना चाहिये। जहाँ पर ऋतु, नक्षत्र तथा पर्व ये तीनों प्राप्त हों वह समृद्ध होता है। विप्रतिषेध (विरोध) में ऋतु तथा नक्षत्र बलवान् हो जाते हैं। यह हिरण्यकेशीसूत्र में है। ऋतु का अर्थ यों है—वसन्त में ब्राह्मण को अग्नि का आधान करना चाहिये। इत्यादि।

रेणुककारिकायां तु—माघादिपञ्चमासेषु श्रावणे चाश्विने तथा ।
मार्गशीर्षे शुक्लपक्षे आधानमथ कारयेत् ॥ इत्युक्तम् । अत्र मूलं मृग्यम् ।

रेणुकारिका में लिखा है कि—माघ आदि से पांच महिनों में श्रावण, आश्विन तथा मार्गशीर्ष के शुक्लपक्ष में आधान करे। यों कहा है। इसमें मूल अन्वेषणीय है।

आधाननक्षत्राणि त्वापस्तम्बसूत्रे—'कृत्तिका-रोहिणी-मृगशीर्ष-पुनर्वसु-पूर्वोत्तरा फाल्गुनी-हस्त-चित्रा-विशाखाऽनुराधा-श्रवणोत्तराभाद्रपदा' इति । (कृत्तिका-रोहिणी-मृगशीर्ष-पुनर्वसु-(पुष्य) पूर्वोत्तरा-पूर्वाषाढो-त्तरा-हस्त-चित्रा-विशाखाऽनुराधा-श्रवणोत्तराभाद्रपदा)।

आधान के नक्षत्रों को तो आपस्तंबसूत्र में कहा है—कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, विशाखा, अनुराधा, श्रवण तथा उत्तराभाद्रपदा।

सोमपूर्वाधाने विशेषमाहाऽऽपस्तम्बः—'सोमेन यक्ष्यमाण आदधानो नर्तूं न् सूर्क्षेत्र नक्षत्रम्' इति । अत्र प्रकरणादाधानकालबाधः । तेन सोमस्य वसन्तकालता न बाध्यते' इति रुद्रदत्तवृत्तौ नारायणवृत्तौ चोक्तम् ।

सोमपूर्वक आधान में विशेष आपस्तंव ने कहा है कि—सोमयज्ञ करनेवाला आधान में ऋतु और नक्षत्रों को ध्यान न दें। यहाँ पर प्रकरण से आधान काल (पर्व नक्षत्र आदि) का बाध होता है। उससे सोम के वसन्तकालकी बाधा नहीं होती है। यह रुद्रदत्तवृत्ति में तथा नारायणवृत्ति में भी कहा है।

तन्त्ररत्ने वार्तिके च—'ते वा एते उभये अपहतपाप्मानो ऋतवः । एष वा उद्यन्नादित्य एषां पाप्मनोऽपहन्ता । यदैवैवं कदाचन यज्ञ उपनमेदथादधीत' इत्यत्रोत्तरायणरूपं दैवं, दक्षिणायनरूपं च पित्र्यमित्युभयमृतुत्रयं सोमाधाने शतपथे विशिष्य विहितम् । तदेकवाक्यतया शाखान्त-

रेऽपि 'नर्तून् सूर्क्षेत्' इत्यत्र सोमकालबाध एव । आधानकालबाधस्य 'यदैवैनं श्रद्धोपनमेत्तदादधीत' इति तस्यां शाखायां वाक्यान्तरेण सिद्धत्वात्सोमकालबाधार्थमेवेदमित्युक्तम् ।

तंत्ररत्न और वार्तिक में कहा है कि—वे दोनों प्रकार की ऋतुवें पापरहित हैं। यह सूर्य उदय होते ही इन ऋतुओं के पापों का नाश करता है। जब कभी इसे यज्ञ में श्रद्धा प्राप्त हो तभी आधान कर ले।' यहाँ उत्तरायणरूप दैव और दक्षिणायनरूप पित्र्य ये दोनों ऋतुत्रय सोम के आधान में शतपथ में विशेषतः विहित हैं। इसलिये एक वाक्यता से दूसरी शाखा में भी 'ऋतुओं का आदर न करे' यहाँ सोमकाल का बाध ही है। 'जब ही इसे श्रद्धा प्राप्त हो तब ही आधान कर ले' इस शाखा में दूसरे वाक्य से आधान काल का बाध सिद्ध होने से सोम काल के बाधनार्थ ही यह है।

धूर्तस्वामी तु—सोमस्यापि य ऋतुस्तस्यापि 'न सूर्क्षेत्' इति लिखनादुभयकालबाधं मन्यते ।

धूर्तस्वामी तो सोम का भी जो ऋतु है उसकी परीक्षा न करे—इस लिखन से दोनों काल के बाध को मानते हैं।

श्रीरामाण्डारस्तु—कालान्तरविधानं वा सर्वकालानादरो वेति पक्षद्वयमुक्तवान् ।

श्रीरामाण्डार तो कालान्तरविधान को या सर्वकालों के अनादर को इसप्रकार दोनों पक्ष को कहा।

तत्राद्ये कृत्तिकादिकालानन्तरस्य यथा आधाने वसन्ताद्यबाधेन विधानम्, तथा 'सोमेऽप्युदगयनपूर्वपक्षपुण्याहसन्निपाते यज्ञकालो नादेशः' इति च्छन्दोगसूत्रोक्तोदगयनाबाधेन सोमाभिसन्धिरूपकालान्तरविधानादुदगयनं त्वपेक्ष्यत इत्युक्तम् ।

उसमें आदि में कृत्तिका आदि कालान्तर का जैसे आधान में वसन्तादि अबाध से विधान है। वैसे सोम में भी उत्तरायण पूर्वपक्ष पुण्य दिन के सन्निपात में यज्ञ के काल को आदेश नहीं दिया है। इसप्रकार छन्दोगसूत्र में कहा गया उत्तरायण के अबाध से सोमाभिसन्धिरूपकालान्तर का विधान उत्तरायण की तो अपेक्षा होती है। यों कहा।

द्वितीयपक्षे तु 'यदैवैनं (कालान्तरे) यज्ञ उपनमेत्' इति सर्वकालानादर उक्त इति भारद्वाजसूत्रात्सर्वशब्दस्य विश्वजित्सर्वपृष्ठइतिवद् द्वयोरप्रयोगात्सर्वकालबाध इति । तेन दक्षिणायनेऽपि भवतीत्युक्तम् । षड्गुरुभाष्ये देवत्रातभाष्ये तन्त्ररत्ने च षट्स्वपि ऋतुषु भवतीत्युक्तमिति दिक् ।

दूसरे पक्ष में तो 'यदैवैनं यज्ञ उपनमेत्' जब ही सब समयों (काल) का अनादर कहा—यह भरद्वाज सूत्र से सर्व शब्द का 'विश्वजित् सर्वपृष्ठ' इसकीतरह दोनों का अप्रयोग से सब काल के काल की बाधा होती है। उससे दक्षिणायन में भी होता है। षडगुरुभाष्य में, देवत्रातभाष्य में तथा तन्त्ररत्न में छः ऋतुओं में भी होता है, यों कहा।

(अथ साग्निकमते अमानिर्णयः)

श्राद्धे त्वमावास्या त्रेधा विभक्तदिनतृतीयांशे योऽपराह्णभागस्तद्भागव्यापिनी साग्निकैर्ग्राह्या ।

श्राद्ध में तो अमावस्या तीन प्रकार से विभक्त किये हुए दिन के तीसरे (तृतीयांशे योऽपराह्णभाग इत्यस्य सति सप्तमीवशात्तृतीयांशापराह्णभागयोरैक्यं तात्पर्यम्, पञ्चधाभागस्याप्रवेशात्) हिस्से में जो अपराह्णव्यापिनी हो उसे ले। वह साग्निक अग्निहोत्रियों को ग्राह्य है।

पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं क्षीणे राजनि शस्यते ।
वासरस्य तृतीयांशे नातिसन्ध्यासमीपतः ॥ इति कात्यायनोक्तेः ।

क्योंकि कात्यायनने कहा है कि—पितरोंके उद्देश्यसे दिया हुआ दर्शश्राद्ध (पिण्डपितृयज्ञोत्तरक्रियमाणं दर्शश्राद्धम्) क्षीण चन्द्रमा में कहा है। दिन के तृतीयभाग में प्रशंसा है, सन्ध्या के अत्यन्त समीप में (सायाह्नस्त्रिमुहूर्तः स्याच्छ्राद्धं तत्र न कारयेत् । राक्षसो नाम सा प्रोक्ता गर्हिता सर्वकर्मसु ॥) नहीं है।

दर्शश्राद्धं तु यत्प्रोक्तं पार्वणं तत्प्रकीर्तितम् ।
अपराह्णे पितृणां च तत्र दानं प्रशस्यते ॥ इति शातातपोक्तेश्च ।

शातातप ने भी कहा है—जो अमावास्या का श्राद्ध है उसे पार्वण कहा जाता है। उसके अपराह्ण (अपराह्णः पञ्चधाविभक्तदिनचतुर्थो भागः । वस्तुतस्तु पितृयज्ञादित्रयानुष्ठानार्थं दिवसतृतीय भागरूपापराह्णोऽपेक्षितः) में पितरों को दिया दान प्रशस्त है।

दिनद्वये तत्र सत्त्वे सर्वापराह्णव्यापी दर्शो ग्राह्यः । 'यद्युभयेद्युरेष विहितः सर्वोऽपराह्णस्थितः' इति दीपिकोक्तेः ।

यदि अमावास्या दोनों दिन अपराह्ण में हो तो जो सब अपराह्ण में व्याप्त हो, उसे ग्रहण करे। क्योंकि दीपिका में कहा है कि—यदि दोनों दिन श्राद्ध काल हो तो सब अपराह्ण में स्थित को ले।

यत्तु कार्ष्णाजिनिः—भूतविद्धाममावास्यां मोहादज्ञानतोऽपि वा ।
श्राद्धकर्मणि ये कुर्युस्तेषामायुः प्रहीयते ॥ इति ।

जो कार्ष्णाजिनि ने कहा है कि—चतुर्दशी से विद्धा अमावास्या श्राद्धकर्म में जो मनुष्य मोह या अज्ञान द्वारा करते हैं, उनकी आयु नष्ट होती है।

तदपराह्णे चतुर्दशीवेधपरमिति श्राद्धहेमाद्रिः । अपराह्णाव्याप्तिपरमिति माधवः । दिनद्वयेऽपराह्णव्याप्त्यभावेंऽशतो व्याप्तौ च तिथिक्षये पूर्वेति हेमाद्रिः ।

यह अपराह्ण में चतुर्दशी वेधपरक है ऐसा श्राद्धखण्ड में हेमाद्रि ने कहा।

माधव ने कहा कि—वह अपराह्ण-अव्याप्ति परक है। दोनों दिन अपराह्णव्यापिनी न हो और अपराह्ण के किसी भाग में व्याप्त हो या तिथि क्षय हो तो पूर्वा ले—ऐसा हेमाद्रि ने कहा है।

यदा चतुर्दशी यामं तुरीयमनुपूरयेत् ।
अमावास्या क्षीयमाणा तदैव श्राद्धमिष्यते ॥ इति । कात्यायनोक्तेः ।

चतुर्दश्याश्चतुर्थं यामं दर्शः पूरयेत् । चतुर्दशी यामत्रयं स्यादित्यर्थः । क्षीयमाणा परदिनेऽपराह्णव्यापिनी नेत्यर्थः ।

क्योंकि कात्यायन ने कहा है—जिस दिन अमावास्या चतुर्दशी के चतुर्थ प्रहर को पूर्ण कर दे यानी चतुर्दशी तीन प्रहर हो और अमावास्या क्षीण होकर दूसरे दिन अपराह्ण में न हो तो चतुर्दशी में ही श्राद्ध इष्ट है।

(अथ व्यतिरेककथनम्)

व्यतिरेकमाह—वर्द्धमानाममावास्यां लक्षयेदपरेऽहनि ।
यामांस्त्रीनधिकान् वापि पितृयज्ञस्ततो भवेत् ॥ ततः श्राद्धं च ।

इसका अभाव (विरोध) कहा है कि—दूसरे दिन तीन या अधिक याम तक बढ़ती हुई अमावस्या देखे तो पितृयज्ञ होता है और पश्चात् श्राद्ध होता है।

दिनद्वयेऽपराह्णव्याप्त्यादौ च तिथिवृद्धौ हारीतः—त्रिमुहूर्ता च कर्तव्या पूर्वा खर्वा च बह्वृचैः । कुहूरध्वर्युभिः कार्या यथेष्टं सामगीतिभिः ॥ त्रिमुहूर्ताभावे तु पूर्वा नेत्यर्थः ।

यदि दोनों (दिनद्वये वैषम्येण एकदेशेनापराह्णव्याप्तौ) दिन अपराह्णव्यापिनी हो या तिथि वृद्धि हो तो हारीत ने कहा है—खर्वा (चन्द्रकला सहित) अमावास्या तीन मुहूर्त होने पर भी बह्वृच शाखावाले पहली में करें और कुहू (चन्द्रकला रहित अमावास्या में) अध्वर्यु करें तथा सामवेदी अपनी इच्छानुसार चाहे जिसे करें। यदि पहले दिन (उत्तरा) तीन मुहूर्त न हो तो न करें।

(अथ पिण्डपितृयज्ञे मतमतान्तरकथनम्)

पिण्डपितृयज्ञस्तु कात्यायनैर्यागदिनात्पूर्वेद्युः कार्यः । 'पूर्वो वाऽङ्गत्वात् पिण्डपितृयज्ञः' इति तत्सूत्रात् ।

व्याख्यातं चैतत् कर्काचार्यैः—'पूर्व एव दर्शात् पिण्डपितृयज्ञो, न पश्चात् । कुतः, अङ्गत्वात् ।'

तथा च श्रुतिः—'तस्मात्पूर्वेद्युः पितृभ्यः क्रियत उत्तरमहर्देवान् यजन्ते' इति ।

'पूर्वेद्युः पितृभ्यो यज्ञं निपृणीय प्रातर्देवेभ्यः प्रतनुते' इति च । तेन तन्मते अङ्गमेवासौ । तदुक्तम्—'अङ्गं वा समभिव्याहारात्' इति । तेन कर्कमते चतुर्दशीयुक्तदर्शे पिण्डपितृयज्ञ इति ।

पिण्डपितृयज्ञ तो कात्यायनों के मतसे याग दिन से पूर्व दिन करना चाहिये; क्योंकि कात्यायन का सूत्र है—यज्ञ होने से पिण्डपितृयज्ञ को पहले करे। कर्काचार्य ने इस सूत्र का यों अर्थ किया है—अंग होने से पिण्डपितृयज्ञ, अमावास्या से पहले करे पीछे नहीं । वैसी श्रुति है—उससे पूर्व दिन पितरों के निमित्त यज्ञ करे और दूसरे दिन देवताओं के पूर्व दिन पितरों के लिये यज्ञ करे उससे दूसरे दिन देवताओं के लिये यज्ञ का विस्तार करे क्योंकि उनके मत में पितृयज्ञ देवयज्ञ का अंग ही है। उसे कहा है—समभिव्याहार से अंग को ही प्रथम करे । अतएव कर्क मत में चतुर्दशी युक्त अमावास्या में पिण्डपितृयज्ञ होता है ।

श्रीअनन्तभाष्ये तु परेद्युरित्युक्तम् । अत्र द्वेधाप्याचारो दृश्यते । आपस्तम्बानां तु परदिने मुहूर्तमपि दर्शसत्त्वे तत्रैव पितृयज्ञः ।

तदाह आपस्तम्बः—'अमावास्यायां यदहश्चन्द्रमसं न पश्यति तदहः पिण्डपितृयज्ञं कुरुते' इति ।

श्रीअनन्तभाष्य में तो दूसरे दिन करे यों कहा है । इसमें दोनों प्रकार के आचार को देखा जाता है । आपस्तम्बों के मतमें तो दूसरे दिन में मुहूर्तमात्र भी अमावास्या के रहने पर उसी दिन पितृयज्ञ होता है । उसे आपस्तम्ब ने कहा है—अमावास्या में जिसदिन चन्द्रमा नहीं दिखता है । उस दिन 'पिण्डपितृयज्ञ' को करे ।

अस्य रुद्रदत्तीयाव्याख्या—'पिण्डैर्युक्तः पितृयज्ञः पिण्डपितृयज्ञः ।' स च कर्मान्तरं न तु दर्शशेषः ।

यथा वक्ष्यति—'पितृयज्ञः स्वकालविधानादनङ्गं स्यात्' इति ।

तं च यदहश्चन्द्रमसं न पश्यति पञ्चदश्यां प्रतिपदि वा तदहः कुरुते । यदहस्तयोः सन्धिस्तदहरित्यर्थः—इति ।

इसकी रुद्रदत्तीया व्याख्या है—पिण्डों से युक्त पितृयज्ञ को 'पिण्डपितृयज्ञ' कहते हैं । वह दूसरा कर्म है, अमावास्या का शेष नहीं है । जैसे कहेंगे कि—अपने कालमें विधान होने से पितृयज्ञ अमावास्या के श्राद्ध का अंग नहीं होता और जिस दिन पूर्णिमा या प्रतिपदा में चन्द्रमा नहीं दिखता उस दिन करे। अर्थात्—जिस दिन उन दोनों की सन्धि हो उस दिन करे—यह अर्थ है ।

श्रीरामाण्डारोऽप्याह—'पिण्डपितृयज्ञस्तु पर्वसन्धिमदहोरात्रापराह्णे' इति ।

अतः पर्वसन्धिदिने हि पितृयज्ञः ।

श्रीरामाण्डार ने भी कहा है—पिण्डपितृयज्ञ तो पर्व की सन्धिवाले अहोरात्र के अपराह्ण में होता है । इसलिये पर्व की सन्धि के दिन पितृयज्ञ करे ।

शतपथश्रुतिरपि—'यदैवैष न पुरस्तान्न पश्चाद्ददृशेऽथ पितृभ्यो ददाति' इति । पर्वसन्धिदिने हि पूर्वतः पश्चाद्वा चन्द्रो न दृश्यत एवेत्यर्थः ।

शतपथ श्रुति में भी कहा है—जब भी यह पर्वसन्धि दिन में पहले या बाद दिन में चन्द्रमा न देखे तब पितरों के लिये दान देता है । अर्थात्—पिण्डपितृयज्ञ को करे ।

सत्याषाढोऽपि पितृयज्ञं प्रक्रम्य—'दृश्यमाने तूपोष्य श्वोभूते यजते' इत्याह ।

सत्याषाढ ने भी पितृयज्ञ के प्रसंग में कहा है कि—चन्द्रमा के दिखाई पड़ने पर चतुर्दशी में उपवास कर फिर प्रातःकाल में यज्ञ को करे ।

हेमाद्रिस्तु—'अमावास्याशब्दस्तिथिवचन एव । पूर्वोक्तापस्तम्बसूत्रे यदुक्तं 'न पश्यति' इति, तत्र क्षयोऽभिप्रेतः ।

अतश्चतुर्दश्यां चन्द्रस्य क्षीणत्वात्तद्युक्तदर्शे पितृयज्ञः । 'पितृयज्ञं तु निर्वर्त्य विप्रश्चन्द्रक्षयेऽग्निमान् । इति मनूक्तेः । यदुक्तम् 'यदहस्त्वेव दर्शनं नैति चन्द्रमाः—' तत्क्षयापेक्षया ज्ञेयम् । क्षीणे

राजनि चेत्यपि' इति, 'यदुक्तं दृश्यमानेऽपि, तच्चतुर्दश्यपेक्षया' इति च कात्यायनोक्तेः। 'दृश्यमानेप्येके' इति गोभिलोक्तेश्च।

हेमाद्रिने तो कहा कि—अमावास्याशब्द तिथि अर्थ बोधक ही है। पूर्वोक्त आपस्तम्बसूत्र में जो कहा है—जिस दिन चन्द्रमा न दिखाई पड़े इस बचन से चन्द्रमा का क्षय इष्ट है, इससे चतुर्दशी में चन्द्रमा के क्षीण होने से चतुर्दशीय अमावास्या में पितृयज्ञ करे।

मनु ने कहा है कि—अग्निहोत्री ब्राह्मण होने पर पितृयज्ञ करके अवशिष्ट कर्म करे।

जो यह कहा है कि—जिस दिन चन्द्रमा दर्शन न दे उस दिन तथा क्षीण चन्द्रमा में पितृयज्ञ करे। क्योंकि उसे क्षय की अपेक्षा है। जो यह कहा है—कि चन्द्रमा के दीखने में, पितृयज्ञ करे उसे चतुर्दशी की अपेक्षा से जाने। ऐसा कात्यायन ने कहा है। और गोभिल ने भी कहा है—कोई चन्द्रमा के दीखने में भी पितृयज्ञ कहते हैं।

यस्यां सन्ध्यागतः सोमो मृणालमिव दृश्यते।
अपराह्णे क्षयस्तस्यां पिण्डानां करणं ध्रुवम्॥ इति हारीतोक्तेश्च।

क्योंकि हारीत ने यह कहा है—जिस तिथि में चन्द्रमा सायंकाल मृणाल (कमलतन्तु) के सदृश दिखाई पड़े उसके अपराह्ण में क्षय होता है; उसमें निश्चय पिण्डदान करे।

(अथ चन्द्रक्षयकालः)

चन्द्रक्षयकालश्चोक्तः कात्यायनेन—अष्टमेंशे चतुर्दश्याः क्षीणो भवति चन्द्रमाः। अमावास्याष्टमेंशे तु पुनः किल भवेदणुः॥ इति। तेन पूर्वद्युरेव पितृयज्ञ इत्यूचिवान्।

कात्यायन ने चन्द्रमा का क्षय काल कहा है कि—चतुर्दशी के आठवें भाग में चन्द्रमा क्षीण होता है तथा अमावास्या के आठवें भाग में तो फिर सूक्ष्मरूप हो जाता है, इसलिये पूर्वदिन ही पितृयज्ञ करे। यों कहा।

कर्काचार्यैरपि—'अपराह्णे पिण्डपितृयज्ञः चन्द्रादर्शनेऽमावास्यायाम्' इति कात्यायनसूत्रेऽदर्शनेन क्षय एवोक्तः। 'तस्मिन् क्षीणे ददाति' इति श्रुतेः। अतस्तन्मते चतुर्दशीयुक्तदर्शे पितृयज्ञे सति परदिने यागोर्थात्सिद्धः। तदेतत्सर्वोत्कृष्टमपि हेमाद्रिकर्कादिव्याख्यानमापस्तम्बैरनभ्युपगमात् कातीयबौधायनादिविषयम्।

कर्काचार्य ने भी कहा है—चन्द्रमा के न दीखने पर अमावास्या के अपराह्ण में 'पिण्डपितृयज्ञ' करे। कात्यायनसूत्र में भी चन्द्रमा के न दीखने पर ही क्षय कहा है। क्योंकि श्रुति में लिखा है—चन्द्रमा के क्षीण होने पर दे। इससे उक्त हेमाद्रि मत में चतुर्दशीयुक्त अमावास्या में पिण्डपितृयज्ञ के होने पर दूसरे दिन यज्ञ सिद्ध ही है। यह हेमाद्रि तथा कर्क आदि के सर्वोत्कृष्ट व्याख्यान को आपस्तम्बों के न मानने से कात्यायन एवं बौधायन के लिये जानना चाहिये।

आश्वलायनानामपि शेषपर्वणि पिण्डपितृयज्ञः। तथा च सूत्रम्—'अमावास्यायामपराह्णे पिण्डपितृयज्ञः' इति।

आश्वलायनों के यहाँ भी पर्व के शेष में ही 'पिण्डपितृयज्ञ' होता है। ऐसा सूत्र है कि—अमावास्या के अपराह्ण में पिण्डपितृयज्ञ होता है।

अत्र नारायणवृत्तिः—'अमावास्याशब्दः प्रतिपत्पञ्चदश्योः सन्धिवचनोऽप्यत्रापराह्णशब्दसमन्वयात्तद्वत्यहोरात्रे वर्तते। तस्यापराह्णे चतुर्थे भागे पिण्डपितृयज्ञः कार्यः। औपवसथ्ये यजनीये वाऽहनि। यदा त्वहोरात्रसन्धौ तिथिसन्धिः स्यात्तदौपवसथ्ये एवाहनि क्रियते' इति। अत एव 'मुहूर्तमप्यमावास्या प्रतिपद्यपि चेद्भवेत्। तदक्षमक्षयं पर्व ज्ञेयं शेषं तु पर्ववत्॥ इति हेमाद्रौ वचनं पिण्डपितृयज्ञपरमुक्तम् प्रयोगपारिजाते।

इसमें नारायण वृत्ति में लिखा है कि—प्रतिपदा और अमावास्या की संधि का वाचक भी अमावास्या शब्द अपराह्ण के समन्वय से सन्धिवाले अहोरात्र में है। उस अहोरात्र के चतुर्थ भाग में 'पिण्डपितृयज्ञ' को

करे या यज्ञ करने योग्य 'औपवसथ्य' के दिन करे और जब अहोरात्र की सन्धि में ही तिथि की सन्धि हो तब 'औपवसथ्य' के दिन ही यज्ञ करते हैं। इसलिये हेमाद्रि का वचन यदि प्रतिपदा में मुहूर्तमात्र भी अमावास्या हो तो उसमें दिया हुआ अक्षय होता है। क्योंकि पर्व का शेष भी पर्व के सदृश होता है। यह वचन प्रयोगपारिजात में पिण्डपितृयज्ञ विषयक कहा है।

अयं च स्मार्ताग्निमता सम्पूर्णे दर्शे श्राद्धव्यतिषङ्गेण कार्यः। व्यतिषङ्गो नामोभयोः सहानुष्ठानम्। एतच्च 'स्थालीपाकेन सह पिण्डार्थमुद्धृत्य, इति सूत्रे वृत्तिकृतोक्तम्।

स्मार्त अग्निवाले इस यज्ञ को पूर्ण अमावास्या में श्राद्ध के व्यतिषंग से करें। दोनों का एक साथ अनुष्ठान को व्यतिषंग कहते हैं। यह बात—स्थालीपाक के साथ पिण्डों के लिये निकालकर श्राद्ध को करे इस सूत्र में वृत्तिकार ने कहा है।

खण्डपर्वणि तु केचिदाहुः—पूर्वेह्नि पिण्डपितृयज्ञव्यतिषङ्गेण श्राद्धं कृत्वा परेऽह्नि केवलः पिण्डपितृयज्ञः कार्यः।

खण्डपर्व में तो कोई कहते हैं—पूर्व दिन पिण्डपितृयज्ञ के व्यतिषंग से श्राद्ध को कर दूसरे दिन केवल पिण्डपितृयज्ञ करे।

वृत्तिकृता तु—आन्वष्टक्यं च पूर्वेद्युर्मासि मास्यथ पार्वणम्।
काम्यमाभ्युदयेऽष्टम्यामेकोद्दिष्टमथाष्टमम्॥

इत्युदाहृत्य पूर्वेषु चतुर्षु स्थालीपाकादुद्धृत्याग्नौ करणमित्युक्तेर्दर्शश्राद्धे स्थालीपाको नियत इति गम्यते। स्थालीपाकश्च पितृयज्ञ एवेति पूर्वदिने व्यतिषङ्गः सिद्धः। प्रयोगपारिजाते तु वार्षिक-श्राद्धदेरपि व्यतिषङ्ग उक्तः, किमुत दर्शश्राद्धस्य।

क्योंकि वृत्तिकार ने कहा है कि—अन्वष्टकाश्राद्ध पूर्व दिन, प्रति मास पार्वण, अभ्युदय में काम्यश्राद्ध और अष्टमी में आठवाँ एकोद्दिष्ट होता है। यह उदाहरण देकर पहले चारों में, स्थालीपाक में से निकालकर 'अग्नौकरण' करे, इससे ज्ञात होता है कि अमावास्या के श्राद्ध में स्थालीपाक नियत है। पितृयज्ञ को ही 'स्थालीपाक' कहा जाता है। इससे प्रथम में व्यतिषंग (अन्योन्य संवन्ध) सिद्ध हुआ।

प्रयोगपारिजात में तो वार्षिक श्रद्धादिका भी व्यतिषंग कहा है, तो फिर दर्श श्राद्ध का क्यों नहीं होगा।

न्यायविदस्त्वाहुः सूत्रस्य वृत्तेश्च सम्पूर्णदर्शविषयत्वात् खण्डपर्वणि पूर्वदिने केवलं श्राद्धं परदिने च केवलः पितृयज्ञः कार्यः। अत एवोक्तं वृत्तिकृता—'नात्रापूर्वस्थालीपाकश्चोद्यते, सर्वश्राद्धेषु प्रसङ्गात्, इति।

न्याय वेत्ता तो यह कहते हैं कि—सूत्र उसकी वृत्ति को सम्पूर्ण दर्श (अमावास्या) का विषय होने से खण्डपर्व में पहले दिन में केवल श्राद्ध और दूसरे दिन केवल पितृयज्ञ को करें। इसीलिये वृत्तिकार ने कहा है कि यहाँ अपूर्व (कहीं अनुक्त) स्थालीपाक नहीं कहा। क्योंकि सभी श्राद्धोंमें स्थालीपाक का प्रसंग होता है।

प्रयोगपारिजातोक्तिरप्येतद्विषयैव। पूर्वदिने च श्राद्धेऽग्नौकरणमेव, न पाणिहोमः।

चतुर्ष्वाद्येषु साग्नीनां वह्नौ होमो विधीयते।

पित्र्यब्राह्मणहस्ते स्यादुत्तरेषु चतुर्ष्वपि॥ इति परिशिष्टे नियमात्। न च लौकिकाग्नौ पक्वस्य कथं गृह्याग्नौ होमः। 'नान्याग्नौ पक्वमन्याग्नौ जुहुयात्' इति निषेधात्।

१—व्यतिषंग का अर्थ—दोनों का एक काल में अनुष्ठान। जैसे—अमावास्या सोलहदण्ड के आगे आ जाती है। दूसरे दिन सोलहदण्ड तक प्राप्त है। ऐसे स्थल में पूर्व दिन में अपराह्णव्यापिनी होने के कारण दर्शश्राद्ध उसी दिन किया जाता है। वैसे ही दर्शयाग का अंगभूत पिण्डपितृयज्ञ को दर्शयाग के पूर्व दिन में करे। अब दर्शयाग तृतीय दिन में किया जाता है। अर्थात्—जिस दिन सूर्योदय में प्रतिपदा होती है। इसप्रकार अनुष्ठान करने से पुण्य मिलता है। अगर अमावास्या एक ही दिन में पांच दण्ड हो और दूसरे दिन उदयकाल में प्रतिपदा आ जाय तो दर्शश्राद्ध, पिण्डपितृयज्ञ दोनों को समान तन्त्र से करते हैं। इसीको महानुष्ठान या व्यतिषङ्ग कहते हैं।

मैवम् । श्राद्धस्य गृह्यत्वेन स्मार्ताग्नौ पचनाग्नौ वा कर्तव्यत्वात् । तस्मात्पूर्वेद्युः केवलं श्राद्धं, न व्यतिषङ्गः । इदमेव च युक्तम् ।

प्रयोगपारिजात की उक्ति भी इसी विषय की है। पहले दिन श्राद्ध करने पर तो अग्नौकरण ही करे और पाणिहोम न करे।

क्योंकि परिशिष्ट में यह नियम कहा है—प्रथम चार श्राद्धों में अग्निहोत्रियों की अग्नि में होम की विधि है और उत्तर के चार श्राद्धोंमें भी पित्र्य ब्राह्मणके हाथ में। कोई शंका करे कि—लौकिकाग्नि में पकाये हुए अन्न का गृह्याग्नि में कैसे होम होगा; क्योंकि अन्य अग्नि में पकाये हुए अन्न का अन्य अग्नि में होम न करे—ऐसा निषेध है। यह शंका ठीक नहीं; क्योंकि श्राद्ध भी गृह्य है, इससे स्मार्त अग्नि या पाकाग्नि में करना विहित है। इसलिये पहले दिन केवल श्राद्ध करे, व्यतिषंग न करे, यही वात युक्त भी है।

आहिताग्निना तु सर्वाधानिनाऽर्द्धाधानिना वा संपूर्णे खण्डे वा दर्शे श्रौताग्नौ पृथगेव पितृयज्ञः कार्यो न तु दर्शश्राद्धव्यतिषङ्गेणेति विस्तरभीतेर्विरराम: ।

आहिताग्नि चाहे वह सर्वाधानी (सब अग्नियों का आधान किया) हो या केवल स्मार्तकुण्डधारी अर्द्धाधानी हो। केवल स्मार्ताग्निकुण्ड में आधान किया हो वह संपूर्ण या खण्ड अमावास्या में श्रौताग्नि (दक्षिणाग्नि) में पृथक् ही पितृयज्ञ को करे, दर्शश्राद्ध के व्यतिषंग नहीं करे। इसे विस्तार भय से छोड़ते हैं।

(संपूर्णे दर्शे विशेपकथनम्)

सम्पूर्णे दर्शे च विशेपमाह लौगाक्षिः—पक्षान्तं कर्म निर्वर्त्य वैश्वदेवं च साग्निकः ।
पिण्डयज्ञं ततः कुर्यात्ततोऽन्वाहार्यकं बुधः ॥ इति ।

पक्षान्तं कर्म = अन्वाधानम् । अन्वाहार्यकम् = दर्शश्राद्धम् । अयमेव साग्नेर्जीवत्पितृकस्य पिण्डपितृयज्ञकालो ज्ञेयः । तस्यापि कात्यायनेन 'होमान्तमनारम्भो वा' इत्याम्नानात् ।

अमावास्या पूर्ण में विशेष लौगाक्षि ने कहा है—अग्निहोत्री पक्षान्त का कर्म तथा वलिवैश्वदेव को कर पिण्डयज्ञ को करे, फिर विज्ञजन दर्शश्राद्ध करें। पक्षान्तकर्म—अन्वाधान (अग्निहोत्र की अग्नि में समिदाधान) और अन्वाहार्यक (पितरों के सम्मान में अमावास्या के दिन किया जानेवाला श्राद्ध) दर्शश्राद्ध है। यही जीवत्पितृक अग्निहोत्री का पिण्डपितृयज्ञ-काल जाने। कात्यायन ने कहा है—उसे भी होमान्त तक आरम्भ न करे।

(अथ पिण्डपितृयज्ञाकरणे प्रायश्चित्तकथनम्)

पिण्डपितृयज्ञाकरणे प्रायश्चित्तमाह पराशरमाधवीये कात्यायनः—'पितृयज्ञात्यये चैव वैश्वदेवात्ययेऽपि च । भोजने पतितान्नस्य चरुर्वैश्वानरो भवेत् ॥ (अभिष्ट्वा नवयज्ञेन नवान्नप्राशने तथा ।) इत्यलम् ।

पिण्डपितृयज्ञ के न करने पर पराशरमाधवीय में कात्यायन ने प्रायश्चित्त कहा है—पितृयज्ञ तथा बलिवैश्वदेव के न करने पर और पतितान्न भोजन करने पर वैश्वानरचरु (से होम) होता है।

(अथ कुतुपकालकथनम्)

प्रकृतमनुसरामः । निरग्निकादिभिस्त्वमावास्याऽपराह्णव्याप्त्यलाभे कुतपकालव्यापिनीः ग्राह्या ।
भूतविद्धाऽप्यमावास्या प्रतिपन्मिश्रितपि वा ।
पित्र्ये कर्मणि विद्वद्भिर्ग्राह्या कुतपकालिकी ॥ इति हारीतोक्तेः । इदं च निरग्निकादिविषयम् ।

अब प्रस्तुत प्रकरण का अनुसरण करते हैं। यदि अमावास्या अपराह्णव्यापिनी न मिल सके तो जो अग्निहोत्री नहीं हैं, वे कुतपकालव्यापिनी ग्रहण करें। क्योंकि हारीत ने कहा है—चतुर्दशीविद्धा अमावास्या हो या प्रतिपदा से मिश्रित हो तो बुद्धिमान् मनुष्य पितृकर्म में कुतपकालव्यापिनी को ग्रहण करे और यह जो अग्निहोत्री नहीं हैं उन्हीं के लिये है।

'सिनीवाली द्विजैः कार्या साग्निकैः पितृकर्मणि ।

स्त्रीभिः शूद्रैः कुहूः कार्या तथा चानग्निकैर्द्विजैः ॥ इति लौगाक्षिवचनात् ।

क्योंकि लौगाक्षि का कथन है—अग्निहोत्री पितृकार्य में सिनीवाली को ग्रहण करे। स्त्री, शूद्र और जो अग्निहोत्री नहीं हैं वे कुहू—अमावास्या को ग्रहण करें।

अत्र साग्निरौपासनाग्निरपीति मदनपारिजाते उक्तम् । कुतपश्चापराह्णव्याप्त्यलाभेऽनुकल्पः । अपराह्णद्वयाव्यापी यदि दर्शस्तिथिक्षये ।

आहिताग्नेः सिनीवालीनिरग्न्यादेः कुहूर्मता ॥ इति जाबालिना विधानात् ।

मदनपारिजात में कहा है कि—यहाँ अग्नि पद से औपासनाग्नि (य आहिताग्नेर्धर्मः स्यात्स औपासनिकस्य तु—इति वचनात्) भी ग्रहण हैं। कुतपकाल अपराह्ण (दिनद्वये अपराह्णस्पर्शाभावे) में न मिले तो कुतप का अनुकल्प (गौण आदेश) ग्रहण करे।

क्योंकि जाबालि ने कुतप के अभाव में विधान कहा है कि—तिथि क्षय होने पर यदि अमावास्या दोनों अपराह्ण में व्यापिनी हो तो अग्निहोत्री को सिनीवाली तथा अग्निरहित को कुहू ग्रहण करना चाहिये।

तेन साग्नीनां निरग्नीनां चापराह्णव्यापिन्येव मुख्या। तिथिसाम्यवृद्धिक्षयैः समव्याप्तौ खर्वादिना निर्णयः। वैषम्येऽधिका। दिनद्वयेऽपराह्णस्पर्शे कुतपव्यापिनीति माधवः। इदमेव च युक्तम् ।

इससे साग्निकों को और अनग्निहोत्रियों को अपराह्णव्यापिनी ही तिथि मुख्य (पूर्वेद्युरेवापराह्णव्याप्तौ पूर्वा। उत्तरेद्युरेव तद् व्याप्तावुत्तरा) होती है। तिथि के साम्य, वृद्धि, क्षय होने से यदि समव्याप्ति हो तो खर्व आदि से निर्णय करे। विषमता हो तो अधिक का। दोनों दिन अपराह्ण में न हो तो कुतपकालव्यापिनी का ग्रहण करे, यह माधव का मत है। यही युक्त है।

हेमाद्रिमते कुतपव्यापिन्येव निरग्न्यादेर्मुख्या। सिनीवाली = दृष्टचन्द्रा। तथा च व्यासः—

दृष्टचन्द्रा सिनीवाली, नष्टचन्द्रा कुहूः स्मृता। इति। पूर्वदिने परदिने एव वा तद्व्यापित्वे सैव ग्राह्या। अंशव्यापित्वे वैषम्येऽधिककालव्यापिनी ग्राह्या। दिनद्वयेंशतः समव्याप्तौ तिथिक्षये पूर्वा, वृद्धौ साम्ये च परा।

हेमाद्रि मत में तो अनग्निहोत्री को कुतपकालव्यापिनी ही मुख्य है। जिस अमावास्या में चन्द्रमा दिखाई पड़े उसे सिनीवाली कहते हैं।

ऐसा व्यास ने भी कहा है—जिसमें चन्द्रमा का दर्शन हो वह सिनीवाली और जिसमें दर्शन न हो वह कुहू कही जाती है।

पहले दिन में या दूसरे दिन में कुतपकालव्यापिनी हो तो वही ग्राह्य है। किसी अंश में व्याप्त होने से विषमता हो तो अधिककालव्यापिनी ले, यदि दोनों दिन अंशतः समानव्यापिनी हो या तिथिक्षय हो तो पहली ले, वृद्धि और साम्य होने पर दूसरी ले।

तिथिक्षये सिनीवाली तिथिवृद्धौ कुहूः स्मृता। साम्येऽपि च कुहूर्ज्ञेया वेदवेदाङ्गवेदिभिः ॥ इति प्रचेतोवचनात्। दिनद्वये सम्पूर्णा कुतपव्याप्तिस्तु तिथिवृद्धावेव भवतीत्यनन्तरवचनात् परैवेति ।

क्योंकि प्रचेता ने कहा है—तिथि के क्षय में सिनीवाली तथा तिथि की वृद्धि एवं समानता में कुहू का ग्रहण करे, ऐसा वेद-वेदांग वेत्ताओं ने कहा है।

दोनों दिन संपूर्ण कुतपकाल में व्याप्त तो तिथि वृद्धि में ही होती है, यह आगे के वचन से परवाली ही ग्राह्य है।

(अथ कुतुपलक्षणम्)

कुतपस्तु—अह्नो मुहूर्ता विज्ञेया दश पञ्च च सर्वदा। तत्राष्टमो मुहूर्तो यः स कालः कुतपः

१—रौद्रः श्वेतस्तथा मैत्रस्तथा सारभटः स्मृतः। सावित्रो वैश्वदेवश्च गान्धर्वः कुतुपस्तथा ॥ रोहिणस्तिलकश्चैव विभवो निर्ऋतिर्जयः। शम्बरो विजयश्चैव भेदाः पञ्चदश स्मृताः ॥ तत्रासंभवे तु—कुतुपाद्यान् मुहूर्तांस्त्रीन् यदाचरति भास्करः। स कालः कुतुपस्तत्र पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥ इत्युक्तो गौणः कुतुपो ग्राह्यः।

स्मृतः ॥ इति मात्स्योक्तेः । तुलादानपितृदेवप्रीत्यर्थोपवासादौ तु परा ग्राह्येत्यन्यत्र विस्तरः ।

कुतप का लक्षण मत्स्यपुराण में बतलाया है—दिन में सदैव पन्द्रह मुहूर्त होते हैं, उनमें आठवें मुहूर्त को कुतप कहते हैं ।

तुलादान, पितर और देवताओं के प्रीत्यर्थ उपवास आदि में तो दूसरी ग्रहण करे । ऐसा अन्य ग्रन्थों में विस्तार है ।

(अथ दर्शे वार्षिकादिप्राप्तौ विचारः)

दर्शे च मासिकवार्षिकादिश्राद्धप्राप्तौ कालादर्शे विशेष उक्तः—

दर्शस्य चोदकुम्भस्य दर्शमासिकयोरपि । नित्यस्य चाब्दिकस्यापि दार्शिकाब्दिकयोरपि ॥

इत्युक्त्वा—

सम्पाते देवताभेदाच्छ्राद्धयुग्मं समाचरेत् । निमित्ता नियतिश्चात्र पूर्वानुष्ठानकारणम् ॥ इति ।

अमावास्या में मासिक तथा वार्षिकश्राद्ध के पड़ जाने पर तो कालादर्श में विशेष कहा है—अमावास्या एवं घटदान का दर्श तथा मासिक का, नित्यश्राद्ध और वार्षिकश्राद्ध का, दर्शश्राद्ध तथा वार्षिक श्राद्ध का, सम्पात (एक ही दिन सम्मिलन) होने पर देवता भेद से दो श्राद्ध करे । इनमें निमित्त और नियति (धार्मिक कर्तव्य) ही प्रथम श्राद्ध के करने में कारण है । यानी प्रथम जिसका निमित्त और कर्तव्य हो उसे पूर्व करे ।

निर्णयदीपेऽपि—नष्टचन्द्रे यदा काले क्षयाहदिवसो भवेत् । वैश्वदेवं क्षयश्राद्धं कुर्यात्प्राग्दर्शकर्मणः ॥ अमाश्राद्धं चानुपनीतोऽपि कुर्यात् ।

निर्णयदीप में लिखा है—अमावास्या के दिन यदि मरने का दिन हो तो दर्शश्राद्ध से पूर्ण बलिवैश्वदेव तथा क्षयाहश्राद्ध को करे । अमावस्या का श्राद्ध अनुपनीत भी करे ।

श्राद्धशूलपाणौ—अमावास्याष्टकाकृष्णपक्षपञ्चदशीषु च । इत्युपक्रम्य

एतच्चानुपनीतोऽपि कुर्यात्सर्वेषु पर्वसु । श्राद्धं साधारणं नाम सर्वकामफलप्रदम् ॥
भार्याविरहितोऽप्येतत्प्रवासस्थोऽपि नित्यशः ।
शूद्रोऽप्यमन्त्रवत्कुर्यादनेन विधिना बुधः ॥ इति मात्स्योक्तेः ।

शूलपाणि में मत्स्यपुराण वचन से कहा है—इनका आरम्भ करके अमावास्या, अष्टका, कृष्णपक्ष की पंचदशी इनको अनुपनीत भी सभी पर्वों में करे । सब कामनाओं का फलप्रद साधारण श्राद्ध को भार्यारहित तथा प्रवासी भी नित्य करे । बुद्धिमान् शूद्र भी मन्त्र रहित इसी विधि से करे ।

(अमाश्राद्धातिक्रमे प्रायश्चित्तकथनम्)

अमाश्राद्धातिक्रमे प्रायश्चित्तमुक्तमृग्विधाने—'न्यूषुवाचं[1] जपेन्मन्त्रं शतवारं दिने दिने । अमाश्राद्धं यदा नास्ति तदा सम्पूर्णमेति तत् ॥ अत्र पूर्वोक्तसाग्निकपदेनाऽऽहिताग्निः स्मार्ताग्निमांश्च गृह्यते । विच्छिन्नाग्निकादिश्च निरग्निकः ।

तथा च हेमाद्रिरग्नौकरणप्रकरणे—साग्निरग्नावनग्निस्तु द्विजपाणावथाप्सु वा । कुर्यादग्नौ क्रियां नित्यं लौकिकेनेति निश्चितम् ॥ इति स्मृतिवाक्यमुदाहृत्य 'यस्त्वस्वीकृतौपासनतया समुच्छिन्नाग्नितया भार्याविधुरतया वाऽग्निरहितस्तस्य द्विजपाणौ जलादौ वा होमः' इति व्याचख्ये । मदनपारिजातेऽप्येवम् । इदमेव साग्निकानग्निकस्वरूपं सर्वत्र ज्ञेयम् ।

अमावास्या श्राद्ध के न करने पर ऋग्विधान में प्रायश्चित्त कहा है—'न्यू ३ षु वाचम्' इस मंत्र को प्रतिदिन सौ बार जपे, इस मन्त्र के जपने से अमावास्या में श्राद्ध न किया हो तो सम्पूर्ण हो जाता है ।

१—न्यू ३ षु वाचं प्र महे भरामहे गिर इन्द्राय सदने विवस्वतः । नू चिद्धि रत्नं ससतामिवाविदन्न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते ॥ (ऋ० १।५३।१) ।

अमावास्या के इसप्रकरण में साग्निकपद से जिसने वेद या स्मृति की अग्नि का आधान किया हो उसका तथा निरग्निक पद से जिसकी अग्नि नष्ट हो गई हो उसका ग्रहण है।

ऐसा हेमाद्रि ने अग्नौकरण प्रकरण में लिखा है—साग्निक द्विज अग्नि में एवं निरग्निक ब्राह्मण के हाथ में, जल में या लौकिकाग्नि में सदैव अग्नौकरण कर्म करे। इस स्मृति वाक्य को लिखकर यह व्याख्या की है—जो उपासना के अस्वीकार, अग्नि के नाश या स्त्री के अभाव होने से अग्निरहित है वह ब्राह्मण के हाथ में या जल आदि में होम करे। मदनपारिजात में भी ऐसा ही लिखा है। यही साग्निक तथा निरग्निक का स्वरूप सर्वत्र जानना चाहिये।

(अथ ग्रहणनिरूपणम्)

अथ ग्रहणं निर्णीयते। तत्र चन्द्रग्रहणे यस्मिन् यामे ग्रहणं तस्मात्पूर्वं प्रहरत्रयं न भुञ्जीत। सूर्यग्रहे तु प्रहरचतुष्टयं न भुञ्जीत।

अब ग्रहण का निर्णय करते हैं। चन्द्रग्रहण में जिस प्रहर में ग्रहण लगे उससे पूर्व तीन प्रहरों में भोजन न करे। सूर्यग्रहण में तो (जिस प्रहर में ग्रहण लगे उससे) पूर्व चार प्रहरों में भोजन न करे।

सूर्यग्रहे तु नाश्नीयात्पूर्वं यामचतुष्टयम्। चन्द्रग्रहे तु यामांस्त्रीन् बालवृद्धातुरैर्विना॥ इति माधवीये वृद्धगौतमोक्तेः।

क्योंकि माधवीय में वृद्धगौतम ने कहा है—सूर्य-ग्रहण में चार प्रहर पूर्व तथा चन्द्र-ग्रहण में तीन प्रहर पूर्व बालक, वृद्ध और आतुर—रोगी को छोड़कर कोई भोजन न करे।

ग्रहणं तु भवेदिन्दोः प्रथमादधि यामतः। भुञ्जीतावर्तनात्पूर्वं प्रथमे प्रथमादधः॥ इति मार्कण्डेयोक्तेश्च। अधि = ऊर्ध्वम्। न तु चन्द्रग्रहे यामचतुष्टयनिषेध उचितो न तु सूर्यग्रहे, सूर्योदयात्प्राक् भोजनाप्राप्तेः। नैवम्। वचनस्य प्रथमयामे सूर्यग्रहे सति पूर्वेद्युः पूर्वरात्रे भोजन-निषेधपरत्वात्।

मार्कण्डेयपुराण में कहा है—जो चन्द्रमा का ग्रहण रात्रि के द्वितीय प्रहर में हो तो मध्याह्न से पूर्व भोजन करे। रात्रि के प्रथम प्रहर में ग्रहण हो तो प्रथम याम के मध्य में भोजन करे।

कोई शंका करे—चन्द्र-ग्रहण में चार प्रहर का निषेध उचित था, सूर्य-ग्रहण में नहीं; क्योंकि सूर्योदय से पूर्व भोजन प्राप्त ही नहीं है यानी कोई भोजन नहीं करता। ऐसा मत कहो; क्योंकि प्रथम याम (प्रहर) में सूर्यग्रहण हो तो प्रथम दिन की रात्रि में भोजन निषेधार्थ यह वचन है।

(अथ चन्द्रादिग्रहणे भोजनविचारः)

चन्द्रग्रहे विशेषमाह माधवीये वृद्धवसिष्ठः–ग्रस्तोदये विधोः पूर्वं नाहर्भोजनमाचरेत्। इति। द्वयोर्ग्रस्तास्ते तु माधवीये व्यासः–अमुक्तयोरस्तगयोरद्याद् दृष्ट्वा परेऽहनि। इति।

चन्द्र-ग्रहण में विशेष माधवीय में वृद्ध-वसिष्ठ ने कहा है कि—यदि चन्द्रमा ग्रस्त होकर उदय हो तो पूर्व दिन भोजन न करे।

सूर्य-चन्द्र दोनों के ग्रस्ताग्रस्त में तो माधवीय में व्यास ने कहा है—यदि चन्द्रमा तथा सूर्य ग्रस्त हुए अस्त हो जायँ तो दूसरे दिन चन्द्रमा तथा सूर्य को देखकर भोजन करे।

विष्णुधर्मेऽपि–अहोरात्रं न भोक्तव्यं चन्द्रसूर्यग्रहो यदा।
मुक्तिं दृष्ट्वा तु भोक्तव्यं स्नानं कृत्वा ततः परम्॥ अहोरात्रनिषेधः सूर्यग्रस्तास्ते।

१—सूर्येन्दुग्रहणं यावत्तावत्कुर्याज्जपादिकम्। न स्वपेन्न च भुञ्जीत स्नात्वा भुञ्जीत मुक्तयोः॥ 'निद्रायां जायते रोगो-मूत्रे दारिद्र्यमाप्नुयात्। पुरीषे कृमियोनिः स्यान्मैथुने ग्रामसूकरः॥ अभ्यङ्गे च भवेत्कुष्ठी भोजने स्यादधोगतिः। वचने च भवेत् सर्पो वधे च नरकं व्रजेत्॥

विष्णुधर्म में भी लिखा है—जब चन्द्र या सूर्यग्रहण हो तो [1]अहोरात्र [2]भोजन न करे, किन्तु राहु से मुक्त देखकर स्नान को कर भोजन करे। इस वचन में अहोरात्र का निषेध ग्रस्तास्त सूर्य में जानना चाहिये।

मदनरत्ने गार्ग्यः—सन्ध्याकाले यदा राहुर्ग्रसते शशिभास्करौ। तदहर्नैव भुञ्जीत रात्रावपि कदाचन॥

ग्रस्तास्त होने पर मदनरत्न में गार्ग्य ने कहा है कि—जब राहु चन्द्रमा तथा सूर्य को सन्ध्या के समय ग्रसे तो उस दिन रात्रि में भी कभी भोजन न करे।

सायंसन्ध्यायां सूर्यग्रस्तास्ते पूर्वेऽह्नि रात्रौ च न भोक्तव्यम्। प्रातः सन्ध्यायां चन्द्रस्य ग्रस्तास्ते पूर्वरात्रावुत्तरेऽह्नि च न भोक्तव्यमित्यर्थः। चन्द्रग्रस्तास्ते उत्तरदिने सन्ध्याहोमादौ न दोषः।

इसका यह अर्थ है कि—सायंकाल की सन्ध्या में सूर्य के ग्रस्तास्त होने पर उस दिन तथा उस रात में भोजन न करे। प्रातःकाल की सन्ध्या में चन्द्रमा के ग्रस्तास्त होने पर तो पूर्व रात्रि तथा दूसरे दिन भोजन न करे। चन्द्रमा के ग्रस्तास्त हो जाने पर दूसरे दिन में सन्ध्या-होमादि करने में दोष नहीं है।

दाहोशनाः—ग्रस्ते चास्तंगते त्विन्दौ ज्ञात्वा मुक्त्यवधारणम्। स्नानहोमादिकं कार्यं भुञ्जीतेन्दूदये पुनः॥ एतदनाहिताग्निविषयम्। 'अपराह्ले व्रतोपायनीयमश्नीत' इति कात्यायनोक्तेर्व्रतस्य श्रौतत्वेन विहितत्वेन च प्रबलत्वात्। 'अद्भिर्व्रतं कुर्यात्' इति निर्णयदीपः। रागप्राप्तभोजने कालनियमोऽयम्। तेन ज्वरादाविव न भोजनम् इति कर्कानुसारिणः। बालवृद्धातुराणां तु ग्रहणयामात्पूर्वमेकयामो निषिद्धः।

इसे उशना ने कहा है—ग्रस्त हुआ चन्द्रमा अस्त हो जाय तो उसकी मुक्ति का निश्चय करके स्नान, होम आदि करे, भोजन तो चन्द्रमा के पुनः उदय हो जाने पर करे।

यह वचन निरग्निक के लिये है। कात्यायन ने कहा है कि—व्रत भोजन जिस अन्न (माषादि) से किया जाता है उसको 'व्रतोपायनीय' कहते हैं। दिन के दूसरे भाग में घी से मिश्रित होष्यमाण द्रव्यातिरिक्त माषादि हविष्य को पत्नी और यजमान अतृप्त होते हुए भोजन करे व्रत हो तो अपराह्ण में। इस वचन से वेदोक्तविधि हो जाने से व्रत की प्रबलता है।

निर्णयदीप में लिखा है—जल से ही व्रत कर ले। रागप्राप्त भोजन में ही यह कालका नियम है। इससे ग्रहण में ज्वरादि के तुल्य भोजन न करे, ऐसा कर्कानुसारियों का कथन है। बालक, वृद्ध और रोगी को ग्रहण लगने के प्रहर से प्रथम एक प्रहर निषिद्ध है।

सायाह्ने ग्रहणं चेत् स्यादपराह्णे न भोजनम्। अपराह्णे न मध्याह्ने, मध्याह्ने न तु सङ्गवे॥ भुञ्जीत सङ्गवे चेत्स्यान्न पूर्वं भोजनक्रिया॥ इति मार्कण्डेयोक्तेः। इदं च बालादिविषयम्। 'बालवृद्धातुरैर्विना' इति पूर्वोक्तेः। वेधकाले ग्रहणे वा पक्वमन्नं त्याज्यम्।

क्योंकि मार्कण्डेय ने कहा है—सायाह्न में ग्रहण हो तो अपराह्ण में, अपराह्ण में हो तो मध्याह्न में, मध्याह्न में हो तो संगव में तथा संगव में हो तो उससे पूर्व प्रहर में भोजन न करे। यह बालकों के लिये है। क्योंकि पहले बाल-वृद्ध-आतुरों के विना कह आये हैं। वेधकाल या ग्रहण समय में पकाये हुए अन्न का त्याग करे।

सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने। स्नात्वा कर्माणि कुर्वीत शृतमन्नं विवर्जयेत्॥ इति हेमाद्रौ षट्त्रिंशन्मतात्। शृतमिति तदन्तरितस्योपलक्षणम्।

नवश्राद्धेषु यच्छिष्टं ग्रहपर्युषितं च यत्। इति। मिताक्षरायां वचनात्।

१—अह्नः पूर्वारात्रिरित्याशयेनाह—अहोरात्रमिति। वस्तुतोऽहश्च रात्रिश्चेत्यर्थः।

२—ब्रह्माण्डे—नाश्नीयादथ तत्काले ग्रस्तयोश्चन्द्रसूर्ययोः। मुक्तयोश्च कृतःस्नानः पश्चाद् भुञ्ज्यात्स्ववेश्मनि॥ इति परान्ननिषेधः। मुक्तावपि भोजनं महानिशातः प्रागेव। 'महानिशा द्वे घटिके रात्रिमध्यमयामयोः। इति मार्कण्डेयोक्तेः। घटिकाचतुष्टयं तु युक्तम्।

क्योंकि हेमाद्रि में षट्त्रिंशत् का मत है—राहु के दर्शन में सभी वर्णों को सूतक है, स्नान करके कर्मों को करे तथा ग्रहण में पकाये अन्न का त्याग करे। शृत (पहले का पकाया हुआ) ग्रहण के मध्य में पकाये हुए का उपलक्षण है।

क्योंकि मिताक्षरा में यह वचन है कि—नवश्राद्ध का शेष तथा ग्रहण का वासी अन्न न खाय।

भार्गवार्चनदीपिकायां ज्योतिर्निबन्धे मेधातिथिः—'आरनालं[1] पयस्तक्रं दधि स्नेहाज्यपाचितम्।
मणिकस्थोदकं चैव न दुष्येद्राहुसूतके।

भार्गवार्चनदीपिका एवं ज्योतिर्निबन्ध में मेधातिथि ने कहा है कि—आरनाल, (कांझिक) दूध, मठा, दधि, तेल तथा घी में पकाया हुआ अन्न, मणिक (जलकलश) का जल—ये राहु के सूतक में दूषित नहीं होते हैं।

मन्वर्थमुक्तावल्याम्—'अन्नं पक्वमिह त्याज्यं स्नानं सवसनं ग्रहे।
वारि तक्रारनालादि तिलदर्भैर्न दुष्यति॥'

मन्वर्थमुक्तावली में लिखा है कि—ग्रहण में पका अन्न तथा घर में सचैल (वसन सहित) स्नान को त्याग दे। जल, माठा (तक्र), कांजी, तिल तथा कुशा से दूषित नहीं होते हैं।

(ग्रहणे जलपाने प्रायश्चित्तकथनम्)

जले त्वदोषो गाङ्गविषयः—'ग्रहोषितं जलं पीत्वा पादकृच्छ्रं समाचरेत्।' इति तत्रैव चतुर्विंशतिमतेऽन्यजलस्य दोषोक्तेः।

जल में जो दोष नहीं है वह गंगाजल विषय में जाने। क्योंकि ग्रहण में रखे हुए जल को पीकर पादकृच्छ्र करें, यह वहीं पर चतुर्विंशति मत से अन्य जल का दोष कहा है।

(वेधादिकाले भोजने प्रायश्चित्तकथनम्)

वेधकाले ग्रहणे वा भोजने प्रायश्चित्तमुक्तं माधवीये कात्यायनेन—

'चन्द्रसूर्यग्रहे भुक्त्वा प्राजापत्येन शुद्ध्यति। तस्मिन्नेव दिने भुक्त्वा त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति॥' इति।

वेधकाल में या ग्रहण में भोजन के करने पर माधवीय में कात्यायन ने प्रायश्चित्त कहा है। चन्द्रमा तथा सूर्य ग्रहण में भोजन करने पर प्राजापत्यव्रत (षडुपवासतुल्यम्) से शुद्धि होती है। उसी दिन भोजन करे तो तीन रात्रि में ही शुद्धि होती है।

(चन्द्रादिग्रहणे उपवासादिना फलकथनम्)

ग्रहणे च त्रिरात्रमेकरात्रं चोपवासः श्रेयोर्थिना कार्यः।

'एकरात्रमुपोष्यैव स्नात्वा दत्वा च शक्तितः। कञ्चुकादिव सर्पस्य निवृत्तिः पापकोशतः॥

कल्याण चाहनेवाला ग्रहण में तीन रात या एक रात का उपवास करे। हेमाद्रि में लिंगपुराण का वचन है—एक रात्रि उपवास, स्नान तथा यथाशक्ति दान करके पापों के आवरण से इसप्रकार छूटता है जैसे केंचुलि से सांप।

त्रिरात्रं समुपोष्यैवं ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। स्नात्वा दत्त्वा च विधिवन्मोदते ब्रह्मणा सह॥

इति हेमाद्रौ लैङ्गोक्तेः। इदं च पुत्र्यतिरिक्तविषयम्।

चन्द्र-सूर्य ग्रहण में विधिवत् तीन रात्रि उपवास तथा स्नान-दान करके ब्रह्मा के साथ आनन्द को भोगता है। यह वचन भी पुत्रवाले से भिन्न के लिए है।

(पारणादौ विचारः)

'आदित्येऽहनि संक्रान्तौ ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। पारणं चोपवासं च न कुर्यात्पुत्रवान् गृही॥'
इति जैमिनिवचनात्।

१—आरनालं दधि तथा क्षीरं किलाटं दधिसक्तवः। स्नेहपक्वं च तैलं च न कदाचित्प्रदुष्यति॥ 'आरनालं च तक्रं च ह्यादेयं घृतपाचितम्। उदकं च कुशच्छन्नं न दुष्येद्राहुसूतके॥ स्मृत्यन्तरे—'जले घृते तथा तैले सन्धाने गोरसेषु च। कुशान्तरायं कुर्वीत ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः॥

जैमिनी का वचन है कि रविवार, संक्रान्ति तथा चन्द्र-सूर्य ग्रहण में पुत्रवाले गृहस्थ पारणा और उपवास न करें।

यदा तु रवेर्ग्रस्तास्तस्तदा पुत्रिणः ग्रहरद्वयं हित्वा बालादिवद्भोजनं, न तूपवासः। 'सायाह्ने ग्रहणं चेत्स्यात्' इति पूर्वोक्तमार्कण्डेयवचनात्।

जब सूर्य ग्रस्तास्त हों तो पुत्रवाले को दो पहर छोड़कर बालकों की भांति भोजन कर लेना चाहिए। सायाह्न में यदि ग्रहण हो तो उपवास न करे क्योंकि यह पूर्वोक्त वचन मार्कण्डेय का है।

'सायाह्ने सङ्गवेऽश्नीयाच्छारदे सङ्गवादधः। मध्याह्ने परतोऽश्नीयान्नोपवासो रविग्रहे॥' इति स्मृतेश्चेति हेमाद्रिः।

यह स्मृति भी है ऐसा हेमाद्रि का कहना है कि—यदि सायाह्न में ग्रहण हो तो संगव में, अपराह्न में हो तो संगव से पूर्व, मध्याह्न में हो तो उसके बाद भोजन कर ले तथा सूर्यग्रहण में उपवास न करे। ऐसा हेमाद्रि का कहना है।

शारदोऽपराह्णः। माधवमते तु पुत्रिणोऽपि तत्रोपवास एव। 'अहोरात्रं न भोक्तव्यम्' इति पूर्वोक्तनिषेधस्य तेनापि पालनीयत्वात्। उपवासनिषेधस्तु व्रतरूपोपवासपरः कृष्णैकादशीनिषेधवदिति। मदनरत्नेऽप्येवम्। इदमेव च युक्तम्।

शारदपद का अपराह्न अर्थ है। माधव मत में तो पुत्रवाले को भी ग्रहण में उपवास ही है; क्योंकि 'अहोरात्र भोजन न करे' यह पूर्वोक्त निषेध पुत्रवाले को भी मानने योग्य है। उपवासका निषेध तो कृष्णपक्ष की एकादशी के सदृश व्रतरूप उपवास विषयक है। मदनरत्न में भी ऐसा ही कहा है तथा यही (बालादिभिस्तु सर्वं दिनं नक्तं वा भोजनं विना स्थातुमशक्यत्वान्निषेधो न पालनीयः, किं तूक्तकल्पानुकल्पौ कार्याविति भावः) युक्त भी है।

वर्द्धमानस्तु—'अहोरात्रं न भोक्तव्यम्' इति। शातातपीयाग्रे। सूर्याचन्द्रमसोर्लोकानक्षयान् याति मानवः।' इति फलश्रुतेर्मुक्त्यदर्शने उपवासः काम्यः न त्वयं निषेध इत्याह। तन्न। अत्र व्रतत्वेऽपि प्रागुक्तविष्णुधर्मे निषेधावश्यंभावात्।

वर्द्धमान ने जो कहा है—शातातपीय का कथन है कि—'अहोरात्र भोजन न करे' तो मनुष्य सूर्य तथा चन्द्रमा के अक्षय लोकों को जाता है, इस फल के श्रवण से राहु से चन्द्रमा एवं सूर्य की मुक्ति के अदर्शन में जो उपवास है वह काम्य है, निषेध नहीं है। वर्द्धमान का वह कथन ठीक नहीं है; क्योंकि यहाँ व्रत के होने पर भी पूर्वोक्त विष्णुधर्म में निषेध का होना अवश्य है।

(चूडामणियोगकथनम्)

तथा च व्यासः—'रविग्रहः सूर्यवारे सोमे सोमग्रहस्तथा।
चूडामणिरिति ख्यातस्तत्र दत्तमनन्तकम्॥
वारेष्वन्येषु यत्पुण्यं ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। तत्पुण्यं कोटिगुणितं योगे चूडामणौ स्मृतम्॥'

ऐसा व्यास ने कहा—रविवार को सूर्यग्रहण तथा चन्द्रवार को चन्द्रग्रहण हो तो चूड़ामणि योग होता है। उसमें दिया हुआ दान अनन्त फलदायक है। अन्यवारों में चन्द्र-सूर्य के ग्रहण में जो पुण्य होता है, उससे करोड़ गुणा चूड़ामणियोग में कहा है।

(ग्रहणे होमादौ विचारः)

अत्र चाद्यन्तयोः स्नानं कुर्यात्। 'ग्रस्यमाने भवेत्स्नानं ग्रस्ते होमो विधीयते।
मुच्यमाने भवेद्दानं मुक्ते स्नानं विधीयते॥' इति हेमाद्रौ वचनात्।

यहाँ पर आदि और अन्त में स्नान करे। क्योंकि हेमाद्रि का वचन है—ग्रहण से पूर्व स्नान एवं ग्रहण के समय होम का विधान है। मुक्त होने के समय दान (अश्रोत्रियः श्रोत्रियो वा पात्रं वाऽपात्रमेव वा। विप्रब्रवो वापि विप्रो ग्रहणे दानमर्हति॥ 'तथोपरागपातादौ स्नाने दाने निशा शुभा।' 'स्नानं दानं तपः श्राद्धमनन्तं राहुदर्शने। आसुरी रात्रिरन्यत्र तस्मात्तां परिवर्जयेत्॥) तथा मुक्त होनेपर स्नानका विधान कहा है।

स्नानं स्यादुपरागादौ मध्ये होमः सुरार्चनम् । इति ब्रह्मवैवर्ताच्च ।

ब्रह्मवैवर्त्त का भी वचन है—ग्रहण के आदि में स्नान, मध्य में होम तथा देवपूजा को करे।

(ग्रहणे सूतकादौ विचारः)

सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने । सचैलं च भवेत्स्नानं सूतकान्नं च वर्जयेत् ॥ इति वृद्धवसिष्ठोक्तेश्च । सचैलत्वं मुक्तिस्नानपरमिति मदनरत्ने उक्तम् ।

वृद्ध वसिष्ठ ने भी कहा है—राहु के दर्शन में सभी वर्णों का सूतक और सचैल स्नान होता है तथा सूतक में अन्न (ग्रहणकाले ततः प्राग्वा पक्वमन्नम्) का त्याग करे। सचैल स्नान मुक्तिस्नान विषयक है। यह मदनरत्न में कहा है।

(ग्रहणे स्नानाकरणे विचारः)

भार्गवार्चनदीपिकायां चतुर्विंशतिमते—'मुक्तौ यस्तु न कुर्वीत स्नानं ग्रहणसूतके । स सूतकी भवेत्तावत् यावत्स्यादपरो ग्रहः ॥' इदं च स्नानममन्त्रकं कार्यमिति स्मृतिरत्नावल्याम् ।

भार्गवार्चनदीपिका में चतुर्विंशति का मत है—जो मनुष्य ग्रहण के सूतक तथा मुक्ति में स्नान नहीं करता वह तब तक सूतकी होता है जब तक दूसरा ग्रहण नहीं आता है। इस स्नान को मन्त्र-रहित ही करे, ऐसा स्मृतिरत्नावली में लिखा है।

(ग्रहणे गङ्गादिमहानदीषु स्नानकथनम्)

तत्र तीर्थविशेषो भारते—'गङ्गास्नानं तु कुर्वीत ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।
महानदीषु चाऽन्यासु स्नानं कुर्याद्यथाविधि ॥'

ग्रहण-स्नान के लिए तीर्थविशेष भारत में लिखा है—चन्द्र-सूर्य के ग्रहण में गंगा में स्नान करे, गंडकी महानदियों में शास्त्रोक्तविधि से स्नान करे।

(ग्रहणे कार्तिकमासादौ स्नानकथनम्)

महानदीष्वपि मासविशेषे काश्चिच्छ्रेष्ठाः—प्रयागं देविका रेवा सन्निहत्या च वारणम् ।
सरस्वती चन्द्रभागा कौशिकी तापिकी तथा ।
सिन्धुर्गण्डकिका चैव सरयूः कार्तिकादितः ॥ मूलं हेमाद्रौ स्पष्टम् ।

महानदियों में भी मास विशेष में कोई-कोई श्रेष्ठ कही गयी हैं। प्रयाग, देविका, रेवा, सन्निहत्या, वरुणा, सरस्वती, चन्द्रभागा, कौशिकी, तापी, सिंधु, गण्डकी तथा सरयू ; ये कार्तिक[1] आदि मासों में क्रम से ग्रहणस्नान के लिए उत्तम हैं। इसका मूल हेमाद्रि में स्पष्ट है।

(चन्द्र-सूर्यग्रहणादौ फले तारताम्यताकथनम्)

व्यासः—'इन्दोर्लक्षगुणं पुण्यं रवेर्दशगुणं ततः । गङ्गातोये तु सम्प्राप्ते इन्दोः कोटी रवेर्दश ॥ गवां कोटिसहस्रस्य यत्फलं लभते नरः । तत्फलं लभते मर्त्यो ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥'

व्यास ने कहा है—चन्द्रग्रहण में लाख गुणा तथा सूर्यग्रहण में उससे दशगुणा स्नान का पुण्य होता है। चन्द्रग्रहण में गंगाजल (सर्वं भूमिसमं दानं सर्वे ब्रह्मसमा द्विजाः । सर्वं गङ्गासमं तोयं राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥) मिल जाय तो करोड़ गुणा तथा सूर्य ग्रहण में दसकरोड़गुणा पुण्य होता है। मनुष्य को हजार करोड़ गौओं के दान से जो फल मिलता है, वही फल चन्द्र-सूर्य ग्रहण में गंगास्नान से मिल जाता है।

---

१ देवीपुराणे—कार्तिके ग्रहणं श्रेष्ठं गङ्गायमुनसङ्गमे । मार्गे तु ग्रहणं प्रोक्तं देविकायां महामुने ॥ पौषे तु नर्मदा पुण्या माघे सन्निहिता शुभा । फाल्गुने वरुणा पुण्या चैत्रे पुण्या सरस्वती ॥ वैशाखे तु महापुण्या चन्द्रभागा सरिद्वरा । ज्येष्ठे तु कौशिकी पुण्या आषाढे तापिका नदी । श्रावणे सिन्धुनामा तु तथा भाद्रे तु गण्डकी । आश्विने सरयूः श्रेष्ठा तथा पुण्या तु नर्मदा ।

(असंभवे कूपादौ ग्रहणे स्नानविचारः)

असम्भवे तु माधवीये शंखः—'वापीकूपतडागेषु गिरिप्रस्रवणेऽपि च। नद्यां नदे देवखाते सरसीषूद्धृताम्बुनि॥ उष्णोदकेन वा स्नायाद् ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः॥'

गंगा या नदियाँ न मिलें तो माधवीयशंख ने कहा है—बावड़ी, कूआँ, तालाब, पर्वत के झरने, नदी, नद, देवखात (पुष्कर आदि प्राकृतिक जलाशय), सरोवर, खीचे जल या उष्ण जल में चन्द्र-सूर्यग्रहण में स्नान करे।

(ग्रहणे नद्यादिस्नाने तारतम्यताकथनम्)

अत्र तारतम्यमाह मार्कण्डेयः—'शीतमुष्णोदकात्पुण्यमपारक्यं परोदकात्। भूमिष्टमुद्धृतात्पुण्यं ततः प्रस्रवणोदकम्॥ ततोऽपि सारसं पुण्यं ततो पुण्यं नदीजलम्। तीर्थतोयं ततः पुण्यं महानद्यम्बु पावनम्॥ ततस्ततोऽपि गङ्गाम्बु पुण्यं पुण्यं स्ततोऽम्बुधिः॥' इति। उष्णोदकमातुरविषयम्।

इनका तारतम्य क्रम से महत्त्व है। मार्कण्डेय ने कहा है—उष्ण जल से शीतल जल, पराये जल से अपना जल, उद्धृत जल से भूमि जल, भूमि जल से पर्वत के झरने का जल, झरने के जल से सरोवर जल, सरोवर जल से नदी जल, नदी जल से तीर्थजल, तीर्थ जल से महानदी जल, महानदी जल से गंगाजल तथा गंगाजल से समुद्र जल पवित्र होता है। उष्ण जल रोगी के लिए है।

(ग्रहणे नर्मदादिजलस्पर्शे महत्पुण्यकथनम्)

तथा—गोदावरी महापुण्या चन्द्रे राहुसमन्विते। सूर्ये च राहुणा ग्रस्ते तमोभूते महामुने॥ नर्मदातोयसंस्पर्शे कृतकृत्या भवन्ति ते॥

और चन्द्रग्रहण में गोदावरी महापुण्यदायक है। हे महामुने, सूर्यग्रहण में नर्मदा जल का स्पर्श हो जाय तो मनुष्य कृतार्थ हो जाता है।

(ग्रहणे समुद्रस्नाने विशिष्टतमफलकथनम्)

'पृथ्वीचन्द्रोदये प्रभासखण्डे—'गावो नागास्तिला धान्यं रत्नानि कनकं मही। सम्प्रदाय कुरुक्षेत्रे यत्फलं लभते नरैः। तदिन्दुग्रहणेऽम्भोधौ स्नानाद् भवति षड्गुणम्॥'

पृथ्वीचन्द्रोदय के प्रभासखण्ड में लिखा है—गौ, हाथी, तिल, अन्न, रत्न, सुवर्ण एवं भूमिदान करने से जो फल कुरुक्षेत्र में मनुष्यों को मिलता है, उससे छः गुणा ग्रहण में समुद्रस्नान से होता है।

(सूर्य-चन्द्रग्रहणस्नाने महत्फलकथनम्)

तत्रैव सौरपुराणेऽम्बुधिस्नानमुपक्रम्य—'दानानि यानि लोकेषु विख्यातानि मनीषिभिः।
तेषां फलमवाप्नोति ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः॥'

वही सौरपुराण में समुद्रस्नान का उपक्रम करके लिखा है—मनीषियों ने संसार में जितने दान प्रसिद्ध किये हैं, उन सबका फल चन्द्र-सूर्यग्रहण में मनुष्य प्राप्त करता है।

(सूर्यग्रहणे गङ्गापुष्करादितीर्थविचारः)

देवीपुराणे—'गङ्गा कनखलं पुण्यं प्रयागे पुष्करं तथा। कुरुक्षेत्रं महापुण्यं राहुग्रस्ते दिवाकरे॥'

देवीपुराण में लिखा है—सूर्यग्रहण में गंगा, कनखल, प्रयाग और पुष्कर पवित्र हैं तथा कुरुक्षेत्र महापवित्र है।

(ग्रहणादौ स्नानासंभवे तीर्थस्मरणविचारः)

स्नानासम्भवे स्मरणं कार्यम्। 'स्मृत्वा शतक्रतुफलं दृष्ट्वा सर्वाघनाशनम्। स्पृष्ट्वा गोमेधपुण्यं तु पीत्वा सौत्रामणेर्लभेत्॥ स्नात्वा वाजिमखं पुण्यं प्राप्नुयादविचारतः। रविचन्द्रोपरागे च अयने चोत्तरे तथा॥' इति मार्कण्डेयोक्तेः।

स्नान के असम्भव में तो तीर्थ स्मरण करे। मार्कण्डेयपुराण में कहा है—सूर्य-चन्द्र ग्रहण तथा उत्तरायण के सूर्य में तीर्थस्मरण से सौ यज्ञ का फल, देखने से सब पापों का नाश, स्पर्श से 'गोमेधयज्ञ' का फल, पीने से 'सौत्रामणि' यज्ञका फल एवं स्नान से 'अश्वमेध' का फल मनुष्य को विना विचारे हो जाता है।

(ग्रहणे श्राद्धाकरणे विशेषफलकथनम्)

अत्र श्राद्धमाह ऋष्यशृङ्गः—'चन्द्रसूर्यग्रहे यस्तु श्राद्धं विधिवदाचरेत्।
तेनैव सकला पृथ्वी दत्ता विप्रस्य वै करे॥'

ग्रहण में ऋष्यशृंग ने श्राद्ध का करना कहा है—जो मनुष्य चन्द्र-सूर्यग्रहण में श्राद्ध को करता है, उसने ब्राह्मणों के हाथ में मानो सम्पूर्ण भूमि दे दी है।

(ग्रहणे श्राद्धाकरणे महत्कष्टम्)

भारते—'सर्वस्वेनापि कर्तव्यं श्राद्धं वै राहुदर्शने।
अकुर्वाणस्तु नास्तिक्यात्पङ्के गौरिव सीदति॥'

भारत में लिखा है कि—ग्रहण में सब वस्तुसे श्राद्धको करे। नास्तिकता से जो नहीं करता है वह पंक में गौ के तुल्य दुःखी होता है।

(ग्रहणे श्राद्धकरणे महत्फलकथनम्)

विष्णुः—राहुदर्शनदत्तं हि श्राद्धमाचन्द्रतारकम्। इदं चामान्नेन हेम्ना वा कार्यं, नत्वन्नेन।

विष्णु का वचन है कि—ग्रहण में दिया हुआ श्राद्ध तब तक स्वर्ग में रहता है जब तक सूर्यचन्द्र रहेंगे। यह आमान्न या सुवर्ण से करे। अन्न से न करे।

आपद्यनग्नौ तीर्थे च चन्द्रसूर्यग्रहे तथा। आमश्राद्धं प्रकुर्वीत हेमश्राद्धमथापि वा॥ इति शातातपोक्तेरिति हेमाद्रिमाधवादयः।

शातातप ने कहा है—आपत्तिकाल में अग्नि के अभाव में तीर्थ एवं चन्द्र-सूर्य के ग्रहण में आमान्न से या सुवर्ण से श्राद्ध करे। यह हेमाद्रि तथा माधवादि का कथन है।

(पाकाभावे श्राद्धविचारः)

अपरार्कस्तु—एतद्द्विजानां पाकाभावे द्रष्टव्यं तीर्थश्राद्धवत्।
पाकाभावे द्विजातीनामामश्राद्धं विधीयते। इति सुमन्तूक्तेः।

अपरार्क ने तो कहा है—द्विजातियों को यह श्राद्ध तीर्थश्राद्ध के तुल्य पाकाभाव में जानना चाहिये; सुमन्तु ने कहा है कि—पाकाभाव में आमान्न से श्राद्ध को करे।

(गजच्छायायोगे श्राद्धादिकथनम्)

'सैंहिकेयो यदा सूर्यं ग्रसते पर्वसन्धिषु। गजच्छाया तु सा प्रोक्ता तस्यां श्राद्धं प्रकल्पयेत्। घृतेन भोजयेद्विप्रान् घृतं भूमौ समुत्सृजेत्।' इति वायवीयोक्तेश्चेत्याह।

वायुपुराण में कहा है—पर्व की सन्धियों में जब राहु सूर्य को ग्रसे तो उसे गजच्छाया कहते हैं। उसमें श्राद्ध करे। घृत से ब्राह्मण को भोजन करावे और पृथ्वी पर घी डाले।

(ग्रहणे भोक्तुर्दोषकथनम्)

विज्ञानेश्वरोऽप्याह—'ग्रहणश्राद्धे भोक्तुर्दोषो दातुस्त्वभ्युदयः' इति।

विज्ञानेश्वर ने भी कहा—ग्रहणश्राद्ध में भोजन करनेवालों को दोष है और देनेवाले दाता का तो अभ्युदय होता है।

(ग्रहणादौ भोजने पुनः पुरुषत्वं नास्तीतिकथनम्)

सूतके मृतके भुङ्क्ते गृहीते शशिभास्करे।
छायायां हस्तिनश्चैव न भूयः पुरुषो भवेत्॥

आपस्तम्ब ने भोजन का निषेध किया है। सूतक में, मरण में, सूर्य-चन्द्रग्रहण तथा गजच्छाया में जो भोजन को करता है वह फिर पुरुष नहीं होता है।

इत्यापस्तम्बेनभोजननिषेधात्। अयं च निषेधः श्राद्धभोक्तुर्हस्तिच्छायासाहचर्यात्। अत्र ग्रहणनिमित्तकश्राद्धेनैवामासंक्रान्त्यादिनैमित्तिकानां सिद्धिः। 'दार्शिकालस्ययोरपि' इति कालादर्शोक्तेः।

यह निषेध गजच्छाया के साहचर्य से श्राद्ध खानेवाले को है। यहाँ ग्रहण के निमित्त किये हुए श्राद्ध से ही अमावास्या और संक्रान्ति आदि के निमित्त किये हुए श्राद्धों की भी सिद्धि जाननी चाहिये। कालदर्श में कहा है—अमावास्या तथा संक्रान्ति में भी श्राद्ध करे।

(आशौचमध्येऽपि स्नान-श्राद्धादिकथनम्)

अत्राशौचमध्येऽपि स्नानश्राद्धादिकार्यमेव। 'सूतके मृतके चैव न दोषो राहुदर्शने।
तावदेव भवेच्छुद्धिर्यावन्मुक्तिर्न दृश्यते॥' इति माधवीये वृद्धवसिष्ठोक्तेः।

ग्रहण में आशौच के मध्य में भी स्नान एवं श्राद्धादि करे। माधवीय में वृद्धवसिष्ठ का वचन है कि—सूतक, मरण और चन्द्रग्रहण—इनमें दोष नहीं जब तक मुक्ति न हो तब तक मनुष्य शुद्ध हो जाता है।

स्मार्तकर्मपरित्यागो राहोरन्यत्र सूतके। इति व्याघ्रपादोक्तेश्च।

व्याघ्रपाद ने कहा है—राहु के सूतक से अन्य दूसरे सूतक में स्मार्त कर्म को न करे।

कालादर्शे अङ्गिराः—'सर्वे वर्णाः सूतकेऽपि मृतके राहुदर्शने।
स्नात्वा श्राद्धं प्रकुर्वीरन् दानं शाठ्यविवर्जितम्॥'

कालादर्श में अंगिरा का वचन है—सूतक, मरण और चन्द्रग्रहण में सम्पूर्ण वर्ण स्नान को कर श्राद्ध करे तथा कृपणता छोड़कर दान करे।

मदनपारिजातेऽप्येवम्। तेन 'स्नानमात्रं प्रकुर्वीत दानश्राद्धविवर्जितम्।' इति निर्मूलं वदन्तो गौडाः परास्ताः। इयं च शुद्धिरविशेषान्मन्त्रदीक्षापुरश्चरणादिसर्वस्मार्तकर्मविषया। मदनरत्नेऽप्येवम्।

मदनपारिजात में भी ऐसा ही लिखा है। इससे श्राद्ध और दान को छोड़कर केवल स्नान करे। इसे निर्मूल कहनेवाले गौड परास्त हुए। यह शुद्धि विशेषता के अभाव से मन्त्र दीक्षा, पुरश्चरण आदि सब स्मार्त कर्मों में जाननी चाहिये। मदनरत्न में भी ऐसा ही लिखा है।

(ग्रहणनिमित्तक-रजस्वलास्नाने विचारः)

रजस्वलायास्तु भार्गवार्चनदीपिकायां सूर्योदयनिबन्धे—'न सूतकादिदोषोऽस्ति ग्रहे होमजपादिषु। ग्रस्ते स्नायादुदक्याऽपि तीर्थादुद्धृत्य वारिणा॥' इति।

अत्र—'स्नाने नैमित्तिके प्राप्ते नारी यदि रजस्वला। पात्रान्तरिततोयेन स्नानं कृत्वा व्रतं चरेत्॥' इति मिताक्षरोक्तो विधिर्ज्ञेयः।

रजस्वला के लिए तो भार्गवार्चनदीपिका में सूर्योदय निबन्ध में लिखा है—ग्रहण में होम-जप आदि में रजस्वला को सूतकादि दोष नहीं होता है, ग्रहण लगने पर वह तीर्थ में से जल निकालकर स्नान करे। यहाँ पर—ग्रहण में नैमित्तिक स्नान प्राप्त होने पर यदि स्त्री रजस्वला हो जाय तो पात्र में रक्खे हुए जल से स्नान करके व्रत को करे—इत्यादि विधि मिताक्षरा में कही हुई जाननी चाहिये।

(ग्रहणे रात्रावपि श्राद्धादिकथनम्)

तथा ग्रहणे रात्रावपि श्राद्धादिकार्यम्। 'ग्रहणोद्वाहसंक्रान्तियात्रार्तिप्रसवेषु च।
दानं नैमित्तिकं ज्ञेयं रात्रावपि तदिष्यते॥' इति अपरार्के व्यासोक्तेः,

ग्रहण के दिन रात्रि में भी श्राद्धादि करना चाहिये। अपरार्क में व्यास का वचन है—ग्रहण, विवाह, संक्रान्ति, यात्रा, रोग तथा प्रसव में दान नैमित्तिक है, उसका रात्रि में भी विधान है।

चन्द्रग्रहे तथा रात्रौ स्नानं दानं प्रशस्यते। इति देवलोक्तेश्च।

देवल ने भी कहा है—चन्द्रग्रहण में रात्रि में भी स्नान-दान प्रशस्त है।

(दिने चन्द्रग्रहो रात्रौ च सूर्यग्रहणे विचारः)

यदा तु ज्योतिःशास्त्रगम्ये दिने चन्द्रग्रहो रात्रौ च सूर्यग्रहः तदा स्नानादि न कार्यम्।

जब ज्योतिःशास्त्र से दिन में चन्द्रग्रहण तथा रात में सूर्यग्रहण हो तब स्नान आदि उससमय में न करे।

'सूर्यग्रहो यदा रात्रौ दिवा चन्द्रग्रहस्तथा। तत्र स्नानं न कुर्वीत दद्याद्दानं च न क्वचित्॥' इति षट्त्रिंशन्मतात्।

षट्त्रिंशत् का मत है—जब सूर्य ग्रहण रात में तथा चन्द्रग्रहण दिन में हो तो स्नान और दान न करे।

(ग्रहणादिने वार्षिकप्राप्तौ विचारः)

ग्रहणदिने वार्षिकश्राद्धप्राप्तौ तु प्रयोगपारिजाते गोभिलः—'दर्शे रविग्रहे पित्रोः प्रत्याब्दिकमुपस्थितम्। अन्नेनासम्भवे हेम्ना कुर्यादामेन वा सुतः॥' इति।

ग्रहण के दिन वार्षिकश्राद्ध की प्राप्ति हो तो प्रयोगपारिजात में गोभिल ने कहा है—अमावास्या सूर्यग्रहण में यदि माता-पिता का श्राद्ध उपस्थित हो जाय तो पुत्र पक्वान्न से सम्भव न हो तो सुवर्ण या आमान्न से करे।

अत्र रविपितृसुतशब्दाः प्रदर्शनार्थाः, न्यायसाम्यात्। तेन चन्द्रग्रहणेऽपि सपिण्डादिवार्षिकमन्नादिना तद्दिने एव कार्यमिति मदनपारिजाते व्याख्यातम्। पृथ्वीचन्द्रोदयेऽप्येवम्।

यहाँ से; न्याय की समता से रविवार, पिता, पुत्र के वाचक क्रम से रवि, पितृ, सुत ये शब्द दिखाने के लिए हैं। इससे चन्द्रग्रहण में भी सपिंड आदि वार्षिक श्राद्ध अन्न आदि से उसी दिन करे, यह मदनपारिजात में लिखा है। पृथ्वीचन्द्रोदय में भी ऐसा ही लिखा है।

तेन यानि—'आमश्राद्धं प्रकुर्वीत माससंवत्सरादृते। अन्नेनैवाब्दिकं कुर्याद्धेम्ना चामेन न क्वचित्॥' इति मरीचिलौगाक्ष्यादिवचनानि, तानि ग्रहणदिनातिरिक्तविषयाणि। निर्णयामृतेऽप्येवम्।

इससे मरीचि लौगाक्षि आदि के जो वचन हैं—मासिक एवं वार्षिक श्राद्ध को छोड़कर आमान्न से श्राद्ध करे और वार्षिक श्राद्ध पक्वान्न से ही करे। सुवर्ण और आमान्न से भी न करे। यह ग्रहण दिन से अतिरिक्त के लिए हैं। निर्णयामृत में भी ऐसा ही कहा है।

('ग्रहणात्तु द्वितीयेऽह्नि'—इत्यादिश्लोकानां निर्मूलत्वकथनम्)

यानि तु—ग्रहणात्तु द्वितीयेऽह्नि रजोदोषात्तु पञ्चमे। 'ग्रस्तोदये यदा चन्द्रे प्रत्यब्दे समुपस्थितम्॥ तद्दिने चोपवासः स्यात् प्रत्यब्दं तु परेऽहनि।

जो यह वचन है कि—ग्रहण से दूसरे रोज रजोदोष से पाँचवें दिन तथा चन्द्रमा के ग्रस्तोदय में वार्षिक श्राद्ध आ जाय तो उसीदिन उपवास करे और दूसरे दिन श्राद्ध करे।

तथा—'ग्रस्तावेवास्तमानं तु रवीन्दू प्राप्नुतो यदि। प्रत्यब्दं तु तदा कार्यं परेऽहन्येव सर्वदा॥ चन्द्रसूर्योपरागे च तथा श्राद्धं परेऽहनि॥' इत्यादीनि वचनानि, तानि महानिबन्धेषु क्वाप्यनुपलम्भान्निर्मूलानि, प्रत्युत पूर्वोक्तनिबन्धेषु तद्दिने एव श्राद्धमुक्तमित्यलम्।

वैसे ही जो सूर्य तथा चन्द्रमा ग्रस्त हुए ही अस्त हो जायँ तो वार्षिक श्राद्ध दूसरे दिन करे। चन्द्र-सूर्य के ग्रहण में दूसरे दिन श्राद्ध करे—ये सब वचन हैं, वे महानिबन्धों में कहीं भी नहीं मिलने से निर्मूल हैं; बल्कि पूर्वोक्त ग्रन्थों में उसी दिन श्राद्ध करना कहा है।

(अथ सूर्यग्रहणे दीक्षाविचारः)

ग्रहणादिसप्तदिनपर्यन्तं रामगोपालाद्यागमदीक्षोक्ता शिवार्चनचन्द्रिकायां ज्ञानार्णवे—'मन्त्राद्यारम्भणं कुर्याद् ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। ग्रहणाद्वाऽपि देवेशि कालः सप्तदिनावधि॥' इति।

ग्रहण से सात दिन तक राम-गोपाल आगम आदि मन्त्रों की दीक्षा (मन्त्रोपदेश) करे। शिवार्चनचन्द्रिका के ज्ञानार्णव में कहा है—हे पार्वती, चन्द्र-सूर्य के ग्रहण में या ग्रहण से सात दिन तक मन्त्र आदि का आरम्भ करे।

रत्नसागरे—'सत्तीर्थेऽर्कविधुग्रासे तन्तुदामनपर्वणि ।
मन्त्रदीक्षां प्रकुर्वाणो मासर्क्षादीन्न शोधयेत् ॥'

रत्नसागर में लिखा है—अच्छे तीर्थ में, चन्द्र-सूर्य ग्रहण में पवित्रारोपण, दमनारोपण (दवणा) काल में मन्त्र की दीक्षा मन्त्रोपदेश करता हुआ (महादीक्षा तथा दीक्षा उपदेशस्तथा परः। युगे युगे च कर्तव्य उपदेशः कलौ युगे ॥ 'चन्द्रसूर्यग्रहे तीर्थे सिद्धक्षेत्रे शिवालये। मन्त्रमात्रप्रकथनमुपदेशः स उच्यते ॥) पुरुष मास एवं नक्षत्रों की शुद्धि नहीं करे।

अत्र सूर्यग्रहणमेव मुख्यम्। 'सूर्यग्रहणकाले तु नान्यदन्वेषितं भवेत्। सूर्यग्रहणकालेन समो नान्यः कदाचन ॥ न मासतिथिवारादिशोधनं सूर्यपर्वणि ।' इति तत्रैव कालोत्तरवचनात्।

यहाँ सूर्यग्रहण ही मुख्य है। वही आगे यह वचन है—सूर्यग्रहण के समय अन्य कुछ का अन्वेषण नहीं करे। सूर्य ग्रहणकाल के समान दूसरा समय नहीं है। सूर्य ग्रहण में मास, तिथि, वार आदि का शोधन न करे। (मन्त्रशास्त्रे—गुरोरभावे विप्रेन्द्र मन्त्रग्रहणमुच्यते। कृष्णपक्षे त्रयोदश्यां दक्षिणामूर्तिसन्निधौ ॥ ताडपत्रे मन्त्रं (ग्राह्यमन्त्रम) लिख्य स्थापयीत तदग्रतः। क्षीरखण्डादि नैवेद्यं स्थापयीत ततः शिवे ॥ ताडपत्रं समालोच्य पठेदष्टोत्तरं शतम्। एवं गृहीतो मन्त्रश्चेद् गुरोरपि विशिष्यते ॥ गुरौ संभाविता दोषाः प्रायेण तु कलौ युगे। एवं गृहीते मन्त्रस्य सिद्धिर्भवति पार्वती ॥)

(चन्द्रग्रहणे दीक्षाविचारः)

'चन्द्रग्रहे तु या दीक्षा या दीक्षा व्रतचारिणाम्। वनस्थस्य च या दीक्षा दारिद्र्यं सप्तजन्मसु ॥' इति। तत्रैव योगिनीतन्त्रे:निषेधाच्च।

योगिनीतन्त्र में यह निषेध है—चन्द्रग्रहण के समय की जो दीक्षा, व्रताचरण करनेवाले तथा वानप्रस्थ की जो दीक्षा है वह सात जन्म तक दरिद्रता देनेवाली होती है।

(ग्रहणे जन्मराश्यादौ निषिद्धत्वकथनम्)

ग्रहणं च जन्मराश्यादौ निषिद्धम्। तदुक्तं ज्योतिषे—'त्रिषट्दशाऽऽयोपगतं नराणां शुभप्रदं स्याद् ग्रहणं रवीन्द्वोः। द्विसप्तनन्देषुषु च मध्यमं स्याच्छेषेष्वनिष्टं कथितं मुनीन्द्रैः ॥' इति। आयः = एकादश। नन्दाः = नव। इषुः = पञ्च।

ग्रहण जन्मराशि आदि में निषिद्ध है। ऐसा ज्योतिष में कहा है—जन्मराशि से तीसरे, छठे, दशवें, ग्यारहवें तथा पाँचवें सूर्य या चन्द्रग्रहण हो तो मनुष्य को शुभदायक है। दूसरे, सातवें, और नवें मध्यम है। शेष राशियों में श्रेष्ठमुनियों ने अनिष्टदायक कहा है।

मदनरत्ने गर्गः—'जन्मसप्ताष्टरिःफाङ्कदशमस्थे निशाकरे। दृष्टोऽरिष्टप्रदो राहुर्जन्मर्क्षे निधनेऽपि च ॥ रिःफं = द्वादश, ह्यङ्काः = नव। निधनं = सप्तमतारा।

मदनरत्न में गर्गने कहा है—जन्म से सातवीं, आठवीं, बारहवी, नवीं और दशवीं राशि पर चन्द्रग्रहण (दिवाकरोऽपि ग्राह्यः) हो। जन्मनक्षत्र या जन्मनक्षत्र से आठवें नक्षत्र पर हो तो अशुभकारक है।

पृथ्वीचन्द्रोदये विष्णुधर्मे—'यन्नक्षत्रगतो राहुर्ग्रसते शशिभास्करौ।
तज्जातानां भवेत्पीडा ये नराः शान्तिवर्जिताः ॥'

पृथ्वीचन्द्रोदय के विष्णुधर्म में कहा है कि—जिस नक्षत्र में गया राहु चन्द्र तथा सूर्य को ग्रसता है उस नक्षत्र में उत्पन्न मनुष्यों को पीड़ा होती है, यदि वे शान्ति को नहीं करते हैं।

तत्रैव पुराणान्तरे—'सूर्यस्य संक्रमो वाऽपि ग्रहणं चन्द्रसूर्ययोः। यस्य त्रिजन्मनक्षत्रे तस्य रोगोऽथ वा मृतिः ॥ तस्य दानं च होमं च देवार्चनजपौ तथा। उपरागाभिषेकं च कुर्याच्छान्तिर्भविष्यति ॥ स्वर्णेन वाऽथ पिष्टेन कृत्वा सर्पस्य चाकृतिम्। ब्राह्मणाय ददेत्तस्य न रोगादिश्च

तत्कृतः ॥' जन्मनक्षत्रं तत्पूर्वोत्तरे च त्रिजन्मनक्षत्रमित्युच्यते। जन्मदशमैकोनविंशतितारा इति केचित्। सर्पस्य = तदाकारस्य राहोरित्यर्थः।

वही पुराणान्तर में कहा है—सूर्य की संक्रान्ति या सूर्य-चन्द्र ग्रहण जिसके जन्मनक्षत्र में या जन्म-नक्षत्र से पूर्व तथा उत्तर के नक्षत्र में हो तो उसे रोग या मरण होता है। उसके लिए दान, होम, (विभवे दानहोमौ तदभावे एकैकं, चकारद्वयात्) देवार्चन, जप तथा ग्रहण में मन्त्रों से अभिषेक करे तो उसकी शान्ति हो जायगी। सर्प के तुल्य सुवर्ण या आटा से निर्मित राहु की प्रतिमा ब्राह्मण को दे, इससे उसे रोग आदि नहीं होते हैं। जन्मनक्षत्र और जन्म के पूर्व तथा उत्तर के नक्षत्र 'त्रिजन्म नक्षत्र' कहे जाते हैं। कोई कहते हैं—जन्म का दसवाँ तथा उन्नीसवाँ तारा निषिद्ध है।

अद्भुतसागरे भार्गवः—'यस्य राज्यस्य नक्षत्रे स्वर्भानुरुपरज्यते। राज्यभङ्गं सुहृन्नाशं मरणं चात्र निर्दिशेत् ॥' राज्यस्य नक्षत्रम् = अभिषेकनक्षत्रमिति तत्रैव व्याख्यातम्।

अद्भुतसागर में भार्गव ने कहा है कि—जिसके राज्याभिषेक के नक्षत्र में ग्रहण हो उसका राज्यभंग, मित्रों का नाश या मरण होता है।

भार्गवार्चनदीपिकायां ज्योतिःसागरे—'सौवर्णं कारयेन्नागं पलेनाथ पलार्धतः। तदर्धेन तदर्धेन फणायां मौक्तिकं न्यसेत् ॥ ताम्रपात्रे निधायाथ घृतपूर्णे विशेषतः। कांस्ये वा कान्तिलौहे वा न्यस्य दद्यात्सदक्षिणम् ॥ चन्द्रग्रहे तु रूप्यस्य बिम्बं दद्यात्सदक्षिणम्। नागं रुक्ममयं सूर्यग्रहे बिम्बं च हेमजम् ॥ तुरङ्गरथगोभूमितिलसर्पिश्च काञ्चनम्।'

भार्गवार्चनदीपिका में ज्योतिःसागर ने कहा है—एक पल, आधा पल, उससे आधा या उससे भी आधे पल सुवर्ण का सर्प बनाकर उसके फण पर मोती रक्खे और घी से भरे ताँबा, काँसा या कान्तिसार लोहे के पात्र में उसको रखकर दक्षिणासहित ब्राह्मण को दे दे। चन्द्रग्रहण में चाँदी का चन्द्रबिम्ब बनाकर दक्षिणा के साथ ब्राह्मण को दे।

सूर्यग्रहण में सुवर्ण का नागबिम्ब और सूर्यबिम्ब बनाकर दक्षिणा सहित ब्राह्मण को दे। घोड़ा, रथ; भूमि, गौ, तिल, घृत तथा सुवर्ण ब्राह्मण को दान दे।

कालविवेकेऽपि—'सुवर्णनिर्मितं नागं सतिलं कांस्यभाजनम्। सदक्षिणं सवस्त्रं च ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ सौवर्णं राजतं वाऽपि बिम्बं कृत्वा स्वशक्तितः। उपरागभवक्लेशच्छिदे विप्राय कल्पयेत् ॥

कालविवेक में भी लिखा है—सुवर्ण का नाग तिलयुत कांस्यपात्र और वस्त्र सहित दक्षिणा सहित ब्राह्मण को दे।

अपनी शक्ति के अनुसार सुवर्ण या रजत का सूर्य-चन्द्रबिम्ब बनाकर ग्रहणजन्य क्लेश की निवृत्ति के लिए ब्राह्मण को दे।

(मन्त्रपाठद्वारा प्रार्थना)

मन्त्रस्तु—'तमोमय महाभीम सोमसूर्यविमर्दन। हेमताराप्रदानेन मम शान्तिप्रदो भव ॥

उसका मन्त्र यह है—अन्धकाररूप महाभीम चन्द्र-सूर्य का मर्दन करनेवाले राहु! सुवर्णतारा दान से मुझे शान्ति प्रदान कर।

विधुन्तुद नमस्तुभ्यं सिंहिकानन्दनाच्युत। दानेनानेन नागस्य रक्ष मां वेधजाद्भयात् ॥'

सिंहिकानन्दन (पुत्र), अच्युत ! हे विधुन्तुद, नागके इस दान से ग्रहणजनित भय से मेरी रक्षा करो।

अत्र शान्तिरप्युक्ता हेमाद्रौ मात्स्ये—'यस्य राशिं समासाद्य भवेद् ग्रहणसम्भवः।
स्नानं तस्य प्रवक्ष्यामि मन्त्रौषधिसमन्वितम् ॥

मत्स्यपुराणोक्त इसकी शान्ति भी हेमाद्रि में कही है—जिसकी राशि पर ग्रहण सम्भव हो, मन्त्र तथा औषधियुक्त उसका स्नान बताता हूँ।

चन्द्रोपरागं सम्प्राप्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्। सम्पूज्य चतुरो विप्रान् शुक्लमाल्यानुलेपनैः ॥

चन्द्रग्रहण में ब्राह्मण से स्वस्तिवाचन कराकर सफेद पुष्प, माला तथा चन्दन से चार ब्राह्मणों का पूजन करे।

पूर्वमेवोपरागस्य समानीयौषधादिकम्। स्थापयेच्चरः कुम्भान् ब्राह्मणान् सलिलान्वितान्॥

ग्रहण के पूर्व ही औषधि आदि लाकर जल से पूर्ण ब्राह्मणवाले चार कुम्भों को स्थापित करे।

गजाश्वरथ्यावल्मीकसङ्गमाद् ह्रदगोकुलात्। राजद्वारप्रदेशाच्च मृदमानीय निक्षिपेत्॥

और उन कुम्भों में हाथी, घोड़ा, रथ, संगम, तालाब, गोशाला एवं राजद्वार से मिट्टी लाकर प्रक्षेप करे।

पञ्चगव्यं पञ्चरत्नं पञ्चत्वक् पञ्चपल्लवम्। रोचनं पद्मकं शङ्खं कुङ्कुमं रक्तचन्दनम्॥ शुक्तिस्फटिक-तीर्थाम्बुसितसर्षपगुग्गुलान्। मधुकं देवदारुं च विष्णुक्रान्तां शतावरीम्। बलां च सहदेवीं च निशाद्वितय-मेव च। गजदन्तं कुङ्कुमं तथैवोशीरचन्दनम्॥ एतत्सर्वं विनिक्षिप्य कुम्भेष्वावाहयेत्सुरान्।

पञ्चगव्य, पञ्चरत्न, बटादि पांच वृक्षों की छाल, पञ्चपल्लव, गोरोचन पद्माख, शंख, कुंकुम, रक्तचन्दन, सीपी, स्फटिक, तीर्थजल, सफेद सरसों, गुग्गुल, मुलेठी, देवदारु, विष्णुकान्ता, शतावरी, बला, सहदेवी, दोनों हल्दी, हाथीदाँत, कुंकुम, उशीर, चन्दन,-इन सबोंको उन कुम्भों में छोड़कर—

सर्वे समुद्राः सरितः तीर्थानि जलदा नदाः॥ आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः॥

देवताओं का आवाहन करे—यजमान के पापनाशक सब समुद्र, नदी, तीर्थ, मेघ, नद,—ये सब घटों से आवें।

योऽसौ वज्रधरो देव आदित्यानां प्रभुर्मतः। सहस्रनयनः शक्रो ग्रहपीडां व्यपोहतु॥

आदित्यों के स्वामी, वज्रधारी सहस्रनयन (हजार नेत्रवाले) इन्द्र, ग्रह पीड़ा को दूर करें।

मुखं यः सर्वदेवानां सप्तार्चिरमितद्युतिः। चन्द्रोपरागसम्भूतामग्निः पीडां व्यपोहतु॥

सब देवताओं के मुख कान्ति और सात जिह्वावाले अग्निदेव चन्द्रग्रहण जनित पीड़ा को दूर करें।

यः कर्मसाक्षी लोकानां धर्मो महिषवाहनः। यमश्चन्द्रोपरागोत्थां ग्रहपीडां व्यपोहतु॥

जो कर्म साक्षी, महिषवाहन, धर्मराज, चन्द्रग्रहण जनित पीड़ाको दूर करें।

रक्षो गणाधिपः साक्षान्नीलाञ्जनसमप्रभः। खड्गहस्तोऽतिभीमश्च ग्रहपीडां व्यपोहतु॥

राक्षसगण के स्वामी, नीलाञ्जन के सदृश कान्तिवाले, खड्गधारी, अति भयानक निर्ऋति, ग्रहण जनित पीड़ा का नाश करें।

नागपाशधरो देवः सदा मकरवाहनः। स जलाधिपतिर्देवो ग्रहपीडां व्यपोहतु॥

नागपाशधारी मकरवाहन जलाधिपति वरुणदेव ग्रहणकी पीड़ाको नष्ट करें।

प्राणरूपो हि लोकानां सदा कृष्णमृगप्रियः। वायुश्चन्द्रोपरागोत्थां ग्रहपीडां व्यपोहतु॥

लोंको के प्राणरूप कृष्णमृगों के प्रिय वायुदेव ग्रहण जन्य पीड़ाको दूर करें।

योऽसौ निधिपतिर्देवः खड्गशूलगदाधरः। चन्द्रोपरागकलुषं धनदोऽत्र व्यपोहतु॥

निधियों के स्वामी खड्ग-शूल-गदाधारी कुबेर, चन्द्रग्रहणके पापका नाश करें।

योऽसाविन्दुधरो देवः पिनाकी वृषवाहनः। चन्द्रोपरागपापानि स नाशयतु शङ्करः॥

चन्द्रबिम्बधारी पिनाकपाणि वृषवाहन शंकर चन्द्रग्रहणके पापों का नाश करें।

त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च। ब्रह्मविष्ण्वर्करुद्राश्च दहन्तु मम पातकम्॥

जो तीनों लोकोंके स्थावर-जंगम प्राणी, ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य, रुद्र,—ये सब मेरे पापोंको नष्ट करें।

एवमावाहयेद्देवान्मन्त्रैरेभिश्च वारुणैः। एतानेव तथा मन्त्रान् स्वर्णपट्टे विलेखयेत्॥

ताम्रपट्टेऽथ वाऽऽलिख्य नववस्त्रे तथैव च। मस्तके यजमानस्य निदध्युस्ते द्विजोत्तमाः॥

इसप्रकार इन मन्त्रों से और वरुण मन्त्रोंसे देवताओं का आवाहन करे और वे ब्राह्मण इन्हीं मन्त्रोंको सोने वा तांबेके पत्र पर या नये वस्त्र पर लिखकर यजमानके मस्तक पर रखें।

कलशान् द्रव्यसंयुक्तान्नानारूपसमन्वितान् । गृहीत्वा स्नापयेत् गूढं भद्रपीठोपरि स्थितम् ॥
पूर्वैरेव तु मन्त्रैश्च यजमानं द्विजोत्तमाः । अभिषेकं ततः कुर्यान्मन्त्रैर्वारुणसूक्तकैः ॥

द्रव्यों से संयुक्त नानारूप समन्वित सुन्दर उन कलशों को लेकर भद्रपीठ पर बैठे हुए उस यजमान का पूर्वोक्त मन्त्रों से श्रेष्ठ ब्राह्मण स्नान करावें। फिर वरुण सूक्तोंसे अभिषेक करें।

आचार्यमर्चयेत्पश्चात्स्वर्णपट्टं निवेदयेत् । आचार्यदक्षिणां दद्यात् गोदानं च स्वशक्तितः ॥

तदनन्तर आचार्य का अर्चन करके उन्हें सुवर्णपत्र दें और अपनी शक्ति के अनुसार दक्षिणा और गोदान दे।

होमं वाऽपि प्रकुर्वीत तिलैर्व्याहृतिभिस्तथा । दानं च शक्तितो दद्याद्यदीच्छेदात्मनो हितम् ॥

व्याहृतियों से तिल होम भी करे और यदि अपना हित चाहे तो यथाशक्ति अनुसार दान भी दे।

सूर्यग्रहे सूर्यनामयुक्तान्मन्त्रांश्च कीर्तयेत् । अनेन विधिना यस्तु ग्रहणे स्नानमाचरेत् । न तस्य ग्रहणे दोषः कदाचिदपि जायते ॥' इति ग्रहणशान्तिः ।

सूर्यग्रहण में सूर्य के नाम वाले मंत्रों को पढ़े। जो इस विधि से ग्रहण में स्नान करता है उसे ग्रहण का दोष कभी भी नहीं लगता है।

(ग्रहणदर्शने विचारः)

भार्गवार्चनदीपिकायां ब्रह्मसिद्धान्ते—'सर्वैः पटस्थितं वीक्ष्यं खस्थं तैलाम्बुदर्पणैः ।
ग्रहणं गुर्विणी जातु न पश्येत पटं विना ॥

भार्गवार्चनदीपिका में ब्रह्मसिद्धान्त का वचन है कि—सब लोग आकाश (खस्थ) स्थित कपड़े की ओट में ग्रहण को तेल, जल तथा दर्पण के द्वारा देखें। गर्भवती स्त्री कपड़ों के ओट किये विना कभी भी न देखे।

(मङ्गलकृत्येषु विधिविशेषकथनम्)

तथा मङ्गलकृत्येषु विधिविशेषो हेमाद्रौ—'त्रयोदश्यादितो वर्ज्यं दिनानां नवकं ध्रुवम् ।
माङ्गल्येषु समस्तेषु ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥

इसीप्रकार मंगलकार्यों में विधि-विशेष हेमाद्रि में कहा है—चन्द्रग्रहण में त्रयोदशी से लेकर नवदिन तक निश्चय सब मंगल कार्योंको त्याग करे।

(प्रकारान्तरप्रकारः)

प्रकारान्तरं तत्रैवोक्तम्—द्वादश्यादितृतीयान्तो वेध इन्दुग्रहे स्मृतः । एकादश्यादिकः सौरे चतुर्थ्यन्तः प्रकीर्तितः ॥' इदं च पूर्णग्रासे । 'त्र्यहं खण्डग्रहे तयोः' इति तत्रैवोक्तेः । इदं च ग्रस्तास्ते त्रिदिनं पूर्वम्' इति नारदेन ग्रस्तास्ते विशेषोक्तेर्ग्रस्तास्तभिन्नग्रहणपरम् ।

प्रकारान्तर में भी वही बतलाया है—चन्द्रग्रहण में द्वादशी से तृतीया तक तथा सूर्यग्रहण में एकादशी से चतुर्थी तक वेध होता है। यह वेध सम्पूर्ण ग्रास में जानना चाहिये क्योंकि खण्डग्रहण[1] में उसी ही ग्रन्थ में तीन दिन का वेध कहा है। यह वेध की ग्रस्तास्त से भिन्न ग्रहणमें है; क्योंकि नारद ने कहा है कि—ग्रस्तास्त[2] ग्रहण में तीनदिन पूर्व वेध होता है।'

ज्योतिर्निबन्धे च्यवनः—'ग्रहणोत्पातभं त्याज्यं मङ्गलेषु ऋतुत्रयम् । यावच्च रविणा भुक्त्वा मुक्तं भं दग्धकाष्ठवत् ॥' अन्यानि चाग्नेयादिमण्डलानि तत्फलं वर्णविकारादिफलं च दैवज्ञेभ्यो ज्ञेयम् ।

ज्योतिर्निबन्ध में च्यवन का कथन है—ग्रहण तथा उत्पात नक्षत्र को तीन ऋतुओं तक मंगलकार्यों में जली हुई लकड़ी के समान त्याग दे, जब तक सूर्य उस नक्षत्र को भोगकर न छोड़े। अन्य आग्नेय आदि मण्डल, उनके फल और वर्णविकारादिके फल ज्योतिषियोंसे जानना चाहिये।

---

१. 'खण्डग्रहे त्वेतयोः प्राक् पश्चाच दिनं तथा ग्रहणदिनं निन्द्यम्' इति दीपिकायाम्।

२. ग्रस्तोदये तूत्तरं त्रिदिनम्—इति केचित्।

(ग्रहणे मोक्षपर्यन्तं मन्त्रजपकथनम्)

पुरश्चरणचन्द्रिकायाम्—'चन्द्रसूर्योपरागे च स्नात्वा प्रयतमानसः।
स्पर्शादिमोक्षपर्यन्तं जपेन्मन्त्रं समाहितः॥

पुरश्चरणचन्द्रिका में कहा है—चन्द्र-सूर्यग्रहणमें पवित्र मन से स्नान करके स्पर्श[1] से मोक्ष पर्यन्त मन को संयमितकर मन्त्र का जप करे।

(जपादृशांशतो होमादिकथनम्)

जपाद्दशांशतो होमस्तथा होमात्तु तर्पणम्। तर्पणस्य दशांशेन मार्जनं कथितं किल॥

मन्त्र के जपका दशांशहोम, होमका दशांश तर्पण तथा तर्पण का दशांश मार्जन कहा है।

तत्रैव देवतारूपं ध्यात्वात्मानं प्रपूज्य च। नमोन्तं मन्त्रमुच्चार्य तदन्ते देवताभिधाम्॥

द्वितीयान्तामहं पश्चादभिषिञ्चाम्यनेन तु। तोयैरञ्जलिना शुद्धैरभिषिञ्चेत्स्वमूर्द्धनि॥ मार्जनस्य दशांशेन ब्राह्मणानपि भोजयेत्।

वहीं पर कहा है कि—जिस मन्त्र को जपे, उसके देवता का ध्यान तथा अपने आत्मा का पूजन कर अन्त में नमः पद के साथ मन्त्र का उच्चारण करके द्वितीया विभक्ति के साथ देवता का नामोच्चारण करे यानी 'ॐ सूर्याय नमः सूर्यमहमभिषिञ्चामि' इसप्रकार मन्त्र कहकर स्नान करावे, फिर इसी मंत्र से अञ्जलि से पवित्र जल लेकर अपने मस्तक पर छिड़के और मार्जन के दशांश ब्राह्मणों को भी भोजन करावे।

जपोऽर्चापूर्वको होमस्तर्पणं चाभिषेचनम्। भूदेवपूजनं पञ्चप्रकारोक्ता पुरस्क्रियाः॥'

क्योंकि पाँच प्रकार का आदरप्रदर्शन करना लिखा है—पूजनपूर्वक जप, होम, तर्पण, अभिषेक और ब्राह्मण पूजन।

(अथ होमाशक्तौ जपे विचारः)

तथा—होमाशक्तौ जपं कुर्याद्धोमसंख्याचतुर्गुणम्।
एवं कृते तु मन्त्रस्य जायते सिद्धिरुत्तमा॥'

होम की सामर्थ्य न हो तो होम की संख्या से चतुर्गुण (चतुर्गुणमिति विप्रपरम्) जप करे। ऐसा करने पर उत्तम सिद्धि की होती है।

(कुरुक्षेत्रप्रतिग्रहे प्रायश्चित्तकथनम्)

ग्रहणप्रसङ्गात्कुरुक्षेत्रप्रतिग्रहे प्रायश्चित्तमुच्यते। तत्रारुणस्मृतौ—'प्रतिग्राही कुरुक्षेत्रे न भूयः पुरुषो भवेत्।

ग्रहण के प्रसंग से कुरुक्षेत्र से प्रतिग्रह लेने का प्रायश्चित्त कहा है। अरुणस्मृति में कहा है—कुरुक्षेत्र में दान लेने वाला कभी पुरुष नहीं होता है।

तथापि मनसः शुद्धै प्रायश्चित्तं समाचरेत्। तप्तकृच्छ्रद्वयं कुर्यादैन्दवेन समन्वितम्॥
सत्रेण वा यजेताथ जपेद्वा लक्षसप्तकम्। वापीकूपतडागादिखननैर्विसृजेद्धनम्॥ इति।

फिर भी मन की शुद्धि के लिये प्रायश्चित्त का करना चाहिये।

ऐन्दव—चान्द्रायण सहित दो तप्तकृच्छ्र (तत्प्रत्याम्नायः प्राजापत्यत्रयम्) व्रत करे, उदारता से दान करे अथवा सात लाख मन्त्र का जप करे या बावड़ी, कूप, तालाब आदि खोदने के लिये धन दे।

एतच्च—'यद्गर्हितेनार्जयन्ति कर्मणा ब्राह्मणा धनम्। तस्योत्सर्गेण शुद्ध्यन्ति दानेन तपसैव च॥ इति मनूक्तेरुत्सर्गोत्तरं ज्ञेयमिति दिक्।

यह (ग्रहणभोजनेऽप्येतदेव प्रायश्चित्तम्। 'न भूयः पुरुषो भवेत्' इत्युक्तेः) प्रायश्चित्त भी मनु के ब्राह्मण निन्दितकर्मसे जिस धन को इकट्ठा करते हैं। उसके त्यागसे, दान और तपको करने से शुद्ध होते हैं—इस वचन से उस धन के त्याग के पश्चात् जानना चाहिये।

१. अतश्च ग्रस्तोदये ग्रस्तास्ते च न पुरश्चरणम्।

(ग्रहणे पूर्वसंकल्पितद्रव्यस्य विचारः)

ग्रहणान्तरितस्य पूर्वसङ्कल्पितद्रव्यस्य द्वैगुण्यं भवतीति शिष्टाः ।
पठन्ति च ब्रह्मवैवर्त्ते—'दातव्यमिति नो कार्यां वक्तव्यं कुत्रचित्क्वचित् ।
अहोरात्रमतिक्रम्य तद्दानं द्विगुणं भवेत् ॥

शिष्टजन कहते हैं कि—ग्रहण के पूर्व संकलिपत द्रव्य यदि नहीं दिया गया तो ग्रहण के बाद उसको दूना करके देना चाहिये । ब्रह्मवैवर्त्तमें भी कहा है—काशीमें या किसी अन्य क्षेत्र में दूँगा, यों कभी नहीं कहना चाहिये; क्योंकि अहोरात्र के पश्चात् वह दान दूना हो जाता है ।

दशोत्तरं पर्वसु स्याच्छतं चन्द्रग्रहे भवेत् ।
सूर्यग्रहे सहस्रं तन्मरणेऽनन्तकं स्मृतम् ॥ इति । अत्र मूलं चिन्त्यम् ।

पर्व में दशगुणा चन्द्रग्रहण में सौगुणा, सूर्यग्रहण में हजार गुणा तथा मरने पर अनन्तगुणा हो जाता है । इसका मूल विचारणीय है ।

(ग्रहणविषये केचित् बौद्धतुल्या आहुः)

अत्र केचिद्बौद्धतुल्या आहुः—'ग्रहणस्य निमित्तत्वेन तन्निश्चयस्य प्रयोजकत्वात् ज्योतिःशास्त्रादिना जातस्य ज्ञानस्य निमित्तत्वे प्राप्तेऽपि—

स्नानं दानं तपः श्राद्धमनन्तं राहुदर्शने । चन्द्रसूर्योपरागे तु यावद्दर्शनगोचरे ॥

इति जाबाल्यादिवचनेषु दृशिप्रयोगाच्चाक्षुषज्ञानस्यैवोपसंहारन्यायेन निमित्तत्वम् । अन्यथा दृशौ लक्षणा स्यात् । तेन मेघाच्छादनेऽन्धादीनां जन्मसप्ताष्टेत्यादिनिषिद्धदर्शनानां च स्नानश्राद्धादौ नाधिकारः' इति ।

इसमें बौद्धों के तुल्य कोई कहते हैं—(स्नान, दान, जप आदि में) ग्रहण निमित्त है और ग्रहण का निश्चय किये विना स्नानादि नहीं हो सकते हैं । यद्यपि ज्योतिःशास्त्र आदि से हुआ ग्रहणका ज्ञान, निमित्त हो सकता है, फिर भी जाबालि आदि के राहु के दर्शन में स्नान, दान, तप, श्राद्ध अनन्त फल दायक होते हैं । चन्द्र-सूर्यग्रहण में जब तक ग्रहण दृष्टि का विषय हो यानी ग्रहण दिखाई पड़े—इस वचन में दृशि (राहु के दृश्यमान होने पर) प्रयोग होने के कारण चाक्षुषज्ञान ही उपसंहारन्याय से निमित्त हुआ अन्यथा दृशि में लक्षणा माननी पड़ेगी । इससे मेघ लगे रहने पर अन्धे आदि को और जन्म, सातवीं, आठवीं राशि वाले को (जिन्हें ग्रहण देखना निषिद्ध है उनका) स्नान, श्राद्ध आदि में अधिकार नहीं होगा ।

कल्पतरुरप्याह—'दर्शनशब्देन चाक्षुषज्ञानं गृह्यते, न ज्ञानमात्रम् । अज्ञातस्य निमित्तत्वासम्भवान्निमित्तमहिम्नैव ज्ञानलाभेन दर्शनपदवैयर्थ्यापत्तेः । तेन चाक्षुषधीयोग्यः कालः पुण्यः । योग्यत्वं च प्रयत्नानपनेयचाक्षुषज्ञानप्रतिबन्धकराहित्यम् । तेन मेघच्छन्ने योग्यताऽऽभावान्न स्नानादि' इति ॥ निर्णयामृतेऽप्येवम् । तदेतत्तुच्छम् ।

कल्पतरु ने भी कहा है—दर्शन शब्द से चाक्षुष ज्ञान का ग्रहण है सामान्य ज्ञान का नहीं है । अज्ञात की निमित्तता असम्भव है, निमित्त की महिमा से ही ज्ञान का लाभ हो जाने से दर्शनपद के व्यर्थ होने की आपत्ति होगी । इससे चाक्षुषज्ञान के योग्य काल पुण्यदायक है । उसकी योग्यता यही है कि प्रयास से नहीं हटाने योग्य चाक्षुषज्ञान का जो प्रतिबन्धक न हो । इससे मेघसे ढके हुए में नेत्रों से देखने की योग्यता नहीं है, इसलिये स्नान आदि नहीं होते हैं । निर्णयामृत में भी इसीप्रकार लिखा है । ये सब कथन (बौद्धों के सदृश) तुच्छ है ।

यदि चाक्षुषज्ञानं निमित्तं स्यात्तदा—'सूर्यग्रहो यदा रात्रौ दिवा चन्द्रग्रहस्तथा ।
तत्र स्नानं न कुर्वीत दद्याद्दानं न च क्वचित् ॥

इति वाक्यं व्यर्थं स्यात् । चाक्षुषज्ञानाभावेन प्राप्त्यभावात् तत्पूर्वकत्वाच्च निषेधस्य ।

यदि चाक्षुषज्ञान (देखना ही) निमित्त होता तो यह वाक्य व्यर्थ हो जायगा ।

जब सूर्यग्रहण रातमें हो तथा चन्द्रग्रहण दिन में हो उसमें स्नान नहीं करना चाहिये और कुछ भी दान न दे। क्योंकि चाक्षुप ज्ञानाभाव से स्नान आदि की प्राप्ति नहीं है, और निषेध प्राप्त होने पर ही होता है।

न चेदं ग्रस्तास्तपरम्। रविचन्द्रयोरस्तानन्तरं रात्रिदिवाग्रहणत्वादिति वाच्यम्। तत्रपदस्य ग्रहपरत्वेऽधिकरणत्वायोगान्निमित्तपरत्वे च तद्ग्रहनिमित्तकस्नानदानादेरस्तात्प्रागप्यभावापत्तेः।

अथ तत्रेति रात्रिदिने उच्येते सा वैश्वदेवीतिवद्गुणभूते अपि। तन्न। तादृशमन्त्रलिङ्गाभावात्। तयोर्निमित्तत्वेऽधिकरणत्वे वाऽन्यप्रयुक्तस्नानाद्यभावापत्तेश्च।

(कोई शंका करे कि) यह (निषेध) ग्रस्तास्त परक है, क्योंकि सूर्य तथा चन्द्रमा के अस्त के बाद होनेवाली रात एवं दिनका ग्रहण है, यह शंका ठीक नहीं है। क्योंकि ग्रहपर है, तत्रपद का अधिकरण असंभव है. निमित्तपरक मानने पर अस्त से पूर्व भी उस ग्रहण निमित्त स्नान, दान आदि नहीं होंगे।

कोई कहे कि लगे हुए वचनमें तत्र पदसे 'सा वैश्वदेवी' (तप्ते पयसि दध्यानयति सा वैश्वदेवी) इसके समान गौण भी रात्रि-दिन कहे हैं, वह ठीक नहीं, क्योंकि ऐसा कोई (वैश्वदेवीशब्दार्थान्वयेन मान्त्रवर्णिक देवतासम्बन्धिनि यागे विनियोगलाभात्पयोलाभः, न त्विह तथा किञ्चिदस्तीत्यर्थः) मन्त्र-लिङ्ग नहीं है। और उन (रात्रि-दिन) को निमित्त अधिकरण मानने पर दूसरे कारण से होनेवाले भी स्नान आदि का अभाव हो जायगा।

किं च—नेक्षेतोद्यन्तमादित्यं नास्तं यन्तं कदाचन। नोपरक्तं न वारिस्थं न मध्यं नभसो गतम्॥ इति मनुवचनं बाध्येत, 'दृष्टोऽरिष्टप्रदो राहुः' इत्यादि च। न चात्र विहिते दर्शने निषेधाप्रवृत्तिवत्पर्युदसनीयताऽपि न युक्तेति वाच्यम्। दर्शनस्य निमित्तत्वानुवादेन विधेयत्वाभावात्। एतच्चाग्रे वक्ष्यामः।

तथा इस मनु के उदय और अस्त होते समय, राहु से ग्रस्त जल में स्थित और मध्याह्न समय सूर्य को न देखे। यह वचन बाधित हो जायगा और ग्रहणके समय देखा हुआ राहु रोग देता है। इत्यादि का भी बाध होगा।

कोई शंका करे कि जैसे यहाँ शास्त्र विहित दर्शन में निषेध की अप्रवृत्ति के समान पर्युदास भी युक्त नहीं, यह शंका ठीक नहीं, क्योंकि [1]दर्शन का निमित्तत्व के अनुवाद से विधेयत्व असंभव होने से यह आगे कहेंगे।

तत्त्वे वा दर्शनस्य विधौ तत्र स्नानविधौ च विरुद्धत्रिकद्वयापत्तेः। अस्तु सकृद्दर्शनविधानेन सङ्कोच इति चेन्न। 'मुक्तिं दृष्ट्वा ततः स्नायात्' इति मुक्तिस्नानेऽपि चाक्षुषज्ञानस्य निमित्तत्वापत्तेः। अस्तु किं नश्छिन्नमिति चेत्। न, ग्रस्तास्ते—

तयोः परेद्युरुदये दृष्ट्वाऽभ्यवहरेच्छुचिः। इति दर्शनोत्तरं भोजनविधानादन्धस्य पूर्ववेधकाल इव यावद्दर्शनं भोजननिषेधापत्तिः। मध्येऽन्धीभूतस्य सुतरां यावच्चक्षुःप्राप्त्युपवासप्रसङ्गश्च। अथान्नलोलुपतया तत्र ज्ञानमात्रं विवक्ष्यते। तत्तत्पूर्वमपि निर्लज्जेन स्वीक्रियताम्।

ऐसे ही दर्शन का विधि और उस समय स्नान का विधि में परस्पर विरुद्ध त्रिकद्वय आपत्ति होगी। शंका करे कि एकवार दर्शनविधि से संकोच करेंगे, यह भी ठीक नहीं; क्योंकि राहु से मुक्ति देखकर स्नान करे, इस मुक्ति स्नान में भी चाक्षुपज्ञान के निमित्त की आपत्ति हो जायगी। कोई शंका करे कि ठीक है, हमारा क्या नुकसान होगा। यह भी ठीक नहीं, क्योंकि सूर्य-चन्द्र के ग्रस्तास्त में ग्रहण के दूसरे

---

१. दर्शन की विधि अगर माने तब दर्शन का उपोदयत्व विधेयत्व गुणत्व यह तीन होते हैं। अगर उसी दर्शन को अनुवाद करे तो तब दर्शन का उद्देश्यत्व, अनुवादत्व, मुख्यत्व हो जायगा। जो उपोदय होगा उसका उद्देश्यत्व असंभव और विधेयत्व होगा उसका अनुवादत्व असंभव गुणत्व मुख्यत्व परस्पर विरुद्ध हैं। यही दोष लगेगा। इस दोष की निवृत्ति करने के लिए वाक्यभेद, (भिन्न वाक्य) मानना पड़ेगा। तब वाक्यभेद नाम का दोष हो जायगा। इसी बात को माधव ने कहा है—उपादेयविधेयत्वगुणत्वाख्यं त्रिकं यजेः। उद्देश्यानूक्तिमुख्यत्वत्रिकं तस्य गुणं प्रति॥

दिन उदय होने पर देख शुद्ध होकर भोजन करे, इस वचन से दर्शन के बाद भोजन का विधान है, इससे अन्धे मनुष्य को जैसे पूर्ववेध काल में भोजन का निषेध है, वैसे ही चन्द्र-सूर्य दर्शन पर्यन्त भोजन का निषेध हो जायगा। और जो मनुष्य बीच में अन्धा होगया है उसे जबतक नेत्र प्राप्ति न हो जाय तब तक उपवास का प्रसंग हो जायगा। अगर अन्नलोलुप से वहाँ ज्ञानमात्र का ही विवक्षा है तो उससे पूर्व भी निर्लज्ज स्वीकार कर लो।

एतेन यत्केनचिदुक्तं स्पर्शस्नानं मुक्तिस्नानं च यस्य दर्शनं तेनैव कार्यं नान्येन क्त्वा-प्रत्ययेन समानकर्तृकत्वावगतेरिति, तन्निरस्तम्। का तर्हि तस्य गतिः? दृशेरुद्देश्यविशेषणत्वाद् ग्रहैकत्ववदविवक्षयाऽर्थतः सिद्धज्ञानमात्रानुवादत्वे सर्वं सुस्थम्। अङ्गुल्याद्यनादेश्यग्रहव्यावृत्त्या वा दर्शनस्यार्थवत्त्वम्। न चोक्तयोग्यतापि साध्वी, दर्शनोत्तरं मेघच्छन्ने योग्यताऽभावापत्त्या दानाद्यभावापत्तेः। तेन तत्तद्रेखावच्छेदेन ज्योतिःशास्त्रावेद्यत्वमेव योग्यता।

किं च—रजसो दर्शने नारी त्रिरात्रमशुचिर्भवेत्। इत्यत्राप्यन्धस्त्रीणामाशौचाभावप्रसङ्गः।

इससे जो किसी ने यह कहा है—कि ('दृष्ट्वा' में) क्त्वा प्रत्यय से समानकर्तृकत्वाज्ञान होने से स्पर्श स्नान और मुक्ति स्नान जिसने देखा हो वही मनुष्य करे, अन्य न करे। यह निराकृत है। कोई कहे कि तब क्या उसकी गति होगी (तो उसका समाधान यह है कि) दर्शन का उद्देश्य विशेषण होने से ग्रह के एकत्व के समान उसकी अविवक्षा से अर्थतः सिद्ध ज्ञानमात्र का अनुवाद मानने से सब ठीक है। अंगुलि आदि से अनिर्दिष्ट ग्रहण के निषेध करने से ही दर्शन पद सार्थकता है।

पूर्वोक्त दर्शन की योग्यता भी ठीक नहीं है; क्योंकि दर्शन के पश्चात् मेघों से आच्छन्न (ढक) जाने पर दर्शन योग्यता के अभाव होने से दान आदि का अभाव हो जायगा। इससे ज्योतिष शास्त्र के द्वारा उस रेखा में ग्रहण का जो अज्ञान है उसकी अदर्शन की योग्यता हैं। रज के देखने से स्त्री तीन रात अपवित्र होतीहै, इसवचन में भी अन्धी स्त्रियोंको आशौच का अभाव हो जायगा।

यत्तु वर्धमानेनोक्तम्—ज्ञानोत्तरं ह्यधिकारो न ज्ञानकाले। स्नानकाले ज्ञानाभावात्। एवं दर्शनोत्तरं मुक्तिपर्यन्तमस्त्येव योग्यतेति, तदपि प्रतिज्ञामात्रम्। किञ्च ग्रस्तास्ते—'तयोः परेद्युरुदये दृष्ट्वाभ्यवहरेच्छुचिः। इत्यादिवाक्यवैयर्थ्यापत्तिः। चाक्षुषज्ञानान्यथानुपपत्त्यैवार्थादुदये स्नानसिद्धेः। न तु मुक्तिस्नाने शास्त्रीयमेव ज्ञानं निमित्तं न चाक्षुषम्। चन्द्रसूर्यग्रहे नाद्यात् तस्मिन्नहनि पूर्वतः। राहोर्विमुक्तिं विज्ञाय स्नात्वा कुर्वीत भोजनम्॥' इति वृद्धगौतमेन विज्ञायेति ज्ञानमात्रोक्तेः।

वर्द्धमान ने जो यह कहा है कि—ज्ञानोत्तर ही (अर्थात्—चाक्षुषज्ञानोत्तर) स्नानका अधिकार है, ज्ञानकाल में (न चाक्षुषज्ञानकाले चाक्षुषज्ञानरूपस्याङ्गस्याधिकारसम्पादकत्वादिति भावः) नहीं है। क्योंकि

१—ज्योतिष्टोमप्रकरणमें 'ग्रहं संमार्ष्टि' ऐसा वेद वाक्य है। इस वाक्य का तात्पर्य सोमयाग में ऐन्द्रवायवादि अनेक ग्रह हैं। उलूखल के समान लकड़ी से बनाया हुआ पात्रविशेष का 'ग्रह' नाम है। उन ग्रहों की शुद्धि करनी चाहिये। यहाँ पर एक ही ग्रह को संमार्जन करे या सभी ग्रहों को। 'ग्रहम्' शब्द के बाद एक वचन है। अतः प्रत्यय श्रुति से एक ही ग्रह को संमार्जन करने पर शास्त्रार्थ संपन्न हो जाता है। ग्रह बहुत्व वाचक पद नहीं है।

सिद्धान्त यह है कि—ग्रह को उद्देश्य करके संमार्जन का विधान करते हैं। एक वचन ग्रह का विशेषण है। इसलिये वचन की विवक्षा नहीं करते हैं। यदि वचन की विवक्षा करें तो दूसरे वाक्य से प्राप्त ग्रह को उद्देश्य करके एकत्व तथा संमार्जन दोनों विधान करें तो वाक्य भेद नाम से दोष हो जायगा। कुमारिल भट्ट ने कहा है कि—प्राप्ते कर्मणि नानेको विधातुं शक्यते गुणः। अतः उद्देश्यविशेषण का शास्त्रों में विवक्षा नहीं करते हैं। यहाँ पर भी एकवचन ग्रह का विशेषण होने के कारण अविवक्षित है। तब सभी ग्रहों का संमार्जन करें।

संमार्ष्टि ग्रहमित्येको ग्रहःशोध्य उताऽखिलः। एक उद्देश्यसंख्याया उपादेयवदादरात्॥ प्राधान्यात्तद्गुणावृत्तेरेकत्व मनपेक्षितम्। तद्विधौ वाक्यभेदोऽतो द्रव्योक्त्या सर्वशोधनम्॥

स्नानकाल में ज्ञानका अभाव है (ज्ञानरूपाङ्गाभावान्नान्धादेरधिकारः) इसीप्रकार दर्शन के बाद मुक्ति पर्यन्त योग्यता है ही। यह कहना प्रतिज्ञामात्र है; क्योंकि सूर्य-चन्द्रके ग्रस्तास्त में दूसरे दिन दोनों को देख एवं शुद्ध होकर भोजन करे—इत्यादि वाक्य व्यर्थ हो जायगा। क्योंकि चाक्षुषज्ञान अन्यथानुपपत्ति से ही अर्थात् उदयमें स्नान सिद्ध है। कोई शंका करे कि (यह शंका ठीक नहीं है) मुक्ति के स्नान में शास्त्रीयज्ञान ही निमित्त है, चाक्षुषज्ञान नहीं, क्योंकि—चन्द्रसूर्यग्रहणमें उसदिन भोजन न करे किन्तु राहु से मुक्ति जानकर तथा स्नान कर भोजन करे यहाँ वृद्ध गौतम ने विज्ञाय पद से ज्ञानमात्र कहा है।

यत्तु—मुक्तिं दृष्ट्वा तु भोक्तव्यं स्नानं कृत्वा ततः परम्। इति तदपि ज्ञानमात्रपरम्। मेघमालादिदोषेण यदि मुक्तिर्न दृश्यते। आकालय्य तु तत्कालं स्नात्वा भुञ्जीत वाग्यतः॥ इति गौडनिबन्धे वचनात्।

जो गौडनिबन्धमें यह वचन है कि—राहु से मुक्ति देख स्नानकर तथा भोजन करे—वह भी ज्ञानमात्र परक है। यदि मेघपंक्ति आदि दोष से मुक्ति न दिखती है तो उस (मुक्ति के) को शास्त्र से जानकर, स्नानोत्तर मौन होकर भोजन करे। यह कहना उचित नही हैं।

मैवम्। अज्ञानस्य निमित्तत्वाभावेन निमित्तमहिम्नैव ज्ञानलाभे वाक्यवैयर्थ्यात्, ग्रस्तास्तेऽपि तदापत्तेश्च।

क्योंकि जब अज्ञान के निमित्त न होने से निमित्त की महिमा से ही ज्ञानका लाभ हो जाने पर वाक्य व्यर्थ हो जायगा तथा ग्रस्तास्त में भी भोजन की प्राप्ति हो जायगी।

किञ्च दर्शनं पुंसो विशेषणमुपलक्षणं वा?॥ नाद्यः। दर्शनावच्छिन्ने काले स्नानतुलादानादेर्बाधात्। दर्शनविच्छेदे कृतमपि स्नानादि न ग्रहणनिमित्तं स्यात्। नान्त्यः। 'यावद्दर्शनगोचरे' इति यावत्पदवैयर्थ्यप्रसङ्गात्। दृष्टग्रहणोत्तरमपि स्नानाद्यापत्तेश्च। ज्ञानपक्षेऽप्येष दोषस्तुल्य इति चेत् मूर्खोऽसि। यदि ज्ञानवाचकं पदं श्रूयेत, ततस्तस्यान्वयो विचार्येत। दृशिस्तु श्रूयत इति वैषम्यम्। कथं तर्हि ज्ञानं लभ्यते?। 'संक्रान्तौ स्नायात्' इतिवदर्थादित्यवेहि। अश्रुतत्वादेवनोद्देश्यविशेषणविवक्षाकृतो वाक्यभेदोऽपि। अस्तु तर्हि दृष्टं ग्रहणं निमित्तमिति चेत्। ग्रस्तास्तेऽस्तोत्तरं स्नानापत्तेः। विशिष्टोद्देशे वाक्यभेदाच्च। तवाप्येतत्तुल्यमिति चेत् 'यावद्दर्शनगोचरे' इति वचनेन तन्निषेधात्॥ तवत्वन्यग्रह इव ग्रस्तास्तेऽपि स्यात्।

दर्शन पुरुष का विशेषण है या उपलक्षण। प्रथम पक्ष भी नहीं बनता। क्योंकि दर्शन काल में स्नान तथा तुलादान आदि नहीं हो सकते हैं (ग्रहण की ओरसे नेत्र को हटाने आदि से) दर्शन के विच्छेद होने पर किया हुआ स्नान आदि ग्रहण का निमित्त नहीं होगा। अन्त्यपक्ष भी ठीक नहीं है। क्योंकि 'जब तक दर्शन का विषय हो इस वचनमें यावत् पद व्यर्थ हो जायगा और देखे हुए ग्रहणोत्तर भी स्नान आदि करने पड़ेगे। यदि कहो कि—ज्ञानपक्ष में भी यही दोष समान है, तो मूर्ख हो; यदि ज्ञानवाचकपद सुना होता तो उसका अन्वय विचार किया जाता। दृशधातु श्रूयमाण है यही विषमता है।

ज्ञान का लाभ कैसे होगा, संक्रान्ति में स्नान करे (यहाँ जैसे संक्रान्ति का ज्ञान होता है, वैसे निःसंदेह यहाँ भी दर्शन से दर्शन का ज्ञान होगा) यह जानना चाहिए।

वाक्य में न सुनने से, उद्देश्यविशेषण विवक्षा कृत वाक्यभेद भी नहीं हो जायगा। अस्तु, दृष्ट ग्रहण ही निमित्त मान लेगे (यदि ऐसा कोई कहे तो) ग्रस्तास्तोत्तर स्नान की आपत्ति हो जायगी तथा विशिष्टोद्देश्य मानोगे तो वाक्यभेद हो जायगा। (यदि कहो कि) तुम्हारे मत में भी यह तुल्य है (वह ठीक नहीं) जबतक दर्शन का विषय हो इस वचनसे (हमारे मत में दर्शनके न होने पर स्नान) निषेध है। तुम्हारे मतमें तो अन्य ग्रहणके तुल्य ग्रस्तास्तमें भी (स्नान) होजायगा।

किञ्च दर्शनस्य विधिरनुवादो वा ? । आद्ये ग्रहणोद्देशेन दर्शनविधिरुत दर्शनविशिष्टस्नानविधिरुत स्नानोद्देशेन दर्शनविधिः ? । नाद्यः । ग्रहोद्देशेन स्नानविधाने दर्शनविधाने च वाक्यभेदात् । एतेन द्वितीयोऽपि परास्तः । न तृतीयः । स्नानस्याप्राप्तेः दर्शनस्य निमित्तत्वेनाविधेयत्वाच्च । अन्यथा [२]सोमवमनादौ प्रसञ्जनविधिः केन वार्येत । अथ नानावाक्येषु क्वचिद्दर्शनविशिष्टस्नानविधिः । क्वचिच्च प्राप्तं दर्शनं निमित्तीकृत्य स्नानमात्रविधिः, तन्न । स्नानस्य प्रधानस्य प्राप्तौ तदङ्गदर्शनप्राप्तिः, तस्यां च निमित्ते सति स्नानमित्यन्योन्याश्रयात् । एवं दर्शनविधौ सति तन्निमित्तकस्नानविधिः । सति च प्रधानस्नानविधौ तदङ्गदर्शनविधिः । एवमधिकारे प्रयोजकत्वे च योज्यम् । क्त्वार्थपूर्वकालविधौ चास्त्येव वाक्यभेदः । अन्यथा स्नानोत्तरमपि दर्शनमङ्गं स्यात् । न द्वितीयः । तत्रापि दर्शनग्रहयोर्निमित्तत्वे स्नानद्वयापत्तेः । दर्शनावृत्तौ नैमित्तिकावृत्तिप्रसङ्गाद्दर्शनविशिष्टग्रहणस्य विशिष्टस्यानुवादे वाक्यभेदापत्तेः । न च हविरार्तिवद्विशिष्टं निमित्तमिति वाच्यम् । आर्तिमात्रस्य हि निमित्तत्वे निमेषाद्यार्तेरपि तत्त्वापत्तेर्नैमित्तिकत्वभङ्गाद्युक्तं विशिष्टोद्देश्यत्वम् । इह तु ग्रहणमात्रस्य निमित्तत्वे न काचित् क्षतिः । तस्माद्दर्शनवाक्यानां ग्रस्तास्तविषयत्वादनादेश्यग्रहपरत्वाद्वा ज्ञानस्य चार्थतः प्राप्तेस्तदेव निमित्तम् । तेन मेघाद्याच्छादने अन्धादेश्च स्नानादि भवत्येवेत्यलं वेदबाह्यैस्संलापेन । इति ग्रहणनिर्णयः ।

और दर्शन की विधि या अनुवाद मानोगे ? प्रथम में ग्रहणोद्देश्य से दर्शनविधि है या दर्शनयुक्त स्नानविधि या स्नानोद्देश्य से दर्शनविधि (इन तीनों में) प्रथम तो ठीक नहीं है, क्योंकि ग्रहणोद्देश्य से स्नानविधान और दर्शन विधान में वाक्यभेद होगा । इससे (दूसरा) भी परास्त हो गया । तीसरा भी ठीक नहीं है । क्योंकि स्नान अप्राप्त है, और दर्शन निमित्त होने से अविधेय है । अन्यथा सोम वमन आदि में प्रसंग की विधि को कौन वारण—हटा सकेगा । कोई शंका करे कि—नानावाक्यों में कहीं तो दर्शनविशिष्ट स्नानविधि है और कहीं प्राप्त हुए दर्शन को निमित्त मानकर स्नानमात्रविधि है, यह ठीक नहीं है क्योंकि प्रधान स्नान की प्राप्ति होने पर उसके अंग दर्शन की प्राप्ति होगी और दर्शन निमित्त मानने पर तो स्नान, इसप्रकार अन्योन्याश्रय दोष होगा । इसीप्रकार दर्शनविधि के होनेपर तन्निमित्तक स्नानविधि होगी प्रधान स्नान विधि होने पर उसके अंग दर्शन की विधि होगी इसीप्रकार अधिकार को प्रयोजकत्व मानने पर योजना कर लेनी चाहिए । (दृष्ट्वा) इस पद में 'क्त्वा' प्रत्यय का अर्थ पूर्वकालत्व विधि माने (तो) वाक्यभेद अवश्य ही होता है अन्यथा स्नानोत्तर भी दर्शन अंग हो जायगा । दूसरा भी ठीक नहीं है क्योंकि उसमें भी दर्शन तथा ग्रहण को निमित्त मानने पर तो

१—अप्राप्त अबाधित अर्थ का प्रतिपादन (विधान) करे तो उसको विधि कहा जाता है । ज्ञात अर्थ को प्रतिपादन करे तो अनुवाद होता है । जैसे—'अग्निहोत्रं जुहोति' अग्निहोत्र होम का अनुष्ठान करें—यह वेद वाक्य से अतिरिक्त प्रमाणों से अज्ञात होने से होम का रूढी माना जाता है । दध्ना जुहोति—यह परश्रूयमाणहोम पूर्व वाक्य से ज्ञात होने से अनुवाद माना जाता है । इस प्रमाण से प्राप्त अर्थ को अनुवाद करके अज्ञात किसी अर्थ को प्रतिपादन करें तो अनुवाद दोष नहीं माना जाता है । जैसे प्रकृत-वाक्य में होम का साधन द्रव्य अज्ञात है । अतः होम का अनुवाद करके दधि का विधान करने से अनुवाद दोष नहीं माना जाता है ।

२—मीमांसाशास्त्र में तृतीयाध्याय चतुर्थपाद १६ तथा १७ अधिकरण में विचार का संग्रहश्लोक इसप्रकार है—सोमवामिचरुर्लोके वेदे वेन्द्रियसंक्षयः । दृष्टदोषो लौकिकेऽतो वमने विहितश्च सः ॥ अदोषो वमनायैव लोके पानं श्रुतौ पुनः । जरणाय ततो वान्तिदोषशान्त्यै भवेच्चरुः ॥ ऋत्विजां वमनेऽप्येष कर्तुरेवोत वर्जनात् । विशेषस्याऽग्रिमो मैवं कर्तुरेव निरूपितः ॥

३—'यस्योभयं हविरार्तिमार्च्छेत्'—यस्य यजमानस्य उभयं हविः सायं प्रातः कालिकं चेदुभयं दधिपयोरूपं आर्तिमार्च्छेत् नश्येत् केनापि कारणवशेन, स यजमान तद्दोषपरिहारार्थमिन्द्रदेवताकशरावपञ्चकपरिमितव्रीहिनिष्पन्नतण्डुल सम्पाद्य चरुद्रव्यकयागमनुतिष्ठेदित्यर्थः । इसका विवरण मीमांसा के ६ अध्याय के चतुर्थ पाद का अधिकरण देखिये ।

दो स्नान करना होगा। दर्शन की आवृत्ति में नैमित्तिक की आवृत्ति का प्रसंग हो जायगा। दर्शनविशिष्ट ग्रहण का विशिष्ट अनुवाद मानने पर वाक्यभेद होगा। यदि शंका करे कि हवि रात्ति के समान विशिष्ट को निमित्त मानेंगे यह ठीक नहीं है। क्योंकि आर्तिमात्र को निमित्त मानने पर निमेषाद्यार्ति को भी निमित्तता आ जानेपर नैमित्तिकता का भंग हो जायगा अतः विशिष्ट को उद्देश्यत्व मानना युक्त है। यहाँ तो केवल ग्रहण को निमित्त मानने में कोई हानि नहीं है। इससे दर्शनवाक्यों को ग्रस्तास्त का विषयहोनेसे अनादेश्य ग्रहण का विषय होने से निःसंदेह ज्ञान प्राप्ति से ज्ञान ही निमित्त है। इसी से मेघ से आच्छादित होने पर अन्ध आदिकों भी स्नान आदि करना चाहिए। इस प्रकार वेदवाह्यों के संग संभाषण करना व्यर्थ है।

(अथ समुद्रस्नानादिविचारः)

अथ समुद्रस्नानम्। आश्वलायनः—'समुद्रे पर्वसु स्नायादमायां च विशेषतः। पापैर्विमुच्यते सर्वैरमायां स्नानमाचरन्॥ भृगौ भौमदिने स्नानं नित्यमेव विवर्जयेत्।'

अव समुद्र-स्नान का निर्णय करते हैं। आश्वलायनने कहा है—समुद्र में पर्वों और विशेषतः अमावास्या में स्नान करे। अमावास्यामें स्नान करनेवाले मानव सब पापों से छूट जाते हैं। शुक्र-मंगलवार को समुद्र-स्नान निश्चय वर्जित करे।

भारते—'अश्वत्थसागरौ सेव्यौ न स्पृष्टव्यौ कदाचन। अश्वत्थं मन्दवारे तु सागरं पर्वणि स्पृशेत्॥'

महाभारत में कहा है—पीपल तथा समुद्र सेव्य है, किन्तु स्पृश्य नहीं है। शनिवार को पीपल का स्पर्श एवं पर्वमें सागर का स्पर्श (स्नान) करे।

पृथ्वीचन्द्रोदये स्कान्दे—पुनाति पर्वणि स्नानात्तर्पणैः सरितां पतिः।
कदाचिदपि नैवात्र स्नानं कुर्यादपर्वणि॥

पृथ्वीचन्द्रोदय में स्कन्दपुराण का कथन है कि—पर्व में स्नान प्राप्त होने पर और तर्पण को करने से नदियों का पति समुद्र पवित्र कर देता है। पर्वके विना समुद्र में कभी भी स्नान को न करे।

अस्यापवादस्तत्रैव प्रभासखण्डे—पर्वकाले च सम्प्राप्ते नदीनां च समागमे।
सेतुवन्धे तथा सिन्धौ तीर्थेष्वन्येषु संयुते॥ एवमादिषु सर्वेषु मेध्योऽन्ये तु स्वकर्मणि॥

इसका अपवाद स्कन्दपुराण के प्रभासखण्ड में किया है—पर्वकालमें प्राप्त होने पर नदियों के समागम में, सेतुवन्ध, समुद्र और अन्य तीर्थोंमें पहुँचने पर स्नान पुण्यजनक है। अन्य कहते हैं कि—अपने कर्म में स्नान करना पवित्र है।

तथा—विना मन्त्रं विना पर्व क्षुरकर्म विना नरैः। कुशाग्रेणापि देवेशि न स्प्रष्टव्यो महोदधिः॥ तथा—न कालनियमः सेतौ समुद्रस्नानकर्मणि॥

और देवेशि! मनुष्यों को मंत्र, पर्व और क्षौरकर्म तीर्थ प्रयुक्त के विना, कुशाग्र से भी समुद्र का स्पर्श न करें। तथा सेतुवन्ध पर समुद्र स्नानकर्ममें समय का नियम नहीं है।

(अथ पाषाणप्रक्षेपणविधिकथनम्)

तद्विधिश्च तत्रैव—पिप्पलादसमुत्पन्ने कृत्ये लोकभयङ्करे।
पाषाणस्ते मया दत्त आहारार्थे प्रकल्प्यताम्॥ इति पाषाणं प्रक्षिप्य—

वहीं स्नान की विधि भी है—पिप्पलादसे उत्पन्न, संसारमें भयंकर कृत्या राक्षसी तुझे भोजनके लिये यह पत्थर देता हूँ।

(अथ विश्वाची-इत्यादि मन्त्रानुच्चार्य स्नानविधिकथनम्)

विश्वाची च घृताची च विश्वयोने विशां पते। सान्निध्यं कुरु मे देव सागरे लवणाम्भसि॥

इस मन्त्र से समुद्र में पत्थर फेंककर, महाभारत के इन मंत्रों को पढ़े—विश्वाचि, घृताचि, विश्वयोने, विशांपते देव! लवण जल वाले समुद्रमें हे देव, आप आवें।

नमस्ते विश्वगुप्ताय नमो विष्णो अपाम्पते। नमो जलाधिरूपाय नदीनां पतये नमः॥

संसार के रक्षक, जलपति, विष्णु, जलस्वरूप नदियों के पति को प्रणाम है।

समस्तजगदाधार शंखचक्रगदाधर। देव देहि ममानुज्ञां तव तीर्थनिषेवणे॥

समस्त संसार के आधार, शंख-चक्र-गदा को धारण करनेवाले हे देव, अपने तीर्थ के सेवन करने के लिये मुझे आज्ञा दें।

त्रितत्त्वान्तकमीशानं नमो विष्णुमुमापतिम्। सान्निध्यं कुरु देवेश सागरे लवणाम्भसि॥

तीन तत्त्वस्वरूप, सबका शासक उमापति और विष्णु को प्रणाम है। देवेश! आप लवणसमुद्र में आवें।

अग्निश्च योनिरनिलश्च देहो रेतोधा विष्णुरमृतस्य नाभिः।

एतद् ब्रुवन् पाण्डव सत्यवाक्यं ततोऽवगाहेत पतिं नदीनाम्॥

इति भारतोक्तमन्त्रान् पठित्वा विधिवत्स्नात्वा—

अग्निस्वरूप, सबका कारण, वायुरूप, शरीर में वीर्य का पोषक और अमृत का केन्द्र विष्णु—ऐसा सत्य वाक्य कहता हुआ हे पाण्डव, नदियों के स्वामी समुद्रमें स्नान करे।

(अथार्घ्यमन्त्रः)

सर्वरत्नो भवान् श्रीमान् सर्वरत्नाकरो यतः।

सर्वरत्नप्रधानस्त्वं गृहाणार्घ्यं महोदधे॥ इत्यर्घ्यं दत्त्वा तर्पयेत्।

तदनन्तर सविधि स्नान करके अर्घ्य दे, हे समुद्र, आप सब रत्नों से पूर्ण, श्रीसम्पन्न, सब रत्नों का आकार तथा आप सब रत्नों में प्रधान हैं। इस अर्घ्य को ग्रहण करें। तत्पश्चात् तर्पण करे।

(अथ पिप्पलादीनां देवानां जलमध्ये तर्पणकथनम्)

यथोक्तं पृथ्वीचन्द्रोदये स्कान्दे—पिप्पलादं विकण्वं च कृतान्तं जीविकेश्वरम्। वसिष्ठं वामदेवं च पराशरमुमापतिम्॥ वाल्मीकिं नारदं चैव वालखिल्यांस्तथैव च। नलं नीलं गवाक्षं च गवयं गन्धमादनम्॥ जाम्बवन्तं हनूमन्तं सुग्रीवं चाङ्गदं तथा। मैन्दं च द्विविदं चैव वृषभं शरभं तथा॥ रामं च लक्ष्मणं चैव सीतां चैव यशस्विनीम्। एतांस्तु तर्पयेद्विद्वान् जलमध्ये विशेषतः॥

जैसा पृथ्वीचन्द्रोदय में स्कन्दपुराण का वचन है कि—विद्वान् पुरुष जल के मध्य में विशेषतः पिप्पलाद, विकण्व, कृतान्त, जीविकेश्वर, वसिष्ठ, वामदेव, पराशर, उमापति, वाल्मीकि, नारद, बालखिल्य, नल, नील, गवाक्ष, गवय, गन्धमादन, जाम्बवान्, हनुमान्, सुग्रीव, अंगद, मैन्द, द्विविद, वृषभ, राम, लक्ष्मण और यशस्विनी सीता का तर्पण करे।

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं यत्किञ्चित्सचराचरम्। मया दत्तेन तोयेन तृप्तिमेवाभिगच्छतु॥

इति प्रथमः परिच्छेदः।

ब्रह्मा से लेकर स्तम्बपर्यन्त जितने चर-अचर प्राणी हैं, वे सब मेरे दिये हुए जल से ही तृप्त हों।

भाषा टीका सहित निर्णय सिन्धु का प्रथम परिच्छेद समाप्त।

(संक्षिप्ततम शास्त्रीयविचार)

१—उपवसथ दिन में अग्निहोत्री को हविष्यान्न खाना चाहिये।

२—उपवसथ दिन में अग्निहोत्री मूँग और चावल खा सकता है।

३—अग्निहोत्री को गुड़ और गोरस को छोड़कर पराग्निपक्व (अर्थात्-दूसरे की अग्नि में पका हुआ पदार्थ) कुछ भी नहीं खाना चाहिये। जैसे—सिंघाड़े का कूट्ट, पान लगी तथा दलवेसन का लड्डू आदि पदार्थ नहीं खाने चाहिये।

४—अग्निहोत्री को अग्निहोत्री के घर भी भोजन नहीं करना चाहिये। यदि अपनी अग्नि ले जाय तो स्वाग्निपक्व खा सकता है।

५—अग्निहोत्री को प्रवास में परिशिष्टोक्त सूत्र के आधार पर पृष्ठोदिविविधान कर भोजन करना चाहिये। परन्तु मूल में पृष्ठोदिविविधान परिशिष्ट कात्यायन प्रणीत है या अन्य किसी विद्वान् ने बनाया यह सन्देह है। किन्तु आजकल बहुधा पृष्ठोदिविविधान चलता है। यह हम देखते आ रहे हैं।

६—अग्निहोत्री के विदेश जाने पर यदि पुत्रादि 'पञ्चमहायज्ञ' करें तो 'पितृभ्यः स्वधा नमः' यह कहकर बलि दे सकते हैं। क्योंकि वे उनके प्रतिनिधि होकर उनकी आज्ञा से करते हैं।

७—जीवित पितृक यदि पिता से पृथक हो तो 'पञ्चमहायज्ञ' अलग से कर सकता है। पञ्चमहायज्ञ का अधिकार मृत पितृक या जीवित पितृक परक नहीं है। किन्तु पाकार्थ और पुरुषार्थ होने से पृथक् रहने पर अवलंबित है।

८—पञ्चमहायज्ञ के पूर्व वैश्वदेव के निमित्त निकालकर अतिथि को भिक्षा देना चाहिये। अकृते वैश्वदेवे तु भिक्षुके गृहमागते। उद्धृत्य वैश्वदेवार्थं भिक्षां दत्वा विसर्जयेत्॥ वैश्वेदेवे तु निर्वृत्ते यदन्योऽतिथिराव्रजेत्। तस्याप्यन्नं यथाशक्ति प्रदद्यान्नं बलिं हरेत्।

९—घर के लड़के पञ्चमहायज्ञ के बाद ही भोजन कर सकते हैं। 'ततो बालज्येष्ठगृह्या यथार्हमश्नीयुः' इत्यादि स्मृति वैद्यनाथ मिश्र ने पञ्चमहायज्ञ प्रकरण में लिखा है।

१०—ग्रहण में रजस्वला गंगा आदि में उद्धृत जल से स्नान करें।

११—ग्रहण में जननाशौच तथा मरणाशौच में यज्ञोपवीत बदलना चाहिये।

१२—ग्रहण में एक दिन और ग्रस्तास्त में तीन दिन अनध्याय होती है।

१३—ग्रहण में पुत्र हो तो शान्ति करें।

१४—अमा में ग्रहण निमित्तक श्राद्ध से अमा और संक्रान्त्यादिश्राद्ध की प्रसंग से सिद्धि होती है।

१५—तीर्थ और ग्रहण में आमश्राद्ध या हेमश्राद्ध निर्णयसिन्धु कार मानते हैं। पर अपरार्ककार तो पाकाभाव में तीर्थश्राद्धवत् आमश्राद्ध मानते हैं।

१६—रविवार में सूर्यग्रहण और सोमवार में चन्द्रग्रहण हो तो चूड़ामणि संज्ञा होती है। उसमें दानादि करने से फल होता है।

१७—ग्रहण के स्पर्श काल में–स्नान, मध्य में–होम, देवपूजन और श्राद्ध तथा मुच्यमान में–दान करे।

१८—ग्रहण में स्नान अमन्त्रक होता है।

१९—सुवासिनी स्त्रियों को अशिरस्क स्नान का विधान है।

२०—शिष्टस्त्रियों के लिए ग्रहण में सशिरस्क स्नान विहित है।

२१—क्षयाह तिथि में यदि ग्रहण हो तो भोक्ता ब्राह्मण के मिलने पर पक्वान्न से उसी दिन ही श्राद्ध करें। अभाव में आमान्न से या सुवर्ण से करें। 'ग्रहणान्तु द्वितीयोह्नि' इत्यादि वचन निर्मूल हैं।

२२—आमश्राद्ध न कर सके तो 'न्यूपु वाचम्' इस मन्त्र का १०० वार जप करे।

२३—चन्द्र और सूर्य ग्रहण के स्पर्श काल में आशौच के मध्य में षड्दैवत्य सांकल्पिक श्राद्ध करना चाहिये।

२४—सम्पन्न व्यक्ति को ग्रहण में पक्वान्न से श्राद्ध करना चाहिये।

२५—सूर्यग्रहण में तीर्थयात्राङ्ग श्राद्धवत् घृतप्रधान अन्न से होता है।

२६—दर्श को यदि क्षयाहश्राद्ध प्राप्त हो तो क्षयाहश्राद्धकर अमाश्राद्ध करे। यदि उसी दिन ग्रहण हो तो दर्श श्राद्धानन्तर ग्रहण निमित्त श्राद्ध होता है।

२७—जिससमय ग्रहण लगता है उसके पूर्व ग्रहण में भोजन न करे। अर्थात् नौ घण्टे भोजन न करे। सूर्यग्रहण में तो बारह घण्टे पूर्व न करे। यह निर्णयसिन्धु मत है।

२८—धर्मसिन्धुकार ने लिखा है कि–ग्रहण से छ मुहूर्त पूर्व ग्रहण वेधकाल में भोजन न करे। यह किसी एक का मत है।

२९—ग्रहण में बाल, वृद्ध और रोगी ये भोजन कर सकते हैं। परन्तु इनको भी ग्रहण के याम से पूर्व एक याम निषिद्ध है।

३०—ग्रहण, संक्रान्ति, दर्श, पक्ष–महालयादि में श्राद्ध न कर सके तो उसके स्थानापन्न सतिल तर्पण करे।

३१—श्राद्धदिन एकादशी व्रत, काम्योपवासव्रत, शिवरात्रि, जन्माष्टमी आदि हो तो श्राद्धशेषान्न का आघ्राण मात्र करें।

३२—फलाहार आदि द्वारा श्राद्ध करना हो तो फलाहार से करे।

३३—श्राद्धशेषान्न भोजन स्वयं अवश्य ही करना चाहिये।

३४—श्राद्धशेषान्न शूद्र को न दे और शूद्र को उस दिन घर में भोजन भी नहीं कराना चाहिये।

३५—श्राद्धशेषान्न भोजन हर एक मनुष्य नहीं कर सकता विना कोई विशेष सम्बन्ध के।

३६—अमावास्या को वार्षिकश्राद्ध हो तो प्रथम वार्षिक करके पिण्डपितृयज्ञ और दर्शश्राद्ध साग्निक करे। निरग्निक को पिण्डपितृयज्ञ नहीं है। कमलाकर मत में पिण्डपितृयज्ञानन्तर वार्षिक श्राद्ध तदनन्तर दर्शश्राद्ध करे—यह क्रम है। यह मत वाजसनेयी शाखावालों के अतिरिक्त शाखावालों को है।

३७—आहिताग्नि को पर्व के अतिरिक्त काल में भी तीर्थ प्राप्ति निमित्तक मुण्डन विहित है।

अथ निर्णयसिन्धुः

(प्राचीन व्यवस्थाओं का संग्रह)

(स्वर्गीय–महामहोपाध्याय श्री पं० विद्याधर जी गौड़ द्वारा लिखित)

दौलतराम गौड

(ग्रहणविचारः).

यस्मिन् देशे दिने सञ्जातं चन्द्रग्रहणं सूर्यास्तात् द्विपलाभ्यां पूर्वमेव समाप्तं भवति तत्र ग्रहणपुण्यकाल-स्तत्प्रयुक्तं स्नानादिकं कर्तव्यं न वेति विचारे निर्णयसिन्धु-धर्मसिन्धुप्रभृतिषु निबन्धेषु पर्यालोच्यमानेष्वयमेव निर्णयः सञ्जायते यन्मेघाच्छादने सति चन्द्रग्रहणस्य सूर्यग्रहणस्य वा यस्य दर्शनयोग्यता (किञ्चित्कालावस्था-यिता) तस्यैव पुण्यप्रयोजकता, तत्रैव च स्नान-दानाद्यनुष्ठानं नान्यत्र। एवञ्च सूर्यास्ताव्यवहितपूर्वक्षणस्यापि दिवात्वाविशेषात् सूर्यास्ततः अत्यल्पकालात् पूर्वमपि समाप्तस्य ग्रहणस्य दिवाग्रहणत्वस्याङ्गीकर्तव्यत्वात्।

सूर्यग्रहो यदा रात्रौ दिवा चन्द्रग्रहस्तथा। तत्र स्नानं न कुर्वीत दद्याद्दानं न च क्वचित्॥

इति शास्त्रविषयत्वावगतेः सूर्यास्तपूर्वक्षणे समाप्तस्य ग्रहणस्य पुण्यजनकत्वं स्नानादिप्रयोजकत्वं वा नास्त्येवेति।

(ज्वराभिभूताया रजस्वलायाः शुद्धिविषये विचारः)

ज्वरावस्थायां रजस्वलायाः शुद्धिविषये तूशनाः—

ज्वराभिभूता या नारी रजसा च परिप्लुता। कथं तस्या भवेच्छौचं शुद्धिः स्यात्केन कर्मणा॥
चतुर्थेऽहनि संप्राप्ते स्पृशेदन्यां तु तां स्त्रियम्। सा सचैलावगाह्यापः स्नात्वा स्नात्वा पुनः स्पृशेत्॥
दश-द्वादशकृत्वो वा आचामेच्च पुनः पुनः। अन्ते च वाससां त्यागस्ततः शुद्धा भवेत्तु सा॥ इति।
आतुरे स्नान उत्पन्ने दशकृत्वो ह्यनातुरः। स्नात्वा स्नात्वा स्पृशेदेनं ततः शुध्येत्स आतुरः॥
(पाराशरस्मृ० ७।२१)

दद्याच्छक्त्या ततो दानं पुण्याहेन विशुद्ध्यति। न सूतकादिदोषोऽस्ति ग्रहे होमजपादिषु॥
ग्रस्ते स्नायादुदक्यापि तीर्थादुद्धृत्य वारिणा॥ इति।

रजस्वलायाः स्नानविधिं चाह—

स्नाने नैमित्तिके प्राप्ते नारी यदि रजस्वला। पात्रान्तरितोयेन स्नानं कृत्वा व्रतं चरेत्॥
सिक्तगात्रा भवेदद्भिः साङ्गोपाङ्गा कथञ्चन। न वस्त्रपीडनं कुर्यान्नान्यवासश्च धारयेत्॥ इति।

त्रिरात्रमेकरात्रं वा समुपोष्य ग्रहणे स्नानदानाद्यनुष्ठाने महाफलमिति।

(एकादश्युपवासनिर्णयः)

यदा पूर्वदिने घटिकात्रयं यावद् दशमी, तत एकादशी, अनन्तरदिवसे च एकघटिकापर्यन्तमेकादशी तदुपरि द्वादशी, तृतीयदिवसे च ०।१४ पर्यन्तमेव द्वादशी अस्यां दशायामेकादश्युपवासः कदा कार्य इति संशये—

"द्वादशी तु त्रयोदश्यां कलामात्रापि दृश्यते। द्वादशद्वादशीर्हन्ति पूर्वस्यां पारणं कृतम्॥"
"पारणाहे न लभ्यते द्वादशी कलयाऽपि चेत्। तदानीं दशमीविद्धाप्युपोष्यैकादशी तिथिः॥"

इत्यादिनिर्णयसिन्धुवचननिचयेन यस्मिन् दिने सूर्योदयानन्तरं कलामात्रमपि द्वादशी तस्मिन्नेव दिने पारणा, तत्पूर्वस्मिन् दिने उपवास एकादशीप्रयुक्त इत्यवगमात्। शेषे तु एकादश्युपवासः कर्तव्य इति भाति।

(अग्निहोत्रविचारः)

केनचित् धार्मिकधौरेयेण राज्यादिकार्यान्तरव्यापृतेन स्वयमग्निहोत्रं कर्तुमवकाशमलभमानेनान्यं कञ्चन श्रौत-स्मार्तनित्यकर्मानुष्ठाननिरतं विप्रवरं तत्र नियुज्य तेन कारितेऽग्निहोत्रादिकर्मणि काले च दैवाद्दिष्टं गते तस्मिन् प्रयोजितरि, तत्पुत्रादेश्चानधिकारप्रयोजके वैधुर्यादौ सञ्जाते पूर्वनिर्दिष्टब्राह्मणकर्तृकाग्निहोत्रस्याधि-काराभावप्रयुक्तो लोपो भवेन्न वेति संशये—इदमुत्तरम्—

"वसन्ते ब्राह्मणोऽग्नीनादधीत" इत्यादावात्मनेपदश्रवणेनाग्निसिद्धिरूपफलस्याधानसामानाधिकरण्या-वश्यकतया अनाधातुराहवनीयाद्यभावप्रतीतेः क्रयादिनाऽन्येन केनचित् प्रकारेणाहिताग्निस्वसम्पादनयाऽऽधा-नाधिकरणयोः निरस्तत्वात् यद्गतं यादृशं कर्तृविशेषणमधिकारिताप्रयोजकं तद्गततादृशाभावस्यैव तदभाव-

प्रयोजकतावश्यंभावनैयत्येन प्रयोजकपुरुषगतवैधुर्यादेस्तत्त्वाभावेनाऽधिकारनाशकत्वासम्भावात्पूर्वनिर्दिष्टे विप्रवरेऽधिकारपौष्कल्यप्रतिभानात्तेन चाऽग्निहोत्रं यथावदेव रक्षणीयम्। **'वीरहा वा एष देवानां चाग्निमुद्वासयते'** इति श्रुत्वा अग्न्युत्स्रष्टुः वीरहत्यादोषप्रतिपादनात्तेन ब्राह्मणेनावश्यमेव वीरहत्यादोषाभावायाऽग्नयः संरक्षणीयाः। अग्निहोत्रं च करणीयम्। यैश्च नियतवृत्तिदानादिना प्रवर्त्तितोऽयं ब्राह्मणोऽस्मिन् धर्मकार्ये तैस्तत्सन्ततिजश्च पुरुषैस्तादृशदोषप्रयोजकत्वादात्मानं रक्षितुकामैः यथावदेव नियतवृत्तिदानेन संरक्षणीया अग्नयोऽग्निहोत्रं चेति धार्मिकश्चायं पन्था इति।

(श्रौताग्निहोत्रप्रयोजककर्तुर्देहदाहाय दत्तेऽप्यरण्युत्पादिताग्नौ नाग्निहोत्रनाशः)

केनचित् धार्मिकाग्रेसरेण कश्चिच्छ्रौतस्मार्त्तकर्मनिष्ठो ब्राह्मणः नियतवृत्त्युपकल्पनपुरःसरं श्रौताग्निहोत्रफलकामनयाऽग्न्याधाने प्रवर्तितो यथाविधि श्रौताग्निहोत्रादि करोति। वृत्त्युपकल्पकस्य श्रौताग्निहोत्रप्रयोजककर्तुस्तस्य दैवाधीने शरीरत्यागे वृत्ते सति तदीयजनाऽभ्यर्थनयाऽग्निहोत्रिब्राह्मणेन लौकिकारण्युत्पादितो वह्निस्तच्छरीरसंस्कारार्थं प्रशस्त इति बुद्ध्या समर्पितः। सत्यामेवंविधायामवस्थायां पूर्वाग्निहोत्रनाशः सञ्जात इति केषाञ्चिद्विदुषां मतं समीचीनं नवेति प्रश्ने—न समीचीनमित्युत्तरम्। तथाहि आधानसिद्धानामेवाग्नीनामग्निहोत्रादिकर्मौपयिकता सर्वशास्त्रानुमता इत्यत्र नास्ति सन्देहः। आधानस्य च अग्निसिद्धिकामकर्तृकत्वेन काम्यतया **'काम्ये प्रतिनिधिर्नास्ति'** इति शास्त्रानुसारेण प्रतिनिधिद्वाराऽनुष्ठापयितुमशक्यत्वात् यजमानककर्तृकत्वमेव। इत्थं च प्रयोजककर्तुर्धार्मिकाग्रेसरस्य प्रातिनिध्येन ब्राह्मणेन अग्न्याधानं कृतमिति न शक्यते संभावयितुमपि। अतः प्रयोजककर्तृत्वाधीनपुण्यप्राप्तिकामेन कारितस्याप्यग्निहोत्रस्य प्रयोजककर्तृनाशेन नाशशङ्का न शङ्कास्पदमपि। सत्येवं लौकिकारणिस्थवह्निकृतसंस्कारस्य सद्गतिप्राप्तिरूपफलविशेषप्रयोजकत्वेऽपि पूर्वाग्निहोत्रनाशकत्वं न सम्भवत्येवेति स्थिर एव पूर्वगृहीतः श्रौतोऽग्निरग्निहोत्रकर्तुर्ब्राह्मणस्येति, तेन यथापूर्वमग्निहोत्रादिकर्म सम्यगनुष्ठेयम्। प्रयोजककर्तृपुत्रादिभिरपि स्वपितृप्रवर्तितं कर्मवृत्त्युपकल्पनद्वारा यथापूर्वमेव सम्यग्रक्षणीयमित्येव धर्मतत्त्वविदां मतम्।

(अग्निहोत्रिणामशने ग्राह्यविचारः)

(क) उपवसथदिनेऽग्निहोत्रिणा हविष्यान्नमशितव्यम्। हविष्यान्नं च—

हविष्येषु यवा मुख्यास्तदनु व्रीहयः स्मृताः। माषकोद्रवगौरादि सर्वालाभेऽपि वर्जयेत्॥
(कात्या० स्मृ० ६।१०)

गौराः—गौरसर्षपाः। आदिपदेन चणक-मसूर-कुलित्थादि ग्राह्यम्।

(ख) अग्निहोत्रिणा उपवसथदिने किं नाशितव्यमित्यत्र कात्यायनः—

शाकं मांसं मसूरं च चणकं कोरदूषकान्। माषान्मधु परान्नं च वर्जयेदौपवस्तके॥ इति।
तिलमुद्गादृते शैम्ब्यं सस्यगोधूमकोद्रवौ। चणकं देवधान्यं च सर्वशाकं तथैवक्षवम्॥
सज्जीक्षारं यवक्षारं टङ्कणं क्षारमेव च। व्रतस्थो वर्जयेन्नित्यं सामुद्रलवणं तथा॥ इति परिशिष्टे।

(यज्ञादौ स्त्रीणामधिकारविचारः)

रुद्रयागविष्णुयागादौ पुरुषवत् स्त्रीणामप्यधिकारो भवति नवेति विचारे-यद्यपि स्त्रीणां वेदाध्ययननिषेधेन विद्याभावान्मन्त्रग्रहणासम्भवाच्च मन्त्रसाध्येषु श्रौतेषु कर्मसु स्वातन्त्र्येणाधिकारो नास्तीति जैमिनिकात्यायनादिभिर्महर्षिभिर्निर्णीतम्। तथापि स्मार्तेषु रुद्रयागादिष्वधिकारो भवितुमर्हति। यथा हि वैदिकमन्त्रसाध्येषु श्राद्धादिषु स्त्रीणां स्वतो मन्त्रोच्चारणनिषेधेऽपि ऋत्विग्द्वारा श्राद्धादिकरणेऽधिकारोऽस्त्येवेति निर्णीतं निबन्धकृद्भिः।

"विधवा स्वयं संकल्पं कृत्वा, अन्यद् ब्राह्मणद्वारा यज्ञादि कारयेत्" इति निर्णयसिन्धौ। यथा शान्तिकपौष्टिक-वास्तु-तडागोत्सर्गादिषु स्मार्तकर्मसु वैदिकमन्त्रसाध्येष्वपि ऋत्विक्कर्तृकमन्त्रोच्चारणपूर्वकं स्वातन्त्र्येण

स्त्रीणामधिकारः स्थापितो दानकमलाकरादौ । तथा हि गृह्यसूत्राद्युक्तहोमाङ्गकुशकण्डिकाद्यङ्गापेक्षेषु तुलादानादिषु तदध्ययनाभावे कथं स्त्रीणामधिकार इति चेद् न । गृह्योक्ताङ्गज्ञानस्योपदेशादिना सम्भवात् वरणाम्नानेन ऋत्विक्कर्तृकहोमे वैदिकमन्त्रो भवत्येव इति दानकमलाकरे । एवमेव रुद्रयागादावपि ऋत्विग्भिरेव मन्त्रपठनात् स्त्रीणां केवलं द्रव्यत्यागस्यैवानुष्ठेयतया तदनुष्ठाने निषेधाभावात् स्त्रीणामपि ऋत्विग्द्वारा स्मार्त्त-रुद्रविष्णुयागाद्यनुष्ठानेऽधिकारो भवत्येवेति युक्तमुत्पश्यामः ।

यत्तु रुद्रकल्पद्रुमकारैः स्त्री-शूद्रानुपनीतानां वैदिकमन्त्रयुक्तकर्मस्वध्ययनाद्यभावेन साक्षाद्वचनाभावेऽनधिकार इत्युक्तम्, तत्रेदं द्रष्टव्यम्—यदि वैदिकमन्त्रसाध्यतया स्त्रीणामधिकारः तर्हि श्राद्ध-तुलादानादीनामपि वैदिकमन्त्रसाध्यतया तत्र कथमधिकारः स्त्रीणामृत्विग्द्वाराऽपि ? यदि ऋत्विग्द्वाराऽनुष्ठाने दोषो नास्तीत्युच्यते, तर्हि अत्राप्यनुष्ठाने कुतो नाधिकारः ? अतश्च स्त्रीणां वैदिकमन्त्रोच्चारणनिषेधात्तत्राधिकाराभावेऽपि ऋत्विग्द्वारा रुद्रयाग-विष्णुयागाद्यनुष्ठाने न दोष इति ।

(यज्ञादौ स्वाहाकारनिर्णयः)

सर्वैरपि पद्धतिकारैः पुरुषसूक्तस्य समग्रस्य अन्ते नाममन्त्रेण संयुतस्यैकमन्त्रत्वमुक्तम् । अतो मन्त्रादावेवोङ्कारः प्रयोक्तव्यः, एवं यत्र यत्र ऋचोऽन्ते नाम-मन्त्रस्यापि संयोजनं विहितं तत्र सर्वत्रापि नाममन्त्रसहितस्यैव ऋगादेः असति बाधके एकमन्त्रत्वप्रतीत्या **"मन्त्रान्तैः कर्मादिः सान्निपात्योऽभिधानात्"** इति सूत्रकारवचनेन मन्त्राणां प्रयोगसमवेतार्थस्मारकत्वमिति मीमांसान्यायेन च मन्त्रैकत्वावसानात् । मन्त्रभेदाङ्गीकारे विकल्पापत्त्या मन्त्रादावेवोङ्कारः न तु तन्मध्ये नाममन्त्रादौ । तथा च **"ॐ सहस्रशीर्षा० साध्याः सन्ति देवाः नारायणाय स्वाहा"** इत्युक्त्वा होमः कार्य, न तु **'नारायणाय स्वाहा'** इत्यस्य पूर्वम् ओङ्कारः पठनीयः । तथात्वे मन्त्रभेदापत्त्या पूर्वोक्तदोषापत्तेः । यत्र तु ऋगन्ते द्वादशाक्षरमन्त्रस्य संयोजनं विहितं तत्र ओङ्कारघटितस्यैव द्वादशाक्षरसम्पत्त्या ओङ्कारः पठनीय एव । यथा **"ॐ सहस्रशीर्षा० सन्ति देवाः ॐ नमो-भगवते वासुदेवाय स्वाहा"** इति । एवं यत्र ऋगन्ते नाममन्त्रसंयोजनं विहितं तत्र ऋगन्ते चतुर्थ्यन्तन्नाम पठित्वा तदन्ते स्वाहाकारन्नियोज्य होमः कार्यः यथा—**"ॐ सहस्रशीर्षा० दशाङ्गुलम् विष्णवे स्वाहा"** इति । एवं केवलनाममन्त्रेण यत्र हवनमुक्तं तत्रापि चतुर्थ्यन्तन्नाम पठित्वा तदुपरि स्वाहाकारं संयोज्य हवनं कर्तव्यम् । यथा **"अग्नये स्वाहा"** इत्यादि । एवमेव सर्वेषु सूत्रेषु विधिरस्ति । न तु नाममन्त्रान्ते **'नमः'** शब्दं संयोज्य तदुपरि स्वाहाकारं संयोज्य **"अग्नये नमः स्वाहा"** इति होमः समुचितः किन्तु **"अग्नये स्वाहा"** इत्येव । यत्र तु मन्त्रादौ नमोऽन्तस्यैव मन्त्रत्वमुक्तं तत्र परं **"नमः"** शब्दं पठित्वा तदुपरि स्वाहाकारो योजनीयः । यथा **अग्नये नमः स्वाहा"** इति । नैतावता सर्वस्यापि नाम्नोऽन्ते **"नमः"** शब्दं पठित्वा स्वाहाकारो योजनीयः । यत्र स्वाहान्तस्यैव मन्त्रत्वं तत्र तावतैव होमो न तु तदुपरि अन्यः स्वाहाकारः, यथा **"वेट् स्वाहा"** इत्यादौ ।

श्रुतिषु च **"वाजाय स्वाहा"** इत्यादि स्पष्टलिखितत्वान्नास्ति सन्देहलेश इति । ये तु **"नमः"** शब्दोत्तरं **"स्वाहा"** शब्दं पठन्ति तत्र मूलमन्वेष्यम् । तस्मान्नमः—शब्दरहितेनैव नाममन्त्रेण होम इत्युद्योतरत्नादाविति प्रतिष्ठेन्दुः ।

श्री विश्वनाथ शर्मा जोशी

अथ निर्णयसिन्धुः

प्रथम परिच्छेद की

श्लोकसूची

दौलतराम गौड

अथ निर्णयसिन्धुः

(भाषा-टीका-सहित)

द्वितीयपरिच्छेदः

(चैत्र शुक्लपक्ष और वैशाखमास)

दौलतराम गौड

(श्री राम[1]पूजा[2])

आसन—राजाधिराज राजेन्द्र रामचन्द्र महीपते । रत्नसिंहासनं तुभ्यं दास्यामि स्वीकुरु प्रभो ॥ आवाहन—(अष्टापदं चन्दनदारुनिर्मितं सुचिक्कणं यच्चतुरस्रमायतम् । मयार्पितं तुभ्यमिदं तथासनं स्नानान्तमातिष्ठ सुखेन राघव ॥) सजानकीलक्ष्मणमारुतित्वामावाहये पूजनमन्दिरेऽस्मिन् । विलोक्य भक्तिं मम किङ्करस्य श्रीराम सान्निध्यमिहाद्य तेऽस्तु ॥ ध्यान—रामो राजमणिः सदा विजयते रामं रमेशं भजे रामेणाभिहिता निशाचरचमू रामाय तस्मै नमः । रामान्नास्ति परायणं परतरं रामस्य दासोऽस्म्यहं रामे चित्तलयः सदा भवतु मे भो राम मामुद्धर ॥ सन्निधापन—श्रीरामागच्छ भगवन् रघुवीर नृपोत्तम । जानकीनाथ राजेन्द्र सुस्थिरो भव सर्वदा ॥ रामचन्द्र महेष्वास रावणान्तक राघव । यावत्पूजा समाप्तिः स्यात्तावत्त्वं सन्निधो भव ॥ संमुखीकरण—रघुनायक राजर्षे नमो राजीवलोचन । रघुनन्दन मे देव श्रीरामाभिमुखो भव ॥ पाद्य—त्रैलोक्यपावनानन्त नमस्ते रघुनायक । पाद्यं गृहाण राजर्षे नमो राजीवलोचन ॥ अर्घ्य—परिपूर्णपरानन्द नमो रामाय वेधसे । गृहाणार्घ्यं मया दत्तं सच्चिदानन्द विष्णवे ॥ आचमनीय—नमः सत्याय शुद्धाय नित्याय ज्ञानरूपिणे । गृहाणाचमनं नाथ सर्वलोकैकनायक ॥ स्नान—परमानन्दबोधाब्धिनिमग्ननिजमूर्तये । साङ्गोपाङ्गमिदं स्नानं कल्पयामि प्रसीद मे ॥ पञ्चामृत—पयो दधि घृतं चैव मधु शर्करयान्वितम् । पञ्चामृतं मयानीतं स्नानाय प्रतिगृह्यताम् ॥ शुद्धोधकक स्नान—ब्रह्माण्डोदरमध्यस्थैस्तीर्थैश्च रघुनन्दन । स्नापयिष्याम्यहं भक्त्या त्वं गृहाण जनार्दन ॥ मधुपर्क—नमः श्रीराघवेन्द्राय तत्त्वज्ञानस्वरूपिणे । मधुपर्कं गृहाणेदं जानकीपतये नमः ॥ वस्त्र—तप्तकाञ्चनसंकाशं पीताम्बरमिदं हरे । संगृहाण जगन्नाथ रामचन्द्र नमोऽस्तु ते ॥ ब्रह्मार्पितं समज्योतिः शक्राद्याः सर्व देवताः । वस्त्रं गृहाण देवेश प्रीत्यर्थं मे सदा प्रभो ॥ यज्ञोपवीत—श्रीरामाच्युत यज्ञेश श्रीधरानन्त राघव । ब्रह्मसूत्रं सोत्तरीयं गृहाण रघुनन्दन ॥ यज्ञोपवीतान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि । उपवस्त्र—यमाश्रित्यजगन्माया जगत्संमोहिनी स्थिता । तस्मै ते परमेशाय कल्पयाम्युत्तरीयकम् ॥ युवासुवासा इति मन्त्रपूर्वं तडित्प्रभं नूतनमम्बरद्वयम् । मयार्पितं ते घननीलमूर्ते प्रसन्नभावेन च राम गृह्यताम् ॥ आभूषण—कटिसूत्राङ्गुलीये च कुण्डले मुकुटं तथा । वनमालां कौस्तुभं च गृहाण जानकीपते ॥ (किरीटहारकेयूररत्नकुण्डलमेखलाः । ग्रैवेयकौस्तुभोरस्कं रत्नकंकणनूपराः ॥ एवमादीनि सर्वाणि भूषणानि नृपोत्तम । अहं दास्यामि सद्भक्त्या संगृहाण जनार्दन) । सैंट आदि—प्रधानदेवनीयश्च सर्वमाङ्गल्यकर्मणि । प्रगृह्यतां दीनबन्धो गंधोऽयं मङ्गलप्रद ॥ गङ्गा च यमुना चैव गोदावरि सरस्वती । नर्मदा सिन्धु कावेरी सरयूर्गण्डकी तथा ॥ ताम्रपर्णी भीमरथी कृष्णा वेणी महानदी । गोमती सागराः सप्त पयोष्णी भवनाशिनी ॥ पूर्णा तापी तुङ्गभद्रा क्षिप्रा वेगवती तथा । पिनाकी प्रवरा सिन्धुफेनास्तेपि नदाः शुभाः ॥ इत्यादि सर्वतीर्थेषु यत्तोयं वर्तते शुभम् । तन्मयानीतमद्यात्र स्नानं कुरु रघूत्तम ॥ ततोभिषेकेकपात्रेण रामस्य स्नानं 'सहस्रशीर्षा पुरुषः' इत्यध्यायेन कृत्वा शंखोदकेन कार्यम् । उद्वर्तनस्नान—नानासुगन्धिद्रव्यं च चन्दनं रजनीद्वयम् । उद्वर्त्तनं मयादत्तं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ ततः शंखोदकस्नानं कारयेत् । चन्दन—कुङ्कुमागरुकस्तूरीकर्पूरोन्मिश्रचन्दनम् । तुभ्यं दास्यामि विश्वेश श्रीराम स्वीकुरु प्रभो ॥ रक्तचन्दन—सुगन्धचन्दनं दिव्यं कृष्णागरुविमिश्रितम् । रक्तचन्दनसंयुक्तं चन्दनं प्रतिगृह्यताम् ॥ अक्षत—अक्षताश्च मया दत्ता मुक्ताफलविनिर्मिता । कस्तूर्या कुङ्कुमेनाक्ता गृहाण परमेश्वर ॥ [3]पुष्पादि—तुलसीकुन्दमन्दारजतीपुन्नागचम्पकैः । कदम्बकरवीरैश्च कुसुमैः शतपत्रकैः ॥ नीलाम्बुजैर्बिल्वपत्रैः पुष्पमाल्यैश्च राघव ॥ पूजयिष्याम्यहं भक्त्या संगृहाण जनार्दन ॥

तुलसी हेमारूपां च रत्नरूपां च मञ्जरीम् । भवमोक्षप्रदां तुभ्यमर्पयामि हरिप्रियाम् ॥ ॐ विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ॥ इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ अथ तुलसीदलमञ्जरीभिः पुष्पैश्च पूजनम्—श्रीरामाय नमः । रामचन्द्राय० जानकीवल्लभाय० जैत्राय० जितामित्राय० जनार्दनाय० विश्वामित्रप्रियाय० दान्ताय० शरणागततत्पराय० बालिप्रमथनाय० वाग्मिने० सत्यवाचे० सत्यविक्रमाय० सत्यव्रताय० सत्यफलाय० सदाहनुमदाश्रयाय० कौशलेन्द्राय० खरध्वंसिने० त्रिगुणात्मकाय० त्रिविक्रमाय० त्रिलोकात्मने० । धन्विने० वरप्रदाय० जितेन्द्रियाय० जितक्रोधाय० जितमित्राय० जगद्गुरवे० महाभुजाय० महाभागाय० सर्वदेवस्तुताय० सौम्याय० ब्रह्मण्याय० मुनिसंस्तुताय० महायोगिने० महोदाराय० आदिरूपाय० महारूपाय० पुराणपुरुषाय० सर्वपुण्याधिकफलाय० पुण्योदयाय० दयासाराय० पुराणपुरुषोत्तमाय० राघवाय० घोराय०

१—चैत्रमासमाहात्म्ये—श्मशाने यज्ञभूमौ वा मलमूत्रं न चोत्सृजेत् ।

२—पृष्ठतो लक्ष्मणं देवं सच्छत्रं कनकप्रभम् । पार्श्वे भरतशत्रुघ्नौ तालवृन्तकरावुभौ ॥ अग्रे व्यग्रं हनुमन्तं रामानुग्रहकांक्षिणम् ।

३—वामनपुराणे—जाती शताह्वा सुमनाः कुन्दं बहुपुटं तथा । बाणं च चम्पकाशोकं करवीरं च यूथिका ॥ पारिभद्रं पाटला च बकुलं गिरिशालिनी । तिलकं च जपापुष्पं पीतकं तगरं त्वयि । एतानि हि प्रशस्तानि कुसुमान्यच्युतार्चने । सुरभीणि तथाऽन्यानि वर्जयित्वा तु केतकीम् ॥ बिल्वपत्रं शमीपत्रं पत्रं भृङ्गमृगाङ्कयोः । तमालमालतीपत्रं शक्तं च हरिपूजने । एषामपि हि पुष्पाणि प्रशस्तान्यर्चने विभोः ॥ पल्लवान्यपि तेषां स्युः पत्राण्यर्चाविधौ हरे । कार्तिकमाहात्म्ये—शिरीषोन्मत्तगिरिजामल्लिकाशाल्मलीभवैः । अर्कजैः कर्णिकारैश्च विष्णुर्नार्च्यस्तथाक्षतैः ॥ जपाकुन्दशिरीषैश्च यूथिकामालतीभवैः । केतकी भवपुष्पैश्च नैवार्च्यः शङ्करस्तथा ॥ गणेशं तुलसीपत्रैर्न दुर्गां चैव दूर्वया । मुनिपुष्पैस्तथा सूर्यं लक्ष्मीकामो न चार्चयेत् ॥

वेदान्तगुणोत्तमाय० सेतुकृते० सर्वतीर्थमयाय० हरये० श्यामाङ्गाय० सुन्दराय० शूराय० पीतवाससे० धनुर्धराय० सर्वयज्ञाधिपाय० यज्वने० जरामरणवर्जिताय० शिवलिङ्गप्रतिष्ठात्रे० सर्वाद्यगणवर्जिताय० परमात्मने० परात्पराय० परेशाय० ।

अङ्गपूजा—ॐ रामचन्द्राय नमः पादौ पूजयामि । राजीवलोचनाय गुल्फौ पू० । रावणान्तकाय जानुनी पू० । वाचस्पतये० ऊरू पू० । विश्वरूपाय० जंघे पू० । लक्ष्मणाग्रजाय० कटी पू० । विश्वमूर्तये० मेढ्रं पू० । विश्वामित्रप्रियाय० नाभिं पू० । परमात्मने० हृदयं पू० । श्रीकण्ठाय० कण्ठं पू० । सर्वास्त्रधारिणे० बाहू पू० । रघूद्वहाय० मुखं पू० । पद्मनाभाय० जिह्वां पू० । दामोदराय० दन्तान् पू० । सीतापतये० ललाटं पू० । ज्ञानगम्याय० शिरः पू० । सर्वात्मने० सर्वाङ्गं पू० । यन्त्रपूजा—षट्कोणे—ॐ रां हृदयाय नमः । रीं शिरसे स्वाहा । रुं शिखायै वषट् । रैं कवचाय । हुम् रौं नेत्रत्रायाय वौषट् । रः अस्त्राय फट् । दयाब्धे त्राहि संसारसर्पान्मां शरणागतम् । भक्त्या समर्पयेत्त्वाऽहं प्रथमावरणार्चनम् ॥ अथाऽष्टाब्जमूले—आं आत्मने नमः । निवृत्त्यै नमः । अन्तरात्मने नमः । प्रतिष्ठायै नमः । परमात्मने नमः । विद्यायै नमः । ज्ञानायै नमः । शान्त्यै नमः । इति द्वितीयम् । अथ तत्पत्रे—वासुदेवाय नमः । श्रियै नमः । संकर्षणाय नमः । शान्त्यै नमः । प्रद्युम्नाय नमः । प्रीत्यै नमः । अनिरुद्धाय नमः । रत्यै नमः । इति तृतीयम् । पत्राग्रे—हनुमते नमः । जाम्बवते नमः । इति चतुर्थम् । अथ द्वितीयाष्टपत्रपत्रेषु—दृष्टये नमः । जयन्ताय नमः । विजयाय नमः । सौराष्ट्रवर्धनाय नमः । सौराष्ट्राय नमः । अकोपाय नमः । धर्मराजाय नमः । सुमन्ताय नमः । इति पञ्चमम् । अथ द्वादश पत्रेषु—वसिष्ठाय नमः । वामदेवाय नमः । जाबालये नमः । गौतमाय नमः । सनातनाय नमः । सनत्कुमाराय नमः । इति षष्ठम् । अथ षोडशपत्रेषु—नीलाय नमः । नलाय नमः । सुषेणाय नमः । मैन्दाय नमः । शरभाय नमः । द्विविदाय नमः । वन्दनाय नमः । गवाक्षाय नमः । किरीटाय नमः । कुण्डलाय नमः । श्रीवत्साय नमः । कौस्तुभाय नमः । शंखाय नमः । चक्राय नमः । गदायै नमः । पद्माय नमः । इति सप्तमम् । अथद्वात्रिंशत्पत्रेषु—ध्रुवाय नमः । धराय नमः । सोमाय नमः । अद्भ्यो नमः । अनिलाय नमः । अनलाय नमः । प्रत्यूषाय नमः । प्रभासाय नमः । वीरभद्राय नमः । शंभवे नमः । गिरिशाय नमः । अजैकपदे नमः । स्थाणवे नमः । भगाय नमः । वरुणाय नमः । सूर्याय नमः । वेदान्ताय नमः । भानवे नमः । इन्द्राय नमः । रवये नमः । गभस्तये नमः । यमाय नमः । हिरण्यरेतसे नमः । दिवाकराय नमः । मित्राय नमः । विष्णवे नमः । धात्रे नमः । इत्यष्टमम् । अथ भूपुरे—लं इन्द्राय नमः । रँ अग्नये नमः । यँ यमाय नमः । क्षं निर्ऋतये नमः । वँ वरुणाय नमः । शँ वायवे नमः । सं सोमाय नमः । इँ ईशानाय नमः । आँ ब्रह्मणे नमः । अँ अनन्ताय नमः । इति नवमम् । तद्बहिः—वज्राय नमः । शक्त्यै नमः । दण्डाय नमः । खड्गाय नमः । पाशाय नमः । ध्वजाय नमः । गदायै नमः । शूलाय नमः । अम्बुजाय नमः । चन्द्राय नमः । इति दशमम् ।

धूप—वनस्पतिरसैर्दिव्यैः गन्धाढ्यैः सुमनोहरैः । रामचन्द्र महीपाल धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥ दीप—ज्योतिषांपतये तुभ्यं नमो रामाय वेधसे । गृहाण दीपकं राम त्रैलोक्यतिमिरापहम् ॥ नैवेद्य—नैवेद्यं संप्रोक्ष्य—इदं दिव्यान्नममृतं रसैः षड्भिः समन्वितम् । राम राजेन्द्र नैवेद्यं सीतेश प्रतिगृह्यताम् ॥ 'भक्ष्यं भक्तेन संयुक्तं पायसं घृतसंयुतम् । शर्करामधुसंयुक्तं नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥ ततः तदुपरि तुलसीपत्रं दद्यात् । जल—नमस्ते देवदेवेश सर्वतृप्तिकरं परम् । अखण्डानन्दसम्पूर्ण गृहाण जलमुत्तमम् ॥ नैवेद्यान्तमें आचमनीजल—कर्पूरवासितं तोयं सुवर्णकलशे स्थितम् । गृहाणाचमनं तृप्त्यै जानकीनाथ राघव ॥ ऋतुफलादि—इदं फलं मया देव स्थापितं पुरतस्तव । तेन मे सफलावाप्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥ ताम्बूलादि—नागवल्लीदलैर्दिव्यं पूगीफलसमन्वितम् । ताम्बूलं गृह्यतां राम कर्पूरादिसमन्वितम् ॥ दक्षिणा—हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमबीजं विभावसोः । अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिप्रयच्छ मे ॥ आरार्तिक—सुदीप्तं घृतकर्पूरपूरितं सप्तवर्तिकम् । आर्तिक्यं देवदेवेश संगृहीष्व मयार्पितम् ॥ अन्तस्तेजो बहिस्तेज एकीकृत्यामितप्रभम् । आरार्तिकमिदं देव गृहाण मम सिद्धये ॥ चन्द्रादित्यौ च धरणी विद्युदग्निस्तथैव च । त्वमेव सर्वज्योतींषि आरार्त्तिः प्रतिगृह्यताम् ॥ पुष्पाञ्जलि—मृदुपुष्पसमायुक्तं वनस्पतिरसैर्युतम् । पुष्पाञ्जलिमहं दद्मि संगृहाण कृपानिधे । जातीचम्पकमन्दारौ केतकी तुलसी तथा । दमनो मुनिकुन्दे च ह्यनन्तश्चेति वै नव । एभिर्नवविधैः पुष्पैर्मन्त्रपुष्पाणि राघव ॥ मयार्पितानि गृहीष्व प्रसीद परमेश्वर ॥ क्षमाप्रार्थना—उपचारसमस्तैस्तु यत्पूजा च मया कृता । तत्सर्वं पूर्णतां यातु अपराधं क्षमस्व मे ॥ प्रदक्षिणा—यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि वै । तानि सर्वाणि नश्यन्तु प्रदक्षिणपदे पदे ॥ नमस्कार—त्राहि मां पापिनं घोरं धर्माचारविवर्जितम् । नमस्कारेण देवेश संसारार्णवपातकम् ॥ स्तुति—माता रामो मत्पिता रामचन्द्रः स्वामी रामो मत्सखा रामचन्द्रः । सर्वस्वं मे रामचन्द्रो दयालुर्नान्यं जाने नैव जाने न जाने ॥ श्रीरामचन्द्रचरणौ मनसा स्मरामि श्रीरामचन्द्रचरणौ वचसा गृणामि । श्रीरामचन्द्रचरणौ शिरसा नमामि श्रीराचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये ॥ जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिर्जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः । श्रीरामदेवेन हृदिस्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि ॥ यदक्षरपदभ्रष्टं मात्राहीनं च यद्भवेत् । तत्सर्वं क्षम्यतां देव प्रसीद परमेश्वर ॥ ततः एभिरावाहनादिषोडशोपचारैरन्योपचारैश्च यथाज्ञानं कृतेन पूजनकर्मणा श्रीरामचन्द्रः प्रीयतां न मम । स्तुति—नमामि ते राघव पादपङ्कजं सीतापते । सौख्यदपादसेविनाम् । नमामि ते गौतमदारमोदं श्रीपादरेणुं सुरवृन्दसेव्यम् ॥ सुन्दप्रिदादेहविदारिणे नमोऽस्तु ते कौशिकयागरक्षिणे । नमो महादेवशरासभेदिने नमो नमो राक्षस सङ्घताशिने ॥

(तिथिकृत्ये विचारः)

अथ संवत्सरप्रतिपदमारभ्य—तिथिकृत्ये च कृष्णादिं व्रते शुक्लादिमेव।
विवाहादौ च सौरादिं मासं कृत्ये विनिर्दिशेत् ॥

इति ब्राह्मं प्रायशोऽनुसृत्य तिथिनिर्णयस्तत्कृत्यं च निरूप्यते। तत्र मीनसंक्रान्तौ पश्चात्षोडश घटिकाः पुण्यकालः। रात्रौ च निशीथात्प्राक्परतश्च संक्रमे पूर्वोत्तरदिनार्धं पुण्यं, निशीथे तु दिनद्वयं पुण्यमिति सामान्यनिर्णयादवसेयम्।

ब्रह्मपुराण के मत से प्रतिपदा से आरम्भ कर तिथिनिर्णय और उसके कार्य का निरूपण करता हूँ—तिथिकृत्यों में कृष्णपक्ष तथा व्रत में शुक्लपक्ष, विवाह आदि में सौरमास स्वीकार करे।

(यद्यपि आगे शुक्लादि मान से तिथिनिर्णय करने मे विरोध मालूम होता है। फिर भी 'व्रते शुक्ला दिना' इस उक्ति से कोई दोष नहीं है। दीपावली आदि तिथि का कृष्णादिमास में ही होना महत्व है)

मीनसंक्रान्ति में पीछली सोलह घड़ी पुण्यकाल होता है और रात्रि में अर्थात्–आधीरात के पूर्व (रात्रावर्धरात्रात् प्राक् संक्रमे पूर्वदिनस्य पश्चार्धं परतश्च संक्रमे उत्तरदिनस्य पूर्वार्धं पुण्यमित्यर्थः।) संक्रान्ति हो तो पहले दिन पुण्यकाल होता है। यदि आधीरात के बाद संक्रान्ति हो तो पर दिन पुण्यकाल होता है। आधीरात में संक्रान्ति हो तो उभय (अर्थात्—पूर्व तथा पर दिन) पुण्य काल होता है। यह सामान्यनिर्णय है।

(अथ तिथिनिर्णयः)

तत्र चैत्रशुक्लप्रतिपदि वत्सरारम्भः। तत्रौदयिकी ग्राह्या।

चैत्रशुक्ल प्रतिपदा से वत्सरारम्भ होता है। उसमें औदयिकी (उदयवाली) तिथि ग्रहण करनी चाहिये।

चैत्रे मासि जगद्ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽहनि। शुक्लपक्षे समग्रं तु तदा सूर्योदये सति। इति हेमाद्रौ ब्राह्मोक्तेः। दिनद्वये तद्व्याप्तावव्याप्तौ वा पूर्वैव।

हेमाद्रि में ब्रह्मपुराण का कथन है कि—चैत्रमास के प्रथमदिन शुक्लपक्ष में सूर्योदय होने के समय में ब्रह्मा ने संसार की रचना की।

दोनों दिन सूर्योदयकाल में व्याप्त (प्राप्त) हो या [1]अव्याप्त (अप्राप्त) हो। फिर भी पूर्वा ही ले।

तदुक्तं ज्योतिर्निबन्धे—'चैत्रे सितप्रतिपदि यो वारोऽर्कोदये स वर्षेशः।
उदयद्वितये पूर्वो नोदययुगलेऽपि पूर्वः स्यात्। यस्माच्चैत्रसितादेरुदयाद्भानोः प्रवृत्तिरब्दादेः॥ इति।

उसी बात को ज्योतिर्निबन्ध में कहा है—चैत्रमास के शुक्लपक्ष की प्रतिपदा के सूर्योदय में जो वार होगा वही वर्षेश (वर्ष का राजा) होता है। यदि [2]सूर्योदयकाल में दोनों दिन प्रतिपदातिथि हो या न भी हो तो प्रथम दिन प्रतिपदा का वर्षेश होता है। क्योंकि चैत्रशुक्ल प्रतिपदा को सूर्योदय से ही अब्द (वर्ष) आदि का प्रवेश होता है।

वत्सरादौ वसन्तादौ बलिराज्ये तथैव च। पूर्वविद्धैव कर्तव्या प्रतिपत्सर्वदा बुधैः॥' इति वृद्धवसिष्ठोक्तेः।

वृद्धवसिष्ठ ने कहा है—बुद्धिमान् मनुष्य सर्वदा वत्सर के आदि में, वसन्त के आदि में तथा बलि-राज्य में पूर्वविद्धा ही प्रतिपदा करे।

चैत्रमासस्य या शुक्ला प्रथमा प्रतिपद्भवेत्। तदह्नि ब्रह्मणः कृत्वा सोपवासस्तु पूजनम्।
संवत्सरमवाप्नोति सौख्यानि भृगुनन्दन॥ इति हेमाद्रौ विष्णुधर्मोक्तेः।

१—(तत्राऽमावास्यासत्त्वेऽपि सङ्कल्पः प्रातरेव। 'प्रातः सङ्कल्पयेत्' इति वाक्यात्) सङ्कल्पवचनाच्च प्रतिपत्संकीर्तनम्।

२—जब दोनों दिन उदयकाल में चैत्रशुक्लप्रतिपदा होगी तब पूर्वदिन जो वार होगा वही वर्षेश होगा। यदि दोनों दिन भी उदयकाल में प्रतिपदा हैं, फिर भी पूर्वदिन में ही जो वार होगा वही वर्षेश होगा।

हेमाद्रि में विष्णुधर्म ने कहा है—चैत महिने की जो प्रथमा शुक्लपक्ष की प्रतिपदा होगी। उसी दिन में ब्रह्मा का पूजन उपवास पूर्वक करे। हे भृगुनन्दन, वह व्यक्ति सालभर तक सुखों को प्राप्त करता है।

यदा तु चैत्रो मलमासो भवति तदा देवकार्यस्य तत्र निषिद्धत्वाच्छुद्धे मासि संवत्सरारम्भः कार्य इति केचिदाहुः।

किसी का मत है कि—जब निश्चय चैत्रमास मलमास होता है तब देवकार्य का उसमें निषेध होने से शुद्धमास में संवत्सरारंभ करना चाहिये।

'निष्कर्षस्तु—शुक्लादेर्मलमासस्य सोऽन्तर्भवति चोत्तरः।' इत्यादिवचनादग्रिमवर्षान्तःपातान्मलमासमारभ्यैव वर्षप्रवृत्तेः शुक्रास्तादाविव मलमास एव कार्य इति वयं प्रतीमः।

निष्कर्ष तो यह है कि—शुक्लपक्ष आदि मलमास के भीतर उत्तर (आगे का मास) मास आ ही जाता है। इत्यादि वचन से अग्रिम (आगे) वर्ष के भीतर प्राप्त हुए मलमास से ही वर्ष (साल) की प्रवृत्ति होती है। शुक्रास्तादि की तरह मलमास में ही करे—यह हम जानते हैं।

ननु शुक्रास्तादौ चैत्रशुक्लप्रतिपदन्तरस्याभावाद्युक्तं तन्मध्य एवानुष्ठानम्। मलमासे तु शुद्धप्रतिपदन्तरस्य सम्भवाच्छुद्ध एव वत्सरारम्भो युक्त इति चेत्, भ्रान्तोऽसि। नहि प्रतिपदन्तरसत्त्वं प्रयोजकं, द्विःकरणापत्ते वर्षेशद्वयापत्तेश्च। अपि तु वत्सरारम्भः स तु मलमासेऽपीत्युक्तं प्राक्। नहि चैत्रशुक्लादिर्मलमासः पूर्ववर्षेऽन्तर्भवतीति ब्रह्मणापि सुवचम्।

कदाचित् कोई कहे कि—शुक्रास्तादि में चैत शुक्लपक्ष की प्रतिपदा के अन्तर (मध्य) का अभाव है अतः उसके मध्य में ही अनुष्ठान होगा। मलमास में तो शुद्ध प्रतिपदा के मध्य में होने से शुद्ध में ही वत्सरारम्भ यक्त होगा, यों कहोगे तो उसमें तुम भ्रम में हो। क्योंकि दूसरी प्रतिपदा का होना प्रयोजक नहीं है। उसमें दो वार करना होगा तथा दो वर्षेश की आपत्ति हो जायगी। अर्थात्-दो वार अर्चन-पूजन करना होगा तथा वर्षेश के राजा भी दो होंगे। चैत्रशुक्लादि मलमास पूर्व वर्ष में नहीं होता—इस बात को ब्रह्मा भी नहीं कह सकते।

(अथ तैलाभ्यङ्गः)

अत्र तैलाभ्यङ्गो नित्यः। वत्सरादौ वसन्तादौ बलिराज्ये तथैव च। तैलाभ्यङ्गमकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते॥ इति वसिष्ठोक्तेः।

यहाँ पर तैलाभ्यंग नित्य है। वसिष्ठ ने कहा है—वत्सरादि में, वसन्तादि में वैसे ही बलिराज्य में तैलाभ्यंग को न करने वाला नरक में जाता है।

(नवरात्रारंभः)

अस्यामेव नवरात्रारम्भः। तदुक्तं मार्कण्डेयपुराणे—शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी इति। तत्र परयुतैव ग्राह्या।

इसी 'प्रतिपदा तिथि में ही नवरात्र का आरम्भ होता है'। उसी वात को मार्कण्डेयपुराण में कहा है—शरद्काल में तथा वार्षिकारम्भ में (प्रति वर्ष) महापूजा करे। उसमें परयुता का ही ग्रहण करे।

अमायुक्ता न कर्तव्या प्रतिपच्चण्डिकार्चने। मुहूर्त्तमात्रा कर्तव्या द्वितीयादिगुणान्विता॥ इति देवीपुराणात्।

अमायुक्ता प्रतिपदा का ग्रहण चण्डिका के अर्चन (पूजन) में करे। द्वितीया आदि गुणान्वित मुहूर्त मात्र हो तो उसी में करना चाहिये। यह देवीपुराण का मत है।

तिस्रोह्येताः पराः प्रोक्तास्तिथयः कुरुनन्दन। कार्तिकाश्वयुजोर्मासोश्चैत्रे मासि च भारत॥ इति हेमाद्रौ ब्राह्मोक्तेः। पराः = परयुताः। अत्र विशेषः पारणादिनिर्णयश्च शारदनवरात्रे वक्ष्यते।

हेमाद्रि में ब्रह्मपुराण का मत है—हे कुरुनन्दन, हे भारत, ये तीनों तिथियाँ परा (पर युता) कही हैं—कार्तिक, आश्विन तथा चैत्रमास की प्रतिपदा।

चण्डिकार्चनविषयक संपूर्ण विधि तथा निषेधों की यहाँ पर प्रवृत्ति है। यहाँ पर विशेष तथा पारणा-निर्णय शारदानवरात्र में कहेंगे।

(प्रपादानम्)

अत्र प्रपादानमुक्तमपरार्के भविष्ये—अतीते फाल्गुने मासि प्राप्ते चैत्रमहोत्सवे। पुण्येऽह्नि विप्रकथिते प्रपादानं समारभेत्। इत्युपक्रम्य-ततश्चोत्सर्जयेद्विद्वान् मन्त्रेणानेन मानवः। 'प्रपेयं सर्वसामान्या भूतेभ्यः प्रतिपादिता॥ अस्याः प्रदानात्पितरस्तृप्यन्तु हि पितामहाः।' अनिवार्यं ततो देयं जलं मासचतुष्टयम्॥ इति। तथा—प्रपां दातुमशक्तेन विशेषाद्धर्ममीप्सुना। प्रत्यहं धर्मघटको वस्त्रसंवेष्टिताननः॥ ब्राह्मणस्य गृहे देयः शीतामलजलः शुचिः।

यहाँ पर अपरार्क में भविष्यपुराण मत से प्रपादान को कहा है—फाल्गुनमास के व्यतीत होने पर चैत्रमास के महोत्सव के प्राप्त होने पर ब्राह्मण के कथनानुसार पुण्य दिन में प्रपादान का शुभारम्भ करे। इसप्रकार फिर कहा कि-तदनन्तर विद्वान् इस मन्त्र से उत्सर्जन (त्याग) करे—यह प्रपा सब प्राणियों (पश्वादिसाधारण्यलाभः) के लिए सर्व सामान्य है। इस प्रदान से पितर तथा पितामहादि तृप्त हों। अतः अनिवार्य चार मास तक सबों को जल देना चाहिये और जो विशेष धर्म को चाहने वाला प्रपा को देने में अशक्त है वह प्रतिदिन वस्त्र से वेष्टित मुख वाले धर्म घट जो पवित्र शीतल निर्मल जल से भरकर ब्राह्मण के घर में दे।

तत्र मन्त्रः—एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः। अस्य प्रदानात्सकला मम सन्तु मनोरथाः॥ अनेन विधिना यस्तु धर्मकुम्भं प्रयच्छति। प्रपादानफलं सोऽपि प्राप्नोतीह न संशयः॥ इति।

उसमें मन्त्र यों है—ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवात्मक रूप यह धर्म घट को देता हूँ। इसके देने से मेरे सारे मनोरथ परिपूर्ण हों।

इस विधि से जो धर्म कुम्भ को देता है। वह भी इस संसार में प्रपादान के फल को प्राप्त करता है। इससे सन्देह नहीं है।

(अथ दोलोत्सवादिकर्म)

चैत्रशुक्लतृतीयायां गौरीमीश्वरसंयुतां सम्पूज्य दोलोत्सवं कुर्यात्।

तदुक्तं निर्णयामृते देवीपुराणे—'तृतीयायां यजेद्देवीं शङ्करेण समन्विताम्। कुङ्कुमागरुकर्पूरमणिवस्त्रसुगन्धकैः॥ स्रग्गन्धधूपदीपैश्च दमनेन विशेषतः। आन्दोलयेत्ततो वत्स शिवोमातुष्टये सदा॥ इति।

चैत्र शुक्ल तृतीया में गौरी तथा शिव का एक साथ पूजनकर दोलोत्सव (झूला-पालना) करे। उसी बात को निर्णयामृत में देवीपुराण का मत है कि—तृतीयातिथि में शंकर से समन्वित देवी का पूजन करे। कुंकुम (केशर) अगरु (अगर) कपूर, मणि, वस्त्र, सुगन्ध, माला, धूप, दीपों से विशेषकर दमनक (दौना) जो तुलसी पत्र की तरह सुगन्धित होता है। हेवत्स, सदा शिव तथा उमा की प्रसन्नता के लिये आन्दोलित—झुलावें।

अत्र चतुर्थीयुता ग्राह्या। मुहूर्तमात्रसत्त्वेऽपि दिने गौरीव्रतं परे॥ इति माधवोक्तेः।

यह चतुर्थी युता ग्रहण करे। माधव ने कहा है कि—मुहूर्त मात्र के रहने पर भी दिन में गौरीव्रत में परा लेवे।

(अथ सौभाग्यशयनव्रतम्)

अत्र सौभाग्यशयनव्रतमुक्तं मात्स्ये—वसन्तमासमासाद्य तृतीयायां जनप्रिये। सौभाग्याय सदा स्त्रीभिः कार्यं पुत्रसुखेप्सुभिः॥ इति। तत्रापि परयुतैव। इयं च मन्वादिरपि।

यहाँ पर सौभाग्यशयनव्रत को मत्स्यपुराण में कहा है—हे जनप्रिये, निरन्तर वसन्तमास की तृतीया को पुत्र सुख की इच्छा चाहने वाली स्त्रियाँ सौभाग्य के लिए करें। उसमें भी (गौरीव्रत होने से) पर युता (चतुर्थी युक्त) ले। यह तिथि मन्वादि भी है।

(अथ मन्वादिनिर्णयः)

अत्रैव प्रसङ्गात्सर्वमन्वादिर्निर्णीयते । ताश्चोक्ता दीपिकायाम्—

तिथ्यग्नी न तिथिस्तिथ्याशे कृष्णेभोऽनलो ग्रहः ।
तिथ्यर्कौ न शिवोऽश्वोऽमातिथी मन्वादयो मधोः ॥ इति ।

तिथिः = पूर्णिमा । अग्निः = तृतीया । नेति । वैशाखे नास्तीत्यर्थः । आशा = दशमी । कृष्णेभः = कृष्णाष्टमी । अनलः = तृतीया । ग्रहो = नवमी । अर्कौ = द्वादशी । नेति । मार्गशीर्षे नेत्यर्थः । शिवः = एकादशी । अश्वः = सप्तमी । मधोश्चैत्रादारभ्यैता मन्वादय इत्यर्थः । अत्र मूलवचनानि हेमाद्र्यादेर्ज्ञेयानि । एताश्च मन्वादयो हेमाद्रिमते शुक्लपक्षस्थाः पौर्वाह्णिकाः, कृष्णपक्षस्था आपराह्णिका ग्राह्याः ।

यहाँ पर ही प्रसंग से सब मन्वादि तिथियों का निर्णय करते हैं । दीपका में कहा है कि—चैत्रमास की पूर्णिमा तिथि तथा तृतीया तिथि, ज्येष्ठमास के शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा, आषाढमास की पूर्णिमा तिथि और दशमी तिथि, श्रावण मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि, भाद्रपदमास की तृतीया तिथि, आश्विनमास की नवमी तिथि, कार्तिकमास की पूर्णिमा तिथि तथा द्वादशी तिथि, पौषमास की एकादशी तिथि, माघमास की सप्तमी तिथि और फाल्गुनमास की अमावास्या तथा पूर्णिमा तिथि । ये सब मन्वादि तिथि चैत्रमास में आरम्भ होती हैं । परन्तु वैशाख और मार्गशीर्षमास में नहीं होती है । इसका [१]मूल हेमाद्रि आदि निबन्धों में जानना चाहिये । इन मन्वादि तिथियों को हेमाद्रिमतमें शुक्लपक्ष की पूर्वाह्णव्यापिनी तथा कृष्णपक्ष की अपराह्णव्यापिनी ग्रहण करनी चाहिये ।

पूर्वाह्णे तु सदा ग्राह्याः शुक्ला मनुयुगादयः । दैवे कर्मणि पित्र्ये च कृष्णे चैवापराह्णिकाः ॥ इति गारुडवचनात् ।

गरुडपुराण के वचन से कहा है कि—मन्वादि और युगादि तिथियाँ शुक्लपक्ष की सदा पूर्वाह्ण में ग्रहण करें । देव तथा पितृकर्म में कृष्णपक्ष में अपराह्णव्यापिनी तिथि लें ।

अथो मन्वादियुगादिकर्मतिथयः पूर्वाह्णिकाः स्युः सिते विज्ञेया अपराह्णिकाश्च बहुले' इति दीपिकोक्तेश्च ।

दीपिका में और भी कहा है कि—मन्वादि तथा युगादि कर्मकारक तिथियाँ शुक्लपक्ष में पूर्वाह्णिका ले तथा (बहुले) कृष्णपक्ष में अपराह्णिकी लें ।

कालादर्शे त्वपराह्णव्यापित्वं मन्वादिषूक्तम् तत्तु अयुक्तमिति युगादिनिर्णये वक्ष्यामः ।

कालादर्श में तो कहा है कि—अपराह्णव्यापित्व जो मन्वादि तिथियों को कहा है वह अयुक्त है । यह हम युगादि निर्णय में कहेंगे ।

(अत्र श्राद्धकथनम्)

अत्र श्राद्धमुक्तं मात्स्ये—कृतं श्राद्धं विधानेन मन्वादिषु युगादिषु ।
हायनानि द्विसाहस्रं पितॄणां तृप्तिदं भवेत् ॥ इति मन्वादिश्राद्धं मलमासे सति मासद्वयेऽपि कार्यम् । मन्वादिकं तैर्थिकं च कुर्यान्मासद्वयेऽपि च ॥ इति स्मृतिचन्द्रिकोक्तेः ।

और यहाँ पर श्राद्ध मत्स्यपुराण में कहा है कि—मन्वादि और युगादियों में जिसने विधान से श्राद्ध किया है । उसके पितरों की तृप्ति दो हजार वर्षों तक होती है । मन्वादिश्राद्ध मलमास हो तो दोनों महिनों में भी करना चाहिये ।

स्मृतिचन्द्रिका में कहा है कि—मन्वादिश्राद्ध तथा तीर्थश्राद्ध दोनों महिनों में करे ।

१—आश्वयुक् शुक्लनवमी कार्तिके द्वादशी तथा । तृतीयाचैत्रमासस्य तथा भाद्रपदस्य च ॥ फाल्गुनस्य त्वमावास्या पुष्यस्यैकादशी सिता । आषाढस्यापि दशमी माघमासस्य सप्तमी ॥ श्रावणस्याष्टमी कृष्णा तथाऽऽषाढी च पूर्णिमा । कार्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्यैष्ठी पञ्चदशी सिता ॥ मन्वन्तरादयश्चैता दत्तस्याऽक्षयकारकाः ।

(पिण्डरहितं श्राद्धम्)

अत्र पिण्डरहितं श्राद्धं कुर्यात् । तदुक्तं कालादर्शे—विषुवायनसंक्रान्तिमन्वादिषु युगादिषु ।
विहाय पिण्डनिर्वापं सर्वं श्राद्धं समाचरेत् ॥ इति ।

यहाँ पर पिण्डरहित श्राद्ध करे । इसी बात को कालादर्श में कहा है कि—तुला तथा मेष एवं अयन-संक्रान्ति में, मन्वादि और युगादि में पिण्ड के निर्वापको (पिण्ड) छोड़कर सब श्राद्ध करे ।

(मन्वादिश्राद्धमकरणे प्रायश्चित्तकथनम्)

मन्वादिश्राद्धं च नित्यम् अकरणे प्रायश्चित्तदर्शनात् । तदुक्तमृग्विधाने—त्वं[1] भुवः प्रतिमन्त्रं च शतवारं जले जपेत् । मन्वादयो यदा न्यूनाः कुरुते नैव चापि यः ॥ इति । एवं प्रायश्चित्तवीप्सादिदर्शनं तानि पण्णवतिश्राद्धानि नित्यानि । तानि तु—अमायुगमनुक्रा न्तिधृतिपातमहालयाः । अन्वष्टक्यं च पूर्वेद्युः पण्णवत्यः प्रकीर्तिताः ॥ इत्युक्तानि । चकारादष्टकाग्रहणम् ।

मन्वादिश्राद्ध नित्य है न करने पर प्रायश्चित्त कहा है । ऋग्विधान में कहा है कि—जब मन्वादि तिथियाँ न्यून हों और उन तिथियों में श्राद्धादि न करे तो 'त्वं भुवः' इस मन्त्र को सौ बार जल में जप करे । इसप्रकार जहाँ पर प्रायश्चित्त वीप्सादि (वारंवार) दर्शन (देखा गया) है वहाँ पर पण्णवति—(छानवे) श्राद्ध नित्य है । वे ये हैं—अमावास्या बारह, युग—चार, मन्वादि चौदह, संक्रान्ति—बारह, वैधृति—बारह, व्यतिपात—बारह, महालय—सोलह, अन्वष्टका—बारह, चकार से दो अष्टका ग्रहण करे । इस प्रकार ९६ श्राद्ध हुए ।

(चैत्रशुक्लतृतीयायां मत्स्यजयन्ती)

चैत्रशुक्लतृतीयैव मत्स्यजयन्ती । अत्रैव प्रसंगाद्दशावतारजयत्यो निर्णीयन्ते । तत्र पुराणसमुच्चये—

(दशावतारजयन्तीनिर्णयः)

मत्स्योऽभूद्धुतभुग्दिने मधुसिते कूर्मो विधौ माधवे वाराहो गिरिजासुते नभसि यद्भूते सिते माधवे ।
सिंहो भाद्रपदे सिते हरितिथौ श्रीवामनो माधवे रामो गौरितिथावतः परमभूद्रामो नवम्यां मधोः ॥
कृष्णोऽष्टम्यां नभसि सितपरे, चाश्विने यद्दशम्यां बुद्धः, कल्की नभसि समभूच्छुक्लषष्ठ्यां क्रमेण ॥
अह्नो मध्ये वामनो रामरामौ मत्स्यः क्रोडश्चापराह्णे विभागे ।
कूर्मः सिंहो बौद्धकल्की च सायं कृष्णो रात्रौ कालसाम्ये च पूर्वे ॥ इति ।

चैत्रशुक्ल तृतीया में ही मत्स्यजयन्ती करे । यहाँ पर ही प्रसंगवश दशावतार जयन्ती का निर्णय करते हैं—इसपर पुराणसमुच्चय में लिखा है कि—चैत्र शुक्ल तृतीया को मत्स्यावतार, वैशाख कृष्णपक्ष की अमावास्या को कूर्मावतार, श्रावणशुक्लपक्ष की षष्ठी को वाराहावतार, वैशाख शुक्ल चतुर्दशी को नृसिंहावतार, भाद्रपद शुक्ल द्वादशी को वामनावतार, वैशाख शुक्लपक्ष की तृतीया को परशुरामावतार, चैत्र शुक्ल नवमी को रामावतार, श्रावण कृष्णपक्ष की अष्टमी को श्रीकृष्णावतार, आश्विन शुक्ल दशमी को बुद्धावतार और श्रावणशुक्ल षष्ठी को कल्की अवतार हुए । वामन, परशुराम तथा राम ये मध्याह्न में मत्स्य और वाराह अपराह्ण में, कूर्म, नृसिंह, बुद्ध तथा कल्की ये सायंकाल में, एवं श्रीकृष्ण अर्धरात्रि में हुए ।

केचित्तु स्फुटान् श्लोकान् पठन्ति । तथा—चैत्रे तु शुक्लपञ्चम्यां भगवान्मीनरूपधृक् ।
ज्येष्ठे तु शुक्लद्वादश्यां कूर्मरूपधरो हरिः । चैत्रेऽकृष्णे नवम्यां तु हरिर्वाराहरूपधृक् ।
नरसिंहश्चतुर्दश्यां वैशाखे शुक्लपक्षके । मासि भाद्रपदे शुक्लद्वादश्यां वामनो हरिः ।
राधशुद्धतृतीयायां रामो भार्गवरूपधृक् । चैत्रे शुक्लनवम्यां तु रामो दशरथात्मजः ।
नभस्ये तु द्वितीयायां बलभद्रोऽभवद्धरिः । श्रावणे बहुलेऽष्टम्यां कृष्णोऽभूल्लोकरक्षकः ।

१—ॐ त्वं भुवः प्रतिमानं पृथिव्या ऋष्ववीरस्य बृहतः पतिर्भूः । विश्वमाप्रा अन्तरिक्षं महित्वा सत्यमद्धा नकिरन्यस्त्वावान् । ऋ० १।५२।१३ ।

ज्येष्ठे शुक्लद्वितीयायां बौद्धः कल्की भविष्यति ॥ इति ।

कोई तो स्फुट श्लोकों को यों पढ़ते हैं (१) चैत्र शुक्ल पञ्चमी तिथि में तो मत्स्यरूप धारण कर उत्पन्न हुए । (२) ज्येष्ठ शुक्ल द्वादशी तिथि से कच्छप रूप को धारण कर हरि उत्पन्न हुए । (३) चैत्र शुक्लपक्ष की नवमी तिथि में वाराहरूप धारण कर हरि पैदा हुए । (४) वैशाखशुक्ल पक्ष की चतुर्दशी तिथि में नरसिंहरूपधारी हरि पैदा हुए । (५) भाद्रपद शुक्ल की द्वादशी तिथि में वामनरूप धारण कर हरि उत्पन्न हुए । (६) वैशाख शुक्लपक्ष की तृतीया तिथि को राम परशुरामजी के रूप में उत्पन्न हुए । (७) चैत्र शुक्लनवमीमें राम दशरथ के रूप में उत्पन्न हुए । (८) भाद्रपद की द्वितीया में बलभद्र ही के रूपमें हरि उत्पन्न हुए । (९) श्रावण कृष्णपक्ष की अष्टमी को लोक रक्षक श्रीकृष्ण जी का जन्म हुआ । (१०) ज्येष्ठ शुक्ल द्वितीया तिथि में बौद्ध तथा कल्की का अवतार होगा । (भाद्रपद में बौद्धावतार, ज्येष्ठ मास में कल्की अवतार मानते हैं)

कोङ्कणास्तु वाराहपुराणस्यत्वेन वाक्यानि पठन्ति—आषाढे शुक्लपक्षे तु एकादश्यां महातिथौ ।
जयन्ती मत्स्यनाम्नीति तस्यां कार्यमुपोषणम् ॥

नभोमासि तृतीयायां हरिः कमठरूपधृक् । नभस्यशुक्लपञ्चम्यां वाराहस्य जयन्तिका ॥
वैशाखे तु चतुर्दश्यां नृसिंहः समपद्यत । मासि भाद्रपदे शुक्लैकादश्यां वामनो हरिः ॥
वैशाखे शुक्लपक्षे तु तृतीयायां भृगूद्वहः । चैत्रे नवम्यां रामोऽभूत्कौशल्यायां परः पुमान् ॥
श्रावणे बहुलेऽष्टम्यां वासुदेवो जनार्दनः । पौषशुक्ले तु सप्तम्यां कुर्याद्बौद्धस्य पूजनम् ॥
माघशुक्लतृतीयायां कल्किनः पूजनं हरेः । प्रातः प्रातस्तु मध्याह्ने सायं सायं तथा निशि ॥
मध्याह्ने मध्यरात्रौ च सायं प्रातरनुक्रमात् ॥ इति ।

कोङ्कणस्थ सज्जन वाराहपुराण के ही वाक्यों को पढ़ते हैं । (१) आषाढ़मास की शुक्लपक्ष की ही महातिथि एकादशी में मत्स्यनाम वाली जयन्ती होती है । उसमें उपवास करना चाहिये । (२) श्रावण मास की तृतीया में कमठरूप (कच्छप) धारी हरि उत्पन्न हुए । (३) भाद्रपद मास की शुक्ल पञ्चमी तिथि में वाराह की जयन्ती होती है । (४) वैशाखमास की चतुर्दशी में ही नृसिंह पैदा हुए । (५) भाद्रपदमास के शुक्लपक्ष की एकादशी में वामनरूप धारी हरि पैदा हुए । (६) वैशाख शुक्लपक्ष की तृतीया तिथि में परशुराम हुए । (७) चैत्र शुक्लपक्ष की नवमी तिथि में कौशल्या पुत्र राम हुए । (८) श्रावण शुक्लपक्ष की अष्टमी में वासुदेव जनार्दन की उत्पत्ति है । (९) पौषमास के शुक्लपक्ष में बौद्धका पूजन करे । (१०) माघमास के शुक्लपक्ष की तृतीया तिथि को कल्की रूप हरि का पूजन होता है । मध्याह्न में जिसका जन्म हो उसका बहुत सवेरे, रात्रि में जिसका जन्म हो साम होते ही और मध्यरात्रि में जिसका जन्म हो सायंकाल में इस क्रम से पूजा करे ।

तदत्र समूलतत्वनिर्णये सति कल्पभेदेन व्यवस्था द्रष्टव्या । एताश्च तदुपासकानां नित्याः, अन्येषां तु काम्याः । जन्माष्टम्यादौ तु विशेषं वक्ष्यामः ।

यहाँ पर समूलनिर्णय होने पर कल्पभेद से व्यवस्था देखनी चाहिये । ये तिथियाँ उन तिथियों के उपासकों को नित्य हैं । अन्यों को तो कामना पर है । जन्माष्टमी आदि में तो विशेष कहेंगे ।

(चैत्रशुक्लपञ्चमी कल्पादिः)

चैत्रशुक्लपञ्चमी कल्पादिः । तदुक्तं हेमाद्रौ मात्स्ये—

ब्रह्मणो या दिनस्यादिः कल्पादिः सा प्रकीर्तिता । वैशाखस्य तृतीया या कृष्णा या फाल्गुनस्य च ॥
पञ्चमी चैत्रमासस्य तथैवान्त्या तथा परा । शुक्ला त्रयोदशी माघे कार्तिकस्य तु सप्तमी ॥
नवमी मार्गशीर्षस्य सप्तैताः संस्मराम्यहम् । कल्पानामादयो ह्येता दत्तस्याक्षयकारकाः ॥
अत्र सर्वोऽपि निर्णयो मन्वादिवज्ज्ञेयः ।

चैत्र शुक्लपञ्चमी तिथि तो कल्पादि है । उसी बात को हेमाद्रि निबन्ध में मत्स्यपुराण के वचन से

कहा है—ब्रह्मा के दिन की आदि तिथि को ही कल्पादि कहा है। वैशाखमास की तृतीया, फाल्गुनमास के कृष्णपक्ष की तृतीया, चैत्रमास की पञ्चमी, वैसे ही अन्त्या-अमावास्या, माघमास के शुक्लपक्ष की त्रयोदशी, कार्तिकमास की जो सप्तमी तथा मार्गशीर्षमास की नवमी इन सातों को मैं स्मरण करता हूँ। ये कल्पों की आदि तिथि हैं। इनमें दान देने से अक्षय होता है। यहाँ पर सबका निर्णय मन्वादिवत् जानना चाहिये।

हेमाद्रौ ब्राह्मे—शुक्लायामथ पञ्चम्यां चैत्रे मासि शुभानना।

श्रीर्ब्रह्मलोकान्मानुष्यं सम्प्राप्ता केशवाज्ञया॥ ततस्तां पूजयेत्तत्र यस्तं लक्ष्मीर्न मुञ्चति॥

हेमाद्रि में ब्रह्मपुराण का मत है कि—चैत्रशुक्ल पञ्चमी तिथि में केशव की आज्ञा से शुभानना श्री (लक्ष्मी) ब्रह्मलोक से मनुष्यलोक में आई हैं। अतः वहाँ पर जो उस लक्ष्मी का पूजन करता है उसे लक्ष्मी नहीं त्यागती है।

(चैत्रशुक्लाष्टम्यां भवन्या उत्पत्तिः)

चैत्रशुक्लाष्टम्यां भवान्या उत्पत्तिः। तत्र नवमीयुता ग्राह्या। अष्टमी नवमीयुक्ता नवमी चाष्टमीयुता। इति ब्रह्मवैवर्तात्।

चैत्रशुक्ल अष्टमी को भवानी की उत्पत्ति है। वह तिथि नवमी तिथि से युक्त ग्रहण करना चाहिये। ब्रह्मवैवर्तपुराण मत है कि—अष्टमी तिथि नवमी तिथि से युक्त हो तथा नवमी तिथि अष्टमी तिथि से युक्त हो।

(अथ भवानीयात्रा)

अत्र भवानीयात्रोक्ता काशीखण्डे—भवानीं यस्तु पश्येत शुक्लाष्टम्यां मधौ नरः।

न जातु शोकं लभते सदानन्दमयो भवेत्॥ इति।

यहाँ पर भवानी यात्रा काशीखण्ड में कही है—जो मनुष्य चैत्र शुक्ल अष्टमी तिथि में भवानी को देखता है, उसे शोक नहीं होता है। वह सदा आनन्दित रहता है।

(अशोककलिकाप्राशनकथनम्)

अत्रैवाशोककलिकाप्राशनमुक्तं हेमाद्रौ लैङ्गे—अशोककलिकाश्चाष्टौ ये पिबन्ति पुनर्वसौ।

चैत्रे मासि सिताष्टम्यां न ते शोकमवाप्नुयुः॥

यहीं पर अशोक वृक्ष की कलिका का प्राशन हेमाद्रि में लिंगपुराण मत से कहा है—जो पुनर्वसु नक्षत्र में तथा चैत्रमास के शुक्लपक्ष की अष्टमी तिथि में अशोक वृक्ष की आठ कली को पीसकर जो पीते हैं वे लोग कभी भी शोक को प्राप्त नही होते हैं।

(अथ प्राशनमन्त्रकथनम्)

प्राशनमन्त्रस्तु—त्वामशोक नराभीष्टं मधुमाससमुद्भवम्।

पिबामि शोकसन्तप्तो मामशोकं सदा कुरु॥ इति।

प्राशन मन्त्र तो यह है कि—हे अशोक, चैत्रमास में प्रादुर्भूत तुम मनुष्यों को अभीष्ट करनेवाले शोक सन्तप्त मुझको सदा शोक से रहित करो। अतः मैं पीता हूँ।

(अथ विशेषकथने फलकथनम्)

अत्र विशेषः पृथ्वीचन्द्रोदये विष्णुः—पुनर्वसुबुधोपेता चैत्रे मासि सिताष्टमी।

प्रातस्तु विधिवत्स्नात्वा वाजपेयफलं लभेत्॥ इति।

यहाँ पर विशेष पृथ्वीचन्द्रोदय में विष्णु ने कहा है—पुनर्वसु तथा बुधवार से युक्त चैत्रमास के शुक्लपक्ष की अष्टमी तिथि को प्रातःकाल विधिवत् स्नान करता है उसे 'वाजपेययज्ञ' का फल मिलता है।

तिथितत्त्वे कालिकापुराणे—चैत्रे मासि सिताष्टम्यां यो नरो नियतेन्द्रियः।

स्नायाल्लौहित्यतोयेषु स याति ब्रह्मणः पदम्॥

चैत्रं तु सकलं मासं शुचिः प्रयतमानसः। लौहित्यतोये यः स्नायात्स कैवल्यमवाप्नुयात् ॥ लौहित्यो ब्रह्मपुत्रः।

तिथितत्त्व में कालिकापुराण मत है कि—चैत्रमास के शुक्लपक्ष की अष्टमी में जो मनुष्य जितेन्द्रिय होकर ब्रह्मपुत्र के जल से स्नान करता है। वह ब्रह्मलोक जाता है। जो मन से पवित्र होकर चैत्रमास भर ब्रह्मपुत्र के जल से स्नान करता है। वह 'कैवल्यपद' (मोक्षपद) प्राप्त करता है।

(अथ मन्त्रकथनम्)

मन्त्रस्तु—ब्रह्मपुत्र महाभाग शन्तनोः कुलसम्भव।
अमोघगर्भसम्भूत पापं लौहित्य मे हर ॥

स्नानमन्त्र यों है—शन्तनु के कुल से प्रादुर्भूत हे महाभाग, हे [1]लौहित्य! हे ब्रह्मपुत्र! अमोघगर्भ से संभूत, मेरे पाप को हरो।

(चैत्रशुक्लरामनवमीविचारः)

चैत्रशुक्लनवमी रामनवमी। तदुक्तमगस्त्यसंहितायात्—चैत्रे नवम्यां प्राक्पक्षे दिवापुण्ये पुनर्वसौ। उदये गुरुगौरांशेः स्वोच्चस्थे ग्रहपञ्चके ॥
मेषे पूषणि संप्राप्ते लग्ने कर्कटकाह्वये। आविरासीत्स कलया कौशल्यायां परः पुमान् ॥
तस्मिन् दिने तु कर्तव्यमुपवासव्रतं सदा। तत्र जागरणं कुर्याद्रघुनाथपरो भुवि ॥ इति।
इयं च मध्याह्नयोगिनी ग्राह्या। चैत्रशुक्ले तु नवमी पुनर्वसुयुता यदि।
सैव मध्याह्नयोगेन महापुण्यतमा भवेत् ॥ इति तत्रैवोक्तेः।

चैत्र शुक्लपक्ष की नवमी रामनवमी होती है। उसी बात को अगस्त्यसंहिता में कहा है—चैत्रमास के शुक्लपक्ष की नवमी तिथि में पवित्र पुनर्वसु नक्षत्र में गुरुनवांश[2] में पाँच ग्रहों के उच्चराशि में स्थित होने पर मेष में सूर्य के प्राप्त होने पर तथा कर्क लग्न में कौशल्या महारानी से पर ब्रह्म परमात्मा का आविर्भाव हुआ। उसी दिन तो सदा उपवास रूपीव्रत करना चाहिये। उसीदिन रघुनाथ का भक्त पृथिवी (खट्वादिव्यावृत्तिः) पर जागरण करे। यह तिथि मध्याह्नकाल व्यापिनी ग्रहण करे।

चैत्रमास की शुक्ल नवमी तिथि यदि पुनर्वसु नक्षत्र युक्त हो कर यही मध्याह्न के योग से महापुण्यप्रद होती है। यह वहाँ पर ही कहा है।

तथा—चैत्रमासे नवम्यां तु जातो रामः स्वयं हरिः।
पुनर्वस्वृक्षसंयुक्ता सा तिथिः सर्वकामदा ॥
श्रीरामनवमी प्रोक्ता कोटिसूर्यग्रहाधिका।

और चैत्रमास की नवमी तिथि में तो स्वयं हरि राम के रूप से उत्पन्न हुए। यदि [3]पुनर्वसु नक्षत्र से नवमी तिथि संयुक्त हो तो संपूर्ण कामनों को देनेवाली होती है। यह रामनवमी करोड़ों सूर्यग्रहों से अधिक (फलदायक) होती है।

तथा—केवलापि सदोपोष्या नवमीशब्दसंग्रहात्। तस्मात्सर्वात्मना सर्वैः कार्यं वै नवमीव्रतम् ॥
पूर्वेद्युरेव मध्याह्नयोगे कर्मकालव्याप्तेः सैव ग्राह्या। दिनद्वये मध्याह्नव्याप्तौ तदभावे वा पूर्वदिने पुनर्वस्वृक्षयुक्तामपि त्यक्त्वा परैव कार्या।

और केवल नवमी शब्द के संग्रह से सदा उपवास करे। इसकारण सबप्रकार से नवमी व्रत को अवश्य ही करे। पहले दिन ही मध्याह्न के योग में कर्मकाल की व्याप्ति (प्राप्ति में) ही ग्रहण करें। दोनों

१ कालिकापुराणे—लोहितात्सरसो जातो लौहित्याख्यस्ततो भवत्।

२ गौरांश्वोरितिपाठे गौरांशुश्चन्द्रः।

३ पुनर्वसुनक्षत्र का ग्रहण तो प्रशस्त अर्थ प्रेरक है। तिथिः शरीरं देवस्य तिथौ नक्षत्रमाश्रितम्। तस्मात्तिथिं प्रशंसन्ति न नक्षत्रं तिथिं विना ॥

दिन मध्याह्न व्याप्ति में या उसके अभाव में पूर्व दिन में पुनर्वसु नक्षत्र से युक्ता को भी त्यागकर दूसरे दिन ही करे।

तदुक्तं माधवीयेऽगस्त्यसंहितायाम्—नवमी चाष्टमीविद्धा त्याज्या विष्णुपरायणैः।
उपोषणं नवम्यां च दशम्यां चैव पारणम् ॥ इति।

इसी बात को माधवीय में अगस्त्यसंहिता का वचन है कि—विष्णुपरायण भक्तगण अष्टमी तिथि से विद्धा नवमी तिथि का त्याग करे। उपवास नवमी तिथि में करें और पारणा तो दशमीतिथि में ही करें।

अष्टमीविद्धा सऋक्षाऽपि नोपोष्येति माधवः।

माधव का मत है कि—अष्टमीविद्धा नवमीतिथि पुनर्वसु नक्षत्र से युक्त भी हो तो उसमें उपवास न करे।

रामार्चनचन्द्रिकायामपि—विद्धैव चेदृक्षयुक्ता व्रतं तत्र कथं भवेत्।
विद्धा निषेधश्रवणान्नवमी चेति वाक्यतः॥
वैष्णवानां विशेषात्तु तत्र विष्णुपरैरपि। दशम्यादिषु वृद्धिश्चेद्विद्धा त्याज्यैव वैष्णवैः॥
तदन्येषां च सर्वेषां व्रतं तत्रैव निश्चितम् ॥ इति।

रामार्चनचन्द्रिका में भी लिखा है कि—नवमी तिथि अष्टमी तिथि से विद्धा ही हो और श्रवण नक्षत्र से युक्त हो उसमें व्रत कैसे होगा। क्योंकि विद्धा के निषेध श्रवण से नवमी तिथि के वाक्य से विशेष करके वैष्णवों के विष्णु भक्तगण भी दशमी आदि की वृद्धि में भी विद्धा को त्याग ही दें। एवं वैष्णवोंसे इतर सभी लोग विद्धा व्रत नवमी में ही उसी दिन करे।

अत्र 'दशम्यादिषु वृद्धिश्चेत्' इति 'तदन्येषाम्'। इति वचनात् यदा प्रातस्त्रिमुहूर्ता नवमी, दशमी च क्षयवशात् सूर्योदयात् प्रागेव समाप्यते, तदा स्मार्तानां तत्रैव एकादशीनिमित्तोपवासात् नवमी-व्रताङ्गपारणालोपः स्यात्। अतोऽष्टमीविद्धैव स्मार्तैः कार्या। वैष्णवानां त्वरुणोदयविद्धैकादश्या हेयत्वान्न पारणालोपप्रसङ्ग इति द्वितीयैव तैः कार्येति सूचयति। दशमीवृद्ध्यभावेऽष्टमीविद्धाया एव मध्याह्नव्यापित्वे क्षये च वैष्णवैरपि विद्धैवोपोष्येत्यर्थसिद्धम्। इदं च व्रतं संयोगपृथक्त्वन्यायेन काम्यं नित्यं च।

'दशम्यादिषु वृद्धिश्चेत्', 'तदन्येषाम्' इन वचनों से यदि प्रातःकाल नवमी तिथि तीन मुहूर्त हो और दशमी तिथि क्षय के वश से सूर्योदय के पूर्व ही समाप्त हो गयी हो तो स्मार्तों को उसी दिन एकादशी निमित्त उपवास से नवमी व्रतांग पारणा लोप हो जायगी। इसलिए अष्टमी विद्धा ही स्मार्तों को करना चाहिये। वैष्णवों को तो अरुणोदय विद्धा एकादशी का हेय होने से पारणा का लोप प्रसंग नहीं होगा। अतः द्वितीया ही वे लोग करें यह सूचित करते हैं। दशमी की वृद्धि के अभाव में अष्टमी विद्धा का ही मध्याह्नव्यापित्व में और क्षय में वैष्णवगण भी विद्धा ही का उपवास करें यह अर्थ से सिद्ध है और यह व्रत संयोग[1] पृथक्त्व न्यास से काम्य और नित्य हैं।

तदुक्तं हेमाद्रावगस्तिसंहितायाम्—उपोषणं जागरणं पितॄनुद्दिश्य तर्पणम्। तस्मिन् दिने तु कर्तव्यं ब्रह्मप्राप्तिमभीप्सुभिः॥

हेमाद्रि में अगस्तिसंहिता का वचन है कि—ब्रह्म प्राप्ति की इच्छा करनेवाला उसी दिन ही उपवास, जागरण और पितरों को उद्देश्यकर तर्पण करना चाहिये।

१—खादिरो यूपो भवति। खादिरं वीर्यकामस्य यूपं कुर्यात्। इसमें पहला वाक्य क्रत्वर्थ है। अर्थात् फलरहित कर्मानुष्ठान करते समय पशुयाग में खैर वृक्ष से यूप बनाना चाहिये। यहाँ पर विहित खदिर का स्वतः कोई फल नहीं है। परन्तु उस याग का जो फल है वही खदिर का भी है। दूसरे वाक्य में प्रतिपादित खदिर फलयुक्त है। अर्थात्—जो व्यक्ति खदिर वृक्ष से यूप बनावेगा उसको वीर्यरूपफल मिलेगा। अर्थात्—इस वाक्य में खदिर का वीर्यफल स्वतन्त्र बताया है। एक ही खदिर का फल संबन्धाभाव तथा फलसंबन्ध प्रतिपादन करने से संयोगपृथक्त्व कहा जाता है।

सर्वेषामप्ययं धर्मो भुक्तिमुक्त्यैकसाधनः ॥ अशुचिर्वापि पापिष्ठः कृत्वेदं व्रतमुत्तमम् । पूज्यः स्यात्सर्वभूतानां यथा रामस्तथैव सः ॥

सबों का यही धर्म है। जो भुक्ति तथा मुक्ति का एक साधन है। अशुचि (अपवित्र) हो या पापी हो इस उत्तम व्रत को करके राम के सदृश वह सब प्राणियों का पूज्य होता है।

यस्तु रामनवम्यां तु भुङ्क्ते मोहाद्विमूढधीः । कुम्भीपाकेषु घोरेषु पच्यते नात्र संशयः ॥

जो रामनवमी के दिन मोह से मूर्ख बुद्धिवाला भोजन करता है वह भयंकर कुंभीपाक नरकों में जाता है। इसमें संशय नहीं है।

तथा—अकृत्वा रामनवमीव्रतं सर्वव्रतोत्तमम् । व्रतान्यन्यानि कुरुते न तेषां फलभाग्भवेत् ॥

तद्वत् ही कहा है—सब व्रतों में उत्तम व्रत रामनवमी व्रत को न करके अन्य व्रतों को करता है उसको उनके व्रत का फल नहीं होता है।

प्राप्ते श्रीरामनवमीदिने मर्त्यो विमूढधीः । उपोषणं न कुरुते कुम्भीपाकेषु पच्यते ॥

श्री रामनवमी दिन के प्राप्त होनेपर खराब बुद्धिवाला मनुष्य उपवास नहीं करता है वह कुंभीपाक नरकों में पकता (पड़ता) है।

अत्र केचित्तदुपासकानामेवेदं व्रतं नित्यं, न त्वन्येषामित्याहुः । अन्ये तु अकरणे दोषश्रवणात् तस्मात्सर्वात्मना सर्वैः कार्यं वै नवमीव्रतम् । इति पूर्वोक्तवचनाच्च जन्माष्टम्यादिवदिदमपि सर्वेषां नित्यम् । अन्यथा जन्माष्टम्यादावपि तदुपासकानामेव नित्यतां वक्तुः को वारयितेत्याहुः ।

यहाँ पर कोई कहते हैं कि—उपासकों का ही यह नित्य व्रत है। अन्य लोगोंका नहीं है। क्योंकि अन्य-मत से तो नहीं करने पर दोष श्रवण है। इसकारण से सबलोगों को निश्चय नवमी व्रत को करना चाहिये और इस पूर्वोक्त वचन से जन्माष्टमी की तरह यह भी सबों को नित्य है। अन्यथा जन्माष्टमी आदि में भी उसके उपासकों का ही नित्यता कहनेवालों को कौन रोक सकता है।

(अथ रामप्रतिमादिदानकथनम्)

अत्र विशेषो हेमाद्रावगस्त्यसंहितायाम्—आचार्यं चैव सम्पूज्य वृणुयात्प्रार्थयेन्निशि । श्रीरामप्रतिमादानं करिष्येऽहं द्विजोत्तम । भक्त्याचार्यो भव प्रीतः श्रीरामोऽसि त्वमेव च ॥

यहाँ पर विशेष हेमाद्रि में अगस्त्यसंहिता का कथन है कि—आचार्य का ही पूजनकर रात में वरण तथा प्रार्थना करे। हे द्विजोत्तम, मैं श्रीराम प्रतिमा का दान करूँगा। भक्ति से प्रसन्न होकर आचार्य हों और आप ही श्री राम हो।

तथा—स्वगृहे चोत्तरे देशे दानस्योज्ज्वलमण्डपम् । शङ्खचक्रहनूमद्भिः प्राग्द्वारे समलङ्कृतम् ॥

और भी—अपने घर से उत्तर देश (दिशा) में शुद्ध मण्डप दान के लिये निर्माण करे। (उसके) पूर्वद्वार में—शंख, चक्र तथा हनुमान जी को अलंकृत करे।

गरुत्मच्छार्ङ्गबाणैश्च दक्षिणे समलङ्कृतम् । गदाखड्गाङ्गदैश्चैव पश्चिमे सुविभूषितम् ॥

दक्षिणद्वार में—गरुड़, शार्ंग, (धनुष) और बाण से अलंकृत करे। पश्चिमद्वार में—गदा, खड्ग, (तलवार) तथा अंगद (बाजूबन्द) से विभूषित करे।

पद्मस्वस्तिकनीलैश्च कौबेरे समलङ्कृतम् । मध्ये हस्तचतुष्काढ्यं वेदिकायुक्तमायतम् ॥

उत्तरद्वार में—पद्म, स्वस्तिक और नील (नील वर्ण) से अलंकृत करें। उसका मध्य भाग चार हाथ का हो वह वेदिका से युक्त आयतन हो।

ततः सङ्कल्पयेदेवं राममेव स्मरन्मुने । अस्यां रामनवम्यां च रामाराधनतत्परः ॥
उपोष्याष्टसु यामेषु पूजयित्वा यथाविधि । इमां स्वर्णमयीं रामप्रतिमां च प्रयत्नतः ॥
श्रीरामप्रीतये दास्ये रामभक्ताय धीमते । प्रीतो रामो हरत्वाशु पापानि सुबहूनि मे ॥
अनेकजन्मसंसिद्धान्यभ्यस्तानि महान्ति च । ततः स्वर्णमयीं रामप्रतिमां पलमात्रतः ॥

तदनन्तर हे मुने, इसप्रकार राम का स्मरण करते हुए संकल्प यों करे। इस रामनवमी में राम की आराधना में तत्पर हो उपवास कर आठो यामों में यथाविधि पूजाकर इस स्वर्णमयी राम प्रतिमा को प्रयत्न से श्रीराम की प्रसन्नता के लिए बुद्धिमान् राम के भक्त के लिये देता हूँ। इससे राम प्रसन्न होकर मेरे अनेक जन्मों के किये हुए अभ्यस्त बड़े बहुत से पापों को शीघ्र ही हर लेंगे।

निर्मितां द्विभुजां दिव्यां वामाङ्कस्थितजानकीम्। बिभ्रतीं दक्षिणकरे ज्ञानमुद्रां महामुने ॥
वामेनाधः करेणाराद्देवीमालिङ्ग्य संस्थिताम्। सिंहासने राजतेऽत्र पलद्वयविनिर्मिते ॥

तदनन्तर पलमात्र सोने की राम प्रतिमा को जिसके दो भुजा हों दिव्यरूपवाले हों, उसके बायीं गोदी में जानकी हो। हे महामुने, दक्षिण हाथ में ज्ञान[1]मुद्रा को धारण करती हुई बायें हाथ से नीचे समीप में देवी का आलिंगन कर स्थित हो सिंहासन पर पलद्वय से निर्मित सिंहासन पर सुशोभित हों।

तथा—अशक्तो यो महाभागः स तु वित्तानुसारतः। पलेनाथ तदर्धेन तदर्धार्धेन वा मुने ॥
सौवर्णं राजतं वापि कारयेद्रघुनन्दनम्। पार्श्वे भरतशत्रुघ्नौ धृतच्छत्रकरावुभौ ॥

और हे मुने, जो महानुभाव, अशक्त हो वह अपने वित्तानुसार से पलभर, आधे पल या उससे भी कम अर्थात् आधे से भी कम सोने या चांदी की रघुनन्दन की मूर्ति करावें। जिनके हाथों में छत्र को धारण किये हुए भरत तथा शत्रुघ्न पास में हो।

चापद्वयसमायुक्तं लक्ष्मणं चापि कारयेत्। दक्षिणाङ्गे दशरथं पुत्रावेक्षणतत्परम् ॥

लक्ष्मण को भी दो चापों (धनुष) से युक्त करावे। दक्षिण अंग में पुत्रों के देखने में तत्पर दशरथ को निर्माण करे।

मातुरङ्कगतं राममिन्द्रनीलसमप्रभम्। पञ्चामृतस्नानपूर्वं सम्पूज्य विधिवत्ततः ॥

माता की गोदी में इन्द्रनील के तुल्य प्रभा (कान्ति) वाले राम हो। तदनन्तर विधिवत् पञ्चामृत स्नानपूर्वक पूजन[2] करे।

कौशल्यामन्त्रस्तु—रामस्य जननी चासि रामरूपमिदं जगत्। अतस्त्वां पूजयिष्यामि लोकमातर्नमोऽस्तु ते। नमो दशरथायेति पूजयेत्पितरं ततः ॥

कौशल्या का मन्त्र है—तुम राम की माता हो तथा यह संसार राम का ही रूप है। अतः तुम्हारी पूजा करूँगा। हे लोकमातः, तुम्हारे लिए नमस्कार है। तदनन्तर 'नमो दशरथाय' इस मन्त्रसे पिताकी पूजा करे।

अत्र दशावरणपञ्चावरणादिपूजाऽन्यत्र ज्ञेया।

यहाँ पर दशावरण तथा पंचावरण आदि की पूजा अन्यत्र से जानना चाहिये।

अशोककुसुमैर्युक्तमर्घ्यं दद्याद्विचक्षणः। दशाननवधार्थाय धर्मसंस्थापनाय च ॥ राक्षसानां विनाशाय दैत्यानां निधनाय च। परित्राणाय साधूनां जातो रामः स्वयं हरिः ॥

बुद्धिमान् व्यक्ति को चाहिये कि—अशोक पुष्पों से (दत्वा पुष्पाञ्जलिं पूर्वं गृहीत्वा शङ्खमुत्तमम्। फलपुष्पाम्बुसंपूर्णं युक्तं च तुलसीदलैः) युक्त अर्घ्य को दे। रावण के वध के लिये तथा धर्मसंस्थापन के लिये, राक्षसों के विनाश के लिये, दैत्यों के निधन के लिये, साधु—दूसरे के कार्यों को साधन करनेवाले की रक्षा के लिये, स्वयं हरि राम रूप में उत्पन्न हुए।

गृहाणार्घ्यं मया दत्तं भ्रातृभिः सहितोऽनघ। पुष्पाञ्जलिं पुनर्दत्त्वा यामे यामे प्रपूजयेत् ॥

हे अनघ, भाइयों के साथ मेरे द्वारा दिये हुए अर्घ को ग्रहण करो। फिर विधिवत् पुष्पाञ्जलि देकर प्रत्येक याम (प्रहर) में पूजन करे।

१—तर्जन्यङ्गुष्ठकौ सक्तावग्रतो हृदि विन्यसेत्। वामहस्ताम्बुजं वामजानोर्मूर्द्धनि विन्यसेत्। ज्ञानमुद्रा भवेदेषा श्रीरामस्य सदा प्रिया ॥

२—पूजा दीक्षावतां मूलमन्त्रेण, अन्येषां तु पुरुषसूक्तविष्ण्वादिसूक्तैः नाममन्त्रेण वा। स्त्रीशूद्राणां तु नाममन्त्र एव।

दिवैवं विधिवत्कृत्वा रात्रौ जागरणं ततः। ततः प्रातः समुत्थाय स्नानसन्ध्यादिकाः क्रियाः ॥ समाप्य विधिवद्रामं पूजयेद्विधिवन्मुने।

यह सब दिन में ही करके रात में जागरण करे। तदनन्तर प्रातःकाल उठकर स्नान-सन्ध्या आदि क्रियाओं को विधिवत् समाप्त कर हे मुने, विधिवत् राम की पूजा करे।

ततो होमं प्रकुर्वीत मूलमन्त्रेण मन्त्रवित् ॥ पूर्वोक्तपद्मकुण्डे वा स्थण्डिले वा समाहितः। लौकिकाग्नौ विधानेन शतमष्टोत्तरं ततः ॥ साज्येन पायसेनैव स्मरन् राममनन्यधीः। ततो भक्त्या सुसन्तोष्य आचार्यं पूजयेन्मुने॥ ततो रामं स्मरन्दद्यादेवं मन्त्रमुदीरयन्। 'इमां स्वर्णमयीं रामप्रतिमां समलङ्कृताम् ॥ चित्रवस्त्रयुगच्छन्नां रामोऽहं राघवाय ते। श्रीरामप्रीतये दास्ये तुष्टो भवतु राघवः ॥'

तदनन्तर हवन मूलमन्त्र से मन्त्रवेत्ता करे। पहले कहे हुए पद्मकुण्ड में या स्थण्डिल में समाहित मन से लौकिक अग्नि द्वारा एक सौ आठ बार घृत सहित पायस से ही राम को एकाग्रमन से स्मरण करता हुआ हवन करे। तदनन्तर भक्ति से हे मुने, सन्तुष्टकर आचार्य का पूजन करे। तदनन्तर राम का स्मरणकर मन्त्र को कहता हुआ कहे कि—यह स्वर्णमयी अलंकृत चित्र विचित्र वस्त्रों से युक्त राम प्रतिमा को राम के रूप में श्री राम की प्रीति के लिए देता हूँ। इससे राघव प्रसन्न हों।

इति दत्त्वा विधानेन दद्याद्वै दक्षिणां शुभम्। ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ इति।

यों विधान से (विप्रान्संभोज्य विधिवत् साचार्यः पारयेद् व्रतम्) तथा आचार्य सहित विधि से ब्राह्मणों को भोजन कराकर व्रत का आचरण करें। ब्रह्महत्यादि पापों से मुक्ति मिल जाती है। इसमें कोई संशय नहीं[1] है।

इयं मलमासे न कार्या। 'सुजप्तमप्यजप्तं स्यान्नोपवासः कृतो भवेत्। इति, 'न कुर्यान्मलमासे तु महादानं व्रतानि च ॥' इति च माधवीये सङ्ग्रहवचनात्।

इसको (रामनवमी को) मलमास में नहीं करना चाहिये। माधवीय में संग्रह का वचन है कि—किया हुआ जप नहीं जपने के तुल्य होता है तथा किया हुआ उपवास नहीं उपवास के बराबर होता है और महादान, व्रतादि भी मलमास में नहीं करना चाहिये।

ननु रामनवमीव्रतस्य नित्यत्वादेकादशीवन्मलमासेऽपि कर्त्तव्यता स्यादिति चेत्, अत्र ब्रूमः नैकादश्युपवासस्य व्रतत्वेन प्राप्तिः।

कहो कि—रामनवमी व्रत का नित्यत्व हो जाने से एकादशी के तुल्य मलमास में भी करना चाहिये। ऐसा कहोगे तो इसमें कहते हैं कि—एकादशी उपवास की प्राप्ति व्रतत्व से नहीं है।

१—अथ दुर्दशाग्रस्तानां दशादित्यव्रतं हेमाद्रौ। तच्च—आदित्यवारयुक्तायामेव शुक्लदशम्यां कार्यम्। रविवारेण युक्तायां दशम्यां पूजयेद्दशाः। इत्युक्तेः। तिथिश्च मध्याह्नव्यापिनी। दिनद्वये तत्सत्त्वेऽसत्त्वे च परा, एकदेशव्याप्तौ तु महत्त्वाल्पत्वाभ्यां निर्णयः। विधिश्च रविवारे तादृशतिथियोगे। तत्प्रयोगः—तिथिवारकीर्तनान्ते 'मम दुर्दशानिवृत्तिपूर्वक-सुदशाप्राप्त्यर्थं दशादित्यव्रतमहं करिष्ये' इति सङ्कल्प्य तदङ्गतया गणपतिपूजापुण्याहवाचनवृद्धिश्राद्धान्तं कृत्वा सूर्यं पञ्चोपचारैः संपूज्य प्राङ्मुखो बहिर्देशे गोमयोपलिप्ते इङ्गाललिखिता दशदुर्दशापुत्रिकाः पूजयेत्। ताश्च—'दुर्मुखा दीनवदना मलिनाऽसत्यवादिनी। दुर्बुद्धिदायिनी हिंस्रा दुष्टा मित्रविरोधिनी ॥ उच्चाटनकरी नाम बहुचिन्ताप्रदायिनी।' एताश्चतुर्थ्यन्त-नामभिः एवैकपुत्रिकायामावाह्य षोडशोपचारैः पूज्याः, फलानि दश, दश वराटिका दक्षिणेति। ततः—नित्यं पापरते पापे देवद्विजविरोधिनी। गच्छतां दुर्दशे देवि नीतिशास्त्रविरोधिनि ॥ इति प्रत्येकं विसर्जयेत्। ततः शीतोदकेन स्नायात्। अशक्तौ हस्तौ पादौ च प्रक्षालयेत्। ततः शुचि शुभ्रं वस्त्रं परिधाय गृहं प्रविशेत्। ततो भित्तौ काष्ठफलकेन अष्टदलं लिखित्वा तत्र सुगन्धिचन्दनादिना दशपुत्रिका लिखेत्—सद्बुद्धिदा सुखकरी सर्वसमद् प्रदायिनी। पुत्रदा च विजयादशमी धर्मदायिनी ॥ इति लिखितसुदशा पुत्रिकाणां पुरःदशग्रन्थियुतं पट्टदोरकं सूत्रदोरकं वा प्रतिष्ठाप्य तत्र रविं पूजयेत्। षोडशोपचारैः पूजां कृत्वा—अशेषसम्पदां पात्रे भर्त्रे त्रिजगतां सदा। जगतः कामदात्रे च जगत्पूज्याय ते नमः ॥ इति विसर्जयेत्। ततश्चतुर्थ्यन्तनामभिर्दश सुदशाः तासु पुत्रिकासु पूजयेत्, दशमधुरफलानि ढबुकादिदक्षिणा, नात्र विसर्जनम्। दशभिर्मोदकैर्वायनं, भुञ्जीयात्तैलवर्जितम्। इति।

अथ निर्णयसिन्धुः

(भाषा-टीका-सहित)

(संक्षिप्त मण्डपविषयक विचार और पद्मादिकुण्डों के भेदों का कथन)

दौलतराम गौड़

(श्रौत और स्मार्तादिकर्मोंमें कुण्ड तथा मण्डप मुख्य है या गौण)

श्रौत, स्मार्त और तन्त्रिक ये तीन प्रकार के कर्म हैं। पौराणिक कर्म तांत्रिक में ही अन्तर्भूत हैं। पौराणिक कर्मको पृथक् मानने वाले चार प्रकार के कर्म मानते हैं। श्रौत और स्मार्त कर्म के प्रतिपादक आश्वलायन आदि श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र मन्वादिस्मृति और गौतमादि धर्मसूत्र भी हैं। इनमें कुण्ड-मण्डप की परिभाषा देखने में नहीं आती है। परन्तु मण्डप का यज्ञशाला शब्दसे और कुण्ड का वेदी शब्द से व्यवहार होता है। 'वेदं कृत्वा वेदिं करोति' वेद्यामिव हुताशनः, अमी वेदिं परितः क्लृप्तधिष्ण्याः—इत्यादि स्थलों में वेदीशब्दसे कुण्ड का ग्रहण है और यज्ञशाला, पत्नीशाला इत्यादि स्थलों मे मण्डप के लक्षण से यज्ञशाला आदि का लक्षण भिन्न है। तान्त्रिक तो सम चतुरस्र चार द्वार, चार उपचार मध्य में ऊँचा मण्डप कहते हैं। वैदिक तो एकद्वार, पताका आदि रहित तथा मध्योन्नति रहित मण्डप बनाते हैं। योनी, गर्त आदि सहित कुण्ड तान्त्रिकों को अभिमत है। वैदिकों को कुण्ड में योनि गर्तादि अभिमत नहीं हैं।

(काम्यकर्म में कुण्ड–मण्डपकी आवश्यकता)

नित्यं नैमित्तकं हित्वा सर्वमन्यत्समण्डपम्—कोटिहोमपद्धति और मात्स्योक्तवचन से काम्यकर्म में मण्डप आवश्यक है। नित्य तथा नैमित्तिक कर्म में ऐच्छिक है। नित्यं नैमित्तिकं होमं स्थण्डिले वा समाचरेत्। शारदातिलक मत से नित्य और नैमित्तिक कर्म स्थण्डिल या कुण्ड में करें। परन्तु काम्यकर्म को कुण्ड में ही करे।

(कर्मभेद उनके उदाहरण विभिन्न मतोंसे)

कर्म तीन प्रकार के हैं नित्य नैमित्तिक और काम्य। अहरहः सन्ध्यामुपासीत। पञ्चयज्ञान्न हापयेत् 'यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहुयात्' दर्शपूर्णमासाभ्यां यजेत' इत्यादि नित्यकर्म हैं। षण्णवतिश्राद्धादि नैमित्तिक हैं क्योंकि निमित्तवश किये जाते हैं। नित्य और नैमित्तिक कर्म न करने में प्रत्यवाय होता है। जिस कर्म को न करने से प्रत्यवाय न हो और करने से वृद्धि हो उसे काम्य कहते हैं। जैसे—तीर्थयात्रा, व्रत, दान, यज्ञ, शान्तिक तथा पौष्टिक यह मीमांसकमतानुसारिकर्मकाण्डियोंका सिद्धान्त है। यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्। एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च॥ कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् (भ० गी० अ० १८) इत्यादि वचन से सिद्ध है कि फलाभिलाषी न होकर क्रियमाणकाम्यकर्म भी निष्कामकर्म होते हैं। यह वेदान्तियों का सिद्धान्त है।

(कुण्ड-मण्डप का प्रयोग)

तीन प्रकार के कर्म होते हैं—दृष्टफल अदृष्टफल और दृष्टादृष्टफलक। वृष्टिकामः कारीर्या यजेत—इत्यादिश्रुतिसे विहित कारीरेष्ट्यादि वृष्टिरूप ऐहिक फल का जनक होनेके कारण दृष्टफलक कर्म है। यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहुयात् इत्यादि विधिबोधित अग्निहोत्रादि अदृष्टफलक कर्म है। दध्नेन्द्रियकामस्य जुहुयात् इत्यादि इन्द्रियकामनाके लिये अग्निहोत्रविधि दृष्टादृष्टफलक है। अग्निहोत्रविधि स्वस्वरूपसे अदृष्टफलको दधिरूप गुणांशसे दृष्ट इन्द्रियफलको भी उत्पन्न करता है। प्रश्न—प्रतियोगी और अभाव का विरोध होने के कारण दृष्ट और अदृष्ट का एकत्र समावेश कैसे होगा। उत्तर—हम दृष्टादृष्टका एकत्र समावेश नहीं कहते हैं। किन्तु दध्नेन्द्रियकामस्य जुहुयात् यह गुणविधि दृष्टादृष्टफलक है इतना ही कहते हैं यह विरुद्ध नहीं है घट और घटध्वंस दोनों का कारण जैसा दण्ड है। इसीप्रकार कुण्ड और मण्डप दृष्ट और अदृष्ट उभयफलक हैं। वप्रगर्तादि अंशसे हविका सम्यक् पाक होता है और होताओंको ज्वालादि संबन्ध नहीं होता इसलिये कुण्ड दृष्टफलक है और नाभी, योनी, कण्ठ आदि अंशसे अदृष्टफलक भी है वहाँ दृष्टफल संभव नहीं है। विधिबलात् नाभ्यादि निर्माण होता है अतः स्वर्गादि अदृष्टफलकी वहाँ कल्पना की जाती है। स स्वर्गः सर्वान् प्रत्यभीष्टत्वात्' इत्यादिशास्त्रसे अश्रुतफल में स्वर्गफल माना जाता है। एवं मण्डप भी आतप वर्षादिका निवारक होने से दृष्टफलक है और स्तंभपरिमाण, स्तंभनिवेशका प्रकार विशेष इतर दारु का संनिवेशप्रकारविशेष इत्यादि नियमांशसे अदृष्टफलक भी है। जैसे—व्रीहीनवहन्ति—यहाँ पर अवहननविधि तण्डुलनिष्पादक होने के कारण दृष्टफलक है और अवहनन से ही निष्पादक करना नखविदलनादिना नहीं करना इत्यादि नियमांशसे अदृष्टफल भी है।

(मण्डप का लक्षण)

मण्डपोऽस्त्री जनाश्रयः अमर०। यद्यपि मण्डपशब्द सामान्य जनाश्रयवाची है तदनुसार उत्सार्य गृहमण्डपान्' लतामण्डपः, सभामण्डपः इत्यादि प्रयोग भी मिलते हैं। तथापि प्रकृतोपयोगी तान्त्रिक परिभाषासिद्ध मण्डपलक्षण कहते हैं—पञ्चरात्रायुक्तरचनावत् यज्ञायनत्वं मण्डपस्य लक्षणम्। पञ्चरात्राद्युक्त रचनावाला यज्ञ का आयतन मण्डप होता है।

विशेषण न कहें तो वैदिक—यज्ञशालादि में अव्याप्ति होगी और विशेष्य न कहें तो देवप्रसादादि में अतिव्याप्ति है इसलिये दोनों आवश्यक है।

(मण्डप का स्वरूप)

मण्डप दो प्रकारका है—स्थिरवास्तुरूप और चलवास्तुरूप। प्रतिष्ठाद्येकैककर्मोपयुक्तोऽस्थिरद्रव्यनिर्मितश्चलः। शिलेष्ठकादिनिर्मितः पर्यायेण बहुकर्मोपयुक्तः स्थिरमण्डप इत्युच्यते। अस्थिरद्रव्यनिर्मित चल और स्थिर द्रव्य निर्मित अचल मण्डप होता है। गर्भागारस्य पुरतः सुगनासीति मण्डपः। तत्र नन्दी तु संस्थाप्यो देवस्याभिमुखः स्थितः। तदग्रे नवरङ्गाख्ये मण्डपं रचयेत्सुधीः। तत्परो बलिपीठं च तदग्रे ध्वजदण्डकम्। तत ईशानदिग्भागे यागमण्डपमारचेत्। स्थिरवास्तुविधानेन शिवयागादिसिद्धये। नात्र दार्वादिनियमो भविता द्वारमेकमुदीरितम्। तदा तदा यागकाले तोरणं स्यात् पृथक् पृथक्। यद् द्रव्यं देवसदनं तद् द्रव्येणैव कारयेत्। नात्रोपयुक्तत्वदोषो भवितात्र स्वतः क्वचित्। तत्तत्कर्मसु पार्थक्याद् द्वारहोमादिकं चरेत्॥ (क्रियासार) मण्डपप्रकार प्रकृतोपयोगी तत्तत्कर्मोपयुक्तद्वादशहस्तादि विस्तारवान् प्रान्ते द्वादशभिर्मध्ये चतुर्भिश्च स्तम्भैर्विधृतः मध्योच्छ्रितश्चतुर्दिक्षु क्रमावतीर्णपटलश्चतुर्दिक्षु द्वार-तोरणवान् यथोक्तदारुसन्निवेशवान् किञ्चिदुच्छ्रितभूमिकस्तान्त्रिकाभिमतो मण्डपः।

(कुण्डस्वरूप)

तत्तत्कर्मानुरूपपरिमाणवत् मेखला-गर्त-कण्ठ-योनि-नाभिमत् अग्न्यायतनं तान्त्रिकाभिमतं कुण्डमुच्यते।

(स्थण्डिलस्वरूप)

हवनकर्मपर्याप्तो वालुकादिद्रव्यैरास्तृतश्चतुरेकाद्यङ्गुलोत्सेधो भूभागः स्थण्डिलम्। इसमें कुण्डधर्म मेखलादि कोई मानते हैं कोई नहीं मानते हैं। अतः मेखलादि कृताकृत है।

(न्यूनाधिकप्रमाण भी कुण्ड और मण्डप कर्मोपयोगी होते हैं या नहीं)

शास्त्रमे कुण्डका प्रमाण होमसंख्याके अनुसार विहित है। उसमें भी—मुष्टिमात्रमितं कुण्डं शतार्धे संप्रचक्षते। (शारदा०) एकहस्तमितं कुंड शतार्धे सम्प्रचक्षते। (शारदा०) यह दो प्रकार विहित है। सिद्धान्तशेखरमें—लक्षार्धे त्रिकरं कुंडम्—इत्यादिसे प्रकारान्तरविहित है। इसप्रकार परस्पर विरुद्ध वचनों की व्यवस्था कोटिहोमपद्धतिकार ने की है—एतत् शीघ्रदाहिघृतादिद्रव्यहोमविषयम्। तिलयवादिस्थूलद्रव्यहोमे तु होमसङ्ख्याविशेषाम्नातमेव कुंड ग्राह्यम्। घृतादि होमद्रव्यमे अल्पपरिमाण और स्थूलद्रव्यमे अधिक परिमाण का कुंड होता है। यह व्यवस्था विकल्प जहाँ दो वचनका तुल्यबलविरोध हो वहाँ माना जाता है। 'तुल्यबलविरोधे विकल्पः'—यह शास्त्रसिद्धान्त है। वह विकल्प दो प्रकारका है-व्यवस्थितविकल्प और तुल्यविकल्प। जहाँ व्यवस्थापक कोई हो उसको व्यवस्थित कहते हैं। जहाँ व्यवस्थापक न हो उसको तुल्यविकल्प कहते हैं। जैसे-उदिते जुहोति, 'अनुदिते जुहोति' यह दो वाक्य हैं। प्रथमश्रुतिसे सूर्योदयानन्तर अग्निहोत्र विहित है और द्वितीयश्रुतिसे सूर्योदयात् प्राक् सिद्ध है। ये दोनो श्रुतियाँ अग्निहोत्र विधायक नहीं हैं। अग्निहोत्र तो—यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहुयात्—इसीसे सिद्ध है। किन्तु अग्निहोत्र का अनुवाद करके तदङ्गभूत काल विधायक ये श्रुति हैं इसीलिये इनको गुणविधि कहते हैं। यद्यपि यहाँ विधिवाचक लिङ्गादि नहीं है। तथापि लट्का लिङ्गत्वेन विपरिणाम होता है। इन दोनों श्रुतियों का परस्परविरोध होने पर दोनों तुल्यबल हैं अतः विकल्पका आश्रयण होता है। वह भी जिनके सूत्रमें उदितहोम विहित है उनको उदित होमी होना चाहिये और जिनके सूत्र में अनुदितहोम विहित है उनको अनुदितहोम करना चाहिये। यह व्यस्थित विकल्प है। अतिरात्रे षोडशिनं गृह्णाति नातिरात्रे षोडशिनं गृह्णाति इत्यादि में व्यवस्थापक न होनेसे तुल्यविकल्प है। अतः अतिरात्रयाग मे षोडशिग्रह ग्रहण ऐच्छिक है। प्रकृतमें कुंडके विषय में न्यूनाधिक व्यवस्थित परिमाण प्रतिपादक वाक्यों में व्यवस्थापक गुरुलघुद्रव्यादि हैं अतः विकल्प माना जाता है। इस प्रकार यावत्संख्याक होममें यावत्परिमाण कुंड विहित है वहाँ उसमें न्यूनाधिक परिमाणवाला कुंड न्यूनाधिक कुंड कहा जाता है। एतादृश न्यूनाधिक परिमाण कुंडका भी कहीं कहीं उपयोग होता है। न्यूनसंख्योदिते कुंडेऽधिको होमो विधीयते। अनुक्तकुंडो न्यूनस्तु नाधिके शस्यते क्वचित्। (कोटिहोमप०) न्यूनसंख्यावाले कुंड में अधिक हवन होता है अधिक संख्यावाले कुंड में न्यूनहवन नहीं होता है। इसीप्रकार अधिक कुंड में न्यूनहोम भी कहीं अभिमत है। कोटिहोमपद्धति में—न्यूनसंख्येऽपि स्थूलद्रव्यपरिमाणाधिक्यादावधिकसंख्योक्तमपि कुंड भवति। अर्थात्परिमाणम्—इति कात्यायनोक्तेः। न्यूनसंख्य होम में भी अधिकहोमसंख्यावाला कुंड होता है—यह लिखा है। कुंडरत्नावली में भी आहुति

तारतम्यसे कुंडविस्तार कहकर अन्तमें कहा है कि—कुंडव्यवस्था पृथुसूक्ष्ममानाद् द्रव्यस्य कार्या सुधिया सुधीभिः। कुंडे व्यवस्था द्रव्यके स्थूल और सूक्ष्ममानसे अपनी बुद्धिसे विद्वानों को करनी चाहिये। इससे सिद्ध होता है कि चर्वादिगुरुद्रव्य-होम मे अधिक प्रमाण भी कुंड ग्राह्य है। शताधेरद्धिः स्यात्—इत्यादि वचनसे शतार्धे शत सहस्रादि हवन में कुंड का विधान सिद्ध हुआ। परन्तु शतादि आन्तरालिक संख्याकहोम में कुण्डपरिमाण कितना हो इस शंकाको दूर करने के लिये 'न्यूनसंख्यो दिते' यह वचन है। इसलिये नवशत अष्टशतादि अनुक्त कुण्डकहोम सहस्रहोमोदित कुण्ड में नहीं करना किन्तु पूर्वकथितशतसंख्याकहोमकुण्ड में ही करना यह सिद्ध होता है। इसप्रकार 'न्यूनसंख्योदिते' यह वचन अनुक्त कुंडक आन्तरालिक होम में न्यूनकुंड का विधायक हुआ। तब यही वचन अधिक कुंड में गुरुद्रव्यक न्यून होम का निषेध नहीं कर सकता है क्योंकि दो कार्य का विधान करने से वाक्यभेद दोष होता है। पूर्वार्द्ध से न्यूनकुंड में अधिक होमविधान और उत्तरार्द्ध से अधिक कुंड में न्यून होमका निषेध। विधानद्वय करने में 'अनुक्त कुंडो न्यूनस्तु' यह अनुक्त कुंडस्वरूप जो होमका विशेषण है यह बाधित होता है। कदाचित् कहैं कि—'न्यूनाधिकं न कर्तव्यं कुंडं कुर्याद्विनाशनम्' (परशुरा०) इस वचनान्तर के रहते अधिक कुंड उपादेय नहीं हो सकता है तो इसका उत्तर यह है कि—यह वचन भी प्रकृतार्थ साधक नहीं है किन्तु इस वचन का ही नाधिकाङ्ग लक्षण रहित कुंड निषेध में ही तात्पर्य है। इसवचन के पूर्व "आयामखातविस्तारायथातथं तथातथम्" यह वचन है और 'खातेऽधिके भवेद्रोगी हीने धेनुधनक्षयः" यह उत्तर वचन है। इसप्रकार पूर्वापरपर्यालोचनया अलक्षण कुंड का निषेधक ही परशुराम वचन है अधिक कुंड में अल्पाहुति का नहीं यह स्पष्ट है।

कोई विद्वान् 'अनुक्तकुंडो न्यूनस्तु नाधिके शस्यते क्वचित्' यहां क्वचित् शब्द से अधिक कुंडमात्रसे न्यूनहोमका निषेध करते हैं परन्तु वह भी ठीक नहीं है क्योंकि चार हाथके कुंडमें जिसमें दो दो हाथके चार भुजमान हैं वहाँ पर 'खातं क्षेत्रसमं प्राहुः' इत्यादि शास्त्रसे दो हाथ के खात करने पर कुंडावकाशरूप क्षेत्रफल आठ हाथ का होता है एवं द्वित्रि-हस्तादि कुंड में सर्वत्र क्षेत्रफलके आधिक्य होने पर भी द्विहस्त त्रिहस्त चतुर्हस्त कुंड यही व्यवहार प्रामाणिक करते हैं विचार करने पर तत्तद्धोम के प्रति ये भी अधिक कुंड हैं तो क्वचित् शब्दसे यदि अधिककुंडत्वावच्छिन्न में न्यूनहोम-सामान्य निषेध माना जाय तो इन कुंडों का भी निषेध हो जायगा। कोटिहोमपद्धति में स्पष्ट कहा है कि—यद्यपि द्विहस्त-त्रिहस्तादिकुंडेषु हस्तमात्रमेव खातं युक्तम् अन्यथा क्षेत्रफलाधिक्यात्। तथापि वचनादधिकमपि खातं न दोषाय। आगे चलकर लिखा है—एतेन कुंडभूतलमेव क्षेत्रफलमितिवदन्तः परास्ताः। गर्तस्य न्यूनाधिक्येऽपि भूतले प्रमाणाधिक्यन्यून-त्वाद्यसंभवात्। सिद्धस्य भूतलस्य फलत्वायोगाच्च। साध्यस्त्ववकाशः फलत्वेनाभ्युपगन्तुं युक्तम्। न च ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेतेत्यादौ सिद्धस्य स्वर्गस्य कथं फलत्वाभ्युपगम इत्यात्र शङ्कनीयम्। तत्रापि साध्यस्य कर्तृस्वर्गसंबन्धस्यैव फलत्वमिति सन्तोष्टव्यम्।

कुंडभूतल ही क्षेत्रफल है यह भी ठीक नहीं है। जिसप्रकार द्वित्रि हस्तादि कुंड में क्षेत्रफलके आधिक्य होने पर भी न्यूनहोम वचनबलसे होता है। इसीप्रकार चर्वादिगुरुद्रव्यहोम में भी अधिक कुंड ग्रहण शास्त्रकारों को अभिप्रेत है। इससे सिद्ध हुआ कि न्यूनाधिक कुंड भी वचनबलसे कहीं कर्मोपयोगी होता है। एवं न्यूनाधिक मण्डप भी कर्मोपयोगी होता है। विंशद्धस्तप्रमाणेन मंडपं कूटमेव वा (कोटिहोमप०)। लक्षणरहित मंडप को कूटमंडप कहते। यह कूटमंडप स्वलक्षण मंडपके अभाव में है। सलक्षणमंडपासंभवे छायामात्रं कर्तव्यम्। तत्र अपूर्वप्रयुक्तत्वाद्धर्माणां यवेष्विव व्रीहिधर्माः मंडपपूजादयोऽप्यत्र भवन्ति (कोटिहो० प०)। अलक्षण मंडप में भी यवों में व्रीहिधर्म के सदृश मंडप पूजादि होते हैं। तात्पर्य यह है कि—दर्शपूर्णमासयागमें पुरोडाश के लिये व्रीहि अभिहित हैं। व्रीहि संस्कारके लिये—व्रीहीन् प्रोक्षति। व्रीहीनवहन्ति। इत्यादि श्रुति हैं। व्रीहिके अभावमें यव गृहीत होते हैं। वहाँ यवों का भी प्रोक्षणादि संस्कार हो या नहीं इस संशय में 'व्रीहीन् प्रोक्षति' इत्यादि विधिवाक्यमें यवका ग्रहण नहीं है अतः यवका प्रोक्षणादि संस्कार न हो चाहिये ऐसा पूर्वपक्ष प्राप्त हुआ। सिद्धान्त यह है कि—व्रीहि प्रतिनिधियों का भी प्रोक्षणादि संस्कार होता है असंस्कृत द्रव्ययाग योग्य नहीं होते हैं और अङ्गकर्म से जनित अपूर्वप्रधान कर्मसाध्य परमापूर्व को उत्पन्न करते हैं वही परमापूर्व धर्म पुण्य इत्यादिशब्दों से कहा जाता है। यदि अङ्ग जन्य अपूर्व लुप्त कर दिये जाँय तो परमापूर्व विकल होगा। परमापूर्व विकल होने से स्वर्गादि इष्ट फलका साधक न होगा। इसलिये अङ्गापूर्व के लिये यवो में भी प्रोक्षणादिसंस्कार होता है। इसीप्रकार मंडपप्रतिनिधित्वेन उपादीयमान छायामंडपमें भी अपूर्वोत्पत्तिके लिये वास्तुहोम मंडपपूजादि होते हैं इससे यह सिद्ध हुआ कि छायामंडप भी कर्मोपयोगी है। इससे वह भी सिद्ध हुआ कि अलक्षणमंडपनिन्दापरक वचन सलक्षणमंडपसंभव मे अलक्षण मंडप निषेधपरक हैं।

(स्थण्डिल का स्थान)

कुंडमेवं विधं न स्यात् स्थण्डिले वा समाचरेत्—इत्यादिप्रमाणसे स्थानापन्न स्थण्डिल का भी वही स्थान है जो कुंडका है। तत्स्थानापन्नस्तद्धर्मं लभते, स्थानधर्माणां स्थानान्यतिदेशः, कुंडस्थानापन्न स्थण्डिल भी कुंडस्थानमें ही होता है स्थानान्तर में नहीं। सोमाभावे पूतीकानभिषुणुयात्—इत्यादि स्थलमे सोम स्थानापन्न पूतीकाओं में भी क्रय अप्यायनादि सब धर्म होते हैं। अतः हवन प्रधानकर्म में एक कुंडपक्षमें मध्यमें कुंड होना निश्चित है तो कुंडाभाव में स्थण्डिल भी मध्यमें ही होगा। यदि मध्यमें कुंड है और १०० । २०० आहुति भी मंडप में करना है तब भी मध्यस्थित कुंड में अधिक प्रमाण में भी वह होना उचित है। कुंडपार्श्व में स्थण्डिलनिर्माण करके नहीं है।

पञ्चदल पद्मकुण्ड

वृत्त व्यास— २३।६।४।३।
भुज— १४।०।०।०।
बाह्य त्र्यस्र लंब ६।६।३।२

त्रिदल पद्म कुण्ड

वृत्त — व्यास —
अं. य. यू. लि.
२८ ६ ७ ५
भुज— २४।०।०।०
बाह्य त्र्यस्र लंब
८।१।०।७

चतुर्दल पद्म कुण्ड

व्यास— २५।३।५।२
भुज— १८।०।०।०
बाह्य त्र्यस्र लंब
७।०।०।०।

षड्दल पद्मकुण्ड

वृत्त व्यास—
२२।०।०।०।
भुज— ११।०।०।०।
बाह्य त्र्यस्र लंब
७।७।३।४

सप्तदल पद्मकुण्ड

वृत्त — व्यास
२३।०।२।५
भुज — १०।०।०।०
बाह्य त्र्यस्र लंब
६।५।७।४

अष्टदल पद्मकुण्ड

वृत्त — व्यास
२३।४।१।१
भुज — ९।०।०।०
बाह्य त्र्यस्र लंब
५।१।०।६

नवदल पद्मकुण्ड

व्यास —
२३।३।१।१
भुज — ८।०।०।०
बाह्य त्र्यस्र लंब
५।०।०।५

दशदल पद्मकुण्ड

व्यास — २२।५।१।५
भुज — ७।०।०।०
बाह्य त्र्यस्र लंब — ५।५।३।५

कुण्डकल्पद्रुमोक्त द्वितीय पद्मकुण्ड

कुण्डकल्पद्रुमोक्त चतुर्थ पद्मकुण्ड

कुंण्डकल्पद्रुमोक्त तृतीय पद्मकुण्ड

कुण्डकल्पद्रुमोक्त पंचम पद्मकुण्ड (क)

कुण्डतत्वप्रदीप का पद्मकुण्ड (क)

कुण्डतत्वप्रदीप का पद्मकुण्ड (ख)

(कुण्डसिद्धि के अनुसार पद्मकुण्ड)

पद्मकुण्ड

वृत्त-१५।२

वृत्त-२०।४

पद्म कुण्ड
वृत्त - १३।४।२।५।३
योनि कुण्ड
अर्धचन्द्र कुण्ड
मध्यसे २॥ अंगुल
चतुरस्र कुण्ड
त्रिकोण कुण्ड
व्यास - ३६।४
व्यासार्ध - १८।२
व्यास - ३६।४
व्यासार्ध - १८।२
त्रिकोण कुण्ड
६ अंगुल
६ अंगुल

(चतुरस्रोपरि–अष्टकोण)

ग्रन्थ नाम	बाह्यचतुरस्रभुज	अन्तश्चतुरस्रभुज	त्र्यस्रभुज	त्र्यस्रलंब	क्षेत्रफल
कुण्डामरीचिका	२८।३।२	२२।३।५।२	६।२।३।२	४।५।१।५	५६०
कुण्डर्णव	२८।४	२२।४।२	६।२।७	४।५।३।४	५०४

(अन्यषडस्रकुण्ड)

ग्रन्थ नाम	पूर्वापर विस्तार	दक्षिणोत्तर विस्तार	पूर्वापरभुज	अन्यभुज	क्षेत्रफल
कुण्डदर्पण	२४	३०	१८	१३।३।२	५७६
कुण्डार्णव	२६।३	३०।२	१५।१	१५।१	५६४
कुण्डतत्वप्रदीप	२५।५।२		१४।६।७	१४।६।७	५७६
रामवाजपेयी	२६।३	३०।२	१५।१	१५।१	५६४

(षट्कोण)

ग्रन्थ	दक्षिणोत्तरदैर्घ्य	समत्र्यस्रभुज	त्र्यस्रलंब	लघुलंब	लघुभुज	क्षेत्रफल
कुण्डमरीचिका	३०	३२	२०	१०	१६	५६०
कुण्डप्रदीप	३६।३।४	३१।४।४	२७।२।५	६।०।३।४	१०।४।१	५७५
कुण्डोदधि	३६।३।४	३१।४।४	२७।२।५	६।०।३।४	१०।४।१	५७५

(सप्तकोणकुण्ड)

ग्रन्थ—	व्यास	अन्तः सप्तास्रभुज	शर	क्षेत्रफल
कुण्डमार्तण्ड	३३।१।२	६।७।७	६।१।५	५७९
कुण्डरत्नाकर	३३।०।२।२	६।७।२।४	६।१।६।३	५७३
रामवाजपेयी	३३।०।७।२	६।७।२।४	६।१।६।३	५७३

(सप्तास्रकुण्ड)

ग्रन्थ—	व्यास	भुज	क्षेत्रफल
कुण्डमार्तण्ड	२६	१२।४।५	५७१
कुण्डमरीचिका	२८।५।४	१२।७।३	६०५
कुण्डप्रदीप	२८।६	१२।२	५४६
कुण्डरत्नाकर	२६।२।४	१२।६।६	५६६
कुण्डार्णव	२८।५।२	१२।७	६०२
कुण्डतत्वप्रदीप	२८।६।४।१	१२।७।५।६	५८८

(पञ्चास्रकुण्ड)

ग्रन्थ—	व्यास	भुज	क्षेत्रफल
कुण्डदर्पण	३०।६।७	१८।४	५८८
कुण्डमार्तण्ड	३१।:।२	१८।२।४	५७६
कुण्डमरीचिका	३०।६	१८।४।१।४	५८६
कुण्डरत्नाकर	३०।७।४	१८।१।२	५६७
कुण्डार्णव	३०।७	१८।४।२	५६०
कुण्डतत्वप्रदीप	३०।७।१।१	१८।४।२।२	५६१
रामवाजपेयी	३०।७।२	१८।४।२	५७७

(पञ्चकोणकुण्ड)

ग्रन्थ—	बाह्यवृत्तव्यास	अन्तर्वृत्तव्यास	त्र्यस्रार्ध	क्षेत्रफल
कुण्डप्रदीप	३७	२२	११।५	५६८

ग्रन्थ—	व्यास	भुज	क्षेत्रफल
कुण्डमार्तण्ड	४५।२।३	२६।५	५८१

(वृत्तान्तर्गत अष्टकोण)

नाम	व्यास	महद्भुज	लघुभुज	क्षेत्रफल
कुण्डमार्तण्ड	३७।२।२	१४।२।०।३	१०।०।५।१	५७४
कुण्डोदधि	३७।२।२	१४।३।२	१०।१।४	५८८

नाम	व्यास	चतुरस्रभुज	क्षेत्रफल
कुण्डतत्वप्रदीप	३१।२।७	२२।१।४	५७५
रामवाजपेयी	३२।०।५	२२।०।३	५७७

(चतुरस्रोपरि–अष्टकोण)

ग्रन्थ	विस्तार	भुज	भुज	क्षेत्रफल
कुण्डदर्पण	२८।२।७	१४।१।३।४	७।०।६।६	६००
कुण्डकौमुदी	२६।३	१४।७	५।६	५६३
कुण्डरत्नाकर	२६।३	१४।७	५।६	५६३

	चतुरस्रभुज	त्र्यस्रलंब	त्र्यस्रार्ध	क्षेत्रफल
कुण्डप्रदीप	२२	४	५।६	५५०

	बाह्यचतुरस्रभुज	अष्टास्रभुज	क्षेत्रफल
कुण्डतत्वप्रदीप	२६।३।१	१०।७।१	५७७

(वृत्तान्तर्गत समषडस्रकुण्ड)

नाम	व्यास	व्यासार्ध	क्षेत्रफल
कुण्डमार्तण्ड	२६।६।४	१४।७।२	५७७
कुण्डकौमुदी	२६।६।२	१४।७।१	५७६
कुण्डरत्नाकर	२६।६।२	१४।७।१	५७६
कुण्डार्णव	२६।६।२	१४।७।१	५७६
कुण्डोद्योत	२६।६।४	१४।७।२	५७७

(वृत्तान्तर्गत-अष्टास्रकुण्ड)

ग्रन्थ	व्यास	भुज	क्षेत्रफल
कुंडमार्तण्ड	२८।४।६	१०।७।४	५७७
कुंडकौमुदी	२८।२	१०।६।१।३	५६४
कुंडरत्नाकर	२८।४।६	१०।७।४।३	५७८
कुंडार्णव	२६	११।०।६	५६४
कुंडोद्योत	२८।४	१०।७।१	५७६

(वृत्तकुण्ड)

नाम	व्यास	क्षेत्रफल
कुंडदर्पण	२७	५७२
कुंडमार्तण्ड	२७।०।५।२	५७६
कुंडकौमुदी	२७।०।५।१	५७६
कुंडप्रदीप	२७	५७२
कुंडोदधि	२७।०।४	५७५
		५७५
कुंडरत्नाकर	२७।०।५।२	५७६
	२६।६।५	५५८
कुंडार्णव	२७	५७२
कुंडोद्योत	२७।०।५।२	५७६
कुंडतत्वप्रदीप	२७।०।६	५७६
रामवाजपेयी	२७	५७२

(अर्धचन्द्रकुण्ड)

पुस्तक नाम	व्यास	क्षेत्रफल
कुंडदर्पण	३८।२	५७४
कुंडमार्तण्ड	३८।२।३।२	५७६
कुंडकौमुदी	३८।२।०।४	५७५
कुंडमरीचिका	३८।२	५७१
कुंडप्रदीप	३८।२।४	५७६
कुंडोदधि	३८।२।४	५७६
कुंडरत्नाकर	३८।२।३।१	५७६
	२७।२।४	५४६
कुंडार्णव	३८।१	५७१
कुंडोद्योत	३८।२।३	५७६
कुंडतत्वप्रदीप	३८।२।४	५७६
रामवाजपेयी	३८।१	५७१

(त्र्यस्रकुण्ड)

	भुज	लंब	क्षेत्रफल
कुंडदर्पण	३६	३२।६	५८६
कुंडमार्तण्ड	३६	३२	५७६
कुंडकौमुदी	३६।२	३१।३।२	५६६
कुंडमरीचिका	३३।७	३४	५७६
कुंडप्रदीप	३६।४	३१।५	५७७
कुंडोदधि	३६।४	३१।५	५७७
	३६।३।६।२	३१।४।५	५७६
कुंडरत्नाकर	३२	३६	५७६
	३५।४	३१।२।२।६	५५५
कुंडार्णव	३४	३३।६	५७८
कुंडोद्योत	३६।३।६	३१।५	५७६
कुंडतत्वप्रदीप	३६।२	३१।४।४	५७२
रामवाजपेयी	३४	३३।६	५७८

(योनिकुण्ड—गजोष्ठात्मिका)

ग्रन्थ	दैर्घ्य	वृत्तार्ध व्यास	क्षेत्रफल
कुंडदर्पण	२८।६	१४।३	५७५
कुंडमरीचिका	२८।६	१४।३	५७५
कुंडप्रदीप	३०।२।४	१५।१।२	५७८
कुंडोदधि	३०।२।४	१५।१।२	५७८
कुंडार्णव	२८।६	१४।३	५७५
कुंडतत्वप्रदीप	२८।४।६	१४।६।२	५७१
राम वाजपेयी	२८।६	१४।३	५७५

(योनीकुण्ड-अश्वत्थपत्रात्मिका)

ग्रन्थ	दैर्घ्य	विस्तार	क्षेत्रफल
कुंडमार्तंड	२६।१।२	२४	५७६
कुंडकौमुदी	२६।१।१।५	२४	५७६
कुंडरत्नाकर	२६।१।१।५	२४	५७६
कुंडार्णव	२८।६।३	२४	५७१
कुंडोद्योत	२६।१।२	२४	५७६
कुंडतत्वप्रदीप	२६।१।२	२४	५६६
कुंडांकुश	२६	२४	५७४

किन्तु 'एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि ।' इत्यादिनिषेधस्य मलमासेऽपि पालनीयत्वात् कृष्णैकादश्यां पुत्रवद्गृहिण इवार्थादुपवासः प्रसज्यते । न त्विह तथेति व्रतत्वेन प्राप्तिर्वाच्या । सा च निषिद्धेत्यप्रसङ्गः । स्पष्टमासविशेषाख्याविहितं वर्जयेन्मले । इति निषेधाच्च । एवं जन्माष्टम्यादावपि बोद्धव्यम् । इति रामनवमी ।

किन्तु दोनों पक्षों की एकादशी में भोजन नहीं करना चाहिये । इत्यादि निषेधका मलमास में भी पालन करना योग्य है । कृष्णपक्ष की एकादशी में पुत्रवन् गृहस्थों की तरह अर्थात्—उपवास प्राप्त होगा । ऐसी बात यहाँ पर नहीं है व्रत के करने से प्राप्ति कहोगे तो वह निषिद्ध है । अतः यहाँ उसका (रामनवमी का) प्रसंग नहीं है ।

जिसका मास विशेष स्पष्ट न हो उसे मलमासमें वर्जित करे । ऐसा निषेध भी है । इसतरह जन्माष्टमी आदि में भी जानना चाहिये ।

(अथ दोलोत्सवः)

चैत्रशुक्लैकादश्यां दोलोत्सव उक्तो ब्राह्मे—चैत्रमासस्य शुक्लायामेकादश्यां तु वैष्णवैः ।
आन्दोलनीयो देवेशः सलक्ष्मीको महोत्सवैः ॥ इति ।

ब्रह्मपुराण में कहा है कि—चैत्र शुक्लपक्ष की एकादशीतिथि में दोलोत्सव (पालना) कहा है ! चैत्र मास के शुक्लपक्ष की एकादशीतिथि में वैष्णव लक्ष्मी के साथ देवेश (विष्णु) को महोत्सवों में झूले पर झुलावे ।

(अथ दमनोत्सवः)

चैत्रशुक्लद्वादश्यां दमनोत्सवः । द्वादश्यां चैत्रमासस्य शुक्लायां दमनोत्सवः ।
बौधायनादिभिः प्रोक्तः कर्तव्यः प्रतिवत्सरम् ॥ इति रामार्चनचन्द्रिकोक्तेः ।

चैत्रशुक्ल द्वादशी में दमनोत्सव करे । रामार्चनचन्द्रिका में कहा है कि—चैत्र शुक्ल द्वादशीतिथि में बौधायन आदि के कथनानुसार हरसाल दमनोत्सव (झूला) करना चाहिये ।

ऊर्जे व्रतं मधौ दोला श्रावणे तन्तुपूजनम् ।
चैत्रे च दमनारोपमकुर्वाणो व्रजत्यधः ॥ इति तत्रैव पाद्मवचनाच्च ।

वहीं पर पद्मपुराण का वचन है कि कार्तिक में व्रत, चैत्र में दोला (झूला), श्रावण में तन्तु (डोरा) पूजन और चैत्र में दमनारोप (दौना चढ़ाना) नहीं करनेवाले का अधःपतन होता है ।

शिवभक्तादिभिस्तु चतुर्दश्यादौ कार्यम् । तत्र स्यात्स्वीयतिथिषु वह्न्यादेर्दमनार्पणम् । इति तत्रैवोक्तेः ।

शिवभक्तादि तो चतुर्दशी आदि में करे । वहाँ पर कहा है कि—अपनी तिथियों में अग्नि आदि का दमनार्पण करे ।

(ज्योतिःप्रकाशेऽपि—स्वस्वदेवप्रतिष्ठायां मन्त्रसंग्रहणे तथा ।
पवित्रदमनारोपे ग्राह्या तत्तत्तिथिर्बुधैः ॥)

ज्योतिषःप्रकाश[1] में भी कहा है कि—देवताओं की अपनी अपनी प्रतिष्ठा में, मन्त्र ग्रहण में, पवित्रारोपण तथा दमनारोपण में उन उन तिथियों को विद्वान् ग्रहण करें ।

तिथयस्तु—वह्निर्विरञ्चिर्गिरिजा गणेशः फणी विशाखो दिनकृन्महेशः ।
दुर्गाऽन्तको विश्वहरिः स्मरश्च शर्वः शशी चेति तिथीषु पूज्याः ॥ इत्युक्ताः ।

तिथियों का वर्णन यों है—प्रतिपदातिथि में—अग्निदेव, द्वितीयातिथि में—विरञ्चि (ब्रह्मा), तृतीया तिथि में—गिरिजा (पार्वती), चतुर्थी तिथि में—गणेश, पञ्चमी तिथि में—फणी (सर्प), षष्ठीतिथि में—

१—छिपा हुआ अंश हस्तलिखित पुस्तक में नहीं है ।

विशाख (स्वामी कार्तिकेय), सप्तमीतिथि में—दिनकृत (सूर्य), अष्टमीतिथि में महेश (शिव), नवमीतिथि में—दुर्गा, दशमीतिथि में—अन्तक (यम), एकादशीतिथि में—विश्व (विश्वेदेवा), द्वादशीतिथि में—हरी, त्रयोदशीतिथि में—स्मर (कामदेव), चतुर्दशीतिथि में—शर्व (शिव) तथा पूर्णिमातिथि में चन्द्रमा का पूजन करे।

(दमनारोपणविधिः)

अथागमोक्तदीक्षावतो दमनारोपणविधौ रामार्चनचन्द्रिकायाम्। तत्रैकादश्याम्—

क्रियालोपविघातार्थं यत्त्वया विहितं प्रभो। न मे विघ्नो भवेदत्र कुरु नाथ दयां मयि॥

सर्वथा सर्वदा विष्णो मम त्वं परमा गतिः। उपवासेन त्वां देव तोषयामि जगत्पते॥

अनन्तर आगमोक्तदीक्षावालों को दमनारोपणविधि—रामार्चनचन्द्रिका में कहा है—हे प्रभो, उस एकादशीतिथि में क्रियालोप के विघात के लिये जो तुमने विधान कहा है। यहाँपर वह विघ्न मुझे न हो। हे नाथ, मेरे पर दया करो। हे विष्णो, सर्वदा सबप्रकार से तुम मेरी गति हो। हे जगत्पते, हे देव, तुमको उपवास के द्वारा प्रसन्न करता हूँ।

कामक्रोधादयोऽप्येते न मे स्युर्व्रतघातकाः। अद्यप्रभृति देवेश यावद्वैशेषिकं दिनम्॥

तावद्रक्षा त्वया कार्या सर्वस्यास्य जगत्पते।

काम, क्रोध आदि मेरे मन में घातक न हों। आज से लेकर जबतक विशिष्ट दिन हो तबतक हे देवेश, आप सब संसार (जगत्) की रक्षा करे।

इति देवं सम्प्रार्थ्य दमनमादाय पञ्चगव्येन प्रोक्ष्य वारिणा प्रक्षाल्याशोकमूले देवाग्रे वा—अशोकाय नमस्तुभ्यं कामस्त्रीशोकनाशन। शोकार्तिं हर मे नित्यमानन्दं जनयस्व मे॥ इत्यशोकम्,

इसप्रकार देवता की प्रार्थनाकर दमन को लेकर पञ्चगव्य से प्रोक्षणकर जल के द्वारा प्रक्षालनकर अशोक के मूल (जड) में या देव के अग्रभाग में यह पढ़े।

कामस्त्रीशोकनाशन—कामदेव की पत्नी के शोक को नाश करनेवाले अशोक के लिए नमस्कार है। मेरे शोकरूपी दुःख का हरण करो। मुझे नित्य आनन्द को देते रहो।

त्रुट्यादिकालपर्यन्तः कालरूपो महाबलः।

कलते चैव यः सर्वं तस्मै कालात्मने नमः॥ इति कालम्,

त्रुट्यादि कालपर्यन्त महाबली कालरूप सबको धारण करनेवाले तथा विनाश करनेवाले उस काल स्वरूप को नमस्कार है।

वसन्ताय नमस्तुभ्यं वृक्षगुल्मलताश्रय।

सहस्रसुखसंवास कामरूप नमोऽस्तु ते॥ इति वसन्तम्,

हे वृक्ष, गुल्म (तृणस्तंभ) लताश्रय (लता में आश्रय करनेवाले) हजारों प्रकार के सुख से निवास करनेवाले हे कामस्वरूपवसन्त, तुमको नमस्कार है।

कामभस्मसमुद्भूत रतिबाष्पपरिप्लुत।

ऋषिगन्धर्वदेवादिविमोहक नमोऽस्तु ते॥ इति दमनं च सम्पूज्य—

कामदेव की भस्म से पैदा हुए, रति के बाष्प (आंसुओं से संयुक्त) ऋषि, गन्धर्व, देवादिकों को मोहन करनेवाले तुमको नमस्कार है। इसप्रकार दमनक की पूजाकरे।

नमोऽस्तु पञ्चबाणाय जगदाह्लादकारिणे। मन्मथाय जगन्नेत्रे रतिप्रीतिप्रियाय ते॥

इति दमनमुपस्थाय 'ॐ कामाय नमः' इति सम्पूज्य निशायां देवताग्रे पञ्चवर्णैः चन्दनेन वा अष्टदलं कृत्वा बहिश्चतुरस्रं तद्बहिर्वर्तुलत्रयं तद्बहिर्वृत्तं चतुरस्रं च कृत्वा तत्र कुम्भं संस्थाप्योपरि वस्त्रेऽष्टदले दमन पूजयित्वा—

संसार को आह्लादित (प्रसन्न) करनेवाले, मन्मथ के लिए, संसार के नेता और रतिप्रीतिप्रिय के लिये नमस्कार है। इसप्रकार दमनक का उपस्थान करे। 'ॐ कामाय नमः' इस मन्त्र द्वारा पूजनकर रात्रि में देवता के आगे पांच वर्णों (पांच तरह के रंगों) से या चन्दन से अष्टदल को करे—उसके बाहर चतुरस्र बनावे, उसके बाहर के भाग में तीन वर्तुल (तीन गोलाकार) उसके बाहर वृत्त और चतुरस्र बनाकर उसमें कुंभ का स्थापनकर उसके ऊपर वस्त्र में अष्टदल बनाकर दमनक का पूजन करे।

पूजार्थं देवदेवस्य विष्णोर्लक्ष्मीपते प्रभो। दमन त्वमिहागच्छ सान्निध्यं कुरु ते नमः॥

'ॐ क्लीं कामदेवाय नमः। ॐ ह्रीं रत्यै नमः। इत्यावाह्य दिक्षु पूर्वादितः क्लीं कामाय नमः। (बीजादि नमोऽन्तं सर्वत्र) भस्मशरीराय नमः। अनङ्गाय नमः। मन्मथाय नमः। वसन्तसखाय नमः। स्मराय नमः। इक्षुचापाय नमः। पुष्पास्त्राय नमः। इति पूजयित्वा 'ॐ तत्स्वरूपाय विद्महे कामदेवाय धीमहि। तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात्॥ इत्यष्टोत्तरशतं संमन्त्र्य पूजयित्वा 'ह्रीं नमः' इति पुष्पाञ्जलिं दत्वा—

विष्णो, हे लक्ष्मीपते, हे प्रभो, देवताओं के देव (मालिक) पूजा के लिये हे दमन, आप यहाँ पर आयें तथा समीप में हों। आपको नमस्कार है।

ॐ क्लीं कामदेवाय नमः ? ॐ ह्रीं रत्यै नमः ? इन दोनों मन्त्रों से आवाहनकर पूर्वदिशा में ॐ क्लीं कामाय नमः १ अग्निकोण में—ॐ भस्मशरीराय नमः २ दक्षिणदिशा में—ॐ अनङ्गाय नमः ३ नैर्ऋत्यकोण में—ॐ मन्मथाय नमः ४ पश्चिमदिशा में—ॐ वसन्तसखाय नमः ५ वायव्यकोण में—ॐ स्मराय नमः ६ उत्तरदिशा में—ॐ स्मराय नमः ७ ईशानकोण में—ॐ इक्षुचापाय नमः १ ॐ पुष्पास्त्राय नमः २।८। इस प्रकार पूजन करके 'ॐ तत्स्वरूपाय विद्महे कामदेवाय धीमहि। तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात्॥ इसको एक सौ आठ बार जपकर तथा पूजनकर 'ॐ ह्रीं नमः' इस मन्त्र से पुष्पाञ्जलि देकर।

नमोऽस्तु पुष्पबाणाय जगदाह्लादकारिणे। मन्मथाय जगन्नेत्रे रतिप्रीतिप्रियाय ते॥ इति नत्वा—

आमन्त्रितोऽसि देवेश पुराणपुरुषोत्तम। प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सन्निध्यं कुरु केशव॥

क्षीरोदधिमहानागशय्यावस्थितविग्रह। प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सन्निधौ भव ते नमः॥

निवेदयाम्यहं तुभ्यं प्रातर्दमनकं शुभम्। सर्वदा सर्वथा विष्णो नमस्तेऽस्तु प्रसीद मे॥

पुष्पबाण के लिये, जगत् को आह्लाद करनेवाले, मन्थमथरूप के लिए, संसार के नेत्ररूप के लिए तथा रति के प्रियरूप को नमस्कार है। इसप्रकार नमस्कार करके देवेश, हे पुराणपुरुषोत्तम, मैं तुम्हारा आमन्त्रण करता हूँ क्योंकि प्रातःकाल तुम्हारी पूजा करूँगा। अतः हे केशव, सान्निध्य करो। मैं तुम्हारे लिए निवेदन करता हूँ। प्रातःकाल हे विष्णो, सर्वदा तुमको नमस्कार है। मेरे ऊपर प्रसन्न हों।

इति देवं संप्रार्थ्य पुष्पाञ्जलिं दत्वा अस्त्रेण चक्रमन्त्रेण वा रक्षां कुर्यात्। ततः प्रातर्नित्यपूजां कृत्वा पुनर्देवं सम्पूज्य दूर्वागन्धाक्षतयुक्तं दमनमादाय मूलमन्त्रं पठित्वा—

इसप्रकार देवता से प्रार्थनाकर पुष्पाञ्जलि देकर अस्त्र से या चक्र मन्त्र से रक्षा करे। तदनन्तर प्रातःकाल नित्य पूजाकर फिर से देवता की पूजाकर गन्ध, दूर्वा तथा अक्षत (चावल) से युक्त दमन को लेकर मूलमन्त्र को पढ़कर—

देवदेव जगन्नाथ वाञ्छितार्थप्रदायक। हृदिस्थान् पूरयेः कामान्मम कामेश्वरीप्रिय॥

हे देवदेव, हे जगन्नाथ, हे वाञ्छितार्थप्रदायक, हे कामेश्वरीप्रिय, मेरे हृदयस्थ इच्छाओं को पूरण करो।

इदं दमनकं देव गृहाण मदनुग्रहात्। इमां सांवत्सरीं पूजां भगवन्परिपूरय॥ इति मन्त्रान्ते पुनर्मूलमन्त्रेण देवे समर्पयेत्।

हे देव, इस दमन को मेरे अनुग्रह से ग्रहण करो। हे भगवन्, इस सांवत्सरी (अर्थात् प्रतिवर्ष होनेवाली) पूजा को पूरण करो। इसप्रकार मन्त्रान्त में फिर से मूल मन्त्र से देवता के लिए समर्पण करे।

ततोऽङ्गदेवताभ्यः स्वस्वमन्त्रेण दत्त्वा प्रार्थयेत्—मणिविद्रुममालाभिर्मन्दारकुसुमादिभिः ।
इयं सांवत्सरी पूजा तवास्तु गरुडध्वज ॥

तदनन्तर अंगदेवताओं के लिए अपने अपने मन्त्र से देकर प्रार्थना करे—हे गरुड़ध्वज, मणि, विद्रुम, माला, मन्दार, कुसुम आदियों से यह सांवत्सरी पूजा तुम्हारी हो ।

वनमालां यथा विष्णो कौस्तुभं सततं हृदि । तद्वद्दामनकीं मालां पूजां च हृदये वह ॥

जैसे विष्णु के हृदय में वनमाला तथा कौस्तुभमणि निरन्तर रहता है उसीतरह दामन की माला (सुगन्धित वनस्पति की माला) और पूजा को हृदय में वहन करो ।

जानताऽजानता वाऽपि न कृतं यत्तवार्चनम् । तत्सर्वं पूर्णतां यातु त्वत्प्रसादाद्रमापते ॥

जानकर या नहीं जानकर जो तुम्हारा पूजन नहीं किया है । हे उमापते, तुम्हारे प्रसाद से वह सब पूर्णता को प्राप्त हो ।

जितं ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन । नमस्तेऽस्तु हृषीकेश महापुरुषपूर्वज ॥

हे पुण्डरीकाक्ष, तुम्हारा जय हो, हे विश्वभावन, तुमको नमस्कार है, हे हृषीकेश, हे महापुरुषपूर्वज, तुमको नमस्कार है ।

'मन्त्रहीनम्'—इति च सम्प्रार्थ्य पञ्चोपचारैः पुनः सम्पूज्य पारयेदिति । दीक्षारहितानां तु नाम्नैव समर्पणम् । अत्र च द्वादशीमतन्त्रीकृत्य पारणाहे ग्राह्यम् ।

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं विधिहीनं च यद् भवेत् । तत्सर्वं क्षम्यतां देव प्रसीद परमेश्वर ॥ इस मन्त्र से प्रार्थनाकर पञ्चोपचार से फिर से पूजनकर नीराजना को कर पार लगे । दीक्षारहितों का तो नाम मन्त्रों से ही समर्पण करे । यहाँ पर द्वादशी (तिथि) को अतन्त्री (न त्यागकर) कर पारणादि ग्रहण करे ।

पारणाहे न लभ्येत द्वादशी घटिकाऽपि चेत् । तदा त्रयोदशी ग्राह्या पवित्रदमनार्पणे ॥ इति तत्रैवोक्तेः ।

पारणा के दिन में यदि द्वादशी एक घड़ी भी न प्राप्त हो तो पवित्र दमनार्पण में तो त्रयोदशी (तिथि) ग्रहण करे । यह बात वहाँ पर ही कही है ।

गौणोऽपि काल उक्तस्तत्रैव—हरौ न दमनारोपः स्यान्मधौ विघ्नतो यदि ।
वैशाखे श्रावणे वाऽपि तत्तिथौ स्यात्तदर्पणम् ॥

गौणकाल भी वहींपर ही कहा है कि चैत्रमास की द्वादशीतिथि में यदि विघ्न उपस्थित हो जाय तो वैशाख या श्रावण मास में उस तिथि में उसको अर्पण करना चाहिये ।

श्रावणावधिशुक्रास्ते कर्तव्यमिति नारदः । इति पाठान्तरम् । इदं च मलमासे न कार्यम् ।

नारद का कहना कि—श्रावणमास की अवधि तक शुक्रास्त में भी करना चाहिये । यह पाठान्तर है और इसको मलमास में नहीं करे ।

उपाकर्मोत्सर्जनं च पवित्रदमनार्पणम् । इति कालादर्शे मलमासवर्ज्येषु परिगणनात् ।

कालादर्श में लिखा है कि—उपाकर्म, उत्सर्जन, पवित्रार्पण और दमनार्पण इनका मलमास से अतिरिक्त महिनों में परिगणन है ।

उपाकर्म च हव्यं च कव्यं पर्वोत्सवं तथा । उत्तरे नियतं कुर्यात्पूर्वे तन्निष्फलं भवेत् ॥ इति माधवीये प्रजापतिवचनाच्च । शुक्रास्तादौ तु कार्यमेव पूर्वोक्तवचनात् ।

माधवीय में प्रजापति का भी वचन है कि—उपाकर्म, हव्य, (देवताओं का हविर्द्रव्य) कव्य (पितरों का द्रव्य) और पर्वोत्सव उत्तर (शुद्धमास) में निश्चित करे । उसी को पूर्व (मलमास) में करने से निष्फल होता है । पूर्वोक्त वचन से शुक्रास्त आदि में तो करना ही चाहिये ।

उपाकर्मोत्सर्जनं च पवित्रदमनार्पणम् । ईशानस्य बलिं विष्णोः शयनं परिवर्तनम् ॥ कुर्याच्छुक्रस्य च गुरोर्मौढ्येऽपीति विनिश्चयः । इति ज्योतिर्निबन्धे वृद्धगार्ग्यवचनाच्च । इति दमनारोपः ।

ज्योतिर्निबन्ध में वृद्धगार्ग्य का वचन है कि--उपाकर्म, उत्सर्जन, पवित्रार्पण तथा दमनार्पण, ईशानबलि, विष्णु का शयन तथा परिवर्तन (करवट बदलना भाद्रशुक्ला द्वादशी को होता है) शुक्र और गुरु के अस्त में भी निश्चय करे।

(अथानङ्गव्रतम्)

चैत्रशुक्लत्रयोदश्यामनङ्गव्रतम् । (हेमाद्रौ भविष्ये—
चैत्रोत्सवे सकललोकमनोविनोदे कामं त्रयोदशतिथौ च वसन्तयुक्तम् ।
पत्न्या सहार्च्य पुरुषप्रवरोऽथ योषित्सौभाग्यरूपसुतसौख्ययुतः सदा स्यात् ॥)

चैत्रशुक्ल त्रयोदशी में अनङ्गव्रत हेमाद्रि में भविष्यपुराण का मत है कि--संपूर्ण संसार के मन को आनन्द देनेवाले कामत्रयोदशीतिथि में और पत्नी (रति) वसन्त के सहित पूजनकर श्रेष्ठ पुरुष तथा स्त्री सदा सौभाग्यरूप एवं पुत्र सुख से संपन्न रहते हैं।

तत्र सा पूर्वा ग्राह्या । 'त्रयोदशतिथिः पूर्वः सितः' इति दीपिकोक्तेः । चैत्रशुक्लचतुर्दशी पूर्वा ग्राह्या ।

उसमें वह पूर्वा[2] ग्रहण करे। दीपिका में कहा है कि--त्रयोदशीतिथि शुक्लपक्ष की पूर्वा ले और चैत्र शुक्लपक्षकी चतुर्दशी पूर्वा (दमनपवित्ररोपणादि में) ग्रहण करे।

मधोः श्रावणमासस्य शुक्ला या तु चतुर्दशी । सा रात्रिव्यापिनी ग्राह्या नान्या शुक्ला कदाचन ॥ इति हेमाद्रौ बौधायनोक्तेः । 'परा पूर्वाह्णगामिनी' इति वा पाठः । अत्र केचित् यथाश्रुतमेवार्थं वर्णयन्ति ।

हेमाद्रि में बौधायन ने कहा है कि—चैत्रमास की और श्रावण मास के शुक्लपक्ष की जो चतुर्दशी है वह रात्रिव्यापिनी ग्रहण करे और अन्य शुक्लपक्ष की कभी भी ग्रहण न करे।

या पूर्वाह्णगामिनी परा (मासान्तरवर्तिनी शुक्ला पूर्वाह्णव्यापिनी उत्तराविद्धा) ले यह पाठ है। कोई यहाँ पर यथाश्रुत अर्थ ही का वर्णन करते हैं।

निशि भ्रमन्ति भूतानि शक्तयः शूलभृद्यतः । अतस्तत्र चतुर्दश्यां सत्यां तत्पूजनं भवेत् ॥ इति ब्रह्मवैवर्तात् । हेमाद्रिमाधवादिलिखनमप्येवम् ।

ब्रह्मवैवर्तपुराण का मत है कि--रात्रि में भूत, शक्ति तथा शूलधारी-महादेव भ्रमण करते हैं। अतः उस चतुर्दशी के रहने पर ही उनका पूजन करे। इसमें हेमाद्रि माधव आदि का लेख भी वही है।

सम्प्रदायविदस्त्वाहुः—चतुर्दशी तु कर्तव्या त्रयोदश्या युता विभो । इति स्कान्दमुत्सर्गः ।

सांप्रदाय के जाननेवालों का कहना है कि--हे विभो, त्रयोदशी से युक्त चतुर्दशी करना चाहिये। यह स्कन्दपुराण का उत्सर्ग[3] है।

तदपवादश्च–तृतीयैकादशी षष्ठी शुक्लपक्षे चतुर्दशी । पूर्वविद्धा न कर्तव्या कर्तव्या परसंयुता ॥ इति नारदीयवचनम्, तदपवादश्च–मधोः श्रावणमासस्य' इति, तत्र अपवादाभावे पुनरुत्सर्गस्य

१—अत्रायं धनुश्चिह्नान्तर्गतो भागो बहुत्रानुपलब्ध्या प्राक्षिप्त इति गम्यते—इति टीकायाम्।

२—कृष्णाष्टमी बृहत्तपा सावित्री वटपैत्रिकी । कामत्रयोदशी रंभा उपोष्याः पूर्वसंयुताः ॥

३—उत्सर्गविधि—(सामान्यशास्त्र) होममात्र आहवनीय अग्नि में प्राप्त है। आहवनीये जुहोति। उपवाद-शास्त्र—'पदे जुहोति' यह वाक्य पद के स्थल पर अग्निरहित प्रदेश में (हिरण्यमस्मिन्निधायाऽभिजुहोत्यदित्यास्त्वा' इति। अस्मिन् सप्तमे पदे हिरण्यं निधाय जुहुयात्) हवन विधान करना है। अतः पदहोम विशेष्यशास्त्र है। सामान्यशास्त्र आहवनीय को बाधा करता है।

स्थितिः इति न्यायेन पूर्वविद्धैव ग्राह्येति सिद्ध्यति । ब्रह्मवैवर्तं तु सामान्यरूपमन्यत्र सावकाशमिति । तेन पूर्वदिने मुहूर्तत्रयवेधे पूर्वा अन्यथोत्तरेति । चैत्रपूर्णिमा सामान्यनिर्णयात्परैव ।

इसका अपवाद है कि--तृतीया, एकादशी, षष्ठी और शुक्लपक्ष में चतुर्दशी पूर्वविद्धा न करे किन्तु पर-तिथि से युक्त करे--यह नारदीय वचन है। उसका उपवाद भी 'मधोः श्रावणमासस्य' है--उसमें अपवाद के अभाव में फिर से उत्सर्ग की स्थिति होती है। इस न्याय से पूर्वविद्धा (पूर्वविद्धात्वस्य रात्रिव्यापित्वव्याप-त्वात्) एतेन 'पूर्वाह्णव्यापित्वस्यापि विधाने वाक्यभेदः। साधुश्रावणशुक्लचतुर्दशीभिन्नानां पूर्वाह्णगानां ग्रहणस्याप्राप्तेरनुवादकत्वासंभवात्' इत्यपास्तम्) ही ग्रहण करे यह सिद्ध है। ब्रह्मवैवर्तपुराण तो सामान्य रूप है अन्यत्र सावकाश (चरितार्थ) होगा। उससे पूर्वदिन में तीन मुहूर्तवेध में पूर्वा ले। अन्यथा उत्तरा ले। चैत्रपूर्णिमा सामान्यनिर्णय से परा ही ले।

अत्र विशेषो निर्णयामृते विष्णुस्मृतौ-'चैत्री चित्रायुता चेत्स्यात्तस्यां चित्रवस्त्रप्रदानेन सौभाग्य-माप्नोति' इति ।

यहाँ पर विशेष निर्णयामृत में विष्णुस्मृति का वचन है कि--चैत्रमास की पूर्णिमा चित्रानक्षत्र से युक्त हो तो उस पूर्णिमा में चित्र (रंग बिरंगा) वस्त्र प्रदान से सौभाग्य प्राप्त होता है।

तथा ब्राह्मे—सन्दे वाऽर्के गुरौ वाऽपि वारेष्वेतेषु चैत्रिका ।
तत्राऽश्वमेधजं पुण्यं स्नानश्राद्धादिभिर्भवेत् ॥ इति ।

और ब्रह्मपुराण में कहा है कि--शनिवार में या रविवार में या गुरुवार में भी चैत्रमास की पूर्णिमा हो तो उसमें स्नान, श्राद्धादि से अश्वमेध में होनेवाला पुण्य प्राप्त होता है।

(सर्वदेवानां दमनकपूजा)

अत्र सर्वदेवानां दमनपूजोक्ता—तत्रैव वायवीये—संवत्सरकृतार्चायाः साफल्यायाखिलान् सुरान् ।
दमनेनार्चयेच्चैत्र्यां विशेषेण सदाशिवम् ॥ इति ।

यहाँ पर सब देवताओं की दमनक पूजा कही है। वहीं पर वायुपुराण में कहा है कि--संवत्सर में की हुई पूजा की सफलता के लिए संपूर्ण देवताओं की चैत्र की पूर्णिमा में दौने से पूजा करे। विशेषकर शिव जी की पूजा करे।

अत्र स्वतिथ्या समुच्चय इति केचित् । स्वीयतिथ्यामकरणेऽत्र दमनपूजनमित्यन्ये । दीक्षिततदित-रविषयत्वेन व्यवस्थेत्यपरे । इयं मन्वादिरपि सा च पूर्वमुक्ता ।

यहाँ पर कोई अपनी तिथि से समुच्चय मानते हैं। किसी अन्य का मत है कि--अपनी तिथि में नहीं करने पर यहाँ पर दमनक पूजा करे। यह दीक्षित से इतर विषयत्व से व्यवस्था करे—यह इतरमत है। यह मन्वादि भी है। यह बात पहले कही है।

(अथ महावारुणीसंज्ञकयोगविचारः)

चैत्रकृष्णत्रयोदश्यां महावारुणीसंज्ञको योगो गौडेषु प्रसिद्धः । तदुक्तं वाचस्पतिकृतौ शूलपाणौ च स्कान्दे—वारुणेन समायुक्ता मधौ कृष्णा त्रयोदशी । गङ्गायां यदि लभ्येत सूर्यग्रहशतैः समा ॥

चैत्र कृष्ण त्रयोदशी में महावारुणीसंज्ञक योग गौडों में प्रसिद्ध है। यह वाचस्पति कृत शूलपाणि में और स्कन्दपुराण में कहा है--वरुणी से युक्त चैत्रमास के कृष्णपक्ष[1] की त्रयोदशी में यदि गंगा[2] प्राप्त हो जाय तो सौ सूर्यग्रहण के समान होती है।

१—तिथिकृत्यत्वात् कृष्णादिर्मासो न तु शुक्लादिः। चित्रातः शतभिष एकादशत्वेन पञ्चदशोऽपि चैत्रोत्तरत्रयो-दश्या असंभवात् । इति टीकायाम् ।

२—ब्रह्माण्डपुराणे—दिवा रात्रौ च सन्ध्यायां गङ्गायां च प्रसङ्गतः । स्नात्वाऽश्वमेधजं पुण्यं गृहेऽप्युद्गततज्जलैः ।
यत्तु—त्रयोदश्यां तृतीयायां दशम्यां च विशेषतः । शूद्रविट्क्षत्रियाः स्नानं नाचरेयुः कथं च न ॥ स्नानं कुर्वन्ति या नार्यश्चन्द्रे शतभिषाङ्गते । सप्त जन्म भवेयुस्ता दुर्भगा विधवा ध्रुवम् ॥ इति निषेधवचनं तु भोगार्थस्नानपरम् । भोगाय क्रियते यत्तु स्नानं यादृच्छिकं नरैः । तन्निषिद्धं दशम्यादौ नित्यनैमित्तिके न तु ॥

शनिवारसमायुक्ता सा महावारुणी स्मृता । गङ्गायां यदि लभ्येत कोटिसूर्यग्रहैः समा ॥

वह शनिवार से युक्त हो तो महावरुणी होती है। यदि गंगा का लाभ हो जाय तो करोड़ों सूर्यग्रहण के समान है।

शुभयोगसमायुक्ता शनौ शतभिषा यदि । महामहेति विख्याता त्रिकोटिकुलमुद्धरेत् ॥

यदि शनिवार शतभिषानक्षत्र तथा शुभ योग से युक्त हो तो उस वारुणी को 'महामहावरुणी' शब्द से प्रसिद्धि होती है। वह तीन करोड़ कुल का उद्धार करती है।

तत्रैव ज्योतिषे—चैत्रासिते वारुणऋक्षयुक्ता त्रयोदशी सूर्यसुतस्य वारे ।
योगे शुभे सा महती महत्या गङ्गाजलेऽर्कग्रहकोटितुल्या ॥ इति ।

वहीं पर ज्योतिष में कहा है कि--चैत्रमास के कृष्णपक्ष में त्रयोदशी सूर्यपुत्र (शनिवार) के वार में तथा शुभयोग में वह बड़ी से बड़ी (अर्थात्--महामहावारुणी) होती है। वह गंगाजल में सूर्यग्रहण के करोड़ों के तुल्य मानी जाती है।

त्रिस्थलीसेतौ ब्रह्माण्डपुराणे—वारुणेन समायुक्ता मधौ कृष्णा त्रयोदशी ।
गङ्गायां यदि लभ्येत शतसूर्यग्रहैः समा ॥ इति ।

त्रिस्थलीसेतु में ब्रह्माण्डपुराण का मत है कि—शतभिषानक्षत्र से युक्त चैत्रमास के कृष्णपक्ष की त्रयोदशी को यदि गङ्गा (गंगाजल) मिले तो सौ सूर्यग्रहण के समान होती है।

कल्पतरौ ब्राह्मे—मधौ कृष्णत्रयोदश्यां शनौ शतभिषायुता ।
वारुणीति समाख्याता शुभे तु महती स्मृता ॥

कल्पतरु में ब्रह्मपुराण का मत है कि—शनिवार तथा शतभिषानक्षत्र से युक्त चैत्रमास के कृष्णपक्ष की त्रयोदशी हो तो उसे 'वारुणी' नाम से कहा जाता है। वही शुभ योग से युक्त होने पर महावारुणी हो जाती है।

चैत्रकृष्णचतुर्दश्यां विशेषः पृथ्वीचन्द्रोदये पुलस्त्यः—चैत्रकृष्णचतुर्दश्यां यः स्नायाच्छिवसन्निधौ ।
न प्रेतत्वमवाप्नोति गङ्गायां तु विशेषतः ॥ इति ।

अत्र पूर्वा ग्राह्या कृष्णपक्षस्थत्वात् । गौडैस्त्वेतदेव शुक्लचतुर्दश्यामित्येवं देवलीयत्वेन पठितम् ।

चैत्र कृष्णपक्ष की चतुर्दशी में विशेष पृथ्वीचन्द्रोदय में पुलस्त्य का वचन है कि—चैत्र कृष्णपक्ष की चतुर्दशी में जो शंकर (शिव) की सन्निधि (समीप) में स्नान करता है उसे प्रेतत्व (अर्थात्—प्रेत की योनि) नहीं प्राप्त होती है। यदि वह गंगा में निश्चयरूप से स्नान करे तो विशेषकर प्रेतयोनि नहीं मिलती है।

यहाँ पर कृष्णपक्ष की होने से पूर्वा (पहली) ग्रहण करे। गौडों ने तो इसीको ही शुक्लपक्ष की चतुर्दशी' में जो इसप्रकार कहा गया है—वह देवल वचनपरक है।

इति चैत्रमासः ।

(स्कन्दपुराणमत से)

(१) जो व्यक्ति किसी भी पौर्णमासी और नवमीतिथिपर दूध से भगवती दुर्गा को स्नान कराता है। उसे 'वाजपेययज्ञ' का फल मिलता है। (२) जो शुक्लपक्ष की नवमी, चतुर्दशी और अष्टमीतिथि में श्री परमेश्वरी देवी का त्रिकाल पूजन करता है। वह देवी के समीप जाता है। (३) जो नवमीतिथि में उपवासपूर्वक चण्डिका का पूजन करता है वह इस भूतल में राजा होता है। (४) जो जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी पवित्र होकर चण्डिका का पूजन करता है। उसे दश 'अश्वमेधयज्ञ' का फल मिलता है। (५) जो पर्वकालों में चण्डिका का पूजन करता है। वह ब्रह्मलोक में बहुत काल तक रहता है। (६) जो पुण्य चार मास में चण्डिका के पूजन से मिलता है वह कार्तिकमास की नवमीतिथि में पूजन से प्राप्त होता है। (७) आश्विनमास के शुक्लपक्ष की नवमीतिथि में जो अर्चन चण्डिका का करता है। उसे हजार 'अश्वमेधयज्ञ' का तथा सौ 'राजसूययज्ञ' का फल मिलता है। (८) जो व्यक्ति महिने महिने पर भक्ति भाव से चण्डिका का पूजन करता है। उसे षाण्मासिक पुण्य का फल नवमीतिथि में करने मात्र से मिल जाता है।

(६) जो व्यक्ति कार्तिकमास की पूर्णिमा में, सोमवार में या आश्विनमास में सूक्ष्मधारा द्वारा दुर्गा का अहोरात्र घृत का अभिषेक करता है। उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। (१०) आषाढमास की पूर्णिमातिथि में अम्बिका का जो अर्चन करता है। उसे 'अग्निष्टोमयज्ञ' का फल मिलता है और सूर्यलोक में चला जाता है। (११) जो उपवासपूर्वक माघ मास की पूर्णिमा में विधिवत् दुर्गा की पूजा करता है। उसे परमगति की प्राप्ति होती है। (१२) जो दक्षिणायन में अम्बिका का पूजन करता है उसे 'अश्वमेधयज्ञ' का फल होता है। अन्त में विष्णुलोक चला जाता है। (१३) जो उपवासपूर्वक चन्द्र और सूर्यग्रहण में दुर्गा का अर्चन करता है। उसे पुत्र होता है। (१४) शान्तिकामनावाले व्यक्ति सूर्य के ग्रहण में उपवासपूर्वक दुर्गा का अर्चन करें। उससे उसे परमपद मिलता है। (१५) तान्त्रिक वाममार्गी व्यक्ति रुधिर आदि द्वारा पूजन करने से ब्रह्मलोक जाते हैं। (१६) जो व्यक्ति रत्नमयी दुर्गा का पूजन करता है उसे दुर्लभ ब्रह्मत्वपद मिलता है। (१७) इन्द्रनीलमयी दुर्गा का अर्चन करने से विष्णुलोक प्राप्त होता है। (१८) धनार्थी हेममयी दुर्गा का अर्चन करें। (१६) रौप्यमयी दुर्गा का पूजन करने से सारे कार्य सफल होते हैं। (२०) पित्तलमयी अम्बिका अर्चन करने से इच्छित कार्य होते हैं। (२१) कांस्यमयी दुर्गा का पूजन करने से इच्छित लोक मिलता है। (२२) पार्थिवमयी दुर्गा का अर्चन करने से महापण्डित होता है। (२३) स्फटिकमयी अम्बिका का पूजन करने से उसको पेयवस्तु का भण्डार हो जाता है। (२४) रत्नमयी दुर्गा का पूजन करने से वह महान् तेजस्वी प्रतापी होता है। (२५) ताम्रमयी चण्डिका का अर्चन करने से सूर्य की तरह तेजस्वी होता है। (२६) मुक्ताफलमयी देवी का पूजन करने से उसमें शीतलता आती है तथा चन्द्रमा की तरह प्रतापी होता है। (२७) प्रवालमयी देवी का अर्चन करने से उसमें आकर्षण होता है। (२८) त्रपुसीसमयी देवी का पूजन करने से जगत् में उसका प्रभाव होता है। (२६) वारिजा देवी का पूजा करने से अत्यन्त पराक्रमी होता है। (३०) लोहमयी देवी का अर्चन से सिद्धिबल प्राप्त होकर परमपद को प्राप्त होता है। (३१) त्रिलोहिनीदेवी के पूजन से भोगादि से युक्त होता है। (३२) वज्रलोहमयी देवी के अर्चन से मुक्ति प्राप्त होती है। (३३) मणीमयी देवी के पूजन से मन के चाहे सारे कार्य प्राप्त होते हैं। (३४) सोते, बैठते, उठते, मार्ग में चलते हुए, भोजन करते हुए भी जो दुर्गा भगवती का स्मरण करता है। उसके सारे बन्धन छूट जाते हैं। (३५) जो देवी के मन्दिर में भक्ति से नित्य झाड़ू लगाता है वह संपत्ति (ऐश्वर्य) से संपन्न होता है। (३६) देवी के घर में जो गोबर से लीपता है उसे इच्छित फल मिलते हैं। (३७) जो अतिप्रिय दुर्गा को गुग्गुल को घृत युक्तकर छमास तक अर्पण करता है उसे एक हजार गोदान करने का फल मिलता है। (३८) जो अगुरु धूप देवी को देता है उसे सब यज्ञों का फल मिलता है। (३६) दुर्गा को गन्ध चढ़ाने से 'ज्योतिष्टोमयज्ञ' का फल मिलता है। (४०) चण्डिका का कृष्णागरु के लेपन से 'वाजपेययज्ञ' का फल मिलता है। (४१) भगवती को कुङ्कम के लेपन से एक हजार गोदान का फल मिलता है। (४२) परमेश्वरी को चन्दन, अगरु, कस्तूरी और कुंकम का लेपन करने से एककल्प तक स्वर्ग में रहता है। (४३) जो वेद-वेदाङ्ग के ज्ञाता को सौ सौ सुवर्ण के टुकड़ों को देने से फल मिलता है वह फल चण्डिका के पूजन करनेमात्र से मिल जाता है। (४४) नवमीतिथि में—बिल्वपत्रों की माला दो या बिल्वपत्र तथा गुग्गुल से देवी का पूजन करने से 'राजसूययज्ञ' का फल मिलता है। (४५) करवीर की माला से अर्चन करने से तथा द्रोणपुष्प की माला द्वारा चण्डिका का अर्चन करने से 'राजसूययज्ञ' का फल तथा अन्त में स्वर्ग भी मिलता है। (४६) वन में होनेवाले पुष्पों की माला द्वारा अर्चन करने से पितृलोक मिलता है। (४७) शमीपुष्प की माला से पूजन करने से एक हजार गोदान का फल मिलता है। अन्त में विष्णुलोक चला जाता है।

(एक लेख से)

मार्कण्डेयपुराण का श्री दुर्गासप्तशती एक अंश है। इसमें सातसौ मन्त्र माने गए हैं। यह तेरह अध्यायों में विभक्त है। जिनकी श्लोक संख्या ५३५ है। ५७ उवाच, ४२ अर्धश्लोक और पांचवे अध्याय के ६६ अवदानों को एक २ मन्त्र मानकर मन्त्र संख्या ७०० मानी गई है। प्राचीन हस्तलिखित पुस्तक में इसकी अक्षर संख्या ६,५३१ दी गई है। श्री अविनाशचन्द्र मुखोपाध्याय ने इसमें पाठभेद और मन्त्रभेद का बंगला लिपी में जो संस्करण प्रकाशित किया है उसमें ३१३ पाठभेदों का उल्लेख है। साथ ही ३३ श्लोक का भी पाठ टिप्पणी के रूप में जगह जगह पर उद्धृत किया है। जो अब सप्तशती से निकाल दिया है। इसीप्रकार दुर्गाभक्तितरंगिणी में सप्तशती की मन्त्रगणना चार प्रणालियों में उल्लेख है। प्रथम कात्यानीतन्त्र की २—गौडपादीयभाष्य की ३—नागोजीभट्ट की ४—गोविन्द की। तरङ्गिणी में मन्त्रगणना की जो सूचि भी दी गई हैं जिससे प्रकट होता है कि १०८ मन्त्रों में भेद है। एक सूची

में यदि एक श्लोक मन्त्र माना गया तो दूसरी में वह श्लोक मन्त्र नहीं माना गया है। इन पाठभेदों और मन्त्रभेदों के कारण आज सप्तशती की कोई भी प्रति प्रामाणिक नहीं रह गयी है।

(१) मरीचिकल्प मत से दुर्गापाठ के आदि में रात्रि सूक्त तथा अन्त में देवीसूक्त को पढ़े। (२) वाराही तन्त्र मत से—सृष्टि, स्थिति तथा संहार के क्रमों से विभिन्न उद्देश्यों की सिद्धि के लिए पाठ प्रणाली कही गई है। साथ में नवार्णमन्त्र से संपुटित और ऋष्यादिन्यास के सहित। (३) मेरुतन्त्र मतसे—मूलमन्त्र से सम्पुटित दुर्गा पाठ करने को कहा है। साथ ही अलग अलग चरितों का पाठ उद्देश्य-विशेष के लिए है। (४) एक मत से दुर्गा का पाठ उसके छः अंगों के सहित करे। छः अंग ये हैं—कवच, अर्गला, कीलक, प्राधानिक-रहस्य, वैकृतिक-रहस्य और मूर्ति-रहस्य। (५) सप्तशतीरहस्य नामक पुस्तक में सप्तशती का पाठ करने के पहले ग्यारह प्रकार के न्यासों के करने की व्यवस्था बतायी गयी है। (६) सप्तशती के प्रसिद्ध टीकाकार नागोजी भट्ट का मत है कि—पहले कवच, अर्गला और कीलक का पाठ करे, तब ऋष्यादिन्यास के सहित नवार्ण मन्त्र का जप करे इसके बाद रात्रिसूक्त और अन्त में देवीसूक्त का पाठ करे। तदनन्तर एक सौ आठ बार नवार्ण का जप करे। (७) नीलकण्ठ का भी उपरोक्त यही क्रम है। नवार्ण मन्त्र का अन्त में जप करना उनकी प्रक्रिया में नहीं है। नागोजी भट्ट से उनका इतना ही मत भेद है। (८) एक यह भी मत है कि—सप्तशती का पाठ करने के पूर्व उसका शापोद्धार, उत्कीलन आदि करना चाहिये। (९) दूसरा मत यह है कि—सप्तशती का पाठ करने के पहले मार्कण्डेयपुराण का सरस्वतीसूक्त अवश्य पढ़ना चाहिये।

(क) दुर्गाभक्तितरंगिणी में सप्तशती पाठ करने के ९ प्रकार बताये गए हैं। (१) महाविद्या—इसमें पहले दूसरे और तीसरे चरित का क्रमपूर्वक पाठ किया जाता है। (२) महातन्त्री—इसमें पहले पहला चरित फिर अन्तिम चरित और तब मध्यम चरित पढ़ा जाता है। (३) चण्डी—इसमें महाविद्या का ही क्रम ग्रहण किया गया है, नामभेद भर है। (४) सप्तशती—इसमें पहले मध्यम चरित फिर आदि चरित और अन्त में अन्तिम चरित पढ़ा जाता है। (५) मृतसंजीवनी—इसमें पहले अन्तिम फिर आदि और तब मध्यम चरित पढ़ा जाता है। (६) महाचण्डी—इसमें पहले अन्तिम, तब मध्यम और अन्त में आदि चरित। (७) रूपदीपिका—इसमें नवार्णमन्त्र के साथ 'रूपं देहि' इस अर्द्धश्लोक का प्रत्येक श्लोक में संपुटकर के पाठ किया जाता है। (८) चतुःषष्टियोगिनी—इसमें ६४ योगिनियों की योजना करके पाठ करते हैं। (९) परा—इसमें परा बीज की योजना की जाती है। परन्तु इन प्रकारों के अनुसार सप्तशती का पाठ करने का क्या फल होता है इसका उल्लेख नहीं किया गया है। मातृकाभेदतन्त्र में एक सकृद् पाठ का क्रम बताया गया है। इसके अनुसार विनियोग में सप्तशतीमालामन्त्र मानीगयी पाठ के प्रारम्भ और अन्त में एक बीजात्मक नवार्ण मन्त्र जप करने का विधान है। इनके सिवा सप्तशती के पाठ की प्रक्रिया में वृद्धिपाठ शृङ्खला पाठ, सम्पुटपाठ, शतचण्डी, सहस्रचण्डी आदि पाठक्रम भी है।

(आश्विनमासमाहात्म्य से)

(१) सौवर्णीं राजतीं ताम्रीं मृन्मयीं चापि कारयेत्। अभावे यन्त्ररूपेयं तदभावे फलादिकम्॥ आवाहयेच्च तां भक्त्या पूजयेद्विधिपूर्वकम्। (२) जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी। दुर्गा क्षमा शिवाधात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते॥ अनेनैव तु मन्त्रेण जपहोमादिकारयेत्॥ (३) बध्वा मालां घटस्योर्ध्वं दीपं संस्थाप्य भक्तितः। घृताक्तं तैलपूर्णं वा पूजयित्वा न चालयेत्॥ (४) एकवर्षा तु या कन्या पूजार्थं तां वर्जयेत्। गन्धपुष्पफलादीनां प्रीतिस्तवन-पूर्वकम्॥ द्विवर्षकन्यामारभ्य दशवर्षावधिक्रमात्। अत ऊर्ध्वं तु या कन्या वर्जिता सर्वकर्मभिः॥ दुःखदारिद्र्यनाशाय शत्रूणां नाशहेतवे। आयुष्यबलवृध्यर्थं कुमारीं पूजयेन्नरः॥ (५) दुर्गमे दुस्तरे कार्ये भवदुःखविनाशिनीम्। पूजयामि सदा भक्त्या दुर्गां दुर्गार्तिहारिणीम्॥ (६) हीनाधिकाङ्गीकुष्ठाङ्गीविकारा कुलिता तथा। ग्रन्थस्फुटितसर्वाङ्गी रक्तपूय-व्रणाङ्किता॥ वर्जयेत्ताः प्रयत्नेन पूजयेच्छुभलक्षणाम्। (७) ब्राह्मणी सर्वकार्येषु पूजार्थे शूद्रवंशजा। दारुणे चान्त्य-जातीनां पूजयेद्विधिना नरैः॥

अथ निर्णयसिन्धुः

(प्राचीन व्यवस्थाओं का संग्रह)

(स्वर्गीय-महामहोपाध्याय श्री पं० विद्याधर जी गौड़ द्वारा लिखित

दौलतराम गौड़

(नवरात्रपारणानिर्णयः)

आश्विनशुक्लनवमी षष्टिदण्डा, द्वितीयदिने च वृद्ध्या २३ पर्यन्तं गता, अनन्तरं दशमी, तदनन्तरदिनेऽपि ३४ यावद् दशमी, तत्र नवरात्रपारणा कदा कर्तव्येति सन्देहे सञ्जाते—पूर्वदिने शेषनवम्यनन्तरं दशमीलाभात् दशम्यामेव पारणविधानात् 'यदा दिनद्वये नवमी तदा उपोष्य तिथ्यन्ते पारणा' इति निर्णयसिन्धुवाक्यात् 'अथ नवमी षष्टिदण्डा द्वितीयदिने शेषयुक्ता दशमी, तत्रापि नवम्या युक्तदशम्यामेव विसर्जनपारणे' इति धर्मसिन्धुवचनाच्च नवमीविद्धदशम्यामेव पारणम्, न तु शेषदशम्याम्। पूर्वदिने कर्मकालपर्याप्ततिथिलाभात् द्वितीयदिने तदभावान्नवमीवेधस्य क्वचिदपि निषेधाश्रवणाच्चेति युक्तं पश्यामः।

(दुर्गापाठक्रमः)

कवचार्गलाकीलकानां पौर्वापर्यक्रमविचारे इदानीमुपलभ्यमानपुस्तकेषु यः पाठक्रमस्तस्यादरणीयत्वेन मार्कण्डेयपुराणे कवचार्गलयोः पौर्वापर्येण पाठात् 'कृत्वा तु कवचं पुरा' इति विधिबलात् कवचस्य प्रथमपठनीयत्वेन तत्सहचरितस्यार्गलास्तोत्रस्य तदनन्तरमेव पठित्वात् 'इदं स्तोत्रं पठित्वा तु' इति बलाच्च अर्गलास्तोत्रस्य महास्तोत्रपूर्वभावित्वश्रवणात् यो निष्कीलां विधायैनामिति कीलकं विना स्तोत्रपाठस्य निषेधश्रवणाच्च कीलकस्यापि महास्तोत्रपूर्वभावित्वमिति प्रथमः कवचं ततोऽर्गला ततः कीलकमित्ययमेव पाठक्रमः साधीयानिति।

(श्वेतयवाङ्कुरशान्तिप्रकारः)

शंखः—इषे चैत्रे जनाः सर्वे कुर्वन्ति शक्तिपूजनम्। तस्याग्रे शुद्धदेशात्तु गृहीता मृत्तिकास्तरेत्॥ सेतुस्तस्या दृढां कृत्वा तत्र बीजानि निर्वपेत्। यवान् पुष्टान् गृहीत्वाथ विविधान्नं न निर्वपेत्॥ शुद्धान् यवान् मन्त्रैश्च मन्त्रयित्वा विकीरयेत्। असितः—तद्दिने चेत्प्ररोहन्ति धनमायुर्हरा भवेत्॥ द्वितीये दृश्यते शस्यं धनदं कीर्तिदं भवेत्। तृतीये दृश्यते धान्यं सर्वसिद्धिविधायकम्॥ देवलः—हरिताः कीर्तिदा शस्याः पीता लक्ष्मीः प्रदायकाः॥ कृष्णाश्च पाटलाः श्वेता धनमायुर्हरा स्मृताः॥ कात्यायनः—दुर्गायाः पुरतः शस्यं ज्वालारूपेण ते स्मृताः। ज्वालायां यवमध्ये तु पृथक् श्वेतो भवेद् यदा। अग्न्यादिस्तेयतो दुःखं विदेशाद् स्वजनाद् भयम्। मार्कण्डेयः—यवांकुराश्च ज्वालाया शिरःकेशाः प्रकीर्तिताः। तच्छ्वेतत्वनिवृत्त्यर्थं शान्तिं वैराजिकं चरेत्॥ इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्य पां सुरे स्वाहा॥ त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः। अतो धर्माणि धारयन्॥ विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे। इन्द्रस्य युज्यः सखा॥ तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्॥ जातवेदसे सुनवामसोममराती यतो निदहाति वेदः। स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वानावेव सिंधुः दुरितात्यग्निः॥ मन्त्रान्ते च नमो ब्रूयाद् स्वाहान्ते च निगद्यते। शंखः—वैराजं नामशान्तिश्च ग्रहयज्ञसमन्विता। सप्तशती समायुक्ता कृत्वा विघ्नानि नाशयेत्। देवलः—शान्तिं कृत्वाथ वैराजं पश्चात् शस्यं खनेद् बुधः। गंधादिभिश्च सम्पूज्य सुवर्णस्य शलाकया। खनेद् वा राजवेन्यैः देव्यास्तं केशस्वरूपिणम्। स्वर्णैर्वा राजते केशे वेष्टयित्वा तु धूपयेत्। मार्कण्डेयः—भुजे कण्ठे शिरो देशे यो धारयति चादृतः। तस्य दर्शनमात्रेण भूता वै ब्रह्मराक्षसाः। वेतालाः प्रेतडाकिन्यः शाकिन्यस्तस्करादयः। विषभूतज्वराग्न्यादि विनश्यति न संशयः। जृंभणं दुष्टदमनं भूतप्रेतनिवारणम्। इति रुद्रयामलोक्तशान्तिपटले श्वेतयवोत्पत्तिशान्तिः।

श्री [illegible]

अथ वैशाखमासः

(मेषसंक्रमणे पुण्यकालकथनम्)

मेषसंक्रमे प्रागपरा दश घटिकाः पुण्यकालः। रात्रौ तु प्रागुक्तम्।

मेष की संक्रान्ति में पहली तथा परा (पिछली) दश, दश, घड़ी पुण्यकाल कहा है। रात्रि में संक्रान्ति हो तो इसका निर्णय पूर्व कह चुके हैं।

(धर्मघटादिदानकथनम्)

अत्र धर्मघटादिदानमुक्तं पृथ्वीचन्द्रोदये पाद्मे—तीर्थे चानुदिनं स्नानं तिलैश्च पितृतर्पणम्। दानं धर्मघटादीनां मधुसूदनपूजनम्॥ माधवे मासि कुर्वीत मधुसूदनतुष्टिदम्॥

यहाँ पर धर्मघट आदि का दान पृथ्वीचन्द्रोदय में पद्मपुराण का कथन है कि—तीर्थ में प्रतिदिन स्नान, तिलों द्वारा पितरों का तर्पण, धर्मघट आदि का दान और मधुसूदन का पूजन वैशाखमास में करे इससे मधुसूदन प्रसन्न होते हैं।

(अथ वैशाखस्नानम्)

तत्र पृथ्वीचन्द्रोदये विष्णुस्मृतिपाद्मयोः—तुलामकरमेषेषु प्रातःस्नानं विधीयते। हविष्यं ब्रह्मचर्यं च महापातकनाशनम् ॥ इति सौरमास उक्तः। अन्यत्पक्षद्वयमुक्तं। तत्रैव पाद्मे—मधुमासस्य शुक्लायामेकादश्यामुपोषितः। पञ्चदश्यां च भो वीर मेषसंक्रमणे तु वा ॥ वैशाखस्नाननियमं ब्राह्मणानामनुज्ञया। मधुसूदनमभ्यर्च्य कुर्यात्सङ्कल्पपूर्वकम् ॥

पृथ्वीचन्द्रोदय में विष्णुस्मृति तथा पद्मपुराण का कथन है कि—तुला, मकर और मेष की संक्रान्ति पर प्रातःस्नान का विधान है। हविष्यान्नभक्षण तथा ब्रह्मचर्य से युक्त होने से महापातक का नाश होता है। इसप्रकार सौरमास को कहा। दूसरे दो पक्षों को कहा। वहाँ ही पर पद्मपुराण का मत है कि—भो वीर, चैत्रमास के शुक्लपक्ष की एकादशीतिथि में, पूर्णिमातिथि में या मेषसंक्रमण (संक्रान्ति) में उपवासकर ब्राह्मणों की आज्ञा से मधुसूदन का पूजनकर संकल्पपूर्वक वैशाख स्नान का नियम करे।

(मन्त्रकथनम्)

तत्र मन्त्रः—वैशाखं सकलं मासं मेषसंक्रमणं रवेः। प्रातः सनियमः स्नास्ये प्रीयतां मधुसूदनः ॥

उसमें मन्त्र का अर्थ यों है—संपूर्ण वैशाखमास तथा मेष के सूर्य में प्रातःकाल नियमपूर्वक स्नान करूँगा। इसलिये मधुसूदन आप प्रसन्न हों।

मधुहन्तुः प्रसादेन ब्राह्मणानामनुग्रहात्। निर्विघ्नमस्तु मे पुण्यं वैशाखस्नानमन्वहम् ॥

मधु को नष्ट करनेवाले आपके प्रसाद से ब्राह्मणों के अनुग्रह से पुण्यदायक वैशाखस्नान प्रतिदिन मेरा निर्विघ्न हो।

माधवे मेषगे भानौ मुरारे मधुसूदन। प्रातःस्नानेन मे नाथ फलदो भव पापहन् ॥ इति।

वैशाख में मेष के सूर्य में हे मुरारे, हे मधुसूदन, हे नाथ, हे पापहन्, प्रातःस्नान से मेरे सब मनोरथ सफल हों।

(अथ तीर्थविशेषे विशेषकथनम्)

तीर्थविशेषोऽपि तत्रैवोक्तः—मेषसंक्रमणे भानोर्माधवे मासि यत्नतः।
महानद्यां नदीतीर्थे नदे सरसि निर्झरे ॥
देवखातेऽथवा स्नायाद्यथा प्राप्ते जलाशये। दीर्घिकाकूपवापीषु नियतात्मा हरिं स्मरन् ॥ इति।
सङ्कल्पे च तत्तत्तीर्थनाम ग्राह्यम्।

तीर्थविशेष में भी वहाँ पर कहा है—मेष की संक्रान्ति के सूर्य में, यत्न से माधवमास में, महानदी में, नदीतीर्थ में, नद में, तालाब में, झरने में, देवखात (   ) में या यथा प्राप्त जलाशय में, कूवें में, वापी में बावड़ी में नियमित मन से हरि को स्मरण करता हुआ स्नान करे। और संकल्प में उन उन तीर्थों का नाम[1] ग्रहण करे।

(अज्ञाते तु विशेषः)

अज्ञाते तु विष्णुतीर्थमिति वदेत्। यदा न ज्ञायते नाम तस्य तीर्थस्य भो द्विजाः।
तत्रेत्युच्चारणं कार्यं विष्णुतीर्थमिदं त्विति ॥

अज्ञान में जिस नदी नद आदि का नाम न मालुम हो तो 'विष्णुतीर्थ' को कहे।

१—तीर्थस्य देवता विष्णुः सर्वत्रापि। इति सर्वत्रपदात्। एवं 'नद्यां नद्यन्तरस्मृतिः, इति निषेधो गङ्गास्मरणे न प्रवर्तते। स्नानकालेऽन्यतीर्थेषु कीर्त्यते जान्हवीजलैः। विना विष्णुपदीमन्यत्समर्थं नावशोधने ॥ इति स्कान्देनान्यतीर्थे भागीरथीस्मरणकार्यताबोधनात्। केचित्तु गङ्गायमुनाशतद्रुसरस्वतीनां स्मरणे न दोषः। भागीरथ्यामन्यतीर्थं स्मरणं न कार्यम्। प्रयागादिमणिकर्णिकादेः स्मरणं कुर्वन्ति।

(अथ तीर्थदेवता विष्णुकथनम्)

तीर्थस्य देवता विष्णुः सर्वत्रापि न संशयः ॥ इति तत्रैवोक्तेः ।

हे द्विजगण, जिसका नाम नहीं जाना जाता है वहाँ पर उस तीर्थ का नाम 'विष्णुतीर्थ' का उच्चारण करे। क्योंकि सर्वत्र तीर्थ के देवता विष्णु ही हैं इसमें संशय नहीं है। यह वहाँ पर कहा है।

(अन्योऽपि विशेषकथनम्)

तथाऽन्योऽपि विशेषस्तत्रैव पाद्मे—तुलसी कृष्णगौराख्या तयाऽभ्यर्च्य मधुद्विषम् ।
विशेषेण तु वैशाखे नरो नारायणो भवेत् ॥

और भी अन्य विशेष वहाँ पर ही पद्मपुराण में कहा है कि—तुलसी कृष्ण (काली) और गौर (सफेद) नामवाली से मधुद्विष (मधुसूदन अर्थात्—मधु-राक्षस के द्वेषी) का अर्चन करे। विशेष तो वैशाखमास में अर्चन करनेवाला मनुष्य नारायण होता है।

माधवं सकलं मासं तुलस्या योऽर्चयेन्नरः । त्रिसन्ध्यं मधुहन्तारं नास्ति तस्य पुनर्भवः ॥

जो मनुष्य तुलसीपत्र से सुबह, मध्याह्न तथा सायंकाल में मधु (राक्षस) हन्ता नारायण का पूरे वैशाखमास में अर्चन करता है उसका पुनर्जन्म नहीं होता है।

तथा—प्रातः स्नात्वा विधानेन माधवे माधवप्रियम् । योऽश्वत्थमूलमासिञ्चेत्तोयेन बहुना सदा ॥

और वैशाखमास में सुबह (प्रातःकाल) विधान द्वारा स्नानकर माधव की प्रसन्नता के लिए पीपल के मूल (जड़) में बहुत जल से सदा सेचन करे।

कुर्यात्प्रदक्षिणं तं तु सर्वदेवमयं ततः । पितृदेवमनुष्यांश्च तर्पयेत्सचराचरम् ॥

तथा सर्वदेवमय उस अश्वत्थ की प्रदक्षिणा करे। वह पितर, देव, मनुष्यों और चर-अचर को तृप्त करता है।

योऽश्वत्थमर्चयेद्देवमुदकेन समन्ततः । कुलानामयुतं तेन तारितं स्यान्न संशयः ॥

जो अश्वत्थ के चारों तरफ जल से अर्चन करता है। उसने अपने कुल के अयुत कुलों को तार दिया—इसमें संशय नहीं है।

कण्डूय पृष्ठतो गां तु स्नात्वा पिप्पलतर्पणम् । कृत्वा गोविन्दमभ्यर्च्य न दुर्गतिमवाप्नुयात् ॥

गौ की पीठ को खुजलाकर स्नानोत्तर पिप्पल में तर्पणकर गोविन्द का अर्चन करे तो उसकी दुगति नहीं होती है।

तथा—एकभक्तमथो नक्तमयाचितमतन्द्रितः । माधवे मासि यः कुर्याल्लभते सर्वमीप्सितम् ॥

और जो मनुष्य आलस्यरहित होकर वैशाखमास में बिना मांगे (एकबार भोजन) दिन में या रात में एक बार भोजन जो करता है वह इच्छित सब फलों को प्राप्त कर लेता है।

वैशाखे विधिना स्नानं देवनद्यादिके बहिः । हविष्यं ब्रह्मचर्यं च भूशय्या नियमस्थितिः ॥
व्रतं दानं दमो देवि मधुसूदनपूजनम् । अपि जन्मसहस्रोत्थं पापं दहति दारुणम् ॥

वैशाखमास में विधि से देवनदी आदि के बाहर स्नान, हविष्य भक्षण, ब्रह्मचर्य और पृथ्वी में शयन, नियम से युक्त होकर, व्रत, दान, इन्द्रियों को दमन (निग्रह) कर मधुसूदन का पूजन करता है। हे देवि, वह हजार जन्म से प्राप्त दारुण पाप को भी दहन करता है।

मदनरत्ने स्कान्दे–प्रपा कार्या च वैशाखे देवे देया गलन्तिका ।
उपानद् व्यजनछत्रसूक्ष्मवासांसि चन्दनम् ॥
जलपात्राणि देयानि तथा पुष्पगृहाणि च । पानकानि च चित्राणि द्राक्षारम्भाफलान्यपि ॥

मदनरत्न में स्कन्दपुराण का मत है कि—वैशाखमास में पौसरा करना चाहिए तथा निरन्तर देवता को कमण्डल आदि पात्र से जलधारा देनी चाहिये। जूता, पंखा, छत्र, सूक्ष्म वस्त्र, चन्दन, जल पात्र, पुष्प, किसमिस, कदलीफल आदि पदार्थों को देना चाहिये।

तिथितत्त्वे—ददाति यो हि मेषादौ सक्तूनम्बुघटान्वितान् ।
पितॄनुद्दिश्य विप्रेभ्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

जो मेष संक्रान्ति आदि में सतुवा तथा जल को घडे से युक्तकर पितरों के निमित्त ब्राह्मणों को देता है। वह सब पापों से छूट जाता है।

तथा—वैशाखे यो घटं पूर्णं सभोज्यं वै द्विजन्मने । ददाति सुरराजेन्द्र स याति परमां गतिम् ॥

और वैशाखमास में जो भोजन सहित जल से भरकर घट को ब्राह्मण को देता है। हे सुरराजेन्द्र, वह परम गति को प्राप्त होता है।

(संपूर्णस्नानाशक्तौ विचारः)

एवं सम्पूर्णस्नानाशक्तौ त्र्यहं वा स्नायात् । तदुक्तं तत्रैव पाद्मे—त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां वैशाख्यां च दिनत्रयम् । अपि सम्यग्विधानेन नारी वा पुरुषोऽपि वा ॥ प्रातःस्नातः सनियमः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

इसप्रकार संपूर्ण स्नान के अशक्ति में तीन दिन ही स्नान करे। उसी बात को वहाँपर पद्मपुराण में कहा है कि—त्रयोदशी, चतुर्दशी या वैशाखी पूर्णिमा को तीन दिन भी अच्छे विधान से नारी या पुरुष नियम से प्रातः स्नान करे तो सब पापों से छूट जाते हैं।

(वैशाखे मलमासे सति काम्यकर्मणां विचारः)

यदा तु वैशाखो मलमासो भवति तदा काम्यानां तत्र समाप्तिनिषेधात् मासद्वयं स्नानं तन्नियमाश्च कर्तव्याः । मासोपवासचान्द्रायणादि तु मलमास एव समापयेत् ।

जब वैशाखमास मलमास होता है तो काम्यकर्मों का वहाँ पर समाप्ति का निषेध होने से दो मास स्नान और उसके नियमों को करना चाहिये। मासोपवास तथा चान्द्रायण आदि व्रत तो मलमास में ही समाप्त करे।

तदुक्तं दीपिकायाम्—'नियतस्त्रिंशद्दिनत्वाच्छुभे मास्यारभ्य समापयेत् मलिने मासोपवासव्रतम्' इति ।

उसी बात को दीपिका में लिखा है कि—तीस दिन के नियमित होने से शुभ मास में आरंभकर मलमास में मासोपवास व्रत समाप्त करे।

(अत्र दानादिविशेषविचारः)

अत्र दानविशेष उक्तोऽपरार्के वामनपुराणे—गन्धाश्च माल्यानि तथा वैशाखे सुरभीणि च ।
देयानि द्विजमुख्येभ्यो मधुसूदनतुष्टये ॥

यहाँ पर दान विशेष—अपरार्क में वामनपुराण मत से कहा है कि—गन्ध, माल्य और पुष्पों को वैशाखमास में मधुसूदन की प्रसन्नता के लिए मुख्य ब्राह्मणों को दे।

एवं स्नाने कृते तस्योद्यापनं कार्यम् । तदुक्तं तत्रैव—मासमेवं बहिः स्नात्वा नद्यादौ विमले जले। एकादश्यां च द्वादश्यां पौर्णमास्यामथापि वा ॥ उपोष्य नियतो भूत्वा कुर्यादुद्यापनं बुधः ।

इसप्रकार स्नान करने पर उसका उद्यापन करे। वहाँ पर ही उस बात को कहा है कि—इसप्रकार एक महिना बाहर नदी आदि के निर्मल जल में स्नानकर एकादशी, द्वादशी या पूर्णिमातिथि को उपवासकर सावधान मन से बुद्धिमान् व्यक्ति उद्यापन करे।

मण्डलं कारयेदादौ कलशं तत्र विन्यसेत् ॥ निष्केण वा तदर्धेन तदर्धार्धेन वा पुनः । शक्त्या वा कारयेद्देवं सौवर्णं लक्षणान्वितम् ॥

आदि में मण्डल को बनाकर उसमें कलश को स्थापन करे। निष्क या निष्क से आधा या उससे भी आधा या शक्ति के अनुसार लक्षणों से युक्त सुवर्ण की प्रतिमा करावे।

लक्ष्मीयुक्तं जगन्नाथं पूजयेदासने बुधः। भूषणैश्चन्दनैः पुष्पैर्दीपैर्नैवेद्यसञ्चयैः ॥
एवं सम्पूज्य विधिवद्रात्रौ जागरणं चरेत्। श्वोभूते कृतमैत्रोऽथ ग्रहवेद्यां ग्रहान् यजेत् ॥

विद्वान् व्यक्ति लक्ष्मी के सहित जगन्नाथ की आसन पर पूजा करे। भूषण, चन्दन, पुष्प, दीप, नैवेद्य आदि एकत्रित हुई सामग्रियों से पूजनकर विधिवत् रात में जागरण करे। दूसरे दिन सूर्य देवता की उपासनाकर अर्थात् सन्ध्या आदि से निवृत्त होकर ग्रहवेदी में ग्रहों का यजन करे।

होमं कुर्यात्प्रयत्नेन पायसेन विचक्षणः। तिलाज्येन यवैर्वापि सर्वैर्वाऽपि स्वशक्तितः ॥
अष्टोत्तरसहस्रं वा शतमष्टोत्तरं तु वा। प्रतद्विष्णुरनेनैव इदं विष्णुरनेन वा ॥

ज्ञानी पुरुष प्रयत्न से पायस (खीर) द्वारा होम करे। अपनी शक्ति के अनुसार तिलाज्य से यव या सब वस्तुओं से एक हजार आठ या एक सौ आठ बार 'प्रतद्विष्णुः' या 'इदं विष्णु' हवन करे।

व्रतसम्पूर्तिसिद्ध्यर्थं धेनुमेकां पयस्विनीम्। पादुकोपानहौ छत्रं गुरवे व्यजनं तथा ॥
शय्यां सोपस्करां दद्याद्दीपिकां दर्पणं तथा। ब्राह्मणान् भोजयेत्त्रिंशत्तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम् ॥

व्रत की पूर्ति की सिद्धि के लिये दूधवाली एक गौ, खड़ाऊँ, जूता, छाता और पंखा, सामग्रियों सहित शय्या, दीपक, शीसा आदि गुरु को दे तथा तीस ब्राह्मणों को भोजन कराकर दक्षिणा दे।

कलशान् जलसम्पूर्णान् तेभ्यो दद्याद्यवांस्तथा। एवं कृते माधवस्य उद्यापनविधौ शुभे ॥ फलमाप्नोति सकलं विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥

उन ब्राह्मणों को जल से भरे कलशों को तथा यवों को दे। ऐसा करने पर वैशाखमास का शुभ उद्यापन विधि का फल संपूर्ण प्राप्त होता है और विष्णुसायुज्यमुक्ति मिलती है।

एतावत्यशक्तौ तत्रैवोक्तम्–वैशाख्यां विधिना स्नात्वा भोजयेद् ब्राह्मणान् दश।
कृसरं सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ इति।

इतना करने की अशक्ति में तो वहीं पर कहा है कि—वैशाख में विधिवत् स्नानकर दश ब्राह्मणों को भोजन करावे। खीचड़ी दान देने से सब पापों से छूट जाता है। इसमें संशय नहीं है।

(अथ अक्षयतृतीया)

वैशाखशुक्लतृतीया अक्षय्यतृतीयोच्यते। सा पूर्वाह्णव्यापिनी ग्राह्या। दिनद्वयेऽपि तद्व्याप्तौ परैव। तदुक्तं निर्णयामृते नारदीये—वैशाखे शुक्लपक्षे तु तृतीया रोहिणीयुता। दुर्लभा बुधवारेण सोमेनापि युता तथा ॥ रोहिणीबुधयुक्तापि पूर्वविद्धा विवर्जिता। भक्त्या कृताऽपि मान्धातः पुण्यं हन्ति पुराकृतम् ॥

वैशाख शुक्ल तृतीया[3] को 'अक्षय तृतीया' कहा जाता है वह पूर्वाह्णव्यापिनी (परविद्धा[4]) ग्रहण करे। दोनोंदिन में भी उसकी प्राप्ति हो तो परा ही ले। उसी बात को निर्णयामृत में नारदीय (नारदपुराण) मत से कहा है कि—वैशाखशुक्ल पक्ष की तृतीया रोहिणी युक्त हो तथा बुधवार या सोमवार से युक्त हो तो दुर्लभ है। रोहिणी, बुधवार से युक्त भी पूर्वविद्धा (द्वितीया वेधस्त्रिमुहूर्तः। परदिने च त्रिमुहूर्तैव ग्राह्या) त्याज्य है। हे मान्धातः, भक्ति द्वारा किया हुआ भी पूर्व पुण्य नष्ट हो जाता है।

गौरी विनायकोपेता रोहिणीबुधसंयुता। विनापि रोहिणीयोगात्पुण्यकोटिप्रदा सदा ॥ इति।

१–प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः। यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥ (ऋ० १।१५४।२)।

२–इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्। समूळ्हमस्य पांसुरे ॥ (ऋ० १।२२।१७)।

३—गौरीव्रत में तो द्वितीयावेध कलाकाष्ठादिरूप से भी त्याज्य है।

४—तत् स्वल्पाऽपि परा। यदा परा न लभ्यते तदा द्वितीयाविद्धापि ग्राह्या। तदलाभे पूर्वा। एकादशी तृतीया च षष्ठी चैव त्रयोदशी। पूर्वविद्धाऽपि कर्तव्या यदि न स्यात्परेऽहनि ॥

तृतीया चतुर्थी तिथि से युक्त भी हो तो या रोहिणी तथा बुधवार से संयुक्त या रोहिणी के बिना योग के भी सदा करोड़ों पुण्य को देनेवाली होती है।

इयं युगादिरपि। सा चोक्ता रत्नमालायाम्—माघे पञ्चदशी कृष्णा नभस्ये च त्रयोदशी। तृतीया माधवे शुक्ला नवम्यूर्जे युगादयः॥ इति।

यह (तृतीया) भी युगादि है। उसी बात को रत्नमाला में भी कहा है—माघ मास में कृष्ण पक्ष की अमावास्या, श्रावण मास की त्रयोदशी, वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की तृतीया और कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की नवमी ये युगादि हैं।

यत्तु गौडाः—माघस्य पौर्णमास्यां तु घोरं कलियुगं स्मृतम्॥ इति ब्राह्मोक्तेः।'

जो गौडों ने ब्रह्मपुराण के मत से यह कहा है कि—माघ महिने की पूर्णिमा में घोर कलियुग लगा। वैशाख मास की जो तृतीया तिथि, कार्तिक मास का शुक्ल पक्ष की यह नवमी तिथि, श्रावण मास के कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी तिथि और माघ मास की पूर्णिमा तिथि, इस विष्णुपुराणमत से चकार के बल से तामिस्र (कृष्ण) पक्ष के तिथि अनुषंग (सम्बन्ध) में भी पूर्वानुरोध से पौर्णमासीतिथि है यह जाननी चाहिये। 'द्वे शुक्ले' इत्यादि तो निर्मूल कहा है। यह ठीक नहीं है—

वैशाखमासस्य च या तृतीया नवम्यसौ कार्तिकशुक्लपक्षे। नभस्यमासस्य तमिस्रपक्षे त्रयोदशी, पञ्चदशी च माघे॥ इति विष्णुपुराणे चकारेण तमिस्रपक्षानुषङ्गेऽपि पूर्वानुरोधात् पौर्णमास्येव ज्ञेया। 'द्वे शुक्ले' इत्यादिकं तन्निर्मूलमित्याहुः। तन्न। दर्शे तु माघमासस्य प्रवृत्तं द्वापरं युगम्। इति भविष्यविरोधात्। एतेन ब्राह्मानुसारात् पूर्णिमायामेव युगादिश्राद्धं वदन् शूलपाणिः परास्तः। तेन कल्पभेदात् युगभेदाद्वा व्यवस्थेति तत्त्वम्। एतेन—कार्तिके नवमी शुक्ला माघमासे च पूर्णिमा॥ इति बृहन्नारदीयं व्याख्यातम्। निर्मूलोक्तिर्नारदीयाज्ञानकृता।

माघमास की अमावास्या को 'द्वापर युग' प्रवृत्त होता है। क्योंकि इस भविष्यपुराण के कथन का विरोध है। इससे ब्रह्मपुराण के अनुसार पूर्णिमा में ही युगादि श्राद्ध को कहते हुए शूलपाणि परास्त हो गये। उससे कल्पभेद से या युगभेद से व्यवस्था करे—यही तत्त्व है। इससे—

कार्तिकमास के शुक्ल पक्ष की नवमीतिथि तथा माघमास की पूर्णिमातिथि युगादि है। यह बृहन्नारद पुराण में व्याख्या की है। निर्मूल कहना नारद के कथन को न जानकर है।

(मन्वादौ तु श्राद्धकथनम्)

अत्र श्राद्धमुक्तं मात्स्ये—कृतं श्राद्धं विधानेन मन्वादिषु युगादिषु। हायनानि द्विसाहस्रं पितॄणां तृप्तिदं भवेत्॥ इति।

यहाँ पर मत्स्यपुराण में श्राद्ध कहा है—मन्वादि और युगादियों में जिसने विधान से श्राद्ध को किया है उसके पितरों की तृप्ति दो हजार साल तक होती है।

भारतेऽपि—या मन्वाद्या युगाद्याश्च तिथयस्तासु मानवः। स्नात्वा हुत्वा च दत्वा वा जप्त्वाऽनन्तफलं लभेत्॥ इति।

भारत में भी कहा है कि—जो मन्वादि और युगादि तिथि हैं उनमें मानव स्नान, हवन, दान तथा जप करके अनन्त फल का लाभ करता है।

श्राद्धेऽपि पूर्वाह्णव्यापिनी ग्राह्या। पूर्वाह्णे तु सदा कार्याः शुक्ला मनुयुगादयः। दैवे कर्मणि पित्र्ये च कृष्णे चैवापराह्णिकाः॥ इति पाद्मोक्तेः।

श्राद्ध में भी पूर्वाह्णव्यापिनी ग्रहण करे। पद्मपुराण में कहा है कि—शुक्लपक्ष की मन्वादि और युगादि सदा पूर्वाह्ण में करे। दैवकर्म में तथा पित्र्यकर्म में अपराह्ण समय में कृष्णपक्ष की करे।

द्वे शुक्ले द्वे तथा कृष्णे युगादी कवयो विदुः ।
शुक्ले पौर्वाह्णिके ग्राह्ये कृष्णे चैवापराह्णिके ॥ इति हेमाद्रौ नारदीयवचनाच्च ।

हेमाद्रि में नारदपुराण का वचन है कि—दो शुक्ल पक्ष की और दो कृष्णपक्ष की युगादि कवियों ने कही है । शुक्लपक्ष में पूर्वाह्णकाल तथा कृष्णपक्ष में अपराह्णकाल का ग्रहण करे ।

दीपिकाऽपि—'कर्मतिथयः पूर्वाह्णिकाः स्युः सिते विज्ञेया अपराह्णिकाश्च बहुले' इति ।

दीपिका में भी कहा है कि—कर्म की तिथियों का ग्रहण शुक्लपक्ष में पूर्वाह्ण में होता है और कृष्णपक्ष की तिथियों का ग्रहण अपराह्णकाल में होता है ।

स्मृत्यर्थसारेऽपि—मन्वादिश्राद्धेषु शुक्लपक्षे उदयव्यापिनी तिथिर्ग्राह्या, कृष्णपक्षेऽपराह्णव्यापिनी—इति ॥

स्मृत्यर्थसार में भी कहा है कि—मन्वादि श्राद्धों में शुक्लपक्ष में उदयव्यापिनी तिथि और कृष्णपक्ष में अपराह्णव्यापिनी ग्रहण करनी चाहिये ।

दिवोदासीये गोभिलः—वैशाखस्य तृतीयां यः पूर्वविद्धां करोति वै ।
हव्यं देवा न गृह्णन्ति कव्यं च पितरस्तथा ॥ इति ।

दिवोदासीय में गोभिल का कथन है कि—जो वैशाखमासीय तृतीया को निश्चितरूप से पूर्वविद्धा करता है । उसके देवता हव्य को और पितर कव्य को ग्रहण नहीं करते हैं ।

गोविन्दार्णवेऽप्येवम् । तेनेयं पूर्वाह्णव्यापिनी । दिनद्वये तत्त्वे परैवेति धर्मतत्त्वविदो हेमाद्र्यादयः ।

यही वात गोविन्दार्णवकार ने भी कहा है । इससे यह पूर्वाह्णव्यापिनी ग्रहण करे । यदि दो दिन हो तो परा ही ले—यह धर्मतत्त्ववेत्ता हेमाद्रि आदियों ने कहा है ।

अनन्तभट्टस्तु—सवैधृतिर्व्यतीपातो युगमन्वादयस्तथा । सन्मुखा उपवासे स्युर्दानादावन्तिमाः स्मृताः ॥ इत्याह । दानादाविति श्राद्धसंग्रहः । उपवासस्त्वग्रे वक्ष्यते । हेमाद्रावप्येवम् । माधवस्तु व्यतीपातः श्राद्धेऽपराह्णव्यापी ग्राह्य इत्याह । स्मृत्यर्थसारे तु कुतुपकालयोगीत्युक्तम् ।

अनन्तभट्ट ने कहा है कि—वैधृति के सहित व्यतीपात, युगादि और मन्वादि उपवास में सन्मुख (प्रथम) तथा दानादि में अन्तिम (दूसरी) ले । यों कहा । दानादि शब्द से श्राद्ध का (पौर्वाह्णिकेत्वऽपराह्णावच्छेदेन कार्यम्) ग्रहण है । उपवास को आगे कहेंगे । हेमाद्रि में भी यही कहा है । माधव ने कहा है कि—व्यतीपात श्राद्ध में अपराह्णव्यापिनी ग्रहण करे । स्मृत्यर्थसार में कुतुपकाल के योग में कहा है ।

यत्तु मार्कण्डेयः—शुक्लपक्षस्य पूर्वाह्णे श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः ।
कृष्णपक्षापराह्णे हि रोहिणं तु न लंघयेत् ॥ रोहिणो = नवमो मुहूर्त्तः ।

जो मार्कण्डेयपुराण में कहा है कि—विचक्षण (बुद्धिमान्) मनुष्य शुक्लपक्ष के पूर्वाह्ण में और कृष्णपक्ष के अपराह्ण में श्राद्ध करे । रोहिण का लंघन न करे । रोहिण—नवम मुहूर्त को कहते हैं ।

अत्र शुक्लपक्षयुगादिश्राद्धं पूर्वाह्णे कार्यमिति शूलपाणिः । दिगर्थस्तु कालपाणिः । निर्णयामृतादयस्तु कालादर्शेऽमापराह्णिकमुक्त्वा—'एष मन्वन्तरादीनां विनिर्णयः' इत्युक्तत्वात् 'द्वे शुक्ले' इत्यादिवचनं विष्णुपूजनाविषयम् । श्राद्धं त्वापराह्णिकमेवेति व्यवस्थां जगदुः । सेयं पूर्वोक्तानेकवचोविरोधात् । 'पूर्वाह्णे दैविकं कुर्यात्' इत्यादिवचनादेव सिद्धे वचनवैयर्थ्याच्च स्वाच्छन्द्यविलसितमात्रमित्युपेक्षणीया ।

यहाँ पर शुक्ल पक्ष में युगादि श्राद्ध पूर्वाह्ण में करे । कालपाणि ने अपना मार्ग प्रदर्शनरूप अर्थ दिशा कहा है । कालादर्श में निर्णयामृत आदि का कथन है कि अमा अपराह्णकालिक हो यों कहकर यह मन्वन्तर-आदियों का निर्णय है—यों कहकर 'द्वे शुक्ले' इत्यादि वचन विष्णुपूजन-विषयक है । श्राद्ध में तो अपराह्णव्यापिनी ही ले ऐसी व्यवस्था को कहा । वह यह पहले कहे हुए अनेक वचनों के विरोध से पूर्वाह्णकाल में देव सम्बन्धिकार्य करे । इस वचन से ही सिद्ध होने पर और वचन के वैयर्थता का विरोध से स्वच्छन्दता का विलासतामात्र होने से (उपेक्षणीय) त्यागने योग्य है ।

किञ्च—कालादर्शोक्तिर्न्यायमूला वचोमूला वा ? नाद्यः। युगादिश्राद्धस्यामाश्राद्धविकृतित्वेन न्यायतोऽपराह्णव्याप्तावपि वचनेन तस्य वाधात्। नान्त्यः। 'अतिदेशादेवापराह्णप्राप्ते[१] र्वचनवैयर्थ्यात्। 'अप्राप्ते शास्त्रमर्थवत्' इति न्यायात्। तेन यदि कालादर्शोक्तेः कथंचिच्छ्रद्धाजाड्येन समाधित्सा, तर्हि न्यायप्राप्तकृष्णपक्षयुगादिविषयत्वेन सा व्यवस्थापनीयेति दिक्।

और कालादर्श की उक्ति न्यायमूलक है या वचनमूलक है। उसमें आद्य (न्यायमूलक) ठीक नहीं है। युगादिश्राद्ध का अमाश्राद्ध विकृति (विकार) होने मात्र न्याय से अपराह्णव्याप्ति में भी वचन से उसका बाध है। अन्तवाला वचन ठीक नहीं है या अतिदेश से ही अपराह्ण के प्राप्त होनेपर वचन व्यर्थ हो जायगा। क्योंकि अप्राप्त में शास्त्र अर्थवाला होता है इस न्याय से। उससे यदि कालादर्श के कहे हुए कुछ भी श्रद्धा की जड़ता से समाधान हो जाय तो न्याय प्राप्त कृष्णपक्ष की युगादितिथियों के विषय में तो वह व्यवस्था का मार्ग प्रदर्शन है।

पूर्वाह्णस्तत्र 'द्वेधाभक्त दिन पूर्वार्धः। द्वेधाभक्तदिनांशकोऽत्र गदितः प्राह्णापराह्णौ' इति दीपिकोक्तेः। माधवादयोऽप्येवम्।

दिन का दो भाग करने पर दिन का पूर्वार्ध भाग पूर्वाह्ण होता है। दीपिकाकार ने कहा है कि—दिन का दो भाग करने पर पूर्वभाग पूर्वाह्ण और अपरभाग अपराह्ण होता है। माधव आदि भी इसी बात को कहते हैं।

(वैशाखशुक्लतृतीयां विशेष कथनम्)

अत्र विशेषो हेमाद्रौ भविष्ये—वैशाखे शुक्लपक्षे तु तृतीयायां तथैव च।
गङ्गातोये नरः स्नात्वा मुच्यते सर्वकिल्बिषैः॥

वहाँ पर विशेष भविष्यपुराण का मत हेमाद्रि में कहा है कि—वैशाखमास के शुक्लपक्ष की तृतीया-तिथि में गंगाजल में मनुष्य स्नान करके सब पापों से मुक्त हो जाता है।

तस्यां कार्यो यवैर्होमो यवैर्विष्णुं समर्चयेत्। यवान् दद्याद् द्विजातिभ्यः प्रयतः प्राशयेद्यवान्॥ इति।

उस दिन यवों द्वारा होम करे और यवों द्वारा विष्णु की पूजा करे। ब्राह्मणों को यव का दान दे तथा यवों का निरन्तर प्राशन (भक्षण) करे।

(अत्र दानादिविशेषकथनम्)

अत्र दानविशेषस्तत्रैव भविष्ये। इमां प्रक्रम्य—उदकुम्भान् सकनकान् सान्नान् सर्वरसैः सह। यवगोधूमचणकान् सक्तुदध्योदनं तथा॥ ग्रैष्मिकं सर्वमेवात्र सस्यं दाने प्रशस्यते। इति।

वहाँ पर दान विशेष भी भविष्यपुराण में इसको उपक्रम (प्रारंभ) कर कहा है कि—सुवर्णों, अन्नों तथा सब रसों के सहित जल के कुंभों को यव, गेहूँ, चना, सत्तू, दही और चावल तथा ग्रीष्म ऋतु की उपयुक्त सब वस्तुओं को दान में उत्तम कहा है।

देवीपुराणेऽपि—तृतीयायां तु वैशाखे रोहिण्यृक्षे प्रपूज्य तु।
उदकुम्भप्रदानेन शिवलोके महीयते॥

देवीपुराण में भी कहा है कि—वैशाखमास के शुक्लपक्ष की तृतीया और रोहिणी नक्षत्र में जल से भरे घड़े का पूजनकर जो दान करता है वह शिवलोक में जाता है।

मन्त्रस्तु—एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः। अस्य प्रदानात्तृप्यन्तु पितरोऽपि पितामहाः॥ गन्धोदकतिलैर्मिश्रं सान्नं कुम्भं फलान्वितम्। पितृभ्यः संप्रदास्यामि अक्षय्यमुपतिष्ठतु॥

१—एकस्थल में पाठ किये हुए धर्मों को अन्यत्र प्रधान में लगाना अतिदेश कहते हैं। जैसे दर्शपूर्णमास के प्रसंग में अग्निस्थापन से लेकर ब्राह्मण भोजनान्त अनुष्ठेय यज्ञों का प्रतिपादन किया। सौर्ययाग में केवल प्रधानमात्र का निर्देश किया। दर्शपूर्णमास में पाठ किया हुआ अग्निस्थापनादि ब्राह्मण भोजनान्तधर्म का अतिदेश किया जाता है।

मन्त्र तो यह है—ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मकरूप इस धर्मघट को देने से पितर और पितामह आदि तृप्त होते हैं। गन्धोदक (जल), तिल से युक्त, अन्न तथा फल से सहित कुम्भ को पितरों के लिए देता हूँ। वह अक्षय्यता (जिसका विनाश न हो) को प्राप्त हो।

अत्र च पिण्डरहितं श्राद्धं कुर्यात्। अयनद्वितये श्राद्धं विषुवद् द्वितये तथा। युगादिषु च सर्वासु पिण्डनिर्वपणादृते॥ इति हेमाद्रौ पुलस्त्यवचनात्।

और यहाँ पर पिण्डरहित श्राद्ध करे। हेमाद्रिनिबन्ध में पुलस्त्य का वचन है कि—दक्षिणायन तथा उत्तरायण में, तुला तथा मेष की संक्रान्ति में और सब युगादि तिथियों में पिण्डदान के बिना श्राद्ध करे।

अत्र रात्रिभोजने प्रायश्चित्तमृग्विधाने—रात्रौ भुङ्क्ते वत्सरे तु मन्वादिषु युगादिषु। अभिस्ववृष्टिं मन्त्रं च जपेद्दश न पातकम्॥ इति।

यहाँ पर ऋग्विधान में रात में भोजन के करने पर प्रायश्चित्त कहा है। जो निश्चय संवत्सर में मन्वादि और युगादि तिथियों पर रात को भोजन करता है। उसे 'अभिस्ववृष्टिम्' इस मन्त्र को दश वार जपने से पातक नहीं लगता है।

अपरार्के यमः—कृतोपवासाः सलिलं ये युगादिदिनेषु च। दास्यन्त्यन्नादिसहितं तेषां लोका महोदयाः॥ इति।

अपरार्क में यम ने कहा है कि—जो मनुष्य युगादि दिनों में उपवासों को कर अन्न आदि के सहित जल को देते हैं। उनका लोक अत्यन्त कल्याणकारी होता है।

वैशाखे मलमासे सति तत्रैव युगादिः कार्याः। तथा च हेमाद्रौ ऋष्यशृङ्गः—दशहरासु नोत्कर्षश्चतुर्ष्वपि युगादिषु। उपाकर्मणि चोत्सर्गे ह्येतदिष्टं वृषादितः॥ इति। एतद्दशहरादिकं वृषादिसंक्रमे इष्टम्। 'कन्याचन्द्रे वृषे रवौ' इत्यादिना सौरमासोक्तेरित्यर्थः।

वैशाखमास में मलमास होने पर उसी में युगादि करे और हेमाद्रि में ऋष्यशृंग का वचन है कि—चारों युगादियों में दशहरा में उत्कर्ष नहीं होता है। उपाकर्म और उत्सर्ग में, वृष के सूर्य से यह इष्ट (शुभ) है। यह दशहरा आदि वृष की संक्रान्ति पर इष्ट है। कन्या के चन्द्रमा तथा वृष के सूर्य में—इत्यादि से सौरमास कहा है—यह अर्थ है।

कालादर्शेऽपि—अब्दोदकुम्भमन्वादिमहालययुगादिषु। इति मलमासकर्तव्येषु परिगणनाच्च। महालयशब्देन मघात्रयोदश्युच्यत इति माधवः। स्मृतिचन्द्रिकायां तु मासद्वये कर्तव्यमित्युक्तम्।

कालादर्श में भी कहा है—वर्ष, जलकुम्भ (घट) का दान, मन्वादि, महालय तथा युगादि तिथियों में मलमास के कर्तव्यताओं में परिगणन है। महालयशब्द से मघा नक्षत्रयुक्त त्रयोदशी को कहा है—यह माधवमत है। स्मृतिचन्द्रिका में तो दोनों महिनों में करे—यों कहा है।

यौगादिकं मासिकं च श्राद्धं चापरपक्षिकम्। मन्वादिकं तैर्थिकं च कुर्यान्मासद्वयेऽपि च॥ इति। अपरपक्षः कृष्णपक्षो न तु महालयः। तस्य तत्र निषेधात्।

युगादि, मासिक, अपरपक्ष (कृष्णपक्ष) का श्राद्ध, मन्वादि[2] तथा तीर्थश्राद्ध दोनों महिनों में (फल विशेषार्थिना मले, तत्कालावच्छिन्नजीवनरूपनिमित्तवशाच्च शुद्धे इत्यर्थः) करे। यहाँ अपरपक्ष से कृष्णपक्ष का ग्रहण है महालय का नहीं। उसका वहाँ पर निषेध है।

१—अभि स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यतो रघ्वीरिव प्रवणे सस्रुरूतयः। इन्द्रो यद्वज्री धृषमाणो अन्धसाऽभिनद् बलस्य परिधींरिव त्रितः॥ (ऋ० १।५२।५)।

२—मन्वादौ च युगादौ च ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। व्यतीपाते वैधृतौ च तत्कालव्यापिनी क्रिया॥ 'सूर्ये कन्यास्थिते श्राद्धं यो न कुर्याद् गृहाश्रमी। शाकेनापि दरिद्रोऽपि सोऽन्त्यजत्वमुपेष्यति॥

मदनरत्ने मरीचिः—प्रतिमासं मृताहे च श्राद्धं यत्प्रतिवत्सरम्। मन्वादौ च युगादौ च तन्मासोरुभयोरपि॥ इति। प्रतिवत्सरं क्रियमाणं कल्पादिश्राद्धमिति स एव व्याचख्यौ।

मदनरत्न में मरीचि का कथन है कि—मृतदिन में प्रतिमास का श्राद्ध, प्रत्येक वर्ष का श्राद्ध, मन्वादि तथा युगादि श्राद्ध दोनों महिनों में होते हैं। प्रत्येक साल में किया हुआ श्राद्ध कल्पादिश्राद्ध है—इसको उन्हीं ने व्याख्या की है।

(श्राद्ध-अकरणे प्रायश्चित्तकथनम्)

अत्र श्राद्धाकरणे प्रायश्चित्तमृग्विधाने—

"न[1] यस्य द्यावामन्त्रं च शतवारं तदा जपेत्। युगादयो यदा न्यूनाः कुरुते नैव चापि यः॥" इति।

यहाँ पर श्राद्ध न करने पर प्रायश्चित्त ऋग्विधान में कहा है—जो मनुष्य युगादि में न्यूनता हो जाने पर श्राद्ध करते ही नहीं हैं वे 'न यस्य द्यावापृथिवी' इस मन्त्र को सौ बार जपे।

(अत्र समुद्रस्नानम्)

अत्र समुद्रस्नानं प्रशस्तम्। तदुक्तं पृथ्वीचन्द्रोदये सौरपुराणे—युगादौ तु नरः स्नात्वा विधिवल्लवणोदधौ। गोसहस्रप्रदानस्य कुरुक्षेत्रे फलं हि यत्॥ तत्फलं लभते मर्त्यो भूमिदानस्य च ध्रुवम्॥ इति। अयं निर्णयः सर्वयुगादिषु बोद्धव्यः। इति युगादिनिर्णयः।

यहाँ पर समुद्र स्नान को उत्तम कहा है। उसी बात को पृथ्वीचन्द्रोदय में सौरपुराण के वचन से कहा है कि—जो मनुष्य युगादितिथियों पर, लवण (खारा) युक्त उदधि (समुद्र) में विधिवत् स्नान करता है। उस मनुष्य को एक हजार गोदान और भूमिदान देने का जो फल कुरुक्षेत्र में होता है वही फल प्राप्त होता है यह ध्रुव (निश्चित) है। यह निर्णय सब युगादितिथियों में जानना चाहिये। यह युगादि निर्णय है।

(अथ परशुरामजयन्तीकथनम्)

इयमेव तृतीया परशुरामजयन्ती। सा प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या। तदुक्तं भार्गवार्चनदीपिकायाम् स्कान्दभविष्ययोः—वैशाखस्य सिते पक्षे तृतीयायां पुनर्वसौ। निशायाः प्रथमे यामे रामाख्यः समये हरिः॥ स्वोच्चगैः षड्ग्रहैर्युक्ते मिथुने राहुसंयुते। रेणुकायास्तु यो गर्भादवतीर्णो हरिः स्वयम्॥ इति। दिनद्वये तद्व्याप्तावंशतः समव्याप्तौ च परा, अन्यथा पूर्वैव।

इसी तृतीया को परशुराम जयन्ती कहते हैं। वह प्रदोषव्यापिनी ग्रहण करे। उसी बात को भार्गवार्चनदीपिका में स्कन्दपुराण और भविष्यपुराण के श्लोकों से कहा है कि—वैशाखमास के शुक्लपक्ष की तृतीया में, पुनर्वसु नक्षत्र में और रात्रि के प्रथम याम के समय में रेणुका के गर्भ से स्वयं हरि ने अवतार लिया। उससमय अपने स्थान से उच्च के छः ग्रह तथा मिथुन में राहु ग्रह था। दो दिन में उसकी प्राप्ति हो अंशतः सम व्याप्ति में भी परा ग्रहण करे। अन्यथा तो पूर्वा ही ले।

तदुक्तं तत्रैव भविष्ये—शुक्ला तृतीया वैशाखे शुद्धोपोष्या दिनद्वये।
निशायां पूर्वयामे चेदुत्तरान्यत्र पूर्विका॥ इति।

वहीं पर भविष्यपुराणमें कहा है कि—वैशाखमासके शुक्लपक्ष की तृतीया दो दिन में हो तो उसमें जो शुद्ध हो उसमें ही उपवास करे। रात्रि के पूर्वयाम में हो तो उत्तरा (दूसरी) ग्रहण करे। नहीं तो पूर्वा ले।

(अथ गङ्गोत्पत्तिः)

वैशाखशुक्लसप्तम्यां गङ्गोत्पत्तिः। तदुक्तं पृथ्वीचन्द्रोदये ब्राह्मे—वैशाखे शुक्लसप्तम्यां जह्नुना जाह्नवी पुरा। क्रोधात् पीता पुनस्त्यक्ता कर्णरन्ध्रात्तु दक्षिणात्॥ तां तत्र पूजयेद्देवीं गंगां गगनमेखलाम्॥" इति।

१—न यस्य द्यावापृथिवी न धन्व नान्तरिक्षं नाद्रयः सोमो अक्षाः। यदस्य मन्युरधिनीयमानः शृणाति वीळु रुजति स्थिराणि॥ (ऋ० १०।८९।६)।

वैशाखशुक्ल सप्तमीतिथि में गङ्गा जी की उत्पत्ति कही है। उसी को पृथ्वीचन्द्रोदय में ब्रह्मपुराण का मत है—वैशाखमास के शुक्लपक्ष की सप्तमीतिथि में पहले क्रोध से जह्नु ऋषि ने जाह्नवी (गंगा) का पान किया था। फिर दाहिने कान के रन्ध्र (छिद्र) से उसको छोड़ दिया। सप्तमीतिथि में आकाश मेखला-रूप उसी गंगा देवी का पूजन करे।

अत्र शिष्टाचारान्मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या। दिनद्वये तद्व्याप्तावेकदेशव्याप्तौ वा पूर्वा युग्मवाक्यात्।

वहाँ पर शिष्टाचार प्राप्त होने से मध्याह्नव्यापिनीतिथि ग्रहण करे। यदि वह दोनों दिन मध्याह्नकाल व्यापिनी में या अव्यापिनी में या एक देश व्याप्ति में हो तो पूर्वा ग्रहण करे। क्योंकि युग्मवाक्य है।

(अथ वैशाखशुक्लद्वादश्यां योगविशेषकथनम्)

वैशाखशुक्लद्वादश्यां योगविशेषो हेमाद्रौ ज्योतिःशास्त्रे—'पञ्चाननस्थौ गुरुभूमिपुत्रौ मेषे रविः स्याद्यदि शुक्लपक्षे। पाशाभिधाना करभेण युक्ता तिथिर्व्यतीपात इतीह योगः॥

अस्मिंस्तु गोभूमिहिरण्यवस्त्रदानेन सर्वं परिहाय पापम्।
सुरत्वमिन्द्रत्वमनामयत्वं मर्त्याधिपत्यं लभते मनुष्यः॥' इति।

पञ्चाननः = सिंहः, पाशाभिधाना तिथिः = द्वादशी। करभः = हस्तः।

वैशाखशुक्ल द्वादशीतिथि को योगविशेष हेमाद्रि में ज्योतिःशास्त्र वचन से कहा है कि—सिंह राशी का गुरु तथा मंगल हो, यदि शुक्लपक्ष में मेषराशि के सूर्य हों तथा हस्तनक्षत्र से युक्त द्वादशीतिथि हो तो व्यतीपातयोग होता है। इस योग में गौ, भूमि, सुवर्ण तथा वस्त्रदान से सब पापों एवं रोगों से मुक्त होकर मनुष्य सुरत्व, (देवत्व), इन्द्रत्व और मनुष्यों का आधिपत्य प्राप्त करता है।

पञ्चाननः—सिंह का नाम है। पाशाभिधाना तिथिः—द्वादशीतिथि को कहते हैं। करभः—हस्तनक्षत्र होता है।

(नृसिंहजयन्ती)

वैशाखशुक्लचतुर्दशी नृसिंहजयन्ती। सा प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या। तदुक्तं हैमाद्रौ नृसिंहपुराणे—'वैशाखे शुक्लपक्षे तु चतुर्दश्यां निशामुखे। मज्जन्मसम्भवं पुण्यं व्रतं पापप्रणाशनम्॥ वर्षे वर्षे तु कर्तव्यं मम सन्तुष्टिकारणम्॥' इति।

वैशाखशुक्ल चतुर्दशी को नृसिंहजयन्ती होती है। वह प्रदोषव्यापिनी ग्रहण करे। उसी बात को हेमाद्रि में नृसिंहपुराण के श्लोकों से कहा है कि—वैशाखमास के शुक्लपक्ष की चतुर्दशीतिथि का प्रदोष[1] समय में मेरे जन्म से संभव (प्रादुर्भूत) पुण्यरूप व्रत सब पापों को नाश करता है। मेरी प्रसन्नता को करनेवाले इस व्रत को प्रतिवर्ष करे।

दिनद्वयेऽपि तद्व्याप्तावंशतः समव्याप्तौ च परा। विषमव्याप्तौ त्वधिकव्याप्तिमती। दिनद्वयेऽप्यव्याप्तौ परा। परदिने गौणकालव्याप्तेः सत्त्वात् पूर्वदिने च तदभावात्।

दोनों दिन में भी उसकी व्याप्ति में या अंशरूप से सम (समान) व्याप्ति में तो परा[2] (दूसरी) ले। विषम व्याप्ति में तो अधिक व्यापिनी लेना चाहिये।

दोनों दिन में भी अव्याप्त हो तो परा ग्रहण करे (संकल्पकाल में होने से)। क्योंकि दूसरे दिन गौणकाल में व्याप्त है और पूर्व दिन में उसका अभाव है।

यत्तु—ततो मध्याह्नवेलायां नद्यादौ विमले जले। इति उपक्रम्य—'परिधाय ततो वासो व्रतकर्म समारभेत्। इति तत्रैवोक्तम्, तत्सङ्कल्परूपव्रतोपक्रमविषयम्। न त्वेतावता मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्येति भ्रमितव्यम्, पूर्वोक्तवचनविरोधात्।

जो तदनन्तर—मध्याह्नसमय में नदी आदि निर्मल जल में (स्नानकर) ऐसा उपक्रम करके—तदनन्तर वस्त्र को पहनकर व्रतकर्म का प्रारंभ करे। इसप्रकार वहीं पर कहा है। वह संकल्परूप व्रत के उपक्रम

१—स्कन्दपुराणे—अवतारो नृसिंहस्य प्रदोषसमये द्विजाः। २—सङ्कल्पकाले सत्त्वात्।

(प्रारंभ) का विषय है। इससे मध्याह्नकालव्यापिनी ग्रहण करे ऐसा भ्रम नहीं करना चाहिये क्योंकि पहले कहे हुए वचनों का विरोध है।

वैशाखस्य चतुर्दश्यां सोमवारेऽनिलर्क्षके।
अवतारो नृसिंहस्य प्रदोषसमये द्विजाः॥ इति टोडरानन्दे स्कान्दात्।

टोटरानन्द में स्कन्दपुराण का मत है कि—हे द्विजगण, वैशाखमास के शुक्लपक्ष की चतुर्दशीतिथि में सोमवार, अनिल (कृत्तिका) नक्षत्र तथा प्रदोष समय में नृसिंह का अवतार हुआ था।

'कूर्मः सिंहो बौद्धकल्की च सायम्' इति पूर्वोक्तपुराणसमुच्चयाच्चेति केचित्।
तत्त्वं तु पूर्ववचसामनाकरत्वेन निर्मूलत्वात्,

किसी का मत है कि—कूर्म, सिंह (नृसिंह) बुद्ध और कल्की का सायंकाल (प्रदोष समय) में अवतार हुआ था। क्योंकि इसप्रकार पूर्व में कहे हुए पुराणसमुच्चय का वचन है।

तत्त्व (सिद्धान्त) तो यह है कि—पूर्व (पहले) वचनों को सिद्धान्त ग्रन्थों में न रहने के कारण मूल नहीं मिलता है।

हेमाद्रौ नृसिंहपुराणे—'मज्जन्मसम्भवं पुण्यं व्रतं पापप्रणाशनम्।' इत्युपक्रम्य—

हेमाद्रि में नृसिंहपुराण का मत है कि—मेरे द्वारा संभव जन्म से पुण्यरूपव्रत पाप को नाश करनेवाला है। ऐसा उपक्रम (प्रारंभ) करके—

स्वातीनक्षत्रयोगे च शनिवारे तु मद्व्रतम्। सिद्धियोगस्य संयोगे वणिजे करणे तथा॥
पुंसां सौभाग्ययोगेन लभ्यते दैवयोगतः। सर्वैरेतैस्तु संयुक्तं हत्याकोटिविनाशनम्॥

स्वातीनक्षत्र योग में और शनिवार में सिद्धयोग के संयोग में वणिज तथा करण में, पुरुषों के सौभाग्य योग से तथा दैवयोग से मेरा व्रत प्राप्त होता है। इन पूर्वोक्त सब योगों से संयुक्त दिन मिले तो करोड़ों हत्याओं का विनाश होता है।

एतदन्यतरे योगे मद्दिनं पापनाशनम्। केवलेऽपि प्रकर्तव्यं मद्दिने व्रतमुत्तमम्॥ अन्यथा नरकं याति यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥

इनके मध्य में कोई भी योग मेरे दिन में हो तो पाप का नाश करता है। केवल मेरे दिन में भी उत्तम व्रत को करे। जो नहीं करता है वह जब तक चन्द्रमा और सूर्य हैं तबतक नरक में जाता है।

इत्युक्त्वा—ततो मध्याह्नवेलायां नद्यादौ विमले जले। इत्यादिना मध्याह्न एव व्रतविधानाच्चतुर्दश्युत्तरार्धे वणिजे करणे मध्याह्ने च स्पष्टं जन्म प्रतीयते। सन्ध्यायां जन्म तु क्वाप्यनूक्तेर्मौर्ख्यं कृतं, तद्वशान्निर्णयश्च हेय एवेति। इयमेव योगविशेषेणातिप्रशस्ता।

यों कहकर, तदनन्तर मध्याह्न समय में नदी आदि के निर्मल जल में स्नान करे। इत्यादि से मध्याह्न में ही व्रत का विधान होने से चतुर्दशी के उत्तरार्ध वणिजकरण और मध्याह्न में जन्म (नृसिंह) का होना स्पष्ट प्रतीत होता है। सन्ध्या के समय तो जन्म कहीं भी नहीं कहा है। मूर्ख द्वारा किया हुआ निर्णय हेय (त्याग करने योग्य) है। यही ही योग विशेष से अत्यन्त उत्तम होती है।

तदुक्तं तत्रैव—'स्वातिनक्षत्रयोगे च शनिवारे च मद् व्रतम्। सिद्धियोगस्य संयोगे वणिजे करणे तथा॥ पुंसां सौभाग्ययोगेन लभ्यते दैवयोगतः। 'एभिर्योगैर्विनापि स्यान्मद्दिनं पापनाशनम्। सर्वेषामेव वर्णानामधिकारोऽस्ति मद्व्रते। मद्भक्तैस्तु विशेषेण कर्तव्यं मत्परायणैः॥

वहीं पर कहा है कि—स्वातिनक्षत्र के योग में और शनिवार में, सिद्धियोग के संयोग में वणिज करण में, मेरा व्रत दैवयोग से पुरुषों को सौभाग्ययोग द्वारा प्राप्त होता है। इन योगों के बिना भी मेरा दिन पाप को नाश करता है। मेरे व्रत में सब वर्णों का अधिकार है। मेरे में भक्ति रखनेवाले मेरे में अनुरागियों को विशेष रूप से करना चाहिये।

तथा—'सिंहः स्वर्णमयो देयो मम सन्तोषकारकः ।'

तथा—'विज्ञाय मद्दिनं यस्तु लङ्घयेत्पापकृन्नरः। स याति नरकं घोरं यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥
इदं च संयोगपृथक्त्वन्यायेन नित्यं काम्यं च ।

और मेरे सन्तोषार्थ सुवर्णमय सिंह को दे और जो पापी मनुष्य मेरे दिन को जानकर उल्लंघन करता है वह जबतक चन्द्रमा और सूर्य हैं तब तक घोर नरक में जाता है। यह व्रत 'संयोगपृथक्त्वन्याय' से नित्य और काम्य है।

अथात्र विशेषः—मध्याह्ने मृद्गोमयतिलामलकस्नानं कृत्वा—नृसिंह देवदेवेश तव जन्मदिने शुभे। उपवासं करिष्यामि सर्वभोगविवर्जितः ॥ इति मन्त्रेण सङ्कल्पं कृत्वा आचार्यं वृत्वा सायंकाले—'हैमी तु तत्र तन्मूर्तिः स्थाप्या लक्ष्म्यास्तथैव च। पलेन वा तदर्धेन तदर्धार्धेन वा पुनः ॥ यथाशक्ति तथा कुर्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ इत्युक्तां नृसिंहमूर्तिं शक्त्या कृतं सुवर्णसिंहं च कलशोपरि सम्पूज्य रात्रौ जागरणं कृत्वा प्रातः पुनः सम्पूज्य—नृसिंहाच्युत देवेश लक्ष्मीकान्त जगत्पते। अनेनार्चाप्रदानेन सफलाः स्युर्मनोरथाः ॥ इत्याचार्याय दत्त्वा—

और यहाँ पर विशेष कहा है कि—मध्याह्नकाल में—मृत्तिका, गोबर, तिल तथा आंवले से स्नानकर—हे नृसिंह, हे देवदेवेश, तुम्हारे शुभ जन्म दिन में सम्पूर्ण भोगों को त्यागकर उपवास को करूँगा। इस मन्त्र से संकल्पकर आचार्य का वरणकर सायंकाल में—वहाँ पर पलभर या उसके आधे प्रमाण की या उससे भी आधे प्रमाण की यथाशक्ति अपने यथोचित वित्तानुसार सुवर्ण की मेरी तथा लक्ष्मी जी की मूर्ति का स्थापन करे। इसप्रकार कही हुई नृसिंह मूर्ति को यथाशक्ति से की हुई और सुवर्ण का सिंह बनाकर कलश के ऊपर रखकर पूजनकर रात में जागर करके सुबह फिर से पूजन करे।

हे नृसिंह, हे अच्युत, हे देवेश, हे लक्ष्मीकान्त, हे जगत्पते, इस अर्चित मूर्ति के दान द्वारा मेरे सारे मनोरथ सफल हों। इसप्रकार आचार्य को देकर—

'मद्वंशे ये नरा जाता ये जनिष्यन्ति चापरे। तांस्त्वमुद्धर देवेश दुःस्तराद्भवसागरात् ॥

हे देवेश, मेरे वंश (खानदान) में जो मनुष्य पैदा हो चुके हैं और दूसरे और उत्पन्न होंगे उनको आप दुःख से पार होनेवाले संसाररूपी सागर से उद्धार करें।

पातकार्णवमग्नस्य व्याधिदुःखाम्बुवारिभिः। तीव्रैश्च परिभूतस्य महादुःखगतस्य मे ॥
करावलम्बनं देहि शेषशायिन् जगत्पते। श्रीनृसिंह रमाकान्त भक्तानां भयनाशन ॥
क्षीराम्बुनिधिवासिंस्त्वं चक्रपाणे जनार्दन। व्रतेनानेन देवेश भुक्तिमुक्तिप्रदोभव ॥ इति प्रार्थयेदिति संक्षेपः।

पातकरूपी अर्णव मग्न कर्तव्यासे प्राप्त हुए व्याधिदुःखाम्बुवारियों से और कठिन पराभव रूप महादुःख में गये हुए मेरा हे शेषशायिन्, हे जगत्पते, हाथ का सहारा दो।

हे श्री नृसिंह, हे रमाकान्त, भक्तों के भय को नाश करनेवाले, क्षीराम्बुनिधिवासिन्, (अर्थात्—क्षीरसागर में निवास करनेवाले) हे चक्रपाणे, (चक्र है हाथ में जिसके) हे जनार्दन (मनुष्यों की रक्षा करनेवाले) हे देवेश, इस व्रत से भुक्ति तथा मुक्ति को देनेवाले हो। इसप्रकार प्रार्थना करे। यह संक्षेप है।

(वैशाखपूर्णिमायां विशेषः)

वैशाखपौर्णमास्यां विशेषोऽपरार्के जाबालिनोक्तः—'भृतान्नमुदकुम्भं च वैशाख्यां च विशेषतः।
निर्दिश्य धर्मराजाय गोदानफलमाप्नुयात् ॥

वैशाखमास की पूर्णिमातिथि में विशेष अपरार्क में जावालि ने कहा है कि—जो वैशाखी पूर्णिमा में विशेषकर पका अन्न (पक्वान्न) और जलपूर्ण घड़े को धर्मराज के उद्देश्य से देता है। उसको गोदान के करने का फल प्राप्त हो जाता है।

सुवर्णतिलयुक्तैस्तु ब्राह्मणान् सप्त पञ्च च। तर्पयेदुदपात्रैस्तु ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ इति।
उदकुम्भदानमन्त्रस्त्वक्षयतृतीयाप्रकरणे उक्तः।

जो सुवर्ण तथा तिलों के सहित जलपात्रों से सात या पांच ब्राह्मणों को तृप्त करता है। वह ब्रह्महत्या को हटाता है। जलकुम्भ दान का मन्त्र अक्षयतृतीया प्रकरण में कहा जा चुका है।

भविष्येऽपि—'वैशाखी कार्तिकी माघी तिथयोऽतीव पूजिताः।
स्नानदानविहीनास्ता न नेयाः पाण्डुनन्दन ॥"

भविष्यपुराण में भी कहा है कि—वैशाखमास की पूर्णिमा, कार्तिकमास की पूर्णिमा तथा माघ मास की पूर्णिमा अत्यन्त पूजनीय हैं। हे पाण्डुनन्दन, उस दिन स्नान तथा दान से विहीन नहीं होना चाहिये। अर्थात्—स्नान और दान अवश्य ही करे।

(कृष्णाजिनादिदानम्)

अत्र कृष्णाजिनदानं कार्यम्। तथा च विष्णुः—'कृष्णाजिनं तिलान् कृष्णान् हिरण्यं मधुसर्पिषी
ददाति यस्तु विप्राय सर्वं तरति दुष्कृतम् ॥' इति।

और यहाँ पर कृष्णाजिन का दान करे। विष्णु ने कहा है कि—जो कृष्णाजिनपर काले तिल, सुवर्ण, मधु (सहत), और घृत को रखकर ब्राह्मण को देता है। वह सब भयंकर पापों से तर जाता है।

इति वैशाखमासः।

(संक्षिप्ततम शास्त्रीयविचार)

(१) वर्षारंभ मलमास में होता है। (२) रामनवमी मलमास में नहीं होती है। (३) वैशाखमास मलमास में हो तो काम्यकर्म मलमास मे समाप्त न होने के कारण मासद्वयमें स्नान, हविष्याशन आदि नियम होते हैं। (४) मासोत्सवास तथा चान्द्रायणादि तो मलमास में ही समाप्त हो जाते हैं। (५) वैशाख में मलमास हो तो उसी में युगादि करे। (६) चैत्रशुक्ल प्रतिपदा से वत्सरारंभ होता है। (७) प्रतिपदा तिथि में नवरात्र का आरंभ करे। (८) अमावास्या युक्ता प्रतिपदामें चण्डीका पूजन न करे। (६) वैशाखमास में ब्राह्मणों की गन्ध, माला, पान, केला आदि से 'वसन्त पूजा' करे। धर्मसिन्धु। (१०) मुक्तिकामनाकेलिए वैशाखमहिने में त्रिकाल तुलसी से विष्णु का पूजन करे। (११) पीपल की जड़ में जल और प्रदक्षिणा करने से कुल का उद्धार होता है। (१२) गंगा दशहरा में काशीवासी दशाश्वमेध में स्नान कर पूजन करते हैं। (धर्मसिन्धु) (१३) ज्येष्ठ महिना मलमास हो तो उसी में दशहरा करे शुद्ध में नहीं। (१४) ममैतज्जन्मजन्मान्तरसमुद्भूतत्रिविधकायिकचतुर्विधवाचिकत्रिविधमानसेतिस्कान्दोक्तदशविधपापनिरासत्रयत्रिंशच्छतपित्र्युद्धारब्रह्मलोकवाप्त्यादिफलप्राप्त्यर्थं ज्येष्ठमाससितपक्षदशमीबुधवारहस्ततारकागरकरणव्यतीपातानन्दयोगकन्यास्थचन्द्रवृषस्थ सूर्येतिदशयोगपर्वण्यस्यां महानद्यां स्नानं तीर्थपूजनं प्रतियायां जाह्नवीपूजां तिलादिदानं मूलमन्त्रजपमाज्यहोमं च यथाशक्ति करिष्ये। (१५) ज्येष्ठ महिने की पूर्णिमा को तिलदान करने से 'अश्वेमधयज्ञ' करने का फल होता है। (१६) रजस्वला हो जाने पर स्त्री ब्राह्मण के द्वारा पूजा आदि करावे और स्वयं उपवास आदि करे।

अथ निर्णयसिन्धुः

चैत्र शुक्लपक्ष और वैशाखमास

श्लोकसूची

दौलतराम गौड

अथ निर्णयसिन्धुः

(भाषा-टीका-सहित)

(ज्येष्ठमास और आषाढमास)

दौलतराम गौड

(अथ गङ्गापूजा)

ध्यान—नमामि गंगे तव पादपङ्कजं सुरासुरैर्वन्दितदिव्यरूपम् । भुक्तिं च मुक्तिं च ददासि नित्यं भावानुसारेण सदा नराणाम् ॥ आवाहन—एह्येहि गंगे दुरितौघनाशिनि झषाधिरूढे उदकुम्भहस्ते । श्रीविष्णुपादाम्बुजसंभवे त्वं पूजां गृहीतुं शुभदे नमस्ते। आसन—अनन्तादिधरां भागं मम यच्छ महाफलम् । ब्रह्माद्रिशिखरे गङ्गे आसनं प्रतिगृह्यताम् ॥ पाद्य—सिंहाङ्कितं स्वर्णपीठं नानारत्नोपशोभितम् । अनेकशक्तिसंयुक्तमासनं प्रतिगृह्यताम् ॥ अर्घ्य—अर्घ्यं गृहाण देवेशि गन्धपुष्पाक्षतैः सह । पुण्यदं शंखतोयाक्तं मया तुभ्यं निवेदितम् ॥ आचमन—गङ्गादिसर्वतीर्थेभ्यो मया प्रार्थनया हुतम् । तोयमाचमनीयार्थं देवेशि प्रतिगृह्यताम् ॥ स्नान—गङ्गा च गोदा सरयूश्च सिन्धुः सरस्वती सूर्यसुता च रेवा । कालिन्दिका स्नानविधौ समस्ता आयान्तु पुण्याः सरितां प्रवाहाः ॥ पञ्चामृत—पयो दधि घृतं चैव मधुशर्करयान्वितम्। पञ्चामृतेन देवेशि स्वीकुरु स्नानमुत्तमम् ॥ अभ्यंग—अभ्यङ्गार्थं च हे गङ्गे तैलं पुष्पादिसंभवम् । सुगन्धद्रव्यसंमिश्रं संगृहाण महेश्वरि ॥ अङ्गोद्वर्तन—अङ्गोद्वर्तनकं देवी कस्तूर्यादिविमिश्रितम् । लेपनार्थं गृहाणेदं हरिद्राकुङ्कुमैर्युतम् ॥ शुद्धोदकस्नान—सर्वतीर्थात्समुधृत्य गन्धतोयं कुशोदकम् । स्नानार्थं ते मया दत्तं गृहाण परमेश्वरि ॥ वस्त्र—सूक्ष्मतन्तुमयं वस्त्रं कार्पासेन विनिर्मितम् । मयोपपादितं तुभ्यं वासोयुग्मं प्रगृह्यताम् ॥ आभरण—अनेकरत्नखचितं सर्वाभरणभूषितम् । गृहाण भूषणं देवि इष्टसिद्धिं च देहि मे ॥ कण्ठसूत्र—सत्सूत्रगुम्फितं दिव्यं पवित्रं परमं शुभम् । गृहाण कण्ठभूषार्थं गङ्गे ब्रह्माण्डनिर्मिते ॥ गन्ध—गोरोचनं चन्दनदेवदारुकर्पूरकृष्णागरुनागराणि। कस्तूरीकाकेसरमिश्रितानि यथोचितं देवि मयार्पितानि ॥ पुष्प—कवीरैर्जातीकुसुमैश्चम्पकैर्वकुलैः शुभैः । शतपत्रैश्च कह्लारैरर्चयेत्परमेश्वरीम् ॥ अङ्गपूजा—चन्द्रिकायै नमः पादौ पूजयामि । चन्द्रकान्तायै० जंघे पू० । चञ्चलायै० कटी पू० । चलद्युत्यै० नाभिं पू० । चिन्मयायै० हृदयं पू० । चित्तिरुपिण्यै० स्तनौ पू० । चन्द्रायुतशताननायै० भुजौ पू० । कमलपाण्यै० हस्तौ पू० । कम्बुग्रीवायै० कण्ठं पू० । भवान्यै० मुखं पू० । चांपेयलोचनायै० नेत्रे पू० । चार्वङ्गिन्यै० कर्णौ पू० । चारुगामिन्यै० नासिकां पू० । आर्यायिन्यै० ललाटं पू० । चरित्रनिलयायै० शिरः पू० । गङ्गायै० सर्वाङ्गं पू० । आवरणपूजा —पूर्वादिक्रमेण—नन्दिन्यै नमः । नलिन्यै० । जान्हव्यै० । मालत्यै० । मलापहन्त्र्यै० । विष्णुपादाब्जसंभूत्यै० । त्रिपथगामिन्यै० । भागीरथ्यै नमः । धूप—सुगन्धतरुसंपन्नं गन्धद्रव्यविवर्धनम् । गृहाण धूपकं गङ्गे संसारार्णवतारिणि ॥ दीप—अनन्तज्वलितं दीपमज्ञानान्धविनाशनम् । आर्तिक्यं च मया दत्तं गृहाण परमेश्वरि ॥ नैवेद्य—नानाभक्ष्यैः समाकीर्णं पक्वान्नैर्विविधैरपि । नैवेद्यं ते मया दत्तं गृहाण सुरपूजिते ॥ फल—महाफलं समानीतं गृहाण सरिताम्वरे । मनोरमं फलं देहि देवदेवस्य वल्लभे ॥ ताम्बूल—कर्पूरैलालवङ्गादिताम्बूलदलखादिरैः । जातिपूगफलैर्युक्तं त्रयोदशगुणान्वितम् ॥ दक्षिणा—न्यूनातिरिक्तपूजायाः सम्पूर्णफलहेतवे । दक्षिणां काञ्चनीं देवि स्थापयामि तवाग्रतः ॥ नमस्कारः—नमः श्रेयस्करी देवि नमः पापप्रणाशिनि । नमः शान्तिकरी गङ्गे नमो दरिद्रयनाशिनि ॥ प्रार्थना—मन्दाकिनि नमस्तुभ्यं नमस्ते सुरपूजिते । भोगावति नमस्तुभ्यं नागैस्त्वं तत्र वन्दिते ॥ भागीरथि नमस्तुभ्यं सागराणां च पाविनि । प्रयागे च त्रिरूपा त्वं नैमिषे च सरस्वती ॥ विन्ध्ये त्वं नर्मदा देवि कुशातुल्या तु गौतमी । तस्मात्त्वं सर्वदा सेव्या श्रद्धया च कलौ युगे ॥ हरिद्वारे नमस्तुभ्यं सरिदीशे नमो नमः । जय गंगे नमो गंगे गोदावरि नमोऽस्तु ते ॥ मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वरि । यत्कृतं तु मया देवि परिपूर्णं तदस्तु मे ॥ अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम । तस्मात्कारुण्यभावेन रक्ष मां परमेश्वरि ॥

(धर्मसिन्धु के अनुसार व्यासपूजा)

देशकालौ संकीर्त्य—श्रीकृष्णव्यासभाष्यकाराणां सपरिवाराणां पूजनं करिष्ये । इति संकल्प्य मध्ये—श्री कृष्णाय नमः श्रीकृष्णं स्थापयामि । ततः पूर्वादिक्रमेण–प्रादक्षिण्येन–वासुदेवाय नमः वासुदेवं स्था० १ संकर्षणाय नमः संकर्षणं स्था० २ प्रद्युम्नाय नमः प्रद्युम्नं स्था० ३ अनिरुद्धाय नमः अनिरुद्धं स्था० ४ ततः श्रीकृष्णपञ्चकदक्षिणे मध्यभागे–वेदव्यासाय नमः वेदव्यासं स्था० १ तत्पूर्वतः प्रादक्षिण्येन–सुमन्तवे नमः सुमन्तुं स्थाप० २ जैमिनये नमः जैमिनिं स्थाप० २ वैशंपायनाय नमः वैशंपायनं स्था० ४ पैलाय नमः पैलं स्था० ५ इति व्यासपञ्चकमावाह्य श्रीकृष्णादिवामे–भाष्यकाराय नमः भाष्यकारं स्था० १ श्रीशंकराय नमः श्री शंकरं स्था० २ तत्पूर्वतः प्रादक्षिण्येन–पद्मपादकाय नमः पद्मपादकं स्था० १ विश्वरूपाय नमः विश्वरूपं स्था० २ त्रोटकाय नमः त्रोटकं स्था० ३ हस्तामलकाय नमः हस्तामलकं स्था० ४ श्रीकृष्णपञ्चके श्रीकृष्णपार्श्वयोः—ब्रह्मणे नमः ब्रह्माणं स्था० १ रुद्राय नमः रुद्रं स्था० २ ततः पूर्वादिचतुर्दिक्षु–सनकाय नमः सनकं स्था० १ सनन्दनाय नमः सनन्दनं स्था० २ सनातनाय नमः सनातनं स्था० ३ सनत्कुमाराय नमः सनत्कुमारं स्था० ४ श्रीकृष्णपश्चात्पुरतः–गुरवे नमः गुरुं स्था० १ परमगुरवे नमः परमगुरुं स्था० २ परमेष्ठिगुरवे नमः परमेष्ठिगुरुं

स्था० ३ वसिष्ठाय नमः वसिष्ठं स्था० १ शक्तै नमः शक्तिं स्था० २ पराशराय नमः पराशरं स्था० ३ व्यासशुकाय नमः व्यासशुकं स्था० ४ गौडपादाय नमः गौडपादं स्था० ५ गोविन्दपादाय नमः गोविन्दपादं स्था० ६ शंकराचार्याय नमः शंकराचार्यं पू० ७ पञ्चकत्रयस्याग्नेये–गणेशाय नमः गणेशं स्था० १ ईशाने–क्षेत्रपालाय नमः क्षेत्रपालं स्था० २ वायव्ये–दुर्गायै नमः दुर्गां स्था० ४ प्रागाद्यष्टदिक्षु–पूर्वे इन्द्राय नमः १ अग्नये नमः १ यमाय नमः ३ निर्ऋतये नमः ४ वरुणाय नमः ५ वायवे नमः ६ सोमाय नमः ७ ईशानाय नमः ८ तत्र नारायणाष्टाक्षरेण श्रीकृष्णपूजा ।

अथ व्यासपूजा (लिखितपद्धति के अनुसार)

व्यासपूजां प्रवक्ष्यामि सम्यक् संसिद्धिसिद्धये । कृत्वानुष्ठानमाषाढ्यां पूजाङ्गं सन्निधापयेत् ॥ प्राणायामत्रयं कृत्वा षडङ्गन्यासपूर्वकम् । व्यासपूजां करिष्यामि इत्युक्तं सलिलं स्पृशेत् ।

देशकालौ संकीर्त्य—ब्राह्मणैः सह व्यासपूजां करिष्यामि इति संकल्प्य पीठादौ मध्ये अष्टदलं कमलकर्णिकायाम्–ॐ आं आधारशक्त्यै नमः । कूँ कूर्माय० । अं अनन्ताय० । पं० पृथिव्यै० । क्षीं क्षीरसमुद्राय० । श्वें श्वेतद्वीपाय० । मं० मणिमण्डपाय० । कं कल्पवृक्षाय० । रं रत्नवेदिकायै० । रं रत्नसिंहासनाय० । सं सर्वशक्तिकमलासनाय० । कृष्णस्याग्नेये–गणेशाय नमः । नैर्ऋत्ये–सरस्वत्यै० । वायव्ये–दुर्गायै० । ईशाने–क्षं क्षेत्रपालाय० । कृष्णपञ्चकस्याग्नेयकोष्ठे–ब्रह्मणे नमः । ईशानकोष्ठे–रुद्राय० । पीठमध्ये- कृष्णाय० । कृष्णपूर्वे–वासुदेवाय० । तद्दक्षिणे–संकर्षणाय० । पश्चिमे–प्रद्युम्नाय० । उत्तरे–अनिरुद्धाय० । कृष्णपञ्चकस्य दक्षिणे मध्यकोष्ठे–वेदव्यासाय० । तत्पूर्वे–वैशंपायनाय० । दक्षिणे–सुमन्तवे० । तत्पश्चिमे–जैमिनये० । उत्तरे–पैलाय० । कृष्णपञ्चकस्योत्तरे मध्यकोष्ठे–श्रीशंकराचार्येभ्यो नमः । तत्पूर्वे–विश्वरूपाचार्येभ्यो नमः । तद्दक्षिणे–पद्मपादाचार्येभ्यो नमः । तत्पश्चिमे–हस्तामलकाचार्येभ्यो नमः । तदुत्तरकोष्ठे–त्रोटकाचार्येभ्यो नमः । कृष्णपञ्चकस्य पश्चिमे मध्यकोष्ठे–सनकाय नमः । तत्पूर्वे–सनन्दनाय० । तद्दक्षिणे–सनातनाय० । तत्पश्चिमे–सनत्कुमाराय० । तदुत्तरे–कपिलाय० । कृष्णपञ्चकस्य नैर्ऋते मध्यकोष्ठे–ऋषभदेवाय नमः । तत्पूर्वे–दत्तात्रयाय० । तद्दक्षिणे–शुकाय० । तत्पश्चिमे–नारदाय० तदुत्तरे–संवर्ताय० । कृष्णपञ्चकस्य वायव्ये मध्यकोष्ठे–श्वेतकेतवे नमः । तत्पूर्वे–दुर्वाससे० । तद्दक्षिणे–जडभरताय० । तत्पश्चिमे–रैवताय० । तदुत्तरे–वामदेवाय० । कृष्णपञ्चकस्य पूर्वे–द्रविडाचार्येभ्यो नमः । तत्पूर्वे–गोविन्दभवत्पूज्यपादाचार्येभ्यो नमः । तद्दक्षिणे–गौडपादाचार्येभ्यो नमः । तत्पश्चिमे–विवरणाचार्येभ्यो नमः । तदुत्तरे–समस्तब्रह्मविद्याप्रवर्तकाचार्येभ्यो नमः । कृष्णपञ्चकस्याग्नेये मध्यकोष्ठे–गुरुभ्यो नमः । तत्पूर्वे–परमगुरुभ्यो नमः । दक्षिणे–परमेष्ठिगुरुभ्यो नमः । तत्पश्चिमे–परात्परगुरुभ्यो नमः । तदुत्तरे–समस्तब्रह्मविद्यासंप्रदायिभ्यो नमः । कृष्णपञ्चकस्येशाने मध्यकोष्ठे–आत्मने नमः । तत्पूर्वे कोष्ठे–अन्तरात्मने नमः । तद्दक्षिणकोष्ठे–परमात्मने० । तत्पश्चिमकोष्ठे–सर्वात्मने० । तदुत्तरकोष्ठे–परब्रह्मणे० । ततो दिक्षु मण्डले–पूर्वादिक्रमेण–इन्द्राय० । अग्नये नमः । यमाय० । नैर्ऋतये० । वरुणाय० । वायवे० । सोमाय० । ईशानाय० । ईशानपूर्वयोर्मध्ये–ब्रह्मणे नमः । निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये–अनन्ताय नमः । तदनन्तरं पूजां कुर्यात् ।

(संक्षिप्ततम शास्त्रीयविचार)

(१) ज्येष्ठमास में मलमास हो तो उसीमें दशहरा करे, शुद्धमास में न करे । (२) ज्येष्ठमहिने में पिष्ट की ब्रह्माकी मूर्ति बनाकर वस्त्र आदि द्वारा पूजन करने से सूर्यलोक मिलता है । (३) दशहरा में दश योग होते हैं–ज्येष्ठमास, शुक्लपक्ष, दशमीतिथि, बुधवार, हस्तनक्षत्र, व्यतीपात, गर, आनन्द, कन्या के चन्द्रमा और वृष के सूर्य । उसमें जिसदिन योग अधिक हो तथा दशमी पूर्वाह्न में मिलती हो उसीदिन दशहरा करे । यदि दो दिन पूर्वाह्न में दशमी प्राप्त होने पर जिसदिन योग बाहुल्य हो उसीदिन करे । (४) काशी निवासी आस्तिक जनता विशेषकर दशाश्वमेधतीर्थ में गंगास्नान और गंगामाता का पूजन करते हैं । (५) ममैतज्जन्मजन्मान्तरसमुद्भूतत्रिविधकायिकचतुर्विधवाचिकत्रिविधमानसेति स्कान्दोक्तदशविधपापनिरासत्रयस्त्रिंशच्छतपितृउद्धारब्रह्मलोकावाप्त्यादिफलप्राप्त्यर्थं ज्येष्ठमाससितपक्षदशमीबुधवारहस्ततारकागरकरणव्यतीपातानन्दयोगकन्यास्थचन्द्रवृषस्थसूर्येतिदशयोगपर्वण्यस्यां महानद्यां स्नानं तीर्थपूजनं प्रतिमायां जाह्नवीपूजां तिलादिदानं मूलमन्त्रजपमाज्यहोमं च यथाशक्ति करिष्ये । धर्मसिन्धु । (६) दशहराको गुडमिश्रित सत्तूके दशपिण्ड प्रक्षेप करे । (७) उसदिन दशब्राह्मणों को सोलह सोलह मुट्ठी तिल और दक्षिणा दे । (८) दशहरा को सुवर्ण, रजत या पिष्टके मत्स्य, कच्छप और मण्डूक को बनाकर उनका पूजनकर तीर्थमें प्रक्षेप करे । (९) दशहरा में गंगा आदि में दीपकों को छोड दे । (१०) दशहरा के दिन स्कन्दपुराणोक्त गङ्गास्तोत्र का पाठ करे । (११) दशहरा में दश ब्राह्मण और सुवासीनियों का भोजन करावे । (१२) चातुर्मास्यव्रत का प्रथमारंभ ही गुरु, शुक्रास्त आदि में और आशौच में नहीं होता है । (१३) कर्कसंक्रान्तिके समीप की घडी में पुण्य विशेष होता है । आधीरात के पहले और

बाद में संक्रान्ति होने पर भी पहले दिन पुण्यकाल होता है। उसमें भी मध्याह्न के बाद पुण्य होता है। सूर्योदय के बाद दो घड़ी पूर्व संक्रान्ति में बाद में ही पुण्य होता है। ज्योतिर्ग्रन्थ में तो सूर्योदय के पहले तीन घड़ी सन्ध्या के समय में भी कर्क की संक्रान्ति में दूसरे दिन ही पुण्य होता है। कर्क की संक्रान्ति में पहले तीस घड़ी पुण्यकाल होता है। (१४) रात्रि में शयन तथा दिन में प्रबोधोत्सव देवताओं का करे। किसी का मत है कि-द्वादशी में पारणा करे तो शयनोत्सव तथा प्रबोधोत्सव उसीदिन करे। यहाँ देशाचार से व्यवस्था है। ये कार्य मलमास में नहीं होते हैं। (१५) द्वादशीतिथि में पारणोत्तर सायंकालीन पूजाकर चातुर्मास्यव्रत का संकल्प करे—यह स्मृतिकौस्तुभकारका मत है। एकादशी में ही करे—यह निर्णयसिन्धु का मत है। (१६) आषाढशुक्लपक्षकी एकादशी से श्रावणशुक्लपक्षकी एकादशी या द्वादशीतिथि तक साग, भाद्रपदमास में दही, आश्विन महिने में दूध और कार्तिकमासमें दाल नहीं खानी चाहिये। (१७) तप्तमुद्राधारण विधान में विधानवाले तथा निन्दावाले वचन बहुत ही उपलब्ध हैं। धर्मसिन्धुकार देशाचार व्यवस्था मानते हैं पर निर्णयसिन्धुकार चक्राङ्कित की प्रशंसा में नहीं है। (१८) कर्क, कन्या, धन और कुम्भ के सूर्य में केश-कर्तनादि निषिद्ध है।

(अथ ज्येष्ठमासः)

वृषसंक्रान्तौ पूर्वाः षोडश घटिकाः पुण्यकालः। रात्रौ संक्रमे सति प्रागेवोक्तम्।

वृष संक्रान्ति में पहले सोलह घड़ी पुण्यकाल होता है। रात में वृष संक्रान्ति होने पर पहले कह चुके हैं।

(अथ रंभाव्रतकथनम्)

ज्येष्ठशुक्लतृतीयायां रम्भाव्रतमुक्तं माधवीये भविष्ये—भद्रे कुरुष्व यत्नेन रम्भाख्यं व्रतमुत्तमम्।
ज्येष्ठशुक्लतृतीयायां स्नाता नियमतत्परा ॥ इति।

सा पूर्वविद्धा ग्राह्या।

ज्येष्ठ शुक्ल तृतीयातिथि को रंभाव्रत माधवीय में भविष्यपुराण के वचन से कहा है कि—ज्येष्ठ शुक्लपक्ष की तृतीयातिथि में स्नान तथा नियम में तत्पर हो व्रतों में उत्तम रंभा नाम वाले व्रत को यत्न से हे भद्रे, करो। वह पूर्वविद्धा ग्रहण करे।

बृहत्तपा तथा रम्भा सावित्री वटपैतृकी। कृष्णाष्टमी च भूता च कर्तव्या सम्मुखी तिथिः ॥ इति स्कान्दोक्तेः।

स्कन्दपुराण का मत है कि—बृहत्तपा (श्रावणकृष्ण द्वितीया), रंभा (ज्येष्ठशुक्ल तृतीया), सावित्री (तद्व्रतसम्बन्धिपूर्णिमा वटपैत्रिकी (तद्व्रतसम्बन्धि-अमावास्या), कृष्णाष्टमी (कृष्णपक्ष की अष्टमी) भूता (चतुर्दशी) संमुखी (सायाह्नव्यापिनी, त्रिमुहूर्ता—भावे तु परा) तिथि ग्रहण करे।

(अथ दशहरा)

ज्येष्ठशुक्लदशमी दशहरा। तदुक्तं हेमाद्रौ ब्राह्मे—ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशमी हस्तसंयुता।
हरते दश पापानि तस्माद्दशहरा स्मृता ॥ इति।

ज्येष्ठशुक्ल दशमीतिथि को 'दशहरा' होता है। उसी बात को हेमाद्रि में ब्रह्मपुराण ने कहा है कि—हस्तनक्षत्र से युक्त ज्येष्ठ मास महिने की शुक्लपक्ष की दशमी तिथि दश पापों को हरती है। अतः उसे 'दशहरा' कहा गया है।

वाराहेऽपि—दशमी शुक्लपक्षे तु ज्येष्ठे मासि कुजेऽहनि। अवतीर्णा यतः स्वर्गाद्धस्तर्क्षे च सरिद्वरा ॥ हरते दशपापानि तस्माद्दशहरा स्मृता ॥ इति।

वाराहपुराण भी कहा है कि—ज्येष्ठमहिने के शुक्लपक्ष की दशमी तिथि; मंगलवार और हस्तनक्षत्र में गङ्गाजी स्वर्ग से अवतीर्ण हुई हैं। यह (दशमी) दश पापों को हरती है। अतः इसको 'दशहरा' कहते हैं।

---

(१) ज्येष्ठशुक्ल प्रतिपदा को दशाश्वमेधस्नान से सारे पातकों से मुक्ति मिल जाती है। काशीखण्डे—ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे प्राप्य प्रतिपदं तिथिम्। दशाश्वमेधके स्नात्वा मुच्यते सर्वपातकैः ॥

(अथ दशयोगकथनम्)

स्कान्दे तु दशयोगा उक्ताः । तथा–ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशम्यां बुधहस्तयोः । व्यतीपाते गरानन्दे कन्याचन्द्रे वृषे रवौ ॥ दशयोगे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ इति ।

स्कन्दपुराण में तो दशयोग कहा है कि—ज्येष्ठमास, शुक्लपक्ष दशमीतिथि बुधवार, हस्तनक्षत्र व्यतीपात, गर (करणभेद) आनन्द (कन्या का चन्द्रमा) और वृष के सूर्य, इन दश योग में मनुष्य स्नान कर सब पापों से मुक्त हो जाता है।

(बुधभौमयोः कल्पभेदेन व्यवस्थाकथनम्)

अत्र बुधभौमयोः कल्पभेदेन व्यवस्था । इयं च यत्रैव योगबाहुल्यं सैव ग्राह्या । योगाधिक्ये फलाधिक्यात् ।

यहाँ पर बुधवार और मंगलवार का कल्पभेद से व्यवस्था है और इस दशमी को जिसदिन योग बाहुल्य हो उसी को ग्रहण करे। क्योंकि योगाधिक्य में फलाधिक्य होता है।

(अथ ज्येष्ठे मलमासे दशहरानिर्णयः)

ज्येष्ठे मलमासे सति तत्रैव दशहरा कार्या न तु शुद्धे ।

ज्येष्ठमास में मलमास होने पर उसी में ही दशहरा करे शुद्धमास में न करे। (कृत्यरत्नावली मत से शुद्धमास में दशहरा करे) ।

दशहरासु नोत्कर्षश्चतुर्ष्वपि युगादिषु । इति हेमाद्रौ ऋष्यशृङ्गोक्तेः ।

हेमाद्रि में ऋष्यशृङ्ग ने कहा है कि—चारों युगादि में तथा दशहरा में उत्कर्ष नहीं होता है।

तथा स्कान्दे—यां काञ्चित्सरितं प्राप्य दद्यादर्घ्यं तिलोदकम् ।
मुच्यते दशभिः पापैः स महापातकोपमैः ॥

और स्कन्दपुराण में कहा है कि—(गङ्गा नदी के अभाव में) किसी भी नदी को प्राप्त कर तिलोदक द्वारा अर्घ देने से वह महापातकों के सदृश दश पापों से मुक्त हो जाता है।

(अथ दशाश्वमेधे विशेषकथनम्)

अत्र विशेषः काशीखण्डे—ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे प्राप्य प्रतिपदं तिथिम् ।
दशाश्वमेधिके स्नात्वा मुच्यते सर्वपातकैः ॥

यहाँ पर विशेष काशीखण्ड में लिखा है कि—ज्येष्ठमास के शुक्लपक्ष की प्रतिपदातिथि को प्राप्त कर जो दशाश्वमेध में स्नान करता है उसके सारे पातक नष्ट होजाते हैं।

एवं सर्वासु तिथिषु क्रमस्नायी नरोत्तमः । आशुक्लपक्षदशमीं प्रतिजन्माघमुत्सृजेत् ॥

इसप्रकार सब तिथियों में नरों में श्रेष्ठ शुक्लपक्ष की (अर्थात् ज्येष्ठमास के प्रतिपदा से दशमी तिथि तक) दशमी तक क्रम से स्नान करता है। वह जन्म-जन्मान्तर के पापों से मुक्त हो जाता है।

तथा–लिङ्गं दशाश्वमेधेशं दृष्ट्वा दशहरातिथौ । दशजन्मार्जितैः पापैस्त्यज्यते नात्र संशयः ॥

और दशहरातिथि में दशाश्वमेधेश लिंग को देख (दर्शन) कर दश जन्मों से अर्जित (सञ्चित) पापों से मुक्त हो जाता है। इसमें संशय नहीं है।

तथा भविष्योत्तरकाशीखण्डयोः—निशायां जागरं कृत्वा समुपोष्य च भक्तितः । पुष्पैर्गन्धैश्च नैवेद्यैः फलैश्च दशसंख्यया ॥

तथा दीपैश्च ताम्बूलैः पूजयेच्छ्रद्धयाऽन्वितः । स्नात्वा भक्त्या तु जाह्नव्यां दशकृत्वो विधानतः ॥

दशप्रसृतिकृष्णांश्च तिलान् सर्पिश्च वै जले। सक्तुपिण्डान् गुडपिण्डान् दद्याच्च दशसंख्यया॥ ततो गङ्गातटे रम्ये हेम्ना रूप्येण वा तथा। गङ्गायाः प्रतिमां कृत्वा वक्ष्यमाणस्वरूपिणीम्॥ संस्थाप्य पूजयेद्देवीं तदलाभे मृदाऽपि वा। अथ तत्राप्यशक्तश्चेल्लिखेत्पिष्टेन वै भुवि॥ वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण कुर्यात्पूजां विशेषतः।

और भविष्योत्तरपुराण तथा काशीखण्ड में कहा है कि—भक्ति से निशा (रात्रि) में जागरण तथा उपवास को कर पुष्प, गन्ध—नैवेद्य, दशसंख्या तक फलों से और दीपकों एवं ताम्बूलों से श्रद्धयान्वित होकर पूजन करे। दशवार विधान से गङ्गा में भक्ति से स्नान कर दश प्रसृति काले तिलों और घृत, सक्तु तथा गुड के पिण्डों के दश दश पिण्डों को जल (गंगादि जल) में दे। तदनन्तर रमणीय गङ्गा तट पर सुवर्ण और चांदी की गङ्गा की प्रतिमा को आगे कही जाने वाली स्वरूपवाली को स्थापन कर देवी का पूजन करे। उसके अलाभ में मट्टी की मूर्ति बनावे। अनन्तर उसमें भी अशक्त हो तो पृथ्वी पर आंटे से लिखकर आगे कहे हुए मन्त्र से विशेष कर पूजा करे।

(तत्राप्यशक्तश्चेत्)

नारायणं महेशं च ब्रह्माणं भास्करं तथा॥ भागीरथं च नृपतिं हिमवन्तं नगेश्वरम्। गन्धपुष्पादिभिः सम्यग्यथाशक्ति प्रपूजयेत्॥ दशप्रस्थांस्तिलान्दद्याद्दशविप्रेभ्य एव च। दशप्रस्थान् यवान्दद्याद्दशसंख्यागवीस्तथा॥ प्रस्थः = षोडश पलानि। पलं तु 'मुष्टिमात्रं पलं स्मृतम्' इति महार्णवे उक्तम्।

नारायण, महेश, ब्रह्मा, सूर्य, भगीरथ, राजा और हिमवान्, नगेश्वर की यथाशक्ति गन्ध पुष्प आदि से अच्छीप्रकार से पूजन करे। दश ब्राह्मणों के लिये दशप्रस्थ (सोलहपल) यवों को और दश गोदान करे। प्रस्थ—सोलह पल को कहते हैं। पल तो मुष्टिमात्र को कहते हैं—यह महार्णव में कहा है।

मत्स्यकच्छपमण्डूकमकरादिजलेचरान्। हंसकारण्डवबकचक्रटिट्टिभिसारसान्॥ कारयित्वा यथाशक्ति स्वर्णेन रजतेन वा। तदलाभे पिष्टमयानभ्यर्च्य कुसुमादिभिः॥ गङ्गायां प्रक्षिपेदाज्यदीपांश्चैव प्रवाहयेत्। पुष्पाद्यैः पूजयेद् गङ्गां मन्त्रेणानेन भक्तितः॥ ॐ नमः शिवायै नारायण्यै दशहरायै नमो नमः॥ इति मन्त्रं तु यो मर्त्यो दिने तस्मिन्दिवानिशम्। जपेत्पञ्चसहस्राणि दशधर्मफलं लभेत्॥

मछली, कछुआ, मेढक, मगर आदि जल में चलने वाले जीवों को हंस, कारण्ड-जलकुक्कुट, वगुल, चक्रवाक, टिटहरी, सारस=पक्षी सोने या चांदी का यथाशक्ति बनवा कर या उनके अभाव में पिष्टमय (आटा) का बनाकर कुसुम (पुष्प) आदियों से पूजा कर गंगाजी में प्रक्षेप करे। घी के दीपकों को भी प्रवाहित करे। पुष्प आदि के द्वारा गंगाजी की भक्ति से इस मन्त्र से पूजा करे।

'ॐ नमः शिवायै नारायण्यै दशहरायै गङ्गायै नमो नमः' इस मन्त्र को जो मनुष्य दिन या रात दिन में पाच हजार जपता है उसको दश प्रकार के धर्म फल का लाभ होता है।

काशीखण्डे त्वन्यो मन्त्र उक्तः—नमः शिवायै प्रथमं नारायण्यै पदं ततः।
दशहरायै पदमिति गङ्गायै मन्त्र एष वै॥
स्वाहान्तः प्रणवादिश्च भवेद्विंशाक्षरो मनुः। पूजादानं जपो होमः तेनैव मनुना स्मृतम्॥ इति।

काशीखण्ड में तो अन्य मन्त्र कहा है कि—ओं नमः शिवायै—यह प्रथमपद है। तदनन्तर दूसरा पद 'नारायण्यै' है। तीसरा पद 'दशहायै' है। चतुर्थ पद—'गङ्गायै' है। यही मन्त्र है। प्रणव को आदि में कहे और अन्त में स्वाहा शब्द कहे तो बीस अक्षर का मन्त्र होता है। मन्त्रका स्वरूप यों है—'ओं नमः शिवायै नारायण्यै दशहरायै गङ्गायै स्वाहा। इसीसे पूजा, दान, जप तथा होम को कहा है।

(गङ्गास्तोत्रपाठफलम्)

अत्र [1]गङ्गास्तोत्रपाठमपि दशवारं कुर्यात् । तदुक्तं भविष्ये—तस्यां दशम्यामेतच्च स्तोत्रं गङ्गाजले स्थितः । यः पठेद् दशकृत्वस्तु दरिद्रो वाऽपि चाक्षमः ॥ सोऽपि तत्फलमाप्नोति गङ्गां सम्पूज्य यत्नतः ॥ इति ।

यहां पर गङ्गास्तोत्र का पाठ भी दश वार करे । उस बात को भविष्यपुराण में कहा है कि—उस दशमीतिथि में इस श्लोक को गंगाजल में स्थित होकर जो दरिद्री या अक्षम (धनी) दशवार पढ़ता है । वह भी गंगा जी के जल से पूजन का फल प्राप्त करता है ।

स्तोत्रं च प्रतिपदादिदशमीपर्यन्तं दिनवृद्धिसंख्यया पठनीयमिति शिष्टाः । अत्र सर्वोऽपि विस्तरः स्तोत्रादि च भट्टकृतत्रिस्थलीसेतोरवधेयः । विस्तरभीतेस्तु न लिख्यते ।

और स्तोत्र को प्रतिपदातिथि से दशमी तिथिपर्यन्त दिन वृद्धि की संख्या से पढ़ना चाहिये–यह शिष्ट मत है । यहाँ पर सम्पूर्ण विस्तार तथा स्तोत्रादि को भट्टकृत त्रिस्थलीसेतु––से जानना चाहिये । बिस्तार के भय से नहीं लिखते हैं ।

एवं कुर्वतः फलमुक्तं काशीखण्डे—एवं कृत्वा विधानेन वित्तशाठ्यविवर्जितः । उपवासी वक्ष्यमाणैर्दशपापैः प्रमुच्यते ॥ सर्वान् कामानवाप्नोति प्रेत्य ब्रह्मणि लीयते ॥ इति ।

इसतरह करते हुए काशीखण्ड में फल कहा है कि—इसप्रकार उपवासी (उपवास करने वाला) मनुष्य वित्त की शठता को छोड़कर विधान द्वारा कहे हुए दश पापों से छूट जाता है और संपूर्ण इच्छाओं को प्राप्त कर लेता है एवं मरने पर ब्रह्ममें लय हो जाता है ।

---

(१) ब्रह्मोवाच–नमः शिवायै गङ्गायै शिवदायै नमो नमः । नमस्ते रुद्ररूपिण्यै शाङ्कर्यै ते नमो नमः । नमस्ते विश्वरूपिन्यै ब्रह्ममूर्त्यै नमो नमः । सर्वदेवस्वरूपिण्यै नमो भेषजमूर्तये ॥ सर्वस्य सर्वव्याधीनां भिषक् श्रेष्ठयै नमोऽस्तु ते । स्थाणुजङ्गमसंभूतविषहन्त्र्यै नमो नमः । भोगोपभोगदायिन्यै भोगवत्यै नमो नमः । मन्दाकिन्यै नमस्तेऽस्तु स्वर्गदायै नमः सदा ॥ नमस्त्रैलोक्यभूषायै जगद्धात्र्यै नमो नमः । नमस्त्रिशुक्लसंस्थायै तेजोवत्यै नमो नमः । नन्दायै लिङ्गधारिण्यै नारायण्यै नमो नमः । नमस्ते विश्वमुख्यायै रेवत्यै ते नमो नमः । बृहत्यै ते नमस्तेऽस्तु लोकधात्र्यै नमो नमः । नमस्ते विश्वमित्रायै नन्दिन्यै ते नमो नमः । पृथिव्यै शिवामृतायै सुवृषायै नमो नमः । शान्तायै च वरिष्ठायै वरदायै नमो नमः । उस्रायै सुखदोग्ध्र्यै च संजीविन्यै नमो नमः । ब्रह्मिष्ठायै ब्रह्मदायै दुरितघ्न्यै नमो नमः । प्रणतार्तिप्रभञ्जिन्यै जगन्मात्रे नमोऽस्तु ते । सर्वापत्प्रतिपक्षायै मङ्गलायै नमो नमः । शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे । सर्वस्यार्ति हरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते । निर्लेपायै दुर्गहन्त्र्यै दक्षायै ते नमो नमः । परात्परतरे तुभ्यं नमस्ते मोक्षदे सदा । गङ्गे ममाऽग्रतो भूया गङ्गे मे देवि पृष्ठतः । गङ्गे मे पार्श्वयोरेहि त्वयि गङ्गेऽस्तु मे स्थितिः । आदौ त्वमन्ते मध्ये च सर्वं त्वं गां गते शिवे । त्वमेव मूलप्रकृतिस्त्वं हि नारायणः परः ॥ गङ्गे त्वं परमात्मा च शिवस्तुभ्यं नमः शिवे । इदं पठति स्तोत्रं भक्त्या नित्यं नरोऽपि यः । शृणुयाच्छ्रद्धया युक्तः कायवाक्चित्तसंभवैः ॥ दशधा संस्थितैर्दोषैः सर्वैरेव प्रमुच्यते । सर्वान्कामानवाप्नोति प्रेत्य ब्रह्मणि लीयते । ज्येष्ठे मासि ते पक्षे दशमी हस्तसंयुता । तस्यां दशम्यामेतच्च स्तोत्रं गङ्गाजले स्थितः ॥ पठेद्दशकृत्वस्तु दरिद्रो वापि चाक्षमः । सोऽपि तत्फलमाप्नोति गङ्गां संपूज्य यत्नतः ॥ अदत्तानामुपदानं हिंसा चैवाविधानतः । परदारोपसेवा च कायिकं त्रिविधं स्मृतम् । पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चापि सर्वशः । असंबद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम् । परद्रव्येष्वमिध्यानं मनसानिष्टचिन्तनम् । वितथाभिनिवेशश्च मानसं त्रिविधं स्मृतम् ॥ एतानि दशपापानि हर त्वं मम जान्हवि । दशपापहरायस्मात्तस्माद्दशहरा स्मृता ॥ त्रयस्त्रिंशच्छतं पूर्वान्पितृनथ पितामहान् । उद्धरत्येव संसारान्मन्त्रेणानेन पूजिता ॥ नमो भगवत्यै दशपापहरायै गङ्गायै नारायण्यै रेवत्यै शिवायै दक्षायै अमृतायै विश्वरूपिण्यै नन्दिन्यै ते नमो नमः । सितमकरनिषण्णां शुभवर्णां त्रिनेत्रां करधृतकलशोद्यत्सोत्पलामत्यभीष्टाम् । विधिहरिहररूपां सेन्दुकोटीरजुष्टां कलितसितदुकूलां जाह्नवीं तां नमामि ॥ आदावादिपितामहस्य निगमव्यापारपत्रे जलम् पश्चात्पन्नगशायिनो भगवतः पादोदकं पावनम् । भूयः शंभुजटाविभूषणमणिर्जह्नोर्महर्षेरियं देवी कल्मषनाशिनी भगवती भागीरथी दृश्यते ॥ गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि । मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं सगच्छति ॥

(अस्यां सेतुबन्धरामेश्वरप्रतिष्ठादिनत्वात् विशेषेणार्चनकथनम्)

अस्यां सेतुबन्धरामेश्वरस्य प्रतिष्ठादिनत्वाद्विशेषेण पूजा कार्या। तदुक्तं स्कान्दे सेतुमाहात्म्ये— ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशम्यां बुधहस्तयोः। गरानन्दे व्यतीपाते कन्याचन्द्रे वृषे रवौ॥ दशयोगे सेतुमध्ये लिङ्गरूपधरं हरम्। रामो वै स्थापयामास शिवलिङ्गमनुत्तमम्॥ इति दशहरा।

इसी तिथि में सेतुबन्ध रामेश्वर की प्रतिष्ठा दिन होने से विशेष पूजा करे। उसी बात को स्कन्दपुराण के सेतुमाहात्म्य में लिखा है कि—ज्येष्ठमास के शुक्लपक्ष में दशमी तिथि, बुधवार, हस्तनक्षत्र, गर, आनन्द, व्यतीपात, कन्या का चन्द्रमा और वृष राशी का सूर्य—इन दशयोग में सेतु के मध्य में लिङ्गरूपधारी हर (शङ्कर) को श्री (भगवान्) राम ने स्थापन किया। जो शिवलिङ्ग सर्वोत्तम है।

(अथ निर्जलैकादशीकथनम्)

ज्येष्ठशुक्लैकादशी निर्जला। तत्र निर्जलमुपोष्य विप्रेभ्यो जलकुम्भान् दद्यात् इति निर्णयामृते उक्तम्।

ज्येष्ठमास के शुक्लपक्ष की एकादशी निर्जला होती है। उस एकादशी में निर्जल (बिना जल के) होकर उपवास कर ब्राह्मणों के लिए जल से भरे कुम्भ (घडा) दे। यह निर्णयामृत में कहा है।

मदनरत्ने स्कान्देऽपि—ज्येष्ठे मासि नृपश्रेष्ठ या शुक्लैकादशी शुभा। निर्जलं समुपोष्यात्र जलकुम्भान् सशर्करान्॥ प्रदाय विप्रमुख्येभ्यो मोदते विष्णुसन्निधौ।

मदनरत्न में स्कन्दपुराण का मत है कि—हे नृपश्रेष्ठ, ज्येष्ठमास के शुक्लपक्ष में जो शुक्लपक्ष की एकादशी तिथि है। उसमें निर्जला उपवास कर जल से भरे कुंभों तथा शर्करा (चीनी) के सहित मुख्य ब्राह्मणों को देने से विष्णु की सन्निधि में हर्ष को प्राप्त होता है।

(अथ दाक्षिणात्यमते ज्येष्ठशुक्लपौर्णमास्यां सावित्रीव्रतकथनम्)

ज्येष्ठपौर्णमास्यां सावित्रीव्रतम्। तदुक्तं स्कान्दभविष्ययोः—ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे द्वादश्यां रजनीमुखे। इत्युपक्रम्य—व्रतं त्रिरात्रमुद्दिश्य दिवारात्रिं स्थिरो भवेत्। इति अन्तेऽप्युपसंहृतम्। ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे पूर्णिमायां तथा व्रतम्। चीर्णं पुरा महाभक्त्या कथितं ते मया नृप॥ इति। दाक्षिणात्याश्चैतदेवाद्रियन्ते।

ज्येष्ठमास की पूर्णिमातिथि में सावित्रीव्रत स्कन्दपुराण तथा भविष्यपुराण में कहा है कि—ज्येष्ठमास के शुक्लपक्ष में द्वादशीतिथि में प्रदोष (रजनीमुख) काल में ऐसा कह कर त्रिरात्रव्रत को उद्देश्य कर दिन और रात में स्थिर रहे। अन्त में उपसंहार (समाप्त) करे। ज्येष्ठमास के शुक्लपक्ष की पूर्णिमातिथि में उस व्रत को महाभक्ति से मैंने पहले किया। हे नृप, अब आपके लिए कहा है। दक्षिणात्यगण इसका आदर करते हैं।

(अथामावास्यायामपि सावित्रीव्रतम्)

एतच्चामावास्यायामप्युक्तं निर्णयामृते भविष्ये—अमायां च तथा ज्येष्ठे वटमूले महासती। त्रिरात्रोपोषिता नारी विधिनाऽनेन पूजयेत्॥

इसी को अमावास्या तिथि में भी निर्णयामृत में भविष्यपुराण के मत से कहा है कि—ज्येष्ठमास की अमावास्या में महासति नारी वटके मूल (जड) में त्रिरात्र उपवासकर इस विधि से पूजनकरे।

(अत्र व्रते मतमतान्तरकथनम्)

मदनरत्ने त्विदं वाक्यम्–'पञ्चदश्यां तथा ज्येष्ठे' इति पठित्वा ज्येष्ठपौर्णमास्यामप्युक्तम्। तथा अशक्ते तु त्रयोदश्यां नक्तं कुर्याज्जितेन्द्रिया। अयाचितं चतुर्दश्याममायां समुपोषणम्॥ इति। तत्तु पाश्चात्याश्च आद्रियन्ते। हेमाद्रिसमयोद्योतादिषु तु भाद्रपदपूर्णिमायामुक्तम्। तत्तु नेदानीं प्रचरति।

मदनरत्न में तो यह वाक्य है—'पञ्चदश्यां तथा ज्येष्ठे' इसको पढ़कर ज्येष्ठमास की पूर्णिमा में उपवास को कहा है और अशक्ति में तो त्रयोदशीतिथि में जितेन्द्रिय स्त्री नक्त करे। चतुर्दशीतिथि में

अयाचित और अमावास्या में उपवास करे। इसको पाश्चात्य लोग आदर करते हैं। हेमाद्रि, समयोद्योतादियों में तो भाद्रपदपूर्णिमा में कहा है। वह इससमय नहीं प्रचलित है।

(अत्र गौडमतम्)

गौडास्तु—मेषे वा वृषभे वापि सावित्रीं तां विनिर्दिशेत्। ज्येष्ठशुक्लचतुर्दश्यां सावित्रीमर्चयन्ति याः। वटमूले सोपवासा न ता वैधव्यमाप्नुयुः॥ इति पराशरोक्तेश्चतुर्दश्यां प्रदोषे व्रतम्। दिनद्वये तद्व्याप्तौ परैवेत्याहुः। तन्निर्मूलम्।

गौडों का कहना है कि—मेष या वृष के सूर्य में उस सावित्री को निर्देश करते हैं। उपवास को रखती हुई स्त्रियाँ ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्दशी तिथि में सावित्री का वटकी जड में अर्चन पूजन करती हैं। वे वैधव्यता को नहीं प्राप्त होती हैं। इसप्रकार पराशर के कहने पर चतुर्दशी प्रदोष में व्रत को कहा है। दोनों दिन में प्राप्त होतो परा ही (दूसरी) करे। यों कहा है। वह निर्मूल है।

(सावित्रीव्रते पूर्णिमादितिथिग्रहणविचारः)

अत्र पूर्णिमामावास्ये पूर्वविद्धे ग्राह्ये। भूतविद्धा न कर्तव्या अमावास्या च पूर्णिमा। वर्जयित्वा नरश्रेष्ठ सावित्रीव्रतमुत्तमम्॥ इति ब्रह्मवैवर्तात्।

यहाँ पर (सावित्रीव्रत) पूर्णिमा और अमावास्या तिथि पूर्वविद्धा ग्रहण करनी चाहिये। हे नरश्रेष्ठ, उत्तम सावित्रीव्रत को छोड़ कर चतुर्दशी से विद्धा अमावास्या तथा पूर्णिमा नहीं करनी चाहिये।

स्कान्देऽपि—भूतविद्धा सिनीवाली न तु तत्र व्रतं चरेत्। वर्जयित्वा तु सावित्रीव्रतं तु शिखिवाहन॥ इति।

स्कन्दपुराण में भी कहा है कि—हेशिखिवाहन, सावित्रीव्रत को छोड़कर चतुर्दशीतिथि से विद्धा अमावास्या में व्रत को न करे।

मदनरत्ने ब्रह्मवैवर्तेऽपि—प्रतिपत्पञ्चमी भूतसावित्री वटपूर्णिमा।
नवमी दशमी चैव नोपोष्याः परसंयुताः॥ इति।

मदनरत्न में ब्रह्मवैवर्तपुराण का भी कथन है कि—प्रतिपदा, पञ्चमी, तद् व्रतसम्बन्धि अमावास्या, तद् व्रतसम्बन्धि पूर्णिमा, नवमी और दशमीतिथि परविद्धा हो तो उपवास न करे।

यदा त्वष्टादशघटिका चतुर्दशी तदा परा ग्राह्या। पूर्वविद्धैव सावित्रीव्रते पञ्चदशी तिथिः। नाड्योऽष्टादश भूतस्य स्युश्चेत्तच्च परेऽहनि॥ इति माधवः।

जब अठारह घड़ी चतुर्दशी तिथि हो तो परा ग्रहण करनी चाहिये। माधव का मत है कि—सावित्रीव्रत में पञ्चदशी (पूर्णिमा) तिथि पूर्वविद्धा ही ले। यदि चतुर्दशी तिथि अठारह नाडी (घडी) हो तो दूसरे दिन में करे।

वस्तुतस्तु—भूतोऽष्टादशनाडीभिर्दूषयत्युत्तरां तिथिम्। इत्यस्य व्रतान्तरे सावकाशत्वाद्विशेषतः प्रवृत्तपूर्वविद्धाविधायकवचनेन तस्य बाधादष्टादशनाडीवेधेऽपि पूर्वैवेत्ययं पन्थाः साधुः।

अत्र पूर्णिमानुरोधेनैव यथा त्रिरात्रसम्पत्तिर्भवति तथा त्रयोदश्यादि ग्राह्यम्। तस्याः प्रधानत्वात्। अयं निर्णयोऽमायामपि ज्ञेयः। पारणं तु पौर्णिमान्ते कार्यम्।

सिद्धान्त तो यह है कि—चतुर्दशीतिथि अठारह घड़ी से उत्तरा तिथि को दूषित करती है। इसप्रकार इसका व्रतान्तर में सावकाश [1]होने से विशेष कर प्रवृत्त पूर्वविद्धाविधायकवचन से उसका बाध है। अठारह नाड़ी वेध में भी पूर्वा ही है—यह मार्ग साधु है।

---

(१) पूर्णिमातिथि में अनेक व्रतों का अनुष्ठान किया जाता है। उसमें एक सावित्रीव्रत करते हैं। सावित्रीव्रत के प्रसंग में चतुर्दशीविद्धा पूर्णिमा के दिन सावित्रीव्रत किया जाय। अगर उसीदिन अठारहदण्ड चतुर्दशी हो तो दूसरे दिन व्रत करे। इस प्रसंग में कहा है कि—अष्टादश व्यापिनी चतुर्दशी उत्तर तिथि को दूषित करती है। यह वाक्य वटसावित्री व्रत से भिन्न व्रतों में लागू होने के कारण वटसावित्रीव्रत में पूर्वविद्धा तिथि का विधान करने से सावित्री व्रत में लागू नहीं किया जा सकता है। इसको सावकाश और निरवकाश अर्थात् इतर व्रतों में चतुर्दशीतिथि का उत्तरतिथि दोष सावकाश। अगर प्रकृत (वटसावित्री) में भी स्वीकार हो तो पूर्वविद्धा वाक्य का उदाहरण नहीं मिलेगा। इसको निवकाश कहा जाता है।

यहाँ पर पूर्णिमा के अनुरोध से ही जैसे त्रिरात्र संपत्ति (व्रत) होती है। वैसे त्रयोदशी आदि ग्रहण करना चाहिए। क्योंकि उसका प्रधानभूत है। यह निर्णय अमावास्या में भी जानना चाहिये। पारणा तो पूर्णिमातिथि के अन्त में करे।

(अथ स्त्रीव्रते विशेषः)

अत्र स्त्रीव्रतेषु विशेषः परिभाषायामुक्तः। अत्र विशेषो भविष्ये—गृहीत्वा वालुकां पात्रे प्रस्थमात्रां युधिष्ठिर। ततो वंशमये पात्रे वस्त्रयुग्मेन वेष्टिते॥ सावित्रीप्रतिमां कुर्यात्सौवर्णीं चापि मृन्मयीम्। सार्धं सत्यवता साध्वीं फलनैवेद्यदीपकैः॥

रजन्या कण्ठसूत्रैश्च शुभैः कुङ्कुमकेसरैः। पूजयेदिति शेषः। रजनी = हरिद्रा। कण्ठसूत्रम् = सौभाग्यतन्तुः। सावित्र्याख्यानकं चापि वाचयीत द्विजोत्तमैः। रात्रौ जागरणं कृत्वा प्रभाते विमले ततः॥ तामपि ब्रह्मणे दत्त्वा प्रणिपत्य क्षमापयेत्।

अनन्तर स्त्रीव्रतों में विशेष परिभाषा में कहा जा चुका है। भविष्यपुराण में यह विशेष कहा है कि–हे युधिष्ठिर, सेर भर वालु को वांसके पात्र में ग्रहण कर उस वंशमय पात्र में दो वस्त्रों से वेष्टित कर सुवर्ण या मट्टी की सावित्री सत्यवती साध्वी की प्रतिमा का निर्माण कर फल, नैवेद्य, दीपक, हरिद्रा, सौभाग्य तन्तु, कुंकुम (रोली) तथा केशर से अर्चन करे।

द्विजोत्तमों से सावित्री के आख्यान (इतिहास) को श्रवण करे। तदनन्तर रात में जागरण कर प्रातः काल स्वच्छ जल में स्नान कर ब्राह्मण के लिए उस मूर्ति को दे तथा प्रणाम कर क्षमा प्रार्थना करे।

मन्त्रस्तु—सावित्रीयं मया दत्ता सहिरण्या महासती। ब्रह्मणः प्रीणनार्थाय ब्राह्मणः प्रतिगृह्यताम्॥ व्रतेनानेन राजेन्द्र वैधव्यं नाप्नुयात्क्वचित्। इति।

मन्त्र तो यह है—ब्रह्मा की प्रसन्नता के लिए सुवर्णवाली महासती सावित्री को मैंने दिया है। अतः हे ब्राह्मण, ग्रहण करो। हे राजेन्द्र, इस व्रत के करने से कभी विधवा को नहीं प्राप्त होती है।

(ज्येष्ठपूर्णिमायां तिलादिदाने फलकथनम्)

ज्येष्ठपौर्णमास्यां विशेष आदित्यपुराणे—ज्येष्ठे मासि तिलान् दद्यात्पौर्णमास्यां विशेषतः। अश्वमेधस्य यत्पुण्यं तत्प्राप्नोति न संशयः॥

आदित्यपुराण में विशेष ज्येष्ठमास की पूर्णिमा में कहा है कि विशेषकर ज्येष्ठमास की पूर्णिमा तिथि में तिलों को देने से 'अश्वमेधयज्ञ' का जो पुण्य है वही पुण्य प्राप्त होता है। इसमें संशय नहीं है।

विष्णुरपि—ज्यैष्ठी ज्येष्ठायुता चेत्स्यात् तस्यां छत्रोपानत्प्रदानेन नरो नराधिपत्यमाप्नोति–इति।

विष्णु ने भी कहा कि–ज्येष्ठ मासकी पूर्णिमा ज्येष्ठ नक्षत्र से युक्त हो तो उसमें छत्र,[1] और उपानद्[2] (जूता) का दान करने से नर (मनुष्य) मनुष्याधिपति–होता है।

(अथ महाज्यैष्ठी कथनम्)

हेमाद्रौ ज्योतिषे—ऐन्द्रे गुरुः शशी चैव प्राजापत्ये रविस्तथा। पूर्णिमा ज्येष्ठमासस्य महाज्येष्ठी प्रकीर्तिता॥ इयं मन्वादिरपि। सा पौर्वाह्णिकी ग्राह्या। विशेषस्तु चैत्रे उक्तः।

हेमाद्रि में ज्योतिष का कथन है कि–ज्येष्ठा का वृहस्पति तथा चन्द्रमा हो तो और रोहिणी पर सूर्य हो तो ज्येष्ठ महिने की पूर्णिमा को महाज्येष्ठी कहा जाता है। यह मन्वादि भी हैं। वह पौर्वाण्हिकी ग्रहण करे। विशेष वात को तो चैत्रमास में कहा है।

(अथ त्रिविक्रमप्रीत्यर्थमुदकुम्भादिदानमहत्वकथनम्)

तथाऽपरार्के वामनपुराणे—उदकुम्भाम्बुदानं च तालवृन्तं च चन्दनम्। त्रिविक्रमस्य प्रीत्यर्थं दातव्यं ज्येष्ठमासि तु॥ इति।

---

(१) छत्रमन्त्रः—इहामुत्रातपत्राणां कुरु मे केशव प्रभो। छत्रं त्वं प्रीतये दत्तं ब्राह्मणाय मया सह॥

(२) उपानद्मन्त्रः—उपानद्दौ प्रदास्यामि कण्टकादिनिवारणे। सर्वस्थानेषु सुखदे अतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥

और अपरार्क में वामनपुराण कथन है कि–ज्येष्ठमास में तो जल के घड़े को, जलदान को, ताल-वृन्त–ताडवृन्त के पंखों को और चन्दन को त्रिविक्रम के प्रीत्यर्थ देना चाहिये।

(अथ आषाढमासः)

मिथुनसंक्रान्तौ पराः षोडश घटिकाः पुण्यकालः। रात्रौ तु प्रागेवोक्तम्।

मिथुनसंक्रान्ति में सोलह घड़ी पुण्यकाल पर होता है। रात्रि में तो (संक्रान्ति का पुण्यकाल) पहले कह चुके हैं।

(अथ रथयात्राकथनम्)

आषाढशुक्लद्वितीयायां रथोत्सवः। तदुक्तं तिथितत्त्वे स्कान्दे—आषाढस्य सिते पक्षे द्वितीया पुष्य-संयुता। तस्यां रथे समारोप्य रामं वै भद्रया सह॥ यात्रोत्सवं प्रवर्त्याथ प्रीणयेत द्विजान् बहून्॥ तथा–ऋक्षाभावे तिथौ कार्या यात्रा सा प्रीतये मम।

आषाढशुक्ल द्वितीयातिथि में रथोत्सव होता है। उसी बात को तिथितत्त्व में स्कन्दपुराण के वचन से कहा है कि–आषाढमास के शुक्लपक्ष की पुष्यनक्षत्र द्वितीयातिथि में सुभद्रा के साथ राम को उस रथ पर बैठाकर यात्रा का उत्सव करे तथा बहुत, ब्राह्मणों को प्रसन्न करे और ऋक्ष (पुष्यनक्षत्र) के अभाव में उस तिथि में (आषाढशुक्ल द्वितीया) में मेरी प्रसन्नता के लिए उस यात्रा को करे।

(अथ दशमीपौर्णमासी च मन्वादिः)

आषाढशुक्लदशमी पौर्णमासी च मन्वादिः। सा च पूर्वाह्णव्यापिनीग्राह्येति प्रागुक्तम्।

आषाढशुक्ल दशमीतिथि और पौर्णमासीतिथि मन्वादि है। वह पूर्वाह्णव्यापिनी ग्रहण करना चाहिये–यह पहले कह चुके हैं।

(अथ द्वादश्यादितिथौ पारणाविचारः)

आषाढशुक्लद्वादश्यामनुराधायोगरहितायां पारणं कुर्यात्। तदुक्तं भविष्ये—आभाकासितपक्षेषु मैत्रश्रवणरेवती। सङ्गमे न हि भोक्तव्यं द्वादश द्वादशीर्हरेत्॥ अस्यार्थः–आषाढ-भाद्रपद-कार्तिक-शुक्लद्वादशीषु अनुराधाश्रवणरेवतीयोगे पारणं न कुर्यादिति। अत्र यद्यप्येतावदेवोक्तं तथाप्यनु-राधाप्रथमपाद एव वर्ज्यः।

अनुराधा नक्षत्रयोग से रहित आषाढशुक्ल द्वादशीतिथि में पारणा करे। उसी बात को भविष्य पुराण में कहा है कि—आषाढमास, भाद्रपदमास, और कार्तिकमास के शुक्लपक्ष की द्वादशी को–क्रम से अनुराधा, श्रवण तथा रेवती के योग में पारणा न करे। अर्थात्–[1] संगम में भोजन न करे। करने पर बाहर द्वादशी तिथि का फल नष्ट हो जाता है। यहाँ पर यद्यपि इतना ही कहा है तथापि अनुराधा का प्रथम पाद ही वर्जित है।

तदुक्तं विष्णुधर्मे—मैत्राद्यपादे स्वपितीह विष्णुः पौष्णान्त्यपादे प्रतिबोधमेति। श्रुतेश्च मध्ये परिवर्तमेति सुप्तिप्रबोधपरिवर्तनमेव वर्ज्यम्॥ इति। वस्तुतस्तु पूर्ववचनमिदं च निर्मूलमेव।

उसी बात को विष्णुधर्मपुराण में कहा है कि–मैत्र (अनुराधा) के आद्यपाद में भगवान् विष्णु शयन करते हैं। पौष्ण (रेवती) के अन्त्यपाद में जागते है। श्रुत (श्रवण) के मध्य में परिवर्तन (करवट) लेते हैं। इसलिये–सुप्ति (शयन,) प्रबोध (जागना) परिवर्तन (करवट) लेना वर्जित है। सिद्धान्त तो यह है कि–पहले कहा हुआ यह वचन निर्मूल ही है।

(अथ विष्णुशयनोत्सवः)

अत्रैव विष्णुशयनोत्सव उक्तो हेमाद्रौ ब्राह्मे—एकादश्यां तु शुक्लायामाषाढे भगवान् हरिः। भुजङ्गशयने शेते क्षीरार्णवजले सदा॥ इति।

---

(१) सङ्गवे न भोक्तव्यम्, प्रातर्मध्याह्नयोस्तु तद्भवत्येवेति तदर्थः। यत्र दिनं व्याप्यानुराधा द्वादशी च तत्र प्रातरेव पारणा। (सर्वेषामुपवासानाम्) इत्युक्तेः।

यहाँ पर विष्णु शयनोत्सव हेमाद्रि में ब्रह्मपुराण मत है कहा है कि—आषाढशुक्लमास की एकादशी-तिथि में तो भगवान् हरि शेष-की शय्या पर क्षीरसागर के जल में सदा[1] शयन[2] करते हैं।

कल्पतरौ यमः—क्षीराब्धौ शेषपर्यङ्के आषाढ्यां संविशेद्धरिः। निद्रां त्यजति कार्तिक्यां तयोः संपूजयेत्सदा॥ ब्रह्महत्यादिकं पापं क्षिप्रमेव व्यपोहति। हिंसात्मकैस्तु किं तस्य यज्ञैः कार्यं महात्मनः॥ प्रस्वापे च प्रबोधे च पूजितो येन केशवः॥

कल्पतरु में यम का कथन है कि-आषाढ महिने की एकादशी तिथि में शेष पर्यंक में क्षीरार्णव में हरि शयन करते हैं और कार्तिक शुक्लपक्ष की एकादशीतिथि में निद्रा का त्याग करते हैं। अतः आषाढ मास के शुक्लपक्ष की एकादशी तिथि में और आषाढमास के शुक्लपक्ष की-द्वादशीतिथि में—निरन्तर पूजन करे। इससे ब्रह्महत्यादि पाप जल्दी ही नष्ट हो जाते हैं। जो शयन तथा प्रबोध (जागना) के दिन में केशव का पूजन-अर्चन करता है। उस महात्मा को हिंसात्मक यज्ञों से क्या करना है।

टोडरानन्देऽपि स्कान्दे—आषाढशुक्लैकादश्यां कुर्यात्स्वप्नमहोत्सवम्।

टोडरानन्द में भी स्कन्दपुराण का मत है कि-आषाढ शुक्ल पक्ष की एकादशीतिथि में विष्णु का शयन-महोत्सव करे।

अयं द्वादश्यामप्युक्तः—आभाकासितपक्षेषु मैत्रश्रवणरेवती। आदिमध्यावसानेषु प्रस्वापावर्तनोत्सवाः॥ निशि स्वापो दिवोत्थानं सन्ध्यायां परिवर्तनम्॥

अन्यत्र पादयोगेऽपि द्वादश्यामेव कारयेत्। आभाकाद्येषु मासेषु मिथुने माधवस्य च। द्वादश्यां शुक्लपक्षे च प्रस्वापावर्तनोत्सवः। इति भविष्योक्तेः।

इसको द्वादशीतिथि में भी कहा है—आषाढमास, भाद्रपदमास तथा कार्तिकमास के शुक्लपक्ष की द्वादशीतिथि को-क्रम से-अनुराधा, श्रवण और रेवतीनक्षत्र के आदि, मध्य एवं अन्त के चरण में-शयन, करवट और उत्सव को क्रम से करे।

रात्रि में-शयन कार्य, दिन में उत्थान (जगाने कार्य), तथा सन्ध्या काल में परिवर्तन (करवट) लेने का उत्सव करे। अन्यत्र पाद योग (चरणयोग) में भी द्वादशीतिथि में कराना चाहिए। भविष्यपुराण का मत है कि-आषाढ, भाद्रपद तथा कार्तिकमासों में, मिथुन के सूर्य में माधव का शुक्लपक्ष भी द्वादशी तिथि में क्रम से-शयन, आवर्तन एवं उत्सव (जागरण) करे।

द्वादश्यां सन्धिसमये नक्षत्राणामसम्भवे। आभाकासितपक्षेषु शयनावर्तनादिकम्॥ इति वाराहोक्तेश्च।

वाराहपुराण में कहा है कि—[3]द्वादशीतिथि में-सन्ध्याकाल में, नक्षत्रों के असंभव (उदकाल के पूर्व) में आषाढ़, श्रावण और कार्तिकमास के शुक्लपक्ष में क्रम से शयन, आवर्तन तथा प्रबोध (जागरण) करे।

द्वादश्यामित्यत्रापि पारणाऽहोमात्रं विवक्षितम्। पारणाऽहे पूर्वरात्रे घण्टादीन् वादयन् मुहुः। इति रामार्चनचन्द्रिकोक्तेः।

---

(१) निशि स्वापो दिवोत्थानं सन्ध्यायां परिवर्तनम्। २-भविष्यपुराणे महापूजा ततः कुर्यात् देवदेवस्य चक्रिणः। जातीकुसुममालाभिर्मन्त्रेणानेन पूजयेत्। सुप्ते त्वयि जगन्नाथ जगत्सुप्तं भवेदिदम्। विबुद्धे च विबुध्येत प्रसन्नो मे भवाच्युत॥

(२) भाद्रशुक्लैकादश्यां विष्णोः परिवर्तनमुक्तं भविष्ये-प्राप्ते भाद्रपदे मासि एकादश्यां दिने सिते। कटिदानं (अङ्गपरिवर्तनम्) भवेद्विष्णोर्महापातकनाशनम्॥ तत्र महापूजां कृत्वा परिवर्तनं प्रार्थयेत्-परिवर्तस्व देवेश केशवाच्युत भो प्रभो। त्वयैकापैकादशी देव हितार्थं निर्मिता पुरा। पद्मपुराणे-एकादश्यां तु शुक्लायां कार्तिके मासि केशवम्। प्रसुप्तं बोधयेद्रात्रौ श्रद्धाभक्तिसमन्वितः॥

(३) निशादौ तन्नक्षत्रयोगाभावे सति शयनावर्तनप्रबोधाः। सन्धिसमये—सन्ध्यासमय एव, न तु तत्र नक्षत्र भागयोगे। यस्य यस्य च देवस्य यन्नक्षत्रं तिथिस्तथा। तस्य देवस्य तस्मिंस्तु शयनावर्तनादिकम्।

'द्वादशोपद' से यहाँ पर पारणा का दिन मात्र विवक्षित है। रामार्चनचन्द्रिका में कहा है कि—पारणा दिन के पूर्व रात्रि में बारंबार घण्टा आदि को बजावे।

अत्रैकादशीद्वादश्योर्देशभेदेन व्यवस्था। इदं च मलमासे न कार्यम्। ईशानस्य बलिर्विष्णोः शयनं परिवर्तनम्। इति कालादर्शे निषेधात्।

यहाँ पर एकादशी तथा द्वादशी के देशभेद से व्यवस्था है। इसको मलमास में न करे। कालादर्श में लिखा है कि—शंकरदेव को बलि और विष्णु का शयन तथा परिवर्तन (करवट बदलना) निषेध है।

यद्यपि–एकादश्यां तु गृह्णीयात्संक्रान्तौ कर्कटस्य वा। आषाढ्यां वा नरो भक्त्या चातुर्मास्यव्रतक्रियाम्॥ इति हेमाद्रौ ब्रह्मवैवर्ते, तदपि मलमासेऽसति द्रष्टव्यम्।

जो भी—हेमाद्रि में ब्रह्मवैवर्तपुराण का कथन है कि—कर्कराशि की संक्रान्ति में और आषाढमास की एकादशीतिथि में भक्ति से चातुर्मास्यव्रत की क्रिया को ग्रहण करे। वह भी मलमास के न होने पर देखना चाहिये।

मिथुनस्थो यदा भानुरमावास्याद्वयं स्पृशेत्। द्विराषाढः स विज्ञेयो विष्णुः स्वपिति कर्कटे॥ इति तत्रैव मोहचूडोत्तरोक्तेः।

वहीं पर ही मोहचूडोत्तरने कहा है कि–जब मिथुन राशि का सूर्य दो अमावास्या का स्पर्श करे तो उसको दो आषाढ जानना चाहिये और विष्णु कर्क की संक्रान्ति में शयन करते हैं।

(अत्रैव चातुर्मास्यव्रतारम्भः)

अत्रैव चातुर्मास्यव्रतारम्भ उक्तो भारते—आषाढे तु सिते पक्षे एकादश्यामुपोषितः।
चातुर्मास्यव्रतं कुर्यात् यत्किञ्चिन्नियतो नरः॥ इति।

यहाँ पर ही भारत में चातुर्मास्य के व्रतका आरंभकर कहा है कि—आषाढमास के शुक्लपक्ष की एकादशीतिथि में उपवास कर मनुष्य सावधानता से चातुर्मास्यव्रत को करे।

(अस्य नित्यत्वमुक्तम्)

अस्य नित्यत्वं तत्रैवोक्तम्। वार्षिकांश्चतुरो मासान् वाहयेत्केनचिन्नरः। व्रतेन नो चेदाप्नोति किल्विषं वत्सरोद्भवम्॥

इसका नित्यत्व भी वहाँ पर (भारत में) कहा है। मनुष्य साल के चार महीनों पर किसी न किसी व्रत से व्यतीत करे। जो व्रत से नहीं समय व्यतीत करता है वह साल भर से प्रादुर्भूत पापों को प्राप्त करता है।

(असंभवे तु पौर्णमासोतिथौ प्रारंभादिकथनम्)

असम्भवे तुलार्केऽपि कर्तव्यं तत्प्रयत्नतः॥ इति। तेन आषाढशुक्लैकादश्यां पौर्णमास्यां वाऽऽरम्भः। समाप्तिस्तु कार्तिकशुक्लद्वादश्यामेव। तदुक्तं हेमाद्रौ भारते—चतुर्द्धा गृह्य वै चीर्णं चातुर्मास्यव्रतं नरः। कार्तिके शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां तत्समापयेत्॥

असंभव में तो तुला के सूर्य में प्रयत्न से करे। इससे आषाढशुक्ल एकादशी, द्वादशी या पौर्णमासीतिथि में आरम्भ करे। समाप्ति तो कार्तिक शुक्ल द्वादशी में ही करे। उसी बात को हेमाद्रि में भारत का वचन है कि—मनुष्य चारों[1] प्रकार के चातुर्मास्यव्रत को ग्रहण कर कार्तिकशुक्लपक्ष की द्वादशीतिथि में उसको समाप्त करे।

---

(१) चातुर्मास्यव्रतारंभे चत्वारः पक्षाः। आषाढे–शुक्लैकादशी–तद् द्वादशी–तत्पौर्णमासी–कर्क संक्रान्तिभेदात्। 'एकादश्यां तु शुक्लायाम्' इतिवाक्यात्। 'आषाढशुक्लः ादश्यां पौर्णमास्यामथापि वा। चातुर्मास्य व्रतारंभं कुर्यात्कर्कटसंक्रमे॥ इति वाराहात्।

(अस्यारंभकथने शुक्रास्तादिविचारः)

अस्यारम्भः शुक्रास्तादावपि कार्यः। न शैशवं न मौढ्यं च शुक्रगुर्वोर्न वा तिथेः। खण्डत्वं चिन्तयेच्चादौ चातुर्मास्यविधौ नरः॥ इति हेमाद्रौ गार्ग्योक्तेः।

[1]इदं च द्वितीयारम्भविषयम्। प्रथमारम्भस्तु न भवत्येव। आशौचमध्येऽपि द्वितीयारम्भो भवति। अशुचिर्वा शुचिर्वापि यदि स्त्री यदि वा पुमान्। व्रतमेतन्नरः कृत्वा मुच्यते सर्वपातकैः॥ इति भार्गवार्चनदीपिकायां स्कान्दोक्तेः। आरब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे च सूतकम्—इति विष्णुवचनाच्च।

इसका आरम्भ शुक्रास्त आदि में भी करे। हेमाद्रि में वृद्धगार्ग्य ने कहा है कि—शुक्र तथा गुरु का बाल्य (शैशव), आरंभ (मौढ्य) और तिथि का खण्डत्व (हानि) चिन्ता चातुर्मास्य विधि के आरम्भ में मनुष्य को नहीं करना चाहिये। यह भी द्वितीयारंभविषयक है। प्रथमारंभ तो होता ही नहीं है। आशौच के मध्य में भी द्वितीयारंभ होता है। भार्गवार्चनदीपिका में स्कन्दपुराण का कथन है कि—यदि अपवित्र या पवित्र स्त्री या पुरुष इस व्रत को करके सब पातकों से मुक्त हो जाता है।

विष्णु का भी वचन है कि—आरम्भ में (जिस कार्य को शुरू किया हो) सूतक नहीं होता है और अनारंभ (जिस कार्य को प्रारम्भ नहीं किया हो) में सूतक होता है।

यत्तु—असंक्रान्तं तथा मासं दैवे पित्र्ये च कर्मणि। मलमासमशौचं च वर्जयेन्मतिमान्नरः॥ इति हेमाद्रौ चातुर्मास्यव्रतप्रकरणे भविष्यवचनं, तत्पूषानुमन्त्रणमन्त्रवदसंबद्धं मध्ये पठितमिति ज्ञेयम्। अन्यथा पित्र्यस्य पूर्वोक्तस्य विवाहादेश्च चातुर्मास्यव्रते कः प्रसङ्गः। प्रकरणनिवेशेऽपि वा प्रथमारम्भविषयं ज्ञेयम्।

हेमाद्रि में चातुर्मास्यव्रतप्रकरण में भविष्यपुराण का जो वचन है कि—जिस महीने में संक्रान्ति (अर्थात्-अधिकमास) न हो, मलमास (क्षयमास), तथा आशौच इनको बुद्धिमान् मनुष्य देव तथा पित्र्यकर्म में वर्जित करे। वह 'पूष्णोहं देव प्रजया पशुभिश्च जनीषीय' पूषानुमन्त्रणमन्त्रवत्[2] असंबद्ध-मध्य में पढा गया यह जानना चाहिये। अन्यथा—पूर्व कहे हुए पितृकर्म का और विवाहादि का चातुर्मास्यव्रत में क्या प्रसंग है। या प्रकरण के निवेश में भी प्रथमारम्भ विषयक जानना चाहिये।

केचित्तु प्रतिवर्षं च चातुर्मास्यव्रतप्रयोगाणां भिन्नत्वादाशौचादिपाते द्वितीयादिप्रयोगो न भवत्येवेत्याहुः। तन्न। प्रतिवर्षं च यः कुर्यादेवं वै संस्मरन् हरिम्। देहान्तेऽतिप्रदीप्तेन विमानेनार्कवर्चसा॥ मोदते विष्णुलोकेऽसौ यावदाभूतसंप्लवम्॥ इति हेमाद्रौ भविष्यवचनादित्यास्तां विस्तरः। इदं च शिवभक्तादिभिरपि कार्यम्। शिवे वा भक्तिसंयुक्तो भानौ वा गणनायके। कृत्वा व्रतस्य नियमं यथोक्तफलभाग्भवेत्॥ इति ब्रह्मवैवर्तात्।

कोई तो प्रतिवर्ष (हरसाल) चातुर्मास्यव्रत प्रयोगों का भिन्नत्व होने से आशौचादि के पात (आने पर) में द्वितीयादि प्रयोग नहीं ही होता है। यों कहते हैं। वह ठीक नहीं है।

जो मनुष्य हरिका स्मरण करता हुआ प्रतिवर्ष कार्य करता है वह सूर्य के तेज के सदृश अतिप्रदीप्त विमान से इसप्रकार बैठकर प्रलयकालपर्यन्त विष्णुलोक में आनन्दित होता है। इतना ही विस्तार बहुत है।

और इस व्रत को शिवभक्त आदि भी करें। ब्रह्मवैवर्तपुराण में कहा है कि—भक्ति से संयुक्त शिव, सूर्य और गणनायक (गणेश) के व्रत का नियम कर यथोक्त फल को प्राप्त करता है।

(अथ व्रतग्रहणप्रकारकथनम्)

व्रतग्रहणप्रकारस्तु हेमाद्रौ भविष्ये—महापूजां ततः कुर्याद्देवदेवस्य चक्रिणः। जातीकुसुममालाभिर्मन्त्रेणानेन पूजयेत्॥

---

(१) बहुषु पुस्तकेषु 'इदं च द्वितीयाद्यारंभ विषयकम्' इति पाठो न दृश्यते।

(२) पूषणं नु देवं कन्या अग्निमयक्षत। स इमां देवः पूषा प्रेतो मुञ्चातुनामुत स्वाहा॥

व्रतग्रहण का प्रकार तो हेमाद्रि में भविष्यपुराण का मत है कि—तदनन्तर देवों में देव चक्रपाणी को महापूजा करे। जाती (चमेली) पुष्प की मालाओं द्वारा इस मन्त्र से पूजा करे।

सुप्ते त्वयि जगन्नाथे जगत्सुप्तं भवेदिदम्। विबुद्धे च विबुद्धयेत प्रसन्नो मे भवाच्युत ॥

हे जगन्नाथ (हे जगदीश्वर), आपके शयन करने पर इससंसार के प्राणी शयन करते हैं और आपके जागने पर वे सब जागते हैं।

एवं तां प्रतिमां विष्णोः पूजयित्वा स्वयं नरः। प्रभाषेचाग्रतो विष्णोः कृताञ्जलिपुटस्तथा ॥

इसलिए हे अच्युत, मेरे ऊपर प्रसन्न हों। स्वयं मनुष्य इसप्रकार उस विष्णु की प्रतिमा का पूजन कर विष्णु के आगे हाथ को जोड़ कर कहे।

चतुरो वार्षिकान्मासान् देवस्योत्थापनावधि। इमं करिष्ये नियमं निर्विघ्नं कुरु मेऽच्युत ॥

चार—साल के महिनों में देवता के उत्पादनावधि कालतक मैं इस व्रत को नियम से करूँगा। हे अच्युत, मेरे व्रत को निर्विघ्न करो।

इदं व्रतं मया देव गृहीतं पुरतस्तव। निर्विघ्नं सिद्धिमायातु प्रसादात्तव केशव ॥

हे केशव, तुम्हारे आगे मैंने इस व्रत को ग्रहण किया है। हे केशव, आपके प्रसाद से निर्विघ्न सिद्धि को प्राप्त होऊँ।

गृहीतेऽस्मिन् व्रते देव पञ्चत्वं यदि मे भवेत्। तदा भवतु सम्पूर्णं त्वत्प्रसादाज्जनार्दन ॥

इस व्रत के ग्रहण करने पर यदि मेरा पञ्चत्व (मरण) हो जाय तब आपके प्रसाद से हे जनार्दन, परिपूर्ण हो।

गृहीतेऽस्मिन् व्रते देव यद्यपूर्णे म्रियो ह्यहम्। तन्मे भवतु सम्पूर्णं त्वत्प्रसादाज्जनार्दन ॥ इति।

हे देव, इस व्रत के ग्रहण करने पर यदि अपूर्णता में मृत्यु हो जाय तो, हे जनार्दन, आपके प्रसाद से मेरा (व्रत) संपूर्ण हो।

(श्रावणादिमासे शाकादिवर्जनकथनम्)

तत्र भार्गवार्चनदीपिकायां नृसिंहपरिचर्यायां च भविष्ये—श्रावणे वर्जयेच्छाकं दधि भाद्रपदे तथा। दुग्धमाश्वयुजे मासि कार्तिके द्विदलं त्यजेत् ॥ इति।

भार्गवार्चनदीपिकामें और नृसिंहपरिचर्या में भविष्यपुराण का वचन है कि–श्रावणमास में शाक, भाद्रपदमास में दधि, आश्विनमास में दूध तथा कार्तिकमास में द्विदल (दाल) का त्याग करे। यों कहा है।

(चातुर्मास्ये द्विदलादिनिषेधविचारः)

स्कान्देऽपि चातुर्मास्यकल्पे—चत्वार्येतानि नित्यानि चतुराश्रमवर्णिनाम्। प्रथमे मासि कर्तव्यं नित्यं शाकव्रतं नरैः ॥ द्वितीये मासि कर्तव्यं दधिव्रतमनुत्तमम्। पयोव्रतं तृतीये तु चतुर्थेऽपि निशामय ॥ द्विदलं बहुबीजं च वृन्ताकं च विवर्जयेत्। नित्यान्येतानि विप्रेन्द्र व्रतान्याहुर्मनीषिणः ॥ जंबीरं राजमाषांश्च मूलकं रक्तमूलकम्। कूष्माण्डं चेक्षुदण्डं च चातुर्मास्ये त्यजेद् बुधः ॥ अत्र मूलं चिन्त्यम्। तथा—विशेषाद्बदरीं धात्रीं कूष्माण्डं तिन्तिडीं त्यजेत्। जीर्णं धात्रीफलं ग्राह्यं कथञ्चित्कायशोधनम् ॥ इति।

स्कन्दपुराण के चातुर्मास्यकल्प में भी कहा है कि–चार आश्रम के वर्णों को ये चारों नित्य हैं। (१) प्रथम महिने में–शाक व्रत (शाकवर्जनसङ्कल्पः। बहुबीजव्रतं च मासचतुष्टये। राजमाषाः—चवल्या इति महाराष्ट्राः। (चौराई), (२) दूसरे महिने में–दधिव्रत, तीसरे महिने में–पयोव्रत, चौथे मास में द्विदल–दो दलवाले बहुबीज और वृन्ताक (भंटा) को त्याग दे। ये व्रतों में नित्य हैं—ऐसा विद्वानों ने कहा है।

जंबीर (जंबीरी नींब) राजमाष (बोडा) मूलक (मूली) रक्तमूलक (लालमूली) कूष्माण्ड (कोंहड़ा सफेद) और इक्षुदण्ड को चातुर्मास्य में विद्वान् को त्याग देना चाहिये। इसमें मूल विचारणीय है।

और-विशेष कर वदरीफल (वेर) धात्री (आँवला) कूष्माण्ड, तिन्तिणी (दासरिया खट्टा होता है। अभाव में इमली) जीर्ण धात्रीफल (पुराने आंवले का फल) को कथञ्चित् शरीर शोधन के लिए ग्रहण करे।

(जनार्दने शुप्ते सति मञ्चखट्वादिशयनविचारः)

तीर्थसौख्ये स्कान्दे—वार्षिकांश्चतुरो मासान् प्रसुप्ते च जनार्दने। मञ्चखट्वादिशयनं वर्जयेद्भक्तिमान्नरः॥

तीर्थसौख्य में स्कन्दपुराण का मत है कि—साल के चार मासों में जनार्दन के शयन करने पर भक्तियुक्त मनुष्य मञ्च, खटिया आदि पर शयन न करे।

(मांसमधुपटोलादिभक्षणे विचारः)

अनृतौ वर्जयेद्भार्यां मांसं मधु परौदनम्। पटोलं मूलकं चैव वृन्ताकं च न भक्षयेत्॥ अभक्ष्यं वर्ज्जयेद् दूरान्मसूरं सितसर्षपम्। राजमाषान् कुलित्थांश्च आशुधान्यं च सन्त्यजेत्॥ शाकं दधि पयो माषान् श्रावणादिषु वर्जयेत्॥ अत्र त्यजेदिति वर्जनसङ्कल्परूपः पर्युदासो ज्ञेयः व्रतोपक्रमात्।

अनृतु (बिना ऋतु) में स्त्री को वर्जित करे। मांस, मधु, परौदन (दूसरेसे वना भात) पटोल (परवर) मूलक (मूला) और वृन्ताक (भंटा) को भक्षण न करे। दूर से अभक्ष्य का त्याग दे। मसूर (मसूर), सितसर्षप (सफेद सरसों), राजमाष (वाडा) कुलित्थ (कुलथा) और आशुधान्य (सांवा) को त्याग दे। शाक, दधि, दूध और उडद का श्रावण आदि महिनों में त्याग दे। यहाँ पर 'त्यजेत्' यह वर्जनरूप (सङ्कल्प) पर्युदास [1](निषेध) व्रतापक्रमसे जानना चाहिये।

अत्र केचित्—शाकाख्यं पत्रपुष्पादि इत्यमरकोशस्य शक्यतेऽशितुमनेनेति शाकः, इति क्षीरस्वामिना व्याख्यानात् व्यञ्जनमात्रस्य निषेधमाचक्षते। अन्ये तु शाकशब्दस्य पत्रादि-दशविधशाके योगरूढत्वात्, योगाच्च रूढेर्बलीयस्त्वात् सूपादीनामपि त्यागापत्तेश्च तत्प्रत्याचक्षते। तेन मूलपत्रकरीराग्रफलकाण्डाधिरूढकाः। त्वक् पुष्पं कवचं चेति शाकं दशविधं स्मृतम्॥ इति क्षीरस्वामिनोक्तस्य शाकस्य निषेध इति। अधिरूढकाः = अङ्कुराः।

यहां पर कोई 'शाकाख्यं पत्रपुष्पादि' इस अमरकोश से जिसके साथ अन्न लगाकर खाया जाय इस व्युत्पत्ति और क्षीरस्वामी के व्याख्यान से व्यञ्जन मात्र का निषेध कहा है। अन्य लोग तो शाक

---

(१) जिस वाक्य में नकार प्रधान के साथ अन्वय होगा वहाँ प्रतिषेध अर्थ होता है। प्रधान के साथ अन्वय—दो कारणों से नहीं होता है तब नकार का अर्थ-पर्युदास होता है। व्रतोपक्रम तथा विकल्प प्राप्त ये दो कारणों से पर्युदास हो जाता है। जैसे-ब्रह्मचारी का व्रत एवं आरम्भ कर आगे 'नेक्षेतोद्यन्तमादित्यम्' उदयहोते हुए सूर्य को नहीं देखना चाहिये। एसे बहुत से धर्मों को प्रतिपादन किया है। इस वाक्य में रहने वाला नकार का अर्थ निषेध नहीं कह सकते हैं। क्योंकि पहले वाक्य में व्रत शब्द के द्वारा कर्तव्य पदार्थों का आरम्भ किया। अब कर्तव्य पदार्थों का निरूपण करना आगे आवश्यक है। तभी एकवाक्यता हो सकती है। परन्तु उत्तरवाक्य में कर्तव्य पदार्थ का निरूपण नहीं किया है। अतः नकार का अर्थ प्रधानभूत भावना के साथ अन्वय न मान कर अनुष्ठयनरूप अर्थ का प्रतिपादन किया जाता है। जैसे—'ईक्षणवर्जनसंकल्पः'। एसे स्थलों में नकार का पर्युदास अर्थ है। वैसे ही 'यजतिषु ये यजामहे करोति नानुयाजेषु' इस वाक्य में पर्युदास माना जाता है। होता नामक ऋत्विक् याज्या मन्त्रों का पाठ करता है यागकाल में। अध्ययनकाल में इन मन्त्रों को जैसा संहिता में है वैसा पाठ करता है। परन्तु प्रयोगकाल में उस मन्त्र के आरम्भ में 'ये यजामहे' इस को जोड़ कर-उच्चारण करना चाहिये। इस वाक्य से जितनी याज्यायें हैं सभी में 'ये यजामहे' शब्द प्राप्त हो गया है। श्रौत यागों में इडा भक्षणानन्तर अनुयाज नामक तीन याग किया जाता है उनकी याज्याओं में भी पूर्व वाक्य से 'ये यजामहे' प्राप्त हुआ। तब वेद निधारण करते हैं-अनुयाज व्यतिरिक्त याज्याओं में 'ये यजामहे-कहना चाहिये। इसप्रकार अर्थ वर्णनसे पर्युदास कहा जाता है। अर्थात्-पर्युदास वाक्य में कर्तव्यार्थ का ही बोध होता है न कि निषेध का।

शब्द से पत्रादि दशविध शाक में [1]योगरूढ होने से और योग से रूढी बलवान् है सूपादियों का भी त्यागापत्ति हो जायगी। इससे अन्यथा मल=आलू सलजल मूली आदि, पत्र=पालक, मूली, पोई आदि, करीर=फल, अग्रफल-बोडा, ग्वालिन आदि, कांड=गांठ गोभी, केले का फल, करेमू आदि। अधिरूढ पोई, त्वक्=पेड या मूली, कुह्मडा आदि का साग, कवक=कुन्दरू आदि, क्षीर स्वामी के कहे हुए दश प्रकार के शाक का निषेध है। अधिरूद=[2]अंकुर=चना, मटर का साग।

वस्तुतस्तु—तत्तत्कालोद्भवाः शाकाः वर्जनीयाः प्रयत्नतः। बहुबीजमबीजं च विकारि च विवर्जयेत्॥ इति भविष्यवचनात्तत्कालोत्पन्नानां दशविधशाकानां निषेधः। तत्र तत्कालोद्भवजातीयत्वं विवक्षितम्। तेनातपादिशोषितानां वर्षान्तरोद्भवानामपि निषेधः।

सिद्धान्त तो यह है कि-उस उस काल में पैदा हुए शाकों को प्रयत्न से वर्जित करे। बहुत बीजवाले, नहीं बीज वाले और विकारी को त्याग दे। इस भविष्यपुराणवचन से उस उससमय से उत्पन्न दशविधशाकों का निषेध है। वहाँ पर उस उस काल में प्रादुर्भूत जातीयत्व की विवक्षा है उससे घाम आदि में सुखाये हुओं का और बर्षा के मध्य में प्रादुर्भूत शाकों का ही निषेध है। क्योंकि उस समय में उत्पन्न का ही निषेध नहीं है गौरव (महत्व) होने से।

अत्र तत्तत्कालोद्भवा इति वीप्सावशात् स्वस्वकालोद्भवानां सर्वेषां निषेध इति निष्कर्षः। बहुबीजमित्यनेकबीजमिति केचित्। इतरावयवापेक्षया बीजावयवा यत्र बहवस्तदित्यन्ये। अबीजम्=कदलादि। वस्तुतस्तु-इदं महानिबन्धेष्वभावान्निर्मूलमेव।

यहाँ पर उससमय में प्रादुर्भूत इसतरह वीप्सा[3] वशात् अपने अपने समय में प्रादुर्भूत सबों का निषेध है—यह निष्कर्ष है। बहुबीजम्-कोई अनेक बीज कहते हैं। अन्य तो दूसरे अवयवों की अपेक्षा से बीज के अवयव जहाँ बहुत हों उसको बहुबीज कहते हैं। अबीज शब्द से कदली आदि है। सिद्धान्त पक्ष तो यह है कि—यह महानिबन्धों में अभाव (न मिलने से) होने से निर्मूल ही है।

(अथ वृन्ताकादिभक्षणेन हरिदर्शने बाधाविचारः)

आचारप्रदीपे—वृन्ताकं च कलिङ्गं च बिल्वोदुम्बरभिःसटाः।
उदरे यस्य जीर्यन्ति तस्य दूरतरो हरिः॥

आचारप्रदीप में लिखा है कि-वृन्ताक (भंटा), कलिंग (तरबूज) बिल्व, उदुम्बर, भिःसटा (दग्धान्न) ये जिसके उदर में जीर्ण हैं उस से हरि बहुत दूर हो जाते हैं।

तथाऽपरार्के देवलः—ब्रह्मचर्यं तथा शौचं सत्यमामिषवर्जनम्।
व्रतेष्वेतानि चत्वारि वरिष्ठानीति निश्चयः॥

---

(१) शब्दों का अर्थ कहीं योग से होता है,कहीं रूढी से होता है योग माने-शब्द की व्युत्पत्ति करते समय जो अर्थ होगा उसे योग कहते हैं। शब्द की व्युत्पत्ति से भिन्न होने पर जो अर्थ होगा वह रूढी होगा। जैसे-मही रुह शब्द वृक्षवाचक है। क्योंकि भूमि से उसकी उत्पत्ति होती है। अनुकूल यह शब्द व्युत्पत्ति से देखे। नदी के तीर के समान। परन्तु लोक में अनादिकाल से अनुकूल में प्रयुक्त है। अतः यह अर्थ रूढा होता है। अब विचारतीय,विषय,है कि–'वर्षासु रथकारः अग्नीनादधीत' इस वाक्य में प्रतिपादित रथकार शब्द का क्या अर्थ हो सकता है। एक अर्थ-रथं करोतीति रथकारः। इसप्रकार अर्थ करने से जो रथ कहते हैं। उनको रथकारशब्द से कहते हैं। लोक में रथकारशब्द एक जाती में रूढ है। अब रथकार शब्द का योगार्थ और रूढ्यर्थ दो परस्पर विरुद्ध अर्थ हुए। अब किस अर्थ को छोड़ दिया जाय। इसको निर्णय करने के लिए एक नियम बनाया 'रूढियोगमपहरति' अर्थात्–व्युत्पत्ति से अर्थ करने से रूढी बाधक है। अर्थात्–रूढ्यर्थ स्वीकार करना चाहिये। कात्यायनसरलावृत्ति में भी कहा है कि—रथकारस्याधाने, नियतं च और नाभावादिति वात्स्यः–इन सूत्रोंके भाष्योंको भी देखें।

(२) अङ्कुर इति क्षेत्रोद्भिन्न फलमूलादेः, स्वेदोद्भिन्नोङ्कुर इति केचित्। अत्र फलपत्रत्वादेः सर्वस्य न निषेधः, किन्तु फलमूलादेरेव। तेषां व्यञ्जनत्वेन भूयो लोकव्यवहारादिति केचित्। तत्रान्यत्रापि तद्व्यवहारभूयस्त्वादित्यपरे। इति टीकायाम्।

(३) एक ही शब्द को दोबार कहना ही वीप्सा है। जैसे 'अहरह सन्ध्यामुपासीत, तत् तत्, इत्यादि।

और अपरार्क में देवल ने कहा कि—ब्रह्मचर्य, शौच, सत्यता तथा आमिष (मांस) त्याग करना चाहिये। ये व्रतों में चार निश्चित श्रेष्ठ हैं।

(अथामिषकथनम्)

आमिषाणि चोक्तानि रामार्चनचन्द्रिकायां पाद्मे—प्राण्यङ्गचूर्णं चर्माम्बु जम्बीरं बीजपूरकम्। अयज्ञशिष्टमाषादि यद्विष्णोरनिवेदितम्॥ दग्धमन्नं मसूरं च मांसं चेत्यष्टधाऽऽमिषम्। रुच्यं तत्तद्देशलभ्यं सुप्ते देवे विवर्जयेत्॥

रामाचन्द्रचन्द्रिका में पद्मपुराणमतानुसार आमिषोंको कहा है कि-प्रण्यङ्गचूर्ण (मौक्तिकशुक्ति), चर्माम्बु (चमड़ेका जल) जंवीर (जंबीरीनिंबू), वीजपूरक (विजोरानिंबू) अयज्ञशेष माष आदि, जो विष्णु को अनिवेदित हो, जला हुआ अन्न, मसूर (उड़दी) तथा मांस ये आठ तरह के आमिष हैं। उस उस देश में प्राप्त होने योग्य तथा रुचिकर इन आमिषों को देवशयन में वर्जित करे।

पाद्मे कार्तिकमाहात्म्ये—गोच्छागीमहिषीदुग्धादन्यद् दुग्धादि चामिषम्। धान्यं मसूरिकाः प्रोक्ता अन्नं पर्युषितं तथा। द्विजक्रीता रसाः सर्वे लवणं भूमिजं तथा। ताम्रपात्रस्थितं गव्यं जलं पल्वलसंस्थितम्॥ आत्मार्थं पाचितं चान्नमामिषं तत्स्मृतं बुधैः॥

कार्तिकमाहात्म्य में पद्मपुराण का मत है कि-गौ, बकरी तथा भैंस के दूध से अन्य दुग्धादि आमिष होता है। धान्य (कुसम्बरु:-नेपाली धनिया मोटा) पर्युषित[1] अन्न, ब्राह्मणों से खरीदे सब रस, भूमि से उत्पन्न सब लवण। तांबे[2] के पात्र में स्थित गव्य दुग्धादि, पल्लवस्थित जल और अपने आत्मा के लिये पकाया हुआ अन्न ये सब विद्वानों ने आमिष कहा है।

तथा—निष्पावान् राजमाषांश्च मसूरं सन्धितानि च। वृन्ताकं च कलिङ्गं च सुप्ते देवे विवर्जयेत्॥ सन्धितानि=लवणशाकादीनि। तत्रैव विष्णुधर्मे—चतुर्ष्वपीह मासेषु हविष्याशी न पापभाक्।

और-निष्पाव (बड़ीमटर), राजमाष (बोडा), मसूर, सन्धितानि-लवण शाक आदि, वृन्ताक (भंटा) और कलिंग ये सब देवता के शयन में वर्जित हैं।

वहीं पर विष्णुधर्म का कथन है कि-हविष्यका भक्षण करने वाला चार महिनों में पाप का भागी नहीं होता है।

(अथ हविष्यकथनम्)

हविष्याणि तु पृथ्वीचन्द्रोदये भविष्ये—हैमन्तिकं सितास्विन्नं धान्यं मुद्गा यवास्तिलाः। कलायकङ्गुनीवारा वास्तुकं हिलमोचिका॥ षष्टिका कालशाकं च मूलकं केमुकेतरत्। कन्दः सैन्धवसामुद्रे गव्ये च दधिसर्पिषी॥ पयोनुद्धृतसारं च पनसाम्रहरीतकी। पिप्पली जीरकं चैव नागरङ्गं च तिन्तिणी॥ कदलीलवली धात्रीफलान्यगुडमैक्षवम्। अतैलपक्वं मुनयो हविष्याणि प्रचक्षते॥ इति। सितास्विन्नम्=अनूष्मपक्वम्। धान्यम्=तण्डुलादि। केमुकम्=केमुता इति प्राच्येषु प्रसिद्धः कन्दः। 'कलायस्तु सतीनकः' इत्यमरः। बटुरीति प्रसिद्धं धान्यम्। मदनरत्नेऽप्येवम्।

पृथ्वीचन्द्रोदय में भविष्यपुराण मत से हविष्यों को कहा कि-हैमन्तिक—हेमन्तमें होने वाला, सिताश्विन्न (बना अन्न) सितं श्वेतमस्विन्नम् अनूष्मकं किंचिदग्निपाकेन जातस्वेदं स्विन्नं तद्भिन्नं तेन पृथुका विनिषेधः) धान्य-तण्डुल, मूग ,यव, तिल, कलाय (सतीनक, मटरीइतिप्रसिद्ध छोटीमटर) कंकु।

नीवार—तिन्नी का चावल, वास्तुक-वथुवा, हिलमोचिका हिलंच साग बंगाली खाते हैं, षष्टिका-साठी चावल, कालशाक मूलक (मूलानि न तुमूलशाकः तस्य वृत्ते मदिरोपमत्वात्। केमुकेतरत् (के

---

(१) यज्ञपात्रे तथा दोहे पाके च परिवेषणे। स्नानतर्पणदानेषु ताम्रे गव्यं न दुष्यति॥ (२) परपाकरतश्च यः तावुभौ पापकर्माणौ' इति निषेधेऽपि दोषाधिक्यार्थं विप्रभोजनवैश्वदेवाद्यर्थपाकहीनपरपाकनिवृत्तिः।

मुकं केमुना इमि प्राच्येषु प्रसिद्धं मूलं तद्भिन्नमितोऽपि च न मलशाकः । इति प्राच्येषु प्रसिद्ध मूलशाकः । कन्द (सकरकन्द) कन्दः यद्यपि 'अर्शोघ्नः सूरणः कन्दः, इत्युक्तस्तथापि तस्य निषिद्धत्वात्तदन्यो ग्राह्यः । सैन्धव, गौका दूध, दधि, घृत, पनस-कटहर, आम्र, हरीतकी (हरै) पिप्पली, जीरा, नागरंग-नारंगी, (नागरमिति पाठे शुण्ठी) तित्तिणी (अभाव में इमली) केला, लवली (हरफा रेवडी) आंवले का फल, गुड से भिन्न ईखका विकार, विना तेल का बना हुआ, इनको हविष्य कहा है । मदनरत्न में भी यही कहा है ।

अगस्त्यसंहितायां हैमन्तायुक्त्वा—नारिकेलफलं चैव कदली लवली तथा ॥ आम्रमामलकं चैव पनसं च हरीतकी ॥ व्रतान्तरप्रशस्तं च हविष्यं मन्यते बुधाः ।

अगस्त्यसंहिता में हैमन्तिकादि को कह कर नारिकेलफल-नारियल, फल, केला, लवली (हरफा रेवडी), आम, आंवला, कटहर और हरड व्रतान्तर में प्रशक्त को भी पण्डितगण हविष्य को मानते हैं ।

(अथान्यन्यपि फलानि उक्तानि)

अन्यान्यपि व्रतान्युक्तानि हेमाद्रौ भविष्ये—स्त्री वा नरो वा मद्भक्तो धर्मार्थं सुदृढव्रतः । गृह्णीयान्नियमानेतान् दन्तधावनपूर्वकान् ॥ तेषां फलानि वक्ष्यामि तत्कर्तॄणां पृथक् पृथक् । मधुरस्वरो भवेद्राजा पुरुषो गुडवर्जनात् ॥ तैलस्य वर्जनाद्राजन् सुन्दराङ्गः प्रजायते । कटुतैल-परित्यागाच्छत्रुनाशः प्रजायते ॥ योगाभ्यासी भवेद्यस्तु स ब्रह्मपदमाप्नुयात् । ताम्बूलवर्जनाद् भोगी रक्तकण्ठश्च जायते ॥ घृतत्यागाच्च लावण्यं सर्वस्निग्धतनुर्भवेत् । शाकपत्राशनाद्भोगी अपक्वादोऽमलो भवेत् ॥ भूमौ प्रस्तरशायी च विप्रो मुनिवरो भवेत् । एकान्तरोपवासेन ब्रह्मलोके महीयते ॥ धारणान्नखरोम्णां च गङ्गास्नानफलं लभेत् । मौनव्रती भवेद्यस्तु तस्याज्ञाऽस्खलिता भवेत् ॥ भूमौ भुङ्क्ते सदा यस्तु स पृथिव्याः पतिर्भवेत् । प्रदक्षिणाशतं यस्तु करोति स्तुतिपाठकः ॥ हंसयुक्तविमानेन स च विष्णुपुरं व्रजेत् । अयाचितेन प्राप्नोति पुत्रान् धर्म्यान्विशेषतः ॥ षष्ठान्नकालभोक्ता यः कल्पस्थायी भवेदिति । पर्णेषु यो नरो भुङ्क्ते कुरुक्षेत्रफलं लभेत् ॥ गुडवर्जी नरो दद्यात्तद्भृतं ताम्रभाजनम् । सहिरण्यं नरश्रेष्ठ लवणस्याप्ययं विधिः ॥ सुप्ते देवे तु यो विष्णोः शिवस्याङ्गणमर्चयेत् । पञ्चवर्णैस्तु यो नित्यं स्वस्तिकैः पद्मकैस्तथा ॥ स याति रुद्रलोकं हि गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥

हेमाद्रि में भविष्यपुराण के मत से अन्य व्रतों को कहा कि-स्त्री, पुरुष या मेरा भक्त दृढव्रत हो धर्मार्थ दन्तधावन पूर्वक इन नियमों को ग्रहण करे । उनके करने वालों के फलों को अलग—अलग कहता हूँ—(A)हेराजन्, गुड़ के त्यागने से पुरुष 'मधुरस्वर' वाला होता है । (१) हेराजन्, तैल के त्यागने से सुन्दर अंगवाला होता है। (२) कडुवे तेल के त्यागने वाले शत्रुओं का नाश करने वाला होता है। (३) जो योगाभ्यासी है उसे ब्रह्मपद प्राप्त होता है। (४) तांबूल के त्यागने से भोगी तथा लालकण्ठ वाला होता है। (५) घृत के त्याग से लावण्यता और शरीर चिकना होता है। (६) शाकपत्र को खाने वाला भोगी और अपक्वभक्षी निर्मल होता है । (७) भूमि में शयन करने वाला ब्राह्मण मुनियों में श्रेष्ठ होता है । (८) एकान्तर के उपवास से ब्रह्मलोक जाता है । (९) नख तथा रोमों के धारण से गंगास्नान का फल मिलता है। (१०) जो मौनव्रत धारण करता है उसकी आज्ञा कभी भी खलित नहीं होती है । (११) जो भूमिपर सदा खाता है वह पृथ्वीका पति होता है । (१२) स्तोत्र पाठ करने वाला सौप्रदक्षिणा करता है वह हंस युक्तविमान से विष्णुपुर जाता है । (१३) विना मांगे प्राप्त करता है वह विशेषकर धर्मात्मा पुत्रों को प्राप्त करता है । (१४) जो छठे अंशरूपी अन्न को भक्षण करता है वह कल्पतक स्वर्ग में रहता है । (१५) पत्ते पर जो मनुष्य भोजन करता है उसे कुरुक्षेत्र का फल मिलता है। (१६) गुडको त्यागकरने वाला मनुष्य गुड से भरकर तांबे के पात्र को सुवर्ण के सहित दे । हे नर श्रेष्ठ, लवण की भी यही विधि है । देवता के शयन करने पर जो विष्णु तथा शिव के अंग की पूजा जो पांच रंगों के स्वस्तिक-पद्मचिन्हों से करता है वह रुद्रलोक में जाता है और गणपति होता है ।

(कार्तिकमासे व्रतसमाप्तौ एकभक्तादीनिव्रतधारणकृते सति विविधप्रकारेण दानकथनम्)

अथैषां समाप्तौ कार्तिक्यां दानानि। एकभक्तव्रते दम्पती सम्यक् संपूज्य धेनुर्देया, नक्ते वस्त्रयुगम्। एकान्तरोपवासे गौः, भूशयने शय्या, षष्ठकालभोजने गौः, व्रीहिगोधूमादित्यागे हैमव्रीह्यादि, कृच्छ्रे-गोयुग्मं, शाकाशने गौः, पयोव्रते च, दधिमधुघृतव्रतेषु वासो गौश्च, ब्रह्मचर्ये स्वर्णमूर्तिः, ताम्बूलव्रते वासोयुगम्, मौने घृतकुम्भो वस्त्रयुगं घण्टा च, देवाग्रे रङ्गमालिकाकरणे धेनुर्हेमपद्मं च, दीपिकाव्रते दीपिका वासोयुगं च, भूमिभोजने पर्णभोजने च कांस्यपात्रं गौश्च, चतुष्पथदीपे गोग्रासे च गोवृषौ, प्रदक्षिणाशते वस्त्रम्, अनुक्तेषु स्वर्णं गौश्च इत्यादिकं हेमाद्रौ ज्ञेयम्।

अनन्तर इन व्रतों की समाप्ति में कार्तिकी में दान कहे हैं। एक भक्तव्रत में दम्पती की पूजा कर धेनु दे। नक्त व्रत में दो वस्त्र दे। एकान्तर उपवास में गौ दे। भूमिशयन में शय्या दे। षष्ठ काल—भोजन में गौ दे। व्रीहि, गोधूम आदि के त्याग में सुवर्ण के व्रीहि आदि दे। कृच्छ्र में दो गौ दे। शाक भक्षण में गौ दे। पयोव्रत में भी जौ दे। दधि, मधु तथा घृत के व्रतों में वस्त्र और गौ दे। ब्रह्मचर्य में सोने की मूर्ति दे। ताम्बूलव्रत में—दो वस्त्र दे। मौन में— घीका घड़ा, दो वस्त्र और घण्टा दे। देवता के आगे रंगमालिका, गौ और सोने का पद्म दे। दीपकव्रत में—दीपक (दीवट) तथा दो वस्त्र दे। भूमिपर भोजन करने पर तथा पत्तों पर भोजन करने पर कांसे का पात्र और गौ दे। चौराहे पर दीपक देने पर—तथा गौ को गोग्रास देने पर गौर और बैल दे। सौ प्रदक्षिणा करने पर वस्त्र दे। [1]जिसका दान नही कहा है उसमें सुवर्ण तथा गौ दे। इत्यादि हेमाद्रि से जानना चाहिये।

(शयनीबोधनीमध्ये शमीदूर्वादिनानार्चनकथनम्)

तथा च भार्गवार्चनदीपिकायां पाद्मे—शयनी बोधिनी मध्ये शमीदूर्वापमार्गकैः।
भृङ्गराजेन देवांस्तु नार्चयीत कदाचन॥

और भी भार्गवार्चनदीपिका में पद्मपुराण का मत है कि—शयनी (आषाढशुक्ल एकादशी) और बोधिनी (कार्तिकशुक्ल एकादशी) के मध्य में शमी, दूर्वा, अपामार्ग और भृङ्गराज से कभी भी देवताओं की पूजा न करे।

हेमाद्रौ पाद्मे—आषाढादिचतुर्मासानभ्यङ्गं वर्जयेन्नरः। समाप्तौ च पुनर्दद्यात्तिलतैलयुतं घटम्॥

हेमाद्रि में पद्मपुराण का मत है कि-आषाढ-आदि से चार महिने तक मनुष्य को अभ्यङ्ग वर्जित है और समाप्ति पर तिल्ली के तेल के सहित घट को फिर दे।

आषाढादिचतुर्मासं वर्जयेन्नखकृन्तनम्। वृन्ताकं गृञ्जनं चैव मधुसर्पिर्घटान्वितम्॥

आषाढ आदि चार महिने तक नख का कटना, वृन्ताक (बैंगन) और गृञ्जन-गाजर को वर्जित करे।

कार्तिक्यां तत्पुनर्हैमं ब्राह्मणाय निवेदयेत्। अन्यान्यपि केशकर्तनादिवर्जनसङ्कल्पानुरूपाणि पृथ्वीचन्द्रोदये ज्ञेयानि।

कार्तिकपूर्णिमा में फिर से सोने के घडेको ब्राह्मण को दे। अन्य भी केशकर्तन आदि वर्जित सङ्कल्पानुरूपों को पृथ्वीचन्द्रोदय में जानना चाहिये।

टोडरानन्दे स्कान्दे—एकान्तरं द्व्यन्तरं वा कुर्यान्मासोपवासकम्।
अनोदनं फलाहारं नक्तव्रतमथापि वा॥

---

(१) चातुर्मास्यव्रतं कृत्वा 'व्रतान्ते गोवृषप्रदः' इति वाक्यात् धेनुं वा दद्यात्। व्यासः-योऽधीते भारतं पुण्यं ब्राह्मणो नियतव्रतः। चतुरो वार्षिकान् मासान् सर्वपापान् प्रमुच्यते॥ तस्मान्नियमसंयुक्तैः श्रोतव्यं ब्राह्मणैरिदम्। कृष्णप्रोक्तामिमां पुण्यां भारतीमुत्तमां कथाम्॥ श्रावयिष्यन्ति ये विप्रा ये च श्रोष्यन्ति मानवाः। सर्वथा वर्तमाना वै न ते शोच्याः कृताकृते॥ नियमाः-ब्रह्मचर्यहविष्याशनभूशय्यादयः। एवं सङ्कल्पपूर्वकं श्रुत्वा समाप्तौ सतिसामर्थ्ये पर्वसमाप्तौ वाचकं पायसेन भोजयेत्तस्मै रत्नकाञ्चनगोभूगृहवस्त्रादि दद्यात्। ततो द्विजान् भोजयित्वा तेभ्यो दक्षिणां दद्यादेवं सर्वपुराणश्रवण विधिरिति टीकायाम्।

टोटरानन्द में स्कन्दपुराण का मत है कि–एकान्तर (एक दिन अन्तर हो) या द्व्यन्तर (दो दिन का अन्तर हो) मास का उपवास अनोदन (विना भात का) के फलाहार का या नक्त व्रतकरे।

(अथ तप्तमुद्राधारणादिविचारः)

अत्रैव तप्तमुद्राधारणमुक्तं रामार्चनचन्द्रिकायां भविष्ये—शयन्यां चैव बोधिन्यां चक्रतीर्थे तथैव च। शंखचक्रविधानेन वह्निपूतो भवेन्नरः। इति। 'अतप्ततनूर्न तदामो 'अश्नुते' इति ऋग्वेदात्। 'स होवाच याज्ञवल्क्यः तस्मात्पुमानात्महिताय हरिं भजेत्। सुश्लोकमौलेर्वर्माण्यग्निना सन्दधते'। इति शतपथश्रुतेः।

प्रतद्विष्णो अब्जचक्रे सुतप्ते जन्माम्भोधी तर्तवे चर्पणीन्द्राः। मूले बाह्वोर्दधतेन्ये पुराणा लिंगान्यङ्गे तप्तायुधान्यर्पयेत् इति॥ सामवेदात्।

यहाँ पर रामार्चनचन्द्रिका में भविष्यपुराण कथन से तप्तमुद्राधारण कहा है कि—शयनी और वैसे ही बोधिनी में चक्रतीर्थ में शंख, चक्र विधान से मनुष्य अग्नि से पवित्र होता है।

अग्निहोत्रं यथा नित्यं वेदस्याध्ययनं यथा। ब्राह्मणस्य तथैवेदं तप्तमुद्रादिधारणम्॥ इति पद्मपुराणाच्चेति।

पद्मपुराण में कहा है कि–जैसे ब्राह्मण को–अग्निहोत्र नित्य है, वैसेही वेदाध्ययन भी नित्य है और तद्वत् ही तप्तमुद्रा आदि धारण भी नित्य है।

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा यदि वेतरः। शङ्खचक्राङ्किततनुस्तुलसीमञ्जरीधरः॥ गोपीचन्दनलिप्ताङ्गो दृष्टश्चेत्तदघं कुतः॥ इति काशीखण्डात्। तत्प्रकारस्तु रामार्चनचन्द्रिकायां ज्ञेयः।

काशीखण्ड में लिखा है कि–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र या इतर–अन्य जातीय मनुष्य शंख, चक्र और तुलसी की मञ्जरी को तथा गोपीचन्दन को अपने शरीर में धारण करता है उसके पाप नहीं रह जाते हैं। उसका प्रकार रामार्चनचन्द्रिका से जानना चाहिये।

पृथ्वीचन्द्रोदयादयस्तु—यस्तु सन्तप्तशङ्खादिलिङ्गाङ्किततनुर्नरः। स सर्वयातनाभोगी चाण्डालो जन्मकोटिषु॥ द्विजं तु तप्तशङ्खादिलिङ्गाङ्किततनुर्नरः। सम्भाष्य रौरवं याति यावन्दिद्राश्चतुर्दश॥ इति बृहन्नारदीयोक्तेः।

पृथ्वीचन्द्रोदय आदि तो कहते हैं कि–जो मनुष्य सन्तप्त–तपाये हुए शंखादि आकारवालों से चिह्नित शरीर धारियों से साथ भाषण करता है वह सब यातनाओं को भोगने वाला होता है तथा करोड़ों जन्म तक चाण्डाल होता है। यह बृहन्नारदीय में कहा है। शंखचक्रादि से अंकित शरीरधारी मनुष्य के साथ संभाषण वर्ण करने वाला ब्राह्मण चौदहों इन्द्र के समय तक रौरव नरक में जाता है।

शङ्खचक्राद्यङ्कनं च गीतनृत्यादिकं तथा। एकजातेरयं धर्मो न जातु स्याद् द्विजन्मनः॥

शंख–चक्रादि से अंकन तथा गीत-नृत्यादि को करता है (वह एकजातीय धर्म है। वह द्विजातियों का धर्म नहीं हो सकता है।

---

(१) 'तत् पवित्रम् अतप्ततनूः पयोव्रतादिना असन्तप्तगात्रः आमः अपरिपक्वो नाश्नुते न व्याप्नोति' इति ऋग्वेदभाष्ये उक्तः। पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः। अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तस्तत् समाशत॥ (ऋ० म० ६ सू० ८३ म० १)।

ऋग्वेद में—पवित्रं ते विततम्–इस मन्त्र में अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते। यह पाठ आया है। इसपाठ का अर्थ–जो व्यक्ति अपनी भुजाओं में शंख चक्र धारण करने वाले तप्त शंख चक्र के द्वारा अपने शरीर को शुद्ध नहीं करता है। ऐसे अपक्व मनुष्य परमात्मा का परम पूजनीय स्थान को नहीं प्राप्त करता है। एसा अर्थ कहते हैं। अर्थात्–तप्तमुद्राधारण प्रमाण वेद है। याज्ञवल्क्य ने कहा है कि–इसलिये पुरुष अपने कल्याण के लिये विष्णु का भजन करे। भगवान् के कवचों को अपने अवयव में अग्नि के द्वारा स्थापन करना चाहिए। ऐसा शतपथ का प्रमाण देते हैं। वैसा सामवेद में भी है–हे विष्णो, आपके शंख और चक्र को खूब गरम कर संसार समुद्र को पार करने के लिए प्राचीन ज्ञानपूर्ण महर्षियों ने अपनी भुजा के मूल में धारण किया है। एसा प्रतिपादन किया है।

शङ्खचक्रे मृदा यस्तु कुर्यात्तप्तायसेन वा । स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः ॥

जो मृत्तिका से या तपे हुए लोहे से अपने अंगों पर शंख तथा चक्र से अंकन करता है वह शूद्रवत् सब द्विजातिकर्म से बहिष्कृत करना चाहिये ।

यथा श्मशानजं काष्ठमनर्हं सर्वकर्मसु । तथा चक्राङ्कितो विप्रः सर्वकर्मसु गर्हितः ॥

जैसे श्मशान में उत्पन्न काष्ठ सब कर्मों में गर्हित–निन्दित है । वैसे ही चक्राङ्कित ब्राह्मण सब कर्मों में निन्दित है ।

तथा—शिवकेशवयोरङ्काञ्छूलचक्रादिकान् द्विजः । न धारयेत मतिमान् वैदिके वर्त्मनि स्थितः ॥ इति विष्ण्वाश्वलायनादिवचनात् ऋग्वेदादिश्रुतीनामन्यार्थत्वादन्यश्रुतीनां चासत्त्वाच्चक्रादिधारणं शूद्रविषयमित्यूचुः । 'नृत्यं चोदरार्थं निषिद्धम्' इति श्रीधरस्वामी ।

यद्यपि निषेधस्य प्राप्तिसापेक्षत्वाद्विधिं विना च तदयोगादुपजीव्यविरोधेन 'न तौ पशौ करोति' इतिवत् विकल्पो युक्तस्तथापि 'एकजातेरयं धर्मः' इत्यनेन सामान्यवाक्यानामुपसंहारात् द्विजाति-निषेधो नित्यानुवाद इति तदाशयः । अत्र शिष्टाचार एव सङ्कटपाशनिःसरणसरणिरिति संक्षेपः-

विष्णु तथा आश्वलायन का वचन है कि–शिव तथा केशव के शूल–चक्र आदि से अंकित बुद्धिमान् ब्राह्मण वैदिकमार्ग में स्थित होकर न धारण करे । ऋग्वेदादि श्रुतियों का अन्यार्थत्व होने से (तप्तादिपदस्य कृच्छ्रचान्द्रायणादिपरत्वात्) और अन्यश्रुतियों का असत्वहो जाने से चक्रादि का धारण शूद्र विषयक हैं । यों कहा है । श्रीधरस्वामी ने कहा है कि—उदर के लिए नृत्य निषिद्ध है ।

यद्यपि निषेधप्राप्तिका सापेक्षत्व होनेसे विधि के विना उसके असंभव होने के कारण उपजीव्य विरोध से 'न तौ[1] पशौ करोति । इसकी तरह विकल्प युक्त है । फिर भी 'एकजातेरयं धर्मः' इसवाक्य से सामान्यवाक्यों का उपसंहार होने से द्विजाति का निषेध नित्यानुवाद है । यह उनका आशय है । यहाँ पर शिष्टाचार ही संकटरूपीपाश से मुक्ति होने का मार्ग है—यही संक्षेप है ।

(अथ कोकिलाव्रतम्)

आषाढपौर्णमास्यां कोकिलाव्रतमुक्तं हेमाद्रौ भविष्ये—आषाढपौर्णमास्यां तु सन्ध्याकाले ह्युपस्थिते । सङ्कल्पयेन्मासमेकं श्रावणे प्रत्यहं ह्यहम् ॥ स्नानं करिष्ये नियता ब्रह्मचर्ये स्थिता सती । भोक्ष्यामि नक्तं भूशय्यां करिष्ये प्राणिनां दयाम् ॥ इति । अस्य नक्तव्रतत्वात्सायाह्नव्यापिनी ग्राह्या ।

आषाढ[2] की पौर्णिमास्या में कोकिलाव्रत हेमाद्रि में भविष्यपुराण मत से कहा है कि–आषाढमास की पूर्णिमातिथि में सन्ध्याकाल के उपस्थित होने पर संकल्प करे–कि—एक महिना श्रावणमास तक प्रतिदिन मैं

---

(१) पशुयाग में 'न तौ पशौ करोति' । वे दोनों पशुयाग में नहीं करना है । यह निषेध है । प्रत्येक निषेधवाक्य में निषेध्य अर्थ का प्राप्ति अपेक्षित है । अर्थात्–प्राप्त अर्थ का ही निषेध करते हैं । जो मकान के भीतर प्रवेश करता है उसको ही रोका जाता है । जो नहीं आता है उसे नहीं रोका जाता है । अतः जहाँ निषेध होगा वहीं निषेध पदार्थ की प्राप्ति होगी । प्राप्ति का दो प्रकार है–रागतः, शास्त्रतः । इच्छा से जिसकी प्राप्ति होगी उसका निषेध होगा । जैसे–राग या द्वेष से कोई ब्राह्मण गौ को मारना चाहता है । वहाँ मारना प्राप्त हो गया । उसी हिंसा को 'ब्राह्मणो न हन्तव्यः' इस वाक्य से निषेध किया जाता है । शास्त्रतः प्राप्त अर्थ को निषेध करने से विकल्प अर्थ होता है । दोनों समबल होने के कारण । जैसे–'अतिरात्रे षोडशिनं गृह्णाति' इस वेदवाक्य के द्वारा अतिरात्रयज्ञ में षोडशिग्रह का ग्रहण करना है । वैसे–नातिरात्रे षोडशिनं गृह्णाति । इसवाक्य से अतिरात्रयाग में पूर्व वाक्यसे प्राप्त षोडशिग्रह ग्रहण का निषेध है । विधि और निषेध दोनों शास्त्र होने के कारण ऐसे स्थलों में विकल्प माना जाता है । वैसे पशुयाग में उन दोनों की प्राप्ति का वर्णन किया । निषेध भी वर्णन किया । इसलिए वहाँ विकल्प है ।

(२) अधिकाषाढपौर्णमास्यारंभः । आषाढौ द्वौ यदा स्यातां कोकिलाव्रतमाचरेत् । इत्युक्तेः । अधिकाषाढ-पौर्णमासीविरहे तु तत्प्रतिनिधिभूतं श्रावणमभिव्याप्य शुद्धे कार्यम् ।

ब्रह्मचर्य स्थित होकर स्नान करूँगी। नक्तभोजन, पृथ्वीपर शयन तथा प्राणियों पर दया करूँगी। क्योंकि इसका नक्तव्रत होने से सायाह्नव्यापिनी (मयूखमत से सन्ध्याकालव्यापिनी) ग्रहण करे।

(अथ शिवशयनोत्सवकथनम्)

अत्रैव शिवशयनोत्सव उक्तो हेमाद्रौ वामनपुराणे—पौर्णमास्यामुमानाथः स्वपते चर्मसंस्तरे। वैयाघ्रे च जटाभारं समुद्ग्रन्थ्याहिवर्ष्मणा॥ मदनरत्नेऽप्येवम्। इयं प्रदोषव्यापिनी।

यहाँ पर शिव शयनोत्सव हेमाद्रि में वामनपुराण के कथन से कहा है कि—पौर्णमासीतिथि में व्याघ्र चर्म के आसनपर सर्प से जटा के भार का बन्धनकर उमानाथ शयन करते हैं। मदनरत्न में भी यही है। यह प्रदोषव्यापिनी ले।

(अथ व्यासपूजाकर्मणि प्रणामकर्मणि चौरकर्मणि च विचारः)

अत्रैव व्यासपूजोक्ता। तत्र त्रिमुहूर्ता चेत्परैवेति संन्यासपद्धतौ। त्रिमुहूर्ताधिकं ग्राह्यं पर्व चौरप्रणामयोः। इति वचनात्।

यहाँ पर ही व्यास पूजा कहा है। संन्यासपद्धति में कहा है कि—तीन मुहूर्त हो तो परा ही ले। क्योंकि वचन है कि—पर्व-क्षौर तथा प्रणाम में तीन मुहूर्त से अधिक तिथि का ग्रहण करे।

इति [1]आषाढमासः

---

(१) आषाढपूर्णिमायां किञ्चिद्देयम्-आषाढीकार्तिकीमाघीतिथयः पुण्यसंभवाः। अप्रदानवतो यान्तु यस्यार्थोऽनुमतो गतः॥ आषाढीकार्तिकीमाघी-तिथयोऽतीव पावनाः। स्नानदानविहीनास्ता न नेयाः पाण्डुनन्दन॥

(प्राचीन व्यवस्थाओं का संग्रह)

(स्वर्गीय-महामहोपाध्याय श्री पं० विद्याधर जी गौड़ द्वारा लिखित)

अवभृथस्नानविचारः—रुद्र-विष्णुयागादिषु कर्मसमापनान्तेऽवभृथस्नानं क्रियते, तद्युक्तं न वेति विचारे युक्तमित्येव प्रतिभाति। ज्योतिष्टोमादिसोमयागेषु कर्मसमाप्त्यनन्तरं नद्यां तडागे वा अवभृथेष्टिं कृत्वा तत्र सर्वैः स्नानं कर्तव्यमिति विधिरस्ति। अयं चावभृथो मुख्यः परिगण्यते। एवं दर्शपूर्णमासयोरप्यवभृथस्नानं विहितम्। "एष वै दर्शपूर्णमासयोरवभृथः यदपां व्युत्सेकः" इति। अत्र नदी-तडागादिष्ववगाहनपूर्वकमुख्यावभृथस्नानाभावेऽपि अपां व्युत्सेकरूपगौणावभृथस्नानं तत्र कर्तव्यत्वेन विहितम्। तद्वत् प्रकृतेऽपि रुद्रादियागे कर्मणः साङ्गत्वसिद्धयेऽन्ते गौणावगाहनस्नानं कृतमपि न दोषाय भवेत्। यद्यपि कुत्रापि विधिर्नावलोक्यते "अवभृथस्नानं कर्तव्यम्", तथापि यागसमाप्त्यनन्तरं पुण्येषु तीर्थेषु तदङ्गत्वेनावभृथस्नाने कृते न कोऽपि दोषः। प्रत्युतावभृथस्नानकरणेनैव कर्मणः साद्गुण्यं भवेदिति शिष्टाचारस्य वर्त्तमानत्वादवश्यमाचरणीयमवभृथस्नानम्। शिष्टाचारस्यापि प्रमाण्यस्य व्यवस्थापनात् मीमांसाशास्त्रे। अतस्तदनुरोधेनावश्यमेवावभृथस्नानमाचरणीयमिति।

मातापित्रोर्मृते संवत्सरपर्यन्तमार्त्विज्यनिषेधः—मातापित्रोर्मृते संवत्सरं यावदनापदि विष्णुयागादौ आर्त्विज्यं न कार्यम्। "आरम्भो वरणं यज्ञे" इति वचनात् ऋत्विजामपि मधुपर्कानन्तरं यद्यप्याशौचाभावो निर्णयसिन्ध्वादावुक्तः, तथापि नायं पक्षः सुसमीचीनः।

आशौचे देवार्चाविषये विचारः—आशौचे संप्राप्ते देवार्चा कार्या न वेति प्रश्ने ब्राह्मणद्वारा कार्या इत्युक्तम्—"ब्राह्मणोऽपि स्वयं पाकं निर्माय विनिवेदयेत्।" इति। निम्नलिखितवचनानुसारेण अन्नादिषु नाशौचसम्भवः। वचनानि च यथा—लवणे मधुमांसे च पुष्पमूलफलेषु च। शाककाष्ठतृणेष्वप्सु दधिसर्पिःपयःसु च॥ तिलौषधाजिने चैव पक्वापक्वे स्वयं ग्रहः। पण्येषु चैव सर्वेषु नाशौचं मृतसूतके॥ इति। स्वममेव स्वाम्यनुज्ञया ग्राह्यं न तद्धस्तादित्यर्थः। क्रये तु तद्धस्तादपि न दोषः। पक्वं लड्डुकादि। अपक्वं तण्डुलादि। "पूर्वसङ्कल्पितान्नेषु न दोषः परिकीर्तितः।" इति।

देवपूजने मन्त्रविनियोगविचारः—'गणानां त्वा' (शु० य० २३।१९) इति प्रकरणानुरोधान्महीधरादिभिरश्वपरतया व्याख्यातोऽप्ययं मन्त्रः स्मृत्या गणपतिपूजने विनियुक्तो गणपतिपरतया व्याख्यायते। एवं 'शन्नो देवीः' (शु० य० ३६।१२), 'त्वां गन्धर्वाः' (शु० य० १२।९८), 'अक्षन्नमीमदन्त' (शु० य० ३।५१) इत्यादीनामपि

योगित्वम्। अन्यार्थानामपि मन्त्राणां वचनात्त्वयथार्थमैन्द्री स्यादिति न्यायेन विनियोग इति संस्कारचिन्तामणौ। आग्नेये-मन्त्रैर्वैष्णवरौद्रैस्तु सावित्रैः शान्तिकैस्तथा। विष्णुं प्रजापतिं वापि शिवं वा भास्करं तथा ॥ तल्लिङ्गैरर्चयेन्मन्त्रैः सर्वदेवान् समाहितः ॥ कौर्मे—ब्रह्माणं शङ्करं सूर्यं तथैव मधुसूदनम्। अन्यांश्चाभिमतान् देवान् तल्लिङ्गैरर्चयेन्नरः ॥ "ब्राह्मवैष्णव-रौद्र-सावित्र-मैत्र-वारुणैस्तत्तल्लिङ्गैरर्चयेत्" इति कात्यायनोऽपि स्नानसूत्रे। अत्र ब्राह्मेत्यादिना देवतातद्धितेन तल्लिङ्गत्वे प्राप्ते पुनस्तल्लिङ्गैरिति ग्रहणं श्रुति-लि वाक्य-प्रकरण-स्थानङ्ग-समाख्याभिर्मन्त्राद्यङ्गविनियोगो भवति सर्वत्र, अत्र तु लिङ्गमेव विनियोजकं येषां ते ग्राह्या इत्यर्थकम्, तेन तत्तल्लिङ्गमन्त्रपदेन यथाकथञ्चिदपि तत्तद्देवताद्रव्याद्यनुस्मारकपदघटितमन्त्रपरिग्रहः कार्य इति सिद्ध्यति।

तन्त्रताविचारः—अनेकप्रधानानां कालदेशकर्मैक्यादिना सकृदेवानुष्ठानं तन्त्रम्। तत्र द्वयोर्बहूनां वा प्रधानानां देवतैक्ये प्रधानानामपि सकृदेवानुष्ठानम्। तादृशप्रधानोद्देशेनाङ्गानुष्ठानमपि तन्त्रेणैव। (सकृदेव) यत्र तु प्रधानेषु देवताभेदः कालकर्त्रादीनामैक्यं तत्र प्रधानानामेव पृथक् पृथगनुष्ठानम्। अर्थात् तत्तद्देवताकहविषां पृथक् पृथक् प्रक्षेपः त्यागोऽपि पृथगेव। अङ्गानान्तु पूर्वपश्चिमानामारादुपकारकाणां सकृदेवानुष्ठानम्। सन्निपत्योपकारकाणां तद्देवताकहवि-र्निर्वापादीनां पार्थक्यमेव। सन्निपत्योपकाराणां संस्काररूपत्वेन तेषामावृत्तिं विना तत्वरूपस्यैवासिद्धेः। यत्रानेककर्मसन्निपातेषु एकस्यैवोद्देश्यत्वं प्राधान्यं वा इतरेषामर्थादुपकारसिद्धिस्तत्र प्रसङ्गः, प्रसङ्गतन्त्रयोरङ्गानुष्ठानस्थले इयान्-भेदो यत् तन्त्रस्थले सर्वेषां प्रधानानामुद्देश्यत्वमनुष्ठानं परमङ्गानां सकृत्। प्रसङ्गस्थलेऽनेकप्रधानमध्ये एकस्यैव प्रधानस्योद्देश्यत्वं कर्तव्यत्वमर्थादितरेषामुपकारसिद्धिः। एवं चानेकदेवताप्रतिष्ठापञ्चदेवयागशान्त्युद्यापनादिषु यत्र कालभेदो देवताभेदाङ्गनामपि भेदस्तत्रकथमपि तन्त्रं प्रसङ्गो वा न भवितुमर्हति।

यत्तु विधानपारिजातशान्तिसारान्तिसारादौ द्वयोः शान्त्योः समुच्चयकथनं तत् यत्रैकदेवताकैककालिकशान्तिद्वयसन्निपा-तस्तद्विषयम्। एतेन यत्र क्वचित् गोमुखप्रसवमूलशान्त्योः समुच्चय उक्तः सोऽप्रामाणिकः समुच्चयकारणाभावात्।

संस्काराणान्तु अनेकेषामेककालकर्तव्यत्वे प्राप्ते अतीतसंस्काराणामेवोत्तरसंस्कारेण सह तन्त्रता, न तु उत्तरकालिकानां पूर्वेण सह। तन्त्रता नाङ्गानां सकृदनुष्ठानरूपेण, किन्तु सर्वेषामेषामेकदिनकर्तव्यस्वरूपेण। परन्तु नान्दीश्राद्धादेः सर्वोद्देशेन सकृदेवानुष्ठानम्। (गणशः क्रियमाणानामिति वचनं च यमलजातयोर्द्वयोर्युगपद्विहिते उपनयनादिसंस्कारैः अतीतसंस्काराणा-मुत्तरसंस्कारेण सह युगपदनुष्ठाने च नान्दीश्राद्धस्य तन्त्रता विधायकं वा, कर्तृभेदात्) एतदभिप्रायेणैव संस्काररत्नमालायां पुंसवनसंमन्तयोः समुच्चयकथनम्। उपनयनवेनारम्भसमावर्तनेषु उपनयनयनकालेयत्तन्त्रेणानुष्ठानमिदानीं क्रियते न तत् प्रमाणपदवीमारोहति। अतीतादामेवसंस्काराणामुत्तरसंस्कारेण सहानुष्ठानस्य शास्त्रेण प्राप्तत्वात्।

किञ्च—उपनयने ब्रह्मचर्यस्थितेनैव माणवकेन सायं होमविधानात् तावत्पर्यन्तमुपनयकर्मानुवृत्तेः, तन्मध्ये-वेदारम्भस्यानुष्ठानमशास्त्रीयमेव, कर्ममध्ये कर्मान्तरारम्भस्य निषिद्धत्वात्। पञ्चायतनपूजादौ यत्तन्त्रानुष्ठानं तद्वचनबलात्।

एवं पञ्चदेवयागोऽपि तन्त्रेणानुष्ठीयमानोऽसङ्गत एव। एवं प्रजापतियागसूर्ययागादिव्यवहारोऽपि—असङ्गत एव प्रमाणपथा नारूढत्वात्। पञ्चायतनात्मकपञ्चदेवप्रतिष्ठात्वेकस्य प्राधान्यादितरेषामङ्गत्वात्पौर्णमासीवैमृधन्यायेनाङ्गानां तन्त्रेण संभवति। (एवं पञ्चानामपि देवानां यत्र प्रधान्येन प्रतिष्ठा तत्र देशकालकर्त्रादादीनामैक्यसम्भवे तन्त्रेण कथञ्चिदनुष्ठानं सम्भवति। तत्रोप्यङ्गानामेव तन्त्रता प्रतिष्ठाकायास्तु संस्काररूपत्वेन सन्निपत्योपकाररूपत्वात् पृथगेवानुष्ठानम्) शतचण्डी-रुद्रयागयोर्देवता भेदात् वैदिकत्वेन तान्त्रिकत्वेन च परस्परंविभिन्नरूपत्वात्तन्त्रता न सम्भवत्येव।

श्राद्धविशये—'बहूनि च निमित्तानि जायेरन्नेकवासरे' इति न्यायेन अत्रैकस्मिन्दिने-अनेकनिमित्तानुसारेण नैमित्तकादावुत्सर्गतः पृथगनुष्ठानं प्राप्तम् तत्र यत्र द्रव्यदेवतैक्यमङ्गानाञ्चैक्यं तत्र तन्त्रेणानुष्ठानं भवत्येव। यत्र तु तयोर्भेदः तत्र भेदेनैवाऽनुष्ठानम्। यत्राङ्गेषु महत्वादल्पत्वकृतो भेदस्तत्र महताल्पस्य कृतार्थत्वात्तत्रापितन्त्रेणैवाऽनुष्ठानम्।

तर्पणस्थले—'सकृन्महालये श्वः स्यात्' इति वचनेन यत्र श्राद्धाङ्गतर्पणं परेद्युर्विहितं यत्र श्राद्धाङ्गतर्पणस्य नित्यतर्प-णस्यच तन्त्रेणैवानुष्ठाम्। यदि च तत्रापि नित्यतर्पणे जन्मतिथ्यादिपाते तिलतर्पणनिषेधस्तदा तु श्राद्धाङ्गतर्पणं सतिलं नित्यतर्पणमतिलमिति तर्पणद्वयमेव कार्यं न तन्त्रता द्रव्यभेदात्। एवं प्रायश्चित्तस्थलेऽपि ज्ञेयम्।

यत्र तु महता प्रधानेनाल्पानां प्रधानमुपकारसिद्धिस्तत्र प्रसङ्गः—अत्राप्यङ्गामननुष्ठानमेव। अत एवान्यत उपकारलाभे सति तेनैव चरितार्थत्वात् पृथक् अङ्गानुष्ठानमिति प्रसङ्गलक्षणम्। एवं च महतादर्शयागानुष्ठानेनाल्पानां संक्रातियुगादीनां चरितार्थत्वात्तेनैव सिद्धेर्न पृथगनुष्ठानम्।

श्री विद्याधर शर्मा गौड़

अथ निर्णयसिन्धुः

(ज्येष्ठमास और आषाढमास)

श्लोकसूची

दौलतराम गौड

अथ निर्णयसिन्धुः

(भाषा-टीका-सहित)

(श्रावणमास और भाद्रपदमास)

दौलतराम गौड

(श्रीशिवपूजन)

आवाहन--आयाहि हे चन्द्र कलाशिरोमणे गङ्गाधर त्र्यम्बक भूतिभूषण। सान्निध्यमत्रास्तु जगन्निवास ते पूजां ग्रहीतुं विधिवन्मयार्पितम् ॥ (ॐ शुद्धस्फटिकसंकाशं त्रिनेत्रं पञ्चवक्त्रकम्। गङ्गाधरं दशभुजं सर्वाभरणभूषितम् ॥ नीलग्रीवं शशाङ्काङ्कं नागयज्ञोपवीतकम्। व्याघ्रचर्मोत्तरीयं च वरेण्यमभयप्रदम् ॥ कमण्डल्वक्षसूत्रभ्यामन्वितं शूलपाणिनम्। ज्वलन्तं पिङ्गलजटाजूटसुद्योतकारिणम् ॥ अमृतेनायुतं हृष्टमुमादेहार्धधारिणम्। दिव्यसिंहासनासीनं दिव्यभोगसमन्वितम् ॥ दिग्देवतासमायुक्तं सुरासुरनमस्कृतम्। नित्यं च शाश्वतं शुद्धं ध्रुवमक्षरमव्ययम् ॥ दिग्देवतासमायुक्तं सुरासुरनमस्कृतम्। नित्यं च शाश्वतं शुद्धं ध्रुवमक्षरमव्ययम् ॥ सर्वव्यापिनमीशानं रुद्रं वै विश्वरूपिणम्। एवं ध्यात्वा द्विजः सम्यक् ततो यजनमारभेत् ॥) सन्निधापन--स्वामिन् सर्वजगन्नाथ यावत्पूजावसानकम्। तावत्त्वं प्रीतिभावेन लिङ्गेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥ अनन्या तव देवेश मूर्तिं शक्तिरियं प्रभो। सन्निध्यं कुरु तस्या त्वं भक्तानुग्रहतत्पर ॥ निरोधन--कृपया तवदेवेश कृपाम्भोधे गुणाम्बुधे। आत्मानन्दैकतृप्तं त्वां निरुणद्धिम जगद्गुरो ॥ संमुखीकरण--अज्ञानाद्दौर्मनस्याद्वा वैकल्यात्साधनस्य च। यदपूर्णं भवेत्किञ्चित्तदप्यभिमुखो भव ॥ स्वागत--यस्य दर्शनमिच्छन्ति देवाः स्वाभीष्टसिद्धये। तस्मै ते परमेशायः स्वागतं स्वागतं वदे ॥ आसन--शुचिप्रदेशे शुचिकौशमासनं मृगत्ववाच्छन्नमथापि वाञ्छितम्। मन्त्रेण दत्तं विधिवद् गृहीत्वा योगासनारूढ सुखं समास्यताम् ॥ पाद्यजल--यत्पादयुग्मं विरजः पवित्रं ध्यातं सदा यत् परतत्त्वदर्शिभिः। तत्क्षालनायामरवन्द्यमन्त्रतो दत्तं मया पापमिदं गृहाण ॥ अर्घ--धवलचन्दनपुष्पकुशैर्युतं कदलीपुष्पदले निहितं शुभम्। तव पुरः शिवमन्त्रसमर्पितं तदिदमर्घ्यपयः प्रतिगृह्यताम् ॥ अर्घांगजल--श्रुतिद्दगोष्ठपुरद्धयनासिका हृदयनाभिशिरोभुज शोधनम्। त्रिपथगाधरमन्त्रसमर्पितं तदिदमाचमनं प्रतिगृह्यताम् ॥ दुग्धस्नान--गोक्षीरस्नानं देवेश ! गोक्षीरेण मया कृतम्। स्नपनं देवदेवेश गृहाण परमेश्वर ॥ दधिस्नान--दध्ना चैव महादेव स्नपनं क्रियतेऽधुना। गृहाण श्रद्धया दत्तं तव प्रीत्यर्थमेव च ॥ घृतस्नान--सर्पिषा च मया देव स्नपनं क्रियतेऽधुना। गृहाण श्रद्धया दत्तं तव प्रीत्यर्थमेव च ॥ मधुस्नान--इदं मधु मया दत्तं तव प्रीत्यर्थमेव च। गृहाण त्वं हि देवेश मम शान्तिप्रदो भव ॥ शर्करास्नान--सितया देवदेवेश स्नपनं क्रियतेऽधुना। गृहाण श्रद्धया दत्तां सुप्रसन्नो भव प्रभो ॥ पंचामृत--दीने त्वया वा विहितानुकम्पा संख्यायतां क्रामति सा न संख्याम्। विभो ! मयाङ्गी कुरु भव्यरूप ! पञ्चामृतस्नानमिदं विशुद्धम् ॥ शुद्धोदकजल--आनन्दकन्दे सुरवृन्दवंद्ये पादारविन्दे किमुकल्पयामि। मन्दाकिनीभङ्गमरीचिमालं तोयं मुदा केवलमर्पयामि ॥ मधुपर्क--सर्वकालुष्यहीनाय परिपूर्णसुखात्मने। मधुपर्कं सुदेवेश कल्पयामि प्रसीद मे ॥ सुगन्धतेलादि--स्नेहं स्नेहेन मे गृह्ण लोकनाथ महायशः। सर्वलोकेश शुद्धात्मन् ददामि स्नेहमुत्तमम् ॥ ततः यवगोधूम-तिल-सर्षपबिल्वमज्जाचूर्णैः कृत्वा तप्तोदकेन देवं स्नापयेत्। साङ्गोपाङ्गस्नान--परमानन्दबोधाब्धिनिमग्ननिजमूर्तये। साङ्गोपाङ्गमिदं स्नानं कल्पयामि प्रसीद मे ॥ वस्त्र--ब्रह्माण्डमेतत् दययाप्यखण्डं सम्पन्नमेभिर्दसनैस्तनोषिः। तस्मै प्रदेयः किमु वस्त्रखण्डः तथापि भावोऽस्तु परीक्षणाय ॥ यज्ञोपवीत--आलिङ्ग्य ते यस्य शताग्रभागं पूता विमुक्ता वपुषोऽधमास्ते। यज्ञोपवीतं किमुतस्य पूत्यै दीयेत भक्तेस्तु समर्थनाय ॥ उपवस्त्र--श्रद्धातुरीयंत्र मनस्तु सूत्रं भक्तिश्च वेमाममतितानयुग्मम्। हृत्कौलिको मे विमलोत्तरीयं तनोमि तत्ते तनुकल्पवल्याम् ॥ आभूषण--स्वभावसुन्दराङ्गाय नानाशक्त्याश्रयाय ते। भूषणानि विचित्राणि कल्पयामि प्रसीद मे ॥ गन्ध--आनन्दगन्धं विकिरन्ति यत्र वृन्दारकाः पृच्छति तत्र को माम्। मयापि हे नाथ ! हृदोपनीतं द्रव्यं सुगन्धं विमलं गृहाण ॥ भस्म--यदङ्गसंसर्गकृतावरेण्यं मौलौ निजे सङ्गमयन्ति देवाः। देहे सदैवाहितविश्वभारे सारे जगत्या वितनोति भस्म ॥ अक्षत--पुष्पाक्षतानक्षतपुण्यराशिरादाय तुभ्यं समुपस्थितोऽस्मि। एतर्हि लज्जानतमस्तकोऽस्मि द्रुतं गृहीत्वा कुरु मां कृतार्थम् ॥ पुष्पादि--आसेचनं पेलवपादयुग्मं कृते कठोरः क्व सुमनोपहारः। धाष्ट्र्योद्भवं मे त्वपराधमेनं क्षमस्व दीनस्य नु दीनबन्धो ॥ ॐ सर्वगाय नमः-अर्कपुष्पं समर्पयामि १ ॐ सर्वदेवाय नमः-शतपत्रं स० २ ॐ भगवते नमः-करवीरपुष्पं

१--चैत्रमासमाहात्म्ये--जपाकुन्दशिरीषैश्च कथिकामालतीभवैः। केतकी भवपुष्पैश्च नैवार्च्यः शङ्करस्तथा ॥ गणेशं तुलसीपत्रैर्दुर्गां नैव च दूर्वया ॥ मुनिपुष्पैस्तथा सूर्यं लक्ष्मीकामो न चार्चयेत्। माहेश्वरखण्डे अ० १७--करवीरं चार्कपुष्पं च बृहतीपुष्पमेव च। धत्तूरकुसुमं चैव शतपत्रं तथैव च ॥ आरग्वधं च पुन्नागं बकुलं नागकेशरम्। ब्रध्नोत्पलं कदम्बं च मन्दारकुसुमं तथा ॥ बहूनि वरपुष्पाणि बहूनि कमलान्यपि। त्रिकाले च पवित्राणि ज्ञेयानि सततं बुधैः ॥ 'जातीपुष्पं मल्लिकायाश्च पुष्पं मोगरकं नीलपुष्पं तथैव। तथा पुष्पं कुटजं कर्णिकारं कौसुम्भाख्यं वारिजं रक्तवर्णम् ॥ एतान्येव च पुष्पाणि मध्याह्ने लिङ्गपूजने।' 'विशिष्टानि मयोक्तानि सायाह्ने कथयाम्यहम्। चम्पकानि त्रिकाले च पवित्राणि न संशयः ॥ रात्रौ मोगरकाण्येव पवित्राणि न संशयः।

समं० ३ ॐ गुह्यगुह्याय नमः–बिल्वपत्रं सं० ४ ॐ सोमाय नमः–द्रोणपुष्पं स० ५ ॐ भूतनाथाय नमः–अपामार्गं० ६ ॐ भावाय नमः कुशपुष्पं० ७ ॐ भवाय नमः शमीपत्रं स० ८ ॐ सर्वगुह्याय नमः नीलोत्पलं सं० ९ ॐ वेदगुह्याय नमः पद्मपुष्पं १० ॐ सर्वगुह्याय नमः धत्तूरं स० ११ ॐ सोमाय नमः शमीपुष्पं० १२ ॐ कटङ्काय नमः नीलमुत्पलं स० १३ ॐ महादेवाय नमः बकुपुष्पं० १४ ॐ सूद्मिरणे नमः कदम्बं स० १५। बिल्वपत्र–ॐ रुद्राय नमः १ ॐ हरये नमः २ ॐ भवाय नमः ३ श्रों शिवाय नमः ४ श्रों सर्वलोकेश्वराय नमः ५ श्रों महेश्वराय नमः ६ श्रों ईशानाय नमः ७ श्रों मखेशाय नमः ८ श्रों पशूनां पतये नमः ९। त्रिदलं त्रिगुणाकारं त्रिनेत्रं च त्रयायुधम्। त्रिजन्मपापसंहारमेकबिल्वं शिवार्पणम्॥ तुलसीबिल्वनिर्गुण्डीजंबीरामलकं तथा। पञ्चबिल्वमिति ख्यातमेकबिल्वं शिवार्पणम्॥ बिल्वपत्रं सुवर्णस्य त्रिशूलाकारमेव च। मयार्पितं तु तच्छंभो गृहाण परमेश्वर॥ परिमलद्रव्य—यत्तैः सुरम्यातिशयैर्विषयैरकारि चेतोहरं परिकरं निकरं च यस्य। श्रद्धानतेन शिरसारभसा विकीर्णं द्रव्यं मुदा परिमलं विमलं गृहाण॥ अङ्गपूजनम्—श्रों शिवाय नमः पादौ पूजयामि। शंभवे नमः जानुनी पूज०। शूलपाणये नमः गुल्फौ पू०। शशिशेखराय नमः कटी पूज०। स्वयंभुवे नमः गुह्यं पू०। उदकोपस्पर्शः। वामदेवाय नमः उदरं पू०। शूलपाणये नमः गुल्फौ पू०। सर्वतोमुखाय नमः पार्श्वौ पू०। स्थाणवे नमः स्तनौ पू०। नीललोहिताय नमः मुखं पू०। शशिभूषणाय नमः मुकुटं पू०। रुद्राय नमः कर्णौ पूज०। सदाशिवाय नमः शिरः पूज०। महादेवाय नमः जङ्घे पूज०। पिनाकिने नमः ऊरू पूज०। स्वयंभुवे नमः नाभिं पूज०। विरूपाक्षाय नमः कण्ठं पूज०। शङ्कराय नमः नेत्रे पूज०। शर्वाय नमः ललाटं पूज०। महेश्वराय नमः सर्वाङ्गं पूज०। धूप–कालागुरोश्च घृतमिश्रितगुग्गुलस्य धूपो मया विरचितो भवतः पुरस्तात्। आघ्राय तं शुचिमनोहरगन्धचूर्णं तूर्णं विनाशय महेश्वर मोहजालम्॥ दीपक—अज्ञानगाढाञ्जनसङ्कुलायां विद्याप्रदीपं तनुषे जगत्याम्। तस्मै प्रदेयः किमसौ तथापि भक्त्यार्पितं दीपमिमं गृहाण॥ नैवेद्य—आहृत्य चाहृत्य मनोभिरागैरितस्ततोऽशान्तमना सुरेश। नैवेद्यमेतद् भवते निवेद्य जातोऽस्मि सद्यो विशदान्तरात्मा॥ आचमनीयजल–एतावता नन्वनुमेय चेतः प्रेमातिगस्त्वं करुणोऽसि तस्मात्। प्रतिग्रहीतुं प्रणयि प्रियन्त्वामभ्यर्थये चाचमनीयवारि॥ तांबूल—एतावता कृतकरुणाप्रसारे तस्यैव तावत्क्रमशोऽवतारे। ताम्बूलवल्ली-फलितं तदेतत्ताम्बूलपत्रं दयया गृहाण॥ दक्षिणा—आतन्वसे त्वं करुणां जगत्यामिमां ददत्ते वत! लज्जितोऽस्मि। मय्येव तावत्करुणां वितन्यतां दक्षिणामेकलयाशु नाथ॥ प्रदक्षिणा—प्रवर्तिता दक्षिणतोथ वामतो या दक्षिणैवास्ति सदा शिवस्य। पदे पदे तीर्थफलप्रदाता प्रदक्षिणां ते परितः करोमि॥ पुष्पाञ्जलि—आनन्दसौन्दर्यमयेत्वयेऽस्मिन् अमन्दगन्धे सुरवृन्दवंद्ये। दीनाश्रये श्रीचरणारविन्दे पुष्पाञ्जलिं ते परितः क्षिपामि॥ आरती—दीपं हि परमं शंभो घृतप्रज्वलितं मया। दत्तं गृहाण देवेश मम ज्ञानप्रदो भव॥ पञ्चदीपादि की आरती—दीपावलिं मया दत्तां गृहाण परमेश्वर। आरार्तिकप्रदानेन मम तेजः प्रदो भव॥ स्तुति–नमामि शम्भुं पुरुषं पुराणं नमामि सर्वज्ञमपारभावम्। नमामि रुद्रं प्रभुमक्षयं तं नमामि शर्वं शिरसा नमामि॥ नमामि देवं परमव्ययं तमुमापतिं लोकगुरुं नमामि। नमामि दारिद्र्यविदारणं तं नमामि रोगापहरं नमामि॥ नमामि कल्याणमचिन्त्यरूपं नमामि विश्वोद्भवबीजरूपम्। नमामि विश्वस्थितिकारणं तं नमामि संहारकरं नमामि॥ नमामि गौरीप्रियमव्ययं तं नमामि नित्यं क्षरमक्षरं तम्। नमामि चिद्रूपममेयभावं त्रिलोचनं तं शिरसा नमामि॥ नमामि कारुण्यकरं भवस्य भयङ्करं वाऽपि सदा नमामि॥ नमामि दातारमभीप्सितानां नमामि सोमेश-मुमेशमादौ। नमामि वेदत्रयलोचनं तं नमामि मूर्तित्रयवर्जितम्। नमामि पुण्यं सदसद् व्यतीतं नमामि तं पापहरं नमामि। नमामि विश्वस्य हिते रतं तं नमामि रूपाणि बहूनि धत्ते। यो विश्वगोप्ता सदसत्प्रणेता नमामि तं विश्वपतिं नमामि॥ यज्ञेश्वरं संप्रति हव्यकव्यं तथा गतिं लोकसदा शिवो यः। आराधितो यश्च ददाति सर्वं नमामि दानप्रियमिष्टदेवम्॥ नमामि सोमेश्वरम-स्वतन्त्रमुमापतिं तं विजयं नमामि। नमामि विघ्नेश्वर नन्दिनाथं पुत्रप्रियं तं शिरसा नमामि॥ नमामि देवं भवदुःखशोक विनाशनं चन्द्रधरं नमामि। नमामि गङ्गाधरमीशमीड्यमुमाधवं देववरं नमामि॥ नमाम्यजादीशपुरन्दरादिसुरासुरैरर्चित-पादपद्मम्। नमामि देवीमुखवादनानामीक्षार्थमक्षित्रितयं य ऐच्छत्॥ पञ्चामृतैर्गन्धसुधूपदीपैर्विचित्रपुष्पैर्विविधैश्च मन्त्रैः। अन्नप्रकारैः सकलोपचारैः संपूजितं सोममहं नमामि॥ 'सत्यं ब्रवीमि परलोकहितं ब्रवीमि सारं ब्रवीम्युपनिषद् हृदयं ब्रवीमि। संसारमुल्बणमसारमवाप्य जन्तोः सारोऽयमीश्वरपदाम्बुरुहस्य सेवा॥ ये नार्चयन्ति गिरिशं समये प्रदोषे ये नार्चितं शिवमपि प्रणमन्ति चान्ये। एतत्कथां श्रुतिपटैर्न पिबन्ति मूढास्ते जन्मजन्मसु भवन्ति नरा दरिद्राः॥ ये वै प्रदोष-समये परमेश्वरस्य कुर्वन्त्यनन्यमनसोऽङ्घ्रिसरोजपूजाम्। नित्यं प्रवृद्धधनधान्यकलत्रपुत्रसौभाग्यसम्पदधिकास्त इहैव लोके॥'

(संक्षिप्त शास्त्रीयविचार)

(१) धर्मसिन्धु मत से—सिंह के सूर्य में गौ को प्रसूति हो तो व्याहृति से अयुतसंख्याक सरसों (पीलीसरसों) से हवन कर उस गौ को ब्राह्मणको दे दे । निर्णयसिन्धुमत से—प्रथम गौ को उसी क्षण ब्राह्मणको देकर हवनादि करें। हवनमें व्याहृति के मन्त्रों से हवन करे। (२) निशीथ में गौ क्रन्दन करे तो मृत्युञ्जयमन्त्र से होमादि करे। (३) श्रावणमास के सोमवारों में उपवास करे या रात में भोजन करे। (४) श्रावण के मंगलवारों में गौरी (पार्वती) की पूजा करे। (५) श्रावण मास में साग का भक्षण न करे। ब्राह्मण को बना 'साग अपक्व साग कृतस्य साकवर्जनव्रतस्य साङ्गतार्थं ब्राह्मणाय शाक-दानं-करिष्ये—से संकल्प दे। (६) बह्वृचों को—श्रावणीकर्म में श्रवणनक्षत्र, पञ्चमी तथा हस्त ये तीन काल कहे हैं। (७) यजुर्वेदियों को—श्रावणपूर्णिमा मुख्यकाल है। अभाव में श्रावणशुक्लपञ्चमी हैं (८) हिरण्यकेशीय तैत्तरीयों को—पूर्णिमा मुख्यकाल हैं। अभावमें हस्त नक्षत्र हैं उसमें मत भेद हैं। श्रावणशुक्ल पञ्चमी का विधान इनके सूत्रमें नहीं हैं। (९) आपस्तंब में—पूर्णिमा मुख्य हैं। उसके अभाव में भाद्रपदमास की पूर्णिमा ग्राह्य है। (१०) बौधायन में—पूर्णिमा मुख्य है या आषाढीपूर्णिमा ग्रहण करे। काण्वमाध्यन्दिनवाले विघ्नाधिक्य होने पर भाद्रपद की पूर्णिमा या पञ्चमी में करें। सामवेदियों को तो भाद्रपदशुक्लपक्ष में हस्तनक्षत्र ही मुख्यकाल है। यदि दोषाधिक्य होतो श्रावणमास के हस्त नक्षत्र में करे। अन्य तो हस्तमें दोष की सम्भावना पर श्रावण पूर्णिमामें करे। अथर्ववेदियों का उपाकर्म श्रावण या भाद्रमास पूर्णिमा में होता है। प्रथम यज्ञोपवीतधारी को प्रथम उपाकर्म गुरु, शुक्रास्त मलमास, सिंहस्थ गुरु आदि में नहीं करना चाहिये। द्वितीयवार उपाकर्म को अस्तादिमें कर सकते हैं। मलमास हो तो दूसरीवार भी न करे। प्रथम वार उपाकर्म में स्वस्तिवाचन, नान्दीश्राद्ध आदि करना चाहिये। (११) सब शाखावालों को श्रावणमासों में ग्रहण संक्रान्ति आदि के दोष की संभावना में शाखारोक्तकाल का ग्रहण करना चाहिए। क्योंकि—इस से सर्वथा कर्मलोप नहीं होगा। (१२) विवाहोत्तर श्रावणी कर्म में प्रवृत्त होने पर तर्पणादि करने का निषेध नहीं मिलता। (१३) भद्रा से रहित श्रावणपूर्णिमा में रक्षाबन्धन में ग्रहण और संक्रान्ति का निषेध नहीं है। (१४) भाद्रपदपूर्णिमा में प्रपितामह और सपत्नीक पीढियों का कोई नान्दीश्राद्धधर्मसे करते हैं। (१५) दुग्धके निषेध में-पायस आदि और दूधसे बनी वस्तुओं का निषेध है। पयोविकार दध्यादि का निषेध नहीं है। दध्यादि व्रत में तक्रादिका निषेध नहीं है वस्तुतः सर्वविकार निषेध है—यह निर्णयसिन्धुकार का मत है। (१६) सिंह और कर्कट के मध्यमे सब नदी रजस्वला होती है। उनमें स्नानादि निषिद्ध है। यह क्षुद्र नदी विषयक है (१७) गंगा में रजोदोष नहीं होता है। (१८) किनारे पर रहने वाले को रजोधर्मजन्यदोष नहीं होता है। (१९) रज आदि से दुष्टजल भी गङ्गाजल के योग से पवित्र होता है। (२०) उपाकर्म, उत्सर्ग, प्रेतस्नान, चन्द्र और सूर्य ग्रहण में रजोदोष नहीं होता है। (२१) बकरी, गौ, भैंस, भूमि में नूतनजल आनेपर, पुत्रादि होने पर दश दिन बाद शुद्धि होती है।

(अथ श्रावणमासः)

(कर्कसंक्रान्तौ पुण्यकालविचारः)

कर्कसंक्रान्तौ पूर्वं त्रिंशद्दण्डाः पुण्यकालः। सूर्योदयोत्तरं संक्रमे तु परत एव पुण्यम्। रात्रौ तु निशीथात्प्राक् परतश्च संक्रमेऽपरार्कहेमाद्र्यनन्तभट्टादिमते पूर्वोत्तरदिनयोः पञ्च नाड्यः पुण्यकालः।

धनुर्मीनावतिक्रम्य कन्यां च मिथुनं तथा। पूर्वापरविभागेन रात्रौ संक्रमते रविः॥
दिनान्ते पञ्च नाड्यस्तु तदा पुण्यतमाः स्मृताः। उदयेऽपि तथा पञ्च दैवे पित्र्ये च कर्मणि॥ इति स्कान्दोक्तेश्च। 'पूर्वापरविभागेनेति मकरकर्कभिन्नसंक्रान्तिपरम्। वक्ष्यमाणवचोविरोधात्' इत्युक्तं मदनरत्ने।

कर्क की संक्रान्ति में पहले तीस दण्ड (घड़ी) पुण्यकाल होता है। सूर्य उदय के बाद संक्रम (संक्रान्ति) में तो पर में ही पुण्य होता है। रात्रि में तो निशीथ (आधीरात) के पूर्व और पर संक्रान्ति

में अपरार्क, हेमाद्रि, अनन्तभट्ट आदि मत से पूर्वोत्तर दिनों में (अर्थात्—पहले तथा बाद में) पांच घड़ी पुण्यकाल होता है।

स्कन्दपुराण का वचन है कि—धनु, मीन, कन्या तथा मिथुन को त्याग कर रात्रि के पूर्वापर भाग (पहले और पीछे के भाग) में सूर्य की संक्रान्ति हो तो पांच घड़ी दिनान्त में और पांच घड़ी सूर्योदय में भी देवकर्म में तथा पितृकर्म में पुण्य को देनेवाली है।

(पूर्वापरविभागेन) यह वचन मकर और कर्कसंक्रान्ति से भिन्न संक्रान्तिपरक है। क्योंकि मदनरत्न में कहा है कि—कहे हुए वचन के अविरोध से।

तेनायमर्थः—रात्रौ पूर्वभागे मकरे उदये पञ्च नाड्यः पुण्यकालः। रात्रावपरभागे कर्कटे दिनान्ते पञ्च नाड्यः पुण्यकालः। विषुवतोस्तु पूर्वदिने पञ्चापरदिने च पञ्चेति वाक्यान्तरानुरोधात्। तेन हेमाद्रिमाधवयोः सर्ववचनानां चाविरोधः।

उसका यह अर्थ है कि—रात्रि के पूर्व (पहले) भाग में मकर की संक्रान्ति हो तो उदयकाल में पांच घड़ी पुण्यकाल होता है।

रात्रि के ऊपर (दूसरे) भाग में कर्क की संक्रान्ति हो तो दिनान्त (अर्थात्—दिन के अन्त) में पांच घड़ी पुण्य काल होता है। विषुव (तुला तथा मेष) की संक्रान्ति में पूर्वदिन पांच तथा अपर (पीछले) दिन में पांच घड़ी पुण्यकाल होता है-वाक्यान्तर के अनुरोध से। क्योंकि उससे हेमाद्रि माधव और सब वचनों के विरोध का अभाव है।

माधवमते तु—अर्धरात्रे तदूर्ध्वं वा संक्रान्तौ दक्षिणायने।
पूर्वमेव दिनं ग्राह्यं यावन्नोदयते रविः॥ इति वृद्धगार्ग्योक्तेः।

माधवमत में तो आधीरात में या उसके ऊपर की रात में दक्षिणायन संक्रान्ति में जब तक सूर्य उदय नहीं होता है उसके पूर्व ही दिन ग्रहण करना चाहिये। यह वृद्ध गार्ग्य ने कहा है।

'मिथुनात्कर्कसंक्रान्तिर्यदि स्यादंशुमालिनः। प्रभाते वा निशोथे वा तदा पुण्यं तु पूर्वतः॥ इति भविष्योक्तेश्च पूर्वदिन एव पुण्यम्। दाक्षिणात्यास्त्वेतदेवाद्रियन्ते। अत्र रात्रावपि स्नानादि भवतीत्युक्तं प्राक्।

भविष्यपुराण में भी कहा है कि-मिथुनोत्तर कर्कसंक्रान्ति यदि प्रातःकाल या निशीथ (आधीरात) में हो तो पूर्वदिन ही पुण्य होता है। दाक्षिणात्य तो इसीका आदर करते हैं। यहाँ पर रात्रि में भी स्नान आदि होता है—यह बात पहले कह चुके हैं।

(कर्कसंक्रान्तौ केशादिकर्तनविचारः)

अत्र दानोपवासादि पूर्वमुक्तम्। तथा कर्के केशादिकर्तनं निषिद्धम्। 'कुम्भे कर्कटके वापि कन्यायां कार्मुके रवौ। रोमखण्डं गृहस्थस्य पितॄन् प्राशयते यमः॥ इति सुमन्तुवचनादित्युक्तम् जीवत्पितृकनिर्णये गुरुभिः।

यहाँ पर दान तथा उपवासादि भी पहले कह चुके हैं और कर्क में [1]केशादिकर्तन निषिद्ध है। कुम्भ, कर्कट (कर्क), कन्या और धन की संक्रान्ति में कटे हुए रोमखण्डों को [2]गृहस्थ के पितरों को यम प्राशन (खिलाता) कराता है। इस सुमन्तु वचन से यह जीवत्पितृकनिर्णय में गुरुओं ने कहा है।

(नदीनां रजोदोषकथनम्)

अथ नदीनां रजोदोषः। हेमाद्रावत्रिः—'सिंहकर्कटयोर्मध्ये सर्वा नद्यो रजस्वलाः। न स्नाना-

---

१—नखानामनुक्तत्वात् तत् खण्डने न दोषः' इत्याहुः। २—वर्ण्यादिव्युदासः। जीवत्पितृकस्यापि व्युदास इति केचित्। उपरते लक्षणापत्त्या तस्य न व्युदास इत्यन्ये। 'धनुःकुम्भौ द्विधा कृत्वा पूर्वभागं परित्यजेत्। कर्कटद्दस्यान्तिमं भागं कन्यां तु सकलां त्यजेत्॥ इत्यपि केचित्।

दीनि कर्माणि तासु कुर्वीत मानवः ॥ इदं च क्षुद्रनदीषु । सिंहकर्कटयोर्मध्ये सर्वा नद्यो रजस्वलाः । तासु स्नानं न कुर्वीत वर्जयित्वा समुद्रगाः ॥ इति व्याघ्रोक्तेः ।

अब [1]नदियों का रजोदोष कहते हैं। हेमाद्रि में अत्रि का वचन है कि-सिंह तथा कर्कट के मध्य में सब नदी रजस्वला होती हैं। उन नदियों में मनुष्यको स्नान [2]आदि कार्य नहीं करना चाहिये। यह निषेध क्षुद्र (छोटी) नदियों के लिये है। व्याघ्र का कथन है कि—सिंह तथा कर्क के मध्य में सब नदी रजस्वला होती है। उनमें जो नदी समुद्र में जानेवाली हैं उनको छोड़कर और नदियों में स्नान नहीं करना चाहिये।

मात्स्ये त्वगस्त्योदयावधित्वमुक्तम्—यावन्नोदेति भगवान् दक्षिणाशाविभूषणः । तावद्रजो महानद्यः करतोयाः प्रकीर्तिताः ॥ करतोयाः=अल्पतोयाः ।

मत्स्यपुराण में तो अगस्त्य के उदय की अवधि कही है—जबतक दक्षिणदिशा के भूषण भगवान् अगस्त्य का उदय नहीं होता है तब तक महानदियों रजस्वला होती हैं तथा अल्प=जल वाली कही जाती हैं। कर=तोया माने=अल्पतोया।

तथा कात्यायनः—याः शोषमुपगच्छन्ति ग्रीष्मे कुसरितो भुवि ।
तासु प्रावृषि न स्नायादपूर्णे दशवासरे ॥ इदं चापदि ।

और कात्यायन ने कहा है कि—जो निन्दित नदियाँ ग्रीष्मऋतु में पृथ्वी पर सूख जाती है। उनमें वर्षाकाल में जब तक दश दिन नहीं होता है तब तक स्नान न करे। यह आपत्काल विषयक है।

स्मृतिसङ्ग्रहे—धनुःसहस्राण्यष्टौ तु गतिर्यासां न विद्यते ।
न ता नदीशब्दवहा गर्तास्ताः परिकीर्तिताः ॥

स्मृतिसंग्रह में कहा है कि—जिनकी गति (प्रवाह) आठहजार धनुष तक नहीं होती है वे नदियाँ नदी शब्द से नहीं कही जाती हैं। किन्तु उनका 'गर्त' शब्द से व्यवहार किया जाता है।

(महानदीकथनम्)

महानदीषु तु भविष्ये उक्तम्—आदौ तु कर्कटे देवि महानद्यो रजस्वलाः ।
त्रिदिनं तु चतुर्थेऽह्नि शुद्धाः स्युर्जाह्नवी यथा ॥

महानदी तो भविष्यपुराण में कही है—हे देवि! कर्क के आदि में तीनदिन तक महानदी रजस्वला होती है। चतुर्थदिन में जाह्नवी जैसे—जाह्नवी सब काल में शुद्ध है। वैसे ही अन्य भी शुद्ध है। अर्थात्—तीनदिन बाद शुद्ध होती हैं।

महानद्यश्च ब्राह्मे—गोदावरी भीमरथी तुङ्गभद्रा च वेणिका ।
तापी पयोष्णी विन्ध्यस्य दक्षिणे तु प्रकीर्तिताः ॥
भागीरथी नर्मदा च यमुना च सरस्वती । विशोका च विहस्ता च विन्ध्यस्योत्तरसंस्थिताः ॥
द्वादशैता महानद्यो देवर्षि क्षेत्रसम्भवाः ॥

महानदियों का वर्णन ब्रह्मपुराण में है—गोदावरी, भीमरथी, तुंगभद्रा, वेणिका, तापी, पयोष्णी विन्ध्य (पर्वत) के दक्षिण भाग में स्थित, भागीरथी, नर्मदा, यमुना, सरस्वती, विशोका तथा विहस्ता विन्ध्य के ऊपर भाग में स्थित ही ये बारह महा नदी देव ऋषियों के क्षेत्र से उत्पन्न हैं।

मदनरत्ने पुराणान्तरे—महानद्यो देविका च कावेरी वञ्जरा तथा ।
रजसा तु प्रदुष्टाः स्युः कर्कटादौ त्र्यहं नृप ॥

मदनरत्न में पुराणान्तर का कथन है कि—देविका, कावेरी और वञ्जरा महानदी कर्कट के आदि में हे नृप, तीन दिन तक रज से दूषित होता हैं।

---

[1]—नद्यो द्विविधाः—अल्पाः, महत्वं च। [2]—आदिना तर्पणादिग्रहः। तदुक्तम्—रजोदुष्टेऽम्भसि स्नानं वर्ज्यं नद्यादिषु द्विजैः। कदर्थितं रजस्तेषां सन्ध्योपास्तिश्च तर्पणम्। कदर्थितम्–निन्दितम्। प्रायश्चित्तमुक्तम्–काले नभस्यशुद्धं स्यात् त्रिरात्रं तु नवोदकम्। अकाले तु दशाहं स्यात्पीत्वा नाद्यादहर्निशम्॥ स्नानपानोभयकरणे तु त्रिरात्रं कृच्छ्रो वा बोध्यः।

कात्यायनः—कर्कटादौ रजोदुष्टा गोमती वासरत्रयम् ।
चन्द्रभागा सती सिन्धुः सरयूर्नर्मदा तथा ॥ इदं गङ्गाद्यतिरिक्तविषयम् ।

कात्यायन ने भी कहा है कि—कर्क के आदि में गोमती, चन्द्रभागा, सती, सिन्धु, सरयू तथा नर्मदा ये तीन दिन रजस्वला होती हैं । यह 'गङ्गा' से अतिरिक्त नदियों के विषय में है ।

गङ्गा च यमुना चैव प्लक्षजाता सरस्वती । रजसा नाभिभूयन्ते ये चान्ये नदसंज्ञिताः ॥ शोण-सिन्धुहिरण्याख्याः कोकलोहितघर्घराः । शतद्रुश्च नदाः सप्त पावनाः परिकीर्तिताः ॥ इति देवलोक्तेः ।

देवल ने कहा है कि—गङ्गा, यमुना, खराब देश में होनेवाली (कुक्षेत्रस्था), सरस्वती और अन्य नद संज्ञावाले रजोधर्म से दूषित नहीं होते हैं । शोण, सिन्धु, हिरण्य, कोक, लोहित, घर्घरा तथा शतद्रु ये सात पवित्र नद कही जाती हैं । अर्थात्—रजोदोष से हीन रहती हैं ।

यत्तु—प्रथमं कर्कटे देवि त्र्यहं गङ्गा रजस्वला । इत्यादिवचनं तज्जाह्नवीभिन्नगोदावर्यादि-गङ्गान्तरपरमिति मदनरत्ने । अन्ये त्वन्तर्गतरजोविषयम् ।

जो कि—हे देवि, प्रथम कर्कसंक्रान्ति में तीनदिन गंगा रजस्वला होती है । इत्यादि वचन जाह्नवी से भिन्न गोदावरी आदि गङ्गान्तरपरक है—यह मदनरत्न में लिखा है । अन्य कोई तो अन्तर्गतरज का विषय कहते हैं ।

गङ्गा धर्मद्रवः पुण्या यमुना च सरस्वती ।
अन्तर्गतरजोदोषाः सर्वावस्थासु चामलाः ॥ इति निगमोक्तेः ।

क्योंकि निगम का कथन है कि—गंगा धर्मद्रवा (अर्थात्—धर्मका रस) है । पुण्यदायक यमुना और सरस्वती में अन्तर्गत रजोदोष है । वह सब अवस्था में निर्मल है ।

(नद्यादौ तीरवासिनां रजोदोषविचारः)

तीरवासिनां तु रजोदोषो नास्ति । 'न तु तत्तीरवासिनाम्' इति निगमोक्तेः ।' रजोदुष्टमपि जलं गाङ्गजलयोगे पावनम् । 'गङ्गाम्भसा समायोगाद् दुष्टमप्यम्बुपावनम् । इति मात्स्योक्तेः ।

तीरवासियों को रजोदोष नहीं है । निगम ने कहा है कि—'न तु तत्तीरवासिनाम्' रजोदोष से दुष्ट भी जल गङ्गाजल योग से पवित्र हो जाता है । मत्स्यपुराण में कहा है कि—खराब जल भी शुद्ध गङ्गा जल के योग से पवित्र होता है ।

(नूतनकूपादौ विचारः)

नूतनकूपादौ तु योगियाज्ञवल्क्यः—अजा गावो महिष्यश्च ब्राह्मणी च प्रसूतिका ।
भूमेर्नवोदकं चैव दशरात्रेण शुद्ध्यति ॥ इति ।

नूतन कूप आदि में तो योगियाज्ञवल्क्य ने कहा है कि—अजा (बकरी), गौ, भैंस, प्रसूता ब्राह्मणी और भूमि का नवोदक (नवखानितकूपाद्युदकम्) ये दश रात्रि के बाद शुद्ध हो जाते हैं ।

(क्वचित्त्वदोषकथनम्)

क्वचित्त्वदोषमाह व्याघ्रपादः—अभावे कूपवापीनामनपायिपयोभृताम् ।
रजोदुष्टेऽपि पयसि ग्रामभोगो न दुष्यति ॥

व्याघ्रपाद ने कहा है कि—नहीं सूखने वाले तडागादि रजोदुष्ट जल में गांव के लोग उपभोग करें तो दोष नहीं है ।

गौड भी कहते हैं कि—अभावे कूपवापीनामन्येनापि समुद्धृते ।
रजोदोषेऽपि पयसि ग्रामभोगो न दुष्यति ॥

गौडास्तु—'अन्येनापि समुद्धृते' इति द्वितीयपादे पाठः । तेनोद्धृते न दोषः । तथा च 'तासु स्नानं नेति प्रागुक्तम्' इत्याहुः ।

गौडों का कहना है कि—अन्य द्वारा लाये हुए जल में दोष नहीं है और समुद्र में जानेवाली नदियों में स्नान करे। अन्य नदियों में न करे यह पूर्व में कह चुके हैं।

(उपाकर्मणि प्रेतस्नानादौ च रजोदोषविचारः)

वसिष्ठोऽपि—उपाकर्मणि चोत्सर्गे प्रेतस्नाने तथैव च।
चन्द्रसूर्यग्रहे चैव रजोदोषो न विद्यते॥ इत्यलं विस्तरेण।

वसिष्ठ ने भी कहा है कि—उपाकर्म में, उत्सर्ग में, प्रेतस्नान में तथा चन्द्र-सूर्यग्रहण में रजोदोष नहीं होता है। अधिक विस्तार की आवश्यकता नहीं है।

(श्रावणशुक्लतृतीयाविचारः)

श्रावणशुक्लतृतीया मधुस्रवाख्या गुर्जरेषु प्रसिद्धा। सा परयुता ग्राह्येति दिवोदासः।

श्रावणशुक्ल तृतीयाको मधुश्रवा नाम की तृतोया होती है वह गुर्जरदेशों में प्रसिद्ध है। वह पर युता ग्रहण करे—यह दिवोदासका मत है।

(श्रावणशुक्लचतुर्थीविचारः)

श्रावणशुक्लचतुर्थी पूर्वयुता। 'मातृविद्धो गणेश्वरः' इति वचनात्।

श्रावणशुक्ल चतुर्थी पूर्वयुता (मध्याह्नव्यापिनीति नव्याः) ले। 'मातृविद्धो गणेश्वरः' इत्यादि वचन से।

(श्रावणशुक्लपञ्चमीविचारः)

श्रावणशुक्लपञ्चमी नागपूजादौ परैवेति सामान्यनिर्णये उक्तम्। चमत्कारचिन्तामणौ—पञ्चमी नागपूजायां कार्या षष्ठीसमन्विता। तस्यां तु तुषिता नागा इतरा सचतुर्थिका॥ इति।
श्रावणे पञ्चमी शुक्ला सम्प्रोक्ता नागपञ्चमी। तां परित्यज्य पञ्चम्यश्चतुर्थीसहिता हिताः॥ इति मदनरत्नेऽभिधानाच्च। तेन परैवेति।

श्रावणशुक्ल पञ्चमी नागपूजादि में परा ही ले यह सामान्यनिर्णय में कहा है। चमत्कारचिन्तामणि में कहा है कि—नागपूजा में षष्ठी से युक्त पञ्चमी ले। उसमें नाग प्रसन्न होते हैं और इसको छोड़ कर इतर कार्यों में पञ्चमीतिथि को चतुर्थीतिथि से युक्त ले। श्रावणमास की शुक्ल पञ्चमी को 'नागपञ्चमी' कहा जाता है। उस नाग पञ्चमी को छोड़कर पञ्चमीतिथि चतुर्थीतिथि के सहित हितवाली होती है। मदनरत्न में भी यही कहा है। इससे परा ही ले।

(अत्र विशेषनागपूजने विचारः)

अत्र विशेषो हेमाद्रौ भविष्ये—श्रावणे मासि पञ्चम्यां शुक्लपक्षे नराधिप।
द्वारस्योभयतो लेख्या गोमयेन विषोल्बणाः॥
पूजयेद्विधिवद्वीर दधिदूर्वाङ्कुरैः कुशैः। गन्धपुष्पोपहारैश्च ब्राह्मणानां च तर्पणैः॥
ये यस्यां पूजयन्तीह नागान् भक्तिपुरःसराः। न तेषां सपतो वीर भयं भवति कुत्रचित्॥ इति।

यहाँ पर विशेष हेमाद्रि में भविष्यपुराण का मत है कि—हेनराधिप, श्रावणमास के शुक्लपक्ष में पञ्चमीतिथि को दरवाजे के दोनों तरफ गोबर से विषधारी (विषको उगलने वाले) सर्पों को लिखे। हेवीर, दधि, दूर्वा के अंकुरों, कुशाओं तथा पुष्पोंपहारों से पूजन करे और ब्राह्मणों को तृप्त करे जो भक्तिपुरःसर नागों का इस तिथि में पूजन करते हैं। उनको हे वीर, कहीं भी भय नहीं होता है।

(श्रावणशुक्लद्वादशीविचारः)

श्रावणशुक्लद्वादश्यां दधिव्रतं प्रागुक्तम्। तक्रादीनां त्वनिषेधः। तत्र दधिव्यवहाराभावादिति वक्ष्यते।

श्रावणशुक्ल द्वादशीतिथि में 'दधिव्रत' पूर्व में कह चुके हैं। तक्र (मट्ठा) आदिका निषेध नहीं है। क्योंकि वहाँ पर 'दधि' यह व्यवहार का अभाव है। यह कहेगें।

(विष्णोः पवित्रारोपणकथनम्)

अत्रैव विष्णोः पवित्रारोपणमुक्तं हेमाद्रौ विष्णुरहस्ये—श्रावणस्य सिते पक्षे कर्कटस्थे दिवाकरे। द्वादश्यां वासुदेवाय पवित्रारोपणं स्मृतम् ॥ द्वादश्यां श्रावणे मापि पञ्चम्यामथ वा द्विज। आनुकूल्येषु कर्तव्यं पञ्चदश्यामथापि वा ॥ इति।

यहाँ पर ही विष्णुका पवित्रारोपण हेमाद्रि में विष्णुरहस्य का कथन है कि—श्रावणशुक्लपक्ष की द्वादशीतिथि में और कर्क के सूर्य में वासुदेव का पवित्रारोपण करे। हेद्विज, श्रावणमास की द्वादशीतिथि में, पञ्चमीतिथि में या पूर्णिमातिथि की अनुकूलताओं में करना चाहिये।

(शिवस्य पवित्रारोपणकथनम्)

शिवे तु तत्रैव कालोत्तरे—आषाढान्ते चतुर्दश्यां नभस्यनभसोस्तथा।
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोः समम् ॥ इति। अन्यदेवतानां तु वक्ष्यते।

शिव में तो कालोत्तर में वहीं पर कहा है कि—आषाढमास की अन्तवाली चतुर्दशीतिथि में, श्रावणमासकी और भाद्रपदमास के दोनों पक्ष की अष्टमी तथा चतुर्दशीतिथि में पवित्रारोपण समान है। अन्य देवताओं का तो आगे कहेंगे।

(अधिवासनविचारः)

अधिवासनं तु दीपिकायाम्—गोदोहान्तरिते काले पूर्वेद्युर्वाऽधिवासनम्। इति।

दीपिका में अधिवासन को कहा है कि—गौ के दोहन के समय में पहले दिन अधिवासन करे।

(गौणकाले मतमतान्तरकथनम्)

गौणकालो रामार्चनचन्द्रिकायाम्—पवित्रारोपणं विघ्नाच्छ्रावणे न भवेद्यदि।
कार्तिक्यवधि शुक्रास्ते कर्तव्यमिति नारदः ॥

रामार्चनचन्द्रिका में गौणकाल कहा है कि—यदि विघ्न से श्रावणमास में पवित्रारोपण न हुआ हो तो कार्तिकमास की अवधितक शुक्रास्त (शुक्लार्के-इति पाठे शुक्लद्वादश्याम्) हो जाने पर भी करे—यह नारद ने कहा है।

हैमरौप्यताम्रक्षौमैः सूत्रैः कौशेयपद्मजैः। कुशैः काशैश्च कार्पासैर्ब्राह्मण्या कर्तितैः शुभैः ॥
कृत्वा त्रिगुणितं सूत्रं त्रिगुणीकृत्य शोधयेत्। तत्रोत्तमं पवित्रं तु षष्ट्या सह शतैस्त्रिभिः ॥
सप्तत्या सहितं द्वाभ्यां शताभ्यां मध्यमं स्मृतम्। साशीतिना शतेनैव कनिष्ठं तत्समाचरेत् ॥
साधारणपवित्राणि त्रिभिः सूत्रैः समाचरेत्। उत्तमं तु शतग्रन्थि पञ्चाशद्ग्रन्थि मध्यमम् ॥
कनिष्ठं तु पवित्रं स्यात् षट्त्रिंशद्ग्रन्थिशोभनम्। षट्त्रिंशच्च चतुर्विंशद् द्वादशेति च केचन ॥
चतुर्विंशद् द्वादशाष्टवित्येके मुनयो विदुः ॥

सुवर्ण, चान्दी, तांबा, क्षौम (रेशम) कौशेय, पद्म से उत्पन्न, कुश, काश, कपास (रूई) तथा ब्राह्मणी[1] द्वारा कतासूत्र शुभ होता है। सूत्रको त्रिगुणित कर फिर त्रिगुणित कर [2]शोधन करे। उसमें उत्तम पवित्र तीन सौ साठ, दो सौ सत्तर मध्यम और कनिष्ठ एक सौ अस्सी वाला होता है। साधारण पवित्र तीन सूत का होता है। उसमें सौ [3]ग्रन्थि वाला उत्तम होता है। पचास ग्रन्थि वाला मध्यम होता है तथा छत्तीस ग्रन्थिवाला कनिष्ठ होता है। किसी के मत से—छत्तीस का उत्तम मानते हैं। चौबीस का मध्यम मानते हैं तथा बारह को कनिष्ठ न मानते हैं। कोई मुनि क्रम से चौबीस को उत्तम, वीस को मध्यम तथा आठ को कनिष्ठ मानते हैं।

१—कन्यया वा पवित्रं स्यान्न पुंश्चल्यादिभिः कृतम्। २—पृथक् पृथक् पञ्चगव्यैरद्भिः प्रक्षालयेत्ततः। मूलेनाष्टोत्तरशतं गायत्र्या रामसंज्ञया ॥ शंखोदकेनाभिमन्त्र्य पवित्राणि विनिर्ममेत् ३—अङ्गुष्ठपर्वमात्रं तु कुर्याद् ग्रन्थिमथोत्तमे। तदर्धेन तदर्धेन मध्यमे च कनिष्ठिके ॥

हेमाद्रौ विष्णुरहस्ये त्वन्यथोक्तम्—अष्टोत्तरशतं कुर्याच्चतुःपञ्चाशदेव वा ।
सप्तविंशतिरेवाथ ज्येष्ठमध्यकनीयसम् ॥
अधमं नाभिमात्रं स्यादूरुमात्रं द्वितीयकम् । प्रलम्बतो जानुमात्रं प्रतिमायां निगद्यते ॥

हेमाद्रि में विष्णुरहस्य के मतसे अन्यथा कहा है कि—एक सौ आठका उत्तम, चौवन का मध्यम और सताइस का कनीय माना है। अधम तो नाभिमात्र होता है। ऊरू (जंघा) मात्र दूसरा होता है। जानुमात्र तो निकृष्ट होता है। जो प्रतिमा में कहा है।

शिवपवित्रं तु तत्रैव शैवागमे—एकाशीत्यथवा सूत्रैस्त्रिंशता वाष्टयुक्तया ।
पञ्चाशता वा कर्तव्यं तुल्यग्रन्थ्यन्तरालकम् ॥

वही पर शिवपवित्र तो शैवागम में कहा है कि—इक्यासी, अड़तीस या पचास सूत्रों वाले ऐसे पवित्र का निर्माण करे जिसकी ग्रन्थि तथा मध्यभाग बराबर हो।

द्वादशाङ्गुलमानानि व्यासादष्टाङ्गुलानि वा । लिङ्गविस्तारमानानि चतुरङ्गुलकानि च ॥ इति ।

व्यास जिसका बारह अंगुल या आठ और चार अङ्गुल लिङ्ग के समान लम्बाई हो।

हेमाद्रौ कालोत्तरे युगधर्मे—कृते मणिमयं कार्यं त्रेतायां हेमसम्भवम् ।
पट्टजं द्वापरे प्रोक्तं कार्पासं तु कलौ स्मृतम् ॥

हेमाद्रि में कालोत्तर तथा युगधर्म में कहा है कि—सतयुग में-मणिका, त्रेता में—हेम (सुवर्ण) का, द्वापर में—पट्ट (रेशमी वस्त्र) का और कलियुग में कपास (रूई) का पवित्र बनाना कहा है।

(अधिकारिविचारः)

अधिकारिणोऽपि तत्रैव विष्णुरहस्ये—ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्तथा स्त्री शूद्र एव च ।
स्वधर्मावस्थिताः सर्वे भक्त्या कुर्युः पवित्रकम् ॥

वहीं पर अधिकारियों को भी विष्णुरहस्य में कहा है कि—ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री और शूद्र ये सब अपने धर्म में स्थित होकर भक्ति से पवित्र को बनावें।

तथा—अतो[1] देवेति मन्त्रेण द्विजो विष्णौ निवेदयेत् । शूद्रस्य मूलमन्त्रो वा येन वा पूजयेद्धरिम् ॥ एतच्च नित्यम् । न करोति विधानेन पवित्रारोपणं तु यः । तस्य सांवत्सरी पूजा निष्फला मुनिसत्तम ॥ तस्माद्भक्तिसमायुक्तैर्नरैर्विष्णुपरायणैः । वर्षे वर्षे प्रकर्तव्यं पवित्रारोपणं हरे ॥ इति तत्रैवोक्तेः ।

और 'अतो देवा' इस मन्त्र से ब्राह्मण विष्णु को निवेदन करे। शूद्र मूलमन्त्र से या जिससे विष्णु की पूजा करे। यह नित्य भी है।

जो पवित्रारोपण विधान से नहीं करता है। हे मुनिसत्तम, उसकी सालभर की पूजा निष्फल होती है। इसलिये भक्ति से युक्त विष्णुपरायण मनुष्य साल साल में श्रीहरी का पवित्रारोपण करें। यह बात वहीं पर कही गयी है।

(देवताविशेषे तिथिविचारः)

देवताविशेषे तिथयोऽपि तत्रैव—धनदश्च रमा गौरी गणेशः सोमराड् गुहः । भास्करश्चण्डिकाऽम्बा च वासुकिश्च तथर्षयः ॥ चक्रपाणिर्ह्यनङ्गश्च शिवो ब्रह्मा तथैव च । प्रतिपत्प्रभृतिष्वेताः पूज्यास्तिथिषु देवताः ॥ यथोक्ताः शुक्लपक्षे तु तिथयः श्रावणस्य च ॥ इति ।

देवता विशेष की तिथियाँ भी वहीं कही गयी हैं—धनद (कुवेर), रमा (लक्ष्मी), गौरी (पार्वती) गणेश, सोमराट् (चन्द्रमा) गुह (स्कन्द) भास्कर (सूर्य) चण्डिका, अम्बा, वासुकी, ऋषि, चक्रपाणी (विष्णु) अनंग (कामदेव), शिव और ब्रह्मा ये सब देवता प्रतिपदा आदि तिथियों में पूज्य हैं।

जो कहे गये हैं—वे श्रावणशुक्ल पक्ष की तिथियों में पूज्य हैं।

१—ॐ अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे । पृथिव्याः सप्त धामभिः ॥ (ऋ० १।२२।१६)।

तथा हेमाद्रौ कालोत्तरे—'चतुर्दश्यामथाष्टम्यां सर्वसाधारणं तु तत्'। इति।

और हेमाद्रि में कालोत्तर का वचन है कि—चतुर्दशी और अष्टमीतिथि सब देवताओं के लिए साधारण पवित्रारोपण मानी गयी है।

(वैणवे पुटके पवित्राणि संस्थाप्य पूजनादिप्रकारकथनम्)

तत्प्रकारस्तु रामार्चनचन्द्रिकायाम्—ततस्तानि पवित्राणि वैणवे पुटके शुभे।
संस्थाप्य शुचिवस्त्रेण पिधाय पुरतो न्यसेत् ॥

उसका प्रकार रामार्चनचन्द्रिका में कहा है कि—[1]तदनन्तर उन पवित्रों को वांस के शुभ दोने में स्थापित कर पवित्र वस्त्र से ढक कर अपने आगे रखे।

अरत्निसंमितां वेणीं कुर्यात् षट्त्रिंशतां कुशैः। क्रियालोपविघातार्थं यत्त्वया विहितं प्रभो ॥

छत्तीस कुशाओं की अरत्निमात्र वेणी करे। हे प्रभो, जो आपने क्रियालोप के विघात के लिए विधान कहा है।

मयैतत्क्रियते देव तव तुष्ट्यै पवित्रकम्। न मे विघ्नो भवेद्देव कुरु नाथ दयां मयि ॥

हे देव, यह आपकी प्रसन्नता के लिए इस पवित्र को मैंने किया। हे देव, मुझे विघ्न न हो। हे नाथ, मेरे ऊपर दया करो।

सर्वथा सर्वदा विष्णो मम त्वं परमा गतिः। उपवासेन देव त्वां तोषयामि जगत्पते ॥

सर्वथा सब कालों में हे विष्णो, आप मेरी परमागति हो। हे देव, हे जगत्पते, उपवास से आपको प्रसन्न करता हूँ।

कामक्रोधादयोऽप्येते न मे स्युर्व्रतघातकाः। अद्यप्रभृति देवेश यावद्वैशेषिकं दिनम्। तावद्रक्षा त्वया कार्या सर्वस्यास्य नमोऽस्तु ते ॥

काम, क्रोध आदि ये सब मेरे व्रत के घातक न हों। हे देवेश, आज से लेकर जब तक विशिष्ट दिन है तब तक आप सबसे रक्षा करें। अतः आपको नमस्कार है।

इति देवं संप्रार्थ्य कुम्भं संस्थाप्य तत्र वंशपात्रे ॐ सांवत्सरस्य यागस्य पवित्रीकरणाय भो।
विष्णुलोकात्पवित्राद्य आगच्छेह नमोऽस्तु ते ॥

इसप्रकार देवता की प्रार्थना कर कुंभ (घट) का स्थापन उस बांस के पात्र में जो, संवत्सर में होनेवाली याग की सिद्धि के लिए तथा पवित्री करने के लिये विष्णुलोक से आज यहाँ पर आओ। पवित्र करो। आपको नमस्कार है।

अनेन मूलेन चावाह्योत्तममध्यमकनिष्ठेषु विष्णुब्रह्मरुद्रान् सत्त्वरजस्तमांसि, वेदत्रयं, वनमालायां प्रकृतिं चावाह्य त्रिसूत्र्यां ब्रह्मविष्णुरुद्रान् ग्रन्थिषु क्रिया, पौरुषी, वीरा, विजया, ईशा, अपराजिता, मनोन्मनी, जया, भद्रा, मुक्तिश्चेत्यावाह्य संपूज्य।

और इस मूल मन्त्र से आवाहन कर उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ पवित्रों में क्रमशः—सत्त्व, रज और तमो रूप विष्णु, ब्रह्मा [2]वेदत्रय, रुद्रका, तथा [3]वनमाला में प्रकृतिका आवाहन कर त्रिसूत्री में ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्रों को ग्रन्थियों में, क्रिया, पौरुषी, वीरा, ईशा, अपराजिता, मनोन्मयी, जया, भद्रा और मुक्ति का आवाहन एवं पूजन करे।

ॐ संवत्सरकृतार्चायाः सम्पूर्णफलदोऽपि यत्। पवित्रारोपणायैतत्कुरु कन्धर ते नमः ॥

संवत्सर में की हुई पूजा के संपूर्ण फल को देने वाले पवित्रारोपण के लिये हे कन्धर, आपको नमस्कार है।

१—पवित्रेषु कुङ्कुमगोरोचनादिनाऽञ्जनमुत्तम-मध्यमा-ऽधमानां तेषां क्रमेण द्वादशान्तरमन्त्रेण त्रिर्द्विसकृदभिमन्त्रणं चोक्तम्। २—ब्रह्म-विष्णु-रुद्रान्। ३—आरभ्य मुकुटं यावत्सूत्रैर्विरचिता शुभा। आपादलम्बिनी माला वनमाला प्रकीर्तिता ॥ अन्यच्च—तुलसीकुन्दमन्दारपारिजाताम्बुजैस्तु या। पञ्चभिर्ग्रथिता माला वनमाला प्रकीर्तिता ॥

विष्णुतेजोद्भवं रम्यं सर्वपातकनाशनम् । सर्वकामप्रदं देव तवाङ्गे धारयाम्यहम् ॥ इति देवकरे मङ्गलसूत्रं बध्वा देवं सम्पूज्य निमन्त्रयेत् ।

विष्णुके तेज से उत्पन्न, रमणीय, सब पातकों का नाश करने वाला, संपूर्ण कामनाओं को देनेवाला यह पवित्र, हे देव, आप के अंग में धारण कराता हूँ। इस मन्त्र से देवता के हाथ में मङ्गल सूत्रको बांधकर देवताकी पूजा कर निमन्त्रण करे।

आमन्त्रितोऽसि देवेश पुराणपुरुषोत्तम । प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सान्निध्यं कुरु केशव ॥

देवेश, हे पुराणपुरुषोत्तम, हे केशव, मैं आपको आमन्त्रण करता हूँ कि आपकी प्रातःकाल पूजा करूँगा। आप मेरे सन्निधि (समीप) में हो।

क्षीरोदधिमहानागशय्यावस्थितविग्रह । प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सन्निधौ भव ते नमः ॥

क्षीरसागर में शेषनागरूपी शय्या पर जिसका विग्रह (शरीर) स्थित है। आपकी प्रातःकाल मैं पूजन करूँगा। आप मेरे समीप में हो, आपके लिये नमस्कार है।

निवेदयाम्यहं तुभ्यं प्रातरेतत्पवित्रकम् । सर्वथा सर्वदा विष्णो नमस्तेऽस्तु प्रसीद मे ॥

प्रातःकाल इस पवित्र को आपके लिये मैं निवेदन करूँगा। हे विष्णो, सर्वथा से सब समय में आपको नमस्कार है अतः आप मुझ पर प्रसन्न हो।

ततः पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा रात्रौ जागरणं कुर्यादित्यधिवासनम् । प्रातर्नित्यपूजां कृत्वा गन्धदूर्वाक्षतयुतं पवित्रमादाय—ॐ देवदेव नमस्तुभ्यं गृहाणेदं पवित्रकम् । पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रदम् ॥ पवित्रकं कुरुष्वाद्य यन्मया दुष्कृतं कृतम् । शुद्धो भवाम्यहं देव त्वत्प्रसादात्सुरेश्वर ॥

तदनन्तर पुष्पाञ्जलि को देकर रात में जागरण करे—यही अधिवासन है। प्रातःकाल नित्य पूजा को कर गन्ध, दूर्वा और अक्षत के सहित पवित्र को लेकर—हे देवदेव, आप को नमस्कार है इस पवित्र को ग्रहण करो। पवित्र करने के लिये साल भर की पूजा के फल को देनेवाला है। जो मैंने खराब—पाप किया है उसे आज पवित्र करो। हे सुरेश्वर, आप के प्रसाद से मैं हे देव, शुद्ध होता हूँ।

मूलं सम्पुटितानेन दत्त्वाऽङ्गदेवताभ्यो नाम्ना समर्प्य महानैवेद्यं दत्त्वा नीराज्य 'मणिविद्रुममालाभिः' इत्यादिभिर्दमनारोपणोक्तमन्त्रैः प्रार्थयित्वा गुरवे ब्राह्मणेभ्यश्च दत्त्वा स्वयं च धारयेत् ।

इस (मन्त्र) से मूल को संपुटित देकर अङ्गदेवताओं के लिए नाम से समर्पण कर महानैवेद्य को देकर नीराजन कर [1]'मणिविद्रुममालाभिः' इत्यादि कहे हुए दमनारोपणमन्त्रों से प्रार्थना कर गुरु और ब्राह्मणों के लिए देकर स्वयं भी धारण करे।

तथा—मासं पक्षमहोरात्रं त्रिरात्रं धारयेत्तथा । देवे तं सूत्रसन्दर्भं देशकालविवक्षया ॥

और उस सूत्र को एकमहिना, पन्द्रहदिन, दिन-रात और तीनदिन देवता के शरीर में देशकाल की परिस्थिति को समझकर धारण करे।

(अकरणे जपादिकथनम्)

अकरणे तु तत्रैव—पवित्रारोपणं काले न करोति कथञ्चन । तथाऽयुतं जपेन्मन्त्रं स्तोत्रं वापि समाहितः ॥ इत्युक्तम् । इति पवित्रारोपः ।

नहीं धारण कराने पर वहीं पर हो लिखा है कि—किसीकारणवश अपने समय पर पवित्रारोपण नहीं करता है तो वह अयुतमन्त्र का जप करे या स्तोत्र का पाठ एकाग्रचित्त से करे। ऐसा कहा है।

(श्रावणशुक्लचतुर्दशीनिर्णयः)

श्रावणशुक्लचतुर्दशी पूर्वयुता ग्राह्या । अत्र वक्तव्यो विशेषश्चैत्रचतुर्दश्यामुक्तः ।

१—मणिविद्रुममालाभिर्मन्दारकुसुमादिभिः । इयं सांवत्सरी पूजा तवास्तु गरुडध्वज ॥ वनमालां यथा विष्णो कौस्तुभं सततं हृदि । तद्वद्दामनकीं मालां पूजां च हृदये वह ॥ जानताऽजानता वाऽपि न कृतं यत्तवार्चनम् । तत्सर्वं पूर्णतां यातु त्वत्प्रसादाद्रमापते ॥ जितं ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन । नमस्तेऽस्तु हृषीकेश महापुरुषपूर्वज ॥

श्रावणशुक्लचतुर्दशी पूर्वयुता ग्रहण करे। वहाँ पर विशेष कहने की बात चैत्रमास की चतुर्दशी तिथि में कह चुके हैं।

(उपाकर्म तत्र बह्वृचानां निर्णयः)

अथोपाकर्म। तत्र बह्वृचानां प्रयोगपारिजाते शौनकः—अथातः श्रावणे मासे श्रवणर्क्षयुते दिने। श्रावण्यां श्रावणे मासि पञ्चम्यां हस्तसंयुते ॥ दिवसे विदधीतैतदुपाकर्म यथोदितम्। अध्यायोपाकृतिं कुर्यात्तत्रोपासनवह्निना। इति।

अब [1]उपाकर्म कहते हैं। वहाँ पर बह्वचों का प्रयोग पारिजात में शौनक ने कहा है कि—इसकेबाद श्रावणमहीने में, श्रवणनक्षत्रयुक्तदिन में, श्रावणमास की पूर्णिमातिथि में या हस्तनक्षत्रयुक्त पञ्चमी तिथि में जैसा शास्त्रमें कहा है उसीके अनुसार उपाकर्म करे। अध्ययनमन्त्रों का उस औपासन अग्निमें करे।

अत्र पौर्णमास्युपसंहारन्यायेन यजुर्वेदिपरेति हेमाद्रिः। अत्र हस्तयुक्ता पञ्चम्युक्ता।

यहाँ पर पौर्णमासी में उपसंहारन्याय से यजुर्वेदियों को परा है-यह हेमद्रिका कहना है। यहाँ पर हस्तनक्षत्र से युक्त पञ्चमीतिथि ग्रहण करे।

कारिकापि—'तन्मासे हस्तयुक्तायां पञ्चम्यां वा तदिष्यते। इति।

कारिका भी है—उसमास में हस्तनक्षत्र में या पञ्चमी में उपाकर्म करना इष्ट है।

केवलपञ्चम्यां हस्तयुतेऽन्यस्मिन् दिने इति तु हेमाद्रिः।

हेमाद्रि का कहना है कि—केवल पञ्चमी को या हस्तनक्षत्र[2]युक्त किसीदिन में भी उपाकर्म करे।

उपासनवह्निनेति तु—कर्मद्वयमिदं केचिल्लौकिकाग्नौ प्रकुर्वते।

इति कारिकोक्तलौकिकाग्निना विकल्प्यते। तत्र अप्यध्याप्यैरन्वारब्धः' इति सूत्रात् सशिष्यस्य कर्तृत्वे तदधिकारिकस्याचार्याग्नौ नान्यस्याग्नावन्यो जुहुयादिति निषेधाल्लौकिके एव। तदभावे तु स्मार्त इति निगर्वः।

औपासन अग्निसे तो इस दो कर्मों को कोई लौकिक अग्निमें करते हैं। इस कारिका के कहे हुए कथन से लौकिकाग्नि में विकल्प मिलता है। वहाँ पर भी 'अप्यध्यायैरन्वारब्धः' इससूत्र से शिष्य के सहित कर्तृत्व में उसके अधिकार उपाकर्मका होनेसे आचार्यकी अग्नि में करे। अन्यकी अग्नि में अन्य के होम का निषेध से लौकिक अग्नि में ही करे। उसके अभाव में लौकिक अग्नि में करे-यह अभिमान रहित है।

यद्यपि दीपिकायाम्—वेदोपाकृतिरोषधिप्रजनने पक्षे सिते श्रावणे। इति शुक्लपक्षेऽपि सर्वेषां मुख्यकालत्वेनोक्तः। वक्ष्यमाणगार्ग्यवचनेन छन्दोगान् प्रति विहितस्याविरोधिनः सर्वान् प्रति प्रवृत्तिश्च। तथापि श्रावणमाससम्बन्धस्य सूत्रोक्तत्वात् कृष्णपक्षेऽपि कार्यमिति वृद्धाः।

यद्यपि दीपिका के कथन से औषधियों के प्रजनन (उत्पन्न) हो जाने पर श्रावणशुक्लपक्ष में वेदों का उपाकृति (उपाकर्म) करे।

इसप्रकार शुक्लपक्ष भी सबों का मुख्यकाल कहा गया है। आगे करने योग्य गर्गवचन से छन्दोगों के प्रति विहितका विरोध न होनेसे और सबों के लिए प्रवृत्ति है। फिर भी श्रावणमास के सम्बन्ध का सूत्र में कहे हुए कृष्णपक्ष में भी करना चाहिये—यह वृद्ध का कहना है।

तथा च सूत्रम्—"अथातोऽध्यायोपाकरणमोषधीनां प्रादुर्भावे श्रवणेन श्रावणस्य पञ्चम्यां हस्तेन वा।" अत्र श्रावणे मुख्योऽन्ये गौणाः तस्य प्राथम्यात्।

और उसमें सूत्र है—इसके बाद वेदों का उपाकर्म औषधियों के प्रादुर्भाव में, श्रवणनक्षत्र में या

१—उपाकर्म-कर्मनामधेयम्। अध्यायोपाकरणमित्यादेस्तु-अधीयते यः सोऽध्यायो=वेदः तस्योपाकरणम्=उपक्रम इत्यर्थः।

२—प्रौष्ठपदीं हस्तेनोपाकर्म' इसगोभिलगृह्य के कथनसे केवल हस्तनक्षत्रमें उपाकर्म करना कहा है। 'अध्यायानामुपाकर्म श्रावण्यां श्रवणेन वा। हस्तेनौषधिभावे वा पञ्चम्यां श्रावणस्य तु ॥

श्रावणमास के हस्तनक्षत्र युक्त पञ्चमीतिथि में करे। यहाँ पर श्रावणमास मुख्य है। अन्य गौण हैं। क्योंकि–उसका प्राथम्य है।

तस्याहर्द्वययोगे हेमाद्रौ व्यासः—धनिष्ठासंयुतं कुर्याच्छ्रावणं कर्म यद्भवेत्। तत्कर्म सफलं ज्ञेयमुपाकरणसंज्ञितम्॥ श्रावणेन तु यत्कर्म ह्युत्तराषाढसंयुतम्। संवत्सरकृतोऽध्यायस्तत्क्षणादेव नश्यति॥ इति।

उसका दो दिन योग में हेमाद्रि में व्यास ने कहा है कि—श्रवणनक्षत्र का कर्म जो धनिष्ठा से संयुक्त किया जाय तो वह कर्म संपूर्ण उपाकरणसंज्ञावाला जानना चाहिये। जो श्रावण का कर्म उत्तराषाढ से युक्त किया जाय तो एक साल का किया हुआ वेदपाठ उसीक्षण नाश होता है।

प्रयोगपारिजाते गार्ग्योऽपि—उदयव्यापिनी त्वेव विष्णवर्क्षे घटिकाद्वयम्।
तत्कर्म सफलं ज्ञेयं तस्य पुण्यं त्वनन्तकम्॥ इति।

प्रयोगपारिजात में गार्ग्यने भी कहा है कि—यदि उदयव्यापिनी में तो दो ही घड़ी श्रवण हो तो उसकर्म को सफल जानना चाहिये और उसका पुण्य अनन्त होता है।

पूर्वेद्युरुत्तराषाढयोगे परेद्युः श्रवणाभावे घटिकाद्वयन्यूने वा पञ्चम्यादौ कार्यम्, न तु पूर्वविद्धायां सङ्गवमात्रे अपवादाभावात्।

किं च। परेद्युः सङ्गवास्पर्शे निषिद्धपूर्वाग्रहणे किं मानम्?। सङ्गववाक्यं श्रवणवाक्यं चेति चेत्तर्हि व्रीहिवाक्यादश्वशफवाक्याच्च माषमिश्राणामप्युपादानं स्यादिति महत्पाण्डित्यम्। निषेधानुप्रवेशान्नरपेक्ष्य बाधान्नेति चेदिहापि तुल्यम्। एतेन पर्वाप्यौदयिकं व्याख्यातम्। निषेधानुप्रवेशस्योभयत्र तुल्यत्वात्।

पहले दिन उत्तराषाढ के योग में परदिन में श्रवण के अभाव में दो घड़ी या न्यून में पञ्चमी आदि में करना चाहिये। पूर्वविद्धासंगवमात्र में नहीं। क्योंकि–अपवाद के अभाव से।

और भी दूसरे दिन संगव के अस्पर्श में निषिद्ध पूर्व (तिथि) के अग्रहण में क्या मान (प्रमाण) है। संगववाक्य और श्रवणवाक्य हो जाय तो व्रीहि[1] वाक्य से तथा अश्वशफ[2] वाक्य से माषमिश्रों का भी उपादान (ग्रहण) हो जायगा यह महान् पाण्डित्य होगा। इससे पर्व में भी औदयिककाल व्याख्या की है। क्योंकि—निषेध अनुप्रवेश से तो उभयत्र प्रवेशतुल्य है।

(श्रवणयुतदिने संक्रान्त्यादौ उपाकर्माकरणम्)

श्रवणयुतदिने संक्रान्त्यादौ तु—उपाकर्म न कुर्वन्ति क्रमात्सामर्ग्यजुर्विदः।
ग्रहसंक्रान्तियुक्तेषु हस्तश्रवणपर्वसु॥ इति हेमाद्रौ निषेधात् पञ्चम्यादयो ग्राह्याः।

श्रवण से युक्त दिन में संक्रान्ति[3] आदि हो तो क्रम से सामवेदी, ऋग्वेदी और यजुर्वेदी उपाकर्म को न करे। क्योंकि–ग्रहण, संक्रान्ति से युक्त हस्त, श्रवण तथा पूर्णिमा में यह हेमाद्रि में निषेध होने से पञ्चमी आदि ग्रहण करे।

१—व्रीहिभिर्यजेत–इन वाक्य में माषमिश्रव्रीहिको भी ग्रहण करना उचित होगा। परन्तु 'अमेध्या वै माषाः–इस वाक्य से माष का होम साधनत्वनिषिद्ध होनेसे तथा व्रीहिभिः–इस तृतीयावृत्ति के द्वारा इतर निरपेक्ष व्रीहिका यागसाधनत्व की बाधा होने से माष का मिलाकर अनुष्ठान असंभव हो तब यहाँ भी वह तुल्य है।

२—अश्व के रक्त को गवय के कण्ठ में अश्व की खुरा में तथा लोहे की थाली में अर्थात्–तीनो में ग्रहण करे। स्विष्टकृत्याग होने के बाद जिन पात्रों में रक्तग्रहण किया उसी के द्वारा 'अग्निभ्यः स्विष्टकृद्भ्यः स्वाहा' इस मन्त्रको उच्चारण कर हवन करे। न की जुहु के द्वारा हवन होता है। अथवा अनुयाजयाग होने के बाद अश्वशफ के द्वारा हवन किया जाता है अश्वशफवाक्य है। (कात्यायनश्रौतसूत्र अश्वमेधप्रकरण–अध्याय वीस, कण्डिका ८ में देखिये।)

३—संक्रान्तौ ग्रहणे वाऽपि सूतके मृतकेऽथवा। गणस्नानं न कुर्वीत नारदस्य वचो यथा॥

(ग्रहणसूतकादावपि विचारः)

मदनरत्नेऽपि—यदि स्याच्छ्रावणं पर्व ग्रहसंक्रान्तिदूपितम् ।
स्यादुपाकरणं शुक्लपञ्चम्यां श्रावणस्य तु ॥

मदनरत्न में भी कहा है कि—यदि श्रवणपर्व या श्रावणमासीयपर्व ग्रहण और संक्रान्ति से दूषित होजाय तो श्रावण शुक्लपञ्चमी में उपाकरण करे ।

स्मृतिमहार्णवे—संक्रान्तिर्ग्रहणं वापि यदि पर्वणि जायते ।
तन्मासे हस्तयुक्तायां पञ्चम्यां वा तदिष्यते ॥

स्मृतिमहार्णव में कहा है कि—संक्रान्ति या ग्रहण यदि पर्व में होतो उसी मास के हस्तनक्षत्र से युक्त पञ्चमीतिथि में करे ।

तत्रापि प्रयोगपारिजाते वृद्धमनुकात्यायनौ—अर्धरात्रादधस्ताच्चेत्संक्रान्तिर्ग्रहणं तदा ।
उपाकर्म न कुर्वीत परतश्चेन्न दोषकृत् ॥ इति ।

वहाँ पर भी प्रयोगपारिजात में वृद्धमनु तथा कात्यायन का वचन है कि—आधीरात के (यद्दिने उपाकर्म तद्दिनार्धरात्रात्पूर्वमेव ग्रहसंक्रान्तियोगो दूषको नोत्तरतः) पूर्व (पहले) यदि संक्रान्ति या ग्रहण होता उपाकर्म न करे पर होतो दोष नहीं है ।

मदनरत्ने गार्ग्योऽपि—यद्यर्धरात्रादर्वाक् तु ग्रहः संक्रम एव च ।
नोपाकर्म तदा कुर्याच्छ्रावण्यां श्रवणेऽपि वा ॥

मदनरत्न में गार्ग्य ने भी कहा है कि—यदि आधीरात के पहले ग्रहण और संक्रम (संक्रान्ति) हो तो श्रावण की पूर्णिमा में तथा श्रवणनक्षत्र में भी उपाकर्म न करे ।

एतेन ग्रहसंक्रान्तिकाले श्रवणसत्त्वे एव निषेधो नार्वागिति मूर्खशङ्का परास्ता । ग्रहविशिष्टानां हस्तश्रवणपर्वणां प्रत्येकं निषेधे तद्युक्तोपाकर्मनिषेधे च विशिष्टोद्देशे वाक्यभेदात् पचम्यां संक्रान्तौ निपेधाभावापत्तेश्च । तेनार्धरात्रात्पूर्वं ग्रहसंक्रमसत्त्वे एवोपाकर्मनिषेधो न तद्योगे एव ।

इससे ग्रहण और संक्रान्तिसमय में श्रवणनक्षत्र के रहने पर ही निषेध है पहले नहीं है यह मूर्ख शंका परास्त हुई । ग्रहविशिष्ट हस्तश्रवणपर्वों का प्रत्येक निषेध में कहे हुए उपाकर्मनिषेध में विशिष्टोद्देश्य में वाक्यभेद से पञ्चमी तथा संक्रान्ति में निषेध का अभावापत्तिहोने से । उस से आधीरातके पूर्व ग्रहण और संक्रान्ति रहने पर ही उपाकर्म का निषेध है । उसके योगमें नहीं है ।

हेमाद्रौ निगमः—ग्रहयोगो गुरुं हन्ति संक्रान्तिः शिष्यघातिनी ।
तयोर्हन्त्युत्तराषाढा उपाकर्मणि वैष्णवे ॥

हेमाद्रि में निगम का वचन है कि-वैष्णवोपाकर्म में ग्रहणयोग गुरु का नाश करता है और संक्रान्ति-शिष्य को घात करती है । उत्तराषाढा गुरु और शिष्य को नष्ट करता है ।

यत्तु—प्रतिपन्मिश्रिते नैव नोत्तराषाढसंयुते । श्रवणे श्रावणं कुर्युर्ग्रहसंक्रान्तिवर्जिते ॥ इति प्रतिपन्मिश्रितं निषेधकं वचनं, तन्निर्मूलम् ।

जो—प्रतिपदा के मिश्रित से ही उत्तराषाढ ही से संयुक्त ग्रहण तथा संक्रान्ति से वर्जित श्रवणनक्षत्र में उपाकर्म न करे । यह प्रतिपदा से मिश्र (युक्त) निषेध वचन है वह निर्मूल है ।

अत्र च—वेदोपाकरणे प्राप्ते कुलीरे संस्थिते रवौ । उपाकर्म न कर्तव्यं कर्तव्यं सिंहयुक्तके ॥ इति वचनं देशान्तरविषयम् ।

यहाँ पर और—वेदों के उपाकर्म के समय कर्क का सूर्य प्राप्त हो तो उपाकर्म न करे । सिंह सूर्य में करे । यह वचन [1]देशान्तर विषयक है ।

१—नेदं सामगविषयम् । तेषां कर्कप्राप्त्यभावेन व्यवस्थाया अनुपपत्तेः । किन्तु तदितरविषयम् । नर्मदोत्तरभागस्थानामार्यावर्तनिवासिनां शिष्टानामृग्यजुर्वेदिनां कर्कस्थेऽपि रवावुपाकर्मनुष्ठानम् । प्राच्यनिबन्धादावेतद्वाक्यस्याखिलत्वेनानाश्वासात् ।

नर्मदोत्तरभागे तु कर्तव्यं सिंहयुक्तके ।
कर्कटे संस्थिते भानावुपाकुर्यात्तु दक्षिणे ॥

इति बृहस्पतिवचनादिति प्रयोगपारिजातेनोक्तम् । पराशरमाधवीयेऽप्येवम् । सामगानां सिंहस्थरवावुक्तेस्तद्विषय इदं पुरोडाशचतुर्धाकरणवदुपसंह्रियते । तेषामेव देशव्यवस्था न तु बह्वृचादिपरम् । तेषां सूत्रे चान्द्रश्रावणोक्तेः । सौरे पञ्चम्ययोगात् इति तु वयं पश्यामः सामान्येन सौत्रविशेषस्य बाधायोगाच्च ।

बृहस्पतिवचन से प्रयोगपारिजात में कहा है कि—नर्मदा के उत्तरभाग में सिंह से युक्त में करना चाहिये । कर्क के सूर्य में स्थित हो तो दक्षिण में उपाकर्म करे । पराशरमाधवीय में भी यही है । सिंहस्थसूर्य में सामवेदियों को ही (उपाकर्म) कहा है । उसका विषय यह है कि-पुरोडाश का चार [1]प्रकार करने के तुल्य उपसंहार होता है—उन्हीं का ही देश व्यवस्था है बह्वृचादिपरक नहीं है । उनके सूत्र में चान्द्रश्रावण कहा है । सौर पञ्चमी के अयोग से यह हम देखते हैं । क्योंकि—सामान्य से सौत्रविशेष का बाधायोग है ।

यत्तु कालादर्शे–अध्यायानामुपाकर्म श्रावण्यां तैत्तिरीयकाः । बह्वृचाः श्रवणे कुर्युः सिंहस्थोऽर्को भवेद्यदि ॥ सहस्तशुक्लपञ्चम्यां । वा तद्ग्रहणसंक्रमे । असिंहार्के प्रौष्ठपद्यां श्रवणे न व्यवस्थया ॥ इति ।

जो कालादर्श में कहा है कि—तैत्तरीयशाखावाले वेदों का उपाकर्म श्रावणमास की पूर्णिमा करे में । यदि सिंहस्थसूर्य हो तो बह्वृच श्रवणनक्षत्र में करें । हस्तनक्षत्रयुक्त श्रावणशुक्लपञ्चमी में ग्रहण या संक्रान्ति में सिंह के सूर्य न होने पर पञ्चमी या भाद्रपद पूर्णिमा या श्रवणनक्षत्र में व्यवस्था से करे ।

तत् मूलालेखनाच्चिन्त्यम् । सूत्रे हि श्रवणेन श्रावणस्येति चान्द्रमास एवोक्तो न सौरः तस्य पञ्चम्यभावात् । श्रुतिलक्षणाभ्यामुभयपरत्वे वृत्तिद्वयविरोधाच्च । तेन सिंहस्थोऽर्को भावी यदि तदा कर्केऽपि ग्रहणसंक्रमे सति असिंहार्के शुक्लपञ्चम्यां श्रावणे वा बह्वृचाः प्रौष्ठपद्यां तैत्तिरीया इति व्याख्येयम् । तेषां सौरमासाभावात् ।

वह मूल के न मिलने से चिन्तनीय है क्योंकि सूत्र में श्रवण से ही श्रावण का चान्द्रमास ही कहा है सौर नहीं कहा है । क्योंकि उसमें पञ्चमी का अभाव है । श्रुति और लक्षणा से उभयपरत्व होने से वृत्तिद्वय का विरोध है । उससे सिंहस्थ सूर्य में भावि यदि कर्क में भी ग्रहण और संक्रान्ति हो तो असिंहार्क (सिंह के सूर्य न होने पर) में श्रावणशुक्ल पञ्चमी में बह्वृच प्रौष्ठपदी (भाद्रपद पूर्णिमा) में तैत्तरीयशाखा वाले व्याख्या करते हैं । क्योंकि उनको सौरमास का अभाव है ।

श्रावणे शस्यानुद्गमादौ तु बह्वृचपरिशिष्टे—अवृष्ट्यौषधयस्तस्मिन्मासे तु न भवन्ति चेत् ।
तदा भाद्रपदे मासि श्रवणेन तदिष्यते ॥ इति ।

श्रावणमास में सस्य की उत्पत्ति न होने पर तो बह्वृचपरिशिष्ट में कहा है कि—वर्षा (ग्रहण सङ्क्रान्तिसूतकादिवशाच्छ्रवणाद्यतिक्रमोऽपि द्रष्टव्यः) के न होने पर, उस मास में यदि औषधियाँ न हो तो तब भाद्रपदमास के श्रवण नक्षत्र में उपाकर्म का विधान है ।

तत्राप्यनुद्गमे तु—कुर्यादेव तद्वार्षिकमित्याचक्षते' इति सूत्रात् । वर्षर्तौ भवं वार्षिकम् ।

उसमें पैदा न होने पर तो—'कुर्यादेव[2] तद्वार्षिकमित्याचक्षते' इससूत्र से उस वार्षिक को करे ही । वर्षाऋतु में होनेवाले को वार्षिक कहा जाता है ।

१–पुरोडाशं चतुर्धा करोति–पुरोडाड का चार भाग करते हैं । इसवाक्य का सामान्यरूप से सभी पुरोडाड का चतुर्धाकरण प्राप्तहोने पर पुनः 'आग्नेयं चतुर्धा करोति' आग्नेय पुरोडाश का चार विभाग करते हैं । इसवाक्य से केवल आग्नेयपुरोडाश का ही चतुर्धाकरणविहित है । इतर पुरोडाशोंका चतुर्धाकरण असंगत है । सामान्यविधिरस्पष्टः संह्रियेत विशेषतः' इत्युक्तेः ।

२—भाद्रश्रवणे तच्छुक्लपञ्चम्यादौ वा । तत्रापि प्रतिबन्धे तु उपाकर्म लुप्यत एव अशक्तवत् ।

(एतच्छुक्रास्तादावपि कार्यम्)

एतच्च शुक्रास्तादावपि कार्यम् । उपाकर्मोत्सर्जनं च पवित्रदमनार्पणम् । इति दमनारोपे लिखित-वचनात् । नित्ये नैमित्तिके जप्ये होमयज्ञक्रियासु च । उपाकर्मणि चोत्सर्गे ग्रहवेधो न विद्यते ॥ इति प्रयोगपारिजाते सङ्ग्रहोक्तेः । पर्वणि ग्रहणे सति पूर्वं त्रिरात्रादिवेधाभावं वक्तुमिदम् । तेन पर्वणि ग्रहणेऽपि चतुर्दश्यां श्रवणे कार्यमिति हेमाद्रिः ।

इसको शुक्रास्त आदि में भी करना चाहिये। दमनारोप में लिखित वचन से कहा है कि-उपाकर्म उत्सर्जन, पवित्र तथा दमनार्पण करे।

प्रयोगपारिजात में संग्रह का वचन है कि—नित्य, नैमित्तिक, जप, होम, यज्ञक्रिया, उपाकर्म तथा उत्सर्जन में ग्रहण का वेध नहीं होता है।

पर्व में ग्रहण होने पर पहले तीन दिन आदि में वेध का अभाव कहने के किए यह कहा है। उससे पर्व में ग्रहण होने पर भी श्रवण सहित चतुर्दशी में करना चाहिये। यह हेमाद्रिकारका मत है।

(प्रथमारंभे निर्णयः)

अस्ते प्रथमारम्भस्तु न भवति । 'गुरुभार्गवयोर्मौढ्ये बाल्ये वा वार्द्धकेऽपि वा । तथाधिमासंसर्प-मलमासादिषु द्विजे ॥ प्रथमोपाकृतिर्न स्यात्कृतं कर्म विनाश कृत् । इति तत्रैव कश्यपोक्तेः ।

अस्त में प्रथमारंभ नहीं होता है। कश्यपने वहाँ पर कहा है कि—गुरु तथा शुक्रास्त में, बाल्य और वार्धक्य, अधिकमास एवं मलमास में प्रथम उपाकर्म न करे। करने पर कर्म का विनाश होता है।

(प्रथमोपाकर्मणि वृद्धिश्राद्धादिविचारः)

तत्र प्रथमारम्भे वृद्धिश्राद्धं कुर्यादिति नारायणवृत्तौ । एतच्चाधिमासे न कार्यम् । उपाकर्मतथोत्सर्गः प्रसवाहोत्सवाष्टकाः । मासवृद्धौ परा कार्या वर्जयित्वा तु पैतृकम् ॥ इति ज्योतिःपराशरोक्तेः ।

यहाँ पर [1]प्रथमारंभ में वृद्धिश्राद्ध करे-यह नारायणवृत्ति में कहा है। इसको अधिमास में न करना चाहिये।

ज्योतिःपराशरमें कहा है कि-पितृकार्य को छोड़कर उपाकर्म, उत्सर्ग, जातकर्म (जननोत्सव) और अष्टका श्राद्ध ये सब मास की वृद्धि में पर (अग्रिम) मास (महिने) में करें।

उत्कर्षः कालवृद्धौ स्यादुपाकर्मादिकर्मणि । अभिषेकादिवृद्धीनां न तूत्कर्षो युगादिषु ॥ इति कात्यायनोक्तेश्च ।

कात्यायन ने भी कहा है कि—उपाकर्म आदि कार्यों में काल की वृद्धि हो तो उत्कर्ष होता है और अभिषेक आदि वृद्धियों में एवं युगादि तिथियों में उत्कर्ष नहीं होता है।

यत्तु—उपाकर्मणि चोत्सर्गे ह्येतदिष्टं वृषादितः । इति ऋष्यशृङ्गवचनं तत्सामगविषयम् । तेषां सिंहार्के एवोक्तेः । एतच्चापराह्णे कार्यम् ।

जो-ऋष्यशृङ्ग ने कहा है कि-वृष आदि संक्रान्ति से उपाकर्म तथा उत्सर्ग में ही यह इष्ट है। यह सामवेदियों के विषय में है। क्योंकि उनका सिंह के सूर्य में ही विधान कहा है। इसको अपराह्ण में करना चाहिये।

उपाकर्मापराह्णे स्यादुत्सर्गः प्रातरेव तु । इति । 'अध्यायानामुपाकर्म कुर्यात्कालेऽपराह्णके । पूर्वाह्णे तु विसर्गः स्यादिति वेदविदो विदुः ॥ इति हेमाद्रौ गोभिलोक्तेः ।

हेमाद्रि में गोभिल ने कहा है कि—उपाकर्म अपराह्ण में और उत्सर्ग प्रातःकाल ही होता है। वेदों का उपाकर्म अपराह्णकाल में करना चाहिये। पूर्वाह्ण में विसर्ग होता है-यह वेदों के जानकारों ने कहा है।

वस्तुतस्तु—'भवेदुपाकृतिः पौर्णमास्यां पूर्वाह्ण एव तु। इति प्रचेतसो वचनात् पूर्ववाक्यं सामगविषयम् । तेषाम् अपराह्ण एवोक्तेरित्यनुपदं वक्ष्यते। दीपिकापि—'अस्य तु विधेः पूर्वाह्ण-कालः स्मृतः' इति ।

१—नानिष्ट्वा तु पितृन् श्राद्धे कर्म किञ्चित्समारभेत् । सविस्तरं तु टीयायां वर्तते ।

प्रचेता के वचन से सिद्धान्त तो यह है कि-पौर्णमासीतिथिमें [1]पूर्वाह्णकाल में ही उपाकर्म होता है। पहला वाक्य सामवेदियों के लिये है उनका अपराह्णकाल ही कहा हैं—यह बाद ही कहेंगें। दीपिका में भी कहा है कि—इसकी विधि को तो पूर्वाह्णकाल कहा है।

(याजुषाः पर्वणि कुर्युः तथा एतच्चापस्तम्बैरौदयिकं ग्राह्यम्)

याजुषास्तु पर्वणि कुर्युः। तच्चापस्तम्बैरौदयिकं ग्राह्यमन्यैस्तु पूर्ववत्।

यजुर्वेदी तो पर्व में करें। आपस्तंबशाखावाले औदयिकी (उदयकालकी) ग्रहण करे। दूसरे तो पूर्व के सदृश करें।

पर्वण्यौदयिके कुर्युः श्रावणं तैत्तरीयकाः। बह्वृचाः श्रवणे कुर्युर्ग्रहसंक्रान्तिवर्जिते॥ इति गार्ग्योक्तेः।

गार्ग्य का कथन है कि—श्रावणीकर्म तैत्तरीयशाखावाले उदय के समय पर्व में करें। बह्वृचशाखाध्यायी श्रवणनक्षत्र में ग्रहण तथा संक्रान्ति को छोड़कर करें।

संप्राप्तवाग्श्रुतीर्ब्रह्मा पर्वण्यौदयिके पुनः।
अतो भूतदिने तस्मिन्नोपाकरणमिष्यते। इति कालिकापुराणाच्च।

और कालिकापुराण का मत है कि—पर्वदिन में उदयके समय ब्रह्माजी को वेद प्राप्त हुए। इसलिये चतुर्दशीके दिन उपाकर्म नहीं इष्ट है।

(दोषसंयुक्ते पर्वणि उपाकर्मनिषेधः)

अथ चेद्दोषसंयुक्ते पर्वणि स्यादुपक्रिया। दुःखशोकामयग्रस्ता राष्ट्रे तस्मिन्द्विजातयः॥ इति मदनरत्ने हेमाद्र्यादौ गार्ग्येण दोषोक्तेः।

मदनरत्न हेमाद्रि आदि में गर्ग ने दोष कहा है—इसकेबाद यदि पर्व में उपाकर्म दोष से युक्त हो तो उस राष्ट्र में द्विजाति के लोग दुःख, शोक तथा रोग से ग्रसित होते हैं।

अत्र शिङ्गाभट्टीये विशेषः—श्रवणः श्रावणं पर्व सङ्गवस्पृग्यदा भवेत्।
तदैवौदयिकं कार्यं नान्यदौदयिकं भवेत्॥

शिङ्गाभट्टी में विशेष लिखा है कि—श्रवण तथा श्रावणमास के पर्व में यदि संगव का स्पर्श हो तो औदयिकी (उदयकालकी) ग्रहण करे। अन्यथा औदयिकी न ले।

पराशरमाधवीयेऽपि गार्ग्यः—श्रावणी पौर्णमासी तु सङ्गवात्परतो यदि।
तदैवौदयिकी नान्यदौदयिकी भवेत्॥

पराशरमाधवीय में भी गार्ग्य का कथन है कि—श्रावणमास भी पूर्णिमातिथि यदि संगव से पर हो तो उदयकाल ग्रहण करे। अन्य औदयिकी न ले।

(कर्मकालकथनम्)

कर्मकालमाह कालादर्शे निगमः—श्रावण्या प्रौष्ठपद्या वा प्रतिपत्षण्मुहूर्तकैः।
विद्धा स्याच्छान्दसां तत्रोपाकर्मोत्सर्जनं भवेत्॥

अत्र पौर्णमासीश्रवणहस्तयोरुपलक्षणम्। तेन तावपि सङ्गवस्पृशौ।

कर्मकाल को कालादर्श में निगम ने कहा है कि—श्रावणमास या भाद्रमास की पूर्णिमा छः मुहूर्त प्रतिपदा से विद्ध हो तो उसमें उपाकर्म तथा उत्सर्जन होता है।

यहाँ पर पौर्णमासीतिथि से श्रवणनक्षत्र और हस्तनक्षत्र का उपलक्षण है। क्योंकि (उसमें से हस्त श्रवणयोरपि ग्रहणेत्यर्थः) दोनों में संगव का स्पर्श होता है।

१—तद्वाक्ये पूर्वाह्णापराह्णयोर्द्वयोरेव ग्रहणात्। मुख्यानुकल्पभावेन तु पञ्चधा चतुर्धा त्रेधा द्वेधा वा।

(श्रावणीकर्मणि मतमतान्तरकथनम्)

उदये सङ्गवस्पर्शे श्रुतौ पर्वणि चार्कभे। कुर्युर्नभस्युपाकर्म ऋग्यजुः सामगाः क्रमात्॥ इति पृथ्वीचन्द्रः। तेनोदयसङ्गवोभयव्यापिनीमुख्या। परेद्युः सङ्गवाभावे पूर्वेद्युरुदयाभावे चैकैक—सत्त्वे पूर्वेद्युश्चतुर्दशीवेधनिषेधात् सामान्यवाक्यादौदयिकी कर्मपर्याप्ता ग्राह्या, न पूर्वा। सङ्गवनिमित्तपूर्वविद्धापवादाभावात्। 'नान्यदौदयिकी' इत्यस्य पूर्वविद्धापरत्वाभावात्। तेन भाद्रादौ कालान्तरे स्यान्न तु निषिद्धे। न हि व्रीह्यलाभे निषिद्धमाषग्रहणं युक्तम्। अत एव परेद्युः सङ्गवव्याप्तौ पूर्वविद्धानिषेधः। तदभावे तु नेति मूर्खव्यवस्थाप्ययुक्ता, विधिवैषम्यात्। माषनिषेधेऽपि तथापत्तेश्च। पूर्वविद्धावचनसत्त्वे हि सा युज्यते। एवं श्रवणेऽपि ज्ञेयम्। तन्न। 'विष्णवर्क्षे घटिकाद्वयम्।' इति पूर्वोक्तविरोधात्। तेन प्राशस्त्यमात्रपरमिदम्। तत्त्वं तु एतच्छुद्धाधिकपरम्। तेन यथाग्निहोत्रादौ सायंप्रातःकालबाधे सामान्ये जीवनावच्छिन्नकाले दर्शादौ वाऽनुष्ठानम्, यथा वा व्रीह्यश्वशफाद्यभावे यागाक्षिप्तनिषिद्धवर्ज्यद्रव्येण, तथाऽत्र सङ्गवाभावे निषिद्धवर्ज्यकर्मपर्याप्तौदयिके कालान्तरे वाऽनुष्ठानं न तु कदाऽपि निषिद्धे। अपवादाभावे उत्सर्गस्यैव प्राप्तेः। कात्यायनादीनां तु दिनद्वये पूर्वाह्णव्याप्तौ एकदेशस्पर्शे वा पूर्वैवेति हेमाद्रिः। यदपि—श्रावणी दुर्गनवमी दूर्वा चैव हुताशनी। पूर्वविद्धा प्रकर्तव्या शिवरात्रिर्बलेर्दिनम्॥ इति ब्रह्मवैवर्तम्, तद्ब्रह्मपवित्रश्रवणाकर्मादिदैवकर्मविषयमिति हेमाद्रिः। अत एव वचनात्कुलधर्मव्रतादावपि पूर्वैव। मदनरत्नेऽप्येवम्।

पृथ्वीचन्द्रोदय ने कहा है कि—उदयकाल में, संगवस्पर्श में कर्ककी संक्रान्ति हो तो भाद्रपद में ऋग्वेदी, यजुर्वेदी और सामवेदी क्रम से उपाकर्म करें। उससे उदय और संगव ये दोनों उभयव्यापिनी मुख्य है।

क्योंकि परदिन में संगव के अभाव (अस्पर्श) में पूर्वदिन में उभयाभाव (उदय और संगय) में एक एक के रहने पर पूर्वदिन चतुर्दशीवेध के निषेध से सामान्यवाक्य से औदयिकी कर्मकाल में पर्याप्त ग्रहण करे।

पूर्वा ग्रहण न करे। क्योंकि—संगवनिमित्त पूर्वविद्धा का अपवाद के अभाव होने से। 'नान्यदौदयिकी' इसका पूर्वपरत्वाभाव से।

इससे भाद्रपद आदि में कालान्तर में होता है न कि निषेध कालमें। व्रीहि के अप्राप्त में निषिद्धमाष (उडद) का ग्रहण युक्त नहीं है। इसलिए दूसरे दिन संगव की व्याप्ति में पूर्वविद्धा का निषेध है। उसके अभाव में तो नहीं हैं। इससे मूर्खों की व्यवस्था भी अयुक्त हुई विधि के वैषम्य से और माष निषेध में भी वैसी ही आपत्ति हो जायगी। पूर्वविद्धा[1] में वचन के रहने पर वह युक्त हो सकती है।

इसप्रकार श्रवण में भी जानना चाहिये। यह ठीक नहीं। विष्णवर्क (श्रवणनक्षत्र) में दो घड़ी है ये पूर्वोक्त वचन के विरोध से। उससे प्राशस्त्यमात्र (उत्कर्ष) है। तत्त्व तो यह है कि—यह शुद्धाधिकपरक हैं। इससे जैसे—अग्निहोत्र आदि में सायंकाल तथा प्रातःकाल बाधा के सामान्य में जीवनावच्छिन्नकाल (जीवित अवस्था) में दर्शादि (अमावास्या) में अनुष्ठान होगा।

जैसे—व्रीहि, अश्वशफ (घोड़े का खुर) आदि के अभाव में याग के द्वारा आक्षिप्त निषिद्ध वर्ण्यद्रव्य को छोड़कर यज्ञानुष्ठान होता है। उसीप्रकार संगवाभाव में निषिद्ध वर्जितकर्म पर्याप्त (कर्मकालव्याप्त) उदयकाल में या कालान्तर में अनुष्ठान करे। निषिद्धकाल में कभी भी न करे। क्योंकि—अपवादाभाव में उत्सर्ग (सामान्यशास्त्र) की ही प्राप्ति होती है।

कात्यायन आदियों का तो दोनों दिन पूर्वाह्ण की व्याप्ति में या एकदेश स्पर्श में पूर्वाही ले—यह हेमाद्रि का कहना है और जो ब्रह्मवैवर्तपुराण का मत है कि—श्रावणी, दुर्गानवमी, दुर्गा-अष्टमी, हुताशनी (होली), शिवरात्रि और बलीका दिन (वामनद्वादशी) में पूर्वविद्धा करना चाहिये। वह ब्रह्मपवित्र श्रवणाकर्म आदि दैवकर्मविषयक है—यह हेमाद्रि में कहा है। इसीलिये वचन से कुलधर्मव्रत आदि में पूर्वा ही ले। मदनरत्न में भी यही कहा है।

१—इदं तु चिन्त्यम्। अतो भूतदिने तस्मिन्नोपाकरणमिष्यते। इति न निषेधः। हेतुपूर्वमेव 'नेष्यते' इत्यभिधानात् तस्मात् सङ्गवव्याप्तौ परा, अन्यथा पूर्वोक्तमतं सम्यक्।

मदनपारिजाते-पूर्वविद्धायां श्रावण्यां वाजसनेयिनामुपाकर्मेत्युक्तम् । मदनरत्ने तु-'पर्वण्यौदयिके कुर्युः श्रावणं तैत्तिरीयकाः । इति बह्वृचपरिशिष्टे बह्वृचान्प्रति कर्मविधानार्थं प्रवृत्ते तत्र तैत्तिरीयक-कर्मविध्ययोगात्पूर्वोक्तकालिकापुराणादौ सामान्यत औदयिकपर्वप्राप्तेस्तन्निषेधेन बह्वृचानां श्रवण-विधानात्तैत्तिरीयकपदमनुवादत्वात्तस्य च प्राप्त्यधीनत्वात् प्राप्तेश्च यजुर्वेदमात्रपरत्वात्सर्वयजु-र्वेद्युपलक्षणार्थम्, अवयुत्यानुवादो वा, न तु विधायकम् । येन विशेषविधानोपसंहारः स्यात् । अनुवादत्वाल्लक्षणा न दोषः । अन्यथा त्वौदयिकपर्वविशिष्टोपाकर्मोद्देशेन कर्तृविधौ कर्तृविशिष्टे वा औदयिकपर्वविधौ वाक्यभेदापत्तेः । तस्मात्तैत्तिरीयकपदाविवक्षया सर्वयजुर्वेदिनामौदयिकमेव पर्वेत्युक्तम् । तन्न । न तावत्परिशिष्टे बह्वृचान् प्रत्येव विधिः । धनिष्ठाप्रतिपद्युक्तं त्वाष्ट्रऋक्षसम-न्वितम् । इत्यादितदुदाहृते एव परिशिष्टे वेदान्तरधर्मविधीनां दर्शनात् । नाप्यनुवादोऽयं कालिका-पुराणात् बह्वृचादीनामपि तदापत्तेः । कुर्युरित्यस्य विधित्वेन तस्यैवार्थवादत्वेनैतत्प्राप्तानुवादित्वाच्च । न च तैत्तिरीयकानां गृह्ये तद्विधिरस्ति, येनानुवादः स्यात् । न वाक्यभेदः । तैत्तिरीयकपदमात्रस्य कर्ममात्रस्य वा उद्देश्यत्वायोगेन हविरार्तिवत्, 'अष्टवर्षं ब्राह्मणमुपनयीत' इति वचागत्या विशिष्ट-स्योद्देश्यत्वात् । अन्यथोत्तरार्द्धे बह्वृचपदस्याप्यविवक्षापत्त्या श्रवणस्य सर्वसाधारण्यापत्तेः । तस्मा द्धेमाद्रिमतमेव युक्तमिति दिक् ।

मदनपरिजात में कहा है कि—पूर्वविद्धा श्रावणी में वाजसनेयियों का उपाकर्म कहा है।

मदनरत्न में तो कहा है कि—तैत्तरीयशाखावाले उदयकाल के पर्व में श्रावणी करें। इसप्रकार बह्वृचपरिशिष्ट में बह्वृचों के प्रति कर्मविधानार्थप्रवृत्त होने में उसमें तैत्तरीयकर्मविधि के अयोग से पूर्वोक्त कालिकापुराण आदि में सामान्यता से औदयिकपर्व की प्राप्ति में उसके निषेध से बह्वृचों का श्रवणविधान से तैत्तरीयपद का अनुवाद होने से उसके प्राप्ति का अधीनत्व होने से और प्राप्त से यजुर्वेदी मात्र का परत्व होने से सब यजुर्वेदी का यह उपलक्षण है। अवयुत्य[1] (पृथक् कर) या अनुवाद है विधायक नहीं है। जिससे विशेषविधि से उपसंहार हो जायगा। अनुवाद होने से लक्षणा का दोष नहीं है। अन्यथा तो उदयकाल के पर्व विशिष्ट उपाकर्म के उद्देश्य से कर्ता की विधि में या कर्तृविशिष्ट में औदयिकपर्वविधि में वाक्यभेद की आपत्ति हो जायगी। इसकारण से तैत्तरीयपद की अविवक्षा से सब यजुर्वेदियों के लिये उदयकालीनही पर्व का काल है—यह कहा है। यह ठीक नहीं है। क्योंकि उस परिशिष्ट में बह्वृचों के प्रति विधि नहीं ही है।

धनिष्ठा, प्रतिपदा तथा चित्रानक्षत्र से युक्त इत्यादि उनके लिये ही कहे हुए—परिशिष्ट में वेदान्तर धर्म विधियों के दर्शन से। यह अनुवाद भी नहीं है। कालिकापुराण से बह्वृच आदियों की भी उसमें आपत्ति हो जायगी। 'कुर्युः' इसका विधित्व न होने से उसका ही अर्थवादत्व में यह प्राप्तानुवाद है। क्योंकि—तैत्तरीयशाखावालों के गृह्य में उसकी विधि है जिससे अनुवाद हो जायगा और वाक्यभेद नहीं होगा। तैत्तरीयपदमात्रका या कर्ममात्रका उद्देश्य के न होने से हविरार्त्यादिके उद्देश्यस्वरूप का मध्य में प्रवेश उद्देश्यत्व का अयोग है। आठवें साल में ब्राह्मण का उपनयन संस्कार करे। इसकीतरह अगत्याविशिष्ट के उद्देश्य है। अन्यथा उत्तरार्ध में बह्वृचपद की अविवक्षा की आपत्ति से श्रवण का सर्व साधारणरीति से आपत्ति हो जायगी। इसीलिए हेमाद्रिमतही मार्गदर्शक है।

इदं च 'शिष्यानध्यापयत आवसथ्येऽग्नौ, अनध्यापयतो नाधिकार इति कर्कः । श्रावण्यामपि ग्रहणादिदुष्टायां कातीयभिन्नैः प्रौष्ठपद्यां कार्यम् । तैस्तु श्रावणपञ्चम्यां-संक्रान्तिग्रहणं वापि पौर्णमास्यां यदा भवेत् । उपाकृतिस्तु पञ्चम्यां कार्या वाजसनेयिभिः ॥ इति स्मृतिमहार्णवे वाजस-नेयिग्रहणादिति हेमाद्रिः । इदं च स्वसूत्रोक्तकालपरत्वाद्बह्वृचपरमपि ।

और इस उपाकर्म को 'शिष्यान् अध्यायत आवसथ्येऽग्नौ' आवसथ्याग्नि में हवन करे जो शिष्यों

[1]—समुदाय से एक वस्तु को अलगकर प्रशंसा करना अवयुत्यानुवाद—कहते हैं।

को पढ़ाना है। जो शिष्यों का नहीं पढाता है उसे अधिकार नहीं है यह कर्कमत है। श्रावणी भी ग्रहण आदि से दूषित हो जाय तो कातीयों से भिन्न प्रौष्ठपदी (श्रावण्यां प्रौष्ठपद्यां वा इत्युक्तेः। परन्तु येषां गृह्ये श्रावण्यसंभवे श्रवणहस्तपञ्चम्यानुक्तेस्तैस्तत्र कर्तव्यम्। तयोरप्यसंभवे भाद्रपौर्णमास्यां तद्गतहस्तपञ्चयोर्वा कार्यम्, येषां गृह्ये ते नोक्ते तैर्भाद्रपद्येव ग्राह्या वाजसनेयिभिरिति) में करे। वे लोग तो श्रावणशुक्ल पञ्चमी-तिथि में करें।

जब पौर्णमासीतिथि में संक्रान्ति या ग्रहण हो तो वाजसनेयी शाखावाले पञ्चमीतिथि को उपाकर्म करें। क्योंकि यह स्मृतिमहार्णव में वाजसनेयीग्रहण से—यह हेमाद्रिमत है और यह सूत्रोक्त (सूत्र में कहे हुए) काल पर (समयबोधक) होने से बह्वृचपरकही है।

साङ्ख्यायनैस्तु हस्ते कार्यम्। आपस्तम्बैराथर्वणैश्च प्रौष्ठपद्याम्। यत्तु बौधायनः—'श्रावण्यां पौर्णमास्यामाषाढ्यां वोपाकृत्य' इत्यूचे, तत् प्रौष्ठपद्यामपि दोषे आषाढ्यां कार्यमित्येवमर्थं, तच्छाखीयविषयं वा।

सामगास्तु श्रावणे हस्ते कुर्युः। बह्वृचाः श्रवणे चैव हस्तर्क्षे सामवेदिनः। इति निर्णयामृते गोभिलोक्तेः। सोऽप्युत्तरः।

शाखायनों का कहना है कि–हस्तनक्षत्र में करे। आपस्तम्ब तथा आथर्वणशाखावाले प्रौष्ठपदी में करें। जो बौधायन ने कहा है कि—श्रावण या आषाढमास की पूर्णिमा में उपाकर्म करे यों कहा है। वह प्रौष्ठपदी में भी दोष होनेपर आषाढी में करे यही अर्थ है। वह उस शाखाके विषयमें कहा है। अर्थात्–बौधायन लोग वार्षिक समाख्या को बांधकर आषाढी में करें। सामवेदी लोग तो श्रावण और हस्त में करें। बह्वृचशाखावाले तो श्रवणनक्षत्र में तथा सामवेदी शाखावाले हस्तनक्षत्र में करें–यह निर्णयामृत में गोभिल ने कहा है। वह भी उत्तम है।

धनिष्ठाप्रतिपद्युक्तं त्वाष्ट्रऋक्षसमन्वितम्। श्रावणं कर्म कुर्वीरन् ऋग्यजुःसामपाठकाः॥ इति मदनरत्ने परिशिष्टोक्तेः।

मदनरत्न में परिशिष्ट ने कहा है कि—धनिष्ठा, प्रतिपदा तथा चित्रानक्षत्र से युक्त हो तो ऋग्वेद-पाठी, यजुवेदपाठी और सामवेदपाठी ब्राह्मण श्रावणीकर्म करे।

गार्ग्योऽपि—सिंहे रवौ तु पुष्यर्क्षे पूर्वाह्णेऽविवरे बहिः। छन्दोगा मिलिताः कुर्युरुत्सर्गं स्वस्वछन्दसाम्॥ शुक्लपक्षे तु हस्तेन उपाकर्मापराह्णिकम्॥ इति।

अविवरे=ग्रहादिदोषहीने। विचरेदिति पाठोऽज्ञानकृतः। (पुष्यर्क्षे पूर्वाह्णे उत्सर्गः। अपराह्णिकमुपाकर्मेत्यन्वयः।)

गार्ग्य ने भी कहा है कि—सिंह के सूर्य में, पुष्यनक्षत्र में ग्रहणादि दोष से हीन (संक्रान्त्यादिदोष से हीन) समय में पूर्वाह्णकाल में, बाहर अपने-अपने वेदों का उत्सर्ग मिलकर करे।

शुक्लपक्ष (सिंह के सूर्य रहने पर) में तो हस्तनक्षत्र में अपराह्णकाल में उपाकर्म करे। अविवरे—का अर्थ ग्रहादिदोषहीन है। 'विचरेत्' यह पाठ अज्ञान से किया है।

उपाकरणं नाम पक्षद्वयेऽपि स्वाध्यायपाठस्य स्वीकारः। तथा च सूत्रम्—'षण्मासानधीयीत' इति। एवं च यथागृह्यमुपाकर्म कृत्वा सार्धांश्चतुरः पञ्च षड वा मासान्मुत्सर्जनकालवाशाद् व्यवस्थया स्मृतिसिद्धानध्यायपरिहारेण शुक्लकृष्णपक्षयोः स्वाध्यायमधीयीरन्, अनध्यायेष्वङ्गानि। उत्सर्जनं च यथापूर्वं पक्षद्वयेऽपि स्वाध्यायपाठस्य त्यागः। उत्सर्जनोत्तरं शुक्लपक्षेष्वेव वेदाध्ययनविधानात्।

उपाकरण नाम तो दोनों पक्ष में भी स्वाध्यायपाठका स्वीकार है। उसमें सूत्र है—छः महिना अध्ययन करे। इसप्रकार और गृह्य में उपाकर्म को कर साढे चार मास, पांचमास या छः मासों में उत्सर्जनकाल के वश में व्यवस्था से स्मृतिसिद्ध अनध्याय परिहार से शुक्ल और कृष्ण पक्षों में वेद पढें और अनध्याय में अंगों को पढे।

और उत्सर्जन को यथापूर्व दोनों पक्ष में भी स्वाध्यायपाठ का त्याग है। क्योंकि—उत्सर्जनोत्तर शुक्लपक्ष में ही वेदाध्ययन का विधान है।

तथा च मनुः—यथाशास्त्रं तु कृत्वैवमुत्सर्गं छन्दसां बहिः। विरमेत् दक्षिणीं रात्रिं यद्वाऽप्येकमहर्निशम्॥ अत ऊर्ध्वं तु छन्दांसि शुक्लेषु नियतः पठेत्॥ इति। अन्यस्तु विशेषः पूर्वमेवोक्तः।

और मनु ने कहा है कि—जैसा शास्त्र में जहाँ है वैसा ही वेदों का उत्सर्ग बाहर करके ही पक्षिणी[1] रात्रि या अहर्निश एक दिन आराम करे।

इसके बाद तो शुक्लपक्षों में नियमितरूप से वेदों को पढे। अन्य तो विशेष (मलमास में सामवेदियों का प्रथम उपाकर्म निषेध है इत्यादि। पहले ही कह चुके हैं।

(वनस्थादिभिरपि उपाकर्मोत्सर्जने विचारः)

प्रयोगपारिजाते गोभिलः—उपाकर्मोत्सर्जनं च वनस्थानामपीष्यते। धारणाध्ययनाङ्गत्वाद् गृहिणां ब्रह्मचारिणाम्॥ उत्सर्जनं च वेदानामुपाकरणकर्म च। अकृत्वा वेदजप्येन फलं नाप्नोति मानवः॥ सर्वथा लोपे तु कृच्छ्र उपवासश्च। 'वेदोदितानां नित्यानाम्' इति मनुनाऽभोजनोक्तेः। एवमुत्सर्गेऽपि।

प्रयोगपारिजात में गोभिल का वचन है कि—उपाकर्म (ग्रहणधारणब्रह्मयज्ञपारायणादिकरणहेतुकर्मविशेषः, उपाकर्म। तत्त्यागहेतुकर्मविशेषः उत्सर्जनम्), वानप्रस्थ, गृहस्थ और ब्रह्मचारियों को धारणाध्ययन करना चाहिये। क्योंकि वेदों का धारण और अध्ययन यह उनका अङ्ग है। वेदों का उत्सर्जन, उपाकर्म को न करने से वेदपाठ का फल मनुष्य प्राप्त नहीं करता है।

सर्वथालोप में कृच्छ्रव्रत और उपवास[2] है। मनु ने कहा है कि—वेदों में कहे हुए नित्यकर्मों के त्याग कारण अभोजन कहा है इसप्रकार उत्सर्ग में भी है। यहाँ पर प्रसंग से ही उत्सर्ज कहते हैं। वह पौषमास के रोहिणी नक्षत्र में या पौषमास के कृष्णपक्ष की अष्टमीतिथि को करे।

(प्रसङ्गादत्रैवोत्सर्जनकथनम्)

अथ प्रसङ्गादत्रैवोत्सर्जनमुच्यते। तच्च पौषमासे रोहिण्यां तत्कृष्णाष्टम्यां वा कार्यम्। पौषमासस्य रोहिण्यामष्टकायामथापि वा। जलान्ते छन्दसां कुर्यादुत्सर्गं विधिवद्बहिः॥ इति याज्ञवल्क्योक्तेः। श्रावण्यां प्रौष्ठपद्यां वोपाकृतौ क्रमेण पौषशुक्लप्रतिपदि माघशुक्लप्रतिपदि वा कार्यम्। 'अर्धपञ्चमान्मासानधीयीत' इति तेनैवोक्तेः। अर्धः पञ्चमो येषु सार्धचतुर इत्यर्थः।

याज्ञवल्क्य कहा है कि—पौषमास के रोहिणीनक्षत्र में या पौषमास के कृष्णपक्ष की अष्टमी में जल के समीप [3]गांव के बाहर विधिवत् वेदों का उत्सर्ग करे। श्रावणमास[4] की पूर्णिमा या भाद्रपदमास की पूर्णिमा को उपाकर्म करने पर क्रम से पौषशुक्ल प्रतिपदाको या माघशुक्ल प्रतिपदाको उत्सर्जन करे। साढे[5] चार महिना अध्ययन करे—यह उन्होंने कहा है।

१—मनुः—यथाशास्त्रं तु कृत्वैवमुत्सर्गंच्छन्दसां बहिः। विरमेत्पक्षिणीं रात्रिं यद्वाऽप्येकमहर्निशम्॥ अत ऊर्ध्वं तु छन्दांसि शुक्लेषु नियतः पठेत्। वेदाङ्गानि रहस्यं च कृष्णपक्षेषु संपठेत्॥

२—अनयोर्नित्यत्वात्तल्लोपे प्रायश्चित्तं सर्वथा इति कृच्छ्रः। पाकयज्ञलोपे कृच्छ्रविधानात्। वेदोदितानां नित्यानां कर्मणां समतिक्रमे स्नातकव्रतलोपे च प्रायश्चित्तमभोजनम्॥

३—जलान्ते छन्दसां कुर्याद्बहिरुत्सर्जनं द्विजः। इत्युत्तरार्धे ग्रामाद्बहिरित्यर्थः।

४—पुष्ये तु च्छन्दसां कुर्याद्बहिरुत्सर्जनं द्विजः। माघशुक्लस्य संप्राप्ते पूर्वाह्णे प्रथमेऽहनि। पुष्ये—पौषे मासि। यदा श्रावण्यामुपाकर्म तदा पौषशुक्लप्रतिपदि, यदा भाद्र्यां तदा माघशुक्लप्रतिपदीत्यर्थः।

५—अर्धः पञ्चमो येषु इति विग्रहः। सार्धाश्चत्वार इत्यर्थः। श्रावण्यां प्रौष्ठपद्यां वाऽप्युपाकृत्य यथाविधि। युक्तश्छन्दांस्यधीयीत मासान्विप्रोऽर्धपञ्चमान्॥

यत्तु हारीतः—'अर्धपञ्चमान्मासानधीत्योर्ध्वमुत्सृजेत्, पञ्चार्धपष्ठान्वा' इति, तदाषाढ्युपाकर्मविषयम्। बौधायनास्तु—पौष्यां माध्यां वा कुर्युः। 'पौष्यां माघ्यां वोत्सृजेत्' इति तत्सूत्रात्। तैत्तिरीयैस्तु तैष्यां कार्यम्। 'तैष्यां पौर्णमास्यां रोहिण्यां वा विरमेत्' इति तत्सूत्रात्। बह्वृचैस्तु माघ्यां कार्यम्।

जो हारीत ने कहा है कि—साढे पांचमास पढकर उत्सर्ग करे—साढ़े पाँच मास पढ़कर उसे वह आषाढमास में होनेवाले उपाकर्म के विषय में जानना चाहिये।

बौधायनों का कहना है कि—पौषपूर्णिमा या माघीपूर्णिमा को उत्सर्ग करे। यह उनके सूत्र से कहा है। तैत्तरीयशाखावाले तो—पौषमास की पूर्णिमा में या रोहिणीनक्षत्र में उत्सर्ग करे। बह्वृचशाखावाले तो माघीपूर्णिमा को करें।

अध्यायोत्सर्जनं माध्यां पौर्णमास्यां विधीयते। इति कारिकोक्तेः। कातीयास्तु भाद्रपदे कुर्युः। उत्सर्गश्चेतदा तिष्यतिथ्यां प्रौष्ठपदेऽपि वा। इति कात्यायनोक्तेः।

सामगास्तु सिंहार्के पुष्ये कुर्युः। तथा च 'सिंहे रवौ तु' इति गार्ग्यवचनं पूर्वमुक्तम्। सर्वैरुपाकर्मदिने वा कार्यम्।

पुष्ये तूत्सर्जनं कुर्यादुपाकर्मदिनेऽथ वा। इति हेमाद्रौ खादिरगृह्योक्तेः। यदा सिंहस्थे सूर्ये सति तन्मध्यस्थहस्तनक्षत्रात्प्राक् पुष्यः कर्कटस्थो भवति तदा तस्मिन्पुष्ये उत्सर्गं कृत्वा तदुत्तरहस्ते उपाकर्म सामगाः कुर्युः।

कारिका में कहा है कि वेदाध्ययन का उत्सर्ग माघमास की पूर्णिमा को विधान है। कातीयों ने कहा है कि—भाद्रपदमास में करें।

कात्यायन ने कहा है कि—तिष्य (पौष) मासतिथि में या भाद्रपदमास की पूर्णिमा में उत्सर्ग करे। सामवेदियों का कहना है कि—सिंह के सूर्य पुष्यनक्षत्र में करे और सिंह के सूर्य में करे—यह गर्गवचन पहले कहा गया है या सब लोगों को उपाकर्म दिन में करना चाहिये।

हेमाद्रि में खादिरगृह्यसूत्र का कथन है कि—पुष्यनक्षत्र में या उपाकर्म दिन में उत्सर्जन करे। जब सिंहस्थ सूर्य के होने पर उसके मध्यस्थ हस्तनक्षत्र के पहले पुष्य कर्क के सूर्य (सिंह के सूर्य में नहीं) हो तो उस पुष्य में उत्सर्ग को कर उसके उत्तर हस्तनक्षत्र में सामवेदीगण पुष्यकर्म करें।

मासे प्रौष्ठपदे हस्तात्पुष्यः पूर्वो भवेद्यदा। तदा च श्रावणे कुर्यादुत्सर्गं छन्दसां द्विजः॥ इति तत्रैव परिशिष्टोक्तेः। अत्र द्वावपि सौरौ मासौ ज्ञेयौ। तेषां सौरस्यैवोक्तेः।

वहीं पर परिशिष्ट ने कहा है कि—भाद्रपदमास में हस्तनक्षत्र हो तथा जब उसके पूर्व पुष्य नक्षत्र हो तो तब श्रावणमास में वेदों का उत्सर्ग ब्राह्मण करें।

(उपाकर्मणि उत्सर्गे चानध्यायविचारः)

अत्र विशेषमाह कार्ष्णाजिनिः—उपाकर्मणि चोत्सर्गे यथाकालं समेत्य च। ऋषीन् दर्भमयान् कृत्वा पूजयेत्तर्पयेत्ततः॥ इति। 'उपाकर्मण्युत्सर्गे च त्रिरात्रं पक्षिणीमहोरात्रं वानध्यायः' इति मिताक्षरायामुक्तम्।

यहाँ पर दोनों सौरमास जानना चाहिये। क्योंकि उनका सौरमास ही कहा है।

यहाँ पर विशेष[1] कार्ष्णाजिनि ने कहा है कि—उपाकर्म तथा उत्सर्ग में यथासमय इकट्ठा होकर कुशाओं के ऋषियों को बनाकर पूजन एवं तर्पण करे।

उपाकर्म में और उत्सर्जन में तीन रात पक्षिणी या अहोरात्र अनध्याय होती है। यह मिताक्षरा में कहा है।

१—ऋक्शाखी नैव कुर्वीत स्वकीयं परशाखया। प्रमादाद्यपि कुर्वीत पुनः संस्कारमर्हति॥ यत्र नास्ति स्वशाखोक्तम्, ऋक्शाखोक्तं समाचरेत्। पुनर्नार्हति संस्कारमन्यदाऽर्हति चेत पुनः॥ यजुःशाखाविधानेन बह्वृचैर्यदि कर्म तत्। कृतं चेत्तर्हि तत्कर्म पुनः कुर्याद्यथाविधि॥ ऋक्शाखाविधिना कर्म यदिस्यादन्यशाखिनाम्। न तत्कर्म पुनः कुर्यादिति यज्ञविदां मतम्॥

(अथ नदीनां रजोदोषाभावकथनम्)

अत्र नदीनां रजोदोषो नास्ति । 'उपाकर्मणि चोत्सर्गे रजोदोषो न विद्यते । इति गार्ग्योक्तेः ।

यहाँ पर रजोदोष नदियों का नहीं है । गार्ग्य ने कहा-है कि उपाकर्म और उत्सर्ग में रजोदोष नहीं होता है ।

(अथ रक्षाबन्धनकथनम्)

अत्रैव रक्षाबन्धनमुक्तं हेमाद्रौ भविष्ये—(सम्प्राप्ते श्रावणस्यान्ते पौर्णमास्यां दिनोदये । स्नानं कुर्वीत मतिमान् श्रुतिस्मृतिविधानतः ॥ उपाकर्मादिकं प्रोक्तमृषीणां चैव तर्पणम् । शूद्राणां मन्त्र-रहितं स्नानं दानं च शस्यते ॥) उपाकर्मणि कर्तव्यमृषीणां चैव पूजनम् । ततोऽपराह्णसमये रक्षा-पोटलिकां शुभाम् ॥ कारयेदक्षतैः शस्तैः सिद्धार्थैर्हेमभूषितैः ॥ इति ।

अत्रोपाकर्मानन्तर्यस्य पूर्णातिथावार्थिकस्यानुवादो न तु विधिः । गौरवात् प्रयोगविधिभेदेन क्रमायोगाच्छूद्रादौ तदयोगाच्च । तेन परेद्युरुपाकरणेऽपि पूर्वेद्युरपराह्णे तत्करणं सिद्धम् ।

यहाँ पर ही रक्षाबन्धन हेमाद्रि में भविष्यपुराण में कहा है कि-श्रावणमास के अन्त में प्राप्त होने पर पौर्णमासी के सूर्योदय में श्रुति-स्मृतिविधान से बुद्धिमान् स्नान करे ।

उपाकर्म आदि तथा ऋषियों का तर्पण करे और शूद्रों का मन्त्ररहित स्नान तथा दान कहा है । उपाकर्म में ऋषियों का पूजन करना चाहिये । तदनन्तर अपराह्णसमय में शुभ रक्षा करनेवाली पोटलिका करे । वह अक्षत, सरसों तथा सुवर्ण से युक्त हो ।

यहाँ पर उपाकर्म के अनन्तर का पूर्णातिथि में वार्षिक का अनुवाद है, विधि नहीं है । गौरव से प्रयोगविधिभेद से क्रम के अयोग से शूद्रादि में उसका अयोग है । उससे पर दिन उपाकरण में भी पहले दिन अपराह्ण में उसका करना सिद्ध है ।

(अथ भद्रायां रक्षाबन्धनविचारः)

इदं भद्रायां न कार्यम् । भद्रायां द्वे न कर्तव्ये श्रावणी फाल्गुनी तथा । श्रावणी नृपतिं हन्ति ग्रामं दहति फाल्गुनी ॥ इति सङ्ग्रहोक्तेः । तत्सत्त्वे तु रात्रावपि तदन्ते कुर्यादिति निर्णयामृते ।

इसको भद्रा में नहीं करना चाहिये. संग्रह ने कहा है कि-भद्रा में श्रावणी और फाल्गुनी नहीं करना चाहिये । श्रावणी राजा का नाश करती है और फाल्गुनी ग्राम का दहन करती है ।

उसके (भद्रां विना चेदपराह्णे तदा परा । तत् सत्त्वे तु रात्रावपीत्यर्थः ।') रहने पर तो रात्रिमें भी उसके अन्त में करे-यह निर्णयामृत में कहा है ।

(अथ प्रतिपद्युक्तायां पौर्णमास्यां रक्षाबन्धनविचारः)

इदं प्रतिपद्युतायां न कार्यम् । नन्दाया दर्शने रक्षा बलिदानं दशासु च । भद्रायां गोकुलक्रीडा देशनाशाय जायते ॥ इति मदनरत्ने ब्रह्मवैवर्तात् ।

इसको प्रतिपदा से युक्त न करे । मदनरत्न में ब्रह्मवैवर्तपुराण का मत है कि—नन्दा के दर्शने में रक्षादशा में बलिदान और भद्रा में गोकुल की क्रीडा देश के नाश के लिये होती है ।

भविष्ये—उपलिप्ते गृहमध्ये दत्तचतुष्के न्यसेत्कुम्भम् । पीठे तत्रोपविशेद्राजाऽमात्यैर्युतश्च सुमुहूर्ते ॥ तदनु पुरोधा नृपते रक्षां बध्नीत मन्त्रेण ।

भविष्यपुराण में कहा है कि—घर के मध्य में उपलेपन होने पर चार कुंभों को रखें । शुभमुहूर्त में अमात्यों के साथ राजा वहाँ पीठपर बैठ जाय । उसके बाद पुरोहित मन्त्र से रक्षा को बांध दे ।

(अथ भद्रावर्ज्यग्रहणादिनेऽपि रक्षाबन्धनविचारः)

इदं रक्षाबन्धनं नियतकालत्वाद्भद्रावर्ज्यग्रहणदिनेऽपि कार्यं होलिकावत् । ग्रहसंक्रान्त्यादौ रक्षानिषेधाभावात् । सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने । इति तत्कालीनकर्मपर एव न त्वन्यत्र । अन्यथा होलिकायां का गतिः । अत एव—

नित्ये नैमित्तिके जप्ये होमे यज्ञक्रियासु च। उपाकर्मणि चोत्सर्गे ग्रहवेधो न विद्यते ॥ इति नियतकालीने तदभाव इति दिक्। उपाकर्मणि तद्दिनभिन्नपरं तत्र तन्निषेधादित्युक्तं प्राक्।

क्योंकि यह रक्षाबन्धन नियत समय पर होने से भद्रा को छोड़कर ग्रहणादिन में भी करे होलिका की तरह। ग्रहण और संक्रान्ति आदि में रक्षानिषेध का अभाव है।

सब वर्णोंका ही राहु के दर्शन में सूतक होता है। यह तत्कालीन कर्मपरक ही है अन्यत्र नहीं है। अन्यथा होलिका में क्या गति होगी। इसलिये—नित्य, नैमित्तिक, जप, होम, यज्ञक्रिया, उपाकर्म और उत्सर्ग में ग्रहण का वेध नहीं होता है। इसप्रकार नियतकाल में उसका अभाव है। उपाकर्म में वह दिन भिन्नपरक है उसमें उसका निषेध है। यह पूर्व में कह चुके हैं।

(अथ रक्षाबन्धने मन्त्रकथनम्)

मन्त्रस्तु—येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबलः। तेन त्वामपि बध्नामि रक्षे मा चल मा चल॥ ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैरन्यैश्च मानवैः। कर्तव्यो रक्षिताचारो द्विजान् सम्पूज्य शक्तितः ॥ इति।

मन्त्र तो यह है कि—रक्षाबन्धनाभाव के कारण महाबली दानवेन्द्र राजा बलि बांधा गया। हे रक्षे, इसप्रकार से आपको बाँधता हूँ तुम न चलना न चलना। ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, शूद्र अन्य मानवगण शक्ति से ब्राह्मणों का पूजन कर रक्षाका आचार करें।

(अथ हयग्रीवोत्पत्तिकथनम्)

अत्रैव हयग्रीवोत्पत्तिः। तदुक्तं कल्पतरौ—श्रावण्यां श्रवणे जातः पूर्वं हयशिरा हरिः। जगाद सामवेदं तु सर्वकल्मषनाशनम् ॥ स्नात्वा सम्पूजयेत्तं तु शङ्खचक्रगदाधरम् ॥

यहाँ पर ही हयग्रीव की उत्पत्ति कल्पतरु में कही है कि—श्रावणी में श्रवणनक्षत्र के पहले समय में हयग्रीव हरि का जन्म हुआ। संपूर्ण पापों को नाश करने वाले सामवेद को कहा। स्नान कर उस शंख, चक्र, गदाधारी का पूजन करे।

(अत्र श्रवणादिकर्म)

अत्राश्वलायनेन श्रवणाकर्मोक्तम्। 'श्रावण्यां पौर्णमास्यां श्रवणाकर्म' इति। तत्रास्तमययोगिनी ग्राह्या। 'अस्तमिते स्थालीपाकं श्रपयित्वा' इति सूत्रात्। अत एव निशीष्टेर्दर्शप्रयोगान्तःपातनियमात्तदङ्गैः प्रसङ्गसिद्धिरुक्ता द्वादशे। अन्यथा परेद्युः प्राप्तौ कः प्रसङ्गः प्रसङ्गस्य।

आश्वलायन ने श्रवणाकर्म कहा है। श्रावणी की पूर्णिमा में श्रावणाकर्म करे। इससे अस्त[1]मय योगिनी (पूर्णिमा) ग्रहण करे। अस्तमितसमय में स्थालीपाक का श्रवण करे-इससूत्र से इसलिये रात्रि के यज्ञ में अमावास्या के प्रयोग में मध्य मे आये हुए नियम से उसके अंगों से प्रसंगसिद्धि द्वादश में कही है। अन्यथा दूसरे दिन प्राप्तिका कौन प्रसंग था।

केचित्तु—(याज्ञिकास्तु) पौर्णिमादर्शशब्दयोः पर्वान्तक्षणवदहोरात्रवाचित्वात्तत्रैव कर्मकालव्याप्तिर्ग्राह्यति विकृतित्वाच्छेषपर्वेच्छन्ति।

कोई तो—(याज्ञिकमत से) पौर्णमासी तथा अमावास्यापर्व के अन्तक्षणवाले अहोरात्र वाचकत्व होने से उसी में हो कर्म काल की व्याप्ति ग्रहण करे। विकृति से शेषपर्व की इच्छा करते हैं।

(अथ श्रावणादिमासचतुष्टयकृष्णाद्वितीयासु-अशून्यशयनव्रतकथनम्)

श्रावणादिमासचतुष्टयकृष्णपक्षद्वितीयासु अशून्यशयनव्रतम्। तत्र चन्द्रोदयव्यापिनी, दिनद्वये तत्त्वे परेति निर्णयामृते। इति श्रावणमासः।

श्रावण आदि चार मासों के कृष्णपक्ष की द्वितीया में अशून्यशययव्रत होता है। उसमें चन्द्रोदय[2] व्यापिनी ग्रहण करे। दो दिन हो तो [3]पराग्रहण करे–यह निर्णयामृत का कथन है।

१—स्मृतिसंग्रहे–एकभक्ते दिवानक्ते निशि चन्द्रोदयव्रते। तिथिस्तात्कालिकी ग्राह्या पारणे त्वपरा तिथिः। (२) चन्द्राय वाऽर्घ्यो दातव्यो दध्यक्षतविभूषितः। इति चन्द्रोदये चन्द्रार्घ्यदानविधानात्। (३)चतुर्ष्वसितपक्षेषु मासेषु श्रावणादिषु। अशून्यालयं व्रतं कुर्याजायया तु फलाधिकम् ॥ अत एव दिनद्वये तदभावेऽपि परा। मासश्च पूर्णिमान्तः। हेमाद्रिणा तथा व्याख्यानात्।

(स्नानकाले महासङ्कल्पकथनम्)

(कन्यादाने नदीस्नाने महासंकल्पमाचरेत्)

ॐ अस्य श्रीमन्महाभगवतः समस्तजगदुत्पत्ति-स्थिति-लयकारणस्य, रक्षा-शिक्षा-विचक्षणस्य, प्रणतपारिजातस्य अच्युतानन्तानिवार्च्यवीर्यस्य अखिललोकपालनपरायणस्य श्रीमदादिनारायणस्य नित्य-निरतिशय-निरुपम-निरवधिकाचिन्त्या-परिमित महिम-सहित-मायाशक्त्या भ्रियमाणानां क्रमाद् दशगुणोत्तरैः पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशाहङ्कारमहदव्यक्तात्मकैः सप्त-भिरावरणैः परिवेष्टितानामनेककोटिब्रह्माण्डानामेकतमे अस्मिन् महति ब्रह्माण्डमण्डले आधारशक्ति-वराह-कूर्मानन्तानामुप-रिभागप्रतिष्ठितानाम् अतल-वितल-सुतल-तलातल-रसातल-महातल-पातालाख्य-सप्तलोकानामूर्ध्वभागे भूर्लोक-भुवर्लोक-स्वर्लोक-महर्लोक-जनोलोक-तपोलोक-सत्यलोक-सप्तलोकाख्य-षड्लोकस्याधोभागे भूर्लोके महाकालायमानश्रीफणिराजशेषस्य सहस्रफणामण्डलविधृते ऐरावत-पुण्डरीक-वामन-कुमुदाञ्जन-पुष्पदन्त-सार्वभौम-सुप्रतीकाख्याष्टदिग्दन्तिशुण्डादण्डोत्त-म्भिते बहिरन्धतमसाऽऽवृतेन अन्तःसूर्यप्रकाशितेन लोकालोकाचलेन वलयिते चक्रवाल-शैलवलयित-सुवर्ण-भूम्यन्तःस्थित-शुद्धोदक-क्षीर-दधि-सर्पिःसुरेक्षु-लवणाख्यमहार्णवपरिवृते जम्बू-प्लक्ष-पुष्कर-शाक-क्रौञ्च-कुश-शाल्मल्याख्यसप्तद्वीपानां मध्ये जम्बूद्वीपे स्वर्णप्रस्थ-चन्द्रक-श्वेतावर्त-रमणक-सिंहल-महारमणक-पारसीक-पाञ्चजन्य-लङ्का-मलयाश्व-भद्रकेतु-पुष्कर-ऋषभ-रैवत-पारावार-रम्य-निम्लोचनीयास्यकृतमालाख्याष्टादशोपद्वीपविराजिते अयोध्या-मथुरा-माया-काशी-काञ्ची अवन्ती-द्वारवत्यशोकवती-भोगवती-सिद्धवत्यमरावती-तेजोवती-संयमिनी-रक्षोवती-सिन्धुवती-गन्धवत्यलकावती-यशोवती प्रभृत्यनेकपुण्यपुरीविराजिते इन्द्राग्नि-यम-निर्ऋति-वरुण-वायु-कुबेरेशानाख्याष्टदिक्पालपालिते अनलानिल-प्रत्यूष-प्रभास सोमाध्वर-ध्रुवाऽऽपाख्याष्टवसु-विराजिते, सूर्य-सोम-भौम-बुध-गुरु-शुक्र-शनि-राहु-केत्वाख्यनवग्रहपालिते, आवह-निवह-संवह-अनुवह-प्रवह-उद्वह-परिवहाख्य-सप्तमरुत्सञ्चारसंजीवीतजीवकदम्बे, विन्ध्यारण्य-दण्डकारण्य-चम्पकारण्य-नैमिषा-रण्य-द्वैतारण्य-गुह्यारण्य-देवदारुवन-इक्षुवन-कदलिकारण्यवनारण्यदशारण्यपरिमण्डिते, शिव-शम्भु-पिनाकि-गिरिश-हर-स्थाणु-भर्ग-भैरव-सदाशिव-कपालीश्वराख्यैकादशरुद्रविद्योतिते, मित्रार्यम-त्वष्टृ-धातृ-विवस्वदरुण-भगांशुभदिन्द्र-पर्जन्य-विष्णु-पूषाख्य-द्वादशादित्यप्रकाशिते, भिन्दिपाल-दण्ड-भुशुण्डि-नालक-मुसल-चक्र-लवित्र-काल-शक्ति-द्रुघण-बाण-स्थूण-शक्ति-तोमर-परिघ-पट्टिश-मौष्टिक-कुन्त-दशदण्डक-प्रास-पाश-मुद्गर-शतघ्नी-सीर-गदा-गोशीर्ष-मयू-रवी-यापन-पिनाक-असि-धेनुक-आस्तरणहस्तामुक्ताख्यद्वात्रिंशदायुधमण्डितदोर्दण्ड-श्रीराम-जामदग्न्य-दिलीप-अङ्गा-गय-अम्बरीष-शशबिन्दूशिरीषमान्धातृ-मरुत्त-भरत-ययाति-पृथु-भगीरथ-रन्तिदेव-सुहोत्राख्य-षोडशभूपालपालिते, विशा-लाक्षी-मीनाक्षी-कामाक्षी-सिंहिका-शङ्करी-कुब्जिका-महालक्ष्मी-महादेवी-महाकाली-पार्वती-सुप्रभा-भ्रमराम्बिका-विन्ध्य-वासिनी-योगिनी-हिमरूपिणी-माणिक्यदेवी-पूर्णिकाख्याष्टादशपीठदेवीसमलङ्कृते, यम-नियम-प्राणायामाध्याहार-ध्यान-धारण-समाध्यष्टाङ्गयोगनिष्ठागरिष्ठ-वशिष्ठ-वाल्मीकि-विश्वामित्र-जमदग्नि-च्यवन-दुर्वासः-कपिल-मौद्गल्य-कौण्डिन्य-कश्यप-गार्ग्य-गौतमाङ्गिरस-दक्ष-पराशर-जैमिनि-पतञ्जलि-कण्व-बौधायनाश्वलायन-कात्यायन-द्राह्यायण-वैशम्पायन-जा-बालि-मार्कण्डेय-माण्डव्य-भरत-सनक-सनन्दन-सनत्कुमार-सनत्सुजात-सौनकाद्यनेकमुनिविराजिते, मलय-महेन्द्र-सह्य शक्तिमत्-ऋक्षवत्-विन्ध्य-पारियात्रेति सप्तकुलाचलवलयिते, ऋष्यमूक-मतङ्ग-किष्किन्ध-मूजवत्-हिरण्यशृङ्गाख्यपञ्चमहा-नागसमधिष्ठिते, वेदवेदाङ्गोपाङ्गन्याय-काव्यालङ्कार-नाटक-गान-कवित्व-कामशास्त्र-द्यूतनैपुण्य-देशभाषाज्ञान-लिपिकर्म वाचक-समस्तावधान-धर्मशास्त्र-शकुन-सामुद्रिक-रत्नपरीक्षा-स्वर्णरीक्षाऽश्वलक्षण-गजलक्षण-मल्लविद्या-पापकर्म-दोहन-गन्धवाद-धातुवाद-खनिवाद-रसवाद-अग्निस्तम्भ-जलस्तम्भ-वायुस्तम्भ-वश्याकर्षण-मोहनोद्वेषण-विद्वेषणोच्चाटन-मारण-कालवञ्चन-वाणिज्यपाशुपाल्य-कृष्यासवकर्म-लावुक-युद्ध-मृगया-रतिकौशल-अदृश्यकरणी-चित्र-लोह-पाषाणदारुचर्माम्बरक्रिया-चौर्य-औषधसिद्धि-घुटिकासिद्धि-इन्द्रजाल-महेन्द्रजालाख्य-चतुःषष्टिविद्या विशदायमाननिरवद्य-विद्वज्जनविद्योतिते, अङ्ग-वङ्ग-कलिङ्ग-काश्मीर-काम्बोज-कामरूप-सौवीर-सौराष्ट्र-महाराष्ट्र-नेपाल-केरल-सिंहल-चोल-पाञ्चाल-कोसल-कुन्तल-ज्वाला-साल्व-मगध-मालव-मत्स्य-वत्स-मद्र-मैन्द्र-सिन्धु-सैन्धव-आन्ध्र-गान्धार-लाट-विराट-कर्णाटक-द्रविड-पाण्ड्य-पुलिन्द-पारसीक-वाल्हीक-बर्बर-विदर्भ-केकय-कुरु-किरात-दशार्ण-हूण-कोङ्कण-यवन-शूरसेन-गुर्जर-विदेह-चेदि-भोज-अवन्ताख्य षट्पञ्चाशत्-देशसमलङ्कृते, भागीरथी-भीमरथी-सरस्वती-गौतमी-नर्मदा-यमुना-कृष्णा-वेणी-वेणुका-तुङ्गभद्रा-चन्द्रभागा-वरुणा-मलापहारिणी-कावेरी-कपिला-कौकिनी-कृतमाला-विपाशा-तापिनी-पुर्णिका (पूर्णा)-ताम्रपर्णी-वेगवती-हेमवती-वेत्रवती-नेत्रवती-विशोका-कौशिकी-गण्डकी पुण्यदाद्यनेकमहानदीविराजिते वाराणसी-चितम्बर-श्रीशैल-अहोबल-वैङ्काचल-श्रीरङ्गसेतु-जम्बकेश्वर-कुम्भ

कोण—हालास्य—गजारण्य—रामनाथ—पुरावर्तपुर—अनन्तशयन—अगरगिरि—नीलगिरि—गोवर्धनगिरि—गयाप्रया-गाद्यनेकपुण्यक्षेत्रसंयुक्ते, हरिश्चन्द्र—नल—कुरु—कुत्स—पूरूरवःसगर—कार्तवीर्याख्यषट्चक्रवर्तिपरिपालिते सावित्री—सत्यवती—दमयन्ती—मदयन्ती—लोपा—मुद्रा—सुकन्या—केशिनी—सुशीला—अनुसूया—अरुन्धती—संदोहसमलङ्कृते सुन्दरतर—चन्दन—मन्दार—कोविदार—कुटज—वट—पिपल—कूर्पर—कदली—प्रभृत्यनेकानोकह-निवह-निरन्तर—मनोहर—नन्दनवन—क्रीडावह—क्रीडावन—विहरदेव—दानव—गन्धर्व—किन्नर—किम्पुरुष—सिद्ध—साध्य—विद्याधर—राक्षसादि—दिव्यजननिवाससमलङ्कृत—बिन्दुमुकुन्दमकरन्दकलिन्दवैकङ्कतादिशिखरीगणभासुरमेरुधराधरस्य दक्षिणदिग्भागे इन्द्र—कसेरु—ताम्र—गभस्ति—पुन्नाग—गन्धर्व—सौम्य—वरुण—भरताख्यनवखण्डानां मध्ये भरतखण्डे श्रीमद्भगवतःसाक्षाद्यज्ञलिङ्गस्य विष्णोस्त्रैविक्रमे वामपादाङ्गुष्ठनखनिर्भिन्नोर्ध्वाण्डकटाहविवरेण अन्तःप्रविष्टबाह्यजलधारास्तच्चरणपङ्कावनेजनारुणकिञ्जल्कोपरञ्जिताया अखिलजगदघमलापहोपस्पर्शनायाः सुमेरुमूर्ध्न्यधिब्रह्मस्तभं पत्तनाच्चतुर्धाभिद्यमानाया, विष्णुपद्या हेमकूटादिमार्गेण दक्षिणदक्षिणपयोधिं प्रविशतानदाख्येन स्रोतसा पूते धनुराकारे नवसहस्रयोजनविस्तीर्णे ब्रह्मावर्तैकदेशे कर्मभूमौ पञ्चाशत्कोटियोजनविस्तीर्णे भूमण्डले कुवलयकोशाभ्यन्तरकोशवत्स्थितजम्बूद्वीपकर्णिकायितस्य, समेरुमुत्तरेण नील—श्वेत—शृङ्गहिरण्मयोत्तरकुरुसंज्ञकवर्षमर्यादागिरीणां दक्षिणतो निषध—हेमकूट—हिमालयानां हरिवर्ष-किंपुरुष-भारतवर्षमर्यादागिरीणां पूर्वापरयोश्च गन्धमादनमाल्यवतोर्धनुर्वत्संस्थितभद्राश्वकेतुमालमर्यादाशैलयोर्मध्ये चतुरस्रेलावृतोपशोभिते लङ्कोज्जयनी कुरुक्षेत्रादिकायाभुवोमध्यरेखायाः पूर्वदिग्भागे कावेरी—मलयाचलराम-सेतूनामुत्तरदिग्भागे श्रीशैल-हेमकूट—किष्किन्धा—गरुडाचलवेङ्कटाचलारुणागिरिहस्तिगिरिप्रभृति—पुण्यशैलवतिदण्डकारण्ये कुमारिकान्तेत्रान्तर्वर्तिश्रीमदविमुक्तवाराणसीक्षेत्रे श्रीमद्विश्वेश्वरपालितराजधान्यां समस्तनान्दभृङ्गि-प्रमथगणमहाविष्णुवाग्मौव्यासाघृष्टिर्भिविघ्नविनायकदण्डपाणिकालभैरवादिभिश्च संसेवितायां सालोक्यादिचतुर्विधमुक्तिप्रदायां श्रीमदुत्तरवाहिन्या गङ्गायाः पश्चिमे तीरे विराजमानायां सकलकल्याणभूमौ अनेककोटिब्रह्माण्डनायकस्यविराड्रूपिणो भगवतो लक्ष्मीपतेर्महापुरुषस्य शेषपर्यङ्कशायिनः क्षीरनिधिमध्यमध्यासितस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य तन्नाभिस्थानसरोरुहाधिवासिनो देवमनुष्यतिर्यगादिसकलजगत्स्रष्टुःसकलदेवनिषेःचराचरात्मकानखिलप्रपञ्चनिर्माणकपटनालसूत्रधारस्य शारदनारदसच्छायवाग्देवतानिरन्तरनिर्गलविहरणविलासभवनायमानवदनारविन्दस्य सरसतरसारसनिकरभासुरमानससरोवरविहरणलालसमानसराजहंसवाहनस्य परार्द्धद्वयजीविन आद्यब्रह्मणः प्रथमपरार्द्धस्य पञ्चाशद्वत्सरेष्वतीतेषु द्वितीये परार्द्धे प्रथमवर्षे प्रथममासे प्रथमपक्षे प्रथमदिवसे अहनि द्वितीययामे तृतीयमुहूर्ते प्रथमप्राणायामसमये पार्थिव—कूर्म—प्रलय—अनन्त—श्वेत—वाराह—सावित्राख्य—सप्तकल्पानां मध्ये श्वेतवाराहकल्पे स्वायम्भुव—स्वारोचिष—उत्तम—तामस—रैवत—चाक्षुष—वैवस्वत—सूर्यसावर्णि—दक्षसावर्णि—रुद्रसावर्णि—ब्रह्मसावर्णि—इन्द्रसावर्णि—देवसावर्ण्याख्य—चतुर्दशमन्वन्तराणां मध्ये उदयादित्रयोदशघटिकास्वतीतासु स्वयंभुवादिषु षट्सु मनुषु अतीतेषु उपरितनघटिकायां सप्तमे वैवस्वतमन्वन्तरे सप्तविंशतिमहायुगेषु व्यतीतेषु अष्टाविंशतितमे महायुगे पुरुहूततामिन्द्रसमये कृतत्रेताद्वापरकलि-युगाख्य—चतुर्युगाणां मध्ये अष्टाविंशतिसहस्रोत्तरसप्तदशलक्षाब्दे कृतयुगे षण्णवतिसहस्रोत्तरद्वादशलक्षाब्दे त्रेतायुगे चतुःषष्टिसहस्रोत्तराष्टलक्षाब्दे द्वापरयुगे च समतीते द्वात्रिंशत्सहस्रान्वितचतुर्लक्षाब्दे वर्तमाने कलियुगे प्रथमचरणे श्रीविष्णोर्बौद्धावतारे युधिष्ठिरविक्रम-शालिवाहन-विजयाभिनन्दन—नागार्जुनादिशकपुरुष-मध्यपरिगणित—श्रीमन्नृपविक्रमार्कराज्याभिषेकसमयातीतऋतुनवत्युत्तरैकोनविंशतिशततमे वैक्रमेऽब्दे तदन्तर्गतशालिवाहनशकतोऽतीतषोडशशततमे शालिवाहनशके ब्राह्म—दैव—पित्र्य—प्राजापत्य—बार्हस्पत्य-सौर-चान्द्रसावन-नाक्षत्र-मानाख्य-नवमानमध्यपरिगणितेन बार्हस्पत्यमानेन प्रवर्तमाने प्रभवादीनां षष्ट्या संवत्सराणां मध्ये अदानाम्निसंवत्सरे दक्षिणायनोत्तरायणयोर्मध्येदक्षिणायने वसन्तादि-ऋतूनां मध्ये वर्षतौ चैत्रादिद्वादशमासमध्ये श्रावणमासे शुक्लपक्षे पौर्णमास्यांतिथौ अदोवासरे आश्विन्यादिसप्तविंशतिनक्षत्राणां मध्ये अदोनक्षत्रे विष्कुम्भादियोगानां मध्ये अदोयोगे ववादिकरणानां मध्ये अदःकरणे अदोराशिस्थे सूर्ये अदोराशिस्थे देवगुरौ अदोराशिस्थे भौमे बुधे शुक्रे शनौ राहौ केतौ एवं ग्रहगुणविशेषणविशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ अदोगोत्रः अमुकराशिः अमुकशर्माऽहं मम इह जन्मनि जन्मान्तरे वा नानायोनिषु ज्ञानतोऽज्ञानतश्च बाल्यकौमारयौवनवार्धकेषु जाग्रत्स्वप्न-सुषुप्त्यवस्थासु मनोवाक्कायकर्मभिः कामक्रोधलोभमोहमदमात्सर्यैः त्वक्—चक्षुः-श्रोत्र—जिह्वा—घ्राण-वाक्—पाणिपादपायूपस्थैः संभावितानां प्रकाशकृतब्रह्महत्या—सुरापान—सुवर्णस्तेय—गुरुतल्प-गाख्यानां महापातकानां तत्संसर्गाधनिपातकानां रहस्यकृत-ब्रह्महत्या-सुरापान-सुवर्णस्तेय-गुरुतल्पगाख्यानां महापातकानां तत्संसर्गित्वानुग्राहकत्वप्रयोजकत्वमित्रभावोपदेष्टृत्व—अनुमन्तृत्वप्रोत्साहत्वादिमहापातकप्रदिष्टातिपातकानां गुर्वाधिक्षेप—वदानन्दासुहृद्वधाधीतनाशादिब्रह्महत्यासमरूपपातकानाम् उत्कर्षानृतभाषणाभक्ष्यभक्षणरजस्वलामुखास्वादनादिसुरापानसमपातकानाम् अश्व—रत्न—मनुष्यहरण—निक्षेपहरण—देवहरण—भूमिधेनुहरणादिसुवर्णस्तेयसमरूपपातकानां, पितृष्वसृ, मातृष्वसृ—मातुलभार्या—ज्येष्ठभ्रातृपत्नी—मातुःसपत्नी—पितृव्यपत्नीभगिनी—दुहितृसखिभार्या—कुमारी—अज्ञाता अन्त्यजस्त्री—स्नुषा—नृपपत्नी—श्रोत्रियर्त्विगुपाध्यायाचार्यमित्रपत्नी—रजस्वला—शरणागता-हीनवर्णा-सयोनिजा-सगोत्रा-

स्त्रीगमनादिगुरुतल्पसमरूपपातकानां, सोमयागस्थक्षत्रियवैश्यवधअविज्ञातगर्भा–रजस्वला–अत्रिगोत्रा–दीक्षितस्त्रीगुर्विणीवधादिमहापातकसमरूपपातकानां, कलञ्जादिनिषिद्धभक्षण–कूटसाक्ष्य–सुहृद्बन्धनादि–परिवेदन–भृतकाध्ययनाध्ययन–पारदार्य–परिवित्य–वार्धुष्य–लवणविक्रय–स्त्री–शूद्र–विट्–क्षत्रियवध–निन्दितार्थोपजीवन–नास्तिक्य–व्रत–लोपकरण–सुतविक्रय–धान्य–पशुस्तेय–अयाज्ययाजन–पितृमातृसुतादित्याग–तड़ागारामविक्रय–कन्यादूषण–परनिन्दकयाजन–परिवित्तिकन्याप्रदान–कौटिल्य–आत्मार्थद्रुमच्छेदन–यन्त्रविधानव्यसन–आत्मविक्रय–अनाश्रमवास–परान्नपुष्टि–असच्छास्त्राभिगमन–आकराधिकारिता–भार्याविक्रयाद्युपपातकानाम्, अजाविखरोष्ट्रमृगेभमर्मनादि महिषाश्ववधादिसङ्करीकरणानाम्, कृमिकीटवयोवधमद्यानुगतद्रव्यभोजनफलेक्षुकुसुमस्तेयादिमलिनीकरणानाम्, मद्यगन्धाघ्राणब्राह्मणपीडनसामान्य–स्त्रीमैथुनादिजातिभ्रंशकरणानाम्, विहितकर्मत्याग–निषिद्धाचरण– इन्द्रियनिग्रह–परमर्मोद्घाटन–अशौचस्नानसन्ध्यावन्दनजपहोमपञ्चमहायज्ञरहितभोजनदिवाद्विवारभोजन–सस्यच्छेदन–तरुगुल्मलतादिच्छेदन–क्लीव–व्रात्य–परिवेतृपरिवित्ति–शूद्र–सेवक–वार्धुषिक–निजकर्मविहीनान्नभोजन–यत्यन्नभोजन–यतिप्रेरितान्न–यतिपक्वान्न–यतिपात्रस्थापनान्न–यतिस्पृष्ट–यतिदापितान्नभोजन–शूद्रस्पृष्ट–शूद्रदृष्ट–शूद्रानुमत–शूद्राधिकृत–शूद्रपाचितान्नभोजन–ग्रहणकालपक्वान्नभोजन–पर्वकालरात्रिभोजन–अनिवेदितान्नभोजन–हस्तपरिविष्टान्नादिभोजन–पिशाचोद्देश्यभोजन–वटाश्वादिनिषिद्धिपात्रभोजन–ग्रामयाजक–देवलक–वृषलीपति–शाक्त–पतितान्नभोजन–भिन्नकांस्यपात्रभोजन ताम्रालाबुदारुपाषाणमृत्पात्रभोजन–रजस्वला चाण्डालादिवाक्यश्रवणभोजन–दग्धपूतिगन्धिभुक्तोच्छिष्टभोजन–गणान्नभोजन–दीक्षितपुरोहितान्न–शूद्रपात्रस्थान्नभोजन–शूद्रभुक्तशेषान्न–दम्पतीभुक्तशेषान्नभोजन–जैनबौद्धचार्वाकसखब्राह्मणान्नभोजन–खरोष्ट्राजाविमहिषीक्षीरपानविवत्साविगतगर्भाऽनिर्दशगोक्षीरादिपान–स्तन्यपान–कृसरसंयावपायसापूपपुरोडाशादिवृथाभक्षणकेशकीटादिमिश्रितान्नभोजन–तादृग्जलपान–वातक–कलञ्जरक्तगृञ्जरक्तमूलकादिभक्षणदिवास्वाप–दिवामैथुन–दासीगर्भिणीतिर्यग्योन्यादिगमन – रथ्याराजमार्गवृक्षच्छायादेवालयगृहाङ्गणगोष्ठजलाशयादिस्थलरेतोविण्मूत्रकरण–पितृमात्राचार्यादिशुश्रूषाराहित्य–दर्शमहालयादिश्राद्ध–विरस्मरण–ग्रहणादिस्नानराहित्य–औपसनाग्नि–सन्ध्या–बलिदेव–पूजा–तर्पणादित्याग–नग्नस्नानकच्छराहित्य–स्वग्रामदेवोत्सवादर्शन–ग्रामकुलाचारोल्लङ्घन–गुर्वादिकार्योल्लङ्घन–ब्राह्मणतिरस्कार–अमेध्यनीलीवस्त्रादिधारण–गुरुमातृपितृहरिहराचार्यनिन्दाश्रवण–सद्वृत्तिपरित्याग–उत्कोछजीवनसाभिलाषविषयदर्शन–दुर्मरणसंकल्प–नग्नस्त्रीनिरीक्षण–हीनवर्णाभिवादन–चार्वाकपाषण्डान्त्यजादिपूजितदेवाभिवादन–परोपतापकरण–परोपकारनाश–तृणगुल्मादिनाश–चाण्डालस्पर्शन–दर्शनसंभाषण–पङ्क्तिभेदकरणम्लेच्छमध्यनिवास–म्लेच्छद्रव्योपभोग–नियमरहितवेदशास्त्राध्ययनाध्ययन–वाक्पारुष्य–मित्रस्वामिसुहृदाचार्येष्टभार्यादेवतामातृपित्रादितश्च–परमात्मस्मरणराहित्यादीनां महापातकादीनां प्रकीर्णान्तानां नवविधानां बहुविधानां सर्वेषां पापानामपनोदार्थं छन्दसामनध्यायाध्ययन–रथ्यासंचरदध्ययन–शूद्रश्रृण्वदध्ययन–अन्त्यजश्रृण्वदध्ययन–अशुचिदेशाध्ययन–आत्माशुच्यध्ययन–पतितश्रृण्वदध्ययन–एकमात्रिक–द्विमात्रिक–त्रिमात्रिकार्द्धमात्रिकाणुमात्रिकपरमाणुमात्रिकोच्चारणवरणविरहित–कण्ठ्य–जिह्वामूलीयोपध्मानीयनासिक्यानुसार उपधानासिक्योच्चारणविरहित–दन्त्योष्ठ्यतालव्यमूर्द्धन्ययमक्रमजविरहितोच्चारण–एकद्वित्रिचतुःपञ्चसंयोगोच्चारणविरहित–अयःपिण्ड–दारुपिण्ड–ऊर्णापिण्ड–ज्वालापिण्ड–मृत्पिण्ड–वायुपिण्ड–वज्रपिण्डोच्चारणविरहित–प्रचिताबलकारात्रिविधोष्मोच्चारणविरहित–स्फोटन–करिणी–कुर्विणी–हरिणी–हारिणी–हंसपदेति पञ्चविधस्वरभक्तियथार्थोच्चारणविरहित–घात–निर्घात–वज्रिअहरप्रहरार्धरङ्ग–सर्वरङ्गेत्याद्यनेकस्वरवर्णदोषविवेकविरहितोच्चारणाद्यनेकप्रत्यवायपरिहारार्थम्, अधीतानामध्यापितानामध्याप्यानामध्येष्यमाणानां स्थानविच्छेद–क्रोशघोषण–दन्तविवृति–दुर्वृत्त–द्रुतोच्चारित–पूर्वसवर्ण–परसवर्णादिलोप–विलम्बितोच्चारित–श्लिष्टास्पष्टविघट्टनोच्चारण–पदच्छेद–कण्डिका–उरस्य–कण्ठ्य–तालव्य–मूर्द्धन्य–दन्त्य–ओष्ठ्य–नासिक्य–कण्ठ्यनासिक्य–तालव्यनासिक्य–मूर्धन्यनासिक्य–दन्तनासिक्य–ओष्ठ्यनासिक्य–कण्ठ्यतालव्य–कण्ठ्यौष्ठ्य–दन्त्यौष्ठ्य–रेफोदात्तानुदात्तस्वरित–ह्रस्वदीर्घप्लुतद्विर्भावादिव्यत्ययोच्चारण–माधुर्याक्षरव्यक्तिहीनत्व–जाति–वर्ण–गोत्र–प्रयत्नादिहीनत्वादिनाश्रुतीनां यद्यातयामस्त्वंरिपहारद्वारा पुनराप्यायनार्थं नवोपनीतानां ग्रहणार्थमितरेषामुत्सृष्टानां पुनर्ग्रहणार्थं यथावद्यद्देवतोपासनया यथावत्फलप्राप्त्यर्थं देवब्राह्मणसपितृसन्निधौ गङ्गाभागीरथ्यां प्रवाहाभिमुखो नाभिमात्रजले उत्सर्गोपाकर्मनिमित्तं गणस्नानं करिष्ये ।

(प्राचीन व्यवस्थाओं का संग्रह)

(स्वर्गीय–महामहोपाध्याय श्री पं० विद्याधर जी गौड द्वारा लिखित)

(उपाकर्मोत्सर्गनिर्णयः)

उपाकर्मोत्सर्गविषये कर्तव्यपदार्थेषु, अग्नौ, अधिकारे च बहवो बहुधा विवदन्ते, अतस्तन्निर्णयार्थं यत्यते ।

(उपाकर्मशब्दार्थः)

तत्र प्रथमं तावत् उपाकर्म–शब्दार्थो निरुच्यते । सूत्रकारास्तावत् "अथातोऽध्यायोपाकर्म" (पार० गृ० सू० २।१०।१)

इत्यादिना 'अध्यायोपाकर्म' इत्यनेन कर्मेदं अध्यायोपाकर्म इति व्यवहरन्ति । मन्वादयोऽपि—"अध्यायानामुपाकर्म" "वेदापाकरणे प्राप्ते" "छन्दसामुपाकरणम्" "अध्यायोपाकर्म" (आप० गृ० ५।१।२), 'श्रावण्यां पौर्णमास्यामध्यायमुपाकृत्य" (आप० धर्म० १।३।१) इत्यादिपदेन व्यवहरन्ति । अत एव कर्मणोऽस्य "वेदोपाकरणम्" इति वा "अध्यायोपाकरणम्" इति वा मुख्यं नामधेयम् । 'उपाकर्म' इति तु एकदेशेन व्यपदेशः । अध्यायोपाकर्म—अधीयन्त इत्यध्याया वेदाः । "स्वाध्यायोऽध्येतव्यः" इत्यत्र अध्यायशब्दस्य तथैव व्युत्पत्तेः शास्त्रेषु दर्शनात् । अध्यायानामुपाकर्म प्रारम्भोऽध्यायोपाकर्म । एवं च वेदाध्ययनारम्भ एव अध्यायोपाकर्मपदार्थ इति फलितम् । अत एव वीरमित्रोदयकारोऽपि "अधीयन्त इत्यध्याया वेदाः, तेषामुपाकर्म प्रारम्भः" इत्येवं व्याचख्यौ । 'उपाक्रियते प्रारभ्यते वेदस्याध्ययनं येन कर्मणा तदुपाकरणं नाम कर्मविशेषो विद्यासंस्कारकः" इत्युक्तं गोभिलगृह्यभाष्येऽपि ।

"अध्यायो नाम वेदः स्यात्तस्योपाकरणं पुनः । आरम्भणमिति प्रोचुर्भवनागादयः स्फुटम् ॥" इति । "उपाकरणशब्देन वेदारम्भणमुच्यते" इति च गृह्यकारिकायाम् । इदं च कर्म केवलेनोपाकर्मपदेनापि व्यवह्रियते ग्रन्थेषु । "उपाकरणोत्सर्जने व्याख्यास्यामः" (आप० गृ० ५।१।१) "प्रौष्ठपदीर्ठं० हस्तेनोपाकरणम्" (गो० गृ० ३।३।१) "अथोपाकरणम्" (शां० गृ० ४।५।१)

"उपाकर्म न कुर्वन्ति क्रमात्सामर्ग्यजुर्विदः । उपाकृतिस्तु पञ्चम्यां कार्या वाजसनेयिभिः ॥" इति ।

(उत्सर्जनशब्दार्थः)

एवमुत्सर्जनपदार्थोऽपि श्रावण्यामारब्धस्य पौष्यां विवरणमेव । इदमपि च अध्यायोत्सर्ग-वेदोत्सर्गादिपदेन मुख्यतया व्यवहरणयोग्यमपि केवलोत्सर्जनपदेनापि व्यवह्रियते ।

(साङ्गस्यैवोपाकर्मणः कर्तव्यता)

यद्यप्यत्रोपाकर्मणि वेदाध्ययनस्यैव विधेयत्वात् तस्यैव प्राधान्यं प्रतीयते, तथापि केवलस्य तस्य प्रधानमात्रानुष्ठानस्य क्वचिदर्थानुष्ठानादर्शनात् साङ्गस्यैव कर्तव्यताप्रतीतेः साङ्गमेवेदं कर्मानुष्ठेयम् ।

(पारस्करमतेनोपाकर्मणि कर्तव्यपदार्थानां निरूपणम्)

तत्र पारस्करमते स्वगृह्योक्तविधानेन आज्यभागान्ते कर्मणि कृते प्रतिवेदं चतस्रो वेदाहुतयः, ततः सप्त अन्या आहुतयः, तत आचार्यकर्तृकास्त्रयोऽज्यधानहोमाः, ततः समिद्धोमः, आचार्येण सर्वेषामध्यायादीनां मन्त्राणां पठनम् , तत उत्तरतन्त्रमित्येतावन्तः पदार्था उपाकर्मण्यनुष्ठेयाः ।

(उत्सर्जने कर्तव्यपदार्थाः)

उत्सर्जने च उदकसमीपं गत्वा देवादीनां सन्तर्पणं सावित्र्याश्चतुर्वारमुच्चारणपूर्वकं "विरताः स्मः" (पा० गृ० सू० २) इति कथनम् , तत उपाकर्मवत्सर्वेषामध्यायादीनां मन्त्राणां पठनमित्येतावन्ति कर्माणि ।

(गणस्नानर्षिपूजनयोरुपाकर्मोत्सर्जनाङ्गत्वम्)

यद्यपि सूत्रकारमतपर्यालोचनया उपाकर्मण्युत्सर्गे च एतावन्त एव पदार्थाः कर्तव्यतया प्रतिभान्ति, तथापि स्मृत्यन्तरपर्यालोचनया गणस्नानमृषिपूजनं च उपाकर्मोत्सर्गाङ्गत्वेन विहितत्वात्कर्तव्यमेवेत्यवगम्यते—(ऋष्यादितर्पणं तूत्सर्जन एव) तथा च कात्यायनस्मृतिः—

"वेदाश्छन्दांसि सर्वाणि ब्रह्माद्याश्च दिवौकसः । जलार्थिनोऽपि पितरो मरीच्याद्या महर्षयः ॥
उपाकर्मणि चोत्सर्गे स्नानार्थं ब्रह्मवादिनः । पिपासूननुगच्छन्ति संहृष्टा ह्यशरीरिणः ॥
समवायश्च यत्रैषां तत्रान्ये बहवो मलाः । नूनं सर्वे क्षयं यान्ति किमुतैकं नदीरजः ॥" इति ।

"उपाकर्मणि चोत्सर्गे रजोदोषो न विद्यते' इत्यादिना चोपाकर्मोत्सर्जनयोः स्नानस्याप्यवश्यकर्तव्यता । आचार्यः शिष्याश्च गणशः सम्भूय यत्स्नानं कुर्वन्ति तद् गणस्नानम् , ऋषीणां तत्तन्मन्त्रद्रष्टॄणां यत्पूजनं तदृषिपूजनम् । अनेनैव प्रमाणेन गणस्नानमृषिपूजनं चोपाकर्मोत्सर्जनयोरुभयोरप्यङ्गमित्यपि सिध्यति ।

(उपाकर्मोत्सर्जनयोः कालः)

अनयोर्गृह्यान्तरे तत्तच्छाखिन उद्दिश्य विभिन्नाः काला विहिता यद्यपि, तथापि अस्माकं वाजसनेयिनां 'श्रवणेन श्रावण्यां पौर्णमास्याम् ।', 'श्रावणस्य पञ्चमीर्ठं० हस्तेन वा ।' (पार० गृ० सू० २।६।२, ३) इति सूत्राभ्यां उपाकर्मणः श्रावणी पूर्णिमा, श्रावणशुक्लपञ्चमी वा मुख्यकालतया विहिता । उत्सर्गस्य 'पौषस्य रोहिण्यां मध्यमायां वाऽष्टकायामध्यायानुत्सृजेयुः' (पार० गृ० सू० २।१२।१) इति सूत्रात् पौषकृष्णाष्टमी कालः । अतस्ते उभे अपि स्व-स्वकाले एवानुष्ठेये पृथक् पृथगिति मुख्यः पक्षः । यदि दैवान्मानुषाद्वा प्रतिबन्धात्पौषकृष्णाष्टम्यामुत्सर्गो नानुष्ठातुं शक्यते, तदा उपाकर्मदिन

एव प्रथमत उत्सर्गमनुष्ठाय तत उपाकर्मानुष्ठेयम्। 'पुष्ये तूत्सर्जनं कुर्यादुपाकर्मदिनेऽथवा' इति वचनात्। इदन्तु द्वितीयाद्युपाकर्मविषयम्। प्रथमोपाकरणस्तु ततः पूर्वमुपाकारणाभावेनोत्सर्गस्याप्रसक्त्या तस्मिन्दिने केवलमुपाकर्मैवानुष्ठेयम्।

(केवलमुत्सर्गकर्मणोऽनुष्ठानस्य निर्मूलत्वम्)

अनेनैव न्यायेन उपाकर्म अननुष्ठाय केवलमुत्सर्गकर्मणोऽनुष्ठानं क्वचिद् दृष्टं तन्निर्मूलमेवेति प्रतीमः। उत्सर्जनपदार्थो हि श्रवणयामारब्धस्य वेदाध्ययनस्य परित्यागरूप इत्युक्तं प्राक्, यदि पूर्वमारम्भ एव न स्यात् तर्हि कस्योत्सर्गः क्रियेत, अत उपाकरणमुत्सर्गश्चेति द्वयं तदधिकारिभिः कार्यम्, नान्यदुपाकरणमात्रमुत्सर्गमात्रं वा। अत एव 'अधीत्योत्सृजेयुः' (पार० गृ० सू० २।११।१०) इति भगवान् पारस्करोऽप्यवोचत्। किञ्च केवलोत्सर्गाचरणेऽप्युपाकर्माकरणे हेमाद्रयुक्तप्रायश्चित्तमपि न सङ्गच्छते। तथाहि—

"अकृत्वा ब्रह्मचारी वा द्विजो वा वेदसम्मतम्। एवं श्रावणकं होमं त्यक्त्वा यदिह वर्तते ॥
तप्तत्रयं व्रती कृत्वा गृहस्थोऽपि द्वयं चरेत्। कृत्वैतद्वार्षिकं प्रोक्तं शुद्धिमाप्नोति पूर्वजः ॥
प्रत्यब्दं यस्त्यजेत्कर्म श्रावणाख्यं पवित्रजम्। पतितः स तु विज्ञेयः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥" इति।

उपाकर्मोत्सर्जनयोस्त्रैवर्णिकानां त्रयाणामाश्रमिणां साग्निकानां निरग्नीनां चाधिकारः, अत्र च त्रैवर्णिकानां वेदाध्ययनाधिकारिणां यथाऽधिकारस्तथा ब्रह्मचारिगृहस्थ-वानप्रस्थानां त्रयाणामप्याश्रमिणामधिकारः।

"उपाकर्मोत्सर्जनञ्च वनस्थानामपीष्यते। धारणाध्ययनाङ्गत्वाद् गृहिणां ब्रह्मचारिणाम् ॥"

इति गोभिलवचदात्।

"वेदव्रतानि कृत्वैव विप्रो यश्चोद्वहेत्ततः। अधीयीत गृहस्थोऽपि नियमाद् ब्रह्मचारिणाम् ॥"

इति संस्कारगणपतौ वचनाच्च। 'समावृत्तो ब्रह्मचारिकल्पेन। यथान्यायमितरे। जायोपेयेत्येके' (३।४।११–१३) इत्याश्वलायनगृह्यसूत्रेषु गृहस्थानामपि ग्रहणाध्ययनविधानात् मन्वादावुपाकर्मणो गृहस्थधर्ममध्ये पाठाच्च। येन नियमविशेषेण युक्तो ब्रह्मचारी अधीयीत तेनैव नियमेन समावृत्तोऽप्यधीयीत। समावृत्तादितरे ब्रह्मचारिणस्तु यथान्यायं स्वविध्युक्तप्रकारेणाधीयीरन्, तथा जायोपेतो गृहस्थोऽपि ब्रह्मचारिवन्नियमोपेतोऽधीयीत। न च समावृत्त-गृहस्थयोर्ग्रहणाध्ययनाधिकारे समाप्य 'वेदं समाप्य स्नायात्' (पा० गृ० सू० २।६।१) इति विरुध्येतेति वाच्यम्; तस्य वचनस्य विद्यास्नातकविषयत्वात्। अतएव 'वेदं व्रतानि वा पारं नीत्वा ह्युभयमेव वा' इति पक्षद्वयोपन्यासो दर्शितः। ये नाम गृहस्था ग्रहणाध्ययनं न कुर्वते तेषां धारणाध्ययनाङ्गत्वेनापि उपाकर्मानुष्ठानम्। पूर्वोक्ते कात्यायनवचने धारणाध्ययनाङ्गत्वस्यापि श्रवणात्। "एतच्च ग्रहणाध्ययनं गृहस्थानामपि" इति हेमाद्रिश्च।

(अधिकारिनिर्णयः)

अत्राधिकारिविषये कर्काचार्या अन्यथैव मन्यन्ते। ते हि अध्ययनाङ्गत्वादुपाकर्मणः, तदन्तर्गतहोमानां गृह्याग्निसाध्यत्वात् यो नाम साग्निरध्यापयिता च स एवाचार्यः शिष्यैः साकमधिकारी, नान्योऽध्यापन्नाप्यनग्निः, साग्निरप्यनध्यापयन् इत्यभिप्रयन्ति। इदं हि तेषां, वचनम्—"अध्ययनमध्यायः तस्योपाकर्म स्वीकरणम्, तच्चाग्निमतोऽध्ययनप्रवृत्तस्यैव भवति, अतोऽध्यापयतोऽपि, निरग्नेः साग्नेरप्यनध्यापयतो नाधिकारः" इति। तदेवानुसृत्य अन्येऽपि केचन साग्नेरेवाधिकारं मन्वते। तत्र कर्मेदं लौकिकेऽग्नौ कर्तव्यं मा वा कर्तव्यमिति समनन्तरमेवाग्निनिर्णयनिरूपणावसरे निरूपयिष्यामः। सम्प्रति अनध्यापयतोऽधिकारोऽस्ति नवेत्येव विचारयामः।

"प्रत्यब्दं यदुपाकर्म सोत्सर्गं विधिवद् द्विजैः। क्रियते छन्दसां तेन पुनराप्यायनं भवेत् ॥
अयातयामैश्छन्दोभिर्यत्कर्म क्रियते द्विजैः। क्रीडमानैरपि सदा तत्तेषां सिद्धिकारणम् ॥"

इति कात्यायनमहर्षिवचनेन तत्तत्कर्मविशेषे, ब्रह्मयज्ञादौ पठ्यमानानां मन्त्राणामयातयामत्वसिद्ध्यर्थं च उपाकर्मोत्सर्जनयोरवश्यकर्तव्यता प्रतीयते।

"यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकामः। "यावज्जीवं दर्शपूर्णमासाभ्यां यजेत ॥" इतिवत्।

प्रत्यब्दमिति वीप्साश्रवणाच्च यावज्जीवं नित्यवत्कर्तव्यताऽपि प्रतीयते। स्मृतावस्यामाचार्यपदाश्रवणात् अधीतानां छन्दसाम्, तत्क्रियादिषु पठ्यमानानां च मन्त्राणां वीर्यतमत्वसिद्ध्यर्थमेव प्रतिवत्सरमुपाकर्मोत्सर्जनयोरविशेषेण विधानप्रतीतेर्यावज्जीवं केनाप्याचार्यसमीप एव वस्तुमशक्यत्वात् स्वतन्त्रेणापि पुरुषेणोपाकर्मोत्सर्जनाख्यमिदं कर्मद्वयं कर्तुं शक्यमित्यवगम्यते। तथैव सार्वदेशिकः शिष्टाचारोऽपि दृश्यते। न चाविशेषश्रुताया अस्याः स्मृतेः कर्कवचनेन सङ्कोच इति वाच्यम्; स्मृतिवचनस्य भाष्यवचनेन सङ्कोचानुपपत्तेः। अत एव "उपाकर्मोत्सर्जने ब्रह्मचारि-समावृत्त-वानप्रस्थ-गृहस्थैः सर्वैः कर्तव्ये", "त्रयाणामपि वर्णानां ब्रह्मचारि-गृहस्थान्यतराश्रमिणामपि ग्रहणाध्ययनाङ्गतया धारणाध्ययनाङ्गतया वाऽनुष्ठेयम्, वान-

प्रस्थाश्रमिणामपि धारणाध्ययनाङ्गतयाऽनुष्ठेयम्" इति धर्मसिन्धुस्मृतिकौस्तुभकारादयः। "प्रतिवर्षमेतत्कर्मद्वयं भेदेन तन्त्रेण वा विद्याकामैः सर्वैरप्यनुष्ठेयमेव" इति संस्कारगणपतौ च।

"अयातयामतां पूजां सारत्वं छन्दसां तथा। इच्छन्त ऋषयोऽपश्यन्नुपाकर्म ततो बलात्॥
तस्मात्षट्कर्मनित्येनात्मनो मन्त्रस्य सिद्धये। उपाकर्तव्यमित्याहुः कर्मणां सिद्धिमिच्छताम्॥"
इत्यादिवचनं चात्रानुकूलम्।

अत्र "कस्मिन्नग्नावुपाकर्मोत्सर्जने कर्तव्ये" इति विचारोऽवशिष्यते। तच्चाग्निमतोऽध्यापनप्रवृत्तस्येति वचनात् कर्काचार्याणामावसथ्येऽग्नावनुष्ठानमभिप्रेतम्, एतस्यायमाशयः–उपाकर्मणः सूत्रकारेण गृह्यमध्ये पाठात् गार्ह्याणां च कर्मणां गृह्याग्निसाध्यत्वात् उपाकर्मणोऽपि गृह्याग्निसाध्यत्वमेव। किञ्च कात्यायनेनापि छन्दोगपरिशिष्टे–

"न स्वेऽग्नावन्यहोमः स्यान्मुक्त्वैकां समिदाहुतिम्। स्वगर्भसत्क्रियार्थाश्च यावन्नासौ प्रजायते॥"

इति समिदाहुतेः स्वाग्न्यधिकरणकान्यकर्तृकहोमविषयनिषेधे समिदाहुतेरविषयत्वकथनात् "मुक्त्वैकां समिदाहुतिम्" इति सामान्यतः समिदाहुत्युपादानेऽपि अन्यस्याः कस्याश्चित् समिदाहुतेरप्रसिद्धत्वादुपाकर्मान्तर्गताया आचार्याग्न्यधिकरणिकायाः शिष्यकर्तृकसमिदाहुतेरेव ग्राह्यत्वावसायात्, उपाकर्मणस्तत्तद्बलादाचार्यावसथ्याग्नावेव कर्तव्यताप्रतीतेर्गृह्याग्निमात्रसाध्यमिदं कर्म, न तु निरग्नेरधिकार इति। इदमेव कर्कमतमवलम्बमाना धर्मसिन्धु-वीरमित्रोदय-रेणुकारिका-गृह्यकारिकाकारादयः। कात्यायनैस्तु-"आवसथ्येऽग्नावेव होतव्यं न लौकिकाग्नौ" (धर्मसिन्धौ) "उपाकर्मणि आचार्यस्याग्नौ समिदाहुतिर्यस्मात्। तेनाध्यापयतोऽपि निरग्नेः साग्नेरप्यनध्यापयतो नाधिकारः" (वीरमित्रोदये)

"अग्निमानधिकारीह नेतरः कर्कसम्मतिः। सम्यगध्ययने सोऽपि प्रवृत्तस्तस्य तत्क्रिया॥" (रेणुकारिकायाम्)

"अध्यायोपाकृतिं कुर्यात्तत्रौपासनवह्निना। इति। कर्मद्वयमिदं केचिल्लौकिकाग्नौ प्रकुर्वते॥"इति(गृह्यकारिकायाम्)

इति सुस्पष्टं साग्नेरेवाधिकारं समर्थयन्ते। एतद्वचनबलादेव लौकिकेऽग्नावनुष्ठानस्य अद्य यावत् शिष्टाचारपरिगृहीतस्याचारमूलकत्वं मन्यमानाः "यत्तु लौकिकेऽग्नौ तदनुष्ठानं तत्राचारमात्रं मूलम्" इति लिखन्ति हरिहरादयः।

(अग्निनिर्णयः)

अत्र प्रसङ्गादग्निनिर्णय उच्यते। तत्र मनुः (३।६७)—

"वैवाहिकेऽग्नौ कुर्वीत गार्ह्यं कर्म यथाविधि। पञ्चयज्ञविधानञ्च पक्तिं चान्वाहिकीं गृही॥" इति।

अत्र गृह्यशब्दो गृह्यसूक्तोक्तकर्मपरः। अत एव—

"स्मार्तं वैवाहिके त्वग्नौ श्रौतं वैतानिकाग्निषु। कर्म स्मार्तं विवाहाग्नौ कुर्वीत प्रत्यहं गृही॥
दायकालाहृते वाऽपि श्रौतं वैतानिकाग्निषु॥"

इत्यादिव्यास-याज्ञवल्क्यवचनगतः स्मार्तशब्दो गृह्यकर्मपर इत्यपरार्कोऽपि 'स्मार्तं गृह्योक्तं कर्म प्रत्यहं नित्यस्मार्तहोमपार्वणश्राद्धहोमादिरि'ति व्याचख्यौ। एतेन वचनजातेनेदं सिद्धं भवति श्रौतान्यग्निहोत्र-दर्शपूर्णमास-चातुर्मास्य-सोमयागादीनि श्रौताधाननिष्पन्नेष्वग्निषु कर्तव्यानि, गृह्योक्तानि च अष्टकादीन्यावसथ्याग्नावेव कर्तव्यानि। यानि च पौराणिकानि ग्रहयज्ञ-महारुद्र-शतचण्डी-विनायकशान्त्यादीनि शान्तिक-पौष्टिकानि कर्माणि तानि साग्नेरपि लौकिकेऽग्नावेव कार्याणि। एवं च सति "नौपासनश्रुतेः" (१।१।१६) इति कातीयश्रौतसूत्रव्याख्यानावसरे देवयाज्ञिकैः "भार्यादिरग्निर्दायादिर्वा तत्र गृह्याणि" इति गौतमधर्मसूत्रमुदाहृत्य तत्रत्यगृह्यपदस्य "गृहाय हितं गृह्यम्, गृह्यशब्दो दम्पतिपरः, अतो यद्दम्पत्योर्हितं दम्पतिसमवेतफलजनकं तत्सर्वमावसथ्याग्नौ कर्तव्यम्, नान्यद् गृह्योक्तमपि कर्म नामकरणादि स्वाग्नावनुष्ठातुं शक्यते। अत एव–

"न स्वेऽग्नावन्यहोमः स्यान्मुक्त्वैकां समिदाहुतिम्। स्वगर्भसत्क्रियार्थाश्च यावन्नासौ प्रजायते॥
अग्निस्तु नामधेयादौ होमे सर्वत्र लौकिकः। न हि पित्रा समानीतः पुत्रस्य भवति क्वचित्॥"

इति कात्यायनोऽपि। अत्र "न स्वेग्नौ" इत्यनेन दम्पतिगामिफलककर्मातिरिक्तानि कर्मणां स्वेग्नौ निषेधे प्राप्ते "मुक्त्वैकाम्" इत्यादिना तस्य प्रतिप्रसवः क्रियते। उपाकर्मणि शिष्यकर्तृका या समिदाहुतिः, सीमन्तोन्नयनादिका ये गर्भसंस्काराः, ते तु वचनात् जातेष्टिवत् स्वेऽग्नावेव कर्तव्याः। मुक्त्वैतानि कर्माणि अन्यद् गृह्योक्तमपि यजमानगामिफलकं न चेत् न स्वेऽग्नावनुष्ठेयानि" इत्यभिहितम्, तन्न युक्तिसहम्। दम्पतिशब्दस्य गृह्यवाचकस्य क्वचिदप्यश्रवणात्। सीमन्तोन्नयनादीनां पारस्कराचार्येण "पञ्चसु बहिः शालायाम्" (पार० गृ० सू० १।४।२) इत्यादिना शालातो बहिरेव विधानात् तेषामावसथ्याग्निसाध्यत्वे विना वचनमावसथ्याग्नेः स्वायतनबहिर्भावस्य निषिद्धत्वात्। अन्यथा "औपासनमरण्यं हृत्वा" (पा० गृ० सू० ३।८।३) इति शूलगवे बहिःशालायां प्रणयनविधानस्य वैयर्थ्यापत्तेः। अतः साग्नेरपि सीमन्तोन्नयनादिकं लौकिकाग्नावेव। न स्वेग्नाविति वचनं तु छन्दोगपरिशिष्टान्तर्गतत्वाच्छन्दोगपरमित्येवास्थेयम्। समिदाहुतिस्त्वन्यविषयैव। तेषामुपाकर्मणि समिदाहुतेरभावात्। एवञ्च तत्प्रतिप्रसवबलात् उपाकर्मण आवसथ्याग्निसाध्यत्वं प्रतीयते। इदमेव च

कर्काचार्याणामुपाकर्मण आवसथ्याग्निकथने मूलम्। किञ्च यानि गृह्योक्तानि कर्माणि तेषां सर्वेषां विशेषविधिविमुक्तानामावसथ्याग्निसाध्यत्वमेवाभिप्रेतम्, विशेषवचनमपि सूत्रकारेणैव यल्लिखितं स्यात्तदेवाचार्यैर्गृह्यते नान्यत्स्मृत्यन्तरोक्तमपि। यथा—उतूलपरिमेहादौ, तेषु हि "दावाग्निमुपसमाधाय" (पा० गृ० सू० ३।७।३) इत्यादिना सूत्रकारेणैव दावाग्न्यादिसाध्यत्वमुक्तम्। अत एव च श्राद्धस्यापि पार्वणादेः स्मृत्यन्तरेण लौकिकाग्निकर्तव्यतायां प्रतीयमानायामपि सूत्रकारानभिहितत्वात् स्मृत्यन्तरवचनमनादृत्य साग्नेरेव तत्राधिकारमभिप्रयन्ति कर्काचार्याः। परन्त्विदानीं निरग्नेरपि श्राद्धकर्मण्यधिकारः सर्वैरङ्गीक्रियते। खण्डितं च कर्कमतं गदाधर-निर्णयसिन्धुकारादिभिः। तद्वदेव उपाकर्मणोऽपि लौकिकाग्निसाध्यत्वमप्यङ्गीकर्तव्यम्। अत एव "औपासनवह्निना" इति तु "कर्मद्वयमिदं केचिल्लौकिकाग्नौ प्रकुर्वते" इति गृह्यकारिकोक्तलौकिकाग्निना विकल्प्यते। तत्र "अथाधयान्यैरन्वारब्धः" इति सूत्रात् सशिष्यत्वे तदधिकारिकस्याचार्याग्नौ नान्यस्याग्नावन्यो जुहुयादिति निषेधाल्लौकिक एव। तदभावे तु स्मार्त्त इति निगर्वः, इति निर्णयसिन्धावुक्तम्। वस्तुतस्तु यजुर्वेदित्वेऽपि, यथा तैत्तिरीयाणां साग्नीनामपि उपाकर्मोत्सर्जने लौकिकाग्नावेव कर्तव्ये इति नियमः शास्त्रविहितः, एवमेव कातीयानामपि इति भ्रमो मा भूत्, किन्तु यो नाम साग्निकः स नियमेन आवसथ्याग्नावेवोपाकर्मोत्सर्जने कुर्यात्, निरग्निस्तु लौकिकाग्नौ कुर्वन्न निवार्यते इत्येतत्तात्पर्यकं कर्कवचनमिति युक्ततरं प्रतीमः। तदयं निर्गलितोऽर्थः। कात्यायनीयानां साग्निकत्वे स्वेऽग्नावुपाकर्मानुष्ठेयम्, निरग्नित्वे तु "प्रत्यब्दं यदुपाकर्म" इत्यादिना नित्यत्वश्रवणात् नित्यस्य परित्यागे प्रत्यवायोत्पत्तेस्तत्परिहारार्थं पार्वणश्राद्धादिवत् लौकिकेऽग्नावपि कर्त्तव्यमेव न तु परित्याज्यम्। एवमुत्सर्गेऽपि। बह्वृचादीनां तु उपाकर्मण एकानेककर्तव्यतावधानात् यदा एक एव करोति तदा स्वेऽग्नौ, यदा तु आचार्यः शिष्या इत्यनेके मिलित्वा कुर्वन्ति तदा साग्नेरपि लौकिकाग्नावेव। उक्तञ्च स्मृतिकौस्तुभकारैः—"ब्राह्मणोऽपि यदाऽन्यैः सह कर्मकुर्यात्तदा लौकिकाग्नौ, अन्याग्नौ क्रियमाणेन कर्मणाऽन्येषां फलासम्भवात्। यदा त्वेकः कुर्यात्तदा स्वगृह्याग्नौ कुर्यात्। बाधकाभावे गृह्यकर्मणां तत्रैवानुष्ठानौचित्यात्।" इति। अतो निरग्निभिरपि अनध्यापयद्भिरपि स्वे स्वे जपादौ तत्तत्कर्मसु च प्रयुज्यमानानां मन्त्राणामयातयामत्वसिद्ध्यर्थं वीर्यवत्त्वसम्पत्त्यर्थं च प्रत्यब्दमुपाकर्मोत्सर्जने अवश्यमनुष्ठेये एवेति सिद्धम्।

(श्रावणीकर्मोपयोगिसंक्षिप्तनिर्णयः)

१—अथोपाकरणम्। तच्च श्रावण्यां पौर्णमास्यां श्रावणस्य शुक्लपञ्चम्यां वा कार्यम्। दिनद्वयेंऽशतो व्याप्तौ, परदिने संपूर्णसङ्गवव्याप्तौ एकदेशे सङ्गवव्याप्तौ च परदिने एव कार्यम् २—पूर्णिमायामर्धरात्रादर्वाक्संक्रान्तिर्ग्रहणं वा भवेत् तदा तद्दिने न कार्यं किन्तु श्रावणशुक्लपञ्चम्यां कार्यम् ३—श्रावणशुक्लपञ्चम्यां च दिनद्वयेंऽशतो व्याप्तौ परदिने संपूर्णसङ्गवव्याप्तौ एकदेशसङ्गव्याप्तौ वा परदिने एव कार्यम् अन्यथा पूर्वदिने कार्यम्। ४—अत्र भद्रादेर्न प्रतिबन्धकत्वम् भद्रायोगे रक्षाबन्धनस्यैव निषेधात्। एवं प्रतिपद्योगोऽपि न निषिद्धः। तस्य निर्मूलत्वादिति सिन्धुः। ५—सूतकादिना प्रतिबन्धे कालान्तरेऽपीदं कर्तुं शक्यते ६—अत्र ब्रह्मचारिणो गृहस्थस्य वनिनश्चाधिकारः। ७—स्मार्ताग्निमतः स्मार्तेऽग्नाविदं भवति निरग्निकस्य तु लौकिकेऽग्नौ यद्यप्यत्र निरग्नेर्नाधिकार इति कर्कादिभिरुक्तं तथापि बहुप्रामाणिकाचारोपष्टम्भात् कारिकाकारादिभिरुक्तत्वाच्च क्रियत एव ८—अस्य पूर्वाङ्गकालो मुख्यः तदभावे अपराह्णो गौणकालः। ६—अत्र यो ब्रह्मचर्यादि उपनयनान्तरं प्रथममुपाकर्म करोति स गणपतिपूजादिनान्दीश्राद्धान्तं कुर्यात् प्रथमप्रयोगेऽपि नाभ्युदयिकमिति प्रयोगदीपे। अत्र चतुर्दश सामान्याहुतयः त्रयोविंशतिः प्रधानभूता आज्याहुतयः। धानाहोमः। तिलहोमः। धानाप्राशनम्। दधिभक्षणम्। तत्र दधिसंस्काररहितमेव ग्राह्यम्। १०—धानाः प्राश्नन्तीति बहुवचनाद् ब्राह्मणैः सह कार्यमिति गम्यते। तेन ब्राह्मणानामपि संस्कारे सिद्धे तैर्न पृथगुपाकर्म कार्यं किन्तु गुरुणा सहैव। अतश्च ब्राह्मणाभावे एकाकिनाऽपि कार्यमेव कर्मणो नित्यत्वात्। ११—अत्र वैदिका संहिताया ब्राह्मणस्य चाध्यादीन् मन्त्रान् वदन्ति। तत्र मूलं तु अध्यायदीन् प्रब्रूयादिति सूत्रम्। १२—उपाकर्मानन्तरं मध्याह्नस्नान-तर्पण-बलिवैश्वदेवादीनि प्रयोगदीपे। १३—उत्सर्गस्तु पौषस्य रोहिणीनक्षत्रे माघकृष्णाष्टम्यामुपाकर्मदिने वा कार्यः। १४—उपाकर्म उत्सार्गश्च प्रतिवर्षं कार्यः। "प्रत्यब्दं यदुपाकर्म सोत्सर्गं विधिवद् द्विजैः। क्रियते छन्दसां तेन पुनराप्यायनं भवेत्॥ इति कात्यायनोक्तेः। १५—उपाकर्मशब्देन वेदारम्भ उच्यते। स च वेदारम्भः अस्माकं माध्यन्दिनानामुपाकर्मदिने न भवति किन्तु उपनयनदिने एव भवति। "एतदेव व्रतादेशेन विसर्गेषु" इति पारस्करेण उपाकर्मणः पृथग्वेदारम्भविधानात्। अन्येषां तु सर्वेषां नोपनयनदिने वेदारम्भः किन्तु उपाकर्मदिने एव। तेषामुपाकर्म यावत् सावित्र्यैव ब्रह्मयज्ञः। १६—उत्सर्गशब्देन अधीतानां वेदानामुत्सर्ग उच्यते। उपाकर्मानन्तरमुत्सर्गं यावद्वेदाध्ययनम्। उत्सर्गाननन्तमुपाकर्म यावत् शुक्ले पक्षे वेदाध्ययनं कृष्णेऽङ्गाध्ययनमिति क्रमः। १७—उत्सर्गकर्म बहिर्जलान्ते भवति। येषामुत्सर्गे होमो विहितस्तैर्गृहे होमं निर्वर्त्य ततः उदकान्ते उत्सर्गार्थं गन्तव्यम्। १८—उत्सर्गकर्मणि परिशिष्टोक्तनित्यस्नानविधिना नित्यस्नानमाचरन्ति। ततः स्नानाङ्गतर्पणं मध्याह्नसन्ध्यां तर्पणमिति क्रमः। १९—उत्सर्ग-

स्यापि पूर्वाह्ने मुख्यः कालः। २०—उपाकर्मोत्सर्गयोरेकदिनेनुष्ठाने आदावुत्सर्गः तत उपाकर्मेति क्रमः। २१—उपाकर्मणि अग्निस्थापनम्। कुशकण्डिका। आज्यहोमः। औदुम्बरसमिद्धोमः। धानाहोमः। तिलहोमः। धानादध्नोः प्राशनम्। वेदारम्भः। 'उभाकवी सहनोऽस्तु' इति जपः। इत्येतावद् भवति। २२—उत्सर्गे उदकान्तं गत्वा तर्पणमात्रं भवति कात्यायनानां नान्यत्। २३—उपाकर्मणि उत्सर्गे चोभयत्र वेदारम्भः (ब्रह्मयज्ञः) वारद्वयं कार्यः। उपाकर्मणि पारस्करसूत्रे अध्यायादीन् प्रब्रूयात्—इत्यनेन वेदाध्ययनविधानात्। उत्सर्गे च—"क्षपणं प्रवचनं च पूर्ववत्" इत्यनेन पुनर्वेदाध्ययनस्य विधानात्। दृश्यते चोभयत्र ब्रह्मयज्ञविधिः श्रवणीपद्धतौ। २४—स्नानविधिस्तु उत्सर्गाङ्गभूतः उदकान्तं गत्वा (पार० गृ०) अवगाह्य शां० गृ० इत्यादिना उत्सर्गे एव विधानात्। "देवतास्तर्पयति" "हुत्वाऽपोऽभ्यवयन्ति आश्वलायनगृह्ये। २५—दूर्वापामार्गाभ्यामपि मार्जनं शाङ्खायनगृह्येऽस्ति। धात्रीफलेन स्नानं च तत्रैवोक्तम्। २६—आश्वलायनानां स्नानस्य स्पष्टं वचनमस्ति। २७—स्नानाङ्गं पितृभ्यो जलं दद्यात्। "अथ स्नानाङ्गं पितृतर्पणम्" इत्यादि शाङ्खायनपरिशिष्टेन स्नानानाङ्गतर्पणमप्युक्तम्। २८—साम्प्रतमुत्सर्गकर्म श्रावण्यां पौर्णमास्यां क्रियते तत्रादौ उत्सर्गाङ्गं स्नानं क्रियते न ज्ञायते स्नानविधिरयं कुत आगतः। सूत्रादावनुक्तत्वात्। नित्यस्नानं तु परिशिष्टे वर्तते तदेव क्रियते इति मन्यामहे। एवं तर्पणमपि। २९—यदि तर्पणं पूर्वमेवानुष्ठितं तदा तु पुनर्नानुष्ठेयमिति कश्चित्। वस्तुतस्तु उत्सर्गकर्मणि विहितं पुनरप्यनुष्ठेयमेव। ३०—प्रथमोपाकर्म शुक्रास्तादौ न भवति। ३१—मलमासे उपाकर्म न भवति किन्तु शुद्धे। ३२—उत्सर्गदिने वृद्धसंप्रदायात् स्वीकृतेऽपि स्नाने न नित्यस्नानेविशेषः। ३३—उपाकरणदिने उत्सर्गकरणपक्षे उपाकरणस्यापि पूर्वाह्ने विहितत्वात् उत्सर्गोपाकरणयोर्द्वयोरपि पूर्वाह्न एव समाप्तिर्भवेत्तथा स्नानकाले मन्त्रविस्तारः कर्त्तव्यः। ३४—दूर्वापामार्गैर्धात्रीफलेन च मार्जने फलभूयस्त्वम्। ३५—अत्र केचित्पापनिवृत्तिकामाः संकल्पवाक्ये अनेकपातकानामुल्लेखनं कुर्वन्ति तदज्ञानमूलकम्। नहि केवलनिमज्जनमात्रेण पातकनिवृत्तिर्भवति। ३६—स्नानं त्वब्दैवतैर्मन्त्रैर्वारुणैश्च मृदा सह" इति वचनेन यद्यपि सामान्य उक्तं तथापि न सर्वे मन्त्रा ग्रहीतुं शक्यतेऽति प्रसङ्गात्। अतः सूत्रादौ ये प्रतिस्विकरूपेण परिगृहीतास्ते ग्राह्याः। ३७—"उपाकर्मणि चोत्सर्गे यथाकालं समेत्य च। ऋषीन् दर्भमयान् कृत्वा पूजयेत्तर्पयेद् द्विजः॥ इति कार्ष्णाजिनिवचनात् उपाकर्मणि उत्सर्गे च ऋषिपूजनं विहितम्। अत्र ऋषीनित्युक्तेः "कश्यपादीन् सप्तऋषीन् कृत्वा दर्भमयान् शुभान्। पूजयित्वा विधानेन तर्पयेच्छन्दसां गणम्॥ इत्युक्तेश्च अरुन्धती न कुशैः कार्या किन्तु अक्षतपुञ्जादौ तदावाहनम्। ३८—उत्सर्गे एव यद्यपि नित्यस्नानस्यप्राप्तिस्तथापि "सम्प्राप्ते श्रावणस्यान्ते पौर्णमास्यां दिनोदये। स्नानं कुर्वीत मतिमान् श्रुतिस्मृतिविधानतः॥ इति वचनात् उपाकर्मोत्सर्गयोः सह प्रयोगाच्च उभयाङ्गत्वेन स्नानमनुष्ठीयते। ३९—सप्तर्षयः—सप्तर्षिपूजने यद्यपि क्रमोऽनेकविधः स्मृतिषु दृश्यते तथापि "गौतमश्च भरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ कश्यपः। जमदग्न्यग्नी वसिष्ठः साध्वी चैवाप्यरुन्धती॥ पूजनीया विशेषेण वेदोत्सर्जनकर्मणि॥ इति क्रमः साम्प्रतं बहुत्र बहुभिरास्थीयते। ४०—"अपामार्गसंमिश्राणां कुशादीनां त्रिभिस्त्रिभिः। कुर्यात्सप्तऋषींश्चैव पूजयेच्च यथा विधि॥ इति वचनात् कुशैरपामार्गसंमिश्रैः सप्तऋषीन् कुर्वन्ति। ४१—अत्र यद्यपि "मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्" इति समग्रसंहितायाः समग्रब्राह्मणस्य च पाठः कार्य इति प्रतीयते, तथापि तदशक्तौ केवलमध्यायादिपाठः तत्प्रतीकमात्रस्मरणं वा क्रियते एवं सतिसम्भवे शतस्थानां कण्डिकानां संहितोक्तानां ब्राह्मणोक्तानां च प्रतीकमात्रं याज्ञिकैः संगृहीतम्। ४२—अत्र "कलशं स्थापयेत्तत्र मन्त्रैर्नानाविधैः शुभैः'। इति क्वचिद्वचनात् कुत्र चित् पद्धतौ कलशस्थापनमप्युक्तम्। ४३—ततो देवान् पितृंश्चैव तर्पयेत्परमाम्भसा। उपाकर्मणि वै प्रोक्तमृषीणां चैव तर्पणम्॥ इति पठन्ति एतदनुसारेण उपाकर्मण्यपि तर्पणं वदन्ति। ४४—उत्सर्गोपाकर्मणोः क्रमः—(१) प्रातःस्नानम्, (२) प्रातःसन्ध्या, (३) नित्यतर्पणम्, (४) षोडशमातृकापूजनम् (५) नूतनोपाकर्मकारिणो आभ्युदयिकश्राद्धं तच्च गुरुकर्तृकम् (६) उदकान्ते गमनम् (७) तीर्थप्रार्थना, (८) उत्सर्गोपाकर्माङ्गं नित्यस्नानविधिना स्नानम्, (९) स्नानाङ्गतर्पणम्, (१०) मध्याह्नसन्ध्या, (११) बृहदुपस्थानम्, (१२) उत्सर्गोपाकर्माङ्गं तर्पणम्, (१३) गणपतिपूजनम्, (१४) स्वस्तिवाचनम्, (१५) उभयाङ्गं ऋषिपूजनम्, (१६) उभयाङ्गं ऋषितर्पणम्, (१७) ब्रह्मयज्ञः (१८) इषेत्वादि पाठः, (१९) ऋषिश्राद्धम् (२०) यज्ञोपवीतदानम् (२१) यज्ञोपवीतसंस्कारः (२२) यज्ञोपवीतधारणम्, (२३ उपाकर्म (२४) हवनम्, (२५) ब्रह्मयज्ञः (२६) इषेत्वादिपाठः, (२७) उभाकवी, सहनोऽस्तु इति जपः (२८) रक्षाविधानम्।

(श्रावणीनिर्णयः)

वर्षेऽस्मिन् (संवत् १९८८) श्रावणी पूर्णिमा परेद्युः ३।५८ दण्डपरिमिता, पूर्वेद्युः ०।४७ एतत्पलेभ्योऽनन्तरं प्रवर्त्तते। कस्मिन्दिने उपाकर्मानुष्ठेयमिति संशये यजुर्वेदिनां प्रथमदिन एव कर्तव्यता प्रतीयते हेमाद्रि-निर्णयसिन्ध्वादिपर्यालोचनया। तथाहि—

उदये सङ्गवस्पर्शे श्रुतौ पर्वणि चार्कभे। कुर्युर्नभस्युपाकर्म ऋग्यजुःसामगाः क्रमात्।

इति वचनेन उदयसङ्गवोभयव्यापिपर्वादिके कर्मणो मुख्यः कालः उपाकर्मण इत्यवगम्यते। तदभावे उदयसम्बन्धा-

भावेऽपि यस्मिन्दिने पर्वणः सङ्गवकालसम्बन्धो वर्तते तस्मिन्नेव दिनेऽनुष्ठेयम्। तच्चास्मिन् वर्षे प्रथमदिन एव वर्तते न तु द्वितीयदिवसे। यद्यपि प्रथमदिने चतुर्दशीसम्बन्धोऽस्ति पर्वणः स च—

सम्प्राप्नवान् श्रुतीर्ब्रह्मा पर्वण्यौदयिके पुनः। अतो भूतदिने तस्मिन्नोपाकरणमिष्यते ॥

इति निषिद्धः, तथापि न सम्बन्धमात्रं दोषावहम्, किन्तु तत्र तत्र तिथ्यन्तरवेधस्यैव धर्मशास्त्रेषु दोषावहत्वं श्रूयते। वेधश्च "त्रिभिर्मुहूर्तैर्विध्यन्ति" इति वचनबलात् मुहूर्तत्रयरूपदण्डषट्कपरिमितकालसम्बन्धात्मक एवेत्यवगम्यते। प्रकृते तु न तथास्ति, अतो न चतुर्दशीवेधसम्बन्धनिमित्तो दोषः पूर्वदिने।

"पर्वण्यौदयिके कुर्युः श्रावणीं तैत्तिरीयकाः।"

इति मदनरत्नधृतबह्वृचपरिशिष्टबलादपि पूर्वदिन एव कर्तव्यता प्रतीयते, तत्र हि पर्वण औदयिकत्वं नाम न उदयकालमात्रसम्बन्धस्तस्य—

श्रावणी पौर्णमासी तु सङ्गवात्परतो यदि। तदैवौदयिकी ग्राह्या नान्यदौदयिकी भवेत् ॥

घटीपरिमितः कालः सङ्गवादूर्ध्वपर्वणि। औदयीकमिति प्राहुर्मुनयस्थितिचिन्तकाः ॥

इत्यादिवचनविशेषैः पर्वव्यवस्थापनात्। एवञ्च औदयिके पर्वणि यजुर्वेदिनामुपाकर्मानुष्ठानं विदधतो मदनरत्नकारस्य मतेनापि द्वितीयस्मिन्दिवसे पर्वणः सङ्गवसम्बन्धाभावेन औदयिकत्वासिद्धेः पूर्वदिवस एवोपाकर्मानुष्ठानं सिद्ध्यति। अतश्च हेमाद्रि–मदनरत्नादिसर्वनिबन्धकृन्मतेनापि सर्वयजुर्वेदिनामुपाकर्म पूर्वस्मिन् दिन एव कर्तव्यं शास्त्रसम्मतम्।

रक्षाबन्धनस्य तु पूर्वदिने भद्रायोगात् उपाकर्मरक्षाबन्धनयोरङ्गाङ्गिभावस्य गृह्यनिबन्धकाराद्यनभिमतत्वात् परेद्युरेवानुष्ठानमिति निर्णयः।

(संक्रान्तौ उपाकर्मनिर्णयः)

कस्मिंश्चिद् वर्षे यदि पौर्णमासीसमाप्त्यनन्तरमर्द्धरात्रादधस्तात् संक्रान्तिर्भवति तदा तद्दिने प्रातरारभ्य विद्यमानायां संक्रान्त्यस्पृष्टायां पौर्णमास्यामुपाकर्म न करणीयमिति निर्णयसिन्धुकारमतम्। तथाहि तदीयग्रन्थे श्रवणयुतदिने संक्रान्त्यादौ तु—

उपाकर्म न कुर्वन्ति क्रमात्सामर्ग्यजुर्विदः। ग्रहसंक्रान्तियुक्तेषु हस्तश्रवणपर्वसु ॥

इति हेमाद्रौ निषेधात्। 'पञ्चम्यादयो ग्राह्याः' इत्युपक्रम्य एतेन ग्रहणसंक्रान्तिकाले श्रवणसत्त्वे एव निषेधः, नार्वागिति मूर्खशङ्का परास्ता, ग्रहणविशिष्टानां हस्तश्रवणपर्वणां प्रत्येकं निषेधे तद्युतोपाकर्मनिषेधे च विशिष्टोद्देशे वाक्यभेदात् पञ्चम्यां संक्रान्तौ निषेधाभावापत्तेश्च। तेनार्धरात्रात्पूर्वं ग्रहसंक्रमसत्त्वे एवोपाकर्मनिषेधः, न तद्योगे एव इत्यन्तेन उपसंहृतम्। निर्णयसिन्धुमतानुसारेण धर्मसिन्धावपि ग्रहण–संक्रान्तियोगश्चोपाकर्मसन्धिन्यहोरात्रे भविष्यन्मध्यरात्रात्पूर्वमतीतमध्यरात्रादूर्ध्वं चेति यामाष्टके विद्यमानश्रवणनक्षत्रपूर्णिमादितिथिस्पृष्टोऽप्युपाकर्मदूषकः इत्युक्तम्। यद्यपि पञ्चम्यां संक्रान्तियोगे उपाकर्मनिषेधकवचनं नोपलभ्यते, तथापि निर्णयसिन्धुकारैर्वाक्यमेदभिया कल्पितेन सामान्यवाक्येन तत्र निषेधः स्वीक्रियते। ननु ग्रहणसंक्रान्तौ सामान्येन उपाकर्मनिषेधकवचनं वर्तते, तथाहि हेमाद्रिमदनपालधृता स्मृतिः—

संक्रान्तौ ग्रहणे चैव सूतके मृतके तथा। गणस्नानं न कुर्वीत नारदस्य वचो यथा ॥ इति ॥

एवं च सामान्यवचनेन पञ्चम्यां संक्रान्तावुपाकर्मनिषेधः स्पष्ट एवेति चेत् न, हेमाद्रिणा अस्य विशेषवचनेनैकवाक्यतास्वीकारात्। अस्य वाक्यस्य सामान्यतः संक्रान्तिदिने उपाकर्मनिषेधत्वस्वीकारे निर्णयसिन्धुकामते—

संक्रान्तिर्ग्रहणं वापि यदि पर्वणि जायते। तन्मासे हस्तयुक्तायां पञ्चम्यां वा तदिष्यते ॥

संक्रान्तिर्ग्रहणं वापि पौर्णमासी यदा भवेत्। उपाकृतिस्तु पञ्चम्यां कार्या वाजसनेयिभिः ॥ इति विधानात्।

(श्रावणमासादौ गवाश्वादिप्रसूतिविचारः)

कचित् श्रावणमासादौ गवाश्वादिप्रसूतिसंभवे किं कर्तव्यमिति विचारे—

माघे बुधे च महिषी श्रावणे वडवा दिवा। सिंहे गावः प्रसूयन्ते स्वामिनो मृत्युदायकाः ॥

इति गार्ग्यपरिशिष्टवचनेन माघे बुधे चेति समुच्चयार्थकचकारश्रवणात् माघबुधयोः समुच्चितयोरेव निमित्तत्वं न तु पृथग्भूतयोः। यथा गौश्च अश्वश्चेत्यत्र चकारश्रवणाद् विशिष्टानामेव विधानं तद्वत्। एवं 'श्रावणे वडवा दिवा' इत्यत्रापि चकारानुकर्षणात् समुच्चितयोरेव श्रावणदिनयोर्निमित्तत्वं न तु पृथग्भूतयोः। एवं च माघमासावच्छिन्नबुधवारे महिषीप्रसवे, श्रावणमासावच्छिन्नदिने वडवाप्रसवे च दोषः। गोप्रसूतौ तु सिंहस्यैव केवलस्य निमित्तत्वम्। एवं च सति शान्तिरत्ने कोष्ठान्तर्गतभागे "माघे बुधे च" इत्यत्र चकारोपादानान्माघबुधयोः समुच्चयः दिवेत्यस्यानन्तरमपि चकारोऽनुषञ्जनीयः। उद्द्योते विशेषः—"अत्र माघबुधयोः श्रावणदिनयोश्च विशिष्टयोर्निमित्तता, न च विशिष्टोद्देशे वाक्यभेदात्प्रत्येकं निमित्ततेति वाच्यम्, महिषीप्रसवस्योद्देश्यत्वेनान्यतरविवक्षायामपि वाक्यभेदात्। अतः पौरुषेयत्वाद्वाक्यभेदो नेति समाधेयम्"

इति प्रथमत उक्त्वा अन्ते "श्रावणान्तर्गते दिवसे वडवाप्रसवश्चेद्विशेषतो दुष्टः, माघे महिषीप्रसवोऽपि बुधे चेत्तथा, बुधरहिते माघे महिष्याः, श्रावणे रात्रौ तदितरमासे दिवा च वडवायाः प्रसवश्चाल्पदोषदः" इति। "श्रावणे च विशेषतः" इति विशेषपदस्वारस्यात् यत्केवलस्यैव दिनस्य बुधस्य वा निमित्तत्वमुक्तं तत्परस्परविरुद्धत्वेन प्रक्षिप्तत्वावगमादुपेक्षणीयम्। एवं च सति श्रावणमासि दिने यदि वडवा प्रसूयेत, माघमासान्तर्गतबुधे च महिषी प्रसूयेत, तदानीमेव तद्दोषपरिहारार्थं शान्त्यादिकमनुष्ठेयमिति। माघश्रावणौ तु न सङ्क्रान्त्या ग्राह्यौ, किन्तु पूर्णिमान्तमासेन। सिंहेति सिंहस्यैव सङ्क्रान्त्योपादानात्, एवं च श्रावणस्याधिमासत्वे उभावपि श्रावणौ दुष्टाविति।

"त्यागो विवासो दानं वा कृत्वाऽप्याशु शुभं लभेत्।"

इति वचनात्सति संभवे गवादेर्दानादिकमेव विधेयम्। निष्क्रयदानप्रमाणं तु न क्वाप्युपलभामहे।

(कूपादिजलेषु स्नानविचारः)

यत्र नदा नद्यस्तडागा वा न सन्ति तत्राल्पजलोदके कूपे यन्त्रादिविनिःसृतोदके वा स्नानफलप्राप्तिर्भवति न वेति विचारे—

नद्यां तु विद्यमानायां न स्नायादुष्णवारिणा। न स्नायादल्पतोये तु विद्यमाने बहूदके॥ इति।

यत्र नद्यः सन्ति तत्र ताः परित्यज्य अन्यत्र न स्नातव्यम्। विशेषतश्च—

नद्या यच्च परिभ्रष्टं नद्या यच्च विनिस्सृतम्। गतप्रत्यागतं यच्च तत्तोयं परिवर्जयेत्॥

इति व्यासवचनेन यन्त्रद्वारा विनिःसृते जले स्नाननिषेधाच्च। तडागाम्भस्येव स्नानं शास्त्रसम्मतं स्नानफलदम्, न तु यन्त्रोद्धृतनालीद्वाराऽऽगतजलेन स्नाने तादृशं फलम्। तेन दृष्टफलं शरीरमलोद्वासनं कदाचित् भवितुमर्हति, न त्वदृष्टरूपं स्नानजं फलम्। अतस्तडागादिसत्त्वे तत्रैव स्नानादिकं कर्तव्यमिति।

(सिंहे गवादिप्रसूतानां शान्तिविचारः)

भानौ सिंहगते चैव यस्य गौः संप्रसूयते। मरणं तस्य निर्दिष्टं षड्भिर्मासैर्न संशयः। तथा सिंहराशौ गते सूर्ये गोप्रसूतिर्यदा भवेत्। पौषे च माहिषी सूते दिवैवाश्वतरीतथा। एवम्—माघे बुधे च महिषी श्रावणे वडवा दिवा। सिंहे गावः प्रसूयन्ते स्वामिनो मृत्युदायकाः॥' इत्यादिवचनेषु अनर्थकरगवादिप्रसूत्याधिकरणकत्वेन निर्दिष्टोमासः सौरश्चान्द्रो वा विवक्षित इति विषये गोःप्रसवाधारः सौरः, महिष्यादेस्तु चान्द्रोमासो विवक्षित इत्युत्तरं धर्म्यम्। गोप्रसवनिबन्धनानिष्टप्रदर्शनपरवचनत्रये सिंहशब्दसमुल्लेखदर्शनात् सौरमासस्यैव सूचनात्। महिष्यादिप्रसवभूतानिष्टप्रतिपादनपरके उक्तत्रये चान्द्रमासस्यैव जिघृक्षया पौषमाघादिपदोपादानात्। न च सर्वत्र एकविध एवमासो ग्राह्य इति निर्बन्धो युक्तः। अनर्थोपायकनिमित्तानामलौकिकत्वेन शास्त्रैकसमधिगम्यत्वात् तानि यथाशास्त्रमेव प्रतिपत्तव्यानि नत्वप्रतिष्ठिततर्कानुसारेणान्यथयितव्यानि। न चोभयोः पर्यायत्वं भिन्नार्थकत्वेनैव व्यवस्थापितत्वात् गोप्रसूतौ महिष्यादिप्रसूताविव चान्द्रमासानर्थकत्वेन विवक्षितः स्यात् तर्हि भाद्रे गावः इत्येवनिर्दिशेत्। एवं गोप्रसूताविव महिष्यादिप्रसूतावपि सौरश्चेद्विवक्षितः स्यात्तर्हि मकरे महिषा साम्ये कर्कटे वडवा दिवा इत्येवाभिदध्यात्। क्वचिद्राशेरभिधानं क्वचिच्चान्द्रमासाभिधानं च न तात्पर्यविशेषमन्तराऽवसरसतः सङ्गच्छते। एवं च गोप्रसूतौ सौरो मासः सिंहोऽनभिमतः। महिष्यादिप्रसूतौ च चान्द्रो माघादिमासस्तथेति चतुरः शास्त्रार्थः प्रतीयते। अत एव चान्द्रे भाद्रे सत्यपि सौरमासाभावे गोप्रसूतौ न दोषः। असत्यपि चान्द्रे भाद्रे सति च सौरे तस्मिन् तत्प्रसूतौ दोष एव। एवं महिष्यादिप्रसूतावपि चान्द्रसौरमासादिव्यवस्था बोध्या। तत्रोक्तरीत्या चान्द्रे एव दोषो न सौरे मासे। देशाचारोपदेशामेव व्यवस्थां स्वहस्तयति। न च माघादिशब्दाः सौरचान्द्रादिमासानामविशेषेण वाचकाः किन्तु—मघादिपरिगणितनक्षत्राणामन्यतमनक्षत्रयुक्तपौर्णमासीयुक्तमासवचनाः व्याकरणादिना तत्रैव तत्तत्पदव्युत्तिग्रहात्। तथाहि नक्षत्रेण युक्तः कालः सास्मिन्पौर्णमासीति संज्ञायाम् इति पाणिनेः सूत्रद्वयम्। एतदर्थश्च नक्षत्रेण मघादिना युक्ता पौर्णमासी माघी नक्षत्रयोगश्च न कात्स्न्येन विवक्षितः किन्तु एकदेशेनापि वर्तमानः स तद्व्यवहारहेतुः। अतएव "आदिपादार्धमात्रेण नक्षत्रस्यान्वये ह्यसौ। तथार्धेऽपि संयुक्ता विपरीता न सा पुनः॥ इति शङ्करगीतापि संगच्छते। सा पौर्णमासी यस्मिन् मासे स माघादिपदवाच्यः संज्ञायामिति ब्रुवन् सूत्रकारः माघादिशब्दाश्चान्द्रमासे रूढ इति स्फुटं व्यानक्। अहो माघादिशब्दाः तत्र नक्षत्रान्वितपौर्णमासीमध्यशुक्लप्रतिपदादिदर्शान्तचान्द्रमास वचनात् इति सिद्धम्। नन्वेवं सौरमासेऽपि माघादिपदप्रयोगो बौधायनादिकृतो दृश्यते स कथं संगच्छतामिति चेदत्र केचित्। यथा नित्याग्निहोत्रवाचकोग्निहोत्रशब्दो नैयमिकाग्निहोत्रे गौण्यावृत्या प्रयुज्यते यथा वा तैलशब्दस्तिलप्रभवस्नेहस्य वाचको गौण्यावृत्या तैलान्तरेऽपि प्रयुज्यते तद्वत् माघादिशब्दः सौरे मासे प्रयुज्यते इति न ततस्तत्र स मुख्यार्थक इति भ्रमितव्यम्। अनेकशक्तिकल्पनापेक्षया गौणवृत्तिस्वीकारे लाघवम्। सत्यङ्गतौ अनेकार्थत्वस्यान्याय्यत्वात्। अन्ये तु माघादिश-

द्वः चान्द्रे मासे एव मुख्यया वृत्या शास्त्रे प्रयुज्यते इति तत्र तच्छास्त्रस्था प्रसिद्धिः। सौरे मासे तु लौकिकः–प्रयोग इति तत्र तल्लौकिकीप्रसिद्धिः। सा च गौणत्वेनाप्युपद्यते इति। तत्र उभयत्र शास्त्रस्य प्रसिद्धेः समत्वात्। तथाहि सौरो मासो विवाहादौ यज्ञादौ सावनः स्मृतः। श्राद्धिके पितृकार्ये च चान्द्रो मासः प्रशस्यते। बौधायनोऽप्याह—कर्कटे तु हरौ सुप्ते शक्रध्वजक्रियान्विते। इति। तुलायां बोधयेद्देवीं वृश्चिके तु जनार्दनम्। द्विराषाढः स विज्ञेयः शेते च श्रावणे च्युतः॥ इति अच्युतशयनम्। कर्कटे क्वचित् क्वचित् श्रावणे उक्तम्। उभाभ्यां शद्वाभ्यामेकएवार्थोऽभिधीयथे–इति चान्द्रे सौरे च मासे माघादिशद्वप्रयोगः स्फुट एवेति न शास्त्रप्रसिद्धिश्चान्द्रे एव किन्तु उभयत्र समेति न सौरे मासे गौणयावृत्या तत्प्रयोगसमर्थनं युज्यते विनिगमनाविरहात्। किन्तु उभयत्रैव मुख्यावृत्तिर्माघादिपदस्य मासशद्वस्यापि ईदृश्येव व्यवस्था सङ्कल्पवाक्ये मासपद्धतिष्युल्लेखस्यावश्यकत्वेन दैवपितृकार्यानुसारेण माघादिमासे इत्यादियोजनाया आवश्यकत्वेन माघादिवन्मासस्याप्युभयत्र शक्तिः स्वीकार्या। गवादिपदवदनेकशक्तिस्वीकारे बाधकाभावात्। पक्षौ पूर्वोत्तरौ शुक्लयोगे मासस्तु तावुभौ-इत्यवसरोक्तिर्यद्यपि चान्द्रमास एवानुकूला तथापि उभयत्र अथवा सौरसावननक्षत्रचान्द्रमासेषु रूढ एव मासशद्वः स्वीकार्य इत्याहुः। वस्तुतस्तु माघादिशब्दानां चान्द्रे मासे एव मुख्यावृत्तिः उक्तपाणिनिसूत्रानुरोधेन तत्र संज्ञायामिति रूढिं तेषां तत्र स्फोटयति गौणयावृत्त्यान्यत्र प्रयुज्यमामो न शास्त्रार्थमाखिलयतीतिसंक्षेपार्थः।

श्री [signature] जोड़,

(अथ भाद्रपदमासे)

श्रीकृष्णपूजनम्[1]

आवाहन–आगच्छ कृष्ण देवेश तेजोराशे जगत्पते। रुक्मिणीप्रिय लोकेश त्राहि मां भवसागरात्॥ पाद्य–नन्दनन्दन गोपेश गोपीमण्डलमण्डित। शुद्धमेतत्सुखस्पर्शं सुपाद्यं प्रतिगृह्यताम्॥ अर्घ्य–पूतनादर्पसंहारी तृणावर्तनिषूदन। विहारेनन्तरूपोऽसि गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥ आचमन-गंगाजलं समानीतं सुवर्णकलशे स्थितम्। आचम्यतां हृषीकेश त्रैलोक्यव्याधिनाशनम्॥ पंचामृत–पयो दधि घृतं चैव मधु शर्करयाचितम्। पंचामृतं मयानीतं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्॥ पृथक्पचेमन्त्राः, दुग्धस्नान–क्षीरशायिन् महाविष्णो लक्ष्मीहृदयभावन। दुग्धस्नानं गृहाणेदं यथाशक्त्या समर्पितम्॥ दधिस्नान–दिव्यदुग्धोद्भवं श्वेतदधि पर्युषितं तथा। स्नानार्थं तन्मयानीतं तुलसी प्राणवल्लभ॥ घृतस्नान-घृतं दध्युद्भवं नित्यं सर्वेषां चैव पावनम्। घृतस्नानं गवामीश कुरुष्वेतज्जनार्दन॥ मधुस्नान–क्षौद्रसर्वरसोपेतं मधुरं सर्वरोगहृत्। इदं मधु प्रयच्छामि तेन स्नानं समाचर॥ शर्करास्नान–इक्षुरससमुद्भूता शर्करा रुक्मिणीप्रिय। घनश्याम वपुर्यत्ते तया संक्षालयाम्यहम्॥ शुद्धोदकस्नान–शुद्धोदकं मयानीतं तुलसीचन्दनान्वितम्। स्नानार्थं गृह्यतां देव भक्तिं वर्द्धय मे सदा॥ वस्त्र–नारायण नमस्तेऽस्तु नरकार्णवतारक। त्रैलोक्य वासिने तुभ्यं ददामि वसनं शुभम्॥ यज्ञोपवीत–यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं सूत्रनिर्मितम्। गृहाण गोपीपरिषद् रासमण्डलमण्डित॥ चन्दन–श्रीखण्डागुरुकर्पूरकङ्कुमादिविलेपनम्। भक्त्या दत्तं मया देव दामोदर जगत्पते॥ पुष्प–माल्यादीनि सुगन्धीनि मालत्यादीनि वै प्रभो। मयाहृतानि पुष्पाणि प्रीयतां परमेश्वर॥ धूप–धूपं मनोहरं दिव्यं सुगन्धि घ्राणमर्पणम्। गृह्यतां रुक्मिणीनाथ राधाकान्त जगत्पते॥ दीप–लोकान्धकारदर्पघ्न दीपं सुघृतपूरकम्। गृहाण जगतां नाथ भक्तानां वाञ्छितार्थद॥ नैवेद्य–अन्नं चतुर्विधं स्वादु भूतानां जीवनं परम्। नैवेद्यं ते मया दत्तं देवेश प्रतिगृह्यताम्॥ तांबूल–पूगानि नागपत्राणि कर्पूरसहितानि च। मया दत्तानि देवेश श्रीकृष्ण प्रतिगृह्यताम्॥ दक्षिणा–हृषीकेश नमस्तेऽस्तु दामोदर नमोऽस्तु ते। साधुः पुण्यप्रदा चैव दक्षिणां प्रतिगृह्यताम्॥ नीराजन–लक्ष्मीपते परं ब्रह्म व्रतिनां पुष्पवर्धन॥ नीराजनं करोम्यद्य श्रीराधापरमप्रिय॥

१—श्रीकृष्णप्रीतये पापक्षयार्थं वा जन्माष्टमीव्रतमहं करिष्ये।

(अथ भाद्रपदमासः)

(सिंहसंक्रान्तिनिर्णयः)

सिंहे पराः षोडशघटिकाः पुण्यकालः । अन्यत्पूर्ववत् ।

सिंहसंक्रान्ति में सोलह घड़ी पुण्यकाल पर (पूर्वा यह पाठ ठीक नहीं है) होता है। अन्य बातें पूर्व में कही हुई की तरह है।

(सिंहादिप्रसूतौ शान्तिकथनम्)

अत्र गोप्रसवेऽद्भुतसागरे नारदः—भानौ सिंहगते चैव यस्य गौः संप्रसूयते। मरणं तस्य निर्दिष्टं षड्भिर्मासैर्न संशयः ॥

यहाँ पर अद्भुतसागर में नारद ने गौ प्रसव के बारे में कहा है कि—सिंह के सूर्य में जिसकी गौ प्रसव करे उसका अर्थात् उसके मालिक का मरण छ मास में कहा है। इसमें संशय की बात नहीं है।

तत्र शान्तिं प्रवक्ष्यामि येन संपद्यते शुभम् । प्रसूतां तत्क्षणादेव तां गां विप्राय दापयेत् ॥

वहाँ पर उसकी शान्ति को कहता हूँ जिसके करने से शुभ प्राप्त होता है। उसीक्षण प्रसूता (व्यायी) उस गौ को ब्राह्मण को दे दे।

ततो होमं प्रकुर्वीत घृताक्तैराजसर्षपैः । आहुतीनां घृताक्तानामयुतं जुहुयात्ततः ॥ (व्याहृतिभिश्चायं होमः ।) 'सोपवासः प्रयत्नेन दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ।' इति ।

तदनन्तर घृताक्त (घी में मिश्रित कर) राजसर्षप (सरसों) से होम करे। घृताक्त आहुतियों से अयत संख्याक हवन व्याहृति से करे। फिर प्रयत्न से उपवास कर ब्राह्मण को दक्षिणा दे।

तथा—सिंहराशौ गते सूर्ये गोप्रसूतिर्यदा भवेत् । पौषे च महिषी सूते दिवैवाश्वतरी तथा ॥ तदाऽनिष्टं भवेत्किञ्चित्तच्छान्त्यै शान्तिकं चरेत् । अस्य वामेति सूक्तेन तद्विष्णोरिति मन्त्रतः ॥ जुहुयाच्च तिलाज्येन शतमष्टोत्तराधिकम् । मृत्युञ्जयविधानेन जुहुयाच्च तथायुतम् ॥ श्रीसूक्तेन ततः स्नायाच्छान्तिसूक्तेन वा पुनः ।

और सिंहराशि में सूर्य के हो जाने पर गौ की प्रसूति हो तो, पौपमास में महिषी तथा दिन में ही घोड़ी का प्रसव हो तो किंचित् अनिष्ट होता है। उसकी शान्तिके लिये शान्ति को करे। 'अस्व वाम' इस सूक्त से 'तद्विष्णोः' इस मन्त्र से तिल और घी के द्वारा एक सौ आठ वार हवन करे और मृत्युञ्जय के विधान से अयुत हवन करे। तदनन्तर श्रीसूक्त या शान्तिसूक्त से स्नान करे।

१-अद्भुतसागरे—भानौ सिंहगते चैव यस्य धेनुः प्रसूयते। मरणं तथा निर्दिष्टं सप्तमासैर्न संशयः ॥ दिवा प्रसूता वडवा श्रावणे च विशेषतः । माघमासे च बुधे चैव प्रसूता महिषी यदि ॥ गर्गः—तुलाराशि गते भानौ यस्य भार्या प्रसूयते। तत्क्षणात्सो त्यजेत् भार्यां यावच्छान्तिं न कारयेत् । अन्यत्र—स्त्रियः प्रसूतिर्यदि कार्तिके स्यात् सिंहे गवां वृश्चिककुञ्जरीणाम् । कर्कटे वाश्विनी रासभीनां मेषे चोष्ट्री स्यात्प्रसूते हयेजा ज्यैष्ठे विडाली महिषी च माघे मृतिभवेत्सर्वथा दुःखभर्तुः । ज्योतिषतत्त्वे—या सूता षोडशे वर्षे तत्र वा धृतगर्भिका । मृत्युस्तस्याः सपुत्रायाः पितुश्चापि च संमतः ॥ मांसीप्रियङ्गुरजनीगुग्गुलुवंशलोचना। तालिशेन तिला लाजा गर्भिणी स्नानमुत्तमम् । गौरीं सपूज्य तत्पश्चात्सङ्क्रमेच्छिवसन्निधौ । छागो गर्भवती देया दैवज्ञायाथ गोयुगम् । कांस्यपात्रस्थितं चन्द्रे सितवस्त्राब्जसंयुतम् । वस्त्रैः कृष्णैश्च शतपत्रैश्चन्दनागुरुधूपकैः । कृत्वापामार्जयेन्नारीं भोजयेद् ब्राह्मणांस्ततः । मध्यरात्रे निशीथे वा यदा गौः क्रन्दते सदा । ग्रामे वा स्वगृहे वापि शान्तिकं तु तदाचरेत् ।

२-अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः । तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रा पश्यं विश्पतिं सप्त पुत्रम् ॥ सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा । त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रे मा विश्वा भुवनाधितस्थुः । इमं रथमधि ये सप्ततस्थुः सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वाः । सप्तस्व सारोऽ अभि संनवन्ते यत्रा गवां निहिता सप्त धाम ॥ को ददर्श प्रथमं जायमानमस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति । भूम्याऽ असुर सृगात्माक्वत्कोविदांसमुपगात्प्रष्टुमेतद् ॥ पाकः पृच्छामि मनसा विजानन्देवानामेनानिहिता पदानि । वत्सेपष्कयेधिसप्ततं तून्वितस्त्रिरेकवयऽ ओतवाऽउ । नोट—(अस्य वाम) सूक्त का विस्तार ऋग्वेदसंहिता में देखिये ।

३-ॐ तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ॥ (ऋ० १।२२।२०) ।

मध्यरात्रे निशीथे वा यदा गौः क्रन्दते तदा ॥ ग्रामे वा स्वगृहे वापि शान्तिकं पूर्ववद्दिशेत् ॥

मध्यरात में या निशीथ (रात्रि) में गांव या अपने घर में जब गौ क्रन्दन करे तो पूर्ववत् शान्ति करे।

एवं श्रावणे वडवाप्रसवो दिने निषिद्धः । तदुक्तमथर्ववेदिनां गार्ग्यपरिशिष्टे—'माघे बुधे च महिषी श्रावणे वडवा दिवा। सिंहे गावः प्रसूयन्ते स्वामिनो मृत्युदायकाः ॥ इति। अत्र तदुक्तामृताख्या शान्तिः कार्या।

इसप्रकार श्रावणमास में दिन में वडवा (घोड़ी) का प्रसव निषिद्ध है। उसी बात को अथर्ववेदियों के गार्ग्यपरिशिष्ट में कहा है कि—माघमास तथा बुधवार को भैंस, श्रावणमास में दिन में घोड़ी तथा सिंह के सूर्य में गौओं का प्रसव होतो घर के मालिकोंकी मृत्यु होती है। यहाँ पर कही हुई अथर्ववेदोक्त 'अमृताख्य' शान्ति करे।

(भाद्रकृष्णतृतीया (कज्जली) निर्णयः)

भाद्रकृष्णतृतीया कज्जलीसंज्ञा। सा परा ग्राह्येति दिवोदासीये उक्तम्। वचनं तु हरितालिका प्रकरणे वक्ष्यामः।

भाद्रकृष्णतृतीया को कज्जलीनामक व्रत होता है। उस व्रत में तिथि परा ग्रहण करे-यह दिवोदासीय में कहा है। वचन तो हरितालिकाप्रकरण में कहेगें।

(भाद्रकृष्णचतुर्थी (बहुला) निर्णयः)

भाद्रकृष्णचतुर्थी बहुलाख्या मध्यदेशे प्रसिद्धा। सा सायाह्नव्यापिनी ग्राह्या। दिनद्वये तत्त्वे पूर्वा ग्राह्या।

भाद्रकृष्ण चतुर्थी 'बहुला' नाम से मध्यप्रदेश में प्रसिद्ध है। वह सायाह्नव्यापिनी (गोधूलिकाले गो पूजाद्युक्तेः) ग्रहण करना चाहिये। दोनों दिन हो तो पूर्वा ग्रहण करे।

गौर्याश्चतुर्थी वटधेनुपूजा दुर्गार्चनं दुर्भरहोलिके च। वत्सस्य पूजा शिवरात्रिरेताः परान्विता घ्नन्ति नृपं सराष्ट्रम् ॥ इति दिवोदासीये वचनात्।

दिवोदासीय ने कहा है कि–गौरीव्रतसम्बन्धिनी चतुर्थी वट पञ्चदशी (अमावस्या और पूर्णिमा) को धेनुपूजा, दुर्गापूजा (दुर्गानवमी) दुर्भर–होलिका, वत्स की पूजा (वत्सद्वादशी) और शिवरात्रि परान्वित हो तो राज्य के सहित राजा का नाश करती है।

अत्र वत्सपूजायाः पृथगुपादानाद्धेनुपूजाशब्देन बहुलाख्या गृह्यते इति स एव व्याचख्यौ। मदनरत्नेऽप्येवम्। अत्र गोपूजा यवान्नाशनं च तत्रैवोक्तम्।

यहाँ पर वत्सपूजा के पृथक् (अलग) कहने से धेनुपूजा शब्द से बहुलानामवाली पूजा का ग्रहण करना चाहिये। यह अर्थ उन्होंने ही व्याख्यारूप से कहा है। मदनरत्न में भी यही है। यहाँ पर गो पूजा और यवान्न भोजन वहीं पर कहा है।

(भाद्रकृष्णषष्ठी)

भाद्रकृष्णषष्ठी हलषष्ठी। सा सप्तमीयुतेति दिवोदासः।

भाद्रकृष्ण षष्ठी को हलषष्ठी कहते हैं। वह सप्तमी तिथि युक्त ग्रहण करें-यह दिवोदास ने कहा है।

(भाद्रकृष्णसप्तम्यां शीतलाव्रतम्)

भाद्रकृष्णसप्तम्यां शीतलाव्रतम्। तत्र पूर्वा ग्राह्येति हेमाद्रौ।

भाद्र कृष्ण सप्तमी में शीतलाजीका व्रत होता है। वहीं पर [1]पूर्वा ग्रहण करे-यह हेमाद्रि में कहा है।

(अथ जन्माष्टमीविचारः)

अथ जन्माष्टमी। सा च कृष्णादिमासेन भाद्रपदकृष्णाष्टमी। तथा भाद्रपदे मासि कृष्णाष्टम्यां कलौ युगे। अष्टाविंशतिमे जातः कृष्णोऽसौ देवकीसुतः ॥ इति कल्पतरौ ब्राह्मोक्तेः।

१—नव्यास्तु हलषष्ठयां शीतलाव्रते च मध्याह्नव्यापिनी। पूजाव्रतेषु सर्वेषु मध्याह्नव्यापिनी तिथिः। इत्युक्तेः। दिनद्वये सत्वेऽसत्वे वा पूर्वा युग्मवाक्यादित्याहुः।

अब जन्माष्टमी कहते हैं। वह कृष्णादि मास से भाद्रपद कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि होती है। वैसे कल्पतरु में ब्रह्मपुराण का कथन है कि—कलियुग में भाद्रपद मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी में अठाइसवें युग में देवकी के पुत्र श्री कृष्ण उत्पन्न हुए।

अत्रेदं माधवमतम्—अष्टमी द्वेधा–जन्माष्टमी जयन्ती चेति तत्राद्या केवलाष्टमी। ये न कुर्वन्ति जानन्तः कृष्णजन्माष्टमीव्रतम्। ते भवन्ति नराः प्राज्ञ व्याला व्याघ्राश्च कानने॥ इति स्कान्दात्।

यहाँ पर माधव का मत है कि—अष्टमी दो प्रकार की है-पहली जन्माष्टमी दूसरी जयन्ती। उसमें पहली केवल अष्टमी है।

स्कन्दपुराण का मत है कि—जो जानकर भी कृष्णजन्माष्टमी व्रत को नहीं करते हैं। हेप्राज्ञ, मनुष्य जंगल में व्याल (सर्प) और व्याघ्र होते हैं।

दिवा वा यदि वा रात्रौ नास्ति चेद्रोहिणी कला। रात्रियुक्तां प्रकुर्वीत विशेषेणेन्दुसंयुताम्॥ इति पुराणान्तरात्,

पुराणान्तर का वचन है कि—यदि दिन या रात में कलामात्र भी रोहिणी न हो तो विशेषकर चन्द्रमा से मिली हुई रात्रि में करे।

श्रावणे बहुले पक्षे कृष्णजन्माष्टमीव्रतम्। न करोति नरो यस्तु भवति क्रूरराक्षसः॥ इति भविष्योक्तेश्च केवलाष्टम्या एवोपोष्यत्वावगतेः। सैव रोहिणीयुक्ता जयन्ती।

और भविष्यपुराण में भी कहा है कि—श्रावणमास के शुक्लपक्ष में कृष्णजन्माष्टमी व्रत को जो मनुष्य नहीं करता है वह क्रूर राक्षस होता है। केवल अष्टमीतिथि में ही उपवास करना कहा है यदि वहीं तिथि रोहिणीनक्षत्र से युक्त हो तो 'जयन्ती' नाम से कही जाती है।

कृष्णाष्टम्यां भवेद्यत्र कलैका रोहिणी यदि। जयन्ती नाम सा प्रोक्ता उपोष्या सा प्रयत्नतः॥ इति वह्निपुराणात्।

वह्निपुराण में कहा है कि—कृष्णपक्ष की अष्टमी (जन्माष्टमी) में यदि एक कला भी रोहिणीनक्षत्र हो तो उसको जयन्ती नाम से कहा जाता है। उसमें प्रयत्न से उपवास को करना चाहिये।

अष्टमी कृष्णपक्षस्य रोहिणीऋक्षसंयुता। भवेत्प्रौष्ठपदे मासि जयन्ती नाम सा स्मृता॥ इति विष्णुरहस्यादिवचनाच्च।

और विष्णुरहस्यादि वचन से कहा है कि—कृष्णपक्ष की अष्टमी रोहिणी नक्षत्र से युक्त भाद्रपदमास में हो तो वह जयन्ती नाम वाली कही है।

ज्योतिरादिवत् संज्ञया कर्मभेदः। रोहिणीयोगश्चाहोरात्रं मुख्यः, निशीथमात्रे मध्यमः, दिवसादावधमः। अहोरात्रं तयोर्योगो ह्यसम्पूर्णो भवेद्यदि। मुहूर्तमप्यहोरात्रे योगश्चेत्तामुपोषयेत्॥ इति वसिष्ठसंहितोक्तेः।

इसमें ज्योतिरादि के तरह संज्ञा से कर्मभेद है। रोहिणीयोग अहोरात्र में मुख्य है। निशीथ (आधीरात) मात्र में मध्यम और दिन के आदि में अधम होता है।

१–अथैषज्योतिः, अथैष विश्वज्योतिः, अथैष सर्वज्योतिः, एतेन सहस्रदक्षिणेन यजेत्। यहाँ पर सन्देह है कि–ज्योतिरादिशब्द प्रसिद्ध ज्योतिष्टोम को अनुवाद करके सहस्रदक्षिणारूप गुण का विधान करते हैं। अथवा भिन्नकर्म हैं। यह पूर्वपक्ष है।

एष – यह एतत् शब्द है। एतत् शब्द पूर्वोक्त अर्थ का अनुवाद करता है। जैसे भीमसेन का भीम नाम है। वैसे ही ज्योतिष्टोम शब्द का ज्योतिशब्द पर्याय वाचक हो सकता है। अपि च शब्दान्तर अभ्यास तथा संख्या, नहीं होने से कर्मभेद मानने का योई प्रमाण नहीं है। अतः ज्योतिष्टोम का अनुवाद करके सहस्रदक्षिणात्व गुण का विधान होता है।

सिद्धान्त––अथशब्द के द्वारा प्रकृत ज्योतिष्टोमप्रकरण का विच्छेद हो गया। एतत् शब्द भी जैसे सन्निहित पूर्व का अनुवाद करता है वैसे सन्निहित भविष्य का निर्देश कर सकता है। ज्योतिरादि शब्द संज्ञावाचक है। अतः दूसरी संज्ञा होने से भिन्नकर्म मानना पड़ेगा इसको संज्ञा से कर्मभेद कहते हैं। यह मीमांसा के द्वितीयपाद में आठवें अधिकरण में यह विषय है।

वसिष्ठसंहिता में कहा है कि—यदि अष्टमी तथा रोहिणी इन दोनों का योग अहोरात्र में असंपूर्ण भी हो तो मुहूर्तमात्र में भी अहोरात्र के योग में उसका उपवास करे।

अर्धरात्रे तु योगोऽयं तारापत्युदये सति। नियतात्मा शुचिः स्नातः पूजां तत्र प्रवर्तयेत्॥ इति विष्णुधर्मोक्तेः।

वासरे वा निशायां वा यत्र स्वल्पाऽपि रोहिणी। विशेषेण नभोमासे सैवोपोष्या मनीषिभिः॥ इति पुराणान्तराच्च।

विष्णुधर्म में कहा है कि—यह योग आधीरात में हो तो तारापति (रोहिणी) के उदय होने पर शुद्ध आत्मा से पवित्र हो तथा स्नानकर उसकी पूजा में लगजाय और पुराणान्तर का वचन है कि—जहाँपर दिन में या निशीथ में थोड़ी भी रोहिणी हो बुद्धिमान् मनुष्य विशेषकर श्रावणमास में ही उसका उपवास करें।

विशेषेणेति श्रुतेर्भाद्रपदेऽपीदम्। 'श्रावणे वा नभस्ये वा' इति वक्ष्यमाणात्। गौडास्तु निशीथ एव रोहिणीयोगे जयन्ती नान्यथेत्याहुः।

तन्न। 'वासरे वा निशायां वा' इति विरोधात्। योगविशेषात् गुणात्फलमित्यन्ये। तेऽप्यकरणे दोषश्रुतेरुपेक्ष्याः। तत्र जन्माष्टमीव्रतं नित्यं, पूर्वोक्तवचनेषु अकरणे निन्दाश्रुतेः।

'विशेषेण' इस पद के श्रवण करने पर (शुक्लादिमास को मानकर) भाद्रपद में यह होती है। क्योंकि-श्रावणमास या भाद्रपद आगे कहेगें।

गौड तो निशीथ (अहोरात्रयोगे निशीथयोगः संभवति) में ही रोहिणीयोग में जयन्ती कहते हैं। अन्यथा नहीं होती है। यह ठीक नहीं है क्योंकि दिनमें या निशा में हो इसका विरोध होने से। योगविशेष के गुण से फल होता है यह अन्य मानते हैं। जयन्ती के न [1]करने पर दोष सुना जाता है। अतः त्यागने योग्य है। उसमें जन्माष्टमीव्रत नित्य है। क्योंकि पहले कहे हुए बचनों में नहीं करने पर निन्दा सुनी है।

वर्षे वर्षे तु या नारी कृष्णजन्माष्टमीव्रतम्। न करोति महाप्राज्ञ व्याली भवति कानने॥ इति स्कान्दे वीप्साश्रुतेश्च। 'न करोति नरो यस्तु' इति पूर्वमुक्तेरत्र स्त्रीलिङ्गमतन्त्रम्।

स्कन्दपुराणकथन से और वीप्सा[2] श्रुति से कहा है कि-जो नारी (स्त्रीत्वमतन्त्रम्। न करोति नर इति दर्शनात्।) हरसाल में [3]कृष्णजन्माष्टमी व्रत (गृध्रमांसं खगं पोतं श्येनं च मुनिपुङ्गव। मांसं च द्विपदां भुक्तं कृष्णजन्माष्टमी दिने॥ जन्माष्टमीदिने प्राप्ते येन भुक्तं द्विजोत्तम। त्रैलोक्यसंभवं पापं तेन भुक्तं न संशयः॥) को हे महाप्राज्ञ, नहीं करती है वह व्याली (सर्पिणी) होती है। न करोति नरो यस्तु' यह पूर्व में कहा है कि जो मनुष्य नहीं करता है। यहाँ पर स्त्रीलिङ्ग अविवक्षित है।

मदनरत्ने स्कान्दे त्वत्र फलमप्युक्तम्। जन्माष्टमीव्रतं ये वै प्रकुर्वन्ति नरोत्तमाः। कारयन्त्यथवा लोकाँल्लक्ष्मीस्तेषां सदा स्थिरा॥ सिध्यन्ति सर्वकार्याणि कृते जन्माष्टमीव्रते॥ इति।

मदनरत्न में स्कन्दपुराण के वचन से फल भी कहा है कि—जो उत्तम पुरुष हैं वे निश्चयरूप से जन्माष्टमीव्रत को इसलोक में करते हैं या कराते हैं उनके समीप सदा लक्ष्मी स्थिर रहती है। उसके सारे कार्य जन्माष्टमी व्रत करने से सिद्ध होते हैं।

जयन्तीव्रतं तु नित्यं काम्यं च। 'महाजयार्थं कुरुतां जयन्तीं मुक्तयेऽनघ। धर्ममर्थं च कामं च मोक्षं च मुनिपुङ्गव॥ ददाति वाञ्छितानर्थान् ये चान्येऽप्यतिदुर्लभाः॥ इति स्कान्दादौ फलश्रुतेः।

जयन्तीव्रत नित्य और काम्य है। स्कन्दपुराण आदि में फल श्रुति सुनी है कि—हे मुनिपुंगव, धर्म,

---

१—जयन्त्यकरणे इत्यर्थः। तथा च जयन्त्या अपि नित्यत्वेन स्वतन्त्रव्रतत्वमेव, न तु रोहिण्या जयन्तीति नामेत्यर्थः। किंच जयन्त्यां शवहस्तस्थ भोजने 'तत्पापं लभते कुन्ति' इत्युक्तावपि नोपवासमात्रं व्रतशरीरं, किन्तु 'जयन्ती विमुखो नरः' इस्येवेक्तेः पूजाजागरणादिरपि। 'पूजां तत्र प्रवर्तयेत्' इत्युक्तेः।

२—न च अस्या अकरणे निन्दायामन्तर्भाव इति वाच्यम्। वर्षे वर्षे जन्माष्टमीव्रतं कुर्यात्। इति विधौ तात्पर्यात्।

३—कृष्णजन्मव्रताऽकरणे प्रत्यश्चित्तम—प्राणायामशतं कार्यं सर्वपापापानुत्तये। उपपातकजातानाभादिष्टस्य चैव हि॥ उपवासासमर्थश्चेदेकं विप्रं तु भोजवेत्। इत्यादिद्रष्टव्यः।

अर्थ, काम, मोक्ष के लिए, हे अनघ, मुक्ति के लिए तथा महाजय के लिए, जयन्तीव्रत को करते हैं उनको इच्छित अर्थ और जो अन्य अतिदुर्लभ वस्तु है सब मिलती है।

शूद्रान्नेन तु यत्पापं शवहस्तस्थभोजने। तत्पापं लभते कुन्ति जयन्तीविमुखो नरः॥ न करोति यदा विष्णोर्जयन्ती सम्भवं व्रतम्। यमस्य वशमापन्नः सहते नारकीं व्यथाम्॥ इत्यकरणे निन्दाश्रुतेश्च।

हे कुन्ति, शूद्रान्न से जो पाप लगता है और जो शव के हाथ से भोजन करने से लगता है वह पाप जयन्ती से विमुख होकर मनुष्य को प्राप्त होता है। जो विष्णुजयन्ती से संभव व्रत को जब नही करता है। उसे यम के वश होना पड़ता है तथा नारकीय पीड़ा को सहना पड़ता है। इससे नहीं करने पर निन्दा सुना है

यदा च पूर्वेद्युः परेद्युर्वा रोहिणीयोगस्तदा जन्माष्टमी जयन्त्यामन्तर्भूता ज्ञेया न तु जन्माष्टमीव्रतं पृथक् कार्यम् विष्णुश्रृङ्खलवत्। तदुक्तं माधवेनैव—यस्मिन् वर्षे जयन्त्याख्यो योगो जन्माष्टमी तदा। अन्तर्भूता जयन्त्यां स्यादृक्षयोगः प्रशस्तितः॥ इति। मदनरत्ननिर्णयामृतगौडमैथिलमतेऽप्येवम्।

और जब पूर्वदिन में या परदिन में रोहिणीयोग हो तब जन्माष्टमी जयन्ती के मध्य में गई ऐसा जानना चाहिये। जन्माष्टमी व्रत को अलग [1]न करे विष्णुश्रृंखला के सदृश। उसी बात को माधव ने भी यही कहा है। जिस वर्ष में जयन्ती का योग जन्माष्टमी में हो तो जयन्ती में अन्तर्भूत नक्षत्रयोग की प्रशंसा जानना चाहिये। मदनरत्न, निर्णयामृत, गौड—मैथिलमत में भी यही है।

हेमाद्रिस्तु–रोहिणीसंयुतोपोष्या सर्वाघौघविनाशिनी। अर्धरात्रादधश्चोर्ध्वं कलया वा यदा भवेत्॥ जयन्ती नाम सा प्रोक्ता सर्वपापप्रणाशिनी। इत्यग्निपुराणादर्धरात्र एव रोहिणीयोगस्य प्राशस्त्यात् 'मुहूर्तमपि लभ्यते' इत्यादीनां चार्धरात्रयोगेऽप्युपपत्तेर्न जयन्तीव्रतं भिन्नम्।

तत्त्वं तु हेमाद्रिमतेऽपि जयन्तीव्रतं भिन्नमेव। 'उदये चाष्टमी' इत्यस्य तेन जयन्तीपरत्वोक्तेः।

हेमाद्रि तो कहते हैं कि–रोहिणी से युक्त उपोष्य (उपवास के तुल्य) सब पापको नाश करने वाली है। वह आधीरातके पूर्व या बाद एक कलासे भी हो तो संपूर्ण पापों को नष्ट करने वाली वह जयन्ती नाम वाली कहा है। इस अग्निपुराणके कथनसे आधीरात में ही रोहिणीयोग की प्रशंसासे मुहूर्तमात्र भी प्राप्त हो इत्यादि से आधीरात के योग में भी उत्पत्ति से जयन्ती व्रत भिन्न नहीं है। सिद्धान्त तो यह है कि—हेमाद्रि मत में भी जयन्ती व्रत भिन्न ही है और उदयकाल में अष्टमी हो इसका उससे जयन्ती के विषय में कहा है।

किं च—'रोहिण्यामर्धरात्रे च यदा कृष्णाष्टमी भवेत्। तस्यामभ्यर्चनं शौरेर्हन्ति पापं त्रिजन्मजम्॥ इति विष्णुधर्मोक्तेः।

और विष्णुधर्म में कहा है कि—आधीरातके समय रोहिणी में जब कृष्णाष्टमी हो तो उसमें कृष्ण अर्चन (पूजन) करने से तीन जन्म के पापों का हनन करता है।

समायोगे तु रोहिण्यां निशीथे राजसत्तम। समजायत गोविन्दो बालरूपी चतुर्भुजः॥ तस्मात्तं पूजयेत्तत्र यथा वित्तानुरूपतः॥ इति वह्निपुराणाचार्धरात्रस्य कर्मकालत्वमवसीयते। अतः 'कर्मणो यस्य यः कालः' इत्यादि वचनात्पूर्वत्रैव प्राप्तेः परदिने सतोऽपि रोहिणीयोगस्य न प्रयोजकत्वम्। अन्यथा बुधवासरादेरपि तत्त्वापत्तेः।

अग्निपुराण का कथन है कि—हेराजसत्तम, आधीरात में रोहिणी के समयोग में बालरूपी चतुर्भुज गोविन्द उत्पन्न हुए। इसकारण से उससमय अपने वित्तानुसार पूजन करे।

१—यद् वर्षे जयन्तीयोगो नास्ति तद् वर्षे जन्माष्टमीव्रतं भवत्येव, ऐक्ये तु जयन्त्यभावे तन्नस्यादिति भावः। टीकायाम्।

इससे आधीरात को कर्म का समय (अर्थात् पूजादिरूप कालका) प्रतीत होता है। इसलिए जो जिस कर्म का काल हो उसी में करे। इत्यादि वचन से पूर्व दिन ही प्राप्त हो पर दिन में रहने पर भी रोहणीयोग का प्रयोजकत्व नहीं है। अन्यथा बुधवार आदि में भी तत्त्वापत्ति हो जायगी।

किं च—जयन्तीशब्दो रात्रिशेषवचनः। अभिजिन्नाम नक्षत्रं जयन्ती नाम शर्वरी। मुहूर्तो विजयो नाम यत्र जातो जनार्दनः॥ इति हेमाद्रौ ब्रह्माण्डपुराणात्। तेन तद्योगिरोहिण्यां गौणत्वान्न व्रतभेदः। 'वासरे वा निशायां वा' इति, तत्कैमुतिकन्यायेन निशीथयोगस्यैव स्तुत्यर्थं पूर्वदिनेऽर्धरात्रयोगाभावे वा प्राशस्त्यार्थमित्याहुः।

और जयन्तीशब्द रात्रि का विशेष वचन है। ब्रह्माण्डपुराणमत से कहा है कि—अभिजित् नामवाला नक्षत्र तथा जयन्ती नाम वाली रात्रि विजय नामका मुहूर्त है। उसमें जर्नार्दन भगवान् पैदा हुए।

उससे उस योगवाली रोहिणी में गौणत्व होने से व्रतभेद नहीं होता है। जो दिन या रात में रोहिणी हो तो वह कैमुतिन्याय से रात्रि के योग का ही स्तुत्यर्थ है पूर्वदिन में आधीरात के योग के अभाव में प्राशस्त्यार्थ है—यों कहा है।

अन्ये तु यद्यपि—दिवा वा यदि वा रात्रौ नास्ति चेद्रोहिणी कला। रात्रियुक्तां प्रकुर्वीत विशेषेणेन्दुसंयुताम्॥ इत्यनेन रोहिणीयोगाभावेऽर्धरात्रव्याप्तेर्ग्राह्यतोक्ता, तथापि यस्मिन् वर्षे जयन्तीयोगो नास्ति तत्र जयन्तीव्रतलोपे प्राप्ते अष्टमीमात्रेऽपि जयन्तीव्रतं कार्यमित्येवं परमिदमिति तदाशयः।

अन्य तो यद्यपि [1]दिन में या रात में कला मात्र भी रोहिणी न हो तो विशेष कर चन्द्रमासे युक्त रात्रि से युक्ता को [2]करे।

इससे रोहिणी के योगाभाव में आधीरात में व्याप्ति का ग्रहण कहा है। तथापि जिस वर्ष में जयन्तीयोग नहीं है वहाँ पर जयन्ती के व्रत लोप के प्राप्त होने पर अष्टमी मात्र में भी जयन्तीव्रत करना चाहिये इसी परक है—यह इसका आशय है।

अत्र हि 'सत्रायापूर्य विश्वजिता यजेत'। एषामसम्भवे कुर्यादिष्टिं वैश्वानरीं द्विजः॥ इतिवद्रोहिणीयोगाभावे विधानात्तत्कार्यापत्तिः स्पष्टैव। अत एवोक्तम्—'जयन्ती नाम शर्वरी' इति।

यच्च स्कान्दे—'उदये चाष्टमी किञ्चिन्नवमी सकला यदि। भवते बुधसंयुक्ता प्राजापत्यर्क्षसंयुता॥ अपि वर्षशतेनापि लभ्यते वाऽथवा न वा॥ इति।

यहाँ पर ही सत्रयाग के लिये संकल्पकर (जो सत्र याग नहीं करता है उसके प्रायश्चित्त के लिए) विश्वजित् नामक याग करे। वैश्वानरदेवताकद्वादशकपालपुरोडाशयाग का वैश्वानरी इष्टि, यह संज्ञा है। द्विज करे।

इसकी तरह रोहिणीयोग के अभाव में विधान से उस उसकार्य की आपत्ति स्पष्ट ही है। इसीलिए ही कहा है कि—जयन्ती नाम की रात्रि है। जो स्कन्दपुराण में कहा कि—यदि उदय काल में किञ्चित् (कुछ) अष्टमी हो और सारे दिन नवमी हो तो तथा बुधवार एवं प्राजापत्य (रोहिणी) नक्षत्र से संयुक्त हो ऐसी अष्टमी सौ वर्ष में भी प्राप्त हो या न भी हो। वह श्रेष्ठ है।

यच्च पाद्मे—प्रेतयोनिगतानां तु प्रेतत्वं नाशितं तु तैः। यैः कृता श्रावणे मासि अष्टमी रोहिणीयुता॥ किं पुनर्बुधवारेण सोमेनापि विशेषतः। किं पुनर्नवमीयुक्ता कुलकोट्यास्तु मुक्तिदा। इति, तद्दानादिविषयम्। उपवासाश्रवणादित्यनन्तभट्टः, जयन्तीपरमिति हेमाद्रिः। उदये=चन्द्रोदय इति केचित्। तन्न। चन्द्रोदयसत्त्वेऽसन्देहान्नवमीसकलेत्ययोगान्मानाभावाच्च। तेन पूर्वेद्युः सप्तमी-

---

१—दिनद्वये निशीथे अष्टम्यभावे यत्किञ्चिद्दिने तत्सत्वे इन्दुसंयुतामर्धरात्रव्यापिनीं विशेषेण प्रकुर्वीतेत्यर्थः।

२—दिनावच्छेदेन रात्र्यवच्छेदेन वा कलामात्राऽपि चेद् रोहिणी नास्ति तदा रात्रियुक्तां परामिति यावत्।

विद्धे परदिने सूर्योदये घटिकाऽपि ग्राह्या। पूर्वविद्धाऽष्टमी इति पाद्मोक्तेः। इति युक्तम्। अतो न व्रतभेदो नाप्यन्तर्भाव इत्यूचिवान्।

और जो पद्मपुराण में कहा है कि—बुधवार विशेषकर सोमवार करोड़ों कुलोंको मुक्ति देनेवाले नवमी से संयुक्त जिन्होंने श्रावणमास में रोहिणी के सहित अष्टमी की। उनमें प्रेतयोनि में गये हुए का अपने पितरों का प्रेतत्व नष्ट हो जाता है।

वह दान आदि के विषय में है। क्योंकि—उसमें उपवास पद के नहीं सुना है यह अनन्त भट्ट का कहना है। जयन्ती रात्रिपरक है यह हेमाद्रि की उक्ति है। किसी का मत है कि—चन्द्रोदय के समय में अष्टमी हो।

यह ठीक नहीं है। चन्द्रोदय के समय में होने पर असंदेह से नवमी संपूर्ण अयोग होने से प्रमाणाभाव है। उससे पहले दिन सप्तमी वेध में दूसरे दिन सूर्योदय में एक घड़ी भी ग्रहण करनी चाहिये। पद्मपुराण में कहा है कि—पूर्वविद्धा अष्टमी ग्रहण करे। यही ठीक है। इसलिए व्रत का भेद नहीं है न इसका अन्तर्भाव है यह कहा है।

गौडास्तु नवमीक्षयपरमिदं वचनम् 'नवमी सकला यदि' इति विशिष्योक्तेः। एतत्पूर्वदिने जयन्त्यभावपरमित्याहुः। जयन्त्यादिसर्वापवादोऽयमित्याचार्यचूडामण्यादयः। वयं तु सत्यं व्रतभेदः।

लोकास्तु जन्माष्टमीमेवानुतिष्ठन्ति। न हि—श्रावणे वा नभस्ये वा रोहिणीसहिताष्टमी। यदा कृष्णा नरैर्लब्धा सा जयन्तीति कीर्तिता॥ श्रावणे न भवेद्योगो नभस्ये तु भवेद् ध्रुवम्॥ इति माधवीये वसिष्ठसंहितोक्ताऽपि भाद्रे जयन्ती केनापि न क्रियते। (अतः पूर्वेद्युरेवोपवासः) यद्वा गुणात्फलम्। 'सप्तमे ब्रह्मवर्चसकाममुपनयेत्' इतिवदित्यन्ये। तन्न। नित्यत्वानुपपत्तेः। अत्र गौणमुख्यचान्द्राभ्यामेक एव मास इत्यन्ये। तन्न। एकवाक्ये उभयनिर्देशे वाशब्दद्वयायोगात्। अतो जयन्तीव्रतस्यापि नित्यत्वादुपवासद्वयं कार्यमिति ब्रूमः। अत एव हेमाद्रिमदनरत्नादौ जन्माष्टमीव्रतं जयन्तीव्रतं च भिन्नमुक्तम्। भिन्नकालत्वात्सर्वथा तावदन्तर्भावो नेति सिद्धम्। यद्यपि पूर्वा परा वाल्पाऽपि रोहिणीयुतैव कार्येति ग्रन्थानां तत्त्वं प्रतीयते तदपि जयन्तीपरमेव। इदं च काम्यमेवेत्यनन्तभट्टः। तद्दूषणं हेमाद्रौ ज्ञेयम्। नित्यं काम्यमिति तु बहवः।

गौड कहते हैं कि—नवमीतिथि के क्षय परक यह वचन है। क्यों के—नवमी सम्पूर्ण (सूर्योदयान्तरास्पर्शित्वरूपसाकल्येनाष्टमी विद्धाया नवम्याः क्षयलाभादिति भावः) हो इस विशेष उक्ति के कारण इसके पूर्वदिन में जयन्ती के अभाव परक में है ऐसा कहा है। चूडामणि आदि ने कहा है कि—जयन्ती आदि सब व्रतों का अपवाद है। हमलोगों का सही कहना है कि—यह व्रतका भेद है। पर लोकस्थ लोग जन्माष्टमी ही का अनुष्ठान करते हैं।

यह ठीक नहीं है—श्रावणमास या भाद्रपदमास में रोहिणी से युक्त जब कृष्णपक्ष की अष्टमी मनुष्यों को मिलजाय तो वह 'जयन्ती' नाम कही जाती है। यदि श्रावणमास में यह योग न हो तो भाद्रपद में निश्चित होगा।

यह माधवीय में वसिष्ठसंहिता में कही गयी भी भाद्रपद में जयन्ती की कोई भी नहीं करता है। (अतः पूर्वदिन ही उपवास है।) अथवा गुण से ही फल है। सातवें साल में ब्रह्मचर्य की इच्छा वाला उपनयन करे इसतरह अन्यों का कहना है। यह ठीक नहीं है। नित्यत्व की अनुपपत्ति (असिद्धि) है। यहाँ पर गौण और मुख्य मासों से एक ही मास है यह अन्यों का कहना है। यह ठीक नहीं। एक वाक्य में उभय का निर्देश (बोध) होनेसे 'वा' शब्दद्वय का अयोग होता है इसलिए जयन्तीव्रत का भी नित्यत्व होनेसे दो उपवास करना चाहिये यह हमलोग कहते हैं। इसलिए हेमाद्रि मदनरत्न आदि में जन्माष्टमी व्रत को और जयन्ती व्रत को भिन्न कहा है। यद्यपि भिन्न काल होने से सर्वथा उसका अन्तर्भाव नहीं सिद्ध है। पूर्वा, परा या अल्पा भी रोहिणी सहित ही करे यह ग्रन्थों का तत्त्व प्रतीत होता है। वह भी जयन्तीपरक ही है और यह काम्य ही है यह अनन्तभट्ट का कहना है। उसका दोष हेमाद्रि में जानना चाहिये। नित्य और काम्य तो बहुत लोग कहते हैं।

ननु यथा विष्णुशृङ्खलयोगेन श्रवणद्वादशीवामनजयन्त्यादिसर्वसिद्धिर्यथा वैकादशी स्वल्पापि

परा, तथा—कला काष्ठा मुहूर्तोऽपि यदा कृष्णाष्टमी तिथिः। नवम्यां सैव ग्राह्या स्यात्सप्तमीसंयुता न हि॥ इत्यादिवचनादर्धोदयादिवद्योगाधिक्ये फलाधिक्यात्परैव जन्माष्टमी युक्तेति चेत् वार्तमात्थ। नहि तत्र व्रतभेदो द्वयोर्नित्यत्वं द्वयोरकरणे दोषो वा श्रुतः। इह त्वेतैस्त्रिभिर्हेतुभिः संज्ञाभेदाद्धर्मभेदात्कालभेदाच्चोपवासभेदः स्पष्ट एव। एकदैवतत्वाच्छ्रवणद्वादशीवन्न पारणालोपदोषोऽपि। तेन व्रतद्वयमेव युक्तम्। द्वयोरपि नित्यत्वात्।

कोई शंका करते हैं कि—जैसे-विष्णुश्रृंखलयोग से श्रावणद्वादशी वामन जयन्ती आदि की सब सिद्धि होती है या जैसे एकादशी अल्पा भी हो तो परा मानी जाती है और कलाकाष्ठ मुहूर्त भी यदि कृष्णाष्टमी नवमी तिथि से युक्त हो तो वह ही ग्रहण करे। सप्तमी से युक्त अष्टमी न ग्रहण करे। इत्यादि वचन से अर्धोदयादिवत् योगाधिक्य में फलाधिक्य होने से परा ही जन्माष्टमी युक्त है।

वहाँ पर व्रत का भेद नहीं है। दोनों का नित्यत्व और दोनों का नहीं करना दोष सुना गया है। यहाँ तो इन तीनों हेतु के कारण संज्ञाभेद, धर्मभेद और कालभेद इन तीनों हेतुओं से उपवास का भेद स्पष्ट है। एक देवता होने से श्रावण द्वादशी की तरह पारणालोपका दोष भी नहीं है। उससे दो व्रत ही युक्त है दोनों ही नित्य हैं।

केचित्तु—त्रेतायां द्वापरे चैव राजन् कृतयुगे तथा। रोहिणीसहिता चेयं विद्वद्भिः समुपोषिता॥

कोई तो कहते हैं कि—हे राजन्, त्रेता, द्वापर तथा सतयुग में रोहिणी के सहित अष्टमी में ही विद्वानों ने उपवास किया।

अतः परं महीपाल संप्राप्ते तामसे कलौ। जन्मना वासुदेवस्य भविता व्रतमुत्तमम्॥ इति हेमाद्रौ वह्निपुराणात् कलौ जन्माष्टमीव्रतमेव न जयन्तीव्रतमित्याहुः।

उसके बाद हे महीपाल, तामस कलियुग के प्राप्त होने पर वासुदेव के जन्म का उत्तम व्रत होगा। यह हेमाद्रि में वह्निपुराण के मत से-कलियुग में जन्माष्टमी व्रत ही है जयन्तीव्रत नहीं है। यों कहा।

तन्न। 'तामसे कलौ' इत्युक्तेः। परमश्रेयोहेतोरस्य कलौ पापिनां दुर्लभत्वमुच्यते। तेन कलौ तामसा न करिष्यन्ति किन्तु धन्या एवेत्यर्थः। अन्यथा—शूद्राश्च ब्राह्मणाचारा भविष्यन्ति कलौ युगे। इत्यादौ विधिकल्पनापत्तेः।

यह ठीक नहीं है। 'तामसे कलौ, इस उक्ति के कहने से परमश्रेय के कारण से इसका प्राप्त करना पापियों के लिये दुर्लभत्व कहा है। इसलिए कलयुग में तामसी लोग नहीं करेंगे किन्तु धन्य मनुष्य ही करेंगे। अन्यथा शूद्रगण कलियुग में ब्राह्मणों के आचरण को करने वाले होंगे। इत्यादि में विधि कल्पना की आपत्ति हो जायगी।

अत्र निशीथवेध एव ग्राह्यः। पूर्वोक्तवचनेषु तस्यैव मुख्यकालोक्तेः। अष्टमी शिवरात्रिश्च ह्यर्धरात्रादधो यदि। दृश्यते घटिका या सा पूर्वविद्धा प्रकीर्तिता॥ इति माधवीये पुराणान्तरात्।

यहाँ पर निशीथ (आधीरात) का वेध ही ग्रहण करना चाहिये। पूर्वोक्त वचनों में उसी का ही मुख्य काल कहा है।

माधवीय में पुराणान्तर का कथन है कि—अष्टमी, शिवरात्रि आधीरात के बाद घटीका (अर्धरात्रादधश्चोर्ध्वमेकार्धघटिकान्विता। रोहिणी चाष्टमी ग्राह्या उपवासव्रतादिषु।) मात्र भी दिखाई दे तो वह पूर्वविद्धा ग्रहण करने योग्य है।

अर्धरात्रे तु रोहिण्यां यदा कृष्णाष्टमी भवेत्। तस्यामभ्यर्चनं शौरेर्हन्ति पापं त्रिजन्मजम्॥ इति भविष्योक्तेः।

आधीरात में रोहिणीनक्षत्र से और कृष्णाष्टमी हो तो उसमें कृष्णका पूजन (भविष्ये-त्रिकालं पूजयेद्देवं दिवारात्रौ विशेषतः। अर्धरात्रावपि तथा पुष्पैर्नानाविधैरपि॥) करने से तीन जन्मका पाप नष्ट हो जाता है।

अष्टमी रोहिणीयुक्ता निश्यर्धे दृश्यते यदि। मुख्यकाल इति ख्यातस्तत्र जातो हरिः स्वयम् ॥ इति वसिष्ठसंहितोक्तेश्च।

वसिष्ठसंहिता में भी कहा है कि—रोहिणी से युक्त अष्टमी आधीरात को दिखाई दे तो वह मुख्यकाल है उसमें भगवान् ही स्वयं उत्पन्न हुए।

तत्राष्टमी द्वेधा—रोहिणीरहिता तद्युता च। आद्याऽपि चतुर्धा। पूर्वेद्युरेव निशीथयोगिनी परेद्युरेवोभयेद्युरनुभयेद्यश्चेति। तत्राद्ययोरसन्देह एव कर्मकालव्याप्तेः।

यहाँ पर अष्टमी दो तरह की है-प्रथम रोहिणीरहित दूसरी रोहिणी सहित। उसमें पहली भी चार प्रकार की है। (१) पूर्वदिन में ही आधीरात में हो। (२) दूसरे दिन में भी हो। (३) दो दिन आधीरात में हो। (४) दोनों दिन आधीरात में न हो। उसमें पहली दोनों में कर्मकाल की व्याप्ति में सन्देह नहीं है।

जन्माष्टमी रोहिणी च शिवरात्रिस्तथैव च। पूर्वविद्धैव कर्तव्या तिथिभान्ते च पारणम् ॥ इति भृगूक्तेश्च। अस्मात्केवलरोहिण्युपवासोऽपि सिद्धः। अन्त्ययोः परैव। प्रातःसङ्कल्पकालव्याप्तेराधिक्यात्। वर्जनीया प्रयत्नेन सप्तमीसंयुताष्टमी। इति ब्रह्मवैवर्ताच्च। एवमंशतः समव्याप्तावपि। विषमव्याप्तौ त्वाधिक्येन निर्णयः।

भृगू ने कहा है कि—जन्माष्टमी, रोहिणी तथा शिवरात्रि ये पूर्वविद्धा ही करना चाहिये और तिथि एवं नक्षत्र के अन्त में पारणा करे। इससे केवल रोहिणी उपवास भी सिद्ध है। अन्त्य की दोनों में परा ही ले। प्रातःकाल संकल्पकालव्यापिनी के आधिक्यता (आद्ये विशेषेणेन्दुसंयुतामिति मुख्यकालव्याप्तेः। अन्त्ये 'रात्रियुक्तां प्रकुर्वीत' इति गौणकालव्याप्तेः।) से।

ब्रह्मवैवर्तपुराण का कथन है कि—सप्तमी से युक्त अष्टमी प्रयत्न से छोड़देनी चाहिये। इसप्रकार अंशसे समान व्यापिनी भी हो। विषम (न्यूनाधिक) व्याप्ति में या अधिकव्याप्ति (निशीथे ऽष्टम्या अधिकव्याप्त्या) से निर्णय करे।

रोहिणीयुतापि चतुर्धा। पूर्वेद्युरेव निशीथे रोहिणीयुता परेद्युरेवोभयेद्युरनुभयेद्युश्च। अत्राप्याद्ययोरसन्देहः। 'कार्या विद्धापि सप्तम्या रोहिणीसहिताष्टमी।' इति पाद्मोक्तेः। जयन्त्यां पूर्वविद्धायामुपवासं समाचरेत्। इति गारुडाच्च। सप्तमीसंयुताष्टम्यां निशीथे रोहिणी यदि। भविता साष्टमी पुण्या यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ इति वह्निपुराणाच्च। द्वितीयेऽसन्देह एव। तृतीयपक्षे परैव। वर्जनीया प्रयत्नेन सप्तमीसंयुताष्टमी। सऋक्षापि न कर्तव्या सप्तमीसंयुताष्टमी ॥ इति ब्रह्मवैवर्तात्।

रोहिणी से युक्त भी चार प्रकार की है (१) पूर्वदिन ही आधीरात में रोहिणी के सहित। (२) दूसरे दिन (३) दोनों दिन, (४) और दोनों दिन रहित। यहाँ पर भी आदि की दोनों में सन्देह नहीं है। पद्मपुराण में कहा है कि—रोहिणी के सहित अष्टमी को सप्तमी से विद्धा भी करे और गरुड़पुराण का मत है कि पर्वविद्धा जयन्ती में उपवास करे तथा वह्निपुराण का कथन है कि—सप्तमी के सहित अष्टमी की आधीरात में यदि रोहिणी हो तो वह अष्टमी जब तक चन्द्रमा और सूर्य हैं तब तक पुण्यवाली है। दूसरे व्रत में सन्देह ही है। तीसरे पक्ष में परा ही है। ब्रह्मवैवर्तपुराण का कथन है कि—सप्तमी के सहित अष्टमी को प्रयत्न से त्याग देना चाहिये। वह रोहिणी नक्षत्र से संयुक्त सप्तमी युक्त अष्टमी भी हो तो न करे।

चतुर्थ्यपि त्रेधा। पूर्वेद्युर्निशीथेऽष्टमी परेऽह्नि रोहिणी, परेह्नचष्टमी पूर्वेऽह्निरोहिणी, उभयेद्युरुभयस्य निशीथासम्बन्धो वेति। आद्ये परेद्युर्जयन्तीयोगस्य सत्त्वात्परैवेति माधवः। तदुक्तं तेनैव—यस्मिन्वर्षे जयन्त्याख्यो योगो जन्माष्टमी तदा। अन्तर्भूता जयन्त्यां स्यादृक्षयोगे प्रशस्तितः ॥ इति।

पूर्वविद्धाष्टमी या तु उदये नवमीदिने। मुहूर्तमपि संयुक्ता सम्पूर्णा साष्टमी भवेत् ॥ कला काष्ठा

मुहूर्तोऽपि यदा कृष्णाष्टमी तिथिः । नवम्यां सैव ग्राह्या स्यात्सप्तमीसंयुता नहि ॥ इति पाद्मोक्तेश्च ।

चौथी भी तीन प्रकार की है । पहले दिन आधीरात में अष्टमी तिथि तथा दूसरे दिन में रोहिणी हो । दूसरे दिन में अष्टमी पूर्वदिन में रोहिणी हो । दोनों दिन रोहिणी और अष्टमी का आधीरात को सम्बन्ध न हो । पहली में परदिन जयन्ती योग के रहने से तो परा ही है—यह माधव का मत है ।

उसीको माधव ने कहा है कि—जिस साल में जयन्तीयोग हो और जन्माष्टमी हो तो उस जयन्ती में अन्तर्भूत मुहूर्त मात्र भी रोहिणी संयुक्त सम्पूर्ण अष्टमी हो तो वह तिथि अष्टमी पूर्णा होती है । वह कला, काष्ठ और मुहूर्त से भी जब कृष्णाष्टमी तिथि होती है वह नवमी से युक्त ग्रहण करे । सप्तमी से युक्त न ग्रहण करे पक्ष पद्मपुराण में कहा है ।

केचित्तु हेमाद्रौ—अष्टम्याः प्राधान्यात्तस्याश्च पूर्वेद्युः कर्मकालव्यापित्वात्पूर्वैव । पाद्मं तु पूर्वेऽह्नि निशीथेऽष्टम्यभावे ज्ञेयम् । अन्तर्भावोक्तिस्तु मूर्ख दन्भ्रणामात्रमित्याहुः । अन्ये तु 'पूर्वविद्धाष्टमी' इति वाक्ये जन्माष्टम्यां सूर्योदये सप्तमीवेधनिषेधात्कलाघटीमात्राप्यौदयिकी ग्राह्या । 'कार्यविद्धाऽपि सप्तम्या' इति जयन्तीपरम् । जयन्त्यां पूर्वविद्धायामुपवासं समाचरेत् । इत्येकवाक्यत्वात् । तत्रापि द्वयोर्नित्यत्वात्कालभेदाच्चोपवासद्वयं भवत्येव । यदा तु केवलाष्टमी शुद्धाधिका तदा त्यागहेतोः सप्तमीवेधस्याभावात्पूर्वैव । यदि वा विद्धन्यूना तदा परदिने ग्राह्यातिथेरभावात्पूर्वैव । एवं सर्वाण्यौदयिकवाक्यानि सप्तमीवेधपराणि ।

कोई तो यह कहते हैं कि—हेमाद्रि में अष्टमी की प्रधानता से उसके पूर्वदिन कर्मकाल में व्याप्तहोने पर पूर्वा ही ग्रहण करे । पद्मपुराण का मत तो पहले दिन निशीथ में होनेवाली अष्टमी के अभाव में जानना चाहिये । अन्तर्भाव तो मूर्खों की प्रतारणा मात्र ही है—ऐसा कहा है ।

अन्य (माधवहेमाद्र्युभयविरुद्धमतमाह) तो कहते हैं—'पूर्वविद्धा अष्टमी' इस वाक्य से जन्माष्टमी सूर्योदय में सप्तमीवेध के निषेध से कलाघटी मात्र भी औदयिकी ग्रहण करे । विद्धा सप्तमी भी करे यह जयन्तीपरक है ।

पूर्वविद्धा जयन्ती में उपवास करे। क्योंकि—इस एक वाक्यता से। उसमें भी दोनों का नित्यत्व होने से और कालभेद से दो उपवास (पूर्वदिन जयन्तीप्रयुक्त और दूसरे दिन जन्माष्टमी प्रयुक्त) होगा । जब भी केवल अष्टमी शुद्धाधिक हो तब त्याग के कारण सप्तमी वेधके अभाव से पूर्वा ही है। या यदि विद्धान्यून होगी तो पर दिन में ग्राह्य तिथि के अभाव से पूर्वा ही है । इसप्रकार सब औदयिक वाक्यों को सप्तमी वेध परक जानना चाहिये ।

ये तु—जन्माष्टमीं पूर्वविद्धां सऋक्षां सकलामपि । विहाय नवमीं शुद्धामुपोष्य व्रतमाचरेत् ॥ इति व्यासोक्तेर्विद्धायाः क्षये शुद्धनवम्यामुपवासः । दशमीवेधे द्वादश्युपवासवदित्याहुः, ते निर्मूलत्वादुपेक्ष्याः । 'मुहूर्तमपि संयुक्ता' इति रोहिणीयोगे त्याज्यत्वोक्तेः तिथ्यन्तपारणवाक्यानां निर्विषयत्वापत्तेः । न च जयन्तीपराणि शुद्धाधिकपराणि वा तानि । भृग्वाद्यैः पूर्वविद्धाष्टम्यामपि तिथ्यन्ते पारणोक्तेः । तेन 'कला काष्ठेति' वाक्यान्तरवशात् जयन्तीपरमेतत् ।

तत्त्वं तु अष्टम्याः कर्मकालव्याप्तेः दिवा वा यदि वा रात्रौ नास्ति चेद्रोहिणीकला । रात्रियुक्तां प्रकुर्वीत विशेषेणेन्दुसंयुताम् ॥ इति पूर्वोक्तवाक्यैः रोहिणीयोगाभावे ग्राह्यत्वोक्तेर्वचनात्कर्मकालव्यापिनीं त्यक्त्वा पूर्वा परा वाऽल्पापि रोहिणीयुता ग्राह्या । माधवमदनरत्ननिर्णयामृतानन्तभट्टगौडमैथिलग्रन्थादिष्वप्येवमिति ।

युक्तं तु उपवासद्वयं कार्यं द्वयोर्नित्यत्वादिति तु वयम् । अन्त्ययोः परैव । सप्तमीसंयुताष्टम्यां भूत्वा ऋक्षं द्विजोत्तम । प्राजापत्यं द्वितीयेऽह्नि मुहूर्तार्धं भवेद्यदि ॥ तदाष्टयामिकं पुण्यं प्रोक्तं व्यासादिभिः पुरा । इति स्कान्दात् ।

मुहूर्तेनापि संयुक्ता सम्पूर्णा साऽष्टमी भवेत् । किं पुनर्नवमीयुक्ता कुलकोट्यास्तु मुक्तिदा ॥ इति पाद्माच्चेति दिक् ।

जो यों कहते हैं कि—पूर्वविद्धा तथा रोहिणी नक्षत्र से युक्त संपूर्ण जन्माष्टमी को त्यागकर शुद्धा नवमी तिथि में व्रत को करे ।

इसप्रकार व्यास के कहने से विद्धा के क्षय में शुद्ध नवमी में उपवास करे । दशमीवेध में द्वादशी के उपवास की तरह कहा है । वे वचन निर्मूल होने से त्यागने योग्य हैं । क्योंकि—मुहूर्तमात्र भी संयुक्त हो इस कथन से रोहिणी के योग में त्याग करने को कहा है । क्योंकि—तिथ्यन्तर पारणा वाक्यों का निर्विषयत्वापत्तिहोने से । क्योंकि—ये जयन्तीपरक है या शुद्धाधिकपरक हैं । भृगु आदियों ने पूर्वविद्धा अष्टमी में (पूर्वविद्धा अष्टमी के उपवास में) भी तिथ्यन्त में पारणा कहा है । उसमें (जयन्तीव्रतपार्थक्यस्थापनेन) 'कलाकाष्ठा' इस वाक्यान्तर (तादृशोत्तरवाक्य) वशसे जयन्तीव्रत परक ही यह (पाद्मवाक्यम्) है । तत्त्व तो अष्टमीतिथि कर्मकाल व्याप्त हो । दिन या रात में रोहिणी कला नहीं है तो रात्रियुक्त अष्टमी करे । विशेषकर इन्दु के सहित । इस पूर्वोक्त वाक्यों से रोहिणीयोग के अभाव में ग्राह्य है ऐसाकहने से वचन द्वारा कर्मकालव्यापिनी को त्यागकर पूर्वा, परा या अल्पा भी रोहिणीयुता ग्रहण करे । माधव, मदनरत्न, निर्णयामृत, अनन्तभट्ट, गौड और मैथिल ग्रन्थादि में ही यही है । युक्त तो उपवासद्वय को करे । क्योंकि दोनों नित्य हैं—यह हमारा कथन है । अन्यकी दोनों परा ही करे ।

स्कन्दपुराण का मत है कि—हे द्विजोत्तम, सप्तमी से सहित अष्टमी में रोहिणी नक्षत्र होकर यदि दूसरे दिन आधा मुहूर्त हो तो आठयाम (आठ प्रहर) तक पुण्य व्यास आदि ने पहले कहा है ।

और पद्मपुराण में कहा है कि—मुहूर्तमात्र से भी संयुक्त (रोहिणी से युक्त) संपूर्ण अष्टमी हो तो और फिर नवमी से युक्त हो, वह कुल के करोड़ों को मुक्ति देने वाली होती है । तो क्या ।

निम्बादित्योपासकास्तु जन्माष्टमीरामनवमीशिवरात्र्यादौ पूर्वेऽह्नि कर्मकालीनां तिथिं त्यक्त्वा द्वित्रिमुहूर्ता परैव तिथिर्ग्राह्या । उदयव्यापिनी ग्राह्या कुले तिथिरुपोषणे । निम्बार्को भगवान् येषां वाञ्छितार्थफलप्रदः ॥ इति हेमाद्रौ मात्स्योक्तमुक्तिसप्तमीव्रते भविष्योक्तेरित्याहुः ।

तन्न । यदि द्वितीये दिवसे तु ऋक्षतिथ्योर्युतिः स्यान्न तदोपवासः । पूर्वे प्रकुर्याद्दिवसे द्वितीये दिनेशभक्तोऽथ तदा व्रताद्यम् ॥ इति मात्स्यवाक्येन तत्रैवोपसंहारात्सर्वार्थत्वेन मानाभावात् । ऋक्षतिथ्योः=हस्तसप्तम्योः । अन्यथा ऋषिपञ्चम्यादौ तदापत्तिः । शिष्टाचारान्नेति चेत्, न । तस्य न्यायवचोविरोधेन हेयत्वात् । इदानीं क्वापि निम्बार्कोपासनाभावाच्चेति संक्षेपः ।

निंबादित्य उपासकों का कहना है—जन्माष्टमी, रामनवमी, शिवरात्रि आदि में पूर्वदिन में कर्मकाल में तिथि को त्याग कर दो या तीन मुहूर्त पर ही तिथि ग्रहण करनी चाहिये ।

हेमाद्रि में मात्स्योक्त सप्तमीव्रत में भविष्यपुराण का कथन है कि—निम्बार्क भगवान् जिनको इच्छित फल को देनेवाले हैं । उनके कुल (वंश) में उपवास में तिथि उदयव्यापिनी ग्रहण करे । यह ठीक नहीं है ।

यदि दूसरे रोज नक्षत्र तथा तिथि का युति (योग) हो तो उपवास न करे । लेकिन-दिनेश (निम्बार्क) भक्त पहले दूसरे दिन में व्रत आदि करे । इस मत्स्यपुराण वाक्य से वहाँ पर उपसंहार से सर्वार्थता से प्रमाणाभाव है । ऋक्षतिथ्योः=हस्त और सप्तमी । अन्यथा ऋषि पञ्चमी आदि में उसकी आपत्ति हो जायगी । शिष्टाचार से नहीं स्वीकृत होगा । वह ठीक नहीं है । उसका न्याय वचन के विरोधसे हेय है । इससमय कहीं भी निम्बार्क की उपासना होती नहीं है । यह संक्षेप है ।

(अथ पारणानिर्णयः)

पारणं तु—तिथिरष्टगुणं हन्ति नक्षत्रं च चतुर्गुणम् । तस्मात्प्रयत्नतः कुर्यात्तिथिभान्ते च पारणम् ॥ इति ब्रह्मवैवर्तात् ।

ब्रह्मवैवर्तपुराण का मत है कि—पारणा तो—तिथि के आठ गुणा पुण्य को और नक्षत्र चौगुणे पुण्य को नाश करती है। इसलिये प्रयत्न से तिथि एवं नक्षत्र के अन्त में [1]पारणा करे।

तिथ्यृक्षयोर्यदाच्छेदो नक्षत्रान्तमथापि वा। अर्धरात्रेऽथवा कुर्यात्पारणं त्वपरेऽहनि ॥ इति हेमाद्रौ वचनाच्चार्धरात्रेऽप्युभयान्तेऽन्यतरान्ते वेति मुख्यः पक्षः। सर्वेष्वेवोपवासेषु दिवा पारणमिष्यते। इति ब्रह्मवैवर्तं त्वन्यविषयम्। दिने मुख्यकालालाभेऽन्यतरान्ते वा ज्ञेयम्।

हेमाद्रि का कथन है कि—तिथि तथा नक्षत्र (अन्यतिथ्यागमो रात्रौ तामसस्तैजसो दिवा। तामसे पारणं कुर्वंस्तामसीं गतिमश्नुते ॥) की जब छेद (हानि) हो या नक्षत्र (रोहिणीसहिता चेयं विद्वद्भिः समुपोषिता। वियोगे पारणं चक्रुर्मुनयो ब्रह्मवादिनः॥ सांयोगिके व्रते प्राप्ते यद्येकोऽपि वियुज्यते। तत्रैव पारणं कुर्यादिति वेदविदो विदुः॥) का अन्त हो तो दूसरे दिन की आधी रात में पारणा करे। यह हेमाद्रि बचन से आधी रात में भी, दोनों के अन्त में या एक के अन्त में करे—यह मुख्य पक्ष है।

ब्रह्मवैवर्तपुराण में तो कहा है कि—सब उपवासों में दिन में मुख्यकाल के अलाभ में तिथि या नक्षत्र के अन्त में जानना चाहिये।

गौडास्तु—न रात्रौ पारणं कुर्यादृते वै रोहिणीव्रतात्। तत्र निश्यपि तत्कुर्याद्वर्जयित्वा महानिशाम् ॥ इति ब्रह्माण्डपुराणाद्रात्रौ सार्धप्रहरमध्ये कार्यम्। महानिशा तु विज्ञेया मध्यमं मध्ययामयोः।

तथा—मध्यमप्रहरे रात्रेर्विज्ञेया तु महानिशा। इति स्मृत्यन्तरात्। कल्पतरौ मदनरत्ने चैवम्। कामधेनौ गर्गस्तु—महानिशा तु विज्ञेया मध्यमं प्रहरद्वयम्। इत्याह।

गौडों का कहना है कि—रोहिणीव्रत को त्याग कर रात्रि में पारणा न करे। उसमें भी महानिशाओं को छोड़कर निशा (रात्रि) में पारणा करे। इस ब्रह्माण्डपुराण से रात में दो प्रहर के मध्य में करे।

मध्य के दो प्रहर मध्य को 'महानिशा' जानना चाहिये और स्मृत्यन्तर का कथन है कि—रात के मध्य भाग का एक प्रहर महानिशा जानना चाहिये। कल्पतरु और मदनरत्न में यही है। कामधेनु में गर्ग का कथन है कि—मध्य के दो प्रहरों को 'महानिशा' जानना चाहिये-यों कहा है।

वृद्धशातातपस्तु—महानिशा द्वे घटिके रात्रौ मध्यमयामयोः। इत्याह। वेदपाठपरमेतदित्यन्ये। महानिशायामन्यतरान्ते तृतीयदिने पारणम्। 'अपरेऽहनि' इति पारणोत्तरदिनपरत्वात् उभयान्तापेक्षणादित्याहुः। तत्त्वं तु महानिशातोऽर्वागन्यतरान्तलाभे महानिशानिषेधः। महानिशायामेव लाभे तत्रैव पारणमिति।

वृद्धशातातप का कहना है कि-रात्रि के मध्य के दो प्रहरों की अन्त और आदि की दो घड़ी महानिशा होती है। यों कहा है। अन्य का कहना है कि-यह वेदपाठ के लिये है। अन्यतरान्त महानिशा में नक्षत्र या तिथि के अन्त में तीसरे दिन पारणा करे। क्योंकि 'अपरेऽहनि' दूसरे दिन में पारणा का उत्तरदिन परक है। उभयान्त की उपेक्षा है। यों कहा है। तत्त्व तो यह है कि—महानिशा के पूर्व तिथि या नक्षत्र के अन्त के अलाभ में महानिशा का निषेध है। महानिशा में ही लाभ में उसी में पारणा करे।

दिवोदासस्तु—रजनी प्रहरं यावत्प्रवृत्तिः कर्मणो मता। पारणं तावदेवेष्टं प्रमादान्न भवेद्यदि ॥ इति स्कान्दादूर्ध्वं निषेधमाह। तन्निर्मूलम्।

दिवोदास ने कहा है कि—रात्रि में दो प्रहर तक सब कर्मों की प्रवृत्ति होती है। पारणा उसी काल में इष्ट है प्रमाद से न हो तो यह स्कन्दपुराण से ऊपर निषेध कहा है। यह निर्मूल है।

१—सर्वेष्वेवोपवासेषु पूर्वाह्णे पारणं भवेत्। अन्यथा तु फलस्यार्धं धर्ममेवोपसर्पति ॥ 'तिथीनामेव सर्वासामुपवासव्रतादिषु। तिथ्यन्ते पारणं कुर्याद्विना शिवचतुर्दशीम् ॥ 'तिथिनक्षत्रनियमे तिथिभान्ते च पारणम्। अतोऽन्यथा पारणायां व्रतभङ्गमवाप्नुयात् ॥ 'पूर्वविद्धासु तिथिषु भेषु च श्रवणं विना। उपोष्य विधिवत् कुर्यात्तत्तदन्ते च पारणम् ॥

अशक्तौ तु वह्निपुराणे—भान्ते कुर्यात्तिथेर्वापि शस्तं भारत पारणम् । इति ।

अशक्ति से वह्निपुराण में कहा है कि—हे भारत, नक्षत्र या तिथि के अन्त में पारणा करे। यह श्रेष्ठ है।

गारुडे विष्णुधर्मे च—जयन्त्यां पूर्वविद्धायामुपवासं समाचरेत् ।
तिथ्यन्ते वोत्सवान्ते वा व्रती कुर्वीत पारणम् ॥ इति ।

गरुडपुराण और विष्णुधर्म में कहा है कि—पूर्वविद्धा जयन्ती में उपवास को करे। तिथ्यन्त में या उत्सवान्त में व्रती पारणा करे।

अशक्तौ तु—तिथ्यन्ते तिथिभान्ते वा पारणं यत्र चोदितम् । यामत्रयोर्ध्वगामिन्यां प्रातरेव हि पारणा ॥ स एवोत्सवान्तः—तिथ्यन्ते वोत्सवान्ते वा व्रती कुर्वीत पारणम् । इति कालादर्शोक्तेश्चेति संक्षेपः ।

अशक्ति में तो—तिथ्यन्त में या तिथिनक्षत्र के अन्त में जहाँ पारणा कहा है वहाँ यामत्रय के ऊपर गामिनी हो तो प्रातःकाल ही पारणा करे। क्योंकि प्रातःकाल ही उत्सव का अन्त होता है।

यह कालादर्श में संक्षेप से कहा है कि—तिथ्यन्त (अन्यतरान्त) में उत्सवान्त (जागरान्त) में व्रती पारणा करे।

(अथ प्रतिमाभेदादिपूजनविधिकथनम्)

अष्टम्यां विशेषो हेमाद्रौ भविष्ये—ततोऽष्टम्यां तिलैः स्नातो नद्यादौ विमले जले ।
सुदेशे शोभनं कुर्याद्देवक्याः सूतिकागृहम् ॥

अष्टमी में विशेष हेमाद्रि में भविष्यपुराण वचन से कहा है कि—तदनन्तर[1] अष्टमीतिथि में नदी आदि में निर्मल जल में तिलों से स्नान करे। अच्छे सुन्दर देश (स्थान) में देवकी का 'सूति का गृह (षष्ठी देव्या अधिष्ठितं गृहम्) करे।

(अष्टम्यां देवकीकृष्णादिप्रतिमास्थापनादिविचारः)

तन्मध्ये प्रतिमा स्थाप्या सा चाप्यष्टविधा स्मृता । काञ्चनी राजती ताम्री पैत्तली मृन्मयी तथा ॥
वार्क्षी मणिमयी चैव वर्णकैर्लिखिताऽथवा । सर्वलक्षणसम्पूर्णा पर्यङ्के च पटावृते ॥
देवकीं तत्र चैकस्मिन् प्रदेशे सूतिकागृहे । प्रस्नुतां च प्रसूतां च स्थापयेन्मञ्चकोपरि ॥
मां तत्र बालकं सुप्तं पर्यङ्के स्तनपायिनम् । यशोदां तत्र चैकस्मिन् प्रदेशे सूतिकागृहे ॥

उसके मध्य में प्रतिमा (प्रतिमायामग्न्युत्तारणसंस्कारं कुर्यात् । स च ऋग्वेदे 'अग्निः सप्तिं वाजम्भरं ददाति' इति सूक्तमग्निहीनं पठेत् ।) का स्थापन करे। वह भी आठ प्रकार की हो। सुवर्ण, चांदी, तांबा, पीतल, मृत्तिका, वृक्ष, मणि या अनेक रंगों द्वारा लिखी हुई ये आठ प्रकार की सब लक्षणों से परिपूर्ण, वस्त्र से ढक कर पलंग पर रखे। वहाँ पर एक हिस्से पर देवकी की सूति का गृह में उसी मञ्च के ऊपर स्थापन करे और स्तनों से दूध निकलता हो और प्रसव भी हुआ हो उसी शय्या पर स्तन पीते तथा शयन करते मुझ बालक को स्थापन करे।

तद्वच्च कल्पयेत्पार्थ प्रसूतिवरकन्यकाम् । कश्यपो वसुदेवोऽयमदितिश्चैव देवकी ॥
शेषो वै बलभद्रोऽयं यशोदा क्षितिरन्वभूत् । नन्दः प्रजापतिर्दक्षो गर्गश्चापि चतुर्मुखः ।
गौर्धेनुः कुञ्जरश्चैव दानवाः शस्त्रपाणयः । लेखनीयाश्च तत्रैव कालियो यमुनाह्रदे ॥
इत्येवमादि यत्किञ्चिच्छक्यते चरितं मम । लेखयित्वा प्रयत्नेन पूजयेद्भक्तितत्परः ॥

हे पार्थ, उसीतरह उत्तमकन्या के उत्पत्ति की कल्पना करे। कश्यप वसुदेव हैं और देवकी अदिति

१—सप्तम्यां लघुभुक् कुर्यात् दन्तधावनपूर्वकम् । उपवासस्य नियमं रात्रौ कृत्वा जितेन्द्रियः ॥

है। बलदेव शेष हैं तथा यशोदा दिति है। नन्द दक्षप्रजापति हैं तथा गर्ग चतुर्मुख हैं। गौ धेनु है हाथी तथा शस्त्र हाथ में हैं वहाँ पर ऐसे दानवों को लिखे। यमुना के कुण्ड में कालिय को लिखे। इसप्रकार मेरे चरित्र को जितना भी कुछ लिख सके लिखकर भक्ति में तत्पर हो प्रयत्न से पूजन करे। हे कौन्तेय, इस मन्त्र से मनुष्य देवकी का पूजन करे।

मन्त्रेणानेन कौन्तेय देवकीं पूजयेन्नरः ॥ गायद्भिः किन्नराद्यैः सततपरिवृता वेणुवीणानिनादैः भृङ्गारादर्शकुम्भप्रवरवृतकरैः किंकरैः सेव्यमाना। पर्यङ्के स्वास्तृते या मुदिततरमुखी पुत्रिणी सम्यगास्ते, सा देवी देवमाता जयति सुतनया देवकी कान्तिरूपा ॥ पादौ संवाहयन्ती श्रीर्देवक्याश्चरणान्तिके। निषण्णा पङ्कजे पूज्या नमो देव्यै श्रियै इति ॥

ध्यान करते हुए भिन्न २ आदि निरन्तर युक्त है। वेणु तथा वीणा के विनाद (शब्द) से शृङ्गार के लिए शीशा, कुम्भ हाथ में लिए हुए किङ्करों से सेव्यमान जो अच्छीप्रकार से विछे हुए पिलंग पर अधिक प्रसन्न मुख से बैठी है उस कान्तरूपा पुत्रिणी देवमाता देवकी की जय हो। देवकी के पैरों के समीप चरणों को दबाती हुई कमल पर बैठी हुई देवीश्री की 'नमो देव्यै श्रियै' इस मन्त्र से पूजा करे। गुड और (गव्यं घृतेनाग्नौ वसोर्धारां कुर्यात्। क्वचिद् गुडसर्पिषेति पाठः) आधी रात में वसोर्धारा दे।

अर्धरात्रे वसोर्धारां पातयेद् गुडसर्पिषा। नाडीवर्धापनं षष्ठी नामादेः करणं मम ॥ ततो मन्त्रेण वै दद्याच्चन्द्रायार्घ्यं समाहितः। शंखे तोयं समादाय सपुष्पकुशचन्दनम्। जानुभ्यां धरणीं गत्वा चन्द्रायार्घ्यं निवेदयेत् ॥

मेरी नाडी (जातकर्म नालच्छेदन—षष्ठीपूजा नामकर्मादीनि, वर्धापन) षष्ठी और नामकर्म आदि करे। तदनन्तर—मन्त्र से ही समाहित मन से चन्द्रमा को अर्घ्य दे। शंख में जल, पुष्प तथा चन्दन लेकर पृथ्वी पर दोनों जंघाओं को कर चन्द्रमा को अर्घ्य दे।

क्षीरोदार्णवसम्भूत अत्रिनेत्रसमुद्भव। गृहाणार्घ्यं शशांकेदं रोहिण्या सहितो मम ॥ ज्योत्स्नापते नमस्तुभ्यं नमस्ते ज्योतिषां पते। नमस्ते रोहिणीकान्त अर्घ्यं नः प्रतिगृह्यताम् ॥

क्षीरसमुद्रसे संभूत अत्रिगोत्रसे उत्पन्न रोहिणी के सहित मेरे इस अर्घ्य को ग्रहण करो। ज्योत्स्ना पति को नमस्कार है ज्योतियों के पति को नमस्कार है। रोहिणीकान्त को नमस्कार है हमारे अर्घ्यको ग्रहण करो।

यथा पुत्रं हरिं लब्ध्वा प्राप्ता ते निर्वृतिः पराम्। तामेव निर्वृतिं देहि सुपुत्रं दर्शयस्व मे ॥ इति देवक्यर्घ्यः।

ततः पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा यामे यामे प्रपूजयेत्। प्रभाते ब्राह्मणान् शक्त्या भोजयेद्भक्तिमान्नरः ॥ ॐ नमो वासुदेवाय गोब्राह्मणहिताय च। शान्तिरस्तु शिवं चास्तु इत्युक्त्वा मां विसर्जयेत् ॥

जैसे—हरिरूप पुत्र प्राप्त हो जाने से वे लोग उत्कृष्ट निर्वृत्ति (सुख) प्राप्त की उसी सुपुत्र की निर्वृत्ति को हमें दे एवं दृष्टिगोचर कराओ इससे देवकी को अर्घ्य दे। तदनन्तर पुष्पाञ्जलि देकर याम याम में पूजा करे। भक्ति से युक्त मनुष्य सुबह शक्ति से ब्राह्मणों को भोजन करावे। गौ, ब्राह्मण हितैषी वासुदेव को नमस्कार है। शान्ति हो तथा कल्याण हो। यों कहकर मेरा विसर्जन करे।

इदं प्रतिमासकृष्णाष्टम्यामप्युक्तं मदनरत्ने वह्निपुराणे—प्रतिमासं च ते पूजामष्टम्यां यः करिष्यति। मम चैवाखिलान् कामान् स संप्राप्स्यत्यसंशयम् ॥

तथा—अनेन विधिना यस्तु प्रतिमासं नरेश्वर। करोति वत्सरं पूर्णं यावदागमनं हरेः। दद्याच्छय्यां सुसम्पूर्णां गोभी रत्नैरलंकृताम् ॥ इति जन्माष्टमीव्रतम्।

यह प्रतिमास कृष्णपक्ष की अष्टमी को भी कहा है—मदनरत्न में वह्निपुराण के वचन से कहा है कि—प्रतिमास की अष्टमी को जो तुम्हारी पूजा को करेगा वह मेरी सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त कर लेगा। इसमें

संशय नहीं है और हे नरेश्वर, जो इस विधि से प्रतिमास एक साल तक जबतक हरि का आगमन नहीं होता है तबतक पूजा करता है वह व्यक्ति गौ और रत्नों से अलंकृत संपूर्ण शय्या का दान करे।

(भाद्रकृष्णामायां कुशग्रहणविधिः)

भाद्रामावास्यायां कुशग्रहणमुक्तं हेमाद्रौ हारीतेन—मासे नभस्यमावास्या, तस्यां दर्भोचयो मतः। अयातयामास्ते दर्भा विनियोज्याः पुनः पुनः॥

नभः=श्रावणः। तेन दर्शान्तमासे जन्माष्टम्यनन्तरं दर्शो लभ्यते। मदनरत्ने तु–मासे नभस्येऽमावास्या तस्यां दर्भोचयो मतः। इति मरीचिवाक्यमुक्तम्। नभस्यो=भाद्रपदः। तेन महालयान्तर्गतदर्शो लभ्यते। गौणमुख्यचान्द्राभ्यामेक एव दर्श इत्यन्ये।

भाद्रपद कृष्णपक्ष की [1]अमावास्या को कुशग्रहण हेमाद्रि में हारीत के वचन से कहा है कि—श्रावणमास की अमावास्या को दर्भ (कुशा) का संचय करे। वे दर्भ [2]अयातयाम हैं। इनको बारंवार विनियोग में लेना चाहिये। नभः=श्रावणमास, इसलिये दर्शान्तमास में जन्माष्टमी के बाद दर्श (अमावास्या) प्राप्त होती है।

मदनरत्न में तो मरीचि का कथन है कि—भाद्रपदमास की अमावास्या को कुशाओं का संचय करे। नभस्यमाने–भाद्रपदमास। इससे महालयान्तर्गत अमावास्या प्राप्त होती है। कोई कहते हैं कि—गौण तथा मुख्य चान्द्रमास से एक ही दर्श ले।

(भाद्रशुक्लतृतीयायां हरितालिकाव्रतम्)

भाद्रपदशुक्लतृतीयायां हरितालिकाव्रतम्। तत्र परा ग्राह्या। मुहूर्तमात्रसत्त्वेऽपि दिने गौरीव्रतं परे। शुद्धाधिकायामप्येवं गणयोगप्रशंसनात्॥ इति माधवोक्तेः।

[3]भाद्रपदशुक्लतृतीया को हरितालिका व्रत कहा है। उसमें परा ले। माधवीय में कहा है कि—मुहूर्तमात्र के होने पर भी गौरी का व्रत पर दिन में करे। गण (गणेशचतुर्थीतिथि) योग की प्रशंसा से शुद्ध और अधिक में भी होता है। चतुर्थी से युक्त में फलाधिक्य होता है।

चतुर्थीयुक्तायां फलाधिक्यम्। माधवीये आपस्तम्बः–चतुर्थी सहिता या तु सा तृतीया फलप्रदा। अवैधव्यकरा स्त्रीणां पुत्रपौत्रप्रवर्धिनी॥ द्वितीयायोगे प्रत्यवायमाह स एव—द्वितीयाशेषसंयुक्तां या करोति विमोहिता। सा वैधव्यमवाप्नोति प्रवदन्ति मनीषिणः॥ इति।

आद्या मधुस्रावणिका कज्जली हरितालिका। चतुर्थीमिश्रिता स्त्रीभिर्दिवानक्तं विधीयते॥

तृतीया नभसः शुक्ला मधुस्रवणिका स्मृता। भाद्रस्य-कज्जली कृष्णा शुक्ला च हरितालिका॥ इति दिवोदासोदाहृतवचनाच्च।

माधवीय में आपस्तम्ब का वचन है कि—चतुर्थीतिथि के सहित जो तृतीयातिथि है वह फलप्रद है। वह स्त्रियों को अवैधव्य को करने वाली तथा पुत्र एवं पौत्र को बढाने वाली है।

द्वितीया के योग में प्रत्यवाय (दोष) को कहा है—वह द्वितीया के शेष संयुक्त को जो विमोहित होकर जो करती है वह वैधव्यको प्राप्त करती है ऐसा मनीषीलोग कहते हैं। [4]दिवोदास में कहे हुए वचनों को

१—यत्तु–शंखः–अमायां चैव न च्छिन्द्यात्कुशांश्च समिधस्तथा। इति, तत्तत्कालकर्मातिरिक्तपरम्। 'कुशान् काशांश्च दूर्वाद्यान् गवार्थं च तृणादिकम्। निषिद्धे चापि गृह्णीयादमावास्याहनि द्विज॥ इतिजाबाल्युक्तेः। पाद्मे–न दर्भानुद्धरेच्छूद्रो न पिबेत्कापिलं पयः।

२—अयातयामाः—उपयुक्ताः अपि अपवादं विहायान्यत्र प्रयोज्याः।

३—भाद्रशुक्लप्रतिपदि रुद्रव्रतं, तत्र पूर्वविद्धा ग्राह्या रुद्रव्रतेषु सर्वेषु कर्तव्या सन्मुखी तिथिः। 'एतदन्वर्थकं नाम' आलाभिर्हरितायस्मात्तस्मादरितालिका–इतिवचनात्।

४—आद्या—परेद्युरौदयिकी, मधुस्रवणिकेत्यत्र दन्त्यः सकारो न तु तालव्यः शकारः। मधुस्रवास्येत्युक्तेः।

उद्धरण करते हैं कि—पहली मधुस्रावणिका कज्जली तीज हरितालिका और चतुर्थीतिथि के सहित स्त्रियों से दिवानक्त ('अहोरात्र साध्यव्रत) में विधान हैं।

भाद्रशुक्लचतुर्थ्यां मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या। प्रातः शुक्लतिलैः स्नात्वा मध्याह्ने पूजयेन्नृप। इति हेमाद्रौ भविष्ये तत्रैव पूजोक्तेः। मदनरत्नेऽप्येवम्। परदिने एवांशेन साकल्येन वा माध्याह्नव्याप्त्यभावे सर्वपक्षेषु पूर्वा ग्राह्या।

तथा च बृहस्पतिः—चतुर्थी गणनाथस्य मातृविद्धा प्रशस्यते। मध्याह्नव्यापिनी चेत्स्यात्परतश्चेत्परेऽहनि ॥ इति। मातृविद्धा प्रशस्ता स्याच्चतुर्थी गणनायके। मध्याह्ने परतश्चेत्स्यान्नागविद्धा प्रशस्यते ॥ इति माधवीये स्मृत्यन्तराच्च।

[1]भाद्रपदशुक्लपक्ष की तृतीया कज्जली, मधुस्रावणिका कही है। भाद्रपद के कृष्ण की कज्जली शुक्ल पक्ष के तृतीया हरितालिका भाद्रशुक्लचतुर्थी मध्याह्नव्यापिनी ग्रहण करे। हे नृप, प्रातःकाल सफेद तिलों से स्नान कर मध्याह्न में पूजन करे यह हेमाद्रि में भविष्यपुराणमत से वहीं पर पूजा कही है। मदनरत्न में यही है। परदिन में ही अंश से (परेद्युरधिकव्याप्तौ परेद्युराधिक्यादिति केचित्। या तु पूर्वेद्युः कीञ्चन्मध्याह्नं व्याप्य परेद्युः कृत्स्नं मध्याह्नं व्याप्नोति सा परा, संपूर्णकर्मकालव्याप्तेः) या साकल्य (संपूर्णता) से मध्याह्न व्यापिनी के अभाव में सब तरह के पक्षों में पूर्वा ही ग्रहण करे और बृहस्पति ने कहा है कि—गणनाथ की (गणेश) चतुर्थी मातृविद्धा श्रेष्ठ है यदि मध्याह्नव्यापिनी से परे हो तो परदिन में करे। गणनायक में मातृविद्धा चतुर्थी श्रेष्ठ है। मध्यान्ह के बाद हो तो नाग (पञ्चमी) विद्धा श्रेष्ठ है। यह माधवीय में स्मृत्यन्तर का कथन है।

(गणेशस्य रूपकथनम्)

तत्र गणेशरूपं स्कान्दे—एकदन्तं शूर्पकर्णं नागयज्ञोपवीतिनम्। पाशाङ्कुशधरं देवं ध्यायेत्सिद्धिविनायकम् ॥ इति।

उसमें गणेश का स्वरूप स्कन्दपुराण में कहा है कि—एक दिन, सूप की तरह कान, सर्प, यज्ञोपवीत, पाश एवं अंकुश को धारण करने वाले सिद्धिविनायक देव का ध्यान करे।

(गणेशार्चने भाद्रपदशुक्लचतुर्थीविचारः)

इयं रविभौमयोरतिप्रशस्ता। भाद्रशुक्लचतुर्थी या भौमेनार्केण वा युता। महती साऽत्र विघ्नेशमर्चित्वेष्टं लभेन्नरः ॥ इति। निर्णयामृते वाराहोक्तेः।

यह रविवार और भौमवार को अतिश्रेष्ठ है। निर्णयामृत में वाराह ने कहा है कि—भाद्रपद शुक्लकी चतुर्थी भौमवार या रविवार से युक्त होतो अति उत्तम है। उसमें विघ्नेश्वर का अर्चन करने से मनुष्य को इच्छित फल मिलता है।

(चन्द्रदर्शनविचारः)

अत्र चन्द्रदर्शनं निषिद्धम्। तथा चापरार्के मार्कण्डेयः—सिंहादित्ये शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां चन्द्रदर्शनम्। मिथ्याभिदूषणं कुर्यात्तस्मात्पश्येन्न तं तदा ॥ इति। चतुर्थ्यां न पश्येदित्यन्वयः। प्रधानक्रियान्वयलाभात्। तेन चतुर्थ्यामुदितस्य पञ्चम्यां न निषेधः।

गौडा अप्येवमाहुः। पराशरोऽपि—कन्यादित्ये चतुर्थ्यां तु शुक्ले चन्द्रस्य दर्शनम्। मिथ्याभिदूषणं कुर्यात्तस्मात्पश्येन्न तं तदा ॥ तद्दोषशान्तये सिंहः प्रसेनमिति वै पठेत् ॥ इति।

श्लोकस्तु विष्णुपुराणे-सिंहः प्रसेनमवधीत् सिंहो जाम्बवता हतः। सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येषः स्यमन्तकः ॥ इति।

१—नमसः कज्जली कृष्णा–इतिदिवोदासपाठाच्छ्रावणकृष्णतृतीया कज्जलीति कृत्यरत्नावली।

यहाँ पर चन्द्रदर्शन निषिद्ध है और अपरार्क में मार्कण्डेय ने कहा है कि—सिंहादित्य (कन्यादित्य सिंहादित्यशब्दयोः चान्द्रो भाद्रपद इत्यर्थः) में शुक्लपक्ष की [1]चतुर्थीतिथि में चन्द्रदर्शन मिथ्याभिदूषण (मिथ्यादोष) करता है। इसलिए चन्द्रमा को न देखे। चतुर्थी में न देखे यह अन्वय है। क्योंकि–प्रधान क्रियान्वय के लाभ से। इससे चतुर्थीतिथि उदय होने से पञ्चमी में निषेध नहीं है। गौड भी यही कहते हैं। पराशर ने भी कहा है कि—कन्या के सूर्य में शुक्लपक्ष की चतुर्थीतिथि में चन्द्रमा का दर्शन मिथ्या दोष लगता है अतः उसे न देखे। उसके दोष की शान्ति के लिए 'सिंहःप्रसेनम्' इस मन्त्र को निश्चय पढ़े। (सिंहः प्रसेनम्–इस मन्त्र से अभिमन्त्रित जल पीवे और स्यमन्तकोपाख्यान का श्रवण करे–यह स्मार्तों का कहना है।)

श्लोक विष्णुपुराण में कहा है कि—सिंह ने प्रसेन को मारा और सिंह को जांबवान् ने मारा। हे सुकुमारक, तुम मत रोओ यह तुम्हारी ही स्यमन्तकमणि है।

(भाद्रशुक्लपञ्चमीविचारः)

भाद्रशुक्लपञ्चमी=ऋषिपञ्चमी। सा मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या। 'पूजाव्रतेषु सर्वेषु मध्याह्नव्यापिनी तिथिः॥' इति माधवीये हारीतोक्तेः। दिनद्वये तत्त्वे हेमाद्रिमते परा। 'सिता परयुता स्यात्पञ्चमी' इति दीपिकोक्तेः। माधवमते पूर्वा। 'सर्वत्र पञ्चमी पूर्वा' इत्युक्तेः। युग्मवाक्यान्निर्णयस्तु युक्तः। ऋषिपञ्चमी षष्ठीयुतेति दिवोदासः।

भाद्रपदशुक्लपञ्चमी—ऋषिपञ्चमी होती है। वह मध्याह्नव्यापिनी ग्रहण करे। माधवीय में हारीत ने कहा है कि—सब पूजा और व्रतों में मध्याह्नव्यापिनीतिथि ग्रहण करे। दोनों दिन हो तो हेमाद्रिमत से परा (वस्तुतस्तु मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या) ग्रहण करे। दीपिका में भी कहा है कि—शुक्लपक्ष की पञ्चमी परयुता ले।

माधवमत से पूर्वा ले। सब जगह पञ्चमी पूर्वा ही कही गयी है। युग्मवाक्य से निर्णय तो युक्त है। ऋषिपञ्चमी षष्ठीतिथियुक्त ही ग्रहण करे—यह दिवोदास का मत है।

(अत्र प्रतिमासु ऋषिपूजनविचारः)

अत्र ऋषीन् प्रतिमासु पूजयित्वाऽकृष्टभूमिजशाकेन वर्तनम्। एवं सप्तवर्षाणि कृत्वा सप्तकुम्भेषु प्रतिमाः सम्पूज्य परेऽह्नि तन्मन्त्रेणाष्टोत्तरशतं तिलान् हुत्वा सप्तब्राह्मणान् भोजयेत्। इति निर्णयामृते।

यहाँपर ऋषियों (कश्यपोऽत्रिर्भरद्वाजो विश्वामित्रोऽगौतमः। जमदग्निर्वशिष्ठश्च सप्तैते ऋषयः स्मृताः॥) की प्रतिमाओं पर पूजाकर विना वोई हुई भूमि से उत्पन्न शाक का भक्षण करे। इसप्रकार सात वर्ष तक कर सात कुंभों पर प्रतिमाओं का पूजन कर दूसरे दिन उन उन मन्त्रों से एक सौ आठ वार तिलों से हवन कर सात ब्राह्मणों का भोजन करावे यह निर्णयामृत में कहा है।

(भाद्रपदशुक्लषष्ठीविचारः)

भाद्रशुक्लषष्ठी=सूर्यषष्ठी। सा सप्तमीयुतैवेति दिवोदासः। शुक्ले भाद्रपदे षष्ठ्यां स्नानं भास्करपूजनम्। प्राशनं पञ्चगव्यस्य अश्वमेधफलाधिकम्॥ इति वचनात्।

भाद्रशुक्लषष्ठी सूर्यषष्ठी होती है। वह सप्तमीयुता ही ग्रहण करे। यह दिवोदास ने इस वचन से कहा है कि—भाद्रपदशुक्लषष्ठी को स्नानकर सूर्य का पूजन करे और पञ्चगव्यका प्राशन करने से अश्वमेधयज्ञ से भी फलाधिक मिलता है।

कल्पतरौ भविष्ये—येयं भाद्रपदे मासि षष्ठी स्याद्भरतर्षभ। योऽस्यां पश्यति गाङ्गेयं दक्षिणापथवासिनम्॥ ब्रह्महत्यादिपापैस्तु मुच्यते नात्र संशयः। गाङ्गेयः=स्वामिकार्त्तिकेयः।

१—कृत्यरत्नावल्याम्–पञ्चानने गते भानौ पक्षयोरुभयोरपि। चतुर्थ्यामुदितश्चन्द्रो नेक्षितव्यः कदाचन॥ पुराणान्तरे–ततश्चतुर्थ्यां रात्र्यां तं प्रमादाद् वीक्ष्य मानवः। पठेत्पौराणिकं वाक्यं प्राङ्मुखो वाऽप्युदङ्मुखः। सिंहप्रसेनमिति मन्त्रेणाभिमन्त्रितं जलं पिवेत्। स्यमन्तकोपाख्यानं च श्रोतव्यमाचारादिति स्मार्ताः।

कल्पतरु में भविष्यपुराण का वचन है कि—हे भरतर्षभ, भाद्रपदमास की षष्ठी को जो मनुष्य दक्षिणापथ निवासी स्वामी कार्तिकेय को देखता है वह ब्रह्महत्यादि पापों से मुक्त हो जाता है। इसमें संशय नहीं है। गांगेयमाने-स्वामी कार्तिकेय।

(भाद्रपदशुक्लसप्तमीविचारः)

भाद्रपदशुक्लसप्तम्यां मुक्ताभरणव्रतम्। तत्र सप्तमी पूर्वयुता ग्राह्या। 'षण्मुन्योः' इति युग्मवाक्यात्।

भाद्रपदशुक्ल सप्तमी को मुक्ताभरणव्रत कहा है। वहाँ पर सप्तमी पूर्वयुता ग्रहण करे। (षण्मुन्योः) इस युग्म वाक्य से।

(भाद्रशुक्लाष्टमी-दूर्वाष्टमीविचारः)

भाद्रपदशुक्लाष्टमी=दूर्वाष्टमी सा। पूर्वा ग्राह्या। श्रावणी दुर्गनवमी दूर्वा चैव हुताशनी। पूर्वविद्धा तु कर्तव्या शिवरात्रिर्बलेर्दिनम्॥ इति हेमाद्रौ बृहद्यमोक्तेः। शुक्लाष्टमी तिथिर्या तु मासि भाद्रपदे भवेत्। दूर्वाष्टमी तु सा ज्ञेया नोत्तरा सा विधीयते॥ इति पुराणसमुच्चयाच्च।

भाद्रपद की शुक्लाष्टमी दूर्वाष्टमी है। वह पूर्वा ग्रहण करे। श्रावणी, दुर्गानवमी, दूर्वा, हुताशनी, शिवरात्रि तथा बलिका दिन, पूर्वविद्धा ही करना चाहिये—यह हेमाद्रिमें बृहद्यम का कथन है। और पुराणसमुच्चयवचन से कहा है कि—जो भाद्रपदमास में शुक्लपक्ष की अष्टमीतिथि है उसी को दूर्वाष्टमी जानना चाहिये। वह उत्तरा नहीं होती है।

यत्तु—मुहूर्ते रौहिणेऽष्टम्यां पूर्वा वा यदि वा परा। दूर्वाष्टमी तु सा कार्या ज्येष्ठां मूलं च वर्जयेत्॥ इति तत्रैवापरार्के उक्तम्, तत्पूर्वदिने ज्येष्ठादियोगे द्रष्टव्यम्।

जो वहीं पर अपरार्क में कहा है कि—रौहिणी मुहूर्त में अष्टमी पूर्वा या परा हो तो वह दूर्वाष्टमी करे। ज्येष्ठा और मूलनक्षत्र का त्याग दे। वह पूर्व दिन (रौहणी मुहूर्त) में ज्येष्ठादियोग में देखना चाहिये।

'दूर्वाष्टमी सदा त्याज्या ज्येष्ठामूलर्क्षसंयुता। तथा—ऐन्द्रर्क्षे पूजिता दूर्वा हन्त्यपत्यानि नान्यथा। भर्तुरायुर्हरा मूले तस्मात्तां परिवर्जयेत्॥ इति तत्रैव तन्निषेधात्। इदमगस्त्योदये कन्यार्के च न कार्यम्। शुक्ले भाद्रपदे मासि दूर्वासंज्ञा तथाऽष्टमी। सिंहार्क एव कर्तव्या न कन्यार्के कदाचन॥ सिंहस्थे सोत्तमा सूर्येऽनुदिते मुनिसत्तम॥ इति मदनरत्ने स्कान्दोक्तेः। अगस्त्ये उदिते तात पूजयेदमृतोद्भवाम्। वैधव्यं पुत्रशोकं च दशवर्षाणि पञ्च च॥ इति तत्रैव दोषोक्तेश्च।

ज्येष्ठा और मूलनक्षत्र से युत दूर्वाष्टमी का सदा त्याग करे। और वहीं पर निषेध है कि—ज्येष्ठा और मूलनक्षत्र में पूजित दूर्वाष्टमी अपत्यों को तथा मूलनक्षत्र में पति की आयु का नाश करती है। इसलिए उसे त्याग देना चाहिये। इसको अगस्त्य के उदय में कन्या के सूर्य में नहीं करना चाहिये। मदनरत्न में स्कन्दपुराण का मत है कि—भाद्रपदमास के शुक्लपक्ष में अष्टमी का नाम दूर्वा है। उसे सिंह के सूर्य में ही करे कन्या के सूर्य में कभी भी न करना चाहिये। हे मुनिसत्तम, सिंह के सूर्य के उदित न होने पर उत्तम है।

और वहीं पर दोष कहा है कि—अगस्त्य के उदयहोने पर जो स्त्री दूर्वा का पूजन करती है वह पन्द्रह साल तक विधवापन और पुत्र शोक को प्राप्त करती है।

भाद्रशुक्लाष्टाम्यामगस्त्योदये भाविनि सति पूर्वकृष्णाष्टाम्यामेव कुर्यादिति हेमाद्रिः। दीपिकाऽप्येवम्। इदं च व्रतं स्त्रीणां नित्यम्।

भाद्रपदशुक्ल अष्टमी में अगस्त्य का उदय होनेवाला हो तो पूर्व कृष्णाष्टमी में ही करे—यह हेमाद्रि मत है। दीपिकाकार का भी यही मत है। यह व्रत स्त्रियों को (स्त्रीणामेवाधिकार इति मयूखः) नित्य है।

या न पूजयते दूर्वां मोहादिह यथाविधि। त्रीणि जन्मानि वैधव्यं लभते नात्र संशयः॥ तस्मा-

त्संपूजनीया सा प्रतिवर्षं वधूजनैः ॥ इति पुराणसमुच्चयात् । यदा ज्येष्ठादिकं विनाऽष्टमी न लभ्यते तदा तत्रैवोक्तम्—कर्तव्या चैकभक्तेन ज्येष्ठामूलं यदा भवेत् । दूर्वामभ्यर्चयेद्भक्त्या न वन्ध्यं दिवसं नयेत् ॥ इति ।

पुराणसमुच्चय का कथन है कि—जो स्त्री यथाविधि मोह से दूर्वा का पूजन नहीं करती है। वह तीन जन्म तक वैधव्यता को प्राप्त करती है। इसमें संशय नहीं है। इसकारण से प्रतिवर्ष कुलवधु स्त्रियों को दूर्वा का पूजन करना चाहिये।

यदि ज्येष्ठा आदि के बिना अष्टमी न प्राप्त हो तो वहीं पर कहा है कि—जब ज्येष्ठा या मूलनक्षत्र हो तो एकभक्त व्रत द्वारा भक्ति से दूर्वा का अर्चन करे। दिन को व्यर्थ न व्यतीत करे।

(अत्र सविधिपूजनकथनम्)

अत्र विधिर्मदनरत्ने भविष्ये—शुचौ देशे प्रजातायां दूर्वायां ब्राह्मणोत्तम । स्थाप्य लिङ्गं ततो गन्धैः पुष्पैर्धूपैः समर्चयेत् ॥ दध्यक्षतैर्द्विजश्रेष्ठ अर्घ्यं दद्यात्त्रिलोचने । दूर्वाशमीभ्यां विधिवत्पूजयेच्छ्रद्धयाऽन्वितः ॥

यहाँ पर इसकी विधि मदनरत्न में भविष्यपुराण के वचन से कहा है—हे ब्राह्मणश्रेष्ठ, पवित्रस्थान में पैदा हुई दूर्वा में लिंग का स्थापन कर गन्ध, पुष्प और धूप से अर्चन करे। हेद्विजश्रेष्ठ, दधि तथा अक्षत से त्रिलोचन को अर्घ्य दे। दूर्वा एवं शमी से श्रद्धान्वित हो पूजन करे।

(अथ दूर्वामन्त्रः)

मन्त्रस्तु—त्वं दूर्वेऽमृतजन्मासि वन्दितासि सुरासुरैः । सौभाग्यं सन्ततिं देहि सर्वकार्यकरी भव ॥ यथा शाखाप्रशाखाभिर्विस्तृताऽसि महीतले । तथा ममापि सन्तानं देहि त्वमजरामरम् ॥ इति ।

मन्त्र तो यह है—हे दूर्वे, आपका जन्म अमृत से है, सुर (देवता) और असुर आपकी वन्दना करते हैं। मुझे सौभाग्य तथा सन्तति दो एवं सारे कार्यों को करने वाली हो।

जैसे-आपने पृथ्वी पर अपनी शाखा-प्रशाखाओं से विस्तार किया है वैसे ही मुझे भी अजर और अमर सन्तान को दो।

(अथाग्निपक्वभक्षणम्)

अत्रानग्निपक्वं भक्षयेत् । अनग्निपक्वमश्नीयादन्नं दधि फलं तथा । अक्षारलवणं ब्रह्मन्नश्नीयान्मधुनाऽन्वितम् ॥ इति तत्रैव भविष्योक्तेः ।

यहाँ पर अनग्निपक्व भक्षण करे। भविष्यपुराण में कहा है कि—हे ब्रह्मन्, अनग्निपक्व अन्न, दधि और फल भोजन करे। जिसमें क्षार एवं लवण न हो, सहत से युक्त हो भोजन करे।

(भाद्रपदेऽधिमासे निर्णयः)

भाद्रपदेऽधिमासे सति निर्णयदीपे स्कान्दे—अधिमासे तु संप्राप्ते नभस्य उदये मुनेः ।
अर्वाग् दूर्वाव्रतं कार्यं परतो नैव कुत्रचित् ॥

भाद्रपद के अधिकमास होने पर निर्णयदीप में स्कन्दपुराण का मत है कि—भाद्रपद के अधिक मास प्राप्त होने पर तथा अगस्त्यमुनि का उदय हो तो प्रथम दूर्वाव्रत करे। कहीं पर भी परवाली न करे।

(अत्रैव ज्येष्ठापूजा)

अत्रैव ज्येष्ठापूजोक्ता माधवीये स्कान्दे—मासि भाद्रपदे शुक्लपक्षे ज्येष्ठर्क्षसंयुता ।
रात्रिर्यस्मिन् दिने कुर्याज्ज्येष्ठायाः परिपूजनम् ॥ इति ।

इयं ज्येष्ठायोगवशेन पूर्वा परा वा ग्राह्या । दिनद्वययोगे परा । पूर्वेऽह्नि रात्रियोगे पूर्वैव । नवम्या

सह कार्या स्यादष्टमी नात्र संशयः । मासि भाद्रपदे शुक्लपक्षे ज्येष्ठर्क्षसंयुता ॥ रात्रिर्यस्मिन् दिने कुर्याज्ज्येष्ठायाः परिपूजनम् ॥ इति तत्रैवोक्तेः ।

यहाँ पर ज्येष्ठापूजा निर्णयदीप में स्कन्दपुराण से कहा है कि—भाद्रपदमास के शुक्लपक्ष में ज्येष्ठ नक्षत्र से युक्त रात्रि जिस दिन में हो उसी दिन ज्येष्ठा का पूजन करे। यह ज्येष्ठा के योगवश से पूर्वा या परा ग्रहण करे। दोनों दिन योग में परा ग्रहण करे। पूर्वदिन में पूर्वा ही ले। यह वहाँ पर कहा है।

अस्यापवादः—यस्मिन् दिने भवेज्ज्येष्ठा मध्याह्नादूर्ध्वमप्यणुः। तस्मिन् हविष्यं पूजा च न्यूना चेत्पूर्ववासरे। इदं केवलतिथौ नक्षत्रे चोक्तम्। तत्राद्यं केवलतिथौ कार्यम्। अन्त्यं केवलर्क्षे।

तदुक्तं मात्स्ये—"प्रत्याह्निकं तिथावुक्तं यज्ज्येष्ठादैवतव्रतम्। प्रतिज्येष्ठाव्रतं यच्च विहितं केवलोडुनि ॥ तिथावेवाचरेदाद्यं द्वितीयं केवलर्क्षतः॥ इति। अत एव मदनरत्ने भविष्ये नक्षत्रमात्रे उक्तम्-

इस (रात्रियोग) का अपवाद कहा है कि जिस दिन में मध्याह्न के ऊपर ज्येष्ठानक्षत्र कुछ भी (अणु) हो उस दिन में हविष्य भोजन और पूजा करे। न्यून हो तो पूर्वदिन करे। यह केवल तिथि और नक्षत्र में कहा। उसमें पहला केवल तिथि में करे। अन्य वाला केवल नक्षत्र में। उसी बात को मत्स्यपुराण में कहा है कि—ज्येष्ठा देवता का व्रत प्रतिवर्ष जो तिथि में कहा है। ज्येष्ठा का व्रत केवल नक्षत्र में कहा है। उसमें पहली तिथि में ही करे। दूसरा केवल नक्षत्र में करे।

मासि भाद्रपदे पक्षे शुक्ले ज्येष्ठा यदा भवेत्। रात्रौ जागरणं कृत्वा एभिर्मन्त्रैश्च पूजयेत् ॥ इति। दाक्षिणात्यास्त्वृक्ष एव कुर्वन्ति।

हेमाद्रौ स्कान्देऽपि—मासि भाद्रपदे शुक्लपक्षे ज्येष्ठर्क्षसंयुते। यस्मिन् कस्मिन् दिने कुर्याज्ज्येष्ठायाः परिपूजनम् ॥ इति।

तथा—मैत्रेणावाहयेद्देवीं ज्येष्ठायां तु प्रपूजयेत्। मूले विसर्जयेद्देवीं त्रिदिनं व्रतमुत्तमम् ॥ इति।

इसीलिए मदनरत्न में भविष्यपुराण वचन से नक्षत्रमात्र में कहा है कि भाद्रपदमास के शुक्लपक्ष में यदि ज्येष्ठा हो तो रात में जागरण कर इन मन्त्रों से पूजा करे। दाक्षिणात्य तो नक्षत्र में ही पूजा करते है। हेमाद्रि में स्कन्दपुराण का मत भी है—भाद्रपदमास के शुक्लपक्ष में ज्येष्ठानक्षत्र से युक्त जिस किसी दिन में ज्येष्ठा का पूजन करे और [1]अनुराधा में देवी का आवाहन करे तथा ज्येष्ठा में पूजन करे मूल में देवी का विसर्जन करे। यह तीन दिन का उत्तम व्रत है।

मन्त्रस्तु—एह्येहि त्वं महाभागे सुरासुरनमस्कृते। ज्येष्ठे त्वं सर्वदेवानां मत्समीपगता भव ॥ (इत्यावाह्य 'ताम[2]ग्निवर्णाम्' इति संपूज्य) ज्येष्ठायै तु नमस्तुभ्यं श्रेष्ठायै ते नमो नमः। शर्वायै ते नमस्तुभ्यं शाङ्कर्यै ते नमो नमः॥ ज्येष्ठे श्रेष्ठे तपोनिष्ठे ब्रह्मिष्ठे सत्यवादिनि। एह्येहि त्वं महाभागे अर्घ्यं गृह्ण सरस्वति ॥ इत्यर्घ्यः।

मन्त्र तो यह है कि—हे महाभागे, सुर और असुर को नमस्कार करने योग्य सब देवताओं की ज्येष्ठे तुम मेरे समीप यहाँ पर आओ। इसप्रकार आवाहन कर 'तामग्निवर्णाम्' इस ऋचा से पूजन करे। ज्येष्ठा और श्रेष्ठा को नमस्कार है। शर्वा को नमस्कार है तथा शांकरी को नमस्कार है। हे ज्येष्ठे, हे श्रेष्ठे, हे तपोनिष्ठे, हे ब्रह्मनिष्ठे, हे सत्यवादिनि, हे महाभागे, हे सरस्वति, आप आवो और अर्घ को ग्रहण करो। यह अर्घ मन्त्र है।

१—निर्णीत पूजादिनात् पूर्वेद्युरनुरायामावाहनमुत्तरेद्युश्च मूले विसर्जनमित्यर्थः।

२—तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम्। दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्ये सुतरसितरसे नमः ॥ (ऋ०)।

(भाद्रशुक्लद्वादश्यां पारणाविचारः)

भाद्रशुक्लद्वादश्यां श्रवणयोगरहितायां पारणं कुर्यात् । 'आभाकासितपक्षेषु' इति दिवोदासोदाहृतवचनात् । उपोष्यैकादशीं मोहात्पारणं श्रवणे यदि । करोति हन्ति तत्पुण्यं द्वादशद्वादशीभवम् ॥ इति तत्रैव स्कान्दाच्च । अस्य तत्रैव प्रतिप्रसवः ।

भाद्रपदशुक्ल द्वादशीतिथि में श्रवणनक्षत्र के योग के रहित में पारणा करे । 'आभाकासित पक्षेषु' इस (पूर्वोक्त) दिवोदासीय कहे हुए वचन से । वहीं पर स्कन्दपुराण का कथन है कि—जो मनुष्य एकादशीतिथि को उपवासकर श्रवण में यदि पारणा मोह से करता है वह बारह द्वादशी के पुण्यों का नाश करता है ।

मार्कण्डेयः—विशेषेण महीपाल श्रवणं वर्धते यदि । तिथिक्षये न भोक्तव्यं द्वादशीं लङ्घयेन्न हि ॥ इति ।

इसका वहीं पर प्रति प्रसव (निषेध) भी मार्कण्डेयपुराण में कहा है कि—हे महीपाल, यदि विशेष कर यदि श्रवणनक्षत्र बढ जाय और तिथिक्षय (एकादशी का क्षय) में भोजन नहीं करना चाहिये तथा द्वादशीतिथि का लंघन न करे ।

केचित्तु—यदा त्वपरिहार्यो योगस्तदा श्रवणनक्षत्रे त्रेधा विभक्ते मध्यमत्रिंशतिघटिकायोगं त्यक्त्वा पारणं कार्यम् ।

तदुक्तं विष्णुधर्मे—श्रुतेश्च मध्ये परिवर्तमेति सुप्तिप्रबोधपरिवर्तनमेव वर्ज्यम् । इति ।

केचित्तु चतुर्धा विभज्य मध्यपादद्वयं वर्ज्यमाहुः । अत्र मूलं चिन्त्यम् ।

किसी का कहना है कि—जब अपरिहार्ययोग (जिसे हटाया न जा सकता हो ऐसा योग) तो श्रवणनक्षत्र का तीनप्रकार से विभाग करने पर मध्य की बीसघडी योग को छोड कर पारणा करे ।

उसी बात को विष्णुधर्म में कहा है कि—श्रवण के मध्य में विष्णु करवट लेते हैं । शयन, जागरण तथा परिवर्तन ही वर्जित है । कोई लोग चार प्रकार से विभाग कर मध्य के दो पाद को छोड देना कहते हैं । यहाँ पर मूल चिन्तनीय है ।

(विष्णुपरिवर्तनोत्सवः)

अत्रैव विष्णुपरिवर्तनोत्सवं कुर्यात् । सन्ध्यायां विष्णुं सम्पूज्य प्रार्थयेत् । मन्त्रस्तु तिथितत्त्वे उक्तः-ॐ वासुदेव जगन्नाथ प्राप्तेयं द्वादशी तव । पार्श्वेन परिवर्तस्व सुखं स्वपिहि माधव ॥ इति ।

यहाँ पर ही विष्णु परिवर्तनोत्सव करे । सन्ध्या में विष्णु का पूजन कर प्रार्थना करे । मन्त्र तो तिथितत्त्व में कहा है कि—हे वासुदेव, हे जगन्नाथ, यह आपकी द्वादशी प्राप्त हुई है । हे माधव, पार्श्व से करवट लो और सुख से शयन करो ।

(शक्रध्वजोत्थापनकथनम्)

अत्रैव शक्रध्वजोत्थापनमुक्तमपरार्के गर्गेण—द्वादश्यां तु सिते पक्षे मासि प्रौष्ठपदे तथा । शक्रमुत्थापयेद्राजा विश्वश्रवणवासवे ॥ इयमेव श्रवणद्वादशी । तत्रैकादश्यां द्वादशीश्रवणयोगे सैवोपोष्या । एकादशी द्वादशी च वैष्णव्यमपि तत्र चेत् । तद्विष्णुशृङ्खलं नाम विष्णुसायुज्यकृद्भवेत् ॥ इति विष्णुधर्मोक्तेः ।

यहाँ पर ही 'शक्रध्वजोत्थापन' अपरार्क में गर्ग के वचन से कहा है कि—हे राजन्, भाद्रपदशुक्लपक्ष की द्वादशीतिथि को अनुराधा, श्रवण या धनिष्ठानक्षत्र के योग में इन्द्र की ध्वजा को उठावे । यही है श्रवणद्वादशी । उस एकादशी में (एकादशी दिन एव एकादशीद्वादश्योरुभयोः श्रवणयोगे) द्वादशी तथा श्रवणयोग में तो उसी में ही उपवास करे । विष्णुशृंखल नाम का योग विष्णुसायुज्य करने वाला होना है ।

(अथ विष्णुश्रृङ्खलयोगकथनम्)

नारदीयेऽपि—संस्पृश्यैकादशीं राजन् द्वादशीमपि संस्पृशेत्। श्रवणं ज्योतिषां श्रेष्ठं ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ द्वादशी श्रवणस्पृष्टा स्पृशेदेकादशीं यदि। स एव वैष्णवो योगो विष्णुश्रृङ्खलसंज्ञितः ॥ इति हेमाद्रौ मात्स्योक्तेश्च।

नारदपुराण में भी कहा है कि—हे राजन्, एकादशी तिथि का स्पर्श यदि द्वादशी तिथि स्पर्श करती है तो ज्योतिषों में श्रेष्ठ श्रवणनक्षत्र ब्रह्महत्या को दूर करती है। वही ही वैष्णवयोग विष्णुश्रृंखल (उपोष्य तस्मिन्नहनि नरः संक्षीणकिल्विषः। प्राप्नोत्यनुत्तमां सिद्धिं पुनरावृत्तिदुर्लभाम् ॥ तत्र दकादशीद्वादशीप्रयुक्तोपवासद्वयं तन्त्रेण भवति) संज्ञा वाला होता है। यह हेमाद्रि और मत्स्यपुराण में कहा है। दोनों दिन में द्वादशी श्रवणयोग में भी (विद्धाधिकाया दिनद्वये श्रवणयोगे एकादशीयुता ग्राह्या) पूर्वा ही ले।

दिनद्वये द्वादशी श्रवणयोगेऽपि पूर्वा। निर्णयामृते त्वस्य पूर्वार्धमन्यथा पठितम्—द्वादशी श्रवणर्क्षं च स्पृशेदेकादशीं यदि। इति। तेन हेमाद्रिमते एकादश्याः श्रवणयोगाभावेऽपि तद्युक्तद्वादशीयोगमात्रेण विष्णुश्रृङ्खलं भवति।

निर्णयामृत में तो इसके पूर्वार्ध को अन्यथा पढ़ा है। यदि द्वादशी तथा श्रवण नक्षत्र एकादशी का स्पर्श करे। उस हेमाद्रि मत से एकादशी के श्रवण योग के अभाव में उससे (श्रवण नक्षत्र) युक्त द्वादशी योग मात्र से विष्णुशुङ्खलयोग होता है।

निर्णयामृतमते तु—श्रवणस्यैकादशीद्वादशीभ्यां योग एव विष्णुश्रृङ्खलं नान्यथेति। यदा निशीथानन्तरं सूर्योदयावधि द्विकलामात्रमपि श्रवणर्क्षं भवति तदाऽपि पूर्वैव।

निर्णयामृत में तो कहा है कि—श्रवण का एकादशी और द्वादशी में योग हो जाने से 'विष्णु श्रृंखल' योग होता है। अन्यथा नहीं होता है।

जब निशीथ (आधी रात के बाद) के अनन्तर सूर्योदय तक दो कलामात्र भी श्रवणनक्षत्र होता है तो भी पूर्वा ही है।

तदुक्तं तत्रैव नारदीये इमां प्रकृत्य—तिथिनक्षत्रयोर्योगो योगश्चैव नराधिप। द्विकलो यदि लभ्येत स ज्ञेयो ह्यष्टयामिकः ॥ इति। योगः शिवरात्र्यादौ शिवयोग आदिः। द्वादशी श्रवणस्पृष्टा कृत्स्ना पुण्यतमा तिथिः। न तु सा तेन संयुक्ता तावत्यैव प्रशस्यते॥ इति मदनरत्ने मात्स्याच्च।

उसी बात को वहाँ पर ही नारदपुराण में इस बात को प्रकृति कर कहा है कि—हे नराधिप, तिथि और नक्षत्र का योग और द्विकला योग लाभ हो तो वह आठयामका का जानना चाहिये। योगपद से शिवरात्रि आदि में 'शिवयोग' आदि जानना चाहिये।

मदनरत्न में मत्स्यपुराण का वचन है कि—द्वादशी तिथि श्रवण से संस्पृष्ट हो तो वह संपूर्ण तिथि पुण्यतमा है। वह उससे संयुक्त न भी हो तब भी श्रेष्ठ है।

दिवोदासीये तु—रात्रेः प्रथमपादे चेच्छ्रवणं हरिवासरे। तदा पूर्वामुपवसेत्प्रातर्भान्ते च पारणम् ॥ इत्युक्तम्। इदं तु निर्मूलत्वात्पूर्वविरोधाच्चोपेक्ष्यम्। इयं बुधवारेऽतिप्रशस्ता। बुधश्रवणसंयुक्ता सैव चेद् द्वादशी भवेत्। अत्यन्तमहती सा स्याद्दत्तं भवति चाक्षयम् ॥ इति हेमाद्रौ स्कान्दात्।

दिवोदासीय में तो कहा है कि—एकादशीतिथि में रात्रि के प्रथमपाद में यदि श्रवणनक्षत्र हो तब पूर्वा में ही उपवास करे तथा प्रातःकाल नक्षत्रान्त में पारणा करे। यों कहा है। क्योंकि—यह निर्मूल होने से और पूर्व वचनों के विरोध से उपेक्षणीय है।

यह बुधवार में अतिश्रेष्ठ है। हेमाद्रि में स्कन्दपुराण का मत है कि-बुधवार और श्रवणनक्षत्र से युक्त द्वादशी तिथि हो तो वह अत्यन्त श्रेष्ठतम है। उसमें दिया हुआ दान अक्षय को प्राप्त होता है।

यानि तु पठन्ति—उत्तराषाढसंयुक्ता श्रोणामध्याह्नगाऽपि वा।
आसुरी सैव तारा स्याद्धन्ति पुण्यं पुराकृतम् ॥
उदयव्यापिनी ग्राह्या श्रोणा द्वादशिकायुता। विश्वर्क्षसंयुता सा च नैवोपोष्या शुभेप्सुभिः ॥
इत्यादीनि विष्णुधर्मस्कान्दभविष्यादिवचनानि तानि निर्मूलानि। यदपि स्मृत्यर्थसारे 'उदयव्यापिनी ग्राह्या' इत्युक्तम्,

जो यह पढते हैं कि-उत्तराषाढनक्षत्र से संयुक्त श्रवणनक्षत्र मध्याह्नकाल में भी तो वह आसुरी ही तारा होती है। वह पहले के किये हुए पुण्य को नाश करती है। श्रवणनक्षत्र के सहित द्वादशीतिथि उदयव्यापिनी ग्रहण करे। वह उत्तराषाढनक्षत्र से युक्त हो तो शुभ-फल की इच्छा चाहने वालों को उसमें उपवास नहीं करना चाहिये। इत्यादि विष्णुधर्म, स्कन्द-भविष्यपुराण आदि के जो वचन हैं वे निर्मूल हैं। जो भी स्मृत्यर्थसार में कहा है कि—उदयव्यापिनी ग्रहण करे। यों कहा है।

यच्च बृहन्नारदीये—उदयव्यापिनी ग्राह्या श्रवणद्वादशीव्रते। इति। तद्यदा शुद्धाधिका द्वादशी परदिन एवोदये श्रवणयोगः, पूर्वेऽह्नि च तद्भिन्ने काले योगस्तत्परम्। दिनद्वये उदययोगे पूर्वैव बहुकर्मकालव्याप्तेरित्युक्तं मदनरत्ने। यदा त्वेकादश्येव श्रवणयुता न द्वादशी तदापि पूर्वैव। श्रवणद्वादशीव्रतं तु द्वादश्याः श्रवणयुक्ताया अलाभे एकादश्याश्च तद्युक्तायाः लाभे तत्रैव कार्यम्। यदा न प्राप्यते ऋक्षं द्वादश्यां वैष्णवं क्वचित्। एकादशी तदोपोष्या पापघ्नी श्रवणान्विता ॥ इति मदनरत्ने नारदीयोक्तेः।

और जो मदनरत्न में बृहन्नारदीय पुराण से कहा है कि—व्रत में श्रवण तथा द्वादशी उदयव्यापिनी ग्रहण करे। वह यदि द्वादशीतिथि शुद्ध या अधिक हो तो दूसरे दिन ही उदय में श्रवणयोग है और पूर्वदिन में उससे भिन्नकाल में योग होने से उसी परक है। दोनों दिन में उदय के योग में पूर्वा ही ले। बहुत कर्मकाल व्याप्त है।

जब भी एकादशी में श्रवणनक्षत्र से युक्ता द्वादशी न ग्रहण करे उसमें भी पूर्वाही ग्रहण करे। श्रवण द्वादशीव्रत तो द्वादशी श्रवणयुक्ता के अलाभ में और एकादशी ही और उसके युक्त के लाभ में वहीं पर करना चाहिये।

मदनरत्न में नारदीयपुराण का कथन है कि—यदि कभी वैष्णवी द्वादशीतिथि को श्रवणनक्षत्र न प्राप्त हो तो तब एकादशी श्रवणनक्षत्र युक्त उपवास करे। जो पाप को नाश करने वाली है।

यदा परैवर्क्षयुता तदा परा। तत्र शक्तेनोपवासद्वयं कार्यम्। एकादशीमुपोष्यैव द्वादशीं समुपोषयेत्। न चात्र विधिलोपः स्यादुभयोर्दैवतं हरिः ॥ इति भविष्योक्तेः।

जब परा ही नक्षत्र से युक्त हो तो परा करे। वहाँ पर सामर्थ्यशाली पुरुष को दो उपवास करना चाहिये।

भविष्यपुराण का मत है कि—एकादशी का उपवास कर ही द्वादशी का उपवास करे। इसमें विधि का लोप (एकादशीपारणाहानिप्रयुक्तः) नहीं होता है। क्योंकि दोनों तिथियों को देवता 'हरि' हैं।

यत्तु विष्णुधर्मे—पारणान्तं व्रतं ज्ञेयं व्रतान्ते विप्रभोजनम्।
असमाप्ते व्रते पूर्वे नैव कुर्याद् व्रतान्तरम् ॥ इति। तदेतद्भिन्नपरम्।

जो विष्णुधर्म में कहा है कि—पारणान्त तक व्रत को जानना चाहिये। व्रत के अन्त में ब्राह्मण भोजन करा दे। जबतक व्रत की समाप्ति न हो तबतक दूसरा व्रत न करे। यह इससे भिन्न व्रतों में जाने।

(अत्र गौडमतम्)

अत्र गौडाः—शृणु राजन् परं काम्यं श्रवणद्वादशीव्रतम्। इति स्थूलशीर्षवचनात् काम्यमेवेदम्। तेनाशक्तस्य नित्यैकादशीव्रतमेवेति मन्यन्ते।

यहाँ पर गौडों का कहना है कि—हे राजन्, पर और काम्य श्रवणद्वादशी व्रत को सुनो। इससे यह स्थूलशीर्षवचन से यह काम्य ही परक है। अशक्त का नित्य एकादशी व्रत में ही माना जाता है।

द्वादश्यामुपवासेन शुद्धात्मा नृप सर्वशः। चक्रवर्तित्वमतुलं सम्प्राप्नोत्युत्तमां श्रियम्॥ इति गौडनिबन्धे मार्कण्डेयोक्तेश्च।

और गौडनिबन्ध में मार्कण्डेयपुराण का मत है कि—हे नृप, द्वादशीतिथि के उपवास से सबप्रकार द्वारा शुद्धात्मा मनुष्य श्रेष्ठ चक्रवर्ती होता है और उत्तमा श्री (लक्ष्मी) को प्राप्त करता है।

दाक्षिणात्यास्तु—एकादश्यां नरो भुक्त्वा द्वादश्यां समुपोषणात्। व्रतद्वयकृतं पुण्यं सर्वं प्राप्नोत्यसंशयम्॥ इति वराहवामनपुराणोक्तेः श्रवणद्वादशीव्रतमेवेत्याहुः। भुक्त्वेति फलाद्याहारपं नत्वन्न परम्। 'अन्नाश्रितानि पापानि' इति निषेधात्।

दाक्षिणात्य तो कहते हैं कि—मनुष्य एकादशीतिथि में भोजन कर द्वादशीतिथि में उपवास करके दोनों व्रतों के सारे पुण्य को संशय रहित होकर प्राप्त कर लेता है। यह वाराह और वामनपुराण के वचन से श्रवण द्वादशी का व्रत ही है। यों कहा है।

'भुक्त्वा' इस पद से फलाहार आदि आहारपरक ग्रहण करे। न अन्नपरक ग्रहण ही करे। क्योंकि—'अन्नाश्रितानि पापानि' इससे अन्न के आश्रित पाप होते हैं। इससे निषेध है।

उपवासद्वयं कर्तुं न शक्नोति नरो यदि। प्रथमेऽह्नि फलाहारी निराहारोऽपरेऽहनि॥ इति दिवोदासीये भविष्योक्तेश्च।

दिवादासीय में भविष्यपुराण का मत है कि—यदि मनुष्य दो उपवास को करने में समर्थशाली नहीं होता है तो प्रथमदिन में फलाहारी हो और दूसरे दिन निराहारी हो।

अशक्तौ तु गृहीतैकादशीव्रतो यस्तं प्रति उक्तं मात्स्ये—द्वादश्यां शुक्लपक्षे तु नक्षत्रं श्रवणं यदि। उपोष्यैकादशीं तत्र द्वादश्यां पूजयेद्धरिम्॥ इति। पूजयेन्न तूपवसेदित्यर्थः। अगृहीतैकादशीव्रतश्चेदेकादश्यां भुक्त्वा द्वादश्यामुपवसेत्।

अशक्ति में तो (गौणमुख्योपवासद्वयेऽप्यशक्तौ) एकादशी व्रत के संकल्प को ग्रहण कर रखा हो तो उसके प्रति मत्स्यपुराण में कहा है कि—शुक्लपक्ष की द्वादशीतिथि में यदि श्रवणनक्षत्र हो तो एकादशी में उपवास कर द्वादशीतिथि में हरि की पूजा करे। उपवास न कर पूजन करे—यह अर्थ है। एकादशी व्रत को ग्रहण न किया हो एकादशीतिथि में भोजन कर द्वादशीतिथि में भोजन करे।

एवमेकादशीं भुक्त्वा द्वादशीं समुपोषयेत्। पूर्ववासरजं पुण्यं सर्वं प्राप्नोत्यसंशयम्॥ इति नारदीयोक्तेः। पारणं तूभयान्तेऽन्यतरान्ते वा कुर्यात्।

नारदीयपुराण में कहा है कि—इसप्रकार एकादशीतिथि में भोजन कर द्वादशीतिथि में उपवास करे। पूर्वदिन का सब पुण्य प्राप्त होता है इसमें संशय नहीं है। पारणा तो उभयान्त में (अर्थात् दोनों के अन्त में) या किसी एक के अन्त में करे।

तिथिनक्षत्रनियमे तिथिभान्ते च पारणम्॥ इति स्कान्दात्। तिथिनक्षत्रसंयोगे उपवासो यदा भवेत्। पारणं तु न कर्तव्यं यावन्नैकस्य संक्षयः॥ इति नारदीयादिति हेमाद्रिः। यद्यप्यत्र नक्षत्रमात्रान्तेऽपि पारणं प्रतिभाति, तथापि तिथिमात्रान्ते ज्ञेयम्, नत्वृक्षान्ते। तिथिमध्येऽपि—याः काश्चित्तिथयः प्रोक्ताः पुण्या नक्षत्रयोगतः। ऋक्षान्ते पारणं कुर्यात् विना श्रवणरोहिणीम्॥ इति विष्णुधर्मे श्रवणान्तमात्रे पारणनिषेधात्।

स्कन्दपुराण का मत है कि—तिथि तथा नक्षत्र के नियम में और तिथि तथा नक्षत्र के अन्त में पारणा करे।

हेमाद्रि में नारदपुराण का मत है कि—तिथि तथा नक्षत्र के संयोग में जब उपवास हो तब पारणा नहीं करनी चाहिये जब तक एक का क्षय न हो।

यद्यपि यहाँ पर नक्षत्रमात्र के अन्त में भी पारणा की प्राप्ति होती है। तथापि तिथिमात्र के अन्त में जानना चाहिये। नक्षत्र के अन्त में नहीं।

तिथिमध्य में तो—नक्षत्र के योग से जो कोई तिथियाँ पुण्यवाली कही गयी हैं। श्रवण तथा रोहिणी के बिना नक्षत्रान्त में पारण करे यह विष्णुधर्म में श्रवणान्तमात्र में पारण का निषेध है।

रोहिण्यां तु—'भान्ते कुर्यात्तिथेर्वापि' इति वह्निपुराणात्तदन्तेऽप्यस्तु, न त्वत्रैवमस्तीति ऋक्षान्तोऽनुकल्प इति।

मदनरत्ने असम्भवे तु—तिथ्यन्ते तिथिभान्ते वा पारणं यत्र चोदितम्।
यामत्रयोर्ध्वगामिन्यां प्रातरेव हि पारणा॥ इति ज्ञेयम्।

रोहिणी में तो नक्षत्रान्त में या तिथि में पारणा करे–यह वह्निपुराण के कथन से उसके अन्त में भी हो। वह यहाँ पर नहीं है। नक्षत्रका अन्त अनुकल्प (गौण) है। मदनरत्न में असंभव में तो कहा है कि—तिथ्यन्त में या तिथि या नक्षत्रान्त में पारणा जहाँ कही गयी है वहाँ तीन प्रहर से अधिक गयी हो तो प्रातःकाल ही पारणा करे। यह जानना चाहिये।

यत्तु मदनरत्ने द्वादशीवृद्धौ श्रवणवृद्धौ वा श्रवणान्त एव पारणं कुर्यात्। पारणं तिथिवृद्धौ तु द्वादश्यामुडुसंक्षयात्। वृद्धौ कुर्यात्त्रयोदश्यां तत्र दोषो न विद्यते॥ इति वह्निपुराणादित्युक्तम्। तत्प्रकरणादेतस्यामेव श्रवणयुक्तैकादश्यां विहितविजयैकादशीव्रतपरं न तु श्रवणद्वादशीव्रतपरमिति मदनरत्ने। गौडास्तु श्रवणद्वादशीपरमाहुः।

जो मदनरत्न में कहा है कि—द्वादशी की वृद्धि में या श्रवण की वृद्धि में श्रवणान्त में ही पारणा करे। तिथिवृद्धि में तो द्वादशी में नक्षत्र के क्षय होनेपर पारणा करे। वृद्धि में तो त्रयोदशी में पारणा करे उसमें दोष नहीं होता है—यह वह्निपुराण में कहा है।

उसप्रकरण से इसमें ही श्रवण से युक्त एकादशीतिथि में विहित विजयैकादशीव्रतपरक है। श्रवण द्वादशीपरक नहीं है—यह मदनरत्न में कहा है। गौड तो कहते हैं कि-श्रवणद्वादशीपरक है।

(अत्र विधिविधानम्)

अत्र विधिर्मदनरत्ने विष्णुधर्मे–'तस्मिन्दिने तथा स्नानं यत्र क्वचन सङ्गमे। तथा–दध्योदनयुतं तस्यां जलपूर्णं घटं द्विजे। वस्त्रसंवेष्टितं दत्वा छत्रोपानहमेव च॥ न दुर्गतिमवाप्नोति गतिमग्र्यां च विन्दति।

इसकी विधि मदनरत्न में विष्णुधर्म में कही गयी है। उसदिन किसी [1]संगम में स्नान करे और दधि तथा ओदन (चावल) से युक्त जल से भरा घड़ा एवं वस्त्र से संवेष्टित (ढका) हुआ, छाता तथा जूता ब्राह्मण को देने से उसकी दुर्गति प्राप्त नहीं होती है। लेकिन अग्रिम गति प्राप्त होती है।

मन्त्रस्तु भविष्ये घटे जनार्दनपूजामभिधाय–नमो नमस्ते गोविन्द बुधश्रवणसंज्ञक। अघौघसंक्षयं कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव॥ प्रीयतां देवदेवेशो मम संशयनाशनः।

मन्त्र तो भविष्यपुराण में कहा है कि—घड़े में जनार्दन की पूजा को कर कहे—हे गोविन्द, आपको नमस्कार है। बुध और श्रवणसंज्ञक द्वादशी में पापों के समूह को नाश कर सब सुखोंको देने वाले हो। हे देवदेवेश, मेरे संशय को नाश करने वाले प्रसन्न हो।

१—भविष्ये—मासि भाद्रपदे शुक्लद्वादशी श्रवणान्विता। सर्वकामप्रदा पुण्या उपवासो महाफलः॥ श्रवणे सङ्गमाः सर्वे परव्युष्टिप्रदाः स्मृताः विशेषा द्वादशीयुक्ते बुधयुक्ते विशेषतः॥ सङ्गमे सरितां स्नात्वा द्वादशीं समुपोषितः। समग्रं समवाप्नोति द्वादशद्वादशीफलम्॥ वरुणासङ्गमे स्नानमुक्तं लिङ्गे—अतःपरं तु संसेव्यं गङ्गावरुणसंगमम्।

(वामनावतारनिमित्तोपवासकथनम्)

वामनावतारनिमित्तोपवासस्तु व्रतहेमाद्रौ भविष्ये-'द्वादश्यास्ते विधिः प्रोक्तः श्रवणेन युधिष्ठिर। सर्वपापप्रशमनः सर्वसौख्यप्रदायकः॥ एकादशी यदा सा स्याच्छ्रवणेन समन्विता। विजया सा तिथिः प्रोक्ता भक्तानां विजयप्रदा॥ इत्युपक्रम्य-अथ काले बहुतिथे गते सा गुर्विणी भवेत्। सुषुवे नवमे मासि पुत्रं सा वामनं हरिम्॥ इत्युक्त्वा—एतत्सर्वं समभवदेकादश्यां युधिष्ठिर।

तेनेष्टा देवदेवस्य सर्वथा विजया तिथिः॥ एषा व्युष्टिः समाख्याता एकादश्यां मया तव।

पूर्वमेव समाख्याता द्वादशी श्रवणान्विता। इत्युपसंहारादेकादश्यामेव॥ व्युष्टिः=फलम्।

वामनावतारनिमित्तक उपवास व्रतहेमाद्रिमें भविष्यपुराण के कथन से कहा है कि—हे युधिष्ठिर, सब पापों को नाश करने वाले और सब सुख को देने वाले। श्रवणके सहित द्वादशी की विधि को आप से कहा। यदि श्रवण नक्षत्र से युक्त एकादशीतिथि हो तो वह तिथि भक्तों को विजय देने वाली होती है। यह प्रारंभ करके अनन्तर बहुत समय के बीत जाने पर वह (अदिति) गर्भवती (गुर्विणी) हो गयी और नवम महिने में उसमें वामन हरि को उत्पन्न किया। ऐसा कहकर हे युधिष्ठिर, यह सब एकादशी तिथि में हुआ। इससे सर्वदा देवों में देव (वामन) की यह विजयातिथि इष्ट है। मैंने आप से एकादशीतिथि का फल कहा। पूर्वही श्रवणनक्षत्र युक्त द्वादशी का फल कहा। इसप्रकार उपसंहार (समाप्ति) करने से एकादशीतिथि में ही उपवास होता है। व्युष्टिमाने=फल।

(वामनोत्पत्तिकथनम्)

भागवतेऽष्टमस्कन्धे तु द्वादश्यां वामनोत्पत्तिरुक्ता—श्रोणायां श्रवणद्वादश्यां मुहूर्तेऽभिजिति प्रभुः। ग्रहनक्षत्रताराद्याश्चक्रुस्तज्जन्मदक्षिणम्॥ द्वादश्यां सविता तिष्ठन् मध्यन्दिनगतो नृप। विजया नाम सा प्रोक्ता यस्यां जन्म विदुर्हरेः॥

श्रोणायाम्=चन्द्रे, अभिजित्=श्रवणप्रथमोंऽशः। गौडा अप्येवम्। अत्र कल्पभेदाद्व्यवस्था।

भागवत महापुराण के अष्टमस्कन्ध में तो द्वादशीतिथि में वामन की उत्पत्ति कही है—श्रवणनक्षत्र सहित श्रोणा (चन्द्र) द्वादशीतिथि में अभिजित् (श्रवण के प्रथम अंश में) मुहूर्त में प्रभु उत्पन्न हुए। उनके जन्म के समय ही ग्रह, नक्षत्र, तारा आदि, हे नृप, द्वादशीतिथि में सूर्य जब मध्याह्न में था उस समय जिसमें हरि का जन्म हुआ उसका नाम विजया तिथि हुआ।

श्रोणा का अर्थ-चन्द्रमा है। अभिजित् का अर्थ—श्रवण नक्षत्र का प्रथम अंश। गौड भी यही कहते हैं। यहाँ पर कल्पभेद से व्यवस्था है।

(तद्विधिकथनम्)

तद्विधिश्च हेमाद्रौ अग्निपुराणे—नदीनां सङ्गमे स्नायादर्चयेदत्र वामनम्। सौवर्णवस्त्रसंयुक्तं द्वादशाङ्गुलमुच्छ्रितम्॥

उसकी विधि हेमाद्रि में वह्निपुराण के कथन से कही है कि—नदियों के संगम में स्नान करे। वस्त्र के साथ बारह अंगुल ऊँचा सुवर्णपात्र से वामन का पूजन करे।

(ततो विधिवत्सम्पूज्य) हिरण्मयेन पात्रेण दद्यादर्घ्यं प्रयत्नतः। नमस्ते पद्मनाभाय नमस्ते जलशायिने॥

(तदनन्तर विधिवत् पूजनकर) सुवर्ण के पात्र द्वारा यत्न से अर्घ्य दे। पद्मनाभ के लिए नमस्कार है। जलशायी के लिये नमस्कार है।

तुभ्यमर्घ्यं प्रयच्छामि बालवामनरूपिणे। नमः कमलकिञ्जल्कपीतनिर्मलवाससे॥

आपको अर्घ्य देता हूँ। बालवामनरूपधारी के लिये नमस्कार है। कमल-किञ्जल्क पीले और निर्मल-वस्त्रधारी के लिये नमस्कार है।

महाहरिवपुस्कन्धधृतस्कन्धाय चक्रिणे । नमः शार्ङ्गशीरबाणपाणये वामनाय च ॥ यज्ञभुक्फलदात्रे च वामनाय नमो नमः । देवेश्वराय देवाय देवसंभूतिकारिणे ॥

शार्ङ्ग, धनुष, बाण जिनके हाथ में है ऐसे वामन को नमस्कार है। यज्ञ के फल को भोजन करने वाले तथा यज्ञ फल को देनेवाले वामन को नमस्कार है। देवेश्वर देव के लिये नमस्कार है। देवताओं की सिद्धि को करने वाले के लिये और सब देवताओं के प्रभु वामन के लिए नमस्कार है।

प्रभवे सर्वदेवानां वामनाय नमो नमः । एवं सम्पूजयित्वा तं द्वादश्यामुदये रवेः ॥ शृङ्गारसहितं तं तु ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ वामनः प्रतिगृह्णाति वामनोऽहं ददामि ते । वामनं सर्वतोभद्रं द्विजाय प्रतिपादयेत् । इति ।

इसप्रकार पूजन कर द्वादशीतिथि के सूर्योदय में शृंगारसहित उस मूर्ति को ब्राह्मण को निवेदन करे। आपके लिए वामन को ग्रहण करता है। वामन को ही मैं देता हूँ। सर्वतोभद्र में वामन को रखकर ब्राह्मण को दे।

अनन्तभट्टोऽप्याह—श्रवणद्वादश्यां जनार्दननाम्ना विष्णुः पूज्यते। श्रवणैकादश्यां वामनावतारः—इति। श्रवणयुतशुद्धैकादश्यलाभे तु दशमीविद्धाऽपि श्रवणर्क्षयुता कार्या।

अनन्तभट्ट ने भी कहा कि—श्रवणद्वादशी में जनार्दननामवाले विष्णु की पूजा होती है। श्रवण एकादशी में वामन का अवतार हुआ। श्रवणसहित शुद्ध एकादशी के अलाभ में तो दशमीविद्धा भी श्रवणनक्षत्र से युक्त करे।

दशम्यैकादशी यत्र सा नोपोष्या भवेत्तिथिः। श्रवणेन संयुक्ता सा चेत्स्यात्सर्वकामदा ॥ इति वह्निपुराणादित्युक्तं मदनरत्ने। पूजा च मध्याह्ने कार्या। 'अह्नो मध्ये वामनो रामरामौ' इति पूर्वोक्तवचनात्।

वह्निपुराण कथन से मदनरत्न में कहा है कि—दशमीविद्धा एकादशीतिथि जहाँ हो उसमें उपवास न करे। यदि वह श्रवणनक्षत्र से युक्त हो सब कामनाओं को देनेवाली होती है। इसकी पूजा मध्यान्हकाल में करे। पहले कहे हुए वचन से दिनमें मध्यभाग में वामन और तथा दोनों राम [1]हुए।

(अथ दुग्धव्रतम्)

अत्रैव दुग्धव्रतं सङ्कल्पयेत्। तदुक्तम्—'दुग्धमाश्वयुजे मासि' इति। अत्रेदं चिन्त्यते-दुग्धव्रते पायसादि-वर्ज्यं न वेति। नेति केचित्। नहि प्रकृतिवर्जने विकारवर्जनं युक्तम्। दधिघृतादीनामपि वर्जनापत्तेः। न च यत्र प्रकृतिरसोपलम्भस्तद्वर्जनमिति वाच्यम्। मांसविकारस्यौष्ट्रदध्यादेश्चावर्जनापत्तेः। तस्माद्दध्यादिवत्पायसादि भक्ष्यमिति।

यहाँ पर ही दुग्धव्रत का संकल्प करे। उसी को कहा है—'दुग्धव्रत' आश्विनमास में होता है। यहाँ पर विचार करते हैं कि—दुग्धव्रत में पायस आदि त्याग करे या न करे। नहीं करे यह किसी का मत है। प्रकृति को त्याग करने में विकार को भी त्याग करना युक्त कहा है। इससे दधि, घृत आदि का भी त्याग करना पड़ेगा। जहाँ पर प्रकृति रस का आस्वाद हो जाता है ऐसी प्रकृति को भी वर्जन करना चाहिये। ऐसा नहीं कह सकते हैं। मांस का विकार (मांस से बनाया हुआ पदार्थ) का तथा ऊँट के दध्यादि का वर्जन नहीं होगा। इसलिए दध्यादि के समान पयसादि भी भक्ष्य हैं।

अत्र ब्रूमः—यत्र विकारे प्रकृतिरसोपलम्भस्तत्प्रत्यभिज्ञा वा तत्र विकारस्यापि निषेधः। अस्ति च मांसविकारे मांसप्रत्यभिज्ञा मांसत्वानपायात्।

१—अत्रैव शक्रध्वजोत्थानम्—द्वादश्यां तु सिते पक्षे मासि प्रौष्ठपदेऽपि वा। शक्रमुत्थापयेद्राजा विश्वश्रवणवासव ॥

यत्तु—औष्ट्रदध्यादेरनिषेधापत्तिरिति, तन्न। औष्ट्रमिति विकारस्तद्धितेन निषेधात्।

तथा च विज्ञानेश्वरः—'औष्ट्रमेकशफं स्त्रैणमारण्यकमथाविकम्। इत्यत्र 'औष्ट्रमिति विकारतद्धिताच्छकृन्मूत्रादीनामपि निषेधः' इत्याह।

नन्वेवं—सन्धिन्यनिर्दशावत्सागोपयः परिवर्जयेत्। इति सन्धिन्यादिक्षीरनिषेधेऽपि दध्यादिग्रहणं स्यात्। सत्यं प्राप्तम्। वचनेन परं निषेधः।

सिद्धान्त पक्ष—इसमें हमारा अभिप्राय क्या है—जिस विकार में प्रकृति के रस का उपलंभ है या उसका प्रत्यभिज्ञा (वही पदार्थ है ऐसा ज्ञान) है। वहाँ विकार का भी निषेध है। मांस से बने पदार्थ में मांसत्व का नाश नहीं होने से मांस की प्रत्यभिज्ञा हो जाती है। ऊंट के दध्यादि का निषेध नहीं होगा ऐसा जो आपका कथन है यह भी ठीक नहीं है। औष्ट्र शब्द में विकारार्थ तद्धित (प्रत्यय) से निषेध होने से। विज्ञानेश्वर ने भी औष्ट्र, एकशफ (जिसका एक खुरा वाले) स्त्रैण, आरण्यक, आविक (भेड़) इस श्लोक पर औष्ट्र शब्द से विकारार्थ में तद्धित प्रत्यय होने से गोवर, (ऊंट का गोवर) मूत्र आदि का भी निषेध है—ऐसा कहा। अगर इस बात से सन्धिनी (गाभिन) अनिर्दशा (जिस गौ को दस दिन व्याये न हो) जिसका बछडा मृत हो गया हो, ऐसी गौ का दूध का त्याग कर दे। सन्धिन्यादि क्षीर के निषेध में भी दध्यादि का ग्रहण करे। यह ठीक है। दूसरे वचन से निषेध है।

तदाहापरार्के शङ्खः—क्षीराणि यान्यभक्ष्याणि तद्विकाराशने बुधः। सप्तरात्रं व्रतं कुर्यात्प्रयत्नेन समाहितः॥ इति। व्रतम्=गोमूत्रयावकम्। तस्मात्पायसे दुग्धरसोपलम्भाद्वर्जनम्। अत एवाऽऽमिक्षायां दधिसत्त्वेऽपि माधुर्योपलम्भात्पयोरूपत्वमुक्तं मीमांसकैः। तदुक्तम्—'पय एव घनीभूतमामिक्षेत्यभिधीयते। इति। दध्यादिषु तदभावादवर्जनम्। इति। एवं=दध्यादिव्रते न तक्रादीनां निषेधः। उक्तोभयहेत्वभावादिति केचित्। पूर्वोक्तशङ्खवचनात् सर्वविकारनिषेध इति युक्तं प्रतीमः। इति दुग्धव्रतम्।

उसी बात को अपरार्क में शंख ने कहा है कि—जितने भी क्षीर (दूध) भक्ष्य हैं। उनके विकारों को भक्षण करने पर प्रयत्न से समाहित होकर सात दिन तक व्रत ([1]गोमूत्रयावक) करे।

इसकारण से पायस में दूध का रस मिलने से त्याज्य है। इसीलिए [2]आमिक्षा में दधि के रहते हुए भी माधुर्य के उपलंभन से पयोरूपत्व भी मीमांसकों ने कहा है (अभिक्षायाग का धर्म पयोयाग का धर्म है) उसी बात से कहा है—घनीभूत दूध को ही आमिक्षा कहा है। दधि आदि में दूध नहीं मिल से त्याज्य है। इस प्रकार दध्यादिव्रत में तक्रादियों का निषेध नहीं है। कहे हुए दो प्रकार के कारण नहीं होने से अभाव है यह किसी का मत है। पहले कहे हुए शंखवचन से सब विकारों का निषेध है। यही युक्त प्रतीत होता है।

(भाद्रशुक्लचतुर्दश्यां अनन्तव्रत कथनम्)

भाद्रशुक्लचतुर्दश्यामनन्तव्रतम्। तत्र त्रिमुहूर्ताप्यौदयिकी ग्राह्येति माधवः। तदुक्तम्—'उदये त्रिमुहूर्ताऽपि ग्राह्याऽनन्तव्रते तिथिः। इति। 'मध्याह्ने भोज्यवेलायाम्' इति कथायां श्रवणात् 'उपरि हि देवेभ्यो धारयति' इतिवद्विधिकल्पनात्। पूजाव्रतेषु सर्वेषु मध्याह्नव्यापिनी तिथिः। इति माधवीये वचनात् मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्येति तु दिवोदासः। प्रतापमार्तण्डेऽप्येवम्। इदमेव च युक्तम्। निर्णयामृते तु घटिकामात्राऽप्यौदयिकीत्युक्तम्।

भाद्रपदशुक्लचतुर्दशी को अनन्तव्रत कहा है। उस व्रत की तिथिमें उदयकाल में तीन मुहूर्त ले ग्रहण

१—प्रायश्चित्तमयूखे—गोपुरीषाद्यवानश्नन्मासमेकं समाहितः। व्रतं तु यावकं कुर्यात्सर्वपापापनुत्तये॥

२—कात्यायनभूमिकायाम्—गव्यं पयस्ततं कृत्वातापविशिष्टे एव पयसि दधि प्रक्षिप्तं चेत् त द्विधा भवति, द्रवीभूतं घनीभूतं च। तत्र यो द्रवीभूतोंऽशः स एव पयस्या आमिक्षेति च पदैर्व्यवह्रियते, द्रवीभूतो वाजिनमिति।

करे। यह माधव मत है। उसी बात को कहा है कि—अनन्तव्रत में उदयकाल में तीन मुहूर्तवाली तिथि को ग्रहण करे। मध्याह्नकाल में भोजन के समय में पूजा करे-यह कथा में सुना है। मध्याह्नोत्तर देवताओं को दे। इसप्रकार विधि के कल्प से। इस माधव वचन से सब पूजा व्रत में मध्याह्नव्यापिनी तिथि ले। मध्याह्नव्यापिनी ग्रहण करे यह तो दिवोदास का मत है। प्रतापमार्तण्ड में भी यही कहा है। यही ही युक्त है। निर्णयामृत में तो घटिकामात्र भी औदयिकी ले—यह कहा है।

तथा भाद्रपदस्यान्ते चतुर्दश्यां द्विजोत्तम। पौर्णमास्याः समायोगे व्रतं चानन्तकं चरेत्॥ इति भविष्योक्तेः।

भविष्यपुराण में कहा है कि—हे द्विजोत्तम, भाद्रपद के अन्त की चतुर्दशीतिथि में पौर्णमासी के योग में अनन्तव्रत को करे।

मुहूर्तमपि चेद्भाद्रे पूर्णिमायां चतुर्दशी। सम्पूर्णां तां विदुस्तस्यां पूजयेद्विष्णुमव्ययम्॥ इति स्कान्दाच्चेति। अत्र मूलं चिन्त्यम्।

स्कन्दपुराण में भी कहा है कि—भाद्रपदमास की पूर्णिमातिथि में मुहूर्तमात्र की चतुर्दशी हो तो उसको संपूर्णतिथि जानना चाहिये और उसमें अविनाशी विष्णु का पूजन करे। यहाँ पर मूल (योगमुहूर्तादिवचनानां त्रिमुहूर्तस्तावकत्वेनोपपत्तेः स्वार्थमात्रे मानाभावात्।) चिन्तनीय (विचार करने योग्य) है।

ह्युभयत्रौदयिकत्वे पूर्णत्वात्पूर्वेति युक्तम्। (तत्त्वं तु विध्यर्थवादयोर्भिन्नार्थत्वे एकवाक्यतायोगासन्दिग्धेषु एकवाक्यत्वात्) इति न्यायेन पूर्वा परा वा मध्याह्नव्यापिन्येव मुख्या।

माधवस्तु सामान्यवाक्यान्निर्णयं कुर्वन् भ्रान्त एव। अनन्तव्रतस्य पुराणान्तरेष्वभावाच्च वचनं निर्मूलमेवेति।)

दो तिथियों के औदयित्व में पूर्ण होने से पूर्वा ही युक्त है। तत्त्व तो यह है कि—सन्दिग्धों में एक वाक्यत्व इस न्याय से पूर्वा या परा मध्याह्नव्यापिनी ही मुख्य है।

माधव तो सामान्यवाक्य से निर्णय को करते हुए भ्रान्त ही हैं। अनन्तव्रत का पुराणान्तरों में अभाव होने से तथा निबन्धान्तरों में अभाव होने से वचन निर्मूल ही है।

(अथागस्त्यार्घः)

अथागस्त्यार्घ्यः। तत्कालो व्रतहेमाद्रौ भविष्ये—कन्यायामागते सूर्ये अर्वाग्वा सप्तमे दिने। कन्यायां समनुप्राप्ते ह्यर्घकालो निवर्तते॥ तेन उदयोत्तरमपि सप्तदिनमध्ये इत्यर्थः। यत्पाद्मे—आसप्तरात्रादुदयाद्यमस्य दातव्यमेतत्सकलं नरेण। यावत्समाः सप्तदशाऽथ वा स्युरथोर्ध्वमप्यत्र वदन्ति केचित्॥ यमस्य=अगस्त्यस्य।

अगस्त्य को अर्घ्य देना कहा है। उसका काल (समय) व्रतहेमाद्रि में भविष्यपुराणमत से कहा है कि—कन्या के सूर्य आने से सात दिन पहले अर्घ्य को दे। कन्या के सूर्य प्राप्त होने पर अर्घ्य का काल समाप्त हो जाता है। उससे उदय के बाद भी सात दिन के मध्य में अर्घ दे—यह अर्थ है।

उदयकालश्च दिवोदासीये उक्तः—उदेति याम्यां हरिसंक्रमाद्रवेरेकाधिके विंशतिमे ह्यगस्त्यः।
स सप्तमेऽस्तं वृषसंक्रमाच्च प्रयाति गर्गादिभिरभ्यभाणि॥

जो पद्मपुराण में कहा है कि—अगस्त्य का और उदय का काल दिवोदासीय में कहा है कि—अगस्त्य मुनि दक्षिणदिशा में सिंह की सूर्यसंक्रान्ति से इक्कीसवें दिन में उदय को प्राप्त होते हैं। वृष की संक्रान्ति से सातवें रोज अस्त हो जाते हैं। यह गर्ग आदि ने कहा है।

(अगस्त्यविधिकथनम्)

अत्र विधिर्विष्णुरहस्ये— काशपुष्पमयीं रम्यां कृत्वा मूर्तिं तु वारुणेः। प्रदोषे विन्यसेत्तां तु पूर्णकुम्भे

स्वलङ्कृताम् ॥ कुम्भस्थां पूजयेत्तां तु पुष्पधूपविलेपनैः । दध्यक्षतबलिं दद्याद्रात्रौ कुर्यात्प्रजागरम् ॥

इसकी विधि विष्णुरहस्य में कही है कि—काश के पुष्पों की रमणीय मूर्ति अगस्त्य की बनाकर प्रदोषसमय में उसे अलंकृत कर जलपूर्ण कुंभ में रख दे। कुंभस्थस्थापित उस मूर्ति का पुष्प, धूप, चन्दन अर्पण कर दधि तथा अक्षत से बलि देकर रात्रि में जागरण करे।

पूजा च वक्ष्यमाणार्घ्यमन्त्रेण कार्या—प्रभाते तां समादाय यायात्पुण्यं जलाशयम् । निशावसाने तां पश्यन् जलान्ते प्रतिमां मुनेः ॥ अर्घ्यं दद्यादगस्त्याय भक्त्या सम्यगुपोषितः ॥

पूजा तो आगे कहे हुए अर्घ्यमन्त्र से करे-प्रातःकाल में उस मूर्ति को ग्रहण कर पुण्यदायक जलाशय में ले जाय। वहाँ निशा की समाप्ति पर उस मुनि की प्रतिमा को देखते हुए जल के मध्य में करके भक्ति से अच्छीप्रकार उपवास को कर अगस्त्य मुनि को अर्घ्य दे।

मात्स्ये तु—'अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं तथैव सौवर्णमत्यायतबाहुदण्डम् ।

मत्स्यपुराण में तो कहा है कि—अंगूठे के बराबर सुवर्ण की मूर्ति बनावे जिसकी बाहु के दण्ड के बराबर लंबी भुजा हो।

पूर्वं काशमयीत्वशक्तौ–चतुर्भुजं कुम्भमुखे निधाय धान्यानि सप्ताङ्कुरसंयुतानि । सकाशपुष्पाक्षतशुक्तियुक्तं मन्त्रेण दद्याद् द्विजपुङ्गवाय । धेनुं बहुक्षीरवतीं च दद्यात्सवस्त्रघण्टाभरणां द्विजाय ॥

पहले काशमयी की अशक्ति में तो—चतुर्भुजी उस मूर्ति को कुंभ के मुख पर स्थापना कर सात अंकुरों से युक्त धान्य काश के पुष्प, अक्षत तथा सीपी से युक्त मूर्ति को मन्त्र के द्वारा श्रेष्ठ ब्राह्मण को दे। वस्त्र, घंटा, आभरण के साथ बहुत दुग्ध को देनेवाली गौ को द्विज (ब्राह्मण) को दे।

भविष्ये—विरूढैः सप्तधान्यैश्च वंशपात्रे निधापितैः । सौवर्णरूप्यपात्रेण ताम्रवंशमयेन वा ॥ मूर्ध्नि स्थितेन नम्रेण जानुभ्यां धरणीं गतः ।

भविष्यपुराण में लिखा है कि—बांस के पात्र में स्थापित अंकुरित सात धान्यों से सुवर्ण या चांदी, तांबें या बांस के पात्र को सिर पर रखकर विनम्र हो जानुओं को भूमि पर रखे।

विष्णुरहस्ये—अगस्त्यः खनमानेति पठन्मन्त्रमिमं मुनेः । अर्घ्यं दद्यादगस्त्याय शूद्रे मन्त्रविधिस्त्वयम् ॥ काशपुष्पप्रतीकाश वह्निमारुतसम्भव । मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते ॥

विष्णुरहस्य में कहा है कि—(अगस्त्यः खनमानः खनित्रैः प्रजामपत्यं बलमिच्छमानः । उभौ वर्णावृषिरुग्रः पुपोष सत्या देवेष्वाशिषो जगाम ॥ ऋ० द्वितीयाष्टक चतुर्थाध्याय) इस मन्त्र को पढता हुआ अगस्त्यमुनि के लिए अर्घ्य दे। शूद्र के लिये यही मन्त्र विधि है—हे काशपुष्पप्रतीकाश, वह्निमारुतसंभव, मित्रावरुण के पुत्र अगस्त्य को नमस्कार है।

विन्ध्यवृद्धिक्षयकर मेघतोयविषापह । रत्नवल्लभ देवेश लङ्कावास नमोऽस्तु ते ॥ वातापी भक्षितो येन समुद्रः शोषितः पुरा । लोपामुद्रापतिः श्रीमान् योऽसौ तस्मै नमो नमः ॥

हे विन्ध्यवृद्धिक्षयकर, (विन्ध्याचल पर्वत की वृद्ध का क्षय करने वाले) रत्नवल्लभ; (रत्नो से प्रेम करने वाले), मेघ के जल में विष को हटाने वाले, मेघतोयविषापह, हे देवेश, हे लंकावास (लंका में निवास करने वाले), आपको नमस्कार है। जिसने वातापी (दानव) का भक्षण किया, पूर्वसमय में जिसने समुद्र का शोषण किया और जो लोपमुद्रा के पति है, उसके लिए नमस्कार है।

येनोदितेन पापानि विलयं यान्ति व्याधयः । तस्मै नमोऽस्त्वगस्त्याय सशिष्याय च पुत्रिणे ॥
अगस्त्यः खनमानेति विप्रोऽर्घ्यं विनिवेदयेत् । राजपुत्रि महाभागे ऋषिपत्नि वरानने ॥
लोपामुद्रे नमस्तुभ्यमर्घ्यं मे प्रतिगृह्यताम् । दत्त्वैवमर्घ्यं कौरव्य प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥

जिसके उदय से सारे पाप और व्याधियाँ विलय को प्राप्त हो जाती हैं। शिष्य और पुत्र सहित उस अगस्त्य के लिये नमस्कार है। 'अगस्त्यः खनमानः' इस मन्त्र से ब्राह्मण अर्घ्य का निवेदन करे। हे राज-

पुत्रि, हे महाभागे, हे ऋषिपत्नि, हे वरानने, हे लोपामुद्रे, आपको नमस्कार है। मेरे अर्घ्य को ग्रहण कीजिये। हे कौरव्य, इसप्रकार अर्घ्य देकर प्रणाम कर विसर्जन करे।

अर्चितस्त्वं यथाशक्त्या नमोऽगस्त्यमहर्षये। ऐहिकामुष्मिकीं दत्त्वा कार्यसिद्धिं व्रजस्व मे॥ विसर्जयित्वागस्त्यं तं विप्राय प्रतिपादयेत्।

आपने यथाशक्ति पूजन किया अतः अगस्त्य महर्षि को नमस्कार हैं। ऐहिक (इसलोक के), आमुष्मिक (परलोक) लोक के कार्य सिद्धि को मुझे देकर जाओ। इसतरह अगस्त्य जी का विसर्जन कर ब्राह्मण को दे दे।

अगस्त्यो मे मनस्थोऽस्तु अगस्त्योऽस्मिन् घटे स्थितः। अगस्त्यो द्विजरूपेण प्रतिगृह्णातु सत्कृतः॥

अगस्त्य जी मेरे मन में स्थित हों। अगस्त्य जी इस घर में स्थित हो। अगस्त्य जी ब्राह्मणरूप से सत्कृत होकर ग्रहण करें।

(अथ दानमन्त्रः)

दानमन्त्रः—अगस्त्यः सप्तजन्माघं नाशयित्वावयोरयम्।
अतुलं विमलं सौख्यं प्रयच्छ त्वं महामुने॥

दान का मन्त्र यह है कि—अगस्त्य जी, सात जन्म के पापों को नाशकर, हे महामुने, आप हम दोनों को अतुल निर्मल सुख को दीजिये।

(अथ प्रतिग्रहमन्त्रः)

प्रतिग्रहमन्त्रो विष्णुरहस्ये—"त्यजेदगस्त्यमुद्दिश्य धान्यमेकं फलं रसम्।
होमं कृत्वा ततः पश्चाद्वर्जयेन्मानवः फलम्॥

प्रतिग्रहमन्त्र विष्णुरहस्य में कहा कि—अगस्त्य मुनि के उद्देश्य से एक अन्न, फल और रस त्याग दे। होम कर बाद में पीछे मनुष्य फल का त्याग करे। होम तो अर्घ्यमन्त्र तथा घृत से होता है।

होमश्चार्घ्यमन्त्रेणाज्येन। भविष्ये—दत्त्वाऽर्घ्यं सप्तवर्षाणि क्रमेणानेन पाण्डव। ब्राह्मणः स्याच्चतुर्वेदः क्षत्रियः पृथिवीपतिः॥ वैश्ये च धान्यनिष्पत्तिः शूद्रश्च धनवान् भवेत्। यावदायुश्च यः कुर्यात्स परं ब्रह्म गच्छति॥ इत्यगस्त्यार्घ्यः।

भविष्यपुराण में कहा है कि—हे पाण्डव, इसतरह सात साल तक इसक्रम से अर्घ्य को देकर ब्राह्मण चतुर्वेदी और क्षत्रिय पृथिवीपति होता हैं। वैश्य तो धान्य का अधिपति एवं शूद्र धनवान् होता है। जबतक आयु रहती है तबतक जो अर्घ्य देता है वह परब्रह्म को जाता है। यह अगस्त्य के लिए अर्घ्य है।

(भाद्रपदपूर्णिमायां श्राद्धकथनम्)

भाद्रपौर्णमास्यां प्रपितामहात्परांस्त्रीनुद्दिश्य श्राद्धं कार्यम्। तदुक्तं हेमाद्रौ ब्राह्मणमार्कण्डेययोः—नान्दीमुखानां प्रत्यब्दं कन्याराशिगते रवौ। पौर्णमास्यां तु कर्तव्यं वराहवचनं यथा॥ इति।

[1]भाद्रपदपौर्णमासी में—पिता और प्रपितामह से आगे तीन को उद्देश्य कर श्राद्ध करना चाहिये। इसी बात को हेमाद्रि में ब्रह्मपुराण और मार्कण्डेयपुराण के कथन से कहा है कि—[2]कन्याराशी में गये हुए सूर्य में नान्दीमुख पितरों का पौर्णमासीतिथि में प्रति वर्ष वाराह के वचनानुसार (श्राद्ध) करे।

नान्दीमुखत्वं चोक्तं ब्राह्मे—पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः। त्रयो ह्यश्रुमुखा ह्येते पितरः परिकीर्तिताः॥ तेभ्यः पूर्वतरा ये च प्रजावन्तः सुखैधिताः। ते तु नान्दीमुखा नान्दी समृद्धिरिति

१—विष्णुधर्मे—गोदाने प्रौष्ठपद्यां च पौर्णमास्यां महाफलम्। मात्स्ये—यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्मविस्तरः। वृत्रासुरवधोपेतं तद्भागवतमुच्यते॥ लिखित्वा तच्च यो दद्याद् हेमसिंहसमन्वितम्। पौर्णमास्यां प्रौष्ठपद्यां स याति परमं पदम्॥ अष्टादशसहस्राणि पुराणं तत्प्रकीर्तितम्। २—कन्यागते सवितरि पितृराजानुशासनात्। भवेत्प्रेतपुरीशून्या यावद् वृश्चिकदर्शनम्॥

कथ्यते ॥ एतच्च प्रत्यब्दमित्युक्तेः पक्षश्राद्धपक्षे सकृन्महालयपक्षे चावश्यकमिति प्रयोगपारिजाते।

ब्रह्मपुराण में--नान्दीमुखों को कहा है कि--पिता, पितामह, वैसे ही प्रपितामह, ये तीनों पिता अश्रुमुख कहे गये हैं। इनसे पूर्वतर जो हैं वे प्रजावाले तथा सुख से बढे हुए हैं। वे नान्दीमुख हैं और नान्दीसमृद्धि को कहते हैं। यह श्राद्ध प्रतिवर्ष करे। पक्षश्राद्धपक्ष में तथा सकृत् महालयपक्ष में आवश्यक है-यह प्रयोगपारिजात में कहा है।

अत्र मातामहा अपि कार्याः। पितरो यत्र पूज्यन्ते तत्र मातामहा अपि। इति धौम्योक्तेः। पितृशब्दस्य च जनकपरत्वे बहुवचनविरोधेन पितृभावापन्नपरत्वात्। वार्षिके तु वचनान्निवृत्तिः। न च जीवत्पितृकस्यान्वष्टकायां मातृश्राद्धे तदापत्तिः। इष्टापत्तेः। अत एव स उक्तश्राद्धेषु स्वमातृमातामहयोर्दद्यादिति मदनरत्नकालादर्शौ। एतच्च जीवत्पितृकश्राद्धे वक्ष्यामः। केचित्तु अजहल्लक्षणया पित्रादयो यत्र मातामहास्तेनात्र नेत्याहुः। न चात्र नाम्ना नान्दीश्राद्धधर्मातिदेशः। वैष्णवादिशब्दवद्देवतापरस्य कर्मनामत्वाभावात्। नापि नान्दीमुखत्वं पितृविशेषणं पारिभाषिकत्वादिति दिक्।

यहाँपर मातामह आदि को भी करे। धौम्य ने कहा है कि--जहाँ पर पितरों का पूजन होता है वहाँ पर मातामह आदि का भी होता है। क्योंकि--पितृ शब्द को जनक परक मानने पर बहुवचन विरोध से पितृभावापन्नपरत्व है। वार्षिक में तो वचन से निवृत्ति है। यह कहो कि--जिसके पिता जीवित हैं उसकी अन्वष्टका मातृश्राद्ध में उसकी आपत्ति हो जायगी। इसमें इष्टापत्ति (निषेध) है। इसलिए मातृश्राद्ध को कहा। कहे हुए श्राद्धों में अपनी माता तथा मातामह को दे--यह मदनरत्न और कालादर्श में कहा है। यह जीवत्पितृकश्राद्ध में कहेंगे। कोई तो [1]अजहल्लक्षणा से पिता आदि होंगे। जहाँ-जहाँ वहाँ मातामह आदि नहीं होंगे। यहाँ पर नाम से नान्दीश्राद्ध का धर्मातिदेश नहीं होगा। क्योंकि वैष्णव आदि शब्द की तरह देवतावाची शब्द कर्मनाम का अभाव होने से। नान्दीमुख शब्द पितृशब्द का विशेषण नहीं है। क्योंकि पारिभाषिक है।

तथा निर्णयदीपे गार्ग्यः--पौर्णमासीषु सर्वासु निषिद्धं पिण्डपातनम्। वर्जयित्वा प्रौष्ठपदीं यथा दर्शस्तथैव सा ॥ इति भाद्रपदमासः समाप्तः।

निर्णयदीप में गार्ग्य के वचन से कहा है कि--सब पूर्णिमा में पिण्डदान निषिद्ध है, केवल भाद्रपद की पूर्णिमा को त्याग करे। क्योंकि--जैसे--अमावास्या है तद्वत् ही भाद्रपद की पूर्णिमा है।

१--लक्षणावृत्ति तीन प्रकार की होती है--जहल्लक्षणा, अजहल्लक्षणा और जहदजहल्लक्षणा। जहाँ पर अपने अर्थ को बिना छोडकर दूसरे अर्थ को समझाता है--वहाँ अजहल्लक्षणा। जैसे--यष्टयः प्रविशन्ति-प्रकृत वाक्य में यष्टि (लाठी) प्रवेश अचेतन होने से असंभव है। इसी से यष्टिधारी पुरुष का अर्थ अजहल्लक्षणा से प्राप्त होता है।

पृष्ठ संख्या २४६ पेज की टिप्पणी--

'अग्नये रक्षोघ्ने पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेत, यो रक्षोभ्यो बिभीयात्' 'अमावास्यायां निशि यजेत्' यह पाठ काम्येष्टि के प्रसंग में है दर्शपौर्णमासयाग के प्रसंग में नहीं है। अतः निशीष्टि की इति कर्तव्यता में दर्शेष्टि की इति कर्तव्यता सिद्ध नहीं होती है। यह पूर्वपक्ष है। सिद्धान्त यह कि-दर्शयाग का दो दिन अनुष्ठान होता है। अर्थात्--अमावास्या के दिन प्रातःकाल अग्निहोत्र होने के बाद दर्शेष्टि के लिए प्रणयन करते हैं और दूसरे दिन सुबह दर्शेष्टिका अनुष्ठान करते हैं। यह एकपक्ष है। इस प्रसंग में दर्शेष्टिका उपक्रम करने से तन्मध्य पतित 'निशीष्टि' का भी प्रसंग हो जाता है। अतः भिन्न इति कर्तव्यता की आवश्यकता नहीं है। निशि यज्ञे दर्शतन्त्रं नोतास्त्येतन्न दर्शगे। तन्त्रमध्ये विध्यभावादस्त्यर्थात्तद्विधानतः ॥ (जै० न्या० अध्याय १२ पाद २ अधिकरण ५) अत्र अरुचि द्वादश में निशीष्टिविकृतियाग होने से, विकृतियों का शेष पर्व ही अनुष्ठान काल होने से प्रकृत में निशीष्टिका दर्श योग के मध्य में प्राप्ति ही है नहीं। अतः विचार व्यर्थ हो जायगा।

अथ निर्णयसिन्धुः

(श्रावणमास और भाद्रपदमास)

श्लोकसूची

दौलतराम गौड

(गोतमादि ऋषियों का स्थापन)

गोतम का आवाहन और स्थापन

आवाहये गोतमविप्रराजं संसारमोहौघविनाशदक्षम् ।
महद्द्युतिं तर्कविचारदक्षं रक्षाध्वरन्नः सततं शिवाय ॥

ॐ अभि त्वा गोतमा गिरा जातवेदो विचर्षणे । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः । (ऋ० प्र० १।७८।१)

भरद्वाज का आवाहन और स्थापन

यज्ञे भरद्वाज महाप्रभाव बहुद्युते त्राहि महामते त्वम् ।
दयार्णवाधीश बहुज्ञदेव रक्षाध्वरं नो भगवन्नमस्ते ॥

ॐ एवा नः स्पृधः समजा समत्स्विन्द्र रारन्धि मिथतीरदेवीः । विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो भरद्वाजा उत इन्द्र नूनम् ॥ (ऋ. म ६।२५।६)

विश्वामित्र का आवाहन और स्थापन

श्रीविश्वमित्राद्भुतशक्तियोगयज्ञे नवसृष्टिविधानिकस्त्वम् ।
आगच्छ योगीश्वर देवदेव गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥

ॐ एवा ते वयमिन्द्र भुञ्जतीनां विद्याम सुमतीनां नवानाम् । विद्याम विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो विश्वामित्रा उत त इन्द्र नूनम् ॥ (ऋ. १०।८९।१७)

कश्यप का आवाहन और स्थापन

आवाहये कश्यपमादितेयमृषिं पुराणं परमेष्ठितुल्यम् ।
सप्तर्षिमध्ये प्रतमं महेशं रक्षाध्वरन्नो भगवन्नमस्ते ॥

ॐ ऋषे मन्त्रकृतां स्तोमैः कश्यपोद्वर्धयन् गिरः । सोमं नमस्य राजानं यो जज्ञे वीरुधां पतिरिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ (ऋ. ९।११४।२९)

जमदग्नि का आवाहन और स्थापन

आवाहयेऽहं जगदग्निमग्र्यं मुनिप्रवीरं श्रुतिशास्त्रभाजम् ।
कृपानिधीनाममितद्युतीनां तेजोवतां बुद्धिमतामृषीणाम् ॥

ॐ प्रसूतो भक्षमकरं चरावपि स्तोमं चेमं प्रथमः सूरिरुन्मृजे । सुते सातेन यद्यागमं वां प्रति विश्वामित्रजमदग्नी दमे ॥ (ऋ. १०।१६७।२४)

इससे वसिष्ठ का आवाहन और स्थापन करे

वसिष्ठयोगिन् सकलार्थवेत्त आगच्छ यज्ञेऽत्र कृपां विधेहि ।
तेजस्विनामग्रसरोग्रबुद्धे विशाध्वरं नो भगवन्नमस्ते ॥

ॐ उतासी मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन्मनसोऽधि जातः । द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन विश्वे देवाः पुष्करे त्वाददन्त ॥ (ऋ. ७।३३।११)

इससे अत्रिका आवाहन और स्थापन

आवाहयेऽत्रिं तपसान्निधानं सोमात्मजं देव मुनिप्रवीरम् ।
पाहि त्वमस्मान्महतामहिम्ना रक्षाध्वरं नो भगवन्नमस्ते ॥

ॐ अत्रिर्यद्वामवरोहन्नृबीसमजोहवीन्नाधमानेव योषा । श्येनस्य चिज्जवसा नूतनेनागच्छतमश्विना शन्तमेन ॥ (ऋ. ५।७८।४)

अरुन्धती का आवाहन और स्थापन

पुनीहि मां देवि जगन्नुते च तापत्रयोन्मूलनकारिणी च ।
पतिव्रते धर्मपरायणे त्वमागच्छ कल्याणि नमो नमस्ते ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः अरुन्धति इहागच्छ इह तिष्ठ अरुन्धत्यै नमः अरुन्धतीमावाहयामि स्थापयामि ।

अथ निर्णयसिन्धुः

(भाषा-टीका-सहित)

(आश्विनमास)

दौलतराम गौड

(श्राद्धीयनिर्णय)

१—आश्विनमास के कृष्णपक्ष की प्रतिपदातिथि से प्रारंभ कर अमावास्यातिथि तक शक्ति रहने पर प्रतिदिन श्राद्ध-महालय करे। तिथिवृद्धि में सोलह श्राद्ध करे। तिथिक्षय में चौदह ही श्राद्ध करे। वृद्धि और क्षयाभाव में पन्द्रह ही करे। २-अशक्त व्यक्ति पञ्चमी, षष्ठी, अष्टमी, दशमी, एकादशी, अमावास्या आदि किसी तिथि में श्राद्ध करे। ३-अत्यन्त अशक्ति में अनिषिद्ध किसी भी दिन में सकृत् (एकबार) महालयपक्षीयश्राद्ध करे। ४-जो आश्विनमास के कृष्णपक्ष में पन्द्रहदिन श्राद्ध करते हैं उनको चतुर्दशीतिथि भी विहित है। अर्थात्—उसमें भी श्राद्ध होता ही है। ५-जो अशक्ति में पञ्चमी, षष्ठी आदि पक्ष में श्राद्ध करते हैं। उनको चतुर्दशी में श्राद्ध का विधान नहीं मिलता है। ६-सकृत् महालयपक्ष में भी चतुर्दशीतिथि में श्राद्ध करना विहित नहीं है। ७—सकृत् महालयपक्ष में—प्रतिपदा, षष्ठी एकादशी, चतुर्दशी, शुक्रवार, जन्मनक्षत्र से दशवा तथा उन्नीसवाँ नक्षत्र, रोहिणी, मघा और रेवती त्याग दे। किसी के मत से त्रयोदशी, सप्तमी, रविवार तथा मंगलवार को भी त्याग करने को कहा है। ८-पिता की मरण तिथि में सकृन्महालयपक्ष में नन्दा आदि का निषेध नहीं होता है। ९-संन्यासियों का महालय अपराह्णव्यापिनी द्वादशी तिथि में हो सपिण्डश्राद्ध होता है। अन्यतिथियों में नहीं होता है। १०—शस्त्र विष, अग्नि आदि से मरों का श्राद्ध एकोद्दिष्टविधि से चतुर्दशीतिथि में होता है। ११-चतुर्दशी में मृतकों का श्राद्ध और पूर्णिमा के मरों का श्राद्ध द्वादशी, अमावास्या आदि में करे। श्राद्धसागर में कहा है कि—यदि चतुर्दशीतिथि में माता और पिता शस्त्रादि द्वारा मर गये हों तो चतुर्दशी निमित्त एकोद्दिष्ट कर उसीसमय पार्वणविधि से श्राद्ध करे। कौस्तुभ आदि मत से वार्षिक पार्वण से ही चतुर्दशी श्राद्ध हो जाता है। अतः अलग न करे। १२-पिता और माता के मरने पर प्रथम वर्ष में महालय कृताकृत है। १३—महालयश्राद्ध मलमास में नहीं होता है। १४—अपरपक्ष में वार्षिक की प्राप्ति होने पर मृततिथि में वार्षिक कर तिथ्यन्तर में सकृन्महालय करे। १५-गयाश्राद्ध फलकामना से प्रतिवर्ष कर सकता है। १६-पित्रादि के मरने पर प्रथम वर्ष में ही जो गयाश्राद्ध करते हैं। यह विचारणीय है। १७-चतुर्दशीतिथि में श्राद्ध करने पर विघ्न उपस्थित हो जाय तो उसी पक्ष में या अग्रिमादि पक्षों में जब भी श्राद्ध करे वह पार्वणविधि से ही करे एकोद्दिष्ट विधि से न करे। १८-गणपतौ-जीवमानः पिता यस्य माता यदि विपद्यते। मातुः श्राद्धं सुतः कुर्यान्न कुयाच्छ्राद्धतर्पणम्॥ १९-प्रयोगपारिजातमें लिखा है कि-विधवा स्वयं संकल्प कर ब्राह्मण के द्वारा श्राद्ध करावे। २०-दिन में पन्द्रह मुहूर्त होते हैं। एक मुहूर्त दो घडी का होता है। अष्टममुहूर्त में श्राद्धारंभ होना चाहिये और बारहें मुहूर्त में समाप्त होना चाहिये। २१-जिस तिथिको पार्वण श्राद्ध करना है वह तिथि दो दिन हो तो जिस दिन से पूर्णतिथि अपराह्ण में हो वह तिथि हो उसी दिन श्राद्ध करे। दिन का पांच भाग करने से चौथे भाग को अपराह्ण कहते हैं। दोनों दिन संपूर्ण अपराह्णव्यापिनी तिथि हो तो पूर्व दिन करे। यदि दोनों दिन संपूर्ण अपराह्ण में संबन्ध तिथि का न हो तो जिस दिन अस्तसमय से पूर्व तीन मुहूर्त हो उसी दिन करे। ऐसा न हो तो पर दिन करे। दोनों दिन अपराह्ण के एक देश में उक्त तिथि हो तो जिस दिन अधिक काल तक श्राद्ध तिथि हो वही श्राद्धीयतिथि होती है। यह पार्वणश्राद्धतिथिनिर्णय है। २२-एकोद्दिष्टश्राद्ध में मध्याह्णव्यापिनीतिथि ग्राह्य है। मध्याह्नशब्द से अष्टम और नवम दो मुहूर्त चार घडी का ग्राह्य है। दिन के पन्द्रह मुहूर्त होते हैं। यदि दोनों दिन मध्याह्णव्यापिनी तिथि हो तो पूर्वदिन श्राद्ध होताहै। यदि दोनों दिन मध्याह्ण में सम्बन्ध न हो तो अस्त के पूर्व जिस दिन तीन मुहूर्त श्राद्धतिथि हो वह ग्राह्य है। दोनो दिन मध्याह्ण के एकदेश में व्यापिनी हो तो जिस दिन अधिक व्यापिनी हो उसीदिन एकोद्दिष्टश्राद्ध होता है। पूर्वदिन में होना चाहिये-यह कमलाकर मत है। २३-आमश्राद्ध में पूर्वाह्णव्यापिनीतिथि ग्राह्य है। आमश्राद्धं तु पूर्वाह्णे-यह विशेष है। अष्टकाश्राद्ध भी पूर्वाह्णव्यापिनीतिथि में होता है। २४-नित्यश्राद्ध पार्वणविधि से होता है। इसमें विश्वेदेवा, पिण्डदानादि, ब्रह्मचर्यादिनियम, आवाहन, अर्घ्यदानादि नहीं होते हैं। जिस दिन षड्दैवत् श्राद्धानन्तर पार्वणादि प्राप्त हो उसदिन प्रसंग से इसकी भी सिद्धि है। भिन्न देवता के एकोद्दिष्टादि की प्राप्ति हो तो एकोद्दिष्टादि करके उसके शेष अन्न से इसको भी करे। समर्थ हो तो दक्षिणा दे असमर्थ हो तो न दे। २५-श्राद्धांगतर्पण नित्यश्राद्ध में नहीं होता है। २६-महालयश्राद्ध-आश्विनकृष्ण प्रतिपदा से आश्विनशुक्ल प्रतिपदा तक सोलह होते हैं। आश्विनशुक्ल प्रतिपदा को मातामह का श्राद्ध होता है। तिथिवृद्धि हो तो अमावास्या पर्यन्त ही होता है। भाद्रपद की पूर्णिमा से अमावास्या तक होते हैं-यह हेमाद्रि मत है। इसमें षड्दैवत, नवदैवत्य और द्वादशदैवत्य पक्ष है। सकृन्महालयपक्षमें सब पितरों को दिया जाता है। षड्दैवत्य पञ्चगौड में प्रचलित है। अन्तिमपक्ष दाक्षिणात्य में है। २७-पक्षश्राद्धमें श्राद्धान्तमें तर्पण और सकृन्महालयपक्ष में दूसरे दिन तर्पण होता है। २८-भाद्रपदपूर्णिमा को भी प्रपितामह के पितृ, पितामह और प्रपितामहका श्राद्ध सपिण्ड सदैव विहित है। इसमें मातामह नहीं होते हैं यह सब निबन्धकार मानते है। कमलाकर मतमे मातामह भी हैं। इसमें श्राद्धांगतर्पण परदिनमें होता

है। २९–भाद्रकृष्णपक्ष में जिसदिन भरणीनक्षत्र हो उसदिन षड्दैवत्य अपिण्डश्राद्ध विहित है। २९–भाद्रपदकृष्ण तृतीयाको कृत्तिकानक्षत्र हो तो षडदैवत्य अपिण्डश्राद्ध विहित है। ३१–भाद्रकृष्णषष्ठी को व्यतीपात और भौमवार हो तो उसे कपिलाषष्ठी कहते हैं। उसदिन षड्दैवत्य अपिण्डश्राद्ध विहित है। ३२–महालयश्राद्ध पक्वान्न से ही होता है आमान्न से नहीं होता है। इसमें पिण्डदान अवश्य होता है। ३३–आश्विनकृष्ण नवमीको 'अन्वष्टकाश्राद्ध' होता है। उसमें जीवत्पितृकको एकमातृपार्वण सदैव सपिण्ड का विधान है। सपत्नमाता का और स्त्रीका भी एकोद्दिष्टश्राद्ध होता है। यह अनुपनीत जीवत्पितृक तथा गर्भिणीपति भी कर सकता है। ३४–जिसकी माता पहले मृत हो पश्चात् पिता मरे हो ऐसे मातृ-पितृ पितृक को पितृ, मातृ, मातामह ये तीन पार्वण करने चाहिये। ३५–नवमीश्राद्ध नवमीतिथि में न कर सके तो वृश्चिकसंक्रान्तितक कर सकता है। ३६–आश्विनकृष्ण त्रयोदशी केवल या मघानक्षत्र युक्त हो तो सदैव अपिण्ड षडदैवतश्राद्ध होता है। यह श्राद्ध नित्य है। सपुत्र को निषिद्ध है। केवल मघाश्राद्ध भी प्रशस्त है। परन्तु काम्य है। सांकल्पिक है। श्राद्धान्त में वर्गद्वय का तर्पण होता है। ३७–जिसकी त्रयोदशी मृततिथि है उसको महालय करने में कोई दोष नहीं है चाहे वह सपुत्र भी हो। ३८–आश्विनकृष्ण चतुर्दशी को हस्तनक्षत्र में सूर्य हों या मघानक्षत्र में सूर्य हो तो 'गजच्छायायोग' होता है उसमें षड्दैवत अपिण्डश्राद्ध करना चाहिये। ३९–आश्विनशुक्लप्रतिपदाको मातामह का एक पार्वण सदैव अपिण्ड होता है। इसे जीवत्पितृक तथा अनुपनीत भी कर सकता है। इस श्राद्धको जीवत्पितृक संगवकाल में और मृतपितृक अपराह्णकालमें करें। मातामह सपत्नीक या अपत्नीक का उल्लेख करे—इसमें विकल्प है। श्राद्धान्त में तर्पण होता है। यह श्राद्ध इस तिथिको यदि न कर सके तो वृश्चिकसंक्रान्तितक कर सकता है। ४०–आश्विनकृष्ण चतुर्दशी को शस्त्रहत पितादिका सदैव सपिण्डन एकोद्दिष्ट श्राद्ध होता है। एकोद्दिष्ट यद्यपि अदैव है फिर भी इस एकोद्दिष्ट में विश्वेदेवा वचनबल से होते हैं। ४१–चतुर्दशीतिथिमें–विष, जल, अग्नि, शृंग, दन्त, सर्प, पशु, व्याघ्र, उद्बन्धन आदि दुर्मरण से मृतका श्राद्ध भी होता हैं। ४२–अमावास्या को अनुराधा, विशाखा, स्वाती,पुष्य, आर्द्रा और पुनर्वसु नक्षत्र हो तो श्राद्ध अपिण्ड सदैव षड्दैवत करे। इसमें तर्पण श्राद्ध के पहले होता है। ४३–अमावास्या में श्रवण, अश्विनी, धनिष्ठा, आर्द्रा, आश्लेषा, मृगशिरा तथा व्यतीपात हो तो महाव्यतीपात योग होता है। इसमें भी पूर्ववत् श्राद्ध प्रशस्त है। इसमें तर्पण श्राद्ध के पूर्व होता है। ४४–आश्विनकृष्ण अमावास्याको आब्दिक और महालय उपस्थित हो तो पहले आब्दिक तदनन्तर महालय होता है। दर्शश्राद्धकी महालयश्राद्ध से सिद्धि है। अलग से करने की आवश्यकता नहीं है। ४५–साग्निक को अमावास्या में पिण्डपितृयाग भी करना पड़ता है और पिण्डपितृयागके बाद दर्शश्राद्धकी विधि है। अतः साग्निकको आब्दिक तथा महालय यदि आश्विनकृष्ण अमावास्या को उपस्थित हो तो प्रथम आब्दिक फिर महालय अलग पाकसे कर पिण्डपितृयाग कर और बाद में सांकल्पिक दर्शश्राद्ध करे—यों क्रम है। साग्निक को महालय तथा दर्शश्राद्धका तन्त्र या प्रसंग नहीं हो सकता है। क्योंकि—मध्यमें पिण्डपितृयज्ञ पतित है। तन्त्रता करने से महालय तथा दर्शके मध्यपातित्व का बाध हो जाता है। ४६ एकदिनमें अनेक श्राद्ध की प्राप्तिमें तो तर्पण भी तन्त्र से होता है। एकतिथि में अनेक की मृत्यु हो तो मरण क्रमसे श्राद्ध होता है। मरणक्रम अज्ञात हो तो संबन्ध क्रमसे होता है। ४८–तीर्थप्राप्तिमें अवान्तर तीर्थ यदि अनेक प्राप्त हो तो अनेकश्राद्ध भी एक ही दिनमें होते हैं। जैसे—पञ्चक्रोशीमें—कर्दमेश्वर, भीमचण्डी आदि अनेक तीर्थ की प्राप्ति में एक श्राद्धकर्ता दो व्यक्तिका श्राद्ध करे तो मृतकश्राद्ध प्रथम कर स्नानकरके पीछे मृतकका श्राद्ध पृथक् पाक से करे—यह बहुमत है। श्राद्ध न करके केवल भोजनादि करने में पृथक् पाकका नियम नहीं है। देश, काल, कर्ता आदि के ऐक्यमें पाक भी एक ही होता है, यह संप्रदाय है। 'तन्त्रेण श्रपणं कृत्वा श्राद्धं कुर्यात्पृथक् पृथक्'–निर्णयसिन्धु। ५०–पावणदिनमें यदि भाई आदिका एकोद्दिष्ट भी पड़े तो प्रथम पार्वणकरके एकोद्दिष्ट करना चाहिये। ५१–महालयमें तिथिह्रासमें आवृत्ति से दो श्राद्ध और तिथिवृद्धि में भी दो श्राद्ध करे। इसीप्रकार नवरात्रमें भी तिथिह्रास तथा तिथिवृद्धि में पाठावृत्तिका विधान है। ५२–श्राद्धंगतर्पण क्षयाहदिनमें तथा सकृन्महालयश्राद्ध पक्ष में परदिन होता है। दूसरे दिन प्रातः स्नान और सन्ध्याकर श्राद्धांग तर्पण करे। फिर मध्यान्ह-सन्ध्या तथा नित्यतर्पणादि करे। सकृन्महालयपक्षमें यदि सब पितरों का श्राद्ध करे तो सबोंका तर्पण करे। सकृन्महालय पक्षमें सब पितरों का एक ही दिन पिण्डदान शास्त्र से विहित है। दाक्षिणात्यों में प्रचलित भी है। ५३–महालयमें प्रतिदिन पक्षभर श्राद्ध करे तो षड्दैवत्य ही करे। ५४–इसमें जिनका श्राद्ध होता है। उन्हीं का तर्पण होना चाहिये। ५५–श्राद्धांगतर्पण नित्यतर्पण से पृथक् है। अतः इसमें जिनका श्राद्ध होता है उन्हींका तर्पण होता है। ५५–आब्दिक श्राद्धादिदिन में जो नित्यतर्पण का निषेध है। वह निमूल है या तिलतर्पण निषेधक है–यह निर्णयसिन्धुकार का मत है। ५६–मन्वादि, युगादि, दर्श, संक्रान्ति, पूर्णिमा, व्यतिपात, वैधृति, नक्षत्रादिश्राद्ध, तीर्थश्राद्ध, ग्रहणश्राद्ध

गं छ्यादिश्राद्ध में श्राद्धके पहले श्राद्धांग तर्पण होता है। इसमें मध्यान्हसन्ध्या और ब्रह्मयज्ञ को करके नित्यतर्पणके साथ दर्शश्राद्धांगतर्पणका तन्त्र से अनुष्ठान होता है। या नित्यश्राद्ध से ही श्राद्धांगतर्पण की सिद्धि है। तर्पणोत्तर श्राद्ध करे। पक्षश्राद्ध, अर्धोदय, गजच्छाया, भरणी, मघा, अष्टका, और अन्वष्टका श्राद्ध में श्राद्धान्तमें तर्पण होता है। ५७–महालयमें श्राद्ध न कर सके तो कार्तिककृष्ण अमावास्या या आश्विनशुक्लपञ्चमी, या वृश्चिक संक्रान्तिके प्रवेशके समय किसी तिथि में करे। ५८–महालय में पाकारंभ के पूर्वतक पत्नीरजस्वला हो जाय तो सकृन्महालय उसदिन न कर सके तो अमावास्या तक करे। यदि अमावास्या तक रजोदोष हो तो आश्विनशुक्लपञ्चमी तक करे। ५९–पाकारंभोत्तर ऋतुमती हो तो उसको गृहान्तर में रखकर श्राद्ध करे। ६०–विधवा को महालयमें भर्त्रादित्रय, स्वपित्रादित्रय, स्वमात्रादित्रय, स्वमातामहादित्रय, स्वमातामह्यादित्रय का अशक्तिमें–भर्त्रादित्रय, स्वपित्रादित्रय, स्वमात्रादित्रय, स्वमातामहादित्रय सपत्नीक, अत्यशक्ति में—स्वभर्त्रादित्रय, स्वमात्रादित्रय का श्राद्ध करे। ६१–अपुत्रा विधवा प्रतिदिन भर्त्रादित्रय का तर्पण करे। ६२–श्राद्धदिन एकादशीव्रत, काम्योपवासव्रत, शिवरात्रि, जन्माष्टमी आदि हो तो श्राद्धशेषान्न का आघ्राण करे। फलाहार आदि करना हो तो फलाहार से श्राद्ध करे। ६३–श्राद्धशेषान्न भोजन स्वयं अवश्य करना चाहिये। ६४–श्राद्धशेषान्न शूद्रको नहीं देना चाहिये शूद्रको उस दिन घर में भोजन भी नहीं कराना चाहिये। ६५–श्राद्धशेषान्न भोजन हर एक मनुष्य नहीं कर सकता बिना विशेष संबन्ध के।

(अथ आश्विनकृष्णपक्षः)

(कन्यासंक्रान्तिनिर्णयः)

कन्यासंक्रमे पराः षोडश घटिकाः पुण्याः, शेषं प्राग्वत्।

कन्या के सूर्य में परा सोलह घड़ी पुण्यकाल होता है। शेष बात पहले के तुल्य है।

(अथ महालयः)

अथ महालयः। तत्र पृथ्वीचन्द्रोदये वृद्धमनुः—आषाढीमवधिं कृत्वा पञ्चमं पक्षमाश्रिताः। कांक्षन्ति पितरः क्लिष्टा अन्नमप्यन्वहं जलम्॥

इसके बाद महालय का विचार करते हैं। उसमें पृथ्वीचन्द्रोदय में वृद्धमनु ने कहा है कि—[1]आषाढमास की पूर्णिमा से लेकर पांचवें पक्ष में अर्थात्—आश्विनमास के कृष्णपक्ष तक पितरगण बड़े क्लेश से अन्न और जल की प्रतिदिन आकांक्षा (इच्छा) करते हैं।

(कन्यायोगे पुण्यतमत्वकथनम्)

कन्यायोगे पुण्यतमत्वमाह शाट्यायनिः–कन्यास्थार्कान्वितः पक्षः सोऽत्यन्तं पुण्यमुच्यते। इति।

कन्या के योग में अत्यन्त पुण्य शाट्यायनि ने कहा है कि—कन्याराशि के सूर्य से युक्त पक्ष अत्यन्त पुण्यवान् कहा गया है।

(अत्र विशेषकथनम्)

अत्र विशेषमाह वृद्धमनुः—मध्ये वा यदि वाऽप्यन्ते यत्र कन्यां व्रजेद्रविः। स पक्षः सकलः श्रेष्ठः श्राद्धषोडशकं प्रति॥ तथा ब्रह्माण्डमार्कण्डेययोः—कन्यागते सवितरि दिनानि दश पञ्च च। पार्वणेनेह विधिना श्राद्धं तत्र विधीयते॥ तथा तत्रैव षोडश दिनान्युक्तानि—कन्यागते सवितरि यान्यहानि तु षोडश। क्रतुभिस्तानि तुल्यानि देवो नारायणोऽब्रवीत्॥

यहाँ पर विशेष वृद्धमनु ने कहा है कि—मध्य[2] में या अन्तमें जब कन्या का सूर्य हो वह सोलह श्राद्धों के प्रति वह पक्ष संपूर्ण श्रेष्ठ है।

१—नागरखण्डे—आषाढ्याः पञ्चमे पक्षे यः श्राद्धं न करिष्यति। शोकनापि दरिद्रोऽपि सोऽन्त्यजत्वमुपैष्यति॥
२—आदित्यपुराणे–आषाढीमवधिं कृत्वा यः स्यात्पक्षस्तु पञ्चमः। श्राद्धं तत्र कुर्वीत कन्यां गच्छतु वा न वा॥

ब्रह्माण्ड तथा मार्कण्डेयपुराण में कहा कि—कन्या के सूर्य में पन्द्रहदिनों[1] तक पार्वणविधि से ही वहाँ पर श्राद्धका विधान है।

और वहाँ परही सोलहदिन कहे हैं। कन्या के सूर्यमें जो सोलह दिन हैं वे यज्ञों के सदृश हैं। ऐसा नारायण देव ने कहा है।

(अत्र हेमाद्रिमतम्)

अत्र हेमाद्रिः षोडशत्वं त्रेधा व्याचख्यौ। तिथिवृद्धया पक्षस्य षोडशदिनात्मकत्वे श्राद्धवृद्धयर्थमित्येकः पक्षः, भाद्रपदपूर्णिमया सहेति द्वितीयः, आश्विनशुक्लप्रतिपदा सहेति तृतीयः। अन्त्य एव तु युक्तः। अहः षोडशकं यत्तु शुक्लप्रतिपदा सह। चन्द्रक्षयाविशेषेण सापि दर्शात्मिका स्मृता॥ इति देवलोक्तेः।

यहाँ पर हेमाद्रि ने कहा है कि—सोलहदिन की तीन तरह से व्याख्या की है। प्रथमपक्ष—तिथिकी वृद्धि से पक्षके सोलहदिन हो जाने पर तो एकश्राद्ध के वृद्ध्यर्थ बढ़ जाने से प्रथमपक्ष हो जायगा। दूसरा पक्ष—भाद्रपदपूर्णिमातिथि के साथ हो जाने पर दूसरापक्ष हो जायगा। तीसरा पक्ष—आश्विनशुक्ल प्रतिपदातिथि के साथ हो जाने से तीसरापक्ष हो जायगा। इन तीनों में अन्त्य का ही तो युक्त है।

देवलने कहा है कि—जो शुक्लपक्ष की प्रतिपदा के सहित सोलह दिन है। उसमें चन्द्रमा[2] के क्षय के हो जानेसे प्रतिपदा भी अमावास्या का रूप हो जाती है।

(अत्र पञ्च पक्षाः)

तत्र पञ्च पक्षाः। तदुक्तं हेमाद्रौ ब्राह्मे—आश्वयुक्कृष्णपक्षे तु श्राद्धं कार्यं दिने दिने। त्रिभागहीनं पक्षं वा त्रिभागं त्वर्धमेव वा॥ दिने दिने इति पक्षपर्यन्तत्वमुक्तम्। त्रिभागहीनमिति पञ्चम्यादिपक्षः, भौजङ्गीं तिथिमारभ्य यावच्चन्द्रार्कसङ्गमम्। इति वाक्यात्। अर्धमित्यष्टम्यादिपक्षः। त्रिभागमिति दशम्यादिपक्षः। त्रिभागहीनमिति चतुर्दशीसहितप्रतिपदादिचतुष्टयवर्जनाभिप्रायेणेति कल्पतरुः।

उसमें पांच पक्ष हैं। उन्हींको हेमाद्रि में ब्रह्मपुराण के वचनसे कहा है कि—आश्विनमासके कृष्णपक्ष में प्रतिदिन श्राद्ध करे। त्रिभाग से हीन अर्थात्—पञ्चमीतिथि से करे या पक्ष भर-(अर्थात् पूरे पन्द्रह दिन) करे। या त्रिभाग-(अर्थात् दशमीतिथि से) करे। या अर्ध अर्थात्-अष्टमी तिथि से करे।

'दिने दिने'—इस वीप्सा से पक्षभर श्राद्ध करे—ऐसा कहा है। 'त्रिभागहीनम्' इससे पञ्चमी आदि पक्ष को कहा है। पञ्चमीतिथि से आरम्भ कर जब तक चन्द्रमा और सूर्यका संगम हो। इस वाक्य से। अर्धम्—इससे अष्टमी आदि पक्ष है। त्रिभागम्—इससे दशमी आदि पक्ष है। त्रिभागहीनम्—से चतुर्दशी तिथि सहित प्रतिपदा आदि चार तिथियोंके त्याग का अभिप्राय है। यह कल्पतरु ने कहा है।

अत्र दिनपदं तिथिपरं वीप्सया तत्पक्षीयतिथित्वं श्राद्धव्याप्यतावच्छेदकम्। तेन पञ्चदशतिथिव्यापि श्राद्धं सिद्ध्यति। तेन चतुर्दशीनिषेधोऽन्यकृष्णपक्षपर इति गौडाः। तन्न। श्राद्धं शस्त्रहतस्यैव चतुर्दश्यां महालये। इत्यादिविरोधात्। यच्च कश्चित्पूरणप्रत्ययलोपेन तृतीयभागहीनं षष्ठ्यादिपक्षं तृतीयभागमेकादश्यादि तदर्धं त्रयोदश्यादि, उत्तरोत्तरं लघुकालोक्तेरिति। तन्न। गौतमादिवचनेन मूलकल्पनालाघवात् पक्षमित्यनन्वयापत्तेश्च।

यहाँ पर 'दिनपद' से तिथिका ग्रहण है। 'दिने दिने' इस पदकी वीप्सासे उसपक्षकी सब तिथियाँ श्राद्धकी हैं। उससे पन्द्रहों तिथियों से व्याप्त श्राद्ध सिद्ध होता है। उससे चतुर्दशी का निषेध अन्य कृष्ण

१—दिनपरं चान्द्रदिनपरतया तिथिपरम्। तिथिनैकेन दिवसश्चान्द्रमाने प्रकीर्तितः। एवं 'अहानि' इत्यत्राहः पदमपि तिथिपरमेव।

२—न दृश्यते चन्द्रोस्यामिति व्युत्पत्या धातोश्चाक्षुषज्ञानार्थकतया तत्लभ्यदर्शत्वेन शुक्लप्रतिपदोऽप्येकीकारानापरपक्षत्वविरोध इत्यर्थः।

पक्ष परक है—यह गौडों का कहना है। यह ठीक नहीं है। महालयकी चतुर्दशीतिथिमें शस्त्र द्वारा मृतकों का ही श्राद्ध होता है। इत्यादि विरोध है। और जो कोई पूरण (तृतीयाप्रत्यय) का लोप होने से तीसरे भाग से हीन षष्ठ्यादि पक्ष, तृतीयभाग, एकादशी आदि, उसका आधा त्रयोदशी आदि पक्ष उत्तरोत्तर[1] लघुकाल कहा है।

यह ठीक नहीं है। गौतमादि वचनसे मूलकी कल्पना का लाघव है। इससे पक्षकी भी अन्वयापत्ति हो जायगी।

पञ्चम्यूर्ध्वं च तत्रापि दशम्यूर्ध्वं ततोऽप्यति। इति विष्णुधर्मोक्तेः। षष्ठ्याद्येकादश्यादिपक्षावपि ज्ञेयाविति तत्त्वम्।

विष्णुधर्म में कहा है कि—पञ्चमी[2] तथा दशमी के बाद श्राद्ध करे। षष्ठी, एकादशी आदि भी पक्ष भी जानना चाहिये—यह तत्त्व है।

कालादर्शेऽपि—पक्षाद्यादि च दर्शांतं पञ्चम्यादि दिगादि च। अष्टम्यादि यथाशक्ति कुर्यादापरपक्षिकम्॥ पक्षादिः=प्रतिपत्, दिक्=दशमी, दर्शान्तमिति सर्वत्र।

कालादर्श में लिखा है कि—प्रतिपदासे अमावास्या तक, पञ्चमी आदि से अमावास्या तक, दशमी से अमावास्या तक, अष्टमी आदि में यथाशक्ति अपरपक्ष (कृष्णपक्ष) में श्राद्ध करे। पक्षका आदि का अर्थ—प्रतिपदा है। दिक्-माने दशमी, अमावास्या तक यह सर्वत्र है।

गौतमोऽपि—अथाऽपरपक्षे श्राद्धं पितृभ्यो दद्यात् पञ्चम्यादि दर्शान्तमष्टम्यादि दशम्यादि सर्वस्मिंश्च' इति।

गौतम ने भी कहा है कि—अनन्तर अपरपक्ष (महालय) में पितरों के लिये श्राद्ध दे। पञ्चमी आदि अमावास्या तक, अष्टमी आदि, दशमी आदि सब दिनों में श्राद्ध करे।

तथैकस्मिन्नपि दिने श्राद्धमुक्तं हेमाद्रौ नागरखण्डे—आषाढ्याः पञ्चमे पक्षे कन्यासंस्थे दिवाकरे। यो वै श्राद्धं नरः कुर्यादेकस्मिन्नपि वासरे॥ तस्य संवत्सरं यावत्संतृप्ताः पितरो ध्रुवम्॥ इति।

वैसेही एक दिनमें भी श्राद्ध कहा है हेमाद्रि नागखण्ड के मतसे—आषाढमास की पूर्णिमासे पांचवें पक्षमें कन्या के सूर्यमें जो मनुष्य एकदिन भी श्राद्ध करता है उसके पितर निश्चय एक साल तक तृप्त रहते हैं।

अत्र शक्ताशक्तपरा व्यवस्थेति प्राञ्चः। तन्न। तद्वाचकपदाभावात्। त्रयोदश्यादिपक्ष एव नित्यः। तत्रैव निन्दाश्रुतेः। ब्राह्मे एवकारेण तस्यैव पञ्चमपक्षायोगव्यवच्छेदोक्तेरिति गौडाः। तन्न। एकस्मिन्नपीति विरोधात्। तेन फलभूयार्थिनाऽन्यानि कार्याणीति तत्त्वम्। तत्र चतुर्दशीश्राद्धाभावे पञ्चम्यादिदशम्यादिपक्षौ। तत्सत्त्वे षष्ठ्याद्येकादश्यादिकौ। एवं चतुर्दश्यभावे द्वादश्यादिः। तत्सत्त्वे त्रयोदश्यादिरितिव्यवस्था।

यहाँ पर प्राचीनों का कहना है—शक्त और अशक्तभेद से व्यवस्था है। यह ठीक नहीं है। उसमें तद्वाचक पदका अभाव है। अर्थात्—शक्त और अशक्त वाचक कोई पद नहीं है। त्रयोदश्यादि पक्ष ही नित्य है वहीं पर निन्दा सुनी है। ब्रह्मपुराणमतसे एवकारसे उसी ही को पञ्चमपक्षके अयोग व्यवच्छेदक (अयोगव्यवच्छेदक, अन्ययोग व्यवच्छेदक, अत्यन्तायोग व्यवच्छेदक—अयोग से संबन्ध उसका व्यवच्छेदक माने अभाव) कहा है—यह गौडोंका मत है। यह ठीक नहीं है। एकस्मिन् एकदिनमें भी करे—यह विरोध है। उससे फलके अधिकाभिलापी दूसरे श्राद्धोंको करे—यही तत्त्व है। उसमें चतुर्दशीश्राद्धके अभावमें पञ्चमी आदि तथा दशमी आदि दोनों पक्षों को ग्रहण करे। उसके रहने पर षष्ठी आदि एकादशी आदि ले। इस प्रकार चतुर्दशीके अभावमें द्वादशी आदि ले। उसके रहने पर त्रयोदशी आदि ले—यह व्यवस्था है।

१—नागरखण्डे–उत्तरादयनाद्राजन् श्रेष्ठं स्याद्दक्षिणायनम्। याम्यायनाच्चतुर्मासं तत्र सुप्ते तु केशवे॥ प्रौष्ठपद्याः परः पक्षस्तत्रापि च विशेषतः। पञ्चम्यूर्ध्वं च तत्रापि दशम्यूर्ध्वं ततोऽप्यति॥ मघायुक्ता तु तत्रापि श्रेष्ठा राजन् त्रयोदशी।

२—विष्णुधर्मगौतमाभ्यां स्पष्टमुक्ताः–प्रतिपत्पञ्चमीषष्ठी-अष्टमीदशमी-एकादशीप्रभृति षट् पक्षाः।

(विधवाया पार्वणचतुष्टयकथनम्)

विधवायास्तु विशेषः । स्मृतिसङ्ग्रहे—चत्वारः पार्वणाः प्रोक्ता विधवायाः सदैव हि । स्वभर्तृश्वशुरादीनां माता पित्रोस्तथैव च ॥ ततो मातामहानां च श्राद्धदानमुपक्रमेत् ॥ तथा-श्वश्रूणां च विशेषेण मातामह्यास्तथैव च । इति ।

विधवा[1] के लिए तो विशेष स्मृतिसंग्रहमें कहा है कि—विधवा को सदा ही चार पार्वण कहा है। उसका क्रम यों है—अपना पति, श्वशुर आदिका, माता और पिता का, तदनन्तर मातामह आदिका श्राद्ध करे और विशेषकर श्वश्रू (सास) ओंका वैसेही मातामही (नानी) आदिका श्राद्ध करे।

(अशक्तौ विधवा स्वयं संकल्पं कृत्वाऽन्यत्राह्मणद्वारा कारयेत्)

अशक्तौ तु स्मृतिरत्नावल्याम्—स्वभर्तृप्रभृति त्रिभ्यः स्वपितृभ्यस्तथैव च । विधवा कारयेच्छ्राद्धं यथाकालमतन्द्रिता ॥ विधवा स्वयं सङ्कल्पं कृत्वान्यब्राह्मणद्वारा कारयेदित्युक्तं प्रयोगपारिजाते ।

अशक्तिमें तो स्मृतिरत्नावली में कहा है—विधवा पत्नी अपने पति आदि तीन का तथा वैसेही अपने पिता आदि का यथासमय आलस्यादि रहित होकर श्राद्धको करा दे । प्रयोगपारिजातमें लिखा है कि—विधवा स्त्री स्वयं (अपने आप) संकल्पकर अन्य कार्य ब्राह्मण द्वारा करावे ।

(सकृन्महालये वर्ज्यतिथ्यादिकथनम्)

सकृन्महालये च वर्ज्यतिथ्याद्युक्तं पृथ्वीचन्द्रोदयप्रयोगपारिजातादिषु । वसिष्ठः—

नन्दायां भार्गवदिने चतुर्दश्यां त्रिजन्मसु । एषु श्राद्धं न कुर्वीत गृही पुत्रधनक्षयात् ॥ जन्मभं तत्पूर्वोत्तरे च त्रिजन्मानि ।

और सकृत्महालय में त्याज्यतिथि पृथ्वीचन्द्रोदय, प्रयोगपारिजात आदिमें कहा है—वसिष्ठने कहा है कि—नन्दामें, (प्रतिपदा, षष्ठी और एकादशी) शुक्रवारके दिनमें और चतुर्दशी (त्रयोदश्यामिति विवेचने) त्रिजन्म, इनमें श्राद्ध करने से गृहस्थका पुत्र तथा धन क्षय हो जाता है।

जन्मनक्षत्र (अपनी स्त्री और अपने पुत्रोंका) उसके पूर्व और उत्तरमें जो नक्षत्र हो वही त्रिजन्म हैं। रघुनाथ मत से जन्म से दशम तथा उन्नीसवां नक्षत्र होता है ।

वृद्धगार्ग्यः—प्राजापत्ये च पौष्णे च पित्र्यर्क्षे भार्गवे तथा । यस्तु श्राद्धं प्रकुर्वीत तस्य पुत्रो विनश्यति ॥ प्राजापत्यम्=रोहिणी, पौष्णम्=रेवती, पित्र्यम्=मघा । अन्यान्यपि प्रत्यरितारादीनि तत्रैव ज्ञेयानि ।

वृद्ध गार्ग्य ने कहा है कि—रोहिणी, रेवती तथा मघा नक्षत्रमें, शुक्रवार में जो श्राद्ध करता है उसके पुत्र का नाश होता है और दूसरे भी दुष्ट दिन वहीं पर देखना चाहिये ।

केचित्तु—नन्दाश्वकामरव्यारभृग्वग्निपितृकालभे । गण्डे वैधृतिपाते च पिण्डास्त्याज्याः सुतेप्सुभिः ॥ इति सङ्ग्रहात् ।

नन्दाः=प्रतिपत्षष्ठ्येकादश्यः, अश्वः=सप्तमी, कामः=त्रयोदशी, आरो=भौमः, भृगुः=शुक्रः, अग्निभम्=कृत्तिका, पितृभम्=मघा, कालभम्=भरणी, अत्र पिण्डास्त्याज्या इत्याहुः । तत्र मूलं मृग्यम् । एतच्च सकृन्महालयविषयम् । सकृन्महालये काम्यं पुनः श्राद्धेऽखिलेषु च । अतीतविषये चैव सर्वमेतद्विचिन्तयेत् ॥ इति पृथ्वीचन्द्रोदये नारदोक्तेः ।

किसी का मत है कि—प्रतिपदा, षष्ठी और एकादशी, सप्तमी, त्रयोदशी, मंगलवार, शुक्रवार,

---

१—विधवायाः पार्वणचतुष्टयं पार्वणषट्कं पार्वणद्वयमिति पक्षत्रयम् । पक्षत्रयेऽपि आत्माद्येकोद्दिष्टानि भवन्ति । अत्रेदं बोध्यम्—विधवाया दर्शश्राद्धे पुत्राभावे तद्धदेवोधिकारः । अपुत्रा पुत्रवत्पत्नी पुत्रकर्म समाचरेत् । इति वचनात् 'पुत्रवत्' इति वतिना प्रकरणानुरोधात् । इत्यादि टीकायाम् । यत्तु—भर्तुः श्राद्धे तु या नारी मौढ्यात्पार्वणमाचरेत् । न तेन तृप्यते भर्ता स्वयं च नरकं व्रजेत् ॥ इति तत्तयाहे एकोद्दिष्टपक्षप्रशंसार्थं न तु सर्वथा पार्वणनिषेधार्थम् ।

कृत्तिका, मघा, भरणी, गण्ड, वैधृति, पात, इनमें पुत्राभिलाषी पिण्डदान न करें इनमें [1]मूल अन्वेषणीय है और यह सकृत् महालय पक्ष विषयमें है।

पृथ्वीचन्द्रोदयमें नारदने कहा है कि--एकबार पितृपक्षमें, काम्यश्राद्धमें फिर संपूर्णश्राद्धोंमें और भूले हुए श्राद्धोंमें इनका विचार करे।

श्री विनायकशर्मा मोड,

श्री ॥ विधवाकर्तृकपत्नीश्राद्धे पुत्रस्थाने पुत्रेण मातृदिश्य
क्रियते तानेवोद्दिश्य विधवाऽपि श्राद्धं कुर्यात्। अर्थात् श्वशुर
प्रभृतीनां त्रिलक्षणं श्वश्रूप्रभृतीनां त्रयाणां श्वपितृप्रभृतीनां त्रया
णां च इति नवानां श्राद्धं कुर्यात्। उद्देशवाक्ये शब्दोच्चारणे परं वि
शेषः। पुत्रश्चेत् अस्मत्पितामहीति अस्मत्पितामहेति अस्मन्माताम
हेति च ब्रूयात्। विधवा तु श्वश्र्वादिशब्देन पत्न्यादिशब्देन पित्रा
दिशब्देन च उद्देशं कुर्यात्। "अपुत्रा पुत्रवत्पत्नी पुत्रकर्म समा
चरेत्" इति श्राद्धमयूखोदाहृतवचनात्। अतएव पुत्रकर्तृकश्रा
द्धवत् विधवाश्राद्धमपि तद्देवत्यम्। अत एव श्राद्धमयूखे "वि
धवायास्तु पुत्राभावे तद्देवाधिकारः। तथा: "अपुत्रा पुत्रवत्पत्नी पुत्र
कर्म समाचरेत्" इति वचनात् पुत्रपदेति [illegible] प्रकरणानुरोधात्
श्राद्धक्रियामात्रपरत्वात् पुत्रकर्तृकश्राद्धवदेव देवताः। उद्देश्यत्वं तु वि

(अस्यापवादः)

अस्यापवादो हेमाद्रौ पृथ्वीचन्द्रोदये च--अमापाते भरण्यां च द्वादश्यां पक्षमध्यके। तथा

१--सप्तमी रविभौमभरणीगण्डवैधृतिव्यतिपातेष्विति मयूखः।

तिथिं च नक्षत्रं वारं च न विचारयेत् ॥ पराशरमाधवीये मदनपारिजातादिषु चैवम् ।

इसका अपवाद हेमाद्रि तथा पृथ्वीचन्द्रोदयमें कहा है कि—अमापात (अमावास्या का प्रवेश) भरणी, द्वादशी, पक्ष के मध्य में तिथि, नक्षत्र एवं दिनका विचार नहीं करना चाहिये। पराशर माधवीय और मदनपारिजातादिमें यही ही कहा है।

(पितृमृताहे निषिद्धदिनेऽपि सकृन्महालयः कार्यः)

निर्णयदीपिकायां तु—पितृमृताहे निषिद्धदिनेऽपि सकृन्महालयः कार्यः इत्युक्तम् । आषाढ्याः पञ्चमे पक्षे कन्यासंस्थे दिवाकरे। मृताहनि पितुर्यो वै श्राद्धं दास्यति मानवः ॥ तस्य संवत्सरं यावत्सन्तृप्ताः पितरो ध्रुवम् ॥ इति नागरखण्डोक्तेः ।

निर्णयदीपिकामें तो कहा है कि—पिताके मृतदिनमें (शिष्टाचारसिद्धोऽयं पक्ष इति रघुनाथः।) निषिद्धदिनमें भी सकृत् महालय करे। यों कहा है।

नागरखण्ड में कहा है कि—आषाढकी पूर्णिमासे पांचवें पक्षमें कन्याके सूर्यमें पिताके मृत दिनमें मनुष्य श्राद्ध देगा उसके पितर निश्चय ही एक सालतक तृप्त होते हैं।

या तिथिर्यस्य मासस्य मृताहे तु प्रवर्तते। सा तिथिः पितृपक्षे तु पूजनीया प्रयत्नतः ॥

कात्यायन ने कहा है कि—जो तिथि जिस मासकी मरणदिन में हो वही तिथि को पितृपक्ष में प्रयत्नसे पूजनीय होती है।

तिथिच्छेदो न कर्तव्यो विनाऽशौचं यदृच्छया। पिण्डश्राद्धं च कर्तव्यं विच्छित्तिं नैव कारयेत् ॥

तिथिका छेदन बिना आशौच के अपनी इच्छा से न करे। पिण्डश्राद्ध करे पर विच्छेद नहीं करना चाहिये।

अशक्तः पक्षमध्ये तु करोत्येकदिने यदा। निषिद्धेऽपि दिने कुर्यात्पिण्डदानं यथाविधि ॥ इति कात्यायनोक्तेश्च। अत्र मूलं चिन्त्यम् ।

यदि असमर्थ हो तो पक्षमें मध्यमें किसी एक दिन निषिद्ध दिनमें भी यथाविधि पिण्डदान करे। यहाँ पर मूल चिन्तनीय हैं।

(पक्षश्राद्धकरणेऽपि नन्दादिषु न पिण्डदाननिषेधकथनम्)

तथा पक्षश्राद्धकरणेऽपि न नन्दादिषु पिण्डनिषेध इत्याह पराशरमाधवीये कार्ष्णाजिनिः—नभस्यस्यापरे पक्षे श्राद्धं कार्यं दिने दिने। नैव नन्दादिवर्ज्यं स्यान्नैव निन्द्या चतुर्दशी ॥ इति ।

और पक्षश्राद्ध करने पर भी नन्दादियों में पिण्डनिषेध नहीं है। इसी बातको पराशरमाधवीयमें कार्ष्णाजिनि ने कहा है कि—भाद्रपदमासके अपरपक्ष में (कृष्णपक्ष में) प्रतिदिन श्राद्ध करे। उसमें नन्दा आदि तथा निन्दित चतुर्दशीतिथिका त्याग नहीं है।

अत्र श्राद्धमित्येकवचनाद् 'दिने दिने' इति वीप्सावशाच्च सोमयागवदेकस्याभ्यासेनैकप्रयोगपरमिदम्। अतः 'प्रतिपत्प्रभृतिष्वेकां वर्जयित्वा चतुर्दशीम्। इति याज्ञवल्कीयं प्रयोगभेदपरं न तु पञ्चम्यादिपक्षविषयम्। 'प्रतिपत्प्रभृतिषु' इति विशिष्योक्तेः। निर्णयदीपे पृथ्वीचन्द्रोदये मदनपारिजाते चैवम्। अन्यकृष्णपक्षपरं याज्ञवल्कीयम्। एतत्परत्वे 'नैव निन्द्याचतुर्दशी' इति विरोधादिति गौडाः। तन्न श्राद्धं शस्त्रहतस्यैव चतुर्दश्यां महालये। इति विरोधात्।

यहाँ पर 'श्राद्धम्' इस एक वचन से और 'दिने दिने' इस बीप्सा के वशसे 'सोमयाग'[1] के सदृश एक के अभ्यास से अनेक बार प्रयोगपरक यह है। इसलिए प्रतिपदा से लेकर एक चतुर्दशीतिथि का त्याग-कर प्रतिदिन श्राद्धसे करे। यह याज्ञवल्कीय वचन प्रयोगभेद का बोधक है। पञ्चमी आदि पक्षविषयक नहीं है। 'प्रतिपत्प्रभृतिषु'—प्रतिपदा आदि तिथियों में विशेष कहा है। निर्णयदीप में तथा मदनपारिजात में यही कहा है।

गौडों का कहना है कि—याज्ञवल्क्य का कथन अन्यकृष्णपक्ष परक है। क्योंकि—इसमें चतुर्दशी तिथि निन्दनीय नहीं है। यह विरोध है। यह ठीक नहीं है। क्योंकि—श्राद्धमहालय की चतुर्दशीतिथि में शस्त्र द्वारा मृतक का श्राद्ध विधान है। इससे विरोध है।

तत्त्वं[2] तु तिथिनक्षत्रवारादिनिषेधो य उदाहृतः। स श्राद्धे तन्निमित्ते स्यान्नानुषङ्गकृते ह्यसौ॥ इति दिवोदासीये वृद्धगार्ग्योक्तेस्तन्निमित्त पक्षान्तरे च ज्ञेयः। सकृन्महालये तु वचनान्न निषेधः। अन्यत्र न कोऽपि निषेधः कार्ष्णाजिनिस्मृतेरिति। अतो नन्दादौ सपिण्डकश्राद्धे पुत्रवतोऽप्यधिकारः।

सिद्धान्त तो यह है कि—तिथि, नक्षत्र, बार आदिका निषेध जो कहा है वह उसके निमित्त (नन्दादि निमित्त के) श्राद्ध का है। तथा अनुषंग (नन्दादिसम्बन्धेन कृते महालयादौ नेत्यन्वयः। यद्वा नन्दादेर्निषेध इत्येवार्थः। 'नन्दायां भार्गवदिने, इत्यादिपुत्रवद्गृहिणो निषेधो नन्दादिनिमित्तक ए व न तु नन्दादौ पंचम्यादिपक्षेण क्रियमाणे महालये इत्यर्थः) सम्बन्ध पक्षान्तर में ही निषेध नहीं है।

यह दिवोदासीय में वृद्धगार्ग्य ने कहा है कि—तन्निमित्तश्राद्ध में एवं पक्षान्तर (कृष्णपक्षान्तरे। न नन्दासु भृगोर्वारे रोहिण्यां च त्रिजन्मसु। रेवत्यां च मघायां च कुर्यादापरपक्षिकम्॥ इति नारदवचनात्) में निषेध है। यह जानना चाहिये। सकृत् महालय में तो वचन से निषेध है। अन्यत्र (पञ्चम्यादिप्रभृति पक्षों में) तो कोई भी (पञ्चदशषोडशपक्षयोरेव चतुर्दशीग्रहात्तदन्यपक्षे तन्निषेधः स्मर्तव्यः। एतावता प्रथमपक्षमुपपादितम्।) निषेध कार्ष्णाजिनिस्मृति में नहीं कहा है। इसलिए नन्दादि में (पुत्रगृहिणो निषेधस्य नन्दादिनिमित्त श्राद्ध एव प्राप्तेर्महालयनिमित्तके तदप्राप्तिरित्यर्थः) पुत्रवाले को सपिण्डश्राद्ध में अधिकार है।

अत्रिरपि—महालये क्षयाहे च दर्शे पुत्रस्य जन्मनि। तीर्थेऽपि निर्वपेत्पिण्डान् रविवारादिकेष्वपि॥ पूर्वोक्तनन्दादिनिषेधस्तु मृताहातिक्रमे सकृन्महालये पौर्णमास्यादिमृतश्राद्धे तन्निमित्ते च ज्ञेयः।

अत्रि ने भी कहा कि—महालय में, क्षयाह में, अमावास्यामें, पुत्रके जन्म में, तीर्थ में और रविवार आदिमें भी पिण्डों का निर्वाप (पिण्डदान) करना कहा है। पूर्वोक्त निन्दादि निषेध तो मृताह (केन चिद् हेतुना मृताहस्य सकृन्महालयकालस्यातिक्रमे—इत्यर्थः) के अतिक्रमण में सकृत् महालय में पौर्णमासी (पौर्णमास्यां मृतस्य महालये तिथिर्नास्ति अतस्तस्य समृन्महालयः नन्दादिनिषिद्धकालं विहाय कस्यां चित् तिथौ कार्य इत्यर्थः। आदिना चतुर्दशीग्रहः) आदि मृतक के श्राद्ध में या उसमें निमित्त (महालयनिमित्ते) में जानना चाहिये।

१—एकसोमयाग में-मैत्रावरुणं गृह्णाति, आश्विनं गृह्णाति तथा मैत्रावरुणं यजति, आश्विनं यजति, इसप्रकार यागकर अभ्यास (करना) होने से सभी ग्रहों का याग करना एक प्रयोगमें हो जाता है।

२—तत्वं तु—इति क्वचित्पाठः।

(विवाहव्रतचूडासु पिण्डदानादिनिषेधः)

यत्तु स्मृत्यर्थसारे–विवाहव्रतचूडासु वर्षमर्धं तदर्धकम् ।
पिण्डदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥ इति ।

जो स्मृत्यर्थसार में कहा है कि—विवाह, यज्ञोपवीत और चूडाकरण में क्रमसे—एक साल, छ मास और तीनमास तक पिण्डदान, मट्टी से स्नान तथा तिल तर्पण न करे ।

(तस्यात्रापवादकथनम्)

तस्यात्रापवादो दिवोदासीये बृहस्पतिः—तीर्थे संवत्सरे प्रेते पितृयागे महालये । पिण्डदानं प्रकुर्वीत युगादिभरणीमघे ॥ महालये गयाश्राद्धे मातापित्रोः क्षयेऽहनि । कृतोद्वाहोऽपि कुर्वीत पिण्डनिर्वपणं सदा ॥ इति ।

यहाँ पर उसका अपवाद दिवोदासीय में बृहस्पति ने कहा है कि—तीर्थ में, संवत्सर में, प्रेत में, पितृयाग (पित्र्येष्ट्याम्) में, महालय में, युगादि (सति सप्तमी, मृताहे इत्यधिकरणसप्तमी, तथा च न पिण्डनिषेधः) भरणी तथा मघा में, महालय में, गयाश्राद्धमें, माता और पिता के क्षयदिन में कृतोद्वाह में (कर लिया है विवाह को जिसने) भी पिण्डदान सदा करे ।

निर्णयदीपे तु नन्दादिनिषेधः प्रत्यहं भिन्नश्राद्धविषयः । षोडशाहव्यापिश्राद्धप्रयोगैकत्वे तु प्रत्यहं पिण्डदानं कार्यमेवेत्युक्तम् । तदयमर्थः सम्पन्नः—षोडशाहव्यापिश्राद्धैक्ये न पिण्डनिषेधः । मृताहे सकृन्महालयेऽपि तथेति केचित् ॥ तत्रापि निषेधस्तु युक्तः, प्रत्यहं श्राद्धभेदेऽपि व्यतीपातादौ च तथा । अन्यत्र मृताहातिक्रमे महालये च पिण्डनिषेध इति ।

निर्णयदीप में तो नन्दा आदि का निषेध प्रतिदिन से भिन्न श्राद्धविषयक है । सोलहदिनतक रहने वाले श्राद्ध के प्रयोगैकत्व में तो प्रतिदिन पिण्डदान करना चाहिये ही । यों कहा है ।

इसका यह अर्थ सम्पन्न हुआ कि सोलहदिनतक एकश्राद्ध पक्ष में पिण्डदान का निषेध नहीं है । किसी का मत है कि—मृताहदिन में तथा सकृत् महालय में भी वही बात है—अर्थात् निषेध नहीं है । वहाँ पर भी निषेध का होना युक्त है—प्रतिदिन श्राद्धभेदमें भो (अपरपक्षे पौर्णमास्यादिमृते वा) एवं व्यतीपात आदिमें । अन्यत्र मृताह (सकृन्महालये) दिन के अतिक्रमण में और महालय में पिण्डनिषेध है ।

(संन्यासिनां महालयः द्वादश्याम्)

संन्यासिनां तु द्वादश्यां श्राद्धं कार्यम् । यतीनां च वनस्थानां वैष्णवानां विशेषतः । द्वादश्यां विहितं श्राद्धं कृष्णपक्षे विशेषतः ॥ इति पृथ्वीचन्द्रोदये सङ्ग्रहोक्तेः ।

पृथ्वीचन्द्रोदय में संग्रहका कहना है कि—यतियोंका, वानप्रस्थों का विशेष कर वैष्णवों का श्राद्ध कृष्णपक्ष की द्वादशीतिथि में विशेषकर विहित है ।

(अत्र श्राद्धाकरणे गौणकालः)

अत्र पक्षे श्राद्धाकरणे गौणकालमाह हेमाद्रौ यमः—हंसे कन्यासु वर्षासु शाकेनापि गृहे वसन् । आश्विनकृष्णशुक्लपञ्चम्योर्मध्य इत्यर्थः । पञ्चम्योरन्तरे दद्यादुभयोरपि पक्षयोः ॥

यहाँ पर पक्षमें श्राद्ध के न करने पर हेमाद्रि में यम ने गौण काल कहा कि—वर्षाऋतु में जब कन्या के सूर्य हों तो घरमें रहता हुआ मनुष्य आश्विन कृष्णपक्ष की पञ्चमी तथा आश्विनशुक्लपक्ष की पञ्चमी के मध्य में शाक से भी श्राद्ध करे ।

तत्राप्यसम्भवे भविष्ये—येयं दीपान्विता राजन् ख्याता पञ्चदशी भुवि । तस्यां दद्यान्न चेद्दत्तं पितॄणां वै महालये ॥

उसमें भी असंभव (आश्विनशुक्लपञ्चम्यन्तं कस्मिंश्चिद्दिने श्राद्धस्याकरणे तुलासंक्रान्तिं यावत्

कश्चिश्चिद्दिने, तत्राप्यसंभवे वृश्चिकसंक्रान्ति'यावत्) हो तो भविष्यपुराण में कहा है—हे राजन्, जो यह दीपों से (बहुत दीपोंसे युक्त दीपावली) युक्त पञ्चदशी (कार्तिक अमावास्या नं तु कार्तिकपौर्णमासी) पृथ्वी पर प्रसिद्ध है। उसमें पिण्डदान दे। क्योंकि जिसने महालय में पितरों के लिए पिण्डदान न किया हो।

तत्राप्यसम्भवे भारते—यावच्च कन्यातुलयोः क्रमादास्ते दिवाकरः।
शून्यं प्रेतपुरं तावतावद् वृश्चिकं यावदागतः॥

उसमें भी असंभव हो तो भारत में कहा है कि—जबतक कन्या और तुलाराशि पर क्रम से सूर्य रहता है। जब तक वृश्चिक राशि पर आता है तब तक प्रेतपुर (यमराज की पुरी) शून्य रहता है।

ब्राह्मे—वृश्चिके समतिक्रान्ते पितरो दैवतैः सह। निःश्वस्य प्रतिगच्छन्ति शापं दत्त्वा सुदारुणम्॥

ब्रह्मपुराण में कहा है—वृश्चिकराशि के सूर्यके बीतने (प्राप्तवृश्चिकके महालयश्राद्धं लुप्यते मोहादिना तत्करणेऽपि कर्तुः प्रत्यवायानुद्गारात् इत्यत्र तात्पर्यम्) पर देवताओं के सहित पितर श्वासको छोडकर दारुण शाप को देकर चले जाते हैं।

यत्तु जातूकर्ण्यः—आकांक्षन्ति स्म पितरः पञ्चमं पक्षमाश्रिताः। तस्मात्तत्रैव दातव्यं दत्तमन्यत्र निष्फलम्॥ इति, तत्फलातिशयहानिपरम्। 'कन्यां गच्छतु वा न वा' इति तुर्यपादे वा पाठः। तेन कन्यायोगे प्राशस्त्यमात्रम्। अतः श्राद्धविवेकोक्तं श्राद्धद्वयं हेयम्।

जो जातूकर्ण्य ने कहा है कि—पंचमपक्ष का आश्रयण कर पितर इच्छा करते हैं। इसलिए उसी ही पक्ष में देना चाहिये। अन्यसमय दिया हुआ निष्फल होता है। यह फलातिशय (अधिकफल) के हानि का बोधक है। 'कन्यां गच्छतु वा न वा' इस श्लोक के चतुर्थ चरण का अर्थ यों है—कन्याके सूर्य हो या न हो—यह चौथे चरण का अर्थ है। इससे कन्याके योग (सूर्य) में प्रशंसामात्र है। अतः श्राद्धविवेक में कहे हुए दो श्राद्ध त्यागने योग्य हैं।

(इदं श्राद्धमन्ने नैव कार्यम्)

इदं च श्राद्धमन्नेनैव कार्यं नाऽऽमान्नादिना। मृताहं च सपिण्डं च गयाश्राद्धं महालयम्। आपन्नोऽपि न कुर्वीत श्राद्धमामेन कर्हिचित्॥ इति स्मृतिदर्पणे गालवोक्तेः।

इस श्राद्ध को अन्नसे ही करे आमान्न आदि से न करे। स्मृतिदर्पण में गालव ने कहा है कि—मृताह (क्षयश्राद्ध) श्राद्ध, सपिण्डन, गयाश्राद्ध तथा महालयश्राद्ध आपत्ति युक्त भी आमान्न से कभी भी न करे। अर्थात्—अन्नसे ही करे।

(अथात्र देवताः)

अथात्र देवताः। सङ्ग्रहे—तातामबात्रितयं, सपत्नजननी, मातामहादित्रयं सस्त्रि, स्त्रीतनयादि, तात-जननी-स्व-भ्रातरः सस्त्रियः। ताताम्बात्मभगिन्यपत्यधवयुक्, जायापिता, सद्गुरुः, शिष्याप्ताः पितरो महालयविधौ, तीर्थे, तथा तर्पणे॥

संग्रहमें देवताओं का निर्देश है—तात-पिता से तीन (पितृ, पितामह, प्रपितामह) अम्बा (माता) से तीन (मातृ, पितामही, प्रपितामही) अर्थात्—पिता और माता से तीन तीन, सपत्न जननी सौतेली माता, माता महादि तीन, उनकी स्त्री (मातामही, प्रमातामही, वृद्धप्रमातामही) स्त्री और पुत्र, पिताकी माता, अपने भाई, उनकी स्त्रियाँ, पिताके माता की वहिन, उनकी वहिन, पति-सन्तानयुक्त, अपना गुरु और शिष्य ये महालय, तीर्थ और तर्पणकी विधिमें कह गये है।

१—'न ददाति नरः श्राद्धं पितॄणां चन्द्रसंशये। क्षयिताशाः परीताङ्गाः पितरस्तस्य दूषिताः॥ प्रेतपक्षं प्रतीक्षन्ते गुरुवाञ्छासमन्विताः। कर्षदा जलदं यद्वद्दिवानक्तमतन्द्रिताः॥ प्रेतपक्षेऽप्यतिक्रान्ते यावत्कन्यागतो रविः॥ तावच्छ्राद्धं प्रवाञ्छन्ति दत्तं वै पितरः सुतैः॥ ततस्तुलागतेऽप्येके सूर्ये वाञ्छन्ति पार्थिव। श्राद्धं स्ववंशजैर्दत्तं क्षुत्पिपासासमाकुलाः॥ तस्मिन्नपि व्यतिक्रान्ते काले वृश्चिकगे रवौ। निराशाः पितरो दीनास्ततो यान्ति निजालयम्। मासद्वयं प्रतीक्षन्ते गृहद्वारं समाश्रिताः। वायुभूताः पिपासार्ताः क्षुत्क्षामाः पितरो नृणाम्॥ यावत् कन्यागतः सूर्यस्तुलास्थश्च महीयते। इति नागरखण्डे कन्यामपेक्ष्य तुलायाः स्फुटमनुकल्पत्वेनोक्तेः तत्र दीपावली अतिप्रशस्ता।

२—मनुः-चतुर्णामपि वर्णानां तर्पणं तु भवेत्सदा। वर्णनामिति न षष्ठी। सर्वेभ्यो जलं देयम्। जीवत्पितृकस्यापि तर्पणं भवत्येव। 'जीवत्पितृकोऽतान्' इतिकात्यायनोक्तेः। देवऋषिदिव्यपितृसनकादिमनुष्यान्।

अस्यार्थः—तातत्रयी=पितृत्रयी । अम्बात्रयी च । स्मृत्यर्थसारेऽपि–महालये मातृश्राद्धं पृथक् प्रशस्तम् ॥ इति ।

इसका अर्थ—तातत्रयी—पिता आदि तीन, अम्बात्रयी=माता आदि तीन । स्मृत्यर्थसार में भी कहा है कि—महालय में माता का श्राद्ध पृथक्[1] श्रेष्ठ है ।

(अत्र विशेषः)

अत्र विशेषः स्मृतिदर्पणे गालवः—अनेका मातरो यस्य श्राद्धे चापरपक्षिके । अर्घ्यदानं पृथक्कुर्यात्पिण्डमेकं तु निर्वपेत् ॥ जीवन्मातृकस्तु सापत्नमातुरेकोद्दिष्टं कुर्यान्न पार्वणम् ।

श्राद्धदीपकलिकायां तु पार्वणमुक्तम् । अन्वष्टक्यं च यन्मातुर्गयाश्राद्धं महालयम् । पितृपत्नीषु यच्छ्राद्धं कार्यं पार्वणवद्भवेत् ॥ इति बृहन्मनूक्तेः । सस्त्रीति मातामहानां सपत्नीकत्वेऽपि विभवे सति मातामहीनां पृथक्कार्यम् ।

यहाँ पर विशेष स्मृतिदर्पण में गालव ने कहा है कि—जिसके अनेक मातायें हों वह अपरपक्ष के श्राद्धमें अर्घ्यदान अलग अलग करे केवल पिण्ड तो एक ही करे ।

जिसकी माता जीवित हो वह सपत्न माता का एकोद्दिष्ट श्राद्ध करे पार्वण श्राद्ध न करे । श्राद्धदीप[2] कलिकामें तो पार्वणश्राद्ध कहा है ।

बृहद्मनुने कहा है कि—जो माताका अन्वष्टकाश्राद्ध, गयाश्राद्ध, महालयश्राद्ध और पिता की पत्नियों का श्राद्ध पार्वणवत् होता है । मातामह आदि स्त्री के सहित है तब भी सपत्नीकत्व में भी विभव (जिसके पास धन हो) होने पर अलग करे ।

महालये गया श्राद्धे वृद्धौ चान्वष्टकासु च । ज्ञेयं द्वादशदैवत्यं तीर्थे प्रौष्ठे मघासु च ॥ इति निगमोक्तेः ।

हेमाद्रिमते त्वत्र नवदैवत्यमेव । महालये गयाश्राद्धे वृद्धौ चान्वष्टकासु च । नवदैवत्यमत्रेष्टं शेषं षाट्पौरुषं विदुः ॥ इति विष्णुधर्मोक्तेः ।

निगममें कहा है कि—महालयमें, गयाश्राद्धमें वृद्धिश्राद्धमें, अन्वष्टकाश्राद्ध में, तीर्थश्राद्ध में, भाद्रपद तथा मघा के श्राद्धों पर 'द्वादशदैवत्य' श्राद्ध करना चाहिये । हेमादिमत में यहाँ पर नवदैवत्य ही कहा है ।

विष्णुधर्म में कहा है कि—महालयमें, गयाश्राद्धमें, वृद्धिश्राद्ध में और अन्वष्टकाश्राद्ध में 'नवदैवत्य श्राद्ध' करे तथा शेष में—षड्दैवत्यश्राद्ध जानना चाहिये ।

तातभ्राता=पितृव्यः, जननीभ्राता=मातुलः, तत्स्त्रियः=पितृव्यस्त्रीमातुलानीभ्रातृजाया । पितृष्वसृमातृष्वसृस्वभगिन्योऽपत्यभर्तृयुक्ताः । तेन सापत्यायै सधवायै इति प्रयोगो ज्ञेयः । एतासु सतीषु न तद्भर्त्रादिदानम् । द्वारलोपात् । जायापिता=श्वशुरः । श्वश्रूरप्यत्रोपलक्ष्या । अत्र मूलं स्मृतिचन्द्रिकायां ज्ञेयम् ।

पिताका भाई—चाचा । माताका भाई—मामा । चाचा की पत्नी (चाची) तथा मामा, पिता की बहिन, माताकी बहिन, अपनी बहिन ये सब सन्तान–पति से युक्त ग्रहण करे ।

इससे 'सापत्यायै सधवायै' यह प्रयोग जानना चाहिये । इनके होने पर तत्संबन्धिदान और श्राद्ध पति को नहीं होता है–क्योंकि—द्वारलोप से । जायापिता-श्वशुर (पत्नीका पिता) । यहाँ पर सास भी उपलक्षण (प्रकार विशेष) है । इसका मूल[3] स्मृतिचन्द्रिका में जानना चाहिये ।

१—अन्वष्टकासु वृद्धौ च प्रतिसंवत्सरं तथा । महालये गयायां च सपिण्डीकरणात् पुरा ॥ मातुः श्राद्धं सुतः कुर्यादन्यत्र पतिना सह ॥

२—यद्वा कलिकामते सर्वासामेवाद्धिकं पार्वणम् । वस्तुतस्तु कलिकावचनं निर्मूलम् ।

३—आदौ पिता ततो माता सापत्नजननी तथा । मातामह्यः सपत्नीकाः स्वपत्नी तदनन्तरम् ॥ सुतभ्रातृपितृव्याश्च मातुलाश्च सपत्नयः । दुहिता भगिनी चैव दौहित्रो भागिनेयकः ॥ पितृष्वसा मातृष्वसा श्वसुरो गुरुरर्थिनः । गयायां तु केचित् पृथगेषां कुर्वन्ति ।

(अत्र पार्वणैकोद्दिष्टयोर्व्यवस्था)

अत्र पार्वणैकोद्दिष्टयोर्व्यवस्थोक्ता हेमाद्रौ पुराणान्तरे—उपाध्यायगुरुश्वश्रूपितृव्याचार्यमातुलाः। श्वशुरभ्रातृतत्पुत्रपुत्रर्त्विक्शिष्यपोषकाः ॥ भगिनीस्वामिदुहितृजामातृभगिनीसुताः। पितरौ पितृपत्नीनां पितुर्मातुश्च या स्वसा॥ सखिद्रव्यदशिष्याद्यास्तीर्थे चैव महालये। एकोद्दिष्टविधानेन पूजनीयाः प्रयत्नतः॥ इति। इतरेषां पित्रादीनां पार्वणमर्थसिद्धम्। अत्र क्रमान्यत्वेप्याचाराद्व्यवस्था।

यहाँ पर पार्वण और एकोद्दिष्ट की व्यवस्था हेमाद्रि में पुराणान्तरवचन से कहा है कि-उपाध्याय, गुरु, सास, चाचा, आचार्य, मामा, श्वसुर, भाई, भाई का लड़का, उसका पुत्र, ऋत्विक्, पालन करनेवाला शिष्य, बहिन, स्वामी, कन्या, जामाता, बहिनके लड़के (भानजे), पिताकी पत्नी के पिता माता, पिता तथा माताकी बहिन, मित्र, द्रव्य देनेवाला और शिष्य आदिका महालय तथा तीर्थमें एकोद्दिष्ट विधान द्वारा प्रयत्नसे पूजनीय हैं। इतर पिता आदिका पार्वण है, यह अर्थसे सिद्ध है। यहाँ पर क्रमभेदसे ही आचार द्वारा व्यवस्था करे।

(अशक्तौ विशेषः)

अशक्तौ तु पृथ्वीचन्द्रोदये चतुर्विंशतिमते च—एकस्मिन्ब्राह्मणे सर्वानाचार्यादीन्प्रपूजयेत्।
दश द्वादश वा पिण्डान् दद्यादकरणं न तु ॥

अशक्ति में तो पृथ्वीचन्द्रोदय में चतुर्विंशतिमतसे कहा है कि—एक ब्राह्मण में ही सब आचार्य आदिका पूजन करे। दश[1] या बारह पिण्ड करना ही चाहिये। नहीं करे—ऐसा नहीं है।

(एकोद्दिष्टस्वरूपकथनम्)

एकोद्दिष्टस्वरूपं चाह याज्ञवल्क्यः—एकोद्दिष्टं दैवहीनमेकार्घ्यैकपवित्रकम्। आवाहनाग्नौकरणरहितं त्वपसव्यवत्॥ इति। अत्रैकपाको वैश्वदेवतन्त्रं पिण्डं बर्हिश्च एकमिति स्मृत्यर्थसारे उक्तम्।

एकोद्दिष्ट का स्वरूप याज्ञवल्क्य ने कहा है कि—एकोद्दिष्टश्राद्ध में विश्वेदेवा नहीं होते हैं। एक अर्घ्यपात्र होता है। एक पवित्र होता है। आवाहन और अग्नौकरण नहीं होता है। अपसव्य से किया जाता है।

स्मृत्यर्थसार में लिखा है कि—यहाँ पर एक पाक (महालये गयाश्राद्धे गतासूनां क्षयेऽहनि। तन्त्रेण अर्पणं कृत्वा श्राद्धं कुर्यात्प्रयत्नतः॥) तथा वैश्वदेव का तन्त्र होता है। एक पिण्ड और एक बर्हि होती है।

(अत्र पाणिहोमः)

अत्र पाणिहोमः पिण्डश्चात्र द्विजान्तिक इत्याह प्रयोगपारिजाते आचार्यः—काम्यमभ्युदयेऽष्टम्यामेकोद्दिष्टमथाष्टमम्। चतुर्ष्वेषु करे होमः पिण्डश्चात्र द्विजान्तिके॥ इति। पार्वणैकोद्दिष्टयोः समानतन्त्रत्वे तु अग्निसमीप एव।

यहाँ पर ब्राह्मण के हाथ में होम और ब्राह्मण के समीप में पिण्डदान कहा है। प्रयोगपारिजात में आचार्य ने कहा है कि—काम्य, आभ्युदयिक, अष्टका और आठवाँ एकोद्दिष्ट का हाथमें हवन करे तथा पिण्ड को ब्राह्मण के समीप में दे। पार्वण और एकोद्दिष्ट का समानतन्त्र से हो तो अग्नि के समीपमें ही पिण्डदान करे।

(अत्र धुरिलोचनौ विश्वेदेवौ)

अत्र धुरिलोचनौ वैश्वदेवौ। अपि कन्यागते सूर्ये काम्ये च धुरिलोचनौ॥ इति हेमाद्रावादित्यपुराणात्। अत्र प्रतिदिनं भिन्नप्रयोगत्वाद्दक्षिणाभेदो वा प्रयोगैक्यादन्ते एव वा दक्षिणेति हेमाद्रावुक्तम्।

यहाँ पर धूरि और लोचन नामके दो विश्वेदेवा होते हैं। हेमाद्रिमें आदित्यपुराणका मत है कि—कन्या के (कन्यागतसूर्यनिमित्तके भाद्रपदापरपक्षश्राद्धे) सूर्य में तथा काम्यश्राद्ध में धूरिलोचन नामके विश्वे-

---

[1]—पत्नीप्रभृतिगुर्वन्ता दश आचार्यान्तास्तु द्वादश। सपिण्डीकरणादूर्ध्वं यत्र यत्र प्रदीयते। भ्रात्रे भगिन्यै पुत्राय स्वामिने मातुलाय च॥ मित्राय गुरवे श्राद्धमेकोद्दिष्टं न पार्वणम्। हेमाद्रौ—सपिण्डीकरणादूर्ध्वं पित्रोरेव हि पार्वणम्। पितृव्यभ्रातृमातृणामेकोद्दिष्टं न पार्वणम्।

देवा होते हैं। यहाँ पर प्रतिदिन[1] भिन्न प्रयोग होने से दक्षिणा का भेद होता है या प्रयोग के ऐक्यहोने से अन्त में ही दक्षिणा[2] दे ऐसा हेमाद्रिमें कहा है।

(दर्शश्राद्धादिजीवत्पितृकेण पिण्डसहितं कार्यम्)

एतच्च संन्यस्तपितृकादिना जीवत्पितृकेनापि कार्यम्। वृद्धौ तीर्थे च संन्यस्ते ताते च पतिते सति। येभ्य एव पिता दद्यात्तेभ्यो दद्यात्स्वयं सुतः॥ इति कात्यायनोक्तेः।

इसीतरह यह जिसका पिता संन्यास ले चुका फिर भी जीवित हो उसे करना चाहिये। कात्यायन ने कहा है—वृद्धि में, तीर्थ में, पिताके संन्यासी या पतित हो जाने पर पिता जिन लोगों के लिए पिण्डदान करे उन्हीं लोगों के वास्ते पुत्र स्वयं करे।

यत्तु कौण्डिन्यः—दर्शश्राद्धं गयाश्राद्धं श्राद्धं चापरपक्षिकम्। न जीवत्पितृकः कुर्यात्तिलैस्तर्पणमेव च॥ इति, तत्संन्यस्तपित्राद्यतिरिक्तविषयम् काम्यश्राद्धपरं वा। अत्र बहु वक्तव्यं श्रीपितृकृतजीवत्पितृकनिर्णये ज्ञेयम्। एतच्च जीवत्पितृकेन पिण्डरहितं कार्यम्।

जो कौण्डिन्य ने कहा है—दर्शश्राद्ध, गयाश्राद्ध, महालयश्राद्ध तथा तिलों द्वारा तर्पण जिसका पिता जीवित हो न करे। वह संन्यस्त पिता से अतिरिक्त विषयमें है या काम्यश्राद्धपरक है। यहाँ पर बहुत कहना चाहिये था पर श्रीपितृकृत जीवत्पितृकनिर्णयग्रन्थ से जानना चाहिये और यह जीवित पितावाला व्यक्ति इसे पिण्ड रहित करे।

मुण्डनं पिण्डदानं च प्रेतकर्म च सर्वशः। न जीवत्पितृकः कुर्याद् गुर्विणीपतिरेव च॥ इति दक्षेण तस्य पिण्डनिषेधात्। अन्वष्टक्यमातृवार्षिकादौ तु वचनाद्भवतीति वक्ष्यामः।

मुण्डन, पिण्डदान तथा सब प्रेतकर्म को जिसके पिता जीवित हो और जिसकी पत्नी गर्भवती (गुर्विणी) हो उसका पति न करे। दक्ष के इस वचन से पिण्डका निषेध है। अन्वष्टाश्राद्ध, माताके वार्षिकश्राद्ध आदि में तो वचन से होता है—यह आगे कहेगें।

तथा छागलेयः—पिण्डो यत्र निवर्तेत मघादिषु कथञ्चन। साङ्कल्पं तु तदा कार्यं नियमाद्ब्रह्मवादिभिः॥ साङ्कल्पस्वरूपं च वक्ष्यते।

और छागलेय ने कहा है कि—जब किसीतरह मघा आदि में जहाँ पर पिण्ड की निवृत्ति हो वहाँ ब्रह्मवेत्तागण सांकल्पिक करे। सांकल्प का स्वरूप आगे कहेगें।

(अत्र श्राद्धाङ्गतर्पणकथनम्)

अत्र श्राद्धाङ्गतर्पणं पक्षश्राद्धे प्रतिदिनं श्राद्धोत्तरम्। सकृन्महालये तु परेऽह्नि कार्यम्। तदुक्तं नारदीये—पक्षश्राद्धं यदा कुर्यात्तर्पणं तु दिने-दिने। सकृन्महालये चैव परेऽहनि तिलोदकम्॥ गर्गोऽपि—पक्षश्राद्धे हिरण्ये च अनुव्रज्य तिलोदकम्॥ इति।

यहाँ पर श्राद्धांगतर्पण पक्षश्राद्ध में प्रतिदिन श्राद्ध के उत्तर उसीदिन करे। सकृत् महालय में तो दूसरे दिन करे।

इसकी बातको नारदीयमें कहा है—जब पक्षश्राद्ध करे तो प्रतिदिन तर्पण करे। सकृत् महालयमें तो दूसरे दिनमें तिलोदक दे। गर्गने भी कहा है कि—पक्षश्राद्ध में और हिरण्श्राद्ध में तिलोदक बाद में दे।

(निषिद्धदिनेऽपि तर्पणकथनम्)

तथा प्रयोगपारिजाते गर्गः—कृष्णे भाद्रपदे मासि श्राद्धं प्रतिदिनं भवेत्। पितॄणां प्रत्यहं कार्यं

१—कार्ष्णाजिनिः—आदौ मध्येऽवसाने वा यत्र कन्यां रविर्व्रजेत्। सपक्षः सकलः पूज्यः श्राद्धषोडशकं प्रति॥

२—एककर्मणि गुणविशेषे फलविशेषः (का० श्रौ० परि० सू० १ क० १ सू० ११) एककर्म में गुणविशेष होने पर फल विशेष होता है। जैसे—अग्न्याधेय में 'षड्, द्वादश चतुर्विंशति वा ददाति' इत्यादि शतपथ (२।२।२।३) में संख्याविशिष्ट दक्षिणा विकल्प से कही है। उसमें न्यूनसंख्या दक्षिणादान की अपेक्षा से अधिक दक्षिणा देने में फलाधिक्य होता है।

निषिद्धाहेऽपि तर्पणम् । सकृन्महालये श्वः स्यादष्टकास्वन्त एव हि ॥ इदं निषिद्धदिनेऽपि कार्यम् । तिथितीर्थविशेषेषु कार्यं प्रेते च सर्वदा । इति स्मृत्यर्थसारोक्तेः । तीर्थे तिथिविशेषे च गयायां प्रेतपक्षके । निषिद्धेऽपि दिने कुर्यात्तर्पणं तिलमिश्रितम् ॥ इति स्मृतिरत्नावल्यां वचनाच्च ।

प्रयोगपारिजातमें गर्ग ने कहा है कि—भाद्रपदमास के कृष्णपक्ष में श्राद्ध प्रतिदिन होता है तथा पितरों का प्रतिदिन निषिद्ध दिनमें भी तर्पण करे । सकृत् महालय में दूसरे दिन और अष्टका के अन्त में ही होता है । इसको निषिद्ध दिनमें भी करे । स्मृत्यर्थसारने कहा है कि-तिर्थ में, तिथि के विशेषों में और प्रेतकार्य में सर्वदा तर्पण करे । स्मृतिरत्नावली का कथन है कि—तीर्थ में, तिथिविशेष में, गयामें, प्रेतपक्षमें, निषिद्ध-दिन में भी तिलमिश्रित तर्पण करे ।

(एतत् श्राद्धं मलमासे न कार्यम्)

एतच्च श्राद्धं मलमासे न कार्यम् । तदाह भृगुः—वृद्धिश्राद्धं तथा सोममग्न्याधेयं महालयम् । राजाभिषेकं काम्यं च न कुर्याद्भानुलङ्घिते ॥ इति ।

इस श्राद्ध को मलमास में नहीं करना चाहिये । भृगुने कहा है कि—वृद्धिश्राद्ध, सोमयज्ञ, अग्न्याधान, महालय, राज्याभिषेक, काम्यश्राद्ध, मलमास में न करे ।

हेमाद्रौ नागरखण्डेऽपि—नभो वाथ नभस्यो वा मलमासो यदा भवेत् । सप्तमः पितृपक्षस्स्या-दन्यत्रैव तु पञ्चमः ॥ एतश्च पित्रोर्मरणे प्रथमाब्दे कृताकृतम् इति त्रिस्थलीसेतौ भट्टाः । इदं च नित्यं काम्यं च ।

हेमाद्रि में नागखण्डमें कहा है कि—श्रावणमास[1] या भाद्रपदमास यदि मलमास हो जाय तो पितृपक्ष (अर्थात् पितरों का पक्ष) सातवाँ होता है अन्य तो पाँचवा होता है ।

त्रिस्थलीसेतुमें भट्टों ने कहा है कि—माता तथा पिता के मरने पर पहले साल में यह श्राद्ध कृताकृत (कृतेऽभ्युदयः, अकृते तु न दोषः) है । यह नित्य और काम्य है ।

(महालयाकरणे दोषः)

पुत्रानायुस्तथारोग्यमैश्वर्यमतुलं तथा । प्राप्नोति पञ्चमे दत्त्वा श्राद्धं कामान्सुपुष्कलान् ॥ इति जाबाल्युक्तेः ।

जाबालिने कहा है कि—पांचवें पक्ष में पितरों के लिए श्राद्ध को कर के पुत्र, आयु, आरोग्यता, अतुल ऐश्वर्य और सभी इच्छाओं को प्राप्त कर लेता है ।

वृश्चिके समतिक्रान्ते पितरो दैवतैः सह । निःश्वस्य प्रतिगच्छन्ति शापं दत्त्वा सुदारुणम् ॥ इति कार्ष्णाजिनिवचनाच्च ।

और कार्ष्णाजिनि ने कहा है कि—वृश्चिक की संक्रान्ति व्यतीत होने पर देवताओं के साथ पितर स्वांस को त्यागकर बड़े भयंकर शापको देकर चले जाते हैं ।

(महालयाकरणे प्रायश्चित्तकथनम्)

तदतिक्रमे प्रायश्चित्तमुक्तमृग्विधाने—दुरो[2] अश्वस्य मन्त्रं च दशवारं द्विमासयोः । महालयं यदा न्यूनं तदा सम्पूर्णमेति तत् ॥ इति । द्विमासयोः=कन्यातुलयोर्महालयश्राद्धं यदा हीनमित्यर्थः ।

इसके अतिक्रमण में प्रायश्चित्त ऋग्विधान में कहा है कि—(दुरो अश्वस्य) इस मन्त्र को दश वार दो महिने तक जप करे । इससे जब महालयश्राद्ध में न्यूनता होती है वह संपूर्ण हो जाती है ।

द्विमास का अर्थ यह है कि—कन्या और तुला की संक्रान्ति में जब महालयश्राद्ध हीन हो तो ।

१—यदाऽऽधिकमासस्तदा तत्र कन्यार्कसत्त्वात् श्राद्धप्रसंगः । अत्र नव्याः—यातुधानप्रियो मासः कन्यार्के जायते यदा । दैवं पित्र्यं तदा कर्म उत्तरे मासि युज्यते ॥ इति वचनात्तुलार्के कार्यम् ।

२—दुरो अश्वस्य दुर इन्द्र गोरसि दुरो यवस्य वसुन इनस्पतिः । शिक्षानरः प्रदिवो अकामकर्शनः सखा सखिभ्य-स्तामिदं गृणीमसि ॥ (ऋ० म० १ सू० १५३ म० २) ।

(भरणीश्राद्धम्)

अत्र भरण्यां श्राद्धमतिप्रशस्तम्। तदुक्तं पृथ्वीचन्द्रोदये मात्स्ये—भरणी पितृपक्षे तु महती परिकीर्तिता। अस्यां श्राद्धं कृतं येन स गयाश्राद्धकृद्भवेत्॥

यहाँ पर भरणी में श्राद्ध अतिप्रशस्त (उत्तम) है। पृथ्वीचन्द्रोदय में मत्स्यपुराण का मत है कि—पितृपथ में और भरणीनक्षत्र में श्राद्ध (इदं पिण्डरहितं कार्यम्) श्रेष्ठ कहा गया है। इसमें जिसने श्राद्ध किया वह श्राद्ध गयाश्राद्ध में किये हुए श्राद्ध के बराबर होता है।

(कपिलाषष्ठीपूजनविधिः)

पृथ्वीचन्द्रोदये श्रीधरीये बृहस्पतिः—नभस्यापरपक्षस्य द्वितीया यदि याम्यभे। तृतीया वाग्नितारामिः सहिता प्रीतिदा पितुः॥ एतत्पक्षे षष्ठीयोगविशेषेण कपिलासंज्ञा।

श्रीधररचित पृथ्वीचन्द्रोदय में बृहस्पति ने कहा कि—भाद्रपदमास के कृष्णपक्षकी दूजको यदि भरणीनक्षत्र तथा तृतीया को अग्नितारा (कृत्तिका) नक्षत्र हो तो पिता को प्रीति देने वाली होती है। इस पक्ष में षष्ठीयोग विशेष में कपिलसंज्ञा है।

तदुक्तं वाराहे—नभस्यकृष्णपक्षे तु रोहिणीपातभूसुतैः। युक्ता षष्ठी पुराणज्ञैः कपिला परिकीर्तिता॥ व्रतोपवासनियमैर्भास्करं तत्र पूजयेत्। कपिलां च द्विजाग्र्याय दत्त्वा क्रतुफलं लभेत्॥

उसी बात को वाराहपुराण में कहा है कि—भाद्रपदमास के कृष्णपक्ष की षष्ठीतिथि को रोहिणी नक्षत्र, व्यतीपात तथा मंगलवार हो तो पुराणज्ञोंने उसे 'कपिला' कहा है। उसमें व्रत, उपवास एवं नियम युक्त हो सूर्य का अर्चन करे। ब्राह्मण के लिये कपिला गौ को दान कर यज्ञफल प्राप्त करे।

पुराणसमुच्चये—भाद्रे मास्यसिते पक्षे भानौ चैव करे स्थिते। पाते कुजे च रोहिण्यां सा षष्ठी कपिला भवेत्॥ अत्र दर्शान्तत्वेन महालयो भाद्रकृष्णपक्षो ज्ञेय इत्युक्तं निर्णयामृते हेमाद्रौ च। हस्तार्कस्तु फलातिशयार्थः। 'संयोगे तु चतुर्णां वै निर्दिष्टा परमेष्ठिना। इति तत्रैवोक्तेः।

पुराणसमुच्चय में कहा है कि—भाद्रपदमास के कृष्णपक्ष में जब हस्तनक्षत्र में सूर्य हो, व्यतीपात, मंगलवार और रोहिणी नक्षत्र हो तो वह षष्ठी 'कपिला' होती है। यहाँ पर अमावास्यान्तमास से भाद्रपद कृष्णपक्ष महालय जानना चाहिये। यह निर्णयामृत तथा हेमाद्रि में कहा है। हस्त का सूर्य हो तो फलाधिक्य के लिये है। वहीं पर कहा है कि—परमेष्ठि ने चार के संयोग में कहा है। अर्थात्—हस्त का सूर्य, व्यतीपात, मंगलवार और रोहिणीनक्षत्र का योग।

अत्र विशेषो हेमाद्रौ स्कान्दे—देवदारुं तथोशीरं कुङ्कुमैलामनः शिलाम्। पत्रकं पद्मकं यष्टिं मधुगव्येन पेषयेत्॥ क्षीरेणालोडय कल्केन स्नानं कुर्यात्समन्त्रकम्।

यहाँ पर विशेष हेमाद्रि में स्कन्दपुराण का मत है कि—देवदारु, उशीर (खस) कुंकुम (केशर) इलायची, मैनशिला, (मैनशिल) पत्रक (तेजपत्ता) पद्मक (पद्मकाष्ठ) यष्टि (ज्येष्ठी मधु) और मधु (सहत) को पञ्चगव्य से पीस दे। दूध से आलोडन (मिलाकर) कर कल्क (स्वरस) से समन्त्रक स्नान करे।

आपस्त्वमसि देवेश ज्योतिषां पतिरेव च॥ पापं नाशय मे देव वाङ्मनःकायकर्मजम्। पञ्चगव्यकृतस्नानः पञ्चभङ्गैस्तु मार्जयेत्॥ पञ्चभङ्गैः=पञ्चपल्लवैः।

तथा—रत्नैर्नानाविधैर्युक्तं सौवर्णं कारयेद्रविम्। शक्तितस्तु पलादूर्ध्वं तदर्धं कर्षतोऽपि वा॥ सौवर्णमरुणं कुर्यान्नौकां चैव तथा रथम्। तथा—अल्पवित्तोऽपि यः कश्चित्सोऽपि कुर्यादिमं विधिम्॥

हे देवेश, आप जल स्वरूप हो और ज्योतियों के पितृरूप ही हो, हे देव, वाणी, मन एवं कर्म से उत्पन्न मेरे पाप को नाश करो। पञ्चगव्य से स्नान कर पञ्चपल्लवों से मार्जन करे। अनेकतरह के रत्नों से युक्त सुवर्ण का सूर्य बनाकर यदि शक्ति हो तो पल से ऊपर, उसका आधा या कर्ष ( ) का करे और सुवर्ण का सारथी, नौका और रथ बनावे। और जो कोई भी मनुष्य अल्प धन से भी इस विधि से करे।

प्रभासखण्डे—स्थापयेदव्रणं कुम्भं चन्दनोदकपूरितम्। रक्तवस्त्रयुगच्छन्नं ताम्रपात्रेण संयुतम्॥

रथो रौक्मपलस्यैव एकचक्रः सुचित्रिकः। सौवर्णपलसंयुक्तां मूर्तिं सूर्यस्य कारयेत् ॥ इति। ततः सूर्यं कपिलां च षोडशोपचारैः सम्पूज्य दद्यात्।

प्रभासखण्ड में कहा है कि—चन्दन तथा जल द्वारा पूरित व्रणादि रहित सुन्दर कलश को जो दो लालवस्त्रोंसे ढका एवं तांबे के पात्र से सहित हो, एक चक्र (एक पहिना) चित्रित (अनेकों चित्र) हो पल भर चांदी का रथ हो उसमें सोने के पल भर की सूर्य की मूर्ति से युक्त करा दे। तदनन्तर सूर्य और कपिला का षोडशोपचार से पूजनकर दे।

दिव्यमूर्तिर्जगच्चक्षुर्द्वादशात्मा दिवाकरः। कपिलासहितो देवो मम मुक्तिं प्रयच्छतु ॥

हे देव, आप दिव्यमूर्ति हैं। संसार के चक्षु हैं। आप के बारह रूप हैं। दिन को करने वाले हो। कपिला के सहित आप मुझे मुक्ति दो।

यस्मात्त्वं कपिले पुण्या सर्वलोकस्य पावनी। प्रदत्ता सह सूर्येण मम मुक्तिप्रदा भव ॥ इति। विशेषान्तरं तत्रैव ज्ञेयमिति दिक्।

हे कपिले, आप पुण्यात्मा हैं। सारे लोक को पवित्र करने वाली हैं। सूर्य के साथ दान दी गयी आप मुझे मुक्ति प्रदान करो। अन्य विशेष (कपिलाषष्ठीव्रतान्तरम्) वहीं पर जानना चाहिये।

(इयमेव चन्द्रषष्ठी)

इयमेव चन्द्रषष्ठी। सा चन्द्रोदयव्यापिनी ग्राह्या। उभयत्र तथात्वे पूर्वा। तदुक्तं भविष्ये—

तद्वद्भाद्रपदे मासि षष्ठ्यां पक्षे सितेतरे। चन्द्रषष्ठीव्रतं कुर्यात्पूर्ववेधः प्रशस्यते ॥

इसी को ही 'चन्द्रषष्ठी' कहते हैं। वह चन्द्रोदयव्यापिनी ग्रहण करे। दोनों रोज चन्द्रोदयव्यापिनी हो तो पूर्वा (पहली) ले।

उसी बात को भविष्यपुराण में कहा है कि—उसी की तरह भाद्रपदमास के कृष्णपक्ष की षष्ठीतिथि को 'चन्द्रषष्ठी' का व्रत करे। उसमें पूर्वतिथि का वेध उत्तम माना है।

चन्द्रोदये यदा षष्ठी पूर्वाह्णे वा परेऽहनि। चन्द्रषष्ठ्यसिते पक्षे सैवोपोष्या प्रयत्नतः ॥ इति।

चन्द्रोदय में जब षष्ठी पहले दिन में या दूसरे दिन में हो वही षष्ठी भाद्रपदकृष्णपक्ष की षष्ठी चन्द्र षष्ठी है उसी में ही प्रयत्न से उपवास करे।

(अष्टम्यां मघावर्षसंज्ञं श्राद्धम्)

अष्टम्यामाश्वलायनेन मघावर्षसंज्ञं श्राद्धमुक्तम्। 'एतेन माध्यावर्षं प्रौष्ठपद्या अपरपक्षे' इति। इदं सप्तम्यादिषु त्रिष्वहःसु कार्यमिति नारायणवृत्तिः। हरदत्तस्तु मघायुक्तवर्षासु भवं त्रयोदशीश्राद्ध-मिति व्याचख्यौ। पृथ्वीचन्द्रोदये ब्राह्मे—

आषाढ्याः पञ्चमे पक्षे गया माध्याष्टमी स्मृता। त्रयोदशी गजच्छाया गयातुल्या तु पैतृके ॥

आश्वलायन ने अष्टमी को मघावर्षसंज्ञकश्राद्ध कहा है कि—भाद्रपद के अपरपक्ष (कृष्णपक्ष) में मघाश्राद्ध करे। इसको सप्तमी, अष्टमी और नवमी तिथियों में करे यह नारायणवृत्ति में कहा है कि—सप्तमी आदि तिथियों में दिन में (अष्टकाः—अन्वष्टकाः, पूर्वेद्युः श्राद्धान्युक्त्वा एतेनेत्युक्तेः। माध्यावर्ष-मिति पठित्वा मध्ये वर्षासु भवमिति केचिदाहुः) करे।

हरदत्त ने कहा है कि—मघानक्षत्र के सहित वर्षाओं में होनेवाले त्रयोदशीश्राद्ध को मघाश्राद्ध की व्याख्या की है।

पृथ्वीचन्द्रोदय में ब्रह्मपुराण का मत है कि—आषाढ की पूर्णिमा से पञ्चमपक्ष में मघा के सूर्य में जो अष्टमी हो तो (अर्थात्—पितृपक्ष में) त्रयोदशी, गजच्छाया (अष्टमी) ये पितृश्राद्ध में गया के तुल्य है।

(महालक्ष्मीव्रतकथनम्)

आश्विनकृष्णाष्टम्यां महालक्ष्मीव्रतम्। तत्र निर्णयामृते पुराणसमुच्चये—श्रियोऽर्चनं भाद्रपदे

सिताष्टमीं प्रारभ्य कन्यामगते च सूर्ये। समापयेत्तत्र तिथौ च यावत्सूर्यस्तु पूर्वार्धगतो युवत्याः ॥ इति।

आश्विनकृष्ण अष्टमी में [1]महालक्ष्मी का व्रत कहा है। उस निर्णयामृत में पुराणसमुच्चय का कथन है कि—भाद्रपद शुक्लपक्ष की अष्टमीतिथि को श्री का अर्चन प्रारंभ कर कन्या के सूर्य आनेके पूर्व समाप्त कर दे या उस तिथि में समाप्त करे जब तक सूर्य कन्या के पूर्वार्ध में गये हो।

तत्रैव-कन्यागतेऽर्के प्रारभ्य कर्तव्यं न श्रियोऽर्चनम्। हस्तप्रान्तदलस्थेऽर्के तद्व्रतं न समापयेत् ॥ पूजनीया गृहस्थानामष्टमी प्रावृषि श्रियः। दोषैश्चतुर्भिः संत्यक्ता सर्वसंपत्करी तिथिः ॥

वहीं पर कहा है कि—कन्या के सूर्य में प्रारंभ कर श्री का अर्चन न करे। हस्तनक्षत्र के चतुर्थपाद में सूर्य हो तो उस व्रत को समाप्त न करे। गृहस्थों को वर्षाऋतु में अष्टमी को श्री का पूजन करना चाहिये। वह अष्टमी तिथि सम्पूर्ण संपत्तिको देने वाली है। उसमें चार दोष त्यागने योग्य है।

तथा—पुत्रसौभाग्यराज्यायुर्नाशिनी सा प्रकीर्तिता। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन त्याज्या कन्यागते रवौ ॥ विशेषेण परित्याज्या नवमीदूषिता यदि ॥ इति। दोषचतुष्टयं तत्रैवोक्तम्। त्रिदिने चावमे चैव अष्टमीं नोपवासयेत्। पुत्रहा नवमी विद्धा स्वघ्नी हस्तार्धगे रवौ ॥ इति।

पुत्र, सौभाग्य, राज्य तथा आयु को वह नाश करने वाली कही गयी है। इसलिए सब तरह से कन्या के सूर्य में त्याग देना चाहिये। विशेष कर नवमीतिथि से दूषित हो यदि तो त्याग दे। दोष चतुष्टय को वहीं पर कहा है। तीन दिन में, अवम (दिन में दो तिथियों के अन्त का स्पर्श करना) अष्टमी को उपवास न करे। नवमीतिथि से विद्धा अष्टमी पुत्रका नाश करती है। आधे हस्त में सूर्य हो तो अष्टमी धन का नाश करती है।

(त्रिदिनावमदिनलक्षणम्)

त्रिदिनावमदिनलक्षणं च रत्नमालायाम्—यत्रैकः स्पृशति तिथिद्वयावसानं वारश्चेदवमदिनं तदुक्तमार्यैः। यः स्पर्शाद्भवति तिथित्रयस्य चाह्नां त्रिद्युस्पृक्कथितमिदं द्वयं च नेष्टम् ॥ एते च सर्वे निषेधाः प्रथमारम्भविषयाः। मध्ये तु सति सम्भवे ज्ञेयाः। व्रतस्य षोडशाब्दसाध्यत्वेन मध्ये त्यागायोगात्। इयं चन्द्रोदयव्यापिनी ग्राह्या। तत्रैव पूजाद्युक्तेः। परदिने चन्द्रोदयादूर्ध्वं त्रिमुहूर्तव्यापित्वे परैव कार्या, अन्यथा पूर्वैव।

त्रिदिन और अवम का लक्षण रत्नमाला में कहा है कि—जहाँ पर एक दिन में दो तिथियों के अन्त का स्पर्श करे। उसे आर्यों ने 'अवम' कहा है। जो वार तीन तिथियों का दिन में स्पर्श करना है-वह त्रिद्युक् (त्रिदिन) कहा है। ये दोनों नेष्ट हैं।

और ये सब निषेध प्रथमारंभविषयक हैं। मध्य में तो सतिसंभव में जानना चाहिये। व्रतका सोलह वर्ष तक साध्य होने से मध्य में त्याग करना अयुक्त है। यह चन्द्रोदयव्यापिनी (चन्द्रोदयव्रते चैव तिथिस्तात्कालिकी स्मृता) ग्रहण करे। उसी में ही पूजादि कहा है। दूसरे दिन चन्द्रोदय के पहले तीन मुहूर्त व्याप्त होने से परा ही करे। अन्यथा तो पूर्वा (कृष्णपक्षेऽष्टमी चैव कृष्णपक्षे चतुर्दशी। पूर्वविद्धैव कर्तव्या परविद्धा न कुत्र चित् ॥) ही ले।

पूर्वा वा परविद्धा वा ग्राह्या चन्द्रोदये सदा। त्रिमुहूर्ताऽपि सा पूज्या परतश्चोर्ध्वगामिनी ॥ इति मदनरत्ने निर्णयामृते च सङ्ग्रहोक्तेः।

मदनरत्न तथा निर्णयामृत में संग्रह का कथन है कि—सदा चन्द्रोदय में पूर्वविद्धा हो या परविद्धा हो ग्रहण करे। तीन मुहूर्त भी हो तो वह पूज्य है पर ऊर्ध्वगामिनी हो तो।

१—काशीखण्डे—महालक्ष्म्यष्टमीं प्राप्य तत्र यात्रा कृता नृणाम्। संपूजितेह विधिवत् पद्मां स च न मुह्यति ॥ महालक्ष्म्यष्टमी=भाद्रशुक्लाष्टमी। महालक्ष्म्यष्टमी=आश्विनकृष्णाष्टमी तां प्राप्य तावत्पर्यन्तमित्यर्थः।

२—आषाढ्याः पञ्चमे पक्षे गयामध्याष्टमी स्मृता। त्रयोदशी गजच्छाया गयातुल्या तु पैतृके ॥

अर्धरात्रमतिक्रम्य वर्तते योत्तरा तिथिः । तदा तस्यां तिथौ कार्यं महालक्ष्मीव्रतं सदा ॥ इति महालक्ष्मीव्रतनिर्णयः ।

आधी रात का अतिक्रम कर जो तिथि उत्तरा हो तब उस तिथि में सदा महालक्ष्मी व्रत को करे इस वचन से संक्षेप कहा है । यह लक्ष्मी का व्रतनिर्णय है ।

(नवम्यामन्वष्टकाश्राद्धकथनम्)

अथ नवम्यामन्वष्टकाश्राद्धम् । तत्र कात्यायनः—अन्वष्टकासु नवभिः पिण्डैः श्राद्धमुदाहृतम् ।
पित्रादिमातृमध्यं च ततो मातामहान्तकम् ॥

अब नवमीतिथि में अन्वष्टकाश्राद्ध कात्यायन ने कहा है कि—अन्वष्टाकाओं में नवपिण्डों से श्राद्ध कहा है । (उसका क्रम यों है–) पिता आदिके आदिमें मध्यमें माता आदि और अन्तमें मातामह आदि ।

पृथ्वीचन्द्रोदये ब्रह्माण्डे—पितॄणां प्रथमं दद्यान्मातॄणां तदनन्तरम् ।
ततो मातामहानां च अन्वष्टक्ये क्रमः स्मृतः ॥

पृथ्वीचन्द्रोदय में ब्रह्माण्डपुराण के वचन से कहा है कि—पहले पिता आदि को, तदनन्तर माता आदि को फिर मातामह आदि को पिण्ड दे । यही क्रम अन्वष्टका में कहा गया है ।

श्राद्धहेमाद्रौ छागलेयः—केवलास्तु क्षये कार्या वृद्धावादौ प्रकीर्तिताः ।
अन्वष्टकासु मध्यस्था नान्त्याः कार्यास्तु मातरः ॥

श्राद्धहेमाद्रि में छागलेय का वचन है कि—क्षयाहश्राद्ध में और वृद्धिश्राद्ध में केवल आदि में कहा है । अन्वष्टका में मध्य में तथा अन्त में माताओं का न करे ।

दीपिकायां तु मातृश्राद्धमादौ कार्यमित्युक्तम् । मातृयजनं त्वन्वष्टकास्वादित इति हेमाद्रौ ।

दीपिका में तो माता का श्राद्ध आदि में करे–यह कहा है । हेमाद्रि में कहा है कि—माता का यजन तो अन्वष्टकाओं में आदि में होता है ।

ब्राह्मेऽपि—अन्वष्टकासु क्रमशो मातृपूर्वं तदिष्यते । इति । अत्र शाखाभेदेन व्यवस्थेति पृथ्वीचन्द्रोदयः । जीवत्पितृकविषयमिति निर्णयदीपः । इदं च जीवत्पितृकेनापि कार्यम् ।

ब्रह्मपुराण में भी कहा है कि—अन्वष्टकाओं में क्रम से मातृपूर्वक बिधान कहा है ।

यहाँ पर शाखाभेद से (बह्वृचानां पितृपूर्वकम् । तत्सूत्रे तथोक्तेः) व्यवस्था है, यह पृथ्वीचन्द्रोदय में कहा है । निर्णयदीप में कहा है कि—जीवत्पितृकविषयक (तस्य तर्पणाभावात्) है और इसको जीवत्पितृक भी करें ।

तदुक्तं निर्णयामृते मैत्रायणीयपरिशिष्टे—अान्वष्टक्यं गयाप्राप्तौ सत्यां यच्च मृतेऽहनि ।
मातुः श्राद्धं सुतः कुर्यात्पितर्यपि च जीवति ॥ इति ।

यद्यपि जीवत्पितृकस्य पञ्चाप्यन्वष्टका अवश्यं कर्तव्याः, तथाप्यशक्तस्येयमावश्यकी । प्रौष्ठपद्यष्टका भूयः पितृलोके भविष्यति । इति हेमाद्रौ पाद्मोक्तेः ।

उसी बात को निर्णयामृत में मैत्रायणीय परिशिष्ट में कहा है कि–अन्वष्टकाश्राद्ध (भाद्रकृष्णा नवमी) और मरणदिन का श्राद्ध, गया की प्राप्ति के समय माता का श्राद्ध पुत्र करे यदि पिता जीवित हो तब भी ।

यद्यपि जीवत्पितृक को अवश्य पांच अन्वष्टका करना चाहिये । फिर भी अशक्त को तो यह (अन्वष्टका) आवश्यक है ।

हेमाद्रि में पद्मपुराण का वचन है कि—भाद्रपदमास की अष्टका फिर से पितृलोक में होगी । सब माताओं का ही श्राद्ध कन्या में गये सूर्य में नवमीतिथि को ही देना चाहिये । क्योंकि ब्रह्मा द्वारा प्राप्त वर है । यह सूत ने आवश्यक कहा है ।

सर्वासामेव मातॄणां श्राद्धं कन्यागते रवौ । नवम्यां हि प्रदातव्यं ब्रह्मलब्धवरा यतः ॥ इति

स्तेनावश्यकत्वोक्तेश्च । अत्र 'सर्वासाम्' इत्युक्तेः स्वमातरि जीवन्त्यामपि सपत्नमातृभ्यो दद्यात् । तन्मरणे सति तस्यै ताभ्यश्च दद्यादित्युक्तं जीवत्पितृकनिर्णये गुरुभिः ।

यहाँ पर 'सर्वासाम्' ऐसा कहने पर अपनी माता के जीवित रहते हुए भी सपत्नमाताओं को दे । उनके मरने पर तो माता के लिए और उन सपत्नमाताओं के लिए दे—यह जीवत्पितृकनिर्णय में गुरु जी ने कहा है ।

अत्र सर्वासां नामनिर्देशेनैको ब्राह्मणोऽर्घ्यः पिण्डश्च । नामैक्ये तु द्विवचनादिप्रयोग इत्युक्तं नारायणवृत्तौ । अन्वष्टकाश्राद्धं तद्यागश्च गोभिलीयानां मध्यमायामेव, न सर्वासु ।

यहाँ पर सबों के नाम निर्देश से एक ब्राह्मण, एक [1]अर्घ और एक पिण्ड दे । नामैक्य में तो द्विवचनान्त आदि प्रयोग करे-यह नारायणवृत्ति में कहा है । अन्वकाश्राद्ध और मातृयाग गोभिलियों को मध्यमा में ही है । सब में नहीं है ।

अन्वष्टक्यं मध्यमायामिति गोभिलगौतमौ । इति छान्दोगपरिशिष्टात् । अत्र भर्तृमरणोत्तरं पूर्वमृतमातृश्राद्धं न कार्यमिति केचिदाहुः । पठन्ति च श्राद्धं नवम्यां कुर्यात्तन्मृते भर्तरि लुप्यते । इति । तदेतन्निर्मूलत्वान्मूर्खप्रतारणमात्रम् ।

गोभिल और गौतम के मत से अन्वष्टकाश्राद्ध मध्यमा में ही करे-यह छन्दोगपरशिष्ट में कहा है । यहाँ पर पति के मरने के बाद पहले मरी हुई माता का श्राद्ध न करे यह कोई कहते हैं और पढ़ते हैं कि-माता का श्राद्ध नवमीतिथि को करे तथा पति के मरने पर मातृश्राद्ध लुप्त हो जाता है । यह निर्मूल है मूर्खों को प्रतारण (ठगना) करना मात्र है ।

श्राद्धदीपकलिकायां ब्राह्मे—पितृमातृकुलोत्पन्ना याः काश्चित्तु मृताः स्त्रियः ।
श्राद्धार्हा मातरो ज्ञेयाः श्राद्धं तत्र प्रदीयते ॥ इति । अत्र देशाचाराद्व्यवस्था ।

श्राद्धदीपकलिका में ब्रह्मपुराण का मत है कि—पिता और माता के कुल से उत्पन्न जो कोई स्त्रियाँ मृत हो जांय वे सब मातायें श्राद्ध में पूजनीय जानना चाहिये उनको श्राद्ध देना चाहिये । यहाँ पी (यस्तु जीवन्त्यां मातरि पितृष्वस्रादिभिः पालितः तद्धनग्राही वा तत्परमिति तु प्रतीमः) देशाचार से व्यवस्था जाननी चाहिये ।

(अनुपनीतोऽपि कार्यम्)

इदं चानुपनीतेनापि कार्यम् । तदुक्तं श्राद्धशूलपाणौ मात्स्ये—अमावास्याष्टकाकृष्णपक्षपञ्चदशीषु च । इत्यभिधाय-एतच्चानुपनीतोऽपि कुर्यात्सर्वेषु पर्वसु । श्राद्धं साधारणं नाम सर्वकामफलप्रदम् ॥ भार्याविरहितोऽप्येतत्प्रवासस्थोऽपि नित्यशः । शूद्रोऽप्यमन्त्रवत्कुर्यादनेन विधिना बुधः ॥ इति । तेन साग्नेरेवेदमिति परास्तम् । अन्वष्टकातः पृथगेवेदं मातुः श्राद्धमित्यपि परास्तम् । लाघवेन मूलैक्यादष्टकपदाविशेषाच्च । तेनान्यत्रान्वष्टकाश्राद्धस्याङ्गस्याप्यत्र प्रधानत्वं वचनात् । अवेष्टेरिव राजसूयान्तर्गताया 'एतयान्नाद्यकामं याजयेत्' इति फलार्थत्वम् । अत्राष्टका=अन्वष्टका पूर्वानुरोधात् ।

और इसको अनुपनीत भी करे । उस बात को श्राद्धशूलपाणि में मत्स्यपुराण के मत से कहा है कि—अमावास्या, अष्टका, कृष्णपक्ष की अमावास्या (पञ्चदशी) में यों कह कर लिखा है कि—सब पर्वों में इसको अनुपनीत भी करे । सब कामनाओं के फल को देनेवाला है और साधारण है । इसको भार्याहीन (अविवाहित और जिसकी स्त्री मर गयी हो) प्रवास में (पत्नी के अभाव में) रहने पर भी नित्य करे । ज्ञानी शूद्र भी इसे अमन्त्रक इसी विधि से करे ।

इस (भार्याविरहितादियुक्ति) से साग्निक को ही है यह बात परास्त है । अन्वष्टका से अलग

१—अर्घ्यदानं तु पृथक् । 'अनेका मातरो यस्य' इत्युक्तगालववाक्यात् ।

ही यह माता का श्राद्ध भी है। यह बात परास्त है। लाघव से मूल एक होने से अष्टका का अपवाद न होने से। इससे अन्यत्र अन्वष्टाश्राद्ध के अंगका होने पर भी प्रकृत में प्राधान्य है वचन से।

जैसे राजसूयान्तर्गत अवेष्टिनाम से याग राजसूय का अंग होने पर भो 'एतयान्नाद्यकामं याजयेत्' इस वाक्य के द्वारा ब्राह्मण कर्तृक याग में प्रधान है। वैसे प्रकृति में अन्वष्टका अष्टकाश्राद्ध का अंग होने पर भी पितृपत्नीया अन्वष्टकाश्राद्ध का प्रधानत्व मानना चाहिये। वहाँ पर अष्टका से अन्वष्टका का ग्रहण है पहले कहे हुए बचनानुरोध से।

तथाग्निपुराणे—अन्वष्टकासु वृद्धौ च गयायां च क्षयेऽहनि। अत्र मातुः पृथक् श्राद्धमन्यत्र पतिना सह ॥ आपस्तम्बानान्तु–'अष्टकासु च वृद्धौ च' इति भाष्यकारैः पाठादष्टकायां मातृश्राद्धम्। छन्दोगैस्त्वत्र मातृमातामहश्राद्धे न कार्ये किन्तु त्रिपुरुषमेव। न योषिद्भ्यः पृथग्दद्यादवसानदिनादृते। कर्षू समन्वितं मुक्त्वा तथाद्यं श्राद्धषोडशम् ॥ प्रत्याब्दिकं च शेषेषु पिण्डाः स्युः षडिति स्थितिः ॥ इति छन्दोगपरिशिष्टात्। 'अन्वष्टकासु तेषां कर्षूविधानात्' इति शूलपाणिः।

अग्निपुराण में कहा है कि–अन्वष्टाओं में, वृद्धिश्राद्ध में, गया में और क्षयाहदिन में माता का श्राद्ध अलग होता है अन्यत्र तो पति के साथ होता है।

आपस्तम्बों का कहना है कि–'अष्टकासु च वृद्धौ च, यह भाष्यकारों के पाठ से अष्टका में माता का श्राद्ध कहा है। सामवेदियों का कहना है कि—यहाँ पर माता तथा मातामह का श्राद्ध न करे किन्तु तीन पीढ़ियों का ही करे।

छन्दोगपरिशिष्ट में कहा है कि—जिसका अवसान (मरण–दिन) दिन छोड़कर स्त्रियों को पृथक् (अलग) श्राद्ध न दे। कर्षू (कर्षूका अर्थ तीसरे परिच्छेद के उत्तरार्ध में कहेंगे) से युक्त को त्यागकर आद्य में सोलह श्राद्ध करे। शूलपाणि का मत है कि—अन्वष्टाओं में उनका कर्षू विधान है।

यत्तु–तमिस्रपक्षे नवमी पुण्या भाद्रपदे हि या। चत्वारः पार्वणाः कार्याः पितृपक्षे मनीषिभिः ॥ इति, तद्देशाचारतो व्यवस्थितं ज्ञेयम्। इदं जीवत्पितृकेनापि सपिण्डकं कार्यम्।

जो कहा है कि—भाद्रपद कृष्णपक्ष (निर्मूलमिति नव्याः) की नवमीतिथि पवित्र है उसमें पितृपक्ष के चार पार्वण बुद्धिमान् मनुष्य करे। वह देशाचार से व्यवस्था जानना चाहिये। यह जीवत्पितृक भर सपिण्ड करे।

हेमाद्रौ विष्णुधर्मोत्तरे—अन्वष्टकासु च स्त्रीणां श्राद्धं कार्यं तथैव च। इत्युपक्रम्य पिण्डनिर्वपणं कार्यं तस्यामपि नृसत्तम। इति वचनं श्राद्धविधिना पिण्डदाने प्राप्ते पुनस्तत्कीर्तनं यस्य जीवत्पितृकगर्भिणीपतित्वादिना पिण्डदानं निषिद्धं तस्य तत्प्राप्त्यर्थमिति तातचरणाः।

हेमाद्रि में विष्णुधर्मोत्तर का वाक्य है कि–वैसे ही अन्वकाओं में स्त्रियों का श्राद्ध करना चाहिये। ऐसा प्रारंभ कर–हे नृपसत्तम, उसमें भी पिण्ड का निर्वाप करे। यह वचन श्राद्धविधि से पिण्डदान प्राप्त होने पर फिर उसका कीर्तन (कथन) इस हेतु है कि जिसकी पत्नी गर्भिणी हो उसे पिण्डदान करना निषेध है उसको भी पिण्डदान के अधिकारकी प्राप्ति के अर्थके लिये हैं यह हमारे श्री पिताजी का कहना है।

(अत्र सुवासिनीभोजनम्)

अत्र सुवासिनीभोजनमुक्तं मार्कण्डेयपुराणे—मातुः श्राद्धे तु सम्प्राप्ते ब्राह्मणैः सह भोजनम्। सुवासिन्यै प्रदातव्यमिति शातातपोऽब्रवीत् ॥ भर्तुरग्रे मृता नारी सह दाहेन वा मृता। तस्याः स्थाने नियुञ्जीत विप्रैः सह सुवासिनीम् ॥ तत्रैव मदालसावाक्यम्—

स्त्रीश्राद्धे पुत्र देयाः स्युरलङ्काराश्च योषिते। मञ्जीरमेखलादानकर्णिकाकङ्कणादयः ॥ इति।

यहाँ पर सुवासिनी (सौभाग्यवती) का भोजन मार्कण्डेयपुराण में कहा है कि–माता के श्राद्ध में तो ब्राह्मणों के साथ सुवासिनी के लिए भोजन (भोज्यमन्नम्) प्रदान करे। पति के आगे नारी (स्त्री) मर गयी हो या सती हो गयी हों तो उसके स्थान में ब्राह्मणों के साथ सुवासिनी को नियुक्त करे। वहीं पर

मदालसा का यह वाक्य है कि—हे पुत्र, स्त्री के श्राद्ध में योषित् (स्त्री) को अलंकारों को मञ्जीर (मञ्जीर), मेखला (करधनी), कर्णिका (पायल), कंकण (हाथका) देना चाहिये।

(अत्राशक्तावनुकल्पकथनम्)

अत्राशक्तावनुकल्पमाह आश्वलायनः—अनडुहो यवसमाहरेदग्निना वा कक्षमुपोषेदेषा मेऽष्टकेति न त्वेवाष्टकः स्यात्' इति।

हेमाद्रौ पितामहः—अमावास्या व्यतीपातपौर्णमास्यष्टकासु च।
विद्वान् श्राद्धमकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते॥

यहाँ पर अशक्त में अनुकल्प (नकल) आश्वलायन ने कहा है कि-आठवे प्रहर में अनडुह (बैल) को यवसम (आर्द्रतृण) दे या अग्नि में कक्ष-(शुष्क[1] तृण) को उपोषेत्-जला दे। इससे भी अष्टकाश्राद्ध होता है। हेमाद्रि में पितामह ने कहा है कि—अमावास्या, व्यतीपात, पौर्णमासी और अष्टका में जो विद्वान् श्राद्ध नहीं करता है, वह नरक में जाता है।

(अकरणे प्रायश्चित्तकथनम्)

अकरणे च प्रायश्चित्तमुक्तमृग्विधाने—एभिर्द्युभिर्जपेन्मन्त्रं[2] शतवारं तु तद्दिने।
आन्वष्टक्यं यदा न्यून्यं सम्पूर्णं याति सर्वथा॥ इति।

न करने पर ऋग्विधान में प्रायश्चित्त कहा है कि-'एभिर्द्युभिः' इस मन्त्र को उस दिन में सौ वार जप करे तो 'अन्वष्टकाश्राद्ध' न करने में जो न्यूनता आगयी है वह सर्वथा संपूर्ण हो जाती है।

(द्वादश्यां संन्यासिनः श्राद्धम्)

एतत्पक्षे द्वादश्यां विशेषः पृथ्वीचन्द्रोदये वायवीये—संन्यासिनोप्याब्दिकादि पुत्रः कुर्याद्यथाविधि। महालये तु यच्छ्राद्धं द्वादश्यां पार्वणं तु तत्॥ इति।

इस पक्ष की द्वादशीतिथि में विशेष पृथ्वीचन्द्रोदय में वायुपुराण के वचन से कहा है कि—यथाविधि पुत्र संन्यासी पिता का भी आब्दिक (वार्षिक) श्राद्ध करे। महालय में जो श्राद्ध होता है वह द्वादशी में पार्वण होता है।

(त्रयोदशीश्राद्धकथनम्)

अथ त्रयोदशीश्राद्धम्। तत्र चन्द्रिका—त्रयोदशी भाद्रपदी कृष्णा मुख्या पितृप्रिया।
तृप्यन्ति पितरस्तस्यां स्वयं पञ्चशतं समाः॥

इसके बाद त्रयोदशीश्राद्ध है। उसमें चन्द्रिका का कहना है कि—भाद्रपदकृष्णा त्रयोदशी मुख्य है-पितरों को प्रिय है। उस तिथि में श्राद्ध करने से पितर पांचसौ वर्ष तृप्त होते हैं।

मघायुतायां तस्यां तु जलाद्यैरपि तोषिताः। तृप्यन्ति पितरस्तद्वत् वर्षाणामयुतायुतम्॥

मघानक्षत्र युक्त हो तो उसमें जल आदि से भी प्रसन्न होते हैं। हजारों वर्ष तक पितर तद्वत् तृप्त होते हैं।

प्रयोगपारिजाते शङ्खः—प्रौष्ठपद्यामतीतायां मघायुक्तां त्रयोदशीम्। प्राप्य श्राद्धं तु कर्तव्यं मधुना पायसेन च॥ प्रजामिष्टां यशः स्वर्गमारोग्यं च धनं तथा। नृणां श्राद्धे सदा प्रीताः प्रयच्छन्ति पितामहाः॥ एतन्नित्यमपि।

प्रयोगपारिजात में शंख का वचन है कि-भाद्रपदमास की पूर्णिमातिथि के व्यतीत होने पर मघा सहित त्रयोदशी को प्राप्त कर मधु और पायस से श्राद्ध करना चाहिये। इससे पितामह प्रसन्न होकर इच्छित सन्तान, यश, स्वर्ग, आरोग्यता और धन मनुष्यों को श्राद्ध में देते हैं। यह नित्य भी है।

१—अग्निना वा दहेत्कक्षं श्राद्धकाले उपागते। तृणानि वा गवे दद्यात् पिण्डान्वाऽप्यथ निर्वपेत्॥ इत्यग्रे वचनात् सर्वश्राद्धानुकल्पः।

२—एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिर्निरुन्धानो अमतिं गोभिरश्विना। इन्द्रेण दस्युं दरयन्त इन्दुभिर्युतं द्वेषसः समिषा रभेमहि। (ऋ० १। ५३। ४।)

पृथ्वीचन्द्रोदये विष्णुधर्मे—प्रौष्ठपद्यामतीतायां तथा कृष्णत्रयोदशी। इत्युक्त्वा—एतांस्तु श्राद्धकालान् वै नित्यानाह प्रजापतिः। श्राद्धमेतेष्वकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते। इत्युक्तेः। एतच्चाऽविभक्तैरपि पृथक् कार्यम्।

पृथ्वीचन्द्रोदय में विष्णुधर्म में कहा है कि—भाद्रपदकी पूर्णिमा बीतनेवाली और कृष्णपक्षकी त्रयोदशी में यों कहकर कहा है कि—प्रजापति ने इतने श्राद्धकालों को ही नित्य कहा है। जो इनमें श्राद्धको नहीं करता है वह नरक में जाता है। यों कहा है। इसको अविभक्त (जिसका धन आदिका विभाग न हुआ हो) भी अलग करे।

तथा च हेमाद्रौ—विभक्ता वाऽविभक्ता वा कुर्युः श्राद्धं पृथक् सुताः।
मघासु च ततोऽन्यत्र नाधिकारः पृथग्विना। इति।

उसी बात को हेमाद्रि में कहा है कि—विभक्त हो या अविभक्त हो मघाश्राद्ध को पुत्र अलग अलग करें तथा मघाओं से अन्यत्र में अलग हुए विना अधिकार नहीं है।

अपरार्के वायवीये—हंसे हस्तस्थिते या तु मघायुक्ता त्रयोदशी।
तिथिर्वैवस्वती नाम सा छाया कुञ्जरस्य तु॥

अपरार्क में वायुपुराण का मत है कि—हस्तनक्षत्र के सूर्य में जो मघा के सहित त्रयोदशी है। वह वैवस्वती नाम की तिथि है, वह छायाकुञ्जर भी है।

अत्र च—अपि नः स कुले भूयाद्यो नो दद्यात्त्रयोदशीम्। पायसं मधुसर्पिर्भ्यां प्राक्छाये कुञ्जरस्य च॥ इति विष्णुमनुवचने केवलत्रयोदशीश्रुतेर्मघागुण इति कल्पतरुः।

तथा यहाँ पर—हमारे वंश में जो भी हो वह त्रयोदशी और अष्टमीतिथि के आरम्भ में मधु तथा घी के सहित पायस को दे। इस विष्णुमनुवचन से केवल त्रयोदशी के श्रवण से श्रुति का मघा गुण है—यह कल्पतरुमें कहा है।

शूलपाणिस्तु—केवलवाक्यानामर्थवादत्वाद्विधौ मघायोगश्रुतेर्विधिलाघवाद्विशिष्टमेव निमित्तम् इत्याह।

शूलपाणि ने कहा है कि—केवल वाक्यों का अर्थवाद (प्रशंसामात्र) होने से तथा विधि में मघा योगश्रवण से विधि में लाघव से मघाविशिष्ट ही निमित्त है। यों कहा है।

वस्तुतस्तु—मधुमांसैश्च शाकैश्च पयसा पायसेन च। एष नो दास्यति श्राद्धं वर्षासु च मघासु च॥ इति वसिष्ठवचने केवलमघाश्रुतेर्विनिगमनाभावादुभयं भिन्नं निमित्तं पूर्वोक्तवचनाच्च योगाधिक्ये फलाधिक्यम्।

सिद्धान्त तो यह है कि—मधु और [1]मांस से, शाकों से, दूध से और पायससे यह हम लोगों को वर्षा और मघा में श्राद्ध देगा। इस वसिष्ठवचन से केवल मघा के श्रवण से प्रमाणाभाव से उभयभिन्न निमित्त है और पूर्वोक्त-वचन से योगाधिक्य में फलाधिक्य है।

अत एव याज्ञवल्क्यः—तथा वर्षात्रयोदश्यां मघासु च विशेषतः। इति। त्रयोदशीश्राद्धं नित्यम्। अन्यत्काम्यम्।

इसीलिए याज्ञवल्क्य ने कहा है कि—यहाँ पर वर्षाकाल की त्रयोदशी में जो विशेषकर मघा नक्षत्र से युक्त हो उसमें श्राद्ध करे। त्रयोदशीश्राद्ध नित्य है। अन्यश्राद्ध तो काम्य है।

अत्र 'त्रयोदश्यां बहुपुत्रा युवमारिणस्तु भवन्ति' इत्यापस्तम्बोक्तेर्युवमारित्वमपत्यदोषं सहिष्णोरपत्यमात्रार्थिनः स्मृत्यन्तरोक्तधनार्थिनो वाधिकार इति कल्पतरुः। अपत्यनिन्दया तदर्थिनोऽनधिकारात् फलान्तरकामस्यैवाधिकार इति हलायुधः। एतत्पिण्डरहितं कार्यम्।

१—मधु च कलौ वर्ज्यम् 'श्राद्धे मांसं तथा मधु' इति वाक्यात्।

यहाँ पर त्रयोदशी में (अर्थात्—महालय की त्रयोदशीश्राद्ध में) युवाओं के बाद जो उत्पन्न हो उनकी अपेक्षा से पूर्वोत्पन्न जो हैं वे मरेंगे। इस व्युत्पत्ति से पुत्रवाले गृहस्थ को अन्यपुत्रों के लाभ के लिए उस श्राद्ध का निषेध है। ऐसा आपस्तम्ब के कहने पर युवावस्था में मरने वाले सहिष्णु अपत्य के लिए या स्मृत्यन्तरोक्त धनार्थ के लिए अधिकारक है। ऐसा कल्पतरु ने कहा है। अपत्य[1] की निन्दा से सन्तान के इच्छुक को अधिकार नहीं है अन्य फलान्तर कामना से ही अधिकार है—यह हलायुध मत है। इसको पिण्ड रहित करना चाहिये।

मघायुक्तत्रयोदश्यां पिण्डनिर्वपणं द्विजः। ससन्तानो नैव कुर्यान्नित्यं ते कवयो विदुः॥ इति बृहत्पराशरोक्तेः। इदं मलमासेऽपि कार्यम्।

बृहत्पराशर ने कहा है कि—मघायुक्त त्रयोदशी में सन्तानवाला द्विज नित्य पिण्डदान न करे। यह कवियों का कहा है। इनको मलमास में भी करे।

मघात्रयोदशीश्राद्धं प्रत्युपस्थितिहेतुकम्। अनन्यगतिकत्वेन कर्तव्यं स्यान्मलिम्लुचे॥ इति काठकगृह्योक्तेः।

काठकगृह्य में कहा है कि—मघात्रयोदशीश्राद्धमें प्रत्युपस्थिति (मघा के युक्त) कारण है। अनन्यगतिकत्व (जिसकी कही गति न हो) होने से मलमासमें भी श्राद्ध करे।

यानि तु अङ्गिराः—त्रयोदश्यां कृष्णपक्षे यः श्राद्धं कुरुते नरः। पञ्चत्वं तस्य जानीयाज्ज्येष्ठपुत्रस्य निश्चितम्॥

जो वचन अंगिरा ने कहे हैं कि—जो मनुष्य कृष्णपक्षकी त्रयोदशी में श्राद्ध करता है उसके ज्येष्ठ पुत्रकी (समनन्तरजनिष्यमाणापेक्षया पूर्वोत्पन्नो ज्येष्ठ इति केचित्। ऋक्षपिण्डप्रदानं तु ज्येष्ठपुत्रो विवर्जयेत्। इतिवत् सर्वज्येष्ठ एवेत्यन्ये) मृत्यु निश्चित होती है।

(त्रयोदशीश्राद्धविचारः)

वामनपुराणे—त्रयोदश्यां तु वै श्राद्धं न कुर्यात्पुत्रवान् गृही। इत्यादीनिवचनानि, तानि पुत्रवद्विषयाणि वा, (महालयस्थभिन्नत्रयोदशीविषयाणि वा, काम्यश्राद्धविषयाणि वा) सपिण्डकश्राद्धविषयाणि वेति केचित्। हेमाद्रिप्रमुखास्त्वेकवर्गश्राद्धविषयाणि।

त्रयोदशीतिथि में पुत्रवाला गृहस्थ निश्चित श्राद्ध न करे। इत्यादि वचन पुत्रवाले गृहस्थ के विषय में हैं (या महालयसे भिन्न त्रयोदशी विषयक है या काम्य श्राद्धविषयक हैं या सपिण्डश्राद्धविषयक है। यह किसी का मत है।) हेमाद्रि आदि प्रमुखों कहना है कि—एकवर्ग श्राद्धविषयक हैं।

श्राद्धं नैवैकवर्गस्य त्रयोदश्यामुपक्रमेत्। न तृप्तास्तत्र ये यस्य प्रजां हिंसन्ति तस्य ते॥ इति कार्ष्णाजिनिस्मृतेः।

कार्ष्णाजिनिस्मृति में कहा है कि—त्रयोदशी में एकवर्ग के श्राद्ध का उपक्रम (आरंभ) न करे। करने मात्रसे जो तृप्त नहीं हो जाते हैं वे पितर उसके प्रजा की हिंसा करते हैं।

यद्यपि पितरो यत्र पूज्यन्ते तत्र मातामहा अपि। इति धौम्योक्तेर्न केवलपितृवर्गस्य प्राप्तिस्तथापि-व्यामोहादिप्राप्तनिषेधोऽयमित्याहुः। वयं तु पश्यामः—पुत्रवद्विषयाण्येवेति।

यद्यपि जहाँ पर पितरों का पूजन होता है वहाँ पर मातामहों का अर्चन होता है। यह धौम्य के कहे हुए कथन से केवल पितृवर्गकी प्राप्ति नहीं की है। तथापि भ्रमसे प्राप्ति का निषेध यह है। यों कहा। हम तो देखते हैं कि यह पुत्रवत् गृहस्थ के विषय में ही है।

असन्तानस्तु यस्तस्य श्राद्धे प्रोक्ता त्रयोदशी। सन्तानयुक्तो यः कुर्यात्तस्य वंशक्षयो भवेत्॥

१—सामान्यकृष्णत्रयोदशी श्राद्धमेव पुत्रवता बहुपुत्रेच्छया न कर्तव्यम्। महालयत्रयोदशी श्राद्धं च पितृवर्गमात्रस्य न कर्तव्यं किन्तु मातामहवर्गस्यापि। तत्रापि पिण्डदानं न कर्तव्यम्, किन्तु मधुघृतप्लुतपायसादिना ब्राह्मण भोजनमात्रमिति। पूर्वोत्तरग्रन्थस्तु सुमतिभिर्लापनीयः। प्रतीत्यादि प्रतीकाभ्यां केवलमघाश्राद्धं केवलत्रयोदशीश्राद्धं च विशिष्टनिमित्तकत्वेन सगतिकत्वेन च शुद्धमास एव कार्यं न मले इति सूचितम्।

इति हेमाद्रौ नागरखण्डोक्तेः। पूर्ववाक्यमप्यसन्तानस्यवैकवर्गनिषेधकमिति। अत्र मघात्रयोदशी-महालययुगादिश्राद्धानां तन्त्रेण प्रयोगे न तु प्रसङ्गसिद्धिरित्यन्यत्र विस्तरः।

हेमाद्रिमें नागरखण्डमें कहा है कि—जिसके सन्तान नहीं है उसे त्रयोदशी में श्राद्ध प्राप्त कहा है। जिसके सन्तान है अर्थात्—जो सन्तान से युक्त है वह यदि त्रयोदशीतिथि में श्राद्ध करेगा उसके वंश का क्षय (नाश) होगा। पूर्ववाक्य भी असन्तान का ही एकवर्ग का निषेधक है। यहाँ पर मघात्रयोदशी, महालय तथा युगादि श्राद्धों का तन्त्र[1] से प्रयोग में प्रसंग की सिद्धि नहीं है। यह अन्यत्र विस्तार है।

(अथ शस्त्रविषाद्यपघातविपन्नानां चतुर्दशीश्राद्धम्)

अथ चतुर्दशी। पृथ्वीचन्द्रोदये प्रचेताः—वृक्षारोहणलौहाद्यैर्विद्युज्जलविषाग्निभिः।
नखिदंष्ट्रिविपन्ना ये तेषां शस्ता चतुर्दशी॥

अब चतुर्दशी का श्राद्ध कहते हैं। पृथ्वीचन्द्रोदय ने प्रचेता का कथन है कि—वृक्षपर चढकर गिरने से, लोहे आदि से मृत्यु, बिजली, जल, विष, अग्नि आदि से मृत्यु, नख और बड़े-बड़े जाडवालों से मारने पर अकालमृत्यु मानी जाती है उनका चतुर्दशी को श्राद्ध करे। (आधुनिक युगमें-बन्दूख, तलवार, छूरा, गंडासा, आदि से मारना, कपडे, तार आदि द्वारा हनन करना, सब मिल कर मट्टीका तेल आदि छिड़क कर आग लगादेना, ऊपर से ढकेलना गंगा आदि नदी में उपायों द्वारा डुबो देना आदि विविध क्रियायें हैं।)

ब्राह्मे—युवानः पितरो यस्य मृताः शस्त्रेण वा हताः। तेन कार्यं चतुर्दश्यां तेषां तृप्तिमभीप्सिता॥

ब्रह्मपुराण में कहा है कि—जिसके पिता आदि युवा अवस्था में मर गये हों या शस्त्र द्वारा अकाल मृत्यु हो या-ग्रह भूताद्यावेश द्वारा मर गये हों उनके तृप्ति की इच्छा करता हुआ उनका कार्य (श्राद्ध) चतुर्दशी तिथि में करे।

नागरखण्डे—अपमृत्युर्भवेद्येषां शस्त्रमृत्युरथापि वा। श्राद्धं तेषां प्रकर्तव्यं चतुर्दश्यां नराधिप॥ एतच्च प्रायोऽनाशकशस्त्राग्निविषोद्बन्धनप्रतपनैश्चेच्छतामिति गौतमोक्तदुर्मरणोपलक्षणम्। एकयोगनिर्देशात्—सर्वेषां तुल्यधर्माणामेकस्यापि यदुच्यते। सर्वेषां तत्समं ज्ञेयमेकरूपा हि ते स्मृताः॥ इत्युशनसोक्तेश्च। तच्च कृतक्रियाणामेवेति वक्ष्यामः।

नागरखण्ड में कहा है कि-जिनकी अपमृत्यु हो या शस्त्र हो गयी हो उनका श्राद्ध हे नराधिप, चतुर्दशी तिथि में करे। यह प्रायः शस्त्र, अग्नि, विष, जल, बन्धन (फांसी) गिरना, आदि से जिनकी मौत हो गयी हो उनका गौतमने दुर्मरण अपलक्षण (दूसरा प्रकार) कहा है।

उशना ने कहा है कि—समानधर्मवाले सबके बीच में एक को जो कहा जाय वह सबों को उसके समान बराबर जानना चाहिये। क्योंकि—वे सब एकरूप कहे गये हैं और उनकी क्रिया हो चुकी है यह आगे रहेगें।

मरीचः—विप्रशस्त्रश्वापदाहितिर्यग्ब्राह्मणघातिनाम्। चतुर्दश्यां क्रिया कार्या अन्येषां तु विगर्हिता॥ अत्र ब्राह्मणघाती तेन हतो न तु ब्रह्महा, तस्य पतितत्वादिति शूलपाणिः। अत्रोद्देश्यविशेषणस्याविवक्षितत्वात्स्त्रीणामपि शस्त्रादिहतानामेकोद्दिष्टं कार्यं (न पार्वणमिति) श्रीदत्तोपाध्यायः। इदं विषादिहतानामेव न प्रसवादिमृतानामिति वाचस्पतिः।

मरीचि ने कहा है कि—विष, शस्त्र, हिंसक जानवर से मृत्यु, सर्प, तिर्यक्योनि, ब्राह्मणद्वारा जो मृत हों उनकी क्रिया चतुर्दशी में करे। अन्यतिथियों में गर्हित है।

यहाँ पर '[2]ब्राह्मणघाती' पद से ब्रह्महत्यारेका ग्रहण नहीं है। क्योंकि—वह पतित है यह शूलपाणी का कहना है। यहाँ पर उद्देश्य का विशेषण अविवक्षित होने से शस्त्र आदि से मृत स्त्रियों का भी एकोदिष्ट करे। पार्वण न करे श्रीदत्तोपाध्याय ने कहा है। वाचस्पति ने कहा है कि—विष आदि से मृतको का ही यह श्राद्ध करे। प्रसव आदि से मृत हैं उनका नहीं करे।

१—अङ्गानामैक्यं प्रधानमात्रभेदस्तन्त्रम्। तेन विश्वेदेवपाकाद्यङ्गानामैक्यं विप्रार्घ्यपिण्डादेर्भेद एव। प्रसङ्ग-सिद्धिस्थले तु प्रधानमपि न भिद्यते। धर्मसिन्धुः। २—विषादिर्घातो येषामितिविग्रहः।

यत्तु शाकटायनः—जलाग्निभ्यां विपन्नानां संन्यासे वा गृहेऽपि वा। श्राद्धं कुर्वीत तेषां वै वर्जयित्वा चतुर्दशीम् ॥ इति, तत्प्रायश्चित्तार्थजलादिमृतविषयमित्याकरे उक्तम्। अत एव वैधत्वात्सहगमनेऽपि न कार्यमिति हेमाद्रिः।

जो शाकटायन ने कहा है कि—जल और अग्नि से, संन्यास, घर या रास्ते में मृत हों उनका श्राद्ध चतुर्दशी को छोड़कर करे। आकर में कहा है कि-यह [1]प्रायश्चित्तार्थ जल आदिसे मृतपरक है। हेमाद्रिने कहा है कि—इसीलिए वैधत्व होने पर सहगमन भी नहीं करना चाहिये।

एतच्च दैवयुक्तमेकोद्दिष्टं कार्यमित्युक्तं प्रयोगपारिजाते—प्रेतपक्षे चतुर्दश्यामेकोद्दिष्टं विधानतः। दैवयुक्तं तु तच्छ्राद्धं पितॄणामक्षयं भवेत् ॥ तच्छ्राद्धं दैवहीनं चेत्पुत्रदारधनक्षयः। एकोद्दिष्टं दैवयुक्तमित्येवं मनुरब्रवीत् ॥

यह दैवयुक्त एकोद्दिष्ट करे यह प्रयोगपारिजात में कहा है। पितृपक्ष में चतुर्दशी के विधान से एकोद्दिष्ट करे। वह श्राद्ध दैवयुक्त है। पितरों को अक्षय होता है। यदि उस श्राद्ध को देवहीन करेंगे तो पुत्र, दार तथा धनका क्षय होता है। मनु ने कहा है कि—यह एकोद्दिष्ट दैवयुक्त ही है।

भविष्येऽपि—समत्वमागतस्यापि पितुः शस्त्रहतस्य च। चतुर्दश्यां तु कर्तव्यमेकोद्दिष्टं महालये ॥

भविष्यपुराण का मत है कि—सपिण्डीश्राद्ध करने के बाद (सपिण्डीकृतस्येत्यर्थः—स्मृतिमुक्ताफले) पितृत्वकी प्राप्ति के बाद (पिण्डमेलन के बाद) शस्त्रद्वारा मरने पर पिता का महालय की चतुर्दशीतिथि को एकोद्दिष्टश्राद्ध करना चाहिये।

चतुर्दश्यां तु यच्छ्राद्धं सपिण्डीकरणे कृते। एकोद्दिष्टविधानेन तत्कार्यं शस्त्रघातिनः ॥ इति।

सपिण्डी करने के बाद जो चतुर्दशी को श्राद्ध होगा वह एकोद्दिष्ट के विधान से शस्त्र द्वारा मरे हुए का करना चाहिये।

संवत्सरप्रदीपे हारीतः—विश्वेदेवांश्च तत्रापि पूजयित्वा दितोऽमरान्। ये वै शस्त्रहतास्तेषां श्राद्धं कुर्यादतन्द्रितः ॥ अत्रैकोद्दिष्टवचनानां निर्मूलत्वं, समूलत्वेऽपि पार्वणाशक्तपराणि विष्ण्वादिवचनैः प्रकरणात् कृष्णपक्षीयपार्वणावगतेरिति शूलपाणिः। तन्न। वाक्येन प्रकरणस्य बाधात्। पित्रादीनां पार्वणं भ्रात्रादीनामेकोद्दिष्टमिति गौडार्वाञ्चः। तन्न, पितुरित्यनेन विरोधात् विशेषवाक्यवैयर्थ्यापत्तेश्च।

संवत्सरप्रदीपमें हारीत ने कहा है कि—वहाँ पर भी विश्वेदेवदेवताओं का पूजनकर जो निश्चय से शस्त्रद्वारा मृत हों उनका श्राद्ध आलस्य त्याग करे। यहाँ पर एकोद्दिष्ट वचनों का निर्मूलत्व कहा है। यदि समूलत्व भी हो तो पार्वणश्राद्ध करने में असमर्थ परक है। क्योंकि—विष्ण्वादिवचनों के द्वारा प्रकरण से कृष्णपक्षीय पार्वणश्राद्ध ही निश्चित होता है। यह शूलपाणि का मत है। यह ठीक नहीं है। वाक्य से प्रकरण का बाध है। पित्रादियों का पार्वण और भाई आदियों का एकोद्दिष्ट होता है—यह 'प्राचीन गौड' कहते हैं। यह ठीक नहीं है। क्योंकि 'पितुः' इससे विरोध है और विशेष वाक्य भी व्यर्थ हो जायंगे।

(शस्त्रहतस्यैव चतुर्दश्यामिति नियमो न तु चतुर्दश्यामेव शस्त्रहतस्य)

अत्र शस्त्रहतस्यैव चतुर्दश्यामिति नियमो, न चतुर्दश्यामेव शस्त्रहतस्येति। श्राद्धं शस्त्रहतस्यैव चतुर्दश्यां महालये। इति कालादर्शाद् वार्षिकादीनामकरणापत्तेश्च। तेन महालये एव दिनाकरे पार्वणं मातामहादितृप्त्यर्थं कार्यमेव।

यहाँ पर शस्त्र द्वारा मृत का ही चतुर्दशी में ही नियम है। चतुर्दशी में ही शस्त्र से मरे का श्राद्ध करे यह नियम नहीं है। पितृपक्ष की चतुर्दशीतिथि में शस्त्र के द्वारा मृत का श्राद्ध करे इस कालादर्श से

१—सर्पादेः साहचर्याज्जलाग्न्यादयोऽननुज्ञाता एव ग्राह्याः। अतः असाध्यव्याध्यादिपीडितानां जलाग्न्यादि प्रवेशेन भर्तृमरणनिमित्तकाग्निप्रवेशेन च मृतानां नेदं श्राद्धमित्यर्थः। युद्धमृतौ प्रायोनाशके च वैधत्वेऽपि वचनाद् भवतीति बोध्यम्।

वार्षिक आदि नहीं करने से आपत्ति हो जायगी। इससे महालय में ही दिनान्तर में पार्वण को मातामह आदि की तृप्ति के लिए करे ही।

पितामहोऽपि शस्त्रहतश्चेदेकोद्दिष्टद्वयं कार्यम्। तदुक्तं हेमाद्रौ स्मृत्यन्तरे— एकस्मिन् द्वयोर्वैकोद्दिष्टम्' इति त्रिषु शस्त्रहतेषु पार्वणमेव कार्यम्।

पितामह ने भी कहा है कि—शस्त्र द्वारा मृतक का दो एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना चाहिये। उसी बात को हेमाद्रि में स्मृत्यन्तर वचन से कहा है कि—एकतिथि में दो का एकोद्दिष्ट करे। यदि शस्त्र से तीन मर गये हों तो पार्वण ही करे।

यत्तु देवस्वामिनोक्तम् त्रिष्वपि शस्त्रहतेषु पृथगेकोद्दिष्टत्रयं कार्यं न तु पार्वणमाहत्यवचनाभावादिति, तदयुक्तम्।

जो देवस्वामी ने कहा है कि—शस्त्रद्वारा मृतक तीनों (पितृ-पितामह-प्रपितामह) का भी अलग-अलग तीन एकोद्दिष्ट करे, पार्वण न करे। क्योकि कोई प्रमाण नहीं है। यह ठीक नहीं है।

पित्रादयस्त्रयो यस्य शस्त्रैर्यातास्त्वनुक्रमात्। स भूते पार्वणं कुर्यादाब्दिकानि पृथक् पृथक्॥ इति बृहत्पराशरोक्तेः—

बृहत्पराशर ने कहा है कि—पिता आदि तीन जिसके शस्त्रों द्वारा मरण को प्राप्त हो गये हैं वह चतुर्दशी को पार्वण करे तथा आब्दिक (वार्षिक) आदि श्राद्ध अलग अलग करे।

एकस्मिन् वा द्वयोर्वापि विद्युच्छस्त्रेण वा हते। एकोद्दिष्टं सुतः कुर्यात्त्रयाणां दर्शवद्भवेत्। इति स्मृत्यन्तराच्चेति पृथ्वीचन्द्रोदये उक्तम्। अपरार्के हेमाद्रौ चैवम्।

और स्मृत्यन्तर में कहा है कि—एक या दो बिजली या शस्त्र से मृत हो गये हों तो पुत्र एकोद्दिष्टश्राद्ध करे। तीन मृत हो तो दर्शवत् (अमावास्या के सदृश) श्राद्ध करे। पृथ्वीचन्द्रोदय ने भी कहा है। अपरार्कमें और हेमाद्रिमें भी यही है।

(चतुर्दश्यामेव शस्त्रादिना हते सति तस्य वार्षिकमेव पार्वणमेकोद्दिष्टं वा कार्यम्)

यस्तु अत्रैव शस्त्रादिना हतस्तस्य वार्षिकमेव पार्वणमेकोद्दिष्टं वा कार्यम् न तु श्राद्धद्वयं प्रसङ्गसिद्धेरिति पृथ्वीचन्द्रोदये।

जो यहाँ पर ही शस्त्रादि से मृत है उसका वार्षिक ही पार्वण या एकोद्दिष्ट करे, दो श्राद्ध न करे। क्योंकि-प्रसंगसिद्धि (चतुर्दशीश्राद्धं न भवतीति भावः। संक्रान्तिव्यतीपातादिनिमित्तकं तु चतुर्दश्यां पार्वणमेव। चतुर्दशीनिमित्तकं तु पृथक् कार्यं सपिण्डकत्वरूपविरुद्धधर्मसत्त्वात्।) से-यह पृथ्वीचन्द्रोदयमें कहा है।

अत्र श्राद्धाकरणेऽग्रिमापरपक्षे दिनान्तरे पार्वणेनैव कार्यमिति तत्रैवोक्तम्।

यदि श्राद्ध (यदि महालये चतुर्दशी श्राद्धं न कृतं तदा वृश्चिकदर्शनपर्यन्तं कस्मिंश्चिद्दिने कार्यम्) तिथि पर न हो सके तो अग्रिम अपरपक्ष-कृष्णपक्ष या किसीदिनमें पार्वणविधिसे ही करना चाहिये-यह वहाँ पर कहा है।

यद्यपि—शस्त्रविप्रहतानां च शृङ्गिदंष्ट्रिसरीसृपैः। आत्मनस्त्यागिनां चैव श्राद्धमेषां न कारयेत्॥ इति छागलेयाद्यैः शस्त्रादिहतानां श्राद्धं निषिद्धं तथापि प्रमादमृतानां श्राद्धार्हत्वात्कार्यं, वृद्धादिभिन्नबुद्धिपूर्वमृतानां तु न कार्यम्।

यद्यपि-शस्त्र, ब्राह्मण, सींग, दांत वाले, सर्प आदिसे जो मृत हो, जिन्होंने स्वयं ही अपनी आत्माओं का त्याग किया हो ऐसों का श्राद्ध न करे। यह छागलेय आदियों ने शस्त्र आदि द्वारा मृतकों का श्राद्ध निषेध कहा है। तथापि-प्रमादसे मरों का श्राद्धपूज्य होने से करे। वृद्धादिभिन्नों का बुद्धिपूर्वक मृतकोंका तो नहीं करना चाहिये।

यत्तु-चतुर्दस्यां तर्पणीया लुप्तपिण्डोदकक्रिया। इति ब्राह्मे, तद्गौणमिति शूलपाणिः। लक्षणायां मानाभावात्। पतितेनापि कर्तव्यं कर्तव्यं पतितस्य च। इति गयादिवद्विशेषविधिबलात्पतिताना-

मपि कार्यमिति नव्यगौडाः । तत्त्वं तु समत्वमागतस्येत्यादिवशात्कृतक्रियाणां कार्यं नान्येषामिति वयं प्रतीमः ।

जो ब्रह्मपुराण में कहा है कि—चतुर्दशीतिथिमें मरनेवालों तर्पण करे। पिण्डदान आदि क्रिया न करे। शूलपाणि ने कहा है कि-वह गौण (श्राद्धं निषिद्धमेवातस्तदभावात्तर्पणमेव कार्यम्) है। लक्षणामें (यथाश्रुतार्थत्वे तु शस्त्रादिहतानां श्राद्धं मुख्यं तर्पणमनुकल्प इति लभ्यते) प्रमाण का अभाव है।

अपतित का भी करे और पतित का भी करे। इसप्रकार गया आदि के सदृश विशेषविधिके बल से पतितों का भी करे—यह नव्यगौडों का कहना है। सिद्धान्त तो यह है कि—समत्वमागतस्य-इत्यादि वशसे जिनकी क्रिया हो चुकी है उनका श्राद्ध करे अन्योंका न करे—यह हमारी समझ है।

यत्तु मनुः—न पैतृयज्ञियो होमो लौकिकाग्नौ विधीयते । न दर्शेन विना श्राद्धमाहिताग्नेर्विधीयते ॥ इति, अत्र पूर्वार्धं हेतुत्वेनोक्तम् । तद्यथाश्रुतमेव मन्यन्ते पृथ्वीचन्द्रोदयादयः । आहिताग्नेः पिण्डपितृयज्ञकल्पेन श्राद्धनिषेधार्थमिदं न तु साकल्पाऽदेरपीत्यस्मद्गुरवः । कृष्णपक्षश्राद्धमन्यदिनेषु प्राप्तमाहिताग्नेर्दर्शे नियम्यत इति तु वयम् । दर्शेन पार्वणेन विना श्राद्धं न । तेन क्वापि वार्षिकादावेकोद्दिष्टं नेति हरिहरः । इति चतुर्दशी ।

जो मनु ने कहा है कि—पितृयज्ञका हवन लौकिकाग्निमें नहीं होता है। दर्श के बिना आहिताग्निके श्राद्ध का विधान नहीं है। यहाँ पर पूर्वार्ध का हेतुत्व कहा है। इसलिये यथाश्रुतही है मानते हैं—पृथ्वीचन्द्रोदय आदि। आहिताग्निका पिण्डपितृयज्ञकल्प (अग्निसाध्येषु दर्शं विना पिण्डपितृयज्ञकल्पं विना साग्निको नाधिकारः) से श्राद्धनिषेधार्थ यह है। साकल्प के लिये नहीं है यह हमारे गुरुजी का कहना है। कृष्णपक्ष का श्राद्ध आहिताग्निको कृष्णपक्षीयश्राद्ध अन्य दिनों में जो प्राप्त है वह दर्शमें चाहिये—इस कथन से नियम करते हैं-यह हमारा मत है। दर्श-पार्वणके विना श्राद्ध न करे। इससे कहीं भी वार्षिक आदिमें एकोद्दिष्ट का विधान नहीं है—यह हरिहर का मत है।

(अमायां गजच्छायानिर्णयः)

अमायां विशेषमाहापरार्के यमः—हंसे करस्थिते या तु अमावास्या करान्विता ।
सा ज्ञेया कुञ्जरच्छाया इति बौधायनोऽब्रवीत् ॥

अमावास्या में विशेष अपरार्क में यमने कहा है कि—हस्तनक्षत्र के सूर्य में जो अमावास्या हस्त (करः) नक्षत्र से युक्त है। वह गजच्छाया[1] (कुञ्जरच्छाया) जाननी चाहिये, यह बौधायन ने कहा है।

वनस्पतिगते सोमे या छाया प्राङ्मुखी भवेत् ।
गजच्छाया तु सा प्रोक्ता तस्यां श्राद्धं प्रकल्पयेत् ॥

वनस्पति (अपराह्न) में गये चन्द्रमा में जो पूर्वाभिमुख छाया हो। वह गजच्छाया कही गयी है उस (अमावास्या के अपराह्न में होने वाली) गजच्छाया में श्राद्ध करे।

भारते—आजेन वापि लोहेन मघास्वेह यतव्रतः । हस्तिच्छायासु विधिवत्कर्णव्यजनवीजितम् ॥ श्राद्धं दद्यादिति शेषः ।

भारत में कहा है कि—अथवा वह नियमपूर्वक व्रत का पालन करके मघानक्षत्र में ही हाथी के शरीर की छाया में बैठकर उसके कानरूपी व्यंजन से हवा लेता हुआ अन्न-विशेष चावल का बना हुआ पायस या लौहशाक से विधिपूर्वक हमारा श्राद्ध करेगा। (महाभारत अनुशासनपर्व ८८ अध्याय श्लोक ८ पृ० ४४)।

(आश्विनशुक्लप्रतिपदि मातामहश्राद्धकथनम्)

आश्विनशुक्लप्रतिपदि दौहित्रस्य मातामहश्राद्धमुक्तं हेमाद्रौ सङ्ग्रहे च—जातमात्रोऽपि दौहित्रो विद्यमानोऽपि मातुले । कुर्यान्मातामहश्राद्धं प्रतिपद्याश्विने सिते ॥ इति ।

आश्विनशुक्ल प्रतिपदातिथि में दौहित्र (लड़की का लड़का) मातामह का श्राद्ध हेमाद्रि और

१—गजच्छाया द्विविधा-यौगिकी पारिभाषिकी च ।

संग्रह में कहा है। उत्पन्न मात्र (उपनयनोत्तरमेवाधिकारो न ततः प्राक्) भी दौहित्र मामा (अपनी मा का भाई) के रहते हुए भी मातामह (नाना) का श्राद्ध आश्विनशुक्ल प्रतिपदातिथि को करे।

(इयं संगवव्यापिनी ग्राह्या)

इयं सङ्गवव्यापिनी ग्राह्या इति निर्णयदीपे उक्तम्—प्रतिपद्याश्विने शुक्ले दौहित्रस्त्वेकपार्वणम्। श्राद्धं मातामहं कुर्यात्सपिता सङ्गवे सदा॥ जातमात्रोऽपि दौहित्रो जीवत्यपि च मातुले। प्रातः सङ्गवयोर्मध्ये आर्यस्य प्रतिपद्भवेत्॥ इति वचनात्। अत्र समूलत्वं विमृश्यम्।

यह संगव (एक देशव्यापिनी) व्यापिनी ग्रहण करे यह निर्णयदीप में कहा है। आश्विनशुक्ल प्रतिपदाको दौहित्र मातामहका एकपार्वण संगव में सदा करे। उत्पन्नमात्र भी दौहित्र मामा के जीते हुए भी प्रातःकाल संगवके मध्यमें मातामह (आर्यस्य) का (अत्र सपत्नीकानामेव देवतात्वम्) श्राद्ध प्रतिपदा को करे। यहाँ पर समूलत्वमें (सङ्गवव्यापिनीग्राह्यत्वाद्येकवचनस्य निर्मूलत्वात् पार्वणत्वादपराह्णव्यापिनी ग्राह्या) मूल अन्वेषणीय है।

(मलमासे इदं श्राद्धं न कार्यम्)

इदं च मलमासे न कार्यम्। स्पष्टमासविशेषाख्याविहितं वर्जयेन्मले। इति निषेधात्।

इसको मलमास में नहीं करना चाहिये। क्योंकि—जहाँ मास विशेष की स्पष्टोक्ति न हो वहाँ मलमास में त्याग दे।

(जीवत्पितृकेणैव मातामहश्राद्धम्)

इदं जीवत्पितृकेणैव कार्यमिति शिष्टाः। इदं च शिष्टाचारात्सपिण्डं कार्यमिति केचित्। पिण्डरहितं तु युक्तम्। जीवत्पितृकस्य—मुण्डनं पिण्डदानं च प्रेतकर्म च सर्वशः। न जीवत्पितृकः कुर्याद् गुर्विणीपतिरेव च॥ इति दक्षेण पिण्डनिषेधात्। आन्वष्टक्यवद्विशेषवचनाभावाच्चेति संक्षेपः। इति महालयनिर्णयः।

इसको जीवत्पितृकही करे। यह शिष्टों का कहना है। इसको शिष्टाचार से सपिण्ड करे—यह किसी का मत है पिण्डरहित ही युक्त है।

जीवत्पितृकको—मुण्डन, पिण्डदान और प्रेतकर्म को जीवत्पितृक और गर्भवती स्त्री का पति न करे, यह दक्षने निषेध किया है। अन्वष्टकावत् विशेष वचनका अभाव है यह संक्षेप है।

(अथाश्विन शुक्लपक्षः)

(आश्विनशुक्लप्रतिपदि नवरात्रारंभनिर्णयकथनम्)

अथाश्विनशुक्लप्रतिपदि नवरात्रारम्भः। तन्निर्णयः। तत्र भार्गवार्चनदीपिकायां देवीपुराणे सुमेधा उवाच—शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि चण्डिकापूजनक्रमम्। आश्विनस्य सिते पक्षे प्रतिपत्सु शुभे दिने॥ इत्युपक्रम्योक्तम्। शुद्धे तिथौ प्रकर्तव्यं प्रतिपच्चोर्ध्वगामिनी। आद्यास्तु नाडिकास्त्यक्त्वा षोडश द्वादशापि वा॥ अपराह्णे च कर्तव्यं शुद्धसन्ततिकांक्षिभिः॥ इदं चापराह्णयोगिन्याः प्राशस्त्यं द्वितीयदिने प्रतिपदोऽभावे ज्ञेयम्।

आश्विनशुक्लपक्षकी प्रतिपदातिथि में नवरात्रारंभ होता है। उसका निर्णय कहते हैं। भार्गवार्चन-दीपिकामें देवीपुराण का वचन है कि—सुमेधा ने कहा है कि—हेराजन्, सुनो, चण्डिकाके पूजनका क्रम कहता हूँ। आश्विनशुक्लपक्ष की प्रतिपदातिथि के शुभदिन में, यह उपक्रम (प्रारंभ) कर कहा है—शुद्ध (अमास्पर्शरहिते) तिथि में प्रतिपदा ऊर्ध्वगामिनी (असोर्ध्वगा) हो तो आद्य (पहली), सोलह या बारह नाडी (घड़ी) को त्यागकर शुद्ध (पवित्र) सन्तति की इच्छावाले अपराह्णमें करे और यह अपराह्ण (बारह बजे के बाद) प्राशस्त्य मात्र है। दूसरे दिन प्रतिपदा के अभावपरक जानना चाहिये।

तथा तत्रैव देवीपुराणे डामरतन्त्रे च देवीवचः—अमायुक्ता न कर्तव्या प्रतिपत्पूजने मम। मुहूर्तमात्रा कर्तव्या द्वितीयादिगुणान्विता॥

वहीं पर देवीपुराण में तथा डामरतन्त्रमें देवी ने कहा है कि—अमावास्या से युक्त प्रतिपदामें मेरा पूजन न करे द्वितीया आदि तिथियों के गुणों से सहित मुहूर्तमात्र में करे।

(कलशस्थापनादिविचार)

आद्याः षोडश नाडीस्तु लब्ध्वा यः कुरुते नरः । कलशस्थापनं तत्र ह्यरिष्टं जायते ध्रुवम् ॥

जो मनुष्य पहली सोलह घड़ी को प्राप्तकर कलशस्थापन करता है उसे अरिष्ट निश्चय प्राप्त होता है।

मार्कण्डेयदेवीपुराणयोः—पूर्वविद्धा तु या शुक्ला भवेत्प्रतिपदाश्विनी । नवरात्रव्रतं तस्यां न कार्यं शुभमिच्छता ॥ देशभङ्गो भवेत्तत्र दुर्भिक्षं चोपजायते । नन्दायां दर्शयुक्तायां यत्र स्यान्मम पूजनम् ॥ इति ।

मार्कण्डेयपुराण और देवीपुराण में कहा है कि—जो आश्विनमास के शुक्ल की प्रतिपदा पूर्वविद्धा हो तो उसमें शुभ की इच्छा करनेवाला मनुष्य नवरात्रव्रत को न करे। उसमें देशभंग तथा दुर्भिक्ष होता है—अमावास्या के सहित नन्दामें जहाँ मेरा पूजन करता है।

स्कान्देऽपि—प्रतिपद्याश्विने मासि सा शुद्धा शुभदा भवेत् । भाद्रपञ्चदशी कृष्णा तया युक्ता न शस्यते ॥ विरुद्धफलदा सा हि पुत्रदारभयावहा ॥ इति ।

स्कन्दपुराण में भी कहा है कि-आश्विनमास के शुक्लपक्ष की प्रतिपदा शुद्धतिथि हो तो शुभ को देने वाली होती है। भाद्रपदकृष्णपक्ष की अमावास्या प्रतिपदातिथि से युक्त भी हो तो नहीं उत्तम है। वह विरुद्ध फल को देनेवाली पुत्र तथा स्त्री को भय देनेवाली होती है।

तथा—वर्जनीया प्रयत्नेन अमायुक्ता तु पार्थिव । द्वितीयादिगुणैर्युक्ता प्रतिपत्सर्वकामदा ॥

और पार्थिव, अमासहित प्रतिपदा प्रयत्न से छोड़ दे। द्वितीयादितिथि गुणों से युक्त प्रतिपदा सब कामनाओं को देनेवाली होती है।

तथा देवीपुराणे—यो मां पूजयते नित्यं द्वितीयादिगुणान्विताम् ।
प्रतिपच्छारदीं ज्ञात्वा सोऽश्नुते सुखमव्ययम् ॥

और देवीपुराणमें कहा है कि-जो मुझे शारदी (शरदऋतु) जानकर द्वितीयादिगुणों सहित प्रतिपदातिथि में नित्यपूजन करता है वह स्थायी सुखको प्राप्त करता है।

यदि कुर्यादमायुक्तां प्रतिपत्स्थापने मम । तस्य शापायुतं दत्त्वा भस्मशेषं करोम्यहम् ॥

यदि मुझको अमायुक्त प्रतिपदामें स्थापन करता है उसको अयुतशाप देकर भस्मशेष मैं करती हूँ।

आग्रहात्कुरुते यस्तु कलशस्थापनं मम । तस्य सम्पद्विनाशः स्याज्ज्येष्ठः पुत्रो विनश्यति ॥

जो आग्रहसे मेरा कलश का स्थापन करता है उसकी संपति का नाश तथा सब से बड़े पुत्र का नाश करती हूँ।

अमायुक्ता न कर्तव्या प्रतिपच्चण्डिकार्चने । धनार्थिभिर्विशेषेण वंशहानिश्च जायते ॥

चण्डीकाके अर्चनमें अमायुक्त प्रतिपदा धनार्थि विशेषकर न ग्रहण करें। इससे वंशकी हानि होती है।

न दर्शकलया युक्ता प्रतिपच्चण्डिकार्चने । उदये द्विमुहूर्तापि ग्राह्या सोदयगामिनी ॥ इति ।

चण्डिकार्चन में प्रतिपदा अमावास्या युक्त एककला भी ग्रहण न करे। उदयकालमें दो मुहूर्त भी यदि प्रतिपदा हो तो ग्राह्य होती है।

देवीपुराणे—या चाश्वयुजि मासे स्यात्प्रतिपद्भद्रयान्विता । शुद्धा ममार्चनं तस्यां शतयज्ञफलप्रदम् ॥

देवीपुराण में कहा है कि-जो आश्विनमास की प्रतिपदा से भद्रा युक्त हो तो वह शुद्ध है, उसमें मेरा अर्चन सौ यज्ञ के फल को देनेवाला है।

रुद्रयामले—अमायुक्ता सदा चैव प्रतिपन्निन्दिता मता । तत्र चेत्स्थापयेत्कुम्भं दुर्भिक्षं जायते ध्रुवम् ॥ प्रतिपत्सद्वितीया तु कुम्भारोपणकर्मणि ॥ इति । यद्यपि रुद्रयामलं डामरं च निर्मूलं तथाप्यविरोधात्प्रचाराच्च तद्वचनानि लिख्यन्ते ।

रुद्रयामलमें कहा है कि-अमायुक्त प्रतिपदा सदा ही निन्दित है। उसमें यदि कुंभ का स्थापन होता है तो निश्चय दुर्भिक्ष होता है। अतः द्वितीयातिथि के सहित प्रतिपदा कुम्भारोपणकर्म में उत्तम है। यद्यपि

रुद्रयामलतन्त्र और डामरतन्त्र निर्मूल हैं-तथापि विरोध न होनेसे तथा प्रचारसे उन वचनों को लिखते हैं।

तिथितत्त्वे देवीपुराणेऽपि—प्रातरावाहयेद्देवीं प्रातरेव प्रवेशयेत्।
प्रातः प्रातश्च सम्पूज्य प्रातरेव विसर्जयेत्॥

तिथितत्त्व में और देवीपुराणमें भी कहा कि-प्रातःकाल[1] देवी का आवाहन करे। [2]प्रातःकालही प्रवेश करे। प्रातःकाल [3]पूजन करे और प्रातःकाल ही विसर्जन करे।

तत्रैव—शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी। सा कार्योदयगामिन्यां न तत्र तिथियुग्मता॥

वहीं पर कहा है कि-शरत्कालसे जो वार्षिकी महापूजा की जाती है वह उदयकाल की तिथि में करे। उसमें दो तिथियों की युग्मता नहीं है। (संवत्सर के आदिमें—चैत्रशुक्ल प्रतिपदासे लेकर नवमी तिथितक पूजा का विधान है। वह शरद और वसन्त में तुल्य ही दुर्गोत्सव करे)।

तथा—कुहूकाष्ठोपसंयुक्तां वर्जयेत्प्रतिपत्तिथिम्। राज्यनाशाय सा प्रोक्ता निन्दिता चाश्वपूजने॥ इति।

और—अमावास्या की एक घड़ी से संयुक्त प्रतिपदातिथि को त्याग दे। क्योंकि वह राज्य के नाश के लिए कही है। (आश्विनमासीयदेवीपूजन में निन्दित है) या रेवन्तनामवाला देवताओंका अश्व है, अश्व पीडा के शान्त्यर्थ क्रियमाण या उसके पूजन परक है।

एषु वचनेषु कलशस्थापनग्रहणात्तदेव प्रथमे दिने निषिध्यते, न तूपवासादि। तस्य 'प्रतिपद्यप्यमावास्या' इति युग्मवाक्यात्, 'शुक्ला स्यात्प्रतिपत्तिथिः प्रथमतः' इति दीपिकोक्तेः, 'शुक्लपक्षे दर्शविद्धा' इति माधवोक्तेश्च पूर्वदिने प्राप्तस्य बाधे मानाभावादिति केचित्।

वस्तुतस्तु पूर्वोक्तवाक्येषु चण्डिकार्चनपूजाग्रहणादुपवासादेश्चाङ्गत्वात्प्रधानदेवीपूजादावपि परेति युक्तम्।

इन वचनों में कलशस्थापनग्रहणसे उसी कलशका ही प्रथमदिनमें निषेध है, उपवास आदिका नहीं है। क्योंकि उसका प्रतिपदा में भी अमावास्या हो, इस युग्मवाक्य से। शुक्ला प्रतिपदातिथि प्रथम होती है— यह दीपिका ने कहा है। माधव ने कहा है कि—शुक्लपक्षमें अमा से विद्धा प्रतिपदा ग्रहण करे। पूर्वदिन में प्राप्त के बाध में प्रमाणाभाव है-यह किसी का मत है। सिद्धान्त तो यह है कि—पूर्वोक्त वाक्यों में चण्डिकार्चनपूजा के ग्रहण से और उपवास आदि का अङ्ग होने से प्रधानदेवी पूजादि में भी परा ही युक्त है।

कलशस्थापनग्रहणं तूपलक्षणम्। अत एव देवलः—व्रतोपवासनियमे घटिकैकापि या भवेत्। सा तिथिस्तद्दिने पूज्या विपरीता तु पैतृके॥ इति। अत्र घटिका मुहूर्त इति गौडाः।

यदा तु पूर्वदिने सम्पूर्णा शुद्धा च भूत्वा परदिने वर्धते तदा सम्पूर्णत्वादमायोगाभावाच्च पूर्वैव। यानि च द्वितीयायोगनिषेधकानि वचनानि केचित्पठन्ति तान्यपि शुद्धाधिकनिषेधपराणि। परदिने प्रतिपदोत्यन्तासत्त्वे तु दर्शयुताऽपि पूर्वैव ग्राह्या।

कलशस्थापन ग्रहण तो उपलक्षण (स्वरूपविशेष) है। इसीलिये देवल ने कहा है कि—व्रत तथा उपवास के नियममें एक घडी भी हो तो वह तिथि उसदिन पूज्य है। इसके विपरीत हो तो पितृकर्म में पूज्य है। यहाँ पर घटिका से मुहूर्त को ले—यह गौडों का मत है। जब पूर्वदिन में संपूर्ण तथा शुद्ध होकर दूसरे दिन बढती है तब संपूर्ण हो जाने से अमा के योग के अभावसे ही पूर्वा ही ग्रहण करे। जो द्वितीयायोगके निषेध करनेवाले वचनों को कोई पढते हैं वे भी शुद्धाधिक के निषेध परक हैं। दूसरे दिन प्रतिपदा अत्यन्त (सर्वथा) न रहने पर अमायुक्त भी पूर्वा ही ग्रहण करे।

१—यद्यपि यह पत्रपूजादिविषयक ही है। फिर भी देवीपूजा में इसकी योजना है। कारण इसका बाधक है नहीं। अतः अमायुक्त न करे। २—यहाँ प्रातः शब्द पूर्वाह्न परकही है। ३—सम्यक् कल्पोदितां पूजां यदि कर्तुं न शक्नुयात्। उपचारांस्तथा दातुं, पञ्चैतान्वितरेत्तदा। गन्धं पुष्पं च धूपं च दीपं नैवेद्यमेव च। अभावे पुष्पतोयाभ्यां तदभावे तु भक्तितः॥ इति संक्षेपपूजोपदर्शनात् विस्तारपूजायाः पूर्वाह्नं विना दुष्करत्वादिनव्यगौडास्तदनुयायिनो दाक्षिणात्याश्च।

तदाह लल्लः—तिथिः शरीरं तिथिरेव कारणं तिथिः प्रमाणं तिथिरेव साधनम् । इति ।

उसी बात को लल्ल ने कहा है कि—तिथि ही शरीर है, तिथि ही कारण है, तिथि ही प्रमाण है और तिथि ही साधन है।

यानि तु 'अमायुक्ता प्रकर्तव्या' इत्यादीनि नृसिंहप्रसादे वचनानि तानि समूलत्वे सत्येतद्विषयाणि ।

और जो 'अमायक्त प्रतिपदा को करे' इत्यादि नृसिंहप्रसादके वचन हैं, वे समूल हो तो इसी विपय के हैं।

अत्रेदं तत्त्वम्—पूर्वोक्तवाक्यानां सर्वेषां हेमाद्र्याद्यलिखितत्वेन निर्मूलत्वात्तैश्चान्यनिर्णयस्यानुक्तेः सामान्यनिर्णयात्पूर्ववत्प्राप्तावपि गौडनिबन्धेषु विशेषनिर्णयादौदयिकी ग्राह्या । तत्रापि घटिकैकेत्यस्य द्विमुहूर्तस्तुतित्वोक्तेर्द्विमुहूर्ता ग्राह्या । 'उदिते दैवतं भानौ' इत्यत्र 'द्विमुहूर्तं त्रिरह्नश्च' इति औदयिक्याद्विमुहूर्तत्वनियमात् । तेन 'उदये द्विमुहूर्तापि' इत्याद्यनुसारोऽपि । 'मुहूर्तमात्रा कर्तव्या' इति तु द्विमुहूर्तस्तुतिः । अन्यथा द्विमुहूर्तविधिवैयर्थ्यात् ।

यहाँ पर यही तत्त्व है कि—पूर्वोक्त सब वाक्यों का हेमाद्रि आदि में न लिखने से निर्मूल हैं और उन्होंने अन्य निर्णय भी नहीं किया है। अतः सामान्यनिर्णय (युग्मवाक्य) से पूर्ववत् प्राप्तमें भी गौड निबन्धों में विशेष निर्णय से औदयिकी (उदये द्विमुहूर्ताऽपि ग्राह्या सोदयगामिनी) ग्रहण करे।

वहाँ पर भी एक घटिका का हो तो दो मुहूर्त करे—स्तुति के लिये हैं। इससे दो मुहूर्त ग्रहण करे। क्योंकि—[1]'सूर्योदय पर 'देवकर्म करे यहाँ पर दो मुहूर्त और तीन दिन इस औदयिक से दो मुहूर्त का नियम है। उससे उदय में दो मुहूर्त भी इसके अनुसार भी मुहूर्त मात्र करे इससे दो मुहूर्त की स्तुति है। अन्यथा द्विमुहूर्तविधि व्यर्थ हो जायगी।

केचित्तु मुहूर्तमात्रेति वचनात्ततो न्यूनत्वे परा नेत्याहुः । गौडा अप्येवम् । अत्र देवीपूजैव प्रधानम् उपवासादि त्वङ्गम् । 'अष्टम्यां च नवम्यां च जगन्मातरमम्बिकाम् । पूजयित्वाऽऽश्विने मासि विशोको जायते नरः ॥ इति हेमाद्रौ भविष्ये तस्या एव फलसम्बन्धात्, 'नवमीतिथिपर्यन्तं वृद्ध्या पूजाजपादिकम् । इति तत्रैव देवीपुराणात् । 'शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी ।' इति मार्कण्डेयपुराणाच्च । पूर्ववचनादष्टमीनवमीपूजैव प्रधानमन्यत्सर्वमङ्गमिति गौडाः ।

किसी का कहना है कि—'मुहूर्त मात्रा' इस वचन से न्यून होने पर परा नहीं करे। गौडों ने भी यही कहा है। यहाँ पर देवीपूजा ही प्रधान है, उपवास आदि अंग है। आश्विनमास की अष्टमी और नवमीतिथि में मनुष्य जगन्माता अम्बिका का पूजन कर शोक से रहित हो जाता है। क्योंकि यह हेमाद्रि में भविष्यपुराण के कथन से ही अर्चन का फल संबन्ध है।

वहीं पर देवीपुराण का मत है कि—नवमीतिथि तक वृद्धिक्रम से पूजा, जप आदि करे और मार्कण्डेय पुराण में भी कहा है कि-शरद्काल में जो मेरी वार्षिकी महापूजा करे। पूर्व वचन से अष्टमी या नवमी पूजा ही प्रधान है। अन्य सब अंग है-यह गौड मत है।

(एकाहपक्षकथनम्)

एकाहपक्षोऽपि कालिकापुराणे—'यस्त्वेकस्यामथाष्टम्यां नवम्यामथ साधकः ।
पूजयेद्वरदां देवीं महाविभवविस्तरैः ॥ इति ।

एकाहपक्ष भी कालिकापुराण में कहा है कि—साधक मनुष्य जप किसी एकदिन अष्टमी या नवमीतिथि में वर देने वाली देवी का महान् विभव आदि विस्तारों से पूजा करे।

तत्त्वं तु राजसूयेन्ययागैः समप्रधानायाः सहिताया अप्यवेष्टेः 'एतयान्नाद्यकामं याजयेत्' इत्येक-

[1]—उदिते दैवतं भानौ पित्र्यं चास्तमिते रवौ । द्विमुहूर्तं त्रिरह्नश्च ता तिथिर्हव्यकव्ययोः ॥

त्वान्मध्ये विधानाच्च यथा फलार्थो बहिःप्रयोगस्तथा नवरात्रमध्यस्थाया अष्टम्या नवम्या वा फलार्थः पृथक् प्रयोगः ।

तत्त्व तो यह है कि—राजसूय में अन्ययागों के साथ सम प्रधान सहित अवेष्टिका ही 'एतयान्नाद्यं कामं याजयेत्' इसप्रकार एकत्वहोने से मध्यमें विधानकरने से (आग्नेयमष्टादशकपालं निर्वपति हिरण्यं दक्षिणा, ऐन्द्रमेकादशकपालमृषभो दक्षिणा, वैश्वदेवं चरुं पिशङ्गी पष्ठौही दक्षिणा, मैत्रावरुणीमामिक्षां वशा दक्षिणा, बार्हस्पत्यं चरुं शितिपृष्ठो दक्षिणा' इति । इस याग को 'अवेष्टि' कहा जाता है। अगर ब्राह्मण इस याग को करेगा तब-'बार्हस्पत्यं मध्ये निधायाऽऽहुतिमाहुतिं हुत्वा तमभिघारयेत्, जैसे फल के लिए राजसूय से भिन्न स्थल में भी स्वतन्त्ररूप से प्रयोग होता है। वैसे भी नवरात्र के अन्तर्गत अष्टमी या नवमी का फल के लिए स्वतन्त्ररूप से पृथक् प्रयोग हो जाता है।

रूपनारायणधृतदेवीपुराणे—महानवम्यां पूजेयं सर्वकामप्रदायिका। सर्वेषु चैव वर्णेषु तव भक्त्या प्रकीर्तिता ॥ कृत्वाप्नोति यशोराज्यपुत्रायुर्धनसम्पदः ॥' सा च काम्या नित्या च ।

रूपनारायण में कहा गया देवीपुराण का वाक्य है कि—सारी कामनाओं को देनेवाली यह पूजा सब वर्णों में महानवमी में करे। यह मैंने तुमको भक्ति से कही है। जो पूजा करेगा उसे यश, राज्य, पुत्र, आयु, धन तथा सम्पत्ति प्राप्त होगी। यह पूजा काम्य और नित्य है।

'एवमन्यैरपि तथा देव्याः कार्यं प्रपूजनम् । विभूतिमतुलां लब्धुं चतुर्वर्गप्रदायकम् ॥ इति । यो मोहादथवाऽऽलस्याद्देवीं दुर्गामहोत्सवे। न पूजयति दम्भाद्वा द्वेषाद्वाऽप्यथ भैरवी ॥ क्रुद्धा भगवती तस्य कामानिष्टान्निहन्ति वै ॥ इति कालिकापुराणे फलनिन्दाश्रुतेः ।

कालिकापुराण में इन वचनों से फल की निन्दा सुनी है—इसप्रकार अन्य मनुष्य भी देवी का पूजन करें। जिससे अतुल (अपार) विभूति (ऐश्वर्य), धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष करने के लिए जो मोह या दम्भ तथा द्वेष से दुर्गामहोत्सव में देवी की पूजा नहीं करता है तो भैरवी भगवती क्रुद्ध होकर उसकी सारी कामनाओं को निश्चित नाश कर देती है।

वर्षे वर्षे विधातव्यं स्थापनं च विसर्जनम् । इति तिथितत्त्वे देवीपुराणाच्च ।

और तिथितत्त्व में देवीपुराण का मत है कि-प्रतिवर्ष में देवीका स्थापन और विसर्जन करे।

(अत्रोपवासादिकथनम्)

अत्रोपवासादिकमुक्तं हेमाद्रौ भविष्ये—एवं च विन्ध्यवासिन्यां नवरात्रोपवासतः । एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च ॥ पूजनीया जनैर्देवी स्थाने स्थाने पुरे पुरे । गृहे गृहे शक्तिपरैर्ग्रामे ग्रामे वने वने ॥ स्नातैः प्रमुदितैर्हृष्टैर्ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्नृपैः । वैश्यैः शूद्रैर्भक्तियुक्तैर्म्लेच्छैरन्यैश्च मानवैः ॥ इति ।

यहाँ पर उपवास आदि हेमाद्रि में भविष्यपुराण कथन से कहा है कि—इसतरह विन्ध्यवासिनी के प्रीत्यर्थ—नवरात्र में उपवास, एकबार रात्रिभोजन, वैसे ही अयाचित भोजन से सब मनुष्य, हर जगह में गाँव-गाँवमें घर-घर में, जंगल-जंगल में, शक्ति से स्नान करने बाद अत्यन्त प्रसन्नता से ब्राह्मण, क्षत्रिय राजा, वैश्य, शूद्र, म्लेच्छ, अन्य मानवगण, भक्ति से देवी का पूजन करे या स्थान स्थान में ब्राह्मण, पुर-पुर में क्षत्रिय राजा, घर-घर में वैश्य, गांव-गांव में-शूद्र और वन-वन में म्लेच्छ करे। अन्यों से-प्रतिलोमानुलोम का ग्रहण है।

(किरातानां विना मन्त्रैः-तामसीपूजा)

यत्तु रूपनारायणीये भविष्ये—एवं नानाम्लेच्छगणैः पूज्यन्ते सर्वदस्युभिः । इति तत्तामसपूजापरमिति । 'विना मन्त्रैस्तामसी स्यात्किरातानां तु सम्मता । इति तत्रैवोक्तेः ।

जो रूपनारायणीय में भविष्यपुराण का मत है कि—इसतरह अनेकतरह के म्लेच्छगण और सब दस्युगण जो पूजा करते हैं, वह [1]तामसपूजापरक हैं।

१—पूजा त्रिविधा–भविष्ये–राजसी सा धूपचारैर्जपयज्ञैर्विना तु या । विना मन्त्रैस्तामसी स्यात्किरातानां तु संमता। तत्र सात्त्विक्यां ब्राह्मणस्यैवाधिकारो राजस्यां क्षत्रियादेश्च ।

वहीं कर कहा है कि—विना मन्त्रों के जो पूजा होती है वह तामसी होती है—वह किरातों (म्लेच्छादि का उपलक्षण है, साम्य होने से) के (भिल्लों) के लिए संमत है।

(पूजायास्त्रैविध्यम्)

मदनरत्ने देवीपुराणेऽपि—कन्यासंस्थे रवौ शक्र शुक्लामारभ्य नन्दिकाम्। अयाची ह्यथवैकाशी नक्ताशी वाथवाम्बदः॥ भूमौ शयीत चामन्त्र्य कुमारीर्भोजयेन्मुदा। वस्त्रालङ्कारदानैश्च सन्तोष्याः प्रतिवासरम्॥ बलिं च प्रत्यहं दद्यादोदनं मांसमाषवत्। त्रिकालं पूजयेद्देवीं जपस्तोत्रपरायणः॥ इति। नन्दिका प्रतिपत्तिथिरिति मैथिलाः, षष्ठीति गौडाः।

मदनरत्न में और देवीपुराण में भी कहा है कि–हे शक्र, कन्या के सूर्य में शुक्लपक्ष की नन्दा (प्रतिपदा, षष्ठी और एकादशी) से प्रारंभ कर अयाचित अन्नका भोजन या एक वार भोजन, रात्रि-भोजन तथा भूमिपर शयन करे। प्रसन्न होकर कुमारियोंका आमन्त्रण कर भोजन करावे। वस्त्र, अलंकार और दान प्रतिदिन देकर प्रसन्न करे। प्रतिदिन ओदन, [1]मांस और उडद की तरह बलि दे। तीनों समय जप स्तोत्र आदि में संलग्न हो देवी की पूजा करे। नन्दिका से मैथिल प्रतिपदा का ग्रहण करते हैं। गौड लोग षष्ठी मानते हैं।

(दुर्गापूजनं रात्रौ कार्यम्)

तच्च पूजनं रात्रौ कार्यम्। आश्विने मासि मेघान्ते महिषीसुरमर्दिनीम्। निशासु पूजयेद्भक्त्या सोपवासादिकः क्रमात्॥ इति देवीपुराणात्।

और वह पूजन रात में करे। देवीपुराण में कहा है कि—आश्विनमास में मेघ (वर्षा) के अन्त में महिषासुरमर्दिनी का निशाओं में भक्ति से उपवास आदि क्रम से पूजन करे।

सङ्ग्रहेऽपि—आश्विने मासि मेघान्ते प्रतिपद्या तिथिर्भवेत्। तस्यां नक्तं प्रकुर्वीत रात्रौ देवीं प्रपूजयेत्॥

संग्रह में भी कहा है कि—आश्विनमास के मेघान्त में जो प्रतिपदातिथि हो उसमें नक्तव्रत करे और रात में देवी की पूजा करे।

रात्रिरूपा यतो देवी दिवारूपो महेश्वरः। रात्रिव्रतमिदं देवि सर्वपापप्रणाशनम्॥ सर्वकामप्रदं नृणां सर्वशत्रुनिबर्हणम्। रात्रिव्रतमिदं तस्य रात्रौ कर्तव्यतेष्यते॥ नक्तव्रतमिदं यस्मादन्यथा नरके गतिः॥ इत्यादिवचनाच्च रात्रिव्रतमेवाभिप्रेत्य माधवेनोक्तम्—'तस्य नक्तव्रतत्वादिति, न तु रात्रिभोजनात्' इति।

हे देवि, रात्रिरूपा देवी है। दिवारूप महेश्वर है। अतः सब पापों को नाश करनेवाली यह रात्रिव्रत है। मनुष्यों के संपूर्ण इच्छाओं को देनेवाला और सब शत्रुओं को नाश करनेवाला यह रात्रिव्रत है। उसका रात में ही कर्तव्य करना कहा है।

इसलिए इसको 'नक्तव्रत' कहते हैं। अन्यथा तो नरक ही गति है और इत्यादि वचन से रात्रिव्रत को ही जानकर माधव ने कहा है कि—उसका नक्तव्रत होने से न की रात्रि भोजन से।

ननु—मासि चाश्वयुजे शुक्ले नवरात्रे विशेषतः। सम्पूज्य नवदुर्गां च नक्तं कुर्यात्समाहितः॥ नवरात्राभिधं कर्म नक्तव्रतमिदं स्मृतम्। आरम्भे नवरात्रस्य' इत्यादिस्कान्दात् माधवोक्तेश्च नक्तमेव प्रधानमिति चेत्। न, 'नवरात्रोपवासतः' इत्यादेरनुपपत्तेः। तेन पाक्षिकनक्तानुवादोऽयम्। नित्यानित्यसंयोगविरोधात्। नह्यग्निहोत्रे दशमपक्षे प्राप्तस्य 'दध्ना जुहोति' इत्यस्येन्द्रियकामहोमेऽनुवादो घटते, नित्यवदनुवादायोगात् इत्युक्तं वार्तिके, तथात्रापि। तेनात्र तद्वदेव गुणात्फलमिति ज्ञेयम्।

कदाचित्-आश्विनमास के शुक्लपक्ष में विशेष कर नवरात्र में नवदुर्गा का पूजन कर एकाग्रमन से नक्तव्रत करे। यह नवरात्र नाम वाला यह कर्म 'नक्तव्रत' कहा है। यह नवरात्र के आरम्भ में कहा है।

१—मांसादि ब्राह्मणान्यपरम्।

इत्यादि स्कन्दपुराण से और माधव के कहने से नक्त (रात्रिभोजन) ही प्रधान है यह ठीक नहीं है-नवरात्र में उपवास करे—इत्यादि की अनुपपत्ति (असंगत) हो जायगी। इससे पाक्षिक नक्तव्रत का यह अनुवाद है। नित्य और अनित्य के संयोग का विरोध है। जैसे—अग्निहोत्र के दशमपक्ष में, [1](पयसा जुहोति, यवाग्वा जुहोति, तण्डलैर्जुहोति, व्रीहिभिर्जुहोति, घृतेन जुहोति, दध्ना जुहोति) प्राप्त दही से हवन करना चाहिये इसका यह इन्द्रिय की इच्छा करने वाला होम में यह अनुवाद नहीं घटता है। नित्य का और अनित्य का अनुवाद (वाक्यान्तर से प्राप्त अर्थ को दोहराना) नहीं होता है। यह वार्तिक में कहा है। वैसे ही यहाँ पर। इससे यहाँ पर उसकी तरह ही गुण से फल जानना चाहिये।

ननु रात्रेः कर्मकालत्वे तद्व्यापिनी पूर्वैव प्रतिपत्प्राप्नुयात्। मैवम्। न्यायतः प्राप्तावपि पूर्वोक्तवचनैर्बाधात्। यथा पूर्वेद्युः कर्मकालव्यापिनीमपि त्यक्त्वा स्वल्पापि परैव रामनवमीति प्रागुक्तम्, यथा वा निशीथे सतीमपि पूर्वां जन्माष्टमीं त्यक्त्वा रोहिणीयुक्ता, परैवेति माधवेनोक्तं तथाऽत्रापि।

कोई कहे कि—रात का ही कर्मकाल है तो रात्रिव्यापिनी पूर्वा ही है प्रतिपदा प्राप्त होगी। यह ठीक नहीं है। न्याय से प्राप्त भी पूर्वोक्त वचनों से बाध है। जैसे—पूर्वदिन में कर्मकालव्यापिनी को भी त्याग कर स्वल्पा भी परा ही रामनवमी ले। यह पहले कह चुके हैं। जैसे—अथवा-आधी रात को व्याप्त हुई जन्माष्टमी को छोड़कर रोहिणी से युक्त परा ही ले—यह माधव ने कहा है। वैसे ही यहाँ पर भी जानना चाहिये।

वस्तुतस्तु रात्रेः कर्मकालत्ववचसां हेमाद्र्याद्यलिखनात्समूलत्वं विमृश्यमेव, 'त्रिकालं पूजयेत्' इत्यादिपूर्वविरोधाच्च। माधवोक्तिस्तु पाक्षिकनक्तानुवाद इत्युक्तम्। तस्मात्सर्वपक्षेषु परैव प्रतिपदिति सिद्धम्।

सिद्धान्त की बात तो यह है कि-रात को कर्मकाल के वचनों को हेमाद्रि आदि में नहीं लिखे गये हैं अतः उनका मूल अन्वेषणीय ही है। त्रिकाल पूजन करे-इत्यादि पूर्व वचनों से विरोध है। माधव ने जो कहा है कि-वह पाक्षिक नक्तव्रत का अनुवाद है। यह कह चुके। इसलिए सब पक्षों में परा ही प्रतिपदा ले यह सिद्ध हुआ।

अत्र केचित् नवरात्रशब्दो नवाहोरात्रपरः। वृद्धौ समाप्तिरष्टम्यां ह्रासे वा प्रतिपन्निशि। प्रारम्भो नवचण्ड्यास्तु नवरात्रमतोऽर्थवत्॥ इति देवीपुराणादित्याहुः। तन्न। अतिह्रासवृद्ध्योर्न्यूनाधिकत्वापत्तेः अत्र मूलाभावाच्च। तेन तिथिवाच्येवायम्।

यहाँ पर कोई कहते हैं कि-नवरात्र शब्द नौ दिन रात परक है। देवीपुराण में कहा है कि—तिथि की वृद्धि में अष्टमी में समाप्त करे। तिथिक्षय में प्रतिपदातिथि के रात में नवचण्डीका प्रारंभ करे। यहाँ नवरात्र-शब्द नव दिन का सार्थक है। यह ठीक नहीं है—अति ह्रास या वृद्धि से न्यूनाधिकत्व की आपत्ति हो जायगी। यहाँ पर मूलका अभाव है इससे तिथिवाचक ही यह है।

तदुक्तम्-तिथिवृद्धौ तिथिह्रासे नवरात्रमपार्थकम्। अष्टरात्रे न दोषोऽयं नवरात्रतिथिक्षये॥ इति। स च नवरात्रशब्दः क्वचिल्लक्षणया कर्मवाची। यथा 'प्रारम्भो नवरात्रस्य' इत्यत्रेति दिक्।

उसी बात को कहा है कि—यह ठीक नहीं है। तिथि की वृद्धि या तिथि के ह्रास में नवरात्रशब्द का कोई अर्थ नही है। अतः [2]नवरात्र के तिथि क्षय में आठ रात में यह दोष नहीं है।

वह नवरात्र शब्द कहीं लक्षणा से कर्म का वाचक है। जैसे नवरात्र का प्रारंभ करे-यहाँ ही है।

१—दध्ना-जुहोति-इस वाक्यसे अग्निहोत्रहोमसे विकल्पसे दही विधान करते हैं। 'अग्निहोत्रं जुहोति' इस वाक्य से प्राप्त होमको 'दध्ना जुहोति' इस वाक्य से अनुवाद करते हैं। वैसे दध्ना जुहोति-इस वाक्य से दहीको 'दध्नेन्द्रियकामस्य जुहुयात्, इस वाक्य में रहनेवाला दधिशब्द अनुवादक नहीं है। (पयसा जुहोति, यवाग्वा जुहोति, तण्डुलैर्जुहोति, व्रीहिभिर्जुहोति, यवैर्जुहोति, घृतेन जुहोति, दध्ना जुहोति।)

२—अमावास्यारात्रौ प्रतिपत्प्रवेशाभावेऽपि प्रतिपत्प्रभृत्येवात्यन्तापचयेनाऽष्टरात्रमतिवृध्याऽष्टम्यहोरात्रास्पर्शिनीं नवमीं गृहीत्वा दशरात्रं तिथिवृद्धावितिशङ्कायामाह-अष्टरात्रे इति-रात्रिशब्दस्य तिथिवाचित्वादिति भावः।

(वैधृत्यादियोगकथनम्)

प्रतिपदि च वैधृत्यादियोगनिषेधो भार्गवार्चनदीपिकायाम् देवीपुराणे—त्वाष्ट्रवैधृतियुक्ता चेत्प्रतिपच्चण्डिकाऽर्चने । तयोरन्ते विधातव्यं कलशारोपणं गृहे ॥

और प्रतिपदा में वैधृति आदि योग का निषेध भार्गवार्चनदीपिका में देवीपुराण के वचन से कहा है कि—चण्डिकार्चन में चित्रा और वैधृति से युक्त प्रतिपदा हो तो—उनके अन्त में घर में [1]कलशारोपण करे।

चित्रावैधृतियुक्तापि द्वितीयायुक्ता चेत्सैव ग्राह्यत्युक्तम् दुर्गोत्सवे—भद्रान्विता चेत्प्रतिपत्तु लभ्यते विरुद्धयोगैरपि सङ्गता सती । सैवापराह्णे विबुधैर्विधेया श्रीपुत्रराज्यादिविवृद्धिहेतुः ॥ इति ।

दुर्गोत्सव में कहा है कि—चित्रा और वैधृति से युक्त द्वितीया सहित हो तो वही ग्रहण करे। भद्रान्वित यदि प्रतिपदा का लाभ हो तो विरुद्ध योग से भी वह संगत हो तो उसी में ही ज्ञानी अपराह्ण में विधान करे। वह श्री, पुत्र, राज्य आदि के वृद्धि का कारण होती है।

(यदा तु वैधृत्यादिपरिहारेण प्रतिपन्न लभ्यते तदा कर्तव्यनिर्णयः)

यदा तु वैधृत्यादिपरिहारेण प्रतिपन्न लभ्यते तदोक्तं तत्रैव कात्यायनेन—प्रतिपद्याश्विने मासि भवेद्वैधृतिचित्रयोः । आद्यपादौ परित्यज्य प्रारम्भेन्नवरात्रकम् ॥ इति ।

जब वैधृति आदि परिहार से प्रतिपदा न मिलती हो तब वहीं पर कात्यायन ने कहा है कि—आश्विन मास की प्रतिपदातिथि में वैधृति तथा चित्रा हो तो आदि के दोपाद को त्याग कर नवरात्र का प्रारंभ करे।

भविष्येऽपि—चित्रावैधृतिसम्पूर्णा प्रतिपच्चेद्भवेन्नृप । त्याज्या ह्यंशास्त्रयस्त्वाद्यास्तुरीयांशे तु पूजनम् ॥ इति ।

भविष्यपुराण में भी कहा है कि—हे नृप, चित्रा तथा वैधृति से सम्पूर्ण प्रतिपदा हो तो आदि के तीन अंश त्याग कर चतुर्थ अंश में पूजन करे।

रुद्रयामलेऽपि—वैधृतौ पुत्रनाशः स्याच्चित्रायां धननाशनम् । तस्मान्न स्थापयेत्कुम्भं चित्रायां वैधृतौ तथा ॥ सम्पूर्णा प्रतिपद्येव चित्रायुक्ता यदा भवेत् । वैधृत्या वापि युक्ता स्यात्तदा मध्यन्दिने रवौ ॥ अभिजित्तु मुहूर्तं यत्तत्र स्थापनमिष्यते ॥ इति । चित्रादिनिषेधे मूलं चिन्त्यम् ।

रुद्रयामल में भी कहा है कि—वैधृति में पुत्र का नाश होता है तथा चित्रा में धन का नाश होता है। इसलिए चित्रा और वैधृति में कुंभ का स्थापन न करे।

यदि संपूर्ण प्रतिपदा चित्रा या वैधृति से युक्त हो तो मध्यान्ह के सूर्य में और अभिजित् मुहूर्त में घट स्थापन करे। चित्रादि निषेध में मूल (प्रमाण) चिन्तनीय है।

(कलशस्थापनं रात्रौ न कार्यम्)

इदं कलशस्थापनं रात्रौ न कार्यम् । न रात्रौ स्थापनं कार्यं न च कुम्भाभिषेचनम् । इति मात्स्योक्तेः ।

इस कलशस्थापन को रात्रि में न करे। मत्स्यपुराण में कहा है कि—रात में कलशस्थापन और कुंभाभिषेचन नहीं करना चाहिये।

(स्थापनारोपणादिषु प्रातःकालनिर्णयः)

भास्करोदयमारभ्य यावत्तु दशनाडिकाः । प्रातःकाल इति प्रोक्तः स्थापनारोपणादिषु ॥ इति विष्णुधर्मोक्तेश्च ।

और विष्णुधर्म में कहा है कि—सूर्य के उदय से प्रारंभ कर दश नाडी (घडी) तक स्थापनारोपण आदि में प्रातः[2]काल कहा है।

१—देवीपूजनादौ कलशस्थापनमात्रे वा निषेध इति मतभेदः ।

२—प्रातरावाहयेद्देवीम्—इत्यादि में प्रातःकाल 'पूर्वाह्णकाल' को कहते हैं यह पहले कह चुके हैं और कलशस्थापन सतिसंभव में प्रतिपदा के आद्य की सोलह घडी छोडकर करे। 'आद्याः षोडशनाडीस्तु' ऐसा पाठ पहले आया है।

(मङ्गलस्नानादिकथनम्)

रुद्रयामले—स्नानं माङ्गलिकं कृत्वा ततो देवीं प्रपूजयेत् । शुद्धाभिर्मृत्तिकाभिश्च पूर्वं कृत्वा तु वेदिकाम् ॥ यवान् वै वापयेत्तत्र गोधूमैश्चापि संयुतान् । तत्र संस्थापयेत्कुम्भं विधिना मन्त्रपूर्वकम् । सौवर्णं राजतं वापि ताम्रं मृन्यजं तु वा ॥ इति ।

रुद्रयामल में कहा है कि—मांगलिक स्नानकर (तिल के तेल से स्नानकर) तदनन्तर देवीका पूजन करे। शुद्ध मृत्तिकाओं से पहले वेदीको करे। वहाँ पर गोधूमों (गेहूँ) सहित यवों को बो दे। वहाँ पर मन्त्रपूर्वक विधि के कुंभका स्थापन करे। वह घड़ा सुवर्ण, चांदी, तांवा या मृत्तिका का हो।

(अथ पूजाविधिः)

अथ पूजाविधिः । सा च जयन्तीमन्त्रेण नवाक्षरेण वा कार्या ।

तदुक्तं दुर्गाभक्तितरङ्गिण्यां देवीपुराणे—कुर्याद्देव्यास्तु मन्त्रेण पूजां क्षीरघृतादिभिः । (इत्युक्त्वा) जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी । दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वधा स्वाहा नमोऽस्तु ते ॥ अनेनैव तु मन्त्रेण जपहोमौ तु कारयेत् ॥ इति ।

इसकी पूजाविधि कहते हैं—वह पूजा 'जयन्ती मंगला काली भद्रकाली कपालिनी। दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वधा स्वाहा नमोऽस्तु ते ॥' इस मन्त्र से ही करे। उसी बात को दुर्गाभक्तितरङ्गिणी में देवीपुराण के मत से कहा है कि—देवी के मन्त्र से दूध-घृत आदि से पूजा करे। यों कहकर—जयन्ती, मङ्गला, काली, भद्रकाली, कपालिनी, दुर्गा, क्षमा, शिवा, धात्री स्वधा तथा स्वाहा रूप आपको नमस्कार है। इसी ही मन्त्र से जप और होम करावे।

(नवाक्षरमन्त्रकथनम्)

ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा–इति नवाक्षरः ।

ॐ दुर्गे ‡ दुर्गे रक्षिणि स्वाहा—यह नवाक्षर मन्त्र है।

(पूजनस्योत्तमप्रकारः)

तत्र प्रतिपदि प्रातरभ्यङ्गं कृत्वा देशकालौ सङ्कीर्त्य—ममेह जन्मनि दुर्गाप्रीतिद्वारा सर्वापच्छान्तिपूर्वकदीर्घायुर्विपुलधनपुत्रपौत्राद्यनवच्छिन्नसन्ततिवृद्धिस्थिरलक्ष्मीकीर्तिलाभशत्रुपराजयसदभीष्टसिद्ध्यर्थं शारदानवरात्रप्रतिपदि विहितकलशस्थापनदुर्गापूजाकुमारीपूजादि करिष्ये' इति सङ्कल्प्य 'मही[1] द्यौ' इति भूमिं स्पृष्ट्वा 'ओषधयः[2] सम्' इति । यवान्निक्षिप्य आकलशेषु[3] इति कुम्भं संस्थाप्य 'इमं मे गङ्गे[4]' इति जलेनापूर्य 'गन्धद्वाराम्[5]—इति गन्धं, 'या ओषधीः[6]'—इति सर्वौषधीः, 'काण्डात्काण्डात्[7]—इति दूर्वाः, अश्वत्थेवः[8]—इति पञ्चपल्लवान्, स्योना[9] पृथिवी—इति सप्तमृदः, 'याः[10] फलिनीः–इति फलम् । 'स हि[11] रत्नानि' इति पञ्चरत्नानि हिरण्यं च क्षिप्त्वा 'युवा[12] सुवासाः–

‡—द्विरुक्तं, प्रणवस्तु नवाक्षरानन्तर्गत इति बोध्यम् ।

१—मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम् । पिपृतां नो भरीमभिः ॥ (ऋ० १।२२।१३) । २—ओषधयः सं वदन्ते सोमेन सह राज्ञा । यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तं राजन् पारयामसि ॥ (ऋ. १०।९७।२२) । ३—आ कलशेषु धावति पवित्रे परि षिच्यते । उक्थैर्यज्ञेषु वर्धते ॥ (ऋ. ९।१७।४) । आ कलशेषु धावति श्येनो वर्म वि गाहते । अभि द्रोणा कनिक्रदत् ॥ (ऋ. ९।६७।१४) । ४—इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वती शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या । असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयाऽऽर्जीकीये शृणुह्या सुषोमया ॥ (ऋ. १०।७५।५) । ५— गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् । ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥ ऋ० प०) । ६—या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा । मनै नु बभ्रूणामहं शतं धामानि सप्त च ॥ (ऋ. १०।९७।१) । ७—काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषः परि । एवा नो दूर्वे प्र तनु सहस्रेण शतेन च ॥ तै० स० (४।२।९।३) । ८—अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता । गोभाज इत् किलासथ यत् सनवथ पूरुषम् ॥ (ऋ.१०।९।७।५) ९—स्योना पृथिवी भवानृक्षरा निवेशनी । यच्छा नः शर्म सप्रथः ॥ (ऋ.१।२२।१५) । १०—याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः । बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ (ऋ.१०।९७।१५) । ११–स हि रत्नानि दाशुषे सुवाति सविता भगः । तं भागं चित्रमीमहे ॥ (ऋ.५।८२।३) । १२—युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उश्रेयान् भवति जायमानः । तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो ३ मनसा देवयन्तः ॥ (३।८।४) ।

इति वस्त्रेणावेष्ट्य, [१३]'पूर्णादर्वि'—इति पूर्णापात्रं निधाय तत्र वरुणं सम्पूज्य जीर्णायां नूतनायां वा प्रतिमायां दुर्गामावाह्य पूजयेत् । तद्यथा—पूर्वोक्तं मन्त्रमुक्त्वा—

उसमें प्रतिपदा में प्रातःकाल अभ्यंग कर—संकल्प[१] करे। देशकालौ संकीर्त्य–ममेह जन्मनि दुर्गाप्रीतिद्वारासर्वापच्छान्तिपूर्वकदीर्घायुर्विपुलधनपुत्रपौत्राद्यनवच्छिन्नसन्ततिवृद्धिस्थिरलक्ष्मीकीर्तिलाभशत्रुपराजयसद् - भीष्टसिध्यर्थं शारदनवरात्रप्रतिपदि विहितकलशस्थापनदुर्गापूजाकुमारीपूजादि[२] करिष्ये) इस पूर्वोक्त क्रम में संकल्प कर 'महीद्यौः' इस मन्त्र से भूमिका स्पर्श कर 'ओषधयः सम्' इस मन्त्र से यवोंको प्रक्षेप कर 'आ कलशेषु' इस मन्त्र से कुंभका स्थापन कर। 'इमं मे गङ्गे' इस मन्त्र से जल भर कर 'गन्धद्वाराम्' इस मन्त्र से गन्ध को छोड़कर 'या ओषधीः' इस मन्त्र से सर्वौषधी[३] छोड़कर, 'काण्डात्काण्डात्' इस मन्त्र से दूर्वा छोडकर 'अश्वत्थेवः' इस मन्त्र से पञ्च [४]पल्लव छोड़कर स्योना पृथिवी' इस मन्त्र से सप्तमृत्तिका[५] छोड़कर 'याः फलिनीः'—इस मन्त्र से फल को छोड़कर 'स हि रत्नानि' इस मन्त्र से [६]पञ्चरत्न और हिरण्यको छोडकर 'युवा सुवासाः' इस मन्त्र से वस्त्र से आवेष्टन करे। 'पूर्णादर्वि' इस मन्त्रसे पूर्णपात्र स्थापन कर उसमें वरुण का पूजन कर जीर्ण (पुरानी) या नूतन[७] प्रतिमा में दुर्गाका आवाहन[८] कर पूजन करे। उसका क्रम यों है—पूर्वोक्त (जयन्ती मंगला काली' नवाक्षरं वा) मंत्र को कहकर—

१३-पूर्णा दर्वि परा पत सुपूर्णा पुनरापत। वस्नेव विक्रीणावहा इषमूर्जं ँ शतक्रतो ॥ (तै० सं० १।८४।२)।

१—प्रातः सन्ध्यां बुधः कृत्वा संकल्पं तत आचरेत्। २—कुष्ठं मांसी हरिद्रे द्वे मुरा शैलेयचन्दनम्। वचा चम्पकमुस्ता च सर्वौषध्यो दश स्मृताः ॥ ३—अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षचूतन्यग्रोधपल्लवाः। पञ्चभङ्गा इति प्रोक्ताः सर्वकर्मसु शोभनाः ॥ ४—गजाश्वरथ्यावल्मीकसङ्गमह्रदगोकुलात्। राजद्वारप्रवेशाच्च मृदमानीय निक्षिपेत् ॥ ५—आदित्यपुराणे—सुवर्णं रजतं मुक्ता राजावर्तं प्रवालकम्। पञ्चरत्नं समाख्यातं पावनं पावनेषु तत् ॥ कालिकापुराणे––कनकं हीरकं नीलं पद्मरागं च मौक्तिकम्। एतानि पञ्च रत्नानि रत्नशास्त्रविदो विदुः ॥

६-पूजामण्डलस्थ कुंभपर करे। 'पूज्या मण्डलकुंभस्था' इति वचनात् और सर्वतोभद्रमण्डलस्थ देवताओं का आवाहन भी करे। आचारप्राप्त वेदी के चारों कोनों में चार कलशों का विधिवत् स्थापन भी करे। विष्णुधर्मोत्तर में कहा है कि—'चतुरः कलशान् यस्तु दद्याद्देवगृहे नरः। चतुःसमुद्रवलयां स तु भुङ्क्ते वसुन्धराम् ॥

सर्वतोभद्र का प्रकार स्कन्दपुराण में यों है—प्रागुदीच्यां गता रेखाः कुर्यादेकोनविंशतिः। खण्डेन्दुस्त्रिपदः कोणः शृङ्खलाः पञ्चभिः पदैः ॥ एकादशपदा वल्ली भद्रं तु नवभिः पदैः। चतुर्विंशत्पदा वाऽपि चतुर्विंशतिभिः पदैः ॥ मध्ये षोडशभिः कोष्ठैः पद्ममष्टदलं स्मृतम्। श्वेतेन्दुः शृङ्खला कृष्णा वल्लीर्नीलेन पूरयेत् ॥ भद्रारुणा सिता वापि परिधिः पीतवर्णकः। बाह्यान्तरदले श्वेता कर्णिका पीतवर्णिका ॥ परिध्या वेष्टितं पद्मं बाह्ये सत्त्वं रजस्तमः। तन्मध्ये स्थापयेद्देवान् ब्रह्माद्यांश्च सुरानिति ॥

देवताओं का स्थापन क्रम यों है—आवाह्य मध्ये ब्रह्माणं लोकपालानुदग् यजेत्। सोम ईशान इन्द्रोऽथ वह्निर्धमश्च निऋर्तिः ॥ वरुणश्चापि वायुश्च लोकपालाः क्रमान्मताः। वायुसोमान्तर्वसवो रुद्राः सोमेशमध्यगाः ॥ ईशेन्द्रान्तरस्थादित्या महेन्द्राग्न्यन्तरश्विनौ। यमाग्न्यन्तः सपितृकान् विश्वान्देवान् यजेद्बुधः ॥ यमनिऋर्तिमध्ये तु सप्तयक्षानथो यजेत्। रक्षोवरुणयोर्मध्ये भूतनाथावथो यजेत् ॥ गन्धर्वाप्सरसो देवान् मध्ये वरुणवातयोः। स्कन्दनन्दीश्वरौ शूलमहाकालौ च सोमतः ॥ ब्रह्मणः सप्तयक्षादीनीशानादिन्द्रतो यजेत्। (ब्रह्मसोममध्ये ईशानसोममध्ये इत्यादिरर्थः।) दुर्गाविष्णू स्वधामग्नेर्यमाद्वै मृत्युरोगवान् ॥ निऋर्तेः श्रीगणपतिं वरुणोदय एव च। वायुतो मरुतश्रेष्ठा ब्रह्मपादे धरां यजेत् ॥ कर्णिकाधश्च तत्रैव नदीर्गङ्गादिका यजेत्। तत्रैव सागरान् सप्त पूजयेद्वरुणालयात् ॥ (ब्रह्मणःपादमूले कर्णिकाधः पृथ्वीं नदीः सागरांश्च यजेदित्यर्थः। एतदन्तो वैदिको वा नाममन्त्रो वा पूजाहोम मन्त्रः)। तस्योपरि सुमेरुं च मण्डलाद्बाह्यतोऽप्युदक्। (उदीचीक्रमेण सोमादिक्रमेणेति यावत्) गोतमश्च भरद्वाजो विश्वामित्रश्च कश्यपः। जमदग्निर्वसिष्ठोऽत्रिररुन्धत्या च नित्यशः। पूर्वादितश्च तद्बाह्ये ऐन्द्रीः कौमारिकामपि। ब्राह्मीं तथा च वाराहीं चामुण्डीं वैष्णवीं तथा। माहेश्वरी वैनायक्यावष्टशक्तीः समर्चयेत्। इति। सोमादेरायुधानीह क्रमेश स्थापयेद् बुधः। गदाशूले वज्रशक्ती दण्डखड्गे तथैव च ॥ पाशाङ्कुशौ च तद्बाह्ये क्रमेणाथ यजेद्दशीन्।"

७–मृदादिमय्यां च केवलप्राणप्रतिष्ठैव नाग्न्युत्तारणमिति विशेषः। ८––येषां कुले कुंभस्थापनं बलिदानादि नास्ति तैस्तन्न कार्यम्।

आगच्छ वरदे देवि दैत्यदर्पनिषूदिनि। पूजां गृहाण सुमुखि नमस्ते शङ्करप्रिये ॥

यों आवाहन करे—हे वर दे, हे देवि, हे दैत्यदर्पनिषूदनि-(दैत्यों के अभिमान को मर्दन करने वाली), आप आओ। सुमुखि, हे शंकरप्रिये, पूजा को ग्रहण करो।

सर्वतीर्थमयं वारि सर्वदेवसमन्वितम्। इमं घटं समागच्छ तिष्ठ देवगणैः सह ॥

देवताओं के युक्त सब तीर्थों का जल है, इस घड़े में देवताओं के साथ स्थित रहो।

दुर्गे देवि समागच्छ सान्निध्यमिह कल्पय। बलिं पूजां गृहाण त्वमष्टाभिः शक्तिभिः सह ॥ इत्यावाह्य पूर्वोक्तमन्त्रेण षोडशोपचारैः पूजयित्वा माषभक्तबलिं कूष्माण्डादिबलिं वा निवेदयेत्।

हे दुर्गे, हे देवि, यहाँ पर निवास करो। आठों शक्तियों से साथ बलि तथा पूजा को ग्रहण करो। इसप्रकार आवाहन कर पूर्वोक्त मन्त्र से षोडशोपचार से पूजा को कर उडदी, भात या कूष्माण्ड आदि से [1]बलि को निवेदन करे।

(कुमारीपूजाकथनम्)

ततः कुमारीपूजा। तदुक्तं हेमाद्रौ स्कान्दे—एकैकां पूजयेत्कन्यामेकवृद्ध्या तथैव च।
द्विगुणं त्रिगुणं वाऽपि प्रत्येकं नवकं तु वा ॥

अब कुमारीपूजा कहते हैं—उसी बात को हेमाद्रि में स्कन्दपुराण का मत है कि—एक एक कन्या का पूजन करे। वैसे ही एक एक ही वृद्धि से करे या द्विगुणित या त्रिगुणित कन्या का या प्रतिदिन नौ कन्या अर्चन करे।

तथा—नवभिर्लभते भूमिमैश्वर्यं द्विगुणेन तु। एकवृद्ध्या लभेत्क्षेममेकैकेन श्रियं लभेत् ॥

और नौ कन्याओं से भूमिका लाभ होता है। द्विगुणित से ऐश्वर्य मिलता है। एक एक की वृद्धि से क्षेम (कुशलता) मिलती है। एक एक कन्या से लक्ष्मी का लाभ होता है।

एकवर्षा तु या कन्या पूजार्थे तां विवर्जयेत्। गन्धपुष्पफलादीनां प्रीतिस्तस्या न विद्यते ॥ तेन द्विवर्षामारभ्य दशवर्षपर्यन्ता एव पूज्या न त्वन्याः। तासां च क्रमेण—कुमारिका, त्रिमूर्तिः, कल्याणी, रोहिणी, काली, चण्डिका, शाम्भवी, दुर्गा, सुभद्रा, इति नामभिः पूजा कार्या। आसां च प्रत्येकं पूजामन्त्राः फलविशेषाश्च तत्रैव ज्ञेयाः।

एक वर्ष की जो कन्या है उसे पूजा के कार्य में वर्जित करे। क्योंकि—उस कन्या को गन्ध, पुष्प, फल आदि की प्रीति नहीं होती है। इससे [2]दो वर्ष की कन्या से लेकर दश वर्ष की कन्या का ही [3]पूजा करे। अन्य का नहीं करे। उस कन्याओं का क्रम यों है—कुमारिका, त्रिमूर्ति, कल्याणी, रोहिणी, काली, चण्डिका, शांभवी, दुर्गा तथा सुभद्रा इन उपरोक्त नामों से पूजा करनी चाहिये। इनके प्रत्येक की पूजा के मन्त्र और फल विशेष वहीं से जानने चाहिये।

सामान्यतस्तु—मन्त्राक्षरमयीं लक्ष्मीं मातॄणां रूपधारिणीम्। नवदुर्गात्मिकां साक्षात्कन्यामावाहयाम्यहम् ॥

सामान्यता से तो—(सामान्यता से तो सबों में एकही) मन्त्राक्षरमयी लक्ष्मी, माताओं के रूप को धारण करनेवाली और नवदुर्गात्मिका कन्या का साक्षात् मैं आवाहन करता हूँ।

एवमभ्यर्चनं कुर्यात्कुमारीणां प्रयत्नतः। कञ्चुकैश्चैव वस्त्रैश्च गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥ नानाविधैर्भक्ष्यभोज्यैर्भोजयेत्पायसादिभिः ॥

इसप्रकार कुमारियों का प्रयत्न से अभ्यर्चन करे—कञ्चुक (चोली), वस्त्र, गन्ध, पुष्प, अक्षत आदि से तथा अनेकतरह के भक्ष्य एवं पायस आदि से भोजन करावे।

१—यदि षष्ठ्यादि पक्षस्तदा प्रतिमास्थापनं प्रतिपदि न कार्यं किन्तु षष्ठ्यामेव।

२—असंभवे तु—देवीपुराणे—तावत्संपूजयेत्कन्यां यावत्पुष्पं न दृश्यते। ३—न तथा तुष्यते शक्र होम दानजपेन तु। कुमारी भोजनेनात्र यथा देवी प्रसीदति ॥

(पूजने त्याज्यकन्याकथनम्)

तथा—ग्रन्थिस्फुटितशीर्णाङ्गी रक्तपूयव्रणाङ्किताम् । जात्यन्धां केकरां काणीं कुरूपां तनुरोमशाम् ॥ सन्त्यजेद्रोगिणीं कन्यां दासीगर्भसमुद्भवाम् ॥

ग्रन्थि (कूर्पराद्याः) जिसके शरीर में गांठ हों, जिसका अंग कटा हो, जिसके शरीर में रुधिर तथा मवादयुक्त व्रण हो, जो जन्म से अन्धी हो, जो (केकरा) ऐंचातानावाली हो, जो एक आंखवाली हो, जो कुरूपा हो, जिसके शरीर में बहुत रोयें हो, जो रोगवाली हो और दासी के गर्भ से उत्पन्न हो—ऐसी कन्याओं का पूजन कार्य में त्याग कर दे ।

(कन्यापूजने विचारः)

तथा—ब्राह्मणीं सर्वकार्येषु जयार्थे नृपवंशजाम् । लाभार्थे वैश्यवंशोत्थां सुतार्थे शूद्रवंशजाम् ॥ दारुणे चान्त्यजातानां पूजयेद्विधिना नरः । इति ।

और सब कार्यों में ब्राह्मणी, जय के लिए क्षत्रिय कन्या, लाभार्थ में वैश्य वंश से उत्पन्न कन्या, पुत्र के लिये शूद्र वंशोत्पन्न कन्या तथा दारुण कार्यों में अन्त्यजों से उत्पन्न कन्या का मनुष्य विधि से [1]पूजन करे ।

(वेदपारायणमपि कथनम्)

**अत्र वेदपारायणमप्युक्तं रुद्रयामले—एवं चतुर्वेदविदो विप्रान् सर्वान् प्रसादयेत् ।
तेषां च वरणं कार्यं वेदपारायणाय वै ॥ इति ।**

यहाँ पर वेदपरायण भी रुद्रयामल में कहा है कि—इसप्रकार चारों वेदों के जानकार सब ब्राह्मणों को प्रसन्न करे और उनका वेदपारायण के लिए वरण निश्चय करे ।

(एकोत्तराभिवृध्या विचारः)

तथा—एकोत्तराभिवृद्धया तु नवमी यावदेवहि । चण्डीपाठं जपेच्चैव जापयेद्वा विधानतः ॥

और-एकोत्तरवृद्धिसे नवमीतिथि पर्यन्त ही विधानसे चण्डीपाठको जपे (पाठ) या [2]जप (पाठ) करावे ।

१—देवीगृहेऽहोरात्रं दीपाश्च ज्वालनीयाः । २—पाठकोऽपि ब्राह्मण एव कार्यः । भविष्यपुराणे—ब्राह्मणं वाचकं विद्यान्नान्यवर्णजमादरात् । श्रुत्वाऽन्यवर्णजाद्राजन् वाचकान्नरकं व्रजेत् ॥

(ऋग्वेद) (यजुर्वेद) (सामवेद)

(अथर्ववेद) (पुराण) (न्यायशास्त्र)

(शिक्षा) (कल्प) (व्याकरण)

(ज्योतिष) (नाट्यशास्त्र) (शिक्षा)

(निरुक्त) (छन्द) (आयुर्वेद)

(सांख्य) (धनुर्वेद) (पातञ्जलयोग)

(चतुःषष्टिकला) (इतिहास) (धर्मशास्त्र)

(प्रणवादिविचारः)

तिथितत्त्वे वाराहीतन्त्रे—प्रणवं चादितो जप्त्वा स्तोत्रं वा संहितां पठेत्।
अन्ते च प्रणवं दद्यादित्युवाचादिपूरुषः ॥

तिथितत्त्व में और बाराहीतन्त्र में कहा है कि—आदि में प्रणव (ओंकार) को जपकर स्तोत्र या संहिता का पाठ करे तथा अन्त में प्रणव को पढे—यह आदि पुरुष ने कहा है।

(हस्तस्थापने विचारः)

आधारे स्थापयित्वा तु पुस्तकं पूजयेत्सुधीः। हस्तसंस्थापनादेव यस्माद्वै विफलं भवेत् ॥

आधार (चौकी आदि) पर पुस्तक का विद्वान्[1] स्थापन करे। क्योंकि हाथ में रखकर पाठ करने से निश्चित विफल हो जाता है।

(अब्राह्मणादिलिखितपुस्तके विचारः)

स्वयं च लिखितं यच्च शूद्रेण लिखितं भवेत्। अब्राह्मणेन लिखितं तच्चापि विफलं भवेत् ॥

स्वयं (अपने हाथ से) लिखा हुआ या शूद्र द्वारा लिखा हुआ या अब्राह्मण द्वारा लिखित मन्त्रादि का पाठ करने से विफल होता है।

(स्तोत्रे न्यासाभावे विचारः)

ऋषिछन्दादिकं न्यस्य पठेत् स्तोत्रं विचक्षणः। स्तोत्रं न दृश्यते यत्र प्रणवं तत्र विन्यसेत् ॥
सर्वत्र पाठो विज्ञेयस्त्वन्यथा विफलं भवेत् ॥ एवं नवमीपर्यन्तं प्रत्यहं कुर्यात्।

विद्वान् व्यक्ति ऋषि, छन्द आदि का न्यास कर स्त्रोत्र का पाठ करे। जिस स्तोत्र में न्यास आदि न हो वहाँ पर प्रणव से न्यास करे। इसप्रकार सर्वत्र पाठ में इसी व्यवस्था को जानना चाहिये। अन्यथा तो विफल कर्म होता है। इसप्रकार नवमीपर्यन्त प्रतिदिन करे।

(नवमीतिथिपर्यन्तं वृध्याऽपूजादिकथनम्)

अत्र विशेषो हेमाद्रौ देवीपुराणे—यदाद्ये दिवसे कुर्याच्चण्डिकापूजनादिकम्। द्विगुणं तद् द्वितीयेऽह्नि त्रिगुणं तत्परेऽहनि ॥ नवमीतिथिपर्यन्तं वृद्धया पूजाजपादिकम् ॥ इति।

यहाँ पर देवीपुराण में विशेष कहा है कि—आद्य (प्रथम) दिन में जो चण्डिका की पूजा आदि करे। दूसरे दिन उससे द्विगुणित तथा तीसरे दिन त्रिगुणित करे। इसतरह नवमीतिथि पर्यन्त वृद्धि द्वारा पूजा, जप आदि करे।

एतेन नवरात्रे पूजैव प्रधानमुपवासादि त्वङ्गमिति गम्यते। तिथिह्रासे तु तिथिद्वयनिमित्तं पूजादि महालयश्राद्धवदेकदिने आवृत्त्या कार्यम्। वृद्धौ तद्वदेवावृत्तिः। ततो नवरात्रोपवासादिसङ्कल्पं कुर्यात्।

इससे नवरात्र में पूजा ही प्रधान है, उपवास आदि तो उसका अंग है—यह जाना गया है। तिथि के ह्रास में तो दो तिथियों के निमित्त पूजा आदि महालयश्राद्ध की तरह एक दिन में आवृत्ति से करे। वृद्धि में तो महालयवत् आवृत्ति करे। तदनन्तर नवरात्र में उपवास आदिका संकल्प करे।

(स्वस्याशक्तावन्येन वा कथनम्)

स्वस्याशक्तावन्येन वा पूजादि कारयेत्। स्वयं वाप्यन्यतो वाऽपि पूजयेत्पूजयीत वा। इति तरङ्गिण्यां देवीपुराणात्।

अपने आप की शक्ति न हो तो अन्य के द्वारा पूजा आदि करवाले। तरङ्गिणी में देवीपुराण का मत है कि—स्वयं या अन्य के द्वारा पूजन करे या पूजा करवा ले।

१—अध्यायं प्राप्य विरमेन्न तु मध्ये कदाचन। कृते मध्ये विरामे तु अध्यायादि पठेत्पुनः ॥ शुद्धेनानन्यचित्तेन पठितव्यं प्रयत्नतः। न कार्यासक्तमनसा कार्यं स्तोत्रस्य वाचनम् ॥

(इदं देवीपूजनं शुक्रास्तादावपि कार्यम्)

इदं च देवीपूजनं शुक्रास्तादावपि कार्यम्। तदुक्तं धर्मप्रदीपे—नष्टे शुक्रे तथा जीवे सिंहस्थे च बृहस्पतौ। कार्या चैव स्वदेव्यर्चा प्रत्यब्दं कुलधर्मतः॥ इति।

यह देवीपूजा शुक्रास्त आदि में भी करे। उसी बात को धर्मप्रदीप में कहा है कि—शुक्र तथा बृहस्पति के अस्त हो जाने पर सिंह के बृहस्पति में कुलधर्मानुसार अपनी देवी का अर्चन प्रति वर्ष[1] करे।

(मलमासे विचारः)

मलमासे वचनाभावान्न भवति।

मलमास में तो वचन से नहीं होती है।

(साश्वस्याश्वपूजनकथनम्)

अत्र साश्वस्याश्वपूजनमुक्तम् मदनरत्ने देवीपुराणे—आश्वयुक्शुक्लप्रतिपत्स्वातियोगे शुभे दिने। पूर्वमुच्चैःश्रवा नाम प्रथमं श्रियमावहत्॥ तस्मात्साश्वैर्नरैस्तत्र पूज्योऽसौ श्रद्धया सह। पूजनीयाश्च तुरगा नवमीं यावदेव हि॥ शान्तिः स्वस्त्ययनं कार्यं तदा तेषां दिने दिने। धान्यं भल्लातकं कुष्टं वचा सिद्धार्थकास्तथा॥ पञ्चवर्णेन सूत्रेण ग्रन्थिं तेषां तु बन्धयेत्। वायव्यैर्वारुणैः सौरैः शाक्तैर्मन्त्रैः सवैष्णवैः॥ वैश्वदेवैस्तथाग्नेयैर्होमः कार्यो दिने दिने॥

अश्ववाले की अश्वपूजा मदनरत्न में देवीपुराण में कहा है कि—आश्विनशुक्ल प्रतिपदा स्वातिनक्षत्र शुभ दिन में पहले उच्चैश्रवा नामका घोड़ा उत्पन्न किया। इसलिए उस दिन अश्ववाले मनुष्य श्रद्धा से अर्चन करें। इसलिए नवमीतिथि तक ही घोडे की पूजा करें। शान्ति, (अश्वशान्ति और गजशान्ति, यह शान्तिमयूख आदि में प्रसिद्ध है) स्वस्त्ययन (स्वस्तिवाचन) को प्रतिदिन उनका करे। धान्य (धान), भल्लातक (भिलावा), कुष्ट (कूट), वचा (घुडवच), पीलीसरसो, पांचों वर्ण के सूत्र से, उनका (अश्वों की) ग्रन्थिवन्धन करे। वायु, वरुण, सूर्य, देवी, विष्णु, वैश्वदेव और अग्नि संज्ञक मन्त्रों से प्रतिदिन होम[2] करे।

कल्पतरौ त्वेतदग्रेऽन्यदपि—ज्येष्ठायोगे पुरा तत्र गजाश्चाष्टौ महाबलाः।
पृथिवीमावहन्पूर्वं सशैलवनकाननाम्॥

कल्पतरु में इसके आगे भी और कहा है कि—पहले ज्येष्ठा के योग में वहाँ पर महाबली आठ हाथियों ने पर्वत, वन-कानन के साथ पृथ्वी को धारण किया।

कुमुदैरावतौ पद्मः पुष्पदन्तोऽथ वामनः। सुप्रतीकोञ्जनो नीलस्तस्मात्तांस्तत्र पूजयेत्॥ शाक्राद्दक्षात्समारभ्य नवम्यन्तं च पूर्ववत्॥ अश्ववद्धोमादीत्यर्थः।

उनके नाम ये हैं—कुमुद, ऐरावत, पद्म, पुष्पदन्त, वामन, सुप्रतीक, अञ्जन और नील। अतः उनका वहाँ पर पूजन करे। शक्र (ज्येष्ठानक्षत्र) से प्रारंभकर नवमी पर्यन्त पूर्ववत् करे। अश्ववत्-होम आदि यह अर्थ है।

(प्रतिपदादिषु द्रव्याद्यर्पणादिविशेषकथनम्)

अथ प्रतिपदादिषु विशेषो दुर्गाभक्तितरङ्गिण्यां भविष्ये—केशसंस्कारद्रव्याणि प्रदद्यात्प्रतिपद्दिने। पक्वतैलं द्वितीयायां केशसंयमहेतवे॥ (पट्टदोरमिति गौडपाठः)

अब प्रतिपदातिथियों में विशेष दुर्गाभक्तितरंगिणी में भविष्यपुराण मत से कहा है कि—प्रतिपदा के दिन केशसंस्कार द्रव्यों को दे तथा द्वितीयातिथि को केश के संयम के हेतु पक्व तैल दे। पट्टदोरक-यह गौड पाठ है।

१—आरंभ निषेधार्थम्। देवीपुराणे—अस्तङ्गते गुरौ शुक्रे सिंहस्थे वसुधाधिपे। देवीपूजनमुद्दिष्टं स्थविरे बालके तथा॥ आद्यारंभे विरामः स्याद् द्वितीयादौ न चिन्तयेत्। मलमासे न कर्तव्यं नवदुर्गोत्सवव्रतम्॥

२—वैदिकैर्नाममन्त्रैर्वाऽष्टोत्तरशतं होमः।

दर्पणं च तृतीयायां सिन्दूरालक्तकं तथा । मधुपर्कं चतुर्थ्यां तु तिलकं नेत्रमण्डनम् ॥

तृतीयातिथि को शीसा, सिन्दूर तथा पैर में लगाने का रंग, चतुर्थी को मधुपर्क, तिलक और नेत्र का काजल दे।

पञ्चम्यामङ्गरागं च शक्त्यालङ्करणानि च । षष्ठ्यां बिल्वतरौ बोधं सायंसन्ध्यासु कारयेत् ॥

पञ्चमी को अंगराग तथा यथाशक्ति से अलंकार दे। षष्ठीतिथि को बिल्ववृक्ष के नीचे सायंकाल सन्ध्यासमय में जागरण करे।

सप्तम्यां प्रातरानीय गृहमध्ये प्रपूजयेत् । उपोषणमथाष्टम्यामात्मशक्त्या च पूजनम् ॥

सप्तमीतिथि को प्रातःकाल ले आकर घर के मध्य में पूजा करे। अष्टमीतिथि को उपवास और यथाशक्ति से पूजन करे।

नवम्यामुग्रचण्डायाः पूजां कुर्याद्बलिं तथा । सम्पूज्य प्रेषणं कुर्याद्दशम्यां शाबरोत्सवैः ॥

नवमीतिथि में उग्रचण्डा का पूजन कर बलि दे। दशमीतिथि को पूजन कर प्रेषण (भेजना) करे।

अनेन विधिना यस्तु देवीं प्रीणयते नरः । स्कन्दवत्पालयेद्देवी तं पुत्रधनकीर्तिभिः ॥

इस विधि से जो मनुष्य देवी को प्रसन्न करता है उसको देवी पुत्र, धन तथा कीर्ति से युक्त कर तथा स्कन्द (कार्तिकेय) के सदृश पालन करती है।

(बिल्ववृक्षे अधिवासनपूर्वकं पत्रिकादिपूजाकथनम्)

कृत्यतत्त्वार्णवे लैङ्गे—कन्यायां कृष्णपक्षे तु पूजयित्वार्द्रभेऽपि वा । नवम्यां बोधयेद्देवीं महाविभवविस्तरैः ॥

कृत्यतत्त्वार्णव में लिंगपुराण का वचन है कि—कन्या के सूर्य में, कृष्णपक्ष में या आर्द्रानक्षत्र में भी पूजनकर नवमीतिथि में महाविभव के विस्तारों से देवी का जागरण करे।

शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां तु देवीकेशविमोक्षणम् । प्रातरेव तु पञ्चम्यां स्नापयेत्सुशुभैर्जलैः ॥

शुक्लपक्ष की चतुर्थीतिथि को देवी के केशों का मोचन (उतरवा) करा दे। पञ्चमीतिथि को प्रातःकाल ही शुभजलों से स्नान करावे।

षष्ठ्यां सायं प्रकुर्वीत बिल्ववृक्षेऽधिवासनम् । सप्तम्यां पत्रिकापूजा अष्टम्यां चाप्युपोषणम् ॥
पूजा च जागरश्चैव नवम्यां विधिवद्बलिः । विसर्जनं दशम्यां तु क्रीडाकौतुकमङ्गलैः ॥

षष्ठीतिथि को सायंकाल में बिल्ववृक्ष के नीचे अधिवासन करे। सप्तमीतिथि को पत्रिकापूजा, अष्टमीतिथि में उपोषण, पूजा और जागरण करे और नवमीतिथि को विधिवत् बलि दे। दशमीतिथि में तो क्रीडा-कौतुक-मंगलों से विसर्जन करे।

(नवम्यां बोधनासामर्थ्ये विचारः)

अत्र नवम्यां बोधनासामर्थ्ये षष्ठ्यां बोधनमिति स्मार्ताः । फलभूयार्थिनः समुच्चय इत्यन्ये ।

यहाँ पर नवमीतिथि में जागरण के असामर्थ्य में षष्ठीतिथि को जागरण करे—यह स्मार्तों का कहना है। अन्यों का मत है कि—अधिकफलाभिलाषी समुच्चय करें।

(नवम्यां बोधनमन्त्रः)

नवम्यां मन्त्रः—कालिकापुराणे—इषे मास्यसिते पक्षे नवम्यामार्द्रभे दिवा ।
श्रीवृक्षे बोधयामि त्वां यावत्पूजां करोम्यहम् ॥

नवमीतिथि का मन्त्र कालिकापुराण में कहा है कि—आश्विनमास के कृष्णपक्ष की नवमीतिथि को आर्द्रानक्षत्र में दिन में जबतक आपकी पूजा को मैं करता हूँ तबतक श्रीवृक्ष के नीचे आपका जागरण करता हूँ।

(स्त्रीकर्तृकव्रते विशेषकथनम्)

अत्र स्त्रीव्रते विशेषः परिभाषायां ज्ञेयः ।

यहाँ पर स्त्रीव्रत में विशेष (पूर्व कहे हुए) परिभाषाप्रकरण से जानना चाहिये।

(अशौचे प्राप्ते पूजनादौ विचारः)

अत्राशौचे विशेषो निर्णयामृते विश्वरूपनिबन्धे—आश्विने शुक्लपक्षे तु प्रारब्धे नवरात्रके।
शावाशौचे समुत्पन्ने क्रिया कार्या कथं बुधैः ॥

यहाँ पर आशौच में विशेष निर्णयामृत तथा विश्वरूपनिबन्ध में कहा है कि—आश्विन शुक्लपक्ष के नवरात्र के प्रारंभ में शावाशौच (मरणाशौच) उत्पन्न हो जाय तो विद्वान् ज्ञानी क्रिया को कैसे करेंगे।

सूतके वर्तमाने च तत्रोत्पन्ने सदा बुधैः। देवीपूजा प्रकर्तव्या पशुयज्ञविधानतः ॥

वर्तमान समय सूतकके उत्पन्न होने पर सदा पशुयज्ञविधान से देवीपूजा विद्वानों को करनी चाहिये।

सूतके पूजनं प्रोक्तं दानं चैव विशेषतः। देवीमुद्दिश्य कर्तव्यं तत्र दोषो न विद्यते ॥ इति।

सूतक में पूजन और विशेषकर दान कहा है। देवी को उद्देश्यकर करे तो दोष नहीं होता है।

कालादर्शे विष्णुरहस्येऽपि—पूर्वं सङ्कल्पितं यच्च व्रतं सुनियतव्रतैः।
तत्कर्तव्यं नरैः शुद्धं दानार्चनविवर्जितम् ॥ इति।

कालादर्श में और विष्णुरहस्य में भी कहा है कि—जो पहले संकल्प जिस व्रत का किया है उसे मनुष्य शुद्धव्रत को दान-अर्चन से वर्जित होकर करे।

गौडनिबन्धे तिथितत्त्वेऽप्युक्तम्—आश्विनकृष्णनवम्यादि शुक्लप्रतिपदादि षष्ठयादि सप्तम्यादि चैकं कर्म। अतश्च मध्ये आशौचपातेऽपि न दोषः, 'सङ्कल्पो व्रतसत्रयोः' इति विष्णूक्तेः—इति। आरब्धं स्वयमेव कार्यम्, अनारब्धं त्वन्येन कारयेदिति दिवोदासः। रजस्वला त्वन्येन कारयेत्। सूतकादिवद्विशेषवचनाभावात्।

गौडनिबन्ध में और तिथितत्त्व में भी कहा है कि—आश्विनकृष्णपक्ष की नवमी, शुक्लपक्ष की प्रतिपदादि, षष्ठी, सप्तमी एक कर्म है और इसलिए मध्य में आशौच के आने पर दोष नहीं है। 'संकल्पो व्रतसत्रयोः' व्रत और सत्रयाग में संकल्प विष्णु ने कहा है। प्रारंभ को स्वयं ही करे तथा जिसका आरंभ नहीं किया हो उसे अन्य से करा दे—यह दिवोदास ने कहा है। रजस्वला स्त्री तो अन्य से करावे। सूतकादिवत् विशेष वचन के अभाव से।

(स्त्रीणां नवरात्रे ताम्बूलादिचर्वणकथनम्)

स्त्रीणां च नवरात्रे ताम्बूलादिचर्वणं भवति। तदुक्तं व्रतहेमाद्रौ गारुडे—गन्धालङ्कारताम्बूलपुष्पमालानुलेपनम्। उपवासे न दुष्यन्ति दन्तधावनमञ्जनम् ॥ इति। एतत्सभर्तृकोपवासविषयम्। अन्यश्चात्र विशेषः परिभाषायामुक्तः।

स्त्रियों को नवरात्र में तांबूल आदि चर्वण होता है। उसी बात को हेमाद्रिव्रतखण्ड में गरुडपुराण का वचन है कि—गन्ध, अलंकार, तांबूल, पुष्पमाला, अनुलेपन, दन्तधावन और अभ्यञ्जन उपवास में दूषित नहीं होता है। यह सभर्तृक (जिसका पति जीवित हो) उपवास विषयक है और तो विशेष परिभाषा में कह चुके हैं।

(आश्विनशुक्लपञ्चम्यामुपाङ्गललिताव्रतकथनम्)

आश्विनशुक्लपञ्चम्यामुपाङ्गललिताव्रतं महाराष्ट्रेषु प्रसिद्धम्। तत्र यद्यपि कथायां कालविशेषो नोक्तस्तथापि 'रात्रौ जागरणं कुर्याद् गीतवादित्रनिःस्वनैः। इति रात्रौ जागरोक्तेः शक्तिपूजाया रात्रौ प्राशस्त्याच्च रात्रिव्यापिनी ग्राह्येति केचित्।

वस्तुतस्तु वचनं विना रात्रौ पूजायां मानाभावात् जागरस्य चाङ्गत्वाद्युग्मवाक्यात्—

आश्विनशुक्ल पञ्चमी को उपांगललिता व्रत महाराष्ट्रों में प्रसिद्ध है। वहाँ पर यद्यपि कथा में समय का विशेष निर्देश नहीं किया है तथापि—गीतवादित्र शब्दों से रात में जागरण प्राशस्त्य कहा है अतः रात्रिव्यापिनी ग्रहण करे—यह किसी का मत है।

सिद्धान्त तो यह है कि—वचन के बिना रात्रिपूजा में प्रमाणाभाव से और जागरण का अंग है—युग्मवाक्य से।

भुक्त्वाजागरणे नक्ते चन्द्राद्यर्घ्यव्रते तथा। ताराव्रतेषु सर्वेषु रात्रियोगो विशिष्यते ॥ इति कालहेमाद्रौ वचनाच्च पूर्वविद्धा ग्राह्या। रात्रिशब्दः पूर्वविद्धावचन इति हेमाद्रिः। अस्य च भुक्त्वा-जागरणरूपत्वादिति साधु प्रतीमः। भुक्त्वा जागरणं यत्रेत्येकं पदम्, तस्मिन् व्रते इत्यर्थः। अन्यथा भुक्त्वेत्यसङ्गतेः। दिवोदासीयेऽप्येवम्।

नक्तव्रत (रात्रिव्रत) में, चन्द्रार्घ्यव्रत में, (गणेशचतुर्थीव्रत में) सब तारा व्रतों में, भोजनोत्तर जागरण में रात्रियोग को उत्तम कहा है।

यह कालहेमाद्रि के वचन से पूर्वविद्धा ग्रहण करे। रात्रिशब्द पूर्वविद्धावाची है—यह हेमाद्रिमत है। भोजनोत्तर जागरणरूप होने से यह ठीक जानते हैं। भुक्त्वा और जागरण यह एकपद यहाँ पर है उस व्रत में यह अर्थ है। अन्यथा 'भुक्त्वा' यह पद असंगत हो जायगा। दिवोदासीय में भी यही कहा है।

(आश्विनशुक्लपक्षे पुस्तकेषु मूलनक्षत्रे सरस्वतीस्थापनादिकथनम्)

आश्विनशुक्लपक्षे मूलनक्षत्रे पुस्तकेषु सरस्वतीस्थापनम्। यथोक्तं निर्णयामृते देवीपुराणे—मूलेषु स्थापनं देव्याः पूर्वाषाढासु पूजनम्। उत्तरासु बलिं दद्याच्छ्रवणेन विसर्जयेत् ॥ इति।

आश्विनशुक्लपक्ष के मूलनक्षत्र में पुस्तकों में सरस्वती का स्थापन कहा है। उसका निर्णयामृत में देवीपुराण के वचन से कहा है कि—मूलनक्षत्रों में देवी का स्थापन करे और पूर्वाषाढा में पूजन करे। उत्तराओं में बलि दे तथा श्रवण में विसर्जन करे।

रुद्रयामलेऽपि—मूलऋक्षे सुराधीश पूजनीया सरस्वती। पूजयेत्प्रत्यहं देव यावद्वैष्णवमृक्षकम् ॥

रुद्रयामल में भी कहा है कि—हे सुराधीश, सरस्वती का मूलनक्षत्र में पूजन करे। हे देव, प्रतिदिन पूजन करे जब तक वैष्णवनक्षत्र रहे।

नाध्यापयेन्न च लिखेन्नाधीयीत कदाचन। पुस्तके स्थापिते देव विद्याकामो द्विजोत्तमः ॥

न किसी को पढावे, न लिखे न कभी पढे। हे देव, द्विजोत्तम, विद्या की कामना के लिए पुस्तक में स्थापना करे।

सङ्ग्रहे—आश्विनस्य सिते पक्षे मेधाकामः सरस्वतीम्। मूलेनावाहयेद्देवीं श्रवणेन विसर्जयेत् ॥

संग्रह में कहा है कि—आश्विनशुक्लपक्ष में बुद्धि की कामना के लिए सरस्वतीदेवी का मूलनक्षत्र में आवाहन करे और श्रवणनक्षत्र में विसर्जन करे।

मूलस्याद्यपादे आवाहनमिति शिष्टाः। श्रवणाद्यपादे च विसर्जयेत्। आदिभागो निशायां तु श्रवणस्य यदा भवेत्। संप्रेषणं तदा देव्या दशम्यां च महोत्सवः ॥ इति चिन्तामणौ ब्रह्माण्डपुराणात्।

शिष्टमत यह है कि—मूल के आद्यपाद में आवाहन करे और श्रवण के आद्यपाद में विसर्जन करे।

चिन्तामणि में ब्रह्माण्डपुराण का मत है कि—श्रवणनक्षत्र का जब रात में आदि का भाग (प्रथमपाद) जब हो तब ही विसर्जन करे देकी को देखे और दशमीतिथि में महोत्सव करे।

(ज्येष्ठानक्षत्रयुतायां षष्ठ्यां बिल्वाभिमन्त्रणम्)

अथ षष्ठी। गौडनिबन्धे देवीपुराणे—ज्येष्ठानक्षत्रयुक्तायां षष्ठ्यां बिल्वाभिमन्त्रणम्। सप्तम्यां मूलयुक्तायां पत्रिकायाः प्रवेशनम् ॥ पूर्वाषाढायुताष्टम्यां पूजाहोमाद्युपोषणम्। उत्तरेण नवम्यां तु बलिभिः पूजयेच्छिवाम् ॥ श्रवणेन दशम्यां तु प्रणिपत्य विसर्जयेत्।

अब षष्ठी को कहते हैं—गौडनिबन्ध में देवीपुराण का मत है कि—ज्येष्ठानक्षत्र से युक्त षष्ठीतिथि में बिल्व का अभिमन्त्रण (आवाहन) करे और मूलनक्षत्र से युक्त सप्तमीतिथि में पत्रिका का प्रवेश करे। पूर्वाषाढा से युक्त अष्टमीतिथि में पूजा, होम, उपोषण आदि करे। बाद में नवमीतिथि को बलियों से शिवा का पजन करे। श्रवणनक्षत्र स युक्त दशमीतिथि को प्रणामकर विसर्जन करे।

कालिकापुराणे—बोधयेद्बिल्वशाखायां षष्ठ्यां देवीं फलेषु च। सप्तम्यां बिल्वशाखां तामाहृत्य प्रतिपूजयेत्॥ पुनः पूजां तथाष्टम्यां विशेषेण समाचरेत्। जागरं च स्वयं कुर्याद्बलिदानं महानिशि॥ प्रभूतबलिदानं तु नवम्यां विधिवच्चरेत्। विसर्जनं दशम्यां तु कुर्याद्वै शारदोत्सवैः॥ धूलिकर्दमनिक्षेपैः क्रीडाकौतुकमङ्गलैः॥ अत्रसर्वत्र तिथिनक्षत्रयोगादरो मुख्यः कल्पः। तदभावे तु तिथिरेव ग्राह्या।

कालिकापुराण में कहा है कि—षष्ठीतिथि में बिल्व की शाखा में तथा फलों में देवी का बोधन करावे। सप्तमीतिथि में बिल्व की शाखा को ग्रहण कर पजन करे। फिर वैसे ही विशेषकर अष्टमीतिथि में पूजा करे।

स्वयं जागरण करे तथा महानिशा में बलिदान करे। दशमीतिथि में शरद्कालीन उत्सवों को करे। धूल, कर्दम (कीचड) का निक्षेप (प्रक्षेप) तथा क्रीडा और कौतुकमङ्गलों से विसर्जन करे। यहाँ पर सर्वत्र तिथि तथा नक्षत्र के योग का आदर मुख्यकल्प (पक्ष) है। उसके अभाव में निथि ही ग्रहण करे।

तिथिः शरीरं देवस्य तिथौ नक्षत्रमाश्रितम्। तस्मात्तिथिं प्रशंसन्ति नक्षत्रं न तिथिं विना॥ इति विद्यापतिलिखितवचनात्।

विद्यापतिका लिखित वचन है कि—देवताका शरीरतिथि है और तिथिमें नक्षत्र आश्रित है। इसलिए तिथि की प्रशंसा करते हैं। तिथि के बिना नक्षत्र की नहीं करते हैं।

तिथिनक्षत्रयोर्योगे द्वयोरेवानुपालनम्। योगाभावे तिथिर्ग्राह्या देव्याः पूजनकर्मणि॥ इति तत्रैव देवलोक्तेश्च।

और वहीं पर देवल ने कहा है कि—तिथि तथा नक्षत्र के योग में दोनों ही का पालन करे। दोनों के योग का अभाव हो तो देवी के पजनकर्म में तिथि का ग्रहण करना चाहिये।

अत्र च पत्रीप्रवेशात्पूर्वेद्युः सायंकाले षष्ठ्यभावे तत्पूर्वदिनेऽधिवासनं कार्यम्। सायंकालेऽत्यन्तासत्त्वे त्वधिवासनलोपः।

यहाँ पर पत्री के प्रवेश के पूर्वदिन सायंकाल में षष्ठी के अभाव में पूर्वदिन अधिवासन करना चाहिये। सायंकाल में अत्यन्त असत्व में तो अधिवासन का लोप होता है।

षष्ठ्यां सायं प्रकुर्वीत बिल्ववृक्षेऽधिवासनम्। इति पूर्ववचनादिति कल्पतरुः। सायंश्रुतिः फलातिशयमात्रार्था न तु कर्मलोप इत्याचार्यचूडामणिः।

षष्ठीतिथि को सायंकाल बिल्ववृक्ष में अधिवासन करे—इस पूर्ववचन से यह कल्पतरु ने कहा है। सायंकाल की श्रुति (कथन) फलातिशयार्थमात्र—अधिकफलार्थ है। न कि कर्मलोपपरक है—यह आचार्य चूडामणि ने कहा है।

(बिल्वसमीपे गत्वा प्रार्थनामन्त्रः)

अत्र क्रमः। बिल्वसमीपं गत्वा देवीं बिल्वं च सम्पूज्य प्रार्थयेत्। तत्र मन्त्रः—रावणस्य वधार्थाय रामस्यानुग्रहाय च। अकाले ब्रह्मणा बोधो देव्यास्त्वयि कृतः पुरा॥

उसका क्रम यों है कि—बिल्व के पास जाकर देवी तथा बिल्व का पूजन कर प्रार्थना करे। उसमें मन्त्र यों है—रावण के वध के लिए और राम के अनुग्रह के लिए असमय में ब्रह्मा ने देवी का बोधन पहले आप में किया।

अहमप्याश्रितः षष्ठ्यां सायाह्ने बोधयाम्यतः। श्रीशैलशिखरे जातः श्रीफलः श्रीनिकेतनः॥ नेतव्योऽसि मया गच्छ पूज्यो दुर्गास्वरूपतः॥ इति।

अतः मैं भी सायंकाल के समय षष्ठीतिथि में आपके आश्रित देवी का बोधन करता हूँ श्रीशैल (श्रीशैल नामवाले पर्वत के) शिखर (चोटी पर) में उत्पन्न श्रीफल (बिल्वफल) लक्ष्मी का निवासस्थान है। मैं आपको ले जाऊँगा। क्योंकि आप आवें। दुर्गास्वरूप वाले आप पूज्य हैं।

(बिल्वशाखापत्रीप्रवेशपूजाकथनम्)

एवं देवीमधिवास्य परदिने निमन्त्रितबिल्वशाखापत्रीप्रवेशपूजां कुर्यात् ।

तदुक्तं हेमाद्रौ लैङ्गे—मूलाभावे तु सप्तम्यां केवलायां प्रवेशयेत् । युग्माभ्यां नवबिल्वस्य फलाभ्यां शाखिकां तथा ॥ तथैव प्रतिमां देव्याः स्नात्वाभ्युक्ष्य प्रवेशयेत् ॥

इसप्रकार देवी का अधिवासन कर दूसरे दिन निमन्त्रित बिल्व की शाखापत्री में प्रवेश कर पजा करे। उसी बात को हेमाद्रि में लिङ्गपुराणवचन से कहा है कि—मूलनक्षत्र के अभाव में तो केवल सप्तमीतिथि में प्रवेश करे। युग्म दो नूतनबिल्व के फलों तथा शाखा को वैसे ही देवी की प्रतिमा का स्नान कराकर अभ्युक्षण कर प्रवेश करे।

अत्र चोपवासपूजादावौदयिकी सप्तमी ग्राह्या, न तु युग्मवाक्यात्पूर्वा ।

और यहाँपर उपवास, पूजा आदि में औदयिकी सप्तमीतिथि का ग्रहण करे न कि युग्मवाक्य से पूर्वा ले।

युगाद्या वर्षवृद्धिश्च सप्तमी पार्वतीप्रिया । रवेरुदयमीक्षन्ते न तत्र तिथियुग्मते ॥ इति कृत्यतत्त्वार्णवोदाहृतवचनात् ।

कृत्यतत्त्वार्णव में कहा हुआ वचन है कि—युगादि तिथि, वर्ष की वृद्धि और पार्वती को प्रिय सप्तमीतिथि ये सब सूर्य के उदयकाल को देखती हैं। उसमें दो तिथि की युग्मता नहीं होती है।

भगवत्याः प्रवेशादि विसर्गान्ताश्च याः क्रियाः । तिथावुदयगामिन्यां सर्वास्ताः कारयेद् बुधः ॥ इति तिथितत्त्वे नन्दिकेश्वरपुराणाच्च । दुर्गाभक्तितरङ्गिण्यामप्येवम् ।

तिथितत्त्वमें नन्दिकेश्वरपुराण का मत है कि-भगवती के प्रवेश आदि से विसर्गान्त (विसर्जनपर्यन्त) जितनी क्रिया है। उन सबोंको बुद्धिमान् मनुष्य उदयगामिनीतिथि में करे। दुर्गाभक्तितरङ्गिणी में भी यही है।

तत्रापि घटिकातो न्यूनत्वे परा कार्या । 'व्रतोपवासनियमे घटिकैकापि या भवेत् ।' इति देवलोक्तेरिति गौडाः ।

उसमें भी घटिका से न्यून में परा करे। देवल ने कहा है कि—व्रत तथा उपवास के नियम में एक घटिका भी तिथि हो, उसे स्वीकार करे। यह गौड कहते हैं।

दाक्षिणात्यास्तु पूर्ववचनमदृष्ट्वा युग्मवाक्यात्पूर्वां कुर्वन्ति । पत्रिकापूजा च पूर्वाह्ण एव कार्या न तु मूलानुरोधान्मध्याह्नादाविति कृत्यतत्त्वार्णवे उक्तम् ।

दाक्षिणात्य तो पूर्ववचन को न देखकर युग्मवाक्य से पूर्वा करते हैं और पत्रिकापूजा को पर्वाह्ण में ही करे न कि मूल के अनुरोध से मध्यान्ह आदि में करे—यह कृत्यतत्त्वार्णव में कहा है।

(नवपत्रिकाकथनम्)

पत्रिकास्तु—रम्भा कवी हरिद्रा च जयन्ती बिल्वदाडिमौ ।
अशोको मानवृक्षश्च धान्यादि-नव पत्रिकाः ॥ इति तत्रैवोक्ताः ।

पत्रिका तो—रम्भा (केलाफल), कवी (दारुहलदी), हरिद्रा (हलदी), जयन्ती (मेउडी), बिल्व, दाडिम (अनार) अशोक (अशोकवृक्ष), मानवृक्ष (अमलतास), धान्य (धान्य), आदि ये नवपत्रिका वहीं पर कहीं है।

(अस्यामेव सप्तम्यां देवीत्रिरात्रकथनम्)

अस्यामेव सप्तम्यां देवीत्रिरात्रमुक्तं हेमाद्रौ—प्रतिपदादिनवतिथिषु उपवासादिकरणासामर्थ्ये सप्तम्यादिदिनत्रये वा कुर्यात् ।

इसी में ही सप्तमी में देवीका त्रिरात्र हेमाद्रि में कहा है कि—प्रतिपदा आदि से नवमीतिथियों में उपवास करने में असामर्थ्य हो तो सप्तमी (अष्टमी, नवमी) आदि तीन तिथियों में करे।

तदाह धौम्यः—आश्विने मासि शुक्ले तु कर्तव्यं नवरात्रकम्। प्रतिपदादिक्रमेणैव यावच्च नवमी भवेत् ॥ त्रिरात्रं वापि कर्तव्यं सप्तम्यादि यथाक्रमम् ॥

इसी बात को धौम्य ने कहा है कि—आश्विनमास के शुक्लपक्ष में नवरात्र करना चाहिये। प्रतिपदा आदि क्रम से ही नवमी हो तवतक या त्रिरात्र भी सप्तम्यादि यथाक्रम से करे।

(आश्विन्यादिमासचतुष्टये विचारः)

अत एव हेमाद्रौ देवीपुराणे मङ्गलाव्रते—आश्विने वाथवा माघे चैत्रे वा श्रावणेऽपि वा। कृष्णाष्टम्यादि कर्तव्यं व्रतं शुक्लावधिं हरेः ॥ यावच्छुक्लाष्टमी शक्र उपोष्या तु विधानतः।

इसीलिये हेमाद्रि में देवीपुराण के मङ्गलव्रत में कहा है कि—आश्विन या माघ, चैत्र या श्रावणमास में भी कृष्णपक्ष की अष्टमी से शुक्लपक्ष की अवधि तक हरि का व्रत करना चाहिये। हे शक्र, जबतक शुक्लपक्ष की अष्टमी हो तबतक विधान से उपवास करे तथा दान, होम, जप, पूजा, प्रतिदिन कन्या को भोजन करावे।

दानं होमो जपः पूजा कन्या भोज्यास्तथान्वहम् ॥ महाभैरवरूपेण अस्थिमालाधराश्च ये। पूजनीया विशेषेण वस्त्रैर्ग्रामपुरादिषु ॥ इति मासचतुष्टयेऽभिधाय। अन्यत्रापि—अथवा नवरात्रं च सप्त पञ्च त्रिकं दिवा। एकभक्तेन नक्तेनायाचितोपोषितैः क्रमात् ॥ इति।

ग्राम, पुर (नगर) आदि में महाभैरव के रूप से जो अस्थियों की मालाधारी हैं उनका विशेष कर वस्त्रों से पूजन करे। यह चार-चार महिने में करे यों कहकर अन्यत्र भी कहा है कि—या नवरात्र, सात, पांच, तीन, एकदिन एकभक्त, नक्त या अयाचित उपवास क्रम से करे।

पूजयेताश्विने शक्र यावच्छुक्लाष्टमी भवेत्। सर्वकार्याणि सिद्ध्यन्ति शक्र नास्त्यत्र संशयः ॥ इत्युक्तम्। दिवेत्येकरात्रमुक्तम्।

हे शक्र, आश्विनमास में जबतक शुक्लपक्ष की अष्टमी हो तबतक पूजन करे। इससे सारे मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं, इसमें यहाँ पर-तनिक भी संशय नहीं है। यों कहा। दिन से एकरात्र (अष्टमी या नवमी-तिथि में) कहा है।

गोविन्दार्णवे देवीपुराणे—नवरात्रव्रतेऽशक्तस्त्रिरात्रं चैकरात्रकम्। व्रतं चरति यो भक्तस्तस्मै दास्यामि वाञ्छितम् ॥ इति। तत्रापि सप्तम्याः पूजने पूर्वोक्तो निर्णयः। अत्र तिथियौगपद्ये तन्त्रेणोपवासः। तिथिद्वयनिमित्तं पूजादिकं तु भेदेन।

गोविन्दार्णव में देवीपुराण का मत है कि—नवरात्रव्रत करने में अशक्त हो तो त्रिरात्र या एकरात्र व्रत को जो भक्त करता है उसकेलिए इच्छित फल देती हूँ।

उसमें भी (त्रिरात्रव्रत में भी) सप्तमी के पूजन में पूर्वोक्तनिर्णय है। यहाँ पर (पत्रीप्रवेश में) तिथि के यौगपद्य से (दो तिथि एकदिन हो तो) तिथिद्वय निमित्त (दो तिथियों का अर्चनादि) पूजा आदि तो भेद से करे।

(दुर्गागृहादिविचारः)

अत्र विशेषो निर्णयामृते भविष्ये—सप्तम्यां नव गेहानि दारुजानि नवानि च। एकं वा वित्तभावेन कारयेत्सुसमाहितः ॥ दुर्गागृहं प्रकर्तव्यं चतुरस्रं सुशोभनम्।

इनमें विशेष निर्णयामृतमत में भविष्यपुराण का मत है कि—सप्तमी में नवीन (नूतन) नवीन दारु के घरों को बनवाये। या वित्तानुसार (वित्तासत्त्वे तुपूर्वगृहमेव वस्त्रादिभिः, कदलीस्तम्भादिभिश्चभूषणीयम्) सुसमाहित मन से एक घर का निर्माण करावे। दुर्गाघर चतुरस्र (चौकोर) सुशोभित (निर्माण) करे।

(गृहमध्ये वेदिकाकरणम्)

तन्मध्ये वेदिकां कुर्याच्चतुर्हस्तां समां शुभाम् ॥ तस्यां सिंहासनं क्षौमं कम्बलाजिनसंयुतम्।

उसके मध्य में चार हाथ की बराबरवाली शुभ वेदी करे उसपर सिंहासन को रेशमी, कम्बल और अजिन (मृगचर्म) से युक्त करे।

(चतुर्भुजादिदुर्गामूर्तिप्रतिष्ठा)

तत्र दुर्गां प्रतिष्ठाप्य सर्वलक्षणसंयुताम् ॥ भुजैश्चतुर्भी रुचिरैर्दशभिर्वा विभूषिताम् । तप्तहाटक-वर्णाभां त्रिनेत्रां शशिशेखराम् ॥ अनेककुसुमाकीर्णां कपर्देन सुशोभिताम् । नितम्बबिम्बसन्नद्धकिंकिणीक्वाणनादिनीम् ॥ शूलचक्रदण्डशक्तिवज्रचापासिधारिणीम् ॥ घण्टाक्षमालाकरकपानपात्रलसत्कराम् ॥ तदग्रे छिन्नशिरसं माहिषं रुधिराप्लुतम् । निसृतार्धतनुं कण्ठनाले चर्मासिधारिणम् ॥ देवीधृतकरग्रीवं शूलनोरसि ताडितम् । नागपाशेन विक्षिप्तं हर्यक्षेणापि विद्रुतम् ॥ वमद्रुधिरवक्त्रेण धुन्वतोर्ध्वं सटान् रुषा । सर्वतो मातृचक्रेण सेव्यमाना सुरैस्तथा ॥ तत्र देवी प्रकर्तव्या हैमी वा राजती तथा । मृद्वार्क्षी लक्षणोपेता खड्गशूले च पूजयेत् ॥ वार्क्षी=दारुमयी ।

उस वेदीपर उसके मध्य में सब लक्षणों से युक्त दुर्गा की प्रतिष्ठा[1] कर चार हाथ या दश हाथोंवाली से सुशोभित, तपे हुए सोने के वर्णवाली, तीन नेत्रों वाली, मस्तक पर चन्द्रमा हो, नानाप्रकार के पुष्पों से युक्त हो कपर्दी (जटाजूट) से सुशोभित हो, नितम्ब (चूतड) बंधी करधनी के शब्द से शब्दायमान हो । त्रिशूल, चक्र, दण्ड (बाण), शक्ति, वज्र, पाश तथा खड्ग को धारण करनेवाली, जिसके हाथ में घण्टा, अक्षमाला (रुद्राक्षमाला) को हाथ में लिए और पानपात्र (मदिरापात्र) को लिये हुए । उसके आगे—ऐसा भैंसा हो जिसका शिर कट रहा हो, रुधिर से भरा हो, उसका आधा शरीर बाहर निकल रहा हो, कण्ठ के नाल से ढाल तथा तलवार को धारण करनेवाली, जिसकी ग्रीवा-गर्दन देवी के हाथ में हो । उसकी छाती में शूल से ताडना कर रही हो । नागपाश से प्रक्षेप (फैंका) किया गया हो, सिंह उसपर झपट रहा हो, मुख से रुधिर गिरता हो, बड़े क्रोधसे जिसके गर्दन के बालों को कंपा रहे हों, सबतरह से मातृचक्र से संसेव्य और देवताओं से भी सेबनीय वहाँ पर देवी की मूर्ति सुवर्ण या चांदी, मिट्टी या दारुमयी की अच्छे लक्षणोंसे संपन्न बनवाकर खड्ग तथा त्रिशूलधारी देवी का पूजन[2] करे ।

(मूर्तिस्थापनेदिक्विचारः)

मूर्तिस्थापने विशेषो दुर्गाभक्तितरङ्गिण्यां देवीपुराणे—याम्यास्या शुभदा दुर्गा पूर्वास्या जयवर्द्धिनी । पश्चिमाभिमुखी नित्यं न स्थाप्या सौम्यदिङ्मुखी ॥

देवीमूर्ति के स्थापन में विशेष दुर्गाभक्तितरङ्गिणी में देवीपुराण का मत है कि—दक्षिणाभिमुखी दुर्गा की मूर्ति शुभ को देनेवाली होती है । पूर्वाभिमुखी दुर्गा की मूर्ति जय को बढ़ानेवाली होती है । पश्चिमाभिमुखी दुर्गा की मूर्ति सदा स्थापन के लिए उत्तम है तथा उत्तराभिमुखी मूर्ति दुर्गा की स्थापना न करे ।

(प्रतिमाभावे विचारः)

प्रतिमाऽभावे विशेषस्तत्रैव—हैमराजतमृद्धातुशैलचित्रार्पितापि वा ।
खड्गे शूलेऽर्चिता देवी सर्वकामफलप्रदा ॥

प्रतिमा के अभाव में वहीं पर विशेष कहा है कि—सुवर्ण, रजत, मृत्तिका, धातु, पर्वत या चित्र द्वारा निर्मित, खड्ग तथा शूल में पूजित देवी सब कामनाओं के फल को देनेवाली होती है ।

यद्यद्यस्यायुधं प्रोक्तं तस्मिंस्तां प्रति पूजयेत् । देवी भक्त्यार्चिता पुंसां राज्यायुः सुतसौख्यदा ॥

जो जो जिसके आयुध कहे गये हैं उसमें उसकी पूजा करे । भक्ति से देवी भी अर्चना की हुई पुरुषों को राज्य, आयु, पुत्र तथा सुख देती है ।

कृत्यतत्त्वार्णवे कालिकापुराणे—लिङ्गस्थां पूजयेद्देवीं मण्डलस्थां तथैव च । पुस्तकस्थां महादेवीं पावके प्रतिमासु च ॥ चित्रे च त्रिशिखे खड्गे जलस्थां वापि पूजयेत् ।

कृत्यतत्त्वार्णव में कालिकापुराण का मत है कि—लिङ्ग में स्थित देवी का पूजन करे । वैसे ही मण्डल में, पुस्तक में, पावक में, प्रतिमा में, चित्र में, त्रिशूल में, खड्ग में या जल में पूजन करे ।

१—मत्स्यपुराण में—दुर्गाका विस्तार से कथन है । वहाँ से देखिये ।

२—मृन्मयीं प्रतिमां कृत्वा बिल्वे वा यस्तु पूजयेत् । आत्मवित्तानुसारेण सलभेन्मौक्तिकं फलम् ॥

(बिल्वपत्रादीनां चण्डिकापूजनम्)

बिल्वपत्रैर्यजेद्देवीं तथा जातिप्रसूनकैः ॥ नानापिष्टकनैवेद्यैर्धूपदीपैर्मनोहरैः ।

बिल्वपत्रों से, जातीपुष्पों से, नानाप्रकार के पिसान के नैवेद्यों से, मनोहर धूप और दीपों से देवी की पूजा करे।

भगलिङ्गाभिधानश्च भगलिङ्गप्रगीतकैः ॥ भगलिङ्गक्रियाभिश्च प्रीणयेद्वरचण्डिकाम् ॥

भग-लिङ्ग नामों से, भग-लिंगों के गीतों से और भग-लिंग-क्रियाओं से वर देनेवाली चण्डि को प्रसन्न करे।

परैर्नाक्षिप्यते यस्तु यः परान्नाक्षिपत्यपि । यस्य क्रुद्धा भगवती शापं दद्यात्सु दारुणम् ॥

दूसरों के द्वारा जिसपर आक्षेप किया गया हो और जो दूसरों पर आक्षेप करे उसके ऊपर भगवती क्रुद्ध होकर सुदारुण शाप देती है।

(चित्रमृन्मयादौ स्नानाद्यसंभवे विचारः)

चित्रमृन्मयादौ स्नानाद्यसंभवे तत्रैवोक्तम्—अन्तिके स्थापिते खड्गे स्थापयेद् दर्पणेऽथवा ॥ इति।

चित्र तथा मट्टी आदि की मूर्ति में स्नान आदि के असंभव में वहाँ पर ही कहा है कि—समीप स्थापित खड्ग में या दर्पण में स्थापन करे।

(सप्तमीपूजाविधिः)

अथ सप्तमीपूजाविधिः । प्रतिपद्युक्तविधिना फलसङ्कीर्तनान्ते नवपत्रिकामृन्मयदुर्गापूजाबलिदानानि करिष्ये' इति सङ्कल्प्य पूर्वनिमन्त्रितबिल्वसमीपं गत्वा सम्पूज्य 'आगच्छ सर्वकल्याणि' इति पूर्वोक्तमन्त्रं पठित्वा–बिल्ववृक्ष महाभाग सदा त्वं शङ्करप्रियः। गृहीत्वा तव शाखां च देवीपूजां करोम्यहम् ॥

अब सप्तमी पूजाविधि कहते हैं कि—प्रतिपदातिथि (प्रतिपदि दुर्गाप्रतिष्ठापने तत्समीप एवं पत्रीस्थापने सहैव इति संप्रदायः) में कही गयी विधि से फल के कीर्तन के अन्त में 'नवपत्रिकमृन्मयदुर्गापूजा बलिदानानि करिष्ये' इसतरह संकल्प कर पूर्वनिमन्त्रित बिल्व के पास जाकर पूजन (बिल्व और दुर्गा का) कर 'आगच्छ सर्वकल्याणि' इस पूर्वोक्त मन्त्र को पढ़कर हे बिल्ववृक्ष, हे महाभाग, हे शङ्करप्रिय, आपकी शाखा को सदा ग्रहण कर देवीपूजा मैं करता हूँ।

शाखाच्छेदोद्भवं दुःखं न च कार्यं त्वया प्रभो । गृहीत्वा तव शाखां च पूज्या दुर्गेति च स्मृतिः ॥

हे प्रभो, आप शाखाच्छेदन से उत्पन्न दुःख को न करे। आपकी शाखा को ग्रहण कर दुर्गा की पूजा का स्मरण करते हैं।

उत्तिष्ठ पत्रिके देवि सर्वकल्याणहेतवे । पूजां गृहाण सकलामस्माकं वरदा भव ॥

हे पत्रिके, हे देवि, संसार के कल्याण के हेतु उठो। हमारी संपूर्ण पूजा को ग्रहण करो और वरदान को देनेवाली हो।

मेरुमन्दरकैलासहिमवच्छिखरे गिरौ । जातः श्रीफलवृक्ष त्वमम्बिकायाः सदा प्रियः ॥ इति सम्प्रार्थ्य—

हे श्रीफलवृक्ष, आप मेरुपर्वत, मन्दराचलपर्वत, कैलाशपर्वत तथा हिमवान् पर्वत के शिखर पर उत्पन्न हुए हो अतः आप सदा अम्बिका को प्रिय हो।

ॐ छिन्धि फट् फट् ॐ हुं फट् स्वाहा' इति छित्वा सम्पूज्य—'ॐ चामुण्डे चल चल' इति वाद्यघोषेण देवीं तां च गृहे प्रवेश्य—

इसप्रकार प्रार्थना (कृताञ्जलि आदि) कर 'छिन्धि फट् फट् ॐ हुँ फट् स्वाहा' इससे छेदन और पूजन (नाममन्त्र से बिल्वशाखा तथा देवीका आवाहनपूर्वक अर्चन) कर 'चामुण्डे चल चल' इस मन्त्र से वाद्यघोष (मत्स्यपुराणे—गीतवादित्रनिर्घोषं देव्या अग्रे च करयेत्। घण्टा भवेदशक्तस्य सर्ववाद्यमयी यतः ॥ (बाजों के शब्द) से देवी को तथा शाखा (दोलनादिना शाखां देवीं च गृहमानयेत्) को घर (पूजागृह) में ले आवे।

आरोपिताऽसि दुर्गे त्वं मृन्मय्यां श्रीफलेऽपि च । स्थिरा नितान्तं भूत्वा च गृहे त्वं कामदा भव ॥ इति स्थिरीकृत्य रम्भादिपत्रिकाः पञ्चगव्येन पञ्चामृतेन च स्नापयित्वा वस्त्रेणावेष्टय स्थापयेत् । ततः पूर्ववत्सङ्कल्पं कृत्वा अक्षतानादाय देवीमावाहयेत् ।

हे दुर्गे, आप मृत्तिका में तथा श्रीफल में भी आरोपित (स्थापना) की गयी हो । आप घर पर निरन्तर स्थिर होकर इच्छाओं को दो । इसप्रकार स्थिर कर रंभादि पत्रिकाओं को पञ्चगव्य से तथा पञ्चामृत से स्नान कराकर वस्त्र से लपेट कर अक्षत (चावल) लेकर देवीका आवाहन करे ।

(देव्यावाहनमन्त्राः)

तत्र मन्त्रः—आवाहयाम्यहं देवि मृन्मय्यां श्रीफले तथा । कैलासशिखराद्देवि विन्ध्याद्रेर्हिमपर्वतात् । आगत्य बिल्वशाखायां चण्डिके कुरु सन्निधिम् । स्थापिताऽसि मया दुर्गे पूजये त्वां प्रसीद मे ॥

उसमें मन्त्र यों है—हे देवि, मृत्तिका तथा श्रीफल में मैं देवीका आवाहन करता हूँ । कैलाशशिखर से, विन्ध्यपर्वत से तथा हिमाचलपर्वत से आकर हे चण्डिके, बिल्व की शाखा में सन्निधि (हे दुर्गे भगवति, यहाँ पर आओ) करो । हे दुर्गे, मेरे द्वारा स्थापित हो आपकी मैं पूजा करता हूँ, अतः मेरे पर प्रसन्न हो ।

आयुरारोग्यमैश्वर्यं देहि देवि नमोऽस्तु ते । दुर्गे दुर्गस्वरूपाऽसि सुरतेजोमयेऽर्चिते ॥

हे देवि, आयु, आरोग्यता तथा ऐश्वर्य दो । अतः आप के लिये नमस्कार है । हे दुर्गे, आप दुर्गे-स्वरूपा हो । देवताओं का तेजरूप होने से पूजित हो ।

सदानन्दकरे देवि प्रसीद मम सिद्धये । एह्येहि भगवत्यम्ब शत्रुक्षयजयप्रदे । भक्तितः पूजयिष्यामि त्वां दुर्गे देवि सुरार्चिते ।

हे देवि, निरन्तर आनन्द को करनेवाली मेरी सिद्धि के लिए प्रसन्न हो । हे भगवति, हे अम्ब, शत्रुक्षयजयप्रदे,—(शत्रुओंके क्षय को करनेवाली एवं जय को देनेवाली) देवताओं से पूजित हे दुर्गे, हे देवि, आपकी भक्ति से पूजा करता हूँ ।

पल्लवैश्च फलोपेतैः पुष्पैश्च सुमनोहरैः ॥ पल्लवे संस्थिते देवि पूजये त्वां प्रसीद मे । दुर्गे देवि इहागच्छ सान्निध्यमिह कल्पय । यज्ञभागान् गृहाण त्वं योगिनीकोटिभिः सह ॥ इति ।

पल्लवों, फलों और सुमनोहर पुष्पों से पल्लव में स्थित आप का हे देवि, पूजा करता हूँ । अतः मुझ पर प्रसन्न हो । हे दुर्गे, हे देवि, यहाँ पर आओ, यहाँ पर सान्निध्य की कल्पना करो । करोड़ों योगिनियों के साथ आप यज्ञ के भागों को ग्रहण करो ।

ततो मूलमन्त्रेण पाद्यादिगन्धान्तोपचारैः—अमृतोद्भवं च श्रीवृक्षं शङ्करस्य सदा प्रियम् । बिल्वपत्रं प्रयच्छामि पवित्रं ते सुरेश्वरि ॥ इति बिल्वपत्रम् ।

तदनन्तर मूलमन्त्रसे पाद्य आदि गन्धान्त उपचारों से अर्चना करे । हे सुरेश्वरि, अमृत से प्रादुर्भूत श्रीशंकर को सदा प्रिय लगने वाला हे सुरेश्वरि, श्रीवृक्ष है । मैं आपके लिए उस वृक्ष से पवित्र बिल्वपत्र को देता हूँ ।

(ब्रह्म-विष्णु-शिवादीनां द्रोणपुष्पविचारः)

ब्रह्माविष्णुशिवादीनां द्रोणपुष्पं सदा प्रियम् । तत्ते दुर्गे प्रयच्छामि सर्वकामार्थसिद्धये । इति द्रोणपुष्पं निवेद्य धूपादिदक्षिणान्तां पूजां मूलेन कृत्वा प्रार्थयेत्—

ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि को द्रोणपुष्प (गोमपुष्प) सदा प्रिय है । सब कामनाओं की सिद्धि के लिए आपको हे दुर्गे, देता हूँ । इससे द्रोणपुष्प को निवेदन धूप आदि दक्षिणान्त (पुष्पधूपदीपनैवेद्याचमनताम्बूलदक्षिणाः मूलेन जयन्तीमन्त्रेण 'दुर्गायै नमः' इत्यनेन वा समर्प्य स्तुतिभिः स्तुत्वा प्रणम्य ब्रह्माञ्जलिः प्रार्थयेत्) पूजा को मूलमन्त्र से कर प्रार्थना करे ।

(दुर्गाप्रार्थना)

ॐमहिषघ्नि महामाये चामुण्डे मुण्डमालिनि । आयुरारोग्यमैश्वर्यं देहि देवि नमोऽस्तु ते ॥

हे महिषघ्नि, हे महामाये, हे चामुण्डे हेमुण्डमालिनि, आयु, आरोग्यता एवं ऐश्वर्य को दो । अतः हे देवि, आपके लिए नमस्कार है ।

कुङ्कुमेन समालब्धे चन्दनेन विलेपिते । बिल्वपत्रकृतापीडे दुर्गेऽहं शरणं गतः ॥ रूपं देहि यशो देहि भगं भवति देहि मे । पुत्रान् देहि धनं देहि सर्वान्कामांश्च देहि मे ॥ 'सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये' इति च संप्रार्थ्य—

कुंकुम (केसर) चन्दन और बिल्वपत्र धारण करनेवाली दुर्गे, तुम्हारी शरण में आया हूँ । हे भवति, रूप दो, यश दो, ऐश्वर्य दो, पुत्रों को दो, धन दो और सारी मनोकामनाओं को पूर्ण करो ।

'सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थ साधिके । शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥' इस श्लोक से प्रार्थना करे ।

(कदल्यादिपत्रेषु ब्रह्माण्याद्यावाहनम्)

पत्रिकाः पूजयेत् । कदल्याम्—ब्रह्माणीम्, दाडिमे—रक्तदन्तिकाम्, धान्ये—लक्ष्मीम्, हरिद्रायाम्—दुर्गाम्, माने—चामुण्डाम्, कचौ—कालिकाम्, बिल्वे—शिवाम्, अशोके—शोकरहिताम्, जयन्त्याम्—कार्तिकीं चावाह्य संपूज्य दुर्गायै बलिं दद्यात् । अत्र शस्त्रादिपूजा वच्यते ।

पत्रिकाओं की पूजा करे—केले में ब्राह्मणी को,[१] अनार में रक्तदन्तिका[२] को, धान्य में—लक्ष्मी को[३], हलदी में—दुर्गा को[४], मान (वंगदेश में मान नाम का प्रसिद्ध कन्द है) में चामुण्डा को[५], कवि ('कवि' इति तु मृग्यम्) में—कलिकाको[६], विल्व में—शिवाको[७], अशोक में—शोकरहिताको[८] और जयन्ति में—(वानस्पतिविशेष) कार्तिकी को[९] आवाहन कर पूजन कर दुर्गा के[१०] लिए बलि दे । शस्त्रादि की पूजा आगे कहेगें ।

(दुर्गास्तुतिः)

ततः स्तुतिं पठेत् । तदुक्तं शिवरहस्ये—दुर्गां शिवां शान्तिकरीं ब्रह्माणीं ब्रह्मणः प्रियाम् ।
सर्वलोकप्रणेत्रीं च प्रणमामि सदाशिवाम् ॥

तदनन्तर स्तुति को पढे । उसी बात को शिवरहस्य में कहा है कि—दुर्गाको, शिवाको, शान्तिकरी को, ब्रह्माणी को ब्राह्मणप्रिया को, सर्वलोकप्रणेत्री को और सदा शिवाको मैं प्रणाम करता हूँ ।

१—भूताः प्रेतपिशाचाश्च ये वसन्त्यत्र भूतले । ते गृह्णन्तु मया दत्तो बलिरेष प्रसाधितः ॥ पूजिताः गन्धपुष्पाद्यैर्बलिभिस्तर्पितास्तथा । देशादस्माद्विनिष्क्रत्य पूजां पश्यन्तु मत्कृताम् ॥ 'अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भूमिपालकाः । भूतानामविरोधेन देवीपूजां करोम्यहम् ॥ 'स्थितेषु तत्र भूतेषु नैवेद्यं मण्डलं तथा । विलुम्पन्ति महालुब्धा न च गृह्णन्ति देवताः । तस्माद्यत्नेन कर्तव्यं भूतानामपसारणम् । रुद्रयामले—लाजचन्दनसिद्धार्थं फलपुष्पकुशाक्षताः । विकिरा इति संप्रोक्ताः सर्वविघ्नविनायकाः ॥ विकिरान्विकिरेत्तत्र सप्त जप्तान् शराणुना । 'भूतप्रेतपिशाचेभ्यो रक्षोभ्यश्च महेश्वरि । देवेभ्यो मानुषेभ्यश्च भयेभ्यो रक्ष मां सदा ॥

१—दुर्गे देवि समागच्छ सान्निध्यमिह कल्पय । रंभारूपेण सर्वत्र शान्तिं कुरु नमोऽस्तु ते ॥ २—महिषासुरयुद्धेषु कविभूतासिसु व्रते । मनुष्याऽनुग्रहार्थाय आगतासि हरप्रिये ॥ ३—हरिद्रे वरदे देवि उमारूपासि सुव्रते । मम विघ्नविनाशाय पूजां गृह्ण प्रसीद मे ॥ ८—निशुम्भशुम्भमथने सेन्द्रैर्देवगणैः सह । पूजिताऽसि जयन्ती त्वमस्माकं वरदा भव ॥ ५—महादेवप्रियकरो वासुदेवः प्रिय सदा । उमाप्रीतिकरो वृक्षो बिल्ववृक्ष नमोऽस्तु ते ॥ ६—दाडिम त्वं पुरा युद्धे रक्तबीजस्य संमुखे । उमाकार्यं कृतं तस्मादस्माकं वरदा भव ॥ ७—हरप्रीति करो वृक्षो अशोकः शोकनाशनः । दुर्गाप्रीतिकरो यस्माज्जन्मामशोकं सदा कुरु ॥ ८—यस्य पत्रे वसेद्देवी मानवृक्ष शचीप्रिय । मम चाऽनुग्रहार्थाय पूजां गृह्ण प्रसीद मे ॥ ९—जगतः प्राणरक्षार्थं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा । उमाप्रीतिकरं धान्यं तस्मात्त्वं रक्ष मां सदा ॥'पत्रिके नवदुर्गे त्वं महादेव मनोरमे । पूजां समस्तां संगृह्य रक्ष मां त्रिदशेश्वरि ॥ 'धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं सफलं जीवितं मम । आगताऽसि यतो दुर्गे माहेश्वरि मदाश्रमम् ॥ 'दुर्गाग्रतो जपेन्मन्त्रमेकचित्तः समाहितः । 'माहात्म्यं भगवत्यास्तु पुराणादिषु कीर्तितम् । पठेच्च श्रृणुयाद्वापि सर्वकामसमृद्धये ॥

मङ्गलां शोभनां शुद्धां निष्कलां परमां कलाम्। विश्वेश्वरीं विश्वमातां चण्डिकां प्रणमाम्यहम् ॥

मंगला, शोभना, शुद्धा, निष्कला, परमा, कला, विश्वेश्वरी, विश्वमाता तथा चण्डिको को मैं प्रणाम करता हूँ।

सर्वदेवमयीं देवीं सर्वरोगभयापहाम् । ब्रह्मेशविष्णुनमितां प्रणमामि सदा उमाम् ॥

सर्वदेवमयी को, सब रोगों के भय को दूर करनेवाली को, ब्रह्मा, ईशर (शंकर) तथा विष्णु के द्वारा पूजिता को, एसी उमाको सदा प्रमाण करता हूँ।

विन्ध्यस्थां विन्ध्यनिलयां दिव्यस्थानविलासिनीम्। योगिनीं योगमातां च चण्डिकां प्रणमाम्यहम्॥

विन्ध्याचल में स्थित, विन्ध्यपर्वत जिसका घर है, दिव्यस्थान में निवास करनेवाली, योगिनी तथा योगमाता चण्डिका को मैं प्रणाम करता हूँ।

ईशानमातरं देवीमीश्वरामीश्वरप्रियाम् । प्रणतोऽस्मि सदा दुर्गां संसारार्णवतारिणीम् ॥

ईशानमाता देवी, ईश्वरी और ईश्वरप्रिया को, संसारसागर से पार लगाने वाली दुर्गा को मैं प्रणाम करता हूँ।

य इदं पठते स्तोत्रं शृणुयाद्वापि यो नरः। स मुक्तः सर्वपापैस्तु मोदते दुर्गया सह ॥

जो मनुष्य इस स्तोत्र को पढता है या सुनता है वह सब पापों से मुक्त हो जाता है तथा दुर्गा के साथ आनन्द करता है।

(अथ महाष्टमीनिर्णयः)

अथ महाष्टमी। सा च परयुता। शुक्लपक्षेऽष्टमी चैव शुक्लपक्षे चतुर्दशी। पूर्वविद्धा न कर्तव्या कर्तव्या परसंयुता ॥ इति ब्रह्मवैवर्तात्।

अब महा अष्टमी कहते हैं। वह अष्टमीतिथि परयुता (अर्थात्—पत्रीपूजा के अतिरिक्त देवीपूजा में) ले। ब्रह्मपुराण का मत है कि—शुक्लपक्ष में अष्टमी और शुक्लपक्ष में चतुर्दशी को पूर्वविद्धा न करे। पर तिथि से युक्त करे।

(सप्तमीसंयुता अष्टमीविचारः)

मदनरत्ने स्मृतिसङ्ग्रहे—शरन्महाष्टमी पूज्या नवमीसंयुता सदा।
सप्तमीसंयुता नित्यं शोकसन्तापकारिणीम् ॥

मदनरत्न में स्मृतिसंग्रह का वचन है कि—सदा शरद्काल में नवमीतिथि से युक्त महा-अष्टमी पूज्य होती है। सप्तमीतिथि से युक्त अष्टमीतिथि नित्य शोक तथा सन्ताप को करनेवाली होती है।

जम्भेन सप्तमीयुक्ता पूजिता तु महाष्टमी। इन्द्रेण निहतो जम्भस्तस्माद्दानवपुङ्गवः ॥

सप्तमी से युक्त महा अष्टमी की जम्म ने पूजा की। इसीकारण दानवों में श्रेष्ठ जंम को इन्द्र ने मारा।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सप्तमीमिश्रिताष्टमी। वर्जनीया प्रयत्नेन मनुजैः शुभकाङ्क्षिभिः ॥

इसकारण से सबप्रकार से सप्तमीमिश्रित अष्टमी को शुभ की इच्छा वाले मनुष्यों को प्रयत्न से त्यागना चाहिये।

सप्तमीं शल्यसंयुक्तां मोहादज्ञानतोऽपि वा। महाष्टमीं प्रकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते ॥

मोह या अज्ञान से शल्ययुक्त-सप्तमी से युक्त महा-अष्टमी को जो करता है वह नरक में जाता है।

(शल्यस्वरूपकथनम्)

सप्तमी कलया यत्र परतश्चाष्टमी भवेत्। तेन शल्यमिदं प्रोक्तं पुत्रपौत्रक्षयप्रदम् ॥

जहाँ पर कलामात्र सप्तमी से पर अष्टमी हो। उसी को शल्य—यह कहा जाता है। जो पुत्र और पौत्र के क्षय को करने वाली है।

तथा—पुत्रान् हन्ति पशून् हन्ति राष्ट्रं हन्ति सराज्यकम्। हन्ति जातानजातांश्च सप्तमीसहिताष्टमी ॥ तेन वात्र त्रिमुहूर्तवेधः। तदा घटिकामात्राप्यौदयिकी ग्राह्या।

और सप्तमी सहित अष्टमी तो—पुत्रों को नाश करती है। पशुओंको नाश करती है। राष्ट्र (देश) तथा राज्य का नाश करती है और उत्पन्न हुए न उत्पन्न हुओं का नाश करती है।

इससे यहाँ पर तीन मुहूर्त का वेध नहीं है। तब घटिकामात्र भी औदयिकी (उदयकाल की) ग्रहण करे।

व्रतोपवासनियमे घटिकैकापि या भवेत् ॥ इति देवलोक्तेः। गौडा अप्येवमाहुः।

देवल ने कहा है कि—व्रत और उपवास के नियम में जो एक घडी भी हो। गौड भी यही (नव्य गौडास्तु सूर्योदये कालाकाष्ठादियुतामपीच्छन्ति। 'यस्यां सूर्योदयो भवेत्। इति चयेणाष्टम्याः सूर्योदयाभावे तु सप्तमीविद्धा ग्राह्या) कहते हैं।

अत एवोक्तं भोजराजेन 'न च सप्तमी शल्यसमोपहता' इति इयं भौमेऽतिप्रशस्ता।

इसीलिये ही भोजराज ने कहा कि—सप्तमी शल्ययुक्त अष्टमी न करे। मदनरत्न में स्मृतिसमुच्चय का वचन है कि—यह मंगलवार में अतिप्रशस्त (अत्यन्त उत्तम) है।

अष्टम्यामुदिते सूर्ये दिनान्ते नवमी भवेत्। कुजवारो भवेत्तत्र पूजनीया प्रयत्नतः ॥ इति मदनरत्ने वचनात्।

मदनरत्न का वचन है कि—अष्टमीतिथि में सूर्योदय के उदय होने पर तथा दिनान्त में नवमी हो तथा उस दिन मंगलवार भी हो तो वह प्रयत्न से पूजनीय होती है।

सप्तमीशल्यसंविद्धा वर्जनीया सदाष्टमी। स्तोकापि सा महापुण्या यस्यां सूर्योदयो भवेत् ॥ इति मदनरत्ने स्मृतिसमुच्चयवचनात्।

मदनरत्न में स्मृतिसमुच्चय का वचन है कि—अष्टमीतिथि सप्तमीतिथिरूपशल्य से संविद्ध त्याग दे। अल्प भी वह महापुण्य को देनेवाली होती है, जिसमें सूर्योदय हो।

अष्टमी नवमीयुक्ता नवमी चाष्टमीयुता। इति पाद्मवचनाच्च। इयमेव मूलयुक्ता चेन्महानवमी संज्ञा। आश्वयुक्शुक्लपक्षे याऽष्टमी मूलेन संयुता। सा महानवमी प्रोक्ता त्रैलोक्येषु सुदुर्लभा ॥ इति हेमाद्रौ स्कान्दात्।

और पद्मपुराण का वचन है कि—अष्टमीतिथि नवमी से युक्त हो या नवमीतिथि अष्टमीतिथि से युक्त हो। यही ही मूलनक्षत्र से युक्त हो तो उसे 'महानवमी' इस नाम से कहा जाता है।

हेमाद्रि का वाक्य है कि—आश्विनशुक्लपक्ष में मूलनक्षत्र से युक्त अष्टमी है। त्रैलोक्य में भी सुदुर्लभ वह महानवमी कही जाती है।

मूलयुक्तापि सप्तमीयुता चेत्त्याज्यैवेत्युक्तं निर्णतामृते दुर्गोत्सवे—मूलेनापि हि संयुक्ता सदा त्याज्याष्टमी बुधैः। लेशमात्रेण सप्तम्या अपि स्याद्यदि दूषिता ॥ इति।

मूलनक्षत्र से युक्त भी सप्तमी युक्त हो तो भी त्याज्य ही है यह निर्णयामृत के दुर्गोत्सव में कहा है कि—लेशोमात्र युक्त सप्तमी से दूषित हो विद्वान् पुरुष—मूलनक्षत्र से युक्त भी अष्टमी को सदा त्याग दें।

महाष्टमी पूर्वेद्युः पूर्वाह्णव्यापित्वे पूर्वाऽन्यथा परैवेति निर्णयदीपमतम्। एतच्च तुच्छत्वादुपेक्ष्यम्।

पहले दिन पूर्वाह्णव्यापि हो तो महा अष्टमी पूर्वा ले। अन्यथा तो परा ही स्वीकार करे। यह निर्णयदीपका मत है। यह तुच्छ (ऋक्षयोग में भी वचन बल से अनादर है) होने से उपेक्ष्य है।

रूपनारायणधृते देवीपुराणे—सप्तमीवेधसंयुक्ता यैः कृता तु महाष्टमी।
पुत्रदारधनैर्हीना भ्रमन्तीह पिशाचवत् ॥

रूपनारायण में देवीपुराण का वचन है कि—जिनों ने सप्तमीवेध से युक्त महा-अष्टमी को किया वे लोग इससंसार में पुत्र, स्त्री तथा धन से हीन होकर पिशाच के सदृश भ्रमण करते हैं।

यत्तु—सप्तम्यामुदिते सूर्ये परतो याष्टमी भवेत्। तत्र दुर्गोत्सवं कुर्यान्न कुर्यादपरेऽहनि ॥ इति विश्वरूपनिबन्धवचनं तदाश्विनकृष्णाष्टमीविषयम्।

जो—सप्तमी में सूर्य से उदय होने पर जो अष्टमी हो उसमें दुर्गोत्सव करे, दूसरे दिन न करे। यह विश्वरूपनिबन्ध वचन है, वह आश्विनकृष्ण अष्टमीविषयक है।

कन्यायां कृष्णपक्षे तु पूजयित्वाष्टमीदिने। नवम्यां बोधयेद्देवीं गीतवादित्रनिःस्वनैः॥ इति देवीपुराणे तत्रापि पूजोक्तेरिति हेमाद्रौ निर्णयामृते चोक्तम्।

कन्या के सूर्य में कृष्णपक्ष की अष्टमी को रोज पूजाकर नवमीतिथि को देवी का गीत, वादित्र (बाजा) के शब्दों से बोधन (जागरण) करावे। यह देवीपुराण में है। उसमें भी वचन से पूजा कही है—यह हेमाद्रि में निर्णयामृत में कहा है।

यानि तु—भद्रायां भद्रकाल्याश्च मध्ये स्यादर्चनक्रिया।
तस्माद्वै सप्तमीविद्धा कार्या दुर्गाष्टमी बुधैः॥ इति,

जो कि ये वचन हैं कि—भद्रा (सप्तमी) में भद्रवाली की मध्य में अर्चनक्रिया होती है। इसलिए ही सप्तमीविद्धा दुर्गाष्टमी विद्वान् करें।

यच्च मोहचूलोत्तरे ब्राह्मे च—आश्विनस्य सिताष्टम्यामर्धरात्रे तु पार्वती।
भद्रकाली समुत्पन्ना पूर्वाषाढासमायुता॥ इति,

जो मोहचूलोत्तर में ब्रह्मपुराण मत से कहा है कि—आश्विनमास के शुक्लपक्ष की अष्टमी की आधी रात में पूर्वाषाढनक्षत्र से युक्त पार्वती—भद्रकाली उत्पन्न हुई।

तथा—तत्राष्टम्यां भद्रकाली दक्षयज्ञविनाशिनी। प्रादुर्भूता महाघोरा योगिनीकोटिभिः सह॥ इति।'

और इसी अष्टमीतिथि में दक्षयज्ञ को विनाश करने वाली, करोड़ों योगिनियों के साथ महा भयंकर भद्रकाली उत्पन्न हुई।

यच्च मदनरत्ने—महाष्टम्याश्विने मासि शुक्ला कल्याणकारिणी। सप्तम्यापि युता कार्या मूलेन तु विशेषतः॥ इति, तानि परदिनेऽष्टम्यभावविषयाणीति मदनरत्ने उक्तम्।

और जो मदनरत्न में कहा है कि—आश्विनमास के शुक्लपक्ष की कल्याण को करनेवाली महा अष्टमी सप्तमी से तथा विशेष कर मूलनक्षत्र से युक्त ही करे। ये सब वचन दूसरे दिन अष्टमी के अभाव के विषय में है। यह मदनरत्न में कहा है।

यत्तु तत्रैव परदिनेऽष्टमीसत्त्वेऽपि पूर्वविद्धाविधायकं वचनम्—यदाष्टमीं तु संप्राप्य ह्यस्तं याति दिवाकरः। तत्र दुर्गोत्सवं कुर्यान्न कुर्यादपरेऽहनि॥ दुर्भिक्षं तत्र जानीयान्नवम्यां यत्र पूज्यते॥ इति, तत्परदिने दशम्यां नवम्यभावविषयम्।

जो—वहीं पर ही दूसरे दिन अष्टमी के रहने पर भी पूर्वाविद्धाविधायक वचन हैं—कि—जब अष्टमी तिथि को प्राप्तकर दिवाकर (सूर्य) अस्त को चला जाता है। उसमें दुर्गोत्सव करे। दूसरे दिन न करे। जहाँ पर नवमीतिथि में पूजा होती है वहाँ दुर्भिक्ष होता है वह वचन दूसरे दिन दशमी में नवमी के अभाव विषयक है।

यदा सूर्योदये न स्यान्नवमी चापरेऽहनि। तदाष्टमीं प्रकुर्वीत सप्तम्या सहितां नृप॥ इति तत्रैव स्मृतिसङ्ग्रहोक्तेः।

वहीं पर स्मृतिसंग्रह ने कहा है कि—जब सूर्योदय में परदिन नवमी न हो तो वहाँपर हेनृप, सप्तमी के सहित अष्टमी को करे।

उत्तरास्तिथयो यत्र क्षयं यान्ति नराधिप। पूर्वाष्टमीं तदा कुर्यादन्यथा त्वशुभं भवेत्॥ इति दुर्गोत्सवोक्तेश्चेति मदनरत्ने।

दुर्गोत्सव में मदनरत्न ने कहा है कि—हे नराधिप, जहाँपर उत्तर तिथियाँ क्षय को प्राप्त हो जायँ तो तब पूर्वा—अष्टमी करे नहीं तो अशुभ होता है।

वस्तुतस्तु इदं वचनद्वयमष्टमीनवम्योः सूर्योदयसम्बन्धपरम्। अत एव 'नवमी च' इति चकारादष्टमी च। तिथय इति बहुवचनादष्टमीनवमीदशम्युक्ताः। अन्यथा पूर्वोक्तविरोधादिति दिक्।

सिद्धान्त तो यह है कि—यह दोनों वचन अष्टमी और नवमी का दोनों दिन सूर्योदय से सम्बन्ध हो। इसलिए 'नवमी च' इसचकार से और अष्टमी से 'तिथयः' इस बहुवचन से अष्टमी, नवमी तथा दशमी कही है। अन्यथा पूर्व में कहे हुए (सप्तमीशल्यसंबद्ध) वचन का विरोध होगा। यही रास्ता है।

यत्तु—अहं भद्रा च भद्राहं नावयोरन्तरं क्वचित्। सर्वसिद्धिं प्रदास्यामि भद्रायामर्चिता ह्यहम्॥ इति देवीपुराणे, तद्विष्टिकरणमध्ये पूजाविधानार्थम्।

जो—देवीपुराण में कहा है कि—मैं भद्रारूप हूँ, भद्रा मेरा स्वरूप है। हम दोनों में कुछ भी अन्तर नहीं है। भद्रा में पूजित मैं सब सिद्धि को देनेवाली होऊँगी। यह वचन विष्टिकरण के (निर्णीत अष्टमी में विष्टिभाग में पूजन करे) मध्य में पूजाविधान के अर्थ के लिए है।

विष्टिं त्यक्त्वा महाष्टम्यां मम पूजां करोति यः। तस्य पूजाफलं न स्यात्तेनाहमवमानिता॥ इति। तत्रैवोक्तेरिति निर्णयामृते।

वहींपर निर्णयामृत का वचन है कि—विष्टि (भद्रा) को छोड़कर जो महा अष्टमी में मेरी पूजा करता है। उसको पूजाफल नहीं होता है। क्योंकि उसने मेरा अपमान किया।

तथा कालिकापुराणे—सप्तम्यां पत्रिकापूजा अष्टम्यां चाप्युपोषणम्।
पूजा च जागरश्चैव नवम्यां विधिवद् बलिः॥ इति।

और कालिकापुराण में कहा है कि—सप्तमीतिथि (दिन की पूजा में इसका कथन है) में पत्रिका पूजाकर और अष्टमी में उपवास, नवमीतिथि में पूजा, जागरण एवं विधिवत् बलि को दे।

(अष्टम्युपवासश्च पुत्रवता न कार्यः)

अष्टम्युपवासश्च पुत्रवता न कार्यः। उपवासं महाष्टम्यां पुत्रवान्न समाचरेत्। यथा तथा वा पूतात्मा व्रती देवीं प्रपूजयेत्॥ इति तत्रैवोक्तेः।

अष्टमी (केवल अष्टमी) तिथि में उपवास पुत्रवाला न करे। जैसे तैसे पवित्र आत्मावाला व्रती देवीकी पूजा करे। यह बात वहींपर कही है।

रूपनारायणीये ब्राह्मे—अत्यर्थं पूजनीया सा तस्मिन्नहनि मानवैः। उपोषितैर्वस्त्रधूपमाल्यरत्नानुलेपनैः॥ पशुभिः पानकैर्हृद्यै रात्रौ जागरणेन च। दुर्गागृहे च शस्त्राणि पूजितव्यानि पण्डितैः॥ वाद्यभाण्डानि चिह्नानि कवचान्यायुधानि च॥

रूपनारायणीय में ब्रह्मपुराण का मत है कि—इसलिए अष्टमीतिथि में विष्टिके के सत्त्वमे अभावे तो शुद्धा में उसदिन मनुष्य उपवास, वस्त्र, धूप, माला, रत्न, अनुलेपन, पशु, मदिरा, मनोहर पान आदि से रात में जागरण से देवीकी पूजा (भजन) करे।

दुर्गाघर (अष्टमी में अस्त्रादि पूजा) में शस्त्र, वाद्य, भाण्ड, चिन्ह, कवच तथा आयुधों का विद्वान् गण—पूजन करें।

(मूलसंयुता महानवमीविचारः)

अत्र विशेषो हेमाद्रौ निर्णयामृते भविष्ये—आश्वयुक्शुक्लपक्षस्य अष्टमी मूलसंयुता।
सा महानवमी नाम त्रैलोक्येऽपि सुदुर्लभा॥

यहाँपर विशेष—हेमाद्रि में और निर्णयामृत में भविष्यपुराण के वचन से कहा है कि—आश्विनशुक्ल पक्षकी मूलनक्षत्र से युक्त अष्टमी भी महानवमी नामवाली त्रैलोक्य में वह सुदुर्लभ है।

कन्यागते सवितरि शुक्लपक्षेऽष्टमीयुता। मूलनक्षत्रसंयुक्ता सा महानवमी स्मृता॥

कन्याके सूर्य में शुक्लपक्ष की अष्टमी से युक्त और मलनक्षत्र से युक्त वह महानवमी कही गयी है।

नवम्यां पूजिता देवी ददात्यभिमतं फलम् । सा पुण्या सा पवित्रा च सा धन्या सुखदायिनी ॥

नवमीतिथि में पूजित देवी इच्छित फलको देती है वह पुण्यवाली है तथा वह पवित्र है, वह धन्या है और सुख को देनेवाली है ।

(तस्यां सदा मुण्डमालिनीचामुण्डापूजनम्)

तस्यां सदा पूजनीया चामुण्डा मुण्डमालिनी ॥ (सदेत्युक्तेर्नित्यतापि ।) तस्यां ये ह्युपपूज्यन्ते प्राणिनो महिषादयः । सर्वे ते स्वर्गतिं यान्ति घ्नतां पापं न विद्यते ॥

सदा—ऐसाकहने पर इस व्रत में नित्यता भी है । उसमें सदा चामुण्डा मुण्डमालिनी का पूजन करे । उस दिन महिष आदि प्राणियों का उपयोग होता है वे सब स्वर्ग में जाते हैं और मारनेवाले को पाप नहीं होता है ।

(बलिकर्मणि पशुहननविचारः)

यावन्न चालयेद्गात्रं पशुस्तावन्न हन्यते । न तथा बलिदानेन पुष्पधूपविलेपनैः ॥

जब तक शरीर का चालन न करे तब तक पशु का न हनन करे । वैसेही बलिदान[1] से प्रसन्न नहीं होती है तथा पुष्प, धूप एवं विलेपनों से प्रसन्न नहीं होती है ।

(स्थाने स्थाने पुरे पुरे ग्रामे वने वने जयाभिलाषी प्रतिपत्प्रभृतितिथिषु पूजनविचारः)

यथा सन्तुष्यते मेषैर्महिषैर्विन्ध्यवासिनी । एवं विन्ध्यवासिन्या नवरात्रोपवासतः ॥ एकभक्तेन नक्तेन स्वशक्त्यायाचितेन च ॥ पूजनीया जनैर्देवी स्थाने स्थाने पुरे पुरे ।

जैसे कि—मेष औ महिषों से विन्ध्वासिनी प्रसन्न होती है । इसप्रकार विन्ध्यवासिनी के नवरात्र के उपवास से, एकभक्त से, नक्त से और अपनी शक्ति के अनुसार अयाचित से देवो के स्थान में तथा नगर-नगर में मनुष्यगण पूजन करें ।

गृहे गृहे भक्तिपरैर्ग्रामे ग्रामे वने वने ॥ स्नातैः प्रमुदितैर्हृष्टैर्ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्नृपैः । वैश्यैः शूद्रैर्भक्तियुतैर्म्लेच्छैरन्यैश्च मानवैः ॥ स्त्रीभिश्च कुरु शार्दूल तद्विधानमिदं शृणु ।

भक्ति से तत्पर—घर-घर में, गाँव-गाँव में और वन-वन में, ब्राह्मण, क्षत्रिय राजा प्रसन्न मन से, वैश्य, शूद्र, म्लेच्छ अन्य मनुष्यगण भक्ति से युक्त और स्त्रियाँ अर्चन करें । हे शार्दूल, उसके इसविधान को सुनो ।

जयाभिलाषी नृपतिः प्रतिपत्प्रभृति क्रमात् ॥ लौहाभिसारिकं कर्म कारयेद्यावदष्टमी ॥ इति ।

जयाभिलाषी (प्रतिपदा अमायुक्ता निषिद्ध है । कुहूकाष्ठोपसंयुक्तां वर्जयेत्प्रतिपत्तिथिम् । राज्यनाशाय सा प्रोक्ता निन्दिता चाश्वपूजने ॥) राजा प्रतिपदा से लेकर क्रमसे लोहाभिसारिककर्म (लोहाभिसारोऽस्त्रभृतां राज्ञां नीराजनविधिः । इत्यमरः) अष्टमीतिथिपर्यन्त कर्म करावे ।

(लोहाभिसारिकं कर्मविधानम्)

लौहाभिसारिककर्मविधानं तत्रैवोक्तम्—प्रागुदक्प्रवणे देशे पताकाभिरलङ्कृतम् । मण्डपं कारयेद्दिव्यं नवसप्तकरं परम् ॥ (षोडशहस्तमित्यर्थः ।)

लोहाभिसारिककर्मका विधान वहींपर कहा है कि पूर्वदिशा या उत्तरदिशा के निम्न देश में पताकाओं से अलंकृत (सुशोभित) सुन्दर नव सप्त—सोलह हाथ का मण्डप बनावे ।

आग्नेय्यां कारयेत्कुण्डं हस्तमात्रं सुशोभनम् । मेखलात्रयसंयुक्तं योन्याऽश्वत्थदलाभया ॥

उसमें—अग्निकोण में सुन्दर एक हाथ का कुण्ड करे । जिसमें वह तीन मेखला से युक्त हो और अश्वत्थ (पीपल) के पत्ते के सदृश योनी हो ।

राजचिह्नानि सर्वाणि शस्त्राण्यस्त्राणि यानि च । आनीय मण्डपे तानि सर्वाण्यत्राधिवासयेत् ॥

राजाके सारे चिन्ह शस्त्र और अस्त्र हैं उन सवों को मण्डप में ले आकर मण्डप में अधिवासन करे ।

१—ब्राह्मण-माषभक्तादिद्वारा या कूष्माण्डादि द्वारा बलि दे ।

ततस्तु ब्राह्मणः स्नातः शुक्लाम्बरधरः शुचिः । ॐकारपूर्वकैर्मन्त्रैस्तल्लिङ्गैर्जुहुयाद् घृतम् ॥

तदनन्तर ब्राह्मण स्नानकर सफेदवस्त्र पहनकर और पवित्र होकर ओंकारपूर्वक उन नामवालों मन्त्रों से घृत हवन करे।

शस्त्रास्त्रमन्त्रैर्होतव्यं पायसं घृतसंयुतम् । हुतशेषं तुरङ्गाणां राजानमुपहारयेत् ॥

घृत से युक्त पायस (खीर) द्वारा शस्त्रास्त्रमन्त्रों से हवन करे। हुतशेष को तुरंगों (घोड़ों) को दे तथा राजा को उपहाररूप (भेटके रूप) में दे।

लौहाभिसारिकं कर्म तेनैव ऋषिभिः स्मृतम् । सपल्ययनानश्वान् गजांश्च समलङ्कृतान् ॥
भ्रामयेन्नगरे नित्यं वन्दिघोषपुरः सरम् । प्रत्यहं नृपतिः स्नात्वा सम्पूज्य पितृदेवताः ॥
पूजयेद्राजचिह्नानि फलमाल्यविलेपनैः । तस्याभिसरणाद्राज्ञो विजयः समुदाहृतः ॥

यही लोहाभिसारिककर्म है उन ही ऋषियों ने कहा है। लगाम जिनके पकड़े हुए हैं ऐसे अगल-बगल के घोड़े जो कि अलंकृत हैं, हाथियों को और बन्दीजनों और बाजे-गाजे के साथ नित्यही नगर में भ्रमण करावे। राजा प्रतिदिन स्नानकर पितरदेवों का पूजनकर फल, माला, चन्दनों से राजचिन्हों की पूजा करे। उसके करने से राजा के विजय को कहा है।

पूजामन्त्रान्प्रवक्ष्यामि पुराणोक्तानहं तव । यैः पूजिताः प्रयच्छन्ति कीर्तिमायुर्यशोबलम् ॥

मैं आपको पुराणोक्त (पुराण में कहे हुए) पूजा के मन्त्रों से कहता हूँ। जिनके अर्चन करने से कीर्ति, आयु, यश और बल मिलता है।

(छत्रमन्त्रः)

अथ मन्त्राः विष्णुधर्मोत्तरोक्ताः । छत्रस्य—यथाऽम्बुदश्छादयति शिवायेमां वसुन्धराम् ।
तथाऽऽच्छादय राजानं विजयारोग्यवृद्धये ॥

इसकेबाद विष्णुधर्मोत्तर में मन्त्रों को कहता हूँ—छत्रका—जिसप्रकार मेघ कल्याणार्थ वसुन्धरा को आच्छादित करता है। वैसेही राजाको विजय एवं आरोग्यताकी वृद्धि के लिए आच्छादित करो।

(चामरमन्त्रः)

चामरस्य—शशाङ्ककरसङ्काश क्षीरडिण्डीरपाण्डुर । प्रोत्सारयाशु दुरितं चामरामरदुर्लभ ॥

चामरमन्त्र—हे चामरामरदुर्लभ, चन्द्रमा के किरणों के तुल्य दूध फेन के सदृश पाण्डुर, देवताओं को भी दुर्लभ आप शीघ्र ही मेरे पाप को दूर करो।

(रेवन्तपूजनमन्त्रः)

अश्वानां वृद्धयर्थं रेवन्तपूजनमहं करिष्ये । सूर्यपुत्र महाबाहो छायाहृदयनन्दन । शान्तिं कुरु तुरङ्गाणां रेवन्ताय नमो नमः ॥ अनेन मन्त्रेण पूजा ।

अश्वों की वृद्धि के लिए रेवन्त का पूजन मैं करता हूँ। हे सूर्यपुत्र, हे महाबाहो, हे छायाहृदयनन्दन, घोड़ों की शान्ति करो। रेवन्तको नमस्कार है। इस मन्त्र से पूजा करे।

(अश्वस्य मन्त्राः)

अथाश्वस्य-गन्धर्वकुलजातस्त्वं मा भूयाः कुलदूषकः । ब्रह्मणः सत्यवाक्येन सोमस्य वरुणस्य च ॥
प्रभावाच्च हुताशस्य वर्द्धय त्वं तुरङ्गमान् । तेजसा चैव सूर्यस्य मुनीनां तपसा तथा ॥
रुद्रस्य ब्रह्मचर्येण पवनस्य बलेन च । स्मर त्वं राजपुत्रत्वं कौस्तुभं च मणिं स्मर ॥

अब घोड़े की पूजा कहते हैं—आप गन्धर्ववंश में उत्पन्न हो अतः कुलदूषक मत हो। ब्रह्मा, सोम तथा वरुण के सत्यवाक्य से और अग्नि के प्रभाव से आप घोड़ों की वृद्धि करो। सूर्य के तेज से ही और मुनियों के तप से, रुद्रके ब्रह्मचर्य से तथा वायु के बल से, आप राजपुत्रत्व (जाति) का स्मरण करो और कौस्तुभमणिका स्मरण करो।

यां गतिं ब्रह्महा गच्छेन्मातृहा पितृहा तथा । भ्रूणहाऽनृतवादी च क्षत्रियस्य पराङ्मुखः ॥

जो गति ब्राह्मण को मारने से, माता तथा पिता को मारने से, भ्रूण=की हत्या करने वाले, और झूठ बोलनेवाले की होती है वही गति पराङ्मुख क्षत्रिय को भी होती है।

सूर्याचन्द्रमसौ वायुर्यावत्पश्यन्ति दुष्कृतम् । व्रजाश्व तां गतिं क्षिप्रं तच्च पापं भवेत्तव ॥

सूर्य, चन्द्रमा तथा वायु ये जब तक दुष्कृत पापों को देखते हैं। वे सब पाप हे अश्व, आपको जल्दी न चलने से लगेंगे।

निष्कृतो यदि गच्छेथा युद्धाध्वनि तुरङ्गम । रिपून् विजित्य समरे सह भर्त्रा सुखी भव ॥

हे तुरङ्गम, यदि युद्ध की ध्वनि (शब्द) श्रवणकर तिरोहित होकर गमन करोगे। अतः तुम जल्दी चलो। समर (युद्ध) में शत्रुओं को जीतकर अपने स्वामी के सहित सुखी हो।

(ध्वजस्य मन्त्राः)

अथ ध्वजस्य—शक्रकेतो महावीर्य श्यामवर्णार्चयाम्यहम् ।
पवित्रराज नमस्तेऽस्तु तथा नारायणध्वज ॥

ध्वजमन्त्र—हे शक्रकेतो, हे महावीर्य, हे श्यामवर्ण, मैं आपकी पूजा करता हूँ। पवित्रराज, हे नारायणध्वज, आप के लिए नमस्कार है।

काश्यपेयारुणभ्रातर्नागारे विष्णुवाहन । अप्रमेय दुराधर्ष रणे देवारिसूदन ॥
गरुत्मान्मारुतगतिस्त्वयि सन्निहितो यतः । साश्ववर्मायुधान्योधान् रक्ष त्वं च रिपून् दह ॥

हे काश्यपेय-अरुण के भाई, हे नागों के शत्रु, हे विष्णुवाहन, हे अप्रमेय, हे दुराधर्ष, हे देवारिसूदन, तुम गरुड हो तथा वायु की तरह तुम्हारी गति है सारवाले शस्त्रों की रक्षा करो और शत्रुओं का दहन करो।

(पताकाया मन्त्राः)

अथ पताकायाः—हुतभुग्वसवो रुद्रा वायुः सोमो महर्षयः । नागकिन्नरगन्धर्वयक्षभूतगणग्रहाः ॥
प्रमथास्तु सहादित्यैर्भूतेशो मातृभि सह । शक्रः सेनापतिः स्कन्दो वरुणश्चाश्रितास्त्वयि ॥

इसके बाद पताका मन्त्र—अग्नि, वसु, रुद्र, वायु, सोम, महर्षि, नाग, किन्नर, गन्धर्व, यक्ष, भूतगण, ग्रह, और प्रमथ ये आदित्य के साथ, भूतेश माताओं के साथ, इन्द्र, सेनापति, स्कन्द तथा वरुण ये सब आप में आश्रित हैं।

प्रदहन्तु रिपून् सर्वान् राजा विजयमृच्छतु । यानि प्रयुक्तान्यरिभिरायुधानि समन्ततः ॥
पतन्तूपरि शत्रूणां हतानि तव तेजसा ।

सब शत्रुओं का नाश करो और राजा के विजय की इच्छा करो। जिन शस्त्रों (आयुधों) को सब तरफ से शत्रुओं ने शस्त्र प्रयोग किया है वे सब आप के तेज से नष्ट होकर उनके ऊपर गिरे।

हिरण्यकशिपोर्युद्धे युद्धे देवासुरे तथा ॥ कालनेमिवधे यद्वद्यद्वत्त्रिपुरघातने । शोभितासि तथैवाद्य शोभयास्मांश्च संस्मर ॥

हिरण्यकशिपु के युद्ध में, देव तथा असुर के युद्ध में, कालनेमि के वध में और त्रिपुर के घात में जैसी आप की शोभा हुई वैसे ही आज हम लोगों की शोभा करो और स्मरण करो।

नीलान् श्वेतानिमान् दृष्ट्वा नश्यन्त्वाशु नृपारयः । व्याधिभिर्विविधैर्घोरैः शस्त्रैश्च युधि निर्जिताः ॥
पूतना रेवती नाम्ना कालरात्रिश्च या स्मृता । दहत्याशु रिपून् सर्वान् पताके त्वं मयार्चिता ॥

नील तथा सफेद पताकाओं को देखकर राजा के शत्रुओं को शीघ्र नष्ट करो। अनेक प्रकार की भयंकर व्याधि और शस्त्रों से युद्ध में जीती हुई पूतना, रेवती तथा कालरात्रि नाम वाली जो हैं वे सब शत्रुओं को शीघ्र दहन करे। हे पताके, आपका पूजन मैंने किया।

(गजस्य मन्त्राः)

अथ गजस्य—कुमुदैरावतौ पद्मः पुष्पदन्तोऽथ वामनः । सुप्रतीकोऽञ्जनो नील एतेष्टौ देवयोनयः ॥
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च वनान्यष्टौ समाश्रिताः । मन्द्रो भद्रो मृगश्चैव गजः सङ्कीर्ण एव च ॥

वने वने प्रसूतास्ते यूथानि सुमहान्ति च । पान्तु त्वां वसवो रुद्रा आदित्याः समरुद्गणाः । भर्तारं रक्ष नागेन्द्र स्वामिवत्प्रतिपाल्यताम् ॥

अब हाथी का मन्त्र कहते हैं—कुमुद, ऐरावण, पद्म, पुष्पदन्त, वामन, सुप्रतीक, अञ्जन और नील ये आठ देवयोनि हैं। उनके पुत्र तथा पौत्र आठ वन में रहते हैं। मन्द, भद्र, मृग, गज और संकीर्ण जो वन-वन में पैदा हुए तथा बड़े यूथों को पैदा किया। आपको पवित्र करें—वसु, रुद्र, आदित्य और मरुद्गण रक्षा करें। हे नागेन्द्र, स्वामी की रक्षा करो और स्वामी की तरह पालन करो।

अवाप्नुहि जयं युद्धे गमने स्वस्ति नो व्रज । श्रीस्ते सोमाद्बलं विष्णोस्तेजः सूर्याज्जवोऽनिलात् ॥ स्थैर्यं मेरोर्जयं रुद्राद्यशो देवात्पुरन्दरात् । युद्धे रक्षन्तु नागास्त्वां दिशश्च सह दैवतैः ॥ अश्विनौ सह गन्धर्वैः पान्तु त्वां सर्वतः सदा ॥ इति ।

युद्ध में जय प्राप्त करो तथा गमन में कल्याण हमारा करो। सोम से श्रीलक्ष्मी, विष्णु से बल, सूर्य से तेज, पवन से वेग, मेरु से स्थिरता, रुद्र से जय, इन्द्रदेव से यश तथा युद्ध में नाग रक्षा करें। देवताओं के साथ दिशायें और गन्धर्वों के साथ अश्विनीकुमार सदा सब तरफ आपकी रक्षा करें।

(खड्ग मन्त्राः)

अथ खड्गमन्त्रः—असिर्विशसनः खड्गस्तीक्ष्णधारो दुरासदः । श्रीगर्भो विजयश्चैव धर्मधारस्तथैव च । एतानि तव नामानि स्वयमुक्तानि वेधसा । नक्षत्रं कृत्तिका ते तु गुरुर्देवो महेश्वरः ॥ रोहिण्यश्च शरीरं ते दैवतं च जनार्दनः । पिता पितामहो देवस्त्वं मां पालय सर्वदा ॥

अब खड्गमन्त्र कहते हैं। असि, विशसन, खड्ग, तीक्ष्णधार, दुरासद, श्रीगर्भ, विजय तथा धर्मधार ये सब तुम्हारे नाम हैं। जिनको स्वयं ब्रह्मा ने कहा है।

तुम्हारा कृत्तिकानक्षत्र है। रुद्रदेव महेश्वर हैं। रोहिणी तुम्हारा शरीर है। जनार्दन देवता है। पिता तथा पितामह देव हैं। तुम सर्वदा मेरी रक्षा करो।

नीलजीमूतसंकाशस्तीक्ष्णदंष्ट्रः कृशोदरः । भावशुद्धो मर्षणश्च अतितेजास्तथैव च ॥

नीलमेघ के सदृश आपका रूप है। तीखी आपकी दाढ है। उदर कृश है। भाव शुद्ध है। सहन करने के योग्य और वैसे ही अत्यन्त तेजवाला है।

इयं येन धृता क्षोणी हतश्च महिषासुरः । तीक्ष्णधाराय शुद्धाय तस्मै खड्गाय ते नमः ॥

जिसने इस पृथ्वी को धारण किया और जिसने महिषासुर को मारा उस तीक्ष्ण धारावाले शुद्धरूप खड्ग के लिये नमस्कार है।

(छुरिकाया मन्त्राः)

अथ छुरिकायाः—सर्वायुधानां प्रथमं निर्मिताऽसि पिनाकिना । शूलायुधाद्विनिष्कृष्य कृत्वा मुष्टिगृहं शुभम् ॥ चण्डिकायाः प्रदत्ताऽसि सर्वदुष्टनिवर्हिणी । तया विस्तारिता चासि देवानां प्रतिपादिता ॥

छूरिकामन्त्र कहते हैं। शंकर ने सब आयुधों के पहले उस तीक्ष्ण धारवाले आयुध से निकाल कर तथा कल्याणकारक मुष्टिग्रह बनाकर सारे दुष्टों को नाश करने वाली चण्डिका को दिया। उससे विस्तार किया। देवताओं से कहा।

सर्वसत्वाङ्गभूतासि सर्वाशुभनिवर्हिणी । छुरिके रक्ष मां नित्यं शान्तिं यच्छ नमोऽस्तु ते ॥

तुम सब प्राणियों की अंगरूपा हो सब अशुभ को नाश करनेवाली हो। हे छूरिके, मेरी नित्य रक्षा करो और शान्ति दो। तुमको नमस्कार है।

(कट्टारकपूजा)

अथ कट्टारकपूजा—रक्षाङ्गानि गजान् रक्ष रक्ष वाजिधनानि च । मम देहं सदा रक्ष कट्टारक नमोऽस्तु ते ॥ कट्टारको मध्यदेशे 'कटारी' इति प्रसिद्धा ।

कट्टारकपूजा कहते हैं। अंगों की रक्षा करो, हाथियों की रक्षा करो, घोड़े और धनों की रक्षा करो और मेरे शरीर की रक्षा करो। हे कट्टारक, आपके लिए नमस्कार है। कट्टारक को मध्य-प्रदेश में 'कटारी' शब्द से प्रसिद्धि है।

(धनुःपूजा)

अथ धनुःपूजा—सर्वायुधमहामात्र सर्वदेवारिसूदन। चाप मां समरे रक्ष साकं शरवरैरिह। धृतं कृष्णेन रक्षार्थं संहाराय हरेण च। त्रयीमूर्तिगतं देवं धनुरस्त्रं नमाम्यहम्॥

अब धनुःपूजा कहते हैं—हे सब आयुधों में उत्तम, हे सर्वदेवारिसूदन, धनुष तथा बाणों के सहित आप मेरी समर में रक्षा करो। कृष्ण ने रक्षा के हेतु और संहार के लिए शंकर ने धारण किया। तीन मूर्तियों में गया आप का तेज है उस धनुष अस्त्र को मैं नमस्कार करता हूँ।

(कुन्तपूजा)

अथ कुन्तपूजा—प्रास पातय शत्रूंस्त्वमनया नाकमायया।
गृहाण जीवितं तेषां मम सैन्यं च रक्षताम्॥

अब कुन्त (भाला) की पूजा कहते हैं। हे प्रास, शत्रुओं का पतन करो। इस देवमाया से उनके जीव को ग्रहण करो मेरी सेना की रक्षा करो।

(चर्मपूजा)

अथ चर्मपूजा—शर्मप्रदस्त्वं समरे चर्म सैन्ये यशोऽद्य मे।
रक्ष मां रक्षणीयोऽहं तापनेय नमोऽस्तु ते॥

अब चर्म (ढाल) पूजा कहते हैं। हे चर्म, तुम संग्राम में सुख देने वाले हो। आज मेरी सेना के यश की रक्षा करो। मैं आपकी रक्षा करने योग्य हूँ। हे तापनेय (शत्रुओं को दुःख देनेवाले), आप के लिए नमस्कार है।

(कनकदण्डमन्त्रः)

अथ कनकदण्डमन्त्रः—प्रोत्सारणाय दुष्टानां साधुसंरक्षणाय च। ब्रह्मणा निर्मितश्चासि व्यवहारप्रसिद्धये॥ यशो देहि सुखं देहि जयदो भव भूपतेः। ताडयस्व रिपून् सर्वान् हेमदण्ड नमोऽस्तु ते॥

अब कनकदण्डमन्त्र कहते हैं। दुष्टों को भगानेवाले और साधुओं की रक्षा करने वाले तथा व्यवहार भी प्रसिद्धि के लिए ब्रह्मा ने निर्माण किया। राजा को यश दो, सुख दो, जय दो और शत्रूओं को ताडन दो। हे हेमदण्ड, तुम्हारे लिए नमस्कार है।

(दुन्दुभिमन्त्राः)

अथ दुन्दुभिमन्त्रः—दुन्दुभे त्वं सपत्नानां घोरो हृदयकम्पनः।
भव भूमिपसैन्यानां तथा विजयवर्द्धनः॥

अब दुन्दुभिमन्त्र कहते हैं। हे दुन्दुभे, तुम राजा के सैन्यों–शत्रुओं के भयंकर हृदय का कंप करने वाले हो और विजयवर्धक हो।

यथा जीमूतघोषेण प्रहृष्यन्ति च बर्हिणः। तथात्र तव शब्देन हर्षोऽस्माकं मुदावहः॥

जैसे मेघ के शब्द से बर्हिण (मयूर) प्रसन्न होते हैं। वैसे ही तुम्हारे शब्द से हम लोगों को प्रसन्नता होती है।

यथा जीमूतशब्देन स्त्रीणां त्रासोऽभिजायते। तथाऽत्र तव शब्देन त्रस्यन्त्वस्मद्विषो रणे॥

जैसे मेघ के शब्द से स्त्रियों को त्रास का अनुभव होता है। वैसे ही इस रण में हमारे शत्रुओं को तुम्हारे शब्द से त्रास मिले।

(शंखमन्त्रः)

अथ शंखमन्त्रः—पुण्यस्त्वं शंख पुण्यानां मङ्गलानां च मङ्गलम् ।
विष्णुना विधृतो नित्यमतः शान्तिप्रदो भव ॥

अब शंखमन्त्र कहते हैं। हे शंख, तुम पुण्यों के पुण्यरूप हो तथा मंगलों के मंगलरूप हो विष्णु नित्य धारण करते हैं, इसलिए शान्तिप्रद हो।

(सिंहासनमन्त्राः)

अथ सिंहासनमन्त्रः—विजयो जयदो जेता रिपुघाती शुभङ्करः। दुःखहा धर्मदः (धनदः) शान्तः सर्वारिष्टविनाशनः॥ एते वै सन्निधौ यस्मात्तव हिंसा महाबलाः। तेन सिंहासने नित्यं देवैर्मन्त्रैश्च गीयसे॥ त्वयि स्थितः शिवः शान्तस्त्वयि शक्रः सुरेश्वरः। नमस्ते सर्वतोभद्र भद्रदो भव भूपतेः॥

अब सिंहासनमन्त्र कहते हैं। विजय तथा जय को देने वाला, शत्रु को जीतने वाला, शत्रुओं का घात करनेवाला, शुभ करनेवाला, दुःख का नाश करने वाला, धर्म को देनेवाला, शान्तस्वरूपवाला और सब अरिष्टों का विनाश करने वाला यह निश्चय महाबली सिंह तुम्हारे समीप में हैं। इससे देवताओं के मन्त्रों से सिंहासन में तुम्हारा गीत गाते हैं। तुम्हारे में शान्त शिव स्थित हैं। तुम्हारे में सुरेश्वर इन्द्र स्थित हैं, हे सर्वतोभद्र, तुमको नमस्कार है और राजा को कल्याण देनेवाले हो।

त्रैलोक्यजयसर्वस्व सिंहासन नमोऽस्तु ते। तथैव कर्मचिह्नानि स्वानि पूज्यानि शिल्पिभिः॥

त्रैलोक्यजयसर्वज्ञ, सिंहासन, तुमको नमस्कार है। वैसे ही अपने काम में आने वाले चिन्हों को शिल्पी (कारीगण) गण पूजन करें।

लौहाभिसारिकं कर्म कृत्वैवं मन्त्रपूर्वकम्। कुङ्कुमचन्दनचम्पकचतुःसमैः शैलपिष्टैश्च।
चर्चितगायत्रीं देवीं कुसुमैरभ्यर्चयेद्बहुभिः॥ कुमुदैः सपद्मपुष्पैः सधूपदीपैः सनैवेद्यैः।
मांसैर्बल्युपहारैर्मङ्गलशब्दैः समुच्छलितैः॥ विहितच्छत्रैर्यानैः स्यन्दनशितशस्त्रधारिजन् लोकैः।
तुष्टैः पश्वस्त्रादि तु निवेद्यते सर्वमेव भगवत्यै॥

मन्त्रपूर्वक लोहाभिसारिककर्म (नीराजन से मिलता-जुलता एक सैनिकसंस्कार) (लोहाभिसारोऽस्त्रभृतां राज्ञां नीराजनविधिः' इत्यमरः) अष्टमीतिथि को पूर्वाह्न में नित्य स्नान करे।

कुङ्कुम, चन्दन, (सति संभव में लाल चन्दन) चम्पा और कस्तूरी[1] का दो भाग, चार भाग चन्दन का, केशर का तीन भाग और कपूर का एक भाग इनको शिलाजीत में पीसकर गायत्रीदेवी को लगावे तथा बहुत पुष्पों से पूजा करे। तीक्ष्ण खड्ग धारण करने वाले मनुष्य प्रसन्न होकर कुमुद और पद्मपुष्पों, धूप, दीप, नैवेद्य, मांस, बलि के उपहारों, निरन्तर उत्पन्न होने वाले मंगलशब्दों से, छत्र, यान, रथ तीक्ष्ण-शस्त्र धारण करने वाले लोक और पशु आदि भगवती के लिये निवेदन करें।

दुर्गा सा पूजनीया च तद्दिने द्रोणपुष्पकैः। ततः खड्गं नमस्कृत्य शत्रूणां वधसिद्धये॥
इच्छेत विजयं राज्यं सुभिक्षं चात्मने नृपः। पुनः पुनः प्रणम्यार्यां संस्मरन् हृदये शिवाम्॥

उसीदिन द्रोणपुष्पों (गोम) से उस दुर्गा का पूजन करे। तदनन्तर शत्रुओं के वध के लिए खड्ग को नमस्कार कर राजा अपने लिये विजय, राज्य और सुभिक्ष की इच्छा करे। बारंबार हृदय में आर्या शिवा को स्मरण करता हुआ प्रणाम करे।

सर्वं कृत्वेति कौरव्य अष्टम्यां जागरं निशि। नटनर्तनगीतैश्च कारयेच्च सुमहोत्सवम्॥

हे कौरव्य—कुरुवंशी, सब अष्टमी[2] की रात में जागरण एवं नटों द्वारा नाच एवं गानों द्वारा महोत्सव को करावे।

१—गारुडे—कस्तूरिकाया द्वौ भागौ चत्वारश्चन्दनस्य च। कुङ्कुमस्य त्रयश्चैकः शशिनः स्याच्चतुःसमम्॥ शशी=कर्पूरः। कर्पूरं चन्दनं दर्पं कुङ्कुमे च समांसकम्। सर्वगन्धमिति प्रोक्तं समस्तसुरवल्लभम्॥ दर्पः=कस्तूरी। २—कालिकापुराणे—पुनः पूजा तथाऽष्टम्यां विशेषेण समाचरेत्। जागरं च स्वयं कुर्याद्बलिदानं महानिशि॥

एवं हृष्टैर्निशां नीत्वा प्रभाते अरुणोदये। घातयेन्महिषान्मेषानग्रतो नतकन्धरान् ॥
शतमर्धशतं वापि तदर्धं वा यथेच्छया। सुरासवभृतैः कुम्भैस्तर्पयेत्परमेश्वरीम् ॥

इसतरह प्रसन्नचित्त से रात को व्यतीत कर प्रातःकाल अरुणोदय में सौ, पचास या पचीसों को अपनी इच्छानुसार आगे झुके हुए कन्धोंवाले, महिष (भैंस) तथा मेषों (भेड) की वलि दें। सुरासव से भरे कुम्भों से परमेश्वरी का तर्पण करे।

कापालिकेभ्यस्तद्देयं दासीदासजने तथा। तथोऽपराह्णसमये नवम्यां वै रथे स्थिताम् ॥
भवानीं भ्रामयेद्राष्ट्रे स्वयं राजा सशब्दवान्। कश्चिच्चोपोषितो वीरो विधृतोऽन्येन खड्गवान् ॥
भूतेभ्यस्तु बलिं दद्यान्मन्त्रेणानेन सामिषम्।

वह मांस कापालिकों के लिए तथा दासी-दासजनों के लिए दे। तदनन्तर नवमी के अपराह्ण के समय में रथ में स्थिति कर (वैठाकर) स्वयं राजा भवानी का भ्रमण करावे। कोई उपोषित खड्गधारी वीर अन्य के द्वारा पकड़ लिया गया हो वह मांस सहित इस मन्त्रसे भूतों के लिए आमिष बलि दे।

सरक्तं सजलं चान्नं गन्धपुष्पाक्षतैर्युतम् ॥ त्रींस्त्रीन्वारान् समूलेन दिग्विदिक्षु किरेद् बलिम् ॥

रक्त-रुधिर, जल, अन्न, गन्ध, पुष्प और अक्षतों के सहित तीन-तीन वार मूलमन्त्र से दिशा तथा विदिशाओं में वलि का प्रक्षेप करे।

(बलिदानमन्त्राः)

मन्त्रश्च—बलिं गृह्णन्त्विमं देवा आदित्या वसवस्तथा।
मरुतश्चाश्विनौ रुद्राः सुपर्णा पन्नगा ग्रहाः ॥
असुरा यातुधानाश्च पिशाचोरगराक्षसाः। डाकिन्यो यक्षवेताला योगिन्यः पूतना शिवाः ॥
जृम्भकाः सिद्धगन्धर्वा माला विद्याधरा नगाः। दिक्पाला लोकपालाश्च ये च विघ्नविनायकाः ॥
जगतां शान्तिकर्तारो ब्रह्माद्याश्च महर्षयः। मा विघ्नं मा च मे पापं मा सन्तु परिपन्थिनः ॥
सौम्या भवन्तु तृप्ताश्च भूतप्रेताः सुखावहाः ॥ इति महाष्टमी।

बलि के मन्त्र हैं—देवता, आदित्य, वसु, मरुत, अश्विनीकुमार, रुद्र, सुपर्ण, पन्नग, ग्रह, असुर, यातुधान, पिशाच, उरग, राक्षस, डाकिनी, यक्ष, वेताल, योगिनी, पूतना, शिवा, जृंभक, सिद्ध, गन्धर्व, [1]माला, विद्याधर नाग, दिक्पाल, लोकपाल और विघ्नविनायक हैं संसार के शान्ति को करने वाले ब्रह्मा आदि महर्षिगण हैं वे सब (बलिको ग्रहण करें) तथा मेरे विघ्न को, मेरे पाप को एवं मेरे शत्रुओं का नाश करें। सुख देने वाले सब भूत-प्रेत सौम्य हों तथा तृप्त हों।

(महानवमीनिर्णयः)

महानवमी तु पूर्वयुता ग्राह्या। पूर्वोक्तवचनात्। 'नवमी दुर्गाव्रते श्रावणी' इति दीपिकोक्तेः। श्रावणी दुर्गनवमी दूर्वा चैव हुताशनी। पूर्वविद्धा प्रकर्तव्या शिवरात्रिर्बलेर्दिनम् ॥ इति हेमाद्रौ पाद्मोक्तेश्च।

पहले कहे हुए वचन से तो महानवमी पूर्वयुता ग्रहण करे। दीपिका में कहा है कि—दुर्गाव्रत में नवमीतिथि तथा श्रावणी पूर्वयुता ले और हेमाद्रि में पद्मपुराण का वचन है कि—श्रावणी, दुर्गानवमी, दूर्वाष्टमी, हुताशनी (होली), शिवरात्रि तथा बलिका दिन (वामनद्वादशी) को पूर्वविद्धा करे।

भविष्येऽपि—आश्वयुक्शुक्लपक्षे तु अष्टमी मूलसंयुता। सा महानवमी प्रोक्ता त्रैलोक्येऽपि सुदुर्लभा ॥ इति। मूलमुपलक्षणम्।

भविष्यपुराण में भी कहा है कि—मूलनक्षत्र के सहित आश्विनशुक्लपक्ष की अष्टमी (अर्थात् अष्टमी मूलनक्षत्र से युक्त—नवमीतिथि—यह अर्थ है) वह महानवमीतिथि कही गयी है वह त्रैलोक्य में दुर्लभ है। यहाँ मूलनक्षत्र उपलक्षण है।

१—नागा विधाधरा, इति पाठः।

दुर्गापूजासु नवमी मूलाद्यृक्षत्रयान्विता। महती कीर्तिता तस्यां दुर्गां महिषमर्दिनीम् ॥ इति मदनरत्ने लैङ्गात्।

मदनरत्न में लिङ्गपुराण का कथन है कि—दुर्गापूजा में नवमीतिथि—[1]मूल आदि तीन नक्षत्र से अन्वित कही गयी है। उस तिथि में महिषमर्दिनी दुर्गा का अर्चन करने से महती कीर्ति होती है।

अत्र पूजयेदित्यग्रे शेषः। यानि तु—सा कार्योदयगामिन्याम् इत्यादिप्रागुक्तानि तानि नवमीतिथिपराणि। नवम्यां विशेषोक्तेः। वेधश्च मुहूर्तत्रयेणैव ज्ञेयः। यद्यपि हेमाद्रिमते मुहूर्तद्वयात्माऽपि वेधोऽस्ति, तथापि सूर्योदय एव सः। सायं तु त्रिमुहूर्त एव। तदुक्तं दीपिकायाम्—'त्रिमुहूर्तगा तु सकला सायम्' इति।

माधवोऽपि—सायं तूत्तरया तद्वन्न्यूनया तु न विध्यते। इति। तेन त्रिमुहूर्तयोगे पूर्वा नवमी, पूर्वोक्तवचनात्। न कुर्यान्नवमीं तात दशम्यां तु कदाचन। इति स्कान्दे परानिषेधाच्च। त्रिमुहूर्तयोगाभावे तु निषिद्धापि परैव कार्येति निष्कर्षः।

यहाँ पर पूजयेत्–यह आगे का शेष है। जो कि यह वचन है–कि उदयगामिनी में करे—इत्यादि पहले कह चुके हैं। वह नवमीतिथि से भिन्न स्थितिपरक है। नवमी में विशेष कहा है और वेध तीन मुहूर्त का ही जानना चाहिये।

यद्यपि हेमाद्रिमत में—दो मुहूर्त का भी वेध हैं। तथापि वह सूर्योदय में ही है। सायंकाल में तो तीन ही मुहूर्त का वेध होता है। उसी बात को दीपिका में कहा है कि—सायंकाल में तीन मुहूर्त तिथि हो तो सम्पूर्ण जाने। माधव ने भी कहा है कि—सायंकाल में तो इससे तीन मुहूर्त के योग में (पूर्वोक्त वचन से पहली) नवमी ले—

और हे तात, नवमीतिथि दशमीतिथि से युक्त कभी भी न करे। यह स्कन्दपुराण में परा निषेध है। तीन मुहूर्त का योग न होने से तो निषिद्धा भी परा ही करे यह निष्कर्ष (सिद्धान्त) है।

यत्तु नवम्यां च जपं होमं समाप्य श्रवणेऽपि च। इति संग्रहोक्तेः। व्रतं च जागरश्चैव नवम्यां विधिवद् बलिः। इति देवीपुराणाच्च।

जो संग्रह में कहा है कि—नवमीतिथि में जप तथा होम नवमी या श्रवण में समाप्त करे और देवीपुराण में भी कहा है कि—व्रत, जागरण तथा विधिवत् बलि नवमी में करे।

(नवम्यां होमबल्यादिनिर्णयः)

नवम्यां होमबल्यादिविहितं, तत्र—आश्वयुक्शुक्लनवमी मुहूर्तं वा कला यदि। सा तिथिः सकला ज्ञेया लक्ष्मी विद्याजयार्थिभिः ॥ इति सौरपुराणात्।

नवमी में होम, बलि आदि विहित है। वहाँपर सौरपुराण का मत है कि–आश्विनशुक्ल नवमीतिथि मुहूर्त या कलामात्र भी यदि तो वह तिथि लक्ष्मी, विद्या और जया को चाहनेवाले संपूर्ण जाने।

सूर्योदये परं रिक्ता पूर्णा स्यादपरा यदि। बलिदानं प्रकर्तव्यं तत्र देशे शुभावहम् ॥

और मदनरत्न में देवीपुराण का वचन है कि—सूर्योदय से पर परातिथि रिक्ता हो अपरातिथि पूर्णा हो तो उसमें देश में बलिदान करे वह शुभ देनेवाला है।

बलिदाने कृतेऽष्टम्यां पुत्रभङ्गो भवेन्नृप। इति मदनरत्ने देवीपुराणाच्च बल्यादौ परा कार्या। उपवासादौ पूर्वेति मदनरत्ने उक्तम्। प्रतापमार्तण्डेऽप्येवम्।

हे नृप, अष्टमीतिथि को बलिदान करने से पुत्र भंग होता है बलि आदि में (यद्यपि—आदिपदं चिन्त्यं होमस्यापि पूर्वद्युरेवोक्तेः, तथापि बल्यङ्गपुष्पन्यासादिर्बल्यर्थपूजादिर्वा तेन ग्राह्यः। 'अष्टम्यामुदिते सूर्ये

[1]—पूर्वयाऽषाढया वाऽपि ऋक्षद्वययुताऽथवा। इति वचनात्। मूलाभावे तु कर्तव्या अष्टमीनोपसंयुता। विश्वयुक्ताऽपि कर्तव्या अष्टमी नवमीयुता॥ इत्युत्तराषाढावाक्यं त्वनर्थकम्। मूलेन पूजयेद्देवीं तथा सलिलदैवते। वैश्वदेवे तु नक्षत्रे पूजिता दुःखदा भवेत्॥

दिनान्ते नवमो भवेत्। प्रभाते बलिदाने तु कियन्मात्रापि लभ्यते ॥ नवम्यां तत्र संपूज्या दुर्गा दुर्गातिनाशिनी। प्रातर्नवम्यां बल्यर्थं पूजाविधानात् परेद्युर्नवमी, द्वयभावे तु पूर्वेद्युर्नवमी मध्य एव बल्यादिकार्यम्। 'दशम्यां बलिदानं तु दीपने यत्र मानवैः। तद्राष्ट्रं नाशमायाति मारकोपद्रवैः समम् ॥) परा करे। उपवासादि में तो पूर्वाही करे यह मदनरत्न में कहा है। प्रतापमार्तण्ड में भी यही कहा है।

यत्तु—अष्टम्यां बलिदानेन पुत्रनाशो भवेद् ध्रुवम्। इति कालिकापुराणं, तत्सन्धिपूजापरम्। अष्टमीनवमीसन्धौ तृतीया खलु कथ्यते। इति तत्रैव तदुक्तेः।

जो कालिकापुराण में कहा है कि—अष्टमीतिथि में बलिदान करने से निश्चित पुत्रका नाश होता है। वह सन्धिपूजा परक है। वहीं पर उसी बात को कहा है कि—अष्टमी और नवमीतिथि की सन्धि में निश्चय से तृतीयापूजा (सायंपूजा प्रथमा, निशीथपूजा द्वितीया सन्धिपूजा तृतीया) कही है।

कामरूपनिबन्धे—अष्टम्याः शेषदण्डश्च नवम्याः पूर्व एव च। तत्र या क्रियते पूजा विज्ञेया सा महाफला ॥ अष्टमीमात्रे भवत्येव।

कामरूपनिबन्ध में कहा है कि—अष्टमीतिथि के अवशिष्ट भाग में और नवमीतिथि के पूर्वभाग में ही की हुई पूजा महाफल को देनेवाली होती है। वह केवल अष्टमी में ही पूजा होती है।

आश्विने पूजयित्वा तु अर्धरात्रेऽष्टमीषु च। घातयन्ति पशून् भक्त्या ते भवन्ति महाबलाः ॥

आश्विनमासकी अष्टमीतिथि में आधीरात के समय पूजा को करके जो भक्ति से पशुओंका (बहुकुलाचाराभिप्रायं काम्यं वा) हनन कर देते हैं वे महाबली होते हैं।

तथा—कन्यासंस्थे रवावीषे शुक्लाष्टम्यां प्रपूजयेत्। सोपवासो निशार्धे तु महाविभवविस्तरैः ॥

और—कन्या के सूर्य में शुक्लपक्ष की अष्टमी को उपवासकर निशा (रात्रि) के अर्धभाग (आधीरात) में महाविभव के विस्तारों से पूजा करे।

तथा—पशुघातश्च कर्तव्यो गवयाजवधस्तथा। इति रूपनारायणीये देवीपुराणात्।

और—पशुघात करे और गवय (नीलगाय) तथा अज (बकरा) का वध करे। यह रूपनारायणीय में देवीपुराण का कथन है।

तत्रैव भविष्ये—तस्मादियं महापुण्या नवमी पापनाशिनी।
उपोष्या सुप्रयत्नेन सततं सर्वपार्थिवैः ॥

वहीं पर भविष्यपुराण का मत है कि—इसकारण से यह नवमी पापनाशिनी तथा महान् पुण्यको देनेवाली है अतः महान् यत्न से सब राजाओं को निरन्तर उपवास करना चाहिये।

निर्णयदीपे तु महानवमी परदिनेऽपराह्णव्यापित्वे परा, अन्यथा पूर्वा।

निर्णयदीप में तो कहा है कि—महानवमीतिथि दूसरे दिन अपराह्णव्यापिनी हो तो परा करे। नहीं तो पूर्वा करे।

आवर्तनात्पूर्वकाले नवमी स्यात्परेऽहनि। दुर्गार्चा तत्र पूर्वेद्युः पूर्वाह्णे त्वष्टमी यदि ॥ इति धौम्यवचनादित्युक्तम्। अस्य तु शारदानवमीविषयत्वं समूलत्वं च विमृश्यम्।

धौम्यका कथन है कि—आवर्तन (मध्यान्हकाल) के पूर्वसमय में नवमी दूसरे दिन हो तो वरोपर दुर्गा की अर्चा (पूजा) पूर्वदिन करे यदि पूर्वाह्ण में अष्टमी हो तो। यह वचन शारदीय नवमी विषयक है और इसके मूलत्व पर भी विचार करना चाहिये।

यानि तु—नन्दायां ज्वलते वह्निः पूर्णायां पशुघातनम्। भद्रायां गोकुलक्रीडा तत्र राज्यं विनश्यति ॥ इति, नवम्यामपराह्णे तु बलिदानं प्रशस्यते। दशमीं वर्जयेत्तत्र नात्र कार्या विचारणा ॥ इति, नन्दाया दर्शने रक्षा बलिदानं दशासु च। भद्रायां गोकुलक्रीडा देशनाशाय जायते ॥ इति ब्रह्मवैवर्तनारदादिवचनानि, तानि शुद्धाधिकनिषेधपराणि इति मदनरत्ने।

जो ब्रह्मवैवर्त—नारद—आदिके वचन हैं कि—नन्दा में होला जलती है। पूर्णा में—बलिदान होता है और कार्तिकशुक्ल द्वितीयातिथि में—गोकुलक्रीडा से राज्य का नाश होता है।

नवमी के दिन अपराह्णकाल में बलिदान को उत्तम कहा है दशमीतिथि को त्यागदेना चाहिये इसमें विचार नहीं करना चाहिये। नन्दा में दर्शन, रक्षाबन्धन, दिशाओं में बलिदान तथा भद्रा में गोकुलक्रीडा देश के नाश के लिए होती है। वे वचन शुद्धा (नन्दा, पूर्णा, भद्रा) से अधिक निषेध विषयक है। यह मदनरत्न में कहा है।

तथा कालिकापुराणे—नवम्यां बलिदानं तु कर्तव्यं तु यथाविधि।
जपं होमं च विधिवत्कुर्यात्तत्र विभूतये॥

और कालिकापुराण में कहा है कि—यथाविधि नवमीतिथि में बलिदान करे। उसमें ऐश्वर्य के लिए विधिवत् जप एवं होम करे।

केचित्तु—पूर्वाषाढायुताष्टम्यां पूजाहोमाद्युपोषणम्। इति पूर्वोक्तदेवीपुराणादष्टम्यां होममाहुः। अन्ये तु द्विविधवाक्यवशादष्टम्यामारभ्य नवम्यां समापयन्ति। समुच्चयस्तु युक्तः। रुद्रयामले तु विकल्प उक्तः, तत्तु निर्मूलम्। दुर्गाभक्तितरङ्गिण्यादिगौडग्रन्थेष्वपि नवम्यां होम उक्तः।

कोई कहते हैं कि—पूर्वाषाढ के सहित अष्टमीतिथि में पूजा, होम और उपवास करे। यह पूर्वोक्त देवीपुराण से अष्टमी में होम कहा है। अन्यों का कहना है कि—अनेकप्रकार के वाक्यों से अष्टमीतिथि में आरंभ कर नवमीतिथि में समाप्त करते हैं। इनका समुच्चय (वस्तुतस्तु यद्यपि—जपहोमसमायुक्तः कन्यकां भोजयेन्मुदा। इति वचनात्। प्रत्यहं होमः प्रतीयते तथापि अष्टम्यामेव नवम्यामेव वा कार्यः) युक्त है। रुद्रयामल में विकल्प कहा है, वह तो निर्मूल है। दुर्गाभक्तितरङ्गिणी आदि गौडग्रन्थों में भी नवमीतिथि में होम कहा है।

(होमे विशेषः)

होमे च विशेष उक्तो डामरतन्त्रे—पायसं सर्पिषा युक्तं तिलैः शुक्लैर्विमिश्रितम्। होमयेद्विधिवद्भक्त्या दशांशेन नृपोत्तम॥

होम (कात्यातन्त्रोक्तमार्गेणायं होम इति मान्त्रिकाः) में विशेष डामरतन्त्रमें कहा है कि–हे नृपोत्तम, घृत और सफेद तिलों से मिश्रित पायस (खीर) का विधिवत् भक्ति से दशांश होम करे।

रुद्राध्याये यथा होमो मन्त्रेणैकेन साध्यते। तथा स्तोत्रजपे होमं श्लोकेनैकेन साधयेत्॥ यद्वा सप्तशतीं जप्य होममन्त्रो नवाक्षरः। ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे इति नवाक्षर इति केचित्। पूजोक्तो ग्राह्य इति तु युक्तम्।

एक एक मन्त्र जैसे रुद्राध्याय में (बौधायनोक्तमन्त्र विभाग के द्वारा) होम होता है। वैसे स्तोत्रजप (सप्तशतीस्तोत्रजप) में एक श्लोक से होम का साधन करे। अथवा सप्तशती जप (पाठ) में नवाक्षरमन्त्र से होम करे। किसी का मत है कि—'ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे, यह नवाक्षर मन्त्र है। पूजा में कहा गया ग्रहण करे–यह युक्त है।

रुद्रयामलेऽपि—प्रधानद्रव्यमुद्दिष्टं पायसान्नं तिलास्तथा। किंशुकैः सर्षपैः पूगैर्लाजादूर्वाङ्कुरैरपि॥ यवैर्वा श्रीफलैर्दिव्यैर्नानाविधफलैस्तथा। रक्तचन्दनखण्डैश्च गुग्गुलैश्च मनोहरैः॥ प्रतिश्लोकं च जुहुयात्सर्वद्रव्याणि च क्रमात्। नवाक्षरेण वा हुत्वा नमो देव्या इतीति च॥ इति।

रुद्रयामल में कहा है कि—पायसान्न, तिल प्रधानद्रव्यों (सप्तशतीस्तोत्र होमपरक) को कहा है। किंशुक (पलाश फूल), सरसों, सुपारी, लावा, दूर्वांकुर, (छोटी दूब) यव, श्रीफल (नारिकेल), नानाप्रकार के फल, लालचन्दन के मनोहर टुकडे, मनोहर गुग्गुलों से क्रम से प्रत्येक श्लोक द्वारा नवाक्षर मन्त्र से या नमो[1] देव्यै–महादेव्यै शिवायै सततं नमः। नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्मृताम्॥ इस मन्त्र से सब द्रव्यों द्वारा हवन करे।

१—नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः। नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्मृताम्॥

रहस्ये तु—प्रतिश्लोकं तु जुहुयात् पायसं तिलसर्पिषा । इत्युक्तम् ।

रहस्य में तो कहा है कि—तिल और घृत से युक्त पायस द्वारा प्रतिश्लोक से हवन करे । यों कहा है ।

दुर्गाभक्तितरङ्गिण्यां तु तिलैर्जयन्तीमन्त्रेण च होम उक्तः—पुरश्चरणकार्ये तु बिल्वपत्रयुतैस्तिलैः । इति । कालिकापुराणाद्बिल्वपत्रैश्चेति स्मार्ताः, तन्न । अन्यत्र मानाभावात् ।

दुर्गाभक्तितरङ्गिणी में तो तिलों (तिलाज्यादियों) पूजयेत्तिलहोमैश्च दधिक्षीरघृतादिभिः । इति देवीपुराणात्) से 'जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी । दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते ॥ इस मन्त्र से होम कहा है । पुरश्चरणकार्य में तो बिल्वपत्रों सहित तिलों द्वारा हवन करे—यह कालिकापुराण मत से बिल्वपत्रों से हवन करना स्मार्तोंका कहना है । वह ठीक नहीं है । इसमें अन्यत्र पुराणका अभाव है ।

(बलिदानद्रव्ये उत्तरोत्तरप्राशस्त्यकथनम्)

अथ बलिदानम् । तत्राश्वमेषच्छागमहिषस्वमांसानामुत्तरोत्तरप्राशस्त्यं फलविशेषश्चान्यतोऽवसेय इति दिक् ।

अब बलिदान कहते है । उस बलिदान में मेष, छाग, महिष और अपना मांस उत्तरोत्तर उत्तम कहा है । फलविशेष तो अन्यग्रन्थों से जानना उचित है । यही मार्ग है ।

(बलिदानप्रकारः)

बलिप्रकारस्तु देवीपुराणे—कन्यासंस्थे रवौ शक्तः शुक्लाष्टम्यां प्रपूज्य तु । द्रोणपुष्पैश्च बिल्वाम्रजातीपुन्नागचम्पकैः ॥ पञ्चाब्दं लक्षणोपेतं गन्धपुष्पसमन्वितम् । विधिवत्कालि कालीति जप्त्वा खड्गेन घातयेत् ॥ (ॐ कालि कालि यज्ञेश्वरि लोहदण्डायै नमः । इति मन्त्रः) । तदुत्थरुधिरं मांसं गृहीत्वा पूतनादिषु । (आदिशब्दाचरकीविदारीपापराक्षस्यः) । नैर्ऋतेभ्यः प्रदातव्यं महाकौशिकमन्त्रितम् । मन्त्रस्तु वक्ष्यते । तथा—तस्याग्रतो नृपः स्नायात्कृत्वा शत्रुं तु पैष्टिकम् । खड्गेन घातयित्वा तु दद्यात्स्कन्दविशाखयोः ॥

देवीपुराण में बलिका प्रकार कहा है कि—कन्याराशि में सूर्य स्थित हो तब शुक्लपक्षकी अष्टमीतिथि में द्रोणपुष्प (गोमा) बिल्व, आम, जाती (जातो) पुन्नाग (पुष्पविशेष) चम्पा (चम्पापुष्प) महिष, (भैस) अज (बकरा) या मेष (भेड) पांचवर्ष के लक्षणों से युक्त और गन्ध–पुष्प से सहित भी पूजा करे । विधिवत् 'ॐ कालि कालि यज्ञेश्वरि लोहदण्डायै नमः' इस मन्त्र को जपकर खड्गद्वारा हनन करे । उससे निर्गत रुधिर और मांस को ग्रहण कर पूतना आदि में (चरकी विदारी, पापराक्षसी) नैर्ऋतियों (राक्षसों) के लिए महाकौशिकमन्त्र को पढे । कौशिकमन्त्र को आगे कहेंगे और उसके आगे राजा स्नान (यहाँ पर पशुबलिदानानन्तर उसके रक्त को सारे शरीर में लेपन करे । अथवा अशक्ति में तो तिलक आदि कर स्नान करे–यह किसी का मत है । अन्यतो 'शत्रु मरगया' ऐसी भावनाकर (स्नान की इच्छा करते हैं) कर शत्रुकी मूर्ति आटे (पिष्टक) को बनाकर खड्ग द्वारा मारकर स्कन्द और विशाखा को दे ।

(अशक्तौ ब्राह्मणेन च कूष्माण्डादिभिर्बलिदानम्)

अशक्तौ ब्राह्मणेन च कूष्माण्डादिभिर्बलिदानं कार्यम् ।

अशक्ति में तो ब्राह्मण कूष्माण्ड (कोढा) आदि की बलि (यद्यपि अग्नीषोमीय में पशुहिंसा की तरह पशुबलिदान करना धर्म है । तथापि वह क्षत्रियादिपरक है । ब्राह्मण को तो सात्विक निरामिष बलि देने का विधान मिलता है । इसप्रकार सुरा (मद्य) एवं अपने शरीर के रुधिर से पूजा भी निषिद्ध है । क्योंकि-मद्य देने से ब्राह्मण ब्राह्मणत्व को नष्टकर देता है और अपने शरीर का रुधिर देने से ब्रह्महत्या लगती है । इसलिये पशुबलि राजा को ही देना कहा है) दान करे ।

तदुक्तम् कालिकापुराणे—कूष्माण्डमिक्षुदण्डं च मांसं सारद्यमेव (मद्यमांसवदेव च) च ।
एते बलिसमाः प्रोक्तास्तृप्तौ छागसमाः सदा ॥

उसी बात को कालिकापुराण में कहा है कि—कूष्माण्ड, इक्षुदण्ड और सारद्य–मद्य ये सब बलि के सामान कहे गये हैं । तृप्ति में सदा छाग (बकरा) के सदृश हैं ।

रुद्रयामलेऽपि—छागाभावे तु कूष्माण्डं श्रीफलं वा मनोहरम् ।
वस्त्रसंवेष्टितं कृत्वा छेदयेच्छुरिकादिना ॥

रुद्रयामलमें भी कहा है कि—छाग (बकरा) के अभाव में कूष्माण्ड या सुन्दर श्री फल को वस्त्र से वेष्टित (लपेटकर) कर छूरी आदि से छेदन करे ।

तथा—ब्राह्मणेन सदा देयं कूष्माण्डं बलिकर्मणि । श्रीफलं वा सुराधीश छेदं नैव तु कारयेत् ॥
(छेदे विकल्पः) । माषान्नेन बलिर्देयो ब्राह्मणेन विजानता ।

और—ब्राह्मण तो सदा बलिकर्म में कूष्माण्ड दे । हे सुराधीश, या श्रीफल दे । छेदन न करावे । (छेदन में विकल्प है) जानकार माषान्न (उडद) से ब्राह्मण बलि दे ।

कालिकापुराणे—उत्तराभिमुखो भूत्वा बलिं पूर्वमुखं तथा ।
निरीक्ष्य साधकः पश्चादिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥

कालिकापुराण में कहा है कि—उत्तराभिमुख होकर और बलि को पूर्वमुख कर निरीक्षण कर बाद में साधक मन्त्र को कहे ।

पशु त्वं बलिरूपेण मम भाग्यादुपस्थितः । प्रणमामि ततः सर्वं रूपिणं बलिरूपिणम् ॥

आप (तुम) मेरे भाग्य से पशु बलिरूप से उपस्थित होगये हो सर्वरूपी तथा बलिरूपी आपको प्रणाम करता हूँ ।

चण्डिकाप्रीतिदानेन दातुरापद्विनाशनम् । चामुण्डाबलिरूपाय बले तुभ्यं नमोऽस्तु ते ॥

चण्डिका की प्रसन्नता के लिये, देनेवाले की आपत्ति के विनाश के लिए और चामुण्डाबलिरूप के लिए हे बले, आपके लिये नमस्कार है ।

यज्ञार्थं बलयः सृष्टाः स्वयमेव स्वयंभुवा । अतस्त्वां घातयाम्यद्य तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः ॥

ब्रह्मा ने स्वयं ही यज्ञार्थ केलिए बलिरूप पशुओं को रचना की । इसलिए आपको आज मारता हूँ । अतः यज्ञ में 'वध' करना 'अवध' के रूपमें माना जाता है ।

ऐं ह्रीं श्रीमिति मन्त्रेण तं बलिं मत्स्वरूपिणम् । चिन्तयित्वा न्ययेत्पुष्पं मूर्ध्नि तस्य तु भैरव ॥

ऐं ह्रीं श्रीम्—इस मन्त्र से मत्स्वरूपी उस बलि का चिन्तन (ध्यान) कर हे भैरव, उसके शिरपर पुष्प[1] रखे ।

रसना त्वं चण्डिकाया सुरलोकप्रसाधकः । ह्रीं ह्रीं खड्गेति मन्त्रेण ध्यात्वा खड्गं च पूजयेत् ॥

आप चण्डिका की रसना (जिह्वा) देवलोक को देनेवाली हो । ह्रीं ह्रीं-इस मन्त्र से ध्यानकर और खड्ग की पूजा करे ।

पूजयित्वा ततः खड्गं ॐ हुं फडिति मन्त्रकैः । गृहीत्वा विमलं खड्गं छेदयेद् बलिमुत्तमम् ॥
ॐ ह्रीं ऐं ह्रीं कौशिकीति रुधिरेणाप्यायतामिति । बलिदाने तु दुर्गायाः सर्वत्रायं विधिः स्मृतः ॥

तदनन्तर पूजन कर 'ॐ हुं फट्' इस मन्त्र से खड्ग को ग्रहण कर उत्तम बलि को छेदन करे । ॐ ह्रीं ऐं ह्रीं कौशिकीति रुधिरेणाप्यायताम्-इस मन्त्र से बलि दे । दुर्गा के बलिदान में तथा सर्वत्र यही बलिकी विधि कही गयी है ।

मत्स्यसूक्ते—नवम्यां पूर्ववत्पूजा कर्तव्या भूतिमिच्छता ।
दक्षिणां वस्त्रयुग्मं च आचार्याय निवेदयेत् ॥

मत्स्यसूक्त में कहा है कि—नवमीतिथि में पूर्ववत् (कुमारीपूजा) ऐश्वर्यकी इच्छा के लिए करे । दक्षिणा और दो वस्त्र आचार्य को निवेदन[2] करे ।

१—राजा तो अश्वपीडा की शान्ति के लिए नवमीतिथि में रेवन्त की पूजा करे । बडवारूप छाया में सूर्य से उत्पन्न अश्वगणाधिपति रेवन्त है । २—अभोजयित्वा विप्राग्र्यानसम्पूज्य च तानपि । अदत्वा दक्षिणां तेभ्यो भूयसीं चापि पापकृत् ॥ 'व्रतान्ते विप्रभोजनम्' इति वचनात् 'तदन्ते भोजयेद्विप्रान् दानं दद्याच्च शक्तितः ।

(प्रसङ्गाच्छतचण्डीविधानकथनम्)

अथात्र प्रसङ्गाच्छतचण्डीविधानमुच्यते ।

रुद्रयामले—शतचण्डीविधानं च प्रोच्यमानं मया शृणु ।
सर्वोपद्रवनाशार्थे शतचण्डीं समारभेत् ॥

इसके बाद प्रसंग से रुद्रयामल में शतचण्डी का विधान कहा है कि—मेरे द्वारा कहे हुए उस शत चण्डी विधान को सुनो । संपूर्ण उपद्रव के नाश के लिए 'शतचण्डी' का प्रारंभ करे ।

(मण्डप-वेद्यादीनां कथनम्)

षोडशस्तम्भसंयुक्तं मण्डपं पल्लवोज्ज्वलम् । वसुकोणयुतां वेदीं मध्ये कुर्यात्त्रिभागतः ॥

सोलह स्तंभों से युक्त पल्लवों से समुज्वल (युक्त) मण्डप बनाकर उसके मध्यमें मण्डपका त्रिभाग कर आठकोणके सहित वेदी बनावे ।

पक्वेष्टकचितां रम्यामुच्छ्राये हस्तसम्मिताम् । पञ्चवर्णरजोभिश्च कुर्यान्मण्डलकं शुभम् ॥

जो वेदी पकी ईंटाओं से बनी सुन्दर एकहाथ सीमित ऊँची हो । पांचोंवर्ण के रंगों से शोभनीय मण्डल बनावे ।

पञ्चवर्णवितानं च किङ्किणीजालमण्डितम् । आचार्येण समं विप्रान् वरयेद्दश सुव्रतान् ॥

पांचवर्णों से युक्त वितान (चंदवा) को किङ्किणी (झालर) युक्त लगादे । आचार्य के समान अच्छे आचरण वाले दश ब्राह्मणों का वरण करे ।

ईशान्यां स्थापयेत्कुम्भं पूर्वोक्तविधिना चरेत् । वारुण्यां च प्रकर्तव्यं कुण्डं लक्षणलक्षितम् ॥

ईशानकोण में कुंभ को पूर्वोक्तविधि से स्थापन करे और वरुणदिशा (पश्चिमदिशा) में लक्षणों से युक्त कुण्ड बनवावे ।

(सुवर्णनिर्मित मूर्तिप्रमाणकथनम्)

मूर्तिं देव्याः प्रकुर्वीत सुवर्णस्य पलेन वै । तदर्धेन तदर्धेन तदर्धेन महामते ॥

(अष्टादशभुजादिप्रमाणकथनम्)

अष्टादशभुजां देवीं कुर्याद्वाऽष्टकरामपि । पट्टकूलयुगच्छन्नां देवीं मध्ये निधापयेत् ।

फिर सोने की एक पलकी देवी की मूर्ति को करे । हेमहामते, आधापल उससे आधापल या उससे भी आधापल की अष्टादश भुजोंवाली या आठ हाथोंवाली देवी को जो रेशमी दो वस्त्रों से ढकी हो उसे मध्य में स्थापन करे ।

(आदौ अन्ते च नवार्णमन्त्रजपकथनम्)

देवीं संपूज्य विधिवत् जपं कुर्युर्दश द्विजाः । शतमादौ शतं चान्ते जपेन्मन्त्रं नवार्णकम् ॥
चण्डीं सप्तशतीं मध्ये संपुटोऽयमुदाहृतः ।

देवी का विधिवत् पूजन कर दश ब्राह्मण जप करें । आदि में सौ और अन्त में सौ नवार्णमन्त्र का जप करे । सप्तशतीचण्डी को मध्य में करें—यह संपुट को कहा है ।

(पाठक्रमे वृद्धिविचारः)

एकं द्वे त्रीणि चत्वारि जपेद्दिनचतुष्टयम् ॥ रूपाणि क्रमशस्तद्वत् पूजनादिकमाचरेत् ।

एकदिन में—एक पाठ, दो दिन में–दो पाठ, तीन दिन–में–तीन पाठ, चारदिन में चारपाठ–(अर्थात्–वृद्धिक्रमसे–चारदिन में कुल पाठ–दश होंगे) क्रमशः रूपवाले पाठ चारदिनों में करे और तद्वत् पूजन आदि का आचरण करे ।

(पञ्चमदिने पायसादिना प्रतिश्लोकेन दशांश होमकथनम्)

पञ्चमे दिवसे प्रातर्होमं कुर्याद्विधानतः ॥
गुडूचीं पायसं दूर्वां तिलान् शुक्लान् यवानपि । चण्डीपाठस्य होमं तु प्रतिश्लोकं दशांशतः ॥

पांचवे दिन प्रातःकाल विधान से होम करे। गुडूची (गिलोय), पायस, दूर्वा, सफेद तिल और यव से चण्डीपाठ का होम प्रति श्लोक से दशांश करे।

(ग्रहादिहोमकथनम्)

होमं कुर्याद् ग्रहादिभ्यः समिदाज्यचरून् क्रमात्। हुत्वा पूर्णाहुतिं दद्याद्विप्रेभ्यो दक्षिणां क्रमात्॥

होम के लिये-समिधा, घी तथा चरु द्वारा क्रम से होम करे। फिर 'पूर्णाहुति' हवन कर ब्राह्मणों को दक्षिणा (दद्याद्गोमिथुनान्यष्टौ आचार्याय सुभक्तितः। चतुर्विंशतिसंख्याकैर्हेमगद्याणकैः सह॥ एकैकां दश विप्रेभ्यो दद्याद् गोमिथुनं समाम्। निष्कत्रयसमायुक्तां वस्त्रालङ्कारभूषिताम्) क्रम से दे।

कपिलां गां नीलमणिं श्वेताश्वं छत्रचामरे। अभिषेकं ततः कुर्युर्यजमानस्य ऋत्विजः॥
एवं कृतेऽमरेशान सर्वसिद्धिः प्रजायते॥ इति।

कपिलावर्ण की गौ, नीलमणि, सफेद घोडा, छत्र और चामर दे। तदनन्तर यजमान का ऋत्विज गण अभिषेक करें। इसप्रकार करनेपर हे अमरेशान, सारी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

(कार्यपरत्वे शतसहस्रचण्डीविधानम्)

अथ सहस्रचण्डी। सा च तन्त्रैवोक्ता—सहस्रचण्डीं विधिवत् शृणु विष्णो महामते। राज्यभ्रंशे महोत्पाते जनमारे महाभये॥ गजमारेऽश्वमारे च परचक्रभये तथा। इत्यादिविविधे दुःखे क्षयरोगादिजे भये॥ सहस्रचण्डिकापाठं कुर्याद्वा कारयेत्तथा।

अब सहस्रचण्डी का विधान कहते हैं। वह भी रुद्रयामल में ही कहा है। हे विष्णो, हे महामते, विधिवत् 'सहस्रचण्डी' विधि को सुनो। राज्य के नाश में, बड़े उत्पात में, मनुष्यों के मरने पर, भयङ्कर भय में, हाथी के मरने पर, घोड़े के मरने पर तथा दूसरों द्वारा चलाये हुए चक्र के भय में, इसप्रकार अनेक प्रकार के दुःखों में, उत्पन्न क्षय रोग आदि के भय में—'सहस्रचण्डी' का करे या करावे।

जापकास्तु शतं प्रोक्ता विंशद्धस्तश्च मण्डपः॥ भोज्याः सहस्रं विप्रेन्द्राः गोशतं दक्षिणां दिशेत्। गुरवे द्विगुणं देयं शय्यादानं तथैव च॥ सप्तधान्यं च भूदानं श्वेताश्वं च मनोहरम्।

इसमें जापक (पाठ करनेवाले) सौ ब्राह्मण कहे गये हैं। और बीस हाथ का मण्डप कहा है। अच्छे ब्राह्मणों का भोजन एक हजार कहा है। सौ गोदान दक्षिणा कही है। गुरुजी (आचार्य) को द्विगुणित दक्षिणा दे। वैसे ही शय्यादान, सप्तधान्य, भूमिदान तथा मनोहर सफेद रंग का घोड़ा दे।

पञ्चनिष्कमिता मूर्तिः कर्तव्या वाऽर्धमानतः॥ अष्टादशभुजा देवी सर्वायुधविभूषिता। अवारितान्नं दातव्यं सहस्रं प्रत्यहं विभो॥ शतं वा नियताहारः पयःपानेन वर्तयेत्। एवं यश्चण्डिकापाठं सहस्रं तु समाचरेत्॥ तस्य स्यात्कार्यसिद्धिस्तु नात्र कार्या विचारणा॥ इति, एतद् द्वयं यद्यपि महानिबन्धेषु नास्ति तथापि प्रचारद्रूपत्वादुक्तमिति दिक्।

पांच निष्कपरिमित या उससे आधे मान से बनी जो सब आयुधों से विभूषित अठारह भुजावाली देवी की मूर्ति का निर्माण करे। हे प्रभो, प्रतिदिन हजार ब्राह्मणों को या सौ ब्राह्मणों को अनिषिद्ध अन्न देना चाहिये और नियताहार द्वारा दुग्धपान करे। इसतरह जो चण्डिका का पाठ एकहजार करता है उसके कार्य की सिद्धि होती है। इसमें किसीप्रकार भी विचार (विपरीत) नहीं करना चाहिये। यद्यपि यह दोनों विधान महानिबन्ध ग्रन्थों में नहीं प्राप्त होते हैं। तथापि इनका प्रचार देश व्यापी बहुत होने से यहाँ पर कहा है। यही मार्ग है।

वाराहीतन्त्रे—सङ्कटे समनुप्राप्ते दुश्चिकित्स्यामये तथा। जातिभ्रंशे कुलोच्छेदेऽप्यायुषो नाश आगते॥ वैरिवृद्धौ व्याधिवृद्धौ धननाशे तथा क्षये। तथैव त्रिविधोत्पाते तथा चैवोपपातके॥ कुर्याद्यत्नाच्छतावृत्तं ततः सम्पद्यते शुभम्। श्रेयोवृद्धिः शतावृत्ताद्राज्यवृद्धिस्तथापरा॥

वाराहीतन्त्र में कहा है कि—संकट की प्राप्ति पर, चिकित्सा से असाध्य रोग में, जाति से च्युत होने पर, कुल (वंश) के उच्छेद (नाश) में, आयु नाश के आगमन पर, शत्रु की वृद्धि पर, धन के नाश होनेपर, क्षयरोग हो जाने पर, वैसे ही तीन प्रकार के उत्पात पर और उपपातक में यत्न से सौ आवृत्ति पाठ करने (या

कराने) से कल्याण हो जाता है। सौ पाठ से श्रेय (कल्याण) की वृद्धि होती है और दूसरी राज्य की वृद्धि सौ पाठ से होती है।

मनसा चिन्तितं देवि सिद्ध्येदष्टोत्तराच्छतात्। सहस्रावर्तनाल्लक्ष्मीरावृणोति स्वयं स्थिरा॥ भुक्त्वा मनोरथान् कामान् नरो मोक्षमवाप्नुयात्। चंड्याः शतावृत्तिपाठात् सर्वाः सिद्ध्यन्ति सिद्धयः॥ इति शतचण्डीसहस्रचण्डीविधिः।

हे देवि, मन में जिस बात को विचारा (सोचा) जाता है वह एक सौ आठ पाठ से सिद्ध हो जाता है। एकहजार पाठ से लक्ष्मी स्वयं स्थिर होकर वरण करती है। मनुष्य इच्छित मनोरथों को भोगकर मोक्ष प्राप्त कर लेता है। चण्डी के सौ पाठ की आवृत्ति से सारी सिद्धियाँ सिद्ध हो जाती हैं। यह शतचण्डी और सहस्रचण्डी की विधि है।

(नवरात्रपारणानिर्णयः)

अथ नवरात्रपारणानिर्णयः। सा च दशम्यां कार्या। आश्विने मासि शुक्ले तु कर्तव्यं नवरात्रकम्। प्रतिपदादिक्रमेणैव यावच्च नवमी भवेत्॥ त्रिरात्रं वापि कर्तव्यं सप्तम्यादि यथाक्रमम्॥ इति हेमाद्रौ धौम्यवचनात्।

अथ नवरात्रपारणा का निर्णय करते हैं। वह पारणा दशमीतिथि में करे। हेमाद्रि में धौम्य का वचन है कि—आश्विनमास के शुक्लपक्ष में नवरात्र करे। वह प्रतिपदादि क्रम से ही जब तक नवमी हो करे या त्रिरात्र सप्तमी से नवमी तक यथाक्रम से करे।

'नवमीतिथिपर्यन्तं वृद्ध्या पूजाजपादिकम्' इति प्रागुक्तवचनैर्नवमीपर्यन्तं प्रधानभूतपूजाद्युक्तेरुपवासादेश्चाङ्गत्वेन तत्पर्यन्तत्वादादिशब्देनोपवासोक्तेः। पूर्वोक्तत्रिरात्रव्रते नवम्या अप्युपोष्यत्वाच्च। न च पारणान्तत्वेन त्रिरात्रत्वम्। विष्णुत्रिरात्रादौ तथा प्रसक्तेः। न चात्रोपवासे मानाभाव इति वाच्यम्। एवं च विन्ध्यवासिन्यां नवरात्रोपवासतः। एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च॥ पूजनीया जनैर्देवी स्थाने स्थाने पुरे पुरे। इति हेमाद्रौ भविष्योक्तेः, नवरात्रसमाख्यातो नवम्या अप्युपोष्यत्वाच्च।

नवमीतिथिपर्यन्त वृद्धि से पूजा, जप आदि करे। इसप्रकार पहले कहे हुए वचनों से नवमीपर्यन्त प्रधानभूतपूजादि को कहा है। उपवास आदि तो पूजा के अंग हैं। क्योंकि आदि शब्द से उपवास कहा है। पूर्वोक्तत्रिरात्र व्रत में नवमी को भी उपवास प्राप्त है। कोई शंका करे कि—पारणान्त तक त्रिरात्र होंगे। विष्णु के त्रिरात्र आदि में ऐसा ही हो जायगा। कोई कहे कि-यहाँ उपवास में प्रमाणाभाव है, यों कहे।

हेमाद्रि में भविष्यपुराण का मत है कि—इसतरह विन्ध्यवासिनी के नवरात्र के उपवास से, एक भक्त से, नक्त से और वैसे ही अयाचित (व्रत) से मनुष्यगण स्थान-स्थान पर नगर नगर में पूजन करे। नवरात्र की समाख्या (नाम) से नवमी में भी उपवास करने लायक है।

ननु तिथिह्रासेऽष्टावप्युपवासा भवन्तीति कथं समाख्या। तेन कर्मविशेषे नवरात्रशब्दो रूढः। अत एवोक्तं देवीपुराणे—तिथिवृद्धौ तिथिह्रासे नवरात्रमपार्थकम्। इति चेन्न। तिथिह्रासेऽपि नवतिथीनामुपोष्यत्वान्नवरात्रत्वाच्चतेः। एतेन रात्रीणां प्राधान्यात् ह्रासे अमामादाय नवत्वमिति मूर्खोक्तिः परास्ता।

कोई शंका करे कि– तिथि के ह्रास (घट जाने) में आठ उपवास होंगे—यथा समाख्या (नाम) कैसे होगा। इससे कर्मविशेष में नवरात्रशब्द रूढ है। इसीलिये देवीपुराण में कहा है कि—तिथिवृद्धि में और तिथि के ह्रास में नवरात्र यह ठीक नहीं है। तिथि के ह्रास में भी नव तिथियों का उपोष्यत्व होने से नवरात्र में कोई क्षति नहीं है। इससे रात्रियों का प्राधान्य होने से ह्रास में अमावास्या को ग्रहण कर नवत्व (अर्थात् नौ दिन) मानना मूर्ख का कहा हुआ वचन परास्त हुआ।

यत्तु देवीपुराणे—कन्यासंस्थे रवौ शक्र शुक्लामारभ्य नन्दिकाम् । अयाची ह्यथवैकाशी नक्ताशी अथवाऽम्बवदः ॥ इति व्रतचतुष्टयमुक्तं, तल्लोहाभिसारिकविषयम् । तस्य–जयाभिलाषी नृपतिः प्रतिपत्प्रभृतिक्रमात् । लोहाभिसारिकं कर्म कारयेद्यावदष्टमी ॥ इति भविष्ये अष्टमीपर्यन्तमेवोक्तेः । रूपनारायणेन तु नन्दादिव्रतप्रयोगं पृथगेवोक्त्वा तस्य नवम्यां पारणमुक्तम् ।

जो देवीपुराण में चार व्रतों को कहा है कि—कन्या के सूर्य में, शुक्लपक्ष की पष्ठीतिथि से आरंभ कर अयाचित, एकाशी (एकभक्त), नक्ताशी (नक्तव्रत), या मौन होकर व्रत को ये व्रतचतुष्टय कहे हैं। वह सब लोहाभिसारिकविषयक हैं। उसके—जय की अभिलाषा करनेवाला राजा प्रतिपदा प्रभृति तिथि से से जबतक अष्टमीतिथि हो 'लोहाभिसारिक' कर्म को करावे—यह भविष्यपुराण में अष्टमीतिथिपर्यन्त ही कहा है।

रूपनारायण ने तो कहा है कि—नन्दादि आदि व्रतप्रयोग को अलग ही कहकर उसका नवमी में पारणा कही है ।

यदपि निर्णयदीपे—आश्विने शुक्लपक्षे तु नवरात्रमुपोपितः । नवम्यां पारणं कुर्याद्दशमीमिश्रिता न चेत् ॥ दशमीमिश्रिता यत्र पारणे नवमी भवेत् । दुःखदारिद्र्यदा ज्ञेया तथा व्रतविनाशिनी । इति ब्राह्मनाम्ना लिखितं वचनम्,

जो भी निर्णयदीप में कहा है कि—आश्विनशुक्लपक्ष में तो नवरात्र (नौदिन) उपवास को करके नवमीतिथि में पारण करे। दशमीमिश्रिता नवमी में पारण न करे। जहाँ पर दशमीमिश्रित पारणा में नवमी हो तो वह दुःख, दारिद्र्य को देनेवाली तथा व्रत को नाश करनेवाली जानना चाहिये । ब्रह्मपुराण नामक ग्रन्थ में लिखित वचन है ।

(अत्र पारणे रुद्रयामलवचनस्य पूर्वपक्षकथनम्)

यच्च रुद्रयामले इति वदन्ति—अष्टम्या सह कार्या स्यान्नवमी पारणादिने । यो मोहाद्दशमीवेधे नवम्यां चण्डिकां यजेत् ॥ पारणं च प्रकुर्याद्वै तस्य पुण्यं निरर्थकम् ।

और जो रुद्रयामल में कहते हैं कि—पारणादिन में अष्टमीतिथि के साथ नवमीतिथि में न करे। जो मोह से दशमीवेध में नवमीतिथि में चण्डिका का यजन (पूजन) करते हैं और निश्चय से पारणा करते हैं उसका पुण्य निरर्थक हो जाता है।

नवम्यां पारिता देवी कुलनाशं करोति वै ॥ तस्मात्तु पारणं कुर्यान्नवम्यां विबुधाधिप ॥ इत्यादीनि, यदि समूलानि तदा लौहाभिसारिकनन्दादिव्रतचतुष्टयविषयाणि । तस्याऽष्टमीपर्यन्तमेवोक्तेरित्युक्तं प्राक् ।

नवमीतिथि को पारणा करने से देवी कुल की वृद्धि देती है। दशमी में पारणा करने से निश्चय कुल का नाश करती है। इसलिये विबुधाधिप, नवमीतिथि में पारणा करे। इत्यादि वचन यदि समूल (प्रमाणीभूत) हैं तो लोहाभिसारिक नन्दा आदि व्रतचतुष्टय विषयक हैं। उसका अष्टमीपर्यन्त ही पहले कहा है।

अन्यथा महाष्टम्यां परविद्धायां पारणाविधाने पूर्वनिबन्धैर्विरोधो दुर्वारः स्यात् । यानि तु कैश्चिल्लिखितानि नवम्यां पारणविधायकानि वचनानि तानि हेमाद्र्यादिविरुद्धत्वान्निर्मूलानि । समूलत्वेऽपि यदा दिनद्वये नवमी, तदा द्वितीयदिन उपोष्य तिथ्यन्ते पारणा न, किन्तु नवमीमध्ये कार्येत्येवं नेयानि शिवरात्रिपारणावत् ।

अन्यथा महाअष्टमी परविद्धापारणा विधान में पूर्वनिबन्धों द्वारा विरोध नहीं हटेगा। (अष्टमीविद्धा नवमीतिथि में उपवासविधान होने से)। जो किसी ने लिखे हैं कि–नवमी में पारणाविधायक वचनों को हेमाद्रि आदि द्वारा विरोध होने से निर्मूल हैं। समूलत्व में भी जब दो दिन (अष्टमीविद्धा नवमी त्रिमुहूर्त हो और दूसरे दिन नवमी हो) नवमी हो तब दूसरे दिन उपवास कर तिथ्यन्त में पारणा न करे। किन्तु शिवरात्रि पारणा के सदृश नवमीतिथि के (नवम्यां पारणं कुर्यात्) मध्य में पारणा करे।

(अत्र केचित् पारणाहे सूतकादिप्राप्तौ विचारः)

अत्र केचित् पारणाहे सूतकादिप्राप्तौ तदतिक्रम्य पारणां कुर्यादित्याहुः । तन्मन्दम् ।

यहाँ पर कोई पारणा के दिन सूतक आदि की प्राप्ति होनेपर उस सूतक की निवृत्ति में पारणा करे—ऐसा कहते हैं। यह मूर्खता (मन्दता) है।

काम्योपवासे प्रक्रान्ते त्वन्तरा मृतसूतके। तत्र काम्यव्रतं कुर्याद्दानार्चनविवर्जितम् ॥ इति माधवीये कौर्मोक्तेः ।

माधवीय में कूर्मपुराण का मत है कि—काम्योपवास के प्रारंभ में पारणा या जनना या मरण आशौच आ जाय तो दान और पूजा को त्याग कर काम्यव्रत करे।

व्रतयज्ञविवाहेषु श्राद्धे होमेऽर्चने जपे। प्रारब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु सूतकम् ॥ इति विष्णुवचनाच्चाशौचमध्येऽपि तत्कर्तव्यतावगतेः । पारणान्तत्वाद् व्रतस्य । प्रारम्भस्तु तेनैवोक्तः ।

व्रत, यज्ञ, विवाह, श्राद्ध, होम, अर्चन तथा जप के प्रारंभ में सूतक नहीं होता है। अनारब्ध (जिसका प्रारंभ नहीं हुआ है) में सूतक होता है। इस विष्णुवचन से आशौच के मध्य में भी उसकी कर्तव्यता जानी जाती है। पारणान्त व्रत ([1]व्रतशब्द से पारणा का भी ग्रहण है) होने से। प्रारंभ तो उसी ने ही कहा है।

प्रारम्भो वरणं यज्ञे सङ्कल्पो व्रतसत्रयोः । नान्दीमुखं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रिया ॥ इति ।

यज्ञ में वरण का प्रारंभ होना, व्रत और सत्रयाग में संकल्प का होना, विवाह आदि में नान्दीमुख श्राद्ध और श्राद्ध में पाक (पिण्ड का पाक बनना) की क्रिया होने पर आशौच नहीं होता है।

रुद्रयामलेऽपि—सूतके पारणं कुर्यान्नवम्यां होमपूर्वकम् । तदन्ते भोजयेद्विप्रान् दानं दद्याच्च शक्तितः ॥ इति । तदन्ते=सूतकान्ते ।

रुद्रयामल में भी कहा है कि—नवमीतिथि में होमपूर्वक सूतक में पारणा करे। सूतकान्त (ब्राह्मण भोजन और भूयसी आदि दान) में ब्राह्मणों को भोजन करावे और शक्ति द्वारा दान दे।

(स्त्रीणां रजोदर्शने पारणाविचारः)

एवं स्त्रीभिरपि रजोदर्शनमध्ये कर्तव्यमेव पारणम् । संप्रवृत्तेऽपि रजसि न त्याज्यं द्वादशीव्रतम् । इति माधवीये ऋष्यशृङ्गवचनात् । द्वादशीव्रतमित्युपलक्षणम् । प्रारब्धदीर्घतपसां नारीणां यद्रजो भवेत् । न तत्रापि व्रतस्य स्यादुपरोधः कदाचन ॥ इति तत्रैव सत्यव्रतवचनात् । किञ्च एकादश्यादौ पञ्चषाशौचपाते मासान्ते पारणापत्तिः, मासोपवासान्ते पञ्चषाशौचपाते जीवनासम्भवश्च ।

इसतरह इस व्रत को स्त्रियाँ भी रजोदर्शन (पूजा तो अन्य से करावें, अन्तरा तु रजोयोगे पूजामन्येन कारयेत्।) के मध्य में पारणा करना ही चाहिये। माधवीय में ऋष्यशृङ्ग का वचन है कि—रजोधर्म के होनेपर द्वादशीव्रत का त्याग न करे। द्वादशी व्रत यह उपलक्षण है। वहीं पर सत्यव्रत का वचन है कि—दीर्घकालिक तप के प्रारंभ करने पर यदि स्त्रियों को रजोधर्म हो जाय तो व्रत का कभी उपरोध (रुकावट) नहीं होता है और एकादशी आदि में पांच बार या छः बार आशौच की प्राप्ति पर मास के अन्त में पारणा की आपत्ति हो जायगी और मासोपवास के अन्त में पांच बार या छः बार आशौच की प्राप्ति पर जीवन असंभव हो जायगा।

यत्तु नियमस्था यदा नारी प्रपश्येदन्तरा रजः । उपोष्यैव तु ता रात्रिः स्नात्वा शेषं चरेद् व्रतम् ॥ इत्यङ्गिरोवचनम्,

---

१—धौम्ये—अथवा नवरात्रं च सप्तमं च त्रिकादि वा । एकभक्तेन नक्तेनायाचितोपोषितैः क्रमात् ॥ भविष्ये—प्रथमा द्वितीया तृतीया च चतुर्थी च नराधिप । एतांस्तु एकभक्तेन प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ पञ्चमी च तथा षष्ठी सप्तमी चाष्टमीषु च । उपवासपरो भूत्वा पूजयेत् चण्डिकां बुधः ॥ रुद्रयामले—दुर्गोत्सवे स्मृतं देव उपवासस्य सप्तकम् । अष्टमे दिवसे होमस्ततः किञ्चित्तु भक्षयेत् ॥ भविष्ये—एकभक्तस्तु पञ्चम्या षष्ठ्यां नक्तं प्रवर्तयेत् । अयाचितं तु सप्तम्यामष्टम्यां समुपोषितः । नवम्यां पारणं कुर्यादित्येवं पञ्चरात्रकम् ॥

जो—अङ्गिरा ने कहा है कि—जब स्त्री नियम में स्थित होती हुई यदि मध्य में रजोदर्शन को देखे तो उस रात्रियों में उपवास और स्नान कर अवशिष्ट व्रत को करे।

यच्च हारीतवचनम्—नियमस्थव्रतस्था स्त्री रजः पश्येत्कथञ्चन। त्रिरात्रं तु क्षिपेदूर्ध्वं व्रतशेषं समापयेत् ॥ तद्विधवोपवासविषयम्। तासां तत्र भोजननिषेधादिति केचित्। वयं तु प्रागुक्तसत्यव्रतवचने दीर्घतपसामिति विशेषणोपादानाद् द्वादश्यतिरिक्तसकलैकाहोपवासविषयोऽयं निषेधः। त्रिरात्रनवरात्रादिदीर्घव्रतेषु राजोमध्ये एव पारणेति ब्रूमः। आशौचमध्ये तु सर्वापि पारणा भवति प्रागुक्तकौर्मवचनादिति सिद्धम्। अयं चोपवासपारणानिर्णयः सर्वव्रतेषु बोधव्य इत्यलं भूयसा।

और जो हारीत का वचन है कि—जो स्त्री नियम व्रत में स्थित होकर कुछ भी रज को देखे तो तीन रातके ऊपर (अर्थात् तीन रात बीतने पर) शेष (अवशिष्ट) व्रतको समाप्त करे। ये वचन विधवा के उपवास विषयक हैं। क्योंकि उन विधवाओं का वहाँ पर भोजन निषेध है—यह किसी का मत है। हमारा तो (कमलाकर भट्ट का) कहना है कि—पहले कहे हुए सत्यव्रत के वचन में 'दीर्घतपसाम्' इस विशेषण के उपादान (कारण) से द्वादशी को छोड़कर संपूर्ण एक दिन के उपवास विषयक यह निषेध है। तीन रात, नवरात आदि दीर्घ व्रतों में तो रजोमध्य में ही पारणा करे—यह कहते हैं। आशौच के मध्य में तो सब पारणा भी होती है यह पूर्वोक्त कूर्मपुराण वचन से सिद्ध है और यह उपवास के पारणा का निर्णय सब व्रतों में जानना चाहिये। बहुत कहने की आवश्यकता नहीं है।

(दशम्यां देवीविसर्जनविधिः)

दशम्यां देवीं विसर्जयेत्। तदुक्तं दुर्गाभक्तितरङ्गिण्यां देवीपुराणे—ततः प्रातः पूजयित्वा दशम्यां विधिपूर्वकम्। सम्प्रेषणं तु कर्तव्यं गीतवादित्रनिःस्वनैः ॥

दशमीतिथि को देवी का विसर्जन करे। उसी बात को विधिवत् दुर्गाभक्तितरंगिणी में देवीपुराण का वचन है कि—तदनन्तर दशमीतिथि को प्रातःकाल पूजन कर गायन-वादन-शब्दों द्वारा संप्रेषण (विसर्जन) करे।

रूपं देहि यशो देहि भगं भगवति देहि मे। पुत्रान् देहि धनं देहि सर्वान् कामांश्च देहि मे ॥

हे भगवति, मुझे रूप दो, यश दो, ऐश्वर्य दो, पुत्रों को दो, धन दो और मुझे सारी इच्छाओं को दो।

महिषघ्नि महामाये चामुण्डे मुण्डमालिनि। आयुरारोग्यमैश्वर्यं देहि देवि नमोऽस्तु ते ॥

हे महिषघ्नि, हे महामाये, हे चामुण्डे, हे मुण्डमालिनि, हे देवि, आयु, आरोग्यता और ऐश्वर्य दो। अतः आपके लिए नमस्कार है।

(देव्या उत्थापनमन्त्राः)

इति सम्प्रार्थ्य देवीं तु तत उत्थापयेद् बुधः। उत्तिष्ठ देवि चण्डेशि शुभां पूजां प्रगृह्य च ॥
कुरुष्व मम कल्याणमष्टाभिः शक्तिभिः सह। गच्छ गच्छ परं स्थानं स्वस्थानं देवि चण्डिके ॥

इसप्रकार प्रार्थना (विधिहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं यदर्चितम्। पूर्णं भवतु तत्सर्वं त्वत्प्रसादान्महेश्वरि ॥ इति क्षमस्वेत्युक्त्वा एकं पुष्पमीशान्याम् 'ॐ दुर्गायै नमः' इति निक्षिपेत्) कर बुद्धिमान् पुरुष तदनन्तर देवी की मूर्ति को उठावे। हे देवि, हे चण्डेशि, शुभ पूजा को ग्रहण कर उठो और आठ शक्तियों के सहित मेरा कल्याण करो। हे देवि, हे चण्डिके, अपने उत्तम स्थान को जाओ जाओ।

(जले प्रवाहकरणमन्त्राः)

व्रज स्रोतोजलं वृद्ध्यै स्थीयतां च जले त्विह ॥ इति उत्थाप्य जलं नीत्वा–दुर्गे देवि जगन्मातः स्वस्थानं गच्छ पूजिता। संवत्सरे व्यतीते तु पुनरागमनाय वै ॥

स्रोत—वहते हुए जल में वृद्धि के लिए जाओ और इस जल में स्थित रहो। इसप्रकार उठाकर जल में ले जाकर—हे दुर्गे, हे देवि, हे जगन्मातः, साल भर बीतने पर फिर से निश्चय आगमन के लिए पूजित की हुई आप अपने स्थान को जाओ।

इमां पूजां मया देवि यथाशक्त्योपपादिताम्। रक्षार्थं त्वं समादाय व्रज स्थानमनुत्तमम् ॥ इति जले प्रवाहयेत्।

हे देवि, यथाशक्ति से मेरे द्वारा की हुई इस पूजा को रक्षा के लिए आप लेकर अपने उत्तम स्थान को जाओ। इसतरह कहकर जल में प्रवाह (तदनन्तर घर में आकर ब्राह्मणों द्वारा शान्तिकलशोदक से अभिषिक्त यजमान दुर्गाप्रतिष्ठा की सिद्धि के लिये ब्राह्मणों को दक्षिणा तथा भोजन कराकर स्वयं बांधवों के साथ भोजन) करे।

(इयमेव विजयादशमी तन्निर्णयश्च)

इयमेव विजयादशमी। सा च द्वितीयदिने श्रवणयोगाभावे पूर्वा ग्राह्या। तदुक्तं हेमाद्रौ स्कान्दे—दशम्यां तु नरैः सम्यक् पूजनीयाऽपराजिता। ऐशानीं दिशमाश्रित्य अपराह्णे प्रयत्नतः॥ या पूर्णा नवमीयुक्ता तस्यां पूज्याऽपराजिता क्षेमार्थं विजयार्थं च पूर्वोक्तविधिना नरैः॥ नवमीशेषयुक्तायां दशम्यामपराजिताम्। ददाति विजयं देवि पूजिता जयवर्द्धिनी॥

यही ही विजयादशमी है और वह दूसरे दिन श्रवणनक्षत्र के अभाव में पूर्वा ग्रहण करे। उसी बात को हेमाद्रि में स्कन्दपुराण का मत है कि—मनुष्यगण अच्छीतरह अपराजिता का दशमीतिथि को ईशानदिशा का आश्रय कर प्रयत्न से अपराह्णकाल में जो पूर्ण नवमीतिथि से युक्त हो उसमें अपराजिता का पूजन करे। मनुष्य पूर्वोक्तविधि से कल्याण और विजय के लिये करे। नवमी के शेष से युक्ता दशमीतिथि को जयवर्धिनी अपराजिता देवी का पूजन करने से जय को देती है।

तथा—आश्विने शुक्लपक्षे तु दशम्यां पूजयेन्नरः। एकादश्यां न कुर्वीत पूजनं चाऽऽपराजितम्॥ इति।

और आश्विन शुक्लपक्ष की दशमीतिथि में जो मनुष्य अपराजिता का पूजन करे। एकादशीतिथि में अपराजिता का पूजन न करे।

यदा तु पूर्वदिने श्रवणयोगाभावः, परदिने चाल्पाऽपि तद्योगिनी, तदा परैव। तथा च हेमाद्रौ व्रतकाण्डे कश्यपः—उदये दशमी किञ्चित्सम्पूर्णैकादशी यदि। श्रवणर्क्षं यदा काले सा तिथिर्विजयाभिधा॥

जब पहले रोज श्रवणनक्षत्र के योग का अभाव हो तो दूसरे रोज श्रवणनक्षत्र युक्त अल्प भी दशमीतिथि हो तो तब परा ही ग्रहण करे। और हेमाद्रि के व्रतकाण्ड में कश्यप ने कहा है कि—उदयकाल में किञ्चित् (कुछ) भी दशमी हो और यदि संपूर्ण एकादशीतिथि अपराह्णकाल हो और श्रवणनक्षत्र उस काल में हो तो वह तिथि विजया नाम से कही जाती है।

श्रवणर्क्षे तु पूर्णायां काकुत्स्थः प्रस्थितो यतः। उल्लङ्घयेयुः सीमानं तद्दिनर्क्षे ततो नराः॥ इति।

श्रवणनक्षत्र के पूर्ण में श्रीरामचन्द्रजी ने प्रस्थान किया। अतः मनुष्यों को उसी श्रवणनक्षत्र में सीमा का उल्लंघन करना चाहिये।

काले=अपराह्णे। परदिनेऽपराह्णे श्रवणाभावे तु सर्वपक्षेषु पूर्वैव। मदनरत्नेऽप्येवम्।

काल-माने—अपराह्णकाल कहा है। दूसरे रोज अपराह्णकाल में श्रवणनक्षत्र के अभाव में तो सब पक्षों में पूर्वा ही ग्रहण करे। मदनरत्न में भी यही कहा है।

ज्योतिर्निबन्धे रत्नकोशे च नारदः—ईषत्सन्ध्यामतिक्रान्तः किञ्चिदुद्भिन्नतारकः।
विजयो नाम कालोऽयं सर्वकार्यार्थसिद्धिदः॥

ज्योतिर्निबन्ध में और रत्नकोश में नारद ने कहा है कि—ईषत्-[१] अल्प सन्ध्या के बीतने पर कुछ तारागण उदय को प्राप्त हो गये हों तो उससमय का[२] 'विजय' नाम काल कहा जाता है। जो सब कार्यों की सिद्धि देनेवाला है।

१—चिन्तामणौ-आश्विनस्य सिते पक्षे दशम्यां तारकोदये। स कालो विजयो ज्ञेयः सर्वकामार्थसिद्धये। २—दशमीं यः समुल्लङ्घ्य प्रस्थानं कुरुते नरः। तस्य संवत्सरं राज्ये न क्वापि विजयो भवेत्॥ 'आश्विनस्य सिते पक्षे दशम्यां सर्वराशिषु। सायंकाले शुभा यात्रा दिवा विजयलक्षणः॥ एकादशो यो मुहूर्तो विजयः परिकीर्तितः। तस्मिन् सर्वैर्विधातव्या यात्रा विजयकाङ्क्षिभिः॥ इति भृगूक्तेः।

इषस्य दशमीं शुक्लां पूर्वविद्धां न कारयेत् । श्रवणेनापि संयुक्तां राज्ञां पट्टाभिषेचने ॥
सूर्योदये यदा राजन् दृश्यते दशमी तिथिः । आश्विने मासि शुक्ले तु विजयां तां विदुर्बुधाः ॥
अत्रायं निर्गलितोर्थः—अपराह्णो मुख्यः कर्मकालः, तत्रैव पूजाद्युक्तेः । प्रदोषो गौणः । तत्र दिनद्वयेऽपराह्णव्यापित्वे पूर्वा । प्रदोषव्याप्तेराधिक्यात् । दिनद्वये प्रदोषव्यापित्वे परा । अपराह्णव्याप्तेराधिक्यात् । श्रवणस्तु रोहिणीवदप्रयोजकः । दिनद्वयेऽपराह्णस्पर्शे तु पूर्वा । तत्रापि परदिनेऽपराह्णे श्रवणसत्त्वे परैवेति दिक् ।

आश्विनशुक्लदशमी श्रवणनक्षत्र से संयुक्त हो तो राजाओं के पट्टाभिषेक (राजगद्दी) में पूर्वविद्धा न करे । हे राजन्, जब आश्विनशुक्लपक्ष में सूर्योदय के समय दशमीतिथि दिखायी दे तो विद्वानों ने उसी को विजया कहा है । यहाँपर उसका निष्कर्ष विधान किया है कि अपराह्ण मुख्यकर्म करने का काल है, वही पूजा आदि में कहा है । प्रदोष तो गौण है । उसमें दोनों दिन में अपराह्ण व्यापित्व में पूर्वा ले । क्योंकि प्रदोषव्याप्ति में आधिक्य होने से । दोनों दिन प्रदोषकाल व्यापि हो तो पराग्रहण करे । क्योंकि अपराह्णव्याप्ति के आधिक्य से । श्रवण तो रोहिणी की तरह (अर्थात्-जैसे जन्माष्टमीनिर्णय में रोहिणी अप्रयोजिका है तद्वत् ही) अप्रयोजक है । दोनों दिन में अपराह्ण के अस्पर्श में तो पूर्वाग्रहण करे । उसमें भी दूसरे दिन अपराह्ण में श्रवणनक्षत्र के रहने पर परा ही ले—यही रास्ता है ।

(शमीवृक्षार्चनकथनम्)

अत्र विशेषो भार्गवार्चनदीपिकायां भविष्ये—शमीयुक्तं जगन्नाथं भक्तनामभयङ्करम् ।
अर्चयित्वा शमीवृक्षमर्चयेच्च ततः पुनः ॥

यहाँ विशेष भार्गवार्चनदीपिका में भविष्यपुराण का मत है कि—भक्तों को अभय करनेवाले शमी के सहित जगन्नाथ का अर्चन कर फिर शमीवृक्ष की (शमी रहित देश में तो आचार से अश्मन्तक की पूजा करे । अश्मन्तक महावृक्ष महादोष निवारण । इष्टानां दर्शनं देहि शत्रूणां च विनाशय ॥) पूजा करे ।

(शमीमन्त्रकथनम्)

शमीमन्त्रस्तु हेमाद्रौ गोपथब्राह्मणे—अमङ्गलानां शमनीं शमनीं दुष्कृतस्य च ।
दुःस्वप्ननाशिनीं धन्यां प्रपद्येऽहं शमीं शुभाम् ॥

शमीमन्त्र तो हेमाद्रि में गोपथब्राह्मण ने कहा है कि—अमङ्गलों का शमन करनेवाली, पाप को शमन करने वाली और दुःस्वप्न को नाश करने वाली धन्या कल्याणकारिणी की मैं शरण में जाता हूँ ।

तथा भविष्ये—शमी शमयते पापं शमी लोहितकण्टका ।
धारिण्यर्जुनबाणानां रामस्य प्रियवादिनी ॥

और भविष्यपुराण में कहा है कि—जिस शमी के कांटे लोहित (लाल) रंग के हैं, अर्जुन के बाणों को धारण करने वाली है और राम की प्रियवादिनी है, (ऐसी) शमी पाप को शमन (शान्त) करे ।

करिष्यमाणयात्रायां यथाकालं सुखं मया । तत्र निर्विघ्नकर्त्री त्वं भव श्रीरामपूजिते ॥

यथासमय सुख से होने वाली मेरी यात्रा में (श्रीरामपूजिते)—श्रीरामजी के द्वारा पूजित, आप निर्विघ्नता को करने वाली हों ।

गृहीत्वा साक्षतामार्द्रां शमीमूलगतां मृदम् । गीतवादित्रनिर्घोषैरानयेत् स्वगृहं प्रति ॥ ततो भूषणवस्त्रादि धारयेत्स्वजनैः सह ॥ इति ।

चावलों को ग्रहण कर गीली शमी के मूलभाग की मृत्तिका को ग्रहण कर गायन-वादन के शब्दों से अपने घर में ले आवे । तदनन्तर भूषण, वस्त्र आदि को अपने बन्धु-बान्धवों के साथ धारण करे ।

(अत्रैव बलिनीराजनकथनम्)

अत्रैव बलिनीराजनमुक्तं कृत्यरत्ने । तत्र मन्त्रः–चतुरंगबलं मह्यं निररिष्टं व्रजत्विह । सर्वत्र विजयो मेऽस्तु त्वत्प्रसादात्सुरेश्वरि ॥ इति ।

यहाँ पर ही बलिनीराजन कृत्यरत्न में कहा है कि—उसमें मन्त्र यह है—यहाँ पर चार प्रकार की सेनाओं का वल मुझे प्राप्त हो और शत्रुतारहित होकर यहाँ पर चलता रहे। हे सुरेश्वरि, आपके प्रसाद से सर्वत्र मेरा विजय हो।

गौडनिबन्धे ज्योतिषे—कृत्वा नीराजनं राजा बलवृद्ध्यै यथाक्रमम्। शोभनं खञ्जनं पश्येज्जलगोगोष्ठसन्निधौ॥ अस्य फलानि शुभाशुभदेशाश्च तत्रैव ज्ञेयाः।

गौडनिबन्ध में ज्योतिष का वचन है कि—राजा यथाक्रम से बल की वृद्धि के लिये नीराजन करे। जल, गौ या गोशाला के समीप में शोभन खञ्जन[1] (नीलकण्ठ) को देखे। इस (खञ्जन) के फल और शुभ-अशुभ[2] देश वहाँ पर से ही जानना चाहिये।

(आश्विनशुक्लपौर्णमासीनिर्णयः)

आश्विनपौर्णमासी परा ग्राह्या। सावित्रीव्रतमन्तरेण भवतोऽमापौर्णमास्यौ परे' इति दीपिकोक्तेः।

आश्विनमास की पौर्णमासी परा ग्रहण करे। दीपिका में कहा है कि—सावित्री व्रत को छोडकर पौर्णमासी और अमावास्या परा ग्रहण करे।

(आश्विनपौर्णमास्यां जागरणादिकथनम्)

अत्र विशेषस्तिथितत्त्वे लैंगे—आश्विने पौर्णमास्यां तु चरेज्जागरणं निशि।
कौमुदी सा समाख्याता कार्या लोकैर्विभूतये॥

यहाँ पर विशेष तिथितत्त्व में लिङ्गपुराण के वचन से कहा है कि—आश्विनमास के पौर्णमासी की रात में जागरण करे। वह कौमुदी नाम से कही गयी है। संसार के प्राणी विभूति (ऐश्वर्य) के लिए करें।

कौमुद्यां पूजयेल्लक्ष्मीमिन्द्रमैरावतस्थितम्। सुगन्धिर्निशि सद्वेष अक्षैर्जागरणं चरेत्॥

ऐरावत (हाथी) पर स्थित इन्द्र और कौमुदी में लक्ष्मी का पूजन करे। सुगन्धित होकर रात्रि में द्वेप से जूआ खेलते हुए जागरण करे।

तथा—निशीथे वरदा लक्ष्मीः को जागर्तीति भाषिणी।
तस्मै वित्तं प्रयच्छामि अक्षैः[3] क्रीडां करोति यः॥

और निशीथ (आधी रात) वर को देनेवाली लक्ष्मी कहती है कि—कौन जागता है। उसके लिए धन को दूंगी जो कि पाशों से खेलता है।

अत्रैवाश्वयुजीकर्मोक्तमाश्वलायनेन—'आश्वयुज्यामाश्वयुजीकर्म' इति, तच्छेषपर्वणि कार्यम्। विकृतित्वात्। तत्र पूर्वाह्णव्यापिनी ग्राह्या। दैवकर्मत्वात्। आग्रयणं तु पर्वणि कार्यम्। शरद्याग्रयणं नाम पर्वणि स्यात्तदुच्यते। इति शौनकोक्तेः। तत्रापि शेषपर्वणि कार्यमिति प्रागुक्तम्।

तच्च 'व्रीहिभिरिष्ट्वा व्रीहिभिरेव यजेत्॥ यवेभ्यो यवैरिष्ट्वा यवैरेव यजेत व्रीहिभ्यः' इति श्रुत्या दर्शपौर्णमासयोरेककर्मत्वेनैकद्रव्यनियमाद्दर्शेष्टयाः परं पौर्णमासेष्ट्याश्च प्राग्भवतीति हेमाद्र्यादयः। दर्शेष्ट्याः परमुक्तमाग्रयणकं प्राक्पौर्णमासाच्च तत्। इति दीपिकोक्तेश्च। तच्चाग्रयणं त्रेधा व्रीह्याग्रयणं यवाग्रयणं श्यामाकाग्रयणं चेति।

१—मन्त्रस्तिथितत्त्वे—नीलग्रीव शुभग्रीव सर्वकामफलप्रद। पृथिव्यामवतीर्णोऽसि खञ्जरीट नमोऽस्तु ते॥ वसन्तराजे—त्वं योगयुक्तो मुनिपुत्रकस्त्वं संदृश्यतामेषि शिखोद्गमेन। संदृश्यसे प्रावृषि निर्गतायां त्वं खञ्जनाश्चर्य नमो नमस्ते॥

२—तिथितत्त्वे—अब्जेषु गोषु गजवाजिमहोरगेषु राज्यप्रदः, कुशलदः शुचिशाद्वलेषु। भस्मास्थिकेशनखलोमतुषेषु दृष्टो दुःखं ददाति बहुशः खलु खञ्जरीटः॥ किञ्च—वित्तं ब्रह्मणि, कार्यसिद्धिरतुला शक्रे, हुताशे भयं, याम्यामग्निभयं सुरद्विपि कलेर्लाभः समुद्रालये। वायव्यां वरवस्त्रगन्धसलिलं, दिव्याङ्गना चोत्तरे ऐशान्यां मरणं ध्रुवं निगदितं दिग्लक्षणं खञ्जने॥

३—नारिकेलोदकं पीत्वा अक्षैः क्रीडां समाचरेत्। नारिकेलैश्च पिटकैः पितॄन् देवान् समर्चयेत्॥ बन्धूंश्च प्रीणयेत्तेन स्वयं तदशनो भवेत्। हारीतस्मृतौ—पात्रान्तरगतं यस्तु नारिकेलाम्बुसेवनम्। तालहिंतालमधुकफलानां रसमेव च॥ खरोष्ट्रमानुषं क्षीरं सुरापानसमानि वै।

इसमें ही 'आश्वयुजीकर्म' आश्वलायन ने कहा है कि—आश्विनमास की पूर्णिमा को आश्वयुजी कर्म करे। वह विकृति होजाने से उसके शेष पर्व में करना चाहिये। उसमें पूर्वाह्णव्यापिनी ग्रहण करना चाहिये। दैवकर्म होने से। आग्रयण तो पर्व में करे।

शौनक ने कहा है कि—शरद् ऋतु का पर्व में ही आग्रयण नाम का यज्ञ होता है उसको कहा है। उसी को भी शेष पर्व में करे यह पहले कह चुके हैं। वह (आग्रयण) व्रीहियों से यज्ञ करे व्रीहियों से ही यज्ञ करे यवोत्पत्ति तक। यवों से यज्ञ यवों से ही यज्ञ करे व्रीहि के उत्पत्तितक। इस श्रुति से दर्श-पूर्णमास एक कर्मत्व होने से एक द्रव्य के नियम से दर्शेष्टि के बाद पौर्णमासेष्टि के पहले हो जाता है यह हेमाद्रि आदि का कहना हैं। दर्शेष्टि के आगे पौर्णमासी के पूर्व आग्रयण को करे। वह आग्रयण तीन प्रकार का होता है। पहला व्रीह्याग्रयण दूसरा—यवाग्रयण तीसरा श्यामाकाग्रयण।

(व्रीहियवाभ्यां यजने मासकथनम्)

एषां कालः श्रुतौ—गृहमेधी व्रीहियवाभ्यां शरद्वसन्तयोर्यजेत श्यामाकैर्नीवारैर्वर्षास्वापत्काले-नान्येन पुराणैर्वा' इति।

इनका काल (समय) श्रुति में कहा है कि—गृहमेधी (गृहस्थ) मनुष्य शरद् (आश्विन और कार्तिक मास) में और वसन्त (चैत्र और वैशाखमास) में व्रीहि तथा यवों से यज्ञ करे।

वर्षा ऋतु (श्रावण और भाद्रपदमास) में श्यामाक (सांवा) तथा निवारों से यज्ञ करें। या आपत्काल में अन्य किसी अन्नों से या अन्य अन्नों से यज्ञ करे।

आपस्तम्बोऽपि—'वर्षासु श्यामाकैर्यजेत शरदि व्रीहिभिर्वसन्ते यवैर्यथर्तुवेणुयवैः' इति। तत्रापि श्यामाकाग्रयणमनित्यम्। इतरे तु अनाहिताग्नेर्नित्ये। यवाग्रयणं च कार्यमिति स्मार्तवृत्तावुक्तत्वात् सूत्रे व्रीहियवदेवतासम्बद्धानामेव मन्त्राणामाम्नानाच्च। आहिताग्नेस्तु यवाग्रयणस्याप्यनित्यत्वम्। 'अपि वा क्रिया यवेषु' इति सूत्रात्। यद्वा व्रीह्याग्रयणेन समानतन्त्रता। 'श्यामाकैस्तु प्रस्तरं कुर्यान्नाग्रयणम्। यदि वा तदपि समानतन्त्रम्' इत्यादिना-रायणवृत्तौ परिश्रमवतां सुलभमित्यलम्। इदं च पर्वाभावे शुक्लपक्षे देवनक्षत्रे कृत्तिकादिविशाखान्ते कार्यमिति स्मृत्यर्थसारे उक्तम्।

आपस्तंब ने भी कहा है कि—वर्षा में श्यामाओं से यज्ञ करे। शरदकाल में व्रीहियों से तथा वसन्त-काल में यवों से यज्ञ करे। अपने समय में वेणुयवों[1] (बांस से निर्गत) से यज्ञ करे। उसमें भी श्यामा काग्रयण अनित्य है। इतर दोनों तो अग्निहोत्री से भिन्न को नित्य है। स्मार्तवृत्ति में कहा है कि—यवा-ग्रयण करे। सूत्र में भी व्रीहियव के देवताओं से संबन्धित मन्त्रों का पाठ आया है। आहिताग्नि को तो यवाग्रयण का भी अनित्व कहा है। अथवा यवों से भी क्रिया करे—ऐसा सूत्र से कहा है।

अथवा—व्रीह्याग्रयण से समानतन्त्रता (यव व्रीह्याग्रयण के समान देवतात्व होने से और काल का ऐक्य होने से इसप्रकार अर्धाधानी शालाग्नि में अथवा सर्वाधानी का लौकाग्नि में गृह्यकर्म होने के कारण स्मार्ताग्रयण श्रौताग्रयण से ही नवान्नप्राशन में अधिकार) है।

श्यामाकों से तो प्रस्तर (श्यामाक चरु के असंभव में श्यामाकतृणों से प्रस्तरकों पर सुख से और बिछाकर उसमें स्रुव का स्थापन करे। उसी से श्यामाकाग्रयण की सिद्धि होती है यह वृत्तिकृत् नारायण का मत है) करे (स्वतन्त्ररूप से) आग्रयण करे। अथवा वह भी समानतन्त्र तो इत्यादि नारायणवृत्ति में परिश्रम करने वालों को सुलभ है। बहुत कहने की आवश्यकता नहीं है। यह कर्म पर्व के अभाव में शुक्ल-पक्ष में कृत्तिका से विशाखान्त देवनक्षत्रों में करना चाहिये। यह स्मृत्यर्थसार में कहा है। बौधायनीयग्रन्थ में केशवस्वामी ने भी यही कहा है।

१—वेणुयवो ग्रीष्मे—(का० अ० ४ कं० ६११८) पृ० १६५। ग्रीष्मर्तौ वेणुयवचरुः।

परिशिष्टे—श्यामाकैर्व्रीहिभिश्चैव यवैश्चान्योन्यकालतः ।
प्राग्यष्टुं युज्यतेऽवश्यं न ह्यत्राग्रयणात्ययः ॥ त्रिकाण्डमण्डनोऽप्येवम् ।

परिशिष्ट में कहा है कि—श्यामाक, (सांवा) व्रीहि तथा यवों के द्वारा अपने अपने काल में करना चाहिये । आग्रयण का लोप कभी नहीं कर सकते हैं । त्रिकाण्डमण्डन ने भी यही कहा है ।

यदा त्वेतदाश्विनपौर्णमास्यां क्रियते तदैककालत्वादाश्वयुजीकर्मणोऽस्य च समानतन्त्रता भवति । तदेतद्वृत्तिकृता 'एकबर्हिरिध्माज्य' इति सूत्रे स्पष्टमुक्तम् ।

जब यह आश्विन पूर्णिमासी में किया जाय तो तब एककाल होने से आश्वयुजी (जीर्ण तण्डुल चरु से आश्वयुजी कर्म के प्रधान का होम करे । दोनों चरु का एक स्विष्टकृत् कर्म का आदि आश्वयुजी व्रीह्याग्रहण का तन्त्र से प्रयोग होगा) और इस कर्म की समान तन्त्रता होती है । उसको वृत्तिकार ने कहा है कि—एक बर्हिरिध्माज्य—एक कुशा, इध्म, आज्य इत्यादि । सूत्र में स्पष्ट कहा है ।

(तस्याकरणे प्रायश्चित्तादिकथनम्)

तस्याकरणे प्रायश्चित्तमुक्तं स्मृतिचन्द्रिकायां कात्यायनेन—नित्ययज्ञात्यये चैव वैश्वदेवद्वयस्य च । अनिष्ट्वा नवयज्ञेन नवान्नप्राशने तथा ॥ भोजने पतितान्नस्य चरुर्वैश्वानरो भवेत् ।

नित्ययज्ञ (सायंप्रातर्होम) के न करने से, दोनों वैश्वदेव (भोजन के प्रथम 'बलिवैश्वदेव' और दूसरा सायंकाल में उन्हीं मन्त्रों से तर्पण) न करने से नवीन अन्न के प्राशन में आग्रयणेष्टि न करने से और पतितान्न भोजन करने पर वैश्वानरचरु को पकाकर प्रायश्चित्त करे ।

कारिकापि—अकृताग्रयणोऽश्नीयान्नवान्नं यदि वै नरः ।
वैश्वानराय कर्तव्यश्चरुः पूर्णाहुतिस्तु वा ॥ इति ।

कारिका में भी कहा है कि—यदि मनुष्य आग्रयण[२] के बिना नवीन अन्न का भक्षण करता है तो वैश्वानर के लिए चरु या पूर्णाहुति करे ।

ऋग्विधाने तु—[३]समिन्द्ररायामन्त्रं च वर्षे वर्षे जपेच्छतम् । आग्रयणं यदा न्यूनं तदा सम्पूर्णमेति तत् ॥ इत्युक्तम् । एतच्चापदि मलमासे कार्यमन्यथा नेति प्रागुक्तम् । अन्योऽप्याहिताग्न्यादिविशेषः शौनकादेर्ज्ञेय इत्यलं बहुना । इति आश्विनमासः ।

ऋग्विधान में कहा है कि—हरसाल 'समिन्द्र राया' इस मन्त्र का सौ बार जप करे तो उसे आग्रयण में न्यूनता हो तो वह पूर्ण होती है । यह कहा है । यह आपत्काल में मलमास में करे अन्यथा न करे—यह पहले कह चुके हैं । अन्य भी आहिताग्नि आदि का विशेष शौनक आदि ग्रन्थों से जानकारी करना चाहिये ।

१—आग्रयणं नवान्नं क्रीत्वाऽपि भवति–अन्यथा–स चेदकृत्वाऽऽग्रयणं नवमश्नाति मोहितः । स देवेभ्यः कल्पितं भागं भक्षयित्वाऽऽर्तिमाप्नुयात् ॥ इति दोषस्मरणात् ।

२—आग्रयणदिने षड्दैवत्यं श्राद्धमपि हेमाद्रौ–श्यामाकैरिक्षुभिश्चैव पितॄणां सर्वकामिककम् । कुर्यादाग्रयणं यस्तु स शीघ्रं सिद्धिमाप्नुयात् ॥ नवधान्ये समायाते गृही श्राद्धं समाचरेत् । नवान्नलाभे देवा द्वौ कामकालौ सदैव हि ॥ अन्येऽपि–व्रीहिपाके च कर्तव्यं यवपाके च पार्थिव ।

३—समिन्द्र राया समिषा रभेमहि सं वाजेभिः पुरुश्चन्द्रैरभिद्युभिः । सं देव्या प्रमत्या वीरशुष्मया गोअग्रयाऽश्वावत्या रभेमहि ॥ (ऋ० १।५३।५) ।

अथ निर्णयसिन्धुः

(आश्विनमास)

श्लोकसूची

दौलतराम गौड

(महाभारत अनुशासनपर्व अध्याय अट्टासी से)

१—तिल, व्रीहि, यव, उडदी, जल तथा फल-मूल के द्वारा श्राद्धको करने से एक महिने तक पितरों की तृप्ति बनी रहती है।

२—जिस श्राद्ध में अधिक तिल की मात्रा होती है, वह श्राद्ध अक्षय होता है—ऐसा मनुजीने कहा है।

३—यदि श्राद्धमें गौ का दही दान किया जाय तो उसके पितर एकसाल तक तृप्त रहते हैं। तद्वत् घी से मिश्रित खीर भी दान करे तो पूर्ववत् व्यवस्था होती है।

४—आश्विनमास के कृष्णपक्षमें मघा और त्रयोदशीतिथिके योग पर हमारे आत्मीय बान्धव घी-मिश्रित दान करेंगे—ऐसी पितर आशा करते हैं।

५—'बहुत से पुत्र प्राप्त करने की इच्छा रखे' उनमें से यदि एक भी पुत्र गयातीर्थ की यात्रा करे जहाँ पर अक्षयवट है जो कि श्राद्ध के फल को अक्षय बनाता है।

६—जो कृत्तिकानक्षत्र के योग में श्राद्ध और पितरों का यजन करता है, वह रोग तथा चिन्ता से रहित होता है।

७—पुत्र की इच्छा करनेवाला रोहिणी में तथा तेज की कामना वाला मृगशिरानक्षत्र में श्राद्ध करे तथा आर्द्रा नक्षत्र में श्राद्ध और दान करनेवाला क्रूरकर्मा होता है।

८—धनकी इच्छावाला पुनर्वसुनक्षत्र में और पुष्टिकी इच्छावाला पुष्यनक्षत्र में श्राद्ध करे। आश्लेषा में श्राद्ध करने से धीर पुत्रों को उत्पन्न करता है। मघा में पिण्ड देने वाला कुटुम्बीजनों में उत्तम होता है। पूर्वाफाल्गुनी में सौभाग्यशाली होता है। उत्तराफाल्गुनी में—सन्तानवाला होता है। हस्तनक्षत्र में—अभीष्टफल भोगता है। चित्रामें रूपवान् पुत्र प्राप्त होते हैं तथा स्वातीनक्षत्र के योग में पितरों की पूजा से वाणिज्य से जीवन निर्वाह करता है। विशाखा में श्राद्ध से पुत्रेच्छा हो तो बहुत पुत्रोंवाला होता है। अनुराधा में तो दूसरे जन्म में राजमण्डल का शासक होता है। ज्येष्ठा में समृद्धिशाली तथा प्रभुत्व प्राप्त करता है। मूल में आरोग्यता, पूर्वाषाढा में उत्तम यश, उत्तराषाढ़ में पितृयज्ञ करनेवाला होता है और शोक से रहित रहता है।

९—सोमरस वेचने वाले को जो श्राद्ध का अन्न देता है वह पितरों के लिये विष्ठा के सदृश होता है।

१०—श्राद्ध में वैद्यको भोजन कराया हुआ अन्न पीव और रक्त के समान पितरों को अग्राह्य होता है।

११—देवमन्दिर में पूजाकर जीविका चलानेवाले को दिया हुआ अन्न और श्राद्ध का दान नष्ट हो जाता है।

१२—एक पति को त्याग कर दूसरा पति करनेवाली स्त्री के पुत्र को दिया हुआ श्राद्ध में अन्नदान राख में डाले हुए हविष्य के समान व्यर्थ होता है।

१३—जो लोग धर्मरहित तथा चरित्रहीन ब्राह्मणको हव्य-कव्य का दान करते हैं, उनका वह दान परलोक में नष्ट हो जाता है।

१४—जो मूर्ख मनुष्य जानकर पंक्तिदूषक ब्राह्मण को श्राद्ध में दान करते हैं, उनके पितर परलोक में निश्चय ही उनकी विष्ठा खाते हैं।

१५—जो मूर्ख ब्राह्मण शूद्रों को वेद का उपदेश करते हैं वे भी अपांक्तेय (अर्थात्—पंक्ति के बाहर) हैं। उनको भी श्राद्ध में भोजन न करावे।

१६—श्राद्ध में—काना मनुष्य पंक्ति में बैठे हुए साठ मनुष्यों को, जो नपुंसक है वह सौ मनुष्यों को और कोढ़ी बैठे हुए जितने मनुष्यों को देखता है दूषित करता है।

१७—जो सिर पर पगडी और टोपी रखकर भोजन करता है, जो दक्षिणदिशा की ओर मुख कर भोजन करता है तथा जो जूता पहनकर खाता है उनका सब भोजन आसुर जानना चाहिये।

१८—जो श्राद्ध तिलों से नहीं होता है या जो क्रोधपूर्वक किया जाता है उसके हवि को यातुधान (राक्षस) तथा पिशाच लुप्त कर देते हैं।

१९—प्रत्येक पिण्ड को देते समय गायत्रीमन्त्र का उच्चारण करे।

२०—जो स्त्री रजोयुक्त हो या जिसके दोनों कान बहरे हों उसको श्राद्ध में नहीं ठहरना चाहिये।

२१—जो वैदिक व्रत का पालक कर रहे हों वे यदि किसी के अनुरोध से श्राद्ध का अन्न ग्रहण करते हैं तो उनका व्रतभंग हो जाता है।

अथ निर्णयसिन्धुः

(भाषा-टीका-सहित)

(कार्तिकमास और मार्गशीर्षमास)

दौलतराम गौड

(अथ विष्णुपूजनम्[1,2])

ध्यान—वैकुण्ठे कमनीयरत्नखचिते कल्पद्रुमूले स्थितं नीलेन्दीवरकान्तिसुन्दरतनुं लक्ष्म्या समालिङ्गितम्। गङ्गानीरतरङ्गभूषितपदद्वन्द्वं कृपासागरं कोटीरीकृतबर्हिषिपिच्छमनिशं लक्ष्मीपतिं भावये ॥ आसन—स्फुरत्प्रभं काञ्चनपूरपूरितं शशाङ्कभाविन्दुसमेतमेतत्। हृत्पद्मतुल्यं विधिवन्मयाऽऽहृतं लक्ष्मीपते तुभ्यमिदं वरासनम् ॥ पाद्य-औदुम्बरे सुन्दरभाजनेऽमले रेखाङ्किते पद्मदलानुकारिणि। संस्थापितं पादसुखावहं शुभं मयार्पितं पाद्यमिदं गृहाण ॥ अर्घ्य—पाटीरपूरितकनेकविधैः शुभैश्च दूर्वादलैश्च परिभूषितमेतमीश। लक्ष्मीपते ननु गृहाण करार्घमेहि भक्ताश्च पूरय निकामसकामकामैः ॥ आचमन—आनीतमाचमनवारि परं पुनीतं नाथ त्वदर्थमिदमस्ति दयानिधान। लक्ष्मीश भक्तजनमोदविधानदक्ष आचम्य पूरय च भक्तजनाभिलाषम् ॥ पञ्चामृत—दध्ना घृतेन पयसा मधुनाम्बुमिश्रं गङ्गोदकेन तुलसीसहितेन रम्यम्। पञ्चामृतं त्रिभुवनाधिपदेहशुद्ध्यै स्नानार्हमेतदतिपूततमं गृहाण ॥ शुद्धोदक—एतत्तमालदलनीं कलिन्दजाया आनीतमंबु नितरां तव मोदकारि। हे वैनतेय भुजसंस्थितलम्यधीश निर्णेजनाय दयया भगवन् गृहाण ॥ ततः पुरुषसूक्तेनाभिषेकं कुर्यात्। वस्त्र—युवासुवासा इति मन्त्र पूर्वकं तडित्प्रभं नूतनमम्बरं विभो। हिरण्मयैस्तन्तुततैर्विमिश्रितं दशासु लक्ष्मीधव ते समर्पितम् ॥ यज्ञोपवीत—प्रजापतेरेव समं गृहीतजन्मातिपूतं द्विजचिन्हभूतम्। यज्ञोपवीतं भवदर्थमीश संपादितं धारय मोदयास्मान् ॥ गन्ध[3]—पाटीरसंभूतमभूतपूर्वसौगन्ध्यसम्बन्धुरमेतदीश। लक्ष्मीपते चन्दनचर्चनं ते मोदाय भालेऽर्पितमस्तु वस्तु ॥ पुष्प[4]—बहुविधं कमलावर सुन्दरं समुचितं मकरन्दसमन्वितम्। विकसितं कुसुमं विनिवेदितं कुरु सदा सफलं नयनाञ्जलैः। तदनन्तर केशव आदि चौवीस नामों से तुलसीदल—केशवाय नमः। नारायणाय नमः। माधवाय नमः। गोविन्दाय नमः। विष्णवे नमः। मधुसूदनाय नमः। त्रिविक्रमाय नमः। वामनाय नमः। श्रीधराय नमः। हृषीकेशाय नमः। पद्मनाभाय नमः। दामोदराय नमः। सङ्कर्षणाय नमः। वासुदेवाय नमः। अनिरुद्धाय नमः। पुरुषोत्तमाय नमः। अधोक्षजाय नमः। नारसिंहाय नमः। अच्युताय नमः। जनार्दनाय नमः। उपेन्द्राय नमः। हरये नमः। कृष्णाय नमः। प्रणवाय नमः।

आवरणपूजा—बिन्दु में—नारायणाय नमः नारायणं पूजयामि। त्रिकोण में-बलाय नमः बलं पूजयामि। प्रबलाय० प्रबलं पू०। महाबलाय० महाबलं पू०। षट्कोण में—विष्वक्सेनाय० विष्वक्सेनमा०। चण्डाय० चण्डं पू०। प्रचण्डाय०प्रचण्डं पू०। जयाय०जयं पू०। विजयाय०विजयं पू०। शुकाय०शुकं पू०। अष्टपत्र में-ध्रुवाय०ध्रुवं पू०। अध्वराय० अध्वरं पू०। सोमाय० सोमं पू०। आपाय० आपं पू०। अनिलाय० अनिलं पू०। अनलाय० अनलं पू०। प्रत्यूषाय० प्रत्यूषं पू०। प्रभासाय० प्रभासं पू०। दशपत्र में-मत्स्याय० मत्स्यं पू०। कूर्माय० कूर्मं पू०। वराहाय० वराहं पू०। नारसिंहाय० नारसिंहं पू०। वामनाय० वामनं पू०। परशुरामाय० परशुरामं पू०। रामाय० रामं पू०। कृष्णाय० कृष्णं पू०। बुद्धाय० बुद्धं पू०। कल्किने० कल्किनं पू०। द्वादशपत्र में—नन्दाय० नन्दं पू०। सुनन्दाय० सुनन्दं पू०। महानन्दाय० महानन्दं पू०। विमलनन्दाय० विमलनन्दं पू०। अतिनन्दाय० अतिनन्दं पू०। सुधीवनन्दाय० सुधीवनन्दं पू०। शत्रुविमर्दनानन्दाय० शत्रुविमर्दननन्दनं पू०। मित्रविवर्धनन्दाय० मित्रविवर्धननन्दनं पू०। घोषनन्दनाय० घोषनन्दनं पू०। जीवनन्दनाय० जीवनन्दनं पू०। परमजीवनन्दनाय० परमजीवनन्दनं पू०। चौदहपत्रों में—नारदाय नमः नारदं पू०। पराशराय० पराशरं पू०। व्यासाय० व्यासं पू०। शुकाय० शुकं पू०। वाल्मीकिने० वाल्मीकिनं पू०। वसिष्ठाय० वसिष्ठं पू०। शंवराय० शंवरं पू०। देवलाय० देवलं पू०। पर्वताय० पर्वतं पू०। दुर्वासाय० दुर्वासं पू०। जाबालये० जाबालिं पू०। जमदग्नये० जमदग्निं पू०। विश्वामित्राय विश्वामित्रं पू०। भृगुरये० भागुरिं पू०। सोलहपत्रों में—कपिलाय० कपिलं पू०। याज्ञवल्क्याय० याज्ञवल्क्यं पू०। दाल्भ्याय० दाल्भ्यं पू०। शौनकाय० शौनकं पू०। मार्कण्डेयाय० मार्कण्डेयं पू०। भृगवे० भृगुं पू०। गौतमाय० गौतमं पू०। गालवाय० गालवं पू०। शाण्डिल्याय शाण्डिल्यं पू०। भरद्वाजाय० भरद्वाजं पू०। मौद्गल्याय० मौद्गल्यं पू०। वेदवाहनाय० वेदवाहनं पू०। बृहदश्वाय०

१—अमायां मन्दवारे च वैष्णवर्क्षे तथैव च। रविसंक्रमे व्यतीपाते ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। विशेषाणार्चयेद् विष्णुं यथाशक्त्या वरासने। गुरोरुत्क्रान्तिद्विवसे जन्मर्क्षेषु तथा हरेः। इष्टिं च वैष्णवीं कुर्याच्छक्त्या वै द्विजोत्तमः ॥ २—न रौद्रदेशे विप्रेन्द्र ! सधूमे रन्ध्रनालये। न सूतिकागृहे चैव स्थापयेत्कमलापतिम् ॥ ३—चन्दनागुरुह्रीवेरकृष्णकुङ्कुमरोचना। जटामांसी मुरा चैव विष्णोर्गन्धाष्टकं विदुः ॥ घृष्टं च तुलसीकाष्ठं कर्पूरागुरुयोगतः। अथवा कैसरैर्योज्यं हरिचन्दनमुच्यते ॥

४—न भद्रे केतकीपुष्पैः पूजितव्यो जनार्दनः। 'रेवाखण्डे'—आरामोपहृतं पुष्पमारण्यं पुष्पमेव च। क्रीतं प्रतिग्रहे लब्धं पुष्पमेव चतुर्विधम् ॥ उत्तमं पुष्पमारण्यं गृहीतं स्वयमेव वा। मध्यमं फलकारामे त्वधमं क्रीतमेव च ॥ प्रतिग्रहेण यल्लब्धं निष्फलं तद्विदुर्बुधाः ॥

वृहदश्वं पू० । जैमिनये० जैमिनिं पू० । अगस्त्याय० अगस्त्यं पू० । श्वेतनन्दाय० श्वेतनन्दनं पू० । भूगृह में पूर्वादिक्रम से-इन्द्राय नमः इन्द्रं पूजयामि । अग्नये० अग्निं पू० । यमाय० यमं पू० । निर्ऋतये० निर्ऋतिं पू० । वरुणाय० वरुणं पू० । वायवे० वायुं पू० । सोमाय० सोमं पू० । ईशानाय० ईशानं पू० । ब्रह्मणे० ब्राह्मणं पू० । अन्ताय० अनन्ताय पू० ।

धूप—सौरम्यमानन्दकरं यदीयं यदीयधूपोऽपि विधूतधूमः । एषोऽस्ति धूपो ज्वलते पुरस्ते मोदावहो माधव जिघ्र जिघ्र ॥ दीप—सद्वर्तिसंपूरित एष दीप आलोककारी तमसां विदारी । प्रज्वालितः स्नेहमये सुपात्रे लक्ष्मीपते चन्द्रमसं गृहाण ॥ नैवेद्य[1]—व्यतीतयामं नवनीतमेतद् द्राक्षादिरम्भासितशर्करा च । निधाय रम्ये कनकस्थपात्रे दत्तं तु नैवेद्यमिदं गृहाण ॥ ऋतुफल—कर्पूरदेव कुसुमक्रमुकैलिकाभिः संपूरितामतिसुधासुधया सुपूराम् । ताम्बूलिकां सुरजनेन निवेषणीयां कृत्वाऽऽनेन भवतु मङ्गलमोददाता ॥ आचमन—संवासितं नवलकेतकवारिपूरैः पात्रे घृतञ्च रजतोत्स्वचित्ते त्वदग्रे । पानीयमम्बुसमुपाहृतमेतदीश पीत्वा निभालय दृशा सततं स्वभक्तान् ॥ ताम्बूल—पूगीसुवैलाघनसारदेव पुष्पैरुपेतं मुखमण्डनं यत् । विहारहार्यं नवरङ्गगर्भं गृहाण ताम्बूलमिदं मदर्पितम् ॥ प्रदक्षिणा—त्वद्देहसंस्थानि जगन्ति देव त्वद्रोमकूपेषु च देवसङ्घाः । प्रदक्षिणा दक्षधिपोऽत एव कुर्वन्ति पापौघविनाशनाय ॥ पुष्पाञ्जलिचराचरं व्याप्तमिदं त्वयैव तवैव भासास्ति जगत्सभासम् । त्वय्येव पुष्पाञ्जलिरर्पितेयं मोदाय लोकस्य तवापि चास्तु ॥ क्षमाप्रार्थना—अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया । दासोऽयमिति मां मत्वा क्षमस्व परमेश्वर ॥ स्तुति—जितं ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन । नमस्तेऽस्तु हृषीकेश महापुरुष पूर्वज ॥ नमो हिरण्यगर्भाय प्रधानाध्यक्षरूपिणे । ॐनमो वासुदेवाय शुद्धज्ञानस्वरूपिणे ॥ देवानां दानवानां च सामान्यमधिदैवत । सर्वदा चरणद्वन्द्वं व्रजामि शरणं तव ॥ एकस्त्वमसि लोकस्य स्रष्टा संहारकस्तथा । अध्यक्षाश्चानुमन्ता ज गुणमाया समावृतः ॥ संसारसागरं घोरमनन्तक्लेशभाजनम् । त्वामेव शरणं प्राप्य निस्तरन्ति मनीषिणः ॥ न ते रूपं न चाकारो नायुधानि न चास्पदम् । तथापि पुरुषाकारो भक्तानां त्वं प्रकाशसे ॥ नैव किञ्चित्परोक्षं ते प्रत्यक्षोऽपि न कस्य चित् । नैव किञ्चिदसाध्यं ते न च साध्योऽसि कस्य चित् ॥ नैव किञ्चिदसिद्धं ते न च सिद्धोऽसि पावकः । कार्याणां कारणं पूर्वं वचसां वाक्यमुत्तमम् ॥ योगिनां परमासिद्धिः परमं ते परं विदुः । अहं भीतोऽस्मि देवेश संसारेऽस्मिन् भयप्रद । त्राहि मां पुण्डरीकाक्ष न जाने परं पदम् । कालेष्वपि च सर्वेषु दिक्षु सर्वासु चाच्युत ॥ शरीरे जगतौ वापि वर्धते मे मयद्वयम् ॥ त्वत्पादकमलादन्यन्मम जन्मान्तरेस्वपि ॥ विज्ञानं यदिदं प्राप्तं यदिदं स्थानमर्चितम् । जन्मान्तरेऽपि मे देव मामूदस्य परिग्रहः ॥ दुर्गतापापि जातस्य त्वद्गतो मे मनोरथः ॥ यदि नाशं न विन्देय तावदस्मि कृती सदा ॥ अकालकलुषं चिन्तं मम ते पादयोः स्थितम् । कामये विष्णुपादौ तु सर्वजन्मसु केवलम्[2] ॥

विष्णुस्तुतिः[3]

नतास्मः विष्णुं जगदादिभूतं सुरासुरेन्द्रं जगतां प्रपालकम् । यन्नाभिपद्मात्किलपद्मयोनिर्बभूव तं वै शरणं गतास्मः ॥ नमो नमो मत्स्यवपुर्धराय नमोऽस्तु ते कच्छपरूपधारिणे । नमः प्रकुर्युश्च नृसिंहरूपिणे तथा पुनर्वामनरूपिणे नमः ॥ नमोऽस्तु ते क्षत्रविनाशनाय रामाय रामाय दशास्यनाशिने । प्रलम्बहन्त्रे शितिवाससे नमो नमोऽस्तु बुद्धाय च दैत्यमोहिने ॥ म्लेच्छान्तकायापि च कल्किनाम्ने नमः पुनः क्रोडवपुर्धराय । जगद्हितार्थं च युगे युगे भवान् बिभर्ति रूपं त्वसुराभवाय ॥ निषूदितोऽयं ह्यधुना किल त्वया दैत्यो हिरण्याक्ष इति प्रगल्भः । यश्चेन्द्र मुख्यान् किल लोकपालान् संहेलया चैव तिरश्चकार । स वै त्वया देवहितार्थमेव निपातितो देववर प्रसीद । त्वमस्य विश्वस्य विसर्गकर्ता ब्राह्मेण रूपेण च देव देव ॥ पाता त्वमेवास्य युगे युगे च रूपाणि धत्से सुमनोहराणि । त्वमेव कालाग्निहरश्च भूत्वा विश्वं क्षयं नेष्यसि चान्तकाले ॥ अतो भवानेव च विश्वकारणं न तेऽपरं जीवमजीवमीश । यत्किञ्च भूतं च भविष्यरूपं प्रवर्तमानं च तथैव रूपम् ॥ सर्वं त्वमेवासि चराचराख्यं न भाति विश्वं त्वद् ऋते च किञ्चित् । अस्तीति नास्तीति च भेदनिष्ठं त्वय्येवभातं सदसत्स्वरूपम् ॥ ततो भवन्तं कतमोऽपि देव न ज्ञातुमर्हत्यविपक्वबुद्धिः । ऋते भवत्पादपरायणं जनं तेनागताः स्मः शरणं शरण्यम् ॥ 'हरे मुरारे जगदेकनाथ गोविन्द दामोदर माधवेति । लक्ष्मीपते ! केशव केशिशत्रो ! नारायणानन्त ? विभो प्रसीद ॥ तवाऽवतारं किमहं ब्रवीमि त्वया विना नास्ति भुवीह कोऽपि । किं वा गुणव्याप्तसमस्तलोकं किं वा दयां मित्रपरैकतुल्याम् ॥ पूजां तवाल्पामपि वेद्मि नाहं द्रव्यं कदापि न ददामि तुभ्यम् । तथापि चाग्रे मम मूर्तिमांस्त्वं दृष्टोऽसि मे केशव एक पूज्यः ॥ दत्तस्त्वयाऽयं मम भक्तिवृक्षे धर्मार्थकामत्रय एव सोऽयम् । त्वद्दर्शनाम्भोमयवृष्टिसिक्तः प्रभोद्य कैवल्यफलं दधार[4] ।

१—पाद्मे—न दद्याद् गुडसंयुक्तं हरये बदरीफलम् । अज्ञानाद् ब्राह्मण श्रेष्ठ ! दद्याच्चेनारकी व्रजेत् । २—दंशैश्च मशकैश्चापि प्रकीर्णे मक्षिवादिभिः । हरिं पुरातनागारे स्थापयेन्न हि मानवः ॥ सकर्दमे पतद्द्वारे गलद्भित्तौ गृहे तथा । हरिं न स्थापयेत्प्राज्ञो वर्षासु परमेश्वरम् ॥ ३—पाद्मे—मृगचर्मासने शुद्धे व्याघ्रचर्मासनेऽपि वा । वस्त्रासने केवले च तथा कुशमयासने । पुष्पासने चोपविष्ट पूजयेत्कमलापतिम् । 'काष्ठासने द्विजो विद्वान् न कुर्याद्विष्णुपूजनम् ! दक्षिणाभिमुखो भूत्वा न कुर्याद्विष्णुपूजनम् । ४—विशेष—पूजनक्रम मेरी प्रकाशित 'होमात्मकविष्णुयाग' में कामदेवकृत विष्णुयाग और अनन्तदेवकृत विष्णुयाग में देखिये ।

(कार्तिकमास)

(तुलासंक्रान्तिनिर्णयः)

तुलासंक्रमणे प्रागपरा दश घटिकाः पुण्याः । रात्रौ तु प्रागुक्तम् ।

तुलाकी संक्रान्ति में पहले और बादमें दश-दश घड़ी पुण्यकाल है। रातमें तो पुण्यकाल पूर्वमें कह चुके हैं।

(तुला-मकरमेषेषु प्रातःस्नानविधानम्)

अथ कार्तिकस्नानम् । तत्र पृथ्वीचन्द्रोदये विष्णुस्मृतिपाद्मयोः—तुलामकरमेषेषु प्रातःस्नानं विधीयते । हविष्यं ब्रह्मचर्यं च महापातकनाशनम् ॥ इति सौरमास उक्तः । प्राच्याश्चैतदेवाद्रियन्ते ।

अब कार्तिकस्नान को कहते हैं। उसमें पृथ्वीचन्द्रोदय में विष्णुस्मृति और पद्मपुराण का वचन है कि—तुला, मकर तथा मेषकी संक्रान्तिमें प्रातःकाल स्नान का विधान किया है उसमें हविष्यान्नभोजन एवं ब्रह्मचर्यसे रहे तो महापातका का नाश होता है। इसमें सौरमास कहा है। प्राच्यलोग इसका ही आदर करते हैं।

(दाक्षिणात्यमते विचारः)

दाक्षिणात्यास्तु—आश्विनस्य तु मासस्य या शुक्लैकादशी भवेत् । कार्तिकस्य व्रतानीह तस्यां वै प्रारभेत्सुधीः ॥ इति पाद्मोक्तेः ।

दाक्षिणात्य (दक्षिणी) तो कहते हैं कि—आश्विनमासके शुक्लपक्षकी जो एकादशी है उसमें बुद्धिमान् मनुष्य निश्चयकर कार्तिक के व्रतों को प्रारंभ करे। यह पद्मपुराणमें कहा है।

भार्गवार्चने च—प्रारभ्यैकादशीं शुक्लामाश्विनस्य तु मानवः ।
प्रातःस्नानं प्रकुर्वीत यावत्कार्तिकभास्करः ॥ इति विष्णुरहस्योक्तेः ।

और भार्गवार्चन में विष्णुरहस्य का वचन है कि—मनुष्य आश्विनशुक्लपक्ष की एकादशीतिथि से प्रारंभकर जबतक कार्तिकमासका सूर्य हो प्रातःकाल स्नान करें।

हेमाद्रावादित्यपुराणे—पूर्ण आश्वयुजे मासि पौर्णमास्यां समाहितः । इत्युक्त्वा—मासं समग्रं परया च भक्त्या समाप्यते कार्त्तिकपौर्णमास्याम् । इत्यन्तेऽभिधानाच्चाश्विनशुक्लैकादश्यां पौर्णमास्यां वाऽऽरभ्य कार्तिकशुक्लद्वादश्यां पौर्णमास्यां वा समापयेदित्याहुः ।

हेमाद्रिमें आदित्यपुराणका कथन है कि—आश्विनमासके पूर्ण होनेपर पूर्णमासी को समाहित मनसे—यों कहकर—परमभक्तिसे पूरा महिना कार्तिक की पूर्णिमा तक (स्नान करे)। इसतरह अन्तमें कहा—आश्विनमासमें शुक्लपक्षकी एकादशीतिथिसे या पूर्णिमातिथि से प्रारंभकर कार्तिकशुक्ल द्वादशी तिथिमें या पौर्णमासी तिथिमें समाप्त करे—यों कहा।

मदनपारिजाते विष्णुः—कार्तिकं सकलं मासं नित्यस्नायी जितेन्द्रियः ।
जपन् हविष्यभुक् शान्तः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

मदनपारिजातमें विष्णु का मत है कि—कार्तिकमास तक प्रति[1]दिन स्नान करे और जितेन्द्रिय होकर रहे। जप (अपने इष्ट देवताका या गायत्रीमन्त्र) करे। हविष्यान्नभक्षण करे और शान्त रहे तो सब पापोंसे छूट जाता है।

(कुरुक्षेत्रादिदेशविशेषे फलकथनम्)

अत्र देशविशेषः पाद्मे कार्तिकीं प्रक्रम्य—कुरुक्षेत्रे कोटिगुणो गङ्गायामपि तत्समः ।
ततोऽधिकः पुष्करे स्याद् द्वारवत्यां च भार्गव ॥

यहाँपर देशविशेष पद्मपुराणमें कार्तिकको प्रक्रम (उपक्रम) करके कहा है कि—हेभार्गव, कुरुक्षेत्रमें

१—स्नानाशक्तौ ब्राह्मे—कार्तिकाधिकारे—एकादश्यादिषु तथा तत्र पञ्चसु रात्रिषु । दिने दिने च स्नातव्यं शीतलासु नदीषु च ॥ वर्जयित्वा तथा हिंसां मांसभक्षणमेव च ।

स्नान करने से करोड गुणफल मिलता है। गङ्गामें स्नान करने से उसीके समान पुण्य मिलता है। पुष्कर और द्वारका में उससे अधिक पुण्य प्राप्त होता है।

पुण्याः पुर्यश्च सप्तैवं मुनयो मथुराधिकाः। दुर्लभः कार्तिको विप्राः मथुरायां नृणामिह ॥ यत्रार्चितः स्वकं रूपं भक्तेभ्यः सम्प्रयच्छति ॥ इति।

मनुष्य पुण्यदायक सात पुरि (अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका। पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्ष दायिकाः)। यों में मथुरा अधिक पुण्यवाली है।

इससंसारमें मनुष्योंको कार्तिकमास में मथुरामें स्नान करना बड़ा दुर्लभ है जहाँपर पूजित होकर अपने स्वरूपको भक्तोंके लिये देते हैं।

(इदं स्नानं काशीस्थपञ्चनदेऽतिप्रशस्तम्)

इदं च स्नानं काशीस्थपञ्चनदेप्यतिप्रशस्तम्। शतं समास्तपस्तप्त्वा कृते यत्प्राप्यते फलम्। तत्कार्तिके पञ्चनदे सकृत्स्नानेन लभ्यते ॥

और यह स्नान काशीमें पञ्चगंगामें अत्यन्त उत्तम है। काशीखण्डमें लिखा है कि—सौवर्ष तक तपकर जो फल प्राप्त करता है वह फल कार्तिकमासमें पञ्चनदमें एकबार स्नान करनेसे प्राप्त करता है।

(बिन्दुतीर्थे स्नाने फलकथनम्)

कार्तिके बिन्दुतीर्थे यो ब्रह्मचर्यपरायणः। स्नास्यत्यनुदिते भानौ भानुजातस्य भीः कुतः ॥ इत्यादिकाशीखण्डोक्तेः। भानुजो=यमः।

कार्तिकमासमें बिन्दु (बिन्दुमाधव) तीर्थ में जो ब्रह्मचर्य में तत्पर होकर अनुदित (उदय होनेके पूर्व) सूर्यमें स्नान करेगा। उसको यमसे भय कहाँ से होगा। यह काशीखण्डमें कहा है। भानुज माने—यम।

(प्रातःस्नानं कदा कार्यम्)

इदं च प्रातःस्नानं सन्ध्यां च कृत्वा कार्यम्। तेन विनेतरकर्मानधिकारादिति वर्धमानः। यद्यपि प्रातः सन्ध्यायाः सूर्योदये समाप्तिः, तथापि वचनबलादनुदितहोमवद्भविष्यति।

यह स्नान प्रातःकाल स्नान और सन्ध्याकर करे। वर्धमान का कहना है कि—इसके बिना इतर कर्मोंमें अधिकार नहीं है। यद्यपि[1] प्रातःकाल सन्ध्या सूर्योदय में समाप्त होती है, तथापि वचन बलसे अनुदित होमवत् होगा।

(कार्तिकस्नानमन्त्रः)

स्नानमन्त्रश्च तत्रैव—कार्तिकेऽहं करिष्यामि प्रातःस्नानं जनार्दन। प्रीत्यर्थं तव देवेश दामोदर मया सह ॥ इमं मन्त्रं समुच्चार्य मौनी स्नायाद् व्रतो नरः ॥ इति।

वहींपर स्नान का मन्त्र कहा है कि—हेजनार्दन, मैं कार्तिकमास में प्रातःकाल स्नान करूँगा। हेदेवेश, हे दामोदर, आपके प्रीत्यर्थ मेरे साथ–इस मन्त्रको उच्चारण कर व्रती मनुष्य मौन होकर स्नान करे।

(अर्घ्यमन्त्रः)

अर्घ्यमन्त्रोऽपि तत्रैव—व्रतिनः कार्तिके मासि स्नातस्य विधिवन्मम। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं दनुजेन्द्रनिषूदन ॥ नित्यनैमित्तिके कृष्ण कार्तिके पापनाशने। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं राधया सहितो हरे ॥ इमौ मन्त्रौ समुच्चार्य योऽर्घ्यं मह्यं प्रयच्छति। सुवर्णरत्नपुष्पाम्बुपूर्णशङ्खेन पुण्यवान्। सुवर्णपूर्णा पृथिवी तेन दत्ता न संशयः ॥ इति।

अर्घ्यमन्त्र भी वहीं पर कहा है कि—हेदनुजेन्द्रनिषूदन (दैत्योंके हनन करनेवाले)। कार्तिकमासमें व्रतकरने वाले विधिवत् स्नान करनेसे मेरे अर्घ्य को ग्रहण करो। कार्तिकमहिनेमें पापका नाश करनेवाले, हे कृष्ण, नित्य और नैमित्तिक में, राधाके सहित हरीको मेरे द्वारा दिया हुआ अर्घको ग्रहण करो।

इसप्रकार दोनों मन्त्रोंको उच्चारण कर जो अर्घ्य मेरे लिए देता है। वह सुवर्ण, रत्न, पुष्प तथा

१—प्रातःकालमें सूर्यके उदय होने के पूर्व 'अग्निहोत्र' का हवन करे। यहाँ पर 'प्रातः' शब्द के कहनेसे जैसे अग्निहोत्रहोम प्राप्त है। तद्वत् ही स्नान प्रात काल विहित है। इत्यादि कात्यायनश्रौतसूत्र में देखिये।

जल से परिपूर्ण शंखसे पुण्यवान् देता है। उसने सुवर्ण से परिपूर्ण पृथिवी का दान किया है। इसमें संशय नहीं है।

(संपूर्णस्नानाशक्तौ त्र्यहं स्नानं कार्यम्)

एवं सम्पूर्णस्नानाशक्तौ त्र्यहं स्नायात्। वाराणस्यां पञ्चनदे त्र्यहं स्नातास्तु कार्तिके। अमी ते पुण्यवपुषः पुण्यभाजोऽतिनिर्मलाः॥ इति काशीखण्डोक्तेः।

इसप्रकार संपूर्ण स्नानकी अशक्तिमें तीनदिन स्नान करे। काशीखण्डमें लिखा है कि—कार्तिकमासमें वाराणसीमें पञ्चगङ्गामें जो तीनदिन स्नान करते हैं वे सब पुण्यशरीरवाले पुण्यके भागी अतिनिर्मल होते हैं।

(कार्तिकमासे तुलस्यादिमालाधारणकथनम्)

अथ मालाधारणम्। तत्र स्कान्दे द्वारकामाहात्म्ये—निवेद्य केशवे मालां तुलसीकाष्ठसम्भवाम्। वहते यो नरो भक्त्या तस्य वै नास्ति पातकम्॥ न जह्यात्तुलसीमालां धात्रीमालां विशेषतः। महापातकसंहन्त्रीं धर्मकामार्थदायिनीम्॥

अब मालाधारण कहते हैं। वहाँ पर स्कन्दपुराण के द्वारकामाहात्म्यमें कहा है कि—तुलसीकी लकड़ी से उत्पन्न मालाको केशव को निवेदन करे जो मनुष्य भक्तिसे प्राप्त (धारण) करता है, उसको पातक नहीं लगता है। जो महापातकों को हरण करनेवाली धर्म, काम और अर्थको देनेवाली तुलसीमालाको तथा विशेषकर धात्रीमालाको नहीं त्यागना चाहिये।

विष्णुधर्मे—स्पृशेत्तु यानि लोमानि धात्रीमालां कलौ नृणाम्।
तावद्वर्षसहस्राणि वैकुण्ठे वसतिर्भवेत्॥

विष्णुधर्ममें कहा है कि—कलियुगमें मनुष्यों को जितने लोमोंकी धात्रीमाला स्पर्श करे उतने सालों तक वैकुण्ठलोकमें निवास होता है।

मालायुग्मं तु यो नित्यं धात्रीतुलसिसम्भवम्। वहते कण्ठदेशे तु कल्पकोटिर्दिवं वसेत्॥

जो नित्य धात्री (आंवला) और तुलसीसे प्रादुर्भूत मालायुग्मको कण्ठदेशमें धारण करता है। वह करोड़ों कल्प तक स्वर्गमें रहता है।

तुलसीकाष्ठसम्भूते माले कृष्णजनप्रिये। बिभर्मि त्वामहं कण्ठे कुरु मां कृष्णवल्लभम्॥

हे तुलसीकाष्ठसंभूते, माले, हे कृष्णजनप्रिये, आपको मैं कण्ठ (गले) में धारण करता हूँ। मुझको कृष्णका प्रिय बनाओ।

एवं सम्प्रार्थ्य विधिवन्मालां कृष्णगलेऽर्पिताम्। धारयेत्कार्त्तिके यो वै स गच्छेद्वैष्णवं पदम्॥ इति। अत्र मूलं चिन्त्यम्।

इसप्रकार प्रार्थनाकर विधिवत् कृष्णके गले द्वारा अर्पित मालाको जो कार्तिकमास में धारण करता है। वह निश्चय वैष्णव अर्थात्–विष्णुपदमें जाता है। यहाँ पर मूल (संप्रदायानुसार वैष्णवलोग ही तुलसी के काठकी माला और धात्रीकाठकी माला धारण करते है। सब लोग धारण नहीं करते हैं–यही तात्पर्य है) विचारने योग्य है।

तथा काशीखण्डे—कार्तिके मासि मे यात्रा यैः कृता भक्तितत्परैः।
बिन्दुतीर्थकृतस्नानैस्तेषां मुक्तिर्न दूरतः॥

और काशीखण्डमें लिखा है कि—जो लोग भक्तिसे तत्पर होकर मेरी यात्रा कार्तिकमासमें किया है। और बिन्दुतीर्थ में जिन्होंने स्नान किया है। उनकी मुक्ति दूर नहीं है।

(कार्तिके अगस्त्यादिपुष्पैः पूजाकथनम्)

भार्गवार्चनदीपिकायां नृसिंहपुराणे—अगस्तिकुसुमैर्देवं योऽर्चयेच्च जनार्दनम्।
दर्शनात्तस्य देवर्षे नरकं नाश्नुते नरः॥

भार्गवार्चनदीपिकामें नृसिंहपुराण का मत है कि—जो अगस्तपुष्पोंसे जनार्दनदेवकी पूजा करता है। हे देवर्षे, उसके दर्शनसे मनुष्य नरकमें नहीं जाता है।

विहाय सर्वपुष्पाणि मुनिपुष्पेण केशवम् । कार्तिके योऽर्चयेद्भक्त्या वाजपेयफलं लभेत् ॥

जो सब पुष्पोंको छोड़कर मुनिपुष्प (अगस्तपुष्प) से केशव को कार्तिकमासमें भक्तिसे पूजा करता है। उसको 'वाजपेयज्ञ' का फल मिलता है।

स्कान्दे कार्तिकमाहात्म्ये—मालतीमालया विष्णुः केतक्या चैव पूजितः ।
समाः सहस्रं सुप्रीतो भवेत्तु मधुसूदनः ॥

स्कन्दपुराणके कार्तिकमाहात्म्य में लिखा है कि—जो मालतीमाला या केतकीमालासे विष्णु का पूजन करता है। उससे मधुसूदन हजार साल तक प्रसन्न होते हैं।

पृथ्वीचन्द्रोदये पाद्मे—कार्तिके नार्चितो यैस्तु कमलैः कमलेक्षणः ।
जन्मकोटिषु विप्रेन्द्र न तेषां कमला गृहे ॥

पृथ्वीचन्द्रोदयमें पद्मपुराणका मत है कि—जिन्होंने कार्तिकमासमें कमलेक्षण (विष्णु) की कमलोंसे नहीं पूजा की। हे विप्रेन्द्र, उनके घर करोड़ों जन्मोंतक उनके घर कमला (लक्ष्मी) नहीं जाती है।

तथा—कार्तिके केशवे पूजा येषां नाम्ना सुतैः कृता। ते निर्भर्त्स्य रवेः पुत्रं वसन्ति त्रिदिवे सदा ॥

और—कार्तिकमहिनेमें जिनके नामसे पुत्रों ने केशव की पूजा की। वे लोग रवि पुत्र (यमराज) का तिरस्कार कर सदा स्वर्गमें रहते हैं।

(तुलसीदललक्षेण हरेरर्चनम्)

तुलसीदललक्षेण कार्तिके योऽर्चयेद्धरिम् । पत्रे पत्रे मुनिश्रेष्ठ मौक्तिकं लभते फलम् ॥

जो तुलसीदलके हजार पत्रोंसे हरिकी पूजा करता है। हे मुनिश्रेष्ठ, पत्ते पत्ते में (अर्थात्—प्रति तुलसीदलके पत्ते में) मोतिके फलका लाभ करता है।

(धात्रीच्छायायां पिण्डदानादिकथनम्)

स्कान्दे कार्तिकमाहात्म्ये—धात्रीछाये तु यः कुर्यात् पिण्डदानं महामुने ।
मुक्तिं प्रयान्ति पितरः प्रसादान्माधवस्य तु ॥

और स्कन्दपुराण के कार्तिकमाहात्म्यमें लिखा है कि—हेमहामुने, जो धात्रीकी छायामें पिण्डदान करता है तो माधवके प्रसादसे (उसके) पितर मुक्तिको प्राप्त हो जाते हैं।

धात्रीफलविलिप्ताङ्गो धात्रीफलविभूषितः । धात्रीफलकृताहारो नरो नारायणो भवेत् ॥

जो धात्रीफलको शरीरमें लगाता है और धात्रीफल (जीर्णधात्रीफल) का ही आहार (नूतनधात्रीफल का चातुर्मास्यमें निषेध है) किया है ऐसा मनुष्य नारायण हो जाता है।

धात्रीच्छायां समाश्रित्य योऽर्चयेच्चक्रधारिणम् । पुष्पे पुष्पेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥

धात्रीफलकी छायाका आश्रयण कर जो चक्रधारीकी पूजा करता है। ऐसे मनुष्योंको पुष्प-पुष्पमें 'अश्वमेधयज्ञ' का फल होता है।

तथा स्कान्दे—कार्तिके मासि विप्रेन्द्र धात्रीवृक्षोपशोभिते ।
वने दामोदरं विष्णुं चित्रान्नैस्तोषयेद्विभुम् ॥

और स्कन्दपुराण में कहा है कि—हे विप्रेन्द्र, कार्तिकमासमें धात्रीवृक्षसे सुशोभित वनमें दामोदर विष्णुका पूजनकर चित्रान्नों (अनेक तरहके अन्नोंसे) से विभुको प्रसन्न करे।

मूलेन पायसेनाथ होमं कुर्याद्विचक्षणः । ब्राह्मणान् भोजयेच्छक्त्या स्वयं भुञ्जीत बन्धुभिः ॥ इति।

बुद्धिमान् व्यक्ति मूलमन्त्रसे पायस द्वारा होम करे तथा यथाशक्ति ब्राह्मणों को भोजन करावे एवं स्वयं भी बन्धुओंके साथ भोजन करे।

(कार्तिके द्विदलादिवर्जनकथनम्)

तथा कार्तिके द्विदलव्रतं प्रागुक्तम्—कार्तिके द्विदलं त्यजेत् । इति । पाद्मेऽपि कार्तिकमाहात्म्ये—राजिकामाढकं चैव नैवाद्यात्कार्तिकव्रती । द्विदलं तिलतैलं च तथान्यमतिदूषितम् ॥

और कार्तिकमास में द्विदलव्रत पहले कह चुके है—'कार्तिक में द्विदलका त्याग करे'। पद्मपुराण में भी कार्तिकमासमें कहा है कि—राजिका (राई), आढक (अरहर), द्विदल (दाल) तिल्लीका तेल और अन्य मतिदूषित द्रव्य हो उसको व्रतकरनेवाला कार्तिकमास में त्याग दे।

स्कान्देऽपि—कार्तिके वर्जयेत्तद्वद् द्विदलं बहुबीजकम्। माषमुद्गमसूराश्च चणकाश्च कुलित्थकाः॥ निष्पावा राजमाषाश्च आढक्यो द्विदलं स्मृतम्। नूतनान्यपि जीर्णानि तानि सर्वाणि वर्जयेत्॥

स्कन्दपुराणमें भी कहा है कि—उसीकी तरह कार्तिकमासमें द्विदल, बहुबीजक (मेथी, भंटा), माष, मूंग, मसूर, चना और कुलथी का त्याग करे। निष्पाव (छोटी बड़ी मटर) राजमाष और आढकी को द्विदल कहा है। जो नूतन होते हुए भी जीर्ण हैं उन सबों को त्याग दे।

(उत्पत्तिसमये द्विदलत्वकथनम्)

अत्र केचित् उत्पत्तिसमये दलद्वयं यस्य भवति तद्भूतपूर्वगत्या द्विदलमुच्यते इत्याहुः। उदाहरन्ति च—बीजमेव समुद्भूतं द्विदलं चाङ्कुरं विना। दृश्यते यत्र सस्येषु द्विदलं तं निगद्यते॥ इति।

यहाँपर—कोई लोग उत्पत्ति समयमें जिसका दो दल होता है वह भूतपूर्वगतिसे (जिसके उत्पत्तिके समयही) द्विदल कहते हैं और उदाहरण देते हैं कि—अंकुरके विना बीजही में उत्पन्न द्विदल कहते हैं। जो सस्यों में दिखाई दे उसको 'द्विदल' कहा जाता है।

(अन्यमते द्विदलात्मकं यस्य स्वरूपं तदेव वर्जनकथनम्)

अन्ये तु लक्षणायां मानाभावात्, वचनस्य च निर्मूलत्वाद् द्विदलात्मकं यस्य स्वरूपं तदेव वर्जयेदित्याहुः।

अन्य (दूसरे) तो कहते हैं कि— वचन का प्रमाण न होने से निर्मूल है। जिसका द्विदलात्मक स्वरूप हो उसका ही त्याग है। यों कहा है।

(कार्तिकमासे तैलादिवर्जनकथनम्)

तथा नारदीये—कार्तिके वर्जयेत्तैलं कार्तिके वर्जयेन्मधु। कार्तिके वर्जयेत्कांस्यं कार्तिके शुक्तसन्धितम्॥ कांस्यं तत्पात्रभोजनम्, शुक्तम्=पर्युषितम्, सन्धितम्=लवणशाकः।

और नारदीयपुराण में कहा है कि—कार्तिकमास में तेल को त्याग दे। कार्तिकमासमें मधु को त्याग दे। कार्तिकमासमें कांस्य (कांसे की थाली में भोजन करना) पात्र को त्याग दे और कार्तिकमासमें पर्युषितान्न (वासी अन्न) तथा निमकवाला साग त्याग दे। कांस्य-कांसे के पात्र में भोजन। शुक्तम्=वासी अन्न, [१]संधितम्—निमक का साग।

(कार्तिकमासे दीपदानादिकथनम्)

तत्रैव—रामः-कार्तिके विष्णुमूर्त्यग्रे दीपदानाद्दिवं व्रजेत्।
तथा-कार्तिके तु कृता दीक्षा नृणां जन्मविमोचनी॥

वहीं पर रामने कहा है कि—कार्तिकमासमें विष्णु की मूर्ति के आगे दीपदान से स्वर्ग जाता है। और—कार्तिकमासमें की हुई दीक्षा मनुष्योंके जन्म का त्याग कराती है।

तथा—कार्तिके कृच्छ्रसेवी यः प्राजापत्यपरोऽथवा। एकान्तरोपवासी वा त्रिरात्रोपोषितोऽपि वा॥ षड् वा द्वादशपक्षं वा मासं वा वरवर्णिनि। एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च॥ उपवासेन भैक्ष्येण व्रजते परमं पदम्॥ अन्येऽपि नियमाः प्रागुक्ताः।

और हेवरवर्णिनि, कार्तिकमासमें जो कृच्छ्रव्रत, प्राजापत्य, एकान्तरोपवासी (एकदिन का अन्तर देकर उपवास करनेवाला) या त्रिरात्रोपोषित (जिसने तीन रात तक उपवास किया हो) या छः दिन, बारह दिन, पक्षभर (पन्द्रहदिन) या एक महिने तक एक एकभक्त (एकवार भोजन) हो या नक्तव्रत

१—अरण्यानां च सर्वेषां मृगाणां माहिषं विना। स्त्रीक्षीरं चैव वर्ज्यानि सर्वशुक्तानि चैव हि॥ 'स्वभावतो मधुरादिरसानि यानि कालवशेनोदकादिना चाम्ली भवन्ति तानि शुक्तशब्दवाच्यानि—इति मन्वर्थमुक्तावल्याम्। शुक्तं पर्युषितं चैव' इत्यत्र मनुस्मृतिवचने च पर्युषितशब्दस्य पृथग्ग्रहणात्।

(रात्रिव्रत) करे। वैसे ही अयाचित (बिना मांगे मिल जाय) या भिक्षा से अन्न प्राप्त होने पर उपवास से परमपदको जाता है। अन्य भी नियम पहले कह चुके हैं।

(सात्विकग्राह्य-अन्नकथनम्)

ग्राह्यमुक्तं स्कान्दे—व्रीहयो यवगोधूमाः प्रियङ्गुतिलशालयः ।
एते हि सात्विकाः प्रोक्ताः स्वर्गः मोक्षफलप्रदाः ॥

स्कन्दपुराणमें ग्राह्य अन्नोंको कहा है—व्रीहि (चावल), यव, गोधूम (गेहूँ), प्रियंगु (ककनी) तिल और शालि (साठीके चावल) ये सात्विक कहे गये हैं। जो स्वर्ग तथा मोक्ष को देनेवाले हैं।

(वृन्ताकादीनां वर्जनकथनम्)

काशीखण्डे—ऊर्जे यवान्नमश्नीयादेवान्नमथवा पुनः ।
वृन्ताकं सूरणं चैव शूकशिंबीश्च वर्जयेत् ॥

काशीखण्ड में कहा है कि—कार्तिकमासमें यवान्न या देवान्न का भोजन करे और वृन्ताक (बैंगन), सूरण, शूकशिम्बी—केवाच (कपिकच्छू) को त्याग दे।

पृथ्वीचन्द्रोदये पाद्मे—नोर्जो वन्ध्यो विधातव्यो व्रतिना केनचित्क्वचित् ।

पृथ्वीचन्द्रोदयमें पद्मपुराण का मत है कि—व्रत करनेवाला कोई व्यक्ति कार्तिकमहिने को कभी भी त्याग न करे।

तथा नारदीये—अव्रतेन क्षिपेद्यस्तु मासं दामोदरप्रियम् ।
तिर्यक् योनिमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥

और नारदपुराण में कहा है कि—जो कोई दामोदर का प्रिय बिना व्रत के कार्तिकमासतक व्यतीत करता है। वह तिर्यक् योनि को प्राप्तकरता है। इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं है।

अन्यान्यपि ताम्बूलतैलकेशकर्तनादिवर्जनसङ्कल्परूपाणि प्रागुक्तानि ।

अन्य भी—ताम्बूल (पान), तेल, केशकर्तन आदिका त्यागसंकल्परूप पहले कह चुके हैं[1]।

(आकाशदीपदानकथनम्)

तथा कार्तिके आकाशदीप उक्तो निर्णयामृते पुष्करपुराणे—तुलायां तिलतैलेन सायंकाले समागते। आकाशदीपं यो दद्यात् मासमेकं हरिं प्रति ॥ महतीं श्रियमाप्नोति रूपसौभाग्यसंपदम् ॥ इति ।

और निर्णयामृत में पुष्करपुराणमत से कार्तिकमासमें आकाशदीपकहा है—तुलाकी संक्रान्ति में तिल के तेल से सायंकाल के समय में जो एकमास हरि के प्रति 'आकाशदीप' देता है। वह बृहत्‌रूप से रूप, सौभाग्य और संपत्ति प्राप्त करता है।

(तद्विधिः कथनम्)

तद्विधिश्च हेमाद्रावादित्यपुराणे—दिवाकरेऽस्ताचलमौलिभूते गृहाद दूरे पुरुषप्रमाणम् । यूपाकृतिं यज्ञियवृक्षदारुमारोप्य भूमावथ तस्य मूर्ध्नि ॥ यवाङ्गुलच्छिद्रयुतास्तु मध्ये द्विहस्तदीर्घा अथ पट्टिकास्तु । कृत्वा चतस्रोऽष्टदलाकृतीस्तु याभिर्भवेदष्टदिशानुसारी ॥

उसकी विधि हेमाद्रि में आदित्यपुराण का वचन है कि—जब सूर्य अस्ताचल के शिरोभाग में हो जाय तो घरके समीप ही में पुरुष के प्रमाण से यज्ञीयवृक्ष के लकड़ी के यूप की तरह आकृति निर्माण कर गाड़ दे। उस यूपको भूमिमें और मस्तक यव के बराबर अंगुल के छेद के मध्य में दो हाथ लंबी चार पट्टिओं को कर उसमें अष्टादलाकृती बनावे जिनसे आठ दिशा मालुम हों।

तत्कर्णिकायां तु महाप्रकाशो दीपः प्रदेयो दलगास्तथाष्टौ । निवेद्य धर्माय हराय भूम्यै दामोदरायाप्यथ धर्मराज ॥ प्रजापतिभ्यस्त्वथ सत्पितृभ्यः प्रेतेभ्य एवाथ तमःस्थितेभ्यः ॥ इति ।

उनकी कर्णिका में जो बृहत्प्रकाशको करनेवाला दीपक दे। उसके आठ दलों में आठ दीपक—

१—काशीखण्डे-चतुर्ष्वपि च मासेषु न सामर्थ्यं व्रते यदि । तदोर्जे व्रतिना भाव्यमप्यब्दफलमिच्छता ॥

धर्माय नमः १ हराय नमः २ भूम्यै नमः ३ दामोदराय नमः ४ धर्मराजाय नमः ५ प्रजापतये नमः ६ पितृभ्यो नमः ७ प्रेतेभ्यो नमः ८ इन क्रम दे। जो तममें स्थित है।

(अपरार्कमते अन्यमन्त्रकथनम्)

अपरार्के त्वन्यो मन्त्र उक्तः। यथा—दामोदराय नभसि तुलायां लोलया सह।
प्रदीपं ते प्रयच्छामि नमोऽनन्ताय वेधसे॥ इति।

अपरार्क के तो अन्यमन्त्र कहा है कि—लोला (लक्ष्मी) के साथ दामोदर के लिए तुलाराशि में आकाश में दीपक आपको देता हूँ। अनन्तरूप ब्रह्मा के लिए नमस्कार है।

(कार्तिककृष्णचतुर्थीविचारः)

कार्तिककृष्णचतुर्थी करकचतुर्थी। सा चन्द्रोदयव्यापिनी ग्राह्या। दिनद्वये तत्त्वे पूर्वा, तत्रैव पूजाद्याम्नात्।

कार्तिककृष्ण पक्ष की चतुर्थी करकचतुर्थी है। वह चन्द्रोदयव्यापिनी ग्रहण करे। दोनों दिन हो तो पूर्वा ले। उसीमें ही पूजा आदि कही गयी[1] है।

(कार्तिककृष्णद्वादशीविचारः)

कार्तिककृष्णद्वादशी गोवत्ससंज्ञा। सा प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या। दिनद्वये तत्त्वे पूर्वा। युग्मवाक्यात् वत्सपूजा वटश्चैव कर्तव्या प्रथमेऽहनि। इति निर्णयामृतेऽभिधानाच्च।

कार्तिककृष्ण द्वादशी का गोवत्स नाम है। वह प्रदोषव्यापिनी ले। दोनों दिन हो तो पूर्वा ले—युग्मवाक्य से। वत्सपूजा और वटपूजा इन दोनों को प्रथमदिन में करना चाहिये—यह निर्णयामृत में कहा है।

(अत्र गोपूजने अर्घ्यादिकथनप्रकारः)

अत्र विशेषो मदनरत्ने भविष्ये—सवत्सां तुल्यवर्णां च शालिनीं गां पयस्विनीम्। चन्दनादिभिरालिप्य पुष्पमालाभिरर्चयेत्॥ अर्घ्यं ताम्रमये पात्रे कृत्वा पुष्पाक्षतैस्तिलैः। पादमूले तु दद्याद्वै मन्त्रेणानेन पाण्डव॥

यहाँपर विशेष मदनरत्न में भविष्यपुराण का मत है कि—सवत्सा एकवर्ण के तुल्य सुशील दूध देनेवाली गौ को चन्दन आदिसे लेपनकर पुष्पमालाओं से पूजित करे और तांबे के पात्र में पुष्प, अक्षत तथा तिलों के सहित अर्घ्य को कर हे पाण्डव, गौ के पैर के मूलभाग में इस मन्त्रसे दे।

क्षीरोदार्णवसम्भूते सुरासुरनमस्कृते। सर्वदेवमये मातर्गृहाणार्घ्यं नमो नमः॥

हे क्षीरोदार्णवसंभूते—क्षीरसागरसे उत्पन्न हुई, हे सुरासुरनमस्कृते—देवता और असुरों द्वारा नमस्कार योग्या, हे सवदेवमये—सब देवताओं के रूपवाली, हेमातः, इस अर्घ्य को ग्रहण करो। अतः आपको नमस्कार है।

ततो माषादिसंसिद्धान् वटकान् विनिवेदयेत्। सुरभि त्वं जगन्मातर्देवि विष्णुपदे स्थिता॥

तदनन्तर उडद आदिके वने हुए वडों को निवेदन करे—हे सुरभि, हे जगन्मातः, हे देवि, आप विष्णु के चरण में स्थित हैं। हे सर्वदेवमये, मेरे द्वारा दिये हुए इस ग्रास को भक्षण करो।

सर्वदेवमये ग्रासं मया दत्तमिदं ग्रस। ततः सर्वदेवमये देवि सर्वदेवैरलंकृते॥ मातर्ममाभिलषितं सफलं कुरु नन्दिनि॥ इति प्रार्थयेत्।

फिर—प्रार्थना इस मन्त्रसे करे—हे सर्वदेवमये, हे देवि, हे सर्वदेवैरलङ्कृते, हे मातः, हे नन्दिनि, मेरे इच्छित मनोरथ को सफल करो।

तथा—तद्दिने तैलपक्वं च स्थालीपक्वं युधिष्ठिर।
गोक्षीरं गोघृतं चैव दधि तक्रं च वर्जयेत्॥

१—कार्तिककृष्णाष्टमीमहाराष्ट्रादि प्रसिद्धाकराष्टमी। साचन्द्रोदयव्यापिनी ग्राह्या, दिनद्वये तत्त्वे परा।

और हे युधिष्ठिर, उसदिन तैल से पका हुआ (तापिकापक्कम्—इति वा पाठः—) वटलोही से पका हुआ, गौ का दूध, गौ का घृत, दधि और मठ्ठा त्याग दे।

(द्वादश्यादिषु नीराजनविधिः)

ज्योतिर्निबन्धे नारदः—आश्विने कृष्णपक्षे तु द्वादश्यादिषु पञ्चसु।
तिथिषूक्तः पूर्वरात्रे नृणां नीराजनो विधिः॥

ज्योतिर्निबन्ध में नारद का वचन है कि—आश्विनकृष्णपक्ष में तो द्वादशी आदि पांच तिथियों में कही हुई पहली रात में मनुष्यों को नीराजनविधि कही है।

नीराजयेयुर्देवांस्तु विप्रान् गाश्च तुरङ्गमान्।
ज्येष्ठाञ्छ्रेष्ठाञ्जघन्यांश्च मातृमुख्यांश्च योषितः॥ इति।

देवता, ब्राह्मण, गौ, घोडे, ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, छोटे, माता आदि मुख्य स्त्रियों को नीराजना करे।

(कृष्णत्रयोदश्यां यमदीपदानकथनम्)

निर्णयामृते स्कान्दे—कार्तिकस्यासिते पक्षे त्रयोदश्यां निशामुखे।
यमदीपं बहिर्दद्यादपमृत्युर्विनश्यति॥

निर्णयामृत में स्कन्दपुराण का मत है कि—कार्तिककृष्णपक्ष की त्रयोदशी के निशामुख में घर के बाहर यम का दीपक दे तो इससे अपमृत्युका विनाश हो जाता है।

(यमदीपदानमन्त्रकथनम्)

मन्त्रस्तु—मृत्युना पाशदण्डाभ्यां कालेन श्यामया सह।
त्रयोदश्यां दीपदानात्सूर्यजः प्रीयतां मम॥ इति।

मन्त्र यह है—मृत्यु, पाश और दण्डकाल तथा श्याम सहित यमराज त्रयोदशी के दीपदान से मेरे पर प्रसन्न हों।

(कार्तिककृष्णचतुर्दश्यामभ्यङ्गस्नानविधिकथनम्)

कार्तिककृष्णचतुर्दश्यां प्रभाते चन्द्रोदयेऽभ्यङ्गं कुर्यात्। तदुक्तं हेमाद्रौ निर्णयामृते भविष्योत्तरे—कार्तिके कृष्णपक्षे तु चतुर्दश्यामिनोदये। अवश्यमेव कर्तव्यं स्नानं नरकभीरुभिः॥ इनः=चन्द्रः। मदनरत्ने कालादर्शे च 'विधूदये' इति पाठः। 'दिनोदये' इति पाठात्सूर्योदयोत्तरं त्रिमुहूर्ते स्नानं वदतां गौडानां तदनुसारिणां चाज्ञतैव।

कार्तिककृष्ण चतुर्दशी को प्रातःकाल चन्द्रोदय (अर्थात्—अभ्यंगस्नान में चन्द्रोदयकालिनी चतुर्दशी ग्रहण करे।) अभ्यंग (उबटना)—स्नान करे। उसी बात को हेमाद्रि में और निर्णयामृतमें भविष्योत्तरपुराण से कहा है कि—कार्तिककृष्णपक्ष की चतुर्दशी को चन्द्रोदय में नरक से डरनेवाले मनुष्यों को अवश्य ही स्नान करना चाहिये। इनः=चन्द्र को कहते हैं। मदनरत्न और कालादर्श में कहा है कि—विधूदये' यह पाठ है। दिनोदये—इस पाठ से सूर्योदय के उत्तर तीन मुहूर्त में स्नान को कहनेवाले गौडों की उनके अनुसारियों की अज्ञानता है।

पूर्वविद्धचतुर्दश्यां कार्तिकस्य सितेतरे।
पक्षे प्रत्यूषसमये स्नानं कुर्यात्प्रयत्नतः॥ इति।

कार्तिककृष्णपक्ष की पूर्वविद्धा कृष्णपक्ष की चतुर्दशी में सुबह के समय प्रयत्न से स्नान करे।

स्मृतिदर्पणेऽपि—चतुर्दशी चाश्वयुजस्य कृष्णा स्वात्यर्क्षयुक्ता च भवेत्प्रभाते।
स्नानं समभ्यज्य नरैस्तु कार्यं सुगन्धितैलेन विभूतिकामैः॥ इति।

स्मृतिदर्पण में भी कहा है कि—स्वातिनक्षत्र से युक्त आश्विनकृष्णपक्ष की चतुर्दशीतिथि में जो प्रातःकाल ऐश्वर्य की इच्छावाले मनुष्यगण सुगन्धित तेल से अभ्यंग (उबटना) कर स्नान करे।

पृथ्वीचन्द्रोदये ब्राह्मे—आश्वयुक्कृष्णपक्षस्य चतुर्दश्यां विधूदये।
तिलतैलेन कर्तव्यं स्नानं नरकभीरुणा॥ इति।

पृथ्वीचन्द्रोदय में पद्मपुराण का मत है कि—आश्विनकृष्णपक्ष की चतुर्दशी के चन्द्रोदय में नरक से डरनेवाले तिलके तेल से स्नान करें।

कर्तव्यं मङ्गलस्नानं नरैर्निरयभीरुभिः। इति कालादर्शे पाठः। उभयत्राश्वयुगित्यमावास्यान्तं मासमभिप्रेत्योक्तम्। तथा—तैले लक्ष्मीर्जले गङ्गा दीपावल्याश्चतुर्दशीम्। (प्राप्येति शेषः) 'प्रातःस्नानं तु यः कुर्याद्यमलोकं न पश्यति। इति।

मनुष्यों को नरकभयसे मंगलस्नान करना चाहिये। यह कालादर्श में पाठ है। ये दोनों वाक्यों (वचन) से आश्विन से अमावास्यातक मास के अभिप्राय से कहा है और दीपावली की चतुर्दशीतिथि में तिल में लक्ष्मी तथा जल में गंगा प्राप्त होती है। प्रातःकाल स्नान जो करता है वह यमलोक नहीं देखता है।

दिनद्वयेऽपि चन्द्रोदये चतुर्दशीसत्त्वे तदभावेऽप्यरुणोदये सम्पूर्णे खण्डे वा दिनद्वये चतुर्दशी समत्वे च पूर्वदिनेऽभ्यङ्गं कुर्यात्। 'पूर्वविद्धचतुर्दश्याम्'—इति वचनात्। पूर्वदिने परदिन एव वा सत्त्वे सैव ग्राह्या। दिनद्वयेऽप्यसत्त्वे अरुणोदयव्यापिनी ग्राह्या। 'पक्षे प्रत्यूषसमये' इत्युक्तेः, वक्ष्यमाणवचनाच्च। तदभावे तु चतुर्दशीह्रासं पूर्वेद्युः प्रवेश्य पूर्वेह्नि त्रयोदशीमध्य एवाभ्यङ्गं कुर्यादिति दिवोदासः।

दोनों दिन भी चन्द्रोदय में चतुर्दशी हो या उसके अभाव में भी अरुणोदय में संपूर्ण हो या खण्ड हो या दोनों दिन चतुर्दशी बराबर हो पहले दिन अभ्यंग करे। क्योंकि—पूर्वविद्धा चतुर्दशी में करे—यह वचन है। पूर्वदिन में या परदिन में ही हो तो वहीं ही ग्रहण करे। दोनों दिन में भी न हो तो अरुणोदयव्यापिनी ग्रहण करे। क्योंकि पक्ष में प्रातःकाल के समय यह कह चुके हैं और आगे कहे हुए वचन से। उसके अभाव में तो चतुर्दशी के ह्रास को पूर्वदिन प्रवेशकर (मानकर) पहले दिन में त्रयोदशी के मध्य में ही अभ्यंग करे—यह दिवोदास का मत है।

केचिदत्र वचनमपि साधकत्वेन वदन्ति—तिथ्यादौ तु भवेद्यावान् ह्रासो वृद्धिः परेऽहनि। तावान् ग्राह्यः स पूर्वेद्युरदृष्टोऽपि स्वकर्मणि॥ इति। तन्मन्दम्। न हीदं वचनं पूर्वदिनस्यापूर्वं ग्राह्यत्वं विधत्ते। नक्तैकभक्तजन्माष्टम्यादौ दिनद्वये कर्मकालव्याप्त्यभावे सर्वत्र पूर्वदिनस्य ग्राह्यत्व-प्रसङ्गात्। किन्तु यत्रैकभक्तादौ दिनद्वये कर्मकालव्याप्त्यभावे वाक्यान्तरेण न्यायेन वा पूर्वदिनस्य ग्राह्यत्वमुक्तं, तत्र मुख्यकाले तत्तिथेरभावेऽपि तत्रैवानुष्ठानबोधकमिदम्। न चात्र तदस्तीति यत्किञ्चिदेतत्। तेन चतुर्थयामगामिनी ग्राह्या।

कोई यहाँ पर वचन को भी साधकत्व से कहते हैं कि—दूसरे दिन तिथि आदि में जितना ह्रास या वृद्धि हो उतना समय अदृष्टस्वकर्म में पूर्वदिन में ग्रहण करना चाहिये। (पूर्वदिन पहले तिथ्यादि स्वकर्म में उत्तरतिथ्यादि प्रयुक्त कर्मानुष्ठान में और ह्रास वृद्धिसाम्यता को साठघडी की अपेक्षा से तीस, चौबीस, अठारह, दश, बारह घड़ी आदि के क्रमसे सूर्योदयमें तिथियोंका चौवन घडीके रहने पर भी ह्रासव्यवहार से और साम्यव्यवसार से)। यह मूर्खता है। क्योंकि यह वचन पूर्वदिन के अपूर्व का ग्राह्यत्व का विधान नहीं करता है। नक्त, एकभक्त, जन्माष्टमी आदि में दोनों दिन कर्मकालव्यापनी के अभाव में सर्वत्र पूर्वदिनका स्वीकारत्व करना कहा है। किन्तु—जहाँपर एकभक्त आदि में दोनों दिन कर्मकालव्याप्ति के अभाव में वाक्यान्तर से या न्याय से पहलेदिन का ग्रहण करना कहा है। वहाँ पर मुख्यकाल में उसतिथि के अभाव में भी वहींपर अनुष्ठान बोधक यह है। इससे यहाँपर वह कुछ नहीं है। इससे चतुर्थयाम में जानेवाली को ग्रहण करे।

अत एव सर्वज्ञनारायणः—तथा कृष्णचतुर्दश्यामाश्विनेऽर्कोदयात्पुरा ।
यामिन्याः पश्चिमे यामे तैलाभ्यङ्गो विशिष्यते ॥ इति ।

इसीलिए सर्वज्ञनारायण ने कहा है कि—आश्विनकृष्ण चतुर्दशीतिथिको सूर्योदय के पहले पश्चिम याम में तैलाभ्यञ्जन करना उत्तम है।

मृगाङ्कोदयवेलायां त्रयोदश्यां यदा भवेत्। दर्शे वा मङ्गलस्नानं दुःखशोकभयप्रदम् ॥ इति कालादर्शे त्रयोदशीनिषेधाच्च । तेनायमर्थः—यथाऽग्निहोत्रे यावज्जीवं सायंप्रातःकालेषु व्याप्यकालस्य गुरुत्वं तथाऽत्र चतुर्दशीचतुर्थयामारुणोदयचन्द्रोदयानामुत्तरोत्तरस्य व्याप्यत्वाद् गुरुत्वमिति ।

और मृगाङ्क के उदयवेला में (चन्द्रोदय काल में) जब त्रयोदशीतिथि या अमावास्या हो उसमें मङ्गलस्नान दुःख, शोक तथा भय को देनेवाला होता है। यह कालादर्श में त्रयोदशी का निषेध है।

उसका यह अर्थ है—जैसे 'अग्निहोत्र में यावज्जीवन सायंकाल और प्रातःकालों में व्याप्यकाल का गुरुत्व है और यहाँ पर चतुर्दशी का चतुर्थयाम, (चतुर्थ प्रहर) अरुणोदय और चन्द्रोदय का उत्तरोत्तर-व्याप्यत्व होने से गुरुत्व है।

यद्यपि दिवोदासीये—त्रयोदशी यदा प्रातः क्षयं याति चतुर्दशी। रात्रिशेषे त्वमावास्या तदऽभ्यङ्गे त्रयोदशी ॥ इति वचनं, तद्धेमाद्रिनिर्णयामृताद्यलिखितत्वेन निर्मूलम्। समूलत्वेऽपि न चतुर्दश्याः सूर्योदयासंबन्धित्वरूपः क्षयोऽत्र विवक्षितः । सूर्योदयात्प्राक् समाप्तौ चन्द्रोदयकाल सत्त्वे च त्वयैवाङ्गीकारात् । किन्तु अभ्यङ्गकालात्प्राक् समाप्तिरूपोऽत्र ह्रासः क्षयशब्देन विवक्षितः। स चारुणोदयाच्चतुर्थयामाद्वा प्राक् यदा ह्रासस्तत्परमिदम्। अत एव सर्वज्ञनारायणेन चतुर्थयाममात्रे स्नानमुक्तम्। तथा चोदाहृतम्—'तथा कृष्णचतुर्दश्याम्' इति।

जो भी त्रयोदशीतिथि जब प्रातःकाल हो और चतुर्दशी का क्षय हो रात्रि के शेष में अमावास्या हो तो तब त्रयोदशी में अभ्यंग करे। यह वचन है, वह हेमाद्रि-निर्णयामृत आदि में लिखित न होने से निर्मूल है। यदि समूलत्व भी हो तो चतुर्दशी के सूर्योदय असंबन्धित्वरूपक्षय यहाँ पर विवक्षित नहीं है। सूर्योदय के पहले समाप्ति में चन्द्रोदयकाल के रहने पर तुम्हारे अंगीकार से। किन्तु अभ्यंगकार्य के पूर्व समाप्तिरूप यहाँ पर ह्रास क्षयशब्द से विवक्षित है और वह अरुणोदय से या चतुर्थयाम से पूर्व जब ह्रास हो तो उसपरक यह है। इसलिए सर्वज्ञनारायणने चतुर्थयाममात्र में स्नान कहा है और कहा है कि—कृष्णचतुर्दशी में।

ज्योतिर्निबन्धे नारदोऽपि—इषासितचतुर्दश्यामिन्दुक्षयतिथावपि। ऊर्जादौ स्वातिसंयुक्ते तदा दीपावली भवेत् ॥ कुर्यात्संलग्नमेतच्च दीपोत्सवदिनत्रयम् ॥ ये तु त्रयोदशीमध्ये स्नानमाहुस्तेषामाशयं न विद्म इत्यलं भूयसा।

ज्योतिर्निबन्ध में नारद ने भी कहा है कि—आश्विनकृष्णपक्ष की चतुर्दशी में और अमावास्यातिथि में भी स्वातीनक्षत्र से संयुक्त कार्तिकमास के आदि में जो दीपावली होती है। उससे संलग्न ही तीनदिनतक दीपोत्सव करे। जो लोग त्रयोदशी के मध्य में स्नान को कहते हैं उनका आशय नहीं जानते। बस अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है।

यदपि—अरुणोदयतोऽन्यत्र रिक्तायां स्नाति यो नरः। तस्याब्दिकभवो धर्मो नश्यत्येव न संशयः ॥ इति दिवोदासीये भविष्यवचनं, तन्मुख्यकालेऽरुणोदये चतुर्दश्यभावेऽपि तत्रैव स्नातव्यमित्येव परमिति सर्वं सिद्धम्। चतुर्घटिकात्मकोऽरुणोदय इति तत्रैवोक्तम्।

१—'यथाऽग्निहोत्रे यावज्जीवं सायंप्रातःकालेषु व्याप्यकालस्य गुरुत्वं, तथाऽत्र चतुर्दशी चतुर्थयामारुणोदयचन्द्रोदयानामुत्तरोत्तरस्य व्याप्यत्वाद् गुरुत्वमिति पाठो यदि नास्ति तदातम्यमेव' इत्यादिटीकायाम्।

जो भी अरुणोदय से अन्यत्र जो मनुष्य रिक्तामें स्नान करता है उसके वर्ष भर में होनेवाले धर्म नाश हो जाते हैं। इसमें संशय नहीं है। यह दिवोदासीय में भविष्यपुराण का वचन है वह मुख्यकाल में अरुणोदय में चतुर्दशी के अभाव में भी वहीं पर स्नान करना चाहिये—इसीपरक है वह सर्वसिद्ध है। चारघड़ी का अरुणोदय होता है—यह वहाँ पर कहा है।

(अपामार्गादिकं स्नानमध्ये भ्रामणीयम्)

मदनरत्ने पाद्मे—अपामार्गमथो तुम्बी प्रपुन्नाटमथापरम् ।
भ्रामयेत्स्नानमध्ये तु नरकस्य क्षयाय वै ॥ प्रपुन्नाटः=चक्रमर्दः ।

मदनरत्नमें पद्मपुराणका मत है कि—अपामार्ग, तुम्बी (लौकी का पात्र), (कडवो लौकी) और चक्रमर्द (पवार, तरोडा), को स्नान के मध्य में नरकक्षयके लिए घुमावे। (अपामार्गशाखां सकण्टक्पत्रतुम्बीचक्रमर्दसीतालोष्टयुतां स्नानमध्ये शिरस उपरि पुनः पुनर्भ्रामयेदित्यर्थः)।

(तत्र मन्त्रः)

मन्त्रस्तु—सीतालोष्टसमायुक्त सकण्टकदलान्वित ।
हर पापमपामार्ग भ्राम्यमाणः पुनः पुनः ॥ इति ।

मन्त्र तो यह है—सीता (लांगलपद्धतिः, तल्लोष्टः मृत्पिण्डः) उसके मट्टीके पिण्ड से युक्त कंटकदल बृहतीपत्रादि (कटहरी का पत्ता) हे अपामार्ग, बारंबार घुमाने से पापको हरण करो।

(अस्यामेव प्रदोषे दीपोत्सवः)

अस्यामेव प्रदोषे दीपान्दद्यादित्युक्तं हेमाद्रौ स्कान्दे—ततः प्रदोषसमये दीपान्दद्यान्मनोरमान् ।
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां भवनेषु मठेषु च ॥ इति ।

इसमें ही प्रदोष में दीपों को दे—यह हेमाद्रि में स्कन्दपुराण में कहा है कि—तदनन्तर प्रदोषसमय में मनोरम दीपों को दे। ब्रह्मा, विष्णु शिव आदि के भवनों में तथा मठों में (प्राकारोद्यानवापीषु प्रतोलीनिष्कटेषु च। मन्दरासु विविक्तासु हस्तिशालासु चैव हि ॥) दे।

दिवोदासीये ब्राह्मे—अमावास्याचतुर्दश्योः प्रदोषे दीपदानतः । यममार्गाधिकारेभ्यो मुच्यते कार्तिके नरः ॥ खण्डतिथौ तु पूर्वेऽह्नि प्रदोषे दीपान्दत्त्वा परेद्युः स्नायादिति दिवोदासीये उक्तम् ।

दिवोदासीयमें ब्रह्मपुराण का मत है कि—कार्तिकमासकी अमावास्या और चतुर्दशीतिथि में प्रदोष काल में दीपदानसे मनुष्य यममार्ग के अधिकारसे मुक्त हो जाता है। खण्डतिथि में तो पूर्वदिन प्रदोष में दीपों को देकर दूसरे दिन स्नान करे-यह दिवोदासीय में कहा है।

(नरकोद्देशेन चतुर्वर्तियुक्तं दीपदानंकार्यम्)

अत्र नरकोद्देशेन चतुर्वर्ति युक्तं दीपदानं कार्यम् ।

यहाँ पर नरकोद्देश्य से चारवत्ती से युक्त दीपदान करना चाहिये।

(तत्र मन्त्रः)

तत्र मन्त्रः—दत्तो दीपश्चतुर्दश्यां नरकप्रीतये मया । चतर्वर्तिसमायुक्तः सर्वपापापनुत्तये ॥

उसमें मन्त्र यह है—नरक की प्रीति के लिए मैंने चतुर्दशी में चारवत्तियों से युक्त सब पापों के हटाने के लिए दीपकों को दिया।

(अस्यां माषपत्रशाकभोजनम्)

तत्रैव लैङ्गे—माषपत्रस्य शाकेन भुक्त्वा तत्र दिने नरः ।
प्रेताख्यायां चतुर्दश्यां सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

वहीं पर लिङ्गपुराण में कहा है कि—उसदिन प्रेतनामवाली कार्तिककृष्ण चतुर्दशी को मनुष्य उडद के पत्ते का साग खाने से (लिङ्गपुराणे—ततः प्रेतचतुर्दश्यां भोजयित्वा तपोधनान्। शैवान् विप्रान् धर्मपरान् शिवलोके महीयते ॥ दानं प्रदाय तेभ्यस्तु यमलोकं न पश्यति। नक्तं प्रेतचतुर्दश्यां यः कुर्याच्छिवतुष्टये ॥ न तत्क्रतुशतेनापि प्राप्यते पुण्यमुत्तमम् ॥) तब पापों से छुटकारा पा जाता है।

(अत्र यमतर्पणकथनम्)

अत्र यमतर्पणमुक्तं मदनपारिजाते वृद्धमनुना—दीपोत्सवं चतुर्दश्यां कार्यं तु यमतर्पणम् ।

यहाँ पर यमतर्पण मदनपारिजात में वृद्धमनुने कहा है कि—चतुर्दशीतिथि में दीपोत्सव तथा यमतर्पण करे।

मदनरत्ने ब्राह्मे—अपामार्गस्य पत्राणि भ्रामयेच्छिरसोपरि । ततश्च तर्पणं कार्यं धर्मराजस्य नामभिः ॥ यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च । वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च ॥ औदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने । वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै नमः ॥ इति ।

मदनरत्न में ब्रह्मपुराण का मत है कि—अपामार्ग के पत्तों को शिरके ऊपर घुमावे। तदनन्तर (स्नानानन्तर) यमाय नमः। धर्मराजाय नमः। मृत्यवे नमः। अन्तकाय नमः। वैवस्वताय नमः। कालाय नमः। सर्वभूतक्षयाय नमः। औदुम्बराय नमः। दध्नाय नमः। नीलाय नमः। परमेष्ठिने नमः। वृकोदराय नमः। चित्राय नमः। चित्रगुप्ताय नमः। इन धर्मराज के नामों से तर्पण करे।

(तर्पणप्रकारः)

तर्पणप्रकारस्तु हेमाद्रौ-एकैकेन तिलैर्मिश्रान्दद्यात् त्रींस्त्रीञ्जलाञ्जलीन् ।
संवत्सरकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥

तर्पण का प्रकार हेमाद्रि में कहा है कि—एक एक तिलों से मिश्रित तीन-तीन अञ्जली को देने से साल भर का किया हुआ पाप उसी क्षण नष्ट होता है।

तथा मदनरत्ने स्कान्दे—दक्षिणाभिमुखो भूत्वा तिलैः सव्यं समाहितः ।
देवतीर्थेन देवत्वात्तिलैः प्रेताधिपो यतः ॥

और मदनरत्नमें स्कन्दपुराण का वचन है कि—दक्षिणाभिमुख कर सव्य हो समाहितमनसे (सावधानीमनसे) तिलों से तर्पण करे। देवत्व होने से देवतीर्थ से तथा प्रेताधिप (यमराज) होने से तिलों से तर्पण करना चाहिये।

(इदं तर्पणं जीवत्पितृकेणाऽपि कार्यम्)

तथा यज्ञोपवीतिना कार्यं प्राचीनावीतिनाथवा—इति। इदं जीवत्पितृकेनापि कार्यम् । 'जीवत्पितापि कुर्वीत तर्पणं यमभीष्मयोः । इति पाद्मोक्तेः ।

और—यज्ञोपवीति या प्राचीनावीति होकर तर्पण करे। यह जीवित्पितृक को भी करना चाहिये। (यहाँ पर जिसके पिता जीवित हैं वे लोग सव्य से तर्पण करे और जिनके पिता मर गये हो वे लोग अपसव्य से ही तर्पण करें। यही उचित प्रतीत होता है।) पद्मपुराण का मत है कि—जिसके पिता जीवित हों वह भी यम और भीष्म का तर्पण करे।

(भीष्मतर्पणस्य संकेतमात्रम्)

अत्र भीष्मतर्पणमप्युक्तम् दिवोदासीये-तत्प्रकारस्तु माघे वक्ष्यते । इति नरकचतुर्दशी ।

यहाँ पर भीष्मतर्पण भी दिवोदासीय में कहा है—उसका प्रकार माघमास में कहेंगे।

(कार्तिकामावास्यायां प्रातरभ्यङ्गकथनम्)

कार्तिकामावास्यायां प्रातरभ्यङ्गं कुर्यात् । तदुक्तं कालादर्शे—प्रत्यूषे आश्वयुग्दर्शे कृताभ्यङ्गादिमङ्गलः । भक्त्या प्रपूजयेद्देवीमलक्ष्मीविनिवृत्तये ॥ अस्य व्याख्याने आदिशब्दात्पश्चत्वगुदकस्नानादेरुपसंग्रहः । तदुक्तं पुष्करपुराणे—स्वातिस्थिते रवाविन्दुर्यदि स्वातिगतो भवेत् । पश्चत्वगुदकस्नायी कृताभ्यङ्गविधिर्नरः ॥ नीराजितो महालक्ष्मीमर्चयन् श्रियमश्नुते ॥

कार्तिक अमावास्या में प्रातःकाल अभ्यंग करना चाहिये। उसी बात को कालादर्श में कहा है कि—आश्विन कृष्णपक्ष की अमावस्या में प्रातःकाल अभ्यंग मङ्गलादि स्नान करके भक्तिद्वारा अलक्ष्मी की निवृत्ति के लिए देवी कीपूजा करे।

इसके व्याख्यानमें आदिशब्दसे पाँचप्रकार की त्वचा (अश्वत्थो दुम्बरप्लक्षचूतन्यग्रोधत्वचः) से उदकस्नानादिरूपका संग्रह है।

उसी बातको पुष्करपुराण में कहा है कि—स्वाती में स्थित सूर्य में यदि स्वाती में गया चन्द्रमा हो तो पंचत्वचा के जल से मनुष्य अभ्यङ्गविधिकर स्नान करे और महालक्ष्मी का नीराजन करे तो लक्ष्मी को प्राप्त करता है।

आश्वयुग्दर्शे इति दर्शशब्दः प्रत्यूषे स्वातियुक्ततिथिपरः। तदुक्तं—ब्राह्मे—ऊर्जे शुक्लद्वितीयायां तिथिषु स्वातिऋक्षगे। मानवो मङ्गलस्नायी नैव लक्ष्म्या वियुज्यते ॥

आश्वयुग्दर्शे—इस पद से दर्शशब्द प्रातःकालमें स्वाति युक्त तिथिपरक है। उसी बात को ब्रह्मपुराण में कहा है कि—कार्तिकमास के शुक्लपक्ष की द्वितीयातिथि स्वातिनक्षत्र से युक्त में मनुष्यगण मंगलस्नान करते हैं तो वे लक्ष्मी से उनका वियोग नहीं होता है।

तत्रैव—इषे भूते च दर्शे च कार्तिकप्रथमे दिने। यदा स्वातीस्तदाभ्यङ्गस्नानं कुर्याद्दिनोदये ॥

वहीं पर कहा है कि—आश्विनमास की चतुर्दशी, अमावास्या और कार्तिकमास के प्रथमदिन में जब स्वातीनक्षत्र हो तो अभ्यंगस्नान दिनके उदय में करे।

कश्यपसंहितायां तु दीपावलिदर्शे प्रक्रम्य—इन्दुक्षयेऽपि संक्रान्तौ रवौ पाते दिनक्षये। तत्राभ्यङ्गो न दोषाय प्रातः पापापनुत्तये ॥ इति स्वातियोगं विनाऽप्यभ्यङ्ग उक्तः।

कश्यपसंहिता में तो दीपावली की अमावास्या को प्रारंभकर कहा है कि—अमावास्या, संक्रान्ति, रविवार, व्यतिपात और दिनक्षयमें—इनमें प्रातःकाल पापों को हटाने के लिए अभ्यंग करने से दोष नहीं होता है। स्वातियोग के विना भी अभ्यंग कहा है।

मात्स्ये—दीपैर्नीराजनादत्र सैषा दीपावली स्मृता।

मत्स्यपुराण में कहा है कि—यहाँ पर दीपकों के नीराजन आरती करने से उसीको दीपावली कहा है।

(लक्ष्मीपूजनादिविधिः)

अत्र विशेषो हेमाद्रौ भविष्ये—दिवा तत्र न भोक्तव्यमृते बालातुराज्जनात्। प्रदोषसमये लक्ष्मीं पूजयित्वा ततः क्रमात् ॥ दीपवृक्षाश्च दातव्या शक्त्या देवगृहेषु च ॥

यहाँ पर विशेष हेमाद्रि में भविष्यपुराण का मत है कि—उसदिन दिन में बालक और आतुर (रोगी) मनुष्यों को छोड़कर किसीको भोजन नहीं करना चाहिये। प्रदोष के समय में 'लक्ष्म्यै नमः' इस नाम मन्त्र से पूजन कर तदनन्तर क्रमसे देवताओं के मन्दिरों में दीपकों के वृक्ष यथाशक्ति और दीपदान भी देने चाहियें। (कोई लोग त्रयोदशी के प्रदोष समय धनपूजा करते हैं, वह निर्मूल है)

(प्रभातसमये अमावास्यायां पार्वणश्राद्धकथनम्)

तत्रैवाभ्यङ्गमभिधाय—एवं प्रभातसमये त्वमावास्यां नराधिप।
कृत्वा तु पार्वणश्राद्धं दधिक्षीरघृतादिभिः ॥

वहीं पर अभ्यंग को कहकर कहा है कि—हे नराधिप, इसप्रकार अमावास्या के प्रातःकाल में तो दधि, खीर, घृत आदियों से पार्वणश्राद्ध करे।

(प्रदोषसमये दीपदानकथनम्)

दीपान्दत्त्वा प्रदोषे तु लक्ष्मीं पूज्य यथाविधि। स्वलंकृतेन भोक्तव्यं सितवस्त्रोपशोभिना ॥ अयं प्रदोषव्यापी ग्राह्यः।

दीपकों को देकर प्रदोषसमय में यथाविधि लक्ष्मी का पूजनकर सफेदवस्त्र-(उपवस्त्र) से शोभित तथा अलङ्कृत होकर भोजन (आदित्यपुराणे—ब्राह्मणान् भोजयित्वाऽऽदौ संभोज्य च बुभुक्षितान्। स्वलङ्कृतेन भोक्तव्यं नववस्त्रोपभोगिना। स्निग्धैर्मुग्धैश्च निर्वृत्तैः (सुवेषै) र्बान्धवैः सह ॥) करे। यह प्रदोष व्यापिनी ग्रहण करे।

तुलासंस्थे सहस्रांशौ प्रदोषे भूतदर्शयोः। उल्काहस्ता नराः कुर्युः पितॄणां मार्गदर्शनम् ॥ इति ज्योतिषोक्तेः। दिनद्वये सत्त्वे परः।

ज्योतिष में कहा है कि—तुला के सूर्य (संक्रान्ति) में चतुर्दशी तथा अमावास्या को प्रदोषकाल में मनुष्य हाथ में उल्का[1] (मसाल) लेकर पितरो के रास्ते को दिखावें। दोनों दिन (प्रदोषकालमें) हो तो परा ग्रहण करे।

दण्डैकरजनोयोगे दर्शः स्यात्तु परेऽहनि। तदा विहाय पूर्वेद्युः परेऽह्नि सुखरात्रिके ॥ इति तिथितत्त्वे ज्योतिर्वचनात्।

तिथितत्त्व में ज्योति का वचन है कि—एकदण्ड रात्रि के योग में अमावास्या दूसरे दिन हो तब पूर्वदिन को त्यागकर दूसरे दिन सुखरात्रि में करे।

दिवोदासीये तु प्रदोषस्य कर्मकालत्वात् अर्धरात्रे भ्रमत्येव लक्ष्मीराश्रयितुं गृहान्। अतः स्वलंकृता लिप्ता दीपैर्जाग्रज्जनोत्सवाः ॥ सुधाधवलिताः कार्याः पुष्पमालोपशोभिताः। इति ब्रह्मोक्तेश्च प्रदोषार्धरात्रव्यापिनी मुख्या। एकैकव्याप्तौ परैव। प्रदोषस्य मुख्यत्वादर्धरात्रेऽनुष्ठेयाभावाच्च।

दिवोदासीय में तो प्रदोष को कर्मकाल कहा है। ब्रह्मपुराण में कहा है कि—आधीरात के समय घरों में आश्रय प्राप्त करने के लिए लक्ष्मी घूमती है। इसलिए मनुष्य अलंकारों से युक्त तथा पुष्पमाला से शोभित होकर चन्दन लगाकर दीपकों के उजालों में उत्सव कर जागते रहें। प्रदोष और अर्धरात्रिव्यापिनी मुख्य है। एककी व्याप्ति में परा ही है। प्रदोष के मुख्यत्व होने से आधी रात में अनुष्ठान का अभाव है।

यस्तु—अपराह्णे प्रकर्तव्यं श्राद्धं पितृपरायणैः। प्रदोषसमये राजन् कर्तव्या दीपमालिका ॥ इति क्रमः स सम्पूर्णतिथावेव प्राप्तेरनुवादो न विधिः। तत्तत्कर्मकालव्याप्तेर्बलवत्त्वात्सम्पूर्णतिथौ प्राप्त्या खण्डतिथावप्राप्त्या विध्यनुवादविरोधाच्चेत्युक्तम्।

जो कि—अपराह्ण में पितृभक्त श्राद्धको करें। हे राजन्, प्रदोष के समय दीपमालिका करें। यह क्रम संपूर्णतिथि में ही प्राप्ति का अनुवाद है विधि नहीं है। उस उस कर्मकाल में व्याप्ति का होना बलवान् है। संपूर्णतिथि में प्राप्ति से खण्डतिथि में अप्राप्ति से विधि तथा अनुवाद का विरोध है—यह कहा है।

(अत्रैव दर्शे अलक्ष्मोनिःसारणं कर्तव्यम्)

अत्रैव दर्शे पररात्रेऽलक्ष्मीनिःसारणमुक्तं मदनरत्ने भविष्ये—एवं गते निशीथे तु जने निद्रार्धलोचने। तावन्नगरनारीभिः शूर्पडिण्डिमवादनैः ॥ निष्कास्यते प्रहृष्टाभिरलक्ष्मीः स्वगृहाङ्गणात् ॥

यहीं पर अमावस्या की दूसरी रात्रि में अलक्ष्मीनिःसारण मदनरत्न में भविष्यपुराण के वचन से कहा है कि—आधीरातके वीतने पर मनुष्य के आधी निद्रा में तत्पर होनेपर उस नगर की नारियाँ सूप, डिण्डिम (भेरी का शब्द दुन्दुभी) के वादन (बजाने) से अपने घर के आंगन से प्रसन्नता से अलक्ष्मी को निष्कासित करें।

(कार्तिकशुक्लप्रतिपदि गोक्रीडनकथनम्)

कार्तिकशुक्लप्रतिपदि गोक्रीडनमुक्तं निर्णयामृते।

कार्तिकशुक्ल प्रतिपदामें गौओं की क्रीडा निर्णयामत में कही है।

(अस्यामेव रात्रौ बलेः पूजा कार्या)

अस्यामेव रात्रौ बलेः पूजोक्ता हेमाद्रौ भविष्ये—कृत्वैतत्सर्वमेवेह रात्रौ दैत्यपतेर्बलेः।
पूजां कुर्यान्नृपः साक्षाद्भूमौ मण्डलके शुभे ॥

१—उल्काग्रहणे मन्त्रः—शस्त्राशस्त्रहतानां च भूतानां भूतदर्शयोः। उज्ज्वलज्योतिषा देहं दहेयं व्योमवह्निना ॥ तद्दानमन्त्रः—अग्निदग्धाश्च ये जीवा येऽप्यदग्धाः कुले मम। उज्ज्वलज्योतिषा दग्धास्ते यान्तु परमां गतिम् ॥ विसर्जने मन्त्रः—यमलोकं परित्यज्य आगता ये महालये। उज्ज्वलज्योतिषा वर्त्म प्रपश्यन्तो व्रजन्तु ते ॥

इसी रात्रि में ही बलि की पूजा हेमाद्रि में भविष्यपुराण वचन से कही है कि—रात में [1]राजा यह सब कुछ करके ही दैत्यपति बलि की पूजा अपनी शुभ मण्डलवाली भूमि (चौक पूरना) में करे।

बलिमालिख्य दैत्येन्द्रं वर्णकैः पञ्चरङ्गकैः। गृहस्य मध्ये शालायां विशालायां ततोऽर्चयेत् ॥

पांचरंगों से दैत्येन्द्रबलि का चित्र बना कर (सर्वाभरणसंपूर्णं विन्ध्यावल्या सहासितम्। कूष्माण्ड-बाणजम्भोरुमुरुदानवसंकृतम्॥ संपूर्णहृष्टवदनं किरीटोत्कटकुण्डलम्। द्विभुजं दैत्यराजानं कारयित्वा नृपः स्वयम्॥) करे।

लोकश्चापि गृहस्यान्तः शय्यायां शुक्लतण्डुलैः। संस्थाप्य बलिराजानं फलैः पुष्पैश्च पूजयेत्॥

तदनन्तर घर के मध्य विशालशाला में पूजा करे। घर के मध्यमें प्रजा[2] भी शय्या पर सफेद चावलों के ऊपर राजा बलि को स्थापन कर फल और पुष्पों से पूजन करे।

(बलिनमस्कारमन्त्रः)

मन्त्रस्तु पाद्मे—बलिराज नमस्तुभ्यं दैत्यदानववन्दित।
इन्द्रशत्रोऽमराराते विष्णुसान्निध्यदो भव॥ इति।

मन्त्र तो पद्मपुराणमें कहा है कि—दैत्य तथा दानवोंसे पूजित हे बलिराज, आपके लिए नमस्कार है। हे इन्द्रशत्रो, हे अमराराते, विष्णु के सान्निध्य को देने वाला हो।

तथा—बलिमुद्दिश्य दीयन्ते दानानि कुरुनन्दन। यानि तान्यक्षयाण्याहुर्मयैवं संप्रदर्शितम्॥ इति।

और हे कुरुनन्दन, बलिको उद्देश्यकर जो दान दिये जाते हैं वे अक्षय को प्राप्त होते हैं। मैंने इस प्रकार प्रदर्शित किया है।

तदेतत्पूर्वविद्धप्रतिपदि कर्तव्यम्। पूर्वविद्धा प्रकर्तव्या शिवरात्रिर्बलेर्दिनम्। इति हेमाद्रौ पाद्मोक्तेः।

ये सब पूर्वविद्धा प्रतिपदा में करना चाहिये। हेमाद्रि में पद्मपुराण का वचन है कि—शिवरात्रि और बलिके दिन में पूर्वविद्धा करना चाहिये।

माधवोऽपि—बल्युत्सवं च पूर्वेद्युरुपवासवदाचरेत्। इति।

माधवने भी कहा है कि—बलि उत्सव को पूर्वदिन उपवासवत् करे।

निर्णयामृतेऽपि—या कुहूः प्रतिपन्मिश्रा तत्र गाः पूजयेन्नृप।
पूजनात् त्रीणि वर्धन्ते प्रजा गावो महीपतिः॥ इति।

निर्णयामृतमें भी कहा है कि—हे नृप, जो अमावास्या प्रतिपदा से मिश्रित है उसमें गौओं का पूजन से तीन वस्तु बढती हैं—प्रजा, गौ और राजा।

(गोकुलक्रीडायास्तु द्वितीयायां निषेधकथनम्)

तथा—भद्रायां गोकुलक्रीडा स देशो वै विनश्यति। भद्रायाम्=द्वितीयायाम्। तथा—प्रतिपद्यग्नि-करणं द्वितीयायां तु गोर्चनम्। क्षेत्रच्छेदं करिष्येते वित्तनाशं कुलक्षयम्॥ इति।

और—भद्रा=द्वितीया में जो गौओं की क्रीडा होती है तो वह देश निश्चय को विनष्ट हो जाता है और प्रतिपदा में अग्निकरण (होला में दीपदान) और द्वितीया में गौ का अर्चन करने से क्षेत्र का छेदन, वित्त (धन) नाश तथा कुलक्षय करता है।

तथा—प्रतिपद्दर्शसंयोगे क्रीडनं तु गवां मतम्। परविद्धेषु यः कुर्यात्पुत्रदारधनक्षयः॥ इति देवलवचनाच्च।

और—देवलका वचन है कि—प्रतिपदा और अमावास्या के संयोग में गौवों की क्रीडा का तो होना मत है। जो पर विद्धा में करता है उसके पुत्र, स्त्री तथा धन का नाश होता है।

एते च विधिप्रतिषेधाः पूर्वदिने प्रतिपदः सायाह्नव्यापित्वे द्वितीयदिने चन्द्रदर्शनसम्भवे च ज्ञेयाः।

१—राजकर्तृकपूजायां मद्यमांससुरादिकं भवति। इत्यादि टीकायाम्। 'राजकर्तृकपूजायां रात्रेरभिधानेन अन्य कर्तृकपूजायामपि सैव ग्राह्या। रात्रेः कर्मकालत्वाभिधानात्।

२—यो यादृशेन भावेन तिष्ठत्यस्यां युधिष्ठिर। हर्षदैन्यादिरूपेण तस्य वर्षं प्रयाति हि॥

और ये विधि तथा निषेध पूर्वदिन में प्रतिपदा सायाह्नव्यापिनी हो तो और दूसरे दिन में चन्द्रमा के दर्शन की संभावना में जानना चाहिये।

गवां क्रीडादिने यत्र रात्रौ दृश्येत चन्द्रमाः। सोमो राजा पशून् हन्ति सुरभिः पूजकांस्तथा॥ इति पुराणसमुच्चयात्। दिनद्वये सायाह्नव्यापित्वे तु परैव ग्राह्या।

पुराणसमुच्चय का वचन है कि--जिस रात में चन्द्रमा दिखाई पड़े उसदिन गौवों की क्रीडा से राजा सोम पशुओं को और गौओं के पूजकों का हिंसा करता है। दोनों दिन सायाह्नव्यापि हो तो परा ही ग्रहण करे।

वर्द्धमानतिथौ नन्दा यदा सार्द्धत्रियामिका। द्वितीया वृद्धिगामित्वादुत्तरा तत्र चोच्यते॥ इति।

वर्धमानतिथि (बढनेवाली तिथि) में जब साढे तीन प्रहर नन्दा हो तो द्वितीया की वृद्धि होनेवाली है। अन्त में उत्तरातिथि कही है।

तथा—त्रियामगा दर्शतिथिर्भवेचेत्सार्द्धत्रियामा प्रतिपद्विवृद्धौ। दीपोत्सवे ते मुनिभिः प्रदिष्टे अतोन्यथा पूर्वयुते विधेये॥ इति पुराणसमुच्चयादिति निर्णयामृतकारः।

और—पुराणसमुच्चय में निर्णयामृत का वचन है कि--तीन प्रहर अमावास्या हो और साढ़ेतीन प्रहर प्रतिपदा की वृद्धि हो तो ये दोनों तिथि मुनियों ने दीपोत्सव में कही हैं। इसलिए अन्यथा पूर्वयुत (पूर्वविद्धा) ग्रहण करे।

सार्द्धत्रियामिकेत्यनेन चन्द्रदर्शनाभाव उक्तः। द्वितीयायाः पञ्चधाविभक्तदिनचतुर्थांशरूपापराह्णव्याप्तावेव चन्द्रदर्शनसम्भवात्। वयं त्वेतद्वचनद्वयं पूर्वविद्धासम्भवे वेदितव्यमिति ब्रूमः। दिनद्वये प्रतिपदः सायाह्नव्याप्त्यभावे तु पूर्वैव। रात्रौ बलिपूजाविधानेन कर्मकालव्यापित्वात् परदिने चन्द्रोदये च तन्निषेधादिति दिक्।

साढ़ेतीन याम (प्रहर) के कहने से चन्द्रदर्शन का अभाव कहा है। द्वितीया के पांच विभाग करने से दिन के चतुर्थांशरूप अपराह्णव्याप्तिमें ही चन्द्रदर्शन संभव हैं।

हम तो ये दोनों वचन को पूर्वविद्धा के असंभव में जानना चाहिये--यों कहते हैं। दोनों दिन प्रतिपदा सायाह्नव्यापिनी के अभाव में तो पूर्वा ही (बलिपूजा और गोक्रीडामें) ग्रहण करे। रात्रि में बलिपूजा विधान से कर्मकालव्यापिनी होने से दूसरे दिन चन्द्रोदय में उसका निषेध है—यही मार्ग है।

(नीराजन-मङ्गलमालिका च विचारः)

मदनरत्ने तु पूर्वविद्धायां गोक्रीडा। नीराजनमङ्गलमालिके तूत्तरत्रकार्ये।

मदनरत्नमें तो पूर्वविद्धा में गोक्रीडा कहा है। नीराजन (आरती) और मंगलमालिका (मंगलसूत्र माला) को तो द्वितीयाविद्धा प्रतिपदामें करने को कहा है।

कार्तिके शुक्लपक्षे तु विधानद्वितयं भवेत्। नीराजनं भवेत् प्रातः सायं मङ्गलमालिका॥

ब्रह्मपुराण का वचन है कि--कार्तिकशुक्लपक्ष में तो दो विधान होता है। उसमें प्रातःकाल स्त्री नीराजन करें और सायंकाल मंगलमालिका (मंगलसूत्रमाला) करें।

यदा च प्रतिपत्स्वल्पा नारीनीराजनं भवेत्। द्वितीयायां तदा कुर्यात्सायं मङ्गलमालिकाम्॥ इति ब्राह्मोक्तेः।

और जब प्रतिपदा (प्रतिपदस्त्रिमुहूर्तव्यापित्वबोधनार्थम्) स्वल्पा हो तो स्त्रियों द्वारा नीराजन होता है। द्वितीयामें तो सायंकाल मंगलमालिका करें।

लभ्यते यदि वा प्रातः प्रतिपद्घटिकाद्वयम्। तस्यां नीराजनं कार्यं सायं मंगलमालिका॥ इति भविष्योक्तेः।

भविष्यपुराण में कहा है कि--यदि प्रातःकाल दो घड़ी प्रतिपदा का लाभ हो तो उसमें नीराजन करे और सांयकाल मंगलमालिका करे।

प्रातर्वा यदि लभ्येत प्रतिपद्घटिका शुभा। द्वितीयायां तदा कुर्यात् सायं मङ्गलमालिकाम्॥

और देवीपुराण में भी कहा है कि—यदि प्रातःकाल प्रतिपदा शुद्ध एक घड़ी मिले तो द्वितीया में सांयकाल मंगलमालिका करे।

कार्तिके शुक्लपक्षादौ त्वमावास्या घटीद्वयम्। देशभङ्गभयान्नैव कुर्यान्मङ्गलमालिकाम्॥ इति देवीपुराणाच्चेत्युक्तम्।

कार्तिक शुक्लपक्ष के आदि में अमावास्या दो घड़ी हो तो उसदिन देशभंग के भयसे मंगलमालिका को न करे।

(अत्रैव द्यूतकथनम्)

अत्र विशेषो हेमाद्रौ ब्राह्मे—बलिप्रतिपदं प्रक्रम्य–तस्माद् द्यूतं प्रकर्तव्यं प्रभाते तत्र मानवैः। तस्मिन् द्यूते जयो यस्य तस्य संवत्सरं जयः॥ पराजयो विरुद्धश्च लाभनाशकरो भवेत्। दयिताभिश्च सहितैर्नेया सा च भवेन्निशा॥ इति।

यहाँ पर विशेष हेमाद्रि में ब्रह्मपुराण के वचन से बलि प्रतिपदा के प्रकरण में कहा है कि—इसलिए उसदिन द्यूत (जूआ) कर्म को प्रातःकाल मनुष्य करें। अर्थात्–जूआ खेलें। उसद्यूत में जिसका जय होता है उसका एकसाल तक जय होता है। जिसका पराजय और प्रतिकूल होता है उसके लाभका नाश होता है। इसलिए [२]स्त्रियों के साथ रात्रि को द्यूतकर्म में व्यतीत करे।

(गोवर्धनोत्सवकथनम्)

अत्र गोवर्द्धनपूजा देवमार्गपालीपूजनादि चोक्तं हेमाद्रौ निर्णयामृते च स्कान्दे—प्रातर्गोवर्द्धनं पूज्य द्यूतं चापि समाचरेत्। भूषणीयास्तथा गावः पूज्याश्चावाहदोहनाः॥ गोवर्द्धनश्च गोमयेन कार्यश्चित्रेण वा।

यहाँ पर गोवर्धन पूजा आदि और मार्गपाली पूजन आदि हेमाद्रि तथा निर्णयामृत में स्कन्दपुराण के वचन करना कहा है कि—प्रातःकाल गोवर्धन की पूजा कर जूआ भी खेले। फिर गौवों को सजावे। दान तथा गोदोहनी (आवाह=दान और गोदोहन के समय गौ को तृप्त करे) की भी अर्चना करे। गोवर्धन गोमय से करे या चित्र से बनावे।

(गोवर्धनमन्त्रः)

मन्त्रस्तु—गोवर्द्धन धराधर गोकुलत्राणकारक। बहुबाहुकृतच्छाय गवां कोटिप्रदो भव॥

मन्त्र यों है कि—हे गोवर्धन, हे धराधार, हे गोकुलत्राणकारक, बहुबाहुकृतच्छाय—बहुतवृक्षों की छाया करने वाले हो और आप करोडों गौवों के देनेवाले हो।

गोमन्त्रस्तु—लक्ष्मीर्या लोकपालानां धेनुरूपेण संस्थिता।
घृतं वहति यज्ञार्थे मम पापं व्यपोहतु॥

गो मन्त्र यह है—जो लोकपालों को लक्ष्मी धेनुरूप से स्थित है। जो यज्ञार्थ के लिए घृत की प्राप्ति करती है वह मेरे पाप का नाश करे।

तत्रैव स्कान्दे—ततोऽपराह्णसमये पूर्वस्यां दिशि भारत।
मार्गपालीं प्रबध्नीयात्तुङ्गे स्तंभेऽथ पादपे।

वहीं पर स्कन्दपुराण का मत है कि—हे भारत, तदनन्तर अपराह्ण के समय में पूर्वदिशा में ऊँचे स्तंभ या वृक्ष में मार्गपाली का बन्धन करे।

१—शङ्करस्तु पुरा द्यूतं ससर्ज सुमनोहरम्। कार्तिके शुक्लपक्षे तु प्रथमेऽहनि सत्यवान्॥ जितश्च शङ्करस्तत्र जयं लेभे च पार्वती। अतोऽर्थं शङ्करो दुःखी उमा नित्यं सुखोचिता॥ २—आदित्यपुराणे–श्रोतव्यं गीतवाद्यादि स्वनुलिप्तैः स्वलङ्कृतैः। विशेषवच्च भोक्तव्यं प्रशस्तैर्बान्धवैः सह॥ तस्यां रात्रौ प्रकर्तव्यं शय्यास्थानं सुशोभनम्। गन्धैर्वस्त्रैस्तथा पुष्पै रत्नैर्माल्यैरलङ्कृतम्॥ दीपमालापरिक्षिप्तं तथा धूपेन धूपितम्। दयिताभिश्च सहितैर्नेया सा च भवेन्निशा। ते वै वस्त्रैश्च संपूज्या द्विजसम्बन्धिबान्धवाः॥

कुशकाशमयीं दिव्यां लम्बकैर्बहुभिर्मुने ।
दर्शयित्वा गजानश्वान् सायमस्यास्तले नयेत् ।

हे मुने, कुश और काशमयी दिव्य बहुत लंबे सूतों से मार्गपाली बांधे । हाथी और घोड़ों को दिखाकर सांयकाल उसके नीचे ले जाय ।

कृतहोमे द्विजेन्द्रैस्तु बध्नीयान्मार्गपालिकाम् । नमस्कारं ततः कुर्यान्मन्त्रेणानेन सुव्रत ॥

अच्छे ब्राह्मणों द्वारा हवन हो जानेपर मार्गपालिका को बंधन करे । तदनन्तर हे सुव्रत, इसमन्त्र से नमस्कार करे ।

(मार्गपालीबन्धनम्)

मार्गपालि नमस्तेऽस्तु सर्वलोकसुखप्रदे । विधेयैः पुत्रदाराद्यैः पुनरेहि व्रतस्य मे ॥

हे मार्गपालि, हे सर्वलोकसुखप्रदे, आपको नमस्कार है । पुत्र तथा स्त्री आदियों से किये हुए और मेरे व्रत को पूर्ण करने के लिये फिर आओ ।

नीराजनं च तत्रैव कार्यं राष्ट्रजयप्रदम् । राजानो राजपुत्राश्च ब्राह्मणाः शूद्रजातयः । मार्गपालीं समुल्लंघ्य नीरुजः स्युः सुखान्विताः ॥

वहीं पर राज्य के जय को देने के लिये नीराजन को करना चाहिये । राजाओं, राजपुत्रों, ब्राह्मणों और शूद्रजातियों द्वारा मार्गपाली को उल्लंघन कर रोग रहित होकर सुख से युक्त हों ।

तत्रैवादित्यपुराणे—कुशकाशमयीं कुर्याद्यष्टिकां सुदृढां नवाम् । तामेकतो राजपुत्रा हीनवर्णास्तथान्यतः ॥ गृहीत्वा कर्षयेयुस्तां यथासारं मुहुर्मुहुः । जयोऽत्र हीनजातीनां जयो राज्ञस्तु वत्सरम् ॥ इति ।

वहीं पर आदित्यपुराण में कहा है कि—कुश तथा काशमयी नवीन सुदृढ सूक्ष्मरज्जू से बनाकर उसके एकदेश से राजाके लड़के तथा अन्यतरफ से हीनवर्ण के लोग ग्रहण कर उसको बल से बारंबार कर्षण करें । अर्थात्—खीचें । खीचने पर हीन जातियों की जय हो तो राजा की सालभर तक जय होती है ।

(यमद्वितीया)

यमद्वितीया तु प्रतिपद्युता ग्राह्येत्युक्तं निर्णयामृतादौ । यमद्वितीया मध्याह्नव्यापिनी पूर्वविद्धा चेति हमाद्रिः ।

यमद्वितीया को तो प्रतिपदा युता ग्रहण करे-यह निर्णयामृत आदि में कहा है । हेमाद्रिने कहा है कि—यमद्वितीया मध्याह्नव्यापिनी तथा पूर्वविद्धा ग्रहण करे ।

(यमपूजनं यमुनास्नानं च करणीयम्)

अत्र विशेषो हेमाद्रौ स्कान्दे—ऊर्जे शुक्लद्वितीयायामपराह्णेऽर्चयेद्यमम् ।
स्नानं कृत्वा भानुजायां यमलोकं न पश्यति ॥

यहाँ पर विशेष हेमाद्रि में स्कन्दपुराण का कथन है कि—कार्तिकशुक्लद्वितीयातिथि में अपराह्ण समय में यमका पूजन करे और यमुना में स्नान करने से यमलोक नहीं देखता है ।

ऊर्जे शुक्लद्वितीयायां पूजितस्तर्पितो यमः ।
वेष्टितः किन्नरैर्हृष्टैस्तस्मै यच्छति वाञ्छितम् ॥

कार्तिकशुक्लद्वितीया में यमका पूजन और तर्पण करने से प्रसन्न किन्नरों से वेष्टित यमराज उसके लिए इच्छित फल देते हैं ।

तथा भविष्ये—प्रथमा श्रावणे मासि तथा भाद्रपदे परा ।
तृतीयाश्वयुजे मासि चतुर्थी कार्तिके भवेत् ॥

और भविष्यपुराण में कहा है कि—सावनमासमें प्रथमा, दूसरी भाद्रपदमास में, आश्विनमास में तीसरी और कार्तिकमासमें चतुर्थ होती है ।

श्रावणे कलुषा नाम तथा भाद्रे च गीमला। आश्विने प्रेतसञ्चारा कार्तिके याम्यका मता॥
इत्युक्त्वा प्रथमायां व्रतं द्वितीयायां सरस्वतीपूजा तृतीयायां श्राद्धमुक्त्वा चतुर्थ्यामुक्तम्—

उनके नाम—श्रावणमास नामवाली की कलुषा, भाद्रपदमासवाली की गीर्मला (निर्मला), आश्विन-मासवाली की प्रेतसंचारा और कार्तिकमास वाली की—याम्यका।

ऐसा कहकर प्रथमा में व्रत, द्वितीया में—सरस्वतीपूजा, (द्वितीया में श्राद्ध तथा तृतीया में सरस्वती पूजा करे—ऐसा भी पाठान्तर है।)

(अस्यां [1]भगनीहस्तात् भोजनम्)

कार्तिके शुक्लपक्षस्य द्वितीयायां युधिष्ठिर। यमो यमुनया पूर्वं भोजितः स्वगृहेऽर्चितः॥ अतो यमद्वितीयेयं त्रिपु लोकेषु विश्रुता। अस्यां निजगृहे विप्र न भोक्तव्यं ततो नरैः॥ स्नेहेन भगिनी-हस्ताद्भोक्तव्यं पुष्टिवर्द्धनम्। दानानि च प्रदेयानि भगिनीभ्यो विधानतः। स्वर्णालङ्कारवस्त्रान्न-पूजासत्कारभोजनैः। सर्वा भगिन्यः सम्पूज्या अभावे प्रतिपन्नकाः॥ प्रतिपन्नाः=मातृभगिन्य इति हेमाद्रिः।

तृतीया में श्राद्ध को कहकर चतुर्थी में कहा है कि—हे युधिष्ठिर, कार्तिक महिने के शुक्लपक्ष की द्वितीयातिथि में अपने घर पर यमुना ने यमको पहले भोजन कराया था। इसलिए यह यमद्वितीया तीनों लोकों में सुनी जाती है। हे विप्र, तदनन्तर मनुष्य अपने निजी घर में भोजन न करे।

स्नेह से बहिन के हाथ से पुष्टिवर्धक भोजन करें और बहिनों को विधान से दान देना चाहिये। सुवर्ण के अलंकार, वस्त्र, अन्न, पूजा—सत्कार और भोजनों से जितनी बहिन हों उनका पूजन करे। अभाव में तो जिनको बहिन के रूपमें माने उनकी पूजा करे। प्रतिपन्नाः—माता की बहिन—यह हेमाद्रि ने कहा है।

पितृव्यभगिनीहस्तात्प्रथमायां युधिष्ठिर। मातुलस्य सुताहस्ताद् द्वितीयायां तथा नृप॥ पितुर्मातुः स्वसुः कन्ये तृतीयायां तयोः करात्। (चतुर्थ्यां सह जाताश्च भगिन्या हस्ततः परम्॥) भोक्तव्यं सहजाताश्च भगिन्या हस्ततः परम्। सर्वासु भगिनीहस्ताद्भोक्तव्यं बलवर्द्धनम्॥ यस्यां तिथौ यमुनया यमराजदेवः सम्भोजितः प्रतिजगत्स्वसृसौहृदेन। तस्यां स्वसाकरतलादिह यो भुनक्ति प्राप्नोति रत्नसुखधान्यमनुत्तमं सः॥

हे युधिष्ठिर, चाचाकी लड़की (जो सम्बन्ध से बहिन होती है) के हाथ से प्रथमा में—अर्थात् श्रावणमास के शुक्लपक्ष की द्वितीयातिथि में और हे नृप, मामा के लड़की के हाथ से भाद्रपदशुक्ल द्वितीयाको, जितनी भी बहिन है—उनके हाथ का भोजन द्वितीया में करे जो कि बलवर्धक होता है। इस तिथिमें यमुना ने अपनी बहिन के सौहार्द से यमराजदेव को भोजन कराया था। अतः उसी तिथिमें जो मनुष्य अपनी बहिन के हाथ से इस संसार में भोजन करता है वह रत्नसुख और उत्तम धान्य प्राप्त करता है।

गौडास्तु—यमं च चित्रगुप्तं च यमदूतांश्च पूजयेत्। अर्घ्यश्चात्र प्रदातव्यो यमाय सहजद्वयैः॥

गौडों का कहना है कि—यम, चित्रगुप्त और यमदूतों की पूजा करे और यहाँ पर भाई तथा बहन को अर्घ्य करना चाहिये।

१—सर्वा भगिन्यः संपूज्या ज्येष्ठा अपि कनिष्ठिकाः। वस्त्रादिना नमस्कार्या निजवित्तानुसारतः॥ भ्रातुरायुष्यवृध्यर्थं भगिनीभिर्यमस्य वै। प्रतिमा पूजनीया च प्रयत्नेन विधानतः॥ मार्कण्डेयो बलिर्व्यासो हनुमांश्च विभीषणः। कृपो द्रौणिः परशुराम अष्टैते चिरजीविनः॥ मार्कण्डेय महाभाग सप्तकल्पान्तजीवन। चिरजीवी यथा त्वं भो तथा मे भ्रातरं कुरु॥

कार्तिकशुक्लचतुर्थ्यां नागव्रतं 'युगं मध्यं दिनं यत्र' इत्यादि प्रागुक्तकार्तिकशुक्लषष्ठ्यष्टमीनवमीकृत्यं कृत्यरत्नावल्यादौ द्रष्टव्यम्।

कार्तिके कूष्माण्डदानं कुर्यात्। नवम्यां तद्दानं ह्याचारात्। तत्र मन्त्रः—ब्रह्महत्यादिपापानां ब्रह्मणा निर्मितं पुरा। कूष्माण्डं बहुबीजाढ्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे।

कूष्माण्डस्तु स्त्रिया न च्छेद्यः—दीपप्रशमनं पुंसः कूष्माण्डच्छेदनं स्त्रियः। अचिरेणैव कालेन तस्य वंशक्षयो भवेत्॥ इति दोषश्रवणात्।

(यमस्यार्घ्यमन्त्रः)

मन्त्रस्तु—एह्येहि मार्तण्डज पाशहस्त यमान्तकालोकधरामरेश ।
भ्रातृद्वितीयाकृतदेवपूजां गृहाण चार्घ्यं भगवन्नमस्ते ॥

मन्त्र यह है--हे मार्तण्डज—सूर्य से उत्पन्न हुए, हे पाशहस्त—हाथ में पाशधारण करनेवाले, हे यम, हे अन्तक, हे लोकधर, हे अमरेश, भातृद्वितीया में की हुई देवपूजा और अर्घ्य को ग्रहण करो। हे भगवन्, आपको नमस्कार है।

भ्रातस्तवानुजाताहं भुंक्ष्व भक्तमिदं शुभम् । प्रीतये यमराजस्य यमुनाया विशेषतः ॥ ज्येष्ठाग्रजातेति वदेदिति स्मार्ताः इत्यन्नदानमित्यप्याहुः ।

हे भ्रातः, मैं आपकी छोटी बहिन हूँ। आप इस रमणीयसुन्दर यमराज तथा विशेषकर यमुना की प्रीति के लिए भक्षण करें।

स्मार्तों का कहना है कि—ज्येष्ठ, अग्रजात, ऐसा कहें तथा अन्नदान भी करें-ऐसा कहा है। ('ज्येष्ठा तु तवाग्रजाता' इति पाठः। 'ज्येष्ठाग्रजा' इति तु काल्पनिकः पाठः)।

ब्रह्माण्डपुराणेऽपि—या तु भोजयते नारी भ्रातरं युग्मके तिथौ । अर्चयेच्चापि ताम्बूलैर्न सा वैधव्यमाप्नुयात् ॥ भ्रातुरायुःक्षयो राजन्न भवेत्तत्र कर्हिचित् ॥ इति ।

ब्रह्माण्डपुराण में कहा है कि—जो स्त्री कार्तिकशुक्लद्वितीयातिथि में भाई को भोजन कराती है और ताम्बूलों से पूजा करती है वह विधवा नहीं होती है। हे राजन्, कभी भी भाई की आयु का क्षय नहीं होता है।

(कार्तिकशुक्लनवम्यां युगादिकथनम्)

कार्तिकशुक्लनवमी युगादिः । सा पूर्वाह्णिकी ग्राह्या । शुक्लपक्षस्थत्वात् ।

कार्तिकशुक्ल नवमी युगादि है। शुक्लपक्ष की होनेसे ग्रहण करनी चाहिये।

(अत्र पिण्डरहितं श्राद्धं करणीयम्)

अत्र पिण्डरहितं श्राद्धं कर्तव्यमन्यत्प्रागुक्तम् ।

यहाँ पर पिण्डरहित श्राद्ध करना चाहिये और बात तो पहले कह चुके हैं।

(विष्णुत्रिरात्रव्रतकथनम्)

अत्रैव विष्णुत्रिरात्रमुक्तं हेमाद्रौ पाद्मे—कार्तिके शुक्लनवमीमवाप्य विजितेन्द्रियः । हरिं विधाय सौवर्णं तुलस्या सहितं विभुम् ॥ पूजयेद्विधिवद्भक्त्या व्रती तत्र दिनत्रयम् । ततो यथोक्त-विधिना कुर्याद्वैवाहिकं विधिम् ॥ इति ।

यहीं पर विष्णुत्रिरात्रव्रत हेमाद्रि में ब्रह्मपुराण के वचन से कहा है कि—कार्तिकशुक्लनवमी को प्राप्तकर जितेन्द्रिय होकर हरि की सोने की मूर्ति विभु को तुलसी के सहित व्रती तीनदिन तक भक्ति से पूजन करे। इसप्रकार जैसे पहले विधि कही है उसीप्रकार से वैवाहिकविधि करे।

(कार्तिकशुक्लैकादश्यां भीष्मपञ्चकव्रतकथनम्)

कार्तिकशुक्लैकादश्यां भीष्मपञ्चकव्रतमुक्तं नारदीये—अतो नरैः प्रयत्नेन कर्तव्यं भीष्मपञ्चकम् । कार्तिकस्यामले पक्षे स्नात्वा सम्यग्व्रते स्थितः ॥ एकादश्यां तु गृह्णीयाद् व्रतं पञ्चदिनात्मकम् ॥ इति ।

कार्तिकशुक्ल एकादशी में भीष्मपञ्चकव्रत नारदीयपुराणमें कहा है कि—इसलिए मनुष्यों[1] को प्रयत्न से भीष्मपञ्चक करना चाहिये।

कार्तिकमास ये शुक्लपक्ष में अच्छीतरह से व्रत में संलग्न हो मनुष्य स्नानकर एकादशी में पाँचदिन वाला व्रत ग्रहण करे।

१—ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथवा यतिः। प्राप्नोति वैष्णवं स्थानं तत्कृत्वा भीष्मपञ्चकम् ॥ ब्रह्महा मद्यपः स्तेयी गुरुगामी सदाऽनृती । मुच्यते पातकान्मर्त्यः कृत्वेदं भीष्मपञ्चकम् ॥

तद्विधिस्तु गोमयेन स्नात्वा मौनी पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैर्विष्णुं संस्नाप्य सम्पूज्य पायसं निवेद्य द्वादशाक्षरमष्टोत्तरशतं जप्त्वा 'ॐ नमो विष्णवे' इति षडक्षरेण घृताक्तान् यवान् व्रीहींश्चाष्टोत्तरशतं हुत्वा भूमौ स्वपेत् । एवं पञ्चदिनेषु कुर्यात् ।

उसकी विधि यह है कि—गोबर से स्नान कर मौन होकर पंचामृतों से और पञ्चगव्यों से विष्णु को स्नान कराकर तथा पूजन कर खीर का नैवेद्य निवेदनकर द्वादशाक्षर—ॐ नमो भगवते वासुदेवाय—इस मन्त्र को एक सौ आठ वार जप कर 'ॐ नमो विष्णवे' इस षडक्षरमन्त्रसे घृतसे मिश्रित=यव और व्रीहि से एक सौ आठ वार हवनकर भूमि में शयन करे। इसप्रकार पांच दिनों में करे।

विशेषस्त्वाद्येह्नि हरेः पादौ सम्पूज्य त्रिर्गोमयं प्राश्यम्, द्वितीयेऽह्नि बिल्वपत्रैर्जानुनी सम्पूज्य गोमूत्रम्, त्रयोदश्यां भृङ्गराजेन नाभिं सम्पूज्य क्षीरम्, चतुर्दश्यां करवीरैः स्कन्धं सम्पूज्य दधि, पौर्णमास्यां होमान्ते लौहीं पापप्रतिमां खड्गचक्रहस्तां कृष्णवस्त्रेण वेष्टितां प्रस्थतिलोपरिस्थां कृत्वा धर्मराजनामभिः करवीरैः सम्पूज्य—

विशेष तो पहले दिन में—विष्णु के चरणों की कमलों द्वारा पूजाकर तीनवार गोवर का प्राशन करे। दूसरे दिन में—बिल्वपत्रों से जानुओं की पूजा कर गोमूत्र प्राशन करे। त्रयोदशी में भृंगराज (भंगरैला) नाभीका पूजनकर दूध का प्राशन करे। चतुर्दशी में करवीर (कनेर) से स्कन्ध को पूजनकर दधि प्राशन से करे। पौर्णमासी में होम के अन्त में लोहे की पाप की प्रतिमा को बनावे। उसके हाथ में खड्ग तथा चक्र हो और काले वस्त्र से वेष्टित प्रस्थ (२ – ३ सेर) भर तिल के ऊपर करके धर्मराज के नामों से करवीर के पुष्पों से पूजनकर—

यदन्यजन्मनि कृतमिह जन्मनि वा पुनः। तत्सर्वं प्रशमं यातु मत्पापं तव पूजनात् ॥ इति पुष्पाञ्जलिं क्षिप्त्वा कृष्णप्रतिमां च सम्पूज्य विप्राय दत्त्वा विप्रान् सम्भोज्य दक्षिणां दत्त्वा, पञ्चगव्यं प्राश्य पौर्णमास्यां नक्तं भुञ्जीतेति लघुनारदीये।

जो अन्य जन्ममें या फिर इस जन्म में किया हुआ मेरा सब पाप आपके पूजन से शान्त हो जाय। इसप्रकार कहकर पुष्पाञ्जलि प्रक्षेप कर कृष्णकी प्रतिमाका पूजन कर ब्राह्मण के लिए देकर ब्राह्मणों को भोजन कराकर दक्षिणा देकर पञ्चगव्य प्राशनकर पौर्णमासी की रात में नक्त (भोजन) करे—यह लघुनारदीयमें कहा है।

पञ्चगव्यप्राशनं षडक्षरेणेति हेमाद्रिः। हेमाद्रौ भविष्ये तु शाकैर्मुन्यन्नैर्वा पञ्चाहं वर्तनमुक्तम्।

हेमाद्रिमें कहा है कि—पञ्चगव्यप्राशन षडक्षरमन्त्र से करे। हेमाद्रि में भविष्यपुराण का मत है कि—शाक या मुनि के अन्नों से पांच दिन का वर्तन (उदरपोषण) कहा है।

अन्तेऽप्युक्तम्। यद्भीष्मपञ्चकमिति प्रथितं पृथिव्यामेकादशीप्रभृतिपञ्चदशीनिरुद्धम्। मुन्यन्नभोजनपरस्य नरस्य तस्मिन्निष्टं फलं दिशति पाण्डव शार्ङ्गधन्वा ॥ इति।

और अन्त में भी कहा है कि—हे पाण्डव, पृथिवी में एकादशी से लेकर पूर्णिमातक जो 'भीष्मपञ्चक' प्रसिद्ध है उसमें मनुष्य मुनियों के भोजन में तत्पर रहता है उसको शार्ङ्गधन्वा इच्छितफल देते हैं।

(भीष्मायार्घ्यदानमन्त्रः)

तथा पाद्मे—पञ्चाहं पञ्चगव्याशी भीष्मायार्घ्यं च पञ्चसु।
अहःस्वपि तथा दद्यान्मन्त्रेणानेन सुव्रत ॥

और पद्मपुराण में कहा है कि—पांच चिन तक पंचगव्य का प्राशन करे और पांचदिनों में भीष्म के लिए हे सुव्रत, इसमन्त्र से [1]अर्घ्य दे।

१—वैयाघ्रपद्यगोत्राय सांकृत्यप्रवराय च। गङ्गापुत्राय भीष्माय प्रदास्येऽहं तिलोदकम्। अपुत्राय ददाम्येतत्सलिलं भीष्मवर्मणे। वसूनामवताराय शन्तनोरात्मजाय च ॥ अर्घ्यं ददामि भीष्माय सोमवंशोद्भवाय च ॥

सत्यव्रताय शुचये गाङ्गेयाय महात्मने । भीष्मायैतत्प्रदाम्यर्घ्यमाजन्मब्रह्मचारिणे ॥ (वैयाघ्रपद्यगोत्राय इति च ।) सव्येनानेन मन्त्रेण तर्पणं सार्ववर्णिकम् इति ।

सत्यव्रत, शुचि, महात्मा, गांगेय और आजन्म ब्रह्मचारी भीष्म के लिए इस अर्घ्य को देता हूँ। (वैयाघ्रपद्य गोत्री भीष्म के लिए अर्घ्य देता हूँ) इस मन्त्रसे सव्य होकर सब काल में इस मन्त्रसे तर्पण करे।

(कार्तिकशुक्लद्वादश्यां पारणाविधानम्)

कार्तिकशुक्लद्वादश्यां रेवतीनक्षत्रयोगरहितायां पारणं कार्यम् । तदुक्तम्—आभाकासितपक्षेषु मैत्रश्रवणरेवती । सङ्गमे नहि भोक्तव्यं द्वादशद्वादशीर्हरेत् ॥ इति ।

कार्तिकशुक्ल द्वादशीमें स्वातीनक्षत्र योगरहिता में पारणा करे । उसी बात को कहा है कि—आषाढ, भाद्रपद तथा कार्तिकमास के शुक्लपक्षों में अनुराधा, श्रवण और रेवती नक्षत्र हो तो इनके संगम में भोजन नहीं करना चाहिये । करने से बारह द्वादशी का फल नाश हो जाता है ।

यदा तु रेवतीयोगरहिता द्वादशी सर्वथा न लभ्यते तदा रेवत्याश्चतुर्थपादं वर्जयेत् । वचनं तु प्रागुक्तम् ।

और जब रेवती योगरहित द्वादशी सर्वथा नहीं प्राप्त होती है तो रेवती के चतुर्थ पाद का त्याग करे । बचन तो पहले कह चुके हैं ।

लघुनारदीये—कार्तिके शुक्लपक्षस्य कृत्वा चैकादशीं नरः ।
प्रातर्दत्त्वा शुभान् कुम्भान् प्रयाति हरिमन्दिरम् ॥

लघुनारदीय में कहा है कि—कार्तिकशुक्लपक्ष की एकादशी को करके मनुष्य प्रातःकाल कुम्भों को दान करे तो हरिमन्दिर में जाता है ।

मदनरत्ने वाराहे—एकादशी सोमयुक्ता कार्तिके मासि भामिनि । उत्तराभाद्रसंयोगे अनन्ता सा प्रकीर्तिता ॥ तस्यां यत्क्रियते भद्रे सर्वमानन्त्यमश्नुते ॥

मदनरत्न में वाराहपुराण का मत है कि—हेभामिनि, कार्तिकमास में एकादशी, सोमवार तथा उत्तराभाद्रपद से किसी के मत से उत्तराषाढ युक्त हो तो वह अनन्ता कही गयी है । हे भद्रे, उसमें जो किया जाय वह सब अनन्त होता है ।

(अस्यामेव रात्रौ देवोत्थापनं कर्तव्यम्)

अस्यामेव रात्रौ देवोत्थापनमुक्तं हेमाद्रौ पाद्मे—एकादश्यां च शुक्लायां कार्तिके मासि केशवम् । प्रसुप्तं बोधयेद्रात्रौ श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ॥ इति ।

इसी ही रात्रि में हेमाद्रि में ब्रह्मपुराणमतसे देवोत्थापन कहा है कि—कार्तिकमास के शुक्लपक्ष की एकादशीतिथि में श्रद्धा-भक्ति से युक्त होते हुए केशव को रात में [1]जगावे ।

मदनरत्नेऽपि भविष्ये—कार्तिके शुक्लपक्षे तु एकादश्यां पृथासुत ।
मन्त्रेणानेन राजेन्द्र देवमुत्थापयेद् द्विजः ॥

मदनरत्न में भविष्यपुराण का मत है कि—हे पृथासुत, हे राजेन्द्र, कातर्किशुक्लपक्ष की एकादशी में द्विज इस मन्त्र से देवता जगा दे ।

रामार्चनचन्द्रिकादौ तु द्वादश्यामुक्तम् । पारणाहे पूर्वरात्रे घण्टादीन् वादयेन्मुहुः । इति । अत्र देशाचारतो व्यवस्था ।

रामाचर्नचन्द्रिका आदि में देवता को जगाना द्वादशीतिथि में कहा है कि—पूर्वरात में पारणा के दिन घण्टा आदि को वार वार वादन करता हुआ देवोत्थापन करे । यहाँ पर देशाचार से व्यवस्था है ।

१—नृत्यैर्गीतैस्तथा वाद्यैर्ऋग्यजुःसाममङ्गलैः । वीणापणवशब्दैश्च पुराणश्रवणेन च ॥ वासुदेवकथाभिश्च स्तोत्रैरन्यैश्च वैष्णवैः ॥

तत्रैव देवदेवस्य स्नानं पूर्वं महद्भवेत् । महापूजां ततः कृत्वा देवमुत्थापयेत्सुधीः ॥

वहीं पर देवों में देव का बड़ा पहले स्नान करावे । तदनन्तर महापूजाकर बुद्धिमान् देवता को उठावे ।

(उत्थापने वाराहपुराणोक्तमन्त्राः)

मन्त्रास्तु वाराहपुराणे उक्ताः—ब्रह्मेन्द्ररुद्राग्निकुबेरसूर्यसोमादिभिर्वन्दित वन्दनीय ।
बुध्यस्व देवेश जगन्निवास मन्त्रप्रभावेण सुखेन देव ॥

मन्त्रों को तो वाराहपुराण में कहा है कि—ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, अग्नि, कुबेर, सूर्य, सोम आदियों से वन्दितों से वन्दित हे देवेश, हे जगन्निवास, हे देव, मन्त्र के प्रभाव से सुख से उठो ।

इयं तु द्वादशी देवप्रबोधार्थं विनिर्मिता । त्वयैव सर्वलोकानां हितार्थं शेषशायिना ॥

यह द्वादशीतिथि देवताओं के प्रबोधन के लिए तथा सबलोकों के हित के लिये शेषशायी आपने निर्माण किया ।

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द त्यज निद्रां जगत्पते । त्वयि सुप्ते जगन्नाथ जगत्सुप्तं भवेदिदम् ॥ उत्थिते चेष्टते सर्वमुत्तिष्ठोत्तिष्ठ माधव ।

हे गोविन्द, उठो-उठो । हे जगत्पते, निन्द्रा का त्याग करो । हे जगन्नाथ, आपके शयन करने पर यह संसार शयन करता है आपके जागने पर सारा जगत् उठ जाने की चेष्टा करता है । अतः हे माधव, उठ जाओ, उठ जाओ ।

गता मेघा वियच्चैव निर्मलं निर्मला दिशः ॥ शारदानि च पुष्पाणि गृहाण मम केशव ।
इदं विष्णुरिति[1] प्रोक्तो मन्त्र उत्थापने हरेः ॥ इति ।

[2]मेघ चले गये, आकाश निर्मल होगये तथा दिशायें निर्मला होगयीं । हे केशव, मेरे द्वारा प्राप्त शरद् ऋतु के पुष्पों को ग्रहण करो । 'इदं विष्णु' इस मन्त्र को हरि के उत्थापन में कहा है ।

(चातुर्मास्यव्रतसमाप्तिकथनम्)

एवं देवमुत्थाप्य तदग्रे चातुर्मास्यव्रतसमाप्तिं कुर्यात् ।

इसप्रकार देवको उठाकर उसके आगे चातुर्मास्यव्रत की समाप्ति करे ।

तदुक्तं भारते—चतुर्द्धा गृह्य वै जीर्णं चातुर्मास्यव्रतं नरः ।
कार्तिके शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां तु समापयेत् ॥

उसी बात को भारत में कहा है कि—एकादशी, द्वादशी, पौर्णमासी या संक्रान्ति में चातुर्मास्यव्रत को मनुष्य कार्तिकमास के शुक्लपक्ष की द्वादशी में समाप्त करे ।

लघुनारदीये—चातुर्मास्यव्रतानां च समाप्तिः कार्तिके स्मृता ।

लघुनारदीय में कहा है कि—चातुर्मास्यव्रतों की समाप्ति कार्तिकमास में कही है ।

(सनत्कुमारोक्तमन्त्रकथनम्)

मन्त्रश्च निर्णयामृते सनत्कुमारेणोक्तः—इदं व्रतं मया देव कृतं प्रीत्यै तव प्रभो ।
न्यूनं सम्पूर्णतां यातु त्वत्प्रसादाज्जनार्दन ॥ इति ।

मन्त्र तो निर्णयामृत में सनत्कुमार ने कहा है कि—हे प्रभो, आपके प्रीति के लिए हे देव, मैंने इस व्रत को किया । हे जनार्दन, आपके प्रसाद से न्यूनकर्म भी संपूर्णता को प्राप्त हो ।

(वाराहोक्तो बोधनीविधिः)

अथ वाराहोक्तो बोधनीविधिः—एकादश्यां रात्रौ कुम्भे घृतपात्रोपरि हैमं माषमितं मत्स्यं

१—ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् । समूढमस्य पांसुरे ॥ (ऋ० १।२२।१७) ।

२—इस मन्त्रसे प्रबोध के बाद पुष्पाञ्जलि मन्त्रलिंग से दे । यहींपर पहले दिनकी रातमें दशावतारों का पूजन तथा जागरणकर प्रातःकाल आचार्यको वस्त्र आदि द्वारा पूजन तथा ब्राह्मणभोजन करा कर स्वयं भोजन करे ।

पञ्चामृतेन संस्नाप्य कुङ्कुमपीतवस्त्रयुगपद्माद्यैः सम्पूज्य मत्स्यादिदशावतारान् सम्पूज्य जागरणं कृत्वा प्रातर्देवमाचार्यं च वस्त्राद्यैः सम्पूज्य—

इसके बाद वाराहपुराणोक्तबोधनविधि कहते हैं कि—एकादशी की रात में कुंभपर घृतपात्र के ऊपर सुवर्ण का मासे भर मत्स्य का निर्माण कर पञ्चामृत से स्नानकराकर कुंकुम (रोली या केशर) दो पीतवस्त्र तथा पद्म आदि द्वारा पूजन कर मत्स्यादिदश अवतारों की पूजाकर तथा जागरण कर—प्रातःकाल देवता और आचार्य का वस्त्र आदि से पूजन कर—

जगदादिर्जगद्रूपो जगदादिरनादिमान्। जगदाद्यो जगद्योनिः प्रीयतां मे जनार्दन॥ इति नत्वा दक्षिणां दत्त्वा ब्राह्मणान् भोजयेदिति।

संसार के आदि, संसार के स्वरूप, संसार के कारण अनादि, संसार के आद्य (प्रथम), संसार के उत्पति कारण मूल जनार्दन मुझपर प्रसन्न हो। इसप्रकार नमस्कार कर तथा दक्षिणा देकर ब्राह्मणभोजन करावे।

तथा ब्राह्मे—महातूर्यरवे रात्रौ भ्रामयेत्स्यन्दने स्थितम्। उत्थितं देवदेवेशं नगरे पार्थिवः स्वयम्॥ चतुरो वार्षिकान् मासान् नियमं यस्य यत्कृतम्। कथयित्वा द्विजेभ्यस्तद्द्याद्भक्त्या सदक्षिणम्॥ यस्य भक्ष्यस्य नियमः कृतस्तत् द्रव्यं दद्यादित्यर्थः।

और ब्रह्मपुराण में कहा है कि—उठे हुए देव देशके बड़े बड़े बाजों के शब्दोंसे रथ में स्थितकर स्वयं राजा नगर में रात्रि में भ्रमण करावे। साल के चार महिनों में जिसने कहकर जिसका नियम किया है उसे ब्राह्मणों के लिए भक्ति से दक्षिणा दे। अर्थात्-जिस भक्ष्यवस्तु का नियम किया है उसी द्रव्य को दे-यह अर्थ है।

(शुक्रास्तादावपि विचारः)

इदं शुक्रास्तादावपि कार्यम्।

यह चातुर्मास्यव्रत शुक्रास्त आदि मे भी करे। (क्योंकि-इसका नियम काल है। इसकी समाप्ति चार महिमें होती है)।

(आशौचावस्थायां विचारः)

अशौचे तु पूजामन्येन कारयेत्।

आशौच में तो पूजा दूसरे से करावे।

(कार्तिकशुक्लद्वादशी पौर्णमासी च मन्वादिनिर्णयकथनम्)

कार्तिकद्वादशी पूर्णमासी च मन्वादिः। सा पूर्वाह्णिकी ग्राह्या। अन्यत्प्रागुक्तम्।

कार्तिकशुक्लद्वादशी और पौर्णमासी मन्वादि है। वह पूर्वाह्णव्यापनी ग्रहण करे। अन्यबात (निर्णय) पहले कह चुके हैं।

(कार्तिकशुक्लचतुर्दशी (वैकुण्ठचतुर्दशी) निर्णयः)

कार्तिकशुक्लचतुर्दशी वैकुण्ठसंज्ञा। सा विष्णुपूजायां रात्रिव्यापिनी ग्राह्या। दिनद्वये तद्व्याप्तौ निशीथप्रदोषोभयव्यापिनी ग्राह्या। तदुक्तं हेमाद्रौ भविष्ये—कार्तिकस्यासिते पक्षे चतुर्दश्यां नराधिप। सोपवासस्तु सम्पूज्य हरिं रात्रौ जितेन्द्रियः॥ इति।

कार्तिकशुक्ल चतुर्दशी वैकुण्ठचतुर्दशी है। वह विष्णुपूजा में रात्रिव्यापिनी ग्रहण करें। दोनों दिन उसकी अप्राप्ति में निशीथ और प्रदोष में व्याप्त हो उसे ही ग्रहण करे। उसी बात को हेमाद्रि में भविष्य-पुराण मत से कहा है कि—हे नराधिप, कार्तिकमास के शुक्लपक्ष की चतुर्दशीतिथि में सोपवास और जितेन्द्रिय होकर रात्रि में हरी की पूजा करे।

(अस्यामेव विश्वेश्वरप्रतिष्ठादिनादिकथनम्)

अस्या एव विश्वेश्वरप्रतिष्ठादिनत्वात्तत्प्रीत्यर्थं यदोपवासादि क्रियते तदाऽरुणोदयव्यापिनी ग्राह्या। तदुक्तं त्रिस्थलीसेतौ सनत्कुमारसंहितायाम्—वर्षे च हेमलम्बाख्ये मासे श्रीमति

कार्तिके। शुक्लपक्षे चतुर्दश्यामरुणाभ्युदयं प्रति ॥ महादेवतिथौ ब्राह्मे मुहूर्ते मणिकर्णिके ॥ स्नात्वा विश्वेश्वरो देव्या विश्वेश्वरमपूजयत् । इति ।

इसी का ही विश्वेश्वर[1] की प्रतिष्ठादिन होने से उनके प्रीत्यर्थ जब उपवास आदि किया जाय तो अरुणोदयव्यापिनी ग्रहण करे।

उसी बात को त्रिस्थलीसेतु में सनत्कुमारसंहिता के वचन से कहा है कि—'हेमलंब' नाम के वर्ष में कार्तिकमास की शुक्ला चतुर्दशीतिथि को अरुणोदय के समय महादेव की तिथि में ब्राह्ममुहूर्त में मणिकर्णिका में स्नान कर पार्वती सहित विश्वेश्वर ने श्री विश्वेश्वर की पूजा की थी।

तत्पूर्वदिने चोपवासः कार्यः। ततः प्रभाते विमले कृत्वा पूजां महाद्भुताम्। दण्डपाणेर्महाधाम्नि वनेऽस्मिन् कृतपारणः ॥ इति तत्रैवोक्तेः।

इसके पहले दिन उपवास करे। तदनन्तर प्रातःकाल [2]विमलतीर्थ में महा अद्भुत पूजा कर दण्डपाणी के महाधामरूपी इस वन में (वाराणसी) में पारायण किया। यह बात वहीं पर कही है।

शिवरहस्येऽपि पूजाजागराद्युक्त्वा—ततोऽरुणोदये जाते स्नात्वा स्नात्वा च भस्मना। सन्ध्यां समाप्य विश्वेशं मामभ्यर्च्य यथाविधि ॥ मद्भक्तान् भोजयामासुर्ऋषयो बुभुजुस्ततः ॥ इति।

शिवरहस्य में भी पूजा, जागरण आदि कहकर कहा है कि—तदनन्तर अरुणोद के समय भस्म से स्नान और सन्ध्या समाप्तकर यथाविधि मुझ विश्वेश्वर का अर्चन करे। तदनन्तर ऋषियोंने मेरे भक्तों को भोजन कराया फिर स्वयं भोजन किया।

(कार्तिकव्रतोद्यापनकथनम्)

अत्र कार्तिकव्रतोद्यापनमुक्तं पाद्मे कार्तिकमाहात्म्ये—अथोर्जव्रतिनः सम्यगुद्यापनविधिं शृणु। ऊर्जशुक्लचतुर्दश्यां कुर्यादुद्यापनं व्रती।

यहाँ पर कार्तिकव्रत के उद्यापनविधि को पद्मपुराण के कार्तिकमाहात्म्य में कहा है कि—

इसके बाद कार्तिकमास में व्रत करने वालों के लिए अच्छीतरह से उद्यापन (व्रत की संपूर्णता आदि के लिए) विधि को सुनो। कार्तिकशुक्लचतुर्दशी को व्रती उद्यापन करे।

तुलस्या उपरिष्टात्तु कुर्यान्मण्डपिकां शुभाम्। तुलसी मूलदेशे च सर्वतोभद्रमेव च ॥

तुलसी के ऊपर छोटा सा शुभ मण्डप (सुतोरणां चतुर्द्वारां पुष्पचामरशोभिताम्। द्वारेषु द्वारपालाँश्च पूजयेन्मृन्मयान् पृथक्। पुष्पशीलं सुशीलं च जयं विजयमेव च।) तुलसी के मूल देश (जडभाग के समीप) में 'सर्वतोभद्र' का निर्माण करे। (इससे यह सिद्ध हुआ कि—सर्वतोभद्र के देवताओं का आवाहन-पूजनादि-आवश्यक है)।

तस्योपरिष्टात्कलशं पञ्चरत्नसमन्वितम्। पूजयेत्तत्र देवेशं सौवर्णं गुर्वनुज्ञया ॥ रात्रौ जागरणं कुर्याद् गीतवाद्यादिमङ्गलैः। ततस्तु पौर्णमास्यां वै सपत्नीकान् द्विजोत्तमान् ॥ त्रिंशन्मितानथैकं वा स्वशक्त्या वा निमन्त्रयेत्।

उस भद्रपीठ के ऊपर पञ्चरत्न से युक्त कलश का (स्थापनपूर्वक) पूजन करे। उस कलश में गुरुदेव की आज्ञा से सुवर्ण के देवों के देव विष्णु (विष्णुश्च केशवादीनां चतुर्विंशतीनां मध्येऽन्यतमः) का (षोडशोपचार से) पूजन करे। गाना बजाना आदि मंगलों से रात्रि में जागरण करे। तदनन्तर पूर्णिमातिथि में ही तीस संख्याक सपत्नीक द्विजोत्तमों को या एक या अपनी शक्ति के अनुसार निमन्त्रण (ततस्तान् भोजयेद्विप्रान् पायसान्नादिना व्रती) करे।

अतो देवा इति द्वाभ्यां जुहुयात्तिलपायसम्। ततो गां कपिलां दद्यात्पूजयेद्विधिवद् गुरुम् ॥ इति।

१—संक्षेपं ज्योतिषस्तस्य प्रतिष्ठाख्यं तदाऽकरोत्। स्वयमेव स्वमात्मानं चरन् पाशुपतव्रतम् ॥ जपन् वै शतरुद्रीयं पूजयंस्तमहर्निशम्। स्वयमेव स्वमात्मानं तत्रैवोवास शङ्करः ॥

२—कार्तिकस्य चतुर्दश्यां विश्वेशं यो विलोकयेत्। स्नात्वा चोत्तरवाहिन्यां न तस्य पुनरावृत्तिः ॥

'अतो देवा' इन[1] दोनों मन्त्रों से तिल तथा पायस से हवन करे। तदनन्तर कपिला गौ का दान कर विधिवत् गुरुदेव का (वस्त्र-अलंकार आदि से) पूजन करे[2] ।

(कार्तिकपौर्णमासीनिर्णयः)

कार्तिकी पौर्णमासी परा ग्राह्या। 'अमापौर्णमास्यौ परे' इति दीपिकोक्तेः।

कार्तिकमास की पौर्णमासी परा ग्रहण करनी चाहिये। दीपिका में कहा है कि—अमावास्या और पूर्णिमा परा ग्रहण करे।

(अत्र योगविशेषकथनम्)

अत्र विशेषो हेमाद्रौ ब्राह्मे—पुण्या महाकार्तिकी स्याज्जीवेन्द्वोः कृत्तिकासु च।

यहाँ पर विशेष हेमाद्रि में ब्रह्मपुराण के वचन से कहा है कि-बृहस्पतिवार, सोमवार तथा कृत्तिकानक्षत्र हो तो कार्तिकी महापुण्यदायक होती है।

तथा—आग्नेयं तु यदा ऋक्षं कार्तिक्यां भवति क्वचित्।
महती सा तिथिर्ज्ञेया स्नानदानेषु चोत्तमा॥

और जब कभी कार्तिकी में कृत्तिकानक्षत्र हो तो उसे महती जाने वह स्नान और दान में उत्तम होती है।

यदा तु याम्यं भवति ऋक्षं तस्यां तिथौ क्वचित्।
तिथिः सापि महापुण्या मुनिभिः परिकीर्तिता॥

जब उस तिथि में कभी रोहिणी हो तो वह तिथि भी मुनियों द्वारा महापुण्य को देने वाली कहा है।

प्राजापत्यं यदा ऋक्षं तिथौ तस्यां नराधिप।
सा महाकार्तिकी प्रोक्ता देवानामपि दुर्लभा॥ इति।

हे नराधिप, जब कभी उस तिथि में रोहिणीनक्षत्र हो तो वह महाकार्तिकी कही गयी है, वह देवताओं के लिए भी दुर्लभ है।

(अस्यां पद्मकयोगकथनम्)

पाद्मे—विशाखासु यदा भानुः कृत्तिकासु च चन्द्रमाः।
स योगः पद्मको नाम पुष्करेष्वतिदुर्लभः॥

पद्मपुराण में कहा है कि—जब विशाखा में सूर्य हो और कृत्तिका में चन्द्रमा हो तो उस योग का नाम पद्मक है वह पुष्कर में अति दुर्लभ है।

पद्मकं पुष्करे प्राप्य कपिलां यः प्रयच्छति। स हित्वा सर्वपापानि वैष्णवं लभते पदम्॥

पद्मक पुष्कर में प्राप्त कर जो मनुष्य कपिला गौ देता है। वह अपने सारे पापों को त्यागकर वैष्णव पद का लाभ करता है।

यमः—कार्तिक्यां पुष्करे स्नातः सर्वपापैः प्रमुच्यते।
माघ्यां स्नातः प्रयोगे तु मुच्यते सर्वकिल्बिषैः॥

यमने कहा है कि—कार्तिकीपूर्णिमा में पुष्कर में स्नान करने से सब पापों से मुक्त हो जाता है। और माघी पूर्णिमा में प्रयाग में स्नान करने से सब किल्विषों (पापों) से मुक्त होता है।

(अस्यामेव सायंकाले मत्स्यावतारः)

अस्यामेव सायङ्काले मत्स्यावतारो जात इत्युक्तं पाद्मे कार्तिकमाहात्म्ये—वरान्दत्त्वा यतो

१—अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे। पृथिव्याः सप्त धामभिः॥ इदं विष्णुर्विचक्रमेत्रेधा नि दधे पदम्। समूढमस्य पांसुरे॥ (ऋ० म० १ सू० २२ म० १६, १७)।

२—तुलसीविवाह की विधि 'विष्णुयामल' में कही है। इसका पूरा विवरण निर्णयसिन्धु के द्वितीय परिच्छेदके कार्तिकव्रतोद्यापन प्रकरण टीका में उद्धृत है।

विष्णुर्मत्स्यरूपी भवेत्ततः। तस्यां दत्तं हुतं जप्तं तदक्षय्यफलं स्मृतम्॥ इति।

इस तिथि में ही कहा है कि—सायंकाल में मत्स्यावतार (मछली के रूप को धारण कर भगवान् विष्णु का अवतार) हुआ।

पद्मपुराण के कार्तिकमाहात्म्य में कहा है कि—तदनन्तर वरों को देकर मत्स्यरूपधारी विष्णु हुए। उसमें दिया हुआ दान, होम एवं जप अक्षय फल को देता है।

(त्रिपुरोत्सवकथनम्)

अत्र त्रिपुरोत्सव उक्तो भार्गवार्चनदीपिकायाम्—पौर्णमास्यां तु सन्ध्यायां कर्तव्यस्त्रिपुरोत्सवः।
दद्यादनेन मन्त्रेण प्रदीपांश्च सुरालये॥

यहाँ पर भार्गवार्चनदीपिका में त्रिपुरोत्सव में कहा है कि—पौर्णमासी की सन्ध्या में 'त्रिपुरोत्सव' करना चाहिये। इसमन्त्र से देवताओं के मन्दिर में दीपकोंको दे।

कीकाः पतङ्गा मशकाश्च वृक्षा जले स्थले ये विचरन्ति जीवाः।
दृष्ट्वा प्रदीपं न च जन्मभागिनो भवन्ति नित्यं श्वपचा हि विप्राः॥

कीडे, पतंग, मच्छर, वृक्ष, जो स्थल तथा जल में जीव विचरण करते हैं वे और श्वपच एवं विप्र जो दीपक को देखते हैं वे जन्म को भोगने वाले नहीं होते हैं।

(अत्र वृषोत्सर्गोऽतिप्रशस्तः)

अत्र वृषोत्सर्गोऽतिप्रशस्तः। तदुक्तं मात्स्ये—कार्तिक्यां यो वृषोत्सर्गं कृत्वा नक्तं समाचरेत्। शैवं पदमवाप्नोति शिवव्रतमिदं स्मृतम्॥ इति।

यहाँ पर वृषोत्सर्ग करना अतिश्रेष्ठ मत्स्यपुराण में कहा है कि—जो मनुष्य कार्तिकी में 'नक्तव्रत' कर वृषोत्सर्ग करता है वह शिवपद को प्राप्त करता है। यह शिवव्रत कहा है।

(कार्तिकेयदर्शनकथनम्)

अत्र कार्तिकेयदर्शनमुक्तं काशीखण्डे—कार्तिक्यां कृत्तिकायोगे यः कुर्यात्स्वामिदर्शनम्।
सप्तजन्म भवेद्विप्रो धनाढ्यो वेदपारगः॥ इति।

यहाँ पर कार्तिकेय का दर्शन काशीखण्ड में कहा है कि—कार्तिक में कृत्तिकानक्षत्र के योग में जो स्वामीकार्तिकेय का दर्शन करता है वह सातजन्मतक धनाध्य और वेद (ज्ञान) का पारंगत होता है।

इति कार्तिकमासः।

(मार्गशीर्षमास)

(वृश्चिकसंक्रान्तिनिर्णयः)

वृश्चिके पूर्वाः षोडश घटिकाः पुण्याः (शेषं प्राग्वत्)।

वृश्चिक में पहली सोलह घड़ी पुण्यकाल है। (अवशिष्ट पहले की तरह जानना चाहिये)।

(मार्गशीर्षकृष्णाष्टमी—(कालभैरवाष्टमी) तत्रोपवासादिविधिः)

मार्गशीर्षकृष्णाष्टमी कालाष्टमी। सा च रात्रिव्यापिनी ग्राह्या।

मार्गशीर्षमासकी कृष्णपक्षकी अष्टमी 'कालाष्टमी' होती है। वह रात्रिव्यापिनी ग्रहण करे।

मार्गशीर्षासिताष्टम्यां कालभैरवसन्निधौ। उपोष्य जागरं कुर्वन्सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ इति काशीखण्डाद्रात्रिव्रतत्वावगतेः।

मार्गशीर्षमास के कृष्णपक्ष को अष्टमी को कालभैरव के सन्निधि में उपवास कर जागरण करे तो सब पापों से मुक्त होजाता है। इस काशीखण्ड से रात्रि में व्रत को भगवान् ने कहा है।

'रुद्रव्रतेषु सर्वेषु कर्तव्या सम्मुखी तिथिः।' इति ब्रह्मवैवर्ताच्च।

और सब व्रतों में संमुखीतिथि करना चाहिये—यह ब्रह्मवैवर्तपुराण में कहा है।

दिनद्वयेंऽशतो रात्रिव्याप्तावुत्तरैव। भैरवोत्पत्तेः प्रदोषकालीनत्वादिति केचित्। तन्न, शिवरहस्ये मध्याह्ने भैरवोत्पत्तेः श्रवणात्। तथा च तत्रैव—

दोनों दिन अंशतः रात्रिव्यापिनी हो तो उत्तरा ही ग्रहण करे। कोई कहते हैं कि—भैरव की उत्पत्ति का काल प्रदोष है। यह ठीक नहीं। शिवरहस्य में मध्याह्नकाल (जन्माष्टमी आदि में तो निशीव्यापिनी ग्रहण करते हैं न कि जन्मकालको। इसलिए यामचतुष्टयपूजा सन्ध्या-पूजा आदि कर्मकाल से रात्रिव्यापिनी अंगीकार कर मध्याह्नव्यापिनी को त्यागते हैं)। में भैरवोत्पत्ति सुना है।

नित्ययात्रादिकं कृत्वा मध्याह्ने संस्थिते रवौ। इत्युपक्रम्य ब्रह्मणा रुद्रेऽवज्ञाते उक्तम्—तदोग्ररूपादनघान्मत्तः श्रीकालभैरवः। आविरासीत्तदा लोकान् भीषयन्नखिलानपि॥ इति।

और वहाँ पर कहा है कि—नित्ययात्रा आदिकर मध्याह्नकाल में स्थित सूर्य में ऐसा उपक्रम करके ब्रह्माने रुद्र हैं ऐसा न जानकर कहा कि—तब उग्ररूप तथा निष्पाप, मत्त, श्रीकालभैरव सारे संसार को डराता हुआ प्रकट हुआ।

अत्रोपवास एव प्रधानमित्युक्तं तत्रैव—उपोषणस्याङ्गभूतमर्घ्यदानमिह स्मृतम्। तथा जागरणं रात्रौ पूजा यामचतुष्टये॥ सन्ध्यायामपि पूजैवोक्ता। (तेन मध्याह्नव्यापिनी युक्ता) दिनद्वयेंऽशतः सम्पूर्णायां वा तद्व्याप्तौ पूर्वैव पूर्वोक्तवचनात्। पारणा तु प्रातरेव। 'यामत्रयोर्ध्वगामिन्यां प्रातरेव हि पारणा। इति वचनात्।

यहाँ पर उपवास (किसी का मत है कि यहाँ पर उपवास तथा जागरण ही प्रधान है) ही प्रधान है। यह वहाँ पर ही कहा है कि—यहाँ पर उपवास का अङ्गभूत अर्घ्यदान ही कहा है और जागरण तथा रात में चार प्रहर (याम) की पूजा कही है।

सन्ध्या में भी पूजा ही कही है। (इससे मध्याह्नव्यापिनी युक्त है।) दोनों दिन किसी अंश में संपूर्ण व्यापिनी में या संपूर्णता में उसकी व्याप्ति में हो तो पूर्वा ही ग्रहण करे—पूर्वोक्त वचन से। पारणा तो प्रातःकाल ही होती है। तीन प्रहर से अधिक गामिनी हो तो प्रातःकाल ही पारणा करे—ऐसा वचन है।

(कालभैरवपूजा)

अत्र च कालभैरवपूजोक्ता त्रिस्थलीसेतौ—कृत्वा च विविधां पूजां महासम्भारविस्तरैः।
नरो मार्गासिताष्टम्यां वार्षिकं विघ्नमुत्सृजेत्॥

और यहाँ पर त्रिस्थलीसेतु में कालभैरवपूजा कही है—महासंभार के विस्तारों से मार्गशीर्ष कृष्ण-अष्टमी में अनेकप्रकार की पूजाकर मनुष्य सालभर तक के विघ्नों से छूटजाता है।

तथा—तीर्थे कालोदके स्नात्वा कृत्वा तर्पणमत्वरः। विलोक्य कालराजानं निरयादुद्धरेत्पितॄन्॥ इति। इयं च कार्तिक्यनन्तरा गौणचान्द्राभिप्रायेण।

और—कालोदकतीर्थ में स्नान कर विना जल्दी के तर्पण कर के कालराजा (कालभैरव) को देख कर नरक से पितरों का उद्धार करता है। यह कार्तिकी के बाद गौण चान्द्रमास के अभिप्राय से कहा है।

(मार्गशीर्षशुक्लपञ्चम्यां नागपूजानिर्णयः)

मार्गशीर्षशुक्लपञ्चम्यां नागपूजोक्ता हेमाद्रौ स्कान्दे—शुक्ला मार्गगिरे पुण्या श्रावणे या च पञ्चमी। स्नानदानैर्बहुफला नागलोकप्रदायिनी॥ इति। इयं नागपूजायां षष्ठीयुतैव ग्राह्या। पञ्चमी नागपूजायां कार्या षष्ठीसमन्विता। तस्यां तु तुषिता नागा इतरा सचतुर्थिका॥ इति मदनरत्ने वचनात्।

मार्गशीर्ष[1] शुक्लपञ्चमी को नागपूजा हेमाद्रिमें स्कन्दपुराणमत से कही है कि—मार्गशीर्षमास

१—मार्गशीर्ष शुक्लतृतीया रंभानाम की है। उसमें उपवास करे—'मार्गशुक्लतृतीयायां दन्तधावनपूर्वकम्। उपवासस्य नियमं गृह्णीयात्पतिदैवतम्॥ सौभाग्यार्थं पुरा चीर्णं रम्भया राजसत्तम। तेन रंभा तृतीयेऽयं परसौभाग्यदायिनी॥ इति वचनात्। इयं पूर्वविद्धा ग्राह्या। बृहत्तपा तथा रंभा' इति वचनात्। श्रावणकृष्णतृतीया बृहत्तपा।

शुक्लपक्ष की पञ्चमीतिथि में या श्रावणमास के शुक्लपक्ष की पञ्चमीतिथि में स्नान तथा दान करने से बहुत फल को एवं नागलोक को देने वाली होती है। यह नागपूजा में षष्ठीतिथि युक्त ही ग्रहण करे।

मदनरत्न में कहा है कि—षष्ठीतिथि से युक्त पञ्चमीतिथि नागपूजा में ग्रहण करे। इसमें नाग प्रसन्न होते हैं। इतर में तो चतुर्थी युक्त पञ्चमी ग्रहण करे।

(मार्गशीर्षशुक्लाषष्ठी (चम्पाषष्ठी) निर्णयः)

मार्गशीर्षशुक्ला षष्ठी चम्पाषष्ठीति महाराष्ट्रेषु प्रसिद्धा। सोत्तरयुता ग्राह्या। 'षण्मुन्योः' इति युग्मवाक्यात्। पूर्वाह्णे दैविकं कुर्यादिति वचनादस्य च दैवकर्मत्वात्। इयमेव योगविशेषेण चम्पेत्युच्यते।

मार्गशीर्षशुक्लपक्ष की षष्ठीतिथि 'चम्पाषष्ठी' नाम से महाराष्ट्रों में प्रसिद्ध है। वह उत्तरयुता (वक्ष्यमाणयोग विशेष से मल्लारिपूजा में पूर्वा या परा ग्रहण करे। उसके अभाव में उत्तरा) ग्रहण करे-'षण्मुन्योः' इस वाक्य से। (अर्थात्—छठ और सप्तमी) पूर्वाह्णकाल में देवकर्म करे—इस वचच से इसका देवकर्म है। इसी के योगविशेष से 'चम्पा' कहते हैं।

तदुक्तं ब्रह्माण्डपुराणे मल्लारिमाहात्म्ये—मार्गे भाद्रपदे शुक्ला षष्ठी वैधृतिसंयुता।
रविवारेण संयुक्ता सा चम्पेतीह कीर्तिता ॥ इति।

इसी बातको ब्रह्माण्डपुराण में मल्लारिमाहात्म्य में कहा है कि—मार्गशीर्ष या भाद्रपदमासकी शुक्ल पक्ष की षष्ठी वैधृति तथा रविवार से संयुक्त हो तो यहाँ पर वह 'चम्पा' नाम से कही गयी है।

विशाखा भौमयोगेन सा चम्पेतीह कीर्तिता ॥ (विश्रुता) इति मदनरत्ने पाठः।

मदनरत्न में ऐसा पाठ है कि—विशाखा मंगलवार के योग से वह 'चम्पाषष्ठी' कही जाती है।

मार्गशीर्षेऽमले पक्षे षष्ठ्यां वारेंऽशुमालिनः। शततारागते चन्द्रे लिङ्गं स्याद्दृष्टिगोचरम् ॥ इति।

मार्गशीर्षशुक्लपक्ष की षष्ठीतिथि में रविवार हो और विशाखा चन्द्रमा में हो तो उस दिन लिंगका दृष्टिगोचर होता है।

इयं योगवशेन पूर्वा परा वा कार्या। चम्पाषष्ठी सप्तमीयुतेति दिवोदासः।

यह योगविशेष से पूर्वा या परा करे। चम्पाषष्ठी सप्तमीतिथि युता करे—यह दिवादास ने कहा है।

(इयमेव स्कन्दषष्ठी)

इयमेव स्कन्दषष्ठी। सा पूर्वयुता। कृष्णाष्टमी स्कन्दषष्ठी शिवरात्रिश्चतुर्दशी। एताः पूर्वयुताः कार्यास्तिथ्यन्ते पारणं भवेत् ॥ इति भृगूक्तेः।

इसी को ही स्कन्दषष्ठी कहते हैं। वह पूर्वयुता ग्रहण करे। भृगुने कहा है कि—कृष्णाष्टमी, स्कन्दषष्ठी, शिवरात्रि और चतुर्दशी तिथियों को पूर्व तिथियों से युक्त करे तथा तिथि के अन्त में पारणा करे।

परेऽह्नि रात्रावाद्ययाममध्ये पारणासम्भवे इदम्, अन्यथोत्तरैवेति दिवोदासः।

दूसरे दिन रात्रि के आद्ययाम के मध्य में पारणा संभव हो तो यह है। अन्यथा उत्तरा में ही करे—यह दिवोदास ने कहा है।

अब्दपर्यन्तं षष्ठीषु—सेनाविदारक स्कन्द महासेन महाबल। रुद्रोमाग्निज षड्वक्त्र गङ्गागर्भ नमोऽस्तु ते ॥ इति राजतं स्कन्दं सम्पूज्य विप्राय दद्यादिति दिवोदासः।

सालभर तक षष्ठीतिथियों में—चांदी के स्कन्द की पूजा कर ब्राह्मण को दे-यह दिवोदास ने कहा है। हे सेनाविदारक, हे स्कन्द, हे महासेन, हे महाबल, हे रुद्र, उमा (पार्वती) तथा अग्नि के युक्त, हे षड्वक्त्र हे गङ्गागर्भ, आपके लिए नमस्कार है। चान्दी के स्कन्द की पूजाकर ब्राह्मण को दे—यह दिवोदास ने कहा है।

(मार्गशीर्षशुक्लचतुर्दश्यां पिशाचमोचनश्राद्धविधिः)

मार्गशीर्षशुक्लचतुर्दश्यां पिशाचमोचनतीर्थे श्राद्धं त्रिस्थलीसेतौ भट्टैरुक्तम्। तस्य प्राप्तपैशाच्य-

स्वपित्राद्युद्देश्यकत्वे पार्वणत्वादपराह्णव्यापिनी ग्राह्या, अज्ञातनामपिशाचाद्युद्देश्यत्वे त्वेकोद्दिष्टत्वान्मध्याह्णव्यापिनीति। कुलधर्मव्रतादौ तूत्तरैव। चैत्रनभोगतेतरसिता स्यादूर्ध्वगम्' इति दीपिकोक्तेः।

मार्गशीर्षशुक्लचतुर्दशीतिथि में पिशाचविमोचनीतीर्थ में श्राद्ध करना त्रिस्थलीसेतु में भट्टोंने कहा है। वह पिशाच श्राद्ध अपने पिता आदि के उद्देश्य से किया जाय तो पार्वणश्राद्ध होगा। उसमें अपराह्ण व्यापिनी (किसी के मत से मध्याह्णव्यापिनी) ग्रहण करे। जिनका नाम नहीं जानते हैं ऐसे पिशाचों के उद्देश्य से तो एकोद्दिष्टश्राद्ध होगा। उसमें मध्याह्णव्यापिनी ग्रहण करे। कुलधर्मव्रत आदि में तो उत्तरा ग्रहण करे। दीपिका में कहा है चैत्र और श्रावण के जाने पर इतर असित आगे होती है।

(मार्गशीर्षपौर्णमास्यां दत्तात्रेयोत्पत्तिकथनम्)

मार्गशीर्षपौर्णमास्यां दत्तात्रेयोत्पत्तिः। तदुक्तं स्कान्दे सह्याद्रिखण्डे—मार्गशीर्षे तथा मासि दशमेऽह्नि सुनिर्मले। मृगशीर्षयुते पौर्णमास्यां ज्ञस्य च वासरे। जनयामास देदीप्यमानं पुत्रं सती शुभम्। तद्विष्णुमागतं ज्ञात्वा अत्रिर्नामाऽकरोत्स्वयम्॥ दत्तवान् स्वस्य पुत्रत्वाद्दत्तात्रेय इतीश्वरः॥ इति। इयं प्रदोषव्यापिनीति वृद्धाः।

मार्गशीर्षपौर्णमासी में दत्तात्रेय की उत्पत्ति कही है। उसी बात को स्कन्दपुराण के सह्याद्रिखण्ड में कहा है कि—मार्गशीर्षमास के दश में निर्मलदिन में मृगशिरानक्षत्र से युक्त पौर्णमासी और बुधवार में देदीप्यमान शुभपुत्र को उत्पन्न किया। वह विष्णु आगये ऐसा जानकर अत्रि ने स्वयं नामकरणसंस्कार किया। देने से अपने पुत्र के लिये उसका नाम 'दत्तात्रेय ईश्वर' रखा। यह प्रदोषव्यापिनी (किसी अन्य का मत है कि-पूर्वविद्धा) ग्रहण करे—यह वृद्धों का मत है।

(मार्गशीर्षपौर्णमानन्तराष्टमी-अष्टका)

मार्गशीर्षपौर्णिमानन्तराष्टमी अष्टका। एवं पौषादिमासत्रयेऽपि। 'हेमन्तशिशिरयोश्चतुर्णामपरपक्षाणामष्टमीष्वष्टका एकस्यां वा' इत्याश्वलायनोक्तेः। 'एकस्यामष्टम्यां वै कार्या' इति हरदत्तः। क्वचित्पञ्चम्यप्युक्ताः। प्रौष्ठपद्याष्टका भूयः पितृलोके भविष्यसि। इति पाद्मवचनात्। तत्पूर्वसप्तमीषु पूर्वेद्युः।

मार्गशीर्षपौर्णिमा के अनन्तर अष्टमी को अष्टका होती है। इसप्रकार पौष आदि (पौष, माघ, फाल्गुन) तीनमास में भी अष्टमीतिथियों में अष्टका होती है। आश्वलायन ने कहा है कि—हेमन्त और शिशिर के चारमहीनों के अपरपक्ष (कृष्णपक्ष) की अष्टमीतिथियों में या एक में अष्टका होती है। या हरदत्त ने कहा है कि—एक अष्टमी में एक अष्टका करे। कहीं पञ्चमी में भी कहा है।

पद्मपुराण का मत है कि—भाद्रपदमास की अष्टका फिर पितृलोक में होगी उसके पहले सप्तमी तिथियों में करे।

(अष्टकानिर्णयः)

तत्परनवमीष्वन्वष्टकासु च श्राद्धमुक्तं कालादर्शे—मार्गशीर्षे च पौषे च माघे प्रौष्ठे च फाल्गुने। कृष्णपक्षे च पूर्वेद्युरान्वष्टक्यं तथाष्टका॥ इति।

उसके बाद नवमीतिथियों में अन्वष्टकाओं में श्राद्ध कालादर्श में कहा है कि—मार्गशीर्ष, पौष, माघ, भाद्रपद और फाल्गुन के कृष्णपक्ष में अष्टका पहले दिन में अन्वष्टका और बाद में अष्टका होती है।

यत्तु विष्णुः—'अमावास्यास्तिस्रोऽष्टकास्तिस्रोऽन्वष्टकाः इति। यच्च कौर्मे—'अमावास्याष्टकास्तिस्रः पौषमासादिषु त्रिषु। इति। तच्चतुर्थ्या अनावश्यकत्वार्थम्। 'या चाप्यन्या चतुर्थी स्यात्तां च कुर्यात्प्रयत्नतः॥ इति वायुब्रह्माण्डपुराणात्। 'श्राद्धमेतेष्वकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते। इति विष्णूक्तेरिति शूलपाणिः। शाखाभेदाद्व्यवस्थेति तत्त्वम्।

जो विष्णुने कहा है कि—अमावास्या, तीन अष्टका और तीन अन्वष्टका। और जो कूर्मपुराण में

कहा है कि--अमावास्या पौष आदि तीन महिनों में तीन अष्टका और अन्वष्टका होती हैं। अतः चतुर्थीकी आवश्यकता नहीं होती है। वायुपुराण और ब्रह्मपुराण में कहा है कि—जो अन्य चतुर्थी अष्टका है उसको प्रयत्न से करे। विष्णु ने कहा है कि—इनमें श्राद्ध न करने नरक में जाता है यह शूलपाणि ने कहा है। यह शाखाभेद से (आश्वलायनभिन्नानां केषाञ्चित्फाल्गुनाष्टम्यां सर्वासु सप्तमीषु श्राद्धाकरणेऽपि न दोषः। 'स्वशाखाश्रयमुत्सृज्य परशाखाश्रयं तु यत्। कर्तुमिच्छति दुर्मेधा मोघं तत्तस्य चेष्टितम्) व्यवस्था है, यही तत्त्व है।

वायुब्रह्माण्डयोः—आद्याऽपूपैः सदा कार्या मांसैरन्या सदा भवेत्।
शाकैः कार्या तृतीया स्यादेष द्रव्यगतो विधिः॥

वायुपुराण और ब्रह्माण्डपुराण में कहा है कि—पहली[1] अष्टका मालपूड़ों से, दूसरी अष्टका मांस से और तीसरी अष्टका शाक से करे। इन द्रव्यों के करने की विधि है।

पौषादिक्रमः। अन्वष्टका तु प्रागेव निर्णीता। तत्राष्टम्यपराह्णव्यापिनी ग्राह्या। अथाच्छादनपर्यन्तं श्राद्धं पार्वणवद्भवेत्। इत्याश्वलायनकारिकोक्तेरपराह्णकालत्वाच्च पार्वणस्य। पूर्वेद्युरन्वष्टका श्राद्धयोस्तु अष्टम्यनुरोधेन निर्णयः। अत एव सूत्रम्—'पूर्वेद्युः पितृभ्यो दद्यात् अपरेद्युरन्वष्टक्यम्' इति च।

यही पौष आदि में क्रम से द्रव्य विधि है। अन्वष्टका का पहलेही निर्णय करचुके हैं। उसमें अपराह्णव्यापिनी 'अष्टका' ग्रहण करनी चाहिये। अनन्तर आच्छादनपर्यन्त श्राद्ध पार्वणवत् होता है। इस आश्वलायनकारिका के मत से पार्वण का अपराह्णकाल है। पहले दिन अन्वष्टकाश्राद्धों का तो अष्टमी के अनुरोध से निर्णय जानना चाहिये। इसलिये ही यह सूत्र है कि—पूर्वदिन में पितरों के लिए दे और अपरदिन में अन्वष्टका करे।

(अत्र कामकालौ देवौ)

अत्र च कामकालौ विश्वेदेवौ।

यहाँपर काम तथा काल विश्वेदेवा होते हैं।

(इष्टिश्राद्धे क्रतुदक्षौ देवौ)

इष्टिश्राद्धं क्रतुदक्षावष्टम्यां कामकालौ इति सायणीये शंखोक्तेः।

सायणीय में शंख ने कहा है कि—इष्टिश्राद्ध में क्रतु और दक्ष, एवं अष्टमी में काम और काल विश्वेदेवा होते हैं।

(अत्र श्राद्धकरणे प्रायश्चित्तम्)

अत्र श्राद्धाकरणे प्रायश्चित्तमुक्तमृग्विधाने—एभिर्द्युभिर्जपेन्मन्त्रं शतवारं तु तद्दिने।
आन्वष्टक्यं यदा शून्यं सम्पूर्णं याति सर्वथा॥ इति।

यहाँ पर श्राद्ध न करने पर ऋग्विधान में प्रायश्चित्त कहा है कि—'एभिर्द्युभिः' इस मन्त्र को उसदिन सौ बार जप करे तो अन्वष्टका में जो न्यूनता सर्वथा होगयी है वह पूर्ण होती है।

अशक्तौ त्वाश्वलायनः—'अथ श्वोभूतेष्टकाः पशुना स्थालीपाकेन चाप्यनडुहो यवसमाहरेदग्निना वा कक्षमुपोषेदेषा मेऽष्टकेति नत्वेवानष्टकः स्यात्' इति।

१—कृष्णपक्षे वरिष्ठादि पूर्वा चैन्द्री विभाव्यते। प्राजापत्या द्वितीया स्यात्तृतीया वैश्वदेविकी॥ इति श्लोकानन्तरं 'आद्याऽपूपैः' इति श्लोकः। तदनन्तरं च 'या चाप्यन्ना' इत्यर्धम्।

२—ॐ एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिर्निरुन्धानो अमतिं गोभिरश्विना। इन्द्रेण दस्युं दरयन्त इन्दुभिर्युतद्वेषसः समिषा रभेमहि॥ (ऋ० १।५३।४)।

अशक्ति में तो आश्वलायन ने कहा है कि—अनन्तर कल पशु और स्थालीपाक से अष्टका करे। बैल के लिए आर्द्रतृण (यवसमम्) ले आवे या शुष्कतृण (कक्षम्) को दहन (उपोषेत्) करे। यह मेरी अष्टका है। नहीं ही अष्टका का नाश होता है।

(मलमासे सति निर्णयः)

मार्गशीर्षादिषु मलमासे सति तत्राष्टका न कार्या। चतुर्णामिति ग्रहणादित्युक्तं नारायणवृत्तौ।

मार्गशीर्ष आदि मासों में मलमास होजाय तो उसमें अष्टका नहीं करनी चाहिये। क्योंकि चारों के ग्रहण से यह नारायणवृत्ति में कहा है।

तथा काठकगृह्येऽपि—महालयाष्टकाश्राद्धोपाकर्माद्यपि कर्म यत्।
स्पष्टमासविशेषाख्याविहितं वर्जयेन्मले॥ इति।

और काठकगृह्य में भी कहा है कि—महालय, अष्टकाश्राद्ध तथा उपाकर्म आदि जो कर्म हैं उन्हें मलमास में त्याग दे।

(मार्गादिषु रविवारव्रतविधिः)

मार्गादिरविवारेषु काम्यं व्रतमुक्तं हेमाद्रौ। तत्र भक्ष्याण्युक्तानि संग्रहे (सौरधर्मे)—पत्रत्रित्वं तुलस्यास्त्रिपलमथ घृतं मार्गशीर्षादिभक्ष्यं मुष्टीनां त्रिस्तिलानां त्रिपलदधि तथा दुग्धकं गोमयं च। त्रित्वं तोयाञ्जलीनां त्रिमरिचकमथो त्रिःपलाः सक्तवः स्युः गोमूत्रं शर्करा सद्धविरिति विधिना भानुवारे क्रमेण॥

मार्गशीर्ष आदि महिने के रविवारों में काम्यव्रत को हेमाद्रि में कहा है कि—उसमें भक्ष्य पदार्थों के संग्रह में (सौरधर्म में) कहा है—तुलसी के तीन पत्ते, तीन पल घृत, तीन मुट्ठी तिल, तीन पल दधि, तीन पल दूध और तीन पल गोबर, तीन अञ्जली जल, तीन मरिच, तीनपल सत्तू तीनपल गोमूत्र, तीनपल चीनी तथा तीन पल उत्तम हवि ये रविवार क्रम से भक्ष्य हैं।

इति मार्गशीर्षमासः।

(अथ लक्ष्मीपूजनम्)

ध्यान—या सा पद्मासनस्था विपुलकटितटी पद्मपत्रायताक्षी गम्भीरावर्तनाभिः स्तनभरनमिता शुभ्रवस्त्रोत्तरीया। लक्ष्मीर्दिव्यैर्गजेन्द्रैर्मणिगणखचितैः स्नापिता हेमकुम्भैर्नित्यं सा पद्महस्ता मम वसतु गृहे सर्वमाङ्गल्ययुक्ता ॥ आवाहन—इन्द्रादिदेवगणमौलिकिरीटिकोटिरत्नाङ्कुरैः सततरञ्जितपादपीठम्। दुःखाभिभूतजनदुर्गतिनाशिनीं त्वामावाहयामि कृपया भव सम्मुखीना ॥ आसन—मुक्ताप्रवालमणिलोहितपद्मरागकान्त्युल्लसद्रुचिररत्नमयं सुरम्यम्। राजीवपत्रनयने दयया सुपीठमेनं गृहाण कमले विनिवेदितं मे ॥ पाद्य—सन्तापनोदनपरं बहुभक्तिभावचित्तेन हेमकलशे विहितं पवित्रे। त्वत्पादपद्मयुगले विनिवेदितं मे पाद्यं गृहाण जगदीश्वरि लोकवन्द्ये ॥ अर्घ्य—भ्राजिष्णुहाटकविनिर्मितपात्रमध्ये संस्थापितं कुसुमगन्धसुवासितं च। भक्त्योपनीतमचिरेण सुरम्यमेवमर्घ्यं गृहाण कमले पतितस्य लक्ष्मि ॥ अर्घ्याङ्गाचमनीयजल—समस्तदुःखौघविनाशदक्षं सुगन्धितं फुल्लसुशस्तपुष्पैः। अये गृहाणाचमनं सुवन्द्ये निवेदनं भक्तियुतः करोमि ॥ पञ्चामृत—मार्गश्रमापहमतीव सुगन्धयुक्तं पञ्चामृतस्नपनमम्ब रमे सुरम्यम्। दारिद्र्यदुःखभयहारिणी मामकीनङ्गीकुरुष्व करुणां कुरु मे सुपूज्ये। शुद्धोदक—काश्मीरचूर्णमृगनाभितिमिश्रितेन पूतेन हेमकलशस्थसुशीतलेन। तीर्थोदकेन शिशुना विनिवेदितेन स्नानं विधेहि सफलं कुरु मे श्रमं च ॥ ततः लक्ष्मीसूक्तेनाभिषेकं कृत्वा वस्त्रमुपवस्त्रं समर्पयामि।

गन्ध—प्रत्यूषमार्तण्डमयूखतुल्यं सुगन्धयुक्तं मृगनाभिचूर्णैः। माणिक्यपात्रस्थितमञ्जुकान्ति त्वं कुङ्कुमं देवि गृहाण दत्तम् ॥ पुष्पमाला—बन्धूकैः शङ्खपुष्पैश्च शतपत्रैर्विचित्रताम्। पुष्पमालां प्रयच्छामि गृहाण परमेश्वरि ॥ दूर्वा—विष्ण्वादिसर्वदेवानां प्रियपत्रां सुशोभनीम्। क्षीरसागरसंभूतां दूर्वां स्वीकुरु सर्वदा ॥

धूप—नानाविधौषधविमिश्रितगन्धमुक्तं श्रीदेवतामनुजदानवसौख्यदं च। सौगन्ध्ययुक्तमतुलं जलजाधिवासे धूपं गृहाण कृपया विनिवेदितं च ॥ दीप—कर्पूरमिश्रितघृतैः परिपूर्णकण्ठं ध्वान्तौघनाशकरणं जगदेकवन्द्ये। देदीप्यमानमतुलं स्वद्दशाप्रभाभिरङ्गीकुरुष्व कृपया मम दीपमेनम् ॥ नैवेद्य—माणिक्यपात्रपरिवेषितलेह्यचोष्यपेयादिवस्तुसहितं विधिवत्सुपक्वम्। नानाविधानपरिवर्तितस्वादुगन्धं नैवेद्यमेतदुररीकुरु सेवकस्य ॥ शीतलजल—सुवासितं शीतलं च पिपासानाशकारणम्। जगज्जीवनरूपं च जीवनं देवि गृह्यताम् ॥ ताम्बूल—एलालवङ्गघनसारसुगन्धरम्यं पूगीसुखण्डयुतमास्यसुखप्रदं च। ताम्बूलपक्वदलवर्तितवीटकं मे मातर्गृहाण कृपया करुणार्द्रचित्ते ॥ दक्षिणा—ब्रह्माण्डमध्यागतवस्तु तवैव देवि किं दक्षिणां तव कृते प्रददामि मातः। तत्रापि भक्तिपरिपूरितचेतसाहमेनां ददामि सफलां कुरु दृष्टिपातैः ॥

पुष्पाञ्जलि—स्वकीयपाणौ गुरुणाऽऽदरेण वहन्तमत्यन्तसुगन्धिपुण्यम्। त्वदङ्घ्रियुग्मे कलितं मयेयं पुष्पाञ्जलिं स्वीकुरु मामकीनम् ॥

१—लक्ष्मीकामना के लिए हर एकादशी को 'लक्ष्मीसहस्रनाम' का पाठ और उसी सहस्रनाम के प्रत्येक मन्त्र से लक्ष्मी देवी पर पुष्प चढ़ावे। २—नागरखण्ड में लिखा है कि—जो श्रीसूक्त द्वारा भक्ति से श्री लक्ष्मी देवी का पूजन करता रहेगा वह सात जन्म तक निर्धन नहीं रहेगा। ३—विष्णुधर्मोत्तरपुराण का मत है कि—जो श्रीसूक्त का भक्ति से पाठ या हवन करता है उसकी दरिद्रा नष्ट हो जाती है। ४—मेरुतन्त्र आदि में लिखा है कि दरिद्रता का नाशक कलिकाल में केवल श्रीसूक्त जप ही है। ५—सुवर्ण की प्राप्ति के लिये-'हिरण्यवर्णाम्' से, गौ और अश्व के लिये-'तां म आवह' से, रत्न की समृद्धि के लिए—'अश्वपूर्वां रथमध्याम्' से, सुवर्ण और चांदी की प्राप्ति के लिए—'कां सोस्मिताम्' से, दरिद्रता नाश के लिए—'चंद्रां प्रभासाम्' से, अलक्ष्मी-परिहार के लिए 'आदित्यवर्णे' से, यश और कीर्तिकी वृद्धि के लिए—'उपैतु मां देवसखः' से, कुलस्थ अलक्ष्मी नाश के लिए—'क्षुत्पिपासा' से, लक्ष्मी की प्रसन्नता के लिए—'गन्धद्वाराम्' से, कलह आदि की निवृत्ति के लिए—'मनसः कामम्' से, संपूर्ण संपत्ति की वृद्धि के लिए—'कर्दमेन' से, धन-धान्य आदि की समृद्धि के लिए—'आपः सृजन्तु' से, पशु, पुत्र और बन्धु-बान्धवों की—समृद्धि के लिए—'आर्द्रां पुष्करिणीम्' से, देश-ग्राम की प्राप्ति के लिए—'तां म आवह जातवेदो' से तथा अन्न की समृद्धि के लिए—'यः शुचिः' से हवन करे। इसमें विशेष द्रव्यों का विधान भी मिलता है। उसे भी देखना चाहिये।

पूजासमुच्चय में न्यास का क्रम यों लिखा है—हिरण्यवर्णाम्—मूर्ध्नि। तां मऽ आवह—नेत्रयोः। अश्वपूर्वाम्—कर्णयोः। कां सोस्मिताम्—नाशिकायाम्। चन्द्रां प्रभासाम्—मुखे। आदित्यवर्णे—कण्ठे। उपैतुमाम्—बाह्वोः। क्षुत्पिपासा—हृदये। गन्धद्वाराम्—नाभौ। मनसः कामम्—गुह्ये। कर्दमेन—अपाने। आपः सृजन्तु—ऊर्वोः। आर्द्रां यः करणीम्—जान्वोः। आर्द्रां पुष्करिणीम्—जंघयोः। तांमऽ आवह—पादयोः। यः शुचिः—सर्वाङ्गे।

लक्ष्मीस्तुति—मातर्नमामि कमले कमलायताक्षि ! श्रीविष्णुहृत्कमलवासिनि ! विश्वमातः ! । क्षीरोदजे ! कमलकोमलगर्भगौरि ! लक्ष्मि । प्रसीद सततं नमतां शरण्ये ॥ त्वं श्रीरुपेन्द्रसदनेमदनैकमातर्ज्योत्स्नासि चन्द्रमसि चन्द्रमनोहरास्ये ! । सूर्ये प्रभासि च जगत्त्रितये प्रभासि लक्ष्मि ! प्रसीद सततं नमतां शरण्ये ! ॥ त्वं जातवेदसि सदा दहनात्मशक्तिर्वेधास्त्वया जगदिदं विविधं विदध्यात् । विश्वंभरोऽपि बिभृयादखिलं भवत्या लक्ष्मि ! प्रसीद सततं नमतां शरण्ये ! ॥ त्वत्त्यक्तमेतदमले हरते हरोऽपि त्वं पासि हंसि विदधासि परावरासि । ईड्यो बभूव हरिरप्यमले त्वदाप्त्या लक्ष्मि ! प्रसीद सततं नमतां शरण्ये ! ॥ शूरः स एव सगुणी स बुधः स धन्यो मान्यः स एव कुलशीलकलाकलापैः । एकः शुचिः स हि पुमान् सकलेऽपि लोके यत्रापतेत्तव शुभे ! करुणाकटाक्षः ॥ यस्मिन् वसेः क्षणमहो पुरुषे गजेऽश्वे स्त्रैणे तृणे सरसि देवकुले गृहेऽन्ने । रत्ने पतत्रिणि पशौ शयने धरायां स श्रीकमेव सकले तदिहास्ति नान्यत् ॥ त्वत्स्पृष्टमेव सकलं शुचितां लभेत त्वत्त्यक्तमेव सकलं त्वशुचीह लक्ष्मि ! । त्वन्नाम यत्र च सुमङ्गलमेव तत्र श्रीविष्णुपत्नि ! कमले ! कमलालयेऽपि ॥ लक्ष्मीं श्रियं च कमलां कमलालयां च पद्मां रमां नलिनयुग्मकरां च मां च । क्षीरोदजाममृतकुम्भकरामिरां च विष्णुप्रियामिति सदा जपतां क्व दुःखम् ॥

प्रदक्षिणा—इह जन्मनि यत्पापं मम जन्मान्तरेषु च । निवारय महादेवि लक्ष्मि नारायणप्रिये । नमस्कार—दामोदरि नमस्तेऽस्तु नमस्त्रैलोक्यनायके । हरिकान्ते नमस्तेऽस्तु त्राहि मां दुःखसागरात् ॥

नोट्—विशेषबात मेरी प्रकाशित पुस्तक 'श्रीसूक्तविधान' और 'होमात्मकलक्ष्मीयाग' में देखिये ।

(महालक्ष्मीयन्त्रम्)

श्रीम्

(स्वाध्यायोऽध्येतव्यः)

(स्वर्गीय महामहोपाध्याय श्री पं० विद्याधर शास्त्री गौड)

उपनीतस्य माणवकस्य 'स्वाध्यायोऽध्येतव्य' इत्यध्ययनं विहितम्। तत्र अध्यायशब्दः शाखापरः। तत्र स्वत्वस्य एकत्वस्य च विवक्षितत्वात् एकैव शाखा एकवेदसम्बन्धिनो स्वपरम्परागता अध्येतव्या। 'अनया त्रय्या विद्यया लोकं जयति,' 'वेदानधीत्य वेदौ वाऽपि वेदं वापि यथाक्रमम्' इत्यादिशाखापर्यालोचनया वेदान्तराध्ययनस्यापि कर्तव्यतावगमात् ऋग्वेदादिषु एकैकस्मिन् वेदे एकैका शाखा अध्येतव्या इति फलति। तत्रापि प्रथमं स्वशाखामधीत्य वेदान्तरगतशाखान्तराध्ययनं कर्तव्यम्। इदं सर्वं पूर्वमीमांसायां द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थपादे शाखान्तराधिकरणे वार्तिकादौ स्पष्टम्।

तत्रापि श्रौतानि कर्माणि, स्मार्तानि शान्तिकपौष्टिकानि च स्वशाखयैव कर्तव्यानि। स्वशाखायालाभे तां परित्यज्य शाखान्तरपरिग्रहे प्रत्यवायस्मरणत्। अलाभे तु स्वशाखाऽविरुद्धं शाखान्तरोक्तप्युपादेयम्। अत्र प्रमाणवचनानि वीरमित्रोदय—रुद्रकल्पद्रुमादावुक्तानि। तानि यथा—

'पारम्पर्यगतां मुक्त्वा स्वां समाख्यादिबन्धिनीम्। शाखां, शाखान्तरं युक्तं नाध्येतुं सदृशे श्रमे॥' 'पारम्पर्यगतो येषां वेदः सपरिबृंहणः। तच्छाखीयैस्तु संस्कारैः संस्कृता ब्राह्मणो भवेत्॥ अधीत्य शाखामात्मीयां परशाखां ततः पठेत्।' 'स्वेन पित्रादिभिर्वाऽपि यः कल्पादि पुराऽहतः। स तु नैव परित्याज्यः इति वेदानुशासनम्॥' 'एकवेदेऽपि शाखानां मध्ये योऽन्यतमां श्रयेत्। स्वशाखां तु परित्यज्य शाखारण्डः स उच्यते॥' 'यः स्वशाखां परित्यज्य पारक्यामधिगच्छवि। स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः॥' 'आत्मशाखां परित्यज्य परशाखासु वर्तते। उच्छेता तस्य वंशस्य रौरवं नरकं व्रजेत्॥' स्वीया शाखोज्झिता येत ब्रह्मतेजोऽर्थिना स्वयम्। ब्रह्महैव परिज्ञेयः सर्वकर्मसु गर्हितः॥ न जातु परशाखोक्तं बुद्धः कर्म समाचरेत्। आचरन् परशाखोक्तं शाखारण्डः प्रकीर्तितः॥ यः स्वशाखोक्तमुत्सृज्य परशाखोक्तमाचरेत्। अप्रमाणमृषिं कृत्वा सोऽन्धेतपसि मज्जति॥ स्वशाखाश्रममुत्सृज्य परशाखाश्रमं तु यः। कर्तुमिच्छति दुर्मेधा मोघं तत्तस्य चेष्टितम्॥ अक्रिया त्रिविधा प्रोक्ता विद्वद्भिः कर्मकारिणाम्। अक्रिया च परा प्रोक्ता तृतीया चायथाक्रिया॥ ऊनो वाऽप्यतिरिक्तो वा यः स्वशाखोदितो विधिः। तेनैव तनुयाद्यज्ञं न कुर्यात्पारशाखिकम्॥ बहुलं वा स्वगृह्योक्तं यस्य यावत्प्रकीर्तितम्। तस्य तावति शास्त्रार्थे कृते सर्वः कृतो भवेत्॥ यत्राम्नातं स्वशाखायां पारक्यमविरोधि यत्। विद्वद्भिस्तदनुष्ठेयमग्निहोत्रादिकर्मवत्॥ परशाखोऽपि कर्तव्यः स्वशाखायां न नोदितः। सर्वशाखासु यत्कर्म एकं प्रत्यवशिष्यते—इति॥

एवमाचार्यस्यापि कारयितः स्वशाखीयस्य लामे प्रथमं स एव शान्त्यादिकर्मसु वरणीयः। तेनाप्याचार्येण गुरुमुखात् यथावदधीतवेदेन सम्यक् ज्ञातकर्मकाण्डप्रक्रियेण च भाव्यम्। अन्यथाऽऽचार्यस्याध्ययनाद्यभावेऽनधीतानां मन्त्राणां फलाजनकत्वस्य तत्र तत्र शास्त्रकारैः समुद्घुष्यमाणत्वात्। तादृशैर्मन्त्रैः कृतं कर्म न केवलं निष्फलं भवति अपि तु 'मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतोवे'ति न्यायेन कर्मकर्तुर्यजमानस्यानिष्टमपि सम्पादयति। अतश्च यद्याचार्यः अधीतवेदः स्वशाखीयो लभ्यते तदा स एव ग्राह्यः। यदि तादृशो न लभ्यते तर्हि अन्यशाखीयोऽपि, यदि यजमानशाखां विधिवधीत्य तच्छाखीयान् पदार्थांश्च सम्यग् जानाति स एव कर्मसु नियोज्यः न तु स्वशाखीय इति कृत्वा अनधीतवेदः अपरिज्ञानकर्मकलाप आचार्यो योजनीयः। एतदभिप्रायेणैव सर्वे आचार्या यजमानशाखीया एव। अन्यथाऽऽचार्यस्य यजमानशाखाध्ययनाभावे तच्छाखीयपदार्थानां निर्वाह एव न स्यात्। स्वशाखयाऽनुष्ठाने वैगुण्यं स्यात् इति प्रतिष्ठेन्दुशान्तिकमलाकरादावुक्तम्। एवं च रुद्रकल्पद्रुमे—'रुद्राध्यायस्य च यजुर्वेदशाखास्वेव आम्नातत्वेन तदितरवेदशाखासु तदभावेन च यजुर्वेदभिन्नवेदशाखीयानां रुद्राध्ययनाभावेन तजपादौ तेषामनर्हत्वम्। अत एव बह्वृचाश्छन्दोगा आथर्वणाश्च विप्रा रुद्रजपादावार्त्विज्ये वर्ज्या यथाह शाङ्खायनः—बह्वृचाः सामगाश्चैव तथा चाथर्वणा द्विजाः। महारुद्रजपेनैव शस्तास्ते श्रुतिधर्मतः' इति। यदुक्तं तत् अनधीतरुद्राध्यायस्य आर्त्विज्यनिषेधपरतया नेयम्। न तु रुद्राध्यायिनोऽपि अन्यशाखीयस्य निषेधपरम्। अत एव च 'बह्वृचाद्या अपि याजुषरुद्राध्ययनवन्तो रुद्रजपसमर्थास्तु वरीतव्या' इत्युत्तरत्र तत्रैव लिखितम्। एवं सर्वत्र यजमानसमशाखीया इति पद्धतिकाराणामभिप्रायो बोध्यः—यद्यपि, वेदैकनिष्ठं धर्मज्ञं कुलीनं श्रोत्रियं शुचिम्। स्वशाखाढ्य (ज्ञ) मनालस्यं विप्रं कर्तारमीप्सितम्॥ इति श्लोके आचार्यस्वरूपनिरूपणपरे स्वशाखाढ्यमित्यस्ति पदम्। तेन च स्वशाखीय एव आचार्यः कर्तव्य इति प्रतिभाति, तथापि अन्यत्राक्यस्य उपनयनप्रकरणस्थत्वात् उपनेतृस्वरूपमात्रनिरूपणपरत्वम्, न तु शान्तिकपौष्टिकादि—सर्वकर्मसु अस्य वचनस्य प्रवृत्तिः सम्भवति। अन्यप्रकरणस्थस्य वचनस्य अन्यत्र गन्तुमसामर्थ्यात्। अत एव च सर्वैरपि निबन्धकर्तृभिर्वचनमिदमुपनेतुराचार्यस्य स्वरूपनिरूपणपरतयैव व्याख्यानम्, यथास्मृतिमुक्ताफले—उपनयनकर्तारमाह व्यासः—वेदैकनिष्ठमिति। वीरमित्रोदये—संस्काररत्नमालादावपि उपनेतृपरकत्वमेवास्य वचनस्योपवर्णितम् न तु कारयितृपरकत्वमुक्तं कुत्रापि। लोकेऽपि च इदानीं यजुराद्येकशाखीयः स्वशाखां प्रथमतोऽधीत्य ततो वेदान्तरगतं शाखान्तरमप्यधीयानः तद्वेदीयं होत्रमौद्गात्रं च श्रौतेषु कर्मसु करोत्येव। शिष्टा अपि तत्कर्म सदाचारयता परिगृह्णन्त्येव। अतश्चेदं सिद्धं भवति प्रथमतः स्वशाखाध्यायी स्वशाखीय-आचार्यत्वेन कर्मसु नियोक्तव्यः। तदलाभे अन्यशाखीयोऽपि यजमानशाखामधीतवाँश्चेत् सोऽपि नियोगमर्हति प्रथमतः स्वशाखीयस्यैव प्रतीतेः, इतरशाखीयस्य बिलम्बेन प्रतीतेश्च। प्रथमोपस्थितपरित्यागे कारणाभावाच्चेति शम्[1]।

श्री विद्याधरशर्मा गौड़

---

(१) सूर्योदय से—सं० १९९६।

अथ निर्णयसिन्धुः

(कार्तिकमास और मार्गशीर्षमास)

श्लोकसूची

दौलतराम गौड

अथ निर्णयसिन्धुः

(भाषा-टीका-सहित)

(पौषमास और माघमास)

दौलतराम गौड

(अथ पौषमासः)

(धनुःसंक्रान्तिनिर्णयः)

धनुःसंक्रमे पराः षोडशघटिकाः पुण्याः । अन्यत् प्राग्वत् । अत्रोत्सर्जननिर्णयो वक्तव्योऽप्युपाकर्मप्रसंगात्प्रागेवोक्तः ।

धनुकी संक्रान्ति में परा सोलह घडी पुण्यकाल होता है । अन्य बात पहले कहे हुए के तुल्य हैं । यहाँ पर उत्सर्जन को कहना था । उपाकर्म प्रसंग से पहले ही कह चुके हैं ।

(पौषशुक्लाष्टम्यां योगविशेषेण स्नान-जप-होम-तर्पणादिकथनम्)

कल्पतरौ भविष्ये—पौषे मासि यदा देवि शुक्लाष्टम्यां बुधो भवेत् । तस्यां स्नानं जपो होमस्तर्पणं विप्रभोजनम् ॥ मत्प्रीतये कृतं देवि शतसाहस्रिकं भवेत् ॥

कल्पतरु में भविष्यपुराण का वचन है कि—हे देवि, पौषमास के शुक्लपक्ष की अष्टमी को जब बुधवार हो तो उसमें स्नान, जप, होम, तर्पण और ब्राह्मणभोजन मेरीप्रीति के लिए किया जाय तो हे देवि, वह सौ-हजार गुणा फलदायक होता है ।

(अत्रैव रोहिण्यार्द्रायोगे विशेषकथनम्)

अत्रैव रोहिण्यार्द्रायोगे पुण्यतमत्वं तत्रैव ज्ञेयम् ।

यहीं पर रोहिणी आर्द्राके योग में अतिपुण्य होता है वहीं पर ही जानना चाहिये ।

(पौषशुक्लैकादशीमन्वादिः)

पौषशुक्लैकादशी मन्वादिः । सा चोक्ता प्राक् ।

पौषशुक्ल एकादशी मन्वादि है । वह पहले कह चुके हैं ।

(पौषपौर्णमासी)

पौषपौर्णिमानन्तराः सप्तम्यष्टमीनवम्योऽष्टकाद्याः प्रागुक्ताः ।

पौषकी पूर्णिमा के अनन्तर—सप्तमी, अष्टमी और नवमी को अष्टका आदि पहले कह चुके हैं ।

(पौषामावास्यायामर्धोदयनिर्णयः)

पौषामावास्यायामर्धोदयो योगविशेषः । तदुक्तं मदनरत्ने महाभारते—अमार्कपातश्रवणैर्युक्ता चेत्पौषमाघयोः । अर्धोदयः स विज्ञेयः कोटिसूर्यग्रहैः समः ॥

पौषमासकी अमावास्यामें अर्धोदययोग विशेष होता है । उसको मदनरत्नमें महाभारत के वचन से कहा है कि—रविवार, व्यतीपात तथा श्रवण से युक्त पौष या माघ की अमावास्या हो तो उसे अर्धोदय योग जानना चाहिये । वह करोडों सूर्यग्रहण के समान है ।

इति पौषमाघयोर्मध्यवर्तिनी पौषीपौर्णमास्युत्तरामावास्येत्यर्थ इति भट्टाः । मदनरत्ने—पौषस्य माघस्य चेत्यर्थ उक्तः । तन्न । हेमाद्रिविरोधात् । तत्र हि माघ एवोक्तः ।

भट्टों का मत है कि—पौषमास और माघमास के मध्यवर्तिनी पौषकी पूर्णिमा और उससे उत्तरा अमावास्या यह अर्थ है । मदनरत्न में पौष और माघकी ग्रहण करे-यह अर्थ है । यह ठीक नहीं है । क्योंकि वहाँ पर माघ ही कहा है ।

तथा—दिवैव योगः शस्तोऽयं न तु रात्रौ कदाचन । इति इदमर्धमन्यनिबन्धेष्वभावान्निर्णयामृतमात्रोक्तेर्निर्मूलमेव । तेन हेमाद्र्यादिमते रात्रावर्धोदयो भवत्येव । केचित्तु—किञ्चिदूनो महोदयः इत्याहुस्तन्निर्मूलम् ।

और दिनमें ही योग उत्तम होता है रात्रिमें कभी नहीं होता है । यह अर्धश्लोक अन्यग्रन्थों में न होने से केवल निर्णयामृत (निबन्ध) में होने से निर्मूल ही है । उससे हेमाद्रि आदि मतमें रात्रि में अर्धोदय होता ही है । कोई तो कहते हैं कि—कुछ न्यून योगसे महोदय होता है । यों कहते हैं वह निर्मूल है ।

हेमाद्रौ मदनरत्ने च स्कान्दे—माघामायां व्यतीपाते आदित्ये विष्णुदैवते।
अर्धोदयं तदित्याहुः सहस्रार्कग्रहैः समम्॥

हेमाद्रि और मदनरत्न में स्कन्दपुराण का मत है कि—माघमास की अमावास्या को व्यतीपात, रविवार तथा श्रवणनक्षत्र हो तो उसको अर्धोदय कहते हैं। वह हजार सूर्यग्रहण के बराबर होता है।

तत्रैव—माघमासे कृष्णपक्षे पञ्चदश्यां रवेर्दिने। वैष्णवेन तु ऋक्षेण व्यतीपाते सुदुर्लभे॥ व्रतं कुर्यादित्यग्रेऽन्वयः।

वहीं पर ही कहा है कि—माघमास के कृष्णपक्ष की पञ्चदशी (अमावास्या) को रविवार के दिन वैष्णव (श्रवण) नक्षत्र तथा व्यतीपात हो तो ऐसे दुर्लभ दिनमें व्रत करे। व्रत करे—इसका आगे अन्वय है।

तत्रैव—ब्रह्मविष्णुमहेशानां सौवर्णीः पलसंख्यया। प्रतिमास्तु प्रकर्तव्यास्तदर्धेन द्विजोत्तम॥

वहाँ पर कहा है कि—ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश की एकपल या उससे आधी पल के नाप की हे द्विजोत्तम, प्रतिमा करे।

साग्रं शतत्रयं शम्भोर्द्रोणानां तिलपर्वतः। कर्तव्यौ पर्वतौ विष्णुरुद्रयोः पूर्वसंख्यया॥ शम्भुरत्र—ब्रह्मा।

साढ़े तीन द्रोण तिल का पर्वत ब्रह्मा का उतना ही विष्णु और रुद्र का बनावे। शंभु शब्द से ब्रह्मा—समझना चाहिये।

शय्यात्रयं ततः कुर्यादुपस्करसमन्वितम्। तिलैर्होमं कृत्वा प्रतिमां दद्यादित्युक्तं स्कान्दे—अर्धोदये तु संप्राप्ते सर्वं गङ्गासमं जलम्। शुद्धात्मानो द्विजाः सर्वे भवन्ति ब्रह्मसम्मिताः॥ यत्किञ्चिदीयते दानं तद्दानं मेरुसन्निभम्। इति।

तदनन्तर तीनशय्या उपस्कर के सहित करे। तिलों से होमकर प्रतिमा दे। ऐसा स्कन्दपुराण में कहा है कि—अर्धोदय के प्राप्त होने पर सब जल गङ्गाजल के समान होता है। पात्र और अपात्रपरीक्षा के नियमसे—पवित्र आत्मावाले सब ब्राह्मण ब्रह्म के सदृश हैं उसमें जो कुछ दान दिया जाता है वह दान मेरु के सदृश होता है।

(अत्र दानविशेषकथनम्)

अत्र दानविशेषो निर्णयामृते स्कान्दे—चतुःषष्टिपलं मुख्यममत्रं तत्र कारयेत्। चत्वारिंशत्पलं वाथ पञ्चविंशतिरेव वा॥ अमत्रम्=पात्रम्। तच्च कांस्यमयमित्युक्तं तत्रैव। एवं सुघटितं कार्यं कांस्यभाजनमुत्तमम्। इति।

यहाँ पर दानविशेष निर्णयामृत में स्कन्दपुराण वचन से कहा है कि—चौसठ, चालीस या पचीस पल (चार कर्ष का एक पल अर्थात्—चार तोला) ही का पात्र बनावे। अमत्र-शब्द से पात्र का ग्रहण है। उसमें कांस्यमय ग्रहण करे—यह वहाँ कहा है। इसप्रकार उत्तम कांस्य के पात्र को सुघटित (अच्छी तरह से निर्माण) करे। (कांस्य के पात्र का ग्रहण—अशक्त परक है। शक्ति में तो सुवर्ण आदि के पात्र ग्रहण करने चाहिये।)

(तत्र विधिः)

तथा—निधाय पायसं तत्र पद्ममष्टदलं लिखेत्। पद्मस्य कर्णिकायां तु कर्षमात्रं सुवर्णकम्॥ तदभावे तदर्द्धं वा तदर्द्धं वापि कारयेत्। भूमौ तु तण्डुलैः शुद्धैः कृत्वाष्टदलमुत्तमम्॥ अमत्रं स्थापयेत्तत्र ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्। तेषां पूजा ततः कार्या श्वेतमाल्यैस्तु शोभनैः॥ वस्त्रादिभिरलङ्कृत्य ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥

और उसमें पायस (खीर) रखकर अष्टदलपद्म को लिखे। पद्मको कर्णिका में कर्षमात्र (तोलामात्र) अभाव में उसका आधा या उसका भी आधा सुवर्ण का पात्र करावे। भूमि में शुद्ध चावलों से उत्तम अष्टल करे। उस पात्र (अमत्र) में ब्रह्मा, विष्णु और शिवात्मक का स्थापन करे। तदनन्तर उनकी पूजा सफेद सुन्दरमालाओं से करे। वस्त्र आदि से अलङ्कृतकर ब्राह्मण के लिये दे।

(तत्र मन्त्रः)

मन्त्रस्तु—सुवर्णपायसामत्र यस्मादेतत्त्रयीमयम् । आपत्तेस्तारकं यस्मात्तद् गृहाण द्विजोत्तम ॥

मन्त्र यों है कि—हे द्विजोत्तम, यहाँ पर सोने के पायसपात्रका जो ब्रह्मादित्रय से युक्त है। इस लिए आपत्ति से हटानेवाला है। अतः उसे ग्रहण करो।

समुद्रमेखलां पृथ्वीं सम्यग्दातुश्च यत्फलम् । तत्फलं लभते मर्त्यः कृत्वेदं दानमुत्तमम् ॥ इति । इति पौषमासः ।

समुद्रमेखलापर्यन्त पृथ्वीदान का अच्छीतरह से जो फल होता है। वह फल इस उत्तमदान करने से मनुष्य को प्राप्त होता है।

(अथ माघमासः)

(माघस्नानविधिकथनम्)

अथ माघस्नानम् । तत्र विष्णुः—तुलामकरमेषेषु प्रातःस्नायी सदा भवेत् । हविष्यं ब्रह्मचर्यं च माघस्नानं महाफलम् ॥ इति सौरमास उक्तः ।

उसमें विष्णु ने कहा है कि—तुल, मकर और मेष की संक्रान्ति में सदा प्रातःस्नान करे। तथा हविष्यभोजन एवं ब्रह्मचर्य से रहने से माघस्नान करने से बड़ा फल होता है। यहाँ पर सौरमास कहा है।

ब्राह्मे तु सावनमास उक्तः—एकादश्यां शुक्लपक्षे पौषमासे समारभेत् । द्वादश्यां पौर्णिमायां वा शुक्लपक्षे समापनम् ॥ इति ।

ब्रह्मपुराण में तो सावनमास कहा है कि—पौषमास के शुक्लपक्ष की एकादशी को प्रारंभकर माघमास की द्वादशी या पूर्णिमा को समाप्त करे।

पाद्मेऽपि—पौषस्यैकादशीं शुक्लामारभ्य स्थण्डिलेशयः ।
मासमात्रं निराहारस्त्रिकालं स्नानमाचरेत् ॥

पद्मपुराण में कहा है कि पौषशुक्ल एकादशीतिथि से आरंभकर भूमि में शयन करे। एकमास निराहार रहे और त्रिकालस्नान करे।

त्रिकालमर्चयेद्विष्णुं त्यक्तभोगो जितेन्द्रियः । माघस्यैकादशीं शुक्लां यावद्विद्याधरोत्तम ॥ इति ।

त्रिकाल विष्णु की अर्चना करे। भोगपदार्थों का त्याग करे। जितेन्द्रिय होकर रहे। विद्याधरोत्तम, ये सब माघमहिने की शुक्लपक्षकी एकादशी तक करे।

त्रिकालस्नानं मासोपवासविषयम् । निराहार इत्युक्तेः । पृथ्वीचन्द्रोदये त्वन्यथोक्तम् । विष्णुः—दर्शं वा पौर्णमासीं वा प्रारभ्य स्नानमाचरेत् । पुण्यान्यहानि त्रिंशत्तु मकरस्थे दिवाकरे ॥ इति । अत्र दर्शमिति शुक्लादिमुख्यचान्द्राभिप्रायेण । अयं तु पक्षो नेदानीं प्रचरति ।

त्रिकालस्नान मासोपवास विषयक है। निराहार रहे—ऐसा कहा है। पृथ्वीचन्द्रोदय में तो अन्यथा कहा है। विष्णु ने कहा कि—अमावास्या या पूर्णिमा से प्रारंभ कर पुण्य के तीस दिन मकर के सूर्य में स्नान को करे। यहाँ पर अमावास्या का कथन शुक्लादि मुख्य चान्द्रमास के अभिप्राय से है। यह पक्ष इस समय नहीं प्रचलित है।

(अत्राधिकारिणः)

अत्राधिकारिणो भविष्ये—ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः । बालवृद्धयुवानश्च नरनारीनपुंसकाः ॥ स्नात्वा माघे शुभे तीर्थे प्राप्नुवन्तीप्सितं फलम् ॥

उसमें अधिकारियों को भविष्यपुराण में कहा है कि—ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, भिक्षुक, बाल, वृद्ध, युवा, नर, नारी और नपुंसक माघमास में शुभतीर्थ में स्नान करने से इच्छित फल को प्राप्त करते हैं।

पाद्मे—सर्वेऽधिकारिणो यत्र विष्णुभक्तौ यथा नृप ।

पद्मपुराण में कहा है कि—हेनृप, विष्णु की भक्ति में ये सब अधिकारी हैं।

(उष्णोदकादिस्नानम्)

ब्राह्मे—उष्णोदकेन वा स्नानमशक्ये सति कुर्वते । दृढेषु सर्वगात्रेषु उष्णोदं न विशिष्यते ॥

ब्रह्मपुराण में कहा है कि—अशक्य में (अर्थात् शीतोदक से स्नान करने में असमर्थ होने पर) सभी अंगावयवों (शरीर) के दृढ (सशक्त) रहने पर उष्णोदक से स्नान करने से उष्णोदक की कोई विशेषता नहीं होती है ।

(अत्र विष्णुपूजनविधिकथनम्)

वैष्णवामृते गौडनिबन्धे च स्कान्दे—पौष्यां तु समतीतायां यावद्भवति पौर्णिमा ।
माघमासस्य तावद्धि पूजा विष्णोर्विधीयते ॥

वैष्णवामृतगौडनिबन्ध में स्कन्दपुराण का कथन है कि—पौषमास की पूर्णिमा के व्यतीत होनेपर माघमास की पूर्णिमा जब तक रहे तबतक विष्णु की पूजा का विधान करे ।

(मूलकभक्षणादिनिषेधकथनम्)

पितॄणां देवतानां च मूलकं नैव दापयेत् । ब्राह्मणो मूलकं भुक्त्वा चरेच्चान्द्रायणं व्रतम् ॥ अन्यथा याति नरकं क्षत्रविट् शूद्र एव च । वर्जनीयं प्रयत्नेन मूलकं मदिरोपमम् ॥

पितरों और देवताओं को मूली न दे और ब्राह्मण मूली का भक्षण करे तो चान्द्रायण व्रत करे। अन्यथा तो क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नरक में जाते हैं। इसलिए प्रयत्न से मूली का त्याग करें। क्योंकि वह मदिरा के समान है ।

(अस्मिन्मलमासे स्नानादिविचारः)

यदा तु माघो मलमासो भवति तदा काम्यानां तत्र समाप्तिनिषेधान्मासद्वयं स्नानं तन्नियमाश्च कार्याः । मासोपवासचान्द्रायणादि तु मलमास एव समापयेत् ।

जब माघमास में मलमास होता है तब काम्यों का वहाँ पर समाप्ति के निषेध से दोनों महिनों में स्नान और उसके नियमों को करे । मासोपवास, चान्द्रायण आदि तो मलमास में ही समाप्त करे ।

तदुक्तं दीपिकायाम्—'नियतत्रिंशद्दिनत्वाच्छुभे मास्यारभ्य समापयेत मलिने मासोपवासव्रतम्' इति । मासोपवासपदं चान्द्रायणादेरुपलक्षणम् ।

उसी बात को दीपिका में कहा है कि—तीसदिन का नियम होने से शुभमास में मासोपवास व्रतको मलिन (मलमास) में समाप्त करे । मासोपवास पद—चन्द्रायणादि का उपलक्षण है ।

(स्नानारंभे मन्त्रः)

स्नानारम्भे च मन्त्रो विष्णुनोक्तः—तत्र चोत्थाय नियमं गृह्णीयाद्विधिपूर्वकम् । माघमासमिमं पूर्णं स्नास्येहं देव माधव ॥ तीर्थस्यास्य जले नित्यमिति सङ्कल्प्य चेतसि ॥ इति ।

स्नान के आरंभ में विष्णु ने मन्त्र कहा है कि—वहाँ पर उठकर विधिपूर्वक नियम का ग्रहण करे । हे देव, माधव, इस माघमास के पूर्णतातक मैं स्नान करूँगा—ऐसा संकल्प मन में कर इस तीर्थ के जल में नित्य स्नान करे ।

(प्रत्यहं मन्त्रः)

प्रत्यहं मन्त्रश्च पाद्मे—दुःखदारिद्र्यनाशाय श्रीविष्णोस्तोषणाय च ।
प्रातःस्नानं करोम्यद्य माघे पापविनाशनम् ॥

और प्रतिदिन का मन्त्र पद्मपुराण में कहा है कि—दुःख और दरिद्रता के नाश के लिये श्री (तथा) विष्णु की प्रसन्नता के लिए आज माघमास में पापों के नाश के लिए प्रातःकाल स्नान करता हूँ ।

मकरस्थे रवौ माघे गोविन्दाच्युत माधव । स्नानेनानेन मे देव यथोक्तफलदो भव ॥ इमं मन्त्रं समुच्चार्य स्नायान्मौनसमन्वितः ॥ इति । प्रत्यहं सूर्यार्घ्यम् ॥

मकर के सूर्य में तथा माघमास में, हे गोविन्द, हे अच्युत, हे माधव, इस स्नान से हे देव, मुझे उपरोक्त फलदेने वाला हो । इसमन्त्र को उच्चारण कर मौन से युक्त होकर स्नान करे । प्रतिदिनसूर्य को अर्घ्य देना चाहिये ।

मन्त्रस्तु पृथ्वीचन्द्रोदये पाद्मे—सवित्रे प्रसवित्रे च परं धाम जले मम ।
त्वत्तेजसा परिभ्रष्टं पापं यातु सहस्रधा ॥ इति । स्नानकालश्च सूर्योदयः ।

उसका मन्त्र तो पृथ्वीचन्द्रोदय में पद्मपुराण का मत है कि—हे सवित्रे, हे प्रसवित्रे, मेरा धाम जल में है । आपके तेजसे पाप मेरा हजारों तरह से परिभ्रष्ट (नष्ट) हो । आपके तेज से पदच्युत हुआ मेरा हजारों प्रकार का पाप चला जाय । स्नानकाल सूर्योदय में है । (सूर्योदय में स्नान करना—अशक्ति परक है) ।

त्रिस्थलीसेतौ—सम्प्राप्ते माघमासे तु तपस्विजनवल्लभे । क्रोशन्ति सर्ववारीणि समुद्गच्छति भास्करे । पुनीमः सर्वपापानि त्रिविधानि न संशयः ॥ इति नारदीयोक्तेः ।

त्रिस्थलीसेतु में कहा है कि—हे तपस्विजनवल्लभे, माघमास जब प्राप्त होता है तब सूर्योदय में सब जल शब्द को करते हुए त्रिविध पापों का नाश कर पवित्र करते हैं । इसमें संशय नहीं है । ऐसा नारद ने कहा है ।

यो माघमास्युषसि सूर्यकराभितप्ते स्नानं समाचरति चारुनदीप्रवाहे । उद्धृत्य सप्तपुरुषान् पितृमातृवंश्यान् स्वर्गं प्रयात्यमरदेहधरो नरोऽसौ ॥ इति भविष्योत्तरवचनाच्च ।

और भविष्योत्तरपुराण का वचन है कि—जो मनुष्य माघमहिने में प्रातःकाल के समय सूर्य की किरणों से तपे हुए सुन्दर नदी के प्रवाह में स्नान को करता है । वह पिता और माता के वंशकी सातपीढ़ियों का उद्धारकर अमर (देवता) देहको धारण कर स्वर्गलोक में जाता है ।

(स्नानकालकथनम्)

ब्राह्मे त्वरुणोदय उक्तः—अरुणोदये तु सम्प्राप्ते स्नानकाले विचक्षणः ।
माधवाङ्घ्रियुगं ध्यायन् यः स्नाति सुरपूजितः ॥ इति ।

ब्रह्मपुराण में तो अरुणोदय में स्नान कहा है । स्नान के समय अरुणोदय जब हो उसी समय बुद्धिमान् मनुष्य कृष्ण के चरणों का ध्यान करता हुआ स्नान करता है तो वह देवताओं से पूजित होता है ।

(अरुणोदयेऽपि स्नानकालकथनम्)

तथा—अरुणोदयमारभ्य प्रातःकालवधि प्रभो । माघस्नानवतां पुण्यं क्रमात्तत्रावधारणा ।

और हे प्रभो, स्नान के काल (समय) की अवधि अरुणोदय से आरंभकर प्रातःकाल कही है । माघ में स्नान करनेवालों को वहाँ पर निश्चय कहा है ।

(तत्र उत्तममध्यमादिभेदाः)

उत्तमं तु स नक्षत्रं लुप्ततारं तु मध्यमम् । सवितर्युदिते भूप ततो हीनं प्रकीर्तितम् ॥ इति । तेनात्र शक्त्यपेक्षया व्यवस्था । इदं च स्नानं प्रयागेऽतिप्रशस्तम् ।

नक्षत्र का समय उत्तम (संप्राप्ते माघमासे तु तपस्विजनवल्लभे । क्रोशन्ति सर्ववारीणि समुद्गच्छन्ति भास्करे । पुनीमस्तस्य पापानि त्रिविधानि न संशयः ॥) स्नान में होता है । मध्यमसमय तारों के लुप्त हो जाने पर होता है । हे भूप, सूर्य के उदय हो जाने के समय स्नान का फल हीन होता है । इससे यहाँ पर शक्ति की अपेक्षा से व्यवस्था करे । यह स्नान प्रयाग में अतिश्रेष्ठ है ।

(तीर्थविशेषेण स्नानमाहात्म्यकथनम्)

काश्याः शतगुणं प्रोक्तं गङ्गायमुनसङ्गमे । सहस्रगुणिता सापि भवेत्पश्चिमवाहिनी ॥ पश्चिमाभिमुखी गङ्गा कालिन्द्या सह सङ्गता । हन्ति कल्पकृतं पापं सा माघे नृप दुर्लभा ॥ इत्यादिपाद्मादिवचोभ्यः । विस्तरस्तु पितामहकृतप्रयागसेतौ ज्ञेयः ।

पद्मपुराण के वचनों से स्नान को उत्तम कहा है कि—गंगा तथा यमुना संग में स्नान करना काशी से सौगुणा (पुण्यदेनेवाला) कहा है । यदि वह पश्चिमवाहिनी हो तो हजारगुणा पुण्यदायक होती है । पश्चिमाभिमुखी गंगा यदि कालिन्दी के साथ मिल जाय तो वह कल्पकृत पाप को नष्ट करती है । हे नृप, वह माघमहिने में दुर्लभ है । इसप्रकार विस्तार तो हमारे पितामहकृत 'प्रयागसेतु' ग्रन्थ से जानना चाहिये ।

ब्राह्मे—यत्र कुत्राऽपि वा माघे प्रयागस्मरणान्वितः ॥ करोति मज्जनं तीर्थे स लभेद्गाङ्गमज्जनम् ॥ तथा समुद्रेऽप्यतिप्रशस्तम् ।

ब्रह्मपुराण में कहा है कि—जहाँ कहीं भी जो मनुष्य माघ महिने में प्रयाग का स्मरण करता हुआ तीर्थ में मज्जन करता है। वह गंगा के मज्जन का फल प्राप्त करता है और वह स्नान समुद्र में अतिश्रेष्ठ है।

**तदुक्तं पृथ्वीचन्द्रोदये प्रभासखण्डे—माघे मासि च यः स्नायान्नैरन्तर्येण भावतः ।
पौण्डरीकफलं तस्य दिवसे दिवसे भवेत् ॥**

उसी बात को पृथ्वीचन्द्रोदय में प्रभासखण्ड का वचन है कि—जो मनुष्य माघमहिने में निरन्तर भावना (प्रीति) से स्नान करता है। उसको प्रतिदिन [1]'पौण्डरीकयज्ञ' (भारते-यस्तु संवत्सरं दान्तो भुङ्क्ते ह्न्यष्टमे नरः। देवकार्यपरो नित्यं जुह्वानो जातवेदसम् ॥ पौण्डरीकस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम्। पद्मवर्णनिभञ्चैव विमानमधिरोहति ॥) का फल होता है।

माघस्नानं काम्यमेवेति भट्टाः। विष्ण्वादिवाक्ये सदावश्यशब्दान्नित्यकाम्यमिति तु युक्तम्। मासपर्यन्तं स्नानासम्भवे तु त्र्यहमेकाहं वा स्नायात्। महामाघीं पुरस्कृत्य सस्नौ तत्र दिनत्रयम्। इति लिङ्गात्।

माघस्नान काम्य ही है—यह भट्टों का कहना है। विष्णुवादिवाक्य में सदा अवश्यशब्द से नित्यत्व अवगत होता है। काम्य तो युक्त है। मासपर्यन्त स्नान के असंभव में तो तीन दिन या एक दिन स्नान करे। महामाघी को आगे कर उसमें तीन दिन स्नान करे—इसलिंग—वचन से।

अस्मिन् योगे त्वशक्तोऽपि स्नायादपि दिनत्रयम्। प्रयागे माघमासे तु त्र्यहं स्नातस्य यत्फलम् ॥ नाश्वमेधसहस्रेण तत्फलं लभते भुवि ॥ इत्यादि पाद्मादिवचनात्।

पद्मपुराण आदि का वचन है कि—इस योग में तो अशक्त होनेपर भी तीनदिन स्नान करे। प्रयाग में माघमहिने में जो तीन दिन स्नान करने से फल होता है। वह फल हजार 'अश्वमेधयज्ञ'[2] करनेपर भी पृथ्वी पर नहीं प्राप्त होता है।

अत्र मकरसंक्रमो रथसप्तमी माघीति त्र्यहमित्येके। माघशुक्लदशम्यादीत्यन्ये। मकराद्यत्र्यह इत्यपरे। माघमास्याद्यत्र्यह इति केचित्। त्रयोदश्यादीति बहवः।

किसी का मत है कि—यहाँ पर मकरसंक्रान्ति की रथसप्तमी को माघी कहते हैं। उससे लेकर तीनदिन स्नान करे। अन्यका कहना है कि माघशुक्लदशमी से तीनदिन स्नान करे। अपर का कहना है कि—मकर से तीनदिन स्नान करे। किसी का मत है कि—माघमहिने के आदि के तीनदिन स्नान करे। बहुतों का मत है कि—त्रयोदशी से लेकर तीनदिन स्नान करे।

महामाघीं पुरस्कृत्य सस्नौ तत्र दिनत्रयम्। इति पाद्मोक्तेः। एतस्यार्थवादत्वाद्यत्किञ्चिद्दिनत्रयमिति भट्टाः। तत्त्वं तु सन्दिग्धेषु वाक्यशेषात् इति न्यायात्त्रयोदश्याद्येवेति।

पद्मपुराण में कहा कि—महामाघी (माघमास) को आगे कर उसमें तीनदिन स्नान करे। भट्टों का मत है कि—इसका [3]अर्थवाद होने से किसी भी तीनदिन का ग्रहण करे। तत्त्व तो यह है कि—सन्दिग्ध वाक्यों में वाक्य के शेष से निर्णय करे। इस न्याय से त्रयोदशी आदि तीनदिन ग्रहण करे।

१—सब प्रकार की सिद्धि चाहनेवाल यजमान एकादश सुत्यावाले 'पौण्डरीक अहीन याग' को करे। (कात्यायन श्रौत सूत्र–अध्याय २३ क० ५ सूत्र ३३) २—सब प्रकार की कामनावाला अभिषिक्त सार्वभौम (चक्रवर्ती) राजा अश्वमेध (सोमयाग) करे। इस विशेष विवरण कात्यायन श्रौत सूत्र के बीसवें अध्याय के प्रारंभ में देखना चाहिये।

३—चयनप्रकरण में 'अक्ताः शर्करा उपदधाति' अर्थात् शर्करा को अञ्जन करके मन्त्रबोधक चयनस्थल पर स्थापन करे। यहाँ पर अञ्जन करने का साधन प्रतिपादन नहीं किया है। लोक में तेल, नवनीत, घी इत्यादि द्रव्यों के द्वारा अञ्जन करते हैं। इसलिए इन द्रव्यों में किसी द्रव्य के द्वारा अञ्जन करें—यह पूर्वपक्ष कराकर सिद्धान्त किया है कि—जहाँ सन्देह हो वहाँ आगे पीछे वाक्यों के आधार से निर्णय करें। यद्यपि वह वाक्य अर्थवाद हो। अर्थात्—किसी की प्रशंसा करें। अञ्जनवाक्य के आगे 'तेजो वै घृतम्' इस वाक्य के द्वारा घृत की प्रशंसा की है। अतः वह वाक्य अर्थवाद है। अञ्जन के प्रशंग में उसी घृत को प्रशंसा इस अर्थ की प्रशंसा करते हैं कि घृतसे अञ्जन करे। अतः जहाँ सन्देह हो वहाँ अर्थवादादि के द्वारा निर्णय करें। यह विषय मीमांसा के प्रथमाध्याय के ४ पाद १६ वें अध्याय के अधिकरण में है।

प्रयागं विनापि पाद्मे—अस्मिन् योगे त्वशक्तोऽपि स्नायादपि दिनत्रयम् । इति ॥

[1]प्रयाग के विना भी पद्मपुराण में कहा है कि—इस योग में अशक्त भी दिनदिन स्नान करे ।

(वह्निसेवनादिविचारः)

माघस्नाने नियमास्तु नारदीये—न वह्निं सेवयेत्स्नातो ह्यस्नातोऽपि वरानने ।
होमार्थं सेवयेद्वह्निं शीतार्थं न कदाचन ॥

माघस्नान में नियमों को नारदीयपुराण में कहा है कि—हे वरानने, स्नानकर चुका या नहीं स्नानकर चुका मनुष्य अग्नि का सेवन न करे । होम के लिए वह्नि का सेवन करे पर शीत को हटाने के लिए कभी भी अग्नि का सेवन न करे ।

अहन्यहनि दातव्यास्तिलाः शर्करयान्विताः । त्रिभागस्तु तिलानां हि चतुर्थः शर्करान्वितः ॥ अनभ्यङ्गी वरारोहे सर्वं मासं नयेद् व्रती ॥

प्रतिदिन शर्करा के सहित तिलों का दान करे । तिलों का तीन भाग और चतुर्थभाग शर्करा से युक्त, जिसने अभ्यंग (उबटन) न किया हो ऐसा ही हे वरारोहे, सब महिने को व्यतीत करे ।

तथा—अप्रावृतशरीरस्तु यः कष्टं स्नानमाचरेत् । पदे पदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥

और जो मनुष्य कष्ट से शरीरको विना ढके स्नान करता है वह पद पदपर 'अश्वमेधयज्ञ' का फल प्राप्त करता है।

तथा—शङ्खचक्रधरं देवं माधवं नाम पूजयेत् । वह्निं हुत्वा विधानेन ततस्त्वेकाशनो भवेत् ॥

और शंख तथा चक्रको धारण करनेवाले मनुष्य माधव नाम का पूजन करे । तदनन्तर विधान द्वारा अग्नि में हवन कर एकसमय भोजन करे ।

भूशय्या ब्रह्मचर्येण शक्तः स्नानं समाचरेत् । अशक्तो ब्रह्मचर्यादौ स्वेच्छा सर्वत्र कथ्यते ॥

पृथ्वीपर शयन एवं ब्रह्मचर्य से युक्त हो समर्थशाली मनुष्य स्नान करे । ब्रह्मचर्य आदि में अशक्त हो तो सर्वत्र स्वेच्छा कहा है । (रामचन्द्र ने कहा है कि—'अशक्तस्य धनाढ्यस्य' ऐसा पढकर धनाढ्य व्यक्ति बहुतदान करते हैं ।)

(षट्तिलकथनम्)

तथा—तिलस्नायी तिलोद्वर्ती तिलहोमी तिलोदकी ।
तिलभुक् तिलदाता च षट्तिलाः पापनाशनाः ॥ इति ।

और तिलयुक्त जल से स्नान, तिल से उबटन, तिल से हवन, तिल से तर्पण, तिलसे भोजन और तिल का दान करना ये छः तिल पापका नाश करने वाले हैं ।

(प्रयागासंभवे काश्या दशाश्वमेधोत्तरप्रयागतीर्थे स्नानकथनम्)

तथा प्रयागासम्भवे काश्या दशाश्वमेधोत्तरस्थप्रयागतीर्थे स्नानमुक्तं काशीखण्डे-काश्युद्भवे प्रयागे ये तपसि स्नान्ति मानवाः । दशाश्वमेधजनितं फलं तेषां भवेद् ध्रुवम् ॥ इति ।

और प्रयाग (तीर्थ) के असंभव में काशी में दशाश्वमेध के उत्तर की तरफ प्रयागतीर्थ में स्नान करना काशीखण्ड में कहा है कि—जो मनुष्य काशी में उद्भव (उत्पन्न) प्रयागतीर्थ में माघ के महिने में स्नान करते हैं । उनको दश अश्वमेध का फल निश्चय होता है ।

(स्नानोत्तरकार्यम्)

स्नानोत्तरं मदनपारिजाते विष्णुः—काष्ठमौनान्नमस्कृत्य पूजयेत्पुरुषोत्तमम् ।
अवश्यमेव कर्तव्यं माघस्नानमिति श्रुतेः ॥

स्नानोत्तर मदनपारिजात में विष्णु ने कहा है कि—काष्ठमौनियों को (अर्थात्-तपस्या में तत्पर काष्ठ की तरह सर्वदा निश्चल) नमस्कारकर पुरुषोत्तमकी पूजा करे और अवश्य ही माघस्नान करे यह श्रुतिका कथन है ।

१—तडागेषु तु वा स्नायात्कूपे भाण्डादिके तिथौ । माघमासे वरारोहे शस्तं वै निम्नगाजलम् ॥ सरित्तोयं महावेगं नवकुंभस्थितं तथा । वायुना ताडितं रात्रौ गङ्गातोयसमं स्मृतम् ॥

भविष्ये—तैलमामलकाश्चैव तीर्थे देयास्तु नित्यशः। ततः प्रज्वालयेद्वह्निं सेवनार्थं द्विजन्मनाम्॥

भविष्यपुराण में कहा है कि—तेल और (आमलक) आंवला नित्यतीर्थ में दे। फिर ब्राह्मणों को सेवन के लिए अग्निको प्रज्वलित करे।

एवं स्नानावसाने तु भोज्यं देयमवारितम्। भोजयेद् द्विजदाम्पत्यं भूषयेद्वस्त्रभूषणैः॥ कम्बलाजिनरत्नानि वासांसि विविधानि च। चोलकानि च देयानि प्रच्छादनपटास्तथा॥ उपानहौ तथा गुल्ममोचकौ पापमोचकौ। अनेन विधिना दद्यान्माधवः प्रीयतामिति॥

इसप्रकार स्नान की समाप्ति पर तृप्तिपर्यन्त (निषेध न करने पर) भोजन दे सपत्नीक ब्राह्मणको भोजन करा कर वस्त्र और आभूषणों से भूषित करे। कंबल, अजिन, (मृगचर्म) रत्न, विविधप्रकार के वस्त्रों को, चोलक(चोली) प्रच्छादन (ओढनेवाले वस्त्र) वस्त्र दे। जूना, गुल्ममोचक--(मेथिका (मेथी) चन्द्रसूरश्च (चमसुल) कालायाजी (काला जीरा) यवानिका (अजवाइन) एतच्चतुष्टयं बीजं गुल्ममोचकसंस्मृतम्॥) और पापमोचक (हलदी) को इस विधि से दे जिससे माधव प्रसन्न हों।

पाद्मे—भूमौ शयीत होतव्यमाज्यं तिलसमन्वितम्।

पद्मपुराण में कहा है कि—भूमि में शयन करे और तिल युक्त घृत से हवन करे।

तथा—अन्नं चैव यथाशक्त्या देयं माघे नराधिप। सुवर्णं रक्तिकामात्रं दद्याद्वेदविदे तथा॥

और—हे नराधिप, माघमास में यथाशक्ति अन्न को देना चाहिये तथा वेदज्ञाता को रक्तिभर सुवर्ण दे।

माघान्ते तु विशेषो नारदीये—माघावसाने सुभगे षट्रसं भोजनं स्मृतम्।
सूर्यो मे प्रीयतां देवो विष्णुमूर्तिर्निरञ्जनः॥

माघमास की समाप्ति पर तो विशेष नारदीय में कहा है कि हे सुभगे, माघमास की समाप्ति पर षड्रस भोजन कराना कहा है। विष्णुमूर्तिनिरञ्जन (निर्विकार) सूर्य मेरे पर प्रसन्न हों।

दम्पत्योर्वाससी सूक्ष्मे सप्तधान्यसमन्विते। त्रिंशत्तु मोदका देयाः शर्करातिलसंयुताः॥ इति।

दम्पती (स्त्री और पुरुष) को सप्तधान्य से युक्त सूक्ष्म-वस्त्रों को तथा शर्करा (चीनी) और तिल सहित तीस लड्डू देना चाहिये।

(अत्र व्रतोद्यापनकथनम्)

अत्र—एकादशीविधानेन व्रतस्योद्यापनं तथा। इति पाद्मवचनात्। पूर्वेऽह्नि उपवासपूजनादि कृत्वा 'परेह्नि तिलचर्वाज्यैरष्टोत्तरशतं होमं कृत्वा 'सवित्रे प्रसवित्रे' इति पूर्वोक्तं मन्त्रमुक्त्वा दिवाकर जगन्नाथ प्रभाकर नमोऽस्तु ते। परिपूर्णं कुरुष्वेह माघस्नानमुषःपते॥ इति समापयेदिति संक्षेपः।

और यहाँ पर एकादशी के विधान से व्रत का उद्यापन करे—यह पद्मपुराण का वचन है। पहले दिन उपवास पूजन आदि करके दूसरे दिन तिल, चरु और आज्य से एकसौ आठवार होमकर 'सवित्रे प्रसवित्रे च परं धाम जले मम। त्वत्तेजसा परिभ्रष्टं पापं यातु सहस्त्रधा'—इस पूर्वोक्त मन्त्र को कहकर—हे दिवाकर, हे जन्नाथ, हे प्रभाकर, आपके लिए नमस्कार है। उषःपते, यहाँ पर माघस्नान को पूर्ण करो। ऐसा कह कर समाप्त करे—यह संक्षेप में कहा है।

(मकरसंक्रान्तौ पुण्यकालकथनम्)

मकरसंक्रान्तौ हेमाद्रिमते परतश्चत्वारिंशत् घटिकाः पुण्याः। त्रिंशत्कर्कटके नाड्यो मकरे तु दशाधिकाः। इति ब्रह्मवैवर्तात्। माधवमते तु विंशतिः।

हेमाद्रिमत में कहा है कि—मकरसंक्रान्ति में पर चालिसघड़ी पुण्यकाल होता है। ब्रह्मवैवर्तपुराण में कहा है कि—कर्ककी संक्रान्ति में तीस घड़ी तथा मकर की संक्रान्ति में तो दश अधिक पुण्यकाल होता है। (अर्थात्—चालीस घड़ी पुण्यकाल होता है।) माधवमत से तो बीसघड़ी पुण्यकाल होता है।

१—ॐ सवित्रे प्रसवित्रे च परंधाम जले मम। त्वत्तेजसा परिभ्रष्टं पापं यातु सहस्त्रधा॥

त्रिंशत्कर्कटके पूर्वा मकरे विंशतिः परा। इति वृद्धवसिष्ठोक्तेः।

वृद्धवसिष्ठ ने कहा है कि—कर्क में पहले तीस घडी और मकर में पर वीस घडी पुण्यकाल माना जाता है।

यदा तु सूर्यास्तात्पूर्वं संक्रान्तिर्भवति तदोभयमते पूर्वमेव पुण्यकालः। रात्रौ तु प्रदोषे निशीथे वा मकरसंक्रमे माधवमते द्वितीयदिन एव पुण्यम्। यद्यस्तमयवेलायां मकरं याति भास्करः। प्रदोषे वार्द्धरात्रे वा स्नानं दानं परेहनि॥ इति वृद्धगार्ग्यवचनात्। अस्तमयं=प्रदोषः। प्रदोषे=पूर्वरात्रे।

जब सूर्यास्त के पहले ही संक्रान्ति होती है तो उभयमत में पूर्व ही पुण्यकाल होता है। रात्रि में तो प्रदोष या निशीथ (रात्रि) में मकर की संक्रान्ति में माधवमत से दूसरे दिन में ही पुण्यकाल होता है।

वृद्धगार्ग्य का वचन है कि—यदि प्रदोप के समय पहली रात में या अर्धरात्रि में मकरराशि पर सूर्य जाता है तो स्नान और दान दूसरे (आसन्नसंक्रमं पुण्यं दिवार्धं स्नानदानयोः) दिन करे। अस्तमय का अर्थ है—प्रदोषकाल। प्रदोष में—अर्थात् पहली रात में।

कार्मुकं तु परित्यज्य झषं संक्रमते रविः। प्रदोषे वार्द्धरात्रे वा स्नानं दानं परेऽहनि॥ इति भविष्योक्तेश्च। 'तदा भोगः परेऽहनि' इति हेमाद्रौ पाठः। कालादर्शनिर्णयामृतमदनरत्नपारिजातादयोऽप्येवमूचुः। दाक्षिणात्याश्चैतदेवाद्रियन्ते।

और भविष्यपुराण का मत है कि—धनुराशि को त्याग कर जब मकर राशि में सूर्य प्रदोष या आधिरात में हो तो दूसरे दिन स्नान और दान करे।

हेमाद्रि में 'तदा भोगः परेऽहनि' ऐसा पाठ है। श्लोक यों होगा—कार्मुकं तु परित्यज्य झषं संक्रमते रविः। प्रदोषे वार्धरात्रे वा तदा भोगः परेऽहनि॥ यही कालादर्श, निर्णयामृत, मदनपारिजात आदि ने भी कहा है। इसी को ही दाक्षिणात्य भी आदर करते हैं।

यत्तु हेमाद्रिणाऽऽद्यो वा शब्दो यथार्थे द्वितीयस्तथार्थे। यथा प्रदोषे पूर्वेद्युस्तथार्द्धरात्रे परेऽह्नीत्युक्तं तस्मै नमोऽस्तु। तेन परेऽह्नि पुण्यं वक्तुं प्रदोषे इति। दिनद्वये पुण्यनिरासार्थमर्द्धरात्रग्रहणम्। हेमाद्रिस्मृत्यर्थसारानन्तभट्टादिमते तु निशीथात्पूर्वं संक्रान्तौ पूर्वदिने परदिने वा पुण्यम्।

जो हेमाद्रि ने कहा कि—आदि में 'वा' शब्द यथार्थ में दूसरा वा शब्द तव अर्थ में कहा है। जैसे—प्रदोष में पहले दिन और आधी रात में दूसरे दिन कहा है उसके लिए नमस्कार हो। उससे दूसरे दिन पुण्य को कहने के लिए प्रदोष में कहा है। दोनोंदिन में पुण्य निराशार्थ आधीरात का ग्रहण है। हेमाद्रि, स्मृत्यर्थसार, अनन्तभट्ट आदि के मत से तो निशीथ से पूर्व संक्रान्ति में पूर्वदिन में या परदिन में पुण्यकाल है।

धनुर्मीनावतिक्रम्य कन्यां च मिथुनं तथा। पूर्वापरविभागेन रात्रौ संक्रमणं यदा॥ दिनान्ते पञ्चनाड्यस्तु तदा पुण्यतमाः स्मृताः। उदयेऽपि तथा पञ्च दैवे पित्र्ये च कर्मणि॥ इति स्कान्दवचनात्।

स्कन्दपुराण का मत है कि—धनु, मीन, कन्या और मिथुन को अतिक्रमण कर पूर्वापरविभाग से जब रात में संक्रान्ति हो तो दिनान्त में पांचनाडी पुण्य के होने वाली कही है और वैसे ही उदय की भी पांच घड़ी देवता और पितर कर्म में पुण्यदायक कही है।

पूर्वापरविभागेनेति मकरकर्कभिन्नविषयम्, पूर्वोक्तवचोविरोधादिति मदनरत्ने उक्तम्। षडशीतिमुखेऽतीते अतीते चोत्तरायणे। इत्यादिविरोधाच्च।

पूर्वापरविभाग से इसप्रकार मकर और कर्कसंक्रान्तिसे भिन्न (मकरे परेद्युरेव पुण्यं कर्के तु पूर्वेद्युरेव तुलामेषयोश्च पूर्वेद्युः परेद्युश्चेत्यर्थः) विषयक है। पूर्वोक्तवचन के विरोध होने से। यह मदनरत्न में कहा है और षडशीतिमुख नाम की संक्रान्ति के वीतने पर और उत्तरायण बीतने पर इत्यादि विरोध है।

तेन पूर्वोक्तवाक्यतयाऽयमर्थः—रात्रौ पूर्वभागे मकरसंक्रमे परेऽह्नि उदये पञ्च नाड्यः पुण्याः, रात्रावपरभागे कर्कसंक्रमे पूर्वदिनान्ते पञ्च नाड्य इति। एवं सर्वेषामविरोधः। मकरे सामान्येन परदिने पुण्यत्वेऽपि पुण्यातिशयार्थमिदम्।

इससे पहले कहे हुए वचन की एक वाक्यता से यह अर्थ है कि—रात के पूर्वभाग में मकरसंक्रान्ति के दूसरे दिन उदय में पांच नाड़ी पुण्यवाली होती है। रात के दूसरे भाग में कर्क की संक्रान्ति में पहले दिन के अन्त में पांच नाड़ी पुण्यदायक होती है। इसप्रकार सबों का विरोध नहीं है। मकर में सामान्यतया दूसरे दिन पुण्य होने पर भी यह वचन अधिक पुण्यदायक अर्थ के लिए है।

यत्तु देवलयज्ञपार्श्वौ—आसन्नसंक्रमं पुण्यं दिनार्धं स्नानदानयोः।
रात्रौ संक्रमणे भानोर्विषुवत्ययने दिवा॥ इति।

जो देवल और यज्ञपार्श्व में कहा है कि—आसन्नसंक्रान्ति हो तो स्नान और दान में दिन का आधा दिन पुण्यकाल होता है। रात्रि में सूर्य की संक्रान्ति में विषुव तथा अयन में दिन में पुण्यकाल है।

अत्र माधवः। अयने दिवा जाते तदर्द्धं पुण्यम्। कर्के पूर्वं मकरेऽन्त्यम्। एतन्मध्यन्दिनायनपरमिति।

यहाँपर माधव का मत है कि—अयन दिन में हो तो उसका आधा पुण्यकाल है। कर्क में पहले और मकर में अन्त्य में पुण्यकाल होता है। यह माध्यन्दिन (मध्याह्न) अयनपरक है।

हेमाद्रिस्तु रात्रौ विषुवत्यासन्नदिनार्द्धं पुण्यम्। अयने त्वासन्नदिनं पुण्यम्। दिने इति पाठे उभयत्र दिनार्द्धं पुण्यमित्याह। एतदेवोक्तं दीपिकायाम्—'अथायनमधः पश्चान्निशीथाद्धवेद्यद्या-सन्नमहस्तदर्द्धमथवा पुण्यम्' इति। तत्त्वं तु आसन्नसंक्रममित्यस्य विषुवत्येवान्वयः। अयने रात्रौ सति दिने पुण्यम्। कस्मिन्नित्यपेक्षायां कर्के पूर्वेऽह्नि मकरे परेऽह्नि इति वाक्यान्तरवशादर्थे उच्यमाने न कोऽपि विरोधः।

हेमाद्रि तो कहते हैं कि—रात में विषुवत् संक्रान्ति में समीप दिनका आधादिन पुण्यकाल है। अयनमें तो समीप का दिन पुण्यकाल है। 'दिने' ऐसा पाठ हो तो दोनों तरफ दिन के आधे भाग में पुण्य है—ऐसा कहा है। इसीलिए ही दीपिका में कहा है कि—सिद्धान्त तो यह है कि-संक्रान्ति के समीप का अन्वय विषुवत् में होता है। अयन रात में हो तो दिन में पुण्यकाल होता है। किसदिन में यह अपेक्षा हुई तो कर्क में पहले दिन और मकर में दूसरे दिन इस वाक्यान्तर के वश से अर्थ के उच्चारण में कोई भी विरोध नहीं है।

(अत्रानन्तभट्टादिमतकथनम्)

यत्त्वनन्तभट्टः—अथ संक्रमणं भानोर्निशीथात्प्राग्यदा भवेत्। अयनं विषुवं तत्र प्राग्दिनान्तिमनाडिकाः॥ पञ्च पुण्यतमाः पश्चान्निशीथाच्चेद्भवेत्तथा। आद्याः परदिनस्यापि तद्वदित्येष निर्णयः॥ इति।

जो अनन्तभट्ट ने कहा है कि—इसके बाद जब सूर्य को संक्रान्ति निशीथ के पहले हो तो तथा अयन विषुव वहाँ पर हो तो पूर्वदिन की अन्तिम पाँच घडी पुण्यवाली कही है। यदि निशीथ के बाद हो तो तद्वत् दूसरे दिन की आदि की पांच घड़ी पुण्यकाल होती है। यही निर्णय है।

अपरार्केऽप्येवम्—अस्तङ्गते यदा सूर्ये झषं याति दिवाकरः। प्रदोषे वार्द्धरात्रे वा तदा पुण्यं दिनद्वयम्॥ इति बौधायनवचनात् दिनद्वयं वा पुण्यकालः। तदा पुण्यं दिनान्तरम् इति मदनरत्ने पाठः। गुर्जरप्राच्योदीच्यास्त्विदमेवाद्रियन्ते। अत्रापि पूर्ववद्व्याख्येयम्।

अपरार्क में भी यही कहा है कि—जब सूर्य के अस्तंगत हो जाने पर मकर में सूर्य आवें या प्रदोष या आधीरात में आवे तो दोनों दिन पुण्यकाल होता है। इस बौधायनवचन से अथवा दोनों दिन पुण्यकाल होता है। मदनरत्न में पाठ है कि—तब दिनान्तर (अन्य दिन) में पुण्यकाल है। गुर्जर, प्राच्य, उदीच्य आदि इसीका आदर करते हैं। यहाँपर पहले की तरह व्याख्या करनी चाहिये।

तिथितत्त्वादयो गौडग्रन्थास्तु प्रदोषार्द्धरात्रभिन्ने रात्रेः पूर्वभागे पूर्वदिने परभागे च परदिने पुण्य-मन्यसंक्रान्तिवत्, विशिष्य तयोर्निर्देशात् ।

तिथितत्त्व आदि और गौडग्रन्थों का कहना है कि—प्रदोष तथा आधीरात से भिन्नरात के पहले भाग में और दूसरे भाग में हो तो दूसरे दिन अन्यसंक्रान्ति के सदृश पुण्यकाल होता है। क्योंकि उन दोनों (प्रदोष तथा आधीरात) का विशेष निर्देश कथन है।

प्रदोषश्च—प्रदोषोऽस्तमयादूर्ध्वं घटिकाद्वयमिष्यते । इति वत्सोक्त इत्याहुः । तन्न । 'अस्तङ्गते' इति त्रितयवैयर्थ्यापत्तेः । अतः प्रदोषपदेन तद्भिन्नैव रात्रिरुच्यते । अत एव 'यावन्नोदयते रविः' इति वृद्धगार्ग्यादिभिर्दक्षिणायने पूर्वरात्रौ संक्रमे पूर्वदिनमुक्तम् । वत्सोक्तिरप्यध्ययनादिपरा । इह तु त्रिमुहूर्त एव प्रदोषः ।

प्रदोष को वत्सने कहा है कि—अस्त के ऊपर दो घड़ी का प्रदोष होता है। यह ठीक नहीं है। क्योंकि 'अस्तंगते' इस श्लोक में तीनों के ग्रहण की व्यर्थता हो जायगी (अस्तंगत, प्रदोष और अर्धरात्रि) इसकारण प्रदोषपदसे प्रदोष से भिन्न ही रात्रि कही है। इसलिए जबतक सूर्य का उदय नहीं होता है—यह वृद्धगार्ग आदियों ने दक्षिणायन में पूर्वरात्रि में संक्रान्ति के होने पर पहला दिन कहा है। वत्सकी जो उक्ति है वह अध्ययन आदिपरक है। यहाँपर तो तीनमुहूर्त का ही प्रदोष है।

(मकरे दानविशेषकथनम्)

मकरे दानविशेषो हेमाद्रौ स्कान्दे—धेनुं तिलमयीं राजन् दद्याद्यश्चोत्तरायणे ।
सर्वान्कामानवाप्नोति विन्दते परमं सुखम् ॥

मकर में दानविशेष हेमाद्रि में स्कन्दपुराण का मत है कि—हे राजन्, जो मनुष्य उत्तरायणमें तिलको धेनु देता है वह सब इच्छाओं को प्राप्त करता है तथा परम सुख का लाभ करता है।

विष्णुधर्मे—उत्तरे त्वयने विप्रा वस्त्रदानं महाफलम् ।
तिलपूर्णमनड्वाहं दत्त्वा रोगैः प्रमुच्यते ॥ इति ।

विष्णुधर्म में कहा है—हे ब्राह्मणो, उत्तरायणसंक्रान्ति पर वस्त्रदान करना महान्फल को देनेवाला है तथा तिलसे पूर्ण बैलको देने से रोगों से छुटकारा पाता है।

शिवरहस्येऽपि—तस्यां कृष्णतिलैः स्नानं कार्यं चोद्वर्त्तनं शुभैः । तिला देयाश्च विप्रेभ्यः सर्व-दैवोत्तरायणे ॥ तिलतैलेन दीपाश्च देयाः शिवगृहे शुभाः ॥

शिवरहस्य में भी कहा है कि—उसमें शुभसूचक काले तिलों से स्नान और उबटन करना चाहिये। और उत्तरायण में सर्वदा ही ब्राह्मणों के लिए तिलों को देना चाहिये तथा शिव के मन्दिर में उत्तम तिल के तेल का दीपक देना चाहिये।

कल्पतरौ कालिकापुराणे—होमं तिलैः प्रकुर्वीत सर्वदैवोत्तरायणे । तान् यो देवाय विप्रेभ्यो हाटकेन समं ददेत् । उत्तरायणमासाद्य नरः कस्मात्स शोचति ॥

कल्पतरु में कालिकापुराण का मत है कि—उत्तरायण में सर्वदा तिलों से हवन करे। उन तिलों को देवता और ब्राह्मणों को सुवर्ण के सहित उद्देश्य करके दान करे। इससे मनुष्य उत्तरायण को प्राप्त कर किसीप्रकार भी शोच नहीं करता है।

(अत्र रात्रावपि श्राद्धकथनम्)

तथा मकरे रात्रावपि श्राद्धादि भवतीत्युक्तं प्राक् ।

और मकर में रात में भी श्राद्ध आदि होता है—यह बात पहले कह चुके हैं।

(माघामावास्यायामर्धोदयः)

माघामायां योगविशेषोऽर्द्धोदयः प्रागेवोक्तः ।

माघकी अमावास्या में अर्धोदययोग विशेष पहले कह चुके हैं।

(माघकृष्णचतुर्दश्यां यमतर्पणम्)

माघकृष्णचतुर्दश्यां यमतर्पणमुक्तं हेमाद्रौ यमेन—अनर्काभ्युदिते काले माघकृष्णचतुर्दशीम् । स्नातः सन्तर्प्य तु यमं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ इति ।

माघकृष्णचतुर्दशी में यमतर्पण हेमाद्रि में यम ने कहा है कि—माघमास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशीतिथि में सूर्योदय होने के पूर्वसमय में स्नान कर यमका तर्पण करने से सब पापों से मुक्ति मिल जाती है ।

(माघशुक्लचतुर्थीनिर्णयः)

माघशुक्लचतुर्थी तिलचतुर्थी । सा प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या ।

माघमास के शुक्लपक्ष की चतुर्थीतिथि 'तिलचतुर्थी' नाम से कही जाती है। वह प्रदोषव्यापिनी (नक्तव्रत होने से) ग्रहण करे ।

माघशुक्लचतुर्थ्यां तु नक्तव्रतपरायणाः । ये त्वां ढुण्ढेऽर्चयिष्यन्ति तेऽर्च्याः स्युरसुरद्रुहाम् ॥ इति काशीखण्डात् ।

काशीखण्ड में कहा है कि—माघमहिने के शुक्लपक्ष की चतुर्थीतिथि को नक्तव्रत में तत्पर होकर जो मनुष्य हे ढुण्ढीराज, आपका अर्चन करेंगे वे देवताओं के भी पूजनीय होंगे ।

माघमासे चतुर्थ्यां तु तस्मिन् काल उपोषितः । अर्चयित्वा तु यो देवि जागरं तत्र कारयेत् ॥ इति त्रिस्थलीसेतौ लैङ्गाच्च ।

त्रिस्थलीसेतु में लिंगपुराण का मत है कि—माघमास की चतुर्थीतिथि में तो प्रदोषकाल में उपवास तथा पूजन कर हे देवि, उसमें जागरण करावे ।

इयमेव कुन्दचतुर्थी । सा प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या । माघशुक्लचतुर्थ्यां तु कुन्दपुष्पैः सदाशिवम् । सम्पूज्य यो हि नक्ताशीं स प्राप्नोति श्रियं नरः ॥ इति कालादर्शे कौर्मोक्तेः ।

यही 'कुन्दचतुर्थी' है। वह प्रदोषव्यापिनी (नक्ताशीत्युक्तेः । वस्तुतस्तु मध्याह्नव्यापिनीति बहुपुस्तकपाठो युक्तः पूजाव्रतत्वात्, नक्तन्त्वनिर्णायकम् । अङ्गत्वात् ।) करे । कालादर्श में कूर्मपुराण का मत है कि—माघशुक्लचतुर्थी में तो कुन्द (सफेद रंग का कुन्द का पुष्प होता है) पुष्पों से सदा शिव का पूजनकर जो रात में भोजन करता है वह मनुष्य श्री (लक्ष्मी) को प्राप्त करता है ।

(माघशुक्लश्रीपञ्चमीनिर्णयः)

माघशुक्लपञ्चमी श्रीपञ्चमी । तदुक्तं हेमाद्रौ वाराहे—माघशुक्लचतुर्थ्यां तु वरमाराध्य च श्रियः । पञ्चम्यां कुन्दकुसुमैः पूजां कुर्यात्समृद्धये ॥ इयं माधवमते पूर्वा, हेमाद्रिमते परा ।

माघशुक्लपञ्चमी को 'श्रीपञ्चमी'[1] कहते हैं। उसी बात को हेमाद्रि में वाराहपुराण से कहा है कि—माघशुक्ल चतुर्थीतिथि में लक्ष्मी के (सहित) पति विष्णु की आराधना कर और माघशुक्लपञ्चमी को कुन्द के पुष्पों से समृद्धि के लिए पूजा करे। (दो दिन साध्य यह व्रत है ।) इसको माधव के मत से पहली और हेमाद्रिमत से परा ग्रहण करे ।

(अत्र दिवोदासमतकथनम्)

चैत्रशुक्ले श्रीपञ्चमीति दिवोदासः ।

दिवोदास का कहना है कि—चैत्रशुक्लपञ्चमी को 'श्रीपञ्चमी' कहते हैं ।

(माघशुक्लसप्तमी रथसप्तमीनिर्णयः)

माघशुक्लसप्तमी रथसप्तमी । सा अरुणोदयव्यापिनी ग्राह्या । सूर्यग्रहणतुल्या तु शुक्ला माघस्य सप्तमी । अरुणोदयवेलायां तस्यां स्नानं महाफलम् ॥ इति चन्द्रिकायां विष्णुवचनात् ।

१—भविष्यपुराणे—चतुर्थी वरदानाम तस्यां गौरी सुपूजिता । सौभाग्यं मङ्गलं कुर्यात् पञ्चम्यां श्रीरपि श्रियम् ॥ 'माघशुक्लपञ्चम्यां रतिकाम पूजादिवसन्तोत्सवः कार्यः । पुराणसमुच्चये—माघमासे सुरज्येष्ठ शुक्लायां पञ्चमीतिथौ । रतिकामौ तु संपूज्य कर्तव्यः सुमहोत्सवः । दानानि च प्रदेयानि येन तुष्यति माधवः ॥

माघशुक्ल सप्तमी को 'रथसप्तमी' कहते हैं। वह अरुणोदयव्यापिनी ग्रहण करे। चन्द्रिका में विष्णु का वचन है कि—माघशुक्लसप्तमी तो सूर्यग्रहण के तुल्य है। अरुणोदयवेला में उसमें स्नान करने से महान् फल मिलता है।

अरुणोदयवेलायां शुक्ला माघस्य सप्तमी। प्रयागे यदि लभ्येत कोटिसूर्यग्रहैः समा॥ इति वचनाच्च।

और भी वचन है कि—माघशुक्लासप्तमी को अरुणोदयसमय में यदि 'प्रयाग' में लाभ हो तो करोड़ों सूर्यग्रहण के बराबर है।

यत्तु दिवोदासीये—अचलासप्तमी दुर्गा शिवरात्रिर्महाभरः। द्वादशी वत्सपूजायां सुखदा प्राग्युता सदा॥ इति षष्ठीयुतत्वमुक्तम्, तद्यदा पूर्वेऽह्नि घटिकाद्वयं षष्ठी, सप्तमी च परेद्युः क्षयवशादरुणोदयात्पूर्वं समाप्यते तत्परं ज्ञेयम्। तत्र षष्ठ्यां सप्तमीक्षयं प्रवेश्यारुणोदये स्नानं कार्यम्।

जो दिवोदासीय में कहा है कि—अचलासप्तमी (रथसप्तमी), दुर्गा, और शिवरात्रि दुर्भर (दुःख से भरी जाती) हैं। वत्सपूजा में द्वादशी पूर्वतिथि से युक्त सदा सुखको देनेवाली होती हैं।

यह षष्ठीतिथि से युक्त होनी चाहिये। वह जब पहलेदिन षष्ठी दो घड़ी हो और सप्तमी दूसरे दिन क्षयवश से अरुणोदय के पूर्व समाप्त हो जाती है उस परक जानना चाहिये। उस षष्ठी में सप्तमी का क्षय प्रवेशकर अरुणोदय में स्नान करना चाहिये।

मदनरत्ने भविष्योत्तरे—माघे मासि सिते पक्षे सप्तमी कोटिभास्करा।
कुर्युः स्नानार्घ्यदानाभ्यामायुरारोग्यसम्पदः॥

मदनरत्न में भविष्योत्तरपुराण का वचन है कि—माघमास के शुक्लपक्ष की सप्तमी तिथि करोड़ों सूर्य के सदृश है। उसमें स्नान और अर्घ्यदान को करने से आयु, आरोग्यता तथा संपत्ति को करती है।

(अत्र विधिर्हेमाद्रौ भविष्ये च)

अत्र विधिर्हेमाद्रौ भविष्ये—स्नात्वा षष्ठ्यामेकभक्तं सप्तम्यां निश्चलं जलम्।
रात्र्यन्ते चालयेथास्त्वं दत्त्वा शिरसि दीपकम्॥

इसकी विधि मदनरत्न में भविष्योत्तरपुराण से कही है कि—स्नानकर षष्ठीतिथि को एकभक्त होकर सप्तमी तिथि में निश्चलजल के शिरपर दीपक रखकर जैसे तुम (अरुन्धती के प्रति वसिष्ठजी का कथन है) रात्रि के अन्तमें चलाओ।

तथा जलं प्रक्रम्य—न केन चाल्यते यावत् तावत्स्नानं समाचरेत्। सौवर्णे राजते पात्रे भक्त्या-लाबुमयेऽथ वा॥ तैलेन वर्तिर्दातव्या महारजनरञ्जिता॥ महारजनम्=कुसुम्भम्।

और जलकी परिक्रमाकर जबतक कोई न चलावे तबतक स्नान करे। सुवर्ण और चाँदी के पात्र में या भक्ति से अलाबु (लौकी) के पात्रमें तेलद्वारा वत्ती दे महारजन (हलदी) रञ्जित करे। महारजन–माने–कुसुम्भ (कुसुंभा, बर्रे, केशर के रंग का होता है) है।

समाहितमना भूत्वा दत्त्वा शिरसि दीपकम्। भास्करं हृदये ध्यात्वा इमं मन्त्रमुदीरयेत्॥

समाहितमन से होकर शिरपर दीपक देकर सूर्य का हृदय में ध्यानकर इसमन्त्र को कहे।

नमस्ते रुद्ररूपाय रसानां पतये नमः। वरुणाय नमस्तेऽस्तु हरिवास नमोऽस्तु ते॥ जले परिहरेद्दीपं ध्यात्वा सन्तर्प्य देवताः। इति।

रुद्ररूप आपके लिए नमस्कार है। रसों के पति के लिए नमस्कार है। वरुण के लिये नमस्कार है और हरिनिवासभूत आपको नमस्कार है। जलमें दीपक को छोड़ दे। ध्यानकर देवताओं को तृप्तकरे।

चन्दनेन लिखेत्पद्ममष्टपत्रं सकर्णिकम्। मध्ये शिवं सपत्नीकं प्रणवेन च संयुतम्॥

चन्दन से कर्णिका के सहित अष्टदलपद्म पत्र लिखे। उसके मध्य में सपत्नीक शिव को प्रणव (ॐ) के सहित लिखे।

पूर्वादिदलेषु रविभानुविवस्वद्भास्करसवित्रर्कसहस्रकिरणसर्वात्मकान् सम्पूज्य गृहं गच्छेदिति।

पूर्वादिदलों में (क्रमसे) रवि, भानु, विवस्वान्, भास्कर, सविता, अर्क, सहस्त्रकिरण और सर्वात्मक का पूजनकर घर के लिये चले।[1]

(स्नानमन्त्रः)

स्नानमन्त्रश्च काशीखण्डे—यद्यज्जन्मकृतं पापं मया जन्मसु सप्तसु। तन्मे रोगं च शोकं च माकरी हन्तु सप्तमी ॥

और काशीखण्ड में स्नानमन्त्र कहा है कि—जो जो मैंने सात जन्मों में पाप किये हैं वे मेरे पापों को, रोग तथा शोक को मकर की सप्तमी नाश करे।

एतज्जन्मकृतं पापं यच्च जन्मान्तरार्जितम्। मनोवाक्कायजं यच्च ज्ञाताज्ञाते च ये पुनः ॥ इति सप्तविधं पापं स्नानान्मे सप्तसप्तिके। सप्तव्याधिसमायुक्तं हर माकरि सप्तमि ॥

इस जन्ममें किया हुआ पाप और जो जन्मान्तर में सञ्चित पाप हैं, जो मन, वाणी तथा शरीर से किया हुआ पाप, जो जानकर या नहीं जानकर पाप किया ऐसे सात प्रकार के सप्तव्याधि से युक्त मेरे पापको मकर की सप्तमी मेरे स्नान से हरण करो।

एतन्मन्त्रत्रयं जप्त्वा स्नात्वा पादोदके नरः। केशवादित्यमालोक्य क्षणान्निष्कलुषो भवेत् ॥

इसप्रकार तीन मन्त्र को जप (पढ) कर मनुष्य पादोदक में स्नानकर 'केशवादित्य' को देखकर मनुष्य क्षणमें निष्पाप हो जाता है।

दिवोदासीये मदनरत्ने च—इक्षुदण्डेन जलं चालयित्वा सप्तार्कपत्राणि बदरीपत्राणि च शिरसि निधाय पूर्वोक्तैर्मन्त्रैः स्नात्वा तिलपिष्टमयापूपैर्हैमं सूर्यं संपूज्य विप्राय दद्यात्।

दिवोदासीयमें और मदनरत्न में कहा है कि--ईखके दण्ड से जल को चलाकर सात अर्क (आक) पत्तोंको और बदरी (बेर) के पत्तोंको शिरमें रखकर पूर्वोक्तमन्त्रोंसे स्नान (स्नान के बाद अर्घ्य दे) कर तिलके पिसे आटे से मालपूड़े पर सुवर्ण के सूर्य का पूजन कर ब्राह्मण के लिये दे।

(अर्घ्यमन्त्रः)

अर्घ्यमन्त्रो मदनरत्ने—सप्तसप्तिवह प्रीत सप्तलोकप्रदीपन।
सप्तमीसहितो देव गृहाणार्घ्यं दिवाकर ॥

मदनरत्न में अर्घ्यमन्त्र कहा है कि—सप्तसप्तिवह—सातघोड़ों के द्वारा वहन किये जानेवाले, प्रसन्न, बराबर लोकोंको प्रदीप्त करने वाले हे देव, हे दिवाकर, सप्तमी के सहित इस अर्घ्य को ग्रहण करो।

ततः—जननी सर्वलोकानां सप्तमी सप्तसप्तिके। सप्तमीसहितो देव गृहाणार्घ्यं दिवाकर ॥ (सप्तव्याहृतिके देवि नमस्ते सूर्यमंडले) इति प्रार्थयेत्।

और हे सप्तसप्तिके, सब लोकोंकी माता सप्तमी हे देव, हे दिवाकर, सप्तमीके सहित अर्घ्यको ग्रहण करो।

सौरागमे—अर्कपत्रैः सबदरैर्दूर्वाक्षतसचन्दनैः। अष्टाङ्गविधिना चार्घ्यं दद्यादादित्यतुष्टये ॥

सौरागम में कहा है कि—आंक पुष्पों से (यहाँ अर्कपत्र (मदारपत्र) पुष्पका उपलक्षण है) बेर से सहित दूर्वाअक्षत (यव) और चन्दनादि अष्टांग[2] विधि से आदित्य की प्रसन्नता के लिए अर्घ्य दे।

१—शाक्रे दले रविः पूज्यो भानुश्चैवानले तथा। याम्ये विवस्वान्नैरृत्ये भास्करं पूजयेद्बुधः ॥ पश्चिमे सविता पूज्यः पूज्योऽर्कश्चानिले दले। सौम्ये सहस्त्रकिरणः शैवे सर्वात्मकस्तथा ॥ पूज्याः प्रणवपूर्वास्तु नमस्कारान्तयोजिताः। पुष्पैश्च गन्धधूपाद्यैः पृथक्त्वेन युधिष्ठिर ॥ विसृज्य वस्त्रसंवीतः स्वस्थानं गम्यतामिति।

२—आपः क्षीरं कुशाग्राणि दध्यक्षततिलास्तथा। यवाः सिद्धार्थकाश्चेति अर्घ्योऽष्टाङ्गः प्रकीर्तितः ॥

मित्राय नमः १ रवये नमः २ सूर्याय नमः ३ भानवे नमः ४ खगाय नमः ५ पूष्णे नमः ६ हिरण्यगर्भाय नमः ७ मरीचये नमः ८ आदित्याय नमः ९ सवित्रे नमः १० अर्काय नमः ११ भास्कराय नमः १२ एतानि द्वादशनामानि पादान्ते योजयेत्। ततः अर्धर्चान्ते—मित्ररविभ्यां नमः १ सूर्यभानुभ्यां नमः २ खगपूषाभ्यां नमः ३ हिरण्यगर्भमरीचिभ्यां नमः ४ आदित्यसवितृभ्यां नमः ५ अर्कभास्कराभ्यां नमः ६ ततः ऋगन्ते—मित्ररविसूर्यभानुभ्यो नमः १ खगपूषाहिरण्यगर्भमरीचिभ्यो नमः २ आदित्यसविता अर्कभास्कराभ्यो नमः। ततः ऋकत्रयान्ते—मित्ररविसूर्यभानुखगपूषाहिरण्यगर्भमरीचिआदित्यसवित्रार्कभास्करेभ्यो नमः 'इति त्रय इति चतुर्विंशतिरावर्तनं भवति' 'चतुर्विंशत्यर्घ्यदानैरेकमावर्तनं स्मृतम्। आवर्तनं चतुर्विंशत्यर्घिणीति प्रकीर्तिता ॥ इत्यादि मतमतान्तरं टीकायामस्ति।

(अत्र दानविशेषकथनम्)

अत्र दानविशेषो मदनरत्ने भविष्ये—ताम्रपात्रे यथाशक्त्या मृन्मये वाथ भक्तिमान् ।
स्थापयेत्तिलपिष्टं च सघृतं सगुडं तथा ॥

यहाँ पर दान विशेष मदनरत्नमें भविष्यपुराणमत से कहा है कि—यथाशक्ति से तांबे के पात्रमें या भक्तिमान् मट्टीके पात्र में घृत और गुड के सहित तिलपिष्ट (तिल के पिसे हुए) को रख दे ।

काञ्चनं तालकं कृत्वा अशक्तस्तिलपिष्टजम् । संछाद्य रक्तवस्त्रेण पुष्पैर्धूपैरथार्चयेत् ॥

सुवर्ण का तालक (कानका फूल) को या अशक्ति में तिलपिष्टीको लाल कपडे से ढककर पुष्प और धूपों से पूजा करे ।

दानमन्त्रस्तु—आदित्यस्य प्रसादेन प्रातःस्नानफलेन च । दुष्टदौर्भाग्यदुःखघ्नं मया दत्तं तु तालकम् ॥ तालकम्=कर्णाभरणमिति तत्रैवोक्तम् । दीपपात्रमिति हेमाद्रौ ।

दान का मन्त्र यह है—आदित्यके प्रसाद से और प्रातःकाल स्नान के फलसे दुष्ट दौर्भाग्य दुःख के नाशक तालक को मैंने दिया । तालक माने=कानका आभूषण यह वहाँ पर ही कहा है । हेमाद्रिने कहा है कि—तालक का अर्थ—दीपकपात्र है ।

तत्रैव भविष्योत्तरे—एवं विधं रथवरं रविवाजियुक्तं हैमं च हेमशतदीधितिना समेतम् ।
दद्याच्च माघसितसप्तमिवासरे यः सोऽसङ्गचक्रगतिरेव महीं भुनक्ति ॥

वहीं पर भविष्योत्तरपुराणमें कहा है कि—इसप्रकार उत्तम रथ सूर्य और घोड़ेके सहित ऐसे सुवर्ण के श्रेष्ठ रथको जो सुवर्ण के सौ किरणों से युक्त है, जो मनुष्य माघशुक्लपक्ष की सप्तमीतिथिपर देता है वह असंगचक्र (सूर्य) गति होता हुआ अर्थात्—निरन्तर पृथ्वी को भोगता है ।

इयं मन्वादिरपि । इयं च शुक्लपक्षस्थत्वात्पौर्वाह्णिकी ग्राह्या । यदा माघो मलमासो भवति तदा मासद्वये मन्वादिश्राद्धं कुर्यात् । मन्वादिकं तैर्थिकं च कुर्यान्मासद्वयेऽपि च । इति स्मृतिचन्द्रिकोक्तेः ।

यह मन्वादि भी है । और यह शुक्लपक्षस्थ की होने से पौर्वाह्णि की ग्रहण करे । जब माघमास मलमास होता है तब दोनों मास में मन्वादिश्राद्ध करे । स्मृतिचन्द्रिका में कहा है कि—मन्वादि और तीर्थश्राद्ध को दोनों मासों में करे ।

(माघशुक्लाष्टम्यां (भीष्माष्टम्याम्) तर्पणादिकथनम्)

माघशुक्लाष्टमी भीष्माष्टमी । तदुक्तं हेमाद्रौ पाद्मे—माघे मासि सिताष्टम्यां सतिलं भीष्मतर्पणम् । श्राद्धं च ये नराः कुर्युस्ते स्युः सन्ततिभागिनः ॥ इति ।

माघशुक्ल अष्टमी को भीमाष्टमी कहते हैं । उसी बात को हेमाद्रि में पद्मपुराण के वचन से कहा है कि—माघ महिने की शुक्लपक्ष की अष्टमी तिथिको तिलके सहित भीष्मतर्पण करे और जो मनुष्य श्राद्ध को करते हैं वे लोग सन्तानवाले होते हैं ।

भारतेऽपि—शुक्लाष्टम्यां तु माघस्य दद्याद्भीष्माय यो जलम् ।
संवत्सरकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥ इति ।

भारत में भी कहा है कि—माघशुक्ल अष्टमी को जो भीष्मके लिए जल देता है । उसके उसी क्षण सालभर के किये हुए पाप नाश हो जाते हैं ।

धवलनिबन्धे स्मृतिः—अष्टम्यां तु सिते पक्षे भीष्माय तु तिलोदकम् । अन्नं च विधिवद्दद्युः सर्वे वर्णा द्विजातयः ॥ सर्ववर्णोक्तेर्द्विजातय इति सम्बोधनम् ।

धवलनिबन्ध में स्मृति का वचन है कि—माघशुक्लपक्षकी अष्टमीतिथिमें भीष्म के लिए तिलोदक सब दें और हे द्विजातयः, वर्ण के लोग विधिवत् अन्नको दें । यहाँ पर 'सर्वे वर्णाः' ऐसा कहने पर 'द्विजातयः' इसको संबोधनपद जानना चाहिये ।

(भीष्मतर्पणमन्त्रः)

तर्पणमन्त्रस्तत्रैव—भीष्मः शान्तनवो वीरः सत्यवादी जितेन्द्रियः । आभिरद्भिरवाप्नोति पुत्र-पौत्रोचितां क्रियाम् । वैयाघ्रपदगोत्राय सांकृत्यप्रवराय च । अपुत्राय ददाम्येतज्जलं भीष्माय वर्मणे ॥ वसूनामवताराय शन्तनोरात्मजाय च । अर्घ्यं ददामि भीष्माय आबालब्रह्मचारिणे ॥ इति ।

वहीं पर तर्पणमन्त्र कहा है कि—शान्तनु पुत्र, वीर, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, भीष्म इन नामद्वारा जल से युक्त पुत्र-पौत्र के करने लायक क्रियाको प्राप्त करे। वैयाघ्रपद गोत्री सांकृत्य प्रवरवाले अपुत्र भीष्मवर्मा के लिए इस जल को देता हूँ। वसुओं के अवताररूप, शान्तनु के आत्मज आबाल ब्रह्मचारीरूप भीष्म के लिए अर्घ्य को देता हूँ।

(जीवत्पितृकस्यापि तत्तर्पणविधानम्)

एतज्जीवत्पितृकस्यापि भवति । जीवत्पितापि कुर्वीत तर्पणं यमभीष्मयोः । इति पाद्मोक्तेरिति जीवत्पितृनिर्णये पितृचरणैरुक्तम् । एतच्चापसव्येन कार्यमिति दिवोदासीये । अत्र श्राद्धं काम्यं, तर्पणं च नित्यम् ।

यह जिसके पिता भी जीवित हो वह भी करे। जिसके पिता जीवित हो वह भी यम और भीष्म का तर्पण करे—यह पद्मपुराण में कहा है। [1]जीवत्पितृकनिर्णय में पिताजी ने कहा है। (ऐसा कमलाकर भट्ट ने कहा है)। दिवोदासीय में कहा है कि—इसको अपसव्य से करे। यहाँ पर श्राद्ध काम्यपरक है और तर्पण नित्य है।

ब्राह्मणाद्याश्च ये वर्णा दद्युर्भीष्माय नो जलम् । संवत्सरकृतं तेषां पुण्यं नश्यति सत्तम ॥ इति मदनरत्ने वचनात् ।

मदनरत्न में वचन है कि—हे सत्तम, जो [2]ब्राह्मण आदि वर्णवाले भीष्म के लिए जल को नहीं देते हैं। उनका सालभर किया हुआ पुण्यनाश हो जाता है।

(माघशुक्लद्वादशीनिर्णयः)

माघशुक्लद्वादशी भीष्मद्वादशी । त्वया कृतमिदं वीर तव नाम्ना भविष्यति । सा भीष्म-द्वादशी त्येषा सर्वपापहरा शुभा ॥ इति हेमाद्रौ पाद्मवचनात् । इयं पूर्वयुता युग्मवाक्यात् ।

हेमाद्रि में पद्मपुराण का वचन है कि—माघशुक्लद्वादशी अर्थात् माघशुक्ल एकादशी को भीष्म द्वादशी' नाम से कहते हैं। हे वीर, तुम्हारे द्वारा किया हुआ वह तुम्हारे ही नाम से होगा। वह यह भीष्म द्वादशी, है जो सब पापोंको हरण करनेवाली शुभस्वरूपा है। यह युग्मवाक्य से पूर्वयुता ग्रहण करे।

(माघीपूर्णिमानिर्णयः)

माघी पूर्णिमा परेत्युक्तं प्राक् । तथा हेमाद्रौ ब्राह्मे—मघास्थयोश्च जीवेन्द्वोर्महामाघीति कथ्यते ।

माघमास की पूर्णिमा परा ले—यह पूर्वमें कह चुके हैं और हेमाद्रि में ब्रह्मपुराण का मत है कि—जब माघमास की पूर्णिमा को बृहस्पति तथा चन्द्रमा मघानक्षत्र में हों तो उसे 'महामाघी' कहते हैं।

तत्रैव ज्योतिषे—मेषपृष्ठे यदा सौरिः सिंहे च गुरुचन्द्रमाः ।
भास्करः श्रवणर्क्षे च महामाघीति सा स्मृता ॥

वहीं पर ज्योतिषमें कहा है कि—जब मेषराशि में शनि, सिंहराशिपर गुरु तथा चन्द्रमा और श्रवण-

---

१—कौस्तुभकार जीवत्पितृको तर्पण का अधिकार नहीं मानते हैं।

२—किसी ने वर्मशब्द क्षत्रिय के लिए कहा है। अतः श्राद्ध और तर्पण ब्राह्मण न करे। मरीचि का मत है कि—जो ब्राह्मण हीनवर्ण का और्ध्वदेहिक करता है। वह इसलोक में और परलोक में उसकी जाति को प्राप्त करता है। इसलिये क्षत्रिय आदि को ही अधिकार है। इत्यादि पूर्वपक्ष है। उत्तरपक्षयों का कहना है कि—'सर्वे वर्णा द्विजातयः' इसमें 'द्विजातयः' यह संबोधन है। इसकारण से ब्राह्मणादि सब भीष्मतर्पणादि करें। उसमें ब्राह्मण सव्य और क्षत्रियादि वर्ण-वाले अपसव्य से करें।

नक्षत्र पर सूर्य हो तो उसे 'महामाघी' (माघवाली पूर्णिमा) कहते हैं। यह प्रयाग में (महामाघी प्रयागे तु नैमिषे फाल्गुनी तथा। शालग्रामे महाचैत्री कृताः पुंसां महाफलाः ॥) अतिप्रशस्त है।

तथा भविष्ये--वैशाखी कार्तिकी माघी तिथयोऽतीव पूजिताः।
स्नानदानविहीनास्ता न नेयाः पाण्डुनन्दन ॥

और भविष्यपुराणमें कहा है कि—वैशाख, कार्तिक और माघमास की पूर्णिमातिथि अत्यन्त ही पूजित है। हे पाण्डुनन्दन, उनको स्नान और दान से विहीन न करे।

(अस्यां तिलपात्रादिदानकथनम्)

तथा--तिलपात्राणि देयानि कञ्चुकाः कम्बलास्तथा। इति।

और—तिल के भरे पात्रों को, कञ्चुक (कुर्ता, चोंगा, कमीज, कोठ आदि) तथा कम्बल देना चाहिये।

(अष्टकादिनिर्णयकथनम्)

माघपौर्णिमानन्तराऽष्टमी माघी अष्टका, तन्निर्णयः पूर्वेद्युरन्वष्टकानिर्णयश्च पूर्वमुक्तः। मलमासे चैता न भवन्तीत्येतत्सर्वं मार्गशीर्षप्रकरणेऽभिहितम्। तथा चतसृष्वष्टकास्वशक्तावेषा आवश्यकी। 'हेमन्तशिशिरयोश्चतुर्णामपरपक्षाणामष्टमीष्वष्टका एकस्यां वा' इत्याश्वलायनोक्तेः। तथा माघाष्टकां प्रकम्य 'तामेकाष्टकेत्याचक्षते' इत्यापस्तम्बवचनाच्चेत्यादि प्रयोगपारिजाते ज्ञेयम्।

माघोपूर्णिमा के मध्य में माघमास की अष्टमी अष्टका होती है। उसका निर्णय और पूर्वदिन में अन्वष्टका का निर्णय पहले कह चुके हैं। मलमासमें ये नहीं होती हैं यह मार्गशीर्षप्रकरणमें कह दिया है और चार अष्टकाओं में अशक्त हो तो यह आवश्यकीय है। हेमन्त और शिशिर के चार अपरपक्षों की अष्टमी तिथियों में या एक में अष्टका होती है—यह आश्वलायन ने कहा है और माघमास की अष्टका के प्रकरण में—उसीको एक अष्टका कहते हैं। यह आपस्तंबवचन से कहा है-इत्यादि प्रयोगपारिजात से जानना चाहिये।

इति माघमासः।

अथ निर्णयसिन्धुः

(पौषमास और माघमास)

श्लोकसूची

दौलतराम गौड

(प्राचीन व्यवस्थाओं का संग्रह)

(स्वर्गीय-महामहोपाध्याय श्री पं० विद्याधर जी गौड द्वारालिखित)

सङ्कल्पस्यावश्यकत्वविचारः

श्रद्धापूते मनसि कर्तव्यत्वेन निश्चितस्य कर्मणो ब्रह्मसभायामुच्चैर्वाचा यः संवादः स सङ्कल्पः। अथवा क्रियमाणकर्मादौ निमित्तोल्लेखपूर्वकः 'करिष्ये', 'होष्ये' इत्यादिपदोच्चारणसमकालीनदक्षिणहस्तकरणपात्राधिकरणजलादिप्रक्षेपसहितकर्मानुष्ठानप्रतिज्ञा मानसं कर्म सङ्कल्प इत्युच्यते। "सङ्कल्पः कर्म मानसम्" इति।

भविष्यपुराणे—सङ्कल्पेन विना विप्र यत्किञ्चित् कुरुते नरः।
फलं चास्याल्पकं तस्य धर्मस्यार्धक्षयो भवेत्॥ इति।

मार्कण्डेयपुराणे—सङ्कल्पमूलः कामो वै यज्ञाः सङ्कल्पसम्भवाः।
व्रतं नियमधर्मौ च सर्वे सङ्कल्पजाः स्मृताः॥ इति।

बृहद्यमस्मृतौ — सङ्कल्पञ्च नरः कुर्यात् स्नान-दान-व्रतादिके।
अन्यथा पुण्यकर्माणि निष्फलानि भवन्ति वै॥ इति।

सङ्कल्पे तिथ्यादीनामुच्चारणविचारः

ग्रहणादिनिमित्तस्य मास-पक्ष-तिथीनाञ्च प्रयागादेश्च देशविशेषमात्रस्योल्लेखः कार्यः, न तु व्यापकानामुत्तरायणादीनां श्रीमद्भगवत इत्यादीनां चेति केचित्। तन्न, "प्रयागादिषु तीर्थेषु पुण्येष्वायतनेषु च" इति मात्स्यवाक्यात्प्रयागादितीर्थविशेषस्य यथाऽङ्गत्वम्, एवम्—

"आर्यावर्तः पुण्यभूमिर्मध्यं विन्ध्यहिमालयोः" इत्यादिवाक्येनार्यावर्तादिसामान्यस्याऽप्यङ्गत्वावगमात्।

मासपक्षतिथीनां च निमित्तानां च सर्वशः।
उल्लेखनमकुर्वाणो न तस्य फलभाग्भवेत्॥ (देवलः)

इत्यत्र 'सर्वशः' इति पदस्वारस्याच्च सर्वनिमित्तानामुल्लेखः। न चानेनैव सिद्धेर्मासपक्षतिथीनामित्यनर्थकमिति वाच्यम्; विनिगृहीतानां कार्तिक-मात्रादीनामुल्लेखसिद्धावपि तदस्पृष्टसाधारणमासाद्युल्लेखप्राप्त्यर्थत्वात्। अन्यथा अविहितमासादिके आधानादौ ज्योतिष्टोमे एकादशीव्रतादौ च मास-पक्ष-तिथीनामुल्लेखाभावप्रसङ्गः स्यात्। एतेन तेन रूपेण प्रयोगाङ्गतया विहितानामेव मासादीनामुल्लेख इत्यपि परास्तम्।

अनेकदिनसाध्ये कर्मणि तिथ्यादीनां प्रतिदिनमुच्चारणमावश्यकम्

अनेकदिनसाध्ये कर्मणि प्रयोगाधिकरणभूताः सर्वा मासपक्षतिथय उल्लेख्याः, न प्रारम्भदिनमात्रस्य। यत्तु आद्यदिने सङ्कल्पकालीनां तिथिमधिकरणत्वेनोल्लिख्य "ज्योतिष्टोमेनाहं यक्ष्ये", "महारुद्रहोमं करिष्ये" इत्यादि सङ्कल्पवाक्यं प्रयुञ्जते याज्ञिकाः, तत्तु पदानामन्वयायोगादनादर्तव्यमिति दिनकरः। साम्प्रदायिकास्तु नैतत्स्वीकुर्वते। तदुक्तं संस्काररत्नमालायाम्—

यावन्ति कर्मसम्बन्धान्यृक्षाणिस्युस्तु तावताम्।
वारादीनामपि तथा युक्तं सर्वत्र कीर्तनम्॥
केनचित्तु नवीनेन प्रोक्तमेतत्त युक्तितः।
प्रायोगिकास्त्वेकभादेरेव कुर्वन्ति कीर्तनम्॥ इति।

श्री विद्याधरशर्मा गौड़

अथ निर्णयसिन्धुः

(भाषा-टीका-सहित)

(फाल्गुनमास और चैत्रकृष्णपक्ष)

दौलतराम गौड

(फाल्गुनमासः)

(कुंभसंक्रान्तिनिर्णयः)

कुम्भे (पूर्वाः) षोडश घटिकाः पुण्याः । शेषं प्राग्वत् ।

कुंभ की संक्रान्ति में (पहले) सोलह घडी पुण्यकाल होता है। अवशिष्ट कथन पहले की तरह है।

(फाल्गुनकृष्णाष्टम्यां विशेषकथनम्)

फाल्गुनकृष्णाष्टम्यां विशेषः कल्पतरौ–फाल्गुनस्य च मासस्य कृष्णाष्टम्यां महीपते । इत्युपक्रम्य जाता दाशरथेः पत्नी तस्मिन्नहनि जानकी । उपोषितो रघुपतिः समुद्रस्य तटे तदा ॥ रामपत्नी च सम्पूज्या सीता जनकनन्दिनी ॥ इति ।

फाल्गुनकृष्ण अष्टमी में कल्पतरु में विशेष कहा है कि—हे महीपते, फाल्गुनमास के कृष्णपक्ष की अष्टमीतिथि में—यह कह कर-कहा कि—उस दिन श्रीरामचन्द्रजी की पत्नी जानकी उत्पन्न हुई और उसीदिन रघुपति रामचन्द्रजी ने समुद्र के किनारे पर उपवास किया था। इसकारण उसदिन जनक नन्दिनी राम पत्नी सीता का पूजन करे।

(फाल्गुनकृष्णचतुर्दशीशिवरात्रिनिर्णयः)

फाल्गुनकृष्णचतुर्दशी–शिवरात्रिः । सा च केषुचिद्वचनेषु प्रदोषव्यापिनी ग्राह्येत्युक्तं, केषुचिन्निशीथव्यापिनी । तत्राद्या माधवीये––त्रयोदश्यस्तगे सूर्ये चतसृष्वेव नाडिषु ।

भूतविद्धा तु या तत्र शिवरात्रिव्रतं चरेत् ॥

फाल्गुनकृष्णपक्षकी चतुर्दशी को 'शिवरात्रि' कहते हैं और वह किसीबचनों से प्रदोषव्यापिनी ग्रहण करना चाहिये—यों कहा है। किन्ही वचनों से निशीथव्यापिनी ग्रहण करे—यों कहा है।

उसमें आद्य (पहली) माधवीय में कहा है कि—त्रयोदशी के दिन सूर्य के अस्तंगत होने पर चार ही घड़ी में उसमें चतुर्दशीविद्धा हो तो शिवरात्रिव्रत को करे।

(महाशिवरात्रिव्रतनिर्णयकथनम्)

स्मृत्यन्तरेऽपि—प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या शिवरात्रिश्चतुर्दशी । रात्रौ जागरणं यस्मात्तस्मात्तां समुपोषयेत् ॥ अत्र प्रदोषो रात्रिः । उत्तरार्धे तस्यां हेतुत्वोक्तेः ।

स्मृत्यन्तर में भी कहा है कि—शिवरात्रि में चतुर्दशी प्रदोषव्यापिनी ग्रहण करे। रात्रि में जागरण करे। अतः उसमें उपवास करे। यहाँ पर प्रदोप शब्दसे रात्रिका ग्रहण है। उत्तरार्ध में उसका कारण कहा है।

कामिकेऽपि—आदित्यास्तमये काले अस्ति चेद्या चतुर्दशी ।

तद्रात्रिः शिवरात्रिः स्यात्सा भवेदुत्तमोत्तमा ॥ इति ।

कामिक में भी कहा है कि—सूर्यके अस्तसमय में यदि चतुर्दशी हो तो उस रात्रिको 'शिवरात्रि' कहते हैं। वह उत्तमोत्तम होती है।

द्वितीयापि तत्रैव नारदसंहितायाम्—अर्धरात्रियुता यत्र माघकृष्णचतुर्दशी ।

शिवरात्रिव्रतं तत्र सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥

वहीं पर द्वितीया (दूसरी) भी नारदसंहिता में कहा है कि—जिस (तिथि) में आधीरात सहित माघकृष्ण की चतुर्दशी हो। उसमें शिवरात्रिव्रत जो करे उसे 'अश्वमेधयज्ञ' का फल मिलता है।

स्मृत्यन्तरेऽपि—भवेद्यत्र त्रयोदश्यां भूतव्याप्ता महानिशा ।

शिवरात्रिव्रतं तत्र कुर्याज्जागरणं तथा ॥ इति ।

स्मृत्यन्तर में भी कहा है कि—जिस त्रयोदशी की महानिशा में चतुर्दशी प्राप्त हो उसमें शिवरात्रिव्रत और जागरण करे।

ईशानसंहितायाम्—माघकृष्णचतुर्दश्यामादिदेवो महानिशि । शिवलिङ्गतयोद्भूतः कोटिसूर्यसमप्रभः ॥ तत्कालव्यापिनी ग्राह्या शिवरात्रिव्रते तिथिः ॥ इति ।

ईशानसंहिता में कहा है कि—माघकृष्णचतुर्दशी की महानिशा में आदिदेव करोड़ों सूर्य के तुल्य कान्तिवाले लिङ्गरूप शिव उत्पन्न हुए । अतः शिवरात्रिव्रत में तिथि तत्कालव्यापिनी ग्रहण करे ।

अर्धरात्रादधश्चोर्ध्वं युक्ता यत्र चतुर्दशी । तत्तिथावेव कुर्वीत शिवरात्रिव्रतं व्रती ॥

आधीरात के पहले और आधी रात के बाद जहाँ चतुर्दशी युक्त हो उसी तिथि में ही व्रती शिवरात्रि व्रत को करे ।

नार्धरात्रादधश्चोर्ध्वं युक्ता यत्र चतुर्दशी । नैव तत्र व्रतं कुर्यादायुरैश्वर्यहानितः ॥

आधीरात के पहले और आधीरात के बाद जहाँ पर चतुर्दशी युक्त न हो वहाँ पर व्रत को न करे । क्योंकि व्रत करने से आयु, तथा ऐश्वर्य की हानि होती है ।

अर्धरात्रश्च द्वितीयामान्त्यतृतीययामाद्यघटीरूप इति माधवः । वचनं तूक्तं प्राक् । एवं सति पूर्वेद्युरेवोभयव्याप्तौ पूर्वैव ।

और आधीरात से दूसरे यामकी अन्त्य घड़ी और तीसरे याम की पहली घड़ीद्वयरूप को माधव कहते हैं । वचन तो पहले कह चुके हैं । इसप्रकार पहले दिन हो तो उभयव्याप्ति में पूर्वा ही ग्रहण करे ।

त्रयोदशी यदा देवि दिनभुक्तिप्रमाणतः । जागरे शिवरात्रिः स्यान्निशि पूर्णा चतुर्दशी ॥ इति स्कान्दोक्तेः । दिनभुक्तिरस्तमयः ।

स्कन्दपुराण में कहा है कि—हे देवि, जब त्रयोदशी अस्तसमय तक हो रात्रि में पूर्ण चतुर्दशी हो वह जागरण में शिवरात्रि होती है । दिन भुक्ति माने अस्तमय है ।

जयन्ती शिवरात्रिश्च कार्ये भद्राजयान्विते । इति स्कान्दाच्च ।

और स्कन्दपुराण का मत है कि—जयन्ती तथा शिवरात्रि को क्रमसे भद्रा और जया से युक्त करे ।

दिनद्वये निशीथव्याप्तौ तु हेमाद्रिमते पूर्वा । अर्धरात्रात्पुरस्ताच्चेज्जयायोगो यदा भवेत् । पूर्वविद्धैव कर्तव्या शिवरात्रिः शिवप्रियैः ॥ इति पाद्मवचनात् । मदनरत्नेऽप्येवम् । गौडा अप्येवमाहुः ।

दोनों दिन निशीथ (रात के आठवें मुहूर्त को 'निशीथ' कहा जाता है) में प्राप्त हो तो हेमाद्रिमत से पहली ग्रहण करे ।

पद्मपुराण का वचन है कि—आधीरात के पूर्व जब 'जया' का योग हो तो [1]शिवरात्रिव्रत शिवके प्रेमियोंको पूर्वविद्धा ही करना चाहिये । मदनरत्न में भी यही कहा है । गौड भी यही कहते हैं ।

निर्णयामृते तु सर्वापि शिवरात्रिः प्रदोषव्यापिन्येव । अर्धरात्रवाक्यानि कैमुतिकन्यायेन प्रदोषस्तावकानीत्युक्तम् । तन्न, अर्धरात्रस्य पूर्वं कर्मकालत्वोक्तेः । परदिने प्रदोषनिशीथोभयव्याप्तित्वात्परैवेति तु माधवः । इदमेव च युक्तं प्रतीमः ।

निर्णयामृत में कहा है कि—सारी शिवरात्रि भी प्रदोषव्यापिनी ही ग्रहण करे । आधीरात वाक्यों को कैमुतिकन्याय (यदि अर्धरात्रव्यापिन्या अपि ग्रहणं तदा किमु प्रदोषव्यापिन्याः शङ्का इति) से प्रदोष की स्तुतिपरक हैं । यों कहा । यह उचित नहीं है । आधीरात के पहले कर्मकाल को कहा है । दूसरे दिन में प्रदोष और निशीथ इन दोनों की प्राप्ति के रहने में तो पराही ग्रहण करे—यह माधव मत है (कमलाकर भट्ट कहते हैं) यही युक्त हमको मालुम होता है ।

परेद्युः प्रागुक्तार्धरात्रस्यैकदेशव्याप्तौ पूर्वेद्युः सम्पूर्णतद्व्याप्तौ च सत्यपि परेद्युः प्रदोषनिशीथोभययोगे पूर्वेद्युः सम्पूर्णव्याप्तेः पूर्वैव ।

दूसरे दिन पहले कह चुके राधी रात के एकदेश (एक भाग) व्याप्ति में पहले दिन करे और

संपूर्ण उसकी व्याप्ति में भी दूसरे दिन प्रदोष और निशीथ इन दोनों के योग में पहले दिन संपूर्ण व्याप्ति में पूर्वा ही ग्रहण करे।

व्याप्यार्धरात्रं यस्यां तु लभ्यते या चतुर्दशी। तस्यामेव व्रतं कार्यं मत्प्रसादार्थिभिर्नरैः॥ तदूर्ध्वाधोन्विता भूता सा सा कार्या व्रतिभिः सदा॥ इति माधवधृतेशानसंहितोक्तेः पूर्वेद्युर्निशीथस्य परेद्युः प्रदोषस्येत्येकैकव्याप्तौ तु पूर्वैव। जयायोगस्य प्राशस्त्यात्।

माधवमतसे ईशानसंहिता में कहा है कि—जिस तिथि में आधीरात को प्राप्तकर चतुर्दशी की प्राप्ति होती है। उसीतिथि में ही मेरी प्रसन्नता से मनुष्य अपनी कामनाओं के लिए व्रतको करें। आधीरात के ऊपर और आधीरात के बाद चतुर्दशी को सदा व्रत करनेवाले करें।

निशीथ के पहलेदिन और प्रदोष में दूसरे दिन एकदेश की व्याप्ति में तो पूर्वा ही ग्रहण करे। क्योंकि जयायोग का प्राशस्त्य (प्रशंसा) है।

तच्चोक्तं नागरखण्डे—माघफाल्गुनयोर्मध्ये असिता या चतुर्दशी।
अनङ्गेन समायुक्ता कर्तव्या सा सदा तिथिः॥ इति।

उसी बात को नागरखण्ड में कहा है कि—माघ-फाल्गुन के मध्य में जो कृष्णपक्ष की चतुर्दशी है वह अनंग (त्रयोदशी) तिथि से युक्त सदा करे।

पाद्मे—अर्धरात्रात्पुरस्ताच्चेज्जयायोगो यदा भवेत्।
पूर्वविद्धैव कर्तव्या शिवरात्रिः शिवप्रियैः॥ इति।

पद्मपुराण का मत है कि—आधीरात के पूर्व यदि जयायोग हो तो शिव के प्रिय मनुष्यों को पूर्वविद्धा ही शिवरात्रि करना चाहिये।

स्कान्देऽपि—भवेद्यत्र त्रयोदश्यां भूतव्याप्ता महानिशा।
शिवरात्रिव्रतं तत्र कुर्याज्जागरणं तथा॥ इति।

स्कन्दपुराण में भी कहा है कि—जहाँपर त्रयोदशी की महानिशा में चतुर्दशी प्राप्त हो तो उसमें शिवरात्रिव्रत और जागरण करे।

महतामपि पापानां दृष्टा वै निष्कृतिः पुरा। न दृष्टा कुर्वतां पुंसां कुहूयुक्तां तिथिं शिवाम्॥ इति स्कान्दे दर्शयोगस्य निन्दितत्वाच्च। यदा चतुर्दशी पूर्वेद्युर्निशीथादूर्ध्वं प्रवृत्ता परेद्युश्च निशीथादर्वागेव तदा परेद्युरेकव्याप्तिसत्त्वात्परैव।

महान् पापों की भी निश्चय से निष्कृति (छेदन) पहले देखा। नहीं करनेवाले पुरुषों की कुहू युक्त शिवातिथि नहीं देखा और यह स्कन्दपुराण में दर्शयोग की निन्दा है। जब चतुर्दशी पहले दिन निशीथ के बाद प्रवृत्त है और दूसरे दिन निशीथ (आधीरात) के पहले ही समाप्त हो गयी तो दूसरे दिन एकदेश व्याप्ति होने से परा ही करे।

माघासिते भूतदिनं हि राजन्नुपैति योगं यदि पञ्चदश्याः। जयाप्रयुक्तां न तु जातु कुर्याच्छिवस्य रात्रिं प्रियकृच्छिवस्य॥ इति वचनात्।

वचन है कि—माघकृष्णचतुर्दशीतिथि में हे राजन्, यदि अमावास्या का योग प्राप्त हो तो और जया से युक्त हो तब भी शिवप्रिय शिवरात्रि नहीं करें।

एवं दिनद्वये प्रदोषव्याप्त्यभावे निशीथव्याप्तिसत्त्वात्पूर्वैव। तेन दिनद्वये निशीथव्याप्तौ प्रदोषव्याप्त्या निर्णयः। दिनद्वये प्रदोषव्याप्तौ निशीथेन निर्णयः। एकैकव्याप्तौ तु निशीथेन निर्णय इति।

इसप्रकार दोनों दिन प्रदोषप्राप्ति के अभाव में निशीथ की प्राप्ति में पहली ही ग्रहण करे। इससे दोनों दिन निशीथस्पर्श में प्रदोष की प्राप्ति से निर्णय करे। (निशीथव्याप्तौ—निशीथास्पर्शे। प्रदोषव्याप्तौ—परेद्युरेवेत्यर्थः। निशीथेन—पूर्वेद्युरेवेत्यर्थः। नव्यास्तु शिवरात्रिव्रते रात्रिः प्रधानम्। 'उदये अन्विता ग्राह्याः

कचिदस्तमयेऽन्विताः । व्रतिभिस्तिथयो यस्माद्वर्जयित्वा त्विदं व्रतम् ॥) एक एक की प्राप्ति में तो निशीथ से निर्णय करे ।

(इयं रविभौमसोमवारयुतश्चातिप्रशस्तम्)

इयं च रविभौमसोमवारेषु शिवयोगे चातिप्रशस्ता ।

यह रविवार, मंगलवार और सोमवारों में तथा शिवयोग में अति उत्तम है ।

(कृत्तिवासेश्वरस्यार्चनम्)

हेमाद्रौ तीर्थखण्डे लैङ्गे—फाल्गुनस्य चतुर्दश्यां कृष्णपक्षे समाहिताः । कृत्तिवासेश्वरं लिङ्गमर्चयन्ति शिवं शुभे ॥ ते यान्ति परमं स्थानं सदाशिवमनामयम् ॥

हेमाद्रि के तीर्थखण्ड में लिङ्गपुराण का मत है कि—फाल्गुनकृष्णपक्ष की चतुर्दशी को सावधानी से कृत्तिवासेश्वरलिङ्ग में शंकर को अर्चना करते हैं । हे शुभे, वे लोग सदा आनन्दित और रोग रहित हो उत्तम स्थान को जाते हैं ।

(शिवरात्रिपारणानिर्णयः)

(अथ) शिवरात्रिपारणानिर्णयः । शिवरात्रिपारणे तु विरुद्धवाक्यानि दृश्यन्ते । स्कान्दे–कृष्णाष्टमी स्कन्दषष्ठी शिवरात्रिचतुर्दशी । एताः पूर्वयुताः कार्यास्तिथ्यन्ते पारणं भवेत् ॥ जन्माष्टमी रोहिणी च शिवरात्रिस्तथैव च । पूर्वविद्धैव कर्तव्या तिथिभान्ते च पारणम् ॥ इति ।

(अब) शिवरात्रिपारण का निर्णय करते हैं । शिवरात्रि पारणा में तो विरुद्ध वचन दिखते हैं । स्कन्दपुराण में कहा है कि—कृष्णपक्ष की अष्टमी, स्कन्दषष्ठी, शिवरात्रि और चतुर्दशी ये पूर्वविद्धा ग्रहण करे तथा तिथि के अन्त में पारणा करे । जन्माष्टमी, रोहिणी वैसे ही शिवरात्रि को पूर्वविद्धा ही करे । तिथि तथा नक्षत्र के अन्त में पारणा करे ।

तिथिमध्येऽपि पारणं स्कान्दे उक्तम्—उपोषणं चतुर्दश्यां चतुर्दश्यां तु पारणम् ।
कृतैः सुकृतलक्षैश्च लभ्यते वाथवा न वा ॥

स्कन्दपुराण में कहा है कि—तिथि के मध्य में भी पारणा करे । चतुर्दशी में उपवास करे और चतुर्दशी में ही पारणा करे । लक्ष सुकृत पुण्यों के करने से फल मिले या न मिले ।

ब्रह्माण्डोदरमध्ये तु यानि तीर्थानि सन्ति वै । संस्नातानि भवन्तीह भूतायां पारणे कृते ॥

ब्रह्माण्ड के उदर के मध्य में जितने तीर्थ निश्चयरूप से हैं उनके स्नान का फल चतुर्दशी में पारणा करने से हो जाता है ।

तिथीनामेव सर्वासामुपवासव्रतादिषु । तिथ्यन्ते पारणं कुर्याद्विना शिवचतुर्दशीम् ॥ इति ।

सब तिथियों के उपवास, व्रत आदियों में शिवचतुर्दशी के विना तिथ्यन्त में पारणा करे ।

अत्र यामत्रयादर्वाक् चतुर्दशीसमाप्तौ तदन्ते तदूर्ध्वगामिन्यां तु प्रातस्तिथिमध्य एवेति हेमाद्रिमाधवादयो व्यवस्थामाहुः ।

हेमाद्रि माधव आदि ने व्यवस्था को कहा है कि—यहाँ पर तीन याम के पूर्व चतुर्दशी की समाप्ति में उसके अन्त में उसके ऊर्ध्वगामिनी पर तो प्रातःकाल तिथि के मध्य में ही पारणा करे ।

तन्न । तिथ्यन्ते तिथिभान्ते वा पारणं यत्र चोदितम् । यामत्रयोर्ध्वगामिन्यां प्रातरेव हि पारणा ॥ इत्यादिसामान्यवचनैरेव व्यवस्थासिद्धेरुभयविधवाक्यवैयर्थ्यापत्तेः ।

यह ठीक नहीं है । क्योंकि—तिथि के अन्त में या तिथि और नक्षत्र के अन्त में जहाँ पारणा को कहा है वहाँ पर यदि तिथि तीन याम के ऊपर गयी हो तो प्रातःकाल ही पारणा करे । इत्यादि सामान्यवचनों से ही व्यवस्था की सिद्धि से उभयविध वाक्यों में व्यर्थता की आपत्ति हो जायगी ।

वयं तु तिथ्यन्ते पारणं भवेत्–इति कृष्णाष्टम्यादिविषयमेव, न तु शिवरात्रिविषयम् । तदुपादानं तु पूर्वयुतत्वमात्रकथनार्थम् । कथमन्यथा स्कान्दे एव शून्यहृदयवाक्यवत्तिथिमध्ये पारणविधानं

घटते। तस्मात् 'विना शिवचतुर्दशीम्' इति पर्युदस्तत्वाच्छिवरात्र्याः सर्वप्रकारेषु तिथिमध्य एव पारणेति ब्रूमः। शिष्टाचारोप्येवमेव।

हम तो (कमलाकर भट्ट) तिथि के अन्त में पारणा हो। यों कहते हैं। यह कृष्णपक्ष की अष्टमी आदि विषय पर कही है। शिवरात्रि विषयक नहीं हैं। उसका उपादान (ग्रहण) पूर्वविद्धामात्र के कथनार्थ है। कैसे अन्यथा स्कन्दपुराण में ही शून्यहृदय के वाक्य (वचन) के सदृश तिथि के मध्य में पारणा का विधान कैसे घट सकता है। इसलिए चतुर्दशी के विना सबप्रकारों से तिथि के मध्य में ही पारणा करना कहा है। शिष्टाचार भी यही है।

दीपिकायां तु रात्रावपि तिथ्यन्त एवोक्तम्—'व्रततिथेरन्ते निशीथेऽपि वाश्नीयात्' इति।

दीपिका में तो रात्रि में भी तिथि के अन्त में ही पारणा कहा है। व्रततिथि के अन्त में या निशीथ (आधीरात) में भोजन करे—अर्थात्-पारणा करे।

मदनरत्नकालादर्शयोस्तु—सा ह्यस्तमयपर्यन्तं व्यापिनी चेत्परेऽहनि।
दिवैव पारणं कुर्यात्पारणे नैव दोषभाक्॥ इत्युक्तम्।

मदनरत्न और कालदर्श में कहा है कि—वह सूर्य के अस्तपर्यन्त व्यापिनी हो तो दूसरे दिन दिनमें ही पारणा करे। पारणा करने में दोष का भागी नहीं होता है। यों कहा है।

तन्न। तिथिमध्ये पारणविधानान्निषेधे फलायोगाच्च तिथ्यन्तानपेक्षणाद्दोषाप्रसक्त्या चतुर्थपादासङ्गतेः। तेनेदं शिवरात्रिभिन्नव्रतपरं ज्ञेयम्।

यह ठीक नहीं है। तिथि के मध्य में पारणा का विधान होने से और निषेध में फल के अयोग से तिथ्यन्त की अपेक्षा के अभाव से दोषकी अप्रसक्ति से चतुर्थपाद असंगत हो जायगा। इससे यह शिवरात्रि व्रत से भिन्न व्रतपरक है—यह जानना चाहिये।

(इदं व्रतं नित्यं चेत्युक्तम्)

इदं व्रतं संयोगपृथक्त्वन्यायेन नित्यं काम्यं च। तथा च माधवीये स्कान्दे—परात्परतरं नास्ति शिवरात्रि परात्परम्। न पूजयति भक्त्येशं रुद्रं त्रिभुवनेश्वरम्। जन्तुर्जन्मसहस्रेषु भ्रमते नात्र संशयः॥ इत्यकरणे प्रत्यवायश्रवणात्।

यह व्रत संयोगपृथक्त्वन्याय (एकस्योभयार्थत्वे संयोगपृथक्त्वन्यायः) से नित्य और काम्य है। उसी बात का माधवीय में स्कन्दपुराण के वचन से कहा है कि—शिवरात्रिव्रत से बढ़कर कोई व्रत नहीं है। जो मनुष्य भक्ति द्वारा ईश रुद्र त्रिभुनेश्वर की पूजा नहीं करता है। वह हजारों जन्म तक भ्रमण करता है। इसमें संशय नहीं है। इस वचन द्वारा न करने से प्रत्यवाय सुना गया है।

वर्षे वर्षे महादेवि नरो नारी पतिव्रता। शिवरात्रौ महादेवं नित्यं भक्त्या प्रपूजयेत्॥ इति वीप्साश्रुतेः।

हे महादेवि, प्रतिवर्ष में मनुष्य और पतिव्रता स्त्री शिवरात्रि में नित्यभक्ति से महादेव की पूजा करे। इस वचन में वीप्सा के श्रवण से।

अर्णवो यदि वा शुष्येत क्षीयते हिमवानपि। चलन्त्येते कदाचिद्वै निश्चलं हि शिवव्रतम्॥ इति वचनाच्च नित्यता।

और—यदि समुद्र भी सूख जाय और हिमालय का भी क्षय हो जाय। कदाचित् ये चले जांय तब भी शिवव्रत को निश्चित करे। इस वचन से नित्यता है।

मम भक्तस्तु यो देवि शिवरात्रिमुपोषकः । गणत्वमक्षयं दिव्यमक्षयं शिवशासनम् ॥ सर्वान् भुक्त्वा महाभोगान् ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥ इति स्कान्दात् ।

स्कन्दपुराण में कहा है कि—हे देवि, जो मेरा भक्त शिवरात्रि में उपवास करता है उसे नहीं क्षय होने वाला दिव्यगण बनाता हूँ। यह शिव की शिक्षा है। वह सब महाभोगों को भोगकर अन्त में मोक्ष को प्राप्त करता है।

'द्वादशाब्दिकमेतस्माच्चतुर्विंशाब्दिकं तु वा । इति तत्रैवेशानसंहितावचनात् काम्यता ।

वहीं पर ईशानसंहिता का वचन है कि—यह बारह वर्ष या चौविस वर्ष के पापों का नाश करता है। इससे इसमें काम्यता है।

तत्रैव—शिवरात्रिव्रतं नाम सर्वपापविनाशनम् । आचण्डालमनुष्याणां भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥

शिवरात्रि नामवाला व्रत सब पापों को शमन करनेवाला है। आचाण्डालान्त (चाण्डाल पर्यन्त) मनुष्यों को भुक्ति तथा मुक्ति को देनेवाला है।

अत्र जागरोपवासपूजाः समुदिताः व्रतं, न तु प्रत्येकम् । समुदितानां फलसम्बन्धात् ।

यहाँ पर जागरण, उपवास और पूजा करना एक साथ व्रत है। अलग-अलग नहीं है। क्योंकि इकट्ठे का फल सम्बन्ध है।

यत्तु—अथवा शिवरात्रिं च पूजाजागरणैर्नयेत् ।

जो किसी ने कहा कि—या शिवरात्रि को पूजा और जागरणों से व्यतीत करे।

(व्रतलक्षणम्)

तथा–अखण्डितव्रतो यो हि शिवरात्रिमुपोषयेत् । सर्वान् कामानवाप्नोति शिवेन सह मोदते ॥

और—जो मनुष्य अखण्डित व्रत को जो व्रती होकर ही शिवरात्रि में उपवास करता है। उसकी सारी इच्छायें प्राप्त होती हैं तथा शिव के साथ आनन्द करता है।

कश्चित्पुण्यविशेषेण व्रतहीनोऽपि यः पुमान् । जागरं कुरुते तत्र स रुद्रसमतां व्रजेत् ॥ इत्यादि स्कान्दं, तदनुकल्पत्वादशक्तपरम् ।

जो पुरुष व्रत से हीन भी कभी पुण्यविशेष से शिवरात्रि में जागरण करता है वह रुद्र के बराबर होता है। इत्यादि स्कन्दपुराण का वचन है वह अनुकूल होने से अशक्त विषयक है।

माघेतरप्रतिमासशिवरात्रिस्तु—शिवरात्रिशब्दस्य माघकृष्णचतुर्दश्यामेव रूढत्वात् ।

माघमास से इतर हर महिनों में शिवरात्रि है। उसमें तो शिवरात्रिशब्द का माघकृष्ण चतुर्दशी में ही [1]रूढ है।

माघमासस्य शेषे या प्रथमा फाल्गुनस्य च । कृष्णा चतुर्दशी सा तु शिवरात्रिः प्रकीर्तिता ॥ इति हेमाद्रौ वचनाच्च नायं निर्णयस्तत्रेति रात्रौ यामचतुष्टये पूजाविधानाद्यस्मिन् दिने अधिका रात्रिव्याप्तिः सा ग्राह्या साम्ये तु पूर्वैवेति हेमाद्रिरूचिवान् ।

और हेमाद्रिनिबन्ध में वचन है कि—माघमास के शेष में और जो फाल्गुनमास के-कृष्णपक्ष की पहली चतुर्दशी है उसे 'शिवरात्रि' कहा है। वहाँ पर यह निर्णय नहीं है। रात्रि में चारो यामों में (प्रहरों में) पूजा का विधान कहा है। जिस दिन में अधिक रात्रि व्यापिनी हो वह ग्रहण करना चाहिये। यदि दोनों दिन बराबर हो तो पूर्वा ही ग्रहण करे—यह हेमाद्रि ने कहा है।

१—यः प्रकृतिप्रत्ययावनपेक्ष्य केवलसमुदायशक्त्या स्वार्थमभिधत्ते सरूढ इत्युच्यते । यः प्रकृतिप्रत्ययावपेक्ष्य समुदायशक्त्याऽर्थमभिधत्ते स योगरूढः । यः प्रकृतिप्रत्ययोर्योगमात्रेणार्थं प्रतिपादयति स यौगिकः ।

(तद्धि चतुर्दश्यां कर्तव्यम्)

वस्तुतस्तु प्रतिमासकृष्णचतुर्दश्यामपि–सर्वकामप्रदं कृष्णचतुर्दश्यां शिवव्रतम् । इत्युपक्रम्य 'चतुर्दशाब्दं कर्तव्यं शिवरात्रिव्रतं शुभम् । इति हेमाद्रौ कालोत्तरे शिवरात्रिशब्दप्रयोगात्कौण्डपायिनामयनाग्निहोत्रे नैत्याग्निहोत्रधर्मा इव तद्धर्मप्राप्तिः स्यादेव । अतः प्रदोषनिशीथोभयव्याप्त्यैव निर्णय इति वयं प्रतीमः ।

सिद्धान्त तो यह है कि—हर महिने के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी में भी—सब कामनाओं को देने वाला शिवव्रत[1] को कृष्णपक्ष की चतुर्दशी में करे। ऐसा प्रारंभ कर—चौदहवर्ष तक शुभ शिवरात्रि व्रत को करना चाहिये। यह हेमाद्रि में कालोत्तर के कथन से शिवरात्रिशब्द के प्रयोग से [2]कुण्डपायिनानामयनाग्निहोत्र में नित्याग्निहोत्र धर्मों की तरह उस धर्म की प्राप्ति हो जायगी ही इसलिये प्रदोष और निशीथ के उभयप्राप्ति में ही निर्णय है। यह हम (कमलाकर भट्ट) मानते हैं।

(अस्यारंभो हेमाद्रौ निबन्धे)

अस्यारम्भो हेमाद्रौ स्कान्दे—आदौ मार्गशिरे मासि दीपोत्सवदिनेऽपि वा ।
गृह्णीयान्माघमासे वा द्वादशैवमुपोषयेत् ॥

इसका आरंभ हेमाद्रि में स्कन्दपुराणपुराण का वचन है—कि—पहले मार्गशीर्षमास में या दीपोत्सव के दिन में या माघमास में ग्रहण करे और बारह ही उपवास करे।

तथा–दीपोत्सवे तथा माघे कृष्णा यातु चतुर्दशी । द्वादशस्वपि मासेषु प्रकुर्यादिह जागरम् ॥ एवं द्वादशवर्षेषु द्वादशैव तपोधनान् ॥ वरयेदिति शेषः । चतुर्दश वा विप्रानाचार्यं च वृत्वा—

और दीपोत्सव में और माघमास के कृष्णपक्ष की जो चतुर्दशी है और बारहमासों में भी यहाँ पर जागरण करे। इसप्रकार बारहवर्षों में बारह या चौदह ही तपस्वी ब्राह्मणों का और आचार्य का वरण करे।

(उद्यापनविधिः)

कुम्भोपरि न्यसेद्देवमुमया सहितं शिवम् । सौवर्णेऽप्यथ वा रौप्ये वृषभे संस्थितं शुभे ॥ इत्युक्तम् ।

हे शुभे, सुवर्ण या चांदी के बैल पर स्थित कुंभ के ऊपर उमा के सहित शिव की स्थापना करे। ऐसा कहा है।

१—शिवरात्रिपूजा—तत्र विशेषः—रात्रौ प्रथमप्रहरे—शिवपूजां करिष्ये—इति सङ्कल्प्य ॐ ह्रौं ईशानाय नमः—इति प्रथमप्रहरे क्षीरेण स्नपनम् । शिरात्रिव्रतं देव पूजाजपपरायणः । करोमि विधिवत्तत्र गृहाणार्घ्यं दिवाकर ॥ इत्यर्घं कार्यम् ।

द्वितीयप्रहरे—ॐ ह्रौं अघोराय नमः—इति दध्ना स्नपनम् । 'नमः शिवाय शान्ताय सर्वपापहराय च । शिवरात्रौ ददाम्यर्घ्यं प्रसीद उमया सह ॥ इत्यर्घ्यदानं कार्यम् ।

तृतीयप्रहरे—ॐ ह्रौं वामदेवाय नमः—इति घृतेन स्नपनम् । दुःखदारिद्र्यशोकेन दग्धोऽहं पार्वतीपते । शिवरात्रौ ददाम्यर्घ्यमुमाकान्त गृहाण मे ॥ इत्यर्घ्यं दद्यात् ।

चतुर्थप्रहरे—ॐ ह्रौं सद्योजाताय नमः—इति मधुस्नपनम् । मया कृतान्यनेकानि पापानि हर शङ्कर । शिवरात्रौ ददाम्यर्घ्यमुमाकान्त गृहाण मे ॥ इत्यर्घ्यं दद्यात् ।

ततः प्रभाते—अविघ्नेन व्रतं देव त्वत्प्रसादात्समापितम् । क्षमस्व जगतां नाथ त्रैलोक्याधिपते हर ॥ यन्मयाऽद्य कृतं पुण्यं तद् रुद्रस्य निवेदितम् । त्वत्प्रसादान्महादेव व्रतमद्य समापितम् ॥ प्रसन्नो भव मे श्रीमन्सद्गतिः प्रतिपाद्यताम् । त्वदा लोकनमात्रेण पवित्रोऽस्मि न संशयः ॥ इति व्रतं समापयेत् । यथाशक्ति ब्राह्मणान् भोजयित्वा संसारक्लेशदग्धस्य व्रतेनानेन शङ्कर । प्रसीद सुमुखो नाथ ज्ञानदृष्टिप्रदो भव ॥ इति संप्रार्थ्य बन्धुभिः सह पारणं कुर्यात् ।

२—'कुण्डपायिनामयनम्' में मासपर्यन्त होनेवाले अग्निहोत्र में जिसप्रकार नित्य अग्निहोत्र धर्मों की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार यहाँ पर फाल्गुनकृष्णपक्षीय महाशिवरात्रि व्रत के धर्मों की प्राप्ति–प्रतिमास में होनेवाली शिवरात्रि व्रतों में हो जायगी। 'कुण्डपायिनामयनम्' का निरूपण कात्यायन श्रौतसूत्र के चौविसवें अध्याय की चौथी कण्डिकों के इक्कीसवें सूत्र में हैं)।

हैमीं मूर्तिं सम्पूज्य स्थिरं चरं वा लिङ्गं पञ्चामृतसहस्रशतपञ्चाशत्तदर्द्धान्यतमकुम्भैः संस्नाप्य सम्पूज्य जागरणं कृत्वा परेद्युस्तिलान् सहस्रं शतं वा हुत्वा विप्रेभ्यो वस्त्राणि द्वादश गाश्च दत्त्वा आचार्याय धेनुं शय्यां च दत्त्वा विप्रान् भोजयेदिति मदनरत्ने यत्तम् ।

सुवर्ण की मूर्तिका पूजन कर स्थिर या चर लिंग को पञ्चामृत के हजार, सौ, पचास या पचीस कुंभों से स्नान कराकर पूजन तथा जागरण कर दूसरे दिन तिलों से एकहजार या सौ आहुति देकर ब्राह्मणों को वस्त्र और बारह गौ देकर आचार्य के लिए धेनु तथा शय्या को देकर ब्राह्मणों को भोजन करावे—यह मदन रत्न में कहा है ।

(माघामावास्यायुगादिः)

माघामावास्या युगादिः । तदुक्तम्—'माघमासे त्वमावास्या' इति । अन्यत् प्राग्वत् ।

माघी अमावास्या युगादि है। उसी बात को कहा है कि—माघमास में अमावास्या युगादि है। अन्य बातें पहले कह चुके हैं ।

(अत्र विशेषयोगे श्राद्धकथनम्)

तथान्योऽपि विशेषो विष्णुपुराणे—माघासिते पञ्चदशी कदाचिदुपैतियोगं यदि वारुणेन । ऋक्षेण कालः सपरः पितॄणां न ह्यल्पपुण्यैर्नृप लभ्यतेऽसौ ॥ इति । वारुणम्=शतभिषक् । इदं च कुम्भादित्ये ज्ञेयमिति हेमाद्रिः ।

उसमें भी अन्यविशेष विष्णुपुराण में कहा है कि—कदाचित् माघमास के कृष्णपक्ष की पञ्चदशी (अमावास्या) को यदि शतभिषानक्षत्र (पूर्वाभाद्रपद का उपलक्षण है) योग प्राप्त हो तो वह समय उत्तम पितरों का है । हे नृप, यह अल्पपुण्यवालों को नहीं प्राप्त होता है। वारुण माने—शतभिषा और यह कुंभ के सूर्य में जानना चाहिये—यह हेमाद्रि ने कहा है ।

भारते—काले धनिष्ठा यदि नाम तस्मिन् भवेत्तु भूपाल तदा पितृभ्यः ।
दत्तं तिलान्नं प्रददाति तृप्तिं वर्षायुतं तत् कुलजैर्मनुष्यैः । इति ।

भारत में कहा है कि—हे भूपाल, यदि उस काल में धनिष्ठानामक नक्षत्र हो तो उस कुल के मनुष्यों द्वारा पितरों के लिए तिल देने से अयुतवर्ष तक तृप्ति होती है ।

(फाल्गुनपौर्णमास्यां होलिकानिर्णयः)

फाल्गुनपौर्णमासी होलिका । सा च सायाह्नव्यापिनी ग्राह्या । 'सायाह्ने होलिकां कुर्यात् पूर्वाह्ने क्रीडनं गवाम् । इति वचनादिति निर्णयामृते उक्तम् ।

फाल्गुनमास के पौर्णिमासी को होलिका कहते हैं। वह सायाह्नव्यापिनी ग्रहण करे। सायाह्न में होलिका करे और पूर्वाह्न में गौवों की क्रीडा करे—यह वचन निर्णयामृत में कहा है ।

ज्योतिर्निबन्धे तु—प्रतिपद्भूतभद्रासु याऽर्चिता होलिका दिवा ।
संवत्सरं च तद्राष्ट्रं पुरं दहति साद्भुतम् ॥

ज्योतिर्निबन्ध में तो कहा है कि—प्रतिपदा, चतुर्दशी और भद्रा में जो होलिका को दिन में पूजित करता है वह एक साल तक उस देश (राष्ट्र) को और नगर को आश्चर्य से दहन करती है ।

प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या पौर्णिमा फाल्गुनी सदा । तस्यां भद्रामुखं त्यक्त्वा पूज्या होला निशामुखे ॥ इति नारदवचनात् प्रदोषव्यापिनीत्युक्तम् ।

सदा फाल्गुनमास की पौर्णिमा को प्रदोषव्यापिनी ग्रहण करे। उसमें भद्रा के मुख को त्याग कर निशामुख में होली का पूजन करे। इस नारद के वचन से प्रदोषव्यापिनी ग्रहण करे—यों कहा है।

हेमाद्रौ मदनरत्ने च भविष्ये—अस्यां निशागमे पार्थ संरक्ष्याः शिशवो गृहे । गोमयेनोपलिप्ते च सचतुष्के गृहाङ्गणे ॥ इत्यादिना तत्रैव तद्विधानाच्च । तेनेयं पूर्वविद्धा—श्रावणी दुर्गनवमी दूर्वा

चैव हुताशनी । पूर्वविद्धैव कर्तव्या शिवरात्रिर्बलेर्दिनम् ॥ इति बृहद्यमब्रह्मवैवर्तोक्तेश्च । दिनद्वये प्रदोषव्याप्तौ परैव ।

हेमाद्रि तथा मदनरत्न में भविष्यपुराण का वचन है कि—हे पार्थ, इस पूर्णिमा में रात्रि के आने पर गोमय से किये हुए चौकोर गृहाङ्गण (घर के चौक) में बालकों की रक्षा करे । इत्यादि से वहाँ पर उसका विधान कहा है ।

इससे यह पूर्वविद्धा (अर्थात्—पूर्वदिन ही प्रदोषकाल में प्राप्त होने पर) ग्रहण करे—श्रावणी, दुर्गानवमी, दूर्वाष्टमी, हुताशनी (होली), शिवरात्रि, तथा बलिकादिन वे सब पूर्वाविद्धा ही करना चाहिये । यह बृहद्यम और ब्रह्मवैवर्तपुराण में कहा है । दोनों दिन प्रदोषकाल में प्राप्त हो तो दूसरी ही ग्रहण करे ।

(भद्रानिर्णयः)

पूर्वदिने भद्रासत्त्वात् तत्र च होलिकानिषेधात् ।

तदुक्तं निर्णयामृते मदनरत्ने च पुराणसमुच्चये—भद्रायां दीपिता होली राष्ट्रभङ्गं करोति वै ।
नगरस्य च नैवेष्टा तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥

पहले दिन भद्राके रहने से उसमें होलिका का निषेध है । उसी बात को निर्णयामृत में, मदनरत्न में और पुराणसमुच्चय में कहा है कि—भद्रा में होली को प्रदीप्त (जलाने पर) करने पर निश्चय राष्ट्र भंग करती है तथा नगर का भी इष्ट नहीं करती है । अतः उसको त्याग दे ।

तथा—भद्रायां द्वे न कर्तव्ये श्रावणी फाल्गुनी तथा ।
श्रावणी नृपतिं हन्ति ग्रामं दहति फाल्गुनी ॥

और—भद्रा में दो कार्य नहीं करना चाहिये—श्रावणी तथा फाल्गुनी । उसमें श्रावणी राजा का नाश करती है और फाल्गुनी गांव को जलाती है ।

तथा—दिनार्धात्परतोऽपि स्यात्फाल्गुनी पूर्णिमा यदि ।
रात्रौ भद्रावसाने तु होलिका दीप्यते तदा ॥ इति ।

और दिन के आधे भाग बाद भी यदि फाल्गुनमास की पूर्णिमा हो तो रात में भद्रा की समाप्ति पर होलिका को प्रदीप्त करे ।

यदा तु पूर्वदिने चतुर्दशी प्रदोषव्यापिनी परदिने च क्षयवशात् सायाह्नात् प्रागेव पूर्णिमा समाप्यते, तदा पूर्वदिने सम्पूर्णरात्रौ भद्रासत्त्वात् तत्र च तन्निषेधात् परेऽहनि प्रतिपद्येव कुर्यात् । सार्धयामत्रयं वा स्याद् द्वितीयदिवसे यदा । प्रतिपद्वर्धमाना तु तदा सा होलिका स्मृता ॥ इति भविष्यवचनादिति निर्णयामृतकारः । मदनरत्नेऽप्येवम् ।

यदि पहले दिन तो चतुर्दशी (भद्रारहितकाल के अलाभ में) प्रदोषव्यापिनी हो तो दूसरे दिन क्षयवश से सायंकाल के पूर्व ही पूर्णिमा समाप्त होती हो तो पहले दिन संपूर्ण रात्रि में भद्रा होने से और उसमें उसका निषेध होने से दूसरे दिन प्रतिपदा में ही करे—अर्थात् जलावें ।

यदि बर्हिगत प्रतिपदा दूसरे दिन साढ़े[1] तीन याम (से अधिक) हो तो तब उसे होलिका कहते हैं । यह भविष्यपुराण के वचन को निर्णयामृतकार ने कहा है । मदनरत्न में भी यही है ।

यत्तु—'वह्नौ वह्निं परित्यजेत्' इति भविष्यम् । वह्नौ होलिकायां वह्निं प्रतिपदं वर्जयेदित्यर्थः । तदुक्तभिन्नविषयमिति तत्रैवोक्तम् । अन्ये तु तस्यां भद्रामुखं त्यक्त्वेत्यर्थः ।

१—यदोत्तरदिने सार्धयामत्रयं ततोऽधिकं वा पूर्णिमा न तु प्रदोषे, परेद्युश्च प्रतिपद्वृद्धिस्तदा पूर्णिमोत्तरं प्रतिपदि प्रदोषे होलिका कार्या न तु पूर्वेद्युर्विष्टिपुच्छे इत्यर्थः । एवं सति योत्तरदिने प्रदोषैकदेशेऽस्ति पूर्वरात्रौ च न भद्रारहिता, तदा सुतरामुत्तरेति । अत्र यदा पूर्वदिने सार्धयामत्रयं ततोऽधिका वा पूर्णा न तु प्रदोषे, परदिने च प्रतिपदो न वृद्धिः किन्तु साम्यं क्षयो वा, तत्र पूर्वेद्युरेव होलिका कार्येत्यर्थसिद्धम् ।

जो—भविष्यपुराण में कहा है कि—अग्नि में अग्नि का त्याग करे। अग्नि होलिका में वह्नि प्रतिपदा में वर्जित करे यह अर्थ है। वहीं पर कहा है कि—यह कहे हुए से भिन्न विषयक है। अन्य तो उसमें भद्रा का मुख त्याग करने में है—यह अर्थ है।

प्रदोषव्यापिनी चेत्स्याद्यदा पूर्वदिने तदा। भद्रामुखं वर्जयित्वा होलिकायाः प्रदीपनम् ॥ इति नारदवचनात्।

नारद के वचन से कहा है कि—यदि पहले दिन प्रदोषव्यापिनी हो तो भद्रा का मुख छोड़कर होलिका को प्रदीप्त करे।

निशागमे प्रपूज्येत होलिका सर्वदा बुधैः। न दिवा पूजयेत् ढुंढां पूजिता दुःखदा भवेत् ॥ इति दिवोदासीये वचनात्।

दिवोदासीय में वचन है कि—सब विद्वान् गण निशा के आनेपर होलिका का पूजन करे। दिन में ढुण्ढा का पूजन न करे। पूजन करने पर दुःखको देनेवाली होती है।

यामत्रयोर्ध्वयुक्ता चेत्प्रतिपत्तु भवेत्तिथिः। भद्रामुखं परित्यज्य कार्या होला मनीषिभिः ॥ इति विद्याविनोदेऽभिधानाच्च भद्रामुखं विहाय पूर्वदिने एव कार्येत्याहुः।

और विद्याविनोद में भी कहा है कि—तीनयाम के ऊपर प्रतिपदा तिथि हो जाय तो भद्रामुख को त्याग कर मनीषीगण होला करे।

(भद्रामुखं तु)

भद्रामुखं तु—'नाड्यस्तु पञ्च वदनं गलकस्तथैका' इति रत्नमालोक्तं ज्ञेयम्। शिष्टाचारोऽप्येवमेव।

भद्रा [1]मुख तो कहा है कि—आदि की पांच नाडी मुख, और एक घडी को गलक (गला) रत्नमाला में कहा जानना चाहिये। शिष्टाचार भी यही है।

भद्रामुख को त्याग कर पूर्वदिन ही (सा च भद्रामुखमात्रपरित्यागो न प्रामाणिकः। अत्र पूर्वेद्युर्विष्टिपुच्छे कार्या। लल्ले—पृथिव्यां यानि कार्याणि शुभानि त्वशुभानि तु। तानि सर्वाणि सिध्यन्ति विष्टिपुच्छे न संशयः ॥ विष्टिपुच्छं तु ज्यौतिषे—मेषार्कनखनाडीभ्यो भद्रापुच्छं घटीद्वयम्। क्रमेण धवले पक्षे व्युत्क्रमेण सितेतरे ॥ भ २७, इष ५, अर्क १२, नख २०।) करे।

(अत्र चेच्चन्द्रग्रहणं तदा)

अत्र चेच्चन्द्रग्रहणं तदा ततोऽर्वाङ्निशि भद्रावर्जपौर्णमास्यां होलिकादीपनम्।

यदि यहाँ पर चन्द्रग्रहण हो तो पहली रात में भद्रा से रहित पूर्णिमा में होलिका को प्रज्वलित करे।

अथ परेऽह्नि ग्रस्तोदयस्तदा पूर्वदिने भद्रावर्जं रात्रिचतुर्थयामे विष्टिपुच्छे वा होलिका कार्या। ग्रहोत्तरं प्रतिपत्सत्त्वात्तत्पूर्वं च दिवा होलानिषेधादिति दिवोदासचन्द्रप्रकाशौ।

इसके बाद दूसरे दिन ग्रस्तोदय हो तो पूर्वदिन में भद्रा को त्यागकर चतुर्थयाम में या विष्टिपुच्छ में होलिका करे। ग्रहोत्तर प्रतिपदा के रहने पर उसके पूर्व तथा दिन में होला निषेध है—यह दिवोदास और चन्द्रप्रकाश कहते हैं।

वस्तुतस्तु परदिने प्रदोषे पौर्णमासीसत्त्वे कर्मकालस्पर्शे चतुर्थयामादिगौणकालग्रहणे मानाभावाद्भद्राभावाच्च ग्रहणकाल एव होला कार्या।

सिद्धान्त तो यह है कि—दूसरे दिन प्रदोष में पौर्णमासी के रहने पर कर्मकाल के स्पर्श में चतुर्थयाम आदि गौणकाल के ग्रहण में प्रमाण न होने से और भद्राके अभाव से ग्रहणकाल में ही होला करे।

१—भद्रामुखपुच्छलक्षणम्—धर्मसिन्धौ—पूर्णिमायां भद्रायास्तृतीयपादान्ते घटीत्रयं पुच्छम्, चतुर्थपादाद्य—घटीपञ्चकं मुखम्। तथा च मध्यममानेन षष्टिघटीमितायां पूर्णिमायां पूर्णिमाप्रवृत्त्युत्तरं सार्धैकोनविंशतिघटिकोत्तरं घटीत्रयं पुच्छं, सार्धद्वाविंशतिघटिकोत्तरं घटीपञ्चकं मुखम्। तिथेश्चतुःषष्टिघटिकामितत्वे पूर्णिमाया एकविंशतिघटिकोत्तरं पुच्छम्, चतुर्विंशतिघटिकोत्तरं मुखम्। एवं तिथेर्मानान्तरेऽप्यूह्यम्।

न च—सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने। स्नात्वा कर्माणि कुर्वीत शृतमन्नं विवर्जयेत्॥ इति निषेधात् कथं सूतके होलिकेति वाच्यम्। तस्योत्तरार्द्धशेषत्वात्।

और कोई शंका करे कि—सब वर्णों को ही राहुके दर्शन में सूतक होता है। इसलिये स्नानकर कर्मों को करें। तथा पके अन्न को त्याग करे। इस निषेध से सूतक में कैसे होली होगी—ऐसा कहेंगे तो उसके उत्तरार्ध के (स्नानपर्यन्तमशुचित्वम्। स्नानोत्तरं तु नित्यनैमित्तिकयोरधिकार इति भावः) शेष होने से।

(होलिकापूजामन्त्रकथनम्)

पूजामन्त्रस्तु—असृक्पाभयसंत्रस्तैः कृत्वा त्वं होलि बालिशैः।
अतस्त्वां पूजयिष्यामि भूते भूतिप्रदा भव॥ इति।

पूजामन्त्र यों है कि—हे होलि, असृक् (राक्षसी) के भय से संत्रस्त (त्रास को प्राप्त हुए) बालिशों (मूर्खों) ने तुमको किया है। इसलिए तुम्हारी पूजा करूँगा। हे भूते, ऐश्वर्य देनेवाली[1] हो।

(यत्तु वार्तिककारैहोलिका आचारप्राप्तेत्युक्तम्। तत्र हेमाद्रयाद्युदाहृतभविष्यवचनानि असिद्धानि कृत्वा चिन्ता ज्ञेया। आर्त्यधिकरणवत्।)

जो [2]वार्तिककारों ने कहा कि—होलिका शिष्टाचार से प्राप्त है। उसमें हेमाद्रि में कहे गये भविष्यपुराण के वचनों को असिद्ध कर चिन्ता जाननी चाहिये। आर्त्यधिकरणवत्।

यस्योभयं हविरार्तिमार्च्छेत्' ऐन्द्रं पञ्चशरावं निर्वपेत्, इस वाक्य को लेकर जो विचार पूर्वमीमांसा में किया। ६।४।६। यथाश्रुतीतिचेत्। न तल्लक्षणत्वादुपघातो हि कारणम्। इसविषय में न्यायमाला के नवमाध्याय को देखिये।

(मलमासे सति निर्णयः)

हुताशनी मलमासे न भवति।

हुताशनी (होली) मलमास में नहीं होती है।

(इयं मन्वादिः)

इयं मन्वादिरपि। सा तु पौर्वाह्णिकी ग्राह्या। मलमासे सति मन्वादिश्राद्धं मासद्वये कार्यमित्युक्तं प्राक्।

यह मन्वादि भी है। वह पूर्वाह्णव्यापिनी ग्रहण करे। मलमास हो तो मन्वादिश्राद्ध दोनों मास में करे—यह बात पहले कह चुके हैं।

(गोविन्ददोलोत्सवः)

कृत्यचिन्तामणौ ब्राह्मे—नरो दोलागतं दृष्ट्वा गोविन्दं पुरुषोत्तमम्।
फाल्गुन्यां संयतो भूत्वा गोविन्दस्य पुरं व्रजेत्॥

कृत्यचिन्तामणि में ब्रह्मपुराण का वचन है कि—फाल्गुन की पूर्णिमातिथि में मनुष्य संयत होकर पुरुषोत्तम गोविन्द को झूले में स्थित देखकर गोविन्द के पुर को जाता है।

इति फाल्गुनमासः।

(चैत्रकृष्णपक्षः)

(चैत्रकृष्णप्रतिपदि वसन्तोत्सवः)

चैत्रकृष्णप्रतिपदि वसन्तोत्सवः। सा चौदयिकी ग्राह्या। प्रवृत्ते मधुमासे तु प्रतिपद्युदिते रवौ। इति भविष्योक्तेः। दिनद्वये तथात्वे पूर्वा।

१—अत्र धर्मसिन्धौ तु पूर्वं सङ्कल्पादि उक्त्वा शुष्कानां काष्ठानां गोमयपिण्डानां च राशिं कृत्वा वह्निना प्रदीप्य तत्र मन्त्रस्तु—अस्माभिर्भयसन्त्रस्तैः कृता त्वं होलिके यतः। अतस्त्वां पूजयिष्यामि भूते भूतिप्रदा भव॥

२—छिका हुआ पाठ प्राचीन पुस्तकों में न मिलने से प्रक्षिप्त मालूम होता है।

चैत्रकृष्ण प्रतिपदा को 'वसन्तोत्सव'[1] होता है और वह उदयकाल में ग्रहण करे। भविष्यपुराण का कथन है कि—चैत्रमास के लगने पर प्रतिपदा के दिन सूर्योदय होने पर वसन्तोत्सव करे। दोनों दिन हो तो पहली करे।

वत्सरादौ वसन्तादौ बलिराज्ये तथैव च। पूर्वविद्धैव कर्तव्या प्रतिपत्सर्वदा बुधैः॥ इति वृद्धवसिष्ठवचनात्।

वृद्धवसिष्ठ का वचन है कि—वत्सर और वसन्त के आदि में, वैसे ही बलिराज्य में विद्वानों को सदा प्रतिपदा पूर्वविद्धा ही करना चाहिये।

(अत्र विशेषः)

अत्र विशेषो हेमाद्रौ भविष्ये—चैत्रे मासि महाबाहो पुण्ये तु प्रतिपद्दिने। यस्तत्र श्वपचं स्पृष्ट्वा स्नानं कुर्यान्नरोत्तमः॥ न तस्य दुरितं किञ्चिन्नाधयो व्याधयो नृप। इति।

यहाँ पर विशेष हेमाद्रि और भविष्यपुराण में कहा है कि—हे महाबाहो,[1] चैत्रमास में पुण्य प्रतिपदा दिन में जो वहाँ पर चाण्डाल को स्पर्श कर उत्तम पुरुष स्नान करें। हे नृप, उसको नहीं पाप किञ्चित् लगता एवं आधि और व्याधि नहीं होती है।

(होलिकाविभूतिवन्दनम्)

तथा—प्रवृत्ते मधुमासे तु प्रतिपद्युदिते रवौ। कृत्वा चावश्यकार्याणि सन्तर्प्य पितृदेवताः। वन्दयेद्धोलिकाभूमिं सर्वदुःखोपशान्तये॥

और—चैत्रमास की प्रवृत्ति होने पर प्रतिपदा में सूर्योदय होने पर आवश्यक कार्यों को कर पितृदेवताओं का तर्पण कर संपूर्ण दुःख की शान्ति के लिए होलिकाभूमि की वन्दना करे।

(तत्र मन्त्रः)

मन्त्रश्च—वन्दितासि सुरेन्द्रेण ब्रह्मणा शङ्करेण च।
अतस्त्वं पाहि नो देवि भूते भूतिप्रदा भव॥ इति।

मन्त्र यों है—सुरेन्द्र, ब्रह्मा और शंकर द्वारा स्तुति की गयी हो। अतः हे देवि, तुम मेरी रक्षा करो हे भूते, ऐश्वर्य को देनेवाली हो।

(आम्रकुसुमप्राशनविधिकथनम्)

अत्र चूतकुसुमप्राशनमुक्तं तत्रैव पुराणसमुच्चये—वृत्ते तुषारसमये सितपञ्चदश्यां प्रातर्वसन्तसमये समुपस्थिते च। संप्राश्य चूतकुसुमं सह चन्दनेन सत्यं हि पार्थ पुरुषोऽथ समाः सुखी स्यात्॥

यहाँ पर आम का पुष्प प्राशन करने के लिये वहीं पर पुराणसमुच्चय में कहा है कि—फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा में तुषार (हिम) का समय व्यतीत हो जाने पर प्रातःकाल वसन्तसमय की उपस्थिति में चन्दन के साथ आम के पुष्प को प्राशन करे तो हे पार्थ, सत्य ही पुरुष साल भर तक बराबर सुखी होता है।

(तत्र मन्त्रः)

मन्त्रस्तु—चूतमग्र्यं वसन्तस्य माकन्दं कुसुमं तव। सचन्दनं पिबाम्यद्य सर्वकामार्थसिद्धये॥ इति।

मन्त्र यों है—सबकामनाओंकी सिद्धि के लिए आम और ममाकन्द के पुष्प को चन्दन के सहित पीता हूँ।

(चैत्रामावास्यामन्वादिः)

चैत्रामावास्या मन्वादिः। साच पराह्णव्यापिनी ग्राह्या कृष्णपक्षस्थत्वात्।

चैत्रकृष्ण की अमावास्या मन्वादि है और वह अपराह्णव्यापिनी ग्रहण करे क्योंकि कृष्णपक्ष की होने से।

१—यहाँ पर तैलाभ्यङ्ग भी कहा है। उसमें चन्दन के सहित आम के फूल का प्राशन करे। भविष्ये—'ये पिबन्ति वसन्तादौ चूतपुष्पं सचन्दनम्। सुसंह्वष्टस्य कामस्य पूजनं क्रियते नरैः॥

(ग्रन्थकार श्री कमलाकरभट्ट की अभ्यर्थना)

एवं निरूपितमिदं गहनं तु कालतत्त्वं विचार्य वचनैश्च नयैश्च सम्यक्। तद्दोषदृष्टिमपहाय विवेचनीयं विद्वद्भिरित्यविरतं प्रणतोऽस्मि तेषु ॥१॥

वचनों और नीतियों से अच्छीप्रकार से इस कठिन काल (समय) के तत्त्व को विचार कर मैंने यह निरूपण किया है। विद्वान्‌गण उसकी दोष दृष्टि को त्यागकर उसकी विवेचना करें। अतः मैं उनको निरन्तर नम्रता से प्रणाम करता हूँ।

मया सद्वाऽसद्वा यदिह गदितं मन्दमतिना किमेतच्छक्यं वाऽध्यवसितुमपि स्वल्पमतिना। तदेवं यत्किञ्चिद्गदितमिह विख्यातमहिमा प्रतापोऽयं सर्वो विकसन्ति तु पित्रोश्चरणयोः ॥२॥

मैं मन्द बुद्धिवाला मेरे द्वारा सत्य या असत्य जो कुछ कहा गया है। उसे अल्प बुद्धिवाला क्या इसको जानने में समर्थ या पढने में भी समर्थ होगा। इसप्रकार जो भी कुछ मैंने यहाँ कहा है वह विख्यात महिमा-वाले पिता और माता के चरणों का यह सब प्रताप प्रकट हुआ है।

यो भाट्टतन्त्रगहनार्णवकर्णधारः शास्त्रान्तरेषु निखिलेष्वपि मर्मभेत्ता। योऽत्र श्रमः किल कृतः कमलाकरेण प्रीतोऽमुना तु सुकृती बुधरामकृष्णः ॥३॥

जो भट्ट शास्त्रों के अगाध समुद्र के कर्णधार और संपूर्ण शास्त्रान्तरों के मर्म को भेदन करने वाले (अर्थात्—जानने वाले) कमलाकर ने जो यहाँ पर (ग्रन्थ में) परिश्रम किया है। उससे पुण्यात्मा 'पण्डित रामकृष्ण' प्रसन्न हों।

चैत्रकृष्णपक्ष समाप्त

इति द्वितीयः परिच्छेदः समाप्तः ।

(प्राचीन व्यवस्थाओं का संग्रहः)

(स्वर्गीय–महामहोपाध्याय श्री पं० विद्याधर जी गौड़ द्वारा लिखित)

(होलिकादाहविचारः)

महाविपत्तिवशेन फाल्गुनशुक्लपूर्णिमायामनुष्ठेयस्य होलिकादाहस्य तदनन्तरदिने–अनुष्ठेयस्य वसन्तोत्सवस्य चानुष्ठानं न सञ्जातम्। तयोश्च मुख्यकाले व्यतीतेऽपि कालान्तरेऽनुष्ठानं भवितुमर्हति न वेति विचारे—अस्य–कालादुत्तरः कालो गौणः सर्वस्य कर्मणः। मुख्यकालेऽपि कर्तव्यं गौणोप्यत्रेदृशो भवेत्॥ इत्यादिना पूर्णिमायां विहितस्योपाकरणादिकर्मणः। पञ्चम्यादौ सिद्धत्वेन मथुरादिस्थले चैत्रकृष्णपञ्चम्यां धूलिकाऽनुष्ठानस्य दृष्टत्वेनानन्तरमपि होलिकादाहः कर्तुं शक्यते।

(यज्ञकालनिर्णयः)

अथेदानीमिदं विचार्यते यदेकं कर्म एकस्मिन् समारब्धमपरस्मिन् पक्षे समापयितुं शक्यते न वा ? तत्र श्रौतेषु कर्मसु पर्यालोच्यमानेषु स्पष्टं निर्णेतुं शक्यते। शुक्लपक्षे कृष्णपक्षे वा प्रारब्धं कर्म तदितरस्मिन् पक्षे समापयितुं शक्यत इति। इष्टिपशुसोमरूपेण विभक्तानां क्रतूनां "य इष्टया पशुना सोमेन वा यजेत सोऽमावास्यायां पौर्णमास्यां वा यजेत" इत्यनेन वाक्येन पर्वकालानुष्ठेयत्वं बोध्यते। तत्रेष्टयः ह्यहकाला सद्यस्कालाश्चेति द्वेधा विभक्ताः। दर्शेष्टिः ह्यहकाला, सौर्यादिदिक्ततयः सद्यस्काला अपि भवन्ति। दर्शेष्टिरिति सा व्यवह्रियते, या अमावास्यानन्तरं शुक्लप्रतिपदि क्रियमाणेष्टिः। तत्र अमावास्यायामेव तदीयानि कानिचनाङ्गानि प्रारभ्यते सायं दोहशाखाहरणवत्सापाकरणादीनि। अवशिष्टानि चाङ्गानि प्रधानानि च प्रतिपदि समाप्यते। एतेनेदं निश्चितं भवति 'यदेकस्मिन् पक्षे एकं कर्म उपक्रम्यापरस्मिन् पक्षे समापयितुं शक्यते।' तथैव ज्योतिष्टोमः पञ्चदिनसाध्यः। "य इष्टया" इति वाक्यबलेन स यागः कस्मिंश्चन पक्षे एकादश्यां प्रारभ्यते, समाप्यते च पर्वकालस्यार्धरात्रे। अवभृथस्यानं न समाप्तम्, तर्हि प्रतिपदि प्रातस्तत्कर्म समाप्यते। एवं क्रियमाणमिदं कर्म विगुणं भयति, फलप्रदं न भवति, इति च मीमांसका याज्ञिका वा नाङ्गीकुर्वते। एवमेव नक्षत्रेष्टिः ततस्त्रिंशतिदिनेषु सम्पत्स्यते। तत्र चावश्यं पक्षद्वयसाध्यत्वं, तस्य कर्मणः स्वीकर्तव्यमिति को वा नाङ्गीकुर्यात् ? एवमेव द्वादशाहमारभ्य सहस्रसंवत्सरपर्यन्तं साध्यानि यान्यसंख्येयानि कर्माणि तेषामेकस्मिन्नेव पक्षे समाप्तिः कथं भवेत् ? अत्र चावश्यं भिन्न-भिन्नपक्षानुष्ठेयत्वं स्वीकर्तव्यमिति कः सन्दिहीत ? एतान्युदाहरणान्यादाय स्मार्तकर्मसु रुद्र-विष्णु-सूर्ययागादिष्वपि व्यवस्था कर्तुं शक्यते। यच्छुक्लपक्षे कृष्णपक्षे वा रुद्रादियागमुपक्रम्य तदितरस्मिन् पक्षे समापयितुं शक्यत इति। कश्चन यजमानः रुद्रादियागे लक्षसंख्याका आहुतीश्चिकीर्षति, अपि चाल्पसंख्याकानेव ऋत्विजोऽवृणोत्, स कथमिव तावत्संख्याका आहुतीः एकस्मिन् पक्षे समापयितुं प्रभवेत् ? रुद्रयागादिविधायकवाक्येषु कुत्रापि नायं विशेषः कथितः–यदेकस्मिन्नेव पक्षे समापनीया इमे यागा इति। प्रारम्भदिनान्येव तत्र तत्र निर्दिष्टानि, समापनदिनानि तु ऐच्छिकान्येवेति प्रयोगविधितोऽवगन्तव्यं भवति। प्रयोगविधिर्हि सर्वत्र श्रौतेषु स्मार्तेषु वा कर्मसु अविलम्बेन पदार्थाननुष्ठापयति। तत्र तत्र श्रौतकर्मणां नियतदिनानुष्ठेयत्वं विधिना बोधितम्। तथा स्मार्तयागविधायकवाक्येष्वश्रवणात् कथमिव वक्तुं शक्यते, यदेकस्मिन्नेव पक्षे समारब्धं कर्म परिसमापनीयमिति। अतः स्मार्तकर्माणि रुद्रयागप्रभृतीनि एकस्मिन् पक्षे प्रारभ्यापरस्मिन् पक्षे समापयितुं शक्यन्त इति बोध्यम्।

(यज्ञादौ आचार्यप्रतिनिधित्वविचारः)

यज्ञादौ आचार्यस्य प्रतिनिधिर्भवितुमर्हति न वेति विषये महती विप्रतिपत्तिर्दरीदृश्यते। आदौ आचार्यशब्देन कोऽर्थो विवक्ष्यते, तस्य कुत्र शक्तिः ? कुत्र लक्षणा ? इति विषयो विचारमर्हति। विषयेऽस्मिन् शास्त्रकाराणां कीदृशोऽभिप्राय इति च किञ्चित् प्रस्तूयते। तथा हि आचार्यशब्द एवं निरुक्तः मन्वादिभिर्महर्षिभिः—

उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विजः। सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते॥

अनेनाचार्यलक्षणमुच्यत इत्यविप्रतिपन्नं समेषां विदुषाम्। तथा वाचस्पतिमिश्रोऽपि सूत्रे प्रसङ्गात् समन्वयप्राचीनसम्मतमाचार्यलक्षणमुपावर्त्तयत् तदुपोद्बलकत्वेन—

"आचिनोति हि शास्त्रार्थमाचारे यस्मात्स आचार्य उदाहृतः।"

इतीदं वाक्यमुदाहार्षीत्। एवमेवान्यैरपि प्राचीनैः महर्षिभिः स्वेषु स्वेषु ग्रन्थेष्वाचार्यलक्षणं प्राणायि। तत्राचार्यशब्दो मुख्य इति।

एवं कर्मकाण्डे वैदिकैः कर्मादौ "सकलकर्मकर्तारमाचार्यं त्वामहं वृणे (वृणीमहे)" इति पठ्यते। अतः वैदिकप्रक्रियायामाचार्यशब्दः सकलकर्मकर्तृबोधनतात्पर्येण प्रयुज्यत इति सम्प्रधार्यते, पूर्वोक्तावाचार्यौ नाभिप्रेतौ, किन्तु अयमेवाचार्यः सम्मत इति। आचार्यवरणान्तरं च ऋत्विजो वृणीते। तदनन्तरं च यजमान एवं सङ्कल्पयते "एषां वृतानां ब्राह्मणानामन्योन्यसाहाय्येनाचार्यमुखेन च इदं कर्म कारयिष्ये" इति। अतः यथा ऋत्विजः दक्षिणया परिक्रीयन्ते, एवं सकलकर्मकर्ता आचार्योऽपि। तस्य विशिष्यदक्षिणाम्नानात्। अयं क्रियमाणस्य कर्मणः न्यूनातिरेकादिकृतं दोषं परिहाय कर्म सगुणं साङ्गो-

पाङ्गतया च सुष्ठु सम्पादयतीति वैदिके कर्मणि दर्शपूर्णमासादावध्वर्युरिव प्रधानभूतः सन् आचार्यः इत्यभिधीयते। तस्माद्दक्षिणया परिक्रीतत्वादस्य ऋत्विक्त्वं न विहन्यते। अत एव प्रधानभूतऋत्विगित्यप्युच्यते। उपक्रमे विषयोऽयं प्रस्तुतः यत् कमकाण्डे कर्मस्वरूपसम्पादकस्य चाचार्यपदवाच्यस्य भवति प्रतिनिधिर्नवेति। तत्राचार्यस्यापि प्रतिनिधिरस्तीति सोपपत्तिकमुपपादयामः। तथाहि कर्मणः द्रव्यदेवतामन्त्रऋत्विगादिना साध्यत्वेन श्रुतद्रव्याद्यपचारे अन्यस्य प्रतिनिधिरस्ति न वेति विचारः पूर्वमीमांसादर्शनाधिकारलक्षणे प्रतिनिधिपादे कृतः! तत्र केषां नेति विचिकित्सायां देवतायाः प्रतिनिधिर्न भवति, आहवनीयाद्यग्नीनां प्रतिनिधिर्भवति न मन्त्रस्य, न वा अदृष्टार्थस्य प्रयाजादेः। अयमभिप्रायः—देवतादीनां शास्त्रैः समधिगम्यत्वेनाग्निदेवतया यददृष्टमुत्पद्यते, तदेवादृष्टं सूर्यदेवतया समुत्पद्यत इत्यत्र प्रमाणाभावात् देवतादीनां प्रतिनिधिर्न भवति। तथा च जैमिनिसूत्रम्—"न देवताग्निशब्दक्रियादृष्टार्थत्वात्" इति। तथा यजमानस्यापि प्रतिनिधिर्न भवति। यजमानस्यापि प्रतिनिधित्वस्वीकारे प्रतिनिहितोऽपि स्वयमेव यजमानः स्यात्, न तु प्रतिनिधिरिति। तस्माद्यजमानस्य प्रतिनिधिर्न भवतीति। तथा चोक्तं जैमिनिना—"तथा स्वामिनः फलसमवायात् फलस्य कर्मयोगित्वात्" इति। अतः एतेषां पूर्वोक्तानां प्रतिनिधिर्न भवतीति। ऋत्विजां तु प्रतिनिधिर्भवत्येव, तेषां कर्मकरत्वात्। आचार्योऽपि "ऋत्विग्जातोयः" इत्युक्तम्। ऋत्विजस्तु प्रत्यक्षमेव कर्मस्वरूपं सम्पादयन्तीति न तेषामदृष्टार्थत्वम्, अपि तु दृष्टार्थत्वमेवेति समधिगतमीमांसान्यायतत्त्वानां पुरतः न किञ्चित् पिष्टं पिष्यते। अत्र दैवान्मानुषाद्वा अपराधात् रोगादेर्वा यदि वृतोऽप्याचार्यः कर्ममध्ये उपरमेत तदानीं प्रारब्धस्य कर्मणः अवश्यपरिसमापनीयत्वेन अन्याचार्यः वरणीय एव। अन्यथा 'कर्मणः फलजनकत्वासम्भवात्"। तस्मादन्याचार्यस्य प्रतिनिधित्वेन वरणं शास्त्रीयमेवेति न किञ्चिद्वक्तव्यमवशिष्यते विदितवेदितव्यानां पुरस्तात्। अपि च एवं बहुषु स्थलेषु व्याध्यादिना उपपीडितमाचार्यं परित्यज्य शिष्टसंप्रदाये बहुधा चाचार्यान्तरवरणं दृष्टमिति। शिष्टाचारोऽप्यमुमेवार्थं द्रढयतितराम्। जैमिनिरपि उपक्रान्तस्य काम्यस्य कर्मणः नित्यस्य वा अवश्यपरिसमापनीयत्वेन विहितद्रव्यऋत्विगाद्यपचारे अन्यः आगमयितव्य इति सुस्पष्टं प्रत्यपीपदत्—"आगमो वा चोदनार्थाविशेषात्" इति। अन्यशेषः प्रतिनिधेयस्य ऋत्विगादेरिति। तस्मादाचार्यस्य प्रतिनिधित्वे न किञ्चिद् दुष्यति। अपि च मीमांसकेश्वरः जैमिनिः—अस्मिन्नेव प्रकरणे "अन्यमागमयेद् वैगुण्यात्" इति सूत्रयामास। अस्यायमर्थः–'यदा वृतानां मध्ये अन्य ऋत्विगाचार्यपदवाच्यः प्रधानऋत्विग्वा यद्यपचरेत् केनचिन्निमित्तेन तदानीं कर्मणो वैगुण्यपरिहारार्थं साङ्गोपाङ्गतासिद्ध्यर्थं चान्यः प्रतिनिधेय इति, अन्यथा वैगुण्यापत्तेरिति। तस्मादयमर्थः पर्यवस्यति–ऋत्विज आचार्यस्य वा केनचिन्निमित्तेनापचारे अन्यः कश्चन प्रतिनिधेयः, स च प्रतिनिहितः लौकिकेन शास्त्रीयेण वा वरणेन संस्कृतः न स्वयं प्रत्यवैति, न वा यजमानं प्रत्यवायेन योजयति, अभिमतेन फलेन च सङ्गमयतीति समेषां वैदिकविदुषां निश्चप्रचोऽर्थः। तस्माद् वयमिदमेवान्ते प्रतिपादयिष्यामः यद् यजमानस्य प्रतिनिधिर्न भवति, आचार्यादेस्तु वरणेन संस्कृतस्यापि दैवान्मानुषादपराधादपचारे अन्यः प्रतिनिधेयः। स च शास्त्रीयेण लौकिकेन वा वरणेन सामिधेनीप्रवचनकाले होतृवत्संस्कृतः साङ्गोपाङ्गतया कर्मसाद्गुण्यं सम्पादयितुं प्रभवति। स न दुष्यति, न वा यजमानः प्रतिनिहितेनाचार्येण समनुष्ठितात्कर्मणः प्रत्यवायं भजते। अपि तु समीहितेन फलेनात्मानं संयुनक्तीति सोपपत्तिकं प्रतिपादयितुमुचितम्।

(फाल्गुनशुक्लपूर्णिमानिर्णयः)

फाल्गुनीपूर्णिमा पूर्वदिने ३६।३६ अनन्तरं प्रवर्तते परदिने ३१।२६ यावद्वर्तते तत्र होलिकादाहः कदा कार्य इति संशये–परदिने पूर्णिमायाः सन्ध्याकालेऽल्पावशिष्टत्वात् ग्रस्योदयचन्द्रग्रहणसत्वाच्च सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने। इतिवचनेन उपरागकाले क्रियान्तरस्यानानुष्ठेयत्वद र्शनात् पूर्वस्मिन्नेव दिने धर्मशास्त्रोक्तं नाडीपञ्चकात्मकं भद्रामुखं वर्जयित्वा द्वाचत्वारिंशद्घटिकोत्तरं होलादाहः कार्यः न तु परदिने प्रदोषकाले पूर्णिमासत्वेऽपि प्रतिपादिता तस्या ग्रहणदूषितत्वात् "अथ परेन्हि ग्रस्तोदयस्तदा पूर्वदिने भद्रावर्जं रात्रौ चतुर्थयामे विष्टिपुच्छे वा होलिका कार्या, ग्रहोत्तरं प्रतिपत्सत्वात्तत्पूर्वं च दिवा होला निषेधात्" इति निर्णयसिन्धौ पूर्वदिनकर्तव्यत्वस्यैव प्रतिपादनात्। यत्तु तत्रैव "वस्तुतस्तु" इत्यादिना द्वितीयेऽन्हिकर्तव्यता तत्र च हेतुतया "सर्वेषामेववर्णानां सूतकं राहुदर्शने। स्नात्वा कर्माणि कुर्वीत इति वचनमुत्तरार्द्धशेषतया व्याख्यातं तन्न युक्तम् पराह्णपरागसमये उपरागप्रयुक्तजपदानहोमादिक्रियातिरिक्तस्य सर्वस्यापि कर्मणो धर्मशास्त्रेषु निषेधात् होलिकादाहस्य च तन्निषेधान्तःपातित्वेन तस्य ग्रहणकालेऽनुष्ठानाप्रवृत्तेः। अत एव निर्णयसिन्धुव्याख्यात्रा कृष्णंभट्टेनापि "पूर्वपक्षे स्वरसंसूचयन्नेवाह वस्तुतस्त्वति" इतिव्याचक्षाणेन प्रथमदिनकर्तव्यतापक्ष एवाभ्युपगतः। अतश्च यद्यपि प्रथमदिने न प्रदोषरूपमुख्यकाललाभः तथापि गौणकालस्य सत्वात् द्वितीयदिने च मुख्यकालस्य प्रदोषस्य ग्रहणदुष्टत्वेनैव निषेधाक्रान्तत्वात् निषिद्धकालग्रहणपेक्षया गौणग्रहणस्यैव समुचितत्वेन पूर्वदिने चतुर्दश्यामेव द्विचत्वारिंशदण्डोत्तरं होलिकादाहः कार्य इति युक्तं प्रतीमः।

श्री विद्याधरशर्मा गौड़।

अथ निर्णयसिन्धुः

(फाल्गुनमास और चैत्रकृष्णपक्ष)

श्लोकसूची

दौलतराम गौड

अथ निर्णयसिन्धुः

(भाषा-टीका-सहित)

तृतीयपरिच्छेदः

दौलतराम गौड

अथ प्रकीर्णकनिर्णयः

श्रीरामकृष्णतनयः कमलाकरसंज्ञितः ।
निरूप्य तिथिकृत्यं तु प्रकीर्णं वक्तुमुद्यतः ॥

अब प्रकीर्ण का निर्णय करते हैं। श्रीरामकृष्ण के पुत्र कमलाकरभट्ट नामवाले तिथिकृत्य का निरूपण कर प्रकीर्ण को कहने के लिये उद्यत हुए।

तत्रादौ संस्कारेषु गर्भाधानम् । तत्र प्रथमरजोदर्शने दुष्टमासग्रहणं, संक्रमादिफलं, तत्र शान्त्यादि च पितृकृतप्रयोगदीपिकायां भट्टकृतप्रयोगरत्ने [च] ज्ञेयम् । किञ्चित्तूच्यते ।

वहाँ पर आदि संस्कारों में प्रथम गर्भाधान है। उसमें प्रथम रजोदर्शन में दुष्टमास का ग्रहण, संक्रम (संक्रान्ति)आदि (देवराजः-संमार्जनीकाष्ठतृणादिशूर्पान् हस्ते दधाना कुलटा तदा स्यात् । तल्पोपभोगे तपसि स्थिता चेद् दृष्टं रजो भाग्यवती तदा स्यात् ॥ स्मृतिसंग्रहे—शुभं चैव तु पूर्वाह्णे मध्यान्हे मध्यमं फलम् । अपराह्णे तु वैधव्यं पूर्वरात्रे शुभं भवेत् ॥) का फल और उसमें शान्ति आदि पितृकृतप्रयोगदीपिका में तथा भट्टकृत प्रयोगरत्न में जानना चाहिये। लेकिन कुछ तो कहता हूँ।

(सूर्यवारादिषु प्रथमरजोदर्शने विचारः)

मदनरत्ने नारदः—अमारिक्ताऽष्टमीषष्ठीद्वादशीप्रतिपत्स्वपि । परिघस्य तु पूर्वार्द्धे व्यतीपाते च वैधृतौ ॥ संन्ध्यासूपप्लवे विष्टयामशुभं प्रथमार्तवम् । रोगी पतिव्रता दुःखी पुत्रिणी भोगभागिनी (भोगगामिनी) ॥ पतिव्रता क्लेशभागी सूर्यवारादिषु क्रमात् ।

मदनरत्न में नारद ने कहा है कि—अमावास्या, रिक्ता, अष्टमी, षष्ठी, द्वादशी, प्रतिपदा, परिघयोग का पूर्वार्ध व्यतीपात, वैधृति, सन्ध्यासमय, उपप्लव (ग्रहण) और विष्टि (भद्रा) में प्रथम रजोदर्शन होना अशुभ होता है। रोगी, पतिव्रता, दुःखी, पुत्रिणी, भोगभागिनी (भोग भोगनेवाली) या भोगगामिनी, पतिव्रता, क्लेश भोगनेवाली, ये क्रम से सूर्यवार आदि क्रम से जानना चाहिये। (अर्थात्—रविवार को-रोगिणी, सोमवार को-पतिव्रता, मंगलवार को दुःखी, बुधवारको पुत्रिणी, गुरुवार को-भोगभागिनी या भोगगामिनी, शुक्रवार को पतिव्रता, और शनिवार को क्लेशभागिनी होती है।)

(तिथ्यादौ प्रथमरजोदर्शने विचारः)

वैधव्यं सुतलाभश्च मैत्र्यं शत्रुविवर्द्धनम् ॥ मित्रलाभः शत्रुवृद्धिः कुलर्द्धिर्बन्धुनाशनम् । मरणं वंशवृद्धिश्च निराहारः कुलक्षयः । तेजश्च सुतनाशश्च कुलहानिस्तिथिक्रमात् ॥

तिथि के क्रमसे प्रथम रजोदर्शन का फल जानना चाहिये—वैधव्य, पुत्रका लाभ, मित्रता, शत्रुकी वृद्धि, मित्र का लाभ, शत्रुकी वृद्धि, कुलकी वृद्धि, बन्धु का नाश, मरण, वंशवृद्धि, निराहार रहना, कुलक्षय, तेजका नाश, पुत्रका नाश और कुल की हानि होती है।

(अर्थात्—प्रतिपदा को—वैधव्यता, द्वितीया को पुत्रका लाभ, तृतीया को-मित्रता, चतुर्थी को—शत्रु की वृद्धि, पञ्चमी को-मित्रका नाभ, षष्ठी को-शत्रुकी वृद्धि, सप्तमी को—कुलकी वृद्धि, अष्टमी को-बन्धुका नाश, नवमी को-मरण, दशमी को-वंश की वृद्धि, एकादशी को-निराहार (विभुक्षित) रहना, द्वादशी को-कुल का क्षय होना, त्रयोदशी को-तेज का नाश, चतुर्दशीको-पुत्र का नाश अमा और पूर्णिमा में-कुलकी हानि होती है।)

(प्रथमरजोदर्शने दस्रर्चादिफलकथनम्)

गर्गः—सुभगा चैव दुःशीला वन्ध्या पुत्रसमन्विता । धर्मयुक्ता व्रतघ्नी च परसन्तानमोदिनी ॥ सुपुत्रा चैव दुःपुत्रा पितृवेश्मरता सदा । दीना प्रजावती चैव पुत्राढ्या चित्रकारिणी ॥ साध्वी पतिप्रिया नित्यं सुपुत्रा कष्टचारिणी । स्वकर्मनिरता हिंस्रा पुण्यपुत्रादिसंयुता ॥ नित्यं धनचयासक्ता पुत्रधान्यसमन्विता । मूर्खा चाऽज्ञा पुण्यवती दस्रर्चादेः क्रमात्फलम् ॥

गर्ग ने कहा है कि नक्षत्रक्रम से फल को जानना चाहिये—अश्विनीनक्षत्र में—सुभगा, (अच्छे ऐश्वर्यवाली) भरणी में दुःशीला, कृत्तिका में—वन्ध्या, रोहिणी में—पुत्र से युक्त, मृगशिरा में—धर्म में

ईशानकोण | पूर्व | अग्निकोण

(शिवपञ्चायतन)

विष्णु

सूर्य

उत्तर | दक्षिण

दुर्गा

गणेश

वायव्यकोण

पश्चिम

नैर्ऋत्यकोण

संलग्न, आर्द्रा में—व्रतघ्नी, पुनर्वसु में दूसरे की सन्तान से प्रसन्न होनेवाली, पुष्य में—सुन्दर पुत्रवाली, आश्लेषा में—खराब पुत्रवाली, मघा में—पिता के घर में सदारत, पूर्वाफाल्गुनी में—दीन-दुःखित, उत्तरा फाल्गुनी में—पुत्रोंवाली, हस्त में—पुत्रों से सम्पन्न, चित्रा में—चित्र बनानेवाली, स्वाती में—साध्वी, विशाखामें—नित्या पति को प्रिय, अनुराधा में—अच्छे पुत्रवाली, ज्येष्ठा में कष्ट भोगने वाली, मूल में-अपने कर्ममें रत, पूर्वाषाढा में—हिंसा करनेवाली, उत्तराषाढा में-पुण्यवान् पुत्रों आदि से युक्त, श्रवण में-नित्य धन का सञ्चय करने वाली, धनिष्ठा में—पुत्र और धान्य से युक्त, शतभिषा और पूर्वाभाद्रपद में—मूर्खा, उत्तरा-भाद्रपद में ज्ञान शून्य, रेवती में पुण्यवाली होती है।

(प्रथमरजोदर्शने राश्यादौ विचारः)

नारदः—कुलीरवृषचापांत्यनृयुक्कन्यातुलाघटाः । राशयः शुभदा ज्ञेया नारीणां प्रथमार्तवे ॥

नारद ने कहा है कि—कुलीर (कर्क), वृष, चाप (धनु), अन्त्य (मीन), नृयुक—मिथुन, कन्या, तुला और घट (कुंभ) ये राशियाँ प्रथम रजोदर्शन में स्त्रियों को शुभ देनी वाली होती है। ऐसा जानना चाहिये।

गर्गः—सुभगा श्वेतवस्त्रा स्याद् दृढवस्त्रा पतिव्रता। क्षौमवस्त्रा क्षितीशा स्यात् नववस्त्रा सुखान्विता ॥
दुर्भगा जीर्णवस्त्रा स्याद्रोगिणी रक्तवाससा । नीलाम्बरधरा नारी पुष्पिता विधवा ततः ॥

गर्ग ने कहा है कि-प्रथम ऋतु के समय—सफेद वस्त्रधारिणी हो तो ऐश्वर्यवाली, दृढवस्त्र वाली (मजबूत वस्त्रवाली) पतिव्रता, रेशमीवस्त्र धारणी क्षितीशा (राजा की स्त्री) होती है, नवीन वस्त्र को धारण करनेवाली सुख से युक्त होती है जीर्णवस्त्रधरिणी दुर्भगा, रक्तवस्त्रधारिणी रोगिणी तथा नीलाम्बरधरा स्त्री रजोयुक्त हो तो विधवा होती है।

वस्त्रे स्युर्विषमा रक्तबिन्दवः पुत्रमाप्नुयात् । समाश्चेत्कन्यका चेति फलं स्यात्प्रथमार्तवे ॥

वस्त्र में विषम रक्त के बिन्दु लगे हों तो पुत्र होता है और वस्त्र में समरक्त के बिन्दु लगे हो तो कन्या होती है। यह प्रथम ऋतु का फल कहा है।

(स्त्रीसङ्गवर्जनकथनम्)

अत्र स्त्रीसङ्गवर्जनमाह वसिष्ठः—प्रभूतदोषं यदि दृश्यते तत्पुष्पं तदा शान्तिककर्म कार्यम् ।
विवर्जयेदेव तदेकशय्यां यावद्रजोदर्शदमुत्तमेऽह्नि ॥

वसिष्ठ ने स्त्री के साथ समागम का त्याग कहा है कि—बहुत दोष में यदि रजोदर्शन दिखाई दे तो 'शान्तिकर्म' को करे। जब तक उत्तम दिन में रजोदर्शन हो तब तक एक शय्या (मैथुन) को त्याग दे।

ज्योतिर्निबन्धे वसिष्ठः—आद्यर्तौ पौषशुक्रोर्जमधुशुचिनभस्याश्वयुक्पापवारा रिक्तामार्काष्टषष्ठ्यः पितृपरसदने रात्रिसन्ध्यापराह्णे। मिश्रोग्रा मूलतीक्ष्णं विवरमनरुणाल्पाधिकास्रं गराष्टोत्पातः पापस्य लग्नं न सदरुणजरन्नीलरक्ताम्बरं च ॥

ज्योतिर्निबन्ध में वसिष्ठ ने कहा है कि-प्रथम ऋतु में—पौष, शुक्र (ज्येष्ठ), ऊर्ज (कार्तिक) मधु (चैत्र), शुचि (आषाढ) नभसि—भाद्रपद, आश्वयुग् (आश्विन), पापवारों से (रवि, भौम और शनि) रिक्ता (चतुर्थी, अष्टमी और द्वादशी) अमावास्या, द्वादशी, अष्टमी, षष्ठी, पिता से दूसरे घर में—अर्थात्—पिता के घर में नहीं। रात्रि, सन्ध्या, अपराह्न में, मिश्र—कृतिका और विशाखा, उग्र—तीनों पूर्वा, भरणी तथा मघा, मूल, तीक्ष्ण—आर्द्रा, आश्लेषा और ज्येष्ठा, विवर (रजोधर्म रुक रुक कर होना) अनरुण (लाल रंग का रजो धर्म न होना) अल्प (रजोधर्म का थोडा होना)। गराष्टौ—गर, वणिज, विष्टि, नाग, चतुष्पथ, किंस्तुघ्न, शकुनि तथा वव, उत्पात्—किसीतरह का उत्पात होना पापग्रह का लग्न, मेष, वृश्चिक, मकर, कुंभ, लाल वस्त्र—लालकपडा, पुराना वस्त्र और नीलवस्त्र ये उचित नहीं है।

आद्यतौ दुर्भगा नारी विष्कुम्भे चेद्रजस्वला । वन्ध्या चैवातिगण्डे च, शूले शूलवती भवेत् ॥
गण्डे तु पुंश्चली नारी, व्याघाते चात्मघातिनी। वज्रे च स्वैरिणी प्रोक्ता, पाते च पतिघातिनी ॥
परिघे मृतवन्ध्या च, वैधृतौ पतिमारिणी । शेषाः शुभावहा योगा यथानामफलप्रदाः ॥

विष्कुंभ में—यदि रजस्वला हो तो आद्यऋतु में नारी दुर्भगा होती है। अतिगण्ड में—वन्ध्या होती है। शूल में—शूलवती होती है। गण्ड में—पुंश्चली स्त्री होती है। व्याघात में—आत्मघातिनी होती है। वज्र में—स्वैरिणी होती है। पात में—पतिघातिनी होती है। परिघ में—मृतवन्ध्या होती है। वैधृति में पति को मारनेवाली होती है। अवशिष्ट शुभ योग नाम के अनुकूल फलप्रद (ग्रामाद्बहिः परग्रामे नारी स्याद् व्यभिचारिणी। पतिव्रता पतिस्थाने, शुभगा गृहमध्यतः। ग्राममध्ये पतिस्थाने, शुभगा गृहमध्यतः। ग्राममध्ये तु वृद्धिश्च, विधवा च दिगम्बरा॥ उपरागे च दुःशीला, आयुष्यं जलसन्निधौ। धनमध्ये तु कन्या या धनधान्यसमृद्धिदा॥ वसिष्ठः—वैधव्यमष्टमऽर्के चन्द्रेक्षीणरुचिर्भवेत्। अङ्गारके भर्तृहीना, बुधे चेदनपत्यता॥ दौर्भाग्यमिन्द्रसचिवे, सापत्यं भार्गवे भवेत्। प्रव्रज्या सूर्यपुत्रे तु, राहौ कलहः सदा॥ अशुभं चैव केतौ स्याज्जामित्रे शुभदाः शुभाः॥ जामित्रे—सप्तमस्थाने। नरसिंहे—लग्नस्य प्रथमस्थाने सूर्यो वैधव्यकारकः। पुत्रहानिकरस्त्वारो, बुधः सत्पुत्रको भवेत्॥ बृहस्पतिर्धनायुष्ये, शुक्रः साफल्यमेव च। शनैश्चरे तु वन्ध्या स्याद् राहौ तु मरणं ध्रुवम्॥ चन्द्रे सद्गुणसंयुक्ते देवरातमताच्छुभम्॥) होते हैं।

(शान्तिकथनम्)

शान्तिमाह प्रयोगपारिजाते शौनकः—आर्तवानां तु नारीणां शान्तिं वक्ष्यामि शौनक। पञ्चमेऽह्नि चतुर्थे वा ग्रहयज्ञपुरःसरम्। (तस्मिन्नहनि कर्तव्य ऋतुहोमो विधानतः। आचार्यं वरयेत्प्राज्ञो भुवनेश्वरीतुष्टये। होमार्थं च जापार्थं च वरयेदृत्विजो बहून्। यजमानो द्विजैः सार्धं शान्तिहोमं समाचरेत्। गृहादीशानदिग्भागे देवतापूजनाय च।)

प्रयोगपारिजात में शौनक ने शान्ति को कहा है कि—ऋतुवाली नारियों की शान्ति को कहता हूँ। पांचवें या चौथे दिन ग्रहयज्ञपुरःसर करे।

(उसीदिन में ऋतुहोम को विधान से करना चाहिये। बुद्धिमान् व्यक्ति आचार्य का वरण भुवनेश्वरी की प्रसन्नता के लिये करे। होम के लिए और जप के लिए बहुत ऋत्विजों का वरण करे। यजमान ब्राह्मणों के साथ शान्तिहोम करे। घर के ईशानभाग में देवता के पूजन के लिये)।

द्रोणप्रमाणधान्येन व्रीहिराशित्रयं भवेत्। कुम्भत्रयं न्यसेद्राशौ तन्तुवस्त्रादिवेष्टितम्॥ (पूरयेत्तीर्थसलिलैः प्रतिकुम्भं पृथक्पृथक्।) सूक्तेनाथ नवर्चेन प्रसुव आप इत्यथ॥

ऋचा याः प्रवतस्तद्वद्गायत्र्या च ततः क्रमात्। मध्यकुम्भे क्षिपेद्धान्यमौषधानि च हेम च॥ (ततश्च पञ्चरत्नानि गन्धपुष्पाक्षतादिकान्। औषधानि च वक्ष्यन्ते मुनिभिः शान्तिकारणात्।) दुउम्बरः कुशो दूर्वा राजीववटबिल्वकाः। विष्णुक्रन्ताऽथ तुलसी वर्हिषं शङ्खपुष्पिका॥ शतावर्यश्वगन्धा च निर्गुण्डी सर्षपद्वयम्। अपामार्गः पलाशश्च पनसो जीवकस्तथा॥ प्रियङ्गवश्च गोधूमा व्रीहयोऽश्वत्थ एव च। क्षीरं दधि च सर्पिश्च पद्मपत्रं तथोत्पलम्॥ कुरण्टकत्रयं गुञ्जा वचाभद्रकमुस्तकाः। द्वात्रिंशदौषधानीह यथासम्भवमाहरेत्॥

द्रोणप्रमाण (दो सौ छ घनमुट्ठा) धान्य से व्रीहियों की तीन राशि (ढेर) यों को करे। तीन कुम्भ राशी पर रखे। डोरे और वस्त्र आदि से वेष्टित करे।

(अलग अलग कलशों को तीर्थ के जलों से पूरण (भरे) करे।) नौऋचावाले सूक्त [1]'प्रसुव आप'

१—प्रसुव आपो महिमानमुत्तमं कारुर्वोचाति सदने विवस्वतः। प्र सप्त सप्त त्रेधा हि चक्रमुः प्रसृत्वरीणामति सिन्धुरोजसा॥ प्र तेऽरदद्वरुणो यातवे पथः सिन्धो यद्वाजाँ अभ्यद्रवस्त्वम्। भूम्या अधि प्रवता यासि सानुना यदेषामग्रं जगतामिरज्यसि॥ दिवि स्वनो यतते भूम्योपर्यनन्तं शुष्ममुदियर्ति भानुना॥ अभ्रादिव प्र स्तनयन्ति वृष्टयः सिन्धुर्यदेति वृषभो न रोरुवत्॥ अभि त्वा सिन्धो शिशुमिन्न मातरो वाश्रा अर्षन्ति पयसेव धेनवः। राजेव युध्वा नयसि त्वमित् सिचौ यदासामग्रं प्रवतामिनक्षसि॥ इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या। असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयाऽऽर्जीकीये शृणुह्या सुषोमया॥ तृष्टामया प्रथमं यातवे सजूः सुसर्त्वा रसया श्वेत्या त्या। त्वं सिन्धो कुभया गोमतीं क्रुमुं मेहत्न्वा सरथं याभिरीयसे॥ ऋज्नीत्येनी रुशती महित्वा परि ज्रयांसि भरते रजांसि। अदब्धा सिन्धुरपसामपस्तमा ऽश्वा न चित्रा

इससे [1]प्रवत तथा [2]गायत्री से क्रम से मध्यकुम्भ में धान्य, औषधी और सुवर्ण का प्रक्षेप करे।

(तदनन्तर पञ्चरत्न, गन्ध, पुष्प, अक्षत, आदि का प्रक्षेप करे। मुनियों के शान्तिकारक औषधि को कहता हूँ।)

उदुम्बर, कुशा, दूर्वा, राजीव–कमल, बड, बिल्व, विष्णुक्रान्ता (कोयल), तुलसी, कुशा, शंखपुष्पिका, (शंखपुष्पी), शतावरी, अश्वगन्धा (असगन्ध) निर्गुण्डी, (मेउली) दोनों सरसों (पीली और काली) अपामार्ग, पलास, कटहर, प्रियंगु (फूलप्रियंगु) गेहूँ, ब्रीहि, पीपल, दूध, दही, घृत, कमल के पत्ते, उत्पल (कमल), तीन कुरण्ड, गुञ्जा (घुमची) वच, भद्रक (नागरमोथा), मुस्तक (मोथा), यथा संभव बत्तीस औषधियों को यहाँ पर ले आवे।

मृत्तिकाश्चौषधादीनि तन्मन्त्रेण क्षिपेत्क्रमात्। कुम्भोपरि न्यसेत्पात्रं कांस्यं मृद्वेणुताम्रजम्॥

मृत्तिका, औषध आदि को उन उनके मन्त्रों से प्रक्षेप करे। कुंभ के ऊपर कांसे का, मट्टी का, बांस का या तांबे का पात्र रखे।

भुवनेश्वरीं न्यसेत्तत्र इन्द्राणीं च पुरन्दरम्। जपेद् गायत्रिमाहोच्छ्रीसूक्तं च जपेत्ततः॥

उस पर भुवनेश्वरी, इन्द्राणी और इन्द्रका स्थापन करे। होमपर्यन्त गायत्री और [3]श्रीसूक्त का जप करे।

वपुषीव दर्शता। स्वश्वा सिन्धुः सुरथा सुवासा हिरण्ययी सुकृता वाजिनीवती। ऊर्णावती युवतिः सीलमावत्युताधि वस्ते सुभगा मधुवृधम्॥ सुखं रथं युयुजे सिन्धुरश्विनं तेन वाजं सनिषदस्मिन्नाजौ। महान् ह्यस्य महिमा पनस्यतेऽदब्धस्य स्वयशसो विरप्शिनः॥ (ऋ० म० १० सू० ७५ म० १–६)।

१—प्रवता हि क्रतूनामा हा पदेव गच्छसि। अभक्षि सूर्ये सचा॥ (ऋ० म० ४ सू० ३१ म० ५)।

२—तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥ (ऋ० म० ३ सू० ६२ म० १०)।

३—हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम्। चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह॥ तां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्। यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम् २ अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रमोदिनीम्। श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम्॥ कां सोस्मितां हिरण्यप्राकारामार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम्। पद्मे स्थितां पद्मवर्णां तामिहोपह्वये श्रियम् ४ चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम्। तां पद्मिनीमीं शरणं प्रपद्ये ऽलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणे॥ आदित्यवर्णे तपसोऽधिजातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः। तस्य फलानि तपसा नुदन्तु मा यान्तरा याश्च बाह्या अलक्ष्मीः॥ उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह। प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेऽस्मिन् कीर्तिमृद्धिं ददातु मे। क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम्। अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात्॥ गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्। ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ६ मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि। पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः १० कर्दमेन प्रजाभूता मयि संभव कर्दम। श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम् ११ आपः सृजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे। निच देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले १२ आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिङ्गलां पद्ममालिनीम्। चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह १३ आर्द्रां यः करिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम्। सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह १४ तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्। यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्योऽश्वान् विन्देयं पुरुषानहम् १५ यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम्। सूक्तं पञ्चदशर्चं च श्रीकामः सततं जपेत् १६ पद्मानने पद्मविपद्मपत्रे पद्मप्रिये पद्मदलायताक्षि। विश्वप्रिये विष्णुमनोऽनुकूले त्वत्पादपद्मं मयि सं निधत्स्व १७। पद्मानने पद्मऊरु पद्माक्षि पद्मसंभवे। तन्मे भजसि पद्माक्षि येन सौख्यं लभाम्यहम्॥ अश्वदायि गोदायि धनदायि महाधने। धनं मे जुषतां देवि सर्वकामांश्च देहि मे १६ पुत्रपौत्रधनं धान्यं हस्त्यश्वाश्वतरी रथम्। प्रजानां भवसि माता आयुष्मन्तं करोतु मे २० धनमग्निर्धनं वायुर्धनं सूर्यो धनं वसुः। धनमिन्द्रो बृहस्पतिर्वरुणो धनमश्विना २१ वैनतेय सोमं पिब सोमं पिबतु वृत्रहा। सोमं धनस्य सोमिनो मह्यं ददातु सोमिनः २२ न क्रोधो न च मात्सर्यं न लोभो नाशुभा मतिः। भवन्ति कृतपुण्यानां भक्त्या श्रीसूक्तजापिनाम् २३ सरसिजनिलये सरोजहस्ते धवलतरांशुकगन्धमाल्यशोभे। भगवति हरिवल्लभे मनोज्ञे त्रिभुवनभूतिकरि प्रसीद मह्यम् २४ विष्णुपत्नीं क्षमां देवीं माधवीं माधवप्रियाम्। लक्ष्मीं प्रियसखीं भूमिं नमाम्यच्युतवल्लभाम् २५ महालक्ष्म्यै च विद्महे विष्णुपत्न्यै च धीमहि। तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात् २६ आनन्दः कर्दमः श्रीदश्चिक्लीत इति विश्रुताः। ऋषयः श्रियः पुत्राश्च श्रीर्देवीर्देवता मताः २७ ऋणरोगादिदारिद्र्यपापक्षुदपमृत्यवः। भयशोकमनस्तापा नश्यन्तु मम सर्वदा २८ श्रीर्वर्चस्वमायुष्यमारोग्यमाविधाच्छोभमानं महीयते। धनं धान्यं पशुं बहुपुत्रलाभं शतसंवत्सरं दीर्घमायुः २६।

स्पृशन्वै दक्षिणं कुम्भं ऋत्विगेको जपेदथ। चत्वारि रुद्रसूक्तानि चतुर्मन्त्रोत्तराणि च॥ संस्पृशन्नुत्तरं कुम्भं श्रीरुद्रं रुद्रसंख्यया। शन्न इन्द्राग्नीसूक्तं च तत्र वै संस्पृशं जपेत्॥

दक्षिण कुम्भ को एक ऋत्विक् स्पर्श करता हुआ जप करे। इसके बाद चार [1]रुद्रसूक्तों और चार मन्त्र उत्तर के श्रीरुद्र को रुद्रकी संख्या से उत्तर कुम्भ का स्पर्श करता हुआ 'शन्न [2]इन्द्राग्नि' सूक्तको निश्चय से वहाँ पर स्पर्श करता हुआ जप करे।

कुम्भस्य पश्चिमे देशे शान्तिहोमं समाचरेत्। दूर्वाभिस्तिलगोधूमैः पायसेन घृतेन च॥

कुम्भ में पश्चिम देश में शान्ति होम करे—दूर्वा, तिल, गेहूँ, पायस और घृत से।

तिसृभिश्चैव दूर्वाभिरेकैका चाहुतिर्भवेत्। अष्टोत्तरसहस्रं वा शतमष्टोत्तरं तु वा॥ गायत्र्यैव तु होतव्यं हविरत्र चतुष्टयम्।

तीन दूर्वाओं से एक एक आहुति से। यहाँ पर चार हवि से एक हजार आठ या एक सौ आठ गायत्रीमन्त्र से ही हवन करना चाहिये।

१—नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः। नमस्ते अस्तु धन्वने बाहुभ्यामुत ते नमः॥ १॥ या त इषुः शिवतमा शिवं बभूव ते धनुः। शिवा शरव्या या तव तया नो रुद्र मृडय॥ २॥ या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी। तया नस्तनुवा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि॥ ३॥ यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे। शिवां गिरित्र तां कुरु माहिँ सीः पुरुषं जगत्॥ ४॥ शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छा वदामसि। यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मँ सुमना असत्॥ ५॥ अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक्। अहींश्च सर्वान् जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्यः॥ ६॥ असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुः सुमङ्गलः। येचे मा ँ रुद्रा अभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशोऽवैषाँ हेड ईमहे॥ ७॥ असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः। उतैनं गोपा अदृशन्नदृसन्नुदहार्यः। उतैनं विश्वा भूतानि सदृष्टो मृडयाति नः॥ (तै० सं० का० ४ प्र० ५।१–८) (नमो हिरण्यबाहवे सेनान्ये दिशां च पतये नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः पशूनां पतये नमो नमः सस्पिञ्जराय त्विषीमते पथीनां पतये नमो नमो बभ्लुशाय विव्याधिनेऽन्नानां पतये नमो-नमो हरिकेशायोपवीतिने पुष्टानां पतये नमो नमो भवस्य हेत्यै जगतां पतये नमो नमो रुद्रायाऽऽततायिने क्षेत्राणां पतये नमो नमः सूतायाहन्त्याय वनानां पतये नमो नमो रोहिताय स्थपतये वृक्षाणां पतये नमो नमो मन्त्रिणे वाणिजाय कक्षाणां पतये नमो नमो भुवन्तये वारिवस्कृतायौषधीनां पतये नमो नमऽ उच्चैर्घोषायाऽऽक्रन्दयते पत्तीनां पतये नमो नमः कृत्स्नवीताय धावते सत्वनां पतये नमः॥ (तै० स० का० ४।५।२।१)।

२—शं न इन्द्राग्नी भवता मवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्याः। शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ॥ शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरन्धिः शमु सन्तु रायः। शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु॥ शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः। शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शंनो देवानां सुहवानि सन्तु॥ शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शम्। शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभि वातु वातः॥ शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहुतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु। शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः॥ शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः। शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु॥ शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः। शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्व १ : शम्वस्तु वेदिः॥ शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु। शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः॥ शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः। शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः॥ शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः। शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शंभुः॥ शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु। शमभिषाचः शमु रतिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः॥ शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः। शं न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु॥ शं नो अज एक पाद देवो अस्तु शं नोऽहिर्बुध्न्य १ः शं समुद्रः। शं नो अपां नपात् पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपा॥ आदित्या रुद्रा वसवो जुषन्तेदं ब्रह्म क्रियमाणं नवीयः। शृण्वन्तु नो दिव्याः पार्थिवासो गो जाता उत ये यज्ञियासः॥ ये देवानां यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः। तेनोरासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ (ऋ० म० ७ सू० ३५ म० १–१४)।

तत स्विष्टकृतं हुत्वा समुद्रादूर्मिसूक्ततः ॥ सन्ततामाज्यधारां तां पूर्णाहुतिमथाचरेत् ।

तदनन्तर स्विष्टकृत् हवन कर [१]'समुद्रादूर्मि' इस सूक्त से निरन्तर (लगातार) घी से पूर्णाहुति करे ।

अथाऽभिषेकं कुर्वीत प्रतिकुम्भस्थितोदकैः ॥ आपोहिष्ठेति नवभिः सूक्तेन च ततः परम् । इन्द्रो अङ्गं त्र्यृचेनैव पावमानैः क्रमेण तु ॥ उभयं शृणुवच्चनः स्वस्तिदाविश एकया । त्रैयम्बकेन मन्त्रेण जातवेदस एकया ॥

तदनन्तर हरएक कुम्भ में स्थित जलों से अभिषेक करे । [२]'आपो हि ष्ठा' इन नव मन्त्रों से तदनन्तर श्रीसूक्त से, [३]इन्द्रो अंग-इन तीन ऋचा से ही फिर [४]'पावमान ऋचाओं से फिर [५]उभयं शृणु वच्चन्न और [६]स्वस्तिदा विश' इस ऋचा से [७]'त्र्यंबकमन्त्र' से तथा [८]'जातवेद' से इस मन्त्र से ।

समुद्रज्येष्ठा इत्यादि त्रायन्तां च त्रिभिः क्रमात् । इमा आपस्त्र्यृचेनैव देवस्य त्वेति मन्त्रतः ॥ मन्त्रेणाथ तमीशानं त्वमग्ने रुद्र इत्यथ । तमुष्टुहीति मन्त्रेण भुवनस्य पितरं तथा ॥ याते रुद्रेति मन्त्रेण शिवसङ्कल्पमन्त्रतः । इन्द्र त्वा वृषभं पञ्चमन्त्रैश्चैवाभिषेचयेत् ॥ धेनुं पयस्विनीं दद्यादाचार्याय च भूषणैः । सदक्षिणमनड्वाहं प्रदद्याद्रुद्रजापिने ॥ महाशान्तिं प्रजाप्याथ ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ॥ इति ।

१—समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ उदारदुपांशुना सममृतत्वमानट् । घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः ॥ वयं नाम प्रब्रवामा घृतस्याऽस्मिन् यज्ञे धारयामा नमोभिः । उप ब्रह्मा शृणवच्छस्यमानं चतुः शृङ्गोऽवमीद् गौर एतत् ॥ चत्वारि शृङ्गा त्रयो यस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य । त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यां आ विवेश ॥ त्रिधा हितं पणिभिर्गुह्यमानं गवि देवासो घृतमन्वविन्दन् । इन्द्र एकं सूर्यं एकं जजान वेनादेकं स्वधया निष्टतक्षुः ॥ एता अर्षन्ति हृद्यात् समुद्राच्छत व्रजा रिपुणा ना वचक्षे । घृतस्य धारा अभि चाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्य आसाम ॥ सम्यक् स्रवन्ति सरितो न धेना अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः । एते अर्षन्त्यूर्मयो घृतस्य मृगा इव क्षिपणो रीयमाणाः ॥ सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वात प्रमियः पतयन्ति यह्वाः । घृतस्य धारा अरुषो न वाजी काष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः । अभि प्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्य १ः स्मयमानासो अग्निम् । घृतस्य धाराः समिधो न सन्त ता जुषाणो हर्यति जातवेदाः ॥ कन्या इव वहतुमेतवा उ अञ्ज्यञ्जाना अभि चाकशीमि । यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धारा अभि तत् पवन्ते । अभ्यर्षत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त । इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत् पवन्ते ॥ धामन् ते विश्वं भुवनमधि श्रितमन्तः समुद्रे हृद्यन्तरायुषि । अपामनीके समिथे य आभृतस्तमश्याम मधुमन्तं त ऊर्मिम् ॥ (ऋ०४।५८।१–११) ।

२—आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥ यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥ तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा चनः ॥ (ऋ० म० १० सू० ९ म०१–३)

३—इन्द्रो अग्न महद् भयमभी षदय च्युच्यवत् । स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥१॥ इन्द्रश्च मृडयाति नो नः पश्चादघं नशत् । भद्रं भवाति नः पुरः ॥२॥ इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत् । जेता शत्रून् विचर्षणिः ॥३॥ (ऋ० म०२, सू० ४१ म० १०—१२) ।

४—स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया । इन्द्राय पातवे सुतः ॥ रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहतम् । द्रुणा सधस्थमासदत् ॥ वरिवोधातमो भव मंहिष्ठो वृत्रहन्तमः । पर्षि राधो मघोनाम् ॥ इत्यादि बहुत मन्त्र हैं । ऋ०९।१।१–१०)

५—अभयं शृणुवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः । सत्राच्या मघवा सोमपीतये धिया शविष्ठ आगमन् ॥ (ऋ० म० ८ सू० ६१ म० १) ।

६—स्वस्तिदा विशस्पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी । वृषेन्द्रः पुर एतु नः सोमपा अभयंकरः ॥ (ऋ० म० १० सू० १५२ म० २) ।

७—त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥ (ऋ० म० ७ सू ५९ म० १२) ।

८—जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः । स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥ (ऋ० म० १ सू० ९९ म० १) ।

[1]समुद्रज्येष्ठा–इत्यादि और [2]त्रायन्ताम्–इन तीन ऋचाओं से फिर [3]इमा आपः–इन तीन ऋचाओं के क्रम से ही तदनन्तर [4]'देवस्य त्वा' इस मन्त्र से [5]तमीशानम्–इस मन्त्र से, [6]त्वमग्ने–इस मन्त्र से, [7]'तमुष्टुहि' इस मन्त्र से, [8]भुवनस्य पितरम्–इसमन्त्र से, [9]याते रुद्र'–इस मन्त्र से, [10]शिवसंकल्पमन्त्र से और [11]इन्द्र त्वा वृषभम्–इन पांच मन्त्रों से ही अभिषेक करे। आचार्य के लिए भूषणों सहित दूध को देनेवाली गौ को दे। दक्षिणा सहित बैल को रुद्र जप करने वाले के लिये दें। महाशान्ति को जप कर तदनन्तर ब्राह्मणों को भोजन करावे।

नारदः—तत्र शान्तिं प्रकुर्वीत घृतदूर्वातिलाक्षतैः। प्रत्येकाष्टशतं चैव गायत्र्या जुहुयात्ततः॥ स्वर्णगोभूतिलान्दद्यात्सर्वदोषापनुत्तये॥ प्रकारान्तरं मदनरत्ने ज्ञेयम्। विस्तरभयान्नोच्यते। ग्रहणे रजोदर्शने तु जातकर्मप्रस्तावे शान्तिं वक्ष्यामः।

नारद ने कहा है कि—वहाँ पर शान्ति करे—घृत, दूर्वा, तिल और अक्षतों द्वारा प्रत्येक से एक सौ

१—समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य मध्यात् पुनाना यन्त्यनिविशमानाः। इन्द्रो या वज्री वृषभो रराद ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥१॥ या आपो दिव्या उतवा स्रवन्ति खनित्रिमा उत वा याः स्वयंजाः। समुद्रार्था याः शुचयः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥ यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम्। मधुश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥ यासु राजा वरुणो यासु सोमो विश्वे देवा या सूर्जं मदन्ति। वैश्वानरो यास्वग्निः प्रविष्टस्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥ (ऋ० म० ७ सू० ४९ म० १—४)।

२—त्रायन्तामिह देवास्त्रायतां मरुतां गणः। त्रायन्तां विश्वा भूतानि यथायमपरपा असत् ॥ आप इद्वा उभेषजी रापो अमीवचातनीः। आपः सर्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ॥ हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी। अनामयित्नुभ्यां त्वा ताभ्यां त्वोप स्पृशामसि ॥ (ऋ० म० १० सू० १३७ म० ५–७)।

३—इमा आपः शिवतमा इमाः सर्वस्य भेषजीः। इमा राष्ट्रस्य वर्धनीरिमा राष्ट्रभृतोमृताः॥ याभिरिन्द्रमभ्यषिञ्चत्प्रजापतिः सोमं राजानं वरुणं यमं मनुम्। ताभिरद्भिरभि षिञ्चामित्वामहं राज्ञां त्वमधिराजो भवेह। महान्तं महीनां सम्राजं चर्षणीनां देवीजनित्र्यजीजनन्दद्राजजनित्र्यजीजनत्। देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामग्नये स्तेजसा सूर्यस्य वर्चसेन्द्रस्येन्द्रियेणाभिषिञ्चामि ॥

४—देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामग्नेस्तेजसा सूर्यस्य वर्चसेन्द्रियेणाभिषिञ्चामि। (तैत्तरीयसंहिता)

५—तमीशानं जगतस्तस्थुसस्पतिं धियं जिन्वमवसे हूमहे वयम्। पूषा नो यथा वेदसासद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥ ऋ० म० १ सू० ८९ म० ५)।

६—त्वमग्ने रुद्रो असुरो महो दिवस्त्वं शर्धो मारुतं पृक्ष ईशिषे। त्वं वातैररुणैर्यासि शंगमस्त्वं पूषा विधतः पासि नु त्मना ॥ (ऋ० म० २ सू० १ म० ६)।

७—तमु ष्टुहि यः स्विषुः सुधन्वा यो विश्वस्य क्षयति भेषजस्य। यक्ष्वामहे सौमनसाय रुद्रं नमोभिर्देवमसुरं दुवस्य (ऋ० म० ५ सू० ४२ म० ११)। तमु ष्टुहि यो अभिभूत्योजा वन्वन्नवातः पुरुहूत इन्द्रः। अषाळ्हमुग्रं सहमानमाभिर्गीभिर्वर्ध वृषभं चर्षणीनाम् ॥ (ऋ० म० ६ सू० १८ म० १)। तमुष्टुहीन्द्रं यो ह सत्वा यः शूरो मघवा यो रथेष्ठाः। प्रतीचश्चिद् योधीयान् वृषण्वान् ववव्रुषश्चित्तमसो विहन्ता ॥ (ऋ० म० १ सू० १७३ म० ५)।

८—भुवनस्य पितरं गीर्भिराभी रुद्रं दिवा वर्धया रुद्रमक्तौ। बृहन्तमृष्वमजरं सुषुम्नमृधग्घुवेम कविनेषितासः॥ (ऋ० म० ६ सू० ४९ म० १०)।

९—या ते रुद्र शिवातनूरघोरा पापकाशिनी। तयानस्त नुवा शंतमया गिरिशंताभिचाकशीहि॥ (तैत्तरीयसंहिता)

१०—यज्जाग्रतो दूर मुदैतु दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति। दूरं गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकन्तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः। यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु। यस्मान्नऽ ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परि गृहीतममृतेन सर्वम्। येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ यस्मिन्नृचः साम यजूँषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः। यस्मिँश्चित्तँ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ सुषारथिरश्वा निवयं मनुष्यान्नीयते शुभिर्वाजिन इव। हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं यविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥

११—इन्द्र त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे। स पाहि मध्वो अन्धसः॥ इन्द्र क्रतु विदं सुतं सोमं हर्य पुरुष्टुत। पिवा वृषस्व तातृपिम् ॥ इन्द्र प्रणो धितावानं यज्ञं विश्वेभिर्देवेभिः। तिर स्तवा न विश्पते ॥ इन्द्र सोमाः सुता इमे तव प्र यन्ति सत्पते। क्षयं चन्द्रास इन्दवः॥ दधिष्वा जठरे सुतं सोममिन्द्र वरेण्यम्। तव द्युक्षास इन्दवः॥ (ऋ० म० ३ सू० ४० म० १–५)।

आठ वार गायत्री से हवन करे तथा सब दोषों की शान्ति के लिए सुवर्ण, गो, भूमि और तिलों को दे। प्रकारान्तर मदनरत्न से जानना चाहिये। विस्तार के भय से नहीं कहता हूँ। ग्रहण में रजोदर्शन में तो जातकर्म की प्रस्तावना (भूमिका) में कहेंगे।

(प्रथमऋतौ विशेषः)

अथ प्रथमर्तौ विशेषः स्मृतिचन्द्रिकायाम्—प्रथमर्तौ तु पुष्पिण्याः पतिपुत्रवती स्त्रियः। अक्षतैरासनं कृत्वा तस्मिंस्तामुपवेशयेत्॥ हरिद्रागन्धपुष्पादि दद्युस्ताम्बूलकं स्रजम्। दीपैर्नीराजनं कुर्यात्सदीपे वासयेद् गृहे॥ लवणापूपमुद्गादि दद्यात्ताभ्यः स्वशक्तितः। इति।

इसकेबाद स्मृतिचन्द्रिका में प्रथमऋतु में विशेष कहा है कि—प्रथम रजोदर्शन (दुष्ट मास आदि में हो तो यह आचार है। किसी का मत है कि—दूसरी वार रजोदर्शन में करे) में रजस्वला स्त्री को पति और पुत्रवाली स्त्रियाँ अक्षतों का आसन करके उस पर उस स्त्री को बैठा दें। हलदी, गन्ध, पुष्प, तांबूल तथा माला आदि दें। दीपकों से आरती करें। दीपकवाले घर में रहने को दें। फिर अपनी शक्ति के अनुसार उन स्त्रियों के लिये लवण, मालपूडा और मूंग आदि दे।

(द्वितीयाद्यृतुषु तन्नियमकथनम्)

द्वितीयाद्यृतुषु तन्नियममाह प्रयोगपारिजाते दक्षः—अञ्जनाभ्यञ्जने स्नानं प्रवासं दन्तधावनम्। न कुर्यात्सार्तवा नारी ग्रहाणामीक्षणं तथा॥

दूसरी ऋतु आदियों में पारिजात में दक्ष ने उस रजस्वलाके नियम को कहा है कि—अञ्जन, अभ्यञ्जन (उवटना), स्नान, परदेश गमन, दन्तधावन और ग्रहों को देखना इनको रजोधर्मवाली स्त्री न करे।

अत्रिरपि—वर्जयेन्मधु मांसं च पात्रे खर्वे च भोजनम्। गन्धमाल्ये दिवास्वापं ताम्बूलं चास्यशोधनम्॥ दग्धे शरावे भुञ्जीत पेयं चाञ्जलिना पिबेत्॥

अत्रि ने भी कहा है कि—मधु, मांस, छोटे पात्र में भोजन, गन्ध, माला, दिन में सोना, तांबूल तथा मुख की शुद्धि को रजस्वला न करे। मट्टी के पके पात्र में भोजन करे। पेय (पीने का पानी) जल को अञ्जलि से पीये।

मदनरत्ने हारीतः—रजःप्राप्तावधः शयीत भूमौ, कार्ष्णायसे पाणौ मृन्मये वाऽश्नीयात्—इति।

मदनरत्न में हारीत ने कहा है कि—रजस्वला स्त्री भूमि पर शयन करे। कार्ष्णायस (लोहे के पात्र) में, हाथ में या मट्टी के पात्र में भोजन करे।

विष्णुधर्मे—आहारं गोरसानां च पुष्पालङ्कारधारणम्। अञ्जनं कङ्कतं गन्धान्पीठशय्याधिरोहणम्॥ अग्निसंस्पर्शनं चैव वर्जयेत्सा दिनत्रयम्॥ इति।

विष्णुधर्म में कहा है कि—गोरस का आहार (भोजन), पुष्प—अलंकारों का धारण, अञ्जन, (काजल) कंकन (तालपत्र आदि) (दक्षः—नखानां कृन्तनं रज्जुतालपत्रादिबन्धनम्।) गन्ध, पीठ (आसन), शय्या पर चढना, अग्नि का स्पर्श, इन सबको रजस्वला स्त्री तीनदिन वर्जित करे।

(प्रथमऋतोः पूर्वं स्त्रीगमनविचारः)

तथा प्रथमर्तोः पूर्वं स्त्रीगमनं न कार्यम्। प्राग्रजोदर्शनात्पत्नीं नेयाद्गत्वा पतत्यधः। व्यर्थीकारेण शुक्रस्य ब्रह्महत्यामवाप्नुयात्॥ इति तत्रैवाश्वलायनोक्तेः।

(एतत्तु दशवर्षात्प्राग्ज्ञेयम्। प्रथमर्तौ गमने गौतमेन विशेषो दर्शितः—गौरीमपि च रत्यर्थं गच्छेत्पुरुष आकुलः। अन्यथा वीर्यपातो हि सहस्रकुलपातकः॥ अन्यथापि तदिच्छया भवतीति विज्ञानेश्वरः।)

और प्रथम ऋतु के पूर्व स्त्री के साथ गमन (मैथुन) नहीं करना चाहिये। वहीं पर आश्वलायन ने कहा है कि—रजोदर्शन से पूर्व पत्नी की प्राप्ति न करे। यदि करे तो उसका अधःपतन होता है। वीर्य को व्यर्थ करने से ब्रह्महत्या को प्राप्त करता है। (यह तो दश वर्ष के पहले जानना चाहिये।)

प्रथम ऋतुगमन में गमन करनेपर गौतम ने विशेष कहा है कि—गौरी को भी रति के लिए पुरुष आकुल (व्याकुल) होता है। अन्यथा वीर्य के गिरने से हजार कुल का पातक लगता है। विज्ञानेश्वर ने कहा है कि—अन्यथा भी उसकी इच्छा से होता है।

(ऋतौ गमनकथनम्)

ऋतौ गमनमाह याज्ञवल्क्यः—षोडशर्तुनिशाः स्त्रीणां तासु युग्मासु संविशेत्। इति।

वहाँ पर ऋतु में याज्ञवल्क्य ने गमन करना कहा है कि—सोलह रात्रि (दिनका निषेध होनेसे रात्रिका ग्रहण है) स्त्रियों में ऋतु रहता है। उसमें युग्मदिनों में (पुत्र के लिए) संग (तत्प्रकारो हिरण्यकेशिसूत्रे-'चतुर्थ्यां प्रयतवस्त्रालङ्कारां कृतब्राह्मणसंभाषामाचम्योपह्वयते' इति। प्रशस्तब्राह्मणेन कृतसंभाषाम्) करे।

(अनृतावप्याह)

अनृतावप्याह गौतमः—'ऋतावुपेयात्सर्वत्र वा प्रतिषिद्धवर्जम्' इति।

अनृतु (विना ऋतु) में गौतम ने कहा कि—ऋतु में ही (अपनी भार्या के ही साथ) संगम करे। या वर्जित तिथियों को त्याग कर सदा स्त्री के साथ संगम करे।

मनुः—ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः। तासामाद्याचतस्रस्तु निन्दितैकादशी तथा॥ त्रयोदशी च शेषाः स्युः प्रशस्ता दश रात्रयः॥

मनु ने कहा है कि—स्त्रियों को सोलहरात्रि स्वाभाविक ऋतुकाल है। उनमें आदि की चार, ग्यारहवीं तथा तेरहवीं निन्दित हैं शेष दशरात्रि उत्तम है।

मदनरत्ने देवलः—'तस्मात्त्रिरात्रं चाण्डालीं पुष्पितां परिवर्जयेत्'। इति।

मदनरत्न में देवल ने कहा है कि—इसकारण से तीन रात तक चाण्डाली (प्रथमेऽहनि चाण्डाली, द्वितीये ब्रह्मघातिनी। तृतीये रजकी प्रोक्ता, चतुर्थेऽहनि शुध्यति॥) रजस्वला को त्याग देना चाहिये।

(तिथ्यादीनां ऋतौ कथनम्)

तत्र तिथ्यादीनाह श्रीधरः—षष्ठ्यष्टमीं पञ्चदशीं चतुर्थीं चतुर्दशीमप्युभयत्र हित्वा। शेषाः शुभाः स्युस्तिथयो निषेके वाराः शशाङ्कार्यसितेन्दुजानाम्॥ उभयत्र=पक्षद्वये। आर्यो=गुरुः। सितः=शुक्रः, इन्दुजो=बुधः।

उस ऋतु में तिथि आदि को श्रीधर ने कहा है कि—षष्ठी, अष्टमी, पूर्णिमा, चतुर्थी और दोनों पक्ष की चतुर्दशी को त्याग कर शेष शुभ तिथियाँ सोमवार, बृहस्पतिवार, शुक्रवार तथा बुधवार को गर्भाधान में शुभ है।

विष्णुप्रजेशरविमित्रसमीरपौष्णमूलोत्तरावरुणभानि निषेककार्ये। पूज्यानि पुष्पवसुशीतकराश्विचित्रादित्याश्च मध्यमफला, विफलाः स्युरन्ये॥

विष्णु (श्रवण), प्रजेश (रोहिणी), रवि (हस्त), मित्र (अनुराधा) समीर (स्वाती), पौष्ण (रेवती), मूल (उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा और उत्तराभाद्रपदा) और वरुण (शतभिषा) गर्भाधान में श्रेष्ठ हैं। पुष्य, वसु (धनिष्ठा), शीतकर (मृगशिरा) अश्विनी, चित्रा और अदिति (पुनर्वसु) ये मध्यम है। अन्य नक्षत्र विफल (फलको देनेवाले नहीं) हैं।

(विष्वादिदैवत्यनक्षत्राणि)

विष्ण्वादिदैवत्यनक्षत्राण्युक्तानि रत्नमालायाम्—भेशा दस्रयमाग्निधातृशशिनः शर्वोदितिर्वाक्पतिः कद्रुजाः पितरो भगोऽर्यमरवी त्वष्ट्राह्वयो मारुतः। शक्राग्नी त्वथ मित्र इन्द्रनिरृती तोयं च विश्वे विधिर्गोविन्दो वसवोऽम्बुपाजचरणाहिर्बुध्न्यपूषाभिधाः॥ उत्तराशब्देनोत्तरात्रयम्। अथ मूलस्य पूज्यत्वमुक्तम्।

विष्णु (श्रवण) आदि दैवत्यनक्षत्र रत्नमाला में कहे हैं—अश्विनी आदि नक्षत्रों के स्वामी क्रम से ये हैं—अश्विनी के—अश्विनीकुमार, भरणी के-यम, कृत्तिका के-अग्नि, रोहिणी के—ब्रह्मा, मृगशिरा के

चन्द्रमा, आर्द्रा के--शिव, पुनर्वसु के-अदिति, पुष्य के-बृहस्पति, आश्लेषा के नाग, मघा के—पितर, पूर्वाफालगुनी के-अर्यमा, उत्तराफाल्गुनी के—सूर्यविशेष, हस्त के—सूर्य, चित्रा के--विश्वकर्मा। स्वाती के—समीर-वायु, विशाखा के-इन्द्र और अग्नि, अनुराधा के-मित्र, (सूर्य), ज्येष्ठा के इन्द्र, मूल के-राक्षस, पूर्वाषाढा का—जल, उत्तराषाढा, विश्वेदेव, अभिजित् का--ब्रह्मा, श्रवणके-गोविन्द, धनिष्ठा का—अष्टवसु, शतभिषाका—वरुण, पूर्वाभाद्रपद का--अजचरण, सूर्य विशेष, उत्तराभाद्रपद का--अहिर्बुध्य—सूर्यविशेष, रेवती का पूषा—सूर्यविशेष, इसमें मूल को पूज्यत्व कहा है।

याज्ञवल्क्येन तु—एवं गच्छन् स्त्रियं क्षामां मघां मूलं च वर्जयेत्। इत्युक्तम्। तेनपूर्वत्र मूलं चिन्त्यम्। अत्र 'समासु पुत्राः विषमासु कन्या' इति ज्ञेयम्।

याज्ञवक्य ने तो कहा है कि—इसप्रकार रजस्वला व्रत आदि से या स्निग्धभोजन आदि से स्त्री का संगम करता हुआ मघा और मूल को त्याग दे। यों कहा है। इससे पहले कहा हुआ मूल चिन्तनीय है। यहाँपर सम रात्रियों में पुत्र और विषम रात्रियों में कन्या होती है—ऐसा जानना चाहिये।

युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु। इति हेमाद्रौ शङ्खोक्तेः। तत्राप्युत्तरोत्तराः प्रशस्ताः। तदाहापस्तम्बः—'तत्राप्युत्तरोत्तरा प्रशस्ताः' इति।

हेमाद्रि में शंख ने कहा है कि—युग्मरात्रियों में पुत्र उत्पन्न होते हैं और अयुग्मरात्रियों में कन्या उत्पन्न होती है। उसमें भी उत्तरोत्तर उत्तम हैं।

उसी बात को आपस्तंब ने कहा है कि--उसमें भी उत्तरोत्तर तिथियाँ उत्तम होती हैं।

तत्रैव व्यासः—रात्रौ चतुर्थ्यां पुत्रः स्यादल्पायुर्धनवर्जितः। पञ्चम्यां पुत्रिणी नारी, षष्ठ्यां पुत्रस्तु मध्यमः॥ सप्तम्यामप्रजा योषिदष्टम्यामीश्वरः पुमान्। नवम्यां सुभगा नारी दशम्यां प्रवरः सुतः॥ एकादश्यामधर्मा स्त्री, द्वादश्यां पुरुषोत्तमः। त्रयोदश्यां सुता पापा वर्णसङ्करकारिणी॥ धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च आत्मवेदी दृढव्रतः। प्रजायन्ते चतुर्दश्यां पञ्चदश्यां पतिव्रता॥ आश्रयः सर्वभूतानां षोडश्यां जायते पुमान्॥ इति।

यहाँ पर ही व्यास ने कहा है कि--चौथी रात्रि में गर्भाधान करे तो पुत्र होता है। वह अल्पायु और धन से रहित होता है। पांचवी रात्रि में स्त्री कन्यावाली, छठी रात में मध्यम पुत्रवाली, सातवी रात्रि में सन्तान हीनतावाली, आठवी रात में पुत्र, नवमीं में ऐश्वर्यशालिनी कन्या, दशमी रातमें उत्तम पुत्र, ग्यारहवीं रात्रि में धर्म हीन कन्या, बारवीं रात्रि में उत्तम पुत्र, तेरहवीं रात्रि में-पापिनी वर्णशंकरता करनेवाली कन्या, चौदहवीं रात्रि में—धर्म को जाननेवाला, कृतज्ञ, आत्मज्ञानी, दृढव्रत और सन्तान होती है। पञ्चदशी में पतिव्रता कन्या होती है। षोडशी (सोलहवीं) रात्रि में सब प्राणियों का रक्षक पुत्र होता है।

अत्र चतुर्थदिननिषेधेऽपि—स्नातां चतुर्थे दिवसे रात्रौ गच्छेद्विचक्षणः। इति महाभारतोक्तेः 'चतुर्थेऽहनि स्नातायां युग्मासु वा गर्भं सन्दधाति' इति हारीतोक्तेर्विकल्पो ज्ञेयः।

यहाँ पर चौथे दिन में भी महाभारत में कहा है कि—चौथे दिन में स्त्री के स्नान करने पर (यद्यपि दैवकर्म और पितृकर्म में पांचवे दिन शुद्धि होती है--इससे चतुर्थ दिन में दैवकर्म में पुण्यता नहीं होती है। फिर भी पांचवे दिन रजोनिवृत्तिकाल कहा है। पर चतुर्थदिन में रजोनिवृत्ति होने पर गर्भाधान आदि देवकर्म के योग्य हो जाती है। इसीप्रकार चौथे दिन गर्भाधानाङ्गभूत शान्ति आदि अनापत्ति में करे। इसीतरह श्रौतकर्म में रजस्वला स्त्री को चतुर्थ दिन में अधिकार है। इसीतरह उपनयादि में श्रीसूक्तहोम आदि से चतुर्थदिन में अधिकार होता है) रात्रि में बुद्धिमान् मनुष्य मैथुन करे। चौथे दिन स्त्री के स्नान करने पर या युग्मरात्रि में गर्भ को धारण कराता है। इस हारीत के कहे हुए वचन से विकल्प जानना चाहिये।

तत्रापि—स्नानं रजस्वलायास्तु चतुर्थेऽहनि शस्यते। गम्या निवृत्ते रजसि नानिवृत्ते कथञ्चन॥ त्यापस्तम्बोक्तेर्व्यवस्था ज्ञेया।

उसमें भी-आपस्तंब की व्यवस्था जाननी चाहिये। जैसे—रजस्वला[1] का स्नान चतुर्थदिन में करना उत्तम कहा है। रज के हटने पर गमन करने योग्य होती है। रजोधर्म के न हटने पर (जब तक रज निकलता रहेगा तब तक वह रजस्वला स्त्री स्नान और स्पर्श आदि में योग्य होती है। परन्तु गर्भाधान, उपनयन आदि स्मार्त और श्रौतकर्म में अधिकार नहीं होता है।) गमन करने योग्य नहीं होती है।

अत्र सर्वासु युग्मासु गमनमावश्यकम्। युग्मास्विति बहुवचननिर्देशादिति विज्ञानेश्वरः। तच्चैकस्यां रात्रौ सकृदेव कार्यम्। 'सुस्थे इन्दौ सकृत्पुत्रं लक्षण्यं जनयेत्पुमान्। इति याज्ञवल्क्योक्तेः। इदं चर्तौ गमनमन्यकाले प्रतिबन्धादिना गमनासम्भवे श्राद्धैकादश्यादावपि कार्यम्। 'ब्रह्मचार्येव पर्वाण्याद्याश्चतस्रश्च वर्जयेत्' (अ० १ श्लो० ७९) इति याज्ञवल्क्योक्तेः।

यहाँ पर सब युग्म रात्रियों में गमन करना आवश्यक है। क्योंकि विज्ञानेश्वर ने कहा है कि—'युग्मासु' इस बहुवचन के कथन से। वह भी एक रात्रि में एकही बार (अपनी पत्नी के साथ) गमन (मैथुन) करना चाहिये। याज्ञवल्क्य ने कहा कि—एकादशस्थान में चन्द्रमा के होने पर एक ही वार गमन करने पर अच्छे लक्षण वाला पुत्र उत्पन्न होता है। यह ऋतु के गमन में अन्यसमय में रुकावट आदि से गमन के असंभव में श्राद्ध और एकादशी आदि में करना चाहिये। याज्ञवल्क्य ने कहा है कि-ब्रह्मचारी ही पर्व और आदि की चार रात्रि त्याग दे।

व्याख्यातं चेदं मिताक्षरायाम्—यत्र श्राद्धादौ ब्रह्मचर्यं विहितं तत्राप्यृतौ गच्छतो न ब्रह्मचर्यस्खलनदोषः' इति। पर्वाणीति बहुत्वेनाष्टमीचतुर्दश्योर्ग्रहणमिति च। मदनरत्नेऽप्येवम्।

इसकी व्याख्या तो मिताक्षरा में है कि-जहाँ पर श्राद्ध आदि में ब्रह्मचर्य का विधान है वहाँ पर ऋतु में गमन करने पर ब्रह्मचर्यखलनजन्यदोष नहीं होता है। पर्वाणि—इस बहुवचन के कथन से अष्टमी और चतुर्दशी (अमावास्याष्टमीं च पौर्णमासीं चतुर्दशीम्। ब्रह्मचारी भवेन्नित्यमप्यृतौ स्नानको द्विजः॥ 'चतुर्दश्यष्टमी चैव अमावास्या च पूर्णिमा। पर्वाण्येतानि राजेन्द्र रविसंक्रमणं तथा॥) का ग्रहण है। मदनरत्न में भी यही कहा है।

(दिवा-जन्मदिनादौ मैथुनविचारः)

यत्तु हेमाद्रौ शिवरहस्ये—दिवा जन्मदिने चैव न कुर्यान्मैथुनं व्रती। श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च श्रेयोऽर्थी न च पर्वसु॥ इति तदनृतुविषयम्। ब्रह्मचार्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन्। इति मनूक्तेः। दर्शादौ तु न भवत्येव, पर्वणां पर्युदस्तत्वात्।

जो हेमाद्रिमें शिवरहस्य का वचन है कि—व्रत करनेवाला दिन में और जन्मदिन में मैथुन न करे। श्राद्ध कर तथा भोजनकर के और पर्वों में कल्याण चाहने वाला मैथुन न करे। यह उपरोक्त बातें ऋतु से भिन्न विषयक हैं। क्योंकि मनुने कहा है कि—जिस किसी आश्रम (वानप्रस्थ की अपेक्षा से) में निवास करता हुआ मनुष्य ऋतुकालमें गमन करनेपर भी ब्रह्मचारी (श्रुतौ—'प्राणं वा एते प्रस्कन्दन्ति ये दिवा रत्या संयुज्यन्ते ब्रह्मचर्यमेव तद्रात्रौ संयुज्यन्ते।) ही रहता है। अमावास्या आदि में स्त्री के साथ गमन नहीं ही होता है। क्योंकि निषेध है।

माधवीये तु—ऋतुकाले नियुक्तो वा नैव गच्छेत् स्त्रियं क्वचित्। तत्र गच्छन् समाप्नोति ह्यनिष्टं फलमेव तु॥ इति वृद्धमनूक्तेः। श्राद्धे ब्रह्मचर्यं नियतमित्युक्तम्। पृथ्वीचन्द्रोदयेऽप्येवम्। एतत्सति सम्भवे ज्ञेयम्।

माधवीय में तो वृद्धमनुने कहा कि—या ऋतुकाल में नियुक्त पुरुष कभी भी स्त्री के पास नहीं हो जाय। अर्थात्—स्त्री के साथ संभोग न करे। वहाँ पर जाने पर निश्चय ही अनिष्टफल होता है। अर्थात्—श्राद्ध में

१—यहाँ पर माधवने चारप्रकार से कहा है—पहला—ऋतुकाल में होनेवाला, 'कालज' होता है। दूसरा—भक्ष्यविशेषके भक्षण को 'द्रव्यज' होता है। तीसरा—प्रसूतिके पहले स्त्रियों में भेदवृद्धि से उत्पन्न को 'रागज' कहते हैं। चतुर्थ—रोगसे उत्पन्न रजको 'रोगज' कहते हैं। अर्थात्—रोगसे उत्पन्न रजके निकलनेसे उस स्त्रीकी अस्पृश्यता और अशुचित्वता के अभाव में भी पाकादिकर्म करने का अधिकार रजोनिवृत्ति पर ही होगा। 'रजोनिवृत्तौ गम्या स्त्री गृह्यकर्मणि चैव हि।

संलग्न पुरुष नियमितरूपसे ब्रह्मचारी रहे। श्राद्धकर्ता और भोजनकरनेवाले ऋतुकाल में भी ब्रह्मचर्य का पालन करे।

(विज्ञानेश्वर ने कहा है कि—श्राद्धकर्ता और भोक्ता को ऋतुकाल में ब्रह्मचर्य में रहना आवश्यक नहीं है)। पृथ्वीचन्द्रोदय में भी यही है। यह (विज्ञानेश्वरीय मत को अगतिकगतिपरक) सतिसंभव में जानना चाहिये।

(अनेकभार्यस्यर्तुयौगपद्ये विचारः)

अनेकभार्यस्यर्तुयौगपद्ये हेमाद्रौ कश्यपः—यौगपद्ये तु तीर्थानां विवाहक्रमशो व्रजेत्। रक्षणार्थमपुत्रां वा ग्रहणक्रमशोऽपि वा ॥ इति ग्रहणम्=ऋतुग्रहणम्।

जिसकी अनेक स्त्री हों यदि वे सब एक ही साथ रजोधर्मवती हो जाँय तो हेमाद्रि में कश्यप का वचन है कि—एक साथ ऋतुओं के हो जानेपर—विवाह के क्रमसे, (अर्थात्—जिसक्रम से उनके साथ विवाह किया हो उस क्रमसे) उनकी रक्षाके लिए ग्रहण से ऋतु का ग्रहण है। जिनके पुत्र न हो या ग्रहण (रजोधर्मग्रहण) क्रमसे स्त्रियों के साथ सहवास (मैथुन) करे।

(गमनात्पूर्वं योनिं स्पृष्ट्वा विष्णुर्योनिम्-इति सूक्तजपविधानम्)

ऋग्विधाने—विष्णुर्योनिं जपेत्सूक्तं योनिं स्पृष्ट्वा त्रिभिर्व्रती।
गर्भाधानं ततः कुर्यात् सुपुत्रो जायते ध्रुवम् ॥

ऋग्विधान में कहा है कि—व्रत करनेवाला पुरुष तीनवार योनिका स्पर्शकर [1]'विष्णुर्योनिम्' इस सूक्त का जप करे। तदनन्तर गर्भाधान करे तो सुपुत्र (गुणज्ञ) निश्चय उत्पन्न होता है।

(अगमने दोषकथनम्)

अगमने दोषमाह पराशरः—ऋतुस्नातां तु यो भार्यां सन्निधौ नोपगच्छति।
घोरायां भ्रूणहत्यायां पच्यते नात्र संशयः ॥

नहीं गमन करनेपर पराशरने दोष कहा है कि—जो ऋतु में स्नानकर चुकी ऐसी अपनी स्त्री के समीप में नहीं जाता है। उसे घोर भ्रूणहत्या का पाप लगता है। इसमें संशय (सन्देह) नहीं है[2]।

(अस्यापवादकथनम्)

अस्यापवादमाह मदनरत्ने व्यासः—व्याधितो बन्धनस्थो वा प्रवासेष्वथ पर्वसु।
ऋतुकालेऽपि नारीणां भ्रूणहत्या प्रमुच्यते ॥

इसका अपवाद मदनरत्न में व्यास ने कहा है कि—जो रोगी हो, कैदी हो, प्रवास (परदेश) में हो और पर्वों में ऋतुकाल स्त्रियों को होनेपर भी भ्रूणहत्या के पाप से मुक्त रहता है। अर्थात्—उसको भ्रूणहत्याजन्य पाप नहीं लगता है।

वृद्धां वन्ध्यामसद्वृत्तां मृतापत्यामपुष्पिणीम्। कन्यासूं बहुपुत्रां च वर्जयेन्मुच्यते भयात् ॥ वृद्धाम्=गतरजस्काम्।

जो स्त्री वृद्धा हो (अर्थात्—जिसको कालान्तर में मासिकधर्म नहीं होता हो), वन्ध्या हो (जिसको पुत्र नहीं हुआ हो, दुराचारिणी हो, जिसकी सन्तान मर जाती हो, जिसको रजोधर्म नहीं होता हो जिसके बहुत सी कन्या हो और जिसके बहुत से पुत्र हों वह पुरुष ऐसी स्त्रियों के साथ मैथुन करने के भय (भ्रूणहत्या आदि) से छूट जाता है। वृद्धा माने—जिसको मासिकधर्म नहीं होता है।

१—ॐ विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु। आ सिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ॥ गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति। गर्भं ते अश्विनौ देवावा धत्तां पुष्करस्रजा ॥ हिरण्ययी अरणी यं निर्मन्थतो अश्विना। तं ते गर्भं हवामहे दशमे मासि सूतवे ॥ (१०।१८४।१-३)।

२—हेमाद्रौ—ऋतुस्नाता च या नारी भर्तारं नोपगच्छति। तां ग्राममध्ये विख्याप्य भ्रूणघ्नीं तु विवासयेत् ॥ अत्र प्रायश्चित्तमाह बौधायनः—ऋतौ न गच्छेद्यो भार्यां नियतां धर्मचारिणीम्। नियतातिक्रमे तस्य प्राणायामशतं स्मृतम् ॥ प्राणायामशतद्वयस्य कृच्छ्रप्रत्याम्नायत्वात्। बृहस्पतौ—ऋतौ न गच्छेद्यो भार्यां सोऽपि कृच्छ्रार्धमाचरेत्।

(गर्भाधानाङ्गहोमाकरणे प्रायश्चित्तकथनम्)

गर्भाधानाङ्गहोमाकरणे प्रायश्चित्तमाह—पारिजाते आश्वलायनः—गर्भाधानस्याकरणात्तस्यां जातस्तु दुष्यति । अकृत्वा गां द्विजे दत्त्वा कुर्यात्पुंसवनं पतिः ॥ गर्भाधानं च मलमासशुक्रास्तादावपि कार्यम् ।

गर्भाधानाङ्गहोमके न करनेपर पारिजातमें आश्वलायन ने प्रायश्चित्त कहा है कि—गर्भाधानाङ्गहोम को न करने से उस स्त्री में उत्पन्न पुत्र दोषवाला होता है । यदि नहीं होम किया हो तो ब्राह्मण को गौ देकर उस स्त्री का पति 'पुंसवनसंस्कार' करे । गर्भाधान मलमास, गुरु, शुक्र आदिमें भी करना चाहिये ।

उत्सवेषु च सर्वेषु सीमन्तऋतुजन्मसु । सुरासुरेज्ययोश्चैव मौढ्यदोषो न विद्यते ॥ इति ज्योतिर्निबन्धे भृगूक्तेः ।

ज्योतिर्निबन्ध में भृगुने कहा है कि—सब उत्सवों में, सीमन्तसंस्कार में और ऋतु काल में, बृहस्पति तथा शुक्र के अस्त का दोष नहीं होता है ।

(ऋतुगमने विचारः)

ऋतुगमने पराशरः—ऋतौ तु गर्भशङ्कित्वात् स्नानं मैथुनिनः स्मृतम् ।
अनृतौ तु यदा गच्छेच्छौचं मूत्रपुरीषवत् ॥

ऋतुकाल में गमन करने पर पराशर ने कहा है कि—ऋतुमें गर्भ रहने की आशंका है । अतः मैथुन करनेवाले मनुष्यों को स्नान करना चाहिये । जो बिना ऋतु के अपनी पत्नी के साथ गमन करता है । वह मूत्र और पुरीषवत् (अर्थात्—मूत्र करनेपर चारवार कुल्ला करे और पैखाना जानेपर—एक बार मृत्तिका लिंगमें, हाथमें तीनवार, दोनों हाथों में दो बार, पैरों में एकवार करने से शुद्धि होती है । इसको मूत्राशौच कहते हैं । शुक्रमें तो द्विगुणित है । इसमें मतमतान्तर हैं ।) शुद्धि करे ।

स्त्रीणां तु न स्नानम् । उभावप्यशुची स्यातां दम्पती शयनं गतौ । शयनादुत्थिता नारी शुचिः स्यादशुचिः पुमान् ॥ इति वृद्धशातातपोक्तेः ।

स्त्रियों को तो स्नान करना नहीं कहा है । वृद्धशातातप ने कहा है कि—एक साथ एक शय्यापर मैथुन करने के लिए शय्यापर शयन में जाते हुए स्त्री और पुरुष (दम्पति) ये दोनों अशुचि (अपवित्र) हो जाते हैं । उसमें स्त्री शयनस्थान से उठने पर (अर्थात्—अलग होने पर) पवित्र हो जाती है और पुरुष अपवित्र हो जाता है । अर्थात् उसकी शुद्धि स्नान से ही होती है ।

(रजोदर्शने कश्चिद्विशेषकथनम्)

अत्र कश्चिद्विशेष उच्यते । तत्र रात्रौ रजसि जननादौ च रात्रिं त्रिभागां कृत्वा आद्यभागद्वये चेत्पूर्वदिनं ग्राह्यं, परतस्तूत्तरमिति मिताक्षरायाम् ।

यहाँपर कुछ विशेष कहता हूँ । उस रातमें—रजोधर्म होनेपर पुत्र या कन्या के जन्म होजाने पर या किसी की मृत्युपर उस रात का तीन भाग करे । उसमें आदिके दो भाग में पहला दिन ग्रहण करे । आगे के तीसरे भाग को दूसरा दिन मानना चाहिये—(कश्यपने कहा है कि—रात्रिं कुर्यात्त्रिभागां तु द्वौ भागौ पूर्व एव तु । उत्तमोंऽशः प्रभातेन युज्यते ऋतुसूतके ॥) यह मिताक्षरामें कहा है ।

यत्तु 'प्रागर्द्धरात्रात् प्राग्वा सूर्योदयात्पूर्वदिनम् ग्राह्यम्' इत्युक्तं, तत्र देशाचाराद्व्यवस्था ।

जो किसी ने कहा है कि—आधीरात के पहले या सूर्योदय के पहले (रजोधर्म, पुत्र-कन्या का जन्म या मरण हो तो) पहला दिन (उदिते तु यदा सूर्ये नारीणां दृश्यते रजः । जननं वा विपत्तिर्वा यस्याहस्तस्य शर्वरी ॥ अर्धरात्रावधिः कालः सूतकादौ विधीयते । पूर्वमेव दिनं ग्राह्यं यावन्नाभ्युदितो रविः ॥) ग्रहण करना चाहिये । उसमें देशाचार से व्यवस्था समझनी चाहिये । ऐसा कहा है ।

तथा सप्तदशदिनपर्यन्तं पुनः रजोदर्शने स्नानमात्रम्, अष्टादशे एकरात्रम्, ऊनविंशे द्व्यहः, विंशतिप्रभृति त्रिरात्रमिति तत एव ज्ञेयम् ।

और सत्रहदिन पर्यन्त फिर से रजोदर्शन (मासिकधर्म) हो जाय तो स्नानमात्र करे । अठारहवें

दिन रजोधर्म हो तो एकरात, उन्नीसवें दिन रजोधर्म हो तो दो दिन, बीस आदि दिन में तीनरात अशुद्धि रहती (अत्रिस्मृतौ—रजस्वला यदि स्नाता पुनरेव रजस्वला। अष्टादशदिनादर्वागशुचित्वं न विद्यते ॥ एकोनविंशतेरर्वागेकाहः स्यात्ततो द्व्यहम्। विंशत्यप्रभृत्युत्तरेषु त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥) है।

यत्तु—चतुर्दशदिनादर्वागशुचित्वं न विद्यते ॥ इति, तत्र स्नानप्रभृतित्वमभिप्रेतम्। एतच्च यस्या विंशतिदिनोत्तरं प्रायशो रजस्तत्रैव। यस्यास्त्वर्वाक् प्रायशो रजस्तत्रोक्तं स्मृत्यर्थसारे-त्रयोदशदिनादूर्ध्वं प्रायो रजोवतीनामेकादशदिनात्प्रागशुचित्वं नास्ति, एकादशदिन एकरात्रं, द्वादशे द्विरात्रम्, ऊर्ध्वं त्रिरात्रम्' इति। प्रयोगपारिजातेऽप्येवम्।

जो यह कहा है कि—चौदहदिन के पहले अपवित्रता नहीं होती है। उसमें स्नान को ही करना अभीष्ट है और यह भी कहा है कि जिस स्त्री का बीसदिन के बाद रजोधर्म प्रायः करके होता है उसी के लिये है। जिस स्त्री को बीसदिन के पूर्व प्रायः रजोधर्म होता है। उसमें स्मृत्यर्थसार में कहा है कि—तेरहदिन के बाद प्रायः रजोधर्मवाली स्त्रियों का ग्यारहदिन के बाद अपवित्रता नहीं होती है। ग्यारहवेंदिन एकरात, बारहवें दिन दोरात और उसकेबाद तीनदिन का आशौच होता है। प्रयोगपारिजात में भी यही कहा है।

(रोगादौ तु विशेषकथनम्)

रोगजे तु तत्रैव विशेषः सङ्ग्रहे—रोगेण यद्रजः स्त्रीणामन्वहं हि प्रवर्तते। नाशुचिस्तु भवेत्तेन यस्माद्वैकारिकं मतम् ॥ इति। कर्माधिकारस्तु रजोनिवृत्तावेव।

रोगद्वारा उत्पन्न रजोधर्म में तो वहाँ पर विशेष संग्रह में कहा है कि—रोग के द्वारा जो स्त्रियों को प्रतिदिन रजोधर्म होता है। उससे स्त्रियों को अपवित्रा नहीं होती है। क्योंकि विकार से उत्पन्न हुआ है। पर स्त्रियों को कार्य करने का अधिकार रजोनिवृत्तिबाद ही है।

साध्वाचारा न तावत्स्यात्स्नाताऽपि स्त्री रजस्वला। यावत्प्रवर्तमानं हि रजो नैव निवर्त्तते ॥ इति श्राद्धहेमाद्रौ शङ्खोक्तेः।

श्राद्धहेमाद्रि में शंखका कथन है कि—स्नान करने पर भी रजस्वला स्त्री तबतक अच्छे आचरण नहीं कर सकती है जबतक रजोधर्म की निवृत्ति उसे न हो।

तत्रापि स्वकाले शुचिरेवेत्याह ऋष्यशृङ्गः—रोगजे वर्तमानेऽपि काले निर्याति कालजम्।
तस्मात्कालेऽप्रमत्ता स्यादन्यथा सङ्करो भवेत् ॥

उसमें भी अपने समय में अर्थात् रजोधर्म होने पर पवित्र ही है—यह ऋष्यशृंगने कहा है कि—रोग द्वारा उत्पन्न हुआ रजोधर्म वर्तमानसमय में भी हो जाता हो तो वह 'कालज' है। इसकारण से उस समयमें मनुष्य अप्रमत्त (सावधान) रहे। अन्यथा गमन करने से सन्तान वर्णशंकर पैदा होती है।

तथा रजस्वलाया रजस्वलान्तरस्पर्शेऽकामतः स्नानं, कामतः उपवासः पञ्चगव्याशनं च। असवर्णानां तु ब्राह्मण्याः क्षत्रियादिस्पर्शे क्रमेण कृच्छ्रार्द्धपादोनकृच्छ्रातिकृच्छ्राः। क्षत्रियादीनां तु कृच्छ्रपाद एव। क्षत्रियादीनां हीनवर्णस्पर्शे त्रिरात्रमुपवासः, वैश्याशूद्र्योः पूर्वया स्पर्शेऽहोरात्रं द्विरात्रं च। एतच्च कामतः। अकामतस्तु प्राक् शुद्धेरनशनम्। अकामतश्चाण्डालादिस्पर्शेष्वनशनमेव प्राक् शुद्धेः। कामतस्तु प्रथमेऽह्नि त्र्यहः द्वितीये द्व्यहस्तृतीये एकाहः। श्वस्पर्शे तु द्व्यह एकाहो वा। भुञ्जानायाश्चाण्डालादिस्पर्शे षड्रात्रम्। उच्छिष्टयोः स्पर्शे तु कृच्छ्र इत्यादि मिताक्षरायां ज्ञेयम्। स्मृत्यर्थसारे तु सर्वत्र बालापत्यायाः स्पर्शे स्नाने कृते भुक्तिः पश्चादनशनप्रत्याम्नाय इति।

और रजस्वली स्त्री अज्ञान से दूसरी रजस्वला स्त्री का स्पर्श करे तो स्नान करे। जो जानकर स्पर्श करे वह उपवास (एकदिन निराहार) तथा पञ्चगव्य का प्राशन करे। असवर्णा (जो समान जाती की न हो) ओंको तो कहा है कि—ब्राह्मणी को क्षत्रिया, आदि के स्पर्श में क्रम से कृच्छ्र, अर्धपाद 'ऊनकृच्छ्र' और अतिकृच्छ्र करे। क्षत्रिया आदिओं को कृच्छ्रार्धपाद ही कहा है। क्षत्रियादियों का हीनवर्णा स्त्रियों के स्पर्श में तीनदिन का उपवास है। वैश्य स्त्री और शूद्रा स्त्री अपने से पूर्व जाती की स्त्री को

स्पर्श करे तो अहोरात्र (दिनरात) या द्विरात्र (दो रात) उपवास करे। यह प्रायश्चित्त जान कर स्पर्श करने पर होता है। यदि अज्ञान से स्पर्श हुआ हो तो शुद्धि के पहले अनशन (बौधायने—रजस्वला तु संस्पृष्टा चाण्डालान्त्यश्ववायसैः। तावत्तिष्ठेन्निराहारा यावत्कालेन शुध्यति ॥) व्रत करे।

जानकर स्पर्श करने पर तो पहले दिन तीनदिन, दूसरेदिन दो दिन और दूसरे दिन (प्रथमेऽह्नि त्रिरात्रं स्यात्, द्वितीये द्व्यहमेव तु। अहोरात्रं तृतीयेऽह्नि परतो नक्तमाचरेत् ॥) एकदिन का उपवास करे। कुत्तेके स्पर्श में (यमः—रजस्वला तु संस्पृष्टा शुना जम्बुकवायसैः। निराहारा भवेत्तावद्यावत्कालेन शुध्यति ॥) तो दो दिन या एक उपवास करे। भोजन करती हुई स्त्री का चण्डाल आदि (रजस्वला च भुञ्जाना श्वान्त्य-जातीन् स्पृशेद्यदि। गोमूत्रयावकाहारा षड्रात्रेण विशुध्यति ॥ अशक्तौ काञ्चनं दद्यात् विप्रेभ्यो वाऽपि भोजनम्।) स्पर्श करें तो छः रात उपवास करे। उच्छिष्ट दो रजस्वला आपस में स्पर्श करें तो कृच्छ्रव्रत प्रायश्चित्त करे—इत्यादि मिताक्षरा में जानना चाहिये। स्मृत्यर्थसार में तो कहा है कि—सर्वत्र जिस स्त्री की गोदी में बालक हो वह स्पर्श करे तो स्नान करने से शुद्धि होती है। यदि भोजनोत्तर स्पर्श कर अनशन रूपी व्रत करे।

(रजस्वलास्नानविधिकथनम्)

स्नानविधिं चाह पराशरः—स्नाने नैमित्तिके प्राप्ते नारी यदि रजस्वला। पात्रान्तरिततोयेन स्नानं कृत्वा व्रतं चरेत् ॥ सिक्तगात्रा भवेदद्भिः साङ्गोपाङ्गा कथञ्चन। न वस्त्र पीडनं कुर्यान्ना-न्यद्वासश्च धारयेत् ॥

पराशर ने स्नानविधि कहा है कि—यदि रजस्वला स्त्री को नैमित्तिकस्नान की प्राप्ति हो जाने पर दूसरे पात्र में ग्रहण किये हुए जल (व्यासः—आर्तवाभिप्लुता नारी नावगाहेत् कदाचन। उद्धृतेन जलेनैव स्नात्वा शेषं समापयेत् ॥) से स्नानकर व्रत (रजस्वलाधर्म—अर्थात्—ग्रहनक्षत्रनिरीक्षण, दिवास्वाप, मधु, मांस, ताम्बूल, नखनिकृन्तन, दन्तधावन, प्रवास, स्नान और अभ्यञ्जन आदिको स्मृति में कहे हुए के अनुसार त्याग दे) को करे। किसीप्रकार सांगोपांग शरीर को जलसे सिक्त (सेचन) करे। वस्त्र का प्रक्षालन और दूसरे वस्त्र का धारण न करे।

(रजस्वलास्नानविधानम्)

अथ रजस्वलास्नानम् दैवज्ञवल्लभः—ब्रह्मानुराधाश्विनसौम्यभेषु हस्तानिलाखण्डलवासवेषु। विश्वार्यमर्क्षोत्तरभाद्रभेषु वराङ्गनास्नानविधिः प्रदिष्टः ॥

अब रजस्वला के शुद्धिस्नान (जो चौथेदिन विहित है अवश्य करे। इससे नक्षत्र आदि के अभाव में स्नान न करे ऐसी शंका न करे) को दैवज्ञवल्लभ ने कहा है कि—रोहिणी, अनुराधा, अश्विनी, मृगशिरा, हस्त, स्वाती, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, उत्तराषाढा, उत्तराफाल्गुनी और उत्तराभाद्रपद इन नक्षत्रों में रज-स्वलास्नान स्त्रियों को विहित है।

(ज्वरे तु विशेषः)

ज्वरे तूशनाः—ज्वराभिभूता या नारी रजसा च परिप्लुता। कथं तस्या भवेच्छौचं शुद्धिः स्या-त्केन कर्मणा ॥ चतुर्थेऽहनि संप्राप्ते स्पृशेदन्या तु तां स्त्रियम्। सा सचैलाऽवगाह्यापः स्नात्वा स्नात्वा पुनः स्पृशेत् ॥

दश द्वादशकृत्वो वा आचामेच्च पुनः पुनः। अन्ते च वाससां त्यागस्ततः शुद्धा भवेत्तु सा ॥ इति इदं चातुरमात्रे ज्ञेयम्। आतुरे स्नान उत्पन्ने दशकृत्वो ह्यनातुरः। इति पराशरोक्तेः।

ज्वरमें तो उशना ने कहा है कि—ज्वर से युक्त जो स्त्री रजोधर्म से सम्बन्धित हो जाय तो उसको किसकर्मसे शुद्धि होगी। चौथे दिन के प्राप्त होनेपर उस स्त्री को तो अन्य ही स्त्री स्पर्श करे। वह स्पर्श करने-वाली स्त्री सचैलजल में प्रवेशकर स्नानकर स्नानकर बारंबार स्पर्श करे। दश या बारह बार स्पर्शकर बारंबार आचमन करे। अन्तमें वस्त्रों के त्याग देने के बाद वह स्त्री शुद्ध होती है। यह आतुर (रोगी) मात्र के लिये जानना चाहिये।

पराशर ने कहा है कि—रोगी का स्नान करना उत्पन्न (प्राप्त) हो तो जो रोगी न हो वह दशबार स्पर्श करे।

(रजसोऽज्ञाने तु)

रजसोऽज्ञाने तु पराशरमाधवीये प्रजापतिः—अविज्ञाते मले सा च मलवद्वसना यदि।
कृतं गृहेषु दुष्टं स्याच्छुद्धिस्तस्यास्त्रिरात्रतः॥

रजोधर्म के अज्ञान में तो पराशरमाधवीय में प्रजापति ने कहा है कि—यदि उस स्त्री को मल (रजोधर्म) का ज्ञान न हो या वस्त्रमें मल लगा हो तो घर में किया हुआ स्नान दूषित होता है। क्योंकि—उस स्त्री की शुद्धि तीनदिन में होती है। (यदि ऐसा पाठ मानेगें—शुद्धिं न स्यात् त्रिरात्रतः—तो तीनदिन में उसकी शुद्धि नहीं होगी। यों अर्थ होगा। तब उसमें प्राजापत्यादि प्रायश्चित्त के अधिक की कल्पना करनी होगी। जैसे गर्भाधान में सौ ब्राह्मण या किसी के मत से दशब्राह्मण भोजन करना लिखा है।)

देवजानीये कारिकायाम्—उच्छिष्टा तु द्विजातीनां रजः स्त्री यदि पश्यति।
उपवासमधोच्छिष्टे ऊर्ध्वोच्छिष्टे त्र्यहं क्षिपेत्॥ इति।

देवजानीयकारिका में कहा है कि—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यकी उच्छिष्ट स्त्री रजोधर्म को देखती है तो अधोच्छिष्ट में (मूत्र और पुरीषोत्सर्ग के बाद प्रक्षालन आदि शौच की पूर्वावस्थाको अधरोच्छिष्ट कहा है) उपवास करे। ऊर्ध्वोच्छिष्ट (भोजन के बाद मुखप्रक्षालन की पूर्व अवस्था को 'ऊर्ध्वोच्छिष्ट' कहा है। में तीन दिनका उपवास करे।

(पुंसवनकथनम्)

अथ पुंसवनम्। प्रयोगपारिजाते जातूकर्ण्यः—द्वितीये वा तृतीये वा मासि पुंसवनं भवेत्।
व्यक्ते गर्भे भवेत्कार्यं सीमन्तेन सहाथवा॥

अब पुंसवन कहते हैं। प्रयोगपारिजात में जातूकर्ण्य ने कहा है कि—दूसरे या तीसरे महिने में 'पुंसवनसंस्कार' करे या गर्भ के प्रकट होने पर या 'सीमन्तसंस्कार' के साथ करे।

बृहस्पतिः—तृतीये मासि कर्तव्यं गृष्टैरन्यत्र शोभनम्। गृष्टेश्चतुर्थे मासे तु षष्ठे मास्यथ वाष्टमे॥ सकृत्प्रसूता=गृष्टिः। एतेन प्रतिगर्भमपि भवतीति ज्ञायते।

बृहस्पति ने कहा है कि—सकृत्प्र सूताओं से तीसरे महिने में पुंसवन शुभप्रद है और सकृत्प्रसूतासे चौथे, छठे या आठवे महिने में भी करना उत्तम है। गृष्टिका अर्थ है प्रथमवार प्रसूता स्त्री। इससे प्रति गर्भ में भी होता है—यह जाना जाता है।

बह्वृचकारिकाऽपि—कर्ता स्याद्देवरस्तस्या यस्याः पत्युरसम्भवः।
आवर्तेत इदं कर्म प्रतिगर्भमिति स्थितिः॥

बह्वृचकारिका में भी कहा है कि—जिस स्त्री का पति समीप में न हो या आने में संभव न हो तो उस स्त्री का पुंसवन का करनेवाला देवर होता है। इस कर्म (पुंसवन) की आवृत्ति प्रतिगर्भ में होती है। यह मर्यादा है।

ब्राह्मे—गर्भाधानादिसंस्कर्ता पतिः श्रेष्ठतमः स्मृतः।
अभावे स्वकुलीनः स्याद् बान्धवो ऽन्यत्र गोत्रजः॥

ब्रह्मपुराण में कहा है—गर्भाधान आदि संस्कारों को करनेवाला पति श्रेष्ठतम कहा है। (किसी के मत से 'पिता श्रेष्ठतम' ऐसा पाठ है। अर्थ में पिता को उत्तमोत्तम कहा है।) अभाव में कुलीन बान्धव या अन्य गोत्रवाले (गर्भाधान देवर आदि से नहीं कराना चाहिये क्योंकि—कलिवर्ज्यप्रकरण में 'देवराच्च सुतोत्पत्तिः कलौ पञ्च विवर्जयेत्' ऐसा निषेध कहा है।) करें।

मदनरत्ने सत्यव्रतः—मृतो देशान्तरगतो भर्ता स्त्री यद्यसंस्कृता।
देवरो वा गुरुर्वाऽपि वंश्यो वाऽपि समाचरेत्॥

मदनरत्नमें सत्यव्रत ने कहा है कि—मर गया हो या देशान्तर में गया हुआ पति हो और यदि स्त्री का संस्कार न हुआ हो तो देवर या गुरु या खानदान वाला संस्कार करे।

हेमाद्रौ यमः–प्रथमे मासि द्वितीये वा यदा पुंनक्षत्रेण चन्द्रमा युक्तः स्यात्–इति।

हेमाद्रिमें यमने कहा है कि—प्रथम या दूसरे महिने में जब पुंनक्षत्र (पुरुषनक्षत्र) से चन्द्रमा युक्त हो तब ही 'पुंसवनसंस्कार' करे।

वराहः—हस्तो मूलं श्रवणः पुनर्वसुर्मृगशिरस्तथा पुष्यः। पुंसंज्ञकेषु कार्येष्वेतानि शुभानि धिष्ण्यानि॥ अनुराधाऽपि पुंनक्षत्रम्। 'अनुराधान्[1] हविषा वर्द्धयन्तः' इति श्रुतेः।

वाराह ने कहा है कि—हस्त, मूल, श्रवण, पुनर्वसु, मृगशिरा और पुष्य ये सब नक्षत्र पुरुषसंज्ञक कार्यों में शुभ हैं। अनुराधा भी पुरुष नक्षत्र है। (देवताओं ने) अनुराधा नक्षत्रों को हविद्वारा बढाया है ऐसी श्रुति कहती है।

गर्गोऽपि—पुन्नामा श्रवणस्तिष्यो हस्तश्चैव पुनर्वसुः। अभिजित्प्रौष्ठपाच्चैव अनुराधा तथाश्वयुक्॥

गर्ग में भी कहा है—कि—श्रवण, पुष्य, हस्त, पुनर्वसु, अभिजित्, अनुराधा, पूर्वाभाद्रपद और उत्तराभाद्रपद तथा अश्विनी ये सब पुरुषसंज्ञक नामवाले नक्षत्र हैं।

नृसिंहः—रिक्तां पर्व च नवमीं त्यक्त्वा पुंसवने शुभाः।

नृसिंह ने कहा है कि—रिक्ता पर्व और नवमी (अन्यरिक्ताया अनुकल्पत्वार्थं नवम्यामधिकदोषत्वार्थं वा। अत्र च 'बलोपपन्ने दम्पत्योश्चन्द्रताराबलान्विते। कुलीरं मिथुनं कन्यां हित्वा शेषाः शुभावहाः॥ इत्यादिकमपि द्रष्टव्यमिति टीकायाम्।) को छोड़कर पुंसवन में शुभ हैं।

ज्योतिर्निबन्धे वसिष्ठः—मृत्युश्च सौरेस्तनुहानिरिन्दोर्मृतप्रजा पुंसवने बुधस्य।
काकी च वन्ध्या भवतीह शुक्रे स्त्रीपुत्रलाभो रविभौमजीवैः॥

जोतिर्निबन्ध में वसिष्ठ ने कहा है कि—शनिवार को पुंसवनसंस्कार करने से मृत्यु होती है। सोमवार को पुंसवन करने से तनु (शरीर) की हानि होती है। बुधवार को पुंसवन करने से सन्तान की मृत्यु होती है। शुक्रवार को पुंसवन करने से काकवन्ध्या (एकसन्तानवाली बन्ध्या) होती है। रविवार, मंगलवार और गुरुवार को पुंसवनसंस्कार करने स्त्री में पुत्र का लाभ होता है।

(अनवलोभनकालनिर्णयः)

अनवलोभनस्याप्ययमेव कालः। दीपिकायां तु चतुर्थेऽनवलोभनम्–इत्युक्तम्।

अनवलोभनसंस्कार का यही ही काल (समय) है। (इस संस्कार को पुंसवनसंस्कार के साथ करे)। दीपिका में तो कहा है कि—चौथे महिने में अनवलोभनसंस्कार करे। यों कहा है।

(सीमन्तकथनम्)

अथ सीमन्तः। हेमाद्रौ बैजवापः–'अथ सीमन्तोन्नयनं चतुर्थे पञ्चमे षष्ठे च' इति।

हेमाद्रि में बैजवापने कहा है कि—इसके बाद सीमन्तोन्नयनसंस्कार चतुर्थ, पञ्चम और छठे महिने में करे। (गर्भमास से—चौथे, छठे और आठवें मास में सीमन्तसंस्कार करे। किसी के मत से पांचवें, सातवें और नवमें मास में जबतक प्रसव हो तब तक शुक्लपक्ष में, षष्ठी, अष्टमी, द्वादशी, चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी और अमावास्या इनसे भिन्न तिथि में पुरुषसंज्ञक नक्षत्रों के मध्यम पादद्वय में मंगल, गुरु तथा रविवारों में चन्द्रमा के अनुकूलतापर शुभलग्नादि में विष्ट्यादिदोष के न रहने पर मलमास, गुरु, शुक्रास्तादियों के कालान्तर के असंम्भव में दोष नहीं है। क्योंकि इसमें नियतकाल है। इससंस्कार में सौ ब्राह्मण भोजन करावे।)

वसिष्ठः–'चतुर्थे सप्तमे मासि षष्ठे वाप्यथवाष्टमे।

वसिष्ठ ने कहा है कि—चौथे, सातवें, (नवमास में)—आधानादष्टमे मासि सीमन्तोन्नयनं भवेत्। मासि वा कुर्याद्यावद् गर्भविमोचनम्॥) छठे या आठवें मास में सीमन्तसंस्कार करे।

१—ऋध्यास्म हव्यैर्नमसोपसद्य मित्रं देवं मित्रं देवं नोऽ अस्तु। अनुराधान् हविषा वर्धयन्तः शतं जीवेम शरदः सवीराः॥ (तैत्तरीयब्राह्मण तृतीयकाण्ड, प्रथम प्रपाठक द्वितीय अनुवाक का प्रथम मन्त्र)।

हेमाद्रौ शङ्खः–गर्भस्पन्दने सीमन्तोन्नयनं, यावद्वा न प्रसवः ।

हेमाद्रिमें शंखने कहा है कि—गर्भ के स्पन्दन (चलने पर) करने पर 'सीमन्तोन्नयनसंस्कार' करे या जबतक प्रसव न हो तब तक 'सीमन्तोन्नयनसंस्कार' करे ।

कार्ष्णाजिनिः—गर्भलम्भनमारभ्य यावन्न प्रसवस्तदा । सीमन्तोन्नयनं कुर्याच्छङ्खस्य वचनं यथा ॥ मासश्चात्र सौरः सावनो वा ।

कार्ष्णाजिनि में कहा है कि—गर्भ की प्राप्ति से लेकर जबतक प्रसव नहीं होता है तबतक सीमन्तोन्नयनसंस्कार करे । (ऐसा शंखने कहा है । सौरमास-संक्रान्तिमास, सावन-एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक एक दिन मानकर होनेवाला मास) यहाँ पर मास सौर या सावन का ग्रहण करे ।

कालविधाने—चतुर्थषष्ठाष्टममासभाजि सौरेण गर्भं प्रथमे विधेयम् ।
सीमन्तकर्म द्विजभामिनीनां मासेऽष्टमे विष्णुबलिं च कुर्यात् ॥

कालविधान में कहा है कि—द्विज की स्त्रियों का सीमन्तकर्म सौरमास से गर्भ से चौथे, छटे या आठवें महिने में करे तथा आठवें महिने में विष्णुबलि करे । (यह सूत्र में कही नहीं है । अतः कृताकृत है ॥)

वसिष्ठः—'चतुर्थे सावने मासि षष्ठे वाप्यथ वाष्टमे ।'

वसिष्ठ ने कहा है कि सावनमास में चौथे, छठे या आठवें महिने में करे ।

ज्योतिर्निबन्धे नारदः—अरिक्तापर्वदिवसे कुजजीवार्कवासरे ।

ज्योतिर्निबन्ध में नारद ने कहा है कि—अरिक्ता (जो रिक्ता न हो) और अपर्व (जो पर्व से भिन्न हो) दिन में, मंगल, (सोम, बुध गुरु और शुक्रवार को प्रयोगरत्न में कहा है ।) गुरु तथा रविवार में सीमन्तसंस्कार को करे ।

कालविधाने–सीमन्ते तिष्यहस्तादितिहरिशशभृत्पौष्णविध्युत्तराख्याः ।
पक्षच्छिद्रं च रिक्तां पितृतिथिमपहायापराः स्युः प्रशस्ताः ॥ अदितिः=पुनर्वसुः ।

कालविधानमें कहा है कि—सीमन्तसंस्कार में पुष्य, हस्त, पुनर्वसु, श्रवण, मृगशिरा, रेवती, रोहिणी, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा और उत्तराभाद्रपद, पक्षच्छिद्र (अष्टमी, षष्ठी, द्वादशी, रिक्ता-चतुर्दशी, नवमी, चतुर्थी) अमावास्या और पिताकी मृत्युतिथि इनको छोड़कर शुभ हैं । (जयन्त मतसे-पुनर्वसु,पुष्य, अभिजत्, हस्त, प्रौष्ठपदा, अनुराधा, अश्विनी, मूल, श्रवण, रेवती, रोहिणी और मृगशिरासंज्ञकनक्षत्र पुरुषसंज्ञक नक्षत्र हैं । इन नक्षत्रोंका चार विभाग करके उसके आदि और अन्त को त्याग दे और मध्यके ग्रहण करे ।) अदितिमाने—पुनर्वसु ।

(पक्षच्छिद्रकथनम्)

पक्षच्छिद्रं चाह वसिष्ठः–चतुर्दशी चतुर्थी च अष्टमी नवमी तथा । षष्ठी च द्वादशी चैव पक्षच्छिद्राह्वयाः स्मृताः ॥ क्रमादेतासु तिथिषु वर्जनीयाश्च नाडिकाः । भूताष्टमनुतत्त्वाङ्कदशशेषास्तु शोभनाः ॥

और वसिष्ठने पक्षच्छिद्रको कहा है कि—चतुर्दशी, चतुर्थी, अष्टमी, नवमी, षष्ठी और द्वादशी तिथि 'पक्षच्छिद्र' कही गयी हैं । इन तिथियोंमें क्रम से अत्यावश्यक कार्योंमें इन घडियोंको त्यागकर शुभकार्य करे । चतुर्दशीमें पांचघडी, चतुर्थीमें आठघडी, अष्टमीमें नौघडी और द्वादशीमें दशघडी प्रारम्भकी त्याग दे ।

(सीमन्तसंस्कारे तिथ्यादिविचारः)

कालनिर्णये—शुभसंस्थे निशानाथे चतुर्थीं च चतुर्दशीम् ।
पौर्णमासीं प्रशंसन्ति केचित्सीमन्तकर्मणि ॥

कालनिर्णय में कहा है कि—कोई लोग सीमन्तसंस्कारमें कहते हैं कि-शुभस्थानमें चन्द्रमा हो तो चतुर्थी, चतुर्दशी और पौर्णमासी की प्रशंसा की है ।

बृहस्पतिः—पूर्वपक्षः शुभः प्रोक्तः कृष्णश्चान्त्यत्रिकं विना ।
चतुर्दशी चतुर्थी च शुक्लपक्षे शुभप्रदे ॥

बृहस्पति ने कहा है कि—सीमन्तसंकार में पूर्वपक्ष (कृष्णपक्ष) शुभ कहा है । कृष्णपक्ष की अन्त्यवाली तीन को त्याग कर शुभप्रद चतुर्दशी तथा चतुर्थी शुक्लपक्ष में शुभप्रद है ।

नारदः—विप्रक्षत्रिययोः कुर्याद्दिवा सीमन्तकर्म तत् । वैश्यशूद्रकयोरेतद्दिवा निश्यपि केचन ॥ वाराः पूर्वोक्ता एव । एतच्च सकृदेव कार्यमिति विज्ञानेश्वरः ।

नारदने कहा है कि—ब्राह्मण तथा क्षत्रियका सीमन्तसंस्कार दिन में करे। वैश्य और शूद्रका इन दोनों का दिन और रातमें भी करे—किसी का मत है । वारतो पूर्व में कहे हुए ही ग्रहण करे। इस संस्कारको एकवार ही करे यह विज्ञानेश्वर का मत है ।

सकृच्च संस्कृता नारी सर्वगर्भेषु संस्कृता । इति देवलोक्तेः । सकृत्प्रतिगर्भं वा कार्यमिति हेमाद्रिः ।

देवलने कहा है कि—एकवार संस्कार की हुई पत्नी सब गर्भों में संस्कृत (की हुई की तरह) है। एकवार या हरवार गर्भ में करे–यह हेमाद्रि मत है।

सकृच्च कृतसंस्काराः सीमन्तेन द्विजस्त्रियः । यं यं गर्भं प्रसूयन्ते स सर्वः संस्कृतो भवेत् ॥ इति हारीतोक्तेः,

हरीत ने कहा है कि—सीमन्तसंस्कार से एकवार संस्कार की हुई द्विजों की स्त्रियाँ जिस जिस गर्भ को पैदा करती हैं । वे सब संस्कार से युक्त होते हैं ।

सीमन्तोन्नयनं कर्म न स्त्रीसंस्कार इष्यते । केचिद्गर्भस्य संस्कारात्प्रतिगर्भं प्रयुञ्जते ॥ इति हेमाद्रौ विष्णुवचनाच्च ।

और हेमाद्रि में विष्णु का वचन है कि—सीमन्तोन्नयनकर्म स्त्री का संस्कार है–यह नहीं मानते हैं । कोई महाशय गर्भ का संस्कार होने से प्रत्येक गर्भ में प्रयोग करते हैं । (अर्थात्—कात्यायनशाखावालों को प्रतिगर्भ में करना कहा है)—धर्मसिन्धुकार कहते हैं ।

स एव—स्त्री यद्यकृतसीमन्ता प्रसूयेत कथञ्चन । गृहीतपुत्रा विधिवत्पुनः संस्कारमर्हति ॥

वहीं पर ही कहा है कि—सीमन्तसंस्कार के विना ही कदाचित् स्त्री का प्रसव हो जाय तो गृहीत पुत्रवाली स्त्री विधिवत् फिर से संस्कार के योग्य होती है ।

(सीमन्तभोजने प्रायश्चित्तकथनम्)

सीमन्ते भोजने प्रायश्चित्तमुक्तं पराशरमाधवीये धौम्येन—ब्रह्मौदने च सोमे च सीमन्तोन्नयने तथा । जातकर्मनवश्राद्धे भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥

सीमन्तसंकार में भोजन करने पर पराशरमाधवीय में धौम्यने प्रायश्चित्त कहा है कि—ब्रह्मौदन (ब्रह्माके लिये चावल) में, सोम में, सीमन्तोन्नय में, जातकर्म में और नवश्राद्ध में भोजन करने पर चान्द्रायणव्रतको करे।

ऋग्विधाने तु—'अराइवे'[1] जपेन्मन्त्रं शतवारं न संशयः ।
सीमन्ते च यदा भुङ्क्ते मुच्यते किल्बिषात्तदा ॥ इति ।

'अरा इवे' इस मन्त्र को विना विचारे सौवार जप करे । जब सीमन्तसंस्कार में भोजन किया है तो वह सब पापों से छुटकारा प्राप्त करलेता है ।

(गर्भिणीतत्पतिधर्मकथनम्)

अथ गर्भिणीतत्पतिधर्माः । वराहः—सामिषमशनं यत्नात्प्रमदा परिवर्जयेदतः प्रभृति ।

अब गर्भिणी और उसके पति का धर्म कहते हैं । वराह ने कहा है कि—गर्भाधान से लेकर (गर्भ धारणकरने वाली) स्त्री मांस के सहित भोजन यत्न से त्याग दे ।

गृह्यकारिका—अङ्गारभस्मास्थिकपालचुल्हीशूर्पादिकेषूपविशेन्ननारी । सोलूखलाद्ये दृषदादिके वा यन्त्रे तु पाद्ये न तथोपविष्टा ॥ नो मार्जनीगोमयपिण्डकादौ कुर्यान्नवारिण्यवगाहनं सा । अङ्गारभूत्या न नखैर्लिखेत् क्ष्मां कलिं वपुर्भङ्गमथो न कुर्यात् ॥

१—अरा इवेदचरमा अहेव प्रप्र जायन्ते अकवा महोभिः । पृश्नेः पुत्रा उपमासो रभिष्ठाः स्वया मत्या सं मिमिक्षुः ॥ (ऋ० सं० अ० ५ म० ४ सू० ५८ म० ५) ।

गृह्यकारिकामें कहा है कि—गर्भवती स्त्री अंगार, भस्म, अस्थि, कपाल, चुल्ली, शूप आदि में न बैठे वैसेही उलूखल, सिल, लोढी आदिमें तथा यन्त्र, तुष में न बैठे। मार्जनी (झाडू), गोवर पिण्ड आदि पर न बैठे और वह स्त्री जलमें अवगाहन कर स्नान न करे। अंगार (कोयला) के भस्म से और नाखूनों से पृथ्वी पर नहीं लिखे। कलह तथा शरीर का भंग (अंगडाई लेना) न करे।

नो मुक्तकेशी विवशाथ वा स्याद्भुङ्क्ते न सन्ध्यावसरे न शेते।
नामङ्गलं वाक्यमुदीरयेत्सा शून्यालयं वृक्षतलं न यायात् ॥

अपने बालों को खुले न रखे, नंगी न रहे। सन्ध्याके समय भोजन न करे और सन्ध्याके समय शयन न करे। वह स्त्री अमंगल वाक्यों को (मुह से) नहीं उच्चारण करे। सूनसान जगह और पेड की जड़ के पास न जाय।

विष्णुधर्मोत्तरे—कटुतीक्ष्णकषायाणि अत्युष्णलवणानि च।
आयासं च व्यवायं च गर्भिणी वर्जयेत्सदा ॥

विष्णुधर्म में कहा है कि—गर्भिणी स्त्री सदा कडवी चीज, तीक्ष्णवस्तु, कसैली वस्तु, अत्यन्त गरम और निमक का भक्षण न करे। निरन्तर परिश्रम का कार्य तथा मैथुन न करे।

हेमाद्रौ कौण्डिन्यः—मुण्डनं पिण्डदानं च प्रेतकर्म च सर्वशः।
न जीवत्पितृकः कुर्यात् गुर्विणीपतिरेव च ॥

हेमाद्रि में कौण्डिन्य ने कहा है कि—मुण्डन, पिण्डदान और संपूर्ण प्रेतकार्य को जिसके पिता जीवित हो वह और जिसकी स्त्री गर्भवती हो न करे। (यहाँ पर ऐसा भी पाठ है-न जीवत्पितृकः कुर्याद् गर्भिणी पतिरेव च।)।

मिताक्षरायाम्—उदन्वतोम्भसि स्नानं नखकेशादिकर्तनम्।
अन्तर्वत्न्याः पतिः कुर्वन्न प्रजा जायते ध्रुवम् ॥

मिताक्षरा में कहा है कि—गर्भवती स्त्री का पति यदि समुद्र के जलमें स्नान तथा नख, केश आदि का कर्तन करे तो निश्चित ही उसको सन्तान नहीं रहती है।

पृथ्वीचन्द्रोदये गारुडे-गयायां पिण्डदानस्य न कदाचिन्निराक्रिया।

पृथ्वीचन्द्रोदय में गरुडका वचन है कि—गया में पिण्डदानका कभी भी निराकरण नहीं है।

अत्र कालेदाप्रत्ययस्मृतेर्निषिद्धकालस्यैवापवादो न तु जीवत्पितृगर्भिणीपत्याशौचादिनिमित्तस्य। निमित्तसंयोगस्य कालसंयोगाद्भेदेनापवादाभावात्। अग्निहोत्रवद्यावज्जीवपरत्वाभावात्। अन्यथाशौचेऽपि गयायात्रा श्राद्धं च स्यात्। यत्र निमित्तसंयोगस्यापवादो यथाशौचेऽग्निहोत्रादेः, यथा वा जीवत्पितृकस्यापवादो मातुर्गयान्वष्टकादौ तदेव भवति नान्यदिति संक्षेपः।

यहाँ पर काल में 'दा' प्रत्यय की स्मृतिमें निषिद्धकालका ही अपवाद है। जीवत्पितृक गर्भिणीपति के आशौच आदि निमित्त का नहीं है। अर्थात्—आशौच आदि लगेगा। ऐसा न मानेगें तो आशौच में भी गयायात्रा श्राद्ध होने लगेगा। निमित्तसंयोगका कालसंयोगभेदसे अपवाद (निषेध) का अभाव हैं। क्योंकि (यह वचन) अग्निहोम में यावज्जीवन पर्यन्त कालका अभाव है। अन्यथा—आशौच में गयायात्रा और श्राद्धको करे। जहाँपर निमित्तके संयोगका अपवाद होता है। जैसे आशौच में अग्निहोत्रादिका या जैसे—जीवत्पितृकको अपवाद माता की गया और अन्वष्टका आदि में वैसे ही होता है! अन्य नहीं—यह संक्षेप है।

प्रयोगपारिजाते कश्यपः—गर्भिणी कुञ्जराश्वादिशैलहर्म्यादिरोहणम्।
व्यायामं शीघ्रगमनं शकटारोपणं त्यजेत् ॥

प्रयोगपारिजात में कश्यपने कहा है कि—गर्भिणी स्त्री, हाथी, घोड़ा, पर्वत, महल आदि पर न चढ़े मैथुन न करे। जल्दी न चले। बैलगाड़ी पर न चढ़े।

शोकं रक्तविमोक्षं च साध्वसं कुक्कुटासनम् । व्यवसायं दिवास्वापं रात्रौ जागरणं त्यजेत् ॥

शोक (दुःख करना), रक्तविमोक—अपरेशन, जोक सींग इत्यादि से शरीर से खून निकलवाना, साहस, कुक्कुटासन, व्यवसाय, परिश्रम, दिन में शयन और रात्रिमें जागरण न करे।

मदनरत्ने स्कान्दे—हरिद्रां कुङ्कुमं चैव सिन्दूरं कज्जलं तथा । कूर्पासकं च ताम्बूलं माङ्गल्याभरणं शुभम् ॥ केशसंस्कारकबरी करकर्णविभूषणम् । भर्तुरायुष्यमिच्छन्ती दूरयेद्गर्भिणी नहि ॥

मदनरत्नमें स्कन्दका वचन है कि—हलदी, केशर—रोली, सिन्दूर, काजल, चोली, तांबूल मांगल्यरूप आभूषण, केशोंका संस्कार, कवरी (जूडाबांधना) हाथ और कान के आभूषण को अपने पतिकी आयु को इच्छावाली गर्भिणी स्त्री इन चोजोंको त्याग न करे। अर्थात्—गर्भावस्था में इनका उपयोग करे।

बृहस्पतिः—चतुर्थे मासि षष्ठे वाऽप्यष्टमे गर्भिणी यदा ।
यात्रा नित्यं विवर्ज्या स्यादाषाढे तु विशेषतः ॥

बृहस्पतिने कहा है कि—चौथे मास में, छठे मासमें (शक्ताशक्त परक है अतः विकल्प है।) या आठवें महिनेमें गर्भिणी स्त्री यात्रा (परदेशादिगमन) न करे। परन्तु आषाढ़ मासमें विशेष कर न करे।

याज्ञवल्क्यः—दौहृदस्याप्रदानेन गर्भो दोषमवाप्नुयात् ।
वैरूप्यं मरणं चापि तस्मात्कार्यं प्रियं स्त्रियाः ॥ दौहृदम्=गर्भिणीप्रियम् ।

याज्ञवल्क्यने कहा है कि—दौहृदके (गर्भस्यैकं हृत् गर्भिण्याश्चैकमिति द्विहृदा, तस्या इदं दौहृदम्।) गर्भिणी का प्रिय विना किये गर्भमें दोष प्राप्त हो जाता है कि—विरूपता या मृत्यु। इसलिये स्त्रियोंका प्रिय करना चाहिये। दौहृदमाने=गर्भिणीप्रिय।

तत्रैवाश्वलायनः—वपनं मैथुनं तीर्थं वर्जयेद् गर्भिणीपतिः ।
श्राद्धं च सप्तमान्मासादूर्ध्वं चान्यत्र वेदवित् ॥ श्राद्धं तद्भोजनमिमि प्रयोगपारिजातः ।

वहींपर आश्वलायन ने कहा है कि—वपन-मुण्डन, मैथुन और तीर्थयात्रा गर्भिणी पति न करे तथा के गर्भ सातमहिनेबाद वेदका जानकर गर्भिणीस्त्री का पति श्राद्ध न करे। (यदि पिता या माता का उन्हीं दिनों में प्रारब्धवश देहावसान हो जाय तो-यदि वह ज्येष्ठ पुत्र है तो श्राद्धादि करे।) प्रयोगपारिजातमें कहा है कि—श्राद्धमाने—श्राद्धीय भोजन जिसकी स्त्री गर्भवती हो उसका पति न करे।

कालविधाने मुहूर्तदीपिकायां च—क्षौरं शवानुगमनं नखकृन्तनं च युद्धादिवास्तुकरणं त्वतिदूरयानम् । उद्वाहमौपनयनं जलधेश्च गाहमायुःक्षयार्थमिति गर्भिणिकापतीनाम् ॥

कालविधान में और मुहूर्तदीपिका में कहा है कि—बाल बनवाला, शवके साथ जाना, नखको काटना, युद्ध-लड़ाई करना, गृहारंभ आदि करना, बहुत दूर जाना, विवाह उपनयन तथा समुद्रस्नान ये सब गर्भिणी के पतिकी आयुको क्षय (नाश) करने वाले होते हैं।

रत्नसङ्ग्रहे गालवः—दहनं वपनं चैव चौलं च गिरिरोहणम् ।
नाव आरोहणं चैव वर्जयेद् गर्भिणीपतिः ॥

रत्नसंग्रह में गालव ने कहा है कि—जिसकी स्त्री गर्भवती हो उसका पति दाह, मुण्डन, चूडाकरण, पर्वतारोहण और नौका पर चढना आदि न करे।

अन्यत्रापि—प्रव्यक्तगर्भापतिरब्धियानं मृतस्य वाहं क्षुरकर्मसङ्गम् ।
तस्यां तु यत्नेन गयादितीर्थं यागादिकं वास्तुविधिं न कुर्यात् ॥

अन्यत्र भी कहा है कि—जिस स्त्री का गर्भ प्रगट मालुम होता हो उसका पति अब्धियान (समुद्रयात्रा), मृतक को वहन करना, क्षौरकर्म, स्त्री के साथ मैथुन, गया आदि तीर्थ में जाना, याग आदि तथा वास्तुविधि को न करे।

प्रव्यक्तगर्भा वनिता भवेन्मासत्रयात्परम् । षण्मासात्परतः सूतिर्नवमेऽरिष्टवासिनी ॥

स्त्री का तीन महिने का बाद गर्भ प्रकट होता है। छः महिने बाद प्रसूति होती है तथा नवमें महिने में अरिष्टवासिनी—सूतिकागृहवासिनी होती है।

(सूतिकागृहप्रवेशः)

अथ सूतिकागृहप्रवेशः । गर्गः—रोहिण्यैन्दवपौष्णेषु स्वातीवारुणयोरपि । पुनर्वसौ पुष्यहस्तधनिष्ठात्र्युत्तरासु च ॥ मैत्रे त्वाष्ट्रे तथाश्विन्यां सूतिकागारवेशनम् ॥ एतच सम्भवे ।

अब [1]सूतिका का गृहप्रवेश कहते हैं। गर्ग ने कहा है कि—रोहिणी, मृगशिरा, रेवती, स्वाती, शतभिषा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, धनिष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद, अनुराधा, चित्रा और अश्विनी इन में स्त्री सूतिकागार में प्रवेश करे। यह संभव परक है।

प्रसूतिसमये काले सद्य एव प्रवेशयेत् । इति वसिष्ठोक्तेः । तच नैर्ऋत्यां कार्यम् ।

वसिष्ठ ने कहा है कि-प्रसूति (प्रसव) के समयमें जल्दी ही प्रवेश करावे और वह नैर्ऋत्यमें करावे।

वारुण्यां भोजनगृहं नैर्ऋत्यां सूतिकागृहम् । इति वसिष्ठोक्तेः ।

वसिष्ठ ने कहा है कि—वरुणदिशा में भोजनगृह करे और नैर्ऋत्यकोण में सूतिकागृह करे।

विष्णुधर्मोत्तरे—दशाहं सूतिकागारमायुधैश्च विशेषतः । वह्निना तिन्दुकालातैः पूर्णकुम्भैः प्रदीपकैः ॥ मुसलेन तथा वारिवर्णकैश्चित्रितेन च ॥ इति ।

विष्णुधर्म में कहा है कि—दशदिन तक सूतिका घर को विशेष कर आयुधों (शस्त्रों) से, अग्नि से, तिन्दुक (तेन्दुआ) जलकाष्ठ-जल से भरे कलशों से, दीपकों से और मुसल (मूसल) से सुशोभित रखे।

(जातकर्म)

अथ जातकर्म । पारिजाते वसिष्ठः—श्रुत्वा जातं पिता पुत्रं सचैलं स्नानमाचरेत् ।

जातकर्मसंस्कार कहते हैं। पारिजात में वसिष्ठ ने कहा है कि-पिता और पुत्र (पुंस्त्व अविवक्षित है) जन्म को सुनकर (असन्निधि में सुननेके बाद स्नान करे। सन्निधि में तो उसके ज्ञानमात्र से ही स्नान करे, पुत्र के उत्पन्न होने पर पिता उसके मुखको देखे। ऐसा करने से पिता ऋण से छूट जाता है। यह संभव परक है। कदाचित् पुत्र के मुख को देखने में विलम्ब होने से स्नान में विलम्ब की आपत्ति हो जायगी। अतः सुनने के बाद ही स्नान करे। यह स्नान ठण्डे जल से करे। नैमित्तिकस्नान और काम्यस्नान ठण्डे ही जल से करे। इस स्नान को रात्रि में भी करे— जैसे—ग्रहण, विवाह, संक्रान्ति, यात्रा और प्रसव आदि में में नैमित्तिक स्नान रात्रि में करने में दोष नहीं होता है। ऐसा व्यास ने कहा है। ऐसा स्नान पिता के करने पर पिता स्पृश्य हो जाता है और जन्म देनेवाली माता की तो दशदिन में शुद्धि होती है। (माता शुध्येद्दशाहेन स्नानात्तु स्पर्शनं पितुः। ऐसा संवर्तन ने कहा है) सचैलस्नान करें। अर्थात्—जिस अवस्था में हो उसी में सवस्त्र सहित स्नान करें।

मनुः—प्राङ्नाभिवर्द्धनात्पुंसो जातकर्म विधीयते । वर्द्धनम्=छेदनम् ।

मनुने कहा है कि—नालछेदन के पहले पुरुषों का जातकर्म करे। वर्धन का अर्थ है—छेदन करना। (अशौच तो पुत्रजन्म का नालच्छेदन के बाद लगता है। (छिन्ने नाले ततः पश्चात् सूतकं तु विधीयते। अतः उससे पूर्व जातकर्म करे और दानादि करे। यह दान रात्रि में भी हो सकता है—रात्रिस्नानं न कुर्वीत दानं चैव विशेषतः। नैमित्तिकं च कुर्वीत स्नानं दानं च रात्रिषु ॥ अतः ग्रहण आदि में निमित्तवश स्नान रात में करना विहित है। ऐसा व्यास ने कहा है। यद्यपि सूतक जनन के बाद ही प्रवृत्त होता है फिर भी वृद्धिश्राद्ध, जातकर्म आदि में तो अधिकार है ही। उसमें भी 'सूतके समुत्पन्ने' ऐसा प्रजापति ने कहा है। वह तात्कालिक शुद्धिपरक है।) वर्धनमाने—छेदन कहा है।

१—पद्मपुराणे—प्रविशेत् सूतिकागारं कृतरक्षं समन्ततः। प्राग्द्वारमुत्तरद्वारमथवा सुदृढं शुभम् ॥ देवानां ब्राह्मणानां च गवां कृत्वा च पूजनम्। एरण्डमूलचूर्णेन सघृतेन तथैव तु। सुखप्रसवनार्थाय पश्चात् कार्येऽनुलेपयेत् ॥ ऋग्विधाने—प्रमन्दिने प्रसूयन्त्यां जपेद् गर्भविमोचनीम्। इन्द्रं च मनसाध्यायेन्नारी गर्भं विमुञ्चति ॥ 'वि [2]जिहीष्व वनस्पते' इति मन्त्रोदकं वा पाययेत्। अन्यत्रापि—महिषीदुग्धमिश्रमेरण्डतैलम्—'हिमवत्युत्तरे पार्श्वे शबरी नाम पक्षिणी। तस्या नूपुरशब्देन विशल्या भवतु गर्भिणी स्वाहा। इति मन्त्रेण पाययेत्। रक्षा च विष्णुधर्मे—दशाहं सूतिकागारमायुधैश्च विशेषतः। वह्निना तिन्दुकालातैः पूर्णकुंभैः प्रदीपकैः ॥ मुसलेन तथा वारिवर्णकैश्चित्रितेन च ॥

२—वि जिहीष्व वनस्पते योनिः सूष्यन्त्या इव। श्रुतं मे अश्विना हवं सप्तवध्रिं च मुञ्चतम् ॥ (ऋ० म० ५ अ० सू० ७८ म० ५)

हेमाद्रौ वैजवापः—जन्मनोऽनन्तरं कार्यं जातकर्म यथाविधि ।
दैवादतीतकालं चेदतीते सूतके भवेत् ॥

हेमाद्रि में वैजवाप ने कहा है कि—जन्म के बाद यथाविधि 'जातकर्म' करना चाहिये। यदि दैवात्—दैवयोग से समय व्यतीत हो जाय तो सूतक के बाद (जातकर्म) करे।

पृथ्वीचन्द्रोदये विष्णुधर्मे—अच्छिन्ननाभिकर्तव्यं श्राद्धं वै पुत्रजन्मनि । पुत्रपदेन कन्यापि गृह्यते ।

पृथ्वीचन्द्रोदय में विष्णुधर्म ने कहा है कि—पुत्र या कन्या के जन्म में निश्चय ही नालच्छेदन के पूर्व श्राद्ध (पुत्रोत्पत्ति के बाद स्नानादि करने पर पुत्रान्तर की उत्पत्ति में जातकर्म अलग-अलग होंगे। पर 'श्राद्ध' तन्त्र से ही होगा। 'द्विबहूनि निमित्तानि जायन्ते एकवासरे। तत्र नैमित्तिकं कार्यं निमित्तानुक्रमोदयम् ॥) श्राद्ध करे। यहाँ पर पुत्रशब्द से कन्या का भी ग्रहण करे।

तदाह तत्रैव कार्ष्णाजिनिः—प्रादुर्भावे पुत्रपुत्र्योर्ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।
स्नात्वाऽनन्तरमात्मीयान् पितॄन् श्राद्धेन तर्पयेत् ॥ एतच्च रात्रावपि कार्यम् ।

उसी बात को वहीं पर ही कार्ष्णाजिनि में कहा है कि—पुत्र और कन्या के प्रादुर्भाव जन्मसमय में, चन्द्रग्रहण तथा सूर्यग्रहण में स्नान कर अपने आत्मीय पितरों को श्राद्ध से तृप्त करे। यह श्राद्ध रात्रि में भी करना चाहिये।

पुत्रजन्मनि यात्रायां शर्वर्यां दत्तमक्षयम् । इति । तत्रैव व्यासोक्तेः ।

वहीं पर व्यास ने कहा है कि—पुत्र के जन्म के समय में—और यात्रा के समय रात्रिको दान करने से उस दान का कभी भी नाश नहीं होता है।

वैजवापः—जातमात्रकुमारस्य जातकर्म विधीयते । स्तनप्राशनतः पूर्वं नाभिकर्तनतोऽपि वा ॥ एतेन नैमित्तिकमपीदं जातेष्टिवदाशौचान्ते कार्यमिति शङ्का परास्ता। 'जाते कुमारे पितॄणामामोदात्पुण्यं तदहः' इति हारीतोक्तेश्च ।

वैजवाप ने कहा है कि—कुमार के उत्पन्न होने पर (यहाँ पर पुंस्त्व की अविवक्षा है। विवाह को छोड़कर स्त्रियों की क्रियायें तूष्णीम् होती हैं। अतः वाक्यान्तर से कन्या का भी जातकर्म होता है। मेधातिथि ने कहा है कि—नपुंसक का जातकर्म संस्कार नहीं होता है।) स्तनपान के पहले या नालच्छेदन के पूर्व जातकर्मसंस्कार को करे।

इससे यह नैमित्तक है। जातेष्टि के सदृश अशौचान्त में करना चाहिये—यह शंका परास्त हुई। पुत्र के उत्पन्न होने पर पितरों को प्रसन्नता होती है। अतः जन्म का वह दिन पुण्यदायक है—एसा हारीत ने भी कहा है।

(अत्र श्राद्धमामेन हेम्ना वा कार्यम्, न पक्वान्नेन)

अत्र श्राद्धमामेन हेम्ना वा कार्यमित्युक्तम् ।

यहाँ पर अर्थात्—पुत्रोत्पन्न में जो श्राद्ध होगा वह आमान्न या सुवर्णके द्वारा करना चाहिये—ऐसा कहा है।

पृथ्वीचन्द्रोदये आदित्यपुराणे—जातश्राद्धे न दद्यात्तु पक्वान्नं ब्राह्मणेष्वपि । इति ।

पृथ्वीचन्द्रोदय में आदित्यपुराण का मत है कि, पुत्रोत्पत्ति के समय पक्वान्न से श्राद्ध न करे और ब्राह्मणों को भी न दे। (यहाँ पर पक्वान्न का निषेध मात्र है। प्रचेता ने कहा है कि—स्त्री, शूद्र और स्वपच (स्वयंपचः) जातकर्म आमान्न द्वारा पार्वणविधि से ही करें। (यहाँ पर आमान्न से श्राद्ध करना—नैमित्तिक मानते हैं। कोई हेमश्राद्ध को काम्य मानते हैं। कोई हेमाश्राद्ध ही को नैमित्तिक मानते हैं। उसके अभाव में आमश्राद्ध में—अन्यमत है।)

हेमाद्रिस्तु—पुत्रजन्मनि कुर्वीत श्राद्धं हेम्नैव बुद्धिमान् । न पक्वेन न चामेन कल्याणान्यभिकामयन् ॥ इति संवर्तोक्तेर्हेम्नैवेत्याह ।

हेमाद्रि ने तो कहा है कि—पुत्र के जन्म समय बुद्धिमान् व्यक्ति सुवर्ण से ही श्राद्ध करे। कल्याणों

की इच्छा करने वाला पकान्न से या आमान्न से (श्राद्ध) न करे। संवर्त के कथन से सुवर्ण से ही करे—ऐसा कहा है।

(जननाशौचे मरणाशौचे च विचारः)

एतच्च जननाशौचे मरणाशौचे च कार्यमित्याह मिताक्षरायां प्रजापतिः—आशौचे तु समुत्पन्ने पुत्रजन्म यदा भवेत्। कर्तुस्तात्कालिकी शुद्धिः पूर्वाशौचेन शुद्ध्यति ॥

और इसको जननाआशौच में तथा मरणाचौच में करना चाहिये—ऐसा मिताक्षरा में प्रजापति ने कहा है कि—आशौच रहते हुए जब पुत्र का जन्म हो तो कर्ता की उसीसमय में पूर्वाशौच से शुद्धि हो जाती है।

केचित्तु—मृताशौचस्य मध्ये तु पुत्रजन्म यदा भवेत्। आशौचापगमे कार्यं जातकर्म यथाविधि ॥ इति स्मृतिसङ्ग्रहोक्तेराशौचान्ते कार्यमित्याहुः। स्मृत्यर्थसारेऽपि विकल्प उक्तः।

कोई कहते हैं कि—मरणाशौच के मध्य में यदि पुत्र जन्म हो जाय तो आशौच की समाप्ति के बाद यथाविधि जातकर्म करे। यह स्मृतिसंग्रह के कहने पर अशौच के बाद करना चाहिये—ऐसा कहा है। स्मृत्यर्थसार में भी विकल्प कहा है।

(मृद्वादिनक्षत्रेष्वेव जातकर्मकथनम्)

मृदुध्रुवचरक्षिप्रभेष्वेषामुदयेदयेषु च। गुरौ शुक्रेऽथवा केन्द्रे जातकर्म च नाम च ॥

मृदु (मृगशिरा, चित्रा अनुराधा और रेवती) ध्रुव (रोहिणी, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद), चर (पुनर्वसु, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा) और क्षिप्र (अश्विनी, पुष्य, हस्त, अभिजित), इन नक्षत्रों के उदय में या गुरु तथा शुक्र के लग्न या केन्द्र में हों तो 'जातकर्म' और 'नामकर्म-संस्कार' करे।

(मृद्वादिलक्षणकथनम्)

मृद्वादिलक्षणमाह श्रीधरः—रोहिण्युत्तरभं स्थिरं गिरिशमूलेन्द्रोरगा दारुणं क्षिप्रं चाश्विदिनेश-पुष्यमनलेन्द्राग्नी तु साधारणम्। उग्रं पूर्वमघान्तकं मृदुगति त्वाष्ट्रान्त्यमैत्रं चरं विष्णुस्वातिशतो-डुवस्वदितयः कुर्युः स्वसंज्ञाफलम् ॥ अत्र सर्वत्र जातकर्मनामकर्मादावुक्तकालातिक्रमे नक्षत्रादिकं ज्ञेयम्।

मृदु (मृगशिरा, रेवती, चित्रा और अनुराधा) आदिका लक्षण श्रीधर ने कहा है कि—रोहिणी, तीनों उत्तरा स्थिर है—अर्थात्—ध्रुव हैं। आर्द्रा, मूल, ज्येष्ठा और आश्लेषा, इनकी दारुणसंज्ञा है। क्षिप्रनक्षत्र—अश्विनी, हस्त, पुष्य, कृत्तिका और विशाखा ये नक्षत्र साधारण है। उग्र—तीनों पूर्वा—(पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा और पूर्वाभाद्रपद) मघा, तथा भरणी ये नक्षत्र उग्र हैं। चित्रा, और रेवती, अनुराधा, मृदुगति है। श्रवण, स्वाती, शतभिषा, धनिष्ठा तथा पुनर्वसु ये नक्षत्र चर हैं। ये अपनी संज्ञानुरूप फल देते हैं) यहाँ पर सर्वत्र जातकर्म और नामकर्म आदि में समय के—अतिक्रमण में नक्षत्र आदि जानना चाहिये।

देशकालोपघाताद्यैः कालातिक्रमणं यदि। अनस्तगेऽज्येन्दुसिते तत्कार्यं चोत्तरायणे ॥ इति मदन-रत्ने नारदोक्तेः।

देश तथा दुष्टकाल के उपद्रवों आदि से यदि मुख्यसमय का अतिक्रमण हो जाय तो उत्तरायण में बृहस्पति, शुक्र और चन्द्रमा अस्त न हो तब 'जातकर्मसंस्कार' करना चाहिये।

बृहस्पतिरपि—मुख्यालाभे विधिज्ञेन विधिश्चिन्त्योऽप्रमादतः। नक्षत्रतिथि लग्नानां विचार्यैवं पुनः पुनः ॥ सूतके सन्ध्यादौ विशेषं वक्ष्यामः।

बृहस्पति ने भी कहा है कि—मुख्यकाल के अलाभ में विधिका जान कर तिथि तथा नक्षत्रों का विचार कर यह विधि अप्रमाद से अपनावें। नक्षत्र, तिथि और लग्नों का बारंबार विचार करे। सूतक में तो सन्ध्यादि पर विशेष आगे कहेंगे।

(जन्मनि दुष्टकालाः)

अथ जन्मनि दुष्टकालाः । तत्र गण्डान्तः । ज्योतिर्निबन्धे नारदः—पूर्णानन्दाख्ययोस्तिथ्योः सन्धिर्नाडीद्वयं तथा । गण्डान्तं मृत्युदं जन्मयात्रोद्वाहव्रतादिषु ॥ कुलीरसिंहयोः कीटचापयोर्मीनमेषयोः । गण्डान्तमन्तरालं स्याद् घटिकार्द्धं मृतिप्रदम् ॥

इसके बाद जन्म के समय में दुष्टकाल को कहते हैं। उसमें गण्डान्त को ज्योतिर्निबन्ध में नारद ने कहा है कि—पूर्णा (पञ्चमी, दशमी और पूर्णिमा), नन्दा (षष्ठी, एकादशी तथा प्रतिपदा), इन दोनों तिथियों की सन्धि की दो नाडी (घटी) गण्डान्त है। वह जन्म, यात्रा, विवाह, व्रत आदियों में मृत्युको देनेवाली है। कुलीर (कर्कोटक), सिंह, कीट (वृश्चिक) चाप (धनु), मीन, और मेष के मध्य की आधी घडी गण्डान्त है। वह मृत्यु को देनेवाली है।

सार्पेन्द्रपौष्णभेष्वन्त्यषोडशांशो भसन्धयः । तदग्रभेष्वाद्यपादा भानां गण्डान्तसंज्ञकाः ॥

[1]सार्प-(आश्लेषा) ऐन्द्र (ज्येष्ठा) और पौष्ण (रेवती) के अन्त की सोलह अंश (घडी) तथा इनसे आगे नक्षत्रों से नक्षत्रों का आद्यपाद (प्रथमपाद) गण्डान्तसंज्ञक है।

रत्नमालायाम्—पौष्णाश्विन्योः सार्पपित्र्यर्क्षयोश्च यच्च ज्येष्ठामूलयोरन्तरालम् ।
तद्गण्डान्तं स्याच्चतुर्नाडिकं हि यात्राजन्मोद्वाहकालेष्वनिष्टम् ॥

रत्नामाला में कहा है कि—रेवती, अश्विनी, आश्लेषा, मघा, ज्येष्ठा और मूलनक्षत्र के मध्य की चार नाडी गण्डान्त होती हैं। उनका यात्रा, जन्म तथा विवाह में अनिष्टप्रद है।

रत्नसङ्ग्रहे नवनीतारिष्टे—सर्वेषां गण्डजातानां परित्यागो विधीयते ।
वर्जयेद्दर्शनं श्रावं तच्च षाण्मासिकं भवेत् ॥

रत्नसंग्रह में नवनीतारिष्ट में कहा है कि—गण्ड में उत्पन्न हुए सबों का परित्याग का विधान कहा है। छः महिने तक उनका देखना तथा उनकी वाणी को सुनता त्याग दे।

तिथ्यर्क्षगण्डे पितृमातृनाशो लग्ने तु सन्धौ तनयस्य नाशः ।
सर्वेषु नो जीवति हन्ति बन्धून् जीवन्पुनः स्याद्बहुवारणाश्वः ॥

तिथि और नक्षत्र के गण्डान्त में पिता तथा माता का नाश होता है। लग्न की सन्धि में हो तो पुत्र का नाश होता है। अगर जिसके जन्मकाल में तिथि, नक्षत्र और लग्न तीनों गण्ड हो जाय तो वह स्वयं जीवित नहीं रहता है तथा बन्धुनाशक भी है। किन्तु जीवित रहने पर अनेक हाथी, घोड़े आदि से युक्त होता है।

(तिथिगण्डादिभेदेन अनडुहादिदानकथनम्)

अथैषां दानमुत्तरगार्ग्ये—तिथिगण्डे त्वनड्वाहं नक्षत्रे धेनुरुच्यते ।
काञ्चनं लग्नगण्डे तु गण्डदोषो विनश्यति ॥

इसके बाद इनका दान उत्तरगार्ग्य में कहा है कि—तिथिगण्ड में बैल, नक्षत्रगण्ड (ज्येष्ठा, मूल आदि की सन्धि) में गौ और लग्नगण्ड में काञ्चन (सुवर्ण) देने से गण्डदोष का नाश होता है।

उत्तरे तिलपात्रं स्यात्पुष्ये गोदानमुच्यते । अजाप्रदानं त्वाष्ट्रे स्यात्पूर्वाषाढे तु काञ्चनम् ॥

उत्तरा (उत्तरादेः पूर्वार्धजन्मनि दानानि कार्याणि उत्तरार्धापेक्षया पूर्वार्धे गण्डवद्दोषाधिक्यात् । शान्तिश्च पूर्वोत्तरार्धयोर्जन्मनि 'प्रयत्नेन' इत्युक्तेः) में—तिल का पात्र, पुष्य में—गोदान, चित्रा में—अज और पूर्वाषाढा में काञ्चन (सुवर्ण) का दान करे।

उत्तरापुष्यचित्रासु पूर्वाषाढद्वयस्यो च । कुर्याच्छान्तिं प्रयत्नेन नक्षत्रकारजं बुधः ॥

१—गर्गः—'अश्विनीमघमूलादौ त्रिषट्नवनाडिकाः । रेवतीसार्पशक्रान्ते मासाश्वऋतुसायकाः ।' अश्विनीमघमूलादौ नाडिकाद्वितयं तथा । अश्विनीमघमूलानां पूर्वार्धे बाध्यते पिता ॥ पूषाहिशाक्रे पश्चार्धे जननी बाध्यते शिशोः । पितृघ्नश्च दिवाजातो रात्रिजातस्तु मातृहा ॥

उत्तरा, पुष्य और चित्रा में तथा पूर्वाषाढा में उत्पन्न हुए बालक का बुद्धिमान् व्यक्ति नक्षत्र का आकार निर्माण कर शान्ति करे।

(आश्लेषानक्षत्रफलम्)

अथाश्लेषाफलम्। मूर्द्धास्यनेत्रगलकांसयुगं च बाहुहृज्जानुगुह्यपदमित्यहिदेहभागः। बाणाद्रिनेत्रहुतभुक् श्रुतिनागरुद्रषण्नन्दपञ्चशिरसः क्रमशस्तु नाड्यः॥ राज्यं पितृक्षयो मातृनाशः कामक्रियारतिः। पितृभक्तो बली स्वघ्नस्त्यागी भोगी धनी क्रमात्॥

अब आश्लेषा फल कहते हैं। मस्तक, मुख, नेत्र, गला, दोनों (बायां और दहना) स्कन्ध, दोनों भुजायें, हृदय, जानु, गुह्य (लिंग) और चरण, ये सब आश्लेषा के शरीर का भाग है। पांच, सात, दो, तीन, चार, आठ, ग्यारह, छ, नौ और पांच इनका क्रम से फल है। (आश्लेषा फल ज्ञान के लिए नराकारचक्र लिखे। उसके शिरपर पाँच घड़ी, मुख पर सात घडी, नेत्रपर दो घडी, गले पर तीन घडी, दोनों कन्धों पर चार घडी, बाहुओं पर आठ घडी, हृदयपर ग्यारह घडी, जानुपर छः घडी, गुह्य में नौ घडी तथा पैर पर पांच घड़ी लिखे। शिखादि घडियों में उत्पन्न बालकको क्रम से राज्य, पिताका क्षय, माता का नाश, कामक्रिया में रति, पितृभक्ति, बलवान्, अपना मरण, त्यागी, भोगी और धनी ये क्रम से होते हैं।

(ज्येष्ठाफलम्)

ज्येष्ठाफलं ब्रह्मयामले—ज्येष्ठादौ जननीमाता द्वितीये जननीपिता। तृतीये जननीभ्राता स्वयं माता चतुर्थके॥ आत्मानं पञ्चमं हन्ति षष्ठे गोत्रक्षयो भवेत्। सप्तमे चोभयकुलं ज्येष्ठं भ्रातरमष्टमे। नवमे श्वशुरं हन्ति सर्वं हन्ति दशांशके। इति।

ज्येष्ठा का फल कहते हैं। ब्रह्मयामल में कहा है कि—ज्येष्ठा के आदि में जननी की माता, दूसरे में जननी के पिता, तीसरे में माता का भाई और चौथे में स्वयं माता, पांचवे में-अपने आप, छठे में गोत्रक्षय, सातवे में दोनों कुल, आठवे में वड़ा भाई, नव में श्वसुर और दश में सबका क्षय होता है।

(मूलफलम्)

अथ मूलफलम्। भल्लाटः—अभुक्तमूलसम्भवं परित्यजेत्तु बालकम्। समाष्टकं पिताऽथवा न तन्मुखं विलोकयेत्॥

अब मूल के फलको कहते हैं। भल्लाट ने कहा है कि—अभुक्तमूल उत्पन्न बालक को परित्याग कर दे। अथवा जब तक आठ वर्ष न हो तब तक पिता उसके मुख को न देखे।

तदाद्यपादके पिता द्वितीयके ते जनन्यथ। धनक्षयस्तृतीयके चतुर्थकः शुभावहः॥ प्रतापमन्त्यपादतः फलं तदेव सार्पभे॥

उस मूल के प्रथम चरण में पिता तथा दूसरे चरण में माता का मरण होता है। तीसरे चरण में धन का नाश होता है और चतुर्थ चरण में शुभ होता है। इसके विपरीत फल आश्लेषानक्षत्र के अन्तिमपाद से होता है।

(अभुक्तमूलकथनम्)

अभुक्तमूलं त्वाह वृद्धवसिष्ठः—ज्येष्ठान्ते घटिका चैका मूलादौ घटिकाद्वयम्। अभुक्तमूलमित्याहुस्तत्र जातं शिशुं त्यजेत्॥ केचिज्ज्येष्ठान्त्यं मूलाद्यं च पादं अभुक्तमूलमाहुः।

अभुक्तमूल को वृद्धवसिष्ठ ने कहा है कि—ज्येष्ठानक्षत्र की अन्त्य एक घडी और मूलनक्षत्र के आदि की दो घड़ी को अभुक्तमूल कहते हैं। उसमें उत्पन्न बालक का त्याग कर दे। कोई तो ज्येष्ठा की अन्तवाली और मूल के आद्यपाद को अभुक्तमूल कहते हैं।

कश्यपसंहितायां त्वन्यथोक्तम्—मूलाद्यपादजो हन्ति पितरं तु द्वितीयजः। मातरं स्वां तृतीयोऽर्थान् सुहृदं तत्तुरीयजः॥ फलं तदेव सार्पर्क्षे प्रतीपं त्वन्त्य पादतः॥

कश्यपसंहिता में विपरीत कहा है कि—मूलनक्षत्र के आद्यपाद में—उत्पन्न हुआ पुत्र पिता को, दूसरे पाद में—माता को, तीसरे पाद में—धनों को और चौथे में मित्रों को नाश करता है। वही ही फल को आश्लेषा के अन्त्यपाद से जानना चाहिये।

(मूलवृक्षकथनम्)

मूलवृक्षः । जयार्णवे—मूलं स्तम्भं त्वचा शाखा पत्रं पुष्पं फलं शिखा । वेदाश्च मुनयश्चैव दिशश्च वसवस्तथा ॥ नन्दा बाणा रसा रुद्रा मूलभेदः प्रकीर्तितः ।

अब मूलवृक्ष को कहते हैं। जयार्णव में कहा—है कि—मूल (जड) स्तंभ, (स्कन्ध) त्वचा, शाखा, पत्र, पुष्प, फल और शिखा इनका क्रम से चार, सात, दश, आठ, नौ, पाँच, छ तथा ग्यारह मूल की घडियों के भेद होते हैं।

मूले मूलविनाशाय स्तम्भे हानिर्धनक्षयः ॥ त्वचि भ्रातुर्विनाशाय शाखा मातुर्विनाशकृत् । पत्रे सपरिवारः स्यात्पुष्पेषु नृपवल्लभः ॥ फलेषु लभते राज्यं शिखायामल्पजीवितम् ॥

मूल में मूल का विनाश होता है। स्तंभ में हानि तथा धन का क्षय होता है। त्वचा में भाई का नाश होता है। शाखा में माता का नाश होता है। पत्र में परिवार का (सपरिवार) नाश होता है। पुष्पों में राजा के प्रिय का नाश होता है। फलों में राज्य का लाभ होता है और शिखा में अल्पजीवन होता है।

अन्यत्र त्वन्यथोक्तम्—मूले सप्तघटीषु मूलहननं, स्तम्भेऽष्टसु स्वक्षयम् त्वग्दिग्बन्धुविनाशनं, च विटपे रुद्रैर्हतो मातुलः । पत्रेऽर्कैः सुकृती, तु बाणकुसुमे मन्त्री, फले सागरै राजा, वह्निशिखाल्पमायुरिति तन्मूलाङ्घ्रिपे स्यात्फलम् ॥

अन्यत्र तो अन्यथा कहा है कि—मूल की सात घड़ियों में मूल का नाश होता है। स्तंभ की आठ घडियों में अपना नाश होता है। त्वचा की दश घडी में वन्धुवों का विनाश होता है शाखा की ग्यारह घडी में मामा का नाश होता है। पत्र की बारहघडी में--पुण्यशील का नाश होता है। पुष्प की पांच घडी में मन्त्री का नाश होता है। फल की सात घडीमें राजा का नाश होता है और शिखा की तीन घडी में अल्पायु होता है। यह मूलवृक्ष का फल है।

भूपालवल्लभः—वृषालिसिंहेषु घटे च मूलं दिविस्थितं, युग्मतुलाङ्गनान्त्ये ।
पातालगं, मेषधनुःकुलीरनक्रेषु मर्त्येष्विति संस्मरन्ति ॥

भूपालवल्लभ में कहा है कि--वृष, वृश्चिक, सिंह, कुंभ और द्यूलोक में, मिथुन, तुला तथा मीन में पाताल में, मेष, धनु, कर्क एवं मकर में भूमि में रहता है।

स्वर्गे मूले भवेद्राज्यं पाताले च धनागमम् । मृत्युलोके यदा मूलं तदा शून्यं समादिशेत् ॥

मूल स्वर्ग में हो तो राज्य मिलता है। पाताल में हो तो धन का आगमन होता है और मृत्युलोक में हो तो शून्यता (अर्थात् सर्वनाश) होता है।

वसिष्ठः—नैर्ऋत्यभोद्भूतसुतः सुता वा क्षिप्रादवश्यं श्वशुरं निहन्ति ।
तदन्त्यपादे जनितो निहन्ति तस्योत्क्रमेणाहिभवे कलत्रम् ॥

वसिष्ठ ने कहा है कि--मूलनक्षत्र में उत्पन्न पुत्र या कन्या हो तो शीघ्र ही श्वसुर का नाश करती है। मूलनक्षत्र के अन्त्यपाद में पैदा हुई सन्तान नाशक नहीं है। इससे विपरीत आश्लेषा में जानना चाहिये।

सुरेशताराजनिता धवाग्रजं द्विदैवताराजनिता तु देवरम् ।
पुरन्दरर्क्षे जनितः सुतस्तथा स्वस्याग्रजं हन्ति न पुत्रिका यदि ॥

ज्येष्ठानक्षत्र में उत्पन्न कन्या अपने पति के ज्येष्ठ भाई की घातक है। विशाखा में उत्पन्न कन्या अपने पति के छोटे भाई को नाश करती है। ज्येष्ठानक्षत्र में उत्पन्न पुत्र उसीप्रकार अपने अग्रज का नाश करता है। यदि पुत्रिका हो तो (वहिन का) नाश नहीं करती है।

प्रयोगपारिजाते—मूलजा श्वशुरं हन्ति व्यालजा च तदङ्गनाम् ।
माहेन्द्रजाग्रजं हन्ति देवरं तु द्विदैवजा ॥

प्रयोगपारिजात में कहा है कि—मूलनक्षत्र में पैदा हुई सन्तान श्वसुर का नाश करती है।

व्यालजा—(आश्लेषा) में पैदा हुई सन्तान सास का नाश करती है। माहेन्द्र (ज्येष्ठा) में उत्पन्न सन्तान अग्रज (जेष्ठ) का नाश करती है तथा द्विदैवजा (विशाखा) में उत्पन्न सन्तान देवर को नष्ट करती है।

नृसिंहप्रसादे—धवाग्रजं हन्ति सुरेन्द्रजाता तथैव पत्न्या भगिनीं पुमांश्च।
द्विदैवजा देवरमाशु हन्याद्भार्यानुजामाशु निहन्ति सूनुः॥
पत्न्यग्रजामग्रजं वा हन्ति ज्येष्ठर्क्षजः पुमान्। तथा भार्या स्वसारं वा शालकं वा द्विदैवजः॥
कन्यका देवरं हन्ति विशाखान्त्यसमुद्भवा। आद्यपादत्रये नैव आद्यभे तु पुमान् भवेत्॥
न हन्याद्देवरं कन्या तुलामिश्रा द्विदैवजा। तद्वचान्त्योद्भवा वर्ज्या दुष्टा वृश्चिकपुच्छवत्॥

नृसिंहप्रासाद में कहा है कि--ज्येष्ठानक्षत्र में उत्पन्न ज्येष्ठ का (पति के ज्येष्ठ भाई को), और पत्नी के बहिन तथा उसके पतिको, विशाखा में उत्पन्न कन्या देवर का ज्येष्ठानक्षत्र में उत्पन्न पुत्र पत्नी की बड़ी बहिन को या बड़े भाई का नाश करती है। विशाखा (द्विदैवजा) नक्षत्र में उत्पन्न पुत्र पत्नी की बहिन या शाले को नष्ट करती है। विशाखा के अन्त्यपाद में उत्पन्न पुत्री देवर का नाश करती है।

आद्यपाद के तीन चरणों में दोष नहीं है। यदि आदि के नक्षत्र में पुत्र उत्पन्न हुआ हो तो। तुला राशि से मिश्रित विशाखा में उत्पन्न कन्या देवर का नाश नहीं करती है और उस नक्षत्र के अन्त में उत्पन्न कन्या बिच्छू के पूँछ के सदृश दुष्ट है, उसे त्याग देना चाहिये।

चित्राद्यर्द्धे पुष्यमध्ये द्विपादे पूर्वाषाढाधिष्ण्यपादे तृतीये।
जातः पुत्रश्चोत्तरार्द्धे विधत्ते मातापित्रोर्भ्रातरं बालनाशम्॥

चित्रा का आधा भाग, पुष्य का मध्य दो पाद, पूर्वाषाढ में तीसरा पाद या उत्तरार्द्ध में उत्पन्न पुत्र माता, पिता, भाई और बालक का नाश करता है।

द्विमासं चोत्तरादोषः पुष्ये चैव त्रिमासिकः। पूर्वाषाढाष्टमे मासि चित्रा षाण्मासिकं फलम्॥
नवमासं तथाऽश्लेषा मूले चाष्टाब्दवर्षकम्। ज्येष्ठा पञ्चदशे मासि पुत्रदर्शनवर्जिता॥

दो महिने तक उत्तरा में पुष्य में—तीन महिने तक, पूर्वाषाढ में—आठमास तक, चित्रा में--छः मास तक, आश्लेषा में--नौ महिने तक, मूल में--आठ साल तक और ज्येष्ठा में--पन्द्रह महिने तक दोष होता है। उसमें पुत्र दर्शन वर्जित है।

वसिष्ठः—व्यतीपातेऽङ्गहानिः स्यात्परिघे मृत्युमादिशेत्।
वैधृतौ पितृहानिः स्यान्नष्टेन्दावन्धतां व्रजेत्॥

वसिष्ठ ने कहा है कि—व्यतीपात में अंग की हानि (शौनकः—अर्थातः संप्रवक्ष्यामि शौनकः शान्तिमुत्तमाम्। कुमारजन्मकाले तु व्यतीपातश्च वैधृतिः॥ संक्रमश्च रवेस्तत्र जातो दारिद्र्य कारकः। गोमुखप्रसवं कृत्वा कुर्यात् शान्तिं प्रयत्नतः॥) और परिघ में मृत्यु होती है। वैधृति में पिता की हानि होती है। नष्ट चन्द्रमा (चतुर्दशीविद्धा अमावास्या सिनीवाली होती है। प्रतिपद्विद्धा कुहू होती है। दोनों के वेध से रहित अमावास्या होती है। 'दृष्टचन्द्रा सिनीवाली नष्टचन्द्रा कुहूः स्मृता) में अन्धता होती है।

मूले समूलनाशः स्यात्कुलनाशो धृतौ भवेत्। विकृताङ्गश्च हीनश्च सन्ध्ययोरुभयोरपि॥ पर्वण्यपि प्रसूतौ च सर्वारिष्टभयप्रदः। तद्वत्सदन्तजातश्च पादजातस्तथैव च॥ विपरीतप्रसूतौ तु नाभिनालेन वेष्टितः। राष्ट्रस्य नृपतेश्चैव स्वस्यापि च विनाशकः॥ तस्माच्छान्तिं प्रकुर्वीत ग्रहाणां क्रूरचेतसाम्॥

मूल में समूल नाश होता है। धृति में कुल का नाश होता है। विकृतांग या हीनांग पुत्र उत्पन्न हो, या दोनों सन्ध्याओं में और पर्व में उत्पन्न होने पर सब तरह का अनिष्ट तथा भय को देनेवाला होता है। उसीतरह दांत के सहित उत्पन्न हुआ पुत्र, पैर से उत्पन्न पुत्र, विपरीत प्रसूति में और नाभि में नाल से वेष्टित, पुत्र राष्ट्र और राजा का तथा अपना भी नाश करता है। इसलिए क्रूर ग्रहों की शान्ति करे।

गर्गः—कृष्णां चतुर्दशीं षोढां कुर्यादादौ शुभं स्मृतम्। द्वितीये पितरं हन्ति तृतीये हन्ति मातरम्॥

गर्ग ने कहा है कि--(कृष्णपक्षकी चतुर्दशी में उत्पन्न) कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के छः भाग करे। उसमें आदि के भाग शुभ हैं। दूसरे में पिता का तीसरे में माता का नाश करता है।

चतुर्थे मातुलं हन्ति पञ्चमे वंशनाशनम् । षष्ठे च धननाशः स्यादात्मनो वंशनाशनम् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शान्तिं कुर्याद्विधानतः ।

चतुर्थ भाग में मामा को नष्ट करता है और पाँचवे भाग में वंश का नाश करता है। छठे में धन का नाश तथा अपने वंश का नाश करता है। इसलिए सब प्रयत्न से विधान द्वारा शान्ति करे।

(पित्रोर्नक्षत्रे जन्मदोषकथनम्)

अथ पित्रोर्नक्षत्रे जन्मदोषः। तत्र देवकीर्तिः—यद्येकस्मिन् धिष्ण्ये जायन्ते दुहितरोऽथ वा पुत्राः। पितुरन्तकरा ह्येते यद्यपरे प्रीतिरतुला स्यात् ॥

अब पिता और माता के नक्षत्र में जन्म लेने पर दोष कहा है। उसमें देवकीर्ति ने कहा है कि—यदि एकही नक्षत्र में कन्या या पुत्र उत्पन्न हों तो ये पिता का अन्त करने वाले होते हैं और दूसरे नक्षत्रों में उत्पन्न हों तो अतुलप्रीति करनेवाले होते हैं।

गर्गः—एकस्मिन्नेव नक्षत्रे भ्रात्रोर्वा पितृपुत्रयोः। प्रसूतिश्च तयोर्मृत्युर्भवेदेकस्य निश्चितम् ॥

गर्ग ने कहा है कि—एक ही नक्षत्र में दो भाइयों की या पिता और पुत्र की यदि प्रसूति हो तो उन दोनों में एक की मृत्यु निश्चित होती है।

(ग्रहणकालप्रसूतौ विचारकथनम्)

शौनकः—ग्रहणे चन्द्रसूर्यस्य प्रसूतिर्यदि जायते। व्याधिपीडा तदा स्त्रीणामादौ तु ऋतुदर्शनात् ॥ इत्थं सञ्जायते यस्य तस्य मृत्युर्न संशयः ॥

शौनक ने कहा है कि—चन्द्र और सूर्यग्रहण में यदि प्रसूति (जन्म) हो जाय तो स्त्रियों को ऋतुदर्शन से पूर्व व्याधिजन्य पीड़ा होती है। इसप्रकार जिसको होगा उसकी मृत्यु हो जायगी। इसमें संशय नहीं है।

शान्तिस्तु—तदृक्षाधिपते रूपं सुवर्णेन प्रकल्पयेत्। सूर्यग्रहे सूर्यरूपं हैमं, चन्द्रं तु राजतम् ॥

शान्ति तो यह है कि—उस नक्षत्र के अधिपति (स्वामी) का सुवर्ण से उसके स्वरूप की कल्पना करे। अर्थात् मूर्ति बनवावे। सूर्यग्रहण में सूर्य की सोनेकी मूर्ति और चन्द्रग्रहण में चन्द्रमाकी चांदीकी मूर्ति बनवावे।

राहुरूपं प्रकुर्वीत नागेनैव विचक्षणः। (नागः=सीसम्) त्रयाणां चैव रूपाणां स्थापनं तत्र कारयेत् ॥

राहु का रूप नाग से ही अर्थात् सीसे से ही बुद्धिमान् बनवावे। उन तीनों रूपों का (अर्थात् तीनों मूर्तियों का) वहाँ पर स्थापन करे।

आ कृष्णेन, आप्यायस्व, स्वर्भानो, इति पूजामन्त्राः। नक्षत्रदेवतायास्तन्मन्त्रेण।

उनकी पूजा के मन्त्र यों हैं—[1]आकृष्णेन, [2]आप्यायस्व [3]स्वर्भानः। ये पूजा के मन्त्र हैं। नक्षत्रदेवता के उन मन्त्रों से।

सम्पूज्य तु यजेत्सूर्यं समिद्भिश्चार्कसम्भवैः। चन्द्रग्रहे च पालाशैर्दूर्वाभी राहुमेव च ॥ समिद्भिर्ब्रह्मवृक्षस्य मेशाय जुहुयाद् बुधः। आज्येन चरुणा चैव तिलैश्च जुहुयात्ततः ॥ पञ्चगव्यैः पञ्चरत्नैः पञ्चत्वक्पञ्चपल्लवैः। जलैरोषधिकल्कैश्च अभिषेकं समाचरेत् ॥ मन्त्रैर्वारुणसम्भूतैरापो हि ष्ठादिभिस्त्रिभिः। इमं मे गङ्गे पुरतस्तत्त्वा यामिति मन्त्रकैः ॥ यजमानस्ततो दद्याद्भक्त्या प्रतिकृतित्रयम् ॥

१—आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च। हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥ (ऋ. १।३६।२)

२—आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोमवृष्ण्यम्। भवा वाजस्य सङ्गथे ॥ (ऋ. १।९१।१६,९।३१।४)

३—स्वर्भानोरध यदिन्द्र माया अवो दिवा वर्त्तमाना अवाहन्। गूढं सूर्यं तमसापव्रतेन तुरीयेण ब्रह्मणाविन्ददत्रिः ॥ (ऋ. ५।४०।६)

पूजन करके अर्क से उत्पन्न समिधाओं से सूर्यग्रहण में, चन्द्रग्रहण में पालाशों से, राहु में दूर्वा से, नक्षत्राधिपति की पिप्पलवृक्ष की समिधाओं से ज्ञानीपुरुष हवन करे। तदनन्तर घी तथा तिल से हवन करे। फिर [1]पञ्चगव्यों, पञ्चरत्नों, पञ्चत्वचाओं पञ्चपल्लवों से तथा औषधियों के गुद्दों के जलों से अभिषेक करे—[2]वरुणसंज्ञकमन्त्रों से, आपो हि ष्ठा आदि तीन मन्त्रों से और [3]इमं में गङ्गे, [4]तत्त्वा यामि इन मन्त्रों से करे। तदनन्तर भक्ति से यजमान तीन प्रकृति (मूर्तियों) का दान करें।

(अकालप्रसूतौ विचारः)

मात्स्ये—अकालप्रसवा नार्यः कालातीतप्रजास्तथा। विकृतप्रसवाश्चैव युग्मप्रसवकास्तथा ॥ अमानुषा अमुण्डाश्च अजातव्यञ्जनास्तथा। हीनाङ्गा अधिकाङ्गाश्च जायन्ते यदि वा स्त्रियः ॥ पशवः पक्षिणश्चैव तथैव च सरीसृपाः। विनाशं तस्य देशस्य कुलस्य च विनिर्दिशेत् ॥ निर्वासयेत्तान्नगरात्ततः शान्तिं समाचरेत् ॥

मत्स्यपुराण में कहा है कि—जो स्त्रियाँ विना समय के प्रसव करती हैं और समय के बीतने बाद प्रजाओं की उत्पत्ति करती हैं। जिसकी सन्तानें [5]विकृत होती हैं तथा जो युग्मजनन करती हैं। जो अमानुष (अर्थात् मनुष्य लक्षणों से रहित) करती हैं, विना शिर के उत्पन्न करती हैं जिसके अंग आदि स्पष्ट न मालुम होते हो ऐसों को उत्पन्न करती हैं। जिनके हीन अंग और अधिक अंग वालों को जिसके उत्पन्न हुआ है। पशु, पक्षि, सर्प जिनसे उत्पन्न हों तो उस देश का और कुलका विनाश हो जाता है। अतः उन स्त्रियों को नगर से निकाल कर शान्ति (देशनाश और कुल के नाशको बचाने के लिए) करे।

(प्रथममुपरि दन्तोत्पत्तौ दन्तेन सह जन्मनि वा विचारकथनम्)

पाद्मे—उपरि प्रथमं यस्य जायन्ते च शिशोर्द्विजाः। दन्तैर्वा सह यस्य स्याज्जन्म भार्गवसत्तम ॥ द्वितीये च तृतीये च चतुर्थे पञ्चमे तथा। यदा दन्ताश्च जायन्ते मासे चैव महद्भयम् ॥

पद्मपुराण में कहा है कि—जिसबालक के पहले ऊपर के हिस्से में अर्थात्—दांत की पक्ति में दांत

१—गौतमीतन्त्रे—पलमात्रं दुग्धभागं गोमूत्रं तावदिष्यते। घृतं च पलमात्रं स्यात् गोमयं तोलकद्वयम् ॥ दधि प्रसृतमात्रं स्यात् पञ्चगव्यमिदं स्मृतम्। अथवा पञ्चगव्यानां समानो भाग इष्यते ॥ गोशकृद् द्विगुणं मूत्रं पयः स्यात्तच्चतुर्गुणम्। घृतं तद् द्विगुणं प्रोक्तं पञ्चगव्ये तथा दधि ॥

स्त्रीणां चैव तु शूद्राणां पतितानां तथैव च। पञ्चगव्यं न दातव्यं दातव्यं मन्त्रवर्जितम् ॥ वरुणो देवता मूत्रे गोमये हव्यवाहनः। सोमे क्षीरे दध्नि वायुर्घृते रविरुदाहृतः ॥ (देवलस्मृति)

पञ्चगव्याशनाद्विप्र ! चान्द्रायणफलं लभेत्। पर्णेषु यो नरो भुङ्क्ते कुरुक्षेत्रफलं लभेत् ॥ शिलायां भोजनान्नित्यं प्रायागजं लभेत्।

गोमूत्रे गोमयं क्षीरं दधि मस्तु च पञ्चमम्। कपिलाया जराया वा पञ्चगव्यं प्रशस्यते ॥ तयोरभावे चान्यासां गवांगव्यं विधीयते। नार्ताया न च गर्भिण्या न वृद्धायाः कदाचन ॥ नावत्साया उपादेयं धेनोर्मूत्रं शकृद् द्वयम्। भूविष्ठं गोमयं ग्राह्यं सोष्णं कृम्याद्यदूषितम् ॥ निष्पीड्य सम्यग् गृह्णीयाद् गोमयस्य रसं पुनः। सद्यस्तप्तं घृतं शुद्धमहोरात्रोषितं दधि ॥ क्षीरं ग्राह्यमतप्तं च दशाहाज्जन्मनः परम्। दधि द्विगुणमाधारात् पीयूषं त्रिगुणं ततः। षड्गुणं मूत्रमेतस्माच्छकृद्वारि चतुर्गुणम् ॥ स्थापने कथितं मानमभिषेकविधावपि। भूमिसंशोधनार्थं च तत् प्रोक्षणे पञ्चमं समम् ॥ गोमयेन समं मूत्रं दधि स्याद् द्विगुणं ततः। दध्नश्चतुर्गुणं सर्पिः सर्पिषोऽष्टगुणं ततः ॥ दध्नश्चतुर्गुणं सर्पिः सर्पिषोऽष्टगुणं पयः। प्राशने पञ्चगव्यानां प्रमाणमिदमीरितम् ॥

२—इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय। त्वामवस्युरा चके ॥ त्वं विश्वस्य मेधिर दिवश्च ग्मश्च राजसि। स यामनि प्रति श्रुधि ॥ उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत। अवाधमानि जीवसे ॥ इत्यादि। (ऋ. १।२५।१९–२१)।

३—इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या। असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्या सुषोमया ॥ (ऋ. १०।७५।५)

४—तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्रमोषीः ॥ (ऋ. १।२४।११)

५—स्मृतिकौस्तुभादौ प्रसववैकृतानां विस्तरः।

निकले या हे भार्गवसत्तम, जिसका जन्म दांतों सहित हुआ हो, दूसरे, तीसरे, चौथे या पांचवे मास में दांत निकले तो बड़ा भय होता है।

मातरं पितरं वाऽथ खादेदात्मानमेव च ॥ गजपृष्ठगतं बालं नौस्थं वा स्नापयेद् द्विज ! ॥

वह बालक माता, पिता का या स्वयं अपना ही नाश करता है। हे द्विज, हाथी की पीठ पर या नौका पर उस बाल को स्थापित करे।

तदभावे तु धर्मज्ञ काञ्चने वा वरासने ॥ सर्वौषधैः सर्वगन्धैर्बीजैः पुष्पैः फलैस्तथा। पञ्चगव्येन रत्नैश्च पताकाभिश्च भार्गव ॥ स्थालीपाकेन धातारं पूजयेत्तदनन्तरम्। सप्ताहं चात्र कर्तव्यं तथा ब्राह्मणभोजनम् ॥

या उसके अभाव में तो हे धर्मज्ञ, सुवर्णके श्रेष्ठ आसन पर बैठाकर सर्वौषधि, सर्वगन्ध, बीज, पुष्प, फल पञ्चगव्य, रत्न और पताओं से स्नान करावे। तदनन्तर हे भार्गव, स्थालीपाक से ब्रह्मा का सात दिन पूजन करे और यहाँ पर ब्राह्मणभोजन करावे।

भद्रासने निवेश्यैनं मृद्भिर्मूलैः फलैस्तथा। सर्वौषधैः सर्वगन्धैः सर्वबीजैस्तथैव च ॥ स्नापयेत्पूजयेच्चात्र वह्निं सोमं समीरणम्। पर्वतांश्च तथा ख्यातान् देवदेवं च केशवम् ॥ एतेषामेव जुहुयात् घृतमग्नौ यथाविधि। ब्राह्मणानां तु दातव्या ततः सम्पूज्य दक्षिणा ॥

फिर उस बाल को श्रेष्ठ आसन पर बैठा कर वृक्षकी जड से मृत्तिका, फल, सर्वौषधि, सर्वगन्ध और सब बीजों से स्नान करावे। अग्नि, सोम, वायु, प्रसिद्ध पर्वत तथा देवों में देव केशव इनका ही यथाविधि अग्नि में घी हवन करे। तदनन्तर ब्राह्मणों की पूजा कर दक्षिणा दे।

ब्रह्मयामले—प्रथमं दन्तनिर्मुक्तिरूर्ध्वं बालस्य चेद्भवेत्। क्लेशाय मातुलस्येह तदा प्रोक्ता मनीषिभिः ॥ सौवर्णं राजतं वापि ताम्रं कांस्यमयं तु वा। दध्योदनेन सम्पूर्णं पात्रं दद्याच्छिशोः करे ॥ समन्त्रं भाजनं दत्त्वा स पश्येन्मातुलः शिशुम्।

ब्रह्मयामल में कहा है कि—यदि बालक के ऊपर के पहले दांत निकले तो मामा को क्लेश (दुःख) होता है तब मनीषियों ने कहा है कि—सुवर्ण, चांदी, तांबा या कांस के पात्र में दही और भात से भरकर बालके हाथ में दे। देते समय मन्त्रको पढ़कर पात्र देकर वह मामा उस शिशु (पुत्र) को देखे।

तत्र मन्त्रः—रक्ष मां भागिनेय ! त्वं रक्ष मे सकलं कुलम्।
गृहीत्वा भाजनं सान्नं प्रसन्नो भव मे सदा ॥

हे भागिनेय, मेरी रक्षा करो। तुम मेरे संपूर्ण वंशकी रक्षा करो। अन्न के सहित भोजनपात्रको ग्रहण कर सर्वदा प्रसन्न हो।

निर्विघ्नं कुरु कल्याणं निर्विघ्नां च स्वमातरम्। मय्यात्मानमधिष्ठाप्य चिरं जीव मया सह ॥ एवं कृते विधाने तु विघ्नः कोऽपि न जायते। इति।

उसमें मन्त्र यों है—मेरा निर्विघ्नकल्याण करो और अपनी माता को निर्विघ्न करो। मेरे में अपना अपनी आत्मा का अधिष्ठान कर मेरे साथ बहुतकालतक जीवित रहो। ऐसा विधान करने पर कोई भी विघ्न नहीं होता है।

(त्रिकप्रसवशान्तिकथनम्)

अथ त्रिकप्रशवशान्तिः। शान्तिसर्वस्वे—सुतत्रये सुता चेत्स्यात्तत्त्रये वा सुतो यदि। मातापित्रोः कुलस्यापि तदाऽनिष्टं महद्भवेत् ॥

अब त्रिकप्रसवशान्ति कहते हैं। शान्तिसर्वस्व में कहा है कि—तीन लड़के के बाद यदि कन्या हो या तीन कन्याओं के बाद लड़का हो तो तब माता और पिता का तथा कुल का भी महान् अनिष्ट होता है।

ज्येष्ठनाशो धने हानिर्दुःखं वा सुमहद्भवेत्। तत्र शान्तिं प्रकुर्वीत वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥

ज्येष्ठ पुत्रका नाश, धनकी हानि या दुःख महान् होता है। वहाँपर धनकी कृपणता त्यागकर शान्तिको करे।

जातस्यैकादशाहे वा द्वादशाहे शुभे दिने। आचार्य मृत्विजो वृत्वा ग्रहयज्ञपुरःसरम् ॥ ब्रह्मविष्णु-महेशेन्द्रप्रतिमाः स्वर्णतः कृताः । पूजयेद्धान्यराशिस्थकलशोपरि शक्तितः ॥

उत्पन्न होने के ग्यारहवें दिन, बारहवें दिन या शुभ दिन में आचार्य और ऋत्विजों का वरण कर ग्रहयज्ञ पुरस्सर ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा इन्द्र, की सोने की प्रतिमा बना कर अपनी शक्ति के अनुसार धान्यराशि पर स्थित कलशों के ऊपर पूजन करे।

पञ्चमे कलशे रुद्रं पूजयेद्रुद्रसंख्यया । रुद्रसूक्तानि चत्वारि शान्तिसूक्तानि सर्वशः । द्विज एक जपेद्धोमकाले शुचिसमाहितः । आचार्यो जुहुयात्तत्र समिदाज्यतिलांश्चरुम् । अष्टोत्तरसहस्रं वा शतं वा त्रिशतं तु वा ॥ देवताभ्यश्चतुर्वक्त्रादिभ्यो ग्रहपुरःसरम् । ब्रह्मादिमन्त्रैरिन्द्रस्य यत इन्द्रभयामहे ॥

पाँचवे कलश में रुद्र की संख्या से रुद्र का पूजन करे। रुद्रसूक्तों से और चार शान्तिसूक्तों अर्थात्–ब्रह्मा, विष्णु, महेश और इन्द्र—इनके सूक्तों का एक ब्राह्मण जप करे। हवनकाल में वहाँ पर पवित्र मन से आचार्य समिधा, आज्य, तिल और चरु से एक हजार आठ, सौ या तीन सौ आहुतियों से हवन करे—ग्रहयज्ञ पुरस्सर ब्रह्मा आदि देवताओं के लिए [1]ब्रह्मादिमन्त्रों से, [2]इन्द्र का मन्त्र ('यत [3]इन्द्र भयामहे) से हवन करे।

ततः स्विष्टकृतं हुत्वा बलिं पूर्णाहुतिं ततः ॥ अभिषेकं कुटुम्बस्य कृत्वाचार्यं प्रपूजयेत् ॥ हिरण्यं धेनुरेका च ऋत्विजां दक्षिणा ततः । आज्यस्य वीक्षणं कृत्वा शान्तिपाठं तु कारयेत् ॥ प्रतिमा गुरवे दत्वा उपस्करसमन्विताः ॥ ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या दीनाऽनाथांश्च तर्पयेत् । एवं शान्तिविधानेन सर्वारिष्टं प्रलीयते ॥ इति ।

तदनन्तर स्विष्टकृत् हवन कर बलि और पूर्णाहुति करे। फिर कुटुम्ब का अभिषेक कर आचार्य का पूजन करे। सुवर्ण और एक गौ दे। तदनन्तर ऋत्विजों के लिये दक्षिणा दे। आज्य को देखकर शान्ति-पाठ करावे। गुरुजी के लिए उपस्करण सहित प्रतिमाको देकर यथाशक्ति से ब्राह्मणों को भोजन कराकर दीनानाथों को तृप्त करे। इसप्रकार शान्तिविधान से सब अरिष्ट विलीन हो जाता है।

१–ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम् । श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥ इत्यादि ब्रह्मा के मन्त्र हैं। (ऋ. ९।९६।६)

२–विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि ॥ यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥ (ऋ. १।१५४।१—६)

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् । स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् । उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः । पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहा भवत्पुनः । ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥ तस्माद्वि-राडजायत विराजो अधि पुरुषः । स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः । यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत । वसन्तो अस्या सीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥ तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः । तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥ तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम् । पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान् ग्राम्याश्च ये ॥ तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे । छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः । गावोह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥ यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् । मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते ॥ ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः । ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥ चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत । मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥ नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णोद्यौः समवर्तत । पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन् ॥ सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः । देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन्पुरुषं पशुम् । यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् । ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥

३–यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि । मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतिभिर्वि द्विषो वि मृधो जहि ॥ (ऋ. ८।६१।१३)

अन्येषु मूलाद्यृक्षेषु शान्त्यादि प्रयोगपारिजाते मत्कृते शान्तिरत्ने च ज्ञेयम् ।

अन्य मूल नक्षत्रों में शान्ति आदि प्रयोगपारिजात में और मेरे बनाये हुए शान्तिरत्न में जानना चाहिये ।

(बालकजन्मदिनतः षष्ठ्यां रात्रौ जागरणविधिकथनम्)

मिताक्षरायां मार्कण्डेयः—रक्षणीया तथा षष्ठी निशा तत्र विशेषतः ।
रात्रौ जागरणं कार्यं जन्मदानां तथा बलिः ॥

मिताक्षरा में मार्कण्डेय का वचन है कि—उस दिन छठी रात में विशेष कर रक्षा करे । रात्रि में जागरण करे—और जन्म के देवताओं के लिए बलि दे ।

पुरुषाः शस्त्रहस्ताश्च नृत्यगीतैश्च योषितः । रात्रौ जागरणं कुर्युर्दशम्यां चैव सूतके ॥

पुरुषशास्त्रों को हाथ में ग्रहण करें और स्त्रियाँ नृत्य एवं गीतों से दशमीरात्रि के ही सूतक में जागरण करे ।

(बालकजन्मदिनतः षष्ठे, अष्टमे, प्रथमे दिने च आशौचविचारः)

व्यासः—सूतिकावासनिलया जन्मदा नाम देवता ।
तासां यागनिमित्तं तु शुद्धिर्जन्मनि कीर्तिता ॥

व्यास ने कहा है कि—सूतिकागृह में निवास करने वाले जन्मदा नाम वाले देवता हैं । उनके याग (पूजा) के निमित्त जन्मसमय में शुद्धि कही है ।

प्रथमे दिवसे षष्ठे दशमे चैव सर्वदा । त्रिष्वेतेषु न कुर्वीत सूतकं पुत्रजन्मनि ॥

पुत्रजन्म में पहले दिन, छठवें दिन और दशवें[1] दिन—इन तीनों दिन में सूतक न करे ।

अपरार्के ब्राह्मे—कन्याश्चतस्रो राकाद्या वातघ्नी चैव पञ्चमी । क्रीडनार्था च बालानां षष्ठी च शिशुरक्षिणी ॥ खड्गे तु पूजनीया वै वैश्यैर्व्रात्यैर्द्विजातिभिः ॥ राका, अनुमतिः, सिनीवाली, कुहूरिति चतस्रः कन्या इत्यर्थः ।

अपरार्क में ब्रह्मपुराण का मत है कि–व्रात्य वैश्यद्विजातियों को राका, अनुमति, सिनीवाली और कुहू–ये चार कन्यायें, पांचवी वातघ्नी ये बालकों के क्रीडा के लिए छठी शिशु रक्षा के लिए है । इनकी खड्ग में पूजा करे ।

(दत्तकपुत्रपरिग्रहविधिः)

अथ दत्तकपुत्रपरिग्रहविधिः पारिजाते शौनकः—(शौनकोऽहं प्रवक्ष्यामि पुत्रसंग्रहमुत्तमम् ।) अपुत्रो मृतपुत्रो वा पुत्रार्थं समुपोष्य च ॥ वाससी कुण्डले दत्त्वा उष्णीषं चाङ्गुलीयकम् । बन्धून्नन्नेन सम्भोज्य ब्राह्मणांश्च विशेषतः ॥ अन्वाधानादि यत्तन्त्रं कृत्वाज्योत्पवनान्तकम् । दातुः समक्षं गत्वा तु पुत्रं देहीति याचयेत् ॥ दाने समर्थो दाताऽस्मै ये यज्ञेनेति पञ्चभिः ।

अब हम दत्तक पुत्र के ग्रहण की विधि को कहते हैं । पारिजात में शौनक ने कहा है कि–जिसके पुत्र न हो या जिसके पुत्र मर गये हों वह पुत्र के लिए (वन्ध्या वा मृतपुत्रो वा पुत्रार्थं समुपोष्य च) उपवास कर दो कुण्डल (कान का आभूषण) पगडी और अंगूठी देकर बन्धुओं को विशेषकर ब्राह्मणों को (तीन ब्राह्मणों को) अन्न से भोजन कराकर अन्वाधानादि से आज्योत्पवनान्त को तन्त्र से कर दाता के (अदेयं यश्च गृह्णाति, पश्चादेनं प्रयच्छति । तावुभौ चोरवच्छास्यौ दण्ड्यौ चोत्तमसाहसम् ॥) समक्ष जाकर कहे कि–'पुत्र को दो' ऐसी याचना करे । देनेवाला दान में (पत्नी की अनुमति से) (इदं पुत्रं तुभ्यमहं संप्रददे न मम) समर्थ हो तो उसके लिए 'ये [2]येज्ञेन' इन पांच मन्त्रों से दे ।

१—चकारेण पञ्चमाष्टमौ ग्राह्यौ । दद्यात्तु प्रथमे हेम षष्ठे वा सप्तमेऽपि वा । बलिदानं च दशमे ह्यन्नदानं प्रशस्यते ॥

२—मनुः—बहूनामेकपुत्राणामेकश्चेत्पुत्रवान् भवेत् । सर्वे ते तेन पुत्रेण पुत्रिणो मनुरब्रवीत् ॥ बृहस्पतिः—येऽप्येकजाता बहवो भ्रातरस्तु सहोदराः । एकस्यापि सुते जाते सर्वे ते पुत्रिणो मताः ॥ बह्वीनामेकपत्नीनामेष एव विधिः

देवस्य त्वेति मन्त्रेण हस्ताभ्यां परिगृह्य च ॥ अङ्गादङ्गेत्यृचं जप्त्वा आघ्राय शिशुमूर्द्धनि। गृहमध्ये तमादाय चरुं हुत्वा विधानतः ॥ स्विष्टकृदादिहोमं च कृत्वा शेषं समापयेत् ।

'देवस्य त्वा' इस मन्त्र से ग्रहण कर तथा शाखोक्त [1]कामस्तुति को पढ़कर) [2]'अङ्गादङ्गात्' इस ऋचाको जप कर शिशु के शिर को सूँघ कर भीतर लाकर—(अर्थात्—वस्त्र, कुण्डलद्वय, पगडो आदि को धारण किये हुए पुत्र को वाद्य आदि घोष पूर्वक ले आवे) चरु का (आचार्य कर्तृक) विधान से हवन कर [3]'यस्त्वा हृदा' इस ऋचा से तथा [4]'तुभ्यमग्रे' इस एक ऋचा से [5]'सोमो ददत्' इन पांच ऋचाओं के प्रति मन्त्र से स्विष्ट-कृदादि होम कर शेषकर्म को समाप्त करे ।

स च—ब्राह्मणानां सपिण्डेषु कर्तव्यः पुत्रसङ्ग्रहः ॥
तदभावे ऽसपिण्डो वा अन्यत्र तु नैव कारयेत् ॥

ब्राह्मणों के सपिण्डों में (यदि स्यादन्यजातीयो गृहीतोऽपि च नन्दनः । अंशभाजं न कुर्वीत मन्वादीनां मतं हि तत् ॥) से पुत्रका संग्रह करना चाहिये उसके अभाव में असपिण्ड को ग्रहण करे । अन्यत्र से पुत्र का ग्रहण न करे ।

स्मृतः । एका चेत् पुत्रिणी तासां सर्वासां पिण्डदस्तु सः ॥ बृहत्पराशरस्मृतिः-अपुत्रस्य पितृव्यस्य तत्पुत्रो भ्रातृजो भवेत् । स एव तस्य कुर्वीत श्राद्धपिण्डोदकक्रियाः ॥

ॐ ये यज्ञेन दक्षिणया समक्ता इन्द्रस्य सख्यममृतत्वमानश । तेभ्यो भद्रमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥१॥ य उदानन् पितरो गोमयं वस्वृतेनाभिन्दन् परिवत्सरे बलम् । दीर्घायुत्वमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥२॥ य ऋतेन सूर्यमारोहयन् दिव्यप्रथयन् पृथिवीं मातरं वि । सुप्रजास्त्वमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥३॥ अयं नाभा वदति वल्गु वो गृहे देवपुत्रा ऋषयस्तच्छृणोतन । सुब्रह्मण्यमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥४॥ विरूपास इदृषयस्त इद्गम्भीरवेपसः । ते अङ्गिरसः सूनवस्ते अग्ने परि जज्ञिरे ॥५॥ (ऋ० म० १०।६२।१—५) ।

१—कोदात्कस्माऽ अदात्कामो दात्कामायादात् । कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामैतत्ते ॥ (य० अ० ७ म० ४८) ।

आ नो भद्रा क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः । देवानो यथा सदमिद् वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे ॥१॥ देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानां रातिरभि नो नि वर्त्तताम् । देवानां सख्यमुप सेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥२॥ तान्पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्त्रिधम् । अर्यमणं वरुणं सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥३॥ तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः । तद्ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम् ॥ ४ ॥ तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम् । पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥ ५ ॥ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः । स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ ६ ॥ पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः । अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसा गमन्निह ॥ ७ ॥ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः । स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥ ८ ॥ शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम् । पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्यारीरिषतायुर्गन्तोः ॥ ९ ॥ अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः । विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥ १० ॥ (ऋ० १, ८९, म० १–१०)

२—अङ्गादङ्गात्संभवसि हृदयादभि जायसे । आत्मा वै पुत्र नामासि सजीव शरदः शतम् ॥

३—ॐ यस्त्वा हृदा कीरिणा मन्यमानोऽमर्त्यं मर्त्यो जोहवीमि । जातवेदो यशो अस्मासु धेहि प्रजाभिरग्ने अमृतत्वमश्याम् ॥ (ऋ० ५।४।१०) ।

४—ॐ तुभ्यमग्रे पर्यवहन् त्सूर्यां वहतुना सह । पुनः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह ॥ (ऋ० १०।८५।३८)

५—सोमो ददद्गन्धर्वाय गन्धर्वो दददग्नये । रयिं च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम् ॥१॥ इहैव स्तं मा वियौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम् । क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे ॥२॥ आ नः प्रजां जनयतु प्रजापतिराजरसाय समनक्त्वर्यमा । अदुर्मङ्गलीः पति लोकमा विश शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥३॥ अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः । वीरसूर्देवकामा स्योना शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥४॥ इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु । दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादशं कृधि ॥५॥ (ऋ० १०।८५।४१—४५) ।

मिताक्षरादौ तु व्याहृतिभिराज्येन होम उक्तः । स च होमोत्तरं जलपूर्वकं देयः, न च वाङ्मात्रेण, व्याहृतिभिर्हुत्वा प्रतिगृह्णीयात्, इति वसिष्ठोक्तेः ।

मिताक्षरादि में तो व्याहृतियों से आज्य (घृत) से होम कहा है । वह होम के बाद जलपूर्वक संकल्प कर देना चाहिये न कि वाणीमात्र के कथन से । वसिष्ठ ने कहा है कि—व्याहृतियों से हवन कर ग्रहण करे ।

माता पिता वा दद्यातां यमद्भिः पुत्रमापदि । सदृशं प्रीतिसंयुक्तं स ज्ञेयो दत्रिमः सुतः ॥ इति मनूक्तेः ।

मनुने कहा है कि—आपत्तिकाल में (आपद्येव तु कर्तव्यं दानं विक्रय एव च । अन्यथा तु न कर्तव्यमिति शास्त्रस्य निश्चयः ॥) जिस पुत्र को माता या पिता दें । उस सजातीय (सजातीयेष्वयं प्रोक्तस्तनयेषु मया विधिः) प्रीति से (विक्रयं चैव दानं च न नेयास्युरनिच्छवः ।) युक्त दत्तकपुत्र को जानना चाहिये ।

तत्रैव वसिष्ठः—'नत्वेवैकं पुत्रं दद्यात्प्रतिगृह्णीयाद्वा, न स्त्री पुत्रं दद्यात्प्रतिगृह्णीयाद्वा, अन्यत्रानुज्ञानाद्भर्तुः' इति । इदं च भर्तृसत्त्वे ।

वहीं पर वसिष्ठ ने कहा है कि—जिसके एक ही पुत्र हो उसे नहीं देना चाहिये और न किसी को ग्रहण करना चाहिये । स्त्री पुत्र को न दे न ग्रहण ही करे, पति के आज्ञा विना स्त्री को पुत्र देने और लेने का अधिकार नहीं है । यह भी पति के रहने (जीवित) पर है ।

अन्यथा—दद्यान्माता पिता वा यं स पुत्रो दत्रिमः स्मृतः । इति वत्सव्यासवचो विरोधः स्यात् । दानं प्रतिग्रहोपलक्षणम् ।

अन्यथा माता या पिता जिस पुत्र को दे वह पुत्र दत्तक होगा । इस वत्स और व्यास के वचन विरोध होगा । दान तो प्रतिग्रह का उपलक्षण है ।

यत्तु समन्त्रकहोमस्य पुत्रप्रतिग्रहाङ्गत्वात् व्याहृत्यादिमन्त्रपाठे च स्त्रीशूद्रयोरनधिकारात् तयोर्दत्तकः पुत्रो न भवत्येवेति शुद्धिविवेके रुद्रधरेणोक्तम् ।

जो समन्त्रक होम का पुत्रप्रतिग्रह अंग होने से और व्याहृति आदि के मन्त्रपाठ में स्त्री तथा शूद्र को अधिकार न होने से दत्तक पुत्र नहीं होता है यह शुद्धविवेक में रुद्रधर ने कहा है ।

वाचस्पतिश्चैवमाह । तन्न, भर्तुरनुज्ञया स्त्रिया अपि प्रतिग्रहोक्तेः । यद्यपि मेधातिथिना भार्यात्ववददृष्टरूपं दत्तकत्वं होमसाध्यमुक्तम् । स्त्रियाश्च होमासम्भवस्तथापि व्रतादिवद्विप्रद्वारा होमादि कारयेदिति हरिनाथादयः । सम्बन्धतत्त्वेऽप्येवम् । एवं शूद्रस्यापि, स्त्रीशूद्राश्च सधर्माणः, इति स्मृतेः । अत एव शूद्रकर्तृकहोमो विप्रद्वारैव पराशरेणोक्तः ।

वाचस्पति ने भी यही कहा है । यह ठीक नहीं है । पति की आज्ञा से स्त्री को भी प्रतिग्रह का अधिकार कहा है—ऐसा कहा है । यद्यपि मेधातिथिने स्त्री को तरह अदृष्टरूप दत्तकत्व को होमसाध्य कहा है और स्त्रियों को हवन करना असंभव है फिर भी व्रत आदि के तरह ब्राह्मणद्वारा होम आदि करा लेना चाहिये—यह हरिनाथ आदि ने कहा है । सम्बन्धतत्त्वमें भी यही कहा है । इसीप्रकार शूद्र का भी है । स्मृति में कहा है कि—स्त्री और शूद्र तुल्य धर्मवाले होते हैं । इसलिये शूद्रकर्तृकहोम ब्राह्मण द्वारा ही करावे—ऐसा पराशर ने कहा है ।

दक्षिणार्थं तु यो विप्रः शूद्रस्य जुहुयाद्धविः । ब्राह्मणस्तु भवेच्छूद्रः शूद्रस्तु ब्राह्मणो भवेत् ॥

जो ब्राह्मण दक्षिणा के लिए शूद्रका हवन करता है तो वह ब्राह्मण शूद्र हो जाता है और शूद्र तो ब्राह्मण हो जाता है ।

अत्र माधवाचार्यः—यो विप्रः शूद्रदक्षिणामादाय तदीयं हविः शान्तिपुष्ट्यादिसिद्धये वैदिकैर्मन्त्रैर्जुहोति तस्य विप्रस्यैव दोषः । शूद्रस्तु होमफलं लभतैव, इति व्याचचक्षे ।

यहाँ पर माधवाचार्य ने कहा है कि--जो ब्राह्मण शूद्र की दक्षिणा को लेकर उसीके हवि से शान्तिक, पौष्टिक आदि की सिद्धि के लिए वैदिकमन्त्रों से हवन करता है। उसका दोष ब्राह्मण को ही है। शूद्रको तो होम का फल मिलता ही है। ऐसी व्याख्या की है।

दत्तके विशेषः कालिकापुराणे--पितुर्गोत्रेण यः पुत्रः संस्कृतः पृथिवीपते।
आचूडान्तं न पुत्रः स पुत्रतां याति चान्यतः॥

दत्तकविषय में कालिकापुराण में कहा है कि-हे पृथिवीपते, जिस पुत्र का पिता के गोत्र से संस्कार हुआ है वह चूडाकर्म पर्यन्त वह पुत्र दूसरे की पुत्रता को नहीं प्राप्त कर सकता है।

चूडोपायनसंस्कारा निजगोत्रेण वै कृताः। दत्ताद्यास्तनयास्ते स्युरन्यथा दास उच्यते॥

जिसका चूडाकरण और उपनयनसंस्कार अपने गोत्र से किया हो वे दत्तक आदि पुत्र हो सकते हैं, अन्यथा तो वे दास कहे जाते हैं।

ऊर्ध्वं तु पञ्चमाद्वर्षान्न दत्ताद्याः सुता नृप। गृहीत्वा पञ्चवर्षीयं पुत्रेष्टिं प्रथमं चरेत्॥

हे नृप, पांचवर्ष के बाद दत्तक आदि पुत्र नहीं हो सकते हैं। पांच साल के पुत्र को ग्रहण कर पहले 'पुत्रेष्टि' करे।

पञ्चमोर्ध्वं स्वदानेच्छोरेव दानं, तु नान्यथा। विक्रयं चैव दानं च न नेयाः स्युरनिच्छवः॥ दाराः पुत्राश्च सर्वस्वमात्मनैव तु योजयेत्॥ इति हेमाद्रिमाधवधृतव्यासदक्षादिवचनात्।

हेमाद्रि में और माधव में व्यास, दक्ष आदि का वचन है कि—पांच साल के बाद अपनी इच्छा से ही दान दे सकता है. अन्यथा नहीं दे सकता है। क्रय और दान अपनी इच्छा के विरुद्ध नहीं कर सकता। स्त्री और पुत्र सब आत्मा ही से संबन्ध कर सकते हैं।

यच्च याज्ञवल्क्यः—स्वकुटुम्बाविरोधेन देयं दारसुताद्दते। इति, तदूर्ध्वं स्वदानानिच्छुपुत्रपरम्। तेन सर्वस्वदाने स्वदानेच्छुदारपुत्रदानं सिद्धम्।

जो याज्ञवल्क्य ने कहा है कि—अपने कुटुम्ब के अविरोध से स्त्री और पुत्र को छोड कर दे। यह वचन है। वह ऊपर अपने दान की अनिच्छुक पुत्र परक है। इससे 'विश्वजिति सर्वस्वं [1]ददाति' विश्वजित् याग में सब दे देता है। सब स्वदान इच्छावालों को स्त्री तथा पुत्र का दान सिद्ध होता है।

यत्तु विश्वजिदधिकरणं षष्ठे, तत्र पुत्रादीनां ज्ञातित्वेन स्वशब्दवाच्यत्वात् पुत्रत्वेन दानमाशङ्क्य निराकृतम्, जन्यपुँस्त्वस्य दानेनानिष्पत्तेः। दासत्वेन दानं भवत्येव। तस्माद्यथेष्ट विनियोगार्हत्वं स्वत्वं भवत्येव। पुत्रे स्वत्वाभावं वदन् पुत्रक्रयविक्रयादिशुनःशेपविक्रयादिश्रौतलिङ्गाद्दासक्रयविक्रयादिव्यवहारायोगात् मूर्ख एव।

जो विश्वजिताधिकरण छठे में है। वहाँ पर पुत्रादियों का ज्ञातित्व से स्वशब्द वाच्यत्व होने से पुत्रत्व से दान की आशंका कर निराकरण किया है। जन्यपुंस्त्वका दान से निष्पन्न नहीं हो सकता है। दास मान करके दान हो जाता ही है। इसलिये अपनी इच्छा से जिसका उपयोग करे वही स्वशब्द का अर्थ है। (पुत्र का दान नहीं कर सकते हैं इसमें किसी ने दूसरा कारण बतलाया कि--उसी को अनुवाद कर खण्डन करते हैं) पुत्र में सत्व नहीं है इसप्रकार कहनेवाला मूर्ख है। क्योंकि वेद में उदाहरण मिलता है कि-पुत्र का बेचना और खरीदना यह सब संभव है। शुनः शेप को खरीदा है। दास का क्रय विक्रयादि व्यवहार नहीं है।

योऽपि 'नहि ग्रभायारणः सुशेवोऽन्योदर्यो मनसा मन्तवा उ' इति श्रुतौ दत्तकनिषेधः, सोप्यौरसातिशयार्थः। अन्यथा शुनःशेपादिप्रतिग्रहश्रौतलिङ्गविरोधापत्तेः। 'उपेयां तव पुत्रताम्' इत्युक्तेः। इदं च श्रौतलिङ्गं स्वयंदत्तक्रीतपरं न दत्तकपरम्। द्वादशविधपुत्रमध्ये 'दत्तात्मा तु

१—विश्वजिति सर्वस्वं ददाति-यहाँ पर सर्वस्वशब्दों में स्वशब्द जाति को बतलाता है। पुत्री भी जातिहोने से उसका भी दान देना होगा। ऐसी शंका कर निराकर किया कि अपनी स्त्री से उत्पन्न पुत्र को ही लड़का कहा जाता है। केवल दान देने से ही पुत्र नहीं हो सकता है अतः पुत्र का दान नहीं दिया जा सकता।

स्वयंदत्तः, क्रीतश्च ताभ्यां विक्रीतः' इति याज्ञवल्क्येन तयोर्दत्तकाद्भेदोक्तेः। तयोश्च 'दत्तौरसेतरेषां तु पुत्रत्वेन परिग्रहः' इति कलौ निषेधात्। तेन संस्कारोत्तरं स्वयं क्रीतौ न भवतः, तदुत्तरे दत्तको न भवत्येवेति सिद्धम्।

और [1]"न हि ग्रभायारणः सुशेवोन्योदर्यो मनसा मन्तवा उ' अरणः अपगत उदक संबन्ध अर्थात् अन्य के पुत्र सुशेवः—सुखतम होने पर भी अन्योदर्यः–अन्य स्त्री के गर्भ से उत्पन्न होने पर भी यह हमारा पुत्र है यह नहीं मानना चाहिये। इस श्रुति वाक्य में दत्तक का जो निषेध किया है वह औरस पुत्र की श्रेष्ठता दिखाने के लिये है। अन्यथा शुनःशेप का प्रतिग्रह करने की जो श्रुति में दृष्टान्त है वह विरुद्ध हो जायगी। 'मैं आप का पुत्ररूप से बनता हूँ। यह श्रौतलिंग क्रीत तथा स्वयंदत्त परक है न कि दत्तकपरक है। बारह-प्रकार के पुत्रों के मध्य में याज्ञवल्क्यमहर्षि ने स्वयंदत्त तथा क्रीत का दत्तकपुत्र से भेद दिखाया है। जिन्होंने स्वयं ही दान दिया है वह स्वयं दत्तक है। माता तथा पिता ने जिसको वेचा है वह क्रीत है। इन दोनों को दत्तक तथा औरस से भिन्न पुत्रों का काल में निषेध है।

अथ यमलयोः संस्कारक्रमार्थं ज्येष्ठकनिष्ठभाव उच्यते। मनुः—

पुत्रः कनिष्ठो ज्येष्ठायां कनिष्ठायां च पूर्वजः। कथं तयोर्विभागः स्यादिति चेत्संशयो भवेत्॥ सदृशः स्त्रीप्रजातानां पुत्राणामविशेषतः। न मातृतो ज्यैष्ठ्यमस्ति जन्मतो ज्यैष्ठ्यमुच्यते॥ तेन कनिष्ठायां पूर्वं जात एव ज्येष्ठो न ज्येष्ठायां पश्चाज्जात इत्यर्थः। स एव श्राद्धाधिकारी।

अब एक साथ पैदा हुए यमल पुत्रों का संस्कार के क्रमार्थ ज्येष्ठ और कनिष्ठता को कहते हैं। मनु ने कहा है कि—बड़ी ज्येष्ठ स्त्री का पुत्र छोटा हो और छोटी स्त्री का पुत्र बड़ा (पहला) हो तो इन दोनों का विभाग कैसे होगा यह संशय हो तो बराबर की स्त्रियों में उत्पन्न हुए पुत्रों का अविशेषाभाव से माता से ज्येष्ठता नहीं होती है किन्तु जिसका जन्म पहले होगा उसी को ज्येष्ठत्व कहा जाता है। इससे (यह सिद्ध हुआ कि) छोटी स्त्री में पहले होने पर वही ही ज्येष्ठ है। न कि ज्येष्ठा स्त्री में बाद होने पर उसे ज्येष्ठता नहीं होती है। वही श्राद्ध आदि में अधिकारी है।

जन्मज्येष्ठेन चाह्वानं सुब्रह्मण्यास्वपि[2] स्मृतम्। यमयोश्चैव गर्भेषु जन्मतो ज्येष्ठता मता॥

१—न हि ग्रभायारणः सुशेवोऽन्योदर्यो मनसा मन्तवा उ। अधा चिदोकः पुनरित्स एत्या नो वाज्यभीषाडे तु नव्यः॥ (ऋ० म० ७ अं० ४ म० ८)।

२—सुब्रह्मण्याह्वान सोमयाग में होते हैं। चतुर्थ दिन वपायाग होते ही सुब्रह्मण्याह्वान विधान किया जाता है। उस सुब्रह्मण्याह्वान में 'पैतापुत्रीया' कहा जाता है। उसका यह अभिप्राय है कि यजमान का पिता, पितामह, प्रपितामह, माता, पितामही, प्रपितामही, इन छः व्यक्ति का नाम ग्रहण कर उनके साथ यजमान के संबन्ध को अर्थात्—पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र को शब्द के द्वारा निर्देश करना तथा यजमान के जितने पुत्र हैं और पौत्र जीवित हैं उन्हीं का नाम लेकर के पिता यजते, पितामहो यजते, ऐसा निर्देश करना चाहिये। इसी को 'पैतापुत्रीया' कहा जाता है। (सुब्रण्योमित्यादि गौतमब्रुवाणेत्यन्तमुक्त्वा श्वः सुत्यायाः पूर्वं यजमानस्य नामानि गृह्णीयात्। अमुकशर्मा यजते। अमुकशर्मणः पुत्रो यजते। अमुकीदायाः पुत्रो यजते। अमुकशर्मणः पौत्रो यजते। अमुकीदायाः पौत्रो यजते। अमुकशर्मणो नप्ता यजते। अमुकीदाया नप्ता यजते। द्विपितृकस्य द्विमातृकस्य च द्वयानां पित्रादीनां मात्रादीनां च प्रत्येकं नाम ग्रहणम्। अमुकशर्मणः पुत्रो यजते। अमुकीदायाः पुत्रो यजत इति। भार्यानेकत्वेऽपि विवाहक्रमेण सर्वासां ग्रहणं प्रत्येकम्। एवं पूर्वेषां नामानि गृहीत्वा यजमानस्य पुत्र-पौत्र-प्रपौत्राणां स्त्रीपुंसां जीवतां ज्येष्ठक्रमेण नामानि गृह्णीयात्। मुद्रित अग्निष्टोमः पद्धतौ पृ० २३१-२३२।)। अगर किसी यजमान के अनेक पत्नियों में अथवा एक ही स्त्री में यमल पुत्र उत्पन्न होंगे ऐसे यजमान के याग में किसप्रकार निर्देश किया जाय उसका समाधान करते हैं कि—जन्म से ही पुत्रों को ज्येष्ठ माना जाता है न की स्त्री से ज्येष्ठता है। (अमुकशर्मणः पिता यजते। अमुकीदायाः पिता यजते। अमुकशर्मणः पितामहो यजते। अमुकीदायाः पितामहो यजते। अमुकशर्मणः प्रपितामहो यजते। जनिष्यमाणानां पितामहः प्रपितामहो यजते। इत्युक्त्वा श्वः सुत्यामित्यादि समापयेत्। यदा पुत्रवर्गात् पौत्रवर्गोज्येष्ठस्तदापि पुत्रवर्गाह्वानं समाप्य पौत्रवर्गस्य ग्रहणम्। यदा पौत्रवर्गान्नप्तृवर्गो ज्येष्ठस्तदापि पौत्रवर्गस्याह्वानं समाप्य नप्तृवर्गस्याह्वानम्। पतित प्रव्रजित नपुंसकमूकादीनां न नामग्रहणम्। अग्निष्टोमपद्धतौ पृ० २३२।) (किसी व्यक्ति

जन्म से ज्येष्ठ को जो बुलाना होता है जुडवा (यमल) बच्चों में जिसका पहले जन्म होता है वही ज्येष्ठ होता है।

देवलः—यस्य जातस्य यमयोः पश्यन्ति प्रथमं मुखम्।
सन्तानः पितरश्चैव तस्मिन् ज्यैष्ठ्यं प्रतिष्ठितम्॥

देवल ने कहा है कि—जिसके जुडवों में प्रथम उत्पन्न होने पर जिसका पहले मुख देखते हैं। वही पिता की सन्तान ज्येष्ठ होती है। उसी में ज्येष्ठत्व प्रतिष्ठित रहता है।

भागवते तु—द्वौ तदा भवतो गर्भौ सूतिर्वेशविपर्ययात्। इत्युक्तेः पश्चादुत्पन्नस्य ज्यैष्ठ्यमुक्तम्। अत्र देशाचारतो व्यवस्था। पूर्वमेव तु युक्तम्। गर्भाष्टमे इत्यादौ विशेषनिर्देशे एव गर्भग्रहणं नान्यत्र। अन्यथा तद्वैयर्थ्यात्।

भागवत में तो कहा है कि—सूतिका के वेश के विपर्यय से आपके दोनों गर्भों से कहा है। बाद में उत्पन्न होने पर ज्येष्ठता कही है। यहाँ पर देशाचार से व्यवस्था करे। कमलाकर भट्ट का कहना है कि जो पहले उत्पन्न हो उसी को ज्येष्ठ मानना युक्त है। गर्भाष्टम में—गर्भ से आठवें साल में—इत्यादि में विशेष निर्देश से ही गर्भ का ग्रहण है। अन्यत्र नहीं है अन्यथा उस गर्भपद का व्यर्थ है।

(सूतिकास्नानकथनम्)

अथ सूतिकास्नानम्। ज्योतिषे—करेन्द्रभाग्यानिलवासवान्त्यमैत्रेन्दवाश्विध्रुवभेऽह्नि पुंसाम्।
तिथावरिक्ते शुभमामनन्ति प्रसूतिकास्नानविधिं मुनीन्द्राः॥

सूतिकास्नान कहते हैं। ज्योतिष में कहा है कि-हस्त, ज्येष्ठा, पूर्वाफाल्गुनी, स्वाती, धनिष्ठा, रेवती, अनुराधा, मृगशिरा, अश्विनी, ध्रुवगण का नक्षत्रों में (तीनों उत्तरा और रोहिणी), रविवार, मंगलवार, बृहस्पतिवार के दिन में तथा रिक्ता रहित तिथियों में मुनियों ने प्रसूतिस्नान में श्रेष्ठ कहा है।

(नामकर्मकथनम्)

अथ नामकर्म। मदनरत्ने बृहस्पतिः—द्वादशे दशमे वाऽपि जन्मतोऽपि त्रयोदशे। षोडशे विंशतौ चैव द्वात्रिंशे वर्णतः क्रमात्॥ याज्ञवल्क्यः—अहन्येकादशे नाम।

अथ नामकरणकर्म कहते हैं। मदनरत्न में बृहस्पति ने कहा है कि—बारहवें, (ब्राह्मण को—ग्यारहवें और बारहवें दिन, क्षत्रिय को—तेरहवें दिन, वैश्य को—सोलहवें दिन तथा बीसवें दिन या सोलहवें दिन और इक्कीसवें दिन, शूद्र को—बत्तीसवें दिन) या दशवें (ग्यारहवें) दिन ब्राह्मण का, जन्म से तेरहवें दिन क्षत्रिय का, सोलहवें दिन या बीसवें दिन वैश्य का और शूद्र का बत्तीसवें दिन में नामकरण वर्णक्रम से करे। याज्ञवल्क्य ने कहा है कि—ग्यारहवें दिन नामकरण करे।

हेमाद्रौ भविष्ये—नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां मासि केचन।
अष्टादशेऽहनि तथा वदन्त्यन्ये मनीषिणः॥

हेमाद्रि में भविष्यपुराण का मत है कि—दशवें दिन, बारहवें दिन या एकमहिने पर नामकरण करे। यह किसी का मत है। अन्य मनीषियों का कथन है कि—अठारहवें दिन नामकरण को करना कहते हैं।

दशम्यामतीतायामिति ज्ञेयम्, 'आशौचापगमे नामधेयम्' इति विष्णूक्तेः। गृह्यपरिशिष्टेऽपि—जननाद्दशरात्रे व्युष्टे शतरात्रे संवत्सरे वा नामकरणम्। व्युष्टे=अतीते।

दशमी रात बीतने पर (दशमे द्वादशे वापि जन्मतो दिवसे शुभे। षोडशे विंशतौ चैव द्वादशे वर्णतः क्रमात्॥ ऐसा पढ़कर आशौच के मध्य में नामकरण करें। ऐसा प्रलाप करनेवाले ठीक नहीं हैं। प्रयोगरत्न

के प्रथम विवाह होने पर पुत्र के अभाव में उसने दूसरा विवाह वंश की परंपरा चलाने के लिए किया। संयोगवश विवाह के बाद प्रथमा स्त्री और द्वितीया स्त्री भी गर्भवती हो गयी। द्वितीया स्त्री को आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा को पुत्र उत्पन्न हुआ और प्रथमा स्त्री को श्रावण कृष्णपक्ष की दशमी को पुत्र हुआ। ऐसी स्थिति में प्रथमा स्त्री ज्येष्ठ है पर पुत्र प्रथम द्वितीया पत्नी को प्रथम होने से जन्म ज्येष्ठता उसी को है।

में कहा है कि--'यथाचारं नियतदिने वा') जानना चाहिये। विष्णु ने कहा है कि-आशौचकी निवृत्ति के बाद नामकरण करे। गृह्यपरिशिष्ट में भी कहा है कि—जनन से दशरात्रि बीतने पर, सौ रात्रि या संवत्सरान्त में नामकरण करें। व्युष्टका अर्थ=व्यतीत है।

ज्योतिर्निबन्धे गर्गः—अमासंक्रान्तिविष्ट्यादौ प्राप्तकालेऽपि नाचरेत्।

ज्योतिर्निबन्ध में गर्ग ने कहा है कि—अमावास्या, संक्रान्ति, विष्टि (भद्रा), आदि (व्यतीपाते च संक्रान्तौ ग्रहणे वैधृतावपि। श्राद्धं कुर्यात्, शुभं नैव प्राप्तकालेऽपि मानवः ॥' गुरुशुक्रास्तबाल्यवार्धक्यवक्रातिचारमलमासादिनिषेधस्तु नास्ति।) में समय आने पर भी नामकरण को नहीं करना चाहिये।

श्रीधरः—मित्रादित्यमघोत्तराशतभिषक्स्वातीधनिष्ठाच्युतप्राजेशाश्विशशाङ्कपौष्णदिनकृत्पुष्येषु राशौ स्थिरे। छिद्रां पञ्चदशीं विहाय नवमीं शुद्धेऽष्टमे भार्गवज्ञाचार्यामृतपादनामदिवसे नामानि कुर्याच्छिशोः ॥

श्रीधर ने कहा है कि—अनुराधा, पुनर्वसु, मघा, तीनों उत्तरा, शतभिषा, स्वाती, धनिष्ठा, श्रवण, रोहिणी, अश्विनी, मृगशिरा, रेवती, हस्त और पुष्यनक्षत्रों में, स्थिरलग्न में, छिद्रातिथि (चतुर्थी, षष्ठी, द्वादशी, चतुर्दशी), पूर्णिमा और नवमी तिथियों को छोडकर लग्न से अष्टम शुद्ध हो तब शुक्रवार, बुधवार और बृहस्पतिवार को अमृतवेला (मध्याह्न से पूर्व) में बालक का नाम करण करे।

मनुः—शर्मान्तं ब्राह्मणस्य स्याद्वर्मान्तं क्षत्रियस्य तु। वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य प्रेष्यसंयुतम् ॥

मनुने कहा है कि—ब्राह्मण का नाम शर्मान्त, क्षत्रिय का नाम वर्मान्त, वैश्यका धन से युक्त और शूद्रका दास आदि से युक्त होना चाहिये।

मदनरत्ने नारदीये—सूतकान्ते नामकर्म विधेयं स्वकुलोचितम्।
नामपूर्वं तु मासस्य मङ्गलं सुसमाक्षरैः ॥

मदनरत्न में नारदीय का वचन है कि—सूतक के अन्त में अपने कुलानसार नामकर्म का विधान करे। नाम के पूर्व तो मास का का मंगल अक्षर युक्त करे।

तत्रैव गार्ग्यः—मासनाम गुरोर्नाम दद्याद्बालस्य वै पिता।

वहीं पर गार्ग्य ने कहा है कि—बालक का पिता मास नाम से और गुरुदेव के नाम से रखे।

स्मृतिसङ्ग्रहे—कृष्णोऽनन्तोऽच्युतश्चक्री वैकुण्ठोऽथ जनार्दनः ॥ उपेन्द्रो यज्ञपुरुषो वासुदेवस्तथा हरिः। योगीशः पुण्डरीकाक्षो मासनामान्यनुक्रमात् ॥

स्मृतिसंग्रह में कहा है कि—कृष्ण, अनन्त, अच्युत, चक्री, वैकुण्ठ, जनार्दन, उपेन्द्र, यज्ञपुरुष, वासुदेव, हरि, योगीश तथा पुण्डरीकाक्ष ये क्रम से महिनों के नाम है।

अत्र मार्गशीर्षादिश्चैत्रादिर्वा क्रम इति मदनरत्ने—तन्मासनाम प्रथमं दद्यात्संबुद्ध्य चैव हि। देवालयगजाश्वानां वृक्षाणां वापिकूपयोः ॥ सर्वापणानां पण्यानां चिह्नार्थं योषितां नृणाम्। काव्यानां च कवीनां च पश्वादीनां च सर्वशः ॥ राजप्रासादवास्तूनां नामकर्म विशिष्यते ॥

यहाँ पर मार्गशीर्ष मास आदि से या चैत्र मास आदि के क्रमको मदनरत्न में कहा है कि-उस महिनेके नाम के पूर्व में संबोधन से ही दे। देवालय, हाथी, घोडा, वृक्ष, वापी, कूप सब वस्तुओं का दुकान में वेचने योग्य, स्त्रियां और पुरुषों का काव्यों और कवियों का, पशु आदियों का, राजा के महल तथा घर पर नामकर्म की विशेषता कही है।

नाक्षत्रमपि नाम कार्यम्। 'अभिवादनीयं च समीक्षेत तन्मातापितरौ विद्यातामोपनयनात्' इत्याश्वलायनोक्तेः।

नक्षत्र से भी नामकरण करे। आश्वलायन ने कहा है कि—(उपनयन में जिस नाम से अभिवादन करे वह व्यावहारिक है) अभिवादनीय को देखता है उसके माता और पिता के उपनयनद्वारा ज्ञान से जानता है।

'कुलदेवतानक्षत्रसम्बद्धं पिता कुर्यात्' इति मदनरत्ने शङ्खोक्तेः ।

कुल से संबन्धित, देवता से सम्बन्धित और नक्षत्र से संबन्धित पिता नामकर्म करे—यह मदनरत्न में शंख ने कहा है ।

तच्च नक्षत्रपादाक्षराद्याक्षरं कुर्यादित्युक्तं परिशिष्टे—तदक्षरादिकं नाम यस्मिन् धिष्ण्ये यदक्षरम् । इति ।

वह नक्षत्र का नाम ऐसा हो जिसमें नक्षत्र के पाद का अक्षर आदि में करे। ऐसा परिशिष्ट में कहा है कि—जिस नक्षत्र में जो अक्षर आदि में हो वही अक्षर नाम के आदि में हो ।

सुदर्शनभाष्ये तु—रोरेमसृज्येचिषु वृद्धिरादौ ठात्पे च वान्त्यश्रवणाश्वयुक्षु । शेषेषु नाम्नोः कपरः स्वरोन्त्यः स्वाप्वोरदीर्घः सविसर्ग इष्टः ॥ इत्युक्तम् ॥ ठात्पे इति प्रौष्ठपदेत्यत्रादौ ठात्परे च वृद्धिः प्रौष्ठपाद इति । अन्त्यमपभरणीशब्दः श्रुतावुक्तः । तत्र श्रवणादौ च वादिवृद्धिः । अपभरण आपभरण इत्यादि ।

सुदर्शनभाष्य में कहा है कि—रोहिणी, रेवती, मघा, मृगशिरा, पुष्य तथा चित्रा में उत्पन्न का नाम ऐसा रखे जिनके आदि में वृद्धि हो ।

ठ से परे उत्तराभाद्र में वृद्धि हो और श्रवण में आदि वृद्धि करे। शेषनक्षत्रों में क परे हो तथा अन्तिम स्वर हो वह इष्ट है । स्वाती, पुनर्वसु और रेवती इनमें ह्रस्व हो ।

मदनरत्ने वसिष्ठः—जन्माहे द्वादशाहे वा दशाहे वा विशेषतः । उत्तरारेवतीहस्तमूलपुष्याः सवारुणाः ॥ श्रवणादितिमैत्रं च स्वाती मृगशिरस्तथा । प्राजापत्यं धनिष्ठा च प्रशस्ता नामकर्मणि ॥

मदनरत्न में वसिष्ठ ने कहा है कि—जन्मदिन से बारहें दिन विशेषकर दशमें दिन (अर्थात्—ग्यारहवें दिन) उत्तरा, रेवती, हस्त, मूल, पुष्य, शतभिषा, श्रवण, पुनर्वसु, अनुराधा, स्वाती, मृगशिरा, रोहिणी और धनिष्ठा ये नक्षत्र [1]नाम कर्म में उत्तम है।

(दोलारोहकथनम्)

अथ दोलारोहः । पारिजाते बृहस्पतिः—दोलारोहस्तु कर्तव्यो दशमे द्वादशेऽपि वा ।
षोडशे दिवसे चापि द्वाविंशे दिवसेऽपि वा ॥

अब दोलारोहण कहते हैं । पारिजात में बृहस्पति ने कहा है कि—दशवें, बारहे, सोलवें या बाइसवें दिन 'दोलारोहण' अर्थात्—पालने पर बैठा देना चाहिये ।

ज्योतिर्निबन्धे—करत्रये वैष्णवरेवतीष्वदितिद्वये वाऽऽश्विनकध्रुवेषु ।
कुर्याच्छिशूनां नृपतेश्च तद्वदान्दोलनं वै सुखिनो भवन्ति ॥

ज्योतिर्निबन्ध में कहा है कि—हस्त, चित्रा, स्वाती, श्रवण, रेवती, पुनर्वसु, पुष्य या अश्विनी, ध्रुवगण के नक्षत्र, तीनों उत्तरा तथा रोहिणी, इसमें बालकों का या राजा का, हिंडोला में बैठाना शुभ होता है ।

तत्रैव—आन्दोलाशयने पुंसो द्वादशो दिवसः शुभः । त्रयोदशस्तु कन्याया न नक्षत्रविचारणा । अन्यस्मिन् दिवसे चेत्स्यात्तिर्यगास्ये प्रशस्यते ॥

वहीं पर कहा है कि—आन्दोलन में शयन (अर्थात् झुलाने के समय) में बालकों को बारहवाँ दिन शुभप्रद है और तेरहवाँ दिन कन्या के लिये शुभ है। इस कार्य में नक्षत्र का विचार नहीं है ।

१—बृहस्पतिः—देशकालोपघाताद्यैः कालातिक्रमणं यदि । अनस्तगे इज्यसिते तत्कार्यं चोत्तरायणे ॥ बृहस्पतिः—पूर्वाह्णः श्रेष्ठ इत्युक्तो मध्याह्नो मध्यमः स्मृतः । अपराह्णं च रात्रिं च वर्जयेन्नामकर्मणि ॥

(दुग्धपानम्)

अथ दुग्धपानम् । नृसिंहः—एकत्रिंशद्दिने चैव पयः शंखेन पाययेत् ।
अन्नप्राशननक्षत्रे दिवसोदयरात्रिषु ॥

अब दुग्धपानकर्म कहते हैं। नृसिंह ने कहा है कि—इकत्तीसवें दिन शंख से दूध पिलाना चाहिये। अन्नप्राशननक्षत्र में, दिन में या उदय की रात्रि में पिलावे।

(कर्णवेधकथनम्)

अथ कर्णवेधः। मदनरत्ने वसिष्ठश्रीधरौ—मासे षष्ठे सप्तमे वाऽष्टमे वा वेध्यौ कर्णौ द्वादशे षोडशेऽह्नि । मध्येनाह्नः पूर्वभागे न रात्रौ नक्षत्रे द्वे द्वे तिथी वर्जयित्वा ॥

अब कर्णवेध कहते हैं। मदनरत्न में वसिष्ठ और श्रीधर ने कहा है कि—छठे, सातवें, आठवें महिने में और बारहे या सोलहवें दिन कानों को वेधन करे। मध्यदिन के पूर्व भाग में तथा रात्रि में न करे। जिस दिन दो नक्षत्र और दो तिथियाँ हो उस दिन त्याग दे। अर्थात्—जिस दिन दो नक्षत्र हो या दो तिथि हो उस दिन में कर्णवेध नहीं करना चाहिये।

अत्र जन्ममासो वर्ज्यः ज्योतिर्निबन्धे गर्गः—मासे षष्ठे सप्तमे वाऽप्यष्टमे मासि वत्सरे ।
कर्णवेधं प्रशंसन्ति पुष्ट्यायुःश्रीविवृद्धये ॥

ज्योतिर्निबन्ध में कहा है कि—छठे, सातवे तथा आठवें महिने में या संवत्सर में पुष्टि, आयु और श्री की वृद्धि के लिए कर्णवेध की प्रशंसा की है।

मदनरत्ने—प्रथमे सप्तमे मासि अष्टमे दशमेऽथ वा ।
द्वादशे च तथा कुर्यात्कर्णवेधं शुभावहम् ॥

मदनरत्न में कहा है कि-पहले, सातवें, आठवें, दशवें और बारहवें महिने में कर्णवेध शुभप्रद होता है।

हेमाद्रौ व्यासः—कार्तिके पौषमासे वा चैत्रे वा फाल्गुनेऽपि वा ।
कर्णवेधं प्रशंसन्ति शुक्लपक्षे शुभे दिने ॥

हेमाद्रि में व्यास ने कहा है कि—कार्तिक, पौष, चैत्र या फाल्गुन महिने के शुक्लपक्ष तथा शुभदिन में कर्णवेध की प्रशंसा करते हैं। अर्थात्—कर्णवेध करना उत्तम है।

श्रीधरः—हरिहयकरचित्रासौम्यपौष्णोत्तरार्यादितिवसुषु घटालीसिंहवर्ज्ये सुलग्ने ।
शशिगुरुबुधकाव्यानां दिने पर्वरिक्तरहिततिथिषु शुद्धे नैधने कर्णवेधः ॥

श्रीधर ने कहा है कि—श्रवण, अश्विनी, हस्त, चित्रा, मृगशिरा, रेवती, तीनों उत्तरा, पुनर्वसु और धनिष्ठा इन नक्षत्रों में घटकुंभ, वृश्चिक और सिंह लग्न को त्यागकर शेष शुभ लग्नों में, सोमवार, गुरुवार, बुधवार तथा शुक्रवार को, पर्वों में, रिक्तातिथि इनसे रहित तिथियों से और अष्टमलग्न शुद्ध हो तो कर्णवेधसंस्कार करे।

मदनरत्ने बृहस्पतिः—द्वितीया दशमी षष्ठी सप्तमी च त्रयोदशी ।
द्वादशी पञ्चमी शस्ता तृतीया कर्णवेधने ॥

मदनरत्न में बृहस्पति ने कहा है कि—द्वितीया, दशमी, षष्ठी, सप्तमी, त्रयोदशी, द्वादशी, पञ्चमी तथा तृतीया में कर्णवेध में उत्तम है।

सौवर्णी राजपुत्रस्य राजती विप्रवैश्ययोः । शूद्रस्य चायसी सूची मध्यमाऽष्टाङ्गुलात्मिका ॥

राजपुत्र के लिए सुवर्ण की, चांदीकी ब्राह्मण और वैश्य के लिये, शूद्र के लिए लोहे की मध्यमा अंगुली से आठ अंगुल की सूई से कर्णवेध करे।

हेमाद्रौ देवलः—कर्णरन्ध्रे रवेश्छाया न विशेदग्रजन्मनः ।
तं दृष्ट्वा विलयं यान्ति पुण्यौघाश्च पुरातनाः ॥

हेमाद्रि में देवल ने कहा है कि—अग्रजन्मा ब्राह्मण के कान के रन्ध्र (छिद्र) में सूर्यछाया का प्रवेश न करे। क्योंकि—उसको देखकर पुरातन पुण्यों का समूह विलय को प्राप्त हो जाता है।

शङ्खः—अङ्गुष्ठमात्रसुषिरौ कर्णौ न भवतो यदि।
तस्मै श्राद्धं न दातव्यं दत्तं चेदासुरं भवेत्॥

शंख ने कहा है कि—कानों में अंगूठे मात्र का छिद्र न हो यदि हो जाय तो उनके लिये श्राद्ध नहीं देना चाहिये। देने पर तो वह श्राद्ध आसुरी हो जाता है।

(अथ ताम्बूलभक्षणकथनम्)

अथ ताम्बूलभक्षणम्। चण्डेश्वरः—सार्द्धमासद्वये दद्यात्ताम्बूलं प्रथमं शिशोः।
कर्पूरादिकसंमिश्रं विलासाथ हिताय च॥

अथ ताम्बूलभक्षण कहते हैं। चण्डेश्वर ने कहा है कि—अढाई महिने में बालकों को पहले कपूर आदि से संमिश्रण कर पान को विलास और कल्याण के लिये दे।

मूलार्कचित्रकरतिष्यहरीन्द्रभेषु पौष्णे तथा मृगशिरोदितिवासवेषु।
अर्केन्दुजीवभृगुबोधनवासरेषु ताम्बूलभक्षणविधिर्मुनिभिः प्रदिष्टः॥

मूल, हस्त, चित्रा, पुष्य, श्रवण, ज्येष्ठा, रेवती, मृगशिरा, पुनर्वसु—इन नक्षत्रोंमें, रविवार, सोमवार, गुरुवार, शुक्रवार और बुधवार को तांबूल की भक्षणविधि मुनियों ने कही है।

(अथ निष्क्रमणविचारः)

अथ निष्क्रमणम्। ज्योतिर्निबन्धे—तृतीये वा चतुर्थे वा मासि निष्क्रमणं भवेत्।

अथ निष्क्रमण कहते हैं। ज्योतिर्निबन्ध में कहा है कि—तीसरे या चौथेमास में निष्क्रमण करे।

यमः—ततस्तृतीये कर्तव्यं मासि सूर्यस्य दर्शनम्।
चतुर्थे मासि कर्तव्यं शिशोश्चन्द्रस्य दर्शनम्॥

यमने कहा है कि—तदनन्तर बालकको तीसरे महिने में सूर्यका दर्शन कराना चाहिये और चौथेमास में बालक को चन्द्रमा का दर्शन कराना चाहिये।

अत्र—सूर्येन्द्वोः ये कर्मणी ये च तयोः श्राद्धं न विद्यते। इति छन्दोगपरिशिष्टात्। छन्दोगानां निष्क्रमणे वृद्धिश्राद्धं नास्ति इति कल्पतरुः।

यहाँ पर सूर्य तथा चन्द्रमा को पूजा और उन दोनों का श्राद्ध नहीं है। इस छन्दोगपरिशिष्ट से छन्दोगों को निष्क्रमण तथा श्राद्ध नहीं है—यह कल्पतरु में कहा है।

व्यासः—मैत्रे पुष्यपुनर्वसुप्रथमभे पौष्णेऽनुकूले विधौ हस्ते चैव सुरेश्वरे च मृगभे तारासु शस्तासु च। कुर्यान्निष्क्रमणं शिशोर्बुधगुरुशुक्रे विरिक्ते तिथौ कन्याकुम्भतुलामृगारिभवने सौम्यग्रहालोकिते॥

व्यासने कहा है कि—अनुराधा, पुष्य, पुनर्वसु, अश्विनी, रेवती, हस्त, ज्येष्ठा, मृगशिरा इनमें तारा और चन्द्रमा अनुकूल हो तो सोमवार, बुधवार, गुरुवार तथा शुक्रवार—इन दिनों में रिक्तारहित तिथियों में कन्या, कुम्भ, तुला, सिंह इन लग्नों में शुभग्रहों की हानि होने से निष्क्रमण प्रशस्त होता है।

मदनरत्ने—अन्नप्राशनकाले वा कुर्यान्निष्क्रमणक्रियाम्।

मदनरत्न में कहा है कि—या अन्नप्राशन के समय में निष्क्रमण की क्रिया को करना चाहिये।

विष्णुधर्मे—दिगीशानां दिने तत्र तथा चन्द्रार्कयोर्द्विजः।
पूजनं वासुदेवस्य गगनस्य च कारयेत्॥

विष्णुधर्म में कहा है—ब्राह्मण दिशाओं के स्वामियों के दिन में और वहाँ पर चन्द्र या सूर्यवार को वासुदेव तथा आकाश का पूजन करावे।

बहिर्निष्कासयेद् गेहात् शङ्खपुण्याहनिस्वनैः। चन्द्रार्कयोर्दिगाशानां दिशां च गगनस्य च॥ निक्षेपार्थमिदं दद्मि ते मे रक्षन्तु सर्वदा। अप्रमत्तं प्रमत्तं वा दिवारात्रमथापि वा॥ रक्षन्तु सततं सर्वे देवाः शक्रपुरोगमाः॥

पुण्याहदिन में शंख के शब्दों से घर से बाहर बालक को निकाल कर कहे कि—चन्द्रमा, सूर्य, दिगीशों के स्वामी, दिशा तथा आकाश को निक्षेप (धरोहर) के लिये इसको देता हूँ। ये मेरी सर्वदा रक्षा करें। अप्रमत्त हो या प्रमत्त हो, दिन हो या रात हो इन्द्र आदि सब देवता निरन्तर रक्षा करें।

माधवीये मार्कण्डेयः—अग्रतोऽथ प्रविन्यस्य शिल्पभाण्डानि सर्वशः।
शस्त्राणि चैव वस्त्राणि ततः पश्येत्तु लक्षणम्॥

माधवीय में मार्कण्डेय का वचन है कि—इसके बाद शिल्प और भाण्डों (वर्तन) को, सब शस्त्र तथा वस्त्रों को बालक के आगे रख कर लक्षण को देखे।

प्रथमं यत्स्पृशेद् बालस्ततो भाण्डं स्वयं तदा। जीविका तस्य बालस्य तेनैव तु भविष्यति॥ इति।

उन खण्डों से स्वयं बालक पहले जो स्पर्श करे उसी से ही उस बालक की जीविका होगी।

(अथोपवेशनकथनम्)

अथोपवेशनम्। प्रयोगपारिजाते पाद्मे विष्णुधर्मे च—पञ्चमे च तथा मासि भूमौ तमुपवेशयेत्। तत्र सर्वे ग्रहाः शस्ता भौमोऽप्यत्र विशेषतः॥

अब उपवेशन कहते हैं। प्रयोगपारिजात में पद्मपुराण और विष्णुधर्म का वचन है कि—पांचवें महिने में उस बालक को भूमि में उपवेशन करावे। उसमें सब ग्रह उत्तम हों और विशेषकर यहाँ पर मंगल भी श्रेष्ठ हो।

उत्तरात्रितयं सौम्यं पुष्यर्क्षं शक्रदैवतम्। प्राजापत्यं च हस्तश्च शस्तमाश्विनमित्रभम्॥

तीनो उत्तरा, मृगशिरा, पुष्य, ज्येष्ठा, श्रवण, हस्त, अश्विनी और अनुराधा ये नक्षत्र बालक को भूमि में बैठाने में उत्तम हैं।

वाराहं पूजयेद्देवं पृथिवीं च तथा द्विजः। रक्षैनं वसुधे देवि सदा सर्वगतं शुभे॥

इसप्रकार ब्राह्मण वराह और पृथ्वी की पूजा करे। हे वसुधे, हे देवि, हे शुभे, सब जगह प्राप्त इस बालक की रक्षा करो।

आयुःप्रमाणं सकलं निक्षिपस्व हरिप्रिये। अचिरादायुषस्त्वस्य ये केचित्परिपन्थिनः॥ जीविता-रोग्यवित्तेषु निर्दहस्वाचिरेण तान्।

हे हरिप्रिये, इसकी संपूर्ण आयुप्रमाण की रक्षा करो। इस चिरायु के जो कोई शत्रु हैं या जो जीवन, आरोग्यता और धनके शत्रु हैं उनको शीघ्र ही दहन करे।

वरेण्याशेषभूतानां माता त्वमसि कामधुक्॥ अजरा चाप्रमेया च सर्वभूतनमस्कृता। चरा-चराणां भूतानां प्रतिष्ठानाव्यया ह्यसि॥ कुमारं पाहि मातस्त्वं ब्रह्मा तदनु मन्यताम्॥

श्रेष्ठ अशेष प्राणियों की कामधेनुरूप तुम माता हो। अजर तथा अप्रमेय (जिसका प्रमाण न हों या मान न हो) सब प्राणियों की स्तुति हो। चर और अचर प्राणियों की प्रतिष्ठा (स्थिति) कभी न नाश होनेवाली हो। हे मातः, कुमार की तुम रक्षा करो तथा ब्रह्मा भी इस बात की अनुमति दे।

(अथान्नप्राशनविचारः)

अथान्नप्राशनम्। पारिजाते नारदः—जन्मतो मासि षष्ठे स्यात्सौरेणान्नाशनं परम्।
संवत्सरे वा सम्पूर्णे केचिदिच्छन्ति पण्डिताः॥

अब अन्नप्राशन कहते हैं। पारिजात में नारद ने कहा है कि—सौरमहिने के प्रमाण से जन्मसे

छठे महिने में अन्नप्राशन करे। कोई पण्डित कहते हैं कि—एक साल पूरा हो जाने पर अन्नप्राशनकर्म करने की इच्छा करते हैं।

मदनरत्ने लौगाक्षिः—'षष्ठेऽन्नप्राशनं जातेषु दन्तेषु वा' इति।

मदनरत्न में लौगाक्षि ने कहा है कि—छठे महिने में या दांत निकलने पर अन्नप्राशन करे।

शङ्खः—'संवत्सरेऽन्नप्राशनमर्द्धसंवत्सरे वा' इति।

शंखने कहा कि—एक साल में या आधे साल में (छः महिने में) अन्नप्राशन करे।

ज्योतिर्निबन्धे नारदः—षष्ठे वाप्यष्टमे मासि पुंसां, स्त्रीणां तु पञ्चमे।
सप्तमे मासि वा कार्यं नवान्नप्राशनं शुभम्॥

ज्योतिर्निबन्ध में नारद ने कहा है कि—छठे और आठवें महिने में बालकों का तथा कन्याओं का पाँचवे या सातवें महिने में नवान्नप्राशन शुभ है।

रिक्तां दिनक्षयं नन्दां द्वादशीमष्टमीममाम्। त्यक्त्वाऽन्यतिथयः प्रोक्ताः सितजीवज्ञवासराः॥ चन्द्रवारं प्रशंसन्ति कृष्णे चात्यत्रिकं विना॥

रिक्ता, (चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी) दिनक्षय, (तिथिक्षय) नन्दा (प्रतिपदा, षष्ठी, एकादशी), द्वादशी, अष्टमी और अमावास्या को छोड़कर अन्य तिथियाँ शुभ हैं। एवं शुक्रवार, बृहस्पतिवार, बुधबार तथा सोमवार को उत्तम में प्रशंसा की है और कृष्णपक्ष में होनेवाली अन्तिम तीन तिथियोंको (त्रयोदशी, चतुर्दशी अमावास्या), और छोड़कर शेष शुभ हैं।

श्रीधरः—आदित्यतिष्यवसुसौम्यकरानिलाश्विचित्राजविष्णुवरुणोत्तरपौष्णमित्राः।
बालान्नभोजनविधौ दशमे विशुद्धे छिद्रां विहाय नवमीं तिथयः शुभाः स्युः॥

श्रीधर ने कहा है कि—पुनर्वसु, पुष्य, धनिष्ठा, रोहिणी, श्रवण, शतभिषा, तीनों उत्तरा, रेवती, अनुराधा, लग्नसे दशम शुद्ध हो तब चतुर्थी, षष्ठी,अष्टमी, नवमी, द्वादशी, चतुर्दशी इन तिथियों को छोड़कर शेष तिथियों में बालक का अन्नप्राशन शुभ होता है।

वसिष्ठः—बालान्नभुक्तौ व्रतबन्धने च राजाभिषेके खलु जन्मधिष्ण्यम्।
शुभं त्वनिष्टं सततं विवाहे सीमन्तयात्रादिषु मङ्गलेषु॥

वसिष्ठ ने कहा है कि—निश्चय बालक के अन्नप्राशन में, यज्ञोपवीत में और राज्याभिषेक में जन्म का नक्षत्र शुभ है तथा विवाह, सीमन्त यात्रा आदि संगल कार्यों में निरन्तर अशुभ है।

मार्कण्डेयविष्णुधर्मयोः—ब्रह्माणं शङ्करं विष्णुं चन्द्रार्कौ च दिगीश्वरान्। भुवं दिशश्च सम्पूज्य हुत्वा वह्नौ तथा चरुम्॥ देवतापुरतस्तस्य धात्र्युत्सङ्गतस्य च। अलङ्कृतस्य दातव्यमन्नं पात्रे सकाञ्चनम्॥ मध्वाज्यदधिसंयुक्तं प्राशयेत्पायसं तु वा। इति।

मार्कण्डेय और विष्णुधर्म में कहा है कि—ब्रह्मा, शंकर, विष्णु, चन्द्रमा, सूर्य, दिशाओं के स्वामी, पृथ्वी, दिशाओं की पूजा करके अग्नि में चरुका हवन कर देवताओं के आगे अलंकृत कर उस बालक को माता की गोदीमें बैठाकर सोनेवाले पात्रमें अन्न देना चाहिये। सहत, घृत तथा दधि के सहित प्राशन[1] करावे या खीर का प्राशन करावे।

(अथाब्दपूर्तिकथनम्)

अथाब्दपूर्तिः। व्यवहारनिर्णये—नवाम्बरधरो भूत्वा पूजयेच्च चिरायुषम्।
मार्कण्डेयं नरो भक्त्या पूजयेत्प्रयतस्तथा॥

अब अब्दपूर्ति (वर्षगांठ) कहते हैं—व्यवहारनिर्णय में कहा कि—नूतनवस्त्रों को धारण कर चिरायुषों की पूजा करे। मनुष्य भक्तिसे निरन्तर मार्कण्डेय की पूजा करे।

१—प्राशनमन्त्रः—अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः। प्र प्रदातारं तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे॥ (यजु० अ० ११ म० ८३)।

ततो दीर्घायुषं व्यासं रामं द्रौणिं कृपं बलिम्। प्रह्लादं च हनूमन्तं बिभीषणमथार्चयेत् ॥

तदनन्तर दीर्घायुवाले—व्यास, राम, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, बलि, प्रह्लाद, हनुमान तथा बिभीषण को पूजा करे।

स्वनक्षत्रं जन्मतिथिं प्राप्य सम्पूजयेन्नरः। षष्ठीं च दधिभक्तेन वर्षे वर्षे पुनः पुनः ॥ तिथितत्त्वे एतन्नामभिस्तिलहोमोऽप्युक्तः।

मनुष्य अपने नक्षत्र, और जन्मतिथि को प्राप्तकर पूजन करे। दधि तथा चावल से प्रतिवर्ष में वारंवार षष्ठी की पूजा करे। तिथितत्त्वमें इन नामों से तिल से होम भी कहा है।

आदित्यपुराणे—सर्वैश्च जन्मदिवसे स्नातैर्मङ्गलवारिभिः।
गुरुदेवाग्निविप्राश्च पूजनीयाः प्रयत्नतः ॥

आदित्यपुराण में कहा है कि—सब लोग अपने जन्मदिनमें मङ्गलजलसे स्नान करें—फिर गुरु, देवता, अग्नि और ब्राह्मणों की प्रयत्न से पूजा करें।

स्वनक्षत्रं च पितरौ तथा देवः प्रजापतिः। प्रतिसंवत्सरं यत्नात् कर्तव्यश्च महोत्सवः ॥

अपने नक्षत्र, माता और पिता तथा प्रजापतिदेवकी पूजा करें। यत्न से प्रतिवर्ष महोत्सव को करना चाहिये।

कृत्यचिन्तामणौ—गुडदुग्धतिलान् दद्याद्धस्ते ग्रन्थौ च बन्धयेत्। गुग्गुलं निम्बसिद्धार्थदूर्वागोरोचनादिकम् ॥ सम्पूज्य भानुविघ्नेशौ महर्षिं प्रार्थयेदिदम्। चिरञ्जीवी यथा त्वं भो भविष्यामि तथा मुने ॥

कृत्यचिन्तामणि में कहा कि—गुड, दूध तथा तिलों को दे और हाथ में ग्रन्थिका बन्धन करे। गुग्गुल, निम्ब, पीलोसरसों, दूर्वा, गोरोचन आदि से सूर्य तथा गणेश की पूजाकर यों महर्षि की प्रार्थना करें कि—हे मुने, जैसे आप चिरजीवी हैं वैसे ही मैं भी हो जाऊँ।

रूपवान् वित्तवांश्चैव श्रिया युक्तश्च सर्वदा। मार्कण्डेय नमस्तेऽस्तु सप्तकल्पान्तजीवन ॥

रूप, धन, लक्ष्मी से सर्वदा युक्त रहें। हेमार्कण्डेय, हे सप्तकल्पान्तजीवन, आप को नमस्कार है।

आयुरारोग्यसिद्ध्यर्थं प्रसीद भगवन् मुने। चिरञ्जीवी यथा त्वं तु मुनीनां प्रवर द्विज ॥ कुरुष्व मुनिशार्दूल तथा मां चिरजीविनम्। मार्कण्डेय महाभाग सप्तकल्पान्तजीवन ॥ (आयुरारोग्यसिद्ध्यर्थमस्माकं वरदो भव।) सतिलं गुडसंमिश्रमञ्जल्यर्द्धमितं पयः। मार्कण्डेयाद्वरं लब्ध्वा पिबाम्यायुर्विवृद्धये ॥ इति पयः पिबेत्।

हे भगवन्, हे मुने, आयु तथा आरोग्यता की सिद्धि के लिये प्रसन्न हों। मुनियों में श्रेष्ठ द्विज, जैसे आप चिरञ्जीवी हैं वैसे ही मुझको चिरकाल तक जीवनयुक्त हे मुनिशार्दूल, करो। हेमार्कण्डेय, हेमहाभाग, हे सप्तकल्पान्तजीवन, तिल और गुड से मिश्रित आधी अञ्जलिपरिमित दूधको मार्कण्डेयसे वर प्राप्तकर आयुकी वृद्धि के लिए पीता हूँ। इससे दूधको पान करे।

तिथितत्त्वे स्कान्दे—खण्डनं नखकेशानां मैथुनाध्वागमौ तथा।
आमिषं कलहं हिंसां वर्षवृद्धौ विवर्जयेत् ॥

तिथितत्त्व में स्कन्दपुराण का वचन है कि—नख तथा केशों का काटना, मैथुन करना, मार्ग में चलना, मांस खाना, कलह और हिंसा करना ये वर्ष वृद्धि (वर्ष गांठवाले दिन) में न करे।

तत्रैव दीपिकायाम्—कृतान्तकुजयोर्वारे यस्य जन्मतिथिर्भवेत्। अनृक्षयोगसंप्राप्तौ विघ्नस्तस्य पदे पदे ॥ (कृतान्तः=शनिः।) तस्य सर्वौषधिस्नानं गुरुदेवाग्निपूजनम् ॥

वहीं पर दीपिका में कहा है कि—शनिवार और मंगलवार को जिसकी जन्मतिथि हो तथा उत्तम-

नक्षत्र एवं योग की उत्तम प्राप्ति न हो उसको पद पदपर विघ्न होता है। कृतान्त माने=शनि। उसके लिए सर्वौषधि[1] से स्नान करे गुरु, देवता तथा अग्निका पूजन करे।

वृद्धमनुः—मृते जन्मनि संक्रान्तौ श्राद्धे जन्मदिने तथा।

अस्पृश्यस्पर्शने चैव न स्नायादुष्णवारिणा॥ अत्र जन्मतिथिरौदयिकी ग्राह्या।

वृद्धमनुने कहा है कि—मृत्युमें, जन्मदिनमें, संक्रान्ति में, श्राद्धमें, जन्मदिन में और अस्पृश्य के स्पर्श में गरमजल से स्नान नहीं ही करना चाहिये। यहाँपर जन्मतिथिमें उदयकाल की तिथि ग्रहण करना चाहिये।

युगाद्या वर्षवृद्धिश्च सप्तमी पार्वतीप्रिया। रवेरुदयमीक्षन्ते न तत्र तिथियुग्मता। इति कृत्यतत्त्वार्णवे वचनात्। विशेषो मत्कृतशूद्रधर्मे ज्ञेयः।

कृत्यतत्त्वार्णव में वचन है कि—युगादि और वर्ष की वृद्धि तथा पार्वती की प्रिय सप्तमीतिथि ये सूर्योदयको ग्रहण करे। इनमें दो तिथियों की युग्मता नहीं माननी चाहिये। विशेष तो मेरे बनाये हुए शूद्रधर्म में जानना चाहिये।

(अथ कटिसूत्रकथनम्)

अथ कटिसूत्रम्। प्रयोगपारिजाते ब्राह्मे—प्रतिसंवत्सरान्तर्क्षे वक्ष्ये नृणां विधिं परम्। दत्त्वा गोभूहिरण्यादि तथा स्वर्णादिनिर्मितम्॥ बध्नीयात्कटिसूत्रं च वासः संगृह्य नूतनम्। दूर्वाऽङ्कुरैरथाज्येन चरुणा च पिनाकिनम्॥ आयुष्यहोमं कृत्वा च तर्पयेत्पितृदेवताः॥

अब कटिसूत्रको [2]कहते हैं। प्रयोगपारिजात में ब्रह्मपुराण का मत है कि—हरसाल के अन्त नक्षत्रमें मनुष्यों की उत्तम विधिको कहता हूँ। गो, भूमि, सुवर्ण आदिको देकर सोने आदि द्वारा निर्मित कटिसूत्रको बाँधे। नयावस्त्र धारण कर दूर्वांकुरों से, घृत से या चरुसे पिनाकी (शंकर) के लिए आयु की वृद्धि के लिये हवन कर पितृदेवताओं का तर्पण करे। अर्थात्—पितृदेवोंको तृप्त करे।

(अथ चौलविचारः)

अथ चौलम्। प्रयोगपारिजाते षड्गुरुशिष्यः—जाताधिकाराज्जन्मादितृतीयेऽब्दे तु चौलकम्। आद्येऽब्दे कुर्वते केचित्पञ्चमेऽब्दे द्वितीयके॥ उपनीत्या सहैवेति विकल्पाः कुलधर्मतः।

अब चौलकर्म कहते हैं। प्रयोगपारिजात में षड्गुरुशिष्य का वचन है कि—उत्पन्नहोने के अधिकार से जन्म से तीसरे साल मुण्डन होता है। कोई पहले साल, पाँचवे साल या दूसरे साल चूडाकरण मानते हैं या उपनयन के साथ करे। ये विकल्प कुलधर्म से (पहला, दूसरा, तीसरा, पाँचवा और सातवा वर्ष कुलधर्म से इसका काल है। ये सब समय जन्म से मुख्य होता है। गर्भ से गौण माना जाता है। इस-कार्य में शुक्लपक्ष मुख्य है और कृष्णपक्ष का अन्तिम त्रिभागके बिना गौण है तथा गुरु, शुक्र, बाल-वार्धक्य अस्त होनेपर और मलमास वर्जित है।) विकल्प है।

बृहस्पतिः—तृतीयेऽब्दे शिशोर्गर्भाज्जन्मतो वा विशेषतः।

पञ्चमे सप्तमे वापि स्त्रियाः पुंसोऽपि वा समम्॥

बृहस्पति ने कहा है कि—तीसरे साल या विशेषकर जन्मसे, पाँच या सातवें साल बराबर कन्या या बालक का चूडाकरण करे।

तत्रैव नारदः—जन्मतस्तु तृतीयेऽब्दे श्रेष्ठमिच्छन्ति पण्डिताः। पञ्चमे सप्तमे वापि जन्मतो मध्यमं भवेत्॥ अधमं गर्भतः स्यात्तु नवमैकादशेऽपि वा॥ इति।

१—छन्दोगपरिशिष्टे—कुष्टं मांसी हरिद्रे द्वे मुरा शैलेयचन्दने। वचाचम्पकमुस्ताश्च सर्वौषध्यो दश स्मृताः॥ अपरार्के—वला च शंखपुष्पी च कुष्टं चैव वचा तथा। नागकेशरचूर्णं च सर्वौषधिगणो मतः॥ महार्णवे—मुरा मांसी वचा कुष्टं शैलेयं रजनीद्वयम्। सटी चम्पकमुस्ता च सर्वौषधिगणो मतः॥

२—खट्वारोहण, दुग्धपान, कर्णवेध, निष्क्रमण, जीविकापरीक्षा, उपवेशन, वराह आदिपूजा, अन्नप्राशन, अब्द-पूर्तिकार्य और कटिसूत्रादिकी विस्तृत प्रक्रिया मयूख, कौस्तुभ और प्रयोगपारिजात आदि में है। वहाँ पर देखें।

वहींपर नारदने कहा है कि—पण्डितों ने जन्म से तीसरे साल उत्तम कहा है। जन्मसे पाँचवे या सातवें साल मध्यम होता है। गर्भ से तो नवें या ग्यारहवें साल अधम होता है।

पारिजाते बृहस्पतिः---उत्तरायणगे सूर्ये विशेषात्सौम्यगोलके। शुक्लपक्षे शुभं प्रोक्तं कृष्णपक्षे शुभेतरत्॥ अशुभोन्त्यत्रिभागः स्यात्कृष्णपक्षे त्रिधाकृते॥

पारिजातमें बृहस्पति ने कहा है कि—उत्तरायण के सूर्य में विशेषकर सौम्यगोल का हो तो शुक्लपक्ष में शुभ कहा है तथा कृष्णपक्ष में शुभ से इतर अर्थात् अशुभ होता है। कृष्णपक्ष का तीन भाग करने पर अन्त्यका तीसरा भाग अशुभ होता है।

तत्रैव वसिष्ठः---द्वित्रिपञ्चमसप्तम्यामेकादश्यां तथैव च।
दशम्यां च त्रयोदश्यां कार्यं क्षौरं विजानता॥

वहींपर वसिष्ठ ने कहा है कि—द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, एकादशी, दशमी और त्रयोदशी में जानकार व्यक्ति क्षौर करे।

नृसिंहीये---षष्ठ्यष्टमी चतुर्थी च नवमी च चतुर्दशी।
द्वादशी दर्शपूर्णे द्वे प्रतिपच्चैव निन्दिताः॥

नृसिंहीय में कहा है कि—षष्ठी, अष्टमी, चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी, द्वादशी, अमावास्या, पूर्णिमा और प्रतिपदा ये निन्दित हैं।

वसिष्ठः---रवेरङ्गारकस्यैव सूर्यपुत्रस्य चैव हि।
निन्दिता दिवसा क्षौरे शेषाः कार्यकराः शुभाः॥

वसिष्ठ ने कहा है कि—सूर्य, मंगल तथा शनिवार के दिन क्षौरकर्म निन्दित है तथा शेष दिन क्षौर-कार्य में श्रेष्ठ हैं।

ज्योतिर्निबन्धे बृहस्पतिः---पापग्रहाणां वारादौ विप्राणां शुभदं रवेः।
क्षत्रियाणां क्षमासूनौर्विट्शूद्राणां शनौ शुभम्॥

ज्योतिर्निबन्ध में बृहस्पति ने कहा है कि--पाप ग्रहोंके (यहाँ निर्धारण में षष्ठी विभक्ति है) वार के आदिमें ब्राह्मणों को (रविवार में), क्षत्रियों को मंगलवार को, वैश्य और शूद्रोंको शनिवार में शुभ है।

हस्ताश्विविष्णुपौष्णाश्च श्रविष्ठादित्यपुष्यभम्। सौम्यचित्रे नवक्षौरे उत्तमा नव तारकाः॥

हस्त, अश्विनी, श्रवण, रेवती, धनिष्ठा, पुष्य, पुनर्वसु, मृगशिरा तथा चित्रा ये नौ नक्षत्र नूतन क्षौर में शुभ हैं।

त्रीण्युत्तराणि वायव्यं रोहिणीं वारुणं तथा। क्षौरे षण्मध्यमाः प्रोक्ताः शेषा द्वादश गर्हिताः॥

तीनों उत्तरा, स्वाती, रोहिणी तथा शतभिषा ये क्षौरकर्म में छः मध्यम हैं। शेष बारह निन्दित है।

निधने जन्मनक्षत्रे वैनाशे चन्द्रमेऽष्टमे। विपत्करे वधे क्षौरं प्रत्यरे च विवर्जयेत्॥

जन्मनक्षत्र में क्षौर करने पर मृत्यु, चन्द्रमा के अष्टम होने से विनाश, विपत् तीसरा तारा, प्रत्यरि, पांचवा तारा वध ये तीनों तारा क्षौर कर्म में निन्दित हैं।

अथ लग्नशुद्धिरन्ये च योगा ज्योतिर्विद्भ्यो ज्ञेयाः। अन्ये च विशेषाः श्मश्रुकर्मनिर्णये वक्ष्यन्ते।

इसकेबाद लग्नशुद्धि और अन्य योग ज्योतिष के जानकारों से जानना चाहिये और अन्यविशेष बात हम श्मश्रुकर्म के निर्णय में कहेंगे।

एतच्च शिशोर्मातरि गर्भिण्यां न कार्यम्। तदाह ज्योतिर्निबन्धे मदनरत्ने च वृद्धगार्ग्यः—पुत्रचूडाकृतौ माता यदि सा गर्भिणी भवेत्। शस्त्रेण मृत्युमाप्नोति तस्मात् क्षौरं विवर्जयेत्॥

और यह बालक की माता के गर्भिणी होनेपर न करे। इसी बात को ज्योतिर्निबन्ध में तथा मदनरत्न

में वृद्धगार्ग्य ने कहा है कि पुत्र के चूडाकर्म करने के समय पर यदि माता(पुत्रकी माता सपत्न माता गर्भवती हो तो दोष नहीं होता है। (भिन्नभार्यासुतस्येह न दोषश्चौलकर्मणि।) गर्भिणी हो तो बालक की शस्त्र से मृत्यु होती है। इसलिए चौरकर्म न करे।

अस्यापवादमाह तत्रैव नारदः—सूनोर्मातरि गर्भिण्यां चूडाकर्म न कारयेत्। पञ्चाब्दात्प्रागथोर्ध्वं तु गर्भिण्यामपि कारयेत्॥ यदि गर्भविपत्तिः स्याच्छिशोर्वा मरणं यदि। सहोपनीत्या कुर्याच्चेत्तदा दोषो न विद्यते॥

वहींपर इसका अपवाद नारदने कहा है कि—बालक की माता के गर्भवती होनेपर पाँच साल के पहले चूडाकर्म न करावे और पाँचवर्ष के ऊपर गर्भिणी हो तो चूडाकर्म करालेवे। यदि गर्भ में विपत्ति हो जाय या बालक का मरण हो तो उपनयन के साथ चूडाकर्मसंस्कार को करने से दोष नहीं होता है।

बृहस्पतिः—गर्भिण्यां मातरि शिशोः चौरकर्म न कारयेत्। व्रताभिषेकेऽप्येवं स्यात् कालो वेदव्रतेष्वपि॥ अभिषेकः=समावर्तनम्।

बृहस्पति ने कहा है कि—बालक की माता के गर्भवती होने पर चौरकर्म नहीं कराना चाहिये। व्रत के अभिषेक में (अर्थात्—स्नान-समावर्तन में,) और वेदव्रतों में भी चौर न करावे।

गर्भिण्यामपि पञ्चमासपर्यन्तं न दोषः 'इत्युक्तं मुहूर्तदीपिकायां गार्ग्येण—पञ्चममासादूर्ध्वं मातुर्गर्भस्य जायते मृत्युः। इति।

गर्भिणी होनेपर भी पाँच महिने तक दोष नहीं हैं—यह मुहूर्तदीपिका में गर्गने कहा है कि—पाँच मास के ऊपर माता के गर्भ की मृत्यु हो जाती है।

मदनरत्ने बृहस्पतिः—पुत्रचूडाकृतौ माता गर्भिणी यदि सा भवेत्।
विपद्यते गुरुस्तत्र दम्पती शिशुरब्दतः॥

मदनरत्न में बृहस्पति ने कहा है कि—पुत्र के चूडाकर्म करने के समय पर यदि माता गर्भिणी हो जाय तो गुरु, पिता, माता तथा बालक एक साल में मर जाते हैं।

गर्भे मातुः कुमारस्य न कुर्याच्चौलकर्म तु। पञ्चमासादधः कुर्यादत ऊर्ध्वं न कारयेत्॥

माताके गर्भ रहनेपर पाँच महिने पहले कुमार का चौलकर्म करे उसके बाद न करे।

गर्गः—ज्वरस्योत्पादनं यस्य लग्नं तस्य न कारयेत्। दोषनिर्गमनात्पश्चात्स्वस्थो धर्मं समाचरेत्॥ लग्नमिति मङ्गलोपलक्षणम्।

गर्ग ने कहा है कि—जिसको ज्वर का उत्पादन (अर्थात् बुखार आ जाय) हो जाय उसका लग्न (मङ्गलकार्य) न करावे। दोषके निकल जाने बाद पीछे स्वस्थ होने पर धर्म का आचरण करे। लग्न मङ्गल का उपलक्षण है।

ज्योतिर्गर्गः—विवाहोत्सवयज्ञेषु माता यदि रजस्वला।
तदा स मृत्युमाप्नोति पञ्चमं दिवसं विना॥

ज्योतिर्गर्गने कहा है कि—यदि माता विवाह, उत्सव और यज्ञ में रजस्वला हो जाय तो पाँचवें दिन के बिना वह मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। अर्थात्—चारदिन के भीतर रजस्वला होनेपर विवाह, उत्सव और यज्ञ को न प्रारंभ करे।

वसिष्ठः—यस्य माङ्गलिकं कार्यं तस्य माता रजस्वला। अर्थं तदेव॥

वसिष्ठ ने कहा है कि—जिस (जिस लड़के और लड़की की) का मांगलिक कार्य हो उसकी माता रजस्वला हो तो तब पांचवें दिन के बिना वह मृत्यु को प्राप्त होता है।

तत्रैव बृहस्पतिः—प्राप्तमभ्युदयश्राद्धं पुत्रसंस्कारकर्मणि। पत्नी रजस्वला चेत्स्यान्न कुर्यात्तत्पिता तदा॥ पितेति कर्तृमात्रोपलक्षणम्।

वहींपर बृहस्पतिने कहा है कि—पुत्रके संस्कारकर्म में आभ्युदयिकश्राद्ध प्राप्त होनेपर पत्नी (अर्थात्—पुत्रकी माता) रजस्वला हो जाय तो तब उसका पिता उस श्राद्ध को न करे। पिता शब्दसे कर्ता मात्र का उपलक्षण है।

सङ्कटे तु वाक्यसारे उक्तम्—अलाभे सुमुहूर्तस्य रजोदोषे ह्युपस्थिते।
श्रियं सम्पूज्य विधिवत्ततो मङ्गलमाचरेत् ॥

संकट (अन्य मुहूर्त के अभाव में नान्दीश्राद्ध के बाद चौलप्रयोग को असमाप्तिके पूर्व) में तो वाक्यसार (चतुर्थदिन में भी) में कहा है कि—अच्छे मुहूर्त के अलाभ में मासिकधर्म हो जाय तो विधिवत् लक्ष्मी का पूजनकर मङ्गलकार्य को करे।

एतच्च मण्डनोत्तरं न कार्यम्। न मण्डनाच्चापि हि मुण्डनं च गोत्रैकतायां यदि नाब्दभेदः। इति मदनरत्ने वसिष्ठोक्तेः।

इसको मण्डन (विवाह) के बाद नहीं करे। क्योंकि मदनरत्न में वसिष्ठ ने कहा है कि—एकगोत्र में वर्ष के भेद न होनेपर अर्थात् एकसाल में मण्डन (विवाह) के बाद मुण्डन न करे। अर्थात्—अब्दभेद में तो दोष नहीं होता है।

तत्रैव कात्यायनः—कुले ऋतुत्रयादर्वाङ् मण्डनान्न तु मुण्डनम्।
प्रवेशान्निर्गमो नेष्टो न कुर्यान्मङ्गलत्रयम् ॥

वहींपर कात्यायनने कहा है कि—कुल (तीनपीढी) में तीन ऋतुके पहले मण्डन से मुण्डन नहीं होता है प्रवेश के बाद निर्गम (निकलना) और मङ्गलत्रय न करे।

तथा वृद्धमनुः—एकमातृजयोरेकवत्सरे पुरुषस्त्रियोः।
न समानक्रियां कुर्यान्मातृभेदे विधीयते ॥

और वृद्धमनुने कहा है कि—एक माता से उत्पन्न हुए लड़के और लड़की का एकसालमें समान क्रिया न करे। किन्तु माताके भेदसे (अर्थात्—अलग अलग मां हो तो) करे।

आशौचे तु सङ्ग्रहे—सङ्कटे समनुप्राप्ते सूतके समुपागते। कूष्माण्डीभिर्घृतं हुत्वा गां च दद्यात्पयस्विनीम् ॥ चूडोपनयनोद्वाहप्रतिष्ठादिकमाचरेत्। इति।

आशौच में तो संग्रह ने कहा है कि—आपत्ति के समय तथा सूतक (जननाशौच या मरणाशौच) के आजाने पर [1]कूष्माण्डसंज्ञक मन्त्रों से हवनकर दूधवाली गौ का दान करे। तदनन्तर चूडाकर्म, उपनयन, विवाह, तथा देवताओं की प्रतिष्ठा आदि को करे।

ज्योतिर्निबन्धे—षष्ठेऽब्दे षोडशे वर्षे विवाहाब्दे तथैव च। अन्तर्वत्न्यां च जायायां नेष्यते मुण्डनं क्वचित् ॥ अन्योऽपि विशेषो विवाहप्रकरणे वक्ष्यते।

ज्योतिर्निबन्ध में कहा है कि—छठे वर्षमें, सोलहवे वर्षमें या विवाह के साल में स्त्रीके गर्भिणी होनेपर मुण्डनसंस्कार न करे। अन्य विशेष तो विवाहप्रकरण में कहेंगे।

दीपिकायां—न चूडा जन्मभाग्नेय दारुणेषु शनौ कुजे।
प्रतिपद्भद्ररिक्तासु विद्यारम्भस्तु पञ्चमे ॥

दीपिका में कहा कि—जन्मनक्षत्र, कृत्तिका और दारुणसंज्ञकनक्षत्रों में (मूल, ज्येष्ठा, आश्लेषा और आर्द्रा), शनिवार, मङ्गलवार, प्रतिपदा, भद्रा तथा रिक्ता में चूडाकर्म न करे। विद्या का प्रारंभ तो पांचवें साल में करे।

१—यद्देवा देवहेडनं देवासश्च कृमा वयम् ॥ अग्निर्मातस्मादेनसो विश्वान् मुञ्चत्वꣳ हसः ॥ यदिदिवा यदिनक्तमेनाꣳसि चकृमा वयम् ॥ वायुर्मा तस्मादेनसो विश्वान् मुञ्चत्वꣳ हसः ॥ यदिजाग्रद्यदिस्वप्नऽएनाꣳसि चकृमा वयम्। सूर्यो मातस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वꣳ हसः ॥ (यजु अ० २० म० १४–१६)। और तैत्तरीयारण्यक द्वितीय प्रपाठक में—'यद्देवा' से कूष्माण्डसंज्ञक बहुत मन्त्र हैं। वहाँ से देखना चाहिये।

ईशानकोण

पूर्व

अग्निकोण

शिव

गणेश

(विष्णुपञ्चायतन)

उत्तर

दक्षिण

दुर्गा

सूर्य

वायव्यकोण

पश्चिम

नैर्ऋत्यकोण

प्रयोगरत्ने—मध्ये शिरसि चूडा स्याद्वसिष्ठानां तु दक्षिणे।
उभयोः पार्श्वयोरत्रिकश्यपानां शिखा मता। माधवीयेऽप्येवम्॥

प्रयोगरत्न में कहा है कि—वसिष्ठगोत्रियों का चूड़ा (शिखा) शिर के मध्यवाली शिखा को (उपनयन में कटवाना नहीं चाहिये) दक्षिणमें, अत्रि और कश्यपगोत्रियों की शिखा दोनों पार्श्वों में (अगल-बगल) शिखा होती है। माधव ने भी यही कहा है।

आपस्तम्बस्त्वाह—'तूष्णीं केशान्विनीय यथर्षि शिखा निदधाति' यथर्षि प्रवरसंख्यया। तासां मध्यशिखावर्जमुपनयने वपनं कार्यम्, प्रतिदिशं वपति—इत्युपनयने तेनैवोक्तेः। रिक्तो वा एषोऽनपिहितो यन्मुण्डस्तस्मै तदपिधानं यच्छिखा—इति श्रुतेः, विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न सत्कृतम्। इति निषेधाच्च। सत्रे तु—वचनात्सशिखं वपनम् इति सुदर्शनभाष्ये उक्तम्। यत्तु—'कुमारा विशिखा इव' इति लिङ्गं, तच्छन्दोगपरम्।

आपस्तम्बने तो कहा है कि—चुपचाप होकर केशों (बालों) को कटवा कर ऋषियों के प्रवरसंख्या से शिखा का स्थापन करे। उनके (उन शिखाओं के) मध्यवाली शिखा को छोड़कर उपनयनमें वपन (कटवा) करना चाहिये। उन्होंने उपनयनमें कहा है कि—शिखा को छोड़कर चारों तरफ वपन करावे। श्रुतिमें कहा है कि—जिसकी शिखा रिक्त है या ढकी नहीं है जिसको मुण्ड कहते हैं उसके लिए शिखाको और यज्ञोपवीत के बिना जो कुछकर्म करता है, वह नहीं करने के बराबर है। इससे निषेध है। सत्रयाग में तो वचन बल से शिखा के सहित वपन होता है। यह सुदर्शन भाष्य में कहा है। जो यह कहा कि—शिखाहीन कुमारों के सदृश है—ऐसा लिंग है। वह सामवेदिशाखावालों के लिए है।

अपरार्के मदनरत्ने च लौगाक्षिः—दक्षिणतः कमुञ्जा वसिष्ठानामुभयतोऽत्रिकश्यपानां मुण्डा भृगवः पञ्चचूडा आङ्गिरसो वाजिमेके मङ्गलार्थं शिखिनोऽन्ये यथाकुलधर्मं वा' इति। कमुञ्जा= शिखा। वाजिः=केशपङ्क्तिः।

अपरार्क और मदनरत्न में लौगाक्षि ने कहा है कि—वसिष्ठ गोत्रियों की शिखा दक्षिण के तरफ होती है। अत्रि और कश्यपगोत्रियों की शिखा दोनों तरफ होती है। भृगुगोत्री मुण्ड रहते हैं। आङ्गिरस गोत्री पांचशिखा वाले होते हैं। कोई लोग केशों की पंक्ति मङ्गलके लिए रखते हैं। अन्य तो अपने कुलधर्मानुसार शिखा रहते हैं। कमुञ्जमाने=शिखा और वाजी माने=केश पंक्ति।

स्मृतिदर्पणे—एका शिखा दक्षिणतो वसिष्ठगोत्रस्य पञ्चाङ्गिरसो भृगोऽस्तु। नैका शिखा कश्यपगोत्रजानां शिखोभयत्रापि यथाकुलं वा॥ एतच्छूद्रातिरिक्तविषयम्। शूद्रस्यानियताः केश वेशाः-इति वसिष्ठोक्तेः।

स्मृतिदर्पण में कहा है कि—वसिष्ठगोत्रकी एक शिखा दक्षिणतरफ रहती है। आंगिरसगोत्रकी शिखा पांच होती हैं। कश्यपगोत्रमें उपत्न होनेवालों की एक शिखा नहीं होती है। दोनों तरफ या कुलाचार के अनुसार होती है। यह शूद्र के अतिरिक्त विषयमें है। वसिष्ठ ने कहा है कि—शूद्रको केशवेश का नियम नहीं है।

यत्तु पाद्मे—न शिखी नोपवीती स्यान्नोच्चरेत् संस्कृतां गिरम्। इति शूद्रमुपक्रम्योक्तम्। तदसच्छूद्रस्येति केचित्। विकल्प इति तु युक्तम्। अत एव हारीतः—स्त्रीशूद्रौ तु शिखां छित्वा क्रोधाद्वैराग्यतोऽपि वा। प्राजापत्यं प्रकुर्यातां निष्कृतिर्नान्यथा भवेत्॥ एतत्परिग्रहपक्षे। अत्र देशभेदाद्व्यवस्थेति दिक्।

जो पद्मपुराण में शूद्रको लेकर कहा कि—शिखा और यज्ञोपवीत को शूद्रधारण न करे तथा संस्कृतवाणी का उच्चारण न करें। किसी का मत है कि—यह असत् शूद्रके लिए है। कमलाकर ने कहा है कि—विकल्प मानना युक्त है। इसीलिए हारीत ने कहा है कि—स्त्री और शूद्र शिखा को क्रोध या

वैराग्य से काटता है तो 'प्राजापत्यव्रत' को करें। अन्यथा यह परिग्रह (दान लेने के) पक्षमें है। यहाँ पर देशाचार से व्यवस्था करनी चाहिये। यही उत्तम मार्ग है।

ज्योतिर्निबन्धे—नर्मदोत्तरदेशे तु सिंहस्ते देवमन्त्रिणि।
शुभकर्म न कुर्वीत निषेधो नास्ति दक्षिणे॥

ज्योतिर्निबन्ध में कहा है कि—सिंह के देवमन्त्रिणि—बृहस्पति में नर्मदाके उत्तरदेशमें शुभकर्म न करे और दक्षिण में (यह) निषेध नहीं है।

(अथ मुण्डनसंस्कारादौ भोजने तथा स्त्रीणां संस्कारे क्रमविचारः)

अत्र (मुण्डनसंस्कारादौ भोजने विचारः) भोजने प्रायश्चित्तमुक्तं पराशरमाधवीये–निवृत्ते चूडहोमे तु प्राङ्नामकरणात्तथा। चरेत्सान्तपनं भुक्त्वा जातकर्मणि चैव हि॥ अतोऽन्येषु तु संस्कारेषूपवासेन शुद्ध्यति॥ एते संस्काराः स्त्रीणाममन्त्रकाः कार्याः। होमस्तु समन्त्रक इति प्रयोगपारिजाते। आश्वलायनोऽपि—होमकृत्यं तु पुंवत्स्यात्स्त्रीणां चूडाकृतावपि। इति।

यहाँपर भोजन करनेपर प्रायश्चित्त पराशरमाधवीय में कहा है कि—चूडाकरणहोम के बाद तथा नामकरण में और जातकर्म में भोजन करनेपर 'सान्तपन' प्रायश्चित्त करे। इनसे अन्यसंस्कार में भोजन करने पर उपवास करने से शुद्धि होती है। ये संस्कार स्त्रियों के लिए अमन्त्रक करने चाहिये। प्रयोगपारिजातमें कहा है कि—हवन तो समन्त्रक होगा। आश्वलायन ने कहा है कि—पुरुषकी तरह स्त्रियों का चूडाकर्मसंस्कारमें भी होमकार्य होगा। अर्थात्—मन्त्र पढकर होम होगा।

मनुरपि—अमन्त्रिका तु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः। इति। होमोऽप्यमन्त्रक इत्येके। संस्काराः स्त्रीणामहोमकास्तूष्णीं स्युः' इति स्मृत्यर्थसारे। होमो नेति वृत्तिकृत्।

मनुने भी कहा है कि—स्त्रियोंका साराकाम अर्थात्–अनुष्ठानपद्धति अमन्त्रक होती है। किसी का मत है कि—होम भी अमन्त्रक होता है। स्त्रियों के संस्कार होमको छोड़कर विना मन्त्र के (चुपचाप) होते हैं। यह स्मृत्यर्थसार में कहा है। वृत्तिकार का मत है कि—इसकार्य में होम नहीं होता है।

(अथ विद्यारम्भकथनम्)

अथ विद्यारम्भः। मदनरत्ने नृसिंहः—अक्षरस्वीकृतिं कुर्यात्प्राप्ते पञ्चमहायने।
उत्तरायणगे सूर्ये कुम्भमासं विवर्जयेत्॥

अब विद्यारंभ कहते हैं। मदनरत्नमें नृसिंह ने कहा कि–पाँचवें वर्ष के प्राप्त होनेपर कुंभकी संक्रान्ति को त्यागकर उत्तरायण के सूर्यमें अक्षरारंभ (प्राङ्मुखो गुरुरासीत वारुण्यभिमुखः शिशुः। अध्यापयीत प्रथमं ज्ञातिभिश्च सुपूजितः॥) करे।

दीपिकायाम्—वर्षे पर्जन्यके काले षष्ठीं रिक्तां शनिं कुजम्।
अनध्यायान्विना नत्वा देवं ग्रन्थकृतं गुरुम्॥

दीपिका में कहा है कि—वर्षाऋतु के समयमें, षष्ठी, रिक्ता, शनि, मङ्गल और अनध्याय तिथियों को छोड़कर देवता, ग्रन्थकर्ता तथा गुरुको नमस्कार कर विद्यारंभ करे।

श्रीधरः—हस्तादित्यसमीरमित्रपुरुजित्पौष्णाश्विचित्राच्युतेष्वारार्क्यंशदिनोदयादिरहिते राशौ स्थिरे चोभये।
पक्षे पूर्णनिशाकरे प्रतिपदं रिक्तां विहायाष्टमीं षष्ठीमष्टमशुद्धभाजि भवने प्रोक्ताक्षरे स्वीकृतिः॥

श्रीधर ने कहा है कि—हस्त, पुनर्वसु, स्वाती, अनुराधा, ज्येष्ठा, रेवती, अश्विनी, चित्रा और श्रवण इन नक्षत्रों में मङ्गल तथा शनि इनका अंश, (नवांश), दिन, लग्न, आदि से रहित काल में स्थिर और द्विःस्वभाव लग्नमें, शुक्लपक्ष में प्रतिपदा, रिक्ता, अष्टमी, और षष्ठी, तिथियों को छोड़कर शेष तिथियों में अष्टम से शुद्ध लग्न में अक्षरारंभ शुभ होता है।

विष्णुधर्मोत्तरे—पूजयित्वा हरिं लक्ष्मीं तथा देवीं सरस्वतीम्। स्वविद्यां (स्ववेदं) सूत्रकारांश्च स्वां विद्यां च विशेषतः ॥ एतेषामेव देवानां नाम्ना तु जुहुयाद् घृतम्। दक्षिणाभिर्द्विजेन्द्राणां कर्तव्यं चात्र पूजनम् ॥ इति।

विष्णुधर्मोत्तर में कहा कि—हरि, लक्ष्मी तथा सरस्वती देवी का पूजन कर अपने वेद और सूत्रकार इनके अनुसार विशेष पूजनकर इन्हीं नामोंसे घृतसे हवनकर ब्राह्मणों का दक्षिणा से पूजन करे।

(अथ धनुर्विद्याविचारः)

अथ धनुर्विद्या। दीपिकायाम्—अदितिगुरुयमार्कस्वातिचित्राग्निपित्र्यध्रुवहरिवसुमूलेष्विन्दुभागान्त्यभेषु। शनिशशिबुधवारे विष्णुबोधे विपौषे सुसमयतिथियोगे चापविद्याप्रदानम् ॥

अब धनुर्विद्या कहते हैं। कि—दीपिका में कहा है। पुनर्वसु, पुष्य, भरणी, हस्त, स्वाती, चित्रा, कृत्तिका, मघा, ध्रुवगण (तीनों उत्तरा रोहिणी) का नक्षत्र, श्रवण, धनिष्ठा और मूल इन नक्षत्रों में, रेवती के अन्तिम चरण में, शनि, सोम तथा बुधवार को भगवान् के जागनेपर पौषमास को छोड़कर शेष महिनों में शुभसमय तथा शुभतिथियों में धनुर्विद्यारंभ शुभ होता है।

(अनुपनीतस्य विशेषकथनम्)

अथानुपनीतस्य विशेष गौतमः—'प्रागुपनयनात्कामचारवादभक्षाः' इति।

भक्षणं लशुनादेरपीति हरदत्तः।

अब अनुपनीत बालक के विशेष नियम कहते हैं कि—गौतम ने कहा है कि—उपनयन के पहले कामचार, कामवाद और कामभक्ष हैं। भक्षण का अर्थ—लशुन आदि भी है—यह हरदत्त ने कहा है।

अपरार्के वृद्धशातातपः—शिशोरभ्युक्षणं प्रोक्तं बालस्याचमनं स्मृतम्।
रजस्वलादिसंस्पर्शे स्नानमेव कुमारके ॥

अपरार्क में वृद्धशातातप ने कहा है कि—शिशुको अभ्युक्षण, बालकको आचमन और कुमार को रजस्वला आदि के स्पर्श में स्नान ही कहा है।

प्राक् चूडाकरणाद्बालः प्रागन्नप्राशनाच्छिशुः। कुमारकस्तु विज्ञेयो यावन्मौञ्जीनिबन्धनम् ॥

चूडाकरण के पूर्व बालक, अन्नप्राशन के पूर्व शिशु और यज्ञोपवीत (अर्थात्—मौञ्जीबन्धनकाल तक) से पहले कुमारसञ्ज्ञा होता है।

आपस्तम्बोऽपि—'अन्नप्राशनात्प्रयतो भवत्यासंवत्सरादित्येके' इति।

आपस्तंब ने भी कहा है कि—अन्नप्राशन से निरन्तर या संवत्सर से पवित्र होता है—यह एक का मत है।

गौतमोऽपि—न तदुपस्पर्शनादाशौचम्। तस्यानुपनीतस्य चाण्डालादिस्पृष्टस्यापि स्पर्शान्न स्नानम्। इदं च षष्ठवर्षात्प्राक् ऊर्ध्वं तु स्नानं भवत्येव।

गौतम ने भी कहा है कि—उसके स्पर्श से आशौच नहीं होता है। अनुपनीत बालक का चाण्डाल आदि द्वारा स्पर्श होने पर भी स्पर्श से स्नान का विधान नहीं है। यह छ वर्ष के पहले हैं। इसके बाद स्नान होता ही है।

बालस्य पञ्चमाद्वर्षाद्रक्षार्थं शौचमाचरेत्। इति स्मृतेः। कामचारादिकेप्येवम्।

स्मृति में कहा है कि—पांच वर्ष तक बालककी रक्षा के लिए पवित्रता का आचरण करे। कामचार आदि में भी यही लशुन आदि का भक्षण भी छ वर्ष के पूर्व ही है। बाद में तो बालकको प्रायश्चित्त करना चाहिये वह पिता आदि को ही करना चाहिये।) है।

ऊनैकादशवर्षस्य पञ्चवर्षात्परस्य च। चरेद् गुरुः सुहृच्चैव प्रायश्चित्तं विशुद्धये ॥ अतो बालतरस्यास्य नापराधो न पातकम्। इति स्मृतेरिति हरदत्तः। स्मृत्यर्थसारेऽप्येवम्।

पांच साल के बाद ग्यारह वर्ष में कुछ कम बालक की शुद्धि के लिए प्रायश्चित्त को गुरु आचार्य और मित्र करें। इसलिए छोटे इस बालक का न अपराध है न पातक है। यह स्मृति में लिखा है—यह हरदत्त कहते हैं। स्मृत्यर्थसार में भी यही है।

(प्राचीन व्यवस्थाओं का संग्रह)

(स्वर्गीय-महामहोपाध्याय श्री पं० विद्याधर जी गौड द्वारा लिखित)

(शान्त्यनुष्ठानकालः)

शान्त्यनुष्ठानयोग्येषु मूलज्येष्ठाश्लेषाश्विन्येकनक्षत्रादिषु जातानां शान्त्यनुष्ठानकालः क इति विचारे संप्रवृत्ते शान्तेर्नैमित्तिकत्वात् निमित्तानन्तरमनुष्ठेयत्वमिति प्रतीयते तस्य च कालस्याशुचिग्रस्तत्वात् आशौचापगमानन्तरमेवानुष्ठानं प्राप्तम्। आशौचापगमश्च एकादशेऽहन्येव भवतीतिदहरेव जातेष्टिन्यायेन शान्त्यनुष्ठानं प्राप्तं वचनैरपेक्ष्येण। एवं चैकादशेऽहनि शान्तिविधायकं वचनमनुवाद इति मन्तव्यम्।

किञ्च-सर्वासां शान्तीनां नामधेयात्पूर्वमेवानुष्ठाननम्। 'दुष्टनक्षत्रजातानां शान्तिं कृत्वा विधानतः।

द्वादशैकादशे वाऽह्निनाम कुर्यात्ततः परम्।। इत्यादिना विहितम्। नामधेयं चैकादशेऽहनि सर्वशाखासु विहितम्। अत आदौ शान्तिस्ततो नामकर्म। पारस्करगृह्यसूत्रपरिशिष्टे—'मूलनक्षत्रे मूलविधानं कुर्यात्' इति मूलनक्षत्ररूपःकाल उक्तः सोऽपि मुख्यःकालो भवतु तच्छाखिनां न तु सर्वेषाम्। यच्च—सुख्यकालं प्रवक्ष्यामि शान्तिहोमस्य यत्नतः। जातस्य द्वादशाहे तु जन्मर्क्षे च शुभे दिने।। इत्यनेन प्रथमतो द्वादशाहो मुख्यकाल उक्तः स यस्य शाखिनो द्वादशाहे नामकरणविधिरुक्तस्तद्विषयः। अन्यथा सर्वत्रापि सामान्यतः शान्त्युत्तरनामधेये एकादशानुष्ठेयत्वस्य शान्त्युत्तरकालानुष्ठेयत्वस्य वा बाधापत्तेः तद्बाधे प्रमाणाभावात्।

हिरण्यकेशिगृह्यपरिशिष्टे—'अभुक्तमूलोत्पत्तावव्यवहितागामिमूलर्क्षे एकादशे द्वादशाहे वाऽन्यत्रे वा शुभनक्षत्रे गोमुखप्रसवशान्तिं विधाय मूलशान्तिमारभते' इत्युपक्रम्य 'एवं ज्येष्ठाश्लेषैकनक्षत्रजनने च शान्तिं मूलवत्कुर्यात्' इत्युपसंहारेणाऽपि-एकादशाहस्यापि मुख्यकालत्वमेवेति तत्रापि शान्तिः कर्तुं शक्यत इति।

(दत्तकविषये व्यवस्था)

अपुत्रस्य सन्तत्यविच्छेदार्थं स्वस्य पैतृकानृण्यसिध्यर्थञ्च सत्यां दत्तकविधानेन पुत्रजिघृक्षायां कीदृशो दत्तको ग्रहीतव्य इति विषये विचारपथं गते सति एतद्विषयकसर्वधर्मशास्त्रग्रन्थालोडनेन समासादितोऽयं निर्णयः—"माता पिता वा दद्यातां यमद्भिः पुत्रमापदि। सदृशं प्रीतिसंयुक्तं स ज्ञेयो दत्रिमः सुतः।।" "दद्यान्माता पिता यं वा स पुत्रो दत्तको भवेत्।" "ब्राह्मणानां सपिण्डेषु कर्तव्यः पुत्रसंग्रहः। तदाभावेऽसपिण्डो वाऽन्यत्र तु न कारयेत्।।" "अदूरबान्धवं बन्धुसन्निकृष्टमेव प्रतिगृह्णीयात्।" इत्यादिमनु-याज्ञवल्क्य-शौनक-वसिष्ठादिवचनात् सति सम्भवे बन्धुसन्निकृष्टस्य जातिकुलगुणादिभिः सदृशस्य मातापितृभ्यां प्रतिपूर्वकं दत्तस्य दत्तकहोमाद्यनुष्ठानपूर्वकं गृहीतस्य स्वसपिण्डसगोत्रस्य जातकर्मादिभिः संस्कृतस्य च पुत्रत्वं सिध्यतीत्यवगम्यते। तस्यैव च मुख्यं दत्तकत्वम्। अन्येषान्तु गौणत्वमिति गम्यते। सगोत्रसपिण्डाभावे तु असगोत्रसपिण्डस्य दत्तकरूपेण ग्राह्यत्वम्, "ब्राह्मणानां सपिण्डेषु" इति शौनकवचने समानासमानगोत्रजसपिण्डमात्रवाचिपदप्रयोगात्। "तच्च सापिण्ड्यं द्विविधम्—एकपिण्डान्वयित्वेन एकशरीरान्वयित्वेन च। "अवश्यञ्चैकशरीरावयवान्वयेन सापिण्ड्यं वर्णनीयम्" इत्यादिना मिताक्षरादौ एकशरीरान्वयित्वरूपसापिण्ड्यस्याऽपि अवश्याभ्युपगमात्। एवञ्चैकपिण्डान्वयिपुरुषालाभे एकशरीरान्वयिरूपसपिण्डस्यैव ग्रहणं कर्तव्यम्। न चैवं शङ्कनीयम्—एकशरीरान्वयिरूपसापिण्ड्यस्य विवाहमात्रविषयकत्वान्न दत्तकविषये प्रवृत्तिरिति। दत्तक्रीतादिपुत्राणां बीजवप्तुः सपिण्डता। पञ्चमी सप्तमी तद्वद् गोत्रं तत्पालकस्य च।। इति वृहन्मनुवचनेन तस्य दत्तकविषयेऽप्यतिदेशदर्शनात्। अत एव च प्रतिग्राह्यपुत्रक्रमनिरूपणावसरे 'तत्राऽयं सपिण्डसगोत्रो मुख्यः, उभयथाऽपि प्रत्यासत्तेः। तदभावेऽसगोत्रः सपिण्डः, सापिण्ड्यप्रत्यासत्तेः' इति समानगोत्रः सपिण्डः। यद्यप्यसमानगोत्रः सपिण्डः समानगोत्रोऽसपिण्डश्चेत्युभावपि तुल्यकक्ष्यौ, एकैकविशेषणराहित्यादुभयोः, तथाऽपि गोत्रप्रवर्तकपुरुषात् सापिण्ड्यप्रवर्तकपुरुषस्य सन्निहितत्वेनाऽभ्यर्हितत्वम्। तेन च 'असमानगोत्रोऽपि सपिण्ड एव ग्राह्यो मातामहकुलीनः' इति च वीरमित्रोदयदत्तकमीमांसाकारौ कण्ठरवेणोचतुः। एवञ्च सगोत्रसपिण्डाभावे तदनन्तरमसगोत्रसपिण्डस्य स्वमातामहकुलीनस्यैव दत्तकविधाया ग्राह्यत्वं शास्त्रतः सिद्ध्यति। एवं "ज्येष्ठेन जातमात्रेण पुत्री भवति मानवः" इति मनुवचनानुमितं "न ज्येष्ठं पुत्रं दद्यात्" इति मिताक्षरीयं वचनम्, तद्दातारमेव स्पृशति न तु प्रतिग्रहीतारम्। अतश्च ज्येष्ठपुत्रदाननिषेधोल्लङ्घनेन तद्दाने दातुरेव दोषः, न प्रतिग्रहीतुः, न वा दत्तकत्वस्याऽसिद्धिः—इति दत्तकमीमांसा-मयूखकारादीनां मिताक्षराशयं वर्णयतामयमेव सिद्धान्तः। एवं "नैकपुत्रेण कर्तव्यं पुत्रदानं कदाचन" इत्येकपुत्रदाननिषेधपरे "बहुपुत्रेण कर्तव्यं पुत्रदानं विशेषतः" इति शौनकीये वाक्ये बहुपुत्रपदश्रवणमेकत्वसङ्ख्याधिकसङ्ख्याकपुत्रवत्परं सदनुवादः। अन्यथा पूर्वोत्तरार्धयोः

पृथक्पृथग्विधिनिषेधाङ्गीकारे वाक्यभेदप्रसङ्गात् ग्रन्थान्तरविरोधाच्च । अत एव बालभट्ट्यां मतान्तरनिरासपूर्वकमयमेव पक्षः सिद्धान्तितः । तस्माद् द्विपुत्रेणाऽपि पुत्रदानकरणे न दोषः । एवञ्च सति श्रीकाशीमहाराजैः श्रीमदादित्यनारायण-सिंहमहोदयैः पूज्यतमायाः स्वमातुराज्ञया यः स्वमातामहवृद्धप्रपौत्रः तन्मातापितृभ्यां प्रीतिपूर्वकं दत्तः दत्तकहोमाद्यनुष्ठानपूर्वकं ज्येष्ठपुत्रोऽसगोत्रसपिण्डो गृहीतः श्रीविभूतिनारायणसिंहमहोदयः, स शास्त्रीयया दृष्ट्या सर्वप्रकारेण दत्तकतामर्हत्येवेति ।

(दत्तकस्य गयाश्राद्धादिविचारः)

गोत्ररिक्थे जनयितुर्न भजेद्दत्रिमः सुतः । गोत्ररिक्थानुगः पिण्डो व्यपैति ददतः स्वधा ॥ (मनु० ९।१४२) इति वचनेन जनयितृपिण्डदानस्य दत्तकपुत्रेण अकर्तव्यतया ग्रहीतुरेव पितुः सांवत्सरिकगयाश्राद्धादीनां कर्तव्यताविधानात् "एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत्" इत्यादि-अत्रिसंहितावचनेन गयाश्राद्धस्यावश्यकत्वात् "पिण्डोदकक्रियाहेतोर्नाम संकीर्तनाय च" इति वचनेन पिण्डदानार्थमेव दत्तकस्य ग्रहणाच्च जनयितृपितृसत्त्वेऽपि मृतग्रहीतृस्वपितृकस्य दत्तकस्य गयाश्राद्धाद्यधिकारः । शास्त्रदृष्ट्या जनयितुः पितुः पितृत्वमेव नास्ति, किन्तु लोकव्यवहारेण तत्र गौणमेव पितृत्वम् ।

(चूडाकरणे शिखास्थापनविचारः)

वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम् । कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च ॥ गार्भैर्होमैर्जातकर्म-चौड-मौञ्जी-निबन्धनैः । बैजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते ॥ (मनु० २।२६-२७) इत्यादिवचनजातबलाद् द्विजानां स्वशरीरसंस्कारकं जातकर्मादि अवश्यमनुष्ठेयमित्यवगम्यते । तत्संस्कृत एव च पुरुषः कर्मण्यो भवति । तेषु च कर्मसु चूडाकरणमपि मुख्यं कर्म । यस्यानुष्ठानं प्रथमादिषु उपनयनकालान्तेषु अयुग्मवर्षेषु अनुष्ठेयतया गृह्यकाराः सर्वेऽपि कथयन्ति । इदं च चूडाकरणं शिखास्थापनार्थं द्विजातिभिरवश्यमनुष्ठेयं कर्म । अतश्चूडानिधानायैवेदं कर्म कर्तव्यता विहितम् । यतो हि "यथर्षि शिखां निदधाति, यथैवैषां कुलधर्मः स्यात्" (आप० गृ० सू० १।६।१५) "यथाकुलधर्मं केशवेषान् कारयेत्" (आश्व० गृ० सू० १।१६।१६) "यथामङ्गलं केशशेषकारणम्" (पा० गृ० सू० २।१।२१) इति भगवान् पारस्करः अन्येऽपि च सूत्रकाराः शिखानिधानमेव विदधति तत्तत्कुलधर्मानुसारेण । हरिहर-गदाधरादयोऽपि "केशानां शेषकरणं शिखास्थापनं यथाकुलाचारव्यवस्थापनम्", "केशानां शेषकरणं शिखारक्षणं स्थापनं कर्तव्यम्" इति स्व-स्वभाष्ये—"वपनं कुर्वन् केशशेषरक्षणं करोति", "यथामङ्गलं शिखास्थापनं नापितः करोति" इति पद्धतावपि शिखास्थापनं लिखन्ति, न सर्वमुण्डनम् । नात्र संशयितव्यं "यथामङ्गलं केशशेषकरणम्", "यथाकुलाचारव्यवस्थापन-तिक्रम्य" इत्यादिभिः स्व-स्व-कुलाचारोऽप्यनुक्रान्तः । एवं च येषां कुले सर्वमुण्डनाचारोऽस्ति तैः स्वकुलाचारानुसारेण सर्वमुण्डनमेव कर्तव्यमितित्यप्यस्मादेव ग्रन्थात् प्रतीयत इति, यतः कुलाचारशब्दं त एव भाष्यकारा अग्रे विवृण्वन्ति । कुलाचारश्च बहुधा । तद्यथा लौगाक्षिः—"दक्षिणतः कम्बुजवसिष्ठानाम्, उभयतोऽत्रिकश्यपानाम्, मुण्डा भृगवः, पञ्च चूडा आङ्गिरसः, वाजसनेयिनामेका, मङ्गलार्थं शिखिनोऽन्ये" इति । अत्र च वचने येषां शाखिनां यो य आचारः स स्पष्टमुपात्तः । तत्र "मुण्डा भृगवः" इति भृगुगोत्राणामेव सर्वमुण्डनम् । अस्माकं तु वाजसनेयिनाम् "एका" इत्यनेन एकशिखानिधानमेव विहितम् । एवं तदुपात्तायां कारिकायामपि—कम्बुजानां वसिष्ठानां दक्षिणे कारयेच्छिखाम् । द्विभागेऽत्रिकश्यपानां मुण्डाश्च भृगवो मताः ॥ पञ्च चूडा अङ्गिरस एका वाजसनेयिनाम् । मङ्गलार्थं शिखिनोऽन्य उक्तश्चूडाविधिः क्रमात् । इत्येकशिखानिधानमेव वाजसनेयिनां विहितम् । अतश्च यथाकुलाचारमित्यस्य शिखानिधान-मेवास्माकं शास्त्रसम्मतमिति अस्मत्पूर्वाचार्याणां हरिहर-गदाधर-प्रभृतीनामभेद्यः सिद्धान्तो न तु सर्ववपनम् । इदं च शिखार-क्षणम्—सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च । विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम् ॥ इति भृगुस्मृतिवचनबला-दवश्यमेव कर्तव्यम् । शिखां विना अनुष्ठितानां कर्मणां वैफल्यबोधनात् । यद्यपि "गोत्रचिह्नं शिखाकर्म" इति वचनात् गोत्रचिह्नत्वं प्रतीयतेऽस्य, तथापि संस्कारगणमध्ये पाठात् अवश्यं कर्तव्यमेव । एवमवश्यकृतस्य शिखाकरणस्य गोत्रचिह्नत्व-मपि भवत्यानुषङ्गिकं फलम् । अतएव कुमारिलपादा अपि—"गोत्रचिह्नं शिखाकर्म" । तत्राप्याचारनियमस्यादृष्टार्थत्वान्न तावन्मात्रमेव प्रयोजनम् । तेनान्य एवाभिप्रायः । कर्माङ्गभूतं तावच्चतुरवत्तपञ्चावत्ततादिविभागसिद्ध्यर्थमवश्यं स्मर्तव्यम् । अतश्च तच्चिह्नार्थमपि तावच्छिखाकल्पस्मृतेः प्रामाण्यमस्तु—इति गोत्रचिह्नत्वस्यानुषङ्गिकफलत्वमेवाभिप्रयन्ति तन्त्रवा-र्तिके, यथोपनयनमध्येऽवश्यकृतस्योपनयनधारणस्य त्रैवर्णिकत्वपरिचायकत्वम् । एवमिदं शिखाकर्म न केवलं स्मार्त्तम्, किन्तु श्रुतिप्रतिपाद्यमपि—"यशसे श्रियै शिखा" (शु० य० १९।९१) इत्यादिना शिखाधारणस्य श्री प्रभृतिश्रेयस्सम्पादकत्व-कथनात् । 'यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव' (शु०य०१७।१८ ।) इति श्रुतिरपि शिखासत्तामेव प्रतिपादयति कुमारा-णाम् । न ह्यत्र विशिखपदस्य शिखारहितत्वमर्थः । पूर्वमीमांसायां (१।३) स्मृतिप्रामाण्याधिकरणे "शिखाकर्म कर्तव्यम्" इति स्मृतिवाक्यमुदाहृत्य तदुपष्टम्भकतयाऽस्य वाक्यस्य भगवता शबरस्वामिनोदाहरणात् । "विशिखा विविधशिखा विकीर्णशिखा वा" इत्येव व्याख्यातृभिर्व्याख्याकरणाच्च । एवं च सति ये नामेदानीं केचन वाजसनेयिनामस्माकं चौलकर्मणि

सर्ववपनं कुर्वन्ति कारयन्ति च तद् दृष्ट्वा केचिदिममशिष्टाचारं पद्धत्यादावपि आरोपयन्ति, तां च प्रमाणं मन्यमाना अनुष्ठापयन्ति च तत्सर्वं सूत्रकारविरुद्धं हरिहर-गदाधर-प्रभृतिभाष्यपद्धत्यादिककर्तृस्मत्पूर्वाचार्यमतविरुद्धमस्मत्पितृ-पितामहाद्यनुष्ठितप्राचीनाचार-विरुद्धं च। लौगाक्षिवचने भृगूणां सर्वमुण्डनविधानाच्छन्दोगानां स्वगृह्ये तद्विधानाच्च तेषामुभयेषामेव चौले सशिखं सर्ववपनम्। इतरेषां सर्वेषामपि शिखाऽवश्यं निधापनीया। ये नाम स्वकुलानुरोधेन स्वकुलदेवतायै केशदानं प्रतिजानते कुर्वन्ति च तैरपि चूडाकरणात्पूर्वमेव तत्कर्तव्यम्, न ततः परम्। चूडाकरणे शिखाऽवश्यं रक्षणीया। तस्याश्च प्रायश्चित्तविशेषं विना कर्तनं लोपनं वा न कदापि कार्यम्। अतो यथाऽयं संस्कारो यथावदनुष्ठितो भवेत् यथा च प्राचीनां शास्त्रीयां रीतिमनुल्लङ्घ्य चूडाकरण एव शिखां निधाय तद्युता यावज्जीवं स्व-स्ववर्णोक्तानि कर्माणि अनुतिष्ठन्तस्तज्जनितं समग्रं फलं सर्वश्रेयोरूपं प्राप्नुयुर्धार्मिका जना इति। अतः सर्वान् सनातनधर्मावलम्बिनः सविनयं प्रार्थये यच्छास्त्रसम्मतिं स्वमनीषयाऽपि च युक्तायुक्तत्वं विचार्य यथोचितं कुर्युरिति।

(चूडाकरणविषये विशेषविचारः)

१—चौलकर्मणि गणपतिपूजनं पुण्याहवाचनं मातृपूजनमाभ्युदयिकं सति सम्भवे ग्रहयज्ञश्च भवति। एतच्च पूर्वदिने चौलदिने एव भवति। २—आभ्युदयिकश्राद्धं चौलात्पूर्वं त्रिभ्योऽहोभ्यः पूर्वमनुष्ठातुं शक्यते। ३—सोदराणां युगपच्चौलसंस्कारो न कार्यः। ४—असोदराणां युगपच्चौलादिकरणे मातृपूजनं नान्दीश्राद्धादि च सकृदेव कार्यम्। ५—चौलकर्म प्रथमे तृतीये पञ्चमे सप्तमे वाऽष्टमे वर्षे भवति। "सहोपनयनेन वा" इत्याश्वलायनवचनादुपनयनेन सहाप्यस्यानुष्ठानम्। ६—चूडाकर्मानन्तरं मासत्रयपर्यन्तं पिण्डदानं तिलतर्पणादि च न कार्यम्। ७—चूडाकर्म पित्रा कार्यम्, तदभावेऽन्येनापि। ८—पितुरभावे कुमारपितरमारभ्य श्राद्धादि कार्यं न स्वपितरमारभ्य। ९—पित्रादिजीवने पितामहादिमारभ्य श्राद्धं कार्यम्। "जीवेत्तु यदि वर्गाद्यस्तं वर्गं तु परित्यजेत्।" इति तु गयाश्राद्धे प्रवर्तते न नान्दीश्राद्धे इति रुद्रकल्पद्रुमादौ स्पष्टमस्मच्छाखिनं प्रति। १०—विधवाकर्तृके नान्दीश्राद्धे "अपुत्रा पुत्रवत्पत्नी भर्तुः श्राद्धं समाचरेत्" इति वचनात् पत्यादयः श्वश्र्वादयः पित्रादयश्च देवताः। ११—चौलकर्मणि शिखाधारणं कार्यम। अस्य कर्मणः शिखाधारणसंस्कारत्वात्। शिखाच्छेदनं तु न कुत्रापि विहितम्। "गर्भकेशा न धारणीयाः" इत्यपि जनप्रवादो निर्मूल एव। १२—कन्यायाश्चौलकर्मणि सर्वं तूष्णीं मन्त्रवर्जं भवति। "हुतकृत्यं तु पुंवत् स्यात्स्त्रीणां चूडाकृतावपि।" इति वचनात् होमः समन्त्रको भवति। केवलं प्राधानकृत्यममन्त्रकं भवति। अन्यत्सर्वमङ्गकृत्यं गणपतिपूजादि नान्दीश्राद्धान्तं समन्त्रकमेवेति। १३—स्त्रीणां शिखाधारणं न भवति—शिखायज्ञोपवीतं च कुशा मौनं तथैव च। वेदाध्ययनभैक्ष्ये च स्त्रीशूद्रपतनानि षट्॥ इति धर्मप्रवृत्तौ निषेधात्। १४—"शूद्रोऽप्येवंविधः कार्यो विना मन्त्रेण संस्कृतः।" इति वचनाच्छूद्रस्यापि चूडाकरणं भवति। १५—कुमारस्य ज्वराद्युत्पत्तौ चूडाकरणादि निषिद्धम्। १६—"गर्भाद्यसंस्कृतस्यापि कर्तव्यं चोपनायनम्। प्रायश्चित्तं तु पूर्वेषां नौपनायनिकस्य च॥ श्रौतस्मार्ताधिकारी स्यान्नौपनायनिकं विना।" "एतेष्वेकैकलोपे तु पादकृच्छ्रं समाचरेत्।" "चूडाया अर्धकृच्छ्रं स्यादापदीत्येवमीरितम्। अनापदि तु सर्वत्र द्विगुणं द्विगुणं चरेत्॥" १७—सूनोर्मातरि गर्भिण्यां प्रथममासादूर्ध्वं चूडाकर्म न कार्यम्। उपनयनेन सह चूडाकरणे तु गर्भिण्यामपि चूडाकर्म कर्तुं शक्यते। कुमारस्य पञ्चमवर्षादूर्ध्वं तु गर्भिण्यामपि मातरि न चूडाकर्मनिषेधः। १८—कुमारस्य मातरि रजस्वलायां न चौलं भवति। नान्दीश्राद्धानन्तरं रजस्वलायां तु श्रीशान्तिं गोदानं च कृत्वा कार्यम्। सङ्कटे तु नान्दीश्राद्धाकरणेऽपि शान्त्या कार्यम्। १९—मातुलपितृव्यादौ कर्तरि तत्पत्न्यां रजस्वलायामपि मङ्गलं नेति सिन्धुः। २०—चतुष्पुरुषमध्ये षण्मासमध्ये उपनयनविवाहोत्तरं चूडाकर्म न कार्यम्। अब्दभेदे तु कार्यम्। २१—चूडाकर्मानन्तरमपि महालये गयायां वार्षिके च पिण्डदानादि कार्यम्। साम्प्रतं नानुतिष्ठन्ति प्रायस्तत्र मूलं मृग्यम्। २२—चौले पूर्णाहुतिर्नास्ति। अग्निमुखं पितृशाखया भवति। २३—साग्नेरप्येतत्कर्म लौकिकेऽग्नौ भवति न गृह्येऽग्नौ। बहिःशालाया विधानसामर्थ्यात्। विना वचनमग्निः स्वायतनाद् बहिर्न नेतुं शक्यते। २४—मुहूर्तवशादनध्यायेऽपि क्रियमाणे चौलेऽनध्यायदोषो मन्त्रपाठे न भवति।

(चौलोपनयनयोः शिखास्थापनविचारः)

उपनयने उपनेयस्य माणवकस्य चूडाकर्मणि धृतां शिखां वर्जयित्वा वपनम् उत सशिखवपनम् इति विचारे इदमत्र प्रतिभाति—चौले तावद् बौधायनापस्तम्बाश्वलायनपारस्करादिमहर्षिभिः—"अथैनमेकशिखस्त्रिशिखः पञ्चशिखो वा यथैवैषां कुलधर्मः स्यात् यथर्षि शिखां निदधातीत्येके।" (बौ० गृ० २। ४ १७।१७) "यथर्षि शिखां निदधाति यथैवैषां कुलधर्मः स्यात्।" (आप० गृ० १.६।१५) "यथामङ्गलं केशशेषकरणम्" (पार० गृ० २। १। १२) इत्यादिसूत्रैः शिखाधारणस्य आवश्यकता प्रतिपादिता। "केशशेषं ततः कुर्याद्यस्मिन्गोत्रे यथोचितम्। वासिष्ठा दक्षिणे भागे उभयत्रापि काश्यपाः॥ शिखां कुर्वन्त्यङ्गिरसः शिखाभिः पञ्चभिर्युताम्। परितः केशपङ्क्त्या वा मुण्डाश्च भृगवो मताः॥" इत्यादिस्मृत्या च कुमारस्यार्षसङ्ख्यया कुलधर्मतो देशविशेषे शिखारक्षणं विधीयते। उपनयनेऽपि—"कुमारं भोजयित्वा तस्य चौलवत्तूष्णीं

केशानुप्य स्नातं शुचिवाससं बद्धशिखं यज्ञोपवीतं प्रतिमुञ्चन् वाचयति" (२ । ५ । ७) इति बौधायनसूत्रे चौलवदिति चौलधर्मातिदेशात् बद्धशिखमिति कुमारविशेषणाच्च मध्यशिखावर्जमेव उपनयने वपनमभिप्रेतमिति गम्यते । सशिखवपने पञ्चशिखमिति विशेषणं कथं सङ्गच्छेत ? आपस्तम्बगृह्येऽपि "प्रतिदिशं प्रवपति" इति दिग्वपनस्यैव विधानं न तु सर्ववपनस्य । "पर्युप्तशिरसमलङ्कृतमानयन्ति" (२ । २ । ५) इति पारस्करगृह्येऽपि प्रतिदिग्वपनमेवाभिप्रेतमस्ति । अतएव संस्कारकौस्तुभे—'चौलकालधृतशिखानां मध्ये मध्यशिखेतरशिखानामुपनयनकाले वपनं कार्यम् । "मध्ये शिरसि चूडा स्याद्वसिष्ठानां तु दक्षिणे । उभयोः पार्श्वयोरत्रिकश्यपानां शिखा मता ॥" इति वृद्धोदाहृतवचसि मध्यशिखाया निमित्तविशेषसंयोगं विना विहिताया नित्यत्वेन, सदा बद्धशिखेनेति नित्यविधिविषयत्वौचित्यादितरशिखानामनुपनीपधार्यत्वेन माधवोक्तेश्च इत्युक्तम् । तासां मध्यशिखावर्जमुपनयने वपनं कार्यम् । 'रिक्तो वा एष यन्मुण्डस्तस्यैतदपिधानं यच्छिखा' इति श्रुतेरिति कमला करोऽप्याह । "केशश्मश्रु वपते वाऽशिखम्" (२ । १ । ६) इति कत्यायनीयश्रौतसूत्रे कर्काचार्योऽप्येवम् । किञ्च—'सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च' इति भृगुस्मृतौ सदाशब्द श्रवणात् नित्यत्वप्रतीत्या नित्यानामकरणे प्रत्यवायापत्त्या "शिखां छिन्दन्ति ये मोहाद् द्वेषादज्ञानतोऽपि वा । तप्तकृच्छ्रेण शुद्धयन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥" इति हारीतेन शिखाविनाशे प्रायश्चित्ताभिधानात् । "अथ चेत्प्रमादान्निःशिखं वपनं स्यात्तदा कौशीं शिखां ब्रह्मग्रन्थिसमन्वितां दक्षिणकर्णोपर्याशिखाबन्धाद्धत्तिष्ठेत्" इति वीरमित्रोदये काठकगृह्ये शिखानाशे प्रतिनिधिविधानाच्च चौलप्रभृति यावज्जीवं शिखाया अवश्यधार्यत्वमवगम्यते । एवं पुरुषोद्देशेन विहितत्वात् पुरुषार्थस्यापि शिखाधारणस्य—"विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम्" इति पूर्वोक्तयैव स्मृत्या शिखां विना कर्मानुष्ठाने कर्मणो वैफल्यस्मरणात् शिखाधारणस्य सर्वकर्माङ्गत्वमवगम्यते । यद्यपि आर्षसङ्ख्याकशिखाविधानेन "गोत्रचिह्नं शिखाकर्म" इति शिखाधारणस्यैव गोत्रचिह्नत्वावगतेस्तस्य "वासिष्ठानां नाराशंसो द्वितीयः प्रयाजः" इत्यादौ गोत्रसाध्ये कर्मण्युपयोग इति गोत्रख्यापकत्वमात्रं दृष्टं फलमित्यवगम्यते, तथापि संस्कारेषु शिखाकर्मणोऽपि पाठात् इतर-संस्कारवत् अस्याप्यदृष्टार्थत्वमेव । गोत्रज्ञापनं तु आनुषङ्गिकं फलं न तु मुख्यम्; द्विजत्वचिह्नार्थं यज्ञोपवीतवत् । तेन शिखाधारणस्य अदृष्टार्थत्वावगमात् अकरणे प्रत्यवायभिया अवश्यं धार्यैव शिखेति । सशिखकृतक्षौरमिति क्वाचित्कलेखनं तु श्रुतिस्मृतिसूत्राज्ञानमूलकं श्रुतिसूत्र-विरोधात् संस्कारभास्करादिग्रन्थेष्वनुपलम्भाच्चासङ्गतमेव । कौथुमराणायनादिछन्दोग-माणवकस्य तु प्राक् समावर्त्तनात् सशिखमेव वपनम् । "केशश्मश्रुलोमनखानि वापयति शिखावर्जम्" (गो० गृ० सू० ३ । ४ । २४) इति गोभिलगृह्ये समावर्तने शिखारहितवपनोदेशात् अर्वाक् सशिखवपनावगतेः । "सशिखं वपनं कार्यमास्नानाद् ब्रह्मचारिणाम्" इति कर्मप्रदीपे कात्यायनोक्तेश्च । "यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव" (शु० य० १७।४८) इति तु छन्दोगपरमिति निर्णयसिन्धौ । इदं च विशिखा विगतशिखा मुण्डितमुण्डा इत्यस्मिन्नर्थे योज्यम् । विशिखपदस्य विविधशिखावत्त्वरूपमर्थमङ्गीकुर्वतां न्यायसुधा-मीमांसाकौस्तुभकारादीनां मते तु छन्दोगेतरपरमिदम् । वस्तुतस्तु विविधशिखायुक्तत्वमेवात्र विशिखपदार्थः । अन्यथा तस्मिन्मन्त्रे बाणैः सह कुमाराणां दृष्टान्तकरणस्यासङ्गत्यापत्तेः । यथैव विविधशिखाः कुमारा आगच्छन्ति एवं युद्धे अनेकबाज- (पक्ष) युक्ता बाणा आगच्छन्तीति दृष्टान्तार्थः । यदि विविधशिखपदस्य मुण्डितशिरस्कत्वमप्यर्थोऽभिप्रेतस्तदा वाजयुक्तैर्बाणैः सहमुण्डितशिरस्कानां कुमाराणां कथं सादृश्यमुपपन्नं स्यात् । अत एव यस्य माणवकस्य स्वगृह्ये उपनयने सशिखमुण्डनं कण्ठतोऽभिहितं तं वर्जयित्वा अन्यस्य कस्याप्युपनयने सर्वमुण्डनं न कार्यमेव । यत्र तु प्रायश्चित्तादौ सामवेदिमाणवकोपनयने सत्रे च सर्वमुण्डनं विशेषतोऽभिहितं तत्र सदोपवीतिनेति सामान्यशास्त्रस्याप्रवृत्त्या विशिखेन कर्मानुष्ठानेऽपि न प्रत्यवाय इति । अत्र प्रयोगदीपे विशेषः । तथा हि—"अत्र सशिखं वपनं कारयन्ति वृद्धाः । तत्र वृद्धाचार एव शरणम् ।" "विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम्" इति विशिखस्य कर्मनिषेधात् । यत्तु मनुः—"मुण्डो वा जटिलो वा स्यादथवा स्याच्छिखाजटः ।" यच्च गौतमः—"मुण्डी शिखी वा" इति । यच्च कात्यायनः—"सशिखं वपनं कार्यमास्नानाद् ब्रह्मचारिणः ।" इति, तत्सामगविषयम् । तथा च विष्णुपुराणे लिङ्गम्—"एते लूनशिखास्तस्य दशनैरचिरोद्गतैः । कुशकाशा विराजन्ते बटवः सामगा इव ॥" इति । न च 'पर्युप्तशिरसम्' इति 'परीति सर्वतो भावम्' (निरुक्त १।१।५) इति यास्कवचनाद् भविष्यतीति वाच्यम्; परितः समन्तादिति तस्यार्थः, पर्युक्ष्य परिस्तीर्येत्यादौ तथा दृष्टत्वात् । किञ्च "अधिपरी अनर्थकौ" (पाणि० सू० १।४।९३) इति पाणिनिसूत्रेणानर्थकस्य कर्मप्रवचनीयसंज्ञा प्राप्नोति, अतोऽनर्थकोऽपि परिशब्दो दृश्यते । अत एव 'परित उप्तं मुण्डितं शिरो यस्य' इति कर्कादिभिर्व्याख्यातं, न तु 'परितः सर्वतः' इति व्याख्यातम् । कातीयश्चाशिखमेव वपनं कारयति । कथं वृद्धैः शाङ्खायनशाखिभिः 'सशिखं वपनं कार्यम्' इति मूलं न विद्म इति ।

श्री विश्वनाथशर्मा जोशी

अथ निर्णयसिन्धुः

(भाषाटीका सहित)

श्लोकसूची

दौलतराम गौड

अथ निर्णयसिन्धुः

(भाषा-टीका-सहित)

(उपनयन संस्कार, विवाह संस्कार आदि पर विचार)

दौलतराम गौड

(अथोपनयनविचारः)

अथोपनयनम् । आश्वलायनः—गर्भाष्टमेऽष्टमे वाब्दे पञ्चमे सप्तमेऽपि वा ।
द्विजत्वं प्राप्नुयाद्विप्रो वर्षे त्वेकादशे नृपः ॥

अब उपनयन को कहते हैं । आश्वलायन ने कहा है कि—गर्भ से आठवे या आठवे वर्ष में पांचवे साल में या सातवें साल में द्विजत्व की प्राप्ति के लिये ब्राह्मण का उपनयनसंस्कार करे और ग्यारहवें वर्ष में क्षत्रिय का उपनयनसंस्कार करे ।

मनुः—ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे । राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्यार्थार्थिनोऽष्टमे ॥

मनु ने कहा है कि—पांचवे साल में ब्रह्मवर्चसकामना के लिए ब्राह्मणका, छठे वर्ष में बल की कामना के लिये क्षत्रिय का और आठवें साल में धन की कामना के लिए वैश्य का उपनयनसंस्कार करे ।

विष्णुः—षष्ठे तु धनकामस्य विद्याकामस्य सप्तमे । अष्टमे सर्वकामस्य नवमे कान्तिमिच्छतः ॥

विष्णु ने कहा है कि—धनकामना के लिए छठे वर्ष में, विद्याकामना के लिए सातवें साल में, सब कामनाओं के लिए आठवें साल में और कान्ति की इच्छा के लिए नवमें वर्ष में उपनयन करे ।

आपस्तम्बः—'गर्भाष्टमेषु ब्राह्मणमुपनयीत' बहुवचनं गर्भषष्ठगर्भसप्तमयोः प्राप्त्यर्थमिति सुदर्शनभाष्ये । केचित्तु विप्रस्य षष्ठं न मन्यन्ते ।

आपस्तंब ने कहा है कि—गर्भ से आठवें वर्षों में ब्राह्मण का उपनयन करे । सुदर्शनभाष्य में कहा है कि—यह बहुवचन गर्भ से छठे तथा गर्भ से सातवें साल की प्राप्ति के लिये है । कोई ब्राह्मण के लिए छठा साल नहीं मानते हैं ।

आपस्तम्बः—अथ काम्यानि, सप्तमे ब्रह्मवर्चसकाममष्टमे आयुष्कामं नवमे तेजस्कामं दशमेऽन्नाद्यकाममेकादशे इन्द्रियकामं द्वादशे पशुकाममुपनयेत् ।

इसके बाद काम्यों को कहते हैं । आपस्तंब ने कहा है कि—ब्रह्मवर्चसकामना के लिए सातवें साल में, आयुष्कामना के लिए आठवें वर्ष में, तेजस्कामना के लिए नवमें साल में, अन्नाद्यकामना के लिए दशमें वर्ष में, इन्द्रियकामना के लिए ग्यारहें साल में और पशुकामना के लिए बारहें वर्ष में उपनयन करे ।

गौणकालमाह मनुः—आषोडशाद् ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते ।
आद्वाविंशत् क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः ॥

अब गौणकाल कहते हैं । मनु ने कहा है कि—सोलह वर्ष तक ब्राह्मण, बाईस साल तक क्षत्रिय और वैश्य चौविस साल तक सावित्री (गायत्री) मन्त्र ग्रहण कर सकते हैं । यहाँ पर मर्यादा में ही आङ् है । (सावित्री पतिता यस्य दशवर्षाणि पञ्च च । सशिखं वपनं कृत्वा व्रतं कुर्यात् समाहितः ॥) ।

ज्योतिर्निबन्धे—अग्रजा बाहुजा वैश्याः स्वावधेरूर्ध्वमब्दतः ।
अकृतोपनयाः सर्वे वृषला एव ते स्मृताः ॥

ज्योतिर्निबन्ध में कहा है कि—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य का अवधि के बाद में यज्ञोपवीत न हो तो उनको शूद्र के समान जानना चाहिये । अर्थात् वे सब शूद्र ही हैं । (यदि वे अपने अपने समय की अन्तिम अवधि तक उपनयनसंस्कार से बहिर्मुख होते हैं तो वे पतित हो जाते हैं । 'अत ऊर्ध्वं पतन्त्येते सर्वधर्मबहिष्कृताः ।) ।

गर्गः—विप्रं वसन्ते क्षितिपं निदाघे वैश्यं घनान्ते व्रतिनं विदध्यात् ।
माघादिशुक्रान्तिकपञ्चमासाः साधारणा वा सकलद्विजानाम् ॥

वसन्त में ब्राह्मण का, ग्रीष्मऋतु में क्षत्रिय का और शरदऋतुमें वैश्य का उपनयनसंस्कार करे । माघ महिने से लेकर पांच महिने तक (अर्थात्—ज्येष्ठ महिने तक) सब (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) साधारणों का उपनयन करना कहा है ।

हेमाद्रौ ज्योतिषे—माघादिषु च मासेषु मौञ्जी पञ्चसु शस्यते।

हेमाद्रि में ज्योतिष का कथन है कि—माघमहिने से पांच मास तक उपनयनसंस्कार करना उत्तम है।

कालादर्शे वृद्धगार्ग्यः—माघादिमासषट्के तु मेखलाबन्धनं मतम्।
चूडाकरणमन्नं च श्रावणादौ विवर्जयेत्॥

कालादर्श में वृद्धगार्ग्य ने कहा है कि—माघ आदि छः महिनों में मेखलाबन्धन करे और चूडाकरण तथा अन्नप्राशन को श्रावण आदि महिनों में त्याग दे।

मैत्रेयसूत्रेऽपि—'वसन्तो ग्रीष्मः शरदित्यृतवो वर्णानुपूर्वेण माघादिषण्मासा वा सर्ववर्णानामेतदुदगयनमनयोर्विकल्पः' इति।

मैत्रेयसूत्र में भी कहा है कि—वसन्त, ग्रीष्म और शरदऋतु में वर्णों के क्रम से या माघ आदि छ महिने में जिसको उत्तरायण कहा जाता है। उसमें सब वर्णों का करे। इसमें विकल्प है।

अत्रेदं तत्त्वम्—नात्र वसन्तेनोत्तरायणस्य सङ्कोचः श्राद्धे दर्शस्यापराह्णविधिनेवाधाने वसन्तादेः कृत्तिकादिनेव सायंप्रातर्विधिना यावज्जीवविधेरिव युक्तः। आद्ययोः परस्परव्यभिचारान्नियमः, अन्त्ये निमित्ते साङ्गकर्मोक्तेः कालापेक्षा, इह तूत्तरायणं विना वसन्तस्याभावान्न नियमः, न वा निमित्तत्वम्। न च 'एकं वृणीते' इतिवदवयुत्यानुवादः, तद्वद्वाक्यभेदापरिहारात्। उत्तरायणविधिवैयर्थ्यात्त्वनुकल्पोऽयमिति। माघ आदिर्येषां पञ्चानां, एवं षट्।

यहाँ पर तत्त्व यह है कि—वसन्त से उत्तरायणका संकोच नहीं है। अमावास्या के श्राद्ध में अपराह्णविधि से ही आधान में वसन्त आदि का कृत्तिकादि से ही सायं और प्रातःकाल की विधि से यावज्जीवनविधि की तरह युक्त है। आदि में दोनों में परस्पर व्यभिचार से नियम है। अन्त्य तो निमित्त से मंत्र के सहित कर्म को कहने से काल की अपेक्षा है। यहाँ तो उत्तरायण के बिना वसन्त के अभाव से नियम नहीं है न निमित्त ही है। कोई कहे कि—एक का वरण करे इसकी तरह पृथक्कर अनुवाद है उस वाक्य के परिहार से। उत्तरायणविधि से वैयर्थ्य होने से यह अनुकल्प है। माघ आदि से मैत्रेयसूत्र में भी वसन्त, ग्रीष्म, शरदऋतु वर्ण के क्रम से (उपनयन का) काल है। माघ मास से लेकर छः मास तक सभी वर्णों का (उपनयनकाल) है। इसीको उदगयन कहा जाता है। (वसन्तऋतु और उदगयन) विकल्प है। यहाँ यह निश्चय है कि—यहाँ पर वसन्त के द्वारा उत्तरायण का संकोच नहीं है। जैसे अन्यस्थल में दर्श में श्राद्ध का अपराह्णविधि से आधान में वसन्तादि का कृत्तिकादि के द्वारा सायं प्रातर्विधि के—(सायं जुहोति, प्रातर्जुहोति) यावज्जीवनका संकोच है। पहले दोनों का परस्पर विचार होने से नियम है। अन्तिम में निमित्त होने से सांगकर्मानुष्ठान करने से काल की अपेक्षा ही है। प्रकृतस्थल में उत्तरायण को छोडकर वसन्त का असंभव होने से नियम या निमित्त नहीं माना जाता है। एक को वरण कहते हैं—इसकी तरह अवयुत्यानुवाद (समुदाय के अवयव का अलग कर निर्देश करना) के समान वाक्य भेदका परिहार न होने से। उत्तरायणविधि का वैयर्थ्य होने से यह अनुकल्प (गौणकाल) है। माघ आदि जिनका पांच है। इसी प्रकार छः है।

पारिजाते बृहस्पतिः—झषचापकुलीरस्थो जीवोऽप्यशुभगोचरः।
अतिशोभनतां दद्याद्विवाहोपनयादिषु॥

परिजात में बृहस्पति ने कहा है कि—मीन, धनु तथा कर्क का अशुभ में गोचर बृहस्पति विवाह, उपनयन आदि में अत्यन्त शुभदायक है।

वृत्तशते—न जन्मधिष्ण्ये न च जन्ममासे न जन्मकालीनदिने विदध्यात्।
ज्येष्ठे न मासि प्रथमस्य सूनोस्तथा सुताया अपि मङ्गलानि॥

वृत्तशत में कहा है कि—जन्मनक्षत्र में, जन्ममास (आरम्य जन्मदिवसं यावस्त्रिंशद्दिनं भवेत्। जन्ममासः स विज्ञेयो गर्हितः सर्वकर्मसु॥) में, जन्मकालीन दिन में, प्रथम ज्येष्ठ पुत्र का ज्येष्ठ महिने में और बड़ी कन्या की भी मङ्गलकार्यों को ज्येष्ठमास में न करे।

(जन्ममासत्याग-असामर्थ्ये विचारः)

राजमार्तण्डः—जातं दिनं दूषयते वसिष्ठो ह्यष्टौ च गर्गो नियतं दशात्रिः ।
जातस्य पक्षं किल भागुरिश्च शेषाः प्रशस्ताः खलु जन्ममासि ॥

राजमार्तण्ड में कहा है कि—ऋषि वसिष्ठ जी के मत से जन्म से एक दिन, गर्गऋषि जन्म से आठ दिन, अत्रि ऋषि जन्म से दश दिन और भृगु ऋषि जन्म से एक पक्ष (पन्द्रह दिन) को दूषित मानते हैं। अवशिष्ट दिन जन्ममास में उत्तम है।

जन्ममासे तिथौ भे च विपरीतदले सति । कार्यं मङ्गलमित्याहुर्गर्गभार्गवशौनकाः ॥

जन्ममास में, जिस पक्ष में जन्म हुआ है उसके दूसरे पक्षमें तिथि (जन्म तिथि) में, जन्मके नक्षत्र में और उत्तरभाग में मंगलकार्य को करे। यह गर्ग, भार्गव तथा शौनक ने कहा है।

जन्ममासनिषेधेऽपि दिनानि दश वर्जयेत् । आरभ्य जन्मदिवसाच्छुभाः स्युस्तिथयोऽपरे ॥

जन्म और महिने के निषेध में भी जन्मदिन के आरंभ से दश दिन त्याग दे। उस मास की अन्य तिथियाँ शुभ हैं।

ग्रन्थान्तरे—व्रते जन्मत्रिखारिस्थो जीवोऽपीष्टोऽर्चनात्सकृत् ।
शुभातिकाले तुर्याष्टव्ययस्थो द्विगुणार्चनात् ॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि—यज्ञोपवीत में पहला, तीसरा, दशवाँ, तथा छटा बृहस्पति भी एकवार पूजन करने से उत्तम है। कर्म का अतिकाल हो जाने से छठा और आठवाँ और बारहवाँ द्विगुणित अर्चन से शुभ है।

शुद्धिर्नैव गुरोर्यस्य वर्षे प्राप्तेऽष्टमे यदि । चैत्रे मीनगते भानौ तस्योपनयनं शुभम् ॥

यदि आठवें साल में जिसके बृहस्पति की शुद्धि नहीं होती है। उसका चैत्रमास में मीन में गये सूर्य में उपनयनसंस्कार करना शुभ है।

जन्मभादष्टमे सिंहे नीचे वा शत्रुभे गुरौ । मौञ्जीबन्धः शुभः प्रोक्तश्चैत्रे मीनगते रवौ ॥

जन्मराशि से आठवें, सिंहराशि में या मकरराशि में और शत्रुग्रहकी राशि में स्थित बृहस्पति भी हो तो चैत्रमास के मीन के सूर्य में मौञ्जीबन्धन (यज्ञोपवीतसंस्कार) शुभ है।

नारदः—बालस्य बलहीनोऽपि शान्त्या जीवो बलप्रदः ।
यथोक्तवत्सरे कार्यमनुक्ते चोपनायनम् ॥ शान्तिश्चाग्रे वक्ष्यते ।

नारद ने कहा है कि—बालक का बलहीन भी बृहस्पति हो तो वह शान्ति से बलवान् हो जाता है। कहे हुए साल में या बिना कहे हुए वर्ष में यज्ञोपवीत करे। शान्ति को तो आगे कहेगें।

(उपनयसंस्कारे तिथ्यादिविचारकथनम्)

ज्योतिर्निबन्धे नृसिंहः—तृतीया पञ्चमी षष्ठी द्वितीया चापि सप्तमी ।
उभयोः पक्षयोश्चैव विशेषेण सुपूजिताः ॥

ज्योतिर्निबन्ध में कहा है कि—तृतीया, पञ्चमी, षष्ठी, द्वितीया और सप्तमी ये सब दोनों पक्ष की तिथियों में विशेषकर पूजित है।

धर्मकामौ सिते पक्षे कृष्णे च प्रथमा तथा । शुक्लत्रयोदशीं केचिदिच्छन्ति मुनयस्तथा ॥

धर्म (दशमी) और काम (त्रयोदशी) शुक्लपक्ष में कृष्णपक्षकी प्रतिपदा तथा शुक्लपक्ष की त्रयोदशी कोई मुनिगण इच्छा करते हैं।

टोडरानन्दे वसिष्ठः—नैमित्तिकमनध्यायं कृष्णे च प्रतिपद्दिनम् । मेखलाबन्धने शस्तं चौले वेदव्रतेष्वपि ॥ प्रशस्ता प्रतिपत्कृष्णे न पूर्वापरसंयुता ॥

एतदतीतकालस्यार्तस्य वटोरुपनयनविषयम् । प्रशस्ता प्रतिपत्कृष्णे कदाचिच्छुभगे विधौ । चन्द्रं बलयुते लग्ने वर्षाणामतिलङ्घने । इति व्यासोक्तेरित्याहुः । एवं सप्तम्यपि तस्या गलग्रहत्वोक्तेः ।

टोडरानन्द में वसिष्ठ ने कहा है कि—नैमित्तिक अनध्यायदिन के कृष्णपक्ष की प्रतिपदा का दिन मेखलाबन्धन, चौल तथा वेदव्रतों में (उपाकर्म, वेदारंभ) उत्तम है। प्रतिपदा कृष्णपक्ष की उत्तम है पूर्वापरसंयुता न ग्रहण करे। अर्थात्—अमावास्या द्वितीया युक्त न करे। यह अतीतकाल आर्त (रोगी) और वटु के उपनयन के विषय में है।

व्यास ने कहा है कि—कृष्णपक्ष की प्रतिपदा तब उत्तम है जब की चन्द्रमा कदाचित् शुभ हो और चन्द्रमा लग्न में बलवान् हो तो कालातीत की व्यवस्था में शुभ है। इसप्रकार सप्तमी तथा त्रयोदशी को भी समझना चाहिये क्यों कि उसको गलग्रह कहा है।

बृहस्पतिः—शुक्लपक्षः शुभः प्रोक्तः कृष्णश्चान्त्यत्रिकं विना।

बृहस्पति ने कहा है कि—कृष्णपक्ष के अन्त्य की तीन तिथियों को त्याग कर शुक्लपक्ष को शुभप्रद कहा है।

तथा—मिथुने संस्थिते भानौ ज्येष्ठमासो न दोषकृत्।

और मिथुन के सूर्य में ज्येष्ठमहिने में का दोष नहीं होता है।

(गलग्रहे उपनयनसंस्कारनिषेधकथनम्)

मदनरत्ने नारदः—विनर्तुना वसन्तेन कृष्णपक्षे गलग्रहे।
अपराह्णे चोपनीतः पुनः संस्कारमर्हति॥

मदनरत्नमें नारदने कहा है कि—वसन्तऋतु के विना ऋतुमें, कृष्णपक्ष में और गलग्रह में जिसका यज्ञोपवीत [1]अपराह्ण में हो चुका है वह फिरसे संस्कार के योग्य होता है।

(अपराह्णलक्षणकथनम्)

अपराह्णस्त्रेधाविभक्तदिनतृतीयांश इत्युक्तं तत्रैव।

वहींपर कहा है कि—अपराह्ण का तीन भाग दिन का कर उसके तीसरे भागको अपराह्ण कहते हैं।

(गलग्रहलक्षणम्)

वसन्ते गलग्रहो न दोषायेत्यर्थः।

वसन्त में गलग्रह दोष नहीं होता है—यह अर्थ है।

नारदः—कृष्णपक्षे चतुर्थी च सप्तम्यादिदिनत्रयम्।
त्रयोदशीचतुष्कं च अष्टावेते गलग्रहाः॥

नारदने कहा है कि—कृष्णपक्षकी चतुर्थी, सप्तमीसे तीनदिन और त्रयोदशी से चारदिन ये आठदिन गलग्रह होते हैं। अर्थात्—इन तिथियों की गलग्रहसंज्ञा है।

वसिष्ठः—पापांशकगते चन्द्रे अरिनीचस्थितेऽपि च।
अनध्याये चोपनीतः पुनः संस्कारमर्हति॥

वसिष्ठ ने कहा है कि—पाप के नवांशमें चन्द्रमा के जानेपर, शत्रु नीच का स्थित हो और अनध्याय (यह अनध्याय नित्य और नैमित्तिक परक है) में उपनयनसंस्कार होनेपर उसका फिरसे उपनयसंस्कार करना चाहिये।

अनध्यायस्य पूर्वेद्युस्तस्य चैवापरेऽहनि। व्रतबन्धं विसर्गं च विद्यारम्भं न कारयेत्॥

अनध्याय के (यह अनध्यायपद नित्य और नैमित्तिक अनध्याय परक है और अनित्य अनध्यायपरक नहीं है) पहलेदिन या उसके दूसरेदिनमें व्रतबन्ध, विसर्जन (वेदोत्सर्ग-समावर्तन) और वेदारंभ न करावे।

राजमार्तण्डः—आरम्भानन्तरं यत्र प्रत्यारम्भो न सिद्ध्यति।
गर्गादिमुनयः सर्वे तमेवाहुर्गलग्रहम्॥

१—स्कान्दे—ऊर्ध्वं सूर्योदयात्पूर्वं मुहूर्तानां तु पञ्चकम्। पूर्वाह्णः प्रथमः प्रोक्तो मध्याह्नस्तु ततः परम्॥ अपराह्णस्ततः प्रोक्तो मुहूर्तानां तु पञ्चमम्। 'ज्योतिर्मानवे—सर्वदेशेषु पूर्वाह्णे मुख्यं स्यादुपनायकम्। मध्याह्ने मध्यमं प्रोक्तं परा‍ह्णे तु गर्हितम्॥

राजमार्तण्ड ने कहा है कि—आरंभ के (बृहवृचशाखा से भिन्नोंका उपनयनदिनमें वेदारंभ होता है) अनन्तर (उसके दूसरे दिनमें अनध्यायवशसे वेदारंभ नहीं हो सकता है) जहाँपर प्रत्यारंभ नहीं सिद्ध होता है। गर्ग आदि सब मुनियोंने उसीको गलग्रह कहा है।

ज्योतिर्निबन्धे—अष्टकासु च सर्वासु युगमन्वन्तरादिषु। अनध्यायं प्रकुर्वीत तथा सोपपदास्वपि॥

ज्योतिर्निबन्ध में कहा है कि—सब अष्टकाओं में, युगादि (वैशाखमासस्य तु या तृतीया नवम्यसौ कार्तिकशुक्लपक्षे। नभस्यमासस्य तमिस्रपक्षे त्रयोदशी पञ्चदशी च माघे॥ एते युगाद्याः कथिताः पुराणे।) में तथा मन्वादियों (आश्वयुक्शुक्लनवमी द्वादशी कार्तिके तथा। तृतीया चैत्रमासस्य तथा भाद्रपदस्य च॥ फाल्गुनस्याप्यमावास्या पौषस्यैकादशी तथा। आषाढस्यापि दशमी तथा माघस्य सप्तमी॥ श्रावणे चाष्टमी कृष्णा तथाऽऽषाढे च पूर्णिमा। कार्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्यैष्ठी पञ्चदशी तथा॥ मन्वन्तरादयश्चैताः।) में और सोपदादियों में भी अनध्याय करे।

(सोपपदापरिगणनम्)

सोपपदास्तु स्मृत्यर्थसारे—सिता ज्येष्ठे द्वितीया च आश्विने दशमी सिता।
चतुर्थी द्वादशी माघे एताः सोपपदाः स्मृताः॥ एवं प्रदोषदिनं वर्ज्यम्।

स्मृत्वर्थसार में सोपपदा कही हैं। ज्येष्ठशुक्लपक्ष की द्वितीया, आश्विनशुक्लपक्ष की दशमी और द्वादशीतिथि ये सब 'सोपपदा' कही गयी हैं। इसप्रकार प्रदोषदिन को त्याग देना चाहिये।

(प्रदोषस्वरूपकथनम्)

प्रदोषस्वरूपमाह गोभिलः—षष्ठी च द्वादशी चैव अर्द्धरात्रोननाडिका।
प्रदोषमिह कुर्वीत तृतीया तूनयामिका॥

प्रदोषका स्वरूप गोभिल ने कहा है कि—यहाँपर षष्ठी और द्वादशी ये आधीरात से ऊन (एक) नाडी कम हों तथा तृतीया एकघडी कम हो तो प्रदोष करे।

ज्योतिर्निबन्धे व्यासः—या चैत्रवैशाखसिता तृतीया माघस्य सप्तम्यथ फाल्गुनस्य।
कृष्णे द्वितीयोपनये प्रशस्ता प्रोक्ता भरद्वाजमुनीन्द्रमुख्यैः॥ अत्रापि कृष्णप्रतिपद् ज्ञेयम्।

ज्योतिर्निबन्ध में व्यासने कहा है कि—जो चैत्र तथा वैशाखमास के शुक्लपक्ष की तृतीया, माघमास के शुक्लपक्ष की सप्तमी और फाल्गुनमासके कृष्णपक्ष की द्वितीया (किसी के मत से तृतीया) उपनयन में भरद्वाज मुनि आदि मुख्यों ने श्रेष्ठ कही गयी है। यहाँपर भी कृष्णप्रतिपद् की तरह जानना चाहिये।

(वृद्धगार्ग्यमतमाह)

यत्तु वृहद्गार्ग्यः—अनध्याये प्रकुर्वीत यस्तु नैमित्तिको भवेत्। सप्तमी माघशुक्ले तु तृतीया चाक्षया तथा॥ बुधत्रयेन्दुवाराश्च शस्तानि व्रतबन्धने॥ इति, तत्प्रायश्चित्तार्थोपनयनविषयम्।

जो वृद्धगार्ग्यने कहा है कि—जो निमित्तवश किया जाता है वह अनध्याय में करे। माघमास के शुक्लपक्ष की सप्तमी, अक्षयतृतीया, बुधवार, गुरुवार और शुक्रवार व्रतबन्ध (यज्ञोपवीत) में उत्तम है। वह प्रायश्चित्तार्थ उपनयन के विषयमें है।

स्वाध्यायवियुजो घस्राः कृष्णप्रतिपदादयः। प्रायश्चित्तनिमित्ते तु मेखलाबन्धने मताः॥ इति तेनैवोक्तेरिति निर्णयामृतकालादर्शौ।

निर्णयामृत और कालादर्शमें उन्होंने कहा है कि—स्वाध्याय से वर्जित दिनों में और कृष्णपक्ष की प्रतिपदा आदि में तथा प्रायश्चित्तनिमित्तकमें मेखलाबन्धन उत्तम है।

यद्यपि 'अथोपेतपूर्वस्य' इत्युक्त्वा अनिरुक्तं परिदानं कालश्च'इत्याश्वलायनेन पुनरुपनयने कालानियम उक्तस्तथापि निमित्तानन्तरमेव सः। तदानीमकरणे तु पूर्वोक्तकालो ज्ञेयः। प्रतिवेदमुपनयने कालानियम इति तु युक्तम्।

यद्यपि 'अथोपेतपूर्वस्य' ऐसा कहने के बाद 'अनिरुक्तं परिदानं कालश्च' इत्यादि आश्वलायनक वचनों से फिरसे उपनयन के कालनियम कहे हैं। फिर भी वह निमित्तान्तर ही है। इससमय उसके नहीं कहने में पूर्वोक्तकाल को जानना चाहिये। प्रतिवेदके उपनयनकालमें कालका अनियम तो युक्त है।

गर्गः—ग्रहे रवीन्दोरवनिप्रकम्पे केतूद्गमोल्कापतनादिदोषे।
व्रते दशाहानि वदन्ति तज्ज्ञास्त्रयोदशाहानि वदन्ति केचित् ॥

गर्गने कहा है कि—सूर्य तथा चन्द्रमा को ग्रहण में, भूमिके कम्पनमें, केतु के उद्गम (निकलने) में उल्कापतन आदि में और यज्ञोपवीतमें जानकार दशदिन (गर्गः—चन्द्रसूर्योपरागे तु त्र्यहं प्रागशुभं भवेत्। सप्ताहमशुभं पश्चात्स्मृतं ग्रहणसूतकम् ॥ स्मृत्यन्तरे—सर्वग्रासे तु सप्ताहमर्धग्रासे दिनत्रयम्। त्रिद्व्येकाङ्गुलतो ग्रासे दिनमेकं तु वर्जयेत्। पञ्चदिनानि वसिष्ठस्त्रिदिनं गर्गस्तु कौशिकस्त्वेकम् ॥ च्यवनाचार्यस्य मते पञ्च-मुहूर्तं दूषयति राहुः ॥ त्याग दे। कोई तो तेरहदिन को कहते हैं।

सङ्कटे तु चण्डेश्वरः—दाहे दिशां चैव धराप्रकम्पे वज्रप्रपातेऽथ विदारणे च।
केतौ तथोल्कांशुकणप्रपाते त्र्यहं न कुर्याद् व्रतमङ्गलानि ॥

संकट में तो चण्डेश्वरने कहा है कि—दिशाओंके दाहमें, भूमिके कंपन में, वज्र के गिरने में, विदारण में, केतु तथा उल्काके कणोंके गिरनेमें तीनदिन तक व्रत–यज्ञोपवीत मंगलकार्यों को न करे।

तत्रैव—वेदव्रतोपनयने स्वाध्यायाध्ययने तथा। न दोषो यजुषां सोपपदास्वध्ययनेऽपि च।

वहींपर कहा है कि—यजुर्वेदशाखावालों के लिये—सोपपदा (ज्येष्ठशुक्लपक्ष की द्वितीया, आश्विन शुक्लमास की दशमी और माघमास के शुक्लपक्ष की चतुर्थी तथा द्वादशीतिथि) की आदितिथियों में वेदव्रत, उपनयन तथा स्वाध्याय अध्ययन के आदिमें यजुर्वेदियों को कोई दोष नहीं होता है।

(उपनयने नक्षत्रादिनिर्णयः)

हेमाद्रौ ज्योतिषे—हस्तत्रये पुष्यधनिष्ठयोश्च पौष्णाश्विसौम्यादितिविष्णुभेषु।
शस्ते तिथौ चन्द्रबलेन युक्ते कार्यौ द्विजानां व्रतबन्धमोक्षौ ॥

हेमाद्रि में ज्योतिष ने कहा है कि—हस्त, चित्रा और स्वाती, पुष्य, धनिष्ठा, रेवती, अश्विनी, मृगशिरा, पुनर्वसु और श्रवण इन नक्षत्रों में तथा विहित तिथियों में चन्द्रबल से युक्त होनेपर व्रतबन्ध और समावर्तन द्विजोंको करना चाहिये।

ज्योतिर्निबन्धे नारदः—श्रेष्ठान्यर्कत्रयान्त्येज्यचन्द्रादित्युत्तराणि च।
विष्णुत्रयाश्विमित्राब्जयोनिभान्युपनायने ॥

ज्योतिर्निबन्ध में नारदने कहा है कि—हस्तसे तीन नक्षत्र, रेवती, पुष्य, मृगशिरा, पुनर्वसु, तीनों उत्तरा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, अश्विनी, अनुराधा तथा रोहिणी ये नक्षत्र उपनयनमें शुभप्रद हैं।

बृहस्पतिः—त्रिषूत्तरेषु रोहिण्यां हस्ते मैत्रे च वासवे। त्वाष्ट्रे सौम्यपुनर्वस्वोरुत्तमं ह्युपनायनम् ॥

बृहस्पति ने कहा है कि—तीनों उत्तरा (उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद), रोहिणी, हस्त, अनुराधा, धनिष्ठा, चित्रा, मृगशिरा और पुनर्वसु, नक्षत्रों में उपनयनसंस्कार करना उत्तम है।

ज्योतिर्निबन्धे—पूर्वाहस्तत्रये सार्पश्रुतिमूलेषु बह्वृचाम्। यजुषां पौष्णमैत्रार्कादित्यपुष्यमृदु-ध्रुवैः ॥ सामगानां हरीशार्कवसुपुष्योत्तराश्विभैः। धनिष्ठादितिमैत्रार्केष्विन्दुपौष्णेष्वथर्वणाम्।

ज्योतिर्निबन्ध में कहा है कि—तीनों पूर्वा (पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपद) हस्तत्रय (हस्त, चित्रा और स्वाती), आश्लेषा, श्रवण तथा मूलमें बह्वृच (ऋग्वेदी) शाखावालों को शुभ है। यजुर्वेदियों को रेवती, अनुराधा, हस्त, पुनर्वसु, पुष्य, मृदु (मृगशिरा, चित्रा, अनुराधा, रेवती), ध्रुवनक्षत्र (तीनों उत्तरा, रोहिणी,) शुभ हैं। सामवेदियों को श्रवण, आर्द्रा, हस्त, धनिष्ठा, पुष्य, तीनों उत्तरा तथा अश्विनी शुभ है तथा अथर्ववेदियों को धनिष्ठा, पुनर्वसु, अनुराधा, हस्त, मृगशिरा और रेवती शुभ हैं।

राजमार्तण्डस्तु ब्राह्मणस्य पुनर्वसुं निषेधयति—ताराचन्द्रानुकूलेषु ग्रहाब्देषु शुभेष्वपि।
पुनर्वसौ कृतो विप्रः पुनः संस्कारमर्हति ॥

राजमार्तण्डने तो ब्राह्मण के लिए पुनर्वसु का निषेध कहा है कि—तारा (जन्मादिक नौ तारायें) और चन्द्रमा के अनुकूल में, ग्रह तथा वर्षों के भी शुभ होनेपर यदि 'पुनर्वसु' में ब्राह्मण का यज्ञोपवीतसंस्कार हुआ हो तो वह फिर से करे।

ज्योतिर्निबन्धे नारदः—सर्वेषां जीवशुक्रज्ञवाराः प्रोक्ता व्रते शुभाः। चन्द्रार्कौ मध्यमौ ज्ञेयौ सामबाहुजयोः कुजः॥ शाखाधिपतिवारश्च शाखाधिपबलं तथा। शाखाधिपतिलग्नं च दुर्लभं त्रितयं व्रते॥

ज्योतिर्निबन्ध में नारदने कहा कि—बृहस्पतिवार, शुक्रवार और बुधवार सबोंके यज्ञोपवीतसंस्कारमें शुभ हैं। सोमवार और रविवार यज्ञोपवीत संस्कार में मध्यम हैं। सामवेदी तथा क्षत्रिय के यज्ञोपवीत में मंगलवार उत्तम है। शाखाके अधिपति (स्वामी) का वार, शाखाधिप का बल और शाखाधिपति का लग्न ये तीन यज्ञोपवीतमें दुर्लभ हैं।

(शाखाधिपाः)

शाखाधिपाश्च रत्नसङ्ग्रहे—ऋगथर्वसामयजुषामधिपा गुरुसौम्यभौमसिताः।
जीवसितौ विप्राणां, क्षत्रस्यारोष्णगू, विशां चन्द्रः॥ इति।

शाखाधियों को रत्नसंग्रहमें कहा है कि—ऋग्वेद, अथर्ववेद, सामवेद और यजुर्वेदके स्वामी क्रमसे गुरु, बुध, मंगल तथा शुक्र हैं। उसमें वर्णों के अधिपति गुरु तथा शुक्र हैं। क्षत्रिय के मंगल और सूर्य हैं तथा वैश्योंके अधिपति चन्द्रमा हैं।

(ऋगादिभेदेन निषिद्धवारकथनम्)

पारिजाते बृहस्पतिः—बह्वृचानां गुरोर्वारे यजुर्वेदजुषां बुधे। सामगानां धरासूनोरथर्वविदुषां रवेः॥ अत्र लग्नशुद्ध्यादि दैवज्ञेभ्यो ज्ञेयम्। विस्तरभयान्नोच्यते।

पारिजात में बृहस्पति ने कहा है कि—ऋग्वेदियोंका गुरुवार, यजुर्वेदियों का बुधवार, सामवेदियों का मंगलवार और अथर्वेदियों का रविवार में उपनयन विहित है। यहाँपर लग्नशुद्ध्यादि ज्योतिषियों से जानना चाहिये। विस्तार के भय से नहीं कहते हैं।

(पूर्वसन्ध्यायां मेघगर्जने उपनयनसंस्कारकर्मनिषेधकथनम्)

लल्लः—व्रतेऽह्नि पूर्वसन्ध्यायां वारिदो यदि गर्जति। तद्दिने स्यादनध्यायो व्रतं तत्र विवर्जयेत्॥

लग्नने कहा है कि—व्रत के पहले दिन सन्ध्यामें यदि मेघ गर्जता है तो उसदिन अनध्याय होती है उसमें व्रत (यज्ञोपवीत) को (विशेषकर) त्याग दे।

(नान्दीश्राद्धानन्तरं गर्जने बह्वृचातिरिक्तानामुपनयनसंस्कारादौ विचारः)

ज्योतिर्निबन्धे—नान्दीश्राद्धं कृतं चेत्स्यादनध्यायस्त्वकालिकः।
तदोपनयनं कार्यं वेदारम्भं न कारयेत्॥

एतद्बह्वृचातिरिक्तानाम्, तेषां तद्दिने वेदारम्भाभावात्। अतस्तेषामुपनयनं न भवत्येव।

ज्योतिर्निबन्ध में कहा है कि—नान्दीश्राद्ध करने के बाद विना समय की अनध्याय हो जाय तो उपनयनसंस्कार करे तथा वेद का आरंभ न करावे। यह बहवृचशाखावालों से अतिरिक्तों के लिए है। उनलोगों का (अर्थात्—बहवृचशाखावालों का) उस दिन में वेदारंभ का अभाव है। इसलिए उनलोगों का उपनयन ही नहीं होता है।

ऐतरेयोपनिषदि—मृगादिज्येष्ठान्तं वर्षर्तुः, तं विना वर्षादौ त्रिरात्रम् अनध्यायः। इति वेदभाष्ये उक्तम्। एतच्च प्रातः स्तनिते, सायं स्तनिते तु दिवैव चरुं श्रपयित्वा सायंसन्ध्योत्तरं होमं कुर्यात्।

ऐतरेयोपनिषदमें मृगादि से ज्येष्ठा तक वर्षाऋतु है। उसको छोड़कर वर्षाऋतु में तीनदिन अनध्याय होती है। ऐसा वेदभाष्य में कहा है और यह प्रातःकाल के गर्जन में है सायंकाल के गर्जन में तो दिन में ही चरुका श्रवण (पकाकर) सायंकाल की सन्ध्या के बाद होम करे।

(सायं मेघगर्जने ओदनपचननिषेधकथनम्)

न सन्ध्यागर्जिते काले न वृष्ट्युत्पातदूषिते। ब्रह्मौदनं पचेदग्नौ पक्वमन्नं निवर्तते॥ ब्रह्मौदनं पचेदग्नौ पक्वमन्नं न दुष्यति॥ इति संग्रहोक्तोरिति प्रयोगरत्ने भट्टचरणाः।

सन्ध्याकाल में यदि मेघगर्जन करे तो या वृष्टि इत्यादि के उत्पात से दूषित समय हो तो ब्रह्मोदन न पकावे। यदि पकाने के बाद गर्जन हो तो उसकी निवृत्ति नहीं होती है। ब्रह्मोदन के पकने पर पकान्न दूषित नहीं होता है। यह संग्रह में प्रयोगरत्न में भट्टचरण ने कहा है।

(शान्तिरप्युक्ता)

अत्र शान्तिरप्युक्ता । नृसिंहप्रसादे—ब्रह्मौदनविधेः पूर्वं प्रदोषे गर्जितं यदि ।
तदा विघ्नकरं ज्ञेयं वटोरध्ययनस्य तत् ॥

यहाँपर नृसिंहपुराणमें शान्ति भी कही है कि—[1]ब्रह्मोदनविधि के पूर्व प्रदोष में यदि मेघ का गर्जन हो तो वटु (ब्रह्मचारी) का अध्ययन विघ्नको देने वाला होता है—ऐसा जानना चाहिये ।

(शान्तिप्रयोगकथनम्)

तस्य [2]शान्तिप्रकारं तु वक्ष्ये शास्त्रानुसारतः । प्रधानं पायसं साज्यं द्रव्यं शान्तियजौ भवेत् ॥

उसकी शान्ति का प्रकार शास्त्र के अनुसार कहता हूँ शान्तिहवन में पायस और घृत प्रधान द्रव्य है ।

[3]सूक्तं बृहस्पतेर्विद्वान् पठेत्प्रज्ञाविवृद्धये । गायत्री चैव मन्त्रः स्यात्प्रायश्चित्तं तु सर्पिषा ॥

विद्वान् 'बृहस्पतिसूक्त' को बुद्धि के बढने के लिये पढ़े । गायत्री ही मन्त्र है प्रायश्चित्तहोम घृत से करे ।

१—अस्योपनीतस्यामुकशर्मणो ब्रह्मौदनविधेः प्राग्गर्जितादिसूचिताध्ययनविघ्ननिरसनद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं शान्तिं करिष्ये । इति संकल्प्य गणेशादिपूजनं समाप्य स्थण्डिलेऽग्निं प्रतिष्ठाप्य सूर्यस्याष्टोत्तरशतमाज्यपायसाहुतिभिः शेषेणेत्यादि-हस्तेन गायत्रीमन्त्रेण १०८ प्रधानहोमः । तत आचार्यो यस्तस्तम्भेति (ऋ०अ० ४ सू०५०, म० १–११) बृहस्पतिसूक्तं पठेत् । ततः स्विष्टकृदादिकर्मशेषं समाप्य सवत्सां धेनुकाचार्याय दद्यात् । ततः–अष्टोत्तरशतं ब्राह्मणभोजनं संकल्प्य ब्रह्मौदनं पचेदिति ।

२—स्कान्दे—कन्या विवाहकाले तु शुद्धिर्यस्या न विद्यते । ब्राह्मणस्योपनेगुरोर्विधिरुदाहृतः ॥ एभिः पूजा गुरोः कार्या विधिवद् भक्तिभावितैः । मदन्तीकाकपुष्पाणि पत्रपालाशसर्षपाः । गुडुचीवान्यपामार्गविडङ्गं शङ्खिनी वचा । सहदेवी विष्णुकान्ता सर्वौषध्यः शतावरी ॥ तथैवाश्वत्थभङ्गाश्च पञ्चगव्यं जलं तथा । नूतनं सोदकुम्भं च पीतवस्त्रसमन्वितम् । पञ्चरत्नैः समायुक्तमीशान्यां स्थापितानलात् । या ओषधीति मन्त्रेण सर्वांस्तस्मिन्विनिक्षिपेत् ॥ कुंभस्योपरिभागे तु स्थापयित्वा बृहस्पतिम् । सुवर्णपात्रे सौवर्णां प्रतिमायां युधिष्ठिर ॥ कारयेत्तु यथाशक्त्या वितशाठ्यविवर्जितः । पीतवस्त्रयुगच्छन्नां पीतयज्ञोपवीतिकाम् । पूजयेद् गन्धपुष्पाद्यैस्ततो होमैः समाचरेत् । समिधोऽश्वत्थवृक्षस्य होम्या अष्टोत्तरं शतम् ॥ ततो होमावसाने तु पूजयेच्च बृहस्पतिम् । पीतगन्धैस्तथा पुष्पैर्धूपैर्दीपैश्च शक्तितः ॥ दध्योदनं च नैवेद्यं फलताम्बूलसंयुतम् । मन्त्रेणानेन कौन्तेय समभ्यर्च्य पुनः पुनः । नमस्तेऽङ्गिरसां नाथ वाक्पतेऽथ बृहस्पते । क्रूरग्रहैः पीडितानाममृताय नमो नमः ॥ पूजयित्वा सुराचार्यं पश्चादर्घ्यं निवेदयेत् । गंभीरदृढरूपाङ्गदेवेज्य सुमते प्रभो ॥ नमस्ते वाक्पते शान्त गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते । अर्घ्यं दत्वा सुरेशाय जपहोमं समापयेत् ॥ भक्त्या यत्ते सुराचार्य होमपूजादि यत्कृतम् । तत्त्वं गृहाण शान्त्यर्थं बृहस्पते नमो नमः ॥ मन्त्रेणानेन संकल्प्य पश्चात्सम्प्रार्थयेन्नृप । जीवो बृहस्पतिः सूरिराचार्यो गुरुरङ्गिराः ॥ वाचस्पतिर्देव-मन्त्री शुभं कुर्यात्सदा मम । एवं तं प्रार्थयेद्देवमाचार्यं च प्रपूजयेत् । सर्वोपस्करसंयुक्तां प्रतिमां तां युधिष्ठिर ॥ प्रणम्य च गवा युक्तामाचार्याय निवेदयेत् । अथाचार्यस्तु नियतो वेदवेदाङ्गपारगः ॥ यजमानं सपत्नीकं शान्तचित्तं जितेन्द्रियम् । कुंभोदकं गृहीत्वा तु मन्त्रैस्तैः प्रसिञ्चयेत् ॥ इदमापोऽथ मन्त्रेण तामग्निमित्यृचा तथा । या ओषधीरश्वावतीः कूष्माण्डैश्चा-भिषेचयेत् ॥ एवं पूजां गुरोः कृत्वा सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।

वरस्य भास्करं लग्नं कन्यायाश्च गुरोर्बलम् । इति वचनात् वरस्य रविबलाभावे कुमारस्योपनयने च दुष्टादौ रविशान्तिमाह शौनकः—ब्राह्मणस्योपनयने नानुकूलो भवेद्रविः । तस्य शान्तिं प्रवक्ष्यामि मन्त्रौषधिविधानतः । उपायनात्तु पूर्वेद्युः कृत्वा पुण्याहवाचनम् । गृहस्येशानदिग्भागे गोमयेनोपलेपयेत् ॥ कुङ्कुमेनोल्लिखेत्पद्ममष्टपत्रं सकेशरम् । सुवर्णेन रविं कृत्वा द्विभुजं पद्मधारिणम् ॥ कृत्वाज्यभागपर्यन्तं तन्त्रं कृत्वा तु पूर्ववत् । स्वशाखोक्तविधानेन आचार्यो होम-माचरेत् ॥ आ कृष्णेनेति मन्त्रेण समिदाज्यचरून् हुनेत् । अष्टोत्तरसहस्त्रं वा शतमष्टोत्तरं तु वा ॥ तिलव्रीहींश्च हुत्वाऽथ होमशेषं समापयेत् । दारपुत्रसमेतस्य ऋत्विग्भिरभिषेचयेत् ॥ कुंभाभिमन्त्रणोक्तैश्च समुद्रज्येष्ठमन्त्रकैः । ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दत्वा आचार्याय च शक्तितः ॥ प्रतिमां वस्त्रयुग्मं च आचार्याय प्रदापयेत् । एवं यः कुरुते शान्तिं सर्वदोषो विनश्यति ॥

३—यस्तस्तंभ सहसा वि ज्मो अन्तान् बृहस्पतिस्त्रिषधस्थो रवेण । तं प्रत्नास ऋषयो दीध्यानाः पुरो विप्रा दधिरे मन्द्रजिह्वम् १ धुनेतयः सुप्रकेतं मदन्तो बृहस्पते अभि ये नस्ततस्रे । पृषन्तं सृप्रमदब्धमूर्वं बृहस्पते रक्षतादस्य योनिम् २ बृहस्पते या परमा परावदत आ त ऋतस्पृशो निषेदुः । तुभ्यं खाता अवता अद्रिदुग्धा मध्वः श्चोतन्त्यभितो विरप्शम् ३ बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन् । सप्तास्यस्तुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत्तमांसि ४ स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन बलं रुरोज फलिगं रवेण । बृहस्पतिरुस्रिया हव्यसूदः कनिक्रदद्वावशतीरुदाजत् ५ एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः । बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम् ६ स इद्राजा प्रतिजन्यानि विश्वा

धेनुं सवत्सकां दद्यादाचार्याय पयस्विनीम् । ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चात्ततो ब्रह्मौदनं चरेत् ॥

आचार्य को दूध देनेवाली सवत्सा गौ दे । ब्राह्मणभोजन करावे फिर ब्रह्मौदन की विधि को करे ।

(उपनयने अधिकारीकथनम्)

उपनयने चाधिकारिणो माधवीये वृद्धमनुनोक्ताः—पिता पितामहो भ्राता ज्ञातयो गोत्रजाऽग्रजाः। उपानयेऽधिकारी स्यात्पूर्वाभावे परः परः ॥

उपनयन में अधिकारियों का वर्णन माधवीय में वृद्धमनु ने कहा है कि—पिता, पितामह (दादा), भाई (सहोदर नहीं), असगोत्र सपिण्ड मातामह आदि, सगोत्र सपिण्ड—पितृव्य पुत्रादि, वटुक अधिक आयुवाले,(चाचाके अभाव में ही ज्येष्ठ भाई का अधिकार है । (तदभावे तु सोदरः । इस नियम से) इनका उपनयन में अधिकार है । इसमें पूर्वाभाव में आगे आगे वालों का अधिकार है । (अर्थात्—पिताके अभाव में पितामह का, पितामह के अभाव में भाई का भाई के अभाव में असगोत्र सपिण्ड मातामहादिका, उसके अभाव में पितृव्यादिका, उसके अभाव में वटु के अग्रज का अधिकार होता है) ।

प्रयोगरत्ने—पितैवोपनयेत्पुत्रं तदभावे पितुः पिता । तदभावे पितुर्भ्राता तदभावे तु सोदरः ॥

प्रयोगरत्नमें कहा है पिता ही पुत्रका उपनयन करे । उसके अभावमें पिताका पिता (अर्थात्–पितामह) उसके अभाव में पिता का भाई और उसके अभाव में सहोदर भाई करे ।

(क्षत्रियादेः पुरोहित एव कर्ता)

पितेति विप्रपरं न क्षत्रियादेः । तेषां पुरोहित एव उपनयनस्य दृष्टार्थत्वात्, तेषां चाध्यापनेऽनधिकारात् ।

'पिता' यह ब्राह्मण परक है । क्षत्रिय और वैश्य के लिए नहीं है । उनका पुरोहित ही उपनयन का दृष्टार्थ है । क्योंकि उन दोनों का (क्षत्रिय और वैश्य का) अध्यापन में अनधिकार है ।

(पितृव्यस्य ज्येष्ठभ्रात्रभावे अधिकारकथनम्)

अत्र पितृव्यस्य ज्येष्ठभ्रात्रभावेऽधिकारः । असंस्कृतास्तु संस्कार्या भ्रातृभिः पूर्वसंस्कृतैः । इति याज्ञवल्क्योक्तेः । तेनेदमविभक्तपरम्, पूर्वं तु विभक्तपरम् । मातुः रजोदोषे तु प्रागुक्तम् ।

यहाँपर पितृव्य का बड़े भाई के अभाव में अधिकार है । (पितुरूर्ध्वं विभजद्भिर्भ्रातृभिरसंस्कृता भ्रातरः समुदायद्रव्येण संस्कर्तव्याः) याज्ञवल्क्य ने कहा है कि—(व्यवहाराध्याय–श्लोक १२४) पिता के बाद विभाग हुए भाईयों से असंस्कृत भाईयों का समुदायद्रव्य से संस्कार करना चाहिये । इससे यह अविभक्त परक है । पूर्वमें तो विभक्त परक कहा है । माता के रजोदोष में तो पहले कहा है ।

(उपनयने पण्ढमूकादीनां विशेषकथनम्)

अथ पण्ढमूकादीनां विशेषः । प्रयोगपारिजाते ब्राह्मे—ब्राह्मण्यां ब्राह्मणाज्जातो ब्राह्मणः स इति श्रुतिः । तस्माच्च पण्ढबधिरकुब्जवामनपङ्गुषु ॥ जडगद्गदरोगार्तशुष्काङ्गविकलाङ्गिषु । मत्तोन्मत्तेषु मूकेषु शयनस्थे निरिन्द्रिये ॥ ध्वस्तपुंस्त्वेषु चैतेषु संस्काराः स्युर्यथोचितम् । मत्तोन्मत्तौ न संस्कार्याविति केचित्प्रचक्षते ॥ कर्मस्वनधिकाराच्च पातित्यं नास्ति चैतयोः । तदपत्यं च संस्कार्यमपरे त्वाहुरन्यथा ॥

पण्ढ (नपुंसक) मूकादियों का तो विशेष प्रयोगपारिजात और ब्रह्मपुराण में कहा है कि है—ब्राह्मणी में ब्राह्मण द्वारा उत्पन्न ब्राह्मण होता है—ऐसा वेद कहता है । उससे ब्राह्मण से उत्पन्न हुए नपुंसक, (यहाँ पर अन्धादियों का भी उपलक्षण है) बधिर, वामन, पंगु, जड, तोतला, रोगी, शुष्क (अंग)

शुष्मेण तस्थावभि वीर्येण । बृहस्पतिं यः सुभृतं बिभर्ति वल्गूयति वन्दते पूर्वभाजम् ७ स इत्क्षेति सुधित ओकसि स्वे तस्मा इडा पिन्वते विश्वदानीम् । तस्मै विशः स्वयमेवा नमन्ते यस्मिन् ब्रह्मा राजनि पूर्व एति ८ अप्रतीतो जयति सं धनानि प्रतिजन्यान्युत या सजन्या । अवस्यवे यो वरिवः कृणोति ब्रह्मणे राजा तमवन्ति देवाः ९ इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पतेऽस्मिन् यज्ञे मन्दसाना वृषण्वसू । आ वां विशन्त्विन्दवः स्वाभुवोऽस्मे रयिं सर्ववीरं नि यच्छतम् १० बृहस्पत इन्द्र वर्धतं नः सचा सा वां सुमतिर्भूत्वस्मे । अविष्टं धियो जिगृतं पुरन्धीर्जजस्तमर्यो वनुषामरातीः ११ (ऋ० ४ अ० ५ सू० ५० मं० १–११) ।

विकलाङ्गी, मत्त (नशेमें), उन्मत्त, (पागल) मूक, (गूंगा), निद्रालु, इन्द्रिय से रहित, जिनका पुंस्त्व नष्ट हो गया हो उनका भी संस्कार यथोचित करे।

कोई कहते हैं कि—मत्त और उन्मत्तका संस्कार न करे। कर्मोंमें अधिकार नहीं है पर उनको पातित्य नहीं है तथा दूसरे अन्यथा कहते हैं कि—उनके लड़कों का संस्कार करे।

संस्कारमन्त्रहोमादीन् करोत्याचार्य एव तु। उपनेयांश्च विधिवदाचार्यस्य स्वसमीपतः॥

आनीयाग्निसमीपं वा सावित्रीं स्पृश्य वा जपेत्। कन्यास्वीकरणादन्यत्सर्वं विप्रेण कारयेत्॥

एवमेव द्विजैर्जातौ संस्कार्यौ कुण्डगोलकौ। इति।

मन्त्रद्वारा उनका संस्कार, होम आदि आचार्य ही करे। उपनयन करानेवाले योग्योंको आचार्य के समीप में या अग्नि के समीप में विधिवत् ले आकर उनका स्पर्शकर सावित्री (गायत्री) का जप करे। (मूक और बधिरादि को सावित्री वाचन असंभव है।)

कन्यादानस्वीकार को छोड़कर अन्य सब ब्राह्मण के द्वारा करावे। इसीप्रकार द्विजोंसे उत्पन्न हुए कुण्ड और गोलक का भी संस्कार करे।

स्मृत्यर्थसारेऽप्येवम्। कुण्डगोलकयोः संस्कार्यत्वं श्राद्धे निषेधश्च क्षेत्रजपुत्रविषयः। अन्यस्य 'विन्नास्वेषे विधिः स्मृतः' इति वचनात्। अब्राह्मण्येनोपनयाद्यप्राप्तेरित्यपरार्कः।

स्मृतिसार में भी यही कहा है। 'कुण्ड[1] और गोलक[2] का संस्कार तथा श्राद्ध में निषेध क्षेत्रज पुत्र (सवर्णासे उत्पन्न क्षेत्रज होता है) विषयक है। अन्यका विन्नाओं में यही विधि कही है—यह वचन है। अब्राह्मण्य से उपनयनादि अप्राप्त है—ऐसा अपरार्क ने कहा है।

(उपनयनात्पूर्वं कुमारस्य भोजनविचारः)

उपनयनं च कुमारं भोजयित्वा कार्यम्। प्रागेवैनं तदहर्भोजयन्ति' इति मदनपारिजाते गोभिलोक्तेः।

कुमारका भोजनकराकर उपनयन करे। क्योंकि—मदनपारिजातमें गोभिलने कहा है—उपनयन के पहले उस बालक को भोजन करावे।

(गायत्र्युपदेशे मतमतान्तरविचारः)

गायत्र्युपदेशश्चोत्तरतोऽग्नेः कार्यः। 'उत्तरेणाग्निमुपविशतः प्राङ्मुख आचार्यः प्रत्यङ्मुख इतरोऽधीहि भोः' इति शांखायनसूत्रोक्तेः।

यद्यपि कात्यायनेन—'अथास्मै सावित्रीमन्वाहोत्तरतोग्नेः प्रत्यङ्मुखाय' इत्युक्त्वा दक्षिणतस्तिष्ठत आसीनाय वैके, इति विकल्प उक्तः। तथापि कातीयानामेव सः। बह्वृचानां तूत्तर एव वेदैक्यात्।

गायत्रीका उपदेश अग्निके उत्तर करे। अग्निके उत्तर तरफ बैठे हुए बालकसे प्राङ्मुख (पश्चिमाभिमुख) आचार्य कहे कि—भो अधीहि, हे बटुक, अध्ययन करो। यह शांखायनसूत्र में कहा है। यद्यपि कात्यायनने कहा है कि—इसकेबाद उसके वास्ते अग्निके उत्तर प्रत्यङ्मुख हो सावित्री को कहे। यों कहकर या दक्षिण की तरफ बैठे हुए को उपदेश करे—इसमें विकल्प कहा है। फिर भी वह कातीयों (कात्यायनशाखावालों) के लिये है।

बह्वृचशाखावालों को तो उत्तर ही है। क्योंकि उनको एक[3] ही वेद है।

(भिक्षायां विशेषमाह)

भिक्षायां विशेषमाह कात्यायनः—मातरमेवाग्रे भिक्षेत्।

१—पति के जीवनकाल में जो स्त्री अन्य (जार) पुरुष के संपर्क से पुत्र पैदा कराती है। उस पुत्र को (कुण्ड) कहते हैं।

२—जिस स्त्री का पति मर गया हो उसके बाद परपुरुष द्वारा जो सन्तान पैदा होगी। उस सन्तान को गोलक कहा जाता है।

३—वस्तुतः गायत्री का उपदेश अग्नि के उत्तर होता है—यह आश्वलायनशाखावालों को नहीं है।

भिक्षामें विशेष कात्यायनने कहा है कि—पहले माता[1] से ही भिक्षा मांगना चाहिये।

पराशरमाधवीये—मातरं वा स्वसारं वा मातुर्वा भगिनीं निजाम्। भिक्षेत भिक्षां प्रथमं या चैनं न विमानयेत्॥

पराशरमाधवीय में कहा है कि—माता, बहिन और माताकी निजी बहिन से पहली भिक्षा मांगे। जो उसका अपमान न करे उससे मांगे।

(संस्कारलोपे प्रायश्चित्तकथनम्)

अथ संस्कारलोपे शौनकः—आरभ्याधानमाचौलात् कालेऽतीते तु कर्मणाम्। [2]व्याहृत्याग्निं तु संस्कृत्य हुत्वा कर्म यथाक्रमम्॥

अब संस्कारके लोपमें शौनक ने कहा है कि—गर्भाधान से लेकर चूडाकरणसंस्कारतक नवकर्मों का समय बीत गया हो तो (समस्त) व्याहृति से अग्निका संस्कार और हवनकर यथाक्रम से कर्म को करे।

एतेष्वेकैकलोपे तु पादकृच्छ्रं समाचरेत्। चूडायामर्द्धकृच्छ्रः स्यादापदि त्वेवमीरितम्॥ अनापदि तु सर्वत्र द्विगुणं द्विगुणं चरेत्॥

इनमें से एक एक कर्मका लोप हो गया हो तो पादकृच्छ्र करे। (अर्थात्—चूडाकरण को छोड़कर गर्भाधानादि संस्कारों का प्रमाद से त्याग किया हो तो प्रत्येकसंस्कार का पादकृच्छ्र प्रायश्चित्त करे) चूडाकरणसंस्कार के न करने पर अर्धकृच्छ्र करे। यह आपत्ति में कहा गया है। आपत्ति न होने पर सवत्र (अर्थात्—सब कर्मों के लोपमें) द्विगुण द्विगुण (अर्थात्—दूना दूना) प्रायश्चित्त करे।

पारिजाते कात्यायनः—लुप्ते कर्मणि सर्वत्र प्रायश्चित्तं विधीयते। प्रायश्चित्ते कृते पश्चाल्लुप्तं कर्म समाचरेत्॥ स्मृत्यर्थसारे चैवम्।

पारिजात में कात्यायनने कहा है कि—सब स्थलों में कर्म के लोप हो जाने पर प्रायश्चित्त का विधान किया है। प्रायश्चित्त करलेने वाद लोप हुए कर्म को करना चाहिये और स्मृत्यर्थसार भी यही है।

कारिकायां तु—प्रायश्चित्ते कृतेऽतीतं लुप्तं कम कृताकृतम्। इत्युक्तम्।

कारिका में तो कहा है कि—प्रायश्चित्त करनेवाद व्यतीत हुआ कर्म कृताकृत है—ऐसा कहा है।

प्रायश्चित्ते कृते पश्चादतीतमपि कर्म वै। कार्यमित्येक आचार्या नेत्यन्ये तु विपश्चितः॥ इति।

प्रायश्चित्त करने के वाद वीते हुए कर्म को करना चाहिये यह एक आचार्य का मत है। अन्य विद्वान् तो नहीं मानते हैं।

त्रिकाण्डमण्डने तु—कालातीतेषु कार्येषु प्राप्तवत्स्वपरेषु च। कालातीतानि कृत्वैव विदध्यादुत्तराणि तु इत्युक्तम्। तत्र सर्वेषां तन्त्रेण नान्दीश्राद्धं कुर्यात्, देशकालकर्त्रैक्यात्। गणशः क्रियमाणानां मातॄणां पूजनं सकृत्। सकृदेव भवेच्छ्राद्धमादौ न पृथगादिषु॥ इति।

त्रिकाण्डमण्डन में तो कहा है कि—कार्यों में समय के वीत जाने पर तथा दूसरे कर्मों की प्राप्ति हो जाय तो जो कर्म व्यतीत हो गये हैं उनको करके ही उत्तर (आनेवाले) कार्यों को करे। वहाँ पर तन्त्र से सबों का नान्दीश्राद्ध करे। क्योंकि—देश, काल और कर्ता एक है।

१—यद्यपि 'अप्रत्याख्यायिनमग्रे भिक्षेत' इस सूत्र में पुरुष की भिक्षा ही को प्राथम्यता दी है। फिर भी कात्यायन तथा अन्य वाक्यान्तरों से माता की भिक्षा को ही प्रथम में प्रधानता दी है। कहा है कि—जहाँ सूत्र की विशेष प्रवृत्ति न हो वहाँ स्त्री भिक्षा का प्राथम्य होता है। क्योंकि—वहाँ कोई विरोध नहीं है। यद्यपि 'भिक्षां भवान् ददातु अनुप्रवचनीय मिति वा (इस सूत्र में भिक्षा के मध्य में भवत् शब्द का प्रयोग कहा है। फिर भी 'भवत्पूर्वां ब्राह्मणो भिक्षेत, भवन्मध्यां राजन्यः, भवदन्त्यां वैश्यः) यह बहुमत है। जो सूत्र में कहा है कि भवत् शब्द मध्य में होगा वह क्षत्रिय परक है। या उपरोक्त सूत्र में जो भवत् शब्द को जो मध्य में कहा है वह पक्षान्तरविषय है। इत्यादि।

२—ॐ भूः स्वाहा। ॐ भुवः स्वाहा। ॐ स्वः स्वाहा। ॐ भू र्भुवः स्वः स्वाहा।

छन्दोगपरिशिष्टात्। एतद्बहूनामपत्यानां युगपत्संस्कारकरणविषयमिति बोपदेवः। अतीतसंस्काराणां युगपत्करण इत्यन्ये। तत्रापि चौलस्योपनीत्या सहेति पक्षे उपनीतिदिन एवानुष्ठानं न पूर्वदिने, सहत्वस्य दिवसैक्ये सन्निकृष्टतरत्वात्। वृद्धाचारोऽप्येवम्।

छन्दोगपरिशिष्ट में कहा है कि—किये हुए कर्मों में माताओं का पूजन एकवार होता है तथा आदि में एकवार ही नान्दीश्राद्ध होता है। अलग अलग नहीं होता है।

बोपदेव ने कहा है कि—यह (माताओं का पूजन और नान्दीश्राद्ध) बहुत [1]पुत्रों के एक साथ संस्कार करने विषय में हैं। अन्यका मत है कि—बीते हुए संस्कारों के एकसाथ करने के विषय में है। उसमें भी चूडाकरण का उपनयनसंस्कार के साथ उपनयन के दिन में ही अनुष्ठान (नान्दीश्राद्ध) करे पूर्वदिन में न करे। क्योंकि—साथ करने पर एकदिन में अत्यन्त समीप है। वृद्धोंका आचार भी यही है।

(उपनयनदिने मध्याह्नसन्ध्याकथनम्)

उपनीतिदिने मध्याह्नसन्ध्यामाह पारिजाते जैमिनिः—यावद् ब्रह्मोपदेशस्तु तावत्सन्ध्यादिकं न च। ततो मध्याह्नसन्ध्यादि सर्वं कर्म समाचरेत्॥ इति। ब्रह्म=गायत्री।

उपनयनदिनमें मध्याह्नसन्ध्या को पारिजात में जैमिनी ने कहा है कि—जबतक गायत्री का उपदेश न हो तब तक सन्ध्या आदि न करे। तदनन्तर मध्याह्नसन्ध्या आदि सब कर्मों का प्रारंभ करे। ब्रह्म माने=गायत्री।

यत्तु वचनम्—उपायने तु कर्तव्यं सायंसन्ध्ये उपासनम्। आरभेद् ब्रह्मयज्ञं तु मध्यान्हे परेऽहनि॥ इति, तच्छाखान्तरविषयमिति पारिजातः। विकल्प इति युक्तं पश्यामः।

जो यह वचन है कि—उपनयन में सायंकाल की सन्ध्या की उपासना करनी चाहिये। ब्रह्मयज्ञ तो मध्याह्नकालमें दूसरे दिन प्रारंभ करे। वह दूसरी शाखा के लिए है—यह पारिजात में कहा है। विकल्प है यही ठीक है—यह हम देखते हैं।

(उपनयनाग्निधारणविचारः)

उपनयनाग्निस्त्रिरात्रं धार्यः 'त्र्यहमेतमग्निं धारयन्ति' इत्यापस्तम्बोक्तेः। बौधायनसूत्रे तु सदा धारणमप्युक्तम्—उपनयनादिरग्निस्तमौपासनमित्याचक्षते, पाणिग्रहणादित्येके, नित्यो धार्योऽनुगतो निर्मन्थ्यः, इति। इदं जातारणिपक्षे। अन्यथा मन्थनासम्भवात्।

उपनयन की अग्नि को तीन राततक धारण करे। क्योंकि आपस्तंबने कहा है कि—इस अग्नि को तीन दिन तक धारण करे। बौधायनसूत्र में तो सदा ही धारण करना कहा है। कोई कहते हैं कि—उपनयन आदि की अग्निको औपासन अग्नि कहते हैं। उसको पाणिग्रहण (विवाह) तक धारण करे। नित्य धारण करे। अनुगत-अरणी से निर्मन्थ्य (अग्नि) है। यह [2]अरणिमन्थन पक्षमें है। अन्यथा अग्नि का मन्थन असंभव हो जायगा।

(ब्रह्मयज्ञे विशेषमाह)

ब्रह्मयज्ञे विशेषमाह तत्रैव जैमिनिः—अनुपाकृतवेदस्य कर्तव्यो ब्रह्मयज्ञकः॥ वेदस्थाने तु सावित्री गृह्यते तत्समा यतः॥ इति। येषां तद्दिने एव वेदारम्भस्तेषां नेदमिति दिक्।

ब्रह्मयज्ञमें विशेष जैमिनीने वहींपर विशेष कहा है कि—(पशुयागादौ मन्त्रबहुलेन पशो स्पर्शमुपाकरणं तद्रहितपशुरनुपाकृतः) जिसका वेद उस दिन प्रारंभ नहीं होता है वह ब्रह्मयज्ञ (अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः, स्वाध्यायो ब्रह्मयज्ञः) करे तथा वेदके स्थानमें आचार्य के समीप गायत्री मन्त्रको ग्रहण करे। जिनका उस दिन ही वेदारंभ होता है। उनलोगों के लिए नहीं है।

१—अस्यार्थः—उपनयनात्प्राक् स्वकाले कथञ्चिदकृतचौलपर्यन्तसंस्कारस्य यानि जातकर्मादीनि उपनयन्तत्पूर्वं संभूय क्रियन्ते तथा व्रतानि यदा संभूय क्रियन्ते तथा देशान्तरगतस्य मृत इति बुद्ध्या कृतप्रेतकार्यस्य कालान्तरे आगतस्य यानि जातकर्मादीनि पुनः संभूय क्रियन्ते तथा पतितस्य कृतप्रायश्चित्तस्य यानि जातकर्मादिनि पुनः संभूय क्रियन्ते तेषु गणशः संभूय क्रियमाणेषु जातकर्मादिषु संस्कारेषु प्रथमं क्रियमाणस्य संस्कारक्रमेण आदौ मातृपूजायां नान्दीश्राद्धस्य सकृत् तन्त्रेणानुष्ठानं न पृथगादिषु संस्कारकर्मणामादिषु न पृथगनुष्ठानम्। (स्मृतिमुक्ताफले पृ० ७५३)

२—प्रमादान्नष्टस्योपनयननाग्नेः पुनरुत्पत्तिविधिं करिष्ये। अग्न आयूँषि इति तिसृभिः प्रजापते इति मन्त्रेण हवनादिकर्म कुर्यादिति संक्षेपः।

(ब्रह्मचारिधर्माः)

अथ ब्रह्मचारिधर्माः । याज्ञवल्क्यः—मधुमांसाञ्जनोच्छिष्टशुक्तस्त्रीप्राणिहिंसनम् ।
भास्करालोकनाश्लीलपरिवादादि वर्जयेत् ॥

अब ब्रह्मचारी के धर्मों को कहते हैं । याज्ञवल्क्यने कहा है कि—सहत, मांस, अञ्जन (काजल), उच्छिष्ट, निष्ठुर वाक्य या अश्लीलभाषण, प्राणियों की हिंसा, सूर्यका देखना, (ब्रह्मचारी को सदा सूर्यका दर्शन निषेध है । स्नातकको उदय और अस्त में सूर्यदर्शन निषेध है । किसी का मत है कि—ब्रह्मचारी भी सूर्य के उदयकाल में तथा अस्तसमय में सूर्य का दर्शन न करे ।) अश्लीलभाषण, निन्दा आदिका त्याग करे ।

मनुः—अभ्यङ्गमञ्जनं चाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारणम् । वर्जयेदिति प्रकृतम् ।

मनुने कहा कि—उवटन, आँखों का अञ्जन, जूता तथा छत्रधारण त्याग दे । वर्जयेत्—यह प्रकृत है ।

पारिजाते कौर्मे—नादर्शं चैव वीक्षेत नाचरेद्दन्तधावनम् ।
गुरूच्छिष्टं भेषजार्थं प्रयुञ्जीत, न कामतः ॥

पारिजात में कूर्मपुराण का वचन है कि—सीसा न देखे, दन्तधावन न करे और गुरुका उच्छिष्ट औषध के लिये प्रयोग करे न की अपनी इच्छा से करे ।

एतन्निषिद्धमध्वादिविषयम्, अन्यस्य गुरूच्छिष्टस्य सर्वदा प्राप्तेः । 'स चेद्व्याधीयीत कामं गुरोरुच्छिष्टं भेषजार्थं सर्वं प्राश्नीयात्, इति वसिष्ठोक्तेः । ज्येष्ठभ्रातुरित्यपि ज्ञेयम् । 'पितुर्ज्येष्ठस्य भ्रातुरुच्छिष्टं भोज्यम्' इत्यापस्तम्बोक्तेः ।

क्योंकि यह निषेध मधु आदि के विषय में है । अन्य गुरुके उच्छिष्ट की सर्वदा प्राप्ति है । क्योंकि वसिष्ठ ने कहा है कि—यदि वह (ब्रह्मचारी) व्याधिवाला हो जाय तो इच्छा से गुरुका उच्छिष्ट सब औषधिके रूपमें सब भक्षण करे । बड़े भाई के विषय में यही जानना चाहिये । आपस्तंबने कहा है कि—पिता और बड़े भाई का उच्छिष्ट भोजन योग्य है ।

गुरुपुत्रे तु स्मृत्यर्थसारे उक्तम्—गुरुवद् गुरुपुत्रः स्यादन्यत्रोच्छिष्टभोजनात् ।

गुरुपुत्र के विषय में तो स्मृत्यन्तर में कहा है कि—अन्यत्र उच्छिष्ट भोजन त्यागकर गुरु की तरह गुरुपुत्र भी है ।

प्रचेताः—ताम्बूलाभ्यञ्जनं चैव कांस्यपात्रे च भोजनम् ।
यतिश्च ब्रह्मचारी च विधवा च विवर्जयेत् ॥

प्रचेता ने कहा है—तांबूल, उवटन और कांसे के पात्र में भोजन (लोहे या मिट्टी के पात्र में भोजन न करे-ऐसा हारीतस्मृति में कहा है ।) यति (संन्यासी), ब्रह्मचारी और विधवा स्त्री त्याग दे ।

यमः—मेखलामजिनं दण्डमुपवीतं च नित्यशः । कौपीनं कटिसूत्रं च ब्रह्मचारी तु धारयेत् ॥
अग्नीन्धनं भैक्ष्यचर्यामधः शय्यां गुरोर्हितम् ॥ कुर्यादिति शेषः ।

यमने कहा है कि—मेखला, मृगचर्म, दण्ड, यज्ञोपवीत, कौपीन तथा कटिसूत्र को ब्रह्मचारी नित्य ही धारण करे । अग्नि के लिए इन्धन, भिक्षावृत्ति, अधःशयन तथा गुरुका[1] हित करे ।

(मेखलाविचारः)

मेखलामाह आश्वलायनः—'तेषां मेखला मौञ्जी ब्राह्मणस्य धनुर्ज्या क्षत्रियस्यावी वैश्यस्य' इति ।

मनुः– गुरोर्यत्र परीवादो निन्दा वाऽपि प्रवर्तते । कर्णौ तत्र पिधातव्यौ गन्तव्यं वा ततोऽन्यतः ॥ गुरोर्गुरौ सन्निहिते गुरुवद् वृत्तिमाचरेत् । गुरुपुत्रेषु पत्नीषु गुरोश्चैवास्य बन्धुषु ॥ उन्मर्दनं तु गात्राणां स्नापनोच्छिष्टभोजने । न कुर्याद् गुरुपुत्रस्य पादयोश्चावनेजनम् ॥[1] अभ्यञ्जनं स्नापनं च गात्रोद्वर्तनमेव च । गुरुपत्न्या च कार्याणि केशानां च प्रसाधनम् ॥ मनसाऽपि न चोल्लङ्घ्या गुरोराज्ञा कथञ्चन । गुरुवद्गुरुपत्नीषु तत्पुत्रादिषु सर्वदा ॥

आश्वलायन ने मेखला कहा है कि—उनमें से मूंज की मेखला ब्राह्मण की, धनुष के प्रत्यंचा की मेखला क्षत्रिय की और आवी (भेडके ऊनकी) की मेखला वैश्यकी होती है।

आचार्यः—त्रिवृता मेखला कार्या त्रिवारं स्यात्समावृता।
तद्ग्रन्थयस्त्रयः कार्याः पञ्च वा सप्त वा पुनः॥

उसमें त्रिगुणित सूत की मेखला को तीन वार बराबर (मोटी न पतली) करे—ऐसा आचार्य ने कहा है। उसमें तीन, पांच या सात गांठ दे।

मनुः—(अ० २।४२) मौञ्जी त्रिवृत्समा श्लक्ष्णा कार्या विप्रस्य मेखला।
त्रिवृता ग्रन्थिनैकेन त्रिभिः पञ्चभिरेव वा॥

मनु ने कहा है कि—मूंज की त्रिगुणित एक सी तथा चिकनी मूज की बनी मेखला को ब्राह्मण ब्रह्मचारी की मेखला करे और तिगुनी कर एक, तीन या पांच ग्रन्थि (गांठ) करे।

मौञ्ज्यभावे तु कर्तव्या कुशाश्मन्तकबल्वजैः। अत्र प्रवरसंख्यानियम इति वृद्धाः। (मनु०।२।४३)।

मूंज आदि के अभाव में कुशा, अश्मन्तक (तृणविशेष या मल्लिका) और वल्वज (बबई नाम की घास) की करे। यहाँ पर प्रवरसंख्या का नियम है—ऐसा वृद्धों ने कहा है। (अर्थात् जिसका एक प्रवर है। उसके में एक गांठ होगी। तीन प्रवर वाले को तीन, पांच प्रवर वाले को पांच और सात प्रवर वाले को सात गाठ होगी।)

(दण्डकथनम्)

अथ दण्डाः। मनुः—(अ० २ श्लोक ४५) ब्राह्मणो वैल्वपालाशौ क्षत्रियो वाटखादिरौ।
पैलवौदुम्बरौ वैश्यो दण्डानर्हन्ति धर्मतः॥

अब दण्ड कहते हैं। मनु ने कहा है कि—बिल्व (बेल) या पलाश (ढाक) का दण्ड ब्राह्मण के लिये हैं। बड़ तथा खैर का दण्ड क्षत्रिय के लिये है। पीलू या उदुम्बर (गूलर) का दण्ड वैश्य के लिये है। इसलिये ये सब दण्ड धर्म से धारण करने योग्य हैं।

एषामभावे गौतमः—'यज्ञियो वा सर्वेषां मूर्धललाटनासा(ग्र)प्रमाणः' इति।

इनके अभाव में गौतम ने कहा है कि—सबों (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) का दण्ड याज्ञिक लकडी से बनावे। जिसका प्रमाण शिर, ललाट और नासाग्र के भाग तक का हो।

(अजिनमाह)

अजिनमाहाश्वलायगृह्यसूत्रम्—ख० १६।प्र० १—अहतेन वाससा संवीतमैणेयेन वाऽजिनेन ब्राह्मणं रौरवेण क्षत्रियमाजेन वैश्यम्' इति। यद्यप्यैणेयशब्देन मृगीचर्मैवोच्यते 'एण्या ढञ्' 'इति पाणिनिस्मृतेः, ऐणेयमेण्याश्चर्माद्यमेणस्यैणमुभे त्रिषु। इत्यमरकोशाच्च, तथापि 'कृष्णरुरुवस्तान्यजिनानि' इति शङ्खोक्तेः, 'सर्वेषां वा रौरवम्' इति यमोक्तेश्च मृगचर्मणा सह विकल्पो ज्ञेयः। वस्त्राजिनयोस्तु विकल्पः 'कार्पासं वाऽविकृतम्' इति गौतमोक्तेः।

आश्वलायन ने अजिन कहा है कि—ब्राह्मण का ईषद्धौत नवीन वस्त्र (ईषद्धौतं नवं श्वेतं सदशं यन्न धारितम्। अहतं तद्विजानीयात्सर्वकर्मसु पावनम्॥) ढके हुए ऐणेय (मृग) चर्म का होता है। क्षत्रियका रुरु विशेष अर्थात् (चित्र) मृग का होता है और वैश्यका बकरे का होता है।

यद्यपि ऐणेयशब्द से मृगीचर्म को कहा है। क्योंकि-'एण्याढञ्' इस पाणिनीयसूत्र से और ऐणी के चर्म को ऐणेय, एणके चर्म को ऐण। ये दोनों चर्म तीनों लिंगों में है। इस अमरकोष से मृगी का ही चर्म होता है। फिर भी काला रुरुमृग और बकरे का मृग या सबों का चर्म रुरु का होता है ऐसा यम का वचन है। मृगचर्म के साथ मृगीचर्म का विकल्प जानना चाहिये। गौतम ने कहा है कि—वस्त्र और अजिन में विकल्प है। कपास का वस्त्र हो जो अविकृत हो अर्थात्—जो फटा विकार से युक्त न हो।

(यज्ञोपवीतकथनम्)

अथ यज्ञोपवीतम्। मनुः—कार्पासमुपवीतं स्याद्विप्रस्योर्ध्ववृतं त्रिवृत्।

अब यज्ञोपवीत को कहते हैं। मनुने कहा है कि—ब्राह्मण का यज्ञोपवीत कपास होता है जो ऊपर

की ओर तिगुना बटा हो। (इस श्लोक का उत्तरार्ध आधा—यों है कि—शणसूत्रमयं राज्ञो वैश्यस्याविकमुच्यते ॥) क्षौम ज़ुमा नाम अतसीका है या पश्चिमदेश में तृण का कोई भेद है।)।

पारिजाते देवलः—कार्पासक्षौमगोवालशणबल्वतृणोद्भकम् ।
यथासम्भवतो धार्यमुपवीतं द्विजातिभिः ॥

[1]पारिजात में देवल ने कहा है कि—कार्पास, क्षौम (रेशम), गौके वाल, सन, वल्व तृण से उत्पन्न यथासंभव द्विजाति यज्ञोपवीत धारण करें।

शुचौ देशे शुचिः सूत्रं संहताङ्गुलिमूलके । आवर्त्य षण्णवत्या तत्त्रिगुणीकृत्य यत्नतः ॥
अब्लिङ्गकैस्त्रिभिः सम्यक् प्रक्षाल्योर्ध्ववृतं त्रिवृत् । अप्रदक्षिणमावृत्य सावित्र्या त्रिगुणी कृतम् ॥

पवित्रदेश में पवित्रसूत्र से मिली हुई अंगुली के मूल में छानवें बार आवर्तन करके फिर यत्न से तिगुना करके जलसंज्ञक तीन मन्त्रों से अच्छीप्रकार से प्रक्षालन कर ऊपर को तीनबार कर अर्थात्—वामावर्त गोलाकार को त्रिगुणित करके फिर दक्षिणावर्त गोलाकार को त्रिगुणित से वह एक तन्तु हो जाता है। इसीप्रकार त्रिगुणित करे।

ततः प्रदक्षिणावर्तं समं स्यान्नवसूत्रकम् । त्रिरावेष्ट्य दृढं बध्वा ब्रह्मविष्ण्वीश्वरान्नमेत् ॥
तन्नवतन्तु कार्यम् ।

तदनन्तर प्रदक्षिणावर्त बराबर नवसूत्र होता है। तीनबार आवेष्टन कर दृढ बांध कर ब्रह्मा, विष्णु और शंकर को नमस्कार करे। फिर उसको (यज्ञोपवीत को) नवतन्तु करना चाहिये।

सावित्र्या त्रिगुणं कुर्यान्नवसूत्रं तु तद्भवेत् । इति तेनैवोक्तेः ।

वहीं पर कहा है कि—सावित्री से त्रिगुणित करे तब वह नवतन्तु होगा।

छन्दोगपरिशिष्टे—त्रिवृदूर्ध्ववृतं कार्यं तन्तुत्रयमधोवृतम् । त्रिवृतं चोपवीतं स्यात्तस्यैको ग्रन्थिरिष्यते ॥ ऊर्ध्ववृतं दक्षिणं करमूर्ध्वं कृत्वा वलितम् ।

छन्दोगपरिशिष्ट में कहा है कि—त्रिवृत को ऊपर बटे फिर उस तीन तन्तु को नीचे को त्रिवृत (तीन तन्तु) करने से यज्ञोपवीत होता है उसमें एक ग्रन्थि करे। दक्षिण हाथ को ऊँचाकर धारण करे।

भृगुः—वामावर्तवलितं त्रिगुणं कृत्वा दक्षिणावर्तवलितं त्रिगुणं कार्यम् । स एकस्तन्तुरेवं त्रितन्तुकमित्यर्थः ।

भृगु ने कहा है कि—वामावर्तव से बटे हुए को त्रिगुणित कर दक्षिणावर्त मेलकर त्रिगुणित करे। वह एकतन्तु ही त्रितन्तुक होता है—यह अर्थ है।

(यज्ञोपवीतधारणे विचारः)

कात्यायनः—पृष्ठदेशे च नाभ्यां च धृतं यद्विन्दते कटिम् ।
तद्धार्यमुपवीतं स्यान्नातिलम्बं न चोच्छ्रितम् ॥

कात्यायन ने कहा है कि—पृष्ठदेश में और नाभी में धारण करने से वह 'कटिभाग (कमर) में' प्राप्त हो जाय वह यज्ञोपवीत धारण करे। जो अति लंबा और ऊँचा न हो।

वसिष्ठः—नाभेरूर्ध्वमनायुष्यमधो नाभेस्तपः क्षयः ।
तस्मान्नाभिसमं कुर्यादुपवीतं विचक्षणः ॥

वसिष्ठ ने कहा है कि—नाभि के ऊपर यज्ञोपवीत होने से आयुष्य का नाश होता है। नाभी के नीचे रहने से तप का क्षय होता है इसलिए बुद्धिमान् को चाहिये कि नाभी के बराबर में रखे।

पारिजाते देवलः—उपवीतं वटोरेकं द्वे तथेतरयोः स्मृते ।
एकमेव यतीनां स्यादिति शास्त्रस्य निश्चयः ॥

पारिजात में देवल ने कहा है कि—वटु ब्रह्मचारी को एक, इतर दो को (क्षत्रिय, और वैश्य को) दो और यति (त्रिदण्डी) को एक ही होता है। यह शास्त्रका निश्चय है।

१—यहाँ पर 'तृणोद्भवम्' की जगह तृणादिकम्—ऐसा पाठ मानने पर आदि शब्द से दर्भ का ग्रहण है।

स एव–'बहूनि वाऽऽयुष्कामस्य' तत्र मन्त्रमाह स एव–यज्ञोपवीतमिति वा व्याहृत्या वापि धारयेत् ।

वही ही आयु की कामना के लिए [3]बहुत से यज्ञोपवीत (तीन, चार, पांच, आठ, दश, कहीं चालीस भी है) को धारण करे उसमें मन्त्र कहा है। वह 'यज्ञोपवीतम्' या व्याहृति से धारण करे।

हेमाद्रौ––यज्ञोपवीते द्वे धार्ये श्रौते स्मार्ते च कर्मणि ।
तृतीयमुत्तरीयार्थे वस्त्राभावे तदिष्यते ॥

हेमाद्रि में कहा है कि––श्रौत और स्मार्तकर्म में यज्ञोपवीत दो धारण करे। वस्त्र के अभाव में तीसरा यज्ञोपवीत दुपट्टे के निमित्त कहा है।

देवलः––सावित्र्या दशकृत्वोऽद्भिर्मन्त्रिताभिस्तदुक्षयेत् ।
विच्छिन्नं वाप्यधो यातं भुक्त्वा निर्मितमुत्सृजेत् ॥

देवल ने कहा है कि––गायत्री दशवार पढ़कर जल से अभिमन्त्रित करे यदि टूट गया हो, नीचे गिर गया हो या भोजन करके निर्माण किया हो एसे का त्याग कर दे।

मनुः—मेखलामजिनं दण्डमुपवीतं कमण्डलुम् । अप्सु प्रास्य विनष्टानि गृह्णीतान्यानि मन्त्रवत् ॥

मनु ने कहा है कि––मेखला, अजिन, (मृगचर्म) पालाश आदि दण्ड, यज्ञोपवीत और कमण्डलु के नष्ट हो जाने पर उनको जल में फेंक कर मन्त्र द्वारा अन्यों को ग्रहण करे।

(अथैतल्लोपे प्रायश्चित्तकथनम्)

अथैतल्लोपे प्रायश्चित्तम् । मनुः—अकृत्वा भैक्ष्यचरणमसमिध्य च पावकम् ।
अनातुरः सप्तरात्रमवकीर्णिव्रतं चरेत् ॥

इसके बाद यज्ञोपवीतसंस्कारलोप में प्रायश्चित्त मनु ने कहा है कि—भिक्षा को न कर और अग्नि में समिदाधान को न कर सात रोज तक अरोगी अवकीर्णिव्रत (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, मैथुनवर्जन, क्रोध नहीं करना, गुरुशुश्रूषा, अप्रमोद और शौच आहारशुद्धि) करे।

(अमत्या आपदित्यागे तु)

अमत्या आपदि त्यागे तु याज्ञवल्क्यः—भैक्ष्याग्निकार्ये त्यक्त्वा तु सप्तरात्रमनातुरः । कामावकीर्ण इत्याभ्यां जुहुयादाहुतिद्वयम् ॥ उपस्थानं ततः कुर्यात्समासिञ्चन्त्वनेन तु ॥ मन्त्रास्तु मिताक्षरायां ज्ञेयाः ।

बिना मति से [4]आपत्ति में त्यागन में तो याज्ञवल्क्य ने कहा है कि—जो अनातुर (रोगी न हो) ही ब्रह्मचारी निरन्तर भिक्षा या अग्नि कार्य को छोड़ देने पर व्रत करे [5]'कामावकीर्णम्' इन दोनों मन्त्रों से दो आहुति दे। तदनन्तर उपस्थान करे तथा [6]'समा सिञ्चन्तु' इस मन्त्र से उपस्थान करे। मन्त्र तो मिताक्षरा में लिखे हैं वहाँ से ही जानना चाहिये।

(सकृल्लोपे तु)

सकृल्लोपे तु ऋग्विधाने—मानस्तोके जपेन्मन्त्रं शतसंख्यं शिवालये ।
अग्निकार्यं विना भुक्तौ न पापं ब्रह्मचारिणः ॥

१—ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् । आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥ यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि ॥

२—'ॐ भूः स्वाहा, ॐ भुवः स्वाहा, ॐ स्वः स्वाहा, ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा।

३––कश्यपः––त्रीणि चत्वारि पञ्चाष्ट गृहिणः स्याद्दशापि वा। अथ चत्वारिंशदपि क्वचित्।

४––'कार्यव्यासंगेन' इति मयूरवः। गुरुशुश्रूषादिनेति मुक्तावली। कामावपन्नोऽस्म्यवपन्नोऽस्मि कामकामाय स्वाहा।

५—कामावकीर्णोऽस्म्यवकीर्णोऽस्मि कामकामाय स्वाहा। कामावपन्नोस्म्यवपन्नोऽस्मि कामकामाय स्वाहा। कामाभिदुग्धो (द्रुग्धो) ऽस्यभि-याज्ञ० पृ० ४४२ प्रायश्चित्त में है। 'कामावकीर्णोऽस्म्यवकीर्णोऽस्मि कामकामाय स्वाहा। कामाभिदुग्धो (द्रुग्धो) ऽस्यभि-दुग्धो (द्रुग्धो) ऽस्मि कामकामाय स्वाहा। (पारस्करगृह्यसूत्रे)

६—संमा सिञ्चन्तु मरुतः समिन्द्रः सं बृहस्पतिः। समायमग्निः सिञ्चन्तां यशसा ब्रह्मवर्चसेन ॥ (याज्ञ० प्रा०) संमासिञ्चन्तु मरुतः समिन्द्रः संबृहस्पतिः। सम्मायमग्निः सिञ्चतु प्रजया च धनेन च ॥ (पारस्करगृह्यसूत्रे)।

एकबार के लोप में तो ऋग्विधान में कहा है कि—'[1]मानस्तोके' इस मन्त्र को शिवालय में सौ बार बार जपे। अग्नि कार्य के बिना भोजन में ब्रह्मचारी को पाप नहीं लगता है।

स्मृत्यर्थसारे तु—सन्ध्याग्निकार्यलोपे स्नात्वाऽष्टसहस्रं जपः। भिक्षालोपेऽष्टशतम्। अभ्यासे द्विगुणं पुनः संस्कारश्चेत्युक्तम्।

स्मृत्यर्थसार में तो सन्ध्या और अग्निकार्य के लोप में स्नानकर आठहजार जप करे। भिक्षा के लोप में एक सौ आठ बार जप करे। बारंवार करने पर दूना जप और फिर से संस्कार करे—ऐसा कहा है।

अपरार्के संवर्तः—यः सन्ध्यां चैव नोपास्ते अग्निकार्यं यथाविधि।
गायत्र्यष्टसहस्रं तु जपेत्स्नात्वा समाहितः॥

अपरार्क में संवर्त ने कहा है कि—जो सन्ध्या की उपासना और अग्निकी उपासना यथाविधि नहीं करता है वह आठ हजार गायत्री जप स्नान कर सावधान चित्त से करे।

अग्निकार्यं सन्ध्याद्वये कार्यम्। अग्निकार्यं ततः कुर्यात्सन्ध्ययोरुभयोरपि। इति याज्ञवल्क्योक्तेः। (आचाराध्याय श्लोक २५) सायमेव वा 'सायमेव वाग्निमिन्धीतेत्येके' इति लौगाक्षिणोक्तेः।

याज्ञवल्क्य ने कहा है कि—दोनों सन्ध्याओं में सायंकाल और प्रातःकाल अग्निकार्य समित्प्रक्षेपादि अपने गृह्यसूत्र के अनुसार करे। किसी का मत है कि सायंकाल ही अग्नि को प्रदीप्त करे—यह लौगाक्षि ने कहा है।

पारिजाते वृद्धशातातपः—ब्रह्मचारी तु योऽश्नीयान्मधु मांसं तथैव च।
प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं व्रतशेषं समापयेत्॥

पारिजात में वृद्धशातातप ने कहा है कि—ब्रह्मचारी मधु और मांस को खाता है वह प्राजापत्य तथा कृच्छ्र कर शेष व्रत को समाप्त करे।

ऋग्विधाने—तं वो धिया जपेन्मन्त्रं लक्षं चैव शिवालये।
ब्रह्मचारी स्वधर्मेषु न्यूनं चेत्पूर्णमेव तत्॥

ऋग्विधान में कहा है कि—शिवालय में 'तं [2]वोधिया, इस मन्त्र का एक लाख जप करे। जो ब्रह्मचारी अपने धर्मों में न्यूनता करता है वह पूर्ण हो जाता है।

(स्त्रीसङ्गे तु विशेषः)

स्त्रीसङ्गे तु मनुः—(अ० ११, ११८) [3]अवकीर्णी तु काणेन गर्दभेन चतुष्पथे। पाक (स्थाली) यज्ञविधानेन यजेत निर्ऋतिं निशि॥ विस्तरस्तु मिताक्षरादौ ज्ञेयः।

स्त्री के साथ गमन करने पर मनु ने कहा है कि—अवकीर्णी तो इच्छा से चौराहे पर—गदहे से (स्थाली) पाकयज्ञ के विधान से रात्रि में नैर्ऋत्यदेवता का यजन करे। इसका विस्तार 'मिताक्षरा' (प्रायश्चित्ताध्याय श्लोक २८० में) (ब्रह्मचर्यावस्था में रहनेवाला जो द्विज इच्छापूर्वक (स्त्री के साथ विषय करता हुआ) वीर्यपात कर (ब्रह्मचर्य) व्रत को भंग करता है उसे 'अवकीर्णी') कहते हैं।) आदि में जानना चाहिये।

१—मा नस्तोके तनये मान आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः। वीरान् मा नो रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे॥ (ऋ० मं० १ सू० ११४ म० १)।

२—तं वो धिया नव्यस्या शविष्ठं प्रत्नं प्रत्नवत् परितं सयध्यै। स नो वक्षदनिमानः सुवह्नेन्दो विश्वान्यति दुर्गहाणि॥ (ऋ० मं ६ सू २२, म० ७)। तं वो धिया परमया पुराजामजरमिन्द्रमभ्यनूष्यर्कैः। ब्रह्मा च गिरो दधिरे समस्मिन् महाँश्च स्तोमो अधि वर्धदिन्द्रे॥ (ऋ० म० ६ सू० ३८ म० ३)।

३—ब्रह्मचारी सन् यः स्त्रियमुपैति सोऽवकीर्णी। वाऽवकीर्णिनो गर्दभेज्या। इत्यादि कात्यायनश्रौतसूत्र अध्याय १। कं १ सूत्र १३-१७ तक में देखिये।

पारस्कर गृह्यसूत्रके तृतीयकाण्डके १२ कण्डिकामें है–जिसका ब्रह्मचर्य खण्डित हो गया है ऐसा ब्रह्मचारी प्रायश्चित्त शुद्धि के लिए चतुष्पथ (जहाँपर चार रास्ते जाते हों ऐसे चौराहे पर) पर गर्दभपशु का आलंभन करे। गर्दभ की खालको ओढकर एकसाल तक भिक्षा मांगे। कहे कि मैं अवकीर्णी हूँ 'मुझे भिक्षा दो। यों अपने अपवित्र कर्मको संसार में कहे।

(उपवीतनाशे कथनम्)

उपवीतनाशे तु हारीतः—मनोज्योतिरित्येका, त्वमग्ने व्रतपा असि इति तिस्रः । आज्याहुती हुत्वा पुनः प्रतीयात् ।

उपवीत के नाश में तो हारीत ने कहा है कि—(मनो [1]व्रतपतीभिः) इस मन्त्रों से चार घृत की आहुति देकर फिर यज्ञोपवीत धारण करे ।

तत्रैव मरीचिः—ब्रह्मसूत्रं विना भुंक्ते विण्मूत्रं कुरुतेऽथवा । गायत्र्यष्टसहस्रेण प्राणायामेन शुध्यति ॥

वहीं पर मरीचि ने कहा है कि—विना [2]यज्ञोपवीत के जो भोजन करता है या जो पुरीषोत्सर्ग या मूत्र का त्याग करता है । वह गायत्रीमन्त्र का आठहजार जप करने से और प्राणायाम करने से शुद्ध होता है ।

(ब्राह्मणाभिवादने कथनप्रकारः)

मनुः—(अ० २ श्लोक १२४-१२५) भोः शब्दं कीर्तयेदन्ते स्वस्य नाम्नोऽभिवादने । आयुष्मान् भव सौम्येति वाच्यो विप्रोऽभिवादने ॥ अकारश्चास्य नाम्नोन्ते वाच्यः पूर्वाक्षरः प्लुतः ॥ शर्मन्निति नकारात्पूर्व इत्यर्थः ।

मनु ने कहा है कि—[3]अभिवादन के समय में अपने नाम के अन्त में 'भो' शब्द का उच्चारण करे । अभिवादये शुभ शर्माहं भो ! अभिवादन करने पर ब्राह्मण से 'हे सौम्य ! 'आयुष्मान् भव सौम्य' हे सौम्य, आयुष्मान् हो, ऐसा कहे । अभिवादनकर्ता के नाम के अन्तिम अक्षर के पूर्ववाले अकार स्वर के अक्षर को प्लुत कहे । 'शर्मन्' इसमें नकार के पूर्व अकार है । यह अर्थ है ।

(अभिवादनप्रत्यभिवादनादौ विशेषः)

अभिवादनप्रत्यभिवादनादौ विशेषः स्मृत्यर्थसारे पारिजादौ ज्ञेयः । यमः—ज्यायानपि कनीयांसं सन्ध्यायामभिवादयेत् । विना शिष्यं च पुत्रं च दौहित्रं दुहितुः पतिम् ॥

अभिवादन, प्रत्यभिवादन आदि में विशेष स्मृत्यर्थसार और पारिजात आदि में जानना चाहिये ।

यम ने कहा है कि—सन्ध्यासमय में बड़े भी [4]छोटों को [5]अभिवादन करे । उसे अभिवादन में—शिष्य, पुत्र, लड़की का लड़का और लड़की का पति (जामाता) इनको न करे ।

१—मनो ज्योतिर्जुषतामाज्यं विच्छिन्नं यज्ञँ समिमं दधातु । बृहस्पतिस्तनुता मिमं नो विश्वे देवा इह मादयन्ताम् ॥ (तैत्तरीयसंहिता १।५।३)

त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा । त्वं यज्ञेष्वीड्यः ॥ त्वमसि प्रशस्यो विदथेषु सहन्त्य । अग्ने रथीरध्वराणाम् ॥ स त्वमस्मदप द्विषो युयोधि जातवेदः । अदेवीरग्ने अरातीः ॥ (ऋ० म० ८ सू० ११ म० १-३)

२—शूलपाणिः—विना यज्ञोपवीतेन भुंक्ते च ब्राह्मणो यदि । स्नानं कृत्वा जपं कृत्वा उपवासेन शुध्यति ॥ भरद्वाजः—मलमूत्रे त्यजेद्विप्रो विस्मृत्यैवोपवीतधृक् । उपवीतं तदुत्सृज्य दध्यादन्यन्नवं तदा ॥ जले मूत्रादिकरणे—विनाऽद्भिरप्सु वाप्यार्तः शारीरं सन्निवेश्य च । स चैलो बहिराप्लुत्य गामालभ्य विशुध्यति ॥

३—दक्षिणं पाणिमुद्धृत्य प्रकाममभिवादयेत् । श्रोत्रिये त्वञ्जलिः कार्यः पादोपग्रहणं गुरोः ॥ उपग्रहणं स्पर्शः । मनुः—व्यत्यस्तपाणिना कार्यमुपसंग्रहणं गुरोः । सव्येन सव्यः स्प्रष्टव्यो दक्षिणेन तु दक्षिणः ॥ प्रत्यभिवादने मनुः—भोः शब्दं कीर्तयेदन्ते स्वस्य नाम्नोऽभिवादने । आयुष्मान् भव सौम्येति वाच्यो विप्रोऽभिवादने ॥ अकारश्चास्य नाम्नोन्ते वाच्यः सर्वाक्षरः पुनः । अत्र नामान्ते अकारो न विधीयते, किन्तु नामान्ते योऽकारः तस्य प्लुतमात्रं, ततः शर्मशब्दः शर्मान्तं ब्राह्मस्योक्तम्' इति वचनात् । तेन आयुष्मान् भव राम ३ शर्मन् इत्येव प्रयोगः । इति टीकायाम् ।

४—पितृव्य आदि सम्बन्धि अन्न को देनेवालों को देखकर उठजाय पर अभिवादन न करे ।

५—शातातपः—क्षत्रं वैश्यं चाभिवाद्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत् । ब्राह्मणानां दशाष्टौ वा अभिवाद्य विशुध्यति ॥ अभिवाद्य द्विजः शूद्रं सचैलं स्नानमाचरेत् । ब्राह्मणानां शतं सम्यगभिवाद्य विशुध्यति ॥ स्मृत्यर्थसारे—मत्तं प्रमत्तमुन्मत्तं धावन्तमशुचिन्तरम् । वमन्तं जृम्भमाणं च कुर्वन्तं दन्तधावनम् ॥ अभ्यक्तशिरसं स्नानं कुर्वन्तं नाभिवादयेत् । जपयज्ञगणस्थं च समित्पुष्पकुशानलान् ॥ उदपात्रार्घभिक्षान्नं वहन्तं नाभिवादयेत् । अभिवाद्य द्विजश्चैवानहोरात्रेण शुध्यति ॥ देवताप्रतिमां दृष्ट्वा यतिं चैव त्रिदण्डिनम् । नमस्कारं न कुर्याच्चेदुपवासेन शुध्यति ॥ विष्णुः—सभासु चैव सर्वासु यज्ञे राजगृहेषु च । नमस्कारं प्रकुर्वीत ब्राह्मणान्नाभिवादयेत् ॥ शातातपः—उदक्यां सूतिकां नारीं भर्तृघ्नीं गर्भघातिनीम् । अभिवाद्य द्विजो मोहादहोरात्रेण शुध्यति ॥ मनुः—यो न वेत्त्याभिवादस्य विप्रः प्रत्यभिवादनम् । अभिवाद्यः स विदुषा यथा शूद्रस्तथैव सः ॥

(पुनरुपनयनादिहेतुत्वकथनम्)

अथ पुनरुपनयनम् । पारिजाते शातातपः—लशुनं गृञ्जनं जग्ध्वा पलाण्डुं च तथा शुनम् । उष्ट्रमानुषकेभाश्वरासमीक्षीरभोजनात् ॥ उपायनं पुनः कुर्यात्तप्तकृच्छ्रं चरेन्मुहुः ॥ इति ।

अब दुबारा उपनयन की विधि को कहते हैं। पारिजात में शातातप ने कहा है कि—लहसुन, गृञ्जन-गाजर (कन्दभेद या पलाण्डु या गृञ्जनशब्द से पत्र विशेष है। उसका चूर्ण, गायक लोग कण्ठ की शुद्धि के लिए भक्षण करते हैं। जिसको 'तमाखु' कहते हैं)। गृञ्जन—लशुन के आकार का लाल रंग का सूक्ष्म कन्द होता है।

पलाण्डु, (स्थूल कन्द नाल लशुन के आकार का होता है) को जग्ध्वा-भक्षण करके कुतिया, ऊँटनी, स्त्री, हथिनी, घोडी या गधी का दूध पीकर फिर से उपनयनसंस्कार करे और बारंबार 'तप्तकृच्छ्र' प्रायश्चित्त करे। (कहीं केवल उपनयनसंस्कार करे यों कहा है कि-जातकर्मादिसंस्कार के सहित उपनयनसंस्कार करे)।

(जीवितावस्थायां मनुष्यस्यागमने विचारः)

हेमाद्रौ वृद्धमनुः—जीवन् यदि समागच्छेद् घृतकुम्भे निमज्य च ।
उद्धृत्य स्नापयित्वास्य जातकर्मादि कारयेत् ॥

हेमाद्रि में वृद्ध मनु ने कहा है कि—यदि मनुष्य जीवितावस्था में फिर से आजाय तो घृत के घड़े में निमज्जन (डूबकी लगा) कर स्नान कर जातकर्मादि संस्कार करावे।

(प्रेतशय्याप्रतिग्रहणे विचारः)

तत्रैव पाद्मे—प्रेतशय्याप्रतिग्राही पुनः संस्कारमर्हति ।

वहीं पर पद्मपुराण में कहा है कि—जो प्रेत की शय्यादान लेता है उसका फिर से संस्कार करना चाहिये।

(पुनःसंस्कारहेतुत्वकथनम्)

चन्द्रिकायां बौधायनः—सिन्धुसौवीरसौराष्ट्रान् तथा प्रत्यन्तवासिनः ।
अङ्गवङ्गकलिङ्गान्ध्रान् गत्वा संस्कारमर्हति ॥

चन्द्रिका में बौधायन ने कहा है कि—[1]सिन्धु, सौवीर, सौराष्ट्र, और समीप रहनेवाले छोटे देश में अंग, वंग, कलिंग और आन्ध्र में जाने से फिर से संस्कार करें।

हेमाद्रौ प्रायश्चित्तकाण्डे वृद्धगौतमः—खरमुष्ट्रं च महिषमनड्वाहमजं तथा ।
बस्तमारुह्य मुखजः क्रोशे चान्द्रं विनिर्दिशेत् ॥

हेमाद्रि के प्रायश्चित्तकाण्ड में वृद्धगौतम ने कहा है कि—गधा, ऊँट, भैंसा, बैल, बकरा और भेडा पर चढ़ कर कोस भर चलने पर ब्राह्मण 'चान्द्रायणव्रत' करे।

मार्कण्डेयः—खरमारुह्य विप्रस्तु योजनं यदि गच्छति ॥ तप्तकृच्छ्रत्रयं प्रोक्तं शरीरस्य विशोधनम् ॥ पुनर्जन्म प्रकुर्वीत घृतगर्भविधानतः ॥ मदनरत्ने मिताक्षरायां च स्नानमात्रमुक्तम् ।

मार्कण्डेय ने कहा है कि—गधे पर चढ़कर जो ब्राह्मण एकयोजन यदि जाता है तो शरीर की शुद्धि के लिए तीन 'तप्तकृच्छ्र' प्रायश्चित्त करे और घृतगर्भ के विधान से पुनर्जन्म करे। मदनरत्न और मिताक्षरा में तो स्नान मात्र कहा है।

मनुः—अज्ञानात्प्राश्य विण्मूत्रं सुरासंसृष्टमेव च ।
पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥

मनु ने कहा है कि—तीनों वर्ण के (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) मनुष्य अज्ञान से विष्ठा, मूत्र और मदिरा से मिली वस्तु का प्राशन करते हैं वे फिर से संस्कार के योग्य होते हैं।

१—सौराष्ट्रसिन्धुसौवीरानावन्त्यं दक्षिणापथम्। एतान् देशान् द्विजो गत्वा पुनः संस्कारमर्हति॥ अङ्गवङ्गकलिङ्गांश्च सौराष्ट्रान् मगधांस्तथा। तीर्थयात्रां विना गच्छन् पुनः संस्कारमर्हति॥

मिताक्षरायां पराशरः—यः प्रत्यवसितो विप्रः प्रव्रज्यातो विनिर्गतः। अनाशकनिवृत्तश्च गार्हस्थ्यं चेच्चिकीर्षति ॥ स चरेत्त्रीणि कृच्छ्राणि त्रीणि चान्द्रायणानि च। जातकर्मादिभिः सर्वैः संस्कृतः शुद्धिमाप्नुयात् ॥

मिताक्षरा में पराशर ने कहा है कि—जो ब्राह्मण प्रव्रज्यातः=संन्यास से निकलकर च्युत हो जाय अनाशक (आ सम्यक् यथेच्छम् आशः अनशनम् यथेच्छभोगशून्ये, 'तमेतं ब्राह्मणा विविदिषन्ति वेदानुवचनेन यज्ञेन तपसाऽनाशकेनेति' श्रुतिः।) निवृत्त होकर गृहस्थधर्म में आना चाहे तो वह तीन कृच्छ्र और तीन चन्द्रायण करे और जातकर्म आदि सब संस्कारों के करने से शुद्धि होती है।

बौधायनसूत्रे—अथोपनीतस्य व्रतानि भवन्ति नान्यस्योच्छिष्टं भुञ्जीतान्यत्र पितृज्येष्ठाभ्यां, न स्त्रिया सह भुञ्जीत, मधुमांसश्राद्धसूतकान्नानि, दशाहसन्धिनीक्षीरं छत्राकनिर्यासौ, विलापनं गणान्नं, गणिकान्नमिति। एतेषु पुनः संस्कारः।

बौधायनसूत्र में कहा है कि—इसके बाद उपनीत के व्रत होते हैं—पिता और ज्येष्ठ भाई को छोड़कर अन्य का उच्छिष्ट भोजन न करे। स्त्री के साथ भोजन न करे। मधु, मांस, श्राद्ध और सूतक का अन्न भक्षण न करे। दशदिन तक व्यायी गौ का दूध न पीवे। छत्राक, (सर्पच्छत्रम् कुकुरमुत्ता, साग जो भूमि में वर्षात के समय छाते के आकार का निकलता है। बंगाली खाते हैं)। निर्यास, (गोंद) विलापन- (विलापन-दुःखद वचन बोलनेवाला या विलासन हावभाव बतलाने वाला) गणान्न, पञ्चायत धन=सामूहिक धन और वेश्याओं का अन्न इनका अन्न खाने से फिर से संस्कार करे।

प्रतिषिद्धदेशगमनमित्येके। अथाप्युदाहरन्ति—सुराष्ट्रसिन्धुसौवीरमवन्तीं दक्षिणापथम्।
एतानि ब्राह्मणो गत्वा पुनः संस्कारमर्हति ॥

कोई कहते हैं कि—निषिद्धदेश में जाने पर फिर से संस्कार करे। यहाँ पर उसके वचनों को कहते हैं कि—सौराष्ट्र, सिन्धु, सौवीर, अवन्ती (उज्जैन) और दक्षिणदेश में ब्राह्मण के जाने पर फिर से संस्कार करना कहा है।

अथ पुनसंस्कारं व्याख्यास्यामो देवयजनप्रभृत्यग्निमुखात्कृत्वा पालाशीं समिधमाज्येनाङ्क्त्वाभ्याधाय वाचयति—पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः० कामाः स्वाहा इति।

इसके बाद फिरसे संस्कार की व्याख्या करते हैं कि—देवयजन से प्रारंभकर अग्निमुख पर्यन्त कार्यको कर पालास की समिधा को घृत में भिगो कर अग्नि में छोडकर कहता है [1]'पुनस्त्वादित्या'।

अथ व्रात्यप्रायश्चित्ते जुहोति यन्म आत्मनो मिन्दाभूत्० पुनरग्निश्चक्षुरदादिति द्वाभ्याम्।

इसके बाद व्रात्यप्रायश्चित्तमें हवन कहता है ॥ 'यन्म [2]आत्मनो मिन्द्राभूत् और पुनरग्निः—इन दो मन्त्रों से।

अथ पक्वाज्जुहोति—सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वाः सप्त० घृतेन स्वाहा। इति।

अब पक्व (चरु) से [3]'सप्त ते अग्ने समिधः' इस मन्त्र से आहुति दे।

अथाज्याहुतीरुपजुहोति—येन देवाः पवित्रेणेति तिसृभिरनुछन्दसं स्विष्टकृत्प्रभृति सिद्धमाधेनुवरप्रदानात् अथापरमा परिदानात्कृत्वा पालाशीं समिधामाधायाथ व्रात्यवत्प्रायश्चित्ते जुहोत्यथ व्याहृतीर्जुहोति। अथापरो ब्राह्मणवचनादेव सावित्र्या शतकृत्वो घृतमभिमन्त्र्य प्राश्य कृतप्रायश्चित्तो भवति। गुरोर्वाप्युच्छिष्टं भुञ्जीत।

१—पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः समिन्धतां पुनर्ब्रह्माणो वसुनीथ यज्ञैः। घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः स्वाहा ॥ (का० सं० १२।८५)।

२—यन्म आत्मनो मिन्दाभूदग्निस्तत्पुनराहार्जातवेदाविचर्षणिः स्वाहा ॥१॥ पुनरग्निश्चक्षुरदात्पुनरिन्द्रो बृहस्पतिः। पुनर्मे अश्विना युवं चक्षुराधत्तमक्ष्योः स्वाहा ॥२॥

३—सप्त तेऽ अग्ने समिधः सप्त जिह्वाः सप्त ऋषयः सप्त धाम प्रियाणि। सप्त होत्राः सप्त धात्वा यजन्ति सप्त योनीरापृणस्व घृतेन स्वाहा ॥ (काण्व सं० १८।७६)।

इसके बाद आज्याहुति से हवन करे। येन देवा [1] पवित्रेण-इन तीन मन्त्रों से फिर वेदों से स्विष्टकृत् सिद्धम्-आधेनुवरप्रदान (ब्रह्मदक्षिणानान्त) तक परिदान कर पालाश की समिधा का हवन कर व्रात्यसंज्ञक प्रायश्चित्त का हवन करता है फिर व्याहृति का होम करता है। इसके बाद ब्राह्मण के वचन से ही सवित्री (गायत्री) से सौ वार घृत से अभिमन्त्रण कर प्राशन कर कृत प्रायश्चित्त हो जाता है या गुरु के उच्छिष्ट का भोजन करे।

अथाप्युदाहरन्ति वपनं दक्षिणादानं मेखलादण्डाजिनभैक्ष्यचर्याव्रतानि च निवर्तन्ते पुनः संस्कारकर्मणि इति।

इसके बाद ये वचन भी कहते हैं कि—मुण्डन, दक्षिणादान, मेखला, दण्ड, अजिन, भैक्ष्यचर्या (भिक्षाटन) और व्रत फिर से संस्कारकर्म में नहीं होते हैं।

आश्वलायनगृह्येऽपि—अथोपेतपूर्वस्य इत्यादिना पुनःसंस्कार उक्तः। तथा पित्रादिव्यतिरेकेण ब्रह्मचारिणः प्रेतकर्मकरणे पुनरुपनयनमित्यपरार्कादयः।

आश्वलायनगृह्य में भी फिर से संस्कार करना कहा है कि—जिसका पूर्व में संस्कार हो चुका है उसका फिर से संस्कार करना कहा है और पिता आदि से भिन्न ब्रह्मचारी प्रेतकर्म को करे तो फिर से उपनयन करे-ऐसा अपरार्क आदि में कहा है।

त्रिस्थलीसेतौ—कर्मनाशाजलस्पर्शात् करतोयाविलङ्घनात्। गण्डकीबाहुतरणात्पुनः संस्कारमर्हति॥

त्रिस्थलीसेतु में कहा है कि—कर्मनाशानदी के जलस्पर्श से, करतोयानदी के लंघन से और गण्डकी नदी को बाहुओं के द्वारा तैरने से फिर से संस्कार करने योग्य हो जाता है।

गौडास्तु—करतोयाजलस्पर्शात् कर्मनाशाविलङ्घनात्। इति पठन्ति। तन्न। दानधर्मेषु करतोयास्नाने प्राशस्त्योक्तेः।

गौड तो कहते हैं कि—'करतोयानदी के जल के स्पर्श से और कर्मनाशानदी के लांघने से संस्कार योग्य हो जाता है। ऐसा पढते हैं। यह ठीक नहीं हैं। क्योंकि—दानधर्मों में करतोयानदी में स्नान करने मे प्राशस्त्य कहा है।

करतोये सदानीरे सरिच्छ्रेष्ठेऽति विश्रुते। आप्लावयसि पौराणां पापं हर करोद्भवे॥ इति स्मृतिदर्पणचन्द्रिकालिखितस्नानमन्त्राच्च।

स्मृतिदर्पणचन्द्रिका में लिखित स्नान का मन्त्र है कि—नदियों में उत्तम तथा श्रेष्ठ करतोया के जल में जो स्नान करता है उसके शरीर के पाप को हे करोद्भवे, हरण करो।

पराशरः—अजिनं मेखला दण्डो भैक्ष्यचर्या व्रतानि च।
निवर्तन्ते द्विजातीनां पुनः संस्कारकर्मणि॥

पराशर ने कहा हैं कि—मृगचर्म, मेखला, दण्ड, भिक्षाचरण और व्रत ये सब द्विजातियों के पुनः संस्कार में नहीं होते हैं।

हरदत्तस्तु—य एकं वेदमधीत्यान्यं वेदमध्येतुमिच्छति तस्य पुनरुपनयनम्, तेन प्रतिवेदमुपनयनं कर्तव्यम् इत्याह। अन्ये नतन्मन्यन्ते। सर्वेभ्यो वै वेदेभ्यः सावित्र्यनूच्यते इत्यापस्तम्बोक्तेः।

हरदत्त ने कहा है कि—जो एक वेद को [2] पढ़कर दूसरे वेद को पढने की इच्छा करता है उसका फिर से उपनयन होना चाहिये। इससे प्रत्येक वेद में उपनयन है, यों कहा है। दूसरे लोग इस (उपरोक्त बात) को

१—येन देवाः पवित्रेणात्मानं पुनते सदा। तेन सहस्रधारेण पवमान्यः पुनन्तु माम्॥ प्राजापत्यं पवित्रं शतोद्यामं हिरण्मयम्। तेन ब्रह्मविदो वयं पूतं ब्रह्म पुनीमहे॥ इन्द्रः पुनीती सह मा पुनातु सोमः स्वस्त्या वरुणः समीच्या। यमो राजा प्रमृणाभिः पुनातु मा जातवेदा मूर्जयन्त्या पुनातु॥ (ऋ० परि० खि० १७ म० ३–५)।

२—जो अपने वेद की शाखाओं को छोड़कर मध्य में अन्य शाखा को पढ़ता है। उसे 'शाखारण्ड' कहते हैं। उसका फिर से उपनयन होता है।

नहीं मानते हैं। क्योंकि आपस्तंब ने कहा है कि--सब [1]वेदों के लिए ही सावित्री (गायत्री) कहा है।

तद्विधिः कारिकायाम्—वेदान्तरमधीत्यैव ऋग्वेदं ये त्वधीयते।
उपनीतिरियं तेषामलङ्करणवर्जिता॥

उसकी विधि कारिका में कही है कि—जो दूसरे वेद को पढ़कर ऋग्वेदको पढ़ते हैं। उन लोगों का अलंकार त्याग कर उपनयन करे।

यद्वै तदुपनीतस्य प्रायश्चित्तं यदा भवेत्। कृताकृतं च वपनं मेधाजननमेव च॥

या यह उपनीतका जब प्रायश्चित्त होता है तब वपन (मुण्डन) और मेधाजननसंस्कार ही कृताकृत है।

मेधाजननसद्भावे व्रतचर्या भवेदिह। अनुप्रवचनीयं च तदभावे द्वयं न हि॥ परिदानं न कार्यं स्यान्निमित्तान्तरं त्विदम्। पूर्वस्या वाचयेत्स्थाने तत्सवितुर्वृणीमहे॥ इति।

यहाँ पर मेधाजननसंस्कार के होने से व्रतचर्या होती है और अनुप्रवचनीय (बटु से कहलवाना) भी होता है। उस मेधाजनन संस्कार के न होने से व्रतचर्या तथा प्रवचनीय ये दोनों नहीं होते हैं। परिदान (कस्य ब्रह्मचार्यसीत्यादेः परिददामीत्यन्तमन्त्रस्योच्चारणम्।) न करे। यह निमित्तान्तर है। इसके पूर्व इसके स्थान में [2]'तत्सवितुर्वृणीमहे' इस मन्त्र को कहलावे।

यत्तु हारीतः—द्विविधाः स्त्रियः ब्रह्मवादिन्यः सद्योवध्वश्च। तत्र ब्रह्मवादिनीनामुपनयनमग्नीन्धनं वेदाध्ययनं स्वगृहे च भैक्ष्यचर्या इति, सद्योवधूनामुपनयनं कृत्वा विवाहः कार्यः, इति। तद्युगान्तरविषयम्।

जो हारीत ने कहा है कि--दो प्रकार की स्त्री होती हैं—पहली ब्रह्मवादिनी और दूसरी सद्योवधू। उसमें ब्रह्मवादिनियों का उपनयन, अग्नीन्धन (अग्नि में इन्धन डालना), वेदाध्ययन और अपने घर में भिक्षाचरण करना कहा है। सद्योवधुओं का उपनयन कर विवाह करना चाहिये--ऐसा कहा है। वह युगान्तर विषय है। अर्थात् दूसरे युगों की बात है इस युग की नहीं है।

पुराकल्पेषु नारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते।
अध्यापनं च वेदानां सावित्रीवाचनं तथा॥ इति यमोक्तेः।

यम ने कहा है कि--पहले के कल्पों में स्त्रियों का मौञ्जीबन्धन, वेदों का अध्यापन और गायत्री का उपदेश करना इष्ट था।

(अनध्यायकथनम्)

अथानध्यायाः। पारिजाते हारीतः—प्रतिपत्सु चतुर्दश्यामष्टम्यां पर्वणोर्द्वयोः।
श्वोऽनध्यायेऽद्यशर्वर्यां नाधीयीत कदाचन॥

अब अनध्याय कहते हैं। प्रयोगपारिजात में बृहस्पति ने कहा है कि- प्रतिपदा, चतुर्दशी, अष्टमी, अमावास्या और पूर्णिमा, दूसरे दिन में अनध्याय हो तो पहली रात में कभी भी नहीं पढ़ना चाहिये।

नारदः—अयने विषुवे चैव शयने बोधने हरेः।
अनध्यायस्तु कर्तव्यो मन्वादिषु युगादिषु॥

नारद ने कहा है कि—अयन में, विषुव (तुला, मेष) में, विष्णु के शयन में, जागरण में, मन्वादि और युगादि में अनध्याय करे।

निर्णयामृते—चातुर्मास्यद्वितीयासु मन्वादिषु युगादिषु।
अनध्यायस्तु कर्तव्यो या च सोपपदा तिथिः॥

१—स्मृतौ-त्रिभ्य एव तु वेदेभ्यः पादं पादमदूदुहत्। तदित्यृचोऽस्याः सावित्र्याः परमेष्ठी प्रजापतिः॥

२—तत् सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम्। श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि॥ (ऋ०म७ ५ सू० ८२ म० १)

निर्णयामृत में कहा है कि--चातुर्मास्य की द्वितीया तिथियों में, मन्वादियों में, युगादियों में और जो तिथि सोपदादि हैं उनमें अनध्याय करे।

गर्गः—शुचावूर्जे तपस्ये च या द्वितीया विधुक्षये।
चातुर्मास्यद्वितीयास्ताः प्रवदन्ति मनीषिणः ॥

गर्ग ने कहा है कि-आषाढ़, कार्तिक, और फाल्गुनकी द्वितीया तिथि में तथा अमावास्या और चातुर्मास्य की द्वितीया में मनीषिगण अनध्याय कहते हैं।

स्मृत्यर्थसारेऽपि—'आषाढीकार्तिकीफाल्गुनीसमीपस्थद्वितीयासु च' इति।

स्मृत्यर्थसार में भी कहा है कि—आषाढ़, कार्तिक और फाल्गुन के समीप में रहने वाली द्वितीया तिथियों में अनध्याय होती है।

मनुः--(अ० ४ श्लोक ११६) उपाकर्मणि चोत्सर्गे त्रिरात्रं क्षपणं स्मृतम्।
अष्टकासु त्वहोरात्रमृत्वन्तासु च रात्रिषु ॥ इति।

मनु ने कहा है कि—उपाकर्म (श्रावणीकर्म) तथा उत्सर्ग (वेदोत्सर्ग) में तीन रात तक अनध्याय होती है। अष्टकाओं में तो अहोरात्र और ऋतु के अन्त में तो एक दिन (यथाशास्त्रं तु कृत्वैवमुत्सर्गं छन्दसां बहिः। विरमेत् पक्षिणीं रात्रीं यद्वाप्येकमहर्निशम्॥ उत्सर्गे प्रथमेऽध्याये त्वनध्यायस्त्र्यहं भवेत्। धारणाध्ययनादौ तु पक्षिणीं दिनमेव वा॥) की अनध्याय होती है।

उत्सर्गे तु—मनूक्तपक्षिण्यहोरात्राभ्यां त्र्यहस्य विकल्पः' इति विज्ञानेश्वरः।

उत्सर्ग में तो मनु के कहे हुए पक्षिणी तथा अहोरात्र से तीन दिन का विकल्प है--यह विज्ञानेश्वर ने कहा है।

अष्टकाशब्देन सप्तम्यादित्रयं ज्ञेयम्। तिस्रोऽष्टकास्त्रिरात्रमन्त्यामेके, (इति गौतमोक्तेः।

अष्टकाशब्द से सप्तमी आदि तीन को जानना चाहिये। तीन अष्टका होती हैं। 'अष्टकासु' इस बहुवचन से सब अष्टकाओं का ग्रहण है। कोई अन्त्य की भी ग्रहण करते हैं। इनमें अध्ययन न करे। यह गौतम ने कहा है।

ऋत्वन्तास्विति सौरऋत्वन्तासु, चान्द्रान्तस्य पर्वत्वेनैव निषेधसिद्धेः) इति सर्वज्ञनारायणः। एते नित्याः।

सर्वनारायण ने कहा है कि—ऋतुओं के अन्त में सौरमास के प्रमाण से ऋतु के अन्तों में चान्द्रमास के पर्व में ही निषेध सिद्ध है। ये नित्य हैं।

(नैमित्तिकानध्यायकथनम्)

नैमित्तिकानप्याह याज्ञवल्क्यः—त्र्यहं प्रेतेष्वनध्यायः शिष्यर्त्विग्गुरुबन्धुषु। उपाकर्मणि चोत्सर्गे स्वशाखाश्रोत्रिये तथा॥ सन्ध्यागर्जितनिर्घातभूकम्पोल्कानिपापने। समाप्य वेदं द्युनिशमारण्यकमधीत्य च॥ पञ्चदश्यां चतुर्दश्यामष्टम्यां राहुसूतके। ऋतुसन्धिषु भुक्त्वा वा श्राद्धिकं प्रतिगृह्य च॥ पशुमण्डूकनकुलश्वाहिमार्जारमूषकैः। कृतेऽन्तरे त्वहोरात्रं शक्रपाते तथोच्छ्रये॥ ग्रहणे द्युनिशोक्तावपि ग्रस्तास्ते त्र्यहमित्युक्तं प्राक्। (याज्ञवल्क्य आचाराध्याये श्लोक १४४–१५१)

नैमित्तिक अनध्याय को भी कहते हैं। याज्ञवल्क्य ने कहा है कि--शिष्य, ऋत्विक्, गुरु तथा बन्धु के मरण पर तीन दिन अनध्याय होती है। उपाकर्म में, उत्सर्ग में, स्वशाखीय श्रोत्रिय के मरने पर सन्ध्याकाल में, मेघगर्जन में, आकाश में उत्पात की ध्वनि होने पर, भूकम्प और उल्का (तारा) के गिरने पर, वेद और ब्राह्मण की समाप्ति पर आरण्यक पढ़ने पर अहोरात्र अनध्याय होती है।

अमावास्या और पूर्णिमा, चतुर्दशी, अष्टमी, तथा ग्रहण में, ऋतुओं की सन्धि में, श्राद्धीय भोजन करने पर, प्रतिग्रही होने पर, पशु, मेढक, न्योला, कुत्ता, सर्प, स्याही, बिल्ली और मूसा इनके मध्य से जानेपर अहोरात्र अनध्याय होती है। शक्रध्वज के (मासि भाद्रपदे राजन् शक्रयष्टिनिपातनम्। पौर्णमास्यां तु कर्तव्यम्)

पतन में और और उच्छ्रयण (उठाते) (गार्ग्यः—द्वादश्यां तु सिते पक्षे मासि प्रौष्ठपदे तथा । शक्रमुत्थापयेद्राजा विश्वश्रवणवासवैः ।। विश्वम्-उत्तराषाढा । वासवम्—धनिष्ठा ।) समय अहोरात्र अनध्याय होती है । किसी के मत से शक्रध्वज के पतन में तीन दिन अनध्याय होती है । ग्रहण में दो रात कहने पर भी ग्रस्तास्त (अर्थात्-चन्द्र और सूर्यग्रहण) में तीन दिन अनध्याय होती है—यह पहले कह चुके हैं ।

स्मृत्यर्थसारे तु—रात्रौ तु ग्रहे तिस्रो रात्रीः, दिवा च त्र्यहम् इत्युक्तम् । ऋतुः=सौरः । भुक्त्वेत्युत्सवविषयम् । 'ऊर्ध्वं भोजनादुत्सवे' इति गौतमोक्तेः । आह्निकं महैकोद्दिष्टभिन्नम् । तत्र तु त्र्यहमिति मनुः । स्मृत्यर्थसारे चैवम् ।

स्मृत्यर्थसार में तो कहा है कि—रात्रि में (सम्पूर्ण) ग्रहण हो तो तीन रात्रि और दिन में ग्रहण हो तो तीन दिन अनध्याय होती है । (खण्डग्रहण में दो दिन की अनध्याय होती है ।) ऐसा कहा है ।

यहाँ पर ऋतु से सौर ग्रहण करे । भोजन कर यह उत्सव के विषय में है । भोजन के पहले उत्सव (विवाह, उपनयन आदि) में गौतम ने कहा है । पार्वणश्राद्धसंबन्धि आह्निक तो महत् एकोद्दिष्ट से भिन्न है । वहाँ तो तीन दिन की अनध्याय होती है—ऐसा मनु ने कहा है । (प्रतिगृह्य द्विजो विद्वानेकोद्दिष्टस्य केतनम् । त्र्यहं न कीर्तयेद् ब्रह्म राज्ञो राज्ञश्च सूतके ।।) एकोद्दिष्टपद से 'नवश्राद्ध' का ग्रहण करना कोई स्वीकार करते हैं ।

यत्तु—पश्वाद्यन्तराये त्र्यहमुपवासो विप्रवासश्च' इति गौतमोक्तं, तत्प्रथमाध्ययने ।

जो गौतम ने कहा है कि—पशु आदि के मध्य से निकने पर तीन दिन उपवास करे । वह तो प्रथमाध्ययन में है ।

याज्ञवल्क्यः—श्वक्रोष्टुगर्दभोलूकसामबाणार्तनिःस्वने । अमेध्यशवशूद्रान्त्यश्मशानपतितान्तिके ।। देशेऽशुचावात्मनि च विद्युत्स्तनितसम्प्लवे । भुक्त्वार्द्रपाणिरम्भोन्तरर्धरात्रेऽतिमारुते ।। पांशुप्रवर्षे दिग्दाहे संध्यानीहारभीतिषु । धावतः पूतिगन्धे च शिष्टे च गृहमागते ।।

याज्ञवल्क्यने कहा है कि-कुत्ता, गीदड़, गधा, उल्लू, सामवेदके पठनकालमें (सामगानमें) वेदान्तरकी, वांस और दुःखित व्यक्ति के स्वर सुनने पर तथा अपवित्र वस्तु शव, शूद्र, अन्त्यज, श्मशान या पतित व्यक्ति के समीप में आने पर, अपवित्र जगह में, आत्मा के अपवित्रता में, बिजली के शब्द में, मेघ के बार बार गर्जन के समय, भोजन कर गीले हाथ से, जल के मध्य में, आधीरात में, अधिक वायु के चलने पर, धूलभरी आंधी आने पर तथा उडने पर, दिग्दाह में (आपस्तंबः—उल्कायामग्न्युत्पाते सर्वासां विद्यानामाकालिकोऽनध्यायः ।) सन्ध्या (बौधायनः—प्रातःसन्ध्या त्रिनाडी स्यात्सायंसन्ध्या तथाविधा । सायंप्रातः सन्ध्ययोश्च नाधीयीत कदाचन ।।) के समय धुंधले में, भय में, दौड़ते हुए, पूतिगन्ध (दुर्गन्ध) मनुः—नित्यानध्याय एव स्याद् ग्रामेषु नगरेषु च । धर्मनैपुण्यकामानां पूतिगन्धे च सर्वतः ।।) में (पूतिगन्धहानि में तो अनध्याय नहीं होती है) शिष्टव्यक्ति के घर में आने पर (यमः—स्वागतं चातिथिं दृष्ट्वा नाधीयीतैव बुद्धिमान् । अप्यनुज्ञाते तस्मिन्नध्येतव्यं प्रयत्नतः ।।) अनध्याय होती है ।

खरोष्ट्रयानहस्त्यश्वनौवृक्षेरिणरोहणे । सप्तत्रिंशदनध्यायानेतांस्तात्कालिकान् विदुः ।।

गधा, ऊँट, हाथी, घोड़ा तथा नाव, किसी के मत से गधे और ऊँट के युक्त यान में चढने पर, शकट में, वृक्ष पर चढने और ऊसर भूमि या मरुस्थल में चलने पर अनध्याय होती है । ये सैंतोस अनध्याय होती हैं । इनको तात्कालिक (निमित्तसम-कालिक) जानना चाहिये ।

वाणो=वंशः । शततन्तुर्वीणेति हरदत्तः । अमेध्याः=सूतिकादयः । स्तनितं=गर्जः । वर्षातोऽन्यत्र गर्जवृष्टिविद्युतां यौगपद्ये आकालिकः वर्षासु तात्कालिक इति नारायणः ।

वीणा वांस, नृत्यगीतवादित्रादि से निकले शब्दों से—(सौ तन्तु की वीणा) यह हरदत्त ने कहा है । अमेध्यसाने=सूतिकादि, स्तनित शकट या गर्त से रथ । वर्षा से अन्यत्र गर्जन, वृष्टि और बिजलीका एक साथ वर्षा में आकालिक तथा वर्षाओं में तात्कालिक अनध्याय होती है—यह नारायण ने कहा है ।

(ऐतरेयोपनिषदि अपर्तौ वर्षे त्रिरात्रमिति मृगादिज्येष्ठान्तं वर्षर्तुः तं विना वर्षादौ त्रिरात्रमनध्याय इति वेदभाष्ये उक्तम् ।)

(ऐतरेयोपनिषद में कहा है कि—विना ऋतु के वर्षा होने पर तीन दिन अनध्याय होती है। मृगशिरा नक्षत्र से लेकर ज्येष्ठानक्षत्र तक वर्षाऋतु है उसको छोड़कर वर्षा आदि में तीन रात्रि अनध्याय होती है। ऐसा वेदभाष्य में कहा है।)

(सन्ध्यागर्जे तु विशेषः)

सन्ध्यागर्जे तु हारीतः—सायंसन्ध्यास्तनिते रात्रिः, प्रातःसन्ध्यास्तनितेऽहोरात्रं, रात्रौ 'विद्युत्यपररात्र्यवधिः, विद्युति नक्तं चापररात्रात्' इति गौतमोक्तेः। तृतीयदिनांशोत्तरं तु विद्युति सर्वरात्रम्' इत्याह स एव । त्रिभागादिप्रवृत्तौ सर्वमिति, अर्द्धरात्रे मध्ययामद्वये इति विज्ञानेश्वरः। मध्यदण्डचतुष्टय इति निर्णयामृते ।

सन्ध्या समय गर्जन में तो हारीत ने कहा है कि—सायंकाल की सन्ध्या के समय गर्जने पर एकरात्रि अनध्याय होती है। प्रातःसन्ध्या के गर्जन में तो अहोरात्र अनध्याय होती है। रात्रि में बिजली के शब्द में अपररात्रि के अवधिपर्यन्त अनध्याय होती है—गौतम ने कहा है। तीसरे दिन के अंश के उत्तर में तो (तृतीय भाग में) बिजली चमके तो सारीरात अनध्याय होती है यह उसने ही कहा है। तीनों भागों के किसी भी भाग में बिजली चमके तो सारेदिन अनध्याय होती है। आधीरात के मध्य के दो याम (स्मृतिः—महानिशा तु विज्ञेया मध्यं मध्यमयामयोः। तस्यां स्नानं न कुर्वीत स्वाध्यायं पितृतर्पणम् ॥) स्वाध्याय नहीं करना चाहिये। निर्णयामृत में मध्य के चारदण्डको कहा (महानिशा तु विज्ञेया चतस्रो घटिकास्तथा। अत्र दोषाधिक्ये कल्प्यम् ।) है।

(विवादादौ अनध्यायकथनम्)

मनुः—न विवादे न कलहे न सेनायां न सङ्गरे। न भुक्तमात्रे नाजीर्णे न वमित्वा न सूतके। रुधिरे च स्रुते गात्राच्छस्त्रेण च परिक्षते ॥

मनुने कहा है कि—विवादमें, कलह में, सेना और संग्राममें, भोजनोत्तर गीले हाथ में, अजीर्ण (अन्न के [1]अजीर्ण) में, [1]वमन में, सूतक में, रुधिर निकलने पर और शस्त्र से घाव लगने पर अध्ययन न करे।

(श्लेष्मान्तकादीनां छायासु अनध्यायकथनम्)

कौर्मे—श्लेष्मान्तकस्य छायायां शाल्मलेर्मधुकस्य च ।
कदाचिदपि नाध्येयं कोविदारकपित्थयोः ॥

कूर्मपुराण में कहा है कि—श्लेष्मान्तक (बहेडा), शाल्मली (सेमर), मधूक (महुआ), कोविदार (कचनार) और कपित्थ (कैथ) की छायामें नहीं पढ़ना चाहिये।

(शयनादौ अनध्यायनिर्णयः)

मनुः—शयानः प्रौढपादश्च कृत्वा चैवावसक्थिकाम् । नाधीयीतामिषं जग्ध्वा सूतकान्नाद्यमेव च ॥ प्रौढपादः पादोपरि पाददाता आसनारूढपादो वेति हरदत्तः । सोपपदास्वपि प्रागुक्तम् ।

मनुने कहा है कि—शयनकर, पैरपर पैर कर, आवसक्थिका (वस्त्र आदि से जानुओं का पीठ के साथ बन्धन), मांस खाकर और प्रायश्चित्ति का अन्न खाकर नहीं पढ़ना चाहिये।

पैरके ऊपर पैर रखकर या पैरों को पसार कर—(प्रसारितपादोऽपि बोध्यः), बैठा हो या आसनपर पादारूढ हो ऐसा हरदत्त ने कहा है। यह सोपपदाओं में भी पहले कह चुके हैं।

(श्रवणद्वादश्यादौ अनध्यायकथनम्)

स्मृत्यर्थसारे—श्रवणद्वादशीमहाभरण्योः प्रेतद्वितीयायां रथसप्तम्यामाकाशे शवदर्शने चाहोरात्रम् ।

स्मृत्यर्थसार में कहा है कि—श्रावणद्वादशी, महाभरणी (स्मृतिचन्द्रिकायाम् प्रौष्ठपद्यन्तरा—भरणी)

१-जरणोचितकालेऽपि । गौतमः-संकलोपोहितवेदसमासिछर्दिश्राद्धमनुष्ययज्ञभोजनेषु अहोरात्रम् । संकलोपाहितोऽग्न्युत्पातः । छर्दौ—आपस्तंबः—छर्दयित्वा स्वप्नान्ते घृतं वा प्राश्य' अधीयीत । सूतके 'मुक्तके' इति पाठे अम्लोद्गारे इत्यर्थः ।

महानवम्यां (अश्विनशुक्ल की नवमी) द्वादश्यां (कार्तिकशुक्लद्वादशी) भरण्यां (प्रौष्ठपद्यन्तरा) वा महाद्युते । तथाऽक्षयतृतीयां शिष्यान्नाध्यापयेद्बुधः ॥ माघमासस्य सप्तम्यां रथाख्यायां विवर्जयेत् । महाच्छब्दस्य द्वाश्यादिष्वपि सम्बन्धाः ।) प्रेतद्वितीया (यमद्वितीया), रथसप्तमी और आकाश में शवदर्शन पर अहोरात्र अनध्याय होती है ।

(असपिण्डगुर्वादिमरणेऽनध्यायकथनम्)

असपिण्डे गुरौ मृते त्रिरात्रम् । आचार्ये उपाध्याये च पक्षिणी । आचार्यभार्यापुत्रशिष्येष्वहोरात्रम् । अग्न्युत्पातेन गोविप्रमृतौ त्रिरात्रम् । अयने विषुवे च पक्षिणी अकालवृष्टौ च ।

असपिण्ड गुरु (महागुरु के मरनेपर वारह रात्र) के मरने पर तीन दिन अनध्याय होती है । आचार्य और उपाध्याय के मरने पर पक्षिणी तथा आचार्य की पत्नी, पुत्र और शिष्य के मरनेपर अहोरात्र का आशौच होता है । अग्न्युपघात में—गौ और ब्राह्मण के मरनेपर तीन रात्रि, अयन और विषुव में एवं असमय की वर्षा में पक्षिणी अनध्याय होती है ।

(आरण्यमार्जारादीनामन्तरागमनेऽनध्यायकथनम्)

आरण्यमार्जारसर्पनकुलपञ्चनखादेरन्तरागमने त्रिरात्रम् । आरण्यश्वशृगालादिवानररजकादौ द्वादशरात्रम् । खरवराहोष्ट्रचाण्डालसूतिकोदक्याशवादौ मासम् । गोगवयाजानास्तिकादौ त्रिमासम् । शशमेषश्वपाकादौ षण्मासम् । गजगण्डसारससिंहव्याघ्रमहापापिकृतघ्नादावब्दमनध्यायः । शोभनदिने चानध्यायः ।

जंगल का=बिलाव, सर्प, न्योला, और पञ्चनख (शल्यकः श्वाविधो गोधा शशः कूर्मश्च पञ्चमः । (वाल्मीकि० १७।३६) आदिके मध्य से गमन करने पर तीन दिन की अनध्याय होता है । जंगली कुत्ता, सियार, आदिशब्दसे—वनके मूषक आदि, वन्दर, धोवो, चर्मकार आदि में वारह रात अन्तरागमन में अनध्याय होती है ।

गदहा, सूअर, ऊँट, चाण्डाल, सूतिका रजस्वला तथा शव के मध्य से निकलनेपर एक महिने की अनध्याय होती है । गौ, गवय (नीलगाय) वकरी तथा नास्तिक आदिमें तीन महिने की मध्य में जानेपर अनध्याय होती है ।

शश[1] (खरगोश), मेष (भेडा), श्वपाक (चाण्डाल) आदि में छ महिने की मध्य में जानेपर अनध्याय होती है । हाथी, गैंडा, सारस, सिंह, व्याघ्र, महापापी, कृतघ्न आदि में एक साल की अन्तरागमन पर अनध्याय होती है । शोभनतिथि में अनध्याय (स्मृत्यन्तरे-प्रतिपल्लेशमात्रेण कलामात्रेण चाष्टमी । दिनं दूषयते सर्वं सुरा गव्यघटं यथा ॥ लेशादिमत्त्वं सूर्योदयोत्तरं न तु प्राक् । दिनम्-अस्तात् पूर्वमाचारात् ।) होती है ।

(विवाहाद्युत्सवे अनध्यायनिर्णयः)

विवाहप्रतिष्ठोद्यापनादिष्वासमाप्ते सगोत्राणामनध्यायः ।

उदयेऽस्तमये वापि मुहूर्तत्रयगामि यत् । तद्दिनं तदहोरात्रमनध्यायविदो विदुः ॥

विवाह, प्रतिष्ठा, उद्यापन आदियों के समाप्त नहीं होने तक सगोत्रों की अनध्याय होती । उदय और अस्त में तीन मुहूर्त हो तो उसमें अहोरात्र करे ऐसा अन्यध्याय के जानकारों ने अनध्याय कहा है ।

केचिदाहुः क्वचिद्देशे यावत्तद्दिननाडिका । तावदेव त्वनध्यायो न तन्मिश्रे दिनान्तरे ॥

किसीने कहा है कि—किसी देश में जितनी दिन की नाडी हो उतनी ही अनध्याय होती है । उसके मिले दिनान्तर में नहीं होती है ।

(प्रदोषे अनध्यायकथनम्)

प्रदोषं त्वाह प्रजापतिः—षष्ठी च द्वादशी चैव अर्द्धरात्रोननाडिका ।
प्रदोषे न त्वधीयीत तृतीया नवनाडिका ॥

१—शशेति उपलक्षणम् । गुर्वन्ते वासिनां चैव मध्येतॄणां च मध्यतः । ययुः शशश्वपाकाजा नाधीयीतार्धवत्सरम् । एवं च प्रथमारंभेऽजगमने । व्याघ्रेऽपि प्रथमारंभ एवाब्दम् ।

प्रदोष को तो कहते हैं प्रजापति ने कहा है कि—[1]षष्ठी और द्वादशी, आधीरात के एक नाडी (घडी) के पूर्व तक तथा तृतीया नौ नाडी तक हो तो अध्ययन नहीं करना चाहिये।

(प्रदोषकालकथनम्)

निर्णयामृते गर्गः—रात्रौ यामत्रयादर्वाक् सप्तमी वा त्रयोदशी।
प्रदोषः स तु विज्ञेयः सर्वविद्याविगर्हितः॥

निर्णयामृत में गर्गने कहा है कि—रात में दो यामके पहले सप्तमी या त्रयोदशी हो तो वह सब विद्याओं के अध्ययन में गर्हित हैं। उसको प्रदोषकाल जानना चाहिये।

रात्रौ नवसु नाडीषु चतुर्थी यदि दृश्यते। प्रदोषः स तु विज्ञेयो सर्वविद्याविगर्हितः॥

रातमें नौ नाडियों में यदि चतुर्थी दिखाई दे तो उसको प्रदोष जानना चाहिये। वह सब विद्याओं में निन्दित है।

(अङ्गेतिहासादीनां नाध्यायकथनम्)

कौर्मे—अनध्यायस्तु नाङ्गेषु नेतिहासपुराणयोः। न धर्मशास्त्रेष्वन्येषु पर्वण्येतानि वर्जयेत्॥

कूर्मपुराण में कहा है कि—अंगों में, इतिहास[2] और पुराणमें, धर्मशास्त्रों में अनध्याय नहीं होती है। तथा इनसे अन्यों में इन पर्वो को त्याग दे।

शौनकः—नित्ये जपे च काम्ये च क्रतौ पारायणेऽपि च। नानध्यायोऽस्ति वेदानां ग्रहणे ग्राहणे स्मृतः॥ इत्यनध्यायाः।

शौनकने कहा है कि—[3]नित्यकार्यों में, जपमें, काम्यकर्मों में, यज्ञ में और पारायण में भी, वेदों के ग्रहण (पढने) ग्राहण (पढाने) में अनध्याय नहीं होती है।

(महानाम्न्यादिव्रतम्)

अथ महानाम्न्यादिव्रतम्। श्रीधरः—तिथिनक्षत्रवारांशवर्गोदयनिरीक्षणम्। चौलवत्सर्वमाख्यातं सगोदानव्रतेषु च॥ ए (ते) षां लोपे शौनकः—व्रतानि विधिना कृत्वा स्वशाखाध्ययनं चरेत्। अकृत्वाभ्यस्यते येन स पापी विधिघातकः॥ प्रत्येकं कृच्छ्रमेकैकं चरित्वाऽऽज्याहुतीः शतम्। हुत्वा चैव तु गायत्र्या स्नायादित्याह शौनकः॥ स्मृत्यर्थसारे तु—'त्रीन् षड् वा दश वा कृच्छ्रान् कृत्वा पुनर्व्रतं चरेत्' इत्युक्तम्।

महानाम्नी आदिव्रत कहते हैं। श्रीधर ने कहा है कि—महानाम्नी व्रतमें तिथि, नक्षत्र, वार, अंश (नवांश), और वर्ग (षड्वर्ग) उदय (लग्न) का निरीक्षण चूडाकर्म की तरह तथा गोदान (केशान्त) व्रतों में भी देखना चाहिये।

इनसब के लोप में शौनक ने कहा है कि—व्रतों (स्मृतिः—प्रथमं स्यान्महानाम्नी द्वितीयं स्यान्महाव्रतम्। तृतीयं स्यादुपनिषद्गोदानाख्यं ततः परम्॥ उद्योते यजुर्वेदिनाम्—प्राजापत्यैन्द्राग्नेयसौम्यानि, सामवेदिनाम्—केशान्तगोदानमहानाम्नीज्येष्ठसामव्रतानि, अथर्वाणाम्—गोदानसावित्रीव्रतवेदव्रतविसर्जनव्रतानि, इमानि व्रतानि त्रयोदशवर्षमारभ्य ब्राह्मणेन, एकोनविंशमारभ्य क्षत्रियेण, एकविंशमारभ्य वैश्येन कार्याणि।) को विधिवत् कर अपनी शाखाका अध्ययन (मनुः—यः स्वशाखां परित्यज्य परशाखां समाश्रयेत्। अप्रमाणमृषिं कृत्वा सोऽन्धे तमसि मज्जति॥) करे—जो इन व्रतों को न कर अध्ययन करता

१—बृहन्मनुः—चतुर्थ्यां च त्रयोदश्यां सप्तम्यामर्धरात्रतः। अर्वाग् नाध्ययनं कुर्याद्यदीच्छेत्तस्य धारणम्॥ स्मृत्यर्थसारे—चतुर्थ्याः पूर्वरात्रे तु नवनाडीषु दर्शने। नाध्येयं पूर्वरात्रेस्यात्सप्तमी च त्रयोदशी॥ अर्धरात्रात्पुरा चेत्स्यान्नाध्येयं पूर्वरात्रके। यामद्वयादर्वागिति पाठः। यामत्रयादर्वागितित्वशुद्धः।

२—चतुर्दश्यष्टमीपर्वप्रतिपद्वर्जितेषु च। वेदाङ्गन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राणि चाभ्यसेत्॥

३—नित्ये नैमित्तिके काम्ये व्रते यज्ञे क्रतौ तथा। प्रवृत्ते काम्यकार्ये च नानध्यायाः स्मृतास्तथा॥ देवतार्चनमन्त्राणां नानध्यायः कदाचन।

है वह विधिका घात करनेवाला पापी होता है। प्रत्येक के लिये एक एक कृच्छ्र तथा गायत्री मन्त्रसे घृत द्वारा सौ आहुति देकर स्नान करे—यह शौनक ने कहा है। स्मृत्यर्थसार में तो कहा है कि—तीन, छ और बारह (किसी के मत से दश) कृच्छ्रों को कर फिर से व्रत करे—यों कहा है।

(समावर्तनकथनम्)

अथ समावर्तनम्। सुरेश्वरः—भौमभानुजयोर्वारे नक्षत्रे च व्रतोदिते।
ताराचन्द्रविशुद्धौ च स्यात्समावर्तनक्रिया॥

उसके बाद समावर्तन कहते हैं। सुरेश्वर ने कहा कि—मंगलवार, शनिवार व्रत में कहे हुए नक्षत्र, तारा तथा चन्द्र की शुद्धि में समावर्तनक्रिया होती है।

बौधायनसूत्रे तु—'रोहिण्यां तिष्ये उत्तरयोः फाल्गुन्योर्हस्ते चित्रायामैन्द्रे विशाखायां वा स्नायात्' इत्युक्तम्।

बौधायनसूत्रमें तो कहा है कि—रोहिणी, पुष्य, दोनों उत्तरा, दोनों फाल्गुनी, (पूर्वाफाल्गुनी तथा उत्तरा फाल्गुनी) हस्त, चित्रा, ज्येष्ठा या विशाखा में स्नान करे। यों कहा है।

वसिष्ठः—स्नानं मध्याह्नकाले तु होरायां कारयेच्छुभम्।
पूर्वाह्णे तदभावे तु कुर्यात्स्नानं यथाविधि॥

वसिष्ठ ने कहा है कि—मध्यान्हकाल में शुभ ग्रह की होरा (कालहोरा) आनेपर स्नान करना कल्याण कारक है। उसके अभाव में पूर्वाह्णकाल में यथाविधि स्नान करे।

'सर्वऋतवो विवाहस्य' इति सूत्रात् यदा दक्षिणायने विवाहस्तदा समावर्तनमपि तत्रैव। अन्यथोदगयने समावर्तने 'अनाश्रमी न तिष्ठेत' इति विरोधः स्यादित्युक्तं सुदर्शनभाष्ये। एतच्च ब्रह्मचारिव्रतलोपप्रायश्चित्तं कृत्वा कार्यम्।

विवाह की सब ऋतु हैं। अर्थात्—सब ऋतुओं में विवाह करना चाहिये। इससूत्र के मत से। जब दक्षिणायन में विवाह होता है तो समावर्तन भी दक्षिणायन में करे। अन्यथा उत्तरायण में समावर्तन होगा तो विना आश्रम के न रहे—यह विरोध हो जायगा। ऐसा सुदर्शनभाष्य में कहा है और इस ब्रह्मचर्य-व्रतके लोपका प्रायश्चित्त करे।

तदाह बौधायनः—शौचसन्ध्यादर्भभिक्षाग्निकार्यराहित्यकौपीनोपवीतमेखलाजिनधारणदिवास्वापच्छत्रपादुकास्रग्विधारणोद्वर्तनानुलेपनाञ्जनद्यूतनृत्यगीतवाद्यादिभिरतौ ब्रह्मचारी कृच्छ्रत्रयं चरेत् महाव्याहृतिहोमं च कुर्यात्।

उसी वात को बौधायन ने कहा है कि—पवित्रता, सन्ध्या, दर्भ, भिक्षा, अग्निकार्य से शून्य, कौपीन, यज्ञोपवीत, मेखला, दण्ड, मृगचर्म आदि धारण दिनमें शयन; छाता, खड़ाँऊ, माल्यधारण, अंगोद्वर्तन, अनुलेपन, अञ्जन, जूआ, नाच, गाना और वाद्य में रत ब्रह्मचारी तीन कृच्छ्र करे और महाव्याहृति से हवन करे।

(समावर्तनोत्तरं पूर्वमृतानां त्रिरात्रमाशौचकथनम्)

समावर्तनोत्तरं पूर्वमृतानां त्रिरात्रमाशौचं कार्यम्। आदिष्टी नोदकं कुर्यादाव्रतस्य समापनात्। समाप्ते तूदकं दत्त्वा त्रिरात्रमशुचिर्भवेत्॥ इति मनूक्तेः। आदिष्टी ब्रह्मचारीति विज्ञानेश्वरः। ब्रह्मचर्ये यदि कश्चिन्न मृतस्तदा त्रिरात्रमध्ये विवाहः कार्योऽन्यथा नेति सिद्ध्यति। जनने तु सत्यपि न त्रिरात्रम्, तत्रातिक्रान्ताशौचाभावादुदकं दत्त्वेति वचनाच्चेति दिक्। तत्रापि विकल्पः। पितर्यपि मृते नैषां दोषो भवति कर्हिचित्। आशौचं कर्मणोऽन्तेस्यात्त्र्यहं वा ब्रह्मचारिणाम्॥ इति छन्दोगपरिशिष्टात्।

समावर्तन के बाद पूर्व मरनेवालों पर तीन रातका आशौच करे। मनु ने कहा है कि—ब्रह्मचारी व्रतके समाप्त होने तक उदक (जल) न दे। समाप्त व्रतके होनेपर उदक देकर तीनरात अपवित्र होता है।

आदिष्टी—ब्रह्मचारी को कहते हैं। यह विज्ञानेश्वर ने कहा है। ब्रह्मचर्यावस्था में यदि कोई न मरे तो तीन रात के मध्यमें विवाह करे अन्यथा तो नहीं सिद्ध होता है। किसी के उत्पत्ति में तो तीन दिन का आशौच नहीं होता है। वहाँ पर अतिक्रान्त (व्यतीत) आशौच का अभाव होने से जल दे, यह वचन है। यह मार्ग का निर्देश है। उसमें भी विकल्प है।

छन्दोगपरिशिष्ट में कहा है कि—पिता के मरनेपर इन ब्रह्मचारियों को कभी भी दोष नहीं होता है या कर्म (हवनादि) के अन्तमें तीन दिनका आशौच होता है।

(स्नातकव्रतन्याह)

स्नातकव्रतान्याह व्यासः—यज्ञोपवीतद्वितयं सोदकं च कमण्डलुम्। छत्रं चोष्णीषममलं पादुके चाप्युपानहौ॥ रौक्मे च कुण्डले वेदः कृतं केशनखः शुचिः॥ वेदो=दर्भवटुः।

स्नातक के व्रतों को व्यासजी ने कहा है कि—दो यज्ञोपवीत, जल के सहित कमण्डलु, छाता, स्वच्छ पगड़ी, खड़ाऊ, (जूता) सुवर्ण के कुण्डल, कुशा का समूह, केश (बाल), नख धारण कर तथा पवित्र होकर रहे। वेदमाने—दर्भवटु।

मनुः (४।६६)—उपानहौ च वासश्च धृतमन्यैर्न धारयेत्। उपवीतमलङ्कारं स्रजं करकमेव च॥" अन्यान्यपि बह्वृचगृह्यस्मृत्यादिभ्यो ज्ञेयानि।

मनुने कहा है कि—अन्य के धारण किये हुए जूते, वस्त्र, यज्ञोपवीत, अलंकार, माला तथा करक (कमण्डलु) को धारण न करे और दूसरे भी वचनों को बह्वृचगृह्यस्मृति आदियों से जानना चाहिये।

(छुरिकाबन्धः)

अथ छुरिकाबन्धः। ज्योतिर्निबन्धे नारदः—छुरिकाबन्धनं वक्ष्ये नृपाणां प्राक्करग्रहात्। विवाहोक्तेषु मासेषु शुक्लपक्षेप्यनस्तगे॥ जीवे शुक्रे च भूपुत्रे चन्द्रताराबलान्विते। मौञ्जीबन्धर्क्ष-तिथिषु कुजवर्जितवासरे॥

अब छुरिकाबन्ध कहते हैं। ज्योतिर्निबन्ध में नारद ने कहा है कि—राजाओं के विवाह के पूर्व छुरिकाबान्धना कहता हूँ। विवाह में कहे हुए महिनों में, शुक्लपक्ष में, गुरु और शुक्र के उदय में, मंगल, चन्द्रमा तथा तारा के बलान्वित होनेपर, 'मौञ्जीबन्धन के नक्षत्र तथा तिथिमें एवं मंगलवार से भिन्न वारों में छुरिकाबन्धन करे।

सङ्ग्रहे—शूद्राणां राज्यपुत्राणां मौञ्ज्यभावेऽस्त्रबन्धनम्।
मौञ्जीबन्धोक्ततिथ्यादौ कार्यं भौमदिनं विना॥

संग्रह में कहा कि—शूद्रों के राज्यपुत्रों का मौञ्जी के अभाव में अस्त्रबन्धन कहा है। वह मंगलवार को छोड़कर मौञ्जीबन्धन में कही हुई तिथि आदि में करे।

(प्राचीन व्यवस्थाओं का संग्रह)

(स्वर्गीय-महामहोपाध्याय श्री पं० विद्याधर जी गौड़ द्वारा लिखित)

(३) यदत्र कासु चित् पद्धतिषु "उपनयन-वेदारम्भ-समावर्तनकर्माणि एकतन्त्रेण करिष्ये" इति सङ्कल्पो लिखितः, यच्च कैश्चित्तदनुसारेण त्रयाणां समानतन्त्रेणैव सङ्कल्पः क्रियते तन्न युक्तम्, त्रयाणां तेषामेकैकप्रयोगपरिसमाप्त्यनन्तरमेव अपरस्यानुष्ठेयत्वेन एकप्रयोगपरिगृहीतत्वाभावात्। एकप्रयोगपरिगृहीतानामेव च कालकर्त्राद्यैक्ये तयाऽनुष्ठानस्य शास्त्रे सिद्धान्तितत्वात्। अतोऽत्र पृथक् पृथगेव एकं (साङ्गं) समाप्यानन्तरं द्वितीयं कर्म आरब्धव्यं, तत्समाप्तौ तृतीयमिति। अत एव च त्रयाणां तत्तत्कर्मारम्भकाले पृथक् पृथगेव सङ्कल्पः कार्यो न तु सर्वादौ पृथक् सकृत्, पृथक् पृथग्वा। स्वस्ति-वाचनादिषु तु एकस्मिन् दिने कर्तव्येषु आवृत्त्यभावात् सर्वादौ सर्वोद्देशेन "करिष्यमाणसर्वकर्माङ्गत्वेन स्वस्तिपुण्याह-वाचनादीनि करिष्ये" इत्येव युक्तम्। "तन्त्रं च अनेकेषां प्रधानानामेकदाऽनुष्ठाने प्राप्ते पूर्वाङ्गानामुत्तराङ्गानां च सर्वोद्देशेन सकृदनुष्ठानम्"।

(१) केचिन्मेखलाबन्धनमन्त्रं स्वयं पठित्वा पश्चान्माणवकं वाचयित्वा मेखलां वध्नन्ति, तदयुक्तम्, मेखलाबन्धनमाचार्यकर्तृकम्, अतस्तस्यैव पाठो युक्तो न तु वटोः। प्रधानं कर्म, मन्त्रस्तु गुणः। प्रधानवशवर्तिनो हि गुणाः। अतो न गुणप्रधानयोः कर्तृभेदो युक्तः। तथा चात्र गदाधरभाष्यम्—आचार्यकर्तृकं मेखलाबन्धनं कुमारस्य मन्त्रपाठ इति वासुदेवादयः। अत्र मुरारिमिश्रैरबुध्यैव 'पुरुषयोगिमन्त्रसंस्कारयोत्यागे सामर्थ्यात्' (का० श्रौ० १।७।२०) इति हेतूपन्यासार्थं प्रदर्शितम्। न हि करणमन्त्रेऽयं न्यायः प्रवर्तते। ननु आचार्यकर्तृको ह्ययं पदार्थः। मन्त्रपाठस्तु लिङ्गवशेन माणवककर्तृकः स्यादिति चेन्न ? प्रधानभूतश्च पदार्थः। गुणभूतश्च मन्त्रः। अतः पदार्थाङ्गत्वेन मन्त्रोऽपि कर्त्रा पठनीयः। मन्त्रेऽपि च लक्षणया माणवकाभिधानमित्यदोषः। तथा च श्रुतिः—"यां वै कां च यज्ञ ऋत्विज आशिषमाशासते यजमानस्यैव सा" इति।

(१) गायत्र्युपदेशान्तरं गायत्र्यैव सन्ध्या कार्या, गायत्र्यैव ब्रह्मयज्ञः, यावत्तदभ्यासो न भवेत्। मध्याह्नसन्ध्याया उपनयनदिने विकल्प इति निर्णयसिन्धौ। ब्रह्मयज्ञस्य वेदारम्भाभावादेवाप्रात्तावपि "अथास्य ब्रह्मयज्ञं तु मध्याह्ने तु परेऽहनि" इति वचनात् द्वितीयदिने मध्यान्हे तस्य गायत्र्या कर्तव्यता इहोच्यते। तथा च जैमिनिः—अनुपाकृतवेदस्य कर्तव्यो ब्रह्मयज्ञकः। वेदस्थाने तु सावित्री गृह्यते तत्समासतः' ॥

(१) अत्र वेदारम्भ इषे त्वेत्यादितः कर्तव्यः। यद्यपि व्रतादेशे प्रथमम् "आग्नेयं व्रतं प्रथममादिशेत्" इति विधिः, तदनुरोधेन समिधाऽग्निमित्याद्यारम्भः कर्तव्य इत्यापाततः प्रतीयते, तथापि तस्य पृथगध्ययनकाले तदारम्भणेऽपि वेदारम्भकाले प्रथमाध्यायस्य परित्यागे प्रमाणाभावात् संस्कारभास्करादौ सर्वत्र प्रथमाध्यायादेवारम्भस्य विहितत्वाच्च आरभ्यैव वेदाध्ययनम्।

(१) अत्र न त्र्यायुषकरणं स्वयमेव वटुना कर्तव्यम्। तत्र वटुकर्तृके त्र्यायुषकरणे 'तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्' इत्यत्र अस्मच्छब्दस्य नोहः। वटुप्रतिनिधिभूताचार्यकर्तृकत्र्यायुषकरणपक्षेऽपि ऊहो नास्ति। कर्मणः परार्थत्वात्। ऋत्विजां च कर्मकरणार्थं परिक्रीतत्वात्। लिङ्गाच्च "यां वै काञ्च यज्ञ ऋत्विज आशिषमाशासते यजमानस्यैव सा' इति (श० ब्रा० १।१।१६)। अत एव 'वाजश्च मे प्रसवश्च मे' इत्यादौ ऋत्विक्कर्तृकपाठेऽपि नोहः। "शूलेन पाहि नो देवि" इत्यादौ दुर्गापाठेऽच्छब्दस्य नोहः। स्पष्टं चेदम्—'ममाग्ने वर्चो विहवेष्वस्तु' इत्येतत्सूत्रे कर्कभाष्ये (का० श्रौ० २।१।२) तथाहि—"ममाग्न इत्यत्र अध्वर्युकर्तृकेऽपि अग्न्यन्वाधाने यजमानाभिधायिपदानामन्यायनिगदत्वादनूह एव। न च वर्चो दिशां चावनतिः अध्वर्युविषया, कर्मणः परार्थत्वात्"। इति एवं च 'तन्नोऽ अस्तु त्र्यायुषम्, इत्यत्र तत्ते इति विशेष इति क्वाचित्कलेखनं प्रामादिकमेवेति दिक्।

(त्यक्तशिखासूत्रस्य पुनर्गार्हस्थ्यप्रवेशे प्रायश्चित्तम्)

प्रमादवशात् परित्यक्तशिखासूत्रः कृतोद्वाहः सपितृमातृको कश्चन ब्राह्मणकुमारः पुनर्गृहस्थाश्रमं चिकीर्षुः पुनरुपनयनादिसंस्कारेण शुद्धो भवितुमर्हति नवेति प्रश्ने—धर्मशास्त्रोक्तविधिना प्रकृतत्र्यब्दप्रायश्चित्तः पुनरुपनयनादिसंस्कारसंस्कृतः 'सर्वेषामेव पापानां जपः प्रायश्चित्तमीरितम्' इत्याद्युक्त्या द्वादशसहस्रगायत्रीजपेन शुद्धो भवितुमर्हति। प्रमाणं च प्रायश्चित्तविवेके संस्कारभास्करे च वर्तते।

(रोगार्तनित्यकृत्यलोपे विचारः)

(क) रोगार्तस्य गृहस्थस्य स्नान-सन्ध्या-देवर्षिपितृतर्पण-वैश्वदेव-देवार्चालोपे "वेदोदितानां नित्यानां कर्मणां समतिक्रमे" (मनु० ११।२०३) इत्यादिवचनेन अनातुरस्य एकस्य परित्यागे एकस्योपवासस्य विधानेऽपि आतुरस्य—राष्ट्रक्षोभे नृपक्षोभे रोगार्तौ क्षयसूतके। सन्ध्यावन्दनविच्छित्तिर्न दोषाय कदाचन ॥ इति गौतमवचनेन दोषाभावस्मरणेऽपि "अत्रापि यथासंभवमाचरणीयम्, लोपे तु किञ्चित् प्रायश्चित्तम्" इति प्रायश्चित्तमञ्जरीकारवचनात् तत्रैव पूर्वमापदि दिनत्रयातिक्रमे उपवास इत्युक्तत्वाच्च स्नानादेर्नित्यकर्मण एकैकस्य दिनत्रयातिक्रमे एक उपवासः, अनेकेषामतिक्रमे 'प्रतिनिमित्तं नैमित्तिका वृत्तिः' इति न्यायेन उपवासा वृत्तिः प्राप्नोति। एवं च यावन्तु दिनत्रयेषु सन्ध्यादीनां लोपः सञ्जातस्तावन्त उपवासा निमित्तभेदेन कर्तव्यतां प्राप्नुवन्ति। तदशक्तौ उपवासषट्कप्रतिनिधित्वेन एकं प्राजापत्यं परिकल्प्य यावन्त्युपवासषट्कानि तावन्ति प्रत्याम्नायकृच्छ्राणि कार्याणि। तत्राप्यशक्तौ तावत्संख्याका गावो देयाः। (ख) ज्वरार्तस्य द्विजस्य स्नान-सन्ध्या-देवर्षि-पितृ-तर्पण-वैश्वदेव-देवार्चालोपेन यो दोषः समजनि तद्दोषपरिहाराय आपदि नित्यकर्मणां दिनत्रयावधिकलोपे एकोपवासस्य धर्मशास्त्रेषु विधानात् एकैकस्य लोपे एकैक उपवास इति पञ्चानां स्नानादीनां दिनत्रयावधिकलोपे पञ्चोपवासा इति आहत्य परिगणनया सार्द्धमासद्वये सन्ध्यादिलोपे पञ्चविंशत्यधिकशतोपवासानां प्राप्तत्वात् तावतामुपवासानां स्वरूपतः कर्तुमशक्यत्वेन तत्प्रतिनिधित्वेन उपवासषट्कस्य एकप्राजापत्यपरिकल्पनया एकविंशतिप्राजापत्यकृच्छ्राणां प्रतिनिधित्वेन एकविंशतिगोमूल्यं वेति।

(पूर्वसङ्कल्पितस्यगायत्रीपुरश्चरणानुष्ठानविचारः)

(क) यदि कश्चिदार्तः पूर्वं मनसा सङ्कल्पितं बहुदिनसाध्य गायत्रीपुरश्चरणादिकं कर्म चिकीर्षन् शुक्रास्तादिदोषरहितकालागमनपर्यन्तं जीविते संशयमापन्नस्तादृशदोषदूषित एव काले स्वसङ्कल्पं पूरयितुमभिलषति तदनुष्ठानं शास्त्रीयमस्ति न वेति विचारे इदमुत्तरम्—स्वसङ्कल्पितस्य स्वेनैव समापनीयस्य षाष्ठन्यायसिद्धत्वात् दोषापगमं यावज्जीवनस्यानिश्चितत्वेन सङ्कल्पितकर्मणोऽनन्यगतिकत्वात् अनुष्ठातव्यत्वमेव । "कालेऽनन्यगतिं नित्यां कुर्यान्नैमित्तिकीं क्रियाम् ।" तथा—"नैमित्तिकं तु कुर्वीत सावकाशं न यद् भवेत् ।" इत्यादिवचनबलादुत्तरत्र—अतएव "सावकाशं च सम्भवति, निरवकाशस्य कर्मणो दोषयुक्तेऽपि कालेऽनुष्ठानं न दोषायेति गम्यते" इति निरवकाशस्यानन्यगतिकस्य प्रतिप्रसवोऽर्थात् सिद्धः । कर्म कुर्यात्फलावाप्त्यै चन्द्रादिशोभने बुधः । स्वस्थकाले त्विदं सर्वं नार्तकालमपेक्षते ॥ स्वस्थकाले त्विदं सर्वं सूतकं परिकीर्तितम् । आपद्गतस्य सर्वस्य सूतकेऽपि न सूतकम् ॥ व्यतीपातोऽथ संक्रान्तिस्तथैव ग्रहणं रवेः । पुण्यकालास्तदा सर्वे यदा मृत्युरुपस्थितः ॥ एवञ्च पूर्वोक्तेन पुरुषेण शुक्रास्तादिदोषयुतेऽपि स्वसङ्कल्पितस्यानुष्ठानं यदि क्रियते कार्येत वा तच्छास्त्रीयमेवेति । (ख) केनचिन्मानसिकः सङ्कल्पः कृतो गायत्रीपुरश्चरणस्य पूर्वम् । स च मरणावस्थां प्राप्तः, अतस्तेन किं कर्तव्यमिति संशये उत्तरमिदम्—स्वपुत्रादौ विश्वासयोग्ये प्रतिनिधौ च सति तद्द्वारा कारणीयं शुक्रास्तादिदूषितसमयानन्तरम् । तादृशपुत्राद्यलाभे तु वैद्यादिद्वारा स्वात्मज्ञानद्वारा च मरणनिश्चये सति स्वयमपि कालाशुद्धावपि अनुष्ठानं कर्तव्यम्, मानसिकसङ्कल्पस्याप्यारम्भरूपत्वात् आरब्धकर्मणो नित्यत्वात् नित्यानां शुक्रास्तादिदोषाभावादिति ।

(सन्निहितातिकाले मौञ्जीबन्धे मीनाऽर्के गुर्वादिदोषाभावः)

गुरौ द्वादशके व्रतप्रकरणविहितवर्षसमाप्तौ उपनयनं कार्यं नवेति प्रश्ने कार्यमेवेत्युत्तरं निर्णयसिन्धौ—"शुद्धिर्नैव गुरोर्यस्य वर्षे प्राप्तेऽष्टमे यदि । चैत्रे मीनगते भानौ तस्योपनयनं शुभम् ॥ जन्मभादष्टमे सिंहे नीचे वा शत्रुभे गुरौ । मौञ्जीबन्धः शुभः प्रोक्तश्चैत्रे मीनगते रवौ ॥" इति । "व्रते जन्मत्रिखारिस्थो जीवोऽपीष्टोऽर्चनात्सकृत् । शुभोऽतिकाले तुर्याष्टव्ययस्थो द्विगुणार्चनात् ॥" इति ।

श्री [signature]

(१) सन्ध्या का काल यदि कुछ अल्प व्यतीत हो जाय तो सन्ध्योपासनकाल में चतुर्थ अर्घ्य प्रायश्चित्त निमित्त दे । ६ घड़ी बीत जाय तो तीन प्राणायाम, बारह घड़ी बीत जाय तो बारह और मध्याह्न हो जाय तो ३६ प्राणायाम करे । (२) एक मत यह है कि—प्रातः और सायं उदय तथा अस्त के अनन्तर तीन तीन घड़ी सन्ध्याकाल है और मध्याह्न में सूर्योदय से अठारह घड़ी तक सन्ध्याकाल है यदि इतने काल में सन्ध्या न कर सके तो १०८ गायत्रीजप करे । (३) संकट में रात्रि के प्रथम प्रहर तक भी प्रातः सन्ध्यादि क्रम से कर सकता है । सविधि नित्यस्नान और ब्रह्मयज्ञ रात्रि में नहीं होते हैं । (४) रात्रि के एक प्रहर के बाद डेढ़ प्रहर तक रात्रिविहित कृत्य हो सकते हैं । एकप्रहर के बाद रात्रि में दिवा विहित कृत्य निषिद्ध हैं ।(५) सर्वथा सन्ध्या लोप में प्रतिसन्ध्य एक उपवास या १०८ गायत्री जप है अल्प शक्ति में तो शत गायत्री जप है । दो या तीन दिन के लोप में तदावृत्ति कर उसके ऊपर कृच्छ्रादि करे । (६) एक दिन सन्ध्या का या कोई भी वेदोक्त नित्यकर्म का लोप हो जाय तो १००८ गायत्री जप करे, बिना अभ्यास में प्रायश्चित्ताभ्यास है, अनादिष्टकर्मलोप में उपवास है, उपवास अशक्ति में ६ उपवास से एक प्राजापत्य की कल्पना करनी चाहिये या प्रत्येक उपवास का एक ब्राह्मणभोजन कराना चाहिये । अनेक नित्यकर्म के लोप में तन्त्र से प्रायश्चित्त की सिद्धि है । (७) स्नान कालातिक्रम में १०८ गायत्री जप करे नित्य स्नान, सन्ध्योपासन, स्मार्ताग्निहोम और श्रौताग्निहोम एकदिन लोप हो जाने से १००० गायत्री जप करे । (८) पञ्चमहायज्ञ में एक का लोप होनेपर और सप्तपाकसंस्था के लोप में भी एक उपवास है । सर्वलोप में तो कृच्छ्रार्ध अथवा चन्द्रायण है, आतुर को प्रायश्चित्त नहीं है । (९) अनातुर होकर सात दिन सन्ध्या न करे तो पुनः संस्कार के योग्य है । (१०) आतुर को सन्ध्यादि उच्छिन्न से दोष नहीं होता है तथापि सन्ध्यालोप में कुछ प्रायश्चित्त करना चाहिये । (११) एकसप्ताह स्नान न करने से शूद्र तुल्य हो जाता है और शक्त होकर एक सप्ताह यदि कूपोदक अथवा उष्णोदक से स्नान करे तो प्राजापत्य है । (१२) यज्ञोपवीत के बिना मूत्रादि करने में और मूत्र—पुरीष के वेग को रोकने में १०८ गायत्रीजप करे । (१३) मूत्रादि के उत्सर्गकाल में यदि कर्णस्थापित यज्ञोपवीत का अधःपात हो जाय तो नूतन यज्ञोपवीत धारण करे । (१४) मूत्रपुरीषोत्सर्ग के पूर्व शौचार्थमृत्तिका और जल को रक्खे अनन्तर रखने में सचैलस्नान विहित है । (१५) निषिद्धदेश में और सोपानत्कमूत्र—पुरीष करने में तथा अन्यविहित नियम

के अतिक्रमण में १०८ गायत्री धप है। (१६) मूत्रपुरीषोत्सर्ग के समय भक्षण और पान में सचैलस्नान है। (१७) मृत्तिका के बिना शौच करने में प्राजापत्य और पञ्चगव्यप्राशन है। (१८) मल-मूत्रार्थ बैठने पर यदि मल मूत्र न हो तो उसको अर्धशौच कहना चाहिये। (१६) यज्ञोपवीत के बिना जल पीने में तीन प्राणायाम, पीतावशिष्ट जलपान से, शूद्रहस्त से जलपान से, वामहस्त के जलपान में, प्रपाजलपान में, कूपादि से चर्मपुटकनिःसारित जलपान में, रजकादि भाण्डस्थितजल आदि पानमें, मूत्र—पुरीषाद्युत्सर्गानन्तर शुद्धिके बिना जलपान में, अर्धभुक्त अन्नपान के जलपात्र में, सूतकी के जलपान में, चाण्डाल, अन्त्यजादिखात तडाग, कूपादि के जलपान में, जानुपरिमाण से अल्पपरिमाणवाले जलाशय के जलपान में और शूद्रभाण्डस्थ जलपान में उपवास प्रायश्चित्त है। (२०) जलपानसमय में चाण्डाल रजस्वलादि दर्शन में प्राणायाम और स्पर्श में उपवास है। चाण्डालादि स्पृष्ट जलपान में सान्तपन है। भिन्न कांस्य और मृत्तिकापात्र से जलपान में पादकृच्छ्र है। (२१) हवनार्थसंस्कृत आज्य, पय आदि के हवन के बिना पान में उपवास है। (२२) चितिकाष्ठ-चिति धूप-चाण्डाल-रजस्वला-शवस्पर्श और सूतिकास्पर्श में स्नान करके यज्ञोपवीत लगाकर कण्ठावलंवनादि न करके मल—मूत्रोत्सर्ग में। जनन और मरणाशौच में तथा चार २ मास पर भी यज्ञोपवीत का त्याग है और कण्ठ से अलग होने पर भी त्याग कर नूतन धारण करे। (२३) गृहीत व्रत का भंग यदि प्रमाद से हो जाय तो दिनत्रय उपवास और सहस्रगायत्री जप का प्रायश्चित्त है। उपवास न कर सके तो प्रत्येक उपवास के निमित्त एक २ ब्राह्मणभोजन या तन्निष्क्रय प्रत्येक को दे। (२४) व्रत के नियम का भंग होजाय तो 'ॐ नमो नारायणाय' इस मन्त्र का अष्टोत्तरशत जप करे। (२५) दिन में या रात्रि में दो बार भोजन करे तो शत प्राणायाम प्रायश्चित्त है। (२६) खड़े हो कर, या चलते २, या सोते हुए और शय्या पर बैठ कर भोजन करने से त्रिरात्रि उपवास है। (२७) यदि भोजन के समय में तैलयन्त्र, इक्षुयन्त्र, उलूखल, पाषाणादि का शब्द होता रहे तो उतने समय तक भोजन न करे यदि करे तो १०८ गायत्रीजप का विधान है। (२८) जलपानसमय में मुखनिःसृत जल यदि भोजनपात्र में गिरे तो उस अन्न का भोजन निषिद्ध है तदन्नभोजन में प्राजापत्य है। (२६) भोजनकाल में स्वीकृत मौन का त्याग हो जाय तो शेष अन्न को त्याग दे। (३०) कर्मकाल में सत् शूद्र स्पर्श में भी स्नान है। (३१) कर्मकाल में मार्जार के पुच्छस्पर्श में स्नान और अङ्गस्पर्श में आचमन है। कर्मातिरिक्तकाल में मार्जारपुच्छ स्पर्श में आचमन अन्यान्य स्पर्श में दोषाभाव है। (३२) बौद्धादिस्पर्श में स्नान है। (३३) कर्मकाल में मूसक-पल्ली-और वायसादि के स्पर्श में स्नान और दर्शन में आचमन करना चाहिये। (३४) चाण्डाल, रजस्वला आदि के साथ एकत्र शाखा पाषाणादि के उपवेशन में स्नान है उच्छिष्ट विप्र का स्पर्श भी निषिद्ध है यदि करे तो हस्त और पादप्रक्षालन करके आचमन करे। (३५) चाण्डाल तथा रजस्वला आदि के सम्भाषण में १०८ गायत्री जप है और जपादिकर्मकाल का दर्शन करना चाहिये। (३६) अनिष्ट-गन्ध के आघ्राण में सूर्यदर्शन और अशुद्धद्रव्य के दर्शन में गायत्री जप करे। (३७) स्नान के बिना भोजन में उपवास और १००८ गायत्री जप करे। अज्ञान से उपवीत के बिना भोजन में नक्तव्रत और ज्ञानतः यज्ञोपवीत के बिना भोजन में स्नान, उपवास और १०८ गायत्रीजप है। (३८) अपोशान के बिना भोजन में और पञ्चप्राणाहुति के समय में और मौनत्याग में १०८ गायत्री जप है। उत्तरापोशन करे तो १००८ गायत्री जप है। (३६) सङ्क्रान्ति, ग्रहणादि निमित्त स्नान के बिना भोजन में १००८ गायत्री जप और १० प्राणायाम करे। (४०) सूर्योदय से ५५ घड़ी गत होने से उषा काल, ५७ घड़ी गत होने से अरुणोदय और ५८ घड़ी गत होने से प्रातःकाल उसके वाद सूर्योदय समझा जाता है। रात्रि के पिछले पहर का तीसराहिस्सा ब्राह्ममुहूर्त होता है। उसमे शयन करने से द्विजातियों का पुण्य क्षय हो जाता है। जो मोहवश निद्रा लेते हैं वे पादकृच्छ्रव्रत से शुद्ध होजाते हैं। (४१) उदयास्त मध्याह्नमण्डल में सूर्य को न देखे और जल में प्रतिबिम्ब तथा ग्रहण के समय ग्रस्त होते हुए भी न देखे।

(विवाहे कन्यापरीक्षणम्)

अथ विवाहः। याज्ञवल्क्यः-(आचाराध्याये) अविलुप्तब्रह्मचर्यो लक्षण्यां स्त्रियमुद्वहेत्। अनन्य-पूर्विकां कान्तामसपिण्डां यवीयसीम्॥ अरोगिणीं भ्रातृमतीमसमानार्षगोत्रजाम्॥ लक्षण्यां बाह्याभ्यन्तरलक्षणैर्युक्ताम्। बाह्यानि काशीखण्डादौ प्रसिद्धानि। अन्तराण्याश्वलायनादीनि 'अष्टौ पिण्डान् कृत्वा' इत्यादीनि।

अब विवाह कहते हैं। याज्ञवल्क्य ने कहा है कि-जिसका ब्रह्मचर्य खण्डित न हुआ हो (स्मृत्यर्थसार ने कहा है कि—जिसका ब्रह्मचर्य खण्डित हो गया है वह प्रायश्चित्त कर विवाह करे।) (बाह्य आंख, नाक, आंख आदि) और आभ्यन्तर (अष्टौ पिण्डान् कृत्वा) लक्षणोंवाली स्त्री (क्लीवत्व से परीक्षित) और

दान तथा भोग से पुरुषान्तर से युक्त न मन को और नेत्रों को आनन्द करनेवाली हो, असपिण्ड, अपनी अवस्था से छोटी हो, रोग (असाध्यरोग) से हीन हो, भाई से युक्त हो, समान-प्रवर और गोत्र से भिन्न हो ऐसी से विवाह करे।

लक्षण में तो स्त्री अर्थात्—बाहर और भीतर लक्षणों से युक्त हो। बाह्य तो काशीखण्ड आदि में प्रसिद्ध है। अन्तर तो आश्वलायन ने कहा है कि आठ [1]पिण्डों को करके कहा है—इत्यादि।

(मातृसपिण्डकन्यया विवाहनिषेधकथनम्)

मनुः (३।५)—असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः।
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने॥

मनुने कहा है कि—जो कन्या माता या पिता से असपिण्ड (सात पीढी तक न हो) हो, पिता के गोत्र की न हो ऐसी कन्या द्विजातियों के दारकर्म (विवाहकर्म) तथा मैथुन (अग्न्याधान कर्म और पुत्रोत्पादनादि) में प्रशस्त है।

दत्त्रिममातुर्गृहीता असपिण्डा सगोत्रा। तत्कुलनिवृत्तये चकारान्मातुरसगोत्रा दत्तस्य पितुर्जनककुले पितुरसगोत्रापि सपिण्डत्वान्निषिद्धेत्यन्यश्चकारः। असपिण्ड्याम्=सापिण्ड्यरहिताम्।

जो दत्तक माता का ग्रहण करने वाला, असपिण्ड भी सगोत्र है। उसके कुलकी निवृत्ति के लिए चकार से माता के असगोत्र से दत्तक के पिता के जनककुल में पिता के असगोत्र भी सपिण्डत्व हो जाने से अन्य का निषेध करता है। असपिण्ड का अर्थ है कि—सापिण्ड्य से रहित।

(सापिण्ड्यनिर्वचनकथनम्)

तच्चैकशरीरावयवान्वयेन भवति। एकस्य हि पितुर्मातुर्वा शरीरस्यावयवाः पुत्रपौत्रादिषु साक्षात्परम्परया वा शुक्रशोणितादिरूपेणानुस्यूताः। यद्यपि पत्न्याः पत्या सह भ्रातृपत्नीनां च परस्परं नैतत्सम्भवति तथापि आधारत्वेनैकशरीरावयवान्वयोऽस्त्येव। 'अस्थिभिरस्थीनि' इति मन्त्रलिङ्गात्। एकस्य हि पितृशरीरस्यावयवाः पुत्रद्वारा तास्वाहिता इति मदनरत्नपारिजातविज्ञानेश्वरादयः। वाचस्पतिशुद्धिविवेकशूलपाण्यादिगौडमैथिलादयोऽप्येवम्।

वह सपिण्ड एक[3] शरीर के अवयवान्वय सम्बन्ध से होता है। एक[4] ही पिता या माता के शरीर के अवयव—पुत्र—पौत्र आदि की साक्षात् परम्परा से शुक्रशोणित आदिरूप से मिला हुआ है। यद्यपि पत्नी का पति के साथ और भाई की पत्नियों का आपस में यह नहीं होता है। फिर भी आधारकत्व होने से एक शरीरान्वय है। क्योंकि—कहा है कि—अस्थियों के साथ अस्थि को मिलाता हूँ, इस मन्त्रलिंग से एक ही पिता के शरीर के अवयव पुत्र द्वारा उनमें स्थित हो जाते हैं—यह मदनरत्न, पारिजात और विज्ञानेश्वर आदि ने कहा है। वाचस्पति, शुद्धिविवेक, शूलपाणि, गौड, मैथिल आदि भी यही कहते हैं।

श्रुतावपि—'एतत्षाट्कौशिकं शरीरं त्रीणि पितृतस्त्रीणि मातृतोऽस्थिस्नायुमज्जानः पितृतस्त्वङ्-

---

१—क्षेत्रादि से मट्टी ले आकर उसके आठ पिण्डों को कर 'ऋतमग्रे' इत्यादि मन्त्र से पिण्डों का अभिमन्त्रण कर कुमारी से कहे कि तुम इनमें से एक को ग्रहण करो। (१) अगर धान्ययुक्त खेत के दोनों तरफ से ग्रहण करती है तो कुमारी की प्रजा अन्नयुक्त होगी ऐसा जानना चाहिये। (२) गोशाला से पिण्ड उठाने पर इस कुमारी की प्रजा और पशुयुक्त होगी। (३) वेदि की मट्टी पर से उठाने पर इस कुमारी की प्रजा ब्रह्मवर्चस से युक्त होगी। (४) पूरे भरे हुए तालाब पर से पिण्ड उठाने पर सब वस्तुओं से युक्त इसकी प्रजा होगी। (५) देवन (द्यूतस्थान) से कितवयुक्त प्रजा होगी। (६) चौराहे से उठाने पर ब्राह्मण स्वैरिणी होगी। (७) ईरिण (शून्यमूषरम्) से उठाने पर दुर्भाग्ययुक्त होगी। (८) श्मशान से पिण्ड उठाने पर पति को मारनेवाली प्रजा होगी। (आश्वलायन गृह्यसूत्र अ० १ ख० ५)

२—प्राणैस्ते प्राणान्त्सन्दधाम्यस्थिभिरस्थीनि मांसैर्मांसानि त्वचा त्वचम्॥ (पारस्करगृ० १।११।५।)

३—असपिण्डाम्—समान एकः पिण्डो देहो देवावयवो यस्याः सा सपिण्डा, न सपिण्डा' असपिण्डाताम्।

४—पुत्रस्य साक्षाज्जनकशरीरावयववन्वयः पुत्रशरीरे पितुरवयवानामस्थिमज्जादीनां मातुरवयवानां रक्तमांसादीनां साक्षात् प्रवेशात्। 'एतत् गर्भोपनिषदि षाट्कौशिकं शरीरं त्रीणि पितृतस्त्रीणि मातृतः। अस्थिस्नायुमज्जानः पितृतः, त्वङ्मांसरुधिराणि मातृतः' इति श्रुतेः। एवं पितृव्यपितृष्वसृमातृष्वस्रादिभिरपीति।

मांसरुधिराणि मातृतः' इति, 'प्रजामनुप्रजायसे' इति च। चन्द्रिकापरार्कमेधातिथिमाधवादयस्तु एकपिण्डदानक्रियान्वयित्वं सापिण्ड्यम्।

श्रुति में भी कहा है कि—यह शरीर छः कोश वाला है। उसमें तीन पिता का और तीन माता का होता है। पिता से-अस्थि, स्नायु तथा मज्जा तथा माता से-त्वचा, मांस और रुधिर होता है। कहा भी है कि–मनुष्य-मनुष्य से पैदा होता है। यह चन्द्रिका, अपरार्क, मेधातिथि, माधव आदि का कहना है कि-एक पिण्डदानक्रियान्वयि सम्बन्ध से सपिण्डता है।

(चतुर्थादीनां लेपभागित्वकथनम्)

लेपभाजश्चतुर्थाद्याः पित्राद्याः पिण्डभागिनः। पिण्डदः सप्तमस्तेषां सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम्॥ इति मात्स्योक्तेः। न च पितृव्यादिष्वेतन्नास्तीति वाच्यं, तत्कर्तृकश्राद्धे देवतैक्येन तत्सत्वात्। देवदत्तकर्तृकश्राद्धे हि ये देवताभूतास्तेषां मध्ये यः कश्चिदन्यकर्तृकश्राद्धेऽनुप्रविशति तेषां सापिण्ड्यम्। तद्भार्याणामपि भर्तृकर्तृकश्राद्धे सहाधिकारित्वेन तदन्वयात्। एकत्वं सा गता भर्तुः पिण्डे गोत्रे च सूतके। इति स्मृतेश्च। श्रुतीनां च वैराग्यार्थत्वात् तस्याः सापिण्ड्यनिमित्तत्वे मानाभावात्। न च मातुलादिष्वेतन्नास्तीति वाच्यं, मातामहरूपदेवतैक्यात्।

मत्स्यपुराण में कहा है कि—चतुर्थ आदि पीढी लेपभाजक की अधिकारी होती है। पित्रादि पिण्ड के अधिकारी हैं पिण्ड देनेवाला सातवाँ है सात पीढ़ी तक सापिण्ड्य रहता है।

चाचा आदियों में यह नहीं है यह नहीं कहना चाहिये। अर्थात्—चाचा आदि में सापिण्ड्यता नहीं है। ऐसी शंका उचित नहीं है। क्योंकि चाचा के श्राद्ध करने पर देवता के एक होने से सापिण्ड है। देवदत्तकर्तृकश्राद्ध में जो देवता हुए उनके मध्य में जो कोई अन्य कर्तृकश्राद्ध में पीछे प्रवेश करता है उनका सापिण्डय है। उनकी स्त्रियों का भी पति के किये हुए श्राद्ध में सहाधिकार होने से उसका अन्वय है। वह स्त्री पति के पिण्ड, गोत्र और सूतक में एकता को प्राप्त होती है। यह स्मृति में भी कहा है।

श्रुतियों के वैराग्य अर्थ होने से उसका सापिण्ड्यनिमित्त में प्रमाण नहीं है। कोई कहे कि—मामा आदियों में नहीं हैं। यह ठीक नहीं है क्योंकि मातामह आदिरूप देवता एक है।

(गुरुशिष्यनृपत्नीनां न सापिण्ड्यकथनम्)

ननु गुरुशिष्यादेरपि श्राद्धदेवतात्वात्सपिण्डत्वं स्यात्। किं बहुना सर्वाभावे तु नृपतिः कारयेत्तस्य रिक्थतः। इति मार्कण्डेयपुराणाद्राज्ञोऽपि श्राद्धकर्तृत्वात्सापिण्ड्यप्रसङ्गः।

कहो कि—गुरु और शिष्य आदि का भी श्राद्धदेवता होने से सापिण्ड्य है। बहुत कहने से क्या प्रयोजन है कि—जिसके कोई नहीं है उसका श्राद्ध राजा करे। इस मार्कण्डेयपुराण से राजा को भी श्राद्ध कर्तृत्व होने से सापिण्ड्य की प्रशंग है। ठीक है।

(पितृसापिण्ड्यं सप्तमपौरुषं मातृसापिण्ड्यं पञ्चपौरुषम्)

सत्यम्, पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृतस्तथा। इति याज्ञवल्क्यवचनेन मातापितृसम्बन्ध एव तत्सत्वात्। ऊर्ध्वं 'सापिण्ड्यं निवर्तते' इति शेषः। ननु पञ्चमत्वाद्यत्र नियम्यते, न मातृत इत्यादि, वाक्यभेदात्। नैवम्, मातृकुले पञ्चमत्वस्य पितृकुले सप्तमत्वस्य च बोधने तुल्यत्वात्। पौरुषेयत्वाददोष इति चेत् तुल्यमन्यत्रापि, अन्यकर्तृके राज्ञस्तत्पितॄणां वा देवतात्वाभावाच्च। किञ्च अवयवान्वयपक्षे यथा योगरूढ्या परिहारस्तथेहापि। तेन मातृकुले पितृकुले चैकपिण्डदानक्रियान्वयित्वं सापिण्ड्यमित्याहुः। तेनैकस्य पित्रादयः षट् पुत्रादयश्च षट् सपिण्डा भवन्ति।

माता के कुल में पांचपीढी से ऊपर और पितासे सातपीढी से ऊपर सापिण्ड्य रहता है। इस याज्ञवल्क्यवचन से माता तथा पिता से ही उसका संबन्ध रहता है। इसके बाद सापिण्ड्यकी निवृत्ति हो जाती है—यह शेष है।

कहो कि—पञ्चमत्व का यहाँ पर नियम किया है, 'न मातृतः' माता से नहीं है इत्यादि। क्योंकि वाक्य भेद है। यह ठीक नहीं है। माता को लेकर कुल-समुदाय में पञ्चमत्व का और पितृकुल में सप्तमत्व के बोधन में वाक्यभेद का अभाव है। (दोनों तरफ भी अर्थभेदका अभाव है।) जैसे घडे को ले आओ, कलश को ले आओ यहाँ पर भी वाक्यभेद की आपत्ति हो जायगी) पौरुषेयत्व होने से दोष नहीं है—ऐसा कहोगे तो अन्यत्र भी तुल्य है। अन्यकर्तृकमें राजा या उसके पितरों के देवताओं का अभाव है और अवयवान्वय पक्षमें जैसे [1]योगरूढ से परिहार होता है वैसे हो यहाँपर भी। इससे मातृकुल में और पितृकुल में पिण्डदानक्रियान्वयित्व सापिण्ड्य कहा है। उससे एक का पित्रादि छ पुत्रादि छ सपिण्ड होते हैं।

अत्र केचिदुभयतः सापिण्ड्यनिवृत्तावेवोद्वाहो नान्यथेत्याहुः। शुद्धचिन्तामणिवाचस्पतिहरदत्तादयस्तु सगोत्रत्ववत्सापिण्ड्यस्य सप्रतियोगिकत्वेन संयोगवदुभयनिरूप्यत्वात् एकतो निवृत्तावन्यतो निवृत्तेरावश्यकत्वान्मूलपुरुषमारभ्याष्टमो वरो मूलपुरुषमारभ्य द्वितीयातृतीयादिकां कन्यामुद्वहेदित्याहुः।

यहाँपर कोई कोई कहते हैं कि—दोनों तरफ सापिण्ड्य की निवृत्ति में ही विवाह होता है। अन्यथा नहीं होता है। शुद्धचिन्तामणि, वाचस्पति, हरदत्त आदि तो कहते हैं कि सगोत्र की तरह सापिण्ड्य का सप्रतियोगिकत्वसे संयोग की तरह दोनों का निरूपण होने से एक की निवृत्ति में अन्य की निवृत्ति की आवश्यक होने से मूलपुरुष से लेकर आठवाँ वर मूलपुरुष के आरंभकर दूसरी तीसरी आदि कन्या का विवाह करे—ऐसा कहा है।

शिष्टास्तु न वधूवरयोः स्वतः सापिण्ड्यं किन्तु कूटस्थसन्ततित्वात् तत्सापिण्ड्येनैव। अतोऽष्टमवरं प्रति कन्याया असापिण्ड्येऽपि कन्यायाः कूटस्थेन सापिण्ड्यात्तत्सन्ततिस्थत्वाद्वरस्तां प्रति सपिण्ड एवेत्यविवाहः। सापिण्ड्यासापिण्ड्ययोः प्रतियोगिभेदेनाविरोधादित्याहुः। इदमेव च युक्तम्। आशौचेऽप्येवं सापिण्ड्यं ज्ञेयम्।

शिष्ट लोग तो कहते हैं कि—वधू और वरका आपस में सापिण्ड्यता नहीं है। किन्तु कूटस्थसन्तति होने से उसका सापिण्ड्य ही है। इसलिये अष्टमवर के प्रति कन्या का असापिण्ड्य में भी कन्या का कूटस्थ से सापिण्ड्य होने के कारण उसकी सन्तति होने से वर उस कन्या के प्रति सापिण्ड्य ही है। अतः विवाह नहीं हो सकता है। सापिण्ड्य और असापिण्ड्य का प्रतियोगिके भेदसे अविरोध है—ऐसा कहा है। यही ही ठीक है। आशौच में भी इसीप्रकार सपिण्डता जानना चाहिये।

यत्र तु मध्ये विच्छिन्नमपि सापिण्ड्यं मण्डूकप्लुतिवदनुवर्तते। यथा कूटस्थात्पञ्चम्योः कन्ययोः पुत्रौ तत्र निवृत्तिः, तदपत्ययोस्त्वनुवृत्तिस्तत्रापि न सापिण्ड्यासापिण्ड्ययोर्दोषः, सम्बन्धिभेदात्। तेन तत्र न विवाहः।

जहाँपर तो मध्यमें सपिण्डता का विच्छेद हो गया हो तो वहाँ मण्डूकप्लुतिवत् अनुवृत्ति हो जायगी। जैसे—कूटस्थ से पांचवी कन्या और पुत्रों में निवृत्ति हो जायगी। उसके अपत्यों (सन्तान) में तो अनुवृत्ति हो जाती है। वहाँ पर भी अनुवृत्ति होने से सापिण्ड और असापिण्ड्य का दोष नहीं होता है। क्योंकि सम्बन्धि का भेद है। उससे वहाँ पर विवाह नहीं होता है।

अत्र कूटस्थमारभ्य गणना कार्या। तदुक्तम्—वध्वा वरस्य वा तातः कूटस्थाद्यदि सप्तमः। पञ्चमी चेत्तयोर्माता तत्सापिण्ड्यं निवर्तते। इति। कूटस्थो मूलपुरुषः।

यहाँ पर कूटस्थ (मूलपुरुष) से प्रारंभ कर गणना करे। उसी बात को कहा है कि—वधू या वर का पिता कूटस्थ से यदि सातवी पीढी के ऊपर हो और उन दोनों की माता पांचवी पीढी के ऊपर हो तो उनका सापिण्ड्य हट जाता है कूटस्थका अर्थ है मूलपुरुष।

१—जो शब्द प्रकृति और प्रत्यय की अपेक्षा करके समुदायशक्ति के द्वारा अर्थ को कहता है वह शब्द योगरूढ कहलाता है। (जो शब्द प्रकृति और प्रत्यय की अपेक्षा न करके केवल समुदायशक्ति के द्वारा ही अपने अर्थ को कहता है वह रूढशब्द होता है। 'जो शब्द प्रकृति और प्रत्यय के संयोगमात्र से ही अर्थ को कहता है वह शब्द यौगिक होता है।)

(मूलपुषलक्षणम्)

विश्वरूपनिबन्धे---एवमुक्तप्रकारेण पितृबन्धुषु सप्तमात्। ऊर्ध्वमेव विवाह्यत्वं पञ्चमान् मातृबन्धुतः। सन्तानो भिद्यते यस्मात्पूर्वजादुभयत्र च। तमादाय गणेद्धीमान् वरं यावच्च कन्यकाम्॥

विश्वरूपनिबन्ध में कहा है कि--इसप्रकार कहे हुए प्रकार से पिता के बन्धुओं में सातसे ऊपर ही और माता के बन्धुओं से पाँचसे ऊपर सन्तानों का दोनों तरफ भेद हो जाता है इसलिए उसको लेकर गणना बुद्धिमान् करे वर और कन्या का विवाह हो सकता है।

स्मृतितत्त्वे नारदः---आ सप्तमात्पञ्चमाच्च बन्धुभ्यः पितृमातृतः। अविवाह्या सगोत्रा च समानप्रवरा तथा॥ अत्र बन्धुभ्य इति पञ्चमीनिर्देशात्पितुः पितृष्वसृपुत्रात्सप्तमीं, मातुः मातृष्वसृपुत्राच्च पञ्चमीमपि त्यजेत्। एवमन्यबन्धुषु ज्ञेयम्।

स्मृतितत्त्व में नारदने कहा है कि—[1]पिता और [2]माता के बन्धुओं से सातवें तथा पाँचवे तक गोत्र तथा प्रवर की कन्या के साथ विवाह न करे।

यहाँपर 'बन्धुभ्य' इस पञ्चमी के निर्देश से पिता को पितृष्वसृ (बूआ) के पुत्र से सातवीं, माता के मातृष्वसा के पुत्र से पाँचवीं को भी त्याग दे। इसप्रकार अन्य बन्धुओं में जानना चाहिये।

तत्रापि त्रिगोत्रात्ययेऽर्वागपि विवाहं कुर्यात् वक्ष्यमाणवचनात्। त्रिगोत्रगणना च मातामह-गोत्रापेक्षया, नतु स्वापेक्षया। अन्यथा पितुः पितामहदुहितुर्दौहित्रीपुत्री परिणेया स्यात्। वध्वाः मातामहगोत्रापेक्षया तु त्रिगोत्रान्तर्गतेन विवाहप्रसङ्ग इति सम्बन्धतत्त्वादयो गौडग्रन्थाः।

उसमें भी तीन गोत्रके भेद में पहले (पहली पीढियों) भी विवाह करे। क्योंकि आगे वचन कहेगें। तीन गोत्रकी गणना तो मातामह के गोत्र की अपेक्षा से है। अपने गोत्रसे नहीं है। नहीं तो पिताके पितामह की कन्या की जो दौहित्री पुत्री है। (पितामहकन्या तत्कन्या तत्कन्या तत्कन्येत्यर्थः) वह भी विवाह योग्य हो जायगी। वधू का मातामह के गोत्र की अपेक्षा से तो तीन गोत्र के अन्तर्गत में विवाह प्रशंग सम्बन्ध तत्त्व आदि गौडग्रन्थों में कहा है।

सम्बन्धविवेके शूलपाणिरप्याह पञ्चमात्सप्तमाच्चार्वागपि त्रिगोत्रान्तरिता विवाह्या। असम्बन्धा भवेन्मातुः पिण्डेनैवोदकेन वा। सा विवाह्या द्विजातीनां त्रिगोत्रान्तरिता च या॥ इति बृहत्मनूक्तेः,

सम्बन्धविवेक में शूलपाणि ने भी कहा है कि—पाँचवे तथा सातवें से पहले भी तीन गोत्र के मध्य की कन्या से विवाह कर सकते हैं। बृहन्मनु ने कहा है कि—पिण्ड (देह) या जल दान से माता के संबन्ध से असंबद्ध हो तो तथा तीन गोत्र के मध्य में भी हो तो द्विजाति उस कन्या के साथ विवाह करे।

सन्निकर्षेऽपि कर्तव्यं त्रिगोत्रात्परतो यदि। इति देवलोक्तेश्चेति। एतच्च दाक्षिणात्या न मन्यन्ते।

देवल ने कहा है कि—यदि तीन गोत्र से पर भी हो तो समीप में भी करे। इस बात को दाक्षिणात्य नहीं मानते हैं।

यत्तु वसिष्ठः—पञ्चमीं सप्तमीं चैव मातृतः पितृतस्तथा। इति।

जो वसिष्ठ ने कहा है कि—माता से पांचवी (अर्थात्—कूटस्थ-मूलपुरुष से पांचवी) और पिता से सातवीं विवाह में ग्राह्य है।

यच्च विष्णुपुराणम्—पञ्चमीं मातृपक्षाच्च पितृपक्षाच्च सप्तमीम्। गृहस्थ उद्वहेत्कन्यां न्यायेन विधिना नृप॥ इति, तत्पञ्चमीं सप्तमीमतीत्येति व्याख्येयम्।

१—पितुः पितृष्वसुः पुत्राः पितुर्मातृष्वसुः सुताः। पितुर्मातुलपुत्राश्च विज्ञेयाः पितृबान्धवाः॥

२—मातुः पितृष्वसुः पुत्रा मातुर्मातृष्वसुः सुताः। मातुर्मातुलपुत्राश्च विज्ञेया मातृबान्धवः॥

और जो विष्णुपुराण में कहा है कि—मातृपक्ष से पांचवी तथा पितृपक्ष से सातवी कन्या को गृहस्थ न्याय एवं विधि के द्वारा हे नृप, विवाह करे। परन्तु ये दोनों वाक्य जो ऊपर गये हैं पाँचवीं और सातवीं को पीढो को लांघकर व्याख्या करे।

पञ्चमे सप्तमे चैव येषां वैवाहिकी क्रिया। क्रियापरा अपि हि ते पतिताः शूद्रतां गताः॥ इत्यपरार्के मरीचिवचनात्।

अपरार्क में मरीचिने कहा है कि—पांचवी और सातवीं पीढो में जिनका वैवाहिक कार्य होता है। यदि वे लोग क्रिया में तत्पर भी हों तो पतित हैं तथा शूद्रत्व को प्राप्त होते हैं।

(सपिण्डतानिरूपणम्)

हारलतायां शङ्खलिखितौ—सपिण्डता तु सर्वेषां गोत्रतः सप्तपौरुषी।
पिण्डश्चोदकदानं च आशौचं च तदानुगम्॥

हारलता में शंखलिखित का कथन है कि—सवों (ब्राह्मण आदि) का गोत्र (कूटस्थ-सन्तान) से सात पीढी तक की होती है। उसमें पिण्डदान, उदकदान तथा आशौच भी उसी के अनुसार होता है।

(गोत्रलक्षणम्)

गोत्रम्—सन्तानम्। आशौचं तानभिव्याप्य गच्छतीत्यर्थः।

गोत्रका अर्थ है सन्तान है। उनको प्राप्तकर आशौच जाता है, यह अर्थ है।

शुद्धिविवेके शुद्धिचिन्तामणौ च ब्राह्मे—सर्वेषामेव वर्णानां विज्ञेया साप्तपौरुषी। सपिण्डता ततः पश्चात्समानोकधर्मता॥ ततः कालवशात्तत्र विस्मृतौ नामगोत्रतः।

शुद्धिविवेक और शुद्धिचिन्तामणि में ब्रह्मपुराण का मत है कि—सब वर्णोंकी ही सातपीढी तक सपिण्डता रहती है तदनन्तर उसके वाद सवों को बराबर उदकादि धर्म होते हैं।

(समानोदकधर्मलक्षणम्)

समानोदकसंज्ञा तु तावन्मात्रापि नश्यति॥ सप्तोर्ध्वं त्रयः सोदका, ततो गोत्रजाः।

तदनन्तर समय के प्रभाव से नाम और गोत्र का विस्मरण हो जाय तो उनकी समानोदकसंज्ञा नष्ट हो जाती है। सात पीढी के बाद तीन पीढी सोदक होती है फिर गोत्रज संज्ञा होती है।

(सापिण्डलक्षणम्)

तत्रैव ब्राह्मे—अविभक्तधनास्त्वेते सपिण्डाः परिकीर्तिताः। तेनाविभक्तधनाभावे विभक्तः सपिण्डो धनहारी, नान्यथेत्यर्थः। तेन विवाहे आशौचे धनग्रहणे च त्रिधा सपिण्डत्वं सिद्धम्।

वहीं पर ब्रह्मपुराण का कथन है कि—जव तक इनके धन का विभाग नहीं है। तब तक ये सपिण्ड कहे जाते हैं। इससे धन का विभाग न होने पर विभक्त सपिण्ड भी धनका भागीदार होता है। अन्यथा नहीं होता है—यह अर्थ है। इससे विवाह में आशौच और धन के ग्रहण में तीनप्रकार से सपिण्डत्व सिद्ध होता है।

यत्तु 'पञ्चमीं मातृतः परिहरेत्सप्तमीं पितृतस्त्रीन् मातृतः, 'पञ्च पितृतो वा' इति पैठीनसिस्मृतौ 'त्रीनित्यनुकल्पः' इति माधवोक्तेः,

जो माता से पांचवीं तथा पिता से सातवीं या पर माता से तीसरी (अर्थात्-चौथी कन्या) पिता से पांचवी (अर्थात्-छठी को) इस पैठिनसिस्मृति में तीसरी तथा पांचवींका अनुकल्प है-यह माधवने कहा है।

(कन्यापरिग्रहविचारकथनम्)

पञ्चमीं सप्तमीं चैव मातृतः पितृतस्तथा। दशभिः पुरुषैः ख्यातात् श्रोत्रियाणां महाकुलात्॥

चतुर्विंशति मत में कहा है कि—माता से पांचवीं और पिता से सातवीं कन्या का विवाह करे। जो दश पीढियों से प्रसिद्ध है और वेदपाठियों के उत्तम कुल की हो।

उद्वहेत्सप्तमादूर्ध्वं तदभावे तु सप्तमीम्। पञ्चमीं तदभावे तु पितृपक्षेऽप्ययं विधिः॥

सातवी पीढी के ऊपर की कन्या से विवाह करे या उसके अभाव में सातवी पीढी की कन्या से या उसके अभाव में (अर्थात्–माताके विपक्षमें–अभाव में) पांचवी पीढी की कन्या से विवाह करे। यही पिता के पक्ष की विधि है।

सप्तमीं च तथा षष्ठीं पञ्चमी च तथैव च। एवमुद्वाहयेत्कन्यां न दोषः शाकटायनः॥

इसप्रकार सातवीं, छठीं, वैसे ही पांचवीं कन्या के विवाह करने पर दोष नहीं होता है–यह शाकटायन ने कहा है।

तृतीयां वा चतुर्थीं वा पक्षयोरुभयोरपि। विवाहयेन्मनुः प्राह पाराशर्योऽङ्गिरा यमः॥

दोनों पक्ष की तीसरी या चौथी का भी विवाह करे ऐसा मनु, पराशर, अंगिरा और यम ने कहा है।

यस्तु देशानुरूपेण कुलमार्गेण चोद्वहेत्। नित्यं स व्यवहार्यः स्याद्वेदाच्चैतत्प्रदृश्यते॥ इति चतुर्विंशतिमतात्,

चतुर्विंशतिमत से कहा है कि—जो देश के अनुरूप (अपने समान) से और कुलधर्म से विवाह करें तो वह नित्य व्यवहार योग्य हैं। क्योंकि—वेद से भी यही दिखता है।

चतुर्थीमुद्वहेत्कन्यां चतुर्थः पञ्चमोऽपि वा। पराशरमते षष्ठीं पञ्चमो न तु पञ्चमीम्॥ इति पराशरोक्तेश्चानुकल्पत्वेनापदि पञ्चम्यादिपरिणयनं कार्यमिति प्रतीयते।

अत्र हि तदभावे इति स्पष्टमेवानुकल्पत्वमुक्तम्, तन्न यथाश्रुतं ज्ञेयं, पूर्वोक्तमरीचिवचोविरोधात्। वस्तुनि विकल्पासम्भवात्।

चौथी पोढी की कन्या चौथी या पांचवी पीढी के वर से विवाह करे। पराशर के मत से षष्ठी को पांचवें से नहीं विवाह करे। पांचवी पीढी वाला पांचवी पीढी की कन्या से विवाह न करे। ऐसा पराशर ने कहा है कि—अनुकल्प होने से आपत्तिकाल में पञ्चमी आदि का विवाह करे–ऐसा प्रतीत होता है।

यहाँ पर ही उसके अभाव में इसप्रकार स्पष्ट ही अनुकल्पत्व को कहा है। यह ठीक नहीं है। जैसा सुना है जानना चाहिये। पहले कहे हुये (पञ्चमे सप्तमे चैव) मरीचि वचन का विरोध है। क्रियाभिन्न (या सप्तम के बाद विवाह करे) में विकल्प असम्भव है।

(पञ्चमसप्तमकन्योद्वाहे दोषकथनम्)

पञ्चमात्सप्तमाद्धीमान्यः कन्यामुद्वहेद् द्विजः। गुरुतल्पी स विज्ञेयः सगोत्रां चैव मुद्वहन्॥ इति विष्णूक्तेः। पराशरस्य मूलाभावाच्च। तस्मान्मदनपारिजाताद्युक्तदिशा दत्तकसापत्नसम्बन्धाद्यनुप्रवेशे ब्राह्मणादीनां क्षत्रियादिसपिण्डविषये वा पूर्वोक्तानि नेयानि, न त्वनुकल्प इति भ्रमितव्यम्।

विष्णु ने कहा है कि—जो बुद्धिमान् द्विज पांचवी पीढी से और सातवीं पीढी से कन्या का विवाह करता है। उसे गुरुतल्पी जानना चाहिये और जो सगोत्रा कन्या से ही विवाह करता है। क्योंकि पराशर वचन के मूल का अभाव है। इसलिए मदनपारिजात में कहे हुए द्व्यामुष्यायण दत्तक के मातृकुल में सापत्न—मातामहकुल में सम्बन्ध के प्रवेश में ब्राह्मणादियों के या क्षत्रिय आदिके सपिण्डविषय में पहले कहे हुए पराशर आदि के वचन जानना चाहिये। यह अनुकल्प नहीं है ऐसा भ्रम नहीं करना चाहिये।

यत्तु स्मृतिचन्द्रिकामाधवादय आहुः—तृतीये पुरुषे सङ्गच्छामहे चतुर्थे सङ्गच्छामहे' इति शतपथश्रुतेः, 'तृप्तां[1] जहुर्मातुलस्येव योषा भागस्ते पैतृष्वसेयी वपामिव[2]' इति, 'गर्भे नु नौ जनिता दम्पतीकः' इति च मन्त्रवर्णात्,

---

१—आ याहीन्द्र पथिभिरीलितेभिर्यज्ञमिमं नो भागधेयं जुषस्व। तृप्तां (तृप्ता) जहुर्मातुलस्येव योषाभागस्ते पैतृष्वसेयी वपामिव॥ (ऋग्वेदखिल—१।५५।८ सी)।

२—आ याहीन्द्र पथिभिरीडितेभिर्यज्ञमिमं नो भागधेयं जुषस्व' इति पूर्वार्धम्। ततश्चायमर्थः—हे इन्द्र, त्वमीडितैः प्रशस्तैः पथिभिः मार्गैः नोऽस्माकं यज्ञमायाहि आगच्छ। आगत्य च तृप्तामाज्यप्लुतां वपां भागधेयं जुषस्व सेवस्व, तत्र द्वौ दृष्टान्तौ मातुलस्य जहुः अपत्यं योषा स्त्री भागिनेयस्य भाग इव, पैतृष्वसेयी च मातुलपुत्रस्य भाग इव चेहि। गर्भे नु नौ जनिता दम्पतीकर्देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूप इति। अयमर्थः—यमी यमं स्वभ्रातरं मैथुनार्थं याचितवती ततो यमेन

जो स्मृतिचन्द्रिका, माधव आदि ने कहा है कि—तीसरे[1] के साथ विवाह करे चौथे के साथ विवाह करे। ऐसी शतपथ की श्रुति है।

(मातृस्वसृकन्यां केचिदुद्वहन्ति)

मातृष्वसृसुतां केचित्पितृष्वसृसुतां तथा। विवहन्ति क्वचिद्देशे सङ्कोच्यापि सपिण्डताम् ॥ इति शातातपोक्तेश्च मातुलकन्योद्वाहः कार्यः। यद्यपि पितृष्वसृकन्योद्वाहोऽपि प्राप्तस्तथापि। अस्वर्ग्यं लोकविद्विष्टं धर्म्यमप्याचरेन्न तु। इति निषेधाद्वचनान्तरेण तदुद्वाहस्याविधानाच्च न कार्यः। अयं तु दाक्षिणात्यशिष्टाचारात्कार्य इति।

कोई माता के बहिन की कन्या से (कोई तो माता स्वसा यस्य मातृष्वसा) मामा की कन्या कहते हैं। कोई यह पाठ मानते हैं—मातुलस्य सुताम्) कोई पिता के बहिन की लड़कीको सपिण्डता के संकोच से भी किसीदेश में विवाह करते हैं। इस शातातप के वचन से मामाकी कन्या के साथ विवाह करे। यद्यपि पिता के बहिन की कन्या के साथ भी विवाह प्राप्त है फिर भी स्वर्ग का साधन नहीं है और संसार से निन्दित है ऐसे धर्म को भी कभी न करे। यह निषेध है। वचनान्तर से उस विवाह का अविधान है अतः न करे। यह तो दाक्षिणात्यशिष्टाचार से (उद्वहेद् दक्षिणे विद्वान् मातुलस्य च वै सुताम्। उत्तरे नोद्वहेद्विप्रो ह्येष धर्मः सनातनः ॥ मातुलस्य सुतां विप्रो दक्षिणे तां समुद्वहेत्। वर्जनीया प्रयत्नेन सैव वाजसनेयिभिः ॥) करे।

न च पूर्वोक्तश्रुतीनामर्थवादमात्रता मानान्तरेणासिद्धौ 'उपरि हि देवेभ्यो धारयति' इतिवदनुवादानुपपत्त्या विधिकल्पनात्।

(शतपथवाक्य मन्त्रवर्ण, शातातप वाक्यों का) पूर्वोक्त श्रुतियों को अर्थवाद नहीं कह सकते हैं। उसकी प्राप्ति न होने से (जो पदार्थ प्राप्त हुआ उसको अर्थवादके द्वारा स्तोत्र कहते हैं। प्रकृतमें प्राप्त न होने से अर्थवाद नहीं कह सकते हैं) मृताग्निहोत्र में 'अधस्तात्समिधं धारयन्ननुद्रवेत्' अग्निहोत्रहवन करते समयमें यजमान अग्निहोत्रहवणीय में होमद्रव्य उन्हीं के नीचे समिधा को लेकर के आहवनीयाग्नि के समीप जाना चाहिये। उसीको 'उपरि हि देवेभ्यो धारयति) इस वाक्य की तरह स्तावक नहीं है। अतः विधि की ही कल्पना करनी चाहिये।

यत्तु शातातपः—मातुलस्य सुतामूढ्वा मातृगोत्रां तथैव च।
समानप्रवरां चैव त्यक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥

जो शातातपने कहा है कि—मामाकी लड़की वैसे ही माता के गोत्र और समानप्रवरवाली कन्या को त्याग कर चान्द्रायणव्रत करे।

यच्च मनुः—(अ० ११, १७१, १७२) पैतृष्वसेयीं भगिनीं स्वस्रीयां मातुरेव च। मातुश्च भ्रातुस्तनयां (भ्रातुराप्तस्य) गत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ एतास्तिस्रस्तु भार्यार्थे नोपयच्छेत् बुद्धिमान् ॥

और जो मनुने कहा है कि—पिता के बहिन की लड़की, अपनी माता के बहिन की लड़की और माता के भाई की लड़की के साथ (सन्निकृष्ट सपिण्ड मामा की लड़की) गमन करने पर 'चान्द्रायणव्रत' करे। बुद्धिमान् को चाहिये कि इन तीनों के साथ भार्या के अर्थ में प्राप्त न करे।

प्रत्याख्याता वदति— प्रजापतिः विश्वरूपो विश्वात्मा सविता त्वष्टा नौ आवयोर्गर्भे दम्पती जनिता। तथा चावयोरपत्ययोर्भाविदम्पत्यनिश्चयाच्चद्दरमावामेवदम्पतीभावाय इति।

३—गर्भे नु नौ जनिता दम्पती कर्देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः। नकिरस्य प्र मिमन्ति व्रतानि वेद नावस्य पृथिवी उत द्यौः ॥ (ऋ० १०।११ म० ५)। (न वा उ ते तन्वा तन्वं १ सं पपृच्यां पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात्)। अन्येन मत्प्रमुदः कल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे वष्ट्येतत् ॥ (ऋ० १०।११।१२)।

१—दर्शपूर्णमासप्रकरणे स्रुग्व्यूहनार्थवादः एकस्मात् मिथुनाद्वयुत्पन्नौ मिथः सङ्कल्पयतः—तृतीये वा चतुर्थे वा विवहावहै इति तदर्थः। अत्र प्रमाणान्तराविरोधादर्थवादाद्विधिः कल्प्यः।

२—प्रशंसा या निन्दा करनेवाला विधि का शेषभूत वाक्य अर्थवाद होता है। वह अर्थवाद तीन प्रकार का होता है—(१) गुणवाद (२) अनुवाद (३) भूतार्थवाद। इत्यादि विषय कात्यायनश्रौतसूत्र की भूमिका आदि में देखिये।

यच्च व्यासः—मातुः सपिण्डा यत्नेन वर्जनीया द्विजातिभिः। इति तद्गान्धर्वादिवाहोढमातृविषयम्। तत्र पितृगोत्रानिरुक्तेः।

जो व्यासने कहा कि—द्विजातियों को चाहिये कि—माता के सपिण्डों को यत्नसे त्याग दे। वह गान्धर्व आदि विवाहों से विवाहित हो वहाँ पर पितृसापिण्ड्य रहता है।

अत एव मार्कण्डेयपुराणे–गान्धर्वादिविवाहेषु पितृगोत्रेण धर्मवित्। इति।

इसलिये मार्कण्डेयपुराण में कहा है कि-गन्धर्व आदि विवाहों में धर्म का वेत्ता पिताके गोत्र से करे।

ब्राह्मादिविवाहे तु परिणेयैवेति। भट्टसोमेश्वरोऽपि तृतीयेऽध्याये वाक्यपादे मातुलकन्योद्वाहमुदाहृत्य स्मृतिविरोधेनाचारप्राप्तस्यास्य वार्तिके बाधोक्तावपि पूर्वोक्तश्रौतलिङ्गबलीयस्त्वादस्य कर्तव्यतामाह। तदेतद्दत्तकस्य पालकदत्रिममातृसोदरकन्याविषयत्वेनासवर्णमातुलकन्याविषयत्वेन युगान्तरपरत्वेन चोपपन्नमपि अविचारितरमणीयं यथा, तथास्तु, तथापि कलौ तावन्निषिद्धमेव।

ब्राह्म आदि विवाह में तो विवाह से ही करे। भट्टसोमेश्वरने भी तीसरे वाक्यपाद अध्याय में कहा है कि—मामा की कन्या के विवाह का उद्धरण कर स्मृतिविरोध से आचारप्राप्त इसका वार्तिक में बाध भी कहा है तो पूर्वोक्त श्रौतलिंगबलीयहोने से इसकी कर्तव्यता को कहा है। जो यह दत्तक के पालनेवाले दत्तक माता के सोदर भाई की कन्या के विषय में होने से असवर्ण मामा की कन्या के विषय होने से युगान्तर होने से उपपन्न होने पर भी विचारणा में जैसा रमणीय नहीं है। वैसे ठीक है। फिर भी कलि में वैसे भी निषिद्ध ही है।

गोत्रान्मातुः सपिण्डाच्च विवाहो गोवधस्तथा। इत्यादित्यपुराणात्।

आदित्यपुराण में कहा है—माताके गोत्रसे और सपिण्ड से विवाह और गोवध करना वर्जित है।

माधवीये बौधायनोऽप्यस्य निन्दामाह—'पञ्चधा विप्रतिपत्तिर्दक्षिणतस्तथोत्तरत ऊर्णाविक्रयोऽनुपेतेन स्त्रिया च सह भोजनं पर्युषितभोजनं मातुलपितृष्वसृदुहितृपरिणयनम्' इति। 'अथोत्तरतः सीधुपानादिकमुक्त्वा इतर इतरस्मिन् कुर्वन् दुष्यति इतर इतरस्मिन्, इति।

माधवीय में बौधायन ने भी इसकी निन्दा कर कहा है कि—पाँच तरह के विवाद हैं—दक्षिणतरफ से और उत्तर से ऊनका वेचना, स्त्री के साथ भोजन तथा वासीभोजन करना, मामा और पिता के बहिन की लड़की के साथ विवाह करना उत्तर की तरफ मद्य का पीना और वेचना, (आयुधीय-आयुधद्वारा जीविका आदि करना, दूसरे दूसरे देश में करे तो दूषित होता है।

भट्टसोमेश्वरेणापि स्मृतिविरुद्धानां मातुलकन्योद्वाहादीनामस्माद्वचनादप्रामाण्यमित्युक्तम्।

भट्टसोमेश्वर ने भी [1]स्मृतिविरुद्ध मातुलकन्योद्वाहादियों का इस वचन से अप्रामाण्य कहा है।

बृहस्पतिरपि—उद्वह्यते दाक्षिणात्यैर्मातुलस्य सुता द्विजैः। मत्स्यादाश्च नराः पूर्वे, व्यभिचाररताः स्त्रियः॥ उत्तरे मद्यपाश्चैव स्पृश्या नृणां रजस्वलाः॥ इत्यनाचारत्वमाह। अत एव हेमाद्रौ मात्स्ये कर्णाटकादीनां तत्कारिणां श्राद्धे निषेधः।

बृहस्पतिने भी कहा है कि—दाक्षिणात्य द्विज मामाकी लड़की से विवाह करते हैं। पूर्व के मनुष्य मछली खाते हैं और स्त्रियाँ व्यभिचार कराती हैं। उत्तर के लोग मद्यपान करते हैं तथा मनुष्यों की रजस्वला स्त्रियों का स्पर्श (सनाताश्चापि गृह्णन्ति भ्रातृभार्यामभर्तृकाम्। सर्वदेशेष्वनाचारो रथ्याताम्बूलचर्वणम्॥) करते हैं। इससे अनाचार कहा है। इसलिये ही हेमादि में मत्स्यपुराण का कथन है कि उसके करनेवाले कर्नाटकों का श्राद्धमें निषेध है।

१—न च सकललोकादर्शनभूतस्य भगवतोऽर्जुनप्रद्युम्नादेर्मातुलकन्योद्वाहरूपदुराचार प्रवर्तकत्वं कथमिति वाच्यं युगान्तरीयत्वेनादोषात्। वस्तुतस्तु भगवतो नारायणत्वार्जुनस्य नरत्वेन नारायणांशत्वाद्रुक्मिण्यंशभूतसुभद्राविवाहो न मानुषः। शास्त्रस्य मनुष्याधिकारत्वाच्च तत्र न प्रवृत्तिः। किञ्च देवादिभिः कृतं मनुष्यैर्न कार्यम्। 'अनुष्ठितं च यद्देवैर्मुनिभिर्यदनुष्ठितम्। नानुष्ठेयं मनुष्यैस्तत्तदुक्तं धर्ममाचरेत्॥ इति बौधायनोक्तेः। इति निर्णयसिन्धुटीकायाम्।

(मातुलकन्योद्वाहे दोषकथनम्)

बोपदेवेनापि लिखितं ब्राह्मम्—यत्र मातुलजोद्वाही यत्र वै वृषलीपतिः।
श्राद्धं न गच्छेत्तद्विप्राः कृतं यच्च निरामिषम् ॥ इति।

बोपदेव ने भी ब्रह्मपुराण का वचन लिखा है कि—जहाँपर मामा की कन्या से विवाह करनेवाला हो और जहाँपर शूद्राका पति हो वहाँपर ब्राह्मण श्राद्ध करने के लिए न जांय, करनेपर पितरों को निरामिष नहीं मिलता है।

(मातृतः पञ्च पितृतः सप्त त्यक्त्वा कन्यामुद्वहेत्)

तस्मान्मातृतः पञ्च पितृतः सप्त त्यक्त्वोद्वहेदिति सिद्धम्।

इसलिए माता से पाँच तथा पिता से सात पीढी छोडकर विवाह करे—यह सिद्ध हुआ।

सम्बन्धविवेके सुमन्तुः—'ब्राह्मणानामेकपिण्डस्वधानामादशमाद्धर्मविच्छित्तिर्भवति, आसप्तमाद्रिक्थविच्छित्तिर्भवति, आतृतीयात्पिण्डविच्छित्तिः, अन्यथा पिण्डशौचक्रियाविच्छेदाद् ब्रह्महतुल्यो भवति॥'

अस्यार्थमाह शूलपाणिः—जीवत्पित्रादित्रिकस्य वृद्धप्रपितामहादयस्त्रयः श्राद्धदेवतात्वात्पिण्डभाजो भवन्ति, तदूर्ध्वं त्रयो नवपुरुषपर्यन्ता लेपभाजः, श्राद्धकर्ता च दशम इति दशमादूर्ध्वं सापिण्ड्यनिवृत्तिः। दशमादित्युपलक्षणम्। तेन पितृपितामहजीवने नवपुरुषपर्यन्तं, पितृजीवने चाष्टपुरुषपर्यन्तं सापिण्ड्यमिति ज्ञेयम्। अपुत्रधनग्रहणे सन्निहिताभावे सप्तपुरुषपर्यन्तमधिकारः धनग्राहिणमारभ्य तृतीयः पौत्रः तदूर्ध्वं श्राद्धविच्छेदः। अन्यथा धनहारित्वेऽपुत्रश्राद्धाद्यकरणे ब्रह्महेत्यर्थः। आ तृतीयादित्यनूढकन्याविषयम्, 'अप्रत्तानां तु स्त्रीणां त्रिपुरुषी विज्ञायते' इति वसिष्ठोक्तेः। एतच्चाशौचविषयं सापिण्ड्यं, न तु विवाहादौ। तत्र पूर्वोक्तवचनैः पञ्चमत्वसप्तमत्वनियमादिति मेधातिथिप्रमुखा दाक्षिणात्याः। वाग्दानोत्तरमेतदिति शुद्धिविवेकः। मातृकुलविषयं कानीनकन्याविषयं चैतत्।

सम्बन्धविवेक में सुमन्तुने कहा है कि इसका अर्थ शूलपाणी ने कहा है कि—जिसके पिता आदि तीन जीवित हों उसके वृद्ध प्रपितामह आदि तीन श्राद्धके देवता होने से पिण्ड के भागी होते हैं। उस तीनके ऊपर तीन से नव पुरुषपर्यन्त 'लेपभाग' के अधिकारी होंगे और श्राद्धकरनेवाला दशम होता है। इसप्रकार दशपीढी के बाद सापिण्ड्य की निवृत्ति हो जाती है। (यहाँ तक शूलपाणि का ग्रन्थ है)।

दशम आदि यह उपलक्षण है। इससे पिता और पितामह के जीवित रहते नव पुरुषपर्यन्त और पिता के जीवित रहते आठ पुरुषपर्यन्त सापिण्ड जानना चाहिये। अपुत्र के धन के ग्रहण में सन्निहित के अभाव में सातपुरुषपर्यन्त अधिकार है। धनको ग्रहण करनेवाले से आरंभ का तीसरा पौत्र होता है। उसके ऊपर का श्राद्ध का विच्छेद हो जाता है। अन्यथा धन को हरण करने वाला अपुत्र का श्राद्ध आदि को न करनेपर 'ब्रह्महत्यारा' होता है। तीन पीढी पर्यन्त यह अनूढ-कन्या (जिसका विवाह नहीं हुआ है) विषयक है। अप्रत्त (अविवाहित) स्त्रियों का तो तीन पीढीतक सापिण्ड्य होता है। यह वसिष्ठ ने कहा है। यह अशौच विषयकसापिण्ड्य है विवाह आदि विषयक नहीं है। वहाँपर पहले कहे हुए वचनों से पाँच या सात का नियम हैं यह मेधातिथि प्रमुखदाक्षिणात्य कहते हैं। शुद्धिविवेककार तो कहते हैं कि—यह वग्दानोत्तर ही सापिण्ड्य है। मातृकुलविषयक या कानीनकन्या (छोटी कन्या) के विषयक है।

अन्यथा—अप्रत्तानां तथा स्त्रीणां सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम्। प्रत्तानां भर्तृसापिण्ड्यं प्राह देवः प्रजापतिः॥ इति कौर्मेण विरोधः स्यादिति रत्नाकरस्मृतितत्त्वादिगौडग्रन्थाः। युक्तं चैतत्, अन्यथा कन्योत्पत्तौ पुरुषत्रयपर्यन्तमेव सूतकं स्यान्नोर्ध्वम्।

अन्यथा—अप्रमत्तस्त्रियों की सात पीढीतक सापिण्ड्यता रहती है। विवाहित स्त्रियों की सपिण्डता स्वामी (पति) के सापिण्ड्य से होती है। ऐसा देव प्रजापतिने कहा है। यह कूर्मपुराणसे विरोध हो जायगा।

यह रत्नाकर स्मृतितत्त्वादि गौडग्रन्थ में कहा है। यह ठीक है। अन्यथा कन्या की उत्पत्ति में तीन पुरुष पर्यन्त ही सूतक होगा उसके ऊपर नहीं होगा।

सापत्नमातामहकुले त्वाह मिताक्षरायां शङ्खः—यद्येकजाता बहवः पृथक्क्षेत्राः पृथक्जनाः। एकपिण्डाः पृथक्शौचाः पिण्डस्त्वावर्तते त्रिषु॥

सापत्नमातामहकुल (असवर्ण और सवर्ण सपत्नमाता का जनक कुल) में तो मिताक्षरा में शंख ने कहा है कि—यदि एक से अलग अलग क्षेत्र से भिन्न जातीय स्त्री से उत्पन्न हों और सजातीय भिन्न माताओं से पुत्र हों तो वे एक पिण्ड (सपिण्ड) वाले होते हैं। पर आशौच अलग अलग होता है। पिण्ड की तो तीनों की आवृत्ति होती है।

पृथक्क्षेत्राः भिन्नजातीयस्त्रीषु जाताः। पृथग्जनाः सजातीयभिन्नमातृषु जाताः। अत्र त्रिपुरुषं सापिण्ड्यमिति विज्ञानेश्वरो व्याचख्यौ। पृथ्वीचन्द्रोदये सापिण्ड्यदीपिकायां चैवम्। मदनपारिजाते तु पृथक्क्षेत्रजाः भिन्नमातृजाः, पृथग्जनाः भिन्नजातीयाः। एतद्विजातीयसापत्नमातृकुलविषयम्। सवर्णसापत्नमातृकुले चतुःपुरुषं सापिण्ड्यम्, पञ्चमीं सप्तमीं चैव मातृतः पितृतस्तथा। इति वसिष्ठोक्तेः। सप्तमीमिति ब्राह्मणादीनां क्षत्रियादिदारोत्पन्नपितृकुलविषयं चेत्युक्तं, तत्स्वकपोलकल्पितत्वात् ग्रन्थान्तरविरोधाच्च निर्मूलम्, 'पितृपत्न्यः सर्वा मातरः' इत्युक्त्वा सुमन्तुना 'तदपत्यानि भागिनेयानि' इति पृथङ्निषेधाच्च। अन्यथा सपिण्डत्वेन निषेधात् सपत्नमातुलत्वादिनिर्देशो व्यर्थः। अत एव तेन स्मृतिकौमुद्यां सवर्णसापत्नमातामहकुलपरत्वेन तथैव शङ्खवचनं व्याख्यातम्। तेन वासिष्ठं 'पञ्चमीं सप्तमीमतीत्य' इति व्याख्येयम्। तस्मात्प्राच्यैव व्याख्या युक्ता।

पृथक् क्षेत्राः—अलग जातीय स्त्रियों में उत्पन्न हुए। पृथक्जनाः—वे जातीय माताओं से उत्पन्न हुए। विज्ञानेश्वर ने व्याख्या की है कि—तीन पीढी तक सापिण्ड्य होता है। पृथ्वीचन्द्रोदय और सापिण्ड्यदीपिका में भी यही है। मदनपारिजात में तो कहा है कि—पृथक्क्षेत्राः—का अर्थ किया है कि—भिन्न माताओं से उत्पन्न हुए। पृथक्जनाः—का अर्थ है कि—भिन्नजातीय हो। यह विजातीय सापत्नमाताके कुल का विषयक है। सवर्णसापत्नमाताके कुल में चार पीढी तक सापिण्ड्य होता है।

वसिष्ठ ने कहा है कि—मातासे पांचवी और पिता से सातवी पीढी। 'सातवी' यह ब्राह्मण आदिओं का क्षत्रिय आदि स्त्रियों में उत्पन्न पिताके वंश विषयक है—यह कहा है। वह स्वकपोलकल्पित होने से तथा ग्रन्थान्तर के विरोध होने से निर्मूल है। सुमन्तु ने कहा है कि—पिता की सब पत्नी माता हैं यह कहकर उस कन्याओंके पुत्र भागिनेय हैं—यह अलग निषेध किया है। अन्यथा सापिण्ड्य होने से निषेध हो जाने से तो सपत्नमातुल आदिका कथन व्यर्थ हो जाता है। इसलिये उसने स्मृतिकौमुदी में—सवर्णसापत्नमातामह कुलपरत्व से वैसेही शंखवचन की व्याख्या की है। उससे वसिष्ठ के वचन की भी व्याख्या पांचवी और सातवी को अतिक्रमण कर की है। इसकारण से प्राच्यों की ही व्याख्या ठीक है।

प्रयोगरत्ने भट्टैः स्मृतितत्त्वादिगौडग्रन्थेषु च सपत्नमातामहकुले यावदुक्तं वाचनिकमेव सापिण्ड्यमुक्तम्।

प्रयोगरत्न में भट्टों ने और स्मृतितत्त्व आदि गौडग्रन्थों में सपत्नमातामहकुल में जो कुछ कहा वह वाचनिक (केवल वचन के द्वारा) ही सापिण्ड्य है।

यथाह सुमन्तुः—'मातृपितृसम्बद्धा आ सप्तमादविवाह्या भवन्ति, आ पञ्चमादन्येषां पितृपत्न्यः सर्वा मातरस्तद्भ्रातरो मातुलास्तद्भगिन्यो मातृष्वसारस्तद्दुहितरश्च भगिन्यस्तदपत्यानि भागिनेयानि, अन्यथा सङ्करकारिणः स्युस्तथाध्यापयितुरेतदेव' इति।

वैसेही सुमन्तुने कहा है कि—माता और पिता से सम्बन्धित सात पीढी तक विवाहित नहीं होते हैं। अन्य पांच पीढीतक विवाहित नहीं होते हैं। पिताकी पत्नियाँ सब माता हैं उनके भाई सब मामा हैं, उनकी

बहिन माता की बहिन हैं, उनकी कन्या जो हैं वह बहिन हैं, उनके लड़के भानजे है। अन्यथा तो वर्णसंकर करने वाले होते हैं और अध्यापन करानेवाले के यहाँ भी वही बात है।

आ पञ्चमादिति मातृकुले त्रिगोत्रान्तरितविषयं वेति प्राच्याः।

पाँच पीढीतक अन्यों का विवाह नहीं होता है ऐसा पूर्वोक्त कहने पर या माता के वंश में तीनगोत्र के अन्तर पर होता है—ऐसा प्राच्य कहते हैं।

मात्स्ये—समानप्रवरा चैव शिष्यसन्ततिरेव च। ब्रह्मदातुर्गुरोश्चैव सन्ततिः प्रतिषिध्यते॥ तद्भगिन्यो मातृष्वसार इति तु आकरे न पठितम्। क्वचिद्वचनादविवाहः।

मत्स्यपुराण में कहा है कि—समान प्रवरवाली सन्तान, शिष्यकी ही सन्तान और गायत्री देनेवाले गुरु की सन्तान विवाह में निषेध है। उन माताओं की बहिनोंका तो आकर (प्राचीन मान्य) ग्रन्थों में पाठ न ही पढा है। कहीं वचन से विवाह नहीं हो सकता है।

यथा गृह्यपरिशिष्टे—'अविरुद्धसम्बन्धामुपगच्छेत इत्युक्त्वा विरुद्धसम्बन्धः स्वयमेवोक्तः। यथा 'भार्यास्वसुर्दुहिता पितृव्यपत्नी स्वसा च' इति।

जैसा गृह्यपरिशिष्ट में कहा है कि—जिसमें विरोध न हो ऐसे सम्वन्ध में उसके साथ विवाह करे। यों कहकर विरुद्ध संवन्ध को स्वयं ही कहा है। जैसे—पत्नी के बहिन की कन्या और चाचाके पत्नी की बहिन।

बौधायनः—मातुः सपत्न्या भगिनीं तत्सुतां च विवर्जयेत्। (पितृव्यपत्न्या भगिनीं तत्सुतां च विवर्जयेत्॥) अतो मातृष्वसुः सापत्नपुत्रकन्याप्यविवाह्या। 'सापत्नमातृकुलजाम्' इति मदनपारिजातोक्तेरिति केचित्।

बौधायनने कहा है कि—माता के सौत को बहिन तथा उसकी कन्या को त्याग दे (और चाचाके पत्नी की बहिन तथा उसकी कन्या को त्याग दे।) इसलिये माता के बहिन के सापत्नपुत्र की कन्या भी विवाह के योग्य नहीं है। मदनपारिजात में किसी ने कहा है कि—सपत्नमातृकुलमें उत्पन्न को त्याग दे।

केचित्तु—'ज्येष्ठो भ्राता पितुः समः' इति मनूक्तेस्तत्पत्न्याः मातृत्वात्तत्पितुर्मातामहत्वाज्ज्येष्ठभ्रातृपत्नीभगिनी न विवाह्या।

कोई तो कहते हैं कि—बड़ा भाई पिता के सदृश है—इस मनु के कथन से उसकी पत्नी माता होने से और उसके पिता के मातामह (नाना) होने से बड़े भाई की पत्नी भी बहिन होगी। अतः विवाह नहीं हो सकता है।

तथा—उत्पादकब्रह्मदात्रोर्गरीयान् ब्रह्मदः पिता। इति मनूक्तेर्गुरुणा त्रिपुरुषं सापिण्ड्यम्, सखापि निर्वाप्यः, अतस्तेषां कन्या नोद्वाह्याः,

और उत्पन्न करनेवाले, वेदमन्त्र पढानेवालों में वेद पढानेवाला पिता उत्तम होता है—ऐसा मनुने कहा है। इसलिये गुरु के साथ तीन पीढी तक साापिण्ड्य है। मित्र भी पिण्डान्वयरूप साापिण्ड्य है—यह अर्थ है। अतः गुरु और मित्र का तीन पीढी तक विवाह नहीं हो सकता है। इसलिये इनकी कन्या के साथ विवाह न करे।

गायत्र्या उपदेष्टुश्च कन्यां नैवोद्वहेद् द्विजः।
गुरोश्च कन्यां शिष्यो वा तत्सन्तत्यापि नेष्यते॥

द्विज गायत्रीमन्त्र का उपदेश देनेवाले की कन्या से, [1]गुरु (गायत्री मन्त्र का उपदेश न देने पर भी चतुर्दश विद्याओं में से या चौसठ कला आदियों में से पढानेवाला अध्यापक) की कन्या या शिष्य से और उस शिष्य की सन्तान से भी विवाह संवन्ध न करे।

पुरुषत्रयपर्यन्तं भ्रात्रादेर्नैतदिष्यते। वाक्सम्बन्धकृतानां तु स्नेहसम्बन्धभागिनाम्॥ विवाहोऽत्र न कर्तव्यो लोकगर्हा प्रसज्यते॥ इति वचनाच्चेत्याहुः। तत्र मूलं चिन्त्यम्।

१—सावित्रीं यस्य यो दद्यात्तत्कन्यां न विवाहयेत्। तद्गोत्रे तत्कुले वापि विवाहो नैव दोषकृत्॥ एतत् स्वगोत्राज्ञानविषयमिति नारायणः। गुरोः सगोत्रप्रवरा नोद्वाह्या क्षत्रवैश्ययोः। स्वगोत्राद्यनभिज्ञैस्तु विप्रैराचार्यगोत्रजाः॥

तीन पीढी पर्यन्त गुरु आदि भाई की कन्या से विवाह न करे। जिनके यहाँ वाणीसे संवन्ध हो गया हो या जिनसे स्नेहसंबन्ध गया हो उनके यहाँ लोकनिन्दाके भय से विवाह नहीं करना चाहिये। इस वचन से कहा है। कमलाकर भट्टने कहा है कि उसमें मूल विचारणीय है।

(दत्तकविषये तु)

दत्तकविषये तूच्यते। तत्र गौतमः—'ऊर्ध्वं सप्तमात्पितृबन्धुभ्यो बीजिनश्च मातृबन्धुभ्यः पञ्चमात्' इति। बन्धुग्रहणान्न दत्तकमात्रपरमिदं, किन्तु सन्तानेऽपि। एतत क्षेत्रजादिसर्वद्व्यामुष्यायणपरमिति हरदत्तः।

दत्तकविषयमें तो कहते हैं। उसमें गौतम का वचन है कि—सात पीढी पिता के बन्धुओं से तथा बीजियों से ऊपर तथा माता के बन्धुओं से पाँच पीढी के आगे दत्तक विवाह करे। बन्धुग्रहण से यह दत्तकमात्रपरक नहीं है किन्तु सन्तानपरक भी है। हरदत्तने कहा है कि—यह क्षेत्रज[१] आदि सब द्व्यामुष्यायणपरक है।

अत्र स्मृतिचन्द्रिका—'नियोगात् य उत्पादयति तस्माद्बीजिनोप्यूर्ध्वं सप्तमादित्यर्थः' इति। दत्तकस्य जनकविषयमेतदिति सापिण्ड्यमीमांसायाम्। तेन दत्तकस्य जनककुले साप्तपौरुषं जननीकुले पाञ्चपौरुषं सापिण्ड्यम्, दत्तक्रीतादिपुत्राणां बीजवप्तुः सपिण्डता। सप्तमी पञ्चमी चैव गोत्रित्वं पालकस्य च॥ इति बृहन्मनूक्तेः, 'बीजिनश्च' इति गौतमोक्तेश्च। पालकपितृकुले तु पञ्चपुरुषम्, पालकमातृकुले त्रिपुरुषम्। तथा चापरार्के पैठीनसिः—'त्रीन् मातृतः पञ्च पितृतः पुरुषानतीत्योद्वहेत्' इति। एतत्स एव व्याचख्यौ—दत्तकादीन् पुत्रान् पितृपक्षतो निवृत्तपिण्डगोत्रार्षेयान् प्रत्येतदुच्यते पञ्च पितृत इति, नान्यान् प्रति' इति।

यहाँपर स्मृतिचन्द्रिका का कथन है कि—जो नियोग से उत्पन्न करता है उस बीजवाले से ऊपर की सातपीढी तक विवाह न करे—यह अर्थ है। सापिण्ड्यमीमांसा में कहा है कि—दत्तकके जनक (पालक के विषयमें नहीं) के विषयमें भी यही है। इससे दत्तक के जनककुल में सातपीढी तक और माताके कुल से पाँच पीढीतक सापिण्ड्य है।

बृहन्मनु ने कहा है कि—दत्तक, क्रीत आदि पुत्रों का बीज बोने वाले की सपिण्डता सात और पाँच पीढी होती है तथा गोत्र में तो पालक की होती है और गौतम ने कहा है कि—बीजवालों की पिण्डता कही है। पालकपितृकुल में तो पांच पीढी तक, पालकमातृकुल में तीन पीढी तकका सापिण्ड्य होता है और अपरार्क में पैठीनसि ने कहा है कि—तीन पीढी माता से तथा पांच पीढी पिता से हटाकर विवाह करे। यह उसने अर्थ (व्याख्या की) ही किया है कि—दत्तक आदि पुत्रों को पिता के पक्ष से पिण्ड, (सापिण्ड्य) आर्षेय—प्रवर के प्रति निवृत्ति हो गयी यह उनके प्रति कहा है। पिता से पांच पीढी त्यागकर विवाह करे। अन्यों के प्रति नहीं कहा है।

यत्तु वृद्धगौतमः—स्वगोत्रेषु कृता ये स्युर्दत्तक्रीतादयः सुताः।
विधिना गोत्रमायान्ति न सापिण्ड्यं विधीयते॥

जो वृद्धगौतम ने कहा है कि—अपने गोत्रों में दत्तक, क्रीतपुत्र आदि किये गये हैं। विधि द्वारा गोत्र में आ जाते हैं पर उनमें सापिण्ड्य का विधान नहीं है।

यच्च वसिष्ठः—अन्यशाखोद्भवो दत्तः पुत्रश्चैवोपनायितः।
स्वगोत्रेण स्वशाखोक्तविधिना स्यात्स्वशाखभाक्॥ इति।

और जो वसिष्ठ ने कहा है कि—अन्यशाखा से उत्पन्न दत्तक पुत्र अपने गोत्र से और अपनी शाखा में कहे हुए विधान से यज्ञोपवीतसंस्कार करने से अपनी शाखा में आ जाता है।

१—यदा क्षेत्री रुग्णो बन्धुभ्यः प्रार्थयते मम क्षेत्रे पुत्रमुत्पादयेति, यदा वा सन्तानक्षये गुरवो विधवां नियुञ्जते, यथा विचित्रवीर्यक्षेत्रे सत्यवती व्यासं, तत्र जातः पुत्रः क्षेत्रिणो बीजिनश्चेति द्व्यामुष्यायणः। अपुत्रेण परक्षेत्रे नियोगोत्पादितः सुतः। उभयोरप्यसौ रिक्थी पिण्डदाता च धर्मतः॥ इति याज्ञवल्क्यात्।

यच्च नारदः—धर्मार्थं वर्द्धिताः पुत्रास्तत्तद्गोत्रेण पुत्रवत् ।
अंशपिण्डविभागित्वं तेषु केवलमीरितम् ॥

और जो नारद ने कहा है कि—धर्मार्थरूप से वर्धित (पालन) किये हुए पुत्रों को उस उस गोत्र में पुत्र के सदृश अंशपिण्ड के भागी (अंशपिण्डशूल्यत्व) केवल उनमें कहा है ।

तत्पालककुले साप्तपौरुषं सापिण्ड्यं नेत्येवंपरं न तु सर्वथा सापिण्ड्यनिषेधपरमिति सापिण्ड्यमीमांसायाम् । मदनपारिजातादपि दत्तकानुप्रवेशेऽल्पं सापिण्ड्यं प्रतिभाति । तथाहि, तेन त्रीनतीत्येत्युदाहृत्य यस्य माता दत्तपुत्री प्रतिग्रहीत्रा पुत्रीकृता तस्याः प्रतिग्रहीतृकुले त्रीनतीत्येति, पञ्च पितृत इति यस्य दत्तपुत्रः पिता तस्य दत्तस्य यज्जनककुलं तद्विषयमित्युक्तम् । वस्तुतस्तु पूर्ववचसां महानिबन्धेषु क्वाप्यनुपलम्भादपरार्कादिलिखनाभावात् पूर्वोक्तव्यवस्थायाश्च प्राप्तियज्ञानतुल्यत्वाद्यैरेतल्लिखितं तेषामेव शोभते ।

वह पालकवंश में सातपीढी तक सापिण्ड्य नहीं होता है—इस परक है, किन्तु सर्वथा सापिण्ड्य निषेधपरक नहीं है—यह सापिण्ड्यमीमांसा में कहा है। मदनपारिजात आदि में तो दत्तक के पीछे प्रवेश में अल्पसापिण्ड्य प्रतीत होता है। वैसे ही उससे तीन को अतिक्रमणकर इसप्रकार उदाहरण कर जिसकी माता दत्तक की पुत्री हो ग्रहण करने वाले उसको पुत्रीरूप से मान कर उसके ग्रहण करने वाले वंश में तीन को पीढी को छोडकर विवाह करे। पिता से पांच पीढी इसप्रकार जिसका पिता दत्तक का पुत्र हुआ हो उस दत्तक का जो जनक कुल है उस विषयक है, यह कहा है।

सिद्धान्त तो यह है कि—पहले कहे हुए वचनों का महानिबन्धों में कहीं भी प्राप्त नहीं होने से और अपरार्क आदि में अभाव होने से पहली कही हुई व्यवस्था के न होने से प्राप्ति ज्ञान के अभाव में जिन्होंने इन वचनों को लिखा है उन्हीं को ही शोभा देता है।

मम तु पालककुले एकपिण्डदानक्रियान्वयित्वरूपं साप्तपौरुषमेव सापिण्ड्यम् । 'बीजिनश्च' इति गौतमोक्तेर्जनककुलेऽपि तावदेव 'त्रीन् मातृतः' इत्यादि तु सवर्णसापत्नमातृकुलपरं, 'यद्येकजाता बहवः' इति शाङ्खैकवाक्यत्वादिति युक्तं प्रतिभाति । अत एवास्य द्व्यामुष्यायणत्वं हेमाद्रिप्रवरमञ्जरीवृत्तिकृन्नारायणादिभिरुक्तम् ।

मेरे मतमें तो यह आता है कि-पालककुलमें एकपिण्डदानक्रियान्वयित्व रूप (सम्बन्धरूप) से सात पीढी तक सापिण्ड्य है और बीजवाले जनककुल में भी सात पीढी तक सापिण्ड्य है—यह गौतम ने कहा है। माता से तीन पीढी तक सापिण्ड्य है। इत्यादि तु सवर्णसापत्नमातृकुलपरक है। क्योंकि 'एक से उत्पन्न हुए बहुत' इस शांख्यके एकवाक्यत्व होने से युक्त मालुम होता है। इसलिए इसका द्व्यामुष्यायणत्व हेमाद्रि, प्रवरमञ्जरी, वृत्तिकार, नारायण आदियों ने भी कहा है।

भट्टसोमेश्वरेणापि 'पृथायाः कुन्तिभोजस्य पालककन्यात्वेऽपि ऊर्ध्वं सप्तमात्पितृबन्धुभ्यो बीजिनश्च' इति गौतमोक्तेर्दत्रिमायाः पृथायाः जनकस्य शूरसेनस्य कुलेऽपि साप्तपौरुषं पालककुलेऽपि तावदेव सापिण्ड्यमुक्तम् 'अपि वा कारणाग्रहणे' (जै० सू० ४-१, ३-५) इत्यत्र ।

भट्टसोमेश्वर ने भी कहा है कि—पृथु के कुन्तिभोज की पालककन्या होने पर भी सात पीढी से ऊपर पिता के बन्धुओं और बीजियों से सापिण्ड्य है। ऐसा गौतम के कहने पर दत्तक पृथा का जनक शूरसेन के कुल में भी सातपीढी तक सापिण्ड्य है और पालककुल में भी उतना ही सापिण्ड्य कहा है। अपि वा[1] कारणाग्रहणे—(जै० सू० ४।१।३।५)। इस सूत्र में कहा है।

१—अपि वा कारणाग्रहणे तदर्थम्, अर्थस्यानभिसंबन्धात्, अपि वेति पक्षव्यावृत्तिः नैतदस्ति समिदादीन्यपि पुरुषार्थानि प्राप्नुवन्तीति। कारणाग्रहणे पुरुषार्थानि प्रजापतिव्रतानि भवेयुः। न तत्र श्रुत्यादिके किंचित्कारणं गृह्यते ये न कर्मणामङ्गभूतमिति गम्यते। तस्मात्तानि पुरुषार्थानि अर्थस्य=कर्मणः नाभिसंबन्धः प्रजापतिव्रतैः। इह तु समिदादीनां प्रकरणं नामकारणं गृह्यते येन कर्मार्थानीति विज्ञायेत। तस्मादियम उपन्यासः पुरुषप्रयत्नश्चैवं सत्यनुवादः।

सापिण्ड्यदीपिकायां तु दत्तक्रीतादीनां जनकगोत्रेणोपनयने कृते जनककुले साप्तपौरुषं सापिण्ड्यम्, पालकमातापितृकुले त्रिपुरुषम्, पिण्डनिर्वापान्निर्वाप्यलक्षणं त्रिपुरुषं सापिण्ड्यम्, पालकगोत्रेणोपनयने तत्कुले साप्तपौरुषमित्युक्तम्। तन्न,

सापिण्ड्यदीपिका में तो कहा है कि—दत्तक, क्रीत आदिका जनकगोत्र से उपनयन करने पर जनककुल में सात पीढी तक सापिण्ड्य है। पालक-माता पिता के कुल में तीन पीढी तक सापिण्ड्य है। पिण्ड के या नहीं पिण्ड के निर्वाप्य (पिण्डदान देने से) लक्षण तीन पीढी तक सापिण्ड्य होता है। पालकगोत्र से उपनयन करने पर उस कुल में सात पीढी तक सपिण्ड होता है—ऐसा कहा है। यह ठीक नहीं है।

चूडोपायनसंस्कारा निजगोत्रेण वै कृताः। दत्ताद्यास्तनयास्ते स्युरन्यथा दास उच्यते॥ इति कालिकापुराणादुपनयनान्तरं दत्तकनिषेधात्। त्रिपुरुषमित्यत्रापि मूलं मृग्यमित्यलं बहुना।

अपने गोत्र से ही चूड़ाकरण और उपनयनसंस्कार किया तो तो वे पुत्र दत्तक होते हैं। अन्यथा दास कहे जाते हैं। इस कालिकापुराणवचन से उपनयन के बाद दत्तक का निषेध है। तीन पीढी तक सापिण्ड्य होता है, इसमें भी प्रमाण अन्वेषणीय हैं। बहुत कहने की आवश्यकता नहीं है।

मातृपितृद्वारकसापिण्ड्यवतीनां कन्यानामियं संख्या रामवाजपेयिनोक्ताः—उद्वोढुः पितरौ पितुश्च पितरौ तज्जन्मकृद्दम्पतीद्वन्द्वं तस्य चतुष्कमष्ट च ततोऽप्यस्य क्रमात् षोडश। वंशारम्भकृद्दम्पतीप्रमितिरित्यासप्तकक्षं रदा एकैकान्वयकन्यकाः पितृकुले त्वासप्तकक्षं ब्रुवे॥

माता तथा पिता द्वारक सापिण्ड्य वाली कन्याओं की यह संख्या (गिनती) रामवाजपेयी ने कही है—

(१) प्रथम वर, (२) वर के पिता तथा माता ये दो, (३) पिता के पिता और माता, (४) उन दोनों के जन्म देनेवाले युगल पितामह के पिता माता और पितामही के माता-पिता ये द्वन्द्व द्वय, पञ्चमस्थान में पूर्वोक्त दोनों द्वन्द्वों में दो पुरुषद्वय और स्त्रीद्वय का जन्म देनेवाला चार द्वन्द्व, छठें स्थान में पूर्वोक्त द्वन्द्वों में आठ स्त्री और आठ पुरुष उनको पैदा करनेवाले आठ द्वन्द्व, सप्तमस्थान में—उन पूर्वोक्त आठ द्वन्द्वों में सोलह व्यक्ति उनको पैदा करनेवाले सोलह द्वन्द्व। वंश को आरंभ करनेवाला दंपती तक सातवी पीढी में बत्तीस द्वन्द्व होंगे। पिता के कुल में सप्तम कक्षा तक एक एक द्वन्द्व के अन्वय में एक एक कन्या स्वीकार की गयी है।

यद्यप्येकस्य बहवः सुताः स्युस्तदपीह तु। सम्बन्धसाम्यादेकैव गणितेत्यवधार्यताम्॥

यद्यपि एक एकके बहुतसी कन्या होती हैं। फिर भी यहाँ पर सम्बन्ध की समता के कारण एक ही गिनी जाती है यह निश्चय करो।

एकस्मान्मिथुनात्सुतोऽथ दुहिता द्वन्द्वद्वयं तद्द्वयात् तस्माद् द्वन्द्वचतुष्कमष्ट च ततोऽतः षोडशातो रदाः। यावत्सप्तमकक्षमग्निस्रुतवः कन्या इहैकान्वये ता दन्तैर्गुणिता रसैकखदृशो वंशे सपिण्डाः पितुः॥

एक मिथुन, एक मिथुन से पुत्र और कन्या यह द्वन्द्व दूसरे स्थानमें होगा, तीसरे स्थानमें उनमें से प्रत्येक को पुत्र और कन्या ये दो द्वन्द्व होंगे। चतुर्थस्थान में पूर्वोक्त दो द्वन्द्वों से पूर्वोक्तरीति से चार, द्वन्द्व होंगे। पञ्चमस्थानमें उन चार द्वन्द्वों से आठ द्वन्द्व होंगे। षष्ठ स्थान में उस आठ द्वन्द्व से सोलह द्वन्द्व होंगे। उसके बाद उन द्वन्द्वों से सप्तम स्थान में बत्तीस द्वन्द्व होंगे। इस रीति से एक एक का अन्वय करने पर सप्तम कक्षा तक तिरसठ कन्या होगीं। उन सबमें बत्तीस से गुणा करने पर दो हजार सोलह वर के पिता के वंश में वर के सपिण्ड होंगे।

मातुर्जन्मददम्पती च मिथुनं द्वन्द्वं तयोः सागराः तस्याः पञ्चमकक्षमश्वमितिरित्येकान्वयः पुंसुते। द्वन्द्वाद्द्वन्द्वयुगं ततोऽब्धय इतोऽष्टौ पञ्चकक्षं शरक्षोण्यः सप्तगुणाः शराभ्रविधवो मातुः सपिण्डाः कुले॥

प्रथम वर, वर के-पिता माता दूसरे स्थान में-यह द्वन्द्व, तीसरे स्थान में-माताके माता पिता ये द्वन्द्व, चतुर्थ स्थान में—दो द्वन्द्व, पञ्चमस्थान में-चार द्वन्द्व, इस रीति से माता की पञ्चमकक्षा तक सात संख्या होगी। पहला द्वन्द्व पहले ले लिया गया है इसलिये वहाँपर एक ही द्वन्द्व का अन्वय पुत्र और कन्या के रूप में लिया जायगा। उस द्वन्द्व से दो द्वन्द्व, चार द्वन्द्व तथा आठ द्वन्द्व, इसलिये पांच कक्षा तक पन्द्रह द्वन्द्व होंगे। उनमें सात का गुणा करने पर एक सौ पांच वर के माता के कुल में वर के सपिण्ड होंगे।

ईशानकोण

पूर्व

अग्निकोण

शिव

गणेश

(सूर्यपञ्चायतन)

उत्तर

दक्षिण

दुर्गा

विष्णु

वायव्यकोण

पश्चिम

नैर्ऋत्यकोण

कुलद्वयस्य कन्यकायुता मिथः सपिण्डकाः । हिमांशुदग्धरादशो विवाहकर्मवर्जिताः ॥ इति ।

इन दोनों मातृकुल और पितृकुल की कन्यायें परस्पर मिलाकर इकट्ठा करने पर इक्कीससौ इक्कीस सपिण्ड होती हैं। जो विवाहकर्म में वर्जित हैं।

एतच्च सर्ववर्णसाधारणं, सर्वत्र सापिण्डयसद्भावादिति विज्ञानेश्वरोक्तेः

और यह सर्वसाधारण है सर्वत्र सापिण्डयता रहती है—यह विज्ञानेश्वर ने कहा है।

पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृतः क्रमात् । सपिण्डता निवर्तेत सर्ववर्णेष्वयं विधिः ॥ इति हरनाथधृतदेवलवचनाच्च ।

हरनाथलिखित देवल का वचन है कि—माता से पांच पीढी और पिता से सात पीढी के ऊपर सपिण्डता हट जाती है। यह सब वर्णों में विधि है।

सम्बन्धतत्त्वे सुमन्तुः—'पितृष्वसृसुतां मातृष्वसृसुतां मातुलसुतां मातृसगोत्रां समानार्षेयीं विवाह्य चान्द्रायणं चरेत्परित्यज्यैनां मातृवद्बिभृयात्' इति दिक् ।

सम्बन्धतत्त्व में तो सुमन्तुने कहा है कि—पिताके बहिन की लड़की, माताके बहिनकी लड़की, माताकी लड़की, माताके गोत्रवाली (मामाके गोत्रकी) समान प्रवरवालीसे विवाह करे तो चान्द्रायण करे और त्याग कर उसको (उस कन्या को) माता के सदृश पालन करे। यही रास्ता है।

ऋषेरिदमार्षं प्रवरः, गोत्रं प्रसिद्धम्, समाने आर्षगोत्रे यस्य तस्माज्जाता या न भवति ताम् ।

ऋषि (विश्वामित्रादि) का यह आर्ष-प्रवर है और गोत्र प्रसिद्ध है (यद्यपि पाणिनीय जी ने 'अपत्यं पौत्रप्रभृतिगोत्रम्) इस परिभाषा से कहा है। फिर भी वह परिभाषा शब्दशास्त्र में ही लगती है यहाँ तो पुत्र-पौत्र आदिकी परम्परा ही है।) समान आर्ष और गोत्र में जिसका उससे उत्पन्न जो नहीं होती है उसका।

(संक्षेपेण गोत्रप्रवरनिर्णयः)

अथ संक्षेपेण गोत्रप्रवरनिर्णयः । तौ च भिन्नौ निषेधे निमित्तं, 'सगोत्राय दुहितरं न प्रयच्छेत्' इत्यापस्तम्बोक्तेः, 'असमानप्रवरैर्विवाहः' इति गौतमोक्तेश्च ।

अब संक्षेप से गोत्र और प्रवर का निर्णय करते हैं। ये दोनों भिन्न-भिन्न निषेध के कारण हैं। आपस्तंब ने कहा है कि—अपनी कन्या सगोत्रको नहीं दे और गौतमने कहा है कि—असमान (अर्थात्—जिसका अपना प्रवर हो उसके साथ विवाह न करे।) के साथ विवाह करे।

(गोत्रलक्षणम्)

तत्र गोत्रलक्षणमाह प्रवरमञ्जर्यां बौधायनः—विश्वामित्रो जमदग्निर्भरद्वाजोऽथ गौतमः । अत्रिर्वसिष्ठः कश्यप इत्येते सप्त ऋषयः ॥ सप्तानामृषीणामगस्त्याष्टमानां यदपत्यं तद्गोत्रम् । इति ।

उसमें प्रवरमञ्जरी में बौधायन ने गोत्र का लक्षण कहा कि—विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, अत्रि, वसिष्ठ और कश्यप ये सात ऋषि हैं। सात ऋषियों की और आठवें अगस्त्य की जो सन्तानें हैं उन्हीं को गोत्र कहा जाता है।

यद्यपि केवलभार्गवेष्वार्ष्टिषेणादिषु केवलाङ्गिरसेषु च हारितादिषु च नैतत्, भृग्वङ्गिरसोरुक्तेष्वनन्तर्गतेः, तथाप्यत्रेष्टापत्तिरेवेति केचित् अत एव स्मृत्यर्थसारे प्रवरैक्यादेवात्राविवाह उक्तः । यद्यपि वसिष्ठादीनां न गोत्रत्वं युक्तम्, तेषां सप्तर्षित्वेन तदपत्यत्वाभावात्, तथापि तत्पूर्वभाविवसिष्ठाद्यपत्यत्वेन गोत्रत्वं युक्तम् । अत एव पूर्वेषां परेषां चैतद् गोत्रम् । अत्र विशेषोऽस्मत्कृते प्रवरदर्पणे ज्ञेयम् ।

यद्यपि केवल भार्गव, आर्ष्टिषेण आदिमें, केवल आङ्गिरसों में और हारितादियों में उन सप्तर्षि के अपत्योंका अभाव है। भृगु तथा आंगिरस उन सात ऋषियों में नहीं आते हैं। फिर भी यहाँ पर इष्टापत्ति ही है—यह किसी का मत है। इसलिये स्मृत्यर्थसार में प्रवर की एकतामें ही विवाह का निषेध यहाँ पर किया है। यद्यपि—वसिष्ठ आदियों का गोत्रत्वयुक्त नहीं है। क्योंकि—उनका सात ऋषियों के होने से उनके

अपत्यका अभाव है। फिर भी प्राचीन वसिष्ठ की सन्तान होने से वसिष्ठादि की गोत्रता मानना उचित है। इसलिए गोत्रता स्वीकार करना यथोचित है। यहाँ पर मेरे बनाये हुए 'प्रवरदर्पण' नामक पुस्तक से जानना चाहिये।

(प्रवरास्तु)

प्रवरास्तु प्रवरणानि प्रवराः। कल्पकारा हि वासिष्ठेति होता' 'वसिष्ठवदित्यध्वर्युः' इत्यादिना येषां प्रवरणमामनन्ति ते प्रवराः। तच्च वरणं यद्यपि गोत्रभूतस्यापि क्वचिद् दृश्यते तथापि पूर्ववदृषिभेदो द्रष्टव्यः। अन्यथा तेषां त्र्यार्षेये 'एकार्षे' इत्यादिनिर्देशानुपपत्तेः। अन्ये तु तद्गोत्राणां त्र्यार्षेय इति भेदमाहुरिति दिक्।

प्रवर प्रकृष्टवरण (अग्नि प्रार्थना) को कहा जाता है। कल्पसूत्र में आश्वलायनों का मन्त्र है—'अग्ने महाँ असि ब्राह्मण 'भारत' इत्यादि। 'अग्निर्देवो होता देवान्' इत्यादि। उसमें पहलामन्त्र होता और दूसरा अध्वर्यु का मन्त्र है। उसमें वसिष्ठ होता है। वसिष्ठ की तरह अध्वर्यु अग्नि की प्रार्थना करता है। आदिशब्द से—भार्गव, च्यावन, आप्नवान्, और्व, जामदग्नि—होता का ग्रहण है। जिन ऋषियों का अग्निप्रार्थना करना कहा है। वही प्रवर है। वह वरण यद्यपि गोत्रभूत भी कहीं देखा फिरभी पहले की तरह ऋषि भेद (वृद्धवसिष्ठ अन्य हैं और युवावसिष्ठ अन्य हैं) अन्यथा युवावसिष्ठादियों का तीन प्रवर और किसीका एक प्रवर इत्यादि कथनकी अनुपपत्ति हो जायगी। दूसरे तो कहते हैं कि—गोत्रों के तीन प्रवर भेद होगें—यही मार्ग है—यों कहा।

तत्त्वं तु गोत्रभूतस्य पितृपितामहप्रपितामहा एव प्रवराः, 'पितैवाग्रेऽथ पुत्रोऽथ पौत्रः' इति शतपथश्रुतेः, 'परं परं प्रथमम्' इत्याश्वलायनोक्तेश्च।

सिद्धान्त तो यह है कि—गोत्रभूतका—पिता, पितामह और पितामह ही प्रवर हैं। पहले पिता, दूसरा पुत्र तीसरा पौत्र—ऐसा शतपथमें कहा है और आश्वलायन ने कहा है कि—परला परला प्रथम होता है।

अत्र विशेषमाह बौधायनः—एक एव ऋषिर्यावत्प्रवरेष्वनुवर्तते।
तावत्समानगोत्रत्वमन्यत्र भृग्वाङ्गिरसां गणात् ॥ इति।

यहाँपर विशेष बौधायनमें कहा है कि—प्रवरों में जब तक ऋषिका नाम हो वहाँतक समान (एक) ही गोत्र होता है। अन्यत्र हो भृगु और अंगिरसों के गणोंसे होता है।

स्मृत्यर्थसारे—व्रियमाणतया वापि सत्तया वाऽनुवर्तनम्।
एकस्य दृश्यते यत्र तद्गोत्रं तस्य कथ्यते ॥

स्मृत्यर्थसारमें कहा है कि-जहाँपर एक का वरण करनेसे या नाम से जहाँ एक का नाम चला जाय उसे एक गोत्र कहा जाता है।

भृग्वङ्गिरोगणेषु तु माधवीये स्मृत्यन्तरे—पञ्चार्षे त्रिषु सामान्यादविवाहस्त्रिषु द्वयोः।
भृग्वङ्गिरोगणेष्वेवं शेषेष्वेकोऽपि वारयेत् ॥ शेषगोत्रेष्वेको समानः प्रवरो विवाहं वारयेदित्यर्थः।

भृगु—अंगिरा गणोंमें तो माधवीय में स्मृत्यन्तर ने कहा है कि—पाँच प्रवरों वालों की तीन प्रवरणों तथा तीन प्रवरोंवालों को दो में समानता हो जाय तो विवाह नहीं होता है। यही कथन भृगु और अंगिरागणों में है शेषों में एक भी समान प्रवर विवाह में निषेध करता है—यह अर्थ है।

बौधायनोऽपि—भृग्वङ्गिरसावधिकृत्य 'द्व्यार्षेयसन्निपातेऽविवाहस्त्र्यार्षेयाणां, त्र्यार्षेयसन्निपातेऽविवाहः पञ्चार्षेयाणाम्' इति। भृग्वङ्गिरोगणेष्वपि जमदग्निगौतमभरद्वाजेष्वेकप्रवरसाम्ये सर्वेषामप्यसाम्ये वा सगोत्रत्वादेवाविवाह इति दिक्।

बौधायनने भी कहा है कि—भृगु और अंगिरा को मध्यस्थ कर कहा है कि—दो प्रवर के प्राप्त होने पर और तीन प्रवर के प्राप्त हो जाने पर विवाह नहीं होता है। तीन प्रवर के प्राप्त होने पर भी—यह पाँच प्रवर में विवाह नहीं होता है।

भृगु और अंगिरा के गणों में भी जमदग्नि, गौतम, तथा भरद्वाजों में एकप्रवर समता होने पर सबों का भी या असाम्यमें समान गोत्र होनेसे ही विवाह नहीं हो सकता है। यही [1]मार्ग है।

(गोत्राणां प्रवराणां च कथनम्)

अत्र गोत्राणि प्रवराश्चोच्यन्ते। तत्र बौधायनः—गोत्राणां तु सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च। ऊनपञ्चाशदेवैषां प्रवरा ऋषिदर्शनात्॥ तत्र सप्त भृगवः। वत्सा विदा आर्ष्टिषेणा यास्का मित्रयुवो वैन्याः शुनका इति। वत्सानां भार्गवच्यावनाप्नवानौर्वजामदग्न्येति, भार्गवौर्वजामदग्न्येति वा, भार्गवच्यावनाप्नवानेति वा। विदानां पञ्च—भार्गवच्यावनाप्नवानौर्ववैदेति, भार्गवौर्वजामदग्न्येति वा। एतौ द्वौ जामदग्न्यसंज्ञौ। आर्ष्टिषेणानां भार्गवच्यावनाप्नवानार्ष्टिषेणानूपेति, भार्गवार्ष्टिषेणानूपेति वा। एषां त्रयाणां परस्परमविवाहः। वात्स्यानां भार्गवच्यावनाप्नवानेति। वत्सपुरोधसयोः पञ्च। भार्गवच्यावनाप्नवानवात्सपौरोधसेति। वैजवनिमतिथयोः पञ्च। भार्गवच्यावनाप्नवानवैजमतिथेति। एते त्रयः क्वचित्। एषामपि पूर्वैरविवाहः। अत्र तत्तद्गणस्था ऋषयोन्यश्च विशेषो मत्कृते प्रवरदर्पणे ज्ञेयः।

अब गोत्र और प्रवरों को कहते हैं। उसमें बौधायन ने कहा है कि—गोत्र तो हजार, दशहजार और अर्बुद हैं। उनके प्रवर उनचास हैं। जो कि ऋषियों ने देखे हैं। उसमें सात भृगु हैं—वत्स, विदा, आर्ष्टिषेण, यास्क, मित्रयुव, वैन्य और शुनक। वत्सोंके—भार्गव, च्यावन, आप्नवान्, और्व, जामदग्न्य या भार्गव, और्व, जामदग्न्य या भार्गव, च्यावन और आप्नवान्। विदोंके पाँच हैं—भार्गव, च्यावन, आप्नवान्, और्व, वैद। या भार्गव, और्व तथा जामदग्न्य। ये दोनों जामदग्न्यसंज्ञक हैं। आर्ष्टिषेणों के—भार्गव, च्यावन, आप्नवान्, आर्ष्टिषेण, अनूप या भार्गव, आर्ष्टिषेण और अनूप। इन तीनों का परस्पर विवाह नहीं होता है। वात्स्यों का—भार्गव, च्यावन और आप्नवान्। वत्स और पुरोधा में पांच। भार्गव, च्यावन, आप्नवान्, वात्स और पौरोधस। वैज, वैन तथा मतिथ। ये तीन हैं। इनका भी परस्पर पहलों से विवाह नहीं होता है। यहाँपर उन उन गणों के ऋषि और विशेष मेरे द्वारा निर्मित 'प्रवरदर्पण' से जानना चाहिये।

यस्कानां भार्गववैतहव्यसावेतसेति मित्रायुवां भार्गवदाध्यूश्वदैवोदासेति, भार्गवच्यावनदैवोदासेति वा, बाध्यूश्वेत्येको वा। वैन्यानां भार्गववैन्यपार्थेति। एत एव श्वैताः। शुनकानां शुनकेति वा। गार्त्समदेति वा भार्गवगार्त्समदेति द्वौ वा। भार्गवशौनहोत्रगार्त्समदेति त्रयो वा। वेदविश्वज्योतिषां भार्गववेदवैश्वज्योतिषेति। शाठरमाठराणां भार्गवशाठरमाठरेति। एतौ द्वौ क्वचित्। यस्कादीनां स्वगणं त्यक्त्वा सर्वैर्विवाहः। तदुक्तं स्मृत्यर्थसारे—यस्का मित्रयुवो वैन्याः शुनकाः प्रवरैक्यतः। स्वं स्वं हित्वा गणं सर्वे विवहेयुः परावरैः। इति।

यस्कों के—भार्गव, वैतहव्य तथा सावेतस हैं। मित्रयुवों (मित्रयूनामितिपाठः) के भार्गव, वाध्यूश्व, दैवोदास या भार्गव, च्यावन एवं दैवोदास हैं या बाध्यूश्व एक ही प्रवर है। वैन्यों के भार्गव, वैन्य और पार्थ हैं। इन्हीं को श्वैत कहते हैं। शुनकोंका या शुनक का गार्त्समद या भार्गवगार्त्समद हैं या भार्गव, शौनहोत्र तथा गार्त्समद ये तीन प्रवर हैं। वेदविश्वज्योतिषियों के—भार्गव, वेदविश्वज्योतिष हैं। शाठर-माठरों के—भार्गव, शाठर-माठर। ये दो ही कहीं कहे हैं। यस्क आदिकों का अपने गण को छोड़कर सबके साथ विवाह होता है। उसी बात को स्मृत्यर्थसार में कहा है कि—यस्क, मित्रयुव, वैन्य और शुनक ये एकप्रवर होजाने से अपने अपने गण को छोड़कर अन्य प्रवरों में विवाह करें।

१—समानप्रवरत्वं द्वेधा-एक प्रवरसाम्यं द्विप्रवरसाम्यं च। आद्यं भृग्वङ्गिरोगणव्यतिरिक्तेषु शेषेषु-इति वचनात्। द्वितीयं भृग्वङ्गिरोगणेषु। तच्चासङ्कीर्णं तत्राविवाहप्रयोजकं, तेषां गोत्रत्वाभावेन समानगोत्रत्वाप्रसक्तेः। अत एव च तेषु द्वित्रिप्रवरसाम्याभावे विवाह एव भवति। समानगोत्रत्वं चासङ्कीर्णं कपीनां भरद्वाजगणैः सहाविवाहप्रयोजकम्। तेषां भरद्वाजगणस्थत्वेनाङ्गिरोगणस्थत्वादेकप्रवरसाम्येऽपि अपेक्षितद्वित्रिप्रवरसाम्याभावादिति। अन्यत्र सर्वत्र प्रायश एते सङ्कीर्णे इति बोध्यम्' इति कृष्णंभट्टीटीकायाम्।

(आङ्गिरसगोत्रनिरूपणम्)

अथाङ्गिरसः। ते गौतमाः, भरद्वाजाः, केवलाङ्गिरसश्चेति त्रिधा। अत्र गौतमा दश—आयास्याः, शरद्वन्ताः, कौमण्डाः, दीर्घतमसः, औशनसाः, कारेणुपालेयाः, राहूगणाः, सोमराजकाः, वामदेवाः, बृहदुक्थ्याश्चेति। तत्रायास्यानामाङ्गिरसायास्यगौतमेति। शरद्वतानामाङ्गिरसगौतमशारद्वतेति। कौमण्डानामाङ्गिरसौतथ्यकाक्षीवतगौतमकौमाण्डेति वा, आङ्गिरसायास्यौशिजगौतमकाक्षीवतेति वा, आङ्गिरसौतथ्यगौतमौशिजकाक्षीवतेति वा, आङ्गिरसौशिजकाक्षीवतेतित्रयो वा। दीर्घतमसानामाङ्गिरसौतथ्यकाक्षीवतगौतमदैर्घतमसेति, आङ्गिरसौतथ्यदैर्घतमसेति त्रयो वा। औशनसानामाङ्गिरसगौतमौशनसेति त्रयः। कारेणुपालेयानामाङ्गिरसगौतमकारेणुपालेति त्रयः। राहुगणानामाङ्गिरसराहूगणगौतमेति। सोमराजकानामाङ्गिरससोमराजकगौतमेति। वामदेवानामाङ्गिरसवामदेव्यगौतमेति। बृहदुक्थानामाङ्गिरसबार्हदुक्थगौतमेति, आङ्गिरसवामदेवबार्हदुक्थेति वा। उतथ्यानामाङ्गिरसौतथ्यगौतमेति। औशिजानाम्—'आङ्गिरससौशिजकाक्षीवत' इत्यापस्तम्बः, 'आङ्गिरसायास्यौशिजगौतमकाक्षीवत' इति कात्यायनः। एतौ द्वौ क्वचित्। राघुवानामाङ्गिरसराघुवगौतमेति केचित्। तत्र मूलं चिन्त्यम्। एषां सर्वेषां गौतमानामविवाहः।

अब आंगिरस को कहते हैं—वे—गौतम, भरद्वाज और केवलाङ्गिरस ये तीन हैं। उसमें गौतम दश हैं—आयास्य, शरद्वन्त, कौमण्ड, दीर्घतमस, औशनस, कारेणुपालेय, राहूगण, सोमराजक, वामदेव और बृहदुक्थ्य। उसमें अयास्यों के—आंगिरस, आयास्य तथा गौतम। शरद्वतों के—आंगिरस, गौतम और शारद्वत। कौमण्डों के—आंगिरस, सौतथ्य, काक्षीवत या गौतम और कौमाण्ड। आङ्गिरस, अयास्य, औशिज, गौतम तथा काक्षीवत, आंगिरस, सौतथ्य, गौतम, औशिज, काक्षीवत या आंगिरस, औशिज, काशीवत ये तीन। दीर्घतमसों के—आंगिरस, औतथ्य, काक्षीवत, गौतम, दैर्घतमस या आंगिरस, औतथ्य, दैर्घतमस ये तीन। औशनसों के—आंगिरस, गौतम और औशन ये तीन। कारेणुपालेयों के—आंगिरस, गौतम और औशन ये तीन। कारेणुपालेयों के—आंगिरस, गौतम, कारेणुपाल ये तीन। राहुगणों के—आंगिरस, राहूगण और गौतम। सोमराजकों के—आंगिरस, सोमराजक तथा गौतम। वामदेवों के—आंगिरस, वामदेव्य, और गौतम। बृहदुक्थों के—आंगिरस, वार्हदुक्थ्य तथा गौतम या आंगिरस, वामदेव और वार्हदुक्थ्य। उतथ्यों के—आंगिरस, औतथ्य तथा गौतम। औशिजाओं के—आंगिरस, औशिज और काक्षीवत—ये आपस्तंब ने कहा है। आंगिरस, आयास्य, औशिज, गौतम तथा काक्षीवत—ये कात्यायन ने कहा है। ये दोनों कहीं पर हैं। राघुवों के—आंगिरस, राघुव और गौतम ये कहीं हैं। उसमें मूल विचारणीय है। इन सब गौतमों का परस्पर में विवाह नहीं होता है।

(भरद्वाजगोत्रनिरूपणम्)

अथ भरद्वाजाः। ते चत्वारः—भरद्वाजाः, गर्गाः, ऋक्षाः, कपय इति। भरद्वाजानामाङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजेति त्रयः। गर्गाणामाङ्गिरसबार्हस्पत्यभरद्वाजसैन्यगार्ग्येति पञ्च, आङ्गिरससैन्यगार्ग्येति वा। अन्त्ययोर्व्यत्ययो वा, भरद्वाजगार्ग्यसैन्येति वा। गर्गभेदानामाङ्गिरसतैत्तिरकापिभुवेति। ऋक्षाणां कपिलानां चाङ्गिरसबार्हस्पत्यभरद्वाजवान्दनमातवचसेति पञ्च, आङ्गिरसवान्दनमातवचसेति त्रयो वा। कपीनामाङ्गिरसमहीयवौरुक्षयसेति। आत्मभुवामाङ्गिरसभारद्वाजबार्हस्पत्यमन्त्रवरात्मभुवेति पञ्च। अयं क्वचित्। भरद्वाजानां सर्वेषामविवाहः।

अब भरद्वाज कहते हैं। वे चार हैं—भरद्वाज, गर्ग, ऋक्ष और कपय। भरद्वाजों के—आंगिरस, वार्हस्पत्य तथा भारद्वाज ये हैं। गर्गों के—आंगिरस, वार्हस्पत्य, भरद्वाज, सैन्य और गार्ग्य ये पाँच हैं, या आंगिरस, सैन्य तथा गार्ग्य हैं। या अन्त्यके दोनों का व्यत्यय है। या भरद्वाज गार्ग्य तथा सैन्य हैं। गर्गभेदों

के—आंगिरस, तैत्तिर तथा कापिभुव हैं। ऋक्षों के और कपिलों के—आंगिरस, वार्हस्पत्य, भरद्वाज, वान्दन और मातवचस ये पांच हैं। या आंगिरस, वान्दन तथा मातवचस ये तीन हैं। कपियों के—आंगिरस, महीयव और उरुक्षयस ये तीन हैं। आत्मभुवों के—आंगिरस, भरद्वाज, वार्हस्पत्य, मन्त्रवर तथा आत्मभुव ये पाँच हैं। इन सब भरद्वाजों का परस्पर विवाह नहीं होता है।

(केवलाङ्गिरसगोत्रनिरूपणम्)

अथ केवलाङ्गिरसः। (ते च षट्—हारिताः, कुत्साः, काण्वाः, रथीतराः, मुद्गलाः, विष्णुवृद्धाश्चेति) हारीतानामाङ्गिरसाम्बरीषयौवनाश्वेति। आद्यो मान्धाता वा। कुत्सानामाङ्गिरसमान्धातृकौत्सेति। कण्वानामाङ्गिरसाजमीढकाण्वेति। आङ्गिरसघोरकाण्वेति वा। रथीतराणामाङ्गिरसवैरूपराथीतरेति, आङ्गिरसवैरूपपार्षदश्वेति वा, अष्टादंष्ट्रपार्षदश्ववैश्वरूपेति वा, अन्त्ययोर्व्यत्ययो वा। मुद्गलानामाङ्गिरस (भार्म्याश्वमौद्गल्येति, आद्यस्तार्क्ष्यो वा, आङ्गिरसतार्क्ष्यमौद्गल्येति वा। विष्णुवृद्धानामाङ्गिरस) पौरुकुत्स्यत्रासदस्यवेति। एषां स्वगणं विहाय सर्वैर्विवाहो भवति। हारितकुत्सयोस्तु न भवति।

अब केवल आंगिरसों का गोत्र और प्रवर कहते हैं। हरितोंके—आंगिरस, अम्बरीष, और यौवनाश्व हैं। इनमें पहला मान्धाता है। कुत्सों के—आंगिरस, मान्धाता तथा कौत्स हैं। काण्वों के—आंगिरस, आजमीढ़ तथा काण्व हैं, या आंगिरस और घोरकाण्व हैं। रथीतरों के—आंगिरस, वैरूप और राथीतर हैं या आंगिरस, वैरूप तथा पार्षदश्व हैं या अष्टादंष्ट्र, पार्षदश्व और वैश्वरूप हैं या अंत्य के दोनों का व्यत्यय है। मुद्गलों के—आंगिरस, पौरुकुत्स्य तथा त्रासदस्य हैं। इन सबका अपने गण को छोड़कर सबके साथ विवाह होता है। हारित और कुत्सों का नहीं होता है।

(अथात्रिगोत्रनिरूपणम्)

अथात्रयः। ते चत्वारः—अत्रयः, वाद्भुतकाः, गविष्ठिराः, मुद्गला इति। आद्यानामात्रेयार्चनानसश्यावाश्वेति। वाद्भुतकानाम्—अत्रेयार्चनानसवाद्भुतकेति। धनञ्जयानामात्रेयार्चनानसधानञ्जयेति क्वचित्। गविष्ठिराणामात्रेयार्चनानसगाविष्ठिरेति, आत्रेयगाविष्ठिरपौर्वातिथेति वा। मुद्गलानामात्रेयार्चनानसपौर्वातिथेति। वामरथ्यसुमङ्गलवैजवापानामात्रेयार्चनानसातिथेति, आत्रेयार्चनानसगाविष्ठिरेति वा। सुमङ्गलानामत्रिसुमङ्गलश्यावाश्वेति केचित्। अत्रेः पुत्रिकापुत्राणामात्रेयवामरथ्यपौत्रिकेति। अत्रीणां सर्वेषामविवाहः।

अब आत्रेयों को कहते हैं। वे चार हैं—आत्रेय, वाद्भुतक, गविष्ठिर और मुद्गल। पहलों के—आत्रेय, अर्चनानस तथा श्यावाश्व हैं। वाद्भुतकों के—आत्रेय, अर्चनानस और वाद्भुतक हैं। कहीपर—धनंजयों के आत्रेय, अर्चनानस तथा धनञ्जय हैं। गविष्ठिरों के—आत्रेय, अर्चनानस और गाविष्ठिर हैं। आत्रेय या गाविष्ठिर तथा पौर्वातिथ हैं। मुद्गलों के—आत्रेय, अर्चनानस और पौर्वातिथ हैं। वामरथ्य, सुमंगल और वैजवापों के—आत्रेय, अर्चनानस, अतिथि हैं या आत्रेय, अर्चनानस और गाविष्ठिर हैं। सुमंगलों के—अत्रि, सुमंगल तथा श्यावाश्व हैं—यह कोई कहते हैं। अत्रि के पुत्रिकापुत्रों के—आत्रेय, वामरथ्य और पौत्रिक हैं। इन सब अत्रियों का विवाह परस्पर नहीं होता है।

(विश्वमित्रगोत्रनिरूपणम्)

अथ विश्वामित्राः। ते दश—कुशिकाः, लौहिताः, रौक्षकाः, कामकायनाः, अजाः, कताः, धनञ्जयाः, अघमर्षणाः, पूरणाः, इन्द्रकौशिका इति। कुशिकानां वैश्वामित्रदेवरातौदलेति। लोहितानाम् वैश्वामित्राष्टकलौहितेति, अन्त्ययोर्व्यत्ययो वा, वैश्वामित्रमाधुच्छन्दसाष्टकेति वा, (वैश्वामित्राष्टकेति द्वौ वा।) रौक्षकानां वैश्वामित्रगाथिनरैवणेति वैश्वामित्ररौक्षकरैवणेति वा। काम

कायनानां वैश्वामित्रदेवश्रवसदेवश्रवसदैवतरसेति। अजानां वैश्वामित्रमाधुच्छन्दसाजेति, वैश्वामित्राश्मरथ्यवाधूलेति वा। (धनञ्जयानां विश्वामित्रमाधुच्छन्दसधानञ्जयेति, वैश्वामित्रमाधुच्छन्दसाघमर्षणेति वा। कतानां वैश्वामित्रकात्याकोलेति) अघमर्षणानां वैश्वामित्राघमर्षणकौशिकेति। पूरणानां वैश्वामित्रपौरणेति द्वौ, वैश्वामित्रदेवरातपौरणेति वा। इन्द्रकौशिकानां वैश्वामित्रेन्द्रकौशिकेति द्वौ। एते बौधायनोक्ताः। रौहिणानां वैश्वामित्रमाधुच्छन्दसरौहिणेति। रेणूनां वैश्वामित्रगाथिनरैणवेति। वेणूनां वैश्वामित्रगाथिनवैणवेति। जह्नूनां वैश्वामित्रशालङ्कायनकौशिकेति। आश्मरथ्यानां वैश्वामित्राश्मरथ्यवाधूलेति। उदवेणूनां वैश्वामित्रगाथितवैवणेति। एते आश्वलायनमात्स्योक्ताः। अन्यैस्त्वन्येऽपि षड्गणा उक्ताः। तेऽन्यत्र मत्कृतौ ज्ञेयाः। एषां विश्वामित्राणामविवाहः।

अब विश्वामित्रों के गोत्र और प्रवर कहते हैं। वे दश हैं—कुशिक, लोहित, रौक्षक, कामकायन, अज, कत, धनंजय, अघमर्षण, पूरण और इन्द्रकौशिक। कुशिकों के—विश्वामित्र, देवरात तथा औदल हैं। लौहितों के—वैश्वामित्र, अष्टक, और लौहित हैं, या अन्त्य के दो व्यत्यय हैं। (वैश्वामित्र, माधुच्छंदस, तथा अष्टक हैं, (वैश्वामित्र और अष्टक दो हैं। रौक्षकों के—वैश्वामित्र, गाथिन तथा रैवण हैं। या वैश्वामित्र, रौक्षक, रैवण हैं। कामकायनों के—वैश्वामित्र, देवश्रवस तथा दैवरस हैं। अजों के—वैश्वामित्र, माधुच्छंदस और अज हैं या वैश्वामित्र, अश्मरथ और वाधूल हैं। धनंजयों के—विश्वामित्र, माधुच्छंदस तथा धानंजय हैं या वैश्वामित्र और माधुच्छंदस, अघमर्षण हैं। कतों के—वैश्वामित्र, कात्यात्कल हैं। अघमर्षणों के—विश्वामित्र, अघमर्षण और कौशिक हैं। पूरणों के—वैश्वामित्र, पौरण ये दो हैं, या वैश्वामित्र, देवरात और पौरण ये तीन हैं। इन्द्रकौशिकों के—वैश्वामित्र तथा इन्द्रकौशिक ये दो हैं। ये बौधायन ने कहे हैं। रोहिणोंके—वैश्वामित्र, माधुच्छन्दस और रौहिण हैं। रेणुओंके—वैश्वामित्र, गाथिन तथा रैवण हैं। वेणुओं के—वैश्वामित्र, गाथिन और वैणव हैं। जह्नुओं के—वैश्वामित्र, शालंकायन और कौशिज हैं। आश्मरथ्यों के—वैश्वामित्र, अश्मरथ्य तथा वाधूल हैं। उद्वेणुओं के—वैश्वामित्र, गाथिन और वैवण हैं। ये आश्वलायन में मत्स्यपुराण के कहे हैं। अन्यों ने तो और भी छः गण कहे हैं। वे अन्य मेरे बनाये ग्रन्थों में जानने चाहिये। इन विश्वामित्रों का परस्पर विवाह नही होता है।

(कश्यपगोत्रनिरूपणम्)

अथ कश्यपाः। ते पञ्च—निध्रुवाः कश्यपाः, रेभाः, शण्डिलाः, लौगाक्षयश्च। निध्रुवाणां काश्यपावत्सारनध्रुवेति। कश्यपानां काश्यपावत्सारासितेति। रेभाणां काश्यपावत्साररैभ्येति। शण्डिलानां काश्यपावत्सारशाण्डिल्येति। अन्त्यस्थाने देवलो वा, सितो वा, शाण्डिलासितदेवलेति वा काश्यपासितदेवलेति वा, अन्त्ययोर्व्यत्ययो वा, देवलासितेति द्वौ वा। लौगाक्षीन् वक्ष्यामः। एषां कश्यपानामविवाहः।

अब कश्यपों को कहते हैं—वे पाँच हैं—निध्रुव, कश्यप, रेभ, शाण्डिल और लौगाक्षि। निध्रुवों के—कश्यप, अवत्सार तथा नैध्रुव हैं। काश्यपों के—काश्यप, अवत्सार तथा असित हैं। रेभों के—काश्यप, अवत्सार और रैभ हैं। शांडिलों के—काश्यप, अवत्सार और शांडिल्य हैं या अन्त के स्थान में देवल या सित हैं, या शांडिल्य, असित और देवल हैं या काश्यप, असित तथा देवल हैं या अन्त्य के दो का व्यत्यय है या देवल और असित ये दो हैं। लौगाक्षियों को आगे कहेंगे। इन कश्यपों का परस्पर विवाह नहीं होता है।

(वसिष्ठगोत्रनिरूपणम्)

अथ वसिष्ठाः। ते पञ्च—वसिष्ठाः, कुण्डिनाः उपमन्यवः, पराशराः, जातूकर्ण्याश्चेति। वासिष्ठानां वासिष्ठेन्द्रप्रमदाभरद्वस्विति, वासिष्ठेत्येको वा। कुण्डिनानां वासिष्ठमैत्रावरुणकौण्डिन्येति। उपमन्यूनां वासिष्ठेन्द्रप्रमदाभरद्वस्विति, वासिष्ठभरद्वस्विन्द्रप्रमदेति वा, आद्ययोर्व्यत्ययो वा।

पराशराणां वासिष्ठशाक्त्यपाराशर्येति । जातूकर्ण्यानां वसिष्ठात्रिजातूकर्ण्येति । वसिष्ठानां सर्वेषामविवाहः, अन्त्यस्यात्रिभिश्च ।

अब वसिष्ठों के गोत्र और प्रवर कहते हैं । वे पाँच हैं—वसिष्ठ, कुण्डिन, उपमन्यु, पराशर और जातूकर्ण्य । वासिष्ठों के–वासिष्ठ, इन्द्रप्रमद और अभरद्वसु हैं, या वासिष्ठ एक है । कुण्डिनों के–वासिष्ठ, मैत्रावरुण और कौण्डिन्य हैं । उपमन्युओं के—वासिष्ठ, इन्द्रप्रमदा तथा भरद्वसु हैं । या वासिष्ठ, भरद्वसु तथा इन्द्रप्रमद हैं या पहले दो का व्यत्यय है । पराशरों के–वासिष्ठ, शाक्त्य तथा पाराशर्य हैं । जातूकर्ण्यों के–वसिष्ठ, अत्रि और जातूकर्ण्य हैं । वसिष्ठोंका परस्पर विवाह नहीं होता है और अन्त्यके अत्रियोंके साथ भी नहीं होता है ।

(अगस्त्यगोत्रनिरूपणम्)

अथागस्त्याः । ते चत्वारः—इध्मवाहाः साम्भवाहाः, सोमवाहाः, यज्ञवाहाश्चेति । आद्यानामागस्त्यदार्ढ्यच्युतैध्मवाहेति, आगस्त्येत्येको वा । सोमवाहानामागस्त्यदार्ढ्यच्युतसोमवाहेति । साम्भवाहानां साम्भवाहोन्त्यः, यज्ञवाहानां यज्ञवाहोऽन्त्यः, आद्यौ पूर्वोक्तावेव । सारवाहानां तदन्तास्त्रयः । दर्भवाहानां तदन्तास्त्रयः । अगस्तीनामागस्त्यमाहेन्द्रमायोभुवेति । पूर्णमासानामागस्त्यपौर्णमासपारणेति । हिमोदकानामागस्त्यहैमचर्चिहैमोदकेति । पाणिकानामागस्त्यपैनायकपाणिकेति । एते षट् क्वचित् । अगस्तीनां सर्वेषामविवाहः ।

अब अगस्त्यों को कहते हैं—वे चार हैं–इध्मवाह, सांभवाह, सोमवाह और यज्ञवाह । आद्यों के—अगस्त्य, दार्ढ्यच्युत तथा इध्मवाह हैं या एक आगस्ति है । सोमवाहों के—आगस्ति, दार्ढ्यच्युत और सोमवाह हैं । सांभवाहों के—सांभवाह अन्त्य है । यज्ञवाहों का यज्ञवाह अन्त्य है और आदि के दो पहले के हैं । सारवाहों के—उसके अन्त में तीन हैं । दर्भवाहों के—उसके अन्त में तीन हैं । अगस्त्यों के—आगस्त्य, माहेन्द्र और मायोभुव हैं । पूर्णमासों के—आगस्त्य, पौर्णमास तथा पारण हैं । हिमोदकों के—आगस्त्य, हैमचर्चि तथा हैमोदक हैं । पाणिकों के—आगस्त्य, पैनायक और पाणिक हैं । ये छः भी कहीं कहे गये हैं । इन सब अगस्तियों का परस्पर विवाह नही होता है ।

(द्विगोत्रप्रवरनिर्णयः)

अथ द्विगोत्राः । शौङ्गशैशिरीणामाङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजकात्याचीलेति पञ्च, कात्याचीलयोः स्थाने शौङ्गशैशिरिर्वा, आङ्गिरसकात्याचीलेति त्रयो वा । एषां भरद्वाजैर्विश्वामित्रैश्चाविवाहः । एवं कपिलानां कतानां च । संकृतिपूतिमाषादीनामाङ्गिरसगौरिवीतिसांकृत्येति, शाक्त्यगौरिवीतिसांकृत्येति वा, (अन्त्ययोर्व्यत्ययो वा) एषां स्वगणस्थैर्वसिष्ठैः शौङ्गशैशिरैर्लौगाक्षिभिश्चाविवाहः । कश्यपैरपीतिप्रयोगपारिजाते । लौगाक्षीणां काश्यपावत्सारवासिष्ठेति, काश्यपावत्सारासितेति वा । एतेऽहर्वसिष्ठा नक्तंकश्यपाः । एषां वसिष्ठैः कश्यपैः संकृतिभिश्चाविवाहः । देवरातस्य जामदग्न्यैर्विश्वामित्रैश्चाविवाह इति प्रयोगपारिजाते । तदयुक्तम् । बह्वृचश्रुतौ–यथैवाङ्गिरसः सन्नुपेयां तव पुत्रताम् । आङ्गिरसो जन्मना स्याजीगर्तिः श्रुतः कविः ॥ इत्यङ्गिरोगणस्थत्वेन भार्गवजामदग्न्यत्वस्मृतेर्हरिवंशादिस्मृतेश्च बाधात् । तेन द्वौ देवरातौ एक आङ्गिरसः श्रुत्युक्तः, अन्यो भार्गवः । तयोः कल्पभेदेप्याङ्गिरसेन देवरातेन जामदग्न्यैर्भवत्येव विवाहः, भार्गवेण तु नेति तत्त्वम् । धनञ्जयानां विश्वामित्रैरत्रिभिश्चाविवाहः । जातूकर्ण्यानां वसिष्ठैरत्रिभिश्चाविवाहः । एवं दत्तकक्रीतकृत्रिमस्वयंदत्तपुत्रिकापुत्रादीनामुत्पादकपालकयोः पित्रोर्गोत्रप्रवरा वर्ज्या इति प्रवरमञ्जरीनारायणवृत्तिप्रयोगपारिजातादयः । अत्र सर्वत्रोपपत्तयः मूलं च मत्कृते प्रवरदर्पणे ज्ञेयमिति दिक् ।

अब दो गोत्रवालों को कहते हैं । शौंगशिशिरों के—आंगिरस, बार्हस्पत्य, भारद्वाज, कात्या और कील के पाँच हैं या कात्या तथा कीलों के स्थान में—शौंग और शिशर हैं या आंगिरस, कात्या और कील

ये तीन हैं। इनका भरद्वाज और विश्वामित्रों के साथ विवाह नहीं होता है। इसीप्रकार कपिल और कतों का विवाह नहीं होता है। संकृति पूतिमाष आदिको के आंगिरस, गौरिवीति और सांकृत्य हैं या साक्त्य, गौरिवीति और सांकृत्य हैं। अन्त्यके दोनोंका व्यत्यय है। इन सबका अपने गणस्थों में वसिष्ठ शौंग, शिशिरों के साथ और लौगाक्षियों के साथ विवाह नहीं होता है। प्रयोगपारिजात में तो कहा है कि—काश्यपों के साथ भी नहीं होता है। लौगाक्षियों का—काश्यप, अवत्सार और वासिष्ठ हैं या काश्यप, अवत्सार तथा असित हैं। ये दिन में वसिष्ठ और रात्रि में कश्यप हैं। इनका वसिष्ठ, कश्यप और संकृति आदिकों के साथ विवाह नहीं होता है। प्रयोगपारिजात में कहा है कि—देवरातका जामदग्न्यों और विश्वामित्रों के साथ विवाह नहीं होता है। यह उचित नहीं है। वह्वृचश्रुतिमें कहा है कि-'जैसे आंगिरस भी मैं तुमारा पुत्र हूँगा' जन्मसे आंगिरस अजीगर्त का पुत्र श्रुति के बल से कवि नामसे अंगिराओं के गण में है इससे भार्गव और जामदग्न्य स्मृतिका हरिवंशादिस्मृति से बाध होता है। इससे दो देवरात और एक आङ्गिरस श्रुति में कहा है अन्त्य भार्गव है। इनदोनों का कल्पभेद से भी आंगिरस देवरात के साथ जामदग्न्यों का विवाह हो ही सकता है। भार्गव के साथ नहीं होता है यही सत्त्व है। धनञ्जयों का—विश्वामित्र और अत्रियों के साथ विवाह नहीं होता है। जातूकर्ण्यों का—वसिष्ठ तथा अत्रियों के साथ विवाह नहीं होता है। इसीप्रकार दत्तक, क्रीत, कृत्रिम, स्वयंदत्त, पुत्रिका-पुत्र आदिकों को उत्पन्न करनेवाले और पालनकरनेवाले माता पिता के गोत्रों में और प्रवरों में विवाह करना वर्जित है यह प्रवरमञ्जरी, नारायणवृत्ति, प्रयोगपारिजात आदि कहते हैं। इन सबकी उपपत्ति तथा मूल मेरे बनाये हुए प्रवरदर्पण में जानना चाहिये।

(क्षत्रियवैश्ययोस्तु पुरोहितगोत्रप्रवरौ)

क्षत्रियवैश्ययोस्तु पुरोहितगोत्रप्रवरावेवेति सर्वसिद्धान्तः। यद्यपि वह्वृचपरिशिष्टे कपिभरद्वाजयोर्विवाह उक्तस्तथापि—भरद्वाजाश्च कपयो गर्गा रौक्षायणा इति। चत्वारोऽपि भरद्वाजगोत्रैक्यान्नान्वयुर्मिथः॥ कपिगर्गभरद्वाजा मिथो रौक्षायणा द्विजाः। नोद्वहेयुः सगोत्रत्वात् प्रवरैक्याच्च कुत्रचित्॥ इति स्मृत्यर्थसाराद्युक्तेरविवाह एव तयोरिति।

क्षत्रिय और वैश्यका गोत्र और प्रवर पुरोहित के होते हैं यह सर्वमान्य सिद्धान्त है। यद्यपि वह्वृचपरिशिष्टमें कपि और भरद्वाज का विवाह कहा है। फिर भी भरद्वाज, कपि, गर्ग और रौक्षायण इन चारों को भी भरद्वाजगोत्र के ऐक्य होने से आपसमें विवाह नहीं हो सकता है। कपि, गर्ग, भरद्वाज रौक्षायण ये द्विज एक प्रवर तथा एक गोत्र में हो जाने से आपसमें कहीं भी विवाह नहीं कर सकते हैं। यह स्मृत्यर्थसार में कहा है। अतः दोनोंका विवाह नहीं ही हो सकता है।

(स्वगोत्राद्यज्ञाने विचारः)

स्वगोत्राद्यज्ञाने तु सत्याषाढः—'अथाज्ञानबन्धोः पुरोहितप्रवरेणाचार्यप्रवरेणवेति।

स्वगोत्र के अज्ञानमें तो सत्याषाढ में कहा है कि—जिसके बान्धवों को ज्ञान न हों उसका पुरोहित या आचार्य के प्रवर से होता है।

आचार्यगोत्रप्रवरानभिज्ञस्तु द्विजः स्वयम्। दत्त्वात्मानं तु कस्मैचित् तद्गोत्रप्रवरो भवेत्॥

जिस द्विज को आचार्य के गोत्र तथा प्रवर का ज्ञान न हो वह अपने आपको किसी को देकर उसी के गोत्र तथा प्रवर को ग्रहण करें।

यद्वा स्वगोत्रप्रवरविधुरो जमदग्निजः। विवाहं च न तेनैव गोत्रेण तु समाचरेत्॥ इति कश्चित्।

या अपने गोत्र तथा प्रवर के हित जमदग्नि के पुत्र परशुराम थे। उन्हींके गोत्र से विवाह करे। यह किसी का मत है।

दिवोदासीयेऽपि—स्वगोत्रप्रवराज्ञाने जमदग्निमुपाश्रयेत्।

दिवादासीय में भी कहा है कि—अपने गोत्र और प्रवर के अज्ञान में जमदग्नि का आश्रयण करे।

(मातृगोत्रवर्जननिर्णयः)

**अथ मातृगोत्रवर्जननिर्णयः। शातातपः—मातुलस्य सुतामूढ्वा मातृगोत्रां तथैव च।
समानप्रवरां चैव गत्वा चान्द्रायणं चरेत्॥**

माता के गोत्र त्याग का निर्णय करते हैं कि—शातातप ने कहा है कि—मामा की कन्या और वैसेही माता के गोत्र की कन्या का तथा समान (अपने) प्रवर वाली कन्या के साथ विवाह करने पर 'चान्द्रायणव्रत' (एकैकं वर्धयेत्पिडं शुक्ले कृष्णे च ह्रासयेत्। इन्दुक्षये न भुञ्जीत एष चान्द्रायणो विधिः ॥) को करे।

यद्यपि—सगोत्रां मातुरप्येके नेच्छन्त्युद्वाहकर्मणि। जन्मनाम्नोरविज्ञानेप्यूद्वहेदविशंकितः ॥ इति व्यासोक्तेरज्ञातनामत्वे न सगोत्रत्वदोषस्तथापि नेदं कलौ प्रवर्तते। गोत्रान्मातुः सपिण्डाच्च विवाहो गोवधस्तथा ॥ इति कलिवर्ज्यत्वोक्तेः। इदं मातृगोत्रवर्जनं माध्यन्दिनीयानामेव। 'मातृगोत्रं माध्यन्दिनीयानामपुत्रायाश्च' इति सत्याषाढोक्तेरिति कश्चित्, (कश्चिन्महाराष्ट्रकल्पितं तन्निर्मूलम्। अन्यथा गुर्जरादेः कातीयस्य कुतो न निषेधः।) तन्निर्मूलम्। अत एवाह प्रवरमञ्जरीकारः– 'दोषस्यातिगुरुत्वात् सर्वेषां मातृगोत्रं वर्ज्यम्' इति।

यद्यपि—कोई विवाहकर्म में माता के गोत्र को नहीं चाहते हैं। लेकिन जन्म तथा नाम की जानकारी न हो तो शंका का त्यागकर विवाह करे। ऐसा व्यास के कहने पर अज्ञातनामत्व में सगोत्र में विवाह करने पर दोष नहीं है फिर भी यह वचन कलि में प्रवृत्त नहीं होता है।

माता के गोत्र से और माता के सपिण्ड से विवाह तथा गोवध कलिवर्ज में कहा है। यह माता के गोत्र का त्याग माध्यन्दिनशाखाओं को ही है। माता का गोत्र माध्यन्दिनीयों को और अपुत्रों को ही है। यह सत्याषाढ में कहा है—ऐसा किसी ने कहा है। वह निर्मूल है।

इसलिए ही प्रवरमञ्जरीकार ने कहा है कि—दोष (चण्डालत्वादिदोष) के अति गुरुहोने से सबों को माता का गोत्र त्याग देना चाहिये।

यत्तु–(गुर्जरादीनां माध्यन्दिनीयानामप्याचरणाच्च एकस्मिन् प्रवरे) एकस्मिन् प्रवरे तुल्ये मातृगोत्रे वरस्य च। तमुद्वाहं न कुर्वीत सा कन्या भगिनी स्मृता ॥ इति मातृकुले प्रवरचिन्तनमुक्तं, तदासुरादिविवाहोढापरमिति दिक्। विस्तरस्तु ग्रन्थान्तरेभ्यो ज्ञेयः।

जो एक प्रवर के तुल्यता में और वर की माता के गोत्र में हो तो उस कन्या के साथ विवाह न करे। क्योंकि—वह कन्या बहिन स्वरूप है। यह माता के कुल में प्रवर का चिन्तन किया। यह अ[1]सुर आदि विवाहों से विवाहिता परक है[2]। विस्तार से ग्रन्थान्तरों से जानना चाहिये।

(सगोत्रादिविवाहे प्रायश्चित्तकथनम्)

सगोत्रादिविवाहे प्रायश्चित्तं स्मृत्यर्थसारे–इत्थं सगोत्रसम्बन्धविवाहविषये स्थिते। यदि कश्चिज्ज्ञानतस्तां कन्यामूढ्वोपगच्छति ॥ गुरुतल्पव्रताच्छुद्धेद्गर्भस्तज्जोन्त्यतां व्रजेत्। भोगतस्तां परित्यज्य पालयेज्जननीमिव ॥ अज्ञानादैन्दवैः शुद्ध्येत्त्रिभिर्गर्भस्तु काश्यपः ॥

सगोत्र[3] आदि विवाह में स्मृत्यर्थसार में प्रायश्चित्त कहा है कि—इसप्रकार सगोत्र कन्या का सम्बन्ध

१—पुत्रिकापुत्राणामासुरादिविवाहजानां च मातुर्दानाभावेन पितृगोत्रसम्बन्धो न निवर्तते, अतस्तत्सुतेन मातृगोत्रा न विवाह्या। प्रवरान् पितृगोत्रेषु मातृगोत्रे न चिन्तयेत्। गोत्रमेव त्यजेन्मातुरिति कात्यायनोऽब्रवीत् ॥ इत्यभियुक्तवचनमपि तत्परमेवेत्यर्थः।

२—दिगर्थस्तु—ब्राह्मादिविवाहचतुष्टये 'स्वगोत्राद् भ्रश्यते नारी' इति स्वगोत्रभ्रंशेऽपि तद्गोत्रविवाहः सर्वैरपि कलौ न कार्य इत्युक्तम्।

३—शातातपः—समान प्रवरां कन्यामेकगोत्रामथापि वा। विवाहयति यो मूढस्तस्य वक्ष्यामि निष्कृतम् ॥ उत्सृज्यतां ततो भार्यां मातृवत् परिपालयेत्। बौधायनः—समानगोत्रप्रवरां कन्यामूढ्वोपगम्य च। तस्यामुत्पाद्य चण्डालं ब्राह्मण्यादेव हीयते ॥ प्रवररत्नः—आरूढपतितापत्यं ब्राह्मण्यां यश्च शूद्रतः। सगोत्रोढासुतश्चैवं चाण्डालास्त्रय ईरिताः ॥ षट्त्रिंशन्मते—समानप्रवरां मातृसगोत्रां मातृनामिकाम्। परिणीय सपिण्डां वा प्रायश्चित्तीयते द्विजः ॥ प्रायश्चित्तं वदन्त्यत्र युगधर्म-व्यवस्थया। मोहोद्वाहे तु दम्पत्योरेकं चन्द्रायणं स्मृतम् ॥ द्वैगुण्यं ज्ञानतस्तस्य परिणीतौ विधीयते। कन्यादातुर्भवेत्कृच्छ्रं ज्ञानतो द्विगुणं भवेत् ॥ व्रतस्य करणाशक्तौ प्रत्याम्नायं समाचरेत्। चीर्णव्रतां दुहितरं पिता चीर्णव्रतः शुचिः ॥ भारद्वाजेषु विप्रेषु कश्यपेष्वथवा क्षिपेत्। दुहितृत्वेन संगृह्य भारद्वाजोऽथ कश्यपः ॥ घृतकुंभस्य गर्भे तु तामादध्याद्विधानतः। इत्यादि।

तथा विवाह के विषय में स्थित यदि कोई जानकार उस कन्या का विवाह कर उपभोग करता है। वह गुरु-तल्पव्रत से (सहस्रशीर्षाजापी तु मुच्यते गुरुतल्पगः। गौर्देया कर्मणोऽस्यान्ते पृथगेभिः पयस्विनी ॥) शुद्ध होता है और उससे उत्पन्न गर्भ अन्त्यज चाण्डाल होता है। उस कन्या के साथ भोग का त्यागकर माता के सदृश पालन करे। यदि अज्ञानसे विवाह हो गया हो तो तीन चन्द्रायणव्रत से गर्भ की शुद्धि होती है—ऐसा काश्यप ने कहा है।

एवं सापिण्ड्येऽपि—सपिण्डापत्यदारेषु प्राणत्यागो विधीयते ॥ इति बृहद्यमोक्तेः।

इसप्रकार सापिण्ड्यकन्या में भी जानना चाहिये। क्योंकि बृहद्यमने कहा है कि—सपिण्ड के अपत्य और स्त्रियों में प्राणत्याग अर्थात्—'गुरुतल्पव्रत' का विधान कहा[1] है।

तिथितत्त्वे बौधायनः—सपिण्डां सगोत्रां चेदपत्योपयच्छेन्मातृवदेनां बिभृयात्।

तिथितत्त्व ने बौधायन ने कहा है कि—यदि अज्ञान से सपिण्ड और सगोत्र की कन्या से विवाह करे तो उस कन्या का माता की तरह पालन करे।

(कन्याविवाहकालनिरूपणम्)

कन्याविवाहकाल उक्तो ज्योतिर्निबन्धे—षडब्दमध्ये नोद्वाह्या कन्या वर्षद्वयं यतः।
सोमो भुङ्क्ते ततस्तद्वद्गन्धर्वश्च तथाऽनलः ॥

कन्या के विवाहकाल को ज्योतिर्निबन्ध में कहा है कि—६ वर्ष के मध्य में कन्या का विवाह न करे। क्योंकि—दो साल तक सोम (चन्द्रमा), दो वर्ष तक-गन्धर्व और दो साल अनल (अग्नि) भोग करते हैं।

राजमार्तण्डः—अयुग्मे दुर्भगा नारी युग्मे तु विधवा भवेत्।
तस्माद्गर्भान्विते युग्मे विवाहे सा पतिव्रता ॥

राजमार्तण्ड में कहा है कि—अयुग्मसाल में विवाह करने पर स्त्री दुर्भगा (खराब भाग्यवाली) और युग्म में विधवा होती है। इसलिये गर्भ से युक्त युग्मसाल में विवाह करे तो वह कन्या पतिव्रता होती है।

मासत्रयादूर्ध्वमयुग्मवर्षे युग्मेऽपि मासत्रयमेवयावत्।
विवाहशुद्धिं प्रवदन्ति सन्तो वात्स्यादयः स्त्रीजनिजन्ममासात् ॥

स्त्री के जन्ममास से तीन महिने के बाद अयुग्म वर्ष में और युग्मसाल में तीन महिने तक विवाह की शुद्धि को वात्स्य आदि सन्तों ने कहा है।

पराशरमाधवीये तु—जन्मतो गर्भाधानाद्वा पञ्चमाद्वात्परं शुभम्।
कुमारीवरणं दानं मेखलाबन्धनं तथा ॥ इत्युक्तम्।

पराशरमाधवीय में तो कहा है कि—कन्या का वरण, दान और मेखलाबन्धन जन्म से या गर्भधान से पांच साल से पर शुभ है—यों कहा है।

सम्बन्धतत्त्वे यमः—कन्या द्वादशवर्षाणि याऽप्रदत्ता वसेद् गृहे।
ब्रह्महत्या पितुस्तस्याः सा कन्या वरयेत्स्वयम् ॥

सम्बन्धतत्त्व में यम ने कहा है कि—बारह साल तक अप्रदत्त कन्या पिता के घर में रहे तो उस कन्या के पिता को 'ब्रह्महत्या' लगती है। अतः वह कन्या स्वयं वरण करे।

भारते—त्रिंशद्वर्षः षोडशाब्दां भार्यां विन्देत नग्निकाम्। द्व्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां वा धर्मे सीदति सत्वरः ॥ अतोऽप्रवृत्ते रजसि कन्यां दद्यात्पिता सकृत् ॥

१—अकामतः संभोगे अर्द्धकृच्छ्रं कामतो गर्भभावे गुरुतल्पाव्रतार्द्धमिति हारावली। अकामतः प्रजोत्पादने चान्द्रायणम्। इत्यादि।

(१) भारत में कहा है कि—तीस सालका मनुष्य सोहलवर्ष की विना ऋतुवाली[1] पत्नीको या सोलह वर्ष का मनुष्य आठ साल की कन्या (पत्नी) को धर्म में स्थित हो त्वरा से प्राप्त करे इसलिये अप्रवृत्त रज में (अर्थात्—रजोधर्म होने के पहले) पिता एक बार कन्या दे।

तत्रैव—सप्तसंवत्सरादूर्ध्वं विवाहः सार्ववर्णिकः। कन्यायाः शस्यते राजन्नन्यथा धर्मगर्हितः॥

वहाँ ही पर कहा है कि—हे राजन्, सात साल के बाद कन्या का विवाह सब वर्णों को करना कहा है। अन्यथा वह धर्म से निन्दित है।

राजमार्त्तण्डः—राहुग्रस्ते तथा युद्धे पितॄणां प्राणसंशये। अतिप्रौढा च या कन्या चन्द्रलग्नबलेन तु॥

राजमार्त्तण्ड में कहा है कि—ग्रहण में, युद्ध में और पिताओं के प्राणों के संशय में अतिप्रौढा और अतिबाला कन्या का भी चन्द्रलग्नबल से तो विवाह कर दे।

मनुः—(अ० ९।९४) त्रिंशद्वर्षोवहेत् कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम्।
त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां वा धर्मे सीदति सत्वरः॥

मनु ने कहा है कि—तीस वर्ष का मनुष्य और वारह वर्ष की सुन्दरी कन्या से या चौवीस वर्ष का युवा आठ साल की कन्या से विवाह करे। त्वरा करनेवाला गार्हस्थ्यधर्म में दुःखी होता है।

यद्यपि—विवाहस्त्वष्टवर्षायाः कन्यायाः शस्यते बुधैः। इति संवर्तोक्तेः 'अतः ऊर्ध्वं रजस्वला' इत्यादेश्च दशवर्षादूर्ध्वं विवाहो निषिद्धः, तथापि दातुरभावे द्वादशषोडशाब्दे ज्ञेये।

यद्यपि विद्वानों ने आठसाल की कन्या का विवाह करना कहा है—ऐसा संवर्त ने कहा है। इसके बाद रजस्वला होती है। इत्यादि कहा है। दस साल के ऊपर विवाह निषिद्ध है। फिर भी दाता के अभाव में वारह या सोलहसाल जानना चाहिये।

त्रीणि वर्षाण्यृतुमती काङ्क्षेत पितृशासनम्। इति पराशरमाधवीये बौधायनोक्तेश्च।

पराशरमाधवीय में और बौधायन ने कहा है कि—ऋतुमती कन्या तीन साल तक पिता के शासन की प्रतीक्षा करे।

मनुः—(अ० ३।६, ७, ८) स्त्रीसम्बन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत्। हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम्॥ क्षय्यामयाव्यपस्मारिश्वित्रिकुष्ठिकुलानि च। नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम्॥ न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम्।

मनु ने कहा है कि—स्त्री सम्बन्ध (गौ आदियों से समृद्ध (धनी) होने पर भी विवाह) में इन दश कुलों का त्याग करे-पहली-क्रिया (जातकर्मादिक्रिया) में हीन हो। दूसरा—पुरुष सन्तति नहीं होती हो, तीसरा—जो वेदाध्ययनादि रहित हो। चौथा—जिसके शरीर पर बहुत रोये हों, पांचवा—जिसके बवासीर हो, छठा—जिसको क्षय का रोग हो, सातवाँ—मन्दाग्नि हो, आठवाँ—जिसको मृगी रोग हो, नवाँ जिसको कुष्ठ हो, दशवाँ—जिस कन्या का नाम—नक्षत्र, वृक्ष, म्लेच्छ, पहाड, पक्षी, सर्प तथा दासी के नाम पर हो उससे और भयानक नामवाली कन्या के साथ विवाह न करे।

यमः—तस्मादुद्वाहयेत्कन्यां यावन्नर्तुमती भवेत्।

तथा मूलजादीनां फलं प्रागुक्तम्। तथा वर्णवश्यग्रहमैत्र्यादिघटितविचारो ज्योतिर्विद्भ्यो ज्ञेयः। विस्तरात्तु नोच्यते।

यमने कहा है कि—इसलिए जब तक कन्या ऋतुमती न हो तब तक विवाह करे और मूलनक्षत्र आदि में उत्पन्न का फल पहले कर चुके हैं। वर्ण, वश्य, तारा, योनि, ग्रहमैत्री, गणमैत्री, भकूट और नाड़ी आदि का विचार ज्योतिष के जानकारों से जानना चाहिये। विस्तार के भय से नहीं कहा है।

१—नग्निकालक्षणं तूक्तं गृह्यासंग्रहे—नग्निकां तु वदेत् कन्यां यावन्नर्तुमती भवेत्। ऋतुमती त्वनग्निका तां प्रयच्छेत्तु नग्निकाम्। अप्राप्ता रजसो गौरी प्राप्ते रजसि रोहिणी। अव्यञ्जिता भवेत् कन्या कुचहीना च नग्निका॥

(गुर्वर्कबलकथनम्)

अथ गुर्वर्कबलम् ज्योतिर्निबन्धे गर्गः—स्त्रीणां गुरुबलं श्रेष्ठं पुरुषाणां रवेर्बलम् ।
तयोश्चन्द्रबलं श्रेष्ठमिति गर्गेण भाषितम् ॥

अब गुरु (बृहस्पति) और सूर्य का बल कहते हैं। ज्योतिर्निबन्ध में गर्ग ने कहा है कि—स्त्रियों को गुरुबल श्रेष्ठ है और पुरुषों को सूर्यबल श्रेष्ठ है। इन दोनों को चन्द्रबलश्रेष्ठ है—यह गर्ग ने कहा है।

जन्मत्रिदशमारिस्थः पूजया शुभदो गुरुः। विवाहेऽथ चतुर्थाष्टद्वादशस्थो मृतिप्रदः ॥

जन्म, तीसरा दशवाँ और छठवाँ इन स्थानों का बृहस्पति पूजा से शुभ को देने वाला होता है। विवाह में चौथा, आठवाँ और बारहवाँ मृत्यु को देनेवाला होता है।

देवलः—नष्टात्मजा धनवती विधवा कुशीला पुत्रान्विता हतधवा सुभगा विपुत्रा ।
स्वामिप्रिया विगतपुत्रधवा धनाढ्या वन्ध्या भवेत्सुरगुरौ क्रमशोऽभिजन्मा ॥

देवल ने कहा है कि—जन्मके बृहस्पतिसे बारहें तक—१-सन्तान का नाश, २-धनवाला, ३-विधवा, ४-कुशीला ५-पुत्रोंवाली, ६-मृतपतिवाली, ७-सौभाग्यवती, ८-पुत्रों ही रहित, ९-स्वामिप्रिया, १०-पुत्र तथा पतिहीना, ११-धनाढ्य और १२-वन्ध्या होती हैं।

बृहस्पतिः—झषचापकुलीरस्थो जीवोऽप्यशुभगोचरः। अतिशोभनतां दद्याद्विवाहोपनयादिषु ॥

बृहस्पति ने कहा है कि—मीन, धनु तथा कर्क का अशुभ भी बृहस्पति गोचर हो तो विवाह और उपनयन आदि में अत्यन्त शोभनता को देता है।

लल्लः—द्वादशदशमचतुर्थे जन्मनि षष्ठाष्टमे तृतीये च। प्राप्ते पाणिग्रहणे जीवे वैधव्यमाप्नोति ॥

लल्लने कहा है कि—पाणिग्रहण (विवाह) में प्राप्त-बृहस्पति—बारहवाँ, दशवाँ, चौथा, जन्मका, छठा, आठवाँ और तीसरा हो तो कन्या विधवा होती है।

गर्गः—सर्वत्रापि शुभं दद्यात् द्वादशाब्दात्परं गुरुः। पञ्चषष्ठाब्दयोरेव शुभगोचरता मता ॥

गर्गने कहा है कि—बारह वर्ष की आयु के बाद गुरु सब स्थानों में शुभ देता है। पांचवे और छठे वर्ष में ही शुभ गोचर होता है।

सप्तमात्पञ्चवर्षेषु स्वोच्चस्वर्क्षगतो यदि। अशुभोऽपि शुभं दद्याच्छुभर्क्षेषु किं पुनः ॥

सातवें वर्ष से पांच वर्षों तक अपने नक्षत्र से उच्चता को यदि प्राप्त हुआ भी अशुभ हो तो शुभ को देता है यदि शुभ नक्षत्रों में हो तो फिर क्या कहना है।

रजस्वलायाः कन्याया गुरुशुद्धिं न चिन्तयेत्। अष्टमेऽपि प्रकर्तव्यो विवाहस्त्रिगुणार्चनात् ॥

रजस्वलाकन्या की गुरुशुद्धि की चिन्ता न करे। अष्टम बृहस्पति में भी त्रिगुणित गुरु की पूजा कर विवाह करे।

अर्कगुर्वोर्बलं गौर्या रोहिण्यर्कबला स्मृता। कन्या चन्द्रबला प्रोक्ता वृषली लग्नतो बला ॥

सूर्य और गुरु का बल—गौरी में, रोहिणी में—सूर्यबल, चन्द्रमा का बल कन्यामें और रजस्वला में लग्नबल से विवाह शुभद होता है।

अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा च रोहिणी। दशवर्षा भवेत्कन्या अत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥

आठ साल की कन्या का गौरी, नौ साल की कन्या रोहिणी, दश साल की कन्या है और इसके बाद रजस्वला होती है।

(बृहस्पतिशान्तिकथनम्)

अथ बृहस्पतिशान्तिः। शौनकः—कन्यकोद्वाहकाले तु आनुकूल्यं न विद्यते।
ब्राह्मणस्योपनयने गुरोर्विधिरुदाहृतः ॥

अब बृहस्पतिशान्ति कहते हैं। शौनक ने कहा है कि—कन्या के विवाह में तथा ब्राह्मण के उपनयन में गुरु अनुकूल न हों तो यह विधि कही है।

सुवर्णेन गुरुं कृत्वा पीतवस्त्रेण वेष्टयेत् । ईशान्यां धवलं कुम्भं धान्योपरि निधाय च ॥

सुवर्ण के गुरु का निर्माण कर पीले वस्त्र से वेष्टन कर ईशानकोण में सफेद कुंभ (घट) को धान्य के ऊपर रखे।

दमनं मधुपुष्पं च पलाशं चैव सर्षपान् । मांसी गुडूच्यपामार्गो विडङ्गी शङ्खिनी वचा ॥ सहदेवी हरिक्रान्ता सर्वौषधिशतावरी ॥ बला च सहदेवी च निशाद्वितयमेव च । कृत्वाज्यभागपर्यन्तं स्वशाखोक्तविधानतः । ग्रहोक्तमण्डलेभ्यर्च्य पीतपुष्पाक्षतादिभिः ॥ देवपूजोत्तरे काले ततः कुम्भानुमन्त्रणम् । अश्वत्थसमिधश्चाज्यं पायसं सर्पिषा युतम् ॥ यवव्रीहितिलाः साज्या मन्त्रेणैव बृहस्पतेः । अष्टोत्तरशतं सर्वं होमशेषं समापयेत् ।

दमन (दौना), मधुपुष्प, (फूल महुआ), पलाश, सरसों, जटामांसी, गुरुच, अपामार्ग, वायविडिंग, शंखपुष्पी, सहदेवी, विष्णुक्रान्ता, सर्वौषधि, शतावरी, बला, सहदेवी और निशद्वितय (दारु हलदी और हलदी), आज्यभागपर्यन्त को कर अपनी शाखा के विधान से कहे हुए ग्रहमण्डल में पूजन करे—पीतपुष्प, अक्षत आदियों से । देवपूजा के उत्तरकाल में घटों को आमन्त्रण करे । फिर पीपल की समिधा, घृत, घृत के सहित खीर, यव चावल और तिल घृत में मिलाकर बृहस्पति के मन्त्र से ही एकसौ आठवार हवनकर शेषको समाप्त करे।

पुत्रदारसमेतस्य अभिषेकं समाचरेत् । कुम्भाभिमन्त्रणोक्तैश्च समुद्रज्येष्ठमन्त्रतः ॥

पुत्र और स्त्री के सहित अभिषेक करे । कुंभ की प्रार्थना कहे हुए मन्त्रों से 'समुद्रज्येष्ठा' इस मन्त्र से करे ।

प्रतिमां कुम्भवस्त्रं च आचार्याय निवेदयेत् । ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चाच्छुभदः स्यान्न संशयः ॥ इति बृहस्पतिशान्तिः ।

प्रतिमा, कुंभ और वस्त्र को आचार्य के लिये दे । फिर ब्राह्मणों को भोजन करावे । इससे कल्याण देनेवाला होता है इसमें संशय की बात नहीं है ।

(गुर्वादित्यादिषु विवाहादिनिषेधकथनम्)

शौनक—गुर्वादित्ये व्यतीपाते वक्रातीचारगे गुरौ । नष्टे शशिनि शुक्रे वा बाले वृद्धेऽथवा गुरौ ॥ पौषे चैत्रेऽथ वर्षासु शरद्यधिकमासके । केतूद्गमे निरंशेऽर्के सिंहस्थेऽमरमन्त्रिणि ॥ विवाहव्रतयात्रादिपुरहर्म्यगृहादिकम् । चौरं विद्योपविद्यां च यत्नतः परिवर्जयेत् ॥

शौनक ने कहा है कि—गुर्वादित्य में, व्यतीपातमें, गुरु का वक्र और अतिचारमें, नष्टचन्द्रमामें या शुक्रास्तमें, गुरु और शुक्रके बाल तथा वृद्धमें, पौषमासमें, चैत्रमासमें, वर्षामें, शरद्ऋतु में, अधिकमासमें, केतुतारा के निकलने में, सिंह के प्रथम अंशमें तथा गुरु में विवाह, व्रत, यात्रा आदि, नगरनिर्माण, गृहनिर्माण, चौर, विद्या और उपविद्या को यत्नसे त्याग दे ।

मदनपारिजाते ज्योतिःसागरे—बाले शुक्रे वृद्धे शुक्रे वृद्धे जीवे नष्टे जीवे । बाले जीवे जीवे सिंहे सिंहादित्ये जीवादित्ये ॥ तथा मलिम्लुचे मासि सुराचार्येऽतिचारगे । वापीकूपविवाहादिक्रियाः प्रागुदितास्त्यजेत् ॥ सिंहस्थं मकरस्थं च गुरुं यत्नेन वर्जयेत् ॥

१—बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद् द्युमद् विभाति क्रतुमज्जनेषु । यद् दीदयच्छवस ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् ॥ (ऋ० म० २।२३।१५) ।

२—समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य मध्यात् पुनाना यन्त्यनिविशमानाः । इन्द्रो या वज्री वृषभो रराद् ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥ या आपो दिव्या उतवा स्रवन्ति खनित्रिमा उत वा याः स्वयंजाः । समुद्रार्था याः शुचयः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥ यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम् । मधुश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥ यासु राजा वरुणो यासु सोमो विश्वे देवा यासूर्जं मदन्ति । वैश्वानरो यास्वग्निः प्रविष्टस्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥ (ऋ० म० ७ सू० ४९ म० १-४) ।

मदनपारिजातमें ज्योतिःसागर ने कहा है कि—शुक्रके बालक तथा वृद्धतापर, बृहस्पति के बाल और वृद्धतापर अस्तंगत सिंहके बृहस्पति, में सिंह के सूर्य तथा बृहस्पतिमें मलमास होनेपर और बृहस्पति के अतिचार होनेपर वापी, कूप, विवाह आदि कार्य न करे। पहले कहे हुए सिंहस्थ[1] तथा मकरस्थ में भी प्रयत्न से त्याग दे।

लल्लः—अतिचारगतो जीवस्तं राशिं नैति चेत्पुनः। लुप्तः संवत्सरो ज्ञेयः सर्वकर्मबहिष्कृतः॥

लल्ल ने कहा है कि—अतिचारमें गया हुआ बृहस्पति यदि उस राशि पर फिर न आवे तो वह संवत्सर लुप्त जानना चाहिये और उसका सब क्रियाओं में बहिष्कार करना चाहिये।

(सिंहस्थगुरोरपवादकथनम्)

सिंहस्थगुरोरपवादमाह पराशरः—गोदाभागीरथीमध्ये नोद्वाहः सिंहगे गुरौ।
मघास्थे सर्वदेशेषु तथा मीनगते रवौ॥

सिंहस्थ गुरुका अपवाद (आवश्यक कर्मोंमें अन्यथा कथन) पराशर ने कहा है कि—गोदावरी और गङ्गा के मध्य में सिंह[2] के गुरुमें विवाह न करे। मघास्थ[3] गुरुमें सब देशों में तथा मीनमें गये सूर्यमें सब देशों में विवाह न करे।

वसिष्ठोऽपि—विवाहो दक्षिणे कूले गौतम्या नेतरत्र तु। भागीरथ्युत्तरे कूले गौतम्या दक्षिणे तथा॥ विवाहोव्रतबन्धश्च सिंहस्थेऽज्ये न दुष्यति॥

वसिष्ठने भी कहा है कि—गौतमी के दक्षिण के किनारे पर विवाह होता है। अन्यत्र नहीं होता है। भागीरथी के उत्तर के किनारे पर तथा गौतमी के दक्षिण किनारे पर सिंहके बृहस्पति में विवाह और व्रतबन्ध (यज्ञोपवीतसंस्कार) में दोष नहीं होता है।

(कन्यादातृक्रमप्रकारनिरूपणम्)

कन्यादातृक्रममाह याज्ञवल्क्यः—(आचा० श्लो० ६३, ६४) पिता पितामहो भ्राता सकुल्यो जननी तथा। कन्याप्रदः पूर्वनाशे प्रकृतिस्थः परः परः॥

कन्याके दाताओं का क्रमप्रकार याज्ञवल्क्यने कहा है कि—पिता, (जो उन्माद आदि दोषसे हीन हो) पितामह, भाई, कुलका कोई पुरुष और माता इनमें क्रमशः पूर्व पूर्वके नाश (अभाव) में उत्तरोत्तर कन्यादान करनेका अधिकारी होता है।

अप्रयच्छन् समाप्नोति भ्रूणहत्यामृतावृतौ। गम्यं त्वभावे दातॄणां कन्या कुर्यात्स्वयंवरम्॥

यदि कन्यादान न करने से ऋतु ऋतु पर भ्रूणहत्या पाप लगता है। कन्या दाताओं के अभाव में तो कन्या स्वयं अपने योग्य वरका वरण करे।

(भ्रातॄणां संस्कृतानामेवाधिकारकथनम्)

भ्रातॄणां संस्कृतानामेवाधिकारमाह एव। याज्ञवल्क्यः—(व्यवहाराध्याय—श्लो० १२४)
असंस्कृतास्तु संस्कार्या भ्रातृभिः पूर्वसंस्कृतैः।
भगिन्यश्च निजादंशाद्दत्त्वांशं तु तुरीयकम्॥

संस्कृत (संस्कार हुए) भाईयों को ही अधिकार है ऐसा याज्ञवल्क्य ने कहा है कि—पिताकी मृत्यु के बाद यदि भाई विभाजन करें तो जो भाई संस्कार से हीन हैं उनका पहले संमिलित धनके द्वारा संस्कार करे तथा अपने निजी अंशसे चतुर्थ अंश (चतुर्थांश) के द्वारा बहिनों का विवाह करे। विशेष—यहाँ की मिताक्षरा देखिये।

अत्र चकारेण पूर्वसंस्कृतैरित्यस्यानुवृत्तेर्विवाहपर्याप्तद्रव्यदाने स्वांशचतुर्थभागदाने वा संस्कृतप्र-

---

(१) स्कन्दपुराणे—सिंहस्थिते गुरौ राजन् विवाहं नैव कारयेत्। मकरस्थे न कर्तव्यं यदीच्छेदात्मनः शुभम्॥ व्रतबन्धं प्रतिष्ठां विवाहं मन्दिरप्रवेशम्। यात्रां च याम्यदेशे तु कुर्यादार्यो न सिंहांशे॥

(२) वसिष्ठः—नीचराशिगतो जीवः प्रशस्तः सर्वकर्मसु। नीचांशकगतस्त्याज्यो यस्मादंशेषु नीचता॥ (३) माघ्यां यदि मघा न स्यात्सिंहे गुरुकारणम्। सिंहस्थेऽपि मघासंस्थं गुरुं यत्नेन वर्जयेत्॥ अन्यत्र सिंहभागे तु विवाहादिकमाचरेत्।

हणं व्यर्थं स्यात्, अतः कर्तृनियमोऽयम्। तेनानुपनीतभ्रातृमात्रादिसत्वे मात्रादेरेवाधिकारो न भ्रातुरित्युक्तं सम्बन्धतत्त्वादौ।

यहाँपर (तुरीयांश के अत्याधिक्य में या अतिन्यूनत्वें में दोष है। अतः विवाहपर्याप्त तुरीयपदपरक है।) चकारसे 'पूर्वसंस्कृतेः, इस पद की अनुवृत्ति से विवाहमें पर्याप्तद्रव्यदान में या अपने चतुर्थ भागदान में 'संस्कृत' ग्रहण व्यर्थ हो जायगा। इसलिये कर्ता का ही यह नियम है। इससे अनुपनीत भाई और माता के रहनेपर माता को ही अधिकार है, भाई को नहीं है वह 'सम्बन्धतत्त्व' आदिमें कहा है।

(कन्यास्वयंवरे नान्दीश्राद्धकथनम्)

कन्यास्वयंवरे मातुर्दातृत्वे च ताभ्यामेव नान्दीश्राद्धं कार्यम्। तत्र च स्वयं प्रधानसङ्कल्पमात्रं कृत्वान्यब्राह्मणद्वारा कारयेदिति प्रयोगपारिजाते।

कन्या-स्वयंवर में और माता के कन्यादान करने में उन दोनों ही का 'नान्दीश्राद्ध' करना चाहिये। वहाँपर स्वयं ही प्रधानसंकल्प मानकर दूसरे ब्राह्मण द्वारा करावे—यह प्रयोगपारिजात में कहा है।

(संस्कृतभ्रात्राद्यभावे स्वयमेव वरः नान्दीश्राद्धं कथनम्)

वरस्तु संस्कृतभ्रात्राद्यभावे स्वयमेव नान्दीश्राद्धं कुर्यात् न माता,

पुत्रेषु विद्यमानेषु नान्यं वै कारयेत्स्वधाम्। इति निषेधात् उपनयनेन कर्माधिकारस्य जातत्वाच्चेति पृथ्वीचन्द्रोदयः।

वर तो (नान्दीश्राद्धं पिता कुर्यात् आद्ये पाणिग्रहे बुधः) संस्कृत भाई के अभावमें स्वयं ही नान्दीश्राद्ध करे माता न करे। पुत्रों के विद्यमान रहने पर अन्य से स्वधा नहीं ही करावे इससे निषेध है। उपनयनसे कर्ममें अधिकार प्राप्त होने से—यह पृथ्वीचन्द्रोदय में कहा है।

माधवीयेऽपरार्के च नारदः—पिता दद्यात्स्वयं कन्यां भ्राता वाऽनुमते पितुः। मातामहो मातुलश्च सकुल्यो बान्धवस्तथा॥ माता त्वभावे सर्वेषां प्रकृतौ यदि वर्तते। तस्यामप्रकृतिस्थायां कन्यां दद्युः स्वजातयः॥ सकुल्यः पितृपक्षीयः बान्धवो मातृवंशजः॥

माधवीय और अपरार्क में नारदने कहा है कि—पिता (पितामह आदिका कन्यादान में अधिकार पूर्व पूर्वके अभाव में होता है।) स्वयं कन्या दान करे। पिता की आज्ञासे भाई करे। मातामह (नाना), मामा, सकुल्य—(चाचा और उसके पुत्रादि) और बान्धव करें।

सबोंके अभावमें माता प्रकृति में हो तो करे। प्रकृतिस्थ के अभाव में माताके स्वजातीयगण कन्यादान को करें। पितृपक्षीय सकुल्य होते है तथा माता के वंशज बान्धव होते हैं।

मदनपारिजाते कात्यायनः—स्वयमेवौरसीं दद्यात्पितृभावे स्वबान्धवाः।

मातामहस्ततोऽन्यां हि माता वा धर्मजां सुताम्॥

मदनपारिजात में कात्यायन ने कहा है कि—स्वयं ही पिता औरसी कन्या को दे। उसके अभावमें अपने बान्धव (पिताके—भाई, आदि) दे। उनके अभाव में मातामह दे या धर्म से उत्पन्न कन्या को माता दे।

ततोऽन्यामौरसीभिन्नां धर्मजां नियोगात् क्षेत्रजां मातामहो मातुलो वा दद्यात्। तेनौरसीदाने पितृबन्धुषु सत्सु मातामहादीनां नाधिकारः अनुमतिं विना।

तदनन्तर अन्य औरसीसे भिन्न नियोगधर्म से उत्पन्न क्षेत्रज कन्याको मातामह या मामा दे। इससे औरसी कन्याके दानमें पिताके बन्धुओंके रहते हुए मातामह आदियोंका अधिकार अनुमितिके बिना नहीं है।

अस्यापवादस्तत्रैव—दीर्घप्रवासयुक्तेषु पौगण्डेषु च बन्धुषु। माता तु समये दद्यादौरसीमपि कन्यकाम्॥

इसका अपवाद भी वहींपर कहा है कि—यदि बान्धव लम्बे प्रवास (परदेश) में हो, और पाँच सालसे कुछ अधिक आयुके हो तो औरसी कन्याको माता समय से दे दे।

मनुः—यदा तु नैव कश्चित्स्यात्कन्या राजानमाव्रजेत् ।

मनुने कहा है कि—यदि कोई भी कन्यादान करनेवाला न हो कन्या राजाके समीप चली जावे ।

(परकीयकन्यादाने विशेषकथनम्)

परकीयकन्यादाने विशेषो मदनरत्ने स्कान्दे—आत्मीकृत्य सुवर्णेन परकीयां तु कन्यकाम् ।
धर्मेण विधिना दानं सगोत्रेऽपि युज्यते ॥

परकीय (दूसरे की) कन्या के दानमें विशेष मदनरत्नमें स्कन्दपुराण का वचन है कि—सुवर्ण द्वारा दूसरे की [1]कन्याको अपनी (आत्माके सदृश) कर धर्म की विधिसे असपिण्डमें दान करे । कन्याके ही सगोत्र-सपिण्डादि वर्जित हैं ।

अत्र प्रकृतिस्थग्रहणादप्रकृतिस्थेन कृतमकृतमेव, स्वतन्त्रो यदि तं कार्यं कुर्यादप्रकृतिं गतः । तदप्यकृतमेव स्यादस्वातन्त्र्यस्य हेतुतः ॥ इत्यपरार्के नारदोक्तेः । यदि तु सप्तपदीविवाहहोमादिप्रधानं जातं तदाङ्गवैकल्येऽपि नावृत्तिर्विवाहस्य । गौडा अप्येवमाहुः ।

यहाँपर प्रकृतिस्थ (सावधानी) के ग्रहणसे अप्रकृतिस्थ (असावधानी) से किया हुआ न करने के अपरार्क में तुल्य ही है । क्योंकि—कहा है कि—मनुष्य स्वतन्त्र होकर यदि उस कार्य को करता है तो उसे अप्रकृति के विना नारदने किया जानना चाहिये ।

यदि तो सप्तपदी विवाहहोम आदि प्रधानकार्य हो गये तब अङ्ग के वैकल्य (असावधानी) के ग्रहण भी में विवाहकी आवृत्ति नहीं हो सकती है । गौड भी ऐसा ही कहते हैं ।

(गौर्यादिदानकथनम्)

तत्रैव मरीचिः—गौरीं ददन्नाकपृष्ठं, वैकुण्ठं रोहिणीं ददत् ।
कन्यां ददद्ब्रह्मलोकं रौरवं तु रजस्वलाम् ॥

वहींपर मरीचि ने कहा है कि—गौरी (मनुः—अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा तु रोहिणी । दशवर्षा भवेत्कन्या अत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥) को देनेवाला स्वर्गलोकमें, रोहिणी को देनेवाला वैकुण्ठलोकमें, कन्याको देने वाला ब्रह्मलोक में और रजस्वलाको देनेवाला रौरवनरकमें जाता है ।

(विवाहादौमासनिर्णयः)

अथ मासनिर्णयः । तत्र जन्ममासे विशेषः प्रागुक्तः ज्योतिःप्रकाशे व्यासः—माघफाल्गुनवैशाखे यद्यूढा मार्गशीर्षके । ज्येष्ठे वाऽऽषाढमासे च सुभगा वित्तसंयुता ॥

अब मासनिर्णय करते हैं । उसमें जन्ममासमें विशेष पहले कह चुके हैं । ज्योतिःप्रकाशमें व्यासने कहा है कि—माघ, फाल्गुन, वैशाख, मार्गशीर्ष, ज्येष्ठमास या आषाढमासमें कन्याका विवाह किया जाय तो सौभाग्यवती तथा धन से युक्त होती है ।

श्रावणे वापि पौषे वा कन्या भाद्रपदे तथा । चैत्राश्वयुक्कार्तिकेषु याति वैधव्यतां लघु ॥

श्रावणमास पौष, भाद्रपद, चैत्र, आश्विन और कार्तिकमास महिने में जिस कन्याका विवाह होता है वह विधवा लघु=शीघ्र होती है ।

नारदः—माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासाः शुभाप्रदाः । कार्तिको मार्गशीर्षश्च मध्यमौ, निन्दिताः परे ॥

नारदने कहा है कि—माघ, फाल्गुन, वैशाख और ज्येष्ठ सौरमास विवाहमें (सौरो मासो विवाहादौ इत्युक्तेः) शुभप्रद है । कार्तिक और मार्गशीर्षमास मध्यम है तथा अन्य महिने निन्दित हैं ।

वसिष्ठः—पौषेऽपि कुर्यान्मकरस्थितेऽर्के चैत्रे भवेन्मेषगतो यदा स्यात् ।
प्रशस्तमाषाढकृतं विवाहं वदन्ति गर्गो मिथुनस्थितेऽर्के ॥

---

(१) इयं च कन्या क्रीतेति नन्दपण्डितोक्तं न युक्तम् । स्कान्दे—अनाथां कन्यकां दत्वा सदृशाम्यन्तरे वरे । द्विगुणं फलमाप्नोति कन्यादाने यदीरितम् ॥

वसिष्ठने कहा है कि--पौषमासमें भी मकरकी संक्रान्ति हो तो पौषमास (भषो न निन्द्यो यदि फाल्गुने स्यात्मेषस्तु वैशाखगतो न निन्द्यः ।) में तथा चैत्रमास में मेषके सूर्य हो तो विवाह करे। मिथुनके सूर्यमें आषाढमासमें विवाह करे तो प्रशस्त है—ऐसा गर्ग ने कहते हैं।

आचार्यचूडामणौ ज्योतिर्गर्गराजमार्तण्डौ–माङ्गल्येषु विवाहेषु कन्यासंवरणेषु च ।
दश मासाः प्रशस्यन्ते चैत्रपौषविवर्जिताः ॥

आचार्यचूडामणिमें और ज्योतिर्गर्गराजमार्तण्डमें भी कहा है कि—सब मांगलिककार्योंमें, विवाह-संबन्धिकार्योंमें तथा कन्या के संवरण में दश महिने उत्तम है। केवल चैत्र और पौषमास वर्जित हैं।

आपस्तम्बः–सर्वऋतवो विवाहस्य शैशिरौ मासौ परिहार्योत्तमं च नैदाघम् ।

'अत्र 'माघफाल्गुनाषाढवर्जं नव मासा मुख्यः कालः' इति सुदर्शनभाष्ये इडविलायां ब्रह्मविद्या-तीर्थैश्चोक्तम् ।

आपस्तंबने कहा है कि—विवाहकी सब ऋतु हैं। शिशर के दो महिने छोड़कर ग्रीष्मऋतु उत्तम है।

यहाँपर माघ, फाल्गुन और आषाढमास को छोडकर नौ मास मुख्यकाल हैं—यह सुदर्शनभाष्यमें तथा इडविलामें ब्रह्मविद्यातीर्थों ने कहा है।

बौधायनसूत्रेऽपि—'सर्वे मासा विवाहस्य, शुचितपस्तपस्यमित्येके ।' तेन 'पूर्वोत्तरौ शिशिर-संबन्धिनौ मासौ पौषचैत्रौ विहाय' इति निर्णयामृतव्याख्यानं मौर्ख्यकृतमित्युपेक्ष्यम् । 'निशि चेत्सर्वेषु द्वादशेष्वधि मासेषु उद्वहेत्' इति कालादर्शः । ये तु ज्योतिषे माघादिविधयस्ते गृह्यसूत्राणां द्विजपरत्वेन प्राबल्याच्छूद्रादिपराः ।

बौधायनसूत्रमें भी कहा है कि—सारे महिने विवाह के हैं। कोई कहते हैं कि आषाढ, माघ और फाल्गुन त्याग दे। इससे पूर्वोत्तर शिशर संबन्धि दो महिने पौष तथा चैत्रको छोडकर विवाह करे--यह निर्णयामृत का व्याख्यान मूर्खताकृत है कि—अतः उपेक्षणीय है।

कालादर्शमें कहा है कि—रात्रिमें यदि मुहूर्त्त मिले तो बारह महिनों में भी विवाह करे। जो लोग ज्योतिष में माघमास आदिकी विधियाँ हैं। वे गृह्यसूत्रोंके द्विजत्वपरत्व की प्राबल्यतासे शूद्र आदि परक हैं।

ज्योतिषे–वात्स्यो वर्षमनूनमिच्छति तथा रैभ्योऽयनं चोत्तरम् । श्रीवासोऽन्तमृतुं विहाय मुनयो माण्डव्यशिष्या जगुः ॥ चैत्रं प्रोज्झ्य पराशरः परिणये पौषं च दौर्भाग्यदम् । ह्याषाढादिचतुष्टयं न हितदं कैश्चित्प्रदिष्टं बुधैः ॥

ज्योतिष में कहा है कि—वात्स्यमुनि सारे सालको, रैभ्यमुनि उत्तरायणको, माण्डव्यके मुनि शिष्यगण वसन्तऋतुको, पराशर चैत्रमासको छोडकर, सब मासोंमें विवाह उत्तम कहते हैं। दुर्भाग्यप्रद पौष, आषाढ आदि चारमास विवाह हित को देनेवाला है। ऐसा किसी विद्वानों ने नहीं कहा है।

चण्डेश्वरः—मार्गे मासि तथा ज्येष्ठे क्षौरं परिणयं व्रतम् ।
ज्येष्ठपुत्रदुहित्रोस्तु यत्नेन परिवर्जयेत् ॥

चण्डेश्वरने कहा है कि—मार्गशीर्षमासमें और ज्येष्ठमासमें विवाह व्रत तथा ज्येष्ठमहिनेमें बड़े पुत्र तथा बड़ी (ज्येष्ठ) कन्याका विवाह यत्न से न करे।

कृत्तिकास्थं रविं त्यक्त्वा ज्येष्ठपुत्रस्य कारयेत् । उत्सवादिषु कार्येषु दिनानि दश वर्जयेत् ॥

कृत्तिकाके सूर्य को त्यागकर ज्येष्ठ पुत्रका विवाह करे तथा उत्सव आदि कार्यों में दशदिन ज्येष्ठमासके त्याग दे।

रत्नकोशे—जन्मर्क्षे जन्मदिवसे जन्ममासे शुभं त्यजेत् ।
ज्येष्ठ मास्याद्यगर्भस्य शुभं वर्ज्यं स्त्रिया अपि ॥

रत्नकोषमें कहा है कि—जन्मके नक्षत्रमें, जन्मके दिनमें और जन्मके महिनेमें शुभकार्य को त्याग दे। ज्येष्ठ महिनेमें आद्यगर्भ ज्येष्ठ पुत्र तथा ज्येष्ठ कन्याका शुभकार्य न करे।

पराशरः—अज्येष्ठा कन्यका यत्र ज्येष्ठपुत्रो वरो यदि।
व्यत्ययो वा तयोस्तत्र ज्येष्ठो मासः शुभप्रदः॥

पराशरने कहा है कि —जहाँपर (जिस कुलमें) कन्या ज्येठी न हो, वर यदि ज्येष्ठ हो तो, या कन्या ज्येष्ठ हो वर ज्येष्ठ न हो तो वहाँपर ज्येष्ठो महिना शुभप्रद होता है।

मिहिरः—ज्येष्ठस्य ज्येष्ठकन्याया विवाहो न प्रशस्यते। तयोरन्यतरे ज्येष्ठे ज्येष्ठो मासः प्रशस्यते॥

मिहिरने कहा है कि- ज्येष्ठका ज्येष्ठकन्यासे विवाह करना उत्तम नहीं होता है। इन दोनों में एक ज्येष्ठ हो तो ज्येष्ठमहिने का विधान किया है।

द्वौ ज्येष्ठौ मध्यमौ प्रोक्तावेकं ज्येष्ठं सुखावहम्। ज्येष्ठत्रयं न कुर्वीत विवाहे सर्वसम्मतम्॥

दो ज्येष्ठ मध्यम कहे गये हैं। एक ज्येष्ठ सुखको देनेवाला होता है और तीन ज्येष्ठमें विवाह न करे— ऐसा सबोंका मत है।

यत्तु 'सार्वकालमेके विवाहम्' इति तदासुरादिविवाहविषयम्। 'धर्म्येषु विवाहेषु कालपरीक्षणं, नाधर्म्येषु' इति गृह्यपरिशिष्टात्। रत्नमालायामप्येवम्। तेनासुरादयो माघचैत्रादिनिषिद्धकालेष्वपि भवन्ति। मासाः सौराः 'सौरो मासो विवाहादौ' इत्युक्तेः।

जो कोई यह कहते हैं कि—सब समयमें विवाह हो सकता है वह आसुर आदि विवाह विषयक है। क्योंकि—गृह्यपरिशिष्टमें कहा है कि—धर्मके विवाहों में कालपरीक्षण है, अधर्मके विवाहोंमें नहीं है। रत्नमालामें भी यही है। इससे आसुरादि विवाह माघ, चैत्र आदि निषिद्ध समयोंमें भी होते हैं। मास तो सौर हैं। सौरमास विवाहादिमें ग्रहण करे—ऐसा कहा है।

झषो न निन्द्यो यदि फाल्गुने स्यात् अजस्तु वैशाखगतो न निन्द्यः। इति त्वपवादः।

झष (मीन) निन्दनीय नहीं है यदि फाल्गुनमें हो तो और अज=मेष वैशाखमें तो निन्द्य नहीं है। यह तो अपवाद (परिहार) है।

(वेधादिदशदोषकथनम्)

अथ दशदोषाः। व्यवहारोच्चये—वेधश्च लत्ता च तथैव पातः खर्जूरवेधो दशयोगचक्रम्। युतिश्च जामित्रमुपग्रहश्च बाणाख्यवज्रे च दशैवदोषाः॥ एषां लक्षणं ज्योतिषे ज्ञेयम्।

अब दश[1]दोष कहते हैं। व्यवहारोच्चयमें कहा है कि—ग्रहवेध, लत्ता, पात, खर्जूरवेध, दशयोगचक्र, युति, जामित्र, उपग्रह, बाण और वज्र ये दश ही दोष है। इनका लक्षण ज्योतिष में देखना चाहिये।

(अतिचारगे गुरौ तु)

अतिचारगे गुरौ तु वसिष्ठः—अतिचारगतो जीवे वर्जयेत्तदनन्तरम्।
विवाहादिषु कार्येषु अष्टाविंशतिवासरान्॥

अतिचारमें गये बृहस्पतिमें तो वसिष्ठ ने कहा है कि अतिचार (जब बृहस्पति अतिशीघ्र गतिसे अपने मध्यम भोगकालसे पूर्व ही एकराशि को छोड़कर दूसरी राशिमें प्रवेशकर जाय) में गये बृहस्पतिमें तो विवाह आदि कार्योंमें अठाइस दिन तक त्याग दे।

रत्नमालायाम्—एकपञ्चनवयुग्मषट्दशत्रीणिसप्तचतुरष्टलाभदः।
द्वादशाजवृषभादिराशितो घातचन्द्र इति कीर्तितो बुधैः॥

रत्नमालामें कहा है कि—मेष, वृष इत्यादि क्रमसे राशियों को एक, पाच, नौ, दो, छ, दश, तीन, सात, चार, आठ, ग्यारह और बारह ये चन्द्र 'घातचन्द्र' कहलाते हैं। अर्थात्-मेष को पहला (मेषराशि का हो) चन्द्र घातक है। इसीप्रकार अवशिष्ट राशियोंमें समझना चाहिये।

---

(१) वेधः पातो युतिः क्रान्तिर्लत्तैकार्गलपञ्चकम्। दग्धोपग्रहजामित्रं दोषास्त्याज्या इमे दश॥ (मुहूर्तगणपतौ विवाहप्रकरणे-श्लो० १३१।)

(घातचन्द्रविचारः)

नारदः—भूपञ्चनन्दहस्ताश्च रसदिक्वह्निशैलजाः । वेदा वसुशिवादित्या घातचन्द्रो यथाक्रमम् ॥

नारदने कहा है कि—एक, पाँच, नौ, दो, छ, दश, तीन, सात, चार, आठ, ग्यारह और बारह ये यथाक्रम मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धन, मकर, कुम्भ तथा मीनमें घातक समझना चाहिये ।

यात्रायां युद्धकार्येषु घातचन्द्रं विवर्जयेत् । विवाहे सर्वमाङ्गल्ये चौलादौ व्रतबन्धने ॥ घातचन्द्रो नैव चिन्त्य इति पाराशरोऽब्रवीत् ॥

यात्रामें और युद्धकार्यों में घातचन्द्रका त्याग करे तथा विवाहमें, सब मंगलकार्योंमें, चूडाकरणमें और व्रतबन्धमें घातचन्द्र की चिन्ता न करे—यह पराशरने कहा है ।

ज्योतिर्निबन्धे—विवाहचौलव्रतबन्धयज्ञे पट्टाभिषेके च तथैव राज्ञाम् ।
सीमन्तयात्रासु तथैव जाते नो चिन्तनीयः खलु घातचन्द्रः ॥

ज्योतिर्निबन्धमें कहा कि—विवाहमें, चूडाकरणमें, व्रतबन्धमें, राजाओं के पट्टाभिषेकमें सीमन्तमें, और यात्राओंमें घातचन्द्र की चिन्ता नहीं करना चाहिये ।

नारदः—अकालजा भवेयुश्चेद्विद्युन्नीहारवृष्टयः । प्रत्यर्कपरिवेषेन्द्रचापाभ्रध्वनयो यदि ।
दोषाय मङ्गले नूनं न दोषायैव कालजाः ॥ इति ॥

नारदने कहा है कि—असमय के-विद्युत (बिजली), नीहार (हिम), वर्षा, सूर्यके चारों तरफ मण्डल, इन्द्रधनुष और मेघका शब्द—ये सब मंगल कार्यमें निश्चित दूषित हैं काल (समयपर) दूषित नहीं हैं ।

(अकालवृष्टिस्वरूपकथनम्)

अकालवृष्टिस्वरूपमाह लल्लः—पौषादिचतुरो मासाः प्रोक्ता वृष्टिरकालजा । इति ।

अकालवृष्टिकास्वरूप लल्लने कहा है कि-पौष, माघ, फाल्गुन और चैत्र इन चार महिनों में होनेवाली को 'अकालज' कहा है ।

शार्ङ्गधरः—निर्घाते क्षितिचलने ग्रहयुद्धे राहुदर्शने चैव ।
आ पञ्चदिनात्कन्या परिणीता नाशमुपयाति ॥

शार्ङ्गधरने कहा है कि—वज्रपात, भूकंप, ग्रहों की लड़ाई तथा राहुका दर्शन, इनमें पाँच दिन के के भीतर तक विवाह करनेपर कन्याका नाश होता है ।

उल्कापातेन्द्रचापप्रबलघनरजोधूमनिर्घातविद्युद्वृष्टिप्रत्यर्कदोषादिषु सकलबुधैस्त्याज्यमेवैकरात्रम् । दुःस्वप्ने दुर्निमित्ते ह्यशुभफलदृशो दुर्मनोभ्रान्तबुद्धौ चौले मौञ्जीनिबन्धे परिणयनविधौ सर्वदा त्याज्यमेव ॥

उल्कापातमें, इन्द्रधनुषमें, प्रबलमेघ रज (धूली) और प्रबलधूम के दर्शन में और बिजली के गिरनेमें, प्रबल वृष्टि में, सूर्य के ढकने पर, विद्वान् एक रात सब शुभ कर्मों में त्याग दे ।

दुःस्वप्नमें, दुष्टनिमित्तमें, अशुभफलके देखनेमें, खराबमन तथा भ्रान्त बुद्धिमें—चूडाकर्म, मौंजीबन्धन और विवाहविधिमें सर्वदा त्याग ही दे ।

ज्योतिःप्रकाशे—अर्वाक् षोडश नाड्यः संक्रान्तेः पुण्यदाः परतः ।
उपनयनव्रतयात्रापरिणयनादौ विवर्ज्यास्ताः ॥

ज्योतिःप्रकाशमें कहा है कि—संक्रान्तिके आदि की सोलह नाडी और अन्त की सोलह नाडी पुण्य को देनेवाली होती है । इसमें उपनयन, व्रत, यात्रा, विवाह आदि सब शुभकार्य वर्जित है ।

गर्गः—दिग्दाहे दिनमेकं च ग्रहे सप्तदिनानि तु । भूकम्पे च समुत्पन्ने त्र्यहमेव तु वर्जयेत् ॥

गर्गमें कहा है कि—दिशाओं के दाहमें एक दिन, ग्रह (गृह) युद्ध में सात दिन और भूकम्पके होनेपर तीनदिन त्याग दे ।

उल्कापाते त्रिदिवसं धूमे पञ्च दिनानि च । वज्रपाते चैकदिनं वर्जयेत्सर्वकर्मसु ॥

उल्कापातमें तीनदिनतक, धूमदर्शनमें पाँचदिन और वज्रपातमें एकदिन सब कार्योंमें त्याग दे ।

दर्शनादर्शनाद्राहुकेत्वोः सप्तदिनं त्यजेत् । यावत्केतूद्गमस्तावदशुभः समयो भवेत् ॥

राहु और केतुके दर्शनमें या अदर्शन में सातदिन तक त्याग दे । क्योंकि—जब तक केतुका उद्गम (उदय) हो तबतक का समय अशुभ होता है ।

(नान्दीश्राद्धे भूकम्पादेरपवादकथनम्)

अस्यापवादोऽद्भुतसागरे-अथ दिवसत्रयमध्ये मृदुपानीयं यदा भवति ।
उत्पातदोषशमनं तदैव संप्राहुराचार्याः ॥

इसका अपवाद अद्भुतसागरमें कहा है कि—इसकेबाद तीनदिनके भीतर जब पानी स्वच्छ (मृदु) हो जाय तो तब ही उत्पातदोष का शमन होता है—ऐसा आचार्यों ने कहा है ।

संबन्धतत्त्वे—भूकम्पादेर्न दोषोऽस्ति वृद्धिश्राद्धे कृते सति ।

सम्बन्धतत्त्वमें कहा है कि—वृद्धिश्राद्ध को करनेपर भूकम्प आदिका दोष नहीं होता है ।

(कन्यायाः वैधव्ययोगकथनम्)

अथापरिहार्ये कन्यावैधव्ययोगे विशेष उच्यते ।
मार्कण्डेयपुराणे—बालवैधव्ययोगे तु कुम्भद्रुप्रतिमादिभिः ।
कृत्वा लग्नं रहः पश्चात्कन्योद्वाह्येति चापरे ॥

अब जिसका परिहार्य न हो ऐसी कन्याके वैधव्ययोग में विशेष मार्कण्डेयपुराणमें कहा है कि—कन्या को बालवैधव्ययोग हो तो कुम्भ या वृक्ष की प्रतिमा आदियों से एकान्तमें लग्नको कर बादमें विवाह करे ऐसा दूसरे (महाशय) कहते हैं ।

(पुनर्भूदोषाभावकथनम्)

अत्र पुनर्भूदोषाभाव उक्तो विधानखण्डे—स्वर्णाम्बुपिप्पलानां च प्रतिमा विष्णुरूपिणी ।
तया सह विवाहे तु पुनर्भूत्वं न जायते ॥

यहाँपर पुनर्भू (दुबारा विवाहित) दोषका अभाव विधानखण्डमें कहा है कि—सुवर्ण, जल और पीपल की विष्णुस्वरूपवाली प्रतिमा बनाकर उसके साथ विवाह करनेपर 'पुनर्भूत्व' दोष नहीं होता है ।

(कुंभविवाहकथनम्)

सूर्यारुणसंवादे—विवाहात्पूर्वकाले च चन्द्रताराबलान्विते ।
विवाहोक्ते च तां कन्यां कुम्भेन सह चोद्वहेत् ॥

सूर्यारुणसंवादमें कहा है कि-विवाहके पूर्वकाल (पहले समय) में चन्द्रतारा के अनुकूलतापर (नवीन कुम्भके (गन्धु पुष्प, आदि सामग्री को इकट्ठीकर) साथ कन्याका (अस्याः कुमार्याः जन्मलग्नात् सप्तमादि-स्थानगतभौमसूचितदोषपरिहारार्थमस्याः पत्युर्दीर्घकालजीवनार्थं च कुम्भविवाहं करिष्ये' इसप्रकार संकल्पकर 'वरुणाङ्गस्वरूपाय कुंभाय नमः' इसमन्त्रसे हरिद्रा तथा कुंकुम का लेपन करे और कुमारी को भी लेपनकर 'इमां कन्यां काश्यपगोत्रां तुभ्यमहं संप्रददे । फिर दशतन्तुसूत्र से कुम्भ और कन्याका वेष्टन करे । विवाह-हित लग्न में कर्ता—कन्यावैधव्यहरं कुम्भविवाहं करिष्ये ।) विवाह करे ।

सूत्रेण वेष्टयेत्पश्चाद्दशतन्तुविधानतः । कुङ्कुमालङ्कृतं देहं तयोरेकान्तमन्दिरे ॥

फिर दशतन्तुसूत्र ने विधानद्वारा वेष्टन करे । दोनों को कुंकुमसे शरीरको एकान्तमन्दिर में अलङ्कृत करे ।

ततः कुम्भं च निःसार्य प्रभज्य सलिलाशये । ततोऽभिषेचनं कुर्यात्पञ्चपल्लववारिभिः ॥

तदनन्तर कुम्भको घरसे निकाल कर जलाशय में प्रवाहकर फिर घरमें आकर कन्याका पञ्चपल्लव जलसे अभिषेक करे ।

कुम्भप्रार्थना तत्रैव—वरुणाङ्गस्वरूपाय जीवनानां समाश्रय ।
पतिं जीवय कन्यायाश्चिरं पुत्रसुखं कुरु ॥

वहींपर कुम्भ की प्रार्थना करे—जीवोंका आश्रयभूत वरुण के अंगस्वरूप आप कन्या के पतिको चिरकालतक जीवित रखो तथा पुत्रका सुख करो ।

देहि विष्णो वरं देव कन्यां पालय दुःखतः । ततोऽलङ्कारवस्त्राढ्यां वराय प्रतिपादयेत् ॥ इति कुम्भविवाहः ।

हे विष्णो, हे देव, दुःखसे कन्याकी रक्षा करो—ऐसा वर दो । तदनन्तर अलंकार तथा महाबहुमूल्य वस्त्रोंसे युक्त कन्याको वर को दे ।

(मूर्तिदानमपि तत्रैव)

मूर्तिदानमपि तत्रैवोक्तम्—ब्राह्मणं साधुमामन्त्र्य संपूज्य विविधार्हणैः ।
तस्मै दद्याद्विधानेन विष्णोर्मूर्तिं चतुर्भुजाम् ॥

वहींपर मूर्तिदान भी कहा है कि—उत्तम ब्राह्मण को आमन्त्रण कर विविधप्रकारसे पूजाकर उनके लिए विधान के द्वारा चतुर्भुजी विष्णु की मूर्तिको दे ।

शुद्धवर्णसुवर्णेन वित्तशक्त्याथवा पुनः । निर्मितां रुचिरां शङ्खगदाचक्राब्जसंयुताम् ॥ दधानां वाससी पीते कमलोत्पलमालिनीम् । सदक्षिणां च तां दद्यान्मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥

शुद्धवर्ण सुवर्णसे या धनकी शक्ति के अनुसार (एकपल, आधापल, उससे आधा या उससे भी न्यून) निर्मित सुन्दर शंख, गदा, चक्र और कमलसे युक्त, पीले वस्त्रोंको धारण करनेवाली, कमलसे रमणीय निर्मित पुष्पोंकी मालाको धारण करनेवाली उस प्रतिमाको दक्षिणा के सहित इसमन्त्र का उच्चारणकर दे ।

यन्मया प्राचि जनुषि घ्नन्त्या पतिसमागमम् । विषोपविषशस्त्राद्यैर्हतो वातिविरक्तया ॥

अतिविरक्त मेरे द्वारा जो मैंने पूर्वजन्म में विष, उपविष, शस्त्र आदिसे या पतिके समागमको नष्ट करती हुई ।

प्राप्यमानं महाघोरं यशः सौख्यधनापहम् । वैधव्याद्यतिदुःखौघनाशाय शुभलब्धये ॥ बहुसौभाग्यलब्धैश्च महाविष्णोरिमां तनुम् । सौवर्णीं निर्मितां शक्त्या तुभ्यं संप्रददे द्विज ॥

उससे प्राप्त होते हुए सुख, धन और नाश करनेवाले महाभयंकर यश, वैधव्य आदि दुःख समूहको नाश करनेके लिए, शुभकी प्राप्तिके लिए और बहुतसौभाग्य की प्राप्तिके लिये शक्ति से सुवर्णसे निर्मित इस शरीरधारी महाविष्णु की प्रतिमाको हेद्विज, तुम्हारे लिए देती (मम वैधव्यहरं महाविष्णुप्रतिमादानमहं करिष्ये) हूँ ।

'अनघाद्याहमस्मि' इति त्रिवारं प्रजपेदिति । एवमस्त्विति तस्याशीर्गृहीत्वा स्वगृहं विशेत् ॥ ततो वैवाहिकं कुर्याद्विधिं दाता मृगीदृशः ॥ अन्येऽप्यश्वत्थविवाहवृक्षसेचनादयस्तत्रैव ज्ञेयाः । विस्तरभयान्नोच्यन्ते ।

'अनघाद्याहमस्मि' मैं आज पाप से रहित होती हूँ—इसको तीन बार जप करे । ऐसाही हो यों उस (ब्राह्मण) से आशीर्वाद ग्रहणकर अपने घरमें प्रवेश करे । तदनन्तर दान करनेवाला मृगके तुल्य नेत्रोंवाली कन्याका विधि (शास्त्रीयविधि) से विवाहकार्य करे और अन्य भी अश्वत्थविवाह, वृक्ष-सेचन आदि विधियाँ वहींसे जानना चाहिये । विस्तारके भयसे नहीं कहते हैं ।

(प्रतिकूलादिकथनम्)

अथ प्रतिकूलादि । ज्योतिर्निबन्धे गर्गः—कृते तु निश्चये पश्चान्मृत्युर्भवति कस्यचित् ।
तदा न मङ्गलं कुर्यात्कृते वैधव्यमाप्नुयात् ॥

अब प्रतिकूल आदिका निर्णय करते हैं । ज्योतिर्निबन्ध में गर्ग ने कहा है कि—शास्त्रीयविधिसे वाग्दानादि होनेपर यदि किसी की मृत्यु हो जाती है तो विवाह कार्य न करे । करनेपर कन्या विधवापन को प्राप्त होती है ।

(विवाहनिश्चये सति वधू-वरगृहे कस्यचिन्मृतौ निर्णयः)

ज्योतिर्मेधातिथिः—वधूवरार्थे घटिते सुनिश्चिते वरस्य गेहेऽप्यथ कन्यकायाः।
मृत्युर्यदि स्यान्मनुजस्य कस्यचित्तदा न कार्यं खलु मङ्गलं बुधैः॥ मङ्गलम्=विवाहः।

ज्योतिर्मेधातिथिने कहा है कि--वधू और वरका विवाहलग्न के निश्चित हो जानेपर वरके घरमें या कन्याके घरमें किसी मनुष्य की यदि मृत्यु हो जाय तो तब विवाहकार्य ज्ञानवानों को नहीं करना चाहिये। मंगलमाने-विवाह।

स्मृतिचन्द्रिकायाम्—कृते वाङ्निश्चये पश्चान्मृत्युर्भवति गोत्रिणः।
तदा न मङ्गलं कार्यं नारी वैधव्यदं ध्रुवम्॥

स्मृतिचन्द्रिका में कहा है कि--वाग्दान हो जाने पर वर या कन्याके कुलमें किसी गोत्रिवाले की (वर या वधू के तीन पीढी के भीतर सगोत्र सपिण्ड के मरने पर प्रतिकूल दोष होता है।) मृत्यु हो जाय तो तब विवाह नहीं करना चाहिये। करने पर निश्चित कन्या विधवा होती है।

भृगुः—वाग्दानानन्तरं यत्र कुलयोः कस्यचिन्मृतिः। तदोद्वाहो नैव कार्यः स्ववंशक्षयदोषतः॥

भृगुने कहा है कि—वाग्दान के बाद यदि वर या कन्याके कुल (वंश) में किसीकी मृत्यु हो जाय तो तब विवाह न करे। (करने पर) अपने वंश (खानदान) का नाश होता है।

शौनकः—वरवध्वोः पिता माता पितृव्यश्च सहोदरः। एतेषां प्रतिकूलं च महाविघ्नप्रदं भवेत्॥

शौनक ने कहा है कि--वर और वधू के—पिता, माता, चाचा और सहोदर भाई, इनके प्रतिकूल होनेपर महाविघ्न को देनेवाला होता है।

पिता पितामहश्चैव माता चैव पितामही। पितृव्यः स्त्रीसुतो भ्राता भगिनी चाविवाहिता॥ एभिरत्र विपन्नैश्च प्रतिकूलं बुधैः स्मृतम्। अन्यैरपि विपन्नैस्तु केचिदूचुर्न तद्भवेत्॥

पिता, पितामह (दादा) माता, पितामही, (दादी) चाचा, स्त्री का पुत्र (विवाहके पूर्व पुत्रका होना असंभव है। इसलिये दूसरे विवाहसे वरको प्रथम स्त्रीसे उत्पन्न पुत्र) भाई और बहिन जिसका विवाह न हो चुका हो, इनके मरनेपर विद्वान्को प्रतिकूल जानना चाहिये। कोई कहते हैं कि--अन्यों के मरनेपर उसप्रकार का महाविघ्नको करनेवाला नहीं होता है।

माण्डव्यः-वाग्दानानन्तरं माता पिता भ्राता विपद्यते। विवाहो नैव कर्तव्यः स्ववंशस्थितिमिच्छता॥

माण्डव्य ने कहा है कि--वाग्दान के बाद माता, पिता या भाई मर जायँ तो अपने वंश की स्थिति इच्छावाला विवाह न करे।

(संकटे समुत्पन्ने निर्णयकथकम्)

सङ्कटे तु मेधातिथिः--वाग्दानानन्तरं यत्र कुलयोः कस्यचिन्मृतिः।
तदा संवत्सरादूर्ध्वं विवाहः शुभदो भवेत्॥

संकटमें तो मेधातिथि ने कहा है कि—वाग्दानके बाद वर या कन्याके वंशमें किसीकी मृत्यु हो जाय तो एक सालबाद विवाह करने पर शुभको देनेवाला होता है।

(पित्रादीनामाशौचकथनम्)

स्मृतिरत्नावल्याम्--पितुरब्दशौचं स्यात्तदर्धं मातुरेव च। मासत्रयं तु भार्यायास्तदर्धं भ्रातृपुत्रयोः॥
अन्येषां तु सपिण्डानामाशौचं माससीरितम्।

स्मृतिरत्नावली में कहा है कि--पिताके मरनेपर एकसालका, माताके मरनेपर छ महिनेका, स्त्रीके मरनेपर तीन मासका, भाई और पुत्र के मरनेपर डेढ महिनेका आशौच होता है। अन्य सपिण्डोंके मरनेपर एक महिनेका आशौच होता है।

(तदन्ते विनायकशान्त्यादिकथनम्)

तदन्ते शान्तिकं कृत्वा ततो लग्नं विधीयते॥

उसके बाद (अर्थात्—वर्षके अन्तमें) शान्ति (विनायकशान्ति) करके विवाह करे।

ईशानकोण

पूर्व

अग्निकोण

विष्णु

शिव

(गणेशपञ्चायतन)

उत्तर

दक्षिण

दुर्गा

सूर्य

वायव्यकोण

पश्चिम

नैर्ऋत्यकोण

ज्योतिःप्रकाशे—प्रतिकूलेऽपि कर्तव्यो विवाहो मासतः परः। शान्तिं विधाय गां दत्त्वा वाग्दानादि चरेत्पुनः॥ शान्तिम्=विनायकशान्तिम्।

ज्योतिःप्रकाशमें कहा है कि—प्रतिकूलमें भी एकमहिनेबाद (एकसालबाद विनायकशान्तिपूर्वक विवाह करे यह मुख्यकल्प है। छः महिने या एकमास बाद करे यह अनुकल्प है। कोई लोग इसको पिताके मरणमें मानते हैं। माताके मरनेपर तो छः महिना मुख्यपक्ष है। तीन महिना या डेढमास अनुकल्प है। इसी प्रकार स्त्रीके मरनेपर तीन, डेढ और एक महिना ये तीन कल्प हैं। भाई के और पुत्रके मरनेपर डेढ महिना या एकमास ये दो कल्प हैं। पितामही आदि सपिण्ड क मरने पर तो एक मास है।) विवाह करे। विनायकशान्ति और गोदान कर फिरसे वाग्दानादि करे। शान्ति माने=विनायकशान्ति।

(अथ विनायकशान्तिकथनम्)

तथा च मेधातिथिः—सङ्कटे समनुप्राप्ते याज्ञवल्क्येन योगिना।
शान्तिरुक्ता गणेशस्य कृत्वा तां शुभमाचरेत्॥ इति।

और मेधातिथिने कहा है कि—संकट के प्राप्त हो जानेपर योगीयाज्ञवल्क्य ने गणेशशान्तिकर (विष्णुधर्मे—हस्तपुष्याश्वयुक्सौम्यवैष्णवान्यतमे शुभे। नक्षत्रे च मुहूर्ते च मैत्रे वा ब्रह्मदैवते॥ भविष्ये—शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां तु वासरे धिषणस्य च। तिष्ये च वीरनक्षत्रे तस्यैव पुरतो नृप॥ बृहत्पाराशरः—चतुर्थ्यां शुक्लपक्षे तु अयने चोत्तरे तथा। पुण्यार्थं सर्वसिध्यर्थं कुर्याच्छान्ति विनायकीम्॥ शुभ कर्म करे।

(प्रतिकूले सति विचारः)

प्रतिकूले न कर्तव्यो गच्छेद्यावदृतुत्रयम्। प्रतिकूलेऽपि कर्तव्यमित्याहुर्बहुविप्लवे॥ प्रतिकूले सपिण्डस्य मासमेकं विवर्जयेत्॥

प्रतिकूल होनेपर तीन ऋतुतक मंगल (विवाह) कार्य न करे। बहुत विप्लव (उपद्रव) होनेपर प्रतिकूल होनेपर भी करना चाहिये। सपिण्डके प्रतिकूल होनेपर एकमहिना त्याग दे।

ज्योतिःसागरे—दुर्भिक्षे राष्ट्रभङ्गे च पित्रोर्वा प्राणसंशये।
प्रौढायामपि कन्यायां नानुकूल्यं प्रतीक्ष्यते॥

ज्योतिःसागरमें कहा है कि—दुर्भिक्ष में (दीर्घरोगाभिभूतस्य दूरदेशस्थितस्य च। उदासीनस्थितस्यापि प्रातिकूल्यं न विद्यते॥ प्रातिकूल्यं मरणप्रयुक्तदोष इत्येके), राष्ट्रभंगमें माता तथा पिता के प्राणके संशयमें, और प्रौढा कन्याके होनेपर विवाहमें भी अनुकूलता की प्रतीक्षा नहीं करे।

मेधातिथिः—पुरुषत्रयपर्यन्तं प्रतिकूलं स्वगोत्रिणाम्। प्रवेशान्निर्गमस्तद्वत्तथा मण्डनमुण्डने॥

मेधातिथिने कहा है कि—तीन पीढीतक (सपिण्डपुरुषत्रयपर्यन्त) सगोत्रियों का प्रतिकूल होता है। जैसे—प्रवेश (वधूप्रवेश) और निकलने (कन्या का विवाह) से वैसेही मण्डन (विवाह) और मुण्डन (चूडाकरण) में जानना चाहिये।

प्रेतकर्माण्यनिर्वर्त्य चरेन्नाभ्युदयक्रियाम्। आचतुर्थं ततः पुंसि पञ्चमे शुभदं भवेत्॥

स्वगोत्रियों के चार पीढीतक सपिण्डीकरणान्त प्रेतकर्म की समाप्तिके विना आभ्युदयिक न करे। पाँचवी पीढीमें शुभको देनेवाला है।

(रजोदर्शने निर्णयः)

अथ रजोदोषे निर्णयः। माधवीये—प्रारम्भात्प्राग्विवाहस्य माता यदि रजस्वला। निवृत्तिस्तस्य कर्तव्या सहत्वश्रुतिचोदनात्॥ प्रारम्भात् नान्दीश्राद्धात्, 'नान्दीमुखं विवाहादौ' इत्यादिना तस्यैव प्रारम्भोक्तेः।

अब रजोदोषमें निर्णय कहते हैं। माधवीय में कहा है कि—विवाहहोने के पूर्व ही अर्थात्—नान्दीश्राद्ध होने के पूर्व ही, माता यदि रजस्वला हो जाय तो उसकी निवृत्ति सहत्वश्रुति की प्रेरणासे (वेदमें सहत्व (साथ) कहे जाने के कारण) करे। प्रारंभसे अर्थात्—नान्दीश्राद्धसे। विवाह आदि में नान्दीमुख करना कहा है—इत्यादि से उसीका ही प्रारंभ कहा है।

मेधातिथिः—चौले च व्रतबन्धे च विवाहे यज्ञकर्मणि ।
भार्या रजस्वला यस्य प्रायस्तस्य न शोभनम् ॥

मेधातिथिने कहा है कि—चौल, व्रतबन्ध, विवाह और यज्ञकर्म में जिसकी पत्नी रजस्वला हो जाय तो उसका शुभ नहीं होता है।

वधूवरान्यतरयोर्जननी चेद्रजस्वला । तस्याः शुद्धेः परं कार्यं माङ्गल्यं मनुरब्रवीत् ॥

वधू या वर की माता यदि रजस्वला हो जाय तो उसकी शुद्धिके बाद मंगलकार्य करे—ऐसा मनुने कहा है।

वृद्धमनुः–विवाहव्रतचूडासु माता यदि रजस्वला । तदा न मङ्गलं कार्यं शुद्धौ कार्यं शुभेप्सुभिः ॥

वृद्धमनुने कहा है कि—विवाह, व्रत और चूडाकरण में यदि माता रजस्वला हो जाय तो मंगलकार्य न करे। उसकी शुद्धि के वाद ही शुभके इच्छुक मंगलकार्य करें।

गर्गः—यस्योद्वाहादिमाङ्गल्ये माता यदि रजस्वला । तदा न तत्प्रकर्तव्यमायुःक्षयकरं यतः ॥

गर्गने कहा है कि—जिसके विवाह आदि मंगलकार्य में यदि माता रजस्वला हो जाय तो तव वह मंगलकार्य न करे। क्योंकि वह आयुको क्षय करनेवाला होता है।

(नान्दीश्राद्धोत्तरं रजोदोषे तु)

नान्दीश्राद्धोत्तरं रजोदोषे तु कपर्दिकारिकासु—सूतिकोदक्ययोः शुद्ध्यै गां दद्याद्धोमपूर्वकम् ।
प्राप्ते कर्मणि शुद्धिः स्यादितरस्मिन्न शुद्ध्यति ॥

नान्दीश्राद्धोत्तर रजोदर्शनमें तो कपर्दिकारिकाओं में कहा है कि—सूतिका और रजोधर्म की शुद्धिके लिये होमपूर्वक गोदान करे। नान्दीश्राद्धरूप प्रारंभ होनेवाले उस कर्ममें शुद्धि होती है और इतर नान्दीश्राद्धरूप प्रारंभाभावमें तो नहीं होती है।

अलाभे सुमुहूर्तस्य रजोदोषे च सङ्गते । श्रियं सम्पूज्य तत्कुर्यात्पाणिग्रहणमंगलम् ॥

शुभमुहूर्तके अभावमें रजोधर्म होजाय तो लक्ष्मीका पूजन कर मंगलस्वरूप पाणिग्रहण करे।

हैमीं माषमितां पद्मां श्रीसूक्तविधिनार्चयेत् । प्रत्यृचं पायसं हुत्वा अभिषेकं समाचरेत् ॥ इति ।

एक माषेकी सुवर्ण की पद्मा मूर्तिको श्रीसूक्तके विधान से अर्चन करे और प्रत्येक ऋचाद्वारा पायस से हवनकर अभिषेक करे।

(सूतकादिसंकटे तु)

सूतकादिसङ्कटे तु–कूष्माण्डीभिर्घृतं हुत्वा पयस्विनीं गां च दत्त्वा विवाहादि कुर्यात्–इति च वक्ष्यते (प्रागुक्तम्)।

सूतकादिसंकटमें तो कूष्माण्डसंज्ञकऋचाओं से घी से हवनकर दूधवाली गौ देकर विवाह आदि करे। ऐसा कहेगें। (कह चुके हैं)

(एकक्रियानिर्णयः)

अथैकक्रियानिर्णयः । ज्योतिर्निबन्धे वृद्धमनुः–एकमातृजयोरेकवासरे (वत्सरे) पुरुषस्त्रियोः । न समानक्रियां कुर्यान्मातृभेदे विधीयते ॥ एतेन एकस्य पुंसो विवाहद्वयमेकदिने निषिद्धं, मातृभेदाभावात् ।

अब एकक्रियाका निर्णय करते हैं। ज्योतिर्निबन्धमें वृद्धमनुने कहा है कि—एकमातासे उत्पन्न पुत्र और कन्याका एक दिनमें (एकसालमें) समानक्रिया न करे। अर्थात्–वर्षके भेदमें करे तो दोष नहीं है।

१—यद्देवा देवहेलनं देवासश्चकृमा वयम् । आदित्यास्तस्मान्मा मुञ्चतर्तस्यर्तेन मामित १ देवा जीवनकाम्या यद्वाचाऽनृतमूदिम । तस्मान्न इह मुञ्चत विश्वेदेवास्सजोषसः २ ऋतेन द्यावापृथिवी ऋतेन त्वꣳ सरस्वती । कृतान्नः पाह्येनसो यत्किञ्चाऽनृतमूदिम ३ इन्द्राग्नी मित्रावरुणौ सोमो धाता बृहस्पतिः । ते नो मुञ्चन्त्वेनसो यदन्यकृतमारिम ४ इत्यादि मन्त्र तैत्तरीय० आ० में हैं।

(एकः कर्ता शुभं कुर्यान्न पुत्र्योः पुत्रियोरपि । षण्मासे वाऽष्टमासे वा पूर्णे त्वब्दे शुभावहम् ॥) माता अलग-अलग हो तो करे।

इससे एकपुरुष का एकदिनमें दो विवाह करे तो निषिद्ध (वसिष्ठः—द्विशोभनं त्वेकगृहेऽपि नेष्टम्—मातृभेदो विधीयते इत्ययमपवादः प्रवर्तते इति भावः) है। क्योंकि माता के भेद का अभाव है।

नारदः—पुत्रोद्वाहात्परं पुत्रीविवाहो न ऋतुत्रये । न तयोर्व्रतमुद्वाहान्मण्डनादपि मुण्डनम् ॥

नारदने कहा कि—पुत्रके विवाहके बाद तीन ऋतु तक पुत्रीका विवाह न करे। पुत्र और पुत्रीके मध्यमें एकका विवाह तथा दूसरे का उपनयन (मिहिरः—पुत्रोपनयादूर्ध्वं षण्मासाभ्यन्तरे तथा । पुत्र्युद्वाहं न कुर्वीत विवाहाद् व्रतबन्धनम् ॥) न करे। और विवाहके बाद मुण्डन न करे।

वराहः—विवाहस्त्वेकजातानां षण्मासाभ्यन्तरे यदि । असंशयं त्रिभिर्वर्षैस्तत्रैका विधवा भवेत् ॥

वराह ने कहा है कि—एकमातासे उत्पन्न सन्तानों का विवाह छमासके अन्दर यदि हो जाय तो तीन सालके भीतर निःसन्देह उसमें एक कन्या विधवा हो जायगी। (नारदः—मातृयज्ञक्रियापूर्वं ज्येष्ठं कृत्वा तु मङ्गलम् । ऋतुत्रयं पुनर्यावन्न कुर्याल्लघुमङ्गलम् ॥)

मदनरत्ने वसिष्ठः—न पुंविवाहोर्ध्वमृतुत्रयेऽपि विवाहकार्यं दुहितुः प्रकुर्यात् ।
न मण्डनाच्चापि हि मुण्डनं च गोत्रैकतायां यदि नाब्दभेदः ॥

मदनरत्नमें वसिष्ठने कहा है कि—पुरुषके विवाहके बाद तीन ऋतुके भीतर कन्या का विवाहकार्य न करे। विवाहके बाद एकगोत्रमें एकसालका भेद न हो तो मुण्डनसंस्कार न करे।

एकोदरभ्रातृविवाहकृत्यं स्वसुर्न पाणिग्रहणं विधेयम् ।
षण्मासमध्ये मुनयः समूचुर्न मुण्डनं मण्डनतोऽपि कार्यम् ॥

एक माता से उत्पन्न भाई के विवाहकार्य में बहिन का पाणिग्रहणसंस्कार नहीं करना चाहिये। छ महिनेके मध्यमें विवाहोत्तर भी मुण्डन न करे—यह मुनियोंने कहा है।

एतदपवादस्तत्रैव—ऋतुत्रयस्य मध्ये चेदन्याब्दस्य प्रवेशनम् ।
तदा ह्येकोदरस्यापि विवाहस्तु प्रशस्यते ॥

इसका वहींपर ही अपवाद कहा है कि—यदि तीन ऋतु (छ महिनेके भीतर) के मध्यमें दूसरे वर्षका प्रवेश होता हो तो एकोदरसे उत्पन्न हुओंका विवाह करना प्रशस्त (श्रेष्ठ) है।

सारावल्याम्—फाल्गुने चैत्रमासे तु पुत्रोद्वाहोपनायने । भेदादब्दस्य कुर्वीत नर्तुत्रयविलङ्घनम् ॥

सारावलीमें कहा है कि—फाल्गुन और चैत्रमासमें सगे भाईयोंका विवाह हो जाय तो वर्षके भेदसे करे। उसमें तीन ऋतुका त्याग नहीं करे।

संहिताप्रदीपे—ऊर्ध्वं विवाहात्तनयस्य नव कार्यो विवाहो दुहितुः समार्द्धम् ।
अप्राप्य कन्यां श्वसुरालयं च वधूः प्रवेश्या स्वगृहं च नादौ ॥

संहिताप्रदीपमें कहा है कि—पुत्रके विवाहके बाद छ महिने तक कन्याका विवाह न करे। कन्याको श्वसुर गृहमें भेजकर अपनी पुत्रवधू को अपने घरमें प्रवेश करावे। आदिमें न करावे। (अर्थात्—कन्याको श्वसुराल भेजकर ही वधू का प्रवेश करावे।

मदनरत्ने वसिष्ठः—द्विशोभनं त्वेकगृहेऽपि नेष्टं शुभं तु पश्चान्नवभिर्दिनैस्तु ।
आवश्यकं शोभनमुत्सवो वा द्वारेऽथवाचार्यविभेदतो वा ॥

मदनरत्नमें वसिष्ठने कहा है कि—एकघरमें एक साथ दो शुभकार्य मङ्गल देनेवाले नहीं होते हैं। एकशुभकार्य करनेके बाद नौ दिन बाद शुभकार्य दूसरा करे। आवश्यकता पड़नेपर शुभकार्य और उत्सव को द्वार तथा आचार्य के भेदसे करावे।

एकोदरप्रसूतानां नाग्निकार्यत्रयं भवेत् । भिन्नोदरप्रसूतानां नेति शातातपोऽब्रवीत् ॥

एक उदरसे उत्पन्न तीनका अग्निकार्य (अर्थात्—शुभकार्य) एकसाथ न करे। अलग अलग माताओं से उत्पन्नोंका शुभकार्य एकसाथ न करे—यह शातातपने कहा है।

ज्योतिर्निबन्धे कात्यायनः–कुले ऋतुत्रयादर्वाक् मण्डनान्न तु मुण्डनम् ।
प्रवेशान्निर्गमो नेष्टो न कुर्यान्मङ्गलत्रयम् ॥

ज्योतिर्निबन्धमें कात्यायनने कहा है कि—खानदानमें तीन ऋतुके भीतर विवाहके बाद मुण्डन न करे। प्रवेश (वधूप्रवेश) के बाद निर्गम (कन्याका श्वसुराल भेजना) न करे और तीन मंगल कार्य न करे।

कुर्वन्ति मुनयः केचिदन्यस्मिन्वत्सरे लघु । लघु वा गुरु वा कार्यं प्राप्तं नैमित्तिकं तु यत् ॥

कोई मुनिगण तो दूसरे सालमें छोटा कार्य करना स्वीकार करते हैं। छोटा या बड़ा कार्य नैमित्तिक प्राप्त हो जानेपर तो करे।

पुत्रोद्वाहः प्रवेशाख्यः कन्योद्वाहस्तु निर्गमः। मुण्डनं चौलमित्युक्तं व्रतोद्वाहौ तु मङ्गलम् ॥

पुत्र का विवाह, वधूप्रवेश, कन्या का विवाह, स्वसुरघर जाना और मुण्डनको—चूडाकरण ही कहा है। व्रत तथा विवाह को मंगल कहा है।

चौलं मुण्डनमेवोक्तं वर्जयेन्मण्डनात्परम् । मौञ्जी चोभयतः कार्या यतो मौञ्जी न मुण्डनम् ॥

चौलको मुण्डन ही कहते हैं उसे विवाह के बाद त्याग दे। मौञ्जीबन्धनको चूडाकरणके पहले और बादमें करे। इसलिये मौञ्जीबन्धनके बाद मुण्डन न करे।

अभिन्नवत्सरेऽपि स्यात्तदहस्तत्र भेदयेत् । अभेदे तु विनाशः स्यान्न कुर्यादेकमण्डपे ।

अभिन्नसालमें भी वहाँपर दिनका भेद करे। अभेदमें तो विनाश होता है, अतः एकमण्डपमें न करे।

सङ्कटे तु कपर्दिकारिकासु वराहमिहिरश्च—उद्वाह्य पुत्रीं न पिता विदध्यात्पुत्र्यन्तरस्योद्वहनं कदाचित् । यावच्चतुर्थं दिनमत्र पूर्वं समाप्य चान्योद्वहनं विदध्यात् ॥

संकटमें तो कपर्दिकारिकाओं में वराहमिहिरने कहा है कि—पिता कन्या का विवाह करने के बाद उसी समय अन्यपुत्रका विवाह कभी न करे। जबतक चारदिन पहले समाप्त कर दूसरा विवाह[1] करे। उसके पूर्व न करे।

कश्यपः–मौञ्जीबन्धस्तथोद्वाहः षण्मासाभ्यन्तरेऽपि वा ।
पुत्र्युद्वाहं न कुर्वीत विभक्तानां न दोषकृत् ॥

कश्यपने कहा है कि—मौञ्जीबन्धन और विवाह के बाद छ महिने के भीतर कन्या का विवाह न करे। विभक्त हो तो दोष नहीं होता है।

(विवाहमध्ये श्राद्धपाते निर्णयः)

ज्योतिर्निबन्धे–विवाहमारभ्य चतुर्थिमध्ये श्राद्धं दिनं दर्शदिनं यदि स्यात् ।
वैधव्यमाप्नोति तदाशु कन्या जीवेत्पतिश्चेदनपत्यता स्यात् ॥

ज्योतिर्निबन्धमें कहा है कि—विवाह से प्रारंभकर चतुर्थीकर्मके मध्यमें श्राद्ध का दिन (क्षयाह श्राद्धका दिन) और दर्शदिन (अमावास्या) प्राप्त हो तो तब कन्या शीघ्रही वैधव्यताको प्राप्त करती है यदि पति जीवित रहे तो सन्तान से रहित होती है।

१—यहाँ पर पुत्रीशब्दसे पुत्रका भी ग्रहण है। एक पुत्र या पुत्री के विवाह के बाद दूसरा विवाह 'चतुर्थीकर्म' के बाद ही करे। इसीलिए रामायण आदिमें श्रीरामजी के विवाह के बाद लक्ष्मण आदिका विवाह उसीकालमें नहीं हुआ।

मयूखे-पुत्रोद्वाहात्परं पुत्री विवाहो न ऋतुत्रये। न कार्यं व्रतमुद्वाहान्मङ्गले नाप्यमङ्गलम् ॥ समान्यतया विवाह के बाद उपनयन का निषेध है। कन्या के विवाहोत्तर मौञ्जीबन्धन और एकविवाहके बाद दूसरा विवाह छ महिने के अन्दर न करे। पुत्रके विवाह के बाद कन्या का विवाह न करे। ये नियम एक में होनेपर लगते हैं। अलग होनेपर नहीं प्राप्त होते हैं। किसीने कहा है कि—वंशमें तीन ऋतुतक अर्थात्—छ मास तक दूसरा विवाह न करे। किसीने कहा है कि यह अविभक्तपरक है यहाँ तो मुख्यतया एक से उत्पन्नों का एक साथ विवाह नहीं हो सकता। 'उद्वाह्य पुत्रीम्' कन्याका विवाह करने के बाद जो निषेध है वह मध्यम है। 'न कुर्यात् एकमण्डपे' एक मण्डप में न करे—यह अधमपक्ष है।

तथा–विवाहमध्ये यदि चेत्क्षयाहस्तत्र स्वमुख्याः पितरो न यान्ति। वृत्ते विवाहे परतस्तु कुर्याच्छ्राद्धं स्वधाभिर्न तु दूषयेत्तम्॥ [1]ये वा भद्रं दूषयन्ति स्वधाभिः इति श्रुतेश्च।

और भी—विवाहके मध्यमें यदि क्षयाहश्राद्धका दिन आजाय तो उसमें अपने मुख्य (प्रधान) पितर नहीं आते हैं। विवाह के समाप्त होनेपर स्वधाओं द्वारा श्राद्ध को करे तो उस विवाह को दूषित नहीं करते हैं। जो लोग स्वधाओंसे कल्याणको दूषित करते हैं। ऐसा श्रुति कहती है।

(मासिकविषये)

मासिकविषये कालहेमाद्रौ शाट्यायनिः—प्रेतश्राद्धानि सर्वाणि सपिण्डीकरणं तथा। अपकृष्यापि कुर्वीत कर्तुं नान्दीमुखं द्विजः॥

मासिकविषयमें तो कालहेमाद्रिमें शाट्यायनिने कहा है कि—सब प्रेतश्राद्ध और सपिण्डनश्राद्धको अपकर्ष करके भी करे। यदि द्विज नान्दीमुखश्राद्धकरनेको उद्यत हो तो।

(वृद्धिं विनापकर्षे दोषकथनम्)

वृद्धिं विनापकर्षे दोषमाह तत्रैवोशनाः—वृद्धिश्राद्धविहीनस्तु प्रेतश्राद्धानि यश्चरेत्। स श्राद्धी नरके घोरे पितृभिः सह मज्जति॥ इति।

वृद्धिश्राद्धके बिना अपकर्षमें वहींपर उशनाने दोष कहा है कि—वृद्धिश्राद्धसे विहीन जो प्रेतश्राद्धोंको करता है वह श्राद्ध करनेवाला पितरोंके सहित घोरनरकमें डूबकी लगाता है।

मेधातिथिः—प्रेतकर्माण्यनिर्वर्त्य चरेन्नाभ्युदयक्रियाम्। आचतुर्थं ततः पुंसि पञ्चमे शुभदं भवेत्॥

मेधातिथिने कहा है कि—प्रेतकर्मोंको समाप्त किये बिना आभ्युदयिकक्रिया को न करे। यह चतुर्थ पीढीतक जानना चाहिये। पाँचवीं पीढीमें शुभको देनेवाला होता है।

स्मृत्यन्तरे—सपिण्डीकरणादर्वागपकृष्य कृतान्यपि। पुनरप्यपकृष्यन्ते वृद्ध्युत्तरनिषेधनात्॥

स्मृत्यन्तरमें कहा है कि—सपिण्डीकरण के पहले जो अपकर्षकर श्राद्ध किये गये हैं उनको फिरसे अपकर्षकर करे। (अर्थात्—चौल, उपनयन, विवाह आधानादि कार्योंके लिए ही मृततिथिमें ही अपकर्षकर श्राद्ध किये गये हैं)। वृद्धिश्राद्धके बाद प्रेतकर्मोंका निषेध है। (वृध्युत्तर प्रेतकर्म लुप्त हो जानेसे मनके समाधान के लिये रुद्रैकादशिनी पूजा आदिका आचरण करते हैं।)

स्मृतिसारावल्याम्—भ्रातृयुगे स्वसृयुगे भ्रातृस्वसृयुगे तथा। एकस्मिन्मण्डपे चैव न कुर्यान्मण्डनद्वयम्॥ सहोदरविषयमेतत्।

स्मृतिसारावलीमें कहा है कि—दो भाई, दो बहिन, दो भाई और बहन इनका एकमण्डप में दो विवाह न करे। यहाँपर भाईशब्दसे सहोदर का ग्रहण करे। (क्योंकि—'ज्येष्ठो भ्राता यदा तिष्ठेत्। इत्यादि में सहोदरका भ्रातृपदसे व्यवहार होता है।)

यमः—एकोदरप्रसूतानामेकस्मिन् वासरे पुनः। विवाहं नैव कुर्वीत मण्डनोपरि मुण्डनम्॥

यमने कहा है कि—एक उदर (पेट) से उत्पन्न हुओंका एकदिनमें विवाह और विवाहके बाद मुण्डन नहीं करे।

गार्ग्यः—भ्रातृयुगे स्वसृयुगे भ्रातृस्वसृयुगे तथा। न कुर्यान्मङ्गलं किञ्चिदेकस्मिन्मण्डपेऽहनि॥

गार्ग्यने कहा है कि—दो सगे भाईयोंका, दो सगी बहिनोंका और सगे दो भाई तथा बहिनका एकदिन में एकमण्डपमें कुछ भी मंगल न करे।

१–ये पाकशंसं विहरन्त एवैर्ये वा भद्रं दूषयन्ति स्वधाभिः। अहये वा तान् प्रददातु सोम आ वा दधातु निर्ऋतेरुपस्थे॥ (ऋ० ५।१०४।९)। जो लोग (राक्षस) परिपक्व सत्य भाषण करने वाले मुझको अपने पूर्ण आसव्य आत्मीय अभिप्रायों या कुटिलचालों से विपरीत रास्ते पर ले जाते हैं या जो बलों से युक्त हो मुझे (भले आदमी को) दूषित करते हैं। उन सबों को सोम (राजा न्यायाधीश) हिंसक या सर्प के लिये (सर्पवत्–कुटिलव्यवहार करने के लिये ही दण्ड दे) या पापदेवता (सिंह, रीछ) के समीप में या गोदी में फेंक दे।

एकस्मिन् वासरे प्राप्ते कुर्याद्यमलजातयोः । चौरं चैव विवाहं च मौञ्जीबन्धनमेव च ॥

एकदिनमें एकसाथ उत्पन्न हुए यमलोंका चौर, विवाह तथा मौञ्जीबन्धन न करे ।

ज्योतिर्विवरणे—एकोदरयोरेकदिनोद्वहने भवेन्नाशः । नद्यन्तर एकदिने केप्याहुः सङ्कटे च शुभम् ॥

ज्योतिर्विवरण में कहा कि—एक उदरसे उत्पन्न दो भाईयोंका एकदिनमें विवाह हो तो नाश होता है । नद्यन्तर (अर्थात् नदी आदिके व्यवधानमें या आदिपदसे देशादिव्यवधानमें) या संकट (अर्थात्—विनायकशान्तिको करके) में शुभ मानते हैं ।

ऊर्ध्वं विवाहाच्छुभदो नरस्य नारीविवाहो न ऋतुत्रयं स्यात् ।
नारीविवाहात्तदहेपि शस्तं नरस्य पाणिग्रहमाहुरार्याः ॥

नर (मनुष्य) के विवाहके बाद नारी (कन्या) का विवाह तीनऋतु (छ मास) तक शुभ को देनेवाला नहीं होता है । नारीके विवाहके बाद पुत्रका विवाह उसीदिन हो तो शुभप्रद है । ऐसा आर्य कहते हैं ।

(भिन्नमातृजयोस्तु एकवासरे विवाहविचारः)

भिन्नमातृजयोस्तु एकवासरे विवाहमाह मेधातिथिः—पृथङ्मातृजयोः कार्यो विवाहस्त्वेकवासरे । एकस्मिन् मण्डपे कार्यः पृथक् वेदिकयोस्तथा ॥

अलग अलग माताओंसे उत्पन्नहुओं का एकदिनमें विवाहको मेधातिथिने कहा है कि—अलग अलग माताओं से पैदा हुए पुत्रोंका एकदिनमें विवाह एकमण्डपमें अलग अलग वेदियोंपर करे । अर्थात्—अलग अलग माताओं से उत्पन्नों में से एकका उपनयन दूसरे का विवाह ये दो संस्कार करे ।

पुष्पपट्टिकयोः कार्यं दर्शनं न शिरःस्थयोः । भगिनीभ्यामुभाभ्यां च यावत्सप्तपदी भवेत् ॥

दो बहिनों के शिरमें स्थित पुष्पपट्टिका (मौर का प्रकारान्तरस्वरूप) जबतक सप्तपदी न हो तबतक दर्शन न करे ।

(यमयोस्तु विशेषकथनम्)

यमयोस्तु विशेषः भट्टकारिकायाम्—एकस्मिन् वत्सरे चैकवासरे मण्डपे तथा । कर्तव्यं मङ्गलं स्वस्रोर्भ्रात्रोर्यमलजातयोः ॥

एक साथ पैदा हुओंका विशेष भट्टकारिकामें कहा है कि—एक सालमें, एकदिनमें, एक मण्डपमें एक साथ यमल उत्पन्न बहिनों और भाईयोंका मंगल कार्य करे ।

ज्योतिर्निबन्धे नारदः—प्रत्युद्वाहो नैव कार्यो नैकस्मै दुहितृद्वयम् । न चैकजन्ययोः पुंसोरेकजन्ये तु कन्यके ॥

ज्योतिर्निबन्धमें नारदने कहा है कि—जामाताकी बहिनका अपने पुत्रके साथ विवाह करना, एकही वर को दो कन्या देना (अर्थात्—पहली कन्या के मरनेपर दूसरी कन्याका देना) एक माता से उत्पन्न दो सगे भाईयों को और एक माता से उत्पन्न दो सगी बहिन नहीं देना चाहिये ।

नैवं कदाचिदुद्वाहो नैकदा मुण्डनद्वयम् । नैकजन्ये तु कन्ये द्वे पुत्रयोरेकजन्ययोः ॥ न पुत्रीद्वयमेकस्मै प्रदद्यात्तु कदाचन ॥ इति ।

एकसाथ कदाचित् उत्पन्न हुए पुत्रोंका और एक साथ उत्पन्न कन्याओं का विवाह नहीं करे । न एक साथ मुण्डन करे । एक से उत्पन्न दो कन्याओं का, एक से उत्पन्न ऐसे पुत्रोंका तथा एक को दो पुत्रियों को कभी भी नहीं देना चाहिये ।

(विवाहात्प्राक् कन्यारजोदर्शने विचारः)

कन्याया रजोदर्शने तु अपरार्के संवर्तः—माता चैव पिता चैव ज्येष्ठभ्राता तथैव च । त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥

कन्याके रजोदर्शनमें तो अपरार्कमें संवर्तने कहा है कि—माता, पिता और बड़ा भाई ये तीनों रजस्वला कन्याको देखकर नरकमें जाते हैं ।

हारीतः—पितुर्गेहे तु या कन्या रजः पश्यत्यसंस्कृता ।
सा कन्या वृषली ज्ञेया तत्पतिर्वृषलीपतिः ॥ देवलात्रिकश्यपाः पूर्वार्द्धं तद्देव ।

हारीतने कहा है कि—पिताके घरमें जो असंस्कृत कन्याके रज को देखता है वह कन्या वृषली (तीन प्रकारकी होती है—बन्ध्या च वृषली ज्ञेया वृषली च मृतप्रजा । अपरा वृषली ज्ञेया कुमारी च रजस्वला ॥) होती है और उसका पति वृषलीपति होता है । देवल, अत्रि और कश्यप—ये पूर्वार्ध में वही हैं ।

भ्रूणहत्या पितुस्तस्याः सा कन्या वृषली स्मृता । यस्यां समुद्वहेत्कन्यां ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः ॥
अश्राद्धेयमपाङ्क्तेयं तं विद्याद् वृषलीपतिम् ॥

वह कन्या वृषली हो जाती है उस कन्याके पिताको भ्रूणहत्या लगती है । जो ब्राह्मण ज्ञानमें दुर्बल (अज्ञानयुक्त) होकर उस कन्यासे विवाह करता है वह श्राद्धमें और पंक्तिमें अपवित्र होता है । उसे वृषलीपति कहा जाता है ।

माधवीये बौधायनः—त्रीणि वर्षाण्यृतुमती काङ्क्षेत पितृशासनम् ।

माधवीयमें बौधायनने कहा है कि—तीन साल तक ऋतुमति कन्या पिता के शासनकी इच्छा रखे । (अर्थात्—चौथे साल तो–ततश्चतुर्थे वर्षे तु विन्देत सदृशं पतिम् । अपने अनुकूल पतिको प्राप्त करे ।)

विष्णुः—ऋतुत्रयमुपास्यैव कन्या कुर्यात्स्वयं वरम् ।

विष्णुने कहा है कि—तीनऋतु तक अर्थात्—तीनवार ऋतुमति होनेपर कन्या स्वयं वरण करे ।

अत्र वरस्य दोषाभावमाह यमः—कन्या द्वादशवर्षाणि याऽप्रदत्ता वसेद् गृहे ।
भ्रूणहत्या पितुस्तस्याः सा कन्या वरयेत्स्वयम् ॥

यहाँपर वरके दोषका अभाव यमने कहा है कि—जो कन्या बारह वर्षतक विना विवाहिता पिताके घरमें रहती है तो उसके पिताको भ्रूणहत्या लगती है अतः वह कन्या स्वयं अपने पतिका वरण करे ।

एवञ्चोपनतां पत्नीं नावमन्येत्कदाचन । न तु तां बन्धकीं विद्यान्मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥

इसप्रकार स्वयंवरमें उस विवाहिता पत्नीका पति कभी भी उसका अपमान न करे । उसको पापिनी और व्यभिचारिणी न जाने । यह स्वायंभुवमनुने कहा है ।

मनुः—(अ० ९, ९२, ९३) अलङ्कारं नाददीत पितृदत्तं स्वयंवरा ।
भ्रातृकं मातृदत्तं वा स्तेना स्याद्यदि तं हरेत् ॥

मनुने कहा कि—स्वयंवर करनेवाली कन्या पितासे दिये पिता, माता या भाई से दिये हुए अलंकारको हरणकरती है तो वह चोरिणी हो जाती है ।

वरं प्रत्याह—पित्रे न दद्याच्छुल्कं तु कन्यामृतुमतीं हरन् ।
स हि स्वाम्यादतिक्रामेदृतूनां प्रतिरोधनात् ॥

[1]वरके प्रति कहा है कि—रजस्वला (ऋतुमति) कन्याको ग्रहण (विवाह) करते हुए उस कन्याके पिताको शुल्क (धन) न दे । क्योंकि ऋतुओं की जानकारीसे विवाह न करने हेतु सन्तानोत्पत्ति निरोध से पिता का कन्या पर दायित्व नहीं रहता है ।

१—वरके गुण–कुल, शील, उमर, रूप, विद्या, धन, पोषणादि से युक्त गुणोंको देखकर कन्या दे । दूरस्थ, ज्ञानहीन, और मोक्षको चाहनेवालेको कन्या नहीं देनी चाहिये । शूद्रोंको तथा निर्धनों को भी न दे । हीनक्रियावालेको, षण्ढ तथा वेदाध्ययनहीन को न दे । विशेष काशीखण्ड आदि में देखना चाहिये ।

बड़ी लड़की भयंकर बड़े रोगसे आक्रान्त हो और कोई उसके साथ विवाह न करता हो तो रजस्वला के भयसे छोटी कन्याको विवाह करनेवाला तथा ग्रहण करनेवाला दोषका भागी नहीं होता है । इसीप्रकार किसीकारणवश नीचकर्म की प्रवृत्ति से उत्पन्न कन्याको स्वीकार करने में दोष नहीं है । इसमें कन्या को स्वयं ही ग्रहण करे । विज्ञानेश्वरने कहा है—पतित के हाथसे न ग्रहण करे । वसिष्ठने कहा है कि—'पतितोत्पन्नः पतितो भवति अन्यत्र स्त्रिया' इससे कन्याको पातित्यता नहीं होती है ।

(अत्र प्रायश्चित्तकथनम्)

अत्र प्रायश्चित्तमुक्तमाश्वलायनेन—कन्यामृतुमतीं शुद्धां कृत्वा निष्कृतिमात्मनः ।
शुचिं च कारयित्वा तामुद्वहेदानृशंस्यधीः ॥

यहाँपर प्रायश्चित्त आश्वलायनने कहा है कि—रजस्वला कन्याको शुद्धकर और स्वयं आत्माकी पापनिवृत्तिके लिए शुद्धिकर शुद्धिको कराकर पापरहित बुद्धिवाला उस कन्याका विवाह करे।

पिता ऋतून् स्वपुत्र्यास्तु गणयेदादितः सुधीः । दानावधि गृहे यत्नात्पालयेच्च रजोवतीम् ॥

पिता अपनी पुत्रीकी ऋतुधर्मोंको आदिसे गिनकर दानावधिर्यन्त उस रजस्वला की यत्नसे घरमें रक्षा करे।

दद्यात्तदृतुसंख्या गाः शक्तः कन्यापिता यदि । दातव्यैकापि निःस्वेन दाने तस्या यथाविधि ।

यदि कन्याका पिता शक्त हो तो ऋतुसंख्याके अनुसार औंकादान करे। यदि अशक्त हो अर्थात्–निर्धन हो तो एक गौ का यथाविधि (विवाहके समय) दान दे।

दद्याद्वा ब्राह्मणेष्वन्नमतिनिःस्वः सदक्षिणम् । तस्यातीतर्तुसंख्येषु वराय प्रतिपादयेत् ॥

अत्यन्त दरिद्र स्वयं होनेके कारण ब्राह्मणोंको दक्षिणा सहित अन्न दे। फिर उस कन्याका ऋतुधर्मव्यतीत होनेपर वरको दे दे।

उपोष्य त्रिदिनं कन्या रात्रौ पीत्वा गवां पयः । अदृष्टरजसे दद्यात्कन्यायै रत्नभूषणम् ॥
तामुद्वहन् वरश्चापि कूष्माण्डैर्जुहुयाद् द्विजः॥ इति ।

जिस कन्याको मासिकधर्म हो गया है ऐसी कन्या तीन दिन उपवास कर रात्रि में गोदुग्धपान करे और मासिक न होती हुई कन्याके लिए रत्नोंके आभूषण दे। उस कन्याके साथ विवाह करता हुआ वर कूष्माण्ड-संज्ञकमन्त्रोंसे हवन करे। (अर्थात्—कूष्माण्डसंज्ञकमन्त्रोंसे हवन करनेके बाद उस कन्यासे विवाह करे)।

मदनपारिजाते यज्ञपार्श्वः—विवाहे वितते यज्ञे होमकाल उपस्थिते ।
कन्यामतुमतीं दृष्ट्वा कथं कुर्वन्ति याज्ञिकाः ॥

मदनपारिजातमें यज्ञपार्श्वने कहा है कि—विवाह के समय होमकर्म के एकबार प्रारंभ होने के समय कन्याको ऋतुमती देखकर किसप्रकारसे याज्ञिक करें।

स्नापयित्वा तु तां कन्यामर्चयित्वा यथाविधि । युञ्जानामाहुतिं हुत्वा ततस्तन्त्रं प्रवर्तयेत् ॥

उस कन्याको स्नान कराकर यथाविधि उस कन्या का अर्चनकर 'युञ्जानः'[1] इस मन्त्रसे आहुति देकर तदनन्तर होमतन्त्र (पूर्ववत् होम) को करे।

बौधायनसूत्रम्—(चतुर्थप्रश्ने प्रथमाध्याये) अथ यदि कन्योपसाद्यमाना वोह्यमाना वा रजस्वला स्यात्तामनुमन्त्रयेत्—पुमांसौ मित्रावरुणौ पुमांसावश्विनावुभौ । पुमानिन्द्रश्च सूर्यश्च पुमांसं च वर्धयामि ॥ इति ।

अथ द्वादशरात्रमलङ्कृत्य प्राशयेत्पञ्चगव्यमथ शुद्धां कृत्वा विवहेत् । अत्र गान्धर्वाद्यष्टौ विवाहास्तद्व्यवस्था चाकरे ज्ञेया ।

बौधायनसूत्रमें कहा है कि–यदि कन्या पतिके घर जानेके समय या विवाह के समय रजस्वला हो जाय तो उसका अनुमन्त्रण करे—मित्र और वरुण ये दोनों पुरुषसंज्ञक हैं। अश्विनीकुमार ये दोनों पुरुष हैं। इन्द्र तथा सूर्य भी पुरुष है। वह कन्या[2] ऐसे पुरुषकी वृद्धि करती है। इसके बाद बारह रात्रितक अलंकृत कर पञ्चगव्यका प्राशन करे। फिर शुद्धकर विवाह करे। यहाँपर गान्धर्व आदि आठ विवाह कहे हैं। उसकी व्यवस्था आकर ग्रन्थोंमें जाननी चाहिये।

१–युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्वाय सविता धियः । अग्निं ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याऽभरत् ॥ (तैत्तरीयसं० ४।१।१।१)।

२—मनुः–ब्राह्मो दैवस्तथा चार्षः प्राजापत्यस्तथाऽसुरः । गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमो मतः ॥ (१) आश्वलायनने कहा है कि–कन्याको अलंकृत कर जलपूर्वक जो विवाह होता है। वह ब्राह्म विवाह कहा जाता है। इसमें उत्पन्न बारह पीढी आगे और बारह पीढी पीछे की पवित्र होती है। यह ब्राह्मविवाह है। (२) ऋत्विजको देने से दश-दश पीढी

मनुः—(अ० ३,२३) षडानुपूर्व्या विप्रस्य चतुरोऽवरान् ।
विट्शूद्रयोस्तु तानेव विद्याद्धर्म्यानराक्षसान् ॥

मनुने कहा है कि—ब्राह्मणको क्रमसे ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, और क्षत्रियको चार गान्धर्व असुर, गन्धर्व, राक्षस और पैशाचधर्म हैं। वैश्य तथा शूद्रको राक्षस विवाहको छोड़कर वही श्रेष्ठ है।

चतुर आसुरगान्धर्वराक्षसपैशाचान्। तान् राक्षसवर्ज्यान् वैश्यशूद्रयोः। स एव 'आसुरं वैश्यशूद्रयोः।

चार कौन है—आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच। उनमें राक्षसको छोड़कर वैश्य और शूद्रको प्राप्त है। उन्होंने ही कहा है कि—'आसुर विवाह वैश्य और शूद्रको विहित है।

हेमाद्रौ पैठीनसिः—राक्षसो वैश्यस्य, पैशाचः शूद्रस्य। प्रचेताः—पैशाचोऽसंस्कृतप्रसूतानां प्रतिलोमजानां च।

हेमाद्रिमें पैठीनसिने कहा है कि—राक्षसविवाह वैश्यके लिए और पैशाच शूद्र के लिये है। प्रचेताने कहा है कि—असंस्कृत उत्पन्नों का और प्रतिलोमजातियों का पैशाचविवाह होता है।

मनुः—राक्षस्तथासुरो वैश्ये शूद्रे चान्त्यस्तु गर्हितः।

मनुने कहा है कि—क्षत्रिय को आसुर और वैश्य और शूद्र को अन्त्य—पैशाच गर्हित है।

क्षत्रियादेः सङ्कटे पैशाचमाह माधवीये वत्सः—सर्वोपायैरसाध्या स्यात्सुकन्या पुरुषस्य या।
चौर्येणापि विवाहेन सा विवाह्या रहःस्थिता ॥

क्षत्रिय आदिको संकटमें किसीका मत है कि-(ब्राह्मणादियों को यह अन्यमत है ये एक कहते हैं) संकटमें कहे हुए (विवाहोंके असंभवमें पैशाच) माधवीयमें वत्सने पैशाच—कहा है कि-रमणीय कन्या सब उपायोंसे पुरुष को प्राप्त न हो सके तो चौर्य कर्मसे अर्थात्—पैशाचवृत्ति से एकान्तमें स्थित उस कन्यासे विवाह करे।

गान्धर्वादिविवाहेष्वप्युदकपूर्वकं दानमाह तत्रैव यमः—नोदकेन न वाचा वा कन्यायाः पतिरुच्यते। पाणिग्रहणसंस्कारात्पतित्वं सप्तमे पदे।

गन्धर्व आदि विवाहमें भी उदक (जल) पूर्वकदान यमने वहीं कहा है कि—जो विना जल और विना वाणीके कन्या का पति नहीं हो सकता है। पाणिग्रहणसंस्कारसे सातवें पदपर पति संज्ञा होती है।

पराशरमाधवीये देवलोऽपि—गान्धर्वादिविवाहेषु पुनर्वैवाहिको विधिः।
कर्तव्यश्च त्रिभिर्वर्णैः समर्थेनाग्निसाक्षिकः ॥

पराशरमाधवीयमें देवलने भी कहा है कि—गन्धर्व आदि विवाहों में तीनों वर्ण समर्थ हो तो अग्नि की साक्षीमें फिर से वैवाहिकविधि करनी चाहिये।

त्रैवर्णोक्तेर्गान्धर्वादौ विप्रवर्जमधिकार उक्तः तत्रैव परिशिष्टे—गान्धर्वासुरपैशाचा विवाहो राक्षसश्च यः। पूर्वं परिग्रहस्तेषु पश्चाद्धोमो विधीयते ॥

तीनवर्णोंके कथन से गान्धर्व आदि विवाहों में ब्राह्मण से भिन्न का अधिकार कहा है। वहींपर परिशिष्टमें कहा है कि—गान्धर्व, आसुर, पैशाच तथा राक्षस विवाहोंमें पहले परिग्रह (स्वीकार) करे फिर विवाहहोम करे।

दोनों पवित्र होती है। इसको दैव कहते हैं। (३) आर्ष-गोयुग्म दे। इसमें सात सात पीढी दोनों पवित्र होती हैं। (४) प्राजापत्य-इसमें आठ-आठ पीढी दोनों पवित्र होती है। (५) वरसे बहुत धन लेकर पिता आदि जो दान करते हैं वह विवाह आसुर है। (६) गान्धर्व-अपनी-अपनी प्रसन्नता से (राय से) होता है। (७) राक्षस-मारकर (हननकर) विदारण कर रोती हुई को हरण करता है। (८) पैशाच जो सोई हुई या प्रमत्ता का अपहरण करता है।

१—आसुर विवाह बहुत धन वरसे लेकर पिता आदि जो दानसे रहित कन्यार्पण करते हैं। वह आसुर विवाह है। ऐसा कोई अर्थ करते हैं।

(कन्यायाः बलादपहरणे)

अतो होमादावकृते भार्यात्वाभावाद्वरान्तराय देया। तथा च तत्रैव वसिष्ठबौधायनौ—बलादपहृता कन्या मन्त्रैर्यदि न संकृता। अन्यस्मै विधिवद् देया यथा कन्या तथैव सा॥ इति।

इसलिए होम आदिके न करनेपर भार्यात्व का अभाव होनेसे दूसरे वरके लिए दे दे और वहींपर वसिष्ठ और बौधायनने कहा है कि—बल[1] से अपहृत कन्याका यदि मन्त्रोंसे संस्कार नहीं हुआ है ऐसी उस कन्याको दूसरे को विधिवत् दे दे। जैसी कन्या पहले थी वैसी ही है।

अत्र मन्त्रसंस्काराभावेऽन्यस्मै दानस्य सर्वविवाहेषु साम्याद्बलादपहारे राक्षसपैशाचयोर्विशेषवचनं व्यर्थम्। तेन तयोर्यदि न संस्कृता संस्कृता वेत्यावृत्त्य कन्यानुमत्यभावेऽन्यस्मै देयेति व्याख्येयम्।

यहाँपर मन्त्रसंस्कारके अभावमें दूसरेके लिये दानका सब विवाहोंमें साम्य (समानता) होने से बलके द्वारा हरण करनेपर राक्षस और पैशाच के विशेष वचन व्यर्थ हो जायंगे। इससे उन दोनोंमें यदि संस्कार की हुई या नहीं संस्कार की हुई की आवृत्तिकर कन्याकी अनुमितिके अभावमें दूसरे के लिए दे—यह व्याख्या की है।

मदनपारिजाते नारदः—पाणिग्रहणिका मन्त्रा नियतं दारलक्षणम्।
तेषां च निष्ठा विज्ञेया विद्वद्भिः सप्तमे पदे॥ स्मृतिचन्द्रिकायामपरार्के चैवम्।

मदनपारिजातमें नारदने कहा है कि—पाणिग्रहण करानेवाले मन्त्र ही नियत स्त्रीके लक्षण हैं। उन मन्त्रोंपर विद्वानोंको सप्तमपदपर निष्ठा करनी चाहिये। स्मृतिचन्द्रिकामें और अपरार्क में भी यही है।

(विवाहादावाशौचप्राप्तौ निर्णयः)

आशौचे तु याज्ञवल्क्यः—(प्रायश्चि० २९) दाने विवाहे यज्ञे च सङ्ग्रामे देशविप्लवे।
आपद्यपि च कष्टायां सद्यः शौचं विधीयते॥

आशौचमें तो याज्ञवल्क्यने कहा है कि—दान (पूर्वसंकल्पितं द्रव्यं दीयमानं न दुष्यति) में, विवाह (चौल, उपनयन आदिका उपलक्षण है) में, यज्ञ (वृषोत्सर्ग आदि तथा प्रतिष्ठा, आरामादि उत्सव) संग्राम (संग्रामे समुपोढे राजानं सन्नाहयेत्, इतिसन्नहने प्रास्थानिकहोमादौ च) में, देशविप्लव (देशोपप्लवशमनार्थे शान्तिकर्मणि) में, आपत्ति—(देशपलायनादौ) और कष्टमें सद्यः (उसीसमय) आशौच का विधान होता है।

केषामित्यपेक्षिते ब्रह्मपुराणे उक्तम्—दातुः प्रतिग्रहीतुश्च कन्यादाने च नो भवेत्।
विवाहविष्णोः कन्याया लाजहोमादिकर्मणि॥ इति।

किनकी शुद्धि कही है इसकी अपेक्षा करनेपर तो ब्रह्मपुराण में कहा है कि—कन्यादान देनेवाले की और प्रतिग्रहीता (वर) का लाजहोम आदि कर्ममें सद्यःशौच होता है।

व्रतयज्ञविवाहेषु श्राद्धे होमेऽर्चने जपे। आरब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु सूतकम्॥ इति विष्णुवचनाच्च।

विष्णुका वचन है कि-व्रत, यज्ञ, विवाह, श्राद्ध, होम, अर्चन और जपके आरंभमें सूतक नहीं होता है। अनारंभमें सूतक होता है।

प्रारम्भस्तेनैवोक्तः—प्रारम्भो वरणं यज्ञे सङ्कल्पो व्रतसत्रयोः।
नान्दीमुखं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रिया॥ इति। वरणमिति मधुपर्कपरम्।

प्रारंभ तो उस (विष्णु) ने ही कहा है कि—यज्ञमें वरण का प्रारंभ, व्रत और सत्रयागमें संकल्प, विवाह आदिमें नान्दीमुख और श्राद्धमें पाकक्रिया (पाक बन जानेपर) कहा गया है। यह वरणशब्दसे मधुपर्क का ग्रहण करे।

१—यह गन्धर्व आदिका उपलक्षण है। यहाँपर सब तरहके विवाहों में ही संस्कारके अभाव में दूसरे को देनी चाहिये। ऐसा कहेंगे तो राक्षस और पैशाच का विशेष कथनका महत्व व्यर्थ हो जायगा। यह ठीक नहीं है। क्योंकि-मन्त्रों से यदि संस्कृत न हो या हो तो कन्याकी अनुमति से दूसरे को दे दे यह व्याख्या है।

गृहीतमधुपर्कस्य यजमानाच्च ऋत्विजः। पश्चादशौचे पतिते न भवेदिति निश्चयः॥ इतिब्राह्मोक्तेः। मधुपर्कात्पूर्वं तु भवत्येवाशौचमिति शुद्धिविवेकः। रामाण्डारभाष्येऽप्येवम्।

ब्राह्मपुराण में कहा है कि—यजमान से ऋत्विजों ने मधुपर्क ग्रहण कर लिया हो बादमें आशौच हो जाय तो वह आशौच नहीं लगता है। यह निश्चित है।

शुद्धिविवेककारने कहा है—मधुपर्कके पहले आशौच होता ही है। रामाण्डारभाष्यमें भी यही कहा है।

(यज्ञादौ नान्दीमुखश्राद्धस्य कालविचारः)

नान्दीमुखावधिश्च स्मृत्यन्तरे—एकविंशत्यहर्यज्ञे विवाहे दश वासराः।
त्रिषट्चौलोपनयने नान्दीश्राद्धं विधीयते॥

और नान्दीमुख की अवधि तो स्मृत्यन्तर में कही है कि—यज्ञमें इक्कीसदिन, (सूतक आदि की संभावना में पहले ही इक्कीस दिन के भीतरमें ही) विवाह में दशदिन, तीन दिन–चूडाकरण में और छ दिन उपनयनमें नान्दीश्राद्ध पहले करना विधान कहा है।

(आरंभाभावे लग्नान्तराभावे च विचारः)

आरम्भाभावे लग्नान्तराभावे गद्यविष्णुः—न देवप्रतिष्ठाविवाहयोः पूर्वसंभृतयोरपि॥ इति।

आरंभके अभावमें भी लग्नान्तराभावमें गद्यविष्णुने कहा है कि—पहलेसे संभार (सामग्री) तैयार होने पर देवप्रतिष्ठा और विवाह (यज्ञे संभृतसंभारे विवाहे श्राद्धकर्मणि। सद्यः शौचम्) में आशौच नहीं होता है।

(अत्र सूतके प्राप्ते प्रायश्चित्तकथनम्)

अत्र प्रायश्चित्तमाह मदनपारिजाते विष्णुः—अनारब्धविशुद्ध्यर्थं कूष्माण्डैर्जुहुतात् घृतम्।
गां दद्यात्पञ्चगव्याशी ततः शुद्ध्यति सूतकी॥

यहाँपर प्रायश्चित्त मदनपारिजातमें विष्णुने कहा है कि—बिना प्रारंभ किये हुए कर्म की शुद्धिके लिए कूष्माण्डसंज्ञकमन्त्रों से घृतके द्वारा हवन, गोदान और पञ्चगव्यका प्राशन करे तो सूतकी की शुद्ध होती है।

(चूडोपनयनादौ प्रारंभे सूतकस्य प्राप्तौ विचारः)

सङ्ग्रहेऽपि–सङ्कटे समनुप्राप्ते सूतके समुपागते। कूष्माण्डीभिर्घृतं हुत्वा गां च दद्यात्पयस्विनीम्॥

संग्रहमें भी कहा है कि—संकटके प्राप्त होनेपर और सूतक के आनेपर कूष्माण्डसंज्ञकमन्त्रों से घृतके द्वारा हवन करे तथा दूधवाली गौ का दान करे।

चूडोपनयनोद्वाहप्रतिष्ठादिकमाचरेत्। यदैवसूतकप्राप्तिस्तदैवाभ्युदयक्रिया॥

चूडाकरण, उपनयन, विवाह, प्रतिष्ठा आदिके करते समय जब ही सूतकको प्राप्ति हो जाय तो उसी समय आभ्युदयिकक्रिया को करे।

(विवाहोत्सवयज्ञेषु मृतादिसूतकप्राप्तौ अन्नादिपरिवेषणे महत्वपूर्णविचारः)

अन्नादिषु विशेषः षट्त्रिंशन्मते—विवाहोत्सवयज्ञेषु त्वन्तरामृतसूतके।
परैरन्नं प्रदातव्यं भोक्तव्यं च द्विजोत्तमैः॥ परैः=असगोत्रैः।

अन्न–आदिमें तो विशेष षट्त्रिंशत्मतमें कहा है कि–विवाह, उत्सव और यज्ञके मध्यमें मरणाशौच या जननाशौच आ जाय तो असगोत्री मनुष्य अन्नको परोसें तो उत्तम द्विज भोजन करें। यहाँ 'पर' शब्द से असगोत्री को कहा है। अर्थात्–जिसके यहाँ आशौच हो उसके गोत्र से भिन्न गोत्रवाले हों।

भुञ्जानेषु तु विप्रेषु त्वन्तरामृतसूतके। अन्यगेहोदकाचान्ताः सर्वे ते शुचयः स्मृताः॥ एतदाशौचात्पूर्वमपृथक्कृतान्नविषयम्। तत्र शेषमन्नं त्याज्यमित्यर्थः।

ब्राह्मणों के भोजन करते समय मरण या जननाशौचकी प्राप्ति होजाय तो दूसरे घर के जलसे आचमन कर वे सब पवित्र हो जाते हैं। यह आशौचसे पहले पृथक् किये हुए अन्नके विषयमें है। उसमें शेष अन्न (परोसा हुए) का त्याग दे—यह अर्थ है।

पृथक्कृतेषु तु बृहस्पतिराह—विवाहोत्सवयज्ञेषु त्वन्तरामृतसूतके।
पूर्वसङ्कल्पितान्नेषु न दोषः परिकीर्तितः ॥ इति ।

अलग करनेमें तो बृहस्पति ने कहा है कि—विवाह, उत्सव और यज्ञमें तो मध्यमें मृतक या जननाशौच आ जाय तो पूर्वसंकल्पित अन्नोंमें दोष नहीं कहा गया है।

(धर्मार्थविवाहकरणे फलविचारः)

धर्मार्थं विवाहकरणे फलमुक्तं महाभारते—ज्ञात्वा स्ववित्तसामर्थ्यादेकं चोद्वाहयेद् द्विजम् ।
तेनाप्याप्नोति तत्स्थानं शिवभक्तो नरो ध्रुवम् ॥

धर्मार्थविवाह के करनेमें महाभारतमें फल कहा है कि—अपने वित्तकी सामर्थ्यताको जानकर एक ब्राह्मण का भी विवाह करा दे तो इससे भी मनुष्य शिवभक्त उस स्थानको शीघ्र प्राप्त होता है।

अपरार्के दक्षः—मातापितृविहीनं तु संस्कारोद्वाहनादिभिः ।
यः स्थापयति तस्येह पुण्यसंख्या न विद्यते ॥

अपरार्कमें दक्षने कहा है कि—माता और पिता से रहित बालकका उपनयनसंस्कार और विवाह आदि जो करता है उसकी पुण्यसंख्या यहाँपर नहीं होती है।

मदनरत्ने भविष्ये—विवाहादिक्रियाकाले तत्क्रियासिद्धिकारणम् ।
यः प्रयच्छति धर्मज्ञः सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥

मदनरत्नमें भविष्यपुराण का कथन है कि—विवाह आदि क्रियाके समयमें उस क्रिया (विवाह आदि) की सिद्धिके योग्य जो धर्मज्ञ दान देता है वह 'अश्वमेधयज्ञ' का फल प्राप्त करता है।

(विवाहोत्तरकन्यागृहे भोजनविचारः)

कन्यागृहे भोजननिषेधोऽपि तत्रैव—अप्रजायां तु कन्यायां न भुञ्जीत कदाचन ।
दौहित्रस्य मुखं दृष्ट्वा किमर्थमनुशोचति ॥

कन्याके घर भोजन निषेध भी वहींपर कहा है कि—अप्रजावाली कन्याके घरमें भोजन कभी भी न करे (अर्थात्—जिस कन्याके विवाहोत्तर पुत्र न हो उस कन्याके घर पर पिताको भोजन नहीं करना चाहिये।) दौहित्र के मुखको देखकर किसकारणसे विचार करते हैं।

अपरार्के आदित्यपुराणे—विष्णुं जामातरं मन्ये तस्य कोपं न कारयेत् । अप्रजायां तु कन्यायां नाश्नीयात्तस्य वै गृहे ॥ ब्रह्मदेयां न वै कन्यां दत्त्वाऽश्नीयात्कदाचन । अथ भुञ्जीत मोहाच्चेत्पूयाख्ये नरके वसेत् ॥

अपरार्क में आदित्यपुराणका कथन है कि—जामाता (दामाद) को विष्णुस्वरूप मानकर उसके ऊपर क्रोध न करे जिस कन्याके सन्तान न हो ऐसी कन्या के घरमें ही भोजन न करे।

वेदमन्त्रोंसे (ब्राह्मविवाहविधान से) दी हुई कन्या के घर कभी भी भोजन न करे। यदि मोहसे भोजन करता है तो 'पूयाश' नामक नरकमें रहता है।

(मांगल्यकार्येषु नूतनवस्त्रधारणविचारः)

तत्रैव कश्यपः—अहतं यन्त्रनिर्मुक्तं वासः प्रोक्तं स्वयम्भुवा ।
शस्तं तन्माङ्गलिक्येषु तावत्कालं न सर्वदा ॥ यन्त्रनिर्मुक्तं=नूतनम् ।

वहींपर कश्यपने कहा है कि—अहत (नवीन वस्त्र) यन्त्र से निकले हुए वस्त्रको (प्रोक्षणसे शुद्ध) ब्रह्माने मंगल में उतने ही कालतक पवित्र कहा है। सब समयके लिये नहीं पवित्र कहा है। यन्त्रसे निकला हुआ—नवीनवस्त्र।

(विवाहादौ स्त्रिया सह भोजने विचारः)

विवाहमध्ये स्त्रिया सह भोजनेऽपि न दोष इत्याह हेमाद्रौ प्रायश्चित्तकाण्डे गालवः—विवाहकाले यात्रायां पथि चौरसमाकुले । असहायो भवेद्विप्रस्तदा कार्यं द्विजन्मभिः ॥

विवाहके मध्यमें स्त्रीके साथ एकपात्र में भोजन करनेपर भी दोष नहीं होता है ऐसा हेमाद्रिमें प्रायश्चित्त-काण्डमें गालवने कहा है कि-(विवाहके अतिरिक्त दोप होता है 'नाश्नीयात् भार्यया सार्धम्' ऐसा मनुने कहा है। जो कोई कहते हैं कि-ब्राह्मण्या सह योऽश्नीयादुच्छिष्टं वा कदाचन। न तस्य दोषमिच्छन्ति नित्यमेव मनीषिणः। यह अंगिराका वाक्य है। वह विवाहपरक है। इससे—ब्राह्मण्या भार्यया सार्धं क्वचिद् भुञ्जीत वाऽध्वनि। अधोवर्ण्या स्त्रिया सार्धं भुक्त्वा पतति तत्क्षणात्॥ ऐसा कहा है। क्वचित् विवाहेऽध्वनि चेत्यर्थात्) विवाहकाल में यात्राके समय चोरोंसे भरे हुए रास्तेमें यदि असहाय (अकेला) ब्राह्मण हो तब द्विजातिके साथ भोजन करें।

(विवाहभिन्नकाले स्त्रिया सह भोजने प्रायश्चित्तकथनम्)

एकयानसमारोह एकपात्रे च भोजनम्। विवाहे पथि यात्रायां कृत्वा विप्रो न दोषभाक्॥ अन्यथा दोषमाप्नोति पश्चाच्चान्द्रायणं चरेत्॥ मिताक्षरायामप्येवम्।

एक सवारीमें एक साथ चढकर और एकपात्रमें भोजन विवाहकालमें रास्तेमें यात्राके समयमें करनेपर ब्राह्मणको दोप नहीं होता है। अन्यथा दोप को प्राप्त करता है फिर 'चान्द्रायणव्रत' को करे। मिताक्षरामें भी यही कहा है।

(विवाहे नक्षत्रकथनम्)

रत्नमालायाम्—मूलमैत्रमृगरोहिणीकरैः पौष्णमारुतमघोत्तरान्वितैः।
भौमसौरिरविवारवर्जिते पाणिपीडनविधिर्विधीयते॥

मूल, अनुराधा, मृगशिरा, रोहिणी, हस्त, रेवती, स्वाती, मघा, तीनों उत्तरा इन नक्षत्रोंमें, मंगल, शनिवार तथा रविवार से वर्जित पाणिपीडन (विवाह) (मुख्यो विवाहः पूर्वाह्णे मध्याह्ने चोत्तमोत्तमः। निशायां मध्यमः प्रोक्तः अपराह्णे तु गर्हितः॥) विधान कहा है।

(अनिष्टनक्षत्रादौ दानकथनम्)

अत्रानिष्टनक्षत्रादौ दानमुक्तं ज्योतिषे—विपत्तारे गुडं दद्यान्निधने तिलकाञ्चनम्।
प्रत्यरे लवणं दद्याच्छागं दद्यात्त्रिजन्मसु॥

यहाँपर अनिष्टनक्षत्रादिमें ज्योतिषमें दान कहा है कि—विपत्तारा (जन्म या नाम नक्षत्रसे तीसरा नक्षत्र) में गुड, निधनमें (पूर्वोक्तप्रकारसे सातवाँ नक्षत्र) तिल और सुवर्ण, प्रत्यरि (पाँचवा) में निमक और त्रिजन्म (तीनों जन्मतारा) में छाग (बकरी) दे।

चन्द्रे च शङ्खं लवणं च तारे तिथौ विरुद्धे त्वथ तन्दुलांश्च। धान्यं च दद्यात्करणे च वारे योगे विरुद्धे कनकं प्रदेयम्॥

चन्द्रमा के विरुद्ध होनेपर शंख दे। नक्षत्रके विरुद्धमें निमक, तिथिके विरुद्धमें चावल, करण और वारके विपरीत होनेपर तो धान्य और योग के विरुद्ध होने पर तो सुवर्ण दे।

(विवाहे मण्डपादिकथनम्)

विवाहे मण्डपमाह वसिष्ठः—षोडशारत्निकं कुर्याच्चतुर्द्वारोपशोभितम्। मण्डपं तोरणैर्युक्तं तत्र वेदिं प्रकल्पयेत्॥ अष्टहस्तं तु रचयेन्मण्डपं वा त्रिपट्करम्॥

विवाहमण्डप को वसिष्ठने कहा है कि—सोलहहाथके मण्डप का निर्माणकर उसमें चार दरवाजे (चारों दिशाओंमें) बनावे। तोरणों से युक्तकर उसमें वेदी की कल्पना (विवाह में श्रीधरीवेदी बीस कोणवाली) करे। आठ हाथ या अठारह (किसीके मतसे १२ हाथ) का मण्डप बनावे।

(अवशिष्टनक्षत्रेषु तैलहरिद्रालेपनादिकथनम्)

दैवज्ञमनोहरः-चित्रा विशाखा शततारकाश्विनीज्येष्ठाभरण्यौ शिवभाच्चतुष्टयम्।
हित्वा प्रशस्तं फलतैलवेदिका प्रदानकं कण्डनमण्डपादिकम्॥

दैवज्ञमनोहरने कहा है कि—चित्रा, विशाखा, शतभिषा, अश्विनी, ज्येष्ठा, भरणी, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य तथा श्लेषा इन नक्षत्रोंको छोड़कर अवशिष्ट नक्षत्रों में फलदान, तैल, हरिद्रालेपन, वेदी (वेदी रचना), आदि कण्डन (कूटना)—विवाहादिविषयककार्य मण्डपादि निर्माण शुभप्रद है।

हेमाद्रौ व्यासः—कण्डनदलनयवारकमण्डपमृद्वेदिवर्णकाद्यखिलम् ।
तत्सम्बन्धिगतागतमृक्षे वैवाहिके कुर्यात् ॥ यवारकं 'चिकसा' इति प्रसिद्धम् ।

हेमाद्रिमें व्यासने कहा है कि—कण्डन-कूटना, दलन (दलना) यवारक (यवका उबटना) मण्डप, मट्टीकी वेदी, विवाह संबन्धि=कहीं आना जाना ये सब विवाहके नक्षत्रमें करे। यवारक=माने चिकसा यह प्रसिद्ध है।

वैवाहिके तु दिवसे शुभे वाथ तिथौ शुभे । चतुर्थिकं प्रकुर्वीत विधिदृष्टेन कर्मणा ॥

वैवाहिक शुभदिनमें या शुभतिथिमें शास्त्रोक्तविधिद्वारा 'चतुर्थीकर्म' करे।

(विवाहवेदिकाकथनम्)

वेदीमाह नारदः—हस्तोच्छ्रितां चतुर्हस्तैश्चतुरस्रां समन्ततः ।
स्तम्भैश्चतुर्भिः सुश्लक्ष्णां वामभागे तु सद्मनि ॥

समां तथा चतुर्दिक्षु सोपानैरतिशोभिताम् । प्रागुदक्प्रवणारम्भां स्तम्भैर्हंसशुकादिभिः ॥ एवं विधामारुरुक्षेन्मिथुनं साग्निवेदिकाम् ॥ इति ।

वेदिको नारदने कहा है कि—एकहाथ ऊँची, चारोंतरफ से चारहाथ चौडी समचतुरस्र चार रमणीय स्तंभोंसे युक्त घरके बायें भागमें बनावे। ऊपरसे समान हो और चारों दिशाओं में अतिसुन्दर सीढी लगी हों जो पूर्व या उत्तरदिशाकी तरफ झुकी हो, स्तंभोंमें हंस, शुक आदि के चित्र युक्त हों। ऐसी अग्नियुक्त वेदी पर कन्या और वर दोनों चढने की इच्छा करें।

सप्तर्षिमते—मङ्गलेषु च सर्वेषु मण्डपो गृहमानतः । कार्यः षोडशहस्तो वा द्विषट्हस्तो दशावधि ॥ स्तम्भैश्चतुर्भिरेवात्र वेदीमध्ये प्रतिष्ठिता ॥ हस्तो वध्वाः । सोपानं पश्चिमतः उपरिभागे उक्तपरिमाणाङ्कितम् ।

सप्तर्षिमतमें कहा है कि—सब मंगलकार्यों में घरके प्रमाणसे मण्डप का निर्माण करे—सोलहहाथ, बारहहाथ या दश हाथका बनवावे। वेदी के मध्य में चार ही स्तंभ प्रतिष्ठित करे। वधू (कन्या) के हाथ के प्रमाण से सीढी पश्चिमतरफ बनवावे ऊपर के भाग में प्रमाण से भिन्न हो।

(मृदाहरणम्)

अथ मृदाहरणम् । ज्योतिर्निबन्धे नारदः—कर्तव्यं मङ्गलेष्वादौ मङ्गलायाङ्कुरार्पणम् । नवमे सप्तमे वापि पञ्चमे दिवसेऽपि वा ॥ तृतीये बीजनक्षत्रे शुभवारे शुभोदये । सम्यग्गृहाण्यलङ्कृत्य वितानध्वजतोरणैः ॥ सह वादित्रनृत्याद्यैर्गत्वा प्रागुत्तरां दिशम् । तत्र मृत्सिकतां श्लक्ष्णां गृहीत्वा पुनरागतः ॥ मृन्मयेष्वथवा वैणवेषु पात्रेषु योजयेत् । अनेकबीजसंयुक्तां तोयपुष्पोपशोभिताम् ॥

अब मृत्तिका लानेका (ग्रहण) विधान ज्योतिर्निबन्ध में नारदने कहा है कि—मंगलकार्यों के आदिमें मंगलकार्य के लिए अङ्कुरार्पण (यवबोने की विधि) करे। नवें, सातवें, पाँचवे या तीसरे दिनमें या बीजके नक्षत्र में शुभवार और शुभ उदयमें चंदवा, ध्वजा, तोरण आदि से घरोंको अच्छीप्रकार से अलंकृत करके बाजे तथा नृत्यादियों के साथ पूर्वोत्तरदिशा (ईशानकोण) में जाकर मट्टी की रेती चिकनी का ग्रहण कर फिर घर आ जाय। उसे मट्टी के या बाँस के पात्रों में रख दे। उसमें अनेकतरह के बीजों से युक्त और जल-पुष्पसे शोभित करे।

(अङ्कुरार्पणविचारः)

शौनकः—आधानं गर्भसंस्कारं जातकर्म च नाम च । हित्वान्यत्र विधातव्यं मङ्गलेऽङ्कुरवापनम् ॥

शौनकने कहा है कि—आधान, गर्भसंस्कार, जातकर्म और नामकरण को त्यागकर अन्यत्र मङ्गलकार्य में अंकुरार्पण का विधान करना चाहिये।

बृहस्पतिः—आत्यन्तिकेषु कार्येषु कार्यं सद्योऽङ्कुरार्पणम् । अत्रैव वाग्दानं हरिद्रावन्दनञ्च कार्यम् ।

बृहस्पतिने कहा है कि—आवश्यककार्यों में उसीसमय अङ्कुरार्पण करे। वहीं पर ही वाग्दान और हरिद्रावन्दन (हलदी की पूजा) करनी चाहिये।

(कन्यावरणकथनम्)

ज्योतिःप्रकाशे-चतुर्थो मण्डपः श्रेष्ठः सप्तमः पञ्चमस्तथा। नवमैकादशौ श्रेष्ठौ नेष्टौ षष्ठतृतीयकौ। विवाहभे स्वोदये वा कन्यावरणमाचरेत् ॥

ज्योतिःप्रकाशमें कहा है कि—(आठहाथ से बीसहाथ के मण्डप श्रेष्ठ हैं। अर्थात्—आठहाथ, दशहाथ, बारहहाथ, चौदहहाथ सोलहहाथ, अठारहहाथ, बीसहाथ, पचीसहाथ, पचासहाथ, सौहाथ तथा हजारहाथका मण्डप इसप्रकार ग्यारह मण्डप होते हैं। उनमें चौथा, सातवाँ, पाँचवा, नवाँ और ग्यारहवाँ श्रेष्ठ होता है। (अर्थात्—चौदह, बीस, सोलह, पचास और हजार हाथ का मण्डप) छठा (अठारहहाथ) तथा तीसरा (बारहहाथ) शुभप्रद नहीं होता है। विवाहनक्षत्रमें या उसके उदय में कन्याका वरण करे।

(वरस्य वरणकथनम्)

वरस्यापि वरणमाह चण्डेश्वरः-उपवीतं फलं पुष्पं वासांसि विविधानि च।
देयं वराय वरणे कन्याभ्रात्रा द्विजेन वा ॥ इति।

वरका भी वरण चण्डेश्वरने कहा है कि—यज्ञोपवीत, फल, पुष्प, अनेकप्रकार के वस्त्र, वरके वरण में कन्या का भाई या ब्राह्मण दे।

(वाग्दानोत्तरं वरमरणे विचारः)

वाग्दानोत्तरं वरमरणेऽपरार्के स्मृतिचन्द्रिकायां वसिष्ठः—अद्भिर्वाचा च दत्तायां म्रियेतोर्ध्वं वरो यदि। न च मन्त्रोपनीता स्यात्कुमारी पितुरेव सा ॥

वाग्दान करनेके बाद वरके मरने पर अपरार्कस्मृतिचन्द्रिकामें वसिष्ठने कहा है कि—जल या वाणी द्वारा वाग्दान करने पर वर की यदि मृत्यु हो जाय तो पाणिग्रहण आदि के विना वाणी या जलदान से भी भार्यात्व का उत्पादक न होनेसे वह पिताकी कुमारी है। अर्थात्—दूसरे को दी जा सकती है। (नोदकेन न वाचा कन्यायाः पतिरिष्यते। पाणिग्रहणसंस्कारात्पतित्वं सप्तमे पदे ॥ सप्तपदीपरिक्रमणात्प्राक्वरमरणे विधवात्वं नास्ति)।

(उद्वाहितकन्यायाः अप्राप्तमैथुनादौ विचारः)

यत्तु नारदः-उद्वाहितापि सा कन्या न चेत्सम्प्राप्तमैथुना।
पुनःसंस्कारमर्हेत यथा कन्या तथैव सा ॥ इति।

जो नारदने कहा है कि—विवाहिता कन्या (जिसका विवाह हो चुका है) का यदि मैथुन (पतिके साथ विषयवासनासंपर्क) न हुआ हो तो उसका फिर से संस्कार करने योग्य है क्योंकि वह कन्या पहले जैसी ही है।

(वरो यद्यन्यजातीयश्चेत्)

यच्च कात्यायनः-वरो यद्यन्यजातीयः पतितः क्लीब एव च। विकर्मस्थः सगोत्रो वा दासो दीर्घामयोऽपि वा ॥ ऊढापि देया सान्यस्मै सहावरणभूषणा ॥ इति। इदं कलौ निषिद्धम्।

और जो कात्यायनने कहा है कि—यदि वर अन्य जातीयका हो, पतित हो, नपुंसक हो, खराबकर्मों को करनेवाला हो, अपने गोत्रका हो, शूद्र हो और दीर्घरोगी हो तो विवाहित कन्याको (सिद्धान्त तो यह है कि-अपिशब्दसे वाग्दत्त कन्या का ही दूसरे के लिए दान प्राप्त होता है) वह दूसरे को आवरण-भूषणादियुक्त कर दे दे। यह (विवाहितकन्याका ऐसादान) कलि में निषिद्ध है।

देवरेण सुतोत्पत्तिर्दत्ता कन्या न दीयते। इत्यादित्यपुराणे कलौ निषेधात्। दत्ताशब्द ऊढापरः

'ऊढायाः पुनरुद्वाहम्' इति हेमाद्रावुक्तेः। अत एव सगोत्रासपिण्डादिविवाहेऽपि —भोगतस्तां परित्यज्य पालयेज्जननीमिव। इत्युक्तम्।

देवरसे (जो अपुत्र हो गुरुकी आज्ञासे) पुत्रोत्पत्ति और विवाहित कन्याका फिर से देना यह आदित्यपुराणमें है वह कलियुग में निषेध है।

दत्ताशब्द तो विवाहितकन्यापरक है। विवाहितकन्याका फिर से विवाह हेमाद्रिमें कहा है। इसलिए सगोत्र असपिण्ड आदिके विवाहमें भी—कहा है कि—उस कन्या को भोग (मैथुन) से त्यागकर माताकी तरह पालन करे। यों कहा है।

(वरस्य देशान्तरगमने विचारः)

देशान्तरगमने तु कात्यायनः—वरयित्वा तु यः कश्चित्प्रणश्येत्पुरुषो यदा।
ऋत्वागमांस्त्रीनतीत्य कन्यान्यं वरयेद्वरम्॥

देशान्तरगमनमें तो कात्यायन ने कहा है कि—वरणकर कन्या को जो कोई पुरुष यदि मर जाय या देशान्तरमें चला जाय प्रतीक्षा करनेवाले की सारी क्रियायें व्यर्थ हो जांय) तो तीन आनेवाली ऋतुओं को (रजोदर्शन) अतिक्रमण कर (अर्थात्—छ महिनेवाद) कन्या अन्यवर का वरण करे।

अपरार्के नारदोऽपि—प्रतिगृह्य तु यः कन्यां वरो देशान्तरं व्रजेत्।
त्रीनृतून् समतिक्रम्य कन्यान्यं वरयेद्वरम्॥

अपरार्कमें नारदने भी कहा है कि—जो वाग्दान से कन्या को अंगीकार कर शुक्ल को देकर मर गया हो या देशान्तरमें चला गया हो तो तीन ऋतुओं को अतिक्रमण कर कन्या अन्य वरका वरण करे।

(शुल्कदाने महत्वपूर्णविचारः)

शुक्लदाने तु मनुवसिष्ठौ—(म० अ० ९।९७) कन्यायां दत्तशुल्कायां म्रियते यदि शुल्कदः।
देवराय प्रदातव्या यदि कन्यानुमन्यते॥

शुक्लदानमें मनु और वसिष्ठने तो कहा है कि—कन्याका शुक्ल देनेपर यदि शुक्लदेनेवाला मर जाय तो उसी कन्या को देवरको दे दे। यदि कन्या देवरका अनुमोदन करे तो दे दे यदि न स्वीकार करे तो उसे न दें अन्य को दे।

चन्द्रिकायां कात्यायनः—प्रदाय शुल्कं गच्छेद्यः कन्यायाः स्त्रीधनं तथा।
धार्या सा वर्षमेकं तु देयाऽन्यस्मै विधानतः॥

चन्द्रिकामें कात्यायनने कहा है कि—जो कोई कन्याको शुक्ल या स्त्री धन देकर चला जाय तो उसे एक वर्ष तक धारण कर बाद में एक दूसरे को विधान से दे दे।

अनेकेभ्यो हि दत्तायामनूढायां तु तत्र वै। पूर्वागतश्च[१] सर्वेषां लभेताद्यवरस्तु ताम्॥

जो अविवाहित निर्दोष कन्याको अनेकों को वाणीमात्रसे देने पर उस कन्या को उन सवों में से पहले आनेवाले वर को दे दे।

पश्चाद्वरेण यद्दत्तं तस्याः प्रतिलभेत सः। अथागच्छेन्नवोढायां दत्तं पूर्ववरो हरेत्॥

पीछे वरने जो शुल्क दिया हो उसे कन्या वापस करे। इसके वाद नवविवाहित कन्या से दिये हुए शुक्ल को प्राप्त करे कन्या को न करे।

याज्ञवल्क्यः—(आचारा० ६५) सकृत्प्रदीयते कन्या हरंस्तां चौरदण्डभाक्।
दत्तामपि हरेत्पूर्वाच्छ्रेयांश्चेद्वर आव्रजेत्॥ पूर्वस्य दोषसत्वे इदमिति विज्ञानेश्वरः।

याज्ञवल्क्य ने कहा है कि—कन्यादान एकवार किया जाता है। उस कन्या के हरनेपर चोर दण्ड के

१—पुरागतः। पूर्वागत इति वा पाठः। अन्येन पाणिग्रहणात् पूर्वमागत इत्यर्थः। परागत इति वा पाठेऽप्यमेवार्थः।

ईशानकोण

पूर्व

अग्निकोण

विष्णु

शिव

(देवीपञ्चायतन)

उत्तर

दक्षिण

सूर्य

गणेश

वायव्यकोण

पश्चिम

नर्ऋत्यकोण

तुल्य होता है। यदि प्रथम वरसे अन्य वर श्रेष्ठ आ जाय तो दी हुई कन्या को हरले। विज्ञानेश्वर ने कहा है कि—पहले वर में दोष हो तो पूर्वोक्त कार्य करे।

सम्बन्धतत्त्वे वसिष्ठः—कुलशीलविहीनस्य पश्चाद्धि पतितस्य च। अपस्मारिविधर्मस्य रोगिणां वेषधारिणाम्॥ दत्तामपि हरेत्कन्यां सगोत्रोढां तथैव च॥

सम्बन्धतत्त्वमें वसिष्ठने कहा है कि—कुल और शीलतासे हीन, बादमें पतित हो जानेपर, मृगीसे युक्त, विधर्ममतानुयायी, रोगी और वेषधारी ऐसे वर को दी हुई कन्याको भी छीन ले और सगोत्रकन्या को भी हर ले।

मनुः—षण्ढान्धबधिरादीनां विवाहोऽस्ति यथोचितम्। विवाहासंभवे तेषां कनिष्ठो विवहेत्तदा॥

मनुने कहा है कि—नपुंसक, अन्धा, बधिर आदियोंका यथोचित विवाह होता है विवाह के असंभवमें तो उनके छोटे भाई के साथ विवाह करे।

भ्रितृव्यपुत्रे सापत्ने परदारसुतेषु च। विवाहाधानयज्ञादौ परिवेदो न दूषणम्॥ अन्यद्वक्तव्यं विस्तरभीतेर्नोच्यत इति दिक्।

चाचाके पुत्रमें सापत्न (सौत) पुत्रोंमें और दूसरे की स्त्री के पुत्रों में विवाह, आधान और यज्ञ आदिमें परिवेद (बड़े भाई के रहते छोटे भाई का विवाह होना) दूषण नहीं होता है अन्य कुछ कहना चाहता हूँ पर विस्तार के भयसे नहीं कहता हूँ।

(नान्दीश्राद्धे विशेषकथनम्)

अत्र नान्दीश्राद्धे विशेषं तदधिकारिविशेषं चाग्रे वक्ष्यामः। इदं चाद्यविवाहे पिता कुर्यात्। द्वितीयादौ वर एव कुर्यात्।

नान्दीश्राद्धं पिता कुर्यादाद्ये पाणिग्रहे पुनः। अत ऊर्ध्वं प्रकुर्वीत स्वयमेव तु नान्दिकम्॥ इति स्मृतेः।

यहाँपर नान्दीश्राद्धमें और उसके अधिकारियों को विशेष आगे कहेंगे। इस श्राद्धको पहले विवाह में पिता करे। द्वितीयविवाहमें वर ही करे। स्मृतिमें कहा है कि—आद्यपाणिग्रहण में पिता नान्दीश्राद्ध करे। इसके बाद स्वयं वर ही नान्दीश्राद्ध करे।

त्रिकाण्डमण्डनोऽपि—पित्रोस्तु जीवतोः कुर्यात्पुनः पाणिग्रहं यदा।
पितुर्नान्दीमुखं श्राद्धं नोक्तं तस्य मनीषिभिः॥

त्रिकाण्डमण्डनने भी कहा है कि—पिता और माताके जीवित रहनेपर यदि वरका दूसरा विवाह हो तो पिताको 'नान्दीमुखश्राद्ध' विद्वानों ने करना नहीं कहा है।

रेणुकारिका—उक्ते काले विवाहाङ्गं कुर्यान्नान्दीमुखं पिता।
देशान्तरे विवाहश्चेत्तत्र गत्वा भवेदिदम्॥

रेणुकारिका में कहा है कि—शास्त्रीयकथनानुसार पिता विवाह का अंग नान्दीश्राद्ध को करे। यदि विवाह देशान्तर में हो तो वहाँ जाकर इस नान्दीश्राद्ध को करे।

(लग्नघटीस्थापनविधिः)

लग्नघटीस्थापनमाह नारदः—षडङ्गुलमितोत्सेधं द्वादशाङ्गुलमायतम्। कुर्यात्पातालवत्ताम्रपात्रं तद्दशभिः पलैः॥ ताम्रपात्रे जलैः पूर्णे मृत्पात्रे वाथवा शुभे। मण्डलार्द्धोदयं वीक्ष्य रवेस्तत्र विनिक्षिपेत्॥

लग्नघटीस्थापन नारदने कहा है कि—छ अंगुल गहरी, बारह अंगुल चौड़ी, दशपलके तांबेके पात्रमें पाताल (समतल) की तरह करे। उस तांबेके पात्रमें या मृत्तिकाके शुभपात्रमें जल भर दे। सूर्यका मण्डल आधा उदय हो तो तब उसपात्र में देखकर उसमें सूर्य को छोड दे।

तत्र मन्त्रः–मुख्यं त्वमसि यन्त्राणां ब्रह्मणा निर्मितं पुरा।
भवभावाय दंपत्योः कालसाधनकारणम् ॥ इति।

उसमें मन्त्र है कि—आप यन्त्रों में मुख्य हो। पहले ब्रह्मा ने आपका निर्माण किया। वर और कन्या के शुभाशुभकी जानकारी के लिए समय (लग्न) के साधन का कारण आप हो।

(स्नातकादीनां मधुपर्कविचारः)

वरस्य मधुपर्कमाह याज्ञवल्क्यः–(आचाराध्याय श्लो० ११०) प्रतिसंवत्सरं त्वर्घ्याः स्नातकाचार्यपार्थिवाः। प्रियो विवाह्यश्च तथा यज्ञं प्रत्यृत्विजः पुनः ॥

वरका मधुपर्क याज्ञवल्क्य ने कहा है कि—हर साल ये पूजनीय होते हैं—स्नातक, (ब्रह्मचारी) आचार्य, (उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेत् द्विजः। सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥) राजा, प्रिय, जिसका विवाह होता है और यज्ञ में हर समय ऋत्विज (अग्न्याधेयं पाकयज्ञानग्निष्टोमादिकान् मखान्। यः करोति वृतो यस्य स तस्य र्त्विगिहोच्यते)।

(अत्र मधुपर्के विशेषः)

अत्र विशेषो गृह्यपरिशिष्टे–वरस्य या भवेच्छाखा तच्छाखागृह्यचोदितः। मधुपर्कः प्रदातव्यो ह्यन्यशाखेऽपि दातरि ॥ अत्र वरदातृशब्दौ ऋत्विगाद्युपलक्षणम्। तदाहुः–‘अर्चशाखया मधुपर्कः’ इति। ‘अर्च्यस्य यच्छाखीयं कर्म तच्छाखया मधुपर्कः’ इति याज्ञिकाः। जयन्तस्तु–वरणवत्सर्वत्र यजमानशाखयैव मधुपर्क इत्याह। तत्तु नाद्रियन्ते वृद्धाः।

यहाँ पर विशेष गृह्यपरिशिष्ट में कहा है कि—वर की जो शाखा हो उसी शाखा को गृह्यसूत्रमें कहा है उसी के अनुसार मधुपर्क देना चाहिये। उसीतरह ही अन्य शाखा में भी दाता को देना चाहिये।

यहाँ पर वर और दातृ शब्द ऋत्विग् आदि का उपलक्षण है। उसी बात को कहा है कि—अर्च्य शाखा से मधुपर्क करे। पूज्यका जो शाखीयकर्म है उस शाखा से मधुपर्क करे—यह याज्ञिक कहते हैं। जयन्त तो कहते हैं कि—वरणवत् सर्वत्र यजमान की शाखा से ही मधुपर्क करे—यों कहा है। उसे वृद्धों ने आदर नहीं किया है।

(विष्टरादिप्रकारकथनम्)

अत्र पञ्चाशता भवेद् ब्रह्मा तदर्द्धेन तु विष्टरः[1]। इत्यादि गृह्यपरिशिष्टादेर्विष्टरादिलक्षणं मधुपर्कादिविधिश्च स्वगृह्यादेर्ज्ञेयः।

यहाँ पर पचास कुशाका ब्रह्मा होता है और उसके आधे का अर्थात् पचीस कुशा का विष्टर होता है। इत्यादि गृह्यपरिशिष्टादि में विष्टर आदिका लक्षण और मधुपर्क आदि विधि को अपने गृह्यसूत्रादि के द्वारा जानना [1]चाहिये।

(कन्यादाने प्रपितामहादीनामुच्चारणक्रमकथनम्)

कन्यादाने प्रपितामहपूर्वकमित्युक्तं स्मृत्यर्थसारे–नान्दीमुखे विवाहे च प्रपितामहपूर्वकम्। नाम संकीर्तयेद्विद्वानन्यत्र पितृपूर्वकम् ॥ नान्दीमुखे इति बह्वृचाद्यतिरिक्तविषयम्। गृह्यपरिशिष्टे पित्राद्यानुलोम्याम्नानात्।

कन्यादानमें प्रपितामहपूर्वक कहे ऐसा स्मृत्यर्थसार में कहा है कि—विद्वान् नान्दीमुख में और विवाह में प्रपितामहपूर्वक नाम का कथन करे। अन्यत्र तो पितृपूर्वक कहें। नान्दीमुख में—बह्वृचशाखा के अतिरिक्त (भिन्न) विषयक है। गृह्यपरिशिष्ट में पिता आदि का अनुलोम कहा है।

(कन्यादाने विचारः)

व्यासः–भुक्त्वा समुद्वहेत्कन्यां सावित्रीग्रहणं तथा। उपोषितः सुतां दद्यादर्चिताय द्विजाय तु ॥ भुक्त्वेति मधुपर्के वैधभोजनपरम्।

व्यासने कहा है कि—कन्या के साथ विवाह तथा सावित्री (गायत्री) ग्रहण भोजन करके करे तथा उपवास कर पूजित द्विजके लिए कन्या को दे। भोजनकर यह शास्त्रीय भोजनपरक है (भोजनानन्तर कल्पना

१—सर्वेषु धर्मकार्येषु पत्नी दक्षिणतः स्थिता। विप्रपादक्षालने च अभिषेके च वामतः ॥

में प्रमाण नहीं हैं। उचित तो यह है कि भोजन कर करे—यह अर्थ है। इससे लौकिक भोजन का और अभोजन का लाभ है।)

गृह्यपरिशिष्टे—कन्यां वरयमाणानामेष धर्मो विधीयते। प्रत्यङ्मुखा वरयन्ति प्रतिगृह्णन्ति प्राङ्मुखाः।

गृह्यपरिशिष्ट में कहा है कि-कन्याके वरण करनेवालों का यह धर्म है कि प्रत्यङ्मुख (पश्चिमाभिमुख) वरण करें और ग्रहण पूर्वमुख होकर करें।

मदनरत्ने हेमाद्रौ च ऋष्यशृङ्गः—वरगोत्रं समुच्चार्य प्रपितामहपूर्वकम् ।
नाम सङ्कीर्तयेद्विद्वान् कन्यायाश्चैवमेव हि ॥

मदनरत्न में ऋष्यशृङ्ग ने कहा है कि—प्रपितामहपूर्वक वर के गोत्र का अच्छीप्रकार उच्चारण करे वैसे ही कन्याका भी नाम और गोत्र का विद्वान् उच्चारण करें।

तिष्ठेत्पूर्वमुखो दाता वरः प्रत्यङ्मुखो भवेत् । मधुपर्कार्चितायैनां तस्मै दद्यात्सदक्षिणाम् ॥

इस कन्या को दक्षिणा के सहित मधुपर्क से पूजित वर को दे। देनेवाला पूर्वाभिमुख हो और वर पश्चिमाभिमुख हो।

उदपात्रं ततो गृह्य मन्त्रेणानेन दापयेत् । गौरीं कन्यामिमां विप्र यथाशक्तिविभूषिताम् ॥
गोत्राय शर्मणे तुभ्यं दत्तां विप्र समाश्रय । भूमिं गां चैव दासीं च वासांसि च स्वशक्तितः ॥
महिषीं वाजिनश्चैव दद्यात्स्वर्णमणीनपि । ततः स्वगृह्यविधिना होमाद्यं कर्म कारयेत् ॥
यथाचारं विधेयानि माङ्गल्यकुतुकानि च ॥ एतत्कन्यादानं त्रिः कार्यमिति शौनकः ।

जलपात्रको ग्रहण कर इस मन्त्र से दे। यथाशक्तिविभूषित (अलङ्कृत) इस गौरी कन्या को हे विप्र, अमुक गोत्र और अमुक शर्मा वाले आपके लिए दी हुई कन्या को अपना आश्रय (स्थान) दो।
अपनी शक्ति के अनुसार भूमि, गौ, दासी, वस्त्र, भैस, घोड़ा तथा सोनेकी मणि को भी दे। तदनन्तर अपने गृह्यसूत्रके अनुसार होम आदि करावे। कुलपरंपराद्वारा मङ्गल तथा क्रीडा आदि करे। इस कन्यादान को तीनबार कहे—उच्चारण करे—ऐसा शौनक ने कहा है।

(गृहप्रवेशनीयहोमे विशेषकथनम्)

गृहप्रवेशनीयहोमे विशेषमाहाश्वलायनः—अर्धरात्रे व्यतीते तु परेद्युः प्रातरेव हि । गृहप्रवेशनीयः स्यादिति यज्ञविदो विदुः ॥ इति ।

गृहप्रवेशनीयहोम में विशेष आश्वलायन ने कहा है कि—आधीरात के व्यतीत होने पर दूसरे दिन प्रातःकाल ही गृहप्रवेशनीयहवन करावे यह यज्ञवेत्ता कहते हैं।

(औपासनहोमे विशेषः)

औपासनहोमे विशेषमाह शौनकः—यदि रात्रौ विवाहाग्निरुत्पन्नः स्यात्तथा सति ।
उपक्रम्योत्तरस्याह्नः सायं परिचरेदमुम् ॥ यदि रात्रौ नवनाडीमध्येऽग्न्युत्पत्तिस्तदा तदैव होमारम्भः, तदुत्तरं चेत्परदिने सायमारम्भ इति सुदर्शनभाष्ये उक्तम् ।

औपासनहोम में विशेष शौनक ने कहा है कि—यदि विवाह की अग्नि रात्रि में उत्पन्न हो तो उसका उपक्रम्य (आरंभ कर) कर उत्तर—दूसरे दिन के सायंकाल में उसी अग्नि में करे।
यदि रातमें नौ नाड़ी (प्रातर्होमे सङ्गवान्तः काले त्वनुदितेऽथ वा। सायमस्तमिते होमः कालस्तु नवनाडिकाः ॥) के मध्य में अग्नि की उत्पत्ति हो तो उसी में ही हवन का प्रारम्भ करे। यदि दूसरे दिन हो तो सायंकाल में आरंभ करे—यह सुदर्शनभाष्य में कहा है।

(देवकोत्थापनकथनम्)

अथ देवकोत्थापनम्—समे च दिवसे कुर्याद् देवकोत्थापनं बुधः ।
षष्ठं च विषमं नेष्टं मुक्त्वा पञ्चमसप्तमौ ॥

अब देवताका उत्थापन कहा है कि—विद्वान् को चाहिये कि—समदिनमें देव का उत्थापन (विसर्जन) करे उसमें पांचवे और सातवें दिन को त्यागकर छठा और विषमदिन इष्ट नहीं है।

(विवाहोत्तरं निषेधादिकथनम्)

निर्णयदीपे गार्ग्यः—नान्दीश्राद्धे कृते पश्चाद्यावन्मातृविसर्जनम् । दर्शश्राद्धं क्षयश्राद्धं स्नानं शीतोदकेन च ॥ अपसव्यं स्वधाकारं नित्यश्राद्धं तथैव च । ब्रह्मयज्ञं चाध्ययनं नदीसीमातिलङ्घनम् ॥
उपवासव्रतं चैव श्राद्धभोजनमेव च । नैव कुर्युः सपिण्डाश्च मण्डपोद्वासनावधि ॥

निर्णयदीप में गार्ग्य ने कहा है कि—नान्दीश्राद्ध करने पर जब तक मातृविसर्जन नहीं होता है—तब तक दर्शश्राद्ध, क्षयश्राद्ध, शीतोदक जलसे स्नान, अपसव्य, स्वधाकार, (पितृयज्ञ), नित्यश्राद्ध, ब्रह्मयज्ञ, अध्ययन, नदी और सीमा का अतिलंघन, उपवास, व्रत और श्राद्धभोजन सपिण्ड मण्डप के विसर्जन तक न करें।

(विवाहादौ स्पृष्टास्पृष्ट विचारः)

बृहस्पतिः—तीर्थे विवाहे यात्रायां सङ्ग्रामे देशविप्लवे। नगरग्रामदाहे च स्पृष्टास्पृष्टं न दुष्यति॥

बृहस्पति ने कहा है कि—तीर्थ में, विवाह में, यात्रा में, संग्राम में, देशविप्लव में, नगर और गाँव के दाह में स्पर्शास्पर्श में दोष नहीं होता है।

(मङ्गलोत्तरं स्नानादिविचारः)

योगियाज्ञवल्क्यः—न स्नायादुत्सवेऽतीते मङ्गलं विनिवर्त्य च।
अनुव्रज्य सुहृद्बन्धूनर्चयित्वेष्टदेवताम्॥

योगीयाज्ञवल्क्य ने कहा है कि—उत्सव के व्यतीत होनेपर, मंगलकार्य को वदलकर और अर्चन के विना इष्ट देवता को छोड़कर प्रिय वान्धवों के साथ स्नान न करे।

ज्योतिषे—स्नानं सचैलं तिलमिश्रकर्म प्रेतानुयानं कलशप्रदानम्।
अपूर्वतीर्थामरदर्शनं च विवर्जयेन्मङ्गलतोऽब्दमेकम्॥

ज्योतिष में कहा है कि—एकसाल तक—सचैल स्नान, तिलमिश्रित कार्य, प्रेत के साथ श्मशान गमन, श्राद्धीयकलश आदि का दान, जिस तीर्थ में कभी गये न हों वहाँ पर न जाय और देवदर्शन ये सब मंगल-कार्य के होने पर न करे।

मासषट्कं विवाहादौ व्रतप्रारम्भणेऽपि च। जीर्णभाण्डादि न त्याज्यं गृहसंमार्जनं तथा॥

विवाह आदि में और व्रत के आरम्भ में छ महिने तक जीर्ण (पुराने वर्तन) भाण्ड आदि तथा घर की झाड़ू का त्याग न करे।

ऊर्ध्वं विवाहात्पुत्रस्य तथा च व्रतबन्धनात्। आत्मनो मुण्डनं नैव वर्षं वर्षार्द्धमेव च॥

पुत्रके विवाह होने के वाद एकसाल तक और यज्ञोपवीतसंस्कार होने के वाद छ महिने तक अपना मुण्डन नहीं कराना चाहिये।

अभ्यङ्गे सूतके चैव विवाहे पुत्रजन्मनि। माङ्गल्येषु च सर्वेषु न धार्यं गोपिचन्दनम्॥

उबटन में, सूतक में (मरणाशौच में), विवाह में और पुत्रजन्म में सब मांगलिक कार्यों में गोपीचन्दन का धारण न करे।

ज्योतिर्निबन्धे—उद्वाहात्प्रथमे शुचौ यदि वसेद्भर्तुर्गृहे कन्यका। हन्यात्तज्जननीं क्षये ज्येष्ठे पतिं ज्येष्ठकम्। पौषे च श्वशुरं पतिं च मलिने चैत्रे स्वपित्रालये तिष्ठन्ती पितरं निहन्ति न भयं तेषामभावे भवेत्॥

ज्योतिर्निबन्ध में कहा है कि—विवाह होने के वाद पहले आषाढ महिने में यदि कन्या अपने पति के घर में निवास करती है तो अपने पति की माता का तथा अपने निजीशरीर को क्षय (नष्ट) करती है। ज्येष्ठ महिने में अपने पति के ज्येष्ठ भाई का, पौष में श्वसुर का और मलमास में पति का नाश करती है चैत्र में विवाहोन्तर अपने पिता के घर में रहे तो पिता का नाश करती है। उन पूर्वोक्त महिने न हो तो किसी को भय नही होता है।

(विवाहात्प्रथमे पौषादिमासे विवाहितकन्यायाः विचारः)

निबन्धे—विवाहात्प्रथमे पौषे आषाढे चाधिमासके। न सा भर्तुर्गृहे तिष्ठेच्चैत्रे पितृगृहे तथा॥

निबन्ध में कहा है कि—विवाह होने के वाद प्रथम (पहले साल में) पौष, आषाढ तथा अधिकमास में कन्या पति के घर में और चैत्र महिने में पिता के घर पर न रहे।

(विवाहोत्तरकाले पिण्डदानादिविचारः)

हेमाद्रौ स्मृत्यन्तरे—विवाहव्रतचूडासु वर्षमर्द्धं तदर्द्धकम्। पिण्डदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम्॥

हेमाद्रि में स्मृत्यन्तर का कथन है कि—विवाह होने के बाद एक साल, यज्ञोपवीत-व्रत होने के बाद छ मास और चूडाकरणसंस्कार के बाद तीन मास पिण्डदान, मृत्तिकास्नान तथा तिलतर्पण (उपरागे पितुःश्राद्धे पातेऽमायां च सङ्क्रमे। निषेधेऽपि हि सर्वत्र तिलैस्तर्पणमाचरेत्॥ तीर्थे तिथिविशेषे च गयायां प्रेतपक्षके। निषिद्धेऽपि दिने कुर्यात्तिलैस्तर्पणमाचरेत्॥) न करे।

(तथा अर्धं पूर्ववत्। सपिण्डा नैव कुर्वीरन्नद्भिः स्नानमृतुत्रये। तीर्थे संवत्सरे प्रेते पितृयज्ञे महालये। कृतोद्वाहोऽपि कुर्वीत पिण्डनिर्वपणं सदा।)

(और आधाश्लोक तो पहलेकी तरह है। सपिण्डगण तीन ऋतु तक स्नान जलसे नहीं करते हैं—तीर्थ में, एकसाल प्रेत होने पर, पितृयज्ञ में और महालय में विवाह करने पर भी पिण्डदान सदा करते हैं।)

(वधूप्रवेशकथनम्)

अथ वधूप्रवेशः। जयतुङ्गे—मार्गशीर्षे तथा माघे माधवे ज्येष्ठसंज्ञके।
सुप्रशस्ते भवेद्वेश्मप्रवेशो नवयोषिताम्॥

अब वधूप्रवेश कहते हैं। जयतुंग में कहा है कि—मार्गशीर्ष, माघ, वैशाख तथा ज्येष्ठमास में और अच्छे दिन में नवीन स्त्रियों का गृहप्रवेश होता है।

नारदः—आरभ्योद्वाहदिवसात् षष्ठे वाऽप्यष्टमे दिने। वधूप्रवेशः संपत्त्यै दशमेऽथ समे दिने॥

नारद ने कहा है कि—विवाहदिन से आरम्भ कर छठे, आठवे, दशवें या समदिन में वधूप्रवेश करे तो सम्पत्ति प्राप्त होती है।

सङ्ग्रहे—विवाहमारभ्य वधूप्रवेशो युग्मे तिथौ षोडशवासरान्तात्।
ऊर्ध्वं ततोऽब्दे युजि पञ्चमान्तादतः परस्तान्नियमो न चास्ति॥

संग्रह में कहा है कि—विवाह दिन से प्रारम्भ कर सोलहदिन तक युग्मतिथि में वधूप्रवेश करे। इसके बाद पाँचसाल तक विषम वर्ष में करे। उसके बाद नियम नहीं है।

नारदः—समे वर्षे समे मासे यदि नारी गृहं व्रजेत्। आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी मरणं व्रजेत्॥

नारद ने कहा है कि—समसाल में, सममहिने में यदि स्त्री घर में प्रवेश करे तो वह पति की आयु को हरती है और वह नारी मरणावस्था को प्राप्त हो जाती है।

प्रयोगरत्ने तु—वधूप्रवेशः प्रथमे तृतीये शुभप्रदः पञ्चमकेऽथ वाह्नि। द्वितीयके वाथ चतुर्थके वा षष्ठे वियोगामयदुःखदः स्यात्॥ इत्युक्तं, तत्र मूलं चिन्त्यम्।

प्रयोगरत्नमें तो कहा है कि-प्रथम, तृतीय तथा पाँचवेदिन वधूप्रवेश शुभप्रद होता है। दूसरे, चौथे, और छठे दिन वियोग, रोग तथा दुःखको देनेवाला होता है। ऐसा कहा है। उसमें मूल चिन्तनीय (विचारणीय) है।

वृद्धवसिष्ठोऽपि—षष्ठाष्टमे वा दशमे दिने वा विवाहमारभ्य वधूप्रवेशः।
पञ्चाङ्गसंशुद्धदिनं विनापि विधावसद्गोचरगेऽपि कार्यः॥

वृद्धवसिष्ठ ने भी कहा है कि—विवाह दिन से प्रारम्भ कर छठे, आठवे और दशवे दिन पंचांग दिन की शुद्धि के बिना भी तथा चन्द्रमा के निषिद्ध गोचर होने पर भी करे।

लल्लः—स्वभवनपुरप्रवेशे देशानां विप्लवे तथोद्वाहे। नववध्वा गृहगमने प्रतिशुक्रविचारणा नास्ति॥

लल्ल ने कहा है कि—अपने भवन (पित्र्ये गृहे चेत्कुचपुष्पसंभवस्तदा न दोषः प्रतिशुक्रसंभवः। यावच्चन्द्रः पूषभात्कृत्तिकाद्ये तावच्छुक्रोऽन्धो न दुष्टोऽग्रदक्ष॥) और नगर के प्रवेश में, देशों के विप्लव में, विवाह में और नूतनवधूके गृहप्रवेश में संमुख शुक्र का विचार नहीं होता है।

माण्डव्यः—नित्ययाने गृहे जीर्णे प्राशनान्तेषु सप्तसु। वधूप्रवेशे माङ्गल्ये न मौढ्यं गुरुशुक्रयोः॥

माण्डव्य ने कहा है कि—प्रतिदिन सवारी के गमन में, जीर्णघर में, अन्नप्राशनान्त (गर्भाधान,

पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, निष्क्रमण, नामकरण और अन्नप्राशन) सात कार्यों में, मांगलिक वधूप्रवेश में बृहस्पति तथा शुक्र के अस्त का विचार न करे।

ज्योतिःप्रकाशे—वामे शुक्रे नवोढायाः सुखं हानिश्च दक्षिणे।
धनं धान्यं च पृष्ठस्थे सर्वनाशः पुरःस्थिते॥

ज्योतिःप्रकाश में कहा है कि—शुक्र वाये भाग में हो तो नवीन स्त्री को वधूप्रवेश में सुख होता है। दक्षिणहिस्से में शुक्र हो तो हानि होती है। पीठ में शुक्र पड़ता हो तो धन और धान्य का तथा आगे शुक्र हो तो सर्वनाश कारक होता है।

नवोढायास्तु वैधव्यं यदुक्तं सम्मुखे भृगौ। तदेव विबुधैर्ज्ञेयं केवलं तु द्विरागमे॥

संमुख शुक्र हो तो नवीन वधू को वैधव्ययोग कहा है वही ही केवल द्विरागमन में विद्वानों को जानना चाहिये।

पूर्वतोऽभ्युदिते शुक्रे प्रयायाद्दक्षिणापरे। पश्चादभ्युदिते चैव यायात्पूर्वोत्तरे दिशौ॥

यदि शुक्र पूर्वदिशा में उदय हो तो दक्षिणदिशा तथा पश्चिमदिशा में गमन करे। पश्चिमदिशा में शुक्र हो तो पूर्व और उत्तरदिशा में गमन करे।

व्यवहारतत्त्वे—पौष्णात्कराच्च श्रवणाच्च युग्मे हस्तत्रये मूलमघोत्तरासु।
पुष्ये च मैत्रे च वधूप्रवेशो रिक्तेतरे व्यर्ककुजे च शस्तः॥

व्यवहारतत्त्व में कहा है कि—रेवती, हस्त तथा श्रवण से दो दो, हस्त से तीन, मूल, मघा, तीनों उत्तरा, पुष्य, अनुराधा, रिक्ता से भिन्न तिथि, रवि और मंगल भिन्न दिन में वधूप्रवेश उत्तम है।

गर्गः—व्यतीपाते च संक्रान्तौ ग्रहणे वैधृतावपि। श्राद्धं विना शुभं नैव प्राप्तकालेऽपि मानवः॥

गर्गने कहा है कि—व्यतीपात में, संक्रान्ति में, ग्रहण में और वैधृति में श्राद्ध के बिना शुभदिन के प्राप्त होने पर भी मनुष्य न करें।

तथा—अमासंक्रान्तिविष्टयादौ प्राप्तकालेऽपि नाचरेत्॥ इति।

और अमावास्या, संक्रान्ति, भद्रा आदि में शुभ दिन प्राप्त होने पर भी शुभ कार्य न करे।

(द्विरागमनकथनम्)

अथ द्विरागमनम्। ऋक्षोच्चये-माघफाल्गुनवैशाखे शुक्लपक्षे शुभे दिने।
गुर्वादित्यविशुद्धौ स्यान्नित्यं पत्नीद्विरागमः॥

अब द्विरागमन कहते हैं। ऋक्षोच्चय में कहा है कि—माघ, फाल्गुन और वैशाख के शुक्लपक्ष में तथा शुभदिन में गुर्वादित्य की शुद्धि में पत्नी का द्विरागमन उत्तम होता है।

बादरायणः—नीहारांशुदिनोत्तरादितिगुरुब्रह्मानुराधाश्विनीशुक्रे भास्करवायुविष्णुवरुणत्वाष्ट्रे प्रशस्ते तिथौ। कुम्भाजालिगते रवौ शुभकरे प्राप्तोदये भार्गवे जीवज्ञास्फुजितां दिने नववधूवेश्मप्रवेशः शुभः॥

बादरायण ने कहा है कि—सोमवार, उत्तरा, पुनर्वसु, पुष्य, रोहिणी, अनुराधा, अश्विनी, ज्येष्ठा, श्रवण, स्वाती, चित्रा, उत्तम तिथि, कुम्भ, मेष, वृश्चिक का सूर्य तथा शुभलग्न के उदय होने पर शुक्र, बृहस्पति, बुध और सोमवार दिन में नवीन वधू का गृहप्रवेश कल्याणकारण है।

(पुनर्विवाहकथनम्)

अथ पुनर्विवाहः। श्रीधरीये-पुनर्विवाहं वक्ष्यामि दम्पत्योः शुभवृद्धिदम्। लग्नेन्दुलग्नयोर्दोषे ग्रहतारादिसम्भवे॥ अन्येष्वशुभकालेषु दुष्टयोगादिसम्भवे। विवाहे चापि दम्पत्योराशौचादिसमुद्भवे॥ तस्य दोषस्य शान्त्यर्थं पुनर्वैवाह्यमिष्यते॥

अब पुनर्विवाह कहते हैं। श्रीधरीय में कहा है कि—दम्पति (स्त्री और पुरुष) के शुभ और वृद्धि को देनेवाले 'पुनर्विवाह' (विवाह हो जाने के बाद पञ्चांग की शुद्धि ठीक नहीं थी ऐसा जानने पर उन ही दोनों

(वधू और वर) का फिर से विवाह करे ।) को कहता हूँ । लग्न तथा चन्द्रलग्न के दोष में, ग्रह तथा तारा आदि के संभव में और अन्य अशुभ कालों में, दुष्टयोगादि के संभव में, विवाह में और दम्पत्ति के आशौच आदि के संभव में उसके दोष के निवृत्ति के लिए फिरसे विवाह कहा है ।

याज्ञवल्क्यः—(आचाराध्याय-७३) सुरापी व्याधिता धूर्ता वन्ध्यार्थघ्न्यप्रियंवदा ।
स्त्रीप्रसूश्चाधिवेत्तव्या पुरुषद्वेषिणी तथा ॥

याज्ञवल्क्य ने कहा है कि—मदिरापान करनेवाली (पतत्यर्धं शरीरस्य यस्य भार्या सुरां पिवेत् ।) दीर्घरोग से ग्रस्त, वंचना करनेवाली (विसंवादिनी वा) वन्ध्या, (बाँझ), धन को नष्ट करनेवाली, अप्रिय-बोलने वाली, कन्याओं को उत्पन्न करनेवाली और पति के साथ द्वेषकरनेवाली पत्नी के रहते हुए भी पति को दूसरा विवाह कर लेना चाहिये ।

मनुः—(अ० ६ श्लो० ८१) वन्ध्याष्टमेऽधिवेद्याब्दे दशमे तु मृतप्रजा ।
एकादशे स्त्रीजननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी ॥

मनुने कहा है कि—स्त्री वन्ध्या हो तो आठवे साल में, जिस स्त्री के बालक मर जाते हो तो दशवें वर्षमें केवल जिसके कन्या उत्पन्न होती हो ग्यारहे वर्ष में और अप्रिय (कठोरवचन) वाणी बोलती हो तो पति को तुरन्त दूसरा विवाह कर लेना चाहिये ।

सङ्ग्रहे तु—अप्रजां दशमे वर्षे स्त्रीप्रजां द्वादशे त्यजेत् । मृतप्रजां पञ्चदशे सद्यस्त्वप्रियवादिनीम् ॥

सङ्ग्रह में कहा है कि—जिसके सन्तान न होती हो दशवें वर्ष में, कन्या ही उत्पन्न होती हो बारहवें वर्ष में और जिसकी सन्तान मर जाती हो तो पन्द्रहवे वर्ष में विवाह दूसरा करे । यदि कठोरवचन कहने वाली हो तो तुरन्त ही पति को दूसरा विवाह कर लेना चाहिये ।

एकामुत्क्रम्य कामार्थमन्यां लब्धुं य इच्छति । समर्थस्तोषयित्वार्थैः पूर्वोढामपरां वहेत् ॥

जो मनुष्य एक स्त्री को उल्लंघन कर कामना (विषय) के लिए दूसरी स्त्री को प्राप्त करने की इच्छा करता है । यदि वह समर्थ हो तो प्रथम विवाहिता स्त्री को धन आदि से प्रसन्नकर दूसरी स्त्री से विवाह कर सकता है ।

याज्ञवल्क्यः—(आचाराध्याय श्लो० ७६) आज्ञासम्पादिनीं दक्षां वीरसूं प्रियवादिनीम् ।
त्यजन् दाप्यस्तृतीयांशमद्रव्यो भरणं स्त्रियाः ॥

जो पुरुष—आज्ञाकारिणी दक्ष, वीर पुत्रों को जन्म देनेवाली तथा प्रिय बोलने वाली स्त्री को त्यागता है या उसके जीवनकाल में अन्य पत्नी स्वीकार करता है) तो (राजा) उसके धन का तीसरा भाग दिला दे तथा यदि धन न हो तो भोजन-वस्त्रादि दिलवावे ।

मनुः—(अ० ६ श्लो० ८३) अधिविन्ना तु या नारी निर्गच्छेद्रुषिता गृहात् ।
सा सद्यः सन्निरोधव्या त्याज्या वा कुलसन्निधौ ॥ इति ।

मनु ने कहा है कि—पति के विवाह दूसरा करने पर जो पहली पत्नी क्रोधित होकर घर से निकलकर भागे तो उसे उसी क्षण रोककर घर के भीतर बन्द कर रखना चाहिये या उसे पिता के यहाँ भेजवा दे ।

हेमाद्रौ कात्यायनः—अग्निशिष्टादिशुश्रूषां बहुभार्यः सवर्णया ।
कारयेत्तद्बहुत्वं चेज्ज्येष्ठया गर्हिता न चेत् ॥ इति ।

हेमाद्रि में कात्यायन ने कहा है कि-बहुत स्त्रियों (पत्नियों) वाला मनुष्य अग्नि, शिष्ट आदि मनुष्यों की सेवा अपने वर्णवाली पत्नी से करावे । उनमें बहुत स्त्री सवर्णवाली हो तो उसमें ज्येष्ठा बड़ी गर्हित (पतिता आदि) न हो तो उसी से करावे ।

याज्ञवल्क्यः—(आचाराध्याय श्लो० ८८) सत्यामन्यां सवर्णायां धर्मकार्यं न कारयेत् ।
सवर्णासु विधौ धर्म्ये ज्येष्ठया न विनेतरा ॥

याज्ञवल्क्य ने कहा है कि-सवर्ण (अपनी जाती की) स्त्री के जीवित होते हुए दूसरी असवर्ण स्त्री से धर्मकार्य न करावे । यदि सवर्णा स्त्री बहुत हो तो उनमें से जो सबसे बड़ी पत्नी हो उसीसे धर्मकार्य करावे ।

(द्वितीयविवाहहोमे अग्निमाह)

द्वितीयविवाहहोमेऽग्निमाह कात्यायनः—सदारोऽन्यान्पुनर्दारानुद्वोढुं कारणान्तरात् । यदीच्छेद-ग्निमान् कर्तुं क्व होमोऽस्य विधीयते । स्वेग्नावेव भवेद्धोमो लौकिके न कदाचन ॥

दूसरे विवाहके होममें कात्यायनने अग्निका निर्णय कहा है कि—यदि पत्नीवाला मनुष्य किसीकारण-वश फिर से दूसरे विवाह करने की इच्छा करता है तो उस अग्निमान् मनुष्य को किस अग्नि में होमका विधान है। वह उसी अग्निमें ही हवन करे लौकिक अग्नि में कभी न करे।

त्रिकाण्डमण्डनोऽपि—आद्यायां विद्यमानायां द्वितीयामुद्वहेद्यदि ।
तदा वैवाहिकं कर्म कुर्यादावसथेऽग्निमान् ॥

सुदर्शनभाष्ये तु— 'द्वितीयविवाहहोमो लौकिके एव न पूर्वौपासने' इत्युक्तम् । इदं चासम्भवे । तत्र चाग्निद्वयसंसर्गः कार्यः ।

त्रिकाण्डमण्डनने भी कहा है कि—पहली स्त्री के रहते हुए यदि अग्निमान् दूसरी स्त्रीसे विवाह करता है तो विवाह संबन्धि सब कार्य आवसथ्य-अग्नि में करे। सुदर्शनभाष्यमें तो कहा है कि—दूसरे विवाह का हवन लौकिक अग्नि में ही करे, पहले कहे हुए औपासन अग्निमें न करे। यों कहा है। यह औपासनाग्नि के असम्भव परक में है।

(वहाँ पर देशान्तर में अग्नि को असन्निधिमें या लौकिक अग्नि में विवाहहोम और गृहप्रवेशनीहोम करे। उसमें कालान्तरमें दोनों अग्निका सम्बन्ध करे—यह अर्थ है। अग्निद्वयसम्बन्धपर्यन्त नित्यहोमद्वय तथा दर्शपूर्णमास तथा स्थालीपाक करे। यह गर्भाधानग्रन्थादि में स्पष्ट है। अग्निद्वयसंसर्गप्रयोग 'प्रयोग-रत्न' से जानना चाहिये।)

(अग्निद्वयसंसर्गविधिकथनम्)

तदाह शौनकः—अथाग्न्योर्गृह्ययोर्योगं सपत्नीभेदजातयोः ।
सहाधिकारसिद्ध्यर्थमहं वक्ष्यामि शौनकः ॥

उसीबातको शौनक ने कहा है कि—इसके बाद सपत्नीक भेदप्राप्त स्त्रियोंका घरमें होनेवाली दोनों अग्नियों का सम्बन्ध सहाधिकार की सिद्धिके लिए मैं शौनक कहता हूँ।

अरोगामुद्वहेत्कन्यां धर्मलोभभयात्स्वयम् । कृते तत्र विवाहे च व्रतान्ते तु परेऽहनि ॥ पृथक्स्थण्डिलयोरग्नि समाधाय यथाविधि । तन्त्रं कृत्वाज्यभागान्तमन्वाधानादिकं ततः ॥ जुहुयात्पूर्वपत्न्यग्नौ तयान्वारब्ध आहुतीः । अग्निमीले पुरोहितं सूक्तेन नवर्चेन तु ॥ समिध्येनं समारोप्य अयं ते योनिरित्यृचा । प्रत्यवरोहेत्यनया कनिष्ठाग्नौ निधाय तम् ॥ आज्यभागान्त-तन्त्रादि कृत्वारभ्य तदादितः । समन्वारब्ध एताभ्यां पत्नीभ्यां जुहुयाद् घृतम् ॥ चतुर्गृहीतमेता-भिर्ऋग्भिः षड्भिर्यथाक्रमम् । अग्नावग्निश्चरतीत्यग्निनाग्निः समिध्यते । अस्तीदमिति तिसृभिः पाहि नो अग्न एकया । ततः स्विष्टकृदारभ्य होमशेषं समापयेत् ॥

धर्मलोप के भय से स्वयं विना रोगवाली कन्या (कन्या का लक्षण महत्वपूर्ण काशीखण्ड अध्याय ३७ में है) से विवाह करे। वहाँपर विवाह हो जानेपर व्रतान्त में दूसरेदिन अलग अलग दो स्थण्डिलोंपर यथा-विधि अग्नि का स्थापन करे। तन्त्रता से आज्यभागान्त अन्वाधानादि करे। फिर अग्नि में पहले की तरह उसी पत्नीसे अन्वारब्ध (स्पर्शकर) कर पति अग्निमें होम करे। 'अग्निमीडे 'पुरोहितम्' इस नौ ऋचावाले

१—ॐ अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् ॥ १ ॥ अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनै-रुत । स देवाँ एह वक्षति ॥२॥ अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवे दिवे । यशसं वीरवत्तमम् ॥ ३ ॥ अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि । स इद् देवेषु गच्छति ॥ ४ ॥ अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः । देवो देवेभिरागमत् ॥ ५ ॥ यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि । तवेत् तत् सत्यमङ्गिरः ॥ ६ ॥ उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम् । नमो भरन्त एमसि ॥ ७ ॥ राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् । वर्धमानं स्वे दमे ॥ ८ ॥ स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव । सचस्वा नः स्वस्तये ॥ ९ ॥ (१।१।१-९)॥

सूक्तसे (हवन करे)। फिर अग्निको प्रज्वलितकर 'अयं ते [1]योनिः' इस ऋचासे और कनिष्ठ पत्नी [2]'प्रत्यवरोह' इस ऋचासे अग्निमें हवनकर आज्यभागान्त कार्यको तन्त्रसे कर आदि से अन्वारब्ध इन दोनों पत्नियों से होकर चारवार घृतको ग्रहणकर हवन करे। इन छः ऋचाओं से यथाक्रम [3]'अग्नावग्निश्चरति' इस मन्त्रसे, [4]'अग्निनाग्निः समिध्यते' [5]'अस्तीदम्, इन तीन ऋचाओंसे 'पाहि [6]नो अग्न एकया-इस ऋचासे फिर स्विष्टकृद् से आरंभकर होमशेष को समाप्त करे।

गोयुगं दक्षिणा देया श्रोत्रियायाहिताग्नये। पत्न्योरेका यदि मृता दग्ध्वा तेनैव तां पुनः॥ आदधीतान्यया सार्द्धमाधानविधिना गृही॥ इति।

फिर आहिताग्निवेदपाठी के लिये दो गौ दक्षिणारूप से दे। यदि दोनों पत्नियोंमें एककी मृत्यु हो जाय तो उसी अग्निसे फिर उसका दाहसंस्कार करे। तदनन्तर गृही दूसरी पत्नी के साथ आधानविधि के द्वारा आधान करे।

बौधायनगृह्यसूत्रे तु-(३।२८) अथ यदि गृहस्थस्तु द्वे भार्ये विन्देत कथं तत्र कुर्यादिति, यस्मिन् काले विन्देतोभावाग्नी परिचरेत्। अपराग्निमुपसमाधाय संपरिस्तीर्याज्यं विलाप्योत्पूय स्रुक्स्रुवं निष्टप्य संमृज्य स्रुचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वाऽन्वारब्धायां यजमानो जुहोति-नमस्त ऋषे गद अव्यधायै त्वा स्वधायै त्वा। मा न इन्द्राभितस्त्वदृष्वारिष्टासः। एवाब्रह्मन् तवेदस्तु स्वाहा। इति। अथ समारोपयति—अयं ते योनिर्ऋत्विज इति। अथ पूर्वाग्निमुपसमाधाय आजुह्वानः, उद्बुध्यस्वाग्ने' इति समिधमाधाय संपरिस्तीर्य आज्यं विलाप्योत्पूय स्रुक्स्रुवं निष्टप्य संमृज्य स्रुचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वा द्वयोर्भार्ययोरन्वारब्धयोर्यजमानोऽजुहोति यो ब्रह्मा ब्रह्मण इत्येतेन सूक्तेनैकैकं चतुर्गृहीतं जुहोति प्रसिद्धाग्निमुखात्कृत्वा पक्वान्जुहोति 'समितं सङ्कल्पेथामिति पुरोनुवाक्यामनूच्या अग्ने पुरीष्य' इति याज्यया जुहोति-अथाज्याहुतीरुपजुहोति 'पुरीष्यस्त्वमग्ने' इत्यन्तादनुवाकस्य। स्विष्टकृत्प्रभृति सिद्धमाधेनुवरप्रदानात्। याज्यया जुहोति अथाग्रेणाग्निं दर्भस्तम्भेषु हुतशेषं निदधाति ब्रह्मयज्ञानं, पिताविराजमिति द्वाभ्यामिति। (द्वाभ्यां संसर्गविधिकार्यः)।

बौधायनगृह्यसूत्रमें कहा है कि—यदि गृहस्थ दो भार्याओं का लाभ करे तो वहाँपर क्या करे। जिस समय प्राप्त करे उससमय दोनों अग्निकी परिचर्या (पूजा) करे। दूसरी अग्निका स्थापनकर कुशाओं से) परिस्तरण कर घृत को कटोरे में गिराकर आज्य को अग्नि में तहाकर उत्पवन (उछाल) कर (स्रुचि और स्रुवा अग्नि में तपाकर एवं कुशाओं से संमार्जन कर स्रुचिनामकपात्रमें चारवार ग्रहण कर पत्नीसे अन्वारब्ध होकर यजमान हवन करता है—'नमस्त ऋषे गद अव्यधायै' इस ऋचासे हवनकरता है। इसके बाद आरोपण करता है—अयं ते योनिः—इससे अब पहली अग्नि का स्थापन कर [8]'आजुह्वानः' और [9]'उद्बुध्यस्वाग्ने'

१—ॐ अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः। तं जानन्नग्न आ सीदाथा नो वर्धया गिरः॥ (ऋ० ३।२९।१०)।

२-प्रत्यवरोहजातवेदः पुनरूपं देवेभ्यो हव्यं वहनः प्रजानन्॥ प्रजां पुष्टिं रयिमस्मासुधेह्यथा भव यजमानाय शंयोः॥ (ऋग्वेदब्रह्मकर्मसमुच्चय)। ३—अग्नावग्निश्चरति प्रविष्ट ऋषीणां पुत्रो अधिराज एषः। स्वाहाकृत्य ब्रह्मणा ते जुहोमि देवानां मिथुया कर्भागधेयम्॥ (तैत्तरीयसं० १।३।७।१४)। ४—अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा। हव्यवाड् जुह्वास्यः॥ (ऋ० १।१२।६)। ५—अस्तीदमधिमन्थनमस्ति प्रजननं कृतम्। एतां विश्पत्नीमा भराग्निं मन्थाम पूर्वथा॥१॥ अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इव सुधितो गर्भिणीषु। दिवेदिवे ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः॥२॥ उत्तानायामव भरा चिकित्वान् त्सद्यः प्रवीता वृषणं जजान। अरुषस्तूपो रुशदस्य पाज इडायास्पुत्रो वयुनेऽजनिष्ट॥ ३॥ (ऋ० ३।२९।१-३)। ६—पाहि नो अग्न एकया पाह्युत द्वितीयया। पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो॥ (ऋ० ८।६०।९)। ७—पुरीष्यस्त्वमग्ने रयिमान् पुष्टिमाँ ऽ असि। शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वां योनिमिहाऽसदः॥ (तै० सं० का० ४ प्र० २ अ० ५ क० २,३)। ८-आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्चाऽऽया ह्यग्ने वसुभिः सजोषाः। त्वं देवानामसि यह्व होता स एनान् यक्षीषितो यजीयान्॥ (ऋ० वे० १०।११०।३) अथर्वं० ५।१२।३। तैत्त० ब्रा० ३।६।३।२। वा० य० २९।२८। आजुह्वानो न ईड्यो देवाँ आवक्षि यज्ञियान्। अग्ने सहस्रसा असि॥ (ऋ० वे० १।१८८।३)। ९—उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृह्येनमिष्टापूर्ते सँ ऽ सृजेथामयं च। पुनः कृण्वँ ऽ स्त्वा पितरं युवानमन्वाताँ ऽ सीत् त्वयि तन्तुमेतम्॥ (तै० ४।७।१३।१२)।

इसऋचा से समिधाधान कर परिस्तरण कर आज्य को देखकर उत्पन्नकर स्रुक् (स्रुचि) तथा स्रुव (स्रुवा) तपाकर एवं शुद्ध कर स्रुचि में चारवार घी को लेकर दोनों स्त्रियों से अन्वारब्ध होकर यजमान हवन करता है तथा [1]'यो ब्रह्मा ब्रह्मणः' इस एक सूक्तसे (पूर्व लिए हुए) चार बार घृतको स्रुचिमें लेकर अग्निकी तरफ मुख कर चरु से हवन करता है। 'स मितं [2]संकल्पेथाम्' इस पुरोनुवाक्यासे [3]'अग्ने पुरीष्ये' इस याज्यया से हवन करता है। इसके बाद आज्याहुति से हवन करता है। 'पुरीष्यस्त्वमग्ने' इससे अनुवाक तक स्विष्टकृत् प्रभृति संस्रवप्राशन ब्रह्माको पूर्णपात्र आदि देकर अपने आचार्यको दूधवाली गौको दे। इसकेबाद आगे अग्निको दर्भ-स्तंभोंमें अवशिष्ट हवन शेषको रखता है। [4]ब्रह्मयज्ञानम् और [5]पिता-विराजम् इन दो मन्त्रोंसे संसर्गविधि करे।

(द्वितीयविवाहकालः)

द्वितीयादिविवाहे काल उक्तः सङ्ग्रहे—प्रमदामृतिवासरादितः पुनरुद्वाहविधिर्वरस्य च। विषमे परिवत्सरे शुभो युगले चापि मृतिप्रदो भवेत्॥

दूसरे विवाह में कालसंग्रह में कहा है कि—पत्नी के मरणदिन से वर के दूसरे विवाह की विधि विषमवर्षमें शुभ है और युग्मवर्षमें (पत्नीवियोगे प्रथमे च वत्सरे नो चेद् द्विवर्षे पुनरुद्वहेत्सः। अयुग्म-मासे तु शुभप्रदः स्याद्वसिष्ठगर्गादिपराशराद्याः॥ अपुत्रा चेन्मृता भार्या तस्या भर्तुर्विवाहकम्। युग्माब्दे युग्ममासे वा विवाहः शुभदो मतः॥ सपुत्रायां तु भार्यायां मृतायां ब्राह्मणस्य तु। प्रथमे न तु कर्तव्यो विवाहोऽशुभदो यतः॥) मृत्युको देनेवाला है।

(तृतीयविवाहे विचारः)

तृतीयविवाहे निषेधो मात्स्ये—उद्वहेद्रतिसिद्ध्यर्थं तृतीयां न कदाचन। मोहादज्ञानतो वापि यदि गच्छेत्तु मानुषीम्। नश्यत्येव न सन्देहो गर्गस्य वचनं यथा। इति।

तीसरे विवाहमें मत्स्यपुराणमें निषेध कहा है कि—मनुष्य तीसरा विवाह विषयवासना के लिए न करे। मोह या अज्ञान से यदि मानुषीकन्या के साथ विवाह करता है तो उसका स्वयं का नाश हो जाता है इसमें संशय नहीं है। यही गर्गका वचन है।

सङ्ग्रहे—तृतीयां यदि चोद्वाहेत्तर्हि सा विधवा भवेत्। चतुर्थादिविवाहार्थं तृतीयेऽर्कं समुद्वहेत्॥

संग्रहमें कहा है कि—यदि तीसरी कन्या के साथ विवाह करता है वह कन्या विधवा हो जाती है। चौथी आदि कन्याके साथ विवाह करे तो तीसरे विवाहमें अर्क के साथ विवाह करे।

(तस्य विधिकथनम्)

तद्विधिस्तु—'रविशन्योर्हस्ते वा वरः सङ्कल्पस्वस्तिवाचनं नान्दीश्राद्धं कृत्वाऽऽचार्यं वृत्वा आ कृष्णेनेति छायायुतं सूर्यमर्के सम्पूज्य गुडौदनं दत्त्वा वस्त्रेण तन्तुभिरावेष्ट्य—त्रिलोकवासिन्

१—यो ब्रह्मा ब्रह्मण उज्जभार प्राणेश्वरः कृत्तिवासाः पिनाकी। ईशानो देवस्स न आयुर्दधातु तस्मै जुहोमि हविषा घृतेन स्वाहा॥ विभ्राजमानस्सरिरस्य मध्याद्रोचमानो घर्मरुचिर्य आगात्। स मृत्युपाशादपनुद्य घोरादिहायुषेणो घृतमत्तु देवस्स्वाहा॥ ब्रह्मज्योतिर्ब्रह्मपत्नीषु गर्भं मादधात्पुरुरूपं जयन्तम्। सुवर्णरं भग्रहमर्कमर्चं तमायुषे वर्धयामो घृतेन स्वाहा॥ श्रियं लक्ष्मीमौपलाम्बिकां गां षष्ठीं जयामिन्द्रसेनेत्युदाहुः। तां विद्यां ब्रह्मयोनिं सरूपामिहायुषे तर्पयामो घृतेन स्वाहा॥ दाक्षायण्यस्सर्वयोन्यस्स योन्यस्सहस्रशो विश्वरूपाः। ससूनवस्स पतयस्सयूथ्या इहायुषेणो घृतमिदं जुषन्तां स्वाहा॥ दिव्या गणा बहुरूपाः पुराणा आयुश्छिदो नः प्र मथन्तु वीरान्। तेभ्यो जुहोमि बहुधा घृतेन मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान् स्वाहा॥ एकः पुरस्ताद्य इदं बभूव यतो बभूवुर्भुवनस्य गोपाः। यमप्येति भुवनं साम्पराये स नो हविर्घृतमिहायुषेऽत्तु देवस्स्वाहा॥ वसून् रुद्रानादित्यान् मरुतोऽथ साध्यान् ऋभून् यक्षान् गन्धर्वांश्च पितॄंश्च विश्वान्। भृगून् सर्पांश्चाङ्गिरसोथ सर्वान् घृतं हुत्वा स्वायुष्यायाम शश्वत्स्वाहा॥ म० १४–२१। बौधायनगृह्यसूत्र पृ० ६३, ६४)। (संस्काररत्नमाला पृ० ६००)
२—समितठं० सङ्कल्पेथाठं० संप्रियौ रोचिष्णु सुमनस्यमानौ। इषमूर्जमभि संवसानौ सं वां मना ँ॒सि सं व्रता समु चित्तान्याऽकरम्॥ (तै० संहिता ४ का० २ प्रश्न ५।१)। ३–अग्ने पुरीष्याधि भवा त्वं नः। इषमूर्जं यजमानाय धेहि॥
४—ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः। स बुध्निया उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः॥ (तै० स० ४।२।६।४)। ५–पिताविराजामृषभो रयीणाम् अन्तरिक्षं विश्वरूप आविवेश। तमर्कैरभ्यर्चन्ति वत्सं ब्रह्मसन्तं ब्रह्मणा वर्धयन्तः॥ (तैत्तरीयब्रा० २।८।८)।

सप्ताश्व छायया सहितो रवे। तृतीयोद्वाहजं दोषं निवारय सुखं कुरु॥ इति संप्रार्थ्य जलेन त्रिः सिञ्चेत्।

उसकी विधि यों है-रवि या शनिवार को हस्तनक्षत्रमें वर संकल्पकर स्वस्तिवाचन, नान्दीश्राद्ध और आचार्य का वरणकर 'आ [1]कृष्णेन' इसमन्त्रसे छायाके सहित सूर्यका अर्कमें पूजनकर गुड तथा ओदन (भात) देकर वस्त्र से तन्तुओं को लपेटकर—यों प्रार्थना करे—हे त्रिलोकवासिन्, हे सप्ताश्वरव, रवे, छाया के सहित यहाँ आकर तीसरे विवाहमें उत्पन्न दोषका निवारण करो और सुख को करो। इसप्रकार प्रार्थनाकर जलसे तीनवार सेचन करे।

मम प्रीतिकरा येयं मया सृष्टा पुरातनी। अर्कजा ब्रह्मणा सृष्टा अस्माकं प्रतिरक्षतु॥

यह मेरी प्रीतिको करनेवाली, यह पुरातनी माया ब्रह्मा ने रची है। ब्रह्मा ने सूर्य से उत्पन्न की है। हमलोगों की रक्षा करो।

नमस्ते मङ्गले! देवि! नमः सवितुरात्मजे!। त्राहि मां कृपया देवि! पत्नीत्वं मे इहागता॥

हे मंगले, हे सविताकी आत्मजा (पुत्री), देवि, तुमको नमस्कार है। हे देवि, कृपया मेरी रक्षा करो तुम पत्नीरूपसे मेरे यहाँपर आयी हो।

अर्क त्वं ब्रह्मणा सृष्टः सर्वप्राणिहिताय च। वृक्षाणामादिभूतस्त्वं देवानां प्रीतिवर्द्धनः॥ तृतीयोद्वाहजं पापं मृत्युं चाशु विनाशय॥ इति।

हे अर्क, सब प्राणियों के हितार्थ तुमको ब्रह्माने रचा है। तुम वृक्षोंके आदिकारण हो और देवताओं के प्रीतिको वढानेवाले हो। तीसरे विवाहसे उत्पन्न पाप तथा मृत्युका विनाश शीघ्र करो।

ततः आचार्यः 'कश्यपगोत्रामादित्यस्य प्रपौत्रीं सवितुः पौत्रीमर्कस्य पुत्रीमर्ककन्याममुकगोत्राय वराय दास्ये' इति वाग्दानं कृत्वा वरस्य मधुपर्कं कृत्वाऽन्तःपटं धृत्वा 'स्वस्ति न' इति सूक्तं जप्त्वा पूर्ववत्कन्यां दत्त्वा अर्ककन्यामिमामित्यूहेन कन्यादानमन्त्रमुक्त्वा दक्षिणां दद्यात्। ततो गायत्र्यावेष्टितसूत्रेण वृहत्सामेति मन्त्रेण कङ्कणं बद्ध्वार्कस्य चतुर्दिक्षु कुम्भेषु विष्णुं सम्पूज्याग्निं प्रतिष्ठाप्याघारान्ते सङ्गोभिरिति, इदं बृहस्पतये न मम। यस्मै त्वा कामकामायेत्यृचाऽग्नये न मम। ततः व्यस्तसमस्तव्याहृतिभिराज्यं हुत्वाचार्याय गोयुगं दत्त्वा-मया कृतमिदं कर्म स्थावरेषु जरायुणा। अर्कापत्यानि नो देहि तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि॥ इति नमेत्। इति दिक्। इति निर्णयसिन्धौ विवाहः।

तदनन्तर आचार्य काश्यपगोत्रवाली आदित्यकी प्रपौत्री, सूर्यकी पौत्री और अर्कको पुत्री अर्ककन्याको अमुकगोत्रवाले वर के लिए देता हूँ। इसप्रकार वाग्दान करके वर का मधुपर्ककर अन्तःपट धारणकर [2]'स्वस्तिन' इससूक्त को जपकर पहले की तरह कन्याको देकर [3]'अर्ककन्यामिमाम्' इसप्रकार ऊहसे कन्यादान मन्त्रको कहकर दक्षिणा दे। तदनन्तर गायत्री द्वारा वेष्टितसूत्रेण [4]'वृहत्साम' इस मन्त्रसे कङ्कण को बाँधकर

(भवतन्नः समनसौ, मातेव पुत्रम्, यदस्य पारे, नमः सुते निर्ऋते, यत्ते देवी, यस्यास्ते अस्याः, असुन्वन्तम, देवीमहम्, निवेशनः, संवस्रा दधातन, निष्कृताहावमक्टम्, सीरा युञ्जन्ति, युनक्तसीरा, लाङ्गलं पवीरवम्, शुनं नः फाला, कामं कामदुघे, घृतेन सीता।) (तैत्तरीयसं० का० ४ प्र० २ अनु० ५ म० ४२०)। १—ॐ आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च। हिरण्ययेन सविता रथेनाऽऽदेवो याति भुवनानि पश्यन्॥ (ऋ० १।३५।२)।

२—स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः। स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना॥ स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः। बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः॥ विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये। देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वति नो रुद्रः पात्वंहसः॥ स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति। स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि॥ स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव। पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि॥ (ऋ० ५।५१।११-१५)।

३—अर्ककन्यामिमां विप्र यथाशक्ति विभूषिताम्। गोत्राय शर्मणे तुभ्यं दत्तां विप्र समाश्रय॥

४—सं गोभिराङ्गिरसो नक्षमाणो भग इवेदर्यमणं निनाय। जने मित्रो न दम्पती अनक्ति बृहस्पते वाजयाशूँरिवाजौ॥ (ऋ० म० १० सू० ६८ म० २)। (अथर्ववेद-२० का० सू० १६ म०)।

अर्कके चारों दिशाओं के कुंभोंमें विष्णुका पूजनकर अग्निकी स्थापनाकर आघारान्तमें [1]'सङ्क्षोभिः, इस मन्त्र से हवन कर-'इदं बृहस्पतये न मम' यों कहे। फिर यस्मै त्वा [2]'कामाय' इस ऋचासे हवन कर 'इदमग्नये न मम' यों कहकर अलग या समस्त—व्यस्तव्याहृतियों से (भूः स्वाहा। भुवः स्वाहा। स्वः स्वाहा। (भूर्भुवः स्वः) आज्य से हवन को आचार्य के लिये दो गौ देकर जरायु (मनुष्य) मैंने स्थावरों के लिए इस कार्य को किया है। मुझे सन्तानों को दो। हे अर्क, मेरे अपराधोंको क्षमा करो। यों कहकर नमस्कार करे।

१—बृहत्साम नक्षत्रमृद्वृद्धवृष्ण्यं त्रिष्टुभौजः शुभितमुग्रवीरम्। इन्द्र स्तोमेन पञ्चदशेन मध्यमिदं वा तेन सगरेण रक्ष ॥ (तैत्तरीय सं० का० ४,४,२,४) काठकसंहितामें (२२।३९) भी है—इसमें कुछ फरक है। आश्वलायनश्रौतसूत्र अ० ४ ख० १२ में भी है। पारस्करगृह्यसूत्र की टीका में भी है। उससें भी फरक कुछ है।

२—ॐ यस्मै त्वा कामकामाय वयं सम्राट् यजामहे। तमस्मभ्यं कामं दत्वाऽथेदं त्वं घृतं पिब स्वाहा ॥ (पारस्करगृ० का० १ क० ६ टिप्प०)।

———

(प्राचीन व्यवस्थाओं का संग्रह)

(स्वर्गीय-महामहोपाध्याय श्री पं० विद्याधर जी गौड द्वारा लिखित)

विवाहपदार्थः—

१—विवाहशब्दस्तु—विपूर्वकवहधातोर्भावे घञि प्रत्यये कृते निष्पन्नो विशिष्टं वहनमभिदधाति। विशिष्टं वहनं च कन्याया अन्यदीयायाः स्वीयत्वापादनपूर्वकं संस्काराधानम्। स्वीयत्वापादनं च अन्यदीयस्य वस्तुनः प्रतिग्रहमूलकम्। प्रतिग्रहश्च दानमूलकः। अतश्च कन्यापित्रादिना कन्याया दाने कृते तां प्रतिगृह्य स्वीयामापाद्य पाणिग्रहणादिहोमसंस्कारैः संस्कृतत्वसम्पादनमेव विवाहपदार्थ इति सिद्ध्यति। एवं च विवाहे दानम्, प्रतिग्रहः, पाणिग्रहणम्, होमादिः, इति पदार्थचतुष्टयं प्राधान्येन परिगणनीयं भवति, अन्यत्सर्वमङ्गतया। तत्र दानं कन्यापितरं प्रति, अन्यद्वरं प्रतीति विवेक्तव्यम्। अयं च विवाहः स्त्रिया भार्यात्वापादकवत् पुरुषस्य पतित्वापादकोऽपि। अतश्चोभयसंस्कार एवायं, न स्त्रीमात्रसंस्कारो, नापि पुरुषमात्रसंस्कारः। यथा च उपनयनं माणवकस्य अध्ययनयोग्यतारूपसंस्काराधायकम्, एवं विवाहः स्त्रीपुंसयोरग्न्याधानाग्निहोत्रपाकयज्ञादिश्रौतस्मार्तकर्मानुष्ठानयोग्यताधायकः। न ह्यविवाहिता स्त्री पुमान्वा क्वचित् श्रौते स्मार्ते वा कर्मण्यधिक्रियते। अत एव विवाहः स्त्रिया एव संस्कारको नित्यः, पुरुषस्य तु काम्य ऐच्छिक इति ये केचिद्वदन्ति तेषामुक्तिर्गगनकुसुममवलम्बते। स्त्रीसंस्कार इव पुरुषसंस्कारेऽपि युक्तितौल्यात्। अत एव गौतमादिभिः अष्टाचत्वारिंशत्संस्कारैः संस्कृत इत्यारभ्य तन्मध्ये विवाहस्यापि सहधर्मचारिणीसंयोग इति पुरुषसंस्कारमध्ये परिगणनं कृतम्। अतश्च यथाऽऽधानाग्निहोत्रादीनां नित्यत्वम् (अवश्यानुष्ठेयत्वम्) उभयसंस्कारकत्वं च, तद्वत् विवाहस्यापि नित्यत्वमुभयसंस्कारकत्वं चाविरुद्धम्। द्वितीयादिविवाहस्तु पुंसः काम्यः, स्त्रियस्तु नास्त्येव। विवाहस्य सत्यपि रतिसम्पादकत्वे पुत्रोत्पत्तिसाधनत्वे च देशान्तरवत् नास्माकं भारतीयानां तदर्थत्वमात्रे यत्त पर्यवसानमिष्टम्, किन्तु धर्मार्थत्वमेव, पुत्रोत्पत्तेरपि च नित्यत्वमेवास्माकं मते। यस्यैव अनिष्टयज्ञस्य मोच्चेच्छायां दोषश्रवणम्, एवमनुत्पादितपुत्रस्यापि दोषः श्रूयते स्मर्यते च। अत एव च अध्ययनयजनसुतोत्पादनानां नित्यत्वं श्रुतिर्बोधयति "जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणवा जायते ब्रह्मचर्येणर्षिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्य एष वा अनृणो यः पुत्रो यज्वा ब्रह्मचारिवासी" (तै० सं० ६. १. ११) इत्यत्र ऋणरूपत्वमेव अवश्यापाकरणीयत्वं च पूर्वोक्तैव श्रुतिरवबोधयति "अनृणा अस्मिन्ननृणाः परस्मिन् तृतीये लोके अनृणाः स्याम। ये देवयानाः पितृयाणाश्च लोकाः सर्वान् पथो अनृणा आक्षियेम" (अथ० ६।११।७।३) इति। एतच्छ्रुत्यवलम्बेनैवजैमिनिरपि त्रयाणामेषां नित्यत्वं सूत्रयति—"ब्राह्मणस्य सोमविद्याप्रजमृणवाक्यसंयोगात्" (६।३)। एतेन देवर्णात् पितृऋणाच्च आनृण्यसम्भवेऽवश्यकर्तव्यो दारसंग्रहः। कृते तस्मिन् आनुषङ्गिकतया रत्युत्पत्तिः इति न तस्य मुख्यफलत्वमभिमतमस्मदाचार्याणाम्।

विवाहस्यानादिता—

वैवाहिकी प्रथा कदा प्रभृति अस्माकं देशे प्रचलिता इति केषां चिद्विचारशीलानां प्रश्नस्य इदमेवोत्तरं नित्यैवेयमिति वैदिकानामस्माकं मते मीमांसकानामिव—"वाचा विरूपनित्यया" (तै० सं० १०) "अनादिनिधना वेदवागुत्सृष्टा स्वयंभुवा" "अजान् ह वै पृश्नीन् तपस्यमानात् ब्रह्म स्वयम्भ्वेवाभ्यानर्षत्" (तै० ब्रा० ११.) इत्यादिश्रुतिपुराणादिभिर्वेदस्यानादित्वमेव, न तु पुरुषकृतत्वरूपं पौरुषेयत्वम्। अतश्च ऋग्वेदादयः सर्वेऽपि वेदाः क्रमं विना सार्वकालिका एवेति सिद्ध्यति। तत्र च ऋग्वेदे अष्टमाध्याये—"गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथाऽऽसः। तुभ्यमग्रे पर्यवहन्त्सूर्यां वहतु ना

सह। पुनः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह ॥ "पुनः पत्नीमग्निरदादायुषा सह वर्चसा। दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतम्॥ (ऋ० ७ ८५। ३९) "समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ। इत्यादयो बहवो मन्त्राः पाणिग्रहणरूपविवाहार्थं प्रवृत्तास्तमेवाभि वदन्ति। "इहैव स्तं मा वियौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्। क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे" (ऋ० अष्ट० ७। ७५। ४२) 'आ नः प्रजां जनयतु प्रजापतिराजरसाय समनक्त्वर्यमा। अदुर्मङ्गलीः पतिलोकमा विश शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे। (ऋ० ७। ७५। ४३) इत्यादयो वधूवरयोराशीरूपं फलं वदन्ति। एवम्—"सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव। ननान्दरि सम्राज्ञी अधि देवृषु॥ (ऋ० ८। ३। ४६) एवं सर्वेष्वपि वेदेषु विवाहमन्त्राः सुप्रसिद्धा एव। न चेदमत्र शङ्कनीयम् मन्त्रा इमे यागादौ क्वचित् क्रियाङ्गत्वेन प्रवृत्ता विवाहेऽपि सूत्रकारेण विनियुक्ता अङ्गारकादिमन्त्रवत्। अतश्च नैतेषां मन्त्राणां विवाहैकान्तिकत्वं वक्तुं शक्यत इति। एतेषां विवाहं परित्यज्य अन्यत्र कुत्रापि विनियोगादर्शनात्। तेषां मन्त्राणां तत्र तत्र तांस्तानितरान् मन्त्रान् तत्तत्कर्माङ्गत्वेन तत्तत्क-त्वङ्गभूतशस्त्राद्यङ्गत्वेन वा विनियुञ्जानोऽपि माधवाचार्य इमान् मन्त्रान् पाणिग्रहण एव विनियुङ्क्ते। विवाहे कन्याग्रहणे गृभ्णामीत्येषा—सूत्रितं च "गृभ्णामि त" इति। उदीर्ष्वात इति मन्त्रं च विवाहस्तावकत्वेन व्याख्याति। अत्रेदं भाष्यम्—"आभिर्नृणां विवाहः स्तूयते इत्यादि। एवं च प्रकरणमिदं साक्षात्परम्परया वा विवाहाङ्गभूतं मन्त्रसमुदायसन्दब्धम्। तत्रैव सर्वे मन्त्रा विनियुक्ता नान्यत्र क्वचिदपि। एवं बहुत्र सहस्रशो देवेषु पतिपत्नीसम्बन्धः श्रुतः, स सर्वोऽपि विवाहमूलक एव प्रसिद्ध्यति इति सुविदितमेव। किञ्च चतुर्ष्वपि वेदेषु उपासनाज्ञानकाण्डे मुक्त्वा अन्यः सर्वोऽपि भागो यज्ञार्थमेव प्रवृत्त इति तु निश्प्रचम्। यज्ञानुष्ठानं तु प्रायशो दम्पतिकर्तृकम्। दाम्पत्यं तु विवाहैकसाध्यम्। अतश्च यज्ञादिकं विदधद्भिर्वेदभागैः स्वसिद्ध्यर्थं विवाहोऽप्याक्षिप्यत इत्यनादिरियं वैदिकी प्रथाऽस्मद्देशे। ये नाम वेदानां पौरुषेयत्वमर्वाचीनकालिकत्वं वाऽभिप्र-यन्ति यज्ञैकान्तिकत्वं वा नेच्छन्ति, तेषां मते यत्किञ्चित्सिद्ध्यतु। परन्तु अयमपि पक्षोऽस्माभिः कात्यानश्रौतसूत्रभूमिकायां निपुणतरमुपपाद्य निरस्तस्तत एवागन्तव्यः। एवं विवाहस्यानादित्वे धर्ममूलत्वे नित्यत्वे (अवश्यकर्तव्यत्वे) वेदादेव सिद्धे ये केचित् महाभारतस्य श्वेतकेतूपाख्यानादिना विवाहस्य सादित्वं स्त्रीणां यथेष्टाचारत्वं सर्वोपभोग्यत्वं च साधयन्ति ते कुशका-शावलम्बना एव। तथा हि एवं ते प्रष्टव्याः—भारतादीनां वेदमुपजीव्यैव प्रामाण्यमुत स्वातन्त्र्येण यदि स्वातन्त्र्येण इति कथयन्ति तेन ते वन्द्या एव। सर्वेषां स्मृतिपुराणेतिहासादीनां वेदमूलत्वेनैव प्रामाण्यमभ्युपगच्छतामस्माकं न ततो बहिर्भूतै-रन्यैः सहसंव्यवहारो युज्यते। यदि वेदमूलत्वेन तर्हि वेदेनैव अनादितया सिद्ध्यन्तं विवाहं वेदोपजीवकं भारतं कथं वा प्रतिषेधे। प्रतिषेधद्वा कथं प्रामाण्यमाप्नुयात्। अतश्च उपाख्यानस्यास्य अन्यपरतैव वर्णनीया। युक्तं चैतत्। तत्र हि महर्षिशापेन निवारितसंभोगः पाण्डुः स्वपत्न्यां पुत्रोत्पत्तिमभिलषन् तां तदर्थमन्यत्र नियोजयामास। तदनिच्छन्ती सा—"एवमुक्त्वा महाराज कुन्ती पाण्डुमभाषत। कुरूणामृषभं वीरं तदा भूमिपतिं पतिम्॥ १॥ न मामर्हसि धर्मज्ञ वक्तुमेवं कथञ्चन। धर्मपत्नीमभिरतां त्वयि राजीवलोचने॥ २॥ त्वमेव मुनिशार्दूल मय्यपत्यानि भारत। वीर वीर्योपपन्नानि धर्मतो जनयिष्यसि ॥ ३॥ स्वर्गं मनुजशार्दूल गच्छेयं सहिता त्वया। अपत्याय च मां गच्छ त्वमेव कुरुनन्दन॥ ४॥ न ह्यहं मनसाऽप्यन्यं गच्छेयं त्वद्गते नरम्। त्वत्तः प्रतिविशिष्टश्च कोऽन्योऽस्ति भुवि मानवः॥ ५॥ इत्यादिना निराचकार। (१। १२० म. भा. ५) एवं व्यभिचारदोषात् अतीव बिभ्यन्तीं तां पुत्रगृध्नुः पाण्डुः तद्भयापाकरणार्थं तत्र प्रवृत्तिसिद्ध्यर्थं च श्वेतकेतूपा-ख्यानादिकं किञ्चित्कथयति स्म। अतः पाण्डुवचनस्य न उपाख्याने तात्पर्यं किन्तु तस्याः प्रवर्तने। उक्तं हिं कुमारिलभट्टेन तन्त्रवार्तिके—"एवं भारतादिवाक्यानि व्याख्येयानि" तेषामपि हि "श्रावयेच्चतुरो वर्णानि" त्येवमादिविध्यनुसारेण पुरुषार्थत्वा-न्वेषणादक्षरादि व्यतिक्रम्य धर्मार्थकाममोक्षा धर्मानर्थदुःखसंसारसाध्यसाधनप्रतिपत्तिरूपादानपरित्यागाङ्गभूताः फलम्। तत्रापि तु दानराजमोक्षधर्मादिषु केचित् पुनः परकृतिपुराकल्परूपेणार्थवादाः। सर्वोपाख्यानेषु च तात्पर्ये सति श्रावयेदिति विधेरानर्थ-क्यात्कथञ्चिद्गम्यमानस्तुतिनिन्दापरिग्रहः। तत्परत्वाच्च नातीवोपाख्यानेषु तत्वाभिनिवेशः कार्य" इति। अनेन अन्येऽपि ये केचन एतादृशानन्यार्थस्तावकत्वेन प्रवृत्तान् उपाख्यानरूपानर्थवादानवलम्ब्य यं कञ्चन स्वार्थं साधयितुमीहते तेऽपि प्रत्युक्ताः। अनेन नैवं मन्तव्यम्, अस्माकं भारतादिगतानामुपाख्यानानां सर्वेषामसत्यतैवाभिप्रेतेति। असति प्रबलप्रमाणविरोधे तेषामनि प्रामाण्यं स्वीकुर्म एव। परन्तु अनन्यपरैर्बलवत्तमैर्वेदभागैः सिद्ध्यन्तमर्थमेतादृशानि वेदापेक्षया दुर्बलप्रमाणकान्युपाख्यानानि न कम्पयितुमीशत इति। अतः सिद्धं प्रथेयं वैवाहिकी भारतीयानामस्माकमनादिसिद्धेति। एवमनादिसिद्धो विवाहः अनेकपदार्थ-संवलितः। ते च पदार्थाः केचन गृह्यकारैरभिहिताः। केचन गृह्यान्तरेभ्यः पद्धतिकारैः सर्वशाखान्यायेन संगृहीताः, केचना-चारप्राप्ताश्च। तेषु च केचन प्रधानभूताः केचनाङ्गभूताः। तत्र कन्याप्रतिग्रहः, पाणिग्रहणम्, लाजहोमः, अश्मारोहणम्, सप्तपदी, जयादिहोमाः एते प्रधानपदार्थाः। मधुपर्कः, दिवा सूर्यावेक्षणम्, रात्रौ ध्रुवावेक्षणम्, हृदयालंभः, अभिषेकः, चतुर्थीकर्म एतेऽङ्गभूताः। शाखोच्चारः, ग्रन्थिबन्धनम्, अन्तःपटकरणम्, कन्याया वामभागे उपवेशनम् इत्यादय आचारप्राप्ताः। तेषु च केषाञ्चित्स्वरूपं संग्रहेण विविच्यते—तत्र मधुपर्को नाम पूजाविशेषः। स च आचार्यादिभ्यः षड्भ्यः कर्तव्यत्वेन विहितो विवा-

हेऽपि क्रियते । तत्र अर्घ्यपाद्याचमनादिदानपूर्वकं वराय भक्षणार्थं दधि मधु घृतं चेति त्रितयं दीयते । अत्र भक्षणीयस्य द्रव्यस्य मधुना क्षौद्रेण सह सम्पृक्तत्वात् कर्मणोऽस्य मधुपर्क इति नामा । एतच्च विवाहाङ्गं कर्म । कन्यादानं कन्यापित्रा उदङ्मुखोपपविष्टेन प्रत्यङ्मुख्याः कन्याया हस्तं ग्रहीत्वा प्राङ्मुखोपविष्टाय वराय तुभ्यमहं सम्प्रददे इत्युक्त्वा यद्दीयते तत्कर्म । इदं प्रधानकर्म । लाजहोमः--भृष्टा व्रीहयो लाजाः, तान् शमीपत्रैर्मिश्रयित्वा कुमार्या भ्राता तस्या हस्ते प्रक्षिप्यमाणैः अर्यमणमित्यादि मन्त्रत्रयेण वरेण सहान्वारब्धया कन्याया क्रियमाणो होमविशेषः । इदमपि प्रधानम् । पाणिग्रहणम्--गृभ्णामि त इत्यादिमन्त्रैर्वरकर्तृकं साङ्गुष्ठं कन्यायाः पाणिग्रहणम् । इदमपि प्रधानम् । सप्तपदी-एकमिष इत्यादिभिः सप्तभिर्मन्त्रैर्वरेण कन्याया दक्षिणं पादं गृहीत्वाऽऽकृष्य सप्तसु स्थानेषु क्रमशोऽवस्थापनम् । अत्रैव च विवाहसम्पत्तिरिति "पतित्वं सप्तमे पदे" इत्याद्यभिदधतां शास्त्रकाराणामभिप्रायः । विवाहाच्चतुर्थदिनेऽपररात्रेऽन्तिमयामे वैवाहिकेऽग्नौ अग्ने प्रायश्चित्त इत्यादिनाऽऽज्यहोमः, स्थालीपाकहोमो, हृदयालम्भः, स्थालीपाकभक्षणादिकं क्रियते तत् चतुर्थ्यां रात्र्यां क्रियमाणत्वाच्चतुर्थीकर्मेत्युच्यते ।

२—कन्यादानकाले दातृप्रतिग्रहीत्रोस्त्रयाणामुल्लेखः स्मृतिकारोक्तः । अत्र कैश्चिन्मरुप्रदेशीयैर्वैश्यविवाहे ततोऽप्यधिकानां यावत्स्मरणं नामानि पठ्यन्ते तदपि न्यायप्राप्तमाचारप्राप्तं युक्ततरमेव । यतो हि कन्यादानस्य स्वकुलीनैकविंशतिपुरुषोत्तारणफलं, केषांचिन्मते शतपुरुषोत्तारकत्वं वाऽङ्गीकृतम्, एवं च ये स्वकीयपुरुषा दानेनोत्तारणीयास्तेषां नामस्मरणमप्यनेन सिध्यति । किञ्च सीताविवाहे जनकेन—"प्रदाने हि मुनिश्रेष्ठ कुलं निरवशेषतः । वक्तव्यं कुलजातेन तन्निबोध महामुने । इत्यनेन कुलपरम्पराया निरवशेषेण वक्तव्यतामभिधाय अनन्तरम्—"राजाऽभूत् त्रिषु लोकेषु विश्रुतः स्वेन कर्मणा । निमिः परमधर्मात्मा सर्वसत्त्वभृतां वरः । इत्यादिना स्वकुलपरम्पराया निमिमारभ्य बहूनां नामान्यस्मिन् प्रसङ्गेऽनुकीर्तितानि । एवमेव दशरथकुलमपि "अव्यक्तप्रभावो ब्रह्मा" इत्यादिना ब्रह्माणमारभ्य दशरथान्तं सर्वे राजर्षयो नामभिः संकीर्तिताः । अत इयमपि प्रथाऽतिप्राचीना शास्त्रसंमता । अनेन "दशपूरुषविख्यातात्" इति याज्ञवल्क्यवचनमपि समाहितं भवति । ३—कन्यादानकाले कैश्चित् संकल्पात्पूर्वमेव वरहस्ते कन्याहस्तं निधाय ततः सङ्कल्पादिकं दानं वा क्रियते तदसाधु । तथा क्वचिदप्यविधानात्, दानात्पूर्वं वरेण अदत्तकन्याहस्तग्रहणे प्रमाणाभावात् । अतो दानानन्तरमेव अर्थात् तुभ्यमहं सम्प्रददे इति दानबोधकशब्दोच्चारणपूर्वकं कन्याहस्तं गृहीत्वा तत्पित्रा यदा दानं क्रियते तदनन्तरम् 'हस्तं केशं तथा पुच्छम्' इति शास्त्रेण कन्याहस्तो वरेण ग्रहीतव्यो न ततः पूर्वम् । एवं च कैश्चिदाधुनिकैः पद्धतिकारैः जामातृदक्षिणकरोपरि कन्यादक्षिणकरं निधायेत्यादि यल्लिखितं तदनाचारमूलकमेव । ४—पञ्चयूका-यवचतुष्टयाधिकाष्टषष्टयङ्गुलमितकर्काटकभ्रामणेन यूकादाय-पञ्चयवाधिकषट् त्रिंशदुत्तरशताङ्गुलमितं (१ ३६ अं. य. ५. यू० २) वृत्तं विधाय तस्य वृत्तस्य समान् विंशतिभागान् कृत्वा तेषु विंशतिं चिन्हानि कृत्वा परस्परं चिन्हेषु समानि सूत्राणि कर्काटकभ्रामणेन दद्यात् । एवं कृते समविंशत्यस्रा श्रीधरी वेदिः सिद्ध्यति । इदं वेदिकरणं वैकल्पिकम् । ५— लाजहोमात्पूर्वं परं मृत्यो इत्यनेन यो होमः क्रियते तस्य फलं मृत्युनिवारणम् । रौद्र्यां पैत्र्यामथो याम्यां मार्तव्यामाहुतौ तथा । दम्पत्योरल्पमायुः स्यादन्तर्धिरचना न चेत ॥ इति वचनात् । अत एव होमकाले होत्रा वरेण वध्वा च आहुतिर्न द्रष्टव्येति वधूवरयोरग्नेश्च मध्ये पटेनान्तर्धानं क्रियते तदन्तः पटशब्देनोच्यते । अत्र कैश्चित् केवलं वध्वा एव अक्ष्णोः पटेन पिधानं क्रियते तन्न समीचीनम् । होमेनानेन उभयनिष्ठदोषस्यैव निवारणात् । अतोऽत्र फलभाजोरुभयोरपि दर्शनं वारणीयमिति मत्वा दम्पत्योग्नेश्च मध्येऽन्तर्धानं कर्तव्यं न त्वेकस्या वध्वाः । अतएव संस्कारभास्करे उपक्रमेऽस्योभयार्थमेवोक्तकारिकानिर्देशपुरः सरमभिहितम् । अन्ते तु वध्वक्ष्णोर्वस्त्रपटं निक्षिप्येति यदुक्तं तदुभयोरुपलक्षणार्थमवयुत्यानुवाद इति मन्तव्यम् । ज्योतिष्टमे प्रवर्ग्यहोमकाले पत्न्या अपि केवलं वस्त्रेणाच्छादनं भवति वचनबलात् । अत्र तु न तथा वचनमस्तीत्युभयोरन्तर्धानम् । दाक्षिणात्यानामुपनयने विवाहे च गायत्र्युपदेशात्पूर्वमाचार्यमाणवकयोः, कन्यादानात्पूर्वं वधूवरयोरन्तः पटधारणं भवति पठन्ति च—"वस्त्रान्तरं तयोः कृत्वा मध्ये तु वरकन्ययोः । परस्परं मुखं पश्येन्मुहूर्ते चाक्षतान् क्षिपेत् । वध्वोरन्तःपटं वस्त्रं वराय विनिवेदयेत्" ६—विवाहकाले वरवध्वोरुभयोर्ललाटे पट्टिका काचन (सेवरा) निबद्धव्या । इयमपि रीति स्पष्टतोऽस्मत्सूत्रकारेणानुक्तोऽपि आश्वलायनगृह्यपरिशिष्टे पट्टिकाबन्धनस्योक्तत्वात् 'अनुक्तमन्यतोग्राह्यम्' इति न्यायेनास्माभिरपि तदेव पट्टिकाबन्धनं पुष्पेण वस्त्रेण पत्रादिना वा कार्यत इति ॥ ७—वैवाहिकवेद्याश्चतुर्षु चतुरःकुम्भान् निक्षिप्य तत्सविधे चतुरःशङ्कून् निखाय शङ्कून् कलशांश्च सूत्रेणावेष्ट्य कुम्भमध्ये शरेषीकाश्चतस्रः स्थापयित्वा इषीकाणां चत्वार्यग्राणि एकीकृत्य यथाच बन्धनमग्नेरुपर्यागच्छेत्तथा रक्तसूत्रेणाऽऽबध्य लाजहोमः कर्तव्यः । विधिरयं सूत्रकारैरनुक्तोऽपि मरुदेशीयाचारप्राप्तः प्राचीनपरम्पराहतश्च च । विवाहे मण्डपस्य विहितत्वात् मुख्यस्य तस्य सम्पादनासम्भवे गौणमिदं मण्डपकरणमिति प्रतीयते । अतो मण्डपकरणस्थानीयमिदं कर्म । एतस्यैव कुम्भचष्टतुय-कोणचतुष्टयादिसम्बन्धात् चतुरिका (चौरी) करणमित्यपि कथयन्ति मरुदेशीयाः ।८--लाजहोमकाले अन्वारम्भमात्रस्य रेणुकारिकादावुक्तत्वाद् वरेण कन्यायाः स्पर्शमात्रं कार्यम् । स च स्पर्शः कन्यायाः अनुपृष्ठं पतिः परिक्रम्य उदङ्मुखोऽवस्थाय वरेण कर्त्तव्यः, गोभिलसूत्रादौ तथैव विधानात् ।

न तु कन्यायाः पृष्ठतो गत्वा ततः पुरतो हस्तौ प्रसार्य कन्यायाहस्तयोर्ग्रहणम्, अशास्त्रीयत्वात् असभ्यताऽऽपादकत्वाच्च। यद्यपि कैश्चिदन्वारम्भणस्यास्मत्सूत्रकारानुक्तत्वात् शाखाऽन्तरीयान्वारम्भग्रहणे प्रमाणाभावाद् अन्वारम्भो नानुष्ठेयः, अतएव चातुर्मास्ययागे वरुणप्रघासकर्मणि "करम्भपात्राणि जुहोति शूर्पेण मूर्द्धनि कृत्वा दक्षिणेऽग्नौ प्रत्यङ्मुखी जायापती वा" (का श्रौ ५ ५ १.) इति सूत्रेण उभयकर्तृके करम्भपात्रहोमविधाने यजमानस्य पत्न्यन्वारम्भ उक्तो, नतु केवलपत्नी-कर्तृके करम्भपात्रहोमे। एवं च पत्नीमात्रकर्तृके लाजहोमे नैवान्वारम्भः, केवलं पत्नी उत्थाय जुहुयात्, वरस्तु उपविशेदेवे-त्याक्षिप्यते, तथाऽपि—तिष्ठन्ती तिष्ठता पत्न्या गृहीताञ्जलिनैव सा। अञ्जलिस्थान् त्रिधा कृत्वा प्राङ्मुखी प्रतिमन्त्रतः॥ इति रेणुकारिकावचनमाश्रित्य शिष्टाचारप्राप्तोऽन्वारम्भो लाजहोमे वरेण कार्य इति वक्तुं शक्यते। तत्रापि वधूः प्राङ्मुखी जुहुयात्। वरश्च प्राङ्मुख एव भवेदित्याहुः शाखान्तरे तु—वरस्योदङ्मुखत्वं श्रूयते "अनुपृष्ठं पतिः परिक्रम्य दक्षिणत उदङ्मुखोऽवतिष्ठते वध्वञ्जलिं गृहीत्वा" गो. गृ.।

(९) इदमत्रविचार्यते। कन्यादाने दातुः स्वत्वनिवृत्तिर्भवति नवेति। केचिदत्रैवमाशेरते—गोदानादौ इमां गां तुभ्यमहं सम्प्रददे इत्युक्त्वा ततः स्वस्वत्वनिवृत्तिबोधकं न मम इति पदद्वयमपि उच्चार्यते अतस्तत्र स्वस्वत्वनिवृत्तिर्जायते। कन्यादाने तु इमां कन्यां तुभ्यमहं सम्प्रददे इत्येवोक्त्वा विरम्यते नतु न ममेति पदद्वयमुच्चार्यते। अतश्च गोदानवत् नात्र स्वत्वनिवृत्तिर्भवति। अत एव सकृद्दत्ताऽपि पुनर्दातुं शक्यत इति। ते तावत्प्रष्टव्याः, आस्तां तावत् न ममेति पदद्वयं कन्या-दानेऽपि गोदानवत् दाधातुरुच्चार्यते नवेति। यदि चेदोमितिब्रूयुस्तर्हि तत्रोच्चार्यमाणस्य दाधातोः कोऽर्थ इति स्वस्वत्वनि-वृत्तिपूर्वकपरस्वत्वापादनरूपो व्यापारो दाधात्वर्थ इति शास्त्रकारैः सर्वत्राङ्गीकृतम्। "दानं चापुनर्ग्रहणाय स्वस्वत्वनिवृत्ति-पूर्वकं परस्वत्वोत्पादनम्" इति कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् (अष्टा. १।४।३२)। इति सूत्रे तत्वबोधिनीकारः। शास्त्रदीपिकायामपि पार्थसारथिमिश्रैः चतुर्थेऽध्याये द्वितीयपादे द्वादशेऽधिकरणे यागहोमादीनां भेदकथनावसरे "देवतोद्देशेन स्वद्रव्यपरित्यागो यागः, स एव प्रक्षेपाधिको होमः, स्वीयस्य परकीयत्वापादनं दानम्, इत्युक्तम्। सम्प्रदानस्वत्वापादको द्रव्यत्यागो दानपदार्थ इति च तत्रैव भाट्टदीपिकायाम्। एवं च सति दाधातुरेव स्वस्वत्वनिवृत्तिं परस्वत्वापादानं च कथयति इति यत्र दाधातुः प्रयुज्यते तत्र स्वत्वनिवृत्तिरपि जायत एवेति किमवशिष्यते यत् न ममेति पदद्वयेन बोध्यते। स्मृतिकारैः परं स्पष्टप्रतिपत्त्यर्थं दाधातुकार्याया एव स्वत्वनिवृत्तेर्न ममेति पदद्वयेनापि अनुवादः कार्य इति मत्वैव "न ममेति स्वसत्ताया निवृत्तिमपि कीर्तयेत्" इत्युक्तम्। अतश्च सर्वत्र दानस्थले न ममेति कथनमनुवादरूपमेवेति तदनुक्तावपि स्वत्वनिवृत्तिर्जा-तैवेति मन्तव्यम्। अत एव गोदानादावपि क्वचिद् देशे न ममेति शिष्टा नोच्चारयन्ति। यागादौ परम् इदमग्नय इत्यादि चतुर्थीमात्रप्रयोगात् दाधातोरप्रयोगेण चतुर्थ्या च त्यज्यमानद्रव्योद्देश्यत्वमात्रकथनात् तत्र स्वत्वनिवृत्तेस्तथाऽप्रतीतेस्तत्प्र-तीत्यर्थं न मम इति पदद्वयमुच्चारणीयमेव। किञ्च यदि कन्यादाने न स्वत्वनिवृत्तिर्जायते तर्हि पुत्रदानेऽपि कथं सा जायते। यदि चेष्टापत्तिः ? "गोत्ररिक्थे जनयितुर्न भजेद्कृत्रिमः सुतः" इत्यादिगोत्ररिक्थनिवृत्तिबोधकानां शास्त्राणां का वा गतिः। कथं वा स पुत्रः प्रतिग्रहीतरिमृते पुनरन्यस्मै न दातुं शक्यते। कथं वा कन्यापुत्रैः साकमंशहरा न भवेत्। अतो यथा दत्तकहोमानन्तरं पुत्रो जनकगोत्राद् भ्रश्यति तस्य चास्य च जन्यजनकभावसम्बन्धमन्तरा नान्योऽस्ति कश्चित्सम्बन्धः। एवं वैवाहिकसप्तपद्यनन्तरं कन्यायाः पितुश्च तादृशं सम्बन्धमन्तरा नान्यः सम्बन्धः कश्चिदस्ति। अत एव च कन्यां परकीय-द्रव्यन्यासरूपां समामनन्ति। "प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा" भगवान् कण्वः कथयति। कन्यादानं त्रिः कार्यमिति शौनकोक्तिस्तु प्राथमिकदानेऽपि दानसम्पत्तौ सत्यां पुनर्वारद्वयमदृष्टार्थं शब्दोच्चारणं कार्यमित्येवमर्थिका—यथा मधुपर्के सकृदु-च्चारणेनापि सिद्धे कार्ये मधुपर्को मधुपर्को मधुपर्क इति वारत्रयमुच्चार्यते, यथा वा सोमयागे दीक्षाप्रकरणे दीक्षितावेदनसमये दीक्षितोऽयं ब्राह्मण इति सकृदुच्चारणेनापि कार्यसिद्धौ "त्रिरूपांश्वाह त्रिरुच्चैः" इति विधानमदृष्टार्थं तद्वत्। अयमत्र निष्कर्षः—गोदानवत् कन्यादानेऽपि दाधातुप्रयोगात् स्वत्वनिवृत्तिर्भवत्येव। न ममेति शब्दोच्चारणं भवतु मा वा। अत एव च गोदानेऽपि क्वचिन्न ममेति न प्रयुज्यते, कन्यादानेऽपि क्वचित्प्रयुज्यते। क्वचिद्देशे प्रजासहत्वकर्मभ्यः प्रतिपादयामि इत्येव प्रयुज्यते। तत्र प्रतिपादनमपि दानापरपर्यायमेव। अतो दानानन्तरकालिकवैवाहिकसप्तपद्यामेव कन्यायाः पितृगोत्रनिवृत्तेः पितुस्तस्याश्च पितृत्वकन्यात्वरूपसम्बन्धं विना अन्यस्य स्वत्वादेरभावात् न सा कन्या पुनरन्यस्मै केनापि करणे दातुं शक्येति।

(१०) विवाहे पाणिग्रहणात्पूर्वं वधूवरवस्त्रयोर्ग्रन्थिबन्धनं यदाधुनिके पुस्तके क्वचिदुपलभ्यते तत्प्रमाणपदवीमारूढं नवेति विचारे पारस्करगृह्यसूत्रानुसारपद्धत्यनुवादकेन केनचित्—"कन्यका सुदशे पार्श्वे द्रव्यपुष्पाक्षतादिकम्। निक्षिप्य तच्च सम्बध्य वरवस्त्रेण संयुजेत्। वस्त्रैः संयोज्य तौ पूर्वं कन्यादानं समाचरेत्। दानेन युक्तयोः पश्चाद्विदध्यात् पाणिपीडनम्" इति योगियाज्ञवल्कीयोद्धृते श्लोके यद्यपि पाणिग्रहणात्पूर्वमेव ग्रन्थिबन्धनस्य कर्तव्यत्वं प्रतीयते तथापि तस्य श्लोकस्य योगियाज्ञवल्कीये कस्मिन्नपि ग्रन्थेऽनुपलम्भात् शिष्टाचारविरोधाच्च श्लोकोऽयं केवलं स्वकपोलकल्पितो न प्रमाणकोटिमारूढ

इत्यवगम्यते। सूत्रकारान्तरैरापस्तम्ब–बौधायन–खादिर–जैमिनि–हिरण्यकेशि–प्रभृतिभिः पाणिग्रहणं विधाय अनन्तरमेव–"अन्वारब्धायामुत्तरा आहुतीर्जुहोति" (आप. गृ. ४।११।५) "अग्निमुपसमाधाय दक्षिणतः पतिं भार्योपविशति, आचान्तः समन्वारब्धायां परिषिञ्चन्ति" (हिरण्यके. गृ. ५।४।५) "पाणिग्राहकस्य दक्षिणत उपवेशयेदन्वारब्धायां स्रुवेणोपहत्य महाव्याहृतिभिराज्यं जुहुयात्" (खादि. गृ. १।३।७) "दक्षिणत एरकायां भार्यामुपवेश्योत्तरतः पतिरुभावन्वारभेयातां स्वमुच्चैर्जुहुयाज्जायायामन्वारब्धायाम्" (जैमि. गृ. १।२०) "अलंकृत्य कन्यामुदकपूर्वां दद्यात्समन्वारब्धायां हुत्वा" (आश्व. गृ. १।७।७) "अन्वारब्ध आघारावाज्यभागौ हुत्वा" (पार० गृ ४ कं०) भट्टकुमारिलप्रणीतायामाश्वलायनगृह्यकारिकायाम् "वरेणैवं वृतां कन्यां तत्पिता प्रददाति ताम्" (१।१०।१७) इत्यादिना कन्यादानं विधाय—"बध्वा वस्त्रान्तमुभयोः प्राङ्मुखौ च ततः परम्। होमदेशे व्रजेतां तु परिगृह्य करौ मिथः॥ वधूर्दक्षिणहस्तेन समन्वारब्ध एव सन्। कुर्यादाघारपर्यन्तं चौलोक्ताज्याहुतित्रयम्" (१६।२०) इत्यादिना च पाणिग्रहणानन्तरमेव वरवध्वोरन्वारम्भो विहितः। अतश्च सर्वैरेव सूत्रकारैर्वधूवरयोरन्वारम्भस्य पाणिग्रहणानन्तरमेव विधानात् यावत्पाणिग्रहणं न सञ्जातं ततः पूर्वं तयोः परस्परं सम्बन्धाभावात् असम्बद्धयोरन्वारम्भस्यानुचितत्वात्पाणिग्रहणान्तरमेवान्वारम्भः कर्तव्य इति सर्वसूत्रकारानुमतम्। एतदन्वारम्भज्ञापकमेव ग्रन्थिबन्धनमपि लौकिकाचारागतमित्यनुमातुं शक्यते। अत एव पाणिग्रहणानन्तरमेव ग्रन्थिबन्धनं शास्त्रानुमतं न ततः पूर्वम्। एवं च पाणिग्रहणात्पूर्वं कन्याप्रदकर्तृकं ग्रन्थिबन्धनमिति यत् क्वचिदुपलभ्यते तन्निर्मूलकं भ्रान्तिमूलकं वा कन्याप्रदयोर्मातापित्रोर्वेति निर्णयः। (११) विवाहाङ्गभूतस्य चतुर्थीकर्मणो विवाहाच्चतुर्थेऽह्नि अपररात्रे कर्तव्यत्वेन सत्यपि विधौ केनचिदापदादिना कारणेन तस्मिन् दिने कर्तुमशक्तौ विवाहदिन एव कर्तव्यं न वेति विचारे सर्वैरपि सूत्रकारैः पद्धतिकारैश्च चतुर्थदिन एव तत्कर्तव्यताविधानात् कालान्तरस्याविधानाच्च विहितसमये कर्तव्यमिति यद्यपि प्रतीयते युक्तं चैतत्, तथापि चतुर्थदिने बलवत्तरकारणेन कर्तुमशक्तौ कर्मलोपासम्भावनायाम् "कर्मलोपो विगर्हितः" इति कर्मलोपस्य निषिद्धत्वात् "यदि त्वशक्तेः कुलाचाराद्वा तद्दिन एव चतुर्थीहोमः क्रियते तदा तत्समाप्तावेवोदीच्यं कर्म तन्त्रेण कर्तव्यम्" इति (संस्कारतत्त्वे पृ० ९०६) प्रामाणिकनिबन्धकारवचनबलात् क्वचिद्देशे चतुर्थीकर्मणो विवाहादनन्तरकर्तव्यताया अपि प्रतीतेः "प्रातर्होमं कृत्वा दिवा विवाहं संपाद्य सद्यश्चतुर्थीकर्म च कृत्वा तद्दिन एवावसथ्याधानम्" इत्याधानप्रकरणस्थहरिहरवाक्येनापि (पार. गृ. हरि. कां. १ पृ. २४) आपत्काले चतुर्थीकर्मणः सद्यः कर्तव्यताया अभ्यनुज्ञातत्वाच्च विवाहदिनेऽपि अनुष्ठानं परित्यागापेक्षया समुचितम् इति।

श्री विश्वनाथशर्मा गौड़

१—वाग्दानोत्तर कुलद्वय में तथा मातृपितृमरण में एकवर्ष तक, अन्य मरण में कमसे कम एकमासतक, चारपीढी तक प्रेतक्रिया के समाप्त न होने तक विवाहादि न करे। आवश्यकता पड़ने पर विनायकशान्त्यादि कर करे। २—विवाह, उपनयन, चौल और यज्ञादिमें माता रजस्वला हो तो न करे। नान्दीश्राद्धानन्तर ऋतुमती हो तो गोदान तथा कूष्माण्डीहवन करे। ३—एकमातृज का कोई संस्कार एक साथ नहीं होता है। यमलजात का होता है। पुत्रके विवाहोत्तर छ मास तक पुत्री का विवाह नहीं होता है एवं उपनयन और मुण्डन भी नहीं होता है। वर्षभेद से हो सकता है। ४—एक घर में दो मंगल कार्य नहीं होते हैं। आवश्यकता में मण्डप, द्वार और आचार्यादि भेद से हो सकते हैं। ५—विवाहान्तर चतुर्थीकर्मतक कोई श्राद्धादि तिथि नहीं पड़नी चाहिए। ६—एकही वर को दो कन्या नहीं देनी चाहिये। ७—कन्या ऋतुमती हो तो ऋतुसंख्यगोदान करे। कन्या को उपवास एवं किसी एक कन्या को वस्त्र आभूषणादि दान दे और कूष्माण्डीहवन भी विहित है। ८—विवाह होतेसमय कन्या ऋतुमती हो तो 'युञ्जान' इस मन्त्रसे हवन, स्नान तथा पञ्चगव्यपान विहित है। ९—नान्दीश्राद्ध न करने पर भी सामग्री के इकट्ठी होनेपर विवाहादि कार्य आशौचमें भी होते हैं। १०—व्रत, यज्ञ और विवाहादि में नान्दीश्राद्धानन्तर आशौच नहीं होता है। ११—विवाहिता का पुनरुद्वाह कलिवर्ज्य है। मातृ सपिण्ड विवाह भी कलिवर्ज्य है। १२—द्वितीयविवाह में वर स्वयं नान्दीश्राद्ध करे पिता न करे। १३—विवाहादि में मण्डपोद्वासन तक श्राद्ध, अपसव्य, नित्यश्राद्ध, ब्रह्मयज्ञ, अध्ययन, नद्यतिरिक्तक्रमण और उपवास सपिण्ड न करे। १४—विवाह में स्पर्शास्पर्श दोष नहीं होता है। १५—विवाहाद्यनन्तर तिलतर्पण, शवानुगमन, नूतनतीर्थगमन और मुण्डनादि एकवर्ष तक न करे। १६—मंगलकार्य में गोपीचन्दन धारण निषिद्ध है। १७—शूद्रकर्तृककृत्यमें पौराणिक ही मन्त्र ब्राह्मण पढ़ें एवं स्त्री कर्तृक में भी। वेद मन्त्र नहीं ही पढना चाहिये। १८—अनुपनीत भाई को कन्यादान का अधिकार नहीं है, माता ही करे।

अथ निर्णयसिन्धुः

(भाषाटीका सहित)

श्लोकसूची

दौलतराम गौड

(अ)

(आ)

(उ)

(ऊ)

(ऋ)

(इ)

(ए)

(क)

———

(प्राचीन व्यवस्थाओं का संग्रह)

(स्वर्गीय-महामहोपाध्याय श्री पं० विद्याधर जी गौड़ द्वारा लिखित)

(२) चतुर्थीहोमानन्तरम् आवसथ्याऽऽधानमित्यनेन विधिना सम्पादितोऽग्निः स्मार्ताग्निरित्युच्यते । यदि तु तस्मिन् काले ग्रहणं न सुशकं तदा दायकाले सम्पादनीयः । यदि च कालद्वयेऽपि नाऽऽहितस्तदा पितर्युपरते द्वादशाहे सपिण्डनपक्षे तस्मिन्नेव दिने आधेयः । कालत्रयेऽपि यदि नाऽऽहितस्तदा यावान् कालोऽतीतस्तत्कालोक्तं प्रायश्चित्तमनुष्ठाय तदाऽऽधेयः । प्रायश्चित्तं च प्रतिवर्षं चान्द्रायणम् अशक्तो प्राजापत्यं वा । चान्द्रायणस्य अष्टौ गावः प्रत्याम्नायाः, प्राजापत्यस्य च एका धेनुः । प्रतिवर्षं चतुर्विंशतिप्रस्थमिततण्डुलस्य यवस्य वा त्रि, प्रस्थमितस्य घृतस्य च हवनीयद्रव्यस्य दानमिति । अस्मिन्नेवाऽग्नौ नित्यं सायम्प्रातरौपासनहोमः, पिण्डपितृयज्ञः, पञ्चादिः पञ्चमहायज्ञाः, दैनन्दिनपाकः, सप्तपाकयज्ञाश्चानुष्ठीयन्ते ।

(देवालयनिमित्तकविचारः)

१—कस्मिंश्चिद्देवालये भूकम्पादिना निमित्तेनात्यन्तं विशिर्णतां प्राप्य पतनोन्मुखे सति तत्र स्थापिताया देव्या मूर्तेरवैकल्ये च सति तस्या मूर्तेस्तस्मात्स्थानादुत्थापनं विना तत्रैव देशे पुनर्मन्दिरनिर्माणस्याशक्यत्वे च सति तामविकलां मूर्तिं तस्मात्स्थानादुत्थाप्य स्थानान्तरे क्वचित्तन्निकट एव संस्थाप्य तन्मूर्तिनिष्ठां शक्तिं सुवर्णादिपात्रस्थे जले आकृष्य तत्रैव तत्वन्यासादिकं कृत्वा यावत्पुनः स्थापनं मूर्तेस्तावत्तजलं रक्षेत् । एवं प्रासादशक्तिमपि कस्मिंश्चिद् खड्गे आकृष्य तत्वन्यासादिकं कृत्वा मूर्तिसन्निधौ निधाय खड्गमेव यथाविधि देववत्पूजयेत् । ततो देवालयं नूतनं पूर्वदेशे निर्माय तत्र तामेव मूर्तिं पुनः स्थापयेद्यदि मूर्तिस्खण्डिता भवेत् । संस्थाप्य च पुनस्तां तां शक्तिमाकर्षणादिना तत्र तत्रैवान्यस्य मूर्तिं प्रसादञ्च यथावत्पूजयेत् इति शास्त्रीयोनिर्णयः प्रतिष्ठात्रैविक्रम्यां विद्यत इति ।

अत्र प्रमाणानि—

'एष एव विधिः प्रोक्तो जीर्णोद्धारसमुद्धृतौ । खड्गे मन्त्रगणं न्यस्य कारयेन्मन्दिरान्तरम् ॥' इति । 'अथातः संप्रवक्ष्यामि मूर्तीनां हरणं शुभम् । विधानं स्थापितानां च ग्रामात् ग्रामान्तरं प्रति ॥ प्रासादरहिता सा च आतपे विजने तथा । उपघातैरुपहता श्वभिः काकैस्तथाऽन्त्यजैः ॥ चिरकालस्थिताः चैवं पुनः प्रासादकृन्नरः । म्लेच्छोपद्रवसंयुक्ते स्थाने चातीवदूषिते ॥ एवं विधा हि तां मूर्तिं नेतुं ग्रामान्तरं प्रति । वाससाऽऽच्छादितां मूर्तिं शिबिकायां निवेशयेत् ॥ इत्यभिधाय सर्वं प्रतिष्ठितं कर्म कुर्यान्न्यासविवर्जितमित्यादि ।

(मन्दिरादौ चतुःषष्टिवास्तुपूजनविचारः)

२—चतुःषष्टिपदमारभ्यानेकविधवास्तुपदमुक्तं तत्र कुत्र कस्योपयोग इति प्रश्ने—मन्दिरादौ तु चतुःषष्टिपद एव वास्तुपूजनं कार्यं भवने एकाशीति पदे । तथा चोक्तम्—'दुर्गे देवालये चैव शल्योद्धारे तथैव च । विशेषेणैव पूज्याश्च चतुःषष्टिपदं तथा । एकाशीतिपदं कुर्याद्रेखाभिः कनकेन च ॥ इत्यादयश्च । यद्यपि वास्तुराजवल्लभे अन्यान्यपि पदान्युक्तानि तथापि मन्दिरे चतुःषष्टिपदं भवने एकाशीतिपदं कार्यमित्यत्र तद्ग्रन्थकाराणां सम्मतिः स्पष्टैव । तत्रायं श्लोकः—'ग्रामे भूपतिमन्दिरे च नगरे पूज्यश्चतुषष्टिकैरेकाशीतिपदैः सकलभवने जीर्णे नवाब्धंशकैः । प्रसादे तु शतांशकैस्तु सकले पूज्यस्तथा मण्डपे । कूपे षण्णवचन्द्रभागसहिते वाप्यां तडागे वने ॥ इति ॥

(स्पृश्यास्पृश्यविवेककथन)

१—अस्पृश्यों का मन्दिरों और कालेजों में प्रवेश कराने, स्पृश्यों के साथ समान व्यवहार करने में क्या उनकी उन्नति होगी ? २—नानाविध उपायों से अस्पृश्यता मिटा देना अहिंसा है या क्रूर हिंसा ? ३—जिन कालेजों और मन्दिरों में अस्पृश्य जाते हैं, वहाँ स्पृश्यों को जाना चाहिए या नहीं ?

उत्तर १—अस्पृश्य दो प्रकार के होते हैं—एक पवित्र और दूसरे अपवित्र । 'स्नात्वा शुचिः कर्माणि कुर्वीत' इसके अनुसार जब अस्पृश्य स्नानादि से शुद्ध होकर यथाधिकार सन्ध्या, तर्पण, देवपूजा आदि करते हैं, उस अवस्था में कोई उपस्थित पुरुष उनका स्पर्श नहीं कर सकता । इसलिए वे उस समय 'पवित्र अस्पृश्य' कहे जाते हैं। अपवित्र पुरुष के सम्बन्ध से पवित्र पुरुष भी अपवित्र हो जाता है। अतः सन्ध्या, तर्पण, देवपूजन के समय मनुष्य को उचित है कि वह किसी का स्पर्श न करे। बौधायनधर्मसूत्र (१।६।१३) में लिखा है कि—"शुचिमध्वरं देवा जुषन्ते । शुचिकामा हि देवाः शुचयश्च । तदेषाऽभिवदति--शुची वो हव्या मरुतः शुचीनां शुचिं हिनोम्यध्वरं शुचिभ्यः । ऋतेन सत्यमृतसाप आयञ्छुचिजन्मानः शुचयः पावका इति ।" अर्थात्—पवित्र यज्ञ (देवपूजा) को देवता चाहते हैं। देवता पवित्र कामना वाले होते हैं। वे स्वयं भी परम पवित्र होते हैं। ऋग्वेद में भी कहा है कि—हे पवित्र देवताओ ! आप

लोगों की हवि पवित्र हो और पवित्र आप लोगों के लिये मैं (यजमान) पवित्र यज्ञ करता हूँ । आप लोग पवित्र जल के स्पर्श से पवित्रता को प्राप्त हैं, पवित्रजन्मा हैं स्वयं पवित्र हैं और दूसरों को पवित्र करनेवाले हैं। अतः देवपूजन के समय अपवित्र पुरुष या अपवित्र वस्तु से पूजक का स्पर्श नहीं होना चाहिये। पूजन के समय उत्तमता के कारण ये अस्पृश्य 'पवित्र अस्पृश्य' कहे जाते हैं। दूसरे अपवित्र अस्पृश्य हैं। वे भी दो प्रकार के हैं—एक वे, जिन्होंने ब्रह्महत्यादि कोई महापाप किया हो और दूसरे चाण्डालादि। पापी पुरुष जबतक प्रायश्चित्त द्वारा अपनी शुद्धि न कर ले, तबतक वह अस्पृश्य है, स्पर्श के योग्य नहीं है। अतः महापापी 'अपवित्र अस्पृश्य' कहा जाता है। चाण्डालादि तो जन्म से ही अस्पृश्य होते हैं, उनके स्पर्शमात्र से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सब अपवित्र हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में जबतक वे सचैल स्नान न करें, तबतक संध्या, तर्पण और देवपूजनादिका उनको अधिकार नहीं होता है। पुजारी आदि का स्पर्श उत्तम दृष्टि से निषिद्ध है और चाण्डालादि हीन जाति का स्पर्श हीनता के कारण निषिद्ध है। भगवान् मनु ने कहा है—ते चापि बाह्यान् सुबहूंस्ततोऽप्यधिकदूषितान्। परस्परस्य दारेषु जनयन्ति विगर्हितान्॥ (म० १०।२६) अर्थात्—वे सब बहुत अधिक दूषित निन्दित, सत्कर्म से बहिर्भूत पुत्रों को उत्पन्न करते हैं। यथैव शूद्रो ब्राह्मण्यां बाह्यं जन्तुं प्रसूयते। तथा बाह्यतरं बाह्यश्चातुर्वर्ण्ये प्रसूयते॥ (म० १०।३०) अर्थात्—जिसप्रकार शूद्र ब्राह्मणी में वर्ण आश्रम से बहिर्भूत पुत्र को उत्पन्न करता है, उसीप्रकार बाह्यपुत्र चाण्डाल आदि और भी हीन, नीच सन्तान उत्पन्न करता है। चैत्यद्रुमश्मशानेषु शैलेषूपवनेषु च। वसेयुरेतेऽविज्ञाता वर्जयन्तः स्वकर्मभिः॥ (म० १०।५०) अर्थात्—वृक्ष, श्मशान, पर्वत और उपवन में चाण्डालादि अपने कर्म से जीविका करते हुए वास करें, ग्राम में नहीं। चण्डालश्वपचानां तु बहिर्ग्रामात्प्रतिश्रय.। अपपात्राश्च कर्तव्या धनमेषां श्वगर्दभम्॥ (१०।५१) अर्थात्—चाण्डालादि का निवास ग्राम से बाहर हो। उनके पात्र सर्वथा अग्राह्य हैं, कुत्ते और गर्दभ उनके धन हैं, बैल आदि नहीं। वासांसि मृतचैलानि भिन्नभाण्डेषु भोजनम्। कार्ष्णायसमलङ्कारः परिव्रज्या च नित्यशः॥ (१०।५२) अर्थात्—मृतक (शव) के उतरे हुए वस्त्र इनके वस्त्र हैं, टूटे-फूटे पात्र में इनको भोजन करना चाहिये, लोहे के भूषण हों और सदा उन्हें भ्रमण करते रहना चाहिये। न तैः समयमन्विच्छेत् पुरुषो धर्ममाचरन्। व्यवहारो मिथस्तेषां विवाहः सदृशैः सह॥ (म० १०।५३) अर्थात्—धर्मानुष्ठान के समय चाण्डालों का दर्शनादि व्यवहार नहीं करना चाहिये। इनका सब व्यवहार परस्पर (आपस में) होता है। अन्नमेषां पराधीनं देयं स्याद् भिन्नभाजने। रात्रौ न विचरेयुस्ते ग्रामेषु नगरेषु च॥ (म० १०।५४) अर्थात्—इनको साक्षात् अन्न न देना चाहिए, टूटे पात्र में भृत्य के द्वारा देना चाहिये। रात्रि को वे ग्राम में और शहर में न घूमें। दिवा चरेयुः कार्यार्थं चिह्निता राजशासनैः। अबान्धवं शवं चैव निर्हरेयुरिति स्थितिः॥ (म० १०।५५) अर्थात्—दिन के कार्य के निमित्त राजचिह्न से अङ्कित होकर वे भ्रमण करें और जिसका कोई स्वामी नहीं, ऐसे अनाथ शव को ग्राम से बाहर ले जायँ। वध्याँश्च हन्युः सततं यथाशास्त्रं नृपाज्ञया। वध्यवासांसि गृह्णीयुः शय्याश्चाभरणानि च॥ (म०१०।५६) अर्थात्—राजाज्ञा से वे सूली-फाँसी देने का कार्य करें। मृतक के वस्त्र, खटिया, भूषणादि राजाज्ञा से ग्रहण करें। इन वचनों से यह सिद्ध होता है कि चाण्डालादि सम्पूर्ण वर्णाश्रम-धर्म से बाहर हैं और उनके पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र आदि सब लोग बाहर हैं। प्रत्युत इनकी सन्तान और भी अधम-हीन हैं। अतएव इससमय जो चाण्डालादि जाति वर्तमान हैं, यह वंशपरम्परा उन्हीं चाण्डालों के समान हैं। अतः ये सर्वथा बाह्य और अधम हैं, इसमें सन्देह नहीं है। ऐसी अवस्था में—'आजकल जो चाण्डाल जाति है यह वह चाण्डाल जाति नहीं है, यह बाह्य नहीं है' इत्यादि कहना साहसमात्र है। वंशपरम्परा ये जिसप्रकार ब्राह्मणादि जाति है उसीप्रकार चाण्डालादि जाति भी है। यदि इनको चाण्डाल न मानें तो उन्हें किस जाति के अन्तर्गत माना जाय ? सच्छूद्र में तो इनकी गणना है नहीं और न सच्छूद्रों के साथ इनका कोई व्यवहार है, इसलिये वे सच्छूद्र से पृथक् हैं, यह बात तो व्यवहार से सिद्ध ही है। हमलोग शिष्टाचार व्यवहार प्रमाण से आजकल के चाण्डालों को चाण्डाल मानते हैं। आधुनिक सुधारक लोग विना प्रमाण के निर्मूल चाण्डाल जाति को न मानकर सच्छूद्र में उनका अन्तर्भाव मानते हैं और वहाँ तक भी सन्तोष न कर उनके साथ भोजनादि व्यवहार करते हैं। इससे मालूम होता है कि प्रत्येक जाति में उनका अन्तर्भाव उन्हें अभीष्ट है, परन्तु मनु से लेकर समस्त स्मृतिकार और निबन्धकार आजकल वर्तमान चाण्डाल जाति को परम्परागत चाण्डाल जाति ही मानते हैं। इसलिये मूलभूत चाण्डाल से उत्पन्न यह जाति चाण्डाल जाति ही है, जात्यन्तर नहीं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। इसप्रकार श्रुति-स्मृतिसिद्ध चाण्डाल जाति सर्वथा बाह्य है, यह मन्वादि महर्षियों से भी सिद्ध है। अतः इनको अष्टादश विद्या के अध्ययन में कदापि अधिकार नहीं है, इसलिये इनको ये विद्याएँ नहीं देनी चाहिये। यदि कोई उन्हें लोभ या मोह से पढ़ाता है, तो वह भी 'पतित' हो जाता है—संवत्सरेण पतति पतितेन समाचरन्। याजनाध्यापनाद्यौनात् न तु यानासनाशनात्॥ (बौधायनधर्म० २।१।३५) अर्थात्—पतित के साथ याजन, अध्यापन और विवाहादि सम्बन्ध से सद्यः पतित होता है

तथा यान, आसन, भोजन से एक वर्ष में पतित होता है। इसीप्रकार पढ़नेवाला चाण्डालादि भी विना अधिकार अध्ययन करने से महादोषी होता है और उसको ऐहिक और आमुष्मिक फल की प्राप्ति भी नहीं होती है। अतएव इस विद्या के अध्ययन से उनका कोई उपकार नहीं होता, किन्तु वे नरकगामी ही होते हैं। चाण्डालों को पढ़ाने वालों को अध्यापन-प्रयुक्त दोष है और उन्हें अयोग्य कर्म में प्रवृत्त कराने से भी एक दोष होता है। इसप्रकार वे दो पापके भागी होते हैं। जो बालक चाण्डालादि के साथ एक आसन पर बैठ कर पाठशालाओं में पढ़ते हैं, वे भी एक ही वर्ष में पतित हो जाते हैं—एकशय्यासनं पङ्क्तिर्भाण्डपङ्क्त्यन्नमिश्रणम्। याजनाध्यापने योनिस्तथा च सह भोजनम्॥ नवधा संकरः प्रोक्तो न कर्तव्योऽधमैः सह। संल्लापस्पर्शनिश्वास-सहयानासनाशनात्॥ याजनाध्यापनाद्यौनात् पापं संक्रमते नृणाम्। संवत्सरेण पतित पतितेन सहाचरन्॥ उपर्युक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि एक ही पाठशाला में हमारे और चाण्डालों के बालकों का पठन-पाठन अत्यन्त धर्म-हिंसा कार्य है। इसीप्रकार चाण्डालों का मन्दिर-प्रवेश भी 'क्रूर-हिंसा है। इनके मन्दिर प्रवेश से 'देवकला' नष्टहो जाती है। यदि किसी मन्दिर में चाण्डालादि चला जाय, तो इसका उचित प्रायश्चित्त करना चाहिये। यदि वह (चाण्डाल) मूर्त्ति का स्पर्श कर दे, तो उसको पुनः प्रतिष्ठा होनी चाहिये। मन्दिर में चाण्डालों के प्रवेश से 'देवतात्व' नष्ट हो जाता है, पूजक पूजा के अधिकारी नहीं रहते और चाण्डालादि भी हीन कार्य में प्रवृत्त किये जाते हैं। यह सब व्यापार 'क्रूर हिंसा' है।

अथ निर्णयसिन्धुः

(भाषा-टीका-सहित)

(आधान, मूर्तिप्रतिष्ठा, गृहप्रवेशादि विचार और कलिवर्जकथन)

दौलतराम गौड

(आधानकालः)

अथाधानम् । रत्नमालायाम्—प्राजापत्ये पूषभे सद्विदैवै पुष्ये ज्येष्ठास्वैन्दवे कृत्तिकासु ।
अग्न्याधानं ह्युत्तराणां त्रयेऽपि चित्रादित्ये कीर्तितं गर्गमुख्यैः ॥

अब आधान कहते हैं । रत्नमालामें कहा है कि—रोहिणी, रेवती, विशाखा, पुष्य, ज्येष्ठा, मृगशिरा, कृत्तिका, तीनों उत्तरा, चित्रा, और हस्त इन नक्षत्रों में गर्गादि मुनियोंने—आधान कहा है ।

(नक्षत्राणां कथनम्)

आश्वलायनः-(द्वितीयाध्याये-पृ० ४६) 'अग्न्याधेयं कृत्तिकासु रोहिण्यां मृगशिरसि फाल्गुनीषु विशाखयोरुत्तरयोः प्रौष्ठपदयोरेतेषां कस्मिंश्चिद्वसन्ते पर्वणि ब्राह्मण आदधीत । ग्रीष्मवर्षाशरत्सु क्षत्रियवैश्योपक्रुष्टाः यस्मिन् कस्मिंश्चिदृतावादधीत । सोमेन यक्ष्यमाणो नर्तुं पृच्छेन्न नक्षत्रम् ।' सोमाधाने ऋत्वाद्यनालोचनमातपरम्,

आश्वलायनने कहा है कि—कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, विशाखा, उत्तराभाद्रपद और उत्तराषाढा इन नक्षत्रोंमें से किसी एक नक्षत्रमें अग्न्याधान करे । वसन्तऋतुके किसी पर्वमें ब्राह्मण आधान करे । ग्रीष्म, वर्षा, शरदऋतु में क्षत्रिय और वैश्य, उपक्रुष्ट (निन्दित अर्थात्—शूद्र) किसी भी ऋतुमें आधान करे । 'सोमयज्ञ' को करता हुआ मनुष्य ऋतु तथा नक्षत्र को न पूछे । समाधानमें ऋतु आदि का अविचार आर्त (रोगी) परक है ।

'अथो खलु यदैवेनं श्रद्धोपनमेदथादधीत सैवास्यर्द्धिरिति, (सोमेन यक्ष्यमाणो नर्तुं पृच्छेन्न नक्षत्रम्) तदेतदार्तस्यातिवेलं वा श्रद्धायुक्तस्य भवतीति बौधायनोक्तेरिति ।

इसलिए किसी को श्रद्धा हो तो वही आधान करे । वही उसकी ऋद्धि है । (सोमयज्ञ को करते हुए ऋतु और नक्षत्र को न पूछे ।) उस रोगी के अतिवेला या श्रद्धायुक्त का होता है । यह बौधायन ने कहा है ।

मदनरत्ने वृद्धगार्ग्यः—पुष्याग्नेयत्र्युत्तरादित्यपौष्णज्येष्ठाचित्रार्कद्विदैवेन्दुभेषु ।
कुर्युर्वह्न्याधानमाद्यं वसन्तग्रीष्मोष्मान्तेष्वेव विप्रादिवर्णाः ॥

मदनरत्न में वृद्धगार्ग्य ने कहा है कि—ब्राह्मण आदि प्रारंभ यथा समय-पुष्य, कृत्तिका, तीनों उत्तरा, धनिष्ठा, पुन्नाम नक्षत्र, ज्येष्ठा, चित्रा, विशाखा और रोहिणी इन नक्षत्रों में वसन्त, ग्रीष्म तथा शरद् ऋतु में अग्निस्थापन करे ।

कालादर्शे—अग्निहोत्रं दर्शपूर्णमासावप्युत्तरायणे । उपक्रम्य यथाकालमुपासीरन् द्विजातयः ॥ सोमं च पशुबन्धं च सर्वाश्च विकृतीरपि । सौम्यायने यथाकालं विदध्युर्गृहमेधिनः ॥ अत्र विशेषः पूर्वमुक्तः ।

कालादर्शमें कहा है कि—अग्निहोत्र, (अग्निहोत्र आदि उत्तरायणमें ही करे ऐसा नियम है । इसी प्रकार आधान भी उत्तरायण में ही करे यहा उचित है ।) दर्श और पौर्णमास उत्तरायणमें करे । सोम (पशु निरूढपशु से भिन्न है । 'पश्विन्या संवत्सरे प्रावृषि' ऐसा कात्यायनने वर्षामें विधान किया है) । पशुबन्ध, सब यज्ञों की विकृति भी, सौम्यायन में यथासमय गृहमेधियों को करना चाहिये यहाँपर विशेष पहले कह चुके हैं ।

(अग्निहोत्रकालः)

अग्निहोत्रकाल उक्तश्छन्दोगपरिशिष्टे—उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा ।
सर्वथा वर्तते यज्ञ इतीयं वैदिकी श्रुतिः ॥

छन्दोगपरिशिष्ट में अग्निहोमकाल को कहा कि—उदित, अनुदित और समयाध्युषित को समय पर सर्वथा यज्ञ करे । यही वैदिकी श्रुति है ।

एषां स्वरूपं तत्रैव-'रात्रेस्तु षोडशे भागे ग्रहनक्षत्रभूषिते । (कालं त्वनुदितं ज्ञात्वा होमं कुर्याद्विचक्षणः ॥ तथा प्रभातसमये नष्टे नक्षत्रमण्डले ।) रविर्यावन्न दृश्येत समयाध्युषितं च तत् ॥ रेखामात्रं प्रदृश्येत रश्मिभिश्च समन्वितः । उदितं तद्विजानीयात्तत्र होमं प्रकल्पयेत् ॥

अब इनके स्वरूपों को वहीं पर कहा है कि—रात के सोलहवें भाग में (१) ग्रहनक्षत्रोंसे भूषित (या ग्रहनक्षत्रमण्डले—ग्रह तथा नक्षत्रमण्डल में हो ।) कालको 'अनुदित' जानकर बुद्धिमान् होम न करे। (२) प्रातःकालमें नक्षत्रों का नाश हो गया हो और सूर्य न दिखता हो उस समय को 'समयाध्युषित' कहते हैं। (३) रश्मियोंसे युक्त रेखामात्र दिखती हो उसकालको 'उदित' काल जानना चाहिये । उसमें हवन करे।

आश्वलायनः—उपोदये व्युषिते उदिते वा सायं तु स एव 'अस्तमिते होम' (आ० श्रौ० ३ । १६ इति ।

आश्वलायन (श्रौ० २।२।३।१६) ने कहा है कि—उपोदय, (प्रातर्होमे त्रयः प्रधानकालाः—उपोदये आदित्योदयसमीपे, व्युषिते उषसि, उदिते आदित्यमण्डले कृत्स्ने उदिते । अत्र उपोदये उदिते' इति नोक्तम् । उदिते आदित्ये सत्युदयसमीपे इत्याभ्यां पदाभ्यामेक एव कालो विहित इति भ्रमः स्यादतो मध्ये व्युषित इत्युक्तम् । तत्र रेखामात्रसादितस्य पूर्वावधिः) उदय समीप में हवन करे। व्युषित=उषःकाल में उदय होने पर और उदित (कात्यायनः—हस्तादूर्ध्वं रविर्यावद् गिरिं भित्वा न गच्छति । तावद्धोमविधिः पुण्यो नान्योऽस्त्युदयहोमिनाम् ॥ एवं यावद्रक्तिमा नापैति तावत्सायम् ।) पर सायंकालमें तो सूर्यके अस्त हो जाने पर हवन करे।

गौणकालमाह स एव-'प्रदोषान्तो होमकालः । सङ्गवान्तः प्रातः । इति । (आ० श्रौ० ३।१२)

गौणकाल भी उन्होंने कहा है कि—(श्रौतसूत्र-३।१२। पृ० १४१) प्रदोषान्त रात्रि के पूर्व का चतुर्थ भाग प्रदोषस्य अन्तः प्रदोषान्तः । (प्रदोषान्त-सायंकाल में) (त्रिमुहूर्तं प्रदोषः स्याद्भानावस्तङ्गते सति ।) हवनकाल है और संगवान्त में (जिस काल में गायें बच्छों के साथ आती हैं वही संगव काल है उतने काल तक प्रातःकाल होम का काल है) (पश्चादस्तमयात्कालो यो भवेत् त्रिमुहूर्तकः । स सायं होमकालश्च प्रदोषान्त उदाहृतः ॥ यस्तु षड्नाडिकः कालः पश्चादेवोदयाद्रवेः । स होमकालो विप्राणां सङ्गवान्त इति स्मृतः ॥ स्मृतार्थसारे तु—प्रातर्होमे सङ्गवान्तः कालस्त्वनुदिते तथा । सायमस्तमिते होमकालस्तु नवनाडिकः ॥)। में प्रातः हवन का समय है।

छन्दोगपरिशिष्टे-यावत् सम्यङ् न भाव्यन्ते नभस्यृक्षाणि सर्वतः । न च लोहितमापैति तावत्सायं तु हूयते ॥ औपासनेऽप्येवम् 'तस्याग्निहोत्रेण । [१]प्रादुष्करणहोमकालौ व्याख्यातौ ॥ इत्याश्वलायनोक्तेः (अ० १ । ख० १० सू० ४, ५) ।

छन्दोगपरिशिष्ट में कहा है कि—जबतक आकाश में चारों तरफ तारागण अच्छे प्रमाण से न प्रकाशित हो और न लोहित-(ललाई) प्राप्त न हो तब तक सायंकाल में हवन करे। औपासन में भी यही है। उसका अग्निहोत्र होम से प्रादुष्करण (प्रादुष्करणं नाम अपराह्णे गार्हपत्यं प्रजल्य श्रौ० २।२। एवं प्रातर्व्युष्टायां श्रौ० २।२ इति च । प्रदोषान्तो होमकालः संगवान्तः प्रातः (श्रौ० ३।१२। एतावेव भवति नान्यदित्यर्थः) होम और काल की व्याख्या आश्वलायन ने की है।

(आवसथ्याधानविचारः)

अथावसथ्याधानम् । पारस्करः (१ । २) आवसथ्याधानं दारकाले, दायाद्यकाल एकेषाम् ॥ इति । दायाद्यकालो विभागकालः ।

अब आवसथ्याधान कहते हैं। पारस्करने कहा है कि—घर में होनेवाली अग्नि का (चतुर्थीकर्म के बाद) आधान दारकाल (विवाहकाल) में करे। विभागकाल में न करे यह किसी का मत है। दायाद्यकाल—पिता के द्रव्य का भाइयों के साथ विभागकाल में आधानकाल करना कहते हैं।

१—प्रादुष्करणकालातिक्रमे—व्याहृतिभिरेका आज्याहुतिः कार्या। (पाणिग्रहणादि गृह्यं परिचरेत् स्वयं पत्न्यपि वा पुत्रः कुमार्यन्तेवासी वा) आश्वला० गृह्य० अ० १, ख० ६, सू० १) पाणिग्रहणकालसे घरमें होनेवाली अग्निकी स्वयं या पत्नी आदि रक्षा करे। अन्तेवासी—शिष्य।

मदनरत्ने व्यासः—अग्निर्वैवाहिको येन न गृहीतः प्रमादिना ।
पितर्युपरते तेन गृहीतव्यः प्रयत्नतः ॥

मदनरत्नमें व्याससे कहा है कि—प्रमाद आदिके कारण जिसने वैवाहिक अग्निको नहीं ग्रहण किया। वह पिताके मरने के बाद प्रयत्न से ग्रहण करे।

योऽगृहीत्वा विवाहाग्निं गृहस्थ इति मन्यते । अन्नं तस्य न भोक्तव्यं वृथापाको हि स स्मृतः ॥ ज्येष्ठभ्रातरि पितरि वा साग्नौ कनिष्ठस्य पुत्रस्य वाग्न्यभावेऽपि न दोषः ।

जो विवाह अग्निको ग्रहण न कर अपनेको गृहस्थ मानता है उसका अन्न भोजन नहीं करना चाहिये। क्योंकि वह 'वृथापाकी' कहा जाता है।

ज्येष्ठ भाई या पिता के साग्निक रहनेपर कनिष्ठ पुत्र का अग्नि के अभाव में भी दोष नहीं है।

तदाह तत्रैव गार्ग्यः—पितृपाकोपजीवी वा भ्रातृपाकोपजीवकः ।
ज्ञानाध्ययननिष्ठो वा न दुष्येताग्निना विना ॥

उसी बातको वहाँपर ही गार्ग्यने कहा है कि—जो पिता के पाक से जीवित है या भाईके पाक से जीवित है या ज्ञान तथा अध्ययन में संलग्न हो उसे अग्निके विना दोष नहीं होता है।

(गृहस्थस्यापि अध्ययनकथनम्)

गृहस्थस्याप्यध्ययनमाह सत्यव्रतः—अनधीत्य द्विजो वेदं स्नात्वोद्वाह्य यथा तथा । अधीते ब्रह्मचर्येण साङ्गवेदं गुरोर्गृहे ॥ इदं चाधानं ज्येष्ठेऽकृताधाने न कार्यम् ।

गृहस्थका भी अध्ययन सत्यव्रत ने कहा है कि—जो वेदको न पढ़कर स्नान (समावर्तन) कर विवाह कर जैसे तैसे ब्रह्मचर्यद्वारा गुरु के घर में अंगों के सहित वेद को पढता है। यह आधान (श्रौताधान) ज्येष्ठ भाई के न करने पर न करे।

(परिवेत्तादिनिर्णयः)

दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुते योऽग्रजे स्थिते । परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः ॥ इति मनु (अ० ३ श्लो० १७३) शातातपोक्तेः । स्मार्तेऽप्येवम् ।

मनु और शातातपने कहा है कि—वड़े भाई के रहते हुए जो विवाह तथा अग्निहोत्रहोम का संयोग (ग्रहण) करता है उसे 'परिवेत्ता' जानना चाहिये। पूर्वज (प्रथम उत्पन्न वड़े भाई) को 'परिवित्ति' कहे। यह स्मार्त (औपासनाग्निग्रहण) में भी यही बात है।

'सोदर्ये तिष्ठति ज्येष्ठे न कुर्याद्दारसङ्ग्रहम् । आवसथ्यं तथाधानं पतितस्तु तथा भवेत् ॥ इति तत्रैव गार्ग्योक्तेः ।

अपने सगे वड़े भाई के रहते छोटा भाई दारसंग्रह (विवाह) और आवसथ्याधान (स्मार्ताधान) न करे। अन्यथा पतित हो जाता है। यह बात वहाँपर गार्ग्यने कहा है।

आज्ञायां त्वदोषमाह सुमन्तुः—ज्येष्ठो भ्राता यदा तिष्ठेदाधानं नैव चाश्रयेत् ।
अनुज्ञातस्तु कुर्वीत शङ्खस्य वचनं यथा ॥

आज्ञामिलने पर सुमन्तु ने दोष नहीं कहा है। जब ज्येष्ठ भाई हो तो वह अग्न्याधान में तत्पर न हो तो उससे आज्ञा लेकर करे—ऐसा शंख का कथन है।

वृद्धवसिष्ठः—अग्रजस्तु यदाऽनग्निरादध्यादनुजः कथम् । अग्रजानुमतः कुर्यादग्निहोत्रं यथाविधि ॥

वृद्धवसिष्ठने कहा है कि—यदि अग्रज (वड़ाभाई) अग्न्याधान से रहित हो तो अनुज (छोटा भाई) कैसे अग्न्याधान ग्रहण करे। वड़े भाई की आज्ञा ग्रहणकर यथाविधि अग्निहोम करे।

हारीतः—सोदराणां तु सर्वेषां परिवेत्ता कथं भवेत् । दारैस्तु परिविद्यन्ते नाग्निहोत्रेण नेज्यया ॥

हरीतने कहा है कि—यदि सब भाई सहोदर हों तो परिवेत्ता कैसे होंगे वे स्त्रियों के साथ विवाह करनेसे परिवेत्ता हो जाते हैं। वे अग्निहोत्र तथा यज्ञ से नहीं होते हैं।

अधिकारिणोऽपि भ्रातुरनुज्ञया कुर्यादिति मदनपारिजातः। विवाहस्त्वनुज्ञयापि नेत्यर्थः। सोदरोक्तेरसोदराणां सापत्नदत्तकादीनां न दोषः।

मदनरत्न पारिजात ने कहा है कि—अधिकारी भी भाई उनकी आज्ञासे आधान करे। (जहाँपर पिता आदि नास्तिक है अतः वहाँ पर पुत्र आदि ने आधान किया हो। बादमें वे आस्तिक बुद्धिवाले हो गये हों और प्रायश्चित्त कर शुद्ध हो गये हों तबभी दोष नहीं हैं—यों कहा है। जिस नास्तिक के स्त्री भी नहीं है वह भी अधिकारी नहीं है) विवाह तो आज्ञा से भी न करे—यह अर्थ है। सोदराणाम्—इस वचनसे असोदर कहने पर सापत्न दत्तक आदियों को दोष (यदि अविवाहित, दत्तक या औरसने कथञ्चित् दत्तक को ग्रहण किया हो तो उसको उसके जीवनकाल तक विवाह आदिमें अधिकार) नहीं है।

तदाह हेमाद्रौ वसिष्ठः—पितृव्यपुत्रान् सापत्नान् परनारीसुतांस्तथा। दाराग्निहोत्रसंयोगे न दोषः परिवेदने॥ परनारीसुता=दत्तकादयः।

उसी बातको हेमाद्रिमें वसिष्ठने कहा है कि—चाचा के पुत्र, सापत्नपुत्र और परपत्नी के पुत्रों को स्त्री, अग्निहोम संयोग से परिवेदन (परिवेत्ता) दोष नहीं होता है। परनारी सुताः—दत्तक आदि।

(देशान्तरे विशेषः)

देशान्तरे विशेषमाह स एव—'अष्टौ दश द्वादश वर्षाणि वा ज्येष्ठभ्रातरमनिविष्टमप्रतीक्षमाणः प्रायश्चित्ती भवति'॥ इति।

देशान्तर में विशेष कहा है कि—आठ, दश या बारह वर्षतक बड़े भाई की प्रतीक्षा न करता हुआ प्रायश्चित्ती होता है। (छोटे भाईने विवाह या आधान आदि कर लिया हो तो प्रायश्चित्त के बाद बड़े का विवाह, आधान आदि करने पर दोष नहीं होता है।)

(क्लीवादावप्यदोषः)

क्लीवादावप्यदोषमाह कात्यायनः—'देशान्तरस्थक्लीवैकवृषणानसहोदरान्। वेश्यानिष्ठांश्च पतितशूद्रतुल्यातिरोगिणः॥ जडमूकान्धबधिरकुब्जावामनखञ्जकान्। अतिवृद्धानभार्यांश्च कृषिसक्तान्नृपस्य च॥ धनवृद्धिप्रसक्तांश्च कामतोऽकारिणस्तथा। कुटिलोन्मत्तचौरांश्च परिविन्दं न दुष्यति॥

क्लीब आदिमें दोष कात्यायनने कहा है कि—देशान्तर में रहनेवाला नपुंसक, एक अंडकोष वाला, असहोदर (सगा भाई) न हो, वेश्या से प्रेम करनेवाला, पतित, शूद्रके सदृश, अत्यन्त रुग्ण, अत्यन्त मूर्ख, गूंगा, अन्धा, बधिर, कुब्ज (कूबड), वामन, खंज (लंगड़ा), (या षण्ड) अत्यन्तवृद्ध—नैष्ठिक ब्रह्मचारी, कृषि (खेती) कर्म में आसक्त, राजा, धनवृद्धिमें आसक्त, अपनी इच्छा से न करनेवाला, कुटिल, उन्मत्त और चोर, उनको प्राप्त करता हुआ दूषित नहीं होता है।

आशार्केऽपि—उन्मत्तः किल्विषी कुष्ठी पतितः क्लीव एव वा।
राजयक्ष्मामयावी च न न्यायः स्यात् प्रतीक्षितुम्॥

आशार्कमें भी कहा है कि—उन्मत्त, पापी, कुष्ठी, नपुंसक, राजयक्ष्मा और अमयावी (रोगी) इनकी प्रतीक्षा करना न्याय युक्त नहीं है।

एवं ज्येष्ठे छिन्नहस्तादावपि न परिवेतृत्वम्। तदाह त्रिकाण्डमण्डनः—दर्शेष्टिं पौर्णमासेष्टिं सोमेज्यामग्निसङ्ग्रहम्। अग्निहोत्रं विवाहं च प्रयोगे प्रथमे स्थितम्॥ न कुर्याज्जनके ज्येष्ठे सोदरे चाप्यकुर्वति। क्षेत्रजादावनीजाने विद्यमानेऽपि सोदरे॥ नाधिकारविघातोऽस्ति भिन्नोदर्येऽपि चौरसे। पङ्ग्वन्धमूकबधिरपतितोन्माददूषणे॥ संन्यस्ते छिन्नहस्तादौ यद्वा षण्ढादिदूषणे। जनके सोदरे ज्येष्ठे कुर्यादेवेतरः क्रियाम्॥ इति, 'आरोहतं[1] दशजं शकरीर्मम' इत्याधाने मन्त्रवर्णाच्च। शकरीः=अङ्गुलीः।

१—आरोहतं दशत ँ शक्करीर्मम। ऋतेनाग्न आयुषा वर्चसा सह। ज्योग्जीवन्त उत्तरामुत्तरा ँ समाम्। दर्शमहं

इसप्रकार बडे भाई के हाथ आदि कट गये हों तो भी परिवेतृत्वदोष नहीं होता है ('आरोहतं दशतं शकरीर्मम, इस मन्त्रमें दश अंगुलियों का ग्रहण है। अतः एक हाथमें छ अंगुली हो दूसरे में चार अंगुली हो तो भी अधिकार नहीं है।)

उसीवात को त्रिकाण्डमण्डनने कहा है कि—अमावास्यामें—इष्टि, पौर्णमास्यामें—पौर्णमासेष्टि, सोमयज्ञ, अग्निसंग्रह, अग्निहोत्र तथा विवाह इनका प्रथम प्रयोग, (इससे दूसरे विवाहान्त में सर्वत्र अकृतपुनराधादिक में पिता के जीवितावस्था में पुत्रादियों को दोष नहीं है।) पिता के जीवित अवस्था में और बड़े भाई के उपरोक्त कर्मों से रहित होनेपर न करे।

भिन्न सहोदर (सोदरो हि त्रिविधः—एकमातृपितृभयजः, एकमातृमात्रजश्च, एकपितृमात्रजश्चेति। तत्र आद्य औरसः, द्वितीयः क्षेत्रजः, तृतीयो भिन्नोदर्यः) के रहनेपर भी अधिकारका विघात (नाश) नहीं होता है। बड़े भाई के पंगु, अन्धा, गूंगा, बधिर पतित, उन्माद, संन्यासी, जिसके हाथ की अंगुली टेंढ़ी हो या नपुंसक आदि दोष हो तो विवाह, छोटा भाई ही इतर क्रिया (अग्न्याधान) आदि करे। आधान में मन्त्र कहा है कि—मेरी दश स्थानों में अङ्गुली पैदा हुई वढ़ो।

तन्त्ररत्नेऽप्युक्तम्—'अङ्गवैकल्यात्पूर्वमाहिताग्निस्त्वेऽधिक्रियेतैव नित्येषु। आधानं तु न कुर्यात्तस्य नैमित्तिकत्वात्' ॥ इति। एवं चतुरङ्गुलेऽपि। ज्येष्ठेऽनधिकारात्कनिष्ठस्य न दोषः षडङ्गुलकाणविकर्णादेस्त्वस्त्येवाधिकार इति कनिष्ठस्य दोष एव, एकादशसु दशान्तर्गतेः। 'शरीरकार्श्यं वा विप्रतिषिद्धम्—इति। हिरण्यकेशिसूत्रे' कर्माशक्तिहेतोरेवाङ्गवैकल्यस्य निषेधात्। अत एव द्राह्यायण सूत्रे—(१।१।६।पृ० ४) याज्यश्च प्रथमैस्त्रिभिर्गुणैः' (व्याख्यातः)॥ इति। न्यूनाङ्गस्याप्यधिकार उक्तः।

तन्त्ररत्न में भी कहा है कि—अङ्गकी विकलतासे पहले जिसने आहिताग्नि कर लिया हो उसे नित्यकर्मों में अधिकार है। उसको आधान तो नहीं करना चाहिये। क्योंकि नैमित्तिक है। इसीप्रकार चार अङ्गुलियोंमें भी है। बड़े भाई को अधिकार न होने से छोटे भाई को दोष नहीं है। छ अङ्गुली, काना, कर्णहीन आदिको ही अधिकार है। छोटेको दोप ही है। एकादशों में दश तो अन्तर्गत है।

शरीर की कृषता अर्थात्—अङ्गहीनतादोष हिरण्यकेशीसूत्रमें कर्मकी अशक्ति के कारण ही अङ्गवैकल्य का निषेध है। इसलिए द्राह्यायणसूत्र में कहा है कि—आर्षेयादि तीन गुणों से युक्त ही याज्य होता है, अन्य नहीं। (ऋषिः—वहुश्रुतः। 'एष वै ब्राह्मण ऋषिरार्षेयोत्रः शुश्रुवान्' इति तैत्तरीयब्राह्मणम्। तेन ऋर्षेर्वहुश्रुतस्यापत्यमार्षेयः। अनूचानः कल्पसूत्राणामपीतिवोधापनः। साधुचरणः साधुवृत्तः। वाग्मी—प्रशस्तकम्। अन्यूनाङ्गः चतुरङ्गुलादिप्रतिषेधः। अनतिरिक्ताङ्ग इति षडङ्गुलादि प्रतिषेधः' इत्यादि द्राह्याह्यणसूत्रे) न्यूनाधिक अंगका अधिकार कहा है।

अपरार्के उशनाः—पिता पितामहो यस्य अग्रजो वाथ कस्यचित्।
तपोऽग्निहोत्रमन्त्रेषु न दोषः परिवेदने ॥

अपरार्कमें उशना ने कहा है कि—जिसके पिता, पितामह या किसी का वड़ा भाई हो तो उसे तप (वानप्रस्थ और संन्यास) में, अग्निहोत्र में तथा मन्त्र (वेदाध्ययन) में दोष परिवेदन में नहीं है।

पितुराज्ञायामप्यदोषमाह मदनरत्ने सुमन्तुः—पित्रा यस्य तु नाधानं कथं पुत्रस्तु कारयेत्। अग्निहोत्रेऽधिकारोस्ति शङ्खस्य वचनं यथा ॥ इति। नाधानं कृतमित्यर्थः। एतदाज्ञायामेवेति हेमाद्रिः।

पूर्णमासं यज्ञं यथा यजै। ऋत्वियवती स्थो अग्निरेतसौ। गर्भं दधाथां ते वामहं ददे। तत्सत्यं यद्वीरं बिभृथः। वीरं जनयिष्यथः। ते मत्प्रातः प्रजनिष्येथे। ते मा प्रजा ते प्रजनयिष्यथः ॥ (तैत्तरीयब्राह्मण—१।२।१।१४)।

आरोहतं दशतं शक्वरीर्ममर्तेनाग्न आयुषा वर्चसा सह। ज्योग्जीवन्त उत्तरामुत्तरां समाम् दर्शमहं पूर्णमासं यज्ञं यथा यजा इति प्रतिगृह्यर्त्वियवती स्थो अग्निरेतसौ गर्भं दधातां ते वामहं ददे। तत्सत्यं यद्वीरं बिभृथो वीरं जनयिष्यथः। ते मत्प्रातः प्रजनिष्येथे ते मा प्रजाते प्रजनयिष्यथः। प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन सुवर्गे लोके इति प्रतिगृह्याभिमन्त्रयते यजमानः ॥ (आपस्तंबश्रौतसूत्र ५।८।८)।

पिता की आज्ञासे ही अदोष मदनरत्न में सुमन्तु ने कहा है कि—जिसके पिता ने आधान न लिया हो तो उसका पुत्र कैसे आधान करेगा। शंखका वचन है कि—अग्निहोत्र में उसे अधिकार है। नाधातम्—जिसने आधान न किया हो—यह अर्थ है। यह आज्ञा होनेपर ही करे—यह हेमाद्रिमत है।

यत्तु—पितुः सत्यस्यनुज्ञाने नाधातं नादधीत कदाचन ॥ इति। तत्सत्यधिकारे ज्ञेयम्।

जो किसीने कहा है कि—पिता की आज्ञा हो जाने पर ही कदाचित् आधान न करे। वह अधिकार होनेपर जानना चाहिये।

(शूद्रसंस्कारकथनम्)

अथ शूद्रसंस्काराः। यमः—शूद्रोऽप्येवंविधः कार्यो विना मन्त्रेण संस्कृतः।
न केनचित्समसृजच्छन्दसा तं प्रजापतिः॥ छन्दसा=मन्त्रेण।

अब शूद्रसंस्कार कहते है। यमने कहा है कि—इसीप्रकार शूद्र भी विना मन्त्रके संस्कृत हुए कार्य को करे। क्योंकि—प्रजापतिने किसीमन्त्रसे उसका सृजन (रचना) नहीं किया है। छन्दसा = मन्त्र से।

व्यासोऽपि—गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तो जातकर्म च। नामक्रिया निष्क्रमोऽन्नप्राशनं वपनक्रिया॥ कर्णवेधो व्रतादेशो वेदारंभक्रियाविधिः। केशान्तः स्नानमुद्वाहो विवाहाग्निपरिग्रहः॥ त्रेताग्निसङ्ग्रहश्चैव संस्काराः षोडश स्मृताः॥ इत्युक्त्वाह—'नवैताः कर्णवेधान्ता मन्त्रवर्जं स्त्रियाः क्रियाः। विवाहो मन्त्रतस्तस्याः शूद्रस्यामन्त्रतो दश॥ इति।

व्यासने भी कहा है कि—गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्त, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकरण, कर्णवेध, यज्ञोपवीत, वेदारंभ को क्रिया का विधान, केशान्त, समावर्तन, विवाह, विवाहाग्निक-परिग्रह और त्रेताग्निसंग्रह (तीनों अग्नियोंका ग्रहण) ये सोलह संस्कार कहे हैं।

इसप्रकार कहकर कहा है कि—स्त्रियोंको कर्णवेधान्त ही संस्कार विना मन्त्र के कहे गये हैं। केवल विवाह स्त्रीका समन्त्रक होता है और शूद्रके दशों संस्कार विना मन्त्रके होते हैं।

मदनरत्ने हिरण्यगर्भदाने तु—गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं तथा। कुर्युः हिरण्यगर्भस्य ततस्ते द्विजपुङ्गवाः॥ इत्युक्त्वा—जातकर्मादिकाः कुर्यात्क्रिया षोडश चापरा। इत्यत्र 'स्त्रिया जातकर्मनामकरणनिष्क्रमान्नप्राशनचूडाविवाहाः षट्, शूद्राणां तु षडेते पञ्चमहायज्ञाश्चेत्येकादश' इत्युक्तम्। रूपनारायणहरिहरभाष्ययोरप्येवम्।

मदनरत्न तथा हिरण्यगर्भदानमें तो कहा है कि—गर्भाधान, पुंसवन सीमन्तोन्नयन हिरण्यगर्भ (शूद्र) के उत्तम द्विज करें।

यों कहकर—कहा है कि जातकर्म आदि सोलह दूसरी क्रिया करे। यहाँपर स्त्रीका जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकरण और विवाह ये छ हैं। शूद्रोंके भी यही छ तथा पञ्चमहायज्ञ इस प्रकार ग्यारह हैं। यों कहा है। रूपनारायण तथा हरिहरभाष्यमें यही है।

शार्ङ्गधरस्तु—द्विजानां षोडशैव स्युः शूद्राणां द्वादशैव तु। पञ्चैव मिश्रजातीनां संस्काराः कुलधर्मतः॥ वेदव्रतोपनयनमहानाम्नीमहाव्रतम्। विना द्वादश शूद्राणां संस्कारा नाममन्त्रतः॥ इत्याह।

शार्ङ्गधरमें तो कहा है कि—द्विजातियों के लिए सोलह ही है। शूद्रोंके तो बारह ही हैं। मिश्र जातियों के तो पाँच ही संस्कार नाममन्त्रसे हैं। यों कहा है। वेद, व्रत, उपनयन, महानाम्नी, महाव्रत को छोड़कर बारह संस्कार शूद्रों को नाम मन्त्र से हैं।

अपरार्कस्तु—गर्भाधानमृतौ पुंसः, इत्यत्राह। 'एतच्चातुर्वर्ण्यपरम् न द्विजातिमात्रपरम्। तथा सत्युपनयनं विधाय वाच्यं स्यात्' इति। तेन तन्मतेऽष्टौ भवन्ति।

अपरार्क ने तो कहा है कि—ऋतुकालमें पुरुष गर्भाधान करे। यह चारों वर्णों के लिए है। द्विजाति मात्र के लिए नहीं है। ऐसा करनेपर उपनयनका विधानकर यह अर्थ होगा। इससे उनके मतमें आठ होंगे।

ब्राह्मे तु—विवाहमात्रसंस्कारं शूद्रोऽपि लभतां सदा। इत्युक्तम्। अत्र सदसच्छूद्रगोचरत्वेन देशभेदाद् व्यवस्था।

ब्रह्मपुराण में तो कहा है कि—विवाहमात्रसंस्कार शूद्रको भी सदा प्राप्त होगा। यों कहा है। यहाँपर सद्शूद्र गोचरत्व से देशभेदसे व्यवस्था होगी।

यत्तु मनुः-(१०।१२६) न शूद्रे पातकं किञ्चिन्न च संस्कारमर्हति ॥ इति। तदर्थमाह मेधातिथिः-'यत्सामान्यतो निषिद्धं स्तेयानृतादि न तदतिक्रमेऽस्य पापं तथा द्विजानाम्। उपनयनरूपं संस्कारं च नार्हति, इति। ते च तूष्णीं कार्याः,

जो मनुने कहा है कि--शूद्रको पातक नहीं होता है न संस्कार ही होता है। उसके अर्थ को मेधातिथिने कहा है कि—जो सामान्यतासे निषिद्ध है—चोरी, झूठ आदि। उनके अतिक्रममें इसका पाप जैसे द्विजों को होता है। तद्वत् ही शूद्रों को उपनयनरूपसंस्कार नहीं होता है। वे संस्कार तूष्णीम् (मौन होकर) करे।

शूद्रो वर्णश्चतुर्थोऽपि वर्णत्वाद्धर्ममर्हति। वेदमन्त्रस्वधास्वाहावषट्कारादिभिर्विना ॥ इति। व्यासोक्तेः,

व्यासने कहा है कि—चतुर्थवर्ण शूद्र भी वर्ण होनेसे वेदमन्त्र, स्वधा, स्वाहा, वषट्कार आदियों के विना धर्मके योग्य होता है।

अमन्त्रस्य तु शूद्रस्य विप्रो मन्त्रेण गृह्यते ॥ इति। मरीच्युक्तेश्च। इयं परिभाषा सर्वार्था, तेन शूद्रधर्मेषु विप्रेण मन्त्रः पठनीयः सोऽपि पौराण एवेति शूलपाणिः। एवं स्त्रीणामपीति दिक्।

मरीचिने कहा है कि—अमन्त्रक शूद्रके लिए और मन्त्रद्वारा ब्राह्मणके लिए है। यह परिभाषा सर्वार्थक है। इससे शूद्रधर्मों में सर्वत्र ब्राह्मण द्वारा मन्त्र पढना चाहिये। वह भी पौराणिक ही पढना चाहिये यह शूलपाणि ने कहा है। इसीप्रकार स्त्रियोंके भी कार्यों में जानना चाहिये।

(क्षुद्रकालाः)

अथ क्षुद्रकालाः। तत्र जलाशयस्य वराहः—हस्ते चाम्बुपपौष्णकेशवमघामित्रोत्तरारोहिणीदेवेज्येषु च शुक्रसौम्यशशभृद्वागीशवारांशके। रिक्तां छिद्रतिथिं विहाय वृषभे नक्रे कुलीरे घटे मीने कूपतडागकर्म मुनयः शंसन्ति शुद्धेऽष्टमे ॥ हस्तो मृगानुराधापुष्यधनिष्ठोत्तराणि रोहिण्यः। शतभिषगित्यारम्भे कूपानां शस्यते भगणः ॥

अब क्षुद्रकाल कहते हैं। उसमें वराहने जलाशय कहा है—हस्त, शतभिषा, रेवती, श्रवण, मघा, अनुराधा, तीनों उत्तरा, रोहिणी, बृहस्पतिवार, शुक्रवार, बुधवार, चन्द्रवार, बृहस्पतिके (कूप, तालाब आदि) वारांशक (कालहोरा) में, रिक्ता, छिद्रतिथि को त्यागकर वृषभ, मकर, कर्क, कुम्भ और मीनलग्नमें अष्टमस्थान शुद्ध रहने से मुनियोंने कूप और तडाग संबन्धिकर्म उत्तम बतलाया है। हस्त, मृगशिरा (मतान्तर से मघा), अनुराधा, पुष्य, धनिष्ठा, तीनों उत्तरा, रोहिणी और शतभिषा ये नक्षत्र कूपारंभ में प्रशस्त हैं।

हेमाद्रौ भविष्ये—तस्मिन् सलिलसंपूर्णे कार्तिके तु विशेषतः। मुनयः केचिदिच्छन्ति व्यतीते चोत्तरायणे ॥ न कालनियमस्तत्र सलिलं तत्र कारणम् ॥

हेमाद्रिमें भविष्यपुराण का मत है कि—जल से भरे हुए कूप की प्रतिष्ठा विशेषकर कार्तिकमहिने में करे। कोई उत्तरायण (मकरसंक्रान्ति) पर इच्छा करते हैं। उसमें कालका नियम नहीं है। जल ही कारण है।

दीपिकापि—मार्तण्डेन्दुङशुद्धौ मुरजिदशयने माघषट्कस्य शुक्ले मूलाषाढोत्तराश्विश्रवणगुरुकरे पौष्णशाक्राजचान्द्रे। मैत्रे ब्राह्मे च पूर्णामदनरवितिथौ सद्वितीयातृतीये कार्या तोयप्रतिष्ठा ज्ञगुरुसितदिने कालशुद्धे सुलग्ने ॥

दीपिकामें भी कहा है कि—सूर्य, चन्द्र तथा तारा की शुद्धिमें, श्रीविष्णु के प्रबोध में माघ आदि छः महिनों के शुक्लपक्ष में, मूल, पूर्वाषाढा, तीनों उत्तरा, अश्विनी, श्रवण, पुष्य, हस्त, रेवती, ज्येष्ठा, श्रवण, मृगशिरा अनुराधा, रोहिणी, पञ्चमी, दशमी, पूर्णिमा, त्रयोदशी, सप्तमी, द्वितीया और तृतीयातिथिमें, बुध, गुरुवार, शुक्रवार में शुद्धसमय तथा अच्छे लग्नमें जलकी प्रतिष्ठा करे।

(वापीकूपादिनिर्माणकालः)

वराहः—आग्नेये यदि कोणे ग्रामस्य गृहस्य (पुरस्य) वा भवति कूपः। नित्यं स करोति भयं दाहं च स मानसं प्रायः॥ नैर्ऋत्ये बालभयं वनिताक्षयं च वायव्ये। दिक्त्रयमेतत्त्यक्त्वा शेषास्तु शुभावहाः कूपाः॥

वाराहने कहा है—यदि अग्निकोणमें गाँव या नगर का कूप होता है—तो वह नित्य भयको करता है और मनमें प्रायः दाह करता है। नैर्ऋत्यकोणमें कूप हो तो बालकों को भय और वायव्यकोणमें कूप हो तो स्त्रियों का नाश करता है। इन तीन दिशाको छोड़कर अवशिष्ट दिशायें शुभप्रद कूप के लिये है।

(कूपदेशस्तत्फलकथनम्)

वास्तुशास्त्रे—भूतिं पुष्टिं पुत्रहानिं पुरन्ध्रीनाशं मृत्युं सम्पदं शत्रुबाधाम्।
किञ्चित्सौख्यं शम्भुकोणादि कुर्यात्कूपो मध्ये गेहमर्थक्षयं च॥

वास्तुशास्त्र में कहा है कि—ईशानकोण आदिसे कूप क्रमसे बनवाये। ईशानकोण में कूप—ऐश्वर्यको देनेवाला होता है। पूर्वदिशा का कूप—पुष्टि दाता होता है। अग्निकोणवाला कूप—पुत्र की हानि करनेवाला होता है। दक्षिणदिशावाला कूप स्त्रीका नाश करनेवाला होता है। नैर्ऋत्यकोणका कूप–मृत्युको देनेवाला होता है। पश्चिमदिशाका कूप संपत्ति देनेवाला होता है। वायव्यकोण का कूप शत्रुको बाधा देनेवाला होता है। उत्तरदिशाका कूप कुछ सुख देनेवाला होता है और घरके मध्यमें निर्मित कूप घर और अर्थका नाश करता है।

(उत्सर्गविधिकथनम्)

उत्सर्गविधिश्चोक्तो बह्वृचपरिशिष्टे—अथातो वापीकूपतडागयज्ञं व्याख्यास्यामः। पुण्येहन्युदकसमीपेऽग्निं समाधाय वारुणं चरुं श्रपयित्वाज्यभागान्ते आज्याहुतीर्जुहुयात्—'समुद्रज्येष्ठा' इति प्रत्यृचं, ततो हविषाऽष्टौ तत्त्वा यामिति पञ्च, 'त्वन्नो अग्ने' इति द्वे, 'इमं मे वरुण' इति च, स्विष्टकृतं नवमम्। मार्जनान्ते धेनुं तारयेत्। अवतीर्यमाणामनुमन्त्रयेत—

उत्सर्गविधि को बह्वृचपरिशिष्टमें कहा है कि—इसके बाद वापी, कूप, तडाग (तालाब) के यज्ञ (पूजन) की व्याख्या करेंगे। पुण्यदिनमें जलके समीपमें अग्निकी स्थापना कर वरुण के लिये चरुका श्रपणकर आज्यभागान्तमें आज्यसे आहुति दे। समुद्रज्येष्ठा[1]—इस ऋचा से। तदनन्तर हविसे आठ आहुति दे—तत्त्वा[2] यामि—इससे पांच, त्वं नो[3] अग्ने—इससे दो, इमं में[4] वरुण—से एक और स्विष्टकृत नवीं

१—समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य मध्यात् पुनाना यन्त्यनिविशमानाः। इन्द्रो या वज्री वृषभो रराद् ता आपो देवीरिह मामवन्तु॥ या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति खनित्रिमा उत वा याः स्वयंजाः। समुद्रार्था याः शुचयः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु॥ यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यामृते अवपश्यञ्जनानाम्। मधुश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु॥ यासु राजा वरुणो यासु सोमो विश्वे देवा या सूर्जं मदन्ति। वैश्वानरो यास्वग्निः प्रविष्टस्ता आपो देवीरिह मामवन्तु॥ (ऋ० म० ७ सू० ४९ म० १–४)।

२—तत् त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस् तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेलमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्रमोषीः॥ तदिन्नक्तं तद् दिवा मह्यमाहुस् तदयं केतो हृद आ वि चष्टे। शुनः शेपो यमह्वद् गृभीतः सो अस्मान् राजा वरुणो मुमोक्तु॥ शुनःशेपो ह्यह्वद् गृभीतस् त्रिष्वादित्यं द्रुपदेषु बद्धः। अवैनं राजा वरुणः ससृज्याद् विद्वाँ अदब्धो विमुमोक्तु पाशान्॥ अव ते हेलो वरुण नमोभिरव यज्ञेभिरीमहे हविर्भिः। क्षयन्नस्मभ्यमसुर प्रचेता राजन्नेनांसि शिश्रथः कृतानि। उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय। अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम॥ (ऋ० म० १ सू० २४ मं० ११–१५)।

३—त्वं नो अग्ने तव देव पायुभिर्मघोनो रक्ष तन्वश्च वन्द्य। त्राता तोकस्य तनये गवामस्यनिमेषं रक्षमाणस्तव व्रते॥ (ऋ० म० १।३१।१२)। स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ। अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि॥ (ऋ० म० ४ सू० १ म० ५)।

४—इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय। त्वामवस्युरा चके॥ (ऋ० म० १ सू० २५ म० १९)।

आहुति दे। मार्जनके अन्तमें धेनुका तारण करे। अर्थात्—जलमें धेनुको तैरावे। अवतीर्ण होती हुई धेनुकी प्रार्थना करे।

इदं सलिलं पवित्रं कुरुष्व शुद्धाः पूता अमृताः सन्तु नित्यम्।
मां तारयन्तीं कुरु तीर्थाभिषेकं तरते तीर्यते च॥ इति।

इस जलको पवित्र करो। यह जल नित्य पवित्र तथा अमृत हो। मुझे तैराती हुई तीर्थाभिषेक करो लोकसे लोक तरता है तथा तराता है।

पुच्छाग्रान्वारब्ध उत्तीर्य आपो अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु, इति। अपराजितायां दिश्युत्थापयेत्। 'सूयवसाद्भगवती' इति। हिङ्कृतं चेद्—'हिं कृण्वती' इति। अलंकृतां विप्राय दद्यादितरां वा शक्त्या दक्षिणाम्। तत उत्सृजेद्देवपितृमनुष्याः प्रीयन्तामिति। ततः ब्राह्मणान् भोजयित्वा स्वस्त्ययनं वाचयीत इति। विस्तरस्तु मात्स्योक्तोऽस्मत्कृते जलाशयोत्सर्गविधौ ज्ञेयः।

पूछके अग्रभागका स्पर्शकर तैरकर स्वयं तलाव आदि से आवे—'आपो अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु'[2]—इस मन्त्र से। इसके बाद ईशानदिशा में उस गौ को उठावे। 'सूयवसाद्भगवती'[1] इस मन्त्र से उठती हुई यदि गौ हिनहिनाती हो 'हिंकृण्वती'[3] इस मन्त्र को (दशाधिक) बैठकर जप करे। अलंकृतकर गौको ब्राह्मणको दे या अन्य गौ को शक्ति से दक्षिणा देकर तदनन्तर देव, पितर और मनुष्यों के प्रसन्नता के लिए उत्सर्जन करे। ब्राह्मणों को भोजन कराकर स्वस्त्ययन करावे। विस्तार तो मत्स्यपुराणोक्त हमारी बनाई हुई जलाशयोत्सर्ग-विधि (पृ० १०२) में जानना चाहिये।

(कूपादेरुत्सर्गाकरणे दोषकथनम्)

कूपादेरुत्सर्गाकरणे दोष उक्तो भविष्ये—सदा जलं पवित्रं स्यादपवित्रमसंस्कृतम्।
कुशाग्रेणापि राजेन्द्र न स्प्रष्टव्यमसंस्कृतम्॥

कूपादि के (आदिपद से वापी का ग्रहण करे।) उत्सर्ग को न करने पर भविष्यपुराण में दोष कहा है कि—सदा जल पवित्र होता है। असंस्कृत (जिसका संस्कार न हुआ हो) जल सदा अपवित्र होता है। हे राजेन्द्र, कुशाके अग्रभाग से भी असंस्कृत जलका स्पर्श नहीं करना चाहिये। (विशेष तो मत्स्यपुराण, लिखित पूर्तकमलाकर आदिमें देखना चाहिये।)

तथा—वापीकूपतडागादौ यज्जलं स्यादसंस्कृतम्। अपेयं तद्भवेत्सर्वं पीत्वा चान्द्रायणं चरेत्॥

और वापी, कूप, तडाग (तालाव) आदिका जो जल असंस्कृत होता है। वह सब जल अपेय होता है पीने पर तो चान्द्रायणव्रत को करे।

(वृक्षारोपणम्)

अथ वृक्षारोपणम्। चण्डेश्वरः—आदित्यचान्द्रपितृतिष्यविशाखपौष्णमूलोत्तरात्रयतुरङ्गमवारुणाश्च। एतेषु तारकगणेषु हितं नराणां वृक्षादिरोपणमिहोपदिशन्ति धीराः॥

अब वृक्षारोपण कहते हैं। चण्डेश्वरने कहा है कि—मृगशिरा, मघा, पुष्य, विशाखा, रेवती, मूल, तीनों उत्तरा, अश्विनी तथा शतभिषा इन नक्षत्रगणोंमें विद्वानों ने वृक्षादिरोपण यहाँपर मनुष्यों के लिए कल्याणकारक है—ऐसा उपदेश दिया है।

१—सूयवसाद्भगवती हि भूया अथोवयं भगवन्तः स्याम। अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती॥ (ऋ० २।३।२१, पृ० २६१)।

२—आ पो अस्मान् मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु। विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवी रुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि॥ (ऋ० १०।१७।१०)।

३—हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्स मिच्छन्ती मनसाभ्यागात्। दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय॥ (ऋ० १ सू० १६४ म० २७)।

(मूर्तिप्रतिष्ठाकथनम्)

अथ मूर्तिप्रतिष्ठा । वसिष्ठः—हस्तत्रये मित्रहरित्रये च पौष्णद्वयादित्यसुरेज्यभेषु ।
तिस्रोत्तराधातृशशाङ्कभेषु सर्वामरस्थापनमुत्तमं स्यात् ॥

अब मूर्तिप्रतिष्ठा कहते हैं। वसिष्ठ ने कहा है कि—हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, रेवती, अश्विनी, पुनर्वसु, मूल, पुष्य, तीनों उत्तरा, रोहिणी तथा मृगशिरा इन नक्षत्रों में सब देवताओं की स्थापना उत्तम होती है।

(चैत्रादिमासेषु माघमासे वा देवताप्रतिष्ठाविचारः)

मात्स्ये—चैत्रे वा फाल्गुने वापि ज्येष्ठे वा माधवे तथा ।
माघे वा सर्वदेवानां प्रतिष्ठा शुभदा भवेत् ॥

मत्स्यपुराणमें कहा है कि—चैत्र, फाल्गुन, ज्येष्ठ, वैशाख या माघमास में सब देवताओं की प्रतिष्ठा शुभ (कल्याण) देनेवाली होती है।

(नारदमते विचारः)

नारदस्तु चैत्रं निषेधति—विचैत्रेष्वेव मासेषु माघादिषु च पञ्चसु ॥ इति । तेनात्र विकल्पः । अत्र माघमासो विष्णुप्रतिष्ठाव्यतिरिक्तविषयः, माघे कर्तुर्विनाशाय फाल्गुने शुभदा भवेत् । इति विष्णुधर्मोक्तेरिति हेमाद्रिः ।

नारदने चैत्रमहिने का निषेध कहा है। चैत्रमहिने को छोडकर माघ आदि पाँच मासों में प्रतिष्ठा देवताओं की करे। इससे यहाँपर विकल्प है।

यहाँपर माघमास विष्णुप्रतिष्ठा से अन्य प्रतिष्ठाविषयक है। माघमहिने में प्रतिष्ठा करने से कर्ता का नाश होता है और फाल्गुनमास में करने से शुभको देनेवाली होती है—यह विष्णुधर्मोत्तर में कहा है। ऐसा हेमाद्रि का कहना है।

(प्रतिपदादितिथिषु प्रतिष्ठाविचारः)

मत्स्यपुराणे—दद्या धनकरी स्फीता तथा प्रतिपदि स्मृता । द्वितीयायां धनोपेता तृतीयायां धनप्रदा ॥ चतुर्थ्यां नाशमाप्नोति यजस्य स्यात्सुखावहा । विनायकस्य देवस्य तथा तत्र हितप्रदा ॥

१—क्षीरार्णवे–(क) स्कन्धहीनं न कर्तव्यं नाधिकं किं च कारयेत् । स्कन्धहीने कुलोच्छेदो मृत्युरोगभयावहम् ॥ (ख) नाशाहीना श्रियं हन्ति दुःखदैन्ये कपोलयोः । उग्रदक् प्रतिमा शीघ्रं निहनिष्यन्ति नायकम् ॥ (ग) पाणिपादविहीनां जातुधानश्रयविनाशिनी । चिरं पर्युषिता यातु नादर्तव्या यतस्ततः ॥ (घ) निश्चिन्हं शिखरं दृष्ट्वा ध्वजहीनं तथैव च । असुरा वासमिच्छन्ति ध्वजहीने सुरालये ॥ (ङ) न कदापि ध्वजो दण्डो स्थाप्यो वै गृहमन्दिरे । कलशामलसारौ च शुभदौ परिकीर्तितौ ॥ (च) नैकहस्तादितोन्यूने प्रासादे स्थिरतां नयेत् । स्थिरं न स्थापयेद् गेहे गृहीणां दुःखकृच्च यत् ॥ (छ) वेधवास्तुविचारग्रन्थे—ऊर्ध्वदृष्टिश्च रौद्री च राष्ट्रराज्ञोः क्षयंकरी । अधोदृष्टिश्च रौद्री च अर्चकेनिहनिष्यति ॥ यदि नाशाग्रदृष्टिः स्यात् शिल्पाचार्यो विनश्यति । पार्श्वदृक् बन्धुनाशाय समदृष्टिं तु कारयेत् ॥ (ज) जंघाहीना भवेत् भर्त्ता कटिहीना च घातिनी । अधो हीनानि दुःखाय शिल्पिनो भोगवर्जिता ॥ भाले न रवे मुखे चैव क्षीणाऽधिके कुलक्षयः । कृशा द्रव्या विनाशाय दुर्भिक्षाय कृशोदरी । रुद्रन्ती च हसन्ती चाधिकाङ्गं च शिल्पिना । अतिदीर्घा च दृष्टा चेद् गौब्राह्मणविनाशिनी ॥ (झ) अन्यान्यद्रव्यनिष्पन्ना परवास्तुदलोद्भवा । हीनाधिकाङ्गी प्रतिमा स्वपरोन्नतिनाशिनी ॥ (ञ) नर्तनं रोदनं हास्यमुन्मीलननिकीलने । देवा यत्नं प्रकुर्वीत तत्र विद्यान्महद्भयम् ॥

महानीला यशःप्रदा दारुजा कामदा सौवर्णी भुक्तिमुक्तिप्रदा राजती स्वर्गदा ताम्रमय्यायुर्वर्धिनी कांस्याऽऽपद्धन्त्री पैत्तली शत्रुनाशिनी शैला सर्वभोगदा स्फाटिकी दीप्तिदा मृन्मयी महाभोगप्रदा दशाङ्गुला पञ्चाङ्गुला वा गृहे प्रतिमा पूज्या नाधिका । अधिकाङ्गा शिल्पिहन्त्री कृशा शान्त्यर्थनाशिनी कृशोदरी दुर्भिक्षकरी निर्मांसा धननाशिनी वक्त्रहीना दुःखप्रदा पादकृशा दुःखदा हीननाशा भ्रमकरी हीनजङ्घोन्मादकरी हीनवक्षःस्थला पुत्रमित्रनाशिनी, कटिहीना मरणदा संपूर्णवयवाऽऽयुर्लक्ष्मीप्रदा । इति आश्वलायनगृह्यपरिशिष्टे ।

पञ्चम्यां श्रीयुता कर्तुर्वरदा च तथा भवेत् । षष्ठयां लक्ष्मीयुता नित्यं सप्तम्यां रोगनाशिनी ॥ अष्टम्यां धान्यबहुला नवम्यां च विनश्यति । भद्रकाल्याः कृता तत्र कर्तुर्भवति तुष्टये ॥ धर्मवृद्धिकरी ज्ञेया दशम्यां तु तथा तिथौ । एकादश्यां तथा युक्ता द्वादश्यां सर्वकामदा ॥ त्रयोदश्यां तथा ज्ञेया चतुर्दश्यां विनश्यति । कृष्णपक्षे पञ्चदश्यां कर्तुः क्षयकरी भवेत् ॥ पञ्चदश्यां तथा शुक्ले सर्वकामकरी भवेत् ॥

मत्स्यपुराण में कहा है कि—(१) प्रतिपदामें प्रतिष्ठा करनेसे दृढताको देनेवाली, धन और वृद्धि प्रदान करनेवाली होती है। (२) द्वितीया में—धनसे युक्त करनेवाली होती है। (३) तृतीया में—धनको देनेवाली होती है। (४) चतुर्थी में—नाशको करती है, यमको सुखदेनेवाली तथा विनायकदेवको हितप्रद होती है। (५) पञ्चमीतिथि में श्री (लक्ष्मी) से युक्त और कर्ता को वर देनेवाली होती है। (६) षष्ठीतिथि में लक्ष्मीसे युक्त होती है। (७) सप्तमी में रोग का नाशकरनेवाली होती है। (८) अष्टमी में धान्यकी वृद्धि करती है। (९) नवमी में—नाश करती है। भद्रकाली की पूजा करने से कर्ता के लिए तुष्टि देनेवाली होती है। (१०) दशमी तिथिमें धर्मकी वृद्धि होती है। (११) एकादशी में—सब संपूर्ण इच्छाओं को देनेवाली होती है। द्वादशी युक्त हो तो सबकामनाओं को देनेवाली होती है। (१२) त्रयोदशी में—भी सारी इच्छायें पूर्ण होती है। (१३) चतुर्दशीमें—नाश होता है। (१४) कृष्णपक्षकी अमावास्यामें कर्ताका नाश करती है। शुक्लपक्षकी पूर्णिमा को सारी कामनाओं को करती है।

(मत्स्यपुराणादिमते नक्षत्रादौ प्रतिष्ठाविचारः)

आषाढे द्वे तथा मूलमुत्तरात्रयमेव च । ज्येष्ठाश्रवणरोहिण्यः पूर्वाभाद्रपदः तथा ॥ हस्तोऽश्विनी रेवती च पुष्यो मृगशिरस्तथा । अनुराधा तथा स्वाती प्रतिष्ठासु प्रशस्यते ॥

पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ, मूल, तीनों उत्तरा, ज्येष्ठा, श्रवण, रोहिणी, पूर्वाभाद्रपद, हस्त, अश्विनी, रेवती, पुष्य, मृगशिरा, अनुराधा तथा स्वाती ये नक्षत्र प्रतिष्ठा में उत्तम है।

श्रीपतिः—रोहिण्युत्तरपौष्णवैष्णवकरादित्याश्विनीवासवानूराधैन्दवजीवभेषु गदितं विष्णोः प्रतिष्ठापनम् । पुष्यश्रुत्यभिजित्सुरेश्वरकयोर्वित्ताधिपस्कन्दयोर्मैत्रे तिग्मरुचेः करे निर्ऋतिभे दुर्गादिकानां शुभम् ॥

श्रीपतिने कहा है कि—रोहिणी, तीनों उत्तरा, रेवती, श्रवण, हस्त, पुनर्वसु, अश्विनी, धनिष्ठा, अनुराधा, मृगशिरा तथा पुष्य इन नक्षत्रों में विष्णु की प्रतिष्ठा शुभप्रद होती है। पुष्य, श्रवण तथा अभिजित् इन नक्षत्रों में सुरेश्वर (इन्द्र) और ब्रह्मा की प्रतिष्ठा तथा कुवेर तथा स्वामीकार्तिकेयकी प्रतिष्ठा अनुराधा नक्षत्र में उत्तम होती है। हस्तनक्षत्रमें सूर्यकी प्रतिष्ठा और मूलनक्षत्र में दुर्गा आदि प्रतिष्ठा शुभ होती है।

गणपरिवृढरणोयक्षभूतासुराणां प्रमथफणिसरस्वत्यादिकानां च पौष्णे ।
श्रवसि सुगतनाम्नो वासवे लोकपानां निगदितमखिलानां स्थापनं च स्थिरेषु ॥

रेवतीनक्षत्र में गणेशादि देवता, प्रथमगण, दक्ष, भूत, असुर, कामदेव, नाग तथा सरस्वती आदिकी स्थापना शुभद होती है। सुगत (सुगत नाम के जिन देवता) का श्रवण में तथा लोकपालों की धनिष्ठा में स्थापना शुभ है। स्थिर लग्नों में संपूर्ण देवताओं की स्थापना उत्तम होती है।

तेजस्विनी क्षेमकृदाग्निदाहविधायिनी स्याद्धनदा दृढा च ।
आनन्दकृत्कल्पविनाशिनी च सूर्यादिवारेषु भवेत्प्रतिष्ठा ॥

सूर्य आदि वारोंमें यदि प्रतिष्ठा हो तो—क्रम से—रविवारको-तेज देनेवाली, सोमवार को कल्याण देनेवाली, मंगलवार को अग्निदाह करनेवाली, बुधवार को धन देनेवाली, गुरुवार को मजबूत बनानेवाली तथा शुक्रवार को आनन्द देनेवाली और शनिवार को सामर्थ्य का नाश करनेवाली होती है।

(दक्षिणायने मातृभैरवादीनां प्रतिष्ठाकथनम्)

माधवीये वैखानसः—मातृभैरववाराहनरसिंहत्रिविक्रमाः ।
महिषासुरहन्त्र्यश्च स्थाप्या वै दक्षिणायने ॥ वै शब्दोऽप्यर्थे ।

माधवीय में वैखानसने कहा है कि—माता, भैरव, वाराह, नरसिंह, त्रिविक्रम और महिषासुरहन्त्री दुर्गा इनका दक्षिणायनमें स्थापन करे। यहाँ पर 'वै' शब्द अपि के अर्थ है। इसलिये दक्षिणायन में ही प्रतिष्ठा-स्थापना करे यह नियम नहीं है।

(लिङ्गप्रतिष्ठायां विशेषः)

लिङ्गप्रतिष्ठायां विशेषो हेमाद्रौ लक्षणसमुच्चये-उत्तराशागते भानौ लिङ्गस्थापनमुत्तमम् । दक्षिणे त्वयने पूज्यं त्रिवर्षार्द्धं भयावहम् ॥ स्वगृहे स्थापनं नेष्टं तस्माद्वै दक्षिणायने । स्थापनं तु प्रकर्तव्यं शिशिरादावृतुत्रये ॥

लिंगप्रतिष्ठा में विशेष हेमाद्रिमें लक्षणसमुच्चयमत से कहा है कि—उत्तरायणसूर्यमें लिंग की स्थापना उत्तम होती है। दक्षिणायनसूर्यमें स्थापित किया हुआ लिंग डेढसाल तक भयको देनेवाला होता है। अपने घरमें लिंगका स्थापन दक्षिणायन में (मुक्तिकामनावालों को दक्षिणायन में लिंगका स्थापन करने में दोष नहीं है। श्रेष्ठोत्तरे प्रतिष्ठा स्यादयने मुक्तिमिच्छताम्। दक्षिणे तु मुमुक्षूणां मलमासे न सा द्वयोः ॥) करना इष्ट नहीं होता है। शिशिर आदि तीन ऋतु में स्थापन करना चाहिये।

(लिङ्गस्थापने मासादिविचारः)

प्रावृषि स्थापितं लिङ्गं भवेद्वरदयोगदम् ॥ हेमन्ते ज्ञानदं चैव शिशिरे सर्वभूतिदम् । लक्ष्मीप्रदं वसन्ते च ग्रीष्मे च जयशान्तिदम् ॥ यतीनां सर्वकाले च लिङ्गस्यारोपणं मतम् ॥

शरदृतु में स्थापित किया लिंग वर और योग को देनेवाला होता है। हेमन्त में स्थापित किया लिंग ज्ञान को और शिशरऋतु में स्थापित लिंग सब ऐश्वर्यों को देता है। वसन्तमें स्थापित लिंग लक्ष्मी को देता है। ग्रीष्मऋतु में स्थापित लिंग जय और शान्ति को देता है। यति-संन्यासियों को सब समयमें लिंगका स्थापन करना चाहिये।

रत्नावल्याम्—माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठाषाढेषु पञ्चसु । मासेषु शुक्लपक्षेषु लिङ्गस्थापनमुत्तमम् ॥

रत्नावली में कहा है कि—माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढमास इन पाँच महिनों के शुक्लपक्ष में लिङ्ग का स्थापन करना उत्तम है।

विष्णोरप्याह तत्रैव वैखानसः—मार्गशीर्षादिमासौ द्वौ निन्दितौ ब्रह्मणा पुरा । मासेषु फाल्गुनः श्रेष्ठश्चैत्रो वैशाख एव च । वृषे वाप्याश्वयुङ्मासे श्रावणे मासि वा भवेत् ॥

विष्णुने भी वहीपर वैखानस में कहा है कि—ब्रह्माने पहले मार्गशीर्ष तथा पौषमास निन्दित कहे हैं। मासोंमें फाल्गुन, चैत्र और वैशाख, ज्येष्ठ, आश्विन या श्रावण मास उत्तम कहा है।

बौधायनसूत्रे विष्णुप्रतिष्ठामुपक्रम्य-'द्वादश्यां श्रोणायां वा यानि चान्यानि पुण्यनक्षत्राणि ।' इति । कृत्तिकादिविशाखान्तेष्वित्यर्थः ।

बौधायनसूत्र में विष्णु की प्रतिष्ठा का प्रारम्भ कर कहा है कि—शुक्लपक्षकी किसी द्वादशी में या जो अन्य पुण्यदायक नक्षत्र हैं। अर्थात्—कृत्तिकासे प्रारंभ कर विशाखान्तक में यह अर्थ है।

(सर्वदेवेषु मासविशेषकथनम्)

सर्वदेवेषु मासविशेषो हेमाद्रौ विष्णुधर्मे-माघे कर्तुर्विनाशाय फाल्गुने शुभदा भवेत् । लोकानन्दकरी चैत्रे वैशाखे वरसंयुता ॥ आज्ञायुता सदा ज्येष्ठे आषाढे धर्मवृद्धिदा । श्रावणे धनहीना स्यात् प्रोष्ठपादे विनश्यति ॥ आश्विने नाशमाप्नोति वह्निना कार्तिके तथा । सौम्ये सौभाग्यमतुलं पौषे पुष्टिरनुत्तमा ॥ दोषान्विताधिमासे स्यात् कर्तुरात्मन एव च ॥ इति ।

अत्र श्रावणाश्विनयोर्निषेधो मार्गशीर्षविधिश्च विष्णुव्यतिरिक्तविषयः। पूर्वोक्तवचनादिति हेमाद्रिः। माघश्रावणभाद्रपदनिषेधः शिवव्यतिरिक्तविषयः, तत्र तस्योक्तेः।

सब देवताओं में या मासविशेष हेमाद्रिमें विष्णुधर्म ने कहा है कि—माघमास में करनेवाले का नाश होता है। फाल्गुनमासमें शुभको देनेवाली होती है। चैत्रमासमें संसार को आनन्द देनेवाली होती है। वैशाखमासमें वरको देनेवाली होती है। ज्येष्ठमहिने में सदा आज्ञा प्रदान करनेवाली होती है। आषाढमासमें धर्म की वृद्धि करती है। श्रावणमास में धन से हीन करती है। भाद्रपदमास में विनाश करती है। आश्विनमास में नाश करती है। कार्तिकमास में अग्नि से दग्ध करती है। मार्गशीर्ष मास में अतुलनीय सौभाग्य को देती है। पौषमास में सर्वोत्तम पुष्टि को देती है। अधिकमास में—कर्ता और स्वयं अपने आपमें दोष देनेवाली होती है।

यहाँपर श्रावण और आश्विनमास का निषेध है तथा मार्गशीर्षमासकी विधि है। वह विष्णु प्रतिष्ठा के अतिरिक्त विषयका है—पहले कहे हुए वचन से—यह हेमाद्रि में कहा है। माघ, श्रावण और भाद्रपदमास का निषेध शिवप्रतिष्ठा के अतिरिक्त विषयका है। क्योंकि वहाँपर उसका विधान कहा है।

(देवीस्थापने विशेषः)

देवीस्थापने तत्रैव विशेषो देवीपुराणे—देव्या माघेऽश्विने मासे उत्तमा सर्वकामदा।

देवीस्थापन में वहीं पर विशेष देवीपुराण में कहा है कि—देवीकी प्रतिष्ठा माघ और आश्विनमास में उत्तम तथा सब कामनाओं को देनेवाली है।

तथा—न तिथिर्न च नक्षत्रं नोपवासोऽत्र कारणम्। सर्वकालं प्रकर्तव्यं कृष्णपक्षे विशेषतः॥ अन्यश्चात्र विचारो हेमाद्रौ ज्ञेयः।

और उसमें तिथि, नक्षत्र तथा उपवास का कारण नहीं है। सब समय में करना चाहिये। उसमें भी कृष्णपक्ष में विशेष कर करे। इसमें यहाँपर अन्यत्र से विचार हेमाद्रि में देखना चाहिये।

(धनादिहीनतायां प्रतिष्ठास्थापने रिपुत्वकथनम्)

नारदः—हन्त्यर्थहीना कर्तारं मन्त्रहीना तु ऋत्विजम्। स्त्रियं लक्षणहीना तु न प्रतिष्ठासमो रिपुः॥

नारदपुराणमें कहा है कि—धनसे रहित प्रतिष्ठा कर्ता (यजमान) का नाश (अन्नहीनो दहेद्राष्ट्रं मन्त्रहीनस्तु ऋत्विजम्। श्रद्धाविहीनः कर्तारं नास्ति यज्ञसमो रिपुः॥) करती है। मन्त्रसे रहित प्रतिष्ठा ऋत्विजों (होता आदि) का नाश करती है। लक्षणों से रहित प्रतिष्ठा स्त्री का नाश करती है। अतः प्रतिष्ठा के बराबर कोई शत्रु नहीं होता है।

(अधिकारिकथनम्)

अत्राधिकारिण उक्ताः कृत्यकल्पतरौ देवीपुराणे—वर्णाश्रमविभेदेन देवाः स्थाप्यास्तु नान्यथा। ब्रह्मा तु ब्राह्मणैः स्थाप्यो गायत्रीसहितः प्रभुः॥ चतुर्वर्णैस्तथा विष्णुः प्रतिष्ठाप्यः सुरार्थिभिः। भैरवोऽपि चतुर्वर्णैरन्त्यजानां तथा मतः॥ मातरः सर्वलोकैस्तु स्थाप्याः पूज्याः सुरोत्तमाः। लिङ्गं गृही यतिर्वापि संस्थाप्य तु यजेत्सदा॥

यहाँपर अधिकारी कृत्यकल्पतरु और देवीपुराण में कहा है कि—वर्ण और आश्रमके भेदसे देवताओं की स्थापना करे। इससे विपरीत न करे। ब्राह्मणगण—गायत्री के सहित ब्रह्माका स्थापन करे। चारों वर्णों के लोग सुखकी इच्छा के लिए विष्णु की स्थापना करे। चारों वर्ण के लोग और अन्त्यज भैरव की स्थापना करे। संसार के सब प्राणी देवताओं में उत्तम माताओं की स्थापना करे। सदा गृहस्थ और संन्यासी लिङ्ग का स्थापन कर पूजा करे।

शिवसर्वस्वे भविष्ये—यस्तु पूजयते लिङ्गं देवादिं मां जगत्पतिम्। ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा मत्परायणः॥ तस्य प्रीतः प्रदास्यामि शुभाँल्लोकाननुत्तमाम्॥

शिवसर्वस्व में भविष्यपुराण का वचन है कि—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र मेरे में तत्पर हो

गन्धाधिवास

पुष्पाधिवास

अन्नाधिवास
और
शर्कराधिवास

मिष्टान्नाधिवास

देवताओं में आदि मुक्त जगत्पति लिंग का जो पूजन करता है। उसपर प्रसन्न होकर उत्तमोत्तम शुभ लोकों को देता हूँ।

तिथितत्त्वे स्कान्दे—शूद्रः कर्माणि यो नित्यं स्वीयानि कुरुते प्रिये।
तस्याहमर्चां गृह्णामि चन्द्रखण्डविभूषिते॥

तिथितत्त्वमें स्कन्दपुराण का मत है कि—हे प्रिये, जो शूद्र अपने नित्यकर्मों को करता है। हे चन्द्रखण्डविभूषिते, उसकी मैं पूजा को ग्रहण करता हूँ।

ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थश्च सुव्रते। एवं दिने दिने देवं पूजयेदम्बिकापतिम्॥

सुव्रते, ब्रह्मचारी, गृहस्थ और वानप्रस्थ जो इसप्रकार प्रतिदिन अम्बिकापति की पूजा करे।

संन्यासी देवदेवेशं प्रणवेनैव पूजयेत्। नमोन्तेन शिवेनैव स्त्रीणां पूजा विधीयते॥ एतच्च पुराणप्रसिद्धजीर्णलिङ्गपूजाविषयम्।

देवों में देवेश का संन्यासी प्रणवसे ही पूजा करे। और स्त्रियोंको 'शिवाय नमः' इस मन्त्रसे पूजा का विधान करे। ये वचन पुराणप्रसिद्ध जीर्णलिंगपूजा विषयक हैं।

(त्रिस्थलीसेतुमते लिङ्गादिस्पर्शनादौ विचारः)

यानि तु त्रिस्थलीसेतौ नारदीये—यः शूद्रेणार्चितं लिङ्गं विष्णुं वा प्रणमेन्नरः न तस्य निष्कृतिर्दृष्टा प्रायश्चित्तायुतैरपि॥ नमेद्यः शूद्रसंस्पृष्टं लिङ्गं वा हरिमेव वा। स सर्वयातनाभोगी यावदाचन्द्रतारकम्॥ पाखण्डपूजितं लिङ्गं नत्वा पाखण्डतां व्रजेत्। आभीरपूजितं लिङ्गं नत्वा नरकमश्नुते॥ योषिद्भिः पूजितं लिङ्गं विष्णुं वापि नमेत्तु यः। स कोटिकुलसंयुक्तमाकल्पं रौरवं वसेत्॥ इत्यादीनि, तानि नूतनस्थापितलिङ्गादिविषयाणि।

जो त्रिस्थलीसेतु में नारदपुराण का वचन है कि जो मनुष्य शूद्रसे स्पृष्ट लिंग या हरिकी प्रतिमा को नमस्कार करता है। जो मनुष्य शूद्रसे पूजित लिंग या विष्णु को प्रणाम करता है। उसका निस्तार अयुत प्रायश्चित्त करनेपर भी नहीं देखा गया है। वह जब तक चन्द्रमा और तारे रहेंगे तबतक सब यातनाओंका भोगनेवाला होता है। पाखण्डियोंसे अर्चित लिंगको नमस्कार करनेवाला पाखण्डताको प्राप्त होता है। आभीरों (अहीर) द्वारा पूजित लिङ्गको नमस्कार करनेवाला नरक में जाता है। जो स्त्रियों द्वारा पूजित लिंग या विष्णु को नमस्कार करता है वह करोडों कुलसे युक्त होकर कल्पपर्यन्त नरक में निवास करता है। ये सब वचन नूतन स्थापित लिङ्गादि विषयक हैं।

यदा प्रतिष्ठितं लिङ्गं मन्त्रविद्भिर्यथाविधि। तदाप्रभृति शूद्रश्च योषिद्वापि न संस्पृशेत्॥ इति तत्रैवोक्तेः।

जब मन्त्रोंके जानकारों ने यथाविधि लिंगको प्रतिष्ठापित किया है। उसीकाल से शूद्र या स्त्री उसका स्पर्श न करे—यह बात वहीं पर कही है।

(प्रतिष्ठायां शूद्रादीनामधिकारविचारः)

प्रतिष्ठायां तु शूद्रादीनां नाधिकारः। स्त्रीणामनुपनीतानां शूद्राणां च नरेश्वर। स्थापने नाधिकारोऽस्ति विष्णोर्वा शङ्करस्य वा॥

प्रतिष्ठा में तो शूद्र आदियों को अधिकार नहीं है। हे जनेश्वर, विष्णु या शंकर के स्थापन में स्त्रियों को अनुपनीतों को और शूद्रोंको अधिकार नहीं है।

यः शूद्रसंस्कृतं लिङ्गं विष्णुं वापि नमेन्नरः। इहैवात्यन्तदुःखानि पश्यत्यामुष्मिके किमु॥

जो मनुष्य शूद्रसे संस्कृत (स्थापित) लिङ्ग या विष्णु को नमस्कार करता है वह इसीलोकमें अत्यन्त दुःखों को देखता है और परलोक में क्या कहना है।

शूद्रो वानुपनीतो वा स्त्रियो वा पतितोऽपि वा। केशवं वा शिवं वापि स्पृष्ट्वा नरकमश्नुते॥ इति

बृहन्नारदीयस्कान्दोक्तेरिति त्रिस्थलीसेतौ पितामहचरणाः। चतुर्वर्णैरिति पूर्वोक्तवचनाद्विष्णवादिप्रतिष्ठायां शूद्रस्य विकल्प इति तु युक्तं पश्यामः।

शूद्र, अनुपनीत, स्त्री और पतित ये सब केशव या शिवका स्पर्श कर नरक प्राप्त करते हैं। यह बृहन्नारदीयपुराणमें स्कन्दपुराण मत से कहा है—यह त्रिस्थलीसेतु में पितामहचरण ने कहा है। 'चातुर्वर्ण्यैः' चारोंवर्णों को यह पहले कहे हुए वचनसे विष्णु आदि प्रतिष्ठामें शूद्रका बिकल्प है। यह ठीक देखते हैं।

(शिवार्चनपूजने दिक्विचारः)

तत्रैव गौतमः—शिवार्चनं सदाप्येवं शुचिः कुर्यादुदङ्मुखः।

वहींपर गौतमने कहा है कि—पवित्र मनुष्य सदा ही उत्तराभिमुख होकर शिवार्चन करे।

वाचस्पतिधृतम्—(मतम्) प्राक्पश्चिमोदगास्यस्तु प्रातः सायं निशासु च॥ इति प्रयोगपारिजाते।

वाचस्पतिमें कहा हुआ है कि—प्रातःकाल पूर्वदिशा में, सायंकाल पश्चिमदिशा में और रातमें उत्तरदिशा की तरफ मुखकर अर्चन करे। यह प्रयोगपारिजात में कहा है।

(प्रतिमाविचारः)

गृह्यपरिशिष्टे—प्रतिमाः प्राङ्मुखीरुदङ्मुखो यजेताऽन्यत्र प्राङ्मुखः। एतच्च स्थिरप्रतिमाविषयम्। अन्यत्र चलार्चासु।

गृह्यपरिशिष्ट में कहा है कि—जिन प्रतिमाओं का मुख पूर्वदिशा में है उनका पूजन उत्तराभिमुख करे। अन्यों का पूजन तो पूर्वाभिमुख करे। यह भी चल प्रतिमाओं को छोड़कर स्थिरप्रतिमाविषयक है।

अथ प्रतिमाः भार्गवार्चनदीपिकायां भविष्ये—सौवर्णी राजती ताम्री मृन्मयी च तथा भवेत्। पाषाणधातुयुक्ता च रीतिकांस्यमयी तथा॥ (रीतिः=पित्तलम्)। शुद्धदारुमयी वापि देवतार्चा प्रशस्यते॥

अब प्रतिमाओं को भार्गवार्चनदीपिका में भविष्यपुराण ने कहा है कि—सुवर्ण, रजत, ताम्र, मृत्तिका, पाषाण, धातुयुक्त, पीतल, कांसा और शुद्धकाष्ठ की प्रतिमा में पूजा उत्तम कही है।

(गृहे प्रतिमाविचारः)

अङ्गुष्ठपर्वादारभ्य वितस्तिं यावदेव तु। गृहेषु प्रतिमा कार्या नाधिका शस्यते बुधैः॥

अंगुठे के पर्वसे आरम्भ कर वितस्ति (कोशे—प्रादेशतालगोकर्णास्तर्जन्यादियुते तते। अङ्गुष्ठे सकनिष्ठे स्याद्वितस्तिर्द्वादशाङ्गुलः॥) परिमाण तक (अर्थात्—बारह अंगुल तक) घरमें प्रतिमा करे। उससे अधिक न करे—ऐसा विद्वानों ने कहा है।

पञ्चरात्रे तु—मृद्दारुलाक्षागोमेदमधूच्छिष्टमयी न तु॥ इति निषेध उक्तः।

पञ्चरात्र में तो निषेध कहा कि—मृत्तिका, दारु—काष्ठ, लाक्षा (लाख), गोमेद तथा मधूच्छिष्ट—मधूवनाख्यद्रव्य, (मोम) इनकी प्रतिमा का निर्माण न करे।

(प्रतिमा—अष्टविधा)

भागवते—शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती।
मनोमयी मणिमयी प्रतिमाष्टविधा स्मृता॥

काष्ठं मधूकस्यैव, तत्र काष्ठेषु मधुकमानीय च वसुन्धरे। कृत्वा तत्प्रतिमां चैव प्रतिष्ठाविधिनार्चयेत्॥ इति वाराहोक्तेः।

भागवत में कहा है कि—शिला, लकड़ी, लौह, लेप्य (पुती हुई), लेख्य (चित्रित) सिकता (रेती), मनोमयी (मानसिक ध्यानाविष्ट) तथा मणिकी, ये आठ प्रतिमाओंका प्रकार कहा है। काष्ठ शब्दसे मधूक (महुआ) का ही ग्रहण है।

फलाधिवास

वस्त्राधिवास

शय्याधिवास

ओषध्याधिवास

वाराह में कहा है कि—हे वसुन्धरे, काष्ठों में मधूक को ले आकार उसकी प्रतिमा कर प्रतिष्ठाविधिसे अर्चन करे।

(देवीपुराणमते गृहे प्रासादे च प्रतिमापूजनविचारः)

देवीपुराणे—सप्ताङ्गुलं समारभ्य यावच्च द्वादशाङ्गुलम्।
गृहेष्वर्चा समाख्याता प्रासादे चाधिका शुभा॥

देवीपुराण में कहा है कि—सात अङ्गुल से प्रारम्भ कर बारह अङ्गुल तक घरोंमें पूजा करना कहा है और प्रासाद मन्दिर में अधिक ही कल्याणकारक होती है।

(देवानां प्राणप्रतिष्ठाविचारः)

तिथितत्त्वे कालिकापुराणे—प्रतिमायाः कपोलौ द्वौ स्पृष्ट्वा दक्षिणपाणिना।
प्राणप्रतिष्ठां कुर्वीत तस्य देवस्य वा हरेः॥

तिथितत्त्वमें कालिकापुराण का वचन है कि—प्रतिमा के दोनों कपोलों को दाहिने हाथ से स्पर्शकर उसमें देवता या विष्णु की प्राणप्रतिष्ठा करे।

अन्येषामपि देवानां प्रतिमासु च पार्थिव। प्राणप्रतिष्ठा कर्तव्या तस्यां देवत्वसिद्धये॥

हे पार्थिव, अन्य देवताओं की भी प्रतिमाओं में प्राणप्रतिष्ठा उसमें देवता की सिद्धि के लिए करनी चाहिये।

वासुदेवस्य बीजेन तद्विष्णोरित्यनेन वा। तथैव हृदयेऽङ्गुष्ठं दत्त्वा शश्वच्च मन्त्रवित्॥
एभिर्मन्त्रैः प्रतिष्ठां तु हृदयेऽपि समाचरेत्।

वासुदेव के बीज से या 'तद्विष्णोः' इस ऋचासे। वैसेही मन्त्रवेत्ता निरन्तर हृदय में अंगूठे को देकर इन मन्त्रों से भी प्रतिष्ठा करे।

अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्यै प्राणाः क्षरन्तु च॥ अस्यै देवत्वमर्चायै मामहेति च कश्चन॥

इस मूर्तिमें प्राण प्रतिष्ठित हों। इस मूर्तिमें प्राणों का सञ्चार हो। इसमें पूजा के लिए देवत्व हो जिससे कोई भी पूजन करे।

हयशीर्षपञ्चरात्रे—अर्चकस्य तपोयोगादर्चनस्यातिशायनात्।
आभिरूप्याच्च बिम्बानां देवः सान्निध्यमृच्छति॥

हयशीर्षपञ्चरात्र में कहा है कि—अर्चक (पूजक) के तपोयोगसे, पूजक के अतिशय पूजन से और बिम्बों के अभिरूप (सादृश) होने से देवता सान्निध्यता को प्राप्त होते हैं।

(प्रतिमादीनां नित्यस्नाने विचारः)

प्रयोगपारिजाते व्यासः—प्रतिमापट्टयन्त्राणां नित्यं स्नानं न कारयेत्।
कारयेत्पर्वदिवसे यदा वा मलधारणम्॥

प्रयोगपारिजात में व्यासने कहा है कि—प्रतिमा और रेशमी वस्त्रादि में लिखित यन्त्रों का नित्य स्नान न करावे। पर्वदिन में या उन पर कभी मलादि धारण होनेपर करावे।

(तिथितत्त्वादिमते लिङ्गपूजने विचारः)

लिङ्गे विशेषस्तिथितत्त्वे भविष्ये—मृद्भस्मगोशकृत्पिष्टताम्रकांस्यमयं तथा।
कृत्वा लिङ्गं सकृत्पूज्य वसेत्कल्पायुतं दिवि॥

लिंगके विषयमें तिथितत्त्व में भविष्यपुराण का मत है कि—मृत्तिका, भस्म, गोबर, आटा, तांबा और कांस का लिंग कर जो एकबार पूजन करता है वह अयुतकल्पतक स्वर्ग में रहता है।

वार्क्षं वित्तप्रदं लिङ्गं स्फाटिकं सर्वकामदम्। कृत्वा पूजय विप्रेन्द्र लप्स्यसे वाञ्छितं फलम्॥

१—ॐ तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्॥ (ऋ० १।२२।२० ।)

धनको देनेवाले काष्ठ के लिङ्ग का तथा सब कामनाओं को देनेवाले स्फटिकलिङ्ग का पूजनकर हे विप्रेन्द्र, इच्छितफलको प्राप्त करता है।

तत्रैव कालकौमुद्यां स्कान्दे—अक्षादल्पपरीमाणं न लिङ्गं कुत्रचिन्नरः। कुर्वीताङ्गुष्ठतो ह्रस्वं न कदाचित्समारभेत्॥ अक्षोऽशीतिर्गुञ्जाः। गुञ्जाः पञ्चाद्यमाषकः। ते षोडशाक्षः कर्षोऽस्त्री, इत्यमरकोशात्।

वहोपर कालकौमुदी में स्कन्दपुराण का मत है कि—अक्ष से अल्पपरिमाण के लिङ्ग को कहीं भी मनुष्य न करे। अंगूठेसे छोटा (मन्त्रमहोदधौ—अङ्गुष्ठादिवितस्त्यन्तं न न्यूनं नाधिकं क्वचित्।) लिंग कभी भी न करे। अक्ष-अस्सी गुञ्जे को कहते हैं।

(नवविधचरलिङ्गे श्रेष्ठादिकथनम्)

प्रयोगपारिजाते क्रियासारे—नवाष्टसप्ताङ्गुलिकं लिङ्गं श्रेष्ठमिहोच्यते। षट्पञ्चकचतुर्मानं मध्यमं त्रिविधं स्मृतम्॥ त्र्यद्व्येकाङ्गुलमानं यत्त्रिविधं तत्कनीयसम्। एवं नवविधं प्रोक्तं चरलिङ्गं यथाक्रमम्॥

प्रयोगपारिजात में क्रियासार का वचन है कि—नौ, आठ, और सात अङ्गुल का लिंग उत्तम होता है। तीन, छ, पाच तथा चार अंगुल का मध्यम होता है। तीन, दो और एव अंगुल का लिंग कनिष्ठ होता है। इसप्रकार यथाक्रमसे चरलिंग नौ प्रकार का कहा है।

(पञ्चसूत्रीनिर्णयः)

अथ पञ्चसूत्रीनिर्णयः। गौतमीतन्त्रे—लिङ्गमस्तकविस्तारो लिङ्गोच्छ्रायसमो मतः। परिधिस्तत्त्रिगुणितस्तद्वत्पीठं व्यवस्थितम्॥ प्रणालिका तथैव स्यात्पञ्चसूत्रविनिर्णयः॥

अब पञ्चसूत्रीका निर्णय करते हैं। गौतमीतन्त्र में कहा है कि—लिंगमस्तक का विस्तार लिंग की ऊँचाई के बराबर होनी चाहिये। उसकी परिधि—(गोलाई) त्रिगुणित होनी चाहिए। उसीप्रकार उसकी पीठ (जलधारी) की व्यवस्था वैसे ही करे। उसकी प्रणालिका (मोरी) की भी व्यवस्था पूर्ववत् करे। इसप्रकार पञ्चसूत्रीनिर्णय है।

अत्रेदं तत्त्वम्। लिङ्गमस्तकविस्तारं लिङ्गोच्चतासमं कृत्वा तत्त्रिगुणसूत्रवेष्टनार्हलिङ्गस्थौल्यं कृत्वा तत्समं वृत्तं चतुरस्रं वा पीठविस्तारमधश्चोर्ध्वं च कुर्यात्। पीठोच्चता तु लिङ्गोच्चतातो द्विगुणा। पीठमध्ये लिंगाद् द्विगुणस्थूलं पीठोच्चतातृतीयांशेन कण्ठं कृत्वा तस्योर्ध्वमधश्च समं वप्रद्वयं त्रयं वा कृत्वा लिङ्गविस्तारषष्ठांशेन पीठोपरि बाह्यमेखलां कृत्वा तदन्तः संलग्नं तत्समं खातं च कृत्वा पीठाद्बहिर्लिङ्गसमदीर्घां पीठार्द्धदीर्घां वा मूले दैर्घ्यसमविस्तारां तृतीयांशेन मध्ये खातां पीठवत्समेखलां प्रणालिकां कुर्यादिति। अत्र मूलं सिद्धान्तशेखरे शैवागमे च ज्ञेयम्।

यहाँपर यही तत्त्व है कि—लिङ्ग के शिरका विस्तार और लिङ्ग की ऊँचाई बराबर की कर उसको त्रिगुणित सूत्र से वेष्टन (लपेट) कर पूजनीय लिङ्ग को स्थूल कर उसीके बराबर वृत्त या चतुरस्र पीठका विस्तार नीचे और ऊपर करे। पीठकी ऊँचाई लिङ्गकी ऊँचाई से द्विगुणित करे। पीठके मध्य में लिङ्ग से द्विगुना स्थूल को पीठकी ऊँचाई से तृतीयांश (तीसरा भाग) से कण्ठकर उसके ऊपर और नीचे बराबर की दो सीढी या तीन सीढीकर लिंगविस्तार के छठे भागसे पीठके ऊपर बाहर की मेखला कर उसके भीतर संलग्न और उसके बराबर गढाकर पीठ के बाहर लिङ्ग के बराबर लम्बी या पीठसे आधी लंबी मूलमें दीर्घता के बराबर विस्तार करे। उसके आधे विस्तार तृतीयांश से मध्य में गढा हो पीठकी तरह मेखला सहित प्रणालिका बनावे। इसमें मूल वचन सिद्धान्तशेखर और शैवागम में जानना[1] चाहिये[2]।

१—पञ्चसूत्रविधानं च कुर्याल्लिङ्गे शुभावहम्।

२—पञ्चसूत्रविधानं च पार्थिवे न विचारयेत्। यथाकथञ्चिद्विधिना रमणीयं प्रकल्पयेत्॥

प्रधान मन्दिर

ब्रह्मशिलायां रत्नन्यासः

ईशान पूर्वयोर्मध्ये

पूर्व

उत्तर

दक्षिण

प्रासाद अधिवासन कलशस्थापन प्रकार

पूर्व

(शिवसूर्यार्चनं विना सर्वत्र शंखस्य ग्रहणविचारः)

तिथितत्त्वे ब्राह्मे---सर्वत्रैव प्रशस्तोऽब्जः शिवसूर्यार्चनं विना ।

तिथितत्त्वमें ब्रह्मपुराणका वचन है कि—शिव और सूर्य के पूजन के बिना सर्वत्र ही शंख प्रशस्त है ।

(गृहे लिङ्ग-शालग्राम-चक्रादीनां संख्यायाः परिमाणे विचारः)

तत्रैव वाराहपाद्मयोः---गृहे लिङ्गद्वयं नार्च्यं शालग्रामद्वयं तथा ।
द्वे चक्रे द्वारकायास्तु नार्च्यं सूर्यद्वयं तथा ॥

शक्तित्रयं तथा नार्च्यं गणेशत्रयमेव च । द्वौ शङ्खौ नार्चयेच्चैव भग्नां च प्रतिमां तथा ।

वहींपर वाराह और पद्मपुराणमें कहा है कि—घरमें दो लिङ्ग, दो शालग्राम, दो द्वारका के चक्र (स्वतन्त्रपूजा में—चक्रांकमिथुन दो की पूजा होती है यह वाराहपुराणमत है ।) और दो सूर्य की पूजा न करे । तीन शक्ति, तीन गणेश, दो शंख और भग्न प्रतिमा की पूजा नहीं करनी चाहिये ।

नार्चयेच्च तथा मत्स्यकूर्मादिदशकं तथा । गृहेऽग्निदग्धा भग्नाश्च नार्चाः पूज्या वसुन्धरे ॥

मत्स्य, कूर्म आदि दश अवतार की (एकसाथ) पूजा नहीं चाहिये । हे वसुन्धरे, अग्निसे दग्ध और भग्न प्रतिमाओं की घरमें पूजा न करे ।

एतासां पूजनान्नित्यमुद्वेगं प्राप्नुयाद् गृही ॥ शालग्रामाः समाः पूज्याः समेषु द्वितयं नहि ।

इनमूर्तियों के पूजन करने से गृहस्थ को नित्य उद्वेग प्राप्त होता है शालग्राम सम (अर्थात्—चार, छ, आठ, आदि) का अर्चन करे । सममें भी दो का पूजन न करे ।

विषमा नैव पूज्यास्तु विषमेष्वेक एव हि । शालग्रामशिला भग्ना पूजनीया सचक्रका ।
खण्डिता स्फुटिता वापि शालग्रामशिला शुभा ।

विषम शालिग्राम की पूजा नहीं ही करे । विषम में एक की ही पूजा करे । शालिग्राम की भग्नशिला चक्रवाली की पूजा करे ।

खण्डित ('लग्नं भग्नं न पूजयेत्—इत्यस्य लग्नचक्रं भग्नचक्रमित्यर्थान्न विरोधः) और टूटी शालग्राम की शिला उत्तम होती है ।

(सुवर्णसहितशालग्रामशिलादाने पृथ्वीदानफलकथनम्)

वाराहे---दद्याद्भक्ताय यो देवि शालग्रामशिलां नरः ।
सुवर्णसहितां दिव्यां पृथ्वीदानफलं लभेत् ॥

वाराहपुराण में कहा है कि—हे देवि, जो मनुष्य भक्तिवाले प्राणीको सुवर्ण के सहित दिव्य शालग्रामशिला को देता है । उसे पृथ्वीदानका फल होता है ।

(शतसंख्याकशालग्रामशिलापूजने फलकथनम्)

तत्रैव---यः पुनः पूजयेद्भक्त्या शालग्रामशिलाशतम् । तत्फलं नैव शक्तोऽहं वक्तुं वर्षशतैरपि ॥

वहींपर कहा है कि—जो फिर शालग्रामकी शिला का भक्तिसे पूजन (स्कन्दपुराणे—शालग्रामशिलायास्तु प्रतिष्ठा नैव विद्यते । महापूजां तु कृत्वाऽऽदौ पूजयेत्तां ततो बुधः॥ 'पाद्मे—शालग्रामशिलायां च नावाहन-विसर्जने ।) करता है उसके फल को सौ वर्ष तक भी कहने में समर्थ मैं नहीं होता हूँ ।

विष्णुपुराणे---ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्च पृथिवीपते ।
स्वधर्मतत्परो विष्णुमाराधयति नान्यथा ॥

विष्णुपुराणमें कहा है कि—हे पृथिवीपते, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये अपने धर्म में तत्पर हो विष्णुकी आराधना करे । धर्मसे रहित हों तो न करें ।

(वैदिककर्म में विष्णु की आराधना से सब पापों का नाश होता है । कलिकाल में विष्णुप्रधान हैं । जिससे कलिकाल में होनेवाले महापापों का शमन होता है या भगवान् आशुतोष की पूजा करें । या पञ्चायतनक्रमसे अर्चा करे । उसमें स्नान शीतोदक से गंगा आदिमें करना चाहिये । अभाव में

उष्णोदक से सशिरस्क स्नान करे। अशक्तिमें कण्ठ स्नान (अशिरस्कं भवेत्स्नानं स्नानाशक्तौ तु कर्मिणाम् ।) करे। शक्ति में भस्मादिस्नानों का विधान मिलता है। उसमें भी गुरुपादोदकस्नान (अशक्तानां तु मर्त्यानां गुरोः पादोदकं शुभम् । विप्रपादाद्विष्णुपादात्तुल्यं स्यात्संभृतं जलम् ॥ प्रोक्षणात् स्नानमाप्नोति ध्यानस्नानं विशिष्यते ॥) ऐसे स्नानों से मनुष्य जपादि कर सकता है। केवल अर्चादि नहीं कर सकता है। आचार्य का वचन है कि—प्रातःस्नानमशक्तस्तु रोगाद्यैर्वा भयेन वा। पूर्ववस्त्रं परित्यज्य शुचित्वं संभवेत्तदा। जपेत्सन्ध्यां तथा वेदान् सोऽध्ययीत यथाविधि ॥

(अविभक्तानां पृथग्देवपूजाकथनम्)

अविभक्तानामपि पृथग्देवपूजामाह प्रयोगपारिजाते आश्वलायनः—पृथगप्येकपाकानां ब्रह्मयज्ञो द्विजातिनाम् । अग्निहोत्रं सुरार्चा च सन्ध्या नित्यं भवेत्पृथक् ॥

अविभक्तों को अलग देवता की पूजा प्रयोगपारिजात में आश्वलायन ने कहा है कि—जो अलग-अलग हैं पर एक ही जगह भोजन बनता है ऐसा द्विजों का ब्रह्मयज्ञ, अग्निहोत्र, देवताओं की पूजा और सन्ध्या ये अलग अलग नित्य होती हैं।

(क्षत्रियादिपूजने विचारः)

तत्रैव विष्णुधर्मे—शालग्रामशिलां वापि चक्राङ्कितशिलां तथा। ब्राह्मणः पूजयेन्नित्यं क्षत्रियादिर्न पूजयेत् ॥ इदंस्पर्शसहितपूजाविषयम्,

वहींपर विष्णुधर्म में कहा है कि—शालग्रामशिला (स्कान्दे—शालग्रामशिलायास्तु मूल्यं यः कुरुते नरः। विक्रेता चानुमन्ता च यः परीक्षानुमोदकः ॥ सर्वे ते नरकं यान्ति यावदाभूतसंप्लवम् ।) या चक्राङ्कितशिला की पूजा ब्राह्मण नित्य करे। क्षत्रिय आदि पूजा न करें। यह स्पर्शसहित पूजाविषयक है।

(स्त्रीशूद्रादीनां केशवशिवस्पर्शनविचारः)

शूद्रो वाऽनुपनीतो वा स्त्रियो वा पतितोऽपि वा। केशवं वा शिवं वापि स्पृष्ट्वा नरकमश्नुते ॥

स्कन्दपुराण में कहा है कि—शूद्र, जिसका उपनयनसंस्कार नहीं हुआ है, स्त्री और पतित ये लोग केशव या शिव का स्पर्श करते हैं तो नरक प्राप्त करते हैं।

ब्राह्मण्यपि हरं विष्णुं न स्पृशेच्छ्रेय इच्छती। सनाथा मृतनाथा वा तस्या नास्तीह निष्कृतिः ॥

श्रेय (कल्याण) की इच्छा करनेवाली ब्राह्मणी भी शंकर और विष्णु का स्पर्श न करे। जो सनाथा (सधवा) तथा मृतनाथा (विधवा) हो उसका निस्तार नहीं होता है।

स्त्रीणामनुपनीतानां शूद्राणां च जनेश्वर। स्पर्शने नाधिकारोऽस्ति विष्णोर्वा शङ्करस्य वा ॥ इति स्कान्दात् । स्पर्शरहिता तु तयोर्भवत्येव,

हे जनेश्वर, स्त्रियों और अनुपनीत शूद्रों को विष्णु तथा शंकर के स्पर्श का अधिकार नहीं है। विना स्पर्श की पूजा विष्णु एवं शंकर की कर सकते हैं।

शालग्रामं न स्पृशेत्तु हीनवर्णो वसुन्धरे। स्त्रीशूद्रकरसंस्पर्शो वज्रस्पर्शाधिको मतः ॥ मोहाद्यः संस्पृशेच्छूद्रो योषिद्वापि कदाचन। स्वपते नरके घोरे यावदाभूतसंप्लवम् ॥

वाराहपुराणमें कहा है कि—हे वसुन्धरे, हीनवर्णवाला व्यक्ति शालग्राम का स्पर्श न करे। स्त्री और शूद्र के हाथ से शालग्रामका स्पर्श वज्रसे भी अधिक कष्टदायक होता है। जो मोहसे शूद्र या कदाचित् स्त्री भी शालग्रामका स्पर्श करे तो प्रलयपर्यन्त घोर नरक में गिरती है।

यदि भक्तिर्भवेत्तस्य स्त्रीणां वापि वसुन्धरे। दूरादेवास्पृशन् पूजां कारयेत्सुसमाहितः ॥ इति वाराहोक्तेः ।

हे वसुन्धरे, यदि स्त्रियों को भक्ति हो तो दूर से ही विना स्पर्श के सावधानमन से पूजा करें।

शालग्रामशिलामात्रनिषेधो न प्रतिमादौ, सर्ववर्णैस्तु संपूज्याः प्रतिमाः सर्वदेवताः। लिङ्गान्यपि तु पूज्यानि मणिभिः कल्पितानि च ॥ इति तत्रैवोक्तेः ।

दक्षिणा वेदिः

पूर्व

उत्तर | दक्षिण

पश्चिम

१२	११	१०	९	८	७	६	५	४	३	२	१
गंधोदक	गंधोदक	गंधोदक	गंधोदक	गंधोदक	गंधोदक	गंधोदक	भस्म	गोमय	गोमूत्र	पञ्चपल्लव	मृत्तिका
[illegible]	ब्रह्म यज्ञानम् १३।३	विष्णोरराटमसि ५।२१	याते रुद्र शिवा १६।२	हं॰ सः शुचिषद् १०।२४	नमः शंभवाय १६।४१	तत्सवितुर्वरेण्यम् ३।३५	मानस्तोके १६।१६	गंधद्वारां दुराधर्षां	तत्सवितुर्वरेण्यम् ३।३५	यज्ञा यज्ञा वः २७।४२	अग्निर्मूर्धा दिवः १५।२०

मध्यमा वेदिः

पूर्व

उत्तर | दक्षिण

पश्चिम

२३	२२	२१	२०	१९	१८	१७	१६	१५	१४	१३
[illegible]	गंगोदक	गंगोदक	गंगोदक	गंगोदक	गंगोदक	[illegible]	गोमय	गोमूत्र	पंचगव्य	मृत्तिका
ब्रह्मयज्ञानम्	विष्णोरराटमसि	याते रुद्र शिवा	हं॰ सः शुचिषद्	नमः शंभवाय	तत्सवितुर्वरेण्यम्	मानस्तोके	गंधद्वारां दुराधर्षां	तत्सवितुर्वरेण्यम्	यज्ञा यज्ञा वः	अग्निर्मूर्धा दिवः

उत्तरावेदिः

खण्डित मूर्ति का जलप्रवाह

शालग्राम शिलामात्रके स्पर्श का निर्बन्ध (निषेध) प्रतिमा आदि में नहीं है। वहींपर कहा है कि—सब देवताओं की प्रतिमाओं को और कल्पित मणिलिंगों का भी सब वर्ण के लोग पूजन करें।

(ब्राह्मणादिभिः कति प्रतिमा पूज्याः)

चत्वारो ब्राह्मणैः पूज्यास्त्रयो राजन्यजातिभिः। वैश्यैर्द्वावेव संपूज्यौ तथैकः शूद्रजातिभिः॥ इति स्कान्दाच्च। अन्ये तु दीक्षितादीक्षितविषयत्वेन व्यवस्थामाहुः।

स्कन्दपुराणमें कहा है कि—ब्राह्मणों को चार, क्षत्रिय जाति को तीन, वैश्यको दो और शूद्रजातियों को एक लिंग की पूजा करना कहा है। अन्य तो दीक्षित और अदीक्षित के भेद से व्यवस्था स्वीकार कहते हैं।

(नवधाद्रव्यस्य कथनम्)

विष्णुधर्मे—तयोरसंभवेऽर्चा वै सा चेह नवधा स्मृता। रत्नजा हेमजा चैव राजती ताम्रजा तथा॥ रैतिक्यर्चा तथा लौही शैलजा द्रुमजा तथा। अधमाधमा च विज्ञेया मृन्मयी प्रतिमा च या॥ एषां फलानि तत्रैव ज्ञेयानि॥

विष्णुधर्म में कहा है कि—उनदोनों के अभाव में यहाँपर वही पूजा नौ प्रकार कही है। रत्न, सुवर्ण, चाँदी, तांबा, पीतल, लोहा, पत्थर तथा काष्ठ की प्रतिमा बनावे। उसमें जो मट्टी की प्रतिमा है उसको अधम से अधम जानना चाहिये। इन मूर्तियों के फल वहीं पर ही से जानना चाहिये।

(गृहे चतुरङ्गुलतोधिका मूर्तिपूजाविचारः)

(नार्च्या गृहेऽश्मजा मूर्तिश्चतुरङ्गुलतोऽधिका। न वितस्त्यधिका धातुसंभवा श्रेय इच्छता॥ एवं लक्षणसंपन्ना पारंपर्यक्रमागता। उत्तमा सा तु विज्ञेया गुरुदत्तापि तत्समा॥)

घरमें चार अंगुल से अधिक पत्थर की मूर्तिका पूजन न करे। कल्याण की इच्छावाला व्यक्ति वितस्ति (बारह अंगुल) से अधिक धातुकी मूर्तिकी पूजा न करे। इसप्रकार लक्षणसे युक्त परंपरा से प्राप्त मूर्ति को उत्तमा जानना चाहिये। गुरु द्वारा प्रदत्त भी उसीके समान है।

तत्रैव पाद्मे शालिग्रामं प्रक्रम्य—तत्राप्यामलकीतुल्या पूज्या सूक्ष्मैव या भवेत्। यथा यथा शिला सूक्ष्मा तथा स्यात्तु महत्फलम्॥

वहीं पर पद्मपुराण में शालग्राम का प्रारंभ कर कहा है कि—उसमें भी आँवले के सदृश जो शिला सूक्ष्म ही हो वही पूजनीय होती है। जैसे-जैसे शिला सूक्ष्म होती है वैसे-वैसे ही महान् फल होता है।

(शालग्रामशिवनाभिपरीक्षाकथनम्)

तथा—यवमात्रं तु गर्तः स्याद्यवार्द्धं लिङ्गमुच्यते। शिवनाभिरिति ख्यातस्त्रिषु लोकेषु दुर्लभः॥

और यवके सदृश गढा होता है, यवका आधा लिङ्ग होता है। वह शिवनाभि के माप से प्रसिद्धि होती है तथा तीनों लोकों में दुर्लभ है।

तत्रैव—शालग्राममयी मुद्रा संस्थिता यत्र कुत्रचित्।
वाराणस्या यवाधिक्यं समन्ताद्योजनत्रयम्॥

वहींपर कहा है कि—शालग्राममयी मुद्रा (शिला) जहाँ कहीं भी स्थित हो वह सब तरफ से तीन योजन और वाराणसी से एक यव अधिक होता है।

(शालग्रामशिलासमीपे मरणे मोक्षकथनम्)

यो मृतस्तत्समीपे तु मृतो वा नीयतेऽन्तिकम्। स वै मोक्षमवाप्नोति सत्यं सत्यं न चान्यथा॥

जो उसके समीप मरता है या मरे को उसके समीप में ले जाता है वह निश्चय मोक्षको प्राप्त करता है यह बिलकुल सत्य है। इसमें अन्यथा नहीं हो सकता है।

तत्रैव—चक्राङ्कमिथुनं पूज्यं नैकं चक्राङ्कमर्चयेत्। चक्राङ्कमिथुनात्सार्द्धं शालग्रामं प्रपूजयेत्॥

वहींपर कहा है कि—चक्राङ्क के मिथुन (जोडे) की पूजा करे। एकचक्राङ्क की पूजा न करे। चक्राङ्कमिथुन के साथ शालग्राम की भी पूजा करे।

तत्रैव वाराहे—म्लेच्छदेशे शुचौ वापि चक्राङ्को यत्र तिष्ठति।
योजनानां तथा त्रीणि मम क्षेत्रं वसुन्धरे॥

वहींपर वाराहपुराणमें कहा है कि—हे वसुन्धरे, म्लेच्छदेश में या पवित्रदेश में जहाँ चक्राङ्क हो वहाँ तीन योजन तक मेरा क्षेत्र है।

तत्रैव शालग्रामं—प्रक्रम्य—क्रयक्रीता परिज्ञेया मध्यमा याचिताऽधमा।

वहींपर ही शालग्राम का प्रारम्भकर कहा है कि—जो मूल्य देकर खरीदी जाती है वह मध्यम होती है और जो मांगकर ली जाती है वह अधम होती है।

प्रयोगपारिजाते वाराहे—एवं लक्षणसंपन्ना पारंपर्यक्रमागता।
उत्तमा सा तु विज्ञेया गुरुदत्तापि तत्समा॥

प्रयोगपारिजातमें वाराहने कहा है कि—इसप्रकार लक्षणोंसे युक्त परंपराके क्रमसे आई हो वह उत्तम होती है तथा गुरुने दी हो वह भी उसी के बराबर होती है।

(पार्थिवपूजाकथनम्)

अथ पार्थिवपूजा। नन्दिपुराणे—आयुष्मान् बलवान् श्रीमान् पुत्रवान् धनवान् सुखी। वरमिष्टं लभेल्लिङ्गं पार्थिवं यः समर्चयेत्। तस्मात्तु पार्थिवं लिङ्गं ज्ञेयं सर्वार्थसाधकम्॥

अत्र पार्थिवपूजा कहते हैं। नन्दिपुराण में कहा है कि—जो पार्थिवलिंग की पूजा करता है वह आयु, बल, लक्ष्मी, पुत्र, धन, सुख और इच्छित फलको प्राप्त करता है। इसलिए ही सब अर्थोंका साधक पार्थिवलिंग को जानना चाहिये।

तत्रैव—गोभूहिरण्यवस्त्रादिबलिपुष्पनिवेदने। ज्ञेयो नमः शिवायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः॥ सर्वमन्त्राधिकश्चायमोङ्काराद्यः षडक्षरः॥

वहींपर कहा है कि—गौ, भूमि, सुवर्ण, वस्त्र आदि, बलि तथा पुष्पके निवेदन में संपूर्ण अर्थ का साधक 'नमः शिवाय—इस मन्त्र को जानना चाहिये। यह मन्त्र जिसके आदि में ॐकार लगता है। ऐसा षडक्षर मन्त्र सब मन्त्रों से अधिक श्रेष्ठ है।

(शिवस्य प्रसिद्धपूर्वादिक्रमेण मूर्तीनां स्थापनविचारः)

भविष्ये—मूर्तयोऽष्टौ शिवस्यैताः पूर्वादिक्रमयोगतः। आग्नेय्यन्ताः प्रपूज्यास्तु वेद्यां लिङ्गे शिवं यजेत्॥ अत्र 'न प्राचीमग्रतः शंभोः' इति रुद्रयामले निषेधान्नान्तरालं शिवं प्राची, किन्तु प्रसिद्धैव।

भविष्यपुराणमें कहा है कि—शिवकी मूर्ति आठ हैं उनको पूर्वादि दिशाक्रम से अग्निकोण तक पूजन करे और वेदीपर लिङ्गमें शिवका यजन (पूजन) करे।

यहाँपर शंभु के आगे[1] पूर्वदिशा नहीं जानना चाहिये यह रुद्रयामल में निषेध है। अन्तराल पूर्वदिशा शिव की नहीं होती है। किन्तु[2] प्रसिद्ध ही स्वीकार करे।

तिथितत्त्वे देवीपुराणे—मृदाहरणसंघट्टे प्रतिष्ठाह्वानमेव च। स्नपनं पूजनं चैव विसर्जनमतः परम्॥ हरो महेश्वरश्चैव शूलपाणिः पिनाकधृक्। शिवः पशुपतिश्चैव महादेव इति क्रमात्॥

तिथितत्त्वमें देवीपुराण का वचन है कि—'हराय नमः—इससे मृत्तिको ले आकर उसका संशोधनकर

१—प्राचीमग्रतः कृत्वा संमुखीभूय शंभोः पूजां न कुर्यात्।

२—प्राच्यैशान्यादिक्रमेण वामावर्तेन, 'आग्नेय्यान्ताः' इत्युक्तेः। केचित्तु उदीचीमग्रतः कृत्वा उदीच्यभिमुखी भूयेति। तस्मादन्तरालमेव प्राचीमाहुः। तन्न बहुसंमतम्—इति टीकायाम्।

उस मृत्तिका में पवित्रजल प्रक्षेप कर 'महेश्वराय नमः'—इससे मृत्तिका को मिलाकर उसके पिण्डसे लिङ्गको बनाकर 'शूलपाणये नमः'—प्रतिष्ठाकर 'पिनाकधृतये नमः'—से आवाहनकर पञ्चाक्षरमन्त्र (शिवाय नमः) से पाद्य, अर्घ्य, आचमनीयजल देकर 'पशुपतये नमः'—से शुद्धोदक स्नान कराकर आचमनीय, वस्त्र, यज्ञोपवीत, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, फल, ताम्बूल, दक्षिणा, नीराजन, प्रदक्षिणा और नमस्कार 'महादेवाय नमः' इस मन्त्रसे करे।

(श्रीवृक्षस्य शुष्कपत्रादिनिवेदने विचारः)

स्कान्दे—शुष्काण्यपि च पत्राणि श्रीवृक्षस्य निवेदयेत्।

स्कन्दपुराणमें कहा है कि—बिल्वपत्रके सुखे पत्तों को निवेदन करे।

तत्रैव भविष्ये--धत्तूरकैश्च यो लिङ्गं सकृत्पूजयते नरः ।
स गोलक्षफलं प्राप्य शिवलोके महीयते ॥

वहींपर भविष्यपुराण में कहा है कि--जो मनुष्य एकबार भी धतूरों से लिंगकी पूजा करता है वह गोदान के लक्ष फलको प्राप्तकर शिवलोकमें जाता है ।

ग्रहयज्ञस्थापनमिति निष्कर्षं इति प्रयोगचिन्तामणौ ।

(देवताविशेषे वाद्यनिषेधकथनम्)

योगिनीतन्त्रे—शिवागारे झल्लकं च सूर्यागारे च शङ्खकम् ।
दुर्गागारे वंशवाद्यं मधूरीं च न वादयेत् ॥

योगिनीतन्त्रमें लिखा है कि—शिवजी के मन्दिर में झल्लक (काँशेकी करताल, झाँझ) सूर्य के मन्दिर में शंख, दुर्गाके मन्दिरमें वंशी और मधूरी (यह मुँह से फूँककर बजायी जाती है। शुषिरवाद्य-छिद्रवाला वाद्यविशेष) नहीं बजावे। (ब्रह्मा के मन्दिर में ढाक (नगाडा) और लक्ष्मी के मन्दिर में घंटा नहीं बजाना चाहिये।)

श्राद्धहेमाद्रौ स्कान्दे--स्पृष्ट्वा रुद्रस्य निर्माल्यं सवासा आप्लुतः शुचिः ।

श्राद्धहेमाद्रिमें स्कन्दपुराण का वचन है कि—रुद्र के निर्माल्यका स्पर्श कर वस्त्र के सहित ही जल में स्नान कर पवित्र होता है ।

प्रयोगपारिजाते क्रियासारे--मध्यमानामिकामध्ये पुष्पं संगृह्य पूजयेत् ।
अङ्गुष्ठतर्जन्यग्राभ्यां निर्माल्यमपनोदयेत् ॥

प्रयोगपारिजात में क्रियासार का कथन है कि—मध्यमा और अनामिका के मध्य में पुष्प को ग्रहण कर पूजन करे तथा अंगुष्ठ तथा तर्जनी से निर्माल्य को हटा दे ।

(अशून्यमस्तके शिवनिर्माणकथनम्)

अपनीतं च निर्माल्यं चण्डेशाय निवेदयेत् । अशून्यमस्तकं लिङ्गं सदा कुर्वीत पूजकः ॥

निर्माल्य को हटाकर चण्डेश के लिए निवेदन करे और पूजक सदा अशून्य मस्तक (अर्थात्—मस्तक पर तिलक सदा रहे) हो लिंग का पूजन करे ।

सूतकादौ शिवपूजनविचारः)

शूलपाणौ लैङ्गे—वरं प्राणपरित्यागः शिरसो वापि कर्तनम् । न चैवापूज्य भुञ्जीत शिवलिङ्गे महेश्वरम् ॥ सूतके मृतके चैव न त्याज्यं शिवपूजनम् ॥

शूलपाणि में लिंगपुराण का वचन है कि—प्राण का त्याग तो करना उत्तम है और शिरका छेदन भी करना उत्तम है । शिवलिंग में महेश्वर का पूजन विना किये हुए भोजन करना उत्तम नहीं है । सूतक और मृतक में शिवपूजन का त्याग नहीं करना चाहिये । अर्थात्—किसी अन्य व्यक्ति से कराता रहे ।

(विना भस्मत्रिपुण्ड्रादौ पूजनविचारः)

तिथितत्त्वे लैङ्गे--विना भस्मत्रिपुण्ड्रेण विना रुद्राक्षमालया । पूजीतोऽपि महादेवो न स्यात्तस्य फलप्रदः ॥ तस्मान्मृदापि कर्तव्यं ललाटे वै त्रिपुण्ड्रकम् ॥

तिथितत्त्व में लिंगपुराण का वचन है कि—विना भस्म के त्रिपुण्ड्र से और बिना रुद्राक्षकी माला से महादेवका पूजन भी किया हो तो वह उसको फलप्रद नहीं होता है । इसलिए मृतिका से भी ललाट (मस्तक) में त्रिपुण्ड्रधारण करना चाहिये ।

(रुद्राक्षधारणे विशेषफलकथनम्)

रुद्राक्षधारणे विशेषः शिवरहस्ये--एकवक्त्रः शिवः साक्षाद् ब्रह्महत्यां व्यपोहति ।
अवध्यत्वं प्रतिस्त्रोतो वह्निस्तंभं करोति च ॥

रुद्राक्षधारण में विशेष शिवरहस्य में कहा है कि—एकमुखवाली रुद्राक्ष साक्षात् शिवका स्वरूप होती है । वह ब्रह्महत्या को नाश करती है । सब श्रोतों को अवध्यत्व करती है तथा अग्निका स्तंभन करती है । (वह (रुद्राक्ष) वध रहित करता है तथा प्रवाह के विपरीत प्रवाह को रोककर अग्नि को रोकता है । अर्थात्-प्रवाह से फैलती हुई अग्निज्वालाओं को यह रुद्राक्ष रोककर शान्त कर देता है ।)

द्विवक्त्रो हरगौरी स्याद् गोवधाद्यघनाशकृत् । त्रिवक्त्रो ह्यग्निजन्माथ पापराशिं प्रणाशयेत् ॥

दो मुखवाली रुद्राक्ष को 'हरगौरी' कहा जाता है । वह गोवध आदि पापों का नाश करती है । तीन मुखवाली रुद्राक्ष 'अग्निजन्मा' कही जाती है । वह पापों के समूह का नाश करती है ।

चतुर्वक्त्रः स्वयं ब्रह्मा नरहत्यां व्यपोहति । पञ्चवक्त्रस्तु कालाग्निरगम्याभक्ष्यापापनुत् ॥

चार मुखवाली रुद्राक्ष स्वयं ब्रह्मा है वह मनुष्य की ब्रह्महत्या को दूरकरती है । पांचमुख वाली रुद्राक्ष 'कालाग्नि' कही जाती है । वह अगम्य (जिस स्त्री के साथ मैथुन नहीं करना चाहिये) के साथ गमन और अभक्ष्य भक्षण के पाप का नाश करती है ।

षड्वक्त्रस्तु गुहो ज्ञेयो भ्रूणहत्यादि नाशयेत् । सप्तवक्त्रस्त्वनन्तः स्यात्स्वर्णस्तेयादिपापहृत् ॥

छमुख वाले रुद्राक्ष की 'गुह' संज्ञा है । वह भ्रूणहत्या आदिका नाश करती है । सातमुख वाले को 'अनन्तसंज्ञा' है वह सुवर्ण चोरी आदि पाप को हरती है ।

विनायकोऽष्टवक्त्रः स्यात्सर्वानृतविनाशकृत् । भैरवो नववक्त्रस्तु शिवसायुज्यकारकः ॥

आठ मुखवाले रुद्राक्षकी 'विनायकसंज्ञा' है। वह सब मिथ्याभाषणरूपी पापों को नाश करती है तथा नौ मुखवाले की 'भैरव' संज्ञा है। वह शिवसायुज्यता को करने वाली होती है।

दशवक्त्रः स्मृतो विष्णुर्भूतप्रेतभयापहः । एकादशमुखो रुद्रो नानायज्ञफलप्रदः ॥

दशमुख के रुद्राक्ष की 'विष्णु' संज्ञा है। वह भूत-प्रेत के भय को हटाती है और एकादशमुख वाले रुद्राक्ष को 'रुद्र' कहते हैं। वह अनेक प्रकार के यज्ञों का फल देने वाली होती है।

द्वादशास्यस्तथादित्यः सर्वरोगनिबर्हणः । त्रयोदशमुखः कामः सर्वकामफलप्रदः ॥ चतुर्दशास्यः श्रीकण्ठो वंशोद्धारकरः परः ॥ इति ।

बारह मुखवाली रुद्राक्ष 'आदित्य' (सूर्य) नाम की होती है। वह सब प्रकार के रोगों को हटानेवाली होती है। तेरह मुखवाली रुद्राक्ष की 'काम' संज्ञा है। वह सब इच्छाओं के फलों की देनेवाली होती है। चौदह मुखवाली रुद्राक्ष का 'श्रीकण्ठ' नाम है। वह वंश के उद्धार को करनेवाली होती है।

(रुद्राक्षादिधारणे तत्प्रतिष्ठायां च विचारः)

तथा—विना मन्त्रेण यो धत्ते रुद्राक्षं भुवि मानवः । स याति नरकान् घोरान् यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥

जो मनुष्य पृथ्वीपर बिना मन्त्र के रुद्राक्ष को धारण करते हैं वे जब तक चौदह इन्द्र हैं। तब तक घोरनरक में जाते हैं।

पञ्चामृतं पञ्चगव्यं स्नानकाले प्रयोजयेत् । रुद्राक्षस्य प्रतिष्ठायां मन्त्रं पञ्चाक्षरं तथा ॥ त्र्यम्बकादिकमन्त्रं च तथा तत्र प्रयोजयेत् ॥

स्नान के समय में पञ्चामृत और पंचगव्यका प्रयोग करे। रुद्राक्ष की प्रतिष्ठा में पञ्चाक्षर (नमः शिवाय) मन्त्र और त्र्यंबक[1] आदि मन्त्र को वहाँ पर प्रयोग करे।

यद्वा—'ॐअघोर ॐह्रैं अघोरतर ॐह्रौं ह्रां नमस्ते रुद्ररूपाय ह्रैं स्वाहा' अनेनाऽभिमन्त्र्य धारयेत् ।

अथवा—ॐ अघोर ॐ ह्रैं अघोरतर ॐ ह्रौं ह्रां नमस्ते रुद्ररूपाय ह्रैं स्वाहा—इससे अभिमन्त्रण कर धारण करे।

(कामनाभेदेन रुद्राक्षधारणादौ विचारः)

तथा-अष्टोत्तरशतं कार्या चतुष्पञ्चाशदेव वा । सप्तविंशतिमाना वा ततो हीनाधमा स्मृता ॥

और एकसौ आठ, चौवन या सताइस दाने की माला बनावे। उससे कम दाने की माला हीन और अधम कही गयी है।

प्रजापतिः—मोक्षार्थी पञ्चविंशत्या धनार्थी त्रिंशता जपेत् ।
पुष्ट्यर्थी पञ्चविंशत्या पञ्चदश्याभिचारके ।

प्रजापति ने कहा है कि—मोक्ष को चाहने के लिए पचीस दानेकी, धन की इच्छा के लिए तीस दाने की, पुष्टि की इच्छावाले पचीस दाने की तथा अभिचार (मारण) कार्य के लिए पन्द्रह दानेकी माला बनावे।

सप्तविंशतिरुद्राक्षमालया देहसंस्थया । यत्करोति नरः पुण्यं सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥

सताईस दाने की रुद्राक्ष की माला शरीर में धारण कर जो मनुष्य जो कर्म करता है उसको करोड़ों गुणा पुण्य होता है।

यो ददाति द्विजेभ्यश्च रुद्राक्षं भुवि सम्मुखम् । तस्य प्रीतो भवेद्रुद्रः स्वपदं च प्रयच्छति ॥ इति ।

जो इस पृथ्वी पर ब्राह्मणों के लिए परमेश्वर के सन्मुख रुद्राक्ष को देता है उससे रुद्र प्रसन्न होते हैं और अपने पदको देते हैं।

(शरीरे संख्याभेदेन रुद्राक्षधारणकथनम्)

पदार्थादर्शे बोपदेवः—रुद्राक्षान् कण्ठदेशे दशनपरिमितान्मस्तके विंशती द्वे षट् षट् कर्णप्रदेशे

१—त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥ (ऋ० ७।५९।१२)।

करयुगलकृते द्वादश द्वादशैव। बाह्वोरिन्दोः कलाभिर्नयनयुगकृते एकमेकं शिखायां वक्षस्यष्टाधिकं यः कलयति शतकं स स्वयं नीलकण्ठः ॥

पदार्थादर्श में बोपदेव ने कहा है कि—कण्ठदेश में बत्तीस, मस्तकदेश में-चालीस, बायें कान में छ और दाहिने कान में छ, दोनों हाथों में क्रमसे बारह-बारह, दोनों बाहुओं में सोलह-सोलह, दोनों आंखों में क्रमसे चार-चार, शिखा में एक और छाती पर एकसौ आठ रुद्राक्षों को धारण करता है। वह स्वयं नीलकण्ठ का रूप होता है।

(महास्नाने पञ्चामृतस्य परिमाणकथनम्)

हेमाद्रौ शिवधर्मे–स्नानं पलशतं ज्ञेयं अभ्यङ्गं पञ्चविंशतिः। पलानां द्वे सहस्रे तु महास्नानं प्रकीर्तितम् ॥

हेमाद्रि में शिवधर्म का वचन है कि—स्नान-सौपल से, अभ्यंग-पचीसपल से तथा महास्नान दोहजारपल से कहा है।

पञ्चविंशत्पलं लिङ्गे त्वभ्यङ्गं कारयेदथ। शिवस्य सर्पिषा स्नानं प्रोक्तं पलशतेन च ॥
तावता मधुना चैव दध्ना चैव ततः पुनः। तावतैव च क्षीरेण गव्येनैव भवेत्ततः ॥
भूयः सार्द्धसहस्रेण पलानामैक्षवेण च। रसेन कारयेत्स्नानं भक्त्या चोष्णाम्बुना ततः ॥

लिंग में पचीसपल से अभ्यंग करे। शिवको सौ पल घी से स्नान कहा है। उतने ही सौपल से मधु, दधि और दूध से स्नान करावे। डेढ़ हजार पल द्वारा भक्ति से ईख के रस से स्नान करावे। फिर गरम जल से स्नान करा दे।

विष्ण्वादौ तु स्कान्दे–क्षीराद्दशगुणं दध्ना घृतेनैव दशोत्तरम्। घृताद्दशगुणं क्षौद्राचैक्षवजं तथा ॥

विष्णु आदि में तो स्कन्दपुराण में कहा है कि—दूध से दश गुणा दधि, दधि से सौगुणा घृत, घृत से दशगुणा मधु और मधु से दशगुणा ईख का रस होना चाहिये।

ब्राह्मे–देवानां प्रतिमा यत्र घृताभ्यङ्गक्षमा भवेत्। पलानि तत्र देयानि श्रद्धया पञ्चविंशतिः ॥ इदं क्रोडीकृताभिप्रायेण।

ब्रह्मपुराण में कहा है कि—जहाँपर देवताओं की प्रतिमा हो वहाँ पर श्रद्धा से पचीसपल घृत से अभ्यंग करे—यह क्रोडीकृत (यह भिन्न-भिन्न स्थानों में स्थित प्रमाणों को एकत्रित करने के अभिप्राय से यहाँ कहा गया है।) के अभिप्राय से है।

(विष्वक्सेनादीनां नैवेद्यविभागकथनम्)

तत्रैव सग्रहे—विष्वक्सेनाय दातव्यं नैवेद्यस्य शतांशकम्।
पादोदकं प्रसादं च लिङ्गे चण्डेश्वराय तु ॥

वहीं पर संग्रह में कहा है कि विष्वक्सेन के लिये नैवेद्य का सौवा भाग देना चाहिये। पादोदक और प्रसाद को लिंग में चण्डेश्वर को दे।

(पञ्चायतनस्थापनप्रकारः)

पञ्चायतनसन्निवेशमाह बोपदेवः। पदार्थादर्शश्च—शम्भौ मध्यगते हरीनहरभूदेव्यो हरौ शङ्करेभास्येनागसुता रवौ हरगणेशाजाम्बिकाः स्थापिताः। देव्या विष्णुहरैकदन्तरवयो लम्बोदरैजेश्वरेनाम्बाः शङ्करभागतोऽतिसुखदा व्यस्तास्तु हानिप्रदाः ॥ शङ्करभागतः ईशानकोणादारभ्य प्रदक्षिणमित्यर्थः।

पञ्चायतनसन्निवेश को बोपदव और पदार्थादर्शने कहा है कि—(१) जहाँ पर मध्य में शंभु (शिव) हों वहाँ पर हरि (विष्णु) इन (सूर्य) हरभू (गणेश), देवी (दुर्गा) स्थापित होने चाहियें। (२) जहाँ विष्णु मध्य में होंगे वहाँ पर शिव, गणेश, सूर्य और दुर्गा इस क्रम से रखे। (३) जहाँ सूर्य मध्य में होंगें वहाँ पर शंकर, गणेश दुर्गा तथा विष्णु यह क्रम होगा। (४) जहाँ दुर्गा बीच में होंगी वहाँ पर-विष्णु, शिव, गणेश और सूर्य होंगे। ये सब ईशानकोण से प्रारम्भ कर प्रदक्षिण क्रमसे होंगे। यदि विपरीत क्रम से होंगे तो हानि को देने वाले होंगे।

अत्र दिक्स्वरूपमुक्तं प्रयोगपारिजाते मन्त्रशास्त्रे—देवस्य मुखमारभ्य दिशं प्राचीं प्रकल्पयेत् ।
तदादि परिवाराणामङ्गाद्यावरणस्थितिः ॥

यहाँ पर (पञ्चायतन सन्निवेश में) दिशा का स्वरूप प्रयोगपारिजात में मन्त्रशास्त्र से कहा है कि—देवता के मुख से प्रारम्भ कर प्राची[1] (पूर्व) दिशा की कल्पना करे। फिर उसके आदि में परिवार, अङ्ग आदि आवरणों की स्थिति करे।

अत्र क्रमः पाद्मे—रविर्विनायकश्चण्डी ईशो विष्णुस्तु पञ्चमः ।
अनुक्रमेण पूज्यन्ते व्युत्क्रमे तु महद्भयम् ॥

उसमें क्रम पद्मपुराण में कहा है कि—सूर्य, गणेश, चण्डी, ईश (शंकर) और पांचवे—विष्णु इस क्रमसे पूजन करे। विपरीत क्रम से पूजन से बड़ा भय होता है।

तथा—पूज्यपूजकयोर्मध्ये प्राची प्रोक्ता विचक्षणैः ।

और पूज्य और पूजन के मध्य में पूर्वदिशा विद्वानों ने कही है।

(केशवादिमर्तिकथनम्)

अथ केशवादिमूर्तयः । बोपदेवः—केविगोवादापुहृयप्रजाव्युत्क्रममात्रिना ।
वाऽधो नृहशौनश्रीपा शाचगे वि गपे चपे ॥

अब केशव आदि मूर्तियों को बोपदेव ने कहा है कि—के (केशव) वि (विष्णु), गो (गोविन्द) वा (वावन वादरायणि), दा (दामोदर), पु (पुरुषोत्तम), हृ (हृषीकेश), य (प्रद्युम्न यज्ञपुरुष) प्र (प्रजापति), ज (जगन्नाथ), वि (व्यास) कृ (कृष्ण), म (मधुसूदन) मा (माधव) त्रि (त्रिविक्रम) ना (नारायण), वा (वासुदेव), धा (धाता), नृ (नृसिंह), ह (हरि), शा (शालिग्राम), नि (नरपति), श्री (श्रीश), और पा (पद्मनाभ), ये चौबीस मूर्तियाँ होती हैं।

अत्र केविगवित्याद्यैः केशवविष्णवादिचतुर्विंशतिमूर्तयोऽभिधीयन्ते । शात् शङ्खात् चगे चक्रगदे ज्ञेये इत्यर्थः । शिष्टे भुजे पद्मं त्वर्थतः सिद्धम् । अत्र दक्षिणोर्ध्वकरक्रमेण ज्ञेयम्, 'दक्षिणोर्ध्वकरक्रमात्' इति हेमाद्रौ वचनात् तेन हेमाद्रिणा संवादः । विशब्देन विपरीतं गचे इत्यर्थः । अत्रापि शादित्यनुवृत्तिः । शङ्खाद्गदाचक्रे इत्यर्थः । गपे इत्यत्रापि शादनुवर्तते । शङ्खात् गदापद्मे इत्यर्थः । विपरीते पद्मगदे इत्यत्रापि शङ्खाज्ज्ञेये । चपे चक्रपद्मे । शङ्खाच्चक्रे इत्यर्थः । वि इति अत्रापि, पद्मचक्रे इत्यर्थः । तेन चगे इत्यष्टौ मूर्तयः । गपे इत्यष्टौ मूर्तयः । च पे इत्यत्र च अत्र मूलं हेमाद्रौ ज्ञेयम् ।

यहाँ पर के, वि, ग, इत्यादिसे केशव आदि विष्णुकी चौविस मूर्तियोंको कहते हैं। शात् से अर्थात्—शंख से चगे से चक्र और गदा जानना चाहिये-यह अर्थ है। शिष्टभुजा में पद्मतो अर्थ से सिद्ध है। यहाँ पर दक्षिणोर्ध्व हाथ के क्रम से जानना चाहिये। 'दक्षिणोर्ध्वकरक्रमात्' इस हेमाद्रिवचन से उससे हेमाद्रि में साथ सम्मलित है। वि-शब्द से विपरीत गचे यह अर्थ है। यहाँ पर भी शात्-इसकी अनुवृत्ति (मिलाना) है। शंख, पद्म, गदा और चक्र, यह अर्थ है। गवे-यहाँ वहाँ पर भी शात् अनुवृत्ति है-शंख, चक्र, गदा, और पद्म यह अर्थ है। विपरीत में-पद्म और गदा-यहाँ पर भी शंख जानना चाहिये। चपे माने चक्र और पद्म, शंख, चक्र तथा पद्म यों अर्थ है। वि-से यहाँ पर भी पद्म और चक्र यह अर्थ है। चगे इससे आठमूर्ति हैं। गपे इससे आठमूर्तियाँ है। और चपे-इसमें भी हैं। इसका मूल हेमाद्रि में जानना चाहिये।

(बौधायनसूत्रोक्तलिङ्गप्रतिष्ठाकथनम्)

अथ बौधायनसूत्रम् । त्रैविक्रमीं चानुसृत्य लिङ्गार्चाप्रतिष्ठोच्यते । यजमानः पूर्वोक्तकाले पूर्वेद्युः

१—यत्रैव भानुस्तु वियत्युदेति प्राचीति तां वेदविदो वदन्ति । इत्युक्ता प्राची न ग्राह्येत्यभिप्रायः । अत्र इयं प्राची तान्त्रिकपूजायामेव न वैदिकपूजायाम्, तस्यां तु प्रसिद्धैव आवरणाद्यभावात् ।

दशद्वादशषोडशान्यतरहस्तं मण्डपं कृत्वाऽग्नेये हस्तमात्रं चतुरस्रं कुण्डं स्थण्डिलं वा पूर्वतो हस्तमात्रां वेदीं नैर्ऋते वास्तुमण्डलं मध्ये वेदीं तदुपरि सर्वतोभद्रं च कृत्वा प्राणानायम्यास्यां मूर्तौ लिंगे वा देवस्य सान्निध्यसिद्ध्यर्थं दीर्घायुर्लक्ष्मीसर्वकामसमृद्ध्यक्षय्यसुखकामोऽमुकमूर्तिप्रतिष्ठां करिष्ये-इति सङ्कल्प्य गणेशपूजनपुण्याहवाचनमातृजापूजननान्दीश्राद्धानि कृत्वाचार्यं चतुरः ऋत्विजश्च

(मण्डप का स्वरूप)

वृत्वा वस्त्राद्यैः पूजयेत्। अथाचार्यो 'यदत्र संस्थितम्' इति सर्षपान् विकीर्यापो हि ष्ठेति कुशोदकेन भूमिं प्रोक्ष्य देवा आयान्तु यातुधाना अपयान्तु, विष्णो देवयजनं रक्षस्वेति भूमौ प्रादेशं कृत्वाऽस्मत्कृततुलापद्धतिमार्गेण मण्डपप्रतिष्ठां कृत्वा अकृत्वा वा पूर्वरात्रौ हिरण्योपधानं देवं पञ्चगव्यहिरण्यदूर्वाश्वत्थपलाशपर्णान्युदकुंभे प्रक्षिप्य ताभिरद्भि रापो हि ष्ठेति तिसृभिर्हिरण्यवर्णेति चतसृभिः पवमानः सुवर्जन इत्यनुवाकेनाभिषिच्य व्याहृतिभिश्च इदं विष्णुरिति पुष्पफलयवदूर्वाः समर्प्य नमस्ते रुद्र मन्यव इति रुद्रे ततो रक्षोहणमिति हस्ते कंकणं बद्ध्वा वाससाच्छाद्य अवते हेड, उदुत्तममिति च जलेऽधिवासयेत्। इदं बौधायनोक्तम्।

इसके बाद बौधायनसूत्र और त्रैविक्रमी के अनुसार लिङ्ग की पूजा-प्रतिष्ठा कहते हैं। यजमान, पूर्व में कहे हुए समय में पहले दिन दश, बारह या सोलह हाथ का मण्डप करके अग्निकोण में एक हाथ का चतुरस्र कुण्ड या स्थण्डिल बनाकर पूर्वदिशा से एक हाथ की वेदी नैर्ऋत्यकोण में वास्तुमण्डल, मध्य में

वैदी बनावे। उसके ऊपर सर्वतोभद्र कर प्राणायाम कर इस मूर्ति में या लिंग में देवताके सान्निध्यतासिद्धि के लिये 'दीर्घायुर्लर्दर्मा' इत्यादि प्रकार से संकल्प कर गणेशपूजन, पुण्याहवाचन, मातृकापूजन, नादीश्राद्ध आदि कर आचार्य और चार ऋत्विजों का वरण कर वस्त्र आदि से पूजन करे। अनन्तर आचार्य [1]'यदत्र संस्थितम्'-इत्यादि श्लोकों से सरसों का प्रक्षेपकर 'आपो [2]हि ष्ठा-इन मन्त्रोंसे कुशोदकसे भूमिका प्रोक्षणकर 'देवा आयान्तु, यातुधाना अपयान्तु, इस वाक्यसे-कहे कि देवता आ जांय तथा यातुधान (राक्षस) आदि हट

(देवताओं की नगरप्रदक्षिणा का रूप)

(कूर्म का स्वरूप)

(शिखर का रूप)

१—यदत्र संस्थितं भूतं स्थानमाश्रित्य सर्वदा। स्थानं त्यक्त्वा तु तत्सर्वं यत्रस्थं तत्र गच्छतु॥ अपक्रामन्तु भूतानि पिशाचाः सर्वतो दिशम्। सर्वेषामविरोधेन प्रतिष्ठाकर्म समारभे॥

२—आपो हि ष्ठा मयोभुवस्तान ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे॥ यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः॥ तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः॥ (ऋ० १०।९।१-३)।

जांय। हे विष्णो, देवयजन की रक्षा करो। इसप्रकार भूमिमें प्रादेशमात्र नापकर मेरे द्वारा कहे हुए तुलादानं पद्धतिमार्ग से मण्डप प्रतिष्ठा को कर या न कर पूर्वरात्रि में सुवर्ण को रखकर देवताको पञ्चगव्य, सुवर्ण, यव, दूर्वा, पीपल और पलाश के पत्तों को जलके कलशमें प्रक्षेप कराकर उस जलसे 'आपो हि ष्ठा' इन तीन मन्त्रों से तथा [1]हिरण्यवर्णा इस चार मन्त्रों से, 'पवमानः [2]सुवर्जनः' इस अनुवाक से अभिषेचन कर व्याहृतियों से तथा [3]इदं विष्णुः, इससे फल, यव और दूर्वा को समर्पणकर 'नमस्ते रुद्र [4]मन्यव' इससे रुद्र में तदनन्तर-[5]रक्षोहणम्-इस मन्त्रसे हाथमें कङ्कण बांधकर वस्त्रसे आच्छादन कर [6]अवते हेड और [7]उदुत्तमम् इन मन्त्रों से जल में अधिवासन करे यह बौधायनोक्त प्रकार है।

ततश्चललिङ्गे अर्चायां वा अत्राग्निं प्रतिष्ठाप्य गोक्षीरे नीवारचरुं कृत्वा विष्णुश्चेत् कृसरमपि श्रपयित्वा ऽऽज्यभागान्ते पलाशोदुम्बराश्वत्थशम्यपामार्गसमिद्भिराज्येन चरुणा तिलैर्वा प्रत्येकमष्टाविंशतिमष्टौ वाऽऽहुतीर्लोकपालमूर्तिपतिभ्यो हुत्वा स्थाप्य देवमन्त्रेण पूर्वोक्तसमित्तिलनैवारचर्वाज्यैरष्टसहस्रमष्टशतमष्टविंशतिं वा हुत्वा 'अग्निर्यजुर्भिः' इत्यनुवाकेन दशाहुतीर्जुहुयात्। प्रतिद्रव्यं होमान्ते देवं पादनाभिशिरः स्पृशेत्। आज्यहोमे चोत्तरतः सजलकुम्भे संपातान् नयेत्। तेषां मन्त्राः। इन्द्रायेन्द्रो इतीद्रस्य, स्योनेति पृथिवीमूर्तेः, अघोरेभ्यः इति तत्पतेः, शर्वस्य अग्न आयाहीत्यग्नेः,

---

१—हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका यासु जातः कश्यपो यास्विन्द्रः। अग्निं या गर्भं दधिरे विरूपास्ता न आपः शँ स्योना भवन्तु १ या साँ राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम्। मधुश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता न आपः शँ स्योना भवन्तु २ या सां देवा दिवि कृण्वन्ति भक्षं या अन्तरिक्षे बहुधा भवन्ति। याः पृथिवीं पयसोन्दन्ति शुक्रास्ता न आपः शँ स्योना भवन्तु ३ शिवेन मा चक्षुषा पश्यताऽऽपः शिवया तनुवोप स्पृशत त्वचं मे। सर्वाँ अग्नीँ रप्सुषदो हुवे वो मयि वर्चो बलमोजो निधत्त ४ (तैत्त० सं० ५।६।१।१)।

२—पवमानः सुवर्जनः पवित्रेण विचर्षणिः। यः पोता स पुनातु मा॥ पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनवो धिया। पुनन्तु विश्व आयवः जातवेदः पवित्रवत्। पवित्रेण पुनाहि मा शुक्रेण देव दीद्यत्। अग्ने क्रत्वा क्रतूँ रनु॥ यत्ते पवित्रमर्चिषि अग्ने विततमन्तरा। ब्रह्म तेन पुनीमहे॥ उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च। इदं ब्रह्म पुनीमहे॥ वैश्वदेवी पुनती देव्यागात् यस्यै बह्वीस्तनुवो वीतपृष्ठाः। तया मदन्तः सध माद्येषु वयँ स्याम पतयो रयीणाम्॥ वैश्वानरो रश्मिभिर्मा पुनातु वातः प्राणेनेषिरो मयोभूः। द्यावापृथिवी पयसा पयोभिः। ऋतावरी यज्ञिये मा पुनीताम्॥ बृहद्भिः सवितस्तृभिः वर्षिष्ठैर्देवमन्मभिः। अग्ने दक्षैः पुनाहि मा॥ येन देवा अपुनत येनाऽऽपो दिव्यंकशः। दिव्येन ब्रह्मणा इदं ब्रह्म पुनीमहे। यः पावमानीरध्येति ऋषिभिः संभृतँ रसम्। सर्वँ स पूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना ऋषिभिः संभृतँ सम्। तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरँ सर्पिर्मधूदकम्॥ पावमानीः स्वस्त्ययनीः सुदुघा हि पयस्वतीः ऋषिभिः संभृतो रसः। ब्राह्मणेष्वमृतँ हितम्॥ पावमानीर्दिशन्तु नः इमं लोकमथो अमुम्। कामान्समर्धयन्तु नः देवीर्देवैः समाभृताः॥ पावमानीः स्वस्त्ययनीः सुदुघा हि घृतश्चुतः। ऋषिभिः संभृतो रसः ब्राह्मणेष्वमृतँ हितम्॥ येन देवाः पवित्रेण आत्मानं पुनते सदा। तेन सहस्रधारेण पावमान्यः पुनन्तु मा॥ प्राजापत्यं पवित्रं शतोद्यामँ हिरण्मयम्। तेन ब्रह्मविदो वयं पूतं ब्रह्म पुनीमहे॥ इन्द्रः सुनीती सह मा पुनातु सोमः स्वस्त्या वरुणः समीच्या। यमो राजा प्रमृणाभिः पुनातु मा। जातवेदा मोर्जयन्त्या पुनातु॥ (तैत्तरीयब्राह्मण १।४।८।१)। (भारद्वाजश्रौतसूत्र—१०।५।४)। पवमानस्स्वर्जनः पवित्रेण विचर्षणिः। यः पोता स पुनातु मा॥ (इत्यादि मन्त्र–काठकसंहिता अ० ३८।२०—१६३)।

३—इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढ मस्य पांसुरे॥ (ऋ० १।२२।१७)।

४—नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः। नमस्ते अस्तु धन्वने बाहुभ्यामुत ते नमः॥ (तै० स० ४।५।१।१)।

५—ॐ रक्षोहणं वाजिनमा जिघर्मि मित्रं प्रथिष्ठमुप यामि शर्म। शिशानो अग्निः क्रतुभिः समिद्धः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम्॥ (ऋ० १०।८७।१)।

६—ॐ अव ते हेळो वरुण नमोभिरव यज्ञेभिरीमहे हविर्भिः। क्षयन्नस्मभ्यमसुर प्रचेता राजन्नेनांसि शिश्रथः कृतानि॥ (ऋ० १।२४।१४)।

७—ॐ उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय। अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम॥ (ऋ० १।२४।१५)।

अग्निं दूतं पुरोदधे त्यग्निमूर्तेः, नमः शर्वाय च पशुपतये चेति पशुपतेः, यमाय सोममिति यमस्य, असि हि वीरिति यजमानमूर्तेः, स्तुहि श्रुतं तत्पते उग्रस्य, असुन्वन्तम् नैर्ऋतेः, आ कृष्णेन सूर्यमूर्तेः, यो रुद्रो अग्नौ इति तत्पते रुद्रस्य, इमं मे वरुणस्य, शन्नो देवी जलमूर्तेः, नमो भवायेति भवस्य, आ नो नियुद्भिरिति वायोः, वात आ वातु वायुमूर्तेः। तमीशानं तत्पतेरीशानस्य, आप्यायस्वेति कुबेरस्य, वयं सोम इति सोममूर्तेः तत्पुरुषाय महादेवस्य, अभित्वा ईशानस्य, आदित्प्रत्नस्येत्याकाशस्य, नम उग्राय चेति तत्पतेर्भीमस्य, ततो देवस्य पादौ स्पृशेत्। एवं द्वितीये हुत्वा नाभिं, तृतीये मध्यं, चतुर्थे, उरः, पञ्चमे शिरः स्पृष्ट्वा प्रतिपर्यायं संपातजलेन देवमभिषिञ्चेत्। ततः स्विष्टकृतादिहोमशेषं समाप्यार्चां शोधयेत्। स्थिरलिङ्गार्चादौ तु नेदानीमग्निस्थापनहोमादि कार्यम्।

तदनन्तर चल लिंगमें या अर्चामें अग्निकी प्रतिष्ठाकर गौके दूधमें नीवार (साठीका चावल) चरु करे। विष्णु हो तो कृसर (खिचड़ी) भी श्रपण कर आज्यभाग के अन्त में पलाश, उदुम्बर, पीपल, शमी और अपामार्गकी समिधाओंसे घृत से चरु या तिल से प्रत्येक को अठाइस या आठ आहुती दे लोकपाल मूर्तियों के लिए हवन कर स्थापित देवमन्त्र से पूर्वोक्त समिधा, तिल, नीवार, चरु और घी से एकहजार आठ, एक सौ आठ, या अठाइस हवन कर [1]'अग्निर्यजुभिः' इस अनुवाक से दश आहुति दे। प्रतिद्रव्य होमके अन्त में देव का पैर, नाभि तथा शिरका स्पर्श करे। आज्यहोम के उत्तरतरफ जलवाले कुंभ में संपात गिरावे। उनके मन्त्र यों है—[2]इन्द्रायेन्दो इतीन्द्रस्य, स्योनेति [3]पृथिवी, [4]अघोरेभ्यः, अग्न [5]आयाहि, अग्निं [6]दूतम्, [7]नमः शर्वाय, च पशुपतये च, [8]यमाय सोमम्, [9]असि हि वीः, स्तुहि[10] श्रुतं सत्पतेः, [11]असुन्वतम्से निर्ऋतिको।

१—अग्निर्यजुर्भिस्सविता स्तोमैरिन्द्र उक्थामदैर्बृहस्पतिश्छन्दोभिर्विष्णुर्दीक्षातपोभ्यामदितिस्सदोहविधानामादित्या आज्यैर्मित्रावरुणौ धिष्ण्यैर्मरुतोऽपश्च बर्हिश्च त्वष्टा समिधाश्विना आशिश पूषा स्वगाकारैः पृथिव्यग्नेर्वातस्य सेनेन्द्रस्य धेना बृहस्पतेः पथ्या पूष्णो गायत्री वसूनां त्रिष्टुब्रुद्रानां जगत्यादित्यानामनुष्टुप्मित्रस्य विराड्वरुणस्य पङ्क्तिर्विष्णोर्दीक्षा सोमस्य ॥ (काठकसंहिता–६। ३८)।

अग्निर्यजुर्भिः। सवितास्तोमैः। इन्द्र उक्थामदैः। मित्रावरुणावाशिषा। अङ्गिरसो धिष्णियैरश्मिभिः मरुतः सदोहविर्धानाभ्याम्। आपः प्रोक्षणीभिः। ओषधयो बर्हिषा। अदितिर्वेद्या। सोमो दीक्षया। त्वेष्टेध्मेन। विष्णुर्यज्ञेन। षसव आज्येन। आदित्या दक्षिणाभिः। विश्वे देवा ऊर्जा। पूषा स्वगाकारेण। बृहस्पतिः पुरोधया। प्रजापतिरुद्गीथेन। अन्तरिक्षं पवित्रेण। वायुः पात्रैः। अहँ श्रद्धया। दीक्षया पात्रैरेकं च ॥ (तैत्तरीयारण्यक—३। ८। १)।

२—ॐ इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः। ऋतस्य योनिमासदम् ॥ (ऋ० ९।६४।२२)।

३—ॐ स्योना पृथिवि भवानृक्षरा निवेशनी ॥ यच्छा नः शर्म सप्रथः ॥ (ऋ० १।२२।१५)।

४—ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः। सर्वेभ्यः सर्वसर्वेभ्यो नमस्ते रुद्ररूपेभ्यः स्वाहा।

५—ॐ अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये। नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ (ऋ० ६।१६।१०)।

६—ॐ अग्निं दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुप ब्रुवे। देवाँ आ सादयादिह ॥ (ऋ० ८।४४।३)।

७—नमो भवाय च रुद्राय च नमः शर्वाय च पशुपते च नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च नमः कपर्दिने च व्युप्तकेशाय च नमः सहस्राक्षाय च शतधन्वने च नमो गिरिशाय च शिपिविष्टाय च नमो मीढुष्टमाय चेषुमते च नमो ह्रस्वाय च वामनाय च नमो बृहते च वर्षीयसे च नमो वृद्धाय च संवृध्वने च नमो अग्रियाय च प्रथमाय च नम आशवे चाजिराय च नमः शीघ्रियाय च शीभ्याय च नम ऊर्म्याय चावस्वन्याय च नमः स्रोतस्याय च दीप्याय च ॥ (तैत्त० सं० ४,५,५,१)।

८—ॐ यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः। यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः ॥ (ऋ० १०।१४।१३)।

९—ॐ असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि परादादिः। असि दभ्रस्य चिद् वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु ॥ (ऋ० १।८१।२)।

१०—स्तुहि श्रुतं गर्तसदं युवानं मृगं न भीममुपहत्नुमुग्रम्। मृडा जरित्रे रुद्र स्तवानो अन्यं ते अस्मिन्नि वपन्तु सेनाः ॥ (तैत्त० स० का० ४ प्र० ५,१०,८)।

११—ॐ असुन्वन्तं समं जहि दूणाशं यो न ते मयः। अस्मभ्यमस्य वेदनं दद्धि सूरिश्चिदोहते ॥ (ऋ १।१७६।४)।

आ [1]कृष्णेन, यो [2]रुद्रो अग्नौ, इमं मे [3]वरुणस्य, [4]शन्नो देवीः, नमो [5]भवाय, आ नो [6]नियुद्भिः, वात [7]आवातु, [8]तमीशानम्, [9]आप्यायस्व, [10]वयं सोम, [11]तत्पुरुषाय, [12]अभित्वा, [13]आदित्प्रत्नस्य तथा नम [14]उग्राय, इनसे सूर्यादि देवताओं के लिए तदनन्तर देवता के पैरों का स्पर्श करे। इसप्रकार दूसरीवार हवनकर नाभी का, तीसरी वार मध्य का, चतुर्थवार उर का, पांचवीवार शिर का स्पर्शकर प्रतिपर्याय संपातजल से देव का अभिषक करे। फिर स्विष्टकृद् आदि होमशेष को समाप्त कर अर्चा का शोधन करे, स्थिरलिंगार्चादि में तो इससमय अग्निस्थापन, होम आदि न करे।

ततो देवं नत्वा ॐस्वागतं देवदेवेश विश्वरूप नमोऽस्तु ते। शुद्धेऽपि त्वदधिष्ठाने शुद्धिं कुर्मः सहस्व ताम्॥ इति संप्रार्थ्य 'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते' इति सऋत्विगुत्थाप्य पूर्वमकृतेग्न्युत्तारणे अधुना वा कार्यम्। 'अग्निः सप्तिम्' इति सूक्तमग्निपदहीनं पठित्वा तत्सहितं पुनः पठेत्। एवमष्टसहस्रमष्टशतमष्टाविंशति वा पठन् जलं पातयेत्। ततोऽर्चां द्वादशवारं मृदा जलेन च प्रक्षाल्य मन्त्रवत् पञ्चगव्यं कृत्वा 'पयः पृथिव्याम्, आवो राजानम्, इति च संस्नाप्य आ प्यायस्व, दधिक्राव्णः, तेजोऽसि, मधुवाता, आयं गौः' इति पञ्चामृतैः संस्नाप्य लिङ्गं चेत् 'नमस्ते रुद्र मन्यवे' इत्यष्टाभिः संस्थाप्य घृतेनाभ्यज्योद्वर्तनेनोद्वर्त्योष्णोदकेन प्रक्षाल्य गन्धं दत्त्वा संपातोदकेनाभिषिच्य सपल्लवैश्चतुर्भिः कुम्भैः आपो हि ष्ठेति त्रिभिः 'आ कलशेषु' इति प्रत्येकं 'समुद्रज्येष्ठा' इति चतुर्भिः 'आ कलशेषु' इति च मिलितैः संस्नाप्यौदुम्बरादिपाठेऽर्चामुपवेश्य परितोऽष्टदिक्षु सजलकुम्भान् संस्थाप्य तेषु गन्धपुष्पदूर्वाः क्षिप्त्वा आद्ये सप्तमृदः, द्वितीये–पुष्करपर्णशमीविकङ्कताश्मन्तकत्वचः पल्लवाश्च, तृतीयादिषु सप्तधान्यं पञ्चरत्न-

---

१—आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च। हिरण्ययेन सविता रथेनाऽऽदेवो याति भुवनानि पश्यन्॥ (ऋ० १।३५।२)।

२—यो रुद्रो अग्नौ यो अप्सु य ओषधीषु यो रुद्रो विश्वा भुवनाऽऽविवेश तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वाहुतिभागा वा अन्ये रुद्रा हविर्भागा। (तैत्त० का०५ प्र०५,६,६)।

३—इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय। त्वामवस्युरा चके॥ (ऋ० १।२५।१६)।

४—शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शं योरभि स्रवन्तु नः॥ (ऋ० १०।६।४)।

५—नमो भवाय च रुद्राय च नमः शर्वाय च पशुपतये च नमो नीलग्रीय च शितिकण्ठाय च नमः कपर्दिने च व्युप्तकेशाय च नमः सहस्राक्षाय च शतधन्वने च नमो गिरिशयाय च शिपिविष्टाय च नमो मीढुष्टमाय चेषुमते च नमो ह्रस्वाय च वामनाय नमो बृहते च वर्षीयसे च नमो वृद्धाय च संवृध्वने च नमो अग्रियाय च प्रथमाय च नमः आशवे चाजिराय च नमः शीघ्रियाय च शीभ्याय च नमः ऊर्म्याय चावस्वन्याय च नमः स्त्रोतस्याय च द्वीप्याय॥ (तैत्तरीय० का ४।५।५)।

६—ॐ आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरं सहस्रिणीभिरुप याहि यज्ञम्। वायो अस्मिन्, त्सवने मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ (ऋ० ७.६२।५)।

७—ॐ वात आ वातु भेषजं शंभु मयोभु नो हृदे। प्रण आयूंषि तारिषत॥ (ऋ० १०।१८६।१)।

८—ॐ तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियं जिन्वमवसे हूमहे वयम्। पूषा नो यथा वेदसाम सद् वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये॥ (ऋ० १।८९।५)।

९—ॐ आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम्। भवा वाजस्य संगथे॥ (ऋ० १।९१।१६)।

१०—ॐ वयं सोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः। प्रजावन्तः सचेमहि॥ (ऋ० १०।५७।६)।

११—तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्॥

१२—अभित्वा देव सवितरीशानं वार्याणाम्। सदावन्भागमी महे॥ (ऋ० १।२४।४)।

अभित्वा शूर नो नुमो ऽदुग्धा इव धेनवः। ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः॥ (ऋ० ७।३२।२२) यह मन्त्र बहुत प्रकार से हैं।

१३—आदित् प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिष्पश्यन्ति वासरम्। परो यदिध्यते दिवा॥ (ऋ० ८।६।३०)।

१४—नम उग्राय च भीमाय च नमो अग्रेवधाय च दूरेवधाय च नमो हन्त्रे च हनीयसे च नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यो नमस्ताराय॥ (तै० स० ४।५।८।४)।

फलपुष्पाणि कुशदूर्वागोरोचनसंपातोदकसर्वौषधीः क्षिप्त्वा क्रमेण आपो हि ष्ठेति तिसृभिः 'हिरण्य वर्णाः' इति चतुर्भिः पवमानानुवाकेन चाभिषिच्यैककुम्भे शमीपलाशवटखदिरबिल्वाश्वत्थविकङ्कतपनसाम्रशिरीषोदुम्बराणां पल्लवान् कषायांश्च क्षिप्त्वा अश्वत्थेवः, इत्यत्यभिषिञ्च्य पञ्चरत्नोदकेन हिरण्यवर्णाः, इति संस्थाप्य वाससी दत्त्वा उपवीतादि दीपान्तं कृत्वा 'हिरण्यगर्भः, य आत्मदा 'यः प्राणतः, यस्येमे, येन द्यौः, यं क्रंदसी, 'आपो ह यत्, यश्चिदापो, इत्यष्टौ पिष्टदीपान् दत्त्वा सुवर्णशलाकया तैजसपात्रस्थं मधु घृतं च गृहीत्वा चित्रं देवानाम्, तेजोऽसि, इति मन्त्राभ्यां "ॐ नमो भगवते तुभ्यं शिवाय हरये नमः। हिरण्यरेतसे विष्णो विश्वरूपाय ते नमः॥ इति च दक्षिणसव्ये देवनेत्रे मन्त्रावृत्त्या लिखेत्। 'अञ्जन्ति त्वा' इत्यञ्जनेन मधुना वाऽङ्क्त्वा 'देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे० इन्द्रस्येन्द्रियेणानज्मि, इति मध्वाज्यशर्कराभिरङ्क्त्वा तेनैवाञ्जनेन पुनरञ्जयेत्। अत्रानज्मीति शेषः। स्थिरलिङ्गे तु—स्वर्णसूच्या गन्धेन। 'ॐ नमो भगवते रुद्राय हिरण्यरेतसे पराय परमात्मने विश्वरूपायोमाप्रियाय नमः' इत्यञ्जनादिनाऽञ्जयेत्। ततः आदर्शभक्ष्यादि दर्शयेत्। ततः कर्ता आचार्याय गामृत्विग्भ्यश्च दक्षिणां दद्यात्। अथाचार्यः प्रत्यृचमादौ प्रणवं वदन् पुरुषसूक्तेन स्तुत्वा वंशपात्रे पञ्चवर्णोदनेन देवस्य नीराजनं कारयित्वा रुद्राय चतुष्पथादौ दद्यात्। मन्त्रस्तु—'ॐनमो रुद्राय सर्वभूताधिपतये दीप्तशूलधरायोमादयिताय विश्वाधिपतये रुद्राय वै नमो नमः शिवमगर्हितं कर्मास्तु स्वाहा, इति। अश्वत्थपर्णे भूतेभ्यो नम इति। केचिदेतद्रात्रौ स्थिरप्रतिष्ठायामिच्छन्ति।

तदनन्तर देवताको नमस्कारकर कहे—हे देवदेवेश, हे विश्वरूप, आपके लिए नमस्कार है। आपके सिंहासन के पवित्र होनेपर भी हम सब उसकी पवित्रताको करते हैं। अतः आप शुद्धि (एक प्रकारकी धृष्टता) को क्षमा करें। इसप्रकार प्रार्थनाकर उत्तिष्ठ [1]ब्रह्मणस्पते—इस मन्त्रसे ऋत्विक्के सहित उठकर पहले अग्न्युत्तारण न किया हो तो इससमय अग्न्युत्तारण करे। अग्निः [2]सप्तम्—इस सूक्तमें अग्निपदसे हीन पढ़कर फिर उसके सहित पढे। इसप्रकार एकहजार आठ, एकसौ आठ या अठाइस बार पढ़ता हुआ जल गिरावे। तदनन्तर अर्चाको बारहबार मट्टी और जल से प्रक्षालन कर मन्त्र की तरह पञ्चगव्य कर 'पयः [3]पृथिव्याम्' और आ वो [4]राजानम्, इन

१—उत्तिष्ठ ब्राह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे। उपप्रयन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा॥ (ऋ०१।४०।१)।

२—अग्निः सप्तिं वाजंभरं ददात्यग्निर्वीरं श्रुत्यं कर्मनिष्ठाम्। अग्नी रोदसी वि चरत्समञ्जन्नग्निर्नारीं वीर कुक्षिं पुरन्धिम्॥ १॥ अग्नेरप्नसः समिदस्तु भद्राऽग्निर्मही रोदसी आ विवेश। अग्निरेकं चोदयत्समत्स्वग्निर्वृत्राणि दयते पुरूणि॥ २॥ अग्निर्ह त्यं जरतः कर्णमावाऽग्निरद्भ्यो निरदहज्जरूथम्। अग्निरत्रिं घर्म उरुष्यदन्तरग्निर्नृमेधं प्रजयासृजत्सम्॥ ३॥ अग्निर्दाद् द्रविणं वीरपेशा अग्निरृषिं यः सहस्रा सनोति। अग्निर्दिवि हव्यमा ततानाग्नेर्धामानि विभृता पुरुत्रा॥ ४॥ अग्निमुक्थैरृषयो वि ह्वयन्तेऽग्निं नरो यामनि बाधितासः। अग्निं वयो अन्तरिक्षे पतन्तोऽग्निः सहस्रा परि याति गोनाम्॥ ५॥ अग्निं विश ईडते मानुषीर्या अग्निं मनुषो नहुषो वि जाताः। अग्निर्गान्धर्वीं पथ्यामृतस्याग्नेर्गव्यूतिर्घृत आ निषत्ता॥ ६॥ अग्नये ब्रह्म ऋभवस्ततक्षुरग्निं महामवोचामा सुवृक्तिम्। अग्ने प्राव जरितारं यविष्ठाऽग्ने महि द्रविणमा यजस्व॥ (ऋ० म० १० सू० ८० म० १–७)।

३—पयः पृथिव्यां पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो धाम्। पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम्॥ (तै० स० ४, ७।१२.६)।

४—आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रँ होता रँ सत्ययजं रोदस्योः। अग्निं पुरा तनयित्नो रचिताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम्॥ (काठक सं० ७।८६)। आ वो राजानमध्वरस्य रुद्र ँ होतार ँ सत्ययज ँ रोदस्योः। अग्निं पुरा तनयित्नो रचिताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम्॥ (तै० सं० १।३।१४।१)। आवो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः। अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्तादहिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम्॥ (ऋ० ४।३।१) साम–६९)।

मन्त्रोंसे स्नान कराकर [१]'आप्यायस्व' [२]दधिक्राव्णः, [३]तेजोऽसि, [४]मधुव्वाता, [५]आयगौः, इन मन्त्रों द्वारा पञ्चामृत से स्नान कराकर लिंग हो तो [६]नमस्ते रुद्र मन्यवे—इस आठ मन्त्रों से स्नान कराकर घृत से अभ्यञ्जन, उद्वर्तन से उद्धर्तन कर गरम जल से प्रक्षालन कर गन्ध देकर संपातजल से अभिषेक कर पल्लववाले चार कुंभों से 'आपो हि ष्ठा' इन तीन मन्त्रों से तथा [७]'आ कलशेषु' इस मन्त्र एक से, [८]समुद्रज्येष्ठा इन चार मन्त्रों से और [९]'आकलशेषु' इससे मिलित स्नान कराकर दुम्बर आदि पीठ में अर्चा को बैठाकर उसके चारों तरफ आठों दिशाओं में जलवाले कलशों का स्थापन कर उन कलशों में गन्ध, पुष्प तथा दूर्वा का प्रक्षेप कर पहले कलश में सप्तमृत्तिका, दूसरे कलश में—पुष्कर, पर्ण, शमी विकङ्कत, (कमरख) अश्मन्तक (पत्थरचूर) की त्वचा और पञ्चपल्लव, तीसरे आदि कलश में—सप्तधान्य, पञ्चरत्न, फल, पुष्प, कुशा, दूर्वा, गोरोचन, संपातोदक गन्ध, पुष्प, फल और सर्वौषधिका प्रक्षेपकर क्रमसे आपो हिष्ठा—इस तीन मन्त्रों से, हिरण्यवर्णाः इस चार से तथा पवमानानुवाक से अभिषेक कर—एक कुंभ में शमी, पलाश, वट, खदिर, विल्व, अश्वत्थ, विकंकत, (कमरख) पनस (कटहर) शिरीष (शिरस) और उडुम्बरके पल्लवों को तथा कषायोंका प्रक्षेप कर [१०]'अश्वत्थेवः' इससे [११]'हिरण्यवर्णाः' इससे

१—आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् । भवा वाजस्य सङ्गथे ॥ (ऋ० १।६१।१६)।

२—ॐ दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः । सुरभि नो मुखा करत् प्र ण आयूँषि तारिषत् ।(ऋ०४।३६।६)।

३—तेजोऽसि तेजो मयि धेहि वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि बलमसि बलं मयि धेह्योजोऽस्योजो मयि धेहि । मन्युरसि मन्युं मयि धेहि सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥ (काण्वसंहिता अ० २१।८)। तेजोऽसि तेजोऽनु प्रेह्यग्निस्ते तेजो मा वि नैदग्ने-र्जिह्वाऽसि सुभूर्देवानां धाम्ने धाम्ने देवेभ्यो यजुषे-यजुषे भव शुक्रमसि ज्योतिरसि तेजोऽसि । (तै० स० १।१।१०)।

तेजोऽसि शुक्रमस्य मृतमसि धामनामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि ॥ (शु० य० अ० १ म० ३१)। तेजोऽसि तेजोमयि धेहि । वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि । बलमसि बलं मयि धेहि ॥ तैत्तरीय ब्राह्मण—(२ का० प्र० २ अ १)।

४—मधुवाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः १ मधु नक्तमुतोषसो मधुमत् पार्थिवं रजः । मधु द्यौरस्तु नः पिता २ मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः ३ (ऋ० १।६।६-८)।

५—आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन् मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥ (ऋ०१०।१८६।१)।

६—नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः । नमस्ते अस्तु धन्वने बाहुभ्यामुत ते नमः ॥ १ ॥ या त इषुः शिवतमा शिवं बभूव ते धनुः । शिवा शरव्या या तव तया नो रुद्र मृडय ॥ २ ॥ या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी । तया न स्तनुवा शन्तमया गिरिशन्ताभि चाकशीहि ॥ ३ ॥ यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे । शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिँ सीः पुरुषं जगत् ॥ ४ ॥ शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छा वदामसि । यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मँ सुमना असत् ॥ ५ अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक् । अहीँश्च सर्वान् जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ६ ॥ असौ यस्ताम्रो अरुण उतबभ्रुः सुमङ्गलः । ये चे माँ रुद्रा अभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशोऽवैषाँ हेड ईमहे ॥ ७ ॥ असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः । उतैनं गोपा अदृशन्नदृशन्नुदहार्यः । उतैनं विश्वा भूतानि सदृष्टो मृडयाति नः ॥ (तै०सं०का०-४प्र० ५।१-८)।

७—आ कलशेषु धावति पवित्रे परि षिच्यते । उक्थैर्यज्ञेषु वर्धते ॥ (ऋ०६।१७।४)।

८—समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य मध्यात् पुनाना यन्त्यनिविशमानाः । इन्द्रो या वज्री वृषभो रराद ता आपो देवीरिह मामवन्तु १ या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति खनित्रिमा उत वा याः स्वयंजाः । समुद्रार्था याः शुचयः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु २ यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम् । मधुश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ३ यासु राजा वरुणो यासु सोमो विश्वे देवा यासूर्जं मदन्ति । वैश्वानरो यास्वग्निः प्रविष्टस्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥ (ऋ० ७।४६।१-४)।

६—आ कलशेषु धावति श्येनो वर्म वि गाहते । अभि द्रोणा कनिक्रदत् ॥ (ऋ०६।६७।१४)।

१०—अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता । गोभाज इत् किलासथ यत् सनवथ पुरुषम् ॥ (ऋ० १०।६७।५)

११—हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका यासु जातः कश्यपो यास्विन्द्रः । अग्निं या गर्भं दधिरे विरूपास्ता न आपः शँ स्योना भवन्तु ॥ यासाँ राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम् । मधुश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता न आपः शँ स्योना भवन्तु ॥ यासां देवा दिवि कृण्वन्ति भक्षं या अन्तरिक्षे बहुधा भवन्ति । याः पृथिवीं पयसोन्दन्ति शुक्रास्ता न आपः शँ स्योना भवन्तु ३ शिवेन मा चक्षुषा पश्यताऽऽपः शिवया तनुवोप स्पृशत त्वचं मे । सर्वाँ अग्नीँ रप्सुषदो हुवे वो मयि वर्चो बलमोजो नि धत्त ४ ॥ (तैत्तरीयसं० का० ५।६।१।१-४)।

स्नानकराकर वस्त्रों को देकर यज्ञोपवीत आदि दीपान्त तककर [1]'हिरण्यगर्भः, य आत्मदा, यः प्राणतः, यस्येमे, येन द्यौः, यं क्रन्दसी, आपो ह यत्, यश्चिदापः, ये आठ पिष्ट के दीपकों को देकर सोने की शलाका से तैजसपात्र में स्थित सहत और घृत को ग्रहण कर 'चित्रं[2] देवानाम्' और 'तेजोऽसि' इन दो मन्त्रों से 'ॐ नमो भगवते तुभ्यम्' इससे दहिने बायें देवता के नेत्रों में मन्त्रों की आवृत्ति से लिखे। [3]'अञ्जन्तित्वा-इस मन्त्र स अञ्जन या सहत से अंकन कर देवस्यत्वा [4]सवितुः० इन्द्रस्येन्द्रियेणानञ्मि इससे मधु, घृत और चीनी से अंकन कर फिर उसी अञ्जन से फिर अंजन करे। स्थिरलिंग में तो साने का सलाका से गन्ध करे। 'ॐ नमो भगवते' इससे अञ्जन आदिसे अञ्जन करे। तदनन्तर सीसा तथा भक्ष्य आदि वस्तुओंको दिखावे।

फिर कर्ता आचार्य के लिए गौ ऋत्विजों के लिए दक्षिणा दे। अनन्तर आचार्य प्रत्येक ऋचा के आदिमें प्रणव को कहता हुआ पुरुषसूक्तसे स्तुतिकर वांसके पात्रमें पंचरंगके अन्नों से देवताका नीराजन कर रुद्रके लिए चौराहे आदिपर दे। मन्त्र का अर्थ यों है—रुद्र के लिए नमस्कार है, सर्वभूताधिपति के लिये नमस्कार है, दीप्तशूलधराधारी को नमस्कार है, आमोद देनेवाले को नमस्कार है तथा विश्वके अधिपति रुद्र के लिए नमस्कार है। अगर्हित कल्याणकारक कर्म हो अतः सुहुत हो। अश्वत्थपत्ते में भूतों के लिए नमस्कार है। कोई इसको रातमें स्थिरप्रतिष्ठा में इच्छा करते हैं।

अथाचार्यः सर्वतोभद्रे देवानावाहयेत्। मध्ये-ब्रह्माणम्, पूर्वादिदिक्षु इन्द्रादिलोकपालान्, ईशानेन्द्राद्यन्तरालेषु-वसून्, रुद्रान्, आदित्यान्, अश्विनौ, विश्वान् देवान् पितृन्नागान्, स्कन्दवृषौ, अग्नेशानाद्यन्तरालेषु-दक्षं विष्णुं दुर्गां, स्वधाकारं, मृत्युरोगान्, समुद्रान्, सरितः, मरुतः, गणपतिं चेति। मध्ये एव पृथिवीं मेरुं संस्थाप्य देवं चावाह्य प्रागादिक्रमेण-वज्रं, शक्तिं, दण्डं, खड्गं, पाशम्, अङ्कुशं गदां, शूलम्, तद्बाह्ये-गौतमं, भरद्वाजं, विश्वामित्रं, कश्यपं, जमदग्निं, वसिष्ठमत्रिमरुन्धतीं च, तद्बाह्ये-नवग्रहान्, तद्बाह्ये-ऐन्द्रीं, कौमारीं, ब्राह्मीं, वाराहीं, चामुण्डां, वैष्णवीं, माहेश्वरीं, वैनायकीमिति एताः नामभिरावाह्य सम्पूज्य अर्चायां देवं तन्मन्त्रेणावाह्य मण्डलमध्येऽर्चां 'सुप्रतिष्ठो भव' इति निवेश्य सम्पूज्य वह्नौ मण्डलदेवतानां नामभिस्तिलाज्येन दशदशाहुतीर्हुत्वा पुष्पाञ्जलिं समर्प्य 'नमो महत्' इति देवं नत्वा मण्डलादुत्तरतः स्वस्तिके मञ्चकं तदुपरि शय्यां कृत्वा 'उत्तिष्ठ' इति देवमुत्थाप्य मङ्गलघोषैः शय्यायां देवमारोप्य पुरुषसूक्तोत्तरनारायणाभ्यां स्तुत्वा देवे न्यासं कुर्यात्। पुरुषात्मने नमः। प्राणात्मने नमः, प्रकृतितत्त्वाय नमः, बुद्धितत्त्वाय

१—हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः। यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम २ यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव। य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ३ यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः। यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ४ येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृल्हा येन स्वः स्तभितं येन नाकः। यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ५ य क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने। यत्राधि सूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम ६ आपो ह यद्बृहतीर्विश्वमायन् गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम्। ततो देवानां समवर्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम ७ यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद् दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम्। यो देवेष्वधि देव एक आसीत् कस्मै देवाय हविषा विधेम ८ (ऋ० १०।१२१।१–८)।

२—चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥ (ऋ० १।११५।१)।

३—अञ्जन्ति त्वामध्वरे देवयन्तो वनस्पते मधुना दैव्येन। यदूर्ध्वस्तिष्ठा द्रविणेह धत्ताद् यद् वा क्षयो मातुरस्या उपस्थे॥ (ऋ०३।८।१)।

४—देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णोहस्ताभ्याम्। इन्द्रस्येन्द्रियेण। श्रियै यशसे बलायाभिषिञ्चामि। (तैत्तरीय ब्राह्मण २ काण्ड प्र० ६ अनु० ५)। तैत्तरीयब्राह्मण में देवस्य त्वा—इस मन्त्र के अन्त में अश्विनोर्भैषज्येन। तेजसे ब्रह्मवर्चसायाभिषिञ्चामि। देवस्य त्वा—इस मन्त्रान्त में सरस्वत्यै भैषज्येन। वीर्यायान्नाद्यायाभिषिञ्चामि। इस तरह तीन मन्त्रों में पहले से हो विभाग किया है। यजुर्वेद में एक ही मन्त्र में तीनों पाठों को पढ़ा गया है।

नमः, अहङ्कारतत्त्वाय नमः मनस्तत्त्वाय नमः इति सर्वाङ्गे। तद्यथा—प्रकृतितत्त्वाय नमः। बुद्धितत्त्वाय नमः—हृदि। शब्दतत्त्वाय नमः शिरसि। स्पर्शतत्त्वाय नमः त्वचि। रूपतत्त्वाय नमः हृदि। एवं हृद्येव रसगन्धश्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवाक्पाणिपादपायूपस्थपृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाश-सत्त्वरजस्तमोदेहतत्त्वानि विन्यसेत्। ततः पुरुषसूक्ताद्यमृग्द्वयं करयोः, तदुत्तरं जानुनोः, तदुत्तरं कट्योः, 'तं यज्ञम्, इति तिस्रः नाभिहृत्कण्ठेषु, 'तस्मादश्वा' इति द्वयं बाह्वोः, 'ब्राह्मणोऽस्य, इति द्वयं नासयोः, 'नाभ्या, इति द्वयमक्ष्णोः, अन्त्यां शिरसि। केचित्तत्त्वन्यासमन्यथा आहुः। पुरुषप्रकृतिमहङ्कारतत्त्वानि, शब्दस्पर्शरूपरसगन्धतन्मात्राणि, आकाशवायुतेजोपृथिवी-श्रोत्रत्वक्चक्षुरसनाघ्राणवाक्पाणिपादयूपस्थमनस्तत्त्वानीति। केचिदेतानि स्थिरलिङ्गादावे-वेच्छन्ति। ततः 'सुखशायी भव' इति शय्यायां देवं स्वापयित्वा मण्डलशय्ययोरन्तराले न गन्तव्यम् इति प्रैषं दत्त्वा स्विष्टकृदादिहोमशेषं समाप्य मण्डलदेवताभ्यो नामभिः पायसेन चरुणा वा बलिं दद्यात्। नीवारचरुशेषेण दिग्बलिम्। नेदं स्थिरप्रतिष्ठायाम्। स्थिरलिङ्गादौ त्वयं विशेषः—'अग्निस्थापनहोमवर्ज्यं सर्वं पूर्ववत् कृत्वा इदानीमग्निस्थापनं कृत्वा पूर्वोक्तहोमं कुर्यात् नात्र नैवारश्चरुः।

इसकेबाद आचार्य सर्वतोभद्रमें देवताओं का आवाहन करते हैं। (उसका प्रकार) मध्यमें—ब्रह्माको पूर्वादिदिशाओं में इन्द्रादिलोकपालोंको, ईशानेन्द्र के अन्तरालों में—वसु, रुद्र, आदित्य, अश्विनी, विश्वदेव, पितर, स्कन्द, वृष, ब्रह्म—ईशानके अन्तरालों में—दक्ष, विष्णु, स्वधाकार, मृत्युरोग, समुद्र, सरित, मरुत, गणाधिप, मध्यमें ही तो पृथिवी और मेरु की स्थापनाकर देवताका आवाहन कर पूर्वादिक्रमसे वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, अंकुश, गदा तथा शूल, उसके बाहर गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र, कश्यप, जमदग्नि, वसिष्ठ, अत्रि और अरुन्धती, उसके बाहर—नवग्रह, उसके बाहर ऐन्द्री, कौमारी, ब्राह्मी, वाराही, चामुण्डा, वैष्णवी, माहेश्वरी तथा वैनायकी इनका नाम मन्त्रोंसे आवाहन और पूजनकर अर्चामें देवको उन मन्त्रोंसे आवाहन कर मण्डलके मध्यमें अर्चाको 'सुप्रतिष्ठितो भव' ऐसा कहकर निवेशकर पूजनकर अग्निमें मण्डल देवताओं के नाममन्त्रों से तिल तथा घी के द्वारा दश दश आहुति देकर पुष्पाञ्जलि को समर्पण कर [1]'नमो महत्' इससे देवता को नमस्कारकर मण्डला से उत्तरकी तरफ स्वस्तिकपर मञ्च को रख मंच के ऊपर शय्याको कर [2]'उत्तिष्ठ' इसमन्त्रसे देवता को उठाकर मंगलघोषोंसे शय्यामें देवता का आरोपकर 'पुरुष सूक्त, और 'उत्तरनारायणसूक्तों' से स्तुतिकर देवतापर न्यास करे। उसका प्रकार यों है—पुरुषात्मने नमः। प्राणात्मने नमः। प्रकृतितत्त्वाय नमः। बुद्धितत्त्वाय नमः। अहंकारतत्त्वाय नमः और मनस्तत्त्वाय नमः—से सब अंगों में करे। प्रकृतितत्त्वाय नमः और बुद्धितत्त्वाय नमः से—हृदय में, शब्दतत्त्वाय नमः—से शिर में, स्पर्श तत्त्वाय नमः से—त्वचामें तथा रूपतत्त्वाय नमः—से हृदय में। शब्दतत्त्वायनमः से—सिरपर, स्पर्शतत्त्वाय नमः से—त्वचापर। इसप्रकार हृदय में ही रस, गन्ध, श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण, वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ, पृथिवी, अप, तेज, वायु, आकाश, सत्त्व, रज, तम, देहतत्वों का न्यास करे। तदनन्तर पुरुषसूक्त के आदि के दो ऋचाओं से हाथोंमें, उसके उत्तरमन्त्रों से जानुओं में, उसके उत्तर मन्त्रोंसे कटियों में, तं यज्ञम्—इन तीन मन्त्रों से से नाभि, हृदय और कण्ठ में, तस्मादश्वा—से दोनों बाहुओं में, ब्राह्मणोऽस्य—से दोनों नासिकाओं में, नाभ्या—से दोनों नेत्रों में, अन्त्य—से शिर में, कोई लोग तत्त्वन्यास को अन्यप्रकार से कहते हैं। पुरुष, प्रकृति, महत्, अहंकारतत्त्व शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, उनकी मात्राओं का आकाश, वायु, तेज, अप (जल) पृथिवी, श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसना, घ्राण, वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ तथा मन, इन तत्त्वों को। कोई लोग इनको स्थिर लिंगादिमें इच्छा

१—नमो महद्भ्योः क्षुल्लकेभ्यश्च वो नमो नमो रथिभ्योऽरथेभ्यश्च वो नमो नमो रथेभ्यो रथपतिभ्यश्च वो नमो नमः॥ (तै० सं० ४।५।४।७)।

२—उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वे महे। उप प्रयन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा॥ (ऋ० १।४०।१)

करते हैं। तदनन्तर—सुख से शयन करो—इसप्रकार शय्या में देवता को सुलाकर मण्डल और शय्याके मध्यमें नहीं जाना जाना चाहिये—इसप्रकार प्रैष देकर स्विष्टकृद् आदि होमशेषको समाप्तकर मण्डलदेवताओं के लिये नाममन्त्रों से खीर या चरुसे बलि दे। नीवार चरुशेष से दिशाओं में बलि दे। यह स्थिरप्रतिष्ठा में नहीं है। स्थिर लिंगार्चादिमें तो यह विशेष है कि—अग्निस्थापनहोमको त्यागकर पहलेको तरह होम करे। यहाँपर नीवार चरु नहीं है।

विष्णुश्चेत् पूर्वोक्तहोमं कृत्वा पुरुषसूक्तेन प्रत्यृचमाज्यं हुत्वा 'इदं विष्णुः' इति पादौ स्पृष्ट्वा पुनस्ता एवं हुत्वा 'विष्णोर्नुकम्' इति नाभिं स्पृशेत्। पुनस्ता एव हुत्वा 'अतो देवा' इति शिरः स्पृष्ट्वा पुनस्ता एव हुत्वा पुरुषसूक्तेन सर्वाङ्गं स्पृशेत्। स्थिरलिङ्गं चेदग्निस्थापनादि पूर्वोक्त-समिधाज्यतिलाहुतीर्हुत्वा 'या त इषु' इत्यनुवाकान्तं 'द्रापे' 'सहस्राणि' इत्यनुवाकाभ्यां प्रत्यृचमाज्यं हुत्वा, 'सर्वो वै रुद्रः' इति मूलं स्पृशेत्। पुनस्ता एव हुत्वा 'कद्रुद्राय' इति मध्यमम्, पुनस्ता एव हुत्वा नमो हिरण्यबाहवे-इत्युग्रम्, पुनस्ता एव हुत्वा 'सर्वरुद्रेण' सर्वाङ्गं स्पृशेत्। ततो 'धामन्त' इति पूर्णाहुतिं जुहुयान्न वा। एवमधिवासनं कृत्वा परेद्युः सद्यो वा पीठिकां स्नापयित्वा 'महीमूपु' इत्यावाह्य 'अदितिर्द्यौः' इति स्तुत्वा 'ह्रीं नमः' इति सम्पूज्य तेनैव पूर्णाहुतिं हुत्वा 'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते' इति देवमुत्थाप्य पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा पुरुषसूक्तेन स्तुत्वा 'उदुत्यम्' इत्युत्थाप्य 'कनि-क्रदत्' इति सूक्तेन विष्णुं 'सद्योजातम्' इति पञ्चानुवाकैर्लिङ्गं गृहं प्रवेश्य पीठिकायां इन्द्रादिनाम-भिरष्टरत्नानि क्षिप्त्वा सप्तधान्यरूप्यवृषमनःशिलाः क्षिप्त्वा पायसेन संलिप्य प्रणवेनाङ्गन्यासं कृत्वा सुवर्णशलाकामन्तरितां कृत्वा सुलग्ने 'प्रतितिष्ठ परमेश्वर' इत्युक्त्वा 'अतो देवा' इति विष्णुं रुद्रेण च लिङ्गं स्थापयेत्।

विष्णु हो तो पूर्वोक्त होमकर पुरुषसूक्त की प्रत्येक ऋचासे घृतसे हवनकर [१]इदं विष्णुः—इसमन्त्रसे पैरोंको स्पर्शकर फिर उसी ऋचासे ही हवनकर [२]'विष्णोर्नुकम्—से नाभी का स्पर्शकर फिर उसी ऋचासे ही हवनकर अतो [३]देवा—इस मन्त्र से शिर का स्पर्श कर फिर उसी ही ऋचा से ही हवनकर 'पुरुषसूक्त' से सब अंगोंका स्पर्श करे।

स्थिरलिंग हो तो अग्निस्थापनादिपूर्वोक्त समित्, आज्य और तिलसे आहुतिकर 'या त [४]इषुः' इस अनुवाक् के अन्तमें [५]द्रापे, [६]सहस्राणि इन अनुवाकों द्वारा प्रत्येक ऋचासे आज्यसे हवनकर 'सर्वो वै [७]रुद्रः, इससे मूलका स्पर्श करे।

फिर उन्हीं से ही हवन कर [८]कद्रुद्राय—से मध्य, फिर उसीसे हवनकर [९]नमो हिरण्य बाहवे—से उग्रको फिर उसी से ही हवनकर सर्वरुद्रसे—से सब अंगोंका स्पर्श करे।

१—इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्य पांसुरे॥ (ऋ० १।२२।१७)।

२—विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि। यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः॥ (ऋ० १ । १५४ । १)।

३—अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे। पृथिव्याः सप्त धामभिः॥ ऋ० १ । २२ । १६)।

४—या त इषुः शिवतम शिवं बभूव ते धनुः। शिवा शरव्या या तव तया नो रुद्र मृडय॥ (तै० सं० ४।५।१)

५—द्रापे अन्धसस्पते दरिद्रन्नीललोहित। एषां पुरुषाणामेषां पशूनां मा भेर्माऽरो मो एषां किं चनाऽममत्॥ (तै० स० ४।५।१०।१)।

६-सहस्राणि सहस्रधा बाहुवोस्तव हेतयः। तासामीशानो भगवः पराचीना मुखा कृधि॥ (तै० स० ४।५।१०।१२)। सहस्राणि सहस्रशो ये रुद्रा अधि भूम्याम्। तेषां सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि॥ (तै० सं० ४।५।११।१)।

७—सर्वो वै रुद्रस्तस्मै रुद्राय नमो अस्तु। पुरुषो वै रुद्रः सन्महो नमो नमः। विश्वं भूतं भुवनं चित्रं बहुधा जातं जायमानं च यत्। सर्वो ह्येष रुद्रस्तस्मै रुद्राय नमो अस्तु॥ (तैत्तरीयारण्यक—अ० २४)।

८—कद्रुद्राय प्रचेतसे मीलहुष्टमात तव्यसे। वोचेम शन्तमं हृदे॥ (ऋ० १ अ० ६ सू० ४ म० १)।

९—नमो हिरण्यबाहवे सेनान्ये दिशां च पतये नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः पशूनां पतये नमो नमः सस्पिञ्जराय त्विषीमते

तदनन्तर—[1]'धामन्ते—इससे पूर्णाहुति करे या न करे। इसप्रकार अधिवासन कर दूसरे दिन या उसीदिन पीठिकाका स्नान कराकर [2]'महीमूषु'—इससे आवाहन कर [3]'अदितिर्द्यौः' इससे स्तुतिकर ह्रीं नमः-से पूजनकर उसीसे पूर्णाहुति हवनकर उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते—से देव को उठा कर पुष्पाञ्जलि देकर पुरुषसूक्त से स्तुतिकर [4]उदुत्यम्-से उठाकर [5]कनिक्रदत् इस सूक्तसे विष्णुकी स्तुतिकर [6]सद्योजातम्-इस पांच अनुवाकोंसे लिंगको घरमें प्रवेशकर पीठिकामें इन्द्रादिनामोंसे आठरत्नोंका प्रक्षेपकर सप्तधान्य, रूप्य, वृष (अडूसा, वासा), मनःसिला, (मैनसिल) छोडकर पायससे लीपकर प्रणवसे अंगन्यासको कर सुवर्णशलाकाको मध्यमें कर उत्तम लग्नमें 'ॐ प्रतितिष्ठ परमेश्वर' यों कहकर 'अतो देवाः' इस मन्त्रसे विष्णु और लिंगका स्थापन करे।

(अथ प्राणप्रतिष्ठा)

ततः प्राणप्रतिष्ठा। चलार्चादौ त्वधिवासनान्ते परेद्युः 'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते' इति देवमुत्थाप्य पुरुषसूक्तोत्तरनारायणाभ्यां स्तुत्वा घृते व्रीहिचरुं कृत्वा तद्देवतामन्त्रेण दशाहुतीर्हुत्वा नामभिर्जुहुयात्। अग्नये स्वाहा, सोमाय स्वाहा, धन्वन्तरये स्वाहा, कुह्वै स्वाहा, अनुमत्यै स्वाहा, प्रजापतये स्वाहा, ब्रह्मणे स्वाहा, अग्नये स्वाहा, सोमाय स्वाहा, अग्नयेऽन्नादाय स्वाहा, अग्नयेऽन्नपतये स्वाहा, प्रजापतये स्वाहा, विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा, सर्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा, भूर्भुवः स्वः स्वाहा, अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा इति। ततः 'सप्त ते अग्ने' 'पुनस्त्वा' इत्याभ्यां पूर्णाहुतिः। तत आचार्यो 'या ओषधीः' इति पुष्पफलसर्वौषधीः समर्प्य संपातोदकं ताम्रपात्रं आदाय देवमन्त्रेण शतवारमभिमन्त्र्य तेनैवाभिषिञ्चेत्। ततः 'उत्तिष्ठ' इति देवमुत्थाप्य 'विश्वतश्चक्षुः' इत्युपस्थाय देवं ध्यात्वा जपेत्। ब्रह्मणेनमः। एवम् विष्णवे नमः, रुद्रायनमः। ततः—इन्द्रादीन् अष्टौ वसुभ्यो रुद्रेभ्य आदित्येभ्योश्विभ्यां मरुद्भ्यः कुबेराय गङ्गादिमहानदीभ्योऽग्नीषोमाभ्यामिन्द्राग्निभ्यां द्यावापृथिवीभ्यां धन्वन्तरये सर्वेशाय विश्वेभ्यो देवेभ्यो ब्रह्मणे नम इति। ततः सम्पातोदकेन यजमानमभिषिच्य देवं ध्यात्वा 'ॐ प्रतितिष्ठ परमेश्वर' इति पुष्पाञ्जलिं निवेद्य सच्चिदानन्दं ब्रह्मैव भक्तानुग्रहाय गृहीतविग्रहं करकर-

---

पथीनां पतये नमो नमो ब्भ्लुशाय विव्याधिनेऽन्नानां पतये नमो नमो भवस्य हेत्यै जगतां पतये नमो नमो रुद्रायाऽऽततायिने क्षेत्राणां पतये नमो नमः सूतायाहन्त्याय वनानां पतये नमो नमो रोहिताय स्थपतये वृक्षाणां पतये नमो नमो मन्त्रिणे वाणिजाय कक्षाणां पतये नमो नमो भुवन्तये वारिवस्कृतायौषधीनां पतये नमो नमऽ उच्चैर्घोषायाऽऽक्रन्दयते पत्तीनां पतये नमो नमः। कृत्स्नवीताय धावते सत्वनां पतये नमः॥ तै० स० का० ४।५।२।१)।

१–ॐ धामन् ते विश्वं भुवनमधि श्रितमन्तः समुद्रे हृद्य१न्तरायुषि। अपामनी के समिथे य आभृतस्तमश्याम मधुमन्तं त ऊर्मिम्॥ (ऋ० ४।५८।११)।

२—महीमू षु मातरँ सुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसे हुवेम। तुविक्षत्रामजरन्तीमुरूचीँ सुशर्माणमदितिँ सुप्रणीतिम्॥ (तैत्तरीय सं० १।५।१८)।

३—अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः। विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम्॥ (ऋ० १।८९।१०)।

४—उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम्॥ (ऋ० १।५०।१)।

५—कनिक्रदज्जनुषं प्रब्रुवाण इयर्ति वाचमरितेव नावम्। सुमङ्गलश्च शकुने भवासि मा त्वा का चिदभिभा विश्व्या विदत्॥ १॥ मा त्वा श्येन उद्वधीन्मा सुपर्णो मा त्वा विददिषुमान्वीरो अस्ता। पित्र्यामनु प्रदिशं कनिक्रदत्सुमङ्गलो भद्रवादी वदेह॥ २॥ अव क्रन्द दक्षिणतो गृहाणां सुमङ्गलो भद्रवादी शकुन्ते। मा नः स्तेन ईशत माघशंसो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः॥ (ऋ० मं० २ अ० ४ सू० ४२ म० १-३)।

६—सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः। भवे भवे नातिभवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः॥ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नम कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः॥ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः। सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः॥ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्॥ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोम्॥ (तैत्तरीयारण्यक-अनुवाक-१७-२१)।

णाद्यवयविनं शङ्खचक्राद्यायुधवन्तं निजवाहनाद्युपेतं निजहृत्कमलेऽवस्थितं सर्वलोकसाक्षिणमणीयांसं 'परमेष्ठ्यसि परमां श्रियं गमय—इति मन्त्रेण पुष्पाञ्जलावागतं विभाव्याऽर्चायां विन्यस्य प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात् ।

तदनन्तर प्राणप्रतिष्ठा करे। चलार्चादिमें तो अधिवासनान्तमें परदिनमें 'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते' इसमन्त्रसे देवको उठाकर पुरुषसूक्त और उत्तरनारायणसूक्त से स्तुतिकर घृत में व्रीहि चरुको करके उन उन देवता के मन्त्रसे दश आहुती नाममन्त्र से हवन करे—अग्नि, सोम, धन्वन्तरि, कुह्व, अनुमति, प्रजापति, परमेष्ठी, ब्रह्मा, अग्नि, सोम तथा अग्नयेऽन्नादाय स्वाहा, अग्नयेऽन्नपतये स्वाहा। प्रजापतये स्वाहा, विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा, सर्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा, भूर्भुवः स्वाहा और स्विष्टकृत् दे।

तदनन्तर [1]'सप्त ते अग्ने' तथा [2]'पुनस्त्वा' इन दो मन्त्रोंसे पूर्णाहुति करे। फिर आचार्य 'या [3]ओषधीः' इस मन्त्रसे पुष्प, फल तथा सर्वौषधि को समर्पणकर संपातजलको तांबेके पात्रमें लेकर देवमन्त्रसे सौवार अभिमन्त्रकर उसीसे ही अभिसेचन करे। तदनन्तर 'उत्तिष्ठ' इसमन्त्रसे देवको उठाकर [4]'विश्वतश्चक्षु' इससे ऊपर उठाकर देवताका ध्यानकर जपे—ब्रह्मा, विष्णु रुद्र, इन्द्रादि आठ वसु रुद्र, आदित्य, अश्विनौ, मरुत, कुबेर, गंगादि महानदी, अग्नीषोम, इन्द्राग्नि, द्यावापृथिवी, धन्वन्तरि, सर्वेश, विश्वेदेव, ब्रह्मा। फिर संपातजलसे यजमान का अभिषेककर देवता का ध्यानकर 'ॐ प्रतितिष्ठ परमेश्वर' इससे पुष्पाञ्जलि को निवेदन कर 'सच्चिदानन्दं ब्रह्मैव—सच्चिदानन्द ब्रह्म हो भक्तोंके अनुग्रह के लिए विग्रह (शरीर) धारण कर हाथ, पैर आदि अवयव (अंग) शङ्ख, चक्र आदि आयुध वाले होकर अपने वाहनादि युक्त कमलरूपी हृदय में स्थित सब लोक के साक्षी अणुरूप हे परमेष्ठि, उत्तम श्री को दो। इस मन्त्र से पुष्पाञ्जलि में आये हुए देवताओं की भावनाकर पूजामें न्यासकर प्राणप्रतिष्ठा करे।

यथा—अस्य श्रीप्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्य ब्रह्माविष्णुरुद्रा ऋषयः, ऋग्यजुःसामानि छन्दांसि, क्रियामयवपुः प्राणाख्या देवता, आं बीजम्, क्रौं शक्तिः, प्राणप्रतिष्ठायां विनियोगः। ततो ऋष्यादीन् क्रमेण शिरोमुखहृदयगुह्यपादेषु विन्यस्य ॐ कं खं गं घं ङं अं पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशात्मने आं हृदयाय नमः। ॐ चं छं जं झं ञं इं शब्दस्पर्शरूपरसगन्धात्मने ईं शिरसे स्वाहा। ॐ टं ठं डं ढं णं उं श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणात्मने ऊं शिखायै वषट्। ॐ तं थं दं धं नं एं वाक्पाणिपादपायूपस्थात्मने ऐं कवचाय हुम्। ॐ पं फं बं भं मं ॐ वचनादानविहरणोत्सर्गानन्दात्मने औं नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं अं मनोबुद्ध्यहङ्कारचित्तात्मने अः अस्त्राय फट्। एवं आत्मनि देवे च कृत्वा देवं स्पृष्ट्वा जपेत्—ॐ ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं सः देवस्य प्राणा इह प्राणाः। ॐ आं ह्रीं क्रों अं यं रं लं वं शं षं सं हं सः हं सः देवस्य जीव इह स्थितः। ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं षं सं हं सः देवस्य सर्वेन्द्रियाणि। ॐ आं ह्रीं क्रों अं यं रं लं वं शं षं सं हं सः देवस्य वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रघ्राणप्राणा इहागत्य स्वस्तये सुखेन सुचिरं तिष्ठन्तु स्वाहेति।

ततोऽर्चाहृद्यङ्गुष्ठं दत्वा जपेत्—अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्यै प्राणाः क्षरन्तु च। अस्यै देवत्वमर्चायै

१—ॐसप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वाः सप्तर्षयः सप्त धाम प्रियाणि। सप्त होत्राः सप्तधा त्वा यजन्ति सप्त योनीरा पृणस्वा घृतेन॥ (तै० स० १।५।२।१४)।

२—ॐपुनस्त्वाऽऽदित्या रुद्रा वसवः समिन्धतां पुनर्ब्रह्माणो वसुनीथ यज्ञैः। घृतेन त्वं तनुवो वर्धयस्व सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः (तै० स० ४।२।३।१३)।

३—या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा। मनै नु बभ्रूणामहं शतं धामानि सप्त च॥ (ऋ. १०।९७।१)।

४—विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्। सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः॥ (ऋ० १०।८१।३)।

मामहेति च कश्चन ॥ इति । ततः प्रणवेन संरुध्य सजीवं ध्यात्वा 'ध्रुवा द्यौः' इति ऋचं जप्त्वा कर्णे गायत्रीं देवमन्त्रं च जप्त्वा पुरुषसूक्तेनोपस्थाय पादनाभिशिरःसु स्पृष्ट्वा 'इहैवैधि' इति त्रिर्जपेत् ।

जैसे—इस प्राणप्रतिष्ठामन्त्र के ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र ऋषि हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद छन्द हैं। क्रियामय शरीर है, प्राणनामक देवता है। आं—यह बीज है। क्रों—यह शक्ति है। प्राणप्रतिष्ठा में इसका विनियोग है। तदनन्तर ऋषि आदिका क्रमसे शिर, मुख, हृदय, गुह्य, पाद, इनमें न्यासकर फिर 'ॐ कं खं गं घं ङं अं पृथिवी, अप, तेज, वायु, आकाश आं हृदयको नमस्कार है। इसीतरह—चं छं जं झं ञं इं शब्द, स्पर्श रूप, रस, गन्ध आदिसे शिर का स्पर्श करे। ॐ टं ठं डं ढं णं ङं श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राणादि द्वारा शिखाका स्पर्श करे। ॐ तं थं दं धं नं एं वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ—आदिसे कवचस्पर्श करे। ॐ पं फं बं भं मं वचन, आदान, विहरण, उत्सर्ग, आनन्दादि से नेत्रों का स्पर्श करे। ॐ यं रं लं वं शं पं सं हं लं क्षं अं मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त, आत्मा आदि से 'अस्त्राय फट्' करे। इसप्रकार आत्मा और देवमें कर देवका स्पर्श कर जपे—ॐ आं ह्रीं क्रों अं यं रं रं वं शं षं सं हं सः, इत्यादिसे प्राणों का सञ्चार करे। तदनन्तर अर्चक हृदय में अंगुठे को देकर जप करे। इस मूर्ति में प्राणोंकी प्रतिष्ठा करो। इस मूर्तिमें प्राणोंका संचार करो। इस मूर्ति के देवत्वपूजा के लिए मुझे कोई न दूर करे।

तदनन्तर प्रणवसे रोककर सजीव सहित ध्यानकर '[1]ध्रुवा द्यौः' इस ऋचा को जपकर कानमें गायत्री और देवमन्त्रको जपकर पुरुषसूक्तसे उपस्थानकर पैर, नाभि—और शिर शिरका स्पर्श कर [2]'इहैवैधि—इस मन्त्रको तीनवार जप करे।

ततः कर्ता—स्वागतं देवदेवेश मद्भाग्यात्त्वमिहागतः । प्राकृतं त्वमदृष्ट्वा मां बालवत्परिपालय ॥

तदनन्तर कर्ता हे देवदेवेश, आपका स्वागत हो मेरे भाग्यसे आप यहाँ पर आये हो। मुझे प्राकृत मनुष्य न जानकर बालककी तरह पालन करो।

धर्मार्थकामसिद्ध्यर्थं स्थिरो भव शुभाय नः । सान्निध्यं तु सदा देव स्वार्चायां परिकल्पय ॥

हमलोगों के कल्याण के लिए धर्म, अर्थ और कामना की समृद्धि के लिए स्थिर हो हे देव, अपनी पूजामें सदा सान्निध्य की कल्पना करो।

यावच्चन्द्रावनीसूर्यास्तिष्ठन्त्यप्रतिघातिनः । तावत्त्वयाऽत्र देवेश स्थेयं भक्तानुकम्पया ॥

जबतक अप्रतिघाती चन्द्रमा और सूर्य पृथ्वीपर रहते हैं तबतक भक्तोंपर अनुकंपाकर यहाँपर हे देवेश, स्थित रहो।

भगवन् देवदेवेश त्वं पिता सर्वदेहिनाम् । येन रूपेण भगवंस्त्वया व्याप्तं चराचरम् ॥ तेन रूपेण देवेश स्वार्चायां सन्निधो भव ॥ इति नमेत् । एतदन्तं सर्वदेवानां समानम् । देवमन्त्रश्च मूलमन्त्रो वैदिको वा ग्राह्यः ।

हे भगवन्, हे देवदेवेश, तुम सब देहधारियों के पिता हो। जिसरूपसे हे भगवन्, आपसे चर और अचर व्याप्त है। उसीरूपसे हे देवेश, अपनी पूजामें सन्निहित हो। इसप्रकार नमस्कार करे। यहाँ तक सब देवताओं का समान है। देवमन्त्र या मूलमन्त्र वैदिक ग्रहण करे।

अथाचार्यः कर्ता वा लिङ्गमर्चा वा ॐ भूः पुरुषमावाहयामि, ॐ भुवः पुरुषमावाहयामि । ॐ सुवः पुरुषमावाहयामि । ॐ भूर्भुवः सुवः पुरुषमावाहयामीत्यावाह्य प्रणवेनासनं दत्वा तेनैव दूर्वाश्यामाकविष्णुक्रान्तापद्ममिश्रं पाद्यम् । "इमा आपः शान्ताश्शिवा शिवतमाः पूता पूततमा

१—ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवासः पर्वता इमे । ध्रुवं विश्वमिदं जगद् ध्रुवो राजा विशामयम् ॥ (ऋ० १०।१७३।४। अथर्व ६।८८।१, तैत्तरीय ब्रा० ६।४।२।८)।

२—इहैवैधि माप च्योष्ठाः पर्वत इवाविचाचलिः । इन्द्र इवेह ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्रमु धारय ॥ (ऋ० १०।१७३।२ अथर्व० ६।८७।२ तैत्तरीय ब्रा०—२।४।२।६)।

मेध्या मेध्यतमा अमृता अमृतरसाः पाद्या आचमनीया अर्घ्यास्ता जुषन्तां प्रतिगृह्यन्तां प्रतिगृह्णातु भगवान् महाविष्णुर्विष्णवे नमः–इति पाद्यम् 'भगवान् महादेवो रुद्राय नमः, इति लिङ्गे, एवं देवतान्तरेषूह्यम्। इमा आपः आचमनीयास्ता जुषताम्' इति एलालवङ्गकङ्कोलकर्पूरमिश्रमाचमनीयम्, आपः क्षीरकुशाग्रैश्चाक्षतैर्यवतण्डुलैः यवैः सिद्धार्थकैश्चैव अर्घ्या इत्यर्घ्यम्। ततो वेदमन्त्रैः संस्थाप्य प्रणवेन च रत्नाम्बुकलशेन संस्नाप्य 'इदं विष्णुः' इति विष्णौ नमो अस्तु नीलग्रीवाय' इति लिङ्गे प्रतिसरं विसृस्य वस्त्रं यज्ञोपवीतं च दत्वा—

इसके बाद आचार्य–या कर्ता (यजमान) लिंग या अर्चा को ॐ भूः पुरुष से, ॐ भुवः पुरुष से ॐ सुवः पुरुष से, ॐ भूर्भुवः सुवः पुरुष से आवाहन कर 'प्रणव' से आसन देकर उसी से दूर्वा, श्यामाक (सांवा), विष्णुक्रान्ता (कोयल) पद्ममिश्रसे पाद्य यह जलकल्याणकारक हैं, पवित्र हैं, अत्यन्त पवित्र हैं, मेध्य है। मेध्यतम है, अमृत है और अमृतरसके समान है, ऐसे पाद्यजलसे प्रीति करो। उस जलको ग्रहण करो भगवान् महाविष्णु ग्रहण करो–एसे विष्णु के लिये नमस्कार है। इससे पाद्य दे। भगवान् महादेवो रुद्राय नमः—से लिंग में। इसप्रकार देवतान्तर में यह करे। इमा आपः आचमनीयास्ता जुषताम्—से इलायची, लवंग, कंकोल (आंकड़ा), और कर्पूर से मिश्रित आचमनीयजल दे। क्षीर (दूध) कुशाका अग्र, अक्षत, यव, चावल तथा यव–पीलीसरसों से अर्घ्य दे। तदनन्तर वेदमन्त्रों से स्नान कराकर 'इदं विष्णुः' इससे विष्णु में 'नमो [1]अस्तु नीलग्रीवाय' से लिंग में प्रतिसर का त्यागकर वस्त्र और यज्ञोपवीत को देकर—

इमे गन्धाः शुभा दिव्याः सर्वगन्धैरलङ्कृताः। पूता ब्रह्मपवित्रेण पूताः सूर्यस्य रश्मिभिः॥ इति गन्धम्।

ये गन्ध शुभ दिव्य हैं सब गन्धों से अलंकृत हैं। ब्रह्मपवित्र तथा सूर्य की रश्मियों से पूत (पवित्र) हैं। इससे गन्ध दे।

'इमे माल्याः शुभा दिव्याः सर्वमाल्यैरलङ्कृताः। पूताः ब्रह्मपवित्रेण पूताः सूर्यस्य रश्मिभिः॥ इति माल्यम्।

यह माल्य शुभ एवं दिव्य हैं। सब प्रकार के माल्यों से अलंकृत हैं। शेष अर्थ पूर्ववत् है। इससे माल्य दे।

इमे पुष्पा शुभाः दिव्याः सर्वगन्धैरलंकृताः। पूता ब्रह्मपवित्रेण पूता सूर्यस्य रश्मिभिः॥ इति पुष्पम्।

ये पुष्प शुभ हैं एवं दिव्य हैं, सब पुष्पगन्धों से अलंकृत हैं। ब्रह्म पवित्र से पवित्र हैं और सूर्य की किरणों से पवित्र हैं।

वनस्पतिरसोद्भूतो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः। आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥ इति धूपम्।

वनस्पतिरस से उत्पन्न गन्धका खजाना है, सब गन्धों से उत्तम है। सब देवताओं के लिए आघ्राण (सूंघने) योग्य हैं। ऐसे धूप को ग्रहण करो।

ज्योतिः शुक्रश्च तेजश्च देवानां सततं प्रियः। भास्वरः सर्वभूतानां दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥

यह ज्योति शुक्र और तेजरूप है। देवताओं का निरन्तर प्रिय है। सब प्राणियों के प्रकाशरूप इस दीपक को ग्रहण करो।

इति दीपं दत्त्वा विष्णौ सङ्कर्षणवासुदेवप्रद्युम्नानिरुद्धपुरुषोत्तमाधोक्षजनृसिंहाच्युतजनार्दनोपेन्द्रहरिकृष्णेति द्वादशनामभिः केशवादिद्वादशनामभिर्वा पुष्पाणि समर्प्य तैरेव तर्पणं कृत्वा पायसघृताप्लुतपूर्णशरावगुडौदनहरिद्रौदनादि 'पवित्रं ते विततम्' इति निवेद्य संकर्षणादि पूर्वोक्तनामभिर्द्वादश कृसराहुतीर्हुत्वा तेनैव शार्ङ्गिणे स्वाहा। श्रियै स्वाहा, सरस्वत्यै स्वाहा, विष्णवे स्वाहा

[1]—नमो अस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे। अथो ये अस्य सत्वानोऽहं तेभ्योऽकरं नमः॥ (तैत्त० ४।५।१।६)

इति हुत्वा विष्णोर्नुकवीर्याणि' 'तदस्य प्रियमभिपाथो' 'प्रतद्विष्णु स्तवते' परामात्रया तन्वा वृधानः, विचक्रमे पृथिवीमेष एताम्' त्रिर्देव पृथिवीमेष एताम्' इति जुहुयात् । पुनः द्वादशनामभिर्जुहुयात् ।

इससे दीपक को देकर विष्णुमें—संकर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, पुरुषोत्तम, अधोक्षज, नृसिंह, अच्युत, जनार्दन, उपेन्द्र, हरी और श्रीकृष्ण ये बारह नामों से या केशव आदि बारह नामों से पुष्पों को समर्पण कर उन्हीं से ही तर्पण कर पायस, गुड, ओदन तथा चित्रौदन को ([1]पवित्रं से विततम्)' इसमन्त्र से निवेदनकर संकर्षण आदि पूर्वोक्त बारह नामों से कृसर (खिचडी) से आहुती देकर उसी से ही शार्ङ्गिणे स्वाहा, श्रियै स्वाहा, सरस्वत्यै स्वाहा और विष्णवे स्वाहा इन नाममन्त्रों से हवन कर [2]विष्णोर्नुकं वीर्याणि, [3]तदस्य प्रियमभिपाथः, प्रतद्विष्णुस्तवते वीर्येण, परोमात्रया [4]तन्वा वृधानः, [5]विचक्रमे पृथिवीमेष एताम् और [6]त्रिर्देवः पृथिवीमेष एताम्, इन मन्त्रों से हवन करे। फिर बारह नामों से हवन करे।

लिङ्गे तु दीपान्तं कृत्वा भवाय देवाय नमः, शर्वाय नमः, ईशाय नमः, पशुपतये नमः, रुद्राय नमः, उग्राय नमः, भीमाय नमः, महते देवाय नम इति पुष्पाणि दत्वा तैरेव तर्पणं कृत्वा 'पवित्रं ते' इति पायसं गुडौदनं च निवेद्य पूर्वोक्तनामभिः कृसरं हुत्वा 'भवस्य देवस्य पत्न्यै स्वाहा' इत्याद्यष्टभिर्गुडौदनं च निवेद्य पूर्वोक्तनामभिः भवाय देवाय सुताय स्वाहा' इत्याद्यैर्हरिद्रौदनं हुत्वा 'त्र्यम्बकं यजामहे' 'मा नो महान्तमुत मानो, मानस्तोके' 'आरात्ते गोघ्नमुत पुरुषघ्ने, विकिरिद्र विलोहित' सहस्राणि सहस्रशः' इति एतैर्हुत्वा शिवाय स्वाहा, शङ्कराय स्वाहा, सहमानाय स्वाहा, शितिकण्ठाय स्वाहा, कपर्दिने स्वाहा, ताम्राय स्वाहा, अरुणाय स्वाहा, अवगुरमाणाय स्वाहा हिरण्यबाहवे स्वाहा, ससिपञ्जराय स्वाहा, बभ्लुशाय स्वाहा इति च जुहुयात् । ततः स्विष्टकृदादि शेषं समाप्य पूर्वोक्तसर्वहविर्भिर्विष्णवे लिङ्गाय वा बलिं दद्यात् ।

लिङ्गमें तो दीपान्तको कर भवदेव, शर्व, ईशान, पशुपति, रुद्र, उग्र, भीम और महान् देव, इनको पुष्पाञ्जलि देकर उन्हीं मन्त्रोंसे तर्पणकर [7]'पवित्रं ते' इस मन्त्रसे पायस और गुडौदन निवेदनकर पूर्वोक्त नाममन्त्रोंसे कृसर से (नमक छोड़कर सब पदार्थ) हवनकर 'भवस्य देवस्य पत्न्यै स्वाहा' इस (पूर्वकथित) आठ मन्त्रोंसे 'भवाय, देवाय सुताय स्वाहा', इत्यादि पूर्वोक्त नामों से हरिद्रौदनका हवनकर [8]'त्र्यंबकं यजामहे, [9]मा नो महान्तमुत

१—पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः । अततप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तस्तत् समाशत ॥ (ऋ० ९।८३।१)।

२—विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि । यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥ (ऋ० १।१५४।१)।

३—तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति । उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः ॥ (ऋ० १।१५४।५)।

४—परो मात्रया तन्वा वृधान न ते महित्वमन्वश्नुवन्ति । उभे ते विद्म रजसी पृथिव्या विष्णो देव त्वं परमस्य वित्से ॥ (ऋ० ७।९९।१)।

५—वि चक्रमे पृथिवीमेष एतां क्षेत्राय विष्णुर्मनुषे दशस्यन् । ध्रुवासो अस्य कीरयो जनास उरुक्षितिं सुजनिमा चकार ॥ (ऋ० ७।१००।४)।

६—त्रिर्देवः पृथिवीमेष एतां वि चक्रमे शतर्चसं महित्वा । प्र विष्णुरस्तु तवसस्तवीयान् त्वेषं ह्यस्य स्थविरस्य नाम ॥ (ऋ० ७ १००।३ । तै० ब्रा० २,४।३, ५)।

७—पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः । अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तस्तत् समाशत ॥ (ऋ० ९।८३।१)।

८—त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥ (ऋ० ७।५९।१२)।

९—मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् । मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ॥ (ऋ० १।११४।७)।

मा नः, मा [1]नस्तोके तनये, [2]आरात्ते गोघ्नमुत पूरुषघ्ने, [3]विकिरिद्र विलोहित, [4]सहस्त्राणि [5]सहस्त्रशः, इनसे हवन कर शिव, शंकर, सहमान, शितिकण्ठ, कपर्दी, ताम्र, अरुण, अपगुरमाण, हिरण्यबाहु, सस्पिञ्जर और बभ्लुश का हवन करे। तदनन्तर स्विष्टकृदादि होमशेष समाप्तकर पूर्वोक्त सब हवियों से विष्णु या लिङ्ग के लिए [6]बलि दे।

मन्त्रस्तु—त्वामेकमाद्यं पुरुषं पुरातनं नारायणं विश्वसृजं यजामहे। त्वमेव यज्ञो विहितो विधेयस्त्वमात्मनात्मन् प्रतिगृह्णीष्व हव्यम्॥ इति। लिङ्गे तु नारायणपदे रुद्रं शिवमिति वदेत्।

मन्त्र यों है—एक, आद्य पुरातन पुरुष विश्वसृज नारायण की हमलोग पूजा करते हैं। आपही विहित यज्ञ हैं, आपही विधान करने वाले हैं। आप अपने से अपने हव्यको ग्रहण करो। लिङ्ग में तो नारायणपद के स्थान में रुद्र तथा शिव कहें।

ततोऽश्वत्थपर्णे 'भूर्भुवः स्वरोम्' इति हुतशेषं निधाय अग्निना सह प्रदक्षिणीकृत्य 'विश्वभुजे आत्मने परमात्मने नमः' इति नत्वा (अङ्गुलीयं कुण्डलद्वयवस्त्रयुग्मेनाचार्यं पूजयित्वा) आचार्याय शतं तदर्द्धं तदर्द्धं द्वादश तिस्र एकां वा गां दत्वा ऋत्विग्भ्योऽपि दक्षिणां दत्वा शतं द्वादश वा विप्रान् भोजयेदिति संक्षेपः।

तदनन्तर पीपलके पत्तेपर 'भूर्भुवः स्वरोम्' इससे हुतशेषको रखकर अग्निके साथ प्रदक्षिणाकर 'विश्वभुजे आत्मने परमात्मने नमः, इससे नमस्कार कर आचार्य के लिए सौ, पचास, पचीस, बारह या तीन या एक गौ देकर ऋत्विजों को भी दक्षिणा देकर सौ या बारह ब्राह्मण का भोजन करावे—यह संक्षेप है।

प्रासादमात्रे नूतने तु मात्स्योक्तजलाशयप्रतिष्ठाविधिमेव कुर्यात्। गोरुत्तारणपात्रीप्रक्षेपादि तु न भवति द्वारलोपात्। वारुणहोमस्थाने वास्तुहोमः। अन्यत्तद्वदेव। इति लिङ्गार्चाप्रतिष्ठाविधिः।

प्रसादमात्रनूतन में तो मत्स्यपुराणोक्त जलाशयप्रतिष्ठाविधि ही करे। गौ का उत्तारण, पात्रीप्रक्षेप आदि नहीं होता है क्योंकि द्वारलोप है। वारुणहोम स्थान में वास्तुहोम होता है। अन्यकर्म उसी के तरह हैं।

(देवानां पुनः प्रतिष्ठाकारणम्)

अथ पुनःप्रतिष्ठा। तामधिकृत्य हयशीर्षपञ्चरात्रे—चाण्डालमद्यसंस्पर्शदूपिता वह्निनाऽथवा। अपुण्यजनसंस्पृष्टा विप्रक्षतजदषिता॥ संस्कार्येति शेषः।

इसके बाद फिर से प्रतिष्ठा का कारण कहते हैं। उस प्रतिष्ठा का प्रारम्भ कर हयशीर्षपञ्चरात्र में कहा है कि—चाण्डाल तथा मद्य (मदिरा) स्पर्श की हुई या अग्नि से दूषित, अपुण्य (पुण्यहीन) मनुष्य से संस्पृष्ट तथा विप्र के रुधिर से दूषित हो तो फिर से संस्कार करे। ऐसा शेष है।

पदार्थादर्शे ब्राह्मे—खण्डिते स्फुटिते दग्धे भ्रष्टे मानविवर्जिते। यागहीने पशुस्पृष्टे पतिते दुष्ट-

---

१—मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा न गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः। वीरान् मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सद्मित् त्वा हवामहे॥ (ऋ० १।११४।८)।

२—आरात् ते गोघ्न उत पूरुषघ्ने क्षयद्वीराय सुम्नमस्मे ते अस्तु। रक्षा च नो अधि च देव ब्रूह्यधा च नः शर्म यच्छ द्विवर्हाः॥ (तै० सं० ४।५।१०।७)।

३—विकिरिद्र विलोहित नमस्ते अस्तु भगवः। यास्ते सहस्त्रँ हेतयोऽन्यमस्मन्नि वपन्तु ताः॥ (तै० स० ४।५।१०।११)।

४—सहस्त्राणि सहस्रशो ये रुद्रा अधिभूम्याम्। तेषाँ सहस्त्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि॥ (तै० स० ४।५।१०।१)।

५—सहस्त्राणीत्यनुवाकस्य दशर्चत्वेनात्र दशभिरित्येवापेक्षितमिति भाति। अत्र द्वादशपदं सर्वत्र दृश्यते। यत्र सदसद्भिर्विचारणीयमिति निर्णयसिन्धुटीकायाम्।

६—कृसर का स्वरूप—ओदनस्तिलमिश्रस्तकृसरः परिकीर्तितः। तिलतण्डुलान् विनिक्षिप्य शृतो वा कृषरो भवेत्॥ अन्यत्र—तिलतण्डुलसंमिश्रः कृषरोऽभिधीयते॥ धर्मसिन्धौ—तिलमिश्रौदनः कृसरः।

भूमिषु ॥ अन्यमन्त्रार्चिते चैव पतितस्पर्शदूषिते । दशस्वेतेषु नो चक्रुः सन्निधानं दिवौकसः ॥ यागः=पूजा । पशुर्गर्दभादि ।

पदार्थादर्श में ब्रह्मपुराण का वचन है कि—खण्डित, टूटी, दग्ध (जली), भ्रष्ट, प्रमाण से हीन, याग (पूजा) से हीन, पशु (गर्दभ आदि) से स्पर्श हुई, पतित से स्पर्श, खराब भूमि में हो, अन्य मन्त्रों से अर्चित हो अर्थात्—उनमें देवता का सन्निवेश नहीं रहता है और पतित स्पर्श से दूषित हो । इन दश प्रतिमाओं में देवता का सन्निधान (समीपत्व रहना) नहीं होता है । याग माने—पूजा । पशु माने—गदहे आदि ।

पञ्चरात्रे—खण्डिता स्फुटिता दग्धा यस्मादर्चाभयावहा ।
तस्मात्समुद्धरेत्तां तु पूर्वोक्तविधिना नरः ॥

पञ्चरात्र में कहा है कि—खण्डित, टूटी तथा जली एसी मूर्ति की पूजा भय को देनेवाली होती है । इस कारण से उस मूर्ति का पूर्वोक्तविधि (पहले कहे हुए विधान से मनुष्य आचरण (उद्धार) करे ।

अर्चाभङ्गादावुपवासः कार्यं, 'न राज्ञो विप्लवेऽश्नीयात्सुरार्चाविप्लवे तथा । इति विष्णुधर्मोक्तेः ।

अर्चा आदि के भग्न होने से उपवास करना चाहिये । विष्णुधर्मपुराण में कहा है कि—राज्यका विप्लव (नाश) और देवता की पूजा में विघ्न हो तो उपवास करे ।

सिद्धान्तशेखरे—चौरचण्डालपतितश्वोदक्यास्पर्शने सति ।
शिवाद्यपहतौ चैव प्रतिष्ठां पुनराचरेत् ॥

सिद्धान्तशेखर में कहा है कि—चौर, चण्डाल, पतित, श्वान (कुत्ता) और रजस्वला इनके स्पर्श में तथा शव आदि के स्पर्श में फिर से प्रतिष्ठा का कार्य करे ।

पञ्चरात्रे—अङ्गादङ्गादिसंधाने प्रतिष्ठां पुनराचरेत् । जलाधिवासविहितनेत्रोन्मीलनवर्जिताम् ॥

पञ्चरात्र में कहा है कि—अंगमें दूसरे अंग आदि का सन्निधान (समीप) हो जाय (अर्थात्—मूर्ति से मूर्तिका सट जाना आदि हो जाय) तो फिरसे प्रतिष्ठा करे । पर उसमें जलाधिवास और नेत्रोन्मीलन न करे ।

शुद्धिविवेके विष्णुः—'द्रव्यवत्कृतशौचानां देवतार्चानां भूयः प्रतिष्ठापने शुद्धिः' इति । अर्चाः= प्रतिमाः । तद्द्रव्यस्य ताम्रादेरुक्तशौचं कृत्वा पुनः प्रतिष्ठां कुर्यादित्यर्थः । स्मृत्यर्थसारेऽप्येवम् ।

शुद्धिविवेक में विष्णु ने कहा है कि—द्रव्य की तरह किया है पवित्रता जिनकी ऐसी पूजित देवताओं की प्रतिमाओं का फिर से प्रतिष्ठापन से शुद्धि होती है । अर्चा=माने प्रतिमा । अर्थात्—उस द्रव्य का तांबा आदि का कही हुई पवित्रता को कर फिर से प्रतिष्ठा करे—यह अर्थ है । स्मृत्यर्थसार में भी यही कहा है ।

(बौधायनसूत्रमते—पुनःप्रतिष्ठाविधिकथनम्)

तद्विधिर्बौधायनसूत्रे—'पूर्वप्रतिष्ठितस्याबुद्धिपूर्वमेकरात्रं द्विरात्रमेकमासं द्विमासं वाऽर्चनादिविच्छेदे शूद्ररजस्वलाद्युपस्पर्शने पूर्वोक्ते काले पुण्याहं वाचयित्वा युग्मान् ब्राह्मणान् भोजयित्वा निशायां जलाधिवासं कृत्वा श्वोभूते कलशपूर्णेन पञ्चगव्येन तत्तन्मन्त्रैः स्नापयित्वाऽन्यं कलशं शुद्धोदकेनापूर्य तस्मिन्नवरत्नानि प्रक्षिप्य तं कलशं तत्तद्गायत्र्याष्टसहस्रमष्टशतमष्टाविंशतिवारं वाऽभिमन्त्र्य तेनोदकेन देवं स्नापयेत्ततः शुद्धोदकेन स्नापयेदष्टसहस्रमष्टशतमष्टाविंशति·वा पुरुषसूक्तेन मूलमन्त्रेण च । ततः पुष्पाणि यथासंभवमर्चयित्वा गुडौदनं निवेदयेत्' इति ।

२—अग्निदग्धे तु दम्भोलिपतने देवमन्दिरे । पुनः प्रतिष्ठा कर्तव्या आर्ते च निस्वनेऽपि वा ॥ संप्रोक्षणविधानेन कुर्यादेवमतन्द्रितः । स्नानसंचलने वापि शवसूतकिसंस्पृशे ॥ चाण्डालपुल्कसोदक्यापतिताद्यभिमर्शने । विण्मूत्रस्पर्शने वापि खरोष्ट्राभिप्रवेशने ॥ सन्ततार्चनलोपेऽपि अङ्गारस्पर्शनेऽपि वा । एवमाद्येषु जातेषु तदा संप्रोक्षयेद् गुरुः ॥ संप्रोक्षणविधाने तु न कालनियमस्तथा । पुण्याहं वाचयित्वा च ब्राह्मणैरुपचारयेत् ॥

उसकी विधि बौधायनसूत्र में कही है। पहले प्रतिष्ठापित मूर्ति का अबुद्धिपूर्वक एक रात, दो रात एक महिना या दो महिना, अर्चन आदि के विच्छेद में तथा शूद्र, रजस्वला आदि से स्पर्श में पहले कहे हुए समय में पुण्याहवाचन कर युग्मब्राह्मणों को भोजन कराकर रात्रि में जलाधिवास कर दूसरे दिन कलशपूर्ण पञ्चगव्य से उन उन मन्त्रों से स्नान कराकर अन्य कलश को पवित्रजल से भरकर उस कलश में नवरत्नों को छोड़कर उस कलश को उन उन गायत्री से आठ हजार, एक सौ आठ, या अठाइसवार अभिमन्त्रण कर उसी जल से देवता को स्नान करावे। तदनन्तर शुद्धोदकजल से स्नान करावे। फिर एकहजार आठ, एक सौ आठ या अठाइस वार पुरुषसूक्त के मूलमन्त्र से हवन करे। तदनन्तर पुष्पों से यथासंभव पूजनकर गुड तथा ओदन निवेदन करे।

बुद्धिपूर्वं तु विच्छेदे पूर्वोक्तां प्रतिष्ठां पुनः कुर्यात् पूर्वोक्तविष्णुवचनात्। इदं मलमासशुक्रास्तादावपि कार्यमिति मदनरत्ने हेमाद्रौ च।

बुद्धिपूर्वक विच्छेदन में तो पहले की हुई प्रतिष्ठाको फिरसे पूर्वोक्त विष्णुपुराण वचन से करे। इसको मलमास, शुक्रास्त आदि में करे यह मदनरत्न और हेमाद्रि में कहा है।

(देवार्चाप्रासादभेदने विधिकथनम्)

देवार्चाप्रसादभेदने तु शूलपाणौ काश्यपः—'वापीकूपारामसेतुसभातडागवप्रदेवतायतनभेदने प्रायश्चित्तं चतस्र आज्याहुतीर्जुहुयात्–इदं विष्णुः' मा नस्तोके, विष्णोः कर्माणि' पादोऽस्य, इति यां देवतामुत्सादयति तस्यै देवतायै ब्राह्मणान् भोजयेत्' इति।

देवार्चा और प्रासादभेदन में तो शूलपाणि में काश्यपने कहा है कि—वापी (वावडी), कूप, आराम (वगीचा), सेतु (पुल), सभा, तलाव, वप्र (सीढी), तथा देवता के स्थानभेदन में प्रायश्चित्त कहा है कि–चार आहुति दे—[1]इदं विष्णुः, मा नस्तोके, [2]विष्णोः कर्माणि और [3]पादोऽस्य से। जिस देवता का उत्सादन (भंग) करे उस देवता के लिए ब्राह्मणों को भोजन करावे।

शङ्खलिखितौ—प्रतिमारामकूपसंक्रमध्वजसेतुनिपातभङ्गेषु तत्समुत्थानं प्रतिसंस्कारोऽष्टशतं च निपातितानाम् इति। समुत्थानं=प्रतिक्रिया। प्रतिसंस्कारः=पुनःप्रतिष्ठा। अष्टशतं पण (तांबे का टुकडा) दण्डश्चेत्यर्थः।

शंखलिखित में कहा है कि—प्रतिमा, वगीचा, कूप=संक्रम (कष्ट या कठिनता से बढने की क्रिया) ध्वज, सेतु (पुल), के गिरने और टूटने पर उसकी प्रतिक्रिया (निराकरण) फिर से संस्कार करे और एक सौ आठ पण (एक कर्ष परिमित तांवा, किसी के मत से ग्यारह तथा किसी के मत से बीस मासे के बराबर तांवे का टुकड़ा। प्राचीन काल में सिक्के के सदृश व्यवहार इसका था) दण्ड दे। समुत्थान माने=प्रतिक्रिया। प्रतिसंस्कार माने=फिर से प्रतिष्ठा। अष्टशत माने=आठ सौ पण दण्ड दे—यह अर्थ है।

(जीर्णोद्धारविधिकथनम्)

अथ जीर्णोद्धारः। स च लिङ्गादौ दग्धे भग्ने चलिते वा कार्यः। अयं चानादिसिद्धप्रतिष्ठितलिङ्गादौ भङ्गादिदुष्टेऽपि न कार्यः, तत्र तु महाभिषेकं कुर्यादिति त्रिविक्रमः। कर्ताऽमुकदेवस्य जीर्णोद्धारं करिष्ये इत्युक्त्वा पुण्याहं वाचयित्वा नान्दीश्राद्धं कृत्वा आचार्यमृत्विजश्च वृत्वा पीठे मण्डलदेवता आवाह्य लिङ्गे—ॐ व्यापकेश्वर हृदयाय नमः' 'ॐव्यापकेश्वर शिरसे स्वाहा' इति। एवं षडङ्गं कृत्वा देवतान्तरे मूलमन्त्रेण षडङ्गं कृत्वा अर्चयेत्। अघोरमन्त्रमष्टोत्तरशतं जप्त्वाऽग्निं

१—इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्य पांसुरे॥ (ऋ० १।२२।१७)।
२—विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे। इन्द्रस्य युज्यः सखा॥ (ऋ० १।२२।१६)।
३—एतावानस्य महिमा तो ज्यायाँश्च पूरुषः। पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि। (ऋ० १०।९०।३) (तै० आ० ३।१२।३) (यजु० ३१।३) (अथर्व० १९।६।३) (साम० ६।१७)।

प्रतिष्ठाप्याघोरेण घृतसर्षपैः सहस्रं हुत्वा इन्द्रादिभ्यो नाम्ना बलिं दत्वा जीर्णदेवं प्रणवेन संपूज्य ब्रह्मादिमण्डलदेवानां होमं पूर्वोक्तं कृत्वा देव प्रार्थयेत्—

अब जीर्णोद्धारविधि कहते हैं। वह लिंग आदिमें दग्ध, भग्न या चलनेपर करे। यह व्यवस्था अनादि सिद्धप्रतिष्ठितलिंगादि में भंगादिदुष्ट में भी न करे। वहाँ तो महाभिषेक करे यह त्रिविक्रम का मत है। कर्ता अमुकदेव का जीर्णोद्धार को करता हूँ यों कहकर पुण्याहवाचन को कहकर नान्दीश्राद्ध को कर आचार्य और ऋत्विजोंका वरणकर पीठपर मण्डलदेवताका आवाहनकर लिंग में—ॐ व्यापकेश्वर हृदयाय नमः। ॐ व्यापकेश्वर शिरसे स्वाहा—इसप्रकार षडंगन्यासकर देवतान्तरमें मूलमन्त्रसे षडंगकर पूजा करे। 'अघोरमन्त्र' से एक सौ आठवार जपकर अग्नि का स्थापन कर 'अघोरमन्त्र' से घृत और पीलीसरसों से एकहजार हवन कर इन्द्रादि देवताओं के नामों से बलि देकर जीर्णदेवता की प्रणव से पूजा कर घी तथा तिलों से ब्रह्मादि मण्डल देवताओं का होम पूर्वोक्तप्रकार से कर देवता की प्रार्थना करे।

जीर्णभग्नमिदं चैव सर्वदोषावहं नृणाम्। अस्योद्धारे कृते शान्तिः शास्त्रेऽस्मिन् कथिता त्वया। जीर्णोद्धारविधानं च नृपराष्ट्रहितावहम्। तदधस्तिष्ठतां देव प्रहरामि तवाज्ञया॥ इति।

जीर्ण और भंग आपका यह शरीर मनुष्यों के सब दोषों को देनेवाली है। इसके उद्धार करने की शान्ति को इस शास्त्रमें आपने कहा है। जीर्णोद्धार का विधान राजा तथा राष्ट्रके हितके लिए है। इसलिए हे देव, आप नीचे रहें। आप की आज्ञा से सस्त्र का प्रहार करता हूँ।

ततः क्षीराज्यमधुदूर्वाभिः समिद्भिश्चाष्टोत्तरसहस्रं शतं वा देवमन्त्रेण हुत्वा, अङ्गानां दशांशेन लिङ्गचालनार्थं सहस्रं शतं वा पायसेन हुत्वा लिङ्गं प्रार्थयेत्—

तदनन्तर क्षीर, आज्य, सहत, दूर्वा और समिधाओं से एकहजार आठ या एक सौ आठवार देवमन्त्र से हवन कर अंगों का दशांश से, लिंग के चालनार्थ एकहजार या सौ वार खीर से हवन कर लिंग की प्रार्थना करे।

लिङ्गरूपं समागत्य येनेदं समधिष्ठितम्। यायास्त्वं सम्मितं स्थानं सन्त्यज्यैव शिवाज्ञया॥ अत्र स्थाने च या विद्या सर्वविद्येश्वरैर्युता। शिवेन सह सन्तिष्ठ' इति मन्त्रितजलेनाभिषिच्य विसर्जयेत्।

लिंगरूप में आकर जिसने इसको स्थित किया है ऐसे शिव की आज्ञा से देव इस स्थान को छोड़कर अपने अभीष्ट स्थान में जाँय। इस स्थान में सब विद्येश्वरों से युक्त जो विद्या है शिवके साथ हो इस मन्त्रित जल से अभिषेक कर विसर्जन करें।

ततोऽस्त्रमन्त्रितेन खनित्रेण खात्वा लिङ्गमादाय नद्यादौ वामदेवेन लिङ्गं प्रणवेन मूर्तिं क्षिपेत्। दारुजं तु मधुनाऽभ्यज्याघोरेण दहेत्। हेमरत्नादिमयं तु दग्धं चलितं वा पुनस्तत्रैव स्थापयेत्। ततः शान्त्यै अघोरेण तिलैः सहस्रं हुत्वा प्रार्थयेत्।

तदनन्तर अस्त्र मन्त्रित खनित्र (फरसा फावड़ा खुरपी) से खनकर लिंगको लेकर नदी आदि में 'वामदेवमन्त्र' से लिंग को प्रणवसे मूर्ति का प्रक्षेप करे। लकड़ी के लिङ्ग को सहत से अभ्यञ्जन कर 'अघोर-मन्त्र' से दहन करे। हेम, रत्न आदि का लिङ्ग दग्ध या चलित फिर से वहीं पर स्थापना करे। फिर शान्ति के लिए 'अघोरमन्त्र' से तिलों द्वारा एकहजार हवन कर प्रार्थना करे।

भगवन् भूतभव्येश लोकनाथ जगत्पते। जीर्णलिङ्गसमुद्धारः कृतस्तवाज्ञया मया॥

हे भगवन्, हे भूतभव्येश, हे लोकनाथ, हे जगत्पते, मैंने तुम्हारी आज्ञा से जीर्णलिङ्ग का उद्धार किया है।

अग्निना दारुजं दग्धं क्षिप्तं शैलादिकं जले। प्रायश्चित्ताय देवेश अघोरास्त्रेण तर्पितम्॥

लकड़ी की मूर्ति को अग्नि से दग्ध किया है। पत्थर आदि की मूर्ति को जल में प्रक्षेप किया है। हे देवेश, प्रायश्चित्त के लिए अघोरास्त्र मन्त्र से तर्पित किया है।

ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि यथोक्तं न कृतं यदि। तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु त्वत्प्रसादान्महेश्वर।

जो मैंने जानकर या अनजान में कहा हुआ कर्म यदि नहीं किया है तो हे महेश्वर, वह सब आप के प्रसाद से पूर्ण ही हो जाय।

ततो यजमानः प्रार्थयेत्—गोविप्रशिल्पिभूतानामाचार्यस्य च यज्वनः।
शान्तिर्भवतु देवेश अच्छिद्रं जायतामिदम्॥

तदनन्तर यजमान प्रार्थना करे—गो, ब्राह्मण, शिल्पी, मनुष्य, आचार्य और यज्ञ करानेवाले की हे देवेश, शान्ति हो और यह कार्य अछिद्र (दोषरहित) हो।

(मूर्तौविशेषः)

मूर्तौ तु विशेषः—त्वत्प्रसादेन निर्विघ्नं देहं निर्मापयत्यसौ।
वासं कुरु सुरश्रेष्ठ तावत्त्वं चाल्पके गृहे॥

वसन् क्लेशं सहित्वेह मूर्त्तिं वै तव पूर्ववत्। यावत्कारयते भक्तः कुरु तस्य च वाञ्छितम्॥ इति।

ततो नवां मूर्त्तिं लिङ्गं वा कृत्वोक्तविधिना स्थापयेत्। मूलं त्वग्निपुराणे स्पष्टम्। इति जीर्णोद्धारः।

मूर्ति में तो विशेष कहा है कि—आपके प्रसाद से शिल्पी निर्विघ्न इस देह का निर्माण करे। हे सुरश्रेष्ठ, तब तक आप इस छोटे घर में निवास करें। क्लेश को सहन कर यहाँ आप रहें जब तक भक्त पूर्ववत् मूर्तिको ठीक बनावे तबतक भक्त को वांछित फल दें। तदनन्तर नवीन मूर्ति या लिंग को लेकर उक्त विधि से स्थापन करे। इसका मूल अग्निपुराण में स्पष्ट है।

(तुलसीग्रहणविचारः)

अथ तुलसीग्रहणम्। देवयाज्ञिककृतं स्मृतिसारे—वैधृतौ च व्यतीपाते भौमभार्गवभानुषु। पर्वद्वये च संक्रान्तौ द्वादश्यां सूतकद्वये॥ तुलसीं ये विचिन्वन्ति ते छिन्दन्ति हरेः शिरः।

अब तुलसीग्रहणविचार कहते हैं—देवयाज्ञिककृतस्मृतिसार में कहा है कि—वैधृति में, व्यतीपात में, मंगलवारमें, शुक्रवारमें, अमावास्या और पूर्णिमामें, संक्रान्तिमें, द्वादशीतिथिमें, जननाशौच तथा मरणशौचमें जो तुलसीको तोड़ते हैं वे हरि के शिरका छेदन करते हैं।

विष्णुधर्मोत्तरे—रविवारं विना दूर्वां तुलसीं द्वादशीं विना।
जीवितस्याविनाशाय प्रविचिन्वीत धर्मवित्॥

विष्णुधर्मोत्तर में कहा है कि—अपने जीवन के अविनाशके लिए धर्मवेत्ता पुरुष रविवार को दूर्वा और द्वादशीतिथि को तुलसीको न तोडे।

तथा—संक्रान्तावर्कपक्षान्ते द्वादश्यां निशि सन्ध्ययोः।
यैश्छिन्नं तुलसीपत्रं तैश्छिन्नं हरिमस्तकम्॥

और संक्रान्ति, रविवार, पक्षान्त (अमावास्या और पूर्णिमा,) द्वादशी, रात्रि तथा सन्ध्या में जो तुलसीपत्र का छेदन करते हैं वे हरिके शिरका छेदन करते हैं।

पाद्मे—द्वादश्यां तुलसीपत्रं धात्रीपत्रं च कार्तिके।
लुनाति स नरो गच्छेन्निरयानतिगर्हितान्॥

पद्मपुराण में कहा है कि—द्वादशीतिथि में तुलसीपत्र को तथा कार्तिकमास में आंवले के पत्ते को जो छेदन करता है वह मनुष्य नरकों में जाता है।

रुद्रयामले—द्वादश्यां च दिवास्वापस्तुलस्यवचयस्तथा।
विष्णोश्चैव दिवास्नानं वर्जनीयं सदा बुधैः॥

रुद्रयामलमें कहा है कि—द्वादशीतिथि में दिनमें शयन करना, तुलसी का छेदन करना और विष्णुको दिनमें स्नान करना सदा विद्वान् को त्याग देना चाहिये।

विष्णुधर्मे—'न छिन्द्यात्तुलसीं विप्रो द्वादश्यां वैष्णवः क्वचित् । देवार्थे तुलसीच्छेदो होमार्थे समिधां तथा ॥ इन्दुक्षये न दुष्येत गवार्थे तु तृणस्य च ।

विष्णुधर्मोत्तर में कहा है कि—वैष्णव ब्राह्मण कभी भी द्वादशीतिथि में तुलसी का छेदन न करे। देवताके कार्य के लिये तुलसी छेदन, होम के लिए समिधाओंको और गौ के लिए तृणका छेदन इन्दुक्षय (अमावास्या) में दूषित नहीं होता है।

(तुलसीग्रहणमन्त्रः)

ग्रहणमन्त्रस्तु पाद्मे—तुलस्यमृतनामासि सदा त्वं केशवप्रिये ।
केशवार्थं विचिन्वामि वरदा भव शोभने ॥ इति ।

ग्रहणमन्त्र तो पद्मपुराणमें कहा है कि—हे केशवप्रिये, तुलसी तुम्हारा सदा अमृत नाम है। केशव के लिए तुमको तोडता हूँ। हे शोभने, तुम वरको देनेवाली हो।

(समित्पुष्पादीनां ग्रहणे समयविचारः)

पारिजाते दक्षः—समित्पुष्पकुशादीनां द्वितीयः प्रहरो मतः ।

परिजातमें दक्षने कहा है कि—समिधा, पुष्प तथा कुशाके छेदन के लिए दूसरा प्रहर माना गया है।

(पुष्पादिपर्युषितविचारः)

अथ पुष्पादेः पर्युषितत्वम् । भार्गवार्चने भविष्ये—प्रहरं तिष्ठते जाती करवीरमहर्निशम् । तुलस्यां बिल्वपत्रेषु सर्वेषु जलजेषु च ॥ न पर्युषितदोषोऽस्ति मालाकारगृहेऽपि च ।

अब पुष्प आदिका पर्युषितत्व कहा है—जातीपुष्प एक प्रहर और करवीर (कनैल) पुष्प एकदिन-रात रहता है। तुलसी, बिल्वपत्र जल में होनेवाले पुष्पों का और मालाकार (माली) घर में भी पर्युषित दोष नहीं होता है।

बृहन्नारदीये—वर्ज्यं पर्युषितं पुष्पं वर्ज्यं पर्युषितं जलम् ।
न वर्ज्यं तुलसीपत्रं न वर्ज्यं जाह्नवीजलम् ॥

बृहन्नारदीयमें कहा है कि—पर्युषित पुष्प और वासीजल त्याग दे, पर तुलसीपत्र तथा जाह्नवीजल वासी त्याग न करे।

तत्रैव पाद्मे—तुलसी पर्युषितं नैव बिल्वं तु त्रिदिनावधि ।
पद्मं पञ्चदिनात्त्याज्यं शेषं पर्युषितं विदुः ॥

वहींपर पद्मपुराण में कहा है कि—तुलसी वासी नहीं होती है। बिल्वपत्र तीनदिन वासी नहीं होता है और कमल पाँचदिन पर्युषित नहीं होता है। शेष (अवशिष्ट) पर्युषित होते हैं।

स्कान्दे—पालाशं दिनमेकं तु पङ्कजं च दिनत्रयम् ।
पञ्चाहं बिल्वपत्रं च दशाहं तुलसीदलम् ॥

स्कन्दपुराणमें कहा है कि—पलाश एकदिन, कमल तीनदिन, पांचदिन बिल्वपत्र तथा दशदिन तुलसीपत्र वासी नहीं होते हैं।

पदार्थादर्शे बोपदेवस्त्वन्यथाह—बिल्वापामार्गजातीतुलसिशमिशताकेतकीभृङ्गदूर्वामन्दांभोजाहिदर्भामुनितिलतसरब्रह्माकह्लारमल्लयः । चम्पास्वारातिकुम्भीदमनमरुबका बिल्वतोहानिशस्तत्रिंशत् ३० त्र्ये ३ का १ र्य ६ री ६ शो ११ दधि ४ निधि ९ वसु ८ भू १ भू १ यमा २ भूय एवम् ॥

अस्यार्थः—शता=शतावरी । मन्दः=मन्दारः । अहिः=नागकेशरः । मुनिः=अगस्त्यः । अश्वारातिः=करवीरः । कुंभी=पाटलेति कैदेवनिघण्टुः । अरयः=षट् । ईशाः=एकादश । उदधयश्चत्वारः । निधयो नव । वसवोऽष्टौ । भूः=एकः । यमौ=द्वौ । बिल्वमारभ्याऽहिपर्यन्तं गणयित्वा दर्भमारभ्य पुनस्त्रिंशदादि गणयेदित्यर्थः । एतद्दिनोत्तरं पर्युषितानीत्यर्थः ।

पदार्थादर्श में बोपदेव ने दूसरा प्रकार कहा है कि—विल्व—तीसदिन, अपामार्ग—तीनदिन, जाती-(चमेली का भेद) एकदिन, तुलसी-छ दिन, शमी-ग्यारहदिन, शतावरी-(शतावर) चारदिन, केतकी (केवडा) नौ दिन, भृंग (भंगरैया) आठदिन, दूर्वा-एकदिन, मन्दार-एकदिन, कमल-दो दिन, नागकेशर-एकदिन, कुशा-तीनदिन, अगस्त्य-तीनदिन, तिल-एकदिन, तगर-छदिन, ब्राह्मी-ग्यारहदिन, कल्हार-चारदिन, चमेली-नौदिन, चम्पा-आठ दिन, करवीर-(कनेर) एकदिन, पाटल-(पाढल) एकदिन, मौलसरी-एकदिन मरवा-(तुलसी की तरह पत्ता होता है) दो दिन और बकुल (मौलसरी) एकदिन, पर्युषित नहीं होते हैं।

टोडरानन्दे स्कान्दे दमनमुपक्रम्य—तस्य माला भगवतः परमप्रीतिकारिणी ।
शुष्का पर्युषिता वापि न दुष्टा भवति कर्हिचित् ॥

टोडरानन्द में स्कन्दपुराण मतसे दमन को प्रारंभकर कहा कि—उसकी (मौलसरी की) माला भगवान् को परम प्रीति को करनेवाली होती है शुष्क या पर्युषित हो तब भी कभी दूषित नहीं होती है।

तिथितत्त्वे मात्स्ये—विल्वपत्रं च माध्यं च तमालामलकीदले । कह्लारं तुलसी चैव पद्मं च मुनिपुष्पकम् ॥ एतत्पर्युषितं न स्यात्कुशाश्च कलिकास्तथा ।

तिथितत्त्वमें मत्स्यपुराण का वचन है कि—विल्वपत्र, माध्य (कुन्द), तमाल, आंवले के पत्र, कह्लार, तुलसी, कमल, मुनिपुष्प (अगस्त्य फूल), कुशा तथा कलिका भी पर्युषित नहीं होते हैं।

स्मृतिसारावल्याम्—जलजानां च सर्वेषां पत्राणामक्षतस्य च । कुशपुष्पस्य रजतसुवर्णकृतयोरपि ॥ न पर्युषितदोषोऽस्ति तीर्थतोयस्य चैव हि । मुकुलैर्नार्चयेद्देवं चम्पकैर्जलजैर्विना ॥

स्मृतिसारवली में कहा है कि—जल में होनेवाले विना खण्डित पुष्प तथा पत्ते, कुशपुष्प, रजत और सुवर्ण के पुष्प तथा तीर्थ का जल कभी वासी नहीं होता है। चम्पा तथा जल में होनेवाले पुष्पों के विना मुकुल (कली) पुष्पों से देवता का अर्चन न करे।

(शिवनिर्माल्यनिर्णयकथनम्)

अथ शिवनिर्माल्यनिर्णयः । सिद्धान्तशेखरे—धराहिरण्यगोरत्नताम्ररौप्यांशुकादिकान् ।
विहाय शेषं निर्माल्यं चण्डेशाय निवेदयेत् ॥

शिवनिर्माल्यग्रहणनिर्णय करते हैं। सिद्धान्तशेखर में कहा है कि—धरा[1] (पृथिवी), सुवर्ण, गौ, रत्न, तांबा, चांदी, वस्त्र आदि को छोडकर चण्डेश के लिए निवेदन करे।

अन्यदन्नादि पानीयं ताम्बूलं गन्धपुष्पकम् । दद्याच्चण्डाय निर्माल्यं शिवभुक्तं तु सर्वशः ॥

अन्य अन्न आदि, जल, तांबूल, गन्ध और पुष्प शिवभुक्त निर्माल्य (भगवान् शंकर को निवेदित किया हुआ सब चण्डेश को दे देना चाहिये।) सब चण्डके लिये दे।

आचार्यशिवचण्डानामाज्ञाभङ्गे तु लक्षकम् । धनस्य भक्षणे तेषां पादोनं लक्षमीरितम् ॥
निर्माल्ये भक्षिते लक्षपादतः शुद्धिरीरिता । दानं च भक्षणसमं तदर्द्धं तदुपेक्षणे ॥

आचार्य शिव तथा चण्डकी आज्ञा भंगमें एक लाख, उसके धनका भक्षण करे पाद ऊन और निर्माल्यका भक्षण करे तो लक्षपाद जप से शुद्धि होती है। भक्षण के समान दान तथा उपेक्षा करने से अर्ध से शुद्धि होती है।

अकामाद्भक्षणे यद्वा निर्माल्यस्य जपेत्सुधीः । ब्रह्मपञ्चकसाहस्रमर्द्धेन सहितं ततः ॥

या तदनन्तर अज्ञान से भक्षण करने पर साढे पांच हजार गायत्रीजप से बुद्धिमान् की शुद्धि होती है।

कामतो भक्षणे दीक्षा प्रायश्चित्तं न चान्यतः । निर्माल्यलङ्घनेऽघोरं प्रजपेदयुतं ततः ॥ स्पर्शश्च लङ्घनसमो विक्रयो भक्षणेन च ।

१—मनुष्य अपवित्र तथा भिन्न मर्यादा से युक्त होकर जो निर्माल्य को भक्ति से शिर में धारण करेगा घोर नरक में जाकर तिर्यक् योनि में उत्पन्न होता है।

इच्छा से भक्षण में दीक्षा ग्रहण करे। दूसरा प्रायश्चित्त नहीं है। निर्माल्यके लंघनमें 'अघोरमन्त्र' को अयुत संख्य जप करे। स्पर्श लंघन के तुल्य होता है तथा विक्रय भी भक्षण के सदृश होता है।

स्मृत्यर्थसारेऽपि—शैवसौरनिर्माल्ये नैवेद्यभक्षणे चान्द्रम्, अभ्यासे द्विगुणम्, अत्याभ्यासे प्रपतनम्, अन्यनिर्माल्येऽप्यनापद्येवम्, इति। इदं च ज्योतिर्लिङ्गाद्यतिरिक्तविषयम्।

स्मृत्यर्थसारमें भी कहा है कि—शैव और सौर—(सूर्य) के निर्माल्य नैवेद्य भक्षणमें चान्द्रायण कहा है। अभ्यास में (अर्थात्—वारंवार भक्षणमें) द्विगुणित तथा अत्यन्ताभ्यास में 'प्रतपन' प्रायश्चित कहा है। (किसी पुस्तक में—प्रतपन की जगह 'पतनम्' यह पाठ है—अर्थात्—उसका पतन ही जाता है।) दूसरे निर्माल्यभक्षण में—विना विपत्ति में यही प्रायश्चित्त है। यह ज्योतिर्लिंगादि के अतिरिक्त विषयक है।

तथा च पुरुषार्थप्रबोधे भविष्ये—ज्योतिर्लिङ्गं विना लिङ्गं यः पूजयति सत्तमः।
तस्य नैवेद्यनिर्माल्यभक्षणात्तप्तकृच्छ्रकम्॥

और पुरुषार्थप्रबोध में भविष्यपुराण का वचन है 'कि—जो उत्तम पुरुष ज्योतिर्लिंग के बिना लिंगका पूजन करता है। उसके निर्माल्य तथा नैवेद्य भक्षण से 'तप्तकृच्छ्र' प्रायश्चित्त होता है।

शालग्रामोद्भवे लिङ्गे बाणलिङ्गे स्वयंभुवि। रसलिङ्गे तथार्षे च सुरसिद्धप्रतिष्ठिते॥
हृदये चन्द्रकान्ते च स्वर्णरूप्यादिनिर्मिते। शिवदीक्षावता भक्तेनेदं भक्ष्यमितीर्यते॥

शालग्रामद्वारा निर्मित स्वयंनिर्गत [1]बाणलिंग में और रसलिंग में, आर्षलिंग में, देवतासिद्ध प्रतिष्ठित लिंगमें, हृदयलिंग में, चन्द्रकान्त (चन्द्रकान्तमणि), सुवर्ण, रूप्य आदि द्वारा निर्मित लिंग में शिवदीक्षावाला भक्त इनका भक्षण करे—ऐसा कहा है।

तथा—बाणलिङ्गे स्वयंभूते चन्द्रकान्ते हृदि स्थिते।
चान्द्रायणसमं ज्ञेयं शम्भोर्नैवेद्यभक्षणम्॥

और स्वयं उत्पन्न बाणलिंग में, चन्द्रकान्तमणिलिंग में तथा हृदयलिंग में शंभु के नैवेद्य भक्षण चान्द्रायण के समान जानना चाहिये।

लिङ्गे स्वयम्भुवे बाणे रत्नजे रसनिर्मिते। सिद्धप्रतिष्ठिते चैव न चण्डाधिकृतिर्भवेत्॥ यत्र चण्डाधिकारोऽस्ति तद्भोक्तव्यं न मानवैः। चण्डाधिकारो नो यत्र भोक्तव्यं तत्र भक्तितः॥

स्वयं प्रादुर्भूत बाणलिंगमें, रत्नलिंगमें, रसनिर्मितलिंगमें, और प्रतिष्ठितलिंग में 'चण्डाधिकृत'—(चण्डका अधिकार) नहीं होता है। जहाँपर चण्डाधिकार होता है वहाँपर मनुष्यों को उसका भोजन नहीं करना चाहिये। जहाँ चण्डाधिकार नहीं है वहाँ भक्ति से भोजन करे।

त्रैविक्रम्याम्—बाणलिङ्गे च लौहे च सिद्धलिङ्गे स्वयम्भुवि। प्रतिमासु च सर्वासु च चण्डोऽधिकृतो भवेत्॥

त्रैविक्रमी में कहा है कि—बाणलिंग में, लोहलिंगमें, सिद्धलिंगमें, स्वयं उत्पन्नलिंगमें और सब प्रतिमाओं में चण्डका अधिकार होता है।

अत्र—ब्रह्महापि शुचिर्भूत्वा निर्माल्यं यस्तु धारयेत्। तस्य पापं महच्छीघ्रं नाशयिष्ये महाव्रते॥ इति स्कान्दादशुचिना न ग्राह्यं शिवनिर्माल्यं, किन्तु स्नात्वेति स्मार्ताः। अनुपनीतेन न ग्राह्यमिति श्रीदत्तः। शिवदीक्षाहीनैर्न ग्राह्यमिति शैवाः।

१—वीरमित्रोदये लक्षणप्रकाशे-पक्वजम्बूफलाकारं कुक्कुटाण्डसमाकृतिम्। भुक्तिमुक्तिप्रदं चैव बाणलिंगमुदाहृतम्॥ सदा सन्निहितस्तत्र शिवः सर्वार्थसाधकः। कृतप्रतिष्ठं तल्लिङ्गं बाणाख्येनासुरेण च॥ चिपिटे पूजिते तस्मिन् गृहभङ्गो भवेद् ध्रुवम्। एकपार्श्वच्युते धेनुपुत्रदारधनक्षयः॥ शिरसि स्फुटिते बाणे व्याधिर्मरणमेव च। अर्च्यं स्यात्कापिलं लिङ्गं मुनीनां मोक्षकाङ्क्षिणाम्॥ तीक्ष्णाग्रं वक्रशीर्षं च त्र्यस्रं लिङ्गं च वर्जयेत्। पूजितव्यं गृहस्थेन वर्णोनं अमरोपमम्॥

यहाँपर जो निर्माल्य को धारण करता है वह ब्रह्महत्यारा भी पवित्र होकर उसका पाप बड़ी जल्दीसे हेमहाव्रते, नाशको प्राप्त होता है—इस स्कन्दपुराण वचनसे। अपवित्रावस्था से शिवनिर्माल्य न ग्रहण करे। कन्तु स्नानकर ग्रहण करे—यह स्मार्तों का कथन है। जिसका उपनयन न हुआ हो वह ग्रहण न करे—यह श्रीदत्तका कथन है। शैवों का कथनःहै कि—शिवदीक्षा हीनों को ग्रहण नहीं करना चाहिये।

तिथितत्त्वे हेमाद्रौ च परिशिष्टे—अग्राह्यं शिवनैवेद्यं पत्रं पुष्पं जलं फलम्।
शालग्रामशिलासङ्गात् सर्वं याति पवित्रताम्॥
पञ्चायतनपूजायां तन्त्रेण निवेदितमित्यर्थः।

तिथितत्त्वमें और हेमाद्रिके परिशिष्टमें कहा है कि—शिवका नैवेद्य, पत्र, पुष्प, फल और जल—इनको ग्रहण (स्वयं उपभोगमें ग्रहण) न करे। शालग्रामशिलाके संग (संबन्ध) से सब पवित्रताको प्राप्त हो जाता है।

पञ्चायतन (पञ्चदेवता विष्णु-शिव-सूर्य-गणेशदुर्गाभ्यो नमः।) पूजामें एकतन्त्र (एक साथ) से निवेदन करे—यह अर्थ है।

शिवपुराणे—ये वीरभद्रशपिताः शिवभक्तिपराङ्मुखाः। शंभोरन्यत्र देवेषु ये भक्ता ये न दीक्षिताः। तेषामनर्हमीशस्य तत्प्रसादचतुष्टयम्॥

शिवपुराणमें कहा है कि—जिसको वीरभद्रका शाप लगता है। जो शिवभक्ति से पराङ्मुख (विपरीत मुख) हैं—जो शंभुसे अन्यत्र देवताओं में भक्त हैं जो दीक्षित नहीं है। उनको चारों (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) प्रसाद नहीं प्राप्त होते हैं।

काशीखण्डे—जलस्य धारणं मूर्ध्नि विश्वेशस्नानजन्मनः। एष जालन्धरो बन्धः समस्तसुरवल्लभः।

काशीखण्ड में कहा है कि—विश्वेश के स्नान जलका शिर में धारण करना यह जालन्धर बन्ध (महामुद्रां नभोमुद्रामुड्डीयमानं जलन्धरम्। मूलबन्धं तु यो वेत्ति स योगी योगसिद्धिभाक्॥ यथा बध्नाति च सिरा जालमधोगामि न भोजनम्। एष जलन्धरो बन्धः कण्ठे दुःखौघनाशनः। जलन्धरे कृते बन्धे कण्ठसंकोचलक्षणे। न पीयूषं पतत्यग्नौ न च वायुः प्रधावति॥ काशी ख० अ० ४१) समस्त देवता को प्रिय है।

तथा—स्नापयित्वा विधानेन यो लिङ्गस्नपनोदकम्।
त्रिः पिबेत् त्रिविधं पापं तस्येहाशु विनश्यति॥

और—जो लिंगके स्नपनोदक जलके विधान से स्नान कराकर तीनवार पान करता है उसके शीघ्र ही तीन प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं।

लिङ्गस्नपनवार्भिर्यः कुर्यान्मूर्ध्न्यभिषेचनम्। गङ्गास्नानफलं तस्य जायतेऽत्र विपाप्मनः।
इदं पूर्ववाक्यवशाद्विश्वेश्वरविषयमिति केचित्। काशीस्थपुराणप्रसिद्धसर्वलिंगविषयं काशीखण्डे रत्नेश्वराख्याने तथैव दर्शनादित्यन्ये।

जो लिंग के स्नपन (स्नान किये) जल को शिरपर अभिषेचन करता है उस पाप विहीन के यहाँपर 'गङ्गास्नान' करनेका फल मिलता है।

यह पूर्ववाक्यवश से विश्वेश्वरविषयक है यह किन्हीं का मत है। काशीस्थपुराणप्रसिद्धसर्वलिंग विषयक है। काशीखण्ड में रत्नेश्वराख्यानमें वैसा ही देखा है। ये अन्य कहते हैं।

(कृषिकथनम्)

अथ कृषिः राजमार्तण्डः—अक्षेपूत्तरपौष्णवैष्णवमघामूलानुराधाश्विनीप्राजापत्यकरद्विदैवतगुरुप्रालेयपादेषु च। निर्दोषर्षभैर्हलैश्च सुमनोमालाभिरभ्यर्चितैर्दत्त्वा क्षेत्रपतेर्बलिं हलधरः क्षेत्रं ततः कर्षयेत्॥

अब कृषि कहते है। राजमार्तण्ड में कहा है कि—तीनों उत्तरा, रेवती, श्रवण, मघा, मूल, अनुराधा, अश्विनी, रोहिणी, हस्त, विशाखा, पुष्य, शतभिषा, दोषरहित बैल और हल के द्वारा जिनकी सुन्दर पुष्पमाला आदि से पूजा की गयी हो क्षेत्रपति (क्षेत्रपालवलि) को बलिदान देकर किसान को हल चलाना चाहिये।

प्राजेशश्रवणोत्तरादितिमघामार्तण्डतिष्याश्विनी पौष्णानुष्णमरीचयः शतभिषक् स्वाती विशाखा तथा। जीवार्केन्दुसितेन्दुनन्दनदिने लग्ने च सौम्योदये। सस्यानां वपने तथैव लवने शस्तास्तथा रोपणे॥

रोहिणी, श्रवण, तीनों उत्तरा, पुनर्वसु, मघा, हस्त, पुष्य, अश्विनी, रेवती, मृगशिरा, शतभिषा, स्वाती, विशाखा, बृहस्पतिवार, रविवार, सोमवार, शुक्रवार, बुधवार तथा इन ग्रहोंके लग्न एवं लग्नमें शुभग्रहों के उदयमें (अथवा—बुध का उदय हो) ऐसे शुभ समय में बीजवपन, लवन धान्य में से घासफूस को हटाना, (लावणी, निरवनी पर्यायवाचक शब्द हैं) इनमें धान्यारोपण भी करना चाहिये।

चण्डेश्वरः—हस्तचित्रादितिस्वातीरेवत्यां श्रवणत्रये। स्थिरलग्ने गुरोर्वारे बीजं धार्यं ज्ञशुक्रयोः॥

चण्डेश्वरने कहा है कि—हस्त, चित्रा, पुनर्वसु, स्वाती, रेवती, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, स्थिरलग्न, गुरुवार, बुधवार तथा शुक्रवार में बीजको बोना चाहिये।

'ॐ धनदाय सर्वलोकहिताय देहि मे धान्यं स्वाहा।' लेखयित्वा इमं मन्त्रं धान्यागारे निधापयेत्। सस्यवृद्धिं परां कुर्यात्पूजितं प्रतिपूजयेत्॥

ॐ धनदाय सर्वलोकहिताय देहि मे धान्यं स्वाहा—धन देनेवाले सब लोक के हितकारी को नमस्कार है। मुझे धान्य दो। इस मन्त्रको लिखकर धान्यागार (जहाँपर धान्य बहुत हो कोठार) में स्थापन करे तो सस्य की वृद्धि को पराकाष्ठा से करे और पूजित को पूजित भी करता है।

दक्षिणदिङ्मुखगमनं गमनमभिनवासु नारीषु। व्ययमपि सस्यधनानां न बुधा बुधवासरे कुर्युः॥ शनिवारे च नो कार्यो धनधान्यव्ययो बुधैः।

नवीनस्त्रियों का दक्षिणदिशामें गमन, सस्य (खेत) धान्योंका व्यय विद्वान् बुधवार में न करें और शनिवारमें धन और धान्यका व्यय विद्वान् न करें।

(वस्त्रधारणविचारः)

अथ वस्त्रम्। श्रीपतिः—रोहिणीषु करपञ्चकेऽशुभे त्र्युत्तरासु च पुनर्वसुद्वये।
रेवतीषु वसुदेवते च भे नव्यवस्त्रपरिधानमिष्यते॥

अथ वस्त्रको कहते हैं। श्रीपतिने कहा है कि—रोहिणी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अवि—मेष, तीनों उत्तरा, पुनर्वसु, पुष्य, रेवती, धनिष्ठा, इन नक्षत्रों में नवीनवस्त्र को पहना चाहिये।

जीर्णं रवौ सततमम्बुभिरार्द्रमिन्दौ भौमे शुचे बुधदिने तु भवेद्धनाय।
ज्ञानाय मन्त्रिणि भृगौ प्रियसङ्गमाय मन्दे मलाय च नवाम्बरधारणं स्यात्॥

रविवार को नया वस्त्र धारण करने से जल्दी जीर्ण (फटना-गलना) होता है। सोमवार को नया वस्त्र पहनने से जल से सदा भीगा रहता है। मंगलवार को नया वस्त्र पहनने से शोक होता है। बुधवार को नया वस्त्र धारण करने से धन मिलता है। गुरुवार को नूतन वस्त्र का उपयोग करने से ज्ञान मिलता है। शुक्रवार को नवीन वस्त्र के उपयोग से प्रियजनों से समागम होता है और शनिवार को नूतन वस्त्र के धारण से मलिनता होती है।

रोहिणीगुरुपुनर्वसूत्तरे या बिभर्त्ति नववस्त्रभूषणे।
सा न योपिदवलम्बते पतिं स्नानमाचरति वारुणेऽपि या॥

रोहिणी, पुष्य, पुनर्वसु और उत्तरा तीनों इनमें, स्त्री नूतन वस्त्र तथा आभूषण पहनती है एवं जो स्त्री शतभिषा में स्नान (प्रसूतिस्नान) करती है वह पतिका अवलम्ब प्राप्त करने में असमर्थ रहती है।

(अलङ्कारवलयादिकथनम्)

अथालङ्कारवलयादि। दैवज्ञवल्लभः—नासत्यपूपवसुभिः करपञ्चकेन मार्तण्डभौमगुरुदानवमन्त्रिवारे। मुक्तासुवर्णमणिविद्रुमशङ्खदन्तरक्ताम्बराणि विधृतानि भवन्ति सिद्ध्यै॥

दैवज्ञवल्लभ का मत है कि—अश्विनी, रेवती, धनिष्ठा, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा और अनुराधा रवि मंगल, गुरु तथा शुक्रवार इनमें मोती, सुवर्ण, मणि, मूंगा, शंख, दन्त (हाथी दांत) और लालवस्त्र धारण करनेसे सिद्धि होती है।

ज्योतिर्निबन्धे—हस्तानुराधमृगपूषधनिष्ठयुक्तचित्रोत्तरासु च पुनर्वसुरोहिणीषु। लग्ने स्थिरे रविसुतेन्दुजजीववारे हेमादिधारणविधिः कथितो नराणाम्॥

ज्योतिर्निबन्धका मत है कि—हस्त, अनुराधा, मृगशिरा, रेवती, धनिष्ठा चित्रा, तीनों उत्तरा, पुनर्वसु, रोहिणी, स्थिरलग्न, शनि, बुध तथा गुरुवार से स्वर्णादिधारण श्रेयस्कर होता है।

तत्रैव श्रीपतिः—पौष्णाश्विनीवसुकरादिषु पञ्चभेषु कौसुम्भहेममणिविद्रुमकाचशङ्खाः। नार्या धृताः सुतसुखार्थकरा भवन्ति ब्राह्मोत्तरादितिगुरुष्वसुखाय भर्तुः॥

श्रीपति ने कहा है कि—रेवती, अश्विनी, धनिष्ठा, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा इन नक्षत्रों में कौसुभवस्त्र (लाल रंग के वस्त्र) स्वर्ण, मणि, मूंगा, कांच और शंख इनको धारण करनेवाली स्त्रियाँ पुत्रसुख एवं धनसे युक्त होती हैं। रोहिणी, उत्तरा, पुनर्वसु और पुष्य इनमें कही हुई वस्तु धारण करने से पति पीड़ा का अनुभव होता है।

तत्रैव—शङ्खादिवररत्नानि पुष्यादित्युत्तरासु च। रोहिण्यां चैव गृह्णीत भर्तुर्जीवितकाङ्क्षिणी॥

वहीं पर कहा है कि—पुष्प, पुनर्वसु, तीनों उत्तरा और रोहिणी इनमें पति दीर्घायु की कामनावाली स्त्री शंखादि श्रेष्ठरत्नधारण करे।

(सूचीकर्मकथनम्)

अथ सूचीकर्म—वासवादितिभत्वाष्ट्रमैत्रचन्द्राश्विनीषु च।
सूचीकर्म तनुत्राणमेभिर्ऋक्षैः प्रशस्यते॥

अब सूची (सूई से कपड़ा सीना) कर्म कहते हैं—धनिष्ठा, पुनर्वसु, चित्रा, अनुराधा, मृगशिरा, और अश्विनी इन नक्षत्रों में कपड़े की सिलाई करना प्रशस्त है।

(शय्याविचारः)

अथ शय्या—हस्तादितिब्रह्मगुरूत्तराणि पौष्णाश्विमूलेन्दुभचित्रभानि।
वारेषु जीवेन्दुसितेन्दुजानां शय्यासनारम्भणमुत्तमं स्यात्॥

अब शय्याकर्म कहते हैं। हस्त, पुनर्वसु, रोहिणी, पुष्य, तीनों उत्तरा, रेवती, अश्विनी, मूल, मृगशिरा तथा चित्रा इन नक्षत्रों में, बृहस्पति सोम, शुक्र और बुध इन वारों में शय्या आसनादिका आरम्भ उत्तम कहा गया है।

(शस्त्रधारणकथनम्)

अथ शस्त्रधारणम्—पुष्ये चादितिचित्रपद्मतनये शक्रोत्तरा रेवतीस्वातीवाजिविशाखमित्रसहिते भानौ गुरौ भार्गवे। कुम्भे कीटगृहे वृषे मृगपतौ चेन्दौ शुभैर्वीक्षिते सन्नाहः शरखड्गकुन्तछुरिका धार्या नृपाणां हिताः॥

अब शस्त्रधारण कहते हैं। पुष्य, पुनर्वसु, चित्रा, रोहिणी (पद्मतनय), ज्येष्ठा, तीनों उत्तरा, रेवती, स्वाती, अश्विनी, बिशाखा तथा अनुराधा, इन नक्षत्रों में रविवार, गुरुवार और शुक्रवार में कुम्भ, वृश्चिक, वृष तथा सिंह के चन्द्रमा के शुभ दृष्ट होने पर बाण, तलवार, भाला, छूरी आदि राजाओं के लिये धारण करना शुभप्रद है।

(स्वामिसेवाकथनम्)

अथ स्वामिसेवा। चण्डेश्वरः—रोहिण्युत्तरपौष्णेषु वसुवारुणयोरपि।
सेवेत स्वामिनं भृत्यः शुभवारोदये तथा॥

अब स्वामीसेवा का मुहूर्त कहते हैं—रोहिणी, तीनों उत्तरा, रेवती, धनिष्ठा और शतभिषा इन नक्षत्रों में एवं शुभ वार के उदय में नौकर को स्वामी की सेवा प्रारम्भ करना चाहिए।

ज्योतिर्निबन्धे—दासीदासादिभृत्यानां कुर्यात्संग्रहणं बुधे।
स्थिरलग्ने शुभैर्दृष्टे मन्दवारे विशेषतः॥

ज्योतिर्निबन्ध में कहा है कि—दास, दासी, भृत्यादिकों का संग्रह बुधवार विशेषकर स्थिर लग्न में शुभ ग्रहों से दृष्ट शनिवार को करना चाहिये।

(गजाश्वदोलाकथनम्)

अथ गजश्वदोलाः । स एव—पौष्णप्रजेशादितिभद्वयानि हस्तादिषट्कश्रवणोत्तराणि ।
दोलादिमातङ्गतुरङ्गमाणारोहेणेऽभीष्टफलप्रदानि ॥

अब गजाश्वदोलारोहण (पूर्वोक्तग्रन्थ से कहते हैं) रेवती, रोहिणी, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, श्रवण तथा तीनों उत्तरा इन नक्षत्रों में पालकी, हाथी, घोड़े इत्यादि को सवारी करने से अभीष्टफल की प्राप्ति होती है ।

(नृत्यकथनम्)

अथ नृत्यम्—हस्तः पुष्यो वासवं रोहिणी च ज्येष्ठा पौष्णं वारुणं चोत्तराश्च ।
पूर्वाचार्यैः कीर्तितश्चक्रवर्ती नृत्यारम्भे शोभनोऽयं भवर्गः ॥

अब नृत्य कहते हैं । हस्त, पुष्य, धनिष्ठा, रोहिणी, ज्येष्ठा, रेवती, शतभिषा और तीनों उत्तरा, इनमें पूर्वाचार्यों द्वारा नक्षत्रों का समूह नृत्यारम्भ में चक्रवर्तीयोग कहा है । जो श्रेष्ठ है ।

(राजदर्शनकथनम्)

अथ राजदर्शनम् । श्रीपतिः—मृगाश्विपुष्यश्रवणश्रविष्ठाहस्तध्रुवत्वाष्ट्रभपूषभानि ।
मैत्रेण युक्तानि नरेश्वराणां विलोकने भानि शुभप्रदानि ॥

अब राजदर्शन कहते हैं । श्रीपति ने कहा है कि—मृगशिरा, अश्विनी, पुष्य, श्रवण, धनिष्ठा, हस्त, तीनों उत्तरा, रोहिणी, चित्रा तथा रेवती ये नक्षत्र अनुराधा से युक्त राजाओं के दर्शन के योग हैं ।

(क्रय-विक्रयादिकथनम्)

अथ क्रयविक्रयौ—भाद्रद्वयत्रिदशमन्त्रिदिवाकरेषु मूलानिलोत्तरतुरङ्गमरेवतीषु ।
सारङ्गपाणिरजनीकरमैत्रभेषु लाभः सदैव भवति क्रयविक्रयाभ्याम् ॥

अब क्रय-विक्रय को कहते हैं । पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, पुष्य, मूल, स्वाती, तीनों उत्तरा, रेवती सारङ्गपाणि-श्रवण, मृगशिरा और अनुराधा इन नक्षत्रों में क्रय-विक्रय से सदैव लाभ होता है ।

(वस्त्रे तु विशेषः)

वस्त्रे तु—चित्रा शतभिषा स्वाती रेवती चाश्विनी शुभा ।
श्रवणश्च तथा प्रोक्तो वस्त्राणां क्रयणे शुभः ॥

कपड़ों को खरीदा कहते हैं । चित्रा, शतभिषा, स्वाती, रेवती, अश्विनी तथा श्रवण इन नक्षत्रोंमें वस्त्र का खरीदना शुभ होता है ।

(सेतुकथनम्)

अथ सेतुः—स्वातीयुक्ते मन्दवारे वृषलग्ने शुभे दिने ।
सेतूनां बन्धनं कार्यं ध्रुवभे चार्कजीवयोः ॥

पुल बान्धने का मुहूर्त कहते हैं । स्वाती से युक्त शनिवार, वृषलग्न, शुभ दिन में तथा ध्रुवनक्षत्रों में रवि एवं बृहस्पति के दिन सेतुबन्धन करना चाहिये ।

(पशुकृत्यकथनम्)

अथ पशुकृत्यम् । श्रीपतिः—चित्रोत्तरावैष्णवरोहिणीषु चतुर्दशीदर्शदिनाष्टमीषु ।
स्थानप्रवेशं गमनं विदध्यात् पुमान् पशूनां न कदाचिदेव ॥

अब पशुकृत्य कहते हैं । चित्रा, तीनों उत्तरा, श्रवण, रोहिणी, चतुर्दशी, अमावास्या तथा अष्टमी के दिन पुरुष कभी भी पशुओं के स्थान में प्रवेश और गमन न करे ।

चण्डेश्वरः—हस्तमूलविशाखासु रेवत्यां श्रवणे तथा । मैत्रे च वारुणे श्रेष्ठं पशुक्रयणमुच्यते ॥ पूर्वात्रयामृतमयूखहुताशनेषु इन्द्राग्निवाजिसुवारणशङ्करेषु । एतेषु गोमहिषदन्तितुरङ्गमादिनाना-प्रकारपशुजातिगतिः प्रशस्ता ।

चण्डेश्वर ने कहा है कि—हस्त, मूल, विशाखा, अश्विनी, रेवती, श्रवण, अनुराधा और शतभिषा, इनमें पशु खरीदना श्रेष्ठ है। तीनों पूर्वा, मृगशिरा, कृत्तिका, विशाखा, अश्विनी, धनिष्ठा, शतभिषा, आर्द्रा इस नक्षत्रों में गौ, भैंस, हाथी, घोड़ा, आदि नाना प्रकार के पशु जाति का संग्रह श्रेष्ठ है।

(गजदन्तच्छेदकथनम्)

अथ गजदन्तच्छेदः। ज्योतिर्निबन्धे—त्वाष्ट्रे वैष्णव अश्विन्यामादित्ये वसुदैवते।
दन्तिनां शुभदं कर्म पुष्ये हस्ते च कीर्तितम् ॥

अब गजदन्तच्छेदन (हाथी के दांत तोड़ने का मुहूर्त) कहते हैं। ज्योतिर्निबन्ध में कहा है कि—चित्रा, श्रवण. अश्विनी, पुनर्वसु, धनिष्ठा, पुष्य और हस्त इनमें हाथीदांत तोड़नेका (कर्तन) मुहूर्त शुभ है।

(निक्षेपकथनम्)

अथ निक्षेपः—भरणी त्रीणि पूर्वाणि आर्द्राश्लेषा मघा तथा। चित्रा ज्येष्ठा विशाखा च मूलं मृगपुनर्वसू ॥ एभिर्दत्तं प्रयुक्तं च यद्यन्निक्षिप्यते धनम्। पृष्ठतो धावमानस्य धनिनो नोपपद्यते ॥

अब निक्षेप (धनके रखने का मुहूर्त) कहते हैं—भरणी, तीनों पूर्वा, आर्द्रा, आश्लेषा, मघा, चित्रा, ज्येष्ठा, विशाखा, मूल, मृगशिरा और पुनर्वसु इन नक्षत्रों में दिया हुआ काम में लगाया हुआ तथा रखा हुआ धन पीछे दौड़ते रहने पर भी वापिस धनी को नहीं मिलता है।

(ऋणमोक्षकथनम्)

अथ ऋणमोक्षः। श्रीधरः—वागीशमन्ददिवसांशकलग्नयुक्ते रिक्तासु मन्ददिवसे कुलिकोदये च।
मैत्रद्वितीयपदमैत्रमुहूर्तयुक्ते राश्युद्गमे च ऋणमोक्षमुशन्ति सन्तः ॥

अब ऋणमोक्ष कहते हैं। बृहस्पति और शनि इन दो वारोंमें तथा इनके नवमांश युक्त लग्नों में, रिक्ता तिथि में, शनिवार में, कुलिकयोग (रविवार को चौथा, सोमवार को छठा, मंगलवार को आठवां, बुधवार को दशवां, गुरुवार को बारहवां, शुक्रवार को चौदहवां और शनिवार को दूसरा मुहूर्त) के उदय में तथा किसी राशि के उदयकाल में ऋणमोक्ष शुभ कहा है।

(राजमुद्राकथनम्)

अथ राजमुद्रा—मृदुध्रुवक्षिप्रचरेषु भेषु योगे प्रशस्ते शनिचन्द्रवर्जम्।
वारे तिथौ पूर्णजयाह्वये च मुद्राप्रतिष्ठा शुभदा हि राज्ञाम् ॥

अब राजमुद्रा का मुहूर्त कहते हैं। मृदु, (मृगशिरा, चित्रा, अनुराधा और रेवती) ध्रुव (रोहिणी तथा तीनों उत्तरा) क्षिप्र (पुष्य, अश्विनी, अभिजित् और हस्त) शनि तथा चन्द्र वर्जित वारों में, पूर्णा (पञ्चमी, दशमी, पूर्णिमासी) जया (तृतीया, अष्टमी, त्रयोदशी) इन तिथियों में राजाकी मुद्रा प्रतिष्ठा शुभ होती है।

('नौ' विचारः)

अथ नौः। चण्डेश्वरः—पौष्णाश्विनीतुरगवारुणमित्रचित्राशीतोष्णरश्मिवसवोनलवन्त्यमूनि।
वारे च जीवभृगुनन्दनके प्रशस्ते नौकादिसंघटनवाहनमेषु कुर्यात्।

अब नौका चलना आदि मुहूर्त कहते हैं। रेवती, अश्विनी, तुरग (स्वाती) शतभिषा, अनुराधा, चित्रा, मृगशिरा, हस्त, धनिष्ठा, कृत्तिका, बृहस्पति और शुक्रवार के दिन नौका का घडना तथा नौका का चलाना शुभ होता है।

(भोगकथनम्)

अथ भोगः—गुरुभरविभानुराधाविधातृपौष्णाश्विरोहिणीषु स्यात्।
स्वात्युत्तरासु कुर्याच्छयनाशनभोगभोगादि ॥

अब शय्या आदि का भोग कहते हैं। पुष्य, हस्त, अनुराधा, रोहिणी, रेवती, अश्विनी, स्वाती और तीनों उत्तरा में शयन, आसन, भोगादिक कर्म शुभ होते हैं।

(श्मश्रुकर्मकथनम्)

अथ श्मश्रुकर्म । श्रीपतिः—पुष्ये पौष्णे चाश्विनीष्वैन्दवे च शाक्रे हस्ताद्ये त्रिके भेष्यदित्याम् ।
क्षौरं कार्यं वैष्णवादित्रये च मुक्त्वा भौमादित्यपातङ्गिवारान् ॥

अब श्मश्रु (क्षौर) कर्म कहते हैं श्रीपति ने कहा है कि—पुष्य, रेवती, अश्विनी, मृगशिरा, ज्येष्ठा, हस्त, चित्रा, स्वाती तथा पुनर्वसु इन नक्षत्रों में मंगल, रवि और शनिवार को छोड़कर क्षौरकर्म (दाढी) करना शुभ होता है ।

न स्नातभुक्तोत्कटभूषितानामभ्यङ्गयात्रासमरोत्सुकानाम् ।
क्षौरं विदध्यान्निशि सन्ध्ययोर्वा जिजीविषूणां नवमे न चाह्नि ॥

दीर्घजीवन की इच्छा वालों को स्नान, भोजन तथा विशेष भूषित (विशेषप्रकार से अपनो सजावट) मालिस के वाद तथा यात्रा, युद्ध की उत्सुकता में दोनों सन्ध्या और रात्रि के समय में एवं नवें दिन क्षौर नहीं करना चाहिये ।

त्रिस्थलीसेतौ वृद्धगार्ग्यः—रव्यारसौरवारेषु रात्रौ पाते व्रताहनि ।
श्राद्धाहः प्रतिपद्रिक्ताभद्राः क्षौरेषु वर्जयेत् ॥

त्रिस्थलीसेतु में वृद्धगार्ग्यने कहा है कि—रवि, मंगल, शनि, रात्रि, व्यतीपात, व्रतदिन, श्राद्धदिन, प्रतिपदा, रिक्ता और भद्रा इनमें क्षौर कर्म न करे ।

गार्ग्यः—षष्ठ्यमापूर्णिमापातचतुर्दश्यष्टमी तथा । आसु सन्निहितं पापं त्रिषु तैले भगे क्षुरे ॥

गार्ग्य ने कहा है कि—षष्ठी, अमावास्या, पूर्णिमा, व्यतीपात, चतुर्दशी और अष्टमी इन तिथियों में तेल, स्त्री से संपर्क तथा क्षौरकर्म करने से पाप लगता है ।

राजमार्तण्डः—देवकार्ये पितुः श्राद्धे रवेरंशपरिक्षये । क्षौरकर्म न कुर्वीत जन्ममासे च जन्मभे ॥

राजमार्तण्ड में कहा है कि—देवकार्य में, पिता के श्राद्ध में, जन्ममास में और जन्मनक्षत्र में क्षौरकर्म न करे ।

बृहस्पतिः—राजकार्ये नियुक्तानां नराणां भूपजीविनाम् ।
श्मश्रुलोमनखच्छेदे नास्ति कालविशोधनम् ॥

बृहस्पति ने कहा है कि—राजकार्य में नियुक्त और राजाके यहाँ जीविकावाले मनुष्यों को दाढी, लोम और नख के छेदन में समय की शुद्धि की नहीं मानी जाती है ।

तथा—क्षौरं नैमित्तिकं कार्यं निषेधे सत्यपि ध्रुवम् । पित्रादिमृतिदीक्षासु प्रायश्चित्ते च तीर्थके ॥
केचित्तूत्तरार्धमन्यथा पठन्ति—मुण्डनस्य निषेधेऽपि कर्तनं तु विधीयते । इति ।

और पिता आदिके मरणमें, दीक्षामें, प्रायश्चित्त और निमित्तवश (प्रायश्चित्ततीर्थयो रात्रावपि क्षौरम् । मृतिनिमित्तं तु दिन एव शिवस्तनी वपनक्रियाः) क्षौरकर्म निषेध में भी निश्चय ही होता है । कोई उत्तरार्ध को दूसरी प्रकार से पढ़ते हैं । मुण्डन के निषेध में भी कर्तन का विधान करते हैं ।

नारदः—नृपविप्राज्ञया यज्ञे मरणे बन्धमोक्षणे । उद्वाहेऽखिलवारर्क्षे तिथिषु क्षौरमिष्टदम् ॥

नारद ने कहा है कि—राजा और ब्राह्मण की आज्ञा से यज्ञ में, मरणमें, बन्धन की मुक्तिमें, विवाहमें, सब वारों में, नक्षत्रोंमें तथा तिथियों में क्षौरकर्म इष्टको देनेवाला होता है ।

भारते—प्राङ्मुखः श्मश्रुकर्माणि कारयीत समाहितः । उदङ्मुखोऽथवा भूत्वा तथायुर्विन्दते महत् ॥

भारतमें कहा है कि—पूर्वदिशाको मुखकर समाहित मनसे श्मश्रुकर्म करे या उत्तरको मुखकर श्मश्रुकर्म करने से आयुकी वड़ी वृद्धि होती है ।

अपरार्के—उदङ्मुखो वा वपनं कारयेत्सुधीः । केशश्मश्रुलोमनखान्युदकसंस्थानि वापयेत् ॥

अपरार्क में कहा है कि—बुद्धिमान् पुरुष उदङ्मुख या पूर्वाभिमुख होकर वपन करावे । केश, श्मश्रु (दाढ़ी) लोम और नखों को उदकसंस्थ कटावे ।

दक्षिणं कर्णमारभ्य धर्मार्थं पापसंचये। शिखाद्ये नवसंस्कारे शिखाद्यन्तं शिरो वपेत् ॥

दहिने[1] कान से प्रारम्भकर धर्मार्थ पाप के नाश के लिए नवीनसंस्कार में शिखा के आदि से शिखा के अन्त तक शिर का वपन करे।

यतीनां तु विशेषो निगमे—कक्षोपस्थशिखावर्जं ऋतुसन्धिषु वापयेत्। इति। अन्येऽपि विधिप्रतिषेधाः प्रागुक्ताः।

यतियों के लिए तो विशेष नियम (वेद) में कहा है कि—कक्ष, उपस्थ और शिखा को त्यागकर ऋतु की सन्धियों में वपन (मुण्डन) करावे। अन्य भी विधान और तथा निषेध पहले कह चुके हैं।

(इन्धनसंग्रहविचारः)

अथेन्धनसङ्ग्रहः—ब्रह्मानिलार्कमघमूलत्रिपूर्वरौद्रपौष्णानुराधगुरुविष्णुविशाखयुक्ते।
वारे कुजार्कभृगुनन्दनसोमजानां श्रेष्ठेन्धनस्य करणं भवति प्रशस्तम् ॥

अब इन्धनसंग्रह कहते हैं। रोहिणी, स्वाती, हस्त, मघा, मूल, तीनों पूर्वा, आर्द्रा, रेवती, अनुराधा, पुष्य, श्रवण और विशाखा नक्षत्रों में, मंगल, रवि, शुक्र तथा बुधवार में इन्धन (जलावन) संग्रह करना चाहिये।

(नवान्नविचारः)

अथ नवान्नम्। श्रीपतिः—रेवतीश्रुतिपुनर्वसुहस्तब्राह्मतः पृथगपि द्वितये च।
त्र्युत्तरेषु गदितं पृथुकानां प्राशनं च स नवान्नविधानम् ॥

नवीन अन्न भक्षण कहते हैं। श्रीपति ने कहा है कि—रेवती, श्रवण, पुनर्वसु, हस्त, रोहिणी, मृगशिरा आर्द्रा तथा तीनों उत्तरा इन नक्षत्रों में नवीन अन्न के खाने का मुहूर्त है।

(नवभोजनपात्रकथनम्)

अथ नवभोजनपात्रम्। ज्योतिर्निबन्धे—भोज्यपात्रं सुधासिद्धौ घटयेद्वा समाहरेत्।
तत्रान्नप्राशनप्रोक्ते काले भोजनमाचरेत् ॥

ज्योतिर्निबन्धमें कहा है कि—नवीनभोजनपात्र सुधासिन्धु (अमृतवेला) के मुहूर्त में बनाना या लाना चाहिये और उसमें अन्नप्राशन कथित मुहूर्त में भोजन करना चाहिये।

(नवपर्णफलादिभक्षणविचारः)

अथ नवपर्णफलादिभक्षणम्। चण्डेश्वरः—मूलाश्विमैत्रकरतिष्यहरीन्द्रभेषु पौष्णोत्तरैन्दवपुनर्वसुवासवेषु। वारेषु भूमितनयार्कजवारवर्जं ताम्बूलनूतनफलाद्यशनं हिताय ॥

नवीन तांबूल और नूतन फल खाने का मुहूर्त कहते हैं। चन्द्रेश्वर ने कहा है कि—मूल, अश्विनी, अनुराधा, हस्त, पुष्य, श्रवण, ज्येष्ठा, रेवती, तीनों उत्तरा, मृगशिरा, पुनर्वसु और धनिष्ठा नक्षत्र में शनिवार तथा मंगलवार को छोड़कर शेष वारों में खाना उत्तम होता है।

(होमे आहुतिपातविचारः)

अथ होमे आहुतिपातः। ज्योतिषे—तरणिविद्भृगुभास्करिचन्द्रमाः कुजसुरेज्यविधुन्तुदकेतवः।
रविभतो दिनभं गणयेत्क्रमात्प्रतिखगं त्रितयं न्यसेत् ॥

होम में आहुति प्रक्षेप का विचार कहते हैं। ज्योतिष में कहा है कि—सूर्य के नक्षत्र से दिन के नक्षत्र तक गिने और तीन तीन नक्षत्र के क्रम से इन ग्रहों के मुख में आहुति पात जानना चाहिये।

सूर्य से तीन नक्षत्र उससे आगे तीन नक्षत्र बुध उससे आगे तीन नक्षत्र शुक्र तदनन्तर तीन नक्षत्र के बाद शनि, फिर तीन नक्षत्र चन्द्रमा, तीन नक्षत्र मंगल, तीन नक्षत्र गुरु, तीन नक्षत्र राहु तथा तीन नक्षत्र केतु के मुख में आहुति पात होनी चाहिये।

१—गर्गः—निषिद्धेषु च कालेषु क्षौरं कार्यं यदा भवेत्। तद्दोषशान्तये क्षिप्रं कुर्यात्तच्च शुभं दिने ॥ आनर्तोऽहिच्छत्रः पाटलि पुत्रोदितिर्दिनः श्रीशः। क्षौरे स्मरणादेषां दोषा नश्यन्ति निःशेषाः ॥

दिनकरार्किंतमःकुजकेतवो हुतभुजेः शुभास्त्वितरे शुभाः ।
दहनचक्रमिदं प्रविलोक्यतां दहनकर्मणि सर्वसमृद्धये ॥

इनमें सूर्य, शनि, राहु, मंगल और केतु के मुख में आहुति का पड़ना शुभ नहीं होता है। अन्य ग्रहों के मुख में शुभ होता है। यह दहनचक्र सब समृद्धि के लिये हवनकार्य में विचारना चाहिये।

(क्रूरग्रहमुखे हवने सञ्जाते विचारः)

अथ शान्तिरुक्ता विष्णुधर्मे—क्रूरग्रहमुखे चैव सञ्जाते हवने शुभे। शान्तिं विधाय गां दद्याद् ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ॥ आयसीं प्रतिमां कृत्वा निक्षिपेत्तामधोमुखीम् । गोमूत्रमधुगन्धाद्यैरर्चितां प्रतिमां ततः ॥ स्वस्थां निधाय सम्पूज्य तत्र होमो विधीयते ।

अब शान्ति विष्णुधर्म में कही है—क्रूरग्रह के मुख में शुभ हवन हो जाय तो शान्ति को करके कुटुम्बी ब्राह्मण को गोदान करे। लोहे की प्रतिमा को कर अधोमुख रखे। गोमूत्र, मधु (सहत) गन्ध आदि से प्रतिमा की पूजा कर सीधी रख पूजन कर हवन का विधान करे।

(नित्ये नैमित्तिके दुर्गाहोमादौ च विचारः)

अत्रापवादः क्रियासारे—नित्ये नैमित्तिके दुर्गाहोमादौ न विचारयेत् ।

इसका अपवाद है। क्रियासार में लिखा है कि—नित्य में, नैमित्तिक में तथा दुर्गा के हवन में मुहूर्त की चिन्ता न करे। (अर्थात्—इन उपरोक्त कर्मों में जैसे विवाह में, प्रतिदिन हवन में, संस्कारों में, शान्ति कर्मों में और दुर्गा के पाठ के अन्त तद्दशांश हवन में अग्निचक्र नहीं देखा जाता है।)

(ज्वरादौ फलकथनम्)

**अथ ज्वरादौ फलम् । श्रीपतिः—स्वात्याश्लेषारौद्रपूर्वासु शाक्रे रोगोत्पत्तिर्बाधते यस्य पुंसः ।
तद्भैषज्यव्यापृतो निष्प्रयत्नः स्याद् दुग्धाब्धेर्लब्धजन्मापि वैद्यः ॥**

अब ज्वरादि में फल कहते हैं। श्रीपति ने कहा है कि—स्वाती, आश्लेषा, आर्द्रा, तीनों पूर्वा तथा ज्येष्ठा इन नक्षत्रों में जिस व्यक्ति के शरीर में ज्वरादि की उत्पत्ति हो जाती है उसके शरीर को दुग्धसागर से उत्पन्न धन्वन्तरी जैसा वैद्य भी बचाने में निष्फल हो जाता है।

**व्याध्युत्पत्तिर्यस्य पौष्णे समित्रे प्राणत्राणं जायते तस्य कृच्छ्रात् ।
वैश्वे सौम्ये रोगमुक्तिस्तु मासाद्विंशत्या स्याद्वासराणां मघासु ॥**

जिसके रेवतीनक्षत्र में तथा अनुराधा नक्षत्र में व्याधि की उत्पत्ति होती है तो उसके प्राण मुश्किल से बचते हैं। उत्तराषाढ़ा और मृगशिरा इन नक्षत्रों में बीमार पड़ने पर एक महीने पर रोग से मुक्त होता है। मघानक्षत्र में बिमार पड़ने पर वीस दिन बाद रोग से मुक्त होता है।

**पक्षाद्धस्ते वासवे सद्विदैवे मूलाश्विन्यारेग्निधिष्ण्ये नवाहात् ।
याम्ये त्वाष्ट्रे वैष्णवे वारुणे च नैरुज्यं स्यान्नूनमेकादशाहात् ॥**

हस्त, धनिष्ठा तथा विशाखानक्षत्र में बिमार पड़ने पर पन्द्रह दिन बाद, मूल, अश्विनी और कृत्तिका नक्षत्रमें रोग होने के नौ दिन बाद, भरणी, चित्रा, श्रवण तथा शतभिषा इन नक्षत्रों में बिमार होने पर ग्यारह दिन बाद रोग से छुटकारा मिलता है।

१—ज्वर उवाच। नमामि त्वानन्तशक्तिं परेशं सर्वात्मानं केवलं ज्ञप्तिमात्रम्। विश्वोत्पत्तिस्थानसंरोधहेतुं यत्तद् ब्रह्मलिङ्गं प्रशान्तम् १ कालो दैवं कर्म जीवः स्वभावो द्रव्यं क्षेत्रं प्राण आत्मा विकारः। तत्संघातो बीजरोहप्रवाहस्त्वन्मायैशा तन्निषेधं प्रपद्ये २ नानाभावैर्लीलयैवोपपन्नैर्देवान् साधूँल्लोकसेतून् बिभर्षि। हंस्युन्मार्गान् हिंसया वर्तमानान् जन्मैतत्ते भारहाराय भूमेः ३ ततोऽहं तेजसा दुःसहेन शान्तोग्रेणात्युल्बणेन ज्वरेण। तावत्तापो देहिनां तेऽङ्घ्रिमूलं नो सेवेरन् यावदाशानुबद्धाः ४ श्रीभगवानुवाच। त्रिशिरस्ते प्रसन्नोऽस्मि व्येतु ते मज्ज्वराद् भयम्। यो नौ स्मरति संवादं तस्य त्वन्नो भवेद् भयम् ॥ इति। (भागवत दशम० उत्तरा० अ० ६३ श्लो० २५–२८)

आहिर्बुध्न्ये तिष्यसंज्ञेऽर्यमाख्ये प्राजापत्यादित्ययो सप्तरात्रात् ।
रोगान्मुक्तिर्जायते मानवानां निः सन्दिग्धं जल्पितं गर्गमुख्यैः ॥

उत्तराभाद्रपद, पुष्य, भरणी उत्तराफाल्गुनी, रोहिणी तथा पुनर्वसु इन नक्षत्रों में सात रात बाद रोग से मुक्ति होती है ऐसा गर्गादि ऋषियों के असंदिग्ध (सन्देह करने लायक नहीं है) वचन हैं ।

ज्योतिषे—एकाहो निधनं दशाहमनलाद्धाणा वियत्पर्वताः सप्ताङ्का विलयश्च मासयुगलं मासो मृतिः पक्षकः । द्वौ मासावथ विंशतिर्दश निशाः पक्षान्तपक्षा नखा मासौ पक्षदशान्तपक्षककुभः पीठादिनान्यश्विभात् ।

ज्योतिष में कहा है कि—अश्विनी में—एकदिन, भरणी में-मृत्यु, कृत्तिका में दसदिन, रोहिणी में-तीन-दिन, मृगशिरा में-पाँच दिन, आर्द्रा में-शून्य, पुनर्वसु में-सातदिन, पुष्य में-सातदिन, आश्लेषा में-नौदिन, मघा में-मृत्यु, पूर्वाफाल्गुनी-दो मास, उत्तराफाल्गुनी में-एकमास, हस्तमें-मृत्यु, चित्रा में-पन्द्रहदिन, स्वाती और विशाखा में दो दो महिना, अनुराधा में-बीसदिन, ज्येष्ठा में-दसदिन, मूल में-रातभर, पूर्वाषाढ़ा में-पक्षपर्यन्त, उत्तराषाढ़ा में-एकपक्ष, श्रवण में-बीसदिन, धनिष्ठा में-दोमास, शतभिषा में-एकपक्ष, पूर्वाभाद्रपद में-दशदिन, उत्तराभाद्रपद में एकपक्ष और रेवती में दसदिन ये अश्विन्यादि नक्षत्रों में रोग होने पर क्रम से उपरोक्त फल कहा है ।

दैवज्ञः—उरगवरुणरौद्रा वासवेन्द्रत्रिपूर्वा यमदहनविशाखाः पापवारेण युक्ताः ।
तिथिषु नवमिषष्ठी द्वादशी वा चतुर्थी भवति मरणयोगो रोगिणां कालहेतुः ॥

दैवज्ञ ने कहा है कि—आश्लेषा, शतभिषा, आर्द्रा, धनिष्ठा, ज्येष्ठा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपदा, भरणी, कृत्तिका तथा विशाखा ये नक्षत्र पापवार से युक्त हों तो और नवमी, षष्ठी, द्वादशी तथा चतुर्थी तिथियाँ हो तो रोगियों को मरण योग होता है ।

(कुम्भे नक्षत्रदेवताप्रतिमाशान्तिकथनम्)

अथ शान्तिः—कुम्भे हैमीं नक्षत्रदेवताप्रतिमां संपूज्य द्वादशदलेषु संकर्षणादिद्वादशमूर्तीर्द्वादशादित्यान् वा संपूज्य दूर्वासमित्तिलक्षीराज्यैर्गायत्र्या तद्देवतायै अष्टोत्तरशतं हुत्वा दध्यौदनं बलिं दत्त्वाऽऽचार्याय गां प्रतिमां च दत्त्वा विप्रान् भोजयेदिति संक्षेपः । विशेषस्तु व्रतहेमाद्रौ पदार्थादर्शे च ज्ञेयः ।

यहाँ पर शान्ति कहते हैं । कुंभ में नक्षत्र देवता की सुवर्ण प्रतिमाका पूजनकर बारह दलों में—संकर्षण आदि बारह मूर्तियों को या बारह सूर्यों का पूजनकर दूर्वा, समित्, तिल, क्षीर और घी से गायत्री से उन देवता के लिए एक सौ आठवार हवनकर दधि और ओदन से बलि देकर आचार्य को गौ तथा प्रतिमा को देकर ब्राह्मणों को भोजन करावे । यह संक्षेप से कहा है । विशेष तो व्रतहेमाद्रि तथा पदार्थादर्श में जानना चाहिये ।

(भेषजविचारः)

अथ भेषजम् । चण्डेश्वरः—मूलानुराधमृगतिष्यपुनर्वसौ च पौष्णाश्विनीश्रवणशक्रकरत्रये च ।
वारेषु वाक्पतिदिनेषु सितेन्दुशस्ते भैषज्यभक्षणममीषु हितं नराणाम् ॥

अब भेषज कहते हैं । चण्डेश्वर ने कहा है कि—मूल, अनुराधा, मृगशिरा, पुष्य, पुनर्वसु, रेवती, अश्विनी, श्रवण, ज्येष्ठा, हस्त, चित्रा और स्वाती, इन नक्षत्रों में तथा गुरु, शुक्र और सोमवारके दिन औषधी सेवन प्रारम्भ करना मनुष्यों के लिए हितकर है ।

(आरोग्यस्नानकथनम्)

अथारोग्यस्नानम् । श्रीपतिः—इन्दोर्वारे भार्गवे च ध्रुवेषु सार्पादित्यस्वातियुक्तेषु भेषु ।
पित्र्ये चान्ते वापि कुर्यात्कदाचिन्नैव स्नानं रोगनिर्मुक्तजन्तुः ॥

अब आरोग्यस्नान कहते हैं। श्रीपति ने कहा है कि—सोमवार, शुक्रवार, ध्रुवनक्षत्र (तीनों उत्तरा और रोहिणी) आश्लेषा, पुनर्वसु, स्वाती, मघा और रेवती इन नक्षत्रों में भी रोग हटने के बाद प्राणी स्नान करें।

चरे विलग्ने रविभौमवासरे रिक्ते तिथौ स्याद् बहुले च पक्षे।
धिष्ण्ये चरे रोगनिपीडितानां स्नानं नराणां निरुजत्वकारि ॥

चर लग्न (मेष, कर्क, तुला और मकर) रविवार, मंगलवार, रिक्तातिथि, शुक्लपक्ष में और चर श्रवण धनिष्ठा, शतभिषा (स्वाती और पुनर्वसु) नक्षत्र में रोग से पीडित व्यक्तियों का स्नान करना रोगमुक्ति को देने वाला होता है।

(दन्तधावनविचारः)

अथ दन्तधावनम्। पृथ्वीचन्द्रोदये विष्णुः—प्रतिपद्दर्शषष्ठीषु चतुर्दश्यष्टमीषु च ।
नवम्यां भानुवारे च दन्तकाष्ठं विवर्जयेत् ॥

अब दन्तधावन कहते हैं। पृथ्वीचन्द्रोदय में विष्णु ने कहा है कि—प्रतिपदा, अमावास्या, षष्ठी, चतुर्दशी, अष्टमी, नवमी तथा रविवार इनमें दन्तकाष्ठ (दन्तधावन) वर्जित करे।

नारदः—चतुर्दश्यष्टमीपौर्णमासीसंक्रमणेषु च ।
नन्दासु च नवम्यां च दन्तकाष्ठं विवर्जयेत् ॥

नारद ने कहा है कि—चतुर्दशी, अष्टमी, पौर्णिमासी, संक्रान्ति, नन्दा (प्रतिपदा, षष्ठी, एकादशी) और नवमी में दन्तकाष्ठ का त्याग करे।

श्राद्धे यज्ञे च नियमे तथा प्रोषितभर्तृका। व्यतीपाते च संक्रान्त्यां नन्दाभूताष्टपर्वसु ॥ तैलं चौरं रतिं मांसं दन्तकाष्ठं च वर्जयेत् ॥

श्राद्ध में, यज्ञ में, व्रत में, जिस स्त्री का पति परदेश गया हुआ हो उसको, व्यतीपात में, संक्रान्ति में, प्रतिपदा में, षष्ठी में और एकादशी, चतुर्दशी, अष्टमी, पर्व—अमावस्या और पूर्णिमामें तैल, चौरकर्म, मैथुन, मांस और दन्तकाष्ठ वर्जित करे।

वसिष्ठः—शन्यर्कशुक्रवारेषु कुजाहे व्रतवासरे। जन्माहे श्राद्धदिवसे दन्तकाष्ठं विवर्जयेत् ॥

वसिष्ठ ने कहा है कि—शनिवार, रविवार, शुक्रवार तथा मंगलवारमें, व्रत दिन में, जन्म और श्राद्ध दिन में दन्तकाष्ठ वर्जित करे।

हेमाद्रौ स्कान्दे—अभ्यङ्गे जलधिस्नाने दन्तधावनमैथुने ।
जाते च निधने चैव तत्कालव्यापिनी तिथिः ॥

हेमाद्रि में स्कन्दपुराण के वचन से कहा है कि—अभ्यंग (उबटन) में, समुद्रस्नान में, दन्तधावन और मैथुन में, जन्म तथा मृत्यु में उस समय जो तिथि हो वही ग्रहण करे।

संवर्तः— रवौ विवाह आशौचे वर्जयेद् दन्तधावनम् ।

संवर्त में कहा है कि—रविवार तथा आशौच में दन्तधावन का त्याग करे।

व्यासः—अलाभे दन्तकाष्ठानां निषिद्धायां तथा तिथौ ।
अपां द्वादशगण्डूषैर्विदध्याद्दन्तधावनम् ॥

व्यास ने कहा है कि—दन्तकाष्ठों के अभाव में (तृणपर्णैः सदा कुर्यादमामेकादशीं विना) और निषिद्धतिथि में जल से बारहवार कुल्ला करने से दन्तधावन हो जाता है।

(आमलकस्नानविचारः)

अथामलकस्नानम्। व्यासः—श्रीकामः सर्वदा स्नानं कुर्वीतामलकैर्नरः। सप्तमीं नवमीं चैव पर्वकालं विवर्जयेत् ॥ चन्द्रसूर्योपरागे च स्नानमामलकैस्त्यजेत् ॥

अब आमलकस्नान कहते हैं। श्रीकामना के लिए मनुष्य सदा आंवलों से स्नान करे। सप्तमी, नवमी तथा पर्वकाल का त्याग करे। चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण में आँवलकों से स्नान का त्याग करे।

क्रतुः—षष्ठी च सप्तमी चैव नवमी च त्रयोदशी। संक्रान्तौ रविवारे च स्नानमामलकैस्त्यजेत् ॥

क्रतु ने कहा है कि—षष्ठी, सप्तमी, नवमी, त्रयोदशी, संक्रान्ति और रविवार में आँवले से स्नान त्याग दे।

यत्तु—नवमी दशमी चैव तृतीया च त्रयोदशी।
प्रतिपद् द्वादशी कृष्णा स्नानं तासु विवर्जयेत् ॥

जो नवमी, दशमी, तृतीया, त्रयोदशी, प्रतिपदा और कृष्णपक्ष की द्वादशी इनमें आंवले से स्नान त्याग दे।

यच्च—दर्शे स्नानं न कुर्वीत मातापित्रोस्तु जीवतोः। पुत्रः कुर्वन्निराचष्टे पित्रोरुन्नतिजीविते ॥ इति कण्वयमाद्यैः स्नानमात्रं निषिद्धं, तद्भोगार्थस्नानपरं न नित्यनैमित्तिकपरमिति हेमाद्रिः।

और जिसके माता तथा पिता जीवित हों वह अमावास्या में आंवले से स्नान न करे। यदि पुत्र स्नान करता है तो माता तथा पिता के उन्नति एवं जीवन का नाश करता है। इसप्रकार कण्व, यम आदियों ने स्नानमात्र निषिद्ध किया है वह भोगार्थ स्नानपरक है नित्य, नैमित्तिक परक नहीं है—यह हेमाद्रि का कहना है।

(तैलस्नाननिषेधकथनम्)

अथ तैलस्नाननिषेधः। कात्यायनः—पक्षादौ च रवौ षष्ठ्यां रिक्तायां च तथा तिथौ।
तैलेनाभ्यज्यमानस्तु चतुर्भिः परिहीयते ॥

अब तैलस्नान निषेध कहते हैं। कात्यायनने कहा है कि—पक्षादि (प्रतिपदा) में, षष्ठीमें और रिक्तातिथि में जो तैल से स्नान करता है वह धर्म, अर्थ काम तथा मोक्ष से हीन होता है।

गर्गः—पञ्चदश्यां चतुर्दश्यामष्टम्यां रविसंक्रमे। द्वादश्यां सप्तमीषष्ठयोस्तैलस्पर्शं विवर्जयेत् ॥

गर्ग ने कहा है कि—पूर्णिमा, चतुर्दशी, अष्टमी, सूर्यसंक्रान्ति (कहीं रविवार है। श्लोक ऐसा है—पञ्चदश्यां चतुर्दश्यामष्टम्यां रविवासरे।)। द्वादशी, सप्तमी और षष्ठी इनमें तैल का स्पर्श त्याग दे।

न च कुर्यात्तृतीयायां त्रयोदश्यां तिथौ तथा। शाश्वतीं गतिमन्विच्छन् दशम्यामपि पण्डितः ॥

तृतीया, त्रयोदशी और दशमीतिथिमें पण्डित उत्तम गति की इच्छा करता हुआ तैल से स्पर्श न करे।

तत्रैवायुर्वेदे—षष्ठ्यां दिनक्षयेऽष्टम्यामेकादश्यां च पर्वसु। द्वादश्यां च चतुर्दश्यां पञ्चम्यां प्रतिपत्तिथौ ॥ व्रते श्राद्धदिने जन्मत्रितये श्रवणार्द्रयोः। ज्येष्ठोत्तराफाल्गुनीषु व्यतीपाते च वैधृतौ ॥ विष्टियोगे च संक्रान्तौ मन्वादिषु युगादिषु। नाभ्यङ्गं तत्र बालानां वृद्धानां तु न दोषकृत् ॥ इति।

वहीं पर आयुर्वेद में कहा है कि—षष्ठी, दिनक्षय, अष्टमी, एकादशी और पर्वों में, द्वादशी, चतुर्दशी पञ्चमी तथा प्रतिपदा में व्रत और श्राद्धदिन में, जन्मदिन से तीनदिन तक श्रवण, आर्द्रा, ज्येष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, व्यतीपात, वैधृति, विष्टियोग, संक्रान्ति, मन्वादि और युगादि में अभ्यंग तैल से न करे। उसमें बालकों तथा वृद्धों को दोष नहीं होता है।

व्यवहारतत्त्वे—संक्रान्तिभद्राव्यतिपातवैधृतीषष्ठ्यष्टमीपर्वसु नाऽर्कभूसुते।
स्नाने द्वितीया दशमी च गर्हिता षष्ठ्याद्यिमाद्या रदधावनेऽधमाः ॥

व्यवहारतत्त्व में कहा है कि—संक्रान्ति, भद्रा, व्यतीपात, वैधृति, षष्ठी, अष्टमी और पर्वों में, रविवार, मंगलवार, द्वितीया तथा दशमीस्नान में निन्दित हैं। षष्ठी और प्रतिपदा दतवन में अधम है।

(तैलस्नाने अपवादकथनम्)

अस्यापवादमाह तत्रैव प्रचेताः—सार्षपं गन्धतैलञ्च यत्तैलं पुष्पवासितम्।
अन्यद्रव्ययुतं तैलं न दुष्यति कदाचन ॥

इसका अपवाद वहींपर प्रचेता ने कहा है कि—सरसों का तेल, सुगन्धवाला तैल और जो तैल पुष्पों से सुगन्धित है तथा अन्यद्रव्यों से युक्त जो तैल है (कहीं पर पकाया हुआ भी तेल) वह कभी भी दूषित नहीं होता है।

आयुर्वेदे—निषिद्धतिथिवारर्क्षग्रहणेष्वपि रात्रिषु । किञ्चिद् गोघृतयुक्तं वा विप्रपादरजोन्वितम् ॥

आयुर्वेद में कहा है कि—निषिद्धतिथि, वार, नक्षत्र, ग्रहण और रात्रि में कुछ गौ के घृत से संयुक्त कर या ब्राह्मण के चरण की रज से युक्तकर तेल दूषित नहीं होता है।

भानौ दूर्वान्वितं भौमे भूयुक्तं पुष्पयुग्गुरौ । सर्वेषां सर्वदा तैलमभ्यङ्गेषु न दुष्यति ॥

रविवार को दूर्वा से युक्त करे। मंगलवार को भूमि से युक्त करे। गुरुवार को पुष्प से संयुक्त करने से सर्वदा तैल को अभ्यंग करने से सबों को दूषित नहीं होता है।

(मङ्गलेषु अदोषकथनम्)

मङ्गलेष्वप्यदोषः—माङ्गल्यं विद्यते स्नानं वृद्धिपूर्वोत्सवेषु च । स्नेहपात्रसमायुक्तं मध्याह्ना-त्प्राक्तदिष्यते ॥ इति मदनपारिजाते कात्यायनोक्तेः ।

मंगलकार्यों में भी अदोष कहा है। मदनपारिजात में कात्यायन ने कहा है कि—वृद्धि, पर्व और उत्सवों में मंगलस्नान करना कहा है। स्नेहपात्र से युक्त मध्याह्न के पहले कहा है।

हेमाद्रौ वृहन्मनुः—तैलाभ्यङ्गो नार्कवारे न भौमे नो संक्रान्तौ वैधृतौ विष्टिषष्ठ्योः ।
पर्वस्वष्टम्यां च नेष्टः स इष्टः प्रोक्तान्मुक्त्वा वासरे सूर्यसूनोः ॥

हेमाद्रिमें बृहन्मनुने कहा है कि—रविवार, मंगलवार, संक्रान्ति, वैधृति, विष्टि, षष्ठी, पर्व और अष्टमी इनमें तैलाभ्यंग (तेलमालिस) इष्ट नहीं है। वह इष्ट इन उपरोक्तों को त्यागकर सूर्यपुत्र (शनिवार) के दिनमें तैलाभ्यंग इष्ट है।

(तिलस्नाननिषेधकथनम्)

तिलस्नाननिषेधस्तु षट्त्रिंशन्मते—तथा सप्तम्यमावास्यासंक्रान्तिग्रहजन्मसु ।
धनपुत्रकलत्रार्थी तिलपिष्टं न संस्पृशेत् ॥

तिलस्नान का निषेध तो षड्त्रिंशन्मत में कहा है कि—सप्तमी, अमावास्या, संक्रान्ति, ग्रहण और जन्मदिन में धन, पुत्र कलत्रार्थी तिल पिष्ट (पिसे हुए तिलों) का स्पर्श न करे।

(अथ गृहारम्भादौ विचारः)

अथ गृहारम्भः । ज्योतिर्निबन्धे बादरायणः—वैशाखे फाल्गुने पौषे श्रावणे मार्गशीर्षके ।
सूत्रारम्भः शिलान्यासः स्तम्भारम्भः प्रशस्यते ॥

अब गृहारम्भ कहते हैं। ज्योतिर्निबन्ध में बादरायण ने कहा है कि—वैशाख, फाल्गुन, पौष, श्रावण और मार्गशीर्षमासमें सूत्रारम्भ (सूतसे भूमि को नापना आदि), शिलान्यास तथा स्तंभारम्भ करना (खंबोंका आरंभ) उत्तम कहा है।

नारदः—सौम्यफाल्गुनवैशाखमाघश्रावणकार्तिकाः ।
मासाः स्युर्गृहनिर्माणे पुत्रारोग्यधनप्रदाः ॥

नारदने कहा है कि—फाल्गुन, वैशाख, माघ, श्रावण और कार्तिकमास में घर का निर्माण करने से पुत्र, आरोग्यता तथा धन देनेवाले हैं।

अत्र वृषसिंहवृश्चिकाः वैशाखश्रावणकार्तिकाः सौरा ज्ञेया इति कालादर्शः ।

यहाँपर वृष, सिंह, वृश्चिक—वैशाख, श्रावण और कार्तिक सौरमास (सूर्यकी संक्रान्ति) से जानना चाहिये—यह कालादर्शमें कहा है।

तत्रैव कारणतन्त्रे—स्थिरमासे स्थिरे राशौ स्थिरेंऽशे नववेश्मनाम् । कुर्वीत स्थापनं शङ्कोः शम्भुस्थापनमेव वा ॥ कार्तिकनिषेधस्तुलापरः,

वहींपर कारणतन्त्र में कहा है कि—स्थिर महिना, स्थिरराशी तथा अंश में नवीन घरों में शंकू का स्थापन या स्तंभका स्थापन ही करे। कार्तिकमास का निषेध तो तुला की संक्रान्तिपरक है।

कुम्भे मासेऽपि सर्वेषां मन्दिराणामुपक्रमम्। महर्षयः प्रशंसन्ति धान्यागारं विहाय च॥ निषेधो धान्यगृहपरः।

कुंभसंक्रान्ति और माघमहिने में मन्दिरों का प्रारम्भ करे। धान्यके गृह को त्यागकर महर्षिगण प्रशंसा करते हैं। केवल धान्यके घरको छोडकर है।

पाकभोजनशालादौ मार्गशीर्षश्च फाल्गुनः। रथ्यागेहमठादौ च सहस्यः शुचिरेव तु॥ पौषाषाढनिषेधस्तु प्रधानगृहपरः, न प्रधानगृहारम्भं कुर्यात्पौषे शुचावपि॥ इति तत्रैवोक्तेः।

पाक तथा भोजनशाला आदि में, मार्गशीर्ष तथा फाल्गुन में, रथ का घर और मठादि में पौष तथा आषाढमास पवित्र ही है। पौष और आषाढ महिने का निषेध तो प्रधानघर परक है। वहींपर कहा है कि—प्रधान घरका प्रारंभ पौष और आषाढ में न करे।

ज्योतिषस्तत्त्वे—पूर्वापरास्यन्तु नभोऽन्त्यपौषे याम्योत्तरास्यं सहसि द्वितीये।
कार्यं गृहं जीवबुधर्क्षगार्के नीचास्तगौ जीवसिता च हित्वा॥

ज्योतिषतत्त्व में कहा है कि—बृहस्पति और बुध राशि के सूर्य को तथा नीच और अस्त हुए बृहस्पति एवं शुक्रका त्याग करे। पूर्वदिशा तथा पश्चिमदिशा मुख का मकान (घर)—श्रावण, फाल्गुन और पौषमासमें तथा दक्षिणदिशा और उत्तरदिशा के मुख का घर मार्गशीष तथा वैशाख महिने में करावे।

रत्नमालायाम्—कर्कनक्रहरिकुम्भगतेर्के पूर्वपश्चिममुखानि गृहाणि।
तौलिमेषवृषवृश्चिकयाते दक्षिणोत्तरमुखानि वदन्ति॥

रत्नमालामें कहा है कि—कर्क, नर्क (मकर), हरि (सिंह) और कुम्भमें गये सूर्य में पूर्वदिशा तथा पश्चिमदिशाके मुखके घरों और तौलि (तुला), मेष, वृष एवं वृश्चिक के सूर्य में दक्षिण तथा उत्तर के मुखवाले घरों को कहा है।

दैवज्ञवल्लभः—शोकं धान्यं पश्वतां निःपशुत्वं स्वापं नैःस्वं सङ्गरं मृत्युनाशम्।
स्वं श्रीप्राप्तिं वह्निभीतिं च लक्ष्मीं कुर्युश्चैत्राद्या गृहारम्भकाले॥ (रत्नं धान्यं कालादर्शे पाठः।)

दैवज्ञवल्लभने कहा है कि—गृहारंभकालमें चैत्रमास में-शोक, वैशाखमासमें-धान्य, ज्येष्ठमासमें-धन की प्राप्ति, आषाढमास में-पशुओं की एकदम हानि, श्रावणमास में-धन की प्राप्ति, भाद्रपदमास में-धन का नाश, आश्विनमास में-संग्राम, कार्तिकमास में—भृत्यनाश, मार्गशीर्षमास में-लक्ष्मीप्राप्ति, पौषमास में-लक्ष्मीप्राप्ति, माघमासमें-अग्निभय, और फाल्गुनमासमें लक्ष्मी प्राप्ति है।

गर्गः—त्र्युत्तरामृगरोहिण्यां पुष्ये मैत्रे करत्रये। धनिष्ठाद्वितये पौष्णे गृहारम्भः प्रशस्यते॥

गर्गने कहा है कि—तीनों उत्तरा, मृगशिरा, रोहिणी, पुष्य, अनुराधा, हस्त, चित्रा, स्वाती, धनिष्ठा, शतभिषा और रेवती ये नक्षत्र गृहारम्भ में प्रशस्त हैं।

रोहिण्यां श्रवणत्रये दितियुगे हस्तत्रये मूलके रेवत्युत्तरफाल्गुनीपुरभगे मैत्रोत्तराषाढयोः। शस्तं वास्तु कुजार्कवर्जितदिने गोकुम्भसिंहे मुखे कन्यायां मिथुने नभःशुचिसहोराधोर्जके फाल्गुने॥

रोहिणी, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाती, मूल, रेवती, उत्तराफाल्गुनी, आश्लेषा, अनुराधा, उत्तराषाढा, इननक्षत्रों के मंगल और रविवार से वर्जित दिनोंमें वृष, कुम्भ, सिंह वृश्चिक, कन्या और मिथुन लग्नों में, श्रावण, शुचि[1] (आषाढ) सह (पौष), राधा (वैशाख) ऊर्ज (कार्तिक) और फाल्गुन ये महिने वास्तुकर्ममें प्रशस्त हैं।

कालादर्शे सनत्कुमारः—आदित्यभौमवर्जं तु सर्वे वाराः शुभप्रदाः।

कालादर्शमें सनत्कुमार ने कहा है कि—रविवार और मङ्गलवार को छोडकर सब वार शुभप्रद हैं।

१— आषाढमास सर्वथा निषिद्ध है ऐसा आचार्यों ने घोषणा की है।

वास्तुशास्त्रे–मार्गशीर्षे तथा पौषे वैशाखे श्रावणे तथा। फाल्गुने च कृतं वेश्म सर्वसम्पत्प्रदं भवेत्॥

वास्तुशास्त्रमें कहा है कि—मार्गशीर्ष, पौष, वैशाख, श्रावण तथा फाल्गुन में बनाया हुआ घर (मकान) संपूर्ण ऐश्वर्य को देनेवाला होता है।

कार्तिके माघमासे च चैत्रे ज्येष्ठे तथाश्विने। मास्याषाढे भाद्रपदे न कुर्यात्सर्वथा गृहम्॥

कार्तिक, माघ, चैत्र, ज्येष्ठ आश्विन, आषाढ तथा भाद्रपद महिने में सर्वथा घरको न करे। अर्थात्-निर्माण न करे।

द्वितीया च तृतीया च पञ्चमी सप्तमी तथा। त्रयोदशी च दशमी पूर्णा चैकादशी तथा। वेश्मारम्भे शुभाय स्युर्विशेषाः शुक्लपक्षगाः॥

द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, त्रयोदशी, दशमी, पूर्णिमा और एकादशी तिथि को वेश्म (मकान) का शुभारम्भ कल्याण प्रद होता है। विशेषकर शुक्लपक्ष की तिथियों में शुभप्रद होता है।

व्यवहारसारे—शिलान्यासः प्रकर्तव्यो गृहाणां श्रवणे मृगे।
पौष्णे हस्ते च रोहिण्यां पुष्यश्विन्युत्तरात्रये॥

व्यवहारसारमें कहा है कि—घरोंका शिलान्यास श्रवण, मृगशिरा, रेवती, हस्त, रोहिणी, पुष्य, अश्विनी तथा तीनों उत्तरानक्षत्र में करे।

वास्तुप्रदीपे—अधोमुखैर्भैर्विदधीत खातं शिलास्तथैवोर्ध्वमुखैश्च पट्टम्।
तिर्यङ्मुखैर्द्वारकपाटयानं गृहप्रवेशो मृदुभिर्ध्रुवैश्च॥

वास्तुप्रदीप में लिखा है कि—खात तो अधोमुख (मूल, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपद, पूर्वाषाढा, विशाखा, भरणी, कृत्तिका) नक्षत्रोंमें वैसे ही शिला ऊर्ध्वमुख (आर्द्रा, तीनों उत्तरा, रोहिणी, पुष्य, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा) नक्षत्रोंमें पट्ट (छत और दरवाजे पर आच्छादन) और तिर्यङ्मुख (हस्त, अनुराधा, स्वाती, पुनर्वसु, ज्येष्ठा, अश्विनी चित्रा, मृगशिरा, रेवती) नक्षत्रों में द्वार का किवाड, सवारी, मृदुसंज्ञक (मृगशिरा, चित्रा, अनुराधा, रेवती) और ध्रुवसंज्ञक (तीनों उत्तरा और रोहिणी,) नक्षत्रों में घरका प्रवेश करे।

लल्लः—स्नानं च पाकं शयनं च भोज्यं गजालयं वाजिगृहं धनस्य।
देवस्य पूर्वादिदिशि क्रमेण मध्ये सभा भूपनिवेशनाय॥

लल्लने कहा है कि—स्नानघर, पाकशाला, शयनघर, भोजनगृह, हाथी के रहनेका स्थान, घोडे का स्थान, धनस्थान और देवस्थान को पूर्वादिदिशाओं के क्रमसे बनवावे। मध्यमें राजा बैठने के लिए अपनी राज्यसभाका निर्माण करावे।

शिल्पशास्त्रे—कन्यासिंहे तुलायां भुजगपतिमुखं शंभुकोणेग्निखातं वायव्ये स्यात्तदास्यं त्वलिधनमकरे ईशखातं वदन्ति। कुंभे मीने च मेषे निर्ऋतिदिशि मुखं खातवायव्यकोणे चाग्नेः कोणे मुखं वै वृषमिथुनगते कर्कटे रक्षखातम्॥

शिल्पशास्त्र में कहा है कि—कन्या, सिंह तथा तुलाकी संक्रान्ति में भुजगपति (शेषनाग) का मुख ईशानकोण में हो तो अग्निकोण में नीव को खोदना चाहिये। यदि वृश्चिक धन तथा मकर में कोणमें उसका मुख वायव्यकोणमें हो तो—ईशानकोणमें खात दे। कुम्भ, मीन और मेषमें नैर्ऋत्यकोणमें मुख होता है तो वायव्यकोणमें खात करे। वृष, मिथुन और कर्कमें अग्निकोणमें मुख होता है तो नैर्ऋत्यकोणमें खात करे।

तत्त्वचिन्तामणौ—यत्र दैर्घ्यं गृहादीनां द्वात्रिंशद्धस्ततोऽधिकम्।
न तत्र चिन्तयेद्धीमान् गुणानायव्ययादिकान्॥

तत्त्वचिन्तामणि में कहा है कि—जहाँ पर घर आदि की लंबाई बत्तीस हाथ से अधिक हो तो बुद्धिमान् मनुष्य आय-व्यय के गुणों की चिन्ता न करे।

राजमार्तण्डः—आयव्ययौ मासशुद्धिं तृणागारे न चिन्तयेत् ।
शिलान्यासादि नो कुर्यात्तथागारे पुरातने ॥

राजमार्तण्ड में कहा है कि—आय, व्यय और व्यास की शुद्धि की चिन्ता तृण के घर में न करे और शिलान्यास आदि न करे। वैसे ही प्राचीन घर में भी शिलान्यास न करे।

व्यवहारतत्त्वे–निषिद्धेष्वपि कालेषु स्वानुकूले शुभे दिने। तृणकाष्ठगृहारम्भे मासदोषो न विद्यते॥

व्यवहारतत्त्व में कहा है कि—निषिद्ध समयों में भी अपने अनुकूल शुभ दिन में तृण तथा काष्ठ के गृहारंभ में मासदोष नहीं होता है।

चण्डेश्वरः—पूर्णादि त्वष्टमीं यावत्पूर्वास्यं वर्जयेद् गृहम् । उत्तरास्यं न कुर्वीत नवम्यादि चतुर्दशीम् ॥ अमावास्याष्टमीं यावत्पश्चिमास्यं विवर्जयेत् । नवम्यादौ तथा याम्यं यावत्कृष्णा चतुर्दशीम् ॥

चण्डेश्वर ने कहा है कि—पूर्णिमातिथि से लेकर अष्टमीतिथितक पूर्व की तरफ मुख घर का न करे। नवमीतिथि से प्रारंभ कर चतुर्दशीतिथिपर्यन्त उत्तराभिमुख घरका न करे। अमावास्यासे लेकर अष्टमी तिथिपर्यन्त पश्चिमदिशा की तरफ मुख न करे। नवमीतिथि से प्रारंभ कर कृष्णपक्ष की चतुर्दशीतिथि पर्यन्त दक्षिणमुख घर का त्याग करे।

ध्रुवं दृष्ट्वाऽथवा स्मृत्वा कर्तव्यं वास्तुरोपणम् । सायाह्नवर्ज्यदिवसे रात्रौ त्यक्त्वा महानिशम् ॥

ध्रुव और दिशागत प्रसिद्ध ध्रुवनामक नक्षत्रदिन में ध्रुवरूपीय को देखकर या स्मरण कर वास्तुरोपण करना चाहिये। दिन में सायाह्न तथा रात में महानिशा (रात बारह बजे से दो बजे तक) को त्याग दे।

वराहः—दक्षिणपूर्वे कोणे कृत्वा पूजां शिलां न्यसेत्प्रथमाम् ।
शेषाः प्रदक्षिणेन स्तम्भाश्चैवं समुत्थाप्याः ॥

वाराहपुराण में कहा है कि—दक्षिण तथा पूर्व के कोण (अग्निकोण) में पूजाकर प्रथम शिला को स्थापन करे। अवशिष्ट शिलाओंको प्रदक्षिण क्रम से रखे। तद्वत् ही स्तंभों का स्थापन करे।

कालादर्शे वास्तुशास्त्रे—खाते चैव शिलान्यासे वृषचक्रं प्रशस्यते ।

कालादर्श में वास्तुशास्त्र के प्रकरण में तो कहा है कि—खात (नीव) और शिलान्यास (शिला रखने) में वृष चक्र (सूर्य के नक्षत्र से सात नक्षत्र नेष्ट, उसके बाद वाले ग्यारह इष्ट, उसके बाद के दश नक्षत्र नेष्ट होते हैं) देखना उत्तम कहा है।

तच्चोक्तं शान्तिरत्ने—चतुर्हस्तप्रमाणं तु खात्वा गर्तं समन्ततः । कुम्भोदकैः सेचयेयुः शान्तिपाठपुरःसरम् ॥ तत ईशानदिग्भागे साक्षतं रत्नपञ्चकम् । साज्यं कुम्भं स्थिरं मुक्त्वा वास्तुपूजनपूर्वकम् ॥ कुम्भोपरि शिलान्यासः कर्तव्यस्तदनन्तरम् ॥

शान्तिरत्न में कहा है कि—चार हाथ का गर्त (गढा) चारों तरफ से खन कर कुंभोदकों से शान्तिपाठपुरःसर सेचन करे। तदनन्तर ईशानदिशा के हिस्से में अक्षत, पञ्चरत्न, घृत के सहित कुंभ (घट) को स्थिर कर वास्तुपूजनपूर्वक कुम्भ के ऊपर शिलान्यास (शिलास्थापन) करना चाहिये।

(गृहप्रवेशे विचारः)

अथ गृहप्रवेशः । बृहस्पतिः—नन्दायां दक्षिणद्वारं भद्रायां पश्चिमेन तु ।
जयायामुत्तरं द्वारं पूर्णायां पूर्वतो विशेत् ॥

अब गृहप्रवेश कहते हैं। बृहस्पति ने कहा है कि—नन्दा में दक्षिणद्वार से, भद्रा में पश्चिमद्वार से, जया में उत्तरद्वार से और पूर्णा में पूर्वद्वार से प्रवेश करे।

वसिष्ठः—कृत्वा शुक्रं पृष्ठतो वामतोऽर्कं विप्रान् पूज्यानग्रतः पूर्णकुम्भम् ।
हर्म्यं रम्यं तोरणस्रग्वितानैः स्त्रीभिः स्रग्वी गीतवाद्यैर्विशेच्च ॥

वसिष्ठ ने कहा है कि—शुक्र को पीठ की ओर करके और सूर्य को वाये भाग में करके ब्राह्मणों की पूजा कर जल से परिपूर्ण कुंभ को आगे कर तोरण, माला तथा वितानों (चंदवा) से रमणीय घर में मालाधारण कर गृहपति, स्त्री गीत एवं वाद्यों (वाजा) के साथ प्रवेश करे।

व्यवहारतत्त्वे—सौम्यायने श्रावणमार्गपौषे जन्मर्क्षलग्नोपचयोदयेंऽशे।
वामं गतेऽर्के गृहवास्तुपूजां कृत्वा विशेद्वेश्म भकूटशुद्धम्॥

व्यवहारतत्त्व में कहा है कि—सौम्यायन (उत्तरायण) श्रावण, मार्गशीर्ष और पौषमास में, जन्मनक्षत्र तथा लग्न की वृद्धि में एवं नवांश में सूर्य को वायें कर घर की वास्तुपूजा कर नक्षत्रकूट (कूट आठ प्रकार के होते हैं उसमें तारा कूट) की शुद्धि में घर में प्रवेश करे।

वास्तुशास्त्रे—लग्नात् प्रागादितो दिक्षु द्वौ द्वौ राशी नियोजयेत्।
एकमेकं न्यसेत्कोणे सूर्यं वामं विचिन्तयेत्॥

वास्तुशास्त्र में कहा है कि—पूर्वादि दिशाओं में दो दो राशि का नियोजन कर एक एक को कोणों में रखे तथा सूर्य का वाम विचार करे।

वसिष्ठः—चन्द्रजार्यसितवासरेषु च श्रीकरं सुतमहार्थलाभदम्।
सूर्यसूनुदिवसे स्थिरप्रदं किन्तु चौरभयमत्र निर्दिशेत्॥

वसिष्ठ ने कहा है कि—बुधवार, बृहस्पतिवार और शुक्रवार हो तो लक्ष्मी, पुत्र, अर्थ तथा लाभ को देनेवाला होता है। शनिवार के दिन स्थिरप्रद होता है पर यहाँ पर चोर का भय कहा है।

रत्नकोशे—पुष्ये धनिष्ठामृगवारुणेषु स्वायंभुवर्क्षे त्रिषु चोत्तरासु॥
अक्षीणचन्द्रे शुभदो नृपस्य तिथावरिक्ते च गृहप्रवेशः॥

रत्नकोष में कहा है कि—पुष्य, धनिष्ठा, मृगशिरा, शतभिषा, तीनों उत्तरा, पूर्णचन्द्रमा और रिक्तातिथि से भिन्न तिथि में राजा को गृहप्रवेश शुभ को देनेवाला होता है।

नारदः—प्रवेशो मध्यमो ज्ञेयः सौम्यकार्तिकमासयोः। माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासेषु शोभनः। अकपाटमनाच्छन्नमदत्तवलभोजनम्। गृहं न प्रविशेद्धीमान् आपदामाकरो हि तत्॥ ज्येष्ठः क्षुद्रगृहपरः।

नारद ने कहा है कि—मार्गशीर्ष तथा कार्तिक महिने में गृहप्रवेश मध्यम होता है। माघ, फाल्गुन, वैशाख तथा ज्येष्ठ महिने में शुभ को देनेवाला उत्तम होता है। जिसमें किवाडे न हो, छाया भी न हो जिसमें वलि और भोजन न दिया हो ऐसे घर में बुद्धिमान् व्यक्ति को प्रवेश नहीं करना चाहिये। क्योंकि वह घर आपत्तियोंका सागर है। इसमें ज्येष्ठ महिना छोटे घर के लिए कहा है।

वृद्धगार्ग्यः—भानोश्च भौमस्य विहाय वारौ शूलादियोगानशुभान्नवापि।
रिक्ता तिथिश्चापि मृदुध्रुवर्क्षे सौम्यायने च प्रविशेद् गृहाणि॥

वृद्धगार्ग्य ने कहा है कि—रविवार और मंगलवार को त्यागकर और शूलादि अशुभ योग (व्यतिपात, वैधृति आदि) को, रिक्ता तिथियोंको भी वर्जितकर मृदु, ध्रुवसंज्ञक नक्षत्रों तथा उत्तरायणमें घरोंमें प्रवेश करे।

रत्नमालायाम्—त्वाष्ट्रमित्रशशिपूष्देवतान्यामनन्ति मुनयो मृदून्यथ। मैत्रगे हरति भूषणाम्बरोद्गीतमङ्गलविधानमेषु च॥ रोहिण्युत्तरात्रयं च ध्रुवानि।

रत्नमाला में कहा है कि—चित्रा, अनुराधा, मृगशिरा तथा पुष्य के देवताओं को मुनिगण मृदु कहते हैं और इनमें मित्रकार्य, घर, भोग, भूषण, वस्त्र, गीत तथा मंगल कार्य करे। रोहिणी और तीनों उत्तरा ध्रुवसंज्ञक है।

प्रवेशश्च वास्तुपूजां कृत्वा कार्यः—जीर्णोद्धारे तथोद्याने तथा गृहनिवेशने। नवप्रासादभवने प्रासादपरिवर्तने॥ द्वाराभिवर्तने तद्वत्प्रासादेषु गृहेषु च। वास्तुप्रशमनं कुर्यात्पूर्वमेव विचक्षणः॥ इति मात्स्योक्तेः।

और वास्तुपूजा कर प्रवेश करे। जीर्णोद्वार में, उद्यान (बगीचे) में, घर के प्रवेश में, दरवाजे के बदलने में, उसी की तरह प्रासाद और घरों में बुद्धिमान् प्रथम ही 'वास्तुशान्ति' करे। ऐसा मत्स्यपुराण में कहा है।

तत्रैव—कृत्वाग्रतो द्विजवरानथ पूर्णकुम्भं दध्यक्षताम्रदलपुष्पफलोपशोभनम्। दत्वा हिरण्यवसनानि तथा द्विजेभ्यो माङ्गल्यशान्तिनिलयं स्वगृहं विशेच्च॥ गृह्योक्तहोमविधिना बलिकर्म कुर्यात् प्रासादवास्तुशमने च विधिर्य उक्तः। सन्तर्पयेद् द्विजवरानथ भक्ष्यभोज्यैः शुक्लाम्बरः स्वभवनं प्रविशेत्सुरूपम्॥

वहीं पर कहा है कि—श्रेष्ठ ब्राह्मणों को आगे कर और जल से भरे घडे को दधि, अक्षत, आम के पत्ते, पुष्प, फल से शोभित कर ब्राह्मणों को सुवर्ण तथा वस्त्र देकर मंगल देनेवाले शान्तिस्थानरूपीघर में प्रवेश करे। गृह्योक्त होमविधि से बलि कर्म करे जो प्रासादवास्तु के शमन में जो विधि कही है। भक्ष्य तथा भोज्यों से उत्तम ब्राह्मणों को तृप्त कर सफेद वस्त्र को धारण कर अपने भवन में प्रवेश करे।

(कलिवर्ज्यानि)

अथ कलिवर्ज्यानि। बृहन्नारदीये—समुद्रयातुः स्वीकारः कमण्डलुविधारणम्। द्विजानामसवर्णासु कन्यासूपयमस्तथा॥ देवराच्च सुतोत्पत्तिर्मधुपर्के पशोर्वधः। मांसदानं तथा श्राद्धे वानप्रस्थाश्रमस्तथा॥ दत्ताक्षतायाः कन्यायाः पुनर्दानं परस्य च। दीर्घकालं ब्रह्मचर्यं नरमेधाश्वमेधकौ॥ महाप्रस्थानगमनं गोमेधश्च तथा मखः। इमान् धर्मान् कलियुगे वर्ज्यानाहुर्मनीषिणः॥ कमण्डलुः='सोदकं च कमण्डलुम्' इत्युक्तः, मृन्मयो वा। दत्ता=ऊढाः।

अब कलिवर्जित बातों को कहते हैं। बृहन्नारदीयपुराण में कहा है कि—समुद्रयात्रा, (राग से समुद्रयात्रा करनेवाले को प्रायश्चित्त है।) संन्यासग्रहण (मनु ने स्नातकप्रकरण में कहा है कि—वैष्णवीं धारयेद्यष्टिं सोदकं च कमण्डलुम्। यज्ञोपवीतं वेदं च शुभे रौक्मे च कुण्डले॥ वह कलियुग में उसका यज्ञोपवीतवत् धारण सदा निषेध है। अतः संन्यासियों को मट्टी, बांस, काष्ठ और लौकी के बने पात्र रखना चाहिये।) द्विजोंका[1]—असवर्ण कन्याओंसे उपयम-विवाह, देवर आदिसे सुतोत्पत्ति (नियोग), मधुपर्क में पशु का वध, श्राद्ध में मांस का दान, वानप्रस्थ आश्रम का ग्रहण, व्याही हुई अक्षता कन्या का फिर में दूसरे को दान, बहुत कालतक ब्रह्मचर्य, (अष्टाचत्वारिंशद्वर्षाणि वेदब्रह्मचर्यम्), [2]नरमेध, [3]अश्वमेध, महाव्याधि पीडित व्यक्ति का मृत्यु के लिए महाप्रस्थान हिमालय की तरफ गमन और गोमेधयज्ञ इन धर्मों को कलियुग में वर्जित पण्डितों ने कहा है। कमण्डलु शब्द से जलवाला कमण्डलु कहा है या मट्टीका कहा है। दत्ता माने—विवाहित कन्या।

(ऊढायाः पुनरुद्वाहनिषेधकथनम्)

ऊढायाः पुनरुद्वाहं ज्येष्ठांशं गोवधस्तथा। कलौ पञ्च न कुर्वीत भ्रातृजायां कमण्डलुम्॥ इति हेमाद्रौ वचनात्। ऊढायाः—पुरा पुरुषसंयोगान्मृते देयेति केचन। इत्यादिभिर्विवाहितोक्ता।

१—तिस्रो वर्णानुपूर्व्येण द्वे तथैका यथाक्रमम्। ब्राह्मणक्षत्रियविशां भार्या स्वा शूद्रजन्मनः॥ (या० आ० श्लो० ५७) इस वचनानुसार असवर्ण कन्याओं के साथ जो विवाह पहले विहित था वह कलियुग में निषिद्ध कहा है।

२—नरमेध (पुरुषमेध) इस यज्ञ के अधिकारी ब्राह्मण और क्षत्रिय होते हैं। यह यज्ञ चालीस दिन में समाप्त होता है। इसका प्रारंभ चैत्रशुक्ल दशमी से होता है। यजुर्वेद से अ० ३०-५-५२ में उल्लेख है। कुल १८४ पुरुषों का बन्धन होता है। इत्यादि पूर्ण विधि को श्री पूज्य पिताजी (स्व० म० म० विद्याधर जी गौड) कृत कात्यायनश्रौतसूत्र की भूमिका में देखिये।

३—'अश्वमेध' यज्ञ का प्रारंभ फाल्गुन शुक्ल दशमी, अष्टमी या नवमी से प्रारंभ होता है। इस यज्ञ का अभिषिक्त सार्वभौम राजा अधिकारी होता है। इसका पूरा विवरण तथा अश्व का लक्षण आदि सब कात्यायनश्रौतसूत्र की भूमिका में स्पष्ट है। जो प्रकाशित है।

विवाहित कन्या का फिर से विवाह, ज्येष्ठ (बड़े पुत्र) को धन का बीसवाँ भाग अधिक (ज्येष्ठस्य विंश उद्धारः सर्वद्रव्याच्च यद्वरम् । ततोऽर्धं मध्यमस्य स्यात्तुरीयं तु यवीयसः ॥ (म. स्मृ. अ. ६ श्लो. ११२ ।) देना, गोवध (मधुपर्क में गोवध करना), भाई की पत्नी का स्वीकार करना और कमण्डलु (संन्यास) इन पांच बातों को कलियुग में वर्जित करे—हेमाद्रि में वचन होने से विवाहित कन्या का प्रथम पुरुष से संयोग होने पर उसके मरने पर विवाहित कन्या का अन्य को पति के रूप में विवाह कर दे—यह किसी का मत है । इत्यादियों से विवाह कहा है ।

(सगोत्रसपिण्डकन्याविवाहनिषेधकथनम्)

हेमाद्रौ ब्राह्मे–गोत्रान्मातुः सपिण्डाच्च विवाहो गोवधस्तथा । नराश्वमेधौ मद्यश्च कलौ वर्ज्यं द्विजातिभिः ॥ गोत्राद् गोत्रजायाः पितृष्वसुः, मातृसपिण्डान्मातुलात् तत्कन्याया विवाहः कलौ न कार्यः । तेन यानि तद्विधायकानि तानि युगान्तरविषयाणि ।

हेमाद्रि में ब्रह्मपुराण का मत है कि—माता के गोत्र से तथा सपिण्ड से विवाह, गोवध, नरमेध, अश्वमेध और मद्य (मदिरा) ये द्विजातियों को कलि में वर्जित करना चाहिये ।

गोत्र से उत्पन्न पिता की बहिन तथा माता के सपिण्ड से मामा की कन्या से कलि में विवाह न करे । इससे जो इसके विधायक (विधान करने वाले) वचन हैं वे युगान्तर (अन्य युगों के लिए) विषयक हैं ।

(कलौ मातुलकन्याविवाहनिन्दाकथनम्)

तथा च व्यासः–तृतीयां मातृतः कन्यां तृतीयां पितृतस्तथा । शुल्केन चोद्वहिष्यन्ति विप्राः पापविमोहिताः ॥ इति कलौ तन्निन्दामाह । मातृतस्तृतीयां मातुलकन्यामित्यर्थः । उक्तं चैतत्प्राक् । मद्यं 'स्त्रीभ्यश्च सुरामाचामम्' इत्यादिना विहितमपि वर्ज्यम् ।

वैसे ही और व्यास ने कहा है कि—माता से तीसरी पीढी की कन्या से और पिता से तीसरी पीढी की कन्या से जो ब्राह्मण पाप में संलग्न होकर मोल (खरीद) लेकर विवाह करेगें । यह कलि में उसकी निन्दा कही है । अर्थात्—माता से तीसरी पीढी की कन्या मामा की कन्या हुई—यह अर्थ है । यह पहले कह चुके हैं । स्त्री मदिरा से आचमन करे इत्यादि से विहित (आश्वलायन में कहा है कि—दूसरे दिन अन्वष्टका करे इससे विहित है) भी वर्जित है ।

(विधवाया देवरेण नियोगनिषेधकथनम्)

हेमाद्रौ आदित्यपुराणे–विधवायाः प्रजोत्पत्तौ देवरस्य नियोजनम् । बालायाः क्षतयोन्यास्तु वरेणान्येन संस्कृतिः । कन्यानामसवर्णानां विवाहश्च द्विजन्मभिः ।

हेमाद्रि में आदित्यपुराण का मत है कि—विधवा में प्रजा की उत्पत्ति के लिए देवर का नियोग, क्षतयोनी वाली कन्या को अन्य वर को देना तथा असवर्ण कन्याओं का द्विजातियों के साथ विवाह ।

(आततायिनां द्विजानां धर्मयुद्धेन हिंसनकथनम्)

आततायिद्विजाग्र्याणां धर्मयुद्धेन हिंसनम् ॥ द्विजस्याब्धौ तु नौयातुः शोधितस्यापि संग्रहः ।

आततायी द्विजों का धर्मयुद्ध से हिंसन–मारना, नौका द्वारा (नाव में बैठकर) समुद्र में जानेवाले द्विज के साथ व्यवहार और प्रायश्चित्त द्वारा शुद्ध होने पर भी उसके साथ व्यवहार,

(सत्रदीक्षानिषेधकथनम्)

सत्रदीक्षा च सर्वेषां कमण्डलुविधारणम् ॥ महाप्रस्थानगमनं गोसंज्ञप्तिश्च गोसवे ।

सबों को सत्रयज्ञ में दीक्षित करना, कमण्डलु (संन्यास) का धारण, महाप्रस्थान (शरीर का पात उत्तरदिशा में करना), गोयज्ञ में गौ का हनन,

(सौत्रामण्यां सुराग्रहनिषेधकथनम्)

सौत्रामण्यामपि सुराग्रहणस्य च सङ्ग्रहः ॥

सौत्रामणियज्ञ में सुरापात्र ग्रहण का संग्रह,

(अग्निहोत्रहवण्याश्च लेह्यादिनिषेधकथनम्)

अग्निहोत्रहवन्या (ण्या) श्च लेहो लीढापरिग्रहः । वृत्तस्वाध्यायसापेक्षमघसंकोचनं तथा ॥

अग्निहोत्र होम होने के बाद अग्निहोत्रहवनी में लगे पदार्थ को जिह्वा से चाटना (आहार) और अग्निहोत्र हवणी का ग्रहण करना । अग्निहोत्रादि का अनुष्ठान तथा वेदाध्ययन और पाप का संकोच सापेक्ष है ।

(कामकृते महापापादौ मरणान्तं प्रायश्चित्तकथनम्)

प्रायश्चित्तविधानं च विप्राणां मरणान्तिकम् । संसर्गदोषस्तेयान्यमहापातकनिष्कृतिः ॥ संसर्गदोषः तत्संसर्गी च पञ्चमः इत्युक्तः । स्तेयं च तदन्यानि महापातकानि ब्रह्महत्यासुरापानगुरुतल्पानि त्रीणि, तेषां कामकृतानां मरणान्तिकं प्रायश्चित्तं विप्राणां कलौ नेत्यर्थः । मरणान्तिके हि जातिवधनिमित्तं द्वादशाब्दं द्विगुणं ब्रह्मवधनिमित्तं च द्विगुणं भवति तत् चतुर्थे नास्ति निष्कृतिः, इति निषिद्धम् । न चात्महत्याविधिना तद्बाधः, तेन ह्यात्महत्यानिमित्तस्यैव बाधो न जातिवधनिमित्तस्य । भिन्नविषयत्वात् ।

ब्राह्मणों का मरणान्तप्रायश्चित्त-विधान, संसर्गदोष तथा चोरियों से अन्य महापातक का निस्तार, संसर्गजन्यदोष, उसके साथ संसर्ग करनेवाला पांचवा ऐसा कहा है । चोरी से अन्य महापातक—ब्रह्महत्या, सुरापान, गुरुपत्नीगमन ये तीन, उनका इच्छा से किया हो तो मरण प्रायश्चित्त है वह ब्राह्मणों को कलि में नहीं होता है यह अर्थ है । मरणान्तिक में जातिवध निमित्त द्वादशाब्द द्विगुणित और ब्रह्मवध निमित्त द्विगुणित प्रायश्चित्त होता है वह चतुर्थ में महापातक में निस्तार नहीं होता है इससे निषिद्ध है । कहो कि—आत्महत्याविधि से उसका बाध है । इससे आत्महत्या निमित्त का ही बाध है जातिवध निमित्त का नहीं है । क्योंकि—भिन्नविषयक है ।

(संसर्गिणस्तु प्रायश्चित्तकथनम्)

संसर्गिणस्तु कामतोऽपि व्रतस्यैवोक्तेर्न मरणान्तिकम् । नापि स्तेये तत्र राज्ञो वधकर्तृकत्वात् । तेन तयोर्मरणान्तिकाभावात्तयोरेव निष्कृतिर्नान्येषां त्रयाणाम् । युगान्तरे तु कलौ निषेधबलादेव प्रवृत्तिः । एतद्विप्रपरं न क्षत्रियादेः । तदुक्तम् 'विप्राणां मरणान्तिकम्' इति । विशेषोऽस्त्वस्मत्कृते प्रायश्चित्तरत्ने ज्ञेयः ।

संसर्गी का तो इच्छासे भी व्रतको ही कहा है मरणान्तिक नहीं है । वह चोरी में भी नहीं है । क्योंकि वहाँ पर राजा ही वध को करने वाला है । इससे उन दोनों का मरणान्तिक का अभाव होने से दोनों को ही निष्कृति (निस्तार) है अन्य तीनों की नहीं है । युगान्तर में तो कलियुग में निषेध के बल से प्रवृत्ति है । यह ब्राह्मण परक है क्षत्रियादि परक नहीं है । कहा भी है कि—ब्राह्मणों का मरणान्तिक प्रायश्चित्त है विशेष तो हमारे बनाये हुए 'प्रायश्चित्तरत्न' में जानना चाहिये ।

वरातिथिपितृभ्यश्च पशूपाकरणक्रिया । दत्तौरसेतरेषां तु पुत्रत्वेन परिग्रहः ॥ सवर्णान्याङ्गनादुष्टैः संसर्गः शोधितैरपि । अयोनौ सङ्ग्रहे वृत्ते परित्यागो गुरुस्त्रियः ॥ परोद्देशात्मसन्त्यागः उद्दिष्टस्यापि वर्जनम् । प्रतिमाभ्यर्चनार्थाय सङ्कल्पश्च सधर्मकः ॥

वर दमाद (जामाता), अतिथि अभ्यागत, पशूपाकरणक्रिया, पितरों के लिए पशूपाकरण (कुशा से संस्कारपूर्वक पशुवध) करना, दत्तक तथा औरस पुत्र को त्याग कर इतर प्रकार के पुत्रों को ग्रहण करना, प्रायश्चित्त करनेवाले अपने वर्ण से अन्यवर्ण की स्त्री के संसर्गियों से संसर्ग करना, विद्या से जो गुरु हैं उनकी पत्नियों को दिये जानेवाले भरण पोषण का त्याग करना, दूसरे के उद्देश्य से अपनी आत्मा का त्याग करना, स्वीकार किये हुए का त्याग करना । प्रतिमार्चन के लिए धर्म से संकल्प ग्रहण करना ।

(अस्थिसंचयनादूर्ध्वमङ्गस्पर्शनिषेधकथनम्)

अस्थिसञ्चयनादूर्ध्वमङ्गस्पर्शनमेव च ।

और अस्थिसंचय के बाद अंगस्पर्श को ही करना ।

(विप्राणां शामित्रादिनिषेधकथनम्)

शामित्रं चैव विप्राणां सोमविक्रयणं तथा ॥ षडभक्तानशने चान्नहरणं हीनकर्मणः ॥

माधवीये पृथ्वीचन्द्रोदये च–शूद्रेषु दासगोपालकुलमित्रार्द्धसीरिणाम् । भोज्यान्नता गृहस्थस्य तीर्थसेवातिदूरतः ॥ शिष्यस्य गुरुदारेषु गुरुवत् वृत्तिशीलता ॥ आपद्वृत्तिर्द्विजाग्र्याणामश्वस्तनिकता तथा ॥ प्रजार्थं तु द्विजाग्र्याणां प्रजारणिपरिग्रहः । ब्राह्मणानां प्रवासित्वं मुखाग्निधमनक्रिया ॥ बलात्कारादिदुष्टास्त्रीसंग्रहो विधिचोदितः ।

शामित्र (शामित्रमालभेत—इससे विधि प्राप्त यज्ञ में पशु का हनन करना, ब्राह्मणों को सोमलता का विक्रय करना, छ समय (तीन दिन) में भोजन—अनशन करना, हीन कर्म करनेवाले से अन्न ग्रहण करना,

माधवीय में और पृथ्वीचन्द्रोदय में कहा है कि—शूद्रों में—दास, गोपाल, कुलमित्र और आधा साभीदार गृहस्थ का अन्न भोज्य है । अत्यन्त दूर तीर्थ की सेवा (तीर्थयात्रा पाठान्तर में है), शिष्य का गुरुपत्नियों में गुरु के सदृश व्यवहार करना, ब्राह्मण श्रेष्ठों को आपत्कालीन वृत्ति करना । अश्वस्तनिकता (कल के लिये अन्नादि प्रबन्ध नहीं रखनेवाला अर्थात्—उतना ही अन्न संग्रह करे जो कल के लिए न रहे (त्र्यहैहिको वापि भवेदश्वस्तनिक एव वा । (मनु० अ० ४ श्लो० ७) किसी शाखा में जातकर्महोम में प्रजा के जीवन के लिए उत्तम ब्राह्मणों का अरणी में अग्नि को मथना, ब्राह्मणों का व्यर्थ में सदा प्रवास करना, (प्रविशेत्कार्यवान् विप्रो न वृथैव चिरं वसेत् ।) मुख से अग्निधमन और बलात्कार आदि से दूषित स्त्री का शास्त्रोक्तविधि से संग्रह स्वीकार करना ।

(यतीनां सर्ववर्णेषु भिक्षाचर्यनिषेधकथनम्)

यतेश्च सर्ववर्णेषु भिक्षाचर्या विधानतः ॥

यति (जिसने इन्द्रियों के समूह को अपने वश में कर लिया) को सब वर्णों में विधान से भिक्षा संग्रह करना ।

(नवोदकादौ विचारः)

नवोदके दशाहं च दक्षिणा गुरुचोदिता । ब्राह्मणादिषु शूद्रस्य पचनादिक्रियापि च ॥ भृग्वग्नि-पतनश्चैव वृद्धादिमरणं तथा । गोतृप्तिशिष्टे पयसि शिष्टैराचमनक्रिया । पितापुत्रविरोधेषु साक्षिणां दण्डकल्पनम् । यतेः सायंगृहत्वं च सूरिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ एतानि लोकगुप्त्यर्थं कलेरादौ महात्मभिः । निवर्तितानि विद्वद्भिर्व्यवस्थापूर्वकं बुधैः ॥

नवोदक (नूतनजल) वर्षाकाल का नया जल तीन दिन तथा दूसरे समय का जल दश दिन तक अशुद्ध रहता है ।) दश दिन, गुरु से प्रेरित हो दक्षिणाग्रहण करना, ब्राह्मण आदिकों में शूद्र का पाक आदि क्रिया करना, पर्वत तथा अग्नि में गिरकर वृद्धादि का मरण, गोतृप्तिमात्र जल से शिष्टों का आचमन करना, पिता और पुत्र के विरोध में गवाहों को दण्ड की कल्पना करना, संन्यासी को सायंकाल किसी गृहस्थ के घर निवास करना तत्त्वज्ञदर्शिमहात्मा विद्वानों ने व्यवस्थापूर्वक लोक की रक्षा के लिए कलि के आदि में निषिद्ध किया है ।

(कृतप्रायश्चित्तविमर्षः)

सुराग्रहणस्य तत्कर्तुः संग्रहो व्यवहारकः । न च मद्यं चेति सामान्येन निषिद्धस्यानेनोपसंहार इति वाच्यम् निषेधस्य निवृत्तिमात्रफलत्वेन विशेषानपेक्षत्वात्, 'न हिंस्यात्' इत्यस्य 'न ब्राह्मणं हन्यात्' इत्यनेनोपसंहारे हिंसान्तरस्यादोषत्वापत्तेश्च । निरूपितं चैतद्धेमाद्रिणान्यत्रेत्युपरम्यते । सुराग्रहस्योद्देश्यस्य सौत्रामणिविशेषणाविवक्षया वाजपेयेऽपि निषेधः । सौत्रामण्यां तु 'पयोग्रहा वा स्युः' इत्यापस्तम्बोक्तेर्वैकल्पिकपयोग्रहैरप्यधिकारः । (आपस्तम्बश्रौतसूत्र–१९।२।२३) ।

सुरा (मदिरा) ग्रहण से यज्ञ करनेवाले का और यज्ञ करानेवालों का संग्रह व्यवहार से (अर्थात्—प्रायश्चित्त करने से) है । कोई कहे कि—'मद्यं च' इस सामान्य वचन से निषिद्ध का इससे उपसंहार-समाप्ति

है ऐसा कहे तो निषेध के निवृत्तिमात्रफल से विशेष अपेक्षा नहीं होने से 'न हिंस्यात्' इस वाक्य से हिंसा न करे इसका 'न ब्राह्मणं हन्यात्' ब्राह्मण को हनन न करे' इससे उपसंहार में हिंसा में हिंसान्तर की अदोषापत्ति हो जायगी। इस सबको हेमाद्रि ने अन्यत्र निरूपण किया है अतः विश्राम (समाप्त) करते हैं।

सुराग्रहण के उद्देश्य से [1]'सौत्रामणियज्ञ' में विशेषता की अविवक्षा (समुच्चयार्थक 'अपि' शब्द से कर्मान्तर समुच्चय अर्थ से उसकी विवक्षा असंभव हो जायगी। 'ग्रहं समार्ष्टि' में एकत्व विवक्षित नहीं, केवल प्रतिपादित ही विवक्षित होता है न कि एकत्व की तरह (सुरातत्त्व विवक्षित है) से 'वाजपेययज्ञ' में भी (इससे वाम-आगम आदि में, विनायकशान्ति आदि में और स्मार्त में निषेध कहा है) निषेध है। 'सौत्रामणि' में तो पयोग्रह (दूधभक्षक) हों यह आपस्तंब ने वैकल्पिक (सौत्रामणियज्ञ में जिनका सुराग्रह और पयोग्रह ऐसे दोनों का उसमें अधिकार नहीं है) पयोग्रहों का भी अधिकार है।

वाजपेये तु तत्प्राप्तौ मानाभावात्सोमसुरयोः सहत्यागेनांशे सुराद्रव्यत्वात्तत्प्रख्यतया यागनामत्वेन तां विना संज्ञायोगात् कलौ नाधिकार इति युक्तं प्रतीमः। त्रिकाण्डमण्डनादिलिखनं तु निर्मूलमनाकरं च।

'वाजपेययज्ञ' में तो उस (दूध) की प्राप्ति में प्रमाणाभाव होने से सोम और सुरा (मद्य) का एक ही साथ त्याग होने से, इस यज्ञ का अंग सुराद्रव्य भी है क्योंकि उसी के नाम से याग का नाम है उस मदिरा के बिना संज्ञा का अयोग न होने से (कल्पसूत्र भाष्यादि में पयोग्रह का विधान नहीं है।) कलि में अधिकार नहीं है यह ठीक समझते हैं। त्रिकाण्डमण्डन आदि का लेख तो निर्मूल है।

वृत्तेति— एकाहाद् ब्राह्मणः शुद्धेद्योऽग्निवेदसमन्वितः। इत्युक्तेः। अघस्याशौचस्य संकोचः। न तस्य निष्कृतिर्दृष्टा भृग्वग्निपतनादृते। इत्युक्तस्य प्रायश्चित्तस्य विधानमुपदेशः। 'कलौ कर्तैव लिप्यते' इति व्यासोक्तेः। पतितसंसर्गे दोषसत्त्वेऽपि पातित्यं नेत्यर्थः, अन्यथा 'संसर्गः शोधितैरपि' इति विरोधापत्तेः।

स्तेयभिन्ने महापापे रहस्यमृते प्रायश्चितं नेत्यर्थः। सवर्णान्या असवर्णान्या क्षत्रियादितया दुष्टैः अयोनौ शिष्यादौ। चतस्रस्तु परित्याज्याः शिष्यगा गुरुगा च या। इत्युक्तस्त्यागः। परोद्देशेन ब्राह्मणाद्यर्थं आत्मत्यागः। यद्वा परोद्देशात्मत्यागो दानं 'मनसा पात्रमुद्दिश्य' इत्युक्तम्। उद्दिष्टस्य त्यक्तस्य वर्जनं 'प्रतिग्रहसमर्थोऽपि' इत्युक्तम्। वेतनग्रहणेन प्रतिमापूजा। स्वाशौचकालाविज्ञेयं स्पर्शनं तु त्रिभागतः। इत्युक्तः स्पर्शः।

(वृत्त=अग्निहोत्रादि का अनुष्ठान और वेदाध्ययन) जो अग्नि और वेद से युक्त ब्राह्मण है वह एक दिन में शुद्ध होता है ऐसा कहा है। पाप का संकोच है। पर्वत पर से गिरने पर या अग्नि में कूदने के सिवा और उसका प्रायश्चित्त नहीं मिलता। प्रायश्चित्त के विधान को उपदेश कहते हैं वह कर्ता को ही कलि में लिप्त करता है ऐसा व्यास ने कहा है पतित के संसर्ग में दोष रहने पर पातित्य नहीं होता है। अन्यथा शोधित होने से संसर्ग करे। (सवर्णान्याङ्गनादुष्टैः संसर्गः शोधितैरपि) इससे शोधित संसर्ग में दोष है। यहाँ तो पतित के संसर्ग में दोष का अभाव होने से विरोधापत्ति होगी— यह अर्थ है) स्तेय से भिन्न (यहाँ पर तो स्तेय आदि का महापाप प्रायश्चित्त न करे यह कहना असंगत हो जायगा। पराशर ने तो महापाप में प्रायश्चित्त कहा है। 'कृते तु मानवा धर्मास्त्रेतायां गौतमाः स्मृताः। द्वापरे शङ्खलिखिताः कलौ पाराशराः स्मृताः॥) महापाप में रहस्यकृत प्रायश्चित्त नहीं होगा यह

१—सौत्रामणियज्ञ—दो तरह का होता है। स्वतन्त्र तथा दूसरा यागों का अंगभूत। स्वतन्त्र 'सौत्रामणियज्ञ' में ब्राह्मण और अंगभूत सौत्रामणि में क्षत्रिय तथा वैश्य भी अधिकारी होते हैं। इसमें दुग्ध ग्रहण के साथ मदिरा के ग्रहण का विधान है अतः शिष्टगण इसका अनुष्ठान नहीं करते हैं। तद्वत् ही 'वाजपेययाग' में सुराग्रहण होने से इसका भी अनुष्ठान नहीं होता है। विशेष—कात्यायनश्रौतसूत्र की भूमिका देखिये।

२—जैमिनिन्यायमाला अ० १। पा० ४ अ० ४।

अर्थ है। सवर्ण से अन्य असवर्ण क्षत्रियादि में मैथुनादि अयोनि शिष्यादि में शिष्यगामी तथा गुरुगामी आदि चारप्रकार के पातकी त्यागने योग्य हैं। इससे त्याग कहा है। पर उद्देश्य से ब्राह्मण, गौ आदि के लिए अपना मरण या दूसरे के लिए आत्मत्याग से दान 'मन से पात्र को उद्देश्य कर त्याग करे यह कहा है' उद्दिष्ट त्याग का निषेध प्रतिग्रह में समर्थ भी है यों कहा है। वेतन ग्रहण द्वारा यावज्जीवन प्रतिमा की पूजा करना, अपने आशौच के समय तीसरे भाग से स्पर्श करे ऐसा स्पर्श करना कहा है।

षडिति—उपोषितस्त्र्यहं स्थित्वा धान्यमब्राह्मणाद्धरेत्। इत्युक्तमन्नचौर्यम्। आपदि—क्षात्रादिवृत्तिः। 'मुखेनैव धमेदग्निम्' इत्युक्तं धमनम्। दशाहेनैव शुद्ध्येत भूमिष्ठं च नवोदकम्। इत्युक्तो दशाहः। 'गुरवे तु वरं दत्त्वा' इत्युक्त्वा दक्षिणा। शूद्रेषु दासगोपालेति।

कन्दूपक्वं स्नेहपक्वं यच्च दुग्धेन पाचितम्। एतान्यशूद्रान्नभुजो भोज्यानि मनुरब्रवीत्। इत्यपरार्के सुमन्तूक्ता शूद्रस्य पाकक्रिया।

पितापुत्रविवादे तु साक्षिणां त्रिपणो दमः। इत्युक्तः। 'सायंगृहत्वं विधूमे सन्नमुसले' इत्युक्तम्।

षड्भक्त=तीन उपवास कर ब्राह्मण से भिन्न का धान्य-अन्न की चोरी (आपत्काल में) करे। आपत्काल में क्षत्रिय, वैश्य आदि की वृत्ति करे। मुख से अग्नि को फूके इससे धमन कहा है। भूमि में गिरा जल दश दिन में पवित्र होता है, इससे दश दिन कहा है। गुरु को दक्षिणा देकर घर में आवे इसमें दक्षिणा कहा है। शूद्रोंमें दास (भृत्य) तथा गोपाल (अहीर) को। कन्दूपक्व (लोहमयपात्र या कडाही), स्नेहपक्व (घी से बनी), और जो दूधसे बनी वस्तुयें सब खाना चाहिये। ये अशूद्र के अन्नको भक्षण न करता हो करे—यह मनुने कहा है। यह अपरार्क में सुमन्तु ने शूद्र की पाकक्रिया को कहा है। पिता पुत्र में विवाद में साक्षियों का तीन पण (पलके चतुर्थांश के बराबर तांबेके सिक्के या तोल को पण कहा जाता है।) दण्ड कहा है। सायंकाल घर में संन्यासी का धूम तथा मूसल का शब्द समाप्त होने पर जाय—यह कहा है।

पृथ्वीचन्द्रेण तु—अटन्ति वसुधां विप्राः पृथिवीदर्शनर्शनाय तु। अनिकेता ह्यनाहारा यत्र सायं गृहास्तु ते। इति विष्णुपुराणोक्तो निषिद्धः। तेनाज्ञातशीलपन्थादेः श्राद्धादौ विनियोगो न कार्यः कलावित्यर्थ उक्तः। एतानि वर्ज्यानीत्यर्थः।

पृथ्वीचन्द्रोदय में विष्णु पुराणमत से निषिद्ध कहा है कि—ब्राह्मण संन्यासी—(अनिकेत नास्ति निकेतो निर्दिष्टवासस्थानंयस्य) एक जगह नहीं बनाते न भोजन ही करते पृथ्वीदर्शन के लिए घूमते हैं वे जहाँ ठहरते हैं उसे सायं गृह कहते हैं। इससे जिसका स्वभाव, मार्ग आदि का ज्ञान न हो उसे श्राद्धादि में विनियोग नहीं करना चाहिये—यह कलि मेंकहा है। इनका त्याग करे—यह अर्थ है।

(कलौ पञ्चनिषेधाः)

निगमः—अग्निहोत्रं गवालम्भं संन्यासं पलपैतृकम्। देवराच्च सुतोत्पत्तिः कलौ पञ्च विवर्जयेत्॥ अग्निहोत्रं तदर्थमाधानम्, एतच्च सर्वाधानपरम्।

अर्धाधानं स्मृतं श्रौतस्मार्ताग्न्योस्तु पृथक्कृतिः। सर्वाधानं तयोरैक्यकृतिः पूर्वयुगाश्रिता॥ इति लौगाक्षिवचनादिति स्मृतिचन्द्रिकायाम्। एतेन—

चत्वार्यब्दसहस्राणि चत्वार्यब्दशतानि च। कलेर्यदा गमिष्यन्ति तदा त्रेतापरिग्रहः। संन्यासश्च न कर्तव्यो ब्राह्मणेन विजानता॥ इति व्यासवचनं व्याख्यातम्।

निगम ने कहा है कि—अग्निहोत्र, गवालंभ, संन्यास, मांस और देवर द्वारा पुत्रोपत्ति करना ये पांच कर्म कलि में वर्जित करे। अग्निहोत्र के लिए आधान करना—यह सर्वाधानपरक है। अर्धाधान श्रौत तथा स्मार्त अग्नियों का पृथक् करण का नाम है। सर्वाधान में तो दोनों अग्नियों का एकीकरण करे यह पूर्व युगों के लिए है कलियुग के लिए नहीं हैं। यह लौगाक्षि का स्मृतिचन्द्रिका में कहा है।

इससे चार हजार चार सौ साल कलि के बीत जाने पर तो त्रेतापरिग्रह हो संन्यास को ब्राह्मण न करे—यह व्यास वचन से व्याख्या की है।

१—संन्यासनिषेधकं क्षत्रियवैश्यविषयकम् इति मलमासतत्त्वम्। संन्यासप्रतिषेधश्च कलौ क्षत्रविशोर्भवेत्।

(यावद्वर्णविभागस्तावत्संन्यासमग्निहोत्रं कुर्यात्)

सर्वाधानेऽपि विशेषमाह देवलः—यावद्वर्णविभागोऽस्तियावद्वेदः प्रवर्तते। संन्यासं चाग्निहोत्रं च तावत्कुर्यात्कलौ युगे ॥ इति। अत्र पूर्वयुगाश्रितेति लौगाक्षिवाक्ये पूर्वयुगानि कृतादीनीत्येकोऽर्थः। अन्ये तु युगस्य पूर्वं कलेः पूर्वभागः। स 'चत्वार्यब्दसहस्राणि' इतिपूर्वोक्तवाक्याच्चतुश्चत्वारिंशच्छतवर्षावच्छिन्नः। तस्मिन् भागे सर्वाधानं कार्यम् । तदुत्तरं तु यावद्वर्णविभागोऽस्तीति वाक्याद्वर्णविभागपर्यन्तमर्द्धाधानमित्याहुः। संन्यासस्त्रिदण्डः।

सर्वाधान में विशेष देवल ने कहा है कि—जब तक वर्ण का विभाग है, तथा जबतक वेद हैं। तबतक संन्यास और अग्निहोत्र को कलियुग में करे।

यहाँ पर 'पूर्वयुगाश्रिता' इस (पहले कहे हुए) लौगाक्षिवाक्य में पहले सतयुगादि युगों में किये हुए—यह एक अर्थ है। अन्य तो कहते हैं कि—युगके पहले कलिका पहला भाग वह चार हजार वर्ष है। यह पहले कहे हुए वाक्य से चौवालिस सौ वर्ष होता है। उस भाग में सर्वाधान करना चाहिये। उसके उत्तर तो 'यावद्वर्णविभागोऽस्ति' जबतक वर्ण का विभाग है—इस वाक्य से वर्णविभागपर्यन्त अर्धाधान को कहा है। संन्यास माने=त्रिदण्डी। (जो ज्ञानबल से मन, वचन तथा कर्म इन तीनों को दमन कर सकते हैं, वे त्रिदण्डी होते हैं। वाग्दण्डोऽथ मनोदण्डः कायदण्डस्तथैव च। यस्यैते निहिता बुद्धौ त्रिदण्डीति स उच्यते ॥ मनु० अ० १२, श्लो० १०–१२, कूर्मपुराण अ० २७, २८, महानिर्माणतन्त्रे ८ और १३ उल्लासे—स्थितायां यौवनयुतकान्तायां परमेश्वरि। सर्वं हि विफलं तस्य यः कुर्याद्दण्डधारणम्। विद्यते पितरौ देवि! यः कुर्याद्दण्डधारणम्। संन्यासं विफलं तस्य रौरवाख्यं गमिष्यति। विद्यते बालभावेन यस्य कान्ता सुतस्तथा। संन्यासधारणं तस्य वृथा हि परमेश्वरि। स गुरुं चापि शिष्यं च रौरवाख्यं प्रपद्यते)।

इति तृतीयपरिच्छेदस्य पूर्वभागः समाप्तः।

१—सर्वं गृहादिकं त्यक्त्वा मुण्डितमुण्डीगैरिककौपीनाच्छादनं दण्डं कमण्डलुं च बिभ्रत् भिक्षावृत्तिर्निर्जने तीर्थे वा स्थित्वा केवलमीश्वराराधनं करोति यः स संन्यासी। 'सदन्ने वा कदन्ने वा लोष्ट्रे वा काञ्चने तथा। समबुद्धिर्यस्य शश्वत्स संन्यासीति कीर्तितः। इत्यादि ब्रह्मवैवर्तप्रकृतिखण्ड अ० ३३, श्रीकृष्णजन्मखण्ड ६५, गरुडपुराण अ० ४६।

(प्राचीन व्यवस्थाओं का संग्रह)

(स्वर्गीय–महामहोपाध्याय श्री पं० विद्याधर जी गौड़ द्वारा लिखित)

(प्रतिष्ठाधिकारिकथनम्)

कल्पतरौ देवीपुराणे—वर्णाश्रमविभेदेन देवाः स्थाप्यास्तु नान्यथा। चतुर्वर्णैस्तथा विष्णुः प्रतिष्ठाप्यः सुखार्थिभिः। ब्रह्मा तु ब्राह्मणैः स्थाप्यो गायत्रीसहितः प्रभुः। भैरवोऽपि चतुर्वर्णैरन्त्यजानां तथा मतः। मातरः सर्वलोकैस्तु स्थाप्याः पूज्यास्तथैव च। लिंगं गृही यतिर्वापि संस्थाप्य तु यजेत्सदा। भविष्ये—यस्तु पूजयते लिंगं देवादिं च जगत्पतिम्। ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा मत्परायणः। तस्य प्रीतः प्रदास्यामि शुभाँल्लोकानुत्तमान्। तिथितत्त्वे स्कान्दे—शूद्रः कर्माणि यो नित्यं स्वीयानि कुरुते प्रिये। तस्याहमर्चां गृह्णामि चन्द्रखण्डविभूषिते। ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थश्च सुव्रते। एवं

दिने दिने देवं पूजयेदम्बिकापतिम् । संन्यासी देवदेवेश प्रणवेनैव पूजयेत् । नामोन्तेन शिवेनैव पूजाविधानं पुराणप्रसिद्ध-जीर्णलिङ्गविषयम् । नारदीये—यः द्रोणार्चितं लिंगं विष्णुं वापि नमेन्नरः । न तस्य निष्कृतिर्दृष्टा प्रायश्चित्तायुतैरपि । पाखंड-पूजितं लिंगं नत्वा पाखण्डतां व्रजेत् । आभीरपूजितं लिंगं नत्वा नरकमश्नुते । योषिद्भिः पूजितं लिंगं विष्णुं वापि नमेत्तु यः । सकोटिकुलसंयुक्त आकल्पं रौरवं वसेत् । इति । इदं नूतनस्थापितलिङ्गविषयम् । यदा प्रतिष्ठितं लिङ्गं मन्त्रवद्भिर्यथा-विधिः । तदा प्रभृति शूद्रश्च योषिद्वापि न संस्पृशेदिति तत्रैवोक्तेः । वाराहे-स्त्रीणामनुपनीतानां शूद्राणां च नरेश्वर । स्थापने नाधिकारोस्ति विष्णोर्वा शंकरस्य च ॥ तस्मात्त्रैवर्णिकानामेव स्थापनेधिकारः । केचन स्त्रीशूद्राणां साक्षात्स्थापनेऽधिकारो न द्रव्यद्वाराऽस्तीतिवदन्तस्तेषां पूर्तादौ अधिकारदर्शनात् । तदुक्तं स्कान्दे-सर्ववर्णैस्तु संस्थाप्याः संपूज्याः सर्वदेवताः । लिङ्गान्यपि आकल्परौरवं नरकं वसेदित्यादीनि तानि नूतनस्थापितलिङ्गविषयाणि । यदा प्रतिष्ठितं लिङ्गं मन्त्रद्भिर्यथा विधिः । तदा प्रभृति शूद्रश्च योषिद्भिर्वा न संस्पृशेदितितत्रैवोक्तेः । प्रतिष्ठितायां तु शूद्रादीनां नाधिकारः । स्त्रीणामनुपनीतानां स्पर्शे नाधिकारोस्तीत्युक्तत्वात् । यः शूद्रसंस्कृतं लिंगं विष्णुं वापि नमेत्तु यः । इहैवात्यन्तदुःखानि पश्यत्यामुष्मिके किमु । शूद्रो वानुपनीतो वा स्त्रियो वा पतितोपि वा । केशवं वा शिवं वापि स्पृष्ट्वा नरकमश्नुते । ब्राह्मण्यपि हरं विष्णुं न स्पृशेच्छ्रेय इच्छति । सनाथामृतनाथां वा तस्या नास्तीह निष्कृतिः ॥ इति बृहन्नारदीयस्कान्दाद्युक्तेः । उक्तं च त्रिस्थलीसेतौ—चतुर्वर्णै-रिति पूर्वोक्तवचनाद्विष्ण्वादिप्रतिष्ठायां शूद्रस्य विकल्प इति तु युक्तं पश्यामः । शूद्रकमलाकरे तु अत एव स्पर्शनेनाधिकारो-स्तीत्यन्यत्र पाठ इत्युक्तम् । तत्त्वं तु स्त्रीशूद्रयोः शालग्रामे नूतनस्थापितदेवे च स्पर्शनिषेधः, अन्यत्र स्पर्शसहिता पूजा कार्या । तदुक्तं वाराहे-शालग्रामे न स्पृशेत्तु हीनवर्णे वसुन्धरे । स्त्रीशूद्रकरसंस्पर्शो वज्रस्पर्शादिको मतः । मोहाद्यः संस्पृशेच्छूद्रो योषिद्वापि कदाचन । स पतेन्नरके घोरे यावदाभूतसंप्लवे । यदि भक्तिर्भवेत्तस्य स्त्रीणां वापि वसुन्धरे । दूरादेवास्पृशन्पूजां कारयेत्सुसमाहितः । प्रतिमादौ तु न निषेधः । सर्ववर्णैस्तु संपूज्याः प्रतिमासर्वदेवताः । लिङ्गान्यपि च पूज्यानि मणिभिः कल्पितास्तथेति वाराहोक्तेः । अन्ये तु स्पर्शसत्वे शूद्रस्य निषेधः स्थापनं तु भवत्येव । शूद्रस्थापिते चान्यस्य न दोषः शूद्रस्य फलमस्त्येवेत्याहुः । अन्ये तु शालग्रामशिलां वापि चक्रांकितशिलां तथा । ब्राह्मणः पूजयेन्नित्यं क्षत्रियादिर्न पूजयेदिति प्रयोगपारिजाते विष्णुधर्मोक्तेः । चत्वारो ब्राह्मणैः पूज्यास्त्रयोराजन्यजातिभिः । वैश्यैर्द्वाविव संपूज्यौ तथैकः शूद्रजातिभिरिति-स्कान्दाच्च दीक्षितानां भवत्येव पूजेत्याहुः । सर्वथा प्रासादप्रतिष्ठादौ शूद्रस्यास्त्येवाधिकारः । अधिकारी भवेच्छूद्रः पूर्ते धर्मे न वैदिके-इति मोक्षधर्मेषु व्यासवचनादितिदिक्-इति पूर्तकमलाकरे । नमोन्तेन शिवे नैव स्त्रीणां पूजा विधीयते । विरक्तानां च शूद्राणामेवं पूजा प्रकीर्तिता । पश्चाच्चरस्य श्रुतौ नम आदित्वेपि स्त्रीशूद्रयोनमोन्तत्वम् । अन्ये तु अन्ते भिन्नं नमः शब्द-माहुः—इति पूर्तकमलाकरे । दिनकरोद्योते-तु अत्र चाधिकारिणो यद्यपि तत्तत्फलकामाः जैमिनीयषाष्ठन्यायेन च अर्थिनः समर्था विद्वांसः त्रैवर्णिका एव प्राप्नुवन्ति तथापि अधिकारी भवेच्छूद्रः पूर्ते धर्मे ह्यवैदिके । इति वचनाच्छूद्रस्याप्यधिकारः । यत्तु स्त्रीणामनुपनीतानां शूद्राणां च नराधिप । स्थापने नाधिकारोऽस्ति विष्णोर्वा शंकरस्य चेति त्रिस्थलीसेतौ वचनं तदसच्छूद्रविषयं साक्षात्कर्तृत्वप्रतिषेधकं वा अत एव ब्रह्मा तु ब्राह्मणैः स्थाप्यश्चांडालैरपि भैरव । इत्यादीनिवचनानि विभेद-प्रतिमापरिमाणविशेषविधायकानि वक्ष्यमाणवाक्यान्यपि संगच्छन्त इति दिक् । शिवपूजाधिकारिणः लैंगे—ब्राह्मणेनैव पूज्योऽहं शुचिना शुचिनापि वा । स्त्रीशूद्रकरस्पर्शो वज्रादपि सुदुःसहः । अत्र केचित् स्त्री शूद्राणां स्पर्शसहितपूजानिषेधार्थत्वं विशेषणं मन्यते । वस्तुतस्तु स्त्रीशूद्रस्पर्शनिषेधः प्रतिष्ठितलिङ्गशालिग्रामविषयः । यदा प्रतिष्ठितं लिङ्गं० न संस्पृशेदिति प्रति-ष्ठितस्पर्शनिषेधात् विहितश्चरलिंगेषु स्पर्शस्त्रीशूद्रयोरपि । न स्थावरेषु लिंगेषु सत्यमेतन्मयोच्यते । इति लैंगे चरलिङ्गेष्वेव स्पर्शविधानाच्च । तत्र बाणपार्थिवयोरेवस्पर्शः कार्यस्तदुक्तं शिवरहस्ये—स्पर्शः पार्थिवलिङ्गस्य चादरात् । स्त्रीभिः कार्यस्तथा-शूद्रैरेपशास्त्रविनिर्णय इति चतुर्वर्णैरितिवचनाद्विष्ण्वादिप्रतिष्ठायां शूद्रस्य विकल्पः । शिवसर्वस्वे भविष्ये—चतुर्वर्णैस्तथा विष्णुः प्रतिष्ठाप्यः सुखार्थिभिः । ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैर्लिंगं स्थाप्यं प्रयत्नतः । लिंगं गृही यतिर्वापि संस्थाप्य तु यजेत्सदा । इति लिङ्गस्थापने शूद्रस्य नाधिकार एवेति । निष्कर्षस्तु प्रतिमा सर्वैः स्थाप्याः चरलिंगं सर्वैः स्थिरलिंगं स्त्रीशूद्रैः स्वयं संकल्पं कृत्वा ब्राह्मणद्वारा कर्तव्यम् । केचिद्दीक्षितादीक्षितभेदेन व्यवस्थां मन्यते । केचिद्द्रव्यद्वारा वदन्ति ।

(शिलान्यासे विचारः)

(१) नूतनगृहादिनिर्माणारम्भे सविधि प्राथमिकशिलानिवेशः शिलान्यासः । (२) जीर्णोद्धारे काष्ठतृणादिनिर्मिते चलमण्डपादौ च न शिलान्यासः । तत्र काष्ठमयस्तम्भनिवेश एव शिलानिवेशस्थानीयः । तथाच निर्णयसिन्धौ—आयव्ययौ मासशुद्धिं तृणागारे न चिन्तयेत् । शिलान्यासादि नो कुर्यात्तथाऽगारपुरातने ॥ इति । विष्णुधर्मोत्तरे खं० ३ अ० ९४—मृन्मये चेष्टकान्यासः कर्तव्यो न च दारवे । इति । (३) एवं कूपाद्यारम्भेऽपि भूमिपूजनमात्रं न शिलान्यास प्रासादगृहयोरेव विधानात् । (४) शिलामये प्रासादादौ शिलामय्य इष्टकाः, इष्टकामये मृन्मये च इष्टकामया एव शिलाः । शिलान्यासः प्रकर्तव्यः प्रासादे तु शिलामये । इष्टकानां तु विन्यासः प्रासादे चेष्टकामये ॥ इति । (वि. प्र. अ.) वचनात्,

प्रासादे तु शिलाः शैले इष्टका इष्टकामये। (अग्नि. अ० ६२) मृन्मये चेष्टकान्यासः” इति पूर्वोक्तवचनाच्च। (५) इष्टकालक्षणं च—एकवर्णाः सुपक्वाश्च वह्नजीर्णास्तु वर्जिताः। अप्यङ्गारान्विताः नेष्टाः कृष्णवर्णाः सशर्कराः॥ भग्नाश्च विभ्रमैर्हीना वर्जनीयाः प्रयत्नतः। सुप्रमाणा रक्तवर्णाश्चतुरस्रा मनोरमाः॥ इति। (६) शिलाश्च ब्राह्मणस्य एकविंशत्यङ्गुलदीर्घास्तदर्धविस्तारा विस्ताराधोच्छ्रायाश्चतुरस्राः, क्षत्रियस्य सप्तदशाङ्गुलदीर्घास्तदर्धविस्तारास्तदर्धोच्छ्रयाः, वैश्यस्य त्रयोदशाङ्गुलदीर्घास्तदर्धविस्तृता विस्तारार्धोच्छ्रिताः, शूद्रस्य नवाङ्गुलदीर्घास्तदर्धविस्तारास्तदर्धोच्छ्रायाश्चतुरस्राः कार्याः। (७) शिलान्यास आग्नेयादिषु कोणेषु प्रादक्षिण्येन कार्य इत्येकः पक्षः। तथाऽऽह—ब्रह्मशम्भौ—सूत्रं भित्ति-शिलान्यासं स्तम्भस्यारोपणं तथा। पूर्वदक्षिणयोर्मध्ये कुर्यादित्याह काश्यपः॥ कुण्डग्रन्थेषु—“स्तम्भोच्छ्राये शिलान्यासे सूत्रयोजनकीलके। खननावटसंस्कारे प्रारम्भो वह्निगोचरः॥ वास्तुराजवल्लभे—दक्षिणपूर्वविभागे पूजनपूर्वं शिलाः समाः स्थाप्याः। समराङ्गणसूत्रधारे—आग्नेय्यामादितो नन्दां स्थापयेत् क्रमशः शिलाम्। विश्वकर्मप्रकाशे—नन्दा-भद्राजयापूर्णा आग्नेय्यादिषु विन्यसेत्। गृह्यकारिकायाम्—आग्नेयादिषु कोणेषु मन्त्रैरेतैः शिलां न्यसेत्। वाराहसंहिता-याम्—दक्षिणपूर्वे कोणे कृत्वा पूजां शिलां न्यसेत्प्रथमाम्। ब्राह्मशम्भौ—सूत्रं भित्तिं शिलान्यासं स्तम्भस्यारोपणं तथा। पूर्वदक्षिणयोर्मध्ये कुर्यादित्याह काश्यपः॥ शार्ङ्गधरः—प्रासादेषु च हर्म्येषु गृहेष्वन्येषु सर्वदा। आग्नेय्यां प्रथमं स्तम्भं स्थापयेत्तद्विधानतः॥ ईशानमादितः कृत्वा शिलान्यास इति द्वितीयः पक्षः—गर्गः—ऐशानमादितः कृत्वा प्रादक्षिण्येन विन्यसेत्। विश्वकर्मप्रकाशे—ईशानमादितः कृत्वा प्रादक्षिण्येन विन्यसेत्। नन्दाभद्राजयारिक्तापूर्णाना-म्नीर्यथाक्रमम्। गृहकोणेषु सर्वेषु पूजां कृत्वा विधानतः॥ शान्तिरत्ने—तत ईशानदिग्भागे साक्षतं रत्नपञ्चकम्॥ इत्यादि। विष्णुधर्मोत्तरे—मध्ये शैलमयं कुम्भं शङ्कुं च स्थापयेत्ततः। ऐशाने च ततः कोणे शिलां पूर्वं प्रतिष्ठयेत्॥ द्वि. वि. अ २६। तत्रैव अ. ९४ प्रासादप्रकरणे—ऐशाने च ततः कोणे शिलां पूर्वं प्रतिष्ठिताम्। प्रदक्षिणं ततो राजन् शिलान्यासो विधीयते॥ हरिभक्तिविलासे—निश्चित्य मध्यमैशान्यां गर्तं कृत्वाऽर्पयेच्छिलाम्। वैखानसतन्त्रे—गृहवास्तोर्देववास्तोर्वा ईशाने विधिरिष्यते। ब्राह्मणैर्वैष्णवैश्चापि विशेषफलहेतवे॥ वासुदेवसंहितायाम्—अथेशदिश-मारभ्य शिलान्यासं समाचरेत्। पञ्चरात्रागमे—प्रासादब्रह्मभूभागे न्यसेत्तत्र महाशिलाम्। ब्रह्मभूभाग ऐशानकोणः। वीरमित्रोदये—ऐशाने च तथा कोणे शिलां पूर्वं प्रतिष्ठयेत्। अत्रोक्तवाक्यनिचयेन परस्परनिरपेक्षेण आग्नेयैशानान्यतर-कोणोपक्रमः शिलान्यासः प्राप्नोति। सति चैवमेकार्थत्वाद् विकल्प इति बहवः। “ऐशानादग्निकोणाद्वा शिलाः स्थाप्याः प्रदक्षिणाः। इति प्रासादमण्डनेऽपि विकल्प एवोक्तः। गृहे शिलान्यास ईशानोपक्रमः प्रसादे तु आग्नेयोपक्रमः इति विश्वकर्मप्रकाशव्यवस्था। वचनानि प्रागुक्तानि। अथेशदिशमारभ्य शिलान्यासं समाचरेत्। सर्वेष्वपि हि वर्णेषु ब्राह्म-णेषु विशेषतः॥ ब्राह्मणैर्वैष्णवैश्चापि विशेषफलहेतवे। इत्यादिवचनबलात् ब्राह्मणकर्तृके ईशानादिक्रमः। क्षत्रियादौ तु—वास्तु चैशानतो विप्रे क्षत्रादावग्नितो न्यसेत्॥ इति वचनबलादाग्नेयादिक्रम इत्यपि केषाञ्चिद् व्यवस्था। गृहे प्रासादे वा सर्वत्राग्नेयादिक्रम एवेति प्रामाणिकसम्प्रदायः। ९—“ईशान्यां चतुरस्रां चतुरङ्गुलमुच्छ्रितां वेदिं कृत्वा” (आश्व० गृ० प०) इति सूत्राद्वास्तुवेदिः चतुरङ्गुलोच्छ्रिता हस्तमाना कार्या। शान्तिसार-शान्तिकमलाकर-मयूखकारादिभिः सर्वैः परिशिष्टवचनमनु-सृत्य ईशान्यामेव वास्तुवेदिकरणमेक्तम्। गर्तस्योत्तरपूर्वेण स्थण्डिलं हस्तमात्रकम्। द्विवप्रं चतुरस्रं च वितस्त्युच्छ्रासियम्मतम्॥ इति पूजार्थवेदिनिर्माणस्य ईशान्यामेव वास्तुवेदिकरणं युक्तम्। पूर्वतो वेदिकरणं तु निर्मूलमेव। ग्रहवेदिश्च वास्तुवेदितो दक्षिणतः कार्या, वास्तुवेदिश्च तदुत्तरतः। ग्रहाणां पूर्वाङ्गत्वात् प्राक् पूजनीयत्वेन पश्चाद् रुद्रपूजाया उदक्संस्थत्वापेक्षणात्। अतएव अथ प्रधानादपि यत्र पूर्वं ग्रहादिवासश्च तदा प्रधानम्। ईशानदेशे च ततस्तवाच्यां श्रीखेटवेदिः करविस्तृतोच्चा॥ इति कुण्डरत्नावल्यामुक्तम्। भट्टकृतमहारुद्रपद्धतौ च “महारुद्र-वास्तुशान्त्यादौ प्रधानमीशान्यां तद्दक्षिणे ग्रहाः” इत्युक्तम्। “अवाङ्मुखो निपतित ईशान्यां दिशि संस्थितः।” (वि० क० प्र० ४।३) इति विश्वकर्मप्रकाशवचनमप्यत्रानुकूलमिति।

(आभ्युदयिकश्राद्धे ब्राह्मणोपवेशनप्रकारः)

आभ्युदयिकश्राद्धे ब्राह्मणोपवेशनप्रकारे चत्वारः पक्षाः। तत्रैकः पार्वणवत्। अर्थात्—पश्चिमदेशे प्राङ्मुखा दैव-ब्राह्मणाः, ततो दक्षिणत उदङ्मुखाः पैतृका इति। द्वितीयः पक्षः—दक्षिणत उदङ्मुखाः वैश्वदेविका ब्राह्मणाः, पश्चिमतः प्राङ्मुखाः पैतृका इति। तृतीयः पक्षः—दैविकानां च सर्वेषां ब्राह्मणानां प्राङ्मुखत्वमुदङ्मुखत्वं वेति। चतुर्थस्तु—उत्तरतः प्राङ्मुखो वैश्वदेविकान्, दक्षिणत उदङ्मुखान् पैतृकानुपवेशयन्तीति। इमे चत्वारोऽपि पक्षाः स्मृतिकारैरुक्ताः। तत्र सर्वत्रापि ब्राह्मणानामुपवेशनक्रमः पूजाप्रकारश्च प्रादक्षिण्येनैव कर्तव्यः। तत्रापि इदानीं यो विशेषतो वैदिकैः समादृतः प्रचलितो द्वितीयः पक्षः तस्मिन्नपि पक्षे देवपितृब्राह्मणमध्ये कर्ता उदङ्मुख उपविश्य प्रथमं दैविकान् प्रागारभ्य प्रत्यगपवर्ग पूजयित्वा ततः पैतृकान् दक्षिणत आरभ्य उदगपवर्गं पूजयेत्। एवं कृते प्रादक्षिण्येन पूजनं सिद्धं भवति। अतोऽयमपि पक्षः सर्वथा शास्त्रीय एव। दर्भवटुपक्षे तु वैश्वदेविकं दर्भवटुमुदङ्मुखं, पैतृकांश्च प्राङ्मुखोपविष्टेन कर्ता यत्पूजनादिकं क्रियते

तदपि इममेव द्वितीयं पक्षमवलम्ब्य क्रियते। अस्मिन्पक्षे कुशवटूनां मध्ये कर्तुरुपवेशनार्थं स्थानसौकर्याभावात् सर्वतः पश्चादुपविश्य क्रियते इति द्वितीय एवायं पक्षो मन्तव्यः। अतोऽयमपि पक्षः सर्वथा शास्त्रानुमत एव। सर्वेषामुदङ्मुखस्वरूपे तृतीयपक्षेऽहि प्रादक्षिण्यसिद्ध्यर्थं प्रागारम्य प्रत्यगपवर्गमेव पूजादिकं सम्पादनीयमिति विशेषः। सर्वं चैतत् रुद्रकल्पद्रुमादौ स्पष्टम्।

(अथ साग्नेः प्रवसतो गृहस्थितस्य च पक्वान्नभक्षणनिर्णयः—)

तत्र गृहे वर्तमानस्य साग्नेः गृह्याग्निपक्वमेवाऽशनीयम्—वैवाहिकेऽग्नौ कुर्वीत गार्ह्यं कर्म यथाविधि। पञ्च यज्ञविधानं च पक्तिं चान्वाहिकीं गृही॥ (मनु०) इति गृह्याग्निपक्वस्य विधानात्। "नित्यपाकस्य शालाग्ने-रेकदेशस्य कार्यतः। पाकार्थमुल्मुकं हृत्वा तत्र पक्त्वा महानसे॥ वैश्वदेवोऽन्यगारे स्यात् पाकार्थः सोऽप्यलौकिकः। भूरिपाको भवेद्यत्र श्राद्धादावुत्सवेषु च॥ कृतेऽपि वैश्वदेवे स लौकिको नैव कार्यतः। होमेनान्तरितं केचिदाहुः सर्वत्र लौकिकम्॥ न तत्समञ्जसं तेषामुपयङ्होमदर्शनात्।" इत्यादिना शाङ्खायनकारिकावचनेन पाकार्थाऽऽहृतस्योल्मुकस्य समासे कृते महानसस्थस्यावशिष्टाग्नेरपि श्राद्धादिपाकाद्यर्थतोऽलौकिकत्वोक्तेः। ततोऽपि धूपाद्यर्थं नीतानामग्नीनां लौकिकत्वोक्तेश्च। शेषाग्नौ महानसे पक्वस्य भक्षणे न दोषः, न प्रायश्चित्तम् (स्मा० पृ० १६६–१७५) इति साग्निकस्य सायं प्रातर्भोजने पाकाग्निः निर्णीत एव। यदि दैवात् मानुषाद्वापराधात् शान्ते महानसस्थेऽग्नौ उपवासप्रसङ्गः। अत्रार्थे यो हि प्रोषितस्य निर्णयः स एव ग्राह्यः। स च (स्मा० पृ० २६६–२७१) "अथ पाकभोजनविधिरित्युपक्रम्य 'इति साग्निकप्रवासे भक्ष्याऽभक्ष्यनिर्णयः" इत्यन्तेन ग्रन्थेनोक्तः। तत्र—'इक्षुक्षीरविकाराश्च भ्राष्ट्रभृष्टयवा अपि। पराग्निपक्वं न ज्ञेयं प्रवासे चाग्निहोत्रिणः॥ (ध० सिं० पृ० २३७) इति भ्राष्ट्राग्निभृष्टान्नस्य तथेक्षुविकारस्य गुड़शर्करादेः, क्षीरविकारस्य पायस-दधि-घृत-तक्र-किलाट-चूर्णिकाऽऽमिक्षादेश्च पराग्निपक्वस्याऽपि भक्षणं कार्यम्। न तु एतद्व्यतिरिक्तस्य फलान्नवार्यादेरपि पराग्निपक्वस्य भक्षणं कर्त्तव्यम्। यच्च—"यदन्नं वारिहीनमिति" (ध० सिं० पृ० २३७)। तथा—"जलं विना यदन्नमिति" (स्मा० पृ० २७१) च वचनं तद् भ्राष्ट्रभृष्टाभिप्रायकमेव। यतः—"पराग्निपक्वं नाश्नीयाद्विहाय गुडगोरसौ" इति (स्मा० पृ० २६८) पूर्वार्धेन गुड़गोरसातिरिक्त-पराग्निपक्वभक्षणं निषिध्य शक्तस्य—"शाकपिण्याकसक्त्वादि-आमं दद्यात् फलादिकम्"। इत्युत्तरार्धेन शाक-फलमूलादेः आमस्यैव भक्षणमनुवदता सक्त्वाद्युक्त्या च भ्राष्ट्राग्निरेवाऽनुमतः। यत्तु—"कन्दुपक्वं न निषिद्धं शिष्टाऽऽचारात्" (स्मा० पृ० २६८) इति। तत्र "कन्दुपक्वं भाषायां (हलवाई) कृतमिति कैश्चिद् व्याख्यातम्। तन्न? कन्दुपक्वेन भ्राष्ट्रभृष्टयवादेरेव ग्रन्थकृतोऽभिप्रेतत्वात्। यतः—उत्तरग्रन्थे "तथा च त्रिकाण्डमण्डनः"—"इक्षुक्षीरविकारांश्च भ्राष्ट्रभृष्टयवाँस्तथा" इत्यादौ तथैवाऽवगतेः। किञ्च "फलादि शब्दो हविष्यान्नेऽपि वर्तते" इत्युपक्रम्य "अग्न्युदकलवणादि सर्वसंयोगेन यत् पक्वं तन्निषिध्यत इत्यादिज्ञातव्यम्" (स्मा० पृ० २७१) इत्यन्तेन ग्रन्थेन वारिहीनं पक्वमन्नमपि फलवदिति यदुक्तं तन्निरग्निकेन शूद्रस्पृष्टमपि ग्राह्यमित्यर्थाऽवबोधकम्। न तु साग्निकस्य जलं विना पराग्निपक्वान्नभक्षणार्थकम्। पूर्वोत्तरग्रन्थविरोधात्। तथा हि "निरग्नेस्तु" (स्मा० पृ० २७०) इत्यादिः पूर्वो ग्रन्थः। "स्पर्शत्वनिषेधादन्नशब्दस्तन्न भवति" इत्याद्युत्तरो ग्रन्थः। किञ्च निर्णयामृतमप्येतदर्थपोषकम्भवति। यथा—"विनोदकेन पचितं यदन्नं जातवेदसि। तदन्नं फलवद् ग्राह्यं दुःस्पृष्टं तन्न दुष्यति।" "(नि० मृ० पृ० २३६ वें० मु०) इति। इत्थं शक्तस्य साग्निकस्य गृह्याग्निशेषे शान्ते प्रोषितस्य च गृह्याग्न्यसन्निधौ 'भ्राष्ट्रभृष्टयवादीन् पराग्निपक्वेक्षुक्षीरविकारान् आमशाकफलमूलादींश्च भक्ष्यत्वेन प्रकल्प्य कालनयनं बोधितम्॥ अशक्तस्य पुनः प्रोषितस्य साग्नेर्गृह्याग्न्यसन्निधौ अरणीसमारोपिताग्नेः उच्छिन्नाग्नेश्च पृष्ठोदिवि विधानेन पाकं कृत्वा भोजनं विहितम्। तथा हि—"प्रवसन्नग्निमान् विप्रः पयो मूलफलादिभिः। कालं नयेदशक्तौ तु विधिना पाकमाचरेत्॥ ज्वरिणो रोगिणो वापि पाकं कृत्वा तु भोजनम्। सामर्थ्ये तु पुनर्जाते नैवाश्नीयात् पराग्निना॥" (स्मा० पृ० २६८) इति। आदिना गुडगोरसादिग्रहणम्। विधिना पृष्टोदिविविधानेनेत्यर्थः। किञ्च—पचनं यदि कुर्वीत प्रवसन्नग्निमान् द्विजः। समारोपे कृते चाग्नेर्वैश्वदेवं तु लौकिके॥ (स्मा० पृ० २६१) इति। लौकिके पृष्ठोदिविविधानेन स्थापिते ग्रामाग्नौ पाकं विधाय वैश्वदेवं तत्रैव कृत्वा भोक्तव्यमित्यर्थः। गृहे गृह्याऽग्न्यभावात्। अत्रैव वैश्वदेवस्याऽप्यौचित्यात्। तथा—"आधानेच्छुरनिच्छुर्वा यावद् देहस्य धारणम्। पराग्निपक्वं नाश्नीयात् उच्छिन्नाग्निस्तु सर्वदा॥ (स्मा० पृ० २६६) इति। उच्छिन्नाग्नेरपि यावज्जीवं पराग्निपक्वभक्षणनिषेधात् तत्न्यायेन साग्निकवदेव पृष्टोदिविविधानाश्रयणं युक्तम्। एवं गृहे स्थितायाः सूतिकायाश्च पर्वण्यपि सदा पराग्निपक्वभक्षणं न निषिद्धम्। यथा—"सूतिसंबन्धि यत् किञ्चित्कर्म तल्लौकिकेऽनले। पर्वण्यपि च यत्पक्तिमश्नीयान्नैव दोषभागिति॥ इति।

श्री [illegible] शर्मा [illegible]

अथ निर्णयसिन्धुः

(भाषाटीका सहित)

श्लोकसूची

दौलतराम गौड

———

अथ निर्णयसिन्धुः

(श्राद्धस्वरूप, श्राद्धभेद, श्राद्धदेश, श्राद्धकाल, श्राद्धाधिकारी, ग्राह्य-अग्राह्य ब्राह्मणविचार, भोक्ता के नियम और ग्राह्य-अग्राह्य हवि आदि का निर्णयकथन)

तृतीयपरिच्छेदस्योत्तरार्द्धं श्राद्धप्रकरणम्

दौलतराम गौड

(प्राचीन व्यवस्थाओं का संग्रह)

(स्वर्गीय-महामहोपाध्याय श्री पं० विद्याधर जी गौड़ द्वारा लिखित)

(मलमासे पितुराद्यश्राद्धे वृषोत्सर्गविचारः)

मलमासे पितुराद्यश्राद्धे क्रियमाणे वृषोत्सर्गः कर्तव्यो न वेति विप्रतिपत्तौ—"नित्यनैमित्तिके कुर्यात् प्रयतः सन् मलिम्लुचे। तीर्थश्राद्धं गजच्छायां प्रेतश्राद्धं तथैव च। इति। नित्यनैमित्तिककर्मणोः प्रेतश्राद्धस्य च कर्तव्यत्वाविधानात्। 'एकादशाहे प्रेतस्य यस्य नोत्सृज्यते वृषः। प्रेतत्वं सुस्थिरं तस्य दत्तैश्श्राद्धशतैरपि' इति वचनात्। एकादशाहिकवृषोत्सर्गस्य नित्यत्वबोधनात्। 'अशौचान्तद्वितीयेऽह्नि शय्यां दद्याद्विचक्षणः। वृषोत्सर्गं च कुर्वीत देया च कपिला शुभा॥ इति वायुपुराणीयव्यासवचनात्, अशौचान्तद्वितीया निमित्तकत्वात्, तस्य नित्यनैमित्तिकत्वे पर्यवसानात्। एकादशाहिक—वृषोत्सर्गस्य तदैव नियतकालकर्तव्यतया मुहूर्तविषयाऽभावात् गुर्वस्तशुक्रस्तादावपि एकादशाहपाते सकलशिष्टैरपि कर्तव्याऽऽचारदर्शनात्। शय्यादिदानवत् नियतकालकर्तव्यत्वात् आद्यश्राद्धवत् कर्तव्य एव। षोडशश्राद्धवत् तस्याऽपि प्रेतोपकारकत्वात्। बौधायनेनाऽपि काम्यनैमित्तकयोः पार्थक्यं निरूप्य कार्तिक्यादौ क्रियमाणस्य काम्यस्यैव निषेधात्। एकादशाहादिकस्य नैमित्तकत्वेन कर्तव्योपदेशात्। वृषोत्सर्गमात्रस्य बोधकाऽभावाच्च। ननु ? अग्न्याधेयम् इति बृहस्पतिवचनस्य बोधकसत्वेऽपि कथं बोधकाभाव इति तत्रैव वचने यज्ञदान व्रतानि चेति पूर्वत्र व्रतशब्दोपादानात्। पुनर्देवव्रतवृषोत्सर्गेत्यत्र व्रतशब्दस्य व्रतपरत्वे पुनरुक्त्यापत्तेर्न व्रतपरत्वम्। तर्हि देवव्रतशब्दस्य वृषोत्सर्गशब्दे सम्बन्धात्। तद्यथा कृत्यरत्नाकरे मलिम्लुचतरङ्गे—अग्न्याधेयं प्रतिष्ठां च यज्ञ-दान-व्रतानि च। देवव्रतवृषोत्सर्गचूडाकरणमेखलाः। माङ्गल्यमभिषेकं च मलमासे विवर्जयेत्। अग्न्याधेयमग्न्याधानम्, स्वर्गादिदेवतामुद्दिश्य व्रतरूपो यो वृषोत्सर्गः तथा च षष्ठव्रते मत्स्यपुराणम्—"कार्तिक्यां यो वृषोत्सर्गं कृत्वा नक्तं समाचरेत्। शैवं पदमवाप्नोति शिवव्रतमिदं स्मृतम्॥ तथा देवीक्रमपूजायाम् देवीपुराणम्—"गवोत्सर्गश्च कर्तव्यो नीलं वा वृषमुत्सृजेत्। इत्यादि। तथैव द्वैतनिर्णये वाचस्पतिमिश्रैरप्युक्तत्वात्। यथा-एतच्च कर्म कार्तिकी चैत्री रेवत्यामाश्वयुजीषु चतसृष्विति। किन्तु कार्तिकी चैत्र्यादिकं प्रथमाब्दिकव्यतिरिक्तमिदं ग्राह्यम्। प्रथमाऽब्दे श्वाभ्युदयिककाम्यकर्मनिषेधात्। एकादशाहे तु तद्विधेर्निरवकाशतया अगत्यैवाऽभ्युदयिकाऽभावे वृषोत्सर्गसिद्धेः। आभ्युदयिकं चात्रैच्छिकत्वेनाऽवश्यकम्। कार्तिक्यां वृषोत्सर्गात् प्राक् अपूपत्रयदानमपि। कार्तिक्यां अपूपां दत्वा इति विशेषश्रवणात्। तदयमत्राऽनुष्ठानक्रमः—ॐ अद्य कार्तिक्यां चैत्र्यां वा अमुकगोत्रस्य पितुरमुकशर्मणः मोक्षकामः सोपकरणवत्सत्यष्टकसहित-नीलवृषोत्सर्गमहं करिष्ये। यथोक्तलक्षणवृषोत्सर्गे नीलपदमपहाय वत्सरीचतुष्टयपक्षे अष्टपदस्थाने चतुष्टयपदं प्रक्षिप्य इदमेव वाक्यम्। प्रेतलोकविमुक्तिस्वर्गलोकप्राप्तौ तु न फलम्—"अहन्येकादशे प्राप्ते यस्य चेत्सृज्यते वृषः। प्रेतलोकाद्विमुक्तः सन् स्वर्गलोकं समश्नुते॥ इति विशिष्य आम्नानात्। विश्वजिन्न्यायसिद्धस्तु स्वर्गः कार्तिक्यादावप्यनिरुद्ध एवेति। तथा च नरहरिकृते द्वैतनिर्णये—एकादशाहीय—वृषोत्सर्गे प्रेतलोकविमुक्तिपूर्वकस्वर्गलोकप्राप्तिः फलम् अर्थवादश्रुतेः, न तु विश्वजिन्न्यायात् स्वर्गः प्रकृते तदनवतारात्। तथाहि—यत्फलविशेषतो न श्रुतम्। निष्फले च प्रवृत्त्यनुपपत्तिः। तत्र न्यायः प्रवर्तते। अत्र च अर्थवादादिकं प्रेतलोकविमुक्त्यादिफलं श्रुतम्। अतः कथं तदवतारः। न च सतोऽप्यर्थवादस्य समभिव्याहृतशय्यादिपञ्चकफलाऽऽकाङ्क्षापूरणाऽक्षमत्वेनाकाङ्क्षा विरहात्, तदफलत्वे साधारणफलं स्वर्गः—इति न्यायावतार इति वाच्यम्, वृषोत्सर्गफलबोधकस्यार्थवादस्य। "एकादशाहे प्रेतस्य यस्य चोत्सृज्यते वृषः। प्रेतलोकाद्विमुच्येत स्वर्गलोकं स गच्छति। इत्येवं रूपस्य तस्य तत्साकाङ्क्षत्वात्। श्रुतफलत्यागोऽश्रुतफलकल्पनं च न्यायाऽवतारेस्यादिति महद्गौरवमितिनिर्णीतत्वात्। अशौचान्तेऽपि कर्तव्यं वृषोत्सर्गादिकं सुतैः। मलिम्लुचादिदोषस्तु न ग्राह्यस्तत्र कश्चन॥ इति विशारदप्रभृतिवचनात्। "नैर्ऋतानां हितार्थाय जगत्कर्ता नृपः प्रभुः। निर्ममे मलिनं मासं प्रेतानां च हिताय वै। "अत्र प्रेतक्रियाः सर्वाः कर्तव्यास्तु मलिम्लुचे। इति भविष्यपुराणात्। शय्यादानं वृषोत्सर्गश्च शक्तेन अशौचान्ते मलमासेऽप्यवश्यं कर्तव्यम्। मत्स्यपुराणे एकादशाहश्राद्धतुल्याविधानात् इति।

(जीवच्छ्राद्धानन्तरं नित्यनैमित्तिककर्मसु अधिकारविचारः)

केनच्छ्रिद्धालुना पुरुषेण आत्मसन्तरणार्थं जीवच्छ्राद्धे कृते तदनन्तरं तस्य नित्यनैमित्तिककाम्यादिकर्मसु कर्तव्यता विषयकसंशये सञ्जाते "नित्यनैमित्तिकादीनि कुर्याद्वा सन्त्यजेत वा" इत्यादिभिर्लिङ्गपुराणोक्तवचनैरिदमवगम्यते यत् सन्ध्याजपहोमादावश्यके कर्मणि तस्याधिकारोऽस्ति। एवं प्रतिग्रहादिना न सञ्चयमकुर्वन् शरीरमात्रौपायिकं प्रतिग्रहादिकं कर्तुं शक्नोति। येन कर्मणा विना शरीरधारणं न शक्यते कर्तुं तत्र कर्मण्यार्थादधिकारः सिद्धयत्येव। एवं जीवश्राद्धानन्तरं तस्य पुत्रदावुत्पन्ने तदीयजातकर्मादिसंस्कारेषु तस्याधिकारोऽस्त्येव। तस्य सर्वं प्रकर्तव्यं पुत्रोऽपि ब्रह्मविद् भवेत्। कन्यका यदि

सञ्जाता पश्चात्तस्य महात्मनः। मुच्यते नात्र सन्देहः पितरो नरकादपि। पश्चाज्जाते कुमारे च स्वक्षेत्रे चात्मनो यदि। इत्यादिवचनात् अनेन जीवच्छ्राद्धेन श्राद्धकर्तुः पित्रादीनामपि चोत्तमलोकप्राप्तिश्रवणादिहलोके तस्य श्राद्धानन्तरं यावज्जीवं केनापि प्रकारेणापविन्नाऽपि नास्तीति सिद्धम्।

(पितुः क्षयाहे विचारः)

मृतस्य पितुः क्षयाहे पुत्रेण श्राद्धमेकोद्दिष्टविधिना कार्यम् उत पार्वणविधानेन इति प्रश्ने—मिताक्षरानिर्णयसिन्ध्वादिनिबन्धग्रन्थपर्यालोचनयाऽयमेव निर्णयः सारभूतोऽवगम्यते। ग्रन्थेषु हि "सपिण्डीकरणादूर्ध्वं प्रतिसंवत्सरं सुतः। मातापित्रोः पृथक् कुर्यादेकोद्दिष्टं मृतेऽहनि॥ एकोद्दिष्टं परित्यज्य पार्वणं कुरुते नरः। अकृतं तद्विजानीयाद् भवेच्च पितृघातकः॥ इत्यादि यमव्यासादिवचनैर्मृततिथावेकोद्दिष्टमेव कार्यम्। अन्यथा दोष इत्यवगम्यते। "आपाद्य च सपिण्डत्वमौरसो विधिवत्सुतः। कुर्वीत दर्शवच्छ्राद्धं मातापित्रोः क्षयेऽहनि। "सपिण्डीकरणं कृत्वा कुर्यात्पार्वणवत् सदा। प्रतिसंवत्सरं विद्वाँश्छागलेयोदितो विधिः—इत्यादि जमदग्निशातातपवचनैस्तु क्षयेऽहनि पार्वणश्राद्धस्यैव कर्तव्यता प्रतीयते। सति चैवं स्मृतिद्वैविध्ये शास्त्रतो यद्यपि विकल्प एव प्राप्नोति तथापि "देशधर्मं समाश्रित्य वंशधर्मं तथाऽपरे। सूरयः श्राद्धमिच्छन्ति" इत्यादिवचनेन देशधर्मस्य कुलपरम्परागतधर्मस्य चावश्यपरिपालनीयत्वात् त्यागे च दोषस्मरणात् यस्मिन् देशे यस्मिन् कुले मृतेऽहनि स्वपूर्वजैः पितुः पार्वणमेवानुष्ठीयते तद्देशकुलोत्पन्नेन पुरुषेण पार्वणमेवानुष्ठेयम्। अयमेव सिद्धान्तो निर्णयसिन्धुकारेण मिताक्षराकारेण च स्पष्टमभिहितः। "वस्तुतस्तु सर्वेषां पार्वणैकोद्दिष्टयोर्व्रीहियववद्विकल्पः। स च देशाचारव्यवस्थित इति सर्वनिबन्धसिद्धान्तः—इति निर्णयसिन्धौ। क्षयाहे पार्वणैकोद्दिष्टयोर्विकल्प एव तथा वंशसमाचारव्यवस्थायां सत्यां व्यवस्थितो विकल्पः। असत्यामैच्छिकः" (मिताक्षरा) इति अस्माकं यजुर्वेदिनामाचार्यवरेण भगवता याज्ञवल्क्येन तु—"मृतेऽहनि तु कर्तव्यं प्रतिमासं तु वत्सरम्" याज्ञव० १।२५६ इति स्पष्टमेवमृततिथावेकोद्दिष्टस्य कर्तव्यता विहिता। (अत्र श्लोके एकोदिष्टपदाभावेऽपि पूर्वतः एकोद्दिष्टपदमनुवर्तते। तथैव व्याख्यातं मिताक्षरायाम् 'प्रति संवत्सरं मृतेऽहनि एकोद्दिष्टं योगीश्वरेण" इति)। अतश्चार्योपदिष्टत्वादेव पक्षोऽयमस्मद्देशीयैर्यजुर्वेदिभिरस्मत्पूर्वतनैः सुदृढमादृत इत्यस्माभिरयमेवपक्षः सुतरामादरणीय इति।

(मासिकादिश्राद्धे विचारः)

मृतस्याशौचपूरकपिण्डदानास्थिसञ्चयनसपिण्डीकरणजननरज आदौ दिनस्य ग्रहणं, मासिकवार्षिकादौ तिथेर्ग्रहणमित्यत्र किं मानमिति विचारे 'शुद्धेद् विप्रो दशाहेन' प्रथमेऽहनि यः पिण्डः प्रथमेऽह्नि तृतीये वा अस्थिसञ्चयनं मतम्, द्वादशाहे सपिण्डनम्, जननेप्येवमेवाहः, रात्रावेव समुत्पन्ने मृते रजसि सूतके। पूर्वमेव दिनं ग्राह्यं यावन्नैवोदितो रविः॥ इत्यादौ सर्वत्र स्मृतिकारैरहः शब्दोपादानात् सर्वत्र दिनस्यैव ग्रहणं तेषामभिप्रेतं दृश्यते। मासिकाब्दौ तु मासपक्षतिथिस्पृष्टे यो यस्मिन् म्रियतेऽहनि। प्रत्यब्दं तु तथाभूतं क्षयाहं तस्य तं विदुः॥ पारणे मरणे नृणां तिथिस्तात्कालिकी मता। "मृताहस्तु यथा तिथि" इत्यादि विशेषवचनात् मरणसमये या तिथिस्तस्या एव ग्रहणं न तु दिनस्य। एवमाशौचादिविधायकेषु वचनेषु दिनशब्दश्रवणात् तेषु दिनस्यैव ग्रहणम्, मासिकाब्दौ तु तिथिग्रहणस्यैव विशेषतो विधानात्तिथिरेवग्रहणमिति निर्णयः।

(बदरीक्षेत्रादौ श्राद्धानन्तरं गयाश्राद्धविचारः)

शिरःकपालं यत्रैतत्पपात ब्राह्मणः पुरा। तत्रैव बदरीक्षेत्रे पिण्डदातुं प्रभुः पुमान्। मोहाद् गयायां दद्याद्यः स पितॄन् पातयेत्स्वकान्। लभते च ततः शापं नारदैतन्मयोदितम्॥ इति सनत्कुमारसंहितावचनेन बदर्यां कृतश्राद्धस्य यद्यपि गयायां श्राद्धकरणं निषिद्धमिवापाततः प्रतीयते तथापि नेदं निषेधकं वचनम्। "गयाभिगमनं कर्तुं यः शक्तो नाभिगच्छति। शोचन्ति पितरस्तेषां वृथा तस्य परिश्रमः॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ब्राह्मणस्तु विशेषतः। प्रदद्याद् विधिवत्पिण्डान् गयां गत्वा समाहितः॥ इत्यादिवचनेन गयाश्राद्धस्य पितृऋणापाकरणरूपेण नित्यप्यश्रवणात् अकरणे प्रत्यवायश्रवणात् जीवता शक्तेन पुरुषेण गयाश्राद्धस्यावश्यकर्तव्यताप्रतीतेः कैरपि निबन्धकृद्भिर्बदरीश्राद्धान्तरं गयाश्राद्धस्याकरणलेखनाच्च। अतोऽत्र श्लोकेद्वये मोहात् शापम् इत्यादि पदद्वयं बदरीश्राद्धानन्तरं न गयाश्राद्धानन्तरं न गयाश्राद्धप्रशंसाबोधकम् नहि निन्दान्यायेन। यथा वा—"अपशवो वा अन्ये गो अश्वेभ्यः पशवो गो अश्वाः" इत्यनेन गवाश्वयोर्विनार्थमितरेषां पशूनामपशुत्वं बोध्यते तद्वत्। तत्र हि पशुत्वं प्रत्यक्षमेव अजादिषु। तच्च नापह्नोतुं शक्यते। अतश्च गवाश्वौ स्तोतुमेव तदितरेषामजादीनां निन्दा। सा च गवाश्वस्तु तावेव पर्यवस्यति। तद्वत्प्रकृतेऽपि बदरीश्राद्धं स्तोतुमेव गयानिन्दा, न तु गयाश्राद्धनिवृत्तौ तात्पर्यम्। इयमेव व्यवस्था वार्षिकमहालयादिश्राद्धादावप्यवगन्तव्या। पित्र्यमाधनात्कुर्यात् (मनु, ३।२७९) 'मृताहं समतिक्रम्य चाण्डालः कोटिजन्मसु' इत्यादिवाक्यैः जीवता पुरुषेण यावज्जीवमवश्यकर्तव्यताबोधनादिक्रमे प्रत्यवायश्रवणादिति।

(नारायणबलिकर्मणि विचारः)

सर्वत्र स्मृतिषु अन्त्येष्टिकमप्रस्तावे यो नारायणबलिरुक्तः सप्रेतमात्रे कर्तव्य उत दुर्मरणादिनिमित्तविशेष एवेति शङ्कायां तु समुदितायाम् सर्वत्र दुर्मरणादिनिमित्ते संभाविते, संन्यासिनश्च नारायणबलेः कर्तव्यतया विधानात् केवलमरणे तस्य कर्तव्यत्वमेव नास्ति। यदि मोहात् क्रियेत तदा दोषभागी स्यात् अविहितस्य करणात्। अतश्च यदि भृगुपातादिना दुर्मरणं भवति कस्यचित् तस्य प्रथमतः और्ध्वदैहिककर्मयोग्यतासिध्यर्थं प्रायश्चित्तादिकमनुष्ठाय ततो दशगात्रादिकं कृत्वा एकादशेऽह्नि नारायणबलिमनुष्ठाय आद्यश्राद्धादिकं कुर्यात्। नारायणबलेरौर्ध्वदेहिककर्मणि उद्देश्यत्वयोग्यताविधायकत्वात्। संन्यासिनस्तु द्वादशाहे नारायणबलिं कुर्यात्। अयमेव सर्वधर्मशास्त्रानुगृहीतस्य सारः नतु कदापि केवलमृतौ नारायणबलेरनुष्ठानं कार्यमिति।

(कुष्ठिमरणे वचारः)

कस्य चित् त्रैवर्णिकान्यतमस्य श्वित्रिणो दैवान्मृतौ तदुत्तराधिकारिभिस्तस्त दाहः कर्तव्यो न वेति प्रश्ने उत्तरम्—"श्रृणु कुष्ठिगणं विप्र उत्तरोत्तरतो गुरुम्। विचूर्णव्रणताम्रौ च कृष्णश्वेते तथाष्टकम्" इत्युक्त्वा "मृते तु प्रापयेतीर्थमथवा तरुमूलकम्। न पिण्डं नोदकं कार्यं न च दाहक्रियां चरेत्। यदि स्नेहाच्चरेद् दाहं यतिचान्द्रायणं चरेत्। इत्यादिवाक्येन यद्यपि तस्य दाहे यतिचान्द्रायणप्रायश्चित्तं विहितं तथापि अकृतप्रायश्चित्तकुष्ठ्यादिदेहविषयम्, अन्यथा एषां प्रायश्चित्तोपदेशो विफलः स्यात् इत्यादिना निर्णयसिन्धौ रघुनन्दनकृतशुद्धितत्त्वादिग्रन्थेषु च कृतप्रायश्चित्तानुक्त्वा कृतप्रायश्चित्तस्य श्वित्रिणो दाहादिकं कर्तव्यमिति।

श्री विश्वनाथशर्मा गौड़,

निर्णयसिन्धु का श्राद्ध प्रकरण

नानानिबन्धवैमत्यभ्रान्तचित्तोद्दिधीर्षया। कमलाकरसंज्ञेन क्रियते श्राद्धनिर्णयः॥

अनेकप्रकार के निबन्धों के मतभेद जिसका चित्त भ्रान्त हो गया है उनके उद्धार के लिये कमलाकर नामक विद्वान् श्राद्ध का निर्णय करते हैं।

(श्राद्धस्वरूपकथनम्)

तत्स्वरूपमाह पृथ्वीचन्द्रोदये मरीचिः—प्रेतं पितृंश्च निर्दिश्य भोज्यं यत्प्रियमात्मनः।
श्रद्धया दीयते यत्र तच्छ्राद्धं परिकीर्तितम्॥

उसका स्वरूप पृथ्वीचन्द्रोदय में मरीचि ने कहा है कि—जहाँ पर प्रेत तथा पितरों को निर्देश कर जो प्रिय आत्मा द्वारा श्रद्धा से भोजन दिया जाता है उसको श्राद्धशब्द से कहा जाता है।

ब्राह्मणस्वीकारान्तश्चतुर्थ्यन्तपदोपनीतपित्राद्युद्देश्यकस्त्यागः श्राद्धमित्यर्थः। तत्र यद्यपि होमपिण्डभोजनानि प्रधानमिति हेमाद्रिः,—होमश्च पिण्डदानं च तथा ब्राह्मणभोजनम्। श्राद्धशब्दाभिधेयं स्यादेकस्मिन्नौपचारिकम्॥ इति श्रीधरश्च,

तथापि क्वचिद्विशेषं वक्ष्यामः। निमित्तभेदे भोजनस्य पिण्डानां वा निषेधो न प्राधान्यं विरुणद्धि असोमयाजिनो दधिपयोयागवत्।

ब्राह्मण के स्वीकारान्त (निमन्त्रण के) चतुर्थ्यन्त पद के द्वारा पिता आदि के उद्देश्य से जो त्याग किया जाता है उसे श्राद्ध कहते हैं।

वहाँ पर यद्यपि होम (अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा, सोमाय पितृमते स्वाहा) पिण्ड और भोजन प्रधान है—यह हेमाद्रि ने कहा है,

और श्रीधर ने कहा है कि-होम, पिण्डदान तथा ब्राह्मण भोजन को श्राद्धशब्द से कहा है वह एक में औपचारिक (आरोपित) है। फिर भी कहीं विशेष कहेंगे। निमित्त भेद में भोजन या पिण्डों के निषेध से

---

१. श्राद्धं नामादनीयस्य तत्स्थानीयस्य वा द्रव्यस्य प्रेतोद्देशेन श्रद्धया त्यागः। तच्च द्विविधम्-पार्वणमेकोद्दिष्टं च। तत्र त्रिपुरुषोद्देशेन यत्क्रियते तत्पार्वणम्। एकपुरुषोद्देशेन क्रियमाणमेकोद्दिष्टम्। पुनश्च त्रिविधम्—नित्यं, नैमित्तिकं काम्यं च इत्यादि मिताक्षरायाम्।

प्राधान्य का विरोध नहीं हो सकता। असोमयाजी को (अर्थात् सोमयाग न करनेवाले को) दधि और [1]पयायोग की तरह।

यच्च शूलपाणिः—नित्यश्राद्धमदैवं स्यादर्घ्यपिण्डविवर्जितम्। इति हारीतीये नित्यश्राद्धमघादौ पिंडनिषेधोऽस्ति। न च प्राप्तिं विना सः। न चातिदेशं विना प्राप्तिः। न चाङ्गत्वेन विनातिदेशः। प्रधानस्यानतिदेशात्।

सप्तमे उपकारकत्वेनातिदेशोक्तेः। तेन भोजनं प्रधानं, पिण्डोऽङ्गम्। पिण्डदानमात्रविधिस्त्वङ्गभूतात्कर्मान्तरमेव, प्रकरणान्तरन्यायादिति, तन्न, जातश्राद्धे न दद्यात्तु पक्वान्नं ब्राह्मणेष्वपि। न पक्वं भोजयेद्विप्रान् सच्छूद्रोऽपि कदाचन॥ इत्याद्यैर्जातश्राद्धे शूद्रश्राद्धादौ भोजनस्य निषेधेनाङ्गत्वापत्तेः। 'न तौ पशौ करोति' इतिवदुपजीव्यविरोधेन विकल्पापत्तेश्च। तेन श्राद्धशब्दाभिधेयत्वेनोभयप्राप्तौ निषेधः पर्युदासो वा 'दीक्षितो न ददाति न जुहोति' 'नासोमयाजी सन्नयेत्' इतिवदिति तत्त्वम्।

और जो शूलपाणी ने कहा है कि—जो नित्यश्राद्ध है, वह विश्वेदेवादेवता के रहित होता है वह अर्घ्य और पिण्ड के हीन होता है—यह हारीत में कहा है। नित्यश्राद्ध, मघा आदि में पिण्डदान निषेध है। वह निषेध प्राप्ति के विना नहीं हो सकता है। वह अतिदेश (पिण्डकरण) के विना प्राप्ति नहीं हो सकती है। वह अंग के बिना अतिदेश हो नहीं सकता और प्रधान का अतिदेश होता नहीं है। सातवें अधिकरण में—उपकारकत्व से अतिदेश कहा है। इससे भोजन को ही प्रधानता है पिण्ड अंग है। पिण्डदानमात्र विधि तो अंगभूत होने से कर्मान्तर ही है प्रकारान्तरन्याय से। यह ठीक नहीं है। (जो पदार्थ जिस उपकार के द्वारा जिस अंग से अवधारित है, उस पदार्थ का उस संबन्धिरूप से उस उपकार के द्वारा ही अन्य अंगता बोधकप्रमाण अतिदेश होता है। जैसे प्रकृति की तरह विकृति को करना चाहिये।)

जातश्राद्ध में ब्राह्मण को भी पक्वान्न नहीं देना चाहिये। बुद्धिमान् व्यक्ति सच्छूद्र को भी पक्वान्न से भोजन न करावे।

इत्यादि वचनों से जातश्राद्ध में और शूद्रश्राद्ध आदि में भोजन के निषेध से अंगत्व की आपत्ति हो जायगी। 'न तौ [2]पशौ करोति' की तरह उपजीव्य (जिससे वह जीवित हो उसको अलग न

१—इस चीज को ऐसा समझना चाहिये कि—दर्शपूर्णमासयाग एक वैदिककर्म है। पौर्णमासी में तीन याग होते हैं, १—आग्नेयपुरोडाशयाग, २—आज्यद्रव्यक उपांशुयाग और ३—अग्नीषोमीय एकादशपुरोडाशयाग, वैसा ही दर्श में भी तीन याग होते हैं—१—आग्नेयपुरोडाशयाग, २—ऐन्द्र देवताक दधिद्रव्यकयाग, ३—ऐन्द्र देवताकपयोद्रव्ययाग। इसप्रकार दर्शपौर्णमास में सब मिलाकर ६ याग होते हैं। ये ६ याग जिसने सोमयाग किया है उन्हीं का ही इनमें अधिकार है। जिसने सोमयाग नहीं किया उनका दर्श में जो सानाय्ययाग (दधि और पयको सान्नाय्य कहते हैं) में अधिकार नहीं है। इसीप्रकार पौर्णमासी में भी अग्नीषोमीय पुरोडाश में असोयाजी का अधिकार नहीं हैं। इसमें प्रमाण–'नासोमयाजो सन्नयेन् अनागतं वा एतस्य पयः' इत्यादि। अर्थात्–जिसने सोमयाग नहीं किया है उसका दर्श में आग्नेयपुरोडाश सान्नाय के स्थान में ऐन्द्राग्नपुरोडाश ये दो याग होते हैं। इसीप्रकार पौर्णमासी में भी अग्नीषोमीय को छोड़कर दो याग होते है। इतने याग होने पर भी उनमें प्राधान्य होने पर भी कोई हानि नहीं है। यह मीमांसा का सिद्धान्त है। इसी दृष्टान्त के अनुसार श्राद्ध में चार प्रधान होते हैं—१ अग्नौकरण, २ ब्राह्मणभोजन, ३ पिण्डनिर्वाप, ४ तर्पण। इसमें हेमाद्रि का मत है कि—होम, पिण्ड और ब्राह्मणभोजन ये तीनों प्रधान है। निर्णयसिन्धुकार यहाँ कुछ विशेष कहते हैं कि—निमित्त में भेद से भोजन तथा पिण्ड का निषेध प्राधान्य का बाधक नहीं है। इसमें दृष्टान्त दिया कि असोमयाजी का दधि पयोयाग की तरह।

२—श्राद्धशब्द का वाच्य याग और होम दोनों होते हैं। उस अवस्था में 'न तौ पशू करोति' इसकी तरह निषेध नहीं कह सकते विकल्प के भय से। दर्शपूर्णमास में प्रधानयाग के पहले दो आहुति देते हैं। जिसका नाम आज्यभाग है। (उत्तरपूर्वार्धे—अग्नये स्वाहा। दक्षिणपूर्वार्धे—सोमाय स्वाहा।) यह अतिदेश से अग्नीषोमीय पशुयाग में प्राप्त होती है। वहाँ यह श्रुत है कि—पशुयाग में दोनों आहुति न करे। इस निषेध से विकल्प माना जाता है। क्योंकि विहित प्रतिषिद्ध होने के कारण तथा न दीक्षिताधिकरण से दान और भिन्न हवन, (पचन) को दीक्षित न करें यह पर्युदास है। 'न सोमयाजी सन्नयेत्' यहाँ पर भी निषेध या पर्युदास नहीं होता है—ऐसा समझना चाहिये। (दीक्षित पुरुष दान, होम (पचन) आदि का जो निषेध है पुरुषार्थ का ही है। पुरुषार्थदानादिव्यतिरिक्तक्रतुकाल में अनुष्ठान करे)।

करने वाला) के विरोध से विकल्पापत्ति हो जायगी। इससे (पिण्डदान के अनङ्गत्व से) श्राद्धशब्दाभिधेयत्व से दोनों की प्राप्ति में निषेध या पर्युदास हो जायगा।

दीक्षित यजमान न देता है न हवन करता है। असोमयाजी (जिसने सोमयाग न किया हो) की तरह यह तत्त्व है।

धर्मप्रदीपेऽपि—यजुषां पिण्डदानं तु बह्वृचानां द्विजार्चनम्। श्राद्धशब्दाभिधेयं स्यादुभयं सामवेदिनाम् ॥ तच्च पितॄन् यजेत, पितृभ्यो दद्यात्' इत्युभयप्रयोगदर्शनाद्यागदानोभयात्मकम्। 'पितरो देवता' इति पित्र्युद्देश्यकत्वाद्यागत्वं, विप्रापेक्षया च दानत्वमित्यविरुद्धम्। एतेन नायं यागः। (देवतोद्देशेन त्यागो यागः) यागोद्देश्या च देवतेत्यात्माश्रयादिति गौडमतमपास्तम्। वैधशब्दविशेषोद्देश्यकत्वस्य तस्य इदमिति स्वत्वारोपप्रतियोगित्वस्य वा देवतात्वात्।

धर्मप्रदीप में भी कहा है कि—यजुर्वेदियों को तो पिण्डदान, बह्वृचों (ऋग्वेदियों) को द्विजार्चन तथा सामवेदियों के मत में दोनों को ही श्राद्ध कहा है। और वह पितरों की पूजा करे और पितरों के लिए दे—यह दो प्रकार का प्रयोग दर्शन से याग तथा दान उभयात्मक श्राद्ध है। पितर देवता है जिसके—यह पितर उद्देश्य होने से याग है और ब्राह्मण की अपेक्षा से दानत्व है—इसलिए अविरुद्ध है। इससे यह याग नहीं है। (देवता के उद्देश्य से त्याग ही याग कहा जाता है) और याग के उद्देश्य से देवता आत्माश्रय है यह गौडमत अपास्त (खण्डित) है। विधिबोधित शब्द विशेष का उद्देश्य होने के कारण पितर देवता हैं या 'इदम्' इस शब्द से जो पितर के स्वत्व का आरोप किया गया है उससे भी वे देवता हैं।

(कल्याणमार्गे श्राद्धस्य प्राशस्त्यकथनम्)

तत्रैव सुमन्तुः—श्राद्धात्परतरं नान्यच्छ्रेयस्करमुदाहृतम्।

वहीं पर सुमन्तु ने कहा है कि—श्राद्ध से दूसरा कल्याण को देनेवाला मार्ग नहीं कहा है।

(श्राद्धाकरणे प्रत्यवायकथनम्)

आदित्यपुराणे—न सन्ति पितरश्चेति कृत्वा मनसि यो नरः।
श्राद्धं न कुरुते तत्र तस्य रक्तं पिबन्ति ते ॥

आदित्यपुराण में कहा है कि—जो मनुष्य मन में पितर नहीं हैं ऐसा समझ कर वहाँ पर श्राद्ध नहीं करता है उसके पितर उसका रक्त (खून) पीते हैं।

(श्राद्धभेदकथनम्)

तद्भेदानाह विश्वामित्रः—नित्यं नैमित्तिकं काम्यं वृद्धिश्राद्धं सपिण्डनम्। पार्वणं चेति विज्ञेयं गोष्ठ्यां शुद्ध्यर्थमष्टमम् ॥ कर्माङ्गं नवमं प्रोक्तं दैविकं दशमं स्मृतम्। यात्रास्वेकादशं प्रोक्तं पुष्ट्यर्थं द्वादशं स्मृतम् ॥ इति।

श्राद्धों के भेदों को विश्वामित्र ने कहा है कि—१. नित्य, २. नैमित्तिक, ३. काम्य, ४. वृद्धिश्राद्ध, ५. सपिण्डन, ६. पार्वण, ७ गोष्ठी में होनेवाला श्राद्ध, ८. शुद्ध्यर्थ, कर्मांग, १०. दैविक, ११. यात्रा समय और १२. पुष्ट्यर्थ कहा है।

एषां लक्षणानि भविष्ये—अहन्यहनि यच्छ्राद्धं तन्नित्यमिति कीर्तितम्।
वैश्वदेवविहीनं तदशक्तावुदकेन तु ॥

इनके लक्षणों को भविष्यपुराण में कहा है कि—प्रतिदिन जो श्राद्ध किया जाता है वह नित्यश्राद्ध कहा जाता है। वह वैश्वदेव से विहीन होता है। अशक्ति में उसको जल से (नित्यतर्पण) करे।

एकोद्दिष्टं तु यच्छ्राद्धं तन्नैमित्तिकमुच्यते। तदप्यदैवं कर्तव्यमयुग्मान् भोजयेद् द्विजान् ॥

एकोद्दिष्ट जो श्राद्ध है वह नैमित्तिक कहा जाता है। वह भी अदैव करना चाहिये और अयुग्म ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये।

कामाय विहितं काम्यमभिप्रेतार्थसिद्धये। वृद्धौ यत्क्रियते श्राद्धं वृद्धिश्राद्धं तदुच्यते ॥ गन्धोदकतिलैर्मिश्रं कुर्यात्पात्रचतुष्टयम्। अर्घ्यार्थं पितृपात्रेषु प्रेतपात्रं प्रसेचयेत् ॥ 'ये समाना' इति द्वाभ्यामेतत् ज्ञेयं सपिण्डनम्। नित्येन तुल्यं शेषं स्यादेकोद्दिष्टं स्त्रिया अपि ॥ एतदुभयमेव स्त्रियाः। तेन स्त्रीकर्तृकं स्त्रीसम्प्रदानकं चेत्युभयनियम इति कल्पतरुः।

अभीष्टसिद्धि के लिए नक्षत्र आदि में विहित श्राद्ध काम्य होता है। वृद्धि में जो किया जाता है उसे वृद्धिश्राद्ध कहा जाता है।

गन्ध, जल और तिलों से मिश्रित चार पात्र करे। अर्घ्य के लिए पात्रों में प्रेतपात्र का 'ये [1]समानाः' इन दो मन्त्रों से. मिला दे। इसे सपिण्डन जानना चाहिये। शेष (अंगजातम्। सपिण्डीकरस्योभयरूपत्वादेकोद्दिष्टांशे पार्वणांशे च क्रमेणानावश्यकर्तव्यत्वेनैकोद्दिष्टेन पार्वणेन च तुल्यं स्यादित्यर्थः) नित्य के सदृश होता है। स्त्री माता का भी एकोद्दिष्ट (सपिण्डीकरण) होता है। ये दोनों स्त्रियों के होते हैं। यहाँ पर स्त्री कर्तृक और स्त्री (संप्रदान) यह उभय (दो प्रकार का) नियम कल्पतरु में कहा है।

अमावायां यत्क्रियते तत्पार्वणमिति स्मृतम्। क्रियते पर्वणि यद्वा तत्पर्वणमिति स्थितिः ॥

अमावास्या में जो किया जाता है उसे पार्वण कहते हैं या पर्व में जो किया जाता है उसे पार्वण कहते हैं। यह पार्वण की स्थिति है।

(अत्र पर्व)

अत्र पर्व—चतुर्दश्यष्टमी चैव अमावास्या च पूर्णिमा। पर्वाण्येतानि राजेन्द्र रविसंक्रमणं तथा ॥ इति तु विष्णुपुराणोक्तं संक्रान्त्यादि।

अब पर्व कहते हैं। हे राजेन्द्र, चतुर्दशी, अष्टमी, अमावास्या, पूर्णिमा और संक्रान्ति ये पर्व हैं। ये विष्णुपुराण में कहे गये है।

गोष्ठ्यां यत्क्रियते श्राद्धं गोष्ठीश्राद्धं तदुच्यते। बहूनां विदुषां सम्यक् सुखार्थं पितृतृप्तये ॥

बहुत विद्वानों के संपत्ति सुख तथा पितरों की तृप्ति के लिये गोष्ठी (समुदाय) में जो श्राद्ध किया जाता है उसे 'गोष्ठीश्राद्ध' कहते हैं।

क्रियते शुद्धये यत्तु ब्राह्मणानां तु भोजनम्। शुध्यर्थमिति तत्प्रोक्तं वैनतेय मनीषिभिः ॥

हे वैनतेय, जो मनीषोगण शुद्धिके लिए ब्राह्मणोंको भोजन कराता है उसे 'शुध्यर्थश्राद्ध' कहा जाता है।

निषेककाले सोमे च सीमन्तोन्नयने तथा। ज्ञेयं पुंसवने चैव श्राद्धं कर्माङ्गमेव च ॥

निषेककाल (श्रौतस्मार्तकर्मों का उपलक्षण है। इष्टापूर्तादिके श्राद्धे वृद्धिश्राद्धवदाचरेत्।) में, सोम में, सीमन्तोन्नयन में तथा पुंसवन में जो श्राद्ध किया जाता है वह 'कर्माङ्गश्राद्ध' ही कहा जाता है।

देवानुद्दिश्य यच्छ्राद्धं तत्तु दैविकमुच्यते। गच्छन् देशान्तरं यस्तु श्राद्धं कुर्यात्तु सर्पिषा ॥

देवताओं को (देवानुद्दिश्य क्रियते यत्तदैविकमुच्यते। तन्नित्यश्राद्धवत्कुर्याद् द्वादश्यादिषु यत्नतः ॥) (श्राद्धसागरे—उत्पातादिनिमित्तेषु नित्यश्राद्धं तु दैविकम्। देवाँस्तूद्दिश्य विश्वादीन् प्रदद्याद्विप्रभोजनम् ॥) उद्देश्यकर जो श्राद्ध किया जाता है वह दैविकश्राद्ध कहा जाता है।

यात्रार्थमिति तत्प्रोक्तं प्रवेशे च न संशयः। शरीरोपचये श्राद्धमर्थोपचय एव च ॥ पुष्ट्यर्थमेतद्विज्ञेयमौपचायिकमुच्यते।

देशान्तर में (तीर्थयात्रा के आरंभ में) जाता हुआ मनुष्य घी से श्राद्ध करे। उस श्राद्ध को 'यात्रार्थ श्राद्ध' कहा जाता है। वह प्रवेश (यात्रा के बाद घर में प्रवेश होनेपर) में भी होता है। इसमें संशय नहीं है।

शरीर और अर्थ की वृद्धि के लिए (शरीरोपचयार्थसेपजादेरर्थोपचयार्थकृष्यादेश्च प्रयोगात्पूर्वमिति श्राद्धसागर कृतः। 'शरीराद्युपचयहेतुशान्त्यादावित्यन्ये) जो श्राद्ध किया जाता है। उसको पुष्ट्यर्थ या औपचायिक (वृद्धिसम्बन्धि) कहते हैं।

---

१. ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये ॥ तेषां लोकः स्वधा नमो यज्ञो देवेषु कल्पताम् ॥ ये समानाः समनसो जीवा जीवेषु मामकाः ॥ तेषा ँ ् श्रीर्मयि कल्पतामस्मिल्लोके शत ँ ् समाः ॥ (य० अ० १६ म० ४५,४६)।

गोष्ठ्यां श्राद्धकर्तृसमुदाये संभूय सामग्रीसंपादनेन (श्राद्धमित्यर्थः) युगपत्तीर्थादिप्राप्तौ विदुषां श्राद्धंसम्पदा सुखार्थं भिन्नपाकाशक्तौ बहुपितृकश्राद्धमेकः कुर्यादिति कल्पतरुः शङ्खधरश्च। शुद्धि-श्राद्धं प्रायश्चित्ताङ्गमिति मैथिलाः। अत्र पार्वणैकोद्दिष्टवृद्धिसपिण्डीकरणात्मकं चतुर्विधमेव मुख्यम्। तस्यैवायं प्रपञ्चः।

गोष्ठी (बहुत विद्वानों की गोष्ठी) में श्राद्ध करने वालों का समुदाय मिलकर सामग्री के संपादन (इकट्ठा करके) से (श्राद्ध करे-यह अर्थ है।) एक साथ तीर्थ आदि की प्राप्ति में विद्वानों की श्राद्ध संपदा के सुखार्थ भिन्न पाक की अशक्ति में बहुत पितरों का श्राद्ध एकपाक से करे—यह कल्पतरु और शंखधर ने कहा है। शुद्धिश्राद्ध प्रायश्चित्तांग है—यह मैथिल कहते हैं। यहाँ पर पार्वण, एकोद्दिष्ट, वृद्धि और सपिण्डी-करण ये ही चार मुख्य हैं। उनका ही यह प्रपञ्च (विस्तार) है।

(श्राद्धदेशाः)

अथ श्राद्धदेशाः मनुः—शुचिं देशं विविक्तं तु गोमयेनोपलेपयेत्।
दक्षिणाप्रवणं चैव प्रयत्नेनोपपादयेत्॥

अब श्राद्धदेश कहते हैं। मनु ने (अ० ३।२०६) कहा है कि—अस्थि, अंगार आदि से अनुपहत देश में और निर्जन में गोबर से लीप कर स्वच्छ किया हो। दक्षिणदिशा की तरफ ढलता (नीचा) हो प्रयत्न से (अपने आप नीचा होने में असमञ्जस हो तो खननादिके द्वारा) बना देवे।

पृथ्वीचन्द्रोदये विष्णुधर्मे—दक्षिणाप्रवणे देशे तीर्थादौ च गृहेऽपि वा।
भूसंस्कारादिसंयुक्ते श्राद्धं कुर्यात्प्रयत्नतः॥

पृथ्वीचन्द्रोदय में विष्णुधर्म ने कहा है कि—दक्षिणदिशा के देश में नीचा होने पर, तीर्थादि में, या (ऋषि देवता आदि से सेवित जल तथा पुण्याश्रमादिको तीर्थ कहते हैं। आदिपद से देवालय आदि) घर में भूसंस्कार आदि से संयुक्त होने पर मार्जनादि (झाड़ू) से रेत, तृण आदि को हटाकर प्रयत्न से श्राद्ध करे।

तत्रैव प्रभासखण्डे—तीर्थादष्टगुणं पुण्यं स्वगृहे ददतः शुभे।

वहीं पर प्रभासखण्ड में कहा है कि—हे शुभे, तीर्थ से आठ गुणा अधिक पुण्य अपने घर में श्राद्ध करने वाले को होता है।

भारते—तस्य देशा कुरुक्षेत्रं गया गङ्गा सरस्वती। प्रभासं पुष्करं चेति तेषु श्राद्धं महाफलम्॥

भारत में कहा है कि—उस श्राद्ध के देशों को कहते हैं—कुरुक्षेत्र, गया, गङ्गा, सरस्वती, प्रभास[1] और पुष्कर इनमें श्राद्ध करने से महाफल होता है।

---

१. प्रभास—सोमतीर्थ, (महाभारत ३।८२।५६-५७), बाहुदा नदी। महाभारत १२।२३ १७-४०। नदीयं पुरा प्रसेनजिद्भार्या गौरी नाम आसीत्। ततः क्रुद्धेन भर्त्राभिशप्ता नदी रूपा जाता। हरीवंशे १२।५। लेभे प्रसेनजिन्दार्यां गौरीं नाम पतिव्रताम्। अभिशप्ता तु सा भर्त्रा नदी वै बाहुदा मृता। कीटक-शक्तिसङ्गमतन्त्रे-चरणाद्रिं समारभ्य गृध्र-कूटान्तकं शिवे॥ तावत्कीटकदेशः स्यात् तदन्तर्मगधो भवेत्॥ बिहार इति ख्यातः। अत्र बुद्धः समजनि। भागवत ६।६।६ रूक्ष—स पुनातु व्रजे यश्च गोरजः पातरूक्षितौ। शिशुरुच्छिद्य यमजौ निष्पिपेष तरूक्षितौ। कृमिहत—गरुडपुराण १६४ अध्याय में कथन है—कृमयो द्विविधाः प्रोक्ता बाह्याभ्यन्तरसंभवाः। बाह्या यूकाः प्रसिद्धाः स्युः किंचूलास्तथान्तराः॥ इत्यादि। किरात—जहाँ शूकर आदि को मारा जाता है। कलिंग-देश विशेष। कोंकण-देशविशेष। आगमे—अथाम्यङ्कं समारभ्य कटिदेशस्य मध्यगे। समुद्रप्रान्तदेशो हि कोङ्कणः परिकीर्तितः॥ देशोऽयं कूर्मविभागे दक्षिणस्यां दिशि वर्तते। महाभारते ६।६।५६ खश-देशविशेष। जांगल—स्वल्पोदकतृणो यस्तु प्रवातः प्रचुरातपः। स ज्ञेयो जाङ्गलोदेशः बहुधान्यादि संयुतः॥ भावप्रकाशे—आकाशशुभ्र उच्चश्च स्वल्पपानीयपादपः। शमीकरीरबिल्वार्कपीलुकर्कन्धुसंकुलः॥ हरिणैकक्षंपृषतगो कर्णखरसङ्कुलः। सुस्वादुफलनात् देशो वातलो जाङ्गलः स्मृतः॥ कुरु—हस्तिनापुरमारस्य कुरुक्षेत्राच्च दक्षिणे। पाञ्चालपूर्वं भागे तु कुरुदेशः प्रकीर्तितः॥ क्लिन्न-आर्द्र। रामायणे १।३२।१६ गङ्गायाः सलिलक्लिन्ने भस्मन्येषां महात्मनात्। स्वर्गं गच्छेयुरत्यनां सर्वे च प्रपितामहाः॥ खश मनुः १०।४४ पौण्ड्रकाश्चौड्रद्रविड़ाः कम्बोजा जवनाशकाः। पारदाः पह्लकाश्चीनाः किरीता दरदाःखशाः॥ धर्मारण्यवाराहपुराणे—यच्चारण्यमिदं धर्म! त्वया व्याप्तं चिरं विभो। नाम्ना भविष्यति ह्येतद् धर्मारण्य-मिति प्रभो॥ सह्यपर्वत—बंबई प्रान्त का एक प्रसिद्ध पर्वत। रुक्ष—जिसमें चिकनाहट न हो। ऊबड़खाबड़। नीरस, सूखा।

स्कान्दे—तुलसीकाननच्छाया यत्र यत्र भवेद् द्विज । तत्र श्राद्धं प्रदातव्यं पितॄणां तृप्तिहेतवे ॥

स्कन्दपुराण में कहा है कि—हे द्विज, जहाँ-जहाँ पर तुलसी के वन की छाया हो वहाँ-वहाँ पर पितरों की तृप्ति के लिए श्राद्ध को करना चाहिये ।

माधवीये श्राद्धोपक्रमे व्यासः—महोदधौ प्रयागे च काश्यां च कुरुजाङ्गले ।

माधवीय में श्राद्ध के प्रकरण में व्यास ने कहा है कि—समुद्र के किनारे पर, काशी में, कुरु (देश-विशेष) और जांगल में श्राद्ध करे ।

शङ्खः—गङ्गायमुनयोस्तीरे पयोष्ण्यमरकण्टके । नर्मदा बाहुदातीरे भृगुलिङ्गे हिमालये ॥ गङ्गाद्वारे प्रयागे च नैमिषे पुष्करे तथा । सन्निहत्यां गयायां च दत्तमक्षय्यतां व्रजेत् ॥

शंख ने कहा है कि—गंगा और यमुना के किनारे पर, पयोष्णी नदी के किनारे पर (वह विन्ध्य के दक्षिण में प्रसिद्ध है ।) तथा अमरकण्टक में, नर्मदा और बाहुदा नदी के किनारे पर, भृगुलिंग में, हिमालय में, गंगाद्वार में, प्रयाग में, नैमिष में, पुष्कर में तथा गया के समीप में देने पर अक्षय्यता को प्राप्त होता है ।

अपि जायेत सोऽस्माकं कुले कश्चिन्नरोत्तमः । गयाशीर्षे वटे श्राद्धं यो नो दद्यात्समाहितः ॥

हमारे खानदान में कोई श्रेष्ठ पुरुष उत्पन्न होगा जो कि गयाशिर में और वट वृक्ष के समीप पर समाहित (सावधानी) मन से हमारा श्राद्ध करेगा ।

(पुत्राणां मध्ये यद्येकोऽपि पुत्रस्य गयागमनकथनम्)

एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् । यजेत वाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥

बहुत से पुत्रों की इच्छा करे-(अर्थात्-बहुत से पुत्रों को पैदा करे) । उसमें से यदि एक भी पुत्र गया में जाकर पिण्डदान करे, अश्वमेधयज्ञ या नीलवृष का त्याग करे ।

(गयाशिरकथनम्)

आदित्यपुराणे—पञ्चक्रोशं गयाक्षेत्रं क्रोशमेकं गयाशिरः । महानद्याः पश्चिमेन यावद्गृध्रेश्वरो गिरिः ॥ उत्तरे ब्रह्मयूपस्य यावद्दक्षिणमानसम् । एतद्गयाशिरो नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ इति ।

आदित्यपुराण में कहा है कि—पांच कोश परिमित गयाक्षेत्र है । एककोश परिमित गयाशिर है । महानदी के पश्चिम गृध्रेश्वर पर्वत है और उत्तर में ब्रह्मयूप से दक्षिणमानस तक 'गयाशिर' नाम का यह क्षेत्र है जो कि तीनों लोकों में सुना गया है ।

शूलपाणौ बृहस्पतिः—गयायां धर्मपृष्ठे च सरसि ब्रह्मणस्तथा । गयाशीर्षेऽक्षयवटे पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥ धर्मारण्यं धर्मपृष्ठं धेनुकारण्यमेव च । दृष्ट्वैतानि पितॄंश्चार्चन् वंशान् विंशतिमुद्धरेत् ॥

शूलपाणी में बृहस्पति ने कहा है कि—गया और धर्मपृष्ठ में, ब्रह्मा के तालाब (अर्थात्-ब्रह्मकूप) में, गयाशिर तथा अक्षयवट में पितरों को देने से अक्षय होता है ।

धर्मरण्य वन, धर्मपृष्ठ वन और धेनुकारण्य को देखकर पितरों की पूजा करता हुआ बीस पीढी तक का उद्धार करता है ।

(गयाशिरे शमीपत्रप्रमाणेन पिण्डकथनम्)

त्रिस्थलीसेतौ वायवीये—शमीपत्रप्रमाणेन पिण्डं दद्याद्गयाशिरे ।
उद्धरेत्सप्तगोत्राणि कुलमेकोत्तरं शतम् ॥

त्रिस्थलीसेतु में वायुपुराण का वचन है कि—गयाशिर में शमीपत्र के प्रमाण से जो पिण्ड देता है । उसके सात गोत्रों का तथा एक सौ एक कुल (वंश) का उद्धार होता है ।

(सप्त गोत्राणि)

सप्तगोत्राणि तु—पिता माता च भार्या च भगिनी दुहिता तथा । पितृमातृष्वसा चैव सप्तगोत्राणि वै विदुः ॥ इति । एषां गोत्राणामेकोत्तरशतं कुलं पुरुषा इत्यर्थः ।

ते चोक्तास्तत्रैव—तत्त्वानि विंशति नृपा द्वादशैकादशा दश । अष्टाविति च गोत्राणां कुलमेकोत्तरं शतम् । तत्त्वानि=चतुर्विंशतिः । ते च द्वादश पूर्वा द्वादश पराः । एवमग्रेऽपि ।

सात गोत्र ये हैं—पिता, माता, स्त्री, बहिन, कन्या, पिता और माता की बहिन ये सात गोत्र को जानना चाहिये। इन गोत्रों के एक सौ एक पुरुषों को कुल कहते हैं—यह अर्थ है।

उनको वहीं पर कहा है—चौबीस, बारह, पहले और बारह बाद होते हैं। बीस, सोलह, बारह, ग्यारह दश और आठ गोत्रों का कुल एकोत्तरशत होता है। इसप्रकार आगे भी जानना चाहिये।

प्रयोगपारिजाते पाद्मे—शालग्राममयी मुद्रा संस्थिता यत्र कुत्रचित्।
वाराणस्या यवाधिक्यं समन्ताद्योजनत्रयम् ॥

प्रयोगपारिजात में पद्मपुराण का वचन है कि—वाराणसी में यव से अधिक शालग्राममयी मुद्रा जहाँ कहीं पर चारों तरफ से तीन योजन स्थित है।

तथा—यत्किञ्चित्पैतृकं कुर्यात् सपिण्डं वा तदन्तिके।
विष्णुलोकं स गच्छेत्तु लभते शाश्वतं पदम् ॥

और उस शालग्राम के शिलान्तिक (शिला के समीप) में जो पितरों के निमित्त कुछ भी करता या पिण्डदान करता है। वह विष्णुलोक जाता है और शाश्वतपद (अविनाशी पद) प्राप्त करता है।

तत्रैव वाराहे—म्लेच्छदेशे शुचौ वापि चक्राङ्को यत्र तिष्ठति। योजनानां तथा त्रीणि मम-क्षेत्रं वसुन्धरे ॥

वहीं पर वाराहपुराण में कहा है कि—हे वसुन्धरे, म्लेच्छदेश में या पवित्र देश में जहाँ पर चक्रांक रहता है वहाँ पर तीन योजन का मेरा क्षेत्र है।

चक्राङ्कस्य तु सान्निध्ये यत्कर्म क्रियते नरैः। स्नानं दानं तपः श्राद्धं सर्वमक्षयतां व्रजेत् ॥

चक्रांक के सान्निध्य (समीप) में मनुष्य जो कर्म करते हैं—स्नान, दान, तप तथा श्राद्ध सब अक्षयता को प्राप्त होता है।

(निषिद्धदेशाः)

अथ निषिद्धदेशाः। पृथ्वीचन्द्रोदये स्कान्दे—त्रिशङ्कोर्वर्जयेद्देशं सर्वं द्वादशयोजनम्। उत्तरेण महानद्या दक्षिणेन तु कीकटात् ॥ देशस्त्रैशङ्कवो नाम श्राद्धकर्मणि वर्जितः ॥

अब निषिद्धदेश कहते हैं। पृथ्वीचन्द्रोदय में स्कन्दपुराण का मत है कि—त्रिशंकुदेश को बारह योजन परिमित त्याग दे। फल्गुमहानदी से उत्तर और दक्षिण से बारह योजन कीटक नाम का त्रैशङ्कवनाम का देश (कीटकेषु गया पुण्या नदी चैव पुनः पुना। इत्यादिस्त्वपवादः) है। वह श्राद्धकर्म में वर्जित है।

वायवीये—प्रणष्टाश्रमधर्माश्च देशा वर्ज्याः प्रयत्नतः।

वायुपुराण में कहा है कि—जिन देशों में आश्रमधर्म नाश हो गया हो। उन्हें प्रयत्न से त्याग दे।

यमः—रूक्षं कृमिहतं क्लिन्नं संकीर्णानिष्टगन्धिकम्। देशं त्वनिष्टशब्दं च वर्जयेच्छ्राद्धकर्मणि ॥

यम ने कहा है कि—रूक्ष, कीडों से हत-नष्ट, आर्द्र (कीचड के सहित), नानाजातियों से व्याप्त, अनिष्ट (अनभिलषित) गन्ध वाले और अनिष्ट शब्द वाले देश को श्राद्धकर्म में त्याग दे।

तत्रव शङ्खः—गोगजाश्वादिजुष्टेषु कृत्रिमायां तथा भुवि।
न कुर्याच्छ्राद्धमेतेषु पारक्यासु च भूमिषु ॥

वहीं पर शंख ने कहा है कि—गौ, हाथी, घोडा आदि से सेवित-में, वेदिका किसी के द्वारा बनी भूमिपर (वेदी का अट्टालिका) और दूसरे की भूमि में बैठकर श्राद्ध (संकल्पादि) न करे।

यमः—परकीयप्रदेशेषु पितॄणां निर्वपेत्तु यः। तद्भूमिस्वामिपितृभिः श्राद्धकर्म विहन्यते ॥

यम ने कहा है कि—दूसरे की भूमि पर जो पितरों के लिए पिण्ड को देता है उस भूमि के स्वामी पितर श्राद्धकर्म को नाश कर देते हैं।

ब्राह्मभारतयोरपि—परकीयगृहे यस्तु स्वान् पितॄंस्तर्पयेद्यदि। तद्भूमिस्वामिनस्तस्य हरन्ति पितरो बलात् ॥ अग्रभागं ततस्तेभ्यो दद्यान्मूल्यं च जीवितम्।

ब्रह्मपुराण और भारत में कहा है कि—जो परकीय घर में यदि अपने पितरों की तृप्ति करता है उसका उस भूमि के स्वामी पितर बल से हर लेते हैं। इसलिए उनके लिए अग्रभाग (स्वसत्त्वां विना श्राद्धस्य दुष्करत्वात्तत्संपत्तये जीवनरूपं प्रथमतो मूल्यं दद्यादित्यर्थः) दे या उसका मूल्य उनके जीवन के लिए दे।

श्राद्धार्हाणामग्रभागं श्राद्धं तदनर्हाणां शूद्राणां तु मूल्यमिति केचित्। षोडशीपिण्डेऽबान्धवाना-मपि पिण्डोक्तेः। 'येऽबान्धवा बान्धवा वा' इत्यादि तर्पणबाधापत्तेश्च नामगोत्रपूर्वं श्राद्धनिषेधो नान्यत्रेति गौडाः। विप्रासुतस्य शूद्रापुत्रश्राद्धनिषेधो नान्यत्र। अग्रदानं चान्नत्यागात्पूर्वं कार्य-मिति मैथिलाः। तन्न, अग्रभागस्य श्राद्धपरत्वे मानाभावात्। अन्नदाने च निषेधाभावात्। त्यागात्पूर्वं करणेऽनङ्गेन व्यवधानापत्तेः। अङ्गत्वे च मानाभावात्। इदं च स्वाम्यनुज्ञाऽभावे।

श्राद्ध के पूज्यों को अग्रभाग-श्राद्ध दे। उससे अनर्ह (अपूज्य) शूद्रों को तो मूल्य दे-यह किसी का मत है। (यहाँ पर चकारशब्द से व्यवस्थित विकल्पार्थ है। अर्थात्-अनर्हों के लिये मूल्य ही देना चाहिये) अन्यथा षोडशीपिण्ड में अबान्धकों को भी पिण्ड कहा है। 'ये बान्धवा बान्धवा वा' इत्यादि से और तर्पण में बाधा की आपत्ति हो जायगी। अतः नाम-गोत्रपूर्वक श्राद्ध का निषेध है अन्यत्र नहीं है यह गौड कहते हैं। ब्राह्मणी पुत्र को शूद्रा पुत्र का श्राद्ध निषेध है अन्यत्र नहीं है। मैथिल कहते हैं कि—अग्रदान त्याग के पहले करना चाहिये। यह ठीक नहीं है। क्योंकि—अग्रभाग का श्राद्धपरत्व में प्रमाणाभाव है और अन्नदान में निषेध का अभाव है। त्याग के पहले करने पर अंग से व्यवधान की आपत्ति हो जायगी और अंगत्व में प्रमाण का अभाव है। क्योंकि—यह स्वामी की आज्ञा के अभाव में है।

तदुक्तं तत्रैव ब्राह्मे—स्वनुलिप्तेषु गेहेषु स्वेष्वनुज्ञापितेषु च।
श्राद्धमेतेषु दातव्यं वर्ज्यमेतेषु नोच्यते ॥

उसी बात को ब्रह्मपुराण में वहीं कहा है कि—अच्छीतरह से पवित्र घरों में स्वामी की आज्ञा से श्राद्ध देना चाहिये। इनमें त्याज्य नहीं कहा है।

किरातेषु कलिङ्गेषु कौङ्कणेषु खशेष्वपि च। सिन्धोरुत्तरकूलेषु नर्मदायाश्च दक्षिणे ॥ पूर्वेण कर-तोयाया न देयं श्राद्धमुच्यते ॥ इदं काम्यविषयम्। अन्यथा तत्रत्यानां सर्वश्राद्धाकरणापत्तेः।

किरात, कलिंग, कौंकण और खश देशों में सिन्धुनदी के उत्तर किनारे पर, नर्मदा नदी के दक्षिण किनारे पर और करतोया नदी के पूर्व किनारे पर श्राद्ध देना नहीं कहा है। यह काम्यविषयक है। अन्यथा वहाँ पर रहने वालों को श्राद्ध करने पर आपत्ति हो जायगी। अर्थात्-वे किसी का भी श्राद्ध नहीं कर सकेंगे।

नर्मदादक्षिणेऽपवादः स्कान्दे—सह्यस्य चोद्भवो यत्र यत्र गोदावरी नदी।
पृथिव्यामपि कृत्स्नायां स प्रदेशोऽतिपावनः ॥

नर्मदा के दक्षिण में अपवाद कहा है। स्कन्दपुराण में कहा है कि—जहाँ पर सह्यपर्वत का उद्भव है और जहाँ पर गोदावरी नदी है वह संपूर्ण पृथिवी अत्यन्त पवित्र है।

१—देवासुरास्तथा यक्षा नागा गन्धर्वराक्षसाः। पिशाचा गुह्यकाः सिद्धाः कूष्माण्डास्तरवः खगाः ॥ जलेचरा भूमि-निलया वाय्वाधाराश्च जन्तवः। प्रीतिमेते प्रयान्त्वाशु मद्दत्तेनाम्बुनाखिलाः ॥ नरकेषु समस्तेषु यातनासु च ये स्थिताः। तेषामाप्यायनायैतद् दीयते सलिलं मया ॥ येऽबान्धवा बान्धवा वा येऽन्यजन्मनि बान्धवाः। ते सर्वे तृप्तिमायान्तु ये चास्मत्तोयकाङ्क्षिणः ॥ 'ॐ आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः। तृप्यन्तु पितरः सर्वे मातृमातामहादयः। अतीतकुलकोटीनां सप्तद्वीपनिवासिनाम्। आ ब्रह्मभुवनाल्लोकादिदमस्तु तिलोदकम् ॥ येऽबान्धवा बान्धवा वा येऽन्यजन्मनि बान्धवाः। ते सर्वे तृप्तिमायान्तु मया दत्तेन वारिणा ॥ 'ये के चास्मत्कुले जाता अपुत्रा गोत्रिणो मृताः। ते गृह्णन्तु मया दत्तं वस्त्रनि-ष्पीडनोदकम् ॥

(परकीयत्वापवादकथनम्)

परकीयत्वापवाद आदित्यपुराणे—अटवी पर्वताः पुण्या नदीतीराणि यानि च।
सर्वाण्यस्वामिकान्याहुर्नहि तेषु परिग्रहः ॥

परकीयत्व का अपवाद आदित्यपुराण में कहा है कि—वन, पर्वत, जो पुण्यदायक नदी के तीर (किनारे) पर है, ये सब अस्वामित्व (अर्थात्–इनका स्वामी मालिक कोई नहीं है) है इसमें किसी का परिग्रह (कर) नहीं लगता है।

वनानि गिरयो नद्यस्तीर्थान्यायतनानि च। देवखाताश्च गर्ताश्च न स्वाम्यं तेषु विद्यते ॥

वन, पर्वत, नदी, तीर्थ, देवमन्दिरों के स्थान, (यज्ञस्थान) देवखात (देवताओं के निमित्त किये तीर्थ) और गढों में स्वामित्व नहीं होता है।

(अथ श्रुति-स्मृतिविहितकर्मविचारः)

स्मृतिसारे—नैकवासा न च द्वीपे नान्तरिक्षे कदाचन।
श्रुतिस्मृत्युदितं कर्म न कुर्यादशुचिः क्वचित् ॥

स्मृतिसार में कहा है कि—एकवस्त्रधारी होकर (देवलः—सव्यादंशात्परिभ्रष्टमम्बरं यस्तु धारयेत्। एकवस्त्रं तु तं विद्याद्दैवे पित्र्ये च वर्जयेत् ॥) न द्वीप में, न अन्तरिक्ष (आकाश) में, अपवित्रतावस्था में कभी भी श्रुति तथा स्मृति में कहे हुए कर्म को न करे।

(म्लेच्छदेशादौ श्राद्धविचारः)

दिवोदासीये—म्लेच्छदेशे तथा रात्रौ सन्ध्यायां विप्रवर्जिते।
न श्राद्धमाचरेद्विद्वान्न चाकाशे कथञ्चन ॥

दिवोदासीय में कहा है कि—म्लेच्छदेश में (विष्णुः—चातुर्वर्ण्यव्यवस्थानं यत्र देशे न विद्यते। स म्लेच्छदेशो विज्ञेय आर्यदेशस्ततः परः ॥), रात्रि में, सन्ध्याकाल में, ब्राह्मणवर्जित में और आकाश (अट्टालिकादिरनावृतः) में विद्वान् को श्राद्ध का आचरण (प्रारंभ) नहीं करना चाहिये।

(श्राद्धकालाः)

अथ श्राद्धकालाः—ते च संक्रान्तियुगादिमहालयादयः प्रायेण पूर्वपरिच्छेदद्वये उक्ता एव केचित्तूच्यन्ते।

पृथ्वीचन्द्रोदये वृद्धपराशरः–श्राद्धं वृद्धावचन्द्रेभच्छायाग्रहणसंक्रमे। नवोदके नवान्ने च नवच्छन्ने तथा गृहे ॥ नवैक्षवेषु चेहन्ते पितरो हि मघास्वपि। पितरः स्पृहयन्त्यन्नमष्टकासु मघासु च ॥ इति शातातपपाठः। नवोदके नवकूपादाविति केचित्। वर्षोपक्रमे आर्द्राप्रवेशे इति गौडाः।

अब श्राद्धकाल कहते हैं। वे सब संक्रान्ति आदि और महालय आदि प्रायः पहले कहे हुए दोनों परिच्छेद में ही कहा है। कुछ तो कहते हैं।

पृथ्वीचन्द्रोदय में वृद्धपराशर ने कहा है कि—वृद्धि में, अमावास्या में, गजच्छाया में, ग्रहण में, संक्रान्ति में, नववृष्ट्यारंभ में (तीर्थोदक में एसा भी कहा है) नवान्न में, नवीन छाये हुए घर में (नवीन संपादित में), नवीन ईख में और मघानक्षत्र में पितर चाहते हैं। अष्टका और मघाओं में पितर अन्न की इच्छा करते है यह शातातप का पाठ है। नवोदक से नवीन कूप-वापी आदि का ग्रहण करे—यह किसी का मत है। वर्षा के उपक्रम (प्रारंभ) में=आर्द्राप्रवेश में यह गौडों का मत है।

(नवान्नश्राद्धे विशेषकथनम्)

नवान्नश्राद्धे विशेषो ज्योतिषे—ज्येष्ठाशेषार्द्धगे सूर्ये मृगनेत्रानिशात्मके। नवान्नैर्भोजन श्राद्धं जन्मचन्द्रतिथौ न च ॥ आश्लेषाकृत्तिकाज्येष्ठामूलाजपदगेषु च। भृगुभौमदिने रिक्ते तिथौ नाद्यान्नवौदनम् ॥

नवान्नश्राद्ध में विशेष ज्योतिष में कहा है कि—ज्येष्ठा नक्षत्र के उत्तरार्ध में जब सूर्य हों, तब रात्रि

के बड़ी हो जाने पर नवान्नों से संकल्प श्राद्ध न करे। जन्म नक्षत्र में तथा जन्म की तिथि में न करे। संकल्प श्राद्ध (ज्येष्ठा के उत्तरार्ध को छोड़कर नवान्नश्राद्ध सांकल्पिक करे-यह अर्थ है।)

आश्लेषा, कृत्तिका, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाभाद्रपद, गुरुवार, मंगलवार और रिक्तातिथि में (नये अन्न से श्राद्धशेष भोजन निषेध है वह श्राद्ध निषेधार्थ है) न करे।

तत्रैव-वृश्चिके शुक्लपक्षे तु नवान्नं शस्यते बुधैः। अतः कृष्णपक्षेनेति गौडाः। मैथिलास्तु-अकृताग्रयणं चैव धान्यजातं नरोत्तम ॥ इति वाराहोक्तेः प्रतिधान्यं श्राद्धमाहुः। तन्न, जातपदस्य श्राद्धयोग्यसमूहपरत्वात्।

वहीं पर कहा है कि—वृश्चिक के शुक्लपक्ष में नवान्न (नूतन अन्न) का भक्षण करना बुद्धिमानों को विधान किया है। इसलिए कृष्णपक्ष में भक्षण न करे—यह गौडों ने कहा है। मैथिलों ने तो कहा है कि—हे नरोत्तम 'आग्रयण' के बिना उत्तम पुरुष धान्य से उत्पन्न अन्न भक्षण न करे—यह वाराहपुराण मत से प्रत्येक धान्य से श्राद्ध कहा है। यह ठीक नहीं है। क्योंकि 'जातिपद' श्राद्धयोग्य समूह का वाचक है।

(शंख-पद्मलक्षणादिकथनम्)

हेमाद्रौ जातूकर्ण्यः-ग्रहोपरागे च सुते च जाते पित्र्ये गयायामयनद्वये च। नित्यं च शङ्खे च तथैव पद्मे दत्तं भवेन्निष्कसहस्रतुल्यम् ॥ शङ्खं प्राहुरमावास्यां क्षीणचन्द्रां द्विजोत्तमाः। अष्टकासु भवेत्पद्मं तत्र दत्तं तथाऽक्षयम् ॥

हेमाद्रि में जातूकर्ण्य ने कहा है कि—ग्रहण में, पुत्रोत्पन्न में, गया में पिता के लिए और अयन द्वय (कर्क और मकर की संक्रान्ति में) में, नित्य शंख तथा पद्म में दिया हुआ हजारों निष्क के बराबर होता है।

श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने कहा है कि—क्षीणचन्द्रवाली अमावास्या को 'शंख' कहते हैं और अष्टका को 'पद्म' कहते हैं। उनमें दिया हुआ अक्षय होता है।

तत्रैव शङ्खः-यदा विष्टिर्व्यतीपातो भानुवारस्तथैव च।
पद्मकं नाम तत्प्रोक्तमयनाच्च चतुर्गुणम् ॥

वहीं पर शंख ने कहा है कि—जब विष्टि, व्यतीपात और रविवार हो तो पद्मक नाम उसको कहा है। वह अयन से चतुर्गुण होता है।

याज्ञवल्क्यः-अमावास्याऽष्टका वृद्धिः कृष्णपक्षोऽयनद्वयम्। द्रव्यं ब्राह्मणसंपत्तिर्विषुवत्सूर्यसंक्रमः ॥ व्यतीपातो गजच्छाया ग्रहणं चन्द्रसूर्ययोः। श्राद्धं प्रति रुचिश्चैते श्राद्धकालाः प्रकीर्तिताः ॥

याज्ञवल्क्य (श्राद्ध. २१७-२१८) ने कहा है कि—अमावास्या, अष्टका (हेमन्त तथा शिशिरऋतु के कृष्णपक्षों की चारों अष्टमी तिथियों) को वृद्धि (पुत्रजन्म के अवसर पर) कृष्णपक्ष में, दक्षिणायन तथा उत्तरायण में, द्रव्य (कूपरमाप) ब्राह्मणसंपत्ति, मेष और तुलाराशि पर सूर्य का संक्रमण, सूर्य का दूसरी राशि पर गमन, व्यतीपात, गजच्छाया, चन्द्र तथा सूर्यग्रहण के समय और जब श्राद्ध करने की इच्छा हो तो श्राद्ध का काल होता है।

कृष्णपक्षः सर्वोऽपि 'शाकेनाप्यपरपक्षं नातिक्रमेत् मासि मासि वाऽशनम्' इति स्मृतेः। ऊर्ध्वं वा चतुर्थ्या यदहः सम्पद्यते ऋते चतुर्दशीम्' इति कात्यायनोक्तेः, 'मासिमासि कार्यमपरपक्षस्यापराह्णः श्रेयान्'इत्यापस्तम्बोक्तेश्च वीप्सया सर्वं कृष्णपक्षेषु नित्यम्। तेनोपसंहारान्महालयपरत्वं परास्तम्। अत्र प्रत्यहं, पञ्चम्यादि, यदहः सम्पत्तिर्वा इति त्रयः पक्षाः। यदैकदिने श्राद्धं तदा दार्शं पृथगेव, याज्ञवल्क्येनामावास्यायाः पृथङ् निर्देशात्। एतेन 'कृष्णपक्षे यदहः सम्पद्यते अमावास्यायां तु विशेषेण' इति निगमोक्तेर्गुणोऽपरपक्षश्राद्धस्यामावास्येति शूलपाणिमतमपास्तम्। अशक्तौ दर्शेनापि मासिश्राद्धसिद्धिः' इति नारायणवृत्तिः। निरग्निकानां कस्मिंश्चिद्दिने आहिताग्नेस्तु दर्श एव 'न दर्शेन विना श्राद्धमाहिताग्नेर्द्विजन्मनः। इति मनूक्तेः (अ० ३,२८२)।

सब कृष्णपक्ष भी शाक से भी अपरपक्ष (कृष्णपक्ष) का अतिक्रमण न करे। या महिने महिने में भोजन करावे—ऐसा श्रुति में कहा है। 'अपरपक्षे श्राद्धं कुर्वीत' इस नियम से प्रतिपदातिथि से सब तिथियों का लाभ प्राप्त होता है या पञ्चमीतिथि से करे। चतुर्थी के बाद जो दिन में प्राप्त हो चतुर्दशी के के बिना—यह कात्यायन ने कहा है। महिने महिने पर कृष्णपक्ष में अपराह्ण में उत्तम है यह आपस्तंबने कहा है। यहाँ पर 'मासि मासि' इस वीप्सा (दो वार कहने से) से सब कृष्णपक्षों में नित्य है। इससे उपसंहार से महालयपरत्व है यह कहना परास्त है। यहाँ पर प्रतिदिन, पञ्चमी आदि या जिस दिन संपत्ति प्राप्त हो ये तीन पक्ष कहे हैं। यदि एक दिन में श्राद्ध करे तो अमावास्या को पृथक् ही (हेमाद्रिमत से और विवेचन के मत से कृष्णपक्ष के श्राद्ध से भिन्न ही) करे। क्योंकि याज्ञवल्क्य ने अमावास्या को अलग (अपने और विपुवत् की तरह प्राशस्त्यद्योतनार्थं उसका अलग) निर्देश कहा है। इससे कृष्णपक्ष में जो दिन प्राप्त हो उसमें विशेष कर अमावास्या में यह निगम के कहने पर गौण अपरपक्ष श्राद्ध की अमावास्या है यह शूलपाणिका मत अपास्त (यद्यपि निगमवचने पृथग्विधानात्फलविशेषार्थिनः कृष्णपक्षश्राद्धेऽमावास्यारूपगुणविधिर्युक्त एव तथापि योगीश्वरवचने स न युज्यते, बहुवचनागतपरस्परानपेक्षतन्त्रान्वयविघातवैरूप्यापत्तेरितिभावः) है। अशक्ति में अमावास्या से भी मासिक श्राद्ध की सिद्धि होती है—यह नारायणवृत्ति में कहा है। निरग्निकों की (अर्थात्—जो अग्निहोत्री नहीं हैं) किसी दिन में करें। अहिताग्नि को तो अमावास्या में ही श्राद्ध का विधान है। क्योंकि आहिताग्नि द्विज को दर्श (अमावास्या) के बिना अन्य तिथि में श्राद्ध नहीं करे ऐसा मनु ने कहा है।

(सर्वकृष्णपक्षाशक्तौ विचारः)

सर्वकृष्णपक्षाशक्तौ मात्स्ये–अनेन विधिना श्राद्धं त्रिरब्दस्येह निर्वपेत्। कन्याकुम्भवृषस्थेऽर्के कृष्णपक्षे च सर्वदा ॥

सब अमावास्या के अशक्ति में मत्स्यपुराण में कहा है कि—इस विधि से साल के तीन दिन में कन्या, कुंभ और वृष के सूर्य में और कृष्णपक्ष में सर्वदा श्राद्ध करे।

कर्कोऽपि–'आहिताग्नेः संवत्सरे त्रिः श्राद्धनियमः' इति।

कर्क ने भी कहा है कि—आहिताग्नि को साल में तीन वार श्राद्ध का नियम है।

देवलः–अनेन विधिना श्राद्धं कुर्यात्संवत्सरं सकृत्। द्विश्चतुर्वा यथा श्राद्धं मासे मासे दिने दिने ॥ कृष्णपक्षेष्वपि महालयस्य श्रेष्ठत्वम्। तच्चोक्तं प्राक्।

देवल ने कहा है कि—इस विधि से साल में एक बार श्राद्ध करे। दो या चार या महिने महिने पर या प्रतिदिन श्राद्ध करे। कृष्णपक्ष में भी महालय को उत्तम कहा है। वह पहले कह चुके हैं।

(व्यतीपाते विशेषमाह)

व्यतीपाते विशेषमाह हेमाद्रौ शङ्खः–फलं लक्षं समुत्पत्तौ भ्रमणे कोटिरुच्यते।
पतने शतकोट्यस्तु पाते वै दत्तमक्षयम् ॥

व्यतीपात में विशेष हेमाद्रि में शंख ने कहा है कि व्यतीपात में मध्यममान से साठ घड़ी होती है। उसमें उत्पत्ति आदि विभाग इस प्रकार है—उत्पत्ति में लक्ष गुणा भ्रमण में कोटि फल पतन में सौ कोटि (सौ करोड) और पात में दिया हुआ (दान-श्राद्ध आदि का) अक्षय फल निश्चय प्राप्त होता है।

ज्योतिःशास्त्रे–द्वाविंशतिस्तथोत्पत्तौ भ्रमणे चैकविंशतिः। पतने दश नाड्यस्तु पतिते सप्त नाडिकाः ॥ अन्त्यौ च द्वौ व्यतीपातौ प्रागुक्तौ।

ज्योतिःशास्त्र में कहा है कि—उत्पत्ति में बाइस, भ्रमण में इकीस, पतन में दशनाडी और पतित में सात नाडी होती है। अन्त्य के दो व्यतीपातों को पहले कह चुके हैं।

हेमाद्रौ मार्कण्डेयः–यदा च श्रोत्रियोऽभ्येति गृहं वेदविदग्निचित्। तेनैकेनापि कर्तव्यं श्राद्धं च विधिवच्छुभम् ॥ इदं चापिण्डं कार्यमिति हेमाद्रिः। एतज्जीवत्पितृकोऽपि कुर्यात्, उद्वाहे पुत्रजनने पित्र्येष्ट्यां सौमिके मखे। तीर्थे ब्राह्मण आयाते षडेते जीवतः पितुः ॥ इति मैत्रायणीयपरिशिष्टोक्तेः।

हेमाद्रि में मार्कण्डेयपुराण का वचन है कि—जब वेद का ज्ञाता अग्निहोत्री वेदपाठी के घर पर आवे तो विधिवत् शुभ श्राद्ध को करना चाहिये। इसको अपिण्ड करे—यह हेमाद्रि का मत है। इसको जीवितपितृक भी करे। उद्वाह में, पुत्रोत्पत्ति में, पित्र्येष्टि में, सोमयाग में, तीर्थ में और ब्राह्मण के आने में इन छः में जिसके पिता जीवित हो करे—यह मैत्रायणीयपरिशिष्ट में कहा है।

(तिथिविशेषे फलविशेषः)

तिथिविशेषे फलविशेषो याज्ञवल्क्येनोक्तः-कन्यां कन्यावेदिनश्च पशून् वै सत्सुतानपि। द्यूतं कृषिं च वाणिज्यं द्विशफैकशफांस्तथा॥ ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रान् स्वर्णरौप्ये स कुप्यके। ज्ञातिश्रैष्ठ्यं सर्वकामानाप्नोति श्राद्धदः सदा॥ प्रतिपत्प्रभृतिष्वेकां वर्जयित्वा चतुर्दशीम्। एताः कृष्णपक्षस्था एव। महालये तु फलभूमेति पृथ्वीचन्द्रोदयः।

तिथिविशेष में फलविशेष याज्ञवल्क्य (याज्ञ० आ० २६२-२६४) ने कहा है कि—कन्या (रूपलक्षण शीलवती) कन्यावेदी (योग्य जामाता) पशु, सदाचारी पुत्र, द्यूत में विजय, उत्तम फसल, वाणिज्य में लाभ, द्विशफ (दो खुरवाले गौ आदि) एकशफ (एक खुरवाले अश्वादि पशु) वेदाध्ययन से तेजस्वी पुत्र, सुवर्ण और चाँदी, ताँवा, सीसा, जाति में प्रतिष्ठित और सभी इच्छा को श्राद्ध देनेवाला व्यक्ति सदैव प्राप्त करता है। केवल एक चतुर्दशी को छोड कर प्रतिपदा आदि सभी तिथियों में करे।

ये सब कृष्णपक्ष की ही हों। महालय में तो फल बहुत होता है—यह पृथ्वीचन्द्रोदय का मत है।

(अमावास्यादितिथौ श्राद्धाकरणे नरकगमनम्)

पौर्णमास्यां हेमाद्रौ पितामहः अमावास्याव्यतीपातपौर्णमाष्टकासु च। विद्वान् श्राद्धमकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते॥ एतन्माघ्यादिपरम्,

पौर्णमासी में हेमाद्रि में पितामह ने कहा है कि—अमावास्या, व्यतीपात, पौर्णमासी तथा अष्टका में श्राद्ध नहीं करने वाला विद्वान् नरक में जाता है। यह माघ्यादि परक है।

व्रीहिपाके च कर्तव्यं यवपाके च पार्थिव। पौर्णमासी तथा माघी श्रावणी च नृपोत्तम। प्रौष्ठपद्यामतीतायां तथा कृष्णा त्रयोदशी। एतांस्तु श्राद्धकालान् वै नित्यानाह प्रजापतिः॥ इति विष्णुधर्मोक्तेः।

हे पार्थिव, व्रीहि पकने पर और यव के पकने पर हे नृपोत्तम, पौर्णमासी माघी तथा श्रावणी की कही है। भाद्रपद महिने की पूर्णिमा के व्यतीत होने पर और कृष्णपक्ष की त्रयोदशी इनमें निश्चय नित्य श्राद्धकाल प्रजापति ने कहा है—ऐसा विष्णुधर्म में कहा है।

विष्णुः-माघी प्रौष्ठपद्यूर्ध्वं कृष्णा त्रयोदशी' इति। अत्र माघी पौर्णमासीति कल्पतरुः। 'श्रावण्यूर्ध्वमपि मघायोगसम्भवात्त्रयोदशी—विशेषणम्। इति गौडाः।

विष्णु ने कहा है कि—माघमास की पूर्णिमा और भाद्रपदमास की पूर्णिमा के वाद कृष्णपक्ष की त्रयोदशी है। यहाँ पर माघ महिने की पौर्णमासी है—यह कल्पतरु ने कहा है। श्रावण की पूर्णिमा के वाद भी मघायोग संभव होने से त्रयोदशी यह विशेषण है—यह गौडों ने कहा है।

(कृत्तिकादिनक्षत्रेषु श्राद्धविचारः)

याज्ञवल्क्यः—स्वर्गं ह्यपत्यमोजश्च शौर्यं क्षेत्रं बलं तथा। पुत्रं श्रेष्ठ्यञ्च सौभाग्यं समृद्धिं मुख्यतां शुभम्॥ प्रवृत्तचक्रतां चैव वाणिज्यप्रभृतीनपि। अरोगित्वं यशो वीतशोकतां परमां गतिम्॥ धनं वेदान् भिषक्सिद्धिं कुप्यं गामप्यजाविकम्। अश्वानायुश्च विधिवद्यः श्राद्धं संप्रयच्छति॥ कृत्तिकादिभरण्यन्तं स कामान् प्राप्नुयादिमान्। फलान्तराण्यपि भारते कौर्मादौ ज्ञेयानि।

नक्षत्रों में भी याज्ञवल्क्य (आचा० २६५-२६८) ने कहा है कि—स्वर्ग, सन्तान (पुत्र), शक्ति, शूरता, उर्वर खेत, शारीरिक वल, गुणवान् पुत्र, जाति में श्रेष्ठता, जनप्रियता, धनादि समृद्धि, नेतृत्व

सामान्य सुख, अजेयता, यश, शोक का नाश, ब्रह्मलोक में परम पद, धन, वेदज्ञान, औषध की सिद्धि, हेम और रूप्य से अन्य ताम्रादि द्रव्य, गौवें, बकरे, भेड़ें, घोडा और दीर्घजीवन इन सभी फलों को कृत्तिका नक्षत्र से प्रारंभ कर भरणी तक प्रत्येक नक्षत्र में श्रद्धापूर्वक तथा मानमत्सर त्यागकर विधिपूर्वक श्राद्ध देनेवाला व्यक्ति प्राप्त कर लेता है। और फलान्तर भी भारत तथा कूर्मपुराण आदि से जानना चाहिये।

(श्राद्धस्य विष्कुम्भादियोगेषु तदेव फलकथपम्)

माधवीये मरीचिः–कृत्तिकादिषु ऋक्षेषु श्राद्धे यत्फलमीरितम्।
विष्कुम्भादिषु योगेषु तदेव फलमिष्यते॥

माधवीय में मरीचि ने कहा है कि—कृत्तिका आदि नक्षत्रों में जो श्राद्ध करने का फल होता है वही फल विष्कुम्भ आदि योगों में प्राप्त होता है।

(सूर्यादिदिवसेषु ववादिकरणेषु च सकृत् श्राद्धकरणे फलकथनम्)

बृहस्पतिः–आरोग्यं चैव सौभाग्यं शत्रूणां च पराजयम्। सर्वान्कामान् प्रियां विद्यां धनमायुर्यथाक्रमम्॥ सूर्यादिदिवसेष्वेतच्छ्राद्धकृल्लभते फलम्॥ ववादिकरणेष्वेतच्छ्राद्धकृल्लभते नरः। अन्यानि च षण्णवतिश्राद्धादीनि प्रागुक्तानि।

बृहस्पति ने कहा है कि—आरोग्य, सौभाग्य, शत्रुओं का पराजय, सारी प्रिय इच्छायें, ज्ञान, धन और आयु ये यथाक्रम से सूर्यादि वारों में एकवार श्राद्ध करने से फल प्राप्त होता है। वव, वालव आदि करणों में यही श्राद्धकर्ता को एकवार में करने से फल मिलता है। अन्य तो छानवें श्राद्ध पहले कह चुके हैं।

(दुःस्वप्नादिदर्शने स्वेच्छया श्राद्धे फलकथनम्)

मार्कण्डेयपुराणे–श्राद्धार्हद्रव्यसंपत्तौ तथा दुःस्वप्नदर्शने।
जन्मर्क्षे ग्रहपीडासु श्राद्धं कुर्वीत चेच्छया॥

मार्कण्डेयपुराण में कहा है कि—श्राद्धयोग्य द्रव्य के प्राप्त हो जाने पर, दुःस्वप्नदर्शन में, जन्म नक्षत्र में तथा ग्रहों की पीडा पर अपनी इच्छा से श्राद्ध करे।

(श्राद्धाधिकारिणः)

अथ श्राद्धाधिकारिणः। चन्द्रिकायां सुमन्तुः–मातुः पितुः प्रकुर्वीत संस्थितस्यौरसः सुतः।
पैतृमेधिकसंस्कारं मन्त्रपूर्वकमादृतः॥

अब श्राद्ध के अधिकारी कहते हैं। चन्द्रिका में सुमन्तु ने कहा है कि—औरस पुत्र (जो पतित न हो) मृत माता और पिता का मन्त्रपूर्वक आदर से 'पितृमेधिकसंस्कार' (अर्थात्–सपिण्डनान्त करे। फिर भी प्रत्याब्दिक आदि का यहाँ पर प्रवेश है। आगे कहे गये वृद्धमनु आदि वचन से) करे।

तत्रैव हेमाद्रौ शङ्खः–पितुः पुत्रेण कर्तव्या पिण्डदानोदकक्रिया। पुत्राभावे तु पत्नी स्यात्तदभावे तु सोदरः॥ अत्र यद्यपि पुत्रपदं क्षेत्रजादि द्वादशविधपुत्रपरम्।

वहीं पर हेमाद्रि में शंख ने कहा है कि—पुत्र पिता का पिण्डदान तथा उदकक्रिया करे। पुत्र के अभाव में तो पत्नी करे। पत्नी के अभाव में सहोदर भाई करे। यहाँ पर यद्यपि पुत्रपद क्षेत्रज आदि बारह प्रकार के पुत्र परक है।

(याज्ञवल्क्यमते द्वादशपुत्राः)

ते च द्वादशपुत्रा याज्ञवल्क्येनोक्ताः—(व्यवहाराध्याय श्लो० १२८-१३२) औरसो धर्मपत्नीजस्तत्समः पुत्रिकासुतः। क्षेत्रजः क्षेत्रजातस्तु सगोत्रेणेतरेण वा। गृहे प्रच्छन्न उत्पन्नो गूढजस्तु सुतः स्मृतः। कानीनः कन्यकाजातो मातामहसुतो मतः॥ अक्षतायां क्षतायां वा जातः पौनर्भवः सुतः। दद्यान्माता पिता वा यं स पुत्रो दत्तको भवेत्। क्रीतश्च ताभ्यां विक्रीतः कृत्रिमः स्यात्स्वयंकृतः॥ दत्तात्मा तु स्वयंदत्तो गर्भे विन्नः सहोढजः॥ उत्सृष्टो गृह्यते यस्तु सोऽपविद्धो भवेत्सुतः॥ पिण्डदोंऽशहरश्चैषां पूर्वाभावे परः परः॥ इति।

बारह प्रकार के पुत्रों को याज्ञवल्क्य ने कहा है कि धर्मपूर्वक विवाहिता अपनी पत्नी से उत्पन्न पुत्र औरस, उसके बराबर लड़की का लड़का, क्षेत्रज, (यस्तल्पजः प्रमीतस्य क्लीवस्य व्याधितस्य च। स्वधर्मेण नियुक्तायां स ज्ञेयः क्षेत्रजः सुतः ॥) और क्षेत्रजात पुत्र सगोत्र या दूसरे सपिण्ड आदि द्वारा उत्पन्न होता है। घर में प्रच्छन्न रूप से उत्पन्न पुत्र (उत्पद्यते गृहे यस्य न च ज्ञायेत कस्य सः। स गृहे गूढ उत्पन्नस्तस्य स्याद्यस्य तल्पजः ॥) गूढज होता है। कन्या कुमारी से उत्पन्न कानीन मातामह (नाना) का पुत्र होता है। अक्षता (पहले पुरुष से वञ्चित) में या क्षता (जो पहले यौन संबन्ध का अनुभव कर चुकी हो) में उत्पन्न पुत्र को पौनर्भव कहते हैं। (या तु पत्या परित्यक्ता विधवा स्वेच्छयाऽथ वा। उत्पादयेत्पुनर्भूत्वा स पौनर्भव उच्यते ॥) माता या पिता द्वारा धनादि लेकर दिया हुआ पुत्र दत्तक होता है। माता-पिता ने धन लेकर बेच दिया हो जिस पुत्र को वह क्रीत होता है। स्वयं को पुत्र रूप में अर्पित करनेवाला कर लिया हो। (माता और पिता से हीन धन आदि प्रलोभन के द्वारा स्वयं पुत्र रूप से स्वीकार कर लिया) माता और पिता से हीन या उनसे त्यक्त मैं तुम्हारा पुत्र हूँ—अपनी आत्मा को देने (मातापितृभ्यां हीनो वा त्यक्तो वा स्यादकारणात्। आत्मानं स्पर्शयेद्यस्तु स्वयं दत्तस्तु स स्मृतः ॥) वाला, सवर्ण में विवाह के समय गर्भ में हो बाद में उत्पन्न पुत्र (या गर्भिणी संस्क्रियते ज्ञाताऽज्ञातापि वा सती। वोढुः स गर्भो भवति सहोढ इति उच्यते ॥) सहोढ होता है। माता और पिता के द्वारा या अन्य कारण के द्वारा भरणपोषण की असामर्थ्यता से या मूल नक्षत्रादि में उत्पन्न होने के कारण त्याग किये हुए पुत्र को (मातापितृभ्यामुत्सृष्टं तयोरन्यतरेण वा। यं पुत्रं प्रतिगृह्णीयादपविद्धस्तु स स्मृतः ॥) अपविद्ध कहते हैं। इन बारह प्रकार के पुत्रों में पूर्वाभाव में (अर्थात्–असन्निधि में) पर-पर (आगे-आगे) का पिण्ड को देनेवाला तथा अंश (भाग) का हिस्सेदार होता है।

(कलियुगे पुत्रग्रहणे विचारः)

तथापि–दत्तौरसेतरेषां तु पुत्रत्वेन परिग्रहः। इति हेमाद्रावादित्यपुराणे कलावितरेषां पुत्रत्वनिषेधादौरसदत्तकपरमेव।

फिर भी दत्तक और औरस पुत्र को इतर पुत्रों के रहते हुए भी ग्रहण करे—यह हेमाद्रि तथा आदित्य पुराण में कलियुग में इतर पुत्रों को पुत्रत्वरूप से निषेध होने से औरस और दत्तक पुत्रपरक ही है।

यद्यपि–पिण्डदोंऽशहरश्चैषां पूर्वाभावे परः परः। इति (या० व्य० श्लो० १३२) याज्ञवल्क्योक्तेरौरसाभावे दत्तकप्राप्तिः, तथाप्यौरसाभावे पौत्रः तदभावे प्रपौत्रः तदभावे दत्तकादय इति ज्ञेयम्, पुत्रेण लोकान् जयति पौत्रेणानन्त्यमश्नुते। अथ पुत्रस्य पौत्रेण ब्रध्नस्याप्नोति विष्टपम् ॥ इति जीमूतवाहनधृतवसिष्ठहारीतशङ्खलिखितोक्तेः, लोकानन्त्यं दिवः प्राप्तिः पुत्रपौत्रप्रौत्रकैः। इति याज्ञवल्क्योक्तेश्च। [आचा० ७८]।

यद्यपि—पूर्व (पहले) के अभाव में पर (आगे) पर (आगे) पिण्ड को देने वाला तथा अंश (हिस्से) संपत्ति के ग्रहण का हिस्सेदार होता है। इस याज्ञवल्क्य के कहने पर औरस पुत्र के अभाव में दत्तक की प्राप्ति है फिर भी औरस के अभाव में पौत्र, उसके अभाव में प्रपौत्र, उसके अभाव में दत्तक आदि की प्राप्ति होती है—यह जानना चाहिये।

पुत्र से लोकों को जीतता है। पौत्र से अनन्त लोकों को प्राप्त करता है। इसके बाद पुत्र के पौत्र से ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है। यह जीमूतवाहन में लिखे वसिष्ठ, हारीत, शंख तथा लिखित के वचनों सेकहा है। और याज्ञवल्क्य ने भी कहा है कि—औरस पुत्र, पौत्र तथा प्रपौत्रों से और पुत्रिका पुत्र से अनन्त लोक और स्वर्ग की प्राप्ति होती है।

पुत्रः पौत्रश्च तत्पुत्रः पुत्रिकापुत्र एव च। पत्नी भ्राता च तज्जश्च पिता माता स्नुषा तथा ॥ भगिनी भागिनेयश्च सपिण्डः सोदकस्तथा। असन्निधाने पूर्वेषामुत्तरे पिण्डदाः स्मृताः ॥ इति स्मृतिसंग्रहे प्रपौत्रानन्तरं पुत्रिकापुत्रोक्तेस्तत्समत्वाच्च दत्तकस्य।

पुत्र (एकवचनमौरसाभिप्रायम्), पौत्र, प्रपौत्र, लड़की का लड़का, स्त्री, भाई, भाई का लड़का, पिता, माता, पत्नी, बहिन, बहिन का पुत्र, सपिण्ड और सोदक इनमें पहले के समीप में न रहने से उत्तरोत्तर

पिण्ड को देने वाले होते हैं। इस स्मृतिसंग्रह के कथन से प्रपौत्र के अनन्तर लड़की का लड़का कहा है तथा उसके सदृश दत्तक है। अर्थात्—औरस पुत्र के बाद दत्तक नहीं हो सकता—यह भाव है।

यद्यपि बृहस्पतिना—पौत्रश्च पुत्रिकापुत्रः स्वर्गप्राप्तिकरावुभौ। रिक्थे च पिण्डदाने च समौ तौ परिकीर्तितौ ॥ इति पौत्रसाम्यमुक्तम्। याज्ञवल्क्येन च [व्यवहार० १२८] औरसो धर्मपत्नीजस्तत्समः पुत्रिकासुतः। इति औरससाम्यमुक्तम्, तथापि 'लोके राजसमो मन्त्री' इत्यादौ किञ्चिन्न्यूनेन समशब्दप्रयोगाद्गौणमुख्ययोः साम्यायोगाच्च स्तुत्यर्थं तत् न तु समविकल्प इति भ्रमितव्यम्।

यद्यपि बृहस्पति ने कहा है कि—पौत्र और लड़की का लड़का ये दो ही स्वर्गप्राप्ति को कराने वाले हैं। अतः ये दोनों धन ग्रहण और पिण्डदान में समान कहे गये हैं। यों पौत्र के तुल्य कहे गये हैं। और याज्ञवल्क्य ने कहा है कि—धर्मपत्नी से उत्पन्न औरस पुत्र होता है लड़की का पुत्र औरस पुत्र के सदृश होता है। फिर भी 'संसार में राजा के समान मन्त्री' है। इत्यादि में कुछ न्यून सम शब्द का प्रयोग होने से गौण और मुख्य की समानता का अयोग होने से वह स्तुत्यर्थ है वह समविकल्प है यह भ्रम नहीं करना चाहिये।

पुत्रः पौत्रः प्रपौत्रो वा भ्राता वा भ्रातृसन्ततिः। (सपिण्डसन्ततिर्वापि क्रियार्हा नृप जायते ॥ तेषामभावे सर्वेषां समानोदकसन्ततिः।) मातृपक्षसपिण्डेन सम्बन्धो यो जलेन वा ॥ कुलद्वयेऽपि चोच्छिन्ने स्त्रीभिः कार्या क्रिया नृप। तत्संघातगतैर्वापि तद्रिक्थात् कारयेन्नृपः ॥ इति विष्णुपुराणाच्च। प्रपौत्रानन्तरं दत्तकादय इति पृथ्वीचन्द्रमदनरत्नकालादर्शादयः। मदनपारिजातेऽप्येवम्।

हे नृप, पुत्र, ('गौणमुख्ययोर्मुख्ये कार्यसंप्रत्ययः' इस न्याय से मुख्य पुत्रपरक है। बद्धक्रम से प्रपौत्रान्त में दत्तक पुत्र भी ग्राह्य हैं) पौत्र, प्रपौत्र, भ्राता, भाई की सन्तान, (सपिण्ड की सन्तान भी क्रिया के योग्य होती है। उनके अभाव में समानोदक की सन्तान) मातृपक्ष का सपिण्ड के संबन्ध से जल दान दे। नृप, दोनों कुलों (मातृकुल और पितृकुल) के उच्छिन्न (नष्ट) होने से स्त्री क्रिया करे। या उनका समूह उसके धनसे उसकी क्रिया राजा करा दे—यह विष्णुपुराणमें कहा है। प्रपौत्रके बाद दत्तक आदि होते हैं यह पृथ्वीचन्द्र, मदनरत्न, कालादर्श आदि में कहा है। मदनपारिजात में भी यही यहा है।

वोपदेवरुद्रधरादयस्तु—पुत्रेषु विद्यमानेषु नान्यो वै कारयेत्स्वधाम्। इति सुमन्तूक्तौ—पितामहः पितुः पश्चात् पञ्चत्वं यदि गच्छति। पौत्रेणैकादशाहादि कर्तव्यं श्राद्धषोडशम् ॥ नैतत्पौत्रेण कर्तव्यं पुत्रवांश्चेत्पितामहः। इति छन्दोगपरिशिष्टे च पुत्रशब्दस्य द्वादशविधसुतपरत्वात्, 'पूर्वाभावे परः परः' इत्यस्यानन्यपरत्वाच्च, दत्तकाद्यभावे पौत्रादीनामप्यधिकार इत्याहुः, तद्गौणमुख्ययोः साम्यायोगाद्दत्तके सति पौत्रस्यांशहरत्वस्याप्यभावापत्तेः पुत्रपदस्यौरसमात्रपरत्वाच्चिन्त्यम्। अत एव निषेधादुपनीतपौत्रसत्वेऽप्यनुपनीतपुत्रस्यैवाधिकारः औरसश्चानुपनीतोऽपि कुर्यात्' इत्याह।

वोपदेव, रुद्रधर आदि के सिद्धान्त पक्ष को कहा है कि—पुत्रों के विद्यमान होते हुए अन्य स्वधा को निश्चय न करे। यह सुमन्तु के कहने में पिता के बाद यदि पितामह (दादा) मृत्यु को प्राप्त हो जाय तो पौत्र एकादशाह आदि सोलह श्राद्ध करे। यदि पितामह पुत्रवाला हो तो पौत्र को उसका श्राद्ध नहीं करना चाहिये। यह छन्दोगपरिशिष्ट में पुत्र को बारह प्रकार के पुत्रों का बोधक है यों कहा है। पूर्व के अभाव में पर पर है यह दूसरे अर्थ का बोधक नहीं है। दत्तक आदि के अभाव में पौत्रादियों का अधिकार है। यों कहा है। वह गौण और मुख्य की साम्यता के अयोग से दत्तक के रहने पर पौत्र के भाग का हिस्सेदार नहीं होगा। पुत्रपद औरस मात्र का द्योतक है—यह चिन्त्य है। इसलिए निषेध से उपनीत पौत्र के रहते हुए भी अनुपनीत (जिसका जनेऊ न हुआ हो) पुत्र का ही अधिकार है। औरस अनुपनीत भी करे—यह कहा है।

(एक एव भवेद्यदि पुत्रस्य श्राद्धे विचारः)

पृथ्वीचन्द्रोदये सुमन्तुः–श्राद्धं कुर्यादवश्यं तु प्रमीतपितृको द्विजः ।
व्रतस्थो वाऽव्रतस्थो वा एक एव भवेद्यदि ॥

पृथ्वीचन्द्रोदय में सुमन्तु ने कहा है कि–जिसका पिता मर गया हो तो वह द्विज व्रतस्थ हो या अव्रतस्थ हो यदि एक ही है तो श्राद्ध करे।

वृद्धमनुः–कुर्यादनुपनीतोऽपि श्राद्धमेको हि यः सुतः । पितृयज्ञाहुतिं पाणौ जुहुयाद् ब्राह्मणस्य सः ॥ एको मुख्य औरस इत्यर्थः ।

वृद्धमनु ने कहा है कि—अनुपनीत भी पुत्र यदि एक ही हो तो श्राद्ध करे वह ब्राह्मण के हाथ में पितृ यज्ञ की आहुति दे। इस श्लोक में एक शब्द से मुख्य औरस पुत्र का ग्रहण करे—यह अर्थ है।

मनुः—(अ० २ श्लो० १७१, १७२) नह्यस्मिन् युज्यते कर्म किञ्चिदामौञ्जिबन्धनात् । नाभिव्याहारयेद् ब्रह्म स्वधानिनयनादृते ॥ ब्रह्म=वेदः ।

मनु ने कहा है कि—मौञ्जीबन्धन के पूर्व वैदिककर्म में पिता के रहते हुए योगदान न करे। श्राद्ध में स्वधा शब्द को छोड कर (अनुपनीत बालक) ब्रह्म (वेद) का उच्चारण न करे।

सुमन्तुरपि–नाभिव्याहारयेद् ब्रह्म यावन्मौञ्जी निबध्यते । मन्त्राननुपनीतोऽपि पठेदेवैक औरसः ॥ अयं मन्त्रपाठस्त्रिवर्षकृतचूडस्यैव ।

सुमन्तु ने भी कहा है कि—जब तक मौञ्जीबन्धन नहीं होता है तबतक वेद का उच्चारण न करे। एक औरस ही पुत्र अनुपनीत भी मन्त्रों को पढे। यह मन्त्र पाठ उसी को है जिसका तीसरे साल चूडा (मुण्डन) कर्म हो गया हो।

अनुपेतोऽपि कुर्वीत मन्त्रवत्पैतृमेधिकम् । यद्यसौ कृतचूडः स्याद्यदि स्याच्च त्रिवत्सरः ॥ इति सुमन्तूक्तेः ।

अनुपनीत भी पुत्र पितृमेधिक (पितृयज्ञ) मन्त्रवत् (मन्त्रों से) करे। यदि वह कृतचूड हो और तीन साल का हो। एसा सुमन्तु ने कहा है।

यत्तु व्याघ्रः–कृतचूडस्तु कुर्वीत उदकं पिण्डमेव च ।
स्वधाकारं प्रयुञ्जीत वेदोच्चारं न कारयेत् ॥ इति ।

जो व्याघ्र ने कहा है कि—जिसका चूडाकरण हो गया है वह उदक (जलदान), पिण्डदान और स्वधा का प्रयोग करे। परन्तु वेदोच्चारण न करे।

यच्च स्मृतिसंग्रहे–कृतचूडोऽनुपेतश्च पित्रोः श्राद्धं समाचरेत् । उदाहरेत्स्वधाकारं न तु वेदाक्षराण्यसौ ॥ इति, तत्प्रथमवर्षचूडाविषयमिति माधवमदनरत्नपृथ्वीचन्द्राः । त्रिवर्षोर्ध्वं मन्त्रवत्त्वस्य विकल्प इति चन्द्रिका बोपदेवश्च । दत्तकादिपरो निषेध इति वयम् ।

और जो स्मृतिसंग्रह में कहा है कि—जिसका मुण्डनसंस्कार हो चुका हो और उपनयनसंस्कार न हुआ हो ऐसा पुत्र माता तथा पिताका श्राद्ध करे। वह 'स्वधा' शब्दका उच्चारण करे पर वेदाक्षरका उच्चारण न करे। ये दोनों वचन प्रथमवर्ष चूडाविषयक हैं—यह माधव, मदनरत्न और पृथ्वीचन्द्र आदि में कहा है। तीन वर्ष के ऊपर मन्त्र के सदृश इसका विकल्प है—यह चन्द्रिका और बोपदेव ने कहा है। निर्णयसिन्धुकार का मत है कि—यह दत्तकादि परक निषेध है।

(और्ध्वदैहिककर्मणि विचारः)

मदनरत्ने स्कान्दे–यज्ञेषु मन्त्रवत्कर्म पत्नी कुर्याद्यथा नृप ।
तथौर्ध्वदैहिकं कर्म कुर्यात्सा धर्मसंस्कृता ॥

मदनरत्न में स्कन्दपुराण का मत है कि—हे नृप, जैसे–पत्नी यज्ञों में मन्त्र को पढकर कार्य करती है वैसे ही तीन वर्षके पुत्रका चूड़ाकरण करके भी धर्मसंस्कृत वह पत्नी समन्त्रक और्ध्वदेहिक मात्र कर्म को करे।

अशक्तौ तु कात्यायनः—असंस्कृतेन पत्न्या च ह्यग्निदानं समन्त्रकम् ।
कर्तव्यमितरत्सर्वं कारयेदन्यमेव हि ॥

पुत्रश्च न जन्मतोऽधिकारी किन्तु वर्षोत्तरमित्याह कालादर्शः—चौलादाद्याब्दिकादर्वाक् न कुर्यात्पैतृमेधिकम् ।

अशक्ति में तो कात्यायन ने कहा है कि—पुत्र के असंस्कृत (संस्कारहीन) होने पर पर पत्नी अग्निदान मन्त्र द्वारा करे । अवशिष्ट सब कार्य अन्य के द्वारा करावे ।

पुत्र तो जन्म से अधिकारी नहीं होता है । किन्तु वर्ष के बाद अधिकारी होता है—यों कालादर्श में कहा है कि—एकसाल के पहले चूडाकरण और पितृमेधिक (पिता के मरण का) कार्य न करे ।

मदनरत्ने सुमन्तुरपि—पुत्रश्चोत्पत्तिमात्रेण संस्कुर्यादृणमोचनात् । पितरं नाब्दिकाच्चौलात्पैतृमेधेन कर्मणा ॥ एतच्चौरसस्यैव । दत्तकादीनां तूपनीतानामेवाधिकार इति कालादर्शः ।

मदनरत्न में सुमन्तु ने कहा है कि—पुत्र के उत्पत्तिमात्र से ऋणमुक्तिसंस्कार पिता का करे । एक साल (आ आब्दिकादितिच्छेदः । प्रथमवर्षीयचौलाद्विनेति तदर्थः) मुण्डन से पूर्व पितृमेध कर्म पिता का न करे । यह औरसपुत्र के लिये ही है । दत्तक आदि यों का तो उपनयनोत्तर ही अधिकार है—यह कालादर्श में है ।

पृथ्वीचन्द्रोदयेऽपि स्कान्दे—पित्रोरनुपनीतोऽपि विदध्यादौरसः सुतः । और्ध्वदेहिकमन्ये तु संस्कृताः श्राद्धकारिणः । इति । अन्यत्रापि दर्शमहालयादावनुपनीतस्याधिकारोऽस्माभिः पूर्वमुक्तः । प्रपौत्राभावे दत्तकादय एकादश पुत्राः तदभावे भर्तुः पत्नी, तस्याश्च स, अपुत्रा शयनं भर्तुः पालयन्ती व्रते स्थिता । पत्न्येव दद्यात्तत्पिण्डं कृत्स्नमंशं लभेत च ॥ इति वृद्धमनूक्तेः ।

पृथ्वीचन्द्रोदय में भी स्कन्दपुराण का मत है कि—अनुपनीत भी औरस पुत्र माता और पिता का और्ध्वदेहिककृत्य करे । अन्य पुत्र तो संस्कारोत्तर ही श्राद्ध करने के अधिकारी हो सकते हैं ।

अन्यत्र भी दर्श, महालय आदि में अनुपनीत का भी अधिकार है—यह पहले कह चुके हैं । प्रपौत्र के अभाव में दत्तक आदि ग्यारह पुत्रों का अधिकार है । उनके अभाव में पति का स्त्री करे और स्त्री का पति करे ।

वृद्धमनु ने कहा है कि—जिसके पुत्र न हो वह स्त्री अपने स्वामी (पति) की शय्या को व्रत में स्थित होकर पालती है और पत्नी ही पिण्ड को (मनुः—अपुत्रे संस्थिते कर्ता नास्ति चेच्छ्राद्धकर्मणि । तत्र पत्न्यपि कुर्वीत सापिण्ड्यं पार्वणं तथा ॥ पौत्र-प्रपौत्र के अभाव में पत्नी को अधिकार है ।) देती है तथा सब धन को प्राप्त (अपुत्रे मृते तद्धनं सर्वं परिणीता संयता स्त्री गृह्णीयात् ।) करती है ।

भार्यापिण्डं पतिर्दद्याद्भर्तुर्भार्या तथैव च । श्वश्र्वादेश्च स्नुषा चैव तदभावे सपिण्डकाः ॥ इति ।

स्त्री को पिण्ड पति दे तथा पति को स्त्री (पुत्राभाव में) पिण्ड दे । सास आदि को बहू दे । उसके अभाव में सपिण्ड वाले दें ।

पुत्राभावे तु पत्नी स्यात्पत्न्यभावे तु सोदरः । इति च हेमाद्रौ शङ्खोक्तेः ।

और शंख ने हेमाद्रि में कहा है कि—पुत्राभाव में तो पत्नी दे और पत्नी के अभाव में सहोदर भाई दें ।

पृथ्वीचन्द्रोदयस्तु—कानीनगूढसहजपुनर्भूतनयाश्च ये । पत्न्यभावेऽधिकुर्युस्ते अप्रशस्ता स्मृता हि ते ॥ इति स्मृतिसंग्रहात् पत्न्यभावे कानीनादय इत्याह । पत्युरपि सपत्नीपुत्रे सति नाधिकारः, पितृपत्न्यः सर्वा मातरः, इति सुमन्तूक्तेः ।

पृथ्वीचन्द्रोदय में तो कहा है कि—कानीन, गूढज, सहोढज और पुनर्भू-ये जो पुत्र हैं । ये सब पत्नी के अभाव में अधिकारी पिता के श्राद्ध में होते हैं । क्योंकि वे सब अप्रस्त कहे गये हैं । इस स्मृतिसंग्रह से

पत्नी के अभाव में कानीन आदि को कहा है। सपत्नीपुत्र के रहते हुए पति को भी स्त्री (पत्नी) के श्राद्ध का अधिकार नहीं है। क्योंकि—पिता की सब पत्नी माता होती हैं—यह सुमन्तु ने कहा कहा है।

विदध्यादौरसः पुत्रो जनन्या और्ध्वदेहिकम्। तदभावे सपत्नीजः क्षेत्रजाद्यास्तथा स्मृताः। तेषामभावे तु पतिस्तदभावे सपिण्डकाः॥ इति मदनरत्ने कात्यायनोक्तेश्च।

और मदनरत्न में कात्यायन ने कहा है कि—माता का और्ध्वदेहिककर्म औरसपुत्र करे। उसके अभाव में सपत्नी से उत्पन्न पुत्र, उनके अभाव में क्षेत्रज आदि पुत्र करें। उनके अभाव में पति करे। पति के अभाव में सपिण्ड करे।

'बह्वीनामेकपत्नीनामेष एव विधिः स्मृतः। एका चेत्पुत्रिणी तासां सर्वासां पिण्डदस्तु सः॥ इति बृहस्पतिवचनाच्च। अपरार्केऽप्येवम्। तेन यच्छुद्धिविवेके उक्तं—सत्यपि सपत्नीपुत्रे पत्युरेवाधिकारः, इति, तन्निरस्तम्।

और बृहस्पति का भी वचन है कि—जिस पुरुष को बहुत स्त्रियाँ हो उसकी यही विधि कही गयी है। उनमें एक भी स्त्री पुत्रवाली हो तो वह सबों को पिण्ड देने वाला होता है। अपरार्क में भी यही कहा है। इससे जो 'शुद्धिविवेक' में कहा है कि-सपत्नी पुत्र के रहते भी पति को ही अधिकार है—यों कहा है वह युक्त नहीं है।

(अपुत्राया अपि भार्याया श्राद्धविचारः)

यच्च तत्रैव कात्यायनः—न भार्यायाः पतिर्दद्यादपुत्राया अपि कचित्।

और जो वहीं पर कात्यायन ने कहा है कि—अपुत्रवाली भार्या को भी कभी भी पति पिण्डदान न करे।

(कुलद्वयेऽपि चोत्सन्ने क्रियाविचारः)

यच्च विष्णुपुराणम्—कुलद्वयेऽपि चोत्सन्ने स्त्रीभिः कार्या क्रिया नृप। इति।

और जो विष्णुपुराण में कहा है कि—हे नृप, दोनों कुलों (वंशों) के उत्सन्न (नाश) होने पर स्त्री क्रिया करे।

यच्च मार्कण्डेयपुराणम्—सर्वाभावे स्त्रियः कुर्युः स्वभर्तॄणाममन्त्रकम्। इति, तदासुरादिविवाहोढाविषयम्,

और जो मार्कण्डेयपुराण में कहा है कि—सबों के अभाव में अपने पतियों का श्राद्ध अमन्त्रक स्त्री करे। वह सब असुरादि विवाहोढा विषयक है।

(क्रयक्रीता पत्नीविषये विचारः)

धर्म्यैर्विवाहैरूढा या सा पत्नी परिकीर्तिता। क्रयक्रीता तु या नारी न सा पत्न्यभिधीयते॥ न सा दैवे न सा पित्र्ये दासी तां मुनयो विदुः॥ इति माधवीये शातातपोक्तेः।

माधवीय में शातातप ने कहा है कि—जो धर्म के द्वारा विवाहित हो वही पत्नी कही गयी है। जो खरीदी गयी नारी है उसको पत्नी नहीं कह सकते हैं। वह दैवकर्म और पितृकार्य में उपयुक्त नहीं है। उसको मुनियों ने 'दासी' शब्द से कहा है।

(पत्युःश्राद्धविषये विचारः)

यत्तु शुद्धिरत्नाकरः शूलपाणिश्च—अपुत्रस्य च या पुत्री सापि पिण्डप्रदा भवेत्। तस्य पिण्डान् दशैकं वा एकाहेनैव निक्षिपेत्॥ इति जाबालोक्तेः, भर्तुर्धनहरा पत्नी तां विना दुहिता स्मृता। अङ्गादङ्गात्स भवति पुत्रवद् दुहिता नृणाम्॥ इति बृहस्पतिना दुहितुर्धनहारित्वोक्तेश्च पुत्राभावे कन्या, तदभावे सपत्नीपुत्र इत्याहतुः। तत्पूर्वविरोधात्, मातुर्दुहितरः शेषमृणात्ताभ्य ऋतेऽन्वयः। इति दुहितुर्मातृधनग्राहित्वेन पुत्रस्य तच्छ्राद्धानधिकारापत्तेश्चोपेक्ष्यम्।

वचनं तु भ्रातृपुत्राद्यभावविषयम्। पत्न्यभावे अविभक्तस्य सोदरः पूर्वोक्तशङ्खवचनात्। विभक्तस्य तु दुहिता, धनहारित्वात्, पूर्वोक्तजाबालवचनाच्च। तत्राप्यूढानूढसमवाये ऊढैव।

जो शुद्धिरत्नाकर और शूलपाणि में कहा है कि—उस अपुत्रवाली को जो पुत्री है वह भी पिण्डदान देनेवाली होती है। वह उसका दशपिण्ड या एकपिण्ड एक ही दिन में प्रक्षेप करे। यह जाबलि के कहने पर पति का धन हरण (ग्रहण) करने वाली पत्नी होती है। पत्नी के अभाव में दुहिता (कन्या) होती है। क्योंकि—मनुष्यों के अंश (शरीर) से पुत्र के तुल्य कन्या होती है। इस बृहस्पति वचन से भी कन्या को धनग्रहण करने वाली कहा है। पुत्र के अभाव में कन्या अधिकारी होती है। कन्या के अभाव में सपत्नी का लड़का अधिकारी होता है। यों कहा है। वह पूर्व पहले कहे हुए वचनों के विरोध होने से तथा माता के ऋण से अवशिष्ट धन को कन्या ग्रहण करे। उसके अभाव में वंश के होने वाले ग्रहण करे। इस वचन से कन्या को माता के धन का ग्रहणाधिकार हो जाने से पुत्र को उसके श्राद्ध का अधिकार नहीं होगा। इसलिए उपेक्ष्य (उपेक्षा करने योग्य) है। वचन तो ('भार्यापिण्डं पतिर्दद्यात्' इत्यादि वचनं त्वित्यर्थः) भ्रातृपुत्र आदि का अभाव विषयक है। पत्नी के अभाव में अविभक्त (जिसका विभाग न हुआ हो) सहोदर भाई करे। पहले कहे हुए शंखवचन से। विभाग होजाने पर तो कन्या अधिकारिणी होती है। क्योंकि धन (अर्थ) को हरण करनेवाली होती है। (अर्थात्–जो धन को ग्रहण करे वही पिण्डदान देनेवाला होता है।)[१] इस पूर्वोक्त कहे हुए जाबलिवचन से। उसमें भी विवाहित और अविवाहित सम्बन्ध में विवाहिता को ही अधिकार है।

दुहिता पुत्रवत्कुर्यान्मातापित्रोस्तु संस्कृता। आशौचमुदकं पिण्डमेकोद्दिष्टं सदा तयोः॥ इति भरद्वाजोक्तेः।

भारद्वाज ने कहा है कि—विवाहिता कन्या सदा पुत्रवत् माता और पिता का आशौच, जल, पिण्डदान और एकोद्दिष्ट इन दोनों का करे। उसके (कन्या) अभाव में दौहित्र (लड़की का लड़का) करे। क्योंकि— धनहारिहोने (अपुत्रपौत्रसन्ताने दौहित्रा धनमाप्नयुः। पूर्वेषां तु स्वधाकारे पौत्रा दौहित्रिका मताः॥) से।

तदभावे दौहित्रः, धनहारित्वात् मातापित्रोरुपाध्यायाचार्ययोरौर्ध्व देहिकम्। कुर्वन्मातामहस्यापि व्रती न भ्रश्यते व्रतात्॥ इति चन्द्रिकायां वृद्धमनूक्तेः,

चन्द्रिका में वृद्धमनु ने कहा है कि—माता, पिता, उपाध्याय, आचार्य और मातामह का और्ध्वदेहिक करता हुआ व्रती व्रत से नष्ट नहीं होता है। (दौहित्र को पुत्रवत् सादृश्य होने से और धनहारी होने से मातामह का श्राद्ध करने का अधिकार है।)

यथा व्रतस्थोऽपि सुतः पितुः कुर्यात्क्रियां नृप। उदकाद्यां महाबाहो दौहित्रोऽपि तथार्हति॥ इत्यपरार्के भविष्योक्तेश्च।

अपरार्क में भविष्यपुराण का वचन है कि—हे नृप, जैसे व्रत में स्थित पुत्र पिता की क्रिया ही करे। वैसे ही हेमहाबाहो, उदक (जलदान) आदि में दौहित्र को भी पूज्यता है।

एतद्धनहारिण आवश्यकं नान्यस्येत्याह तत्रैव स्कन्दः—श्राद्धं मातामहानां तु अवश्यं धनहारिणा। दौहित्रेणार्थनिष्कृत्यै कर्तव्यं पूर्वमुत्तरम्॥ इति। तेन 'दौहित्रोऽत्र पुत्रीकृतः' इति देवयाज्ञिकोक्तिः परास्ता। अत्र पत्नीदौहित्रसमवायेंऽशहरत्वात् पत्न्येव कुर्यात्। दौहित्रभ्रातृपुत्रसत्वे विभक्तस्य दौहित्रः, अविभागे भ्रातृपुत्रः। भ्रातृतत्पुत्रसत्वे कनिष्ठश्चेत् भ्रातैव। ज्येष्ठश्चेत्तत्पुत्रः कुर्यादिति दाक्षिणात्यग्रन्थाः।

---

१. यद्यपि—'भर्तुर्धनहरापत्नी तां विना दुहिता स्मृता। यह सामान्य कहा है। अतः विवाहिता या अविवाहिता कन्या अभाव में पिता के धन को ग्रहण कर सकती है। फिर भी अनूढा को सर्वथा धनादिग्रहण करने का अधिकार नहीं है। क्योंकि—जो संस्कृत है—अर्थात्–जिसका विवाह हो चुका है उसी को ही अधिकार है। इसीप्रकार बहिन या उसके पुत्रों को संस्कार बिना अधिकार नहीं है। औरसपुत्र से भिन्नों को संस्कार बिना श्राद्ध का अधिकार नहीं है।

यह धनहारी होने से आवश्यक (अर्थात्-जिनका धन ग्रहण करने वालों का सहोदर, भाई के लडके, उनके पुत्रों के अभाव में धनग्राही दौहित्र होता है। या जो धन ग्रहण करे वही श्राद्ध दिलाने का अधिकारी होता है।) है। अन्य को नहीं है। वहीं पर स्कन्दपुराण में कहा है कि—मातामहादियों के श्राद्ध को अवश्य धनहारी दौहित्र करे अर्थ निष्कृति के (धनग्रहण का उपकार व्याप्त होने से) लिए पहले उत्तर करे। इससे यहाँ पर दौहित्र को पुत्री कृत कहा है यह देवयाज्ञिक की उक्ति परास्त है। जहाँ पर पत्नी और दौहित्र दोनों प्राप्त हो (समवाय)[1] तो वहाँ पर अंश हर होने से पत्नी ही करे।

दौहित्र और भाई का पुत्र हो वहाँ पर विभक्त होने पर दौहित्र को अधिकार है। अविभक्त में भाई के पुत्र को अधिकार है। भाई और भाई के पुत्र हो वह कनिष्ठ (छोटा) हो तो भाई ही करे। बड़ा भाई हो तो उसका पुत्र करे—यह दाक्षिणात्य ग्रन्थों में कहा है।

हारलतादौ तु—भ्रातुर्भ्राता स्वयं चक्रे तद्भार्या चेन्न विद्यते। तस्य भ्रातृसुतश्चक्रे यस्य नास्ति सहोदरः ॥ इति ब्राह्मोक्तेः।

हारलतादि में तो ब्रह्मपुराणवचन से कहा है कि—भाई का भाई स्वयं श्राद्ध करे यदि उसकी भार्या न हो तो। जिसके सहोदर भाई न हो उसका भाई का पुत्र श्राद्ध करे।

पत्नी कुर्यात्सुताभावे तदभावे सहोदरः। इति कौर्माच्च ज्येष्ठभ्रातैव कुर्यान्न तत्पुत्रः। यत्तु नानुजस्य तथाग्रजः, इति तत् कनिष्ठभ्रातृसत्त्वविषयम्।

और कूर्मपुराण में कहा है कि पुत्र के अभाव में पत्नी करे पत्नी के अभाव में सहोदर भाई करे। ज्येष्ठ भाई ही (ज्येष्ठबहुत्वे मृतानन्तरक्रमेण) करे उसका पुत्र न करे। जो किसी ने कहा है कि—बड़ा भाई छोटे भाई के श्राद्ध का अधिकारी नहीं होता है वह कनिष्ठ भाई को अधिकार का निषेध विषयक है।

यच्च मनुः—(अ० ९, १८३) सर्वेषामेकपत्नीनामेकश्चेत्पुत्रवान् भवेत्। सर्वांस्तांस्तेन पुत्रेण पुत्रिणो मनुरब्रवीत्॥ इति, तत्सोदराभावविषयमित्युक्तम्। एतेन पुत्रत्वातिदेशोऽयम्। अतस्तस्मिन् सति एकादश पुत्राः प्रतिनिधियो न कार्याः, स एव पिण्डदोंऽशहरश्च, इति वाचस्पतिमनुटीका-कल्पतरुरत्नाकरादयः परास्ताः, द्वादशविधपुत्राभावे 'पत्नीदुहितरः' इति याज्ञवल्क्योक्तेश्च। तस्माद्दत्तपुत्र प्रसंसेयमिति विज्ञानेश्वरः, अविभक्त विषयं वा।

और जो मनु ने कहा है कि—सपत्नियों के मध्य में यदि एक ही स्त्री के पुत्र हो तो उसी एक पुत्र से सब पुत्र वाले हो जाते हैं—वह सहोदर के अभाव विषयक है—यों कहा है। इससे पुत्रत्व का अतिदेश यह है। इसकारण से उसके (औरस) रहते हुए ग्यारह प्रकार के पुत्र प्रतिनिधि न करे। वही पिण्ड को देनेवाला और धनग्रहण करनेवाला है। इससे वाचस्पति, मनु की टीका, कल्पतरु, रत्नाकर आदि परास्त हुए।

बारह प्रकार के पुत्रों के अभाव से पत्नी तथा कन्या को अधिकार है—यह याज्ञवल्क्य ने कहा है। इससे दत्तक पुत्र की प्रशंसा यह है—यह विज्ञानेश्वर ने कहा है। अविभक्त (जिसका बिभाग-बटवारा न हुआ हो) विषयक है।

मदनरत्ने स्मृतिसंग्रहे—पुत्रः कुर्यात्पितुः श्राद्धं पत्नी च तदसन्निधौ।
धनहार्यथ दौहित्रस्ततो भ्राता च तत्सुतः॥
भ्रातुः सहोदरो भ्राता कुर्यादाहादि तत्सुतः। ततस्त्वसोदरो भ्राता तद्भावे च तत्सुतः॥ इति। भ्रातृपुत्राभावे क्रमेण पितृमातृस्नुषास्वसृतत्पुत्रादयः धनहारित्वात्।

मदनरत्न में और स्मृतिसंग्रह में कहा है कि—पिता का श्राद्ध पुत्र करे। असन्निधि में पत्नी करे। पत्न्यभाव में धनग्राही दौहित्र करे। दौहित्राभाव में भाई और उसके अभाव में उस भाई का पुत्र करे। भाई का संस्कार सहोदर भाई या उसका पुत्र करे। अभाव में तो असहोदर (सगा भाई न भी हो) और उसके अभाव में उसका पुत्र करे। इसप्रकार भाई के पुत्राभाव में क्रम से पिता, माता, पुत्रवधू, बहिन, तथा बहिन के पुत्र धनग्राही होने से कर्म करें।

भगिनीतत्सुतयोर्विशेषमाह मदनरत्ने कात्यायनः—अनुजा वाग्रजा वापि भ्रातुः कुर्वीत संक्रियाम् ।
ततः स्वसोदराक्तद्वत्क्रमेण तनयस्तयोः ॥

वहिन और उसके पुत्र के लिये विशेष मदनरत्न में कात्यायन ने कहा है कि—छोटी वहिन या बड़ी वहन भाई की क्रिया करे। तदनन्तर अपनी सहोदर वहिनों की तरह क्रम से उनके पुत्र करें।

अपरार्के कार्ष्णाजिनिः—पुत्रः शिष्योऽथवा पत्नी पिता भ्राता स्नुषा गुरुः ।
स्त्रीहारी धनहारी च कुर्यात्पिण्डोदकक्रियाम् ॥

अपरार्क में कार्ष्णाजिनि ने कहा है कि—पुत्र, शिष्य या पत्नी, पिता, भाई, पुत्रवधू, गुरु, स्त्री और धन को ग्रहण करने वाला पिण्डोदक क्रिया को करे।

मार्कण्डेयपुराणे—पुत्रो भ्राता च तत्पुत्रः पत्नी माता तथा पिता ।
वित्ताभावेऽपि शिष्यश्च कुर्वीरन्नौर्ध्वदैहिकम् ॥

तेन धनहारी एतद्भिन्न इति कालादर्शः । अत्र पाठक्रमो न विवक्षितः पूर्ववाक्येष्वथ ततः शब्दादिभिः श्रौतक्रमोक्तेः । 'अथ जिह्वाया अथ वक्षसः' इतिवत् ।

मार्कण्डेयपुराण में कहा है कि—पुत्र (वारह प्रकार के पुत्र) भाई (सहोदर और असहोदर) च शब्द से दौहित्रादि और पुत्रवधू) भाई का पुत्र, पत्नी, माता और पिता, वित्त (धन) के अभाव में शिष्य और्ध्वदेहिक कर्म को (मृत व्यक्ति के लिए मरण दिन से आरंभ कर दश दिन पर्यन्त पिण्डादि दान को और्ध्वदैहिक कहते हैं।) करे।

कालादर्श में कहा है कि—इससे भिन्न धनहारी है। यहाँ पर पाठ के अनुसार क्रम की विवक्षा नहीं है। पूर्व वाक्यों में अथ, ततः शब्द आदि से श्रौतक्रम प्रतिपादन किया है। वैसे ही अथ तथा अतः इत्यादि शब्दों के द्वारा श्रौत क्रम को प्रतिपादन किया है। 'अथ जिह्वाया अथ वक्षसः' इसकी तरह।

पृथ्वीचन्द्रोदये वृद्धमनुः—स्नुषास्वस्रीयतत्पुत्रज्ञातिसम्बन्धिबान्धवाः ।
पुत्राभावे तु कुर्वीरन् सपिण्डान्तं यथाविधि ॥

पृथ्वीचन्द्रोदय में वृद्धमनु ने कहा है कि—पुत्रवधू, अपनी वहन का पुत्र भानजा, भानजे का लड़का जातीवाले सम्बन्धी और वान्धव ये सव पुत्र के अभाव में तो सपिण्डनान्त कर्म को यथाविधि करें।

मार्कण्डेयपुराणे—पुत्राद्युत्सन्नबन्धोश्च सखापि श्वसुरस्य च ।
जामाता स्नेहवत्कुर्यादखिलं पैतृमेधिकम् ॥

मार्कण्डेयपुराण में कहा है कि—पुत्रादिक, जिसके पुत्र आदि वन्धु नष्ट हो गये हों उसके मित्र, और श्वसुर का दामाद स्नेहवत् संपूर्ण पैतृमेधिक (मृतककार्य) करे।

चन्द्रिकायां वृद्धशातातपः—मातुलो भागिनेयश्च स्वस्त्रीयो मातुलस्य च ।
श्वशुरस्य गुरोश्चैव सख्युर्मातामहस्य च ॥
एतेषां चैव भार्याणां स्वसुर्मातुः पितुस्तथा । श्राद्धमेषां तु कर्तव्यमिति वेदविदो विदुः ॥

चन्द्रिका में वृद्धशातातप ने कहा है कि—मातुल (मामा) भानजा का और मामा का भानजा श्राद्ध करें—श्वसुर, गुरु मित्र और मातामह (नाना) का तथा इनकी स्त्रियों का, वहन, माता और पिता का श्राद्ध करना चाहिये। यह वेद के जानकार जानते हैं।

शुद्धिविवेके पृथ्वीचन्द्रोदये च ब्राह्मे—दत्तानां वाप्यदत्तानां कन्यानां कुरुते पिता ।
चतुर्थेहनि तास्तेषां कुर्वीरन् सुसमाहिताः ॥—दत्ता=वाग्दत्ताः ।

शुद्धिविवेक में और पृथ्वीचन्द्रोदय में ब्रह्मपराण का कथन है कि—वाणी द्वारा दी हुई या न दी हुई कन्याओं का पिता कर्म करे। वे कन्या भी चतुर्थ दिन उनका सावधानी से कर्म कर सकती है।

१—अग्नीषोमीय पशुयाग के अवदान प्रकरण का यह वाक्य है। 'हृदयाग्रेवद्यति' आदि। यहाँ अथ शब्द अग्र शब्द से शक्त्यावृत्या क्रम का वोधक होता है। वैसा प्रकृत में भी अथ, 'ततः' शब्दादि से श्रौतक्रम का ही अभिधान है। पाठक्रम का नहीं है।

मातामहानां दौहित्राः कुर्वन्त्यहनि चापरे। तेऽपि तेषां प्रकुर्वन्ति द्वितीयेऽहनि सर्वदा॥ जामातुः श्वशुराश्चक्रुस्तेषां तेऽपि च संयुताः। मित्राणां तदपत्यानां श्रोत्रियाणां गुरोस्तथा॥ भागिनेयसुतानां च सर्वेषां त्वपरेऽहनि। राज्ञोऽसति सपिण्डे तु निरपत्ये पुरोहितः॥ मन्त्री वा तदशौचं तु पुरा चीर्त्वा करोति सः॥ अत्र द्वितीयाहादौ श्राद्धविधानमस्थिसञ्चयपरम्।

मातामहों का दौहित्र दूसरे दिन कर्म करे। वे भी सर्वदा उनका दूसरे रोज कर्म करे। जामाता का श्वसुर करें उनका वे भी करें। मित्रों का, मित्रों के अपत्यों का, श्रोत्रियों (वेदपाठियों) का गुरु का, भागिनेय और उसके पुत्र सबों का तो दूसरे दिन में करें। सपिण्ड के पुत्राद्यभाव में राजा करे। पुरोहित करे या मन्त्री उसके पहले आशौच बीत जाने पर उसका कर्म करे। यहाँ पर दूसरे दिन के आदि में जो श्राद्ध का विधान है वह अस्थिसञ्चयनपरक है।

(और्ध्वदेहिककर्मणि औरसादिपुत्राणां विचारः)

कालादर्शे—दाहादिमन्त्रवत्पित्रोर्विदध्यादौरसः सुतः। तदभावे तु पौत्रश्च प्रपौत्रः पुत्रिकासुतः॥ दौहित्रो धनहारी च भ्राता तत्पुत्र एव च। पिता माता स्नुषा चैव स्वसा तत्पुत्र एव च॥ सपिण्डः सोदको मातुः सपिण्डश्च सहोदकः। स्त्री च शिष्यर्त्विगाचार्या जामाता च सखापि च॥ उत्सन्नबन्धो रिक्थेन कारयेदवनीपतिः॥

कालादर्श में कहा है कि—माता और पिता का औरस पुत्र मन्त्र से दाह आदि कर्म करे। पुत्र के अभाव में तो पौत्र करे। पौत्र के अभाव में तो प्रपौत्र, पुत्री का पुत्र, दौहित्र, धन को ग्रहण करनेवाला (ब्राह्मण का धन ग्रहण करने वाला कोई ब्राह्मण हो सकता है, राजा नहीं। क्योंकि—ब्राह्मण के धन को ग्रहण करने का अधिकार राजा को नहीं है। यदि धनहारी श्राद्ध न करे तो राजा करा दे।) भाई, भाई का पुत्र ही, पिता, माता, पुत्रवधू, बहिन, बहिन का पुत्र, सपिण्ड, सोदक, माता के सपिण्ड सहोदक, स्त्री, शिष्य, ऋत्विक्, आचार्य, जामाता और मित्र करें। जिसके बान्धव नष्ट हो गये हों तो धन द्वारा अवनीपति (राजा) (मार्कण्डेयपुराणे—सर्वाभावे च नृपतिः कारयेत्तस्य रिक्थतः। तज्जातीयैर्नरैः सम्यग् दाहाद्याः सकलाः क्रियाः॥ सर्वेषामेव वर्णानां बान्धवो नृपतिर्यतः॥) से करावे।

(पुत्राभावे विचारः)

गौतमः—पुत्राभावे सपिण्डा मातृसपिण्डाः शिष्याश्च दद्युस्तदभावे ऋत्विगाचार्यौ॥

गौतम ने कहा है कि—पुत्र के अभाव में सपिण्ड, माता के सपिण्ड तथा शिष्य दें। उनके अभाव में ऋत्विक् और आचार्य दें।

(सर्ववर्णलिङ्गिनां प्रीत्या श्राद्धविचारः)

यत्तु चन्द्रिकायां वृद्धशातातपः—प्रीत्या श्राद्धं प्रकर्तव्यं सर्वेषां वर्णलिङ्गिनाम्। इति, तत्सवर्णविषयम्,

जो चन्द्रिका में वृद्धशातातप ने कहा है कि—सब वर्णवालों का प्रीति से श्राद्ध करना चाहिये। यह सवर्णविषयक है।

(अन्यवर्णानां श्राद्धकर्मणि ब्राह्मणस्य विचारः)

ब्राह्मणस्त्वन्यवर्णानां न कुर्यात्कर्म किञ्चन। कामाल्लोभाद्भयान्मोहात्कृत्वा तज्जातितां व्रजेत्॥ इति ब्राह्मोक्तेः,

ब्रह्मपुराण में कहा है कि—अन्यवर्णों का कुछ भी कर्म ब्राह्मण न करे। यदि काम, लोभ, भय या मोह से करता है जो वह उसी जाति को प्राप्त हो जाता है।

न ब्राह्मणेन कर्तव्यं शूद्रस्याप्यौर्ध्वदैहिकम्। शूद्रेण वा ब्राह्मणस्य विना पारशवात् क्वचित्॥ इति पारस्करोक्तेश्च। पारशवः=ऊढशूद्रापुत्रः।

और पारस्कर ने कहा है कि—शूद्र का और्ध्वदेहिक कर्म ब्राह्मण को नहीं करना चाहिये। पारशव (यं ब्राह्मणस्तु शूद्रायां कामादुत्पादयेत्सुतम्। स पारयन्नेव शवस्तस्मात्पारशवः स्मृतः ॥) के बिना शूद्र भी ब्राह्मण का कर्म कभी न करे। पारशव=का अर्थ है—विवाहित शूद्र का लड़का।

(पत्न्यादीनामधिकारक्रमकथनम्)

अत्रेदं तत्त्वम्। सर्वत्र पुत्रादेः पूर्वस्याभावे पत्न्यादेरधिकार उक्तः। तत्राभावोऽसन्निधिर्नाशश्चो-च्यते। अत एव पूर्वत्र 'असन्निधाने पूर्वेषाम्' इत्युक्तम्। तत्रासन्निधौ पत्न्यादेः सर्वत्राधिकारे प्राप्ते—प्रोषितावसिते पुत्रः कालादतिचिरादपि। एकादशाद्याः क्रमशो ज्येष्ठस्य विधिवत्क्रियाः॥ ज्येष्ठेनैव तु यत्कृतम् इत्याद्यैर्देशान्तरे अपवादात् पुत्रनाश एव पत्न्यादेः सपिण्डनादावधिकारः। असन्निधौ तु तत्पूर्वमेव नोर्ध्वम्। अतोऽनधिकारिणा भ्रात्रादिना कृतमप्यकृतमेवेति पुनरावर्त-नीयम्। मासिकापकर्षोऽप्यावर्तनीयः।

यहाँ पर यह तत्त्व है कि सर्वत्र पुत्रादि का पूर्व के अभाव में पत्न्यादिका अधिकार कहा है। वहाँ पर अभाव का अर्थ यों है कि—असन्निधि—समीप में नहीं रहना और नाश को कहा है। इसलिये पहले यहाँ पर पहलों के असन्निधि में यों कहा है। उसके समीप में न रहने पर पत्न्यादि का सर्वाधिकार प्राप्त होने पर पिता परदेश में मर गये हों तो बहुत समय बीतने पर भी एकादशाह आदि क्रियाओं को विधिवत् ज्येष्ठ पुत्र ने की हो। ज्येष्ठ पुत्र ने ही जो की हो इत्यादि वचनों से देशान्तर में अपवाद होने से पुत्र के नाश में ही पत्नी आदि का सपिण्डन आदि में अधिकार है। असन्निधि में जो उसके पूर्व में ही अधिकार है आगे नहीं है। इसलिये अनधिकारी भाई आदि द्वारा किया हुआ भो नहीं किये के सदृश है। अतः फिर से आवर्तन (दुबारा) करे। मासिकश्राद्ध का (श्राद्धानि षोडशापाद्य विदधीत सपिण्डनम्। श्राद्धानि षोडशादत्वा न तु कुर्यात्सपिण्डनम्) भी अपकर्ष कर आवर्तन करे।

एकादशाहमासिकानि नावर्तते, तज्ज्यायसापि कर्तव्यं सपिण्डीकरणं पुनः। इतिवदवृत्ति-विधानाभावादिति केचित्। तन्न,–अस्य निर्मूलत्वात्। अतस्तदपि कनिष्ठकृतमावर्तते। वृद्धिश्रौत-पिण्डपितृयज्ञार्थं तु कृतं नावर्तते।

नासपिण्ड्याऽग्निमान् पुत्रः पितृयज्ञं समाचरेत्। न पार्वणं नाभ्युदयं कुर्वन्न लभते फलम्॥ इति, 'वृध्युत्तरनिषेधनात्' इति 'भ्राता वा भ्रातृपुत्रो वा' इत्यादिहारीतादिवचोभ्यः कनिष्ठादेर-प्यधिकारात्। यथात्र ज्येष्ठकर्तृत्वबाधस्तथा पुत्रकर्तृत्वस्याऽपि बाधः। सपिण्डने तु बहु वक्तव्यं तन्निर्णये वक्ष्यामः।

एकादशाह तथा मासिक की पुनरावृत्ति नहीं होती है। वह छोटे को भी करना चाहिये फिर से सपिण्डीश्राद्ध को करे। इसप्रकार आवृत्ति विधान का अभाव है—यह कोई कहते हैं। यह उचित नहीं है। क्योंकि इस वचन को निर्मूल कहा है। इसलिये उसको भी कनिष्ठ द्वारा करने पर भी फिर से करे। वृद्धि श्राद्ध श्रौतपिण्डपितृयज्ञार्थ किये हुए की फिर से आवृत्ति नहीं होती है। असपिण्ड अग्निमान् (अग्निहोत्री) पुत्र पितृयज्ञ (अर्थात्—पिता की और्ध्वदेहिक क्रिया) को न करे। पार्वण और आभ्युदयिकश्राद्ध भी न करे। करने पर उसे फल नहीं मिलता है। यह वृद्धि के बाद निषेध है। भाई या भाई का पुत्र इत्यादि हारीत के वचनों से कनिष्ठादि को भी अधिकार है। जैसे यहाँ पर ज्येष्ठ को कर्तृत्व का बाध है वैसे ही पुत्र कर्तृत्व का भी बाध है। सपिण्डन में तो बहुत कहना था वह उसके निर्णय में कहेंगे।

(अधिकारविशेषेण क्रियायाः त्रैविध्यकथनम्)

अधिकारविशेषेण क्रियाऽव्यवस्थोक्ता विष्णुपुराणे–पूर्वाः क्रिया मध्यमाश्च तथा चैवोत्तराः क्रियाः। त्रिप्रकाराः क्रियाः ह्येतास्तासां भेदान् शृणुष्व मे॥

अधिकार के विशेष से क्रिया की व्यवस्था विष्णुपुराण में कही है—पूर्वाक्रिया, मध्यमाक्रिया और उत्तराक्रिया इन तीन प्रकार की क्रियाओं के भेदों को मुझसे श्रवण करो।

आदाहाद्दशाहाच्च मध्ये याः स्युः क्रिया नृप। ताः पूर्वा मध्यमा मासि मास्येकोद्दिष्टसंज्ञिताः॥ प्रेते पितृत्वमापन्ने सपिण्डीकरणादनु। क्रियन्ते याः क्रियाः पुत्रैः प्रोच्यन्ते ता नृपोत्तराः॥

हे नृप, दाहसंस्कार से लेकर दश दिन के भीतर की जो क्रिया होती है वह पूर्वा कहलाती है। महिने महीने पर एकोदिष्ट संज्ञकक्रिया होती है वह 'मध्यमा' कहलाती है। सपिण्डीकरण के बाद प्रेत की पितृत्व की प्राप्ति के लिये जो पुत्रगण क्रिया करते हैं वह उत्तरा कही जाती है।

पितृमातृसपिण्डैश्च समानसलिलैस्तथा। तत्संघातगतैश्चैव राज्ञा वा धनहारिणा॥ पूर्वा मध्याश्च कर्तव्याः पुत्राद्यैरेव चोत्तरा। दौहित्रैर्वा नरश्रेष्ठ कार्यास्तत्तनयैस्तथा॥ मृताहनि तु कर्तव्याः स्त्रीणामप्युत्तराः क्रियाः। दौहित्रतत्पुत्रयोर्धनहारिणोरिदम्। एवमन्यस्य धनहर्तुः, 'यश्चार्थहरः स पिण्डदायी' इत्यापस्तंबोक्तेः,

पिता, माता, सपिण्ड और समान जलवाले तथा उस समुदाय में प्रविष्ट के होने पर धनहारी राजा पूर्वा और मध्यमा क्रिया करें पुत्रादि ही हे नरश्रेष्ठ, उत्तराक्रिया करें या दौहित्र करें उनके पुत्र करें। मरण दिन में तो स्त्रियों की भी उत्तराक्रिया करनी चाहिये। यह दौहित्र तथा उनके पुत्र धनहारी होने से अधिकारी हैं। इसप्रकार अन्य के धन को लेने वाले की पूर्वोक्त व्यवस्था है। जो अर्थ (धन) को लेने वाला है वही पिण्ड को देनेवाला होता है—यह आपस्तंब ने कहा है।

(धनहारी प्रेतस्य प्रेतकार्याकरणे विचारः)

प्रेतस्य प्रेतकार्याणि अकृत्वा धनहारकः। वर्णानां यद्वधे प्रोक्तं तद्व्रतं प्रयतश्चरेत्॥ इति पृथ्वीचन्द्रोदये व्याघ्रपादोक्तेः।

पृथ्वीचन्द्रोदय में व्याघ्रपाद ने कहा है कि—प्रेत का प्रेतकार्यों को न कर धन लेता है। उसे वर्णों के वध में जो कहा है उसी व्रत को प्रयत्न से करे।

मदनरत्ने स्कान्देऽपि—'मलमेतन्मनुष्याणां द्रविणं यत्प्रकीर्तितम्। इत्युक्त्वा—ऋषिभिस्तस्य निर्दिष्टा निष्कृतिः पावनी परा। आदेहपतनात्तस्य कुर्यात्पिण्डोदकक्रियाम्॥ इत्युक्तम्।

मदनरत्न में और स्कन्दपुराण में भी कहा है कि—द्रव्य को मनुष्यों का मल (वसा शुक्रमसृक् मज्जा कर्णविण्मूत्रविण्नखाः। श्लेष्माश्रुदूषिकाः स्वेदो द्वादशैते नृणां मलाः॥) कहा गया है। यों कहकर ऋषियों ने उसका पवित्र और उत्तम प्रायश्चित्त कहा है कि—उसके मरने पर पिण्डोदकक्रिया को करे।

(पुत्रस्यौर्ध्वदैहिकविचारः)

क्रियानिबन्धे कात्यायनः—न च माता न च पिता कुर्यात्पुत्रस्य पैतृकम्। नाग्रजश्च तथा भ्राता भ्रातॄणां तु कनीयसाम्॥

क्रियानिबन्ध में कात्यायन ने कहा है कि—पुत्र का मरणकार्य माता और पिता न करें तथा कनिष्ठ (छोटे) भाइयों का मृतक कार्य बड़ा भाई न करे।

पृथ्वीचन्द्रोदये बौधायनः—पित्रा श्राद्धं न कर्तव्यं पुत्राणां तु कथञ्चन। भ्राता चैव न कर्तव्यं भ्रातॄणां च कनीयसाम्।

पृथ्वीचन्द्रोदय में बौधायन ने कहा है कि—पुत्रों का श्राद्ध कभी भी पिता को नहीं करना चाहिये। छोटे भाईयों का श्राद्ध भाई को नहीं करना चाहिये।

(गयायां तु विशेषकथनम्)

यदि स्नेहेन कुर्यात्तां सपिण्डीकरणं विना। गयायां तु विशेषेण ज्यायानपि समाचरेत्॥

यदि स्नेह से करे तो सपिण्डीश्राद्ध के बिना करे। गया में तो विशेष कर बड़ा भाई छोटे भाईयों का भी कर सकता है।

(अन्याभावे पित्रादिरपि कुर्यात्)

अन्याभावे पित्रादिरपि कुर्यात्, उत्सन्नबान्धवं प्रेतं पिता भ्राताऽथवाऽग्रजः॥ जननी चापि संस्कुर्यान्महदेनोऽन्यथा भवेत्॥ इति सुमन्तूक्तेः।

अन्य के अभाव में (अधनहारिभ्रातृसुताभावे) पिता आदि भी करें। सुमन्तु ने कहा है कि—जिस प्रेत का कोई बान्धव न हो उसका संस्कार—पिता, भाई या बड़ा भाई या माता करे। अन्यथा बड़ा पाप होता है।

(ब्रह्मचारिणां तु)

ब्रह्मचारिणां तु शुद्धिविवेके पृथ्वीचन्द्रोदये च ब्राह्मे—असमाप्तव्रतस्यापि कर्तव्यं ब्रह्मचारिणः। श्राद्धं तु मातापितृभिर्न तु तेषां करोति सः॥ श्राद्धं मासिकाब्दिकादि सर्वं कार्यमित्यर्थः। नत्विति निषेधोऽन्यसत्त्वे।

ब्रह्मचारियों का तो शुद्धिविवेक में और पृथ्वीचन्द्रोदय में ब्रह्मपुराण का वचन है कि—जिस ब्रह्मचारी का व्रत भी समाप्त नहीं हुआ है वह मासिक, वार्षिक आदि श्राद्ध सब पिता का करे—यह अर्थ है। 'न तु' यह निषेध अन्य के रहने पर (तेनानुपनीतकनिष्ठसत्वे ज्येष्ठस्यापि ब्रह्मचारिणः, समावृत्तज्येष्ठसत्वे ब्रह्मचारिकनिष्ठस्य वा नाधिकारः) है।

यत्तु छन्दोगपरिशिष्टे– न त्यजेत्सूतके कर्म ब्रह्मचारी स्वयं क्वचित्। न दीक्षणात्परं यज्ञे न कृच्छ्रादि तपश्चरन्॥ पितर्यपि मृते नैषां दोषो भवति कर्हिचित्। आशौचं कर्मणोऽन्ते स्यात् त्र्यहं वा ब्रह्मचारिणाम्॥

जो छन्दोगपरिशिष्ट में कहा है कि—सूतक में ब्रह्मचारी अपने कर्म को कभी न त्याग करे। यज्ञ में दीक्षित होने के बाद कृच्छ्रादि तप को न करे। पिता के मरने पर भी इनको (ब्रह्मचारियों को) दोष नहीं होता है। या कर्म के अन्त में ब्रह्मचारियों को तीन दिन का आशौच होता है। (ब्रह्मचारी दशा में मरने पर)।

यच्च याज्ञवल्क्यः–(प्राय० ५) न ब्रह्मचारिणः कुर्युरुदकं पतितास्तथा। इति। तदप्यन्यसत्त्वे, अन्याभावे तु ब्रह्मचारिणाऽपि कार्यं, पूर्वोक्तवृद्धमनुवचनात, आचार्यपित्रुपाध्यायान्निर्हृत्यापि व्रती व्रती। संकटान्नं च नाश्नीयान्न च तैः सह संवसेत्॥ इति तेनैवोक्तेः,

और जो याज्ञवल्क्य ने कहा है कि—ब्रह्मचारी और पतित व्यक्ति किसी का उदक (जलदान) न करें। वह भी अन्य के संभव में अर्थात्—दूसरा करनेवाला हो तो। अन्य के अभाव में तो ब्रह्मचारी भी पूर्वोक्त कार्य वृद्धमनु के वचन से करे।

आचार्य, पिता और उपाध्याय इनका दाहसंस्कार करने पर भी व्रती ब्रह्मचारी व्रत से पतित नहीं होता है। संकटान्न (सूतकान्न) आश्रय न करे और न उनके साथ शयन करे। यह उसने ही कहा है।

'ब्रह्मचारिणः शवकर्मिणो व्रतान्निवृत्तिरन्यत्र मातापित्रोः' इति वसिष्ठोक्तेः। अत्राशौचमेकाहं वक्ष्यामः। प्रागुपनयनान्मृतस्य तु पञ्चवर्षोत्तरं सपिण्डीकरणवर्ज्यं षोडशश्राद्धादि सर्वं कार्यमित्युक्तं देवजानीये, 'असंस्कृतानां भूमौ पिण्डं दद्यात्संस्कृतानां कुशेषु' इति प्रचेतोवचनाच्च। एतच्चाग्रे वक्ष्यामः।

वसिष्ठ ने कहा है कि—माता और पिता से भिन्न का शवकर्म (मृतककर्म) को करनेवाला ब्रह्मचारी का व्रत कर्म भंग (व्रतनिवृत्त) हो जायगा। यहाँ पर एक दिन का आशौच कहेंगे। उपनयन के पहले और पांच साल बाद मरने पर सपिण्डीकरण को त्यागकर सोलह श्राद्धादि सब करे—यह देवजानीय में कहा है और बिना संस्कारवालों का पिण्ड भूमि में दे और संस्कारवालों का (पिण्ड) कुशाओं पर दे यह प्रचेता का वचन है। इसको भी आगे कहेंगे।

(अविभक्तानां विशेषमाह)

अविभक्तानां विशेषमाह पृथ्वीचन्द्रोदये मरीचिः–बहवः स्युर्यदा पुत्राः पितुरेकत्रवासिनः। सर्वेषां तु मतं कृत्वा ज्येष्ठेनैव तु यत्कृतम्। द्रव्येण चाविभक्तेन सर्वैरेव कृतं भवेत्। ज्येष्ठस्य कर्तृत्वेऽपि सर्वे फलभागिन इत्यर्थः। तेन ये ब्रह्मचर्यपरान्नवर्जनादयः फलसंस्कारास्ते सर्वेषां भवन्तीति सिद्धम्। संसृष्टिनामप्येवम्, तुल्यत्वात्।

अविभक्तों का विशेष पृथ्वीचन्द्रोदय में मरीचि ने कहा है कि—यदि पिता के बहुत पुत्र अविभक्त हो तो सबों की अनुमति से ही ज्येष्ठ पुत्र ने जो किया वह द्रव्य के अविभाग से सबों ने ही किया है। ज्येष्ठ पुत्र के कर्ता होने पर भी सब (अनुमति देने पर) फल के भागी होते हैं—यह अर्थ है। इससे जो ब्रह्मचर्य परान्नवर्जन आदि फलसंस्कार हैं वे सबों के लिये होते हैं यह सिद्ध है। संसृष्टियों का (एक साथ होने पर) भी यही है, (तुल्य होने से)।

(विभक्तानां विशेषकथनम्)

विभक्तानां विशेषमाहोशनाः––नवश्राद्धं सपिण्डत्वं श्राद्धान्यपि च षोडश। एकेनैव तु कार्याणि संविभक्तधनेष्वपि॥

विभक्तों का विशेष उशना ने कहा है कि—नवश्राद्ध, सपिण्ड तथा अन्य सोलह श्राद्ध धनों के विभाग होने पर भी एक ही करे।

लघुहारीतः–सपिण्डीकरणान्तानि यानि श्राद्धानि षोडश। पृथङ्नैव सुताः कुर्युः पृथग्द्रव्या अपि क्वचित्॥ ऊर्ध्वं सपिण्डीकरणात्सर्वे कुर्युः पृथक् पृथक्।

लघुहारीत का वचन है कि—सपिण्डीकरणान्त जो सोलह श्राद्ध हैं उनको अलग अलग पुत्र न करें धन का विभाग पृथक् होने पर भी। सपिण्डीकरण के बाद (व्यासः—अर्वाक् संवत्सरात् ज्येष्ठः श्राद्धं कुर्यात्समेत्य च। ऊर्ध्वं सपिण्डीकरणात् सर्वे कुर्युः पृथक् पृथक्। सपिण्डीकरणेति तत्कालोपलक्षणम्। तेन द्वादशाहादौ सपिण्डीकरणेऽप्यनुमासिकान्तानां न पार्थक्यम्। नात्रसपिण्डनस्यैकत्वेऽपि प्रथमाब्दिकादि भिन्नमेव) सब भाई अलग अलग करें।

मदनरत्ने–विभक्तास्तु पृथक्कुर्युः प्रतिसंवत्सरादिकम्। एकेनैवाभिक्तेषु कृते सर्वैस्तु तत्कृतम्॥ एतेनाब्दिकादिष्वविभक्तानामनियम इति वदन् शूलपाणिः परास्तः।

मदनरत्न में कहा है कि—हर साल का सांवत्सरिकश्राद्ध अलग होने पर अलग अलग करें। एक साथ रहने पर एक के ही करने पर सबों ने उसको किया। इससे आह्निक आदि में अविभक्तों का अनिमय है यह कहता हुआ शूलपाणि परास्त हो गया।

(श्राद्धे दत्तकादीनामधिकारकथनम्)

दत्तकस्तु जनकस्य पुत्राद्यभावे दद्यान्न तत्सत्त्वे, गोत्ररिक्थे जनयितुर्न भजेद्दत्रिमः सुतः। गोत्ररिक्थानुगः पिण्डो व्यपैति ददतः स्वधा॥ इति मनूक्तेः (अ. ९।१४२)। इदं जनकस्य पुत्रसत्त्वविषयम्। तच्च प्रवरमञ्जर्यां कात्यायनलौगाक्षिभ्यां स्पष्टमुक्तम्। अथ ये दत्तकक्रीतकृत्रिम-पुत्रिकापुत्राः परपरिग्रहेणानार्षेया जातास्ते द्व्यामुष्यायणा भवन्ति। यथा—'शौङ्गशैशिरीणां यानि चान्यान्येवं समुत्पत्तीनि कुलानि भवन्ति' इत्यादिना द्वयोः पित्रोः प्रवरानुक्त्वोक्तम्॥ 'अथ यद्येषां स्वासु भार्यास्वपत्यं न स्यात् रिक्थं हरेयुः पिण्डं चैभ्यस्त्रिपुरुषं दद्युर्यद्युभयोर्न स्यादुभाभ्यामेव दद्युरेकस्मिञ्छ्राद्धे पृथगुद्दिश्यैकपिण्डे द्वावनुकीर्तयेत्परिगृहीतारं चोत्पादयितारं चा तृतीयात्पुरुषात्, इति।

दत्तक (द्व्यामुष्यायण एव) तो जनक पिता के पुत्रादि के अभाव में दे पुत्र के रहने पर न दे।

मनु ने कहा है कि—दत्तक पुत्र को उत्पन्न करने वाले के गोत्र और धन का कुछ संबन्ध नहीं रहता है। और जो उसे ग्रहण करता है उसीको उसका दिया पिण्ड प्राप्त होता है। दत्तक देने से पिता का उसके हाथ

का पिण्ड-जल प्राप्त करने का हक नहीं रहता है। यह जनक पिता के रहते हुये पुत्र के विषय में है। वह प्रवरमञ्जरी, कात्यायन और लौगाक्षि ने स्पष्ट कहा है। इसके बाद जो दत्तक, क्रीत, कृतिम पुत्रि का पुत्र हैं वे दूसरे के परिग्रहण (स्वीकार) करने पर अनार्षेय (ऋषिः प्रवरः) जनक प्रवर गोत्रहीन हो गये हैं वे द्व्यामुष्यायण होते हैं। आर्षेयाः इति पाठो युक्तः।

जैसे—शौंग तथा शैशरों के अन्य कुल में उत्पन्न के बराबर कुल होते हैं—इत्यादि से दोनों पिता के प्रवरों को कहकर कहा है कि—इसके बाद यदि इनके अपनी पत्नी में पुत्र न हों तो धन ग्रहण करे और तीन पीढी तक, यदि दोनों पिताओं के न हो तो दोनों को ही दे। एक श्राद्ध में—एक पिण्ड में अलग अलग उद्देश्य कर दोनों के नाम का उच्चारण को लेने वाले और देने वाले का तीन पीढी तक ले।

हेमाद्रौ कार्ष्णाजिनिः—यावन्तः पितृवर्ग्याः स्युस्तावद्भिर्दत्तकादयः। प्रेतानां योजनं कुर्युः स्वकीयैः पितृभिः सह ॥ द्वाभ्यां सहाथ तत्पुत्राः पौत्रास्त्वेकेन तत्समम्। चतुर्थपुरुषे छन्दस्तस्मादेषा त्रिपूरुषी ॥ साधारणेषु कालेषु विशेषो नास्ति वर्गिणाम्। (मृताहे त्वेकमुद्दिश्य कुर्युः श्राद्धं यथाविधि।) इति।

हेमाद्रि में कार्ष्णाजिनि ने कहा है कि—जितने पिता के वर्ग में हों—दत्तक आदि अपने उतने पितरों के साथ प्रेतों की योजना करें। उनके (दत्तकों के) पुत्र दो के साथ और पौत्र एक के साथ मिलावें। चतुर्थ पुरुष में छन्द (इच्छा पर) है। इसलिये यह त्रिपुरुषी है। साधारण कालों में वर्गियों में कोई विशेष नहीं है (मृत्यु दिन में तो एक को उद्देश्य कर यथाविधि श्राद्ध को करे।

अस्यार्थमाह हेमाद्रिः—दत्तकादयः जनकपालकयोः कुले प्रेतानां स्वस्ववर्गीयैः सपिण्डनं कुर्युः। दत्तकानां पुत्रास्तु पितुर्दत्तकस्य पितृभ्यां जनकपालकाभ्यां स्वपितामहाभ्यां सपिण्डनं कुर्युः। तेषां पौत्राः स्वपितरं दत्तकेन पितामहेन तज्जनकेन च सपिण्डयेयुः। चतुर्थोऽपि तत्कुलस्थ एव। तेषां प्रपौत्रस्तु दत्तकस्य प्रपितामहस्य पालककुलस्थं चतुर्थं योजयेन्न वा। छन्द=इच्छा। दर्शमहालयादौ तु द्वयोः पित्रोः पितामहयोः प्रपितामहयोर्वा श्राद्धं देयम्। तत्र द्वयोः पित्राद्योः पृथक् पिण्डदानं द्वयोरुद्देशेनैको वेति।

इसका अर्थ हेमाद्रि ने कहा है कि—दत्तक आदि जनक और पालक के कुल में प्रेतों का अपने वर्गों में (जनकवर्गों में और पालकवर्गों में) सपिण्डन करें। दत्तकों के पुत्रों को तो दत्तक पिता के जनक और पालकों को अपने पितामह-प्रपितामहों का सपिण्डन करें। उनके पौत्रगण अपने पिता को दत्तक पितामह के तथा उसके जनक के साथ सपिण्डन करें। चतुर्थ भी जनक कुल का ही हो। इनके प्रपौत्र तो दत्तक के प्रपितामह का पालककुल के चतुर्थ के साथ योजना करें या न करे। (जनक तथा पालक में एक ही पिण्ड दें योजनापक्ष में अन्यथा जनको ही एक पिण्ड दे।

छन्द माने इच्छा। दर्श, महालय आदि में तो दोनों पिताओं को, पितामह और प्रपितामहों को श्राद्ध देना चाहिये। उसमें दोनों पिता आदि को अलग अलग पिण्डदान दें या दोनों को उद्देश्य कर एक ही पिण्ड दे।

अत्र केचित् आवयोरयमिति परिभाष्य यो दत्तस्तस्येदं द्वयोः पित्रोः श्राद्धम्, यस्त्वपरिभाष्य दत्तः स ग्रहीतुरेव स पालकायैव दद्यादित्याहुः। अत्र मूलं त एव प्रष्टव्याः।

यहाँ पर कोई कहते हैं कि—हम दोनों का यह है ऐसा कह करके जो दिया जायगा वह श्राद्ध दोनों पिताओं का होगा। जो बिना कहे दिया जायगा वह ग्रहणकर्ता का ही होगा। वह पालक को ही देना चाहिये। उसमें मूल उन्हीं से पूछना चाहिये।

वस्तुतस्तु जनकस्य पुत्रपत्न्याद्यभावे दत्तको द्वयोर्दद्यादन्यथा पालकायैव प्रागुक्तकात्यायनवचनात्। मानवीयमप्येतद्विषयमेव। गोत्रं तु श्राद्धे पालकस्यैव विवाहादौ तूभयोरित्यादि मत्कृतप्रवरदर्पणे ज्ञेयम्।

सिद्धान्त तो यह है कि—जनक के पुत्र, पत्नी आदि के भाव में दत्तक दोनों को दे। अन्यथा पालक को ही पूर्वोक्त पहले कहे हुए कात्यायन वचन से। मानवीय वचन का भी यही तात्पर्य है। गोत्र तो श्राद्ध में पालक का ही होता है। विवाहादि में तो दोनों का ही होता है। यह मेरे बनाये हुये प्रवरदर्पण से जानना चाहिये।

यस्तु मूल्यक्रीतायां परभार्यायां दास्यां चोत्पन्नः स बीजिन एव दद्यात्। मूल्यं विना स्वयमुपनतायां तु क्षेत्रिण एव। तदुक्तं पृथ्वीचन्द्रोदये कौर्मे—अनियोगात्सुतो यस्तु शुक्लतो जायते त्विह। प्रदद्याद्बीजिने पिण्डं क्षेत्रिणे तु ततोऽन्यथा। इति। क्षेत्रजादेर्विशेषस्तु कलौ तदभावान्नोच्यत इति दिक्।

जो मूल्य के द्वारा खरीदी हुई दूसरे की पत्नी या दासी में उत्पन्न है वह बीजवाले को ही दे। मूल्य के बिना स्वयं आई हो तो उसका पुत्र भी क्षेत्री को दे। उसी बात को पृथ्वीचन्द्रोदय में कूर्म पुराण के वचन से कहा कि—जो अनियोग (बिना नियोग) से मूल्य के द्वारा पुत्र उत्पन्न हो तो यह बीज वाले को पिण्ड दे। उससे अन्य नियोग से पैदा हो वह उसी स्त्री वाले को दे। क्षेत्रज आदि विशेष का कलि में अभाव कहा है। इसलिए उन्हें नहीं कहते हैं।

(जारजानां विशेषकथनम्)

जारजानां विशेषमाह अपरार्के नारदः—जायन्ते त्वनियुक्तायामेकेन बहुभिस्तथा। अरिक्थभाजस्ते सर्वे बीजिनामेव ते सुताः॥ दद्युस्ते बीजिने पिण्डं माता चेच्छुक्लतो हृता। अशुक्लोपहृतायां तु पिण्डदा वोढुरेव ते॥

जार से उत्पन्न हुए पुत्रों का विशेष अपरार्क में नारद ने कहा है कि—अनियुक्ता (बिना नियोग) में एक से या बहुतों से जो पुत्र उत्पन्न हुये हैं वे सब धन के हिस्सेदार नहीं होते हैं। वे सब बीज वाले के ही पुत्र होते हैं। यदि माता को मूल्य द्वारा खरीदी गयी हो तो बीजवाले को तथा मूल्य द्वारा खरीदी गयी न हो तो विवाह करने वाले को पिण्ड दे।

(धर्मार्थश्राद्धकरणे फलकथनम्)

धर्मार्थं श्राद्धकरणे फलमाह चन्द्रिकायां शातातपः—प्रीत्या श्राद्धं तु कर्तव्यं सर्वेषां वर्णलिङ्गिनाम्। एवं कुर्वन्नरः सम्यङ् महतीं श्रियमाप्नुयात्॥

धर्मार्थ श्राद्ध करने का फल शातातप ने कहा है कि—सब वर्ण और आश्रमवालों का प्रीति से श्राद्ध करना चाहिये। इसप्रकार मनुष्य अच्छीतरह करते हुए महती लक्ष्मी को प्राप्त करता है।

गयायामपि तत्रैव ब्रह्मवैवर्ते—आत्मजो वाऽथवान्योऽपि गयाशीर्षे यदा तदा। यन्नाम्ना पातयेत्पिण्डं तन्नयेद् ब्रह्म शाश्वतम्॥

गया में भी वहीं पर ब्रह्मवैवर्तपुराण में कहा है कि—आत्मज पुत्र या अन्य भी गयाशीर्ष में जब कभी जाकर जिस नाम से पिण्डदान देता है वह शाश्वत ब्रह्मपद को जाता है।

(यदा फलभूमार्थिना द्विस्त्रिर्वा क्रियते तदा विचारः)

एतच्च यदा फलभूमार्थिना द्विस्त्रिर्वा क्रियते तदा प्रेतशिलाश्राद्धवर्ज्यं कुर्यात्, तस्य प्रेतत्वविमोचनार्थत्वात्तस्य च जातत्वादिति केचित्। वस्तुतस्तु संन्यासिश्राद्धवदत्रापि सर्वं कार्यम् साङ्गेऽधिकारादिति युक्तं प्रतीमः। संन्यस्तपित्रादिस्तु पितुः पित्रादिभ्यः सर्वश्राद्धेषु दद्यादित्युक्तं प्राक्, वक्ष्यते च जीवत्पितृकश्राद्धे।

और यह अधिक फल की इच्छा करता हो तो दो या तीन बार गया करे तो प्रेतशिला पर श्राद्ध वर्जित करे। क्योंकि वह श्राद्ध प्रेतत्वविमोचनार्थ है उसको एकबार हो चुका यह किसी का मत है। सिद्धान्त तो यह है कि—संन्यासी के श्राद्ध के सदृश यहाँ भी सब करे। अंगो के सहित अधिकार है यह युक्त ठीक प्रतीत होता है। ऐसा कमलाकर मत है संन्यस्त पित्रादि तो पिता के पिता आदि के लिये सब श्राद्धो में दे यह हम पहले कहचुके हैं और जीवत्पितृकश्राद्ध में आगे कहेंगे।

(स्त्रीशूद्राणां श्राद्धादौ मन्त्रपूर्वककर्मविचारः)

अत्र स्त्रीशूद्राणां श्राद्धं मन्त्रवर्ज्यं तूष्णीं भवति, स्त्रीणाममन्त्रकं श्राद्धं तथा शूद्रासुतस्य च। प्राग्द्विजाश्च व्रतादेशात्ते च कुर्युस्तथैव तत् ॥ इति हेमाद्रिमरीचिवचनात्,

यहाँ पर स्त्री और शूद्रों का श्राद्ध तूष्णीं (विना मन्त्र) होता है स्त्रियों का और शूद्रा पुत्र का श्राद्ध अमन्त्रक होता है। उपनयन के पूर्व द्विजों का भी वैसे ही अमन्त्रक करे। यह हेमाद्रि में मरीचिका वचन है।

अयमेव विधिः प्रोक्तः शूद्राणां मन्त्रवर्जितः। अमन्त्रस्य तु शूद्रस्य विप्रो मन्त्रेण गृह्यते ॥ इति ब्राह्मोक्तेश्च। गृह्यते=सम्बध्यते। अस्य श्राद्धप्रकरणे पाठेऽपि परिभाषात्वान्न प्रकरणेन सङ्कोचो युक्तः। तेन शूद्रस्य स्नानदानादावपि विप्रेण मन्त्रपाठः कार्यः। 'अमन्त्रस्य' इति विशेषणात् स्त्रिया अपीति शूलपाणिः।

और ब्रह्मपुराण में कहा है कि—यही ही विधि मंत्रवर्जित शूद्रों की कही है। शूद्र को अमंत्रक विधि कही है ब्राह्मण मन्त्र से ग्रहण करे। गृह्यते का अर्थ है कि-संबन्धित होता है। इसका श्राद्धप्रकरण में पाठ होने पर भी परिभाषा होने से प्रकरण से संकोच करना ठीक नहीं है। इससे शूद्र के स्नान, दान आदि में भी ब्राह्मण द्वारा मन्त्र पाठ करे। 'अमन्त्रस्य' इस विशेषण से स्त्री के लिये भी (स्नानदानादि) मन्त्रपाठ ब्राह्मण करे—यह शूलपाणि का मत है।

यत्त तेनोक्तं मन्त्रजन्यनियमादृष्टसिद्धिस्तु नमस्कारेण, 'अनुमतोऽस्य नमस्कारो मन्त्रः' इति गौतमोक्तेरिति। तन्न, दृष्टद्वारैव हि तत्प्राप्तिर्न स्वातन्त्र्येण। अन्यथा नखविपूतेष्यवघातजन्य-दृष्टार्थं सोऽपि क्रियेतेति यत्किञ्चिदेतत्। तेन 'पितॄणां नामगोत्रतः' इत्यादौ यत्र द्विजानामपि नाममन्त्र उक्तस्तत्र प्रतिप्रसवमात्रार्थं युक्तं न तिलावपनादावपि।

जो शूलपाणि ने कहा है कि—मन्त्रजन्यनियम अदृष्ट (मन्त्रार्थ स्मरण) सिद्धि तो नमस्कार से होती है। गौतम ने कहा है कि—शूद्र को नमस्कार की अनुमति (आज्ञा) है। वह ही उचित नहीं है, दृष्टद्वार से ही उस शूद्र की प्राप्ति है, स्वतन्त्रता से नहीं है। अन्यथा नख द्वारा तुष हटाने पर भी अवघात से उत्पन्न हुए अदृष्ट फल के वास्ते अवघात ही करे। इससे उनका कथन उचित ही है। इससे पितरों का नाम और गोत्र से करे। इत्यादि में जहाँ द्विजों का भी नाम मन्त्र कहा है वहाँ प्रति प्रसवार्थ (पुनर्विधान के लिए) युक्त है न कि तिलों के बोने आदि में है।

अत्र केचित्—वैदिकमन्त्रो विप्रस्य, पौराणस्तु शूद्रैः पठनीयः, नहि वेदेष्वधिकारः कचिच्छूद्रस्य विद्यते। पुराणेष्वधिकारो मे दर्शितो ब्राह्मणैरिह। इति तत्रैव पाद्मोक्तेरित्याहुः। गौडा अप्येवम्। तन्न, नाध्येतव्यमिदं शास्त्रं वृषलस्य तु सन्निधौ। इति कौर्मपुराणनिषेधेन वेदस्य दूरापास्तत्वात्।

१—दर्शपूर्णमास में—व्रीहिं (धान) का अवघात करने पर जो तुष (भूसी) निकलता है उसको कपाल में रखकर निर्ऋतिदिशा में फेक देना चाहिये। यह विधि है। 'पुरोडाशकपालेन तुषान् उपवपति' इति। इस वाक्य को लेकर चतुर्थाध्याय में विचार किया है कि जब तुषोपवाप (तुषनिरसन) होता है उस समय पुरोडाश कपाल नहीं है। क्योंकि पुरोडाश बाद में बनेगा। अब कपाल पाक के लिये है या तुषनिरसन के लिये है। उसमें प्रधान है पुरोडाश का पाक। तुषनिरसन उसी को ले करके होता है। इसलिये उसको उपजीवी कहते हैं। अर्थात्—पुरोडाशपाक के लिए लिया हुआ कपाल से ही तुषनिरसन करना। अतः पुरोडाशपाक ही प्रधान होने के कारण कपाल का प्रयोजक (अनुष्ठापक) है तुषनिरसन नहीं है। वैसा ही प्रकृत में ब्राह्मणभोजन के बाद पिण्डदान का विधान है। जब ब्राह्मणभोजन नहीं रहेगा तब पिण्डदान नहीं होगा। तथापि अदृष्टार्थकर्म होने के कारण गुण के अनुसार प्रधान का त्याग नहीं होता है। अंग का लोप होने पर भी द्रव्याकार से होना चाहिये। इसलिए यह प्रतिपत्ति (संस्कार) नहीं है। (उपयुक्त का संस्कार नहीं है) किन्तु प्रधान है। अदृष्टार्थ है। इस विषय का विवेचन पहले हो चुका है।

अध्येतव्यं ब्राह्मणेन वैश्येन क्षत्रियेण च। श्रोतव्यमेव शूद्रेण नाध्येतव्यं कदाचन ॥ श्रौतं स्मार्तं च वै धर्मं प्रोक्तमस्मिन्नृपोत्तम। तस्माच्छूद्रैर्विना विप्र न श्रोतव्यं कदाचन ॥ इति तत्रैव पुराणाधिकारे भविष्योक्तेश्च। एतेन 'नाध्येतव्यम्' इति निषेधो मन्त्रेतरपुराणपर इति श्रीदत्तादिमतमपास्तम्। तेन पौराणमन्त्राणामेव विप्रेण पाठो न वैदिकानामिति।

यहाँ पर कोई कहता है कि—ब्राह्मण को वैदिक मन्त्र पढ़ना चाहिए है तथा पौराणिक श्लोक शूद्रों को पढ़ना चाहिये। वहीं पर पद्मपुराण में कहा है कि--कहीं भी शूद्र को वेदों में अधिकार नहीं है। ब्राह्मणों के द्वारा पुराणों में अधिकार मैंने दिखाया है। गौड भी यही कहते हैं। यह ठीक नहीं है। वृषल (शूद्र) के समीप इस शास्त्र का अध्ययन नहीं करना चाहिये--यह कूर्मपुराणनिषेध (श्रवण) से वेद श्रवण का (कपिलाक्षीरपानेन ब्राह्मणी गमनेन च। वेदाक्षरविचारेण शूद्रश्चाण्डालतां व्रजेत् ॥) दूरापास्त (भलीभांती निराकृत) कहा है।

और वहीं पर पुराणाधिकार में भविष्यपुराण का वचन है कि—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य अध्ययन करे। शूद्र को सुनना चाहिये अध्ययन कभी नहीं करना चाहिये। हे नृपोत्तम, इस श्रौत और स्मार्त में यही धर्म कहा है। अतः ब्राह्मण के विना (अर्थात्—ब्राह्मण को आगे कर पुराणमात्र का श्रवण करें (श्रावयेच्चतुरो वर्णान् कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः)। इसलिये गीता दुर्गापाठ, विष्णुसहस्रनाम स्तोत्र आदि में शूद्र को पाठ करने का अधिकार नहीं हैं। जो विष्णुसहस्रनाम में कहा है कि—(वेदान्तगो ब्राह्मणः स्यात् क्षत्रियो विजयी भवेत्। वैश्यो धनसमृद्धः स्याच्छूद्रस्तु स्वयमाप्नुयात् ॥ वहाँ पर श्री शंकराचार्य जी ने 'शूद्रः श्रवणेन' इसकी व्याख्या की है। जो यह कहा है कि 'श्रावयेच्चतुरो वर्णान्' इन वचन से ब्राह्मणादि को भी श्रवण का अधिकार है। इससे द्विजों के अध्ययनविधि के बल से पढ़े हुए मन्त्रों के ही अर्थ को स्मरण करे। वेदाध्ययन तो ज्ञान के द्वारा कर्मार्थता होने से दृष्टार्थ है। पारायणादि में अदृष्टार्थ है। श्रवण तो अदृष्टार्थ ही है।) इसलिये वहाँ पर 'नाध्येतव्यम्' कहा है। कभी भी अध्ययन न करे।

यह निषेध मन्त्र से इतर पुराणपरक है यह श्रीदत्तादिमत अपास्त (निरस्त) हुआ। इससे पौराणिक मन्त्रों का ही ब्राह्मण पाठ करें वैदिकमन्त्रों का पाठ न करें यह सिद्ध हुआ।

द्विजस्त्रियस्तु सङ्कल्पमात्रं स्वयं कृत्वा वैदिकमन्त्रयुक्तं सर्वं ब्राह्मणद्वारा कारयेयुरिति प्रयोगपारिजातः। अत एव 'स्त्रीणाम्' इत्यकृतविवाहस्त्रीपरमिति हेमाद्रिराह। 'अनुपनीतस्तु वैदिकमन्त्रयुक्तं सर्वं स्वयमेव कुर्यात्' इत्युक्तं प्राक्। यत्तु 'प्राग्द्विजाश्च व्रतादेशात्' इति तदशक्तविषयमचूडविषयं वेति दिक्।

द्विजों की स्त्रियाँ ही संकल्पमात्र स्वयं कर वैदिकमन्त्रयुक्त सबकार्य ब्राह्मणद्वारा करावें—यह प्रयोगपारिजात में कहा है। इसलिये 'स्त्रीणाम्' यह उन स्त्रियों के लिये निषेध है जिनका विवाह नहीं हुआ है ऐसा हेमाद्रि ने कहा है। जिनका उपनयनसंस्कार नहीं हुआ है वह वैदिकमन्त्रयुक्त सब स्वयं ही करें—यह बात पहले कह चुके हैं। जो यज्ञोपवीत के पूर्व द्विज भी विना मन्त्र से करें यह अशक्त विषयक है या चूडाकरण विषयक है।

(शूद्रस्य सदा आमश्राद्धादिकथनम्)

शूद्रस्य तु सदाऽऽमश्राद्धमेव। सदा चैव तु शूद्राणामामश्राद्धं विधीयते। इति सुमन्तूक्तेः।

शूद्र को तो सदा ही (हर समय) आमश्राद्ध कहा है। सुमन्तु ने कहा है कि—सदा ही शूद्रों को आमश्राद्ध का विधान किया है।

पृथ्वीचन्द्रोदये मात्स्येऽपि—एवं शूद्रोऽपि सामान्यं वृद्धिश्राद्धं च सर्वदा।
नमस्कारेण मन्त्रेण कुर्यादामान्नवत्सदा ॥

पृथ्वीचन्द्रोदय में और मत्स्यपुराण में भी कहा है कि—इसतरह शूद्र भी सर्वदा सामान्य वृद्धिश्राद्ध को आमान्नवत् सदा नमस्कारमन्त्र से करे।

तत्रैव वृद्धपराशरः—आमान्नेन तु शूद्रस्य तूष्णीं तु द्विजपूजनम् ।
कृत्वा श्राद्धं तु निर्वाप्य सजातीनाशयेदथ ॥

वहीं पर ही वृद्धपराशर ने कहा है कि—शूद्र आमान्न से श्राद्ध का निर्वाप कर मौन हो द्विज का पूजन कर सजातीय लोगों को भोजन करावे ।

स एव—आमं शूद्रस्य पक्वान्नं पक्वमुच्छिष्टमुच्यते ।

उन्हीं का कथन है कि—शूद्र का आम (कच्चा अन्न) ही पक्वान्न है । पका अन्न उच्छिष्ट कहा है ।

हेमाद्रौ भविष्ये—धर्मेप्सवस्तु धर्मज्ञा यदि शूद्राः प्रकुर्वते । अग्नौकरणमन्त्रश्च नमस्कारो विधीयते ॥ आवाहनादि कर्तव्यं तथा शूद्रेण तच्छृणु । देवानां देवनाम्ना तु पितॄणां नामगोत्रतः ॥ पिण्डादीन्निर्वपेद्वीर नामतो गोत्रतस्तथा ।

हेमाद्रि में भविष्यपुराण का वचन है कि—धर्म की इच्छा करने वाले धर्मज्ञ शूद्र यदि श्राद्ध करें तो अग्नौकरणमन्त्र में नमस्कार (सोमाय पितृपते नमः । अग्नये कव्यवाहनाय नमः) का विधान किया है । जिसतरह शूद्र को आवाहनादि करना चाहिये । उसको सुनो—देवताओं का देवता के नाम से और पितरों के नाम गोत्र से करे । हे वीर, नाम तथा गोत्र से पिण्ड आदि का निर्वाप करे ।

(श्राद्धे तर्पणादौ च गोत्राभावे विचारः)

शूद्राणां गोत्राभावेऽपि काश्यपं गोत्रं ज्ञेयम्, 'तस्मादाहुः सर्वाः प्रजाः काश्यप्यः' इति श्रुतेः, 'गोत्रनाशे तु काश्यपः' इति व्याघ्रपादोक्तेश्चेति हेमाद्रिः । एवमन्यत्र गोत्राज्ञाने । एवं तर्पणादिषु च ज्ञेयम् ।

शूद्रों को गोत्र के अज्ञान में भी काश्यपगोत्र जानना चाहिये । इसलिये कहा कि सारी प्रजा काश्यपगोत्री है ऐसा श्रुति में कहा है । गोत्र के नाश में काश्यप गोत्र होता है—यह व्याघ्रपाद का वचन है—यों हेमाद्रि ने कहा है । इसीतरह अन्यत्र गोत्र के अज्ञान में और इसीप्रकार तर्पण आदियों में जानना चाहिये ।

(गृहपाकेन पिण्डदानविचारः)

तत्रैव भविष्ये—शूद्रस्तु गृहपाकेन न पिण्डान्निर्वपेत्तथा ।
सक्तुमूलं फलं तस्य पायसं वा भवेत्स्मृतम् ॥

वहीं पर भविष्यपुराण का कथन है कि—शूद्र (धार्मिक शूद्र) तो घर के पाक से पिण्डों को न दे । अर्थात्—पिण्डदान न करे । सत्तू , मूल (कन्द) फल या पायस (खोवा) से करे इस समय के शूद्र तो 'सत्तू' से ही पिण्डदान करें ।

गौतमः—'अनुमतोऽस्य नमस्कारो मन्त्रः' इति । 'देवताभ्यः पितृभ्यश्च' इत्ययं नमस्कारमन्त्र इति केचित् । विज्ञानेश्वरोऽप्येवमाह ।

गौतम ने कहा है कि—शूद्र को नमस्कार मन्त्र की ही आज्ञा है । नमस्कार ही मन्त्र (पिताऽमुकगोत्रामुकदासावनेजनं नमः इत्यादि) है । कोई कहते हैं कि—देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च । नमः स्वाहायै स्वधायै नित्यमेव नमो नमः ॥ यह नमस्कारमन्त्र है । कोई—देवेभ्यो नमः, पितृभ्यो नमः—इस मत में प्रयोग करते हैं । विज्ञानेश्वर ने भी यही कहा है ।

हेमाद्रिस्तु—शूद्रोऽप्यमन्त्रवत्कुर्यादनेन विधिना बुधः । इति मात्स्ये मन्त्रनिषेधान्नाममन्त्रेणेत्याह ।

हेमाद्रि ने तो कहा है कि—इस विधि से बुद्धिमान् शूद्र भी अमन्त्रवत् (बिना मन्त्र के) करे । यह मत्स्यपुराण में मन्त्रनिषेध से नाममन्त्र से ही कहा है ।

१—ॐ देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च । नमः स्वाहायै स्वधायै नित्यमेव नमो नमः ॥ यह भोजन के समय पढ़ा जाता है किसी के मत में ।

(राजकार्यादौ नियुक्तस्य श्राद्धविचारः)

पृथ्वीचन्द्रोदये स्कान्दे—राजकार्ये नियुक्तस्य बन्धनिग्रहवर्तिनः ।
व्यसनेषु च सर्वेषु श्राद्धं विप्रेण कारयेत् ॥

पृथ्वीचन्द्रोदय में स्कन्दपुराण का मत है कि—राजकार्य में नियुक्त का, बन्धननिग्रहवर्ति (कैदखाने में) का और व्यसन (बदचलन) में जो हैं ऐसे सबों का श्राद्ध ब्राह्मण (परन्तु हीनवर्ण का प्रतिनिधि ब्राह्मण नहीं होता है 'ब्राह्मणो हीनवर्णस्य न प्रतिनिधिः' ऐसा कहा है।) द्वारा करावे।

(यवनादिम्लेच्छानां श्राद्धे विचारः)

यत्तु भारते राजधर्मेषु—(अ० ६५ श्लो० १३-१९) यवनाः किराता गान्धाराश्चीनाः शबरबर्बराः । शकास्तुषाराः कङ्काश्च पह्लवाश्चान्ध्रमद्रकाः ॥ इत्युक्त्वा—ब्रह्मक्षत्रप्रसूताश्च वैश्याः शूद्राश्च मानवाः । कथं धर्मांश्चरिष्यन्ति सर्वे विषयवासिनः ॥ इति चोक्त्वा—वेदधर्मक्रियाश्चैव तेषां धर्मो विधीयते । पितृयज्ञास्तथा कूपाः प्रपाश्च शयनानि च । दानानि च यथाकालं द्विजेभ्यो विसृजेत् सदा ॥

जो भारत के राजधर्मों में कहा है कि—भगवन्, मेरे राज्य में यवन, किरात, गान्धार, चीन, शबर, बर्बर, शक, तुषार, कंक, पह्लव, आन्ध्र और मद्रक, यों कहकर ब्राह्मण तथा क्षत्रियों कि जो सन्तान उत्पन्न हैं, वैश्य और शूद्र जो मनुष्य हैं वे विषयों में लम्पट हैं ये कैसे धर्मों को करेंगे ऐसा कहकर धर्म-कर्मों का अनुष्ठान भी उनके लिए शास्त्रविहित धर्म है। पितृयज्ञ, (श्राद्ध) कूप खुदवाना, पौसरा चलाना, लोगों के ठहरने के लिए धर्मशालाएँ बनवाना भी उनका कर्तव्य है। उन्हें यथासमय सदा ब्राह्मणों के लिए दान देते रहना चाहिये।

तथा—दक्षिणा सर्वयज्ञानां दातव्या भूतिमिच्छता । पाकयज्ञा महार्हाश्च कर्तव्याः सर्वदस्युभिः ॥ इति म्लेच्छादीनां श्राद्धविधानं तदपि सज्जातीयभोजनद्रव्यदानादि परं न तु श्राद्धपरमिति ।

और सब यज्ञों की दक्षिणा ऐश्वर्य की इच्छावाला दे। महार्ह—(महापूजोपयोग्य) सब दस्युगण (डाकुओं का समूह) 'पाकयज्ञ' को करें। इससे म्लेच्छ आदियों को श्राद्ध विधान कहा है। वह भी सजातीय भोजन द्रव्यदान आदि परक है। श्राद्धपरक नहीं है।

(श्राद्धे पितृनिरूपणम्)

अथ श्राद्धपितरः । हेमाद्रौ मात्स्यदेवलौ—नामगोत्रं पितॄणां तु प्रापकं हव्यकव्ययोः ।
अग्निष्वात्तादयस्तेषामाधिपत्ये व्यवस्थिताः ॥

अब पितरों को कहते हैं। हेमाद्रि में मत्स्यपुराण और देवल का कथन है कि—पितरों के तो नाम और गोत्र हव्य तथा कव्य को पहुँचाते हैं। अग्निष्वात्त आदि उनके आधिपत्य में व्यवस्थित हैं।

नाममन्त्रास्तदादेशा भवान्तरगतानपि । प्राणिनः प्रीणयन्त्येव तदाहारत्वमागतान् ॥

नाम और मन्त्र के आदेश (आज्ञा) भवान्तर (जन्मान्तर) में गये हुओं को आये हुए प्राणियों को आहार (भोजन) से प्रसन्न करते हैं।

देवो यदि पिता जातः शुभकर्मानुयोगतः । तस्यान्नममृतं भूत्वा देवत्वेऽप्यनुगच्छति ॥

यदि पिता शुभ कर्म के योग से देव हो गये हों तो उसका अन्न अमृत होकर देवता में भी चला जाता है।

गान्धर्वे भोगरूपेण पशुत्वे च तृणं भवेत् । श्राद्धान्नं वायुरूपेण नागत्वेऽप्युपतिष्ठति ॥

गान्धर्वयोनि में भोगरूप से, पशुयोनि में तो तृणरूप से और नागयोनि में श्राद्धान्न वायुरूप से प्राप्त होता है।

१—प्रायश्चित्ततत्त्वे ३४९— गोमांसखादको यश्च विरुद्धं बहुभाषते । सर्वाचार विहीनश्च म्लेच्छ इत्यभिधीयते ॥

पानं भवति यक्षत्वे राक्षसत्वे तथाऽऽमिषम्। दनुजत्वे तथा मद्यं प्रेतत्वे रुधिरोदकम्॥ मनुष्यत्वेऽन्नपानादिनानाभोगकरं भवेत्॥

यक्षरूप से पान होता है, आमिष (मांस) रूपसे राक्षसरूप में, दनुजयोनि (असुरयोनि) में मद्यरूपसे, प्रतयोनि में रुधिरोदकरूप से और मनुष्यरूप में तो अन्न-पानादि अनेक तरह के भोग करने योग्य होता है।

अत्र पित्रादिशब्दैर्जनकादीनामेव देवतात्वमुच्यते न वस्वादीनाम्, 'असावेतत्ते इति यजमानस्य पित्रे' इति शतपथश्रुतेः, 'यस्य पिता प्रेतः स्यात् स पित्रे पिण्डं निधाय इति विष्ण्वादिस्मृतेश्च।

यहाँ पर पिता आदि शब्दों से जनक आदियों का ही देवतात्व कहा है वसु आदियों का नहीं कहा है। शतपथ की श्रुति है कि—'असावेतत्ते' इसमन्त्र से तुम्हारे द्वारा दिया हुआ यजमान के पिता के लिए है और जिसका पिता प्रेत हो गया वह पिता के लिये पिण्ड को रखे। यह विष्णु आदि स्मृति में कहा गया है।

यत्तु मनुदेवलौ—वसवः पितरो ज्ञेयाः रुद्रा ज्ञेयाः पितामहाः। प्रपितामहास्तथादित्याः श्रुतिरेषा सनातनी॥

जो मनु और देवल ने कहा है कि—पिता को वसु, पितामह को रुद्र और प्रपितामह को आदित्य जानना चाहिये। ऐसी सनातनी श्रुति है।

यच्च याज्ञवल्क्यः—(आचा० श्लो० २६८) वसुरुद्रादितिसुताः पितरः श्राद्धदेवताः। इति। तदभेदध्यानार्थम्।

और जो याज्ञवल्क्य ने कहा है कि—वसु, रुद्र और अदिति पुत्र श्राद्ध के पितर देवता हैं। वह अभेद ध्यानार्थ है।

यानि तु हेमाद्रौ नन्दिपुराणे—विष्णुः पिताऽस्य जगतो दिव्यो यज्ञः स एव च। ब्रह्मा पितामहो ज्ञेयो ह्यहं च प्रपितामहः॥ इति।

जो हेमाद्रि और नन्दिपुराण में कहा है कि—इस संसार के विष्णु पिता हैं वही ही दिव्य तथा यज्ञ हैं पितामह को ब्रह्मा तथा रुद्र को प्रपितामह जानना चाहिए।

यच्च भविष्ये—अनिरुद्धः स्वयं ज्ञेयः प्रद्युम्नश्च पिता स्मृतः।
संकर्षणस्तज्जनको वासुदेवस्तु तत्पिता॥ स्वयं=कर्ता।

और जो भविष्यपुराण में कहा है कि—स्वयं (श्राद्धकर्ता) को अनिरुद्ध, पिता को प्रद्युम्न, उसके जनक (पितामह) को संकर्षण और उसके पिता (प्रपितामह) को वासुदेव जानना चाहिये। 'स्वयं' का अर्थ कर्ता है।

यत्तु तत्रैव—प्रथमो वरुणो ज्ञेयः प्राजापत्यस्तथापरः।
तृतीयोऽग्निः स्मृतः पिण्डो ह्येष पिण्डविधिः स्मृतः॥

जो वहीं पर कहा है कि—प्रथम को वरुण, दूसरे को प्राजापत्य तथा तीसरे को अग्नि कहा है। यह पिण्ड की विधि कही है।

यच्च मनुः (अ० ३।१९७)—सोमपा नाम विप्राणां क्षत्रियाणां हविर्भुजः।
वैश्यानामाज्यपा नाम शूद्राणां तु सुकालिनः॥

और जो मनु ने कहा है कि—ब्राह्मणों का सोमपा नाम है, क्षत्रियों का हविर्भुज है, वैश्यों का आज्यपा नाम है और शूद्रों का सुकालिन है।

यच्च आदित्यपुराणे—मासाश्च पितरो ज्ञेया ऋतवश्च पितामहाः।
संवत्सरः प्रजानां च सुष्ठूक्तः प्रपितामहः॥

और जो आदित्यपुराण में कहा है कि—महिनों को पिता, ऋतुओं को पितामह, प्रजाओं को संवत्सर और प्रपितामह को सुष्ठु कहा है।

यच्च नन्दिपुराणे—अग्निष्वात्ता ब्राह्मणानां पितरः परिकीर्तिताः। राज्ञां बर्हिषदो नाम विशां काव्याः प्रकीर्तिताः॥ सुकालिनस्तु शूद्राणां व्यामा म्लेच्छान्त्यजादिषु।

और जो नन्दिपुराण में कहा है कि—ब्राह्मणों का पितर अग्निष्वात्त, राजाओं का बर्हिषद नाम का और वैश्यों का काव्य (कव्य) पितर कहा है। शूद्रों का सुकालिन, म्लेच्छ, अन्त्यज आदि जातियों में तो व्यामा कहा है।

अत्रावाहनादिषु पित्रादयः समुच्चयेन विकल्पेन वा यथाचारं तत्तद्देवतारूपेण वाच्या इति हेमाद्र्यादयः।

यहाँ पर आवाहन आदियों में पिता आदि समुच्चय से या विकल्प से यथाचार (कुलपरंपरागत) तत्तद्देवतारूप से कहना चाहिये—यह हेमाद्रि आदि कहते हैं।

हेमाद्रौ ब्राह्मे—पार्वणं कुरुते यस्तु केवलं पितृहेतुकम्।
मातामहं न कुरुते पितृहा स प्रजायते॥

हेमाद्रि में ब्रह्मपुराण का वचन है कि—जो व्यक्ति केवल पिता के निमित्त पार्वण करता है, और मातामह का नहीं करता है वह पितृहा (पिता को मारनेवाला) होता है।

धौम्यः—पितरो यत्र पूज्यन्ते तत्र मातामहा ध्रुवम्।
अविशेषेण कर्तव्यं विशेषान्नरकं व्रजेत्॥

धौम्य ने कहा है कि—जहाँ पर पितरों का पूजन होता है वहाँ पर मातामह का निश्चित पूजन होता है। बिना विशेषता के करना चाहिये। विशेष (भेद) करने पर नरक होता है।

अस्यापवादमाह कात्यायनः—कर्षूसमन्वितं मुक्त्वा तथाऽऽद्यं श्राद्धषोडशम्। प्रत्याब्दिकं च शेषेषु पिण्डाः स्युः षडिति स्थितिः। कर्षूसमन्वितम्=सपिण्डीकरणम्। दर्शादौ सपत्नीकानामेव देवतात्वम्, स्वेन भर्त्रा समं श्राद्धं माता भुङ्क्ते सुधासमम्। पितामही च स्वेनैव तथैव प्रपितामही॥ इति तत्रैवोक्तेः।

इसका अपवाद कात्यायन ने कहा है कि—कर्षू से समन्वित (सपिण्डीकरण से युक्त) आद्य सोलह श्राद्ध तथा प्रत्याब्दिक को छोड़कर शेष में छः पिण्डों की स्थिति होती है। कर्षूसमन्वित का अर्थ सपिण्डीकरण है। दर्शादि में सपत्नीक पितरों को ही देवतात्व कहा है। पितामही वैसे ही प्रपितामही और माता अपने-अपने पति के साथ अमृत के सदृश श्राद्ध का भोग करती है। यह वहीं पर कहा है।

चन्द्रिकायां चतुर्विंशतिमते—क्षयाहे वर्जयित्वैकं स्त्रीणां नास्ति पृथक् क्रिया। केचिदिच्छन्ति नारीणां पृथक् श्राद्धं महर्षयः॥ अन्वष्टकासु वृद्धौ च गयायां च क्षयेऽहनि। अत्र मातुः पृथक् श्राद्धमन्यत्र पतिना सह। इति कात्यायनोक्तेश्च। अस्य निर्मूलतां वदन्तो गौडास्त्वज्ञा एव।

चतुर्विंशतिमत से चन्द्रिका में कात्यायन ने कहा है कि—क्षयाहश्राद्ध में छोड़कर स्त्रियों की अलग क्रिया नहीं होती है। कोई महर्षि स्त्रियों का अलग श्राद्ध की इच्छा करते हैं। अन्वष्टका में, वृद्धि में, गया में और क्षयाहदिन में इन पर माता का पृथक श्राद्ध करे अन्यत्र (स्थलों में) पति के साथ करे। इसको निर्मूल कहते हुए गौड तो अज्ञ ही है।

अत्र 'भागः' इत्यध्याहारः, अन्यथा 'सपतिकायै मात्रे' इति प्रयोगापत्तेः। 'अत्र मातृशब्दो जनन्यामेव मुख्यः। तेन सपत्नमातृभ्यो न दद्यात्। एवं पितामह्यादिशब्दैः पितृजनन्यादय एवोच्यन्ते इति तत्सपत्नीभ्यो न देयम्' इति हेमाद्रिः। 'कारुण्येन तु महालयादौ देयम्' इति स एव।

यहाँ पर 'भागः'—(अंशभागित्वात् अप्रधान्यलाभः) इसका अध्याहार है। अन्यथा 'सपतिकायै मात्रे' (पतिना सह—इस तृतीया निर्देश से माता का प्राधान्यलाभ है) ऐसे प्रयोग की आपत्ति हो जायगी।

यहाँ पर मातृ शब्द जननी में ही मुख्य है। इससे सपत्नमाताओं के लिए न दे। इसप्रकार पितामही आदि शब्दों से पितृजननी आदि को ही कहा है। उनकी सपत्नी के लिए नहीं देना चाहिए—यह हेमाद्रि ने कहा है। कारुण्यसे (दया से) तो महालय आदि में (सपत्नी के लिए) देना चाहिए—यह हेमाद्रि ने कहा है।

(श्राद्धे विश्वेदेवकथनम्)

अथ विश्वेदेवाः। हेमाद्रौ शङ्खबृहस्पती—इष्टिश्राद्धे क्रतुदक्षौ सत्यौ नान्दीमुखे वसू। नैमित्तिके कामकालौ काम्ये च धुरिलोचनौ॥ पुरूरवार्द्रवौ चैव पार्वणे समुदाहृतौ।

अब विश्वेदेवताओं को कहते हैं। हेमाद्रि में शंख तथा बृहस्पति ने कहा है कि—इष्टिश्राद्ध में क्रतु और दक्ष, नान्दीमुख में-सत्य तथा वसु, नैमित्तिक में-काम और काल, काम्य में-धूरि तथा लोचन और पार्वण में पुरूरव तथा आर्द्रव विश्वेदेव कहे गये हैं।

तत्रैव—उत्पत्तिं नाम चैतेषां न विदुर्ये द्विजातयः।
अयमुच्चारणीयस्तैः श्लोकः श्रद्धासमन्वितैः॥

वहीं पर कहा है कि—जो द्विजातिगण विश्वेदेवों की उत्पत्ति तथा नाम नहीं जानते हैं वे श्रद्धा से युक्त हो इस श्लोक का उच्चारण करें—

आगच्छन्तु महाभागा विश्वेदेवा महाबलाः। ये यत्र विहिताः श्राद्धे सावधाना भवन्तु ते॥ इति।

महाभाग और महाबली विश्वेदेव, जो इस श्राद्ध में आने योग्य हों आवें, सावधान हों।

'इष्टिश्राद्धं श्राद्धं (इच्छाश्राद्धम्) प्रति रुचिरित्युक्तम्' इति च कल्पतरुः। आधानादिकर्माङ्गमित्यन्ये। नैमित्तिकमेकोद्दिष्टम् 'एकोद्दिष्टं तु यच्छ्राद्धं तन्नैमित्तिकमुच्यते। इति भविष्योक्तेः। एतद्यद्यपि 'एकोद्दिष्टं देवहीनम्' इति तत्र विश्वेदेवनिषेधस्तथापि नवश्राद्धे द्वादशमासिके च कामकालौ ज्ञेयौ।

इष्टिश्राद्धम्—से श्राद्ध के प्रति 'रुचि' (इच्छा) यों कहना, ऐसा कल्पतरु ने कहा है। आधान आदि (आदि पद से सोमयाग) निषेकादिसंस्कार, कर्मांग (निषेककाले सोमे च सीमन्तोन्नयने तथा। ज्ञेयं पुंसवने श्राद्धं कर्माङ्गं वृद्धिवत् कृतम्॥ पारस्कराचार्य ने ही 'वृद्धि' इस कर्तव्यता के अतिदेश से कर्मांगशब्द से कहा है।) है यह अन्य ने कहा है। नैमित्तिक से एकोद्दिष्ट को ग्रहण करे। भविष्यपुराण में कहा है कि—एकोद्दिष्ट जो श्राद्ध है वह नैमित्तिक कहा गया है। यद्यपि यह एकोद्दिष्ट देवता से हीन है—इस कथन से वहाँ पर विश्वदेव का निषेध है फिर भी नवश्राद्ध में और द्वादशमासिक श्राद्ध में (अर्थात्—बारह महीने के श्राद्ध में) काम तथा काल विश्वदेवा जानना चाहिये।

नवश्राद्धं दशाहानि नवमिश्रं तु षड्ऋतून्। अतः परं पुराणं वै त्रिविधं श्राद्धमुच्यते॥ यस्मिन्नेव पुराणे वा विश्वेदेवा न लेभिरे। आसुरं तद्भवेच्छ्राद्धं वृषलं मन्त्रवर्जितम्॥ इति बह्वृचपरिशिष्टात्।

नवश्राद्ध दशदिन (मृतक का प्रथम दिन से आरंभ कर दशदिन पर्यन्त श्राद्ध कर्म को नवसंज्ञक कहते हैं। प्रथमेऽह्नि तृतीये च पञ्चमे सप्तमे तथा। नवमैकादशे चैव नवश्राद्धश्राद्धानि षट्क्रमात्॥ इत्यादि धर्मसिन्धौ।) में होता है छः ऋतुओं तक होता है। इसके बाद पुराण ही (कनिष्ठ भ्रातृवार्षिकशस्त्रहतचतुर्दशीश्राद्धादीनि पुराणसंज्ञानि। केचित्सपिण्डयुत्तरं क्रियमाणानां पार्वणानामपि पुराणसंज्ञामाहुः।) होता है। यह तीन प्रकार का श्राद्ध कहा है। जिस पुराण में ही विश्वेदेव नहीं प्राप्त होते हैं वह श्राद्ध आसुर होता है तथा मन्त्रवर्जित वृषल (शूद्र) होता है। यह बह्वृचपरिशिष्ट में कहा है।

१—वृषोत्सर्गे तव द्रप्सौ कुरुकुत्सौ (प्सौ) महालय इति गोविन्दार्णवे विशेषः। सर्वत्रानुक्तौ पुरूरवार्द्रवौ ज्ञेयौ। 'काम्ये चाध्वविरोचनौ' इति प्रभासखण्डे धूनिश्च रोचनश्चैव इति पराशरसंहितायाम्।

एतच्च बह्वृचानामेव, तेषामेवोक्तेः। अन्येषां तु 'नात्र विश्वेदेवाः' इति कात्यायनोक्तेस्तन्निषेध एवेति पृथ्वीचन्द्रोदयः। अन्ये तु नैमित्तिकं सपिण्डीकरणमाहुः। भविष्ये यद्यप्येकोद्दिष्टं तच्छब्देनोक्तं, तथापि—तदप्यदैवं कर्तव्यमयुग्मान् भोजयेद् द्विजान्। इति तत्रैव विश्वेदेवनिषेधात्। यद्यपि सपिण्डीकरणेंऽशत एकोद्दिष्टत्वं तथापि—सपिण्डीकरणं श्राद्धं देवपूर्वं नियोजयेत्। इति वचनात्तत्परत्वम्।

यह बह्व चों के लिए है, उन्हीं का ही कथन है। अन्यों के यहाँ तो विश्वेदेवा नहीं होते हैं—यह कात्यायन के कहे हुए वचन से उसका निषेध ही है—यह पृथ्वीचन्द्रोदय ने कहा है। अन्य तो नैमित्तिक (सांवत्सरिकमित्यन्ये पितृपक्षे चतुर्दश्यामेकोद्दिष्टमित्यन्ये) सपिण्डीकरण कहते हैं। भविष्यपुराण में कहा है कि—यद्यपि एकोद्दिष्टको 'तत्' शब्द से कहा है, फिर भी उसको भी अदैव (देवता से हीन) करे तथा अयुग्म (एक, तीन, पाँच आदि) ब्राह्मणभोजन करावे। इससे वहीं पर विश्वेदेव का निषेध कहा है। यद्यपि सपिण्डीकरण में अंशतः एकोद्दिष्ट कहा है, तथापि सपिण्डीकरणश्राद्ध को देवपूर्वक नियुक्त करे। यह वचन उस परक है।

हेमाद्रावादित्यपुराणे—विश्वेदेवौ क्रतुदक्षः सर्वास्विष्टिषु कीर्तितौ। नित्ये नान्दीमुखे श्राद्धे वसूसत्यौ च, पैतृके। नवान्नलम्भने देवौ कालकामौ सदैव हि। अपि कन्यागते सूर्ये काम्ये च धुरिलोचनौ। पुरूरवार्द्रवौ चैव विश्वेदेवौ तु पार्वणे।

हेमाद्रिमें आदित्यपुराणका वचन है कि–क्रतु और दक्ष विश्वेदेवा सब इष्टियों में कहा है। आवश्यकमें वसु तथा सत्य पितृकार्य नान्दीमुख श्राद्ध में नवीन अन्न के लाभ में काम तथा काल सदैव ही विश्वेदेव होते हैं (इसीको ग्रहणादि में करे—इसलिये नैमित्तिकपद से कहा है—यह हेमाद्रि मत है। नवान्नभोजन के पूर्व पितृभक्ति से क्रियमाण कार्य है—यह अन्य कहते हैं। व्रीहिपाक और यवपाकको कहा है—यह इतरपक्ष है।) कन्या में गये (कन्यास्थसूर्य के निमित्तकमहालयश्राद्ध में और प्रौष्ठपदीश्राद्ध में) सूर्य में और काम्य में धूरिलोचन विश्वेदेव हैं। पार्वणश्राद्ध में तो पुरूरव तथा आर्द्रव विश्वेदेव होते हैं।

क्वचिद्विश्वेदेवापवादमाह हेमाद्रौ शातातपः—नित्यं श्राद्धमदैवं स्यादेकोद्दिष्टं तथैव च। मातुः श्राद्धं च युग्मैः स्याददैवं प्राङ्मुखैः पृथक्॥ योजयेद्देवपूर्वाणि श्राद्धान्यन्यानि यत्नतः॥ नान्दीश्राद्धे भिन्नप्रयोगपक्षे मातृश्राद्धमदैवमिति हेमाद्रिः।

कहीं अपवाद विश्वेदेवों का हेमाद्रि में शातातप ने कहा है कि—नित्यश्राद्ध अदैव होता है। वैसे ही एकोद्दिष्टश्राद्ध अदैव (देवता से हीन) होता है। माता का श्राद्ध भी युग्म तथा अदैव होता है। प्राङ्मुख ब्राह्मणों से अलग होता है। अन्य श्राद्धों को यत्न से देवपूर्वक योजना करे। नान्दीश्राद्ध के भिन्न प्रयोग पक्ष में मातृश्राद्ध अदैव होता है, यह हेमाद्रिमत है।

(श्राद्ध ग्राह्यब्राह्मणनिरूपणम्)

अथ विप्राः। ते चोत्तममध्यमाधमभेदेन त्रिविधाः। तत्राद्याः। अत्र मदीयाः श्लोकाः—त्रिणाचिकेतस्त्रिमधुश्च बह्वृचोऽप्याथर्वणो याजुषसामगौ च। षडङ्गविच्च त्रिसुपर्णवेत्ताऽप्यथर्वशीर्षोऽध्ययने रतश्च॥ शतायुर्वेदार्थविदौ प्रवक्ता स्याद् ब्रह्मचारी च तथाग्निचिच्च। सीदद्वृत्तिः सत्यवाक्पूरुषैः स्वैर्मातापित्रोः पञ्चभिः ख्यातवंशः॥ पत्नीयुक्तो ज्येष्ठसामा पुराणवेत्ता पुत्री चेतिहासेष्वभिज्ञः। योगी भिक्षुः सामगो ब्रह्मवेत्ता पञ्चाग्निश्च श्रोत्रियस्तत्सुतो वा॥ शम्भुध्यायी श्रीशपादाब्जसेवी पान्थश्चैते तूत्तमाः सम्प्रदिष्टाः। भिक्षुर्योगी पान्थ एते त्वलभ्या भाग्याल्लब्धाश्चेत्तदा भोजनीयाः॥ श्राद्धे विप्रेषूपविष्टेषु पश्चात्सम्प्राप्ताश्चेत् विप्रपङ्क्तौ तु भोज्याः। अत्र मूलं हेमाद्रौ ज्ञेयम्।

अब ब्राह्मणों को कहते हैं। वे ब्राह्मण उत्तम, मध्यम और अधम भेद से तीन प्रकार के हैं। उसमें मेरे (कमलाकर भट्ट के) बनाये श्लोक हैं। त्रिणाचिकेत='त्रिणा (ना) चिकेत नामवाला वेदभाग, (त्रिणाचिकेताख्यवेदभागः, स च (पूर्ण) 'पीतोदका जग्धतृणा' इत्यादि, तदध्ययनसम्बन्धात् पुरुषोऽपि त्रिणाचिकेत उच्यते। आचीर्णत्रिणाचिकेताख्यवेदभागाङ्गभूतश्च' कुत्रचित् तृणाचिकेत इति पाठ उपलभ्यते। तृणवत् सर्वमाचिकेति जानातीति तदर्थः। ब्रह्मपुराणे—आचिकेतीति यो विश्वं तृणवत् सर्वनिस्पृहः। तृणाचिकेतः स गृही रागद्वेषविमत्सरः॥ इति वीरमित्रोदये। 'उशन्ह वै वाजः श्रवस' इत्यादिभिस्त्रिभिरनुवाकैर्विहितानां नाचिकेत संज्ञानामग्नीनां चेता वेत्ता वा त्रिणाचिकेतः' इति स्मृतिमुक्ताफले), त्रिमधु—मधुवाता ऋतायते—इत्यादि तीन ऋचाओं को जो अध्ययन करता है। (त्रिमध्वाख्यव्रतानुष्ठानपूर्वकतदाख्यऋग्वेदैकदेशाध्येता), बह्वृच=ऋग्वेदी, आथर्वण–अथर्ववेदी, (भोजयेद्यथर्वाणं दैवे पित्र्ये च कर्मणि। अनन्तमक्षयं चैव फलं तस्येति वै श्रुतिः॥ एतेन यथा कन्या तथा हविरिति वचनात् भ्राम्यन्तो यजमानवेदशाखा एव श्राद्धे ब्राह्मणा इति वदन्तो निरस्ताः—इति वीरमित्रोदये), याजुष=यजुर्वेदी, सामवेदाध्यायी, छः अंगों को जाननेवाला, 'मधुमेतु माम्' इत्यादि तैत्तरीयशाखान्तर्गतयजुस्त्रितयाध्येता। य इदं त्रिसुपर्णमिति तेष्वेव निर्देशात्। कल्पतरुस्तु—'चतुष्कपदी युवतिः सुपेशा' इति ऋग्वेदान्तर्गतं सुपर्णपदोपलितं ऋक्त्रयमित्याह। त्रिसुपर्ण को जानने वाला, अथर्वशीर्ष के अध्ययन में रत, शतायु (ज्योतिःशास्त्रादवगतं शतवर्षमायुर्यस्य, स एव न तु शतवार्षिकः। युवभ्यो दानमित्यनेन यूनामेव विधानात् इति केचित्। वृद्धतम इति हेमाद्रिः) वेद के अर्थ को जाननेवाला (षडङ्गवित्–इत्यनेन वेदार्थविदोप्युपादानेऽपि वेदार्थमात्रवेतृत्वेन पाङ्क्तेयत्वमत्रोक्तमिति न पौनरुक्त्यम्। केचित्तु षडङ्गाध्ययनव्यतिरेकेणापि प्राज्ञतया वेदार्थं वेत्ति सोऽत्र वेदार्थविदिति न पौनरुक्त्यमित्याहुः), अनधीतवेदो वेदार्थवेत्ता निषिद्ध एव, अच्छीवाणी बोलनेवाला, ब्रह्मचारी, अग्निचिति को जाननेवाला, जीविका से रहित, सत्यवादी पुरुषत्रय से विख्यात और माता और पिता से पांच पीढी प्रसिद्ध वंशवाला, पत्नी से सहित, (ज्येष्ठ) सामवेद के भाग का पढनेवाला, पुराण का जानकार, पुत्रवाला, इतिहासों को जाननेवाला, योगी, भिक्षु (हरि या हर के ध्यान में मग्न), सामस्वर की विधि को जाननेवाला, ब्रह्म का जाननेवाला, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, आहवनीय, सभ्य और आवसथ्य पञ्चाग्नि जिसके घर हों (अग्निहोत्री), या छान्दोग्योपनिषत्पठित पञ्चाग्निविद्याध्येता, श्रोत्रिय –वेदपाठी, उसका लड़का, शंकर का ध्यान करने वाला, विष्णु के चरणों की सेवा करनेवाला, अतिथि (आतिथ्यरहिते श्राद्धे भुञ्जते ये बुधा द्विजाः। वृथाकृतेन पाकेन काकयोनिं व्रजन्ति ते॥) ये मिलते नहीं हैं। यदि भाग्यवश प्राप्त हों तो उनको भोजन कराना चाहिये। श्राद्ध में ब्राह्मणों के बैठ जाने पर बाद में प्राप्त हो जायँ तो ब्राह्मण की पंक्ति में ही भोजन करावे। इसका मूल हेमाद्रि में जानना चाहिये।

तत्रैव नारदः—यो वै यतीननादृत्य भोजयेदितरान् द्विजान्।
विजानन् वसतो ग्रामे कव्यं तद्याति राक्षसान्॥

वहीं पर नारद ने कहा है कि—जो यतियों को (ब्रह्माण्डे—शिखिभ्यो धातुरक्तेभ्यो त्रिदण्डिभ्यश्च भोजयेत्। शिखिनो ब्रह्मचारिणः। धातुरक्तवस्त्रधारिणो वानप्रस्थाः। त्रिदण्डिनः कायवाङ्मनोदण्डोपेता यतयः। यतयस्त्रिदण्डिन इति केचित्। ध्यानिनो वानप्रस्थाः।) अनादर कर इतर गांव के भिन्न ब्राह्मणों को भोजन कराते हैं। उनका कव्य राक्षसों को प्राप्त होता है।

दीपकलिकायां दक्षः—विना मांसेन मधुना विना दक्षिणयाऽऽशिषा। परिपूर्णं भवेच्छ्राद्धं यतिषु श्राद्धभोजिषु॥ एतच्च ज्ञानि (न) विषयम्।

दीपकलिका में दक्ष ने कहा है कि—मांस के बिना, दक्षिणा और आशीर्वाद के बिना यतियों को श्राद्धीय भोजन करने से वह श्राद्ध परिपूर्ण हो जाता है। यह ज्ञानी के विषय में है—(याज्ञवल्क्येन ब्रह्मविदुक्तः)।

त्रिणाचिकेतस्त्रिसुपर्णो यजुर्वेदैकदेशौ तद्व्रतेन तदध्यायिनौ, 'यस्य सप्त पूर्वे सोमपाः स त्रिसुपर्णः' इति बोपदेवः। सत्रिमधुर्ऋग्वेदैकदेशस्तदध्यायी। केचिन्नाचिकेतं चयनं त्रिः कृतवानित्यर्थमाहुस्तद्धेमाद्रिविरुद्धम्। हेमाद्रौ गौतमः—'युवभ्यो दानं प्रथमं पितृवयसः' इत्येके।

त्रिणाचिकेत तथा त्रिसुपर्ण--ये दोनों यजुर्वेद के एक देश हैं 'उनको व्रत से अध्ययन करनेवाले, जिसके सात पुरुष पहले सोमरस पीनेवाले हो गये हों वह 'त्रिसुपर्ण' होता है, ऐसा बोपदेव ने कहा है। त्रिमधु--ऋग्वेद के एकदेश को पढने वाले। कोई नाचिकेत का अर्थ यों करते हैं कि--जिसने तीन बार अग्निचयन किया हो--यह हेमाद्रि ग्रन्थकार के विरुद्ध है। हेमाद्रि में गौतम ने कहा है कि--युवाओं को पहले दान दे जो पिता की अवस्था वाले हों। (युवभ्यो दानं प्रधानमेके मन्यन्ते ते हि श्राद्धीयनियमसम्पादनक्षमा भवन्ति। पितृवेदके पितरमुद्दिश्य स्थविरं प्रपितामहमुद्दिश्य स्थविरतरमिति वीरमित्रोदये)।

मात्स्ये मनुः--यश्च व्याकुरुते वाचं यश्च मीमांसतेऽध्वरम्।
सामस्वरविधिज्ञश्च पङ्क्तिपावनपावनाः॥

मत्स्यपुराण में मनु ने कहा है कि--जो वाणी को व्यक्त करें। जो यज्ञ की मीमांसा (विचार) को करें और सामस्वर की विधि के जानकार हों वे पंक्तिपावन पवित्र करने वाले (नित्यं योगपरो विद्वान् समलोष्ठाश्मकाञ्चनः। धान्यशीलो यतिर्विप्रान् ब्राह्मणाः पंक्तिपावनाः॥) होते हैं।

(श्राद्धयोग्यब्राह्मणविचारः)

कौर्मे—असमानप्रवरको ह्यसगोत्रस्तथैव च। असम्बन्धी च विज्ञेयो ब्राह्मणः श्राद्धसिद्धये॥

कूर्मपुराण में कहा है कि—जिसका प्रवर एक न हो और जो असगोत्री हो ऐसे असंबन्धी ब्राह्मण को श्राद्ध की सिद्धि के लिए जानना चाहिये।

गारुडे—श्राद्धेषु विनियोज्यास्ते ब्राह्मणा ब्रह्मवित्तमाः।
ये योनिगोत्रमन्त्रान्तेवासिसम्बन्धवर्जिताः॥

गरुडपुराण में कहा है कि—श्राद्धों में ऐसे ब्राह्मणों की नियुक्ति करें जो ब्रह्मवेत्ता हों और जो योनि सम्बन्ध, मामा आदि, सपिण्डादि तथा वेदाध्यापक और शिल्पशास्त्र आदि उपाध्याय सम्बन्ध वर्जित हों।

मनुः—(अ.३,१३८) न मित्रं भोजयेच्छ्राद्धे धनैः कार्योऽस्य सङ्ग्रहः।
नारिं न मित्रं यं विद्यात्तं श्राद्धे भोजयेद्द्विजम्।

मनु ने कहा है कि—श्राद्ध में मित्र को भोजन न (अरिभोजने दोषाधिक्यार्थमिति वस्तुगतिः) करावे। धन (धनैः कार्यः—इति वचनात् गुणवत्तामात्रहेतुकस्य मित्रभोजनस्यानुज्ञानमर्थात् सिद्धम्) के द्वारा मित्र का संग्रह करे। यह न शत्रु है न मित्र है यों जानकर उस ब्राह्मण को श्राद्ध में निमन्त्रण दे।

द्वयोर्भ्रात्रोः श्राद्धे भोजनं निषिद्धम्, पितृपुत्रौ भ्रातरौ द्वौ निरग्निं गुर्विणीपतिम्। सगोत्रप्रवरं चैव श्राद्धेषु परिवर्जयेत्॥ इति श्राद्धदीपकलिकायां जातूकर्ण्योक्तेः।

दो सगे भाईयों को श्राद्ध में भोजन निषिद्ध है। श्राद्धदीपकलिका में जातूकर्ण्य का वचन है कि—पिता और पुत्र, दो भाई, निरग्निक, गर्भवती स्त्री का पति, सगोत्र और समान प्रवर वाले को श्राद्धों में त्याग दे।

(मध्यमब्राह्मणाः)

अथ मध्यमाः। हेमाद्रौ कौर्मगार्ग्यौ—नैकगोत्रे हविर्दद्याद्यथा कन्या तथा हविः। अभावे ह्यन्यगोत्राणामेकगोत्रांस्तु भोजयेत्॥ अत्र केचित्स्वशाखीयान्मुख्यानाहुः पठन्ति च—निमन्त्रयीत पूर्वेद्युः स्वशाखीयान् द्विजोत्तमान्। स्वशाखीयद्विजाभावे द्विजानन्यान्निमन्त्रयेत्॥ इति। इदं तु निर्मूलत्वाद्धेमाद्रिणा दूषितत्वाच्चोपेक्ष्यम्।

अब मध्यम ब्राह्मण कहते हैं। हेमाद्रि में कूर्मपुराण तथा गार्ग्य का वचन है कि—एक गोत्र में हवि को न दे। क्योंकि जैसी कन्या वैसा हवि है। अभाव (असमान गोत्र और प्रवर) में अन्य गोत्रों के एक गोत्रों को ही भोजन करा दे।

यहाँ पर कोई स्वशाखीयों को मुख्य कहते हैं और पढ़ते हैं कि—पहले दिन स्वशाखीय उत्तम ब्राह्मणों को निमन्त्रण करे। स्वशाखीय द्विजों के अभाव में अन्य द्विजों को निमन्त्रण दे। यह निर्मूल होने से हेमाद्रि ने दूषित होने से उपेक्षा की है।

मनुरपि—(अ० ३।१४५, १४६) यत्नेन भोजयेच्छ्राद्धे ब्राह्मणं वेदपारगम्। शाखान्तगमथाध्वर्युं छन्दोगं तु समाप्तिगम् ॥ एषामन्यतमो यस्य भुञ्जीत श्राद्धमर्चितः। पितॄणां तस्य तृप्तिः स्याच्छाश्वती साप्तपौरुषी ॥

मनु ने कहा है कि—मन्त्र-ब्राह्मण को पढ़े हुए ऋग्वेदी, यजुर्वेदी, वेदों का पारगामी सब शाखाओं को पढ़े हुए ऋत्विक् वेदों को पढ़कर समाप्त किये विद्वान् ब्राह्मण को प्रयत्न से श्राद्ध में भोजन करावे। पहले कहे हुए ब्राह्मणों से एक भी ब्राह्मण पूजित होकर श्राद्ध में भोजन करे तो उसके पितरों की तृप्ति सात पीढी तक निरन्तर होती है।

अत्र मामकः श्लोकः—मातामहो मातुलभागिनेयदौहित्रजामातृगुरुस्वशिष्याः।
ऋत्विक् च याज्यश्वशुरौ स्वबन्धुश्याला गुणाढ्यास्त्वनुकल्पभूताः।

'बान्धवो मातृष्वसृपितृष्वसृमातुलपुत्राः' इति बोपदेवः। अत्र मूलं हेमाद्रौ ज्ञेयम्। सगुणस्वस्रीयाद्यति क्रमे दोष एव।

यहाँ पर मेरा (कमलाकर भट्ट) श्लोक है—नाना, मामा, बहिन का लड़का, लड़की का लड़का, दामाद, गुरु, उपाध्याय अपना शिष्य, ऋत्विक्, जिसको यज्ञ करावे, श्वसुर, अपना बान्धव और साला, ये गुणों को खान हों तो तो अनुकल्प (गौण) (अनुकूल्यभूत) होते हैं।

बोपदेवने कहा है कि—बान्धव से माता की बहिन (मौसी), पिता की बहिन (बूआ) और मामा के लड़के इसमें मूल हेमाद्रि में जानना चाहिये। गुणवान् अपने भानजे आदि हों तो उनके अतिक्रमण में दोष ही है।

सप्त पूर्वान्सप्त परान्पुरुषानात्मना सह। अतिक्रम्य द्विजानेतान् नरके पातयेत् खग ॥ सम्बन्धिनस्तथा सर्वान् दौहित्रं विट्पतिं तथा। भागिनेयं विशेषेण तथा बन्धुं खगाधिप ॥ इति मदनरत्ने भविष्योक्तेः।

मदनरत्न में भविष्यपुराण का वचन है कि—सात पीढी पहले और सात पुरुष (पीढ़ी) बाद अपने सहित इन ब्राह्मणों को अतिक्रमण कर हे खग, नरक में गिराता है। वे ये हैं—हे खगाधिप, सब सम्बन्धि (मातामहादि के अतिक्रमण में, एवं जो हीनगुणवाले और मध्यगुण या हीनगुण वाले सम्बन्धियों का अतिक्रमण) दौहित्र, विट्पति (दुहितुः पतिः) जामाता, विशेषकर भानजा तथा बन्धुगण इनका त्याग न करे।

अतएव याज्ञवल्क्यः—ब्राह्मणप्रातिवेश्यानामेतदेवानिमन्त्रणे। इति गुण्यतिक्रमे दशपणं दण्डमाह। आसन्नमात्रपरमिदम्।

इसलिए याज्ञवल्क्य ने कहा है कि—ब्राह्मण प्रातिवेश्यों (पडोसी) के यही अनिमन्त्रण में कहा है। यह गुणी के अतिक्रमण में दशपण[1] दण्ड कहा है। यह आसन्नमात्र (समीपविषय) परक है। (स्वगृहसमीपस्थः प्रातिवेश्यः)।

(मूर्खे तु विशेषः)

मूर्खे तु न दोषः, ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति मूर्खे चैव (वेद) विवर्जिते। ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि हूयते ॥ इति कात्यायनोक्तेः।

मूर्ख में तो दोष नहीं है। कात्यायन ने कहा है कि—ब्राह्मण का अतिक्रमण न करे यदि मूर्ख हो तो त्याग करे। जलती हुई अग्नि का त्याग कर भस्म (राख) में हवन नहीं होता है।

विप्रस्यापि दोषः, अविद्वान् प्रतिगृह्णानो भस्मीभवति दारुवत्। इति मनूक्तेः।

ब्राह्मण को भी दोष है। मनु ने कहा है कि—जो अविद्वान् (मूर्ख) प्रतिग्रह ग्रहण करता है वह काष्ठ की तरह भस्म हो जाता है।

१—कार्षिकताम्रिकः। स तु पञ्चकृष्णलमाषकारब्धताम्रकर्षकृतव्यवहारद्रव्यम्। पूर्वं हि ताम्ररक्तिकायाः कपर्दक एको मूल्यमिति वराटमूल्यः। लोके तूपचारात् कार्षापणवत् पणप्रदेशो मूल्य एव।

अपरार्के अत्रिः—षड्भ्यस्तु पुरुषेभ्योऽर्वाग्‌श्राद्धेयास्तु गोत्रिणः। षड्भ्यस्तु परतो भोज्याः श्राद्धे स्युर्गोत्रजा अपि ॥ एतच्च ब्राह्मणालाभे, अपिशब्दात्।

अपरार्क में अत्रि ने कहा है कि—अपने वंश के छः पुरुषों के पहले जो गोत्री हैं उनको श्राद्ध में ग्रहण न करे। छ पीढी के बाद भोजन करावे वे यदि गोत्रज भी हों तो और यह ब्राह्मण के अलाभ में है क्योंकि 'अपि' शब्द कहा है।

(असंभवे विचारः)

असम्भवे हेमाद्रौ गौतमः—शिष्यांश्चैके सगोत्रांश्च भोजयेदूर्ध्वं त्रिभ्यो गुणवतः।

असंभव में हेमाद्रि में गौतम ने कहा है कि—गुणवाले शिष्य और सगोत्री तीन पीढ़ी के बाद हों तो भोजन करावे।

आपस्तम्बः—ब्राह्मणान् भोजयेद्योनिगोत्रमन्त्रान्तेवास्यसम्बन्धिनः। गुणहान्यां तु परेषां समुदितः सोदर्योऽपि भोजयितव्यः। एतेनान्तेवासिनो व्याख्याताः' इति।

आपस्तंब ने कहा है—सम्बन्ध, गोत्र, मन्त्र सम्बन्ध तथा शिष्य असम्बन्ध ब्राह्मणों को भोजन करावे। गुण की हानि में तो दूसरे ब्राह्मणों के समुदाय में सहोदर को भी भोजन करावे। इससे अन्तेवासी (शिष्य) की व्याख्या की है।

(अत्र विशेषमाहात्रिमते)

अत्र विशेषमाहात्रिः—पिता पितामहो भ्राता पुत्रो वाऽथ सपिण्डकः। न परस्परमर्घ्याः स्युर्न श्राद्धे ऋत्विजस्तथा ॥ ऋत्विक्पुत्रादयोऽप्येते सकुल्या ब्राह्मणाः स्मृताः। वैश्वदेवे नियोक्तव्या यद्येते गुणवत्तराः ॥ सगोत्रा न नियोक्तव्याः स्त्रियश्चैव विशेषतः।

यहाँ पर विशेष अत्रि ने कहा है कि—पिता, पितामह, भाई, पुत्र और सपिण्ड ये श्राद्ध में आपस में पूज्य नहीं होते हैं तथा ऋत्विक् भी पूज्य नहीं होते हैं। ऋत्विक् पुत्रादि भी ये सकुल्य ब्राह्मण कहे गये हैं। वैश्वदेव में इनको नियुक्ति करे, यदि ये गुण में आधिक्य हों तो सगोत्रियों को विशेषकर स्त्रियों की नियुक्ति नहीं करनी चाहिये।

(श्राद्धवर्ज्यब्राह्मणाः)

अथ वर्ज्याः। अत्र मामकाः श्लोकाः—वर्ज्यान् प्रवक्ष्ये त्वथ रोगिवैरिहीनाधिकाङ्गान् कितवान्

१—अन्यत्र कहा है-अनर्ह ब्राह्मण को श्राद्ध में सम्मिलित न करे। वेदाध्ययनशून्य और आयुधों के जानकार को श्राद्ध में सम्मिलित करे। कृतघ्नी, ब्रह्मचर्य से भ्रष्ट, हीन ओठवाला, छिन्न शिश्न वाला, शिर में जिसके एकदम बाल न हो, संकल्प-विकल्पात्मक मनोव्यापार से शून्य, नाच-गान में तत्पर, जो कोई ब्राह्मण की क्रिया को करे। दुर्ब्राह्मण, शौचाचार से शून्य, रोग से प्रवृद्ध, एक वृषणवाला, वञ्चक, परधर्म प्रकाशक, मूल्य के द्वारा कन्या की योनि को विदारण करने वाला, दूसरे पर व्यर्थ में दोष लगाने वाला, भेड के द्वारा जीविका करने वाला, वेश्या में अनुरक्त, पक्षी को मारने वाला, इन्द्रजाल माया में लगा हुआ, दूसरे आश्रमों के धर्म में व्यर्थ प्रयास करने वाला, वैराग्य के बिना साधु बनने वाला, साधु के वेश को त्यागने वाला, पुंश्चलीका पति, आत्मघात में उद्योग करने वाला, जो अन्य पुरुषों को कुलस्त्रियों में प्रवेश कराने वाला, वन्दिविशेष, विना पञ्चयज्ञादि का भोक्ता, पुस्तक वेचनेवाला, पुस्तक लेखन कर्म द्वारा जीविका करनेवाला, बड़ी बड़ी कथाओं को वाचने वाला, छिन्न मेहन नाला, सर्पक्रीडी, आश्रमच्युत, अतिकपिलवर्ण वाला, महापथिक, बहुत बड़े शरीर वाला, मरने के लिए उद्यम कर चुकनेवाला, व्यर्थ में मुण्डन कराने वाला, व्यर्थ में जटा धारण करनेवाला, ऋणको लेकर न देने वाला, पृष्ठ मैथुनकर्ता, परोक्षमें अपकार करने वाला, अधर्मशीलों को धर्म का अध्ययन कराने वाला, धर्मार्थ द्रव्य को ग्रहण कर असद् कार्य में व्यय करने वाला, अधिक या कम अंगुली वाला, माता, पिता और गुरु को त्यागने वाला, कविता से जीविका चलाने वाला, शस्त्र को बनाने वाला, पक्षिपोषक, पुत्र से अध्ययन करने वाला, विवादकारी, शूद्रयाजक, लाल नेत्र वाला, हरसमय मांगने वाला, वेदको विस्मरण करने वाला, शास्त्रविरुद्धाचारी, अत्यन्त क्रोधी, गुरु से स्पर्धा करने वाला, रजस्वलाकन्या का पति, निष्ठुर वचन कहने वाला, गुरु त्यागी, गुड और निमक विक्रेता, मृगी-रोगी, युद्ध का उपदेश देने वाला, व्यभिचारीका पुत्र, चवरकेश विक्रेता, धूर्त, पुरोहित, वस्त्रादि को रंगने वाला, तर्क करने वाला, गौतम धर्मसूत्र में भी कहा

कृतघ्नान् । नक्षत्रशास्त्रेण च जीवमानान् भैषज्यवृत्त्यापि च राजभृत्यान् ॥ सङ्गीतकायस्थकुसीदवृत्त्या वेदक्रयेणापि कवित्ववृत्त्या । देवार्चनेनापि च जीवमानान् स्वाध्यायदाराग्निसुतोज्झकाणान् ॥ दुर्बालखल्वाटकुनख्यधर्मिनटांश्च पौनर्भवकृष्णदन्तान् । अगारदाही गरदः समुद्रयायी च कुण्डाश्यथ कूटकारी ॥ बालांश्च योऽध्यापयते स्वपुत्रादवाप्तविद्यस्त्वथ कुण्डगोलौ । अग्रेदिधिष्वाः पतिरस्त्रकर्ता सोमक्रयी तैलिकः केकराचौ ॥ युद्धाचार्यः पक्षिणां पोषकश्च स्रोतोभेत्ता वृक्षसंरोपकश्च । मेषाणां वा माहिषाणां च पुष्ट्या स्वीयस्त्रीषु प्रहितैर्यश्च जारैः । जीवत्यध्येतुश्च दत्तानुयोगाद् द्रव्यप्राप्त्यै वेदमुद्घाटयन्तः । ग्रामयाजिपशुकेशविक्रयीस्तेन शिल्पिपितृवादकारकान् । अर्थकामरतशूद्रयाजकश्मश्रुहीनजटिमुण्डनिर्घृणान् ॥ यस्य चैव गृहिणी रजस्वला स्वार्थपाकरतशापदायकान् । क्लीबकुष्ठयति विलोहितेक्षणान्कुब्जवामनमृषाभिशापिनः ॥ पुत्रहीनमथकूटसाक्षिणं प्रातिहाविकमयाज्ययाजकम् । स्वा मदातृपरिवेतृयाजकस्तेनहिंस्रकमुखान् विवर्जयेत् ॥ अत्र मूलं हेमाद्रौ पृथ्वीचन्द्रोदये च ज्ञेयम् ।

अब त्याज्य ब्राह्मण कहते हैं। उसमें हमारे (कमलाकरभट्ट) श्लोक हैं। रोगी, (उन्माद आदि महारोग) शत्रु, हीन अंगवाला, अधिक (संख्या से या परिमाण से हीन या अतिरिक्त अंगवाला, जुवारी, (केचित्तु कितव इति स्थाने केकर इति पाठः, तदा केकरोऽध्यर्द्धदृष्टिर्बिडालदृष्टिर्वा) कृतघ्नी (किसी के उपकार को न मानने वाला) नक्षत्र शास्त्र से फल बताकर जीनेवाला ज्यौतिषी, आयुर्वेद की वृत्तिसे जीनेवाला, (वृत्यर्थं धर्मार्थं वा चिकित्सा कर्ता, राजा का नौकर, संगीत शास्त्र से जीविका करनेवाला-गवैया, सूत (व्याज) द्वारा जीविका करनेवाला, वेद बेचनेवाला, कवित्ववृत्ति से जीनेवाला, देवार्चन के द्वारा जीविका करने वाला, वेद, स्त्री, अग्नि और पुत्र को त्यागने वाला, एक नेत्र से रहित, (बधिर मूक आदि) कुत्सित केशवाला, (दुर्वलमितिपाठे तु दुर्वलो विकोशध्वजः), शिर के सब केशों से शून्य, कुत्सितनखवाला, अधार्मिक, नटों, पुनर्भू—दो बार विवाह करनेवाली का पुरुष (द्विरूढायाः पुनर्भूः । तस्य जातः पौनर्भवः) स्वभाव से काले दाँतवाला और द्वेष से घर और धन के लोभ से प्रेत को दग्ध करनेवाला (अगारदाही स ज्ञेयः प्रेतं दग्धो धनेन यः) (ह्यनेकशः) चाप्यगारदाही स्यात् द्वेषाद्वा वेश्मदाहकः ॥) कृत्रिम या अकृत्रिम विष देनेवाला, समुद्र को लंघन करने वाला, माता के द्वारा पति के जीवित रहते अन्य पति से उत्पन्न पुत्र के घर भोजन करनेवाला, (कुण्ड और गोलक के यहाँ भोजन करने वाला) झूठी गवाही देने वाला, बालकों को पढ़ाने वाला, अपने पुत्र से विद्या प्राप्त करने वाला, (पुत्राचार्यः स विज्ञेयो ग्रामे योऽक्षर पाठकः । पुत्रादवाप्तविद्यो वा पुत्राचार्यो निगद्यते ॥) पति के रहते दूसरे की स्त्री में अन्य के द्वारा पुत्र का नाम कुण्ड है और पति के मरने पर अन्य के द्वारा पुत्र का नाम गोलक है (परदारेषु जायन्ते द्वौ सुतौ कुण्डगोलकौ । अमृते जारजः कुण्डो मृते भर्तरि गोलकः ॥ यस्तयोरन्नमश्नाति स कुण्डाशी प्रकीर्तितः) ज्येष्ठा कन्या के रहते विवाहोत्तर कनिष्ठका कन्या का पति (देवलः-ज्येष्ठायां यद्यनूढायां कन्यायामूह्यतेऽनुजा । सा चाग्रेदिधिषूर्ज्ञेया पूर्वा तु दधिपूर्मता ॥) वृद्धमनुस्तु-भ्रातृर्मृतार्यां भार्यायां योऽनुरज्येत कामतः । धर्मेणापि नियुक्तायां स ज्ञेयो दिधिषूपतिः ॥) अस्त्र बनाने वाला, सोम को बेचने वाला (मुञ्जवत् पर्वते जातः औषधिविशेषः सोमस्तस्य क्रेता । केचित्तु सोमयागसाध्याऽपूर्वविक्रेतेति वदन्ति) । (तिल निष्पीडन करनेवाला-बेचने वाला, अर्ध दृष्टि या बिडालदृष्टि वाला, युद्ध की बात सिखाने वाला, पक्षियों

है कि—निःसन्तान वाले, नास्तिक वृत्तिवाले, स्त्रियों को यज्ञ कराने वाले, बकरी रखने वाले चौकीदारी करने वाले, ब्रह्मचर्य को भंग करने वाले, जिन स्त्रियों से संभोग नहीं करना चाहिये उनके साथ संभोग करनेवाले, हिंसा में रुचि रखनेवाले, सावित्री आदि विहित मन्त्रों का तिरस्कार करनेवाले, राजा के दूत आदि, कम तोलनेवाले तथा गलत तराजू रखनेवाले, प्रतिदिन स्वाध्याय का तिरस्कार करनेवाले, बाजा बजाकर जीविका करनेवाले, वेद और शास्त्र को न जानने वाला, वेदों को छिपानेवाला, बोझा उठानेवाला, बहुत भोजन करनेवाला, जो तोते के समान पढ़ी विद्या को कहता हो, पुराण का हर समय पाठ करनेवाला, जिसकी जीविका पतित से हो, जो दूसरी स्त्री को मुख्य समझता हो या दूसरी स्त्री से विवाह किया हो, व्रत ग्रहण कर त्याग दिया हो, बहुत जनों का दूत, सब जगह फिरनेवाला, आत्मा को त्यागनेवाला, दादवाला, तिरस्कार से जीविका करनेवाला, स्त्री को त्यागनेवाला, स्त्री की तरह चेष्टा करनेवाला।

की रक्षा करने वाला, स्त्रोत (जल) को भेदन करने वाला, धन लेकर वृक्ष लगाने वाला, पेड को धर्म से या धन ग्रहण कर लगाने वाला, भेड या भैंसों को पालने वाला। (महिषीत्युच्यते भार्या सा चैव व्यभिचारिणी। यस्यां यो जायते गर्भः स वै माहिषकः स्मृतः ॥) अपनी स्त्रियों में जारों द्वारा जीविका द्वारा जीने वाला, पढने वाले के अनुयोग से द्रव्य प्राप्ति के लिए वेद का उच्चारण करने वाला, ग्रामयाजक, (गावों में यज्ञ करानेवाला) कम्बल आदिको वेचनेवाला, ब्राह्मणों का सुवर्ण चुरानेवाला, शिल्प को करनेवाला, पिता से झगडा करनेवाला, अर्थ और विषय में लगा हुआ, शूद्रयाजक, श्मश्रु (दाढी) से हीन, अविहित जटावाला, (शिर मुंडानेवाला संन्यासी) जिसकी स्त्री रजस्वला हो, पञ्चमहायज्ञ से शून्य, कठोर शाप देनेवाला, नपुंसक, कुष्ठी, जिसके नेत्र अधिक लाल हों, कुब्ज, वामन, झूठा शाप देनेवाला, पुत्र से रहित, झूठी गवाही देनेवाला, दरवानी करनेवाला, जिनको यज्ञ नहीं करना चाहिए उनको यज्ञ करानेवाला, जिसने अपनी आत्मा को वेच दिया हो, परिवेत्तृयाजक[1] (कृतविवाहस्यानूढ ज्येष्ठभ्राता), चोर (सुवर्ण और चाँदी से भिन्न धातु) लोहा आदि बनानेवाला और हिंसक इनको वर्जित करे। इसका मूल हेमाद्रि और पृथ्वीचन्द्रोदय में जानना चाहिये।

(महाभारतमते ब्राह्मणविचारः)

भारते दानधर्मेषु श्राद्धवर्ज्यविप्राधिकारे—कितवो भ्रूणहा यक्ष्मी पशुपालो निराकृतिः। ग्रामप्रेष्यो वार्धुषिको गायकः सर्वविक्रयी ॥ सामुद्रिको राजभृत्यस्तैलिकः कूटकारकः। पित्रा विवदमानश्च यस्य चोपपतिर्गृहे ॥ अभिशस्तस्तथा स्तेनः शिल्पं यश्चोपजीवति। पर्वकारश्च सूची च मित्रध्रुक् पारदारिकः। अव्रतानामुपाध्यायः काण्डपृष्ठस्तथैव च। श्वभिश्च यः परिक्रामेद्यः शुना दष्ट एव च ॥ परिवित्तिस्तथा स्तेनो दुश्चर्मा गुरुतल्पगः। कुशीलवो देवलको नक्षत्रैर्यश्च जीवति ॥ ईदृशा ब्राह्मणा ज्ञेया अपाङ्क्तेया युधिष्ठिर।

भारत में दानधर्मो में वर्जित विप्राधिकार में कहा है कि—जुवारी, गर्भ हत्यारा, राजयक्ष्मारोगी, पशुपालन करने वाला, पढकर (अधीत्य विस्मृते वेदे भवेत् विप्रा निराकृतिः। सात अधिकारे महायज्ञानुष्ठानरहितः दुराकृतिदित्यन्ये।) भूलनेवाला, गांवभर का हरकारा, (डाकिया) सूदखोर, गवैया, सबप्रकार की वस्तु वेचनेवाला, सामुद्रिक (हस्तरेखा) से जीविका चलाने वाला, राजा का नौकर, तेल वेचने वाला, झूठीगवाही देनेवाला, पिता से झगड़ा करनेवाला, जिसके घरमें जार पुरुष का प्रवेश हो वह, कलंकित, चोर, शिल्पजीवी, बहुरूपिया, पर्वकार (ग्रन्थिकार), दर्जी, मित्रद्रोही, परस्त्रीलपट, व्रतरहित मनुष्यों का अध्यापक, हथियार बनाकर जीविका चलाने वाला, जिसका कुत्तेने काटा हो, जिसके छोटे भाई का विवाह हो गया हो ऐसा अविवाहित बड़ा भाई, चोर, चर्म रोगी, गुरुपत्नी गामी, नटका काम करने वाला (कुशी फालः तेन कर्षणं लक्ष्यते, लवः छेदनं तदुभयोपजीवीति भारतटीका) देवमन्दिर में पूजा से जीविका चलाने वाला, नक्षत्रों द्वारा फल बताकर जीनेवाला, ऐसे ब्राह्मण हे युधिष्ठिर, अपांक्तेय (पंक्ति में बैठने लायक नहीं) हैं।

तथा—ऋणकर्ता च यो राजन् यश्च वार्धुषिको नरः। काण्डपृष्ठः स्वशाखां त्यक्त्वा परशाखयापनीतस्तदध्यायी च। क्षत्रियवैश्यवृत्तौ नारदस्तु—तस्यामेव तु यो वृत्तौ ब्राह्मणो वसते रसात्। काण्डपृष्ठश्च्युतो मार्गात् सोऽपाङ्क्त्यः प्रकीर्तितः ॥ इत्याह।

और हे राजन्, जो मनुष्य ऋण करने वाला और सूत से व्याज खाने वाला है, अपनी शाखा को त्याग कर दूसरी शाखा से उपनयन कर अध्ययन करे और दूसरी शाखा का अध्ययन करे। उसको काण्ठपृष्ठ कहते हैं। नारद ने कहा है कि—उसीवृत्ति में ही ब्राह्मण तत्पर हो मार्ग से च्युत हो वह अपांक्तेय काण्ठपृष्ठ ब्राह्मण को कहा है।

हारीतः—शूद्रापुत्राः स्वयंदत्ता ये चैते क्रीतकाः सुताः। ते सर्वे मनुना प्रोक्ताः काण्डपृष्ठा न संशयः ॥

हारीत ने कहा है कि—शूद्रा के पुत्र, स्वयंदत्त और जो पुत्र खरीदे गये हैं उन सबों को मनु ने काण्डपृष्ठ कहा है। इसमें संशय नहीं है।

१—मनुः—३।१७१—दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुते योऽग्रजे स्थिते। परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः ॥

(हेमाद्र्यादिमते ब्राह्मणविचारः)

अन्येऽपि हेमाद्रौ मात्स्ये—त्रिशङ्कून् वर्वरानन्ध्रान् चीनद्राविडकौङ्कणान्। कर्णाटकांस्तथाऽऽभीरान् कलिङ्गांश्च विवर्जयेत् ॥

अन्य भी हेमाद्रि और मत्स्यपुराण में कहा है कि—त्रिशंकु (पर्वतविशेष), वर्वर (वर्णाश्रय विहीन) अन्ध्र, चीन,[1] द्रविड, कौंकण, कर्णाटक, आभीर और कलिंग देश के ब्राह्मणों को भोजन में त्याग दे।

तत्रैव सौरपुराणे—अङ्गवङ्गकलिङ्गांश्च सौराष्ट्रान् गुर्जरांस्तथा। आभीरान् कौङ्कणांश्चैव द्राविडान् दाक्षिणायनान् ॥ आवन्त्यान् मागधांश्चैव ब्राह्मणांस्तु विवर्जयेत्।

वहीं पर सौरपुराण में कहा है कि—अंग, वंग, कलिंग, सौराष्ट्र, गुर्जर, आभीर, कौंकण, द्रविड दक्षिण देशों के, आवन्त्य और मागध देश के ब्राह्मणों को त्याग दे।

चन्द्रिकायां यमः—काणाः कुब्जाश्च षण्ढाश्च कृतघ्ना गुरुतल्पगाः। मानकूटास्तुलाकुटाः शिल्पिनो ग्रामयाजकाः ॥ राजभृत्यान्धबधिरमूकखल्वाटपङ्गवः। वणिजो मधुहर्त्तारो गरदा वनदाहकाः ॥ समयानां च भेत्तारः प्रदाने ये निवारकाः। प्रव्रज्योपनिवृत्ताश्च वृथा प्रव्रजिताश्च ये ॥ यश्च प्रव्रजिताज्जातः प्रवज्यावसितश्च यः। अवकीर्णी च वीरघ्नो गुरुघ्नः पितृदूषकः ॥

चन्द्रिकामें यमने कहा है कि—काणा, कुब्ज, षण्ढ, कृतघ्न, गुरुल्पग, मानकूट—धान्यादिमान में वञ्चना करनेवाला, (अलीकव्यवहारेण ग्रामद्रव्यं यो भक्षयति) तुलाकूट–तुला में कपट करनेवाला, शिल्प से जीविका करनेवाला, गाँव के रहनेवाले अनेकवर्णों को यज्ञ करानेवाला, राजा का नौकर, अन्ध, वधिर, मूक, खल्वाट, पंगु, वैश्य की वृत्ति करनेवाला, मधु को चुरानेवाला, विष देनेवाला, वन जलानेवाला, मर्यादा (आचार) को भेदन करनेवाला, दाम देनेवाले को मना करनेवाला, संन्यासधर्म ग्रहणकर उसे त्यागने वाला, वैराग्य के बिना व्यर्थ का संन्यास लेनेवाला, जो संन्यासी से उत्पन्न, जो संन्यासधर्म को ग्रहण कर उससे भ्रष्ट (अर्थात्-संन्यास धर्म को छोड़कर पहले ही वाले आश्रम में जाना) होनेवाला, स्खलित ब्रह्मचर्य ब्रह्मचारी, त्रेता त्यागी (अग्नि को त्यागने वाला या बालक को मारने वाला) गुरु का हत्यारा और पितृदूषक ये श्राद्ध में गर्हित हैं।

श्राद्धकाशिकायां कात्यायनः—द्विर्नग्नः किलदुश्चर्मा शुल्कोऽतिकपिलस्तथा। छिन्नोष्ठछिन्नलिङ्गश्च नैव केतनमर्हति। द्विर्नग्नः पित्रोर्वंशे त्रिपुरुषं विच्छिन्नवेदाग्निः।

श्राद्धकाशिका में कात्यायन ने कहा है कि—द्विर्नग्न—विद्धशिश्नवाला (अर्थात्-लिंग के मूल में छिद्रकर उसमें सुवर्ण की अंगुठी, मुक्ता आदि बन्धन करने वाला, नपुंसका भेद, खराब चमडे वाला, अत्यन्त सफेद वाला, अत्यन्त कपिलवर्ण वाला, जिनका ओठ कट गया हो और छिन्न लिंग वाला यह ये दाक्षिणात्य में प्रसिद्ध है। ये सब ग्राह्य (पूज्य) नहीं है।

पिता के वंश में तीन पीढी तक वेदाग्नि के विच्छेद को द्विर्नग्न (काणाः कुण्ठाश्च मण्ठाश्च मूकान्धबधिरा जडाः। कुनखाः कुष्ठिनश्चैव द्विर्नग्नवृद्धमेहनाः। द्विर्नग्नाः दुश्चर्माण इति व्याख्यानमनादेयम्, दुश्चर्मणां पृथगुक्तेः। कहते हैं।

१—असभ्य, जंगली, उजड्ड, अनार्यदेश्य। २—काश्मीरं तु समारभ्य कामरूपात्तु पश्चिमे। भोदान्तदेशो देवेशि मानसेशाच्च दक्षिणे ॥ यानसेशादक्षपूर्वे चीनदेशः प्रकीर्तितः। शक्तिसंगमतन्त्रे। ३—अथाभ्यङ्ग समारभ्य कोटिदेशस्य मध्यगे। समुद्रप्रान्तदेशो हि कोङ्कणः परिकीर्तितः ॥ ४—रामनाथं समारभ्य श्रीरङ्गान्तं विलेश्वरि ॥ कर्णाटदेशो देवेशि साम्राज्यभोगदायकः ॥ ५—श्रीकोङ्कणादधो भागे तापीतः पश्चिमे वरे। आभीरदेशो देवेशि विन्ध्यशैले व्यवस्थितः ॥ ६—जगन्नाथात् पूर्वभागात् कृष्णतीरान्तगं शिवे। कलिङ्गदेशः संयोक्तो वाममार्गपरायणः ॥

२—अब्राह्मणास्तु षट् प्रोक्ता ऋषिणा तत्त्ववादिना। आद्यो राजभृतस्तेषां द्वितीयो क्रयविक्रयी। तृतीयो बहुयाज्यः स्यात् चतुर्थो ग्रामयाजकः। पञ्चमस्तु भृतस्तेषां ग्रामस्य नगरस्य च। अनागतां तु यः पूर्वां सादित्यां चैव पश्चिमाम्। नोपासीत द्विजः सन्ध्यां स षष्ठोऽब्राह्मणः स्मृतः ॥

हेमाद्रौ मरीचिः—अविद्धकर्णः कृष्णश्च लम्बकर्णस्तथैव च ।
वर्जनीयाः प्रयत्नेन ब्राह्मणाः श्राद्धकर्मणि ॥

हेमाद्रि में मरीचि ने कहा है कि—जिसका कान छेदा न गया हो, काले वर्ण वाला तथा लंबे कान वाला इन ब्राह्मणों को श्राद्धकर्म में प्रयत्न से त्याग देना चाहिये ।

ब्राह्मे—मूकश्च पूतिनासश्च छिन्नाङ्गश्चाधिकाङ्गुलि । गलरोगी गडुमान् स्फुटिताङ्गश्च सज्वरः । षण्ढतूयरमन्दाश्च श्राद्धेष्वेतान् विवर्जयेत् ॥

ब्रह्मपुराण में कहा है कि—मूक (जो बोल नहीं सकता) जिसके नाक से दुर्गन्ध आती हो, जिसके शरीर का कोई अंग कटा हो । जिसके शरीर में अधिक अंगुली हो, गले का रोगी, अर्थात्-कण्ठमाला आदि, कुब्ज, जिसके शरीर का अंग फूटा हो, ज्वरयुक्त, नपुंसक, युवावस्था में श्मश्रु का न होना और जड इनको श्राद्ध में त्याग दे । कही पर-मन्दकी जगह 'मण्ड' पाठ भी है—मण्डमाने वक्र जंघा वाला ।

(लम्बकर्णकथनम्)

लम्बकर्णं चाह तत्रैव गोभिलः—हनुमूलादधः कर्णौ लम्बौ तु परिकीर्तितौ ।
द्वयङ्गुलौ त्र्यङ्गुलौ शस्ताविति शातातपोऽब्रवीत् ॥

वहीं पर लंबकर्णको गोभिल ने कहा है कि—हनु (ठुड्डी) मूल (स्थल) से नीचे लंबे कान कहे हैं कि दो अंगुल या तीन अंगुल उत्तम है; ऐसा शातातप ने कहा है ।

चन्द्रिकायां यमः—द्वयङ्गुलातीतकर्णस्य भुञ्जते पितरो न तु ॥

चन्द्रिका में यम ने कहा है कि दो अंगुल के बाद जिसके कान हों उसके (तीन अंगुल का उपलक्षण है) पितर उसको दिया हुआ खाते नहीं हैं ।

(क्लीवभेदकथनम्)

षण्ढश्चात्र चन्द्रिकोक्तः सप्तविधो ग्राह्यः । यथा—षण्ढको वातजः षण्ढः पण्डः क्लीबो नपुंसकः । कीलकश्चेति सप्तैवं क्लीवभेदाः प्रकीर्तिताः । पराशरमाधवीये तु चतुर्दशविधा उक्ताः तेषां स्वरूपाणि तत्रैव ज्ञेयानि ।

यहाँ पर चन्द्रिका में कहे गये सात प्रकार के पण्ढ (यस्याप्सु प्लवते वीर्यं ह्लादि मूत्रं च फेनिलम् । पुमान् स्याल्लक्षणैरेतैर्विपरीतस्तु षण्ढकः ॥ का ग्रहण करना चाहिये । जैसे—षण्ढक, वातज पण्ड, पण्ड, क्लीव, नपुंसक और कीलक) देवलः—पण्डको वातजः पण्डः पण्डः क्लीवो नपुंसकः । कीलकश्चेजि पट्कोऽयं क्लीवभेदो विभावितः ॥ ये सात ही नपुंसक के भेद हैं ।

पराशरमाधवीय में तो चौदह[1] प्रकार के कहे हैं उनके स्वरूपों को वहाँ से ही जानना चाहिये ।

(यज्ञकर्तुरन्नग्रहणविचारः)

चन्द्रिकायां शातातपः—अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैर्ये यजन्त्यल्पदक्षिणैः । तेषामन्नं न भोक्तव्यमपाङ्क्तास्ते प्रकीर्तिताः ॥ एतच्च शक्तौ सत्याम् ।

चन्द्रिका में शातातप का वचन है कि—अल्प (थोडी) दक्षिणाओं से 'अग्निष्टोम' आदि यज्ञों को जो कहते हैं उनका अन्न नहीं खाना चाहिये । क्योंकि वे अपांक्तेय हैं । यह तो शक्तिपरक है ।

१—नारदः—चतुर्दशविधः शास्त्रे षण्ढो दृष्टो मनीषिभिः । चिकित्सश्चाति चिकित्सश्च तेषामुक्तो विधिः क्रमात् । निसर्ग षण्ढो ब्रध्नश्च पक्षपण्डस्तथैव च । अभिशापाद् गुरो रोगाद्देवक्रोधात्तथैव च ॥ ईर्ष्याषण्ढश्च सेव्यश्च वातरेता मुखे भगः । आक्षिप्तो मोघबीजश्च शालीनोऽन्यापतिस्तथा ॥ निसर्गषण्ड—स्वभाव से लिंग और अंडकोष से रहित । ब्रध्नः—छिन्नमुष्कः । पक्षषण्ढ —पञ्चदशदिनानि स्त्रियमासेव्य सकृद्भोगक्षमः पक्षषण्ढः । यस्येर्ष्यया पुंस्त्वमुत्पद्यते स ईर्ष्याषण्ढः । स्त्र्युपचारविशेषेण पुंस्त्वशक्तिर्यस्य स सेव्यषण्ढः । वातोपहतरेतस्को वातरेताः । यस्य मुख एव पुंस्त्वशक्तिः न योनौ स मुखे भगः । रेतो निरोधात्षण्ढीभूत आक्षिप्तषण्ढः । मोघबीजी गर्भाधानासमर्थबीजी । अत्र प्रगल्भतया क्षोभाद्वा नष्टपुंस्त्वः शालीनः । भार्या भिन्नस्तेन पुरुषभावो यस्य सोऽन्यापतिः ।

अपरार्के भारते—अव्रती कितवः स्तेनः प्राणिविक्रयकोऽपि वा ।
पश्चाच्चेत्पीतवान्सोमं सोऽपि केतनमर्हति ॥

अपरार्क में भारत ने कहा है कि—जिसने वेद (विद्यास्नातक, व्रतस्नातक और विद्याव्रतस्नातक) व्रत को नहीं किया है । जुवारी है, चोर है या प्राणि को विक्रय करने वाला है इन सबों ने बाद में सोमयोगमें सोमपिया हो वे भी निमन्त्रण (श्राद्ध) के योग्य हैं ।

श्राद्धदीपकलिकायां यमः—अपत्नीकश्च वर्ज्यः स्यात्सपत्नीकोऽप्यनग्निकः ।

श्राद्धदीपकलिका में यम ने कहा है कि—अपत्नीक को (अर्थात्—जिसको स्त्री (पत्नी) न हो और सपत्नीक हो पर वह अग्निहोत्री (अर्थात्-सर्वाधानी) न हो तो श्राद्ध में वर्जित हैं ।

(प्रतिमादिविक्रयकरणे विचारः)

तत्रैवाश्वलायनः—प्रतिमाविक्रयं यो वै करोति पतितस्तु सः । जीवनार्थं परास्थीनि धृत्वा तीर्थं प्रयाति यः ॥ मातापित्रोर्विना सोऽपि पतितः परिकीर्तितः ॥

वहीं पर आश्वलायन ने कहा है कि—जो निश्चय रूप से प्रतिमा को बेचता है वह पतित है । माता और पिता की अस्थियों के बिना जो जीवनयापन के लिए दूसरे की अस्थियों को ग्रहण कर तीर्थ में ले जाता है वह भी पतित कहा जाता है ।

तत्रैव जातूकर्ण्यः—यत्र मातुलजोद्वाही यत्र वा वृषलीपतिः । श्राद्धं न गच्छेत्तद्विप्राः कृतं यच्च निरामिषम् ॥

वहीं पर जातूकर्ण्य ने कहा है कि—हे विप्राः, जहाँ पर मामा की कन्या को विवाह करनेवाला उसका पति हो या जहाँ पर शूद्रा का परिणयन करने वाला उसका पति हो वह श्राद्ध तथा मांस रहित श्राद्ध पितरों को नहीं मिलता है ।

पितृपुत्रौ भ्रातरौ द्वौ निरग्निं गुर्विणीपतिम् । सगोत्रप्रवरं चैव श्राद्धेषु परिवर्जयेत् ॥

पिता और पुत्र को, सगे दो भाई को, जो अग्निहोत्री न हो, जिसकी स्त्री गर्भवाली हो, समान गोत्र और प्रवर वाले को श्राद्धों में त्याग करे ।

(शंखचक्रयङ्कनग्रहणे विचारः)

बृहन्नारदीये—शङ्ख चक्रं मृदा यस्तु कुर्यात्तप्तायसेन वा । स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः ॥ शङ्खचक्राद्यङ्कनं च गीतनृत्यादिकं तथा । एक जातेरयं धर्मो न जातु स्याद् द्विजन्मनः ॥ तेन ये तप्तमुद्रादिविधयस्ते शूद्रविषया इति ।

बृहन्नारदीय में कहा है कि—जो ब्राह्मण मृत्तिका द्वारा या तप्त (तपे हुए) लोहे से शंख और चक्र को लगाता है । वह ब्राह्मण शूद्र के तुल्य सब कर्मों में बाहर करने योग्य है ।

शंख, चक्र आदिका अंकित करना तथा गीत-नृत्य आदि कर्म एकजाती (शूद्र) का धर्म है । ब्राह्मण (शातातपः—अङ्गेषु नाङ्कयेद्विप्रो देवतायुधलाञ्छनैः । अङ्कयेद्यदि वा मोहात् पतत्येव न संशयः ॥) का नहीं है । इससे जो तप्त मुद्रा आदि विधियाँ हैं वे शूद्रविषयक हैं ।

पृथ्वीचन्द्रोदये—शिवकेशवयोरङ्कान् शूलचक्रादिकान् द्विजः । न धारयेत मतिमान् वैदिके वर्त्मनि स्थितः ॥ इत्याश्वलायनोक्तेश्च । नृत्यश्चोदराद्यर्थं निषिद्धमिति श्रीधरस्वामी । अन्येऽपि निषिद्धा निबन्धेषु ज्ञेया इति दिक् ।

पृथ्वीचन्द्रोदय में कहा है कि—वैदिकमार्ग में स्थित बुद्धिमान् ब्राह्मण शिव और केशव के शूल, चक्र आदि के अंकों को न धारण करे । यही आश्वलायन ने भी कहा है । श्रीधरस्वामी ने कहा है कि उदर (पेट) के लिए नृत्य निषिद्ध है । अन्य भी निषिद्ध निबन्धों में जानना चाहिये ।

अत्र विप्राणां ग्राह्यत्वोक्त्यैव तद्वर्ज्यानां निषेधे सिद्धे पुनर्वर्ज्यपरिगणनं निषिद्धवर्ज्यनिर्गुणप्राप्त्यर्थमिति विज्ञानेश्वरः ।

यहाँ पर ग्राह्य ब्राह्मणों के कहने से ही वर्जित ब्राह्मणों का निषेध सिद्ध होने से फिर से त्याज्यों का परिगणन, इसलिए है कि वर्ज्य भिन्न निर्गुणों का भी प्राप्त्यर्थ है—यह विज्ञानेश्वर ने कहा है।

(कुष्ठिकाणादेरपवादकथनम्)

कुष्ठिकाणादेरपवादो हेमाद्रौ वसिष्ठः—अपि चेन्मन्त्रविद्युक्तः शारीरैः पङ्क्तिदूषणैः।
अदूष्यं तं यमः प्राह पङ्क्तिपावन एव सः॥
क्वचिद्विप्राणां जातिमात्रेण ग्राह्यत्वमुक्तम्।

कुष्ठी, काणा आदि के अपवाद को हेमाद्रि में वसिष्ठ ने कहा है कि—शरीर में होनेवाले पंक्तिदूषकों से दूषित भी हो यदि वह वेद का जानकार है उसे अदूष्य (दोष रहित) यम (कर्मविपाक के जानकार) ने कहा है और वह 'पंक्तिपावन ही है। कहीं ब्राह्मणों का जातिमात्र से ग्रहण करना कहा है।

(गयास्थितब्राह्मणानामेव भोजने विचारः)

चन्द्रिकायामाग्नेये—यदि पुत्रो गयां गच्छेत्कदाचित्कालपर्ययात्। तानेव भोजयेद्विप्रान् ब्राह्मणा ये प्रकल्पिताः॥ ब्रह्मणा कृतसंस्थाना विप्रा ब्रह्मसमाः स्मृताः। अमानुषा गयाविप्रा ब्रह्मणा ये प्रकल्पिताः। तेषु तुष्टेषु सन्तुष्टाः पितृभिः सह देवताः॥

स्मृतिचन्द्रिका में अग्निपुराण का वाक्य है कि—कदाचित् (कभी) समय के प्रभाव से यदि पुत्र गया में गया हो तो उन्हीं ही ब्राह्मणों को भोजन करावे जो गया में—कल्पित के श्राद्ध अधिकारी हैं।

ब्रह्मा के द्वारा गया में उत्पन्न किये गये गया के ब्राह्मण ब्रह्मा के सदृश कहे गये हैं। वे ब्राह्मण जिनको ब्रह्मा ने रचा है वे ब्राह्मण अमानुष (मनुष्य नहीं) हैं। उनके प्रसन्न होने पर पितरों के साथ देवता प्रसन्न होते हैं।

(श्रीपितामह अक्षयवटश्राद्ध एव ब्राह्मणभोजनविचारः)

तत्रैव—न विचार्यं कुलं शीलं विद्या च तप एव च। पूजितैस्तैस्तु सन्तुष्टा देवाः सपितृगुह्यकाः॥ गयायां निर्गुणा अपि ते एव भोज्या इति हेमाद्रिः। अक्षयवटश्राद्धे एव तन्नियमो नान्यत्रेति त्रिस्थलीसेतौ पितामहचरणाः।

वहीं पर कहा है कि—कुल, शील, विद्या तथा तप का विचार न कर ब्राह्मणों को पूजन (अर्चन) से उनके पितर और गुह्यक[२] (धनविशेष की रक्षा करनेवाले) के साथ देवता सन्तुष्ट होते हैं।

गया में तो गुणहीन ब्राह्मण भी जो हैं वे भी भोज्य हैं—यह हेमाद्रि में कहा है। यह उपरोक्त नियम अक्षयवटश्राद्ध के लिए ही है, अन्यत्र नहीं है यह बात त्रिस्थलीसेतु में पितामहचरण ने कहा है।

(तीर्थेषु ब्राह्मणपरीक्षाविचारः)

पृथ्वीचन्द्रोदयेऽपि पाद्मे—तीर्थेषु ब्राह्मणं नैव परीक्षेत कदाचन।
अन्नार्थिनमनुप्राप्तं भोज्यं तं मनुरब्रवीत्॥

पृथ्वीचन्द्रोदय में भी पद्मपुराण का वचन है कि—कभी भी तीर्थों में ब्राह्मण की परीक्षा न करे। अन्न की इच्छावाला व्यक्ति के प्राप्त होने पर उसको भोजन करा दे—यह मनु ने कहा है।

स्कान्देऽपि—ब्राह्मणान्न परीक्षेत तीर्थे क्षेत्रनिवासिनः।

स्कन्दपुराण में भी कहा है कि—तीर्थक्षेत्र में निवास करने वाले ब्राह्मणों की तीर्थ में परीक्षा न करे।

१—वेदार्थवित्प्रवक्ता च ब्रह्मचारी सहस्रदः। शतायुश्चैव विज्ञेया ब्राह्मणाः पङ्क्तिपावनाः॥ (मनु० अ० ३, श्लो० १८७)।

२—देवयोनि विशेषः। स तु कुवेरानुचरः निधिरक्षको मणिभद्रादियक्षभेदः। 'निधिं रक्षन्ति ये यक्षास्ते स्युर्गुह्यसंज्ञकाः। ब्रह्मवैवर्ते ब्रह्मखण्डे—५।६०। आविर्बभूव कृष्णस्य गुह्यदेशात्ततः परम्। पिङ्गलश्च पुमानेकः पिङ्गलैश्च गणैः सह। आविर्भूता यतो गुह्यात् तेन ते गुह्यकाः स्मृताः॥ महाभारते—३।३।१०। में भी है।

(पित्र्ये कर्मणि ब्राह्मणपरीक्षा।)

मनुः—(अं० ३, १४९) न ब्राह्मणं परीक्षेत दैवे कर्मणि धर्मवित्। पित्र्ये कर्मणि तु प्राप्ते परीक्षेत प्रयत्नतः॥ असम्भवपरमेतदिति मेधातिथिः।

मनु ने कहा है कि—धर्म के जानकार को चाहिये कि दैवकर्म में ब्राह्मण की परीक्षा न करे। पितृ-कार्य (कुल, शील आदि) कर्म के उपस्थित होने पर तो प्रयत्न से परीक्षा करे। मेधातिथि ने कहा है कि यह 'असम्भव परक' है।

(ब्राह्मणस्य श्रेष्ठता कथनम् तथा कूटकाणादीनां ब्राह्मणानां च श्राद्धभोजने विचारः)

हेमाद्रौ व्यासः—गायत्रीसारमात्रोऽपि वरं विप्रः सुयन्त्रितः। नायन्त्रितश्चतुर्वेदी सर्वाशी सर्व-विक्रयी॥ काणाः कूटाश्च कुब्जाश्च दरिद्रा व्याधितास्तथा। सर्वे श्राद्धे नियोक्तव्या मिश्रिता वेदपारगैः॥

हेमाद्रि में व्यास ने कहा है कि—गायत्री के तत्त्वमात्र को जाननेवाला संयमी ब्राह्मण भी उत्तम है। जिसकी इन्द्रियाँ वश में न हो ऐसा ब्राह्मण चतुर्वेद का ज्ञाता हो, सब भक्षण करनेवाला और सब वस्तुओं का विक्रय करनेवाला उत्तम नहीं है।

एक आँख से हीन, कूट[1] (खलपुरुष स्फुट अर्थ से भी प्रसन्न नहीं करता है। या कुछ नहीं देता है) मायानिश्चलयन्त्रेषु कैतवानृतराशिषु। अयोधने शैलशृङ्गे सीराङ्गे कूटमस्त्रियाम्॥ अमर०)। कुब्ज (कूबड), दरिद्र और रोगी इन सबों को वेद के पारंगतों के साथ दैविकश्राद्ध में (ही) नियुक्त करना चाहिए।

(विप्रनिमन्त्रणप्रकारः)

अथ विप्रनिमन्त्रणम्। चन्द्रिकायां वाराहे—वस्त्रशौचादि कर्तव्यं श्वः कर्तास्मीति जानता। स्थानोपलेपनं कृत्वा ततो विप्रान्निमन्त्रयेत्॥ दन्तकाष्ठं च विसृजेद् ब्रह्मचारी शुचिर्भवेत्।

अब ब्राह्मण का निमन्त्रण कहते हैं। चन्द्रिका में वाराह का वचन है कि—कल मैं श्राद्ध को करूँगा—इस बात को जानता हुआ कर्ता वस्त्रों की पवित्रता आदि कर जिस स्थान (जगह) में श्राद्ध करना है उसका उपलेपन कर ब्राह्मणों को निमन्त्रण (निमन्त्रण तो पहले दिन रात में करे या असंभव में पर दिन) करे। दन्तकाष्ठ (दतवन) का त्याग कर ब्रह्मचारी और पवित्र रहे।

(द्विजानां निमन्त्रणे महत्वपूर्णविचारः)

तत्रैव प्रचेताः— दक्षिणं चरणं विप्रः सव्यं वै क्षत्रियस्तथा।
पादावादाय वैश्यो द्वौ शूद्रः प्रणतिपूर्वकम्॥

वहीं पर प्रचेता ने कहा है कि—ब्राह्मण दाहिना चरण (दक्षिणचरणस्पर्श) जानुदेश में करे (मात्स्ये—दक्षिणं जानुमालभ्य त्वं मयाऽत्र निमन्त्रितः। मयूखे तु चरणौ गृहीत्वा प्रसादनमुक्तम्। तदुत्तरं निमन्त्रणं कार्यमिति शिष्टाः)। क्षत्रिय बायाँ चरण, वैश्य दोनों पैरों को और वैश्य प्रणति (नमस्कार) पूर्वक निमन्त्रण दे।

बृहस्पतिः—उपवीती ततो भूत्वा देवार्थं तु द्विजोत्तमान्।
अपसव्येन पित्र्येऽथ स्वयं शिष्योऽथवा सुतः॥

बृहस्पति ने कहा है कि—तदनन्तर उपवीती (सव्य) होकर देवकार्य के लिए उत्तम ब्राह्मणों को और पित्र्यकार्य में अपसव्य से स्वयं, शिष्य या पुत्र निमन्त्रण दे।

प्रचेताः—सवर्णं प्रेषयेदाप्तं द्विजानां तु निमन्त्रणे।

प्रचेता ने कहा है कि—द्विजों के निमन्त्रण में तो आत्मीय अपने वर्ण के ही व्यक्ति को भेजना चाहिये।

१—हृदयं यदि वा पृष्ठमुन्नतं क्रमशः सरुक्। क्रुद्धो वायुर्यदा कुर्यात्तदा तं कुब्जमादिशेत्।

२—श्राद्धभूमिं परिगृह्य गोमयादिना तत्स्थाने लेपनं कृत्वा वस्त्रशुध्यादिकमह्नि कृत्वा रात्रौ विप्रान्निमन्त्रयेत् इति स्मृतिमुक्ताफले।

(राजकार्यादौ नियुक्तस्य श्राद्धविचारः)

पृथ्वीचन्द्रोदये स्कान्दे—राजकार्ये नियुक्तस्य बन्धनिग्रहवर्तिनः ।
व्यसनेषु च सर्वेषु श्राद्धं विप्रेण कारयेत् ॥

पृथ्वीचन्द्रोदय में स्कन्दपुराण का कथन है कि—राजकीयकार्य में नियुक्त का, बन्धन में निग्रह[1] का और सब व्यसनों में संलग्नों का श्राद्ध ब्राह्मण के द्वारा करावे ।

(ब्रह्मणस्यान्नं वृषलस्यान्नं च कस्मिन् दशायामभोज्यं भवति)

चन्द्रिकायां यमः—अभोज्यं ब्राह्मणस्यान्नं वृषलेन निमन्त्रितम् ।
तथैव वृषलस्यान्नं ब्राह्मणेन निमन्त्रितम् ॥

चन्द्रिका में यम का कथन है कि—वृषल (शूद्र) के द्वारा निमन्त्रण ब्राह्मण को अभोज्य (स्मृतौ—अभोज्यं ब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियाद्यैर्निमन्त्रितम् । तथैव क्षत्रियादीनां वृषलेन निमन्त्रितम् ॥) है । वैसे ही शूद्र का अन्न है जो कि ब्राह्मण ने निमन्त्रण किया हो ।

(सप्तादिश्रोत्रियाणां निमन्त्रणकथनम्)

तत्रैव पैठीनसिः—सप्त पञ्च द्वौ वा श्रोत्रियान्निमन्त्रयेत् । आश्वलायनगृह्यसूत्रे—(अ० ४ ख० १ सू० २ पृ० १२३) 'एकैकमेकैकस्य द्वौ द्वौ त्रींस्त्रीन्वा वृद्धौ फलभूयस्त्वम्, द्वाविति वृद्धिश्राद्धे । गौतमः—नवावरान्भोजयेदयुजो वा यथोत्साहम् ।

वहीं पर पैठीनसि ने कहा है कि—पार्वणश्राद्ध में सात, पांच या दो वेदपाठियों को निमन्त्रण करे । आश्वलायनसूत्र में भी कहा है कि—एक एक के लिए (पितरों के लिए) दो दो या तीन तीन ब्राह्मण को निमन्त्रण दे । ब्राह्मण वृद्धि में फलाधिक्य ही होता है (अन्यथा महाकर्मवाली विधि का आनर्थक्य उपस्थित हो जायगा) । दो क्यों कहा—उसका उत्तर यों है कि—पित्र्यकार्य में ब्राह्मणयुग्म होने चाहिये । गौतम ने कहा है कि—उत्तम नौ या अयुग्म ब्राह्मणों को यथाविभव निमन्त्रण दे ।

याज्ञवल्क्यः—(आचारा० श्लो० २८८) द्वौ दैवे प्राक् त्रयः पित्र्ये उदगेकैकमेव वा ।
मातामहानामप्येवं तन्त्रं वा वैश्वदेविकम् ॥

याज्ञवल्क्य ने कहा है कि—देवकार्य में प्राङ्मुख दो ब्राह्मण, पित्र्यकार्य में तीन अथवा दोनों कार्य उदङ्मुख एक एक ही ब्राह्मण, और मातामहों का भी वही इसीतरह अथवा वैश्वदेव वाला विधान से करे ।

दीपकलिकायां पराशरः—संपत्तावथ पात्राणामेकैकस्य त्रयस्त्रयः ।
पित्रादेर्ब्राह्मणाः प्रोक्ताश्चत्वारो वैश्वदेविके ॥

दीपकलिका में पराशर का कथन है कि—संपत्ति के रहने पर और सुपात्र ब्राह्मणों के प्राप्त होने पर एक एक पितर के लिए तीन तीन और वैश्वदेव में चार ब्राह्मण कहे गये हैं ।

वृद्धयाज्ञवल्क्यः—दशैकं पञ्च वा विप्रान् पार्वणे विनियोजयेत् । अत्र वैश्वदेवे द्वौ चतुरो वोपवेश्य पित्र्यादीनामेकैकस्य स्थाने एकं त्रीन् पञ्च सप्त नव वोपवेशयेदिति निष्कृष्टोऽर्थः ।

वृद्धयाज्ञवल्क्य ने कहा है कि—ग्यारह या पांच ब्राह्मणों को पार्वण में नियुक्त करे । यहाँ पर वैश्वदेव में दो या चार ब्राह्मणों को बैठाकर पिता आदियों के एक एक स्थान पर एक, तीन, पांच, सात या नौ बैठा दे । यह एकमात्र अर्थ है ।

मनुः-(अ.३,१२५,१२६) द्वौ दैवे पितृकृत्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा ।
भोजयेत्सुसमृद्धोऽपि न प्रसज्येत विस्तरे ॥
सत्क्रियां देशकालौ च शौचं ब्राह्मणसम्पदः । पञ्चैतान् विस्तरो हन्ति तस्मान्नेहेत विस्तरम् ॥

१—मनुः—७।१७५— निग्रहं प्रकृतीनां च कुर्याद् योरिबलस्य च । उपसेवेत तं नित्यं सर्वयत्नैर्गुरुं यथा ।

मनु ने कहा है कि—देवकार्य में दो, (अनेक शाखाओं के ब्राह्मण रहने पर शाखाभेद से विभाग करे), पितृकार्य में तीन या देव और पितृकार्य में एक एक ब्राह्मण को भोजन करावे। सुसमृद्ध (धनी) होनेपर भी श्राद्ध में विस्तार न करे।

सत्कार, देश और काल, पवित्रता और ब्राह्मण प्राप्त होना इन पांचों को विस्तार नाश करता है। इसलिये विस्तार की इच्छा न करे।

पृथ्वीचन्द्रोदये शातातपः—द्वौ दैवेऽथर्वणौ विप्रौ प्राङ्मुखावुपवेशयेत्।
पित्र्ये तूदङ्मुखांस्त्रींश्च बह्वृचाध्वर्युसामगान्॥

पृथ्वीचन्द्रोदय में शातातप ने कहा है कि—देवकार्य में अथर्ववेदी दो ब्राह्मणों को पूर्वाभिमुख बैठावे। पितृकार्य में बह्वृच (ऋग्वेदी) अध्वर्यु (यजुर्वेदी) और सामग (सामवेदी) इन तीन ब्राह्मणों को उत्तराभिमुख बैठावे।

अत्यशक्तौ हेमाद्रौ देवलः-एकेनापि हि विप्रेण षट्पिण्डं श्राद्धमाचरेत्।
षडर्घ्यान् दापयेत्तत्र षड्भ्यो दद्यात्तथा हविः॥

अत्यन्त अशक्ति में (अनेक ब्राह्मणों के भोजन में पर्याप्त अन्न के अभाव में या ब्राह्मण के अभाव में अन्नाभावे द्विजाभावे तीर्थे चापि महालये। एकस्मिन् दीयते चान्नमर्घ्यान् पिण्डान् पृथक् पृथक्॥) हेमाद्रि में देवल ने कहा है कि—एक ही ब्राह्मण से भी छः पिण्डवाला श्राद्ध करे। उसमें छः अर्घ्य दे तथा छः बार (एकब्राह्मणतृप्तिसमर्थनानाजातीयान्नसमुदायादेकपात्रेऽनेकपात्रे वा नानाजातीयमन्नमुद्धृत्य षडन्नसमुदायान् परिविश्य एकस्मै पित्रादये एकैकसमुदायं निवेदयेत्। अथवा एकस्मादन्नसमुदायात्स्तोकं स्तोकमुद्धृत्य बुद्ध्यैव पृथक्कृत्य निवेदयेत्) वैसे ही हवि दे।

गोभिलः—यद्येकं भोजयेच्छ्राद्धे छन्दोगं तत्र भोजयेत्।
ऋचो यजूंषि सामानि त्रितयं तत्र विद्यते॥

गोभिल ने कहा है कि—यदि श्राद्ध में एक ही ब्राह्मण को भोजन कराना है तो छन्दोग (सामवेदी) को करावे। क्योंकि उसमें ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद ये तीनों रहते हैं।

(वैश्वदेवे विशेषमाह)

अत्र वैश्वदेवे विशेषमाह तत्रैव वसिष्ठः—यद्येकं भोजयेच्छ्राद्धे दैवं तत्र कथं भवेत्। अन्नं पात्रे समुद्धृत्य सर्वस्य प्रकृतस्य च॥ देवतायतने कृत्वा ततः श्राद्धं समाचरेत्। प्रास्येदग्नौ तदन्नं तु दद्याद्वा ब्रह्मचारिणे॥

एतच्च सपिण्डीकरणवर्जं ज्ञेयम्, 'नत्वेवैकं सर्वेषां' काममनाद्ये' इत्याश्वलायनोक्तेः। (अ०४।ख० ७ सू० २, ३) अस्यार्थ उक्तो नारायणवृत्तौ—आद्यं सपिण्डकरणं तद्वर्जेषु (सर्व) श्राद्धेषु कामं त्रयाणामेकं भोजयेत, सपिण्डीकरणे तु नियतं त्रिभिर्भाव्यम् इति। अनाद्येऽभोजने पार्वणवर्जिते वा आमहेमश्राद्धादौ वा। अन्नाभावे चेति व्याख्यान्तरं तत्रैव ज्ञेयम्।

कारिकाऽपि—दैवे पित्र्येऽथ वैकैकं सपिण्डीकरणं विना। इति।

यहाँ पर वैश्वदेव में विशेष वहीं पर वसिष्ठ ने कहा है कि—यदि एक ब्राह्मण को श्राद्ध में भोजन करावे तो वहीं पर देवकार्य कैसे होगा। श्राद्धीय सब अन्न को एक पात्र में निकालकर (वैश्वदेविक ब्राह्मण भोजन पर्याप्त अन्न को पात्र में परिवेषण कर) उस अन्न को देवता के मन्दिर में रखकर फिर से श्राद्ध का प्रारम्भ करे। यह भोजनाभ्यनुज्ञानन्तर कर उस अन्न को अग्नि में गिरादे या ब्रह्मचारी को दे।

१—'आमैर्वा फलमूलैर्वा प्रदानमात्रं हिरण्येन वा प्रदानमात्रम्' इति बौधायनः। अन्ये त्वनाद्ये दुर्भिक्ष इति। अन्ये त्वनाद्य आद्याभावेऽन्नाभावे सम्पदभावः। (आश्व० गृ० पृ० १२५)

और यह (दैव और पित्र्य में एक ही ब्राह्मण निमन्त्रण है—यह अर्थ है ।) सपिण्डीकरण में त्याज्य जानना चाहिये । क्योंकि आश्वलायन ने कहा है कि—सपिण्डीकरण को छोड़कर करना चाहिये ।

उसका अर्थ नारायण वृत्ति में कहा है कि—आद्य-सपिण्डीकरण श्राद्ध को छोड़कर अन्य श्राद्धों में एक को भोजन करावे । अन्य ने तो कहा है कि—अनाद्ये पार्वणवर्जिते यह व्याख्या की है । इच्छा से इतर सब श्राद्धों में तीन के लिए एक व्यक्ति को भोजन करा दे । सपिण्डीकरण में तो निश्चित तीन व्यक्ति होने चाहिये । अनाद्य-आमश्राद्ध या हेमश्राद्ध में कहा है । अन्नाभाव (सम्पदाभाव में और दुर्भिक्ष) में पार्वण को छोड़कर एक को भोजन करावे ।

कारिका में भी कहा है कि—सपिण्डीकरण के विना देव और पितृश्राद्ध में एक एक ब्राह्मण भोजन करावे ।

अत्रकविप्रे साग्नेर्विशेषमोह पृथ्वीचन्द्रोदये प्रचेताः—एकस्मिन् ब्राह्मणे दैवे साग्नेरग्निर्भवेत्सदा ।
अनग्नेः कुशमुष्टिः स्यात् श्राद्धकर्मणि सर्वतः ॥

यहाँ पर एक ब्राह्मण में साग्निक को विशेष पृथ्वीचन्द्रोदय में प्रचेता ने कहा है कि—देव कार्य में साग्निक (अग्निहोत्री एक ब्राह्मण) और निरग्निक के स्थानापन्न कुशमुष्टि श्राद्धकर्म में सर्वत्र कहा है ।

(विप्रालाभे विचारः)

सर्वथा विप्रालाभे तत्रैव हेमाद्रौ सत्यव्रतः—निधाय दर्भनिचयमासनेषु समाहितः ।
प्रैषानुप्रैषसंयुक्तं सर्वं श्राद्धं प्रकल्पयेत् ॥

अत्रानत्यभावात्सत्रे ऋत्विक्कार्ये यजमानविधौ न दक्षिणा' इति केचित् । तन्न, अदृष्टार्थायाः दक्षिणायाः प्राप्तेः—सर्वं तत्त्रिजटे तुभ्यं यच्च श्राद्धमदक्षिणम् । इति पाद्मात्, विदध्याद्धौत्रमन्यश्चेद्दक्षिणार्द्धहरो भवेत् । स्वयं चेदुभयं कुर्यादन्यस्मै प्रतिपादयेत् । इति छन्दोगपरिशिष्टाच्च । एवं यतिश्राद्धेऽपि ।

सर्वथा विप्र के अलाभ में वहीं पर हेमाद्रि में सत्यव्रत ने कहा है—कुशाओं के समूह को समाहित मन से आसनों पर रखकर प्रैष[1] और अनुप्रैष से युक्त सब श्राद्ध करे ।

कोई कहते हैं कि—यहाँ पर अन्य के अभाव से 'सत्रयाग'[2] की तरह ऋत्विक् कार्य में यजमान की

१—अध्वर्युनामक ऋत्विक् दर्शपूर्णमास याग के प्रसंग में ब्रह्मा नामक ऋत्विक् से कहता है कि—'ब्रह्मन्नपः प्रणेष्यामि' हे ब्रह्मन्, मैं जल का प्रणयन (जल प्रणीता पात्र में गिराऊँगा) करूँगा । 'ॐ प्रणय' ऐसी ब्रह्मा अध्वर्यु को आज्ञा देता है । अध्वर्यु प्रणीतापात्र को गार्हपत्य-आवहनीय के समीप में चुपचाप ले जाकर आहवनीय के उत्तर तरफ न बहुत दूर न बहुत समीप 'कस्त्वा' इस मन्त्र से रखता है । इसी का नाम प्रैष है । (कात्यायन श्रौत० वृत्ति० अ० २ सू० २, ३) तद्वत् ब्रह्मन् प्रस्थास्यामि, ॐ प्रतिष्ठ, ब्रह्मन् बर्हिः प्रोक्षिष्यामि, ॐ प्रोक्ष, ब्रह्मन्, पूर्वं परिग्रहं परिग्रहीष्यामि, ब्रह्मन्, सामिधेनीरनुवक्ष्यामि, प्रजापतेऽनुब्रूहि यज्ञम् इत्यादि से ब्रह्मा आज्ञा देता है–इसी को प्रैष कहते हैं । अनुप्रैष—उसको कहते हैं—प्रैष के अनन्तर दूसरा व्यक्ति आज्ञा देता है—हविर्होतरि यज—अर्थात्—अध्वर्यु मैत्रावरुण ऋत्विक को प्रैष देता है और मैत्रावरुण होता नामक ऋत्विक के प्रति अनुप्रैष करता है । इत्यादि ।

२—द्वादशाह का स्वरूप निरूपण करते हैं । वह दो प्रकार का है । पहला सत्ररूप दूसरा अहीन रूप । सत्रात्मक ब्राह्मण कर्तृक ही होता है । यहाँ पर सब यजमान ही होते हैं । अतः सत्रजन्य फल सब यजमानों को ही होता है । अतः इस यज्ञ में दक्षिणा नहीं होती है । सब यजमान होने पर भी गृहपति नामक अन्य यजमान का कार्य करता है अन्य ब्रह्मत्व कार्य करते हैं । दीक्षादि और यजमान का कार्य सबों को ही है । इसका विशेष विवरण कात्यायन श्रौतसूत्र की भूमिका को देखिये । प्रसंगवशक यज्ञों में ब्राह्मणों का ही अधिकार है । गृहपति (सत्रे यजमानकार्यं त्यागादिकं यः करोति स गृहपतिरित्युच्यते ।) कार्य में क्षत्रिय और वैश्य को सत्रयज्ञ में अधिकार नहीं है । सहस्र संवत्सर साध्य 'विश्वसृङ्नामक सत्र में मनुष्यों को अधिकार नहीं है । क्योंकि उतनी आयु प्राप्त होना असंभव है । मनुष्यों की सहस्र संवत्सर पर्यन्त की आयु पहले भी नहीं थी न आगे है या मनुष्यों को अधिकार सत्र यज्ञों में है नहीं । क्योंकि शरीर अनित्य है । यह भी नियम नहीं है कि मनुष्यों की सौ वर्ष की ही आयु हो । रसायन आदि के द्वारा भी सहस्र संवत्सर की आयु प्राप्त होना

विधि में दक्षिणा नहीं होती है। यह उचित नहीं है। क्योंकि अदृष्टार्थ के लिये दक्षिणा की प्राप्ति होती है। पद्मपुराण में कहा है कि—हे त्रिजटे, जो श्राद्ध दक्षिणा से हीन होता है वह सब तुम्हारे लिए होता है।

और छन्दोगपरिशिष्ट में कहा है कि—यदि अन्य व्यक्ति होत्रकर्म को करे तो उसको आधी दक्षिणा दे। यदि स्वयं ही दोनों कर्म करे तो दूसरे लिए दे दे। इसप्रकार यतिश्राद्ध में भी करे।

(यज्ञादिसंभारेषु दर्भसंख्याविचारः)

कात्यायनः—यज्ञवस्तुनि मुष्टौ च स्तम्बे दर्भवटौ तथा।
दर्भसंख्या न विहिता विष्टरास्तरणेषु च॥

कात्यायन ने कहा है कि—यज्ञ की सामग्री में, मुष्टि (कुशा के समूह) में, स्तंभ (गुच्छ) और दर्भ वटु में, विष्टर एवं आस्तरण (बिछौना) में दर्भ की संख्या नहीं कही है।

(मातृश्राद्ध विप्रालाभे विचारः)

मातृश्राद्धे तु विप्रालाभे सुवासिन्योऽपि भोजनीया इत्याहापरार्के वृद्धवसिष्ठः—मातृश्राद्धे तु विप्राणामलाभे पूजयेदपि। पतिपुत्रान्विता भव्या योषितोऽष्टौ कुलोद्भवाः॥ इति। अष्टाविति वृद्धिश्राद्धविषयम्।

मातृश्राद्ध में तो ब्राह्मण के अलाभ में सुवासिनि (सुहागिन) यों को भी भोजन करावे। यह अपरार्क में वृद्धवसिष्ठ ने कहा है कि—माता के श्राद्ध में तो ब्राह्मणों के अलाभ में पति और पुत्र से युक्त शरीर तथा आचार से सुन्दर अच्छे खानदान से उत्पन्न आठ स्त्रियों की पूजा करे। यह पर 'अष्टौ' यह पद वृद्धिश्राद्ध विषयक है।

(शालिग्रामादि-सन्निधौ-श्राद्धकरणे महत्त्वकथनम्)

पाद्मे उत्तरखण्डे—सकृदभ्यर्चितं लिङ्गं शालग्रामशिलां च यः। पीठे संस्थापयित्वा तु श्राद्धं च कुरुते नरः॥ पितरस्तस्य तिष्ठन्ति कल्पकोटिशतं दिवि।

पद्मपुराण के उत्तरखण्ड में कहा है—एक वार पूजित लिंग या शालग्रामशिला को पीठ पर स्थापन कर जो मनुष्य श्राद्ध करता है। उसके पितर कल्पकोटि सौ वर्ष तक स्वर्ग में रहते हैं।

(ब्राह्मणनिमन्त्रणे नियमादिकथनम्)

चन्द्रिकायां मात्स्ये—पठन्निमन्त्र्य नियमाञ्छ्रावयेत्पैतृकान् बुधः। अक्रोधनैः शौचपरैः सततं ब्रह्मचारिभिः॥ भवितव्यं भवद्भिश्च मया च श्राद्धकारिणा।

चन्द्रिका में मत्स्यपुराण का कथन है कि—निमन्त्रण देकर निमन्त्रण के नियमों को पढ़कर बुद्धिमान् पितृश्राद्ध में गृहीत ब्राह्मणों को श्रवण करावे। क्रोध से रहित, पवित्रता में तत्पर, निरन्तर ब्रह्मचारी रहें। श्राद्ध करनेवाला मैं भी ऐसा ही करूँगा।

यत्तु मनुः—सर्वायासविनिर्मुक्तैः कामक्रोधविवर्जितैः। भवितव्यं भवद्भिर्नः श्वोभूते श्राद्धकर्मणि॥ इति, तत्पूर्वेद्युर्निमन्त्रणपरं न तदहः।

जो मनु ने कहा है कि—सब प्रकार के परिश्रमों से मुक्त, काम तथा क्रोध से रहित आप लोग रहें कल के होने वाले श्राद्धकर्म के लिए। वह पहले दिन निमन्त्रण परक है। उस दिन के लिए नहीं है।

तत्रैव देवलः—असंभवे परेद्युर्वा ब्राह्मणांस्तान्निमन्त्रयेत्।
अज्ञातीनसमानार्षानयुग्मानात्मशक्तितः॥

भी असंभव ही है। प्रायः सौ वर्ष की आयुवाले पुरुष लोक में दिखते हैं। रसायन आदि से तो अपमृत्यु का निवारण होता है। इससे आयु की वृद्धि नहीं हो सकती। यदि यह कहें कि—पिता, पुत्र, पौत्र और इसका पुत्र इस वंशपरंपरा द्वारा सहस्र संवत्सरवाला सत्रयज्ञ हो सकता है। क्यों—जिस कार्य को प्रारंभ किया जाता है उसकी समाप्ति अवश्य ही होती है। ऐसा कार्ष्णाजिनि का मत युक्त नहीं है इत्यादि पूर्वपक्ष के बाद सिद्धान्तपक्ष यह है कि—दिन परक मानना चाहिये। 'अहर्वै संवत्सरः' इति श्रुति वाक्य से भी संवत्सर शब्द दिन का वाचक है। (सवृत्ति कात्यायन श्रौतसूत्र १।कं० २ सू० १३–२७) में विशेष देखिये।

वहीं पर देवल ने कहा है कि—संभव न होने पर तो पर दिन में ब्राह्मणों को जो स्वजातीय असमान गोत्री और अयुग्म हों उनको अपने शक्ति के अनुसार निमन्त्रण दे।

कात्यायनः—'अनिन्द्येनामन्त्रितो नापक्रमेत्' (का०श्रा०सू०१-१२)। केतनं गृह्य शक्तः।

कात्यायन ने श्राद्धसूत्र में कहा है कि—अनिन्दित व्यक्ति से आमन्त्रित होकर अस्वीकर नहीं चाहिये। शक्त हो तो।[1] केतन (अर्चन) को ग्रहण परित्याग न करे। (अनिन्द्येनामन्त्रिते शक्तेन न प्रत्याख्यानं कर्तव्यमिति गौतमः। तेन निन्द्येनामन्त्रेण भोक्तुरसामर्थ्ये च प्रत्याख्येयमिति गम्यते। इत्यादि कृष्णंभट्टी-टीकायाम्।) (निन्द्यानाह याज्ञवल्क्यः (आचा० १६३–१६७) कदर्यबद्धचौराणां क्लीवरङ्गावतारिणाम्। एषामेन्नं न भोक्तव्यं सोमविक्रयिणस्तथा॥)

(श्राद्धकर्तृभोक्तृनियमाः)

अथ श्राद्धकर्तृभोक्तृनियमाः। तत्र निमन्त्रितविप्रत्यागेऽपरार्के यमः—केतनं कारयित्वा तु योऽतिपातयति द्विजम्। ब्रह्महत्यामवाप्नोति शूद्रयोनौ च जायते॥

आमन्त्र्य ब्राह्मणं यस्तु यथान्यायं न पूजयेत्। अतिकृच्छ्रासु घोरासु तिर्यग्योनिषु जायते॥

अब श्राद्धकर्ता और भोक्ता के नियम कहते हैं। उसमें निमन्त्रित ब्राह्मण के त्याग में अपरार्क में यम में कहा है कि—केतन (पूजन) को कराकर जो द्विज का अतिपात (अतिक्रम) करता है। वह (उपनिमन्त्रणेऽपि) ब्रह्महत्या को प्राप्त करता है और शूद्रयोनि में उत्पन्न होता है।

जो ब्राह्मण को आमन्त्रण कर यथोचित पूजन नहीं करता है। वह भयंकर तिर्यग्योनि में जाता है।

प्रमादात्त्यागे तु हारीतः—प्रमादाद्विस्मृतं ज्ञात्वा प्रसाद्यैनं प्रयत्नतः।
तर्पयित्वा यथान्यायं सर्वं तत्फलमश्नुते॥

प्रमाद से त्याग में तो हारीत ने कहा है कि—प्रमाद से विस्मृत जानकर प्रयत्न से उस ब्राह्मण को प्रसन्न कर यथोचित तृप्त (सन्तुष्ट) करे तो वह सब फल प्राप्त करता है।

प्रमादाभावे तु नारायणः—एतस्मिन्नेनसि प्राप्ते ब्राह्मणो नियतः शुचिः।
यतिचान्द्रायणं कृत्वा तस्मात्पापात्प्रमुच्यते॥

प्रमाद के अभाव में तो नारायण ने कहा है—ऐसा पाप होनेपर ब्राह्मण पवित्र और संयतचित्त होकर यतिचान्द्रायण[2] व्रत करके उस पाप से मुक्त होता है।

यमः—आमन्त्रितस्तु यो विप्रो भोक्तुमन्यत्र गच्छति।
नरकाणां शतं गत्वा चाण्डालेष्वभिजायते॥

यम ने कहा है कि—ब्राह्मण आमन्त्रण को अंगीकार कर अन्यत्र भोजन के लिये जाता है वह सौ नरकों में जाकर चाण्डालयोनियों में उत्पन्न होता है।

तत्रैव देवलः—पूर्वं निमन्त्रितोऽन्येन कुर्यादन्यप्रतिग्रहम्।
भुक्ताहारोऽथवा भुङ्क्ते सुकृतं तस्य नश्यति॥

वहीं पर देवल ने कहा है कि—प्रथम अन्य व्यक्तिका निमन्त्रण स्वीकार कर फिर अन्य का प्रतिग्रह करता है या भोजन कर फिर से दूसरे के यहाँ भोजन करता है तो उसका पुण्यनाश हो जाता है।

यदि विप्रो विलम्बते तदोक्तमादित्यपुराणे—आमन्त्रितश्चिरं नैव कुर्याद्विप्रः कदाचन। देवतानां पितृणां च दातुरन्नस्य चैव हि। चिरकारी भवेद्द्रोही पच्यते नरकाग्निना॥

१—मनुः – ४।११०—प्रतिगृह्य द्विजो विद्वान् एकोद्दिष्टस्य केतनम्। त्र्यहं न कीर्तयेद् ब्रह्म राज्ञो राहोश्च सूतके।

२—अष्टावष्टौ समश्नीयात् पिण्डान्मध्यं दिने स्थितः। नियतात्मा हविष्याशी यतिचान्द्रायणं स्मृतम्॥ मासमिति शेषः। एतत् प्राजापत्यचतुष्टयसममिति वृद्धविष्णुः।

यदि ब्राह्मण विलम्ब (बुलाने पर भी श्राद्ध का अतिक्रमण) करता है तो आदित्यपुराण में कहा है—आमन्त्रित ब्राह्मण कभी भी विलंब न करे। यदि बिलम्ब करता है तो वह देवताओं और पितरों का तथा दाता के अन्न का चिरकाल तक द्रोही होता है तथा नरकाग्नि में पकता है।

पृथ्वीचन्द्रोदये यमः—निमन्त्रितस्तु यो विप्रो ह्यध्वानं याति दुर्मतिः।
भवन्ति पितरस्तस्य तं मासं पांशुभोजनाः॥

पृथ्वीचन्द्रोदय में यम ने कहा है कि—जो निमन्त्रित दुर्मति (खराब बुद्धिवाला) ब्राह्मण मार्ग (सीमा के बाहर) (ब्रह्माण्डपुराणे—न सीमानमतिक्रामेत् श्राद्धार्थं वै निमन्त्रितः। पर्यटन् सीममध्ये तु न कदाचित् प्रदुष्यति॥ में जाता है तो उस व्यक्ति के पितर उस महिने में पांशु (धूलि) भोजन करते हैं।

आमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे हिंसां वै कुरुते द्विजः। तं मासं पितरस्तस्य भवन्ति रुधिराशनाः॥

आमन्त्रित ब्राह्मण जो श्राद्ध दिन में निश्चय हिंसा करता है तो उसके पितर उस महिने में रुधिर पीते हैं।

निमन्त्रितः प्रकुर्यात्तु कलहं चेद् द्विजः क्वचित्। भवन्ति पितरस्तस्य तं मासं मलभोजनाः॥

जो ब्राह्मण निमन्त्रित होकर यदि कलह करता है तो उसके पितर उस महिने में मल (विष्ठा, मैल) भोजन करते हैं।

आमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे भारमुद्वहते द्विजः। पितरस्तस्य तं मासं भवन्ति स्वेदभोजनाः॥

जो ब्राह्मण आमन्त्रित होकर श्राद्ध में भार ढोता है तो उसके पितर उस महिने में स्वेद (पसीना) (घर्मो निदाघः स्वेदः स्यात्प्रलयो नष्टचेतना। अमर०) का भोजन करते है।

शङ्खः—निमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे मैथुनं सेवते द्विजः।
श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च युज्यते महतैनसा॥

शंख ने कहा है कि—जो ब्राह्मण श्राद्ध में निमन्त्रित होकर मैथुन का सेवन करता है वह और जो श्राद्ध को देकर (कर) या श्राद्ध में भोजन कर मैथुन का सेवन करता है बड़े पाप से युक्त होता है।

मैथुनम् ऋतावपि निषिद्धम्—ऋतुकाले नियुक्तो वा नैव गच्छेत् स्त्रियं क्वचित्। तत्र गच्छन्नवाप्नोति ह्यनिष्टानि फलानि तु॥ इति तत्रैव माधवीये वृद्धमनूक्तेः।

मैथुन ऋतुकाल में भी निषिद्ध है या ऋतुकाल के समय उपस्थित होने पर भी स्त्री के साथ मैथुन कभी न करे। यदि वहाँपर जाता है तो उसे अनिष्ट फल होते ही हैं। यह वहींपर ही माधवीय में वृद्धमनु ने कहा है।

श्राद्धं करिष्यन् कृत्वा वा भुक्त्वा वाऽपि निमन्त्रितः। उपोष्य च तथा भुक्त्वा नोपेयाच्च ऋतावपि॥
भोक्ष्यन् करिष्यन् श्वः श्राद्धं पूर्वरात्रौ प्रयत्नतः। व्यवायं भोजनं चापि ऋतावपि विवर्जयेत्॥
इति तत्रैवाश्वलायनोक्तेश्च।

और वहीं पर आश्वलायन ने कहा है कि—श्राद्ध को करते हुए या करके या भोजन कर ऋतुकाल में भी स्त्री के साथ सहवास (संगम-मैथुन) न करे।

कल श्राद्ध करने वाला व्यक्ति और भोजन करने वाला व्यक्ति प्रयत्न से पहली रात्रि में ऋतुकाल में होनेवाला व्यवसाय (मैथुन) और भोजन को भी त्याग दे।

विज्ञानेश्वरेण तु श्राद्धे ऋतौ गच्छतोऽपि न दोष इत्युक्तं तत्त्वगतिकगतित्वे ज्ञेयम्।

विज्ञानेश्वर ने तो कहा है कि—श्राद्ध में, ऋतुकाल में स्त्री के पास जाने पर भी दोष नहीं है, यों कहा है। वह अगतिकगति (उपायान्तर न होने पर समझना चाहिये) में जानना चाहिये।

बृहस्पतिः—द्विनिशं ब्रह्मचारी स्यात् श्राद्धकृद्ब्राह्मणैः सह।
अन्यथा वर्तमानौ तु स्यातां निरयगामिनौ॥

बृहस्पति ने कहा है कि—दो रात तक ब्राह्मणों के साथ श्राद्ध करनेवाला व्यक्ति ब्रह्मचारी रहे। वे दोनों विपरीत कार्य करें तो निरयगामि (नरकगामी) होते हैं।

पुनर्भोजनमध्वानं भारमायासमैथुनम्। श्राद्धकृच्छ्राद्धभुक्चैव सर्वमेतद्विवर्जयेत् ॥ स्वाध्यायं कलहं चैव दिवास्वापं तथैव च।

फिर से भोजन करना, मार्ग में चलना, बोझा ढोना, परिश्रम करना और मैथुन करना ये श्राद्ध करने वाले और भोजन करने वाले को सब त्याग देने चाहिये। और वैसे ही—स्वाध्याय (वेद का पढना), कलह (झगडा) तथा दिन में शयन (सोना) त्याग देना चाहिये।

(रुधिरस्रावे तु श्राद्धकाशिकामते विचारः)

यत्तु श्राद्धकाशिकायां पुराणसमुच्चये-कृत्वा तु रुधिरस्रावं न विद्वान् श्राद्धमाचरेत्। एकं द्वे त्रीणि वा विद्वान् दिनानि परिवर्जयेत् ॥ इति, तन्निर्मूलम्।

जो श्राद्धकाशिका में पुराणसमुच्चय का वचन है कि—रुधिरस्राव के होने पर विद्वान् श्राद्ध न करे। विद्वान् एक, दो या तीन दिन का त्याग करे। यह कहना उचित नहीं है।

(अष्टवस्तूनां वर्जनकथनम्)

पृथ्वीचन्द्रोदये यमः—पुनर्भोजनमध्वानं भाराध्ययनमैथुनम्। सन्ध्यां प्रतिग्रहं होमं श्राद्धभोक्ताऽष्ट वर्जयेत् ॥ तत्र सन्ध्यानिषेधः प्रायश्चित्तात् पूर्वं ज्ञेयः।

पृथ्वीचन्द्रोदय में यम ने कहा है कि—फिर से भोजन, मार्ग में चलना, बोझा ढोना, वेदाध्ययन, मैथुन, सन्ध्या, प्रतिग्रह और होम इन आठ बातों को श्राद्ध के भोजन करने वाले को त्याग देनी चाहिए। वहाँ पर सन्ध्या का निषेध जो है वह प्रायश्चित्त के पूर्व जानना चाहिए।

यथाऽऽहोशनाः—दशकृत्वः पिबेदापो गायत्र्या श्राद्धभुग्द्विजः।
ततः सन्ध्यामुपासीत जपेच्च जुहुयादपि ॥

जैसा उशना ने कहा है कि—श्राद्ध का भोजन करनेवाला ब्राह्मण दशबार गायत्री पढ़कर जल पीवे। तदनन्तर सन्ध्या की उपासना कर जप और हवन भी करे।

गौडास्तु—सायंसन्ध्या परान्नं च छेदनं च वनस्पतेः। अमावास्यां न कुर्वीत रात्रिभोजनमेव च ॥ द्यूतं च कलहं चैव सायंसन्ध्यां दिवाशयम्। श्राद्धकर्ता च भोक्ता च पुनर्भुक्तिं च वर्जयेत् ॥ इति कामधेनौ वाराहाद्युक्तेः श्राद्धकर्तुरपि सायंसन्ध्यानिषेधमाहुः। शिष्टास्त्वस्य निर्मूलत्वमाहुः। होमनिषेधस्तु स्वविषयः।

गौड तो कहते हैं कि—सायंकाल की सन्ध्या, दूसरे का अन्न, वनस्पति (वृक्ष) का छेदन और रात का भोजन अमावास्या में न करे। जूआ, कलह, सायंकाल की सन्ध्या, दिन में शयन करना तथा फिर से भोजन ये सब श्राद्धकर्ता और भोक्ता को वर्जित है। यह कामधेनु में वाराह ने कहा है। श्राद्धकर्त्ता को भी सायंकाल सन्ध्या का निषेध कहा है। शिष्टगण तो इसको निर्मूल कहते हैं। होम का तो निषेध अपने लिए है अन्य होमकर्ता के अभाव में स्वयं ही प्रायश्चित्त (दश बार गायत्री को पढकर जल-पान करे) के बाद होम करे।

सूतके च प्रवासे च अशक्तौ श्राद्धभोजने। एवमादिनिमित्तेषु हावयेन्न तु हापयेत् ॥ इति छन्दोगपरिशिष्टात्।

छन्दोगपरिशिष्ट में कहा है कि—सूतक में, प्रवास (परदेश की यात्रा में) में, अशक्ति में और श्राद्धभोजन में, इसप्रकार के निमित्तों में स्वयं त्याग करे दूसरों के द्वारा करा दे।

तत्रैवादित्यपुराणे—निमन्त्रितस्तु न श्राद्धे कुर्याद्भार्यादिताडनम्।

वहीं पर आदित्यपुराण में कहा है कि—श्राद्ध में निमन्त्रित ब्राह्मण भार्या आदि का ताड़न (मारपीट) न करे।

चन्द्रिकायां प्रचेताः—श्राद्धभुक् प्रातरुत्थाय प्रकुर्याद्दन्तधावनम्।
श्राद्धकर्ता न कुर्वीत दन्तानां धावनं बुधः ॥

चन्द्रिका में प्रचेता ने कहा है कि—श्राद्धीय अन्न का भोजन करनेवाला प्रातःकाल उठकर दन्तधावन करे और श्राद्ध को करनेवाला बुद्धिमान् व्यक्ति दन्तधावन न करे।

(दन्तधावनादौ विचारः)

हेमाद्रौ जाबालिः—दन्तधावनताम्बूले तैलाभ्यङ्गमभोजनम्।
रत्यौषधं परान्नं च श्राद्धकृत्सप्त वर्जयेत्। इति।

हेमाद्रि में जाबालि ने कहा है कि—श्राद्धको करनेवाला दन्तधावन, तांबूल, तैलाभ्यंग, (तेल की मालिस) उपवास, मैथुन, औषध और परान्नभोजन ये सात चीज का त्याग करे।

(श्राद्धोपवासदिवसे दन्तधावने दोषकथनम्)

विष्णुरहस्ये—श्राद्धोपवासदिवसे खादित्वा दन्तधावनम्।
गायत्र्या शतसंपूतमम्बुप्राश्य विशुद्ध्यति॥

विष्णुरहस्य में कहा है कि—श्राद्धोपवास दिन में खाकर दन्तधावन करता है वह सौवार गायत्री पढ़कर जल पीने से शुद्ध होता है।

(पुनर्भोजनादित्याज्यकथनम्)

पुनर्भोजनमध्वानं यानमायासमैथुनम्। दानं प्रतिग्रहो होमः श्राद्धभुक् त्वष्टवर्जयेत्॥

फिर से भोजन करना; मार्ग में चलना, सवारी पर चलना, परिश्रम करना, मैथुन करना, दान देना, प्रतिग्रह ग्रहण करना और हवन ये आठ श्राद्धीय भोजन करने वाले को त्याज्य हैं।-

(सोमोत्पत्तौ विशेषः)

सोमोत्पत्तौ—वनस्पतिगते सोमे यस्तु हिंस्याद्वनस्पतिम्। घोरायां भ्रूणहत्यायां युज्यते नात्र संशयः॥ एतद्विहितेध्मादिव्यतिरेकेण।

सोमोत्पत्ति में कहा है कि—जब वनस्पति में सोम के जाने पर जो वनस्पति की हिंसा करता है उसे घोर (भयंकर) भ्रूणहत्या से युक्त होना होता है, इसमें यहाँ पर संशय नहीं है। यह विहित इध्मादि को छोड़कर है।

वनस्पतिगते सोमेऽनड्वाहो यस्तु वाहयेत्। नाश्नन्ति पितरस्तस्य दश वर्षाणि पञ्च च॥
वनस्पतिगते सोमे मन्थनं यस्तु कारयेत्। गावस्तस्य विनश्यन्ति चिरकालमुपस्थिताः॥

वनस्पति में गये सोम (चन्द्रमा) में जो बैल को जोतता है। उसके पितर पन्द्रह वर्ष भोजन नहीं करते हैं। वनस्पति में गये सोम में जो मन्थन करता है उसकी बहुत काल से उपस्थित गायें नाश को प्राप्त हो जाती हैं।

(वनस्पतिगतस्वरूपकथनम्)

वनस्पतिगतस्वरूपमाह पृथ्वीचन्द्रोदये व्यासः—त्रिमुहूर्तं वसेदर्के त्रिमुहूर्तं जले वसेत्।
त्रिमुहूर्तं वसेद् गोषु त्रिमुहूर्तं वनस्पतौ॥

वनस्पति गये सोम का स्वरूप पृथ्वीचन्द्रोदय में व्यास ने कहा है कि—तीन मुहूर्त अर्क (सूर्य) में, तीन मुहूर्त जल में, तीन मुहूर्त गौवों में और तीन मुहूर्त वनस्पति में सोम रहता है।

(विप्रनिमन्त्रणानन्तरं कर्तुः क्षौरादिविचारः)

कालिकायां वृद्धमनुः—निमन्त्र्य विप्रांस्तदहर्वर्जयेन्मैथुनं क्षुरम्।
प्रमत्ततां च स्वाध्यायं क्रोधाशौचे तथाऽनृतम्॥
केचिन्निमन्त्रणात् पूर्वं शुद्ध्यर्थं पूर्वेऽह्नि क्षौरं कुर्वन्ति। तत्र मूलं मृग्यम्।

१—शंखः—यजुषां पारगो यश्च ऋचां साम्नां च पारगः। अथर्वशिरसोऽध्येता ब्राह्मणाः पङ्क्तिपावनाः॥

कालिका में वृद्धमनु ने कहा है कि—ब्राह्मणों को निमन्त्रण कर उस दिन मैथुन, चौरकर्म, (नखकृन्तनाद्युपलक्षणम्) प्रमाद, स्वाध्याय, क्रोध, अपवित्रता तथा असत्यभाषण इनको त्याग दे।

कोई महाशय (मैथिल आदि) निमन्त्रण के पूर्व शुद्धि के लिए पहले दिन चौर कर्म को करते हैं। उसमें मूल (प्रमाण) अन्वेषणीय है।

मरीचिः—षष्ठ्यां पर्वसु पक्षादौ रिक्ताभद्रातिथिष्वपि ।
पाते श्राद्धे व्रताहे च चौरं वर्ज्यं निशासु च ॥

मरीचि ने कहा है कि—षष्ठीतिथि में, पर्वोपर, पक्ष के आदि (प्रतिपदा) में, रिक्ता तथा भद्रा तिथियों में भी, व्यतीपात में, श्राद्ध में, व्रत के दिन में और रात्रियों में चौरकर्म का त्याग करे।

(यदा कर्तुरशक्त्या तत्पुत्रादिश्राद्धकरणे नियमादिविचारः)

यदा कर्तुरशक्त्या तत्पुत्रशिष्यादिः श्राद्धं करोति तदा कर्त्रा प्रतिनिधिना च प्रागुक्तनियमाः कार्याः ।

न शक्नोति स्वयं कर्तुं यदा ह्यनवकाशतः । श्राद्धं शिष्येण पुत्रेण तदाऽन्येनापि कारयेत् ॥

नियमानाचरेत्सोऽपि नियतांश्च वसुन्धरे। यजमानोऽपि तान्सर्वानाचरेत्सुसमाहितः ॥ इति हेमाद्रौ वाराहोक्तेः ।

जब करने वाले की अशक्ति हो तो उसका पुत्र, शिष्य आदि श्राद्ध को करता है तब कर्ता और प्रतिनिधि को पहले कहे हुए नियमों को करना चाहिए।

हेमाद्रि में वाराह ने कहा है कि—जब अवकाश न होने से स्वयं करने में समर्थ न हो तो शिष्य, पुत्र या अन्य से भी श्राद्ध को करावे।

हे वसुन्धरे, वह भी नियमों को नियमित रूप से करे और यजमान भी उन सब नियमों को सुसमाहित (सावधान मन) से आचरण करें।

(स्त्रीणां तु विशेषः)

स्त्रियास्तु पाद्मे—मुक्तकच्छा तु या नारी मुक्तकेशी तथैव च ।
हसते वदते चैव निराशाः पितरो गताः ॥

स्त्रियों के लिए पद्मपुराण में कहा है कि—जो नारी (स्त्री) कच्छ (नीवी, वस्त्र का किनारा) को और वैसे ही बालों को खोल कर हँसती तथा बोलती है तो उसके पितर निराश होकर चले जाते हैं।

(श्राद्धदिने बालकादीनां भोजनादौ विचारः)

आश्वलायनः—श्राद्धेऽह्नि भोजयेद्वास्तौ न बालानपि यत्नतः ।
प्राक्पिण्डदानाद् गन्धाद्यैर्नालङ्कुर्यात्स्वविग्रहम् ॥ वास्तौ=गृहे ।

आश्वलायन ने कहा है कि—श्राद्ध के दिन में अपने घर में बालकों को भी यत्न से (ब्राह्मण भोजन के पूर्व) भोजन न करावे और पिण्डदान के पूर्व गन्ध आदि अलंकारों से शोभित अपने शरीर को न करें। वास्तौ—माने घर में।

(श्राद्धवस्तुकथनम्)

अथ श्राद्धवस्तूनि । तत्रादौ कुशाः पृथ्वीचन्द्रोदये दक्षः—समित्पुष्पकुशादीनां द्वितीयः परिकीर्तितः । अष्टधा भक्ते दिने द्वितीयो भाग इत्यर्थः ।

अब श्राद्धवस्तुओं को कहते हैं। उसके आदि में कुशा[1] को कहते हैं। पृथ्वीचन्द्रोदय में दक्ष ने कहा है कि—समिधा, पुष्प, कुशा आदियों का 'द्वितीय' कहा है। अर्थात्—दिन का आठ भाग करने पर दूसरा भाग होता है—यह अर्थ है।

१—दर्भपवित्रयोर्भेदकथनम्—कौशिकः—सप्तपत्राः शुभा दर्भास्तिलक्षेत्रसमुद्भवाः । अप्रसूता स्मृता दर्भाः प्रसूतास्तु कुशाः स्मृताः ॥ समूलाः कुतपाः प्रोक्ताश्छिन्नाग्रास्तृणसंज्ञिताः ।

तत्रैव यमः—समूलस्तु भवेद्दर्भः पितॄणां श्राद्धकर्मणि ।
मूलेन लोकान् जयति शक्रस्य सुमहात्मनः ॥

वहीं पर यम ने कहा है कि—पितरों के श्राद्ध कर्म में समूल (मूल के सहित) ही दर्भ होती है। मूल से ही महात्मा इन्द्र के लोकों को जीतता है।

व्यासः—तर्पणादीनि कार्याणि पितॄणां यानि कानिचित् ।
तानि स्युर्द्विगुणैर्दर्भैः सप्तपत्रैर्विशेषतः ॥

व्यास ने कहा है कि—पितरों के जो कुछ कर्म तर्पण आदि हैं वे सब द्विगुणित दर्भ (कुशा) और विशेषकर सात[1] पत्रों से होते हैं।

शालङ्कायनः—सपिण्डीकरणं यावदृजुदर्भैः पितृक्रियाः ।
सपिण्डीकरणादूर्ध्वं द्विगुणैर्विधिवद्भवेत् ॥

शालङ्कायन ने कहा है कि—सपिण्डीकरण तक ऋजुदर्भों से पितृक्रिया (पितरों का कार्य) होती है। सपिण्डीकरण के बाद द्विगुणित कुशाओं से विधिवत् क्रिया होती है।

(कुशपवित्रलक्षणं धारणक्रमं च विचारः)

शङ्खः—अनन्तर्गर्भिणं साग्रं कौशं द्विदलमेव च । प्रादेशमात्रं विज्ञेयं पवित्रं यत्र कुत्रचित् ॥

शंख ने कहा है कि—जिस कुशा के भीतर गर्भ न हो (अर्थात्—कुशा के मध्यवाली कुशा को हटा कर) अग्र के सहित कुश का ही द्विदल (दो कुश पवित्रात्मक) प्रादेशमात्र पवित्र (अत्रिः—ब्रह्मयज्ञे जपे चैव ब्रह्मग्रन्थिर्विधीयते । भोजने वर्तुलः प्रोक्तः एवं धर्मो न हीयते ॥ द्विगुणीकृतानां दर्भशिखानां पाशं प्रदक्षिण-मर्धवेष्टनं विधाय यदा प्रवेशयेत्तदा वर्तुलो ग्रन्थिः । स एव यदा प्रादक्षिण्येन समवेष्टनं विधाय पुरोभागेन प्रवेशयेत्तदा ब्रह्मग्रन्थिरिति हेमाद्रौ ।) को कहीं पर भी जानना चाहिये।

हारीतः—पवित्रं ब्राह्मणस्यैव चतुर्भिर्दर्भपिञ्जुलैः । एकैकं न्यूनमुद्दिष्टं वर्णे वर्णे यथाक्रमम् ॥

हारीत ने कहा है कि—ब्राह्मण के लिए ही चार कुशपत्र वाला (पिञ्जुलं कुशपत्रे स्यात्—इत्यमरः) पवित्र हो और प्रत्येक वर्ण में यथाक्रम से एक एक न्यून कहा है (अर्थात्—क्षत्रिय को तीन कुशा और वैश्य को दो कुशा का विधान है)।

स्मृत्यर्थसारे—सर्वेषां वा भवेद् द्वाभ्यां पवित्रं ग्रन्थितं नवम् ।

स्मृत्यर्थसार में कहा है कि—या सब वर्णवालों को दो कुशा के पवित्र नूतन ग्रन्थिवाले कहे हैं।

रत्नावल्याम्—द्वयोस्तु पर्वणोर्मध्ये पवित्रं धारयेद् बुधः ।

रत्नावली में कहा है कि—दो अंगुली के पर्व के मध्य में पवित्र (शातातपः—जपे होमे तथा दाने स्वाध्याये पितृकर्मणि । सव्यापसव्यौ कुर्वीत सपवित्रौ करौ बुधः ॥) का धारण ज्ञानी करे।

हेमाद्रौ स्कान्दे—अनामिकाधृता दर्भा ह्येकानामिकयापि वा ।
द्वाभ्यामनामिकाभ्यां तु धार्ये दर्भपवित्रके ॥

हेमाद्रि में स्कन्दपुराण का कथन है कि—अनामिका अंगुली में बहुत कुशाओं को या एक कुशा को धारण करे। या दोनों अनामिकाओं में दो दर्भ कुशावाली पवित्री को धारण करे।

पवित्राभावे-तु तत्रैव सुमन्तुः—समूलाग्रौ विगर्भौ तु कुशौ द्वौ दक्षिणे करे ।
सव्ये चैव तथा त्रीन् वै बिभृयात् सर्वकर्मसु ॥

पवित्री के अभाव में तो वहीं पर सुमन्तु ने कहा है कि—गर्भ रहित समूल दो कुशाओं को दाहिने हाथ में धारण करे और वायें हाथ में तीन ही कुशाओं को सब कर्म में धारण करे।

१—सप्तपत्राः शुभा दर्भास्तिलक्षेत्रसमुद्भवाः । अप्रसूता स्मृता दर्भाः प्रसूतास्तु कुशाः स्मृताः ॥ समूलाः कुतपाः प्रोक्ताश्छिन्नाग्रास्तृणसंज्ञिताः ।

बौधायनः—हस्तयोरुभयोर्द्वौ द्वावासनेऽपि तथैव च ।

बौधायन ने कहा है कि—दोनों हाथों में दो कुशाओं को वैसे ही आसन में भी दो कुशाओं को धारण करे ।

(दर्भग्रहणे मन्त्रकथनम्)

दर्भग्रहणे मन्त्रमाह शङ्खः—विरञ्चिना सहोत्पन्न परमेष्ठिनिसर्गज ।
नुद सर्वाणि पापानि दर्भ स्वस्तिकरो भव ॥

दर्भग्रहण में शंख ने मन्त्र को कहा है कि हे ब्रह्मा के साथ उत्पन्न, परमेष्ठी के स्वभाव से उत्पन्न हे दर्भ (कुश), सब पापों को दूर कर कल्याण को करो ।

स्मृत्यर्थसारे—हुंफट्कारेण मन्त्रेण सकृच्छित्त्वा समुद्धरेत् ।

स्मृत्यर्थसार में कहा है कि—'हुँ फट्'—इस मन्त्र से एक बार छेदन कर उखाडना चाहिये ।

भारद्वाजः—प्रेतक्रियार्थं पित्रर्थमभिचारार्थमेव च ।
दक्षिणाभिमुखश्छिन्द्यात्प्राचीनावीतिको द्विजः ॥

भारद्वाज ने कहा है कि—प्रेतक्रियार्थ पितरों के लिए और अभिचार कर्म के लिए ही दक्षिणाभिमुख और प्राचीनावीति हो कर द्विज छेदन करे ।

(कुशाभावे विचारः)

कुशाभावेऽपरार्के सुमन्तुः—कुशाः काशाः शरो गुन्द्रो यवा दूर्वाऽथ बिल्वजाः ।
गोकेशमुञ्जकुन्दाश्च पूर्वाभावे परः परः ॥

कुशा के अभाव में अपरार्क में सुमन्तु ने कहा है कि—कुशा,[1] काश, शर, गुन्द्र, (सरकण्डा या सरई) यव, दूर्वा, बेल, गोकेश, (गौ का बाल) मूंज और कुन्द (चमेली का एक भेद) इनको पूर्व के अभाव में पर पर (आगे आगे) का ग्रहण करे ।

(काशादौ विशेषमाह)

काशादौ विशेषमाह शङ्खः—काशहस्तस्तु नाचामेत् कदाचिद्विधिशङ्कया ।
प्रायश्चित्तेन युज्येत दूर्वाहस्तस्तथैव च ॥

काशादि में विशेष शंख ने कहा है कि—कदाचित् विधि की शंका (सपवित्रेण हस्तेन कुर्यादाचमनक्रियाम् । नोच्छिष्टं तत्पवित्रं तु भुक्त्वोच्छिष्टं तु वर्जयेत् ॥) से काश और दूर्वा के हाथ से आचमन न करे । करने पर प्रायश्चित्त का भागी होता है ।

(प्रति अमावास्यायां दर्भग्रहणम्)

पृथ्वीचन्द्रोदये यमः—मासिमास्युद्धृता दर्भा मासि मास्येव चोदिताः ।

पृथ्वीचन्द्रोदय में यम ने कहा है कि—महिने महिने में उद्धृत (उखाड़ी हुई) कुशा महिने महिने में ही कार्य (षट्त्रिंशतमते—मासे नभस्यमावास्या तस्यां दर्भोच्चयो मतः । अयातयामास्ते दर्भा विनियोज्याः पुनः पुनः ॥) में आती है ।

षट्त्रिंशन्मते—मासेन स्यादमावास्या दर्भो ग्राह्यो नवः स्मृतः ।

षट्त्रिंशन्मत में कहा है कि—अमावास्या तिथि में उखाड़ी कुशा महिने भर तक नवीन रहती है ।

(त्याज्यदर्भकथनम्)

गृह्यपरिशिष्टे—ये च पिण्डाश्रिता दर्भा यैः कृतं पितृतर्पणम् ।
अमेध्याऽशुचिलिप्ता ये तेषां त्यागो विधीयते ॥

१—धर्मसिन्धौ तु—कुशाः काशा यवा दूर्वा उशीराश्च स कुन्दकाः । गोधूमा व्रीहयो मौञ्जा दश दर्भाः सवल्वजाः ॥

गृह्यपरिशिष्ट में कहा है कि—जो कुशा[1] पिण्डों के कार्य में ली हो, जिनसे पितृतर्पण किया हो और जो अमेध्य—अपवित्र वस्तु से लिप्त हो उन कुशाओं का त्याग करना चाहिये।

लघुहारीतः—पथि दर्भाश्चितौ दर्भा ये दर्भा यज्ञभूमिषु।
स्तरणासनपिण्डेषु षट् कुशान् परिवर्जयेत्॥

लघुहारीत में कहा है कि—मार्ग की कुशा, चिता की कुशा, जो कुशा यज्ञ की भूमियों की हो, जिस कुशा से आस्तरण (बिछावन) किया हो, आसन और पिण्डों के कार्य में जो कुशा आयी हो ऐसी छः कुशाओं का त्याग करना चाहिये।

ब्रह्मयज्ञे च ये दर्भा ये दर्भाः पितृतर्पणे। हता मूत्रपुरीषाभ्यां तेषां त्यागो विधीयते॥

ब्रह्मयज्ञ में जो दर्भ हों, जो कुशा पितृतर्पण में हों, मूत्र और पुरीषोत्सर्ग में जो नष्ट हो ऐसी कुशाओं को त्याग करना चाहिये।

(हेमात्मकपवित्रस्य महत्वकथनम्)

हेमाद्रौ—अन्यानि च पवित्राणि कुशदूर्वात्मकानि च।
हेमात्मकपवित्रस्य ह्येकां नार्हन्ति वै कलाम्॥

हेमाद्रि में कहा है कि—कुश या दूर्वा से बने हुए अन्य पवित्र सुवर्णात्मक पवित्री की एक कला को भी निश्चय नहीं प्राप्त कर सकते हैं।

(श्राद्धे हविर्विचारः)

अथ हविः। हेमाद्रौ प्रचेताः—कृष्णमाषास्तिलाश्चैव श्रेष्ठाः स्युर्यवशालयः। महायवा व्रीहियवास्तथैव च मधूलिकाः। कृष्णाः श्वेताश्च लोहाश्च ग्राह्याः स्युः श्राद्धकर्मणि। महायवा=वेणुबीजम्। मधूलिका=यावनाला इति हेमाद्रिः कल्पतरुश्च।

अब हवि कहते है। हेमाद्रि में प्रचेता ने कहा है कि—काले उडद, तिल, यव (शितशूक या सितशूक), शाली जाडे में पैदा होने वाले अगहनी चावल (यवशालि-शालिभेद यह माधवमत है)। महायव—यवके भेद, (वेणुबीज-बांस के बीज) महायवा-वेणुबीजम्—यह पाठ माधव को सम्मत नहीं है।) मधूलिका दोधिया गेहूँ, काले, सफेद और लाल रंग के शाली (पहले कहे हुए का ही विवरण है-यह अन्य कहते हैं।) श्राद्धकर्म में ग्रहण करे। महायवा-वेणुबीज, मधुलिका-यावनाल, (शालिविशेष) यह हेमाद्रि और कल्पतरु ने कहा है।

भारते—वर्धमानतिलं श्राद्धमक्षय्यं मनुरब्रवीत्। सर्वकामैः स यजते यस्तिलैर्यजते पितॄन्॥

भारत में कहा है कि—जिस श्राद्ध में तिलों की वृद्धि हो उस श्राद्ध को मनु ने अक्षय्य कहा है। जो तिलों से पितरों का अर्चन करता है वह सब कामनाओं में पूजित होता है।

चन्द्रिकायां देवलः—इष्टापूर्ते मृताहे च दर्शवृद्ध्यष्टकासु च।
पात्रेभ्यस्तेषु कालेषु देयं नैव कुभोजनम्॥

चन्द्रिका में देवल ने कहा है कि—इष्टापूर्त में, मृताह में, अमावास्या, वृद्धिश्राद्ध और अष्टका में इन समयों में अच्छे सुपात्रों के लिए कुभोजन (खराब भोजन) नहीं देना चाहिये।

सायणीये—अगोधूमं च यच्छ्राद्धं माषमुद्गविवर्जितम्।
तैलपक्वेन रहितं कृतमप्यकृतं भवेत्॥

१—भरद्वाजः—शुना शुद्रवराहेण मार्जारेणैकचक्षुषा। खरेण कुक्कुटेनैव स्पृष्टः कर्मरिपुः कुशः॥ कृमिना कृकलासेन पतितेनान्त्यजेन च। भिषजा रोगिणा स्पृष्टः कुशः कर्मस्वशोभनः॥ देवलेन च षण्डेन व्रात्येनाज्ञातजन्मना। उच्छिष्टजनसंस्पृष्टः कुशो वर्ज्यः सूतकिना स्पृष्टः कुशोऽनुष्ठेयकर्मसु॥ रक्तश्लेष्मास्थिभिः स्पृष्टः क्रियायुक्तः पुरा धृतः। ज्ञेयः क्रियारिपुः॥ हारीतः—येत्वन्तर्गर्भिता दर्भा ये च च्छिन्ना नखैस्तथा। क्वथिताश्चाग्निना ये च तान् दर्भान्परिवर्जयेत्॥

सायणी (नी) य में कहा है कि—गेहूँ के विना[1] जो श्राद्ध, उडद और मूँग के विना होता है। जो श्राद्ध' तैल से विना पका श्राद्ध होता है वह किया हुआ बिना किये हुए के तुल्य होता है।

हेमाद्रावत्रिः—अगोधूमं च यच्छ्राद्धं कृतमप्यकृतं भवेत् ।

हेमाद्रि में अत्रि ने कहा है कि—जो श्राद्ध गेहूँ के विना होता है वह श्राद्ध नहीं किये के तुल्य होता है।

तत्रैव ब्राह्मे—यवैर्व्रीहितिलैर्माषैर्गोधूमैश्चणकैस्तथा । सन्तर्पयेत्पितॄन् मुद्गैः श्यामाकैः सर्षपद्रवैः॥ नीवारैर्हरिश्यामाकैः प्रियङ्गुभिरथार्चयेत् ।

वहीं पर ब्रह्मपुराण में कहा है कि—यव, व्रीहि, तिल, उडद, गेहूँ,[2] चना, मूँग, सांवा, सफेद सरसों, विना बोया पैदा हुआ नीवार, (तिन्नी या सुन्यन्न) (जंगली चावल जो बिना जोते बोये उत्पन्न हो।) हरिश्यामाक (वनका सांवा) और प्रियंगु (ककुनी) इनसे पूजित करे।

हेमाद्रौ कार्ष्णाजिनिः—यदिष्टं जीवितश्चासीत्तद्द्यात्तस्य यत्नतः ।
स तृप्तो दुस्तरं मार्गं ततो याति न संशयः ॥

हेमाद्रि में कार्ष्णाजिनि ने कहा है कि—जो जीवनकाल में मनुष्य को (अदनीय-भोजनयोग्य-हविष्य) इष्ट था वही अन्न यत्न से उसको श्राद्ध में दे। उससे वह तृप्त होकर कठिन रास्ते को पार करता है। इसमें संशय नहीं है।

कलिकायामाश्वलायनः—कदल्यादिफलैः शस्तैर्मूलैरार्द्रादिकैरपि । गोरसैर्मधुना दध्ना श्राद्धे सन्तर्पयेत्पितॄन् ॥ कदल्याम्रफलादीनि श्राद्धे संपादयेत्सुधीः ।

कालिका में आश्वलायन ने कहा है कि—सुन्दर केले आदि फलों से, मूली, आदि आदि से भी, गौ का दूध, सहत और दधि से पितरों को श्राद्ध में तृप्त करे। केला, आम आदि फलों को श्राद्ध में बुद्धिमान् सम्पादन (इकट्ठा) करे।

हेमाद्रौ पृथ्वीचन्द्रोदये च मार्कण्डेयः—गोधूमैरिक्षुभिर्मुद्गैः सतीनैश्चणकैरपि । श्राद्धेषु दत्तैः प्रीयन्ते मासमेकं पितामहाः ।।

हेमाद्रि में और पृथ्वीचन्द्रोदय में मार्कण्डेय ने कहा है कि—गेहूँ, ईख, मूँग, सतीन (मटर) और चना इनको श्राद्धों में देने से पितामहादि एक महिने तक तृप्त रहते हैं।

विदार्या च भरुण्डैश्च तिलैः शृङ्गाटकैस्तथा । कञ्चुकैश्च तथा कन्दैः कर्कन्धूबदरैरपि ॥ पालेवतै-रारुकैश्चाप्यक्षोटैः पनसैस्तथा । काकोल्या क्षीरकाकोल्या तथा पिण्डालकैः शुभैः ॥ लाजाभिश्च सधानाभिस्त्रपुसोर्वारुचिर्भटैः । सर्षपाराजशाकाभ्यामिङ्गुदै राजजम्बुभिः ॥ प्रियालामलकैर्मुख्यैः फल्गुभिश्च तिलण्टकैः । वेत्राङ्कुरैस्तालकन्दैश्चुक्रिकाक्षीरिकावचैः ॥ लोचैः समोचैर्लकुचैस्तथा वै बीजपूरकैः । मुञ्जातकैः पद्मफलैर्भक्ष्यभोज्यैश्च संस्कृतैः ॥ रागखाण्डवचोष्यैश्च त्रिजातकसमन्वितैः । दत्तैस्तु मासं प्रीयन्ते श्राद्धेषु पितरो नृणाम् ॥

विदारी[3] (विदारी कन्द, काला गंगाफल एक क्षीर विदारी होती है—उसको उजला गंगाफल कहते हैं।) भरुण्ड (मखाना) श्राद्धमञ्जरीमत से, अन्यमत से भूकूष्माण्ड (पाताल कोढा), तिल, शृंगाटक (सिंघाडा) कञ्चुक (कचनार, (वन की अरवी) कन्द (सूरण), कर्कन्धु[4] (वन की ककडी, केन्दु, वैर, पालेवत (सहतूत), अरारूक-आडू, अरुई) अक्षोट-अखरोट, पनस—कटहर, काकोली—(अश्वगन्ध), शुभ क्षीरकाकोली (अश्वगन्धा ये गौडदेश में प्रसिद्ध है) शुभ पिण्डालक—सुथनी पूर्व

१—निगमः—यावनालानपि तथा वर्जयन्ति विपश्चितः । तैलमप्यापदि प्राज्ञाः संप्रयच्छन्ति याज्ञिकाः ॥
२—गोधूमाः सर्वजन्तूनां बलपुष्टिविवर्धनाः । मुख्याश्च हव्यकव्येषु तस्मान्मे ददतु श्रियम् ॥
१—कृष्णवर्णं भूकुष्माण्डफलम् । तिक्तककडी—इतिश्राद्धसारे ।

देश में कहते हैं तथा महाराष्ट्र में मोहलरत्न कन्द कहते हैं)। धान के सहित लावा, त्रपुस—खीरा बड़ा त्रपुसादि ककेटी के भेद हैं। उर्वारु (ककडी), चिर्भट—फूट (खरबूजा) सरसों का साग, राजशाक—वथुआ, इंगुद-हिंगोट, हिंगोट के वृक्ष मारवाड, अलीगढ आदि देश में मिलते है। इनमें छोटे छोटे फल होते हैं।) राजजंवू—फरैना जामुन (वडी जामुन), प्रियाल—चिरोंजी, आंवला, फल्गु—कठगूलर, हेमाद्रिमत से छोटा आंवला, तिलकण्टक—परवर, वेत्राङ्कुर—वेत का अग्रभाग (वांस का अंकुर), तालकन्द=ताडमुसला, चुक्रिका—तिन्तिण्डी, (डासरिया मारवाड में प्रसिद्ध खट्टी मोठी चार पत्ते वाली घास का नाम) क्षीरिका—फलों का राजा खिरनी, वच—दो प्रकार की होती है कड़वी और मीठी। लोच केला या वैर, मोच—केला, लकुच[१]—बडहर, बीजपूरक—विजोरा निम्बू, मुञ्जातक—मूँज (कावुलीफल), पद्मफल—कमलगट्टा इनसे निर्मित भक्ष्य-भोज्य तथा राग[२] खाण्डव—मिठीचटनी, पिप्पली, शुण्ठी, मुद्गरस एतत्त्रयं मिलितं रागखाण्डव इत्युच्यते।) जिसमें लवंग, इलायची और पत्र हों उसको मनुष्यों के पितरों के श्राद्धों में देने से एकमहिना तक प्रसन्न होते है।

एषां कोशहेमाद्र्यादिव्याख्यावैद्यकाद्यनुसारेण मध्यदेशभाषया नामान्युच्यन्ते—

सतीनैः=कालायैः, 'कलायस्तु सतीनक इत्यमरः। बटुरीति प्रसिद्धैः। विदार्या तत्कन्देन। भरुण्डं जलजं मखाना इति प्रसिद्धं श्राद्धमञ्जर्याम्। (भू) कूष्माण्डमित्यन्ये। शृङ्गाटकम्=सिंघाड़ा। कञ्चुकः= कंचनारः। कन्दः=सूरणः, 'अर्शोऽघ्नः सूरणः कन्द' इत्यमरः। कर्कन्धूः वन्यं सूक्ष्मं बदरम्। पालेवतं कोशातकी। आरुकम्=अरुई। अक्षोटम्=अखरोटः। काकोलीक्षीरकाकोल्यौ गौडेषु प्रसिद्धे। पिण्डालकम्=सुथनी। (महाराष्ट्राणां मोहलकन्द इति प्रसिद्धम्।) त्रपुसादयस्त्रयः कर्कटीभेदाः। चिर्भटम्= खर्बूजम्। सर्षपा इति दीर्घश्छान्दसः। प्रियालम्=चिरौञ्जी। फल्गु=उदुम्बरम्। तिलण्टकम्= पटोलम्। तालकन्दः=कन्दविशेषः। चुक्रिका तिन्तिणी चिम्बा (चिञ्ची)। क्षीरिका=खिरणी। मोचम्= कदलीफलम्। लकुचम्=बड़हरम्। मुञ्जातकं गौडदेशे प्रसिद्धम्। पद्मफलम्=गट्टा।

इनका नाम कोश, हेमाद्रि आदिकी व्याख्या तथा वैद्यक के अनुसार मध्यदेश की भाषा से नामों को कहते हैं।

सतीन—कलाय (मटर), बटुरी यह प्रसिद्ध है। विदारी (विदारी कन्द) भूकूष्माण्डी कन्द, माधवमत से काले वर्ण का भूकूष्माण्डफल होता है। भरुण्ड-जल का मखाना यह श्राद्धमञ्जरी में कहा है। कोई कहते कि—कश्मीर देश में होता है। कोई कूष्माण्ड कहते हैं। कूष्माण्ड का निषेध तो अल्पतर परक है। भरद्वाज ने कहा है कि—'स्वल्पं तु कूष्माण्डफलं वज्रकन्दश्च पिप्पली। भरुण्ड को कूष्माण्ड नहीं कहते है। या भूकूष्माण्ड यह पाठ है। शृंगाटक-सिंघाडा, श्राद्धदीप में कहा है कि—आमशृंगाटक (कच्चा सिंघाडा) निषिद्ध है। कंचुक—कंचनार, माधवमत से 'कर्चूर' इस नाम का शाक, कन्द—सूरण, (अर्शोघ्नः सूरणः कन्दः-यह अमरकोष में है। श्राद्धदीप में कहा कि—वज्रकन्द निषिद्ध है। कर्कन्धु—वन में होनेवाला छोटा वैरफल, पालेवत=कौशातकी (तरोई) जंवीर के आकार का फल भेद यह अन्य कहते हैं। आरूक—अरई, कोई जंगली अरुई को कहते हैं। अक्षोट[३]—अखरोट, काकोली तथा क्षीरकाकोली गौडदेशों में प्रसिद्ध है। पिण्डालक—(सालू) सुथनी (सुथनी) (महाराष्ट्रों के मत से मोहलकन्द नाम से प्रसिद्धि है। त्रपुसादि तीन ककडी के भेद हैं। स्थूलकर्कटी के भेद। उर्वारु—स्वादयुक्त ककडी, चिर्भट—खर्बूजा तिक्त ककडी, या अर्थान्तर से राजसाग-कालीसरसों, सर्षपा में दीर्घ छान्दस है। प्रियाल-चिरोंजी, फल्गु—उदुम्बर, तिलण्टक-स्वादु परवर, तालकन्द—कन्दविशेष, चुक्रिका—इमली, क्षीरिका—खिरणी, मोच—केलेका फल, लकुच[४]—वडहर, मुञ्जातक—गौडदेश में प्रसिद्ध, पद्मफल—कवलगट्टा।

१—लकुचफलभूतं कर्णाटकदेशे प्रसिद्धम्। २—पानविशेषः—श्राद्धसारे।

३—श्राद्धसारे—गिरिसंभवः, पीयुः करारुजकन्दो भद्रमुद्राख्यः।

४—मूल (जड) पत्रकरीराग्रफलकाण्डाधिरूढकम्। त्वक्पुष्पं कवचं चेति शाकमष्टविधं स्मृतम्॥ 'कालशाकं महाशल्काः खड्गलोहामिषं मधु। आनन्त्यायैव कल्पन्ते मुन्यन्नानि च सर्वशः॥ महाशल्काः—रोहितप्रभृतयो मत्स्याः'। खड्गो-गण्डकः। लोहः=सर्वलोहितच्छागः। तयोर्मांसमुन्यन्नानि—नीवाराः।

(रागखाण्डवलक्षणकथनम्)

रागखाण्डवः=पानादिविशेषः । पिप्पलीशुण्ठियुक्तस्तु मुद्गयूषस्तु खाण्डवः । रागखाण्डवतां याति शर्करासंयुतं तु तत् ॥ इत्युक्तः पानविशेषः । त्रिजातम्=लवङ्गैलापत्रकाणि ।

राग खाण्डव पानादि विशेष को कहते हैं--पिप्पली और सोंठ से मिला हुआ मूंग की दाल का जूस को खाण्डव कहते हैं। और उसमें निवू आदि अम्लद्रव्य का रस और चीनी मिलाने से रागखाण्डव कहते हैं। उससे कहा हुआ पान विशेष। त्रिजात—लवंग, इलायची और पत्र।

मदनरत्ने कौर्मे—कालशाकं च वास्तूकं मूलकं कृष्णनालिका। प्रशस्तानीति शेषः। हेमाद्रौ पृथ्वीचन्द्रोदये च वायुपुराणे--कालशाकं महाशाकं द्रोणशाकं तथार्द्रकम्। बिल्वामलकमृद्वीका-पनसाम्रातदाडिमम् ॥ चव्यं पालिवताक्षोटं खर्जूरं च कसेरुकम्। कोविदारश्च कन्दश्च पटोलं बृहतीफलम् ॥ पिप्पली मरिचं चैव एला शुण्ठी च सैन्धवम्। शर्करागुडकर्पूरबदरीद्रोणपत्रकम् ॥

मदनरत्न में कूर्मपुराण का मत है कि-कालशाक (करेमु) वास्तूक-बथुवा, मूलक-मूली, कृष्णनालिका (करेमु) ये उत्तम हैं यह शेष है। कालशाक—(कालिका) (मारसासाग), महाशाक--लोनिया, (लोनी लालरंग) द्रोणशाक—गोमा, अर्द्रक-आदी, बिल्वफल, आंवला, मुनक्का, कटहर, आम्रात—आंवडा (यह कच्चे आमका रूप होते हुए भी परवर का कुछ रूप होता है। वृक्ष पीपल के आकार का होता है।) दाडिम—अनार, चव्य—गजपीपल, पालीवत (अमरूद), अक्षोट—अखरोट, खर्जूर—खजूर, बृहतीफल—वनभंटा, पिप्पली-पीपल, मरिच,[1] इलायची, सोंठ, सेंधा निमक, शर्करा, गड, कपूर, बदरीफल, द्रोणपत्र—गोमा।

तथा—मधुकं रामठं चैव कर्पूरं गुडमेव च। श्राद्धकर्मणि शस्तानि सैन्धवं त्रपुसं तथा ॥ रामठम्=हिङ्गुः। कसेरुः कोविदारश्च तालकन्दस्तथा बिसम्। तमालं शतकन्दश्च मध्वालुः शीतकन्दकम्। कालेयं कालशाकं च सुनिषण्णं सुवर्चलम्। मांसं शाकं दधि क्षीरं चाम्बुवेत्राङ्कुरस्तथा। कट्फलं कौङ्कणी द्राक्षा लकुचं मोचमेव च ॥ तिन्दुकं ग्रीवकं चारं कर्कन्धुर्मधुसाह्वयम् ॥ वैकङ्कतं नारिकेलं शृङ्गाटकपरूपकम्। पिप्पलीमरिचे चैव पटोलं बृहतीफलम् ॥ एवमादीनि चान्यानि स्वादूनि धुमराणि च। नागरं चार्द्रकं देयं दीर्घमूलकमेव च ॥ इति। तथा--शर्कराक्षीरसंयुक्ताः पृथुका नित्यमक्षयाः।

मधुप—मुलेठी, हेमाद्रिमत से गुडपुष्प है। रामठ—हींग, कपूर, गुड, सैंधव और त्रपुस (ककडी) ये श्राद्ध में प्रशस्त है। कसेरु, कोविदार-कचनार, तालमली, हेमाद्रिमत से कन्द। बिसम् कमल की जड, तमाल—तेजपत्ता, शतकन्द—शतावरी, मध्वालू—मीठा आलू, शीतकन्दक—कमलके नीचे का एकप्रकार का गोलाकार कन्द—थूलक), कालेय—करासंज्ञक साग, पृथ्वीचन्द्रोदय के मत से दारुहलदी, गोविन्दराज के मत से करालाख्यनामवाला शाक, कालशाक—करेमू, हेमाद्रिमत से कालिकाशाक—वडाशाक, सुनिषण्ण—चौराई, सुवर्चल—शाकविशेष (उरहुर), मांस, शाक—साधारणपत्र—पुष्प आदि का साग, दधि, दूध, अम्बू-जलवेत, वेत्राङ्कुर—वेत का अंकुर, कट्फल—कायफल, कौङ्कणी[2]—खट्टीमुनक्का, द्राक्षा—मुनक्का, तिन्दुक—तेन्दु (गोल लौकी), मोच—केला, अलाबु—लौकी, चार—चिरोंजी, मधुसाह्वय—महुआ, वैंकक्त=(बबूर) नारियल, सिंघाडा, परूषक—फालसा, पिप्पली—छोटीपीपल, गोलमिर्च, परवर, और बृहतीफल—वनभंटा, इसप्रकार अन्य स्वादुयुक्त मधुरफल हो। नागर—सोंठ, आदि और दीर्घमूलक—वडी मूली, चीनी और दूध से मिश्रित मालपूडे नित्य ही अक्षय (तृप्ति) करते हैं।

द्रोणशाकम्=गूम इति प्रसिद्धम्। मृद्वीका=द्राक्षा। आम्रातकम्–आम्वाडा इति प्रसिद्धो वृक्षस्तत्फलम्। पालिवतम्=जम्बीरम्, पालिआलमिति गौडप्रसिद्धं वा। खर्जूरं-खजूर इति प्रसिद्धम्। कसेरुः=जलजः कन्दः। कोविदारः=कश्चनारः (कचनार)। तालकन्दः=तालमूली। बिसम्=भसीडम्।

१—मरिच आदि गीली हो शुष्क न हो। श्राद्धमयूख।

२—कोङ्कणदेशप्रभवा द्राक्षा।

शतकन्दः=शतावरी। शीतकन्दः=शालूकं, सेरुकीति प्रसिद्धम्। कालेयम्=करालसंज्ञः शाकः, दारुहरिद्रा वेति पृथ्वीचन्द्रोदयः। सुनिषण्णं कर्कटीसदृशं सुलटीया इति गौडप्रसिद्धम्। सुवर्चलं शाकविशेषः। कट्फलं श्रीपर्णीवृक्षफलम्। कौङ्कणी=अम्लरसा द्राक्षा। तिन्दुकं डिण्डिसमिति कैदेवः तिन्दुफलं वा। ग्रीवकम्=फलविशेषः। चारम्=क्षुद्रतालम्। मधुसाह्वयम्=मधूकपुष्पं फलं वा। वैकङ्कतम् चैञ्चीति गौडाख्यातम्। परूषकं पुरूसमिति प्रसिद्धम्। नागरम्=शुण्ठी।

द्रोणशाक—गूम या गूमा, गोमा, मृद्वीका—मुनक्का, आम्रातक–'आंबाडा' यह प्रसिद्ध वृक्ष है, उसका फल, (महुवा) वृद्ध लोग—'कपीतक' कहते हैं और 'अंबण्डी' यहाँ के लोग कहते हैं। महाराष्ट्र लोग 'राताम्बा' वृक्ष और उसके फल को आम्बसोल कहते हैं, (धर्मसिन्धुकार के मत से—आंबाडा–इति प्रसिद्धस्तण्डुलीयो 'माठ' इति प्रसिद्धः।) पालीवत (अमरूद) जंबीर, पालि आल यह गौड मत में प्रसिद्ध है। खजूर—खजूर यह प्रसिद्ध है। कसेरु—जल का कन्द, कोविदार—कचनार के सदृश, अर्थात्—कचनार ही होता है। 'कूष्माण्डालाबुवार्ताककोविदारांश्च वर्जयेत्' इससे कचनार का निषेध है। पहले विधान किया था। तालकन्द—तालमूली, बिस—कमलनी की मूल (जड), शतकन्द—शतावरी, शीतकन्द—शालूक, (कमल की जड) सेरुकी यह प्रसिद्ध है। कालेय—करालसंज्ञक शाक, 'दारुहलदी' यह पृथ्वीचन्द्रोदय ने कहा है। सुनिषण्ण—(विसखरिया) ककडी के सदृश 'सुलटीया' यह गौड में प्रसिद्ध है। सुवर्चल—शाकविशेष, 'सुमसुमि' यह गौड कहते हैं। कट्फल—श्रीपर्णीवृक्षफल, (खंभारी या कंभारी) महाराष्ट्रगण 'कायफल' कहते हैं। तिन्दुक[1] (तेन्दु) 'डिण्डिसम्' या तिन्दुफल यह कैदव कहते हैं। ग्रीवक—फलविशेष। चार (चिरौंजी) क्षुद्रताल, मधुसाह्वय—मधूकपुष्प या फल, वैकङ्कत—स्रुवावृक्ष फल, 'चैञ्ची' यह कहते हैं। परूष—फालसा, नागर—शुण्ठी।

पृथ्वीचन्द्रोदये ब्राह्मे—(आम्रमाम्रातकं बिल्वं दाडिमं बीजपूरकम्। प्राचीनामलकं क्षीरं नारिकेलं परूषकम्॥) नारङ्गं च खजूरं द्राक्षा नीलकपित्थकम्। एतानि फलजातानि श्राद्धे देयानि यत्नतः॥

पृथ्वीचन्द्रोदय में ब्रह्मपुराण का मत है कि—(आम, आम्रातक (आंवडा), बिल्व, अनार, बिजोरा निम्बू, प्राचीन आंवला, क्षीर-राजादन फल, गुर्जरदेश वाले 'खिरनी' कहते हैं। नारियल, परूष–फालसा) नारंगी, खजूर, मुनक्का, नीलकपित्थ—कैथ के वृक्ष में जो फल लगते हैं उनमें जो गुद्दी निकलती है वह दो तरह की होती है सफेद तथा नीली, इनके फल श्राद्ध में यत्न से देना चाहिए।

मात्स्ये—अन्नं तु सदधिक्षीरं गोघृतं शर्करान्वितम्। मासं प्रीणन्ति सर्वान्वै पितॄनित्याह केशवः॥

मत्स्यपुराण में कहा है कि—दही तथा दूध से मिश्रित अन्न शर्करा (चीनी) और गोघृत से युक्त देने से एक महीने तक पितर निश्चय तृप्त करते हैं। यह बात केशव ने कहा है।

याज्ञवल्क्यः—(आचाराध्याय–२५८-२६०) हविष्यान्नेन वै मासं पायसेन तु वत्सरम्। मात्स्यहारिणकौरभ्रशाकुनच्छागपार्षतः॥ ऐणरौरववाराहशाशैर्मांसैर्यथाक्रमम्। मासवृद्धयाऽभितृप्यन्ति दत्तैरिह पितामहाः॥ खड्गामिषं महाशल्कं मधु मुन्यन्नमेव च। लोहामिषं कालशाकं मांसं वार्ध्रीणसस्य च॥

याज्ञवल्क्य ने कहा है कि (आचारा० श्लो० २५८-२६०)–हविष्यान्न से एक महीने तक तथा पायस[2] (खीर) से एक साल तक तृप्त होते हैं। पाठीन आदि मछली, हिरण—ताम्रमृग, (उरभ्र) भेडा तित्तिर, बकरा, चित्रमृग, कृष्ण मृग, रुरू, जङ्गली सूअर, खरगोश के मांस को श्राद्ध में देने से क्रम से एक एक महीने अधिक समय तक पितरों की तृप्ति होती है। गैंडे का मांस, महाशल्क–मछली, सहत, तिन्नी का

१—शितिसाराख्यो वृक्षः।

२—काशीखण्डे–२७ अध्याये—अतप्ततण्डुलो धौतः परिभ्रष्टो घृतेन च। खण्डयुक्तेन दुग्धेन पाचितः पायसो भवेत्॥ पायसः कफकृद्बल्यो विष्टम्भी मधुरो गुरुः। 'ओदनस्तु प्रसिद्धः स्यात्पायसः पयसा श्रृतः। ओदनस्तिलमिश्रस्तु कृसरः परिकीर्तितः। तिलकल्वान्विनिक्षिप्य श्रृतो वा कृसरो भवेत्॥ (आश्व० गृ० सू० पृ० ६७)।

चावल, लालवर्ण के बकरे का मांस, कोई काले वर्ण को कहते हैं। कोई लोहपृष्ठ नाम वाले शकुनो को कहते हैं। कालशाक[1]-कालिका (करेमू) वाध्रीणस (पिबतो यस्य कर्णौ द्वौ जिह्वा चेति त्रयं स्पृशेत्। त्रिपिबं त्विन्द्रियक्षीणं यूथस्याग्रसरं तथा। रक्तवर्णं तु राजेन्द्र छागं वार्ध्रीणसं विदुः॥ इति माधव) केचिदन्यथा वदन्ति-पक्षिविशेषो वा-कृष्णग्रीवो रक्तशिराः श्येनपक्षी विहङ्गमः। स वै वार्ध्रीणसः प्रोक्त इत्येषा वैदिकी श्रुतिः॥ 'त्रिपिबं त्विन्द्रियक्षीणं श्वेतं वृद्धमजापतिम्। वार्ध्रीणसन्तु तं प्राहुर्याज्ञिकाः पितृकर्मसु॥ के मांस से तृप्त होते हैं।

(वाध्रीणसलक्षणकथनम्)

निगमः——त्रिः पिबं त्विन्द्रियक्षीणं श्वेतं वृद्धमजापतिम्। वार्ध्रीणसं तु तं प्राहुर्याज्ञिकाः श्राद्धकर्मणि॥ वार्ध्रीणसो जरच्छाग इति मेधातिथिः।

निगम ने कहा है कि—जिसकी तीनों क्षीण इन्द्रियाँ जल पीती हो ऐसे सफेद, वृद्ध अजापति को श्राद्ध कर्म में याज्ञिक उसको 'वार्ध्रीणस' कहते हैं। मेधातिथि ने बूढे छाग (बकरे) को वाध्रीणस कहा है।

(छागादीनां विचारः)

कात्यायनः——छागोस्रमेषानालभ्य शेषाणि क्रीत्वा लब्ध्वा वा स्वयं मृतान् वाहृत्य पचेत्।

कात्यायन ने कहा है कि—छाग, उस्र (वृषभ) और मेष (भेडा) का आलंभन कर अवशिष्टों को खरीद कर या प्राप्त कर या स्वयं मरों को ले आकर पकावे।

कौर्मे——क्रीत्वा लब्ध्वा स्वयं वाऽथ मृतानाहृत्य वा द्विजः।
दद्याच्छ्राद्धे प्रयत्नेन तदस्याक्षयमश्नुते॥

कूर्मपुराण में कहा है कि—द्विज खरीद कर, प्राप्त कर या स्वयं मरों को ले आकर प्रयत्न से श्राद्ध में देने से अक्षय्य तृप्त पितर होते हैं।

(श्राद्धे दत्तस्य मांसस्याभक्षणे दोषकथनम्)

श्राद्धे दत्तस्य मांसस्याभक्षणे दोषमाह मनुः-(५।३५) नियुक्तस्तु यथान्यायं यो मांसं नात्ति मानवः। स प्रेत्य पशुतां याति संभवानेकविंशतिम्॥ अत्र बहुषु वचनेषु श्राद्धे मांसमधुनोः प्राशस्त्योक्तेः।

श्राद्ध में दिये हुए मांस के अभक्षण में मनु (अ० ५।३५) ने दोष कहा है कि—यथाविधि (श्राद्ध और मधुपर्क) में नियुक्त होकर जो मनुष्य मांस का भक्षण नहीं करता है। वह मरने पर इक्कीस जन्म तक पशु होता है। यहाँ पर बहुत बचनों से श्राद्ध में मांस और सहत को उत्तम कहा है।

विना मांसेन यच्छ्राद्धं कृतमप्यकृतं भवेत्। इति हेमाद्रौ देवलोक्तेः।

देवल ने हे[illegible]द्रिमें कहा है कि—विना मांसके किया हुआ जो श्राद्ध है वह नहीं ही करने के बराबर है।

(श्राद्धे माक्षिकस्य महत्वकथनम्)

यच्छ्राद्धं मधुना हीनं तद्रसैः सकलैरपि। मिष्टान्नैरपि संयुक्तं पितॄणां नैव तृप्तये॥ अणुमात्रमपि श्राद्धे यदि न स्याच्च माक्षिकम्। नामापि कीर्तनीयं स्यात् पितॄणां प्रीतये ततः॥ इति हेमाद्रौ ब्राह्मोक्तेश्च मांसमधुनोः श्राद्धे नियतत्वं गम्यते।

जो श्राद्ध सहत से हीन है। वह सब रसों से तथा मिष्टान्नों से युक्त भी हो तो पितरों की तृप्ति के लिए नहीं होता है। अणुमात्र भी श्राद्ध में सहत न हो तो भी पितरोंकी प्रीति के लिए 'सहत' का नाम ही ग्रहण करे यह हेमाद्रि में ब्रह्मपुराण का मत है। इससे श्राद्ध में मांस और सहत का नियतत्व जाना जाता है।

१—कालशाकं च वास्तूकं मूलकं कृष्णनाडिका। वेत्राङ्कुरं कलायं च पटोलं सार्षपं तथा॥ सूर्यावर्तं सुनिष्पन्नं शाकान्याहुर्मनीषिणः। कृष्णनाडिका कृष्णनाडी च इतिश्राद्धपल्लवश्राद्धमञ्जर्यौ। सूर्यावर्तं 'हुरहुर' इति प्रसिद्धम्। सुनिष्पन्नमम्लोनिकाकषायपत्रसदृशपत्रचौपपत्तीति प्रसिद्धम्। जलप्रभवशाकं, पट्टनाडीशाकं च वाक्यान्तरात्' इति श्राद्धविवेके।

गौडनिबन्धे मात्स्यसूक्ते--मध्वभावे गुडो देयः क्षीरस्य च तथा दधि ।
न लभ्यते घृतं यत्र कुर्यात् घृतवतीजपम् ॥

गौडनिबन्ध में मात्स्यसूक्त का वचन है कि--मधु के अभाव में गुड, दूध के अभाव में दधि और जहाँ घी न प्राप्त हो वहाँ पर 'घृतवती'[1] इस ऋचा का जप करे ।

श्राद्धकलिकायां नागरखण्डे--कथञ्चिद्यदि विप्रेभ्यो न दत्तं भोजने मधु ।
पिण्डास्तु नैव दातव्याः कदाचिन्मधुना विना ॥

श्राद्धकलिकाल में नागरखण्ड का कथन है कि--यदि कथञ्चित् ब्राह्मणों के लिए भोजन के समय में मधु न दिया हो तो भी मधु के बिना कभी पिण्डों को नहीं देना चाहिये ।

(श्राद्धे मांसनिषेधकथनम्)

बृहत्पराशरस्तु मांसं निषेधति--यस्तु प्राणिवधं कृत्वा मांसैस्तर्पयते पितॄन् ।
स विद्वांश्चन्दनं दग्ध्वा कुर्यादङ्गारविक्रयम् ॥

बृहत्पाराशर ने तो मांस का निषेध किया है कि--जो मनुष्य प्राणी का वधकर मांसों से पितरों को तृप्त करता है । वह विद्वान् चन्दन को दग्धकर उसके अंगारों को वेचता है ।

क्षिप्त्वा कूपे यथा किञ्चिद्बाल आदातुमिच्छति । पतत्यज्ञानतः सोऽपि मांसेन श्राद्धकृत्तथा ॥

जैसे--कोई बालक कूप में किसी चीज को फेककर फिर से अज्ञान से ग्रहण करने की इच्छा करता है । तद्वत् ही अज्ञान द्वारा मांस से श्राद्ध करने वाला भी गिर जाता है ।

(सर्वथान्नाभावे मांसग्रहणविचारः)

स एव--सर्वथान्नं यदा न स्यात् तदैवामिषमाश्रयेत् ।
ब्राह्मणश्च स्वयं नाद्यात्तच्च श्वादिहतं यदि ॥

उन्हीं का कथन है कि--जब सर्वथा अन्न प्राप्त हो तब ही आमिष (मांस) का ग्रहण करे । (यहाँ पर आमिषविधि के विषय का प्रदर्शन मात्र है । क्योंकि--आमिष का आश्रय न करे-यह तात्पर्य है ।) और कुत्ते आदि के मारे हुए मांस को स्वयं ब्राह्मण न भक्षण करे ।

(भागवतेऽपि मांसदाने विचारः)

भागवतेऽपि--(स्क० ७ अ० १५ श्लो० ७) न दद्यादामिषं श्राद्धे न चाद्याद्धर्मतत्त्ववित् । मुन्यन्नैः स्यात्परा प्रीतिर्यथा न पशुहिंसया ॥ तथेति शेषः ।

भागवत में भी कहा है कि-धर्म के तत्त्व का जानकार व्यक्ति श्राद्ध में मांस न दे और न भक्षण करे । मुनि के अन्नों से जैसी परा (उत्कृष्ट) प्रीति होती है वैसी पशुहिंसा से नहीं होती है । 'तथा' यह शेष है ।

(मांसादिग्रहणे व्यवस्था)

अत्र केचित्--मुन्यन्नं ब्राह्मणस्योक्तं मांसं क्षत्रियवैश्ययोः । मधुप्रधानं शूद्रस्य सर्वेषां चाविरोधि यत् ॥ इति हेमाद्रौ पुलस्त्योक्त्या व्यवस्थामाहुः ।

यहाँ पर किसी ने कहा है कि--ब्राह्मण के लिए मुन्यन्न (नीवार आदि) क्षत्रिय और वैश्य के लिए मांस कहा है । मधुप्रधान शूद्र को है । इस (मधु) में सबों का कोई विरोध नहीं है-यह हेमाद्रि में पुलस्त्य ने कहकर व्यवस्था[2] कही है ।

१--घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा । द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा ॥ (ऋ० ६।७०।१) ।

२--क्षत्रिय और वैश्य को ही मांस का विधान है वचन भी है--'क्षत्रियवैश्ययोरेव मांसम्' । अर्थात्--मांस का विधान ब्राह्मण को श्राद्ध में नहीं है ।

(कलौ पञ्चवस्तूनां निषेधकथनम्)

पृथ्वीचन्द्रोदयस्तु—अक्षता गोपशुश्चैव श्राद्धे मांसं तथा मधु। देवराच्च सुतोत्पत्तिः कलौ पञ्च विवर्जयेत्॥ इति निगमोक्तेः,

पृथ्वीचन्द्रोदय ने तो कहा है कि—अक्षता (अक्षता कन्या जिसके साथ संभोग न किया हो), गोयज्ञ, श्राद्ध में मांस तथा सहत[1] और देवर द्वारा पुत्रोपत्ति इन पाँच कर्मों को कलि में वर्जित किया है—ऐसा निगम ने कहा है।

वराऽतिथिपितृभ्यश्च पशूपाकरणक्रिया। इति कलिज्येंषु हेमाद्रावादित्यपुराणात्। मांसदानं तथा श्राद्धे वानप्रस्थाश्रमस्तथा। इत्युक्त्वा—इमान धर्मान् कलियुगे वर्ज्यानाहुर्मनीषिणः। इति बृहन्नारदीयेऽभिधानाच्च मांसविधिः कलिव्यतिरिक्तविषयः। कलौ मांसनिषेधानां च देशाचाराद्व्यवस्था।

वर (उत्तम—पाणिग्रहणार्थी), अतिथि (अभ्यागत, (मनुः-३।१०२) एकरात्रं तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मण स्मृतः। अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते॥), पितर, पशूपाकरणक्रिया (कुशा से संस्कार पूर्वक पशु वध) ये कलिवर्ज्य में हेमाद्रि में आदित्यपुराण का वचन है। श्राद्ध में मांसदान और वानप्रस्था (अपने धार्मिक जीवन के तीसरे आश्रम में प्रविष्ट ब्राह्मण) आश्रम को कहकर इन धर्मों को कलियुग में बुद्धिमानों ने त्याग करना कहा है—यह बृहन्नारदीयपुराण में कहने से मांसविधि कलियुग से भिन्न विषय है। कलि में मांस निषेधकों का देशाचार से व्यवस्था है।

तथा च बृहन्नारदीये श्राद्धं प्रकृत्य—यथाचारं प्रदेयं तु मधुमांसादिकं तथा। देशाचाराः परिग्राह्यास्तत्तद्देशीयजैर्नरैः॥ अन्यथा पतितो ज्ञेयः सर्वधर्मबहिष्कृतः। इति।

और बृहन्नारदीयपुराण में श्राद्ध को प्रकृति कर कहा है कि—श्राद्ध में—मधु और मांसादिक को जैसा कुलाचार हो देना चाहिये। अपने अपने देशाचार को मनुष्यों ग्रहण करना चाहिये। अन्यथा सब धर्मों से पतित हो जाते हैं।

यस्मिन् देशे पुरे ग्रामे त्रैविद्यैर्नगरेऽपि वा। यो यत्र विहितो धर्मस्तं धर्मं न विचारयेत्॥ इति भृगूक्तेश्चेत्याह। तन्न, होलाकाधिकरणन्यायेन देशविशेषव्यवस्थापकपदकल्पनायोगात्। निरूपितं चैतत्पितामहचरणैर्मांसमीमांसायामिति दिक्।

तीनो वेदों का निष्णात ब्राह्मण जिस देश (मुल्क, स्थान) में, पुर शहर (बडे बडे विशाल भवनों से युक्त, चारों ओर परिखा से घिरा हुआ और विस्तार में एक कोससे कम न हो) में, ग्राम (गांव) में और नगर (कस्बा, शहर) में जो जहाँ पर विहित धर्म हो उस धर्म का विचार न करे। ऐसा भृगु के कथन से कहा है। यह उचित नहीं है। होलाधिकरणन्याय[2] से देश विशेष-व्यवस्था स्थापक पद की कल्पना का अयोग है—यह हमारे पितामहभट्टचरण ने माँसमीमांसा में कहा है।

१—कथञ्चिद् यदि विप्रेभ्यो न दत्तं भोजने मधु। पिण्डास्तु नैव दातव्याः कदाचिन्मधुना विना॥ इति काले दाप्रत्ययात् कलिनिषेधो भोजनमात्रपर इति पिण्डे कलावपि मधु देयम्। सर्वकालं तिला ग्राह्याः पितृकृत्ये विशेषतः। भोज्यपात्रे तिलान् दृष्ट्वा निराशाः पितरो गताः। इतिवत् इति, तदशुद्धम्। 'कथञ्चित्' इति विस्मरणादेव लाभात्तद्वचनस्यैकमूल—कल्पनालाघवेन कलिभिन्नत्वात्।

२—मीमांसा के प्रथमाध्याय तृतीयपाद होलाकाधिकरण में यह विचार किया है कि—होलकादि शिष्टाचार देश विशेष में प्रसिद्ध है। होलाका उसे कहते हैं—चैत्रकृष्ण प्रतिपदा में परस्पर होलानामक जो उत्सव है। यह प्राच्यों में प्रसिद्ध है। उस अधिकरण में यह विचार किया है कि यह होलाकाचार वहीं प्राच्यों के लिये है या सभी के लिये है। पूर्वपक्ष यह है कि—जिस देश में जो आचार उपलब्ध होता है उन्हीं लोगों के लिए वह आचार अनुष्ठेय है। सिद्धान्त किया है कि—प्राच्य प्रतीच्य आदि शब्द का आप कोई निर्वचन नहीं कर सकते। इसलिये प्राच्यादि शब्द को छोडकर ही साधारण श्रुति की कल्पना होती है। अर्थात्-यह आचार सभी को मान्य (अनुष्ठेय) है। इसीलिए यहाँ का सिद्धान्त है कि मांस निषेध का कलियुग में निषेध है। अतः मांसविधि कलिव्यतिरिक्त विषय है। इस विषय को हमारे पूज्य पितामह ने मांसमीमांसा में निर्णय किया है।

(मांसादिदाने तृप्तिविचारः)

मनुः—(३।२७१) संवत्सरं तु गव्येन पयसा पायसेन च। वार्ध्रीणसस्य मांसेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी॥ त्रिपिबं त्विन्द्रियक्षीणं श्वेतं वृद्धमजापतिम्। वार्ध्रीणसं तु तं प्राहुर्याज्ञिकाः श्राद्धकर्मणि॥

मनु ने कहा है कि-गव्य-मांस से गौ के दूध तथा खीर से एक साल तक वार्ध्रीणस (गेंडा) के मांस से बारह साल की तृप्ति होती है। तीन जगहों से पान (पिबतो यस्य कर्णौ द्वौ जिह्वा चेति त्रयं स्पृशेत्। त्रिपिबं त्विन्द्रियं क्षीणं यूथस्याग्रसरं तथा॥ रक्तवर्णं तु राजेन्द्र छागं वार्ध्रीणसं विदुः॥ इति माधवः) करनेवाला जिसके इन्द्रिय क्षीण हो गये हैं, ऐसा सफेद वृद्ध अजापति को वार्ध्रीणस (पक्षिविशेषो वा—कृष्णग्रीवो रक्तशिराः श्येनपक्षो विहङ्गमः। स वै वार्ध्रीणसः प्रोक्त इत्येषा वैदिकी श्रुतिः॥) को श्राद्धकर्म में याज्ञिक कहते हैं।

(क्षीरादौ विशेषमाह)

क्षीरादौ विशेषमाह हेमाद्रौ सुमन्तुः—पयो दधि घृतं चैव गवां श्राद्धेषु पावनम्।
महिषीणां घृतं प्राहुः श्रेष्ठं न तु पयः क्वचित्॥

क्षीरादि में विशेष हेमाद्रि में सुमन्तु ने कहा है कि—गौओं का दूध, दधि और घृत श्राद्धों में तथा भैसों का घृत पवित्र होता है पर भैंस का दूध उत्तम कहीं भी नहीं होता है।

याज्ञवल्क्यः—(आचाराध्याय-श्लोक–१७०) सन्धिन्यनिर्दशाऽवत्सागोपयः परिवर्जयेत्।
औष्ट्रमैकशफं स्त्रैणमारण्यकमथाविकम्॥

याज्ञवल्क्य ने कहा है कि—सन्धिनी[1] जो ऋतुमती में बैल की इच्छा करती हो गर्भिणी, (विज्ञानेश्वरमत से जिसका बच्छा मर गया हो ऐसी गौ एक साल के भीतर ही बैल की इच्छा करती हो), अनिर्दशा—जिस प्रसूता के दश दिन न बीते हों अवत्सा[2]—बिना बच्छे वाली, (जिसका बच्छा मर गया हो या जिसका बच्छा, पास में न हो) ऐसी गौ का दूध न पीवे। ऊटनी, एक खुरवाली घोडी, स्त्री, जंगली पशु, भेड (भैंस का भी दूध निषेध है पर जंगली भैस का दूध ग्राह्य है, अन्यत्र निषेध है) आदि का दूध श्राद्ध में न पीवे।

हेमाद्रौ हारीतः—नवसूतायाः सप्तरात्रादित्येके, दशरात्रादित्यपरे, मासेनोपेयुषं भवतीति धर्मविदः। एतद्रजोभावपरम्।

हेमाद्रि में हारीत ने कहा है कि—नई ब्याही गौ का दूध सात रात्रि न पीवे—यह किसी एक का मत है। दूसरों का कहना कि-दशरात न पान करे। धर्म के जानकारों का कहना है कि—अपेयुष (नहीं पीने योग्य) होता है। यह रजोदर्शन पर है। जब तक रज की निवृत्ति नहीं हो तब तक गौ का दूध नहीं पीना चाहिये। इसी को पीयूष कहते हैं। कोश में भी कहा है कि 'पीयूषोऽभिनवं[3] पयः)।

(त्याज्यदुग्धविचारः)

देवलः—अजाऽविमहिषीणां तु पयः श्राद्धेषु वर्जयेत्।
विकारान् पयसश्चैव माहिषं तु घृतं हितम्॥

देवल ने कहा है कि—श्राद्धों में—अजा (बकरी) भेड तथा भैस इनका दूध और दूध के विकारों को त्याग करे। भैंस का घृत हितकर है।

१—या उभयोः प्रातदोहा कथञ्चित् अन्यतरस्मिन् दुह्यते प्रातरदुग्धा सायं दुह्यते। सा तु स्वल्पक्षीरत्वादेकस्मिन्नेव काले सासौ सन्धिनी। कश्चिदाह या मृतस्ववत्सा परकीयं वत्सं संचार्य दुह्यते सा सन्धिनी।

२—विवत्सा—तु या सत्येव वत्सं विना कृतवत्सा वत्सप्रस्रवणमनपेक्ष्य कुष्ठकयवशालितुषादिना भोजनविशेषेण दुह्यात् इति मेधातिथिः।

३—घृतात्फेनं घृतान्मण्ड पीयूषमथ चार्द्रगोः। अस्यार्थः—घृतादुद्धृत्य मण्डं तदग्रं न पेयम्। आर्द्रायाः प्रसवप्रभृत्यनिवृत्तरजस्काया गोः पयो न पेयम्। एतदेव पीयूषम्।

तत्रैव ब्राह्मे—माहिषं चामरं मार्गमाविकैकशफोद्भवम् ।
स्त्रैणमौष्ट्रं पाचितं च दधि क्षीरं घृतं त्यजेत् ॥
सगुडं मरिचाक्तं तु तथा पर्युषितं दधि । दीर्णं तक्रमपेतं च नष्टास्वादं च फेनवत् ॥

वहीं पर ब्रह्मपुराण में कहा कि—भैंस, (जंगली भैंस का दूध श्राद्ध से अन्यत्र ग्रहण करना कहा है) चमरी गौ, मृगी, भेड, एक शफ—घोडी आदि, स्त्री, ऊंटनी, (मांगकर लिया हुआ) पाचितम्–पका हुआ दूध, दधि तथा घृत त्याज्य है।

गुड और मरिच से मिश्रित वासी दधि, फटा हुआ बहुत समय का रखा हुआ जिसका स्वाद नष्ट (दीर्घकाल स्थित्या नष्टस्वादु फेनवच्च तक्रं न पेयम् ।) हो गया हो ऐसा फेन की तरह मट्ठा वह भी अपेय होता है।

(आरण्यमहिषीक्षीरग्रहणे विचारः)

माहिषापवादोऽपरार्के ब्राह्मे—देयं तक्रं तु सद्यस्कं नवनीतादनुद्धृतम् । आरण्यमहिषीक्षीरं शर्करास्रुतिसंयुतम् । मध्वक्तं तु हितं चैव दद्यात्तदमृतं यतः ॥ स्रुतिः=क्षीरसरः । श्राद्धकौमुद्यां चैवम् ।

महिषी का अपवाद अपरार्क में ब्रह्मपुराण मत से कहा है कि—मक्खन से निकला हुआ ताजा मट्ठा, जंगली भैंस का दूध, शर्करा और क्षीर (दूध) से टपका (बहता) हुआ मधु का रस अमृत होता है। स्रुति माने—क्षीरशर । श्राद्धकौमुदी में भी यही है।

(गोधूमादिनिर्मितपर्युषितान्नभक्षणे विचारः)

यद्यपि याज्ञवल्क्येन—(आचाराध्याय-१६९) अन्नं पर्युषितं भोज्यं स्नेहाक्तं चिरसंस्थितम् । अस्नेहा अपि गोधूमयवगोरसविक्रियाः ॥ इति । पर्युषितं दध्यादिभोज्यमुक्तम् ।

यद्यपि याज्ञवल्क्य ने कहा है कि—घी आदि की चिकनाई से युक्त बहुत काल से रखा हुआ अन्न वासी भी भोजन के योग्य है जिसमें घी न हो ऐसे भोज्य पदार्थ—गेहूँ, यव, गोरस (दूध) से बने अन्न यदि चिकनाई से युक्त न हो तो ग्रहण कर सकते हैं। इससे वासी दधि आदि को भोज्य कहा है।

(गुडमरीचाक्तस्य पर्युषितत्त्वकथनम्)

तथापि गुडमरीचाक्तस्य पर्युषितदोषोऽत्रोच्यत इति हेमाद्रिः ।

फिर भी गुड और मरिच मिश्रित पदार्थों को पर्युषित दोष (वासी) हेमाद्रि ने यहाँ कहा है।

(श्राद्धेषु कालशाकादीनां कथनम्)

तत्रैव ब्राह्मे—कालशाकं तण्डुलीयं वास्तुकं मूलकं तथा । शाकमारण्यकं चैव दद्याच्छ्राद्धेषु नित्यशः ॥ तन्दुलीयम्=सूक्ष्मपत्रमिति हेमाद्रिः । महाराष्ट्राणां माठ इति प्रसिद्धम् । आरण्यकं फाञ्जीचूकादि ।

वहाँ पर ब्रह्मपुराण में कहा है कि—कालशाक (करेमू), तण्डुलीयक (चौराई) हेमाद्रि ने सूक्ष्मपत्र कहा है। वास्तूक—बथुवा, महाराष्ट्र में 'माठ' कहते हैं। मूली और जंगली साग (फांजी चूकादि) को नित्य श्राद्धों में दे।

तत्रैव—दाडिमं मागधी चैव नागरार्द्रकतिन्तिणी । आम्रातकं जीरकं च कुम्बरं (कुबरं) चैव योजयेत् ॥ मागधी=पिप्पली । (नागरम्=शुण्ठी ।) कुम्बरं कुस्तुम्बरं धनिया इति प्रसिद्धम् ।

वहीं पर कहा है कि—अनार, मागधी (पिप्पली) नागर–शुण्ठी, सोंठ, आदी, तिन्तिणी (इमली), आम्रातक (आंवडा), जीरा और कुँवर (धनिया), इनका योग करे। मागधी–माने पिप्पली, नागर माने सोंठ, कुम्बर, कुस्तुम्बर–माने धनिया–यह प्रसिद्ध है।

वायवीये—अगस्त्यस्य शिखास्ताम्राः कापायाः सर्व एव च । शिखा=नवपल्लवाः ।

वायुपुराण में कहा है कि—अगस्त्य वृक्ष के नवीन पल्लवों को ताम्रकापाय कहते है। शिग्रा माने—नूतन पल्लव।

प्रभासखण्डे—आरामस्य तु सीमन्ताः कलायाः सत्र एव च। सीमन्ताः=नवपल्लवाः।

प्रभासखण्ड में कहा है कि—वगीचे के नवीन पल्लवों को कलाय होते हैं।

कौर्मे—तमालं शतकन्दं च मध्वालुः शीतकन्दली। मध्वालुः=मोहलकन्दः। शीतकन्दली=रतालू इति प्रसिद्धम्।

कूर्मपुराण में कहा है कि—तमाल (काला पत्ता, सुरती नहीं है), शतकन्द (सांप का छत्ता-कुक्कुरमुत्ता) मध्वालु (मोहलकन्द), शीतकन्दली (रतालू) भी दे यह प्रसिद्ध है।

(श्राद्धे त्याज्यवस्तुकथनम्)

अथ वर्ज्यम्। मार्कण्डेयपुराणे—यच्चोत्कोचादिना प्राप्तं पतिताद्यदुपार्जितम्। अन्यायकन्या-शुल्कार्थं द्रव्यं चात्र विगर्हितम्॥ पित्रर्थं मे प्रयच्छस्वेत्युक्त्वा यच्चाप्युपाहृतम्।

इसके बाद त्याज्य को कहते हैं। मार्कण्डेयपुराण में कहा है कि—अपने कार्य को रुकता देखकर उसे हटाने के लिये या आपत्काल के प्रतिकार के लिए राजा के अधिकारी को जो दिया जाय उसको उत्कोच (घूस) कहते हैं। उसके द्वारा प्राप्तधन, पतितादि से उपार्जित-कमाया हो अन्याय के लिए कन्या को वेचकर-जो धन मिला हो ऐसा द्रव्य यहाँ पर निन्दित है। मेरे पिता के श्राद्ध के लिए दो वह प्राप्त धन भी निन्दित है।

चन्द्रोदये शङ्खः—भूस्तृणं सुरसा[1] शिग्रु पालङ्की मृचुकं तथा। कूष्माण्डालाबुवार्ताककोविदारांश्च वर्जयेत्॥ पिप्पली मरिचं चैव तथा वै पिण्डमूलकम्। कृतं च लवणं सर्वं वंशाग्रं च विवर्जयेत्॥ राजमाषान् मसूरांश्च कोद्रवान् कोरदूषकान्। लोहितान् वृक्षनिर्यासान् श्राद्धकर्मणि वर्जयेत्॥

भूस्तृणं काश्मीरदेशे प्रसिद्धम्। सुरसा निर्गुण्डीति माधवः। तुलसीति पृथ्वीचन्द्रः। सा च भक्ष्यत्वेन निषिद्धा न पुष्पत्वेनेति गौडाः। पालङ्की=पालक इति प्रसिद्धा। मृचुकम्=जलजः शाकः। 'ससुकम्' इति पाठे खदिरशाक इति हेमाद्रिः। मरिचान्यार्द्राणीति हेमाद्रिः। कृतलवणं सांभरभिन्नम्, सैन्धवं लवणं चैव तथा मानससंभवम्। यच्च सामुद्रिकं भवेत्' इति शूलपाणौ पाठः। पवित्रे परमे ह्येते प्रत्यक्षे अपि नित्यशः। इति वायवीयोक्तेः मानसं=सांभरम्।

चन्द्रोदय में शंख ने कहा है कि—भूस्तृण-भूतिक नाम वाला शाक, कोई कहते है कि—काश्मीर में प्रसिद्ध है। कोई 'कलम्बीक' को कहते हैं। स्मृतिचन्द्रिकाकारमत से—यस्य नाले ग्रन्थिस्थाने परिमाण्डला-वयवा भवन्ति सभूस्तृण इति। सुरसा—तुलसी, (निर्गुण्डी—) शिग्रु—मीठा सेजन (सौभाञ्जनरक्तपुष्पो न श्वेतपुष्पः।) पालङ्की—सोवापालक (मुकुन्दाख्यो गन्धद्रव्यभेदः) मृचुक—करेमू का साग, कूष्माण्ड—पेठा, अलावु—लौकी तुंबावाला, वार्ताक—वनभंटा, (क्षुद्रवार्ताकीफलमित्यन्ये, कोविदार—कचनार, पिप्पली, मिरच—ताजीमिरच नहीं, पिण्डमूलक—सलगम, निर्माण किया हुआ सब निमक, और बांस का अग्रभाग त्याग दे। राजमाष-बोडा छोटा, मसूर, कोदो, कोरदूषक-सेमर या पलाश का गोंद, (पाटलश्वेतहिङ्गुकर्पूरा-दिक का निषेध नहीं है।) श्राद्धकर्म में त्याग करे।

भूस्तृण—कश्मीरदेश में प्रसिद्ध है। सुरसा-निर्गुण्डी—को माधव कहते हैं। पृथ्वीचन्द्र तुलसी को कहते हैं। वह भक्षण करने में निषिद्ध है। पुष्पत्वेन निषिद्ध (पुराणे—तुलसीगन्धमाघ्राय पितरस्तुष्ट-मानसाः। प्रयान्ति गरुडारूढास्तत्पदं चक्रपाणिनः॥) नहीं है। यह गौडों का कहना है। पालङ्की-पालक को कहते हैं यह प्रसिद्ध है। मृचुक-जल का शाक। ससुकम्—इस पाठ में खादिरशाक यह हेमाद्रि का कहना है। मरिच आदि (पिप्पल आदि) गीली हो यह हेमाद्रि का कहना है। निर्मित लवण सांभर से भिन्न ग्रहण करे। शूलपाणी में पाठ है कि—सिन्धु नदी का निमक तथा सामुद्रिक निमक ग्राह्य है। सांभर और समुद्रनिमक ये प्रत्यक्ष (न प्रत्यक्षं लवणं दद्यात्—यह वैष्णव का अपवाद है और सांभर निमक भी सदा पवित्र है—यह वायुपुराण में कहा है।

१–शाकविशेषः; निर्गुण्डी। २–हिंगुद्रव्यस्य विधिप्रतिषेधयोर्दर्शनाद्विकल्पः। 'तद्विहितप्रतिषिद्धत्वाद्वैवल्पिकमानुकल्पकंवती।'

यत्तु भविष्ये—तर्जन्या दन्तकाष्ठं च प्रत्यक्षलवणं तथा। इति। तत्र (प्रत्यक्षलवणं) क्षारलवणं खारीति प्रसिद्धं निषिद्धम्, भुक्त्वा तु क्षारलवणं त्रिरात्रं तु वने वसेत्। इति ब्राह्मोक्तेरिति शूलपाणिः। क्षीरलवणमिति पाठात् क्षीरमिश्रं लवणं निषिद्धमिति वाचस्पतिः। राजमाषा रतरा इति प्रसिद्धाः। कोरदूषकाः=वनकोद्रवाः।

जो भविष्यपुराण में कहा है कि—तर्जनी से दन्तकाष्ठ तथा प्रत्यक्ष लवणक्षार लवणखारीनिमक प्रसिद्ध निषिद्ध है। ब्रह्मपुराण में शूलपाणी ने कहा है कि—क्षारलवण को भक्षण कर तीनदिन वन में निवास करे। वाचस्पति का कहना है कि—'क्षीरलवण' इसपाठ से क्षीरमिश्रलवण निषिद्ध है। राजमाष—बोडा छोटा, (रतरा यह प्रसिद्ध है-पावटे, चवली) कोरदूषक—जंगली कोदो।

चन्द्रिकायां शङ्खः—पिण्डालकं च तुण्डीरं करमर्दं च नालिकाम्। कूष्माण्डं बहुबीजानि श्राद्धे दत्वा व्रजत्यधः॥ पिण्डालकं महाराष्ट्रेषु पेण्डरमिति प्रसिद्धम्। तुण्डीरं बिम्बीफलमिति कैदेवः। करमर्दं करवन्दमिति प्रसिद्धम्।

चन्द्रिका में शङ्खने कहा है कि-पिण्डालक (आलू), तुण्डीर, कुन्दरु, कमर्द-करौंदा, नालिका-कमलदण्ड, एलापल्लव का भेद यह अन्य कहते हैं। कूष्माण्ड—पेठा और बहुबीज-सरीफा, इनको श्राद्ध में देने से नीचे गिरता है। पिण्डालक को महाराष्ट्रों में पेण्डर शब्द से प्रसिद्ध है। तुण्डीर को बिम्बीफल (कुंदरू) कैदव ने कहा है। करमर्द करवन्द से प्रसिद्ध है।

तत्रैव—बिडालोच्छिष्टमाघ्रातं श्राद्धे यत्नेन वर्जयेत्। कूष्माण्डं महिषीक्षीरमाढक्यो राजसर्षपाः॥ चणका राजमाषाश्च घ्नन्ति श्राद्धं न संशयः।

वहीं पर कहा है कि—बिल्ली से उच्छिष्ट तथा सूँघी हुई चीज श्राद्ध में यत्न से त्याग दे। कूष्माण्ड (कोंढा सफेद) भैंस का दूध, आढकी (तुवरी, अरहर की दाल) राजसर्षप—राई, चना और राजमाष (बोडा), ये श्राद्ध को नष्ट करते हैं। इसमें संशय नहीं है।

वृद्धपराशरः—करीरफलपुष्पाणि विडङ्गमरिचानि च। जम्भारिका सजम्बीरा सुपक्कं बीजपूरकम्॥ जम्ब्वलाबूनि पिप्पल्यः पटोलं पिण्डमूलकम्। मसूराञ्जनपुष्पं च श्राद्धे दत्त्वा पतत्यधः॥ जम्बू=सूक्ष्मम्।

वृद्धपराशर ने कहा है कि—करीर (कबीर ही नाम है, मथुरा और वृन्दावन में होता है।) के फल और पुष्प, वायविडिंग, मरिच, जंभारिका (जंबीर-जंबीरी निंबू) (बीजपूरक) (बीजपूरक निषेधः प्रत्यक्षपरः) जम्बू-छोटी-सूक्ष्म जामुन, अलाबू—लौकी, पिप्पली, परवर, पिण्डमूलक—(मोटीमूली) मसूर और अञ्जनपुष्प=अगुरु पुष्प को श्राद्ध में देने से नीचे गिरता है।

माधवीये चतुर्विंशतिमते—यावनालान् कुलत्थांश्च वर्जयन्ति विपश्चितः। यावनालाः=जोंधला इति। अत्र यानि चणकादीनि विहितनिषिद्धानि तेषां विकल्पः। अन्यथा श्यामाकैश्चणकैः शाकैर्नीवारैश्च प्रियङ्गुभिः। गोधूमैश्च तिलैर्मुद्गैर्मासं प्रीणयते पितॄन्॥ इति,

गोधूमैरिक्षुभिर्मुद्गैः सतीनैश्चणकैरपि। इति हेमाद्रौ कौर्मविष्णुधर्मादिविरोधः स्यात्। पिप्पलीमरीचादेस्तु प्रत्यक्षस्य निषेधो न त्वन्यद्रव्यमिश्रस्य,

सौवीरतिक्तैर्लवणादिभिस्तु पाकस्य सिद्धिर्महतीह यैस्तु।
तद्बीजपूरान्मरिचादियोगात्सिद्धिप्रदेयं न तु दुष्यतीह॥

इति पृथ्वीचन्द्रोदये वृहत्पराशरोक्तेः।

तत्रैव—दास्तुश्च यस्मिन्मनसोऽभिलापः श्रद्धा भवेद्यत्र च दीयमाने। श्राद्धेषु देयं विधिवत्तदेव तद्दत्तमक्षय्यमिति ब्रुवन्ति॥ एतन्निषिद्धेतरविषयम्।

माधवीय में चतुर्विंशति मत से कहा है कि–यावनाल–जोंधरी और कुलथी को विद्वान् त्याग देते हैं। यावनाल माने जौंधरी यहाँ पर जो चणक आदि का विधान तथा निषेध होने से विकल्प है। अन्यथा-श्यामाक-सांवा, चना शाक (पत्ति का साग), नीवार (तिन्नी का चावल)। प्रियंगु (ककुनी), गेहूँ, तिल और मूँग से पितरों की एक महिने तक की तृप्ति होती है।

गेहूँ, ईख, मूँग, सतीन (मटर) और चने से भी। यह हेमाद्रि में कूर्म, विष्णुधर्म आदि का विरोध हो जायगा। पिप्पली, मरिच आदि प्रत्यक्ष का तो निषेध है न की अन्यद्रव्यमिश्रित का, सौवीर (गेहूँ से निर्मित सिर का) तिक्त लवणादियों से पाक की सिद्धि बडी होती है। उसके बीजों से निम्बू मरिच आदि योग से सिद्ध होना चाहिये, इससे यहाँ दोष नहीं है। यह पृथ्वीचन्द्रोदय में वृद्धपराशर ने कहा है।

वहीं पर कहा है कि जिसमें दाता के मन से अभिलाषा (इच्छा) हो, जिसके देने में श्रद्धा हो, उसी को विधिवत् श्राद्धों में देना चाहिये। उसके देने से 'अक्षय्य' होता है ऐसा कहते हैं। यह निषिद्ध वस्तु से इतर विषयक है।

चन्द्रिकायाम्—कृष्णधान्यानि सर्वाणि वर्जयेच्छ्राद्धकर्मणि।
न वर्जयेत्तिलांश्चैव मुद्गमाषांस्तथैव च॥

चन्द्रिका में कहा है कि—सब काले धान श्राद्धकर्म में त्याग करे। परन्तु तिल, मूँग और वैसे ही उडद का त्याग न करे।

मात्स्ये—मसूरशणनिष्पावराजमाषकुसुम्भिकाः। पद्मबिल्वार्कधत्तूरपारिभद्राटरूषकाः॥ न देयाः पितृकार्येषु पयश्चाजाविकं तथा। कोद्रवोदारवरककपित्थमधुकातसी॥ एतान्यपि न देयानि पितृभ्यः श्राद्धमिच्छता॥ निष्पावाः=वल्लाः।

मत्स्यपुराण में कहा है कि—मसूर, शण (शण), निष्पाव-सेम, राजमाष (बोडा), कुसुंभिका, बरैं, पद्म (कमल), बिल्व, अर्क (मदार), धतूरा, पारिभद्र-नींव (फरहद), आटरूषक अडूसा, इनको पितृकार्यों में नहीं देना चाहिये। बकरी तथा भेंड का दूध न दे। कोद्रव (कोदो), उदार-कचनार, वरक (वन के मूँग), कपित्थ (कैथ), मधुक-महुआ और अतसी (तीसी) इनको भी पितरों के श्राद्ध की इच्छावाला न दे। निष्पाव-माने वल्ला। (सूप आदि की हवा जिससे अनाज की कदूरत निकाली जाती है। धान आदि की भूसी निकालना निस्तुषीकरण सेम)।

यत्तु मार्कण्डेयः—प्रियङ्गवः कोविदारा निष्पावाश्चात्र शोभनाः। इति। तत्र निष्पावः=श्वेतशिम्बीति दानसागरे श्राद्धप्रकाशे चोक्तम्। बिल्वं च रक्तं निषिद्धम्, जम्बीरं रक्तबिल्वं च शालस्यापि फलं त्यजेत्। इति ब्राह्मोक्तेः। 'पारिभद्रे निम्बतरुः' इत्यमरः। रक्तमन्दार इति हेमाद्रिः। आटरूषो वासा तत्पुष्पम्। उदारः=काञ्चनारः। मधुकं=ज्येष्ठीमध्विति चन्द्रिका। वरकाः=वनमुद्गाः।

जो मार्कण्डेय ने कहा है कि—प्रियङ्गु (प्रियंगु), कोविदार (कचनार) और निष्पाव (सेम) श्राद्ध में उत्तम है। वहाँ पर निष्पाव शब्द से सफेद शिम्बी (किवाच) दानसागर में और श्राद्धप्रकाश में कहा है। बिल्व लाल निषिद्ध है। ब्रह्मपुराण में कहा है कि—जंबीर (निंबू बड़ा), लाल बिल्व और शाल (सखुआ) का फल इनको त्याग दे। पारिभद्र माने-निम्ब का पेड़ यह अमरकोप में कहा है। हेमाद्रि का कहना है कि—लालमंदार (मदार)। आटरूप—अडूडा (वासा) उसके पुष्प को कहते हैं। उदार माने-कचनार, मधूक—जेष्ठ मधु (मुलेठी) यह चन्द्रिका में कहा है। वरक माने-वन के मूँग।

हेमाद्रौ ब्रह्माण्डे—आसनारूढमन्नाद्यं पादोपहतमेव च। अमेध्यैर्जङ्गमैः स्पृष्टं शुष्कं पर्युषितं च यत्। द्विःस्विन्नं परिदग्धं च तथैवाग्रावलेहितम्। शर्कराकीटपाषाणैः केशैर्यच्चाप्युपद्रुतम्॥ पिण्याकं मथितं चैव तथातिलवणं च यत्। सिद्धाः कृताश्च ये भक्ष्याः प्रत्यक्षलवणीकृताः॥ वाससा चावधूतानि वर्ज्यानि श्राद्धकर्मणि।

हेमाद्रि में ब्रह्मपुराण का मत है कि—आसन पर रखा अन्नादि, पैर से स्पर्श हुआ, अमेध्य (अपवित्र), जंगम जीवों से स्पर्श सूखा या बासी जो अन्नादि है, द्विस्विन्न, (दो बार पका हुआ

अर्थात्—जीरा, हींग आदि को फिर से देकर पकाया हुआ) परदग्ध (दूसरों के द्वारा जलाया हुआ अन्न) वैसे ही—अग्रावलेहित (ग्रास का पूर्वभाग चाटा हुआ अन्न) शर्करा (कंकड), कीट (देवलः—विशुद्धमपि चाहारं मक्षिकाकृमिजन्तुभिः। केशरोमनखैर्वाऽपि दूषितं परिवर्जयेत् ॥ मक्षिकाकृमिजन्तवो मृता विवक्षिताः।), पाषाण और केश (बाल) गिर गये हों, मथित (विलोई हुई बिना जल की दधि) जिस वस्तु में अधिक निमक हो, जो सिद्ध किये हुए भक्ष्य पदार्थों में लवण गिरा हो। जो वस्त्र से कंपित (वस्त्र से हवा किया हुआ) हो ऐसी वस्तुओं को श्राद्ध कर्म में त्याग देना चाहिये।

द्विः स्विन्नं यत् सकृत्पाकेन भक्ष्यमपि हिङ्गुजीरकादिसंस्कारार्थं पुनः पच्यते तद्वर्ज्यम्। यत्तु तिक्तशाकान्नविकारादि द्विःपाकेनैव भक्षणार्हं न तन्निषिद्धम् अग्रावलेहितमास्वादितपूर्वम्। पर्युषितस्य सदा निषेधेऽपि पुनर्वचनम्।

अपूपाश्च करम्भाश्च धाना वटकसक्तवः। शाकं मांसमपूपं च सूपं कृसरमेव च ॥ यवागूः पायसं चैव यच्चान्यत्स्नेहसंयुतम्। सर्वं पर्युषितं भोज्यं शुक्तं चेत्परिवर्जयेत्। इति माधवीये यमोक्तवटकादेरपि पर्युषितस्य निषेधार्थमिति चन्द्रिकादयः।

जो एक बार पकाने से भक्ष्य भी है पर हींग, जीरा आदि द्वारा संस्कार के लिए फिर से पकाया हो उसे त्याग दे—उसी को द्विःस्विन्न कहते हैं। जो तिक्त शाक अन्न के विकार आदि दूसरी बार पाक से ही भक्षण के लिए उत्तम होते हैं वे निषिद्ध नहीं हैं। जिसका पहले स्वाद ले लिया हो उसको अग्रावलेहित कहते हैं। बासी का सदा निषेध होने पर भी फिर से वचन है कि—

मालपूडा (यव और गेहूँ का विकार मण्डक आदि) करंभ (वृक्ष) धान, वटक (बडा) उड़द आदि के पिसे पदार्थ) सत्तु, शाक, मांस, अपूप (फिर से अपूप का जो ग्रहण श्लोक है वह व्रीहि आदि पिष्ट का विकार के संग्रह के लिए है।) सूप (दाल), कृसर (भृष्टतिलचूर्ण) (ओदनस्तिलमिश्रस्तु कृसरः परिकीर्तितः। तिलकल्कान् विनिक्षिप्य शृतो वा कृसरो भवेत् ॥ अन्यत्र—तिलतण्डुलसम्मिश्र. कृसरः सोऽभिधीयते। यवागू (यव से पकाया हुआ लेयी के समान–लप्सी) पायस, स्नेहसंयुक्त–घी या दधि से विघारित, ये सब पर्युषित बासी (अग्नि से पके होते हुए एक रात के हों), शुक्त (अत्यम्लं शुक्तमाख्यातं निन्दितं ब्रह्मवादिभिः। अस्यार्थो माधवेनोक्तः—अनम्लमीषदम्लं वा यद्वस्तु कालान्तरेण वा द्रव्यान्तरसंसर्गेण वाऽत्यम्लं भवति तत् शुक्तं, न स्वभावतोऽत्यम्लम्। शुक्तनिषेधोदध्यादिभिन्नविषयः।) इनका त्याग करे। ऐसा माधवीय में यम द्वारा कहे हुए वटक आदि के भी पर्युषित का निषेध है–यह चन्द्रिका आदि में है।

वर्ज्येषु विश्वामित्रः—कपित्थं कुरुकं चैव नारिकेलं च पैनिकम्।
जम्बूफलादिपक्वं च पिण्याकं तन्दुलीयकम् ॥

वर्जितों में विश्वामित्र ने कहा है कि—कपित्थ (कैथ), कुरुक (नारियल), पैनिक (पके जामुन) आदि पिण्याक (खली) और तन्दुलीयक (चौराई) या वायविडिंग ये सब त्याज्य हैं।

हेमाद्रौ षट्त्रिंशन्मते—वर्ज्या मर्कटकाः श्राद्धे राजमाषास्तथैव च। मर्कटकाः लाका इति प्रसिद्धाः।

हेमाद्रि में षट्त्रिंशत का मत है कि—मर्कटक (किवाच) और राजमाष (बोडा छोटा) वर्जित हैं। मर्कटक शब्द से लाका प्रसिद्ध है।

पैठीनसिः—वृन्ताकं नलिकापोतकुसुंभाश्मन्तकानि च। शाकानामभक्ष्याः। इति।
पोतं पोई इति प्रसिद्धम्। (कुसुंभं कुरडु इति महाराष्ट्रे प्रसिद्धम्)।

पैठीनसि का वचन है कि—वृन्ताक–बैंगन (यह नित्य भोजन में भी निषेध है) नालिका (नाडी साग), पोत (पोई साग), कुसुंभ (बर्रे का साग) और अश्मन्तक (मालवेनु का साग), इनके शाक अभक्ष्य हैं। पोत शब्द से पोई प्रसिद्ध है। कुसुंभ शब्द से कुरडु (करडी, करड) यह महाराष्ट्र में प्रसिद्ध है।

मार्कण्डेयः—वर्ज्याश्चाभिषवा नित्यं शतपुष्पा गवेधुकाः। जम्बीरकफलं वर्ज्यं कोविदाराश्च नित्यशः ॥ अभिषवः शुक्लमिति चन्द्रिका। सन्धानकमिति पृथ्वीचन्द्रः। शतपुष्पा ओंवा इति प्रसिद्धम्।

मार्कण्डेय ने कहा है कि—अभिषवा (शतपुष्पा) (सौंफ) गवेधुक (जंगली गेहूँ, चावलों में सफेद वर्ण के शङ्काकार धान्यविशेष यह ग्रन्थान्तर में है) जंबीरकफल (नीम्बू बड़ा) और कोविदार (कचनार) को नित्य त्याग दे। अभिषव (चिरस्थापितमदोत्पादक द्रव्य) माने शुक्त (सूक्तम्) यह चन्द्रिका मत है। सन्धान यह पृथ्वीचन्द्र मत से है। शतपुष्पा माने ओंवा यह प्रसिद्ध है।

शाठ्यायनः—मारिषं नालिका चैव रक्ता या च कलम्बिका। असुरान्नमिदं सर्वं पितॄणां नोपतिष्ठते ॥ मारिषं मध्यदेशे मरसा इति, महाराष्ट्रे राजगिरा इति च प्रसिद्धम्। कलम्बिका वेणवाकृतिपत्रम्।

शाट्यायन ने कहा है कि—मारिष (मालसा का साग), नालिका (नाडीसाग) और रक्तकलम्बिका (करेमु का साग) ये सब असुरान्न हैं पितरों को नहीं मिलता है। मारिष को मध्यप्रदेश में मरसा कहते हैं। महाराष्ट्र में राजगिरा शब्द से प्रसिद्धि है। कलम्बिका—बाँस के आकार का पत्र।

तत्रैव—गान्धारिका पटोलानि श्राद्धकर्मणि वर्जयेत्। गान्धारिका तन्दुलीयमिति चन्द्रिका। 'जवासाख्या दुरालभा' इति कैदेवः।

वहीं पर कहा है कि—गान्धारिका (मादक द्रव्य विशेष, गांजा) और परवर इनको श्राद्धकर्म में त्याग करे। गान्धारिका माने तन्दुलीय है यह चन्द्रिका मत है। जवासाख्या, दुरालसा—यह कैदव ने कहा है।

भारते—हिङ्गु द्रव्येषु शाकेषु अलाबुं लशुनं तथा। कुकुण्डकान्यलाबूनि कृष्णं लवणमेव च ॥ पुनरलाबुग्रहणमुभयालाबुनिषेधार्थमिति पृथ्वीचन्द्रः। कुकुण्डकं—वर्तुलं छत्राकम्।

भारत में कहा है कि—द्रव्यों में हींग[1] (हिंगु द्रव्यस्य विधिप्रतिषेधयोर्दर्शनादिति विकल्पः), शाकों में अलावू (लौकी), लशुन, कुकुण्डक (कुकुरमुत्ता), अलावू (गोल लौकी) तथा कालानिमक ये त्याज्य हैं। फिर से अलावू का ग्रहण होने से दोनों प्रकार की लौकियों का निषेध है यह पृथ्वीचन्द्र का कथन है। कुकुण्डक वर्तुलछत्राक (नालिकाशणछत्राककुसुम्भालाबुविड्भवान्। कुंभीकश्रुकवृन्ताककोविदारांश्च वर्जयेत् ॥ इत्युशनसा सामान्यतश्छत्राकोक्तेः। छत्राकं कवचम्।) (शतपुष्पा हेमाद्रिः, कवकमित्यन्ये)।

तत्रैव—कुस्तुम्बुरुं कलिङ्गोत्थं वर्जयेदम्लवेतसम्।

वहीं पर कहा है कि—कुस्तुम्बुरु (धनिया) और कलिंगदेश में उत्पन्न हुआ अम्लवेतस (अम्ललास) का त्याग करे।

हेमाद्रौ ब्राह्मे—वार्ताकं पञ्चशिम्बं च लोमशानि फलानि च। कलिङ्गं रक्तचारं च वीणाकं धृतचारकम् ॥ कपालं काचमारी च करञ्जं पिण्डमूलकम्। गृञ्जनं चुक्रिकां चैव गाजरं जीवकं तथा ॥ वृन्ताकं=श्वेतम्, कण्डूरां श्वेतवृन्ताकं कुम्भाण्डं च विवर्जयेत्। इति देवलोक्तेः। तेन कृष्णस्यानिषेध इति चन्द्रिकामाधवौ। वस्तुतस्तु सदा श्वेतनिषेधात् पुनः श्राद्धे निषेधो व्यर्थः। तेन भक्ष्यस्य कृष्णवृन्ताकस्यापि निषेधार्थमिति वयम्। कण्डूरा=कपिकच्छूः (कण्डूरं प्रावृषेणी फलम्)। कुम्भाडम्—वृत्तालाबूः। पञ्चशिम्बं वल्लमसूरराजमाषमठकुलित्थाः। लोमशानि—कपित्थानि। रक्तचारम्=लोहितचारफलम्। वीणाकम्=दीर्घकृष्णकर्कटी। धृतचारकं चिरस्थितचारफलम् चारोलीति प्रसिद्धम्। कपालम्=नारिकेलम्। काचम्=कचुवृत्तफलम्। मारीचम्=आर्द्रमरीचानि। गृञ्जनं पलाण्डुभेदः। पश्चिमदिशि प्रसिद्धः न तु गाजरम्, तस्य पृथगुक्तेः। हेमाद्रिणा तु गृञ्जनं गाजरमेवोक्तम्। गौडश्राद्धकौमुद्यामप्येवम् तच्चिन्त्यम्। चुक्रिका चिरकालशुक्तं पानकम्। चन्द्रिकायां हारीतः—न वटप्लक्षोदुम्बरशेलुदधित्थनीपमातुलिङ्गानि भक्षयेत्। शेलुः श्लेष्मान्तकः भोंकरसंज्ञः। दधित्थम्=कपित्थम्।

१—मधुकं रामठं (हिङ्गु) चैव कर्पूरं मरिचं गुडम्। श्राद्धकर्मणि शस्तानि सैन्धवं त्रपुसं तथा। इत्यादि पुराणे विहितप्रतिसिद्धत्वाद्विकल्पः। स्मृतिसारे—हिंगुनिषेधस्तु शाकद्रव्यविषयकः। हिंगुद्रव्येषु शाकेष्वितिवर्ज्यप्रकरणे व्यासोक्तेः। पिप्पलीमरीचयोः संस्कारद्रव्यत्वाच्छाकादिनिःश्चिमयोन निषेधः।

हेमाद्रि में ब्रह्मपुराण का वचन है कि—वृन्ताक (भंटा), पञ्चशिव (पांच तरह की सेम), लोमशफल कलिंग (तरबूज), रक्तचार, (वीणाक), धृतचारक, कपाल, काचमारी, करञ्ज (नक्तमालफलम्), पिण्डमूलक (लालमूली, सलजम), गृञ्जन (गाजर-हेमाद्रि ने कहा है कि—लालवर्ण का पलाण्डुभेद है) चुक्रिका, गाजर और जीवक (जीरा)।

वृन्ताक से सफेद भण्टा ग्रहण करे। कण्डूरा (कटहर), सफेद वैंगन और कुम्भाण्ड (गोल लौकी) का त्याग करे—ऐसा देवल ने कहा है। इससे काले का निषेध नहीं है, यह चन्द्रिका और माधव ने कहा है। सिद्धान्त तो यह है कि—सदा सफेद वैंगन का निषेध होने से फिर से श्राद्ध में निषेध व्यर्थ है। इससे भक्षणीय काले वैंगन का भी निषेध है यह हम (कमलाकर) कहते हैं। कण्डूर—कपिकच्छू अन्य मत से उसका फल, कुंभाण्ड—वृत्त (गोलाकार) लौकी, पञ्चशिव—सेम वल्लमसूर राजमाष—सठ कुलित्थ (कुलथी) लोमश कपित्थ फल (कैथ का फल), रक्तचार—लोहितचारफल—लालचिरौंजी, वीणाक—काली बड़ी ककड़ी, धृतचारक—बहुत दिनों का चारफल, चारोली शब्द से प्रसिद्ध है, कपाल—नारियल, काच—कचुवृक्षफल-कलकचूर, मरिच—गोलमिरच, करञ्ज—पलाण्डु का भेद (विज्ञानेश्वरमत से लशुन के आकार का सूक्ष्म नाल वाला कन्दभेद। प्रायश्चित्त प्रकरण में माधव ने कहा है कि—गृञ्जन पत्रविशेष को कहते हैं जिसके चूर्ण से गायक कण्ठ की शुद्धि के लिए भक्षण करते हैं उसको 'तमाखू' कहते हैं। 'विषलिप्तेन शस्त्रेण मृगो यः परिहन्यते। अभक्ष्यं तस्य तन्मांसं तद्धि वै गृञ्जनं स्मृतम् ॥) पश्चिमदिशा में प्रसिद्ध है वह गाजर नहीं है क्योंकि उसका अलग से विधान किया है। हेमाद्रि ने गृञ्जन शब्द से गाजर को ही कहा है। गौडश्राद्ध कौमुदी में भी यही कहा है। यह विचारणीय है। चुक्रिका—चिरकालशुक्तपान। चन्द्रिका में हारीत ने कहा है कि—वट (बड) प्लक्ष (पकडी), उदुम्बर (गूलर), शेलु (लिसोडे का फूल) दधित्थ-कपित्थ (कैथ), नीप (कदंब) और (मातुलिंग-विजोरा निंबू) इनका भक्षण न करे।

(मदिरातुल्यवस्तूनां कथनम्)

स्मृतिसारे—क्षीरे तु लवणं दत्त्वा उच्छिष्टेऽपि च यद् घृतम्।
स्नानं रजकतीर्थेषु ताम्रे गव्यं सुरासमम् ॥

स्मृतिसार में कहा है कि—दूध में निमक, उच्छिष्ट में भी जो घृत, रजक (धोबी) तीर्थों में स्नान और तांबे के पात्र में गव्य (दुग्ध आदि), सुरा (मद्य) के समान होता है।

गौडनिबन्धसागरे स्मृतिः—नारिकेलोदकं कांस्ये ताम्रपात्रे स्थितं मधु। गव्यं च ताम्रपात्रस्थं मद्यतुल्यं घृतं विना ॥ ताम्रपात्रे धृतं मांसं यच्च गव्यं घृतेतरत्। आमिषं तु गवां मांसं दधि मद्यं पयो रजः॥ द्रव्यान्तरयुतं मांसं पयसा संयुतं दधि। पयोऽनुद्धृतसारं च ताम्रपात्रे न दुष्यति ॥

गौड निबन्धसागर में स्मृति का वचन है कि कांसे के पात्र में नारियल का जल, तांबे के पात्र में रखा सहत और तांबे के पात्र में रखा गौ का दूध घी के बिना मदिरा के समान है।

तांबे के पात्र में रखा मांस, जो गौ का दूध घृत के बिना है, तांबे के पात्र में मांस रखने से गोमांस, दधि रखने से मद्य, दूध रखने से रज (खून) के बराबर होता है। द्रव्यान्तर से मिला माँस, दूध से युक्त दधि और दूध से निकला (सार) मक्खन ताम्रपात्र में दूषित नहीं होता है।

(श्राद्धे ग्राह्य जलनिरूपणम्)

अथ जलम्। याज्ञवल्क्यः—(आचाराध्याय-१९२) शुचिगोतृप्तिकृत्तोयं प्रकृतिस्थं महीगतम्।

अब जल कहते हैं। याज्ञवल्क्य ने कहा है कि—गौ की तृप्ति जिससे हो ऐसा भूमि का जल पवित्र है। (पर कलिवर्जधर्म में ऐसे जल को निषेध किया है—'गोतृप्तिशिष्टे पयसि ॥ अन्यत्र—अन्यैरपि कृते कूपे सेतौ वाप्यादिके तथा। तत्र स्नात्वा च पीत्वा च प्राजापत्यं समाचरेत् ॥)

(श्राद्धे त्याज्यजलकथनम्)

वर्ज्यं जलमुक्तं हेमाद्रौ ब्रह्माण्डे—दुर्गन्धि फेनिलं चारं पङ्किलं पल्वलोदकम्। न भवेद्यत्र गोतृप्तिर्नक्तं यच्चाप्युपाहृतम् ॥ यत्र सर्वार्थमुत्सृष्टं यच्चाभोज्यनिपानजम्। तद्वर्ज्यं सलिलं तात सदैव श्राद्धकर्मणि ॥ निपानो—जलाशयः।

त्याज्य जल[1] हेमाद्रि में ब्रह्माण्डपुराण के वचन से कहा है कि—दुर्गन्धि युक्त जल, फेन-झागवाला जल, खारा जल, मटमैला जल, डबरा (गड्ढी) का जल, जिस से गौ की जल तृप्ति न होती हो, रात्रि का ग्रहण किया हुआ जल, जो सबके लिए त्याग न किया हो और जो जलाशय उपभोग करने योग्य न हो ऐसे जलाशय उत्पन्न जल को हे तात, सदा ही श्राद्धकर्म में वर्जित करे।

शुद्धितत्त्वे शङ्खः—स्नानमाचमनं दानं देवतापितृतर्पणम्।
शूद्रोदकैर्न कुर्वीत तथा मेघाद्विनिःसृतैः ॥

शुद्धितत्त्व में शंख ने कहा है कि—स्नान, आचमन, दान, देवता और पितरों का तर्पण शूद्र के जल से तथा मेघ से निकले जल से न करे।

(गङ्गाजले विचारः)

हेमाद्रावादित्यपुराणे—चिरं पर्युषितं वाऽपि शूद्रस्पृष्टमथापि वा।
जाह्नव्याः स्नानदानादौ पुनात्येव सदा पयः ॥

हेमाद्रि में आदित्यपुराण का मत है कि—बहुत समय का वासी जल तथा शूद्र से स्पर्श हुआ गंगाजल स्नान, दान आदि में सदा पवित्र ही होता है।

(रात्रौ जलग्रहणे विचारः)

कात्यायनः—अपो निशि न गृह्णीयान्न पिबेच्च कदाचन।
उद्धृत्याग्निमुपर्यग्नेर्धाम्नो धाम्न इतीरयेत् ॥ रजोदोषे तु प्रागुक्तम्।

कात्यायन ने कहा है कि-रात में जल ग्रहण न करे न कभी पान करे। यदि रात्रि में जल ग्रहण करे तो अग्नि का स्थापन कर अग्नि में 'धाम्नो[2] धाम्न' इस ऋचा को कहना चाहिए। रजोदोष में तो पहले कह चुके हैं।

(पर्युषितगङ्गाजलादिग्रहणे विचारः)

नारदीये—त्यजेत्पर्युषितं पुष्पं त्यजेत्पर्युषितं जलम्।
न त्यजेज्जाह्नवीतोयं तुलसीं पद्मबिल्वकम् ॥

नारदीयपुराण में कहा है कि—वासी फूल और वासी जल का त्याग करे। गंगाजल, तुलसी, पद्म (कमल) और बिल्व इनका त्याग न करे।

(कुतुपानां परिगणनम्)

अन्यान्यपि पृथ्वीचन्द्रोदये मात्स्ये—मध्याह्नः खड्गपात्रं च तथा नेपालकम्बलः। रौप्यं दर्भास्तिला गावो दौहित्रश्चाष्टमः स्मृतः ॥ पापं कुत्सितमित्याहुस्तस्य सन्तापकारिणः। अष्टावेते यतस्तस्मात् कुतपा इति विश्रुताः ॥

अन्य भी पृथ्वीचन्द्रोदय में मत्स्यपुराणमत से कहा है कि—मध्याह्नकाल, गेंडे का पात्र, नेपाल का कंबल, चाँदी, कुशा, तिल, गौ और दौहित्र ये आठ ही हैं। पाप को कुत्सित (निन्दित) कहा है। क्योंकि—ये सन्ताप को देनेवाले हैं। जिससे इनको कुतुप नाम से कहा जाता है।

ब्राह्मे—यतिस्त्रिदण्डः करुणा राजतं पात्रमेव च। दौहित्रं कुतपः कालश्छागः कृष्णाजिनं तथा ॥ शस्तानीति शेषः। दौहित्रं खड्गपात्रमिति कल्पतरुः।

ब्रह्मपुराण में कहा है कि—यति (संन्यासी), त्रिदण्डी, करुणा (दया), चाँदी का पात्र, दौहित्र, कुतुपकाल, बकरा और कृष्णाजिन-मृगचर्म श्रेष्ठ हैं। दौहित्र माने—खड्गपात्र (गेंडे का पात्र) है यह कल्पतरु का मत है।

१—वासीजल, अपवित्र से स्पर्श हुआ जल, अन्त्यज जलाशय जल, अप्रतिष्ठित जलाशय जल, वाञ्छित जल, दर्भ, तिल, हेम, रजत, आदि रहित जल, अभोज्यान्नस्नात जल, पतितादि द्वारा निर्मित जलाशय जल, शूद्र द्वारा आया-हुआ जल, दुर्गन्धित जल और रात का मँगवाया हुआ जल, ये वर्जित हैं। एसा श्राद्धविवेक में द्वितीय परिच्छेद में कहा है।

२—धाम्नो धाम्नो राजँ स्ततो वरुणनो मुञ्च। यदादुरघ्न्याऽ इति वरुणेति शपामहे ततो वरुणनो मुञ्च ॥ (य०अ०-६म०२२)। वैसे यह मन्त्र बहुत शाखाओं में उपलब्ध है।

(दौहित्रादिलक्षणकथनम्)

अपरार्के स्मृत्यन्तरे—अपत्यं दुहितुश्चैव खड्गपात्रं तथैव च ।
घृतं च कपिलाया गोर्दौहित्रमिति कीर्तितम् ॥

अपरार्क में स्मृत्यन्तर वचन से कहा है कि—कन्या का लड़का, खड्गपात्र और कपिला गौ का घी इनको दौहित्र कहते हैं ।

(प्रकारान्तरेण दौहित्रलक्षणकथनम्)

ब्रह्माण्डे—अमावास्यागते सोमे या तु खादति गौस्तृणम् ।
तस्या गोर्यद्भवेत्क्षीरं तद्दौहित्रमुदाहृतम् ॥

ब्रह्माण्डपुराण में कहा है कि—अमावास्या में सोम (चन्द्रमा) के आने पर जो गौ तृण को खाती है । उस गौ से जो दूध होता है उसी को 'दौहित्र' कहा जाता है ।

(श्राद्धे सप्त पवित्राणि)

स्मृतिसङ्ग्रहे—उच्छिष्टं शिवनिर्माल्यं वान्तं च मृतकर्पटम् । श्राद्धे सप्तपवित्राणि दौहित्रः कुतपस्तिलाः ॥ उच्छिष्टं वत्सस्य दुग्धनित्यर्थः । शिवनिर्माल्यम्=गङ्गोदकम् । वान्तम्=मधु । मृतकर्पटम्=तसरीपट्टम् ।

स्मृतिसंग्रह में कहा है कि—उच्छिष्ट[1] (बच्छे का बचा दूध), शिवनिर्माल्य (गंगोदक), वान्त (सहत) मृतकर्पट (टसर[2] का कपडा), दौहित्र, कुतुपकाल और तिल ये सात श्राद्ध में पवित्र हैं ।

(तिलानां श्राद्धे विचार:)

तिलेष्वापस्तम्बः—अटव्यां ये समुत्पन्ना अकृष्टफलितास्तथा ।
ते वै श्राद्धे पवित्राः स्युस्तिलास्ते न तिलाः स्मृताः ॥

अभावे ग्राम्याः, गौराः कृष्णास्तथारण्यास्तथैव त्रिविधास्तिलाः । इति ब्राह्मोक्तेः ।

तिलों के बारे में आपस्तंब ने कहा है कि—जंगल में उत्पन्न जो तिल तथा बिना जोती हुई भूमि में जो तिल हों वे तिल श्राद्ध में पवित्र होते हैं । वे तिल तिल नहीं हैं, अर्थात् बहुत उत्तम माने जाते हैं ।

ब्रह्मपुराण में कहा है कि—अभाव में ग्राम्य के तिल को कहा है । सफेद तथा काले वैसे ही जंगल के तिल ये तीन तिल कहे हैं ।

(श्राद्धकाले कुक्कुटादीनां त्याज्यकथनम्)

अथ वर्ज्यानि चन्द्रिकायां यमः—कुक्कुटो विड्वराहश्च काकश्चाथ विडालकः । वृषलीपतिश्च वृषलः पण्ढोऽवीरा रजस्वला ॥ एते तु श्राद्धकाले वै वर्जनीयाः प्रयत्नतः ।
खञ्जः काणः कुणिः श्वित्री दातुः प्रेष्यकरस्तथा ॥ न्यूनाङ्गोप्यतिरिक्ताङ्गस्तमप्यपनयेत्ततः ।

अब त्याज्य कहते हैं—चन्द्रिका में यम ने कहा है कि—कुक्कुट (मुर्गा), विड्वराह, मैले को खानेवाला सूअर, कौआ, बिलार, शूद्रा का पति, शूद्र, नपुंसक, बिना पति, पुत्रवाली स्त्री और रजस्वला इनको श्राद्ध समय में प्रयत्नपूर्वक त्याग ही देना चाहिये ।

खञ्ज (लंगला), काना, कुणी (लुंजा—जिसकी एक बांह सूख गयी हो) श्वित्री-सफेद दागवाला, दाता का सेवक, कम अंगवाला और अधिक अङ्गवाला इनको श्राद्ध स्थान से हटा दे ।

१—अङ्गिरसस्मृतौ—पयसो वत्सपीतत्वादुच्छिष्टमितिनाम तत् ।

२—विश्वकोष में है—तसर का सूत पानी में जल्दी नहीं सड़ता है वह कपास के सूत की अपेक्षा बहुत मजबूत होता है । इसीलिए इससे मछली पकड़ने का डोरा भी बनाया जाता है । 'पहने तसर और खावे घी पैसा बचे और उमदा जी । अनायास ही हजारों लाखों कीड़ों को उबाल कर अपना रोजगार चलाते हैं । शाल, आसन, अर्जुन, हर्रे, बहेडा, बेर, देशी आवलूस, महुआ, कम्भि, ढाक, शीमर, जामुन, पीपल, फालसा, रेंडी, सेगुन तथा बादाम इन सब वृक्षों पर स्वभावतः टसर के कीडे उत्पन्न होते हैं । रेशम शब्द में देखिये ।

(हव्य-कव्यादीनामन्नदर्शने विचारः)

वायवीये—अन्नं पश्येयुरेते तु यदि वै हव्यकव्ययोः ।
उत्सृष्टव्यं प्रधानार्थं संस्कारस्त्वापदि स्मृतः ॥

वायुपुराण में कहा है कि—यदि ये लोग निश्चय हव्य और कव्य के अन्न को देख ले तो उस प्रधान अन्न का त्याग करे या आपत्तिकाल में उसका संस्कार करना चाहिए ।

(चाण्डालादिवीक्षितमन्ने विचारः)

सुमन्तुः—चाण्डालादिवीक्षितमन्नमभोज्यमन्यत्र मृद्भस्महिरण्योदकमस्पर्शात् ।

सुमन्तु ने कहा है कि—चाण्डाल आदि द्वारा देखा हुआ अन्न भोजन योग्य नहीं होता है यदि उसमें मृत्तिका, भस्म और सुवर्ण के जल का स्पर्श हो जाय तो दोष भक्षण में नहीं होता है ।

(अन्नदोषनिवारणकथनम्)

तत्रैव जमदग्निः—शुद्धवत्योऽथ कूष्माण्ड्यः[2] पावमान्यस्तरत्समाः[3] ।
पूतेन वारिणा दर्भैरन्नदोषमपोनुदेत् ॥

वहीं पर जमदग्नि ने कहा है कि—शुद्धवती, कूष्माण्डसंज्ञक ऋचा, पावमानी ऋचा, और तरत्समा इन ऋचाओं द्वारा कुशाओं के पवित्र जल को छिड़कने से अन्न के दोष को दूर करती है ।

१—एतो न्विद्रं स्तवाम सखायः स्तोम्यं नरम् । कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत् ॥ अगोरुधाय गविषे द्युक्षाय दस्म्यं वचः । घृतात् स्वादीयो मधुनश्च वोचत ॥ यस्यामितानि वीर्या ३ न राधः पर्येतवे । ज्योतिर्न विश्वमभ्यस्त दक्षिणा ॥ (ऋ० अ. सू. २४ म. १९–२१) ।

२—यद्देवा देवहेडनं देवासश्च कृमा वयम् । आदित्यास्तस्मान्मामुंचतर्तस्यर्ते नमामित स्वाहा १ देवाजीवनकाम्या यद्वाचानृतमूदिम । तस्मान्न इदमुञ्चत विश्वे देवाः सजोषसः स्वाहा २ ऋतेन द्यावा पृथिवी ऋतेन त्वँ सरस्वति । कृतान्नः पाह्येनसो यत्किञ्चानृतमूदिम स्वाहा ३ इत्यादि बहुत से मन्त्र हैं ।

३—स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया । इन्द्राय पातवे सुतः । रक्षो हा विश्वचर्षणिरभियोनिमयोहतम् । द्रुणा सधस्थमासदत् । वरिवोधातमो भव मंहिष्ठो वृत्रहन्तमः । पर्षि राधो मघोनाम् ३ अभ्यर्ष महानां देवानां वीतमन्धसा । अभि वाजमुत श्रवः ४ त्वामच्छा चरामसि तदिदर्थं दिवेदिवे । इन्द्रो त्वे न आशसः ५ पुनाति ते परिश्रुतं सोमं सूर्यस्य दुहिता । वारेण शश्वता तना ६ तमीमण्वीः समर्य आ गृभ्णन्ति योषणो दश । स्वसारः पार्ये दिवि ७ तमीं हिन्वन्त्यग्रुवो धमन्ति बाकुरं दृतिम् । त्रिधातु वारणं मधु ८ अभी ३ ममघ्न्या उत श्रीणन्ति धेनवः शिशुम् । सोममिन्द्राय पातवे ९ अस्येदिन्द्रो मदेष्वा विश्वा वृत्राणि जिघ्नते । शूरो मघा च मंहते ६ इत्यादि बहुत से मन्त्र (ऋ० ६।१।१–१०) हैं ।

य इन्दोः पवमानस्याऽनु धामान्यक्रमीत् । तमाहुः सु प्रजा इति यस्ते सोमाविधन्मन इन्द्रायेन्दो परि श्रव १ ऋषे मन्त्रकृतां स्तोमैः कश्यपोद्वर्धयन् गिरः । सोमं नमस्य राजानं यो जज्ञे वीरुधां पतिरिन्द्रायेन्दो परि श्रव २ सप्त दिशो नानासूर्याः सप्त होतार ऋत्विजः । देवा आदित्या ये सप्त तेभिः सोमाभि रक्ष न इन्द्रायेन्दो परि श्रव ३ यत्ते राजञ्छृतं हविस्तेन सोमाभि रक्ष नः । आरातीवा मा नस्तारीन्मो च नः किं चनाममदिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ (ऋ. अ. ६ सू० ११४ म. १—४) ।

पवस्व विश्वचर्षणेऽभि विश्वानि काव्या । सखा सखिभ्य ईड्यः १ ताभ्यां विश्वस्य राजसि ये पवमान धामनी । प्रतीची सोम तस्थतुः २ परि धामानि यानि ते त्वं सोमासि विश्वतः । पवमान ऋतुभिः कवे । इत्यादि तीस मन्त्र हैं । (ऋ० म० ६ सू० ६६ म० १-३०) त्वं सोमासि धारयुर्मन्द्र ओजिष्ठो अध्वरे । पवस्व मंहयद्रयिः १ त्वं सुतो नृमादनो दधन्वान् मत्सरिन्तमः । इन्द्राय सूरिरन्धसा २ त्वं सुष्वाणो अद्रिभिरभ्यर्षकनिक्रदत् । द्युमन्तं शुष्ममुत्तमम् ३ इत्यादि बत्तीस मन्त्र हैं । (ऋ० ६ सू० ६७ म० १-३२) ।

४—तरत् स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः । तरत् स मन्दी धावति १ उस्रा वेद वसूनां मर्तस्य देव्यवसः । तरत् स मन्दी धावति २ ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योरा सहस्राणि दद्महे । तरत् स मन्दी धावति ३ आ ययोस्त्रिंशतं तना सहस्रास्ति च दद्महे । तरत् स मन्दी धावति ४ ।

(श्राद्धभूमौ पादुकादीनां वर्जनकथनम्)

चन्द्रोदये—पादुकोपानहौ छत्रं चित्ररक्ताम्बरं तथा।
रक्तपुष्पं च मार्जारं श्राद्धभूमौ विवर्जयेत् ॥

चन्द्रोदय में कहा है कि—खडाऊँ, जूता, छाता, चितकवरा लाल वस्त्र (रंग विरंगा लाल कपड़ा). लालपुष्प और विलाव इनका श्राद्धभूमि में त्याग करे।

निर्णयदीपे—घण्टानिनादो हयसन्निधानं शम्बूकशङ्खौ कदलीदलं च।
उन्मत्तजात्यर्कहयारिजानि श्राद्धस्य वैगुण्यकराण्यमूनि ॥ हयारिजम्—महिषीक्षीरादि।

निर्णयदीपमें कहा है कि—घण्टा का शब्द, (घोडे का हिनहिनाना), घोड़ेकी समीपता, शंबूक (घोंघा), शंख, केले का पत्ता, धतूरा, जाती (चमेली) अर्क (मदार) का पुष्प तथा भैंस का दूध आदि ये सब श्राद्ध में वैगुण्यता (घटियापन, तुच्छता) को ले आते हैं।

(श्राद्धदिनकृत्यम्)

अथ श्राद्धदिनकृत्यम्। चन्द्रोदये उशनाः—गोमयोदकैर्भूमिभाजनशौचं कुर्यात्।

इसके बाद श्राद्धदिनकृत्य कहते हैं। चन्द्रोदय में उशना ने कहा है कि—गोबर तथा जल से भूमि (महानस आदि की भूमि) तथा पात्रों की शुद्धि करे।

(काञ्जिकादीनामेकोद्दिष्टे पार्वणे च विचारः)

पराशरः—काञ्जिकं दधि तक्रं च शृतं चाशृतमेव च।
पूर्वमेव न दातव्यमेकोद्दिष्टेऽथ पार्वणे ॥

पराशर ने कहा है कि—कांची (वस्तुतः श्राद्ध में कांजी के वडे एकदम निषिद्ध हैं), दधि और मठा ये पके हों या विना पके हों इनको एकोद्दिष्ट और पार्वण में पहले नहीं देना चाहिये।

(गृहाग्निशिशुदेवादीनां पिण्डदानात्पूर्वं दाने विचारः)

हेमाद्रौ पराशरः—गृहाग्निशिशुदेवानां ब्रह्मचारितपस्विनाम्।
तावन्न दीयते किञ्चिद्यावत्पिण्डान्ननिर्वपेत् ॥

हेमाद्रि में पराशर ने कहा है कि—घर की अग्नि (प्रातःकाल हवन के बिना), बालक, देवता, ब्रह्मचारी और तपस्वी इनको तबतक कुछ न दे जवतक पिण्डदान न हो जाय।

(महानसादिभूमौ तिलादिविकरणकथनम्)

कौर्मे—तिलानवकिरेत्तत्र सर्वतो बन्धयेदजान्।

कूर्मपुराण में कहा है कि—महानस आदि की भूमि में तिलों का प्रक्षेप करे और चारों तरफ अजों (वकरों) का बन्धन करे।

(पाकनिर्माणकर्तुर्विचारः)

तत्रैव देवलः—तथैव यन्त्रितो दाता प्रातः स्नात्वा सहाम्बरः। आरभेत नवैः पात्रैरन्नारम्भं च बान्धवैः ॥ अत्रात्मनेपदात्स्वयमेव पाकः कार्यः। अशक्तौ पत्न्या तदभावे बान्धवैः, ततस्तानि पपाचाशु सीता जनकनन्दिनी। इति पाद्मलिङ्गादिति हेमाद्रिः।

वहीं पर ही देवल ने कहा है कि—उसीप्रकार यन्त्रित (संयमपूर्वक) देनेवाला प्रातःकाल सचैल स्नान कर बान्धवों के साथ, सवस्त्र नूतन पात्रों में पाक का निर्माण करे।

यहाँ पर आत्मने पद 'आरभेत' होने से स्वयं ही पाक करे। अशक्ति में पत्नी, उसके अभाव में बान्धवगण करे। इसमें पद्मपुराण का वचन हेमाद्रि में कहा है कि—तदनन्तर जनकनन्दनी सीताजी ने शीघ्र उन पाकों को शीघ्र बनाया।

श्राद्धदीपकलिकायामाश्वलायनः—समानप्रवरैर्मित्रैः सपिण्डैश्च गुणान्वितैः।
कृतोपकारिभिश्चैव पाककार्यं प्रशस्यते ॥

श्राद्धदीपकलिका में आश्वलायन का वचन है कि—अपने बराबर प्रवरवालों से, मित्रों से, गुणवाले सपिण्डों से और जिन्होंने उपकार को किया है उनसे पाक के कार्य को कराना उत्तम कहा है।

(निष्पन्नेषु पाकेषु पुनःस्नानकथनम्)

व्यासः—गृहिणी चैव सुस्नाता पाकं कुर्यात्प्रयत्नतः।
निष्पन्नेषु च पाकेषु पुनःस्नानं समाचरेत् ॥

व्यास ने कहा है कि—गृहिणी (पत्नी) अच्छीप्रकार से स्नानकर प्रयत्न से पाक बनावे। पाकों के बन जाने पर फिर से स्नान करे।

(रजस्वलापाखण्डापुंश्चलीपतितादीनां पाकनिर्माणे विचारः)

पृथ्वीचन्द्रोदये ब्राह्मे—रजस्वलां च पाषण्डां पुंश्चलीं पतितां तथा। त्यजेच्छूद्रां तथा बन्ध्यां विधवां चान्यगोत्रजाम् ॥ व्यङ्गकर्णीं चतुर्थाहः स्नातामपि रजस्वलाम्। वर्जयेच्छ्राद्धपाकार्थमसमातृपितृवंशजाम् ॥ मातृपितृवंशजभिन्नां त्यजेदित्यर्थः।

पृथ्वीचन्द्रोदय में ब्रह्मपुराण का वचन है कि—रजस्वला, पाखण्डी, (विधर्मी) पुंश्चली, (छिनार) पतिता, शूद्रा, वन्ध्या, विधवा, दूसरे गोतकी, कान टेढे मेढे हों, चौथे दिन स्नान की हुई रजस्वला और जो माता तथा पिता के वंश से भिन्न हो उनको पाक बनाने के लिए त्याग करे।

स्मृतिसारे—न पाकं कारयेत्पुत्रीमन्यां वाप्यन्यगोत्रजाम्।
मृतबन्ध्यां च गर्भघ्नीं गर्भिणीं चैव दुर्मुखीम् ॥

स्मृतिसार में कहा है कि—कन्या से, अन्य गोत्रवाली से, जिसके लड़के होकर मर जाते हों उससे, गर्भ को गिरानेवाली (जिसने पाप का प्रायश्चित्त भी किया है फिर भी उनसे न बनवावे) से, गर्भिणी (जिसके पेट में बच्चा हो) से और खराब वचन बोलनेवाली से पाक (श्राद्ध की रसोई) न बनवावे।

(पाकनिर्माणे सुवर्णादिपात्राणां विचारः)

पाकभाण्डानि तु हेमाद्रौ नागरखण्डे—सौवर्णान्यथ रौप्याणि कांस्यताम्रोद्भवानि च।
मार्तिकान्यपि भव्यानि नूतनानि दृढानि च ॥

पाक के पात्रों को हेमाद्रि में नागरखण्ड में कहा है कि—सुवर्ण, चांदी, कांसा, तांबा और मट्टी से निर्मित सुन्दर नवीन मजबूत पात्र हों।

तत्रैवादित्यपुराणे—पचेदन्नानि सुस्नातः पात्रेषु शुचिषु स्वयम्। स्वर्णादिधातुजातेषु मृन्मयेष्वपि वा द्विजः ॥ अच्छिद्रेष्वविलिप्तेषु तथाऽनुपहतेषु च। नायसेषु न भिन्नेषु दूषितेष्वपि कर्हिचित्। पूर्वं कृतोपयोगेषु मृन्मयेषु न तु क्वचित् ॥

आदित्यपुराण में कहा है कि—अच्छीप्रकार से स्नान कर स्वयं द्विज पवित्र पात्रों में अन्नों को पकावे। वे पात्र सुवर्ण आदि धातुओं के हों या मृत्तिका के बने हों। वे पात्र छिद्रवाले न हों, वे लिपे न हो तथा अपवित्र वस्तु से संबन्धित न हो। लोहे के न हो, टूटे-फूटे न हो और खराब न हों। पहले काम में लाये हुए मिट्टी के पात्र हों उनमें भी पाक का निर्माण न करे।

वायुपुराणे—न कदाचित्पचेदन्नमयःस्थालीषु पैतृकम्।
अयसो दर्शनादेव पितरोऽपि द्रवन्ति हि ॥

वायुपुराण में कहा है कि—पितरों के लिए लोहे के पात्रों में अन्न न पकावे। क्योंकि लोहे को देखकर पितर भी भाग जाते हैं।

कालायसं विशेषेण निन्दन्ति पितृकर्मणि। फलानां चैव शाकानां छेदनार्थानि यानि तु ॥ महानसेऽपि शस्त्राणि तेषामेव हि सन्निधिः। इष्यते नेतरस्यात्र शस्त्रमात्रस्य दर्शनम् ॥ (श्राद्धदेशे तु विदुषा पितॄणां तृप्तिमिच्छता।) महानसे नियुक्तानामपि कार्यं न दर्शनम् ॥

पितृकर्म में कालायस (लोहा) विशेषकर निन्दित है। रसोई घर में भी उन्हीं शस्त्रों की सन्निधि उचित है जिनसे फल और शाकों का काटने में उपयोग हो। इतर (अन्य) शस्त्रमात्र का दर्शन वहाँ पर अभीष्ट नहीं है। श्राद्धदेश में तो विद्वान् पितरों की तृप्ति की इच्छा करता हुआ रसोईघर में नियुक्त शस्त्रों का भी दर्शन न करे।

तत्रैव--पच्यमानस्तु भाण्डेषु भक्त्या ताम्रमयेषु च। समुद्धरति वै घोरात् पितॄन् दुःखमहार्णवात् ॥ तैजसानामभावे तु पिठरे मृन्मयेपि च। नवे शुचौ प्रकुर्वीत पाकं पित्रर्थमादरात् ॥

वहाँ पर कहा है कि—भाण्ड और तांवे आदि वर्तनों में भक्ति से पकाकर भयंकर दुःखरूपीसमुद्र से पितरों का उद्धार करता है। तैजस (धातु) आदि से अभाव में पिठर (वर्तन, तसला, बटलोही) और मिट्टी के नवीन वर्तन में पितरों के आदर के लिए पवित्र जगह में पाक का निर्माण करे।

तत्रैवादित्यपुराणे--पक्वान्नस्थापनार्थे तु शस्यन्ते दारुजान्यपि।
दर्व्यादीन्यपि कार्याणि यज्ञियैरपि दारुभिः ॥

वहीं पर आदित्यपुराण में कहा है कि—पक्वान्न स्थापन–रखने के लिये लकड़ी के भी पात्र उत्तम होते हैं। यज्ञिय वृक्षों की लकड़ी से कडछा आदि का निर्माण करे।

(विवाहादौ यज्ञकाले च नूतनभाण्डग्रहणविचारः)

यमः--विवाहे प्रेतकार्ये च मातापित्रोः क्षयेऽहनि।
नवभाण्डानि कुर्वीत यज्ञकाले विशेषतः ॥

यम ने कहा है कि—विवाह और प्रेतकार्य में, माता तथा पिता के क्षयाहदिन (मरणदिन) में विशेषकर यज्ञसमय में नवीन पत्रों को कार्य में ग्रहण करे।

(पाकाग्निकथनम्)

अथ पाकाग्निः। हेमाद्रौ प्रजापतिः--औपासनेनान्नसिद्धिरग्नौकरणमेव च।

अब पाक की अग्नि को कहते हैं। हेमाद्रि में प्रजापति ने कहा है कि—'औपासन' की अग्नि (जिनके सूत्र में औपासन अग्नि नित्य है वहाँ पाक भी नित्य है वहीं पर ही श्राद्ध पाक भी होता है यह अर्थ है।) में अन्न की सिद्धि (पाक का निर्माण) और अग्नौकरण होते हैं।

पृथ्वीचन्द्रोदयेऽङ्गिराः--शालाग्नौ तु पचेदन्नं लौकिके वापि नित्यशः।
यस्मिन्नग्नौ पचेदन्नं तस्मिन् होमो विधीयते ॥

पृथ्वीचन्द्रोदय में अङ्गिरा ने कहा है कि—शालाग्नि (अर्धाधानी–स्मार्ताग्नि को औपासन अग्नि (गृह्याग्नि) है। वह उसी में पाक करेगा सर्वाधानी (लौगाक्षिः—अर्धाधानं स्मृतं श्रौतस्मार्ताग्न्योस्तु पृथक्कृतिः। सर्वाधानं तयोरैक्यकृतिः पूर्वयुगाश्रिता ॥) तो लौकिक ही अग्नि में करेगा।) में अन्न पकावे या लौकिक अग्नि में नित्य (सर्वाधानी दक्षिणाग्नि में अग्नौकरण नहीं करेगा इसलिए नित्यशः) यह विशेषण कहा है। अन्न पकावे उसी में होम (वैश्वदेव होम) करे।

मनुः--(अ० ३, ६७) वैवाहिकेऽग्नौ कुर्वीत गृह्यं कार्यं यथाविधि। पञ्चयज्ञविधानं च पङ्क्तिं चान्वाहिकीं द्विजः ॥ श्राद्धस्य गृह्यत्वं चोक्तमपरार्केण।

मनु ने कहा है कि—वैवाहिक (विवाह के समय स्थापित) अग्नि में यथाविधि गृह्योक्तकर्म। सायं प्रातर्होम, अष्टका आदि पञ्चमहायज्ञान्तर्गतवैश्वदेवादि अनुष्ठान प्रतिदिन पङ्क्ति (पाक) को द्विज (गृहस्थ) करे। श्राद्ध को घर का कर्म अपरार्क ने कहा है।

(अत्र विशेषः)

अत्र विशेषः कर्मप्रदीपे--प्रातर्होमं तु निर्वर्त्य समुद्धृत्य हुताशनात्।
शेषं महानसे कृत्वा तत्र पाकं समाचरेत् ॥

पाकान्तेऽग्निं तमाहृत्य गृह्याग्नौ तु पुनः क्षिपेत्। ततोऽस्मिन् वैश्वदेवादि कर्म कुर्यादतन्द्रितः ॥ तदभावे लौकिके, ततः पचेयुरन्नानि निर्वापानन्तरं शनैः। वैवाहिकेऽग्नावन्यत्र लौकिके वापि

संयतः ॥ इति कलिकायां सङ्ग्रहोक्तेः। पित्रर्थं निर्वापं कृत्वेत्यर्थः, अत एव हेमाद्रौ वायुपुराणे—पित्रर्थं निर्वपेद्भूमौ कूर्चे वा दर्भसंस्कृते ॥ इति ।

यहाँ पर विशेष कर्मप्रदीप में कहा है कि—प्रातःकाल हवन को समाप्त कर हुताशन से अग्नि को निकाल कर अवशिष्ट अग्नि को महानस में ले आकर उससे पाक बनावे । पाक के बन जाने पर उस अग्नि को ग्रहण कर गृह्याग्नि में फिर से छोड दे । तदनन्तर उसी अग्नि में वैश्वदेवादिकर्म आलस्य को त्यागकर करे । उसके अभाव में लौकिक अग्नि में करे । तदनन्तर निर्वाप (पितरों के लिए जो दान दिया जाता है) के बाद धीरे से विवाहवाली अग्नि में अन्नों को पकावे या अन्यत्र संयत होकर लौकिक अग्नि में भी पकावे। यह कलिका में संग्रह ने कहा है। पितरों के लिए निर्वाप करे—यह अर्थ है।

इसलिए हेमाद्रि में वायुपुराण का वचन है कि—पितरों के लिए भूमि में या दर्भसंस्कृत कुशा कूच (मुट्ठीभर कुशा) में करे ।

तत्रैव पाद्ममात्स्ययोः—अग्निमान्निर्वपेत्पैत्रं चरुं वा समशुष्टिभिः । पितृभ्यो निर्वपामीति सर्वं दक्षिणतो न्यसेत् ॥ चरुग्रहणान्नशाकादाविति हेमाद्रिः । पिण्डपितृयज्ञार्थपाकविषयोऽयं निर्वाप इति तु युक्तम् । अयं चेतरेषामग्निः । आश्वलायनानां (अ० ४, ख० ५, सू० ६, पृ० ११७) तु 'गुरुणाऽभिमृता अन्यतो वाऽपक्षीयमाणा अमावास्यायां शान्तिकर्म कुर्वीरन्' इत्यादि सूत्रेण पचनाग्नेस्त्यागमुक्त्वा 'इहैवायमितरो जातवेदा' इत्यर्द्धर्चेन, 'शमीमयीभ्यामरणीभ्यामग्निं मन्थेत्स वचनाग्निर्भवति' इति सूत्रे वृत्तौ चोक्तेः पचनाग्नावेव पाकः ।

वहीं पर पद्मपुराण और मत्स्यपुराण में कहा है कि—अग्निमान् (अग्निहोत्री) पितृसंबन्धि अन्न या चरु का निर्वाप करे । मैं पितरों के लिए देता हूँ । ऐसा कहकर दक्षिण दिशा में सब रख दे । चरुग्रहण से अन्न, शाक आदि हेमाद्रि में कहा है । पिण्डपितृयज्ञार्थ पाक विषय यह निर्वाप है—यही युक्त है । और यह इतरों की अग्नि है । जिनके गुरु मर गये हों या अन्य से पुत्र, पशु, हिरण्य आदियों से अपरपक्षीय अमावास्या में शान्तिकर्म करे । इत्यादि सूक्त से पचनाग्नि के त्याग को कहकर 'इहैवायमितरो जातवेदाः' इस आधी ऋचा[1] से शमीमयी अरणियों (अधरारणि और उत्तरारणि) से अग्नि का मन्थन करे । वही पचनाग्नि होती है । यह सूत्र और वृत्ति में कहा है । (आश्व ला० गृ० अ० ४ ख० ५ सू० १ पृ० ११७) ।

बौधायनेनाप्युक्तम्—'आहृत्य पचनाग्निमौपासनं वाऽभिप्रव्रजन्ति' इति । स्मार्ताग्नौ पाकस्त्वन्यशाखाविषय इति केचित् । वस्तुतस्तु पूर्वोक्तस्य सर्वाधानविषयत्वं युक्तम् । शिष्टाचारेऽपि न पचनो दृश्यते । अण्डविलायामपि सर्वाधानपक्षे वैश्वदेवं श्राद्धं च पचनेऽग्नौ कुर्यादन्यथौपासने इत्युक्तम् । अग्नौकरणं तु प्रयोगपारिजातादिभिराब्दिकादिसर्वश्राद्धेषु पिण्डपितृयज्ञव्यतिषङ्गोक्तेर्लौकिके पचने वा पाके कृतेऽपि गृह्याग्नौ पक्वचरुणैव कार्यमिति प्रतिभाति । मदनरत्नेऽप्येवम् । विधुरोत्सिन्नाग्न्यादेस्तु पृष्टोदिवि विधानेनाग्निसम्पादनमित्युक्तं हरिहरभाष्ये । इति पाकाग्निः ।

बौधायन ने भी कहा है कि—आहरणकर पचनाग्नि या औपासन को लेकर स्मार्ताग्नि में पाक तो अन्यशाखा विषयक है—यह कोई कहते हैं । सिद्धान्त तो यह है कि—पहले कहे हुए का सर्वाधान विषयक है । यही ठीक है । शिष्टाचार में भी पाक का पकाना नहीं देखते हैं । अर्थात्—लौकिक अग्नि में ही श्राद्ध पाक होता है । अण्डविला में भी सर्वाधानपक्ष में वैश्वदेव और श्राद्ध को पचनाग्नि में करे । अन्यथा औपासन (अर्धाधान) अग्नि में कहा है । अग्नौकरण तो प्रयोगपारिजात आदि में वार्षिक आदि सब श्राद्धों में पिण्डपितृयज्ञ का व्यतिषंग (पहले का पीछे ले जाना) कहने से लौकिक अग्नि में या पचन अग्नि में पाक के करने पर भी गृह्याग्नि में पके चरु से ही करे यह प्रतीत होता है । मदनरत्न में भी यही है ।

१—क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः । इहैवायमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥ (ऋ. १०।१६।९) (अथर्व—१२।२।८ । वाज० य. ३५।१९)

जिसकी (कात्यायन आदि शाखावालों की) अग्नि उच्छिन्न हो गयी हो वह पृष्ठो'दिविविधान से अग्नि का संपादन करे यह हरिहरभाष्य में कहा है। यह पाकाग्नि है।

(द्विजानां समीपे आमलकोदकजलानां प्रेषणकथनम्)

चन्द्रिकायां मार्कण्डेयः—अह्नः षट्सु मुहूर्तेषु गतेषु प्रयतान् द्विजान्।
प्रत्येकं प्रेषयेत्तेषां प्रदायामलकोदकम्॥

चन्द्रिका में मार्कण्डेय ने कहा है कि—दिन के छ मुहूर्त बीतने पर प्रत्येक ब्राह्मणों को आँवले का जल भेज देना चाहिये।

देवलः—ततो निवृत्ते मध्याह्ने कृत्तरोमनखान् द्विजान्। अभिगम्य यथान्यायं प्रयच्छेद्दन्तधावनम्॥ तैलमभ्यञ्जनं स्नानं स्नानीयं च पृथग्विधम्। पात्रैरौदुम्बरैर्दद्याद् वैश्वदेविकपूर्वकम्॥ औदुम्बरै-स्ताम्रमयैः। 'अत्र चौरामलकस्नानादि निषिद्धतिथ्यादिव्यतिरिक्तविषयम्' इति हेमाद्रिर्माधवश्च।

देवल ने कहा है कि—तदनन्तर माध्याह्नकाल के समाप्त होने पर रोम तथा नखकटे हुए द्विजों के पास जाकर यथोचित रूप से दन्तधावन (दन्तधावन साधन काष्ठादि) दे। अभ्यञ्जन-तैल (शरीर में लगाने के लिये तेल), स्नान-साधन जल और अलग अलग उद्वर्तन (उबटन) दे। वैश्वदेव ब्राह्मण पूर्वक औदुम्बरों के पात्रों को दे। अर्थात्—पहले वैश्वदेव वाले ब्राह्मण को दे फिर पितृब्राह्मण को दे। यहाँ (चौरादिकरण और तैलादिदान निषिद्धतिथि त्यागपरक है) और आमलकोदक स्नान भी अमावस्या निषिद्ध तिथि को छोड़कर है—यह हेमाद्रि और माधव कहते हैं। औदुम्बरैस्ताम्रमयैः-अर्थात्-ताम्रमय।

यत्तु चन्द्रिकायां प्रचेताः—तैलमुद्वर्तनं स्नानं दद्यात्पूर्वाह्न एव तु। श्राद्धभुग्भ्यो नखश्मश्रुच्छेदनं तु न कारयेत्॥ इति, तन्निषिद्धतिथ्यादिविषयम्। निषिद्धतिथ्यादि तु प्रागुक्तम्।

जो चन्द्रिका में प्रचेता का वचन है कि—तैल, उद्वर्तन और स्नान पूर्वाह्नकाल में ही कहा है। श्राद्ध के भोजन करने वालों के लिए नख तथा श्मश्रुच्छेद (दाढ़ी मुड़वाना) न करावे। यह निषिद्ध तिथ्यादि विषयक है। निषिद्ध तिथि पहले कही गयी है।

(अभ्यङ्गे वर्ज्यकालस्य न विचारः)

अभ्यङ्गे तु कलिकायां कात्यायनः—तैलमुद्वर्तनं देयं ब्राह्मणेभ्यः प्रयत्नतः।
तैरभ्यङ्गश्च कर्तव्यो वर्ज्यकालं न चिन्तयेत्॥

अभ्यंग में तो कलिका में कात्यायन ने कहा है कि—तैल और उद्वर्तन ब्राह्मणों के लिए प्रयत्न से दे। वे लोग अभ्यंग को करें वर्जित समय की चिन्ता न करें।

(स्नानानन्तरं दैवे पित्र्ये च कर्मणि अधिकारकथनम्)

अपरार्के प्रचेताः—स्नातोऽधिकारी भवति दैवे पित्र्ये च कर्मणि।
श्राद्धकृच्छुक्लवासाः स्यान्मौनी च विजितेन्द्रियः॥

अपरार्क में प्रकेता ने कहा है कि—श्राद्ध करने वाला स्नान कर, सफेदवस्त्र पहन कर मौनी और जितेन्द्रिय होकर दैव और पितृकर्म में अधिकारी होता है।

(ताम्बूलादौ श्राद्धकर्तुर्विचारः)

हेमाद्रौ जाबालिः—ताम्बूलं दन्तकाष्ठं च स्नेहस्नानमभोजनम्।
रत्यौषधं परान्नानि श्राद्धकर्ता विवर्जयेत्॥

हेमाद्रि में जाबालि ने कहा है कि—तांबूल, दतवन, तैलस्नान, अभोजन, मैथुन, औषध और परान्न (दूसरे का अन्न) श्राद्ध करने वाला त्याग दे।

(वस्त्रे विशेषकथनम्)

वस्त्रे विशेषमाह तथैव भृगुः—नग्नः स्यान्मलवद्वासा नग्नः कौपीनकेवलः॥ द्विकच्छोऽनुत्तरीयश्च

अकच्छोऽवस्त्र एव च ॥ नग्नः काषायवासाः स्यान्नग्नश्चार्द्रपटः स्मृतः । नग्नो द्विगुणवस्त्रः स्यान्नग्नो रक्तपटः स्मृतः ॥ नग्नस्तु स्निग्धवस्त्रः स्यान्नग्नः स्यूतपटस्तथा ।

वस्त्र में विशेष वहीं पर भृगु ने कहा है कि—श्राद्ध करने वाला मलिन की तरह वस्त्रधारी नग्न होता है, केवल कौपीनधारी, द्विकच्छ (दुपट्टा), अकच्छ (विना दुपट्टा) और अवस्त्र हो वह नग्न[1] (वासा दिगम्बरः-इत्यमरः) होता है। काषाय (गेरुवा) वस्त्रधारी नग्न, गीला वस्त्रधारी नग्न, दोहरा वस्त्रधारी नग्न, लालवस्त्रधारी नग्न, चिकनावस्त्रधारी नग्न और शिला-वस्त्रधारी हो तो नग्न होता है।

(ऊर्ध्वपुण्ड्रस्य जपादौ विचारः)

ततः कर्ता ऊर्ध्वपुण्ड्रं कुर्यात्। जपे होमे तथा दाने स्वाध्याये पितृकर्मणि। तत्सर्वं नश्यति क्षिप्रमूर्ध्वपुण्ड्रं विना कृतम् ॥ इति हेमाद्रावुक्तेः,

तदनन्तर कर्ता ऊर्ध्वपुण्ड्र को करे। क्योंकि हेमाद्रि में कहा है कि—जप, होम, दान, स्वाध्याय और पितृकर्म में ऊर्ध्वपुण्ड्र बिना जो किया जाता है वह शीघ्र ही सब नाश हो जाता है।

यज्ञो दानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृकर्म च। वृथा भवति विप्रेन्द्रा ऊर्ध्वपुण्ड्रं विना कृतम् ॥

इति बृहन्नारदीयात्।

बृहन्नारदीयपुराण में कहा है कि—यज्ञ, दान, जप, होम, स्वाध्याय और पितृकर्म में ऊर्ध्वपुण्ड्र बिना जो किया जाता है। हेविप्रेन्द्राः, वह सब व्यर्थ होता है।

ऊर्ध्वं च तिलकं कुर्याद्दैवे पित्र्ये च कर्मणि। इति वृद्धपराशरोक्तेश्च।

वृद्धपराशर ने भी कहा है कि—देवकार्य और पितृकार्य में ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक करे।

(अन्यमते तु विचारः)

अन्ये तु—ऊर्ध्वपुण्ड्रं द्विजातीनामग्निहोत्रसमो विधिः।
श्राद्धकाले तु संप्राप्ते कर्ता भोक्ता च तत्यजेत् ॥

अन्यों का कहना है कि—द्विजातियों की ऊर्ध्वपुण्ड्र की विधि अग्निहोत्र के तुल्य है। श्राद्धकाल के आने पर कर्ता और भोजन करनेवाला उसको त्याग दे।

(गृहे रङ्गावल्यादीनां श्राद्धदिने विचारः)

वामहस्ते च दर्भास्तु गृहे रङ्गावलिं तथा। ललाटे तिलकं दृष्ट्वा निराशाः पितरो गताः ॥ इति सङ्ग्रहोक्तेः।

बायें हाथ में कुशा, घर में रङ्गवली (दक्षिणात्यों में प्रधान दरवाजों पर पीतल का बना मिलता है है उसमें कुछ रंग भरे जाते हैं।) और मस्तक में तिलक को देखकर—पितर निराश हो जाते हैं। यह संग्रह में कहा है।

१—विकच्छोऽनुत्तरीयञ्च नग्नश्चावस्त्र एव वा। श्रौतं स्मार्तं तथा कर्म न नग्नश्चिन्तयेदपि ॥ विकच्छः परिधानासंवृतकच्छः। याज्ञवल्क्य-परिधानाद्बहिः कच्छा निबद्धा ह्यासुरी भवेत्।' स्मृतौ-वामे पृष्ठे तथा नाभौ कच्छत्रयमुदाहृतम्। एभिः कक्षैः परीधत्ते यो विप्रः स शुचिः स्मृतः ॥ 'द्विकच्छः कच्छशेषं च मुक्तकच्छस्तथैव च। एकवासा अवासाश्च नग्नः पञ्चविधः स्मृतः ॥

न नग्नां स्त्रियमीक्षेत पुरुषं वा कदाचन। न च मूत्रं पुरीषं वा न वै संसृष्टमैथुनम् ॥ नोच्छिष्टः संविशेन्नित्यं न नग्नः स्नानमाचरेत् ॥ कूर्मपुराण उपरिभागे अ० १५। 'येषां कुले न वेदोऽस्ति न शास्त्रं नैव च व्रतम्। ते नग्नाः कीर्तिताः सद्भिस्तेषामन्नं विगर्हितम्। (मार्कण्डेयपुराण)। 'ऋग्यजुः सामसंज्ञेयं त्रयीवर्णाकृतिर्द्विजः। एतामुज्झति यो मोहात् स नग्नः पातकी स्मृतः ॥ 'यस्तु सन्त्यज्य गार्हस्थ्यं वानप्रस्थो न जायते। परिव्राडपि मैत्रेय! स नग्नः पापकृन्नरः ॥ विष्णुपुराण अ० १८।

(कमलाकरमते विचारः)

ऊर्ध्वपुण्ड्रं त्रिपुण्ड्रं वा चन्द्राकारमथापि वा। श्राद्धकर्ता न कुर्वीत यावत्पिण्डान् न निर्वपेत् ॥ इति विश्वप्रकाशे वचनाच्च न कार्यमित्याहुः। अत्राचाराद्व्यवस्था। अत एव बृहन्नारदीये—ऊर्ध्वपुण्ड्रं च तुलसीं श्राद्धे नेच्छन्ति केचन ॥ इति। ऊर्ध्वपुण्ड्रविधिर्विप्रविषयः। निषेधः कर्तृपर इति पृथ्वीचन्द्रः।

ऊर्ध्वपुण्ड्र और त्रिपुण्ड्र-या चन्द्राकार तिल को जब तक पिण्ड का निर्वाप (पिण्डदान) न हो जाय तब तक श्राद्ध करने वाला न करे। यह विश्वप्रकाश में वचन से होने से न करे। ऐसा कहा है। यहाँ पर आचार से व्यवस्था है। इसलिये ही बृहन्नारदीय पुराण में कहा है कि—ऊर्ध्वपुण्ड्र और तुलसी को श्राद्ध में कोई नहीं इच्छा करते हैं। यह ऊर्ध्वपुण्ड्रविधि ब्राह्मणविषयक है। निषेध कर्ता परक है—यह पृथ्वीचन्द्र ने कहा है।

यत्तु हेमाद्रौ देवलः—ललाटे पुण्ड्रकं दृष्ट्वा स्कन्धे माल्यं तथैव च। निराशाः पितरो यान्ति दृष्ट्वा च वृषलीपतिम् ॥ इति, तद्गन्धेन त्रिपुण्ड्रविषयम्,

जो हेमाद्रि में देवल ने कहा है कि—ललाट में पुण्ड्र को देखकर वैसे ही कंधे पर माला को देखकर और वृषलीपति (शूद्रा के पति) को भी देखकर पितर निराश हो जाते हैं। वह गन्ध से त्रिपुण्ड्रधारण के विषय में है।

'प्राक्पिण्डदानाद्गन्धाद्यैर्नालंकुर्यात्स्वविग्रहम्। इत्याश्वलायनोक्तेः। पुण्ड्रं वर्तुलमित्यपरार्के मदनरत्ने च। पृथ्वीचन्द्रस्तु पुण्ड्रम्—त्रिपुण्ड्रम्।

आश्वलायन ने कहा है कि—पिण्डदान के पहले अपने विग्रह (शरीर) को गन्ध आदि से अलंकृत न करे। पुण्ड्र माने वर्तुल—यह अपरार्क में और मदनरत्न में कहा है। पृथ्वीचन्द्र ने कहा है कि—पुण्ड्र माने-त्रिपुण्ड्र।

ऊर्ध्वं च तिलकं कुर्यान्न कुर्याद्वै त्रिपुण्ड्रकम्। निराशाः पितरो यान्ति दृष्ट्वा चैव त्रिपुण्ड्रकम् ॥ इति वृद्धपराशरोक्तेः। भोक्तुस्तिर्यग्लेपो भवत्येव ॥ वर्जयेत्तिलकं भाले श्राद्धकाले च सर्वदा। तिर्यगप्यूर्ध्वपुण्ड्रं वा धारयेत्तु प्रयत्नतः ॥ इति व्यासोक्तेरित्याह।

वृद्धपराशर ने कहा है कि—ऊर्ध्व तिलक करे पर निश्चय ही त्रिपुण्ड्र को न करे। त्रिपुण्ड्र को देखकर ही पितर निराश हो जाते हैं। श्राद्ध का भोजन करने वाले को तिर्यग्लेप डेढालेप होता ही है। मस्तक में सर्वदा श्राद्ध काल में तिलक का त्याग करे। तिर्यक् या ऊर्ध्वपुण्ड्र को प्रयत्न से धारण करे—यह व्यास ने कहा है।

(सदर्भहस्तेन तिलकनिषेधकथनम्)

पृथ्वीचन्द्रोदये ब्राह्मे—सदर्भेण तु हस्तेन यः कुर्यात्तिलकं बुधः।
आचम्य स विशुद्धयेत दर्भत्यागेन चैव हि ॥

पृथ्वीचन्द्रोदय में ब्रह्मपुराण का वचन है कि—बुद्धिमान् मनुष्य कुशासहित हाथ से तिलक करता है वह कुशा का त्याग करके ही आचमन से शुद्ध होता है।

(एकोद्दिष्टे श्राद्धारम्भस्य कालकथनम्)

श्राद्धारम्भे कालमाहाऽपरार्के गौतमः—आरभ्य कुतपे श्राद्धं कुर्यादारौहिणं बुधः। विधिज्ञो विधिमास्थाय रौहिणं तु न लङ्घयेत् ॥ एतदेकोद्दिष्टे।

श्राद्ध के आरम्भ में अपरार्क में गौतम ने काल कहा है कि—कुतुप (अह्नो मुहूर्ता विज्ञेया दश पञ्च च सर्वदा। तत्राष्टमो मुहूर्तो यः स कालः कुतुपः स्मृतः ॥ इस मत्स्यपुराण से दिन का अष्टम मुहूर्त कुतुप होता है और नवममुहूर्त रोहिण होता है। यद्यपि मध्याह्नकाल एकोद्दिष्ट श्राद्ध का समय है फिर भी गान्धर्व को त्याग कर कुतुपरोहिणात्मक मुहूर्तद्वय ही ग्रहण करे यह अर्थ है। यह पार्वणविषयक नहीं है।) में आरम्भ;

कर रोहिणपर्यन्त में विद्वान् श्राद्ध करे। विधि का जानकार विधि में आस्था (विश्वास) कर रोहिण का लंघन न करे। यह एकोद्दिष्टपरक है।

(पार्वणे श्राद्धारम्भस्य कालविचारः)

पार्वणे तूक्तं मात्स्ये—ऊर्ध्वं मुहूर्तात्कुतपाद्यन्मुहूर्तचतुष्टयम्। मुहूर्तपञ्चकं ह्येतस्त्स्वधाभवनमिष्यते॥ मध्याह्ने सर्वदा यस्मान्मन्दीभवति भास्करः। तस्मादनन्तफलदस्तत्रारम्भो विशिष्यते॥

पार्वण में तो मत्स्यपुराण में कहा है—कुतुप मुहूर्त के आगे जो मुहूर्त चतुष्टय (रौहिण, इन्द्र, इन्द्राणी और निर्ऋति) हैं। ये पाँचों मुहूर्त 'स्वधाभवन' कहे जाते हैं। मध्याह्नकाल में सदा ही सूर्य मन्द होता है। उसमें आरंभ करें तो अनन्त फल होता है इसलिए उसमें आरंभ करे।

(श्राद्धपरिभाषा)

अथ श्राद्धपरिभाषा। चन्द्रिकायां कात्यायनः—दक्षिणं पातयेज्जानुं देवान् परिचरन् सदा। पातयेदितरं जानुं पितॄन् परिचरन् सदा॥

इसके बाद श्राद्धपरिभाषा कहते हैं। चन्द्रिका में कात्यायन ने कहा है कि—देवताओं की परिचर्या (पूजा) सदा करता हुआ दहिने जानु (घुटना) को और सदा पितरों की पूजा करता हुआ बाये जानु को (दक्षिणजानुभूलग्नो देवेभ्यः सेचयेज्जलम्॥ भूलग्नसव्यजानुश्च पितृभ्यः सेचयेज्जलम्॥ 'मनुष्यतर्पणं कुर्वन्न किञ्चिज्जानु पातयेत्।') को नमन करे।

बौधायनः—प्रदक्षिणं तु देवानां पितॄणामप्रदक्षिणम्। देवानामृजवो दर्भाः पितॄणां द्विगुणास्तथा॥

बौधायन ने कहा है कि—देवकार्यों में प्रदक्षिणमुख और पितरों के लिये अप्रदक्षिणमुख (उदङ्मुखस्तु देवानां पितॄणां दक्षिणामुखः।) रहे और देवताओं की कुशा ऋजु तथा पितरों की द्विगुणित कुशा होती है।

(आवाहनादौ गोत्रकथनम्)

पृथ्वीचन्द्रोदये शंखः—आवाहनार्घ्यसङ्कल्पे पिण्डदानान्नदानयोः। पिण्डाभ्यञ्जनकाले तु तथैवाञ्जनकर्मणि॥ अक्षय्यासनयोः पाद्ये गोत्रं नाम प्रकाशयेत्॥

पृथ्वीचन्द्रोदय में शंख ने कहा है कि—आवाहन, अर्घ्य, संकल्प (तिथि आदि का कथन) पिण्ड (श्राद्ध में पितरों को दिया जानेवाला चावल आदि का पिण्ड) दान, अन्नसंकल्प, पिण्डाभ्यञ्जन (उबटन, तिलकल्कः-तिल को पीसकर बनाई गयी पीठी इति ऋग्वेदिश्राद्धप्रयोगः), (सौवीरं जाम्बलं तुत्थं मयूरश्रीकरं तथा। दर्विका नीलमेघश्च अञ्जनानि भवन्ति षट्) अञ्जनकर्म, (कज्जल, तत्तु षड्विधम्) अक्षय्योदक, आसन और पाद्य कर्मों में गोत्र तथा नाम का प्रकाश (उच्चारण) करे।

तत्रैव परिशिष्टे—क्षणे च पिण्डदाने च गन्धधूपाक्षये तथा। सङ्कल्पे चासने दीपे अञ्जनाभ्यञ्जने तथा॥ अन्नार्घ्यदानाद्यन्तेषु गोत्रं नाम च कीर्तयेत्॥

वहीं पर परिशिष्ट में कहा है कि—क्षण (मुहूर्त), पिण्डदान, गन्ध, धूप, अक्षय, संकल्प, आसन, दीप, अञ्जन, (नेत्राञ्जन) अभ्यञ्जन, चिकने पदार्थ (तेल, उबटन का शरीर में मलना), अन्न, अर्घ्यदानादि में गोत्र और नाम का कीर्तन (उच्चारण) करे।

कालिकायां सङ्ग्रहे—आसनावाहने पाद्ये अन्नदाने तथैव च। अक्षय्ये पिण्डदाने च षट्सु नामानि कीर्तयेत्॥

कालिका में सङ्ग्रह ने कहा है कि—आसन, आवाहन, (आह्वान) पाद्य, अन्नदान, अक्षय्य और पिण्डदान में इन छओं में नामों का उच्चारण करे।

(सम्बन्धादीनां क्रमेण कथनम्)

मात्स्ये—सम्बन्धं प्रथमं ब्रूयाद्गोत्रं नाम तथैव च। पश्चाद्रूपं विजानीयात् क्रम एष सनातनः॥

मत्स्यपुराण में कहा है कि—पहले संबन्ध कहे। फिर वैसे ही गोत्र और नाम कहे। पीछे रूप को जानना चाहिये। यह क्रम सनातन है।

(शाखाभेदेन गोत्रे सकारस्य प्रयोगकथनम्)

तत्रैव—सकारेण तु वक्तव्यं गोत्रं सर्वत्र धीमता। सकारः कुतपो ज्ञेयस्तस्माद्यत्नेन तं वदेत् ॥ यथा काश्यपसगोत्रेति, पराशरसगोत्रस्य वृद्धस्य तु महात्मनः। भिक्षोः पञ्चशिखस्याहं शिष्य परमधार्मिकः ॥ इति मोक्षधर्मे प्रयोगाच्च। तेन गोत्रसगोत्रयोः पर्यायत्वात् शाखाभेदाद्व्यवस्थेति शूलपाणिः। (एतद्येषामाम्नातं तेषामेव।

वहीं पर कहा है कि—बुद्धिमान् व्यक्ति सर्वत्र गोत्र में सकार का प्रयोगकर कहे। सकार कुतुप है इसलिये यत्न से उसको कहे। जैसे—काश्यपसगोत्र। और मोक्षधर्म में प्रयोग है कि—पराशरस गोत्र वृद्ध महात्मा पञ्चशिख भिक्षु का मैं परमधार्मिक शिष्य हूँ। इससे गोत्र और सगोत्र के पर्याय होने में शाखाभेद से व्यवस्था है—यह शूलपाणी ने कहा है। यह जिनके यहाँ कहा है उन्हीं शाखावालों को ही है। (सब लोगों को सकार युक्त गोत्र का उच्चारण नहीं करना चाहिये। जैसे—गौतमगोत्र आदि)

हेमाद्रौ वृहत्प्रचेताः—गोत्रं स्वरान्तं सर्वत्र गोत्रस्याक्षयकर्मणि। गोत्रस्तु तर्पणे प्रोक्त एवं दाता न मुह्यति ॥ सर्वत्रैव पितः प्रोक्तः पिता तर्पणकर्मणि। पितुरक्षय्यकाले तु पित्र्ये सङ्कल्पने तथा ॥ शर्मन्नर्घ्यादिके कार्यं शर्मा तर्पणकर्मणि। शर्मणोऽक्षय्यकाले तु पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥ स्वरान्तं संबुद्ध्यन्तमिति हेमाद्रिः।

हेमाद्रि में वृहत्प्रचेता ने कहा है—सर्वत्र ही गोत्र के अन्त में संबोधन (अजन्त) होता है। अक्षय (अक्षय्य) कर्म में 'गोत्रस्य' होता है तथा तर्पण में तो 'गोत्रः'–प्रयोग होता है। ऐसा करने से देने वाला मोह को प्राप्त नहीं होता है।

सर्वत्र ही 'पितः' संबोधन करे। तर्पणकर्म में पिता कहे। अक्षय्यकाल में तो 'पितुः' कहे। संकल्प में 'पित्र्ये' कहे। अर्घ्यादिक में 'शर्मन्' कहे और तर्पणकर्म में 'शर्मा' कहे और अक्षय्यकाल में 'शर्मणः' कहे। इसप्रकार पितरों को दिया हुआ अक्षय होता है। स्वरान्त—माने सम्बुध्यन्त–यह हेमाद्रि ने कहा है।

(गोत्रस्य त्वपरिज्ञाने विचारः)

तत्रैव चन्द्रिकायां स्मृत्यन्तरे—गोत्रस्य त्वपरिज्ञाने काश्यपं गोत्रमुच्यते।
तस्मादाह श्रुतिः सर्वाः प्रजाः कश्यपसंभवाः ॥

वहीं पर चन्द्रिका में स्मृत्यन्तर का वचन है कि—गोत्र के अपरिज्ञान में काश्यप गोत्र कहा है। इसी लिए श्रुति (वेद) ने कहा है कि—जितनी प्रजा हैं वे सब काश्यप से पैदा हुई है।

(विवाहे तु विशेषकथनम्)

यत्तु सत्याषाढः—'अथाज्ञातबन्धो पुरोहितगोत्रेणाचार्यगोत्रेण वा' इति तद्विवाहपरम्।

जो सत्याषाढ में कहा है कि—इसके वाद अज्ञातबन्धु का पुरोहितगोत्र से या आचार्यगोत्र से सब कार्य करे। यह विवाहपरक है।

(नामोच्चारणे विशेषकथनम्)

नामोच्चारणे विशेषमाह हेमाद्रौ बौधायनः—शर्मान्तं ब्राह्मणस्योक्तं वर्मान्तं क्षत्रियस्तु तु।
गुप्तान्तं चैव वैश्यस्य दासान्तं शूद्रजन्मनः ॥

नामोच्चारण में विशेष हेमाद्रि में बौधायन ने कहा है कि—ब्राह्मण के नाम के आगे 'शर्मा' क्षत्रिय के नाम के अन्त में 'वर्मा' वैश्य के अन्त में 'गुप्त' तथा शूद्र के नाम के अन्त में 'दास' कहे।

(पित्रादिनामाज्ञाने विचारः)

पित्रादिनामाज्ञाने तत्रैव—पृथिवीषत् पिता वाच्यस्तत्पिता चान्तरिक्षसत्। अभिधानापरिज्ञाने दिविषत्प्रपितामहः ॥ पित्रादीनां नाम यदा पुत्रैर्न ज्ञायते तदा ॥ आपस्तम्बसूत्रेऽप्येवम्। एतदन्यशाखापरम्। आश्वलायनानां तूक्तं तत्सूत्रे—'यदि नामान्यविद्वांस्ततः पितृपितामहप्रपितामहेति

ब्रूयात् ।' तत्कारिकापि—नामानि चेन्न जानीयात्तत्तेत्यादि वदेत्क्रमात् । तत्तेति सम्बन्धमात्रपरं तेन पितृव्यादावपि तथेति गौडाः । स्त्रीणां दान्तं नाम ज्ञेयम्, दान्तं नाम स्त्रीणामिति पृथ्वीचन्द्रोदये गोभिलोक्तेः । केचिद्देवीशब्दान्तमाहुः । अन्ये तु देवीदा इति द्वयोः समुच्चयमाहुः ।

पिता आदि नाम के अज्ञान में वहीं पर कहा है कि—पिता को पृथिवीषत्, पितामह को अन्तरिक्षसत् और प्रपितामह को दिविषत् कहे। जब पिता आदि का नाम पुत्र न जानें तब कहें। आपस्तम्बसूत्र में भी यही है। यह अन्यशाखापरक है। आश्वलायनों के लिए उस सूत्र में कहा है कि—यदि अविद्वान् नामों की न जानकारी रखे तो पितृ, पितामह और प्रपितामह यों कहे। उसकी कारिका में भी है कि—यदि नामों को नहीं जानता है तो 'तत्' तत् इत्यादि क्रम से कहे। 'तत्' यह सम्बन्धमात्रपरक है। इससे पितृव्य (चाचा) आदि में भी वैसे ही कहे—यह गौड कहते हैं। स्त्रियों का तो दकारान्त (यशोदादा) नाम जानना चाहिये। दान्त नाम स्त्रियों का है—यह पृथ्वीचन्द्रोदय में गोभिलने कहा है। कुछ लोग देवीशब्दान्त नाम कहते हैं। अन्य लोग तो 'देवी' और 'दा' इन दो का समुच्चय कहते हैं। जैसे—यशोदादा।

(विभक्तिपूर्वकमेव दानकथनम्)

हेमाद्रौ नारायणः—विभक्तिभिस्तु यत्किञ्चिद्दीयते पितृदैवते ।
तत्सर्वं सफलं ज्ञेयं विपरीतं निरर्थकम् ॥

हेमाद्रि में नारायण ने कहा है कि—पितृ और देवकार्य में जो भी कुछ दिया जाता है वह विभक्तियों (प्रथमा, षष्ठी, संबुद्धि आदि) से युक्त कर दे। वही सब सफल जानना चाहिये। उससे विपरीत निरर्थक होता है।

(श्राद्धे तिथिविचारः)

चन्द्रिकास्मृत्यर्थसारयोः नारदीये च—अक्षय्यासनयोः षष्ठी द्वितीयावाहने तथा।
अन्नदाने चतुर्थी च शेषाः सम्बुद्धयः स्मृताः ॥

चन्द्रिका और स्मृत्यर्थसार में नारदीय का वचन है कि—अक्षय्य (संबन्ध, नाम, गोत्ररूपपदों में) और आसन में षष्ठी, आवाहन में द्वितीया, अन्नदान में—चतुर्थी तथा शेष (अवशिष्ट) में संबुद्धि होती है।

यत्तु व्यासः—चतुर्थी चासने नित्यं सङ्कल्पे च विधीयते। प्रथमा तर्पणे प्रोक्ता संबुद्धिमपरे जगुः ॥ इति । अत्र शाखाभेदाद् व्यवस्थेति हेमाद्रिः ।

जो व्यास ने कहा है कि—आसन और संकल्प (अन्नोत्सर्ग) में नित्य चतुर्थी विभक्ति होती है। तर्पण में प्रथमा होती है। दूसरे लोग संबुद्धि को कहते हैं। यहाँ पर (आसन में षष्ठी और चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग करे) शाखाभेद से व्यवस्था है—यह हेमाद्रि का कहना है।

हेमाद्रौ भृगुः—अर्घ्यावनेजनं पिण्डमन्नं प्रत्यवनेजनम् ।
सम्बुद्धिं तत्र कुर्वीत शेषे षष्ठी विधीयते ॥

हेमाद्रि में भृगु का कहना है—अर्घ्य, अवनेजन (आस्तीर्णे बर्हिषि पिण्डदानात् प्राग्दीयमानं जलम्—कुशा के बिछाने पर पिण्डदान के पहले दिया जाने वाला जल 'अवनेजन' कहलाता है।) पिण्ड, अन्न और प्रत्यवनेजन (पिण्डदान के बाद दिया जानेवाला जल), इनमें संबुद्धि का प्रयोग करे। शेष (भृगुः—आसने तु भवेत् षष्ठी तथैवाक्षय्यपृच्छयोः । आवाहने द्वितीया स्यादेष शास्त्रविनिश्चयः ॥ गन्धं माल्यं च धूपं च दीपमन्नं सदक्षिणम् । अपृथक्त्वेन दातव्यं चतुर्थ्या भूतिमिच्छता ॥) में षष्ठी का विधान करे।

तत्रैव मातुर्विशेषो नागरखण्डे—मातर्मात्रे तथा मातुरासने कल्पनेऽक्षये ।
गोत्रे गोत्रायै गोत्रायाः प्रथमाद्या विभक्तयः ॥
(देवि देव्यै तथा देव्या एवं मातुश्च कीर्तयेत् ।)

वहीं पर माता के लिए विशेष नागरखण्ड में कहा है—आसन में—संबोधन—मातः, कल्पन (वस्त्रादिदान) में चतुर्थी और अक्षय में षष्ठी विभक्ति करे। इसीप्रकार संबोन्ध में गोत्रे, कल्पन में गोत्रायै तथा अक्षय्य में 'गोत्रायाः' का प्रयोग करे।

(यज्ञोपवीतिना विचारः)

हेमाद्रौ प्रभासखण्डे—यज्ञोपवीतिना कार्यं दैवं कर्म प्रदक्षिणम् ।
प्राचीनावीतिना कार्यं पितृकर्माऽप्रदक्षिणम् ॥

हेमाद्रि प्रभासखण्ड में कहा है कि—यज्ञोपवीति (वामस्कन्धोपरि दक्षिणकक्ष्याधो निहितं ब्रह्मसूत्रम्) से देवकर्म प्रदक्षिणक्रम से करना चाहिये और प्राचीनावीति (दक्षिणस्कन्धोपरि वामकक्ष्याधो निहितं ब्रह्मसूत्रं प्राचीनावीतिम्) अप्रदक्षिणक्रम से पितृकर्म करे।

(अनुपनीतस्त्रीशूद्रादौ तु)

अनुपनीतस्त्रीशूद्रादेस्तूत्तरीयेणैव सव्यापसव्ये ज्ञेये, तस्योपवीतस्थानीयत्वात्, अपसव्यं क्रमाद्वस्त्रं कृत्वा कश्चित्सगोत्रजः । इति ब्राह्मान्चेति वाचस्पतिः ।

अनुपनीत स्त्री तथा शूद्रादि का तो उत्तरीय (अंगोछा, दुपट्टा) से ही सव्य और अपसव्य जानना चाहिये । क्योंकि उसका वही यज्ञोपवीत स्थानीय है । कोई सगोत्री क्रम से वस्त्र को अपसव्य कर श्राद्ध करे यह ब्रह्मपुराण का वचन है—यह वाचस्पति ने कहा है ।

यत्तु केचित्—'सदोपवीतिना भाव्यम्' इत्यस्य पुरुषार्थत्वात्प्राचीनावीतकालेऽप्युपवीतान्तरेण तत्कार्यमेवेति । तन्न विशेषस्य (विशेष) बाधात् ।

जो कोई कहते हैं कि—'सदा यज्ञोपवीत होकर' रहे । इस वचन की पुरुषार्थता-(विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम् ।) होने से प्राचीनावीतकाल में भी उपवीतान्तर से (शूद्रका-न शिखी नोपवीती स्यान्नोच्चरेत्संस्कृतां गिरम् । इस निषेध में भी कर्मार्थक यज्ञोपवीत आवश्यक है । क्योंकि—'विशिखो व्युपवीतश्च—इस वचन से ।) उस कार्य को करे ही । यह उचित नहीं है । क्योंकि विशेषण से बाध है । (नोपवीती स्यात्' इस सामान्यता से कर्मार्थ पुरुषार्थोपवीतनिषेध से उसकी अप्राप्ति में उत्तरीय अपसव्य जाना जाता है । यह देखना चाहिये ।)

(प्राचीनावीति भूत्वा पिण्डाघ्राणादिविचारः)

जमदग्निः—सूक्तस्तोत्रजपं त्यक्त्वा पिण्डाघ्राणं च दक्षिणाम् । आह्वानं स्वागतं चार्घ्यं विना च परिवेषणम् ॥ विसर्जनं सौमनस्यमाशिषं प्रार्थनं तथा । विप्रप्रदक्षिणां चैव स्वस्तिवाचनकं विना ॥ पितॄनुद्दिश्य कर्तव्यं प्राचीनावीतिना सदा ।

जमदग्नि ने कहा है कि—सूक्तजप[1] (भोजन करते हुए ब्राह्मणों के समय में पितृसूक्त का जप), स्तोत्र[2] जप को त्याग कर पिण्डाघ्राण (पिण्डचालनोत्तरं क्रियमाणं तदाघ्राणम्)—पिण्डों का सूँघना, दक्षिणा, आह्वान, (आह्वान—बुलाना), अर्घ्य—(घरमें आये हुए ब्राह्मणों के लिए पाद्य के बाद देनेवाला अर्घ्यजल) परिवेषण (अन्नादियों का परोसना), विसर्जन ('वाजे[3] वाजे' इस मन्त्र से विसर्जन करना), सौमनस्य (शिवा आपः सन्तु—इत्यादि), आशीर्वाद की[4] प्रार्थना, ब्राह्मणों की प्रदक्षिणा और स्वस्ति वाचन इनको त्यागकर जो पितरों के उद्देश्य कर प्राचीनावीति (अपसव्य) होकर सदा करे ।

१—रुचिरुवाच । नमस्येऽहं पितॄन् भक्त्या ये वसन्त्यधिदेवताः । देवैरपि हि तर्प्यन्ते ये श्राद्धेषु स्वधोत्तरैः ॥ नमस्येऽहं पितॄन् स्वर्गे ये तर्प्यन्ते महर्षिभिः । श्राद्धैर्मनोमयैर्भक्त्या भुक्तिमुक्तिमभीप्सुभिः ॥ इत्यादि विस्तार से पितृसूक्त' वीरमित्रोदय के श्राद्धप्रकाश पृ० १३२-१३८ तक में लिखा है । वहाँ से देख लें ।

२—मत्स्यपुराणे—सप्तव्याधा दशार्णेषु मृगाः कालञ्जरे गिरौ । चक्रवाकाः सरोद्वीपे हंसाः सरसि मानसे ॥ तेऽपि जाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः । प्रस्थिता दीर्घमध्वानं यूयं तेभ्योऽवसीदत ॥ समग्रसप्तव्याधाख्यानपाठनासमर्थस्तु तत्संग्रहरूपमिदश्लोकद्वयं पठेदिति हेमाद्रिः ।

३—वाजेवाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः । अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ॥ ऋ० म० ७ सू. ३८ म० ८।य० ९।१८, २१।११, तै० स० १,७,८,२,४,७,१२,१ ।

४—गोत्रन्नो वर्धतां दातारोनोऽभिवर्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च । श्रद्धा च नो मा व्यगमद्बहु देयं च नोऽस्त्व ॥ अन्नं च नो बहुभवेदतिथींश्च लभेमहि । याचितारश्च नः सन्तु मा च याचिष्म कश्चन । एताः सत्या आशिषः सन्तु । सन्तु एता सत्या आशिषः । 'अघोराः पितरः सन्तु । इत्यादि ।

(आचमनकथनम्)

हेमाद्रौ सङ्ग्रहे—आदौ विप्राङ्घ्रिशौचान्तेऽभ्यर्चने विकिरे कृते। पिण्डान्न्युप्यार्चयित्वा च विसृज्य ब्राह्मणांस्तथा॥ आचामेच्छ्राद्धकर्ता च स्थानेष्वेतेषु सप्तसु। आद्यन्तयोर्द्विराचामेच्छेषेषु तु सकृत्सकृत्॥

हेमाद्रि में संग्रह ने कहा है कि—आदि में ब्राह्मणों का चरण धोकर पूजन कर विकिर के बाद पिण्डों का पूजनकर फिर ब्राह्मणों का विसर्जन करे। फिर श्राद्ध करने वाला इन सात जगहों पर आचमन करे—आदि और अन्त में दो बार, शेष (अवशिष्ट) में एक बार आचमन करे।

तत्रैव—श्राद्धारम्भेऽवसाने च पादशौचार्चनान्तयोः। विकिरे पिण्डदाने च षट्स्वाचमनमिष्यते॥

वहीं पर कहा है कि—श्राद्ध के आरंभ में, श्राद्ध की समाप्ति में, चरणों की पवित्रता में और पूजनान्त में, विकिर तथा पिण्डदान में इन छ जगहों में आचमन का विधान कहा है।

(श्राद्धदिवसे दानाध्ययनदेवार्चाजपहोमव्रतादिकर्मसु विचारः)

आश्वलायनः—दानाध्ययनदेवार्चाजपहोमव्रतादिकान्। न कुर्याच्छ्राद्धदिवसे प्राग्विप्राणां विसर्जनात्॥ एतन्नित्यवर्ज्यमिति बोपदेवः। इदं विष्णुभिन्नदेवपरम्, विष्णोर्निवेदितान्नेन यष्टव्यं देवतान्तरम्। पितृभ्यश्चापि तद्देयं तदानन्त्याय कल्प्यते॥ पितृशेषं तु यो दद्याद् हरये परमात्मने। रेतोधाः पितरस्तस्य भवन्ति क्लेशभागिनः॥ इति स्कान्दात् 'पितरः सर्वे मनुष्या विष्णुनाशितमश्नन्ति इति श्रुतेः; यः श्राद्धकाले हरिभुक्तशेषं ददाति भक्त्या पितृदेवतानाम्। तेनैव पिण्डांस्तुलसीविमिश्रानाकल्पकोटिं पितरस्तु तृप्ताः॥ इति ब्राह्मोक्तेश्चेति श्रीधरस्वामिनृसिंहपरिचर्यादयः। एतत्सर्वं निबन्धविरोधान्निर्मूलम्।

आश्वलायन ने कहा है कि—दान, अध्ययन, देवपूजा, जप, होम और व्रत आदि ये कर्म श्राद्ध दिन में ब्राह्मणों के विसर्जन के पूर्व न करे। बोपदेव ने कहा है कि—ये नित्य वर्जित हैं। यह विष्णु भिन्न देवता परक है।

स्कन्दपुराण का वचन है कि—विष्णु के निवेदित अन्न से अन्यदेवता की पूजा करनी चाहिये। वही अन्न पितरों के लिए देना चाहिये उससे अनन्तफल की प्राप्ति होती है। पितृशेष अन्न को जो परमात्मा हरि को देता है। उसके पितर रेतोधा (वीर्य का भक्षण) कर दुःख के भागीदार होते हैं। वेद में कहा है कि—पितर और मनुष्य विष्णु के उच्छिष्ट अन्न का भक्षण करते हैं।

ब्रह्मपुराण में भी कहा है कि—जो श्राद्ध के समय में हरि के भोजन किये हुए शेष (बचे हुए) को पितर और देवताओं को भक्ति से देता है और उसी अन्न से ही तुलसीमिश्रित पिण्डों को देता है तो उसके पितर कोटिकल्पतक तृप्त होते हैं यह श्रीधरस्वामी, नृसिंह, परिचर्या आदि कहते हैं। लेकिन यह सब निबन्धग्रन्थमतों के विरोध होने से निर्मूल है।

(श्राद्धाहिदिने नृवराहादीनां पूजनकथनम्)

अत्र विशेषो हेमाद्रौ विष्णुधर्मे—श्राद्धाह्नि तु समभ्यर्च्य नृवराहं जनार्दनम्।

यहाँ पर विशेष हेमाद्रि में विष्णुधर्म का वचन है कि—श्राद्ध के दिन में तो नृसिंह, वराह और जनार्दन का पूजन करना चाहिये।

शिवपुराणे—पूजयित्वा शिवं भक्त्या पितृश्राद्धं प्रकल्पयेत्। पूर्वनिषेधस्तु विहितभिन्नपरः।

शिवपुराण में कहा है कि—भक्ति से शिव का पूजन कर पितरों का श्राद्ध करे। पहले जो निषेध था वह विहित (शास्त्रविधान) से भिन्नपरक था।

(देवब्राह्मणपूजने पितृब्राह्मणपूजने च क्रमकथनम्)

तथा हेमाद्रौ—देवार्चा दक्षिणाङ्गादिः पादजान्वंसमूर्द्धसु। शिरोंऽसजानुपादेषु वामाङ्गादि च पैतृके॥

और हेमाद्रि में कहा है कि—देवता की पूजा तो दाहिने अंग से करे—पाद (पैर), जानु, (घुटना) अंस (कन्धा) और मूर्धा (मस्तक) इस क्रम से करे। बायें अंग से—शिर, कन्धा, जानु और पैर इनको पितृकर्म में अर्चन करे।

(श्राद्धादौ दर्भत्यागकथनम्)

कलिकायां स्मृत्यन्तरे—श्राद्धारम्भे तु ये दर्भाः पादशौचे विसर्जयेत्। अर्चनादौ तु ये दर्भा उच्छिष्टान्ते विसर्जयेत् ॥ मार्जनादौ तु ये दर्भा पिण्डोत्थाने विसर्जयेत्। उत्तानादौ तु ये दर्भा दक्षिणान्ते विसर्जयेत् ॥ प्रार्थनादौ तु ये दर्भा नमस्कारे विसर्जयेत् ॥

कलिका में स्मृत्यन्तर का वचन है कि—श्राद्ध के आरम्भ (आचान्तः प्राक्कुशांस्त्यक्त्वा पाणावन्यांश्च धारयेत्।) में और पाद के धोने में (पैर के प्रक्षालन में), जो दर्भ कुशा हैं, जो कुशा अर्चन (पूजन) के कार्य में आई हुई हैं उनका उच्छिष्टान्त में विसर्जन (त्याग) करे। जो दर्भ मार्जन (शुद्धि) के कार्य में लिये गये हों उनका पिण्डोत्थान (पिण्ड के उठाने के समय) में विसर्जन करे। मार्जन आदि में जो कुशा ग्रहण की हों तो उनका दक्षिणादानान्त में विसर्जन करे। और प्रार्थना आदि में जो कुशा ग्रहण की हों तो उनका नमस्कार में विसर्जन करे।

(ऊहविचारः)

ऊहमाह विष्णुः—मातामहानामप्येवं श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः। मन्त्रोहेन यथान्यायं शेषाणां मन्त्रवर्जितम् ॥ यथान्यायमिति। यत्र बहुवचनान्तः पितृशब्दस्तत्र सर्वपितृवाचित्वान्नोहः। तत्रापि 'शुन्धन्तां पितरः' इत्यत्रोह एव, सर्वपितृवाचित्वे उत्तरमन्त्रद्वयवैयर्थ्यात्। बहुवचनं तु नोह्यते, प्रकृतावसमर्थत्वात्पाशानितिवत्। ऋगन्ते च नोहः, तस्मादृचं नोहेत्' इति निषेधात्। एकोद्दिष्टेऽप्येवम्। प्रेतैकोद्दिष्टे तु एकवन्मन्त्रानूहेतैकोद्दिष्टे' इति विष्णूक्तेरूहः। अत्र बहुवचनस्याऽप्यूहो वचनात्। वृद्ध्यादौ तु विशेषं वक्ष्यामः। शेषाणामिति पितृव्याद्येकोद्दिष्टे आवाहनादिमन्त्रवर्ज्यं कार्यमिति कल्पतरुः। ऊहयोग्यपितृपदवान् मन्त्र एव तत्र प्रयोज्यः, न तूहः। नापि पितृपदरहितः प्रयोज्य इति शूलपाणिः। अर्थान्तरं चोक्तं प्राक्।

ऊह का विचार विष्णु ने किया है कि—इसप्रकार मातामहों का भी श्राद्ध बुद्धिमान् मनुष्य करे। यथान्यायम्-इत्यादि से। जहाँ पर बहुवचनान्त पितृशब्द है। (एतद्वः पितरो वासः, अमीमदन्त पितरो यथाभागमा वृषायिषत, ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिश्रुतम्। स्वधास्थ तर्पयत मे पितॄन् ॥ इत्यादि में) वहाँ पर सवपितृवाचित्व होने से ऊह न करे। वहाँ पर भी 'शुन्धन्तां पितरः' यहाँ पर ऊह होता ही है। सब पितृवाचकत्व में उत्तर (आगेवाले) मन्त्र द्वय दोनों व्यर्थ हो जायगें। (शुन्धन्तां पितामहाः शुन्धन्तां प्रपितामहाः, इससे पितामह और प्रपितामहशब्द के उपादान (ग्रहण करने से) से पितृशब्द जनक पर ही है। अन्यथा वे दोनों मन्त्र व्यर्थ हो जायगें—यह अर्थ है। इसीप्रकार 'शुन्धन्तां मातामहाः' इत्यादि में तथा ,शुन्धन्तां मातरः' इत्यादि में ऊह होगा और जिनके यहाँ 'पितृभ्यः स्वधोच्यताम्, पितामहेभ्यः स्वधोच्यताम्, प्रपितामहेभ्यः स्वधोच्यताम्, ये शुन्धन मन्त्र हैं उनका भी कहे हुए न्याय से ही ऊह होता है।) बहुवचन में तो ऊह नहीं होता है प्रकृति में असमर्थता से। 'पाशान् इतिवत्' की तरह।

ऋगन्त में—(पितॄन् हविषे अत्तवे। आयन्तु नः पितरः-इत्यादि ऋचाओं में) ऊह नहीं होता है[१]। इसकारण से ऋचा में ऊह नहीं होता है, ऐसा निषेध है। एकोद्दिष्ट में भी यही है। विष्णु ने कहा कि—प्रेत

१—श्राद्धप्रकरण में जहाँ मन्त्रों का ऊह का प्रसंग आया है वहाँ मन्त्र तथा संस्कार का अन्यथा भावरूप ऊह माना जाता है। जहाँ पितृशब्द बहुवचनान्त रहेगा। जैसे 'एतद्वः पितरो वासः, अमीमदन्त पितरः' इत्यादि स्थल में सभी पितृशब्द सभी पितरों का वाचक होने के कारण वहाँ ऊह नहीं होता है। जहाँ शुन्धन्तां पितरः। इस स्थल में ऊह होता है। क्योंकि यहाँ पितृशब्द सभी पितरों का वाचक मानने पर आगे दो मन्त्र व्यर्थ शुन्धन्तां मातरः, शुन्धन्तां प्रपितामहाः हो जायँगे। जहाँ बहुवचन होगा वहाँ ऊह नहीं होता है, क्योंकि प्रकृतिश्राद्ध में (एकोद्दिष्ट श्राद्ध में) बहुत्व नहीं होने के कारण बहुवचन का ऊह नहीं होता है। जैसे—अग्नीषोमीयपशु का पाशविमोचनार्थ बहुवचनान्त भी मन्त्र है—'अदितिः पाशान् प्रमुमोक्तु' यहाँ प्रातिपदिकार्थ है पाश लेकिन प्रत्ययार्थ बहुत्व नहीं है। इसलिए इसका ऊह नहीं होता है। उसीतरह शुन्धन्तां पितरः' इत्यादि में ऊह होगा। अन्यत्र ऊह नहीं होता है।

के एकोद्दिष्ट में तो (पितृघटित मन्त्रों को पितृपदस्थान में प्रेतपद घटित करे।) एकवत् की तरह से एकोद्दिष्ट में मन्त्रों का ऊह न करे। (प्रेत के एकोद्दिष्ट में) बहुवचनान्त का भी ऊह (एतद्वः पितरः) इत्यादि में 'एतत्ते प्रेत' इत्यादि ऊह होता है यह अर्थ है) वचन (विष्णुवचन और आश्वलायनवचन) से। वृद्ध्यादि में तो विशेष कहेंगे। कल्पतरु ने कहा है कि—अवशिष्ट चाचा आदि के एकोद्दिष्ट में आवाहन आदि मन्त्रों को त्यागकर करे। शूलपाणि ने कहा है कि—ऊहयोग्य पितृपदवाला मन्त्र ही वहाँ पर प्रयोग करे इसलिए ऊह नहीं होगा। पितृपद से रहित प्रयोग भी न करे अर्थान्तर (स्त्री और शूद्र का अमन्त्रकश्राद्ध (स्त्रीणामन्त्रकं श्राद्धं तथा शूद्रस्य) होता है।) यह पहले कह चुके हैं।

बह्वृचकारिकाऽपि—अर्घ्यप्रदानमन्त्रे तु मात्रादिपदमावपेत्।
शुन्धन्तामिति[1] पित्रादौ मात्रादि पदमावपेत्॥
मातृश्राद्धे पिण्डदाने—ये[2] च त्वामत्रानु, इत्यत्र नोह इति वृत्तिकृत्।

बह्वृचकारिका में भी कहा है कि—अर्घ्यप्रदानमन्त्र में तो मातृ आदि पद कहे। 'शुन्धन्ताम्' इस मन्त्र में पित्रादि के स्थान में मात्रादि पद कहे। मातृश्राद्ध के पिण्डदान में 'ये च त्वामत्रानु' यहाँ पर (याश्च ताभ्यश्चेति नोहः ये च तेभ्यश्चेति पुंल्लिङ्गशेषात्) ऊह नहीं होता है—ऐसा वृत्तिकार का मत है।

तथा—मातुःश्राद्धेऽप्यनूहेन कुर्यात्पिण्डानुमन्त्रणम्। दशादानमुपस्थानं तद्वत्कार्यमिति स्थितिः॥ प्रवाहणमनूहेन तद्वत्प्राशनमिष्यते।

और माता के श्राद्ध में भी अनूह से पिण्डानुमन्त्रण, दशादान (वस्त्राञ्चलसूत्र-वस्त्र छोर पर रहनेवाले धागे वस्त्र के अभाव में दिये जाते हैं-) और उपस्थान[3] वैसे ही करे-एसी स्थिति है। विना ऊह के प्रवाह और प्राशन (खिलाना) कहा गया है।

तथा—आयन्तुनस्तिलो[4]ऽसीति[5] उशन्तस्त्वेति[6] यानि तु। अनूह्यः पितृशब्दोऽत्र पितृसामान्य-वाचकः॥ आपस्तम्बानां तु वक्ष्यते।

१—शुन्धन्तॉंल्लोकाः पितृषदनाः पितृषदनमसि। उद्दिवँ स्तभानान्तरिक्षं पृण दृँहस्व पृथिव्याम्॥ (काण्वसं. ५।३५)।

२—ये च त्वा मन्विति चैके। 'अमुकगोत्र अमुकशर्मन् यजमानपितः ये च त्वा मनु एतत्ते पिण्डान्नँ स्वधा' इति वाक्यं केचिन्महर्षयः प्रयोजयन्ति॥ (कात्यायनश्रौतसूत्र अ० ४ क० १ सूत्र १२)।

बौधायनस्तु—एतत्ते तत असौ ये त्वा मत्रानु। विशेष श्राद्धप्रकाश वीरमित्रोदय को देखिये। 'परिशिष्टे तु—'ये च त्वामत्रान्वित्यन्ते तेभ्यश्चेति मन्त्रशेषः। वृत्तिकारेण तु अन्वष्टक्यप्रकरणेऽस्मत्पितरममुकशर्मन्नमुकगोत्र वसुरूपैतत्पिण्डी-भूतमन्नं तुभ्यं स्वधा ये च त्वामत्रानुगच्छन्ति तेभ्यश्चेत्युक्तः।

३—यन्मे माता प्रलुलोभ यच्चारानुव्रतम्। तन्मे रेतः पिता वृङ्क्तां माभ्युरन्योपपद्यताम्॥ ॐ पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः। अक्षन्पितरोमीमदन्त पितरोतीतृपन्त पितरः पितरः शुन्धध्वम्॥ (यजु० १९।३६)। उपस्थानानन्तरमुपविश्य—पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः। तृप्ति-मायान्तु पिण्डेन मया दत्तेन भूतले॥ मातामहस्तत्पिता च पिता तस्यापि तृप्यतु। द्विजानां तर्पणाद् होमात्पिण्डदानाच्च मे दिवि॥ इति केचित्पठन्ति। ततः–'परेत पितरः सोम्या गंभीरैः पथिभिः पूर्व्यैः। अथा पितॄन्सुविदत्रौँ अपीत यमेन ये सधमादं मदन्ति॥ (तै०१।८।५।२)। इति मन्त्रेणाऽऽग्नेयीं प्रति पिण्डान् प्रवाह्य (बहाकर) सकुटुम्बः पिण्डान्नमस्कुर्यात्।

४—आ यन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्नि ष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः। अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान्॥ (काण्वसंहिता—अ. २१ म. ५९)।

५—तिलोऽसि सोमदेवत्यो गोसवे देवनिर्मितः। प्रत्नवद्भिः प्रत्नस्वधयेहि पितॄनिमान् लोकान् प्रीणयाहि नः स्वधा नमः। बौधायनगृह्यसूत्रे। श्राद्धप्रकाशे—तिलोऽसि सोमदैवत्यो गोसवो देवनिर्मितः। प्रत्नम (व) द्भिः पृक्तः स्वधया पितॄँ लँ लोकान् प्रीणाहि नः स्वाहा।

६—उशन्तस्त्वा नि धीमह्युशन्तः समिधीमहि। उशन्नुशत आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे॥ (ऋ० १०।१६।१२)

'आयन्तु नः' 'तिलोऽसि' और 'उशन्तस्त्वा' इन मन्त्रों में पितृशब्द में ऊह नहीं होता है क्योंकि यहाँ पर सामान्यवाचक पितृशब्द है। आपस्तंबों के लिए आगे कहेंगे।

(स्नातः स्नातान् ब्राह्मणान् आहूय पृथक्-पृथक् स्वागतेनार्चनम्)

हेमाद्रौ मार्कण्डेयः—स्नातः स्नातान् समाहूतान् स्वागतेनार्चयेत्पृथक्।

हेमाद्रि में तो मार्कण्डेय ने कहा है कि—स्नान कर स्नान किये उनको (किसीकारणवश जिन्होंने स्नान नहीं किया है एसे ब्राह्मणों को भोजन न करावे-यह अर्थ है।) बुलाकर सत्कार के साथ (यमः-ततः स्नात्वा निवृत्तो यः प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः। पाद्यमाचमनीयं च सं प्रयच्छेद्यथाक्रमम्॥ कृताञ्जलिः-'स्वागतम्' इत्युक्त्वाऽध्वकृतोपहतिशुध्यर्थं पादप्रक्षालनार्थमाचमनीयं चोदकं क्रमेण प्रयच्छेत्।) अलग अलग पूजन करे।

(तेभ्यः कुशादिदानम्)

कलिकायां नारदीये—प्रायश्चित्तविशुद्धात्मा तेभ्योऽनुज्ञां प्रगृह्य च।
दद्याद्वै ब्रह्मदण्डार्थं[1] हिरण्यकुशमेव च॥

कलिका में नारदपुराण का वचन है कि—प्रायश्चित्त से विशुद्ध आत्मा वाला मनुष्य ब्राह्मणों की आज्ञा को ग्रहण कर ब्रह्मदण्ड के लिये सुवर्ण तथा कुशा को ही दे।

(प्राचीनावीतिना सङ्कल्पादिकथनम्)

तत्रैव सङ्ग्रहे—तिथिवारादिकं ज्ञात्वा सङ्कल्प्य च यथाविधि। प्राचीनावीतिना कार्यं सर्वं सङ्कल्पनादिकम्॥ सम्बन्धं प्रथमं ब्रूयात् नामगोत्रे तथैव च। वस्वादिरूपतां चापि स्वपितॄणामनुक्रमात्॥

वहीं पर संग्रह में कहा है कि—तिथि, वार आदि को जानकर यथाविधि संकल्प करे। संकल्प (धार्मिक कृत्य करने की प्रतिज्ञा। किसी ऐच्छिक पुण्यकाल से फल की इच्छा) आदि सब कार्य प्राचीनावीति (अपसव्य) होकर करे।

पहले संबन्ध कहे। फिर वैसे ही नाम और गोत्र कहे। और अपने पितरों के अनुक्रम में वसु आदि के रूप को भी कहे।

(विप्रनिमन्त्रणप्रकारः)

चन्द्रोदये नारदीये—श्राद्धार्थं समनुप्राप्तान् विप्रान् भूयो निमन्त्रयेत्। आपस्तम्बस्तु—'पूर्वेद्युर्निमन्त्रणं, परेद्युर्द्वितीयं तृतीयमामन्त्रणम्' इत्याह। यूयं मया निमन्त्रणीया इति निवेदनरूपमाद्यम्।

चन्द्रोदय में नारदीय मत से कहा है कि—श्राद्ध के लिए प्राप्त हुए ब्राह्मणों को फिर से निमन्त्रण (न्यौता-बुलावा) करे। आपस्तंब ने तो कहा है कि—पहले दिन निमन्त्रण करे। दूसरे दिन दूसरा निमन्त्रण, तीसरे दिन आमन्त्रण (संबोधित) करे—एसा कहा है। 'मैंने तुम लोगों को निमन्त्रण दिया है। यह निवेदनरूप (बतलाना, कहना) पहला है।

तद्विधिमाह शौनकः—गृहीत्वामुकसंज्ञस्यामुकगोत्रस्य चामुके। श्राद्धे तु वैश्वदेवार्थं करणीयः क्षणस्त्वया॥ इत्येवं श्राद्धकृद् ब्रूयादोंतथेति वदेत्तु सः। श्राद्धस्य कर्ता स ब्रूयात्तं प्राप्नोतु भवानिति॥ स वदेत्प्राप्नवानीति इतरस्तं प्रति द्विजः॥ देवौ पार्वणे पुरूरवार्द्रवौ वाच्यौ। पित्रादेरप्यनेनैव वृणीत विधिना द्विजान्।

उसकी विधि शौनक ने कही है कि—अमुकनामवाले और अमुकगोत्रवाले का अमुक के श्राद्ध में वैश्वदेव के लिये आप उपस्थित हो। इसप्रकार ही श्राद्धकर्ता कहे। फिर वह ब्राह्मण वैसे ही 'ॐ' कहे। फिर

१—ब्रह्मशापः। (ब्राह्मणो ब्राह्मणास्यं शापरूपो दण्डः) यथा—तिथितत्त्वे—ब्रह्मदण्डहता ये च विद्युदग्निहताश्च ये। तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्॥ (महाभारते—२।५।१२३—कश्चिदस्त्राणि सर्वाणि ब्रह्मदण्डश्च तेऽनघ। विषयोगास्तथा सर्वे विदिताः शत्रुनाशनाः॥ (ब्राह्मणो ब्राह्मणास्य दण्डः सिद्धयष्टिः) ब्राह्मणयष्टिका। वशिष्टस्य सिद्धयष्टिः-धिग्बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजो बलं बलम्। एकेन ब्रह्मदण्डेन बहवो नाशिता मम॥ रामायणे।)

श्राद्ध का कर्ता वहां कहे कि उसको आपको प्राप्त हो। वह ब्राह्मण कहे 'प्राप्नवानि' इतर उसके प्रति द्विज कहे। देव में पुरूरव और आर्द्रव विश्वदेव कहे जाते हैं। पित्रादि में भी इसीविधि से ब्राह्मणों का वरण करे।

(पिण्डपितृयज्ञार्थं परिस्तरणादिकथनम्)

ततः कर्ता बह्वृचोऽनाहिताग्निः पिण्डपितृयज्ञं परिस्तरणादीध्माधानान्तं कुर्यात्। 'अर्द्धाधानिनोऽप्येवम्' इति प्रयोगपारिजाते परिशिष्टे च। भाष्यकारमते आब्दिकेऽप्येवम्। वृत्तिकारमते नेदम्।

तदनन्तर कर्ता बह्वृच (ऋग्वेदी) अनाहिताग्नि पिण्डपितृयज्ञ को परिस्तरणादि इध्माधानान्ततक करे। अर्धाधानी भी यही करे। यह प्रयोगपारिजात में और परिशिष्ट में कहा है। भाष्यकारमत से आब्दिक (वार्षिक) में भी यही है। वृत्तिकार के मत से यह नहीं है।

(द्वारदेशे मण्डलविधिकथनम्)

हेमाद्रौ शम्भुः—संमार्जितोपलिप्ते तु द्वारि कुर्वीत मण्डले।
उदक्प्लवमुदीच्यं स्याद्दक्षिणं दक्षिणाप्लवम्॥

हेमाद्रि में शंभु ने कहा है कि—गोमूत्रयुक्त गोमय (गोबर) से भवन के आगे भूमि पर लीप कर (मात्स्ये-गोमयेनानुलिप्तायां गोमूत्रेण तु मण्डले) देवकार्य में उत्तर की तरफ नीचा करे और पितृकार्य में दक्षिणदिशा की तरफ नीचा कर-द्वार पर मण्डल करे।

व्याघ्रः—उत्तरेऽक्षतसंयुक्तान् पूर्वाग्रान् विन्यसेत् कुशान्।
दक्षिणे दक्षिणाग्रांस्तु सतिलान् विन्यसेत्कुशान्॥

व्याघ्र ने कहा है कि—उत्तर के मण्डल में चावल के सहित कुशाओं को पूर्वाग्र रखे और दक्षिण के मण्डल में दक्षिणाग्र तिल के सहित कुशाओं को रखे।

तत्रैव बौधायनः— चतुरस्रं त्रिकोणं च वर्तुलं चार्द्धचन्द्रकम्।
कर्तव्यमानुपूर्व्येण ब्राह्मणादिषु मण्डलम्॥

वहीं पर बौधायन ने कहा है कि—चतुरस्र मण्डल ब्राह्मण के लिये, त्रिकोण मण्डल वैश्य के लिये, वर्तुल (गोल) मण्डल, क्षत्रिय के लिए और शूद्र के लिए अर्धचन्द्राकार मण्डल यथाक्रम से करना चाहिये।

तत्रैव लौगाक्षिः—हस्तद्वयमितं कार्यं वैश्वदेविकमण्डलम्।
दक्षिणे च चतुर्हस्तं पितॄणामङ्घ्रिशोधने॥

वहीं पर लौगाक्षिका वचन है कि—विश्वेदेवदेवता के लिए मण्डल दो हाथ का और दक्षिण में पितरों के लिए चार हाथ का मण्डल पादशोधन में करे।

कलिकायां सङ्ग्रहे तु—प्रादेशमात्रं देवानां चतुरस्रं तु मण्डलम्।
त्यक्त्वा षडङ्गुलं तस्माद्दक्षिणे वर्तुलं तथा॥ इत्युक्तम्।

कलिका में संग्रह ने कहा है कि-देवताओं के लिए प्रादेशमात्र चतुरस्रमण्डल करे और ६ अंगुल भूमि छोडकर उसके दक्षिण दूसरा वर्तुलाकार प्रादेशमात्र बनावे—ऐसा कहा है।

यत्तु स्मृत्यन्तरे—गर्तः पञ्चाङ्गुलो विप्रे जानुमात्रो महीभुजि। प्रादेशमात्रो वैश्ये च साधिकः स तु शूद्रके॥ तिर्यगूर्ध्वप्रमाणेन व्याख्यातो दैवपित्र्ययोः। चतुरस्रं वर्तुलं च कथितं गर्तलक्षणम्॥

जो स्मृत्यन्तर में कहा है कि—ब्राह्मण के कार्य में पांच अंगुल गढा करे। क्षत्रिय के लिए जानुमात्र, वैश्य के लिए प्रादेशमात्र और शूद्र के लिए उससे अधिक कहा है।

देवकार्य में टेढा तथा पितृकार्य में ऊँचे प्रमाण से व्याख्या की है। चतुरस्र और गोल-गर्त का लक्षण कहा है।

(ब्राह्मणपादप्रक्षालने विचारः)

पादप्रक्षालनं प्रोक्तमुपवेश्यासने द्विजान्। तिष्ठंश्चेत् क्षालनं कुर्यात् निराशाः पितरो गताः॥ इति। तत्समूलत्वे मण्डलाग्रे पृथक् ज्ञेयम्।

आसनपर ब्राह्मणों को बैठाकर पादप्रक्षालन करे। यदि खड़े होकर पैर का प्रक्षालन करे तो पितर निराश होकर करते हैं। यह समूल हो तो मण्डल के आगे अलग जानना चाहिए।

(गोमयग्रहणविचारः)

तत्र गोमये हेमाद्रौ भृगुः—अत्यन्तजीर्णदेहाया वन्ध्यायाश्च विशेषतः।
आर्ताया नवसूताया न गोर्गोमयमाहरेत्।

वहाँ पर हेमाद्रि में भृगु ने कहा है कि—जिस गौ का शरीर अत्यन्त जीर्ण हो और विशेष कर वन्ध्या गौ का, रोगग्रस्त गौ का तथा नवीन ब्याहो गौ का गोवर ग्रहण नहीं करना चाहिये।

(पादाभिषेचने विचारः)

मात्स्ये—अक्षताभिः सपुष्पाभिस्तदभ्यर्च्योऽपसव्यवत्। विप्राणां क्षालयेत्पादावभिवन्द्य पुनः पुनः॥ प्रत्यङ्मुखस्थितः कुर्यात् विप्रपादाभिषेचनम्।

मत्स्यपुराण में कहा है कि—अपसव्य (पहले उत्तर की तरफ बाद में दक्षिण मण्डल को) की तरह पुष्प के सहित अक्षतों से पूजन कर ब्राह्मणों के पैरों का क्षालन करे। फिर नमस्कार बारंबार करे। प्रत्यङ्मुख (पश्चिम) स्थित होकर ब्राह्मण के पैरों का अभिषेचन करे।

तत्रैव भविष्ये—प्रक्षालयेद्विप्रपादान् शन्नोदेवीरिति त्वृचा।

वहींपर भविष्यपुराण में कहा है कि—'शं नो[1] देवीः' इस ऋचा से ब्राह्मणों के पैर को धोना चाहिये।

(पाद्यजलदाने विचारः)

पृथ्वीचन्द्रोदये वृद्धवसिष्ठः—न कुशग्रन्थिहस्तस्तु पाद्यं दद्याद्विचक्षणः।

पृथ्वीचन्द्रोदये में वृद्धवसिष्ठ ने कहा है कि—कुशग्रन्थि हाथ से बुद्धिमान् पाद्य (पैर धोने के लिए जल) न दे।

(भार्यास्रावितवारिणा पादप्रक्षालनम्)

कलिकायां सङ्ग्रहे—ततः प्रक्षालयेत्पादौ भार्यास्रावितवारिणा।

कालिका में संग्रह ने कहा है कि—तदनन्तर पत्नी द्वारा दिये हुए जल से उसका पति पैरों का प्रक्षालन करे।

(श्राद्धकाले यदा पत्नी नीरप्रदा भवेत् तदा विचारः)

तथा—श्राद्धकाले यदा पत्नी वामे नीरप्रदा भवेत्। आसुरं तद्भवेच्छ्राद्धं पितॄणां नोपतिष्ठते॥

और जब पत्नी श्राद्धसमय में बायेभाग में रजस्वला होती है (सर्वेषु धर्मकार्येषु पत्नी दक्षिणतः स्थितः। विप्रपादक्षालने च अभिषेके च वामतः॥ इति वचनादपवादः।) तो वह श्राद्ध आसुर होता है। पितरों को प्राप्त नहीं होता है।

(पित्रादिकर्मसु पापप्रक्षालनविचारः)

तत्रैव—नाधः प्रक्षालयेत्पादौ कर्ता पित्रादिकर्मसु। पाद्यानन्तरमर्घ्यमपि दद्यादिति हेमाद्रिः।

वहींपर कहा है कि—कर्ता पिता आदि के कार्यों में नीचे के पैरों का प्रक्षालन न करे। पाद्य के बाद अर्घ्य भी दे यह हेमाद्रि का कहना है।

(मण्डलादुत्तरे आचमनीयजलदानविचारः)

तत्रैव लौगाक्षिः—मण्डलादुत्तरे देशे दद्यादाचमनीयकम्।

वहीं पर लौगाक्षि ने कहा है कि—मण्डल के उत्तरदेश में आचमनीय जल दे।

१—ॐ शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शं योरभि स्रवन्तु नः॥ (ऋ० १०।९।४।) साम ३३, अथर्व-१।६।१। यजु० ३६।१२। तै० ब्रा० १।२।११, २।५।८।५। तै० आ० ४।४२।२)।

(पादप्रक्षालनोत्तरमुभयत्र द्विराचनकथनम्)

तत्रैव—विधाय क्षालनं तेषां द्विराचमनमिष्यते ।
स्वयं चापि द्विराचामेद् विधिज्ञः श्रद्धयान्वितः ॥

वहीं पर कहा है कि—उनका पैर धोकर ही द्विराचमन करावे । स्वयं (श्राद्धकर्ता) भी विधि को जानने वाला श्रद्धा से युक्त होकर दोबार आचमन करे ।

(पादप्रक्षालनजलेन आचमनकरणे विचारः)

हेमाद्रौ नारदीये—यत्राचमनवारीणि पादप्रक्षालनोदकैः ।
सङ्गच्छन्ते बुधाः श्राद्धमासुरं तत्प्रचक्षते ॥

हेमाद्रि में नारदीय ने कहा है कि—जहाँ पर पैर धोने का जल आचमन वाले जल से मिल जाय तो विद्वान् उस श्राद्ध को आसुर कहते हैं ।

(आसने उपवेशनप्रकारः)

हेमाद्रौ व्यासः—सव्येनैवासनं धृत्वा दक्षिणे दक्षिणं करम् । व्याहृतीभिः समस्ताभिरासनेषू-पवेशयेत् ॥ समाध्वमिति चैवोक्त्वा दक्षिणं जानु संस्पृशन् । आस्यतामिति तान् ब्रूयादासनं संस्पृशन्नपि ॥

हेमाद्रि में व्यास ने कहा है कि—सव्य-दाहिने हाथ से ही आसन रखकर दक्षिण हाथ से दाहिना हाथ धारण कर समस्त [1]व्याहृतियों को कहकर आसनों पर बैठा दे । दाहिने जानु का स्पर्श करता हुआ समाध्वम्'-बैठो-एसा कहकर आसन का भी स्पर्श करता हुआ यह उन लोगों को कहे कि-'आस्यताम्'-बैठें ।

(ब्राह्मणसंख्याकथनम्)

(हेमाद्रौ शातातपः—द्वौ दैवेऽथर्वणौ विप्रौ प्राङ्मुखावुपवेशयेत् ।
पित्र्ये तूदङ्मुखांस्त्रींश्च बह्वृचाध्वर्युसामगान् ॥)

हेमाद्रि में शातातप ने कहा है कि—देवकार्य[2] में दो अथर्ववेदी ब्राह्मणों को पूर्वाभिमुख बैठा दे । पितृकर्म में तीन ब्राह्मण बह्वृच (ऋग्वेदी), अध्वर्यु (यजुर्वेदी) और साम का गान करने वाला (सामवेदी) उत्तराभिमुख बैठा दे ।

याज्ञवल्क्यः—(आचाराध्याय-२८ श्लो०) द्वौ दैवे प्राक् त्रयः पित्र्ये उदगेकैकमेव वा ।

याज्ञवल्क्य ने कहा है कि—वैश्वदेवकार्य में दो ब्राह्मण पूर्वमुख तथा पितृकार्य में अयुग्म—तीन-तीन या एक ही ब्राह्मण उत्तरमुख बैठा दे ।

यत्तु हेमाद्रौ हारीतः—'दक्षिणाग्रदर्भेषु प्राङ्मुखान् ब्राह्मणान् भोजयेदुदङ्मुखानित्येके' इति तन्मैत्रायणीयविषयम् । 'प्राङ्मुखान् भोजयेदुदङ्मुखानित्यके' इति । तत्परिशिष्टात् विकल्प इति हेमाद्रिः ।

जो हेमाद्रि में हारीत ने कहा है कि—दक्षिणाग्र कुशाओं पर प्राङ्मुख ब्राह्मणों को भोजन करावे । कोई कहते हैं कि—उत्तरमुख ब्राह्मणों को भोजन करावे—यह मैत्रायणीयविषयक है । पूर्वमुख ब्राह्मणों को भोजन करावे । कोई कहते हैं कि—उत्तरमुख भोजन करावे—यह परिशिष्टमत है । इसको हेमाद्रि विकल्प मानते हैं ।

१—ॐ भूर्भुवः स्वः ।

२—तदेवमत्र दिग्विशेषाभिमुख्ये पञ्च पक्षा भवन्ति । तत्र वैश्वदेविकाः प्राङ्मुखाः, पित्र्यास्तूदङ्मुखा इत्येकः । (वैश्वदेविकाः प्राङ्मुखाः पित्र्यास्तु दक्षिणमुखा इति द्वितीयः । वैश्वदेविका उत्तराभिमुखाः, पित्र्यास्तु प्राङ्मुखा इति तृतीयः । वैश्वदेविकाः प्राङ्मुखाः, पित्र्यास्तूदङ्मुखा इति चतुर्थः ।) वैश्वदेविका उदङ्मुखाः पित्र्याः प्राङ्मुखा इति पञ्चमः । अत्र स्वस्वगृह्यनुसारेण व्यवस्था । स्वगृह्ये विशेषानाम्नाते तु वैश्वदेविकानां प्राङ्मुखत्वं पितॄणामुदङ्मुखत्वमिति । अयमेवपक्षोऽङ्गीकर्तव्यो बहुस्मृतिसम्मतः । अत्रः दैवं प्रदक्षिणोपचारेण पितॄणामप्रदक्षिणोपचारेण कार्यमिति वीरमित्रोदये ।

(भोजनकाले भिक्षुकादीनामागमने विचारः)

माधवीये यमः—भिक्षुको ब्रह्मचारी वा भोजनार्थमुपस्थितः ।
उपविष्टेष्वनुप्राप्तः कामं तमपि भोजयेत् ॥

माधवीयग्रन्थ में यम ने कहा है कि—ब्राह्मणों के बैठ जाने पर भिक्षुक या ब्रह्मचारी भोजन के लिए उपस्थित हो जाय तो इच्छा (उसकी अनिच्छा में दोष नहीं है।) से उस को भी भोजन करावे ।

(भोजनसमये अतिथिविचारः)

कौर्मे—अतिथिर्यस्य नाश्नाति न तत् श्राद्धं प्रचक्षते ।

कूर्मपुराण में कहा है कि—जिस श्राद्ध में अतिथि भोजन नहीं करता है उस श्राद्ध को श्राद्ध नहीं कह सकते हैं।

(विप्रनियमकथनम्)

विप्रनियमा माधवीये—पवित्रपाणयः सर्वे ते च मौनव्रतान्विताः ।
उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पर्शं वर्जयन्तः परस्परम् ॥

ब्राह्मणों का नियम माधवीय में कहा है कि—सब ब्राह्मणों के पाणी (हाथ) में पवित्री हो और वे सब मौनव्रत (सति संभव में श्राद्धीय भोजन वस्तु को छोड़कर) में तत्पर हों आपस में परस्पर उच्छिष्ट का स्पर्श न करें।

(आसनानि)

तत्रासनानि पृथ्वीचन्द्रोदये यमः—आसनं कुतपं दद्यादितरद्वा पवित्रकम् ।

वहाँ पर आसनों को पृथ्वीचन्द्रोदय में यम ने कहा है कि—कुतुप (नेपालकंबल) का आसन दे या दूसरा पवित्र आसन दे ।

हेमाद्रौ चमत्कारखण्डे—पितॄणां घटितं हैमं राजतं वापि चासनम् । येन ताम्रमयं दत्तमासनं पितृकर्मणि ॥ स वै दिव्यासनारूढो नहि प्रच्यवते दिवः ।

हेमाद्रि के चमत्कारखण्ड में कहा है कि—पितरों को सुवर्ण, चांदी या तांबे का निर्मित आसन देने से वह निश्चय दिव्यासनारूढ़ (स्वर्ग में होनेवाले का आसनारूढ) होकर स्वर्ग से च्युत नहीं होता है ।

(आसनादौ विचारः)

हेमाद्रौ नागरखण्डे—अयः शङ्कुमयं पीठं प्रदेयं नोपवेशने ।

हेमाद्रि में नागरखण्ड में कहा है कि—शंकुवाला लोहे का पीठा बैठने के लिए नहीं देना चाहिये ।

कलिकायां सङ्ग्रहे—क्षौमं दुकूलं नेपालमाविकं दारुजं तथा । पार्णं तार्णं बृसीं चैव विष्ठरादि च विन्यसेत् । अग्निदग्धान्यायसानि भग्नानि च विवर्जयेत् ॥

कलिका में संग्रह का वचन है कि—क्षौम (रेशमी कपड़ा, ऊनी कपड़ा) दुकूल (रेशम का दुपट्टा) नेपाल (नेपाल का कंबल), आविक (भेड से सम्बन्ध रखनेवाला ऊनी कपडा) दारुज (देवदारु) तार्ण (तृण सम्बन्धि) पार्ण (छिउल वृक्ष या पलास का आसन-पत्तों का बना हुआ) बृसी (ऋषि का आसन), विष्टर आदि में ग्रहण करे। अग्निदग्ध (अग्नि से जला) आयस (लोहे का आसन) और भग्न वर्जित करे।

हेमाद्रौ छागलेयः—पश्चाद्भागादुपक्रम्य प्राच्यां पङ्क्तिर्यथा भवेत् ।
दक्षिणासंस्थिता ह्येषा पितॄणां श्राद्धकर्मणि ॥

हेमाद्रि में छागेलय ने कहा है कि—पूर्वमुखों की पंक्ति पीछे के भाग से हटाकर पितरों के श्राद्धकर्म में दक्षिण तरफ करे ।

पुलस्त्यः—श्रीपर्णी वारुणी क्षीरी जम्बुकाम्रकदम्बकम् । सप्तमं बाकुलं (वालुकं) पीठं पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥

पुलस्त्य ने कहा है कि—श्रीपर्णी (खंभारी या कंभारी) वारुणी (उपवृक्ष वाना-आम और मडुवे के पेड के ऊपर पैदा होने वाली, जल को काटने वाली लकडी), क्षीरी (क्षीरीवृक्ष खिरनी) जम्बुक (जामुन)

आम्र (आम), कदम्ब और सातवां वाकुल (बकुल वृक्ष), कहीं (वालुक पाठ भी है) इनके पीठ (आसन) पर दिया हुआ पितरों को अक्षय होता है।

सङ्ग्रहे—शमी च काश्मरी शेलुः कदम्बो वारुणस्तथा। पञ्चासनानि शस्तानि श्राद्धे देवार्चने तथा ॥

संग्रह में कहा है—शमी, (शमीनामक एक वृक्ष होता है—जिससे अग्नि निकलती है।) काश्मरी (जिसको लोग बहुधा गान्धारी वृक्ष कहते हैं। यह एक पौधा होता है। 'कश्मीरदेश में होने वाली लकडी) शेलु (लिसोडा) कदम्ब और वारण (वारण लकड़ी) राजादन, इन लकडियों के पांच आसन श्राद्ध तथा देवार्चन में कहे हैं।

(दैवे पित्र्ये च ब्राह्मणसंख्याकथनम्)

(कारिका—द्वौ दैवे प्राङ्मुखौ पित्र्ये त्रीन्विप्रानुदगाननान् ।

कारिकामें कहा है कि—देवकार्य में पूर्वाभिमुख दो ब्राह्मण तथा पितृकर्म में तीन ब्राह्मण उत्तराभिमुख करे।

पैठीनसिः—कुतपः श्राद्धवेलायां श्रोत्रियो यदि दृश्यते ।)

पैठीनसि में कहा है कि—श्राद्ध के समय में यदि वेदपाठी दिखता है तो वह काल कुतुप जानना चाहिये।

(नीवीबन्धनविचारः)

आश्वलायनः—नीवीवासोदशान्तेन स्वरक्षार्थं प्रबन्धयेत् ।

आश्वलायन ने कहा है कि—नीवीवस्त्र (धोती की गांठ) को पल्ले के छोर के अन्त में अपनी रक्षा के लिए बांध ले।

वृद्धयाज्ञवल्क्यस्तु—दक्षिणे कटिदेशे तु तिलैः सह कुशत्रयम् ।

वृद्धयाज्ञवक्य ने तो कहा है कि—दहिने कटिदेश (भाग) में तिलों के साथ तीन कुशपत्र को रखे।

यत्तु कातीयम्—नीवी[1] कार्या दशागुप्तिर्वामकुक्षौ कुशैः सह। इति। तद्वृद्धिश्राद्धे। पितॄणां दक्षिणे पार्श्वे विपरीता तु दैविके। इति स्मृत्यन्तरात्। वामे दक्षिणे वेत्याचारात् व्यवस्थेति मदनपरिजाते।

जो कातीय ने कहा है कि—दशागुप्ति (कपड़े से ढके हुए या किनारा) को वामकुक्षि में कुशा के सहित नीवी (कमर के वस्त्र की गांठ, धोती के दोनों किनारों की गांठ जो सामने पेट पर वांधी जाय) करे। वह वृद्धिश्राद्ध में है। पितरों के दक्षिणपार्श्व में तथा दैविककार्य में विपरीत (वामपार्श्व) करे—एसा स्मृत्यन्तर में कहा है। मदनपारिजात में कहा है कि—वायें या दाहिने करे यह आचार (कुलाचार) से व्यवस्था है।

(श्राद्धे ब्राह्मणाज्ञा)

आचार्यः—प्राणायामत्रयं कृत्वा गायत्रीस्मरणं तथा ।
श्राद्धं कर्तास्मीति वदेत् विप्रैर्वाच्यं कुरुष्व च ॥

आचार्य ने कहा है कि—तीन प्राणायाम और गायत्री का स्मरण कर कर्ता (श्राद्ध करनेवाला) श्राद्ध (उभौ हस्तौ समौ कृत्वा जानुभ्यामन्तरास्थितौ। सप्रयतश्चोपविष्टान् सर्वान् पृच्छेद् द्विजोत्तमान् ॥ इस वाक्य में 'श्राद्धं करिष्ये' एसा पूछे) करता हूँ—एसा कहे, तब ब्राह्मण कहें कि—आप श्राद्ध को करें।

(मन्त्रेण तिलानां गृहे विकरणं तथा मन्त्रेण प्रोक्षणकथनम्)

ब्राह्मे—ततस्तिलान् गृहे तस्मिन् विकिरेच्चाप्रदक्षिणम् । श्रद्धया परया युक्तो जपेदपहता इति ॥
स्मृत्यर्थसारे—'अपहता इति तिलान् विकीर्य' उदीरतामित्यृचा प्रोक्षेत् ।

ब्रह्मपुराण में कहा है कि—तदनन्तर उस धर में तिलों को अप्रदक्षिणक्रम से छिडके। उत्तम श्रद्धा से युक्त हो 'अपहता' इस मन्त्र को जप करे। स्मृत्यर्थसार में तो कहा है कि—तिलों का 'अपहता[2]' इस मन्त्र

१—श्रुतिस्मृतिविरोधे तु श्रुतिरेव बलीयसी तिवाक्यात् दक्षिणाङ्ग एव नीविबन्धः। ब्राह्मणभाष्येऽपि—नाभेर्दक्षिणत एव नीविस्थानमुक्तम्। बन्धनमन्त्रः—पराशरेणोक्तः—निहन्मि सर्वं यदमेध्यकृद् भवेत् हताश्च सर्वे सुरदानवामया। यक्षाश्च रक्षांसि पिशाचाश्च गुह्यका हता मया तु धानाश्च सर्वे ॥

२—ॐ अपहता असुरा रक्षा ँसि वेदिषदः। य०वे०अ०२ (अपहता असुरा रक्षा ँसि पिशाचा ये क्षयन्ति पृथिवीमनु। अन्यत्रेतो गच्छन्तु यत्रास्य गतं मनः ॥ इति पुंसाम्। 'यत्रास्या गतं मनः' इति स्त्रीणाम्। (बौधायन गृ०पृ० ४२५)

से प्रक्षेप कर 'उदीरताम्'[1] इस ऋचा से प्रोक्षण करे। (तिलविकरण के बाद देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च। नमः स्वाहायै स्वधायै नित्यमेव नमो नमः॥ इसका जप करे—यह एक मत है। या जप के बाद तिलका विकरण करे—यह दूसरा मत है।)

(शूद्रदृष्ट्यादिशुद्ध्यर्थं प्रोक्षणकथनम्)

पराशरः—तद्विष्णोरिति मन्त्रेण गायत्र्या च प्रयत्नतः।
प्रोक्षयेदन्नजातं तु शूद्रदृष्ट्यादिशुद्धये॥

पराशर ने कहा है कि—तद्विष्णो[2] इस मन्त्र से या [3]गायत्रीमन्त्र द्वारा प्रयत्न से अन्नों पर पडी शूद्र आदि दृष्टि की शुद्धि के लिए प्रोक्षण करे।

(श्राद्धभूमौ गयादिदेवानां ध्यानं कथनम्)

हेमाद्रौ ब्रह्माण्डे—श्राद्धभूमौ गयां ध्यात्वा ध्यात्वा देवं गदाधरम्। वस्वादींश्च पितॄन् ध्यात्वा ततः श्राद्धं प्रवर्तते॥ देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च। नमः स्वाहायै स्वधायै नित्यमेव नमो नमः॥ आदिमध्यावसानेषु त्रिरावृत्तं जपेद् बुधः। पितरः क्षिप्रमायान्ति राक्षसाः प्रद्रवन्ति च॥

हेमाद्रि में ब्रह्माण्डपुराण का मत है कि—श्राद्धभूमि में गया का ध्यान कर और गदाधर देव का ध्यान कर वसु आदि और पितरों का ध्यान कर फिर श्राद्ध का प्रारंभ करे। देवता, पितर, महायोगी, स्वाहा तथा स्वधा इनको नित्य ही नमस्कार है। आदि, मध्य और अन्त में तीन बार बुद्धिमान् जप करे। इससे पितर जल्दी आते हैं और राक्षस पलायन होते हैं।

तत्रैव स्कान्दे—तिला रक्षन्त्वसुरान् दर्भा रक्षन्तु राक्षसान्।
पङ्क्तिं वै श्रोत्रियो रक्षेदतिथिः सर्वरक्षकः॥

वहीं पर स्कन्दपुराण का वचन है कि—तिल असुरों से रक्षा करें और कुशा राक्षसों से रक्षा करे, पङ्क्ति को वेदपाठी रक्षा करे तथा अतिथि सबप्रकार से रक्षक हो।

(पाकादिप्रोक्षणमन्त्रकथनम्)

वसिष्ठः—शुद्धवतीभिः कूष्माण्डीभिः पावमानीभिश्च पाकादि प्रोक्षयेत्, इति।

वसिष्ठ ने कहा है कि—शुद्धवती, कूष्माण्ड (यद्देवा देवहेडनमित्यादि मन्त्र) और पावमानी ऋचाओं से पाक आदि का प्रोक्षण करे।

(देवार्चाकथनम्)

अथ देवार्चा—तत्र प्रत्युपचारमाद्यन्तयोरापो दद्यादित्युक्तं वृत्तौ स्मृत्यर्थसारे च।

अब देवता की पूजा को कहते हैं। वहाँ पर (उस पूजा में) आदि और अन्त में प्रत्येक उपचार में लज दे—एसा वृत्ति और स्मृत्यर्थसार में कहा है।

हेमाद्रौ ब्राह्मे—आसनेष्वासनं दद्याद्वामे वा दक्षिणेऽपि वा।
पितृकर्मणि वामे च दैवे दद्यात्तु दक्षिणे॥

हेमाद्रि में ब्रह्मपुराण का वचन है कि—वाये और दाहिने आसनों पर दर्भ (कुशा) का आसन (ब्राह्मण के हाथ में जलदान के बाद) दे। पितृकर्म में वायें तरफ और देवकर्म में दाहिने तरफ कुशा दे।

प्रचेताः—आसनेष्वासनं दद्यान्नतु पाणौ कदाचन। धर्मोसीत्यथ मन्त्रेण गृह्णीयुस्ते तु तान् कुशान्॥ 'धर्मोऽसि विशि राजा प्रतिष्ठितः' इति मन्त्रः।

१—उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः। असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु॥ (ऋ० १०।१५।१)।

२—तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्॥ (ऋ० १।२२।२०)।

३—तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥ (ऋ० ३।६२।१०)। यद्यपि वारसंख्या न श्रूयते तथापि स्थानान्तरीय गायत्रीजपादौ प्रायशो वारत्रयाभिधानेनापि वारसंख्याकाङ्क्षायां सैवोपतिष्ठते श्राद्धविवेके।

प्रचेता का वचन है कि—आसन पर आसन दे हाथ में कदापि न दे। वे ब्राह्मण 'धर्मोऽसि विशि राजा प्रतिष्ठितः' इस मन्त्र से उन कुशाओं को ग्रहण करे।

गालवः—दर्भानादाय हस्ताभ्यां गृहीत्वा दक्षिणे करे। दैवे क्षणः क्रियतां तु निरङ्गुष्ठं करं ततः॥ ॐ तथेति द्विजा ब्रूयुस्ते प्राप्नोतु भवानिति। कर्ता ब्रूयात्ततो विप्रः प्राप्नुवानीति वै वदेत्॥

गालव ने कहा है कि—कुशाओं को दोनों हाथों से ग्रहण कर दाहिने हाथ में ग्रहण कर—देवकार्य में क्षण (व्यापारान्तररहितस्थिति, निर्व्यापारस्थितौ कालविशेषोत्सवयोः क्षणः इत्यमरः) (पुराणे—निरङ्गुष्ठं गृहीत्वा तु विश्वान् देवान् समाह्वयेत्। समाह्वानम्—निमन्त्रणम्।) काल विशेषोत्सव करे। तदनन्तर बिना अंगूठे से हाथ धोकर 'ॐ तथा' ऐसा ब्राह्मण कहे। तुम्हारे लिए प्राप्त हो—कर्ता कहे। तदनन्तर ब्राह्मण कहें—प्राप्त हुआ है।

पृथ्वीचन्द्रोदये बृहन्नारदीये—यवैर्दर्भैश्च विश्वेषां देवानामिदमासनम्। दत्त्वेति भूयो दद्यात्द्वै दैवे क्षण इति क्षणम्॥ तच्च षष्ठ्या चतुर्थ्या वा कार्यम् इति स एव। 'ततोर्घ्यं कल्पयेदिति मन्वादयः। शौनकजयन्ताभ्यामर्घ्यरहितस्य देवार्चनस्योक्तेः—आश्वलायनानां दैवेर्घ्यदानं न' इति बोपदेवः। तन्न, परिशिष्टप्रयोगपारिजातविरोधात्। वृद्धिश्राद्धे तु दैवेप्यर्घ्यं दद्यात्। 'देवेभ्योऽपि पृथग् दद्यादिहार्घ्यं श्रुतिचोदनात्। इति शौनकोक्तेः।

पृथ्वीचन्द्रोदय में बृहन्नारदीयपुराण का वचन है कि—यव तथा कुशाओं से विश्वदेवदेवताओं को यह आसन देकर फिर से दैव में क्षण क्षण कहे। वह आसन षष्ठी या चतुर्थी से करे। तदनन्तर अर्घ्य की कल्पना करे—एसा मनु आदि ने कहा है। शौनक और जयन्त ने अर्घ्यरहित देवपूजा कही है। बोपदेव ने कहा है कि—आश्वलायनों के मत से देवकार्य में अर्घ्यदान नहीं होता है। यह उचित नहीं है—परिशिष्ट और प्रयोगपारिजात का विरोध है। वृद्धिश्राद्ध में तो देवकार्य में भी अर्घ्य दे। यहाँ पर देवकार्यों में भी अलग अर्घ्य के—यह श्रुति (वेद) की प्रेरणा है—एसा शौनक ने कहा है।

(अर्घ्यपात्रकथनम्)

अथार्घ्यपात्रम्। पृथ्वीचन्द्रोदये मात्स्यपाद्मयोः—पात्रं वनस्पतिमयं तथा पर्णमयं पुनः।
जलजं वापि कुर्वीत तथा सागरसम्भवम्॥

इसके बाद अर्घ्यपात्र को कहते हैं। पृथ्वीचन्द्रोदय में मत्स्यपुराण और पद्मपुराण का वचन है कि—वनस्पति (बिना फूलों के वृक्ष) का पात्र तथा पर्णमय (पत्ते का) का पात्र या जल में पैदा हुए का और समुद्र से उत्पन्न पत्र का अर्घ्यपात्र करे।

ब्राह्मे—सौवर्णताम्ररौप्याश्मस्फाटिकं शङ्खशुक्तयः। भिन्नान्यपि हि योज्यानि पात्राणि पितृकर्मणि॥

ब्रह्मपुराण में कहा है कि—सुवर्ण, तांबा, चांदी, पत्थर, स्फटिक, शंख, शुक्ति (सीपी) ये भिन्न पात्र भी हों तो पितृकर्म में युक्त करे।

हेमाद्रौ प्रजापतिः—सौवर्णं राजतं ताम्रं खाड्गं मणिमयं तथा। यज्ञियं चमसं वापि अर्घ्यार्थं पूरयेद् बुधः॥ अत्र विप्रैकत्वद्वित्वचतुष्ट्वादावप्यर्घ्यपात्रे द्वे एव। मानवसूत्रे तु—द्वे वैश्वदेविके त्रीणि पित्र्ये एकैकमुभयत्र वा इत्युक्तम्। तदेकविप्रपरं, पात्रालाभपरं वेति हेमाद्रिः। मदनरत्ने तु दैवे एकं पात्रमुक्तम्। पृथ्वीचन्द्रोदयेऽपि—त्रीणि पैतृकपात्राणि द्वे द्वे वै वैश्वदेविके। इति बृहत्पराशरोक्तेर्द्वे एवेत्याह। बह्वृचानां तु दैवे विप्रद्वित्वेप्येकमर्घ्यपात्रमर्द्धशो दद्यादित्युक्तं परिशिष्टे प्रयोगपारिजाते च।

हेमाद्रि में प्रजापति ने कहा है कि—सुवर्ण, चांदी, तांबा, खड्ग (खड्ग का पात्र), मणिदार और यज्ञीय चमस का पात्र अर्घ्य के निमित्त बुद्धिमान् पूरण करे। यहाँ पर ब्राह्मण एक या चार हों तो अर्घ्यपात्र दो हो होता है मानवसूत्र में तो कहा है कि—दो वैश्वदेव में तीन पितृकर्म में या दोनों में एक एक ही होता है

ऐसा कहा है। यह एक ब्राह्मणपरक है। या पात्र के अलाभ (न मिलने) पर कहै यह हेमाद्रि में कहा है। मदनरत्न में तो कहा है कि—देवकार्य में एकपात्र होता है। पृथ्वीचन्द्रोदय ने भी कहा है कि—पितृकार्य में पात्र तीन होते हैं और दो दो पात्र वैश्वदेव में होते हैं। यह बृहत्पराशर ने दो ही पात्रों को कहा है। बहृचों का तो कथन है—देवकार्य में दो ब्राह्मण होने पर भी (सिद्धान्तपक्ष है कि—देवताभेद से पात्रभेद होता है, ब्राह्मणभेद से वैश्वदेव में भी—पुरूरवा और आर्द्रव देवताभेद ही है।) एक ही अर्घ्यपात्र आधा आधा दे—यह परिशिष्ट और प्रयोगपारिजात में कहा है।

कलिकायां हारीतः—दत्तमक्षयतां याति खड्गेनार्घ्यं तु यत्कृतम् ।

कलिकामें हारीतने कहा है कि—खड्गपात्र से जो अर्घ्य किया जाता है वह अक्षयको प्राप्त होता है।

वृद्धमनुः—मृन्मयं दारुजं पात्रमयःपात्रं च यद्भवेत् ।
राजतं दैविके कार्ये शिलापात्रं विवर्जयेत् ॥

वृद्धमनु ने कहा है कि—मृत्तिका (कोई अपक्वमृत्तिका का निषेध कहते हैं। खादिरौदुम्बराण्यर्घ्यपात्राणि श्राद्धकर्मणि। अप्यश्ममृन्मयानि स्युरपि पर्णपुटास्तथा ॥ इति वैजवापोक्तेरन्यलाभे निषेधः।), दारुज (देवदारु लकडी) और लोहा के जो पात्र हैं, राजत (चांदी का पात्र देवकार्य में (शिवनेत्रोद्भवं यस्माद्रजतं पितृवल्लभम्) अमङ्गलं तद्यत्नेन देवकार्येषु वर्जयेत् ॥) तथा शिलापात्र (पत्थर का पाव) को देवकार्य में त्याग करे।

पुराणसमुच्चये—मृत्स्नाभवं तथा कांस्यमारक्तं जतुसम्भवम् ।
त्रपुसीसलोहभवं सदा पात्रं विवर्जयेत् ॥

पुराणसमुच्चय में कहा है कि—मट्टी से निर्मित पात्र, कांसे का पात्र, आरक्त (रंगापात्र) जतु (लाह या लाख, लाललकडी) से उत्पन्न सीसा और लोहे (टीन की चद्दर आदि) से बनने वाला त्रपु (रांगा) पात्र सदा त्याग करे।

तत्रैव—अष्टाङ्गुलं भवेत्पात्रं पितॄणां राजतं शुभम् । दशाङ्गुलं तु देवानां सौवर्णं शक्तितः कृतम् ॥

वहीं पर कहा है कि—पितरों के कार्य में आठ अंगुल का चांदी का पात्र शुभ होता है और दश अंगुल का सुवर्ण का पात्र शक्ति से देवकार्य में करे।

(पवित्रकथनम्)

स्थापयेदर्घ्यपात्रे द्वे न्युब्जे तत्र कुशोपरि । द्वे द्वे पवित्रे विधिवत्पात्रयोश्चोपरि क्षिपेत् ॥

वहाँ पर कुशा के ऊपर दो अर्घ्यपात्र न्युब्ज (उलटकर) स्थापन करे। (दो दो पात्र भेद से) पवित्रियों को विधिवत् पात्रों के ऊपर प्रक्षेप करे।

यज्ञपार्श्वः—पवित्रेस्थेति मन्त्रेण पवित्रेच्छेदयेत्तु ते । ओषधीमन्तरे कृत्वा अङ्गुष्ठाङ्गुलिपर्वणोः ॥ स्फ्येन काष्ठेन लोहेन न मृन्मयनखादिभिः ।

यज्ञपार्श्व में कहा है—'पवित्रेस्थः'[1] (पवित्रेस्थो वैष्णवी वायुर्वो मनसा पुनातु' इस मन्त्र से पवित्रों का छेदन करे। ओषधी (तृण या काष्ठ को मध्य में कर यह आपस्तंब ने कहा है।) को मध्य में कर अंगुष्ठ तथा अंगुलियों के पर्व 'स्फ्य' नामक काष्ठ (पात्र) से करे। लोहे से, मट्टी, नख आदि से न करे।

वसिष्ठः—तूष्णीं प्रोक्ष्याम्भसा पात्रे कुर्यादूर्ध्वबिले ततः ।
पूरयेत्पात्रयुग्मं तु कृत्वोपरि पवित्रके ॥

वसिष्ठ ने कहा है कि—मौन होकर जल से दोनों पात्रों से प्रोक्षण कर ऊपर को सीधा कर (अर्थात्—उलटे हुए दोनों पात्रों को सीधाकर) उनमें जल भरे और उनपर पवित्र रखे।

१—पवित्रेस्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव उत्पुनामि। अच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ (का० सं० अ० १ म० १६)।

(पात्रे जलादिप्रक्षेपणकथनम्)

वृद्धपराशरः—पात्रद्वयमथार्घ्यार्थं तैजसं चैकवस्तुनः। प्राङ्मुखोमरतीर्थेन शन्नोदेव्योदकं क्षिपेत् ॥ यवोऽसीति यवांस्तत्र तूष्णीं पुष्पाणि चन्दनम्।

वृद्धपराशर ने कहा है—इसके बाद अर्घ्य के लिए दोनों तैजस-धातु (सोना, चांदी, तांबा आदि) के एक निर्मित पात्रों में पूर्वमुख हो देवतीर्थ से 'शं नो देवीः' इस मन्त्र से जल प्रक्षेप करे। वहाँ पर 'यवोऽसि' इस मन्त्र से यवों को और मौन होकर पुष्प तथा चन्दन को छोड दे।

मानवसूत्रे—सुमनसः प्रक्षिप्योत्पूय यवान् प्रक्षिप्य' इति।

मानवसूत्र में कहा है—पुष्पों का प्रक्षेप कर उत्पवन (जल को छिडककर) कर यवों का प्रक्षेप करे।

यवोऽसीति मन्त्रः। पाद्मे—यवोऽसि धान्यराजो वा (धान्यराजोऽसि) वारुणो मधुमिश्रितः। निर्णोदः सर्वपापानां पवित्रमृषिभिः स्मृतम् ॥ राजो वा वारुणो मधुसंयुतः' इति परिशिष्टे पाठः। गोभिलेन तु—'यवोसि सोमदैवत्यः' इति तिलमन्त्रोऽत्र स्वाहायुक्त उक्तः।

'यवोऽसि' यह मन्त्र पद्मपुराण में कहा है—तुम यव हो, धान्यों के राजा हो, वारुण (रस) और मधु से युक्त हो, सब पापों को दूर करो और तुमको ऋषियों ने पवित्र कहा है।

परिशिष्टमत से मन्त्र का रूप यों है—यवोऽसि धान्यराजो वा वारुणो मधुसंयुतः। निर्णोदः सर्वपापानां पवित्रमृषिभिः स्मृतम् ॥ गोभिलने तो तिलमन्त्रको स्वाहायुक्त कहा है—यवोऽसि सोमदैवत्यो गोसवो देवनिर्मितः। प्रत्नमद्भिः पृक्तः सर्वान् लोकान् प्रीणाहि नः स्वाहा ॥

(आवाहनमन्त्रकथनम्)

हेमाद्रौ यमः—यवहस्तस्ततो देवान् विज्ञाप्यावाहनं प्रति।
आवाहयेदनुज्ञातो विश्वेदेवास इत्यृचा ॥

हेमाद्रि में यम ने कहा है—यवको हाथ में ग्रहण कर आवाहन के प्रति देवताओं को विज्ञापन (बतलाकर) कर 'विश्वे[1] देवास'[2] इस ऋचा से आवाहन करे।

वृद्धपराशरः—ततः सव्यकरं न्यस्य विप्रदक्षिणजानुनि। देवानावाहयिष्येहमिति वाचमुदीरयेत् ॥ आवाहयेत्यनुज्ञातो विश्वेदेवास आगतः। विश्वेदेवाः शृणुतेममिति मन्त्रद्वयं पठेत् ॥

वृद्धपराशर ने कहा है—तदनन्तर ब्राह्मण के दाहिने जानु (घुटना) पर दाहिना हाथ रख कर कहे मैं (विश्वे) देवताओं का आवाहन करता हूँ—एसी वाणी को कहे। आवाहन करो—एसी आज्ञा ब्राह्मणों से लेकर 'विश्वेदेवास आगत' और 'विश्वेदेवाः शृणुतेमम्' इन दोनों मन्त्रों को पढे।

(विश्वेदेवानामज्ञाने विचारः)

श्राद्धविशेषे विश्वेदेवानामज्ञाने हेमाद्रौ बृहस्पतिः—उत्पत्तिर्नाम चैतेषां न विदुर्ये द्विजातयः। अयमुच्चारणीयस्तैर्मन्त्रः श्रद्धासमन्वितैः ॥ आगच्छन्तु महाभागा विश्वेदेवा महाबलाः। ये अत्र विहिताः श्राद्धे सावधाना भवन्तु ते ॥ इदं चावाहनमर्घ्यपात्रासादनात् प्राक् हेमाद्रिणोक्तम्। तत्र कातीयैः प्राक्कार्यम्, तथैव तत्सूत्रात्। अन्यैस्तदुत्तरम्।

श्राद्धविशेष में विश्वेदेवताओं के अज्ञान में हेमाद्रि में बृहस्पति ने कहा है—जो द्विजाति लोग इनकी उत्पत्ति तथा नाम नहीं जानते हैं वे लोग श्रद्धा से युक्त होकर इस मन्त्र का उच्चारण करें। महाभाग महाबली विश्वेदेव आवें जो विश्वेदेव इस श्राद्ध में विहित है वे सावधान हों। और यह आवाहन अर्घ्य-पात्र आसादन पहले के हेमाद्रि ने कहा है। वहाँ पर कातीयों में पहले (मत्स्यपुराणे-विश्वान् देवान् यवैः

१—विश्वे देवास आ गत शृणुता म इमं हवम्। एदं बर्हिर्निषीदत ॥ (ऋ० २।४१।१३) (ऋ० ६।५२।७)।

२—विश्वे देवाः शृणुतेमं हवं मे ये अन्तरिक्षे य उप द्यविष्ठ। ये अग्निजिह्वा उतवा यजत्रा आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयध्वम् ॥ (ऋ० ६।५२।१३)।

पुष्पैरभ्यर्च्यासनपूर्वकम्। पूरयेत्पात्रयुग्मं तु स्थाप्य दर्भपवित्रके ॥) करना चाहिये। वैसा ही उस सूत्र में है। दूसरों ने बाद में कहा है।

(वैश्वदेवादिपूजने देशकथनम्)

पृथ्वीचन्द्रोदये शङ्खः—सयवं पुष्पमादाय चरणादिशिरोन्तकम्। अर्चये, त्यर्चनं कुर्यादन्तरे चोदकं तथा॥ पित्र्ये तु—मूर्द्धादिपादान्तम्, पादप्रभृति मूर्द्धान्तं दैविके पूजनं भवेत्। शिरःप्रभृति पादान्तं नमो व इति पैतृके॥ इति मदनरत्ने प्रचेतोक्तेः।

पृथ्वीचन्द्रोदय में शंख ने कहा है—(देवकार्य में) यव के सहित पुष्प को ग्रहण कर चरण से लेकर शिरपर्यन्त पूजन करे। एसी ब्राह्मणों की आज्ञा से पूजन करे तथा मध्य में जल दे। पितृकर्म में तो शिरसे पैरतक पूजन करे। मदनरत्न में प्रचेता ने कहा है—देवकार्य में पैर से लेकर शिर तक पूजन करे। और पितृकर्म में शिर से लेकर पैर तक 'नमो[1] वः' इस मन्त्र से करे।

कलिकायां सङ्ग्रहे—तिष्ठन् कृताञ्जलिर्भूत्वा पठेन्मन्त्रौ समाहितः।
विश्वेदेवाः शृणुते इत्यागच्छन्त्वपरं ततः॥

कलिका में संग्रह ने कहा है—खडे होकर हाथ जोडकर समाहित (एकाग्रचित्र) होकर विश्वेदेवाः शृणुत दूसरा मन्त्र-(आगच्छन्तु महाभागा विश्वेदेवा महाबलाः। ये अत्र विहिताः श्राद्धे सावधाना भवन्तु ते॥) इन दो मन्त्रों को पढे।

(अर्घ्यपात्रदानकथनम्)

हेमाद्रौ (छ० पृ० १२८७) जातूकर्ण्यः—ततोऽर्घ्यपात्रसम्पत्तिं वाचयित्वा द्विजोत्तमान्।
तदग्रे चार्घ्यपात्राणि स्वधार्घ्या इति विन्यसेत्॥

हेमाद्रि में जातूकर्ण्य ने कहा है—तदनन्तर द्विजोत्तमों को अर्घ्यपात्रसंपत्ति (अर्घ्यपात्रं सुसंपन्नम्) का वाचन (ब्राह्मणों के द्वारा) कराकर उनके आगे अर्घ्यपात्रों को 'स्वधार्घ्या' इस वाक्यरूपी मंत्र से स्थापन करे।

गार्ग्यः—दत्वा हस्ते पवित्रं च कृत्वा पूजां च पादतः।
या दिव्या इति मन्त्रेण हस्तेष्वर्घ्यं विनिक्षिपेत्॥

गर्ग ने कहा है—हाथ में पवित्री को देकर पैर से पूजा प्रारंभ कर 'या दिव्या'[2] इस मन्त्र से हाथ में अर्घ्य को दे।

सङ्ग्रहे—विश्वेदेवा इदं वोऽर्घ्यमिति दानं समादिशेत्। तदन्ते 'स्वाहा नमः' इति वाच्यम्। या दिव्या इति मन्त्रेण स्वाहाकारं नमोन्तकम्। इति हेमाद्रौ नागरखण्डात्। आथर्वणसूत्रे तु 'पाद्यमर्घ्यमाचमनीयमिति द्विजकरे निनयेत्' इत्यस्यैव त्रयमुक्तम्।

संग्रह में कहा है—विश्वेदेवा, इदं वोऽर्घ्यम्, यह अर्घ्य आपके लिए है—यह दान का मन्त्र कहकर अन्त में 'स्वाहा नमः' इसको कहे। 'या दिव्या' इस मन्त्र के अन्त में 'स्वाहा' तथा 'नमः' अन्त में कहे। यह हेमाद्रि में नागरखण्ड का मत है। आथर्वणसूत्र में तो पाद्य अर्घ्य और आचमनीय ब्राह्मण के हाथ में दे। इसको ही तीन कहा है।

१—नमो वः पितरः इषे नमो वः पितरः ऊर्जे नमो वः पितरः शुष्माय नमो वः पितरो घोराय नमो वः पितरो जीवाय नमो वः पितरो रसाय। स्वधा वः पितरो नमो वः पितरो नम एता युष्माकं पितर इमा अस्माकं जीवा यो जीवन्त इह सन्तः स्याम॥ (आश्व० गृ० पृ० १६४)।

२—या दिव्या आपः पयसा सम्बभूवुर्या अन्तरिक्षा उत पार्थिवीर्याः। हिरण्यवर्णा यज्ञियास्ता न आपः शिवा शं स्योनाः भवन्तु॥ (आश्वला० गृ० अ० ख० १५ पृ० १६२)। यहाँ पर 'आपः शिवाः स ँ्स्योना सुहवा, यहाँ पर कोई प्रथम शकार पढते हैं। कोई ँ्कार शून्य दन्त्यसकार ही पढते हैं। उसमें यजुर्वेदियों का ँ्कार सहित दन्त्य सकार है। या दिव्या आपः पयसा सम्बभूवुः। या अन्तरिक्ष उत पार्थिवीर्याः। यासामषाढा अनुयन्ति कामम्। वान आपः श ँ्स्योना भवन्तु॥ (तै० ब्रा० ३ का० प्र० १ अनु० २ पृ० ८७२)।

(अर्घ्यादिदाने हस्तस्य मुख्यत्वम्)

गभस्तिः—अर्घ्यं पिण्डप्रदानं च स्वस्त्यक्षय्ये तथैव च। गन्धपुष्पादिकं सर्वं हस्तेनैव तु दापयेत् ॥ प्रतिविप्रं या दिव्येत्यावृत्तिः। बह्वृचानां त्वनेन दत्तार्घ्यानुमन्त्रणम्। ततः पात्रं 'देवेभ्यः स्थानमसि' इति न्युब्जमुत्तानं वा कार्यमिति गारुडे उक्तम्। एतदापस्तम्बानां नियतमन्येषां न।

गभस्ति ने कहा है—अर्घ्य, पिण्डप्रदान, स्वस्ति, अक्षय्य, गन्ध, पुष्प आदि सब हाथ से ही दे। प्रत्येक ब्राह्मण में 'या दिव्या' इस मन्त्र की आवृत्ति करे। बहवृचों के लिए तो इससे 'प्रसृष्टा अनुमन्त्रयेत्' ही दिये हुए अर्घ्य का अनुमन्त्रण (मन्त्र से अभिमन्त्रित) कहा है। तदनन्तर पात्र को (देवेभ्यः स्थानमसि (इससे न्युब्ज या उत्तान (सीधा) करे—यह गरुडपुराण में कहा है। यह आपस्तंबों को नियत है, अन्यों को नहीं है।

(शक्त्या ब्राह्मणपूजने द्रव्यकथनम्)

हेमाद्रौ विष्णुधर्मे—गन्धैः पुष्पैश्च धूपैश्च वस्त्रैश्चाप्यथ भूषणैः।
अर्चयेद् ब्राह्मणान् शक्त्या श्रद्धानः समाहितः ॥

हेमाद्रि में विष्णुधर्म का मत है—श्रद्धा से युक्त एकाग्रचित्त हो गन्ध, पुष्प, धूप, वस्त्र तथा आभूषणों से यथाशक्ति ब्राह्मणों का पूजन करे।

पृथ्वीचन्द्रोदये मार्कण्डेयः—चन्दनागरुकर्पूरकुङ्कुमानि प्रदापयेत्।

पृथ्वीचन्द्रोदय में मार्कण्डेय ने कहा है—चन्दन, अगरु (अगर) कपूर तथा कुंकुम (केशर या रोली) दे।

विष्णुः—'चन्दनकुङ्कुमकर्पूरागरुपद्मकान्यनुलेपनाय' इति।

विष्णु ने कहा है—चन्दन, कुंकुम, कपूर, अगरु और पद्मक (बिन्दुजालम्—गजस्य मुखादिस्थो विन्दुसमूहः) अनुलेपन के लिए हैं।

व्यासः—अपवित्रकरो गन्धैर्गन्धद्वारेति पूजयेत्।

व्यास ने कहा है—पवित्री रहित हाथ से [1]'गन्धद्वाराम्' इस मन्त्र से पूजन करे। (वीरमित्रोदये-गन्धैर्विगतपवित्रकरः श्राद्धकर्ता विद्वान् पूजयेत्, ललाटगलवक्षः कुक्षिकक्षाद्यङ्गेषु विलिम्पेदित्यर्थः)।

कलिकायां स्मृतिः—गन्धद्वारेति वै गन्धमायने ते च पुष्पकम्। धूरसीत्यमुना धूपं उद्दीप्यस्वेति दीपकम् ॥ युवं वस्त्राणि मन्त्रेण वस्त्रं[2] दद्यात्प्रयत्नतः। आसने स्वासनं ब्रूयात् अर्घ्येऽस्वर्घ्यं द्विजोत्तमः ॥ सुगन्धिश्च सुपुष्पाणि सुमाल्यानि सुधूपकः। सुज्योतिश्चैव दीपे तु स्वाच्छादनमिति क्रमः ॥

कलिका में स्मृति ने कहा है—द्विजोत्तम प्रयत्न से 'गन्धद्वाराम्' इसमन्त्र से गन्ध, 'आयने[3] ते'

१—गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्। ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥ (ऋ० प०)

२—वस्त्र के अभाव में प्रतिनिधिरूप से यज्ञोपवीत दे। शातातपः—युवासुवासाः परिवीत आगात्स उश्रेयान् भवति जायमानः। तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः ॥ कहा है। अत्रि ने वस्त्रदान में 'युवं वस्त्राणि' इस मन्त्र को कहा है।

३—ॐ आयने ते परायणे दूर्वा रोहन्तु पुष्पिणीः। ह्रदाश्च पुण्डरीकाणि समुद्रस्य गृहा इमे ॥ (ऋ. १०।१४२।८)
पुष्पदान में विष्णु ने 'पुष्पवतीः' यह मन्त्र कहा है। परन्तु 'पुष्पवतीः' यह मन्त्र आदि प्रतीक से किसी में नहीं प्राप्त है। इससे मध्यप्रतीक मालुम होता है। जिस मन्त्र में 'पुष्पवतीः' यह हो उसी मन्त्र को ग्रहण करे। जैसे—या ओषधयः प्रतिगृह्णीत पुष्पवतीः सुपिप्पलाः। अयं वो गर्भ ऋत्वियः प्रत्न ~ सधस्थमासदत् ॥ इति वीरमित्रोदये। 'ओषधीः प्रतिमोदध्वमेनं पुष्पवतीः सुपिप्पलाः। अयं वो गर्भ ऋत्वियः प्रत्नः सधस्थमासदत् ॥ यह मध्यप्रतीक मन्त्र है।

इसमन्त्र से पुष्प, 'धूरसि'[1] इसमन्त्र से धूप, 'उद्दीप्यस्व'[2] इसमन्त्र से दीपक, 'युवं [3]वस्त्राणि' इसमन्त्र से से वस्त्र दे। आसन पर 'स्वासन' कहे। अर्घ्य में 'स्वर्घ्य' कहे। गन्ध में 'सुगन्ध' कहे। पुष्प में 'सुपुष्प' कहे। माला में 'सुमाला' कहे। धूप में 'सुधूप' कहे। दीप में-'सुज्योति' कहे। आच्छादन में—'स्वाच्छादन' कहे—यह क्रम है।

(श्राद्धे विप्रतिलकादिनिरूपणम्)

विप्राणां गन्धेन वर्तुलं त्रिपुण्ड्रं वा न कार्यम्। हेमाद्रौ देवलः—ललाटे पुण्ड्रकं दृष्ट्वा स्कन्धे मालां तथैव च। निराशाः पितरो यान्ति दृष्ट्वा च वृषलीपतिम्॥ पुण्ड्रकं=वर्तुलम् इत्यपरार्के। मदनरत्ने च-पुण्ड्रं त्रिपुण्ड्रं वर्तुलमर्द्धचन्द्रं च, ऊर्ध्वं च तिलकं कुर्यान्न कुर्याद्धि त्रिपुण्ड्रकम्। ऊर्ध्वं च तिलकं कुर्याद्दैवे पित्र्ये च कर्मणि॥ निराशाः पितरो यान्ति दृष्ट्वा चैव त्रिपुण्ड्रकम्॥ इति वृद्धपराशरोक्तेः। तिर्यग्लेपो भवत्येव—वर्जयेत्तिलकं भाले श्राद्धकाले च सर्वदा। तिर्यगूर्ध्वं त्रिपुण्ड्रं वा धारयेत्तु प्रयत्नतः॥ इति व्यासोक्तेरिति पृथ्वीचन्द्रः।

गन्ध से ब्राह्मणों को वर्तुल या त्रिपुण्ड्र मस्तक पर नहीं करना चाहिये। हेमाद्रि में देवल ने कहा है—ललाट (मस्तक) में त्रिपुण्ड्र को देखकर वैसे ही कन्धे पर माला को तथा वृषलीपति (शूद्रा स्त्री का पति) को देखकर निराश होकर पितर चले जाते हैं। अपरार्क में कहा है—पुण्ड्रक वर्तुल (गोल) को कहते हैं। और मदनरत्न में कहा है—पुण्ड्र को त्रिपुण्ड्र, वर्तुल तथा अर्धचन्द्र कहते हैं।

वृद्धपराशर ने कहा है—ऊर्ध्वतिलक ही करे त्रिपुण्ड्र न करे। दैव और पित्र्यकर्म में ऊर्ध्व तिलक करे। त्रिपुण्ड्र को देखकर ही पितर निराश हो कर चले जाते हैं। तिर्यक् (तिरछा) लेप होता ही है। सर्वदा श्राद्धकाल में मस्तक पर तिलक का त्याग करे। प्रयत्न से तिर्यग् या और ऊर्ध्वपुण्ड्र का धारण करे। व्यास ने कहा है—एसा पृथ्वीचन्द्र ने कहा है।

(श्राद्धे तुलसीग्रहणादिविचारः)

यत्तु बृहन्नारदीये—ऊर्ध्वपुण्ड्रं च तुलसीं श्राद्धे नेच्छन्ति केचन। इति तत् कर्तृपरम्।

जो नारदीयपुराण से कहा है—कोई सज्जन ऊर्ध्वपुण्ड्र और तुलसी को श्राद्ध में इच्छा नहीं करते है। वह कर्तापरक है।

(श्राद्धे रक्तचन्दनकस्तूर्यादिग्रहणे विचारः)

हेमाद्रौ ब्राह्मे—पूतिकं मृगनाभिं च रोचनां रक्तचन्दनम्। कालेयकं तूग्रगन्धं तुरुष्कं चापि-वर्जयेत्॥ कस्तूर्यां विकल्प इति हेमाद्रिः।

पूतिक (करंज-कांटेदार कंजा या सुगन्धित तृणविशेष—यह हेमाद्रि में कहा है।) मृगनाभि (कस्तूरी) रोचन—(गोरोचन) रक्तचन्दन (लालचन्दन) कालेय (दारुहलदी) उग्रगन्ध (केवडा या वच) और तुरुष्क (राल) इनका त्याग करे। कस्तूरी में विकल्प है यह हेमाद्रि का कहना है।

१—धूरसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्व तं योस्मान् धूर्वति। धूर्व तं यं वयं धूर्वामः॥ (का० सं० अ० १ म० ११)।

धूरसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्व तं योस्मान् धूर्वति तं धूर्व यं वयं धूर्वामः। देवानामसि वन्हितमं सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतम्॥ य० १।८।) यद्यपि -इदं यजुर्दर्शपूर्णमासयोर्लिङ्गेनानो धुरभिमर्शने विनियुक्तस्तथापि विलङ्गकमपि स्मार्तेन वचनेन धूपदानेऽपि विनियुक्तम्। 'ऐन्द्रयां गार्हपत्यमुपतिष्ठत' इतिवत्—इति वीरमित्रोदये। ब्रह्माण्डपुराणे तु—मन्त्रान्तर-युक्तम्-वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यः सुमनोहरः। आहारः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥ धूपश्च ब्राह्मणसान्निध्ये व्यजनादिवातेन प्रेरणीयो न हस्तवातेन। शातातपः—हस्तवाताहतं धूपं ये पिबन्ति द्विजोत्तमाः। वृथा भवति तच्छ्राद्धं तस्मात्तं परिवर्जयेत्॥

२-उद्दीप्यस्व जातवेदोऽपघ्नन्निर्ऋतिं मम। पशूनाँश्च मह्यमावह जीवनं च दिशो दश (तै० आ० पृ० ६६८ प्र० १ अनु० १)।

३—ॐ युवं वस्त्राणि पीवसा वसाथे युवोरच्छिद्रा मन्तवो ह सर्गाः। अवातिरतमनृतानि विश्व ऋतेन मित्रा-वरुणा सचेथे॥ (ऋ० १।१५२।१)

(श्राद्धे सपवित्रहस्तेन ब्राह्मणानां स्पर्शने विचारः)

वृद्धशातातपः—पवित्रं तु करे कृत्वा यः समालभते द्विजान् ।
राक्षसानां भवेच्छ्राद्धं निराशैः पितृभिर्गतैः ॥

वृद्धशातातपने कहा है—जो श्राद्ध में हाथ में पवित्री को धारण कर ब्राह्मणों का स्पर्श करता है। वह श्राद्ध राक्षसों का होता है। इसलिए पितर निराश होकर चले जाते हैं।

(श्राद्धे ग्राह्यपुष्पविचारः)

पुष्पं तु ब्राह्मे—जातिचम्पकलोध्राश्च मल्लिका बाणबर्वरी। चूताशोकाटरूषं च तुलसीशतपत्रकम् ॥ कुब्जकं तगरं चैव भृङ्गमारण्यकेतकीम् । यूथिकामतिमुक्तं च श्राद्धयोग्यानि भो द्विजाः ॥ कमलं कुमुदं पद्मं पुण्डरीकं च यत्नतः । इन्दीवरं कोकनदं कह्लारं च निवेदयेत् ॥

ब्रह्मपुराण में कहा है—जाती–मालती के पुष्प, (स्मृत्यन्तर में कहा है कि 'जातीदर्शनमन्त्रेण निराशाः पितरो गताः ।' इसलिए जाती निषिद्ध है। अतः विकल्प है। कोई पीतरंग की जाती मानते हैं, यह ठीक नहीं है जाती शब्द से सबका ग्रहण है।) चम्पक (चम्पा, यह पीलाकम होता हुआ सफेद होता है), लोध्र (लोधपुष्प सफेद और लाल होता है—जंगलीपुष्प), मल्लिका (वेला) बाण (कटसैरयापुष्प), बर्वरी (जंगली तुलसी, रानी तुलसी) चूत (आम की बौर) अशोक, आटरूष (वासा) 'पित्र्ये च पद्मबिल्वार्कधत्तूरपारिभद्राटरूषका न देयाः पितृकार्येषु । इति मात्स्यो निषेधः) तुलसी, शतपत्रक (कठफोरवा), कुब्जक (गुलाब) तगर, भृंग (मंगरा लंबी पत्ती होती है।) आरण्यकेतकी (रामबाँस), यूथिका (जूही, सुगन्धिदार) अतिमुक्त (मोगरा), हे द्विजाः, श्राद्ध में ये पुष्प ग्रहण करने योग्य होते हैं। कमल, (लालकमल) कुमुद (कुँई फूल सफेद), पद्म (सफेद कमल), पुण्डरीक (सफेद कमल) कोकनद (लालकमल) और कह्लार (सायं काल खिलानेवाला सुगन्धित सफेद कमल) इनको निवेदन करे।

हेमाद्रौ वायुभविष्ययोः—सुकुमारैः किसलयैर्यवदूर्वाङ्कुरैरपि ।
सम्पूजनीयाः पितरः श्रेयस्कामेन सर्वदा ॥

हेमाद्रि में वायुपुराण और भविष्यपुराण का वचन है—सुकुमार—पल्लव—कोमल, यव और दूर्वाङ्कुरों से भी श्रेय कामना की इच्छा से सर्वदा पितरों की पूजा करे।

स्कान्दे—जात्यश्च सर्वा दातव्या मल्लिका श्वेतयूथिका ।
जलोद्भवानि सर्वाणि कुसुमानि च चम्पकम् ॥

स्कन्दपुराण का कथन है—सबप्रकार की जाती, मल्लिका (वेला) और श्वेतयूथिका (सफेद जूही), जल में होनेवाले सब पुष्प और चम्पा देना चाहिये।

तत्रैव वृद्धमनुः—न नियुक्तः शिखावर्जं माल्यं शिरसि धारयेत् ।

वहीं पर वृद्धमनु ने कहा है—श्राद्ध में निमन्त्रित शिखा (चोटी) को त्याग कर शिर पर माला को धारण न करे। (स्कन्ध में माला का निषेध पहले कह चुके हैं।)

(देवताविशेषे पुष्पाणां निषेधकथनम्)

वर्ज्यानि पृथ्वीचन्द्रोदये भविष्ये—केतकीं तुलसीपत्रं बिल्वपत्रं च वर्जयेत् । द्रोणं च करवीरं च धत्तूरं किंशुकं तथा ॥ माधवीये स्मृत्यर्थसारे च तुलसी निषिद्धा । तुलसीनिषेधो निर्मूल इति हेमाद्रिः । समूलत्वेपि पिण्डपरः । तुलसीगन्धमाघ्राय पितरस्तुष्टमानसाः । प्रयान्ति गरुडारूढास्तत्पदं चक्रपाणिनः ॥ इति प्रयोगपारिजाते पाद्मोक्तेरिति बोपदेवः ।

त्याज्य पुष्पों को पृथ्वीचन्द्रोदय में भविष्यपुराण के मत से कहा है—केतकी (केवडे का फूल) तुलसी के पत्ते, बिल्वपत्र, द्रोण (सफेद पुष्पों वाला वृक्ष) करवीर, (कनइल) धतूर (धतूरा) और किंशुक (पलाश का फूल) ये निषिद्ध हैं। माधवीय में और स्मृत्यर्थसार में तुलसी का निषेध किया है। हेमाद्रिमत से तुलसी का निषेध निर्मूल है। यदि समूल माने तो पिण्डपरक है। तुलसी की गन्ध को

सूंघकर मन से पितर प्रसन्न हो गरुड पर चढकर चन्द्रपाणी के उस पद को जाते हैं। यह प्रयोगपारिजात में पद्मपुराण का वचन है, यह बोपदेव का कहना है।

वृद्ध (बृहत्) पराशरः—न जाती कुसुमैर्विद्वान् बिल्वपत्रैस्तु नार्चयेत्। जपादिकुसुमं झिएटी रूपिका सकुरण्टिका ॥ पुष्पाणि वर्जनीयानि श्राद्धकर्मणि नित्यशः।

वृद्धपराशर का कथन है—विद्वान् मनुष्य जाती के पुष्पों से तथा बिल्लपत्रों से पूजन न करे। जप (रुद्रपुष्प) आदि शब्द से जपाकुसुम सदृश करवीरादिपुष्प, झिण्डी (नीलकटसरैयापुष्प, झिण्डी-नीलकुरण्टकः। अर्कपुष्पमितिमयूखे) रूपिका (अर्कपुष्प) और कुरण्डिका (लालकटसरैया पीताम्लातकपुष्प) इन पुष्पों को नित्य श्राद्धकर्म में त्याग करे।

हेमाद्रौ शङ्खः—उग्रगन्धीन्यगन्धीति चैत्यवृक्षोद्भवानि च। पुष्पाणि वर्जनीयानि रक्तवर्णानि यानि च ॥ जलोद्भवानि देयानि रक्तान्यपि विशेषतः।

हेमाद्रि में शंख ने कहा है—उग्रगन्ध वाले पुष्प, बिना गन्ध के पुष्प, चैत्यवृक्ष से उत्पन्न (श्मशान वृक्ष से प्रादुर्भूत) और रक्तवर्ण के जो पुष्प हैं उनका भी त्याग करे। परन्तु जल में होनेवाले भी विशेष कर लालपुष्प दे।

अङ्गिराः—न जातीकुसुमानि दद्यान्न कदलीपत्रम्। इति। जात्यां विकल्प इति हेमाद्रिः। निषेधः पिण्डविषयः।

कुन्दं शंभौ च नो दद्यान्नोन्मत्तं गरुडध्वजे। पिण्डे जाती च नो दद्याद्देवीमर्केण नार्चयेत् ॥ इति वृद्धयाज्ञवल्क्योक्तेरिति बोपदेवः।

अंगिरा ने कहा है—जातीपुष्प और केले का पत्ता (न जातिकुसुमं दद्यान्न दद्यात्कदलीफलम्) न दे। जाती पुष्प में विकल्प है–यह हेमाद्रि कहते हैं। कमलाकरमत से 'जाती' का निषेध पिण्डविषयक है। क्योंकि—शंकर को कुन्द (माघ महिने में विशेष सफेद फूल होता है) गरुडध्वज विष्णु को उन्मत्त (धतूरा), पिण्डपर जातीपुष्प और देवी की अर्क (मदार) द्वारा पूजा न करे। यह वृद्धयाज्ञवल्क्य ने कहा है—एसा बोपदेव का मत है।

स्मृतिसारे—आगस्त्यं भृङ्गराजं च तुलसी शतपत्रिका।
चम्पकं तिलपुष्पं च षडेते पितृवल्लभाः ॥

स्मृतिसार में कहा है—आगस्त्य (अगस्तपुष्प) भृंगराज (भंगरैया) तुलसी, शतपत्र का (गेंदा) चम्पक (चम्पा) और तिलपुष्प ये छः पुष्प पितरों को प्रिय होते हैं।

केतकीं करवीरं च बकुलं कुन्दकं तथा। पाटलां चैव जातीं च श्राद्धे यत्नेन वर्जयेत् ॥ केचित्-पिण्डेऽपि तुलसीमाहुः—पितृपिण्डार्चनं श्राद्धे यैः कृतं तुलसीदलैः। प्रीणिताः पितरैस्तैस्तु यावच्चन्द्रार्कमेदिनी ॥ इति मार्कण्डेयोक्तेः।

केतकी (केवडा), करवीर (कनैर) बकुल (मौलसरी का फूल) कुन्दक (माघ में सफेद होता है), पाटला (पानडी) और जातीपुष्प को श्राद्ध में यत्न से त्याग करे। कोई पिण्ड में भी तुलसी को कहते हैं। जिन लोगों ने तुलसीदलों से श्राद्ध में पितरों के पिण्डका पूजन किया है उनके पितर जबतक पृथ्वी पर चन्द्रमा और सूर्य रहेंगे—तबतक प्रसन्न होते हैं—यह मार्कण्डेय ने कहा है।

(श्राद्धे धूपविचारः)

धूपस्तत्रैव विष्णुधर्मे—धूपस्तु गुग्गुलुर्देयस्तथा चन्दनसारजः।
अगरुश्च सकर्पूरस्तुरुष्कं त्वक् तथैव च ॥

वहीं पर विष्णुधर्म में धूप को कहा है—गुग्गुल और चन्दनसारज (शरद्ऋतु में विशेष उत्पन्न होनेवाली चन्दन की लकड़ी) अगरु (अगर की सुगन्धित लकड़ी और पेड़) कपूर, तुरुष्क (लोहवान) और त्वक् (दालचीनी) दे।

विष्णुः—'घृतमधुयुक्तं गुग्गुलुं श्रीखण्डदेवदारुसरलादि दद्यात्' इति ।

विष्णु ने कहा है—घृत, मधु (सहत) (चीनी भी प्रशस्त है । शर्करापि प्रशस्ता, 'माहिषाख्यं गुग्गुलं चाथाज्ययुक्तं सशर्करम् । ददाति नरसिंहाय हरये भक्तितत्परः ॥ इतिवत्) युक्त गुग्गुल, श्रीखण्ड, (चन्दन की लकडी) देवदारु—सरल आदि दे ।

(धूपविचारः)

तत्रैव देवलः—ये हि प्राण्यङ्गजा धूपा हस्तवाताहताश्च ये । न ते श्राद्धे नियोक्तव्या ये च केचोग्रगन्धयः ॥ घृतं न केवलं दद्याद् दुष्टं वा तृणगुग्गुलुम् ॥

वहीं पर देवल ने कहा है—जो प्राण्यङ्गजा (कस्तूरी आदि) से उत्पन्न धूप हैं, जो धूप हाथ के द्वारा प्रज्वलित की हों (अर्थात्—व्यंजन (पंखे आदि) आदि के द्वारा वायु करना विहित है । धूपस्य व्यजने नैव धूपेनाङ्गं विधूपयेत् ।) और उग्रगन्धवाली धूप को श्राद्ध में उपयोग में न ग्रहण करे । केवल घी से धूप न दे या दूषित तृणयुक्त गुग्गुल न दे ।

(दीपकविचारः)

दीपमाह विष्णुः—घृतेन दीपो दातव्यस्तिलतैलेन वा पुनः ।
वसामेदोद्भवं दीपं प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥

विष्णु ने दीपक को कहा है—घृत का दीप या तिल के तेल का दीपक दे । वसा-मेद (मेदस्तु वपा वसा—इत्यमरः) (वसा—पाकात्समुद्धृतो मांसविशेषः । मेदस्तु—हृद्दकमलाच्छादको मांसविशेषः ।) (चरबी, पशुवों के गुर्दे की चर्वी) से उत्पन्न दीपक को प्रयत्न से त्याग करे ।

(वस्त्रविचारः)

वस्त्रं ब्राह्मे—कौशेयं क्षौमकार्पासं दुकूलमहतं तथा ।
श्राद्धेष्वेतानि यो दद्यात्कामानाप्नोति चोत्तमान् ॥

ब्रह्मपुराण में वस्त्र को कहा है—कौशेय (कीड़ों के अपान से निकले सूत के किए कुढमल के आकार कोश को कृमिकोष कहते हैं उससे उत्पन्न को कौशेय कहते हैं) क्षौम (रेशमी कपड़ा, ऊनी कपड़ा), कपास और विना धोया हुआ दुपट्टा जो इनको श्राद्धों में देता है वह उत्तम इच्छाओं को प्राप्त करता है ।

(यज्ञोपवीतविचारः)

हेमाद्रौ ब्रह्मवैवर्ते—यज्ञोपवीतं दातव्यं वस्त्राभावे विजानता ।
पितृभ्यो वस्त्रदानस्य फलं तेनाश्नुतेऽखिलम् ॥

हेमाद्रि में ब्रह्मवैवर्त का वचन है—वस्त्र के अभाव में जानकार मनुष्य को यज्ञोपवीत को देना चाहिए । इससे वस्त्र के दान का सम्पूर्ण फल पितरों से प्राप्त करता है ।

(वस्त्राभावे विचारः)

तत्रैव पाद्मे—निष्क्रयो वा यथाशक्ति वस्त्राभावे प्रदीयते ।

वहीं पर पद्मपुराण में कहा है—वस्त्र के अभाव में यथाशक्ति वस्त्र का निष्क्रय (मूल्य) दे ।

(धात्वादिनिर्मितदीपिकादाने विचारः)

अन्यान्यपि च देयानि तत्रैव कालिकापुराणे—धात्वादिनिर्मिता रम्या दीपिकाः श्राद्धकर्मणि ।
पितॄनुद्दिश्य यो दद्यात्स भवेद्भाजनं श्रियः ॥

अन्य भी वस्तु देनी चाहिए यह वहीं पर कालिकापुराण में कहा है—धातु आदि से निर्मित (बनी) सुन्दर दीपिका (दीपक, दीयट) श्राद्धकर्म में पितरों को उद्देश्य (पितरों के निमित्त) कर जो देता है वह लक्ष्मी का प्रिय होता है ।

(धूपदानादिपात्रदाने विचारः)

यो धूपदानपात्रं तु पात्रमारात्तिकस्य च । दद्यात् पितृभ्यः प्रयतस्तस्य स्वर्गेऽक्षया गतिः ॥

जो धूपपात्र (धूपदानीपात्र) और निरन्तर आरती के पात्र को पितरों के लिए देता है उसकी स्वर्ग में अक्षयगति होती है ।

(कञ्चुकादिना विशिष्टमहत्वफलकथनम्)

विष्णुधर्मे—यः कञ्चुकं तथोष्णीषं पितृभ्यः प्रतिपादयेत् ।
ज्वरोद्भवानि दुःखानि स कदाचिन्न पश्यति ॥

विष्णुधर्म में कहा है—जो कञ्चुक (कमरपट्टी चोली) और उष्णीष (पगडी) पितरों के लिए देता है। वह ज्वर से उत्पन्न दुःखों को कभी नहीं देखता है।

(स्त्रीणां श्राद्धे सिन्दूरादिदाने महत्वकथनम्)

स्त्रीणां श्राद्धे तु सिन्दूरं दद्युश्चण्डातकानि च। निमन्त्रिताभ्यः स्त्रीभ्यो ये ते स्युः सौभाग्यसंयुताः ॥

स्त्रियों के श्राद्ध में तो—जो निमन्त्रित स्त्रियों को सिन्दूर, चण्डातक[1] (लहंगा, साया) देते हैं, वे सौभाग्य से युक्त होते हैं।

(कृष्णवर्णवस्त्रादिनिषेधकथनम्)

हेमाद्रावादित्यपुराणे—न कृष्णवर्णं दातव्यं नापि कार्पाससम्भवम् ।
पितृभ्यो नापि मलिनं नोपभुक्तं कदाचन ॥ न छिद्रितं नापदशं न धौतं कारुणापि च ।
कार्पासनिषेधोऽन्यसम्भवे ।

हेमाद्रि में आदित्यपुराण का मत है—काले रंग का वस्त्र, कार्पास (रूई) से निर्मित वस्त्र, मलिन (मैला), जिसका कभी उपभोग किया हो या 'नोपयुक्तम्'—जो उपयोग न हो सके। ऐसे वस्त्र को पितरों के लिए न दे। छेदवाला, जिसमें छोर न हो, धोबी का धोया न हो, उसे दया से भी न दे। कार्पास निषेध अन्य के संभव में है।

(यज्ञोपवीतं विना श्राद्धविचारः)

तत्रैव—पितॄन् सत्कृत्य वासोभिर्दद्यात् यज्ञोपवीतकम् । यज्ञोपवीतदानेन विना श्राद्धं तु निष्फलम् ॥ एतद्यतिस्त्रीशूद्रश्राद्धेष्वपि देयमिति हेमाद्रिः ।

वहीं पर कहा है—वस्त्रों के द्वारा पितरों का सत्कार कर यज्ञोपवीत दे। यज्ञोपवीतदान के बिना किया हुआ श्राद्ध निश्चय निष्फल होता है। हेमाद्रि ने कहा है—यति (संन्यासी, जिसने संसार को त्याग दिया है और अपनी इन्द्रियों को वश में कर लिया है 'यथा ज्ञानं विना यतिः) स्त्री और शूद्र के श्राद्धों में भी देना चाहिये।

(श्राद्धे कमण्डल्वादिदानविचारः)

तत्रव नृसिंहपुराणे—कमण्डलुं ताम्रमयं श्राद्धेषु प्रददाति यः। काष्ठेन निर्मितं चापि नारिकेल-मथापि वा ॥ दद्यात्कमण्डलुं श्राद्धे स श्रीमानभिजायते ।
यो मृत्तिकाविरचितान् श्राद्धेषु च घटान् शुभान् । प्रदद्यात्करकान्वापि सोऽक्षयं विन्दते सुखम् ।

नृसिंहपुराण में कहा है—तांबे के कमण्डलु को श्राद्धों में जो देता है। या काठ से बना कमंडलु या नारिकेल से निर्मित कमण्डलु को जो श्राद्ध में देता है वह श्रीमान् होता है। जो मृत्तिका से बने सुन्दर रमणीय शुभ घड़ों को या करक (करवा) देता है वह अक्षयसुख को प्राप्त करता है।

(श्राद्धे उपानच्छत्रादिदाने विचारः)

तत्रैव—उपानच्छत्रवस्त्राणि भुक्तिपात्रं कमण्डलुम् । शयनासनयानानि दर्पणव्यजनानि च ॥ अन्नं सुसंस्कृतं गन्धांस्ताम्बूलं दीपचामरम् । पितृभ्यो यः प्रयच्छेत्तु विष्णुलोकं स गच्छति ॥

वहीं पर कहा है—जूता, छाता, वस्त्र, भोजनपात्र, कमण्डलु, शय्या, आसन, सवारी, शीशा, पङ्खा, सुन्दर बना अन्न, गन्ध, ताम्बूल, दीपक और चामर (चंवर) को जो पितरों के लिए देता है वह विष्णुलोक में जाता है।

१—चण्डातकं साटकं च सदृशं बहुकल्पनम् । निर्दशा साटिका ज्ञेयाऽप्यथवा चित्रवद्दशा। इति कोषः। अर्धोरुकं वरस्त्रीणां स्याच्चण्डातकमंशुकम् । इत्यमरः। तच्च लहङ्गाख्य इतितद्व्याख्यातारः।

सौरपुराणे—चामरं तालवृन्तं च श्वेतच्छत्रं च दर्पणम्। दत्त्वा पितॄणामेतानि भूमिपालो भवेदिह॥

सौरपुराण में कहा है—चामर (चंवर) तालवृन्त (ताडपत्र का पंखा), सफेद छत्र और सीसा इनको पितरों के लिए देता है वह यहाँ पर राजा होता है।

(अलङ्कारादीनां दाने अश्वमेधफलकथनम्)

तत्रैव नन्दिपुराणे—अलङ्काराः प्रदातव्या यथाशक्ति हिरण्मयाः।
केयूरहारकटकमुद्रिकाकुण्डलादयः॥

वहीं पर नन्दिपुराण में कहा है—केयूर (बाजूबन्द), हार, (गले का हार) कटक (कडा, चूडा), अँगूठी, कुण्डल (कान की बाली, कान का आभूषण) आदि सुवर्ण के अलंकार (सजावट की वस्तु–गहना) यथाशक्ति देना चाहिए।

तथा—स्त्रीश्राद्धेषु प्रदेयाः स्युरलङ्कारास्तु योषिताम्। मञ्जीरमेखलादामकर्णिकाकङ्कणादयः॥

और स्त्रियों के श्राद्धों में स्त्रियों के अलंकार (सजावट की वस्तु), मञ्जीर (बिछिया या पायजेब–पैर का आभूषण), मेखला (करधनी—तगडी), दाम—बांधने की रस्सी-डोरी, कर्णिका (कान का फूल) और कङ्कण (हाथ का कडा) आदि देना चाहिये।

तथा—आदर्शव्यजनच्छत्रशयनासनपादुकाः। मनोज्ञाः पट्टवासाश्च सुगन्धाश्चूर्णमुष्टयः॥ अङ्गारधानिकाः शीते योगपट्टाश्च यष्टयः। कटिसूत्राणि रौप्याणि मेखलाश्चैव कम्बलाः॥ कर्पूरादेश्च भाण्डानि ताम्बूलायतनं तथा। भोजनाधारयन्त्राणि पतद्ग्राहांस्तथैव च॥ तथाऽञ्जनशलाकाश्च केशानां च प्रसाधनम्। एतान् दद्यात्तु यः सम्यक् सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥

और सीसा, पंखा, छत्र, शयन (शय्या), आसन, खडाऊँ, सुंदर रेशमी वस्त्र, सुगंधित चूर्ण (आटा) की मुष्टि, शीतकाल में अंगारधानी (अंगीठी), योगपट्ट, (जिस वस्त्र से पृष्ठ और जानु का बन्धन होता है–पृष्ठजान्वोः समायोगे वस्त्रं बलयद् दृढम्। परिवेष्ट्य यदूर्ध्वज्ञस्तिष्ठेद् योगपट्टकम्॥) लाठी, चांदी के कटिसूत्र (नारा) मेखला, (करधनी), कंबल, कपूर, भाण्ड (बर्तन), पानदान, भोजन रखने के पात्र, (कटोरदान), भोजन ग्रहण करने का पात्र, अञ्जन, (सुरमा) शलाका (सलाई) और केशों का प्रसाधन कंघा इनको जो अच्छी प्रकार से देता है उसको अश्वमेधयज्ञ का फल मिलता है।

(सौवर्णादिभोजनपात्रदाने महत्वकथनम्)

स्कान्दे—सौवर्णं राजतं वाऽपि कांस्येनाप्यथ निर्मितम्।
दत्त्वा भोजनपात्रं तु सम्राट् भवति भूतले॥

स्कन्दपुराण में कहा है—सोने, चाँदी या कांसे से बने हुए पात्र भोजन करने के लिए जो देता है वह पृथ्वी पर 'सम्राट्' होता है।

(वन्दीकृतमनुष्याणां श्राद्धे विचारः)

वामनपुराणे—वन्दीकृतास्तु ये केचित्स्वयं वा यदि वा परैः। येन केनाप्युपायेन यस्तान्मोचयते नरः॥ पितरस्तस्य गच्छन्ति शाश्वतं पदमव्ययम्।

वामनपुराण में कहा है–जो कोई स्वयं या दूसरों के द्वारा 'बन्दी' (जेलखाने में) हो गये हैं। जो मनुष्य किसीप्रकार से उनको छुड़ाता है उसके पितर शाश्वतपद (सनातन) अविनाशीपद को प्राप्त होते हैं।

(वासो दत्वा परिपूर्णत्वं कथनम्)

पराशरः—वाचयेत्परिपूर्णत्वं वासो दत्त्वा विधानतः।

पराशर ने कहा है—विधान के द्वारा ब्राह्मण को वस्त्र देकर ब्राह्मण से 'श्राद्ध परिपूर्ण हो गया'—एसा कहलवावे।

(आसने मतमतान्तरपूर्वकं विचारः)

नारदीये—देवैश्च समनुज्ञातो यजेत्पितृगणं त्वथ। तत्र पित्र्ये आसनाद्यशेषमर्चनकाण्डं वैश्वदविकं ज्ञेयम्। विशेषस्तूच्यते। तत्रासने द्विगुणभुग्नाः कुशाः। अत्रावाहनमासनात्पूर्वं वा, अर्घ्य-

पूरणोत्तरं वा, अग्नौकरणोत्तरं वेति स्मृतिषु पक्षा उक्ताः। एषां शाखाभेदेन व्यवस्था। द्वितीयपक्ष एव बहुसंमतः।

नारदीयपुराण में वचन है—देवताओं से आज्ञा लेकर पितृगणों की पूजा करे। वहाँ पर पितरों के लिए आसन आदि संपूर्ण पूजनकाण्ड विश्वेदेवताओं के सदृश जानना चाहिए। विशेष कहते हैं। वहाँ आसन पर द्विगुण (द्विगुणित), भुग्न (टूटी हुई) कुशा रखे। वहाँ पर आवाहन आसन के पूर्व या अर्घ्य-पूरणोत्तर या अग्नौकरण के अनन्तर रखे ऐसा स्मृतियों में पक्ष कहा है। इनका शाखाभेद से व्यवस्था है। दूसरा पक्ष ही बहुतों को मान्य है।

(अर्घ्यमाह)

तत्रार्घ्यमाहाश्वलायनः—तैजसाश्ममयमृन्मयेषु त्रिषु पात्रेष्वेकद्रव्येषु वा दर्भान्तर्हितेष्वप आसिच्य 'शन्नो देवीरभिष्टय' इत्यनुमन्त्र्याप्सु तिलानावपति—

वहाँ पर अर्घ्य को आश्वलायन ने कहा है—तैजसपात्र में, अश्मक (स्फटिक आदि) पात्र में और मृत्तिका (हाथ से ही बना) के पात्र में इन तीनों पात्रों के अभाव में एक द्रव्य से निर्मित पात्रों में अर्थात्—तीनों पात्र तैजस, अश्मय या मृन्मय के हों (एतान्याग्नेयीदिक्संस्थानि निधाय) उनमें कुशाओं को मध्य में रख उन पात्रों में जल छोड़कर 'शन्नो [1]देवीरभिष्टय' इससे अनुमन्त्रित (मन्त्रों द्वारा आवाहन या प्रतिष्ठा) कर उन पात्रों में तिलों को छोड़ता है।

तिलोऽसि सोमदेवत्यो गोसवो देवनिर्मितः। प्रत्नवद्भिः प्रत्तः स्वधया पितॄनिमाँन् लोकान् प्रीणयाहि नः स्वधा नमः॥ इति। अश्ममयं=स्फाटिकादि। मृन्मयं=हस्तकृतमेव।

हे तिल, तुम्हारे देवता सोम हैं। गोसवयाग (गोमेधयाग) में देवताओं के द्वारा तुम्हारा निर्माण किया गया है। प्रयत्नवान् पुरुषों के द्वारा स्वधारूप में दिये गये हमारे पितरों को और इन लोकों को तृप्त करो। अश्ममय—स्फाटिकादि—काचमणि। मृन्मय—हाथ से ही बना हुआ हो मृत्तिका पात्र।

(मृत्तिकापात्रे विचारः)

कुलालचक्रनिष्पन्नमासुरं दैविकं न तत्। तदेव हस्तघटितं दैविकं केवलं तथा॥ इति छन्दोगपरिशिष्टात्। अन्यान्यपि पात्राणि पूर्वमुक्तानि।

कुलालचक्र—कुम्हार के चक्र से बना मट्टी का पात्र आसुर होता है वह देवताओं के योग्य नहीं होता है। वही ही हाथ से निर्मित हो तो केवल दैविक (देवता संबन्धि) होता है। यह छन्दोगपरिशिष्ट में कहा है। अन्य भी पात्र पहले कह चुके हैं।

(अन्नाभावे द्विजाभावे च पात्राण्यासादने विचारः)

मनुः—अन्नाभावे द्विजाभावे यद्येको ब्राह्मणो भवेत्। पात्राण्यासादयेत्त्रीणि न तु ब्राह्मणसंख्यया॥ दत्तकादेः कर्तुर्द्विपितृत्वादावपि वचनात्त्रीण्येव पात्राणीति हरिहरः।

मनु ने कहा है—अन्न के अभाव में और ब्राह्मण के अभाव में यदि एक ही ब्राह्मण हो तो तीन ही पात्रों का आसादन (स्थापन) करे ब्राह्मण की संख्या से न करे। जहाँ पर दत्तक आदि श्राद्धकर्ता हो वहाँ दो पिता आदि में भी वचन से तीन ही पात्रों का आसादन करे—एसा हरिहर ने कहा है।

माधवीये वैजवापः—अर्घ्ये पितॄणां त्रीण्येवकुर्यात्पात्राणि धर्मवित्। एकस्मिन् वा बहुषु वा ब्राह्मणेषु यथाविधि॥ हेमाद्रावप्येवम्। अत्रानुमन्त्रणं सकृत्। 'तिलोऽसि' इत्यस्य प्रतिपात्रमावृत्तिः। पितृशब्दस्यानूहश्चेति वृत्तिकृत्। दर्भश्च त्रिगुणं पवित्रम्।

माधवीय में वैजवाप ने कहा है—धर्म के जानकार व्यक्ति को एक या बहुत ब्राह्मणों में भी यथाविधि पितरों के लिये अर्घ्य में तीन ही अर्घ्यपात्र करे। हेमाद्रि में भी यही है। यहाँ पर अनुमन्त्रण (मन्त्रों द्वारा

१—शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शं योरभि स्रवन्तु नः॥ (ऋ० १०।९।४)।

आवाहन या प्रतिष्ठा) एक बार करे। 'तिलोऽसि'[1] इस मन्त्र का प्रतिपात्र में आवृत्ति करे। पितृशब्द का ऊह नहीं होता है यह वृत्तिकार कहते हैं। और कुशा से पवित्र त्रिगुणित होता है।

(पितृपात्रेषु विचारः)

तिस्रः तिस्रः शलाकास्तु पितृपात्रेषु पार्वणे। एकोद्दिष्टे शलाकैकां निधायोदकमाहरेत् ॥ इति हेमाद्रौ चतुर्विंशतिमतात् ।

पार्वणश्राद्ध में पितृपात्र में तीन-तीन शलाका कुशा की होती है। एकोद्दिष्ट में एक-एक शलाका रखकर जल छोड दे। यह हेमाद्रि में चतुर्विंशति का मत है।

तत्रैव विष्णुः—दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु दक्षिणापवर्गेचमसेषु पवित्रान्तर्हितेष्वप आसिञ्चेत्। 'शन्नो देवीः' इति मन्त्रेण जलासेचनं बह्वृचभिन्नविषयम्। अत्रास्मिन्पक्षे प्रतिपात्रं मन्त्रावृत्तिः।

वहीं पर विष्णु ने कहा है—दक्षिणाग्रकुशाओं पर दक्षिण अपवर्ग (समाप्ति) आसादित [2]चमसपात्रों (सोमपान करने का लकडी का चमचे के आकार का यज्ञपात्र-याज्ञ० १।१८३) में पवित्र मध्य में स्थित होने पर जल का आसेचन करे। 'शन्नो देवीः' इस मन्त्र से जल का आसेचन करना बह्वृच भिन्न विषयक है। यहाँ पर इस पक्ष में प्रतिपात्र में मन्त्र की आवृत्ति होती है।

कारिकायाम्—गन्धपुष्पाणि चैतेषु पात्रेषु प्रक्षिपेदथ।

कारिका में कहा है—इसके बाद इन पात्रों में गन्ध और पुष्पों का प्रक्षेप करे।

ब्राह्मे—जलं क्षीरं दधि घृतं तिलतण्डुलसर्षपान्।
कुशाग्रमधुपुष्पाणि दत्त्वाऽऽचामेत्ततः स्वयम् ॥

ब्रह्मपुराण में कहा है—जल, दूध, दधि, घृत, तिल, चावल, कुशा का अग्रभाग, मधु तथा पुष्प को देकर तदनन्तर स्वयं आचमन करे।

जातूकर्ण्यः—ततोर्घ्यपात्रसम्पत्तिं वाचयित्वा द्विजोत्तमान्।
तदग्रे चार्घ्यपात्राणि स्वधार्घ्या इति विन्यसेत् ॥

जातूकर्ण्य ने कहा है—तदनन्तर उत्तम ब्राह्मणों से अर्घ्यपात्र की सम्पत्ति (अर्घ्यपात्रं सुसम्पन्नम्) कहलवाकर (ब्राह्मणों द्वारा) उनके आगे अर्घ्यपात्रों को 'स्वधार्घ्याः' इस वाक्यरूपी मन्त्र से रखवा दे।

ततस्तिलहस्तो विप्रसव्यजानौ दक्षिणकरं न्यस्यावाहनं पृच्छेत् ॥ अत्र गोत्रसम्बन्धनामानि द्वितीयान्तत्वं च प्रागुक्तम्।

तदनन्तर तिल को हाथ में ग्रहण कर श्राद्धकर्ता-ब्राह्मण का दाहिने जानु में दाहिने हाथ को रख कर आवाहन पूछे। यहाँ पर गोत्र, सम्बन्ध और नामों को द्वितीयान्त कहे, यह पहले कह चुके हैं।

बैजवापगृह्ये—'तिष्ठन् पितॄनावाहयिष्यामि' इत्यामन्त्र्य।

बैजवापगृह्य में कहा है—खडे होकर 'पितॄन् आवाहयिष्यामि' पितरों का आवाहन करूँगा—इसप्रकार आमन्त्रण करे।

कौर्मे—अपसव्यं ततः कृत्वा पितॄणां दक्षिणामुखः। आवाहनं ततः कुर्यादुशन्तस्त्वेत्यृचा बुधः ॥ आवाह्य तदनुज्ञातो जपेदायन्तुनस्ततः।

कूर्मपुराण में कहा है-तदनन्तर अपसव्य तथा पितरों के दक्षिणाभिमुख हो 'उशन्तस्त्वा'[3] इस ऋचा से बुद्धिमान् आवाहन करे। आवाहन कर उनसे आज्ञा लेकर फिर 'आयन्तु नः'[4] इस मन्त्र का जप करे।

१—तिलोऽसि सोमदैवत्यो गोसवे देवनिर्मितः। प्रत्नवद्भिः प्रत्तः (पत्नः) स्वधया पितॄनिमाँल्लोकान् प्रीणयाहि नः स्वधा नमः।

२—चमसानां तु वक्ष्यामि दण्डाः स्युश्चतुरङ्गुलाः। त्र्यङ्गुलस्तु भवेत् स्कन्धो विस्तारश्चतुरङ्गुलः॥ विकङ्कतमयाः श्लक्ष्णाबाग्विलाश्चमसाः स्मृताः। पलाशाद्वा वटाद्वान्यवृक्षाद्वा चमसाः स्मृताः॥ इत्यादि विस्तार से अन्यत्र देखिये।

३—उशन्तस्त्वा निधीमह्युशन्तः समिधीमहि। उशन्नुशत आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे॥ (ऋ० १०।१६।१२)।

४—आ यन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ता मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते। तेभ्यः स्वराडसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयाति॥ (काण्वसंहिता—२१।५९)

अत्र सव्यस्यापि प्रागुक्तेर्विकल्पः। अत्राद्यमन्त्रावृत्त्याऽस्मत्पितरममुकशर्माणममुकगोत्रं वसुरूपमावाहयामीत्याद्युक्त्वा मूर्धादिपादान्तं तिलान् विकीर्य–'आयन्तु नः' इति सर्वान्ते सकृज्जपेदिति निबन्धाः। अत्रोपवेशनसम्वेशनपाद्यार्घ्याचमनीयान्यपि हेमाद्रिणोक्तानि तान्यथर्ववेदिनां नियतानि, नान्येषाम्। तेषां च प्रपितामहादिपित्रन्तं प्रातिलोम्येन सर्वः प्रयोगः।

यहाँ पर सव्य होकर भी रहे—यह पहले कह चुके हैं—इसलिए विकल्प है। यहाँ पर प्रथम मन्त्र की आवृत्ति से 'अस्मत् पितरममुकशर्माणममुकगोत्रं वसुरूपमावाहयामि, एसा कह कर शिर से पैर तक तिलों को छिड़ककर 'आयन्तु नः' इस मन्त्र को अन्त में एक बार जप करे—यह निबन्धकारों का मत है। यहाँ पर उपवेशन (बैठाना) संवेशन (कुशा आदि के आसन), पाद्य, अर्घ्य और आचमनीय भी हेमाद्रि ने कहा है। वे सब अथर्ववेदियों के यहाँ नियत (अवश्य करने योग्य) हैं, अन्यों के यहाँ नहीं है। और उनके यहाँ प्रपितामह से प्रारंभ कर पितापर्यन्त प्रातिलोम्य (प्रतिकूलक्रम या उलटेपन) से सब प्रयोग होते हैं।

वाराहे—गन्धपुष्पार्चनं कृत्वा दद्याद्धस्ते तिलोदकम्।

वाराहपुराण में कहा है—गन्ध और पुष्प से पूजन कर हाथ में तिलोदक दे।

गार्ग्यः—शिरस्तः पादतो वाऽपि सम्यगभ्यर्चयेत्ततः।

गार्ग्य ने कहा है—तदनन्तर शिर से या पैर से भी अच्छीतरह पूजन करे।

ततः—'स्वधाऽर्घ्याः' इति पितृपितामहादिविप्राग्रे प्रत्येकं निवेदयेत्–इति कारिकायां वृत्तौ च।

तदनन्तर 'स्वधार्घ्याः' इस वाक्य को कहकर पितृ-पितामह आदि ब्राह्मणों के आगे प्रत्येक को निवेदन करे—यह कारिका और वृत्ति में कहा है।

आश्वलायनः (अ० ४, ख० ७, सू० ६–१३)—प्रसव्येन इतरपाण्यङ्गुष्ठान्तरेणोपवीतित्वा-द्दक्षिणेन वा सव्योपगृहीतेन-पितरिदं ते अर्घ्यं, पितामहेदं ते अर्घ्यम्, प्रपितामहेदं ते अर्घ्यमिति अप्पूर्वम्, ताः प्रतिग्राहयिष्यन् सकृत्सकृत्स्वधा अर्घ्या इति, प्रसृष्टा अनुमन्त्रयेत।

आश्वलायन ने कहा है—प्रसव्येन—पितृकर्म सब अप्रदक्षिण करना चाहिए। (प्रसव्य–दाहिने हाथ के अंगूठे के मध्य से अर्घ्य को दे। जिस हाथ से कर्म करता हैं दक्षिण या सव्य (बांया) से उस अंश में यज्ञोपवीति होने पर प्राचीनावीति होता है) तदनन्तर अन्य अंश (स्कन्धा) में स्थित उपवीति होता है। यहाँ पर तो उपवीति होने से प्राचीनावीतित्व की सिद्धि के लिए सव्यपाणि के पितृतीर्थ से देना चाहिए—यह अर्थ है। या सव्यपाणि का शिष्टगर्हित होने से दक्षिणपाणी को सव्य हाथ से ग्रहणकर दक्षिणपाणि से उपवीति ही होकर अर्घ्य दे। हे पितः, यह अर्घ्य आपके लिए है। हे पितामह, यह अर्घ्य आपके लिए है। हे प्रपितामह, यह अर्घ्य आप के लिए है। इसप्रकार अर्घ्यदान के पूर्व अन्य जल को ग्रहण कराकर दे।

एक एक बार 'स्वधा अर्घ्या' इस वाक्य से अर्घ्य का जल ग्रहण करा दे। (पित्र्यर्थं यावन्तो ब्राह्मणा-स्तेभ्यः सर्वेभ्यः प्रथममेकमेव पात्रं सकृन्निवेदयेन्न प्रतिब्राह्मणम्। तथा पितामहार्थानां द्वितीयं सकृदेव। प्रपितामहार्थानां तृतीयं सकृदेवेत्येवमर्थं सकृत्सकृदिति वचनम्। इत्यादि ब्राह्मणों से प्रसृष्टा—निनीत दिये हुए अर्घ्यजल का अनुमन्त्रण करे।

या दिव्या आपः पृथिवि सम्बभूवुर्या अन्तरिक्ष्या उत पार्थिवीर्याः। हिरण्यवर्णा यज्ञियास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु॥ इति।

जो श्रेष्ठ जल पृथिवी से समुत्पन्न हैं। अथवा जो अन्तरिक्ष से समुत्पन्न है। सोने जैसे रंग वाले यज्ञ के उपयुक्त वे जल हमारे लिए कल्याण कारक हों।

अर्घ्यादि प्राग्गन्धादेर्यज्ञोपवीतमेव। अर्घ्यदानात्प्रागन्या अपो दद्यात्। यद्यप्यत्र सव्येन दक्षिणेन वाऽर्घ्यं दद्यादित्युक्तं, तथापि दक्षिणेनेत्यभिमतोऽर्थः। कारिकायां वृत्तौ चैवम्। 'पित्रादेस्त्रिभिः पात्रैर्दद्यात्। पितुः स्थाने विप्रत्रयं चेदेकार्घ्यं विभज्य दद्यात्। त्रयाणां 'स्वधा अर्घ्याः' इति सकृत्प्रश्नः। एवं पैतामहादावपि। अन्यजलदानमर्घ्यमन्त्राश्च प्रतिविप्रमावर्त्तन्ते।

तेषु गन्धादौ च प्रतिविप्रं पदार्थानुसमयः काण्डानुसमयो वा। पित्रादित्रयाणामेकविप्रपक्षे त्रिभिः पात्रैरेकस्यैवार्घ्यं दद्यात् इति वृत्तिः।

अर्घ्यादि गन्ध आदि के पूर्व यज्ञोपवीत ही दे। अर्घ्यदान दे पहले अन्य जल दे। यद्यपि यहाँ पर सव्य से या दक्षिण से अर्घ्य दे—एसा कहा है फिर भी दक्षिणहाथ से दे—यह अभिमत (अभीष्ट रुचिकर) अर्थ है। (सव्यपाणेः शिष्टगर्हितत्वादिति भावः।) कारिका और वृत्ति में यही है। पिता आदि को तीन पात्रों से दे। पिता के स्थान में तीन ब्राह्मण हों और एक अर्घ्य का विभाग कर दे। तीनों का 'स्वधा अर्घ्या' इसका एक बार प्रश्न है। इसप्रकार पितामहादि में भी है। अन्य जलदान और अर्घ्यमन्त्र को प्रति ब्राह्मण में आवर्तन करे। उनमें गन्धादि में प्रति ब्राह्मण पदार्थानुसमय[1] या काण्डानुसमय करे। पिता आदि तीनों का एक ब्राह्मणपक्ष में तीन पात्रों से एक ही का अर्घ्य दे—यह वृत्ति का मत है।

कारिकापि—स्वधाऽर्घ्या इत्यपोर्घ्यास्ता उपवीती निवेदयेत्। निवेदनात्प्राक् प्राचीनावीतमेवेत्यर्थः। अर्घ्यं सशेषमादाय दक्षिणेन तु पाणिना। सव्यहस्तगृहीतेन निनयेत्पितृतीर्थतः॥ दत्त्वा दत्त्वा निनीतास्ता 'या दिव्या' चानुमन्त्रयेत्।

कारिका ने भी कहा है—उपवीति होकर स्वधाऽर्घ्या-इस वाक्य से जल निवेदन करे। निवेदन के पहले प्राचीनावीति ही है—यह अर्थ है। (हाथ में पवित्री देकर शिर से प्रारम्भ कर पूजाकर हाथ में अर्घ्यदान करे यह पहले कह चुके हैं।) दाहिने हाथ से शेष अर्घ्य को ग्रहण कर सव्य (दाहिने) हाथ में ग्रहण कर पितृतीर्थ से निनयन (देवे) करे। जल को दे देकर 'या दिव्या' इस मन्त्र से पूजन कर अनुमन्त्रण करे।

यत्तु—'या दिव्या' इति मन्त्रेण हस्तेष्वर्घ्यं विनिक्षिपेत्। इति।

जो 'या दिव्या' इस मन्त्र से हाथों में अर्घ्य का प्रक्षेप करे।

यच्च वाराहे—तिलाम्बुना चापसव्यं दद्यादर्घ्यादिकं द्विजः। इति,

और जो वाराहपुराण में कहा है—द्विज तिल और जल सहित अर्घ्य को अपसव्य से दे।

यच्च व्यासः—गोत्रसम्बन्धनामानि पितृणामनुकीर्तयन्। एकैकस्य तु विप्रस्य अर्घ्यपात्रं विनिक्षिपेत्॥ इति तद्बह्वृचातिरिक्तविषयम्। तत आचामेत्। एवं मातामहेष्वपि।

और जो व्यास ने कहा है—पितरों के गोत्र, सम्बन्ध तथा नामों को कहता हुआ एक एक ब्राह्मण को अर्घ्यपात्र दे। यह बह्वृचशाखा से भिन्न विषयक है। तदनन्तर आचमन करे। इसप्रकार मातामह आदि में भी जानना चाहिए।

(श्राद्धे संस्रवनिरूपणम्)

आश्वलायनः (अ० ४, ख० ७, सू० १३, पृ० १२७)—'संस्रवान् समवनीय ताभिरद्भिः पुत्रकामो मुखमनक्ति।' संस्रवः=शेषः, 'संस्रवो हि परिशिष्टो भवति' इति शतपथश्रुतेः। केचित्तु हस्तगलिताम्बु वदन्ति। समवनीयान्त्ये द्वे पात्रे पितृपात्रे आसिञ्चेदिति वृत्तिः। 'प्रथमे पात्रे संस्रवान् समवनीय' इति कातीयसूत्राच्च। ब्राह्मे तु—प्रतिबिम्बानुलोकनमुक्तम्। स्कान्दे त्वायुःकामस्य नेत्रासेचनमुक्तम्। पित्र्यविप्रैः प्राङ्मुखस्य कर्तुरभिषेकः कार्य इति केचित्।

---

[1]—यत्र बहूनि प्रधानि एककाले अनुष्ठेयत्वेन विहितानि तत्र सर्वेषां प्रधानानां स्वैः स्वैरङ्गैः सह सम्बन्धस्य प्राप्त्या एकैकं प्रधानं प्रति तेषामेवाङ्गानामावृत्याऽनुष्ठाने प्राप्ते तत्र एकप्रधानसम्बन्धिसर्वमङ्गमनुष्ठाय ततः प्रधानानन्तरसम्बन्धि तदेव अङ्गजातमावर्तनीयमिति काण्डानुसमयः। अथवा—एकमेवमङ्गं सर्वेष्वपि प्रधानेष्वनुष्ठाय पुनरङ्गान्तरं तेषु सर्वेष्वावर्तनीयमिति पदार्थानुसमयः। 'एकं प्रधानमुद्दिश्य तत्तत्सम्बन्धिना यावत्पदार्थकाण्डेन अनुसमयः अनुष्ठानं काण्डानुसमयपदार्थः। इसका विशिष्ट विवेचन सवृत्ति कात्यायनश्रौतसूत्र (अ० १ क० ५ सूत्र १०–१२) में है। वहाँ पर ही देखिये। आवाहनादि पुष्पाञ्जल्यन्तं गणेशपूजनं समाप्य गौरीपूजां कुर्यादेवमन्यासामपि। अयं काण्डानुसमयः। अथवा गणपतेरावाहनं कृत्वा गौर्यादीनामावाहनं गणपतेरासनं दत्वा गौर्यादीनामासनम्। अयं पदार्थानुसमयः। संस्कारभास्करे इदं पक्षद्वयकपि प्रामाणिकतयोपन्यस्तमिति स्मार्तप्रभौ।

आश्वलायन ने कहा है—अर्घ्य के शेष (अवशिष्ट) पात्रवाले जल को एकत्रकर पुत्र की इच्छा-वाला यजमान उस जल से अपने मुख का सेचन करे। संस्रव नाम शेष—अर्घ्य का शेष है। संश्रव ही परिशिष्ट (छोडा हुआ, बचा हुआ) होता है—एसी शतपथ की श्रुति है। कोई हाथ के गिरे जल को संस्रव कहते हैं। वृत्ति में कहा है कि—अन्त्य के दो पात्र का संस्रव इकट्ठा ग्रहण कर पिता के पात्र में आसेचन करे।

(वृद्धशातातपः—प्रथमे पितृपात्रे तु सर्वान् संभृत्य संस्रवान्। अनक्ति वदनं पश्चात्पुत्रकामो भवेद्यदि। अत्र संस्रवाभिमंत्रेण मुखाञ्जने च मंत्रः कात्यायनेनोक्तः—अर्घ्यं स्वधया इत्युक्त्वा संस्रवानभिमन्त्रयेत्। ये देवा इति मन्त्रेण पुत्रकामो मुखं स्पृशेत्।) प्रथमपात्र में संश्रव को छोड दे—यह कातीयसूत्र में भी कहा है। ब्रह्मपुराण में तो कहा है—प्रतिबिम्ब का अवलोकन कहा है। स्कन्दपुराण में कहा है—आयुकामना के लिए नेत्र का आसेचन कहा है। किसी का कहना है—पितृब्राह्मण पूर्वमुख कर्ता का अभिषेक करें।

आश्वलायनः—(अ० ४, ख० ७, सू० ७, पृ० १३७) नोद्धरेत्प्रथमं पात्रं पितॄणामर्घ्य-पातितम्। आवृतास्तत्र तिष्ठन्ति पितरः शौनकोऽब्रवीत्॥ 'यावद्विप्रविसर्जनम्' इति तुर्यपादे यमीयः पाठः।

आश्वलायन ने कहा है—पितरों के अर्घ्य का अवशिष्ट जल जिस पात्र में इकट्ठा किया है एसे प्रथम पात्र को उस देश से न उद्धरण (सीधा) श्राद्ध की समाप्ति तक करे। (पितृपात्रे समाधाय अर्घपात्राणि कृत्स्नशः। आयुष्कामस्तु तत्तोयं लोचनाभ्यां परिक्षिपेत्॥ प्रथमे पात्रे एकीकृतं संस्रवोदकं हस्ते गृहीत्वा 'आपः शिवाः शिवतमा शान्ताः शान्ततमास्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम्' इति मन्त्रेण प्राङ्मुखोपविष्टस्य यजमानस्या-न्येनाभिषेकः क्रियत इतिवाजसनेयिनामाचार इति हेमाद्रिः। इति वीरमित्रोदये। किमितिनोद्धरेत्—यस्मात् तस्मिन् पात्रे पितरस्तृतीयपात्रेण पिहितास्तिष्ठन्तीति गृह्यज्ञास्तृतीयेन पात्रेण प्रथमपात्रस्यापिधानमिच्छन्ति। अन्ये तु–तत्रेति तृतीयार्थे सप्तमी तेनायमर्थः–आवृतास्तेन प्रथमेन पात्रेण पितरस्तिष्ठन्तीति। 'अर्घ्यपातितं प्रथमं पात्रं न्यग्बिलं कुर्यात्। तच्च नोद्धरेत्। आ समाप्तेरिति' व्याचख्युः। शौनकोऽब्रवीत्।) पहले पात्र में पितरों का अर्घ्यजल स्थित है। क्योंकि ढके हुए वहाँ पर स्थित हैं। ऐसा शौनक ने कहा है। यम ने इस श्लोक के चतुर्थ चरण में यों कहा है कि—यावद्विप्रविसर्जनम्। अर्थात् श्लोक यों है—नोद्धरेत् प्रथमं पात्रं पितॄणामर्घ्यपातितम्। आवृतास्तत्र तिष्ठन्ति यावद्विप्रविसर्जनम्॥ जबतक ब्राह्मण का विसर्जन न हो यह चतुर्थ चरण का पाठ है।

अत्र वृत्तिः—'पितृपात्रं समवनयनदेशान्न चालयेदाश्राद्धसमाप्तेः यस्मात्तत्र तृतीयपात्रेणावृताः' इति। यद्वा 'प्रथमपात्रमेव न्यग्बिलं कुर्यात्' इति। कामाभावेऽपीदमेव शेषप्रतिपादनम्।

यहाँ पर वृत्ति ने कहा है—पितरों के अर्घ्यपात्र को जहाँ इकट्ठा किया है वहाँ से श्राद्ध की समाप्ति तक चालन न करे। जिसकारण से वहाँ पर तीसरे पात्र से ढका हुआ है। (पिता के अर्घ्यपात्र का जल पितामह के अर्घ्यपात्र में दे और पितामह के अर्घ्यपात्र का जल प्रपितामह के अर्घ्यपात्र में दे। तदनन्तर प्रपितामह के अर्घ्यपात्र को पितामह के अर्घ्यपात्र में रखे फिर पितामह के अर्घ्यपात्र को पिता के अर्घ्यपात्र में रखे।) अथवा प्रथम पात्र को ही अधोमुख (भूमि में उलटकर) करे। इच्छा के अभाव में भी यही शेषजल का प्रतिपादन है। (प्रथमपात्र में पितर रहते हैं–यह इसका पर्यवसान (समाप्ति) है। इसलिए श्राद्ध की समाप्ति तक उद्धरण (आश्वलायने—उद्धरेद्यदि तत्पात्रं ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः। अभोज्यं तद्भवेच्छ्राद्धं क्रुद्धे पितृगणे गते। उशनसापि—उद्घाटने दोष उक्तः—उत्तानं विवृतं वापि पितृपात्रं यदा भवेत्। अभोज्यं तद्भवेदन्नं क्रुद्धैः पितृगतैर्गतैः। विवृतम्—उद्घाटितम्। तथा–पात्रं दृष्ट्वा व्रजन्त्याशु पितरः प्रशयन्ति च। उद्धृतमिति सम्बन्धः। (उठाना, ऊपर करना) न करे।

हेमाद्रौ कौर्मे—संस्रवांश्च ततः सर्वान् पात्रे कुर्यात्समाहितः। पितृभ्यः स्थानमसीति न्युब्जं पात्रं निधापयेत्॥

हेमाद्रि में कूर्मपुराण का मत है—तदनन्तर सब संश्रवों को पात्र में सावधान मन से रखकर 'पितृभ्यः स्थानमसि' इससे उलटकर पात्र को (भूमि में) रखे।

शूलपाणौ यमस्तु—पैतृकं प्रथमं पात्रं तस्मिन् पैतामहं न्यसेत्। प्रपितामहं ततो न्यस्य नोद्धरेन्न च चालयेत् ॥ इत्याह।

शूलपाणि में यम ने कहा है—पिता के प्रथम पात्र पर पितामह के पात्र को रखे। तदनन्तर प्रपितामह के पात्र को रखकर न उठावे न चालन करे—एसा कहा है।

अथ संस्रवानानीय तृतीयेनाच्छाद्य न्युब्जीकुर्यात्' इति सर्वैकवाक्यतयार्थ इति केचित्।

इसके अनन्तर संश्रवों को ले आकर तीसरे पात्र से आच्छादन कर न्युब्ज (अधोमुख) करे। यह सबों की एकवाक्यता से अर्थ है—यह किसी का मत है।

अत्रिः—गन्धादिभिस्तदभ्यर्च्य तृतीयेनापि धापयेत्। पितृभ्यः स्थानमसीति शुचौ देशेऽर्चिते-ऽर्चयेत् ॥ अर्चनं न्युब्जीकृतेऽपि तुल्यम्। 'न्युब्जमुत्तरतो न्यसेत्' इति प्रचेतसोक्तेः। 'सर्वविप्रोत्तरतो न्यसेत्' इति हेमाद्रिकल्पतरू। 'विप्रवामे' इति हलायुधः। 'कर्तुर्वामे' इति शूलपाणिः। उत्तानं विवृतं वाऽपि पितृपात्रे न तद्भवेत् इत्युशनसोक्तेर्न्युब्जतैव साधुः। मातामहादिसंस्रवानपि पितृपात्र एव गृहीत्वा प्रयाजवत्तन्त्रेण न्युब्जीकुर्यादिति शूलपाणिः। एकोद्दिष्टे तूहेन न्युब्जतेति पितृ-भक्तौ श्रीदत्तः।

अत्रि ने कहा है—गन्ध (चन्दन) आदि से उसका पूजन (पितरथ ते गन्धः, पितरिदं ते पुष्पम् इत्यादिना प्रयोगेण दद्यात्) कर तीसरे पात्र से ढक दे। फिर 'पितृभ्यः स्थानमसि' कह कर पूजित पवित्र देश में अर्चन करे। अर्चन न्युब्जी (भूमि में अधोमुख) करने पर भी समान है। प्रचेता ने कहा है—न्युब्ज (अधोमुख) पात्र को उत्तरतरफ करे। सब ब्राह्मण के उत्तर तरफ रखे—यह हेमाद्रि और कल्पतरु में कहा है। हलायुध ने कहा है—ब्राह्मण के बायें रखे। शूलपाणि ने कहा है—कर्ता के बायें रखे। उत्तान (सीधा) तथा विवृत (खुला हुआ) पिता का पात्र नहीं होता है—यह उशनस के कहने पर न्युब्जता (अधोमुख) कर ही रखे यही उचित है। मातामह आदि के संश्रवों को भी पितृपात्र में ही ग्रहण कर प्रयाज[1] की तरह तन्त्र से न्युब्ज करे यह शूलपाणी ने कहा है। एकोदिष्ट में तो ऊहसे (पित्रे स्थानमसि) से न्युब्जता (अधोमुख) है—यह पितृभक्ति—श्रीदत्त ने कहा है।

यमोऽपि—स्पृष्टमुत्तानमन्यत्र नीतमुद्घाटितं तथा। पात्रं दृष्ट्वा व्रजन्त्याशु पितरस्तं शपन्ति च ॥ वैश्वदेवे उत्तानमिति मदनपारिजातः।

यम ने भी कहा है—हाथ आदि से स्पर्श किया हुआ उत्तान (सीधा) और अन्यत्र ले जाकर उद्घाटित (खुला हुआ) पात्र को देखकर पितर शीघ्र चले जाते हैं और उसको शाप देते हैं। वैश्वदेव में उत्तान होता है—यह मदनपारिजात का मत है।

बैजवापः—तस्योपरि कुशान् दत्त्वा प्रदद्याद्देवपूर्वकम्। गन्धपुष्पाणि धूपं च दीपं वस्त्रोपवीतके ॥ अत्र गन्धादेर्दैवे पित्र्ये च पदार्थानुसमयस्य याज्ञवल्क्योक्तकाण्डानुसमयेन विकल्पो ज्ञेयः। बह्वृचानां तु सूत्रे दैवानुक्तेः काण्डानुसमय एव। अत्र प्राचीनावीति। नामगोत्रसंबुध्याद्युक्तं प्राक्। अन्यद्दैववत्तदन्ते आचमनं च।

१—होता के घृतवतीम्' इसमन्त्र के कहने वाद अध्वर्यु स्रुचि को ग्रहण कर 'यजतिदेश' में जाकर 'ओ श्रावय' एसा कहकर 'समिधो यज' एसा होता को कहे। पुरोनुवाक्या—रहित समिधो यजति, तनूनपातं यजति, इडो यजति, बर्हिर्यजति, स्वाहा यजति' (तै० सं० २।६।१) को एकवार अतिक्रान्त ही हो समिद्धतम अग्नि में हवन करे। यहाँ पर देवता भेदहोने पर भी इनकी आहुति एकसमय होती है। तद्वत् ही न्युब्जीकरण में पितृ, पितामह और प्रपितामह तथा मातामह, प्रमातामह तथा वृद्धप्रमातामहादियों का नामभेद है प्रजाजवत् फिर भी एक ही समय में पित्रादि तीन का न्युब्ज (प्रपितामह के जल का जल पितामह के पात्र में गिरा दे और पितामह के पात्र का जल पिता के पात्र में गिरा दे। फिर पिता के पात्र को पितामह के पात्र रखे और पितामह के पात्र को प्रपितामह के पात्र में रखकर न्युब्जीकरण एक ही साथ होगा। तद्वत् मातामहादियों का भी होगा। पार्वणादि में।

बैजवाप ने कहा है—उस (पात्र) के ऊपर कुशाओं को देकर देवपूर्वक—गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, वस्त्र और यज्ञोपवीत दे। यहाँ पर दैव तथा पित्र्यकर्म में गन्धादि का देना पदार्थानुसमय का याज्ञवल्क्यमत से काण्डानुसमय से विकल्प जानना चाहिए। बह्वृचों के तो सूत्र में दैव को नहीं कहा है अतः काण्डानुसमय ही है। यहाँ पर प्राचीनावीति है। नाम, गोत्र, संबुद्धि आदि पहले कह चुके हैं। अन्य तो दैव के सदृश उसके अन्त में आचमन कहा है।

हेमाद्रौ कालिकापुराणे—निर्वर्त्य ब्राह्मणादेशात् क्रियामेवं यथाविधि। भाजनानि ततो दद्याद्धस्तशौचं पुनः क्रमात् ॥ आदेशात्पात्राणि दद्यादित्यन्वयः। तेन तत्रापि प्रश्नानुज्ञे ज्ञेये।

हेमाद्रि में कलिकापुराण का वचन है—ब्राह्मणों के आदेश से इसप्रकार यथाविधि क्रिया को समाप्त कर भाजन पात्रों (भोजनार्थ सब अन्नों को धारण करने में समर्थ बडे-बड़े पात्र) को देकर फिर से हाथ को पवित्र करे। आदेश से (ब्राह्मणों के कथन से) पात्रों को दे यह अन्वय है। इससे वहाँ पर भी प्रश्न (अविज्ञात प्रवचन) और अनुज्ञा (आदेश) जानना चाहिये।

(मतमतान्तरपूर्वकश्राद्धे विप्रादीनां मण्डलकरणविचारः)

तत्रैव ब्राह्मे—मण्डलानि च कार्याणि नैवारैश्चूर्णकैः शुभैः।
गौरमृत्तिकया वापि भस्मना गोमयेन वा ॥

वहाँ पर ब्रह्मपुराण का मत है—शुभ—कल्याणकारक नैवार चूर्ण, (तिन्नी चावल का चूर्ण) सफेद मृत्तिका, भस्म या गोबर से मण्डलों को करे।

भृगुः—भस्मना वारिणा वापि कारयेन्मण्डलं ततः। चतुष्कोणं द्विजाग्र्यस्य त्रिकोणं क्षत्रियस्य तु ॥ मण्डलाकृति वैश्यस्य शूद्रस्याभ्युक्षणं स्मृतम्।

भृगु ने कहा है—तदनन्तर—भस्म या जल से भी मण्डल करावे। ब्राह्मण को चौकोर, क्षत्रिय को त्रिकोण तथा वैश्य मण्डलाकृति (गोलाकार) बनावे। और शूद्र को अभ्युक्षणमात्र (जल का छिड़कना) कहा है।

बह्वृचपरिशिष्टे तु दैवे चतुरस्रं पित्र्ये वर्तुलं मण्डलं कृत्वा क्रमेण सयवान् सतिलांश्च दर्भान् दद्यात्' इत्युक्तम्।

बह्वृचपरिशिष्ट में तो कहा है—देवकार्य में चतुरस्र (चौकोर) और पितृकार्य में वर्तुल (गोलाकार) मण्डल कर क्रम से यव तथा तिल सहित कुशाओं को दे—ऐसा कहा है।

(मण्डलहीने तु विचारः)

मार्कण्डेयः—यातुधानाः पिशाचाश्च क्रूरा ये चैव राक्षसाः।
हरन्ति रसमन्नस्य मण्डलेन विवर्जितम् ॥

मार्कण्डेय ने कहा है—मण्डल से रहित होने पर यातुधान (राक्षस) पिशाच (योनि विशेष) और जो क्रूर राक्षस हैं वे अन्न के रस को हरण करते हैं।

(श्राद्धे भोजनपात्राणां निरूपणकथनम्)

हेमाद्रौ हारीतः—भूमावेव निदध्यान्नोपरि पात्राणि' इति। तानि च हेमाद्रावत्रिराह—भोजने हैमरौप्याणि दैवे पित्र्ये यथाक्रमम्।

हेमाद्रि में हारीत ने कहा है—पृथ्वीपर ही पात्रों को रख किसी के (पत्तल, पट्टा, चौकी, पीढा आदि ऊपर न रखे)। उन पात्रों को हेमाद्रि में अत्रि ने कहा है--देवकार्य में भोजन के पात्र सुवर्ण के तथा पित्र्यकार्य में चाँदी के पात्र यथा क्रम से होते हैं।

हारीतः—'राजतपार्णताम्रकांस्यपात्राणि भोजने' इति।

हारीत ने कहा है—भोजनपात्र--चाँदी, पत्ता, ताँवा और कांसे के होते हैं।

तत्रैव वाराहे—सौवर्णानीह रौप्याणि कांस्यानि तदसंभवे। अन्यान्यपि हि कार्याणि दारुजान्यपि जानता ॥ नायसान्यपि कार्याणि पैत्तलानि न तु क्वचित्। न च सीसमयानीह शस्यन्ते त्रपुजान्यपि ॥

वहीं पर पात्रों को भी वाराहपुराण में कहा है—यहाँ पर सुवर्ण के पात्र या चाँदी के पात्र हों असंभव में काँसे के पात्र हों। दूसरे पात्र भी जानकार लकड़ी के निर्माण करावे। लोहे के पात्र और पीतल के पात्र कभी न रखे। सीसे के पात्र तथा लाख के पात्र भी न रखे।

अत्रिः—पञ्चाशत्पलिकं कांस्यं द्व्यधिकं भोजनाय वै। गृहस्थैस्तु सदा कार्यमभावे हैमरौप्ययोः॥ पालाशेभ्यो विना न स्युः पर्णपात्राणि भोजने।

अत्रि ने कहा है—भोजन के लिए गृहस्थ सदा बावन पल के कांसे के पात्र को बनावें। उसके अभाव में सुवर्ण और चाँदी के पात्र बनावे। भोजनपात्र पालास के पत्तों के बिना अन्य पत्तों का न करे।

(पृथ्वीचन्द्रमते कांस्यपात्रे विचारः)

पृथ्वीचन्द्रस्तु—कांस्यपात्रे हविर्दृष्ट्वा निराशाः पितरो गताः। इति ब्राह्मोक्तेः कांस्यपात्रनिषेधमाह।

पृथ्वीचन्द्रोदय में तो कहा है—कांस्यपात्र (पचासपल से न्यून का निषेध है यह अन्य का कथन है।) में हवि को देखकर पितर निराश होकर चले जाते हैं। यों ब्रह्मपुराण में कांस्यपात्र का निषेध कहा है।

(बोपदेवमते तु कदल्यादिपात्रे विचारः)

बोपदेवस्तु स्मृतिसङ्ग्रहमुदाजहार—श्राद्धे पलाशपात्राणि मधूकोदुम्बराणि च। पारिका-कुटजप्लक्षक्रकचानि क्रमाज्जगुः॥ कदलीचूतपनसजम्बुपुन्नाग (पत्रार्क) चम्पकाः। अलाभे मुख्यपात्राणां ग्राह्याः स्युः पितृकर्मणि॥ इति।

बोपदेव ने तो स्मृतिसंग्रह का वचन कहा है—श्राद्ध में पलाशपत्र, महुआ, उदुम्बर, पारिका, कुटज (कुरैया का पत्ता—इसके पत्ते दीर्घाकृति के होते हैं। इसके फूल में बहुत सुगन्ध होती है।), प्लक्ष (पाकर), क्रकच (अर्थात्—करपत्र, केतकी, केवड़ा), केलापत्र, आम्रपत्र, कटहर के पत्ते, जामुन में पत्ते, पुन्नाग (नागकेशर) के पत्ते और चम्पा (चमेली) के पत्ते का पात्र क्रम से कहा गया है। मुख्यपात्रों के अलाभ में पितृकर्म में ग्रहण करे।

(हेमाद्रिमते तु कादल्यादिपत्रदाने विचारः)

हेमाद्रौ तु कदलीपात्रनिषेधमाहाङ्गिराः—न जातीकुसुमानि दद्यान्न कदलीपत्रम्। इति।

हेमाद्रि में तो कहा है—कदलीपत्र को अंगिरा ने निषेध कहा है—जातीपुष्प (मालती पुष्प) और केले का पत्ता श्राद्ध में न दे। कोई पीत जाती का निषेध मानते हैं। परन्तु जातीमात्र का निषेध है।

क्रतुः—असुराणां कुले जाता रम्भा पूर्वपरिग्रहे। तस्या दर्शनमात्रेण निराशाः पितरो गताः॥

क्रतु ने कहा है—असुरों के कुल में पहले उत्पन्न हुई रंभा (केला) है। उसके दर्शनमात्र से पितर निराश होकर चले जाते हैं।

(भस्ममर्यादां कृत्वा मन्त्रद्वयेन विप्रहस्तशोधनकथनम्)

एवं पात्राण्यासाद्य भस्ममर्यादां कृत्वा विप्रहस्तशोधनं कुर्यात्। तत्र 'पिशङ्ग' 'रक्षाणो' इति मन्त्रद्वयं केचित्पठन्ति।

इसप्रकार पात्रों का आसादन कर भस्ममर्यादा को कर ब्राह्मण का हाथ धुला दे। वहाँ पर पिशंग[1] और रक्षाणो[2] इन दोनों मन्त्रों को कोई पढते हैं।

मात्स्ये—अकृत्वा भस्ममर्यादां यः कुर्यात्पाणिशोधनम्।
आसुरं तद्भवेच्छ्राद्धं पितॄणां नोपतिष्ठते॥

१—पिशङ्गभृष्टिमम्भृणं पिशाचिमिन्द्र सं मृण। सर्वं रक्षो नि बर्हय॥ (ऋ० १।१३३।५।)। पिशङ्गरूपः सुभरो वयोधाः श्रुष्टी वीरो जायते देवकामः। प्रजां त्वष्टा वि ष्यतु नाभिमस्मे अथा देवानामप्येतु पाथः॥ (ऋ० २।३।९) तै० स० ३।१।११।२)।

२—रक्षा णो अग्ने तव रक्षणेभी रारक्षाणः सुमख प्रीणानः। प्रति ष्फुर वि रुज वीड्वंहो जहि रक्षो महि चिद् वावृधानम्॥ (ऋ० ४।३।१४)

मत्स्यपुराण में कहा है—जो कोई भस्म की मर्यादा को न कर हाथ का शोधन (शुद्धि जल के द्वारा) करता है। वह श्राद्ध आसुर होता है और पितरों को प्राप्त नहीं होता है।

तथैव ब्रह्माण्डे—प्रक्षाल्य हस्तपात्रादि पश्चादद्भिर्विधानवत्। प्रक्षालनजलं दर्भैस्तिलैर्मिश्रं क्षिपेच्छुचौ ॥ मण्डलोपरीति हेमाद्रिः।

वहीं पर ब्रह्माण्डपुराण में कहा है—फिर जल से विधिपूर्वक हाथ और पात्र (प्याला, ग्लास आदि कोई बर्तन) आदि का प्रक्षालन कर प्रक्षालन जल को कुशा तथा तिलों सहित पवित्र देश में गिरावे। पादप्रक्षालनादि मण्डल के ऊपर गिरा दे—यह हेमाद्रि ने कहा है।

(श्राद्धे अग्नौकरणकथनम्)

अथाग्नौकरणम्। हेमाद्रौ मार्कण्डेयः—आहिताग्निस्तु जुहुयाद्दक्षिणाग्नौ समाहितः। अनाहिताग्निश्चौपासनेऽग्न्यभावे द्विजेऽप्सु वा ॥

अब अग्नौकरण कहते हैं। हेमाद्रि में मार्कण्डेय ने कहा है—आहिताग्नि तो दक्षिणाग्निकुण्ड में स्वस्थचित्त से हवन करे। अनाहिताग्नि औपासन अग्नि (गृह्याग्नि) में करे। अभाव में तो ब्राह्मण के हाथ में जल दे।

वायवीये—आहृत्य दक्षिणाग्निं तु होमार्थं वै प्रयत्नतः। अग्न्यर्थं लौकिकं वापि जुहुयात्कर्मसिद्धये ॥ आहिताग्निः=सर्वाधानी। अर्द्धाधानी तु गृह्य एवेति चन्द्रिकापरार्कमिताक्षरामाधवादयः। तस्यापि दक्षिणाग्नौ लौकिको गृह्य इति हेमाद्रिः कल्पतरुश्च। आद्यपक्ष एव तु युक्तो बहुसम्मतश्च। यद्यपि स्मार्तमग्नौकरणं श्रौते दक्षिणाग्नौ न युक्तं, तथापि वचनाद्भवतीति हेमाद्रिचन्द्रिकादयः। इदं दर्शश्राद्ध एव। आब्दिकादिषु तु सर्वाधानी पाणौ, अर्द्धाधानी गृह्ये कुर्यादिति हेमाद्रिर्माधवश्च,

पक्षान्तं कर्म निर्वर्त्य वैश्वदेवं च साग्निकः। पिण्डयज्ञं ततः कुर्यात्ततोऽन्वाहार्यकं बुधः ॥ इति लौगाक्ष्यादिभिः क्रमोक्तेर्विहितदक्षिणाग्निसत्वात्। अत एवात्र वचने साग्निकः आहिताग्निरुक्तो हेमाद्रिणा। एतदापस्तम्बदीनामेव। आश्वलायनस्याहिताग्नेः पाणावेवेति वृत्तिः। अर्द्धाधानिनो गृह्य एव व्यतिषङ्गेणेति प्रयोगपारिजाते परिशिष्टे च।

वायुपुराण में कहा है—औपासन अग्नि के कार्य के लिए दक्षिणाग्नि को या लौकिक अग्नि को प्रयत्न से ही ले आकर कर्मसिद्धि के लिए होम करे। आहिताग्नि माने-सर्वाधानी। अर्धाधानी तो घर में होने वाली अग्नि में ही करे-यह चन्द्रिका, अपरार्क, मिताक्षरा, माधव आदि कहते हैं। अर्धाधानी का भी दक्षिणाग्नि में करे। लौकिक गृह्याग्नि का नाम है—यह हेमाद्रि और कल्पतरु कहते हैं। उसमें पहला पक्ष ही युक्त है और बहुसम्मत है। यद्यपि स्मार्त अग्नौकरण श्रौत—दक्षिणाग्नि में युक्त नहीं है फिर भी वचन से होता है—यह हेमाद्रि, चन्द्रिका आदि कहते हैं। यह दर्शश्राद्ध में ही होता है। आब्दिक आदि में तो सर्वाधानी हाथ में और अर्धाधानी गृह्याग्नि में करे—यह हेमाद्रि, माधव आदि का मत है।

पक्षान्त (दर्शपूर्णमास देवताओं के लिए चरु को पका कर आहुति दे या पक्षान्त (दर्शपौर्णमासेष्टि) को करके) कर्म और वैश्वदेव को साग्निक समाप्त कर बुद्धिमान् पिण्ड (पितृ) यज्ञ करे तदनन्तर अन्वाहार्य (दर्शपौर्णमासेष्टि की चरुरूप दक्षिणा) करे। यह लौगाक्षि आदियों के क्रम के कहने पर दक्षिणाग्नि मे विहित नहीं है। इसलिए ही यहाँ पर वचन में साग्निक (अग्निहोत्री) को हेमाद्रि ने आहिताग्नि कहा है। यह आपस्तम्बियों को ही है। आश्वलायन आहिताग्नि का हाथ में होता है-यह वृत्ति में कहा है। अर्धाधानी तो व्यतिषंग से गृह्याग्नि में करे—यह प्रयोगपारिजात और परिशिष्ट में कहा है।

बोपदेवस्त्वाह होमशब्दः पिण्डपितृयज्ञपरः, पितृयज्ञे तु जुहुयाद्दक्षिणाग्नौ समाहितः। श्राद्धे त्वौपासनाग्नौ तु निरग्निर्लौकिकेऽनले ॥ अनग्निर्दूरभार्यश्च पार्वणे समुपस्थिते। सन्धायाग्निं ततः कुर्यात् होममग्निं समुत्सृजेत् ॥ इति त्रिकाण्डमण्डनोक्तेः। श्राद्धे गृह्याग्नावेवेति। लौकि-

काग्न्यादिविधानं च तैत्तिरीयादिविषयम्। बह्वृचस्य त्वनग्नेरपि पाणिहोम एव। अग्निपाणी विना सूत्रे विधानान्तरानुक्तेः, अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणावेवोपपादयेत्। इति (अ० ३ श्लो० २१२) मनूक्तेश्च। वृत्तावप्येवम्।

बोपदेव ने तो कहा है—होमशब्द पिण्डपितृयज्ञपरक है। त्रिकाण्डमण्डन ने कहा है—पितृयज्ञ में समाहित मन से दक्षिणाग्नि में हवन करे। श्राद्ध में तो औपासन अग्नि में करे। निरग्निक तो लौकिक अग्नि में करे। अनग्नि के तीन कारण हैं—अग्नि के अस्वीकार से भार्यापरिग्रह के अभाव से, (तथा स्वीकृत के उच्छेद से) और स्त्री जिसकी दूर हो (अर्थात् अग्नि के समीप में न हो) वह पार्वण श्राद्ध के उपस्थित होने पर अग्नि को सन्धान (प्रज्वलित) कर होम कर अग्नि का त्याग करे। श्राद्ध में गृह्याग्नि में ही है। लौकिक अग्नि आदि का विधान तो तैत्तिरीयादिविषयक है। (तैत्तिरीय आदि को पाणिहोम का अभाव है।) बह्वृच का तो अनग्नि के भी हाथ में ही हवन कहा है। अग्नि तथा पाणी (हाथ) को छोड़ कर सूत्र में विधानान्तर नहीं कहा है। मनु ने भी कहा है—अग्नि के अभाव में ब्राह्मण के हाथ में ही हवन करे। वृत्ति में भी यही है।

क्वचित्साग्नेरपि पाणिहोम उक्तो गृह्यपरिशिष्टे—अन्वष्टक्यं च पूर्वेद्युर्मासिमास्यथ पार्वणम्। काम्यमभ्युदयेऽष्टम्यामेकोद्दिष्टं तथाष्टमम्॥ चतुर्ष्वाद्येषु साग्नीनां वह्नौ होमो विधीयते। पित्र्यब्राह्मणहस्ते स्यादुत्तरेषु चतुर्ष्वपि॥ इति। एकोद्दिष्टं सपिण्डीकरणं, शुद्धे तन्निषेधात्। बह्वृचभाष्यकारास्तु सर्वैकोद्दिष्टेषु पाणिहोममाहुः। इदं बह्वृचानामेव।

कहीं पर साग्निक को भी ब्राह्मण के हाथ में होम गृह्यपरिशिष्ट में कहा है—अन्वष्टका के पूर्वदिन में (हेमन्त और शिशिर के कृष्णपक्ष की नवमी में अन्वष्टका होती है उसके पूर्व अष्टमी के दिन में) महिने महिने में पार्वण होता है। पुत्रादिकामना में कृत्तिकादियों में, अभ्युदय (पुत्रजन्म) में, हेमन्त और शिशिर के कृष्णपक्ष की अष्टमीतिथि में एकोद्दिष्ट होता है। आदिकी चार में साग्निकों का हवन अन्वष्टका अग्नि में होता है। उत्तर चार में पितृब्राह्मणों के हाथ में हवन होता है।

एकोद्दिष्टश्राद्ध से सपिण्डीकरण मानना चाहिये। शुद्ध में उसका निषेध है। बह्वृच भाष्यकारों ने कहा है—सब एकोद्दिष्टों में पाणिहोम को कहा है। यह बह्वृचों के लिए ही है।

अत्रेदं तत्त्वम्। 'स्थालीपाकेन सह पिण्डार्थमुद्धृत्य' इति सूत्रे 'नात्रापूर्वः स्थालीपाकश्चोद्यते। सर्वश्राद्धेषु प्रसङ्गात्तेनानुवादोऽयम्' इति वृत्तिकारोक्तेः। पार्वणे आर्थिकस्यानङ्गस्य व्यतिषङ्गस्य वार्षिकादिष्वनतिदेशादर्धाधानिनोऽपि पाणिहोम एवेति वृत्तिस्वरसः। एवं मासिकादावपि, षोडशे मासिके श्राद्धे सपिण्डीकरणे तथा। पाणावेव तु होतव्यमन्यत्राग्नौ तु हूयते॥ इति बोपदेवोदाहृतवचनाच्च।

यहाँ पर यह तत्त्व (सिद्धान्त) है—स्थालीपाक के सहित पिण्ड के लिए अन्न को निकालकर इस सूत्र में यहाँ पर अपूर्व स्थालीपाक नहीं कहा है। सब श्राद्धों में प्रसंग होने से यह अनुवाद है—यह वृत्तिकार ने कहा है। पार्वण में आर्थिक का यदि व्यतिषंग का अतिदेश्य हो जाय तो उसका अङ्ग नहीं होता है वार्षिक आदि में अतिदेश न होने से अर्धाधानी का भी पाणि (हाथ) में होम ही होता है—यह वृत्ति का तात्पर्य है।

इसप्रकार मासिक आदि में भी जानना चाहिये। और बोपदेव का कहा हुआ वचन भी है—षोडश, मासिकश्राद्ध में और सपिण्डीकरण में हाथ में ही हवन करना चाहिए अन्यत्र तो अग्नि में ही हवन करे।

भाष्यकारमते तु सूत्रे स्थालीपाकेनेतिकरणत्वान्नित्यवच्छ्रवणाच्च पार्वणे सोऽङ्गम्। ततः काम्यादिषु तदभावे कार्यस्य पिण्डदानस्याप्यभावः। एतदेवानुसृत्य विकृतावपि वार्षिकादौ व्यतिषङ्ग उक्तः प्रयोगपारिजाते परिशिष्टे च। तेनैतन्मतेऽर्धाधानिनोऽग्नावेव। वस्तुतस्तु स्थालीपाकेन 'सह शाखया प्रस्तरं प्रहरति' इतिवत् सहभावमात्रश्रुतेः। पत्नीवते त्वष्टुरुपलक्षणमिव नाङ्गत्वम्।

तत्त्वे वा नाङ्गानुरोधेन प्रधानभूतपिण्डदानत्यागो युक्तः। तेन व्यतिषङ्गाभावेऽप्यग्नौ होमो भवतीति बोपदेवः। अनाहिताग्नेर्गृह्याग्निमतस्तु सर्वमतेऽग्नावेव। वार्षिकादौ वृत्तिमते व्यतिषङ्गो न, अन्यमते त्वस्ति। अत्र यथाचारमनुष्ठेयम्।

भाष्यकार के मत में तो सूत्र में स्थालीपाक में करणत्व (तृतीया-सह पिण्डार्थम्) होने से और नित्य की तरह सुनने से पार्वण में स्थालीपाक अंग है। तदनन्तर काम्य आदि श्राद्धों में उसके अभाव से पिण्डदान कार्य का भी अभाव है। इसी बात का अनुसरण कर वार्षिक आदि विकृति में भी व्यतिषङ्ग प्रयोगपारिजात और परिशिष्ट में कहा है। इससे इसके मत में अर्घाधानी का अग्नि में ही हवन करे।

सिद्धान्त तो यह है-स्थालीपाक से शाखा के साथ जैसे [1]सूक्तवाक् मन्त्र से प्रस्तर का अग्नि में प्रक्षेप करता है। इसकी तरह सहभाव सुना गया है। पत्नीवत्—इस मन्त्र में त्वष्टा जैसा उपलक्षण मात्र है अंगत्व नहीं है। या बाधित अंग के अनुरोध न होने से प्रधानभूत पिण्डदान का त्याग युक्त हो है। इससे व्यतिषङ्ग के अभाव में भी अग्नि में होम होता है ऐसा बोपदेव ने कहा है। अनहिताग्नि निरग्नि का तो सबके मत में अग्नि में ही होता है। वार्षिकादि में तो वृत्तिकार के मत से व्यतिषंग नहीं होता है। अन्य के मत से होता है। यहाँ पर जैसा आचार हो वैसा अनुष्ठान करे।

आश्वलायनः—(अ० ४ ख० ८ सू० २४ पृ० १२८) उद्धृत्य घृताक्तमन्नमनुज्ञापयत्यग्नौ करिष्ये करवै करवाणीति वा। 'प्रत्यभ्यनुज्ञा क्रियतां कुरुष्व कुर्विति। अथाग्नौ जुहोति यथोक्तं पुरस्तात्' इति। व्यतिषङ्गपक्षे इदमिति वृत्तिः। करवै करवाणीत्यत्राग्नावित्यनुषङ्गः। पुरस्तात् पिण्डपितृयज्ञे। तच्चैवम्—'मेक्षणेनावदायावदानसम्पदा जुहुयात्सोमाय पितृमते स्वधा नमोऽग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नम इति स्वाहाकारेण वाऽग्नौ पूर्वं यज्ञोपवीती मेक्षणमनुप्रहृत्य' (श्रौ० श्लो० २।६) इति। अवदानसंपदा उपस्तरणाद्यपेक्षयेत्यर्थः। व्यतिषङ्गपक्षेऽतिप्रणीतेऽयं होमोऽन्यथा मुख्ये॥ 'अतिप्रणीतेऽग्नाविध्ममुपसमाधाय इति बह्वृचपरिशिष्टात्। केचित्तस्य रक्षोनिबर्हणार्थत्वान्मुख्ये वदन्ति। तदेतद्विरोधाच्चिन्त्यम्। प्रयोगपारिजातेऽप्येवम्।

पिण्डपितृयज्ञ-स्थालीपाक से अन्न को निकालकर घृताक्तकर पित्राद्यर्थ ब्राह्मणों से आज्ञा लेता है—अग्नौ करिष्ये—मैं अग्नि में करूँगा। अग्नौ करवै या अग्नौ करवाणि। अग्नि में हवन करो। ब्राह्मण एसी ही उसके प्रति आज्ञा दें--क्रियताम्, कुरुष्व या कुरु—करो। तदनन्तर अग्नि[2] में हवन करता

१—दर्शपूर्णमासप्रकरण में 'सूक्तवाकेन प्रस्तरं प्रहरति,-यह वाक्यश्रुत है। इसवाक्य का यों अर्थ है कि—सूक्त वाकमन्त्र से प्रस्तर को अग्नि में प्रक्षेप करे। अर्थात्—यहाँ प्रस्तर (दर्भमुष्टि) सूक्तवाकमन्त्र में कहे गये अग्न्यादि देवता हैं। द्रव्यदेवता का संबंध होने से याग का होना आवश्यक है। इसलिये प्रहरतिशब्द से याग ही लक्षणा समझा जाता है। वहाँ जैसा सूक्तवाककरण है उसीप्रकार 'सह शाखया प्रस्तरं प्रहरति' इस वाक्य से शाखया—इस तृतीया विभक्ति से यागसाधनता मालुम होती है इसलिए प्रस्तर के समान होने के कारण पौर्णमासी में भी शाखा को ग्रहण करे। यह शंका होती है। समाधान है कि—यहाँ उत्पत्तिमात्र है अंग नहीं है। इसी में दूसरा उदाहरण देते हैं। पत्नी वतग्रह का होम होने के बाद मन्त्र श्रुत है। 'त्वष्ट्रा सोमं पिब स्वाहा' यहाँ सहपान श्रुत है। यह देवता नहीं है। केवल पान में साहित्य मात्र है। एसा लोक में भी देखा जाता है कि 'सहैव दशभिः पुत्रं भारं वहति गर्दभी। भारवहन नहीं करते हुए पुत्रों से सहभाव मात्र है। एवं च शाखायाग का साधन नहीं है न त्वष्ट्रा देवता है। वैसा स्थालीपाक भी पिण्डदान के अंग का साधन नहीं है। यदि अंग मानते हैं तो भी प्रधानानुसरण अंग से किया जाता है। प्रधान अंग के अनुसार कहीं बाधा होने पर त्याज्य होता है। वैसा यहाँ भी स्थालीपाक का त्याग समझना चाहिये।

२—योऽनर्चिषि जुहोत्यग्नौ व्यङ्गारिणि च मानवः। मन्दाग्निरामयावी च दरिद्रश्चापि जायते॥ तस्मात्समिद्धे होतव्यं नासमिद्धे कदाचन। आरोग्यमिच्छता चायुः श्रियं चात्यन्तिकीं तथा। समिन्धनम्—'जुहूषंश्च हुते चैव पाणिशूर्पस्त्रुवादिभिः। न कुर्यादग्निधमनं कुर्यात्तु व्यञ्जनादिना॥ यत्तु—'मुखेन च धमेदग्निं मुखाद् ह्येषो ह्यजायत। नाग्निं मुखेनेति तु यल्लौकिके योजयेत्तु तत्। तत् मुखाग्निधमनक्रिया' इति कलिवर्ज्यम्।

है। पहले कहे हुए मार्ग से। व्यतिषंग पक्ष में—यह वृत्ति में कहा है। करवै, करवाणि, यहाँ पर अग्नि में अनुषंग है। पहले कहे हुए पिण्डपितृयज्ञ में है। वह यही है-मेक्षण से अवदान संपदा से हवन करता है— सोमाय पितृमते स्वधा नमः। अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नमः। या स्वाहाकार से अग्नि को पहले यज्ञोपवीति हो मेक्षण को अनुप्रहृत्य (अग्निमें प्रक्षेपकर) अवदान की संपदा (पलाशके पत्ते को रखकर उसपर आज्य से लेपन कर तथा हवि (पुरोडाश) को रखकर हवि के ऊपर आज्य को छोड़ना। जमदग्नि पक्षवाले तीन बार हवि रखते हैं। चतुरावत्तपक्ष में प्रथम आज्य को रखे। दो बार हवि का अवदान (तोडकर) करके रखे। उसके ऊपर फिर से घी को छोड़ दे। यह चतुरावत्तपक्ष हुआ। पञ्चावत्तपक्ष में तीन बार हवि को रखे।) उपस्तरणादि अपेक्षा कृत है यह अर्थ है। व्यतिषंग पक्ष में यह होम करे अन्यथा मुख्य अग्नि में। अतिप्रणीत (दक्षिणाग्निकुण्ड से अग्नि को अलग कर) अग्नि में इध्म[1] (लकड़ी) का आधान करे—यह वह्व चपरिशिष्ट में कहा है। कोई उसको राक्षसों को हटाने के कारण मुख्य कहते हैं। यह अधिकरणकारक (सप्तमी) विरोध होने से चिन्तनीय है। प्रयोगपारिजात में भी यही है।

शौनकः—स्वाहाकारेण होमे तु भवेद्यज्ञोपवीतवान्। तत्र प्रागग्नये हुत्वा पश्चात्सोमाय हूयते ॥ अग्नौ यज्ञोपवीत्येव प्रक्षिपेन्मेक्षणं ततः ॥

शौनक ने कहा है—स्वाहाकारहोम में तो यज्ञोपवीती होकर रहे। उसमें पहले अग्नि के लिए (अग्नये स्वाहा) फिर सोम (सोमाय स्वाहा) के लिए हवन करे। तदनन्तर अग्नि में यज्ञोपवीती ही होकर मेक्षण-पात्र (चरु को हिलाने के लिए और उसको निकालने के लिए तथा हवन करने के लिए पात्र विशेष यह चम्मच या करछी के आकार का चार अंगुल चौड़ा और आगे की ओर निकला हुआ होता है) का प्रक्षेप करे।

छन्दोगपरिशिष्टे—अग्नौकरणहोमश्च कर्तव्य उपवीतिना। अपसव्येन वा कार्यो दक्षिणाभिमुखेन च ॥ कातीयानां त्वपसव्येनैव, पिण्डपितृयज्ञवद्धुत्वेति सर्वातिदेशात्। सव्यं तु छन्दोगपरम्, गोभिलेनैतदुत्तरमेवापसव्योक्तेः, छन्दोगा जुहुयुः सव्येनापसव्येन याजुषाः। इति वृद्धयाज्ञवल्क्योक्तेश्च।

छन्दोगपरिशिष्ट में कहा है—अग्नौकरणहोम उपवीति होकर करना चाहिये या अपसव्य से तथा दक्षिणाभिमुख होकर करे। कातीयों के मत से तो अपसव्य से ही होता है। क्योंकि पिण्डपितृयज्ञवत् होम करे यह सर्वातिदेश (पूर्ववत् संपूर्ण पदार्थों का विधान है।) है। सव्य तो छन्दोगपरक है। गोभिल ने तो इसको उत्तर ही में अपसव्य से कहा है। सव्य से छन्दोगवाले हवन करे और अपसव्य से यजुर्वेदी हवन करे। ऐसा वृद्ध याज्ञवल्क्य ने भी कहा है।

(श्राद्धे पाणिहोमकथनम्)

अथ पाणिहोमः। आश्वलायनः—(अ० ४ ख० ८ सू० ५ पृ० १२८) 'अभ्यनुज्ञायां पाणिष्वेव वा' इति। पिण्डपितृयज्ञकल्पाभावेनाग्न्यभावे काम्यादिष्वित्यर्थः। तेन बह्वृचानामेकोद्दिष्टे पाणिहोमो भवत्येव। निषेधोऽन्यपरः। पाणिष्विति बहुवचनात्सर्वविप्रपाणिषु होम इति वृत्तिः। एवं मातामहेऽपि।

अब पाणिहोम कहते हैं। आश्वलायन ने कहा है—यदि ब्राह्मण पाणियों में होम को जानते हैं तब पाणियों में हवन होता है। अनुज्ञावचन और प्रत्यभ्यनुज्ञावचन नहीं होता है। पिण्डपितृयज्ञकल्प के अभाव

१—श्राद्धसागरे—पलाशफल्गुन्यग्रोधप्लक्षाश्वत्थविकङ्कताः उदुम्बरस्तथा बिल्वश्चन्दनं यज्ञिकाश्च ये ॥ सरलो देवदारुश्च सारश्च खदिरस्तथा। समिदर्थे प्रशस्ताः स्युरेते वृक्षा विशेषतः ॥ ग्राह्याः कण्टकिनश्चैव यज्ञिया ये च केचन। पूजिताः समिदर्थे च पितॄणां वचनं यथा ॥ समिद्भिस्त्वाज्यलिप्ताभिर्जुहुयाद् यो हुताशनम्। फलं यत्कर्मणस्तस्य तन्मे निगदतः शृणु। अक्षयं सर्वकामीयमश्वमेधफलं हि तत् ॥ श्लेष्मातको नक्तमालः कपित्थो नीलशाल्मली ॥ चिरबिल्वस्तथा टङ्कस्तिन्दुकाम्रातकौ तथा। तिलकः कोविदारश्च एते श्राद्धे विगर्हिताः ॥ निवासाश्चापि कीटानां गर्हिताः स्युरयज्ञियाः। गुल्मैश्च वेष्टिता ये च वल्लीभिश्च समन्ततः ॥ शकुनीनां निवासाश्च वर्जयेत्तान् द्विजोत्तमः। अन्यांश्चैवं विधान् सर्वान् वर्जयेद्वै अयज्ञियान्।

से अग्नि के अभाव में काम्यादियों में है—यह अर्थ है। इससे बह्वृचों के एकोद्दिष्ट में 'पाणिहोम' होता ही है। निषेध अन्यपरक है। 'पाणिषु' इस वहुवचन से सव ब्राह्मणों के हाथों में होम होता है यह वृत्ति का मत है। इसप्रकार मातामह में भी है।

शौनकोऽपि—सर्वेषामुपविष्टानां विप्राणामथ पाणिषु।

विभज्य जुहुयात्सर्वं सोमायेत्यादिमन्त्रतः॥

शौनक ने कहा है—वैठे हुए (पिता आदि के निमित्त निमन्त्रित) सब ब्राह्मणों के हाथों में विभागकर 'सोमाय पितृमते स्वाहा' इत्यादि मन्त्र से हवन करे।

यत्तु हेमाद्रौ कात्यायनः—पित्र्ये यः पंक्तिमूर्द्धन्यस्तस्य पाणावनग्निकः। हुत्वा मन्त्रवदन्येषां तूष्णीं पात्रेषु निक्षिपेत्॥ इति तद्बह्वृचातिरिक्तानाम्।

जो हेमाद्रि में कात्यायन ने कहा है—पिता के कार्य में जो पंक्ति मूर्धन्य ब्राह्मण है उसके हाथ में अनग्निक मन्त्रवत् होमकर अन्य ब्राह्मणों के पात्रों में मौन होकर छोड दे। यह बह्वृचों के भिन्न विषयक है।

यत्तु तत्रैव मात्स्ये—'अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणौ वापि जलेऽपि वा। अजकर्णेऽश्वकर्णे वा गोष्ठे वाऽथ शिलान्तिके॥ इति तत्तीर्थश्राद्धविषयम्,

जो वहीं पर मत्स्यपुराण का वचन है—अग्नि के अभाव में तो ब्राह्मण के हाथ में या जल में 'बकरा' के कान में, घोड़े के कान में, गोशाला में या शिला के समीप (पत्थर के समीप) में दे। वह तीर्थ श्राद्धविषयक है।

तद्यदापां समीपे स्याच्छ्राद्धं ज्ञेयो विधिस्तदा। इति तत्रैव कात्यायनोक्तेः। निर्जले त्वजकर्णादौ।

वहीं पर ही कात्यायन ने कहा है—वह[1] यदि जल के समीप में श्राद्ध हो तो तब की विधि को जानना चाहिये। निर्जल में तो अज[2] के कान आदि में दे।

यत्तु चन्द्रोदये यमः—दैवविप्रकरेऽनग्निः कृत्वाग्नौकरणं द्विजः। इति, तदभार्यपरम्, अपत्नीको यदा विप्रः श्राद्धं कुर्वीत पार्वणम्। पित्र्यविप्रैरनुज्ञातो विश्वेदेवेषु हूयते॥ इति तत्रैव, कात्यायनोक्तेः। हूयते इति छान्दसो व्यत्ययः।

जो चन्द्रोदय में यम ने कहा है—अनग्निक द्विज देवब्राह्मण के हाथ में अग्नौकरण करे। यह जिसके स्त्री नहीं हैं उस परक है। अपत्नीक ब्राह्मण जब पार्वणश्राद्ध करे तो पितृब्राह्मणों की आज्ञा से वैश्वदेव ब्राह्मणों के हाथ में हवन करे। यह वहीं पर कात्यायन ने कहा है। हूयते—यह छान्दसव्यत्यय (वेद संबन्धि वैपरीत्य है।

हेमाद्रौ वायवीये—'विधुरो दैविके कुर्यात् शेषं पित्र्ये निवेदयेत्।

हेमाद्रि में वायुपुराण का वचन है—विधुर (जिसके स्त्री न हो), मनुष्य देवब्राह्मण के हाथ में देकर अवशिष्ट पितृब्राह्मणों के लिए निवेदन करे।

दैवविप्रानेकत्वे तत्रैव—वैश्वदेवे यदैकस्मिन् भवेयुर्द्व्यादयो द्विजाः। तदैव पाणौ होतव्यं स्याद्विधिर्विहितस्तदा॥ सोऽप्याद्यः, 'प्रथमं वा नियम्येत' इति न्यायात्। तेन मृतभार्यस्य दैवे होमः। अनुपनीतब्रह्मचर्यादेस्तु पित्र्ये, अग्न्यभावः स्मृतस्तावद्यावद्भार्यां न विन्दति। इति हेमाद्रौ जातूकर्ण्योक्तेः। सभार्यस्यनष्टाग्नेरपि पित्र्यविप्रकरे इति पृथ्वीचन्द्रः। उपवीतेन दैवे होमः, प्राचीनावीतेन पित्र्ये। यद्वा सर्वत्र दैवपित्र्यकरयोर्विकल्प इति हेमाद्रौ मदनरत्ने पारिजाते च। यदा तु पितृमातामहयोर्दैवपित्र्यविप्रभेदस्तदा भेदेन पाणिहोम इत्यपरार्कचन्द्रिकादयः। यदा तु दैवं तन्त्रं तदा तन्त्रेण सकृदेव पाणिहोम इति केचित्। हेमाद्रिस्तु—मातामहस्य भेदेऽपि

१—अग्नौकरणहोमं तु कुर्यादप्स्विति यन्मतम्। इति पूर्वार्धम्।

२—अप्सु चैव कुशस्तंबे अग्निं कात्यायनोऽब्रवीत्। रजते च सुवर्णे च नित्यं वसति पावकः॥

कुर्यात्तन्त्रेण साग्निकः । इति कातीयस्मृतेर्भेदमाह । एवं पित्र्येऽपि । माधवीयेप्येवम् । एवं साग्नेरपि विदेशादौ पाणिहोमो ज्ञेयः ।

दैवब्राह्मण बहुत हों तो वहीं पर कहा है—जब एक वैश्वदेव श्राद्ध में दो ब्राह्मण आदि हों तो उसी समय हाथ में हवन करे तबही विधि विहित होती है । उसमें भी पहले को दे । प्रथमं वा नियम्येत कारणादतिक्रम स्यात् ११।१-८-४३) पहले का ही नियम है ऐसा न्याय है । इससे जिसकी पत्नी मर गयी है वह देव ब्राह्मणों के हाथ में हवन करे । अनुपनीत, ब्रह्मचारी आदि तो पितृब्राह्मण के हाथ में होम करे । जब तक भार्या (सप्तपदी भ्रमण बिना भार्यात्व की सिद्धि नहीं होती है । तद्वत् ही अग्नि स्वीकाराभाव का भी लाभ है । स्वीकृत अग्नि के उच्छेद में भी अग्नि का अभाव है ।) का लाभ नहीं होता है तब तक अग्नि का अभाव कहा है—यह हेमाद्रि में जातूकर्ण्य ने कहा है । सपत्नीक भी अग्नि ने नष्ट होने पर भी पितृब्राह्मण के हाथ में करे—यह पृथ्वीचन्द्र ने कहा है । उपवीती से देव में और प्राचीनावीति (अपसव्य) से पितृकर्म में करे । यद्वा सर्वत्र देव और पितृब्राह्मणों के हाथ में करने का विकल्प हेमाद्रि, मदनरत्न और पारिजात में कहा है । जब पितृ-पितामह इन दोनों में दैव और पितृब्राह्मण का भेद होगा तब भेद से पाणिहोम होगा—यह अपरार्क-चन्द्रिका आदि ने कहा है । जब दैव का तन्त्र होगा तब तन्त्र से एक ही बार पाणिहोम होगा—यह किसी का मत है । हेमाद्रि ने तो कहा है कि—मातामह के भेद में भी वहीं पर साग्निक करे । यह कातीयस्मृति में भेद (आवृति) कहा है । इसीप्रकार पितरों में भी जानना चाहिये । माधवीय में यही है । इसप्रकार साग्निक भी विदेशादि में जानेपर श्राद्ध करने पर हाथ में हवन जानना चाहिये ।

यत्तु कर्केणाग्निं विना श्राद्धमेव नास्तीत्युक्तं तत् सपिण्डीकरणवार्षिकाद्यकरणापत्तेर्यत्किञ्चिदेव ।

जो कर्क ने अग्नि के बिना श्राद्ध ही नहीं है, एसा कहा है वह सपिण्डीकरण, वार्षिक आदि श्राद्ध ही नहीं हो सकेंगे । अतः उपेक्ष्य ही है ।

यत्तु बृहन्नारदीये—अनग्निर्दूरभार्यश्च पार्वणे समुपस्थिते ।
भ्रातृभिः कारयेच्छ्राद्धं साग्निकैर्विधिवद् द्विजः ॥

जो बृहन्नारदीय में कहा है—पार्वणश्राद्ध के उपस्थित होने पर अनग्निक (जो अग्नि की सेवा निरन्तर न करता हो) और जिसकी स्त्री दूर हो वह विधिवत् साग्निक भाइयों से श्राद्ध करावे ।

क्षयाहदिवसे प्राप्ते स्वस्याग्निर्दूरगो यदि । तथैव भ्रातरः स्युश्चेल्लौकिकाग्नाविति स्थितिः ॥

क्षयाह दिन के प्राप्त होने पर अपनी अग्नि यदि दूर हो और वैसे ही भाई भी दूर हों तो ऐसी स्थिति में लौकिक अग्नि में करे ।

औपासनाग्नौ दूरस्थे समीपे भ्रातरि स्थिते । यद्यग्नौ जुहुयाद्वापि पाणौ वा स हि पातकी ॥

औपासन अग्नि के दूर रहने पर और भाई के समीप रहने पर यदि अग्नि (लौकिकाग्नि) (शूद्रस्याश्राद्धे पाणावग्नौ करणमित्युक्तम् ।) या हाथ में हवन करना है वह निश्चय पातकी होता है ।

औपासनाग्नौ दूरस्थे केचिदिच्छन्ति सत्तमाः । पाणावेव तु होतव्यमिति नैतत्समञ्जसम् ॥ इति, तद्वृद्धानादरादुपेक्ष्यम् ।

कोई उत्तम पुरुष औपासन अग्नि के दूर रहने पर हाथ में ही हवन की इच्छा करते हैं । इससे यह उचित नहीं है । वह वृद्धों के अनादर होने से उपेक्षणीय है ।

हेमाद्रौ यमः—अग्नौकरणवत्तत्र होमो विप्रकरे भवेत् । पर्युक्ष्य दर्भानास्तीर्य यतो ह्यग्निसमो द्विजः ॥ मेक्षणेन करेण वा होमः । मेक्षणप्रहरणं नेति वृत्तिः ।

हेमाद्रि में यम ने कहा है—पर्युक्षण—जल का छींटा देकर, कुशाओं को सब तरफ (चारों तरफ) बिछाकर अग्नितुल्य द्विज अग्नौकरणवत् वहाँ पर होम अग्नि तुल्य ब्राह्मण के हाथ होता है । मेक्षण से या हाथ से होम करे । मेक्षण का प्रहरण (फेंकना) नहीं होता है—यह वृत्तिकार का मत है ।

स्मृतिरत्नावल्याम्—नानुज्ञा पाणिहोमे स्यान्न स्तः पर्यूहनोक्षणे। नाग्ने तमद्यादिति च न स्यातामिध्ममेक्षणे ॥ कर्काचार्योऽप्येवमाह। माधवीये चन्द्रिकायां चानुज्ञादि सर्वं भवतीत्युक्तम्।

स्मृतिरत्नावली में कहा है—पाणिहोम में अनुज्ञा (आज्ञा) नहीं होती है। पर्यूहन, ईक्षण नहीं होते हैं। इध्म और मेक्षण नहीं होते हैं। कर्काचार्य भी यही कहते हैं। माधवीय और चन्द्रिका में यही कहा है कि—अनुज्ञा (ब्राह्मण की आज्ञा) आदि सब होती है।

(पाणिहोमे प्रश्नाद्याह)

पाणिहोमे प्रश्नाद्याहापरार्के शौनकः—'अनग्निकश्चेदाज्यं गृहीत्वा भवत्स्वेवाग्नौकरणमिति पूर्ववत्तथास्तु' इति।

पाणिहोम में प्रश्नादि अपरार्क में शौनक ने कहा है। यदि अनग्निक है तो घी को ग्रहण कर पूछे कि हे ब्राह्मणो, आप लोगों में अग्नौकरण करूँगा। ब्राह्मण—पूर्व की तरह 'तथाऽस्तु' ऐसी अनुज्ञा (आज्ञा) दें।

आश्वलायनः—(अ० ४ ख० ८ सू० ७–६ पृ० १२९–१३०) 'यदि पाणिष्वाचान्तेष्वन्यदन्नमनुदिशति अन्नमन्ने। असृष्टं दत्तमृध्नुकम्।' इति पाणौ हुतं (अन्नं) पात्रे निधाय विप्रैराचम्य भोजनार्थमन्ने परिविष्टे हुतशेषं पात्रेषु दद्यादित्यर्थः। सृष्टं=प्रभूतम्। नैमित्तिकं चेदमाचमनं न हुतभक्षणनिमित्तम्। अन्नं पाणितले दत्तं पूर्वमश्नन्त्यबुद्धयः। पितरस्तेन तृप्यन्ति शेषान्नं न लभन्ति ते ॥

यच्च पाणितले दत्तं यच्चान्यदुपकल्पितम्। एकीभावेन भोक्तव्यं पृथग्भावो न विद्यते ॥ इति बह्वृचपरिशिष्टात्। हेमाद्रावप्याचमने हेत्वर्थवाद उक्तः। 'पाण्यास्यो हि द्विजः स्मृतः' इति भाष्ये त्वाचान्तेषु भक्षितेषु। चमु भक्षणे भक्षणोत्तरं च नाचमनम् अग्निसाम्यात्। पूर्वनिषेधस्तु सपिण्डीकरणे ज्ञेयः, ददाति चोदितत्वात् न त्वत्र जुहोति चोदितत्वादित्युक्तम्। न त्वेतद् बहुसंमतम्।

आश्वलायन ने कहा है—(यहाँ दो अर्थ का विधान इष्ट माना जाता है। वहाँ पर अग्नि में पात्रों में भोजनार्थ अन्य अन्न को देता है यह एक अर्थ है। दूसरा अर्थ यों है—यदि पाणि में होम कर चुका है तो आचमन करने बाद दूसरा अन्न देता है। यहाँ कोई कहते हैं।) जब हाथों में होम हो जानेपर हुत अन्न को भोजन–पात्रों में रख कर हवन से अवशिष्ट अन्न को पात्र में रखे। आचमन कर ब्राह्मणों के आगे अन्न परिवेषण कर दिया गया हो तो। सृष्ट–प्रभूत, बहुत दत्तमृध्नुकम्—ऋद्धिकरणशीलम्। (समृद्धि करनेवाला) यह आचमन नैमित्तिक है हुतभक्षण निमित्त नहीं है।

बह्वृचपरिशिष्ट में कहा है—(नारायणकृत आश्वलायन की वृत्ति में भी कहा है) और हाथ में दिये हुए अन्न पहले अबुद्धिमान् पुरुष भक्षण करते हैं उससे पितर तृप्त होते हैं। पर वे शेष (अवशिष्ट) अन्न को नहीं प्राप्त करते हैं।

जो पाणितल (हाथ) में दिया हुआ और जो अन्यप्रकार से प्राप्त है। इसको इकट्ठा कर भोजन करे। उसमें पृथग्भाव न करे। हेमाद्रि में भी आचमन में हेत्वर्थवाद (प्रशंसा मात्र) कहा है। पाणी ही द्विज का मुख कहा है। भाष्य में कहा है—'आचान्तेषु' का अर्थ 'भक्षितेषु' यह किया है। (इस मत में दो अन्न का मिश्रण नहीं होता है।) चमुभक्षणे—चमु धातु का भक्षण अर्थ है और भक्षणोत्तर आचमन नहीं होता है। क्योंकि अग्निसाम्य (अग्नि का सादृश्य) है (अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणावेवोपपादयेत्। यो ह्यग्निः स द्विजो विप्रैर्मन्त्रदर्शिभिरुच्यते ॥) पहले का निषेध तो सपिण्डीकरण में जानना चाहिये। 'ददाति' के अर्थ में कहा है—अर्थात्–'हुतशेषं पितृभ्यो ददाति। यहाँ पर ददाति पद कहा गया है जुहोति पद नहीं कहा गया है। एसा भाष्य में कहा है। यह बहुतों के मत से नहीं है।

यत्तु बौधायनेन—तस्मिंस्तु प्राशिते दद्याद्यदन्नं प्रकृतं भवेत्। इति भक्षणमुक्तं, तत्तच्छाखीयानामेवेति हेमाद्रिः।

जो बौधायन ने कहा है—अग्नौकरणशेष जो अन्न है उस अन्न को प्राशित (भक्षण) करने पर, जो अन्न प्रकृत (वास्तविक) है। उस अन्न को दे। इससे भक्षण कहा है। वह उसी शाखावालों के लिये ही है यह हेमाद्रि ने कहा है। (अग्नि में तीन आहुति देने बाद अवशिष्ट आज्याभिधारित अन्न को भक्षण करे। (शाखांयनों को तो अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा। सोमाय पितृमते स्वाहा। यमाय अङ्गिरस्वते स्वाहा। इनसे आहुति है इसीप्रकार अन्यों को भी अपने अपने सूत्र के अनुसार दो या तीन आहुति देना चाहिये।)

तत्रैव यमः—पित्र्यपाणिहुताच्छेषं पितृपात्रेषु निक्षिपेत्। अग्नौकरणशेषं तु न दद्याद्वैश्वदेविके॥ एतदग्निहोमेऽपि समम्। कर्कस्तु सूत्रे हुतशेषं दत्त्वेत्यविशेषात्सर्वविप्रेषु दद्यादित्याह।

वहीं पर यम ने कहा है—पितृब्राह्मणों के हाथ में हवन करने पर हुतशेष अन्न को पितरों के पात्र में प्रक्षेप करे। और अग्नौकरणशेष को वैश्वदेवा देवताओं को न दे। यह (हुतशेषान्न का पितृ-पात्र में दान और वैश्वदेवपात्र में वर्जन अग्निहोम में भी समान है। कर्क ने तो अपने सूत्र में कहा है—हुतशेष को देकर विशेष के बिना सब ब्राह्मणों को दे। ऐसा कहा है।

तत्रैव वृद्धवसिष्ठः—पित्र्यविप्रकरे हुत्वा शेषं पात्रेषु निक्षिपेत्। पिण्डेभ्यः शेषयेत्किञ्चिन्न दद्याद्वैश्वदेविके॥

वहीं पर वृद्धवसिष्ठ ने कहा है—पितृब्राह्मणों के हाथ में हवन कर शेष अन्न को पात्रों में छोड़ दे। पिण्डों के लिये कुछ शेष रखे। (अर्थात्—बचाकर रखे।) पर विश्वेदेवताओं के ब्राह्मणों को न दे।

अथापस्तम्बधर्मसूत्रे—(पृ० २५६ सूत्र-१८, १९) 'उद्ध्रियतामग्नौ च क्रियताम्'इत्यामन्त्रयते' काममुद्ध्रियतां काममग्नौ च क्रियताम्, इत्यतिसृष्ट उद्धरेज्जुहुयाच्च।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में कहा है—उद्ध्रियतामग्नौ च क्रियताम्—इस मन्त्र से (यजमान खड़े होकर पलास पत्ता आदि स्थाली के रूप लेकर आज्ञा मांगता है, कहता है—उद्धरित्यामित अग्नौकरिष्यामि) ब्राह्मणों से यजमान आज्ञा मांगता है। इसके बाद 'काममुद्ध्रियतां काममग्नौ च क्रियताम्' यथेच्छ उद्धरण करो और यथेच्छ अग्नि में हवन करो इसप्रकार ब्राह्मणों से आज्ञापित होने पर उद्धरण करे। उद्धरण नाम—ब्राह्मणों के लिए पके अन्न से अन्यपात्र में बहुत अन्न को अलग करना कहा है। और हवन करे।

(नष्टाग्निविधुरादेर्विशेषः)

नष्टाग्निविधुरादेर्विशेषो बृहन्नारदीये—नष्टाग्निर्दूरभार्यश्च पार्वणे समुपस्थिते। सन्धायाग्निं ततो होमं कृत्वा तं विसृजेत्पुनः॥ अयाश्चेति तत्कालेऽग्निं सन्धाय हुत्वा त्यजेदित्यर्थः। एतदापस्तम्बानामेव। पाणिहोमस्तु छन्दोगादीनाम्।

जिसकी अग्नि नष्ट है और जो विधुर (स्त्री रहित) आदि का विशेष नारदीयपुराण में कहा है—जिसकी अग्नि नष्ट है और पत्नी दूर है एसा व्यक्ति पार्वण के उपस्थित होने पर अग्नि का संन्धान (स्थापन) कर हवन करे फिर उस अग्नि का विसर्जन करे।

'अयाश्च'[1] इस मन्त्र से उसीसमय में अग्नि का स्थापन और हवनकर त्याग करे—यह अर्थ है। यह आपस्तंबों के लिये है। छन्दोगादियों में पाणि (हाथ) में होम होता है।

इसका यह अभिप्राय है—हेतुविधि के तरह मालुम होता है। वस्तुतः हेतुविधि नहीं है। जैसे—'शूर्पेण जुहोति तेन ह्यन्नं क्रियते' यह वाक्य चातुर्मास्यान्तर्गत वरुणप्रघासपर्व में श्रुत है। इस वाक्य का यह अर्थ है—शूर्प से हवन करे। क्योंकि शूर्प से अन्न बनता है। अर्थात्—चावल को साफ कराकर तद्वारा अन्नक्रिया संपन्न होती है। यहाँ यह पूर्वपक्ष है। शूर्पहोम में अन्न करणत्व है हेतु है हिशब्द श्रुत होने के कारण सिद्धान्त है कि हेतुविधि के मानने पक्ष में विधिवाक्य में लक्षणा माननी पड़ेगी। विधिवाक्य में लक्षणा मानना उचित नहीं है। इसलिये यहाँ हेतुविधि नहीं है क्योंकि शूर्प का स्तावक है इस न्याय से प्रकृतवाक्य में हिशब्द हेतुविधि है। सिद्धान्त में यह अर्थवाद माना गया है ऐसा हेमाद्रि में इसको हेत्वर्थवाद माना गया है। (पृष्ठ ८८० की बची टिप्पणी)

१—अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिश्च सत्यमित्त्वमया असि। अयास्सन्मनसा कृतोऽयास्सन्हव्यमूहिषेऽया नो धे हि भेषजम्॥ (काठकसंहिता—५।२१)

विश्वप्रकाशेऽपि—साग्निरौपासनेऽनग्निरग्नौ कुर्वीत लौकिके।
पाणौ होमं प्रशंसन्ति नत्वापस्तम्बशाखिनाम् ॥

विश्वप्रकाश में भी कहा है—साग्निक औपासन अग्नि में और अनग्निक लौकिक अग्नि में करे। पाणिहोम की प्रशंसा करते हैं पर आपस्तंबशाखा वालों को नहीं है।

स्नातका विधुरा वा स्युर्यदि वा ब्रह्मचारिणः। अग्नौकरणहोमं तु कुर्युस्ते लौकिकेऽनले ॥ अयाश्चाग्ने मनोज्योतिरुद्बुध्य व्याहृतीर्हुनेत् ॥

स्नातक, विधुर (स्त्रीरहित) या ब्रह्मचारी ये अग्नौकरणहोम लौकिक अग्नि में करे। अयाश्चाग्ने, मनो[1] ज्योतिः, उद्बुध्यस्व[2] और 'व्याहृती'[3] से हवन करे।

ततोऽनुज्ञातोऽग्नीन्धनाद्याज्यभागान्ते यन्मे मातेत्याद्यैर्जुहुयात्। तत्र सप्तान्नाहुतयः षडाज्यस्येति त्रयोदश। व्यत्ययो वा। यथा—'यन्मे माता प्रलुलोभ तन्मे रेतः पिता वृंक्तां, यास्तिष्ठन्ति' इति द्वाभ्याममुष्मै स्वाहेति पितुर्नाम्ना द्वौ होमौ। यन्मे पितामही प्रलुलोभ तन्मे रेतः पितामहो वृङ्क्तामन्तर्दधे पर्वतेभिरिति तन्नाम्ना पितामहाय द्वौ। यन्मे प्रपितामही प्रलुलोभ तन्मे रेतः प्रपितामहो वृङ्क्तामन्तर्दधे ऋतुभिरिति तन्नाम्ना प्रपितामहाय द्वौ। मातामहेषु तूहः—यन्मे मातामही प्रलुलोभ तन्मे रेतो मातामहो वृङ्क्ताम्, अन्यं मातामहमहाद्धे-इत्यादौ। यन्मे मातुः पितामही प्रलुलोभ तन्मे रेतो मातुः पितामहो वृङ्क्ताम्। अन्यं मातुः पितामहाद्धे यन्मे मातुः प्रपितामही प्रलुलोभ तन्मे रेतो मातुः प्रपितामहो वृङ्क्ताम्। अन्यं मातुः प्रपितामहाद्धे सर्वत्रामुष्या इत्यत्र ङेन्तं तत्तन्नाम योज्यम्।

तदनन्तर आज्ञा प्राप्त होने पर अग्नि को प्रज्वलित आदि कर आज्यभाग के अन्त में 'यन्मे माता' इत्यादि से हवन करे। वहाँ पर सात अन्न की आहुति दे और छ घी से आहुति दे। इसप्रकार तेरह आहुति दे। या व्यत्यय (विपरीत क्रम से) करे—सात घी से तथा छः अन्न से दे। जैसे—(१) [4]पिता—क्रम यों

१—मनो ज्योतिर्जुषतामाज्यं विच्छिन्नं यज्ञं समिमन्दधातु। या इष्टा उषसो निम्रुचश्च ताः सन्दधामि हविषा घृतेन स्वाहा ॥ (बौधायनगृह्यसूत्रे) पृ० ३४४ (तै० सं० १।५।३, १।५।१०)।

२—उद्बुध्यध्वं समनसः सखायः समग्निमिन्ध्वं बहवः सनीडाः। दधिक्रामग्निमुषसं च देवीमिन्द्रावतोऽवसे नि ह्वये वः ॥ (ऋ० १०।१०१।१)।

३—ॐ भूर्भुवः स्वः।

४—यन्मे माता प्रलुलोभ चरत्यननुव्रता। तन्मे रेतः पिता वृङ्क्तां माऽऽभुरन्योऽवपद्यताम्। अमुष्मै (रामाय) स्वाहा। यास्तिष्ठन्ति या धावन्ति या आर्द्रोघ्नीः परितस्थुषीः। अद्भिर्विश्वस्य भर्त्रीभिरन्तरन्यं पितुर्दधे (रामाय) स्वाहा। यन्मे पितामही प्रलुलोभ चरत्यननुव्रता। तन्मे रेतः पितामहो वृङ्क्तां माऽभुवरन्योऽवपद्यताम् अमुष्मै (कृष्णाय) स्वाहा। अन्तर्दधे पर्वतैरन्तर्मह्या पृथिव्या दिवा दिग्भिरनन्ताभिरन्तरन्यं पितामहाद्धे (कृष्णाय) स्वाहा। यन्मे प्रपितामही प्रलुलो० प्रपितामहो वृ० अमुष्मै (लक्ष्मणाय) स्वाहा। अन्तर्दध ऋतुभिस्सर्वैरहोरात्रैससन्धिकैः। अर्धमासैश्च मासैश्चामन्तरन्यं प्रपितामहाद्धे ॥ अमुष्मै (लक्ष्मणाय) स्वाहा। यन्मे मातामही प्रलुलोम चरन्त्यनुव्रता। तन्मे रेतः मातामहो वृङ्क्तामा-भुवरन्योवपद्यताम् ॥ अमुष्मै (महादेवाय) स्वाहा। यास्तिष्ठन्ति या धावन्ति या आर्द्रोग्नीः परितस्थुषीः। अद्भिर्विश्वस्य भर्त्रीभिरन्तरन्यं मातामहाद्दधे ॥ अमुष्मै (महादेवाय) स्वाहा। यन्मे मातुः पितामही प्र० पितामहो वृङ्क्ता०। अमुष्मै (नीलकण्ठाय) स्वाहा। अन्तर्दधे पर्वतैरन्तर्मह्या पृथिव्या दिवा। आभि० मातुः पितामहाद्धे। अमुष्मै (नीलकण्ठाय) स्वाहा। यन्मे मातुः प्रपितामही प्र० रेतो मातुः प्रपितामहो वृ० अमुष्मै (हरिरामाय) स्वाहा। अन्तर्दध ऋतुभिस्सर्वैरहो-रात्रैस्स सन्धिकैः। अर्धमासैश्च मासैश्चामन्तरन्यं प्रपितामहाद्धे। अमुष्मै (हरिरामाय) स्वाहा। सर्वत्र 'अमुष्मै' इस चतुर्थी के स्थान में उन उनके नामों की योजना करे। यन्मे माता यन् मे पिता भ्रातरो यच् च मे स्वा यद् एनश् चकृमा वयम्। तस्मान् नो वारयिष्यत इदं देवो बृहस्पतिः ॥ (पैप्पलादसंहिता—१६।६३।६)। यन्मे मातामही प्रलुलोभ तन्मे रेतो मातामहो वृंक्ताम्। यन्मे पितामही प्रलुलोभ पितामहो वृंक्ताम्। यन्मे पितुः पितामही—पितुः प्रपितामहि ॥ (पृ० ८०३ स्मृतिमुक्ताफल)।

हैं—यन्मे माता और यांस्तिष्ठन्ति इससे दो आहुति पिता के नाम से दे। (२) पितामह—यन्मे पितामही तथा अन्तर्दधे पर्वतैः—इनसे दो आहुति पितामह के नाम से दे। (३) प्रपितामह—यन्मे प्रपितामही और अन्तर्दधे ऋतुभिः—इन दो मन्त्र से प्रपितामह के नाम से आहुतिद्वय दे। (४) मातामह—मातामह में ऊह करे। यन्मे मातामही और यास्तिष्ठन्ति या धावन्ति इन दो मन्त्रों से मातामह के नाम से हवन करे। (५) प्रमातामह—यन्मे मातुः पितामही तथा अन्तर्दधे पर्वतैः—इन दो मन्त्रों से प्रमातामह के नाम से हवन करे। (६) वृद्धप्रमातामह—यन्मे मातुः प्रपितामही और अन्तर्दधे ऋतुभिः—इन दो मन्त्रों से वृद्धप्रमातामह के नाम से हवन करे। सर्वत्र 'अमुष्याः' यहाँ पर चतुर्थी पद से उन उनके नाम की योजना करे।

तद्गृह्यसङ्ग्रहे—योज्यः पित्रादिशब्दानां स्थाने मातामहादिकः। अन्नहोमे तथा स्पर्शे जलपिण्डादिदानके॥ यन्मे मातामहीत्यादि तत्रोदाहरणं भवेत्॥ ततो ये चेत्येकान्नाहुतिः। ततः स्वाहा पित्रे इत्याद्यैराज्यं हुत्वा स्विष्टकृतं हुत्वा सर्वभक्ष्यं किञ्चिदादायोदगुष्णं भस्मापोह्य तत्र तूष्णीं स्वाहाकारेण जुहोति परिषेचनान्तं स्थालीपाकवत्। अयमग्नौकरणहोमो मासिकश्राद्ध एव। तच्च 'स्मार्ताग्न्यभावेन कार्यम्' इति केचित्। कार्यमेवेति बहवः। अत एव सर्वाधानिनो होमवर्ज्यं मासिकश्राद्धमुक्तं सुदर्शनभाष्ये। महालये तद्वदित्येके प्रकरणान्तरत्वात्। कर्मान्तरत्वेन स्मार्तपार्वणवत्कार्यमिति त्वस्मद्गुरवः। आब्दिकादिषु तु स्मार्तपार्वणविधिरेव। एवं मातृवार्षिकादिषु। मासिश्राद्धविकृतावष्टकायां मातृश्राद्धे वैकृतहोमेन प्राकृतहोमबाधः। 'अन्वष्टकासु मातृश्राद्धं न' इति भाष्ये। तत्रापि श्राद्धान्तरवत् क्रियमाणे तु यन्मे मातेत्यादौ गुणत्वेऽपि मातृप्राधान्यं विवक्षितम्, 'मासि श्राद्धेन कल्पो व्याख्यातः' इति सूत्रात्। 'आग्नेय्येव मनोताकार्या' वचनादग्निशब्दस्यैव वैकृतदेवताभिधायित्वम् इति तेनामुष्मा इत्यत्र 'अमुकशर्मभ्यां पितृभ्याम्' इत्याद्यूहः कार्यः। 'तच्च मासि श्राद्धं जीवत्पित्रादीनां व्युत्क्रममृतपित्रादीनां च कार्यम्' इत्युक्तं सुदर्शनभाष्ये। तत्प्रकारस्तु वक्ष्यते। मातापित्रोर्द्वित्वादौ तु नोहः, 'तस्मादृचं नोहेत्' इति निषेधात्, प्रकृतावूहाभावाच्च पत्नीं सन्नह्येतिवत्। उपदेशिमते तूहः। यथा—'यन्मे मातरौ प्रलुलोभतुश्चरत्यावननुव्रते' इत्याद्यस्मत्पितृकृतमासिकश्राद्धनिर्णये ज्ञेयमिति दिक्। अन्यत् प्राग्वत्।

गृह्यसंग्रह में कहा है—अन्नहोम, स्पर्श (ब्राह्मणभोजनार्थान्नस्पर्श), जल, पिण्डदान आदि शब्दों में पिता आदि शब्दों के स्थान में मातामहादि की योजना करे वहाँ पर यन्मे मातामही—इत्यादि वहाँ पर उदाहरण होता है—इत्यादि। तदनन्तर 'ये च'[1] इस मन्त्र से एक अन्न की आहुति दे। तदनन्तर [2]'स्वाहा पित्रे' इत्यादि से आज्य का हवन कर स्विष्टकृदादि हवन कर सर्वविध अन्न को कुछ लेकर उत्तरदिशा की तरफ [3]गर्मभस्म को हटाकर उसमें मौन होकर स्वाहाकार से हवन करता है। परिसेचनान्त (जल के द्वारा भोजनपात्र को सब तरफ से सेचन करना) स्थालीपाक की तरह करे। यह अग्नौकरणहोम मासिकश्राद्ध में ही

१—ये चेह पितरो ये च नेह यांश्च विद्मयाँ उ च न प्रविद्म। त्वं वेत्थ यति जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञं सुकृतं जुषस्व॥ (ऋ० १०।१५।१३, यजु० १९।६७)।

२—षडाज्याहुतीर्जुहोति—स्वाहा पित्रे, पित्रे स्वाहा—इति मन्त्राभ्यां द्वे आज्याहुती हुत्वा पुनराभ्यामेव तृतीय चतुर्थौं हुत्वा स्वधा स्वाहेति मन्त्रेण पञ्चमीम्, अग्नये कव्यवाहनायेति षष्ठीं जुहोति। (इति वीरमित्रोदये पृ० २३३) स्वाहा पित्रे इति प्रथमो मन्त्रः। पित्रे स्वाहा—इति द्वितीयो मन्त्रः। स्वाहा पित्रे—इति तृतीयो मन्त्रः। पित्रे स्वाहा—इति चतुर्थो मन्त्रः। स्वधा स्वाहा—इति पञ्चमो मन्त्रः। अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा—इति षष्ठो मन्त्रः। (कृष्णयजुर्वेद एकाग्निकाण्डके द्वितीयप्रश्न में हैं)।

३—अहविष्यस्य होम उदीचीनमुष्णं भस्माऽपोह्य तस्मिञ्जुहुयात्तद्धुतमहुतं चाग्नौ भवति॥ आपस्तंबधर्मसूत्र पृ० २४७। तत्रैव बौधायनगृह्ये—अथ यद्येत देवान्नं स्यादुत्तरतो भस्ममिश्रानङ्गारान्निरुह्य तेषु जुहुयात्। अपरे आह—यान्यहविष्यामि व्यञ्जनान्यहरहर्भोज्यानि तेषामेष संस्कारस्सकृच्च होमोऽमन्त्रक इति।

होता है। वह स्मार्त अग्नि के अभाव में न करे। यह किसी का मत है। करे—यह बहुमत है। इसलिये सर्वाधानी का (आपस्तंबानां मासिश्राद्धस्यापूर्वत्वेन पितृयज्ञाद् दक्षिणाग्निप्राप्त्यभावात्स्मार्तस्याभावेन सर्वाधानिनोऽधिकरणाभावाद् होमलोप इत्याशयः। इदमापाततः, पितृयज्ञधर्मकत्वाभावेऽपि स्मृतिवाक्ये न दक्षिणाग्नेः पाणिलौकिकाग्न्यादेश्च प्राप्तिसंभवात्।) होमवर्ज मासिकश्राद्ध सुदर्शनभाष्य में कहा है। महालय में इसीतरह होमवर्ज मासिकश्राद्ध में करे—यह किसी का मत है। क्योंकि—प्रकरणान्तर है। कर्मान्तर होने से स्मार्तपार्वण की तरह करे—यह हमारे श्री गुरुजी कहते हैं। आब्दिक (वार्षिक) आदि में तो स्मार्तपार्वणविधि ही है। इसीप्रकार माता के वार्षिक आदि में जानना चाहिये। मासिकश्राद्ध की विकृत अष्टका में मातृश्राद्ध में विकृतिहोम से प्राकृत होम का बाध होता है। अन्वष्टका में मातृश्राद्ध नहीं होता है—एसा भाष्य में कहा है। उसमें भी अन्य श्राद्ध के सदृश करने पर तो 'यन्मे माता' इत्यादि में अप्रधानता होनेपर भी माता की प्राधान्यता विवक्षित है। मासिक श्राद्ध से कल्प की व्याख्या की है—एसा सूत्र है। आग्नेय्येव [1]मनोता कार्या–इस मन्त्र से अग्निशब्द से ही विकृत देवता का ही ग्रहण करना। इससे (माता के प्राधान्य से) 'अमुष्मै' यहाँ पर 'अमुकशर्मभ्यां पितृभ्याम्' इत्यादि ऊह करे। और उस मासिकश्राद्ध को जिसके पिता जीवित हों उनका यों व्युत्क्रम (विपरीतक्रम) से मृत पिता आदियों का करे—एसा सुदर्शनभाष्य में कहा है। उसका प्रकार कहेंगे। माता पिता के द्वित्वादि में तो ऊह नहीं होता है। क्योंकि-ऋचा का ऊह न करे यह निषेध है। [2]'पत्नी सन्नह्य' की तरह (पत्नी दो या बहुत हो ऊह नहीं होता है। क्योंकि प्रकृति में ऊह करना अभाव है—एसा सिद्धान्त है।) प्रकृति में ऊह का अभाव होता है उपदेशमत से तो ऊह होता है। जैसे—'यन्मे मातरौ प्रलुभतुश्चरत्यावनुव्रते। इत्यादि में हमारे पिता के किये हुए मासिकश्राद्धनिर्णय में जानना चाहिये। अन्य तो पूर्व के सदृश है।

(श्राद्धे परिवेषणविचारः)

अथ परिवेषणम्। तच्चोपवीत्येवाज्येन देवपूर्वम् 'आमासु पक्वम्' इति पात्राण्युपस्तीर्य कुर्यात् इति हेमाद्रिः।

अब परिवेषण[3] कहते हैं। वह उपवीत (सव्य) ही होकर घी (बने अन्न को) से देवपूर्वक 'आमासु पक्वमैरय'[4] इस मन्त्र से पात्रों में परोसकर करे—यह हेमाद्रि मत है। (किसी के मत से बिना मन्त्र के परिवेषण करे—एसा कहा है।)

(आज्याहुतिं विना परिवेषणे विचारः)

भारते दानधर्मेऽपि—आज्याहुतिं विना नैव यत्किञ्चित्परिविष्यते।
दुराचारैश्च यद्भुक्तं तं भागं रक्षसां विदुः॥

भारत के दान धर्म में भी कहा है—घृत की आहुति के विना कुछ भी परोसा जाता है वह दुराचारियों ने जिसे भोजन किया है उस भाग को राक्षसों का भाग जानना चाहिये।

तत्रैव शौनकः—विधिना देवपूर्वं तु परिवेषणमाचरेत्।

१—अग्निषोमीय पशुप्रकरण में 'त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोता' यह मनोता (मन्त्र मनोतापदघटित) है। यहाँ ब्राह्मण वाक्य है—पशु का देवता दूसरा है आग्नेयीमनोता मन्त्र कहना चाहिये। इस वचन से अग्निषोमीय में आग्नेयीमनोता मन्त्र का पाठ होता है। विकृति में मनोतामन्त्र में वैकृत देवतावाचक पद को रखकर मन्त्र को पढना चाहिये। इसलिए मन्त्र में अमुकशर्मभ्यां पितृभ्यां यह ऊह करना चाहिये।

२—दर्शपूर्णमासयाग के समय किसी को पत्नी दो या बहुत भी हों तो 'पत्नीं सन्नह्य' यहाँ पर एक वचन से ही प्रैष होता है। ऊह नहीं होता है। प्रकृति में ऊह का अभाव है। क्यों कि—ऋचा में ऊह नहीं होता है—यह सिद्धान्त है। इत्यादि विवरण सवृत्तिकात्यायनश्रौतसूत्र (म० म० श्रीविद्याधर जी गौड का २।६।१।४) देखिये।

३—परिवेषणकाले यथा शब्दो न भवेत्तथा परिवेषणीयम्। इति श्राद्धमञ्जर्याम् पृ० २८।

४—आमासु पक्वमैरय आ सूर्यं रोहयो दिवि। घर्मं न सामन् तपता सुवृक्तिभिर्जुष्टं गिर्वणसे बृहत्॥ (ऋ० ८।८९।७)।

वहीं पर शौनक ने कहा है—विधि (याज्ञवल्क्यः—अन्नमिष्टं हविष्यं च दद्यादक्रोधनो नरः। इष्टं ब्राह्मणानाम्।) से ही देवपूर्वक परिवेषण करे।

(स्वयं परिवेषणे विचारः)

तत्रैव धर्मः—फलस्यानन्तता प्रोक्ता स्वयं च परिवेषणे।

वहीं पर धर्म ने कहा है—स्वयं (अपने आप) परोसन में अनन्तफल कहा है।

(श्राद्धकाले भार्यापरिवेषणे विचारः)

तत्रैव वायुभविष्ययोः—भार्यया श्राद्धकाले तु प्रशस्तं परिवेषणम्।

वहीं पर वायुपुराण और भविष्यपुराण में कहा है—श्राद्ध के समय में पत्नी का परिवेषण (परोसना) उत्तम कहा है।

(नापवित्रेण नैकेन हस्तेन परिवेषणविचारः)

ब्रह्माण्डे—नापवित्रेण नैकेन हस्तेन न विना कुशम्। नायसे नायसेनैव श्राद्धे तु परिवेषयेत्॥

ब्रह्माण्डपुराण में कहा है—पवित्री के विना, एक हाथ से, कुशा के विना और बिना यत्न के लोहे के पात्र (लोहे की, कडछी, लोहे की थाली और स्टील के वर्तनों) से श्राद्ध में परिवेषण न करे।

(आयसपात्रेण परिवेषणे विचारः)

वसिष्ठः—आयसेन तु पात्रेण यदन्नं सम्प्रदीयते।
भोक्ता विष्ठासमं भुङ्क्ते दाता च नरकं व्रजेत्॥

वसिष्ठ ने कहा है—लोहे के पात्र से जो अन्न परोसा जाता है उस अन्न को भोजन करनेवाला विष्ठा के तुल्य भोजन करता है और परोसने वाला नरक में जाता है।

पैठीनसिः—'सीसकायसरीतिपात्राण्ययज्ञियानि।

पैठीनसि में कहा है—सीसे के पात्र, आयस (लोहे के पात्र, दर्वी-कडछी आदि), के पात्र, रीति (पीतल) के पात्र यज्ञ के योग्य नहीं है। अर्थात्-इन पात्रों का श्राद्धादि कार्यों में नहीं ग्रहण करना चाहिए।

(सौवर्णपात्रादिना परिवेषणकथनम्)

तत्रैव हारीतः—सौवर्णराजताभ्यां च खड्गेनौदुम्बरेण वा।
दत्तमक्षय्यतां याति फल्गुपात्रेण वा पुनः॥

वहीं पर हारीत ने कहा है—सुवर्ण के पात्र से, चाँदी के पात्र से, खड्ग (गैंडा) के पात्र से, उदुम्बर (ताम्र) के पात्र से और फल्गु (काकोदुम्बरिका, कठुम्बरी) के पात्र से जो अन्न दिया जाता है वह अक्षय को प्राप्त होता है।

(दर्व्या घृतमन्नादिपरिवेषणविचारः)

कार्ष्णाजिनिः—दर्व्या देयं घृतं चान्नं समस्तव्यञ्जनानि च।
उदकं चैव पक्वान्नं नो दर्व्या तु कदाचन॥

कार्ष्णाजिनि ने कहा है—कडछी से घृत, अन्न और सब व्यञ्जन (साग आदि) देना चाहिये। जल तथा पकवान्न (बना हुआ भोजन) कभी भी कलछी से नहीं देना चाहिये।

(पङ्क्तौ परिवेषणे विचारः)

यमः—पङ्क्त्यां विषमदातुश्च निष्कृतिर्न च विद्यते।

यम ने कहा है—पङ्क्ति में बैठे हुए ब्राह्मणों को विषम (किसी को कम या किसी को ज्यादा-अधिक) देनेवाले का निस्तार नहीं होता है।

(भोज्यपात्रे तिलान् दृष्ट्वा पितॄणां निराशत्वकथनम्)

पृथ्वीचन्द्रोदये पराशरः—सर्वदा च तिला ग्राह्याः पितृकृत्ये विशेषतः।
भोज्यपात्रे तिलान् दृष्ट्वा निराशाः पितरो गताः॥

पृथ्वीचन्द्रोदय में पराशर ने कहा है—पितरों के कार्य में विशेषकर सर्वदा (सदैव) तिलों का ग्रहण करना चाहिये। पर भोजनपात्र में तिलों को देखकर पितर निराश होकर चले जाते हैं।

(हस्तदत्तास्तु लवणव्यञ्जनादिदाने विचारः)

चन्द्रिकायां वृद्धशातातपः—हस्तदत्तास्तु ये स्नेहा लवणव्यञ्जनादयः।
पितॄणां नोपतिष्ठन्ति भोक्ता भुञ्जीत किल्बिषम्॥

चन्द्रिका में वृद्धशातातप ने कहा—हाथ के द्वारा दिये हुए स्नेह (घृतादि), निमक और व्यञ्जन आदि पितरों को नहीं मिलते हैं और भोजन करने वाला किल्विष (पाप) (इसलिए—तस्मादन्तरितं कुर्यात् पर्णेनाथ तृणेन वा। पत्ता या तृण का व्यवधान कर दे।) का भक्षण करता है।

घृतपात्रे विशेषो ग्रन्थान्तरे—ओदने परमान्ने च पात्रमासाद्य मुग्धधीः।
घृतेन पूरयेत्पात्रं तद् घृतं रुधिरं भवेत्॥

घृतपात्र में विशेष ग्रन्थान्तर में कहा है—मुग्ध घी (मूर्ख बुद्धिवाला) ओदन (भात) या परमान्न (खीर-परमान्नं तु पायसः—इत्यमरः) में पात्र में रखकर घी आदि से भरता है वह घृत रुधिर के समान होता है।

(मदनरत्नमते भूमावेव घृतपात्रस्थापननिर्देशकथनम्)

घृतादिपात्रं भूमौ स्थापयेन्न भोजनपात्रे इति मदनरत्ने।

मदनरत्न में कहा है—घृत आदि पात्रों को भूमि में स्थापन करे भोजनपात्र में स्थापन न करे।

(हस्तदत्तं लवणव्यञ्जनादिकं भक्षणं न करणीयम् अपक्वं तैलपक्वं हस्तेनैव ग्रहणे च न दोषकथनम्)।

सङ्ग्रहे—हस्तदत्तं तु नाश्नीयात् लवणं व्यञ्जनादिकम्।
अपक्वं तैलपक्वं च हस्तेनैव प्रदीयते॥

संग्रह में कहा है-हाथ से दिये हुए निमक, व्यञ्जन (साग) आदि का भोजन न करे। बिना पका (फल आदि) या तेल से निर्मित वस्तु द्वारा हाथ से ही देना (निगमः—अपेक्षितं यो न दद्याच्छ्राद्धार्थमुपकल्पितम्। अधःकृच्छ्रासु घोरासु तिर्यग्योनिषु गच्छति॥ देवलः—नाश्रु सम्पातयेच्छ्राद्धे न जल्पेन्न हसेन्मिथः। न विभ्रंशेन्न संक्रुध्येन्नो द्विजेन्नात्र कुत्रचित्। प्राप्ते हि कारणे श्राद्धे नैव क्रोधं समुचरेत्। आश्रितः स्विन्नगात्रो वा न तिष्ठेत् पितृसन्निधौ॥ स्तंभभित्यादौ निहितशरीर आश्रितः) चाहिये।

(पात्रालम्भनकथनम्)

पात्रालम्भनमुक्तं चतुर्विंशतिमते—उत्तानं दक्षिणं सव्यं नीचं पात्राण्युपस्पृशेत्।

पात्र का आलंभन चतुर्विंशतिमत से कहा है—दक्षिण का पात्र सीधा और बायें का पात्र नीचा कर स्पर्श करे।

याज्ञवल्क्यः—(आचाराध्याय-श्लो० २३८) दत्त्वान्नं पृथ्वीपात्रमिति पात्राभिमन्त्रणम्।
कृत्वेदं विष्णुरित्यन्ने द्विजाङ्गुष्ठं निवेशयेत्॥

याज्ञवल्क्य ने कहा है—अन्न पात्रों में रखकर 'पृथिवी ते पात्रं द्यौरपिधानं ब्राह्मणस्य मुखे अमृते अमृतं जुहोमि स्वाहा' इति मन्त्र से पात्रों का अभिमन्त्रण कर 'इदं विष्णुः' (ऋ० १।२।७।२) इस मन्त्र से उस अन्न में द्विज के अंगूठे का स्पर्श मैषां (इदमन्नम्, इमा आपः, इदमाज्यम्, इदं हविः पुनरन्नेः) इदं कविः। इत्यादिप्रकार से) करावे।

बौधायनः—(द्वितीयप्रश्ने दशमाध्याये) ब्राह्मणानाम्=विप्राङ्गुष्ठेनानखेनानुदिशति। 'पृथिवी ते पात्रं द्यौरपिधानं ब्रह्मणस्त्वा मुखेऽमृतेऽमृतं जुहोमि। ब्राह्मणानां त्वा प्राणापानयोर्जुहोम्यक्षितमसि मे पितॄणां पितामहानां प्रपितामहानां चेष्ठा अमुत्रामुष्मिँ ल्लोके इति। आज्यं जुहोम्यग्रे स्वाहाशब्दः कातीयसूत्रे उक्तः। पैत्रे स्वधाशब्दः।

बौधायन ने कहा है—ब्राह्मण का नखून अंगूठे को त्याग कर पात्र में स्पर्शकर (पृथिवी ते पात्रं

द्यौरपिधानम्) इस मन्त्र को पढे। (यह मन्त्र तैत्तरीयमन्त्रसंहिता—२।२० में है) कातीयसूत्र में—'पृथिवी ते पात्रं द्यौरपिधानं ब्राह्मणस्य मुखे अमृतेऽमृतं जुहोमि—के आगे स्वाहा शब्द कहा हैं। पितृकार्य में स्वधा शब्द कहा है।

अन्न की प्रार्थना करता है। हे अन्न, आपका पात्र पृथ्वी है। उसके ढकने के लिए द्युलोक है। ब्रह्म (ब्राह्मण) के मुख में हवन करता हूँ। ब्राह्मणों के प्राण (नाक से साँस को छोडने को प्राण कहते हैं) और अपान (साँस को नाक से खींचने को अपान कहते हैं) में हवन करता हूँ। तुम्हारा नाश नहीं होता है। पितृ-देवताओं को ऊपरवाले लोकों में कभी कमी न हो। सब कुछ प्राप्त हो।

(अङ्गुष्ठे विशेषमाह)

अङ्गुष्ठे विशेषमाह हेमाद्रौ धौम्यः—परिवृत्य नचाङ्गुष्ठं द्विजः स्थाने निवेशयेत्।

अँगूठे में विशेष हेमाद्रि में धौम्य ने कहा है—परिवृत्य अंगूठे का परिवर्तन न कर अन्न में ब्राह्मण के अंगूठे को सीधा रखे।

(उत्तानहस्तेन द्विजाङ्गुष्ठनिवेशने दोषः)

तथा—उत्तानेन तु हस्तेन द्विजाङ्गुष्ठनिवेशनम्। यः करोति द्विजो मोहात्तद्वै रक्षांसि भुञ्जते॥

और उत्तान (सीधे) हाथ से जो द्विज अंगूठे को (पात्र में) मोह (अज्ञान) से लगाता है। उस श्राद्ध को निश्चय ही राक्षस खाते हैं।

(दैवे पित्र्ये च क्रमेण हव्यकव्यादिकथनम्)

तत्रैव यमः—विष्णोर्हव्यं च कव्यं च ब्रूयाद्रक्षस्व च क्रमात्। दैवे पित्र्ये चेत्यर्थः।

वहीं पर यम ने कहा है—क्रम से देवकार्य में—हे विष्णुदेव, हव्य की रक्षा (हे विष्णो, हव्यं रक्षस्व) करो और पितृकार्य में कहे—हे विष्णो, कव्यं रक्षस्व। देव और पितृकार्य में कहे-यह अर्थ है।

(सम्बन्धनामगोत्रादिना पितृक्रमेण स्वसत्तां परित्यज्य 'इदमन्नं स्वधा' इतिकथनम्)

तत्रैवात्रिः—सम्बन्धनामगोत्राणि इदमन्नं ततः स्वधा। पितृक्रमादुदीर्येति स्वसत्तां विनिवर्तयेत्॥ हस्तेनाभुक्तमन्नाद्यमिदमन्नमुदीरयेत्॥

वहीं पर अत्रि ने कहा है—सम्बन्ध, नाम और गोत्र को कहकर फिर 'इदमन्नं स्वधा' इसको पिता के क्रम से उच्चारण करे और अपने अधिकार को हटा दे। हाथ से दिये हुए अभुक्त अन्न आदि में 'इदमन्नं' यह कहे।

(अत्र अन्नदाने चतुर्थीविभक्तिकथनम्)

अत्र 'अन्नदाने चतुर्थी स्यात्' इत्यादि विशेषाः पूर्वमुक्ताः।

यहाँ पर अन्नदान में चतुर्थीविभक्ति होती है—इत्यादि विशेष बात पहले कह चुके है।

(हेमाद्र्यनुमतप्रयोगः)

अत्र पूर्वोक्तमन्त्रान्ते पुरूरवार्द्रवसंज्ञका विश्वेदेवा देवता इदमन्नं सपरिकरं हव्यम्। अयं ब्राह्मणस्त्वाहवनीयार्थे दत्तं दास्यमानं चातृप्तेः गयेयं भूः गदाधरो भोक्ता इदमन्नं ब्रह्म सौवर्णपात्रस्थमन्नमक्षय्यवटच्छायास्थममुकेभ्यो विश्वेभ्यो देवेभ्य इदमन्नममृतरूपं परिवेक्ष्यमाणं चातृप्तेः स्वाहा नमो न मम' इति बह्वृचपरिशिष्टहेमाद्य्राद्यनुमतः प्रयोगः। एवं पित्र्ये अमुकगोत्रवसुरूपादि तत्तन्नाम ज्ञेयम्।

यहाँपर पहले कहे हुए मन्त्र के अन्त में 'पुरूरवार्द्रवसंज्ञका विश्वेदेवा देवता इदमन्नं सपरिकरं हव्यम्। अयं ब्राह्मणस्त्वाहवनीयार्थे दत्तं दास्यमानं चातृप्तेः गयेयं भूः गदाधरो भोक्ता इदमन्नं ब्रह्म सौवर्णपात्रस्थमन्नमक्षय्यवटच्छायास्थममुकेभ्यो विश्वेभ्यो देवेभ्य इदमन्नममृतरूपं परिविष्टं परिवेदयमाणं चातृप्तेः स्वाहा नमो नमः, यह बह्वृचपरिशिष्ट हेमाद्रि आदि द्वारा अनुमत (संमत, इजाजत दिया हुआ) प्रयोग है। इसीप्रकार पितृकार्य में अमकगोत्र, वसुरूप आदि क्रम से उन उनका नाम जानना चाहिए।

पुरूरवार्द्रवसंज्ञक विश्वेदेवा देवता इस अन्न को सब वस्तु के साथ हव्य (देवताओं को जो वस्तु दी

जाती है) यह ब्राह्मण आहवनीय है। अग्नि है। दिया हुआ या दिया जाने वाला तृप्ति पर्यन्त यह भूमि गया है। भोजन करने वाला गदाधर है। यह अन्न ब्रह्म है। सोने के पात्र में रखा हुआ यह अन्न गया में स्थित जो अक्षय्य वटच्छाया में स्थित है। पुरूरवोद्र विश्वेदेवो में जो दिया है जो दिया जायगा अमृतरूप से अन्न को तृप्तिपर्यन्त देता हूँ। हमारा नहीं है।

(ये देवासः, ये चेह पितरः, इति मन्त्रद्वयं पित्र्ये केचित् जपन्ति)

ततो 'ये देवासः' इति दैवे, 'ये चेह पितरः' इति पित्र्ये केचिज्जपन्ति ।

तदनन्तरः ये देवास[1] और ये चेह[2] पितरः, इनको कोई पितृकर्म में जप करते हैं।

(अच्छिद्रवाचनकथनम्)

ततोऽच्छिद्रं वाचयेत् । तत्रैव प्रचेताः—आपोशनकरे विप्रे सङ्कल्प्याच्छिद्रभाषणात् ।
निराशाः पितरो यान्ति देवैः सह न संशयः ॥

तदनन्तर ब्राह्मण से अछिद्र (अछिद्रं[3] जायताम्) का वाचन करावे। वहीं पर प्रचेता ने कहा है— ब्राह्मण के हाथ में आपोशान (भोजन के पूर्व और पश्चात् आचमन करने के लिए जो जल ब्राह्मणों के हाथ में दिया जाता है उसके पूर्व ही अछिद्र का भाषण करे मन्त्र—अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा) देकर और सङ्कल्प कर अछिद्रभाषण से देवताओं के साथ पितर निराश हो जाते हैं इसमें संशय नहीं है।

पारस्करः—सङ्कल्प्य पितृदेवेभ्यः सावित्रीमधुमज्जपः। श्राद्धं निवेद्यापोशनं जुषप्रैषोऽथ भोजनम् ॥ निवेद्येति ब्रह्मार्पणं कृत्वेत्यर्थः। अत एव बृहन्नारदीयेऽन्नत्यागमुक्त्वोक्तम्—दत्तं हविश्च तत्कर्म विष्णवे वै समर्पयेत् । इति ।

पारस्कर ने कहा है—पितर और देवताओं के निमित्त सङ्कल्प अन्न का कर गायत्री और मधुमती ऋचाओं का जपकर फिर श्राद्ध को ब्रह्मार्पण करे-यह अर्थ है। अपोशान कर अपनी रुचि से भोजन करें-ऐसा यजमान ब्राह्मण से कहता है। तब [4]ब्राह्मण भोजन करे। इसलिए बृहन्नारदीय में अन्न त्याग को कह कर कहा है—दी हुई हवि उसका कर्म निश्चय विष्णु के लिए ही समर्पण करे।

यत्तु कृत्यरत्ने कार्ष्णाजिनिः—अपसव्येन कर्तव्यं पितृकृत्यमशेषतः। अन्नदानादृते सर्वमेवं मातामहेष्वपि ॥ इति । तदप्येतत्परम् । तत्र ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविः, हरिर्दाता हरिर्भोक्ता, चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च, इति केचित्पठन्ति ।

जो कृत्यरत्न में कार्ष्णाजिनि ने कहा है—पितृकार्य अन्नदान को छोडकर अपसव्य से करना चाहिये। अर्थात्—सव्य से ही पितृकार्य में करे। इसीतरह मातामह आदि के कार्यो में भी करे। यह भी इसीपरक है। वहाँ पर [5]'ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविः, हरिर्दाता हरिर्भोक्ता और चतुर्भिश्च' इस तीन श्लोक को कोई पढते हैं।

१—ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकाद स्थ । अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् ॥ (ऋ० १।१३६।११)। (तैत्तरीयसंहिता १।४।१०।१६)

२—ये चेह पितरो ये च नेह यॉंश्च विद्म यॉं उ च न प्रविद्म। त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञं सुकृतं जुषस्व ॥ (ऋ० १०।१५।१३)।

३—जपच्छिद्रं तपच्छिद्रं यच्छिद्रं श्राद्धकर्मणि । सर्वं भवतु मेऽच्छिद्रं ब्राह्मणानां प्रसादतः ॥ 'अन्नहीनं क्रिया हीनं मन्त्रहीनं च यद् भवेत् । तत् सर्वमच्छिद्रमित्युक्त्वा ततो जलमपाशयेत् ॥ अच्छिद्रमित्यस्यानन्तरं जायतामिति वाक्य-शेषः। 'श्राद्धकाशिकायाम्–मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं द्विजोत्तमाः । श्राद्धं संपूर्णतां यातु प्रसादाद् भवतां मम ॥

कोई इनको भी पढ़ते हैं—पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः। तृप्तिं प्रयान्तु वै भक्त्या यदिदं श्राद्धमाहृतम् ॥ मातामहस्तृप्तिमुपैतु तस्य तथा पिता तस्य पिता ततोऽन्यः । विश्वे च देवाः परमां प्रयान्तु तृप्तिं प्रणश्यन्तु च यातुधानाः ॥

४—ॐ तत्सद् ब्रह्मार्पणमस्तु ।

५—(अ) ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविः ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणाहुतम् । ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥ (ब) हरिर्दाता हरिर्भोक्ता हरिरन्नं प्रजापतिः। हरिर्विप्रशरीरस्थो भुंक्ते भोजयते हरिः ॥ (स) चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पञ्चभिरेव च। हूयते च पुनर्द्वाभ्यां स मे विष्णुः प्रसीदतु ॥ ओश्रावय, अस्तु श्रौषट्, यज, ये यजामहे, वौषट्, इति चतुर्भिरित्याद्यर्थः ।

धर्मप्रदीपे—ततोऽन्नं पितृदेवेभ्यः सङ्कल्प्य च यथाविधि।
दत्तं यद्दास्यमानं च आतृप्तेर्न ममेति च ॥

धर्मप्रदीप में कहा है—तदनन्तर पितर और देवताओं के लिए यथाविधि अन्न का सङ्कल्प कर कहे जो दिया हुआ तथा जो अन्न तृप्तिपर्यन्त दिया जाने वाला है वह मेरा नहीं है।

(श्राद्धीयान्नस्य संकल्पो भूमावेव भवति)

तथा—श्राद्धीयान्नस्य सङ्कल्पो भूमावेव प्रदीयते। हस्तेषु दीयमानं तु पितॄणां नोपतिष्ठते ॥

और श्राद्धीय अन्न का सङ्कल्प भमि में ही देवे। हाथों में दिया जाने वाला सङ्कल्प पितरों को नहीं मिलता है।

वैश्वदेवस्य वामे तु पितृपात्रस्य दक्षिणे। सङ्कल्पोदकदानं स्यान्नित्यश्राद्धे यथारुचि ॥

वैश्वदेव के बाएँ भाग में पितृपात्र के दाहिने भाग में सङ्कल्प के जल का दान करे और नित्यश्राद्ध में अपनी इच्छा से बायें या दाहिने भाग में संकल्पजलदान करे।

(आपोशानं प्रदाय सावित्र्यादिमन्त्राणां जपकथनम्)

प्रचेताः—आपोशनं प्रदायाथ सावित्रीं त्रिर्जपेदथ। मधुवाता इति ऋचं मध्वित्येतत् त्रिकं तथा ॥

प्रचेता ने कहा है—आपोशन[1] (आचमनीयजल) देकर सावित्री (गायत्री) तीन बार जप करे। 'मधुवाता—इन तीन ऋचा को तथा मधु, मधु, मधु—इनको भी तीन बार जप करे।

मिताक्षरायां (पृ० १०८ आ० श्लो० २३९) पारस्करः—सङ्कल्प्य पितृदेवेभ्यः सावित्री-मधुमज्जपः। श्राद्धं निवेद्यापोशनं जुषप्रैषोऽथ भोजनम्। गायत्रीं त्रिः सकृद्वापि जपेद्व्याहृति-पूर्विकाम्। मधु वाता इत्यृचं मध्वित्येतत्त्रिकं तथा ॥

मिताक्षरा में पारस्कर ने कहा है—पितर और देवताओं के लिए संकल्प[2] कर सावित्री (गायत्री) और मधुवाता' इसका जप (पाठ) कर श्राद्ध का निवेदन अपोशन (जल देकर) सुख से भोजन करो व्याहृतिपूर्वक गायत्री का तीन बार या एक बार भी जप करे। मधुवाता—इस ऋचा को तथा मधु, मधु, मधु—इसको तीन बार कहे।

याज्ञवल्क्यः—(आचाराध्याय का श्लोक-२३९) सव्याहृतिं च गायत्रीं मधुवाता इति त्र्यृचम्। जप्त्वा यथासुखं वाच्यं भुञ्जीरंस्तेऽपि वाग्यताः ॥ यथासुखं जुषध्वमिति वाच्यम्।

याज्ञवल्क्य ने कहा है-व्याहृति के सहित गायत्री को और मधुवाता-(ऋ० १।९।६-८) इन तीन ऋचा को जपकर आप सब जैसे सुख मिले उसप्रकार से भोजन करें। वे ब्राह्मण भी मौन होकर भोजन करें। यहाँ पर 'यथासुखं जुषध्वम्—ऐसा श्राद्धकर्ता को ब्राह्मणों के प्रति कहना चाहिये।

(असंक्लिपतान्नस्य स्पर्शने विचारः)

अत्रिः—असङ्कल्पितमन्नाद्यं पाणिभ्यां यद्युपस्पृशेत्। अभोज्यं तद्भवेदन्नं पितॄणां नोपतिष्ठते। अन्नं दत्तं न गृह्णीयाद्यावत्तोयं न संपिबेत्।

अत्रि ने कहा है—असंकल्पित अन्न आदि को (भोजन करने वाला ब्राह्मण) यदि हाथों से स्पर्श

१—मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥ मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥ मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥ (ऋ० १।९।६-८)।

२—पारस्करवचने सावित्रीजपाद्यनन्तरमपोशानमुक्तम्। कात्यायनेन तु अपोशानदानोत्तरं सावित्रीजपाद्युक्तं तेन तयोर्विकल्पः, स च यथाशाखं व्यवस्थितो द्रष्टव्यः, इति वीरमित्रोदये।

सङ्कल्पोत्तरं गायत्रीजपपूर्वकं मधुमतीः पठित्वाऽपोशनार्थं जलं दत्वा जुषध्वमिति प्रैषेण भोजनानुज्ञापनं कार्य-मिति वचनार्थः। एवञ्च सावित्रीजपानन्तरमपोशानमुक्तम्, प्रचेतोवचने तु विपरीतमुक्तम्। तत्रेयं व्यवस्थापारस्कारवचनं बह्वृचपरं प्रचेतो वचनं तदन्यपरम्। उपवीत्यन्नेषु मधु सर्पिर्वाऽऽसिच्य सप्रणवव्याहृतिं सावित्रीं मधुमतीश्च जपित्वा मध्विति च त्रिरुक्त्वा पितॄननुस्मृत्याऽपोशनं दत्वाऽपः प्रदाय ब्राह्मणान् यथासुखं जुषध्वति भोजनायातिसृजेदिति बह्वृचपरिशिष्टे।

करता है तो वह अन्न भोजन योग्य नहीं होता है और पितरों को नहीं प्राप्त होता है। दिये हुए अन्न को ग्रहण न करे जब तक जल का पान (अपोशान) (प्रचेताः—पीत्वाऽपोशनमश्नीयात्पात्रे दत्तमगर्हितम्। सर्वेन्द्रियाणां चापल्यं न कुर्यात्पाणिपादयोः ॥) न करे।

(अपोशनेविशेषः)

आपोशने विशेषमाह स्मृतिसमुच्चये—आपोशनं वामभागे सुरापानसमं भवेत्।
दक्षभागे तु यः कुर्यात् सोमपानसमं भवेत् ॥

आपोशन में विशेष स्मृतिसमुच्चय में कहा है—(जो) आपोशन बायें भाग में करता है तो मदिरा के सदृश होता है और दहिने भाग में करता है तो 'सोमपान' के तुल्य होता है।

तथा—पुनरापूर्यापोशनं सुरापानसमं भवेत्।

और कहा है फिर (दुबारा) आपोशन-जल को ग्रहण करे तो 'सुरापान' के सदृश होता है।

(भूमौ बलिनिषेधकथनम्)

हेमाद्रावत्रिः—दत्ते वाप्यथवाऽदत्ते भूमौ यो निक्षिपेद्बलिम्।
तदन्नं निष्फलं याति निराशैः पितृभिर्गतैः ॥

हेमाद्रि में अत्रि ने कहा है—दी हुई या न दी हुई बलि को भूमि में जो प्रक्षेप करता है वह अन्न पितरों के निराश होकर जाने पर निष्फल हो जाता है। (पितॄणामन्नमादाय बलिं यस्तु प्रयच्छति। स्तेयेन ब्राह्मणः स्तेनः सर्वः स्तेयकृद्भवेत् ॥ बलिदाने त्वन्नमालभ्य त्रिः सावित्रीजपः प्रायश्चित्तमिति नागोजी। अत्रापोशानविधानबलिनिषेधाभ्यामन्ये पर्युक्षणादि प्राणाहुत्यन्ता नित्यभोजननियमाः सन्तीति लभ्यते।)

(आज्यादिना बलिदाने विचारः)

केचिदाज्येन कुर्वन्ति, तन्न पायसेन तथाज्येन माषान्नेन तथैव च। न कुर्याद्बलिदानं तु ओदनेन प्रकल्पयेत् ॥ इति स्मृतिसारे निषेधात्।

कोई घी से बलि करते हैं। यह उचित नहीं है। खीर, घृत और उडद से बलिदान न करे। ओदन (कृशरस्तिलकल्कयुक्तोदनः) से करे—यह स्मृतिसार में निषेध है।

(श्राद्धे नियुक्तान् ब्राह्मणान् भुञ्जानान् लवणादिकं न पृच्छेत्)

शङ्खः—श्राद्धे नियुक्तान् भुञ्जानान् न पृच्छेल्लवणादिषु।
उच्छिष्टाः पितरो यान्ति पृच्छतो नात्र संशयः ॥

शंख ने कहा है—श्राद्ध में भोजन में नियुक्त (करने में संलग्न) ब्राह्मणों से लवण (निमक) आदि को न पूछे। पूछने पर पितर उच्छिष्ट (अशुद्ध) हो चले जाते हैं। इसमें संशय नहीं है।

(अश्नत्सु गायत्र्यादिमन्त्राणां जपकथनम्)

कात्यायनः—'अश्नत्सु जपेत्सव्याहृतिकां गायत्रीं सकृत्त्रिर्वा रक्षोघ्नीः (पित्र्यमन्त्रान्) पुरुषसूक्तमप्रतिरथम्' इति।

कात्यायन ने कहा है—भोजन करते हुए ब्राह्मणों के व्याहृति (ॐ भूर्भुवः स्वः) सहित गायत्री मन्त्र का तीनबार या एक बार जप करे। [1]रक्षोघ्नी, [2]पुरुषसूक्त और [3]अप्रतिरथसूक्त का जप (पाठ) करे।

१—कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ इभेन। तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः १ तव भ्रमास आशुया पतन्त्यनु स्पृश धृषता शोशुचानः। तपूँष्यग्ने जुह्वा पतङ्गानसन्दितो वि सृज विष्वगुल्काः २ प्रति स्पशो वि सृज तूर्णितमो भवा पायुर्विशो अस्या अदब्धः। यो नो दूरे अघशंसो यो अन्त्यग्ने माकिष्टे व्यथिरा दधर्षीत् ३ उदग्ने तिष्ठ प्रत्या तनुष्व न्यमित्राँ ओषतात् तिग्महेते। यो नो अरातिं समिधान चक्रे नीचा तं धक्ष्यतसं न शुष्कम् ४ ऊर्ध्वो भव प्रति विध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने। अव स्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामिं प्र मृणीहि शत्रून् (४।४।१-५)

२—सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्। स भूमिं विश्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्। उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति २—इत्यादि सोलहमन्त्र यज्ञेन यज्ञम्—तक पढ़े। (ऋ० १०।९०।१-१६) साम—६१७ अथर्ववेद—१६।६—वाज स० अ० ३१ A तै० आ० ३।२२।)

३—आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम्। संक्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत्

हेमाद्रौ सौरपुराणे—ऐन्द्रं च पौरुषं सूक्तं श्रावयेद् ब्राह्मणांस्ततः ।

हेमाद्रि में सौरपुराण का वचन है—तदनन्तर इन्द्रसूक्त और पुरुषसूक्त ब्राह्मणों को श्रवण[1] करावे ।

मात्स्यपाद्मयोः—ब्रह्मविष्ण्वर्करुद्राणां स्तोत्राणि विविधानि[2] च । इन्द्रेशसोमसूक्तानि पावमानीश्च

साकमिन्द्रः ।। यहाँ से प्रारंभ कर 'प्रेता जयता नरः इन्द्रो वः शर्म यच्छतु । उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ ।। यहाँ तक–अर्थात्–१–से १३ तक ऋग्वेद के मत से पढे । (ऋ० १०।१०३।१–१४)। सा० १८४६। अथर्व—१८।१३। अजुर्वेद—१७।तै० स० ४१६।४१ में है । अप्रतिरथं साम–इति भाष्यकारः ।

१—शंखलिखितौ—दर्भेष्वासीनो मधुवाता ऋचो जपेत् । मनुः—स्वाध्यायं श्रावयेत् पित्र्ये धर्मशास्त्राणि चैव हि । आख्यानानीतिहासांश्च पुराणानि खिलानि च ।। आख्यानानि-सौपर्णादीनि । पौराणानि–रामनलसाविश्युपाख्यानादीनि । इतिहासो महाभारतं खिलानि परिशिष्टानि । श्री सूक्तादीनि । निगमे-रक्षोघ्नीः पावमानीरुदीरतामवरमध्वन्नपतींश्च मन्त्रान् द्वादशाष्टाक्षरप्रभृतीन् । रक्षोघ्नीः—कृणुष्व पाज इति पञ्चदश । रक्षोहणमिति पञ्चविंशतिः । इन्द्रा सोमा तपतमिति पञ्चविंशतिः । अग्नेर्हंसिन्या अत्रिणा इति नव । पावमान्यः—पुनन्तु मा पितर इत्याद्याः षोडशर्चः । तरत्समन्दीतिवर्गः । पवस्व विश्वचर्षणिरिति द्वात्रिंशदृचः । त्वं सोमासीति द्वात्रिंशत् । उदीरतामवर इति चतुर्दश । अन्नवतीः—पितुं नु स्तोषमित्येकादश । रुद्रान्–शतरुद्रियादीन् । अप्रतिरथम्–आशुः शिशान इति द्वादशर्चम् । सुरूपकृत्नु मूतय इत्यादीनि त्रीणि सूक्तानि प्रत्येकं दशर्चानि । इन्द्रभि अथिन इत्यादि त्रीणि सूक्तानि-ऐन्द्राणि । स्वादिष्ठया इत्यादीनि चत्वारि सूक्तानि सौम्यानि । अग्निमीड इति नवर्चम् । अनायज्वरीरिष इति द्वादशर्चां गायन्ति त्वेति च । इन्द्रशिवा इत्यष्टौ ऋचः । अस्यवामस्येत्ति पञ्चदश ऋचः । सांखायनीयास्तु-अग्निमीडे-इत्यादीन्येकादश सूक्तानि । न वा उ देवा-इति नवर्चं पठन्ति । आचारात् इति हेमाद्रिः । यजुर्वेदजप्यानि-अत्र पितरः, नमो वः पितरः । मधुवाता इति तिस्रः, पुनन्तु मा पितर-इत्यनुवाकः । त्वं सोमप्रचिकित । रक्षोघ्नानि-देवव्रताख्यानि । स्वधावन्ति-पितृभ्यः स्वधायिभ्य इत्यादीनि । शान्तिकाध्यायः-शन्नो वातः । यदेतन्मण्डलं तपतिं इत्यादि मण्डलब्राह्मणम् । तैत्तरीयाणां जप्यानि-दिवो वे त्यादि विष्णव इत्यन्तानि यजूंषि अग्न उदध इत्यादिवत्यः पञ्चम इत्यन्तानि च । रक्षोहणो वो वलगहन-इत्यनुवाकः । इन्द्रो वृत्रं हत्वेत्यनुवाकः । वैश्वदवेन वै प्रजापतिरित्यनुवाकः । अमृतोपस्तरणमसि-इत्यनुवाकपञ्चकम् । ब्रह्ममे तु मामित्यनुवाकत्रयम् । अणोरणीयानित्यनुवाकः । मेधां म इन्द्रो ददात्वित्यादयश्चत्वारोनुवाकाः । न कं च नेत्याद्युपनिषदित्यन्तं खण्डम् । मैत्रायणीयानाम्—इषे त्वासु भूताय त्वा वायवस्थ देवो वः सवितेत्यादयः पञ्चानुवाकाः । कठानाम्-सोमाय पितृमते त्वाज्यं पितृभ्यो बर्हिषद्भ्य इत्याद्यनुवाकः । उशन्तस्त्वा हवामहे-इत्याद्यनुवाकः । न प्राक्तिन्या पितृयज्ञ इत्याद्यनुवाकः । छन्दोगानां जप्यानि-गायत्र्यं बृहद्रथन्तरादीनि । आदित्यसामान्यादित्यव्रताख्यान्येकविंशतिः । ब्रह्मसाम ब्रह्मयज्ञानं प्रथमम् । विष्णुरुद्रयोः सामनी छन्दोगानां पुष्पग्रन्थे प्रसिद्धे । कौथुमशाखीयैर्यद्वा उपविंशतिरित्यादीनि पञ्चदश सामानि । अ सौ-वा आदित्य-इत्याध्यायश्च । राणायणीयैर्महानाम्नीसामशिष्टाचाराच्छ्रवणीयमिति हेमाद्रिः । अथर्ववेदिनां नु आ इन्द्रस्य बाहू इत्यप्रतिरथं सूक्तं प्राणाय नम इत्यादीनि त्रीणि सूक्तानि । सहस्रबाहुः पुरुषः इति पुरुषसूक्तम् । कालोश्वो वहतु सप्तरश्मिरिति कालसूक्तम् । उपनिषदमध्यात्मम् । प्राणाग्निहोत्रमहोपनिषदम् ।

२—स ते जानाति सुमतिं यविष्ठ य ईवते ब्रह्मणे गातुमैरत् । विश्वान्यस्मै सुदिनानि रायो द्युम्नान्यर्यो वि दुरो अभि द्यौत् ।। सेदग्ने अस्तु सुभगः सुदानुर्यस्त्वा नित्येन हविषा य उक्थैः । पिप्रीषति स्व आयुषि दुरोणे विश्वेदस्मै सुदिना सासदिष्टिः ७ अर्चामि ते सुमतिं घोष्यर्वाक् सं ते वावाता जरतामियं गीः । स्वश्वास्त्वा सुरथा मर्जयेमाऽस्मे क्षत्राणि धारयेरनु द्यून् ८ इह त्वा भूर्या चरेदुप त्मन् दोषावस्तर्दीदिवाँसमनु द्यून् । क्रीडन्तस्त्वा सुमनसः सपेमाऽभि द्युम्ना तस्थिवांसो जनानाम् ६ यस्त्वा स्वश्वः सुहिरण्यो अग्न उपयाति वसुमता रथेन । तस्य त्राता भवसि तस्य सखा यस्त आतिथ्यमानुषग् जुजोषत् १० महो रुजामि बन्धुता वचोभिस्तन्मा पितुर्गोतमादन्वियाय । त्वं नो अस्य वचसश्चिकिद्धि होतर्यविष्ठ सुक्रतो दमूनाः ११ अस्वप्नजस्तरणयः सुशेवा अतन्द्रासोऽवृका अश्रमिष्ठाः । ते पायवः सध्र्यञ्चो निषद्याऽग्ने तव नः पान्त्वमूर १२ ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन् । ररक्ष तान् त्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद रिपवो नाह देभुः १३ त्वया वयं सधन्य१स्त्वोतास्तव प्रणीत्यश्याम वाजान् । उभा शंसा सूदय सत्यताते ऽनुष्ठुया कृणुह्यह्रयाण १४ अया ते अग्ने समिधा विधेम प्रति स्तोमं शस्यमानं गृभाय । दहाशसो रक्षसः पाह्य१स्मान् द्रुहो निदो मित्रमहो अवद्यात् ।। (ऋ० ४। ४ १–१५) रक्षोहणं वाजिनमा जिघर्मि मित्रं प्रथिष्ठमुप यामि शर्म । शिशानो अग्निः क्रतुभिः समिद्धः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् ।। (ऋ० १०।८७।१–२५) मन्त्र तक हैं । इन्द्रासोमा तपतं रक्ष उब्जतं न्यर्पयतं वृषणा तमोवृधः । परा शृणीतमचितो न्योषतं हतं नुदेथां नि शिशीतमत्रिणः ।। (ऋ० ७।१०४।१–२५)

शक्तितः ॥ मण्डलं ब्राह्मणं तद्वत्प्रीतिकारि च यत्पुनः । अभावे सर्वविद्यानां गायत्रीजपमाचरेत् ॥

मत्स्यपुराण और पद्मपुराण में कहा है—ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य तथा रुद्र इनके अनेकप्रकार के स्तोत्र, इन्द्र, ईश, सोम और शक्ति से (यजुःसामाथर्वणां जप्यानि ग्रन्थान्तरेभ्यो द्रष्टव्यानि) पावमानीसूक्तको[1] तथा प्रीति को देनेवाला मण्डलब्राह्मण[2] को पढे । सब विद्याओं के अभाव में गायत्रीजप करे ।

पृथ्वीचन्द्रोदये ब्राह्मे—वीणां वंशध्वनिं चाथ विप्रेभ्यः संनिवेदयेत् । जपेच्च पौरुषं सूक्तं नाचिकेतत्रयं तथा ॥ त्रिमधु त्रिसुपर्णं च पावमानीर्यजूंषि च ।

पृथ्वीचन्द्रोदय में ब्रह्मपुराण का वचन है—ब्राह्मणों के लिए वीणा (सारंगी) तथा बाँसुरी की ध्वनि सुनाना चाहिये । पुरुषसूक्त, नाचिचिकेतत्रय, (नाचिकेताऽग्निर्बह्वीषु शाखासु विधीयते । तैत्तरीयके, कठवल्लीषु शतपथे च), त्रिमधु (मधुवाता ऋतायते, मधुनक्तमुतोषसो, मधुमान्नो वनस्पतिः (तै० सं० ४।२।९) । इति-तिस्रः ऋचः त्रिमधुः) त्रिसुपर्ण (चतुष्कपर्दा युवतिः, एकः सुपर्णः समुद्रमा, सुपर्णं विप्राः, इति तिस्रः ऋचः (ऋ० सं० १०।११४, ३-५, 'ब्रह्ममेतु माम् ब्रह्ममेधया, ब्रह्ममेध या-तै० आ० इति त्रयोऽनुवाकाः त्रिसुपर्णः) । और पावमानी सुनावे ।

तक मन्त्र हैं । अग्ने हंसि न्य १त्रिणं दीधन्मर्त्येष्वा ! स्वे क्षये शुचिव्रत ॥ उत्तिष्ठसि स्वाहुतो घृतानि प्रति मोदसे । यत् त्वा स्रुचः समस्थिरन् २ स आहुतो वि रोचतेऽग्निरीडेन्यो गिरा । स्रुचा प्रतीकमज्यते ३ घृतेनाग्निः समज्यते मधुप्रतीक आहुतः । रोचमानो विभावसुः ४ जरमाणः समिध्यसे देवेभ्यो हव्यवाहन । तं त्वा हवन्त मर्त्याः ५ तं मर्ता अमर्त्यं घृते नाग्निं सपर्यत । अदाभ्यं गृहपतिम् ६ अदाभ्येन शोचिषा ऽग्ने रक्षस्त्वं दह । गोपा ऋतस्य दीदिहि ७ स त्वमग्ने प्रतीकेन प्रत्योष यातुधान्यः । उरुक्षयेषु दीद्यत् ८ तं त्वा गीर्भिरुरुक्षया हव्यवाहं समीधिरे । यजिष्ठं मानुषे जने ॥ (ऋ० १०। सू० ११८। १-९) ।

१—पावमानीः स्वस्त्ययनीः सुदुघा हि घृतश्चुतः । ऋषिभिः संभृतो रसो ब्राह्मणेष्वमृतं हितम् १
पावमानीर्दिशन्तु न इमं लोकमथो अमुम् । कामान् त्समर्धयन्तु नो देवीर्देवैः समाहिताः २

येन देवाः पवित्रेणात्मानं पुनते सदा । तेन सहस्रधारेण पावमान्यः पुनन्तु माम् ३ प्राजापत्यं पवित्रं शतोद्यामं हिरण्मयम् । तेन ब्रह्मविदो वयं पूतं ब्रह्म पुनीमहे ४ इन्द्रः पुनीती सह मा पुनातु सोमः स्वस्त्या वरुणः समीच्या । यमो राजा प्रमृणाभिः पुनातु मा जातवेदा मूर्जयन्त्या पुनातु ५ ऋषयस्तु तपस्तेपुः सर्वे स्वर्गजिगीषवः । तपन्तस्तपसोग्रेण पावमानीर्ऋचोऽब्रुवन् ६ यन्मे गर्भे वसतः पापमुग्रं यज्जायमानस्य च किञ्चिदन्यत् । जातस्य च यच्चापि च वर्धतो मे तत् पावमानीभिरहं पुनामि ७ मातापित्रोर्यन्न कृतं वचो मे यत् स्थावरं जङ्गममाबभूव । विश्वस्य तत् प्रहृषितं वचो मे तत् पावमामीभिरहं पुनामि ८ गोघ्नात् तस्करत्वात् स्त्रीवधाद्यच्च किल्बिषम् । पापकं च चरणेभ्यस् तत् पावमामीभिरहं पुनामि ९ ब्रह्मवधात् सुरापानात् स्वर्णस्तेयाद् वृषलिगमनमैथुनसङ्गमात् । गुरोर्दाराधिगमनाच्च तत् पावमानीभिरहं पुनामि १० बालघ्नान् मातृपितृवधाद्भूमितस्करात्सर्ववर्णगमनमैथुनसङ्गमात् । पापेभ्यश्च प्रतिग्रहात् सद्यः प्रहरति सर्वदुष्कृतं तत्पावमानीभिरहं पुनामि ११ क्रयविक्रयाद्योनिदोषाद् भक्ष्याद्भोज्यात्प्रतिग्रहात् । असंभोजनाच्चापि नृशंसं तत् पावमानीभिरहं पुनामि १२ दुरिष्टं दुरधीतं पापं यच्चाज्ञानतो कृतम् । अयाजिताश्चासंयाज्यास् तत् पावमानीभिरहं पुनामि १३ अमन्त्रमन्नं यत्किञ्चिद् हूयते च हुताशने । संवत्सरकृतं पापं तत् पावमानीभिरहं पुनामि १४ ऋतस्य योनयोऽमृतस्य धाम विश्वा देवेभ्यः पुण्यगन्धाः । ता न आपः प्र वहन्तु पापं शुद्धा गच्छामि सुकृतामु लोकं तत्पावमानीभिरहं पुनामि १५ पावमानीः स्वस्त्ययनीर्याभिर्गच्छति नान्दनम् । पुण्यांश्च भक्षान् भक्षयत्यमृतत्वं च गच्छति १६ पावमानीः पितॄन् देवान् ध्यायेद्यश्च सरस्वतीम् । पितॄंस्तस्योप वर्तेत क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् १७ पावमानं परं ब्रह्म शुक्रं ज्योतिः सनातनम् । ऋषींस्तस्योप तिष्ठेत् क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् १८ पावमानं परं ब्रह्म ये पठन्ति मनीषिणः । सप्तजन्म भवेद्विप्रो धनाढ्यो वेदपारगः १९ दशोत्तराण्यृचांश्चैव पावमानीः शतानि षट् । एतज्जुह्वन् जपेन् मन्त्रं घोरमृत्युभयं हरेत् २० एतत्पुण्यं पापहरं रोगमृत्युभयापहम् । पठतां शृण्वतां चैव ददाति परमां गतिम् ॥ (ऋ० परि० सू० १८ म० १—२१) ।

२—यदेतन्मण्डलन्तपति । तन्महदुक्थन्ता ऽऋचः स ऽऋचाँल्लोकोऽथ यदेतदर्चिर्दीप्यते तन्महाव्रतन्तानि सामानि स साम्नाँल्लोकोऽथ यऽएषऽएतस्मिन्मण्डले पुरुषः सोऽग्निस्तानि यजूँषि स यजुषांल्लोकः । (शतपथ ब्रा० का० १०, अ० ५, ब्रा० २, म० १-२३) ।

(हविर्गुणादिकथने तथा प्रौढपादादिना भोजने पाने च विचारः)

हेमाद्रावत्रिः—हुङ्कारेणापि यो ब्रूयाद्धस्ताद्वापि वदेद् गुणान्। भूतलाच्चोद्धरेत्पात्रं मुञ्चेद्धस्तेन वा पिबेत्। प्रौढपादो बहिःकच्छो बहिर्जानुकरोऽपि वा। अङ्गुष्ठेन विनाऽश्नाति मुखशब्देन वा पुनः॥ पीतावशिष्टतोयानि पुनरुद्धृत्य वा पिबेत्। खादितार्धात् पुनः खादन्मोदकानि फलानि च॥ मुखेन वा धमेदन्नं निष्ठीवेद्भाजनेऽपि वा। इत्थमश्नन् द्विजः श्राद्धं हत्वा गच्छत्यधोगतिम्॥

हेमाद्रि में अत्रि ने कहा है—जो हुँकार से भी (वसिष्ठः—हविर्गुणा न वक्तव्या यावन्न पितृतर्पणम्। पितृभिस्तर्पितैः पश्चाद्वक्तव्यं शोभनं हविः॥) या हाथ से अन्नों के गुणों को कहता है भूतल (पृथ्वी) से भोजनपात्र को उठाता हैं या छोडता है फिर हाथ से पीता है।

प्रौढपाद (आसनारूढपादस्तु जानुनोर्वाऽथ जङ्घयोः। कृतावसक्थिको यस्तु प्रौढपादः स उच्यते॥) पैर पर पैर रखना, (आसनारूढपाद इति हरदत्तिः) बहिः[1] कच्छ बहिर्जानुकर (हाथ को जानु (पैर) के बाहर कर) बिना अंगूठा लगाये जो खाता है, मुख से शब्द करता हुआ भोजन करता है, पीने से[2] अवशिष्ट जल फिर से पान करता है, खाने से आधे[3] बचे मोदक (लड्डू) तथा फलों को फिर से खाता है। मुख से अन्न को फूक मारता है या पात्र में थूकता है। इसप्रकार भोजन करता हुआ श्राद्ध को नाश कर अधोगति को जाता है।

(श्राद्धे भोक्तृनियमकथनम्)

जाबालिः—इष्टमुष्णं हविष्यं च दद्यादन्नं शनैः शनैः।

जाबालि ने कहा है—जो अभीष्ट (चाहा हुआ) हविष्य उष्ण (गरम-तप्त) अन्न को धीरे-धीरे देना चाहिये।

वृद्धशातातपः—अपेक्षितं याचितव्यं श्राद्धार्थमुपकल्पितम्।
न याचते द्विजो मूढः स भवेत्पितृघातकः॥

वृद्धशातातप ने कहा है—श्राद्ध के निमित्त जो बना है उसे मूर्ख द्विज नहीं माँगता है वह पितृघातक (मारनेवाला) होता है।

यत्तु यमः—श्राद्धे द्विजो नैव दद्यान्न याचेन्नैव दापयेत्। इति तदत्तसम्पादितवस्तुविषयमिति हेमाद्रिः।

जो यम ने कहा है—द्विज श्राद्ध के लिए जो बना हो उसे नहीं देना चाहिये न मांगना चाहिये न दिलवाना चाहिये। यह असंपादित वस्तु (जो बनी न हो) विषयक है। यह हेमाद्रि ने कहा है।

हारीतः—ऊर्ध्वपाणिश्च विहसन् सक्रोधो विस्मयान्वितः।
भग्नपृष्ठश्च यद्भुङ्क्ते न तत्प्रीणाति वै पितॄन्॥

हारीत ने कहा है—ऊपर को हाथ कर हँसकर क्रोध के सहित विस्मयान्वित (आश्चर्ययुत) हो, भग्नपीठ (टेढी मेढी पीठ) कर जो भोजन करता है निश्चय से पितरों को तृप्त नहीं करता है।

प्रचेताः—न स्पृशेद्वामहस्तेन भुञ्जानोऽन्नं कदाचन।
न पादौ न शिरो बस्तिं न पदा भाजनं स्पृशेत्॥

प्रचेता ने कहा है—भोजन करता हुआ कभी भी बायें हाथ से (ब्राह्मणादि) अन्न का स्पर्श न करे। पैरों, शिर, बस्ति (नाभि से नीचे का भाग) और पैर से पात्र को स्पर्श न करे।

१—बहिःकच्छ उत्तरवाससो बहिर्भूतकच्छद्वय इति प्रयोगपारिजातकारः।
२—मनुः—यद्वेष्टितशिरा भुङ्क्ते यद् भुंक्ते दक्षिणामुखः। सोपानत्कश्च यद् भुंक्ते तद्वै रक्षांसि भुञ्जते॥
३—निगमः—मांसापूपफलेक्ष्वादि दन्तच्छेदं न भक्षयेत्। ग्रासशेषं न पात्येत पीतशेषं तु नो पिबेत्॥

शङ्खः—श्राद्धपङ्क्तौ तु भुञ्जानो ब्राह्मणो ब्राह्मणं स्पृशेत् ।
तदन्नमत्यजन् भुक्त्वा गायत्र्यष्टशतं जपेत् ॥

शंख ने कहा है—श्राद्ध की पंक्ति में भोजन करते हुए ब्राह्मण ब्राह्मण का स्पर्श करे तो—उस पात्र में स्थापित अन्न का त्यागकर गायत्री मन्त्र को एक सौ आठ बार। (मरीचिः—उच्छिष्टेन तु संस्पृष्टो द्रव्यहस्तो नरो यदि। भूमौ निधाय तद्र द्रव्यमाचान्तोऽभ्युक्षणात् शुचिः॥ पुनः परिवेष्टितव्यमित्यर्थः। अत्रिः—भुञ्जानस्य तु विप्रस्य सिक्थोच्छिष्टं तु यः स्पृशेत्। प्रक्षाल्य भुक्त्वा स्नात्वा च गायत्री द्विशतं जपेत्। सहस्त्रं जप उपोषणं चेत्यर्थः। शंखः—उच्छिष्टलेपनस्पर्शे प्रक्षाल्यान्येन वारिणा। भोजनान्ते नरः स्नात्वा गायत्री त्रिशतं जपेत्॥ इसलिए प्रत्येक ब्राह्मणों के लिए आसन अलग-अलग रहे तथा भूमि में बैठने का स्थान कुछ जगह छोड़कर होना चाहिए। एक ही आसनादि पर जो ब्राह्मणों को श्राद्धादि के निमित्त बैठाया जाता है। वह अशास्त्रीय तथा लोकविरुद्ध भी मालुम होता है।) जप करे।

उशनाः—भोजनं तु न निःशेषं कुर्यात् प्राज्ञः कथञ्चन।
अन्यत्र दध्नः क्षीराद्वा क्षौद्रात्सक्तुभ्य एव च ॥

उशना ने कहा है—बुद्धिमान् व्यक्ति कभी भी निःशेष भोजन न करे। अर्थात्—थाली में कुछ अवश्य छोड दे। लेकिन दधि, दूध सहत और सत्तु को नहीं छोड़ना चाहिये।

ब्राह्मे—न चाश्रु पातयेज्जातु न शुष्कां गिरमीरयेत् ।
न चोद्वीक्षेत् भुञ्जानान् न च कुर्वीत मत्सरम् ॥

ब्रह्मपुराण में कहा है—आँसू को न गिरावे। न रूखी वाणी कहे। भोजन करते हुए ब्राह्मणों को न देखे और न मत्सर (डाह, ईर्ष्या) करे।

यमः—स्वाध्यायं श्रावयेत्सम्यक् धर्मशास्त्राणि चैव हि ।

यम ने कहा है—वेद और धर्मशास्त्रों को अच्छीप्रकार से सुनावे।

प्रचेताः—भुञ्जानेषु तु विप्रेषु ऋग्यजुःसामलक्षणम् । जपेदभिमुखो भूत्वा पित्र्यं चैव विशेषतः ॥ यजूंषि चैव रुद्रं च राक्षोघ्नीर्ऋचं एव च । राक्षोघ्नीः=कृणुष्वपाजः रक्षोहणमित्याद्याः ।

प्रचेता ने कहा है—ब्राह्मणों के भोजन करते समय में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और विशेषकर पितरों के मन्त्रों को उनके सामने होकर जप (पाठ) करे। यजुर्वेद का संहिता का रुद्र ('नमस्ते' यह सम्पूर्ण सोलहवाँ अध्याय) और ऋग्वेद का रक्षोघ्नी (कृणुष्वपाजः) तथा रक्षोहणम्[1] इत्यादि।

तत्रैव निगमः—भुञ्जत्सु जपेत्पावमानीरुदीरता मध्वन्नवतीश्च। अन्नवत्यः पितुं नुस्तोषमिति।

१—रक्षोहणं वलगहनं वैष्णवीमिदमहन्तं वलगमुत्किरामि यम्मे निष्ट्यो यममात्यो निचखाने दमहन्तं वलगमुत्किरामि यम्मे समानो यमसमानो निचखाने दमहन्तं वलगमुत्किरामि यम्मे सबन्धुर्यमसबन्धुर्निचखाने दमहन्तं वलगमुत्किरामि यम्मे सजातो यमसजातो निचखानोत्कृत्याङ्किरामि १ रक्षोहणो वो वलगहनः प्रोक्षामि वैष्णवान् रक्षोहणो वो वलगहनो वनयामि वैष्णवान् रक्षोहणो वो वलगहनो वस्तृणामि वैष्णवान् रक्षोहणौ वां वलगहनाऽउपदधामि वैष्णवी रक्षोहणौ वां वलगहनौ पर्यूहामि वैष्णवी वैष्णवमसि वैष्णवास्थ २ (य० अ० ५ म० २३, २५)। रक्षसां भागोऽसि निरस्तँ᳕ रक्षऽइदमहँ᳕ रक्षोभितिष्ठामीदमहँ᳕ रक्षोवबाधऽइदमहँ᳕ रक्षोधमन्त मोनयामि। घृतेन द्यावापृथिवी प्रोर्णुवाथां वायो वेस्तो कानामग्निराज्यस्य वेतु स्वाहा स्वाहा कृते ऊर्ध्वनमसंमारुतं गच्छतम्॥ (य० सं० अ० ६ म० १६)। रक्षोहा विश्वचर्षणि रभियोनिमयोहते। द्रोणे सधस्थमासदत्॥ (य० स० अ० २६ म० २६)। इन्द्रासोमा तपतं रक्ष उब्जतं न्यर्पयत वृषणा तमोवृधः। परा शृणीतमचितो न्योषतं हतं नुदेथां नि शिशीतमत्त्रिणः १ इन्द्रासोमा समघशंसमभ्य१घं तपुर्ययस्तु चरुरग्निवाँ इव। ब्रह्मद्विषे क्रव्यादे घोरचक्षसे द्वेषो धत्तमनवायं किमीदिने २ इत्यादि मन्त्र। (ऋ० ७।१०४।म० १ से)। पावमानीः—स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोमधारया। इन्द्राय पातवे सुतः १ रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहतम्। द्रुणा सधस्तमासदत्॥ इत्यादि ऋग्वेद ९।१।१ के बहुत मन्त्र हैं।

वहीं पर निगन ने कहा है—भोजन करते समय पावमानी,[1] मधु[2] और अन्नवती[3] ऋचाओं का पाठ करे। अन्नवती—पितुनुस्तोषम्—यह है।

(श्राद्धे विप्रवमने प्रायश्चित्तकथनम्)

पृथ्वीचन्द्रोदये भरद्वाजः—भुञ्जानेषु तु विप्रेषु प्रमादात् स्रवते गुदम्। पादकृच्छ्रं ततः कृत्वा अन्यं विप्रं नियोजयेत् ॥ क्षणपाद्यादि दत्त्वेत्यर्थः।

पृथ्वीचन्द्रोदय में भरद्वाज ने कहा है—ब्राह्मणों के भोजन करते समय प्रमाद से गुदा का स्रव (चूना, बहना) हो जाय तो [4]पादकृच्छ्र प्रायश्चित्त (यह प्रायश्चित्त श्राद्धकर्ता को होता है।) कर दूसरे ब्राह्मण को निमन्त्रण करे। क्षण-पाद्य आदि दे यह अर्थ है। (मूत्र के निकलने पर पवित्र हो जल का स्पर्श कर अहोरात्र उपवास कर पञ्चगव्य से शुद्धि होती है। शूद्रादि के स्पर्श में भी है।

विप्रवमने तत्रैव दक्षः—निमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे भोजने मुखनिःसृते। तदैव होमं कुर्वीत स्वाग्नौ विप्रः समाहितः ॥ प्राणादिपञ्चभिर्मन्त्रैर्यावद्द्वात्रिंशसंख्यया। (द्वात्रिंशदाहुतीर्हुत्वा होमशेषं समापयेत्।) ब्राह्मणस्तु ततः कृत्वा (स्नात्वा) घृतप्राशनमाचरेत् ॥

ब्राह्मण के वमन (उलटी) हो जानेपर वहींपर दक्ष ने कहा है—निमन्त्रित वैश्वदेविक ब्राह्मण के मुख से वमन हो जाय तो उसीसमय अपनी लौकिक अग्नि में (परिसमूहनादि प्राप्त्यर्थ 'स्व' पद को कहा है) समाहित मन से ब्राह्मण प्राणादि पाँच मन्त्रों से जबतक बत्तीस[5] आहुति न हो तब तक दे। बत्तीस आहुति का हवन कर होमशेष समाप्त करे। तदनन्तर ब्राह्मण स्नानादि कर घृत का भक्षण करे।

(ऋग्विधाने तु विशेषः)

ऋग्विधाने तु—इन्द्राय सामसूक्तेन श्राद्धविघ्नो यदा भवेत्। अग्न्यादिभिर्भोजनेन श्राद्धं सम्पूर्णमेव हि ॥ इत्युक्तम्। अग्न्यादिभिरिति लौकिकाग्निस्थापनचरुनिर्वापाद्याज्यभागान्ते नामगोत्रपूर्वमग्नौ पितॄनावाह्य सम्पूज्याक्षत्यागं कृत्वा प्राणादिभिर्द्वात्रिंशदाहुतीर्हुनेदित्यर्थः। भोजनेन= पुनःश्राद्धेन। तेन होमः पुनःश्राद्धं वेति पक्षद्वयमुक्तम्। सूक्तजपस्तु उभयानुगतः।

ऋग्विधान में तो कहा है—यदि श्राद्ध में विघ्न (वमन) हो जाय तो 'इन्द्राय साम'[6] इस सूक्त से

१—उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः। असुं य ई युरवृका ऋतज्ञास्तेनो वन्तु पितरो हवेषु १ (इत्यादि मन्त्र ऋग्वेद मं० १० सू० १५ म० १–१४) यजुर्वेद अध्याय १९–मं० ४९–६१ मन्त्र तक) श्राद्धकाशिका में लिखा है—कोई 'सुरावन्तम्' इत्यादि पन्द्रह मन्त्र मानते हैं। यह ठीक नहीं है। क्योंकि 'पितरो देवता येषाम्' इस तद्धित से 'उदीरताम्' इत्यादि का ही पितृकार्य में ग्रहण है।

२—मधुवाता ऋतायते—इत्यादि तीन मन्त्र हैं। जो पीछे जा चुके हैं।

३—पितुं न स्तोषं महो धर्माणं तविषीम्। यस्य त्रितो व्योजसा वृत्रं विपर्वमर्दयत् १ स्वादो पितो मधो पितो वयं त्वा ववृमहे। अस्माकमविता भव २ उप नः पितवा चर शिवः शिवाभिरूतिभिः। मयोभुरद्विषेण्यः सखा सुशेवो अद्वयाः ३ तव त्ये पितो रसा रजांस्यनु विष्ठिताः। दिवि वाता इव श्रिताः ४ तव त्ये पितो ददतस्तव स्वादिष्ठ ते पितो। प्र स्वाद्मानो रसानां तुविग्रीवा इवेरते ५ त्वे पितो महानां देवानां मनो हितम्। अकारि चारुकेतुना तवाहिमवसावधीत् ६ यददो पितो अजगन् दिवस्व पर्वतानाम्। अत्रा चिन्नो मधो पितो ऽरं भक्षाय गम्याः ७ यदपामोषधीनां परिंशमारिशामहे। वातापे पीव इद् भव ८ यत्ते सोम गवाशिरो यवाशिरो भजामहे। वातापे पीव इद् भव ९ करंभ ओषधे भव पीवो वृक्क उदारथिः। वातापे पीव इद् भव १० तं त्वा वयं पितो वचोभिर्गावो न हव्या सुषूदिम। देवेभ्यस्त्वा सधमादमस्मभ्यं त्वा सधमादम् ॥ (ऋ० १ सू० १८७ म० १–११)।

४—एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च। उपवासेन चैवायं पादकृच्छ्रः प्रकीर्तितः ॥ (या० प्रा० ३१८) दिन में एक ही बार और दूसरे दिन रात में एकसमय भोजन करे। तीसरे दिन बिना मांगे प्राप्त हुआ भोजन करे तथा चौथे रोज उपवास करे तो पादकृच्छ्रव्रत होता है।

५—अत्र प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा, समानाय स्वाहा—इत्याद्यैः पञ्चभिर्मन्त्रैः पुनःपुनः षड्वारमावर्तितैस्त्रिंशत्संख्या भवति। अतोद्वात्रिंशत्पूर्तयेप्राणापानमन्त्रौ। पुनरावर्तनीयौ। इतिकृष्णंभट्टीटीकायाम्। श्राद्धमञ्जर्याम्—पञ्चभिर्मन्त्रैः प्रतिमन्त्रं द्वात्रिंशत्संख्ययेत्यन्ये। एवं षष्ट्यधिकशतमाहुतयो भवन्ति।

६—इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत्। धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे १ त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः। विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि २ विभ्राजञ्ज्योतिषा स्व१रगच्छो रोचनं दिवः। देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे ३ एन्द्र नो गधि

लौकिक अग्नि का स्थापन कर चरु निर्वापादि आज्यभाग के अन्त में पिता का आवाहन, नाम—गोत्रपूर्वक अग्नि में पितरों का (वैश्वदेविक ब्राह्मण के या पितृब्राह्मण के वमन में बराबर का प्रायश्चित्त है। वैश्वदेविक ब्राह्मण के वमन में चरु न करे तथा पितृब्राह्मण के वमन में करे यह किसी का मत है। इसीप्रकार व्रीहि और यववत् इन दोनों का एक जगह समावेश असम्भव है।) आवाहन और पूजन कर आज्यभाग के अन्न में प्राणादियों से बत्तीस आहुति का हवन करे यह अर्थ है। भोजनशब्द से-फिर से श्राद्ध करे। इससे होम और फिर से श्राद्ध करे ये दो पक्ष कहा है। सूक्तजप तो दोनों तरफ प्राप्त है।

सङ्ग्रहे—प्राधान्यं पिण्डदानस्य भोजनस्य तदङ्गता। अतो भुक्तिक्रियाहानौ श्राद्धावृत्तिर्न मन्यते॥ पिण्डदानोत्तरं वान्तौ होम एव नावृत्तिः। पिण्डदानात्प्राग्वान्तौ तद्दिने उपवासं कृत्वा परेद्युः पुनः श्राद्धं कार्यमित्यर्थः।

स्मृतिसंग्रह में कहा है—श्राद्ध में पिण्डदान की प्रधानता है तथा भोजन उसका अंग है। इसलिए भुक्ति (भोजन) की क्रिया के हानि में श्राद्ध की आवृत्ति (श्राद्ध का फिर से करना) नहीं मानते हैं। अतः पिण्डदान के बाद वमन में होम ही होता है श्राद्ध की आवृत्ति नहीं होती है। पिण्डदान के पहले वमन होने पर उस दिन उपवास कर दूसरे दिन फिर से श्राद्ध करे यह अर्थ है।

तत्रैव—श्राद्धपङ्क्तौ तु भुञ्जानो ब्राह्मणो वमते यदि।
लौकिकाग्निं प्रतिष्ठाप्य अर्चयेच्च हुताशनम्॥

वहीं पर कहा है—श्राद्धपङ्क्ति में भोजन करता हुआ ब्राह्मण यदि वमन करे तो लौकिक अग्नि का स्थापन कर अग्नि का पूजन करे।

तथा—एक एव यदा विप्रो भोजने छर्दितो यदि।
तदैवाग्निं समाधाय होमं कुर्याद्यथाविधि॥

और एक ही ब्राह्मण के भोजन के समय यदि छर्दित (उलटी) हो जाय तो उसीसमय अग्नि की स्थापना कर यथाविधि होम करे।

द्वितीयपक्षे ऋग्विधाने—भोजनोपक्रमादूर्ध्वं प्रक्रमात्पूर्वतो यदि।
श्राद्धविघ्ने पुनः कार्यं जपहोमौ न तृप्तिदौ॥

दूसरे पक्ष में ऋग्विधान में कहा है—भोजन करने के बाद और यदि पिण्डदान करने के पहले पिण्ड-

---

प्रियः सत्राजिदगोह्यः। गिरिर्न विश्वतस्पृथुः पतिर्दिवः ४ अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी। इन्द्रासि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः ५ त्वं हि शश्वतीनामिन्द्र दर्ता पुरामसि। हन्ता दस्योर्मनोर्वृधः पतिर्दिवः ६ अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा कामान्महः ससृज्महे। उदेव यन्त उदभिः ७ वार्ण त्वा यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि। वावृध्वांसं चिदद्रिवो दिवे दिवे ८ युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे। इन्द्रवाहा वचोयुजा९ त्वं न इन्द्रा भरँ ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे। आ वीरं पृतनाषहम् १० त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ। अधा ते सुम्नमीमहे ११ त्वां शुष्मिन् पुरुहूत वाजयन्तमुप ब्रुवे शतक्रतो। स नो रास्व सुवीर्यम् १२ (ऋ० म० ८ सू० ९८ म० १-१२) सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे। जुहूमसि द्यविद्यवि १ उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब। गोदा इद् रेवतो मदः २ अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम्। मा नो अतिख्य आ गहि ३ परे हि विग्रमस्तृतमिन्द्रं पृच्छा विपश्चितम्। यस्ते सखिभ्य आ वरम् ४ उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत। दधाना इन्द्र इद् दुवः ५ उत नः सुभगाँ अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः। स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ६ एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनम्। पतयन् मन्दयत्सखम् ७ अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभवः। प्रावो वाजेषु वाजिनम् ८ तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो। धनानामिन्द्र सातये ९ यो रायो ३ वनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा। तस्मा इन्द्राय गायत १० इत्यादि।

अमूर्तानां च मूर्तानां पितॄणां दीप्ततेजसाम्। नमस्यामि सदा तेषां ध्यायिनां योगचक्षुषाम्। चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पञ्चभिरेव च। हूयते च पुनर्द्वाभ्यां स मे विष्णुः प्रसीदतु॥ इति सप्तार्चिजपस्तु सर्वेषाम्। ओ श्रावय, अस्तु श्रौषट्, यज, ये यजामहे, इति चतुर्भिरित्याद्यर्थः।

वान श्राद्ध में विघ्न हो जाय तो फिर से श्राद्ध करे। इसमें जप (इन्द्राय सामसूक्तजप) और होम तृप्ति को देनेवाले नहीं होते हैं।

स्मृतिसङ्ग्रहे—अकृते पिण्डदाने तु भुञ्जानो ब्राह्मणो वमेत्। पुनः पाकात्तु कर्तव्यं पिण्डदानं यथाविधि॥ पिण्डदानम्=श्राद्धम्।

स्मृतिसंग्रह में कहा है—पिण्डदान के न करने पर भोजन करता हुआ ब्राह्मण वमन करता है तो फिर से पाक से यथाविधि पिण्डदान (श्राद्ध) करना चाहिये। पिण्डदान—माने श्राद्ध।

अकृते पिण्डदाने तु पिता यदि वमेत्तदा। पुनः पाकं प्रकुर्वीत श्राद्धं कुर्याद्यथाविधि॥ इति तत्रैवोक्तेः।

पिण्डदान न करने पर पिता के स्थानापन्न ब्राह्मण यदि वमन करे तो फिर से पाक (भोजन) बनाकर यथाविधि श्राद्ध करे—ऐसा वहीं पर कहा है।

तथा—पित्रर्थानां त्रयाणां हि पिता च वमते यदि। तद्दिने चोपवासः स्यात् पुनः श्राद्धं परेऽहनि॥ वमने वा विरेके वा तद्दिनं परिवर्जयेत्॥ एषु वचनेषु मूलं चिन्त्यम्। इदं मासिकाब्दिकविषयम्। दर्शादौ तु वान्तावामेन तदैव कार्यम्।

और वहीं पर कहा है—पितृ, पितामह और प्रपितामह इन तीनों में पितृस्थानीय ब्राह्मण यदि वमन करे तो उस दिन उपवास कर दूसरे दिन फिर से श्राद्ध करे। वमन या विरेक (मलाशय को रिक्त करना, जुलाव की दवा) में उस दिन त्याग करे। इन वचनों में मूल विचारणीय है। यह मासिक और आब्दिक (वार्षिक) विषयक है। अमावास्या आदि में तो वमन करने पर अन्न से उसीदिन श्राद्ध करे।

(श्राद्धविघ्ने द्विजातीनां विचारः)

श्राद्धविघ्ने द्विजातीनामामश्राद्धं प्रकीर्तितम्। अमावास्यादिनियतं माससम्वत्सरादृते॥ इति मरीचिस्मृतेः। श्राद्धे पिण्डदानमेव प्रधानमिति कर्काचार्याः। तन्मते दक्षोक्तो होम एव नावृत्तिः। विप्रभोजनमिति मेधातिथिः। भोजनपिण्डदानाग्नौकरणानीति कपर्दिधूर्तस्वामिहेमाद्र्यादयः। तन्मते पूर्वोक्तो निर्णयः। अन्नत्यागमात्रं प्रधानम्। भोजनं तु प्रतिपत्तिरूपमङ्गम्। अतो वान्तौ तद्धानेऽपि नावृत्तिरितिगौडमैथिलादयः। तन्न श्राद्धस्य यागदानोभयरूपत्वात्सम्पूर्णदानाभावाद्भोजनस्याङ्गत्वेऽपि सोमवमने इव नैमित्तिकविधानमिति युक्तं प्रतीमः।

श्राद्ध के विघ्न में द्विजातियों को आम (अन्न) श्राद्ध अमावास्या आदि में नियत कहा है। मासिक तथा वार्षिक को छोड़कर यह मरीचिस्मृति में कहा है। श्राद्ध में पिण्डदान ही प्रधान है—यह कर्काचार्य मानते हैं। उनके मत में दक्ष द्वारा कहा हुआ होम ही होता है। आवृत्ति नहीं होती है। मेधातिथि ने कहा है कि ब्राह्मणभोजन है। भोजन, पिण्डदान और अग्नौकरण ये कपर्दि, धूर्तस्वामी, हेमाद्रि आदि मानते हैं। उनके मत में पूर्वोक्तनिर्णय है। अन्नत्यागमात्र प्रधान है। भोजन तो प्रतिपत्तिरूप (हासिल करना) अंग है। इसलिए वमन में या उसकी हानि में आवृत्ति नहीं है—यह गौड, मैथिल आदि कहते हैं। यह ठीक नहीं है। श्राद्ध का याग और दान उभयरूप होने से संपूर्ण दान के अभाव से भोजन के अंगत्व होने पर भी सोमवमन[1] के सदृश नैमित्तिकविधानयुक्त प्रतीत होता है।

१—सोमपान दो प्रकार का होता है—लौकिक और वैदिक। यहाँ पूर्व पक्ष है कि लौकिक सोमवमन करने वाले के लिए 'सोमेन्द्रं चरुं निर्वपेत् श्यामाकं सोमवामिनः' इस विधिवाक्य के अनुसार सोमेन्द्र देवता सम्बन्धी स्यामक चरु का निर्वाप करना चाहिए। क्योंकि इस लौकिक वमन में इन्द्रियों की शक्ति का ह्रास होता है। इसके बाद सिद्धान्त यह है कि लौकिक सोमपान में वह सोम किसी को पचता नहीं है। इसलिए लौकिक वमन में उपर्युक्त चरु नहीं होता है। वैदिक सोमपान में भी यदि यजमान को ही वमन हो तभी इस उपर्युक्त चरु का निर्वाप होता है। किसी अन्य ऋत्विज को वैदिक सोमपान के बाद वमन होने पर भी यह चरु निर्वाप नहीं होता है। उसीप्रकार प्रकृत स्थल श्राद्ध में किसी ब्राह्मण या श्राद्धकर्ता को वमन होनेपर विधि विहित नैमित्तिक विधान होना चाहिए, यह युक्त है, ऐसा भट्ट का मत है।

—जैमिनीय न्यायमाला अ० ३, पा० ४, अधिकरण १७,१८।

अत्रेदं तत्त्वम् । वैश्वदेविकस्य वमने होम एव नावृत्तिः अङ्गत्वात् । तस्य रक्षार्थत्वात् इष्टिश्राद्धे क्रतूदक्षौ इत्यादिस्मृतेश्च । तत्र जयान् जुहुयादितिवत् । पितामहादेरपि तथा । पितेत्युक्तेरिति केचित् । तस्यापि प्रधानत्वात् पितृवदिति तु युक्तम् । सपिण्डीकरणादौ वार्षिकवत् ।

यहाँ पर यह तत्त्व है—वैश्वदेविक ब्राह्मण के वमन होने पर होम ही होता है, आवृत्ति श्राद्ध की नहीं होती है । क्योंकि—अंग है और वह रक्षा के लिये है । इष्टिश्राद्ध में क्रतु तथा दक्ष विश्वेदेव हैं—इत्यादि स्मृति में कहा है । वहाँपर जयसंज्ञक मन्त्रों से (ऋद्धि की कामना से (वैदिक कर्म में ही) जयादि होम की तरह । वैसे ही पितामह आदि में भी है । कोई 'पिता' यह कहते हैं । उसका भी प्रधान होने से पिता की तरह । (उस दिन उपवास कर दूसरे दिन श्राद्ध करे—यह अर्थ है ।) युक्त है । सपिण्डीकरणादि में तो वार्षिकश्राद्ध की तरह (उभय प्राधान्य होने से) ।

सपिण्डीकरणादीनि यानि श्राद्धानि षोडश । तत्र पिण्डप्रधानत्वं प्रेतत्वविनिवर्तकम् ॥ इति स्मृतेः । महैकोद्दिष्टादौ तूभयप्राधान्यादावृत्तिरेव, एक एव द्विजो भोज्यः पिण्डोऽप्येको विधीयते । इति स्मृतेः । वृद्धिसङ्कल्पनित्यश्राद्धादौ तु भोजनप्राधान्याद्वान्तादावावृत्तिरेव, वृद्धिश्राद्धे विकल्पेन पिण्डदानं बुधैः स्मृतम् । नित्यश्राद्धमदैवं स्यात् पिण्डदानविवर्जितम् ॥ इति स्मृतेः,

भुक्तिक्रियायाः प्राधान्यं श्राद्धे सङ्कल्पसंज्ञके । तत्रैव पितृविप्रस्य तूपघाते पुनः क्रिया ॥ इति सङ्ग्रहोक्तेश्च । मघादावप्येवम् । तीर्थमहालयादौ दर्शवदित्याशार्काद्यालोचनेन प्रतीमः ।

सपिण्डीकरणान्त जो सोलह श्राद्ध हैं उसमें प्रेतत्व को हटाने में पिण्ड ही प्रधान है—ऐसा स्मृति में कहा है । महैकोद्दिष्टादि में तो उभयप्रधान होने से आवृत्ति ही है । स्मृति में कहा है—एक ही ब्राह्मण को भोजन करावे और एक ही पिण्ड का विधान करे । वृद्धि-संकल्प, नित्यश्राद्धादि में भोजनप्रधान होने से वमन में आवृत्ति ही है ।

विद्वानों ने वृद्धिश्राद्ध में विकल्प से पिण्डदान कहा है । नित्यश्राद्ध विश्वेदेवा और पिण्डदान से रहित होता है । एसा स्मृति में कहा है ।

और संग्रह में कहा है—संकल्पसंज्ञकश्राद्ध में भोजनरूपीक्रिया का प्राधान्य है । वहीं पर पिता के ब्राह्मण को यदि उपघात (प्रहार, विनाश) हो जाय तो फिर से क्रिया (कर्म) करे । मघा आदि में एसा ही है । तीर्थ, महालय आदि में अमावास्या की तरह करे—यह आशार्क आदि के आलोचन (विचार विमर्श) से प्रतीत होता है ।

(श्राद्धे तृप्तान् ज्ञात्वा मन्त्रजपादिकथनम्)

आश्वलायनः—(अ० ४, ख० ८, सू० १०-१२, पृ० १३०-१३१) 'तृप्तान् ज्ञात्वा मधुमतीः श्रावयेदक्षन्नमीमदन्तेति च । सम्पन्नं पृष्ट्वा यद्यदन्नमुपभुक्तं तत्तत्स्थालीपाकेन सह पिण्डार्थमुद्धृत्य शेषं निवेदयेत् अभिमतेऽनुमते वा' इति । अत्र गायत्री मध्विति त्रिकजपोऽपि ज्ञेयः,

तृप्तान् बुध्वान्नमादाय सतिलं पूर्ववज्जपेत् । इति प्रचेतसोक्तेः ।

आश्वलायन ने कहा है—ब्राह्मणों को तृप्त जानकर मधुमती (मधुवाता ऋतायते इत्यादि पूर्वकथित तीन ऋचाओं को) को और 'अक्षन्नमीमदन्त'[1] इसको सुनावे । संपन्न (पूर्ण कर दिया गया) एसा पूछकर (ब्राह्मण कहें कि—सुप्रन्न हैं) जो जो अन्न भोजन किया है उस उस को स्थालीपाक के साथ पिण्ड के लिए निकालकर अवशिष्ट निवेदन करे । अभिमत—(ब्राह्मणैर्यदि स्वीकर्तुमभिमतः शेषः तं तदा तेभ्यो निवेदयेत् । यदि अनुमतः—इष्टैः सह भुज्यताम् इति तदा स्वयमेव सर्वं स्वीकृत्य बन्धुभिः भुञ्जीत) ब्राह्मणगण यदि स्वीकार करने में रुचि रखते हों तो अवशिष्ट अन्न उन लोगों के लिये निवेदन करे । यदि

[1]—अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत । अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ (ऋ० १।८२।२) ।

'इष्टों के साथ भोजन करो' तब स्वयं ही सब अन्न को स्वीकार कर बन्धुओं के साथ भोजन करे। यहाँ पर गायत्रीमन्त्र से जप और मधुवाता–इन ऋचाओं से भी जप जानना कहा है।

प्रचेतस ने कहा है—ब्राह्मणों को तृप्त जानकर अन्न को ग्रहणकर तिल के सहित पूर्ववत् जप करे।

(भोजनोत्तरं 'तृप्ताः स्थ' इत्यादिवाक्येन प्रश्नादिकथनम्)

व्यासः—तृप्ताः स्थेति तु पृष्टास्ते ब्रूयुस्तृप्ताः स्म इत्यथ। अभिमते विप्रैः स्वीकर्तुमिष्टे।

व्यास ने कहा है—आप सब तृप्त (तृप्ताः स्थः) हैं ऐसा ब्राह्मणों से पूछने पर वे ब्राह्मण कहें कि हम सब तृप्त (तृप्ताः स्मः) हैं। ब्राह्मणों के अभिमत (स्वीकार) करने पर।

(अन्नशेषैः किं कार्यमित्यादिकथनम्)

शौनकोऽपि—अन्नशेषैश्च किं कार्यमिति पृच्छेत् तांस्ततः। ते इष्टैः सह भोक्तव्यमिति प्रत्युक्तिपूर्वकम् ॥ प्रदद्युः सकलं तस्मै स्वीकुर्युर्वा यथारुचि।

शौनक ने भी कहा है—तदनन्तर उन श्राद्धीय ब्राह्मणों से पूछे कि बचे हुए अन्न का क्या करें। वे ब्राह्मण उसके कहने पर कहें कि इष्ट मित्रों के साथ भोजन करें। संपूर्ण अन्नपाक को उसके लिए दें या अपनी इच्छा के अनुसार स्वयं स्वीकार करें।

(श्राद्धविशेषे प्रश्नभेदमाह)

श्राद्धविशेषे प्रश्नभेदमाह हेमाद्रौ विष्णुः—पित्र्ये स्वदितमिति, गोष्ठ्यां सुश्रुतं सम्पन्नमिति, अभ्युदये दैवे रोचते इति, आयुष्यमिति स्वैरेषु। स्वैरमिच्छाश्राद्धम्।

श्राद्धविशेष में प्रश्नभेद हेमाद्रि में विष्णु ने कहा है-पितृश्राद्ध में—स्वदितम्, गोष्ठीश्राद्ध में—सुश्रुतम् वृद्धिश्राद्ध में संपन्नम्, दैवश्राद्ध में—रोचते। इच्छाश्राद्ध में आयुष्य कहे।

(श्राद्धे विकरनिरूपणम्)

याज्ञवल्क्यः—(आचा० श्लो० २४१) अन्नमादाय तृप्ताःस्थ शेषं चैवानुमान्य च। तदन्नं प्रकिरेद्भूमौ दद्याच्चापः सकृत् सकृत् ॥ इदं चात्र विकिरदानमन्यशाखिनाम्। आश्वलायनानां तु पिण्डदानान्त एव सूत्रकृतोक्तम्। कात्यायनस्तु विकिरोत्तरं गायत्र्यादिजपं तृप्तिप्रश्नं चाह।

याज्ञवल्क्य (आचा० श्लो० २४१) ने कहा है—अन्न को ग्रहणकर पूछे कि आपलोग तृप्त हुए और शेष अन्न को उनकी आज्ञा लेकर भूमि में प्रक्षेप करे। फिर एक एक बार जल दे और यहाँ पर यह विकर दान जो है वह अन्यशाखावालों के लिए है। आश्वलायनों को तो पिण्डदान के बाद में ही अन्नविकरण सूत्र में कहा है। [1]कात्यायनों को तो विकिरदान के बाद गायत्री आदि जप और तृप्ति प्रश्न कहा है।

हेमाद्रौ देवलः—ततः सर्वाशनं पात्रे गृहीत्वा विविधं बुधः।
तेषामुच्छेषणस्थाने विकिरं भुवि निक्षिपेत् ॥

हेमाद्रि में देवल ने कहा है—तदनन्तर विद्वान् सब ब्राह्मणों के भोजन के विविध (अनेक प्रकार के) अन्न को पात्र में ग्रहणकर उनका उच्छेषण (अवशेष) स्थान में भूमि पर विकर प्रक्षेप करे।

१—हेमाद्रौ धर्मः—केषांचिद्विकरः पूर्वं तृप्तिप्रश्नस्तथापरः। प्रश्नः पूर्वमथान्येषां विकिरस्तदनन्तम् ॥ अमृतापिधानात्पूर्वं केषां चिद्विकिरः स्मृतः। अन्येषां तु ततः पश्चाद्विदुषामिति संमतम्। गायत्र्यादिजपात्पूर्वं केषाञ्चि-ःदनन्तम् ॥

अनन्तरं सर्वमन्नमादाय 'तृप्ताः स्थ' इति तान् पृष्ट्वा 'तृप्ताः स्म' इति तैरुक्तः 'शेषमप्यस्ति किं क्रियताम्' इति पृष्ट्वा 'इष्टैः सहोपभुज्यताम्' इत्यभ्युपगम्य तदन्नं पितृस्थानब्राह्मणस्य पुरस्तादुच्छिष्टसन्निधौ दक्षिणाग्रदर्भान्तरितायां भूमौ तिलोदकप्रक्षेपपूर्वकं 'ये अनग्निदग्धा' इति मन्त्रेण निक्षिप्य पुनस्तिलोदकं प्रक्षिपेत्। तदनन्तरं ब्राह्मणहस्तेषु पिण्डप्रदानम्–गण्डूसार्थं सकृत् सकृदपो दद्यात् इति मिताक्षरायाम्।

माधवीये प्रचेताः—सार्ववर्णिकमादाय ये अग्नीति भुवि क्षिपेत् ।
स च कुशे कार्यः । दर्भेषु विकिरश्च यः इत्युक्तेः ।

माधवीय में प्रचेता ने कहा है—विद्वान् सब प्रकार के अन्न (निर्मित अन्न) को ग्रहणकर 'ये अग्नि'[1] इस मन्त्र से पृथ्वी पर प्रक्षेप करे। वह कुशापर करे। जो बिकर है वह कुशाओं पर करे—एसा कहा है।

मन्त्रः कातीयः—अग्निदग्धाश्च ये जीवा येऽप्यदग्धाः कुले मम ।
भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ता यान्तु परां गतिम् ॥

मन्त्र कातीय यों है—जो जीव मेरे खानदान में अग्नि से दग्ध नहीं हुए हैं और जो भी अग्नि में जले हों उनके लिए भूमि में देने से तृप्त हों तथा तृप्त होकर उत्तम गति को प्राप्त करें।

अन्ये तु—असोमपाश्च ये देवा यज्ञभागविवर्जिताः । तेषामन्नं प्रदास्यामि विकिरं वैश्वदेविकम् ॥ इति हेमाद्रौ गोभिलोक्तेन दैवे, असंस्कृतप्रमीता ये त्यागिन्यो याः कुलस्त्रियः । दास्यामि तेभ्यो विकिरमन्नं ताभ्यश्च पैतृकम् । इत्यग्निपुराणोक्तेन पित्र्ये अन्नं विकीर्य 'ये अग्निदग्धाः' इत्युच्छिष्टपिण्डं कुशोपरि पृथग्दद्यादित्याहुः । पृथ्वीचन्द्रोदयेऽप्येवम् ।

अन्य तो कहते हैं—जिन देवों ने 'सोमपान' नहीं किया है, जिनको यज्ञ का भाग नहीं मिला है उनको वैश्वदेविक अन्न-रूपी विकर देता हूँ। यह हेमाद्रि में गोभिल ने दैव में कहा है।

जो लोग विना संस्कार के ही मर गये हैं और जिन्होंने कुल की स्त्रियां त्याग दी हैं। उन सबों को और स्त्रियों को पितरों का अन्न देता हूँ। ये अग्निदग्धा[2] (ऋ०१०।१५।१४) इससे उच्छिष्ट पिण्ड को कुशा के ऊपर अलग से दे—एसा कहा है। पृथ्वीचन्द्रोदय में भी यही है।

ब्राह्मे—ततः प्रक्षाल्य हस्तौ च द्विराचम्य हरिं स्मरेत् ।

ब्रह्मपुराण में कहा है—तदनन्तर हाथों को धोकर दो बार आचमन कर हरि (विष्णु) का स्मरण करे।

माधवीये गौतमः—विकिरमुच्छिष्टैः प्रतिपादयेत् ।

माधवीय में गौतम ने कहा है—उच्छिष्ट अन्नों (शेष बचे हुए अन्नों से) से ही विकिर का प्रतिपादन करे।

हेमाद्रौ व्यासः—उच्छिष्टैरेव विकिरं सदैव प्रतिपादयेत् ।

हेमाद्रि में व्यास ने कहा है—सदा ही उच्छिष्ट सब प्रकार के अन्नों से ही विकिर[3] दे।

भृगुः—पिण्डवत्प्रतिपत्तिः स्याद्विकिरस्येति तौल्वलिः ।

भृगु ने कहा है—पिण्डवत्-(उच्छिष्टसन्निधौ पिण्डदाने तैः सह प्रतिपादनं पिण्डसन्निधौ चेत् पिण्डवत् इति व्यवस्था केचित्) विकर की प्रतिपत्ति (हासिल करना) होती है—यह तौल्वलि का कहना है।

१—(क) ये अग्निदग्धा येऽनग्निदधा जीवा जाताः कुले मम। भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ता यान्तु परांगतिम्। (ख) अनग्निदग्धा ये जीवा अग्निदग्धाः कुले मम। भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ता यान्तु परां गतिम्। (ग) येऽनग्निदग्धा जीवा येऽप्यग्निदग्धाः कुले मम। भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ता यान्तु परां गतिम्॥ बौधानयगृह्यसूत्रे—येऽग्निदग्धा जाता जीवा ये ये त्वदग्धाः कुले मम। भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ता यान्तु परां गतिम्॥ यमः—येषां न माता न पिता न बन्धुर्न चान्नसिद्धिर्न तथान्नमस्ति। तत्तृप्तयेऽन्नं भुवि दत्तमेतत्प्रयान्तु लोकाय सुखाय ते तु। येऽस्मत्कुले तु पितरोऽलपिण्डोदकक्रियाः। ये चाप्यकृतपिण्डास्तु ये च गर्भाद्विनिःसृताः। तेषां दाहो न क्रियते येऽग्निदग्धाश्च ये परे। भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ता यान्तु परां गतिम्॥

२—ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते। तेभिः स्वराडसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयस्व॥ (ऋ० १०।१५।१४) अथर्ववेद-१८।२।३५।

३—धूम्रः—कपित्थस्य प्रमाणेन पिण्डं दद्यात्समाहितः। तत्समं विकिरं दद्यात् पिण्डान्ते तु षडङ्गुलम्॥

श्राद्धकारिकायाम्—यजमानस्य दासादीनुद्दिश्य द्विजसत्तम ।
तस्मादन्नं त्यजेद्भूमौ वामभागेषु पैतृके ॥

श्राद्धकारिका में कहा है—हे द्विजसत्तम, इसलिए यजमान के दास (सेवक) आदियों के निमित्त पितरों के बायें हिस्से में अन्न का त्याग भूमि में करे।

मनुः—(अ० ३, श्लो० २४६) उच्छेषणं भूमिगतमजिह्मस्याशठस्य च ।
दासवर्गस्य तत्पित्र्ये भागधेयं प्रचक्षते ॥

मनु ने कहा है—अच्छे स्वभाववाले दासवर्ग का श्राद्ध में भूमि में गिरा हुआ जूठा अन्न भाग होता है। एसा मनु आदि ऋषियों ने कहा है।

विष्णुः—उदङ्मुखेष्वाचमनमादौ दद्यात्ततः प्राङ्मुखेषु । पित्र्ये दैवे चेत्यर्थः ।

विष्णु ने कहा है—पितर और दैविक में—उत्तरमुख बैठे हुये ब्राह्मणों को पहले आचमन दे। फिर पूर्वमुखवाले ब्राह्मण को आचमन दे। पितृकर्म में और दैवकर्म में दे—यह अर्थ है।

शातातपः—विश्वेदेवनिविष्टानां चरमं हस्तधावनम् ।

शातातप ने कहा है—विश्वेदेवों में बैठे हुए ब्राह्मणों का हाथ पीछे से धुला दे।

हेमाद्रौ वाराहे—हस्तं प्रक्षाल्य यश्चापः पिबेद्भुक्त्वा द्विजः सदा ।
तदन्नमसुरैर्भुक्तं निराशाः पितरो गताः ॥

हेमाद्रि में वाराहपुराण का वचन है—जो ब्राह्मण हाथ से अर्थात्—दोनों हाथों को धोकर सदा बाद में भोजन करने बाद जल का पान करता है वह श्राद्ध आसुर होता है और पितरों को नहीं मिलता है।

(श्राद्धे गण्डूषकथनम्)

मरीचिः—हस्तं प्रक्षाल्य गण्डूषं यः पिबेदविचक्षणः ।
आसुरं तद्भवेच्छ्राद्धं पितॄणां नोपतिष्ठते ॥

मरीचि ने कहा है—जो बुद्धिमान् हाथों को धोकर जो कुल्ले[1] का जल पान करता है वह श्राद्ध आसुर होता है और पितरों को नहीं प्राप्त होता है।

तत्रैव सङ्ग्रहे—पवित्रग्रन्थिमुत्सृज्य मण्डले भुवि निक्षिपेत् ।
हस्तादीन् क्षालयेद्विद्वान् शरावादौ तु कुत्रचित् ॥

वहीं पर संग्रह में कहा है—पवित्री की ग्रन्थि को खोलकर मण्डलवाली भूमि में प्रक्षेप करे। (पात्रे वै निक्षिपेद्यस्तु स विप्रः पंक्तिदूषकः। इत्युत्तरार्धम्)। फिर विद्वान् सकोरे (शराव, तस्तरी, ढक्कन) आदि में कहीं भी हाथ आदि का प्रक्षालन करे।

व्यासः—ताम्बूलोद्गिरणं चैव गण्डूषोद्गिरणं तथा । कांस्यपात्रे तथा ताम्रे न कुर्वीत कदाचन ॥
उष्णोदकैर्धान्यचूर्णैः करौ श्मश्रूणि शोधयेत् ।

व्यास ने कहा है—पान का उद्गिरण-पीक और कुल्ले का जल कांसे के और तांबे के पात्र में कभी न करे। उष्णोदक (गरमजल) और धान्य के चूर्ण से श्मश्रु (दाढी) को शुद्ध करे।

(पिण्डदानकथनम्)

अथ पिण्डदानम् । तच्चार्चनोत्तरमग्नौकरणोत्तरं भोजनोत्तरं विकिरोत्तरं स्वधावाचनोत्तरं विप्रविसर्जनोत्तरं वेति हेमाद्रौ स्मृतिषु पक्षा उक्ताः । तेषां शाखाभेदेन व्यवस्था । प्रेतश्राद्धेषु

१—स्मृतौ—अर्धं पिबति गण्डूसमर्धं त्यजति भूमिषु । प्रीणन्ति पितरः सर्वे ये चान्ये भूमिदेवताः ॥ तत्प्राशने-ऽमृतापिधानमसीति मन्त्रः । तदवशिष्टतोयत्यागे च—रौरवे पुण्यनिलये ब्रह्मार्बुदनिवासिनाम् । अर्थिनामुदकं दत्तमक्षय्य-मुपतिष्ठतु ॥ इति मन्त्रः ।

पूर्वमन्येषु भोजनोत्तरम्' इति चन्द्रिकामाधवौ। सर्वत्र भोजनोत्तरमिति बहवः। आश्वलायनः–(अ० ४ ख० ८ सू० १२, १३ पृ० १३१) 'भुक्तवत्स्वनात् आचान्तेषु पिण्डान्निदध्यादाचान्तेष्वेके।' भुक्तवत्स्विति पूर्वनिषेधार्थम्। साग्निरतिप्रणीतसमीपे। अनग्निर्द्विजसमीपे। हेमाद्रौ जातूकर्ण्यः—व्याममात्रं समुत्सृज्य पिण्डांस्तत्र प्रदापयेत्। प्रसारितभुजान्तरं व्यामः। सङ्कटे तु व्यासः—'अरत्निमात्रमुत्सृज्य' इति।

अब पिण्डदान कहते हैं। वह पूजन के बाद, अग्नौकरण के बाद, भोजन के बाद, विकिर के बाद स्वधावाचन के बाद या ब्राह्मणविसर्जन के बाद करे ऐसा हेमाद्रि और स्मृतियों में पक्षों को कहा है। उनका शाखाभेद से व्यवस्था है। प्रेतश्राद्ध में प्रथम है और अन्यों में भोजनोत्तर है—यह चन्द्रिका तथा माधव कहते हैं। बहुतों का मत है कि सर्वत्र भोजन के बाद करे। आश्वलायन ने कहा है—भोजन करने के बाद और आचमन करने के पहले पिण्डों को दे। कोई कहते हैं आचमन के अन्त में दे। भोजन करने बाद यह पहले निषेध कहा है। साग्निक (अग्निहोत्री अतिप्रणीत (दक्षिणाग्नि कुण्ड की अग्नि के समीप में) के समीप में। जो अग्निहोत्री नहीं है वह ब्राह्मण के समीप में दे। हेमाद्रि में कहा है—व्याममात्र (प्रसारित भुजान्तरं व्यासः) फैलाई हुई भुजा का मध्यभाग छोड कर वहाँ पर पिण्डों को दे। संकट में तो व्यास ने कहा है कि—अरत्निमात्र (कृतमुष्टिकरोरत्निः, अरत्निरकनिष्ठिकः) जगह छोड कर दे।

(वेद्यादिकथनम्)

यत्तु तत्रैव—सिकताभिर्मृदा वापि वेदी दक्षिणनिम्नगा। इति, तदन्यशाखिपरम्।

जो वहीं पर कहा है—बालू या मट्टी की वेदी को दक्षिणतरफ झुकी हुई बनावे। यह अन्यशाखा के ('उपलिप्ते महीपृष्ठे पिण्डदानं समाचरेत्' इति सामान्यतो मह्या एवोक्तेः।) लिए है।

देवलः—ततस्तैरभ्यनुज्ञातो दक्षिणां दिशमेत्य च।

देवल ने कहा है—तदनन्तर उन ब्राह्मणों से आज्ञा लेकर दक्षिणदिशा में जाकर दे।

चन्द्रिकायाम्—पिण्डनिर्वपणं कार्यं कुशाभावे विचक्षणैः। काशेषु राजदूर्वासु पवित्रे परमे हिते॥

चन्द्रिका में कहा है—कुशा के अभाव में बुद्धिमानों को चाहिये—काश, राजदूर्वा–बड़ी लंबी दूर्वा या उत्तम पवित्री पर पिण्ड का निर्वाप (निर्वपण) करें।

आश्वलायनः—(पृ० १६४) 'स्फ्येन रेखामुल्लिखेत्।' 'अपहता असुरा रक्षांसि वेदिषदः' इति तामभ्युक्ष्य सकृदाच्छिन्नैर्दर्भैरवस्तीर्य प्राचीनावीती रेखां त्रिरुदकेनोपनयेच्छुन्धन्तां पितरः शुन्धन्तां पितामहाः शुन्धन्तां प्रपितामहा इति तस्यां पिण्डान्निपृणीयात्पराचीनपाणिः पित्रे पितामहाय प्रपितामहायैतत्तेऽसौ ये च त्वामत्रानु इति।

आश्वलायन ने कहा है—स्फ्य नामक लकडी के पात्र (खड्ग) से पितृयज्ञ में रेखा[1] (लेखा) करे। अपहता असुरा रक्षांसि वेदिषदः, इस मन्त्र से। उस रेखा में जल का छींटा देकर एक बार में तोडी हुई (सकृदाच्छिन्नान्युपमूलच्छिन्नानि भवन्तीति शतपथे यत्समूलं तत्पितॄणामिति तैत्तरीये) कुशाओं को बिछाकर प्राचीनावीति (अपसव्य) होकर रेखा में तीन बार जल (अर्थात्—तिल सहित जल से—'तिलोन्मिश्रेणोदकेनासिच्य' इतिवचनात्) छिडके।

पितर शुद्ध हों, पितामह और प्रपितामह शुद्ध हों। उस रेखा में पिण्डों को पराचीनपाणि—(उत्तान एवाधटीकृतपितृतीर्थः पाणिर्येन) (विरुद्धदिशा में मुडा हुआ हाथ) से उत्तान ही पितृतीर्थ हाथ से पिता, पितामह और प्रपितामह के लिए–यह असौ—संबुध्यन्त पिता आदि नाम से रखे। (इसका अर्थ यों है—हे तात, एतत् पिण्डरूपमन्नं तुभ्यं ये च अन्ये त्वामनु यान्ति तेभ्यश्च। 'ये–' यहाँ पर ऊह (बदलना) नहीं होगा। 'अनु मायिनो यदि स्त्रीणां स्त्रिय एव तदोहः स्यात्। यदि पुमांस एव यदि वा पुमांसः स्त्रियश्च तदा नोहः। 'पुमान् स्त्रिया' इत्येकशेषात्) ये च त्वामत्रानु।

१—ब्राह्मे तु लेखाकरणे मन्त्रोऽप्युक्तः—निहन्मि सर्वं यदमेध्यमत्र हताश्च सर्वेऽसुरदानवा मया। रक्षांसि यक्षाश्च पिशाचसंघा हता मया यातुधानाश्च सर्वे। एतेन मन्त्रेण सुसंयतात्मा दर्भेण वेदिं लिलिखे त्रिरेव।

हेमाद्रौ पारस्करः–कराभ्यामुल्लिखेत्स्फ्येन कुशैर्वापि महीं द्विजः। बह्वृचानां करेणैव लेखा चाग्नेयमभिमुखेति वृत्तिः।

हेमाद्रि में पारस्कर ने कहा है—दोनों हाथों से 'स्फ्य' नामक खड्गाकृतिवाले पात्र से या कुशाओं से द्विज मही (पृथ्वी) पर रेखा दे। ऋग्वेदियों का तो एक ही हाथ से रेखा अग्निदिशा में मुख कर दे यह वृत्ति में कहा है।

'दक्षिणां प्राचीं वेदिमुद्धृत्य'इत्यापस्तम्बोक्तेश्च।

और आपस्तम्ब ने कहा है—दक्षिणदिशा वाली नीची वेदी पर रेखा दे (पिण्ड दे)।

देवलः—आवाहयित्वा दर्भाग्रैस्तेषां स्थानानि कल्पयेत्। तेष्वासीनेषु पात्रेण प्रयच्छेत्सतिलोदकम् ॥ पराचीनेन निम्नपितृतीर्थेन।

देवल ने कहा है—आवाहन कर कुशाओं के अग्रभाग से पितरों के स्थानों की कल्पना करे। उनके बैठ जाने पर पात्र से तिलोदक दे। पराचीनेन–निम्नपितृतीर्थ से।

(मधु-सर्पिस्तिलसहितपिण्डानां निर्वपणं कथनम्)

वायवीये—मधुसर्पिस्तिलयुतांस्त्रीन् पिण्डान्निर्वपेद् बुधः।

वायुपुराण में कहा है—बुद्धिमान् मनुष्य मधु–सहत (कलि में मधु वर्जित है। 'श्राद्धे मांसं तथा मधु) घृत और तिल से युक्त तीन पिण्ड दे।

(पिण्डस्याष्टाङ्गकथनम्)

त्रिस्थलीसेतौ—तिलमन्नं च पानीयं धूपं दीपं पयस्तथा। मधु सर्पिःखण्डयुक्तं पिण्डमष्टाङ्गमुच्यते ॥

त्रिस्थलीसेतु में कहा है—तिल, अन्न, जल, धूप, दीप, दूध, [1]मधु, घृत–खण्ड से युक्त को अष्टांगपिण्ड कहा है।

(दक्षिणमुखेन उच्छिष्टसन्निधौ श्राद्धीयसर्वान्नेन पितृयज्ञवत् पिण्डदानकथनम्)

याज्ञवल्क्यः—(आचा० २४२) सर्वमन्नमुपादाय सतिलं दक्षिणामुखः।
उच्छिष्टसन्निधौ पिण्डान् दद्याद्वै पितृयज्ञवत् ॥

याज्ञवल्क्य ने कहा है—सब प्रकार के अन्न को ग्रहण कर तिल के सहित दक्षिणाभिमुख मनुष्य उच्छिष्ट के समीप (हारीतः—विप्राणामासनस्थानादग्रतस्त्रिष्वरत्निषु। उच्छिष्टसन्निधानं तन्नोच्छिष्टासनसन्निधौ ॥) पितृयज्ञ के सदृश पिण्डों को दे।

(माष (उडदी) वर्जने महत्वपूर्णविचारः)

केचित्पिण्डेषु माषान् वर्जयन्ति, माषाः श्राद्धेषु वै ग्राह्या वर्ज्याश्चैवाग्निपिण्डयोः। ब्राह्मणेषु यथा मद्यं तथा माषाग्निपिण्डयोः ॥ इति स्मृतिसागरात्। माषान्सर्वत्र वै दद्यात्पिण्डेऽग्नौ च विवर्जयेत्। इति स्मृतेश्च। अत्र मूलं चिन्त्यम्। हेमाद्रावपि सर्वशब्दस्य प्रकृतार्थत्वात्सर्वान्नग्रहणमुक्तम्। अत्र शेषमन्नमनुज्ञाप्य सर्वमेकत्रोद्धृत्योच्छिष्टसमीपे दर्भेषु त्रींस्त्रीन् पिण्डान् दद्यात् इति गोभिलसूत्रे। सर्वस्मात्प्रकृतादन्नात् पिण्डान्मधुतिलान्वितान्। इति च शेषनियमात्तदभावे पिण्डनिवृत्तिरिति प्राप्नोतीति मैथिलवाचस्पती। तन्न, तुषोपवापवत्परप्रयुक्तद्रव्यवत्वेप्यर्थकर्मत्वाद्गुणानुरोधेन प्रधानात्यागाच्च शेषलोपेऽपि द्रव्यान्तरेण कार्यम्। अतो नेयं प्रतिपत्तिः किन्तु प्रधानमित्युक्तं प्राक्। अन्यथा सपिण्डीकरणादौ संयोजनादेः प्रधानस्य लोपापत्तेरिति दिक्।

१—वृद्धयाज्ञवल्क्यः–मधु चान्नं गव्यघृतं पानीयं पायसं तथा। कुतुपस्तिलसंयुक्तं ज्योतिश्चैवाष्टमी तथा। कपित्थश्रीफलाकारः पिण्डोऽष्टाङ्ग स उच्यते ॥ यत्तु–ब्राह्मे–मधु चाज्यं जलं चार्घं पुष्पं धूपं विलेपनम्। बलिं दद्यात्तु विधिवत् पिण्डोऽष्टाङ्गो भवेद्यथा। इति पार्वणविषयम्।

कोई पिण्डों पर उडदों को त्याग करते हैं। उडद श्राद्धों में निश्चय ग्राह्य है। लेकिन अग्नि तथा पिण्ड में वर्जित है। जैसे—मद्य ब्राह्मणों के लिए त्याज्य है। वैसे ही अग्नि और पिण्ड में उडद त्याज्य है—यह स्मृतिसार (सागर) में कहा गया है।

और स्मृति में कहा है—सर्वत्र उडदों को दे। केवल पिण्ड और अग्नि में त्याग करे। यहाँ पर मूल विचारणीय है। हेमाद्रि में भी सर्वशब्द का प्रकृतार्थ होने से सब अन्नों को ग्रहण करना कहा है। यहाँ पर सब अन्नों को (ब्राह्मणों से) आज्ञा लेकर एक जगह सबको कर उच्छिष्ट समीप में कुशाओं पर तीन-तीन पिण्डों को दे-यह गोभिलगृह्यसूत्र में है। सब प्रकृत अन्न (सब प्रकार के अन्न) से मधु तथा तिल युक्त पिण्डों को दे। यह शेष नियम है उसके अभाव में पिण्ड की निवृत्ति प्राप्त होती है—यह मैथिल और वाचस्पति कहते हैं। यह उचित नहीं है। [1]तुषोषवापवत् पर प्रयुक्त द्रव्यत्व में भी अर्थकर्मत्व गुणानुरोध से प्राधान का त्याग है। शेषलोप में भी द्रव्यान्तर से करे। इसलिये यह प्रतिपत्ति नहीं है। किन्तु प्रधान है—यह पहले कह चुके हैं। अन्यथा सपिण्डीकरण आदि में संयोजन आदि के प्रधान की लोपापत्ति हो जायगी।

(पिण्डप्रमाणकथनम्)

अथ पिण्डप्रमाणम्। हेमाद्रावङ्गिराः—कपित्थबिल्वमात्रान्वा पिण्डान् दद्याद्विधानतः।
कुक्कुटाण्डप्रमाणान्वामलकैर्बदरैः समान् ॥ इति।

अब पिण्डप्रमाण कहते हैं। हेमाद्रि में अंगिरा ने कहा है—कैथ या बेल के प्रमाण से या कुक्कुटाण्ड, (मुर्गे के अंडे के समान) आंवला या बेर के सदृश पिण्डों को विधान से दे।

तत्रैव धूम्रः—कपित्थस्य प्रमाणेन पिण्डान् दद्यात्समाहितः।
तत्समं विकिरं दद्यात्पिण्डान्ते तु षडङ्गुले।

वहीं पर धूम्र का कथन है—कपित्थ के प्रमाण से (उसके अभाव में बिल्व के प्रमाण से) सावधानी मन से पिण्डों को दे। पिण्ड के अन्त में उसी के बराबर छः अङ्गुल पर विकिर दे।

अन्त्येष्टिपद्धतौ भट्टास्तु—एकोद्दिष्टे सपिण्डे च कपित्थं तु विधीयते। नारिकेलप्रमाणं तु प्रत्यब्दे मासिके तथा ॥ तीर्थे दर्शे च संप्राप्ते कुक्कुटाण्डप्रमाणतः। महालये गयाश्राद्धे कुर्यादामलकोपमम् ॥ इत्याहुः।

अन्त्येष्टिपद्धति में भट्टों ने कहा है—एकोद्दिष्ट और सपिण्डश्राद्ध में कैथ के बराबर का पिण्ड दे। वार्षिक तथा मासिक में नारियल के प्रमाण का पिण्ड दे। तीर्थ में और अमावास्या के प्राप्त होने पर कुक्कुटाण्ड (मुर्गे के अंडे के सदृश) के प्रमाण का पिण्ड दे। महालय[2] और गयाश्राद्ध में आंवले के बराबर का पिण्ड दे।

१—षष्ठाध्याय के चतुर्थपाद में यस्योभयं हविरार्तिमार्च्छेदैन्द्रं पञ्चशरावमोदनं निर्वपेत्। यह श्रुत है। इस वाक्य का पहला अर्थ है-जिस यजमान के दोनों हवि नष्ट हो जाते हैं उप दोष के हटाने के लिए इन्द्रदेवताक पञ्चशराव परिमित ओदन के द्रव्ययाग को करना चाहिये। यहाँ पर केवल आर्ति निमित्त नहीं कह सकते। कुछ न कुछ आर्ति होने के कारण इसलिये हवि का विशेषण देना चाहिये। एवं च हविर्नाश निमित्त है। इतने से निमित्त बुद्धि पर्यवसन्न हो जाती है। उभयत्व श्रुत होने पर भी विवक्षित नहीं है। इसीप्रकार 'माता पित्रोः क्षये हनि' इसवाक्य में माता पिता दोनों क्षयाह के विशेषण है। इसलिए मातुः क्षयाहः पितुः क्षयाह में भी श्राद्ध होता है। इसलिए द्वित्व विवक्षित नहीं है। तुषोपवाक कपाल का प्रयोजक नहीं होता है। इसप्रकार यह पिण्ड का प्रयोजक नहीं होता है। क्योंकि गुण के अनुसार प्रधान का त्याग नहीं होता है। इसलिए शेष का लोप होने पर भी द्रव्यान्तर से करना चाहिये। क्योंकि प्रधान कर्म है नहीं तो सपिण्डीकरणश्राद्ध में पिण्ड संयोजक प्रधान होता है। उसका भी लोप हो जायगा।

२—आर्द्रामलकमात्रांस्तु पिण्डान् कुर्वीत पार्वणे। एकोद्दिष्टे बिल्वमात्रं पिण्डमेकं तु कारयेत् ॥ नवश्राद्धे स्थूलतरं तस्मादपि तु निर्वपेत्। तस्मादपि स्थूलतरमाशौचे प्रतिवासरम्। इत्यादि में आर्द्रआमलक के सदृश पिण्डपार्वण में दे यह नियम नहीं है; किन्तु आमलकमात्रवाले पिण्ड को पार्वण में ही दे। इसलिए अधिक प्रमाण से पिण्ड देने पर आचार विरुद्ध नहीं है—यह मयूख ने कहा है। मैत्रायणीय में कहा है कि—'त्रयाणां यथोक्तपरिमाणाधिक्यमुक्तं पितामहस्य नाम्ना स्थवीयांसं प्रपितामहस्य नाम्ना स्थविष्ठम्।

कलिकायामाचार्यः—यत्र स्युर्बहवः पिण्डास्तत्र बिल्वफलोपमाः। यत्र चैको भवेत्पिण्डस्तत्र खर्जूरसन्निभः ॥ प्रेतपिण्डस्तु दैर्घ्येण द्वादशाङ्गुल उच्यते ॥ इति।

कलिका में आचार्य ने कहा है—जहाँ बहुत से पिण्ड हों वहाँ पर बिल्वफल के समान पिण्ड दे। जहाँ पर एक पिण्ड हो वहाँ खजूर के बराबर का पिण्ड दे। प्रेतपिण्ड तो लम्बाई में बारह अङ्गुल का कहा है।

वायवीये—पत्नी पिण्डांस्तु मृद्नीयात् त्रिवर्गस्य सहायिनी।

वायुपुराण में कहा है—तीनों वर्ग-धर्म, अर्थ और काम की सहायक पत्नी पिण्डों का निर्माण करे।

(महालयादौ पिण्डशब्दस्य प्रयोगकथनम्)

हेमाद्रौ लौगाक्षिः—महालये गयायां च प्रेतश्राद्धे दशाहिके।
पिण्डशब्दप्रयोगः स्यादन्नमन्यत्र कीर्तयेत् ॥

हेमाद्रि में लौगाक्षि का वचन है—महालय में, गया में, प्रेतश्राद्ध में और दशाह में पिण्ड शब्द का प्रयोग करना चाहिये। अन्यत्र अन्न शब्द कहना चाहिये।

शाट्यायनिः—असावेतत्त इत्युक्त्वा तदन्ते च स्वधा नमः। असावित्यत्र सम्बन्धरूपगोत्रादिविशिष्टं पित्रादिनामसम्बुद्ध्यन्तमुक्त्वा पुनश्चतुर्थ्यन्तं तदन्तेऽयं पिण्ड इदमन्नं वा स्वधा नमो न ममेति वदेदिति हेमाद्रिः।

शाट्यायनि ने कहा है—'असौ एतत्ते' यह आप के लिए पिण्ड देता हूँ—ऐसा कह कर उसके अन्त में 'स्वधा नमः' कहना चाहिये।

असौ यहाँ पर सम्बन्धरूप गोत्रादि विशिष्ट पिता आदि नाम सम्बुध्यन्त कहकर (जैसे—हे पितः) फिर से चतुर्थ्यन्त (पित्रे) कहकर उसके अन्त में कहे कि—'अयं पिण्ड इदमन्नं वा स्वधा नमो न मम। ऐसा कह—यह हेमाद्रि में कहा है।

(पित्रादिनामाज्ञाने आपस्तम्बमतम्)

पित्रादिनामाज्ञाने त्वापस्तम्बः—यदि नामानि न विन्द्यात् स्वधा पितृभ्यः पृथिवीषद्भ्य इति प्रथमं पिण्डं दद्यात्, स्वधापितृभ्योऽन्तरिक्षसद्भ्य इति द्वितीयम्, स्वधापितृभ्यो दिविषद्भ्य इति तृतीयम्। एवं मातामहेषु मातृषु च। बह्वृचानां तूक्तं प्राक्।

पिता आदि के नाम के अज्ञान में तो आपस्तम्ब ने कहा है—यदि नामों को न जानता हो तो—'स्वधा पितृभ्यः पृथिवीषद्भ्यः' इससे पहला पिण्ड दे। 'स्वधा पितृभ्योऽन्तरिक्षसद्भ्यः' इसे दूसरा और 'स्वधा पितृभ्यो दिविषद्भ्यः' इससे तीसरा पिण्ड दे। इसीप्रकार मातामहों में और माताओं में दे। बह्वृचों का (ऋग्वेदियों का) तो पहले कह चुके हैं।

(मन्त्रोच्चारणकाले प्राणं निरोधयेत् तथा मातृश्राद्धे विचारः)

कलिकायां स्मृतिः—यावदेवोच्चरेन्मन्त्रं तावत्प्राणं निरोधयेत्। येषां तु गृह्ये दर्शे मातृश्राद्धं पृथगुक्तं तेषां पितृभ्यः पश्चिमे मातृभ्यस्तत्पश्चिमे मातामहेभ्यः पिण्डादि देयमिति सांख्यायनः। अस्मिन् पक्षे तत्पश्चिमे मातामहीभ्योऽपि दद्यादिति हेमाद्रिः। 'पूर्वासु पितृभ्यो दद्यादपरासु स्त्रीभ्यः' इति सूत्राच्च। एवं यत्र तीर्थमहालयादौ-केचिदिच्छन्ति नारीणां पृथक्श्राद्धं महर्षयः। इति चतुर्विंशतिमतात्, पित्रादिनवदैवत्यं तथा द्वादशदैवतम्। इत्यग्निपुराणाच्च मातॄणां पृथगुक्तम्।

कलिका में स्मृति ने कहा है—जब तक ही मन्त्र का उच्चारण करे तब तक प्राण को रोके। अर्थात्—मन्त्र का पाठ एक स्वाँस से करना चाहिए।

जिनके यहाँ गृह्यसूत्र में कहा है—अमावास्या में माता का श्राद्ध अलग करना चाहिए। उन लोगों के यहाँ पितरों से पश्चिम में माताओं के लिए और उसके पश्चिम में मातामहों के लिए पिण्ड आदि देना

चाहिए—यह सांख्यायन ने कहा है। इस पक्ष में उसके पश्चिम में मातामहियों को भी दे—यह हेमाद्रि ने कहा है। पूर्वादिशादि में पितरों के लिए और पश्चिमदिशा में स्त्रियों के दे—इस सूत्र से। इसप्रकार जहाँ पर तीर्थ, महालय आदि में-कोई महर्षि स्त्रियों का अलग श्राद्ध की इच्छा करते हैं—यह चतुर्विंशतिमत से। पित्रादि नवदैवत्य और द्वादशदैवत अग्निपुराण के वचन से है। माताओं को अलग से श्राद्ध कहा है।

यत्र वा—आचार्यगुरुशिष्येभ्यः सखिज्ञातिभ्य एव च। तत्पत्नीभ्यश्च सर्वाभ्यस्तथैव च जलाञ्जलीन् ॥ पिण्डांस्तेभ्यः सदा दद्यात् पृथग्भाद्रपदे नरः। तीर्थेषु चैव सर्वेषु माघमासे मघासु च ॥ इति चतुर्विंशतिमते,

दौहित्रपुत्रदाराश्च ये कनिष्ठाः सहोदराः। निःसन्ताना मृता ये च ते तेभ्योऽप्यत्र प्रदीयते ॥ इति भविष्ये एकोद्दिष्टान्युक्तानि, तत्रापि तत्पश्चिमे पिण्डदानं ज्ञेयम्। येषां न पृथक् तैः सपत्नीकाः पित्रादयो वाच्याः,

अथवा जहाँ पर—आचार्य, गुरु, शिष्य, मित्र और जातियों के लिए ही उनकी सब पत्नियों के लिए जलाञ्जलियों को और उनके लिए पिण्डों को मनुष्य सदा अलग भाद्रपद में दे। सब तीर्थों में, माघमास में और मघा में भी दे—यह चतुर्विंशतिमत से कहा है।

दौहित्र, पुत्र, स्त्री जो छोटे सगे भाई हैं तथा जो बिना सन्तान के मर गये हैं उनको भी यहाँ पर पिण्डदान देना चाहिए। यह भविष्यपुराण में एकोद्दिष्ट में कहे गये हैं। उसमें भी उसके पश्चिम में पिण्डदान देना चाहिये। जिनके मत से अलग पिण्डदान नहीं होता है। वहाँ पर सपत्नीक पिता आदि कहना चाहिये।

(स्त्रीणां श्राद्धे विचारः)

अन्वष्टकागयामातृश्राद्धं चैव मृतेऽहनि। एकोद्दिष्टं तथा मुक्त्वा स्त्रीषु नान्यत्पृथग्भवेत् ॥ इति शङ्खोक्तेश्च।

और शंख ने कहा है—अन्वष्टका, गया, मातृश्राद्ध मरणदिन का एकोद्दिष्ट श्राद्ध छोड़कर स्त्रियों का कोई अलग श्राद्ध नहीं होता है।

(दर्भेषु हस्तलेपस्य विचारः)

मनुः—(अ० ३, श्लोक २१६) तेषु दर्भेषु त हस्तं निमृजेल्लेपभागिनाम्। हस्ते लेपाभावेऽपि हस्तं निमृज्यादेवेति मेधातिथिः।

मनु ने कहा है—उन कुशाओं पर उस लेपभागियों के लिए हाथ को पूँछ दे। हस्तलेप के अभाव में भी हाथ पूछे यह मेधातिथि ने कहा है।

विष्णुः—अत्र पितरो मादयध्वमिति दर्भमूले करावघर्षणम्।

विष्णु ने कहा है—'अत्र पितरो[1] मादयध्वम्' इस मन्त्र से कुशा के मूल (जड) भाग में हाथ को घसना चाहिए।

(एकोद्दिष्टेषु दर्भलेपविचारः)

कलिकायां सुमन्तुः—एकोद्दिष्टेषु वर्षासु दर्भलेपो न विद्यते।
सपिण्डीकरणादौ तु लेपः सर्वत्र शस्यते ॥

कलिका में सुमन्तु ने कहा है—एकोद्दिष्टों में और वर्षाओं में दर्भलेप नहीं होता है। सपिण्डीकरणादि में तो सर्वत्र दर्भलेप होता है।

(नमस्कारादिकथनम्)

मनुः—(अ० ३ श्लोक २१७) आचम्योदक् परावृत्य त्रिरायम्य शनैरसून्। षडृतूंश्च नमस्कुर्यात्पितॄनेव च मन्त्रवत् ॥ उदकं निनयेच्छेषं शनैः पिण्डान्तिके पुनः। त्रिः प्राणायामं

१—अत्र पितरो मादयध्वं यथाभागमा वृषायध्वम् ॥ (यजुर्वेद अ० २ मं० ३१)।

कृत्वेति मेधातिथिः । अमन्त्रं प्राणान्निरुध्येति कर्काद्याः । मन्त्रवत्–वसन्ताय नमः । 'नमो वः पितरः' इत्याद्यैः । शेषं पूर्वावनयनशेषम् ।

मनु ने कहा है—आचमन कर उत्तरदिशा की तरफ मुख कर तीन बार धीरे-धीरे प्राणों को रोक कर छः ऋतुओं और पितरों को मन्त्रवत् नमस्कार करे । फिर शेष (अवशिष्ट) जल को पिण्ड के अन्त में धीरे से गिरा दे । मेधातिथि कहते हैं कि—मन्त्रवत् माने तीन प्राणायाम[1] करके । कर्काचार्य आदि का कहना है कि—अमन्त्रकप्राणों को रोकना चाहिये । मन्त्रवत् का अर्थ है कि वसन्ताय नमः,[2] नमो वः[3] पितरः' इत्यादि से । शेष शब्द से पहले ग्रहण किया हुआ जल का शेष ।

आश्वलायनः—(पृष्ठ १६४) निपृतानन्नुमन्त्रयेतात्र पितरो मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वमिति सव्यावृदुदङ्ङावृत्त्य यथाशक्ति प्राणान्नासित्वाऽभिपर्यावृत्त्याऽमीमदन्त पितरो यथाभागमावृषायिपतेति चरोः प्राणभक्षं भक्षयेन्नित्यं निनयनम्' इति । नित्यग्रहणं शेषाभावेऽपि कुर्यादित्यर्थः ।

आश्वलायन ने कहा है—बैठे हुए पितरों का अनुमन्त्रण (प्रार्थना) करे । 'अत्र पितरो मादयध्वं यथाभागमा वृषायध्वम्' इस मन्त्रसे सव्य होकर (सव्यभागावर्तनेनोदङ्मुखो भूत्वा यथाशक्ति प्राणं निरुध्य पुनः तथैव पर्यावर्तयेदित्यर्थः) उत्तरमुख की तरफ घूम कर यथाशक्ति प्राणों को नासिका से खींचकर अमीमदन्त[4] पितरो यथाभागमा वृषायीषत' इस मन्त्र से चरुका प्राणभक्षण कर नित्य निनयन (अनुष्ठान या संपन्न) करे । नित्यग्रहणशेष के अभाव में भी करे यह अर्थ है ।

शौनकः—अथैषामत्र पितर इत्याद्येनानुमन्त्रणम् । अमीमदन्तेत्याद्येन मन्त्रेणाप्यनुमन्त्र्य तान् । पिण्डशिष्टचरोरन्नं किञ्चिदाघ्राय तत्त्यजेत् । प्रक्षाल्याचम्य शुन्धन्तामित्याद्यैरेव पूर्ववत् ॥ मन्त्रैः पिण्डेषु पानीयं निषिञ्चेत्पितृतीर्थतः ।

शौनक ने कहा है—इसके बाद इनका (पितरों का) 'अत्र पितरः' इत्यादि ऋचा से अनुमन्त्रण (आवाहन) करे और 'अमीमदन्त' इससे भी उनका अनुमन्त्रण कर पिण्डशेष चरु के अन्न को कुछ सूँघकर उसका त्याग कर दे । फिर हाथ का प्रक्षालन कर 'शुन्धन्ताम्' इत्यादि मन्त्रों से ही पूर्ववत् पितृतीर्थ से पिण्डों में पानी का सेचन करे ।

(कातीयमते अवनेजनपात्रस्याधोमुखत्वकथनम्)

व्याघ्रः—अद्भिः प्रक्षाल्य तत्पात्रं प्रतिपिण्डं तु पूर्ववत् । कृत्वावनेजनं कुर्यात्पिडपात्रमधोमुखम् । एतत्कातीयादीनाम् ।

व्याघ्र ने कहा है—उस पात्र को जल से प्रक्षालन पहले की तरह प्रत्येक पिण्ड पर करे । अवनेजन कर पिण्डपात्र को अधोमुख करे । यह कातीयादिपरक है ।

१—ये तीन प्राणायाम कातीयादि परक हैं । ऋग्वेदियों के यहाँ नहीं होते हैं ।

२—अञ्जलिः—करसम्पुटः । अञ्जलिमाबध्नन् पिण्डाभिमुखः पितृभ्यो नमस्कारान् कुर्यादित्यर्थः । अत्र प्रतिमन्त्रं षट्कृत्वो नमस्कारः । 'आषट्कृत्वो नमस्करोतीति श्रुतेः । अतश्च प्रतिनमस्कारमञ्जलिकरमावर्तत इति कर्कः । मैत्रायणीयपरिशिष्टे तु अञ्जलेः पिण्डोपरि करमुक्तम् । गोभिलस्तु निह्नुवते (पिण्ड के ऊपर हाथों का करना) पूर्वस्यां दक्षिणोत्तानौ पाणी कृत्वा नमो वः पितरो जीवाय नमोवः पितरः शोषाय–इत्यादि ।

३—नमो वः पितरो रसाय नमो वः पितरः शोषाय नमो वः पितरो जीवाय नमो वः पितरः स्वधायै नमो वः पितरो घोराय नमो वः पितरो मन्यवे नमो वः पितरः पितरो नमो वो गृहान्नः पितरो दत्त सतो वः पितरो देष्मैतद्वः पितरो वासः ॥ (यजु० २ म० ३२) ।

ब्रह्मपुराणे—वसन्ताय नमस्तुभ्यं ग्रीष्माय च नमो नमः । वर्षाभ्यश्च शरत्संज्ञ ऋतवे च नमः सदा । हेमन्ताय नमस्तुभ्यं नमस्ते शिशिराय च । माससम्वत्सरेभ्यश्च दिवसेभ्यो नमो नमः ॥ कातीयों के मत से 'नमो वः पितरः' इसी मन्त्र से ही नमस्कार विहित है । अतः 'वसन्ताय नमः' इत्यादि कहने की आवश्यकता नहीं है । सामगादि के यहाँ तो वसन्तादि से नमस्कार होता है ।

४—अमीमदन्त पितरो यथाभागमा वृषायिषत ॥ (यजु० अ० २ म० ३१) ।

(मौनीभूत्वा नीविस्रंसनकथनम्)

आचार्यः—ततः सम्यग् द्विराचम्य नीवीं विस्रस्य वाग्यतः ।

आचार्य ने कहा है—तदनन्तर अच्छीप्रकार दो बार आचमन कर मौन होकर नीवी को खोल दे ।

(पिण्डेषु वस्त्रादिदानम्)

आश्वलायनः–(पृ० १६४) असावभ्यङ्क्ष्वासावभ्यङ्क्ष्वेति पिण्डेष्वभ्यञ्जनाञ्जने वासो दद्याद्दशामूर्णास्तुकां वा पञ्चाशद्वर्षताया ऊर्ध्वं स्वलोमैतद्वः पितरो वासो मानोतोऽन्यत्पितरो युङ्ध्वम्' इति ।

आश्वलायन ने कहा है—असौ अभ्युङ्क्ष्व, असौ अभ्युङ्क्ष्व, यों कह कर पिण्डों में अभ्यञ्जन (तेल) अञ्जन (काजल का सुरमा), वास (वस्त्र) दे । दशा (वस्त्रान्तप्रदेश) वस्त्राञ्चलसूत्राणि—सूत्रों से ही दशा की सिद्धि है फिर दशा का ग्रहण अनुकल्प सूचक है । इसलिए ही वायुपुराण में कहा है—वर्जयेत्तु दशां प्राज्ञो यद्यप्यहतकोद्रवाम्' । इसलिए सफेद वस्त्र से होनेवाली दशा होती है इस ब्रह्मपुराण वचन से' वायुपुराण मत से जो निषेध माना है वह कृष्णदशापरक है । या वयस्युत्तरे यजमानलोमानि वा (का० श्रौ० अ० ४) पचास वर्ष के ऊपर यजमान के लोम ग्रहण करे । यह सूत्र और वस्त्र के अभाव में जानना चाहिए ।) ऊर्णास्तुका[1] मेष के रोम (यह ऊन सफेद ग्रहण करे कालीग्रहण न करे । कृष्णोर्णां नीलरक्त धकौशेयानि वर्जयेत्) यह ब्रह्मपुराण में निषेध है ।) या पचासवर्ष के ऊपर हो जाने पर अपने हृदय के लोमों से 'एतद्वः पितरो वासो मानोतोऽन्यत् पितरो युङ्ग्ध्वम्) इस मन्त्र से चढावे ।

श्राद्धचिन्तामणौ ब्राह्मे—एतद्वः पितरो वास इति जल्पन् पृथक् पृथक् । अमुकामुकगोत्रैतत्तुभ्यं वासः पठेद् बुधः ॥ इदं कातीयानाम् । 'एतद्व इत्युपास्यसूत्राणि प्रतिपिण्डम्' इति तत्सूत्रात् ।

श्राद्धचिन्तामणि में ब्रह्मपुराण का मत है—'एतद्वः पितरो वासः' (य० अ० २ म० ३२) इसको अलग अलग कहता हुआ 'अमुकामुकगोत्रे एतत् तुभ्यं वासः । एसा विद्वान् पढे । यह कातीयों के लिए है । 'एतद्व इत्युपास्यति सूत्राणि प्रतिपिण्डम्' (का० श्रौ० अ० ४।१६) (इससे–रायमुकुट कार का मत ठीक नहीं है—पूर्वोक्त वाक्य के बिरोध से । जैसे—अमुकगोत्रा अमुकशर्माण एतानि वः पिण्डेषु वांसासि स्वधेत्युक्त्वा एतद्वः पितरो वास इति प्रतिपिण्डं दद्यात्) । (वस्त्रादि के अभाव में कुशा रखे) ।

(पिण्डेषु सुरमादानादिकथनम्)

हेमाद्रौ ब्राह्मे—श्रेष्ठमाहुस्त्रैककुदमञ्जनं नित्यमेव हि । तैलं कृष्णतिलेभ्यश्च दद्यादभ्यञ्जनं हितम् ॥ त्रैककुदं सुरमा इति प्रसिद्धम् । अञ्जनप्राथम्यमापस्तम्बादिविषयम् ।

हेमाद्रि में ब्रह्मपुराण का मत है—नित्य ही सुरमा उत्तम कहा है । काले तिलों के तैल से निर्मित अञ्जन हितकर है । अभाव में काजल उत्तम है । त्रैकुदं[2] से सुरमा प्रसिद्ध है । अञ्जन का प्राथम्य कहना आपस्तम्बादि विषयक है ।

(श्राद्धे पिण्डपूजा)

तत्रैव व्याघ्रः—गन्धपुष्पाणि धूपं च दीपं च विनिवेदयेत् ।

वहीं पर व्याघ्र का वचन है—गन्ध, पुष्प, धूप और दीप पिण्ड को निवेदन करे ।

देवलः—दक्षिणां सर्वभोगांश्च प्रतिपिण्डं प्रदापयेत् ।
भक्ष्याण्यपूपानिक्षूंश्च व्यञ्जनान्यशनानि च ॥

देवल ने कहा है—दक्षिणा और सब भोग (भक्षणकरनेयोग्य) मालपूडा ईख और भोजनयोग्य व्यञ्जनों को प्रतिपिण्ड का देना चाहिये ।

तत्रैव शङ्खः—यत्किञ्चित्पच्यते गेहे भक्ष्यं भोज्यमगर्हितम् । अनिवेद्य न भोक्तव्यं पिण्डमूले कथञ्चन ।। एतत्सव्येनेति केचित् । युक्तं त्वपसव्येन ।

१—ऊर्णास्तुका मेषलोमनिर्मिता रज्जुः ।

२—त्रिककुन्नाम पर्वतविशेषः । तत्रोद्भवमित्यर्थः—इति श्राद्धमञ्जर्याम् ।

वहीं पर शंख का वचन है—जो कुछ घर में भक्षणयोग्य (खाने लायक) अनिन्दित पकाया है उसको विना पिण्ड के मूल (जड) में निवेदन किए कभी भी भोजन नहीं करना चाहिये। कोई इसको सव्य होकर करे—कहते हैं। युक्त तो अपसव्य से है—यह कमलाकर मत है। (क्योंकि—पितरों के उद्देश्य कर दिया जाता है। युक्त तो है कि सव्य से निवेदन करे ऐसा कहने से पितरों का देवाभाव होने से भी पूज्यत्व कहा है।)

(पिण्डानामवघ्राणमुपस्थानं च कथनम्)

मनुः—(अ० ३, श्लोक २१८) अवजिघ्रेच्च तान् पिण्डान् यथान्युप्तान् समाहितः। ततः 'नमो वः पितर इषे' इत्यादिनोपस्थानम् ॥

मनु ने कहा है—अच्छे मन से निर्वापक्रम से—अर्थात्—स्थापन (यथान्युप्तान्—) क्रम से पिण्डों का आघ्राण (सूँघना) करे। तदनन्तर 'नमो वः पितर 'इषे' इत्यादि से उपस्थान करे।

(अक्षय्योदकादिकथनस्य महत्वपूर्णविचारः)

मात्स्ये—अथाचान्तेषु चाचम्य वारि दद्यात्सकृत् सकृत्। तिलपुष्पाक्षतान् पश्चादक्षय्योदकमेव च ॥ अत्र दैवे सव्यं पित्र्ये त्वपसव्यमिति कर्कः। परिभाषोक्तवचनात् सव्यमिति युक्तम्। अत्र शिवा आपः सन्तु सौमनस्यमस्त्वित्यादिप्रयोगो ज्ञेयः।

मत्स्यपुराण में कहा है—इसके बाद ब्राह्मणों के आचमन करने के लिए एक एक बार जल दे। फिर तिल, पुष्प, अक्षत अर्थात्-(यव)[2] तथा बाद में अक्षय्योदक को ही दे। यहाँ पर देवकार्य में सव्य से करे। पितृकार्य में तो अपसव्य से करे-यह कर्क मत है। परिभाषा 'सूक्तस्तोत्रजपम्' में कहे जाने वाले वचन से सव्य ही युक्त है। यहाँ पर 'शिवा आपः[3] सन्तु--सौमनस्यमस्तु इत्यादि प्रयोग जानना चाहिए।

मात्स्ये—दत्त्वाशीः प्रतिगृह्णीयाद् द्विजेभ्यः प्राङ्मुखो बुधः। अघोराः पितरः सन्तु सन्त्वित्युक्ते पुनर्द्विजैः॥ गोत्रं तथा वर्द्धतां नमस्तथेत्युक्तः स तैः पुनः। दातारो नोऽभिवर्द्धन्तामन्नं चैवेत्युदीरयेत् ॥ स्वस्तिवाचनकं कुर्यात्पिण्डानुद्धृत्य भक्तितः।

मत्स्यपुराण में कहा है—देने के बाद बुद्धिमान् मनुष्य प्राङ्मुख होकर द्विजों से आशीर्वाद ग्रहण करे। 'अघोराः पितरः सन्तु—ऐसा यजमान कहे फिर ब्राह्मण कहे कि—सन्तु अघोराः पितरः। गोत्र[4] हमारा बढे। ब्राह्मण कहें कि—बढे। देनेवालों की वृद्धि हो, ब्राह्मण कहें—हो, अन्न बहुत हो, पिण्डों को उठाकर भक्ति से स्वस्ति-कहे।

(स्वस्तिवाचनात् प्राक् पात्रचालनं कार्यम्)

स्वस्तिवाचनात्प्राक् पात्रचालनं कार्यम्।

स्वस्ति वाचन के पहले पात्रों का चालन (हिलाना) करना चाहिये।

१—नमो वः पितर इषे नमो वः पितरः ऊर्जे नमो वः पितरः शुष्माय नमो वः पितरोऽघोराय नमो वः पितरो जीवाय नमो वः पितरो रसाय। स्वधा वः पितरो नमो वः पितरो नम एता युस्माकं पितर इमा अस्माकं जीवा वो जीवन्त इह सन्तः स्याम ॥ (आश्वलायनश्रौतसूत्र अ० २ ख० ७)

२—ब्रह्मपुराणे—आचान्तेषूदकं दद्यात्पुष्पाणि सयवानि च। यवोऽसीति पठन्मन्त्रं श्रद्धाभक्तिसमन्वितः। श्राद्धकल्पोऽप्येयम्। इयं च यवदानं देवकरे। पित्र्ये तु तिलदानम्।

३—छन्दोगपरिशिष्टे—शिवा आपः सन्त्विति च युग्मानेवोदकेन वा। सौमनस्यमस्त्विति च पुष्पदानमनन्तरम् ॥ अक्षतं चारिष्टमस्त्वित्यक्षतान्प्रतिपादयेत्। युग्मानिति विध्यभिप्रायेणेति हलायुधः। शातातपेन तु मन्त्रान्तराण्युक्तानि—'अपां मध्ये स्थिता देवाः सर्वमप्सु प्रतिष्ठितम्। ब्राह्मणस्य करे न्यस्ताः शिवा आपो भवन्तु नः ॥ लक्ष्मीर्वसतु पुष्पेषु लक्ष्मीर्वसतु पुष्करे। लक्ष्मीर्वसेत्सदा सोमे सौमनस्यं सदास्तु मे ॥ अक्षतं चास्तु मे पुण्यं शान्तिः पुष्टिर्धृतिश्च मे। यद्यच्छ्रेयस्करं लोके तत्तदस्तु सदा मम ॥

४—गोत्रं नो वर्धतां दातारोऽभिवर्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च। श्रद्धा च नो माव्यगमत् बहु देयं च नोऽस्त्विति। क्वचित्तु वेदैः—सन्ततिरेव च इति पाठः। बौधायनने तु—अन्नं च नो बहु भवेदिति श्रीश्च (अतिथींश्च लभेमहि) लभेमहि। याचितारश्च नः सन्तु मा च याचिष्म केचन ॥

हेमाद्रौ बृहस्पतिः—भाजनेषु च तिष्ठत्सु स्वस्ति कुर्वन्ति ये द्विजाः ।
तदन्नमसुरैर्भुक्तं निराशैः पितृभिर्गतैः ॥

हेमाद्रि में बृहस्पति ने कहा है—पात्रों के रहने पर जो ब्राह्मण 'स्वस्ति' करते हैं उस अन्न को पितरों के निराश हो जाने पर असुरगण भोजन करते हैं ।

(पात्राणां चालने विचारः)

जातूकर्ण्यः—पात्राणि चालयेच्छ्राद्धे स्वयं शिष्योऽथवा सुतः ।
न स्त्रीभिर्न च बालेन नासजात्या कथञ्चन ॥

जातूकर्ण्य[1] ने कहा है—पात्रों को श्राद्ध में स्वयं, शिष्य या पुत्र चालन करे । स्त्री, बालक और अन्य जाति वालों से कभी न चलावे । (श्राद्ध में भोजनपात्रों को स्वयं चालन करे—यह हेमाद्रि का कहना उचित नहीं था । बालक–अनुपनीत ।)

(स्वस्तीत्युक्ते अक्षय्यमस्तु–इतिकथनम्)

याज्ञवल्क्यः—(आचाराध्याय–श्लो० २४२) स्वस्तिवाच्यं ततः कुर्यादक्षय्योदकमेव च ।

याज्ञवल्क्य ने कहा है—स्वस्तिवाचन कर अक्षय्योदकदान करे ।

तत्रैव वृद्धशातातपः—पितॄणां नामगोत्रेण करे देयं तिलोदकम् । प्रत्येकं पितृतीर्थेन अक्षय्यमिदमस्त्विति ॥ अत्र षष्ठी प्रागुक्ता ।

वहीं पर वृद्धशातातप ने कहा है—पितरों के हाथ में नाम और गोत्र को कह कर तिलोदक देना चाहिए । प्रत्येक को पितृतीर्थ से 'अक्षय्यमिदमस्तु' ऐसा कहकर दे । यहाँ षष्ठी का उच्चारण हो यह पहले कह चुके हैं ।

(उत्तानमर्घ्यपात्रं कृत्वा दैवे पित्र्ये च दक्षिणाविचारः)

तत्रैव नागरखण्डे—उत्तानमर्घ्यपात्रं तु कृत्वा दद्याच्च दक्षिणाम् ।
हिरण्यं देवतानां च पितॄणां रजतं तथा ॥

यहाँ पर ही नागरखण्ड में कहा है—अर्घ्यपात्र को उत्तान—सीधा कर दक्षिणा दे । देवताओं को हिरण्य (सुवर्ण) और पितरों को रजत (चाँदी) दे ।

बृहस्पतिः—तस्मात्पणं काकिणीं वा फलं पुष्पमथापि वा । प्रदद्याद्दक्षिणां यज्ञे तया स सफलो भवेत् ॥ अत्र पित्रुद्देशेन दक्षिणादाने अपसव्यं विप्रोद्देशे न सव्यमिति माधवः ।

बृहस्पति ने कहा है—इसलिए पण (पैसा), काकिणी, (सिक्के के रूप में प्रयुक्त होनेवाली कौडी, एक सिक्का जो बीस कौडी या चौथाई पण के बराबर होता है । पण का चौथा भाग या कौडी) फल और पुष्प और दक्षिणा यज्ञ में दे तो वह यज्ञ सफल होता है यहाँ पर पितरों को उद्देश्य से दक्षिणादान में अपसव्य से दे । विप्रों के उद्देश्य से सव्य से दे—यह माधव कहते हैं ।

कलिकायामाचार्यः—दद्याद्यज्ञोपवीत्येव ताम्बूलं दक्षिणां तथा ।

कलिका में आचार्य कहते हैं—यज्ञोपवीतित्येव—अर्थात्–एवकार से पितृकार्य में प्राचीनावीति (अपसव्य) से और देवकार्य में सव्य होकर तांबूल और दक्षिणा दे ।

(पित्रादिभ्यः 'स्वधोच्यताम्' 'अस्तु स्वधा' इत्युच्यमाने ऊर्जं वहन्ति धारा—इतिमन्त्रेण धारादानम्)

अत्रिः—वदेच्च तांस्ततो विप्रान् पित्रादिभ्यः स्वधोच्यताम् । गोभिलः—'अघोराः पितरः सन्त्वित्युक्त्वा स्वधां वाचयिष्य इति पृच्छति पितृभ्यः स्वधोच्यतामित्युक्तेऽस्तु स्वधेत्युच्यमाने धारां दद्यादूर्जं वहन्ती' इति ।

---

[1]—चन्द्रिकायां भविष्योत्तरे—चालयेद्विप्र पात्राणि स्वयं शिष्योऽथवा सुतः । न स्त्री प्रचालयेत्तानि हीनजातिर्न चाग्रतः ॥ अग्रजो ज्येष्ठभ्राता । यजमानापेक्षयाऽधिकवयस्क इति हेमाद्रिः । अत्रोच्छिष्ट पात्रचालनमात्रं नोद्वासनम् । उद्वासनस्य कालान्तरोक्तत्वात् । कर्मपुराणे—नोद्वासयेतदुच्छिष्टं यावन्नास्तमितो रविः ।

अत्रि ने कहा है—तदनन्तर ब्राह्मणों को कहे कि—पितरों के लिए 'स्वधा' का उच्चारण करें।

गोभिल ने कहा है—'अघोराः पितरः सन्तु' ऐसा कहने पर 'स्वधां वाचयिष्ये'[1] ऐसा कहकर पूछता है—'पितृभ्यः स्वधोच्यताम्' ऐसा कहने पर ब्राह्मणों के 'अस्तु स्वधा' ऐसा कहने पर धारा (जल की) 'ऊर्जं वहन्तीरमृतं[2] घृतम्' इस मन्त्र से दे। (कोई तिलोदक देते हैं)।

(आपस्तम्बेन तु 'पुत्रान् पौत्रान्' इत्यपि परिषेचने मन्त्रकथनम्)

'आपस्तम्बेन तु' (आपस्तम्बमन्त्र ब्राह्मणे) पुत्रान् पौत्रानभितर्पयन्ती इत्यपि परिषेचने मन्त्र उक्तः।

आपस्तम्ब ने तो कहा है कि—'पुत्रान् पौत्रानभितर्पयन्ती' इसको भी सेचन में मन्त्र कहा है।

आश्वलायनः—अथैतान्प्रवाहयेत्। परेतन पितरः सोम्यासो गम्भीरेभिः पथिभिः पूर्विणेभिः। दत्त्वायास्मभ्यं द्रविणेह भद्रं रयिश्च नः सर्ववीरं नियच्छत ॥ इति।

आश्वलायन ने कहा है—इसके बाद इन पिण्डों को 'परेतन[3] पितरः सोम्यासो गम्भीरेभिः पथिभिः पूर्विणेभिः। दत्वा यास्मभ्यं द्रविणेह भद्रं रयिश्च नः सर्ववीरं नियच्छत ॥ इस मन्त्र से प्रवाहण (आगे बढा दे—समीचीनैर्यानैः पितृलोकं प्रतिनयनम्) करे।

(पितृपूर्वकं 'वाजे वाजे' इतिमन्त्रेण विसर्जनकथनम्)

मात्स्ये—वाजे वाजे इति जपन् कुशाग्रेण विसर्जयेत्।

मत्स्यपुराण में कहा है—'वाजे[4] वाजे' इस मन्त्र का जप (पाठ) करता हुआ कुशा के अग्रभाग से विसर्जन करे।

प्रचेताः—स्वस्तिवाच्यं ततः कृत्वा पितृपूर्वं विसर्जयेत्।

प्रचेता ने कहा है—स्वस्ति को कहकर पितृपूर्वक विसर्जन करे।

आश्वलायनः—अन्नं प्रकीर्योपवीत्यों स्वधोच्यतामिति विसृजेदस्तु स्वधेति वा।

आश्वलायन ने कहा है—अन्न को विकरण (बखेर) कर सव्य होकर ॐ 'स्वधोच्यताम् ऐसा कहकर या 'स्वधा अस्तु' इससे विसर्जन करे।

(ब्राह्मणानां प्रदक्षिणादिकथनम्)

ब्रह्मवैवर्ते—आमावाजेति मन्त्रं तु पठित्वा च प्रदक्षिणम्। द्वारोपान्ते ततः कृत्वा संयतः प्रविशेद् गृहम् ॥ प्राञ्जलिश्च ततः प्राह तान् विप्रान् सत्यवादिनः। दातारो नोऽभिवर्द्धन्तामन्नं च न इतीव हि ॥ एवमस्त्विति ते तं च कथयन्ति समाहिताः। एतन्मण्डलदेशे कार्यमिति हेमाद्रिः।

ब्रह्मवैवर्तपुराण में कहा है—'आ मावाजस्य'[5] इस मन्त्र को पढकर द्वार के अन्त (समीप) में प्रदक्षिणा कर संयत (सावधानी) से घर में प्रवेश करे। तदनन्तर हाथ जोड़कर उन सत्यवादी ब्राह्मणों से कहे कि—देनेवाले हमारे खानदान (वंश) में बढें। अन्न की वृद्धि रहे। एसा यजमान के कहने पर वे ब्राह्मण एकाग्रचित्त से उस यजमान को कहते हैं कि 'एवमस्तु' एसा ही हो। यह मण्डलदेश में करे यह हेमाद्रि कहते है।

१—कात्यायनः—स्वधा वाचनीयान्सपवित्रान् कुशानास्तीर्य स्वधां वाचयिष्य इति पृच्छति। वाच्यतामित्यनुज्ञातः—पितृभ्यः पितामहेभ्यः प्रपितामहेभ्यो मातामहेभ्यो प्रमातामहेभ्यो वृद्धप्रमातामहेभ्यः स्वधोच्यताम्। अस्तु स्वधा।

२—ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम्। स्वधा स्थ तर्पयत मे पितृन् ॥ (कां० स० २।६०)।

३—पुत्रं पौत्रमभितर्पयन्तीरापो मधुमतीरिमाः। स्वधां पितृभ्यो अमृतं दुहाना आपो देवीरुभयांस्तर्पयन्तु ॥ (अथर्व० १८।३६) हिरण्य-केशीयगृह्यसूत्र मुद्रिते पृ० ७४ में भी है। (२।१२।१०)।

४—वाजे वाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः। अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ॥ (तै० स० १।७।८।६)।

५—आ मा वाजस्य प्रसवो जगम्यादा द्यावापृथिवी विश्वशंभू। आ मा गन्तां पितरा मातरा चाऽऽमा सोमो अमृतत्वाय गम्यात् ॥ (तै० स० १।७।८।१६)।

मनुः—(अ० ३ श्लो० २५९) दातारो नोऽभिवर्द्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च। श्रद्धा च नो मा व्यगमत् बहु देयं च नोऽस्तु ॥ इति।

मनु ने कहा है—देनेवाले हमारे वंश में वृद्धि को प्राप्त हों, वेद (ज्ञान) और सन्तानों की वृद्धि हो। श्रद्धा हमारे खानदान से न हटे, हमारे वंश में देनेवालों की वृद्धि हो।

बौधायनः—अन्नं च नो बहु भवेदतिथींश्च लभेमहि। याचितारश्च नः सन्तु मा च याचिष्म कञ्चन। इति। अत्र दातारो वोऽभिवर्द्धन्तां–लभध्वं मा याचिढ्वम्' इत्याद्यूहेन पठित्वा विप्रैः प्रतिवचनं कार्यमिति सुदर्शनभाष्ये। 'स्वादुषं सदः' इति 'ब्राह्मणासः पितरः' इति मन्त्रद्वयं पठन्ति।

बौधायन ने कहा है—हमारे वंश में अन्न की वृद्धि हो और अतिथियों की प्राप्ति हो; मांगनेवाले आवें तथा हम किसी के यहाँ मांगने न जांय। ये सब हमारे खानदान में हों। यहाँ पर 'दातारो वोऽभिवर्धन्ताम्' लभध्वम् और याचिढ्वम्—इत्यादि में ऊह से पढकर ब्राह्मण से प्रतिवचन करना चाहिये। यह कार्य यजमान करेगा यह सुदर्शनभाष्य में कहा है। स्वादुषं सदः[1] और ब्राह्मणासः पितरः[2]। इन दो मन्त्रों को पढते हैं।

शौनकः—ब्राह्मणानथ निर्यातान् परीत्य त्रिःप्रदक्षिणम्। सस्त्रीकः स्वजनैः सार्द्धं प्रणमेद्रचिताञ्जलिः ॥ कनिष्ठप्रथमाज्येष्ठचरमाः स्युः प्रदक्षिणे।

शौनक ने कहा है—इसके बाद ब्राह्मणों के जाने के समय स्त्रियों के सहित प्रथम कनिष्ठ (छोटे) और बादे में बड़े अपने बन्धु के साथ हाथ जोडकर यजमान तीनबार प्रदक्षिणा कर ब्राह्मणों को प्रणाम करे।

हेमाद्रौ बृहस्पतिः—अद्य मे सफलं जन्म भवत्पादाभिवन्दनात्। अद्य मे वंशजाः सर्वे याता वोऽनुग्रहाद्दिवम् ॥ पत्रशाकादिदानेन क्लेशिता यूयमीदृशाः। तत् क्लेशजातं चित्तात्तु विस्मृत्य क्षन्तुमर्हथ ॥

हेमाद्रि में बृहस्पति ने कहा है—आप के पादरूपी कमलों की बन्दना करके आज मेरा जन्म सफल हो गया। आज मेरे वंश में उत्पन्न होने वाले पितर सब आप के अनुग्रह से स्वर्ग में गये। पत्र-शाक आदि दान से आप सबों को इसप्रकार दुःखी किया है उस क्लेश से उत्पन्न कष्ट को मन से विस्मरण कर क्षमा[3] करें[5]।

प्रचेताः—विसृजेद्भक्तिसंयुक्तः सीमान्ते चाप्यनुव्रजेत् ॥ इति।

प्रचेता ने कहा है—भक्ति से युक्त होकर ब्राह्मणों का विसर्जन करे और उनके साथ सीमा[4] के अन्ततक पीछे जाना चाहिये।

१—स्वादुषं सदः पितरो वयोधाः कृच्छ्रेश्रितः शक्तीवन्तो गभीराः। चित्रसेनाः इषुबला अमृध्राः सतोवीरा उरवो व्रातसाहाः ॥ (ऋ० ६।७५।९) वा० य० २९।४६ तै० सं० ४।६।६।३)।

२—ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः शिवे नो द्यावापृथिवी अनेहसा। पूषा नः पातु दुरितादृतावृधो रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत ॥ (ऋ० ६।७५।१०। य० २९।४७। तै० सं० ४।६।६।३)।

३—श्राद्धमञ्जरीकार–इसके बाद इन श्लोकों को पढते हैं–यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपो यज्ञक्रियादिषु। न्यूनं संपूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥ मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं द्विजोत्तमाः। श्राद्धं संपूर्णतां यातु प्रसादाद् भवतां मम ॥ यः कश्चिच्छ्राद्धयज्ञस्य प्रोक्तो मन्वादिभिर्विधिः। असौ युस्मत्प्रसादेन संपूर्णः सकलोऽस्तु मे ॥ सर्वं संपूर्णमस्त्विति विप्राः।

४—अष्टौ पदान्यनु व्रज्य दक्षिणीकृत्य चागतः। 'विप्रैः सहाष्टौ पदानि सपरिवारोऽनुव्रज्य विसर्जयेदिति कारिकाभाष्ये।

५—यस्य स्मृत्यादयश्चन्द्रिकाद्युक्ता। विष्णुः–मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं द्विजोत्तमाः। श्राद्धं सम्पूर्णतां यातु प्रसादाद्भवतां मम ॥ वसिष्ठासः पितृवद्वाचमक्रत देवाँ ईडाना ऋषिवत् स्वस्तये। प्रीता इव ज्ञातयः काममेत्याऽस्मे देवासोऽव धूनुता वसु ॥ (ऋ० १०।६६।१४)। देवान् वसिष्ठो अमृतान् ववन्दे ये विश्वा भुवनानि प्रतस्थुः। ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ (ऋ० १० सू० ६५ और ६६ म० १५, १५)। इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपरास ईयुः। ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु विक्षु ॥ (ऋ० १०।१५।२। य०अ० १९।६८। तै० सं० २।६।१२।४)। इति चन्द्रिकायाम्।

(पिण्डप्रतिपत्तिकथनम्)

अथ पिण्डप्रतिपत्तिः। हेमाद्रौ ब्रह्माण्डे—पिण्डमग्नौ सदा दद्याद्भोगार्थी प्रथमं नरः।
पत्न्यै प्रजार्थी दद्याद्वै मध्यमं मन्त्रपूर्वकम् ॥

अब पिण्डप्रतिपत्ति (पिण्ड का विनियोग कर्म) कहते हैं। हेमाद्रि में ब्रह्माण्डपुराण का वचन है—भोगार्थी मनुष्य निरन्तर प्रथम पिण्ड को अग्नि में दे। मध्यम पिण्ड को मन्त्रपूर्वक पत्नी को पुत्र की कामना के लिए ही दे। (यह केवल काम्यपरक है।)

उत्तमां गतिमन्विच्छन् गोषु नित्यं प्रयच्छति। आज्ञां प्रज्ञां यशः कीर्तिमप्सु पिण्डं प्रवेशयेत् ॥

उत्तम गति की इच्छावाला मनुष्य नित्य गौवों को दे। आज्ञा, बुद्धि, यश तथा कीर्ति की इच्छावाला व्यक्ति पिण्ड को जल में प्रवेश करे।

प्रार्थयन् दीर्घमायुष्यं वायसेभ्यः प्रयच्छति। आकाशं गमयेदप्सु स्थितो वा दक्षिणामुखः ॥

दीर्घ आयु की कामना चाहने वाला मनुष्य कौवों के लिए पिण्ड को देता है। दक्षिणाभिमुख होकर जल में खड़ा होकर आकाश में (साधारण तरीके से हमलोग ऊपर के शून्य स्थान को ही आकाश कहते हैं) छोड़ दे।

आश्वलायनः—(पृ० १६५) 'वीरं मे दत्त पितर' इति पिण्डानां मध्यमं पत्नीं प्राशयेत्। आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम्। यथायमरपा असत्' इति भर्त्रा दत्तस्याद्येनादानं द्वितीयेन प्राशनम्।

आश्वलायन ने कहा है—'वीरं मे दत्त पितरः' इस मन्त्र से पिण्डों के मध्यपिण्ड को पत्नी को प्राशन (भक्षण) करावे। 'आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम्। यथायमरपा असत्' इस मन्त्र से पति-द्वारा दिए हुए आद्य (पहले) मन्त्र से आदान ग्रहण करे और 'वीरं मे दत्त पितरः (हे पितर, मुझको वीर पुत्र दीजिए)। दूसरे मन्त्र से—आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम्। यथायमरपा असत् ॥ इससे भक्षण करे। (षट्प्रयोग में मध्य के दोनों पिण्डों का प्राशन होता है) (अशुभ श्राद्धों में भक्षणादि न करे।)

आपस्तम्बस्तु दाने मन्त्रमाह—'अपां त्वौषधीनां रसं प्राशयामि भूतकृतं गर्भं धत्स्व' इति मध्यमं पत्न्यै प्रयच्छति' इति। प्राशनेऽपि 'यथेह पुरुषो असत्' इति। तदीयः पाठेऽन्येषां तत्तच्छाखायां ज्ञेयः।

आपस्तम्ब ने तो दान में मन्त्र कहा है—'अपां[1] त्वौषधीनां रसं प्राशयामि भूतकृतं गर्भं धत्स्व' इस मन्त्र से मध्यवाले पिण्ड को पत्नी के लिए देता है। प्राशन में—'यथेह पुरुषो असत्' यह आपस्तम्ब का पाठ है। [2]अन्यशाखावालों को अपनी २ शाखा में (मन्त्र) जानना चाहिए।

तत्रैव शङ्खः—पत्नी वा मध्यमं पिण्डमश्नीयादार्तवान्विता।

वहीं पर शंख ने कहा है—मध्यम पिण्ड का ऋतु धर्म हो जाने बाद पत्नी भक्षण करे।

कलिकायां छागलेयः—प्राचीनावीतमामन्त्र्य पत्नीः पिण्डो विभज्यते।
प्रतिपत्न्यस्य मन्त्रस्य कर्तव्यावृत्तिरत्र तु ॥

कलिका में छागलेय ने कहा है—यहाँ पर तो प्राचीनावीति (अपसव्य) होकर आमन्त्रण कर पत्नियों के पिण्ड का विभाग करे। यहाँ पर हर पत्नी में मन्त्र की आवृत्ति करनी चाहिये। (जिसके अधिक स्त्री (पत्नी) हों वह प्राचीनावीति होकर पत्नी पिण्ड का विभाग कर प्रतिपत्नी में मन्त्र की आवृत्ति कर यथासंख्य भागों को क्रम से दे। एक एक भाग का प्राशन करें।)

१—अपां त्वौषधीना ँ रसं प्राशयामि भूतकृतं गर्भं धत्स्वेति मध्यमं पिण्डं पत्न्यै प्रयच्छति। आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम्। यथेह पुरुषोऽसदिति तं पत्नी प्राश्नाति पुमा ँ स ँ ह जानुका भवतीति विज्ञायते (आपस्तंबश्रौ० प्रथमप्रश्ने पृ० ७४, ३ पटले।

२—आधत्त गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम्। यथेह पुरुषोऽसत् ॥ यजु० अ० २।

पृ० ६११ का बचो टिप्पणी—पुत्रान् पौत्रान् अभितर्पयन्ती पर—पुत्रान् पौत्रान् अभितर्पयन्तीरापो मधुमतीरिमाः। स्वधा पितृभ्यो अमृतं दुहना आपोदेवीरुभयाँ स्तर्पयन्तु ॥

माधवीये विष्णुधर्मे–तीर्थश्राद्धे सदा पिण्डान् क्षिपेत्तीर्थे समाहितः ।

माधवीय में विष्णुधर्म ने कहा है—तीर्थश्राद्ध में सदा पिण्डों को एकाग्रमन से तीर्थ में प्रक्षेप करे।

याज्ञवल्क्यः–(आचाराध्याय श्लोक–२५७) पिण्डांस्तु गोऽजाविप्रेभ्यो दद्यादग्नौ जलेऽपि वा ।

याज्ञवल्क्य ने कहा है—पिण्डों को गौ, बकरा, ब्राह्मण या अग्नि को दे या जल में प्रक्षेप करे।

बृहस्पतिः–अन्यदेशगता पत्नी रोगिणी गर्भिणी तथा। तदा तं जीर्णवृषभं छागो वा भोक्तुमर्हति ॥

बृहस्पति ने कहा है—दूसरे देश (नगर) में पत्नी गई हो, रुग्ण हो या गर्भवती हो तो उस पिण्ड को जीर्ण (अत्यन्त वृद्ध) वृषभ (बैल) या छाग (बकरा) भक्षण करने योग्य होता है।

(पिण्डोपघाते विचारः)

अथ पिण्डोपघाते हेमाद्रौ प्रायश्चित्तकाण्डे देवलः–श्वशृगालखरैः पिण्डः स्पृष्टो भिन्नः प्रमादतः ।
कर्तुरायुष्यनाशः स्यात्प्रेतस्तं नोपसर्पति ॥

अब पिण्डोपघात (पिण्ड का स्पर्श) में हेमाद्रि के प्रायश्चित्तकाण्ड में देवल ने कहा है—श्व (कुत्ता), शृगाल (सियार) या खर (गधा) से प्रमाद से पिण्ड का स्पर्श करता है या तोड देता है तो श्राद्ध करने-वाले की आयु का नाश होता है। वह पिण्ड प्रेत के समीप नहीं पहुँचता है।

जातूकर्ण्यः पूर्वश्लोकान्ते–तद्दोषपरिहारार्थं प्राजापत्यं प्रकल्पयेत् ।
पुनः स्नात्वा तदा कर्ता पिण्डं कुर्याद्यथाविधि ॥

जातूकर्ण्य ने पूर्वश्लोक के अन्त में कहा है—उसके दोष के परिहार के लिए 'प्राजापत्य[1]' व्रत करे। तदनन्तर कर्ता फिर से स्नानकर यथाविधि पिण्ड को करे।

(काकस्पर्शे विचारः)

काकस्य स्पर्शे न दोषः। पिण्डोपघातं प्रक्रम्य—धनस्य च विनाशः स्यात्काकस्पर्शादिकं विना। इति तत्रैव श्लोकगौतमोक्तेः ।

काक (कागला) के स्पर्श में दोष नहीं है। पिण्ड के उपघात (नाश) के प्रकरण में कहा है कि—काकस्पर्श के विना धन का विनाश होता है। यह वहीं पर श्लोक गौतम ने कहा है।

(मार्जारमूषकादिस्पर्शे विचारः)

स्मृतिदर्पणे अत्रिः—मार्जारमूषकस्पर्शे पिण्डे च द्विदलीकृते ।
पुनः पिण्डाः प्रदातव्यास्तेन पाकेन तत्क्षणात् ॥

स्मृतिदर्पण में अत्रि ने कहा है—मार्जार (बिलाव) और मूषक (मूसा) के स्पर्श से पिण्ड के द्विदलो (दो टुकडे) हो जाने पर फिर से उसी पाक से उसी क्षण पिण्डों को देना चाहिए।

बौधायनः–श्वचाण्डालादिभिः स्पृष्टः पिण्डो यद्युपहन्यते ।
प्राजापत्यं चरित्वाऽथ पुनः पिण्डं समाचरेत् ॥

बौधायन ने कहा है—कुत्ता और चाण्डाल आदियों के स्पर्श से पिण्ड का नाश हो जाय तो प्राजापत्य व्रत कर फिर से पिण्ड को करे।

वोपदेवोऽप्येवमाह अथ दिनान्तरे तु प्राजापत्यमात्रम्। शेषप्रतिपत्तित्वेन पिण्डावृत्तौ माना-भावादिति मैथिलाः। तन्न, सपिण्डीकरणादौ शेषनाशे संयोजनादिलोपापत्तेः। तेन वचनाद्वमन इवात्रापि तन्मात्रपिण्डदानावृत्तिः। अत एव 'न च नक्तं श्राद्धं कुर्वीत, आरब्धे चाऽभोजनमास-मापनात्' इत्यापस्तम्बधर्मसूत्रम् (पृ० ५५८)। रात्रौ भोजनमात्रं पूर्वेद्युः कार्यम्। श्राद्धसमाप्तिस्तु

१—त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यहमद्यादयाचितम्। परं त्र्यहं च नाश्नीयात्प्राजापत्यं चरन्द्विजः॥ इत्यादि मिताक्षरा-याम् पृ० ६२९।

परदिन एव। समाप्तिपर्यन्तं कर्तुरुपवासश्चेति हरदत्तेन व्याख्यातम्। तस्मात्पाकान्तरेण पिण्ड-दानमात्रं कार्यम्।

वोपदेव ने भी यही कहा है। इसके बाद दिनान्तर में तो प्राजापत्यमात्र है। शेषकर्म की प्रतिपत्ति से पिण्ड की आवृत्ति में प्रमाणाभाव है—यह मैथिक कहते हैं। यह ठीक नहीं है। सपिण्डीकरण आदि श्राद्धों में शेष कर्म के नाश होने पर पिण्डमेलन आदि में लोप की आपत्ति हो जायगी। इस वचन से वमन के सदृश यहाँ पर भी पिण्डदानमात्र की आवृत्ति होगी। इसलिए आपस्तम्बसूत्र में कहा है कि—रात्रि में श्राद्ध न करे और आरम्भ होने पर भोजन समाप्ति के पूर्व न करे। पहले दिन रात्रि में भोजन मात्र करे। श्राद्ध की समाप्ति तो दूसरे दिन ही करे। समाप्तिपर्यन्त कर्ता का उपवास है—यह हरदत्त ने व्याख्या की है। इसलिए पाकान्तर से पिण्डदानमात्र करना चाहिये।

(पिण्डनिषिद्धकालः)

अथ पिण्डनिषिद्धकालः। स च प्रायेण महालयादिनिर्णये पूर्वमुक्तः।

अब पिण्डनिषिद्धकाल कहते हैं—वह तो प्रायः करके महालय आदि (यदा च श्रोत्रियोऽभ्येति गृहं वेदविदग्निचित्। तेनैकेनापि कर्तव्यं पिण्डनिर्वपणादृते॥ इति पुराणादिसंग्रहः। हविः सम्पत्तावपि न पिण्ड-दानं, द्रव्यब्राह्मणसम्पत्योः समस्वभावत्वात्।) के निर्णय में पहले कह चुके हैं।

हेमाद्रौ वृद्धपराशरः—युगादिषु मघायां च विषुवत्ययने तथा।
भरणीषु च कुर्वीत पिण्डनिर्वपणं नहि॥

हेमाद्रि में बृहत्पराशर ने कहा है—युगादियों में, मघा में, विषुवत् (मेष और तुला की संक्रान्ति) में अयन और भरणी में पिण्डदान नहीं होता है।

स्मृतिरत्नावल्याम्—पुत्रे जाते व्यतीपाते ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः।
श्राद्धं कुर्यात्प्रयत्नेन पिण्डनिर्वपणादृते॥

स्मृतिरत्नावली में कहा है—पुत्रोत्पन्न में, व्यतीपात में, चन्द्र और सूर्य के ग्रहण में पिण्डदान को छोडकर प्रयत्न से श्राद्ध करे।

तत्रैव कात्यायनः—वृद्धेरनन्तरं चैव यावन्मासः समाप्यते।
तावत्पिण्डान्नैव दद्यान्न कुर्यात्तिलतर्पणम्॥

वहीं पर कात्यायन ने कहा है—वृद्धि (विवाह आदि वृद्धि से भिन्न) के बाद एक महिने की समाप्ति तक तबतक (वार्षिक आदियों में) पिण्डों को न दे और तिलतर्पण (अर्थात् तिल से तर्पण) न करे-(अर्थात्—विना तिल का तर्पण अवश्य करे।)

बौधायनः—संस्कारेषु तथान्येषु मासं मासार्द्धमेव च।

बौधायन ने कहा है—और अन्य संस्कारों में एक मास या आधा महिना (अर्थात् छ महिना) तर्पण न करे।

तथा—भानौ भौमे त्रयोदश्यां नन्दाभृगुमघासु च।
पिण्डदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम्॥

और—रविवार, मंगलवार, त्रयोदशी, नन्दा, (प्रतिपदा, षष्ठी और एकादशी) शुक्रवार और मघा नक्षत्र में पिण्डदान, मृत्तिकास्नान तथा तिलतर्पण न करे।

त्रिस्थलीसेतौ कार्ष्णाजिनिः—विवाहव्रतचूडासु वर्षमर्द्धं तदर्द्धकम्। उत्तरार्द्धं प्राग्वत्

त्रिस्थलीसेतु में कार्ष्णाजिनि ने कहा है—विवाह (विवाह के बाद तीर्थयात्राङ्गश्राद्ध में पिण्डदान करना) व्रत (यज्ञोपवीत) और चूडाकरण में क्रम से विवाह में एक साल, व्रत-यज्ञोपवीत होने पर छमास-और चूडाकरण में तीनमास तक पिण्डदान, मृत्तिकास्नान तथा तिल से तर्पण न करे। उत्तरार्ध पहले की तरह है।

वृद्धिमात्रे तथाऽन्यत्र पिण्डदाननिराक्रिया। कृता गर्गादिभिर्मुख्यैर्मासमेकं तु कर्मिणाम्॥

(श्राद्ध) कर्म करनेवालों के लिए वृद्धिमात्र में और अन्यत्र पिण्डदानक्रिया के कर्मों के निराकरण गर्गादि मुख्य मुनियों ने एक महीने तक किया है।

हेमाद्रौ ज्योतिःपराशरः—विवाहे विहिते मासांस्त्यजेयुर्द्वादशैव हि।
सपिण्डाः पिण्डनिर्वापं मौञ्जीबन्धे षडेव हि॥

हेमाद्रि में ज्योतिःपराशर ने कहा है—विवाह के हो जाने पर बारहमहिने तक सपिण्ड पिण्ड का निर्वाप (पिण्डदान) और छमास तक मौञ्जीबन्धन (यज्ञोपवीत हो जाने पर) न करें।

तत्रैव—महालये गयाश्राद्धे मातापित्रोः क्षयेऽहनि। यस्य कस्यापि मर्त्यस्य सपिण्डीकरणे तथा॥ कृतोद्वाहोऽपि कुर्वीत पिंडनिर्वापणं सदा। इति।

वहीं पर कहा है—महालय में, गयाश्राद्ध में, माता और पिता के क्षयाहदिन में, जिसी किसी मनुष्य का भी सपिण्डीश्राद्ध होने पर किसी के विवाह होने पर भी (अपिशब्द का अर्थ—उपनयनादि का ग्रहण है) सदा पिण्डदान करना कहा है।

मातापित्रोरिति क्षयाहविशेषणम् हविरुभयत्ववदविवक्षितम्। तेन भ्रातृपितृव्यादिवार्षिके पिण्डदानं कार्यमिति केचित्। सपिण्डीकरणं नवश्राद्धषोडशश्राद्धोपलक्षणार्थमिति निर्णयामृते उक्तम्।

'मातापित्रोः' यह क्षयाहदिन का विशेषण है—हवि[1]—यहाँ पर दोनों तरफ की तरह अविवक्षित है। इससे भाई, चाचा, आदि के वार्षिकश्राद्ध में भी पिण्डदान करे—यह कोई कहते हैं। सपिण्डीकरण, नवश्राद्ध तथा षोडशश्राद्ध उपलक्षणार्थ है—यह निर्णयामृत में कहा है।

(क्षयाहे विशेषः)

क्षयाहे विशेषः सङ्ग्रहे—मातापित्रोराब्दिके तु विवाहादिषु सर्वदा। तिलैः पिण्डाः प्रदातव्या अन्यश्राद्धे विवर्जयेत्॥ अत्र मूलं चिन्त्यम्।

क्षयाह में विशेष संग्रह में कहा है—माता और पिता के वार्षिकश्राद्ध में तथा विवाह आदि में सर्वदा तिलों से पिण्ड देना चाहिये और अन्यश्राद्ध में त्याग करे। इसमें मूल विचारणीय है।

रामकौतुके—नन्दाश्वकामरव्यारभृग्वग्निपितृकालभे।
गण्डे वैधृतिपाते च पिण्डास्त्याज्याः सुतेप्सुभिः॥

रामकौतुक में कहा है—नन्दा (प्रतिपदा, षष्ठी और एकादशी) अश्व (द्वितीया) काम (त्रयोदशी), रविवार, मंगलवार, शुक्रवार, अग्नि (कृत्तिका) पितृ (मघा) काल (भरणी) इन नक्षत्रों में गण्डान्त, वैधृति, पात (व्यतीपात) इनमें पुत्र चाहनेवालों को पिण्ड नहीं करना चाहिये।

विश्वरूपनिबन्धे—तिथिवारप्रयुक्तो यो दोषो वै समुदाहृतः। स श्राद्धे तन्निमित्ते स्यान्नान्यश्राद्धे कदाचन॥ अन्यत्तूक्तं प्राक्।

१—दर्शपूर्णमासप्रकरण में 'यस्योभयं हविरार्तिमार्छेदैन्द्रं पञ्चशरावमोदनं निर्वपेत्' यह वाक्य श्रुत है। इस वाक्य का यह अर्थ है जिस यजमान के दोनों हवि नष्ट होते हैं उनको इन्द्रदेवता के लिये पञ्चशराव परिमित ओदनद्रव्ययाग करना चाहिये। यहाँ उभय हविर्नाश निमित्त मालुम होता है इसलिए दोनों हवि के नाश होने पर भी यह प्रायश्चित्त होगा यह पूर्वपक्ष है। सिद्धान्त में—हविर्नाश को निमित्त मानने पर भी निराकांक्ष होता है या निमित्तस्वरूप पर्यवसन्न होता है इसलिए उभय विशेषण विवक्षित नहीं है। उसका फल यह है—किसी एक हवि का नाश होने पर भी प्रायश्चित्त होगा। इसी न्यास से 'माता पिता' इन दोनों का क्षयाहविशेषण विवक्षित नहीं है। यहाँ 'यस्योभावग्नी अनुगतौ स्याताम्, इस स्थल में अग्न्यनुगमनिमित्त होने पर भी पुनराधान का विधान हो सकता है। वहाँ उभयत्व की विवक्षा नहीं है तथापि विधेय जो पुनराध है उसका यह सामर्थ्य है दोनों अग्नि का उत्पादन करने में। इसलिए इतर वार्षिक में पिण्डदान का प्रसंग नहीं होता है। इस अरुचि को 'केचित्' इत्यादि से सूचित किया है।

विश्वरूपनिबन्ध में कहा है—निश्चय तिथि और वार प्रयुक्त जो दोष कहा है वह उस श्राद्धनिमित्त में है तथा अन्य श्राद्ध में कभी नहीं है। अन्य तो पहले कह चुके हैं।

(उच्छिष्टोद्वासनमाह)

उच्छिष्टोद्वासनमाह हेमाद्रौ वसिष्ठः—श्राद्धे नोद्वासनीयानि उच्छिष्टान्यादितः क्षयात्। श्च्योतन्ते वै सुधाधारास्ताः पिबन्त्यकृतोदकाः॥

उच्छिष्ट का उद्वासन (फेंकना) हेमाद्रि में वशिष्ठ ने कहा है—श्राद्ध में उच्छिष्ट को दिन की समाप्ति तक न फेंके। जिनको जलदान नहीं मिला है वे ही चूनेवाली उस अमृतरूपी धारा का पान करते है।

व्यासः—उच्छिष्टं न प्रमृज्यात्तु यावन्नास्तमितो रविः। इदं गृहान्तरसत्त्वे।

व्यास ने कहा है—जब तक सूर्यास्त नहीं होता है तब तक उच्छिष्ट का मार्जन (शुद्धि) न करे। यह दूसरा घर होने पर है।

एकगृहे तु मनुः (अ० ३ श्लो० २६५)—उच्छेषणं तु तत्तिष्ठेद्यावद्विप्रा विसर्जिताः। ततो गृहबलिं कुर्यादिति धर्मो व्यवस्थितः॥ बलिवैश्वदेवादि नित्यकर्मेति मेधातिथिः।

एक घर में तो मनु ने कहा है—जब तक ब्राह्मणों का विसर्जन न हो तब तक उच्छिष्ट की रक्षा करे। तदनन्तर उच्छिष्ट को हटा दे। तदनन्तर गृहबलि को करे यही धर्म की व्यवस्था है। बलिशब्द से वैश्वदेव आदि नित्यकर्म यह मेधातिथि ने कहा है। (निर्वर्त्य प्रणिपत्याथ पर्युक्ष्याग्निं समन्त्रवत्। वैश्वदेवं प्रकुर्वीत नैत्यकं बलिरेव च॥)।

ब्रह्माण्डे—शूद्राय चानुपेताय श्राद्धोच्छिष्टं न दापयेत्।

ब्रह्माण्डपुराण में कहा है—शूद्र को और जिसका यज्ञोपवीत संस्कार न हुआ हो उनको श्राद्ध का उच्छिष्ट नहीं देना चाहिये।

तथा—कामं दद्याच्च सर्वं तु शिष्याय च सुताय च। भोक्तव्यमिति शेषः।

और इच्छा से सब शिष्य और पुत्र को दे। भोक्ता का यह शेष है। (शिष्य और पुत्र उपनीत हो गये हों तो उनकी इच्छा से दोष अल्प होता है। इसलिए 'काम' पद दिया है)

जातूकर्ण्यः—द्विजभुक्तावशिष्टं तु शुचिभूमौ निखानयेत्।

जातूकर्ण्य ने कहा है—ब्राह्मणों के भोजन करने बाद भोजन से बचे अन्न को पवित्र भूमि में गाड देना चाहिये। (खनित्वा निक्षिपेद् भूमावन्यथा स्पर्शसम्भवात्। निषिद्धं स्पर्शनं तेषां तस्मात् खननमुत्तमम्॥ सायं मार्जनेऽपि खननमेव।)।

(वैश्वदेवादि)

अथ वैश्वदेवादि। अत्र मामकः श्लोकः—श्राद्धेऽनग्निककर्तृकेऽग्निकरणात्पश्चाज्जुहोतिर्बलिस्त्वन्ते स्यादथवा भवेद्विकिरतः पश्चात्पृथक्त्वे पचेः। श्राद्धान्ते त्वथवा महालयविधावूर्ध्वं भुजेः स्यात् क्षये त्वन्तेऽमासु च मध्यतः शुभविधावादौ तथा साग्निके॥

अस्यार्थः—साग्नेः पृथक्पाकेन सर्वत्रादौ वैश्वदेवः।

अब वैश्वदेव आदि को कहते है—उसमें हमारा (कमलाकर भट्ट का) श्लोक है—अनग्निक अर्थात्—जो अग्निहोत्री न हो वह श्राद्ध करने वाला हो तो अग्निकरण के बाद होम और बलि (वैश्वदेव) होता है। या पृथक् (अलग) पाक हो तो विकर के बाद होते हैं। महालय विधि में श्राद्ध के बाद, क्षयाह में भोजनोत्तर, अमावास्या में—श्राद्ध के अन्त में शुभ कार्यों में मध्य से हवन और बलि साग्निक करे। इसका अर्थ यों है—साग्निक पृथक् पाक से सर्वत्र आदि में वैश्वदेव करे।

पक्वान्तं कर्म निर्वर्त्य वैश्वदेवं च साग्निकः। पिण्डयज्ञं ततः कुर्यात्ततोऽन्वाहार्यकं बुधः॥

पक्वान्त कर्म को और वैश्वदेव समाप्त कर साग्निक पिण्डपितृयज्ञ करे। फिर अन्वाहार्यकर्म (कात्यायनः—यत् श्राद्धं कर्मणामादौ या चान्ते दक्षिणा भवेत्। अमावास्यं द्वितीयं यदन्वाहार्यं विदुर्बुधाः॥) को (पितॄणां मासिकं श्राद्धमन्वाहार्यं विदुर्बुधाः॥ (मनु० ३।१२३) बुद्धिमान् करे।

पित्रर्थं निर्वपेत्पाकं वैश्वदेवार्थमेव च। वैश्वदेवं न पित्रर्थं न दार्शं वैश्वदेविकम्॥ इति लौगाक्षिस्मृतेः।

पितरों के लिए पाक का निर्माण करे और वैश्वदेवों के लिए ही बनावे। वैश्वदेव का पाक पितरों के लिए नहीं होता है और वैश्वदेवों का पाक सब श्राद्धपरक नहीं होता है। ऐसा लौगाक्षिस्मृति में कहा है।

अत्र साग्निक आहिताग्निरिति हेमाद्रिः।

हेमाद्रि ने कहा है--यहाँ पर साग्निकपद से आहिताग्नि को कहा है।

श्राद्धात्प्रागेव कुर्वीत वैश्वदेवं तु साग्निकः। एकादशाहिकं मुक्त्वा तत्र ह्यन्ते विधीयते॥ इति हेमाद्रौ शालङ्कायनोक्तेश्च।

साग्निक-अग्निहोत्री एकादशाहश्राद्ध को छोडकर श्राद्ध के पहले ही वैश्वदेव को करे। एकादशाह श्राद्ध में अन्त में ही विधान है ऐसा हेमाद्रि में शालङ्कायन ने कहा है।

तत्रैव परिशिष्टे—सम्प्राप्ते पार्वणश्राद्धे एकोद्दिष्टे तथैव च।
अग्रतो वैश्वदेवः स्यात्पश्चादेकादशेऽहनि॥

वहीं पर परिशिष्ट में कहा है—पार्वणश्राद्ध में और वैसे ही एकोद्दिष्ट श्राद्ध में तो क्रम से पार्वण श्राद्ध में प्रथम तथा एकोद्दिष्ट श्राद्ध में ग्यारहवेंदिन वैश्वदेव होता है।

स्मार्ताग्निमतां तद्रहितानां चाग्नौकरणोत्तरं विकिरोत्तरं वा होममात्रं पृथक्पाकेन। भूतयज्ञादि तु श्राद्धान्त एव। अत्र मूलं हेमाद्रिचन्द्रिकादौ स्पष्टम्। सर्वेषां श्राद्धान्ते वा तत्पाकेन वैश्वदेव-नित्यश्राद्धादीति तृतीयः।

स्मार्त अग्निवालों के तथा विना अग्निवालों के यहाँ अग्नौकरण के बाद या विकिरोत्तर बाद होममात्र अलग पाक से (पैठीनसि वचनात्—पितृपाकात्समुद्धृत्य वैश्वदेवं करोति यः। आसुरं तद्भवेच्छ्राद्धं पितॄणां नोपतिष्ठते॥) करे। भूतयज्ञ (बलिवैश्वदेव नामक पंचयज्ञों में भूतयज्ञ, मनु—३।७०, ७१ और पारस्करगृह्यसूत्र) आदि तो श्राद्ध के अन्त में ही होता है। यहाँ पर मूल हेमाद्रि, चन्द्रिका, आदि में स्पष्ट है। स्मार्ताग्निवालों का और स्मार्ताग्निरहितों का श्राद्ध के अन्त में या उसी पाक से वैश्वदेव नित्यश्राद्ध आदि करें यह तीसरा रास्ता है।

श्राद्धं निर्वर्त्य विधिवद्वैश्वदेवादिकं ततः। कुर्याद्भिक्षां ततो दद्यात् हन्तकारादिकं तथा॥ इति पैठीनसिस्मृतेः। ततः=श्राद्धशेषात्।

पैठीनसिस्मृति में कहा है--विधिवत् निरग्निक (यदा श्राद्धं पितुः कर्तुमिच्छत्यनग्निमान्। वैश्वदेवं तदा कुर्यान्निवृत्ते श्राद्धकर्मणि।) श्राद्ध को समाप्त कर श्राद्धशेष उसी अन्न से वैश्वदेव आदि करे। तदनन्तर भिक्षा दे और हन्तकार आदि को दे। ततः—माने-श्राद्धशेष से।

श्राद्धाद्धि श्राद्धशेषेण वैश्वदेवं समाचरेत्। इति चतुर्विंशतिमताच्च। एवं वैश्वदेवकालत्रयस्य आशार्के साङ्ख्यायनपरिशिष्टमुदाहृत्यैवं व्यवस्थोक्ता–आदौ वृद्धौ क्षये चान्ते दर्शे मध्ये महालये। एकोद्दिष्टे निवृत्ते तु वैश्वदेवो विधीयते॥ इति बहुस्मृत्युक्तत्वात्सर्वेषां श्राद्धान्त एवेति मेधातिथि-स्मृतिरत्नावल्यादयो बहवः।

और चतुर्विंशतिमत से कहा है—श्राद्ध के दिन में श्राद्ध के शेष (अवशिष्ट) अन्न से वैश्वदेव को करे। इसप्रकार वैश्वदेव के तीन काल को आशार्क में सांख्यायनपरिशिष्ट के वचनों को उदाहरण कर ही व्यवस्था कही है कि—वृद्धि में—अग्नौकरण के बाद आदि में, क्षय-श्राद्ध में समाप्ति के बाद, अमावास्या और महालय के मध्य में विकरदान के बाद एकोद्दिष्ट (महैकोद्दिष्ट में अन्न शेष को ब्राह्मणों के आधीन कर पश्चात् अलग पाक से वैश्वदेव करे) के समाप्त होने पर वैश्वदेव का विधान किया है। यह बहुत स्मृतियों में कहने से सबों के मत में श्राद्धान्त में ही करें--यह मेधातिथि, स्मृतिरत्नावली आदि बहुत से निबन्धकारों का मत है।

बोपदेवस्तु वृत्तिकारेण विसर्जनान्तं श्राद्धमुक्त्वा 'उच्छेषणं तु' इति पूर्वोक्तमनुवाक्योदाहरणाद्बह्वृचानां श्राद्धान्ते एव, मध्यपक्षस्त्वन्यशाखापर इत्याह । हेमाद्रिस्तु वृद्धावप्यन्ते एव वैश्वदेवमाह । कातीयानां तु स्मार्तश्रौताग्निमतामादावेकेनैव पाकेनेति कर्कः । अन्येषां मते तैत्तिरीयाणां तु साग्निकानां सर्वत्रादौ वैश्वदेवः । पञ्चयज्ञाश्च अन्ते वेति सुदर्शनभाष्ये उक्तम् । अस्य पक्षद्वयस्य पूर्ववद्व्यवस्था ।

बोपदेव ने तो कहा है—वृत्तिकार ने विसर्जनान्त (अर्थात्-विसर्जनपर्यन्त) श्राद्ध को कह कर 'उच्छेषणं तु' इस पूर्वोक्त 'मनु' वाक्य के उदाहरण से ऋग्वेदियों का श्राद्धान्त में ही वैश्वदेव होता है। मध्यपक्ष तो अन्यशाखा पर है—यों कहा है। हेमाद्रि ने तो कहा है कि—वृद्धि में भी अन्त में वैश्वदेव को कहा है। कात्यायनशाखीय श्रौत-स्मार्ताग्नि वालों को आदि में एक ही पाक से वैश्वदेव करना चाहिए—यह कर्कमत है। अन्य कातीयों के मत से, तैत्तरीय साग्निकों के मत से सर्वत्र आदि में वैश्वदेव होता है। या पञ्चयज्ञ अन्त में होता है—यह सुदर्शनभाष्य में कहा है। इस दोनों पक्ष का पहले कहे हुए के अनुसार व्यवस्था है।

हेमाद्रौ मार्कण्डेयः—ततो नित्यक्रियां कुर्याद्भोजयेच्च ततोऽतिथीन् । ततस्तदन्नं भुञ्जीत सह भृत्यादिभिर्नरः ॥ ततः=श्राद्धशेषात् । नित्यक्रियाम्—नित्यश्राद्धम् । तत्र—'पृथक्पाकेन नैत्यकम्' इति तेनैवोक्तेः । पाकैक्ये विकल्पः ।

हेमाद्रि में मार्कण्डेय ने कहा है—तदनन्तर नित्यश्राद्ध को करके श्राद्धशेष (श्राद्ध से बचे अन्न) को अतिथियों को भोजन करावे। उसी अन्न को भृत्यादियों (स्वगोत्रज आदि का ग्रहण है) के साथ मनुष्य भोजन करें।

'ततः'—इसका अर्थ श्राद्धशेष । नित्यक्रियाम्—नित्यश्राद्ध । वहाँ पर पृथक्पाक से नित्यश्राद्ध करे—यह उसने ही कहा है। एकपाक में विकल्प कहा है।

(नित्यश्राद्धम्)

अथ नित्यश्राद्धम् । हेमाद्रौ व्यासः—एकमप्याशयेद्विप्रं षण्णामप्यन्वहं गृही । अपीत्यनुकल्पः ।

अब नित्यश्राद्ध कहते हैं—हेमाद्रि में व्यास ने कहा है—गृहस्थ षड्दैवत्य पितरों के लिए एक ही ब्राह्मण को भोजन करावे। यहाँ पर 'अपी' शब्द अनुकल्प (गौण) है। (छ या दो मुख्यकल्प है)।

प्रचेताः—नामन्त्रणं न होमं च नाह्वानं न विसर्जनम् ।
न पिण्डदानं विकिरं न दद्यादत्र दक्षिणाम् ॥

प्रचेता ने कहा है—यहाँ पर-अर्थात्—नित्यश्राद्ध में आमन्त्रण, होम, आवाहन, विसर्जन, पिण्डदान, विकर नहीं होता है और यहाँ पर दक्षिणा न दे।

अत्र—निर्दिश्य भोजयित्वा तु किञ्चिद् दत्वा विसर्जयेत् । इति तेनैवोक्तेर्दक्षिणाविकल्पः ।

यहाँपर निर्देश (निमन्त्रण) कर भोजन कराकर कुछ देकर विसर्जन करे। ऐसा उसके कहने पर दक्षिणा में विकल्प कहा है।

यत्तु—नित्यश्राद्धं देवहीनं नियमादिविवर्जितम् । दक्षिणारहितं चैव दातृभोक्तृव्रतोज्झितम् ॥ इति काशीखण्डे । तद्विप्राभावपरमिति पृथ्वीचन्द्रः ।

जो किसी ने कहा है—नित्यश्राद्ध[1] वैश्वदेव से हीन है और नियम आदि से रहित तथा दक्षिणा से रहित है। दाता—भोक्ता के व्रत के नियम के बिना होता है। यह काशीखण्ड में कहा है। वह विप्राभावपरक है, यह पृथ्वीचन्द्र ने कहा है।

१—नित्यश्राद्धप्रयोगः—'अस्मत्पितृपितामहप्रपितामहानां गोत्रादीनां सपत्नीकानाम् अस्मन्मातामहमातुः पितामहमातुः प्रपितामहानां गोत्रादीनां सपत्नीकानां च नित्यश्राद्धं करिष्ये—इति सङ्कल्प्य विप्रमुदङ्मुखमुपवेश्य क्षणादि संपूज्य पात्रमभिघार्यान्नं परिविष्य 'पृथ्वी ते पात्रम्' इत्यादि ब्रह्मार्पणं कृत्वा भोजयित्वा विप्रं विसर्जयेत् ।

भविष्ये—आवाहनं स्वधाकारं पिण्डाग्नौकरणादिकम्। ब्रह्मचर्यादिनियमा विश्वेदेवा न चैव हि॥ दातृणामथ भोक्तृणां नियमो न च विद्यते। एतद्दिवाऽसंभवे रात्रावपि कार्यम्।

भविष्यपुराण में कहा है—आवाहन, स्वधाकार, पिण्ड, अग्नौकरण आदि, ब्रह्मचर्य आदि नियम और विश्वेदेवा नहीं ही होते हैं। इसके बाद दाताओं के और भोक्ताओं के नियम नित्यश्राद्ध में नहीं होते हैं। यह दिन में असम्भव हो तो रात्रि में भी करना चाहिए।

(दिवाऽसंभवे रात्रावपि कार्यम्)

दिवोदितानि कर्माणि प्रमादादकृतानि वै। यामिन्याः प्रहरं यावत्तावत्कर्माणि कारयेत्॥ इति बृहन्नारदीयोक्तेः।

बृहन्नारदीयपुराण में कहा है—दिन में कहे हुए कर्मों को प्रमाद से न किया तो रात्रि के प्रथम प्रहर तक सब कर्मों को करावे।

रात्रौ प्रहरपर्यन्तं दिवाकृत्यानि कारयेत्। ब्रह्मयज्ञं च सौरं च वर्जयित्वा विशेषतः॥ इति पृथ्वीचन्द्रधृतसङ्ग्रहोक्तेश्च।

विशेषकर ब्रह्मयज्ञ, सौरकर्म (सूर्यसम्बन्धी) कार्य को छोड़ कर रात्रि में प्रहरपर्यन्त दिन के कृत्यों को करावे। यह पृथ्वीचन्द्र में संग्रह का वचन है।

न च दार्शिकाब्दिकाद्यपि रात्रौ स्यादिति वाच्यम्, इष्टापत्तेः। तस्य तिथिसम्बन्धित्वात्। सन्ध्यारात्रौ न कर्तव्यं श्राद्धं खलु विचक्षणैः। इति वैष्णवाद्यै रात्रौ निषेधात्। अत एवाल्पद्वादश्याम्—उषःकाले द्वयं कुर्यात् प्रातर्माध्याह्निकं तदा। इत्याद्यैर्वाक्यैस्त्रयोदशीश्राद्धं नोपकृष्यते भिन्नविषयत्वादित्युक्तं मदनरत्ने। नित्यं त्वपकृष्यते। अन्वहमित्युक्तेस्तिथिसन्निधिकाभावात्। यथा च सुदर्शनभाष्ये—परपक्षे पित्र्याणीति नियमेऽपि नित्यश्राद्धत्वे सम्वत्सरमित्यत्यन्तसंयोगे द्वितीयाबलाच्छुक्लपक्षेऽपि इत्युक्तम्। तथा रात्रावपि। तथा च माधवेन प्रतिपत्प्रकरणे स्पष्टमुक्तम्। वयं चाग्रे वक्ष्यामः। अस्य दिनेऽकरणे लोप एव। 'रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीत' इति निषेधादिति पृथ्वीचन्द्रः।

कदाचित् कोई शंका करे कि—अमावास्या, आब्दिक (वार्षिक) आदि के भी श्राद्ध रात्रि में हो जायंगे। हो जाँय हमको मंजूर है। उसका तिथि से सम्बन्ध है। सन्ध्या और रात्रि में बुद्धिमानों को श्राद्ध नहीं करना चाहिये। यह वैष्णव आदि रात्रि में निषेध कहते हैं। इसलिये ही अल्पद्वादशी में उषा (अरुणोदय) काल में प्रातःकालीनकार्य और माध्याह्निककार्य दोनों करे। इत्यादि से त्रयोदशी श्राद्ध का अपकर्ष नहीं होता है। क्योंकि भिन्नविषय है यह मदनरत्न में कहा है। नित्य का तो अपकर्ष होता है। प्रतिदिन ऐसा कहने से तिथि में आधिक्य का अभाव है और जैसा सुदर्शनभाष्य में कहा है—परपक्ष में पित्र्यकर्मों को नियम से भी करे। नित्यश्राद्ध में संवत्सरम्—यह अत्यन्तसंयोग में द्वितीया विभक्ति के बल से शुक्लपक्ष में भी कहा है और रात में भी और माधव ने प्रतिपत्प्रकरण में स्पष्ट कहा है तथा हम आगे कहेंगे। इस नित्यश्राद्ध को दिन में न करने पर लोप ही है। रात्रि में श्राद्ध न करे--यह निषेध है—यह पृथ्वीचन्द्रोदय में कहा है।

(पात्राभावे कूर्मपुराणमतम्)

पात्राभावे कौर्मे—उद्धृत्य वा यथाशक्ति किञ्चिदन्नं प्रकल्पयेत्।

या पात्र के अभाव में (सुयोग्य ब्राह्मण के अभाव में) कूर्मपुराण में कहा है--यथाशक्ति कुछ अन्न को उसमें से निकाल दे।

(तत्प्रतिपत्तिमाह)

तत्प्रतिपत्तिमाह विष्णुः—'भिक्षुकाभावेऽन्नं गोभ्यो दद्यादग्नौ वा प्रक्षिपेत्' इति।

उसको प्रतिपत्ति (सिद्धि) विष्णु ने कही है—भिक्षुक के अभाव में अन्न को गौमाताओं के लिए दे या अग्नि में प्रक्षेप करे।

हेमाद्रौ नागरखण्डे—नित्यश्राद्धं न कुर्वीत प्रसङ्गाद्यत्र सिद्ध्यति। श्राद्धान्तरे कृतेऽन्यत्र नित्यत्वात्तन्न हापयेत्॥ षड्दैवते पृथङ् नेत्यर्थः।

हेमाद्रि के नागरखण्ड में कहा है--जहाँ पर प्रसंग से (दर्शश्राद्धादिस्थल में आह्निक आदि में तो अलग होता है देवताभेद से वहाँ पर नित्यश्राद्ध न करे वहाँ पर आदि या अन्त में वैश्वदेव करे। वहाँ पर वैश्वदेव के शेष से भोजन न करे किन्तु श्राद्धशेष से करे) सिद्धि होती है वहाँ नित्य श्राद्ध न करे। अन्यत्र श्राद्धान्तर के करने पर नित्य होने से उसका त्याग न करे। षड्दैवत में अलग नहीं होता है—यह अर्थ है।

मात्स्ये—ततस्तु वैश्वदेवान्ते सभृत्यसुतबान्धवः। भुञ्जीतातिथिसंयुक्तः सर्वं पितृनिषेवितम्॥ अत्र पर्वनिषिद्धं मांसमाषाद्यपीत्यर्थः। एवं कृष्णैकादश्यादौ गृहिणोऽपि भोजनम्, अस्य वैधत्वेन निषेधाप्रवृत्तेः। एवं ग्रहणवेधेऽपि। यत्त्वनाहिताग्नेरमाषममांसं व्रतयेदित्युक्तम् तद्धेयमेव। श्रौतत्वेन तस्य बलवत्त्वात्।

मत्स्यपुराण में कहा है—तदनन्तर वैश्वदेव के अन्त में (प्रदक्षिणमनुव्रज्य भुञ्जीत पितृसेवितम्।) भृत्य (नौकर), पुत्र, बान्धव तथा अतिथि से संयुक्त होकर श्राद्धकर्ता पितरों के अवशिष्ट सब अन्न का भोजन करे। सब (यह नियम ही है परिसंख्या नहीं है। इससे पितरों के लिए जो अन्न नहीं दिया गया है, उस अन्न का भोजन न करे। यह अर्थ नहीं है। किन्तु पितरों को देकर भोजन करे। 'यत्किञ्चित्पच्यते गेहे भक्ष्यभोज्यमगर्हितम्। अनिवेद्य न भोक्तव्यं पिण्डमूले कथञ्चन॥ अनिन्दित अन्न जो कुछ भी घर में भक्ष्य बना हो उसको पिण्ड के मूल में देकर ही भोजन करे।) पर्व में निषिद्ध मांस और उड़द आदि भी यह अर्थ है। इसप्रकार कृष्णपक्ष की एकादशी आदि में गृहस्थ को भी भोजन करना चाहिए। क्योंकि इसका शास्त्र-विहित होने से निषेध का अप्रवृत्ति है। इसप्रकार ग्रहणवेध भी जानना चाहिए। जो किसी ने कहा है--अनाहिताग्नि को उड़द तथा मांस का त्याज्य कहा है। वह त्यागने योग्य नहीं है उसका श्रौत होने से बलवत्ता है।

देवलः—श्राद्धं कृत्वा तु यो मर्त्यो न तु भुङ्क्ते कदाचन। देवा हव्यं न गृह्णन्ति कव्यानि पितरस्तथा॥ शिवरात्र्येकादश्यादौ त्ववघ्राणमेवेत्युक्तं प्राक्।

देवल ने कहा है--जो मनुष्य श्राद्ध को करके कभी भोजन नहीं करता है उसके देवता हव्य को तथा कव्य को पितर ग्रहण नहीं करते हैं। शिवरात्रि, एकादशी आदि में तो अवघ्राण (उपवासो यदा नित्यः श्राद्धं नैमित्तिकं भवेत्। उपवासं तदा कुर्यादाघ्राय पितृसेवितम्॥ यह नित्यत्व की विवक्षा नहीं है। इससे काम्योपवास में भी आघ्राण ही है। यह आघ्राण भोजन स्थानापन्न है। इससे पिण्डशेष के आघ्राण से सिद्धि नहीं होती है।) ही है। यह पहले कह चुके हैं।

यत्र तूपवासो नावश्यकस्तत्रैकभक्तमयाचितं वा कार्यमिति हेमाद्रिः।

जहाँपर उपवास की आवश्यकता नहीं है वहाँपर एकभक्त या अयाचित करे-यह हेमाद्रि का कहना है।

जातूकर्ण्यः—अहन्येव तु भोक्तव्यं कृते श्राद्धे द्विजन्मभिः।
अन्यथा ह्यासुरं श्राद्धं परपाके च सेविते॥

जातूकर्ण्य ने कहा है—द्विजाति दिन में सूर्य के रहते हुए ही क्षुधा के न रहने पर भी कुछ ही भोजन करे। क्योंकि विधि है। द्विजातिमात्र को श्राद्ध के करने पर ही भोजन करना चाहिए। नहीं तो वह श्राद्ध आसुर होता है जो परपाक--(शातातपः-श्राद्धं कृत्वा परगृहे यो भुङ्क्ते मतिविह्वलः। पतन्ति पितरस्तस्य लुप्तपिण्डोदकक्रियाः॥) अर्थात्-दूसरे घर भोजन करता है।

(श्राद्धशेषभोजनस्य क्वचिन्निषेधमाह)

श्राद्धशेषभोजनस्य क्वचिन्निषेधमाह हेमाद्रौ प्रायश्चित्तकाण्डे मार्कण्डेयः—पित्रादीनामथाऽन्येषां श्राद्धशेषान्नभोजनम्। व्रतिनां विधवानां च यतीनां च विगर्हितम्॥ अन्ये—भिन्नगोत्राः। व्रतिनो=ब्रह्मचारिणः।

श्राद्धशेष भोजन का कहीं निषेध कहा है--हेमाद्रि में प्रायश्चित्तकाण्ड में मार्कण्डेय ने कहा है--पिता आदियों से भिन्नगोत्रवाले ब्रह्मचारियों, विधवाओं तथा यतियों (संन्यासियों) का श्राद्धशेषान्न भोजन निन्दित है। अन्य माने=भिन्नगोत्रवाले, व्रतिनः—ब्रह्मचारी।

श्राद्धावशिष्टभोक्तारस्ते वै निरयगामिनः। सगोत्राणां सकुल्यानां ज्ञातीनां च न दोषकृत् ॥ इति तत्रैवोक्तेः।

वहीं पर ही कहा है--श्राद्ध से बचे अन्न का भोजन करने वाले नरकगामी होते हैं। सगोत्री, सकुल्य तथा जातिवालों को दोष नहीं है।

तत्रैव जाबालिः—विप्रस्त्वन्यगृहे श्राद्धे शिष्टान्नं भोजनं चरेत्। प्राजापत्यं विशुद्धिः स्यात् ज्ञातिगोत्रे न दोषकृत् ॥

वहीं पर जाबालि ने कहा है—ब्राह्मण तो दूसरे घर में श्राद्धशेषान्न भोजन को करता है तो उसकी 'प्राजापत्य' से शुद्धि होती है। जाति और गोत्र में दोष नहीं होता है।

यतीनां वपनं लक्षं प्रणवजपश्चेति तत्रैवोक्तम्।

वहीं पर कहा है—यतियों को मुण्डन और एकलाख 'ॐ' कार का जप कहा है।

(अस्यापवादमाह)

अस्यापवादमाह स एव। श्वसुरस्य गुरोर्वापि मातुलस्य महात्मनः। ज्येष्ठभ्रातुश्च पुत्रस्य ब्रह्मनिष्ठस्य योगिनः ॥ एतेषां श्राद्धशिष्टान्नं भुक्त्वा दोषो न विद्यते। इति केचित्प्रशंसन्ति मुनयस्तदसांप्रतम्। विशेषान्तरं तत्रैव ज्ञेयम्।

इसका अपवाद भी वहीं पर उसने कहा है—श्वसुर, गुरु, श्रेष्ठ मामा, बडा भाई, पुत्र और ब्रह्मनिष्ठ (ब्रह्मज्ञान संपन्न या ब्राह्मण भक्त) योगी (ब्रह्मवैवर्ते-गणपति० ३५ अ०—स्वर्णे लोष्ट्रे गृहेऽरण्ये सुस्निग्धचन्दने तथा। समता भावना यस्य स योगी परिकीर्तितः ॥ गीता में भी है अ० ७ में आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुनः। सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥) का श्राद्धशेषान्न भोजन करने पर दोष नहीं होता है। कोई मुनिप्रशंसा करते हैं वह उचित नहीं है। विशेषान्तर (श्राद्धदिने ब्रह्मचर्यादि पत्न्यादेः श्राद्धशेषभोजनं वा) वहीं पर जानना चाहिए।

(श्राद्धदिने ताम्बूलादिवर्जनकथनम्)

हेमाद्रौ जाबालिः—ताम्बूलं दन्तकाष्ठं च स्नेहस्नानमभोजनम्।
रत्यौषधपरान्नानि श्राद्धकर्ता विवर्जयेत् ॥

हेमाद्रि में जाबालि ने कहा है—ताम्बूल, दतवन, तेल से स्नान, भोजन न करना, मैथुन, औषध और दूसरे के यहाँ भोजन करना ये श्राद्धकर्ता को त्याग देना चाहिये।

(श्राद्धशेषस्य शूद्रादौ भोजने विचारः)

पृथ्वीचन्द्रोदये आचार्यः—न शूद्रं भोजयेत्तस्मिन् गृहे यत्नेन तद्दिने।
श्राद्धशेषं न शूद्रेभ्यः प्रदद्यादखिलेष्वपि ॥

पार्वणश्राद्धम्[1]

पृथ्वीचन्द्रोदय में आचार्य ने कहा है—उस दिन घर में, यत्न से शूद्र को भोजन न करावे। श्राद्धशेषान्न को शूद्रों को न दे न सब जातियों (रजकादेः श्राद्धशेषदानपाण्डित्यं महत्साहसम्।) को भी दे।

१—सेकः प्रतिज्ञा गायत्री देवताभ्यस्तथासनम्। आवाहनार्घदानानि गन्धादीनां समर्पणम् ॥ मण्डलान्याहुती द्वे चाप्यन्नं भूस्वामिने तथा। परिवेषो मधूत्सर्गः पात्रालंभोऽन्नदानकम् ॥ अन्नहीनं च गायत्री मधुवातां ततो जपेत्। विकराचमनं चाथ गायत्री मधुवाति च ॥ वेदिकां च ततः कुर्यात्तत्रोल्लेखनं तथा। उल्मूकभ्रामणं चाथ रेखयोः कुशधारणम् ॥ देवताभ्यस्तथा पिण्डस्थाने तत्रावनेजनम्। पिण्डदानमुपस्पर्शो द्विःश्वासयमनं तथा ॥ पिण्डोपरि प्रत्यवनेजननीव्याश्च स्रंसनम्। सूत्रदानं पिण्डपूजा जलपुष्पाक्षतान् क्षिपेत् ॥ अक्षय्यवादो वार्धारा गोत्राशीः प्रार्थनं ततः। पितृप्रीणनमाघ्राणं पिण्डोत्थापनकं तथा ॥ चालनं चार्घपात्राणां दक्षिणां च विसर्जनम्। देवताभ्यो जपो रक्षादीपनिर्वापणं ततः ॥ आचम्य च ततो ब्रूयात् प्रमादात् कुर्वतामिति।

पश्चिम

(सपत्नीक-पितृ-पितामह-प्रपितामह) (मातामह-प्रमातामह-वृद्धप्रमातामह)

पार्वणकर्ता का आसन

आसन (विश्वेदेव)

भोजनपात्र

अर्घपात्र

जलपात्र

घृतपात्र

दक्षिण

(पार्वणश्राद्ध)

वृद्धप्रमातामह प्रमातामह मातामह प्रपितामह पितामह पिता (सपत्नीक)

आसन (पित्रादि और मातामहादिके)

भोजनपात्र

अर्घपात्र

जलपात्र

घृतपात्र

(पिण्डाधार-वेदी) (पिण्डाधार-वेदी)

अवनेजनपात्र जो हैं यही प्रत्यवनेजनपात्र होते हैं।

पार्वणकर्ता का आसन

उत्तर

पूर्व

(प्राचीन व्यवस्थाओं का संग्रह)

(स्वर्गीय-महामहोपाध्याय श्री पं० विद्याधर जी गौड़ द्वारा लिखित)

(सपिण्डीकरणश्राद्धे ज्ञातिभोजनविषये विचारः)

सपिण्डीकरणश्राद्धानन्तरं ब्राह्मणान् भोजयित्वा ततो ज्ञातिभोजनमिति कृत्वा क्वचित् सजातीयाः स्वशक्तिमतिक्रम्यापि भोज्यन्ते, तत् सजातीयभोजनं शास्त्रारूढं न वेति विचारे इत्थम् शास्त्रपर्यालोचननिर्गलितो निर्णयः—ज्ञातिशब्देन सर्वत्र स्मृतिकारैः सपिण्डाः समानोदका एव च गृह्यन्ते, न सजातयः। यथा—सर्वे ज्ञातयोऽपोऽभ्यवयन्त्यासप्तमात्पुरुषाद्दशमाद्वा (पा० गृ० सू० ३।१०।१६) 'ज्ञातयः सपिण्डाः समानोदकाश्च' इति कर्क—हरिहर—गदाधरभाष्ये च। 'तां ज्ञातयोऽन्वारभन्ते' (आप० पितृमेध सू० ४।५) 'ज्ञातयः सकुलाः' इति गोपालस्तद्व्याख्याता। सप्तमाद्दशमाद्वापि ज्ञातयोऽभ्युपयन्त्यपः' (याज्ञ० प्रायश्चि० ३) निर्दशं ज्ञातिमरणं श्रुत्वा पुत्रस्य जन्म च। सवासा जलमाप्लुत्य शुद्धो भवति मानवः॥ (मनु० ५।७७) 'ज्ञातयः समानगोत्राः सपिण्डाः समानोदकाश्च' (मिताक्षरा) 'निर्दशाहसपिण्डमरणं श्रुत्वा' इति तद्व्याख्या कुल्लूकभट्टकृता। 'सगोत्रबान्धवज्ञातिबन्धुस्वस्वजनाः समाः। (अमरकोश २।६।३४) 'सगोत्रः, बान्धवः, ज्ञातिः, बन्धुः, स्वः, स्वजनः' इति षट् सगोत्रस्य इति तट्टीका। प्रमाणैरेतैर्ज्ञातिशब्देन सपिण्डानां समानोदकानामेव ग्रहणात् तेषामेव तत्र तत्र श्राद्धशिष्टान्नभोजने विधिदर्शनात् तदितरेषां श्राद्धशिष्टान्नभोजने—पित्रादीनामथान्येषां श्राद्धशेषान्नभोजनम्। व्रतिनां विधवानां च यतीनां च विगर्हितम्॥ श्राद्धावशिष्टभोक्तारस्ते वै निरयगामिनः। सगोत्राणां सकुलानां ज्ञातीनां च न दोषकृत्। विप्रस्त्वन्यगृहे श्राद्धशिष्टान्नं भोजनं चरेत्। प्राजापत्यादिशुद्धः स्यात् ज्ञातिभोजे न दोषकृत्॥ इति निर्णयसिन्धुहेमाद्र्यादिवचनेन निषेधदर्शनात् ज्ञातिभ्य इतरेषां भोजनस्य धर्मशास्त्रे विध्यभावाच्च, यदिदं सजातीयभोजनं तदशास्त्रीयमेव। नैवमाशङ्कनीयं यदिमानि शास्त्राणि श्राद्धशिष्टान्नभोजनस्यैव निषेधपराणि, नतु दिनान्तरे पृथक् पक्वान्ननिषेधपराणि। प्रक्षाल्य हस्तावाचम्य ज्ञातिप्रायं प्रकल्पयेत्। ज्ञातिभ्यः सत्कृतं दत्त्वा ब्राह्मणानपि भोजयेत्॥ 'निवृत्ते पितृमेधे तु दीपं प्रच्छाद्य पाणिना। प्रक्षाल्य पाणी आचम्य ज्ञातीन् शेषेण भोजयेत्॥ इति मनु-देवल-विहितज्ञातिभोजनाच्च अतिरिक्तस्य स्वसजातीयभोजनस्य क्वापि विधेरदर्शनात्। अतः सपिण्डनानन्तरं स्वसजातीयभोजनं न शास्त्रविहितमिति तत्करणे अविहितानुष्ठानरूपदोषप्राप्तिमन्तरा न कञ्चन फलविशेषं पश्यामः।

(मातृपितृमरणे संवत्सरपर्यन्तं शुभकर्मनिषेधः)

प्रमीतौ पितरौ यस्य देहस्तस्याशुचिर्भवेत्। न दैवं नापि पित्र्यं वा यावत्पूर्णो न वत्सरः॥ इति निषेधात् पुत्रेण वर्षपर्यन्तं किमप्यनापत्तौ नानुष्ठेयम्। अन्यमरणेऽपि—प्रेतकर्माण्यनिर्वर्त्य चरेन्नाभ्युदयक्रियाम्। आचतुर्थं ततः पुंसि पञ्चमे शुभदं भवेत्॥ इति निर्णयसिन्धुधृतमेधातिथिवचनात् चतुःपुरुषपर्यन्तं वर्षं यावत्काम्यकर्मणोऽननुष्ठानमिति।

(गयाश्राद्धभेदादिविचारः)

गयाश्राद्धे चिकीर्षिते घृतश्राद्धं पार्वणविधिना कृत्वा गयां प्राप्य तत्र तीर्थप्राप्तिनिमित्तकं फल्गुतीर्थे श्राद्धं तीर्थविधिना अर्घावाहनादिवर्जं कुर्यात्। ततः प्रेतपर्वतश्राद्धमारभ्य सर्वाणि श्राद्धानि पार्वणविधिना कार्याणि, नतु तीर्थश्राद्धविधिना। तथाहि गयाश्राद्धपद्धतौ 'इदं प्राप्तिनिमित्तकमेव कार्यम्' नतु तदन्तर्गतप्रेतशिलादितीर्थान्तरेषु दिनान्तरेषु वा कर्तव्यम्, व्यवहाराभावात् तन्त्रादिन्यायात् प्रधानन्यायाच्च। एवमेव सकलशिष्टाचारोऽपि। तथैव प्रामाणिकग्रन्थसिद्धव्यवहारोऽपि। एवं च प्रेतशिलादौ पार्वणविधिनैव अविकृतेनैव पार्वणं वक्ष्यमाणरीत्या षोडशदैवं करणीयम्। तीर्थचिन्तामणौ—'गयाप्राप्त्यनन्तरमेवार्घावाहनादिरहितपार्वणेतिकर्तव्यताकं श्राद्धं कुर्यात्' प्रेतशिलादौ तु पार्वणेतिकर्तव्यताकमेव, नत्वर्घावाहनादिसहितम्। गयाश्राद्धस्य प्रकृतिश्राद्धं प्रेतशिलाश्राद्धं तत्र सर्वाङ्गोपदेशात्। एवमेव ढोण्ढुमिश्रमैथिल-जीवानन्द-रघुनन्दन-अनन्तदेव-वाचस्पति-नारायणभट्टकृतपद्धतौ च। लघुत्रिस्थलीसेतौ—तच्च श्राद्धं प्राप्तिदिने 'फल्गु' नद्यामप्यावाहनवर्जं तीर्थश्राद्धवत्कार्यमित्यविवादम्। प्रेतपर्वत-पदवटादावपि तथैव। तेषां च स्थलतीर्थत्वादिति केचित्। वयं तु—तेषां स्वतन्त्रतीर्थत्वं गयाकृत्यान्तर्गतत्वं वेत्यन्यदेतत्, वस्तुतस्तु सप्तपञ्चादिदिनसाध्यं गयाकृत्यमेकं कर्म। तथाऽथशब्दादिभिः क्रमोक्तेः। अथ जिह्वाया अथ वक्षस इतिवत्। न विभिन्नप्रयोगविधिग्रहे क्रमोऽङ्गं भवतीत्येकं कर्म। तत्र च तीर्थप्राप्तेः सकृन्निमित्तत्वादादावेव तीर्थम्। अन्यानि तु भिन्नानीत्यावाहनादि तत्र कार्यमेवेत्ययं पन्थाः—इति युक्तमुत्पश्यामः। गयामाहात्म्ये—प्रेतशिलायामावाहनादिसहितसकलं पार्वणमुक्त्वा "सर्वस्थानेषु चैवं स्यात्पिण्डदानं तु नारद" इति प्रेतपर्वतश्राद्धस्य तदग्रिमश्राद्धेष्वतिदेशः। एवं च गयाश्राद्धं सर्वपार्वणविधिनैव, नतु तीर्थविधिनेति निरवद्यमिति।

(प्रेतोद्देश्यकश्राद्धे दत्तानि सर्वाण्यपि वस्तूनि महापात्रस्यैव)

प्रेतोद्देश्यकश्राद्धे यानि वस्तूनि दीयन्ते, तानि सर्वाणि महापात्रस्यैव भवन्ति। पुरोहितेन प्रेतोद्देश्यकं द्रव्यं यदि गृह्येत तर्हि तेन प्रायश्चित्तं करणीयम्। अत्र प्रमाणानि प्रायश्चित्तविवेके अभक्ष्याभक्ष्यप्रकरणे सन्ति, तानि तत्रैव द्रष्टव्यानि।

(मृतवृषभस्य संस्कारविचारः)

कश्चिदुत्सृष्टवृषः स्वायुषः क्षयेण कालकवलितोऽभूत्। तच्छवस्य प्रतिपत्तिकरणे ग्रामव्यवहारानुसारिणि कलिकालप्रभावान्वितचर्मकारैरस्वीकृते तथैव शवस्थितौ दुर्गन्धादिदोषभयेन तद्ग्रामनिवासिभिः कतिपयैर्वैश्यजातीयैः संहत्य तच्छवप्रतिपत्तिकरणं निश्चित्य स्वयमेव ग्रामाद् बहिर्नीत्वा देशप्रथानुसारेण निखननादिकमनुष्ठितम्। ततोऽन्ये कतिपयजनास्तान् निन्दितकर्मकारितयाऽधिक्षिपन्ति। एवं स्थिते शास्त्रतस्ते निन्दितकर्मानुष्ठातारो नवेति प्रश्ने इदमुत्तरम्—धर्मार्थं परोपकारबुद्ध्या तैः शवनिर्हरणस्य तत्संस्कारस्य च विधानात् ते न दुष्यन्ति। तथाहि—"वोढा चैवाग्निदाता च सद्यः स्नात्वा विशुद्ध्यति।" इति निर्णयसिन्धौ धर्मार्थं शवनिर्हारप्रसङ्गेनापरार्कधृतवृद्धपराशरोक्तेः, अत्र वचने ब्राह्मणपदमुपलक्षणमिति तट्टीकायां रत्नमालायाम्। एवमग्निदातेत्युपलक्षणम्, संस्कारकर्तुः पूर्वार्द्धे संस्कारपदोपादानात्। एवञ्च धर्मार्थं वृषभशववोढारस्तत्खननादिकर्तारश्च न दोषभाज इति।

(ऊनमासिकादिश्राद्धविचारः)

शास्त्रेषु षोडशमासिकेषु ऊनमासिक-ऊनषाण्मासिक-ऊनाब्दिकश्राद्धविषये मतभेदो दृश्यते। तत्र "मृतेऽहनि तु कर्तव्यम्" इति वचनानुसारेण मासिकं क्षयाहे भवति। तच्चाशौचान्ते एकादशाहे अनुष्ठीयते। एवं "मृतेऽहनि तु कर्तव्यं प्रतिमासं तु वत्सरम्" इत्युक्त्या आब्दिकस्यापि क्षयाह एव कालः, तस्याप्यशौचान्ते एकादशाहे आद्यश्राद्धेन सह तन्त्रेणानुष्ठानम्। एतत्पक्षे मासिकस्य प्रथमाब्दिकस्य चैकादशाहे एवानुष्ठानात् 'एक-द्वि-त्रिदिनैरूने' इति वचनानुसारेण ऊनमासिकस्य माससमाप्तेः पूर्वमेकादिन्यूने दिवसे अनुष्ठानमिति। आब्दिकस्याप्यब्दपूर्तेः एकादिन्यूने दिवसे अनुष्ठानम्। एवं षाण्मासिकस्यापि षष्ठमासारम्भदिने अनुष्ठानात् ऊनषाण्मासिकस्य च मासोनदिने अनुष्ठानम्। मासिकम्, ऊनमासिकम्, षाण्मासिकम्, ऊनषाण्मासिकम्, द्वादशमासिकम्, ऊनाब्दिकं चेति क्रमः पर्यवस्यतीति प्रथमप्रकारः। "आद्यश्राद्धं क्षयेऽहनि", "मासादौ मासिकं कार्यमाब्दिकं वत्सरे गते" इति लौगाक्षिवचनानुसारेण द्वितीयमासारम्भदिने प्रथममासिकस्य द्वितीयवर्षारम्भदिने प्रथमवार्षिकस्य चानुष्ठानं प्राप्नोति। तन्मते षाण्मासिकमपि सप्तममासारम्भदिने अनुष्ठेयत्वेन प्राप्नोतीति ततः पूर्वतनेषु दिवसेषु ऊनमासिक-ऊनषाण्मासिक-ऊनाब्दिकानां क्रमेणानुष्ठानमिति। एतत्पक्षे ऊनमासिक-ऊनषाण्मासिक-मासिक-ऊनाब्दिक-आब्दिक-शब्दानां तत्तच्छ्राद्धे ऊहः कार्य इति।

(पतिमृतौ पत्या साकं चितारोहणमीहमानाया रजस्वलायाः शुद्धिविषये विचारः)

अन्त्येष्टिपद्धतौ शुद्धिमयूखे च—यदा स्त्रियामुदक्यायां पतिः प्राणान् परित्यजेत्। द्रोणमेकं तण्डुलानामवहन्याद्विशुद्धये॥ मुसलाघातैस्तदा साऽसृक् स्रवते योनिमण्डलात्। विरजस्कां मन्यमाना स्वे चित्ते तदसृक्क्षयम्॥ दृष्ट्वा शौचं प्रकुर्वीत पञ्चमृत्तिकया पृथक्। त्रिंशद्विंशति दश च गवां दद्यादहःक्रमात्॥ विप्राणां वचनाल्लब्ध्वा समारोहेद् हुताशनम्। नारीणां सरजस्कानामियं शुद्धिरुदाहृता॥ इति। तन्मूलं मृग्यं गारुडे।

(चान्द्रायणव्रतविषये विचारः)

शुक्लपक्षस्य प्रतिपदमारभ्य पौर्णमासीपर्यन्तं तिथिसमुदायं गणयित्वा यदा सौरेषु पञ्चदशसु दिनेषु परिसमाप्तिर्भविष्यति, एवं कृष्णप्रतिपदमारभ्य अमावास्यापर्यन्तं तिथिसमूहं गणयित्वा सौरेषु पञ्चदशसु दिनेषु तत्समाप्तिर्भविष्यति तदैव यवमध्यं चान्द्रायणं कर्तव्यम्। सौरदिने तिथिसम्बन्धस्तु यस्मिन् कस्मिन् समयेऽपि भवति चेत्क्रमानुसारेण तत्सौरदिनस्य तत्तिथित्वेन ग्रहणं कर्तव्यम्। यथा—अमावास्यायां द्वित्रदण्डानन्तरं प्रतिपत्प्रवृत्तिः परेद्युश्च पञ्चदशदण्डपर्यन्तं प्रतिपत् तदा पूर्वेद्युर्व्रतारम्भः—एकग्रासमात्रभोजनम्। परेद्युश्च सत्यामपि प्रतिपदि क्रमानुरोधात् ग्रासद्वयभोजनं द्वितीयातिथ्यनुसारेण कर्तव्यम्।

श्री [illegible] शर्मा गौड़

(श्राद्धादि में शाकद्वीपीय ब्राह्मणों का महत्त्व)

(श्राद्धादि में शाकद्वीपीय ब्राह्मणों के सम्बन्ध में रागद्वेषजनित निर्मूल आक्षेप के कारण ब्राह्मणों में मनोमालिन्य एवं समाज में व्यर्थ भ्रम होता है; उसके निराकरणार्थ वस्तुस्थिति की जानकारी कराने के लिए इसे प्रकाशित कर रहा हूँ—सम्पादक ।)

श्राद्ध में मन्त्र-वेदविद् अतिशय गुणवान् ब्राह्मण ग्राह्य हैं, फिर भी गुणवान् शाकद्वीपीय ब्राह्मणों के नहीं मिलने पर गुणरहित भी शाकद्वीपीय ब्राह्मणों को श्राद्धादि में भोजन कराना चाहिए, ऐसा भविष्यपुराण में ब्रह्मा ने याज्ञवल्क्य से कहा है—प्रथमं भोजका भोज्या पुत्र स्वविदुषैः सह । तेषामृते मन्त्रविदस्तथा वेदविदो द्विजाः ॥ 'स्वविदुषैः' यह आर्ष प्रयोग है । भोजक शब्द का अर्थ है - शाकद्वीपीय ब्राह्मण ।

पुराणों में भोजक-मग-दिव्य—इन नामों से शाकद्वीपीय ब्राह्मणों का वर्णन हुआ है । इनमें भोजक नाम पड़ने का कारण भविष्यपुराण सप्तमीकल्प में शाकद्वीपीय ब्राह्मणविषयक शतानीक सुमन्तु संवाद में व्यास ने साम्ब से बतलाया है—श्रूयन्ते ऋषयः सर्वे मौनेन नियमं स्थिताः । भुञ्जते वाऽपि मौनेन तेन ते भोजकाः स्मृताः । मुनिचर्याकृतस्तेऽपि शाकद्वीपनिवासिनः ॥ भविष्यपुराण में ही अन्यत्र कहा है - धूपमाल्यैश्च गन्धैश्च उपहारैस्तथैव च । भोजयन्ति सहस्रांशु तेन ते भोजकाः स्मृताः ॥

मग नाम पड़ने का कारण भविष्यपुराण सप्तमीकल्प में व्यास ने वासुदेव से कहा है—ध्यायन्ति च मकारं ये ज्ञानं तेषां महात्मकम् । मकारो भगवानुग्रो भास्करः परिकीर्तितः । मकारध्यानयोगाच्च मगा ह्येते प्रकीर्तिताः ॥ अन्यत्र भविष्यपुराण में ही सुमन्तु ने शतानीक से कहा है—ऋक्सामयजुषां मन्त्रैर्विपर्यस्तैस्तु नित्यशः । गायन्त्यर्कविधानेन मगास्तेन च ते स्मृताः ॥

दिव्य नाम पड़ने का कारण भविष्यपुराण में ही बतलाया है—पूजयन्ति च ते देवान् दिव्यत्वं तेन ते गताः । कल्पतरु एवं हेमाद्रि में कहा है—पूजयन्तस्तु ते देवान् प्राप्नुवन्ति परां गतिम् । नैवेद्यं भुञ्जते यस्माद् भोजयन्ति च भास्करम् । पूजयन्ति च वै देवान् दिव्यत्वं तेन ते गताः ॥ पुनः—दिव्याश्चैते स्मृता विप्रा आदित्याङ्गसमुद्भवाः । भविष्यपुराण ब्राह्मपर्व में वाचक शब्द से भी शाकद्वीपीय ब्राह्मणों का वर्णन है ।

मगद्विजों को विष्णुपुराण में ब्राह्मणों में श्रेष्ठ कहा है—मगा ब्राह्मणभूयिष्ठाः । इसकी टीका में लिखा है—ब्राह्मणभूयिष्ठाः पूर्वोक्तेषु सर्वेषु ब्राह्मणेषु मगाः श्रेष्ठाः । यद्वा—ये भारते ब्राह्मणेषु मध्ये श्रेष्ठास्ते तत्र मगा मगनामानः । महाभारत भीष्मपर्व में कहा है - मगा ब्राह्मणभूयिष्ठाः स्वकर्मनिरतास्तथा । पद्मपुराण स्वर्गखण्ड में कहा है--मगा ब्राह्मणभूयिष्ठाः स्वकर्मनिरता द्विजाः ।

इसीतरह भविष्यपुराण सप्तमीकल्प में सुमन्तु ने शतानीक से शाकद्वीपीय ब्राह्मणों की उत्तमता का वर्णन किया है—नास्ति पूज्यतमं किंचिन्मङ्गल्यं पावनं तथा । चतुर्णामिह वर्णानां मुक्त्वा भोजकमुत्तमम् ॥ यथेह सर्वसत्त्वानां प्रधानं च स्थितो रविः । तथेह सर्वपूज्यानां भोजकः पूज्य उच्यते ॥ तीर्थानां तु कुरुक्षेत्रं सरसां सागरो यथा । तथा पूज्यतमो ज्ञेयः पूज्यानां भोजको विभो ॥ अथ किं बहुनोक्तेन श्रूयतां वचनं मम । नास्ति वेदात्परं शास्त्रं नास्ति गंगासमा सरित ॥ अश्वमेधसमं पुण्यं नास्ति पुत्रसमं सुखम् । नास्ति भानुसमो देवो नास्ति मातृसमा गतिः ॥ यथैतानि समस्तानि उत्तमानि यदूत्तम । तथोत्तमा भोजकास्तु ये प्रोक्ता भास्करेण तु ॥

भविष्यपुराण ब्राह्मपर्व में सूर्य ने अरुण से शाकद्वीपीय ब्राह्मणों की उत्पत्ति अपने तेज से होने की बतायी है—मयाऽसौ निर्मितः पूर्वं तेजसा स्वेन वै खग । पूजार्थमात्मनो नूनं कर्म चास्य प्रकीर्तितम् ॥ साम्बपुराण में कहा है—तेजसा तेऽस्मदीयेन निर्मिता वै मया पुरा । तेभ्यो वेदाश्च चत्वारः सरहस्या मयेरिताः । वेदोक्तैर्विविधैः स्तोत्रैः परैर्गुणैर्मया कृतैः ॥

स्कन्दपुराण में लिखा है कि भगवान् श्रीकृष्ण ने शाकद्वीप से शाकद्वीपियों को जम्बूद्वीप में बुलाया--कृष्णस्तु भगवान् शाकात् वेदवेदाङ्गपारगान् । शाकद्वीपाद् मगान् विप्रानानयिष्यति द्वापरे ॥ शाकद्वीप से जम्बूद्वीप में शाकद्वीपीय ब्राह्मणों के आगमन का विशेष वर्णन एवं कारण भविष्यपुराणादि में देखिये ।

भविष्यपुराण ब्राह्मपर्व में शाकद्वीपीय ब्राह्मणों को श्राद्धादि में भोजन कराने का महत्त्व सुमन्तु ने युधिष्ठिर से बतलाया है--मगानां भोजनं भक्त्या शक्त्या दानं प्रकल्पयेत् । दशपूर्वान् दशपरानात्मना सह भारत ॥ समादाय व्रजेत् स्थानं रवेरमिततेजसः । दैवपर्वोत्सवे श्राद्धे पुण्येषु दिवसेषु च ॥ भानुं सम्पूज्य विधिवत् भोजकान् भोजयेत्ततः । पितरः सर्वदेवानां सूर्यमाश्रित्य संश्रिताः ॥ प्रीते सूर्ये तु ते सर्वे प्रीताः स्युर्नात्र संशयः । यानी युधिष्ठिर ! शाकद्वीपीय ब्राह्मणों को भक्ति से भोजन करावें और शक्ति के अनुसार दान दे, इससे वह अपने दस पीढ़ी पूर्व और दस पीढ़ी बाद के अपने वंश के साथ अमित तेजस्वी श्री सूर्य भगवान् का स्थान प्राप्त करता है । अतः देवपर्वों, श्राद्ध एवं पुण्य दिनों में श्री सूर्य को विधि से पूजकर शाकद्वीपीय ब्राह्मणों को भोजन करावे; क्योंकि पितर सभी देवताओं के स्वामी श्री सूर्य के आश्रित हैं । अतः सूर्य के प्रसन्न होने पर सभी पितर प्रसन्न हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं है ।

भविष्यपुराण में सप्ताश्वतिलक ने अरुण से कहा है—पितॄनुद्दिश्य यः श्राद्धे भोजयेद् भोजकं नरः । स स्थानं समवाप्नोति भानवीयं न संशयः ॥ अर्थात् जो मनुष्य श्राद्ध में पितरों के उद्देश्य से शाकद्वीपीय ब्राह्मणों को भोजन कराता है, वह सूर्यलोक को पाता है । अन्यत्र भविष्यपुराण में ही कहा है—न वेदविदुषां कोट्या लभते चेह यत्फलम् । तत्फलं लभते राजन् भोजं भोज्य विधानतः ॥ तस्माच्छ्राद्धे विशेषेण पुण्येषु दिवसेषु च । सूर्यमुद्दिश्य विप्रेन्द्रं भोजकं भोजयेन्नृप ॥ राजन् ! वेदविद् विप्रों को भोजन कराने से जो फल नहीं मिलता, वह शाकद्वीपीय ब्राह्मणों को विधिवत् भोजन कराने से प्राप्त होता है, अतः विशेष करके श्राद्ध एवं पुण्यदिनों में श्रीसूर्य के उद्देश्य से ब्राह्मणों में श्रेष्ठ शाकद्वीपियों को भोजन करावे ।

भविष्यपुराण में ही श्रीकृष्ण ने नारद से कहा है---यस्य भुंक्ते भोजकस्तु गन्धपुष्पादिनाऽर्चितः । तस्य भुंक्ते स्वयं भानुः पितरो देवतास्तथा ॥ नारद ! जिसके यहां गन्धपुष्पादि से पूजित शाकद्वीपीय ब्राह्मण भोजन करते हैं, उसके यहाँ स्वयं भगवान् सूर्य, पितर और सभी देवता भोजन करते हैं । साम्बपुराण में कहा है—भुंजते यस्य वै गेहे भोजका यदुनन्दन । भुंक्ते तत्र स्वयं भानुर्ब्रह्मा विष्णुस्तथा शिवः ॥ यदुनन्दन ! जिसके घर में शाकद्वीपीय ब्राह्मण भोजन करते हैं, उसके यहाँ स्वयं सूर्य, ब्रह्मा, विष्णु और शिव भोजन करते हैं ।

अतएव कल्पतरु और हेमाद्रि में श्राद्धादि में भोजनार्थ शाकद्वीपीय ब्राह्मणों की निमन्त्रणविधि इसप्रकार बतलायी है---स्वयं गत्वा गृहं भक्त्या पाणिभ्यां पादमालभेत् । ब्रवीति च तथा विप्रं प्रसादं कुरु मे विभो ॥ भास्करप्रीतये विप्र भोजनं भुंद्व मे गृहे । येन मे तृप्यते देवस्त्वयि तृप्ते दिवाकरः ॥ अर्थात् शाकद्वीपीय ब्राह्मण के घर स्वयं जाकर श्रद्धा-भक्ति से उनके चरण-स्पर्श करके उनसे कहे---प्रियवर्य ! आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों, सूर्य की प्रीति के लिये मेरे घर चलकर भोजन करें, जिससे आपके तृप्त होने पर भगवान् श्री सूर्य तृप्त हों ।

साम्बपुराण में नारद ने साम्ब से कहा है—मगे तुष्टे रविस्तुष्टो जायते नात्र संशयः । अर्थात् शाकद्वीपीय ब्राह्मणों के तुष्ट होने पर श्रीसूर्य तुष्ट हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं है । इसप्रकार श्रीसूर्य के तुष्ट होने पर ब्रह्मा-विष्णु-महेश आदि सभी देवताओं की तुष्टि होती है, क्योंकि सूर्य सर्वदेवात्मक हैं । 'सर्वदेवात्मकः सूर्यः' 'विरंचिनारायणशंकरात्मने' इत्यादि पुराणों में स्पष्ट कहा है ।

इसप्रकार पूर्व प्रदर्शित अनेक पुराणों एवं कल्पतरु हेमाद्रि नामक धर्मशास्त्र के अतिप्राचीन महानिबन्धों के कतिपय वचनों से यह सिद्ध है कि देव-पितृकर्म में शाकद्वीपीय ब्राह्मण अतिशय प्रशस्त हैं और वे श्राद्धादि में सर्वप्रथम भोजनाच्छादन दक्षिणादि से पूजनीय एवं सत्करणीय हैं । जो लोग शाकद्वीपीय ब्राह्मणों के इस अधिकार और योग्यता पर आक्षेप करते हैं वे शास्त्रों के वास्तविक ज्ञान से वंचित या ईर्ष्या द्वेष के वशीभूत हैं । सभी ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं । ब्राह्मणों में भेदभाव का प्रचार अनभिज्ञतामूलक है ।

शाकद्वीपीय ब्राह्मणों पर आक्षेप करनेवाला प्रथम एक ही पुस्तक है---कृत्यसार । इसमें लिखा है—'कूष्माण्डं महिषीक्षीरं बिल्वपत्रमगद्विजाः । श्राद्धकाले समापन्ने पितरो यान्ति निराशयाः ॥ मगद्विजाः=शाकद्वीपीय ब्राह्मणाः । मगद्विजा इत्यस्य प्रामादिकत्वे तु अगद्विजाः पर्वतीयब्राह्मणा इत्यर्थः ।'

कृत्यसार का पूर्वोक्त लेख प्रमाणशून्य है, क्योंकि कृत्यसार के पहले निर्मित अतिप्राचीन कल्पतरु-हेमाद्रि-स्मृत्यर्थसार-स्मृतिचन्द्रिका-मदनपारिजात-नृसिंहप्रसाद-स्मृतितत्त्व-निर्णयसिन्धु-भगवन्तभास्कर-वीरमित्रोदय-धर्मसिंधु आदि बड़े-बड़े निबन्ध ग्रन्थों में 'कूष्माण्डं महिषीक्षीरं' यह श्लोक नहीं मिलता और न किसीपुराण में ही मिलता है ।

कृत्यसार का निर्माण काल अब से लगभग दो सौ वर्ष और कल्पतरु एवं हेमाद्रि का निर्माणकाल लगभग एक हजार वर्ष पूर्व है। इन महानिबन्धों एवं पुराणों से शाकद्वीपीय ब्राह्मणों का श्राद्धादि में महत्त्व का प्रमाण पूर्व में उद्धृत किया है। इससे सिद्ध है कि ईर्ष्या-द्वेष के वशीभूत होकर 'कूष्माण्डं महिषी क्षीरं' यह श्लोक बनाकर लिख दिया गया है।

यदि 'कूष्माण्डं महिषोक्षीरं' यह श्लोक किसी पुराण या निबन्ध ग्रंथों से उद्धृत होता तो कृत्यसारकार इस स्थल पर उस ग्रंथ का नामनिर्देश अवश्य करते, सो ग्रन्थ का नामनिर्देश उन्होंने नहीं किया और यह श्लोक ऋषिप्रणीत होता तो 'बिल्वपत्रमगद्विजाः' इस अंश पर ऋषियों के वचन में प्रामादिक शब्द का उल्लेख नहीं करते।

व्याकरण के अनुसार 'बिल्वपत्रमगद्विजाः' यहाँ 'बिल्वपत्रम् अगद्विजाः' ऐसा ही पदच्छेद होने से 'मगद्विजाः शाकद्वीपीय ब्राह्मणाः' यह उल्लेख ईर्ष्या-द्वेषमूलक है, इसमें कोई धार्मिक भावना नहीं है।

कृत्यसारकर्ता के ही चयनपुर ग्रामवासी श्रीगङ्गाधरमिश्र ने पूर्वोक्त प्राचीन निबन्धग्रंथों एवं पुराणों के वचनों के अनुसार मगद्विजा की टिप्पणी लिखी थी -- 'मगद्विजानां श्राद्धे अतिप्राशस्त्यमुक्तं भविष्यपुराणादौ।' जो कृत्यसार के प्रथम संस्करण में छपी थी, किन्तु टिप्पणीकर्ता के दिवङ्गत हो जानेपर इस ग्रन्थ के दूसरे-तीसरे संस्करण में वह टिप्पणी नहीं दिखायी पड़ती।

इस ग्रन्थ के प्रकाशक को चाहिये कि ब्राह्मणों में परस्पर का विद्वेष एवं शाकद्वीपीय ब्राह्मणों का वृत्तिच्छेद दूर करने के लिए कृत्यसार के प्रथम संस्करण की भांति उस टिप्पणी को प्रकाशित करा दें।

शाकद्वीप से जम्बूद्वीप में साम्ब ने सूर्यमूर्ति की पूजा के लिए शाकद्वीपीय ब्राह्मणों को लाये, मूर्तिपूजा में समर्पित देवस्व के प्रतिग्रह लेने से शाकद्वीपीय ब्राह्मण देवलक नहीं होते, क्योंकि जैसे पिता के द्रव्यग्रहण का अधिकार पुत्र को है, वैसे सूर्यपूजा में समर्पित देवस्वग्रहण का अधिकार शाकद्वीपीय ब्राह्मणों को है, ऐसा भविष्यपुराण ब्राह्मपर्व में सूर्य ने अरुण से कहा है—यथाधिकारी पुत्रस्तु पितृद्रव्यस्य वै भवेत्। तथा मदीयवित्तस्य भोजकाः स्युर्न संशयः॥ कल्पतरु और हेमाद्रि में कहा है—देवालयेषु सर्वेषु वर्जयित्वा शिवालयम्। देवानां पूजने राजन्नग्निकार्येषु वा विभो॥ अधिकारः स्मृतो राजन् भोजकानां न संशयः। राजन्! शिवालय को छोड़कर सभी देवालयों में देवताओं के पूजन या होमकर्म में शाकद्वीपीय ब्राह्मणों का अधिकार है, इसमें संशय नहीं करो।

भविष्यपुराण में श्री सूर्य ने अरुण से कहा—नैवेद्यं यन्मदीयं तु तदश्नीयात् सदैव हि। तेनासौ शुद्ध्यते नित्यं पंचगव्याशनाद्यथा॥ अरुण! पंचगव्य प्राशन से मनुष्य जिसप्रकार शुद्ध हो जाते हैं, वैसे ही शाकद्वीपीय ब्राह्मण मेरे नैवेद्य के भक्षण करने से सदा शुद्ध हैं। भविष्यपुराण में ही गौरमुख ने साम्ब के प्रश्न का उत्तर दिया है—मगाय संप्रयच्छध्वं पुरमेतत्प्रभं प्रभो। न स देवलको भूयाद् गृहीत्वा भानुतो धनम्। तस्याधिकारो देवस्वे देवतानां च पूजने॥ साम्ब! यह सुन्दर शोभा सम्पन्न नगर शाकद्वीपीय ब्राह्मणों को अर्पित करो। सूर्य की धन-सम्पत्ति को लेकर वे देवलक नहीं होते। देवताओं के पूजन एवं देवस्व के प्रतिग्रह लेने में शाकद्वीपीय ब्राह्मणों का अधिकार है।

इन वचनों से शाकद्वीपीय ब्राह्मणों पर देवलक होने का आरोप करके वे श्राद्धादि में निषिद्ध नहीं किये जा सकते हैं। शास्त्रीय आदेशानुसार आज भी बीकानेर में अधिकतर देवमन्दिरों में शाकद्वीपीय ब्राह्मण ही देवपूजन के निमित्त ससम्मान नियुक्त किये जाते हैं और वे सभी देव-पितृ कार्यों में पूजित होते हैं। देवताओं की सेवा करने के कारण वहाँ वे 'सेवक' इस नाम से विख्यात हैं।

इसप्रकार श्राद्ध में ही नहीं, व्रत और दान में भी शाकद्वीपीय ब्राह्मण अत्यन्त प्रशस्त हैं। सूर्यव्रत के प्रसंग में कल्पतरु और हेमाद्रि में कहा है—सप्तम्यां चैत्रमास्य भोजयेद् भोजकान् बुधः। सघृतं भाजनं देयं भोजयित्वा विधानतः॥ भोजकाय प्रदेया तु दक्षिणा स्वर्णमाषकम्। सघृतं भाजनं देयं रक्तवस्त्राणि चैव हि॥ अलाभे भोजकानां तु दक्षिणीया द्विजोत्तमाः। तथैव भोजनीयाश्च श्रद्धया परया विभो॥ अर्थात् विज्ञजन को चाहिए कि चैत्रमास की सप्तमी में शाकद्वीपीय ब्राह्मणों को भोजन करावे और विधिपूर्वक भोजन कराकर उन्हें घृतयुत पात्र और माशे भर सुवर्ण दक्षिणा देवे। प्रभो! शाकद्वीपीय ब्राह्मणों के अलाभ में दक्षिणा योग्य अन्य श्रेष्ठ ब्राह्मण को उसीप्रकार परम श्रद्धा से भोजन करावे और उन्हें घृतयुत,पात्र एवं रक्त वस्त्र अर्पित करे।

दान के सम्बन्ध में भविष्यपुराण में ब्रह्मा ने याज्ञवल्क्य से कहा—रत्नानि वस्त्राणि तथा च गावः सुगन्धमाल्यादि हविष्यमन्नम् । तपस्विनां वाप्यथ भोजकाय देयं तथा नाप्रियमात्मनो यत् ।। भवेदलाभो यदि भोजकानां विप्रास्तदाऽर्हन्ति जपोपजीविनः । ये मन्त्रविद् ब्राह्मणपाठकाश्च ये चापि सामाध्ययने नियुक्ताः ।। याज्ञवल्क्य ! रत्न, वस्त्र, गौ, सुगन्धित माल्यादि, हविष्य अन्न और जो अपनी प्रिय वस्तु हो, उसे तपस्वियों को या शाकद्वीपीय ब्राह्मणों को अर्पित करे। यदि शाकद्वीपीय ब्राह्मण का अलाभ हो तो उन ब्राह्मणों को देवे, जो जापक एवं मंत्र-ब्राह्मण वेद का पाठक हों और जो सामवेदी हों।

भविष्यपुराण के सत्राजित उपाख्यान में आदित्य ने अरुण से कहा—मत्पुत्रेति मगा ज्ञेयास्तथा चागर्हिताः सदा। तस्मात्तेभ्यः प्रदातव्यं न हर्तव्यं कदाचन ।। अरुण ! शाकद्वीपीय ब्राह्मण मेरे पुत्र हैं। वे सदा अगर्हित (उपवास-एकभक्त-नक्त-अयाचित-व्रत-दानरूप छ प्रकार के दैवकर्म एवं एकोद्दिष्ट-पार्वण रूप दो प्रकार के पित्र्यकर्म में प्रशस्त) हैं, इसलिये उन्हें दान दें, उनका अंश-हरण नहीं करे।

शाकद्वीपीय ब्राह्मणों के अंशहरण करने पर भविष्यपुराण के सत्राजितोपाख्यान में ही आदित्य ने अरुण से कहा—भोजकांशं हरेद्यस्तु लोभाद् द्वेषादथापि वा। स याति नरकं घोरं तामिस्रं शाश्वतीः समाः ।। अरुण ! लोभ या द्वेष से शाकद्वीपीय ब्राह्मणों का जो अंश हरण करता है, वह चिरकाल तक घोर तामिस्र नामक नरक में पड़ा रहता है।

फिर वहीं आदित्य ने अरुण से कहा—यः करोत्यपमानं तु वृत्तिलोपं तु भोजके तस्याहं रोषमेत्याशु कुलं हन्मि समन्ततः ।। अरुण ! शाकद्वीपीय ब्राह्मणों का अपमान और जीविका का नाश करता है, उसके ऊपर मैं क्रोध करके उसके स्त्री-पुत्र, बन्धु-बान्धवरूप कुल को शीघ्र नष्ट कर देता हूँ।

शाकद्वीपीय ब्राह्मणों की पूजा भगवान् विष्णु ने भी की है, ऐसा भविष्यपुराण में ब्रह्मा-विष्णु के संवाद में सुमन्तु ने कहा है—इत्थं श्रुत्वा वचः कृष्णो विरंचेश्च महात्मनः। आराधनाय स रवेर्हरिर्भक्त्या समन्वितः ।। शाकद्वीपं तु वै गत्वा गरुडेन महाविभो। पूजयन् भोजकांस्तत्र भक्त्या भोज्यैरनेकशः ।। अर्थात् इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्ण महात्मा ब्रह्मा के वचन सुनकर श्री सूर्य की आराधना के लिये श्रद्धा-भक्ति के साथ गरुड पर आरूढ होकर शाकद्वीप में गये और वहां उन्होंने भक्ति से अनेक प्रकार के भोज्य पदार्थों को अर्पित कर शाकद्वीपीय ब्राह्मणों की पूजा की।

शाकद्वीपीय ब्राह्मणों का अन्न परम पवित्र है उनके अन्न खाने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त होकर सूर्यलोक में जाते हैं, ऐसा भविष्यपुराण में वासुदेव ने हार्दिक्य से कहा है—ये लोका भोजकस्यान्नं भुञ्जते निर्विकल्पतः। ते सर्वपापनिर्मुक्ता यान्ति सूर्यसलोकताम् ।।

शाकद्वीप या अन्य द्वीपों में रहनेवाले विदेशी लोगों की वर्तमान व्यवस्था को देखकर हम समझते हैं कि उन द्वीपों में वर्णाश्रम व्यवस्था नहीं थी, किन्तु अपने प्राचीन इतिहासों को देखने से स्पष्ट है कि प्राचीनकाल में वहाँ वर्णाश्रम व्यवस्था पूर्णरूप से थी, जो धीरे-धीरे नष्ट हो गयी और उन्हें हम वर्णाश्रम रहित विदेश समझने लगे। जैसे आज के नवनिर्मित पाकिस्तान में वर्णाश्रम व्यवस्था थी, जो धीरे धीरे नष्ट होती जा रही है। कुछ काल बाद हमारी भावी सन्तान इसे भी वर्णाश्रम रहित विदेश समझने लगेगी। जैसे पाकिस्तान पहले भारत का अंग और वहाँ भारतीय शासन था, वैसे सातो द्वीप पहले भारत का ही अंग और वहां भारतीय शासन था। श्री भागवत के पांचवें स्कन्ध में स्पष्ट लिखा है—

तेषु जम्ब्वादिषु बर्हिष्मतीपतिरनुव्रतानात्मजाग्नीध्रेध्मजिह्वयज्ञबाहुहिरण्यरेतोघृतपृष्ठमेधातिथिवीतिहोत्रसंज्ञान् यथासंख्येनैकैकस्मिन्नेकमेवाधिपतिं विदधे। अर्थात् स्वायम्भुव मनु के पुत्र महाराजा प्रियव्रतने जम्बू आदि सात द्वीपों में अपने सात-आग्नीध्र-इध्मजिह्व-यज्ञबाहु—हिरण्यरेत-घृतपृष्ठ-मेधातिथि-वीतिहोत्र—इन पुत्रों को क्रमशः एक-एक द्वीप का अधिपति बनाया। इसप्रकार मेधातिथि शाकद्वीप का शासक था।

जिससमय शाकद्वीप से जम्बूद्वीप में भगवान् श्रीकृष्ण ने शाकद्वीपीय ब्राह्मणों को बुलाया, उस समय वहाँ ब्राह्मणादि चारो वर्ण विविध व्रत, उपवास, जप एवं होमादि से भगवान् श्रीसूर्य को श्रद्धाभक्ति से आराधना करते थे। विष्णुपुराण में लिखा है—शाकद्वीपे तु तैर्विष्णुः सूर्यरूपधरो मुने। यथोक्तैरिज्यते सम्यक् कर्मभिर्नियतात्मभिः ॥ कूर्मपुराण

में चारों वर्णों का वर्णन करते हुए लिखा है—ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव क्रमेण तु। यजन्ति सततं देवं सर्वलोकैकसाक्षिणम्। व्रतोपवासैर्विविधैर्देवदेवं दिवाकरम्।

शाकद्वीप में ब्राह्मणादि चारों वर्णों की विशेष संज्ञा थी, जैसा श्रीसूर्य ने साम्बपुराण में कहा है—तत्र पुण्या जनपदाश्चातुर्वर्ण्यसमन्विताः। मगाश्च मागधाश्चैव मानसा मन्दगास्तथा।। महाभारत भीष्मपर्व में भी संजय ने कहा है—तत्र पुण्या जनपदाश्चत्वारो लोकसम्मताः। मगाश्च मागधाश्चैव मानसा मन्दगास्तथा॥ भविष्यपुराण साम्बपुराण में कहा है—मगा ब्राह्मणभूयिष्ठा मागधाः क्षत्रियाः स्मृताः। वैश्यास्तु मानसा ज्ञेयाः शूद्रास्तेषां तु मन्दगाः॥ अर्थात् वहाँ शाकद्वीपीय ब्राह्मणों को मग, शाकद्वीपीय क्षत्रियों को मागध, शाकद्वीपीय वैश्यों को मानस और शाकद्वीपीय शूद्रों को मन्दग कहा जाता था।

शाकद्वीप में कहीं भी ब्राह्मणादि चारों वर्णों में कोई वर्णसंकर और आश्रमसंकर का नहीं था। वहाँ की प्रजा अपने-अपने धर्म का आचरण करने के कारण सभी तरह से सुखी एवं सम्पन्न थी, ऐसा भविष्यपुराण और साम्बपुराण में श्रीसूर्य ने कहा है—न तेषां संकरः कश्चिद् वर्णाश्रमकृतः क्वचित्। धर्मस्याव्यभिचारित्वादेकान्त सुखिनः प्रजाः॥ इसी तरह भारतीय शासकों से शासित अन्य द्वीपों में भी वर्ण, आश्रम एवं धर्म की सुव्यवस्था थी।

शाकद्वीप का वर्णन करते हुए महाभारत भीष्मपर्व में लिखा है कि वहाँ न कोई राजा था, न दण्ड था और न दण्ड देनेवाले थे। वहाँ के लोग धर्म के जानकार थे, इसलिए अपना धर्म समझकर परस्पर सभी सबकी रक्षा करते थे—न तत्र राजा राजेन्द्र न दण्डो न च दाण्डिकाः। स्वधर्मेणैव धर्मज्ञास्ते रक्षन्ति परस्परम्॥ एतावदेव शक्यं तु तत्र द्वीपे प्रभाषितुम्। एतदेव च श्रोतव्यं शाकद्वीपे महौजसि। स्वधर्मेणैव धर्मज्ञास्ते रक्षन्ति परस्परम्॥

शाकद्वीप कहाँ है? शाकद्वीपीय ब्राह्मणों की उत्पत्ति किसकारण से हुई? उनके बहत्तरपुर कौन-कौन से हैं? और उनका जम्बूद्वीप में आगमन क्यों हुआ? आदि विषयों का विवेचन विस्तृतरूप से श्रीसुदामामिश्रकृत 'शाकद्वीपीयद्विजप्रशस्ति' नामक ग्रन्थ में देखिए।

अथ निर्णयसिन्धुः

(भाषा-टीका-सहित)

श्लोकसूची

दौलतराम गौड़

(अ)

(आ)

अथ निर्णयसिन्धुः

(भाषा-टीका-सहित)

(अनुकल्प मुख्य की अशक्ति में गौण का अनुष्ठान, श्राद्धकाल, श्राद्ध में भोजन करने पर प्रायश्चित्त, द्रव्याभाव में श्राद्धपर विचार, त्र्यहश्राद्ध, पार्वण आदि श्राद्धकाल, शुद्धश्राद्ध, श्राद्धविघ्न में विचार, श्राद्धदिन में स्त्री के रजोदर्शन में विचार, अन्वारोहण, श्राद्धसंपात, श्राद्धाङ्गतर्पण, तिल तर्पण, निषिद्धकाल, वृद्धिश्राद्ध, नान्दीश्राद्ध, जीवत्पितृकश्राद्ध, विभक्ताविभक्तनिर्णय और तीर्थश्राद्ध पर महत्वपूर्ण विचार)

दौलतराम गौड

(प्राचीन व्यवस्थाओं का संग्रह)

(स्वर्गीय-महामहोपाध्याय श्री पं० विद्याधर जी गौड़ द्वारा लिखित)

विप्रहस्ते दर्भासनदानस्य नैष्फल्यम्

ब्राह्मणहस्ते देव-पितृ-मनुष्य-प्राजापत्याग्नि-तीर्थानां सद्भावात् हस्तविन्यस्तेषु दर्भेषु ममेदमिति देवादीनां कलहः स्यात्। अतएव नागरखण्डे हस्ते दर्भासनदानस्य वैफल्यमुक्तम्—हस्ते तोयं परिक्षेप्यं नो दर्भास्तु कथञ्चन। यो हस्ते चासनं दद्यात्तं दर्भं बुद्धिवर्जितः॥ पितरो नाशये तत्र प्रकुर्वन्ति निवेशनम्। यत्तु प्रचेतसोक्तं 'गृह्णीयुस्ते तु तान् कुशान्' इति तदपि मनसा स्वीकुर्युरिति व्याख्येयम्, नतु हस्ते गृह्णीयुरित्यतो न विरोधः। देवस्वामी तु मन्यते—यः पाणौ दर्भदानप्रतिषेधः स आसनास्तरणार्थदर्भविषयः। यस्तु ग्रहणविधिः स याज्ञवल्क्यवचनात्तस्य पर्यालोचनया पाणावेव विष्टरार्थं कुशविषय इति—तदयुक्तम्। आसनास्तरणार्थानां दर्भाणां विप्रहस्ते प्रदानाप्रसक्तेः प्रतिषेधानवकाशादिति हेमाद्रौ।

रोगार्तनित्यकृत्यलोपे विचारः

(क) रोगार्तस्य गृहस्थस्य स्नान-सन्ध्या-देवर्षिपितृतर्पण-वैश्वदेव-देवार्चालोपे "वेदोदितानां नित्यानां कर्मणां समतिक्रमे" (मनु० ११।२०३) इत्यादिवचनेन अनातुरस्य एकस्य परित्यागे एकस्योपवासस्य विधानेऽपि आतुरस्य—राष्ट्रक्षोभे नृपक्षोभे रोगार्तौ क्षयसूतके। सन्ध्यावन्दनविच्छित्तिर्न दोषाय कदाचन॥ इति गौतमवचनेन दोषाभावस्मरणेऽपि "अत्रापि यथासंभवमाचरणीयम्, लोपे तु किञ्चित् प्रायश्चित्तम्" इति प्रायश्चित्तमञ्जरीकारवचनात् तत्रैव पूर्वमापदि दिनत्रयातिक्रमे उपवास इत्युक्तत्वाच्च स्नानादेर्नित्यकर्मण एकैकस्य दिनत्रयातिक्रमे एक उपवासः, अनेकेषामतिक्रमे 'प्रतिनिमित्तं नैमित्तिकावृत्ति' इति न्यायेन उपवासा वृत्तिः प्राप्नोति। एवं च यावत्सु दिनत्रयेषु सन्ध्यादीनां लोपः सञ्जातस्तावन्त उपवासा निमित्तभेदेन कर्तव्यतां प्राप्नुवन्ति। तदशक्तौ उपवासषट्कप्रतिनिधित्वेन एकं प्राजापत्यं परिकल्प्य यावन्त्युपवासषट्कानि तावन्ति प्रत्याम्नायकृच्छ्राणि कार्याणि। तत्राप्यशक्तौ तावत्संख्याका गावो देयाः। (ख) ज्वरार्तस्य द्विजस्य स्नान-सन्ध्या-देवर्षि-पितृतर्पण-वैश्वदेव-देवार्चालोपेन यो दोषः समभवत् तद्दोषपरिहाराय आपदि नित्यकर्मणां दिनत्रयावधिकलोपे एकोपवासस्य धर्मशास्त्रेषु विधानात् एकैकस्य लोपे एकैक उपवास इति पञ्चानां स्नानादीनां दिनत्रयावधिकलोपे पञ्चोपवासा इति आइत्य परिगणनया सार्द्धमासद्वये सन्ध्यादिलोपे पञ्चविंशत्यधिकशतोपवासानां प्राप्तत्वात् तावतामुपवासानां स्वरूपतः कर्तुमशक्यत्वेन तत्प्रतिनिधित्वेन उपवासषट्कस्य एकप्राजापत्यपरिकल्पनया एकविंशतिप्राजापत्यं कृच्छ्राणां प्रतिनिधित्वेन एकविंशतिगोमूल्यं वेति।

(पूर्वसङ्कल्पितस्य गायत्रीपुरश्चरणानुष्ठानविचारः)

(क) यदि कश्चिदार्तः पूर्वं मनसा सङ्कल्पितं बहुदिनसाध्यं गायत्रीपुरश्चरणादिकं कर्म चिकीर्षन् शुक्रास्तादिदोषरहितकालागमनपर्यन्तं जीविते संशयमापन्नस्तादृशदोषदूषित एव काले स्वसङ्कल्पं पूरयितुमभिलषति तदनुष्ठानं शास्त्रीयमस्ति न वेति विचारे इदमुत्तरम्—स्वसङ्कल्पितस्य स्वेनैव समापनीयस्य षाष्ठन्यायसिद्धत्वात् दोषापगमं यावज्जीवनस्यानिश्चितत्वेन सङ्कल्पितकर्मणोऽनन्यगतिकत्वात् अनुष्ठातव्यत्वमेव। "कालेऽनन्यगतिं नित्यां कुर्यान्नैमित्तिकीं क्रियाम्।" तथा—"नैमित्तिकं तु कुर्वीत सावकाशं न यद् भवेत्।" इत्यादिवचनबलादुत्तरत्र—अतएव "सावकाशं च सम्भवति, निरवकाशस्य कर्मणो दोषयुक्तेऽपि कालेऽनुष्ठानं न दोषायेति गम्यते" इति निरवकाशस्यानन्यगतिकस्य प्रतिप्रसवोऽर्थात् सिद्धः। कर्म कुर्यात्फलावाप्त्यै चन्द्रादिशोभने बुधः। स्वस्थकाले त्विदं सर्वं नार्तकालमपेक्षते॥ स्वस्थकाले त्विदं सर्वं सूतकं परिकीर्तितम्। आपद्गतस्य सर्वस्य सूतकेऽपि न सूतकम्॥ व्यतीपातोऽथ संक्रान्तिस्तथैव ग्रहणं रवेः। पुण्यकालास्तदा सर्वे यदा मृत्युरुपस्थितः॥ एवञ्च पूर्वोक्तेन पुरुषेण शुक्रास्तादिदोषयुतेऽपि स्वसङ्कल्पितस्यानुष्ठानं यदि क्रियते कार्येत वा तच्छास्त्रीयमेवेति। (ख) केनचिन्मानसिकः सङ्कल्पः कृतो गायत्रीपुरश्चरणस्य पूर्वम्। स च मरणावस्थां प्राप्तः, अतस्तेन किं कर्तव्यमिति संशये उत्तरमिदम्—स्वपुत्रादौ विश्वासयोग्ये प्रतिनिधौ च सति तद्द्वारा कारणीयं शुक्रास्तादिदूषितसमयानन्तरम्। तादृशपुत्राद्यलाभे तु वैद्यादिद्वारा स्वात्मज्ञानद्वारा च मरणनिश्चये सति स्वयमपि कालाशुद्धावपि अनुष्ठानं कर्तव्यम्, मानसिकसङ्कल्पस्याप्यारम्भरूपत्वात् आरब्धकर्मणो नित्यत्वात् नित्यानां शुक्रास्तादिदोषाभावादिति।

श्री विद्याधरशर्मा गौड़

(श्राद्धे अनुकल्पकथनम्)

अथानुकल्पाः । तत्र विप्रालाभे—भोजयेदथवाऽप्येकं ब्राह्मणं पङ्क्तिपावनम् । दैवे कृत्वा तु नैवेद्यं पश्चात्तस्य तु निर्वपेत् ॥ इति शङ्खोक्तेरेको विप्रः पूर्वमुक्तः । विप्राभावे दर्भवटुः, निधाय वा दर्भवटूनासनेषु समाहितः । प्रैषानुप्रैषसंयुक्तं विधानं प्रतिपादयेत् ॥ इति देवलोक्तेः ।

अब अनुकल्प (मुख्य की अशक्ति में अनुकल्पगौण का अनुष्ठान) कहते (शातातपः—यथा कथञ्चिन्नित्यानि कुर्यादिन्दुक्षयादिषु । पात्रद्रव्याद्यसंपत्तौ सोऽपि मुख्यफलं लभेत् ॥) हैं । अथवा वहाँ पर (श्राद्धकर्म में) अनेक ब्राह्मणों के अप्राप्त में एक पंक्तिपावन ब्राह्मण को भी भोजन करा दे । देवताओं के निमित्त नैवेद्य कर बाद में उसका निर्वाप करे ।

इस शंखके वचन से एक ब्राह्मण को पहले-(एकेनापि हि पिण्डेन षट्पिण्डश्राद्धमाचरेत् ।) कहा है । ब्राह्मण के न मिलने पर (अर्थात् एक भी ब्राह्मण न प्राप्त होने पर) कुशा का वटु (प्रभासखण्डे-अलाभे ब्राह्मणस्यैव कौशः कार्यो वटुः प्रिये । एकमप्याचरेच्छ्राद्धं षड्दैवत्यं समाहितः । विभक्तिं कारयेद्यस्तु पितृहा स प्रजायते ॥ वटुः—लघुमनुष्यच्छ्या । तल्लाभार्थं कौशः । 'चञ्चा तृणमयः पुमान्' इति कोशः । तं वटुः कुशमयं विप्रत्वेन प्रकल्प्य श्राद्धं कुर्यात् न तु विभक्तिं श्राद्धविच्छेदमित्यर्थः) (कुशा का वटु) बनाकर आसनों पर (ब्राह्मणों के लिए उचित आसनों पर) बैठाकर प्रैष (उत्तर) (श्राद्धं करिष्ये) यहाँ से लेकर 'श्राद्धं संपन्नम्' इत्यादि । अनुप्रैष (प्रत्युत्तर) 'कुरुष्व' से प्रारंभ कर 'सुसंपन्नम्' तक अनुप्रैष स्वयं कहे । विधान का प्रतिपादन करे—ऐसा देवल ने कहा है ।

(अशक्तावामश्राद्धम्)

अशक्तावामश्राद्धम्—आपद्यनग्नौ तीर्थे च प्रवासे पुत्रजन्मनि । आमश्राद्धं प्रकुर्वीत भार्यारजसि संक्रमे ॥ इति कात्यायनोक्तेः ।

अशक्ति (पाकश्राद्ध के असंभव) में आमश्राद्ध कहा है । आपत्ति में, अग्नि के अभाव में, तीर्थ में, प्रवास में, पुत्रजन्म में तथा भार्या के रजोधर्म होने पर आमश्राद्ध करे—ऐसा कात्यायन ने कहा है ।

पृथ्वीचन्द्रोदये जमदग्निः—यावत्स्यान्नाग्निसंयुक्त उत्सन्नाग्निरथापि वा ।

आमश्राद्धं तदा कुर्याद्धस्तेऽग्नौकरणं भवेत् ॥

पृथ्वीचन्द्रोदय में जमदग्नि ने कहा है—जब तक अग्नि से संयोग (अग्निहोत्री) न हो, (देशान्तर में रहने से अग्नि का अभाव होने से) या अग्नि के नाश होने से आमश्राद्ध (श्रौत या स्मार्त अग्नि के बिना आम या हेमश्राद्ध करे ।) करे तथा हाथ में अग्नौकरण होम करे ।

कौर्मे—अनग्निरधनो वापि तथैव व्यसनान्वितः । आमश्राद्धं द्विजः कुर्याद् वृषलस्तु सदैव हि ॥ आहिताग्नौ प्रवासस्थे तत्पत्नी गृहे दर्शमृत्विगादिना कारयेत् ।

कूर्मपुराण में कहा है—अनग्निक या निर्धन, (जमदग्निः—न भवेद्यस्य सामग्री दारा वा गृहमेव वा । आमश्राद्धं स कुर्वीत बालो वृद्धश्च यो भवेत् ॥ पाकसाधन सामग्री के अभाव में, पत्नी के अभाव में, पाकयोग्यस्थान के अभाव में और पाकबनाने की शक्ति के अभाव में) पाक-साधन सामग्र्यादि के अभाव में, वैसे ही व्यसन में लगे हुए द्विज और वृषल (शूद्र) सदा ही आमश्राद्ध करे । आहिताग्नि के (पत्न्याः कर्तृत्वमेकाकीप्रवासे श्राद्धासंभवं निश्चित्येति बोध्यम् ।) विदेश में होने पर उसकी पत्नी घर पर दर्श (अमावास्या) श्राद्ध ऋत्विक् आदि द्वारा करावे ।

अमावास्यादिनियतं प्रोषिते धर्मचारिणी । पत्यौ तु कारयेन्नित्यमन्येनाप्यृत्विगादिना ॥ इति लघुहारीतोक्तेरिति पृथ्वीचन्द्रोदयः । आदिपदमाब्दिकादिसर्वपार्वणपरमिति शूलपाणिः ।

क्योंकि लघुहारीत में पृथ्वीचन्द्रोदय ने कहा है-धर्मचारिणी पत्नी पति के परदेश में होने पर अमावास्या आदि के नियत श्राद्ध को अन्य ऋत्विग् आदि से करावे । आदि पद से वार्षिक आदि और सब पार्वणपरक है—यह शूलपाणि ने कहा है ।

सुमन्तुः—पाकाभावेऽधिकारः स्याद्विप्रादीनां नराधिप। अपत्नीनां महाबाहो विदेशगमनादिभिः ॥ सदा चैव तु शूद्राणामामश्राद्धं विदुर्बुधाः ॥

सुमन्तु ने कहा है—हे नराधिप, पाक के बनानेवाली स्त्री न हो तो ब्राह्मण आदियों को बनाने का अधिकार है। हे महाबाहो, विदेश में श्राद्ध करे तो भी ब्राह्मणों को पाक बनाने का अधिकार है। सदा ही विद्वानों ने शूद्रों को आमश्राद्ध कहा है।

प्रचेताः—स्त्री शूद्रः स्वपचश्चैव जातकर्मणि चाप्यथ। आमश्राद्धं सदा कुर्याद्विधिना पार्वणेन तु ॥ स्वयं पचतीति स्वपचः।

प्रचेता ने कहा है—स्त्री, शूद्र, अपत्नीक-स्वयं पकानेवाला और जातकर्म में पार्वणश्राद्ध की विधि से आमश्राद्ध करे। स्वयं पकावे उसको स्वपच कहते हैं।

विष्णूशनसौ—आत्मनो देशकालाभ्यां विप्लवे समुपस्थिते। आपद्यनग्नौ तीर्थे च प्रवासे पत्न्यसम्भवे॥ चन्द्रसूर्यग्रहे चैव दद्यादामं विशेषतः। न पक्वं भोजयेद्विद्वान् सच्छूद्रोऽपि कदाचन ॥ भोजयन् प्रत्यवायी स्यान्न च तस्य फलं भवेत्।

अत्र प्रवासतीर्थग्रहणादावामहेमश्राद्धमेव, पाकश्राद्धं तु न भवत्येवेति हेमाद्रिरत्नावल्यादयः।

विष्णु और उशना ने कहा है—देश और काल से आत्मा में विप्लव उपस्थित हो जाय तो या आपत्ति में, अनग्नि में, तीर्थ में, प्रवास में, पत्नी के अभाव में, चन्द्र और सूर्यग्रहण में विशेष कर आमश्राद्ध करे। उत्तम शूद्र भी कभी पके अन्न से भोजन न करावे। यदि भोजन कराता है तो प्रत्यवायी होता है उसको श्राद्ध का फल नहीं मिलता है।

यहाँ पर प्रवास—परदेश जाने पर, तीर्थ में, तीर्थजल के समीप में, (वस्तुतस्तु तीर्थे श्राद्धं प्रकुर्वीरन् पकान्नेन विशेषतः। आमान्नेन हिरण्येन कन्दमूलफलैरपि। एषामभावे कुर्याच्च श्रद्धयाऽपि जलेन च) ग्रहण आदि में (पुत्रजन्म, भार्या के रजोदर्शन में और पत्न्यभाव में) आम या हेमश्राद्ध ही करे। पाकश्राद्ध नहीं होता है—यह हेमाद्रि, रत्नावली आदि में कहा है।

अपरार्कविज्ञानेश्वरादयस्तु—पाकाभावे द्विजातीनामामश्राद्धं विधीयते। इति सुमन्तूक्तेः साग्निकैर्निरग्निकैश्च प्रवासादौ सर्वत्र पाकाभावे आमादिकार्यम्, पाकसम्भवे त्वन्नेनैवेत्याहुः। अतएव पाकश्राद्धमुक्त्वा—एतच्चानुपनीतोऽपि कुर्यात्सर्वेषु पर्वसु। भार्याविरहितोऽप्येतत् प्रवासस्थोऽपि नित्यशः ॥ इति मात्स्ये निरग्नेरपि पाकेनोक्तमिति शूलपाणिकल्पतरू। एतच्छब्दः श्राद्धमात्रपर इत्यन्ये। एकोद्दिष्टं तु कर्तव्यं पाकेनैव सदा स्वयम्। इति लघुहारीतीयमपि साग्नेरेव। निरग्नेर्महैकोद्दिष्टमप्यामेन। शूद्रस्य तु दशाहपिण्डाद्यामेनेति हलायुधः। उत्सन्नाग्नीनां त्वामश्राद्धमेव, पूर्वोक्तजमदग्निवाक्यात्।

अपरार्क, विज्ञानेश्वर आदि तो कहते हैं कि—पाक के अभाव में द्विजातियों को आमश्राद्ध का विधान किया है-इस सुमन्तु के कहने पर साग्निक और निरग्निकों के परदेश आदि में सर्वत्र पाक के अभाव में आम आदि से श्राद्ध करना चाहिये। पाक के संभव में तो अन्न ही से श्राद्ध करे-ऐसा कहा है। इसलिए पाकश्राद्ध को कहकर—सब कार्यों में इसको अनुपनीत (जिसका उपनयन नहीं हुआ है) भी, भार्या से रहित और प्रवास में रहने पर भी नित्य इसको करे—ऐसा मत्स्यपुराण में है। निरग्निक को भी पाक से श्राद्ध करना कहा है—यह शूलपाणि तथा कल्पतरु में है। 'एतत्' शब्द श्राद्धमात्र परक है—यह दूसरे (हेमाद्रि, रत्नवली आदि) कहते हैं। एकोद्दिष्टश्राद्ध को सदा स्वयं पाक से ही करना चाहिये। यह लघुहारीत का वचन भी साग्निक के लिये है। निरग्निक को तो महैकोद्दिष्ट भी आम से है। शूद्र का तो दशाह (दश दिन के) आदि पिण्ड आमान्न से हैं—यह हलायुध का कहना है। उत्सन्नाग्नियों (जिनकी अग्नि नष्ट हो गयी है) का तो आम श्राद्ध ही है—पहले कहे हुए जमदग्नि मत से।

मरीचिः—श्राद्धविघ्ने द्विजातीनामामश्राद्धं प्रकीर्तितम्।
अमावास्यादिनियतं माससंवत्सरादृते ॥

मरीचि ने कहा है—श्राद्ध के विघ्न में अर्थात्—स्त्री के रजोदर्शन में, आपत्तिकाल में श्राद्धीय पाक के निर्माण के असंभवादि में द्विजातियों को मासिक और सांवत्सरिकश्राद्ध को छोड़कर अमावास्या आदि में आमश्राद्ध कहा है।

स्मृतिदर्पणे—मृताहं च सपिण्डं च गयाश्राद्धं महालयम्।
आपन्नोऽपि न कुर्वीत श्राद्धमामेन कर्हिचित्॥

स्मृतिदर्पण में कहा है—मरणदिन का श्राद्ध, सपिण्डनश्राद्ध, गयाश्राद्ध (सब गयाश्राद्ध के असंभव में वट श्राद्ध करे—ऐसा याय‌जूकों का करना है।) और महालयश्राद्ध आपत्ति में भी कभी भी आम (अन्न) से न करे।

हेमाद्रौ व्यासः—आमं ददतु कौन्तेय दद्यादामं चतुर्गुणम्।
द्विगुणं त्रिगुणं वापि नत्वेकगुणमर्पयेत्॥

हेमाद्रि में व्यास ने कहा है कि—हे कौन्तेय, आम (अन्न) दे आम पुरुषाहार की अपेक्षा से चतुर्गुण दे। द्विगुणित या त्रिगुणित दे एक गुणा अर्पण न करे।

सिद्धान्ने तु विधिर्यः स्यादामश्राद्धेऽप्यसौ विधिः।
आवाहनादि सर्वं स्यात्पिण्डदानं च भारत॥

हे भारत, जो विधि सिद्धान्न में आवाहन आदि और पिण्डदान है वही सब विधि आमश्राद्ध में भी है।

दद्याद्यच्च द्विजातिभ्यो भृतं वाऽभृतमेव वा।
तेनाग्नौकरणं कुर्यात् पिण्डांस्तेनैव निर्वपेत्॥

द्विजातियों के लिए पका या बिना परिपक्व अन्न दे। उसी से 'अग्नौकरण' करे और उसी से पिण्डों का निर्वाप करे।

पक्षान्तरमाह स एव—आमं ददद्धि कौन्तेय तद्दानं द्विगुणं चरेत्। त्रिगुणं चतुर्गुणं वापि नत्वेकगुणमर्पयेत्॥ स्मृत्यर्थसारे सममप्युक्तम्।

पक्षान्तर को उसी ने कहा है—हे कौन्तेय, आमान्न देनेवाला व्यक्ति द्विगुणित, त्रिगुणित या चतुर्गुणित (पुरुषाहारापेक्षया) दे। एक गुणा अर्पण न करे। स्मृत्यर्थसार में बराबर भी कहा है।

(विष्णुपुराणे वाराहे च—असमर्थोऽन्नदानस्य धान्यमाशं स्वशक्तितः। प्रदद्यात्तु द्विजातिभ्यः स्वल्पाल्पामपि दक्षिणाम्॥ अत्र शक्तितः इत्यस्मात् समलाभः। अश्यत इति आशम्।)

विष्णुपुराण और वाराह में कहा है—अन्नदान देने की सामर्थ्य न हो तो (द्विगुण धान्यदान की असमर्थता में) धान्य के आश (भक्षण करने योग्य) को अपनी शक्ति से द्विजातियों के लिये दे तथा थोड़ी से थोड़ी भी दक्षिणा दे। यहाँ पर 'शक्ति' से समलाभ (सर्वलाभ) है। उस धान को उस दिन में घर में पकाकर भोजन करे। कार्यान्तर में विनियोग न करे।

षट्त्रिंशन्मते—आमश्राद्धं यदा कुर्यात्पिण्डदानं कथं भवेत्। गृहपाकात्समुद्धृत्य सक्तुभिः पायसेन वा॥ पिण्डान् दद्याद्यथालाभं तिलैः सह विमत्सरः॥

षट्त्रिंशत्मत में कहा है—जब आमश्राद्ध करेंगे तब पिण्डदान कैसे होगा। गृह के पाक से उद्धरण कर सक्तू या पायस से क्रोधरहित हो तिलों के साथ पिण्डों को दे।

पृथ्वीचन्द्रोदये व्यासः—आमश्राद्धं यदा कुर्याद्विधिज्ञः श्राद्धदः सदा। हस्तेऽग्नौकरणं कुर्याद् ब्राह्मणस्य विधानतः॥ एतत्साग्नेः। निरग्नेः सदा तत्सत्त्वात्।

पृथ्वीचन्द्रोदय में व्यास ने कहा है—जब आमश्राद्ध करे तो विधि का जानकार श्राद्ध देनेवाला सदा ब्राह्मण के हाथ में विधान द्वारा 'अग्नौकरण' करे यह साग्निक को है। निरग्निक (यावत्यान्ताग्नि-संयुक्त उत्सन्नाग्निरथापि वा। आमश्राद्धं तदा कुर्याद् हस्तेऽग्नौकरणं भवेत्॥) (इत्यामश्राद्धेऽपि पाणिहोमः। अग्नि के अभाव में हाथ में ही ब्राह्मण के हवन करे। पाकश्राद्ध के भी संभव से अग्न्यधिकरण अग्नौकरण

का असंभव में भी बाध है। अन्यथा अधिकार के अभाव में श्राद्ध की ही अप्राप्ति है। इसलिए सदापद का उपादान है। इसलिए अपेक्षित विधान के अनुरोध से व्यासवाक्य को साग्निकपरक कहा। निरग्निक परत्व में वैयर्थ्य है।) को सदा उसकी प्राप्ति होने पर कहा है।

यत्तु— आमेन पिण्डं दद्याच्चेद्द्विजान् पक्वेन भोजयेत्। पक्वेन कुरुते पिण्डशामान्नं यः प्रयच्छति ॥ तावुभौ मनुजौ प्रोक्तौ नरकार्हौ न संशयः ॥ इति, तद्दर्शादिपरम्। देशाचाराद्वयवस्थेति युक्तम्।

जो अन्न से पिण्ड को दे और पाक से ब्राह्मणों को भोजन करावे। जो पक्वान्न से पिण्ड देता है और आमान्न को ब्राह्मणों को देता है। वे दोनों मनुष्य नरक में जाने योग्य होते हैं, इसमें संशय नहीं है। वह दर्शादिपरक है। देशाचार से व्यवस्था उचित है—यह कमलाकर का कहना है।

मरीचिः—आवाहने स्वधाकारे मन्त्रा ऊह्या विसर्जने। अन्यकर्मण्यनूह्याः स्युरामश्राद्धविधिः स्मृतः ॥ आवाहने 'हविषे अत्तवे' इत्यत्र 'स्वीकर्तवे' इत्यूहः। स्वधाकारे 'नमो वः पितर इषे' इत्यत्र इषेपदस्थाने 'आमद्रव्याय' इत्यूहः। विसर्जने 'वाजे वाजे' इत्यत्र 'तृप्तास्थ' इति स्थाने 'तर्प्स्यत' 'तृप्यत' इति वोहः। यद्यपि 'तस्मादृचं नोहेत्' इति ऋच्यूहो निषिद्धः तथापि वचनाद्भवति।

मरीचि ने कहा है—आवाहन मन्त्र—([1]उशन्तस्त्वा) में, स्वधाकार में और विसर्जन में मन्त्रों में ऊह होता है। अन्य कर्मों में ऊह नहीं होता है—यह आमश्राद्ध की विधि कही है। आवाहन में—'हविषे अत्तवे' यहाँ पर स्वीकर्तवे-यह ऊह होता है। स्वधाकार में—नमो वः पितर[2] इषे-यहाँ पर 'इषे' पद में 'आमद्रव्याय' ऐसा ऊह करे। विसर्जन में 'वाजे वाजे'[3] यहाँ पर 'तृप्ता यात' इसके स्थान में तर्प्स्यत या तृप्यत यह ऊह होता है। यद्यपि इसकारण से ऋचामें ऊह नहीं होता है। इसलिये ऋचामें ऊह करना निषिद्ध है फिर भी वचन से ('तस्मादृचं नोहेत्' इस सामान्यश्रुति का भी बाध होता है-यह तात्पर्य है।) होता है।

तृप्तिप्रश्नोऽवगाहश्च जुषप्रश्नो यथासुखम्। आमश्राद्धे भवेन्नैतदपोशानं च पञ्चमम् ॥ अयं चानुवादः खलेवाल्यां छेदनादीनामिवार्थाभावाल्लोपसिद्धेः।

तृप्तिप्रश्न (तृप्तास्थ) अवगाह (द्विजाङ्गुष्ठनिवेशन), यथासुख जुषप्रश्न (जुषध्वम्) और पांचवा अपोशान (आचमन) ये आमश्राद्ध में नहीं होते हैं।

यह अनुवाद है। खलेवाली[4] में छेदनादियों के तरह अर्थ के अभाव से (छेदनादि के करने में स्वरूप की हानि होने से) लोप की सिद्धि है।

धर्मप्रदीपे तु—आमं चतुर्गुणं दद्यादथवा द्विगुणं तथा।
हेमं चाष्टगुणं तद्वदामे हैमेऽप्यसौ विधिः ॥

१—उशन्तस्त्वा नि धीमह्युशन्तः समिधीमहि। उशन्नुशत आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे ॥ (ऋ० १०।१६।१२, अथर्व—१८।१।५६, यजु० १९, ७०, तैत्तरीय सं० २, ६, १२, १)।

२—नमो वः पितर इषे नमो वः पितर ऊर्जे नमो वः पितरः शुष्माय नमो वः पितरो घोराय नमो वः पितरो जीवाय नमो वः पितरो रसाय। स्वधावः पितरो नमो वः पितरो नम एता युष्माकं पितर इमा अस्माकं जीवायो जीवन्त इदसन्तः स्याम ॥ (ब्रह्मकर्मसमुच्चय)।

३—वाजेवाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः। अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ॥ ऋ० म० ७।सू० ३८ म० ८।

४—साद्यस्कसोमयाग में 'खलेवाली यूपो भवति' यह वाक्य श्रुत है। यहाँ खरियान में बैलों को रोकने के लिये जो स्तम्भ गाड़ा हुआ है उसी को साद्यस्कसोमयाग में यूप मान लेना चाहिये। खले पाशून् वारयति इति खले वाली-यह उसकी व्युत्पत्ति है जो यव क्षेत्र में खलेवाली स्तंभ है उसी को यूप मान लिया तब छेदनादिका लोप होता है। अर्थात् छेदनादि नहीं करना है। उसमें कारण प्रयोजन द्वार है वह नहीं है। अर्थात् उसका लोप है। इसलिये खलेवाली में छेदनादि कर्म नहीं होते हैं।

धर्मप्रदीप में तो कहा है—आम को चतुर्गुण या द्विगुण दे। सुवर्ण अष्टगुणा दे। यह आम और हेम श्राद्ध की विधि है।

आमे हैमे तथा नित्ये नान्दीश्राद्धे तथैव च। व्यतीपातादिके श्राद्धे नियमान् परिवर्जयेत् ॥

आम में, हैम में, नित्यश्राद्ध में, वैसे ही नान्दीश्राद्ध में, व्यतीपात आदि श्राद्धमें नियमों को त्याग दे।

गृहपाकात्समुद्धृत्य सक्तुभिः पायसेन वा। पिण्डदानं प्रकुर्वीत आमे हैमे कृते सति ॥

आम और हैमश्राद्ध करने पर घर के पाक में से निकाल कर या सत्तु या पायस (खीर) से पिण्डदान करे।

आमश्राद्धे च वृद्धौ च प्रेतश्राद्धे तथैव च। विकिरं नैव कुर्वीत मुनिः कात्यायनोऽब्रवीत् ॥

आमश्राद्ध में, वृद्धि में और प्रेतश्राद्ध में विकर न करे—ऐसा कात्यायनमुनि ने कहा है।

आमश्राद्धमनङ्गुष्ठमग्नौकरणवर्जितम्। तृप्तिप्रश्नविहीनं तु कर्तव्यं मानवैर्ध्रुवम् ॥

आमश्राद्ध में अंगूठे का स्पर्श, अग्नौकरण और तृप्तिप्रश्न इनको छोड़कर मनुष्य निश्चित करें।

आवाहनाग्नौकरणं विकिरं पात्रपूरणम्। तृप्तिप्रश्नं न कुर्वीत आमे हैमे कदाचन ॥ इत्युक्तम्—एतच्च—आवाहनं भवेत्कार्यमर्घ्यदानं तथैव च। इति हेमाद्रौ भविष्यादिविरोधाच्चिन्त्यम्, शाखान्तरविषयं वास्तु। विकिरोऽप्यामेनेति हेमाद्रिः। शूद्रस्य च तु तत्रवोक्तम्—अग्नौकरणमन्त्रश्च नमस्कारो विधीयते। अग्नये कव्यवाहनाय नमः, सोमाय पितृमते नमः, इत्ययं मन्त्रः।

आवाहन, अग्नौकरण, विकर, पात्रपूरण (जल से भरना) और तृप्तिप्रश्न आम और हैमश्राद्ध में कभी न करे। ऐसा कहा है। आवाहन और वैसे ही अर्घ्यदान होता है—यह हेमाद्रि में भविष्यपुराण आदि के विरोध से चिन्तनीय है या शाखान्तरविषयक है—अर्थात्-दूसरी शाखावालों के लिये है। हेमाद्रि ने कहा है—आम (अन्न) से ही विकर करे। शूद्र का तो वहीं पर कहा है कि—'अग्नौकरण-मन्त्र' शूद्र को नमस्कार से कहा है। अग्नये कव्यवाहनाय नमः। सोमाय पितृमते नमः। यह मन्त्र है।

मात्स्ये—मन्त्रवर्ज्यं हि शूद्रस्य सर्वमेव विधीयते। एवं शूद्रोऽपि सामान्यं वृद्धिश्राद्धं च सर्वदा ॥ नमस्कारेण मन्त्रेण कुर्यादामान्नवद् बुधः ॥ तच्च पूर्वाह्णे कार्यम्, आमश्राद्धं तु पूर्वाह्णे एकोद्दिष्टं च मध्यतः। पार्वणं चापराह्णे तु प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम् ॥ इति हारीतोक्तेः। एतद्द्विज-विषयम्। शूद्रकर्तृकं त्वपराह्णे एव, मध्याह्नात्परतो यस्तु कुतपः स उदाहृतः। आमश्राद्धं तु तत्रैव पितृणां दत्तमक्षयम् ॥ इति सुमन्तूक्तेरित्यपरार्के हेमाद्रौ चोक्तम्।

मत्स्यपुराण में कहा है—मन्त्र को त्याग कर शूद्र को सब कर्म का विधान है। इसीप्रकार बुद्धिमान् शूद्र भी सर्वदा सामान्य वृद्धिश्राद्ध को आमान्नवत् नमस्कार मन्त्र से करे। वह भी पूर्वाह्णकाल में करना चाहिये। आमश्राद्ध को पूर्वाह्ण में, एकोद्दिष्ट को मध्याह्न में, पार्वण को अपराह्ण में और प्रातःकाल में वृद्धिनिमित्तिक श्राद्ध करे यह हारीत ने कहा है। यह द्विजपरक है। शूद्रकर्तृक तो अपराह्ण में ही करे। मध्याह्नकाल के बाद जो काल है वह 'कुतप' कहा गया है। उसी में ही आमश्राद्ध करने से पितरों को दिया हुआ अक्षय होता है। ऐसा सुमन्तु ने कहा है। अपरार्क में तथा हेमाद्रि में भी कहा है।

(हेमश्राद्धकथनम्)

तदभावे हेमश्राद्धमाह हेमाद्रौ मरीचिः—आमान्नस्याप्यभावे तु श्राद्धं कुर्वीत बुद्धिमान्। धान्याच्चतुर्गुणेनैव हिरण्येन सुरोचिषा ॥

उसके अभाव में हेमश्राद्ध हेमाद्रि में मरीचि ने कहा है—पुत्रजन्मातिरिक्तमें पकान्न के अभाव में बुद्धिमान् मनुष्य एक एक ब्राह्मण के तृप्तिरूपपर्याप्त अन्न सिद्धि के सामर्थ्य से चतुर्गुण सुवर्ण से करे।

धर्मः—आमं तु द्विगुणं प्रोक्तं हेम तद्वच्चतुर्गुणम्।

धर्म ने कहा है—आमान्न तो द्विगुणित और तद्वत् सुवर्ण को चतुर्गुण कहा है।

स्मृत्यर्थसारे—हिरण्यमष्टगुणं चतुर्गुणं समं वा दद्यात् ।

स्मृत्यर्थसार में कहा है—सुवर्ण आठ गुणा, चौगुना या बराबर का दे ।

हेमाद्रौ भविष्ये—अन्नाभावे द्विजाभावे प्रवासे पुत्रजन्मनि ।
हेमश्राद्धं सग्रहे च तथा स्त्रीशूद्रयोरपि ॥

हेमाद्रि में भविष्यपुराण का वचन है—अन्न के अभाव में, द्विज के अभाव में, प्रवास में, पुत्रजन्म में और वेध या ग्रहण में स्त्री और शूद्र सुवर्ण से श्राद्ध करें ।

षट्त्रिंशन्मते तुर्यपादे—'वर्जयित्वा क्षयेऽहनि' इति पाठः । 'यस्य भार्या रजस्वला' इति व्यासपाठः ।

षट्त्रिंशन्मत में कहा है—चतुर्थपाद में ऐसा श्लोक कहे—अन्नाभावे द्विजाभावे प्रवासे पुत्रजन्मनि । हेमश्राद्धं सग्रहे च वर्जयित्वा क्षयेऽहनि । ऐसा पाठ कहे । अर्थात्—क्षयदिन (मरण दिन) में छोड़कर (इससे वेधादिकाल में क्षयाहश्राद्ध सुवर्ण से न करे किन्तु आमान्न से ही करे यह अर्थ है ।) व्यास ने ऐसा पाठ कहा है—'अन्नाभावे द्विजाभावे प्रवासे पुत्रजन्मनि । हेमश्राद्धं सग्रहे च यस्य भार्या रजस्वला । जिसकी पत्नी रजस्वला हो । अर्थात् स्त्री के रजस्वला होने पर आब्दिक या दर्शश्राद्ध सुवर्ण से ही करे ।

(पुत्रोत्पत्तौ हेमनियममाह)

पुत्रोत्पत्तौ तु हेमनियममाह संवर्तः—पुत्रजन्मनि कुर्वीत श्राद्धं हेम्नैव बुद्धिमान् ।
न पक्वेन न चामेन कल्याणान्यभिकामयन् ॥

पुत्रोत्पत्ति तो हेम (सुवर्ण) का नियम संवर्त ने किया है—पुत्रजन्म में बुद्धिमान् सुवर्ण से ही श्राद्ध करे । पके अन्न से या आम (अन्न) से कल्याणों की इच्छावाला न करे ।

भविष्ये—गृहपाकात् समुद्धृत्य सक्तुभिः पायसेन वा । पिण्डदानं प्रकुर्वीत हेमश्राद्धे कृते सति ॥ शूद्रस्तु गृहपाकेन तत्पिण्डान्निर्वपेत्तथा । सक्तु मूलं फलं तस्य पायसं वा भवेत् स्मृतम् ॥ हेमश्राद्धे पिण्डदानं नेति दिवोदासः । स्मृत्यर्थसारे तु विकल्प उक्तस्तदाशयं न विद्मः ।

भविष्यपुराण में कहा है—घर के पाक से निकाले हुए अन्न से, सत्तू या पायस से हेमश्राद्ध करने पर भी पिण्डदान करे । शूद्र तो गृहपाक से उन पिण्डों का निर्वाप करे । (कहीं ऐसा पाठ है कि—'शूद्रस्तु गृहपाकेन न पिण्डान्निर्वपेत्तथा । अर्थात्—गृहपाक से शूद्र पिण्डदान न करे ।) पिण्डनिर्वाप के लिए सत्तू, मूल (कन्द), फल और पायस कहा है । हेमश्राद्ध में पिण्डदान नहीं होता है—यह दिवोदास का मत है । स्मृत्यर्थसार में तो विकल्प कहा है उसका आशय हम नहीं जानते हैं ।

षट्त्रिंशन्मते—नामन्त्रणाग्नौकरणं विकिरो नैव दीयते । तृप्तिप्रश्नोऽपि नैवात्र कर्तव्यः केनचिद्भवेत् ॥ अत्र मरीचिना आमाभावे हेमविधानेन स्थानापत्याधर्मप्राप्तेः पूर्ववन्मन्त्रोहः पूर्वाह्णकालता च ज्ञेयेति दिक् । पूर्वोक्तधर्मप्रदीपोक्तेश्च ।

षट्त्रिंशन्मत में कहा है—तीर्थनिमित्तक हेमश्राद्ध में (अन्यनिमित्तक में तो हेमाद्रिमत से आमश्राद्ध में विकर होता है) आमन्त्रण और अग्नौकरण और विकर नहीं दिया जाता है । तृप्तिप्रश्न भी वहाँ किसीप्रकार नहीं करना चाहिये ।

यहाँपर मरीचि ने कहा है–आमके अभाव में हेमके विधान से स्थान की आपत्तिसे धर्मप्राप्ति के पहले के सदृश मन्त्र में ऊह और पूर्वाह्णकाल को भी जानना चाहिये । और पहले कहे हुए धर्मप्रदीप ने भी कहा है ।

व्यासः—हिरण्यमामं श्राद्धीयं लब्धं यत् क्षत्रियादितः । यथेष्टं विनियोज्यं स्यात् भुञ्जीयात् ब्राह्मणात्स्वयम् ॥ विप्राल्लब्धं भुञ्जीयात् । क्षत्रियादिलब्धे तु यथेष्टं विनियोगः । तेनापि श्राद्धवैश्वदेवादि न कार्यम् । देवोद्देशेन त्यक्तस्य देवतान्तराय त्यागायोगादिति देवयाज्ञिकः ।

व्यास ने कहा है—सुवर्ण या आमश्राद्धीय क्षत्रिय आदि (आदि शब्द से वैश्य या जिसका राज्याभिषेक हो चुका ऐसा क्षत्रिय) से प्राप्त द्रव्य को यथेष्ट विनियोग करे । ब्राह्मण से मिले हुए का स्वयं

भोजन करे। ब्राह्मण से प्राप्त का भोजन करे। क्षत्रिय आदि से प्राप्त में तो यथेष्ट विनियोग करे। उससे भी श्राद्ध वैश्वदेव आदि न करे। क्योंकि—देवता के उद्देश्य से दिये हुए का दूसरे देवता के लिए त्याग (दान) देना उचित नहीं है—ऐसा दैवयाज्ञिक ने कहा है।

(शूद्रलब्धे तूक्तं तत्रैव)

शूद्रलब्धे तूक्तं तत्रैव षट्त्रिंशन्मते—आमं शूद्रस्य यत्किञ्चिच्छ्राद्धिकं प्रतिगृह्यते। तत्सर्वं भोजनायालं नित्ये नैमित्तिके न च ॥ इति।

शूद्र से प्राप्त द्रव्य का तो वहीं पर त्रिंशत्मत में कहा है—जो कुछ शूद्र का आमान्न श्राद्धिक ग्रहण करना कहा है वह सब (स्वकीय या परकीय भोजन के लिए ही विनियोग करे।) भोजन के ही है। नित्य और नैमित्त कार्य के लिये नहीं है। (शूद्र द्वारा प्राप्त हिरण्य भोजन, नित्य क्रियादि में, लौकिक, अलौकिक दक्षिणादि नित्य या नैमित्तिक में ग्रहण करे।)

शुद्धितत्त्वेऽङ्गिराः—शूद्रवेश्मनि विप्रेण क्षीरं वा यदि वा दधि। निवृत्तेन न भोक्तव्यं शूद्रान्नं तदपि स्मृतम् ॥ शूद्राद् विप्रगृहेष्वन्नं प्रविष्टं तु सदा शुचि।

शुद्धितत्त्व में अंगिरा ने कहा है—शूद्र के घर में ब्राह्मण निवृत्तिमार्ग में स्थित दूध या दधि भोजन नहीं करे। वह भी शूद्रान्न कहा है। शूद्र से ब्राह्मणों के घर में जो अन्न आ गया हो वह सदा पवित्र है।

पराशरः—तावद्भवति शूद्रान्नं यावन्न स्पृशति द्विजः। द्विजातिकरसंस्पृष्टं सर्वं तन्न विरुध्यते ॥

पराशर ने कहा है—जब तक वह शूद्रान्न रहता है तब तक ब्राह्मण उसका ग्रहण नहीं करता है। द्विजाति के हाथ से सब अन्न का स्पर्श हो जाने पर वह विरुद्ध नहीं होता है। अर्थात्—उसे ग्रहण करने में दोष नहीं है।

विष्णुपुराणे—संप्रोक्षयित्वा गृह्णीयाच्छूद्रान्नं गृहमागतम्।

विष्णुपुराण में कहा है—घर में आया हुआ शूद्र का अन्न प्रोक्षण कर ग्रहण करे।

अङ्गिराः—पात्रान्तरगतं ग्राह्यं दुग्धं स्वगृहमागतम्।

अंगिरा ने कहा है—अपने घर में आया हुआ शूद्र के दूध को दूसरे पात्र में (पराशरः-शुष्कान्नं गोरसं स्नेहं शूद्रवेश्मन आगतम्। पक्वं विप्रगृहे भुक्तं भोज्यं तं मनुरब्रवीत् ॥) ग्रहण करे।

(सपिण्डश्राद्धाशक्तावाह)

सपिण्डश्राद्धाशक्तावाह हेमाद्रौ संवर्तः—समग्रं यस्तु शक्नोति कर्तुं नैवेह पार्वणम्। अपि सङ्कल्पविधिना काले तस्य विधीयते ॥ पात्रे भोज्यस्य चान्नस्य त्यागः सङ्कल्प उच्यते ॥

सपिण्डश्राद्ध की अशक्ति में हेमाद्रि में संवर्तन ने कहा है—जो समग्र (संपूर्ण) पार्वणश्राद्ध करने में समर्थ नहीं ही है वह उसी समय में संकल्पविधि से संकल्प करे। पात्र में भोजनीय अन्न के त्याग को संकल्प (सांगोपांग करने में समर्थन हो तो अन्नदानमात्र का सांकल्पिकश्राद्ध करे। संकल्पश्राद्ध में जो अंग है या प्रधान है उसे नहीं करना चाहिये।) कहा है।

व्यासः—साङ्कल्पं तु यदा कुर्यान्न कुर्यात्पात्रपूरणम्। नावाहनाग्नौकरणे पिण्डांश्चैव न दापयेत् ॥ पात्रमर्घ्यस्य। समन्त्रकावाहनस्य निषेधः। तूष्णीं तु भवत्येवेति हेमाद्रिः। स्मृत्यर्थसारे—विकिरं तु न दातव्यम्' इति तृतीयपादे पाठः।

व्यास ने कहा है—जब मनुष्य सांकल्प करे तो पात्र को जल से न भरे। आवाहन, अग्नौकरण और पिण्डों को न दे। पात्रमाने—अर्घ्य न दे। समन्त्रक आवाहन का निषेध है। हेमाद्रि ने कहा है कि—तूष्णीम् तो होता ही है। (परन्तु अमन्त्रक आवाहन तो व्यर्थ ही है—ऐसा निबन्धों का मत है।)

स्मृत्यर्थसार में कहा है—(सांकल्पं तु यदा कुर्यान्न कुर्यात्पात्रपूरणम्। विकरं तु न दातव्यं पिण्डांश्चैव न दापयेत् ॥) विकर नहीं देना चाहिये। यह तीसरे पाद में पाठ है।

स्मृत्यन्तरे—त्यजेदावाहनं चार्घ्यमग्नौकरणमेव च।
पिण्डांश्च विकिरान्त्ये श्राद्धे साङ्कल्पसंज्ञके ॥

स्मृत्यन्तर में कहा है—आवाहन, अर्घ्य, अग्नौकरण, पिण्ड, विकर तथा अक्षय्योदक को सांकल्पिकश्राद्ध में त्याग दे।

हेमाद्रौ वृद्धशातातपस्तु—पिण्डनिर्वापरहितं यत्तु श्राद्धं विधीयते। स्वधावाचनलोपोऽत्र विकिरस्तु न लुप्यते॥ इत्याह।

हेमाद्रि में वृद्धशातातप ने कहा है—जो पिण्डदान से रहित श्राद्ध का विधान करते हैं। उसमें स्वधावाचन का लोप होता है और विकर का लोप नहीं होता है—एसा कहा है।

(साङ्कल्पिकश्राद्धे आवाहनाद्युच्चारणे विचारः)

पृथ्वीचन्द्रोदये वसिष्ठः—आवाहनं स्वधाशब्दं पिण्डाग्नौकरणं तथा। विकिरं चार्घ्यदानं च साङ्कल्पे षट् विवर्जयेत्॥ विकिरे विकल्पः।

पृथ्वीचन्द्रोदय में वसिष्ठ ने कहा है—आवाहन, स्वधाशब्द, पिण्ड, अग्नौकरण, विकिर और अर्घ्यदान (कोई 'पिण्डदानं च' एसा पाठ मानने पर पिण्डशब्द से उच्छिष्टपिण्ड ग्रहण करे। पिण्डदान का पृथक् उपादान है।) ये छः का सांकल्पिक में त्याग करे। विकर में विकल्प है।

स्मृत्यन्तरे—अङ्गानि पितृयज्ञस्य यदा कर्तुं न शक्नुयात्।
स तदा वाचयेद्विप्रान् सङ्कल्पात्सिद्धिरस्त्विति॥

स्मृत्यन्तर में कहा है—पितृयज्ञ के अंगों को करने में समर्थ न हो तो वह ब्राह्मणों से कहलवावे कि—संकल्प से सिद्धि हो।

छागलेयः—पिण्डो यत्र निवर्तेत मघादिषु कथञ्चन।
साङ्कल्पं तु तदा कार्यं नियमाद् ब्रह्मवादिभिः॥

छागलेय ने कहा है—जहाँ पर मघा आदियों में किसीतरह पिण्ड की निवृत्ति हो जाय तो ब्रह्मवादि (वेदवक्ता या वेदान्ती) नियम से संकल्पिकश्राद्ध करें।

कार्ष्णाजिनिः—मौञ्जीबन्धाद्वत्सरार्द्धं वत्सरं पाणिपीडनात्। पिण्डान् सपिण्डा नो दद्युः प्रेतपिण्डं विनात्र तु॥ अस्यापवादः पित्रोराब्दिकादौ पूर्वमुक्तः।

कार्ष्णाजिनि ने कहा है—मौञ्जीबन्धन (यज्ञोपवीत) से छमास और पाणिपीडन (विवाह) से एक साल तक प्रेतपिण्ड को छोडकर सपिण्ड पिण्डों को न दे। इसका अपवाद पिता और माता के वार्षिक आदि में पहले कहा है।

त्यक्ताग्नेरपि सङ्कल्पमुक्तं षट्त्रिंशन्मते—अनग्निको यदा विप्र उच्छन्नाग्निस्तथैव च।
तथा वृद्धिषु सर्वासु सङ्कल्पश्राद्धमाचरेत्॥

अग्नि के त्यागी को भी (यमः—त्यक्ताग्नेः पार्वणं नैव नैकोद्दिष्टं सपिण्डनम्। अत्यक्ताग्नेस्तु पिण्डोक्तिस्तस्मात् संकल्प्य भोजयेत्॥) सांकल्पिकश्राद्ध षट्त्रिंशन्मत से कहा है—ब्राह्मण जब अनग्निक हो वैसे हो त्यक्ताग्निक हो तो सब वृद्धियों में संकल्प श्राद्ध करे।

अशक्तौ तु पृथ्वीचन्द्रोदये बृहन्नारदीये च—द्रव्याभावे द्विजाभावे अन्नमात्रं तु पाचयेत्।
पैतृकेन तु सूक्तेन होमं कुर्याद्विचक्षणः॥

अशक्ति में पृथ्वीचन्द्रोदय में बृहन्नारद का वचन है—द्रव्य के अभाव में, (ब्राह्मणभोजन पर्याप्त पक्वान्नके या आमान्नके अभाव में) ब्राह्मण के अभाव में (श्राद्धयोग्य ब्राह्मण के अभावमें) अन्नमात्र को पत्नी (स्त्री) से पकवावे। (यहाँपर 'णिच्' स्त्री के अभिप्राय से है) पैतृकसूक्त (आठ[1] ऋचा) से बुद्धिमान् होम (होमं चतुःकृत्वः कुर्यात्।) करे।

१—उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः। असुंय ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु १ इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपरास ईयुः। ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु विक्षु २ आहं पितॄन् त्सुविदत्राँ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः। बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः ३

देवलः—पिण्डमात्रं प्रदातव्यमभावे द्रव्यविप्रयोः ।
श्राद्धीयाहनि संप्राप्ते भवेन्निरशनोऽपि वा ॥

देवल ने कहा है—द्रव्य और ब्राह्मण के अभाव में श्राद्धीयप्राप्त दिन में—पिण्डदान (देवीपुराणे—सक्तुभिः पिण्डदानं च संयावैः पायसेन वा । कर्तव्यमृषिभिः प्रोक्तं पिण्याकेनेक्षुदेन वा ॥ गुडेन वेति वा पाठः-ये अशक्त द्रव्यपरक हैं) मात्र करे या उपवास करे ।

वृद्धवसिष्ठः—किञ्चिद्दद्यादशक्तस्तु उदकुम्भादिकं द्विजे । तृणानि वा गवे दद्यात्पिण्डान् वाप्यथ निर्वपेत् ॥ तिलदर्भैः पितॄन्वापि तर्पयेत् स्नानपूर्वकम् ।

वृद्धवसिष्ठ ने कहा है—अशक्त व्यक्ति जो कुछ जल का घडा आदि (आदि शब्द से—हारीतः—अपि मूलैः फलैर्वापि तथाप्युदकतर्पणैः । अविद्यमाने कुर्वीत न तु प्राप्तं विलङ्घयेत् ॥ भविष्ये—निवासमेव वा दद्यात् पिण्डं वाप्यथ निर्वपेत् ।) ब्राह्मण को देना कहा है । या गौ के लिए (भोजनपर्याप्त) तृणों को दे या पिण्डों का निर्वाप करे या स्नानपूर्वक तिल (तिलसंख्या-तिलैः सप्ताष्टभिर्वापि समवेतं जलाञ्जलिम् । भक्तिनम्रः समुद्दिश्य सुव्यस्माकं प्रदास्यति ॥ असंभवे तु तिलान्वा तत्राप्यसामर्थ्ययुक्तः कराग्रावस्थितांस्तिलान् । प्रणिपत्य द्विजाग्र्याय कस्मै चिदुदास्यति ॥ और कुशाओं से पितरों का तर्पण करे ।

हेमाद्रौ भविष्ये—अग्निना वा दहेत्कक्षं श्राद्धकाले समागते । तस्मिन् वोपवसेदह्नि जपेद्वा श्राद्धसंहिताम् ॥ श्राद्धसंहिता समन्त्रश्राद्धसङ्कल्पः ।

हेमाद्रि में भविष्यपुराण का मत है—श्राद्धसमय के आने पर कक्ष-तृण (श्राद्धसारमत से गिरिदरी) को अग्नि में जला दे । उस दिन उपवास करे या श्राद्धसंहिता का जप करे । श्राद्धसंहिता माने समन्त्रक श्राद्ध का संकल्प करे ।

विष्णुवाराहपुराणयोः—असमर्थोऽन्नदानस्य धान्यमामं स्वशक्तितः ।
प्रदास्यति तिलान्वापि स्वल्पां वापि दक्षिणाम् ॥

विष्णुपुराण और वाराहपुराण में कहा है—अन्नदान के करने में समर्थ न हो तो अपनी शक्ति के अनुसार धान्य या तिलों को दे या अल्पा दक्षिणा दे । कोई लोग श्लोक ऐसा पढ़ते हैं—असमर्थोऽन्नदानस्य धान्यं मांसं स्वशक्तितः ।

(सर्वाभावे विचारः)

सर्वाभावे वनं गत्वा कक्षामूलप्रदर्शकः । सूर्यादिलोकपालानामिदमुच्चैः पठिष्यति ॥

सबके अभाव में वन में जाकर अपनी 'कक्षा' के मूल को अर्थात्—कोख के मूल को उपस्थान के द्वारा सूर्यादि लोकपालों को दिखाकर ऊँचे स्वर से पढेगा—कोई 'सूर्यादि' के जगह 'पूर्वादि' ऐसा पढते हैं । पर अर्थ में कोई फरक नहीं है ।

न मेऽस्ति वित्तं न धनं न चान्यं श्राद्धोपयोगि स्वपितॄन्नतोऽस्मि । तृप्यन्तु भक्त्या पितरौ मयैतौ भुजौ कृतौ वर्त्मनि मारुतस्य ॥

मेरे पास श्राद्धोपयोगि न वित्त (जायजाद, संपत्ति, द्रव्य) है न धन (सोना, चांदी आदि चल संपत्ति, रुपया) है, न अन्न है इसलिए मैं अपने पितरों को प्रणाम करता हूँ । ये पिता तथा माता भक्ति से तृप्त हों मैंने अपनी दोनों भुजाओं को वायु के मार्ग में फैला दी है ।

बर्हिषदः पितर उत्य १ र्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् । त आ गतावसा शन्तमेनाऽथा नः शं योररपो दधात ४ उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु । त आगमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ५ आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभिगृहीत विश्वे । मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद्व आगः पुरुषता कराम ६ आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय । पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्रयच्छत त इहोर्जं दधात ७ ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः । तेभिर्यमः संरराणो हवींष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु (ऋ० १०।१५।१-८) और यजुर्वेदसंहिता-अ० १९ म० २९ से) ।

इत्येतत्पितृभिर्गीतं भावाभावप्रयोजनम् ।
यः करोति कृतं तेन श्राद्धं भवति भारत ॥

यह पितरों का गीत भाव (होना-अस्तित्व) और अभाव (न होना-अनस्तित्व) कारण है। हे भारत, जो इसतरह करता है मानो उसने श्राद्ध को कर दिया है।

प्रभासखण्डे—गत्वारण्यममानुष्यमूर्ध्वबाहुर्विरौत्यदः ।
निरन्नो निर्धनो देवाः पितरोऽमानृणं कुथाः ॥

प्रभासखण्ड में कहा है—मनुष्यों से रहित जंगल में जाकर ऊपर को बाहु उठाकर रोकर कहता है—देवताओ, मेरे पास अन्न नहीं है और मैं निर्धन हूँ। हे पितरो, मुझे अनृणी करो।

न मेऽस्ति वित्तं न धनं न भार्या श्राद्धं कथं वः पितरः करोमि। वनं प्रविश्येह तु तन्मयोच्चैर्भुजौ कृतौ वर्त्मनि मारुतस्य ॥

मेरे पास—वित्त संपत्ति-अचल नहीं है, न धन है और न भार्या है। हे पितरो, आपलोगों का श्राद्ध कैसे करूँ। इसलिए इस वन में प्रवेश कर मैंने ऊँची दोनों भुजाओं को वायु के मार्ग में की है।

श्राद्धर्णमेतद्भवतां प्रदत्तं मह्यं दयध्वं पितृदेवताद्याः। आख्याय चोत्क्षिप्य भुजौ ततो वै दिवा च रात्रिं समुपोष्य तिष्ठेत् ॥ भवेत्स वै तेन कृतेन तेषामृणेन मुक्तः पितृदेवतानाम् ॥ इत्यनुकल्पः।

यह श्राद्धरूपी ऋण को आपलोगों को दिया। मेरे लिए पितर तथा देवता आदि दया करें। ऐसा कहकर दोनों भुजाओं को उठाकर निश्चय से दिन और रात में उपवास कर खडा रहे। ऐसा उसके करने पर ही उन पितर और देवताओं के ऋण से छूट जाता है। यह अनुकल्प (आवश्यकता होने पर उसी समय प्रयुक्त किया जाता है जबकि मुख्य निर्देश का प्रयोग संभव नहीं होता) है।

(श्राद्धभोजने प्रायश्चित्तकथनम्)

अथ श्राद्धभोजने प्रायश्चित्तम्। दर्शे षट् प्राणायामाः। वृद्धौ त्रयः। संस्कारेषु जातकर्मादिचूडान्तेषु सान्तपनम्। आद्ये चान्द्रं वा अन्यसंस्कारेषूपवासः। सीमन्ते चान्द्रमिति विज्ञानेश्वरः। आपदि नवश्राद्धैकादशाहेषु भोजने कायः। द्वादशाहे ऊनमासे च पादोनः। द्विमासे त्रिपक्षे ऊनषष्ठोनाब्दयोश्चार्द्धकृच्छ्रः। त्रिमासाद्याब्दिकान्तेषु सपिण्डेषु पादकृच्छ्रः उपवासो वा। गुरुद्रव्यार्थभोजनेऽर्धम्। जपशीले तदर्धम्। अनापदि तूनमासान्तेषु चान्द्रं कायं वा। द्विमासादौ पादोनम्। त्रिमासादावर्धकायः। आब्दिके पादोनकायः। पुनराब्दिके एकाहः। क्षत्रियादिश्राद्धेषु द्वित्रिचतुर्गुणानि ज्ञेयानि। चण्डालसर्पश्वादिहतपतितक्लीवादिनवश्राद्धे चान्द्रम्। आद्यमासिकान्ते चान्द्रं पराकश्च। द्वादशाहादौ पराकः। द्विमासादावतिकृच्छ्रः। त्रिमासादौ कायः। आब्दिके पादः। अभ्यासे सर्वं द्विगुणम्। आमहेमसङ्कल्पश्राद्धेषु तत्तदर्धानि। यतिर्ब्रह्मचारी चोक्तं प्रायश्चित्तं कृत्वा त्रीनुपवासान् प्राणायामान् घृताशनं चाधिकं कृत्वा व्रतशेषं समापयेत्। अनापदि द्विगुणम्। दर्शादौ दशगायत्रीमन्त्रिता आपः पिबेत् षट्प्राणायामा वा। संस्कारेषु चौले कृच्छ्रः। सीमन्ते चान्द्रम्। अन्येषूपवास इति दिक्।

अत्र माधवमिताक्षरादौ क्वचिद्विरोधो विषयभेदात्परिहार्यः। एकादशाहे चान्द्रं पुनः संस्कारश्चेति प्रायश्चित्तकाण्डे हेमाद्रिः।

अब श्राद्धभोजन में प्रायश्चित्त कहते हैं। दर्श (अमावास्या) श्राद्ध के भोजन में छः प्राणायाम (भरद्वाजः—द्विगुणं क्षत्रियस्यैतत् त्रिगुणं वैश्यभोजने। साक्षाच्चतुर्गुणं ह्येतत् स्मृतं शूद्रस्य भोजने ॥) करे। वृद्धि में तीन प्राणायाम करे। जातकर्मसंस्कार आदि चूडाकरणसंस्कारतक भोजन में 'सान्तपन' प्रायश्चित्त करे। आद्य—जातकर्म में चान्द्रायणव्रत करे। अन्यसंस्कारों में उपवास करे। सीमन्तसंस्कार में

'चान्द्रायण' करे—यह विज्ञानेश्वर ने कहा है। आपत्ति में—नवश्राद्ध,[1] एकादशाह आदि के भोजन में काय है। द्वादशाह और ऊनमास में पादोन है। दो मास में, तीन पक्ष में, ऊन छठे मास में और ऊनाब्द में 'अर्धकृच्छ' है। तीनमास से लेकर वार्षिकपर्यन्त में और सपिण्डन में 'पादकृच्छ' है या उपवास है। गुरु द्रव्य के लिए भोजन में 'अर्धकृच्छ' है। जपशील (जप करनेवाला) में उसका आधा है। कोई आपत्ति न हो तो ऊन महिनों में चान्द्रायण या काय[2] कहा है। द्विमासादि में पादोन कहा है। त्रिमासादि में अर्धकाय कहा है। आब्दिक (वार्षिक) में पादोनकाय कहा है। पुनराब्दिक में एकदिन का उपवास कहा है। क्षत्रियादि के श्राद्ध में भोजन करने पर द्विगुणित, त्रिगुणित तथा चतुर्गुणित जानना चाहिये। चाण्डाल, सर्प, श्व (कुत्ता) आदि के द्वारा मरने पर और पतित, नपुंसक आदि नवश्राद्ध में चान्द्रायण करे। प्रथम-मासिक के अन्त में चान्द्रायण और 'पराक' कहा है। द्वादशाह आदि में 'पराक' कहा है। द्विमासादि में 'अति-कृच्छ' कहा है। त्रिमासादि में काय कहा है। आब्दिक में पाद कहा है। अभ्यास (वारंवार भोजन करनेपर) द्विगुणित सब प्रायश्चित्त करे। आम, हेम और संकल्प श्राद्धों में उन-उनका आधा आधा करे। यति (संन्यासी)

१—नवश्राद्धं धर्मसिन्धौ—पृ० ६३० प्रथमेऽह्नि तृतीये च पञ्चमे सप्तमे तथा। नवमैकादशे चैव तन्नवश्राद्ध-मुच्यते ॥ नवश्राद्धानि पञ्चाहुराश्वलायनशाखिनः। आपस्तंबाः षडित्याहुर्विभाषात्वितरेषु हि।

२—पराशरः—कुक्कुटाण्डप्रमाणन्तु यावान् वा प्रविशेन्मुखम्। एतं ग्रासं विजानीयाच्छुद्ध्यर्थं कायशोधनम्॥

धर्मसिन्धौ—एकभक्तायाचितोपवासैः कथञ्चित् त्रिगुणैः पादोनकृच्छ्रः। एकभक्त, अयाचित तथा उपवास को तिगुना करने पर एकपादकृच्छ होता है।

आपस्तम्बः—सायं प्रातस्तथैकैकं दिनद्वयमयाचितम्। दिनद्वयं च नाश्नीयात् कृच्छ्रार्धं सोऽभिधीयते॥ धर्म-सिन्धौ—एकभक्तनक्तायाचितद्वयोपवासद्वयैरर्धकृच्छ्रः। यद्वा त्र्यहमयाचितं त्र्यहमुपवास इत्यर्धकृच्छ्रः।

एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च। उपवासेन चैवायं पादकृच्छ्रः प्रकीर्तितः॥ (या० स्मृ० प्राय श्लो० ३१८)

कुशोदकं च गोक्षीरं दधि मूत्रं शकृद् घृतम्। प्राश्यापरेद्युरुपवसेत्कृच्छ्रं सान्तपनं स्मृतम्॥ (याज्ञवल्क्यः)।

बौधायनः—ब्रह्मौदने च सोमे च सीमन्तोन्नयने तथा। जातश्राद्धे नवश्राद्धे भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्॥ शान्त-पनं त्वशक्तपरमिति भावः।

विष्णुः—प्राजापत्यनवश्राद्धे पादोनं चाद्यमासिके। त्रैपक्षिकं तदर्धं तु पञ्चगव्यं द्विमासिके॥ इत्यादि विशेष कृष्णंभट्टी की टीका देखिये।

पराशरः—(प्रायश्चित्तविवेके ५१६) गोमूत्रमासकास्त्वष्टौ गोमयस्य तु षोडश। क्षीरस्य द्वादश प्रोक्ता दध्नस्तु दश कीर्तिताः॥ गोमूत्रवद् घृतस्योक्तास्तदर्धेन कुशोदकम्। एतद् द्रव्यपरिमाणं शुध्यर्थं कायशोधनम्।

यतात्मनोऽप्रमत्तस्य द्वादशाहमभोजनम्। पराको नाम कृच्छ्रोऽयं सर्वपापप्रणाशनः॥ (मनु—अ० १११ श्लो० २१५)। बृहस्पतिः—जपहोमरतः कुर्याद् द्वादशाहमभोजनम्। पराक एष विख्यातः सर्वपापप्रणाशनः॥ 'द्वादशा-होपवासेन पराकः परिकीर्तितः। या० स्मृ०।

तिथिवृध्या चरेत्पिण्डान् शुक्ले शिख्यण्डसम्मितान्। एकैकं ह्रासयेत्कृष्णे पिण्डं चान्द्रायणं चरन्॥ (या० प्रा० श्लो० ३२३)। पिपीलिकं यवमध्यं च यतिचान्द्रायणं तथा। चान्द्रायणं तथा ज्ञेयं चतुर्थं सर्वतोमुखम्॥ पञ्चमं शिशु-संज्ञञ्च तुल्यपुण्यफलोदयम्॥

याज्ञवल्क्यः—अयमेवातिकृच्छ्रः स्यात्पाणिपूरान्नभोजनः।

विष्णुः—पादव्रते वस्त्रदानं कृच्छ्रार्धे तैलकाञ्चनम्। पादहीने तु गामेकां कृच्छ्रे गोमिथुनं स्मृतम्॥ (प्राय० वि० पृ० १२)।

'मनुः—एकैकं ह्रासयेत्पिण्डं कृष्णे शुक्ले च वर्धयेत्। उपस्पृशं स्त्रिसवनमेतच्चान्द्रायणं स्मृतम्॥ एतमेव विधिं कृत्स्नमाचरेत् यवमध्यमे। शुक्लपक्षादिनियतश्चरंश्चान्द्रायणं स्मृतम्॥ इत्यादि।

धर्मसिन्धौ—एकभक्तायाचितोपवासैः कथञ्चित् त्रिगुणैः पादोनकृच्छ्रः।

प्राजापत्यव्रत के असमर्थ में दसहजार गायत्री जप और एकहजार गायत्री से तिलहोम करे। कहीं पर व्याहृति से एकहजार तिल से हवन करे ऐसा कहा है। दो सौ प्राणायाम और बारह ब्राह्मणभोजन करावे। इनका विस्तृत विचार धर्मसिन्धु में स्पष्ट है।

तथा ब्रह्मचारी इन प्रायश्चित्तों कर तीन उपवास और प्राणायाम को कर घृतप्राशन अधिक कर व्रतशेष को समाप्त करे। अनापत्ति में द्विगुणित करे। दर्शादि में दशबार गायत्री पढकर जल का अभिमन्त्रण कर पान करे या छ प्राणायाम करे। संस्कारों में चूडाकरण में कृच्छ्र करे। सीमन्त में चान्द्रायण करे। अन्यों में उपवास करे।

यहाँ पर माधव, मिताक्षरा आदि में कुछ विरोध हो तो विषयभेद से परिहार (हटाना) करे। एकादशाह में चान्द्र तथा फिर से संस्कार करे—यह प्रायश्चित्तकाण्ड में हेमाद्रि ने कहा है।

यत्तूशनाः—दशकृत्वः पिबेदापो गायत्र्या श्राद्धभुग्द्विजः। इति तदनुक्तप्रायश्चित्तश्राद्धपरमिति विज्ञानेश्वरः।

जो उशना ने कहा है—श्राद्ध में भोजन करनेवाला द्विज दश बार गायत्री पढकर जल को अभिमन्त्रित कर पान करे। विज्ञानेश्वर ने कहा है—जिसका कोई प्रायश्चित्त नहीं कहा है, उस श्राद्धपरक है।

(क्षयाहे श्राद्धकथनम्)

अथ क्षयाहश्राद्धम्। तत्स्वरूपमाह हेमाद्रौ व्यासः—मासपक्षतिथिस्पृष्टे यो यस्मिन् म्रियतेऽहनि। प्रत्यब्दं तु यथाभूतं क्षयाहं तस्य तं विदुः॥

अब क्षयाहश्राद्ध कहते हैं। उस क्षयाह का स्वरूप हेमाद्रि में व्यास ने कहा है—जो जिस महिने में, पक्ष में, तिथि में या जिस दिन में मरता है उसका प्रतिवर्ष तथाभूत (वहीदिन) क्षयाह जानना चाहिये।

नारदीये—पारणे मरणे नॄणां तिथिस्तात्कालिकी स्मृता। अत्र चान्द्रमानं ज्ञेयम्॥

नारदपुराण में कहा है—पारण और मनुष्यमात्र के मरण में उस समय की तिथि कही है। यहाँ पर चान्द्रमास जानना चाहिये।

आब्दिके पितृकार्ये च चान्द्रो मासः प्रशस्यते॥ इति गार्ग्योक्तेः।

आब्दिक में और पितृकार्य में चान्द्रमास उत्तम कहा है। ऐसा गर्ग ने कहा है।

मलमासमृतस्य तु सौरम्। मलमासमृतानां तु सौरं मानं समाश्रयेत्। इति हेमाद्रावुक्तेः। एतन्मृतिमासस्यैवाधिक्ये ज्ञेयम्।

मलमास में मरे का तो सौरमास ले। मलमास में मरे का सौरमास मानना चाहिये—यह हेमाद्रि में कहा है। यह मरण महिने के आधिक्य में ही जानना चाहिये।

ब्राह्मे—प्रतिसंवत्सरं कार्यं मातापित्रोर्मृतेऽहनि। पितृव्यस्याप्यपुत्रस्य भ्रातुर्ज्येष्ठस्य चैव हि। अपुत्रस्येति भ्रात्राऽप्यन्वयः। ज्येष्ठस्येति कनिष्ठस्यानावश्यकत्वार्थम्।

ब्रह्मपुराण में कहा है—माता और पिता का, चाचा का, अपुत्र का और बड़े भाई का भी प्रतिसांवत्सरिक श्राद्ध मरणदिन में करे।

अपुत्र का भाई के साथ भी अन्वय है। ज्येष्ठ कहने से कनिष्ठ—छोटे भाई का श्राद्ध करना आवश्यक नहीं (न पुत्रस्य पिता कुर्वान्नानुजस्य तथाऽग्रजः। अपि स्नेहेन कुर्यातां सपिण्डीकरणं विना॥) है।

मदनरत्ने भविष्ये—सर्वेषामेव श्राद्धानां श्रेष्ठं सांवत्सरं मतम्।

मदनरत्न में भविष्यपुराण का वचन है—सब श्राद्धों का ही कल्याणकारक सांवत्सर श्राद्ध है। (क्योंकि—उसके न करने पर कल्याण की हानि का कथन तथा नरकप्राप्ति कही है—अतः नित्यत्व कहा है।)

(श्राद्धाकरणे विचारः)

तथा—भोजको यस्तु वै श्राद्धं न करोति खगाधिप। मातापितृभ्यां सततं वर्षे वर्षे मृतेऽहनि॥ स याति नरकं घोरं तामिस्रं नामनामतः। तच्च नानास्मृतिष्वेकोद्दिष्टं पार्वणं चोक्तम्।

और खगाधिप, जो भोजक माता तथा पिता का निरन्तर साल साल के मरण दिन में श्राद्ध नहीं करता है वह भयंकर तामिस्र नामवाले नरक में जाता है। और वह अनेकस्मृतियों में एकोद्दिष्ट तथा पार्वण कहा है।

आद्यमाह यमः—सपिण्डीकरणादूर्ध्वं प्रतिसंवत्सरं सुतैः।
मातापित्रोः पृथक्कार्यमेकोद्दिष्टं मृतेऽहनि॥

यम ने आद्य (एकोद्दिष्ट के विषय में) कहा है—सपिण्डीकरण के बाद पुत्रगण को प्रति संवत्सर में माता और पिता के मरण दिन में अलग अलग एकोद्दिष्टश्राद्ध को करना चाहिये।

व्यासः—एकोद्दिष्टं तु कर्तव्यं पित्रोश्चैव मृतेऽहनि। एकोद्दिष्टं परित्यज्य पार्वणं कुरुते नरः॥ अकृतं तद्विजानीयाद्भवेच्च पितृघातकः॥

व्यास ने कहा है—मरण दिन में माता और पिता का एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना चाहिये। एकोद्दिष्ट का परित्याग कर जो मनुष्य पार्वणश्राद्ध करता है। वह न करने के सदृश जानना चाहिये तथा पितृघातक (अर्थात्—पितरों के साथ घात) करनेवाला होता है।

अन्त्यमाह शातातपः—सपिण्डीकरणं कृत्वा कुर्यात्पार्वणवत्सदा। प्रतिसंवत्सरं श्राद्धं छागलेयोदितो विधिः॥ यः सपिण्डीकृतं प्रेतं पृथक्पिण्डे नियोजयेत्। विधिघ्नस्तेन भवति पितृहा चोपजायते॥

अत्रौरसक्षेत्रजयोः पार्वणं दत्तकादीनामेकोद्दिष्टमित्येकः पक्षः। साग्नेः पार्वणं निरग्नेरेकोद्दिष्टमित्यपरः। तद्दूषणं मिताक्षरादौ ज्ञेयम्॥

अन्त्य (पार्वण के विषय में) को शातातप ने कहा है—सपिण्डीकरण को कर सदा पार्वण के सदृश प्रति संवत्सर श्राद्ध करे यह छागलेय की कही विधि है। जो मनुष्य सपिण्डी किये हुए प्रेत को अलग पिण्ड में मिलाता है इससे बहुत प्रकार के विघ्न होते हैं वह पितृहा (पितरों को मारनेवाला) होता है।

यहाँ पर औरस और क्षेत्रज पुत्रों का पार्वण तथा दत्तक आदि पुत्रों का एकोद्दिष्ट है—यह एकपक्ष है। दूसरा पक्ष यह है कि—साग्निक (अग्निहोत्री) को पार्वण और निरग्निक को एकोद्दिष्ट है। वह दूषण (निन्दा) है मिताक्षरा आदि में जानना चाहिये।

कल्पतरुस्तु—'साग्न्योरौरसक्षेत्रजयोः पार्वणम्। निरग्निकयोस्त्वेकोद्दिष्टम्' इत्याह। अपरार्केऽप्येवम्। दत्तकादयो दशपुत्रास्तु साग्नयो निरग्नयश्चैकोद्दिष्टमेव कुर्युः, प्रत्यब्दं पार्वणेनैव विधिना क्षेत्रजौरसौ। कुर्यातामितरे कुर्युरेकोद्दिष्टं सुता दश॥ इति जातूकर्ण्योक्तेः। यदा तु दत्तकस्य पिता दर्शे महालये वा मृतस्तत्र पार्वणैकोद्दिष्टयोर्विकल्पः। वस्तुतस्तु सर्वेषां पार्वणैकोद्दिष्टयोर्व्रीहियववद्विकल्पः। स च देशाचाराद्व्यवस्थित इति सर्वनिबन्धसिद्धान्तः।

कल्पतरु ने कहा है—साग्निक औरस और क्षेत्रज पुत्रों को पार्वण कहा है। निरग्निकों को तो एकोद्दिष्ट कहा है। अपरार्क में भी यही है। दत्तक आदि दश पुत्र साग्निक हों या निरग्निक हों उनको एकोद्दिष्ट ही करे। जातूकर्ण्य ने कहा है—क्षेत्रज और औरस वार्षिकश्राद्ध पार्वणविधि ही से करें। इतर दश पुत्र एकोद्दिष्टविधि से करे। जब दत्तक का पिता दर्श में या महालय में मर गया हो तो उसमें पार्वण और एकोद्दिष्ट में विकल्प है। सिद्धान्त तो यह है कि—सबों का पार्वण और एकोद्दिष्ट में व्रीहि तथा यव के सदृश विकल्प है। वह देशाचार से (येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः। तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न दुष्यति॥) व्यवस्थित विकल्प है यह सब निबन्धों का सिद्धान्त है। यहाँ की विशेष व्यवस्था म० म० पं० विद्याधर जी की देखिये।

अत एव पृथ्वीचन्द्रोदये वृद्धपराशरः—मातापित्रोः पृथक्कार्यमेकोद्दिष्टं मृतेऽहनि। इत्युक्त्वाह देशधर्मं समाश्रित्य वंशधर्मं तथापरे। सूरयः श्राद्धमिच्छन्ति पार्वणं च क्षयाहन्यपि॥ इति तच्च केवलं पितॄणां न, सपत्नीकानामिति हेमाद्रिः। अत्र मातामहा न कार्याः,

इसलिए पृथ्वीचन्द्रोदय में वृहत्पराशर ने कहा है—मरणदिन में माता और पिता का अलग एकोद्दिष्ट करना चाहिये। ऐसा कह कर कहा है कि—देशधर्म दूसरा वंशधर्म का आश्रय कर विद्वद्गण श्राद्ध की इच्छा करते हैं और क्षयाहदिन में पार्वणश्राद्ध की करते हैं। वह भी केवल पितरों का, सपत्नीकों की नहीं करते हैं—यह हेमाद्रि का कहना है। यहाँ पर मातामहों को नहीं करना चाहिये।

कर्षूसमन्वितं मुक्त्वा तथाद्यं श्राद्धषोडशम्। प्रत्याब्दिकं च शेषेषु पिण्डाः स्युः षडिति स्थितिः॥ इति कात्यायनोक्तेः। कर्षूसमन्वितम्=सपिण्डनम्। यैरेकोद्दिष्टं क्रियते तेषामपि क्वचित्पार्वणमेव॥

कात्यायन ने कहा है—कर्षूसमन्वित (सपिण्डन) आद्य सोलहश्राद्ध और प्रत्याब्दिक (प्रतिवार्षिक) श्राद्ध को छोड़कर अवशिष्ट श्राद्धों में छ पिण्डों की स्थिति होती है। कर्षूसमन्वितमाने सपिण्ड। जिनका एकोद्दिष्ट किया जाता है उनका भी कहीं पार्वण ही होता है।

अमावास्यां क्षयो यस्य प्रेतपक्षेऽथवा पुनः। पार्वणं तस्य कर्तव्यं नैकोद्दिष्टं कदाचन॥ इति शङ्खोक्तेः।

शंख ने कहा है—जिसका क्षय अमावास्या में या प्रेतपक्ष में होता है उसका पार्वणश्राद्ध करना चाहिए एकोद्दिष्ट कभी न करे।

एवं संन्यासिनोऽपि। एकोद्दिष्टं यतेर्नास्ति त्रिदण्डग्रहणादिह। सपिण्डीकरणाभावात्पार्वणं तस्य सर्वदा॥ इति प्रचेतसोक्तेः।

इसीप्रकार संन्यासियों का भी पार्वणश्राद्ध करे। प्रचेता ने कहा है—त्रिदण्ड के ग्रहणमात्र से यति का यहाँ पर एकोद्दिष्टश्राद्ध नहीं होता है। सपिण्डीकरण के अभाव से त्रिदण्डी का सर्वदा पार्वण होता है।

वायवीये—संन्यासिनोऽप्याब्दिकादि पुत्रः कुर्याद्यथाविधि।
महालये तु यच्छ्राद्धं द्वादश्यां पार्वणं हि तत्॥

वायवीय का वचन है—संन्यासियों का भी पुत्र यथाविधि आब्दिक (वार्षिक) आदि श्राद्ध करे। महालय में जो श्राद्ध होता है उसे द्वादशीतिथि में पार्वण ही करे।

पृथ्वीचन्द्रोदये वृद्धपराशरः—सङ्ग्रामे संस्थितानां च प्रेतपक्षे शशिक्षये।
तेषां पार्वणमेवोक्तं क्षयाहेऽपि च सत्तमैः॥

पृथ्वीचन्द्रोदय में वृहत्पराशर का वचन है—संग्राम (युद्ध) में स्थितोंका, प्रेतपक्ष में, चन्द्रमा के क्षय (अमावास्या) में जिनका मरण हो गया हो उनका अच्छे लोगों ने क्षयायदिन में भी पार्वण ही कहा है।

चन्द्रक्षयानाशकसंयुगेषु यः प्रेतपक्षे मृतवान् सपिण्डः।
सपिण्डितानामपि चाब्दिकानि भवन्ति तेषामिह पार्वणानि॥

चन्द्रक्षय (अमावास्या) अनाशक (अनशन-व्रत) युद्धों में, जो प्रेतपक्ष में सपिण्ड मरे हों उन सपिण्डनवालों का भी यहाँ पर आब्दिक आदि में पार्वणश्राद्ध होता है।

तथा—भ्रातुर्ज्येष्ठस्य कुर्वीत ज्येष्ठो भ्रातानुजस्य च। दैवहीनं तु तत्कुर्यादिति धर्मविदब्रवीत्॥ दैवहीनमेकोद्दिष्टम्। ज्येष्ठो भ्राताऽनाद्यगर्भजः।

और बडे भाई का वार्षिक श्राद्ध छोटा भाई करे। वह दैवहीन (विश्वेदेव से रहित) करे ऐसा धर्म के जानकार ने कहा है। दैवहीन माने-एकोद्दिष्ट। ज्येष्ठभ्राता माने-प्रथम गर्भ से अनुत्पन्न।

तथा च तत्रैव शातातपः—अनाद्यगर्भज्येष्ठोऽपि भ्राता सद्भिर्निगद्यते। ऋते सपिण्डनात्तस्य नैव पार्वणमाचरेत्॥ आद्यगर्भे तु पार्वणमेकोद्दिष्टं वेत्यर्थः।

और वहीं पर शातातप ने कहा है—आदिगर्भ से भिन्न भाई को सज्जनों ने भाई कहा है। सपिण्डीकरण के बिना उसका पार्वणश्राद्ध न करे। आदि के गर्भ में तो पार्वण या एकोद्दिष्ट करे—यह अर्थ है।

मातुस्तु हेमाद्रौ कात्यायनः—प्रत्यब्दं यो यथा कुर्यात्पुत्रः पित्रे सदा द्विजः।
तथैव मातुः कर्तव्यं पार्वणं वान्यदेव वा॥

माता के श्राद्ध में तो हेमाद्रि में कात्यायन ने कहा है—जो द्विज जैसे पिता के लिए वार्षिकश्राद्ध सदा करता है। वैसे ही माता का भी पार्वण श्राद्ध करना चाहिये या एकोद्दिष्ट करे।

यत्तु तेनैवोक्तम्—सपिण्डीकरणादूर्ध्वं पित्रोरेव हि पार्वणम्। पितृव्यभ्रातृमातॄणामेकोद्दिष्टं सदैव तु॥ इति तत्सापत्न्यमातृपरम्।

जो उसने ही कहा है—सपिण्डीकरण के बाद माता और पिता का ही पार्वण करे। चाचा, भाई और माताओं का सदैव एकोद्दिष्ट करे। वह सपत्नमाता के विषय में है।

यत्तु वृद्धपराशरः—अपुत्रस्य पितृव्यस्य तत्पुत्रो भ्रातृजो भवेत्। स एवास्य कुर्वीत पिण्डदानादिकां क्रियाम्॥ पार्वणं तेन कार्यं स्यात् पुत्रवत् भ्रातृजेन तु। पितृस्थाने तु तं कृत्वा शेषं पूर्ववदुच्चरेत्॥ इति, तत्पितृवद्देशाचाराद्व्यवस्थितमिति पृथ्वीचन्द्रः।

जो वृद्धपराशर ने कहा है—अपुत्र वाले चाचा का उसके भाई से उत्पन्न पुत्र वही ही चाचा के पिण्डदानादि क्रिया को करे। उसका भ्रातृज पुत्रके सदृश पार्वणश्राद्ध करे। पिता के स्थानपर चाचा का नाम कह कर अवशिष्ट कर्म पूर्ववत् (पहले की तरह) करे। वह पिता के सदृश देशाचार से व्यवस्था जानना चाहिये—यह पृथ्वीचन्द्र ने कहा है।

श्राद्धदीपकलिकायां चतुर्विंशतिमते तु—पितृव्यभ्रातृमातॄणां ज्येष्ठानां पार्वणं भवेत्। एकोद्दिष्टं कनिष्ठानां दम्पत्योः पार्वणं मिथः॥ अपुत्रस्य पितृव्यस्य भ्रातुश्चैवाग्रजन्मनः। मातामहस्य तत्पत्न्याः श्राद्धं पार्वणवद्भवेत्॥ इत्युक्तं तत् पत्न्याः कर्तृत्वेऽपि पार्वणमेव।

श्राद्धदीपकलिका में चतुर्विंशतिमत से तो कहा है—पितृव्य (चाचा) बडा भाई और माता का पार्वण होता है। छोटों का एकोद्दिष्ट होता है। दम्पति (स्त्री और पति) का एक साथ पार्वण होता है। अपुत्र वाले चाचा का, अग्रज भाई का, मातामह और उसकी पत्नी का श्राद्ध पार्वण के सदृश होता है—ऐसा कहा है। उनकी पत्नी के करने पर भी पार्वण ही होता है।

सर्वाभावे स्वयं पत्न्यः स्वभर्तॄणाममन्त्रकम्। सपिण्डीकरणं कुर्युस्ततः पार्वणमेव च॥ इति लौगाक्षिस्मृतेः।

लौगाक्षिस्मृति में कहा है—सबों के अभाव में स्वयं पत्नियाँ अपने पतियों का अमन्त्रक सपिण्डीकरण करें। तदनन्तर पार्वण भी करें।

तत्र पत्न्यपि कुर्वीत सापिण्ड्यं पार्वणं तथा। इति सुमन्तूक्तेश्चेति निर्णयामृते उक्तम्। अन्ये त्वेतत्पाक्षिकपार्वणपरमाहुः। अत एव—भर्तुः श्राद्धं तु या नारी मोहात्पार्वणमाचरेत्। न तेन तृप्यते भर्ता कृत्वा तु नरकं व्रजेत्॥ इति वचनं क्षयाहे पाक्षिकैकोद्दिष्टप्रशंसार्थं न पार्वणनिषेधार्थमित्युक्तं त्रिस्थलीसेतौ भट्टचरणैः। स्वभर्तृप्रभृति त्रिभ्यः इत्यनेन विरोधाच्च।

सुमन्तु ने भी कहा है—वहाँ पर पत्नी भी सापिण्ड्य और पार्वणश्राद्ध करे। यह निर्णयामृत में कहा है। अन्य तो इस वचन को पाक्षिक पार्वणपरक कहते हैं। इसलिए जो स्त्री पति का श्राद्ध मोह से पार्वण करती है। उससे पति तृप्त नहीं होता है करने पर वह पत्नी नरक में जाती है। यह वचन क्षयाह में पाक्षिक एकोद्दिष्ट प्रशंसार्थ है न कि पार्वणश्राद्ध निषेधार्थ है—एसा त्रिस्थलीसेतु में भट्टचरणों ने कहा है। अपने पति आदि तीन को दे इस वचन से विरोध भी है।

(अपुत्राणां त्वाह)

अपुत्राणां त्वाह हेमाद्रावापस्तम्बः—अपुत्रा ये मृताः केचित् स्त्रियो वा पुरुषाश्च ये। तेषामपि च देयं स्यात् एकोद्दिष्टं न पार्वणम्॥ मित्रबन्धुसपिण्डेभ्यः स्त्रीकुमारिभ्य एव च। दद्याद्दै

मासिकं श्राद्धं सांवत्सरमतोऽन्यथा ॥ पारिजाते तु अन्यथा पार्वणमित्युक्त्वा सर्वत्र पार्वणमित्युक्तम् । एकोद्दिष्टवाक्यानि तु तीर्थमहालयपराणीत्युक्तम् ।

अपुत्रों का तो हेमाद्रि में आपस्तम्ब ने कहा है—स्त्री या पुरुष जो अपुत्र मर गये हैं, उनका भी श्राद्ध एकोद्दिष्टविधि से देना चाहिए पार्वणविधि से न करे। मित्र, बन्धु और सपिण्डों के लिए, स्त्री कुमारियों के लिए मासिक ही श्राद्ध दे। इसलिए पार्वण से अन्यथा एकोद्दिष्ट करे।

पारिजात में तो कहा है—अन्यथा माने पार्वण करे—ऐसा कह कर सर्वत्र पार्वण कहा है। एकोद्दिष्ट वाक्य तो तीर्थ, महालय परक हैं—एसा कहा है।

पृथ्वीचन्द्रोदये वृद्धगार्ग्यः—मातुः सहोदरा या च पितुः सहभवा च या ।
तयोश्च नैव कुर्वीत पार्वणं पिण्डनादृते ॥

पृथ्वीचन्द्रोदय में वृद्धगार्ग्य ने कहा है—माता की सहोदर बहिन का और पिता की सहोदर बहिन का सपिण्डीकरण के बिना इन दोनों का पार्वण नहीं करे।

प्रचेताः—सपिण्डीकरणादूर्ध्वमेकोद्दिष्टं विधीयते । अपुत्राणां च सर्वेषामपत्नीनां तथैव च । अपत्नीनाम्=ब्रह्मचार्यादीनाम् ।

प्रचेता ने कहा है—अपुत्रवालों का और ब्रह्मचारियों का सपिण्डीकरण के बाद एकोद्दिष्ट का विधान है। अपत्नीकमाने—ब्रह्मचारी आदियों का।

मार्कण्डेयपुराणे—प्रतिसम्वत्सरं कार्यमेकोद्दिष्टं नरैः स्त्रियाः । मृताहनि यथान्यायं नृणां यद्वदिहोदितम् ॥ नृणामिति दृष्टान्ताद्गोविप्रहतपाखण्ड्यादीनां सपिण्डनाभावेऽपि सांवत्सरमेकोद्दिष्टं कार्यमेवेति शूलपाणिः ।

मार्कण्डेयपुराण में कहा है—मनुष्यों को स्त्री का प्रतिवार्षिकश्राद्ध एकोद्दिष्ट ही करना चाहिये। मरणदिन में यथोचित पुरुषों की तरह यहाँ पर कहा है। नृणाम्—इस दृष्टान्त से गौ तथा ब्राह्मण से मारे हुए और पाखण्डि आदियों का सपिण्डन के अभाव में सांवत्सर एकोद्दिष्ट करना चाहिये। यह शूलपाणि में कहा है।

अत्रिवृद्धवसिष्ठौ—सपिण्डीकरणादूर्ध्वं यत्र यत्र प्रदीयते । भ्रात्रे भगिन्यै पुत्राय स्वामिने, मातुलाय च ॥ पितृव्यगुरवे श्राद्धमेकोद्दिष्टं न पार्वणम् ।

अत्रि और वृद्धवसिष्ठ ने कहा है—सपिण्डीकरण के बाद जहाँ जहाँ पर भाई, बहिन, पुत्र, स्वामी, मामा, चाचा और गुरु के लिए श्राद्ध दिया जाता है वह एकोद्दिष्ट होता है, पार्वण नहीं होता है।

यत्तु जातूकर्ण्यः—पितृव्यभ्रातृमातॄणामपुत्राणां तथैव च । मातामहस्यासुतस्य श्राद्धादि पितृवद्भवेत् ॥ इति, तदावश्यकत्वार्थं न तु पार्वणार्थमिति हेमाद्रिः ।

जो जातूकर्ण्य ने कहा है—चाचा, भाई, माता और वैसे ही अपुत्रों का और वैसे ही अपुत्र मातामह का श्राद्ध पिता के सदृश होता है। वह आवश्यकता के लिए है पार्वण के लिए नहीं है—यह हेमाद्रि का कहना है।

युक्तं त्वेवम् । मातुः पितरमारभ्य त्रयो मातामहाः स्मृताः । तेषां च पितृवच्छ्राद्धं कुर्युर्दुहितृसूनवः ॥ इति पुलस्त्योक्तेर्मातामहस्य पार्वणमेव तत्साहचर्यात्पितृव्यादौ तथा । पितृव्यभ्रातृमातॄणामेकोद्दिष्टं न पार्वणम् । इति च्यवनोपक्रमे पुलस्त्योक्तेश्च विकल्पः ।

युक्त तो यही है कि—माता के पिता से लेकर तीन मातामह कहे गये हैं। कन्या का पुत्र उनका पिता के तुल्य श्राद्ध को करें। ऐसा पुलस्त्य ने कहा है पर मातामह का पार्वण ही है। उसके साहचर्य से पितृव्यादि का भी वही पार्वणश्राद्ध ही होता है। पितृव्य, भाई और माताओं का एकोद्दिष्ट करे, पार्वण न करे—एसा च्यवन के उपक्रम में और पुलस्त्य के कहने पर विकल्प है।

केचित्त्वापस्तम्बादिवाक्यानि—व्युत्क्रमाच्च प्रमीतानां नैव कार्या सपिण्डता। इत्यस्य पितृव्यादिपरत्वादकृतसपिण्डनपितृव्यादिपराणीत्याहुः। माता=सपत्नमाता। एकोद्दिष्टं तु कनिष्ठपरमिति। पृथ्वीचन्द्रोदयेऽप्येवम्। विशेषस्त्वधिकारिनिर्णये प्रागुक्तः। केचित्पुत्रान्तराभावे पितामहवार्षिकमप्यावश्यकम्।

कोई आपस्तम्ब आदि के वचन कहते हैं—विपरीतक्रम से मरों का सपिण्डीकरण न करे। यह वचन पितृव्यादिपरक है। जिसका सपिण्डन नहीं हुआ है पितृव्यादिपरक है। मातामाने—सपत्नमाता। एकोद्दिष्ट माने—कनिष्ठपरक है। पृथ्वीचन्द्रोदय में भी यही है। विशेष तो अधिकारिनिर्णय में पहले कह चुके हैं। कोई तो कहते हैं कि—पुत्रान्तर के अभाव में भी पितामह का वार्षिकश्राद्ध भी आवश्यक है।

पुत्राभावे च तत्पुत्रः पत्नी माता तथा पिता। वित्ताभावेऽपि सच्छिष्यः कुर्यात्तस्यौर्ध्वदेहिकम्॥ इति मार्कण्डेयपुराणादित्याहुः। तन्न, पौत्रेणैकादशाहादि कर्तव्यं श्राद्धषोडशम्। इति कातीये विशेषोक्तेः।

मार्कण्डेयपुराण में कहा है—पुत्र के अभाव में उसका पुत्र-पौत्र, पत्नी, माता, पिता और वित्त के अभाव में अच्छा शिष्य उसका और्ध्वदेहिक करे। यह उचित नहीं है—क्योंकि कातीय में विशेष कहा है—पौत्र को एकादशाह आदि सोलह श्राद्धों को करना चाहिये।

(क्षयाहद्वैधे निर्णयः)

अथ क्षयाहद्वैधे निर्णयः। तत्रैकोद्दिष्टं मध्याह्ने कार्यम्। मध्याह्नश्च पञ्चधा विभक्ते दिने तृतीयभाग इति माधवः। आमश्राद्धं तु पूर्वाह्णे एकोद्दिष्टं तु मध्यमे। पार्वणं चापराह्णे तु प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम्॥ इति हारीतोक्तौ प्रातःशब्दसाहचर्यात्। तत्रापि कुतपादिमुहूर्तद्वित=ये ज्ञेयम्।

इसके बाद क्षयाहद्वो होने में निर्णय कहते हैं। वहाँपर एकोद्दिष्ट को मध्याह्नकाल में करे। दिनका पाँच भाग करने पर उसका तीसरा भाग मध्याह्नकाल होता है यह माधव ने कहा है। आमश्राद्ध तो पूर्वाह्ण में होता है। एकोद्दिष्ट मध्याह्न में होता है। पार्वणश्राद्ध अपराह्ण में होता है। प्रातःकाल में वृद्धिनिमित्तक श्राद्ध होता है। इस हारीत के वचन से प्रातः शब्द के साचचर्य से। उसमें भी कुतुपादियों में दो मुहूर्त जानना चाहिये।

प्रारभ्य कुतपे श्राद्धं कुर्यादारौहिणं बुधः। विधिज्ञो विधिमास्थाय रौहिणं तु न लङ्घयेत्॥ इति गौतमोक्तेरेतत्परत्वात्। रोहिणो=नवमो मुहूर्तः। मैथिलाः श्राद्धकौमुदी चैवम्।

कुतुप में श्राद्ध का प्रारम्भ कर 'रौहिण'[1] पर्यन्त करे। विधि का जानकार विद्वान् विधि पर आस्था कर रोहिण का लंघन न करे। यह गौतम ने इसपरक ही कहा है। रोहिण माने नवम मुहूर्त। मैथिल और श्राद्धकौमुदी में भी यही है।

अन्यथा—ऊर्ध्वं मुहूर्तात्कुतपाद्यन्मुहूर्तचतुष्टयम्। मुहूर्तपञ्चकं ह्येतत् स्वधाभवनमिष्यते॥ इत्यादिविरोधात्।

अन्यथा—कुतुप मुहूर्त और उसके बाद चार मुहूर्तवक स्वधाभवन में कहे गये हैं। इत्यादि से विरोध है।

दीपिकापि—'एकोद्दिष्टमुपक्रमेत् कुतपे' इति।

दीपिका में भी कहा है—एकोद्दिष्टप्रकरण में कहा है—कुतुप में 'एकोद्दिष्टश्राद्ध' होता है।

१—दिन का पांच भाग तीन-तीन मुहूर्त होते हैं। उनमें प्रथम भाग (अंश) की संज्ञा प्रातः है। दूसरे भाग की संगव, तीसरे भाग की मध्याह्न, चतुर्थ भाग की अपराह्न तथा पांचवें भाग की सायाह्न संज्ञा है। दिन के पन्द्रहवें भाग को मुहूर्त कहते हैं। उसमें सातवें का नाम गन्धर्व, आठवें का नाम कुतुप और नवमें का नाम रोहिण है। इसे धर्मसिन्धु में—'अपराह्णादिकालविशेषनिर्णय' में देखिये।

माधवीये व्यासोऽपि—कुतपप्रथमे भागे एकोद्दिष्टमुपक्रमेत् । आवर्तनसमीपे वा तत्रैव नियतात्मवान् ॥ तेन कुतपादिरौहिणान्तो मुख्यः कालः । पृथ्वीचन्द्रोदयेऽप्येवम् । दिनद्वये तद्व्याप्तौ अंशेन समव्याप्तौ च पूर्वा । विषमव्याप्तावाधिक्येन निर्णयः । अव्याप्तौ पूर्वैव, परविद्धाया निषेधात् । स च वक्ष्यते । पूर्वदिनग्रहणे रौहिणलङ्घनापत्तेः परैवेति गौडाः । शुक्लकृष्णवशात् खर्वदर्पाद्यैर्वा व्यवस्थेत्यन्ये । तन्न, परविद्धानिषेधप्राबल्यात् । अत्र मूलं कालमाधवीये ज्ञेयम् ।

माधवीय में व्यास ने भी कहा है—नियतात्मवान् होकर आवर्तन के समीप कुतुप के प्रथमभाग में एकोद्दिष्ट का प्रारम्भ करे ।

इससे कुतुपादि से रौहिणपर्यन्त मुख्यकाल होता है । पृथ्वीचन्द्रोदय में भी यही है । दोनोंदिन में तिथि की प्राप्ति में और अंश से बराबर की प्राप्ति में पूर्वा ग्रहण करे । विषमव्याप्ति में तो आधिक्य से निर्णय करे । अव्याप्ति में पूर्वा ही ग्रहण करे । क्योंकि परविद्धा का निषेध है । उसको कहते हैं । पहले दिन ग्रहण में रौहिण लंघन की आपत्ति हो जायगी अतः परा ही ग्रहण करे—यह गौड कहते हैं । शुक्ल-कृष्ण के वश से खर्व-दर्प आदि द्वारा व्यवस्था करे यह अन्य कहते हैं । यह उचित नहीं है । परविद्धा का निषेध प्राबल्य है । यहाँ पर मूल कालमाधवीय में जानना चाहिये ।

पार्वणं त्वपराह्णे कार्यं पूर्वोक्तवचनात् । मध्याह्नव्यापिनी या स्यात्सैकोद्दिष्टे तिथिर्भवेत् । अपराह्णव्यापिनी या तु पार्वणे सा तिथिर्भवेत् ॥ इति पृथ्वीचन्द्रोदये गौतमोक्तेश्च । पूर्वेद्युरेव परेद्युरेव वाऽपराह्णव्याप्तौ सैव ग्राह्या । दिनद्वये तद्व्याप्तौ तदस्पर्शेऽशतः समव्याप्तौ वा पूर्वैव । विषमव्याप्तौ त्वधिका ग्राह्या, द्व्यपराह्णव्यापिनी स्यादाब्दिकस्य यदा तिथिः । महती यत्र तद्विद्धां प्रशंसन्ति महर्षयः ॥ इति मरीचिस्मृतेः ।

पार्वणश्राद्ध को तो 'अपराह्ण' काल में (चतुर्थप्रहरे प्राप्ते यः श्राद्धं कुरुते नरः । आसुरं तद्भवेच्छ्राद्धं दाता तु नरकं व्रजेत् ॥) करे । मध्याह्नव्यापिनी जो तिथि है वही एकोद्दिष्ट में तिथि होती है । अपराह्णव्यापिनी जो तिथि है वह पार्वणश्राद्ध के लिए होती है—यह पृथ्वीचन्द्रोदय में और वृद्धगौतम ने कहा है । पहले दिन ही या दूसरे दिन ही अपराह्णव्याप्ति में वही ग्रहण करे । दोनों दिन में उसकी प्राप्ति में या उसके अस्पर्श में अंश से या समव्याप्ति में पूर्वा ही तिथि ग्रहण करे । विषम व्याप्ति में तो अधिकवाली ग्रहण करे । जब दोनों दिन अपराह्णव्यापिनी आब्दिक की जो तिथि हो तो महर्षिगण अधिक जिसदिन विद्धा हो उसकी प्रशंसा करते हैं—एसा मरीचिस्मृति में कहा है ।

दर्शं च पौर्णमासं च पितुः सांवत्सरं दिनम् । पूर्वविद्धमकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते ॥ इत्यपरार्के नारदोक्तेः ।

अपरार्क में नारद ने कहा है—अमावास्या और पूर्णमासी में पिता का सांवत्सरदिन हो तो जो पूर्वविद्धा में नहीं करता है वह नरक में जाता है ।

द्व्यहेऽ तु व्यापिनी चेत्स्यात् मृताहस्य यदा तिथिः । पूर्वविद्धा प्रकर्तव्या त्रिमुहूर्ता भवेद्यदि ॥ इति सुमन्तूक्तेः ।

सुमन्तु ने कहा है—जब मरणदिन की तिथि दोनों दिन प्राप्त हो तो पूर्वविद्धा करे । यदि वह तीन मुहूर्त हो तो ।

पूर्वस्यां निर्वपेत्पिण्डानित्याङ्गिरसभाषितम् । इति हेमाद्रौ पाठः ।

हेमाद्रि में पाठ है—पहली तिथि में नित्य पिण्डों को दे—ऐसा आङ्गिरस ने कहा है ।

तत्रैव वृद्धमनुः—न द्व्यहव्यापिनी चेत्स्यान्मृताहस्य यदा तिथिः । पूर्वविद्धैव कर्तव्या त्रिमुहूर्ता च या भवेत् ॥ मदनरत्नेऽप्येवम् ।

वहीं पर वृद्धमनु ने कहा है—मृत व्यक्ति की दोनों दिन व्यापिनीतिथि न हो तो पूर्वविद्धा ही में करे—जो तीन मुहूर्त तिथि हो । मदनरत्न में भी यही है ।

यत्तु कार्ष्णाजिनिव्यासौ—अह्नोऽस्तमयवेलायां कलामात्रा यदा तिथिः। सैव प्रत्याब्दिके ज्ञेया नापरा पुत्रहानिदा॥ इति तत्त्रिमुहूर्तस्तुतिः। पूर्वेद्युः सायं त्रिमुहूर्ताभावे तु परैव, त्रिमुहूर्ता न चेद् ग्राह्या परैव कुतपे हि सा। इति कालादर्शे गोभिलोक्तेः।

जो कार्ष्णाजिनि और व्यास ने कहा है--दिन के अस्तमय समय में जब कलामात्रा तिथि हो वही प्रत्याब्दिक में जानना चाहिये। दूसरी न ग्रहण करे। क्योंकि—पुत्र की हानि को देने वाली होती है। यह तीन मुहूर्त की स्तुति है। पहले दिन सायंकाल तीन मुहूर्त के अभाव में तो परा ही ग्रहण करे। कालादर्श में गोभिल ने कहा है--तीन मुहूर्त न हो तो वह दूसरे दिन ही कुतुप में तिथि ग्रहण करे।

कालादर्शेऽपि—प्रत्याब्दिकेऽप्येवमेव तिथिर्ग्राह्याऽपराह्णिकी।
उभयत्र तथात्वे तु महत्त्वेन विनिर्णयः॥

कालादर्श में भी कहा है--इसीप्रकार प्रत्याब्दिक में भी अपराह्णव्यापिनीतिथि ग्रहण करे। दोनों दिन हो तो महत्व से निर्णय करे।

समत्वे पूर्वविद्धैव ह्यतथात्वेऽपि सा यदि। त्रिमुहूर्ता भवेत्सायं सर्वेष्टोऽयं विनिर्णयः॥

समत्व में पूर्वविद्धा ही करे। वह यदि असमान हो तो उसी दिन करे। जिस दिन वह सायङ्काल तीन मुहूर्त हो तो सबों का यह तथ्य निर्णय है।

अन्यत्रापि--सायन्तन्यपरत्र चेन्मृततिथिः सैवाब्दिके मासिके ग्राह्या सा द्व्यपराह्णयोर्यदि तदा यत्राधिका सा मता। तुल्या चेदुभयापराह्णसमये पूर्वा न चेत्तु द्वये पूर्वैव त्रिमुहूर्तगास्तसमये नो चेत्परैवोचिता॥

अन्यत्र भी कहा है--जो दूसरे दिन में सायंकाल मृतक की तिथि हो वही आब्दिक और मासिक में ग्रहण करे। यदि वह तिथि दोनों दिन अपराह्ण समय में हो तो तब जिसदिन अधिक हो वही ग्रहण करे। यदि अपराह्ण के समय दोनों दिन बराबर हो तो पहली ग्रहण करे। यदि दोनों दिन अपराह्ण में न हो तो सूर्यास्त के समय तीन मुहूर्त हो तो ग्रहण करे। यदि वह भी न हो तो परा ही ग्रहण करे।

माधवपृथ्वीचन्द्रौ तु—दिनद्वयेऽपराह्णव्याप्तौ अंशतः समव्याप्तौ च क्षये पूर्वा वृद्धौ परा॥ खर्वो दर्पो परौ पूज्याविरयुक्तेः।

माधव और पृथ्वीचन्द्र में तो कहा है—दोनों दिन अपराह्णव्याप्ति में अंश से (इयं त्रेधा--पूर्वेद्युरपराह्णस्य द्वितीयघटिकामारभ्य प्रवृत्ता परेद्युः तिथिवृद्धा पञ्चघटिका एका। पूर्वेद्युः चरमघटिकामारभ्य प्रवृत्ता परेद्युतिथिक्षयेणैवाघटिका द्वितीया। पूर्वापराह्णस्य चरमघटीत्रये सति परापराह्णस्याद्यघटीत्रये सति तृतीया।) समव्याप्ति में क्षयाह में पूर्वा (पहली) और वृद्धि में परा ग्रहण करे। खर्व तथा दर्प परा पूज्य होती है—एसा कहा है।

अपराह्णद्वयव्यापिन्यतो तस्य च या तिथिः। क्षये पूर्वा च कर्तव्या वृद्धौ कार्या तथोत्तरा॥ इति बौधायनोक्तेः।

बौधायन ने कहा है—यदि मृतक की तिथि दोनों दिन अपराह्णव्यापिनी हो तो क्षय में पूर्वा तथा वृद्धि उत्तरा ग्रहण करे।

क्षयाहस्य तिथिर्या तु अपराह्णद्वये यदि। पूर्वा क्षये तु कर्तव्या वृद्धौ कार्या तथोत्तरा॥ इति बृहन्नारदीयाचेत्याहुः। वृद्धिक्षयौ चात्र परतिथेर्नतु ग्राह्यतिथेः, तस्या क्षयेऽपराह्णद्वये व्याप्तेरसम्भवात्।

तदाह माधवः—न ग्राह्यतिथिगौ वृद्धिक्षयावूर्ध्वतिथेस्तु तौ। इति।

बृहन्नारदीयपुराण का वचन है--यदि क्षयाहतिथि अपराह्ण में दोनों दिन हो तो क्षय में पूर्वा तथा वृद्धि उत्तरा करे।

यहाँ पर (दोनों दिन अपराह्ण में व्याप्त हो) वृद्धि और क्षय में परतिथि का ग्रहण है न कि प्राह्यतिथि का। क्योंकि—उसके क्षय में अपराह्णद्वय व्याप्ति में असम्भव है। उसी बात को माधव ने कहा है—प्राह्यतिथि की वृद्धि तथा क्षय न ग्रहण करे। ऊर्ध्वतिथि का ग्रहण करे।

यत्तु पृथ्वीचन्द्रः—पूर्वोक्तवचनेषु यत्र सायाह्णास्तसमययोगिनीतिथिरुक्ता, तत्रापराह्णव्यापिनी ज्ञेया, सायाह्णस्त्रिमुहूर्तः स्यात्तत्र श्राद्धं न कारयेत्। इति मात्स्यादौ सायाह्णेनिषेधात्। यच्च—'त्रिमुहूर्तादिग्रहणं तच्छ्राद्धार्हापराह्णरूपत्रिमुहूर्तपरम्, इत्याह। तद्धेमाद्रिमदनरत्नकालादर्शादिग्रन्थविरोधाल्लक्षणापत्तेश्च चिन्त्यम्। तस्मात्पूर्वोक्तमेव साधु। यदा विघ्नवशाद्दिने सांवत्सरं श्राद्धं न कृतं तदा रात्रावपि कार्यम्। मृताहं समतिक्रम्य चण्डालेष्वभिजायते। इति मरीचिना मृताहातिक्रमे दोषोक्तेः, 'न च नक्तं श्राद्धं कुर्वीत आरब्धेऽऽभोजनसमापनात् इत्यापस्तम्बधर्मसूत्रेण (पृ० २५८) गौणकालोक्तेश्चेति माधवः। आरब्धे श्राद्धे विघ्नवशाद्रात्रिपाते भोजनसमाप्त्यन्तं रात्रौ कार्यम्। शेषसमाप्तिः परदिने एवेति हरदत्तः। ग्रहणदिने वार्षिकप्राप्तौ तद्दिन एवान्नेनामेन हेम्ना वा कुर्यात् नोत्तरदिने इत्युक्तं प्राग् ग्रहणनिर्णये। तच्च प्रथमाब्दिकं त्रयोदशे मलमासे कार्यमन्यथा न। प्रत्यब्दं द्वादशे मासि कार्या पिण्डक्रिया सुतैः। क्वचित्त्रयोदशेऽपि स्यादाद्यं मुक्त्वा तु वत्सरम्॥ इति लघुहारीतोक्तेः। इदमन्त्याधिमासपरम्। द्वादशे त्रयोदशे वातीत इत्यर्थः। तेन यत्र द्वादशमासिकं शुद्धमासे भवति तत्र त्रयोदशेऽधिके एवाद्याब्दिकं कार्यम्। यत्राधिकमध्ये द्वादशं मासिकं तत्र तस्य द्विरावृत्तिं कृत्वा चतुर्दशे शुद्धे एव प्रथमाब्दिकमिति निष्कर्षः। माधवीये हेमाद्रौ चैवम्। द्वितीयादिकं तु शुद्धमास एव नाधिके, नाप्युभयोः। मलमासमृतानां तु यदा स एवाधिकः स्यात्तदा तत्रैव कार्यमन्यथा शुद्ध एवेति प्रागुक्तम्। दर्शे वार्षिकं चेत्तदा पूर्वं वार्षिकं कृत्वा ततः पिण्डपितृयज्ञो दर्शश्राद्धं चेति निर्णयदीपे क्रम उक्तः।

जो पृथ्वीचन्द्र ने कहा है—पूर्वोक्त वचनों में जहाँपर सायाह्ण अस्तसमययोगिनीतिथि कही है। वहाँ पर अपराह्णव्यापिनी जानना चाहिये। क्योंकि सायाह्ण तीन मुहूर्त होने से उसमें श्राद्ध न करे। यह मात्स्य आदि में सायाह्ण निषेध है। और जो तीन मुहूर्त आदि का ग्रहण है वह श्राद्धार्ह अपराह्णरूप तीन मुहूर्तपरक है—एसा कहा है। वह हेमाद्रि, मदनरत्न, कालादर्श आदि ग्रन्थों के विरोध से और लक्षणापत्ति से चिन्तनीय है। इसकारण से पूर्वोक्त ही साधु है। यदा विघ्नवश से उसी दिन सांवत्सरश्राद्ध न किया हो तो तब रात्रि में भी करना चाहिये। मृताह दिन का अतिक्रमण करने से चाण्डालों में उत्पन्न होता है। इस मरीचिवचन से मृतदिन के अतिक्रमण में दोष कहा है। रात्रि में श्राद्ध न करे। यदि आरम्भ किया हो तो भोजन की समाप्ति तक करे--इस आपस्तम्ब ने गौणकाल (स्वकालादुत्तरो हि कालः गौणकालः) माधव ने कहा है। श्राद्ध के आरम्भ[1] में विघ्नवश से रात्रि आजाय तो भोजनसमाप्ति तक कार्य रात्रि में करे। अवशिष्ट कार्य दूसरे दिन ही करे—एसा हरदत्त ने कहा है। ग्रहणदिन में वार्षिक की प्राप्ति में उसी दिन ही अन्न से या सुवर्ण से करे दूसरे दिन न करे—एसा पहले ग्रहणनिर्णय में कहा है। और वह प्रथमाब्दिक तेरहवें मलमास में करे अन्यथा न करे।

१—श्राद्ध करने वाला उपवास करे। तदनन्तर दूसरे दिन एकोद्दिष्ट में मध्याह्नकाल और पावण में अपराह्णकाल ग्रहणकर पिण्डदान आदि अवशिष्ट कर्म को समाप्त करे। दूसरे दिन प्रातः मध्याह्न के आह्निक को यथासम्भव कर्ता को करना ही चाहिये। उसके त्याग में प्रमाणाभाव है। 'न हि कर्मणि कर्मान्तरारम्भः। इसकी प्रवृत्ति नहीं है। कोई कहते हैं कि—सायाह्न के सदृश प्रातःकाल संगव में भी क्यों नहीं गौणकाल है। यह उचित नहीं है। कुतुप मुहूर्त में ही करे। उसपूर्व में तो गान्धर्व और रौहिणकाल है। कुतुप तो—छत्रिन्याय से मध्याह्नत्रिमुहूर्तस्तु यदा चलति भास्करः। स कालः कुतुपो नाम पितृणां दत्तमक्षयम्॥

प्रतिवार्षिकश्राद्ध बारहवें मास में पुत्र पिण्डदान की क्रिया को करें। आद्य संवत्सर को छोडकर कहीं तेरहवें मास में करे—यह लघुहारीत ने कहा है। यह अन्त्य अधिकमासपरक है। बारहवाँ या तेरहवाँ महिना बीत जाने पर यह अर्थ है। इससे जहाँ पर बारहवाँ महिना शुद्ध महिने में होता है वहाँ पर तेरहवें अधिक महिने में ही आह्निक करे। जहाँ पर अधिक मध्य में हो वहाँ द्वादशमासिक को वहाँ पर द्विरावृत्ति कर चौदहवें शुद्धमास में ही प्रथमाब्दिक करे यह निष्कर्ष (निचोड) है। माधवीय और हेमाद्रि में भी यही है। द्वितीयादिक तो शुद्धमास में ही करे अधिक में न करे न दोनों में करे। मलमास में मरों का तो जब वही मलमास आवे तब ही उसी में करे। अन्यथा तो शुद्ध में करे—यह पहले कह चुके हैं। दर्श में वार्षिक हो तो पहले वार्षिक को करके तदनन्तर 'पिण्डपितृयज्ञ' और 'दर्शश्राद्ध' को करे—यह क्रम निर्णयदीप में कहा है।

स्मृतिसारेऽपि—दर्शे क्षयाहे संप्राप्ते कथं कुर्वन्ति याज्ञिकाः। आदौ क्षयाहं निर्वर्त्य पश्चाद्दर्शो विधीयते ॥ इति। युक्तं त्वेवम्, तद्वचने मूलाभावात्।

पिण्डयज्ञं ततः कुर्यात्ततोऽन्वाहार्यकं बुधः। इति दर्शश्राद्धे पिण्डपितृयज्ञानन्तर्यात्तस्याब्दिकेऽप्यतिदेशात् प्राप्तेः। 'पितृयज्ञानन्तरं वार्षिकं ततो दर्शश्राद्धम्' इति व्यतिषङ्गस्तु न भवति तस्यार्थिकत्वात्।

स्मृतिसार में भी कहा है—दर्श (अमावास्या) में क्षयाहश्राद्ध प्राप्त हो जाय तो याज्ञिक किसतरह से करते हैं। आदि में क्षयाहश्राद्ध को समाप्त कर बाद में दर्शश्राद्ध करे। युक्त तो यही है, उस वचन में मूल का अभाव है।

तदनन्तर पिण्डयज्ञ (पिण्डपितृयज्ञ) करे फिर बुद्धिमान् 'अन्वाहार्य' करे। इस दर्शश्राद्ध में 'पिण्डपितृयज्ञ' के आन्तर्य (बाद) उसकी आब्दिक में भी अतिदेश[1] से प्राप्ति होगी। पिण्डयज्ञ के बाद वार्षिक फिर दर्शश्राद्ध यह व्यतिषङ्ग[2] तो नहीं होता है। उसका अर्थ से सिद्ध है।

कालादर्शेऽपि—निमित्ताऽनि यतिश्चात्र पूर्वानुष्ठानकारम्। इति सर्वान्प्रत्यैकरूप्याभावात् क्षयाहनिमित्तस्यानियतत्वम्। देवजानीयेऽप्येवम्। एवं मासिकादिष्वपि ज्ञेयम्। प्रत्यब्दं यो यथा कुर्यात्तथा कुर्यात्स तान्यपि। इति सर्वातिदेशात्।

कालादर्श में भी कहा है—इसमें निमित्त का नियम नहीं है। पूर्व अनुष्ठान का करना ही कारण है। सबों के प्रति एकरूप्यता (समानता) का अभाव होने से क्षयाह निमित्तक का अनियतत्व (अनिश्चितता) है। देवजानी में भी यही है। इसप्रकार मासिक आदियों में भी जानना चाहिये।

जो व्यक्ति जैसे प्रतिवार्षिक को करता है वैसे ही उनको (मासिक आदि) भी करे। यह सबों के लिए अतिदेश है।

(मृताहे वृषोत्सर्गकथनम्)

मृताहे वृषोत्सर्ग उक्तो हेमाद्रौ विष्णुधर्मे—अयनद्वितये चैव मृताहे बान्धवस्य च। उत्सृजेन्नीलवृषभं कौमुद्याः समुपागमे ॥ कौमुदी=कार्तिकी।

१—अतिदेश—एकजगह पठित है उसको दूसरे जगह ले जाना। प्रकृति में जो विहित धर्म है। प्रकृत्युपकार करने के बाद विकृति के आकांक्षानुसार उन धर्मों को जो लिया जाता है उसको अतिदेश कहते हैं। तद्वद् 'इदं कर्तव्यम्' यह अतिदेश का स्वरूप है।

२—व्यतिषंग माने संबन्ध—पूर्व में श्रुत का उसको उत्तर ले जाने को व्यतिषंग कहते हैं। जैसे—उपसद् इष्टि के प्रकरण में होम के लिए तीन मन्त्र हैं या ते अग्ने अयाशया, या ते अग्ने हराशया, या ते अग्ने रजाशया, आदि पठित है। उसमें पहला मन्त्र संपूर्ण है। उसको दूसरे तीसरे मन्त्र में जोड़कर पढ़ते हैं। इसका विशेषविवेचन द्वितीयाध्याय के प्रथम पाद के अनुषंगाधिकरण में देखिये।

मरणदिन में वृषोत्सर्ग हेमाद्रि में विष्णुधर्म के वचन से कहा है—दक्षिणायन और उत्तरायण में और बान्धव के मरण दिन में कार्तिकी पूर्णिमा को नीलवृष का त्याग करे।

(शुद्धश्राद्धकथनम्)

अथ शुद्धिश्राद्धम्। दिवोदासीये—सपिण्डीकरणादूर्ध्वं यावदब्दत्रयं भवेत्। तावदेव न भोक्तव्यं क्षयेऽहनि कदाचन॥ वर्षान्तसपिण्डनेऽप्येतत्तुल्यम्।

अब शुद्धश्राद्ध कहते हैं। दिवोदासीय में कहा है—सपिण्डीकरण के बाद तीन साल के भीतर तक कभी क्षयाह दिन में भोजन न करे। साल के अन्त सपिण्डन में भी यह तुल्य है।

मृताहनि तु सम्प्राप्ते यावदब्दचतुष्टयम्। बहिः श्राद्धं प्रकुर्वीत न कुर्याच्छ्राद्धभोजनम्। प्रथमेऽस्थीनि मज्जा च द्वितीये मांसभक्षणम्। तृतीये रुधिरं प्रोक्तं श्राद्धं शुद्धं चतुर्थकम्॥ इति श्राद्धकारिकोक्तेः शुद्धं किञ्चिदिति ज्ञेयम्।

मरणदिन के प्राप्त होने पर जब तक चार वर्ष नहीं होता है तब तक बाहर (अर्थात् घर के बाहर) श्राद्ध करे और श्राद्ध का भोजन न करे। प्रथमवर्ष में—अस्थि तथा मज्जा का भक्षण, दूसरे साल में मांस भक्षण, तीसरे साल में—रुधिर का पान और चौथे साल में शुद्धश्राद्ध होता है। यह श्राद्धकारिका में कहा है। कुछ शुद्ध जानना चाहिये।

स्मृत्यन्तरे—सप्तत्रिंशच्च यो मासान् श्राद्धे भुङ्क्ते तमोहतः। स पङ्क्तिदूषितः पापः प्रेताशी च भवेत्तु सः॥ तत्र प्रथमेऽब्दे वर्षान्त सपिण्डनपक्षे मृताहात्पूर्वेऽह्नि सपिण्डनमब्दपूर्तिश्राद्धं च कृत्वा परेद्युर्वार्षिकं कुर्यादिति स्मृत्यर्थसारे उक्तम्।

स्मृत्यन्तर में कहा है—सैंतिस महिने तक (अर्थात् चार वर्ष के आदि तक) जो श्राद्ध में भोजन करता है वह पापी, पंक्तिदूषित और प्रेत का भोजन करनेवाला होता है। वहाँ पर प्रथमवर्ष में वर्षान्त सपिण्डनपक्ष में मरणदिन से पूर्वदिन में सपिण्डन और अब्दपूर्ति श्राद्ध कर दूसरे दिन वार्षिक करे—ऐसा स्मृत्यर्थसार में कहा है।

कालकाण्डे हेमाद्रिस्तु मृताहे सपिण्डीकरणेनैव वार्षिकसिद्धिः। पूर्णे संवत्सरे पिण्डः षोडशः परिकीर्तितः। तेनैव च सपिण्डत्वं तेनैवाब्दिकमिष्यते॥ इति वचनादित्याह। इदमेव च युक्तम्।

कालकाण्ड में हेमाद्रि ने तो कहा है—मरणदिन में सपिण्डीकरण से ही वार्षिकश्राद्ध की सिद्धि हो जाती है। पूरे साल में सोलहपिण्ड को कहा है। उसी से सपिण्ड और उसी से आब्दिक कहा है—इस वचन से कहा है। यही ही युक्त है।

(क्षयाहाज्ञाने विचारः)

अथ क्षयाहाज्ञाने मरीचिः—श्राद्धविघ्ने समुत्पन्ने अविज्ञाते मृतेऽहनि। एकादश्यां तु कर्तव्यं कृष्णपक्षे विशेषतः॥ इत्युक्तेः शुक्लैकादश्यामपि।

अब क्षयाह के अज्ञान में मरीचि ने कहा है—श्राद्ध में विघ्न के उत्पन्न होने पर और मरणदिन के अज्ञान में विशेष कर कृष्णपक्ष की एकादशीतिथि में करना चाहिये। ऐसा कहा है। शुक्लपक्ष की एकादशी में भी करे। (शुक्लपक्ष का ज्ञान हो तो शुक्लपक्ष की एकादशी हो ग्रहण करे।)

बृहस्पतिः—न ज्ञायते मृताहश्चेत्प्रमीते प्रोषिते सति। मासश्चेत्प्रतिविज्ञातस्तद्दर्शे स्यादथाब्दिकम्॥

बृहस्पति ने कहा है—मरणदिन की जानकारी न हो, मरणतिथि के अज्ञान में और मास के अज्ञान में अमावास्या में आब्दिक करे।

दिनमासौ न विज्ञातौ मरणस्य यदा पुनः। प्रस्थानमासदिवसौ ग्राह्यौ पूर्वोक्तया दिशा॥

मरण व्यक्ति का यदि दिन और महिनों की जानकारी न हो तो प्रस्थान का महिना और दिन का ग्रहण पूर्वोक्त दिशा (प्रस्थान के भी महिनों के ज्ञान में और दिन के अज्ञान में उस महिने की अमावास्या आदि में, मास के अज्ञान में और दिन के ज्ञान में मार्गशीर्ष आदि मासो में प्रस्थान की तिथि में करे।) से करे। (मरणसम्बन्धि की तिथि और महिना इन दोनों के अज्ञान में प्रस्थानोत्तर ही जिसकी जीवन कथा नहीं जानी गयी है। उसके मरणदिन का श्राद्ध प्रस्थान दिन और मास को ग्रहण करे।)

मदनरत्ने भविष्ये—मृताहं यो न जानाति मानवो विनतात्मज।
तेन कार्यममावास्यां श्राद्धं संवत्सरं तदा॥

मदनरत्न में भविष्यपुराण का वचन है—हे विनतात्मज, जो मनुष्य मरणदिन नहीं जानता है। वह अमावास्या में सांवत्सरिक श्राद्ध सदा करे।

दिनमेव तु जानाति मासं नैव तु यो नरः। मार्गशीर्षेऽथवा भाद्रे माघे वा तद्दिनं भवेत्॥

जो मनुष्य दिन को ही जानता है और महिने को नहीं जानता है। वह मार्गशीर्ष, भाद्रपद या माघ महिने में उसका दिन करे।

निर्णयामृते तु—यदा मासो न विज्ञातो विज्ञातं दिनमव तु। तदा चाषाढके मासि माघे वा तद्दिनं भवेत्॥ इति बृहस्पतिस्मृतेराषाढोऽप्युक्तः।

निर्णयामृत में तो कहा है—जब महिने का ज्ञान न हो और दिन का ज्ञान हो तो तब आषाढ या माघ महिने में उसका दिन होता है। बृहस्पति ने आषाढ भी कहा है।

कालादर्शेऽपि—मासाज्ञाने दिनज्ञाने कार्यमाषाढमाघयोः। इत्युक्तम्।

कालादर्श में भी कहा है—महिने की जानकारी न हो और दिन का ज्ञान हो तो आषाढ और माघ महिना कहा है।

हेमाद्रौ प्रभासखण्डे—मृताहं यो न जानाति मासं वापि कथञ्चन।
तेन कार्यममायां स्यात् श्राद्धं माघेऽथ मार्गके॥

हेमाद्रि में प्रभासखण्ड का बचन है—जो मरणदिन और महिने को भी किसीचिन्ह से भी नहीं जानता है। इससे उसका श्राद्धकार्य माघ या मार्गशीर्ष की अमावास्या में होता है।

भविष्ये—मृतवार्ताश्रुतेर्ग्राह्यौ तौ पूर्वोक्तक्रमेण तु। पूर्वोक्तेति प्रस्थानदिनाज्ञाने मासज्ञाने च तद्दर्शे मासज्ञाने दिनज्ञाने च मार्गादाविति तच्छ्रवणदिनेऽपि ज्ञेयमित्यर्थः। श्रवणदिनमासाज्ञाने माघमार्गदर्शे कार्यं पूर्वोक्तप्रभासखण्डात्। अतोऽत्र लोप इति शूलपाण्युक्तं हेयम्।

भविष्यपुराण में कहा है—पूर्वोक्तक्रम से मरणश्रवणसंबन्धिदिन और महिने को ग्रहण करे। पूर्वोक्त कहने से प्रस्थानदिन के अज्ञान में और महिने के ज्ञान (मरणश्रवणसम्बन्धिमासमात्र के स्मरण में) में अमावास्या में, मास के अज्ञान में तथा दिन के जानकारी में मार्गशीर्ष आदि में करे। इसी तरह मरणश्रवणसम्बन्धि दिनमात्र के स्मरण में मार्गशीर्ष आदि के दिन में भी जानना चाहिये। श्रवण दिन और मास के अज्ञान के माघ तथा मार्गशीर्ष की अमावास्या में करे—यह पूर्वोक्त प्रभासखण्ड के वचन से। इसलिए यहाँ पर लोप है यह शूलपाणि ने कहा है वह त्याज्य है।

तिथितत्त्वे यमः—गतस्य न भवेद्वार्ता यावद् द्वादशवार्षिकी। प्रेतावधारणं तस्य कर्तव्यं सुतबान्धवैः॥ यन्मासि यदहर्यातस्तन्मासि तदहः क्रिया। दिनाज्ञाने कुहूस्तस्य आषाढस्याथवा कुहूः॥

तिथितत्त्व में यम ने कहा है—अज्ञात देश में गये हुए की बात को बारहवर्ष तक (पिता के लिए पन्द्रह वर्ष तक और इतरों के लिए बारह वर्ष तक—'पितरि प्रोषिते यस्य न वार्ता नैव चागतिः। ऊर्ध्वं पञ्चदशाद्वर्षात्कृत्वा तत्प्रतिरूपकम्॥ कुर्यात्तस्य च संस्कारं यथोक्तविधिना ततः।) कोई बात न श्रवण हो तो पुत्र और बान्धव उसके मरण का निश्चय करके जिसदिन में और जिस महिने में वह गया हो उसी महिने तथा दिन में उसकी क्रिया को करें। उसके दिन के अज्ञान में अमावास्या या आषाढ़महिने की अमावास्या को करें।

(श्राद्धविघ्ने निर्णयः)

अथ श्राद्धविघ्ने निर्णयः । तत्र विप्रस्य निमन्त्रणोत्तरं सूतके मृतके चाशौचाभावः, निमन्त्रितेषु विप्रेषु प्रारब्धे श्राद्धकर्मणि । निमन्त्रणाद्धि विप्रस्य स्वाध्यायादितरस्य च । देहे पितृषु तिष्ठत्सु नाशौचं विद्यते क्वचित् ॥ इति ब्राह्मोक्तेः ।

अब श्राद्ध के विघ्न में निर्णय करते हैं। वहाँ पर ब्राह्मण के निमन्त्रणोत्तर जन्म और मरण में आशौच का अभाव होता है ।

ब्रह्मपुराण में कहा है—ब्राह्मणों के निमन्त्रित होने पर श्राद्धकर्म के प्रारंभ होने पर निमन्त्रण से ही ब्राह्मणके शरीरमें पितरोंके रहने पर कभी आशौच नहीं होता है । जो स्वाध्याय वेदपाठ-आदि में तत्पर हों ।

(कर्तुस्तु)

कर्तुस्तु विष्णुराह—व्रतयज्ञविवाहेषु श्राद्धे होमेऽर्चने जपे ।

आरब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु सूतकम् ॥

कर्ता को तो विष्णु ने कहा है—व्रत, यज्ञ, विवाह, श्राद्ध, होम, पूजा और जप में तो आरंभ में सूतक नहीं होता है । अनारब्ध हो तो सूतक होता है ।

श्राद्धे प्रारम्भस्तेनैवोक्तः—प्रारम्भो वरणं यज्ञे सङ्कल्पो व्रतसत्रयोः । नान्दीमुखं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रिया ॥ इति ।

श्राद्ध में प्रारंभ तो उस (विष्णु) ने कहा है—यज्ञ में वरण का प्रारंभ, व्रत और सत्रयाग में संकल्प, विवाह आदि में नान्दीमुख और श्राद्ध में पाक का निर्माण करना माना है ।

माधवीये ब्राह्मेऽपि—श्राद्धादौ पितृयज्ञे च कन्यादाने च नो भवेत् ।

माधवीय में ब्रह्मपुराण का भी मत है—श्राद्धादि में, पितृयज्ञ में और कन्यादान में सूतक नहीं होता है ।

मिताक्षरायां स्मृत्यन्तरे सद्यःशौचं प्रकृत्य—यज्ञे संभृतसंभारे विवाहे श्राद्धकर्मणि । इति । तिथितत्त्वादिगौडग्रन्थास्तु निमन्त्रणोत्तरं कर्तुर्भोक्तुश्च नाशौचम्, निमन्त्रणोत्तरं श्राद्धे प्रारम्भः स्यादिति स्मृतिः । इति विष्णूक्तेः ।

यत्तु 'श्राद्धे पाकपरिक्रिया' इति तदर्शश्राद्धविषयमित्याहुः ।

मिताक्षरा में सद्यःशौचप्रकरण में स्मृत्यन्तर का वचन है—सामग्री के एकत्रित (इकट्ठी) हो जाने पर यज्ञ में, विवाह में और श्राद्धकर्म में आशौच नहीं होता है । तिथितत्त्व आदि गौड ग्रन्थों का मत है कि—निमन्त्रणोत्तर (यदि पहले दिन रात्रिमें शास्त्रीय विधि से निमन्त्रण देनेपर) आशौच कर्ता और भोक्ता को नहीं होता है । विष्णु ने कहा है कि—निमन्त्रणोत्तर श्राद्ध का प्रारम्भ होता है—एसा स्मृति कहती है ।

जो श्राद्ध में 'पाकपरिक्रिया' पाक का प्रारम्भ कहा है—वह दर्शश्राद्धविषयक है—ऐसा कहा है ।

(दातृगृहे मरणादौ)

दातृगृहे मरणादौ ब्राह्मे उक्तम्—भोजनार्द्धे तु संभुक्ते विप्रैः दातुर्विपद्यते । गृहे इति शेषः । यदा कश्चित्तदोच्छिष्टं शेषं त्यक्त्वा समाहिताः । आचम्य परकीयेन जलेन शुचयो द्विजाः ॥ इति । अस्य श्राद्धविषयत्वं हेमाद्रिणोक्तम् । पृथ्वीचन्द्रोदयेऽप्येवम् । मम तु प्रतिभाति—इदं विवाहादिविषयं न तु श्राद्धविषयं तत्पदाभावात् । 'विवाहोत्सवयज्ञेषु' इत्युपक्रम्य—भुञ्जानेषु तु विप्रेषु त्वन्तरा मृतसूतके । अन्यगेहोदकाचान्ताः सर्वे ते शुचयः स्मृताः ॥ इति षट्त्रिंशन्मतैकवाक्यत्वात् । निमन्त्रितेषु विप्रेषु प्रारब्धे श्राद्धकर्मणि । इति पूर्वोक्तविरोधाच्च । श्राद्धे तु यद्यपि विष्णुना पाकोत्तरमाशौचाभाव उक्तस्तथापि कर्तुरेव सः । भोक्तुस्तु दोषोऽस्त्येव ।

दाता के घर में मरण आदि में तो ब्रह्मपुराण में कहा है—अन्न के आधे भोजन करने बाद दाता के घर विपत्ति (मृत्यु) उपस्थित हो जाय तो ब्राह्मण उच्छिष्ट सब अन्न का त्याग कर सावधान मन से किसी दूसरे घरके जलसे आचमन कर पवित्र हो जाते हैं। इस वाक्यको श्राद्धविषय में हेमाद्रिने कहा है। पृथ्वीचन्द्र आदि ने भी यही कहा है। कमलाकरभट्ट ने कहा है मुझे तो यह मालूम होता है यह विवाह आदि विषयक है न कि श्राद्धविषयक है। क्योंकि वहाँ पर 'तत्' पद का अभाव है। 'विवाहोत्सवयज्ञेषु' एसा प्रारम्भ कर भोजन करते हुए ब्राह्मणों में मध्य में मरण और जन्म का आशौच प्राप्त हो जाय तो दूसरे घर के जल से आचमन कर वे सब ब्राह्मणादि पवित्र हो जाते हैं—यह षट्त्रिंशत्मत की एक वाक्यता है। निमन्त्रित ब्राह्मणों में श्राद्ध के प्रारम्भ में आशौच नहीं होता है यह पूर्वोक्त वचन का विरोध है। श्राद्ध में तो यद्यपि विष्णु ने पाकोत्तर आशौच का अभाव कहा है फिर भी वह कर्ता को ही है। भोजन करने वाले को तो दोष है ही।

अपि दातृगृहीत्रोश्च सूतके मृतके तथा। अविज्ञाते न दोषः स्यात् श्राद्धादिषु कथञ्चन ॥ विज्ञाते भोक्तुरेव स्यात्प्रायश्चित्तादिकं क्रमात् ॥ इति माधवीये ब्राह्मोक्तेः।

आदिशब्देनाशौचमुच्यते। तच्चाह विष्णुः—ब्राह्मणादीनामाशौचे यः सकृदेवान्नमश्नाति तस्य तावदाशौचं यावत्तेषाम्। आशौचव्यपगमे प्रायश्चित्तं कुर्यात् इति।

माधवीय में ब्रह्मपुराण का वचन है—दाता और गृहीता को जननाशौच और मरणाशौच कथञ्चित् उपस्थित हो जाय तो श्राद्धादि में न जानने पर दोष नहीं होता है। जानकारी होने पर भोक्ता को ही प्रायश्चित्त आदि है।

आदिशब्द से आशौच कहा है। उसी बात को विष्णु ने कहा है—ब्राह्मण आदि के आशौच में जो एक बार अन्न भोजन करता है उसको तब तक आशौच होता है जब तक उनको आशौच होता है। आशौच बीतने पर प्रायश्चित्त करे।

यत्तु—देहे पितृषु तिष्ठत्सु नाशौचं विद्यते क्वचित्। इति ब्राह्मं, तच्छ्राद्धकालीनस्य निषेधकं, न तदुत्तरकालीनस्य। शुद्धिदीपस्तु निमन्त्रितेष्वित्यामश्राद्धपरम्, भोजनार्द्धे त्वित्यादि त्वन्नश्राद्धपरमित्याह।

जो ब्रह्मपुराण का वचन है—शरीर में पितरों के रहते आशौच कभी नहीं होता है। वह श्राद्धकालीन का निषेधक है न कि वह उत्तरकालीन का है। शुद्धिदीप में तो कहा है—'निमन्त्रितेषु' यह आम श्राद्धपरक है। 'भोजनार्धे तु' यह पूर्वोक्त श्लोकादि तो अन्नश्राद्धपरक है—ऐसा कहा है।

(प्रायश्चित्तं त्वाह)

प्रायश्चित्तं त्वाह मार्कण्डेयः—भुक्त्वा तु ब्राह्मणाशौचे चरेत् सान्तपनं द्विजः। एतत्कामतः।

प्रायश्चित्त को मार्कण्डेय ने कहा है—ब्राह्मण के आशौच में भोजन करने पर द्विज 'सान्तपन' प्रायश्चित्त करे। यह इच्छा से एक बार में करने से है।

अभ्यासे शङ्खः—ब्राह्मणस्य तथा भुक्त्वा मासमेकं व्रती भवेत्। इति।

अभ्यास में शङ्ख ने कहा है—ब्राह्मण के आशौच में भोजन करने पर एक महीने तक व्रत करे।

अज्ञानात्तु छागलेयः—एकाहं च त्र्यहं पञ्चसप्तरात्रमभोजनम्। ततः शुचिर्भवेद्विप्रः पञ्चगव्यं पिबेन्नरः ॥ इति वर्णक्रमेणेदम्। अभ्यासे तु द्वैगुणमित्यादि मिताक्षरामाधवीयादौ ज्ञेयम्। मिताक्षरामाधवादौ तु श्राद्धे कर्तुर्भोक्तुश्च सर्वथा दोषाभाव उक्तः।

अज्ञान में तो छागलेय ने कहा है—एकदिन, तीनदिन, पाँचदिन और सात राततक भोजन न करे। तदनन्तर ब्राह्मण की पवित्रता होती है और पञ्चगव्य का मनुष्य पान करे। यह वर्णक्रम से है। अभ्यास में तो द्विगुण है यह मिताक्षरा, माधवीय आदि में जानना चाहिए। मिताक्षरा, माधव आदि में तो श्राद्ध में कर्ता और भोक्ता को सर्वथा दोष का अभाव कहा है।

(आशौचमध्ये श्राद्धदिनप्राप्तौ च विचारः)

आशौचमध्ये श्राद्धदिनप्राप्तौ तु माधवीये कालादर्शे च ऋष्यशृङ्गः—देये पितॄणां श्राद्धे तु आशौचं जायते यदा। आशौचे तु व्यतिक्रान्ते तेभ्यः श्राद्धं प्रदीयते ॥

आशौच के मध्य में श्राद्धदिन की प्राप्ति में तो माधवीय और कालादर्श में ऋष्यशृंग ने कहा है—पितरों के श्राद्ध में देना हो और आशौच की प्राप्ति हो जाय तो आशौच की समाप्ति के बाद उन पितरों के लिए श्राद्ध करे।

श्राद्धचिन्तामणौ ज्योतिषे—प्रतिसांवत्सरं श्राद्धमाशौचात्पतितं च यत्। मलमासेऽपि तत्कार्यमिति भागुरिभाषितम्॥ आशौचान्तदिनत्वेन निमित्तत्वादित्यर्थः। एतन्मासिकाब्दिकपरं न दार्शिकादौ। अत एव सुदर्शनभाष्ये अपरपक्षे पित्र्याणीति नियमात् कृष्णपक्ष श्राद्धलोपे प्रायश्चित्तमेव न तु गौणकाले करणम्। तच्चोपवासः वेदोदितानां नित्यानां कर्मणां समतिक्रमे। स्नातकव्रतलोपे च प्रायश्चित्तमभोजनम्॥ इति मनूक्ते (११।२०३) रित्युक्तम्। आशौचे तु प्रायश्चित्तमपि न मुख्यकाले अनधिकारात्।

श्राद्धचिन्तामणि में ज्योतिष का वचन है--प्रतिसांवत्सरिकश्राद्ध आशौच के आने पर न किया हो तो मलमास में भी उसको करे—यह भागुरि ने कहा है। आशौचान्यदिन निमित्त होने से उसी में करे। यह मासिक और आब्दिकपरक है न कि दर्श आदि परक है। इसलिए सुदर्शनभाष्य में कहा है कि—अपरपक्ष में पित्र्याणि-पितृकर्म होते हैं। इस नियम से कृष्णपक्ष में श्राद्धका लोप होने पर प्रायश्चित्त ही है गौणकाल में न करे। वह प्रायश्चित्त उपवास है। मनु ने कहा है—वेद में कहे हुए नित्यकर्मों के अतिक्रमण में और स्नातक के व्रतलोप में एकदिन उपवासरूप प्रायश्चित्त को (अग्निहोत्रादियों के) करना है---ऐसा मनु ने कहा है। आशौच में तो प्रायश्चित्त भी नहीं है। क्योंकि मुख्यकाल में अधिकार नहीं है।

आशौचान्तेऽसम्भवे तु व्यासः—श्राद्धविघ्ने समुत्पन्ने त्वन्तरा मृतसूतके।
अमावास्यां प्रकुर्याद्वै शुद्धावेके मनीषिणः॥

आशौच के अन्त में न होने पर व्यास ने कहा है--श्राद्ध में विघ्न हो जाय या मध्य में मरणाशौच या जननाशौच हो जाय तो अमावास्या को करे। कोई मनीषी (विद्वान्) कहते हैं कि शुद्धि होनेपर करे।

हेमाद्रौ षट्त्रिंशन्मतेऽपि—मासिके चाब्दिके त्वह्नि सम्प्राप्ते मृतसूतके।
वदन्ति शुद्धौ तत्कार्यं दर्शे वापि विचक्षणाः॥

हेमाद्रि में षट्त्रिंशन्मत से भी कहा है—मासिक और आब्दिकश्राद्ध के दिन में मरण तथा जननाशौच आजाय तो विद्वान् शुद्धि में या दर्श में श्राद्ध करें—ऐसा कहते हैं।

गोभिलः—देये प्रत्याब्दिके श्राद्धे अन्तरा मृतसूतके।
आशौचानन्तरं कुर्यात्तन्मासेन्दुक्षयेऽपि वा॥

गोभिल ने कहा है--प्रत्याब्दिकश्राद्ध के मध्य में मरण तथा जननाशौच आजाय तो आशौचान्त में या उसी मास की अमावास्या को करे।

मरीचिः—श्राद्धविघ्ने समुत्पन्नेऽप्यविज्ञाते मृतेऽहनि। एकादश्यां तु कर्तव्यं कृष्णपक्षे विशेषतः॥ विशेषत इत्युक्तेः शुक्लैकादश्यामपि। आशौचेतरविघ्ने एतदिति माधवपृथ्वीचन्द्रौ।

मरीचि ने कहा है—श्राद्ध में विघ्न की उपस्थिति में या मरणदिन के अज्ञान में विशेषकर कृष्ण पक्ष की एकादशी में श्राद्ध करना चाहिए। विशेषतः ऐसा कहने से शुक्लपक्ष की एकादशीतिथि में भी करे। आशौच से इतर विघ्न में (पाकनिर्माण के असम्भव से) यह है—यह माधव और पृथ्वीचन्द्र कहते हैं।

यत्त्वत्रिः—तदहश्चेत्प्रदुष्येत केनचित्सूतकादिना। सूतकानन्तरं कुर्यात्पुनस्तदहरेव च॥ इति, तत्पूर्वकालाभावे ज्ञेयम्। एतदाब्दिकेतरश्राद्धपरम्।

जो अत्रि ने कहा है कि—किसी सूतक आदि से वह दिन श्राद्ध का दूषित हो जाय तो सूतकान्त में उसी श्राद्ध को फिर से करे। वह पूर्वकाल के अभाव में जानना चाहिए। यह आब्दिकश्राद्ध से इतर श्राद्धपरक है।

यच्च देवलः—एकोद्दिष्टे तु सम्प्राप्ते यदि विघ्नः प्रजायते। मासेऽन्यस्मिंस्तिथौ तस्मिन् श्राद्धं कुर्यात् प्रयत्नतः॥ इति। तदपि मासिकपरमिति मदनरत्ने हेमाद्रौ च। इदमपि पूर्वकालासम्भवे व्याध्यादौ विस्मरणे चैवं ज्ञेयम्।

और जो देवल ने कहा है—एकोदिष्ट के प्राप्त होने पर यदि विघ्न उपस्थित हो जाय तो अन्य महीने में उसीतिथि में प्रयत्न से श्राद्ध को करे। वह भी मासिकपरक है—ऐसा मदनरत्न और हेमाद्रि में कहा है। यह भी पूर्वकाल के न मिलने पर है। व्याधि (रोग) आदि में तथा विस्मरण में जानना चाहिये।

अथ भार्यारजोदर्शने तत्र दार्शिकमामेन कार्यम्। श्राद्धविघ्ने द्विजातीनामामश्राद्धं प्रकीर्तितम्। अमावास्यादिनियतं माससंवत्सरादृते॥ इति हेमाद्रौ हारीतोक्तेः।

अब स्त्री के रजोदर्शन में कहते हैं। उसमें दर्शश्राद्ध आमान्न से करना चाहिये। द्विजातियों को श्राद्धविघ्न (पत्नीरजोदर्शन आदि) में (उशना-अपत्नीकः प्रवासी च यस्य भार्या रजस्वला। सिद्धान्नेन न कुर्वीत आमं तस्य विधीयते॥) आमश्राद्ध मासिक और सांवत्सरिकश्राद्ध को छोड़कर अमावास्या आदि में कहा है—यह हेमाद्रि में हारीत ने कहा है।

व्याघ्रपादोऽपि—आर्तवे देशकालानां विप्लवे समुपस्थिते।
आमश्राद्धं द्विजैः कार्यं शूद्रः कुर्यात्सदैव हि॥

व्याघ्रपाद ने भी कहा है—रजोदर्शन में और देशकाल के विप्लव के उपस्थित होने पर द्विजों को आमश्राद्ध करना चाहिए। और शूद्र तो सदा ही आमश्राद्ध करे।

दीपिकापि—दर्शे तु भार्यार्तवेऽप्यामश्राद्धविधिं प्रवासिविधुराद्याश्चाचरेयुर्द्विजाः।

वस्तुतस्तु—पाकाभावे द्विजातीनामामश्राद्धं विधीयते। इति सुमन्तूक्तेः। पाककर्त्रन्तरेसत्वेऽन्नेनान्यथाऽऽमेनेति युक्तम्।

दीपिका में भी कहा है—दर्श में तो स्त्री रजोधर्मवती होने पर प्रवासी (परदेशी) तथा विधुर-(स्त्रीहीन) आदि द्विज आमश्राद्ध की विधि को करें।

सिद्धान्त तो यह है—पाक के अभाव में द्विजातियों को आमश्राद्ध का विधान है। एसा सुमन्तु के कहने पर पाक बनाने वाला अन्य हो तो अन्न से या आमान्न से करे यह युक्त है।

मासिकानि सपिण्डानि अमावास्या तथाब्दिकम्। अन्नेनैव तु कर्तव्यं यस्य भार्या रजस्वला॥ इति कलिकायां वचनाच्च। कालादर्शे तु स्त्रिया रजोदर्शने दर्शश्राद्धं पञ्चमेऽहनीति पक्षान्तरमुक्तम्। पारिजातेऽप्येवम्। एवं महालययुगादावपि।

आब्दिकं तु रजोदर्शनेऽपि तद्दिने एव कार्यम्, पुष्पवत्स्वपि दारेषु विदेशस्थोऽप्यनग्निकः। अन्नेनैवाब्दिकं कुर्याद्धेम्ना वाऽऽमेन न क्वचित्॥ इति माधवीये लौगाक्षिस्मृतेः।

और कलिका में वचन है—मासिक, सपिण्डन, अमावास्या, आब्दिक तथा जिसकी पत्नी रजस्वला हो वह आमान्न से ही श्राद्ध करे। कालादर्श में तो कहा है—स्त्री के रजोदर्शन में दर्शश्राद्ध को पाँचवें दिन करे—यह पक्षान्तर कहा है। पारिजात में भी यही कहा है। इसीप्रकार महालय और युगादि में भी यही जानना चाहिए।

आब्दिक तो उसीदिन रजोनिवृत्ति के बाद ही करे। या पांचवें दिन करे-यह दो मत है। उसमें पहला मत है। रजोदर्शन में भी उसी दिन ही करना चाहिये। माधवीय में लौगाक्षिस्मृति का वचन है—जिनकी

पत्नी रजस्वला हो और विदेश में हो तो अनग्निक द्विज अन्न से या सुवर्ण से ही आब्दिकश्राद्ध करे आमान्न (कच्चा अन्न) से कभी न करे।

मरीचिरपि—अनग्निश्च प्रवासी च यस्य भार्या रजस्वला।
आमश्राद्धं प्रकुर्वीत न तत्कुर्यान्मृतेऽहनि ॥ इति।

मरीचि ने भी कहा है—जिसकी पत्नी रजस्वला हो वह अनग्निक तथा प्रवासी (परदेशी) मरणदिन के आब्दिक श्राद्ध को त्याग कर आमश्राद्ध करे। अर्थात्—आब्दिकश्राद्ध अन्न से ही करे।

कार्ष्णाजिनिः—आपन्नोऽप्याब्दिकं नैव कुर्यादामेन कुत्रचित्।
अन्नेन तदमायां तु कृष्णे वा हरिवासरे ॥

कार्ष्णाजिनि ने कहा है—आपत्ति में भी (भार्या के रजोदर्शन आदि में पाकाभाव के कारण) आब्दिकश्राद्ध आमान्न से कभी न करे। अन्न से उसको अमावास्या में या कृष्णपक्ष की एकादशी में करे।

प्रयोगपारिजाते—रजस्वलायां भार्यायां क्षयाहं यः परित्यजेत्।
स वै नरकमाप्नोति यावदाभूतसंप्लवम् ॥

प्रयोगपारिजात में कहा है—रजस्वला पत्नी के होने पर जो क्षयाहदिन श्राद्ध को त्यागता है निश्चय ही प्रलयपर्यन्त नरक प्राप्त करता है।

मासिकानि सपिण्डानि अमावास्या तथाब्दिकम्। अन्नेनैव तु कर्तव्यं यस्य भार्या रजस्वला ॥

मासिक आदि सपिण्डनश्राद्ध, अमावास्याश्राद्ध और आब्दिकश्राद्ध जिसकी स्त्री रजस्वला हो वह अन्न से ही करे।

देवयाज्ञिकनिबन्धेऽपि—भर्तुः श्राद्धं पञ्चमेऽह्नि कुर्याद्भार्या रजस्वला।
पुत्रः पित्रोः प्रकुर्वीत मृताहनि शुचिर्यतः ॥

देवयाज्ञिकनिबन्ध में भी कहा है—रजस्वला स्त्री पति का श्राद्ध पाँचवे दिन करे। पुत्र पिता और माता का श्राद्ध मरणदिन में पवित्र होकर (श्राद्धकर्ता की स्त्री रजस्वला भी हो तब भी वह स्वयं पवित्र ही है) करता है।

कालादर्शेऽपि—रजस्वलाङ्गनोऽनग्निर्विदेशस्थोऽथवाब्दिके।
दर्शादाविव नामेन त्वन्नेन श्राद्धमाचरेत् ॥

कालादर्श में भी कहा है—जिसकी धर्मपत्नी रजस्वला हो, अनग्निक हो या विदेश में हो तो वार्षिकश्राद्ध अमावास्या के सदृश आमान्न से न कर अन्न (पक्वान्न) से श्राद्ध करे।

अन्यत्रापि—विदेशको वा विगताग्निको वा रजस्वलायामपि धर्मपत्न्याम्। श्राद्धे मृताहे विदधीत पाकैर्नामेन हम्ना न तु पञ्चमेऽह्नि ॥ एवं मासिकेऽपि।

अन्यत्र भी कहा है—विदेश में हो, अनग्निक हो और धर्मपत्नी के रजस्वला होने पर मरणदिन के श्राद्ध को पाक से करे। वह आमान्न से, सुवर्ण से या पांचवे दिन न करे। इसीप्रकार मासिक में भी जानना चाहिये।

यत्तु मरीचिः—आब्दिके समनुप्राप्ते यस्य भार्या रजस्वला।
पञ्चमेऽहनि तच्छ्राद्धं न तत्कुर्यान्मृतेऽहनि ॥

जो मरीचि ने कहा है—आब्दिकश्राद्ध के प्राप्त होनेपर जिसकी स्त्री रजस्वला हो वह पांचवे दिन उस श्राद्ध को करे। मरणदिन में न करे।

माधवीये—श्राद्धं तदा न कर्तव्यं कर्तव्यं पञ्चमेऽहनि। इत्युत्तरार्धं, तदपुत्रस्त्रीकर्तृकश्राद्धविषयम्,

माधवीय में कहा है—तदनन्तर श्राद्ध को न करे। करे तो पांचवें दिन करे—यह उत्तरार्ध है। वह अपुत्र स्त्रीकर्तृकश्राद्धविषयक है।

अपुत्रा तु यदा भार्या सम्प्राप्ते भर्तुराब्दिके। रजस्वला भवेत्सा तु कुर्यात्तत्पञ्चमेऽहनि ॥ इति श्लोकगौतमोक्तेः।

अपुत्रा स्त्री जब पति के आब्दिकश्राद्ध में रजस्वला हो जाय तो पांचवें दिन श्राद्ध को करे। यह यह श्लोक गौतम ने कहा है।

दैवे कर्मणि पित्र्ये च पञ्चमेऽहनि शुद्ध्यति। इति प्रभासखण्डाच्च। नन्वशुचित्वादेव तत्र पञ्चमेऽहन्यर्थात् श्राद्धं प्राप्तमिति वचनं व्यर्थम्? नैवम्, गर्भिणीसूतिकादिश्च कुमारी वाथ रोगिणी। यदा शुद्धा तदाऽन्येन कारयेत् प्रयता स्वयम् ॥ इति हेमाद्रौ भविष्योक्तेः। 'अनुपनीतस्त्रीशूद्राश्च श्राद्धमृत्विजा कारयेयुः स्वयं वाऽमन्त्रकं कुर्युः' इति स्मृत्यर्थसाराच्चान्यद्वाराकरणनिवृत्त्यर्थत्वात्तस्य, त्वदुक्तदिशा आशौचानन्तरं श्राद्धकर्तव्यताऽवेदकवाक्यवैयर्थ्याच्च। अतः प्रागुक्तमरीच्युक्तेः पत्नी पञ्चमेऽहनीति युक्तम्।

और प्रभासखण्ड में कहा है—दैवकर्म में और पितृकर्म में पांचवें दिन शुद्धि होती है। कदाचित् कोई शंका करे कि—अपवित्रा होने से ही वहाँ पर पाँचवें दिन ही अर्थात् श्राद्ध प्राप्त है। इसलिये यह वचन व्यर्थ है। यह कहना उचित नहीं है। क्योंकि हेमाद्रि में भविष्यपुराण का वचन है—गर्भवती, सूतिका आदि, कुमारी या रोगिणी जब शुद्ध हों तब अन्य के द्वारा प्रयत्न से स्वयं श्राद्ध करावें। अनुपनीत, स्त्री और शूद्र ऋत्विजों द्वारा श्राद्ध करावें। या स्वयं भी अमन्त्रक करें यह स्मृत्यर्थसार में कहा है। अन्य द्वारा (प्रतिनिधि के द्वारा) कराने की निवृत्ति के लिये है। वह उक्तप्रकार से आशौच के अनन्तर श्राद्ध की कर्तव्यता के समान एकवाक्य व्यर्थ हो जायगा। इसलिए पहले कहे हुए मरीचि के वचन से पत्नी पांचवें दिन करे—यह युक्त है।

यत्तु—सप्ताहात्पितृदेवानां भवेद्योग्या व्रतार्चने।

इति तद्रजोनिवृत्तिपरमिति हेमाद्रिभिन्नसर्वनिबन्धसिद्धान्तः।

जो यह कहा है—सात दिन के बाद पितर और देवताओं के व्रत तथा अर्चन (पूजन) के योग्य होती हैं। वह रजोनिवृत्ति (पांचवें दिन रजोनिवृत्ति) परक है—यह हेमाद्रि से भिन्न सबनिबन्धों का सिद्धान्त है।

हेमाद्रिस्तु श्राद्धादौ स्त्रिया सहैवाधिकारात् तस्यां रजोदुष्टायां तन्निवृत्तेरेकभार्येण पञ्चमेऽहनि कार्यम् प्रागुक्तमरीच्युक्तेः। भार्यान्तरसत्त्वे तु पुष्पवत्स्वपीति वचनात्तद्दिने एवेत्याह।

हेमाद्रि ने तो कहा है—श्राद्ध आदि में स्त्री के साथ ही अधिकार है उसके रजोदर्शन दुष्ट होने पर उसकी निवृत्ति होने पर एक स्त्री वाला पुरुष पांचवें दिन श्राद्ध करे—पहले कहे हुए मरीचि के (आब्दिके समनुप्राप्ते यस्य भार्या रजस्वला। पञ्चमेऽहनि तच्छ्राद्धं न तत्कुर्यान्मृतेऽहनि ॥) वचन से कहा है। दूसरी पत्नी के रहते हुए तो 'पुष्पवती' (रजोदर्शन) हो जाने पर वचन से उसीदिन में ही करे—एसा कहा है।

दीपिकापि—'भार्यर्तौ सति पञ्चमे च दिवसे स्याद्वार्षिकं मासिकं पक्वान्नैर्बहुभार्यकस्त्वधिकृते पत्न्यन्तरे तिष्ठति। कुर्यात्तद्द्वितयं स्वमुख्यदिवसे' इति। तच्चिन्त्यम्। सहाधिकारः सहत्वश्रुत्या वा एकफलभाक्त्वेन वा पाककर्तृत्वेन वा? नाद्यः, तदभावात्। पाणिग्रहणाद्धि सहत्वं कर्मसु' इत्यस्याग्निसाध्यकर्मविषयत्वात्। आब्दिकस्य च निरग्नेरपि पाकेनैवोक्तेः स्मार्ताग्निसाध्यत्वान्नियमात् 'तामपरुध्य' इतिवत् पुष्पवत्स्वपीति पूर्वोक्तवचनसत्वाच्च। कथं च भार्यान्तरसत्वेऽधिकारः। 'ज्येष्ठया न विनेतरा' इति नियमात्। ज्येष्ठापरत्वे च तेनैव सिद्धेर्वचनवैयर्थ्यात्। न द्वितीयः। अविभक्तभ्रातृष्वेकस्याशुचित्वेऽन्यस्यानधिकारापत्तेः। न तृतीयः। प्रवासनिर्देशसूतिकारोगिण्यादिष्वप्यकरणापत्तेः। आरभेत नवैः पात्रैरन्नारम्भं च बान्धवैः। इति देवलोक्तावात्मनेपदात्स्वस्य बान्धवानां च पाककर्तृत्वोक्त्या विरोधाच्च।

दीपिका में भी कहा है—पत्नी के रजोधर्म होने पर पांचवें दिन पक्वानों से वार्षिक या मासिकश्राद्ध होते हैं। जिसके बहुत सी पत्नी हों वह पति अन्य स्त्री को बैठाकर उन दोनों (वार्षिक और मासिक) को मुख्यदिन में करे। यह उचित नहीं है। सहाधिकार या सहश्रुति से एकफल के लाभ से या पाककर्तृत्वसे है। पहला पक्ष उचित नहीं है। क्योंकि सहत्वश्रुतिका अभाव है। पाणिग्रहणसे ही सब कर्मों में साथ ही (पति और पत्नी का) अधिकार है। इसका अग्निसाध्यकर्मविषयक हैं। आह्निक का और निरग्निका भी पाक से ही कहा है। स्मार्ताग्निसाध्यत्व का अनियम है। 'तामपरुध्य' (रजास्वला स्त्री को गृहान्तर में रखकर प्रारंभ किया हुआ श्रौतयज्ञ और आह्निक श्राद्ध का भी निर्वाह करना चाहिये।) इसकी तरह।

और पुष्पवत्स्वपि—इस पूर्वोक्त वचन से। कैसे भार्यान्तर के रहते अधिकार कहा है। क्योंकि—ज्येष्ठा पत्नी के रहते दूसरे पत्नी को अधिकार नहीं है— यह नियम है। ज्येष्ठापरत्व मानने पर उसी से ही सिद्ध था तो वचन व्यर्थ हो जायगा। दूसरा पक्ष भी उचित नहीं है। क्योंकि भाइयों के अविभक्त होने से एक के अशुचि होने पर दूसरे को अधिकारापत्ति हो जायगी। तीसरा भी उचित नहीं है—प्रवास, विदेश, सूतिका, रोगिणी आदि हो जाने पर भी अकरणजन्य आपत्ति हो जायगी।

बान्धवों द्वारा नूतन पात्रों में अन्नारंभ करें। इस देवल के वचन से (आरभेत) इस आत्मनेपद से अपने और बान्धवों का पाक का निर्माण करना कहा है उसका विरोध हो जायगा।

अथ—ततस्तानि पपाचाशु सीता जनकनन्दिनी। इति पाद्मादिलिङ्गात् प्राशस्त्यं भार्यापाकस्योच्यते। न तत्कस्याप्यनिष्टम्। तेनैतद्वचनं युक्त्याद्यभावात् पूर्वोक्तवचोविरोधाच्च यत्किञ्चिदेव।

इसके बाद फिर जनकनन्दनी सीता ने शीघ्र पाकों का निर्माण किया। इस पद्मपुराण आदि के वचन से भार्या को पाक का प्राशस्त्य कहा है। क्योंकि वह किसी को भी अनिष्ट देने वाला नहीं है। इससे इस वचन को युक्ति आदि के अभाव से और पूर्वोक्त वचन के विरोध से उचित नहीं है।

यदपि—श्राद्धीयाहनि सम्प्राप्ते यस्य भार्या रजस्वला। श्राद्धं तत्र न कर्तव्यं कर्तव्यं पञ्चमेऽहनि॥ इति श्लोकगौतमपाठोऽन्यथा दर्शितः। माधवीये च तद्वशात्पक्षान्तरमुक्तम्। तेनापि नाभिप्रेतार्थसिद्धिः। यस्य प्रेतस्येत्यर्थात्। तेनात्र हेमाद्रिर्बभ्रामेति बहुवक्तव्येऽपि नोच्यते।

और भी—श्राद्धीयदिन के प्राप्त होने पर जिसकी पत्नी रजस्वला हो वह उसदिन श्राद्ध न करे। पांचवें दिन करे। इस श्लोक में गौतम ने दूसरा पाठ दिखाया है। और माधवीय में तो उसके वश से पक्षान्तर कहा है। उससे भी प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती है। क्योंकि उसका अर्थ यों है कि—जिस प्रेत (मृत का) का। इससे यहाँपर हेमाद्रि को भ्रम हो गया। यहाँ बहुत कुछ कहना था पर विस्तार के भय से नहीं कहते हैं।

(अन्वारोहणे निर्णयः)

अथान्वारोहणे निर्णयः। लौगाक्षिः—मृताहनि समासेन पिण्डनिर्वपणं पृथक्। नवश्राद्धं च दम्पत्योरन्वारोहण एव तु॥ समासेन तन्त्रेण द्विपितृकश्राद्धवद्द्वयोरेकः पिण्डो विप्रश्च। पिण्डशब्दः श्राद्धपरः। नवश्राद्धं पृथगिति हेमाद्रिपृथ्वीचन्द्रौ। अत्र मृताहनीत्येकत्वाद्दिनभेदे दिनैक्ये वा मृततिथेरेकत्वे कालैक्यं कर्त्रैक्यं पाकैक्यं च। एकचित्यधिरोहे तु तिथिरेकैव जायते। एकपाकेन पिण्डैक्ये द्वयोर्गृह्णीत नामनी॥ इति स्मृत्यन्तराच्च।

अब अन्वारोहणनिर्णय करते हैं। लौगाक्षि ने कहा है—मरणदिन में (जहाँ पर पत्नी पति की चिता में अन्वारूढ है वहाँ पर भर्ता और उस पत्नी की तिथिभेद से मरणे में उस उसतिथि में पति और और पत्नी का अलग ही वार्षिक होगा। (यदा च तिथ्यैक्यं तदा यद्यप्येकदेशकालकर्तृकत्वेन गृह्यमाणविशेषत्वाद्देवताभेदेन पृथक्क्रियमाणयोरपि प्रधानयोरङ्गानां च तन्त्रं प्राप्नोति, तथापि 'एककाले गतासूनां बहूनाम्' इत्युत्तरवाक्याद्दैवादेकतिथौ मृतानामितरेषामिव पाकमात्रतन्त्रतोक्तेः पृथगेव दम्पत्योः श्राद्धं प्राप्नोति) समास (तन्त्र) से (जैसे—जिसके दो पिता हों एसा पुत्र दोनों पिताओं के उद्देश्य से एक पिण्ड देता है। 'एकपिण्डे द्वावुपलक्षयेत्) इस वचन से। और दम्पतियों के अन्वारोहण में दोनों को उद्देश्य कर

एकपिण्ड देता है। इसलिए ब्राह्मण भी एक ही दोनों का होगा। मरणतिथि के एकत्व होने से तन्त्र की तरह ही नवश्राद्ध का भी पूर्ववत् तन्त्र प्राप्त होगा उसको पार्थक्यमात्र का विधान किया है-यह भाव है।) पिण्ड का निर्वाप और नवश्राद्ध अलग होगा—इसी को अन्वारोहण कहते हैं। समास से अर्थात् तन्त्र से दो पिता के श्राद्ध की तरह दोनों का एकपिण्ड और एक ब्राह्मण होगा। पिण्डशब्द श्राद्धपरक है। नवश्राद्ध को अलग हेमाद्रि और पृथ्वीचन्द्र ने कहा है। यहाँ पर 'मृतहनि' इस एकवचन से दिनभेद में और दिन के एक होने पर मरणतिथि के एकहोने पर, समय एक हो, कर्ता एक हो और पाक भी एक होता है। और एकचिता में स्त्री और पुरुष के अधिरोहण में एक ही तिथि होती है। एकपाक, और एक ही पिण्ड में दोनों का नाम लेकर दे। यह स्मृत्यन्तर का वचन है।

अन्त्येष्टिपद्धतौ भट्टैरप्युदाहृतम्—अन्वारोहे तु नारीणां पत्युश्चैकोदकक्रिया। पिण्डदानक्रिया तद्वच्छ्राद्धं प्रत्याब्दिकं तथा। नवश्राद्धानि सर्वाणि सपिण्डीकरणं पृथक्। एक एव वृषोत्सर्गो गौरेका तत्र दीयते॥ इति।

अन्त्येष्टिपद्धति में भट्टों ने भी कहा है—स्त्रियों के अन्वारोहण में पति को उदकक्रिया (जलदान) पिण्डदानक्रिया, तद्वत् वार्षिकश्राद्ध, नवश्राद्ध आदि सब क्रिया एक तन्त्र से करे तथा सपिण्डीकरण पृथक्-पृथक् करे। एक ही वृषोत्सर्ग और एक ही गौ दे।

तिथिभेदे तु वार्षिकं पृथगेव। तथा वार्षिके समासविधानादन्यत्र सर्वत्र पृथक्त्वे प्राप्ते नवश्राद्धमेव पृथगिति परिसंख्ययाऽन्यत्र पृथक्त्वेऽपि वार्षिकषोडशश्राद्धतीर्थसपिण्डनान्वष्टक्यादिषु समास एवेति मदनपारिजातनिर्णयामृतादयः। अतः समासविधिबलाज्ज्येष्ठपुत्रस्य कर्तृत्वे सपत्न्यमातुरन्वारोहणे तत्पुत्रे सत्यपि तद्वार्षिकादिकमविभक्तः सापत्न्यपुत्र एव ज्येष्ठः कुर्यान्नौरसः। वक्ष्यमाणपृथ्वीचन्द्रादिमते तु औरस एव मातुः पृथक् कुर्यात्। एवं बह्वीष्वपि मातृषु ज्ञेयम्। त्रिस्थलीसेतौ पितामहचरणैरप्येवमुक्तम्।

तिथिभेद में तो वार्षिक अलग ही होता है। और वार्षिक में तन्त्र के विधान से अन्यत्र सर्वत्र अलग प्राप्त होने पर नवश्राद्ध ही अलग होता है। परिसंख्या (गिनती) से अन्यत्र (एकदिन में नवश्राद्ध के भिन्न में वार्षिक आदि में तन्त्र ही होता है। अलग कहने पर भी वार्षिक, षोडशश्राद्ध, तीर्थश्राद्ध, सपिण्डन, अन्वष्टका आदि में तन्त्रता ही होगी—ऐसा मदनपारिजात और निर्णयामृत आदि ने कहा है। इसलिए समास (तन्त्र) में विधिबल से ज्येष्ठ पुत्र के कर्ता होने पर सपत्नि माता के अन्वारोहण में उसके पुत्र के रहने पर भी उसका वार्षिक आदि अविभक्त सापत्नपुत्र ही ज्येष्ठ करे, औरस न करे। आगे कहे हुए पृथ्वीचन्द्रादि के मत में तो औरस ही माता का अलग श्राद्ध करे। इसप्रकार बहुत सी माताओं में भी जानना चाहिये। त्रिस्थलीसेतु में पितामहचरणों ने भी यही कहा है।

यत्तु गार्ग्यः—एकचित्यां समारूढौ दम्पती निधनं गतौ। पृथक् श्राद्धं तयोः कुर्यात् ओदनं च पृथक् पृथक्॥ ओदनम्=पिण्डः। तन्नवश्राद्धविषयम्।

जो गार्ग्य ने कहा है—दम्पति स्त्री और पुरुष एक साथ मर गये हों वे एक ही चिता में समारूढ (दग्ध) हो गये हों उन दोनों का अलग श्राद्ध तथा ओदन (पिण्डदान) अलग अलग करे। ओदन माने-पिण्ड। वह नवश्राद्ध के विषय में है।

यत्तु भृगुः—या समारोहणं कुर्याद्भर्तुश्चित्यां पतिव्रता। तां मृताहनि सम्प्राप्ते पृथक्पिण्डैर्नियोजयेत्॥ प्रत्यब्दं च नवश्राद्धं युगपत्तौ समापयेत्॥ तद्येषां वार्षिकमेकोद्दिष्टमुक्तं तद्विषयम्। प्रत्यब्दं मृताहनीत्यन्वयः। नवश्राद्धं युगपदिति दर्शे वर्गद्वयवदेकतन्त्रेण पृथगित्यर्थमाह हेमाद्रिः। एतन्मृततिथिभेदविषयमिति पृथ्वीचन्द्रनिर्णयामृताद्याः। देवयाज्ञिकोऽप्येवम्।

जो भृगुने कहा, है—जो पतिव्रता पत्नी पति की चिता में समारोहण (आरोहण-चढ़ना) करे। उसका मरणदिन के प्राप्त होनेपर अलग पिण्डोंमें नियोजन करे। प्रतिवार्षिक और नवश्राद्ध एकसाथ समाप्त करे। वह

जिनका वार्षिक और एकोद्दिष्ट कहा है, उसके विषय में है। प्रत्यब्द (एकोद्दिष्ट को करता हुआ प्रत्यब्दश्राद्ध मरणदिन में अलग अलग पिण्ड को दे।) का तो मरणदिन में अन्वय है। नवश्राद्ध भी एक साथ होता है। अमावास्या में दोनों वर्ग के सदृश एकतन्त्र से प्रधान अलग कहा है यह अर्थ हेमाद्रि ने कहा है। यह मरणतिथि के भेद का विषयक है—यह पृथ्वीचन्द्र, निर्णयामृत आदि ने कहा है। (पृथक् पिण्ड में नियोजन करे। मृततिथि एक होने पर तो एक ही पिण्ड होगा।) देवयाज्ञिक ने भी यही कहा है।

पराशरमाधवस्तु—गार्ग्यभृग्वादिवचनाल्लौगाक्षिवाक्ये समासेन पाकादितन्त्रैक्येन दर्शे वर्गद्वयवत्पृथक्श्राद्धं कुर्यात् नवश्राद्धं च तथा इत्याह।

पराशरमाधव ने कहा है—(गार्ग्यः—एकचित्यां समारूढौ दम्पती निधनं गतौ। पृथक् श्राद्धं तयोः कुर्यादोदनं च पृथक् पृथक्॥) (भृगुः—एककाले गतासूनां बहूनामथवा द्वयोः।[1] तन्त्रेण श्रपणं कृत्वा कुर्याच्छ्राद्धं पृथक् पृथक्॥) आदि—एकचित्यां समारूढौ म्रियेते दम्पती यदि। तन्त्रेण श्रपणं कुर्यात्पृथक्पिण्डं समापयेत्॥) गार्ग्य, भृगु आदि के वचन से लौगाक्षि के वाक्य में समास (तन्त्र) से पाक आदि (विश्वेदेवादिग्रह) के तन्त्र से अमावास्या में दोनों वर्ग के सदृश अलग श्राद्ध और नवश्राद्ध करे—एसा कहा है।

पृथ्वीचन्द्रचन्द्रिकादयस्तु—द्वयोरेकपिण्डदानं लौगाक्षिवचनं चापद्विषयम्। पृथक् पिण्डदानं तु मुख्यः कल्पः।

पृथ्वीचन्द्र, चन्द्रिका आदि ने कहा है—दोनों का एक पिण्डदान होता है—यह लौगाक्षि वचन आपद् विषयक (नवश्राद्ध को युगपत् समाप्त करे—यह आपद्परक ही जानना चाहिये) है। अलग पिण्डदान तो मुख्यकल्प है।

तदाह बृहत्पराशरः—आरुह्य भर्तुश्चितिमङ्गनायाः प्राप्नोति मृत्युं खलु सत्त्वयुक्ता।
एकादशाहे तु तयोर्विधेयं श्राद्धं पृथक् स्वर्गमवेक्ष्य सद्भिः॥

उसी बात को वृद्धपराशर ने कहा है—जो स्त्री सत्वगुण से युक्त होकर पति की चिता में चढ़कर मृत्यु को प्राप्त होती है। एकादशाह के दिन में तो अच्छे लोग स्वर्ग के इच्छुक इन दोनों का अलग श्राद्ध करें।

एकत्वमिच्छन्ति मतिप्रहीणा एकादशाहादिषु ये नृनार्योः।
ते स्वर्गमार्गं विनिहत्य कुर्युः स्त्रीसत्वघातान्नरकाधिवासम्॥

जो बुद्धि से हीन पुरुष एकादशाह आदि दिनों में पुरुष और स्त्री एकत्व की इच्छा करते हैं वे स्वर्गमार्ग को नाशकर स्त्री सत्वघात से नरक में निवास करते हैं।

भर्त्रा सह मृता या तु नाकलोकमभीप्सती। सार्हेच्छ्राद्धं पृथक पिण्डान् नैकत्वं तु स्मृतं तयोः॥
पृथगेव हि कर्तव्यं श्राद्धमेकादशाहिकम्। यानि श्राद्धानि सर्वाणि तान्युक्तानि पृथक् पृथक्॥ इति।

जो स्वर्गलोग को चाहनेवाली स्त्री पति के साथ मरती है वह श्राद्ध और पिण्डों को अलग चाहती है। इन दोनों की एकता नहीं कही है। एकादशाह आदि श्राद्ध अलग ही करना चाहिये। जितने श्राद्ध हैं उन सबों को अलग अलग करना कहा है।

विश्वादर्शेऽपि—मातुर्गयाष्टकावृद्धिमृताहेषु महालये।
श्राद्धं कुर्यात् पृथक् दैवं तन्त्रं चानुगतावपि॥

विश्वादर्श में भी कहा है—माता के अन्वारोहण में भी—गयाश्राद्ध, अष्टका, वृद्धि, क्षयाह और महालयश्राद्ध ये अलग अलग करे तथा उन दोनों का दैवश्राद्ध तन्त्र से करे।

एकचित्यां समारुह्य मृतयोरेकबर्हिषः। पित्रोः पिण्डान् पृथक् दद्यात् पिण्डं त्वापत्सु तत्सुतः॥ इत्यग्निस्मृतेरित्याहुः।

१—यहाँ की टिप्पणी कृष्णभट्टी देखनी चाहिये।

एकचिता में आरूढ होकर एककुशा पर जो माता और पिता मृत्यु को प्राप्त हुए हैं उनका पिण्ड अलग अलग आपत्ति में उनका पुत्र (नवश्राद्ध युगपत् समाप्त करे—यह आपद् विषयक है) पिण्ड दे—यह अग्निस्मृति में कहा है।

यत्तु षट्त्रिंशन्मते—एकत्वं सा गता भर्तुः पिण्डे गोत्रे च सूतके। न पृथक् पिण्डदानं तु तस्मात् पत्नीषु विद्यते ॥ इति, तद्दर्शादिपरम् ।

जो षट्त्रिंशन्मत में कहा है—स्त्री पति के साथ पिण्ड, गोत्र और सूतक में एकता प्राप्त करती है। इसलिये स्त्रियों को पृथक् पिण्डदान नहीं है। वह अमावास्या आदि श्राद्धपरक है।

चन्द्रप्रकाशेऽपि—एकचित्यां समारूढौ दम्पती प्रमृतौ यदि।
पृथक् श्राद्धं प्रकुर्वीत पत्युरेव क्षयेऽहनि ॥

चन्द्रप्रकाश में भी कहा है—यदि स्त्री और पुरुष मृत एकचिता में आरूढ हो गये हों तो पति के ही क्षयाह दिन में अलग श्राद्ध करे।

मृतानामपि भृत्यानां भार्याणां पतिना सह। पूर्वकस्य मृतस्यादौ द्वितीयस्य ततः पुनः ॥ तन्त्रेण श्रपणं कृत्वा श्राद्धं स्वामिक्षयेऽहनि। तृतीयस्य ततः कुर्यात् सन्निपाते क्रमः स्मृतः ॥ इति।

मरे हुए नौकरों का और स्त्रियों का श्राद्ध पति के साथ एक तन्त्र (एक साथ) से श्रपण (पाक बनाकर) कर स्वामी के क्षयदिन में करे। पहले मरे को पहले दे। फिर दूसरे को फिर तीसरे को दे। यह सन्निपातों में (एक साथ मरों में) यही क्रम है।

सहगमने सर्वत्र श्राद्धार्थमेकपाक इत्याह मदनरत्ने प्रचेताः—एकचित्यां समारूढौ म्रियेते दम्पती यदि। तन्त्रेण श्रपणं कुर्यात् पृथक् पिण्डं समावपेत् ॥ पृथ्वीचन्द्रोदयेऽप्येवम्। अत्र भर्तुराशौचमध्येऽन्यदिनेऽनुगमनेन स्त्रीमरणे पतिमरणदिनगणनयाशौचपिण्डदानैकादशाहादि कार्यम्। नात्र पक्षिणीवृद्धिः।

सहगमन में सर्वत्र श्राद्ध के लिए एकपाक मदनरत्न में प्रचेता ने कहा है—एकचिता में यदि समारूढ होकर स्त्री और पुरुष मर जांय तो तन्त्र से श्रपण करे और पिण्डदान अलग अलग करे। पृथ्वीचन्द्रोदय में भी यही है। यहाँ पर पति के आशौच के मध्य में अन्य दिन में (अनुगमन से) स्त्री के मरने में पति के मरणदिन की गणना से आशौच, पिण्डदान, एकादशाह आदि करे। यहाँ पर पक्षिणी (डेढ दिन) वृद्धि नहीं होती है।

मृतं पतिमनुव्रज्य पत्नी चेदनलं गता। न तत्र पक्षिणी कार्या पैत्रिकादेव शुद्ध्यति ॥
पुत्रोऽन्यो वाग्निदस्तस्यास्तावदेवाशुचिस्तयोः। नवश्राद्धं सपिण्डं च युगपत्तु समापयेत् ॥ इति षडशीतिमतात्।

षडशीतिमत से कहा है—मरे हुए पति के अनुगमन से यदि पत्नी अग्नि में चली गयी हो तो वहाँ पर 'पक्षिणी' की वृद्धि न करे। उसकी शुद्धि तो पिता की शुद्धि से ही होती है।

पुत्र या अन्य जो अग्नि को देनेवाला है वह तब तक ही अपवित्र है जब तक उन दोनों का नवश्राद्ध तथा सपिण्डन एक साथ समाप्त न करे।

यदा नारी विशेदग्निं प्रियस्य प्रियवाञ्छया। तदाशौचं विधातव्यं भर्त्राशौचक्रमेण हि ॥ इति लघुहारीतोक्तेश्च। भर्त्राशौचोत्तरमन्वारोहणे तु त्र्यहमाशौचम्। ऋग्वेदवादात् साध्वी स्त्री न भवेदात्मघातिनी। त्र्यहाशौचे तु निर्वृत्ते श्राद्धं प्राप्नोति शास्त्रतः ॥ इति ब्राह्मोक्तेरिति पृथ्वीचन्द्रापरार्कौ। एतदन्वारोहणे एव नत्वेकचितौ। ऋग्वेदवादः 'इमा नारीरविधवाः' इत्यादिः। एतत्सवर्णापरमित्यन्ये।

और लघुहरीत में कहा है—अपने प्रिय पति की इच्छा से जब स्त्री अग्नि में प्रवेश करे तो पति के आशौच क्रम से ही आशौच का विधान करना चाहिये।

पति के आशौचोत्तर अन्वारोहण में तो तीन दिन का आशौच होता है। ऋग्वेद के विवाद में साध्वी स्त्री आत्मघातिनी न हो। तीनदिन के आशौच की निवृत्ति हो जाने पर शास्त्र से श्राद्ध प्राप्त होता है—यह ब्रह्मपुराण में कहा है—एसा पृथ्वीचन्द्र तथा अपरार्क कहते हैं। यह अन्वारोण में ही है एकचिति में ऋग्वेदवाद नहीं है। ऋग्वेदवाद—इमा [1]नारीरविधवा-इत्यादि मन्त्र हैं। अन्य कहते हैं कि—यह सवर्णा स्त्री परक है।

स्मार्तगौडास्तु—देशान्तरे मृते पत्यौ साध्वी तत्पादुकद्वयम्। इत्युपक्रम्य, ब्राह्मे—'त्र्यहाशौचे तु निर्वृत्ते' इत्युक्तेर्भर्त्राशौचोत्तरमन्वारोहणे त्र्यहः, सहगमने तु पूर्णं दशाहादि। पिण्डास्तु दशापि सहैव।

स्मार्तगौड तो कहते हैं—देशान्तर में पति के मरने पर साध्वी स्त्री उसकी पादुकाद्वय (खडांउ) को ग्रहण कर जल कर भस्म हो जाय—एसा उपक्रम कर ब्रह्मपुराण में कहा है कि—तीनदिन का आशौच बीतने पर एसा कहने पर पतिके आशौचोत्तर अन्वारोहण में तीन दिन और साथ गमन में तो पूर्ण दशाहादि (दश दिन का आशौच) होता है। पिण्ड तो दश ही साथ होते हैं।

तथा च जनकशूलपाणिशुद्धितत्त्वधृतव्यासः—संस्थितं पतिमालिङ्ग्य प्रविशेद्या हुताशनम्।
तस्याः पिण्डादिकं देयं क्रमशः पतिपिण्डवत्॥

और जनकशूलपाणि शुद्धितत्त्व में व्यास का मत है—मृत पतिको अलिंगनकर जो स्त्री हुताशन (अग्नि) में प्रवेश करती है उसका पिण्ड आदि पति पिण्ड के सदृश क्रम से देना चाहिये।

अन्विता पिण्डदानं तु यथा भर्तुर्दिने दिने। तदन्वारोहिणी यस्मात्तस्मात्सा नात्मघातिनी॥ इति विष्णूक्तेश्च। पृथक्चितौ तु भर्त्राशौचमध्ये तदूर्ध्वं वा सत्यां त्र्यहेण दशपिण्डाः,

और विष्णु ने कहा है—जो पति के साथ अनुगमन करनेवाली स्त्री प्रतिदिन में पतिके समान पिण्डदान को प्राप्त करती है। इसकारण से वह अन्वारोहिणी है वह आत्मघातिनी नहीं है।

अलग चिता में तो पति के आशौच के मध्य में या उसके बाद होने पर तीन दिन में दश पिण्ड दे।

अन्वितायाः प्रदातव्या दशपिण्डास्त्र्यहेण तु। स्वाम्याशौचे व्यतीते तु तस्याः श्राद्धं प्रदीयते॥ इति तत्रैव पैठीनसिस्मृतेः। भर्त्राशौचोत्तरं मृतौ तु चतुर्थेऽह्नि श्राद्धम्। शूलपाणिना त्विदमग्निपुराणीयत्वेनोक्तम्—'युद्धहतस्य सद्यःशौचे त्वन्वारोहणे त्रिरात्रम्। एकचितौ तु 'संस्थितं पतिम्' इति प्रागुक्तव्यासोक्तेः सद्यः शौचमित्याहुः। अन्यसपिण्डाशौचमध्ये विदेशमृताऽन्वारोहणं त्वनाशक्यमेव, शुचिताया अङ्गत्वात्। अन्ये तु रजोवत्याः सूतिकायाश्चागमननिषेधादितराशौचस्यानिषेधः। अन्यथा प्रत्यक्षभर्तृमरणे का गतिरित्याहुः। तन्मूलवचनं विना चिन्त्यमेव।

वहीं पर पैठीनसिस्मृति में कहा है—अन्विता (बादमें जानेपर) स्त्री को तीनदिन में दश पिण्ड देना चाहिये। स्वामी के आशौच के बीतने पर उसका श्राद्ध करे। पति के आशौच के बाद मरने पर तो चौथे दिन श्राद्ध करे। शूलपाणि ने तो अग्निपुराणके वचनसे कहा है—युद्ध में मरने पर सद्यः आशौच होता है। और अन्वारोहण में तीनदिन का होता है। एक चिता में पति के साथ मरने पर पहले के कहे हुए व्यास के वचन से सद्यः आशौच होता है एसा कहा है। अन्य सपिण्ड के आशौच के मध्य में विदेश में मरने पर

१—इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं विशन्तु। अनश्र वाऽनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे॥ उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गता सुमेतमुप शेप एहि। हस्तग्रामस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूय॥ धनुर्हस्तादाददानो मृतस्याऽस्मे क्षत्राय वर्चसे बलाय। अत्रैव त्वमिह वयं सुवीरा विश्वः स्पृधो अभिमातीर्जयेम॥ उप सर्प मातरं भूमिमेतामुरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवाम्। ऊर्णम्रदा युवतिर्दक्षिणायत एषा त्वा पातु निर्ऋतेरुपस्थात्॥ (ऋ० १०।१८।७-१०)।

अन्वारोहण में तो शंका ही न हो सकती है। अशुचि का अंगत्व नहीं है। अन्य तो कहते हैं—रजोवती या सूतिका का सहगमन निषेध है। इतर आशौच का निषेध नहीं है। अन्यथा प्रत्यक्ष पति के मरने पर क्या गति होगी—एसा कहा है। उसका मूल वचन के विना चिन्त्य ही है।

स्मृत्यर्थसारेऽपि—'सहगमने सर्वत्र श्राद्धपिण्डादौ पाकैक्यं कालैक्यं कर्तैक्यं चेति'। या तु पतिमुद्दिश्याऽन्यकालेऽन्यतिथावान्वारुढा तस्याः श्राद्धं तत्क्षयतिथौ कार्यं न भर्तृतिथौ। 'पारणे मरणे नृणां तिथिस्तात्कालिकी स्मृता। इति स्कान्दात्, 'तिथिरेकैव जायते' इत्यादिवचनाच्चेतिमदनरत्नपारिजातपृथ्वीचन्द्रादयः।

स्मृत्यर्थसार में कहा है—सहगमन में सर्वत्र श्राद्ध पिण्ड आदि में एकपाक, एकसमय और एक कर्ता होता है। जो पति को उद्देश्य कर अन्य समय में या अन्य तिथि में अन्वारूढ़ होती है उसका श्राद्ध उसके क्षयतिथि में करे पति की तिथि में न करे। स्कन्दपुराण में कहा है—पार्वण में तथा मनुष्यों के मरण में तात्कालिकतिथि का ग्रहण करे। तिथि एक ही होती है इत्यादि वचन से—यह मदनपारिजात पृथ्वीचन्द्रादि ने कहा है।

अन्ये तु तस्याः पतिमरणेन मृतप्रायत्वात्, सहाग्रतः पृष्ठतो वा तद्भक्त्या म्रियते यदि। तस्याः श्राद्धं प्रदातव्यं पृथक्पत्युः क्षयेऽहनि॥ इति स्मृत्यन्तरात्।

अन्य तो कहते हैं—पति के मरने से मरण के सदृश वह स्त्री है। स्मृत्यन्तरमें कहा है—साथ, आगे या पीछे पति की भक्ति से यदि मर जाय तो उस स्त्री का श्राद्ध अलग पति मृत्यु दिन से देना चाहिये।

अग्रतः पृष्ठतो वापि तद्भक्त्या म्रियते यदि। तस्याः श्राद्धं सुतैः कार्यं पत्युरेव क्षयेऽहनि॥ इति पुराणसमुच्चयाच्च भर्तृतिथावेवेत्याहुः। अत्र मूलं चिन्त्यम्।

और यदि आगे या पीछे वह भक्ति से मर जाय तो उसका श्राद्ध पुत्र पति के क्षय दिन से ही करें। एसा पुराणसमुच्चय का वचन पति की तिथि में ही करे—कहा है। इसका मूल विचारणीय है।

अत्र विशेषो हेमाद्रौ स्मृत्यन्तरे—माता मङ्गलसूत्रेण म्रियते यदि तद्दिने। उद्दिश्य विप्रपङ्क्तौ तां भोजयेच्च सुवासिनीम्॥

यहाँ पर विशेष हेमाद्रि में स्मृत्यन्तर का वचन है—यदि माता मंगलसूत्र (दाक्षिणात्यों के यहाँ विवाह के समय गलेमें स्त्री मंगलसूत्र को धारण करती हैं।) को धारण कर उसी दिन मर जाय तो उसको उद्देश्य कर ब्राह्मण पंक्ति में सुवासिनी भोजन करावे।

(श्राद्धसंपाते निर्णयः)

अथ श्राद्धसम्पाते निर्णयः। अत्र पित्रोर्मृततिथ्येकत्वे मरणक्रमेण दर्शे वर्गद्वयवत्तन्त्रेण श्राद्धं कुर्यात्। पौर्वापर्याज्ञाने तु पितृपूर्वं कुर्यादिति हेमाद्रिः।

अब श्राद्ध के पात (आपस में मिलन) में निर्णय कहते हैं। यहाँ पर माता तथा पिता की मरणतिथि एक हो तो मरण क्रम से अमावास्या में वर्गद्वय के सदृश तन्त्र से श्राद्ध करे। पौर्वापर्यके अज्ञान में तो पितृ पूर्वक करे—यह हेमाद्रिमत है।

माधवादयस्तु—पितृश्राद्धे समं प्राप्ते नवे पर्युषितेऽपि वा। पितृपूर्वं सुतः कुर्यादन्यत्रासन्नियोगतः॥ इति कार्ष्णाजिनिस्मृतेः। सर्वत्र पितृपूर्वं भिन्नं प्रयोगमाहुः।

माधव आदि कहते हैं—माता और पिता का श्राद्ध एक साथ नवीन या पुरातन प्राप्त होने पर पुत्र पितृपूर्वक करे। माता पिता से भिन्न में तो पृथक्-पृथक् करे। एसा कार्ष्णाजिनिस्मृति में कहा है। सर्वत्र पितृपूर्वक भिन्नप्रयोग में कहा है।

(पार्वणैकोद्दिष्टयोः संपाते विचारः)

पार्वणैकोद्दिष्टयोः सम्पाते माधवीये जाबालिः—यद्येकत्र भवेयातामेकोद्दिष्टं च पार्वणम्।
पार्वणं त्वभिनिर्वर्त्य एकोद्दिष्टं समाचरेत्॥

पार्वण और एकोद्दिष्ट के संपात (मिलन) में जाबालि ने कहा है—यदि एक दिन एकोद्दिष्ट तथा पार्वण प्राप्त हो तो पार्वण को कर एकोद्दिष्ट को करे।

(गृहदाहादिना युगपन्मरणे विचारः)

गृहदाहादिना युगपन्मरणे भृगुः—एककाले गतासूनां बहूनामथवा द्वयोः।
तन्त्रेण श्रपणं कृत्वा कुर्याच्छ्राद्धं पृथक पृथक्॥

गृहदाह आदि से एक साथ मरने पर भृगु में कहा है—एकसमय में बहुत या दो का प्राण निकल जाने वालों का तन्त्र से पाक बना कर श्राद्ध को अलग अलग करे।

पूर्वकस्य मृतस्यादौ द्वितीयस्य ततः पुनः। तृतीयस्य ततः कुर्यात्सन्निपातेष्वयं क्रमः॥

पहले मरे का आदि में, फिर दूसरे मरेको फिर तीसरे मृत का पिण्ड दे। यह सन्निपात में क्रम है।

ऋष्यशृङ्गः—भवेद्यदि सपिण्डानां युगपन्मरणं तदा।
सम्बन्धासत्तिमालोच्य तत्क्रमाच्छ्राद्धमाचरेत्॥

ऋष्यशृंग ने कहा है—सपिण्डनजनोंकी यदि एक साथ मृत्यु हो जाय तो सम्बंध के समीपता का विचार उसी क्रम से श्राद्ध करे।

गारुडे—एकेनैव तु पाकेन श्राद्धानि कुरुतेऽत्र हि। विकिरं त्वेकतः कुर्यात् पिण्डान् दद्यात् पृथक् पृथक्॥ अत्रानुगमने च दाहसपिण्डनादौ विशेषं वक्ष्यामः।

गरुड़पुराण में कहा है—यहाँ पर एक ही पाक से श्राद्धों को करे। विकर तो एक करे और पिण्डों को अलग अलग दे। यहाँ पर अनुगमन में और दाह सपिण्डन आदि में विशेष कहेंगें।

अत्रिः—बहूनामथवा द्वाभ्यां श्राद्धं चेत्स्यात्समेऽहनि।
तन्त्रेण श्रपणं कृत्वा श्राद्धं कुर्यात् पृथक्-पृथक्॥

अत्रि ने कहा है-बहुतों का या दो का समदिनों में श्राद्ध प्राप्त हो तो तन्त्र से श्रपण (पाक) कर श्राद्धों को अलग अलग करा दे।

पुलस्त्यः—महालये गयाश्राद्धे गतासूनां क्षयेऽहनि। तन्त्रेण श्रपणं कृत्वा श्राद्धं कुर्यात्पृथक्-पृथक्॥ इदं च पृथक्पाकेन भिन्नश्राद्धाशक्तौ। (श्राद्धे सपिण्डसम्प्राप्ते पिण्डहीने तु वै यदा। श्राद्धं कृत्वा सपिण्डं तु पिण्डहीनमथाचरेत्॥ सपिण्डं पिण्डसहितमित्यर्थः।) पृथक्पाकेन सम्बन्धासत्या श्राद्धभेदस्तु मुख्यः पक्षः,

एकत्रैव दिने श्राद्धद्वयं प्राप्तं यदा तदा। चरेदेव पुरा वर्षान्पितुर्मातुश्च तत्सुतः॥

एकस्मिन् यः करोत्यह्नि द्वयोः श्राद्धं यदा द्विजः। तदा पूर्वं मृतस्यादौ कृत्वा स्नात्वा यथाविधि। पश्चात्पश्चान्मृतस्यैव पृथक्पाकैः समाचरेत्। नैकस्मिन् दिवसे श्राद्धं त्रयाणां कुत्रचिद् द्विजः॥ एकः कुर्यात्तथा प्राप्ते अन्यो भ्राता समाचरेत्। भ्रातर्यविद्यमाने तु तत्परेऽह्नि समाचरेत्॥ अन्यथा श्राद्धहन्ता स्यात् श्राद्धसंकरकृद्भवेत्। इत्याश्वलायनोक्तेरिति पृथ्वीचन्द्रः।

पुलस्त्य ने कहा है—महालय और गयाश्राद्ध में, मरों का क्षयदिन में तन्त्र से श्रपण (पाक) करे तथा श्राद्ध को अलग अलग करे। यह (पृथ्वीचन्द्रमत से) अलग पाक से भिन्न श्राद्ध करने की अशक्ति में है। अलग पाक से सम्बन्ध की अशक्ति में श्राद्ध भेद का जानना मुख्य पक्ष है। जब एक ही दिन में दो श्राद्ध प्राप्त हों तो उसका पुत्र प्रथम पिता और माता का श्राद्ध करे। जब द्विज एकदिन में दो व्यक्तियों को श्राद्ध करे तो पहले मृतक का आदि में कर यथाविधि स्नान कर पीछे मरे का अलग पाक का निर्माण कर करे। एकदिन में द्विज तीन का श्राद्ध न करे। वैसा प्राप्त होने पर एक करे दूसरा भाई करे। भाई के न रहने पर तो उसको दूसरे दिन करे। अन्यथा तो श्राद्ध का नाश करने वाला श्राद्ध के संकर का कर्ता होता है। एसा आश्वलायन में पृथ्वीचन्द्र ने कहा है।

कात्यायनः—द्वे बहूनि निमित्तानि जायेरन्नेकवासरे ।
नैमित्तिकानि कार्याणि निमित्तोत्पत्त्यनुक्रमात् ॥

कात्यायन ने कहा है—एकदिन में दो या बहुतों का निमित्त प्राप्त हो तो निमित्तोत्पत्ति के अनुक्रम से नैमित्तिको का श्राद्ध करे ।

जाबालिः—श्राद्धं कृत्वा तु तस्यैव पुनःश्राद्धं न तद्दिने ।
नैमित्तिकं तु कर्तव्यं निमित्तानुक्रमोदयम् ॥

जाबालि ने कहा है—एक व्यक्ति ही श्राद्धको कर फिर से उसीदिन में श्राद्ध न करे । निमित्त के अनुक्रम से नैमित्तिक श्राद्ध को करना चाहिये ।

कालादर्शे—नित्यदार्शिकयोश्चोदकुम्भमासिकयोरपि । दार्शिकस्य युगादेश्च दार्शिकालभ्ययोगयोः ॥ दार्शिकस्य च मन्वादेः सम्पाते श्राद्धकर्मणः । प्रसङ्गादितरस्यापि सिद्धेरुत्तरमाचरेत् ॥

कालदर्श में कहा है—नित्यश्राद्ध, अमावास्याश्राद्ध, उदक-कुंभ तथा मासिकश्राद्ध, अमावास्या और अलभ्ययोगप्राप्त श्राद्ध, अमावास्या तथा मन्वादि श्राद्धों का संपात एक साथ प्राप्त हो जाने पर प्रसंग से एक को करके अन्य श्राद्ध करे ।

अस्य देवताभेदेऽपवादमाह स एव—नित्यस्य चोदकुम्भस्य नित्यमासिकयोरपि । (दर्शस्य चोदकुम्भस्य दार्शिकाब्दिकयोरपि ॥) नित्यस्य चाब्दिकस्यापि दार्शिकाब्दिकयोरपि ॥ युगाद्याब्दिकयोश्चैव मन्वाद्याब्दिकयोस्तथा । प्रत्याब्दिकस्य चालभ्य योगेषु विहितस्य च ॥ सम्पाते देवताभेदात् श्राद्धं युग्मं समाचरेत् । निमित्तानियतिश्चात्र पूर्वानुष्ठानकारणम् ॥ पित्रोस्तु पितृपूर्वत्वं सर्वत्र श्राद्धकर्मणि ।

देवताभेद में अपवाद उसने ही कहा है—नित्य और उदकुंभ, नित्य तथा मासिक, दर्श (अमावास्या) और उदकुंभ, दर्श तथा मासिक, नित्य और आब्दिक, दर्श और आब्दिक, युगादि और आब्दिक, मन्वादि तथा आब्दिक, प्रत्याब्दिक तथा अलभ्ययोग के संपात में देवताभेद (उदकुंभमासिकाब्दिकेष्वपत्नीकाः पित्रादयः, अन्यत्र सपत्नीका इति देवताभेदः, नित्यदार्शिकयोः षड्दैवत्यत्वान्मासिकैकोद्दिष्टयोरेकोद्दिष्टत्वाद्देवताभेदः, नित्यदार्शिकयुगादिमन्वादिप्रभृतीनामलभ्ययोगनिमित्तानां षड्दैवत्वात्प्रत्याब्दिकस्य त्रिदैवत्यत्वादेकोद्दिष्टत्वाद्वा देवताभेदः, अतस्तत्र तन्त्रप्रसङ्गौ नेत्यर्थः-कृष्णंभट्टीटीकायाम्) से दो श्राद्ध करे । यहाँपर निमित्तों का नियम कहीं है पूर्वानुष्ठान कारण है । माता और पिताके श्राद्धके कर्म में सर्वत्र पितृपूर्वक श्राद्ध होता है ।

माधवीये स्मृतिसङ्ग्रहे—काम्यतन्त्रेण नित्यस्य तन्त्रं श्राद्धस्य सिद्ध्यति ।

माधवीय स्मृतिसंग्रह में कहा है—काम्यश्राद्ध के तन्त्र से नित्यश्राद्ध की तन्त्रता सिद्ध होती है ।

(श्राद्धाङ्गतर्पणकथनम्)

अथ श्राद्धाङ्गतर्पणम् । पारिजाते पृथ्वीचन्द्रोदये च **गर्गः**—पूर्वं तिलोदकं कृत्वा अमाश्राद्धं तु कारयेत् । प्रत्यब्दे न भवेत्पूर्वं परेऽहनि तिलोदकम् ॥ पक्षश्राद्धे हिरण्ये च अनुव्रज्य तिलोदकम् । न च नित्यतर्पणस्यैवायं परेऽह्न्युत्कर्षः, न तु श्राद्धाङ्गतर्पणमस्तीति वाच्यम् । यस्तर्पयति तान् विप्रः श्राद्धं कृत्वा परेऽहनि । पितरस्तेन तृप्यन्ति न चेत्कुप्यन्ति वै भृशम् ॥ इति गर्गेण फलनिन्दार्थवादाभ्यामङ्गत्वेनोक्तेः । श्राद्धप्रक्रमाद्वार्षिकम् ।

अब श्राद्धाङ्गतर्पण कहते हैं । पारिजात और पृथ्वीचन्द्रोदय में गर्ग ने कहा है—पहले तिलोदक (तिल और जल) का दान करके अमाश्राद्ध करे । (यहाँ पर णिजविवाक्षितः । कुर्यादित्यर्थः । एतयाऽन्नाद्यकामं याजयेत् इतिवत् ।) वार्षिक में पहले तिलोदक नहीं होता है दूसरे दिन होता है । पक्षश्राद्ध में और हिरण्यश्राद्ध में तिलोदक बाद में दे ।

कहो कि नित्यतर्पण का ही यह पर दिन उत्कर्ष है । यह श्राद्धाङ्गतर्पण नहीं है एसा कहेंगे जो

ब्राह्मण श्राद्ध को कर जो दूसरे दिन पितरों का तर्पण करता है उससे पितर तृप्त होते हैं। नहीं तो बारंबार निश्चय कुपित होते हैं। इस गर्ग से फल (अन्यप्रकरण में अन्य के फलकी निन्दा नहीं होती है। कहो कि—अङ्ग तर्पण क्यों करना चाहिये। और पितृशब्द जनकपुरुषपर है या जनकपर है। भ्रात्रादि के वार्षिक में उसकी उपपत्ति नहीं है।) 'यथा-पशुपुरोडाशार्देवतैक्यं तथैव श्राद्धतर्पणयोरपीति भावः। तद्वत्।) निन्दा और अर्थवाद से अंगत्व कहा है। श्राद्धप्रकरण से वार्षिक कहा है।

बृहन्नारदीयेऽप्याब्दिकं प्रक्रम्य—परेद्युः श्राद्धकृन्मर्त्यो यो न तर्पयते पितॄन्। तस्य ते पितरः क्रुद्धाः शापं दत्त्वा व्रजन्ति हि॥ पितृशब्दश्च श्राद्धेज्यवर्गपरः। तेन तर्पणस्य पशुपुरोडाशयागवत् प्रस्तरप्रहरणवच्चेष्टदेवतासंस्कारकता। तेनाब्दिकदिने नित्यं स्वपित्रादितर्पणं कार्यमेव श्राद्धाङ्गभूतस्यैव परेद्युरुक्तेः।

बृहन्नारदीयपुराण में भी आह्निकप्रकरण में कहा है—श्राद्ध करनेवाला मनुष्य दूसरे दिन पितरों का तर्पण नहीं करता है। निश्चय उसके वे पितर क्रोधित हो शाप को देकर चले जाते हैं। और पितृशब्द श्राद्ध में पूजने योग्यों के वर्ग का बोधक है। इससे तर्पण का पशु-पुरोगशयाग[1] की (यद्देवत्यः पशुस्तद्देवत्यः पुरोडाशः (शत०-३-१) की तरह यद्दैवत्यं तद्दैवत्यमेव तर्पणमित्यर्थः।) तरह। प्रस्तरप्रहरण की तरह इष्टदेवता का संस्कार होता है। इससे (नित्यतर्पण के उत्कर्षाभाव से) (पित्रोः क्षयाहे संप्राप्ते यः कुर्यान्नित्य तपणम्। आसुरं तर्पणं प्रोक्तं तत्तोयं रुधिरं भवेत्॥ इति तु तिलतर्पणपरमितिभावः।) आह्निकदिन में अपने पिता आदि का नित्यतर्पण करना ही चाहिये। श्राद्धांगभूतका दूसरे ही दिन करे।

तदुक्तम्—प्रत्यब्दाङ्गं तिलं दद्यान्निषेधेऽपि परेऽहनि।
वर्गैकस्य वचो येषामन्येषां तु विवर्जयेत्॥

उसी को कहा है कि—वार्षिक को अंगभूत तर्पण निषेध दिन में भी (भानौ, भौमे, त्रयोदश्याम् इत्यादि में) दूसरे दिन करे। एक वर्ग (वंश) में हों तो, अन्यों का तो त्याग करे।

(क्वचिद्विशेषमाह)

क्वचिद्विशेषमाह गर्गः—कृष्णे भाद्रपदे मासि श्राद्धं प्रतिदिनं भवेत्। पितॄणां प्रत्यहं कार्यं निषिद्धाहेऽपि तर्पणम्॥ तर्पणम्=तिलतर्पणम्, निषिद्धाहेऽपि इत्युक्तेः।

सकृन्महालये श्वः स्यादष्टकास्वत एव हि। अत्र सप्तमीनिर्देशात् अङ्गिता स्फुटैव। तत्र जयान् जुहुयात् मन्द्रं प्रायणीयायां मन्दं प्रातःसवने इत्यादिवत्।

कहीं विशेष गर्ग ने कहा है—भाद्रपदमासके कृष्णपक्ष में प्रतिदिन श्राद्ध करे। और प्रतिदिन निषिद्ध दिन में भी पितरों का तर्पण करे। तर्पण माने—तिलसे तर्पण करे। निषिद्धदिन में भी करे—एसा कहा है।

१—श्राद्धांगतर्पण के विचार प्रसंग में यह विचार किया गया है कि यह तर्पण पशुपुरोडाशयाग की तरह इष्टदेवता का संस्कारक है। अर्थात्—जहाँ पशुयाग होता है उसका अंगभूत पुरोडाशयाग होता है। पशुयाग के अंगभूत को पुरोडाशयाग कहते हैं। इस अंगयाग में (पशुयाग) में जो देवता हैं वही देवता इसमें हैं। इसीलिए उन्हीं का संस्कार है। इसीलिये मीमांसकों की प्रसिद्धि है कि पशुपुरोडाशयागदेवता संस्कार के लिये है। इसी में दूसरा दृष्टान्त देते हैं 'प्रस्तरप्रहरण'। इसका यह अभिप्राय है कि—दर्शपूर्णमासेष्टि में प्रधान यागादि होने के बाद किस देवता के लिए याग किया है। किसके लिए छूट गया है उसका अनुसन्धान करने के लिए सूक्तवाकमन्त्र पढ़ा जाता है। उसमें जिनका याग हो चुका है वही देवता है। इस सूक्तवाकमन्त्र से दर्भमुष्टि जो प्रस्तर है उसको अग्नि में प्रक्षेप को प्रहरण कहते हैं। इस प्रहरण से इष्टदेवता का ही संस्कार होता है। क्योंकि इसमें प्रस्तर द्रव्य है। मन्त्र प्रतिपाद्य सभी देवता हैं। इसलिए यह प्रस्तरप्रहरणरूप जो याग है वह इष्टदेवता का संस्कारक होता है। उसी न्याय से श्राद्धांग जो तर्पण है उसमें जो श्राद्ध में देवता है पित्रादि उन्हीं का यह तर्पण है दूसरे का नहीं है। 'येन कर्मणा ईर्त्स्येत् तत्र जयान् जुहुयात्' यह श्रुत है।

सकृत् महालय में दूसरे दिन होता है। और अष्टका के अन्त में ही होता है। यहाँ पर सप्तमी[1] के निर्देश से अंगतास्फुट ही है। वहाँ पर 'जयसंज्ञक मन्त्रों से हवन करे। मन्द्रं प्रायणीया में प्रातःसवन की तरह।

(अस्यापवादो बृहन्नारदीये)

अस्यापवादो बृहन्नारदीये—वृद्धिश्राद्धे सपिण्डयां च प्रेतश्राद्धेऽनुमासिके। सम्वत्सरविमोके च न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥ तदयमर्थः—दर्शे विप्रनिमन्त्रणोत्तरं पाकारम्भोत्तरं वा श्राद्धप्रयोगस्यारब्धत्वात् ब्रह्मयज्ञोत्तरं नित्यतर्पणेनैव श्राद्धाङ्गतर्पणस्य तन्त्रेण प्रसङ्गेन वा सिद्धिः। ततः पूर्वं वैश्वदेवोत्तरं वा ब्रह्मयज्ञकरणे श्राद्धाङ्गतर्पणं पृथक् कार्यम्। पित्रोर्वार्षिके तु नित्यतर्पणं तिलवर्ज्यं कार्यम्। नैव श्राद्धदिने कुर्यात्तिलैस्तु पितृतर्पणम्। श्राद्धं कृत्वाऽपराह्णे च तर्पणं तु तिलैः सह ॥ इति वचनात्।

इसका अपवाद बृहन्नारदीयपुराण में कहा है—वृद्धिश्राद्ध में, सपिण्डन में प्रेतश्राद्ध में, अनुमासिक में और संवत्सर के विमोक (अन्त) में तिलतर्पण न करे। उसका अर्थ यों है—अमावास्या में ब्राह्मण के निमन्त्रण के बाद या पाक के आरंभ के बाद श्राद्धप्रयोग के आरंभ होने से ब्रह्मयज्ञोत्तर नित्यतर्पण से ही श्रद्धांगतर्पण का तन्त्र (अंगों का और प्रधानों का विशेषाग्रहमें तन्त्र) या प्रसंग से सिद्धि होती है। तदनन्तर पहले (निमन्त्रण के पूर्व) या वैश्वदेव के उत्तर ब्रह्मयज्ञ करने में श्राद्धांग तर्पण पृथक् करे। माता और पिता के वार्षिक में तो नित्यतर्पण तिल से रहित करे। श्राद्धदिनों में तिलों से तर्पण न करे। अपराह्न में श्राद्ध को कर तिलों के सहित तर्पण करे ऐसा वचन है।

सप्तम्यां भानुवारे च मातापित्रोर्मृतेऽहनि। तिलैर्यस्तर्पणं कुर्यात्स भवेत्पितृघातकः ॥ इति स्मृतिरत्नावल्यां वृद्धमनूक्तेश्च। अत्र नित्यतर्पणे तिलमात्रनिषेधो नतु तर्पणस्य तिलैरित्यस्य वैयर्थ्यापत्तेः।

स्मृतिरत्नावली में वृद्धमनु का वचन है—सप्तमी और रविवार में, माता तथा पिता के मरण दिन में तिलों से जो तर्पण करना है वह पितृघातक होता है। यहाँ पर नित्यतर्पण में तिलमात्र का निषेध है, तर्पण का नहीं है। क्योंकि—'तिलैः' यह पद व्यर्थ हो जायगा।

यत्तु कातीयम्—उपरागे पितुः श्राद्धे पातेऽमायां च संक्रमे। निषिद्धेऽपि हि सर्वत्र तिलैस्तर्पणमाचरेत्। इति, तत्परेद्युः श्राद्धाङ्गतर्पणविषयमिति केचित्। श्राद्धाशक्तस्य तत्स्थानापन्नतर्पणविषयमिति तु युक्तम्। सकृन्महालये परेद्युस्तर्पणम्। अष्टकासु तु सप्तम्यष्टमीश्राद्धयोरन्ते तदैव वर्गद्वयस्य। अन्वष्टक्ये तु मातृवर्गस्यापि। तीर्थश्राद्धे दर्शवत्। माध्यावर्षादिष्वष्टकावदन्ते। अनेकश्राद्धसम्पाते तु यदि प्रसङ्गासिद्धिस्तदा तदीयमेव तर्पणम्। तन्त्रत्वे तु श्राद्धसमसंख्यत्वे आदावन्ते वा। विषमसंख्यायां बह्वनुरोध इति। तस्मात् श्राद्धाङ्गतर्पणं सिद्धम्।

जो कातीय में कहा है—ग्रहण में पिता के श्राद्ध में (यहाँ पर पिता और माता का उपलक्षण है) व्यतीपात में, अमावास्या में और संक्रान्ति में निषिद्धदिन में भी तिलों से सर्वत्र तर्पण करे। वह दूसरे दिन श्राद्धांग तर्पणविषयक है—यह किसी का मत है। श्राद्ध करने में अशक्त को उसके स्थानापन्न तर्पण विषयक है यह युक्त है। यह कमलाकर का कहना है। सकृत् महालय में दूसरे दिन तर्पण करे। अष्टकाओं

१—यहाँ तत्र यह सप्तम्यन्त है। इससे जिस कर्म में जयादि किये जाते हैं वह अंगी है। अर्थात्-प्रधान है। जयादि अंग हैं। इसीप्रकार 'महालये' यह सप्तमी होने के कारण यह अंगी है। तर्पण उसका अंग है ऐसा समझना चाहिये। इसीप्रकार दूसरा उदाहरण देते हैं वैदिककर्म में मन्त्रोच्चारण प्रसंग में स्वरविशेष का विचार किया गया है। उसमें दीक्षणीयेष्टि में कामस्वर है। जितना उच्च स्वर से बोल सकते हैं उतना बोलें। 'प्रायणीयेष्टि' में मन्द्रस्वर होता है (धीरे से बोले)। आतिथ्येष्टि में और धीरे से बोले। उपसद में उपांशुस्वर है। उपांशु उसको कहते हैं जो बगल में बैठे हैं उनको भी न सुनाई दे। अर्थात्—इन स्थलों में सप्तमी होने से प्रधान (अंगी) है। यह दृष्टान्त का आशय है।

में तो सप्तमी तथा अष्टमी के श्राद्धों के अन्त में दोनों वर्गों का तर्पण करे। अन्वष्टका में तो मातृवर्ग का भी तर्पण करे। तीर्थश्राद्ध में अमावास्या की तरह। माघीपूर्णिमा आदि में तो अष्टका के सदृश अन्त में करे। अनेक श्राद्धके संपात में तो यदि उसकी प्रसंग से सिद्धि हो जाय तो उसी का ही तर्पण करे। तन्त्रत्व में श्राद्ध की समसंख्या में आदि या अन्त में करे। विषमसंख्या में तो बहुतों का अनुरोध से करे। इससे श्राद्धांगतर्पण सिद्ध हो गया।

(तद्विधिकथनम्)

तद्विधिः सङ्ग्रहे—स्नात्वा तीरं समागत्य उपविश्य कुशासने। सन्तर्पयेत्पितॄन् सर्वान् स्नात्वा वस्त्रं च धारयेत्॥ तर्पणोत्तरं नित्यस्नानं कृत्वेत्यर्थः।

अपसव्यं ततः कृत्वा सव्यं जान्वाच्य भूतले। नामगोत्रस्वधाकारैर्द्वितीयान्तेन तर्पयेत्।

उसकी विधि संग्रह में है—स्नान कर तीरपर (किनारे पर) आकर कुशासन पर बैठकर सब पितरों को तृप्तकर स्नान (नित्यस्नान) कर वस्त्र को धारण करे। तर्पण के बाद नित्यस्नान करे—यह अर्थ है। (यहाँ पर पहला स्नान अमन्त्रक है और दूसरा स्नान तो नित्यस्नान है। आदि में मौन होकर स्नान कर कुशों पर बैठकर श्राद्धांगतर्पण कर पीछे नित्यस्नान कर वस्त्र धारण आदि करे—यह अर्थ है। इसप्रकार यह सन्ध्या को न कर ही करना चाहिये। बहुत लोग तो वैसा ही अनुष्ठान करते हैं। मयूख का तो कहना है—श्राद्धांगतर्पण सन्ध्याको कर ही करे। क्योंकि उसके विना अन्य कर्म में अधिकार नहीं है। 'सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यः' सन्ध्या से हीन अपवित्र नित्य रहता है—ऐसा दक्ष ने कहा है। इस प्रकार श्राद्ध के बाद सायं सन्ध्या के अनुष्ठान के प्रसंग से। तर्पण के बाद फिर से स्नान करे। संग्रह वाक्य में कहा है—'स्नात्वा' इसका फिर से ग्रहण है। वह अदृष्टार्थ है यहाँ पर स्नान-सन्ध्या आदि का सर्वकर्मार्थता से उपदेश और सामान्यता की प्राप्ति में 'अदग्धदहनन्याय' से कुशास्तरण और तर्पणोत्तर स्नान का विधान किया है।) तदनन्तर अपसव्य होकर सव्यजानु को जमीन पर कर नाम, गोत्र तथा स्वधाकारों से द्वितीयान्त से तर्पण करे।

(अत्र वस्वादिरूपकथनम्)

अत्र वस्वादिरूपतोक्ता स्मृत्यर्थसारे—वसुरुद्रादितिसुतान् श्राद्धार्थे तर्पयेत्पितॄन्। तच्च बह्वृचानां दक्षिणेनैव, 'दक्षिणं प्रतीयादनादेशे' इति सूत्रात्। अत्र प्रत्यञ्जलिमन्त्रावृत्तिः। निर्वापवत्तत्सन्ध्यार्घ्यदानवच्च द्रव्यभेदात्। अवघातवेदिप्रोक्षणादौ तु द्रव्यैकत्वान्न मन्त्रावृत्तिः। केचित्तु परिव्याणमन्त्रवत्क्रियमाणानुवादित्वेन करणत्वाभावात्सकृदिच्छन्ति। तन्न, यत्र यूपद्रव्यैक्यात्परिवीरसीतिकरणभूतमन्त्रान्तरसत्वादन्यतरेण व्यवधानापत्योभयोः करणत्वायोगात् कर्तृभेदेन विकल्पायोगाच्च क्रियमाणानुवादित्वं नत्वत्र तथा बौधायनादिवचनाकरणत्वमेव तेनावृत्तिरेव युक्ता। एवं नित्येऽपि।

यहाँ पर वसु आदि के रूपों को स्मृत्यर्थसार में कहा है कि—वसु,[1] रुद्र, अदितिरूप पितरों को श्राद्ध के अर्थ में तृप्त करें। वह बह्वृचों (ऋग्वेदियों) में दक्षिण से ही है। अनादेश में दक्षिण से करे। यहाँ पर प्रति अञ्जलि में मन्त्रावृत्ति है। निर्वापवत्—और सन्ध्या में अर्घ्यदानवत् (कहो कि—एककर्म में मन्त्रकी आवृत्ति के अंगीकार में अवघात आदि में उसकी आवृत्ति होती है।)

अवघात और वेदी के प्रोक्षण आदि में तो द्रव्य एक होने से मन्त्रावृत्ति नहीं होती है। (अवहता

१—शंखः—एकैकमञ्जलिं देवा द्वौ द्वौ तु सनकादयः। अर्हन्ति पितरस्त्रीं स्त्रीन् स्त्रियस्त्वेकैकमञ्जलिम्॥ पैठीनसिः—तिलोदकाञ्जलीं स्त्रीं स्त्रीनुच्चैरुच्चैर्विनिक्षिपेत्। शालङ्कायनः—मातृमुख्यास्तु यास्तिस्रस्तासां दद्याज्जलाञ्जलीन्। त्रीं त्रीन् दद्यादथान्यासां स्त्रीणामेकैकमञ्जलिम्। काशीखण्डे—सपत्न्याचार्यपत्नीनां द्वौ द्वौ दद्याञ्जलाञ्जली। व्यासः—मातृमातामहांस्तद्वत्त्रींस्त्रीनेव त्रिभिस्त्रिभिः। मातामहाश्च येऽप्यन्ये गोत्रिणो दातृवर्जिताः। तानेकाञ्जलिदानेन प्रत्येकं च पृथक् पृथक्। गारुडे—मातामह्यादिसर्वासामेकैकं तु जलाञ्जलिम्। दद्यात्तीर्थे विशेषेण धर्मं परममास्थितः॥ ब्रह्माण्डे—द्वौ द्वौ मातामहानां च मातुलानां सकृत्तथा। ब्रह्माण्डे—गुर्वाचार्यश्वशुराणां सद्धत्संबन्धिनां सकृत्।

एव व्रीहयः पुनरवहन्यन्ते प्रोक्षितैव वेदी पुनः प्रोक्ष्यते इति न द्रव्यभेद इत्यर्थः ।) कोई तो परिव्याणमन्त्र[1] के तरह क्रियमाण अनुवाद होने से करणत्व के अभाव से एकबार इच्छा करते है। यह उचित नहीं है। वहाँ पर यूपद्रव्य की एकता से [2]'परिवीरसि' इस करणभूत मन्त्रान्तर होने से अन्यतर के व्यवधान की आपत्ति से दोनों का करणत्व अयोग है। और कर्ता के भेद से विकल्प का अयोग है। वहाँ पर क्रियमाण-कर्म का अनुवाद है। और बौधायन आदि के वचन से करणत्व है। इससे आवृत्ति युक्त है। इसप्रकार नित्य में भी।

यत्तु सङ्ग्रहे नाम्ना पठन्ति—पित्रोः क्षयाहे सम्प्राप्ते यः कुर्यान्नित्यतर्पणम्। आसुरं तद्भवेच्छ्राद्धं तत्तोयं रुधिरं भवेत्॥ सर्वदा तर्पणं कुर्यात् ब्रह्मयज्ञपुरःसरम्। मृताहे नैव कर्तव्यं कृतं चेन्निष्फलं भवेत्॥ इति। तत्समूलत्वेन तिलविषयम्।

जो संग्रह में नाम से पढ़ते हैं—माता और पिता के क्षयाह में जो नित्यतर्पण करते हैं वह श्राद्ध आसुर होता है और उसका जल रुधिर के सदृश होता है। सर्वदा ब्रह्मयज्ञपुरःसर तर्पण करे। मरणदिन तर्पण नहीं करे करने पर निष्फल होता है। यदि इसको समूल मान भी लें तो वह तिलविषयक है। (क्योंकि—सप्तम्यां भानुवारे च मातापित्रोर्मृतेऽहनि। तिलैर्यस्तर्पणं कुर्यात्स भवेत् पितृघातकः॥ (ऐसा पहले कह चुके हैं।)

यच्च पठति कपिलः—मन्वादिषु युगाद्यासु दर्शे संक्रमणेषु च।
पौर्णमास्यां व्यतीपाते दद्यात् पूर्वं तिलोदकम्॥

जो और यह पढ़ते है—कपिल का वचन है—मन्वादि, (कार्तिक शुक्लपक्षकी नवमी, वैशाखशुक्ल की तृतीया, आश्विनकृष्ण की त्रयोदशी और फाल्गुनकृष्ण की अमावस्या) युगादि—(आश्विनशुक्ल नवमी, भाद्रपद तथा चैत्रशुक्लकी तृतीया, कार्तिकशुक्ल द्वादशी, आषाढ़शुक्ल दशमी, ज्येष्ठशुक्लपूर्णिमा, आषाढ़, फाल्गुन, चैत्र और कार्तिककी पूर्णिमा, भाद्रपदकी अष्टमी, पौषकृष्णकी एकादशी और भाद्रपदकी अमावास्या) आदि, अमावास्या, संक्रान्ति, पौर्णमासी और व्यतीपात में पहले तिलोदक दे।

अर्द्धोदये गजच्छाये षष्ठ्यां चैव महालये। भरण्यां च मघाश्राद्धे तदन्ते तर्पणं विदुः॥

अर्धोदय, (माघमास में रविवार की अमावास्या, व्यतीपातयोग तथा श्रवणनक्षत्र से युक्त हो तो अर्धोदययोग होता है।) गजच्छाया (आश्विनमासके पितृपक्षकी त्रयोदशीके दिन हस्तनक्षत्र में सूर्य तथा मघा पर चन्द्रमा हो तो गजच्छायायोग होता है।) षष्ठी—कपिलाषष्ठी (आश्विनमहिने के कृष्णपक्षकी षष्ठी, मंगलवार, रोहिणीनक्षत्र, व्यतीपातयोग हो तो कपिलाषष्ठी होती हैं।) महालय, भरणी और मघाश्राद्ध में अन्त में तर्पण कहा है।

शौनकः—मातापित्रोर्मृताहे तु परेऽहनि तिलोदकम्। कारुण्यच्छ्राद्धविषये सद्यो दद्यात्तिलोदकम्॥ एतन्निर्मूलम्।

शौनक ने कहा है—माता और पिता के मरणदिन में दूसरे दिन तिलोदक दे। कारुण्यश्राद्ध के तो विषय में उसीसमय तिलोदक दे। यह वचन निर्मूल है।

(तिलतर्पणनिषेधकथनम्)

अथ तिलतर्पणनिषेधः। गार्ग्यः—भानौ भौमे त्रयोदश्यां नन्दाभृगुमघासु च।
[3]पिण्डदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम्॥

१—युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उश्रेयान् भवति जायमानः। तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो ३ मनसा देवयन्तः॥ (ऋ. ३।८।४; तै. ब्रा. ३।६।१।३)। इति होतृमन्त्रः।

२—परिवीरसि परित्वा दैवीर्विशो व्ययन्तां परीमः रायस्पोषो यजमानं मनुष्याः। इत्यध्वर्युमन्त्रः।

३—न च पुंलिङ्गस्य पिण्डशब्दस्य कथं नपुंसकलिंगेन निर्देश इति वाच्यम्। पिण्डशब्दस्य कुड्यस्य पिण्डंपततीत्यादौ, महाभाष्ये नपुंसकलिङ्गेनापि प्रयोगात्। अत एव पिण्डशब्दस्य पुल्लिङ्गत्वाद्यजुर्वेदिनामपि 'एष ते पिण्ड' इत्येव

अब तिलतर्पणनिषेध कहते हैं। गार्ग्य ने कहा है—रविवार, मंगलवारकी त्रयोदशी,नन्दा, (प्रतिपदा, षष्ठी और एकादशी) भृगुवार और मघा नक्षत्र में पिण्डदान, मट्टी से स्नान तथा तिलतर्पण न करे।

स्मृत्यर्थसारे—विवाहव्रतचूडासु वर्षमर्द्धं तदर्द्धकम्। अर्द्धं तदेव। वृद्धौ सत्यां च तन्मासि नेत्याहुस्तिलतर्पणम्।

स्मृत्यर्थसार में कहा है—विवाह, व्रत और चूड़ाकरण में क्रम से एक साल, छः महिना और तीन महिना पिण्डदान, मृत्तिकास्नान तथा तिलतर्पण न करे। वृद्धि और मासिक में तिलतर्पण करना नहीं कहा है।

हेमाद्रौ मरीचिः—सप्तम्यां रविवारे च गृहे जन्मदिने तथा।
निशासन्ध्यासु पुत्रार्थी न कुर्यात्तिलतर्पणम्॥

हेमाद्रि में मरीचि ने कहा है—सप्तमी में, रविवार में, घर में तथा जन्मदिन में, निशा (रात्रि) और सन्ध्या में पुत्रार्थी तिल से तर्पण न करे।

यत्तु सङ्ग्रहे—नन्दायां भार्गवदिने कृत्तिकासु मघासु च। भरण्यां भानुवारे च गजच्छायाह्वये तथा॥ अयनद्वितये चैव मन्वादिषु युगादिषु। पिण्डदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम्॥ इति, तच्चिन्त्यम्।

जो संग्रह में कहा है—नन्दा में, भार्गव दिन (शुक्रवार) में, कृत्तिका तथा मघा में, भरणी और रविवार में गजच्छाया नक्षत्र तथा अयनद्वय (दक्षिणायन और उत्तरायण) मन्वादि तथा युगादियों में पिण्डदान, मृत्तिकास्नान और तिलतर्पण न करे। यह चिन्तनीय (युगादिनिषेधश्चिन्त्यइत्यर्थः) है।

पानीयमप्यत्र तिलैर्विमिश्रं दद्यात्पितृभ्यः प्रयतो मनुष्यः। इत्यादिविरोधात्।

यहाँ पर मनुष्य तिलों को मिलाकर जल को भी पितरों के लिए प्रयत्न से दे। इत्यादि विरोध (मन्वाद्यासु युगाद्यासु प्रदत्तः स तिलोऽञ्जलिः। सहस्रवार्षिकीं तृप्तिं पितृणामावहेत्सदा॥ यहाँ पानीयमपि—इसमें अपि शब्द से श्राद्ध का ग्रहण करे।) वचनों से है।

(अत्रापवादः)

अत्रापवादः पृथ्वीचन्द्रोदये—तीर्थे तिथिविशेषे च गयायां प्रेतपक्षके।
निषिद्धेऽपि दिने कुर्यात्तर्पणं तिलमिश्रितम्॥

यहाँ पर अपवाद पृथ्वीचन्द्रोदय में कहा है—तीर्थ में तथा तिथिविशेष (महालय, अष्टका आदि) में, गया में और प्रेतपक्ष में निषिद्धदिन में भी तिलमिश्रित जल से तर्पण करे।

स्मृत्यर्थसारेऽपि—तिथितीर्थविशेषेषु कार्यं प्रेते च सर्वदा। इति।

स्मृत्यर्थसार में भी कहा है—तिथि, तीर्थविशेष और प्रेतकर्म में सर्वदा तिलमिश्रित जल से तर्पण करे।

गोभिलः—तिलाभावे निषिद्धाहे सुवर्णरजतान्विते।
तदभावे निषिञ्चेत्तु दर्भमन्त्रेण वा पुनः॥ पतितस्य तिलोदकं वक्ष्यामः।

प्रयोगमैथिलमतमपास्तम्, पिण्डशब्दस्य नपुंसकलिङ्गेऽपि प्रयोगात्। तेनैतच्छब्देनैव पिण्डस्योपस्थितत्वादध्याहारं विनैव प्रयोगोपपत्तेरिति स्मृतिचन्द्रिकाकारादयः। हेमाद्रिस्तु 'इषे त्वे' त्यादौ छिनद्मीत्यध्याहारवदत्रापि वाक्यपूरणाय अन्नपदं पिण्डपदं वाध्याहार्यम्। अत एव कर्कभाष्ये अन्नशब्द उपलक्षणार्थः। तयोरपि च व्यवस्थोक्ता लौगाक्षिणा। महालये गयाश्राद्धे प्रेतपक्षे दशाहिके। पिण्डशब्दप्रयोगः स्यादन्नन्यत्र कीर्तयेत्॥ इति। एतद्वचनोपात्तेषु श्राद्धेषु एतत्ते पिण्डमिति प्रयोगः। अन्यत्र तु एतत्ते अन्नमितिप्रयोग इत्याह अन्ये तु इषे त्वेत्यादौ क्रियाविशेषस्यापेक्षितत्वाद्युक्तः। छिनद्मीत्यध्याहारः। प्रकृते तु द्रव्यविशेषस्यैव तच्छब्देनैव समर्पणादग्नय इदं न मम इतिवन्नाध्याहारः। तेन प्रकृतौ एष ते पिण्ड इति गोभिलवाक्यात् गोभिलीयानामेष ते पिण्ड इत्येव प्रयोगः। वाजसनेयिनामपि 'एतत्ते पिण्डम्' इत्युक्त्वा दद्युर्वाजसनेयिनः। इति भविष्यपुराणवचनादेतत्ते पिण्डमित्येव प्रयोगः। एतस्यापि वचनस्य प्रकृतावेवाम्नातत्वात्। अन्येषां तु प्रागुक्तलौगाक्षिवचनाद् व्यवस्थेत्याहुः। शाखापरतया वा व्यवस्थेतिदिक्।—इति (वीरमित्रोदये पृ० २५८–२५९)।

गोभिल ने कहा है—तिल के अभाव में निषिद्ध दिन (उपरागे पितुः श्राद्धे पातेऽमायां च संक्रमे। निषिद्धाहेऽपि सर्वत्र तिलैस्तर्पणमाचरेत् ॥ यावन्मासः समाप्येत तावत्पिण्डांश्च वर्जयेत्। वृद्धावनन्तरं प्राज्ञस्तथैव तिलतर्पणम् ॥) में सुवर्ण तथा चांदी से युक्त हो करे। उनके अभाव में दर्भ या मन्त्र से सेचन (तर्पण) करे। पतित का तो तिलोदक आगे कहेंगे।

(वृद्धिश्राद्धनिरूपणम्)

अथ वृद्धिश्राद्धम्। तन्निमित्तं पृथ्वीचन्द्रोदये ब्राह्मे—जन्मन्यथोपनयने विवाहे पुत्रकस्य च। पितॄन्नान्दीमुखान्नाम तर्पयेद्विधिपूर्वकम् ॥

अब वृद्धिश्राद्ध कहते हैं। वृद्धिश्राद्धनिमित्त पृथ्वीचन्द्रोदय में ब्रह्मपुराण का वचन है—जन्म, (पुत्रजन्मनिमित्तक मुख्य है, कर्मांग तो गौण है। पर नान्दीश्राद्ध दोनों में करे यह किसी का मत है।) उपनयन और पुत्रका विवाह इनमें नान्दीमुख नामवाले पितरों को विधिपूर्वक तृप्त करे।

देवव्रतेषु चाधानयज्ञपुंसवनेषु च। नवान्नभोजने स्नाने ऊढायाः प्रथमार्तवे ॥ देवारामतडागादिप्रतिष्ठास्वुत्सवेषु च। राज्याभिषेके बालान्नभोजने वृद्धिसंज्ञकान् ॥ वनस्थाद्याश्रमं गच्छन् पूर्वेद्युः सद्य एव वा। पितॄन् पूर्वोक्तविधिना तर्पयेत्कर्मसिद्धये ॥ आदिपदात् संन्यासः।

वेदव्रतों (महानाम्न्यादि) में, आधान, यज्ञ और पुंसवनसंस्कार में, नवान्नभोजन (प्रथमाग्रयण) में, स्नान (समावर्तन) में, विवाहित स्त्री के प्रथम ऋतु होने पर, देवता, आराम (बगीचा)। तलाव आदि प्रतिष्ठा में तथा उत्सव में, राज्याभिषेक[1] में, बालक के अन्नप्राशन में, वानप्रस्थ आदि आश्रम में जाते

१—(१) प्रजा का परिपालन और राज्य इनको करनेवाला राजा होता है। (२) बहुमत से क्षत्रिय और मेधातिथि आदि के मत से क्षत्रियेतर ब्राह्मणादि भी प्रजापालन तथा करग्रहणकर्ता राजा होता है। (३) त्रैवर्णिकेतर राजा का राजाभिषेकसंस्कार पौराणिकमन्त्र से या विना मन्त्र के होता है। (वीरमित्रोदय)। (४) पिता या पुरोहित आदि जो राजा को राजगद्दी पर विधि से बैठाते हैं उसको राजाभिषेक अथवा राजाभिषेक कहते हैं। (५) राजाभिषेक राजा का संस्कार है (वीरमित्रोदय)। (६) ज्येष्ठपुत्र राज्याधिकारी होता है कनिष्ठादि नहीं होते हैं (कालिकापु०।रामायण) (७) ज्येष्ठ-पुत्र का पुत्र और कनिष्ठ का पुत्र इन दोनों में से ज्येष्ठपुत्र का पुत्र अधिकारी है। (महाभारत)। (८) क्लीव, पतित, जन्मान्ध, उन्मत्त आदि राज्याधिकारी नहीं होते हैं। (मनु)। (९) राज्याभिषेक का काल विष्णुधर्मोत्तरपुराण, ब्रह्मपुराण और ज्यौतिष ग्रन्थों में वर्णित है। (१०) पूर्व राजा के मरणानन्तर द्वितीय राजा के राज्याभिषेक में मुहूर्त का विशेष विचार नहीं है (विष्णुधर्मोत्तरपुराण)। (११) पूर्व राजा के अस्वस्थ होने के कारण द्वितीय राजा के राज्याभिषेक में भी मुहूर्त का विशेष विचार नहीं है। (वीरमित्रोदय)। (१२) जैसा राजाभिषेक है वैसा संवत्सराभिषेक, पुष्पाभिषेक, जयाभिषेक आदि भी अभिषेक हैं। राज्याभिषेकानन्तर इच्छा हो तो वे भी कर्तव्य हैं। (१३) राज्याभिषेक का फल बौधायनसूत्र में वर्णित है। (१४) राजाभिषेककी विधि-अथर्ववेदीयगोपथब्राह्मण, ऐतरेयब्राह्मण, सामविधानब्राह्मण, कौशिकसूत्र, बौधायनसूत्र, शौनककृत-बृहदृग्विधान, वसिष्ठसंहिता, अथर्वपरिशिष्ट, रामायण, महाभारत, ब्रह्मपुराण, विष्णुधर्मोत्तरपुराण, हेमाद्रि, नीतिमयूख, नीतिप्रकाश, शान्तिसार, पूर्तकमलाकर, देवभद्रपद्धति, अनन्तदेवपद्धति, अनन्तभट्टपद्धति, विश्वेश्वरभट्टपद्धति आदि में है। (१५) राज्याभिषेक का पूरा सम्बन्ध अथर्ववेद से है। अतः राज्याभिषेक का सब कार्य अथर्ववेद के मन्त्रों से होता है। (१६) राज्याभिषेक की लिखित पद्धतियों से अथर्ववेद के मन्त्र पूरे-पूरे नहीं लिखे गये हैं। सिर्फ आदि के दो दो पद लिखे गये हैं अब अथर्ववेद का पठन पाठन नहीं है अतः उपस्थित अथर्ववेद नहीं है। अतः कर्मकाण्डी लोग अथर्ववेद के मन्त्रों को नहीं पढ़ते हैं किन्तु छोड़ देते हैं। (१७) हवनमन्त्रों में तो और भी गड़बड़ है मन्त्र समुदाय को सूक्त और सूक्तसमुदाय को गण कहते हैं। गण से हवन विहित है किस किस गण से कितने और कौन मन्त्र हैं यह किसी पद्धतिकार ने प्रायः नहीं लिखा है। (१८) नीतिमयूख, पूर्तकमलाकर और अथर्ववेद के सायणभाष्य में कुछ गणों का संकेत किया है उनका परस्पर मेल नहीं है एक दूसरे से भिन्न हैं अतः इन मन्त्रों को प्रमाणित करके ठीक करना बहुत आवश्यक है। (१९) राजपूताना आदि में राज्याभिषेक होता ही नहीं है। दरभङ्गा आदि भी अपने को क्षत्रिय न मानकर राज्याभिषेक नहीं करते हैं। जो करते हैं उनके यहाँ वंशपरम्परा से उसके आचार्य आदि निर्णीत है वे जो चाहें सो करें अतः राज्याभिषेक की वस्तुतः कोई अच्छी पद्धति तय्यार नहीं है। (२०)

हुए पहले दिन या उसीदिन पितरों को पूर्वोक्त विधान से कर्मसिद्धि के लिए तृप्त करे। आदि पद से संन्यास का ग्रहण करे।

**विष्णुपुराणे—यज्ञोद्वाहप्रतिष्ठासु मेखलाबन्धमोक्षयोः।
पुत्रोत्पत्तौ वृषोत्सर्गे वृद्धिश्राद्धं समाचरेत् ॥**

विष्णुपुराण में कहा है—यज्ञ, विवाह और प्रतिष्ठा में, मेखलाबन्धन और मोक्ष (त्याग) में, पुत्रोत्पत्ति में तथा वृषोत्सर्ग (काम्यवृषोत्सर्ग में प्रेतत्वनिवृत्ति में न करे। क्योंकि वृषोत्सर्ग तो श्राद्ध का अंग है।) में वृद्धिश्राद्ध करे।

तत्रैव—नामकर्मणि बालानां चूडाकर्मादिके तथा। इत्युक्तेर्निष्क्रमान्नप्राशनयोर्न श्राद्धमिति मैथिलाः। तन्न, पूर्वोक्तविरोधात् 'नानिष्ट्वा' इति निषेधात्।

वहीं पर कहा है—लड़कों के नामकर्म में और चूडाकर्म आदि में वृद्धिश्राद्ध करे—ऐसा कहने पर निष्क्रमण और अन्नप्राशन में वृद्धिश्राद्ध न करे—ऐसा मैथिल कहते हैं। यही उचित नहीं है। क्योंकि पूर्वोक्त वचनों का विरोध है। तथा 'नानिष्ट्वा'—बिना श्राद्ध के न करे—यह निषेध है।

सुतोत्पत्तौ तथा श्राद्धमन्नप्राशनिके तथा। इति राजमार्तण्डाच्च।

और राजमार्तण्ड में कहा है—पुत्रोत्पत्ति में तथा अन्नप्राशन में वृद्धिश्राद्ध होता है।

राज्याभिषेक के मन्त्रों का अर्थ भी हिन्दी या संस्कृत में दिया जाय तो और भी अच्छा हो। (२१) षोडशोपचार पूजा आदि में जिन मन्त्रों का प्रयोग वर्तमान समय में होता है वे मन्त्र उस अर्थ को नहीं कहते हैं जैसे—त्वां गन्धर्वाः, अक्षन्नमीमदन्त, धूरसि, इत्यादि मन्त्रों से गन्ध, अक्षत, और धूप अर्थ के बोधक नहीं है अतः इनके स्थान में तत्तत् अर्थवाची मन्त्र रखें जांय। एवं सिंहासन, छत्र, चामर, शङ्ख, कट्टार आदि के भी वैदिकमन्त्रों का अन्वेषण अत्यावश्यक है। (२२) एक भूमिका भी उसके साथ रहे जिसमें राजप्रशंसा, राजा की आवश्यकता, राजद्रोह-निन्दा, राजभक्ति, विहितराजधर्म, निषिद्धराजधर्म, राजा के दैनिककृत्य, मासकृत्य, वर्षकृत्य, राजा के सहाय, राजा के अमात्य, लेखक, दुर्गलक्षण, पुरनिर्माण, अनुजीवि, निवासयोग्यस्थान, सप्ताङ्गवर्णन, उपाय, राजमण्डल, षाड्गुण्य, शुभस्वप्न, यात्राप्रकरण, देवपूजनप्रकरण, विदुरनीति, शुक्रनीति, और कौटिलीयअर्थशास्त्र के कुछ प्रकरण हों। (२३) सिंहासन, छत्र, चामर, पट्ट, कटार आदि के लक्षण और प्रमाण पुराण, और वाराहीसंहिता में है। (२४) विष्णुधर्मोत्तरपुराण में प्रथमदिन ऐन्द्रीशान्ति, द्वितीय और तृतीयदिन राज्याभिषेक ऐसे तीन दिन में राज्याभिषेक करना लिखा है। (२५) अथर्वपरिशिष्ट में प्रथम विनायकशान्ति का भी विधान है। अतः परिशिष्ट कारके मत से चार दिन का विधान है। (२६) कमलाकरभट्ट और विश्वेश्वरभट्ट आदि आठ दिन में इसका कार्यक्रम मानते हैं यही कार्यक्रम आजकल प्रचलित है। (२७) शरीरशुद्ध्यर्थसर्वप्रायश्चित्त किया जाय तो एकदिन और भी बढ़ सकता है। (२८) अभिषेक के दिन कुछ राजसूयसम्बन्धिकृत्य भी पद्धतिकारों ने लिखा है वह भी होता है। (२९) इसके लिए अनेक नदी-नद-ह्रद-वापी समुद्र, झरने, कूप-सरोवरों का जल संग्रह प्रथम से ही होता है। (३०) शौनक ने १०० और रामायण में ५०० नदीजल से अभिषेक कहा है। गोप्रस्रवजल, युद्धस्थलजल और ओस का भी जल ग्राह्य है। (३१) इसमें एक विद्वान् कर्मनिरीक्षण वेदरहस्यज्ञ, शान्त, अलोलुप प्रत्येक ऋत्विक् के किये हुए कर्म का ज्ञाता, वेदार्थज्ञ, सुशिक्षित होना चाहिये। यथासंभव हर एक ऋत्विक् अर्थ जानने वाले होने चाहियें जो ऋत्विक् वंशपरंपरा से नियत हैं। तदतिरिक्त अन्य ऋत्विक् उत्तमोत्तम रहने चाहियें। (३२) राजा को प्रतिवर्ष न हो सके तो एक दो बार भी कोटिहोम, अयुत (१००००००) होम, अथवा लक्षहोम या महारुद्रयाग, विष्णुयाग भी करने को लिखा है। यदि इस राज्याभिषेक के अवसर पर एक पृथक् मण्डप में इसको भी कर दिया जाय तो बहुत उत्तम होता है। (३३) अभिषेककर्ता ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और सौभाग्यवती स्त्रियाँ होती है। (३४) मण्डप १६ हाथ का, कुण्ड ९ या ५ या १ होता है। एक स्नानवेदी होती है। ऋत्विक् १६ या २४ या ३२ होते हैं। वरणसामग्री में पीताम्बर, उपरना, दुशाला, रजतपात्र, सुवर्णांगुलीयक होनी चाहिये। कलश सुवर्ण के ४ रजत के ४ तथा ताम्रादिक के होंगे शेष सामग्री साधारण है। कोटिहोमादि किये जाय तो उसमें हवनसामग्री और वरणसामग्री स्वतन्त्र होगी। (३५) इसमें कुछ दान भी होता है।

यत्तु छन्दोगपरिशिष्टम्—सूर्येन्द्वोः कर्मणी ये च तयोः श्राद्धं न विद्यते ।
इति, तत्तेषामेवेति कल्पतरुः ।

जो छन्दोगपरिशिष्ट में कहा है—सूर्य और चन्द्रमा के जो कर्म हैं उनमें श्राद्ध नहीं होता है। वह उन्हीं लोगों (छन्दोगों) के लिए ही है—ऐसा कल्पतरु ने कहा है।

बह्वृचकारिकायाम्—स्यादाभ्युदयिकं श्राद्धं वृद्धिपूर्तेषु कर्मसु । पुंसः सवनसीमन्तचौलोपनयनेष्विह ॥ विवाहे चानलाधेयप्रभृतिश्रौतकर्मसु । इदं श्राद्धं प्रकुर्वन्ति द्विजा वृद्धिनिमित्तकम् ॥
अन्यैः षोडशसंस्कारश्रावण्यादिष्वपीष्यते । वाप्याद्युद्यापनादौ तु कुर्युः पूर्तनिमित्तकम् ॥

बह्वृचकारिका में कहा है—वृद्धि और पूर्तकर्मों में—पुंसवन, सीमन्त, चौल और उपनयन इन कर्मों में आभ्युदयिकश्राद्ध होता है। विवाह तथा अग्न्याधान आदि श्रौतकर्मों में वृद्धिनिमित्तक आभ्युदयिकश्राद्ध करते हैं। अन्य सोलहसंस्कार और श्रावणी आदि द्विज भी करते हैं। वापी आदि उद्यापन आदि में तो पूर्तनिमित्तक करते हैं।

बोपदेवकालादर्शौ—सीमन्तव्रतचौलनामकरणान्नप्राशनोपायनस्नानाधानविवाहयज्ञतनयोत्पत्तिप्रतिष्ठासु च । पुंसूत्यावसथप्रवेशनसुताद्यास्यावलोकाश्रमस्वीकारक्षितिपाभिषेकदयिताद्यर्तौ च नान्दीमुखम् ॥

बोपदेव और कालादर्श में कहा है—सीमन्त, व्रत, चौल, नामकरण, अन्नप्राशन, उपायन (शिष्य बनना) स्नान, आधान (अग्न्याधान) विवाह, यज्ञ, पुत्रजन्म और प्रतिष्ठा में, पुंसवन, आवसथ (गृह) प्रवेश, पुत्रका प्रथम मुखदर्शन, आश्रमस्वीकार, राजा को अभिषेक और प्रथम ऋतु के होनेपर नान्दीमुखश्राद्ध करे।

यत्तु कामधेनौ—जलाशयप्रतिष्ठायां वृषोत्सर्गादिकर्मसु । वत्सराभ्यन्तरे पित्रोर्वृषस्योत्सर्गकर्मणि ॥ वृद्धिश्राद्धं न कुर्वीत तदन्यत्र समाचरेत् ॥ इति । तत्र जलाशये वृद्धिश्राद्धस्य निषेधो न तु कर्माङ्गस्येति केचित् । अन्ये त्वस्य निर्मूलतामाहुः ।

जो कामधेनु में कहा है—जलाशय की प्रतिष्ठा और वृषोत्सर्ग आदि कर्मों में संवत्सर के मध्य में पिता तथा माता के वृषोत्सर्गकर्म में वृद्धिश्राद्ध न करे। उससे अन्यत्र करे। वहाँ पर जलाशय में वृद्धिश्राद्ध का निषेध है न कि कर्माङ्ग का है—यह किसी का मत है। अन्य तो इसको निर्मूल कहते हैं।

श्राद्धकौमुद्यां निर्णयामृते च मात्स्ये—अन्नप्राशे च सीमन्ते पुत्रोत्पत्तिनिमित्तके । पुंसवे च निषेके च नववेश्मप्रवेशने ॥ देववृक्षजलादीनां प्रतिष्ठायां विशेषतः । तीर्थयात्रावृषोत्सर्गे वृद्धिश्राद्धं प्रकीर्तितम् ॥ इदं चावश्यकम् ,

श्राद्धकौमुदी में और निर्णयामृत में मत्स्यपुराण का वचन है—अन्नप्राशन में, सीमन्त में, पुत्रोत्पत्ति निमित्त में, पुंसवन, निषेक (गर्भाधान) में, नये घर में प्रवेश के समय में, देवता, वृक्ष, जल आदि की, विशेष प्रतिष्ठा में, तीर्थयात्रा और वृषोत्सर्ग में वृद्धिश्राद्ध कहा है। यह आवश्यक है।

वृद्धौ न तर्पिता ये वै पितरो गृहमेधिभिः । तद्धीनमफलं ज्ञेयमासुरो विधिरेव सः ॥ इति शातातपोक्तेश्च ।

शातातप ने कहा है—जिन गृहमेधियों ने पितरों को वृद्धि में तृप्त नहीं किया वे हीनफल से युक्त हैं और वह आसुर(राक्षस)विधि है।

(नान्दीश्राद्धादिविचार)

अत्र श्राद्धत्रयं स एवाह—मातृश्राद्धं तु पूर्वं स्यात्पितॄणां तदनन्तरम् ।
ततो मातामहानां च वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम् ॥

यहाँ पर तीन श्राद्ध को वृद्धि में उन्होंने ही कहा है—मातृश्राद्ध पहले कहा है और पितृश्राद्ध को बाद में कहा है। तदनन्तर मातामह का श्राद्ध कहा है।

तत्कालमाह पृथ्वीचन्द्रोदये गार्ग्यः—मातृश्राद्धं तु पूर्वे स्यात्पितॄणां तदनन्तरम् ।
ततो मातामहानां च वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम् ॥

उसका समय पृथ्वीचन्द्रोदय में गार्ग्य ने कहा है—मातृश्राद्धको पूर्वाह्णकाल में, मध्याह्नकालमें पितृश्राद्ध और अपराह्णकाल में मातामह का श्राद्ध होता है । वृद्धि में तो तीनों होते हैं ।

अशक्तौ वृद्धशातातपः—पूर्वाह्णे मातृकं श्राद्धं मध्याह्ने पैतृकं तथा ।
ततो मातामहानां च वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम् ॥

अशक्ति में वृद्धशातातप ने कहा है—पूर्वाह्ण[1] में माता का श्राद्ध, मध्याह्न में पिता का और अपराह्ण में मातामह का श्राद्ध होता है । वृद्धि में तीनों श्राद्ध होते हैं ।

अत्राप्यशक्तौ स एव—पृथक्दिनेष्वशक्तश्चेदेकस्मिन् पूर्ववासरे ।
श्राद्धत्रयं प्रकुर्वीत वैश्वदेवं तु तान्त्रिकम् ॥

इसमें भी अशक्त में तो वही ही कहा है—तीनों को एकदिन में करने में अशक्त हो तो अलग अलग दिनों में श्राद्धत्रय को करे और विश्वदेव को तन्त्र से करे ।

वृद्धमनुरपि—अलाभे भिन्नकालानां नान्दीश्राद्धत्रयं बुधः । पूर्वेद्युर्वै प्रकुर्वीत पूर्वाह्णे मातृपूर्वकम् ॥ अत्र 'महत्सु पूर्वेद्युस्तदहरल्पेषु' इति गृह्यपरिशिष्टात् व्यवस्था ज्ञेया ।

तच्च प्रातरेव । पार्वणं चापराह्णे तु प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम् । इति शातातपोक्तेः । अत्र प्रातः शब्दः सार्धप्रहरपरः । प्रहरोऽप्यर्धसंयुक्तः प्रातरित्यभिधीयते । इति गार्ग्योक्तेरिति पृथ्वीचन्द्रः । इदं च पुत्रजन्मातिरिक्तविषयम् ।

वृद्धमनु ने भी कहा है—भिन्न समयों के अलाभ में तीनों नान्दीश्राद्धों को विद्वान् पहले दिन पूर्वाह्ण में मातृपूर्वक करे । यहाँ पर बहुतों के मत से पहले दिन और अल्पों के मत से उसीदिन करे—यह गृह्यपरिशिष्ट की व्यवस्था जानना चाहिये ।

वह प्रातःकाल ही होता है । पार्वणश्राद्ध अपराह्ण में और वृद्धिनिमित्तक श्राद्ध प्रातःकाल होता है—यह शातातप ने कहा है । यहाँ पर [2]प्रातःशब्द सार्धप्रहर (डेढप्रहर) परक है । आधे से युक्त प्रहर को प्रातःकाल कहते हैं । और यह पुत्रजन्म से अतिरिक्त विषयक है ।

तदाहात्रिः—पूर्वाह्णे वै भवेद् वृद्धिर्विना जन्मनिमित्तकम् । पुत्रजन्मनि कुर्वीत श्राद्धं तात्कालिकं बुधः ॥ इति, एतदनियतनिमित्तपरम्, नियतेषु निमित्तेषु प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम् । तेषामनियतत्वे तु तदानन्तर्यमिष्यते ॥ इतिलौगाक्षिस्मृतेः । आधानाङ्गं नान्दीश्राद्धं त्वपराह्णे एव, आमश्राद्धं तु पूर्वाह्णे सिद्धान्नेन तु मध्यतः । पार्वणं चापराह्णे तु वृद्धिश्राद्धं तथाग्निकम् ॥ इति निर्णयामृते गालवोक्तेः ।

उसी बात को अत्रि ने कहा है—जन्मनिमित्तक के बिना पूर्वाह्ण में ही वृद्धिश्राद्ध करे । पुत्रजन्म में विद्वान् उसीसमय श्राद्ध करे । यह अनियतनिमित्त परक है । (अर्थात् जिनका नियम नहीं है) लौगाक्षिस्मृति में कहा है—नियत निमित्तों में प्रातःकाल और अनियत निमित्तों में क्रम से वृद्धिश्राद्ध करे । आधानका अंग नान्दीश्राद्ध तो अपराह्ण में ही करे । निर्णयामृत में गालव ने कहा है—आमान्न से श्राद्ध को पूर्वाह्ण में, सिद्धान्न से मध्याह्न में, अपराह्ण में पार्वण और अग्निक (साग्निक) को वृद्धिश्राद्ध अपराह्ण में करना चाहिये ।

१—माता पितामही चैव सा पूज्या प्रपितामही । पित्रादयस्त्रयश्चैव मातुः पित्रादयस्तथा ॥ एते नवार्चनीयाः स्युः पितरोऽभ्युदये द्विजैः । मात्स्ये—उत्सवानन्दसन्ताने यज्ञोद्वाहादिमङ्गले । मातरः प्रथमं पूज्याः पितरस्तदनन्तरम् ॥ ततो मातामहाः पूज्या विश्वेदेवास्तथैव च । आनन्दो यज्ञादिः ।

२—प्रातःशब्दः प्रथमघटिकात्रयवाचीतिनारायणवृत्तिकृत् ।

नान्दीमुखाह्वयं प्रातराग्निकं त्वपराह्णतः। इति विष्णूक्तेश्च। इदं च मातृपितृमातामहादिक्रमेण नवदैवत्यं कार्यम्। तत्र मातामहाः सपत्नीकाः। 'वृद्धप्रमातामहप्रमातामहमातामहानां सपत्नीकानाम्' इति पृथ्वीचन्द्रोदये गारुडे गद्यरूपेण पाठात्।

और विष्णु ने भी कहा है—नान्दीमुख को प्रातःकाल करे और अपराह्न में आह्निक करे।

और यह माता, पिता, मातामह आदि क्रम से नवदैवत्य करना चाहिये। वहाँ पर मातामह को सपत्नीक करे। 'वृद्धप्रमातामह-प्रमातामह-मातामहानां सपत्नीकानाम्'- ऐसा पृथ्वीचन्द्रोदय में गरुडपुराण का गद्यरूप से पाठ है।

हेमाद्रौ शङ्खः—नान्दीमुखे सत्यवसू सङ्कीर्त्यौ वैश्वदेविके।

हेमाद्रि में शंख ने कहा है—नान्दीमुख में सत्य और वसु विश्वदेवा कह गये हैं।

वृद्धपराशरः—नान्दीमुखेभ्यो देवेभ्यः प्रदक्षिणकुशासनम्।
पितृभ्यस्तन्मुखेभ्यश्च प्रदक्षिणमिति स्मृतिः॥

वृद्धपराशर ने कहा है—नान्दीमुखश्राद्ध देवताओं के लिए प्रदक्षिणक्रम से कुशासन दे। प्रधान पितरों वाले देवताओं के लिये वैसे ही प्रदक्षिण आसन दे।

यत्तु वृद्धवसिष्ठः—नान्दीमुखे विवाहे च प्रपितामहपूर्वकम्।
नाम सङ्कीर्तयेद्विद्वान् अन्यत्र पितृपूर्वकम्॥

और जो वृद्धवसिष्ठ ने कहा है—नान्दीमुख और विवाह में प्रपितामहपूर्वक विद्वान् नाम का उच्चारण करे अन्यत्र कर्मों में तो पितृपूर्वक करे।

यच्च स्मृत्यर्थसारे—वृद्धमुख्यास्तु पितरो वृद्धिश्राद्धेषु भुञ्जते। इति। यच्च गारुडे—व्युत्क्रमप्रतिपादनं तच्छाखान्तरविषयम्, 'पितृभ्यः पितामहेभ्यः प्रपितामहेभ्यः इति' बह्वृचपरिशिष्टे कात्यायनेन चानुलोम्याम्नानात्। पृथ्वीचन्द्रोदयेऽप्येवम्। यत्तु केचिद्वृद्धिपदं पित्रादिषु प्रयुञ्जन्ते। तन्न, अनस्मद्वृद्धशब्दानामरूपाणामगोत्रिणाम्। अनाम्नामतिलाद्यैश्च नान्दीश्राद्धं तु सव्यवत्॥ इति पृथ्वीचन्द्रोदये सङ्ग्रहोक्तेः। न च निषेधादेव विधिः कल्प्यत इति वाच्यम्, प्रौष्ठपदीश्राद्धे प्रपितामहात्परेषां वृद्धपित्रादीनां देवतात्वान्नान्दीश्राद्धत्वसाम्येनेहापि तत्प्राप्तौ निषेधात्। गोत्रनामादिनिषेधस्तु—शुभार्थी प्रथमान्तेन वृद्धौ सङ्कल्पमाचरेत्। इत्युपक्रम्य अनस्मद्वृद्धशब्दानाम् इत्युक्तेः सङ्कल्पः श्राद्धपरः, 'सपिण्डके तु सर्वं भवति' इति प्रयोगपारिजातात्। गोत्रनामभिरामन्त्र्य पितृभ्योऽर्घ्यं प्रदापयेत्। इति छन्दोगपरिशिष्टे तद्विधानात्।

और जो स्मृत्यर्थसार में कहा है—वृद्धिश्राद्धों में वृद्ध मुख्य पितर भोजन करते हैं। और जो गरुडपुराण में विपरीतक्रम प्रतिपादन किया है वह शाखान्तरविषयक है। 'पितृभ्यः पितामहेभ्यः प्रपितामहेभ्यः' ऐसा बह्वृचपरिशिष्ट में कात्यायन ने अनुलोम कहा है। पृथ्वीचन्द्रोदय में भी यही है। जो कोई वृद्धिपद को पित्रादियों में प्रयोग करते हैं। यह उचित नहीं है। जिसमें वृद्धिशब्द न हो, रूप, गोत्र, नाम न हो उनका नान्दीश्राद्ध तिल आदि के विना सव्य के सदृश करे—ऐसा पृथ्वीचन्द्रोदय में संग्रह ने कहा है। कोई कहे कि निषेध से ही विधि की कल्पना करे—यह उचित नहीं है। प्रौष्ठपदी (भाद्रपद की पूर्णिमा) श्राद्ध में प्रपितामह से पर वृद्धपित्रादियों का देवता होने से नान्दीश्राद्ध की समता है इससे इहाँ पर भी उसकी प्राप्ति में निषेध है।

गोत्र, नाम आदि के निषेध में तो—शुभार्थी वृद्धिश्राद्ध में प्रथमान्तपद से संकल्प का आचरण करे। ऐसा उपक्रम कर 'अनस्मद्वृद्धशब्दानाम्' ऐसा कहने पर संकल्प श्राद्धपरक है। सपिण्डन में तो सब होता है—ऐसा प्रयोगपारिजात में कहा है। गोत्र तथा नाम को कहकर पितरों के लिए अर्घ्य को दे—ऐसा छन्दोगपरिशिष्ट में उस (सपिण्डी) का विधान है।

यत्तु ब्राह्मे—पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः। त्रयो ह्यश्रुमुखा ह्येते पितरः परिकीर्तिताः॥ तेभ्यः पूर्वतरा ये च प्रजावन्तः सुखैधिताः। ते तु नान्दीमुखा नान्दी समृद्धिरिति कथ्यते॥ इति।

जो ब्रह्मपुराण में कहा है—पिता, पितामह और प्रपितामह ये तीन पितर 'अश्रुमुख' कहे गये है। उनमें जो पहले प्रजावाले तथा सुखवृद्धि वाले है वे तो नान्दीमुख हैं। 'नान्दी' समृद्धि को कहते हैं।

यच्च मार्कण्डेयपुराणे—ये स्युः पितामहादूर्ध्वं ते तु नान्दीमुखाः स्मृताः।

इति, तज्जीवत्पित्रादित्रिककर्तृकवृद्धिश्राद्धविषयम्। तेन तस्येदमावश्यकम्॥

और जो मार्कण्डेयपुराण में कहा है—पितामह के बाद जो हैं वे ही नान्दीमुख कहे गये हैं। वह जीवित पित्रादि त्रिककर्तृक वृद्धिश्राद्ध विषयक हैं। इससे उसके निमित्त यह आवश्यक है।

यत्तु विष्णुः—'पितरि पितामहे प्रपितामहे च जीवति नैव कुर्यात्, इति। तद्दर्शादिविषयमिति कल्पतरुः। मदनपारिजातेऽप्येवम्।

जो विष्णु ने कहा है—पिता, पितामह और प्रपितामह के जीवित में न करे। वह दर्शादिविषयक है—यह कल्पतरु में कहा है। मदनपारिजात में भी यही है।

हेमाद्रिस्तु—नान्दीमुखानां श्राद्धं तु कन्याराशिगते रवौ। पौर्णमास्यां तु कर्तव्यं वराहवचनं यथा॥ इति प्रौष्ठपदीश्राद्धकवाक्यत्वात्तत्रैव पूर्वेषां देवतात्वमित्याह। अत्र सत्यवसू विश्वेदेवावित्युक्तं प्राक्।

हेमाद्रि ने तो कहा है—कन्याराशि में गये सूर्य में पूर्णिमासी में नान्दीमुख पितरों का श्राद्ध निश्चय वराहपुराण के वचन से करे। यह प्रौष्ठपदी (भाद्रपद की पूर्णिमा) श्राद्ध की एक वाक्यता से वहाँ पर ही पहलों का देवतात्व कहा है। यहाँ पर सत्य तथा वसु विश्वेदेवा हैं, यह पहले कह चुके है।

यत्तु शातातपः—मातृश्राद्धं तु युग्मैः स्याददैवं प्राङ्मुखैः पृथक्।

इति, तद्भिन्नप्रयोगमातृश्राद्धपरम्।

जो शातातप ने कहा है—माता का श्राद्ध तो पूर्वाभिमुख युग्मब्राह्मणों से अलग अदैव (विश्वेदेव से हीन) होता है। वह भिन्न प्रयोग मातृश्राद्धपरक है।

यच्च मार्कण्डेयपुराणे—विश्वेदेवविहीनं तु केचिदिच्छन्ति मानवाः। इति, तद्भिन्नप्रयोगमातृश्राद्धभिन्नश्राद्धद्वये विश्वेदेवविकल्पार्थम्। प्रयोगैक्ये तु देवनियमः इति हेमाद्रिः। एतच्च मातृपूजापूर्वकं कार्यम्। अकृत्वा मातृकायागं यः श्राद्धे परिवेषयेत्। तस्य क्रोधसमाविष्टा हिंसामिच्छन्ति मातरः॥ इति शातातपोक्तेः।

और जो मार्कण्डेयपुराण में कहा है—कोई मानव विश्वेदेव से विहीन इच्छा करते हैं। वह भिन्न प्रयोग मातृश्राद्धभिन्नश्राद्ध के रूप में विश्वेदेव के विकल्पार्थ है। एकप्रयोग में तो विश्वेदेव का नियम है—यह हेमाद्रि का कहना है और इसको मातृपूजापूर्वक करे। जो मातृयाग (पूजा) को न कर श्राद्ध में परिवेषण करता है तो क्रोधयुक्त हों माताएँ उसकी हिंसा करने की इच्छा करती हैं—एसा शातातप ने कहा है।

कौर्मेऽपि—पुष्पैर्धूपैः सनैवेद्यैर्गन्धाद्यैर्भूषणैरपि।

पूजयित्वा मातृगणं कुर्याच्छ्राद्धत्रयं बुधः॥

कूर्मपुराण में भी कहा है—पुष्प, धूप, नैवेद्य, गन्ध, भूषण आदियों से भी मातृगण का पूजनकर विद्वान् श्राद्धत्रय करे।

(कर्मादिषु मातॄणां पूजनकथनम्)

छन्दोगपरिशिष्टे—कर्मादिषु तु सर्वेषु मातरः सगणाधिपाः।

पूजनीयाः प्रयत्नेन पूजिताः पूजयन्ति ताः॥

प्रतिमासु च शुद्धासु लिखिता वा पटादिषु। अपि वाक्षतपुञ्जेषु नैवेद्यैश्च पृथग्विधैः॥

छन्दोगपरिशिष्ट में कहा है—सब कार्यों के आदि में गणेशदेव के सहित सब माताओं का प्रयत्न से पूजन करे। ऐसा करने से वे भी उसकी पूजा करती हैं।

शुद्ध-पवित्र प्रतिमाओं पर या रेशमीवस्त्र आदि पर लिखकर या अक्षतों के पुञ्जों (ढेर) पर अलग अलग नैवेद्यों से अर्चन करे।

(वसोर्धाराकरणकथनम्)

कुड्यलग्नां वसोर्धारां सप्तधारां घृतेन तु। कारयेत्पञ्चधारां वा नातिनीचां न चोच्छ्रिताम्॥

दीवाल पर घृत से सात धारा या पाँच धारा 'वसोर्धारा' जो न बहुत नीची न बहुत ऊँची करे।

(शान्त्यर्थमायुष्यमन्त्रजपादिकथनम्)

आयुष्याणि च शान्त्यर्थं जप्त्वा तत्र समाहितः। षड्भ्यः पितृभ्यस्तदनु श्राद्धदानमुपक्रमेत्॥

अत्र सर्वेष्विति ग्रहणाद् ग्रहयज्ञतद्विकारेष्वपि नित्यं श्राद्धम्। नानिष्ट्वा तु पितॄन् श्राद्धे कर्म किञ्चित्समाचरेत्। इति शातातपोक्तेश्च। इयं च वसोर्धारा तच्छाखीयानां नियता, अन्येषां त्वनियता, बह्वल्पं वा स्वगृह्योक्तमित्युक्तेः। करणे त्वभ्युदयः, यन्नाम्नातं स्वशाखायामित्युक्तेः। आयुष्याणि 'आ नो भद्राः' इत्यादीनि। षड्भ्य इति मात्रादित्रिकोपलक्षणमिति पृथ्वीचन्द्रः। छन्दोगानां षड्दैवत्यमन्येषां नवदैवत्यमित्याशार्कः। मम तु मतं कोकिलमतानुसारिणां मातृमातामहप्रमातामहा इति मात्रा सहैव मातामहश्राद्धाकारणात्तद्विषयमिदं षड्भ्य इति।

वहाँ पर समाहितमन (सावधानी मन) से शान्त्यर्थ आयु को बढ़ानेवाले मन्त्रों को कहकर छः पितरों के लिए श्राद्धदान का प्रारम्भ करे। यहाँ पर 'सर्वेषु' इस पद के ग्रहण से ग्रहयज्ञ और उसके विकारों में भी श्राद्ध नित्य है। और शातापन ने कहा है—पितरों का अर्चन किये बिना श्राद्ध में कुछ भी कर्म न करे। और यह वसोर्धारा उनकी शाखा में नियत है। अन्यों को तो नियत नहीं है।[1] बहुत या अल्प (कम) अपने गृह्यसूत्र के अनुसार ग्रहण करे-ऐसा कहा है। करने में तो अभ्युदय होता है। जो अपनी शाखा में नहीं कहा है—ऐसा कहा है। आयुष्य[2] मन्त्र 'आ नो भद्रा' इत्यादि मन्त्र हैं। यह माता आदि का उपलक्षण है—ऐसा पृथ्वीचन्द्रोदय ने कहा है। अशार्क का कहना है—छन्दोगों[3] के यहाँ षड्दैवत्य है और अन्यों[4] के यहाँ नवदैवत्य है। मेरे[5] मत से तो कोकिलमत के अनुसारियों को माता, मातामह और प्रमातामह ये माता के साथ ही मातामहश्राद्ध करने से उनके विषय में यह छः हैं।

१—बह्वल्पं वा स्वगृह्योक्तं यस्य कर्म प्रचोदितम्। तस्य तावति शास्त्रार्थे कृते सर्वः कृतो भवेत्॥ जिनके कल्प सूत्र में जितनी इति कर्तव्यता कही हो उतने कर्म के करने से ही फल मिल जाता है। स्वकं कर्म परित्यज्य यदन्यत्कुरुते नरः। अज्ञानादथवा लोभात्स तेन पतितो भवेत्। 'स्वशाखाविधिमुत्सृज्य त्वन्यस्य विधिमाचरेत्। अप्रमाणमृषिं कृत्वा त्वन्धे तमसि मज्जति'। स्वकं कर्म परित्यज्य यदन्यत्कुरुते नरः। अज्ञानादथवा लोभात्स तेन पतितो भवेत्॥ 'ऋक्शाखी नैव कुर्वीत स्वकीयं परशाखया। प्रमादाद्यदि कुर्वीत पुनः संस्कारमर्हति॥ यत्र नास्ति स्वशाखा चेदृक्शाखोक्तं समाचरेत्। पुनर्नार्हति संस्कारमन्यथाऽर्हति चेत्पुनः॥ यजुःशाखाविधानेन यदि बह्वृचकर्म च। कृतं चापि हि तत्कर्म पुनः कुर्याद्यथाविधि। ऋक्शाखा विधिना कर्म यदि स्यादन्यशाखिनाम्। न तत्कर्म पुनः कुर्यादिति यज्ञविदां मतम्॥

२—आयुषे हितानि आयुष्यं वर्चस्यमित्यादीनि त्रीणि मन्त्रवाक्यानीति नारायणो वृत्तिकृत्। आ नो भद्रा इत्यादीनि दशेति हेमाद्रिः। अत्र जप्त्वेति समानकर्तृकतायां क्त्वाप्रत्ययविधानाद्यजमानकर्तृक एवायं जपो न ऋत्विक् कर्तृक इति बोध्यम् इति स्मार्तप्रभौ।

३—गोभिलसूत्र में दो पार्वण का विधान कहा है। कातीयों को भी यही है—यह किसी का मत है।

४—महालये गयाश्राद्धे वृद्धौ चान्वष्टकासु च। नवदैवतमत्रेष्टम्' इति वचनात्। अत्र- महालये गयाश्राद्धे वृद्धौ चान्वष्टकासु च। ज्ञेयं द्वादशदैवत्यं तीर्थे प्रोष्ठे मघासु च॥ इति वचनात् यथासंप्रदायं पक्षत्रयमितिमयूखः।

५—एकेनैव पार्वणेन मातृमातामहयोश्चरितार्थान्न षट्त्वानुपपत्तिः।

(मातॄणां नामानि)

मातरस्तत्रैवोक्ताः—गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया। देवसेना स्वधा स्वाहा मातरो लोकमातरः ॥ धृतिः (हृष्टिः) पुष्टिस्तथा तुष्टिरात्मदेवतया सह। गणेशेनाधिका ह्येता वृद्धौ पूज्याश्चतुर्दश ॥ मातरो लोकमातर इति सर्वविशेषणम्, तेन चतुर्दशत्वम्। यदा षोडशेति पाठस्तदा देवतान्तरम्।

वहीं पर माताओं[1] को कहा है। गौरी, पद्मा, शची, मेधा, सावित्री, विजया, जया, देवसेना, स्वधा, स्वाहा, माता, लोकमाता, धृति, पुष्टि, तुष्टि और आत्मदेवता, ये गणेश[2] से अधिक हैं। ये वृद्धि में चौदह की पूजा हैं। 'मातरो लोकमातरः'। यहाँ पर मातरः–यह लोकमातरः–का विशेषण है। इससे चौदह हैं। अब 'षोडश' यह पाठ स्वीकार करेंगे तो तब मातरः और लोकमातरः ये दोनों अलग अलग देवता होंगे।

(चन्द्रिकामतेऽपि विचारः)

चन्द्रिकायां चतुर्विंशतिमते त्वन्या[3] उक्ताः—तिस्रः पूज्याः पितुः पक्षे तिस्रो मातामहे तथा। इत्येता मातरः प्रोक्ताः पितुर्मातुः स्वसाष्टमी ॥ आसां जीवने प्रत्यक्षं पूजनम्। मृतानां त्वक्षत-पुञ्जेष्विति हेमाद्रिः।

आत्मनः कुलदेवता १७	लोकमातरः १३	देवसेना ९	मेधा ५
तुष्टि १६	मातरः १२	जया ८	शची ४
पुष्टि १५	स्वाहा ११	विजया ७	पद्मा ३
धृति १४	स्वधा १०	सावित्री ६	गौरी २ / गणेश १

(नागरकृतमते)

द.

स्वा.	सा.	वि.	कु.
मा.	प.	गौ.	श.
लो.	अ	ग.	मे.
स्व.	ज.	दे.	हृ. पु.

उ.

१—नागरकृतविष्णुयागे तु विशेषः—पञ्चोर्ध्वाः च पञ्च तिर्यक् च रेखाः कार्याः विशेषतः। कोष्ठषोडशके स्थाप्या मातरश्च पृथग् विधाः ॥ कुलदेवीगणेशश्च गौरी पद्मा तथैव च। एता वै मध्यकोष्ठेषु शेषा वै बाह्यमण्डले ॥ वायव्यतिर्यक् कोष्ठेषु गणेशं च समर्चयेत्। तद्दक्षिणेऽर्च्या गौरी च पद्मा तत्पूर्वतः स्मृता। शची च पश्चिमे स्थाप्या देवसेना द्वितीयके। सावित्री दक्षिणे पूज्या विजया च द्वितीयके ॥ जया चैवोत्तरे स्थाप्या देवसेना द्वितीयके। स्वाहाऽऽग्नेय्यां तथा पूज्या स्वधा चैवेशकोष्ठके ॥ पूर्वे तु मातरो लोकमातरश्च द्वितीयके। हृष्टिः पुष्टिस्तु वायव्ये नैर्ऋत्यां तुष्टिरेव च ॥ शेषकोष्ठे ततः स्थाप्या आत्मनः कुलदेवता। अत्र मूलं मृग्यमिति स्मार्तप्रभौ।

२—केचित्तु गणानान्त्वेत्यादिभिस्तत्तल्लिङ्गकैर्वैदिकमन्त्रैः स्थापयन्ति तन्निर्मूलत्वादुपेक्ष्यमिति प्रयोगरत्ने—इति स्मार्तप्रभौ। प्रणवादि नमोन्तं च चतुर्थ्यन्तं च सत्तम। देवतायाः स्वकं नाम मूलमन्त्रः प्रकीर्तितः ॥ इतितन्त्रवचनात्। ॐ गणपतये नमः—इत्येवं मूलमन्त्रः। इत्यत्रान्ते श्रुतमपि गणपतिपूजनमादौ कार्यम्। आदौ विनायकः पूज्यस्त्वदन्ते च कुलदेवता। इति छन्दोगपरिशिष्टोक्तेः।

३—स्थलमातरः—इति पाठभेदः। द्वारमातरः—जयन्ती मङ्गला चैव पिङ्गला दक्षिणे गृहात्। आनन्दवर्धिनी वामे महाकाली च निर्गमे ॥ गृहस्य दक्षिणे भागे तिस्रो लेख्यास्तु मातरः। वामभागे च द्वे च जयन्त्यादिक्रमेण तु ॥ गृह-मातरः—कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा क्रिया मतिः। बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिस्तुष्टि कान्तिस्तु मातरः ॥

चन्द्रिका में तो चतुर्विंशति मत से अन्य मातायें कहीं हैं—तीन पिता के पक्ष में और तीन मातामह के पक्ष में ये मातायें कहीं हैं। पिता तथा माता की बहिन। इसप्रकार आठ है। इनके जीवन में प्रत्यक्ष पूजन है। मरी हुईयों का तो अक्षत पुञ्जों पर अर्चन करे—यह हेमाद्रि का कहना है।

ब्रह्माण्याद्यास्तथा सप्त दुर्गाक्षेत्रगणाधिपान्। वृद्धयादौ पूजयित्वा तु पश्चान्नान्दीमुखान् पितॄन्॥ मातृपूर्वान् पितॄन् पूज्य ततो मातामहानपि। मातामहीस्ततः केचिद्युग्मा भोज्या द्विजातयः॥ इति। अत्र द्वादशदैवतस्य देशाचारतो व्यवस्था।

ब्रह्माणी आदि सात, दुर्गा, क्षेत्रपाल तथा गणाधिप का वृद्धि आदि में पूजन कर बाद में नान्दीमुख का, मातृपूर्वक पितरों का और मातामह आदि तीन पितरों का अर्चन कर पूजन करे। कोई युग्म ब्राह्मणभोजन चाहते है। यहाँ पर द्वादश देवता की देशाचार से श्राद्ध में व्यवस्था है।

ब्रह्माण्याद्याः—ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा। वाराही च तथेन्द्राणी चामुण्डा सप्त मातरः॥ इत्यपरार्के उक्ताः।

ब्रह्माणी आदियों के नाम ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी और चामुण्डा ये सात माताओं को अपरार्क में कहा है। (इनका वसोर्धारा में पूजन करे—यह याज्ञिक मत है)।

(चौलादीनां यौगपद्ये विचारः)

अत्र चौलादीनां यौगपद्ये तन्त्रतोक्ता छन्दोगपरिशिष्टे—गणशः क्रियमाणानां मातृभ्यः पूजनं सकृत्। सकृदेव भवेच्छ्राद्धमादौ न पृथगादिषु॥ मातृभ्यः इति षष्ठयर्थे चतुर्थी। गणशः एकानेकपुत्राणां संस्कारेष्वेकदिने एकदेशं कालकर्त्रैक्यादित्यर्थः।

यहाँ पर चूडाकरण आदि का एक साथ हो जाने पर तन्त्रता छन्दोगपरिशिष्ट में कहा है—एक पुत्र का नामकरण, अन्नप्राशन, चौल और उपनयन जब एक समय में किये जाँय तो उनमें माताओं का पूजन एक बार और एक ही बार वृद्धिश्राद्ध[1] तन्त्र से आदि में करे। अलग अलग न करे।

मातृभ्यः—यह षष्ठी के अर्थ में चतुर्थी है। एक या अनेक पुत्रों के संस्कारों में एकदिन में एकदेश, एककाल तथा एककर्ता होने से होता है।

तथा—असकृद्यानि कर्माणि क्रियेरन् कर्मकारिभिः।
प्रतिप्रयोगं नैव स्युः मातरः सगणाधिपाः॥

और बारंबार (प्रतिदिन, प्रतिमहिना, हरसाल) कर्म को करने वाले जिन कर्मों को करते हैं उनमें प्रतिप्रयोग में गणेश के सहित माताओं की पूजा नहीं होती है।

कर्मावृत्तावपि कुत्र श्राद्धं कार्यं कुत्र नेत्युक्तं तत्रैव—आधानहोमयोश्चैव वैश्वदेवे तथैव च। बलिकर्मणि दर्शे च पौर्णमासे तथैव च। नवयज्ञे च यज्ञज्ञा वदन्त्येवं मनीषिणः। एकमेव भवेच्छ्राद्धमेतेषु न पृथक्-पृथक्॥ एषु प्रतिप्रयोगं नावर्तते किन्त्वादौ। एतद्भिन्ने सोमयागादौ तु प्रतिप्रयोगमावर्तत एव श्राद्धमित्यर्थः।

कर्म की आवृत्ति में भी कहाँ पर श्राद्ध करे कहाँ पर न करे यह वहीं पर कहा है—आधान में, (अग्निहोत्रहोम) में, होम में, वैश्वदेव में, बलिकर्म में, अमावास्या और पूर्णिमा में तथा नवयज्ञ (आग्रयणेष्टि) में यज्ञके जानकार मनीषी एसा कहते है—एक ही श्राद्ध होता है। इनमें अलग अलग नहीं होता है। इनमें प्रतिप्रयोग आवृत्ति नहीं होती है किन्तु आदि में करे। इससे भिन्न सोमयागादि में तो प्रतिप्रयोगमें आवृत्ति श्राद्ध की होती है—यह अर्थ है।

१—गोभिलगृह्यसूत्रे—२९४ गणशः क्रियमाणेषु मातृभ्यः पूजनं पृथक्। सकृदेव भवेच्छ्राद्धमादौ न पृथगादिषु। गणशः समुदायेन एकस्मिन्दिने। क्रियमाणेषु कर्मसु यथा यजनीयेऽहनि नवयज्ञवास्तुयज्ञगोयज्ञऽश्वमेधयज्ञेषु सर्वोद्देशेनैवमेव मातृपूजनमेकमेव च। वृद्धिश्राद्धं न तु कर्मसमसंख्याकमित्यर्थः। आग्नेयादीनां षण्णामप्युद्देशेन सकृदेव प्रयाजादिवत् तन्त्रेण सिद्धिः। अतएवैकस्मिन् दिने क्रियमाणेषु चूडाकरणोपनयादिषु पूजनमाभ्युदयिकमाचरन्ति।

पश्चिम

	पितृ-पितामह-प्रपितामह	मातृपितामही-प्रपितामही	मातामह-प्रमातामह-वृद्धप्रमातामह	मातामही-प्रमातामही-वृद्धप्रमातामही	
श्राद्धकर्ता का आसन	*	*	*	*	आसन (विश्वेदेव)
	*	*	*	*	भोजनपात्र
	*	*	*	*	अर्घपात्र
	*	*	*	*	जलपात्र
	*	*	*	*	घृतपात्र

दक्षिण

(द्वादशदैवत्यपार्वणश्राद्ध)

वृद्ध-प्रमातामही	प्रमाता-मही	मातामही	वृद्ध-प्रमातामह	प्रमाता-मह	मातामह	प्रपिता-मही	पिता-मही	मातृ	प्रपिता-मह	पितामह	पितृ	
*	*	*	*	*	*	*	*	*	*	*	*	आसन
*	*	*	*	*	*	*	*	*	*	*	*	भोजनपात्र
*	*	*	*	*	*	*	*	*	*	*	*	अर्घपात्र
*	*	*	*	*	*	*	*	*	*	*	*	जलपात्र
*	*	*	*	*	*	*	*	*	*	*	*	घृतपात्र

(पिण्डाधारवेदी) (पिण्डाधारवेदी) (पिण्डाधारवेदी) (पिण्डाधारवेदी)

(अवनेजनपात्र ही प्रत्यवनेजनपात्र हो जाते हैं)

श्राद्धकर्ता का आसन

महालये गयाश्राद्धे वृद्धौ चान्वष्टकासु च।
ज्ञेयं द्वादशदैवत्यं तीर्थे प्रोष्ठे मघासु च॥

उत्तर

पूर्व

क्वचिदादावपि निषेधमाह स एव—नाष्टकासु भवेच्छ्राद्धं न श्राद्धे श्राद्धमिष्यते।
न सोष्यन्तीजातकर्मप्रोषितागतकर्मसु॥

कहीं आदि में भी निषेध उसी ने ही कहा है—अष्टकाओं में श्राद्ध नहीं होता है। न श्राद्ध में श्राद्ध करना कहा है। सोष्यन्ती (प्राणि के गर्भविमोचन के समय), जातकर्म, प्रोषित (परदेश) से आने पर कर्मों में श्राद्ध नहीं होता है।

विवाहादिः कर्मगणो य उक्तो गर्भाधानं शुश्रुमो यस्य चान्ते।
विवाहादावेकमेवात्र कुर्याच्छ्राद्धं नादौ कर्मणः कर्मणः स्यात्॥

सोष्यन्त्या आसन्नप्रसवायाः 'सोष्यन्तीमभ्युक्ष्य' (पा० गृ० प्र० १।१६) इत्युक्तं कर्म। कात्यायनोक्तस्य श्राद्धस्य पाकप्राधान्यात्तस्य—जातश्राद्धे न दद्यात्तु पक्वान्नं ब्राह्मणेष्वपि। इति निषेधान्न जातकर्मणि नान्दीश्राद्धमित्याशार्कः। आमान्नेन वा कार्यमित्यपि तेनैवोक्तम्। गौडास्तु जातकर्मण्येव निषेधः। पुत्रजन्मनिमित्तकं तु कार्यमेव। 'जन्मन्यथोपनयने' इत्युक्तेः।

विवाह आदि कर्म का समूह जो कहा है और गर्भाधान जो सुना है उसके अन्त में विवाह के आदि में एक ही वार श्राद्ध होता है। प्रत्येककर्म के आदि में नहीं होता है।

सोष्यन्ती—प्रसव शूलवाली को अर्थात्—प्राणि के गर्भ विमोचन के समय में होने वाली शूलवती को। सोष्यन्ती (प्रसव की वेदना को सहती हुई स्त्री को पति जल से अभ्युक्षण करे।) का अभ्युक्षण कर एसे कर्म को कहा है। कात्यायन के कहे हुए श्राद्ध में पाकप्रधान है और उसका—जातश्राद्ध में ब्राह्मणों को पकान्न न दे यह निषेध है 'इसलिए जातकर्म में नान्दीश्राद्ध न करे—एसा आशार्क ने कहा है। या आमान्न से करे—यह भी उसने कहा है गौड तो जातकर्म में ही निषेध कहते हैं। पुत्रजन्म निमित्त तो करे ही। क्योंकि जन्म में तथा यज्ञोपवीत में करे—एसा कहा है।

नैमित्तिकमथो वक्ष्ये श्राद्धमभ्युदयात्मकम्। पुत्रजन्मनि तत्कार्यं जातकर्म समं नरैः॥ इति मार्कण्डेयपुराणाच्चेत्याहुः। हारलतायां श्राद्धविवेके चैवम्। एतेन जातकर्मणि कालान्तरे श्राद्ध-निषेधो न जन्मदिने इति वाचस्पतिमतं परास्तम्। अथ 'निषेककाले' इति वचनात् गर्भाधाने न निषेधः। प्रोषितेति 'प्रोष्येत्य गृहानुपतिष्ठते पुत्रं दृष्ट्वा जपति' इति (पा० गृ० प्र० का० क० १८) विहितं कर्म। विवाहादिः गर्भाधानान्तो यो गृहप्रवेशधृतिहोमचतुर्थीकर्मादिः कर्मसमूह उक्तः सूत्रकारेण, तत्रापि प्रतिकर्म नेत्यर्थः। अन्येऽपि हलाभियोगादयोऽपवादविषयास्तत्रैव ज्ञेयाः। अप्रचारान्नोच्यते।

अब नैमित्तिक में आभ्युदयिकश्राद्ध को कहता हूँ। पुत्रजन्म में जातकर्म के साथ मनुष्यों को उस श्राद्ध करना चाहिये यह मार्कण्डेयपुराण से कहा है। हारलता और श्राद्धविवेक में कहा है। इससे जातकर्म में कालान्तर में श्राद्ध का निषेध है। पुत्रके जन्मदिन में नहीं है यह वाचस्पति का मत परास्त हो गया। इसके बाद निषेककाल (अत्र—निषेककाले सोमे च सीमन्तोन्नयने तथा। ज्ञेयं पुंसवने श्राद्धं कर्माङ्गं वृद्धि-वत्कृतम्॥ इति पारस्करः) में—इस वचन से गर्भाधान में निषेध नहीं है। प्रवास (परदेश) कर घरमें आकर घर में स्थित भार्या, पुत्र आदि से प्रार्थना करे। पुत्र को देखकर जप करे–यह विहित कर्म है। विवाह आदि गर्भाधानान्त, गृहप्रवेश धृतिहोम (इहरति०) चतुर्थीकर्म आदि समूह जो सूत्रकार ने कहा है, वहाँ भी प्रतिकर्म में न करे—यह अर्थ है। अन्य भी हलके अभियोग आदि अपवाद विषय वहीं पर जाना चाहिये। अप्रचार होने से नहीं कहते हैं।

अथात्राधिकारिणः। विष्णुपुराणे—जातस्य जातकर्मादि क्रियाकाण्डमशेषतः। पिता पुत्रस्य कुर्वीत श्राद्धं चाभ्युदयात्मकम्॥ अत्र केचित् जीवत्पितुः साग्नेरेव वृद्धिश्राद्धेऽधिकारः न तु निरग्नेः, न जीवत्पितृकः कुर्याच्छ्राद्धमग्निमृते द्विजः। येभ्य एव पिता दद्यात्तेभ्यः कुर्वीत

साग्निकः ॥ पितामहेप्येवमेव कुर्याज्जीवति साग्निकः। साग्निकोऽपि न कुर्वीत जीवति प्रपितामहे ॥ इति चन्द्रिकायां सुमन्तूक्तेरित्याहुः ।

प्रयोगपारिजातेऽप्यनाहिताग्निर्न कुर्यादिति यद् व्याख्यातं, तन्न, अनग्निकोऽपि कुर्वीत जन्मादौ वृद्धिकर्मणि । येभ्य एव पिता दद्यात्तानेवोद्दिश्य तर्पयेत् ॥ इति हारीतोक्तेः । सौमन्तवं तु वृद्धिश्राद्धभिन्नश्राद्धपरमित्युक्तं मदनरत्ने । श्राद्धपदं पिण्डपितृयज्ञपरमिति पृथ्वीचन्द्रः । निर्णयामृते तु हारीतीयेऽनग्निकोऽनाहिताग्निरभिप्रेतः। पूर्ववचने तु साग्निः स्मार्ताग्निश्चोच्यते । तेनोभयाग्निहीनस्य नेत्युक्तम् । तन्न, पूर्वोक्तदिशा गतिसम्भवे अग्निपदस्य स्मार्ताग्निपरत्वे मानाभावात् । वक्ष्यमाणनित्यानित्यसंयोगविरोधात् ।

अब अधिकारियों का निरूपण करते हैं। विष्णुपुराण में कहा है—उत्पन्न हुए पुत्र का जातकर्म—आदि सब क्रियाओं में आभ्युदयिकश्राद्ध पिता करे। (यहाँ पर 'पुत्रस्य' इस पद से पुंस्त्व अविवक्षित है। अतः कन्या के जन्मसमय में भी आभ्युदयिकश्राद्ध को उपांशु करे एसा पूर्वपक्ष है। उत्तर में कहा है—काम्य इष्टियाँ उपांशु करे। 'काम्या इष्टयस्ता उपांशु कर्तव्या' इत्यत्र इष्टीनामिव क्रियाणां प्रथमान्तपदोपात्तत्वात् प्रधाने एव तूष्णीं त्वविधिनाङ्गेऽपीति । तेन कन्याया जातकर्मादौ वृद्धिश्राद्धं समन्त्रकं भवति ।)

यहाँ पर किसी ने कहा है—जिसके पिता जीवित है उस अग्निहोत्री को वृद्धिश्राद्ध में अधिकार है, निरग्निक को नहीं है। चन्द्रिकामें सुमन्तु ने कहा है—अग्निहोत्री को छोडकर जीवत्पितृक द्विज श्राद्ध न करे। जिनके लिए ही पिता श्राद्ध करता है उनके लिए साग्निक श्राद्ध करे।

पितामह के जीवनावस्था में साग्निक इसीप्रकार करे। प्रपितामह के जोते हुए भी साग्निक भी न करे।

प्रयोगपारिजात में भी कहा है अनाहिताग्नि श्राद्ध न करे। एसी जो व्याख्या की है 'वह उचित नहीं है अनग्निक भी जन्म आदि में और वृद्धिकर्म में करे। जिनके लिए ही पिता देता है उन्ही को उद्देश्यकर (निमित्त कर) तर्पण करे—एसा हारीत ने कहा है। सुमन्तु का मत तो वृद्धिश्राद्ध से भिन्न श्राद्धपरक है—एसा मदनरत्न में कहा है। श्राद्धपद पिण्डपितृपितृयज्ञ परक है यह पृथ्वीचन्द्रोदय ने कहा है। निर्णयामृत मे तो कहा है हारीत के वचन से अनग्निकपद से कहा है कि जिसने अग्न्याधान न किया हो। पहलके वचन में तो साग्निकपद से श्रौताग्नि और स्मार्ताग्निको कहा है। इससे दोनों अग्नि से हीन न करे—एसा कहा है। यह उचित नहीं है। क्योंकि वृद्धिश्राद्ध भिन्न श्राद्ध की रीति से गति संभव में अग्नि पद का स्मार्ताग्निपरत्व में प्रमाणाभाव है। आगे कहे हुए नित्य (जातकर्मादिकं कुर्यादिति नित्यसंस्कारादिकमनित्येन वृद्धिश्राद्धेन कुर्यादित्यर्थपर्यवसानात् ।) और अनित्य के संयोग का विरोध है।

पितरो जनकस्येज्या यावद्व्रतमनाहितम् । समाहितव्रतः पश्चात्स्वान् यजेत पितामहान् ॥ इति पृथ्वीचन्द्रोदये यमवचोविरोधाच्च ।

और पृथ्वीचन्द्रोदय में यम वचनका विरोध है—जहाँ तक पितरों की पिता पूजा करता है वहाँ तक सावधान होकर पुत्र करे। तदनन्तर अपने पितामह आदि का अर्चन करे।

अपरार्कोऽपि—समावर्तने ब्रह्मचारी स्वयमेव नान्दीश्राद्धं कुर्यात् इत्याह । अतः पूर्वमेव साधुः । बोपदेवोप्येवमाह। यत्तु मतं जीवत्पितुः पुत्रनामकर्मादौ न वृद्धिश्राद्धम्, हारीतीये जन्मादौ इत्यादिशब्देन तत्प्राप्तावपि—उद्वाहे पुत्रजनने पित्र्येष्ट्यां सौमिके मखे। तीर्थे ब्राह्मण आयाते षडेते जीवतः पितुः ॥ इति ।

अपरार्क में भी कहा है—समावर्तन में ब्रह्मचारी स्वयं ही नान्दीश्राद्ध करे एसा कहा है। इसलिए पहला ही साधु है। बोपदेवने भी यही कहा है। जो यह मत है कि जिसके पिता जीवित हों एसे को पुत्र के नामकर्म आदि में वृद्धिश्राद्ध न करे। हारीत ने कहा है कि—'जन्मादौ' इत्यादि शब्द से उसकी प्राप्ति में भी थी। विवाह, पुत्रजन्म, पित्र्येष्टि, (कहीं पर कहा है कि—पुत्र्येष्ट्यां—पुत्रेष्टि में) सोमयाग, तीर्थ में और ब्राह्मण के आने पर ये छ जीवित पिता हैं।

मैत्रायणीयपरिशिष्टे—उद्वाह एव तस्योपसंहारात्। एवं यत्र सुतसंस्कारादिपदं तदप्युद्वाहादिपरमेव इति। तन्न, उद्वाहपदस्य स्वविवाहपरत्वस्यापि सम्भवात्पुत्रविवाहपरत्वे मानाभावात्।

(नामकर्मणि बालानां चूडाकर्मादिके तथा। इत्यादिभिर्नित्यश्राद्धस्य चौलाद्यङ्गत्वावगतौ नित्यानित्यसंयोगविरोधाच्च) अतो जन्मादाविति सर्वसंस्कारसङ्ग्रहः।

मैत्रायणीयपरिशिष्ट में कहा है—विवाह में ही उसकी समाप्ति है। इसप्रकार जहाँ पर सुतसंस्कार आदि पद है वह भी विवाह आदि परक ही है। यह उचित नहीं है। विवाह पदका अपने विवाह परत्व में भी संभव है। पुत्र के विवाह परत्व में प्रमाणाभाव है।

(लड़कों के नामकर्म में और चूडाकर्म आदि में 'इत्यादि वाक्यों से नित्यश्राद्ध का चौलादि अंगत्व हो जाने से नित्य और अनित्य संयोग का विरोध है।) इसलिए 'जन्मादौ' इससे सब संस्कारों का संग्रह है।

तथा च कात्यायनः—स्वपितृभ्यः पिता दद्यात्सुतसंस्कारकर्मसु। पिण्डानोद्वाहनात्तेषां तस्याभावे तु तत्क्रमात्॥ सुतानां चौलादिसंस्कारेषु पिता पितृभ्यः पिण्डान् श्राद्धं 'पिण्डदोंशहरश्चैषाम्' इति दर्शनात् उद्वाहनाद्विवाहपर्यन्तं दद्यात्। विवाहश्च प्रथमः। नान्दीश्राद्धं पिता कुर्यादाद्ये पाणिग्रहे बुधः। अत ऊर्ध्वं प्रकुर्वीत स्वयमेव तु नान्दिकम्॥ इति स्मृतेः।

तस्य पितुरभावे तत्क्रमात्—असंस्कृतास्तु संस्कार्या भ्रातृभिः पूर्वसंस्कृतैः। इति यः कर्तृक्रमस्तेनक्रमेण ज्येष्ठभ्रात्रादिर्दद्यादिति चन्द्रिकादयः।

हेमाद्रिस्तु तस्य पितुरभावे यः पितृव्यमातुलादिः संस्कुर्यात्स तत्क्रमात्संस्कार्यपितृक्रमाद्दद्यान्न तु स्वपितृभ्य इति व्याचख्यौ।

और कात्यायन ने कहा है—पुत्र के संस्कारकर्मों में अपने पितरों के लिए पिता दे। पुत्रों के विवाह के समय पिता के अभाव में उसी क्रम से पुत्र पिण्डों को दें। पुत्रों के चौल आदि संस्कारों में पिता अपने पितृ, पितामह, प्रपितामह के लिए पिण्डों का श्राद्ध करे। क्योंकि—पिण्ड देने वाला और उनके अंश का भागी पुत्र होता है—एसा देखा है पिता—पुत्रों के मुण्डनादि संस्कारों में विवाहपर्यन्त पिण्ड दे। विवाह भी पहला ग्रहण करे। पहले पाणिग्रहण में बुद्धिमान् पिता नान्दीश्राद्ध करे। (यदि पिता देशान्तर में गया हो या मर गया हो तो और पितामह आदि न हों तो तब स्वयं ही नान्दीश्राद्ध करे।) इसके बाद स्वयं ही नान्दीश्राद्ध करे एसा स्मृति में कहा है।

उसके पिता के अभाव में उसके क्रम से ('पिता पितामहो भ्राता' इत्यादि वचन से पितामह आदि अपने पितरों के लिए ही नान्दीश्राद्ध करें। विवाह में तो पितामह के बाद करे। उपयनय में तो पितृव्य के बाद भाई करे।) जिनका संस्कार नहीं हुआ है उनका संस्कार वे भाई करें जिनका संस्कार पहले हो चुका है। यह जो कर्ता का क्रम है उस क्रम से ज्येष्ठ भाई आदि दे—एसा चन्द्रिका आदि में कहा है। (जहाँ पर ज्येठी बडी कन्या हो या छोटा भाई हो वहाँ पर किसोप्रकार भाई का उपनयन कर बाद में कन्यादान नहीं होता है।)

हेमाद्रिने तो कहा है—उसके पिता के अभाव में जो पितृव्य, मामा आदि संस्कार करें वह जिसका संस्कार होगा उसके ही पितृक्रम से दे अपने पितृक्रम से न दें—एसी व्याख्या की है।

समावर्तनस्यापि विवाहप्राचीनसुतसंस्कारत्वात्पितैव नान्दीश्राद्धं कुर्यात्। तदभावे ज्येष्ठभ्रात्रादिः तदभावे स्वयमेव कुर्यात्। उपनयनेन कर्माधिकारस्य जातत्वात्। एवमाद्यविवाहेऽपीति पृथ्वीचन्द्रोदयचन्द्रिकादयः। मदनरत्नेप्येवम्। यदा तु पितरि संन्यस्ते प्रोषिते पतिते वा धर्मार्थे तत्पुत्रमन्यः संस्कुर्यात्तदा संस्कार्यपितुः पितामहादिभ्यो दद्यात्।

समावर्तन भी विवाह से पहले पुत्रका संस्कार होने से पिता ही नान्दीश्राद्ध करे। उसके अभाव में बड़ा भाई आदि करें उनके अभाव में स्वयं ही करे। उपनयन होने से अधिकार हो जाता है। इस

प्रकार पहले विवाह में भी करे—यह पृथ्वीचन्द्रोदय, चन्द्रिका आदि का मत है। मदनरत्न में भी यही है। जब पिता के संन्यास ग्रहण करने पर, परदेश जाने पर या पतित होने पर उसका पुत्र धर्मार्थ दूसरा संस्कार करे तो जिसका संस्कार हो रहा है उसके पिता आदियों के लिए दे।

पितरो जनकस्येज्या यावद्व्रतमनाहितम्। समाहितव्रतः पश्चात्स्वान् यजेत पितामहान् ॥ इति पृथ्वीचन्द्रोदये यमोक्तेः।

पृथ्वीचन्द्रोदय में यम ने कहा है—जहाँ तक जनक (पिता) पितरों की अर्चना (पूजा) करता है। वहाँ तक सावधान चित्त से पुत्र करे। बादमें अपने पितामहादियों की पूजा करे।

जीवत्पितृकस्य विशेषमाह कात्यायनः—वृद्धौ तीर्थे च संन्यस्ते ताते च पतिते तथा।
येभ्य एव पिता दद्यात्तेभ्यो दद्यात्स्वयं सुतः॥

जीवित्पितृक का विशेष (देवताविशेष) कात्यायनने कहा है-वृद्धिश्राद्ध में और तीर्थश्राद्ध में पिता के संन्यास ग्रहण में और पतित हो जाने पर जिनके लिए पिता देता है उन्हीं के लिए स्वयं पुत्र को देना चाहिये।

यत्तु बह्वृचपरिशिष्टे—जीवत्पिता सुतसंस्कारेषु मातृमातामहयोः कुर्यात् तस्यां जीवन्त्यां मातामहस्यैव इति, तत्तच्छाखीयानामेवेति दिक्।

जो बहवृचपरिशिष्ट में कहा है—जीवत्पिता पुत्र के संस्कारों में माता और मातामह का श्राद्ध करे। उनके जीवित रहने पर मातामह का ही करे। वह आश्वलायनशाखावालोंके लिये ही है।

स्मृतितत्त्वादिगौडग्रन्थेषु जीवन्मातृकः पितामह्यादिभ्यो वृद्धौ दद्यात्, जीवन्तमपि दद्यात् वा प्रेतायान्नोदके द्विजः। इति कात्यायनोक्तेः।

स्मृतितत्त्व आदि गौडग्रन्थों में तो कहा है—जिसकी माता जीती हो वह पितामही आदि के लिए वृद्धि में दे। क्योंकि—कात्यायन ने कहा है—जीती हुई हो या मृतक प्रेत के लिए अन्न और जल द्विज दे।

जीवे तस्मिन् सुताः कुर्युः पितामह्याः सहैव तु। तस्यां चैव तु जीवन्त्यां तस्याः श्वश्र्वेति निश्चयः॥ इति हारीतोक्तेश्चेत्युक्तम्। तस्मिन्=भर्तरि। दाक्षिणात्यास्तु पूर्वोक्तस्य सपिण्डीकरणादिविषयत्वात्। जीवेत्तु यदि वर्गाद्यस्तं वर्गं तु परित्यजेत्। इति वचनात्तद्वर्गस्य लोप एवेत्याहुः।

हारीत ने भी कहा है—उसके पतिके जीवित रहने पर पितामही के साथ पुत्र करें उसके जीवित रहने पर निश्चय उसकी सास करे। तस्मिन् का अर्थ है—स्वामी (पति) में। दक्षिणात्य तो पूर्वोक्त वचन सपिण्डीकरणादि के विषय में कहते हैं। यदि वर्गका आदि यदि जीवित है तो उस वर्ग का त्याग करे। इस वचन से उस वर्ग का लोप ही कहा है।

यत्तु चन्द्रिकायां पारस्करः—निषेककाले सोमे च सीमन्तोन्नयने तथा। ज्ञेयं पुंसवने श्राद्धं कर्माङ्गं वृद्धिवच्च तत्॥ इति। तत्र गर्भाधानादौ कर्माङ्गं जातकर्मादावुक्तं तु वृद्धिश्राद्धं पृथगेव वृद्धिवदित्युक्तेः।

जो चन्द्रिकामें पारस्कर ने कहा है—गर्भाधान, सोमयाग, सीमन्तोन्नयन और पुंसवन में श्राद्धको कर्मांग जानना चाहिये। वह वृद्धिके समान है। वहाँ पर गर्भाधान आदि में कर्मांग है। जातकर्म आदि में कहा हुआ वृद्धिश्राद्ध अलग ही है। क्योंकि—वृद्धि के तुल्य है, एसा कहा है।

गौडनिबन्धे मात्स्ये—अन्नप्राशे च सीमन्ते पुत्रोत्पत्तिनिमित्तके। पुंसवे च निषेके च नववेश्मप्रवेशने॥ देवव्रते जलादीनां प्रतिष्ठायां तथैव च। तीर्थयात्रावृषोत्सर्गे वृद्धिश्राद्धं प्रकीर्तितम्॥

गौडनिबन्धमें मत्स्यपुराण का वचन है—अन्नप्राशन, सीमन्त और पुत्रोत्पत्ति के निमित्त, पुंसवन, गर्भाधान, नये घर के प्रवेश, वेदव्रत, जल आदि प्रतिष्ठा में और वैसे ही तीर्थयात्रा तथा वृषोत्सर्ग में वृद्धिश्राद्ध को कहा है।

अत्र भूतनिमित्तानां वृद्धित्वं, भाविनिमित्तानामङ्गत्वम्। वृद्धिशब्दस्तद्धर्मातिदेशार्थ इति गौडाः। अन्ये तु निषेकादौ कर्माङ्गवृद्धिश्राद्धयोः समुच्चयमाहुः। नान्दीश्राद्धसंज्ञा तूभयाऽनुगता।

यहाँ पर जिनका निमित्त हो चुका है उनमें वृद्धित्व है, भाविनिमित्तों का अंगत्व है। वृद्धिशब्द तो वृद्धि के धर्मों का अतिदेश है यह गौड कहते हैं। अन्य तो निषेक आदि में कर्मांग और वृद्धिश्राद्ध को समुच्चय कहते हैं। नान्दीश्राद्ध—यह संज्ञा तो दोनों में अनुगत (प्राप्त) है।

(अथेतिकर्तव्यता)

अथेतिकर्तव्यता। पृथ्वीचन्द्रोदये वृद्धपराशरः—मालत्याः शतपत्र्या वा मल्लिकाकुब्जयोरपि। केतक्याः पाटलाया वा देया माला न लोहिताः॥ श्राद्धे मालानिषेधस्यायमपवादः।

अब इतिकर्तव्यता को कहते हैं। पृथ्वीचन्द्रोदय में वृद्धपराशरका वचन है—मालती पुष्प, शतपत्र (गेंदा) मल्लिका (चमेली) कुब्ज (केवडे का फूल) केतकी या पाटला (लाल-लोध्र) इनकी माला दे पर लाल माला न दे। श्राद्धमें माला के निषेध का यह अपवाद है।

तथा सुवेषभूषणैस्तत्र सालङ्कारैस्तथा नरैः। कुङ्कुमाद्यनुलिप्ताङ्गैर्भाव्यं सुब्राह्मणैः सह॥ स्त्रियोऽपि स्युस्तथा भूता गीतनृत्यादिहर्षिताः।

और—वहाँ पर सुन्दर वेश आभूषण अलंकारों सहित कुंकुम (केशर) आदि अंगको लगाये हुए मनुष्य (श्राद्ध में) ब्राह्मण मनुष्यों के साथ रहें। स्त्रियां भी वैसे ही गीत—नृत्य—आदि से प्रसन्न रहें।

(मङ्गलकार्येषु दूर्वाग्रहणकथनम्)

हेमाद्रौ ब्रह्माण्डे—कुशस्थानेषु दूर्वाः स्युर्मङ्गलस्याभिवृद्धये। कुशा अपि वक्ष्यन्ते।

हेमाद्रि में ब्रह्माण्डपुराण का वचन है—मंगलकार्य की वृद्धि के लिए कुशाके स्थानमें दूर्वा का ग्रहण करे। कुशा भी आगे कहेगें।

(भोजने ब्राह्मणादिसंख्याकथनम्)

छन्दोगपरिशिष्टे—प्रातरामन्त्रितान् विप्रान् युग्मानुभयतस्तथा। उभयतः दैवे पित्र्ये च। वैश्वदेवे द्वौ विप्रौ, पित्रादीनामेकैकस्य द्वौ द्वाविति विंशतिः। त्रिके वा द्वावित्यष्टौ विप्राः। अत्र विप्रालाभे स्त्रियोऽपि भोज्या इत्याहापरार्के वृद्धवसिष्ठः—मातृश्राद्धे तु विप्राणामलाभे पूजयेदपि। पतिपुत्रान्विता भव्या योषितोऽष्टौ कुलोद्भवाः॥ मातृत्रिके चतस्रः मातामहीत्रिके चेत्यष्टाविति हेमाद्रिः। अत्र पित्र्ये प्राङ्मुखा विप्राः पाद्ये पित्र्ये चतुरस्रं मण्डलमिति जयन्तः।

छन्दोगपरिशिष्ट में कहा है—प्रातःकाल आमन्त्रित ब्राह्मणों को देव और पितृकर्म में (उत्तरार्ध यों है—उपविश्य कुशान् दद्यात् ऋजुनैव हि पाणिना।) बैठने के लिये कुशाओं को सीधी दे। उभयतः—प्राङ्मुख या उदङ्मुख हो यह अन्य ने कहा है। वैश्वदेवों में दो ब्राह्मण (छागलेय :—एकैकस्य तु वर्गस्य द्वौ द्वौ विप्रौ समर्चयेत्। वैश्वदेवे तथा द्वौ च न प्रसज्येत विस्तरे॥) पिता आदियों में एक एक के दो दो ब्राह्मण होंगे। इसतरह बीस ब्राह्मण होंगे। या त्रिक में दो दो ब्राह्मण होंगे। इसप्रकार आठ ब्राह्मण होंगे। (पूर्वाह्णे भोजयेद्विप्रानष्टौ सर्वं प्रदक्षिणम्। तथा च नवमं विप्रं चतुरस्रं खगेश्वर॥ इति भविष्यं तत्र चतुरस्रं पाद्यस्य मण्डलमतः तेन पाद्यं ग्राह्यम्। तत्र क्रियकाले योऽतिथिरागच्छेत्तं नवमं भोजयेत् इत्यर्थः।) यहाँ पर ब्राह्मणों के अप्राप्त में स्त्रियों को भी भोजन करा दे। यों यह अपरार्क में वृद्धवसिष्ठ ने कहा है कि—मातृश्राद्ध में तो ब्राह्मणों के अभाव में पति-पुत्र से युक्त भव्य अच्छे कुल में उत्पन्न आठ स्त्रियों को भोजन करावे। माता के त्रिक में चार और मातामही के त्रिक में चार। इसतरह आठ हुए-यह हेमाद्रि ने कहा है। यहाँ पर पितृश्राद्ध में प्राङ्मुख ब्राह्मण होंगे। पाद्यमें—पितृकार्यमें चौकोरमण्डल होता है—यह जयन्त ने कहा है।

हेमाद्रौ ब्राह्मे—विप्रान् प्रदक्षिणावर्तं प्राङ्मुखानुपवेशयेत्।

हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराण का वचन है—ब्राह्मणों को प्रदक्षिणक्रम से पूर्वाभिमुख बैठा दे।

छन्दोगपरिशिष्टे—गोत्रनामभिरामन्त्र्य पितृभ्योऽर्घ्यं प्रदापयेत् ।
नात्रापसव्यकरणं न पित्र्यं तीर्थमिष्यते ॥

छन्दोगपरिशिष्ट में कहा है--गोत्र तथा नाम का उच्चारण कर पितरों के लिए अर्घ्य को दे । यहाँ पर न अपसव्य होता है न पितृतीर्थ होता है ।

ज्येष्ठोत्तरकरान् युग्मान् कराग्राग्रपवित्रकान् । कृत्वार्घ्यं सम्प्रदातव्यं नैकैकस्यात्र दीयते ॥

ज्येष्ठ (युग्ममध्ये ज्येष्ठकः । द्वितीयविप्रकारयोत्तरो येषु ते तथा । कराग्रे अग्रं पवित्रस्य येषु) के उत्तर युग्म ब्राह्मण के मध्य हाथ के अग्रभाग में पवित्री को रखकर अर्घ्य देना चाहिये । यहाँ पर एक एक को अर्घ्य न दे ।

पित्रादेर्द्वौ द्वौ विप्रौ तयोर्दक्षिणहस्तौ संयोज्य प्रथमोपवेशितविप्रकरोपरि तन्त्रेण द्वयोरर्घ्यं दद्यादित्यर्थः ।

पिता आदि के लिए दो दो ब्राह्मण उन दोनों के दाहिने हाथों को मिलाकर पहले बैठे हुए ब्राह्मण के हाथ के ऊपर तन्त्र से दोनों अर्घ्य दे--यह अर्थ है ।

बह्वृचकारिकायां तु—दत्तार्घ्यादिकदेशः स्यादर्घ्यदानं प्रतिद्विजम् । आवृत्तिरपि मन्त्रस्य प्रतिब्राह्मणमिष्यते । प्रतिद्विजं पृथक्कुर्यान्निवीत्यर्घ्यानुमन्त्रणम् ॥ इत्युक्तम् ।

बह्वृचकारिका में तो कहा है—दिये हुए अर्घ्यका एकदेश (एकभाग) प्रति ब्राह्मणको दे । मन्त्र की आवृत्ति प्रति ब्राह्मण को कहा है । प्रति ब्राह्मण निवीती (अपसव्य) होकर अर्घ्यका अनुमन्त्रण (आवाहन) करे--एसा कहा है ।

मधुमध्विति यस्तत्र त्रिर्जपोऽशितुमिच्छताम् । गायत्र्यनन्तरं स्तोत्रं मधुमन्त्रविवर्जितम् ॥ न चाश्नन्स्तु जपेदत्र कदाचित्पितृसूक्तकम् ।

जब वहाँ पर भोजन करने की इच्छा हो तो 'मधु मधु मधु' इसका तीन बार जप करे । गायत्री के बाद मधुमन्त्रवर्जित स्तोत्र का जप करे । भोजन करते समय कभी भी पितृसूक्त को जप न करे ।

तथा—सम्पन्नमिति तृप्ताःस्थ प्रश्नस्थाने विधीयते ।
सुसम्पन्नमिति प्रोक्ते शेषमन्नं निवेदयेत् ॥

और संपन्न हुआ, तृप्त हुए--यह प्रश्न स्थान में विधान करे । जब ब्राह्मण 'सुसम्पन्नम्' एसा कहें तो विप्राः--इष्टैः सह भुज्यताम्--इति वदेयुः । 'शेषमन्नं किं क्रियताम्' एसा कहने पर अवशिष्ट अन्न का निवेदन करें ।

अक्षय्योदकदानं च अर्घ्यदानवदिष्यते । षष्ठ्यैव नियतं कुर्यान्न चतुर्थ्या कदाचन ॥

और अक्षय्योदकदान को अर्घ्यदान के तरह कहा है । उसमें भी नियम से षष्ठीविभक्ति करे चतुर्थी विभक्ति कभी न करे ।

चन्द्रोदये ब्राह्मे—पठेच्छकुनिसूक्तं तु स्वस्तिसूक्तं शुभं तथा ।
नान्दीमुखान् पितॄन् भक्त्या साञ्जलिश्च समाह्वयेत् ॥

चन्द्रोदय में ब्रह्मपुराण का वचन है—शकुनि[1] सूक्त और [2]शुभ स्वस्ति[3] सूक्त को पढ़े[4] । नान्दीमुख पितरों को भक्ति से और हाथ जोडकर बुलावे । (पठेत् पवित्रं मन्त्रं तु विश्वेदेवास[5] आगत । इति उत्तरार्धम्) ।

१—कनिक्रदज्जनुषं प्रब्रुवाण इयर्ति वाचमरितेव नावम् । सुमङ्गलश्च शकुने भवासि मा त्वा काचिदभिमा भा विश्व्या विदत् १ मा त्वा श्येन उद् वधीन्मा सुपर्णो मा त्वा विददिषुमान् वीरो अस्ता । पित्र्यामनु प्रदिशं कनिक्रदत् सुमङ्गलो भद्रवादी वदेह २ अव क्रन्द दक्षिणतो गृहाणां सुमङ्गलो भद्रवादी शकुन्ते । मा नः स्तेन ईशत माघशंसो बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ३ प्रदक्षिणिदभि गृणन्ति कारवो वयो वदन्त ऋतुथा शकुन्तयः । उभौ वाचौ वदति सामगा इव गायत्रं च त्रैष्टुभं चानु राजति ४ उद्गातेव शकुने साम गायसि ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु शंससि । वृषेव वाजी शिशुमतीरपीत्या सर्वतो नः शकुने

तथा–शाल्यन्नं दधिमध्वक्तं बदराणि यवांस्तथा। मिश्रीकृत्वा तु चतुरः पिण्डान् श्रीफलसन्निभान् ॥ दद्यान्नान्दीमुखेभ्यश्च पितृभ्यो विधिपूर्वकम् । द्राक्षामलकमूलानि यवांश्च विनियोजयेत् ॥ तान्येव दक्षिणार्थं तु दद्याद्विप्रेषु सर्वदा ॥

शाल्यन्न (चावल) दधि, सहत, वेर और यवों को मिलाकर चार पिण्ड श्रीफल (नारियल) के समान नान्दीमुख पितरों के लिए विधिपूर्वक दे। मुनक्का, आंवला, आदी और यव पिण्डों के लिए निवेदन करे। उनको ही सर्वदा दक्षिणा के निमित्त ब्राह्मणों को दे।

तत्रैव चतुर्विंशतिमते—द्वौ द्वौ चाभ्युदये पिण्डावेकैकस्मै विनिक्षिपेत् ।
एकं नाम्ना परं तूष्णीं दद्यात्पिण्डान् पृथक् पृथक् ॥

वहीं पर चतुर्विंशतिमत में कहा है—एक एक के लिए दो दो पिण्ड आभ्युदयिक में दे। एक का नाम ग्रहण कर पिण्ड दे और दूसरा पिण्ड मौन होकर दे। इसतरह अलग अलग पिण्डों को दे।

वसिष्ठः—प्राङ्मुखो देवतीर्थेन प्राक्कूलेषु कुशेषु च। दत्त्वा पिण्डान्न कुर्वीत पिण्डपात्रमधोमुखम् ॥ नान्दीमुखेभ्यः पितृभ्यः स्वाहेति वा पिण्डदानमन्त्र इति वृत्तिः। अत्र पिण्डाः कृताकृता इत्युक्तं तत्रैव भविष्ये—पिण्डनिर्वपनं कुर्यान्न वा कुर्याद्विचक्षणः। वृद्धिश्राद्धे महाबाहो कुलधर्मानवेक्ष्य तु ॥

वसिष्ठ ने कहा है—पूर्वाभिमुख देवतीर्थ से पूर्वकी तरफ मुखवाली कुशाओं पर बैठा हुआ यजमान पिण्ड के पात्र को अधोमुख न करे। वृत्तिकार ने एसा मन्त्र कहा है—'नान्दीमुखेभ्यः पितृभ्यः स्वाहा।' यहाँ पर पिण्ड करे या न करे एसा वहाँ पर कहा है। भविष्यपुराण में कहा है—हेमहाबाहो, बुद्धिमान् व्यक्ति वृद्धिश्राद्ध में कुलधर्मों को देखकर पिण्डदान करे या न करे।

छागलेयः—अग्नौकरणमर्घ्यं वाऽवाहनं चावनेजनम्। पिण्डश्राद्धे प्रकुर्वीत पिण्डहीने विवर्तते ॥ तेनात्र भोजनस्यैव प्रधानत्वाद्यदि विप्रस्य वमनं तदा तस्यैव पार्वणस्य पुनरावृत्तिरिति सिद्धम्।

छागलेय ने कहा है—अग्नौकरण, अर्घ्य, आवाहन और अवनेजन यह पिण्ड श्राद्ध में करे और पिण्डहीनता में (जहाँ पिण्ड न हो वहाँ) न करे। इससे यहाँ पर भोजन ही प्रधान है। यदि ब्राह्मण को भोजन के समय वमन हो जाय तो उस पार्वण की ही पुनरावृत्ति होती है—यह सिद्ध है।

(अत्र साङ्कल्पे विशेषः)

अत्र साङ्कल्पे विशेषः प्रयोगपारिजाते सङ्ग्रहे—शुभार्थी प्रथमान्तेन वृद्धौ सङ्कल्पमाचरेत्।
न षष्ठ्या यदि वा कुर्यान्महादोषोऽभिजायते ॥

यहाँ पर संकल्प में विशेष प्रयोगपारिजात में संग्रह के वचन से कहा है—शुभार्थी मनुष्य वृद्धिश्राद्ध में प्रथमान्तपद से संकल्प करे। षष्ठी विभक्ति से न करे। यदि करे तो महान् दोष होता है।

नामगोत्रादिनिषेधोऽप्यत्रैव न तु सपिण्डकश्राद्धे इति स एव।

नाम, गोत्र आदि का निषध भी वहाँ पर ही कहा है। सपिंडकश्राद्धमें यह नहीं है यह उसने ही कहा है।

भद्रमा वद विश्वतो न शकुने पुण्यमा वद ५ आवदंस्त्वं शकुने भद्रमा वद तूष्णीमासीनः सुमतिं चिकिद्धि नः। यदुत्पतन् वदसि कर्करिर्यथा बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ६ (ऋ. २ सू.-४२, म.-१-३ सू. ४३-म. १-३)

२—नराशंसप्रधानं किञ्चिदृग्यजुः प्रभृतिकं तदपि पठेदिति हेमाद्रिः।

३—स्वस्त्ययनं तार्क्ष्यमरिष्टनेमिं महद्भूतं वायसं देवतानाम्। असुरघ्नमिन्द्रसखं समत्सु बृहद्यशो नावमिवा रुहेम १ अंहोमुचाङ्गिरसं गयं च स्वस्त्यात्रेयं मनसा च तार्क्ष्यम्। प्रयतपाणिः शरणं प्रपद्ये स्वस्ति संबाधेष्वभयं नो अस्तु २ (ऋ. खिलसूक्त ७)। ४—अन्य एव जपः कार्यः सोमसामादिकः शुभः।

५—विश्वे देवास आगत शृणुता म इमं हवम्। एदं बर्हिर्निषीदत ॥ (ऋ. २।४१।१३, ६।५२।७, यजु. ७।३४)।

(अत्रायं क्रमः)

अत्रायं क्रमः। नान्दीश्राद्धे दैवे क्षणः क्रियतामिति द्वौ युगपन्निमन्त्र्य ॐतथेति विप्राभ्यां युगपदुक्ते प्राप्नुतां भवन्तौ प्राप्नुवाव इति वैश्वदेववत्पित्र्ये च द्विवचनान्तेन विप्रद्वये प्रयोगं कुर्यात्।

यहाँ पर यह क्रम है—(नान्दीश्राद्धे दैवे क्षणः क्रियताम्) यजमान (चुपचाप होकर निर्व्यापार स्थित (कालविशेषोत्सवयोः क्षणः) नान्दीश्राद्ध दैवकर्म में एक साथ दो ब्राह्मणों को आमन्त्रण करे। और 'ॐ' ऐसा ब्राह्मणों के एक साथ स्वीकार करने पर 'प्राप्नुतां भवन्तौ प्राप्नुवाव-आपलोग आवें। ब्राह्मण कहते हैं—हम आवेंगे। ऐसा वैश्वदेवके सदृश पितृकर्ममें द्विवचनान्तसे दो ब्राह्मणोंमें प्रयोग करे।

आहिताग्निस्तु हेमाद्रौ ब्राह्मे—योऽग्नौ तु विद्यमानेऽपि वृद्धौ पिण्डान्न निर्वपेत्।
पतन्ति पितरस्तस्य नरके स च पच्यते॥

आहिताग्नि के लिए तो—हेमाद्रि में ब्रह्मपुराण का वचन है—जो अग्नि के रहते हुए भी वृद्धि में पिण्डों को नहीं देता है उसके पितर नरक में पकते है।

बह्वृचपरिशिष्टे—द्वौ दर्भौ पवित्रे, पवित्राणि चत्वारि। शन्नोदेवीरित्यनुमन्त्रितासु यवानावपति—यवोऽसि सोमदेवत्यो गोसवो देवनिर्मितः। प्रत्नवद्भिः प्रत्तः पुष्ट्या नान्दीमुखान् पितॄनिमाँल्लोकान्प्रीणाहि नः स्वाहेति स्वाहार्घ्याः इति पृच्छति। विश्वेदेवा इदं वोऽर्घ्यं नान्दीमुखाः पितर इति यथालिङ्गमर्घ्यदानं गन्धादिदानं द्विर्द्विः। पाणौ होमोऽग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा, सोमाय पितृमते स्वाहेति। अतो देवा अवन्तु नः इत्यङ्गुष्ठग्रहणम्। पावमानीः शंवतीरैन्द्रीरप्रतिरथं च श्रावयेन्मधुवातेत्यृचस्थाने उपास्मै गायतेति पञ्च मधुमतीः श्रावयेदक्षन्नमीमदन्तेति च षष्ठीं शुक्रशेपेणैकैकस्य द्वौ द्वौ पिण्डौ दद्यादिति।

बह्वृचपरिशिष्ट में कहा है—दो कुशा और दर्भ के पवित्री चार 'शन्नो[1] देवीः' इस मन्त्र से अनुमन्त्रण कर यवों को 'यवोऽसि सोम दैवत्यो गोसवो देवनिर्मितः। प्रत्नवन्तिः प्रत्तः पुष्ट्या नान्दीमुखान् पितॄनिमाँल्लोकान् प्रीणाहि नः स्वाहा॥ इसप्रकार मन्त्र से स्वाहार्घ्याः पूछता है। तुम यव हो, तुम कैसे हो—सोम देवता वाले हो। तुम स्वर्ग में पैदा होने वाले हो। फिर कैसे हो विष्णु द्वारा निर्मित-उत्पादित हो। फिर कैसे हो-जल से मिश्रित हो। इसलिए तुम ही हमारे चिरकाल से पितृ-पितामह-प्रपितामह आदि नान्दीमुखों पितरों को स्वधाकार द्वारा इस लोक से प्रसन्न करो। हे विश्वेदेवाः, यह अर्घ्य नान्दीमुख पितर आप लोकों के लिए है। जैसा लिंग हो तद्वत् ही अर्घ्यदान (पितरः प्रीयन्ताम्' इति अपां प्रतिग्रहणम्। एवमुत्तरयोरपि पितामहप्रपितामहयोः।) करे। गन्धादिदान एक एक दो दो बार दे। (अग्नौकरणहोम) पाणि (हाथ) में होम [2]अग्नये-कव्यवाहनाय स्वाहा। इस मन्त्र से और सोमाय पितृमते स्वाहा। इस मन्त्र से दे। 'अतो[3] देवा अवन्तु नः' इस मन्त्र से अंगूठे का ग्रहण करे। पावमानी[4], शंवन्ती,[5] ऐन्द्री[6]

१—शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शं योरभि स्रवन्तु नः॥ (ऋ० १०।९।४, साम-३३। अथर्व-१।६।१ तैत्तरीयब्रा० २।८।६।३)। २—पृषदाज्यमिश्र ओदनो हविः। सर्वत्र तस्य अर्घ्यं द्वे द्वे आहुतीर्जुहुयात्। दधिमिश्रमाज्यं पृषदाज्यम्। भविष्यपुराणे—पृषदाज्येन संयुक्तं दद्यादोदनमादितः। पायसं च तथा मध्यं मोदकादिरसोत्तरम्॥ मधुरं भोजनं दद्यान्नचाम्लं परिवेषयेत्।

३—अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे। पृथिव्याः सप्त धामभिः॥ (ऋ० १।२२।१६)।

४—स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया। इन्द्राय पात वे सुतः १ रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहतम्। द्रुणा सधस्थमासदत् २ वरिवोधातमो भव मंहिष्ठो वृत्रहन्तमः। पर्षिराधो मघोनाम् ३ अभ्यर्ष महानां देवानां वीतिमन्धसा। अभि वाजमुश्रवः ४ त्वामच्छा चरामसि तदिदर्थं दिवे दिवे। इन्द्रो त्वे न आशसः ५। (ऋ० ९।१। म० १-५) पावमान सूक्त बहुत बड़ा है। ऋग्वेद के नवम मंडल को देखिये।

५—शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या। शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ? शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरन्धिः शमु सन्तु रायः। शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं

और अप्रतिरथ[1] सूक्त को सुनावे। मधुमती[2] इस ऋचा के स्थान पर 'उपास्मै[3] गायता' इन पांच मधुमती मन्त्रों तो सुनावे। 'अक्षन्नमीमदन्त'[4] इस छठी ऋचा को भी सुनावे। भोजनकिये शेष अन्न से एक एक को दो दो पिण्ड दे।

चन्द्रिकायां वृद्धवसिष्ठः—तृप्तिप्रश्ने तु सम्पन्नं दैवे रुचितमित्यपि।
दधिकर्कन्धुमिश्राश्च पिण्डाः कार्याः यथाक्रमम्॥

चन्द्रिका में वृद्धवसिष्ठ ने कहा है--तृप्तप्रश्न में तो 'सम्पन्न' तथा दैवश्राद्ध में तो 'रुचितम' कहे। दधि और वेर का मिश्रण कर यथाक्रम से पिण्डों को करे।

कात्यायनः—'स्यमूषु वाजिनम्' इति विप्रांश्चैव विसर्जयेत्। 'नान्दीमुखाः पितरः प्रीयन्ताम्' इत्यक्षय्यस्थाने स्वधां वाचयिष्य इत्यस्य स्थाने 'नान्दीमुखान् पितॄन् वाचयिष्ये' इति, न स्वधां प्रयुञ्जीतेति।

अत्र साग्निरनग्निर्वा आदौ वैश्वदेवं कुर्यात्। आदौ वृद्धौ चये चान्ते मध्ये श्राद्धे तु पार्वणे। एकोद्दिष्टे निवृत्ते तु वैश्वदेवो विधीयते॥ इत्याशार्के शाङ्खायनपरिशिष्टात्।

नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु २ शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः। शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ३ इत्यादि मन्त्र बहुत मन्त्र हैं। (ऋ० अ० ७ सू० ३५ म० १-३)

६—सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे। जुहूमसि द्यविद्यवि १ उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब। गोदा इद् रेवतो मदः २ अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम्। मा नो अति ख्य आ गहि ३ परेहि विग्रमस्तृतमिन्द्रं पृच्छा विपश्चितम्। यस्ते सखिभ्य आ वरम् ४ उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत। दधाना इन्द्र इद् दुवः॥ (ऋ० १।३। म० १-५)। वीरमित्रोदयकार के मत से रौद्री है—रुद्राध्यायादि।

१—आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम्। संक्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत् साकमिन्द्रः १ संक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना। तदिन्द्रेण जयत तत् सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा २ स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन। संसृष्टजित् सोमपा बाहुशर्ध्यु १ ग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ३ बृहस्पते परिदीया रथेन रक्षोहामित्राँ अपबाधमानः। प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम् ४ बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः। अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोवित् ५ गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा। इमं सजाता अनु वीरयध्वमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम् ६ अभिगोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः। दुश्च्यवनः पृतनाषाडयुध्यो ३ ऽस्माकं सेना अवतु प्रयुत्सु ७ इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः। देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ८ इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्ध उग्रम्। महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ९ उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत् सत्वनां मामकानां मनांसि। उद्वृत्रहन् वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषाः १० अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु। अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्मां उ देवा अवता हवेषु ११ अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परे हि। अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम् १२ प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु। उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ १३ (ऋ० १०।१०३।म० १-१३)।

२—मधु वाता ऋतायते मधुक्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः १ मधु नक्तमुतोषसो मधुमत् पार्थिवं रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता २ मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः ३ (ऋ० १।९०।६-८)।

३—उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे। अभि देवाँ इयक्षते। अभि ते मधुना पयोऽथर्वाणो अशिश्रयुः। देवं देवाय देवयु २ स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते। शं राजन्नोषधीभ्यः ३ बभ्रवे नु स्वतवसेऽरुणाय दिविस्पृशे। सोमाय गाथमर्चत ४ हस्तच्युतेभिरद्रिभिः सुतं सोमं पुनीतन। मधावा धावता मधु ५ (ऋ० ९।११।म० १-५)।

४—अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत। अस्तोषत स्वभानवो विप्रा न विष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी॥ (ऋ० १।८२।२)।

कात्यायन ने कहा है--त्यमूषु वाजिनम्[1]--इस मन्त्र से ब्राह्मणों का विसर्जन करे। नान्दीमुखाः[2] पितरः प्रीयन्ताम्--इसको अक्षय्यस्थान में 'स्वधां वाचयिष्ये' इसके स्थान में 'नान्दीमुखान् पितॄन् वाचयिष्ये यह कहे। स्वधाशब्द का प्रयोग न करे।

यहाँ पर साग्निक या निरग्निक आदि में वैश्वदेव को करें। वृद्धिश्राद्ध के आदि में, क्षय के अन्त में, पार्वण के मध्य में और एकोद्दिष्ट की समाप्ति पर वैश्वदेव (बलिवैश्वदेव) का विधान किया है। यह आशार्क में शांखायनपरिशिष्ट का वचन है।

हेमाद्रौ तु—शेषमन्नमनुज्ञाप्य वैश्वदेवक्रियां ततः। श्राद्धाह्नि श्राद्धशेषेण वैश्वदेवं समाचरेत्॥ इति चतुर्विंशतिमतं नान्दीश्राद्धेष्यन्ते वैश्वदेव उक्तः। बह्वृचानामपि वृत्त्यालोचनाच्चैव। पूर्वोक्तं तु येषां परिशिष्टं तद्विषयमन्यविषयं वा ज्ञेयम्। अत्र श्राद्धाङ्गतर्पणं नेत्युक्तं प्राक्। इति वृद्धिश्राद्धम्।

हेमाद्रि में तो कहा है—ब्राह्मणों की आज्ञा प्राप्तकर शेष अन्न ग्रहण कर वैश्वदेव करे। श्राद्ध के दिन में श्राद्धशेष अन्न से वैश्वदेव करे। इस चतुर्विंशतिमत से। नान्दीश्राद्ध के भी अन्त में वैश्वदेव ने कहा है। बह्वृचों की भी वृत्ति के आलोचन से भी वही प्राप्त (मृतोद्देश्यकद्रव्यत्यागः श्राद्धम्) होता है। पहले कहे हुए वचनों से तो जिनके परिशिष्ट में हो उनके विषय में हैं या अन्य के विषय में है-ऐसा जानना चाहिये। यहाँ पर श्राद्धांग तर्पण नहीं है यह बात पहले कह चुके हैं।

(श्राद्धे जीवत्पितृकाधिकारकथनम्)

अथ जीवत्पितृकश्राद्धम्। तत्रानेके पक्षाः दृश्यन्ते। जीवन्तं पितरं भोजयित्वा परयोः श्राद्धं कुर्यादित्येकः। होमान्तमेव कुर्यादित्यन्यः, होमान्तः पितृयज्ञः स्याज्जीवे पितरि जानतः। पितरं भोजयित्वा वा पिण्डौ निर्वृणुयात्परौ॥ इति यज्ञपार्श्वोक्तेः।

अब जीवत्पितृकश्राद्ध कहते हैं। उसमें अनेक पक्ष देखते हैं। जीते[3] हुए पिता को भोजन कराकर आगे के दोनों का श्राद्ध करे—यह एक पक्ष है। या होमान्त का ही करे—यह दूसरा पक्ष है। यज्ञपार्श्व ने कहा है--जानते हुए पिता के जीवित में होमान्त पितृयज्ञ करे। या पिता को भोजन कराकर आगे के दो (पितामह और प्रपितामह) को पिण्ड दे।

'यदि जीवत्पिता न दद्यादाहोमात्कृत्वा विरमेत्' इत्यापस्तम्बोक्तेश्च (३ पहले पृ० ६८)। 'जीवतां पिण्डानग्नौ हुत्वा परेभ्यो देयम् इत्यपरः, 'जुहुयाज्जीवेभ्यः इत्याश्वलायनोक्तेः।

१—त्यमू षु वाजिनं देवजूतं सहावानं तरुतारं रथानाम्। अरिष्टनेमिं पृतनाजमाशुं स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम॥ (ऋ० १०।१७८।१)। (अग्ने रक्षाणो अंहसः प्रतिष्म देव रीषतः। तपिष्ठैरजरो दह॥ (ऋ० ७।१५।१३)। अयं ते योनिर्ऋत्विजो यतो जातो अरोचथाः। तं जानन्नग्न आ सीदाथा नो वर्धया गिरः॥ (ऋ० ३।२९।१०)।)

२—नान्दीमुखाश्च पितरः प्रीयन्तामिति वाचयेत्। विश्वेदेवाश्च प्रीयन्तामिति दाताऽब्रवीदिमान्॥ प्रीता भवन्तु ते तं च वदेयुर्मधुराक्षरम्। प्रीयन्तामिति च ब्रूयात्पिण्डान्स्वाहेति च क्षिपेत्। दातार इति प्रार्थनातः प्राक् प्रार्थनाश्लोकौ भविष्ये—माता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः॥ मातामहस्तत्पिता च प्रमातामहकादयः। एते भवन्तु मे प्रीताः प्रयच्छन्तु च मङ्गलम्॥ पाद्मे—एवं शूद्रोऽपि सामान्यं वृद्धिश्राद्धं च सर्वदा। नमस्कारेण मन्त्रेण कुर्यादेवादितो बुधः॥

३—यत्पितृभ्यो दानमुक्तं तन्मृतेभ्यः पितृभ्यो दद्यात्। जीवन् पिता यस्य स जीवपितृको जीवेन पित्रादिना व्यवहितेभ्योऽपि पितामहादिभ्यो दद्यात्। जीवत्पितृकोऽपि पिण्डपितृयज्ञमनुतिष्ठेत्। अनुतिष्ठंश्च पितृपितामहप्रपितामहेषु यः कश्चिज्जीवति तं जीवन्तं परित्यज्य त्रिभ्यः पिण्डान्दद्यात्। एवं प्राप्त आह—जीवपितृकस्य यजमानस्य होमान्तमेव पिण्डपितृयज्ञसंज्ञं कर्म स्यात्। न तत ऊर्ध्वं पिण्डदानादि। एवं पक्षद्वयमुपन्यस्य सिद्धान्तमाह—वाशब्दः पूर्वपक्षनिरासार्थः। पिण्डदानस्य प्रधानत्वात् तदभावे होमस्याङ्गभूतस्यानुष्ठानं न युक्तम्। अतो जीवत्पितृकेन पिण्डपितृयज्ञो नानुष्ठेयः। तत्रोपपत्तिमाह—जीवेन पित्रादिना व्यवहिते पितामहादौ पिण्डदानं न भवतीति जातूकर्ण्य आह। जातूकर्ण्यग्रहणं प्रत्ययदार्ढ्यार्थम्। तत्र हेतुमाह—अतो जीवत्पितृस्य प्रधाने पिण्डदाने निषिद्धे अनारम्भपक्ष एव श्रेयान्। (म० म० विद्याधरजी गौड कृत कात्यायन सवृत्ति पृ० १३४, १३५)

जीवतामजीवतां च पिण्डदानमितीतरः। 'जीवतामजीवतां वा देयमेवेति हिरण्यकेतुरिति निगमात्। तस्माज्जीवत्पिता कुर्याद् द्वाभ्यामेव न संशयः। इति भविष्योक्तेर्द्वाभ्यामेवेत्यन्यः। एते पक्षाः कलौ निषिद्धाः,

यदि पिता जीता हुआ न दे तो हवनपर्यन्त कर विराम करे-ऐसा आपस्तम्ब ने कहा है। दूसरा पक्ष है—जीते हुओं के पिण्डों को अग्नि में हवन कर आगे वालों के लिए दे। जीते हुओं का हवन करे--यह आश्वलायन ने कहा है। तीसरा पक्ष है कि जीते हुए और न जीते हुओं का पिण्डदान करे। जीवितों को या अजीवितों को देना चाहिए यह हिरण्यकेतु ने कहा है--यह निगम ने कहा है। इसलिए जीवत्पिता दोनों का ही करे--इसमें संशय नहीं है। इस भविष्यपुराण में कहा है--दोनों को ही दे--यह अन्यमत है। ये पक्ष कलि में निषिद्ध हैं।

प्रत्यक्षमर्चनं श्राद्धे निषिद्धं मनुरब्रवीत्। पिण्डनिर्वपणं चापि महापातकसम्मितम्॥ इति पृथ्वीचन्द्रोदये भविष्योक्तेः। चन्द्रिकाप्येवम्। तस्मात्पितरि जीवति श्राद्धानारम्भ एवेत्येकः पक्षः। सपितुः पितृकृत्येषु अधिकारो न विद्यते। इति कात्यायनोक्तेः। जीवे पितरि वै पुत्रः श्राद्धकालं विवर्जयेत्। इति हारीतोक्तेश्च। पितुः पित्रादिभ्यो दद्यादिति सिद्धान्तः, म्रियमाणे तु पितरि पूर्वेषामेव निर्वपेत्। इति मनूक्तेः (अ० ३। श्लो० २२०)। पितुः पितृभ्यो वा दद्यात् सपितेत्यपरा श्रुतिः। इति कात्यायनोक्तेश्च। अयं बहुसम्मतः पक्षः। अन्ये तु शाखाभेदेन ज्ञेयाः। एवं जीवन्मातामहेनाप्यूहेन कार्यम्। मातामहानामप्येवं श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः। मन्त्रोहेन यथान्यायं शेषाणां मन्त्रवर्जितम्॥ इति विष्णूक्तेः।

एवं मात्रादिकस्यापि तथा मातामहादिके। इति पृथ्वीचन्द्रोदयेऽग्निपुराणाच्च। पितरि जीवति स्वमातरि मृतायामपि पितुरेव मातृमातामहयोः कुर्यात्। येभ्य एव पिता दद्यात् इति वक्ष्यमाणवचनात्। इति पितामहचरणाः।

पृथ्वीचन्द्रोदय में भविष्यपुराण का मत है--मनु ने कहा है—श्राद्ध में प्रत्यक्ष अर्चन (पूजन) निषिद्ध है और पिण्ड का निर्वाप भी महापातक के सदृश होता है। चन्द्रिका में भी यही है। इसलिए पिता के जीते हुए श्राद्ध का आरम्भ नहीं ही करे--यह एक पक्ष है। कात्यायन ने कहा है—पिता वाले को पितृकार्यों में अधिकार नहीं है। और हारीत ने कहा है--पिता के जीवनकाल में पुत्र को निश्चय श्राद्धकाल वर्जित है। पिता के पिता आदि के लिए दे-यह सिद्धान्त है। मनु ने कहा है--पिता के जीवित रहने पर पहलों को ही निर्वाप (पिण्ड) करे। और कात्यायन ने कहा है--पिता के सहित पुत्र पिता के पिता आदिकों को पिण्ड दे--यह दूसरी श्रुति कहती है। यह पक्ष बहुतों को सम्मत है। अन्य तो शाखाभेद से जानना चाहिये। इसप्रकार मातामह के जीवित रहते हुए भी ऊह से श्राद्ध करे। बुद्धिमान् मनुष्य इसीप्रकार मातामहों का भी श्राद्ध करे। मन्त्रों के ऊह से यथायोग्य श्राद्ध करे। अवशिष्टों का श्राद्ध मन्त्रवर्जित करे—एसा विष्णु ने कहा है।

इसप्रकार माता आदि का भी और मातामह आदि का करे—यह पृथ्वीचन्द्रोदय में अग्निपुराण का वचन है। पिता के जीवित रहने पर तो अपनी माता के मरने पर भी पिता की ही माता और मातामह का श्राद्ध करे। जिनके लिए पिता देता है उन्हीं के लिए स्वयं पुत्र दे। यह आगे कहे गये वचन से। यह पितामहचरण ने कहा है।

मदनरत्ने तु—जीवत्पिता स्वमातृमातामहयोर्दद्यात् इत्युक्तम्। कालादर्शेऽप्येवम्। मृते तु पितरि जीवन्मातृकः पितामह्यादिभ्यो वृद्धौ दद्यादिति स्मृतितत्त्वादिगौडग्रन्थाः।

मदनरत्न में तो कहा है—जीवत्पिता अपनी माता और मातामह को दे—एसा कहा है। कालादर्श में भी यही है। पिता के मरने पर जीवित माता वाला पितामही आदियों के लिए वृद्धि में दे—यह स्मृतितत्त्वादि गौडग्रन्थ में कहा है।

दाक्षिणात्यास्तु—पितृवर्गे मातृवर्गे तथा मातामहस्य च। जीवेत्तु यदि वर्गाद्यस्तं वर्गं तु परित्यजेत् ॥ इति वचनात्तद्वर्गत्याग एवेत्याहुः।

एवं पतितसंन्यस्तपितृकादेरपि ज्ञेयम्, वृद्धौ तीर्थे च संन्यस्ते ताते च पतिते सति। येभ्य एव पिता दद्यात्तेभ्यो दद्यात्स्वयं सुतः ॥ इति षट्त्रिंशन्मतात्। संन्यस्ते जीवतीत्यर्थः। मृते तु संन्यस्ते तदाद्येव देयम्। मृतेऽपि परेभ्य एवेति गौडाः।

दाक्षिणात्यों ने तो कहा है—पितृवर्ग में, मातृवर्ग में और मातामहवर्ग में यदि वर्ग का आदि जीवित हो तो उस वर्ग का त्याग करे। इस वचन से उस वर्ग का ही त्याग करना कहा है।

इसप्रकार पतित और संन्यस्त पिता आदि में भी जानना चाहिये। वृद्धि में, तीर्थ में, पिता के संन्यासी होने पर या पतित होने पर जिनको जीवित पिता देता है उन्हीं के लिए स्वयं पुत्र श्राद्ध करे—यह षट्त्रिंशत् का मत है। संन्यस्ते–माने संन्यासी पिता के जीवित रहने पर–यह अर्थ है। संन्यासी पिता के मरने पर संन्यासी पिता आदि को देना चाहिए। मरने पर भी तो पर पुरुषों को ही दे—यह गौड कहते हैं।

कात्यायनोऽपि—ब्राह्मणादिहते ताते पतिते सङ्गवर्जिते। व्युत्क्रमाच्च मृते देयं येभ्य एव ददात्यसौ ॥ अयं च संन्यस्तपित्रादेरविशेषात्सर्वश्राद्धेऽधिकारः। एतत्त्रिदण्डिपरम्। एकादशाहपार्वणवार्षिकाद्यपि तस्यैव, अहन्येकादशे प्राप्ते पार्वणं तु विधीयते। इत्युक्त्वा त्रिदण्डग्रहणादेव प्रेतत्वं नैव जायते। इत्युशनसा विशेषोक्तेः। ब्राह्मणादिहते इत्यादिनिषेधस्त्वेकदण्डादिपरः। अतः परमहंसानां वार्षिकादिकमपि न कार्यमिति शूलपाणिश्राद्धतत्त्वादयो गौडग्रन्थाः। इदमेव युक्तम्।

कात्यायन ने भी कहा है—ब्राह्मण, गौ आदि द्वारा पिता के मरने पर, पतित या संन्यासी होने पर या विपरीत क्रम से मरने पर वह जिनको पिता देते थे उनको ही दे। और यह संन्यासी पिता आदि के अविशेष से सब श्राद्धों में अधिकार है। यह त्रिदण्डीपरक है। एकादशाह, पार्वण, वार्षिक आदि भी उसका ही है। ग्यारहवें दिन के प्राप्त होने पर पार्वण संन्यासी का करे—ऐसा कह कर त्रिदण्डग्रहण से ही प्रेतत्व नहीं होता है यह उशना ने विशेष कहा है। 'ब्राह्मणादि हते' इत्यादि श्लोक से निषेध तो एक दण्डादि परक है। इसलिए परमहंसों का वार्षिक भी न करे यह शूलपाणि, श्राद्धतत्त्व आदि गौड ग्रन्थ में कहा है। यही ही युक्त है।

यत्तु हेमाद्रौ कौण्डिन्यः—दर्शश्राद्धं गयाश्राद्धं श्राद्धं चापरपक्षकम्। न जीवत्पितृकः कुर्यात्तिलैस्तर्पणमेव च ॥ इति, तत्संन्यस्तपित्राद्यतिरिक्तविषयम्।

जो हेमाद्रि में कौण्डिन्य ने कहा है—दर्शश्राद्ध, गयाश्राद्ध और अपरपक्षीयश्राद्ध (महालयश्राद्ध) को जीवित पितावाला न करे। और तिलों से तर्पण भी न करे। यह संन्यस्त पिता आदि के अतिरिक्तविषयक है।

मैत्रायणीयपरिशिष्टे—उद्वाहे पुत्रजनने पैत्र्येष्ट्यां सौमिके मखे।
तीर्थे ब्राह्मण आयाते षडेते जीवतः पितुः ॥

मैत्रायणीयपरिशिष्ट में कहा है—उद्वाह में (अपने दूसरे विवाह आदि में), पुत्रजन्म में, पितरों के अर्चन में, सोमयाग में, तीर्थ में और ब्राह्मण के आगमन में यह छ जीवित पिता के काल हैं।

तत्रैव—महानदीषु सर्वासु तीर्थेषु च गयामृते। जीवत्पितापि कुर्वीत श्राद्धं पार्वणधर्मवत् ॥ गयामृते इति मातृव्यतिरिक्तविषयम्,

वहीं पर कहा है—सब महानदियों में, तीर्थों में और गया में मरने पर जिसका पिता जीवित हो वह भी पार्वणविधान से श्राद्ध करे। गयामृते—माता को छोड़कर ग्रहण करे।

अन्वष्टक्यं गयाप्राप्तौ सत्यां यच्च मृतेऽहनि। मातुः श्राद्धं सुतः कुर्यात्पितर्यपि च जीवति॥ इति तत्रैवोक्तेः। गयाप्राप्तौ प्रासङ्गिक्याम्, गयां प्रसङ्गतो गत्वा मातुः श्राद्धं समाचरेत्। इति वचनात्। तेन मृतमातृको गयायां तत्पार्वणमात्रं कुर्यात्। तज्जीवने तु तीर्थश्राद्धमपि नेति कालादर्शस्मृतिदर्पणादयः। अन्ये तु गत्वा श्राद्धं नेति निषेधार्थः। सामान्यतः प्राप्तं तीर्थश्राद्धं भवत्येव गयायामित्याहुः।

अन्वष्टका और सति संभव में गयाप्राप्ति में क्षयाह के दिन माता का श्राद्ध पुत्र पिता के जीवित रहने पर भी करे—यह वहीं पर कहा है। गया की प्राप्ति में—अर्थात्-प्रसंगवश गया में गया हो तो करे। प्रसंगवश गया में गया हो तो पुत्र माता का श्राद्ध करे—यह वचन है। इससे जिसकी माता मर गयी हो वह पुत्र गया में उसका पार्वण मात्र करे। उसके जीवित में तो तीर्थश्राद्ध भी न करे—यह कालादर्श, स्मृतिदर्पण आदि में कहा है। अन्य तो कहते हैं कि जाकर (गया में जाकर) श्राद्ध को न करे यह निषेधार्थ है। सामान्यता से प्राप्त तीर्थश्राद्ध गया में होता ही है—एसा कहा है।

यदा पितुः प्रतिनिधित्वेन गयां याति, तदा यजमानस्य पितृपितामहप्रपितामहा इत्येवं श्राद्धम्। तत्र स्वमातुः पितृपत्नीत्वेनैकोद्दिष्टं कृत्वा मातृत्वेन पुनः पार्वणं कुर्यादिति त्रिस्थलीसेतौ। तच्च फल्गुविष्णुपदाक्षय्यवटेष्वेवेति केचित्। आद्यन्ते एवेत्यन्ये। मध्यमान्ते इत्यपरे। सङ्कोचहेत्वभावात्तत्रत्यसर्वश्राद्धानि मातुः कार्याणीति युक्तं प्रतिभाति।

जब पिता का प्रतिनिधि होकर पुत्र गया में जाता है तब यजमान के पिता, पितामह और प्रपितामहों का ही श्राद्ध करे। वहाँ पर अपनी माता का पिता की पत्नी के रूप से एकोद्दिष्ट कर मातृरूप से फिर से पार्वण करे—यह त्रिस्थलीसेतु में कहा है। वह फल्गु, विष्णुपद और अक्षयवट में ही करे—यह किसी का मत है। आदि और अन्त में ही करे—यह अन्य मत है। मध्य और अन्त में करे—यह दूसरा मत है। संकोच के कारण का अभाव होने से वहाँ पर (गयातीर्थ में) सब श्राद्ध माता का करे—यह युक्त मालुम होता है।

यत्तु मदनपारिजाते—न जीवत्पितृकः कुर्याच्छ्राद्धमग्निमृते द्विजः। येभ्य एव पिता दद्यात्तेभ्यः कुर्वीत साग्निकः॥ इति सुमन्तूक्तेः। साग्नेरेव जीवत्पितृकस्य तीर्थादिश्राद्धमुक्तम्। साग्नेरपि मैत्रायणीयशाखीयस्यैव नान्येषाम्। 'षडेते जीवतः पितुः' इति तत्परिशिष्टे एवोक्तेरिति रत्नावली-दिवोदासाद्याः। तदयुक्तम्, सौमन्तवं पिण्डपितृयज्ञविषयम्। संन्यस्तपित्राद्यतिरिक्तविषयं वेति पृथ्वीचन्द्रोदयोक्तेः। वृद्धौ तीर्थे चेत्यादेः साधारण्येनास्यापि तथात्वाच्च। तथा निरग्नेरपि नान्दी-श्राद्धमुक्तं प्राक्। एवं पितामहजीवनेऽपि ज्ञेयम्। विशेषः पितृकृतजीवत्पितृकनिर्णये ज्ञेयः।

जो मदनपारिजात में सुमन्तु ने कहा है—जिनके पिता जीवित हो एसा द्विज अग्नि के बिना श्राद्ध को न करे। जिनके लिए ही पिता देता है, उन्हीं के लिए साग्निक भी दे। साग्निक को ही जीवत्पितृक का तीर्थादिश्राद्ध कहा है। साग्निक वही है जिसकी शाखा मैत्रायणीय ही है, अन्यों को नहीं है। क्योंकि—'षडेते जीवतः पितुः' यह उनके परिशिष्ट में ही कहा है—यह रत्नावली दिवोदास, आदि में कहा है। यह उचित नहीं है। सुमन्तु का वचन पिण्डपितृयज्ञविषयक या संन्यस्त पिता से अतिरिक्त विषयक है—यह पृथ्वी-चन्द्रोदय में कहा है। 'वृद्धौ तीर्थे च' वृद्धि और तीर्थ इत्यादि साधारण होने से इसको (जीवित अजीवित पितृ) मानना चाहिये। और निरग्निक को भी नान्दीश्राद्ध पहले कहा है। इसीप्रकार पितामह के जीवित रहने पर भी जानना चाहिये। विशेष[1], 'पितृकृतजीवत्पितृकनिर्णय' में जानना चाहिये।

१—अपसव्यनिषेधादिः। म्रियमाणे तु पितरि पूर्वेषामिव निर्वपेत्। पितुः स नाम संकीर्त्य कीर्तयेत्प्रपितामहम्॥ इति मनूक्तेः। तथा च जीवत्पितृकैः श्राद्धतर्पणादौ पितुः पितृपितामहप्रपितामहानामित्येव प्रयोगः कार्यः। तेन पितुर्मातृ-पितामहीप्रपितामहीनामिति पितुर्मातामह-मातृपितामह-मातृप्रपितामहानामिति पितुः पत्न्या इति पितृभ्रातुरित्यादिरेव प्रयोग इति।

अथ पितामहे जीवति मृते च पितरि यद्यपि—पितामहो वा तच्छ्राद्धे भुञ्जीतेत्यब्रवीन्मनुः। इति मनुना (३।२२२) जीवतः पितामहस्य भोजनमुक्तं तथापि प्रत्यक्षार्चनस्य पूर्वनिषिद्धत्वात् पितामहं विहाय पितृप्रपितामहवृद्धप्रपितामहेभ्यो देयम्, पिता यस्य निवृत्तः स्याज्जीवेच्चापि पितामहः। पितुः स नाम सङ्कीर्त्य कीर्तयेत्प्रपितामहम्॥ इति मनूक्तेः (३।२२१)। अयमेव सर्वसम्मतः पक्षः।

इसके बाद पितामह के जीते हुए और पिता के मरने पर यद्यपि पितामह उस श्राद्ध में भोजन करे—यह मनु ने कहा है कि—जीवित पितामह को भोजन कहा है फिर भी प्रत्यक्ष पूजन का पूर्व में निषिद्ध होने से पितामह को छोड़कर पिता, प्रपितामह और वृद्ध प्रपितामह के लिए देना चाहिये। मनु ने कहा है—पिता जिसका मर गया हो और पितामह जीवित हो वह पिता का नाम ग्रहण कर प्रपितामह का नाम ग्रहण करे। यही सर्वसम्मत पक्ष है।

यत्तु छन्दोगपरिशिष्टे—पितामहे ध्रियमाणे पितुः प्रेतस्य निर्वपेत्। पितुस्तस्य च वृत्तस्य जीवेच्चेत्प्रपितामहः॥ इति एकपुरुषं द्विपुरुषं वा पार्वणमाह तत्तीर्थपितृयज्ञपरम्। वृद्धौ वोक्तमेव। एवं पूर्वयोर्मृतयोः प्रपितामहे जीवति पितृमात्रे मृते परयोर्जीवतोश्च वृद्धप्रपितामहादिभ्यो ज्ञेयम्।

छन्दोगपरिशिष्ट में कहा है—पितामह के जीवित रहते हुए पुत्र पिता के लिए पिण्डदान दे। प्रपितामह के जीवित रहते उसके पिता के मरने पर पिण्ड दे। एक पुरुष या दो पुरुष का पार्वण कहा है वह तीर्थ पर पितृयज्ञ के विषय में है। वृद्धि में पहले की तरह है। इसप्रकार पिता और पितामह के मरने पर प्रपितामह के जीते हुए पिता मात्र के मरने पर पितामह तथा प्रपितामह के जीवित रहने पर वृद्धप्रपितामह आदियों के लिए जानना चाहिये।

जीवन्तमपि दद्याद्वा प्रेतायान्नोदके द्विजः। (पितुः पितृभ्यो वा दद्यात्स पितेत्यपराश्रुतिः॥) इति कात्यायनोक्तेश्च।

और कात्यायन ने कहा है—द्विज जीते हुए को या मरे हुए पिता के लिए अन्नोदक दे।

एतत्सर्वं मनसि कृत्वाऽऽह हेमाद्रौ विष्णुः—'पितरि जीवति यः श्राद्धं कुर्याद्येषां पिता कुर्यात्तेषां, पितरि पितामहे च जीवति येषां पितामहः पितरि पितामहे प्रपितामहे च जीवति नैव कुर्यात्। यस्य पिता प्रेतः स्यात्स पित्रे पिण्डं निधाय पितामहात्पराभ्यां द्वाभ्यां दद्यात्। यस्य पिता पितामहः प्रेतः स्यात्स तस्मै पिण्डं निधाय प्रपितामहात् पराभ्यां दद्यात्। यस्य पिता पितामहश्च प्रेतौ स्यातां स ताभ्यां पिण्डौ दत्वा पितामहपितामहाय दद्यात्।

मातामहानामप्येवं श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः। मन्त्रोहेन यथान्यायं शेषाणां मन्त्रवर्जितम्॥ इति। अत्र पितृवन्मातामहे जीवति तत्पित्रादिभ्यः। यथा तत्र त्रिषु जीवत्सु नैव कुर्यात्तथात्रापीत्यादि सर्वमतिदेश्यम्। एवं मातृजीवनेऽपीति शूलपाणिकालादर्शौ। तन्न, येभ्य एव'इत्यादौ यच्छब्दादेव्यक्तिविशेषवाचित्वेन तदप्रसङ्गादिति दिक्। उत्तरार्धं व्याख्यातं प्राक्।

इन सबों को मन में कर हेमाद्रि में विष्णु ने कहा है—पिता के जीवित रहते हुए जो श्राद्ध को करे जिनका पिता करे उनका वह करे। पिता और पितामह के जीवित रहते उनके पितामह का करे। पिता, पितामह और प्रपितामह के जीते हुए न करे। जिसका पिता प्रेत हो गया हो वह पिता के लिए पिण्ड को देकर दो को दे। जिसके पिता और पितामह प्रेत हैं वह दोनों उनके लिए पिण्ड को देकर प्रपितामह से पर दो को दे। जिसके पिता और पितामह प्रेत हो गये हैं वह दोनों को पिण्ड देकर पितामह पितामह के लिए दे।

इसीप्रकार मातामहों का भी श्राद्ध बुद्धिमान् मनुष्य मन्त्र के ऊह से यथान्याय करे। अवशिष्ट में मन्त्रवर्जित करे। यहाँ पर पिता के तरह मातामह के जीते हुए उसके पिता आदि के लिए दे। जैसे वहाँपर

तीनों के जीते हुए न करे, वैसे ही यहाँ भी न करे। यह सब अतिदेश है। इसीप्रकार माता के जीवित रहने पर भी जानना चाहिए—यह शूलपाणि और कालादर्श में कहा है। यह उचित नहीं है। 'येभ्य एव' इत्यादि में यत् शब्द आदि में व्यक्तिविशेषवाचित्व होने से उसका प्रसंग ही नहीं है। (अपनी माता, मातामही आदि के लिए दान का प्रसंग ही नहीं है—यह अर्थ है।) उत्तरार्ध श्लोक की तो व्याख्या पहले की है।

यत्त्वत्र विज्ञानेश्वरेणोक्तं 'पित्रे पिण्डं निधाय' इति पितुरेकोद्दिष्टविधिना श्राद्धं कृत्वा प्रपितामहादिभ्यः पार्वणं कुर्यात्। तद्व्युत्क्रममृतसपिण्डीकरणाभावपक्षे सपिण्डीकरणस्थानापन्नं ज्ञेयम्,

व्युत्क्रमात्तु प्रमीतानां नैव कार्या सपिण्डता। इति वचनात्। दर्शादौ तु पितुरेकोद्दिष्टमेव कार्यम्। 'न जीवन्तमतिददाति' इति श्रुतेः।

जो यहाँ पर विज्ञानेश्वर ने कहा है—पिता के लिए पिण्ड को देकर पिता का एकोद्दिष्टविधि से श्राद्ध को कर प्रपितामह आदि के लिए पार्वण करे। वह व्युत्क्रम से जो मृत हो उनका सपिण्डीकरण के अभावपक्ष में सपिण्डीकरण स्थानापन्न जानना चाहिए।

व्युत्क्रम से मरे हुओं का सपिण्डन न करे—यह वचन है। दर्श (अमावास्या) आदि में तो पिता का एकोद्दिष्ट ही करना चाहिए। श्रुति कहती है कि—जीते हुए को नहीं देना चाहिए।

जीवेत्पितामहो यस्य पिता चान्तरितो भवेत्। पितुरेकस्य दातव्यमेवमाहुर्मनीषिणः॥ इति यज्ञपार्श्वोक्तेः।

यज्ञपार्श्व में कहा है—जिसका पितामह जीवित है और पिता मर गया हो तो एक पिता के लिए देना चाहिये। ऐसा मनीषियों ने कहा है।

पितामहे जीवति वै पितर्येव समापयेत्। इति हारीतोक्तेश्च।

और हारीत ने कहा है—पितामह के जीवित रहते ही पिता के मरने पर श्राद्ध की क्रिया समाप्त करे।

शिष्टास्तु—व्युत्क्रमात्तु प्रमीतानां नैव कार्या सपिण्डता। यदि माता यदि पिता भर्ता नैव विधिः स्मृतः॥ इति माधवीये स्कान्दोक्तेर्व्युत्क्रममृतसपिण्डीकरणाभावः पितृव्यादिविषय इत्याहुः। एष विधिर्निषेधरूपः।

शिष्टों का कहना है—व्युत्क्रम (विपरीत क्रम) से मरे हुओं का सपिण्ड न करे। यदि माता, पिता और पति के मरने पर यह विधि नहीं होती है। यह माधवीय में स्कन्द के वचन से व्युत्क्रम से मरे हुओं का सपिण्डीकरण का अभाव पितृव्य (चाचा) आदि के विषय में कहा है। यह विधि निषेधरूप है।

त्रिषु जीवत्सु विष्णुराह—'त्रिषु जीवत्सु नैव कुर्यात्' इति। एतद्दर्शादिविषयम्।

नान्दीश्राद्धं तु परेभ्यस्त्रिभ्यो भवत्येवेति कल्पतरुः।

तीन के जीते हुए विष्णु ने कहा है—तीनों के जीवित रहते न करे—यह दर्शादिविषयक है। नान्दीश्राद्ध को तो परले तीनों के लिए होता है—यह कल्पतरु में कहा है।

पृथ्वीचन्द्रोदयस्तु—दद्यात्त्रिभ्यः परेभ्यस्तु जीवेच्चेत्त्रितयं यदि। इति मनूक्तेः। सर्वत्र विकल्पः। स च देशाचाराद्व्यवतिष्ठत इत्याहुः।

पृथ्वीचन्द्रोदय में तो कहा है—यदि तीन जीवित हों तो परले तीनों को दे—यह मनु ने कहा है। सर्वत्र विकल्प है और वह देशाचार से व्यवस्था है—ऐसा कहा है।

सुदर्शनभाष्ये तु मासिकश्राद्धं जीवत्पित्रादिना व्युत्क्रममृतपित्रादिना च कार्यमेवेत्युक्तम्।

सुदर्शनभाष्य में कहा है—मासिकश्राद्ध को जीवित पिता आदि और व्युत्क्रममृतपित्रादि करे ही—ऐसा कहा है।

मदनरत्ने क्रतुः—अष्टकादिषु संक्रान्तौ मन्वादिषु युगादिषु। चन्द्रसूर्यग्रहे पाते स्वेच्छयालभ्य-

योगतः ॥ जीवत्पिता नैव कुर्याच्छ्राद्धं काम्यं तथाखिलम् । अन्ये विशेषाः श्रीपितृकृतजीवत्पितृक-निर्णये भट्टकृतत्रिस्थलीसेतौ च ज्ञेयाः ।

मदनरत्न में क्रतु ने कहा है—अष्टका आदि में, संक्रान्ति में, मन्वादि और युगादियों में, चन्द्र-ग्रहण तथा सूर्यग्रहण में, व्यतीपात में, अपनी इच्छा से लभ्ययोग (पूज्य योग) से जीवित पिता सम्पूर्ण कामनापरक श्राद्ध नहीं ही करे। अन्यविशेष तो श्री पितृकृतजीवित्पितृकनिर्णय में और भट्टकृतत्रिस्थलीसेतु में जानना चाहिये।

(श्राद्धे विभक्ताविभक्तनिर्णयकथनम्)

अथ विभक्ताविभक्तनिर्णयः । पृथ्वीचन्द्रोदये मरीचिः—बहवः स्युर्यदा पुत्राः पितुरेकत्र-वासिनः । सर्वेषां तु मतं कृत्वा ज्येष्ठेनैव तु यत्कृतम् । द्रव्येण चाविभक्तेन सर्वैरेव कृतं भवेत् ॥ ज्येष्ठस्य कर्तृत्वेऽपि सर्वे फलभागिन इत्यर्थः । तेन ये ब्रह्मचर्यादिनियमास्ते फलितसंस्कारत्वा-त्सर्वैः कार्याः । एवं संसृष्टिनामपि तुल्यत्वात् ।

अब विभक्त (अलग) और अविभक्त (एक साथ) का निर्णय करते हैं। पृथ्वीचन्द्रोदय में मरीचि ने कहा है—पिता के बहुत से पुत्र एकसाथ में रहते हों तो वे सब पुत्रों का मत लेकर ज्येष्ठ पुत्र ने अविभक्त द्रव्य से ही जो किया वह सबों ने किया। ज्येष्ठ पुत्र के करने पर सब पुत्र भी फल के भागी होते हैं—यह अर्थ है। इससे जो ब्रह्मचर्य आदि नियम हैं वे फलित संस्कार होने से सबों को (अर्थात्—सब भाइयों को अलग-अलग) करना चाहिये। इसप्रकार संसृष्टियों (साझीदारों) को भी तुल्य है।

मिताक्षरायां नारदः—भ्रातॄणामविभक्तानामेको धर्मः प्रवर्तते ।
विभागे सति धर्मोऽपि भवेत्तेषां पृथक् पृथक् ॥

मिताक्षरा में नारद ने कहा है—अविभक्त भाइयों का एक धर्म होता है। विभाग (धन आदि का बटवारा) होने पर—उन सब भाइयों का धर्म भी अलग-अलग होता है।

बृहस्पतिरपि—एकपाकेन वसतां पितृदेवद्विजार्चनम् ।
एकं भवेद्विभक्तानां तदेव स्याद् गृहे गृहे ॥

बृहस्पति ने भी कहा है—भाइयों के एक पाक से रहते हुए पितर, देवता और द्विज का पूजन एक होता है तथा विभक्त भाइयों का तो घर-घर में अलग-अलग होता है।

अत्र यद्यप्यविशेषणात् ब्रह्मयज्ञसन्ध्यादिष्वप्यविभक्तानां पृथक् निषेधः प्राप्नोति, तथापि द्रव्य-साध्यश्राद्धवैश्वदेवादिष्वेव सः । द्रव्यस्यानेकस्वामिकत्वेनैकस्य व्ययेऽनधिकारात् । यानि तु द्रव्य-साध्यानि मन्त्रजपोपवाससन्ध्याब्रह्मयज्ञपारायणादीनि नित्यनैमित्तिककाम्यानि तेषु पृथगेवा-धिकारः, द्रव्यव्ययाभावेऽनुमत्यनपेक्षणात् । द्रव्येण चाविभक्तेन इत्यस्याविषयत्वात् ।

यहाँ पर यद्यपि अविविशेषश्रवण से ब्रह्मयज्ञ, सन्ध्या आदि में भी अविभक्तों का अलग निषेध प्राप्त होता है तथापि द्रव्यसाध्य श्राद्ध, वैश्वदेव आदियों में ही वह है। क्योंकि—द्रव्य के अनेक स्वामी होने में एक का व्यय करने में अधिकार नहीं है। जो द्रव्य से साध्य हैं मन्त्र, जप, उपवास, सन्ध्या, ब्रह्मयज्ञ, पारायण आदि, नित्य नैमित्तिक और काम्य इनमें अलग ही अधिकार हैं द्रव्यव्ययाभाव में अनुमति की अपेक्षा है। 'द्रव्येण चाविभक्तेन' इस पहले कहे हुए वचन का विषय नहीं है।

पृथगप्येकपाकानां ब्रह्मयज्ञो द्विजन्मनाम् । अग्निहोत्रं सुरार्चा च सन्ध्या नित्यं भवेत्तथा ॥ इति प्रयोगपारिजाते आश्वलायनस्मृतेश्च ।

अग्निहोत्रशब्दोऽग्निसाध्यश्रौतस्मार्तनित्यकर्मपरः तेष्वप्यन्यानुमत्यैवाधिकारेण न्यायसाम्यात् । पितृश्राद्धादिषु तुल्यफलेषु नित्येष्वनुमतिं विनाप्येकस्याधिकारः, एकोऽपि स्थावरे कुर्याद्दानाध्ययन-विक्रयम् । आपत्काले कुटुम्बार्थे धर्मार्थे च विशेषतः ॥ इति वचनात् । धर्मार्थेऽवश्यकर्तव्ये पितृ-

श्राद्धादाविति विज्ञानेश्वरः । केचित्त्वविभक्तानामपि पृथक्पाकत्वे देशान्तरे च दार्शिकाब्दिकयोः पृथक्त्वमाहुः ।

और प्रयोगपारिजात में आश्वलायनमें कहा है—एकपाकवाले भाई द्विजातियों का ब्रह्मयज्ञ, अग्निहोत्र, देवार्चा और सन्ध्या नित्य अलग होते हैं ।

अग्निहोत्रशब्द से अग्निसाध्य श्रौत-स्मार्त नित्यकर्मपरक है। उनमें भी अनुमति से ही अधिकार होने से न्याय की साम्यता है। पितृश्राद्ध (मातृश्राद्ध) आदि नित्य तुल्यफलों में अनुमति के बिना भी एक का अधिकार है। क्योंकि—एक भाई भी आपत्काल में कुटुम्ब के लिए विशेषकर धर्म के लिए स्थावर (एकस्थान पर जमा हुआ—अचल) धन का दान गिरवी और विक्रय करे—इस वचन से ।

विज्ञानेश्वर ने कहा है—धर्म और अर्थ को अवश्य करे पिता आदि के श्राद्ध में। कोई कहते हैं कि—अविभक्तों का भी अलग पाक होने पर और देशान्तर में अमावास्या और आब्दिकश्राद्ध अलग-अलग करना कहा है ।

(विभक्ताविभक्तानां च ब्रह्मयज्ञादिविचारः)

भ्रातृणामविभक्तानां पृथक्पाको भवेद्यदि। वैश्वदेवादिकं श्राद्धं कुर्युस्ते वै पृथक् पृथक् ॥ इति हारीतोक्तेः ।

अविभक्त भाइयों का यदि पाक अलग बने तो वे सब वैश्वदेव आदि और श्राद्ध निश्चय अलग-अलग करें—ऐसा हारीत ने कहा है।

अविभक्तेन पुत्रेण पितृमेधो मृताहनि । देशान्तरे पृथक्कुर्युर्दर्शश्राद्धं तथैव च ॥ इति यमोक्तेश्चेति । तत्र मूलं चिन्त्यम् ।

तदयमर्थः । पञ्चमहायज्ञमध्ये देवभूतपितृमनुष्ययज्ञानन्यानुमत्या ज्येष्ठ एव कुर्यात् ।

और यम ने कहा है—अविभक्त पुत्र पिता के मृत्युदिन में (क्षयाहदिन में) और वैसे ही दर्शश्राद्ध में देशान्तर में अलग करे। इसमें मूल विचारणीय है।

इससे यह अर्थ है—पञ्चमहायज्ञ के मध्य में देव, भूत, पितृ, मनुष्य यज्ञों को अन्य भाइयों की अनुमति से ज्येष्ठ भाई ही करे।

होमाग्रदानरहितं न भोक्तव्यं कदाचन। अविभक्तेषु संसृष्टेष्वेकेनापि कृते कृतम् ॥ इति व्यासोक्तेश्च ।

व्यास ने कहा है—होम और अग्रदान (पतित ब्राह्मण जो मृतकश्राद्ध में दान लेता है) को त्याग कर कभी अविभक्त और अलग भाइयों में एक भाई उपभोग न करे।

यस्य तु ज्येष्ठेनाकृते वैश्वदेवेऽन्नं सिध्येत्तेन तूष्णीमग्नौ किञ्चित् क्षिप्त्वा भोक्तव्यम् । यस्य त्वेषामग्रतोऽन्नं सिद्धेत्स नियुक्तमग्नौ कृत्वाग्रं ब्राह्मणाय दत्त्वा भुञ्जीतेत्यविभक्ताधिकारे पृथ्वीचन्द्रोदये गोभिलोक्तेः ।

जिस छोटे भाई के बड़े भाई को वैश्वदेव न करने पर (छोटा भाई) अन्न के बन जाने पर उसमें से तूष्णीं अग्निमें छोड़कर भोजन करे। जिसका सब भाइयों के आगे अन्न सिद्ध हो जाय वह नियुक्त हो अग्निमें छोड़कर आगे ब्राह्मण को देकर भोजन करे। यह पृथ्वीचन्द्रोदय के अविभक्ताधिकार में गोभिल ने कहा है।

आश्वलायनस्तु पाकपार्थक्ये पृथक्त्वं तदेकत्वेऽपृथक्त्वमाह—वसतामेकपाकेन विभक्तानामपि प्रभुः । एकस्तु चतुरो यज्ञान् कुर्याद्वाग्यज्ञपूर्वकान् ॥ अविभक्ता विभक्ता वा पृथक्पाका द्विजातयः । कुर्युः पृथक्पृथक् यज्ञान् भोजनात्प्राग्दिने दिने ॥ इति ।

आश्वलायन ने कहा है—पाक के पार्थक्य में अलग होता है, वह पाक एक हो तो अलग नहीं होता है—ऐसा कहा है—विभक्त भाई भी एक पाक से रहते हों तो एक भाई वाग्यज्ञपूर्वक चार यज्ञों को करे। अविभक्त या विभक्त द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) अलग-अलग पाकवाले हों तो भोजन के प्रथम प्रतिदिन अलग-अलग यज्ञों को करे।

(ब्रह्मयज्ञादिपूजायां विचारः)

ब्रह्मयज्ञसन्ध्यास्नानतर्पणादि तूक्तहेतोः पृथगेव। देवपूजा तूक्तवचनद्वयादेकत्र पृथग्वा।

ब्रह्मयज्ञ, सन्ध्या, स्नान, तर्पण आदि तो कहे हुए के कारण अलग ही करे। देवपूजा तो पहले कहे हुए दो वचन से एक जगह या अलग-अलग करे।

(दर्शग्रहणादिश्राद्धादौ विचारः)

दर्शग्रहणश्राद्धादि त्वेकस्यैव। तीर्थश्राद्धाद्यपि युगपत्सर्वेषामभिक्तानां प्राप्तावेकस्य। भेदेन प्राप्तौ भिन्नम्। गयाश्राद्धेऽप्येवम्,

दर्श, ग्रहणश्राद्ध आदि एक को ही है। तीर्थश्राद्ध आदि भी एकसाथ अविभक्त सबों को प्राप्त होने पर एक ही को है। भेद होने पर अलग-अलग है। यही गयाश्राद्ध में भी है।

(अविभक्तानां युगपत्तीर्थप्राप्तौ निर्णयः)

एष्टव्या बहवः पुत्राः शीलवन्तो गुणान्विताः। तेषां तु समवेतानां यद्येकोऽपि गयां व्रजेत्। तारिताः स्मो वयं तेन स याति परमां गतिम्॥ इति हेमाद्रौ कौर्मोक्तेः।

काम्येऽपि दानहोमादावन्यानुमत्यैवाधिकारः। द्रव्यासाध्यजपादौ तां विनापि।

हेमाद्रि में कूर्मपुराण का वचन है--बहुत शीलवाले गुणीपुत्रों की इच्छा करे। इकट्ठे रहते हुए सबों में यदि एक भी गया में चला जाय तो उससे सब पितरों को तार दिया और वह परम गति को प्राप्त होता है।

काम्यकर्म में भी दान, होम आदि में अन्य की अनुमति से ही अधिकार है। द्रव्यासाध्य (द्रव्य से असाध्य) जप आदि में तो उसके बिना (अनुमति के) भी अधिकार है।

(विभक्तानां पुत्राणां युगपत्तीर्थप्राप्तौ विचारः)

अपरार्के पैठीनसिः—विभक्तैस्तु पृथक्कार्यं प्रतिसंवत्सरादिकम्।
एकेनैवाविभक्तेषु कृते सर्वैस्तु तत्कृतम्॥

संवत्सरात्पूर्वाणि मासिकान्येकत्रैव।

अपरार्क में पैठीनसि का कथन है--विभक्त (अलग) भाई सब प्रतिवार्षिक श्राद्ध आदि अलग-अलग करें। और अविभक्त भाई में एक ने अर्थात् ज्येष्ठ पुत्र[1] ने ही किया तो सबों ने किया ऐसा समझना चाहिये। सम्वत्सर (वार्षिक) श्राद्ध के पूर्व मासिक आदि श्राद्ध तो इकट्ठे ही होते हैं।

(सपिण्डीकरणान्तश्राद्धेषु विचारः)

तदाह लघुहारीतः—सपिण्डीकरणान्तानि यानि श्राद्धानि षोडश। पृथङ्नैव सुताः कुर्युः पृथग्द्रव्या अपि क्वचित्॥ सपिण्डनं मासिकोपलक्षणम्,

उसी बात को लघुहारीत में कहा है--सपिण्डीकरणान्त जो सोलह श्राद्ध हैं उनको पृथक् द्रव्य (बटवारा) के होने पर पुत्र अलग-अलग न करें। सपिण्डन-मासिक का उपलक्षण है।

१—एकेनैव तु कार्याणि संविभक्तधनेष्वपि। इति वचनात्। सपत्नानां भ्रातृणां तु ज्येष्ठे सत्यपि स्वस्वमातृवार्षिकमान्वष्टक्यं स्वस्वमातामहवार्षिकं च भवत्येव मुख्यपुत्रत्वान्मुख्यदौहित्रत्वाच्च। मुख्याभावे तु सपत्नीपुत्रेषु ज्येष्ठ एव कुर्यात्। एवमविभक्तेषु भ्रातृषु कस्यचिदेव सुतसंस्कारः स्वद्वितीयाद्युद्वाहो वा तदा स एव वृद्धिश्राद्धं कुर्यात्। तीर्थे यदा एक एव गच्छति तदा स एव तीर्थश्राद्धं कुर्यात्, तीर्थे प्राप्तेर्निमित्तस्य जातत्वात् नैमित्तिकस्यावश्यकत्वात्। इह च सर्वेषां गमने ज्येष्ठ एव कुर्यात्। यदि पित्रा सह पुनरस्तीर्थंगतास्तदा पुत्राणां न पृथक् तीर्थश्राद्धं पित्रधीनत्वेनास्वातन्त्र्यात्। पितुरशक्त्यादिना प्रतिबन्धे तु तत्प्रतिनिधित्वेन भवत्येव। यदि तु पिता तीर्थेऽस्ति पुत्रश्च गतः तदा स्वातन्त्र्येण निमित्तस्य जातत्वात्कालभेदेन तदुपजीवनासंभवात्पृथक्तीर्थश्राद्धं कुर्यादेव। एवमेव ज्येष्ठभ्रातरि तीर्थंगते कनिष्ठस्य तत्र गमने श्राद्धप्राप्तिर्द्रष्टव्या। विभक्तानां तु परस्परेण सह पित्रा वा सह तीर्थंगते पितरि तीर्थे वा तीर्थगमने प्रागुक्तवचनात् पृथगेव तीर्थश्राद्धम्। संन्यस्तादिपितृकाणां त्वविभागे ज्येष्ठेनैव, विभागे तु सर्वैः कार्याणि। एवं विभागविभागयोर्निर्णयस्तर्पणेऽपि द्रष्टव्यः। इति कृष्णंभट्टयाम्।

अर्वाक् संवत्सराज्ज्येष्ठः श्राद्धं कुर्यात्समेत्य तु । ऊर्ध्वं सपिण्डीकरणात्सर्वे कुर्युः पृथक् पृथक् ॥ इति व्यासोक्तेः ।

व्यास ने कहा है—ज्येष्ठ पुत्र संवत्सर के पूर्व सब श्राद्धों को इकट्ठा कर करे। सपिण्डीकरण के बाद सब पुत्र अलग अलग करे।

उशनाः—नवश्राद्धं सपिण्डत्वं श्राद्धान्यपि च षोडश । एकेनैव तु कार्याणि संविभक्तधनेष्वपि ॥ मघात्रयोदशीश्राद्धं त्वविभक्तानामपि पृथगित्युक्तं प्राक् ।

उशना ने कहा है—नवश्राद्ध, सपिण्डीश्राद्ध और अन्य सोलह श्राद्धों को भाइयों के धन का बटवारा होने पर भी एक ही करे। मघात्रयोदशी श्राद्ध को तो अविभक्त पुत्र भी अलग-अलग करे—यह पहले कह चुके हैं।

यत्तु वृद्धवसिष्ठः—मासिकं च वृषोत्सर्गं सपिण्डीकरणं तथा । ज्येष्ठेनैव प्रकर्तव्यमाब्दिकं प्रथमं तथा ॥ इति । तन्निर्मूलम् । बह्वृचपरिशिष्टे 'नवश्राद्धं सह दद्युः' इति ।

जो वृद्धवसिष्ठ ने कहा है—मासिक, वृषोत्सर्ग, सपिण्डीकरण और प्रथम आब्दिकश्राद्ध ज्येष्ठ पुत्र ही करे—यह निर्मूल है। बह्वृचपरिशिष्ट में कहा है—नवश्राद्ध को एक साथ करें।

(तीर्थश्राद्धविचारः)

अथ तीर्थश्राद्धम् । तत्र यद्यप्यस्मत्पितामहकृतत्रिस्थलीसेतुरेव जागर्ति, तथापि किञ्चिदुच्यते ।

इसके बाद तीर्थश्राद्ध कहते हैं। उसमें यद्यपि हमारे पितामहकृत त्रिस्थलीसेतु नामक निबन्ध ही जागरूक है। फिर भी कुछ कहता हूँ।

(यात्रायां सपत्नीकस्याधिकारविचारः)

तत्र यात्रायाम्—सहाग्निर्वा सपत्नीको गच्छेत्तीर्थानि संयतः ।

वहाँ पर यात्रा में तीर्थों में संयत (इन्द्रियों का दमन कर) हो अग्नि के सहित सपत्नीक गमन करे।

(प्रायश्चित्तार्थयात्रायां यज्ञादौ च विचारः)

प्रायश्चित्ती व्रजेत्तीर्थं पत्नीविरहितोऽपि वा । यज्ञेष्वनधिकारी च यश्च वा मन्त्रसाधकः ॥ इति कौर्मवचनात्साग्नेः सपत्नीकस्यैवाधिकारः ।

प्रायश्चित्त के निमित्त अर्थात्—यात्रा में प्रायश्चित्त के लिए जाने पर पत्नी के रहित भी तीर्थ में जाय। यज्ञ में अनधिकारी होता है और मन्त्रसाधन में भी अकेला न जाय। कूर्मपुराण आदि वचन से साग्निक को सपत्नीक[1] का ही अधिकार है।

भारते—ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा राजसत्तम ।
न वियोनिं व्रजन्त्येते स्नानात्तीर्थे महात्मनः ॥

महाभारत में कहा है—हे राजसत्तम, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र ये महात्मा तीर्थ में स्नान करने पर निन्दित योनि में जन्म नहीं ग्रहण करते हैं।

(विधवायाः पुत्राद्यनुमत्या)

स्कान्दे विधवाधर्मेषु—स्नानं दानं तीर्थयात्रां विष्णोर्नामग्रहं मुहुः । एतत्पुत्राद्यनुमत्यैव ।

स्कन्दपुराण में विधवाधर्म में कहा है—स्नान, दान, तीर्थयात्रा, बारम्बार विष्णु के नाम का उच्चारण विधवा स्त्री करे। यह पुत्र की अनुमति से ही करे।

१—जो पत्नी पातिव्रत्य आदि से युक्त हो। धर्म ने कहा है—पुंसां गुणवतीं भार्यां यो वा त्यक्त्वा प्रयाति हि। तस्य पुण्यफलं सर्वं वृथा भवति नान्यथा ॥ जो स्त्री पति से विपरीत हो, मद्यपी, कुलटा आदि हो उसको त्याग कर जाने में दोष नहीं लगता है।

(सधवायाः विचारः)

सधवायाः पत्या सहैवेति प्रागुक्तम् ।

सधवा स्त्री पति के साथ ही यात्रा आदि करे—यह पहले ही कह चुके हैं।

(तीर्थयात्राविधिः)

काशीखण्डे—मातुः पितुः क्षेप्तुमनास्तथास्थि सुतस्तु कुर्यात्खलु तीर्थयात्राम् ।

तद्विधिः स्कान्दे—तीर्थयात्रां चिकीर्षुः प्राग्विधायोपोषणं गृहे। गणेशं च पितॄन् विप्रान् साधून् शक्त्या प्रपूज्य च ॥ कृतपारणको हृष्टो गच्छेन्नियमधृक्पुनः। आगत्याभ्यर्च्य च पितॄन् यथोक्तफलभाग्भवेत् ॥

काशीखण्ड में कहा है—जब पुत्र की इच्छा माता[1] और पिता की अस्थिप्रक्षेप की हो तब ही तीर्थयात्रा करे।

उसकी विधि स्कन्दपुराण में कही है—तीर्थयात्रा को[2] करने की इच्छा से घर में प्रथम उपवास कर गणेश, पितर, ब्राह्मण और साधु इनकी शक्ति के अनुसार पूजन कर पारणा करने बाद प्रसन्न हो नियम को धारण कर चले। फिर यात्रा से लौटकर[3] पितरों की पूजा कर कहे हुए फल का भागी होता है।

(यात्राकाले वपनविचारः)

उपवासात्प्राङ्मुण्डनं च कार्यम्। प्रयागे तीर्थयात्रायां पितृमातृवियोगतः। कचानां वपनं कुर्यात् वृथा न विकचो भवेत् ॥ इति विष्णूक्तेः। प्रायश्चित्तार्थयात्रायां गङ्गायां चैतदित्येके।

उपवास[4] के पहले मुण्डन करे। प्रयाग में, तीर्थयात्रा में, पिता और माता के वियोग (मरण) में, केशों का वपन करावे। व्यर्थ में केशों का वपन (मुण्डन) न करावे। कोई कहते हैं कि—प्रायश्चित्तार्थ यात्रा में और गंगा में मुण्डन करे।

केचित्तु हेमाद्रौ महाभारते—केशश्मश्रुनखादीनां वपनं न च शस्यते।
अतो न कार्यं वपनं गयाश्राद्धार्थिना सदा ॥

कोई हेमाद्रि में महाभारत का वचन कहते हैं—केश श्मश्रु (दाढ़ी), नख आदियों का मुण्डन नहीं चाहते हैं। इसलिए सदा गयाश्राद्धार्थी को मुण्डन नहीं करना चाहिये। 'गया यात्रार्थिना' इस पाठ से—गयायात्रा के इच्छुक।

१—जो यह कहा है कि—जप, तप, तीर्थयात्रा, संन्यास, मन्त्रसाधन और देवताराधन ये छः स्त्री और शूद्र को पतन के कारण है। वह पति हीन स्त्रियों को और विप्रादिसेवक शूद्र का निषेधक है। इसीप्रकार निरन्तर तीर्थयात्रा का भी दोनों निषेध है—शातातप ने कहा है कि—निरन्तरं तीर्थसेवा संन्यासो मन्त्रसाधनम्। देवताराधनं ध्यानं तेषां पापावहं परम् ॥ तेषाम्—शूद्राणाम्। तीर्थ में माता आदि का अस्थिप्रक्षेप की इच्छा से सबों को भी अधिकार है। प्रसंग से तीर्थ की प्राप्ति में तो शंख ने कहा है—तीर्थं प्राप्य प्रसंगेन स्नानं तीर्थे समाचरेत्। स्नानजं फलमाप्नोति तीर्थयात्राकृतं न तु ॥ वाणिज्य—राजसेवा आदि प्रसंग से जाने पर—पैठीनसिः—अर्धं तीर्थफलं तस्य यः प्रसङ्गेन गच्छति। षोडशांसं स लभते यः परार्थेन गच्छति ॥ प्रसंग से—तीर्थान्तर प्रसंग से। परार्थ से—वेतन ग्रहण करके। परान्नेन—ऐसा पाठ करने पर—परान्नभोजन करने पर।

२—यात्रा मुहूर्तदिन से पहले रोज एक भुक्त हविष्यभोजन ब्रह्मचर्य आदि नियमों को करे। दूसरे दिन में मुण्डन कर उपवास का संकल्प करे। तदनन्तर पर दिन में प्रातःकाल नित्यक्रिया के बाद गणेश और इष्टदेवता का पूजन और घृतश्राद्ध कर यथाशक्ति वस्त्र तथा अलङ्कार आदियों से ब्राह्मणों का पूजन कर यात्रा का संकल्प कर कार्पटीवेष से मुहूर्त के समय के भीतर वासग्राम की प्रदक्षिणा कर श्राद्धशेष घृत से पारणा करे। उसके दूसरे दिन में स्नान आदि कर जाय। उपवास की असमर्थता में तो उसका प्रतिनिधि करे।

३—तीर्थयात्रा को कर घर में आकर फिर से श्राद्ध करना चाहिये।

४—उपवास-संकल्प से। इससे पहले दिन में या उसीदिन ही मुण्डन करने में क्षति नहीं है। कोई इसमें रुचि नहीं रखते हैं। वह तीर्थयात्रा में ही करे।

ये भारतेऽस्मिन् पितृकर्मतत्पराः सन्धार्य केशानतिभक्तिभाविताः। ऋणत्रयार्थं पितृतीर्थमागतास्तेषामृणं संक्षयमेष्यति ध्रुवम्॥ इति निषेधात् गयायात्राङ्गं वपनं न कार्यमित्याहुः। वस्तुतस्तु गयाधिकरणकस्यैवायं निषेधः, नतु यात्राङ्गस्य, 'श्राद्धार्थिना' इत्युक्तेः। 'विशालां विरजां गयाम्' इत्यनेनैकवाक्यत्वाच्च।

जो इस भारतवर्ष में अत्यन्त भक्ति से पितृकर्म में तत्पर हैं वे केशों को धारण कर पितरों के ऋण को पूरा करने के लिए पितृतीर्थ में आये हैं। उनका ऋण निश्चय नाश हो जायगा। इस निषेध से गया यात्रांग वपन न करे—ऐसा कहा है। सिद्धान्त तो यह है कि—गयाधिकरण (गयाधिकार के अंग का) का यह निषेध है न की यात्राङ्ग का, 'श्राद्धार्थिना' एसा कहा है। (अन्यथा 'गयायात्रार्थिना सदा' एसा कहे) विशाल, विरजा और गया इस अनेक वाक्यों से।

(गमनादौ घृतश्राद्धविचारः)

श्राद्धं च षट्नवद्वादशदैवतं वा घृतेन कार्यम्। गच्छेद्देशान्तरं यस्तु श्राद्धं कुर्यात्स सर्पिषा। इति विष्णुपुराणात। यात्राङ्गवृद्धिश्राद्धोक्तेश्च। श्राद्धं च पारणादिने एव। उपोष्य रजनीमेकां प्रातः श्राद्धं विधाय च। गणेशं ब्राह्मणान्नत्वा भुक्त्वा प्रस्थितवान्सुधीः॥ इति स्कान्दलिङ्गात्।

और छ, नौ या द्वादशदैवतश्राद्ध घृत से करे। क्योंकि विष्णुपुराण का वचन है—जो व्यक्ति (मनुष्य) दूसरे देश (नगर) में जाय वह घृत से श्राद्ध करे और इसको यात्रांग वृद्धिश्राद्ध कहा है। पारणादिन में ही श्राद्ध करे। क्योंकि स्कन्द[1] पुराण में कहा है—एकरात उपवास कर प्रातःकाल श्राद्ध को कर गणेश तथा ब्राह्मणों को नमस्कार कर भोजन कर बुद्धिमान् प्रस्थान करे।

(तीर्थात्प्रत्यागमने घृतश्राद्धकथनम्)

गौडनिबन्धे गौतमः—तीर्थयात्रासमारम्भे तीर्थात्प्रत्यागमेऽपि च। वृद्धिश्राद्धं प्रकुर्वीत बहुसर्पिः समन्वितम्॥ वृद्धिपदं तद्धर्मार्थम्।

गौडनिवन्ध में गौतम ने कहा है—तीर्थयात्रा के प्रारंभ में और तीर्थयात्रा कर के आने पर भी बहुत घी से युक्त वृद्धिश्राद्ध करे। (भट्टों का मत है कि—घी मुख्यरूप द्रव्य से करे। जो तीर्थ से आने पर भी कहा है—उसका अभिप्राय यों है—ग्रामान्तर में उपवास कर दूसरे दिन ग्रह और इष्टदेवताओं का पूजन कर अपने गांव की प्रदक्षिणा कर कार्पटीवेष को बाहर ही त्याग कर घर में प्रवेश कर श्राद्धशेष घृत से धारणा करे। यह सिद्धान्त तो यह है—तीर्थयात्रा से लौट कर घर में आकर ग्रहादि देवताओं का अर्चन कर—पार्वणश्राद्ध घृतयुक्त करे। तथा गांव प्रदक्षिणा-कार्पटीवेष त्याग सब प्रास्थानिक कर्मों को न करे।) वृद्धिपद—वृद्धि के धर्मों के अर्थ के लिये है। (इसप्रकार यात्रांग वृद्धिश्राद्ध जो कहा है—(कार्पटीवेश—माने—कषायवेष। किसी का मत है गमनमात्र में करे। अन्य कहते हैं—सदा करे।)

(श्राद्धोत्तरं यात्रासङ्कल्पः)

श्राद्धोत्तरं यात्रासङ्कल्प इति भट्टाः।

श्राद्ध के बाद यात्रा का संकल्प करे—यह भट्ट मत है।

(गयादौ गमनसमये विचारः)

वायवीये—उद्यतस्तु गयां गन्तुं श्राद्धं कृत्वा विधानतः। विधाय कर्पटीवेषं ग्रामं कृत्वा प्रदक्षिणम्॥ ततो ग्रामान्तरं गत्वा श्राद्धशेषस्य भोजनम्। घृतस्य भोजनम्। तच्च क्रोशमध्ये। श्राद्धोत्तरं क्रोशगमननिषेधात्।

१—इस अर्थवाद से यह सिद्ध होता है—पहले दिन उपवास कर दूसरे दिन श्राद्ध को कर गणेश आदि को नमस्कार कर पारणा कर प्रस्थाम करे—यह विधि प्राप्त होती है।

ततः प्रतिदिनं गच्छेत्प्रतिग्रहविवर्जितः । गयायामेवैतन्नान्यत्रेति केचित् । हेमाद्रिस्तु—गयायां श्राद्धदिने एव प्रस्थानम् । तीर्थान्तरे तु श्राद्धोत्तरदिने इत्याह ।

वायुपुराण में कहा है—गया[1] जाने के लिये उद्यत पुरुष विधान से श्राद्ध को कर कार्पटीवेश को कर गांव की प्रदक्षिणा कर तदनन्तर ग्रामान्तर में जाकर श्राद्धशेष का भोजन करे—घृत का ही भोजन करे। इससे ही पारणा करे। वह भी क्रोश (कोश) के मध्य में। क्योंकि श्राद्ध के बाद क्रोश गमन निषेध (श्राद्धं कृत्वा न गच्छेत् अध्वनि क्रोशपूरणे।) है।

तदनन्तर प्रतिदिन प्रतिग्रह को त्याग कर चले। यह गया में ही नियम है। (कार्पटीवेष धारण आदि) अन्यत्र नहीं है यह किसी का मत (हमारे मतमों में सब तीर्थों में यात्रा करते हुए बुद्धिमान् प्रतिग्रह आदि को किसीप्रकार भी ग्रहण न करे) है। हेमाद्रि ने तो कहा है—गया में तो श्राद्धदिन में ही प्रस्थान करे। तीर्थान्तर में (अर्थात्-दूसरे तीर्थों में तो) श्राद्धकरने पर दूसरे दिन प्रस्थान करे—ऐसा कहा है।

(अन्यद्वारा यात्राकरणे फलकथनम्)

प्रभासखण्डे—यश्चान्यं कारयेच्छक्त्या तीर्थयात्रां नरेश्वरः ।
स्वकीयद्रव्ययानाभ्यां तस्य पुण्यं चतुर्गुणम् ॥

प्रभासखण्ड में कहा है—जो नरेश्वर—श्रेष्ठपुरुष यथाशक्ति दूसरे व्यक्ति के द्वारा अपने द्रव्य और सवारी से तीर्थयात्रा को कराता है उसको चौगुना पुण्य होता है।

(यात्राशौचमध्ये आशौचे रजसि वा प्राप्ते विचारः)

यात्रामध्ये आशौचे रजसि चाशुद्धिपर्यन्तं स्थित्वा तदन्ते गच्छेत् । मार्गवैषम्ये त्वदोषः ।

यात्रा[2] के मध्य में आशौच या रजोधर्म हो जाय तो शुद्धिपर्यन्त वहीं पर रहकर अन्त में जाय। स्त्री के रजोधर्म होने पर उस को देवता और पितरों के कार्य में पांचवे दिन शुद्धि कहा है। अर्थात्—मासिक धर्म से पांचवे दिन देवादिकार्य को करे। (यदि रजो की निवृत्ति हो जाय तो।) मार्ग के विषम (ऊबड़ खाबड़, भयानक आदि हो तो) में तो दोष नहीं (पैठीनसि में कहा है—विवाहदुर्गायज्ञेषु यात्रायां तीर्थकर्मणि । न तत्र सूतकं तद्वत्कर्मयज्ञादि कारयेत् ॥ इससे 'रजसि' यह पद प्राचीन ग्रन्थों में नहीं आया है। फिर भी गत्यन्तराभाव में सूतक के सदृश ही है। उपरोक्त श्लोक मार्गवैषम्यादिगत्यन्तराभाव परक है।)

(यात्रामध्ये तीर्थप्राप्तौ विचारः)

यात्रामध्ये तीर्थान्तरप्राप्तौ श्राद्धादिकार्यमेव ।

यात्रा के मध्य में तीर्थान्तर की प्राप्ति में तो श्राद्धादि को करना ही चाहिये।

(वाणिज्याद्यर्थं गते विचारः)

वाणिज्याद्यर्थं गते तु मुण्डनोपवासादि न कार्यमिति प्रयागसेतौ भट्टाः । वस्तुतस्तु तत्रापि मुण्डनोपवासश्राद्धादि कार्यम् । अर्धं तीर्थफलं तस्य यः प्रसङ्गेन गच्छति । इति ब्राह्मोक्तेः ।

वाणिज्यव्यवसाय के लिये जाने पर तो मुण्डन, उपवास आदि न करे यह प्रयोगसेतु में भट्टों ने कहा

१—गोदावर्यां गयायां च श्रीशैले ग्रहणद्वये । सुरासुरगुर्वोर्यां च मौढ्यदोषो न विद्यते । वायवीये—गयायां सर्वकालेषु पिण्डं दद्याद्विधानतः । अधिमासे जन्मदिने अस्ते च गुरुशुक्रयोः । न त्यक्तव्यं गयाश्राद्धं सिंहस्थेऽपि बृहस्पतौ । अधिमासे च जन्मर्क्षे अस्ते च गुरुशुक्रयोः । तीर्थयात्रा न कर्तव्या गयां गोदावरीं विना ॥

२—यदि तीर्थयात्रा के लिये प्रस्थान करने बाद यदि अकारण लोभादि से फिर से घर में आता है तो गरुड़पुराण में कहा है—तीर्थं चलित्वा यः कोऽपि पुनरायाति च गृहे । अनुज्ञातः शुभैर्विप्रैः प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ संकल्पबाध-निमित्तक प्रायश्चित्त ब्राह्मण की आज्ञा से करे। तीर्थयात्रा करते समय तीर्थ की अप्राप्ति में ही वह तीर्थयात्री मर जाय तो गरुड़पुराण में कहा है—यस्तीर्थसंमुखो भूत्वा व्रजन्नशनेन कृते । चेन्म्रियेदन्तराले तु ऋषीणां मण्डलं व्रजेत् ॥ चकार के अध्याहार से अनशन में मासोपवासव्रत करने पर भी है। ऋषि के लोक में जाता है।

है। सिद्धान्त तो यह है कि—वहाँ पर भी मुण्डन, उपवास आदि को करे। ब्रह्मपुराण में कहा है कि—जो प्रसंगवश तीर्थ में जाता है उसको आधा तीर्थ का फल मिलता है।

(यात्रायां द्विर्भोजने विचारः)

स्कान्दे—द्विर्भोजनं तृतीयांशे हरेत्तीर्थफलस्य च। वाणिज्यं त्रींस्तथा भागान् हन्ति सर्वं प्रतिग्रहः॥

स्कन्दपुराण में कहा है—दो वार भोजन तीर्थफल के तीसरे भाग को, वाणिज तीन भाग को और प्रतिग्रह सब भागों को नाश कर देता है। 'यान-सवारी (साक्षात् स्वशरीरव्यापारसाध्यबुद्धिपूर्वक-देशान्तर-प्रतिसाधनं यानम्। 'गोयाने गोवधः प्रोक्तो हयमाने तु चतुर्गुणम्। नरयाने गोवधः प्रोक्तो ह्ययाने निष्फलम्॥ गोभिलः—गोभिर्युक्तेन यानेन तीर्थयात्रां करोति यः। स याति नरकं घोरं यावद्गोरोमसंख्यया। प्रभासखण्डे—तीर्थानुगमनं पद्भ्यां तपः परमिहोच्यते। तदेव कृत्वा यानेन स्नानमात्रफलं लभेत्॥ अशक्तस्य तु गोभिलः—असमर्थस्तु यानेन तीर्थयात्रां समाचरन्। तदुक्तं फलमाप्नोति स्वशक्त्या धर्ममाचरन्॥ कौर्मे—नरयानं चाश्वतरी हयादिसहितो रथः। तीर्थयात्रास्वशक्तानां यानदोषकरं न हि॥ नाव भी यान ही है। परन्तु नाव के विना गमन शंखों द्वारगंगासागर आदि मार्ग में स्थित नदी के उस पार जाने में हो नहीं सकता है। इसलिए दोष नहीं है। यह त्रिस्थलीसेतु में कहा है।)

(यानादिना यात्राकरणे)

यानमर्धं चतुर्थांशं छत्रोपानहमेव च। इत्युत्तरार्धं पाठान्तरम्।

आधे फल को यान (सवारी) छाता और जूता तो चतुर्थांशफल को नाश कर देता है। यह उत्तरार्द्ध पाठान्तर है।

(मार्गेऽन्तरानदीप्राप्तौ विचारः)

अत्र नदीषु विशेषः—मार्गेऽन्तरा नदीप्राप्तौ स्नानादिपरपारतः।
अर्वागेव सरस्वत्या एव मार्गगतो विधिः॥

यहाँ पर नदियों में विशेष कहा है—रास्ते में जाते समय नदी (सरस्वती नदी से भिन्न) के प्राप्ति पर—स्नान आदि उस पार (अर्थात्-नदी के उस पार होकर) करे। और सरस्वतीनदी के तो इसीपार करे। यही रास्ते के जाने की विधि है।

यत्तु—पितॄनतर्पयित्वा तु नदीस्तरति यो नरः। तस्यासृक्पानकामास्ते भवन्ति भृशदुःखितः॥ इति तत्सरस्वतीपरम्।

जो यह कहा है—जो मनुष्य पितरों का तर्पणादि न कर जो नदी के पार जाता है। वे अत्यन्त दुःखी पितर उसके रुधिरपान की इच्छा करते हैं। वह सरस्वतीनदीपरक है।

शङ्खः—तीर्थं प्राप्यानुषङ्गेन स्नानं तीर्थे समाचरेत्। स्नानजं फलमाप्नोति तीर्थयात्राकृतं न तु॥ स एव—'न स्रवन्तीमतिक्रामेदनवसिच्य'।

शंख ने कहा है—जो कोई अनुषंग (प्रशंगवश) वश तीर्थ को प्राप्त कर तीर्थ में स्नान करे। वह स्नान से उत्पन्न फल का प्राप्त करता है पर तीर्थयात्रा-जन्य किये हुए फल को प्राप्त नहीं करता है। वही ही सेचन के विना बहती हुई नदी का अतिक्रमण न करे।

(तीर्थप्राप्तौ तु)

तीर्थप्राप्तौ तु प्रभासखण्डे—यानानि तु परित्यज्य भाव्यं पादचरैर्नरैः। लुठित्वा लोठनीं तत्र कृत्वा कार्पटिकाकृतिम्॥ कृत्वेऽतगृहान्निर्गमसमयेऽकरणे इदम्।

तीर्थप्राप्ति में प्रभासखण्ड में कहा है—यानों को त्यागकर (सवारियों को) पदगामी (पैदल) होना चाहिये। (तीर्थ को देख कर साष्टांग प्रणाम— पद्भ्यां जानुभ्यां शिरसा चोरसा तथा। मनसा वचसा दृष्ट्या प्रणामोऽष्टाङ्ग उच्यते॥ यहाँ पर आचार से शिरोवगुण्ठन, कञ्चुकादि, माल्य शास्त्रादि का त्याग है।) जमीन पर लेटकर कार्पटिक की आकृति करे। 'कृत्वा' का अर्थ है कि—घर से निकलते समय न करने पर यह है।

प्रथमं चालभेत्तीर्थं प्रणवेन जलं शुचि । अवगाह्य ततः स्नायाद्यथावन्मन्त्रयोगतः ॥

पवित्रावस्था में पहले प्रणवमन्त्र (ओंकार) से तीर्थ जलका स्पर्शकर यथावत्, मन्त्र[1] से युक्त होकर अवगाहन (जल को हिलाकर) सचैलस्नान (पूरे वस्त्र के सहित) करे।[2]

(तीर्थप्रार्थनामन्त्राः)

मन्त्रश्च प्रभासखण्डे—नमोऽस्तु देवदेवाय शितिकण्ठाय दण्डिने ।

रुद्राय चापहस्ताय चक्रिणे वेधसे नमः ॥

मन्त्र तो प्रभासखण्ड में कहा है—देवों में देव आपको नमस्कार है। शितिकण्ठ, (शंकर) दण्डधारी रुद्र, धनुष तथा चक्र को हाथ में धारण किये हुए ब्रह्मरूप आपको नमस्कार है।

सरस्वती च सावित्री वेदमाता गरीयसी ॥ सन्निधात्री भवत्वत्र तीर्थे पापप्रणाशिनी ॥ इति । मन्त्रवत्स्नानं च वपनोत्तरं कार्यम् ।

सरस्वती, उत्तम वेदमाता सावित्री, इस तीर्थ में निकट रहकर पापों का नाश करनेवाले बनो। मन्त्रवत्स्नान करने वपन करने बाद करना चाहिये।

(तीर्थे उपवासमुण्डनादिनिर्णयः)

पूर्वमावाहनं तीर्थे मुण्डनं तदनन्तरम् । ततः स्नानादिकं कुर्यात्पश्चाच्छ्राद्धं समाचरेत् ॥ इत्युक्तेः ।

तीर्थ में प्रथम आवाहन करे। तदनन्तर मुण्डन करे। फिर स्नानादिक कर बाद में श्राद्ध करे। ऐसा कहा है।

यत्तु—गत्वा स्नानं प्रकुर्वीत वपनं तदनन्तरम् । इति तन्मुशलस्नानपरम् ।

जो यह बचन है—जाकर स्नान करे फिर वपन करे। वह मुसलस्नानपरक है।

काशीखण्डे—तीर्थोपवासः कर्तव्यः शिरसो मुण्डनं तथा ।

काशीखण्ड में कहा है—तीर्थ में उपवास करे और शिर का मुण्डन करे।

उपवासे तत्रैवोक्तम्—यदह्नि तीर्थप्राप्तिः स्यात्तदह्नः पूर्ववासरे ।

उपवासः प्रकर्तव्यः प्राप्तेऽह्नि श्राद्धदो भवेत् ॥

उपवास में वहीं पर कहा है—जिस दिन में तीर्थ की प्राप्ति हो उसके पूर्वदिन में उपवास को करना चाहिये। जिस दिन तीर्थ प्राप्त हो उसीदिन श्राद्धको करे।

अत्र—उपवासं ततः कुर्यात्तस्मिन्नहनि सुव्रतः । इति प्राप्तिदिनेऽप्युपवासोक्तेर्विकल्पः ।

तदनन्तर यहाँ पर सुव्रत, (अच्छे व्रत में स्थित) उसीदिन में उपवास करे। इससे प्राप्तिदिन में उपवास में विकल्प कहा है।

मुण्डने तु स्कान्ददेवलौ—मुण्डनं चोपवासं च सर्वतीर्थेष्वयं विधिः । वर्जयित्वा कुरुक्षेत्रं विशालं विरजां गयाम् ॥ विरजम्=लोणारम् । प्रसिद्धमहातीर्थपरः सर्वतीर्थशब्दः ।

मुण्डन में तो स्कन्दपुराण और देवल ने कहा है—मुण्डन और उपवास की यह विधि तो सब तीर्थों में है। कुरुक्षेत्र, विशाल (बद्री विशाल), विरज (उत्कलदेश), (वायवीये—आक्रान्तं दैत्यजठरं धर्मेण विरजाद्रिणा। नाभिकूपसमीपे तु देवी विरजा स्थिता ॥ तत्र गयासुरनाभौ धर्मराजेन विरजा-

---

१—सर्वेषामेव तीर्थानां मन्त्र एष उदाहृतः। इत्युच्चार्य नमस्कृत्वा स्नानं कुर्याद्यथाविधि ॥ अथवा—सागरस्वननिर्घोषदण्डहस्तासुरान्तक। जगत्स्रष्टर्जगन्मित्र नमामि त्वां सुरेश्वर ॥ तीक्ष्णदंष्ट्र महाकाय कल्पान्तदहनोपम। भैरवाय नमस्तुभ्यमनुज्ञां दातुमर्हसि ॥ इमं मन्त्रं समुच्चार्य तीर्थस्नानं समाचरेत्। अन्यथा तत्फलस्यार्धं तीर्थेशो हरति ध्रुवम्। प्रथम प्रणवसे जलका स्पर्श करे। फिर सचैलस्नान कर वपन कर समन्त्रक स्नान करे।

२—अमुकतीर्थाय नमः—इससे पुष्प, अक्षत, फल, दक्षिणा आदि से युक्त हो अञ्जलि दे। 'रिक्तपाणिर्न पश्येत्तु' ऐसा कहा है।

द्रिस्थापनोक्तेः तत्र विरजम्—लोणारम्—(दक्षिणदेशस्थमपि, आदित्यपुराणे—एवं कृते विधानेऽस्मिन् विरजे विरजो भवेत्।) प्रसिद्धशब्द महातीर्थपरक सब[1] तीर्थपरक है।

(अत्रविशेषः)

अत्र विशेषः स्मृत्यन्तरे–ऊर्ध्वमब्दाद् द्विमासोनात्पुनस्तीर्थं व्रजेद्यदि। मुण्डनं चोपवासं च ततो यत्नेन कारयेत्॥ तदा तद्वपने शस्तं प्रायश्चित्तमृते द्विज। इति वा पाठः।

यहाँ पर विशेष स्मृत्यन्तर में कहा है—एक वर्ष में दो महिना कम में फिर से यदि तीर्थ में जाय तो मुण्डन और उपवास को यत्न से करे। (फल की इच्छा हो तो मध्य में चौरादि करे यह आवश्यक नहीं है।) या इस पाठ को स्वीकार करेंगे तो—तदनन्तर हेद्विज, प्रायश्चित्त के बिना वह वपन उत्तम है। तीसरे पाद का पाठ यों है—'तदा तद् द्वयं शस्तम्। वह मुण्डन और उपवास उचित है।

प्रयागे प्रतियात्रं तु योजनत्रयमिष्यते। चौरं कृत्वा तु विधिवत् ततः स्नायात्सितासिते॥

प्रयाग में तो प्रत्येक यात्रा मे तीन योजन—(योजनत्रय से अधिक देश से आने पर ही करावे। उसके मध्यमें न करावे। (नैव संवत्सरे कुर्यात् प्रयागे वपनं द्वयम्।) में (छ कोष या बारह कोष) कहा है। चौर कर विधिवत् गंगा-यमुना में स्नान करे।

तथा च बृहस्पतिः—चौरं नैमित्तिकं कार्यं निषेधे सत्यपि ध्रुवम्।

पित्रादिमृतिदीक्षासु प्रायश्चित्तेऽथ तीर्थके॥

और बृहस्पतिस्मृति में कहा है—चौर को नैमित्तिक में भी निषेध होने पर भी निश्चय करे। पिता आदि के मरण, दीक्षा, प्रायश्चित्त और तीर्थ में करे।

अपरार्के स्कान्दे—उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा वपनं कारयेत्सुधीः। केशश्मश्रुलोमनखान्युदक्संस्थानि वापयेत्॥ इदं प्रयागे सधवानामपि समूलं भवतीति भट्टाः। सर्वान् केशान् समुद्धृत्य छेदयेदङ्गुलद्वयम्। एवमेव हि नारीणां शस्यते वपनक्रिया॥ इति। तच्चाकृतचूडानां न कार्यमिति केचित्। तत्त्वं तु नैमित्तिकत्वात्पित्रादिमृतवत्कार्यमेवेति। तदपि प्रयागे नित्यं नान्यत्र। तच्च यतिभिस्तीर्थेऽपि ऋतुसन्धिष्वेव कार्यं नान्यदा, कक्षोपस्थशिखावर्जं ऋतुसन्धिषु वापयेत्। इति स्मृतेः। इदं जीवत्पितृकेनापि तीर्थे कार्यम्। न च 'मुण्डनं पिण्डदानं' च इति दक्षवचनेन निषेधः, विना तीर्थं विना यज्ञं मातापित्रोर्मृतिं विना। यो वापयति लोमानि स पुत्रः पितृघातकः॥ इति स्मृत्या तत्सङ्कोचात्। तदपि प्रयागे प्रतियात्रम्, अन्यतीर्थे आद्ययात्रायामेवेति शिष्टाः। ततः स्नानम्।

अपरार्क में स्कन्दपुराण का वचन है—उत्तरमुख या पूर्वमुख हो विद्वान् वपन (मुण्डन) करावे। केश,[2]

१—मात्स्ये—अन्ये च बहवस्तीर्थाः सर्वपापहराशुभाः। तेषु स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः। एवं कुरुष्व कौन्तेय सर्वतीर्थाभिषेचनम्। यावज्जीवकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति। एतच्च मुण्डनं निषेधेऽपि कार्यम्। निषेधाश्च—रव्यारसौरिवारेषु रात्रौ पाते व्रतेऽहनि। श्राद्धाहः प्रतिपद्रिक्ता भद्राः चौरेषु वर्जयेत्। षष्ठ्यष्टमीपूर्णिमापातचतुर्दश्यष्टमीषु च। नक्षत्रे तु न कुर्वीत यस्मिन् जातो भवेन्नरः॥ न प्रौष्ठपदयोः कार्यं नैवाग्नेये तु भारत। दारुणेषु तु सर्वेषु दुष्टतारां विवर्जयेत्॥ कुंभे कर्कटके चैव कन्यायां कार्मुके रवौ। रोमखण्डं गृहस्थस्य पितॄन् प्राशयते यमः॥ विवाहमौञ्जीचूडासु वर्षमर्धं तदर्धकम्। अन्तर्वत्न्यां च जायायां नेष्यते वपनद्वयम्। तदपवादश्च—क्षौरं नैमित्तिकं कार्यं (प्राप्तं) निषेधे सत्यपि ध्रुवम्। पित्रादिमृतिदीक्षासु प्रायश्चित्ते च तीर्थके॥ अत्र वपनं करिष्ये इति सङ्कल्पः। यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यासमानि च। केशानाश्रित्य तिष्ठन्ति तस्मात्केशान् वपाम्यहम्॥

२—किसी का मत है—केश-श्मश्रु के क्रम से वपन कराना चाहिये। अन्यमत है—म्लेच्छाचार प्रसंग निवारणार्थ श्मश्रु कूर्चका आदि में वपन कर केशों का मुण्डन करे।

श्मश्रु (दाढी) लोम और नख को उदक्[1] संस्थ वपन करावे । इस मुण्डन को प्रयाग में सधवाओं का भी समूल होता है—ऐसा भट्ट कहते हैं । सब केशों का खोलकर दो अंगुल का छेदन करे । इसीप्रकार ही स्त्रियों की वपन (मुण्डन) क्रिया उत्तम कही है । वह जिसका चूडाकरण नहीं हुआ है उनका नहीं करना चाहिये यह किसीका मत है । तत्त्व तो यह है कि—नैमित्तिक होने से पिता आदि के मरने के सदृश करना ही चाहिये । वह भी प्रयाग में नित्य है अन्यत्र नहीं है । वह भी यतियों[2] के लिए तीर्थ में ऋतु की सन्धियों में ही करावे और अन्य समय न करावें । कक्ष, (बगल) उपस्थ (लिंग) और शिखा को त्याग कर ऋतु की सन्धियों वपन (मुण्डन) करावे एसा स्मृति में कहा है । इसको जीवत्पितृक भी तीर्थ में करावे । कोइ कहे कि—मुण्डन तथा पिण्डदानको न करे—इस दक्ष में वचन से निषेध कहा है । विना तीर्थ के, विना यज्ञ के, माता और पिता के मरण दिन के विना जो लोमों को बनवाता है वह पुत्र पितृघातक होता है । इस प्रकार स्मृति से उसका संकोच है । वह भी प्रयाग में प्रत्येक यात्रा में और अन्य तीर्थ में—आदि की यात्रा में ही है—एसा शिष्ट कहते है । तदनन्तर स्नान[3] करे ।

(परार्थयात्रायां फलकथनम्)

परार्थे तु मार्कण्डेयपुराणे—मातरं पितरं जायां भ्रातरं सुहृदं गुरुम् ।
यमुद्दिश्य निमज्जेत अष्टमांशं लभेत्तु सः ॥

परार्थ (दूसरे के लिए) स्नान में तो मार्कण्डेयपुराण में कहा है—माता, पिता, पत्नी, भाई, मित्र और गुरु इनमें जिसके लिए उद्देश्य से स्नान करे तो वह आठवाँ हिस्सा स्नानका फल प्राप्त करता है ।

पैठीनसिः—प्रतिकृतिं कुशमयीं तीर्थवारिणि मज्जयेत् । मज्जयेच्च यमुद्दिश्य सोऽष्टभागं फलं लभेत् ॥ ततस्तर्पणश्राद्धे ।

पैठीनसि का कथन है—कुशा की प्रतिकृति (कुशा की ग्रन्थि) आकृति बना कर तीर्थजल में मज्जन (स्नान) करावे । जिसको उद्देश्य कर स्नान करता है उसे आठवें भाग का फल मिलता है । तदनन्तर तर्पण और श्राद्ध करे ।

(तीर्थेऽविलम्बेन श्राद्धादिविचारः)

पृथ्वीचन्द्रोदये ब्रह्मदेवीपुराणकाशीखण्डादिषु—अकालेऽप्यथवा काले तीर्थे श्राद्धं च तर्पणम् ।
अविलम्बेन कर्तव्यं नैव विघ्नं समाचरेत् ॥

पृथ्वीचन्द्रोदय में ब्रह्मपुराण, देवीपुराण, काशीखण्ड आदि में कहा है—असमय (रात्रि आदि में भोजन करने पर भी) में या समय (अपराह्ण आदि में और भोजनादिराहित्य में ग्रहणादिवत् सब अवस्थाओं में) में तीर्थ में श्राद्ध तथा तर्पण[4] (स्नानाङ्गं तर्पणं कृत्वा पश्चाद् देवर्षितर्पणम् । कृत्वाऽऽनुपूर्व्यात्स्वपितॄन् तीर्थोदैस्तर्पयेत्ततः ॥) अविलम्ब से करे तथा विघ्न को न करे ।

१—दक्षिणं कर्णमारभ्य धर्मार्थं पापसक्षये । शिखाद्यं नवसंस्कारे शिखाद्यन्तं शिरो वपेत् ॥ एसा स्मृति में कहा है । धर्मार्थ तीर्थादि नीचे से वपन में दक्षिणकान से प्रारंभ कर उदक्संस्थ वपन करावे । पापसक्षयनिमित्त में प्रथम शिखा का कराकर उदक्संस्थ वपन सब तरफ से करावे । नवीनसंस्कार चूडाकरण में दक्षिणकान से शिखा के समीप तक और शिखा के समीप से प्रारंभ कर बायें कान तक वपन करावे ।

२—स्मृति में कहा है —यतिः शूद्रश्च विधवा सशिखं वपनं चरेत् ।

३—शातातप ने कहा है—रात्रौ स्नानं न कुर्वीत होमं दानं च रात्रिषु । नैमित्तिकं च कुर्वीत स्नानं दान च रात्रिषु ॥ किसी का मत है— रात्रि में तीर्थ में स्नान महानिशा में न करे । आकस्मिक तीर्थ की प्राप्ति में स्नान रात्रि में नहीं करना चाहिए । आकस्मिक तीर्थस्नान आशौच में भी करे । पैठीनसि में कहा है—विवाहदुर्गयज्ञेषु यात्रायां तीर्थकर्मणि । न तत्र सूतकं तद्वत्कर्मयज्ञादि कारयेत् ॥ प्रासङ्गिक तीर्थस्नान तो मलमास में भी करे । यम ने कहा है—तीर्थस्नान, जप और हवन मलमास में भी करे ।

४—देवासुरास्तथा नागा यक्षगन्धर्वराक्षसाः । पिशाचाः गुह्यकाः सिद्धाः कूष्माण्डास्तरवः खगाः ॥ जलेचरा भूमिनिलया वाय्वाधाराश्च जन्तवः । तृप्तिमेतेन यान्त्वाशु मद्दत्तेनांबुनाऽखिलाः ॥ नरकेषु समस्तेषु यातनासु च ये स्थिताः ।

मात्स्ये—पितृणां चैव तर्पणम् इति तुर्यपादः। तत्र देवता महालयनिर्णये प्रागुक्ताः।

मत्स्यपुराण में कहा है—पितरों का ही तर्पण करे यह पूर्वश्लोक का चतुर्थपाद है। वहाँ पर देवता महालयनिर्णय में पहले कह चुके।

(तीर्थविधौ कालनियमे)

शङ्खदेवलौ—तीर्थद्रव्योपपत्तौ च न कालमवधारयेत्।

पात्रं च ब्राह्मणं प्राप्य सद्यः श्राद्धं समाचरेत्॥

शंख और देवल ने कहा है—तीर्थ और द्रव्य के प्राप्त होने पर समय का निश्चय न करे। सुपात्र ब्राह्मण के प्राप्त हो जाने पर शीघ्र ही श्राद्ध करे।

हारीतः—दिवा वा यदि वा रात्रौ भुक्तो वोपोषितोऽपि वा।

न कालनियमस्तत्र गङ्गां प्राप्य सरिद्वराम्॥

हारीत ने कहा है—भोजन करने पर या उपवास करने पर दिन में या रात में समय का नियम नदियों में श्रेष्ठ गंगा को नहीं है।

भारते—भुक्तो वाप्यथ वा भुक्तो रात्रौ वा यदि वा दिवा। पर्वकालेऽथ वा काले शुचिर्वाप्यथ वा शुचिः॥ यदैव दृश्यते तत्र नदी च त्रिपथगा प्रिय। प्रणामं दर्शनं तस्मान्न कालस्तत्र कारणम्॥

भारत में कहा है—(अङ्गारपर्णं प्रत्यर्जुनवाक्यम्) भोजनोत्तर या भोजन के पूर्व में, रात्रि में, यदि दिन में पर्व का समय हो या असमय हो, पवित्र हो या अपवित्र हो। जब ही नदी त्रिपथगा (गंगा) का दर्शन हो उसी समय प्रणाम करे। हे प्रिये, क्योंकि उसमें काल का कारण नहीं होता है।

आशौचेऽपि कार्यम्, विवाहदुर्गयज्ञेषु यात्रायां तीर्थकर्मणि। न तत्र सूतकं तद्वत्कर्मयज्ञादि कारयेत्॥ इति पैठीनसिस्मृतेः। तदानीमकरणेत्वाशौचान्ते एव कुर्यात्।

अशौच में भी करना चाहिये। विवाह में, दुर्ग (कठिन मार्ग) में, यज्ञ में, यात्रा में और तद्वत् (उसीप्रकार) तीर्थकर्म में इनमें सूतक नहीं होता है। तद्वत् यज्ञादिकर्म करावे। यह पैठीनसि स्मृति में कहा है। उसीसमय न करने पर तो आशौच के बाद ही करे।

प्रभासखण्डे—न वारं न च नक्षत्रं न कालस्तत्र कारणम्।

यदैव दृश्यते तीर्थं तदा पर्वसहस्रकम्॥

प्रभासखण्ड में कहा है—वार, नक्षत्र और समय का उसमें कारण नहीं होता है। जब ही तीर्थ दिखाई दे तब ही हजार पर्व है। (अर्थात्—तिथि, वार, नक्षत्र आदि का निषेध तीर्थ में नहीं प्रवृत्त होता है। जैसे—'नन्दायां भार्गव दिने, प्राजापत्ये च पौष्णे च, नक्षत्रे च न कुर्वीत, भानौ भौमे त्रयोदश्याम्, नन्दाश्च कामरव्यार, रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीत, उपसन्ध्यं न कुर्वीत, विवाहे व्रतचूडासु वर्षमर्धम्, इत्यादि पहले ही कह चुके हैं। और 'वृद्धिमात्रे तथाऽन्यत्र पिंडदानं निराक्रिया। कृता गर्गादिभिर्मुख्यैर्मासमेकं तु कर्मिणाम्॥ इत्यादि पिण्डदान निषेध भी तीर्थश्राद्ध में नहीं लगता है।)

तेषामाप्यामनायैतद् दीयते सलिलं मया॥ येऽबान्धवा बान्धवा वा येऽन्यजन्मनि बान्धवाः। ते तृप्तिमखिला यान्तु ये चास्मत्तोऽभिकांक्षिणः॥ यत्र क्वचन संस्थानां क्षुत्तृष्णोपहतात्मनाम्। इदमक्षय्यमेवास्तु मया दत्तं तिलोदकम्। यद्वा—आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृबान्धवाः (मानवाः)। तृप्यन्तु पितरः सर्वे मातृमातामहादयः॥ अतीतकुलकोटीनां सप्तद्वीपनिवासिनाम्। आब्रह्मभुवनाल्लोकादिदमस्तु तिलोदकम्॥ यद्वा—विस्तृततर्पणासम्भवे संक्षेपेण तर्पणं कार्यम्—आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं जगत्स्थावरजङ्गमम्। मया दत्तेन तोयेन तृप्तिं यातु परां गतिम्॥ इति। आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं जगत्तृप्यत्विति ब्रुवन्। जलाञ्जलित्रयं दद्यात्कुर्वन् संक्षेपतर्पणम्॥ इत्युक्तेः प्रत्यञ्जलौ मन्त्रावृत्तिः। तिलतर्पणनिषेधश्चापि तीर्थे न प्रवर्तते। तीर्थे तिथिविशेषे च' इति पूर्वोक्तवाक्यात्। स्कान्दे—विधवापि प्रत्यहं तीर्थे तर्पणं कार्यम्—तर्पणं प्रत्यहं कार्यं भर्तुः कुशतिलोदकैः। तत्पितुस्तत्पितुश्चापि नामगोत्रादिपूर्वकम्॥ संन्यासिनस्तु न तर्पणं कार्यम्—न कुर्यात्सूतकं भिक्षुः श्राद्धपिण्डोदकक्रियाम्।

(मलमासे तीर्थश्राद्धादिनिर्णयः)

मलमासेऽपि कार्यम्, नित्यनैमित्तिके कुर्यात् प्रयतः सन्मलिम्लुचे। तीर्थश्राद्धे गजच्छायां प्रेतश्राद्धे तथैव च ॥ इति बृहस्पतिस्मृतेः।

मलमास में भी करे। बृहस्पतिस्मृति में कहा है—सावधान होकर मलमास में नित्य और नैमित्तिककर्म तीर्थश्राद्ध, गजच्छाया तथा प्रेतश्राद्ध को करे।

(आकस्मिकतीर्थप्राप्तौ विचारः)

एतच्चाशौचे कृतभोजनस्य रात्रौ वा स्नानश्राद्धादिकमाकस्मिकतीर्थप्राप्तावामहेमश्राद्धविषयं ग्रहणादिवत् न तु बुद्धिपूर्वमाशौचादौ तीर्थप्राप्तिः कार्या। मलमासे तु मासद्वये तीर्थश्राद्धं कार्यमिति।

और यह वचन आशौच में भोजन करने के बाद या रात्रि में स्नान, श्राद्ध आदि कर्म को आकस्मिक तीर्थ की प्राप्ति में आमश्राद्ध, हेम (सुवर्ण) श्राद्ध के विषय में है ग्रहण के सदृश बुद्धिपूर्वक आशौच आदि में तीर्थ की प्राप्ति में न करे। मलमास में तो दोनों महीने तक (मन्वादिकं तैर्थिकं च कुर्यान्मास-द्वयेऽपि च।) तीर्थश्राद्ध करे। (पाकद्वारा श्राद्ध तो रात्रि, सन्ध्या और भोजन के बाद दूसरे ही दिन करे। आशौचावस्था में तो आशौचोत्तर ही तीर्थसम्बन्धी कार्य करे।)

(तीर्थे वर्ज्यकर्माणि)

चन्द्रिकायां देवीपुराणे—श्राद्धं च तत्र कर्तव्यमर्घ्यावाहनवर्जितम्।

चन्द्रिका में देवी पुराण का वचन है—वहाँ पर (तीर्थ में) अर्घ्य और आवाहन को त्याग कर तीर्थ श्राद्ध करे।

हेमाद्रौ—अर्घ्यमावाहनं चैव द्विजाङ्गुष्ठनिवेशनम्। तृप्तिप्रश्नं च विकिरं तीर्थश्राद्धे विवर्जयेत् ॥

हेमाद्रि में कहा है—अर्घ्य, आवाहन,[1] द्विजाङ्गुष्ठनिवेशन, तृप्तिप्रश्न और विकिर को तीर्थश्राद्ध में त्याग दे।

भविष्ये—आवाहनं विसृष्टिश्च तत्र तेषां न विद्यते। आवाहनं न तीर्थे स्यान्नार्घ्यदानं तथा भवेत् ॥ आहूताः पितरस्तीर्थे कृतार्घ्याः सन्ति वै यतः। अग्नौकरणं न चेति रत्नावल्याम्। अत्र षड्दैवते श्राद्धेऽपि मात्रादीनां पिण्डमात्रं देयम्, हविःशेषं ततो मुष्टिमादायैकैकमादृतः। क्रमशः पितृपत्नीनां पिण्डं निर्वपणं चरेत् ॥ इति तीर्थोपक्रमे देवलोक्तेरिति पृथ्वीचन्द्रः।

ततः सामान्यपिण्डं दद्यात्, ततः पिण्डमुपादाय हविषः संस्कृतस्य च। ज्ञातिवर्गस्य सर्वस्य सामान्यं पिण्डमुत्सृजेत् ॥ इति तेनैवोक्तेः।

भविष्यपुराण में कहा है—वहाँ पर आवाहन और विसर्जन उनका नहीं होता है। तीर्थ में आवाहन नहीं होता है न अर्घ्यदान होता है। तीर्थ में आहूत पितरों का निश्चय ही अर्घ्यदान किया हुआ है। और

१—अग्नौकरण और विसर्जन न करे—यह तीर्थनिमित्तक श्राद्ध में ही है। न कि तीर्थाधिकरणश्राद्ध में है। 'एक व्यक्ति समान में दो श्राद्ध न करे। यह एक निमित्त श्राद्धपरक है। एकदिनमें दो या बहुत निमित्त हों तो नैमित्तिकों को निमित्तक्रम से करना चाहिये। उपवास और मुण्डन में तो एक ही बार व्यापकतीर्थ में ही करे। जहाँ पर व्याप्य तीर्थ में श्राद्ध करने से व्यापकतीर्थ में भी सिद्धि होती है। वहाँ पर श्राद्ध की आवृत्ति नहीं होती है। किन्तु तन्त्रता है। जैसे गंगा, वेणी, प्रयागनिमित्तकों का। या गंगा, मणिकर्णिका, काशी निमित्तकों का। श्राद्धसम्पात तीर्थप्राप्तिदिन में तो वार्षिक को अलग ही करे। क्योंकि देवताभेद है। प्रथम तीर्थश्राद्ध करे। विलम्ब से अलग नैमित्तिक करे। दर्श, युगादि मन्वादि, संक्रान्त्यादि श्राद्धों को तो पाक से तीर्थ पर श्राद्ध करने पर अलग न करे। आमादि (अन्नादि) से करने से तो तीर्थश्राद्ध में अलग-अलग करे। इसीप्रकार ही नित्यश्राद्ध को भी यदि तीर्थश्राद्ध में करे तो पाक से करे। उसमें अलग न करे। यदि आम से करे तो अलग करे। दर्शश्राद्धादि का भार्या रजोदर्शनादि निमित्त से आमपक्ष में आम-हेम-तीर्थश्राद्ध से सिद्धि है।

(एकोद्दिष्ट और पार्वणश्राद्ध पर विचार)

एकोद्दिष्ट और उसके विकृतिश्राद्ध में विश्वेदेवा नहीं होते हैं, तदितर श्राद्ध में विश्वेदेवा होते हैं। त्रिपुरुषात्मक एक पार्वण है यह निर्विवाद है। 'पुरुरवाद्रवौ चैव पार्वणे समुदाहृतौ' इससे प्रतिपार्वण में विश्वेदेवा प्राप्त होते हैं। श्राद्धविवेक-आदि पद्धतियों को देखिये। हर एक पद्धति में—महालयादिश्राद्ध में द्विपार्वण में पृथक् २ विश्वेदेवा हैं। श्राद्धविवेक में—आभ्युदयिकश्राद्ध में पार्वणत्रय में विश्वेदेवा का आसनत्रय स्पष्ट है। पद्धति के देखने से सन्देह दूर हो जायगा। अशक्त्यादि में 'तन्त्रं वा वैश्वदेविकम्' यह भी है, इससे एक से भी काम चलता है। 'दैवे युग्मान्' इससे विश्वेदेवा में युग्म ब्राह्मण की पूजा होती है। आसनादि वाक्यों को आप श्राद्धविवेक में देखिये। जैसा आप कहते हैं वैसा ही सब पद्धतियों में है।

शुभम्
श्री विद्याधर शर्मा
२६।२।३२

(१)

(एकोद्दिष्टश्राद्ध का स्वरूप)

इसमें विश्वेदेवा नहीं होते हैं—

दक्षिण

❋ आसन
❋ भोजनपात्र
❋ अर्घपात्र
❋ जलपात्र

(पिण्डाधारवेदी)

(अवनेजनपात्र ही प्रत्यवनेजन पात्र हो जाता है।)

↑

यजमान का आसन

(उत्तर)

(२)

(पुत्रकर्तृक आभ्युदयिक नान्दीश्राद्ध का स्वरूप)

पूर्व

विश्वेदेवा

१

उत्तर				दक्षिण
	वृद्धप्रमातामह (सपत्नीक)	प्रपितामह	प्रपितामही	
	प्रमातामह	पितामह	पितामही	
	मातामह	पितृ	मातृ	
	४	३	२	

पश्चिम

पश्चिम

श्राद्ध करनेवाली का आसन

सास, परसास, वृद्धसास	पति, स्वसुर, परस्वसुर	पिता, पितामह प्रपितामह, (सपत्नीक)	
✻	✻	✻	आसन
✻	✻	✻	भोजनपात्र
✻	✻	✻	अर्घपात्र
✻	✻	✻	जलपात्र
✻	✻	✻	घृतपात्र

दक्षिण

(विधवाकर्तृकनवदैवत्यपार्वणश्राद्धप्रकार)

सपत्नीक-प्रपितामह	पितामह	पिता	परस्वसुर	स्वसुर	पति	वृद्धसास	परसास	सास	
✻	✻	✻	✻	✻	✻	✻	✻	✻	आसन
✻	✻	✻	✻	✻	✻	✻	✻	✻	भोजनपात्र
✻	✻	✻	✻	✻	✻	✻	✻	✻	अर्घपात्र
✻	✻	✻	✻	✻	✻	✻	✻	✻	जलपात्र
✻	✻	✻	✻	✻	✻	✻	✻	✻	घृतपात्र

(पिण्डाधारवेदी) (पिण्डाधारवेदी) (पिण्डाधारवेदी)

(अवनेजनपात्र ही प्रत्यवनेजनपात्र हो जाते हैं)

श्राद्ध करनेवाली का आसन

पूर्व

उत्तर

अग्नौकरण नहीं होता है—यह रत्नावली में कहा है। यहाँ पर षडदैवतश्राद्ध में भी माता आदियों को पिण्ड-दान मात्र दे। क्योंकि तीर्थोपक्रम में देवल ने कहा है—तदनन्तर हविका शेष एक-एक मुट्ठी ग्रहण कर आदर से पिता आदि की पत्नियों को क्रम से पिण्डदान करे—यह पृथ्वीचन्द ने कहा है।

तदनन्तर सामान्य पिण्ड दे। उस: देवल ने कहा है—संस्कार किये हुए हवि के पिण्ड को ग्रहण कर सब जाति वाले वर्ग (समूह) सामान्य पिण्ड दे। यह उसने ही कहा है।

पाद्मे—तीर्थश्राद्धं प्रकुर्वीत पक्वान्नेन विशेषतः।
आमान्नेन हिरण्येन कन्दमूलफलैरपि ॥

पद्मपुराण में कहा है—विशेष कर पक्वान्न से तीर्थश्राद्ध करे। या आमान्न, हिरण्य या कन्द (सकर-कन्दादि विशेष) मूल (वृक्ष की जड़) और फलों से करे।

(पिण्डद्रव्यकथनम्)

पिण्डद्रव्याणि देवीपुराणे हेमाद्रौ ब्राह्मे च—सक्तुभिः पिण्डदानं च संयावैः पायसेन वा।
कर्तव्यमृषिभिः प्रोक्तं पिण्याकेन गुडेन वा ॥

पिण्डद्रव्यों को देवीपुराण, हेमाद्रि और ब्रह्मपुराण में कहा है—सत्तु, संयाव (घृतगोक्षीरगोधूमादि साधितो भोज्यविशेषः) पायस, पिण्याक (तिलखली) या गुड से पिण्डदान को करना चाहिए। ऐसा ऋषियों ने कहा है।

(पिण्डानां तीर्थे प्रक्षेपकथनम्)

पिण्डानां तीर्थे प्रक्षेप एव नान्या प्रतिपत्तिरित्युक्तं प्राक्। एतच्च विधवयाऽपुत्रया कार्यं न सपुत्रयेत्युक्तं प्राक्।

पिण्डों को तीर्थ में ही प्रक्षेप करे। अन्य कोई उपाय नहीं है—यह पहले कहा है और यह अपुत्रा विधवा को करना चाहिये। पुत्रवाली विधवा को नहीं करना चाहिये—यह पहले कह चुके हैं।

(सपुत्रविधवया तीर्थविधिर्न कार्यः)

'सपुत्रया न कर्तव्यं भर्तुः श्राद्धं कदाचन। इति स्मृतेश्च। अनुपनीतेनापि कार्यम्। एतच्चानुप-नीतोऽपि कुर्यात्सर्वेषु पर्वसु। इति पाद्मे तीर्थश्राद्धमुपक्रम्योक्तेः। एतज्जीवत्पितृकेणापि कार्य-मित्युक्तं प्राक्।

और स्मृति में कहा है पुत्रवाली स्त्री को अपने पति का श्राद्ध नहीं करना चाहिये। अनुपनीत को (जिसका उपनयन नहीं हुआ है) भी करना चाहिये। और सब पर्वों में करे। इसको पद्मपुराणके तीर्थश्राद्ध[1] के प्रकरण में कहा है। इसको जीवत्पितृक भी करे—यह पहले कहा है।

(संन्यासिना तीर्थविधिकथनम्)

यतिना तु न कार्यम्। न कुर्यात्सूतकं भिक्षुः श्राद्धपिण्डोदकक्रियाम्। त्यक्तं संन्यासयोगेन गृहं धर्मादिकं व्रतम् ॥ गोत्रादि च ऋणं सर्वं पितृमातृकुलं धनम्। इति स्मृतेः ॥

संन्यासी को नहीं करना चाहिए। भिक्षु (संन्यासी) सूतक, श्राद्धपिण्ड और उदकक्रिया को (न कुर्यात्सूतकं भिक्षुः श्राद्धपिण्डोदकक्रियाम्) न करे। संन्यास के योग से घर, धर्मादिव्रत, गोत्रादि का आचरण, ऋण, पितृ, मातृ कुल और धन सब त्याग किया। ऐसा स्मृति में कहा है।

गयायां तूक्तं वायवीये—दण्डं प्रदर्शयेद्भिक्षुर्गयां गत्वा न पिण्डदः। दण्डं स्पृष्ट्वा विष्णुपदे पितृभिः सह मुच्यते ॥

वायुपुराण में कहा है—गया में संन्यासी जाय तो—गया में जाकर भिक्षु[2] (संन्यासी) दण्ड दिखा दे और पिण्डदान न करे। विष्णुपद में दण्ड को स्पर्श कर पितरों के साथ मुक्त हो जाता है।

१—तीर्थेषु ब्राह्मणं नैव परीक्षेत कदाचन। पातित्वादि दोषयुक्तस्तु हेय एव।

२—चतुर्विधा भिक्षवस्तूक्ताश्चन्द्रिकायाम्—चतुर्विधा भिक्षवस्तु विख्याता ब्रह्मणो मुखात्। कुटीचको बहूदको हंसश्चैव तृतीयकः ॥ चतुर्थः परमहंसश्च संज्ञाभेदैः प्रकीर्तिताः ॥ एषां लक्षणानि तत्रैव ज्ञेयानि।

गयायां धर्मपृष्ठे च कूपे यूपे वटे तथा । दण्डं प्रदर्शयन् भिक्षुः पितृभिः सह मुच्यते ॥

गया में, धर्मपृष्ठ में, कूप में, यूप में और वट में दण्ड को दिखाता हुआ भिक्षु पितरों के सहित मुक्त हो जाता है।

(तीर्थे प्रतिग्रहनिर्णयविचारः)

कृत्यरत्ने प्रभासखण्डे—तीर्थे चेत्प्रतिगृह्णाति ब्राह्मणो वृत्तिदुर्लभः । दशांशमर्जितं दद्यादेवं कुर्वन्न हीयते ॥ इति विशेषान्तराणि भट्टकृतत्रिस्थलीसेतौ ज्ञेयानीति दिक्। इति तीर्थश्राद्धविधिः ।

कृत्यरत्न में प्रभासखण्ड का वचन है--वृत्ति (जीविका) से हीन ब्राह्मण तीर्थ में यदि ग्रहण करता है तो उसमें से अर्जित दसवाँ भाग दान करे--ऐसा करने से प्रायश्चित्त का भागीदार नहीं होता है। अन्य विशेष तो भट्टकृतत्रिस्थलीसेतु में जानना चाहिये।

श्राद्धप्रकरण समाप्त

(प्राचीन व्यवस्थाओं का संग्रह)

(स्वर्गीय-महामहोपाध्याय श्री पं० विद्याधर जी गौड़ द्वारा लिखित)

१—गोमांसभक्षकहस्ते गोविक्रये प्रायश्चित्तम्—कश्चिद् ब्राह्मणोऽसकृद् गोमांसखादके गवां विक्रयं कृतवान् सः केन प्रायश्चित्तेन शुद्धो भवितुमर्हतीति प्रश्ने इदमुत्तरम्—यदि तां गां गोमांसखादको हतवान् तदा सकृद्विक्रेता एकपञ्चाशत्कार्षापणलभ्यहिरण्यदानेन पञ्चदशकार्षापणलभ्यहिरण्यदानेन च शुद्ध्यति। अत्यन्ताभ्यासेन एवं विक्रयं कुर्वतो द्वादशवार्षिकं व्रतम्, तदशक्तावशीत्युत्तरशतधेनुदानेन तदशक्तौ चत्वारिंशदधिकपञ्चशतकार्षापणलभ्यहिरण्यदानेन पूर्वोक्तदक्षिणादानसहितेन शुद्धिः। विक्रयैर्गोविनिमयैर्दत्त्वा गोमांसखादके। चान्द्रायणव्रतं कुर्याद्वधे साक्षाद्वधी भवेत्॥ इति गौतमवचनात्। विधेः प्राथमिकादस्माद् द्वितीये द्विगुणं भवेत्। तृतीये त्रिगुणं प्रोक्तम्..........॥ इति देवलीयात्। "चतुर्थे सर्वम्" इत्यापस्तम्बवचनात्सर्वमित्यस्य द्वादशवार्षिकमिति शूलपाणिव्याख्यातत्वाच्चेति।

२—भृत्यावरुद्धगोमृतौ भृत्यप्रायश्चित्तम्—यत्र भृत्यापराधात् कस्यचिद् गृहे गौर्मृता तदा रोधननिमित्तम् गोवधप्रायश्चित्तं भृत्येन कर्तव्यम्। भृत्यस्य द्रव्याभावे गृहस्वामिना द्रव्यं दत्त्वा कारयितव्यम्। यदि भृत्यो न स्वीकुर्यात्, म्लेच्छो वा भृत्यो भवेत् तदा स्वामिनैव रोधननिमित्तकवधप्रायश्चित्तं कर्तव्यम्। प्रमाणं चात्र मनुः—यात्रापवर्तते युग्यं वैगुण्यात्प्राजकस्य तु। तत्र स्वामी भवेद्दण्ड्यो हिंसायां द्विशतं दमम्॥ (८।२९३) इति वचनेन अयोग्यसारथिनियोगे हिंसायां स्वामिनो दण्डविधानात् "एकत्र निर्णीतः शास्त्रार्थो बाधकं विना सर्वत्र प्रत्यायको भवति" इति न्यायात् गोवधप्रायश्चित्तेऽपि अयोग्यपालकादौ नियुक्ते स्वामिनो दोषस्तस्यैव प्रायश्चित्तम्। यदि पालकः प्रायश्चित्तं चिकीर्षेत्तदा तेनैव कर्तव्यम्। एतच्च गोवधप्रायश्चित्तप्रकरणे रघुनन्दनभट्टाचार्यैः प्रायश्चित्तमुक्तम्। अज्ञातस्वामिकाया गोर्वधे ब्राह्मणस्वामिकगोवधप्रायश्चित्तमेवानुष्ठेयम्।

३—वैश्येन दण्डनिपातनेन कृतायां स्वगोहत्यायां प्रायश्चित्तम्—केनचित् वैश्येन स्वस्याः गोर्वधे दण्डनिपातनेन किं प्रायश्चित्तमिति प्रश्ने प्रायश्चित्तविवेके वैश्यसम्बन्धिन्या वधे तु याज्ञवल्क्यः—पञ्चगव्यं पिबेद् गोघ्नो मासमासीत संयतः। गोष्ठेशयो गोऽनुगामी गोप्रदानेन शुद्ध्यति॥ पञ्चगव्येन गोघाती मासैकेन विशुद्ध्यति। गोमतीञ्च जपेद्विद्यां गवां गोष्ठे च सम्वसेत्॥ मासैकपञ्चगव्यपाने धेनुचतुष्टयं दक्षिणा गोदानेन पञ्चधेनवः। एतदबुद्धिकृते। बुद्धिकृते त्वेतदेव द्विगुणम्। ज्ञानतो वैश्यस्वामिकायाः दण्डेन गोर्वधे गोमतीविद्याजपसहितमासैकपञ्चगव्यपानरूपं व्रतं करणीयम्। तदशक्तौ दश धेनवो देयाः। दोग्ध्रीवधे तु प्रायश्चित्तद्वैगुण्यम्, तेन विंशतिधेनव एका गौर्दक्षिणा। प्रायश्चित्तद्वैगुण्ये दक्षिणायाः द्वैगुण्यम्। अत्र वपनं सशिखं सलोमकम्। प्रायश्चित्तमिदं कर्तव्यमित्यनुष्ठेयम्। पूर्वदिने तु उपवासः, घृतप्राशनं च, परस्य गवे ग्रासा देयाः। दश ब्राह्मणाश्च भोजयितव्याः।

४—गोवधे प्रायश्चित्तम्—बुद्धिपूर्वं कतमोऽपि वर्णः ब्राह्मणस्य गां शस्त्र-यष्टि-लोष्ट-मुष्टि-विषादिना यदि हन्यात् तदर्थं त्रैमासिकव्रतं प्रायश्चित्तं स्मृतम्। अशक्तौ सप्तदश प्रत्यक्षगोदानानि, अथवाऽसामर्थ्ये तावतीनां गवां मूल्यं ददीत। प्रायश्चित्तविवेककारस्य मते एकस्या गोर्मूल्यं द्वादशपणकाः वर्तते। अपरे त्वाचार्याः "द्वात्रिंशत्पणिका गावः" इत्यभिप्रयन्ति। त्रैमासिकव्रतार्थं प्रथमदिने वपनोपवासौ तथा घृतप्राशनं विदधीत। तस्मिन्नेव दिने सायंकाले प्रायश्चित्तानुष्ठानार्थं संकल्पं कुर्यात्। द्वितीये दिने त्रैमासिकव्रतप्रत्याम्नायरूपेण गोमूल्यं प्रदद्यात्। अज्ञानात् ब्राह्मणगोवधे सार्धमासिकव्रतं प्रायश्चित्तं स्मृतम्। तदशक्तौ नवप्रत्यक्षधेनवो देयाः, तत्रासामर्थ्ये तासां मूल्यं देयम्। धेनूनां मूल्यं सार्धपञ्चविंशतिकार्षापणाः विहितम्। दक्षिणारूपेण एका गौर्देया। पूर्वपरयोर्दिनयोः कार्यं यथापूर्वं कुर्वीत। ज्ञानपूर्वं क्षत्रियगोवधे षाण्मासिकव्रतं प्रायश्चित्तं समाम्नातम्। अशक्तौ द्वादश धेनवो यथाशक्तिदक्षिणापुरस्कृता देयाः। पूर्वापरदिनकृत्यं पूर्ववदनुतिष्ठेत्। अज्ञानाद् गोवधे तदर्द्धं प्रायश्चित्तं विहितम्। ज्ञानात् वैश्यगोवधे गोमतीविद्यां जपन् एकमासपर्यन्तं पञ्चगव्य-

पानरूपं व्रतमनुतिष्ठेत् । तदशक्तौ दश गावो देयाः, दक्षिणारूपेण चैकां गां ददीत । पूर्वापरदिनकृत्यं पूर्ववद् विदधीत । अज्ञानात् गोवधे तदर्द्धं प्रायश्चित्तं स्मृतम् । ज्ञानात् शूद्रगोवधे प्राजापत्यचतुष्टयं विदधीत, अथवा गोचतुष्टयं दद्यात् । अज्ञानाद् गोवधे तदर्द्धं प्रायश्चित्तं विहितम्, अन्यत् सर्वं यथापूर्वमनुतिष्ठेत् ।

५—ब्रह्मवधे प्रायश्चित्तम्—अज्ञानाद् ब्राह्मणवधे द्वादशवार्षिकव्रतं प्रायश्चितम् । ज्ञानतो ब्राह्मणवधे चतुर्विंशतिवार्षिकव्रतं प्रायश्चित्तम् । अज्ञानात् यागस्थानीयब्राह्मणस्य वधे चतुर्विंशतिवार्षिकव्रतम, तथा ज्ञानतः यागस्थलीयब्राह्मणस्य वधे अष्टचत्वारिंशद्वार्षिकव्रतं प्रायश्चित्तं स्मृतम् । एवमेव बाल-वृद्ध-गुरु माता पितृ-सोदरभ्रातृणां श्रोत्रियब्राह्मणस्य तथाऽग्निहोत्रिब्राह्मणस्य ज्ञाताज्ञातवधे यथापूर्वं व्रतं प्रायश्चित्तं विहितम् । अज्ञानतः प्रेतश्राद्धान्नभोजिनो ब्राह्मणस्य वधे वार्षिकव्रतं प्रायश्चित्तम् । तथा ज्ञानतो वधे द्विवार्षिकं प्रायश्चित्तं स्मृतम् । ज्ञानतोऽज्ञानतो वा ब्राह्मणस्य वधप्रायश्चित्तस्य प्रथमदिने उपोषणम्, सशिखवपनम्, घृतप्राशनम्, दशब्राह्मणभोजनम्, गोग्रासदानम्, दक्षिणारूपेण शतं गावो वा देयाः । एतदशक्तौ तन्निष्क्रयदानम् । बहूनां ब्राह्मणानां एकपुरुषकर्तृकवधे तादृशमहापातकानुष्ठातुः पातकिनः कारीषाग्नौ प्रविश्य मरणमेव प्रायश्चित्तम् । अज्ञानत एतादृशपातकाचरणे तस्य आजीवनं द्वादशाब्दव्रतं प्रायश्चित्तं विधीयते । क्षत्रियो यदि ज्ञानतो ब्राह्मणं हन्यात् तदा स ब्राह्मणस्य तादृशपातककर्तुर्विहितप्रायश्चित्तस्य द्विगुणं प्रायश्चित्तं विदधीत, अज्ञानतो यदि ब्राह्मणं हन्यात् तदाऽज्ञानतो ब्रह्मवधकर्तुर्ब्राह्मणस्थविहितं यत्प्रायश्चित्तं तद्द्विगुणं प्रायश्चित्तं विदध्यात् । एवमेव वैश्यकर्तृकब्रह्मवधे त्रिगुणं प्रायश्चित्तं विहितम् । शूद्रकर्तृकब्रह्मवधे चतुर्गुणितं प्रायश्चित्तं स्मृतम् ।

६—गजाश्वादिवधे प्रायश्चित्तम्—राजसम्बन्धिश्रेष्ठगजवधे पञ्चनीलवृषदानम् । सामान्यगजवधे अहोरात्रमुपवासो घृतप्राशनञ्च । ज्ञानत उत्तमगजवधे चान्द्रायणव्रतम्, अज्ञानतस्तदर्धम् । ज्ञानतः अश्ववधे चान्द्रायणव्रतम्, अज्ञानतस्तदर्धम् ; अज-मेष-खरवधे एकहायनवृषदानम् । अज्ञानतो मृग-महिष-तरक्षु (व्याघ्रविशेषः) ऋक्ष-वानर-सिंह-व्याघ्र-पृषत-चमरी-रुरूणां वधे अहोरात्रमुपवासः, द्वितीयदिने घृतप्राशनञ्च । ज्ञानतो मृगादीनां वधे सप्तरात्रमुपवासः, उपवासाशक्तौ एकस्मिन्नुपवासे अष्टौ ताम्रपणाः प्रदेयाः । अज्ञानतः ग्राम्यपशुवधे प्राजापत्यं हिरण्यं च दक्षिणा । ज्ञानतः ग्राम्यपशुवधे द्विगुणं प्रायश्चित्तम् । मृगवधे तिलद्रोणमेकं सुवर्णदक्षिणा च । अज्ञानतो मार्जार-गोधा-नकुल-मण्डूक-श्व-वधे पक्षिवधे च दुग्धपानमात्रं कृत्वा त्रिरात्रमुपवासः । ज्ञानतस्तु मार्जारादिवधे द्विगुणं प्रायश्चित्तम् । मूषिक-सर्प-डुण्डुभ-अजगरवधे उपवासः लोहदण्डमेकं च दक्षिणा । अज्ञानतः सामान्यपक्षिवधे नक्तव्रतम् । ज्ञानतः द्विगुणितं व्रतम् । कुक्कुटवधे अहोरात्रमुपवासः । अज्ञानतः मत्स्यादिजलचराणां सकृद् वधे सप्तरात्रमभोजनम्, ज्ञानतो मत्स्यादीनां वधे द्विगुणं प्रायश्चित्तम् । अभ्यासे प्रायश्चित्तावृत्तिः । अस्थिरहितानामस्थिसहितानां च जन्तूनां वधे शूद्रहत्याव्रतम् । एवं सहस्रजन्तोर्वधेऽपि च शूद्रहत्याव्रतम् । अस्थिसहितजन्तोर्वधे ब्राह्मणेभ्यः किञ्चिद्देयम् । अस्थिरहितजन्तुवधे प्राणायामो विधेयः । अन्नेन रसेन फलेन पुष्पेण चोत्पन्नानां जन्तूनां वधे घृतप्राशनम् । ज्ञानतः सामान्यतो वृथा पशुमात्रवधे प्राजापत्यम्, अज्ञानतो वधे तदर्धम् ।

७—बालादिहनने प्रायश्चित्तम्—ज्ञानतो विषं प्रदाय वैश्यबालकं हतवत्या वैश्यस्त्रिया तत्पापक्षयार्थं द्वादशवार्षिकमहाव्रतस्यार्द्धं षड्वार्षिकं व्रतं कर्तव्यम् । तत्प्रयोजिकया स्त्रिया तदेव व्रतं पादन्यूनं सार्द्धचतुर्वार्षिकं कर्तव्यम् । अत्र मनुः—(११।१२६)—"तुरीयो ब्रह्महत्यायाः क्षत्रियस्य वधे स्मृतः । वैश्येऽष्टमांशो वृत्तस्थे शूद्रे ज्ञेयस्तु षोडशः ॥" इति । "बालं वृद्धं गुरुं चैव स्त्रियं वीरां रजस्वलाम् । ब्राह्मणं यजमानं च हत्वा निष्कृतिमाचरेत् ॥ चरित्वा द्वादशाब्दानि वीरब्रह्महणं व्रतम् । गोसहस्रं ततो दद्याद् ब्राह्मणेभ्यः शताधिकम् ॥ द्रव्यहीनो यदा हन्ताबालादीनां सुराधिप ॥ चरित्वा द्वादशाब्दानि सेतुबन्धं स पश्यति ॥" (भविष्यपुराणे) एतेषां ब्रह्मवधप्रकरणोक्तत्वेऽपि "एकत्र निर्णीतः शास्त्रार्थो बाधकं विनाऽन्यत्रापि कल्पते" इति न्यायात् क्षत्रियादिवधेऽपि एतानि प्रवर्तन्ते । अज्ञानतो वैश्यवधे सार्द्धवार्षिकम्, ज्ञानतस्तु त्रैवार्षिकम् । अत्र तु बालहनने द्वैगुण्यस्याभिहितत्वात् ज्ञानकृतत्वाच्च षड्वार्षिकं व्रतं सम्पद्यत इति । षड्वार्षिकव्रतकरणाशक्तौ नवतिर्धेनवो देयाः, तत्राप्यशक्तौ तन्मूल्यं देयम् । ते च सप्तत्यधिकद्विशतकार्षापणा भवन्ति ।

८—यानगामिनः प्राणिनो मरणे सारथेर्नियोक्तुर्वा प्रायश्चित्तम्—यदि कस्यचित् यानगामिनो यानवैगुण्यात् प्राणिवधो जायते तदा तद्वधप्रायश्चित्तं यानप्रेरकेण सारथिना कर्तव्यम्। यदि सारथेर्द्रव्याभावस्तदा स्वामिना द्रव्यं दत्त्वा कारयितव्यम्। म्लेच्छः सारथिश्चेत् स्वामिनैव प्रायश्चित्तं कर्तव्यम्। 'यात्रापवर्तते युग्यं वैगुण्यात् प्राजकस्य तु। तत्र स्वामी भवेद्दण्ड्यो हिंसायां द्विशतं दमम्॥ (मनु० ८।२९३) इति वचने यत्र सारथेरकौशलात् यानमन्यथा गच्छति तत्र हिंसायामशिक्षितसारथिनियोगात् स्वामी द्विशतं दण्डं दाप्यः स्यादिति कुल्लूकभट्टव्याख्यादर्शनात् अयोग्यपालकसमर्पणे स्वामिनो दोषात् तस्यैव प्रायश्चित्तम्। यावत्सस्यं विनश्येत्तु तावत्स्यात् क्षेत्रिणः फलम्। गोपस्ताड्यश्च गोमी च पूर्वोक्तं दण्डमर्हति॥ (या० स्मृ० व्य० १६१) इति गवादिदोषेण पालकस्ताड्य इति दर्शनाच्च।

९—स्वाम्यादेशात् प्रवृत्तस्य भृत्यस्य मरणे स्वामिनः प्रायश्चित्तम्—स्वामिना आदिष्टः कश्चित् शूद्रः कूपादौ म्रियते तन्मरणे तस्य प्रयोजकत्वात्तेन शूद्रवधोक्तं नवमासिकव्रतं पादन्यूनं कार्यम्, द्वाविंशतिदिनाधिकषाण्मासिकव्रतं कार्यम्, द्वादश धेनवो देयाः। स्वामिन आदेशाभावे तस्य प्रायश्चित्तमेव नास्ति, प्रयोजकत्वाभावात्। "त्वमेव कुरु" एवमादेशे प्रयोजकत्वं प्रोत्साहनेऽपि। तयोरन्यतरस्याभावात् आदेशाभावे प्रयोजकत्वं नास्तीति।

१०—आत्मघातिनो वैश्यस्य प्रायश्चित्तम्—शस्त्रादिना आत्मघातिनो मृतस्य वैश्यस्य पुत्रादिना तत्पापक्षयार्थिना यथोक्तं प्रायश्चित्तं कृत्वा नारायणबलिं च कृत्वा सर्वमौर्ध्वदेहिकं कर्तव्यम्, एवं महिषीदानमपि कर्तव्यम्। प्रायश्चित्तं तु वैश्यप्रायश्चित्तं ब्राह्मणवधप्रायश्चित्तस्याष्टमोंऽशः। तस्य पञ्चचत्वारिंशद् धेनुदानात्मकमात्मघातप्रायश्चित्तं च। चान्द्रायणद्वयात्मकं मिलित्वा षष्टिधेनुदानात्मकं भवति। धर्मसिन्धुकृन्मते अशक्तस्य प्रायश्चित्तमकृत्वापि केवलनारायणबल्यनुष्ठानेन श्रद्धादिकं महिषीदानमन्तरापि।

११—पण्डितमदनमोहनमालवीयप्रदत्तदीक्षाविचारः—कतिपयैर्वर्षैः काशीस्थदशाश्वमेधघट्टे समुद्दिश्य शिवरात्रिपर्व अन्त्यजेभ्यः महामनःपण्डितमदनमोहनमालवीयमहोदयप्रदीयमानः सप्रणवो मन्त्रोपदेशः किं तेषां स्पृश्यतासम्पादकः सम्भवति न वा? किं वा दीक्षयाऽनया तेषां पारमार्थिकं कल्याणं भवितुमर्हति? इति प्रश्नद्वयस्य समुत्तरमिदम्—द्विधा हि दीक्षा भवति—वैदिकी तान्त्रिकी च। वैदिकी हि दीक्षा सोमयागादिष्वेव भवितुमर्हति, नान्यत्र। तान्त्रिकी दीक्षा तु तैस्तैस्तान्त्रिकैः स्व-स्वसम्प्रदायानुसारेण स्व-स्वशिष्येभ्यो दीयते, तया च गृहीतया शिष्यजनः आत्मानं संस्कृतं मन्यते। सा दीक्षा उभयथापि नात्र संवृत्ता। अतो दीक्षाशब्दवाच्यता नास्य कर्मणः। अतोऽनया अशास्त्रीयया कृत्रिमया स्वार्थसाधनमात्रमूलया न तेषु स्पृश्यतासम्पादनं पारमार्थिककल्याणसम्भावना वा। "यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः" इति न्यायानुरोधादिति।

१२—पतितोत्पन्नत्वरूपपापक्षयार्थं प्रायश्चित्तम्—सजातीयेन पुंसा वैश्यायां विधवायामुत्पन्नया कन्यकया पतितोत्पन्नत्वरूपसंसर्गजन्यपापक्षयकामनया द्वादशवार्षिकमहाव्रतस्य यस्तुरीयांशस्तत्तृतीयभागरूपं चतुर्मासाधिकवार्षिकव्रतं कर्तव्यम्। तत्राशक्तौ चत्वारिंशद्धेनवो देयास्तन्मूल्यं वा। तस्याः परिणेतुरपि प्रायश्चित्तमेतदेव। संसर्गिषु परिणयरूपयौनसंसर्गस्य गुरुतमत्वाभिधानात्। गुरुतमसंसर्गे च सकृत्कृते तत्तुल्यत्वाभिधानात्। एवं कृतप्रायश्चित्तायास्तस्यास्तत्पतेरपि कृतप्रायश्चित्तस्य व्यवहारो भवितुमर्हति। अत्र प्रमाणं प्रायश्चित्तविवेके—'पतितोत्पन्नत्वमपि संसर्गविशेषः।' तत्र प्रायश्चित्तमाह बौधायनः—"अशुचिशुक्रोत्पन्नानां तेषां शुद्धिमिच्छतां प्रायश्चित्तं पतनीयानां तृतीयेंऽशः स्त्रीणामंशात्तृतीयः" इति। विवेककृता व्याख्यातं च "पतितोत्पन्ना स्त्री पतितप्रायश्चित्तस्य तृतीयभागस्य तृतीयभागं कुर्यात्" इति। अतः प्रायश्चित्तविवेकधृतबौधायनवचनमेवात्र प्रमाणम्। कृतप्रायश्चित्तायास्तस्या विवाहे तु न वरस्य दोषः। तथा च तत्रैव हारीतः—"पतितस्य कुमारीं विवस्त्रामाप्लाव्यामहोरात्रोपोषितां प्रातः शुक्लेन वाससाऽऽच्छाद्य 'नाहमेतेषां न ममैवैते' इति त्रिरुच्चैरभिदधानां तीर्थेषु गृहेषु वा उद्वहेरन्" इति। "कन्यां समुद्वहेदेषां सोपवासामकिञ्चनाम्।" इति याज्ञवल्क्यः (प्राय० २६१)। एषां पतितानामित्यर्थः।

श्री विश्वनाथशर्मा गौड़

अथ निर्णयसिन्धुः

(भाषा-टीका-सहित)

श्लोकसूची

दौलतराम गौड

अथ निर्णयसिन्धुः

(भाषा-टीका-सहित)

आशौचप्रकरण

(जननाशौच, मरणाशौच आदि पर महत्वपूर्ण विचार)

दौलतराम गौड़

(प्राचीन व्यवस्थाओं का संग्रह)

(स्वर्गीय-महामहोपाध्याय श्री पं० विद्याधर जी गौड़ द्वारा लिखित)

१—वैश्यस्य आशौचनिर्णयः—कश्चित् वैश्यजातीयः शास्त्रानुसारेण स्वकीयपूर्वपुरुषपरम्परया च सपिण्डजनन-मरणयोः पञ्चदशाहाऽऽशौचमाचरन्नवर्त्तत। अधुना केचन तदीयसपिण्डाः पूर्वपुरुषपरम्पराचारं परित्यज्य लोके केषाञ्चिद् ब्राह्मणजात्यतिरिक्तानामपि दशाहाऽऽशौचाचरणमनुलक्ष्य तद्रीतिमनुसरन्तो दशाहाशौचमाचरन्ति। एतस्यामवस्थायामत्र कलियुगे पूर्वोक्तस्य पञ्चदशाहाऽऽशौचमाचरतो वैश्यस्य स्वीयपूर्वपुरुषपरम्परापरित्यागेन दशाहाऽऽशौचाचरणं युक्तम्, अथवा तेन पञ्चदशाहाऽऽशौचमाचरणीयमिति प्रश्नस्योत्तरम्—शुद्ध्येद्विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः। वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति॥ (मनु० ५।८३) इति मनुनोक्तम्। धर्मशास्त्रप्रणेतृषु मनोः प्राधान्यान्मिताक्षरा-निर्णय-सिन्धुशुद्धितत्त्व-शुद्धिविवेकादि-प्रामाणिकस्मृतिनिबन्धेष्विदमेव जात्याशौचं मुख्यकल्पत्वेन व्यवस्थाप्य—सर्वेषामेव वर्णानां सूतके मृतके तथा। दशाहाच्छुद्धिरेतेषामिति शातातपोऽब्रवीत्॥ इत्यादयो न्यूनाऽऽशौचपक्षा मनुस्मृतिविरोधपरिहाराय आपदनापद्गुणवन्निर्गुणदेशभेदादिकमाश्रित्य यथाकथञ्चिद् व्यवस्थापिताः। एवं च यत्र कुले पूर्वपुरुषपरम्परया मनूक्तो मुख्याऽऽशौचपक्षोऽनुष्ठीयते, तत्र मनुस्मृतिसम्मतं पूर्वपुरुषपरम्पराचरितं तादृशं मुख्यपक्षं मनुस्मृतिविरुद्धं कल्पान्तरं कथमपि नाऽनुष्ठेयम्। स्मृतिप्रणेतृषु मनोः प्राधान्यञ्च। "वेदार्थोपनिबन्धृत्वात्प्राधान्यं हि मनोः स्मृतम्। मन्वर्थविपरीता या सा स्मृतिर्नैव शस्यते॥" इति बृहस्पतिना। "पुराणं मानवो धर्मः साङ्गवेदश्चिकित्सितम्। आज्ञासिद्धानि चत्वारि न हन्तव्यानि हेतुभिः॥" इति महाभारते भगवता व्यासेन चोक्तमिति।

२—दत्तकप्रतिग्रहीतृजनकयोः कुले मिथो जननाद्यशौचाभावः दत्तकप्रतिग्रहीतृजनकयोः कुले परस्परं जनन-मरणनिमित्तमाशौचं घटते नवेति सन्देहे—"बैजिकादभिसम्बन्धादनुरुध्यादघं त्र्यहम्।" इति वचनात् घटत इति पूर्वपक्षः, नैवेति सिद्धान्तः। तथाहि—गोत्ररिक्थे जनयितुर्न भजेद्दत्रिमः सुतः। गोत्ररिक्थानुगः पिण्डो व्यपैति ददतः स्वधा॥ इति मनुवचनात् गोत्ररिक्थापगमेन पिण्डापगमो बोध्यते। अत्र स्वधापिण्डशब्दौ आशौचादिसकलपितृकर्मोपलक्षणम्, पिण्डदानादिनिमित्तभूतयोर्गोत्ररिक्थयोर्निमित्तश्रवणात्। प्रेतपिण्डदानादिश्चापूर्वाशौचपूर्वकत्वनियमेन नियन्त्रितः। ततश्च पिण्डनिवृत्त्या चाशौचनिवृत्तिरर्थसिद्धैव। असगोत्रः सगोत्रो वा यदि स्त्री यदि वा पुमान्। प्रथमेऽहनि यो दद्यात् स दशाहं समापयेत्॥ यावदाशौचमुदकं पिण्डमेकं च दद्युरित्यादिवाक्यपर्यालोचनया पिण्डाशौचयोः समव्याप्तिसिद्धिः। यत्तु "बैजिकादभिसम्बन्धात्" इति वचनं त्र्यहाशौचपरं तदपि "व्यपैति ददतः स्वधा" इत्यनेन व्यपोदितम्। वचनन्तु दत्तकातिरिक्तक्षेत्रजादिस्थले सावकाशम्, आशौचोदकदानादौ गोत्रसापिण्ड्ययोर्मिलितयोर्निमित्तत्वावगमेनान्यतरापाये तन्निमित्तं नाशौचादि। एष च सिद्धान्तः शंख-लिखिताभ्यामप्यनुमतः। सपिण्डता तु विज्ञेया गोत्रतः साप्तपौरुषे। पिण्डश्चोदकदानं च शौचाशौचं तदानुगम्॥ इति प्रतिग्रहीतृपित्रादीनान्तु दत्तकादिमरणे त्रिरात्रमाशौचम्। तदाह बृहस्पतिः—अन्याश्रितेषु दारेषु परपत्नीसुतेषु च। एतेष्वाप्लुत्य शुद्ध्यन्ति त्रिरात्रेण द्विजोत्तमाः॥ इदं च त्रिरात्राशौच-विधानं यन्निरूपितं भार्यात्वं पुत्रत्वञ्च तस्यैव त्रिपुरुषान्तर्वर्तिनां प्रतिग्रहीतृसपिण्डानां पृथगाह मरीचिः—सूतके मृतके चैव त्रिरात्रं परपूर्वयोः। एकतस्तु सपिण्डानां त्रिरात्रं यत्र वै पितुः॥ इति। पितुः प्रतिग्रहीतुरित्यर्थः। सपिण्डानां प्रदेयपिण्ड-सामान्यवताम्। यद्यपि दत्तकस्योत्पन्नस्यैव स्वीकारात्प्रतिग्रहीतुस्तदुत्पत्त्याशौचं तु न घटत्येवेत्थं प्रतिग्रहीतृजनककुले दत्तका-शौचनिर्णयः। तयोः कुले बहुपुरुषभेदे तु आशौचाशङ्कालेशोऽपि न विद्यत एव।

३—दशवारं कारागृहनिवासिवेश्यागाम्यन्नभोजिनः मृतावाशौचविचारः—दशवारं कारागृहे अनुरूपापराधेन निवसतो वाराङ्गनागामिनस्तदन्नं तद्धस्ताद् भुञ्जानस्य मृतस्याशौचादिकं तत्सपिण्डैर्न करणीयम्, न वा दाहः कर्तव्यः, न वा श्राद्धं च कर्तव्यम्, पतितत्वात्। यदि ते सपिण्डा दयया श्राद्धं कर्तुमिच्छन्ति तदा पतितप्रायश्चित्तं द्वादशवार्षिकव्रतं तदनुकल्प-मशीत्युत्तरशतधेनुदानरूपं प्रायश्चित्तमनुष्ठाय श्राद्धादिकं सर्वं कर्तुमर्हन्ति नान्यथेति।

श्री विद्याधरशर्मा गौड़

अथाशौचप्रकरणम्

नारायणात्मजश्रीमद्रामकृष्णस्य सूनुना। कमलाकरसंज्ञेनाशौचं निर्णीयतेऽधुना॥

नारायणभट्ट के आत्मज (पुत्र) श्रीरामकृष्णभट्ट के पुत्र कमलाकरभट्ट ने अब आशौच का निर्णय करते हैं।

(स्रावादि-आशौचे विचारः)

मरीचिः—आचतुर्थाद्भवेत् स्रावः पातः पञ्चमषष्ठयोः।

मरीचि ने कहा है कि—चार मास तक गर्भ के नाश को 'स्राव' कहते हैं। पाँचवें और छठें मास तक पात (गर्भ का गिरना) कहते हैं।

(सप्तममासादिजनने विचारः)

अत ऊर्ध्वं प्रसूतिः स्याद्दशाहं सूतकं भवेत्॥

इसके बाद तो 'प्रसूति' संज्ञा होती है। उसमें दसदिन का सूतक होता है।

(बृहत्पराशरः—गर्भस्रावे तु नैरुक्ता रात्रयो माससंमिताः। स्रावं गर्भस्य विद्वांसो मासादर्वाक्चतुर्थकात्॥ पातमूर्ध्वं वदन्त्येके तत्राधिकं तु सूतकम्।)

(बृहत्पराशर में कहा है—गर्भस्राव में तो निरुक्त को मानने वालों ने बारह रात तक आशौच कहा है। गर्भ के स्राव में विद्वानों ने चारमास के पहले कहा है। कोई तो पात में वहाँ पर अधिक सूतक कहते हैं।)

(स्राव-पातादौ सूतकविचारः)

स्रावे मातुस्त्रिरात्रं स्यात्सपिण्डाशौचवर्जनम्। पाते मातुर्यथामासं सपिण्डानां दिनत्रयम्॥ अत्र सर्वत्र मूलं मिताक्षरायां ज्ञेयम्।

स्राव में माता को तीनदिन का आशौच होता है और [१]सपिण्डों को आशौच नहीं होता है। पातमें माता को उतने महिने का आशौच होता है जितने महिना पास हुआ हो। सपिण्डों को तीन दिन का आशौच होता है। यहाँ पर मूल मिताक्षरा में जानना चाहिये।

अत्र मासत्रये त्रिरात्रं स्यादित्यनुवादः, रजस्वलात्वेनैव तत् सिद्धेः। यद्यप्यनेन चतुर्थमासेऽपि त्रिरात्रं प्राप्नोति तथापि—षण्मासाभ्यन्तरं यावद् गर्भस्रावो भवेद्यदि। तदा माससमैस्तासां दिवसैः शुद्धिरिष्यते॥ इत्यादिपुराणात्।

यहाँ पर (सर्वत्र) तीन महिने में त्रिरात्र हो यह [२]अनुवाद है। रजस्वला का तो इसीसे (तीनदिन) ही सिद्धि है यद्यपि इसी से चार महिने में भी त्रिरात्र की प्राप्ति है। फिर भी छः महिने के भीतर ही गर्भस्राव यदि हो जाय तो महिनों के सदृश दिनों में स्त्रियों की शुद्धि कही है—यह आदित्यपुराण में कहा है।

रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्रावे विशुद्ध्यति। इति मनूक्तेः (अ० ५ श्लो० ६६)। गर्भस्रावे यथामासमचिरे तूत्तमे त्रयः। इति मरीच्युक्तेश्च चतूरात्रं ज्ञेयम्। अचिरे—त्रिमासमध्ये। उत्तमे-ब्राह्मणे। अत्र सपिण्डानां स्नानम्, सद्यःशौचं सपिण्डानां गर्भस्य पतने सति इति तत्रैवोक्तेः। एतदाचतुर्थमासात्, पाते त्रिदिनस्योक्तेः। अकारणायाः शुद्धेरसंभवात्सद्यःपदं स्नानपरम्। एवमग्रेऽपि। 'गर्भस्रावे स्नानमात्रं पुरुषस्य' इति वृद्धवसिष्ठोक्तेः। पुरुषस्येति सपिण्डोपलक्षणं पूर्वोक्तवचनात्। आचतुर्थमासं सपिण्डानां न स्नानं किन्तु पुंस एव। पाते त्रिदिनं निर्गुणपरम्।

१—कूटस्थपुरुष से आरंभ कर सात पीढ़ी तक सपिण्ड होते हैं। उसके बाद सात (८ से १४ पीढ़ी तक) समानोदक होते हैं। तदनन्तर सात से (अर्थात् १५ से २१ पीढ़ी तक) सगोत्र होते हैं। २—प्रमाणान्तरेण प्राप्तस्यार्थस्य पुनः कथनमनुवादः। अनुपश्चात् वादः अनुवादः, इति तत् व्युत्पत्तेः। ज्ञातार्थस्य ज्ञापकमित्यर्थः।

मनु ने कहा है—गर्भस्राव हो जाने पर जितने महिने का गर्भ हो उतनी रात्रि में शुद्धि होती है। यह छ मास पर्यन्त ही है। विशेष मनुस्मृति की टीका देखिये।

गर्भस्राव में मास के अनुसार तीन महिने के मध्य में उत्तम (ब्राह्मण जाति) में तीनदिन का अशौच होता है। इस मरीचि के कथनानुसार चार रात्रि का अशौच होता है। अचिरे का अर्थ—तीन मास के मध्य में यह अर्थ है। [1]उत्तम का अर्थ है—ब्राह्मण जाति में। यहाँ पर सपिण्डों को स्नानमात्र है। वहीं पर कहा है—गर्भ के पात होने पर सपिण्डों को 'सद्यःशौच' होता है। [2]यह चतुर्थ महिने तक ग्रहण करे।

पातमें तीनदिन का आशौच कहा है। अकारण शुद्धि का असंभव होने से 'सद्यःपद' स्नानपरक है। इसीप्रकार आगे भी जानना चाहिये। वृद्धवसिष्ठ ने कहा है—गर्भस्राव में पुरुष (सपिण्ड) को स्नानमात्र कहा है। 'पुरुषस्य' यह पद सपिण्ड का उपलक्षण है पूर्वोक्त वचन से। चार महिने तक सपिण्डों को स्नान नहीं है किन्तु पुरुष (पति) को ही है। पात में तीन दिन का आशौच निर्गुणपरक है।

(गुणवतस्तु)

गुणवतस्तु—अजातदन्ते तनये शिशौ गर्भच्युते तथा। सपिण्डानां तु सर्वेषामेकरात्रमशौचकम्॥ इति यमोक्तेरेकाहमिति मदनपारिजातः। सप्तममासादि दशाहम्। एतत्सर्ववर्णविषयम्। तुल्यं वयसि सर्वेषामतिक्रान्ते तथैव च। इति व्याघ्रोक्तेः।

गुणवालों को तो—जिसके दाँत न निकले हों ऐसे पुत्र के मरने पर और गर्भ से बालक के च्युत (पात) हो जाने पर तो सब सपिण्डों को एकरात का आशौच होता है—यह यम ने एकदिन का आशौच कहा है—यह मदनपारिजात में कहा है। सातवें महिने आदि तो दशाह परक हैं। अर्थात्—दशदिन का आशौच होता है। (यहाँ 'दशाह' पद विप्रपरक है)। यह सब वर्णों के विषय में है।

व्याघ्र ने कहा है—गर्भस्राव तथा गर्भपात का काल व्यतीत होने पर आशौच सबको तुल्य होता है।

(जाताशौचे विप्रादीनां शुद्धिविषये दिनसंख्याकथनम्)

पराशरः—जाते विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः।
वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्धयति॥

पराशर ने कहा है—प्रसव होने पर ब्राह्मण को दशदिन, राजा को बारहदिन, वैश्य को पन्द्रह दिन और शूद्र को एकमहिने में शुद्धि होती है।

(पुत्रोत्पन्ने मातापित्रोः स्नानविचारः)

संवर्तः—जाते पुत्रे पितुः स्नानं सचैलं तु विधीयते।
माता शुद्धयेद्दशाहेन स्नानात्तु स्पर्शनं पितुः॥

संवर्त ने कहा है—पुत्र के उत्पन्न होने पर पिता को सचैल (पूरे पहने हुए वस्त्रों सहित) स्नान का विधान किया है। माता दशदिन में शुद्ध होती है। पिता को स्पर्शजन्यदोष स्नान से दूर हो जाता है।

(कन्योत्पत्तौ पितुः स्नानविचारः)

पुत्रपदात्कन्योत्पत्तौ न पितुः स्नानमिति हारलतायाम्। तन्न, पुत्रपदस्य 'पौत्री मातामहस्तेन' इति कन्यायामपि प्रयोगात्।

यहाँ 'पुत्र' पद से कन्या की उत्पत्तिमें पिताको स्नान नहीं है—यह हारलता में कहा है। यह उचित नहीं है। पुत्रपद का 'पौत्री मातामहस्तेन' इस वाक्य में कन्या अर्थ में भी प्रयोग किया गया है। पौत्रीशब्द से लड़की की जो लड़की या लड़का है उसका भी धर्मशास्त्र में या अन्यत्र प्रयोग मिलता है। इसलिए पुत्रशब्द पुत्रीका भी उपलक्षण है।

१—राजन्ये तु चतूरात्रं वैश्ये पञ्चाहमेव तु। अष्टाहेन तु शूद्रस्य शुद्धिरेषा प्रकीर्तिता॥ इति शेषमारीचात्। वस्तुतस्तु—गर्भनाशप्रयुक्तमाशौचं सर्ववर्णेषु समं मरीचं तु विगीतत्वान्नादरणीयम्। अन्यथा त्रिषु मासेषु क्रमेण चतुः पञ्चाष्टदिनानि चतुर्थमासे ? माससंख्यानि चत्वारि दिनानि इत्यनौचित्यापत्तेः।

२—आचतुर्थेति मर्यादायामाङ् 'पाते मातुर्यथामासं सपिण्डानां दिनत्रयम्' इति पातशब्दस्य चतुर्थमास प्रभृति गर्भस्रावपरत्वात्।

(सूतके पुत्रस्य मुखं दृष्ट्वा स्नानविचारः)

यच्च तत्रैवोक्तम्—सूतके तु मुखं दृष्ट्वा जातस्य जनकस्ततः। कृत्वा सचैलं स्नानं तु शुद्धो भवति तत्क्षणात्॥ इत्यादित्यपुराणान्मुखदर्शनोत्तरमेव पितुः स्नानमिति। तन्न, विदेशे मुखदर्शनावध्यस्पृश्यतापत्तेः मुखदर्शनोत्तरं पुनः स्नानार्थमिदमिति स्मार्तगौडाः। तन्न, मूलैक्येन ज्ञानमात्रपरत्वात्। इदं सर्ववर्णसमम्।

और जो वहीं पर ही कहा है—सूतक में उत्पन्न पुत्र का पिता मुख को देखकर फिर सचैल स्नान करने से उसी क्षण शुद्ध होता है। यह आदित्यपुराण के कथनसे मुखदर्शनोत्तर ही पिताको स्नान करना चाहिये। यह उचित नहीं है। क्योंकि—विदेशमें मुखदर्शन न होनेसे अस्पृश्यता की आपत्ति हो जायगी। मुखदर्शनोत्तर फिर से स्नानार्थ यह है यह स्मार्तगौड कहते हैं। यह उचित नहीं है। क्योंकि मूल की एकता से ज्ञानमात्र परक है। यह सब वर्ण के लिए समान है।

(सर्ववर्णानां सूतकाशुद्धिविचारः)

सूतिका सर्ववर्णेषु दशरात्रेण शुद्धयति। ऋतौ च न पृथक् शौचं सर्ववर्णेष्वयं विधिः॥ इति हारलतायां प्रचेतसोक्तेः।

सब वर्णों में सूतिका दशरात में शुद्ध होती है। ऋतु (चौथेदिन में तत्प्रयुक्तस्नानादिवारणार्थ है।) में अलग-अलग आशौच नहीं होता है। यह विधि सब वर्णों में है—यह हारलतामें प्रचेता ने कहा है।

यत्तु ब्राह्मे—ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या प्रसूता दशभिर्दिनैः।
गतैः शूद्रा च संस्पृश्या त्रयोदशभिरेव च॥ इति।

जो ब्रह्मपुराण में कहा है—प्रसूता ब्राह्मणी, क्षत्रिया और वैश्या ये दशदिन के जाने पर तथा शूद्रा तेरह दिन के बाद ही स्पर्श करने योग्य होती है।

प्रयोगपारिजाते पारस्करः—द्विजातेः सूतिका या स्यात् सा दशाहेन शुद्धयति।
त्रयोदशेऽह्नि संप्राप्ते शूद्रा शुद्धयत्यसंशयम्॥ इति, तदसच्छूद्रापरम्।

प्रयोगपारिजात में पारस्कर का वचन है—जो द्विजातियों की सूतिका स्त्री है वह दशदिन में शुद्ध होती हैं और तेरहवें दिन के प्राप्त होने पर शूद्रा शुद्ध होती है। इसमें संशय नहीं है यह असत् शूद्रपरक है। कहीं पर यह भी पाठ है—'तदस्पृश्यत्वपरम्'—वह अस्पृश्यत्वपरक है।

(सूतके संसर्गविचारः)

अङ्गिराः—सूतके सूतिकावर्जं संस्पर्शो न निषिध्यते। संस्पर्शे सूतिकायास्तु स्नानमेव विधीयते॥ नाशौचं सूतके पुंसः संसर्गं चेन्न गच्छति। रजस्तत्राशुचि ज्ञेयं तच्च पुंसि न विद्यते॥ संसर्गो मैथुनम्। स्पर्श इत्यन्ये। मातुरेव सूतकम्, तां स्पृशतश्च, इति हारलतायां सुमन्तूक्तेरिति। तन्न, संस्पर्शे सूतिकायास्तु स्नानमेव विधीयते। इति स्नानमात्रोक्तेः सौमन्तवचनस्य स्नानपर्यन्तमस्पृश्यत्वमात्रबोधकत्वात्। एवकारो बालस्पृश्यतार्थः।

अङ्गिरा ने कहा है—सूतक में सूतिका से भिन्न का स्पर्श निषेध नहीं है। सूतिका के स्पर्श में तो स्नानमात्र का ही विधान है। सूतक में संसर्ग (मैथुन) न किया होते पुरुष को आशौच नहीं होता है। वहाँ पर रज को अशुचित्व जानना चाहिये वह पुरुष में नहीं होता है। संसर्गमाने—मैथुन। दूसरे लोग स्पर्श को कहते हैं। माता को ही सूतक है और उसके स्पर्श करनेवाले को सूतक है ऐसा हारलता में सुमन्तु ने कहा है। यह उचित नहीं है। क्योंकि—सूतिका के स्पर्श में स्नानमात्र का ही विधान है। इससे स्नानमात्र कहा है। सुमन्तु के वचन का स्नानपर्यन्त अस्पृश्यतामात्र का बोधक है। 'एव' पद बालक के स्पर्श के अर्थ के लिए है।

माधवस्तु—यस्तैः सह सपिण्डोऽपि प्रकुर्याच्छयनासनम् । बान्धवो वा परो वापि स दशाहेन शुद्ध्यति ॥ इति बृहस्पतिस्मृतेः ।

माधव ने कहा है—जो असपिण्ड भी उनके साथ शयन और भोजन करता है वह बान्धव हो या दूसरा हो दशदिन में शुद्ध होता है । यह बृहस्पतिस्मृति में कहा ।

(शयनासनाद्युपसंसर्गमाह)

शयनासनादिरूपं संसर्गमाह पराशरः—यदि पत्न्यां प्रसूतायां द्विजः संपर्कमिच्छति । सूतकं तु भवेत्तस्य यदि विप्रः षडङ्गवित् ॥ पितृवत्सापत्नमातुः प्राक्स्नानादस्पृश्यत्वम् ।

शयन, आसनादिरूप संसर्ग को पराशरने कहा है—यदि पत्नीके प्रसूतावस्था में द्विज संपर्क (संभोग) को करता है यदि विप्र छः अंगों का जानकार भी हो तो उसको सूतक होता है । पिता के सदृश सापत्न माता का स्नान के पहले तक अस्पृश्यत्व है ।

(सूतिकास्पर्शे तु)

सूतिकास्पर्शे तु यावदाशौचम्, अन्यास्तु मातरस्तद्वत्तद् गृहं न व्रजन्ति च । इति ब्राह्मोक्तेरिति शुद्धितत्त्वादयः । तन्न, तद्गेहं गत्वा सूतिकां यदि न स्पृशन्ति तदा स्पृश्याः, अन्यथा न इति तस्यार्थः ।

सूतिका के स्पर्श में तो जबतक स्नान नहीं किया है तबतक आशौच होता है ब्रह्मपुराण में कहा है—तद्वत् (उसीतरह) उस घर में अन्य माता न जांय यह शुद्धितत्त्वादि में कहा है । यह उचित नहीं है । उस घर में जाकर सूतिका को यदि स्पर्श नहीं करती हैं तब तो वे स्पृश्य हैं, अन्यथा नहीं हैं । यह उसका अर्थ है ।

(सूतिकायाः कर्माधिकारकथनम्)

कर्मानधिकारमाह पैठीनसिः—सूतिकां पुत्रवतीं विंशतिरात्रेण कर्माणि कारयेन्मासेन स्त्रीजननीम् । इदमाशौचोत्तरम् । अन्यथा शूद्रयाः सपिण्डानामाशौचे तदभावः स्याद्विध्यनुवादविरोधश्च । एतच्च सोमयागादिश्रौतभिन्नपरम् । 'प्रजातायाश्च दशरात्रादूर्ध्वं स्नानादि' इति कात्यायनोक्तेः ।

कर्म में अनधिकार को पैठीनसि में कहा है—पुत्रवाली सूतिका को बीस रात्रि के बाद कर्मों को और एक महिने बाद कन्याको पैदा करनेवाली प्रसूता स्त्री से घरका कार्य करावे—यह आशौचोत्तरपरक है । अन्यथा शूद्राके सपिण्डनों के आशौचमें उसका अभाव हो जायगा और विधि (अपूर्वबोधन) तथा अनुवाद (उक्तार्थका कथनरूप अनुवाद) का विरोध भी होगा यह सोमयाग आदि श्रौतकर्म से भिन्नपरक (अर्धाधानियों के लिए नहीं है) है । और सूतिका स्त्री का दशरात के बाद स्नान आदि करावे—ऐसा कात्यायन ने कहा है ।

(प्रथम-षष्ठ-दशमदिनेषु जातकर्माद्यधिकारकथनम्)

व्यासः—प्रथमे दिवसे षष्ठे दशमे चैव सर्वदा । त्रिष्वेतेषु न कुर्वीत सूतकं पुत्रजन्मनि ॥ पुत्रशब्दोऽपत्यमात्रपरः ।

व्यास ने कहा है—प्रथमदिन (दान, पूजा आदि में, स्मृति, पुराण, सदाचार प्राप्तों में और वृद्धिश्राद्ध आदि में योग्यता के लिए), छठें दिन और दशवें दिन इन तीन दिनों में पुत्रजन्म में सूतक न करे । यहाँ पर 'पुत्र' शब्द अपत्यमात्र परक है ।

ब्राह्मे—देवाश्च पितरश्चैव पुत्रे जाते द्विजन्मनाम् । आयान्ति तस्मात्तदहः पुण्यं षष्ठं च सर्वदा ॥ जनने विशेषः प्रागुक्तः ।

ब्रह्मपुराण में कहा है—द्विजातियों के पुत्रोत्पत्ति में देवता और पितर आते हैं । इसलिये वह दिन तथा छठा दिन सदा पुण्यवान् है । जनन में विशेष (षष्ठीपूजनादि) पहले कह चुके हैं ।

(सपिण्डादीनां मृतके विचारः)

अत्र प्रयोगपारिजातः—पुंप्रसवे दशाहः, स्त्र्यपत्ये तु त्र्यहः, पुंजन्मनि सपिण्डानां दशाहाच्छुद्धिरिष्यते। त्र्यहादेकोदकानां च एकाहं सूतकं क्वचित्॥ स्त्रीजन्मनि सपिण्डानां सोदकानां त्र्यहाच्छुचिः। स्त्रीषु त्रिपुरुषं ज्ञेयं सपिण्डत्वं द्विजोत्तमाः॥ इत्यग्निस्मृतेरित्याह।

यहाँ पर प्रयोगपारिजात ने कहा है—पुरुष के प्रसव (जन्म) में दशदिन तथा कन्या के जन्म में तीनदिन का आशौच होता है। क्योंकि—अग्निस्मृति में कहा है—पुत्र के जन्म में सपिण्डों को दशदिन में शुद्धि कही है और एकोदकों को तीनदिन में, और कहीं (आपत्ति में) एकदिन में शुद्धि कही है। कन्या के जन्म में सपिण्ड तथा सोदकों को तीनदिन में शुद्धि कहा है। हे द्विजोत्तमाः, कन्याओं में तीन पीढी तक सापिण्ड्य जानना चाहिये।

मेधातिथिरपि—'अप्रत्तानां तु स्त्रीणां त्रिपुरुषी विज्ञायते' इति वसिष्ठमुक्त्वा आशौचे एवैतत्, विवाहे तु अवधिर्दर्शित एव, इत्याह। अन्ये तु त्रिपुरुषसापिण्डस्य कानीनकन्यापरत्वमाहुः। अप्रत्तानां तथा स्त्रीणां सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम्। प्रत्तानां भर्तृसापिण्ड्यं प्राह देवः प्रजापतिः॥ इति कौर्मविरोधाच्च।

मेधातिथि ने भी कहा है—अविवाहित कन्याओं की तो सापिण्ड्यता तीन पीढ़ी तक होती है। यह वसिष्ठ का वचन कहकर आशौच में ही यह है। विवाह में तो अवधि (सीमा) को दिखाया ही है—एसा कहा है। अन्य तो तीन पीढ़ी सापिण्ड्यका [1]कानीन (कुवारी कन्या से उत्पन्न) कन्यापरत्व कहते हैं। कहीं 'कन्या' पद नहीं है। और कूर्मपुराण का विरोध भी है—अप्रत्त-(बिना विवाहिता) कन्याओं का सापिण्ड्य सात पीढ़ी तक होता है तथा प्रमत्त (विवाहित) कन्याओं का सापिण्ड्य पति से होता है—एसा प्रजापतिदेव ने कहा है।

(मृताशौचनिर्णयः)

अत्रेदं तत्त्वम्—पञ्चमात्सप्तमाद्धीमान् यः कन्यामुद्वहेद् द्विजः। गुरुतल्पी स विज्ञेयः, इत्यादिविरोधात्त्रिपुरुषं प्रकरणान्मरणाशौचपरम्, वसिष्ठे तदग्रे उदकदानोक्तेः। तेन कन्याप्रसवेऽपि साप्तपुरुषं दशरात्रमेव। न च कन्यापुत्रकृतं प्रसवे बलाबलं क्वाप्युक्तम्। अग्निस्मृतिस्त्वनुकल्पो विगीता चेति सर्वसिद्धान्तः। अन्यथा त्रिपुरुषं सपिण्डानामष्टमादिसोदकानां च त्र्यहसाम्यायोगात्। चतुर्थादिसप्तमान्तानां च किमपि न स्यात्। (तेन कन्याप्रसवे दशाह एव।)

यहाँ पर यह तत्त्व है—जो बुद्धिमान् द्विज पाँचवीं या सातवीं पीढ़ी की कन्या से विवाह करता है। उसको [2]'गुरुतल्पी' जानना चाहिये। इत्यादि (वचनों के) विरोध से तीनपीढी तक प्रकरण से मरणाशौचपरक है। वसिष्ठ ने उसके आगे जलदान कहा है। इससे कन्या के प्रसव में भी सात पीढी तक दशरात का ही आशौच होता है। कन्या तथा (पुत्र) के प्रसव में बलाबल (पूर्वापर का विचार) कहीं भी नहीं कहा है। अग्निस्मृति तो अनुकल्प (बाद में निर्मित) और विगीता (निन्दित) है यह सब का सिद्धान्त है। अन्यथा तीन पीढी तक सपिण्डों का और अष्टमादिसोदकों का तीनदिन के सूतक की साम्यता (समानता) का अयोग (अलगाव) है। चतुर्थ से लेकर सात पीढी तक का कुछ भी नहीं होगा। (इससे कन्योत्पत्ति में दशदिन ही आशौच होता है।)

१—गृहे प्रच्छन्न उत्पन्नो गूढजस्तु सुतः स्मृतः। कानीनः कन्यकाजातो मातामहसुतो मतः। (या० स्मृ० व्यव० श्लो० १२९) मनुः—(अ० ९।१७२) पितृवेश्मनि कन्या तु यं पुत्रं जनयेद्रहः। तं कानीनं वदेन्नाम्ना वोढुः कन्यासमुद्भवम्॥

२—या० स्मृ० (प्रा० श्लो० २५९) तप्तेऽयः शयने सार्धमायसा योषिता स्वपेत्। गृहीत्वोत्कृत्य वृषणौ नैर्ऋत्यां चोत्सृजेत्तनुम्॥ याज्ञवल्क्यस्मृतौ—सहस्रशीर्षाजापी तु मुच्यते गुरुतल्पगः। गौर्देया कर्मणोऽस्यान्ते पृथगेभिः पयस्विनी॥ यमः—पौरुषं सूक्तमावर्त्य मुच्यते सर्वकिल्बिषात्। बृहद्विष्णु—त्रिरात्रोपोषितः पुरुषसूक्तजपहोमाभ्यां गुरुतल्पगः शुध्येत्।

किं च स्त्रीजन्मोद्देशेन त्रिपुरुषं सापिण्ड्यं तेषां च त्रिरात्रमित्यनेकार्थविधिः कथं स्यात् वाक्यभेदापत्तेः। न च चतुर्थादीनां सोदकत्वं क्वापि सिद्धम्। तेन त्रिपुरुषं चतुर्थादीनां च स्त्रीजन्मनि सोदकत्वं विधाय पुनस्तेषां त्रिरात्राशौचविधौ विध्यनुवादविरोधो वाक्यभेदद्वयं चेत्यसंबद्धार्थाग्निस्मृतिर्हेया।

और स्त्रीजन्म के उद्देश्य (लक्ष्य) से तीनपीढी तक उनकी सापिण्ड्यता तथा उनको तीन रात का आशौच होता है--यह 'अनेकार्थविधि' कैसे होगी। क्योंकि वाक्यभेद की आपत्ति हो जायगी। और चतुर्थ आदि का सोदकत्व कहीं भी सिद्ध नहीं है। इससे तीनपीढी तक चतुर्थादियों को स्त्रीजन्म में सोदकत्व का विधान कर फिर से उनको तीन रात के आशौच की विधि में विधि और अनुवाद के विरोध में वाक्यभेदद्वय हो जायगा। इससे असंबद्ध अर्थ को कहनेवाली अग्निस्मृति को त्याग देना चाहिये।

(जातेमृते मृतेजाते वा आशौचविचारः)

अथ मृताशौचम्। हारीतः—जातमृते मृतजाते वा सपिण्डानां दशाहम्। इति स्वाशौचपरम्। जातमृते नालच्छेदोर्ध्वम्,

यावन्न छिद्यते नालं तावन्नाप्नोति सूतकम्। छिन्ने नाले ततः पश्चात्सूतकं तु विधीयते॥ इति जैमिन्युक्तेः 'नाड्यां छिन्नायामाशौचम्' इति हारीतोक्तेश्च। एतन्मृताशौचपरमेव। जननाशौचं तु नालच्छेदोत्कर्षेऽपि जननाद्येव। मृतजाते नालच्छेदाभावात् षष्ठीपूजाद्युत्कर्षापत्तेश्च। तेन नाडीछेदात्प्राङ्मातुः स्पर्शे न दोष इति शुद्धितत्त्वोक्तिः परास्ता।

अब मरणानन्तर आशौच कहते हैं। हारीत ने कहा है--उत्पन्न होकर मरने पर मरा हुआ उत्पन्न होने पर सपिण्डों को दशदिन का आशौच होता है। यह दशदिन का आशौच अपने आशौच का बोधक है। उत्पन्न होनेपर मरनेपर या नालच्छेद के बाद मरने पर।

जैमिनि ने कहा है--जबतक नाल का छेदन नहीं होता है तबतक सूतक प्राप्त नहीं होता है। नाल के छेदन के बाद सूतक का विधान होता है। और हारीत ने कहा है--नाडी के छेदनोत्तर आशौच होता है। यह मरणाशौचपरक ही है। जननाशौच में तो नालच्छेद के उत्कर्ष (अभाव) में भी जननादि ही आशौच होता है। मृतावस्था में उत्पन्न होने पर नालच्छेदन का अभाव है और षष्ठीपूजा के उत्कर्ष (अभाव) की आपत्ति हो जायगी। इससे नाडीछेदन के पूर्व माता के स्पर्श में दोष नहीं है, यह शुद्धितत्त्व का कथन खण्डित हुआ।

(नाभिच्छेदनात्प्राक्शिशुमरणे विचारः)

नाभिच्छेदात्प्राङ्मृतौ तु बृहन्मनुः—जीवन् जातो यदि मृतो मृतः सूतक एव तु। सूतकं सकलं मातुः पित्रादीनां त्रिरात्रकम्॥ इदं च प्रसवाशौचमेव। शावनिमित्तं स्नानमात्रम्। 'प्राङ्नामकरणात् सद्यःशौचम्' इति शङ्खोक्तेः।

नाभिच्छेदन के पूर्व मरने पर तो बृहन्मनु ने कहा है—जीता हुआ उत्पन्न होने पर (अर्थात्—नालच्छेदन के पहले यदि मर जाय तो और यदि मृतक ही उत्पन्न हो तो संपूर्ण आशौच माता को होता है तथा पिता आदि को तीन रात का होता है। और यह प्रसवाशौच परक ही है शावनिमित्त में स्नानमात्र कहा है। शंख ने कहा है—नामकरण के पहले मरने पर 'सद्यः' आशौच होता है। (यहाँ 'सद्यः') मृतपरक है उत्पत्ति में तो दशरात है।)

(नालच्छेदनोत्तरं दशाहमध्ये शिशुमरणे निर्णयः)

अत्र कश्चिदाह—'नामकरणमाशौचान्तकालोपलक्षणम्। 'आशौचव्यपगमे नामधेयम्' इति विष्णूक्तेः, आशौचे तु व्यतिक्रान्ते नामकर्म विधीयते। इति मनूक्तेश्च (२।३०) नाम्नो नियतकालत्वात्। न च—नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वापि कारयेत्। पुण्ये तिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते॥ इति मनूक्ते (म० २।३०) रनियतकालत्वम्। दशम्यामतीतायां विप्रः। द्वादश्याम-

तीतायां क्षत्रियः। वैश्यः षोडशे। शूद्र एकत्रिंशे इत्यपि ज्ञेयम्। पुण्य इत्याद्यकल्पः। तेन नाम्नः कालोपलक्षणम्। एवं दन्तजननेऽपि 'दन्तजन्म सप्तमे मासि' इत्युपनिषदि नियतकालत्वात्। चौले तु न कालोपलक्षणम्, प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्तव्यं श्रुदिचोदनात्। इति मनूक्तेः (२।३५)।

यहाँ पर कोई कहता है—नामकरण आशौचकाल का उपलक्षण है। विष्णु ने कहा है—आशौच के हटने पर नामकरण का विधान करे। और मनु ने कहा है—आशौच के व्यतीत होने पर (अर्थात् ग्यारहवें दिन) हो 'नामकर्म' संस्कार करे। नामकरण संस्कार का नियत समय है। कोई कहे कि—नामकर्मसंस्कार दशवें (अर्थात् ग्यारहवें दिन) या बारहवें दिन या पुण्यतिथि में या मुहूर्त या गुणों से युक्त (ज्योतिष के कथित) नक्षत्र में करावे। इस मनु के कथन से अनियत (जिसका कोई नियम न हो) समय है। दशदिन व्यतीत होने पर ब्राह्मण, बारहदिन बीतने पर क्षत्रिय, सोलहदिन व्यतीत होने पर वैश्य और शूद्र इकतीसदिन बीतने पर नामकर्म करे। यह भी जानना चाहिये। (अर्थात्—अपने अपने आशौच के अन्त में नामकर्म संस्कार करे—यह अर्थ है।) पुण्ये—यह आद्य अनुकल्प (पीछे से कहाँ हुआ) है। इससे (विष्णु-मनु-वचन से अध्याहारादि प्रमाण से—यह अर्थ है।) नाम का काल (आशौचान्त) उपलक्षण है। इसप्रकार दाँत के उत्पन्न में भी, दाँत का जन्म सातवें महिने में होता है—यह उपनिषद् में नियत काल (समय) कहा है। चौल में तो काल का उपलक्षण नहीं होता है। वेद की प्रेरणा से पहले वर्ष या तीसरे वर्ष में चूडाकर्म करना चाहिये। (यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव-इस मन्त्रलिंग से कुलधर्मानुसार यह व्यवस्थित विकल्प है।)

ततः संवत्सरे पूर्णे चूडाकर्म विधीयते। द्वितीये वा तृतीये वा कर्तव्यं स्मृतिदर्शनात्॥ इति यमोक्तेश्च। तस्यानियतकालत्वादिति। तन्मन्दम्, चौलवन्नामदन्तजननयोरपि स्वरूपेण निमित्तत्वोपपत्तेस्तद्विशिष्टकालानुवादे वाक्यभेदात् सप्तममासादर्वाग्दन्तजनने तदभावप्रसङ्गाच्च। यस्तूपनिषद्दर्शनेन निर्णयं कुर्यात्स नूनं 'शतायुः पुरुषः' इति श्रुतेरर्वाक्पितृमरणे तदन्त्यकर्मापि त्यजेत्। ननु कालानुपलक्षणे नामोत्कर्षे तदभावे वा स्नानमात्राच्छुद्धिः स्यात्। ततः किम्। अस्तु। अत एवोक्तम्। 'आदन्तजन्मनात् सद्यः' इति। सा च विष्णुवचनाद्दाहाभावविषयेति वक्ष्यामः। त्रिवर्षादावपि स्यादिति चेत्? न, दाहदन्तादिनिमित्तैर्विशेषाशौचैः पूर्वस्य बाधात् तदुक्तम्—पूर्वाबाधेन नोत्पत्तिरुत्तरस्य हि सिध्यति। इति।

तदनन्तर एकसाल पूरा होने पर चूडाकर्म का विधान करे। या दूसरे वर्ष में या तीसरे साल स्मृति के कथन से चूडाकर्म करे—एसा यम ने कहा है। चूडाकरणका अनियत समय है। (पहले साल में भी चूडाकर्म कहा है।) यह कहना हीनता है। चूडाकरण की तरह नामकर्म और दन्तजनन के भी स्वरूप से निमित्तत्व बनाने के लिए तद्विशिष्टकाल का अनुवाद मानने पर वाक्यभेद हो जायगा और सातमहिने के पहले दन्तजनन में उसके अभाव का प्रसंग हो जायगा। जो उपनिषद् दर्शन से निर्णय करोगे कि वह सौवर्ष की आयुवाला पुरुष होता है एसा वेद में कहा है पहले पिता के मरने पर उसके अन्त्यकर्मों को भी त्याग देगा। कहा है कि—काल (समय) के अनुपलक्षण में नाम के उत्कर्ष (उन्नति) में या उसके अभाव में स्नानमात्र से शुद्धि हो जायगी। इससे क्या हो। इसलिये कहा है—दन्तजनन तक सद्यः आशौच होता है और वह विष्णुवचन से दाह के अभाव का विषय है यह कहेंगे। तीन वर्ष आदि में भी हो, यह उचित नहीं है। क्योंकि—दाह तथा दन्त आदि निमित्तों के विशेष आशौच, पूर्व के बाधक हैं। उसी बात को कहा है—बाध के बिना उत्तर की उत्पत्ति सिद्ध नहीं ही होती है।

'जननाद्दशरात्रे व्युष्टे शतरात्रे संवत्सरे वा' इति परिशिष्टे।

परिशिष्ट में कहा है—उत्पन्न होने से दसरात, सौरात या एकसाल व्यतीत होने पर 'नामकर्म' संस्कार करे।

द्वादश्यामपरे रात्र्यां मासे पूर्णे तथापरे। अष्टादशेऽहनि तथा वदन्त्यन्ये मनीषिणः ॥ इति भविष्ये च नाम्नः कालानियमाच्च। न च प्राथम्याद्दशरात्रेऽतीते इति मुख्यः कालः अन्यस्त्वनुकल्प इति वाच्यम्, चौलेऽपि तथापत्तेः। न च दन्तजननकालानुपलक्षणे सदन्तजातमृतस्य दाहैकाहप्रसङ्गः, दशाहेन बाधात्। नामकरणोत्तरमेव दाहप्रवृत्तेः।

और दूसरे लोग बारहवीं रात में या पूर्णमास में अन्य बुद्धिमान् अठारहवें दिन नामकरण करना कहते हैं। यह भविष्यपुराण में नाम के काल का नियम नहीं कहा है। क्योंकि प्राथम्य से दशरात बीतने पर मुख्यकाल है, अन्य तो अनुकल्प है। चौलकर्म में वही आपत्ति हो जायगी। कहो कि–दन्तजननकाल (समय) के अनुपलक्षण (उपलक्षण न होने पर भी) में दांत के सहित उत्पन्न मृतक का दाह में एकदिन का आशौच प्रसंग हो जायगा। वह दशाह से बाधित होगा नामकरण के बाद ही दाह की प्राप्ति होती है।

दशाहाभ्यन्तरे बाले प्रमीते तस्य बान्धवैः। शावाशौचं न कर्तव्यं सूत्याशौचं विधीयते ॥ इति बृहन्मनूक्तेश्च। आशौचं दाहोपलक्षणम्। सूतकवदिति पारस्करोक्तेः।

और वृद्धमनु ने कहा है—दशदिन के भीतर बालक मर जाय तो उसके बान्धव शावाशौच (मरणाशौच) न करे। सूत्याशौच का विधान करे। आशौच—दाह का उपलक्षण है। पारस्कर ने कहा है—सूतक के सदृश आशौच होता है।

यत्तु विष्णुः—अनिवृत्ते दशाहे तु पञ्चत्वं यदि गच्छति। सद्य एव विशुद्धिः स्यान्न प्रेतं नोदकक्रियाः ॥ इति, तदपि प्रेताशौचनिषेधार्थम् नतु सद्यस्त्वपरं वाक्यभेदात्।

जो विष्णु ने कहा है--दशदिन की समाप्ति के पूर्व यदि पञ्चत्व (मृत्यु) को प्राप्त हो जाता है तो उसकी शुद्धि 'सद्यः' ही होती है। उसका न प्रेतपिण्ड होता न उदकक्रिया होती है। वह भी प्रेत के आशौच निषेधार्थ है। सद्यः आशौच परक नहीं है। क्योंकि वाक्यभेद है।

(नामकरणात्प्राक्शिशुमरणे विचारः)

किञ्च। नामकालात्प्राङ्मृतस्य स्नानम्, तदुत्तरं त्वेकाहादि। नामकाले त्वेकादशाहे मृतस्य न किमपि स्यात्। अथ शङ्खवचने ल्यब्लोपे पञ्चमी, तदा प्रागिति नोपपद्यते। 'नाम्नि वापि कृते सति' इति-मन्वादिविरोधात् (अ० ५ श्लो० ७०)। कृतनाम्न इति माधवमिताक्षरादिविरोधाच्च न कालोपलक्षणं क्वापीति दिक्।

क्योंकि--नामकरणकाल के पहले मरे का स्नानमात्र आशौच है। उसके बाद तो एकदिन का आशौच है। नामकर्मकाल में मर जाय तो ग्यारहवें दिन मृतक का कुछ भी कर्म नहीं होता है। इसके बाद कोई कहे कि—शंख वचन में ल्यप्लोप में पञ्चमी विभक्ति है। तब 'प्राक्' शब्द की उपपत्ति नहीं होती है। या नामकर्म करने पर आशौच होता है यह मन्वादिविरोध है। जिसका नामकर्म हो गया है—वह माधव, मिताक्षरा आदि के विरोध से काल का कहीं भी उपलक्षण नहीं है।

(नामोत्तरं दन्तोत्पत्तेः प्राक् शिशुमरणे निर्णयः)

नामोत्तरं दन्तोत्पत्तेः प्राग्दाहे त्वहः, अदन्तजाते तनये शिशोर्गर्भच्युते तथा। सपिण्डानां तु सर्वेषामहोरात्रमशौचकम् ॥ इति यमोक्तेः। दाहाभावे तु स्नानमात्रम् 'अदन्तजाते प्रेते सद्य एव नास्याग्निसंस्कारः। इति विष्णुना दाहाभावे तदुक्तेः। 'अदन्तजननात्सद्यः' इति याज्ञवल्कीयाच्च (प्राय० श्लो० २३)।

नामकरण के बाद दन्तोत्पत्ति के पूर्व दाह होने पर तो एकदिन का आशौच होता है। यम ने कहा है-दांत निकलने के पूर्व पुत्र के मरने पर या शिशु के गर्भ से गिर जाने पर तो सब सपिण्डों को अहोरात्र (एक दिन) का आशौच होता है। दाह के अभाव में तो स्नानमात्र है। अदन्तजातप्रेत में (अर्थात्–जिसके दांत न निकले हों ऐसे के मरने पर) सद्यःशुद्धि (तत्कालिक शुद्धि) ही होती है। उसका अग्निसंस्कार नहीं होता

है—यह विष्णु ने दाह के अभाव में उस बात को कहा है। और याज्ञवल्क्य ने कहा है—दांत निकलने के पहले बालक की मृत्यु होने पर तत्काल (उसीसमय) शुद्धि होती है।

दाहविकल्पं चाह लौगाक्षिः—तूष्णीमेवोदकं कुर्यात्तूष्णीं संस्कारमेव च। सर्वेषां कृतचूडानामन्यत्रापीच्छया द्वयम्॥ अन्यत्राकृतचूडे। अत्र चूडाकरणं तृतीयवर्षरूपकालोपलक्षणार्थमिति मेधातिथिहरदत्तौ।

और दाह का विकल्प लौगाक्षि ने कहा है—जिनका 'चूडाकरणसंस्कार' हो ही चुका हो या चूडाकरण संस्कार न हुआ हो—ऐसे दोनों का तूष्णीं (उदकदान मन्त्र के बिना) ही उदक (जल) दान और तूष्णीं (विशेषविहितयमसूक्तादिजप के बिना) संस्कार करे। अन्यत्र—का अर्थ है अकृतचूड में। यहाँ पर चूडाकरण तीसरे साल के समय का उपलक्षणार्थ है, ऐसा मेधातिथि और हरदत्त ने कहा है।

मनुरपि (अ० ५।७०) नात्रिवर्षस्य कर्तव्या बान्धवैरुदकक्रिया। जातदन्तस्य वा कुर्युर्नाम्नि वापि कृते सति॥ इति। उदकं दाहोपलक्षणम्।

मनु ने भी कहा है—अप्राप्त तीसरे साल के पुत्र का पिता आदि सपिण्ड बान्धव उदकक्रिया (जलादिदान) न करे। (चूडाकरण करने पर भी यदि बालक तीन से ऊपर है तो दाहादि होता ही है।) या जिसके दांत निकल गये हों उसका करे या नामकरण हो गया हो उसकी उदकक्रिया (अग्निसंस्कार) करे। उदक—यह दाह का उपलक्षण है।

(दन्तोत्पत्त्यनन्तरं त्रिवर्षात्प्राङ्मरणे विचारः)

दन्तोत्पत्त्यनन्तरं प्राक्त्रिवर्षान्तान्मृतेऽहः। दन्तजातेऽप्यकृतचूडे त्वहोरात्रेण शुद्धिः इति विष्णूक्तेः।

दांत निकलने बाद तीन वर्ष के पूर्व मरने पर एकदिन का आशौच होता है। दांत निकलने पर (अर्थात्—सात महिने के बाद दांत निकलने पर) भी चूडाकरण के पहले (अर्थात्—पूरे तीन साल में चूडाकरण न करने पर—अङ्गिरा चाह—विप्रे न्यूने त्रिभिर्वर्षैर्मृते शुद्धिस्तु नैशिकी।) अहोरात्र से शुद्धि कही है—यह विष्णु ने कहा है।

(त्रिवर्षोर्ध्व कृतचूडे मृते)

त्रिवर्षोर्ध्वं कृतचूडेऽकृतचूडे वा प्रागुपनयनात्त्र्यहः, यद्यप्यकृतचूडो वै जातदन्तस्तु संस्थितः। तथापि दाहयित्वैनमाशौचं त्र्यहमाचरेत्॥ इति आङ्गिरसोक्तेः। (अकृतायामपि चूडायां त्रिवर्षोर्ध्वं दाहादि नियतम्। नात्रिवर्षस्येति वचनात्। मृतायां वर्षत्रयात्प्रापितं तूष्णीमेव) अत्र जातदन्तत्वमुद्देश्यविशेषणत्वादविवक्षितम्। दाहयित्वेत्यप्यनुवादः। उभयविधौ वाक्यभेदात्। त्रिवर्षात्प्राक् चूडाभावेऽग्निदाने त्र्यहस्तदभावे विष्णुक्तेरेकाह इति माधवः।

तीन साल के बाद जिसका चूडाकरण हो गया हो या न हो जाने पर उपनयन के पहले तीनदिन का आशौच होता है।

अंगिरा ने कहा है—यद्यपि चूडाकरण न हुआ हो और दांत उत्पन्न होकर स्थिर हो गये हों। यदि वह मर जाय तो उस पुत्र का दाह कराकर तीनदिन का आशौच को करे। (अकृतचूडा में भी या चूडाकरण करने पर भी तीन साल के बाद दाहादि नियत है। 'नात्रिवर्षस्य' यह पूर्वोक्त कहे वचन से चूडाकरण करनेपर तीनवर्ष के पूर्व मरने पर तूष्णीं ही क्रिया होती है। अर्थात्—उदकदान आदि नहीं होते हैं।) यहाँ पर उत्पन्न दांत को उद्देश्य का विशेषण होने से अविवक्षित है। दहन कराकर भी यह अनुवाद है। उभयविधि में वाक्यभेद है। तीन साल के पूर्व चूडाकरण के अभाव में अग्निदान में तीनदिन का आशौच है ऐसा विष्णु ने कहा है एसा माधव ने कहा है।

यत्तु कश्चिदाह। अत्र त्रिवर्षविषयादस्मादेवार्थात् त्रिवर्षोर्ध्वमपि तत्सिद्धिः। विज्ञानेश्वरोक्तेश्च त्रिवर्षोर्ध्वमकृतचूडं विषयत्वं चिन्त्यम्, जातदन्तपदवैयर्थ्यादिति। तत्तुच्छम्, दाहस्याविधेयत्वात्। नृणामकृतचूडानामशुचिर्नैशिकी स्मृता। इति मनूक्तेः (अ० ५।६७) त्रिवर्षोर्ध्वमेका-

हापत्तेरर्थात् त्र्यहासिद्धेः। त्वयाप्यग्रे तथाङ्गीकारात्पदवैयर्थ्यस्य साम्याद्वाक्यार्थाज्ञानाच्चेत्यलं मिताक्षरार्थानभिज्ञदूषणेन।

जो किसी ने कहा है--यहाँ पर तीन साल तक का विषय तो इसी अर्थ से ही तीन साल के ऊपर भी उसकी सिद्धि हो जायगी और विज्ञानेश्वर ने भी यही कहा है। तीन साल के बाद भी नहीं किये हुए चूडाकरण का विषय है। इसलिये विचारणीय है। क्योंकि 'जातदन्त' पद व्यर्थ हो जायगा। वह तुच्छ है, क्योंकि दाह का विधेय नहीं है।

मनु ने कहा है--जिन बालकों का चूडाकरणसंस्कार नहीं हुआ है ऐसे बालकों के मरने पर सपिण्डों की शुद्धि अहोरात्र (एकदिन) से होती है। तीन साल के बाद एकदिन की आपत्ति होने से अर्थात्-तीनदिन का आशौच असिद्ध हो जायगा। तुम भी आगे वैसे ही अंगीकार (स्वीकार) करने से तो पद के वैयर्थ्य के साम्य से वाक्य के अर्थ की जानकारी न होने से 'मिताक्षरा' के अर्थ को न जान कर दूषण देना व्यर्थ है।

(प्रथमवर्षादौ कृतचूडे मृते निर्णयः)

प्रथमवर्षादौ कृतचूडस्य सदा त्र्यहः, निवृत्तचूडकानां तु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते। इति मनूक्तेः (५।६७)। एतत्सर्वं प्रागुक्तं सपिण्डानाम्। मातापित्रोस्तु दशाहोर्ध्वं मृते सर्वत्र त्रिरात्रम्, बालानामजातदन्तानां त्रिरात्रेण शुद्धिः, इति कश्यपोक्तेः।

पहले साल आदि में जिसका मुण्डनसंस्कार हो चुका है उसका सदा तीन दिन का आशौच होता है। मनु ने कहा है--जिनका चूडाकरण संस्कार हो चुका है उनके मरने पर (अर्थात्--उपनयनसंस्कार के पूर्व मरने पर) तीनरात में सपिण्डों की शुद्धि कही है। यह सब सपिण्डों का पहले कह चुके हैं। माता और पिता को तो दसदिन के बाद मरने पर सर्वत्र (सब जगह) तीन दिन का आशौच होता है--कश्यप ने कहा है--दांत निकलने के पूर्व बालकों के मरने पर तीन रात में शुद्धि होती है।

बैजिकादभिसम्बन्धादनुरुन्ध्यादाद्यं त्र्यहम्। इति मनूक्तेश्च (अ० ५ श्लो० ६३)।

और मनुने कहा है--बीज के सम्बन्ध से दूसरे की स्त्री में सन्तानोत्पत्ति के हो जाने पर तीनदिन का आशौच होता है।

शुद्धितत्त्वादयो गौडास्तु--अजातदन्तमरणे पित्रोरेकाहमिष्यते। दन्तजाते त्रिरात्रं स्याद्यदि स्यातां तु निर्गुणौ॥ इति कौर्मात्काश्यपं शूद्रपरम्।

शुद्धितत्त्व गौड आदि तो कहते हैं--बिना दांत वाले बालक के मरने पर माता और पिता को एकदिन का आशौच होता है। दांत निकलने के बाद मरने पर तीनदिन का आशौच होता है। यदि ये दोनों निर्गुण हों--यह कूर्मपुराण के वचन से काश्यप का वचन शूद्रपरक है।

अनूढानां तु कन्यानां तथा वै शूद्रजन्मनाम्। इति त्र्यहानुवृत्तौ शङ्खोक्तेः।

बिना विवाहित शूद्र से ही उत्पन्न कन्याओं के मरने पर तीनदिन का आशौच होता है। यहाँ तीनदिन की अनुवृत्ति है--ऐसा शंख ने कहा है।

(शूद्रशिशुमरणे)

त्रिरात्रं तु भवेच्छूद्रे षण्मासेऽपि शिशौ मृते। इति मत्स्यसूक्ताच्च। दन्तजाते शूद्रे तु पञ्चाहः।

और मत्स्यसूक्त में कहा है--छः महीने में भी बालक के मरने पर शूद्र को तीनरात का आशौच होता है। दांत निकलने बाद मरने पर शूद्र को पांच दिन का आशौच होता है।

यथाहाङ्गिराः--शूद्रे त्रिवर्षान्न्यूने तु मृते शुद्धिस्तु पञ्चभिः। अत ऊर्ध्वं मृते शूद्रे द्वादशाहो विधीयते॥ षड्वर्षान्तमतीतो यः शूद्रः संम्रियते यदि। मासिकं तु भवेच्छौचमित्याङ्गिरसभाषितम्॥ इति।

जैसा अङ्गिरा ने कहा है--तीन साल से कम (न्यून) बालक के मरने पर शूद्र को पांच दिन में शुद्धि कही है। इसके बाद (अर्थात्--तीन साल के बाद) बालक के मरने पर बारहदिन में शुद्धि होती

है। छः साल के बाद यदि जो शूद्र मर जाय तो एकमहीने का आशौच होता है—यह आंगिरस ने कहा है।

यत्तु 'अनूढभार्यः शूद्रस्तु' इति शङ्खोक्तं मासाशौचं तत्सगुणशूद्रपरम्। निर्गुणे त्वनूढभार्ये शूद्रे त्रिवर्षोर्ध्वं द्वादशाहः। षडब्दोऽर्ध्वं मासः। षडब्दात्प्रागपि कृतोद्वाहे मास इत्याहुः। एतत् 'तुल्यं वयसि सर्वेषाम्' इति विरोधाच्छिष्टविगानान्नादर्तव्यमिति विज्ञानेश्वरादयः। दाक्षिणात्यानां तथैव। अन्यदेशे प्रागुक्तमिति गौडाः। एवं कन्यास्वपि। तास्वप्यजातदन्तासु पित्रोरेकरात्रमिति माधवः।

जो यह कहा है—अविवाहित शूद्र मर जाय तो एकमहीने का आशौच है, ऐसा शंख ने कहा है वह सगुण शूद्रपरक है। निर्गुण अविवाहित शूद्र के तो मरने पर तीन साल के बाद बारह दिन का आशौच होता है। छः साल के बाद मरने पर एक महीने का आशौच होता है। छ साल के पहले भी विवाह करने पर मरने पर एकमास कहा है यह सबों की अवस्था में तुल्य है—इस विरोध से शिष्टविगाहन (निन्दित) होने से आदर करने योग्य नहीं है—ऐसा विज्ञानेश्वर आदि कहते हैं। वैसे ही दाक्षिणात्यों का कथन है। अन्यदेश में पहले कहा है—यह गौड कहते है। इसप्रकार कन्याओं में भी जानना चाहिए। उन अजातदन्त कन्याओं में भी (अर्थात्—जिन कन्याओं को दांत न निकले हों ऐसी कन्या मर जांय तो पिता और माता को एकरात का आशौच होता है—ऐसा माधव ने कहा है।

यत्तु विज्ञानेश्वरेणोक्तम्। ऊनद्विवर्ष उभयोः सूतकं मातुरेव हि। इति याज्ञवल्क्योक्तेः। (प्रा० १ श्लो० १८) गर्भस्थे प्रेते मातुर्दशाहं, जाते उभयोः, कृते नाम्नि सोदराणां च'इति पैङ्ग्योक्तेश्च पित्रोः सोदराणां च दशाहमस्पृश्यत्वमिति। तन्नेदानीं प्रचरति। अत एव स्मृत्यर्थसारे तन्नादृतम्।

जो विज्ञानेश्वर ने कहा है—दो साल से कम आयु के बालक का आशौच पिता और माता को ही होता है इतर सपिण्डों को नहीं होता है तथा सूतक (जन्मसमय का सूतक-आशौच) केवल माता को ही होता है। गर्भस्थ प्रेत होने पर (अर्थात्-गर्भ में ही मर जाय) माता को दसदिन का आशौच होता है। उत्पन्न होनेपर माता और पिता को दसदिन का आशौच होता हैं। नामकरणसंस्कार होने पर सोदर भाइयों को भी दसदिन का आशौच होता है। (अथवा यह अर्थ है-ऊनद्विवर्षे संस्थिते उभयोर्मातापित्रोरेव अस्पृश्यत्वलक्षणमाशौचं न सपिण्डानाम् स्मृत्यन्तरे-'ऊनद्विवर्षे प्रेते मातापित्रोरेव नेतरेषाम्।) यह पैंग्य के कथन से पिता और माता को तथा सहोदरों को दशदिन तक अस्पृश्यत्व (अर्थात्-स्पर्श करनेयोग्य नहीं) कहा है। वह इससमय नहीं माना जाता (अर्थात्—उसका चलन नहीं) है। इसलिए स्मृत्यर्थसार में उसका आदर नहीं किया है।

(कन्यामरणाशौचविर्णयः)

कन्यासु चौलात्प्राङ्मृतौ स्नानम्, अचूडायान्तु कन्यायां सद्यःशौचं विधीयते। इत्यापस्तम्बोक्तेः। इदं त्रिपुरुषमध्ये, अप्रत्तानां तु स्त्रीणां त्रिपुरुषी विज्ञायते। इति वसिष्ठोक्तेः। इदं वाग्दानोत्तरमिति गौडाः। तन्न, अप्रत्तानां तथा स्त्रीणां सापिण्डयं साप्तपौरुषम्। इति वचनात्।

चूडाकरणसंस्कार के पूर्व कन्याओं के मरने पर स्नानमात्र आशौच होता है। आपस्तंब ने कहा है—चूडाकरणसंस्कार के पहले कन्याओं के मरने पर सद्यःशौच होता है। यह तीन पीढ़ियों में चलता है। क्योंकि वसिष्ठ ने कहा है—अप्रमत्तस्त्रियों का (अर्थात्—बिना विवाहित कन्याओं का।) (अप्रमत्तानाम्—यह भेद में षष्ठी विभक्ति है। पितृ-पितामह-प्रपितामहों के साथ अविवाहित चतुर्थी का सापिंड्य है। कन्या की अपेक्षाकर पांचवें वृद्धप्रपितामह में सापिंड्य की निवृत्ति होती है। उसके मरने पर सापिंड्य-प्रयुक्त आशौच उसकी सन्तति को नहीं होता है—यह भाव है। गोविन्दार्णव आदि में और शुद्धिसंस्कार ग्रन्थादि में स्पष्ट है।) तीनपीढ़ी तक जाना जाता है। गौडों का कथन है—यह वाग्दानोत्तरपरक है। यह उचित नहीं है। बिना विवाहित कन्याओं का सापिंड्य सात पीढ़ी तक होता है—ऐसा वचन है।

चौलोत्तरं वाग्दानात्पूर्वं तास्वेकाहः, अविशेषेण वर्णानामर्वाक्संस्कारकर्मणः । त्रिरात्रात्तु भवेच्छुद्धिः कन्यास्वह्ना विधीयते ॥ इत्यङ्गिरसा त्रिरात्रविषयेऽह्नोविधानात् ।

चूडाकरण के बाद (अकृतचूड कन्या का तीन वर्ष के बाद) वाग्दान के पहले कन्याओं के मरने पर एकदिन का आशौच होता है। संस्कारकर्म के पूर्व वर्णों में अविशेष से तीनरात में शुद्धि कही है और कन्याओं के मरने पर एकदिन का आशौच कहा है। इस अंगिरा के वचन से त्रिरात्रविषय में एकदिन का विधान किया है।

(अहस्त्वदत्तकन्यासु बालेषु च विशोधनम् । इति याज्ञवल्कीयाच्च (प्राय० श्लो० २४)) अतः शूद्रस्योपनयनस्थानीयविवाहात्पूर्वं त्रिरात्रम् । विवाहोत्कर्षे तु षोडशाब्दमध्ये त्रिरात्रमेवेत्यपरार्काद्याः । शूद्रे तु निर्गुणे त्र्यब्दोर्ध्वं पञ्चाहं, षडब्दोर्ध्वं विवाहाभावे द्वादशाहमिति गौडाः । सगुणानां षोडशाब्दोर्ध्वं तु विवाहाभावेऽपि पूर्णाशौचं वक्ष्यते । तदुक्तं प्राग्विवाहाद्भर्तृकुले पितृकुले च सप्तपुरुषावधि त्रिरात्रम् ,

अविवाहिता चूडाकरण हो जाने के बाद कन्याओं के वाग्दान के पूर्व मरने पर (सपिण्डों की) अहोरात्र (एकदिन-रात) में ही आशौच की शुद्धि होती है। इसलिये शूद्र का उपनयन स्थानीय विवाह होने से उसके पहले मरने पर तीन रात का आशौच होता है। विवाह के उत्कर्ष में तो सोलहसाल के मध्य में मरने पर तीन रात का ही आशौच होता है--एसा अपरार्क आदि ने कहा है। निर्गुण शूद्र के तीन वर्ष के ऊपर मरने पर पांच दिन का आशौच होता है। छ साल के ऊपर मरने पर विवाह के अभाव में तो बारहदिन का आशौच होता है एसा गौड कहते हैं। सगुणों का तो सोलहवर्ष के ऊपर तो विवाह के अभाव में भी पूर्णाशौच (पूरा आशौच) कहते हैं। और उनके आगे तथा विवाह के पहले पति के कुल में और पिता के कुल में सात पीढ़ी तक तीन रात का आशौच होता है।

अवारिपूर्वं प्रत्ता तु या नैव प्रतिपादिता । असंस्कृता तु सा ज्ञेया त्रिरात्रमुभयोः स्मृतम् ॥ इति मरीच्युक्तेः ।

मरीचि ने कहा है—जिस कन्या का जलदानपूर्वक विवाह नहीं हुआ है। उस कन्या को असंस्कृत (संस्कार के रहित) जानना चाहिये। एसी स्थिति में उस कन्या के मरने पर पति और पिता के कुल में तीनरात का आशौच होता है।

(पितृगृहेऽनूढाकन्यारजस्वलामरणे विचारः ।

रत्नाकरे शुद्धितत्त्वे च शङ्खः—पितृवेश्मनि या नारी रजःपश्यत्यसंस्कृता । तस्यां मृतायां नाशौचं कदाचिदपि शाम्यति ॥ यावज्जीवमशौचमिति वाचस्पतिमिश्राः ।

रत्नाकर और शुद्धितत्त्व में शंख ने कहा है जिस नारी (कन्या) असंस्कृत (जिसका विवाह संस्कार न हुआ हो) का पिता के घर में रज (रजोधर्म) देखता है। उसके मरने पर आशौच (मरणनिमित्तिक प्रायश्चित्त के बिना) कभी भी दूर नहीं होता है। वाचस्पतिमिश्र ने कहा है—जबतक जीवन है तबतक आशौच बना रहता है।

(अनुपनीतमृतानां दाहादिनिर्णयकथनम्)

अथानुपनीते किञ्चिदुच्यते । नाम्नः पूर्वं खननमेव । तदूर्ध्वं वर्षत्रयात्पूर्वं चौलाभावेऽग्न्युदकदानविकल्पः ।

नात्रिवर्षस्य कर्तव्या बान्धवैरुदकक्रिया । जातदन्तस्य वा कुर्युर्नाम्नि वापि कृते सति ॥ इति मनूक्तेः (अ० ५।७०) । उदकक्रियासाहचर्याद्दाहोपलक्षणम् ।

इसके बाद अनुपनीत के विषय में कुछ कहता हूँ। नामकरणसंस्कार के पहले (प्रसवाशौच के मध्य में) खनन (गाडना) ही (एवकार के कथन से उदकदान आदि की निवृत्ति होती है।) चाहिये। उसके

बाद (आशौचोत्तरदिन से प्रारंभ कर) तीन साल के पूर्व (वर्षत्रयसमाप्तिपर्यन्त) चूडाकरण के अभाव में अग्नि (पिण्डदानादि का उपलक्षण है ।) तथा उदकदान (जलदान) में विकल्प है ।

मनु ने कहा है—तीनसाल से कम उमरवाले बालक मरें तो पिता आदि सपिण्ड के लोग उदकक्रिया न करें । (पहले निषिद्ध करने पर भी) उत्तरार्ध में कहते हैं—जिसके दाँत निकल गये हों उसका उदकदान करे या नामकरण करने के बाद उसका उदकदान करे । उदकक्रिया के साहचर्य से दाह करना उपलक्षण है ।

खनने तु नान्यदौर्ध्वदेहिकम्, ऊनद्विवर्षं निखनेन्न कुर्यादुदकं ततः । इति याज्ञवल्क्योक्तेः (प्राय० १ श्लोक) । उदकमन्त्यकर्मपरमित्यपरार्कः ।

खनन में तो दूसरा औध्वदेहिक नहीं होता है । दो साल की कम आयुवाले बालक के मरने पर भूमि में गढा खोदकर रख दे—अर्थात् गाड दे और उसका दाह न करे । फिर उसका उदकदान (मनुः—(अ० ५ श्लो० ६८, ६९) ऊनद्विवार्षिकं प्रेतं निदध्युर्बान्धवा बहिः । अलङ्कृत्य शुचौ भूमावस्थिसञ्चयादृते ॥ नास्य कार्योऽग्निसंस्कारो न च कार्योदकक्रिया) अरण्ये काष्ठवत्त्यक्त्वा क्षपेयुस्त्र्यहमेव च ॥) न करे । एसा याज्ञवल्क्य ने कहा है । अपरार्क का मत है—उदकपद (जंगल में फेंक दे काष्ठ की तरह) अन्त्यकर्मपरक है ।

यमः—ऊनद्विवार्षिकं प्रेतं घृताक्तं निखनेद्भुवि । यमगाथां गायमानो यमसूक्तमनुस्मरन् ॥

यम ने कहा है—दो साल से कम उमरवाले प्रेत को घृत (खननयोग्यमात्रविषयक है । घृततैलसमायुक्तं कृत्वा वैदेहशोधनम् । तेनाभ्युदय गुरुं ज्ञाप्य नयेत्तु पैतृकं (श्मशानम् । वनम् ॥ यह वराह का वचन दाहविषयक है ।) लगाकर भूमि में यमगाथा ([1]यमदैवत्या गाथा—यह मिताक्षरा) को गाता हुआ और यम-[2]सूक्त का स्मरण कर गाड दे ।

माधवीये ब्राह्मेऽपि—स्त्रीणां तु पतितो गर्भः सद्यो जातो मृतोऽथ वा । अजातदन्तो मासैर्वा मृतः षड्भिर्गते बहिः ॥ वस्त्राद्यैर्भूषितं कृत्वा निक्षिपेत्तं तु काष्ठवत् । खनित्वा शनकैर्भूमौ सद्यः शौचं विधीयते ॥ अलङ्करणमपि वक्ष्यते । कृतचूडस्य तु त्रिवर्षात्प्रागूर्ध्वं वाग्न्युदकदानं नियतम् ।

१—मिताक्षरामतसे यमदैवत्या गाथा और सूक्तजपको दाहमें भी योगियाज्ञवल्क्य (प्राय श्लो० २) में कहा है—यमसूक्तं तथा गाथा जपद्भिर्लौकिकाग्निना । स दग्धव्य उपेतश्चेदाहिताग्न्यावृतार्थवत् ॥ लौकिकाग्निः चाण्डालादिव्यतिरिक्तो ग्राह्यः । देवलः—चाण्डालाग्निरमेध्याग्निः सूतिकाग्निश्च कर्हिचित् । पतिताग्निश्चिताग्निश्च न शिष्टग्रहणोचितः ॥ यमः—यस्यानयति शूद्रोऽग्निं तृणं काष्ठं हवींषि च । प्रेतत्वं हि सदा तस्य स चाधर्मेण लिप्यते ॥ प्रचेता—स्नानं प्रेतस्य पुत्राद्यैर्वस्त्राद्यैः पूजनं तथा । नग्नदेहं दहेन्नैव किञ्चिद्देयं परित्यजेत् ॥ किञ्चिद्देयमितिशववस्त्रैकदेशं श्मशानवास्यर्थं देयं परित्यजेदित्यर्थः ।

२—परेयिवांसं प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम् । वैवस्वतं सङ्गमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य १ यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ । यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुरेना जज्ञानाः पथ्या ३ अनु स्वाः २ मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः । यांश्च देवा वावृधुर्ये च देवान् त्स्वाहान्ये स्वधयान्ये मदन्ति ३ इमं यम प्रस्तरमा हि सीदाऽङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः । आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन् हविषा मादयस्व ४ अङ्गिरोभिरा गहि यज्ञियेभिर्यम वैरूपैरिह मादयस्व । विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन् यज्ञे बर्हिष्या निषद्य ५ अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः । तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ६ प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिर्यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः । उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरुणं च देवम् ७ सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन् । हित्वायावद्यं पुनरस्तमे हि सं गच्छस्व तन्वा सुवर्चाः ८ अपेत वीत वि च सर्पतातो ऽस्मा एतं पितरो लोकमक्रन् । अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै ९ अति द्रव सारमेयौ श्वानौ चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा । अथा पितॄन् त्सुविदत्राँ उपेहि यमेन ये सधमादं मदन्ति १० यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ । ताभ्यामेनं परि देहि राजन् त्स्वस्ति चास्मा ऽअनमीवं च धेहि ११ उरूणसावसुतृपां उदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो जनाँ अनु । तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम् १२ यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः । यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरङ्कृतः १३ यमाय घृतवद्धविर्जुहोत प्र च तिष्ठत । स नो देवेष्वा यमद् दीर्घमायुः प्र जीवसे १४ यमाय मधु-मत्तमं राज्ञे हव्यं जुहोतन । इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः १५ त्रिकद्रुकेभिः पतति षडुर्वीरेकमिद्बृहत् । त्रिष्टुब्गायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम आहिता १६ (ऋ० १०।१४।१–१६) ।

माधवीय में ब्रह्मपुराण का वचन है—स्त्रियों के गर्भपात हो जाने पर या उत्पन्न होने पर या मरने पर या दाँत निकलने के छ महिने अधिक मास बाद मरने पर उसको वस्त्र आदि से भूषित कर लकड़ी की तरह (जैसे—जंगल में लकड़ी को छोड़कर उदासीन होता है वैसे ही गढा खोदकर भूमि में उस मृत को प्रक्षेपकर श्राद्धादि और्ध्वदेहिक से उदासीन होता है। इससे और्ध्वदेहिककार्य का निषेध सूचित होता है।) फेंक दे। या शनैः शनैः भूमि (गाँव के बाहर श्मशान से अन्यत्र अस्थिराहित्य देश में पवित्र पृथ्वी में) में गाड दे। अलङ्कार को भी कहेंगे। जिसका चूडाकरणसंस्कार हो चुका है ऐसे का तो तीनसाल के पहले या बाद में अग्निदान और उदकदान नियत है।

यत्तु वसिष्ठः—ऊनद्विवर्षे प्रेते गर्भपतने वा सपिण्डानां त्रिरात्रम्' इति तत् प्रथमाब्दचूडापरम्। वर्षत्रयादूर्ध्वमकृतचूडस्यापि नियतम्। वर्षत्रयोर्ध्वमुपनयनात्पूर्वं च तूष्णीमग्न्युदकदानम्। तूष्णीमेवोदकं कुर्यात्तूष्णीं संस्कारमेव च। इति पूर्वोक्तलौगाक्षिस्मृतेः। पिण्डदानमपि कार्यम्।

जो वसिष्ठ ने कहा है—दो साल से कम उमरवाला मर जाय या गर्भ का पात हो जाय तो सपिण्डों को तीनरात का आशौच होता है। वह प्रथमवर्ष चूडापरक है। तीनसाल के बाद अकृत चूडाकरण भी नियत (नियम) है। (अर्थात्—जिसका चूडाकरसंस्कार नहीं हुआ है ऐसे बालक के मरने पर यदि वह तीनसाल के ऊपर का है तो दाहादि करना चाहिये।) तीनसाल के ऊपर और उपनयन के पहले मरने पर तूष्णीं अग्निदान और उदकदान होता है—लौगाक्षिस्मृति में कहा है—तूष्णीं उदकदान और तूष्णीं ही संस्कार करे।

'असंस्कृतानां भूमौ पिण्डं दद्यात्संस्कृतानां कुशेषु' इति प्रचेतसोक्तेः। 'उदकदानं सपिण्डैः कृतचूडस्य इति गौतमोक्तेः। उदकग्रहणमौर्ध्वदेहिकपरमिति हरदत्तः।

प्रचेता ने कहा है—संस्कारहीन मरों का भूमि पर पिण्डदान तथा संस्कारवालों का कुशाओं पर पिण्डदान करे। गौतम ने कहा है—कृतचूड बालक के मरने पर सपिण्ड उदकदान-पिण्डदान के अधिकारी कहे गये हैं। हरदत्त ने कहा है—उदकग्रहण और्ध्वदेहिकपरक है।

द्वादशाद्वत्सरादर्वाक् पौगण्डमरणे सति। सपिण्डीकरणं न स्यान्नैकोद्दिष्टानि कारयेत्॥ इति हरदत्तधृतदेवलोक्तेश्च।

हरदत्त और देवल ने कहा है—बारहसाल के पूर्व 'पौगण्ड' के मरने पर सपिण्डीकरण और एकोद्दिष्ट न करे।

मरीचिरपि—प्रेतपिण्डं बहिर्दद्याद् दर्भमन्त्रविवर्जितम्। इति। एतदनुपनीतपरमिति विज्ञानेश्वरः।

मरीचि ने भी कहा है—कुशा और मन्त्र को छोड़कर प्रेतपिण्ड को बाहर दे। यह अनुपनीतपरक है—यह विज्ञानेश्वर ने कहा है।

अत्र चूडैव अवधिः पूर्ववाक्येषु तद्ग्रहणात्। उदकग्रहणस्योपलक्षणत्वाद् दाहः पूर्वावधिरिति केचित्। द्वादशाद्वत्सरादित्यनुपनीतद्विजानूढशूद्रविषयम्।

यहाँ पर चूडाकरण ही पहली विधि है। क्योंकि—पूर्व (पहले) वाक्यों (वचनों) में (अर्थात्—लौगाक्षि आदि वाक्यों में उसका ग्रहण है। उदकग्रहण का उपलक्षण (प्रायः उदकदान का दाहसाहचर्य से दाह उपलक्षण है।) होने से 'दाह' पूर्वावधि (पहलीविधि) है—यह कोई कहते हैं। बारहसाल के पहले—यह अनुपनीत द्विज अविवाहित शूद्र विषयक है।

(त्र्यहाशौचे पिण्डदानविधिकथनम्)

त्र्यहाशौचे पिण्डदानविधिमाह पारस्करः—प्रथमे दिवसे देयास्त्रयः पिण्डाः समाहितैः। द्वितीये चतुरो दद्यादस्थिसञ्चयनं तथा। त्रींस्तु दद्यात्तृतीयेऽह्नि वस्त्रादि क्षालयेत्ततः॥ इति।

तीनदिन का (ही) आशौच होने पर पिण्डदान की विधि को पारस्कर ने कहा है—सावधान मन से प्रथमदिन में तीनपिण्ड, दूसरे दिन चारपिण्ड तथा अस्थिसंचयन करे और तीसरे दिन तीनपिण्डों को दे। तदनन्तर वस्त्रादि का प्रक्षालन करे।

(अत्र दैवयाज्ञिकनिबन्धे शिशु-बाल-कुमार-पौगण्डादीनां लक्षणकथनम्)

अत्र दैवयाज्ञिकनिबन्धे विशेषः—शिशुरादन्तजननाद्बालः स्याद्यावदाशिखः। कथ्यते सर्वशास्त्रेषु कौमारो मौञ्जिबन्धनात् ॥ आपञ्चवर्षात् कौमारः पौगण्डो नवहायनः।

यहाँ पर दैवयाज्ञिकनिबन्ध में विशेष कहा है—दांत के निकलने पूर्वतक शिशु, शिखाधारणतक बाल और मौञ्जीबन्धन (यज्ञोपवीतसंस्कार) तक कुमारसंज्ञा होती है—यह सब शास्त्रों में कहा है। पांचसाल तक कौमार तथा नौसाल तक पौगण्डसंज्ञा होती है।

(एतेषां मृतानां क्रियाविधिकथनम्)

तथा—गर्भे नष्टे क्रिया नास्ति दुग्धं देयं शिशौ मृते। परं च पायसं क्षीरं दद्याद्बालविपत्तितः ॥ एकादशं द्वादशाहं वृषोत्सर्गविधिं विना।

और गर्भ के नाश होने पर क्रिया (कर्म) नहीं होती है। शिशु के मरने पर दूध (दांत निकलने के पहले तक) दे। उसके बाद चूडाकरण के पूर्व बालक के मरने पर पायस (खीर) और दूध दे। एकादशाह द्वादशाह तथा वृषोत्सर्गविधि को न करे।

तथा—यत्र प्रमीयते बालस्तत्र प्रायः प्रदीयते। किञ्चित्समानवयसां संस्कृत्यान्नं यथाविधि ॥ भक्ष्यं भोज्यं च दातव्यं तथा च सुखभक्षिका। तद्वस्त्राणि प्रदेयानि सोपानत्कानि तत्समे ॥ कुमाराणां च बालानां भोजनं वस्त्रवेष्टनम्। यच्चोपजीवते बालस्तत्तद्विप्राय दीयते।

और जहाँ पर बालक मर जाय वहाँ पर प्रायः दे। कुछ समान अवस्थावाले बालकों को अन्न यथाविधि पकाकर दे। भक्ष्य तथा भोज्य दे और सुखभक्षिका (गिलास, थाली, कटोरी, गडुवा, खिलौने, आदि) दे। तद्वत् उसी के बराबर वाले को अन्नादि के साथ वस्त्र और जूता दे। कुमारों को और बालों को भोजन और वस्त्र पहनने को दे। जो बालक जिन वस्तुओं को उपयोग में लेता हो उन सब वस्तुओं को ब्राह्मण को दे। कहीं 'प्रायः' की जगह 'दीपः' ऐसा पाठ है।

तथा—भूमिनिःक्षेपणं बाले आवर्षद्वयमाशिखम्। ततः परं खगश्रेष्ठ देहदाहो यथाविधि ॥ अचूडेऽप्यूर्ध्वं खनननिवृत्यर्थमावर्षद्वयमिति। प्रागपि कृतचूडस्य तन्निवृत्त्यर्थमाशिखमिति।

और दो साल तक शिखा रखने तक बालक को भूमि में गाड दे। उसके बाद हे खगश्रेष्ठ, यथाविधि देह शरीर का दाहसंस्कार करे। जिसका चूडाकरण न हुआ हो उसका भी बाद में खनन की निवृत्ति के लिये दो साल तक कहा है। पहले भी जिसका चूडाकरण हो जाने की निवृत्ति के लिये शिखाधारण तक कहा है।

तथा—चूडाकर्मणि सञ्जाते विपत्तिस्तु यदा भवेत्। सूतकान्ते प्रकर्तव्यं वृषस्योत्सर्जनं तदा। तत्र दाहः प्रकर्तव्य उदकं तत्र निश्चितम्। श्राद्धानि षोडशापि स्युः सपिण्डीकरणं विना ॥ इदं पञ्चवर्षोत्तरम्,

और चूडाकर्म के हो जाने पर विपत्ति यदि हो जाय तो सूतकान्त में वृष (बैल) का उत्सर्ग (त्याग) करे। वहाँ पर दाह करना चाहिये और उदकदान वहाँ पर निश्चित है। सपिण्डीकरण के विना सोलहश्राद्ध होते हैं। यह पाँच साल के बाद की विधि है।

जन्मतः पञ्चवर्षाणि भुङ्क्ते दत्तमसंस्कृतम्। पञ्चवर्षाधिके बाले विपत्तिर्यदि जायते ॥ वृषोत्सर्गादिकं कर्म कर्तव्यमुदकं ततः। अहन्यहनि सम्प्राप्ते कुर्याच्छ्राद्धानि षोडश ॥ पायसेन गुडेनैव पिण्डं दद्याद्यथाक्रमम्। उदकुम्भप्रदानं च पददानानि यानि च। दीपदानानि यत् किञ्चित् पञ्चवर्षाधिके सदा। कर्तव्यं तु खगश्रेष्ठ व्रतार्वाक् प्रेततृप्तये ॥ स्वाहाकारेणैव कार्याण्येकोद्दिष्टानि षोडश। ऋजुदर्भैस्तिलैः शुक्लैः प्राचीनावीतिना तथा ॥ इति तत्रैवोक्तेः। अत्र मूलं चिन्त्यम्। वार्षिकादि न भवत्येव। सपिण्डनत्वाभावे पितृत्वायोगात् वचनाभावाच्च।

बालक जन्म से पाँच साल में असंस्कृत दिये हुए अन्न को खाता है। पाँच साल से अधिक बालक में यदि विपत्ति हो जाय (अर्थात्—बालक मर जाय) तो वृषोत्सर्ग आदि कर्म तथा उदकदान करना चाहिये

और प्रतिदिन के प्राप्त होने पर सोलह श्राद्धों को करे। यथाक्रम खीर या गुड से ही पिण्ड दे। जल से भरा कुम्भदान, पददान, दीपदान आदि जो कुछ है पाँच साल के अधिक में सदा दे। हे खगश्रेष्ठ, प्रेत की तृप्ति के लिए व्रत (यज्ञोपवीत) के पूर्व करना चाहिये। स्वाहाकार से ही सोलहश्राद्ध एकोद्दिष्टविधि से करे। ऋजुकुशा, सफेद तिल और प्राचीनावीति (अपसव्य) से करे। यह वहीं पर कहा है। यहाँ पर मूल विचारणीय है। वार्षिक आदि तो नहीं ही होता है। सपिण्डन के अभाव में पितृत्व के अयोग से और वचन (संन्यासी का आब्दिक आदि होता है वचनबल से) के अभाव से।

दिवोदासीये—अव्रते निधनं प्राप्ते विप्रादौ शूद्रजातिवत्। क्रियाः सर्वाः समुद्दिष्टाः सपिण्डीकरणं विना॥ उदकं पिण्डदानं च कृतचूडे विधीयते। इति।

दिवोदासीय में कहा है—जिसका यज्ञोपवीतसंस्कार न हुआ हो उसका मरण प्राप्त होने पर ब्राह्मणादि में शूद्र जाति के सदृश सपिण्डीकरण को छोडकर सारी क्रियाएँ समान कही गयी हैं। उदक और पिण्डदान को चूडाकरणसंस्कार के बाद विधान किया है।

(स्त्रीणामुद्वाहात् पूर्वमृतानां पिण्डदाने विचारः)

स्त्रीणां तूद्वाहात्प्रागुदकपिण्डदानविकल्पः। 'स्त्रीणां चैकेऽप्रत्तानाम्' इति गौतमोक्तेः। 'स्त्रीशूद्राश्च सधर्माणः' इति वचनाच्छूद्रेऽप्येवम्। एतद् द्वयोर्निमित्ताशौचं सर्ववर्णसमम्। 'तुल्यं वयसि सर्वेषामतिक्रान्ते तथैव च। इति व्याघ्रपादोक्तेः।

विवाह के पूर्व कन्याओं का उदक और पिण्डदान में विकल्प है। किसी का मत है—अप्रमत—अविवाहित कन्याओं का उदक और पिण्डदान करना स्वीकार करते हैं—और शूद्राओं का एक सा धर्म है—इस वचन से शूद्र में भी यही है। इन दोनों को निमित्त मानकर सब वर्णों को आशौच समान (बराबर) है। क्योंकि व्याघ्रपाद ने कहा है—सब वर्णों की अवस्था में और व्यतीत हो जाने पर वैसा ही बराबर सा आशौच होता है।

यानि तु—निर्वृत्तचूडके विप्रे त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते। निवृत्ते क्षत्रिये षड्भिर्वैश्ये नवभिरुच्यते॥ शूद्रे त्रिवर्षन्यूने तु मृते शुद्धिस्तु पञ्चभिः। अत ऊर्ध्वं मृते शूद्रे द्वादशाहो विधीयते॥ षड्वर्षान्तमतीते तु शूद्रे मासमशौचकम्। इत्याङ्गिरसादीनि, तानि शिष्टविगानान्नादर्तव्यानीति विज्ञानेश्वरमदनपारिजातादयः। तेनैतद्वशाच्छूद्राणां व्यवस्था प्रागुक्ता हेयैव। 'तुल्यं वयसि सर्वेषाम्' इति दाक्षिणात्यपरम्। अन्यदेशे कौर्मोक्ता व्यवस्थेति शुद्धितत्त्वे।

जो ये वचन हैं—चूड़ाकरणसंस्कार के हो जाने के बाद ब्राह्मण बालक के मरने पर तीन रात में शुद्धि कही है। क्षत्रिय बालक के चूडाकरणसंस्कार के बाद छ रात में, वैश्य बालक के चूडाकरण संस्कार के बाद नौ रात में शुद्धि कही है। तीनसाल से कम शूद्र के मरने पर पाँच रात में शुद्धि होती है। इसके बाद शूद्र के मरने पर बारहदिन में शुद्धि का विधान किया है। छ साल के व्यतीत होने पर तो शूद्र के मरने पर एकमहिने का आशौच होता है इत्यादि वचन आंगिरस आदि के हैं, वे वचन शिष्टों के निन्दनीय होने से उनका आदर नहीं करना चाहिये—यह विज्ञानेश्वर, मदनपारिजात आदि ने कहा है। इससे इस वश (वचन) से पहले कही हुई शूद्रों की व्यवस्था त्यागने ही योग्य है। 'तुल्ये वयसि सर्वेषाम्'—अवस्था निमित्त जो आशौच है वह ब्राह्मणादियों को बराबर है—यह दक्षिणात्यपरक है। अन्य (दूसरे) देश के लिए तो कूर्मपुराण मे कही हुई व्यवस्था उचित है। ऐसा शुद्धितत्त्व में कहा है।

(जात्याशौचविचारः)

अथ जात्याशौचम्। तच्च द्विजपुंसामुपनयनोर्ध्वं प्रवर्त्तते। त्रिरात्रमात्रतादेशाद् दशरात्रमतः परम्। क्षत्रस्य द्वादशाहानि विशः पञ्चदशैव तु॥ त्रिंशद्दिनानि शूद्रस्य तदर्धं न्यायवर्तिनः॥ इति याज्ञवल्क्योक्तेः। (या० प्राय० श्लो० २२, २३)।

इसकेबाद जाती का आशौच कहते हैं। वह द्विज के (द्विजस्त्रियों के विवाहोत्तर) बालकों के उपनयन के पूर्व आरंभ होता है। याज्ञवल्क्य ने कहा है—यज्ञोपवीतसंस्कार होने के पहले (मृत्यु हो जाने

पर) तीन रात और व्रतबन्धसंस्कार हो जाने के बाद मृत्यु हो जाने पर दशदिन का (ब्राह्मणादियों को) आशौच होता है। (सपिण्ड के जनन तथा मृत्युपर) क्षत्रिय को बारहदिन का, वैश्य को पन्द्रहदिन का और शूद्र को तीनदिन का आशौच होता है। न्यायवर्ति (द्विजशुश्रूषादि-स्वधर्म में अनुष्ठित) शूद्र को पन्द्रहदिन का आशौच होता है।

यत्तु स एव—त्रिरात्रं दशरात्रं वा शावमाशौचमिष्यते ॥ (या० प्रा० १८) इत्याह। तत्र दशाहे त्रिरात्रमस्पृश्यत्वम्, एकदिनोत्पन्ने आशौचद्वये दशाहमस्पृश्यत्वम्।

जो याज्ञवल्क्य ने ही कहा है—शावनिमित्त (मरण निमित्त) आशौच तीनरात या दसरात का होता है। वहाँ पर (शुद्धिविवेक आदि मत से) दशदिन में तीनदिन तक स्पर्श न करे। एकदिन में उत्पन्न हो पर दो आशौच के होजाने पर दशदिन तक अस्पृश्यत्व रहता है।

मरणं यदि तुल्यं स्यान्मरणेन कथञ्चन। अस्पृश्यं तु भवेद् गोत्रं सर्वमेव सबान्धवम् ॥ इत्यङ्गिरसोक्तेः। दशाहाशौचपरत्वे 'दशरात्रमतः परम्' इत्यनेन पौनरुक्त्यापत्तेरिति शुद्धिविवेकादयः। तन्न, स्मृतिभेदात्। त्रिरात्रं दशरात्रं वेति विकल्पायोगाच्च। यस्तु पुत्राणां वेदानध्याप्य वृत्तिं विदधाति तत्राहाश्वलायनः (अ. ४, ख. ४, सू. १७, पृ. ११४)—'द्वादशरात्रं वा महागुरुषु दानाध्ययने वर्जयेरन्' इति। अत्र यावदुक्तनिषेधौ वाऽस्पृश्यत्वमात्रं वा न तु कर्मानधिकारः। एकादशाहान्ते वैश्वदेवोक्तेः। एकादशाहिके मुक्त्वा तत्र ह्यन्ते विधीयते। इति।

आङ्गिरा ने कहा है—एक की मृत्यु हो जाने पर कदाचित् दूसरी मृत्यु हो जाय तो सब बान्धव के सहित सगोत्री अस्पृश्य (स्पर्शकरने योग्य नहीं) होते हैं। दशाह आशौच बोधक मानने पर तो इसके बाद दशरात का आशौच होता है। इससे पुनरुक्ति (दूसरी बार कहना) दोष की आपत्ति हो जायगी। ऐसा शुद्धिविवेक आदि ने कहा है। यह उचित नहीं है। क्योंकि—स्मृतियों का (क्व पौनरुक्त्यम्—ऐसा अर्थ होगा) भेद है। तीनरात या दसरात का आशौच होता है ऐसा विकल्प का अयोग हो जाता है। जो पुत्रों को (स्मृत्यन्तरे—पुत्रानुत्पाद्य वेदार्थं ग्राहयित्वा यथाविधि। वृत्तिं च यो विदधते कथ्यते स महागुरुः ॥) वेदाध्ययन कराकर जीविका कराना चाहता है। वहाँ पर आश्वलायन ने कहा है—(मातापितरौ यश्चोपनीय कृत्स्नं वेदमध्यापयत्येते महागुरवः) जिस बालक के माता पिता ने उपनयन कर जो संपूर्ण वेद को पढ़ाते हैं वे महागुरु हैं। ऐसे गुरुओं के मरने पर बारह रात दान और अध्ययन त्याग दे। (यहाँ 'वा' का विकल्प अर्थ दशाहं सपिण्डेषु।) या यहाँ पर जो कहा हुआ जो निषेध है या अस्पृश्यत्वमात्र है, कर्म में अधिकार नहीं है। एकादशाह के अन्त में बलिवैश्वदेव को कहा है। एकादशाह को छोड़कर उसके अन्त में बलिवैश्वदेव का विधान किया है।

(पित्रादयो महागुरवः)

शुद्धितत्वे तु—'त्रयः पुरुषस्यातिगुरवो भवन्ति माता पिताचार्यश्च' इति विष्णूक्तेः। पित्रादयो महागुरवः।

शुद्धितत्त्व में तो कहा है—माता, पिता और आचार्य (उपनीय दद्वेदमाचार्यः स उदाहृतः। ये तीन पुरुष अतिगुरु होते हैं। ऐसा विष्णु ने कहा है। पिता आदि महागुरु कहे जाते हैं।

(स्त्रीणां पतिरेव गुरुः)

भर्ताप्युक्तो रामायणे—पतिर्बन्धुर्गतिर्भर्ता दैवतं गुरुरेव च।

रामायण में कहा है—पति भी गुरु है। बन्धु, गति, देवता, गुरु ही स्त्रियों का पति ही है।

शातातपः—पतिरेको गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः। एकपदविमूढानां पितृमातृनिषेधार्थम्। सोदकानां त्रिरात्रम्, त्र्यहादुदकदायिनः इति मनूक्तेः (अ० ५ श्लो० ६४)।

शातातप ने कहा है—स्त्रियों का पति ही गुरु है। सबका अभ्यागत गुरु होता है। एकपद में फुसलाये हुओं का पिता और माता के निषेधार्थ है। सोदका को तीन रात का आशौच होता है। उदकदान देनेवाले तीनदिन में पवित्र होते हैं—ऐसा मनु ने कहा है।

(सपिण्डादीनां लक्षणकथनम्)

अग्निपुराणे—सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते। समानोदकभावस्तु निवर्तेत चतुर्दशे॥ जन्मनामस्मृतेर्वैके तत्परं गोत्रमुच्यते।

अग्निपुराण में कहा है—सपिण्डता (सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते। समानोदक—भावस्तु जन्मनाम्नोरवेदने॥) तो सातवीं पीढी में हट जाती है समानोदकता तो चौदह पीढ़ी तक में दूर होती है। किसी के मत से जन्म नाम की स्मृति (ज्ञान) हो उसके बाद गोत्र कहा जाता है।

बृहस्पतिः—दशाहेन सपिण्डास्तु शुध्यन्ति प्रेतसूतके।
त्रिरात्रेण सकुल्यास्तु स्नात्वा शुध्यन्ति गोत्रजाः॥

बृहस्पति ने कहा है—सपिण्ड प्रेत के सूतक में दशदिन में शुद्ध होते है। 'सकुल्य' तीनरात में और 'गोत्रज' स्नान कर शुद्ध होते हैं।

(स्त्रीशूद्रयोर्विवाहोर्ध्वं जात्याशौचकथनम्)

स्त्रीशूद्रयोस्तु विवाहोर्ध्वं जात्याशौचम्। वैवाहिको विधिः स्त्रीणामौपनायनिकः स्मृतः। इत्युक्तेः, दत्तानां भर्तुरेव हि। स्वजात्युक्तमशौचं स्यान्मृतके जातके तथा। इति माधवीये ब्राह्माच। शूद्रस्य विवाहाभावेऽपि षोडशवर्षोर्ध्वं मासः, अनूढभार्यः शूद्रस्तु षोडशाद्वत्सरात्परम्। मृत्युं समधिगच्छेचेन्मासात्तस्यापि बान्धवाः। शुद्धिं समधिगच्छन्ति नात्र कार्या विचारणा॥ इत्यपरार्के शङ्खोक्तेः। निर्णयामृतमदनपारिजातादौ त्वन्यथोक्तम्।

स्त्री और शूद्र का तो विवाह के बाद जाती का आशौच लगता है। स्त्रियों की उपनयनस्थानीय विवाहविधि होती है। एसा कहा है। विवाह के बाद दी हुई कन्याओं का पति ही कुल (वंश) का आशौच प्राप्त होता है। और माधवीय में ब्रह्मपुराण का बचन है—अपनी जाती में कहा हुआ आशौच मरण तथा उत्पत्ति में लगता है। शूद्र के विवाह के अभाव में भी सोलहसाल के बाद एकमहिने का आशौच होता है। अपरार्क में शंख ने कहा है—जिस शूद्र का विवाह नहीं हुआ है एसे शूद्र के सोलहवर्ष के बाद मृत्यु को प्राप्त होने पर उसके बान्धव एक महीने में शुद्ध होते हैं। इसमें किसीप्रकार का विचार नहीं करना चाहिये। निर्णयामृत, मदनपारिजात आदि में तो विपरीत कहा है।

हारीतः—आ मौञ्जीबन्धनाद्विप्रः क्षत्रियश्च धनुर्ग्रहात्। आप्रतोदग्रहाद्वैश्यः शूद्रो वस्त्रद्वयग्रहात्॥ धनुःप्रतोदावष्टमेऽब्दे द्वादशे वस्त्रद्वयमिति।

हारीत ने कहा है—मौञ्जीबन्धन से पूर्व ब्राह्मण, धनुषग्रहण से पूर्व क्षत्रिय, प्रतोद (कृषिकर्म में नियुक्त बैलों की शिक्षा के लिए चाबुक) ग्रहण करने से वैश्य और दो वस्त्र ग्रहण करने से पूर्व शूद्र को आशौच होता है। धनुष और प्रतोद से आठवें साल में तथा बारहवें वर्ष में दो वस्त्र कहे हैं।

मेधातिथिस्तु—त्रिरात्रमात्रतादेशात्—इत्यत्र व्रतं कालोपलक्षणार्थम्। स च कालः स्वकीयः सर्वेषां चाष्टमवर्षरूपः। तेन चतुर्णामपि वर्णानामुपनयनाभावेऽप्यष्टमादूर्ध्वं पूर्णमेवाशौचम्। तथापि 'प्रागष्टमाच्छिशवः प्रोक्ताः' इति स्मृत्यन्तरादूर्ध्वं सम्पूर्णमर्वाक् त्रिरात्रम्। येऽपि 'आषोडशाद्भवेद् बालः' इत्याहुस्तेषामप्यष्टमादूर्ध्वं शूद्रे मास एव, ऊर्ध्वमष्टभ्यो वर्षेभ्यः शुद्धिः शूद्रस्य मासिकी इति वचनादित्याह। हारलताशुद्धितत्त्वादिगौडग्रन्थेष्वप्युक्तम्—

मेधातिथि ने तो कहा है—यज्ञोपवीत से पूर्व तीनरात का आशौच होता है—यहाँ पर व्रतकाल (समय) का उपलक्षण है। वह काल स्वकीय (अपना) सबों का आठवाँ साल ही रूप है। करे। इससे चारो वर्णों का भी उपनयन के अभाव में आठसाल के बाद पूरा ही आशौच होता है। उसमें भी आठसाल के पूर्व शिशु कहे जाते हैं इस स्मृत्यन्तर से बाद संपूर्ण के पूर्व तीन रात का आशौच होता है। जो भी सोलहसाल के पहले बालक कहा है। उनका भी आठवें साल के ऊपर और शूद्र के यहाँ एक

महिनेमें ही शुद्धि होती है। आठसालके बाद तथा शूद्रकी शुद्धि एकमासमें होती है। हारलता, शुद्धितत्त्वादि गौडग्रन्थों में यही कहा है।

अनुपनीतो विप्र इत्युक्त्वा—म्रियते यत्र तत्र स्यादाशौचं त्र्यहमेव हि। द्विजन्मनामयं कालस्त्रयाणां तु षडाब्दिकः॥ इत्यादिपुराणोक्तेरुपनयनकालोपलक्षणम्। षडब्दपदं मासत्रयाधिकपरम्। गर्भाष्टमेऽष्टमे वाब्दे इत्युक्तेः।

अनुपनीत ब्राह्मण-एसा कहकर—कहते हैं—जहाँ कहीं पर बालक मरे उनका आशौच तीन ही दिन का होता है। यह द्विजन्म तीनों जाति का छसाल तक का काल है। यह आदिपुराण में उपनयनकाल का उपलक्षण कहा है। षडब्दपद (छ साल) तीनमहिने से अधिक परक है। गर्भ से आठवें या जन्म से आठवें में करे एसा कहा है।

यत्तु जाबालः—व्रतचूडाद्विजानां च प्रतीतिषु यथाक्रमम्। दशाहे त्र्यह एकाहे शुध्यन्त्यपि हि निर्गुणा॥ इति। द्विजा दन्ताः। इदं प्रतीतिष्वित्युक्तेः पञ्चाब्दोपनीतपरमिति। तदेतन्नाद्रियन्ते वृद्धाः।

जो जाबाल ने कहा है—यज्ञोपवीत, चूडाकरण और दन्तोत्पत्तियों में प्रतीति (प्रत्यक्ष) होने पर क्रम से दशदिन, तीनदिन और एकदिन में ही निर्गुण शुद्ध होते ही हैं। द्विज माने—दांत। यह प्रत्यक्ष होने पर—एसा कहा है। पांचसाल की अवस्था में यज्ञोपवीतसंस्कार हुआ हो—उसपरक है। उसका वृद्ध (मेधातिथि आदि) आदर नहीं करते हैं।

यानि तु पराशरः—एकाहाद् ब्राह्मणः शुद्ध्येद्योऽग्निवेदसमन्वितः। त्र्यहात्केवलवेदस्तु द्विहीनो दशभिर्दिनैः॥ केवलवेदः केवलश्रौताग्नेरप्युपलक्षणम्। अयं सङ्कोचो होमाध्ययनपर एव न तु सन्ध्यादाविति हारलतायाम्।

जिन वचनों को पराशर ने कहा है—जो अग्नि और वेदसे युक्त है वह ब्राह्मण एकदिन में शुद्ध होता है। केवल वेद का जानकार (वेदपाठी) तीनदिन में और उससे रहित दशदिन में शुद्ध होता है। केवल वेद शब्द-केवल श्रौताग्नि का भी उपलक्षण है। यह संकोच होम तथा अध्ययनपरक ही है सन्ध्या आदि में नहीं है—एसा हारलता में कहा है।

(सर्ववर्णानां दशाहादेवशुद्धिकथनम्)

अङ्गिराः—सर्वेषामेव वर्णानां सूतके मृतके तथा।
दशाहाच्छुद्धिरेतेषामिति शातातपोऽब्रवीत्॥

अंगिरा ने कहा है—सूतक और मरण में इन सब वर्णों की ही दशदिन में शुद्धि होती है—एसा शातातप ने कहा है।

देवलः—आशुच्यं दशरात्रं तु सर्वेषामपरे विदुः। निधने प्रसवे चैव पश्यन्तः कर्मणः क्षयम्।

देवल ने कहा है—दूसरे लोग (ऋषिगण) मरण और प्रसव (उत्पत्ति) में कर्म के नाश को देखते हुए सब वर्णों का दशदिन का आशौच कहते हैं।

अत्यन्तोत्कृष्टस्य कर्महानौ पीडावतो विप्रपरिचर्यापरस्य शूद्रे दशरात्रमिति हारलतायाम्।

हारलता में कहा है—अत्यन्त उत्कृष्ट (उत्तम) शूद्र के कर्म की हानि में पीड़ित होता हुआ ब्राह्मण की सेवा में तत्पर रहता है उस शूद्र को दशदिन का आशौच होता है।

(सूतके दशपक्षाः)

दक्षः—सद्यःशौचं तथैकाहस्त्र्यहश्चतुरहस्तथा। षड्दशद्वादशाहश्च पक्षो मासस्तथैव च॥ मरणान्तं तथा चान्यद् दशपक्षास्तु सूतके।

दक्ष ने कहा है—सद्यःशौच, एकाह—एकदिन, तीनदिन, चारदिन, छदिन, दशदिन, बारह दिन, पन्द्रहदिन, एकमास और मरणान्त आशौच ये दशपक्ष सूतक में होते हैं।

मिताचरायां स्मृत्यन्तरे—चतुर्थे दशरात्रं स्यात्षण्णिशाः पुंसि पञ्चमे। षष्ठे चतुरहाच्छुद्धिः सप्तमे तु दिनत्रयम् ॥ अष्टमे दिनमेकं स्यान्नवने यामकद्वयम्। दशमे स्नानमात्रेण चैतद् गौणं तु सूतकम् ॥ इत्यादीनि, तान्यापदनापद्गुणवद्गुणवद्विषयाणि देशाचारभेदाद्वा ज्ञेयानि। सद्यः शौचादिषडहन्ताः पचा यायावरादिपराः। अत्र मरणान्तं जननादिनिमित्ताद्भिन्नम्। (अस्वर्ग्यं लोकविद्विष्टं धर्म्यमप्याचरेन्न तु। इत्युक्तत्वान्मधुपर्कपशवालम्भवत्) शिष्टविगानान्नादर्तव्यानीति विज्ञानेश्वरः।

मिताचरा में स्मृत्यन्तर का वचन है—चतुर्थपीढ़ी (विप्रपरक है) में दशरात, पांचवीपीढी में—छः रात, छठीपीढी में चारदिन, सातवीं पीढी में—तीनदिन, आठवें दिन एकदिन, नवें दिन दो याम (छ घण्टा) और दशवें दिन स्नानमात्र से शुद्धि होती है। यह सूतक गौण है। इत्यादि (क्षत्रियस्तु दशाहेन स्वकर्मनिरतः शुचिः। तथैव द्वादशाहेन वैश्यः शुद्धिमवाप्नुयात् ॥ एकादशाहाद्राजन्यो वैश्यो द्वादशभिस्तथा। शूद्रो विंशतिरात्रेण शुध्यते मृतसूतके ॥) जो वचन हैं वे आपत्ति अनापत्ति, गुण और निर्गुण विषयक हैं या देशाचारभेद से जानना चाहिये। सद्यःशौचादि छदिनतक के पच्च यायावर (याजन, अध्ययन और प्रतिग्रह से हीन) आदि परक है। यहाँ पर मरणान्त आशौच [1]जननादिनिमित्त से भिन्न (पृथक्) है। (विज्ञानेश्वर ने कहा है—शिष्टों (विद्वानों) से निन्दित होने से (पूर्व कहे हुए वचन आदर के योग नहीं हैं) निन्दित है। धर्म होते हुए भी लोक में निन्दनीय और अस्वर्ग्य होने के कारण एसे धर्म का आचरण नहीं करना चाहिये। एसा कहनेपर मधुपर्क में पशवालंभ की तरह।)

अस्नात्वा चाप्यहुत्वा वा अदत्वाऽश्नंस्तथा द्विजः। एवंविधस्य विप्रस्य सर्वदा सूतकं सदा ॥ इति दक्षोक्त्या—

स्नान बिना किये, बिना हवन किये और बिना दान किये जो द्विज भोजन करता है। एसे द्विज को सदा ही सूतक होता है—एसा दक्ष के वचन से।

अन्यपूर्वा यस्य गेहे भार्या स्यात्तस्य नित्यशः। आशौचं सर्वकार्येषु देहे भवति सर्वदा ॥ इति ब्राह्मादिवशाद्व्यवस्थेत्यपरार्कमदनपारिजातादयः।

जिसके घर में एसी पत्नी को जिसका अन्य पति हो उसके कार्यों में और शरीर में सदा आशौच रहता है। यह ब्रह्मपुराण आदि के कथन से व्यवस्था जानना चाहिये—यह अपरार्क, मदनपारिजात आदि ने कहा है।

माधवस्तु—वृत्तस्वाध्यायसापेक्षमघसङ्कोचनं तथा। इति कलिवर्ज्येत्पूक्तेः—

माधव ने तो कहा है—अग्निहोत्रादि का अनुष्ठान, वेदाध्ययन और पाप का संकोच कलिवर्ज्यप्रकरण में कहा है।

दशाह एव विप्रस्य सपिण्डमरणे सति। कल्पान्तराणि कुर्वाणः कलौ भवति किल्बिषी ॥ इति हारीतोक्तेश्च न्यूनाशौचपचा युगान्तरविषयाः। मरणान्तादिपचास्तु निन्दार्थवादः। अन्यथा नामधारकविप्रस्तु दशाहं सूतकी भवेत्। इति विरोधः स्यादित्याह।

सपिण्ड के मरने पर ब्राह्मण को दशदिन का ही सूतक होता है। कल्पान्तरों (अन्यपचों) को मानने पर कलियुग में पाप का भागी होता है यह हारीत ने कहा है। न्यून (कम) आशौचपच युगान्तर (दूसरे युगों के लिए) विषय हैं। मरणान्तादिपच में (शंखः—हीनवर्णा तु या नारी प्रमादात्प्रसवं व्रजेत्। प्रसवे मरणे तज्जमाशौचं नापशाम्यति ॥) स्मृत्यन्तरे-व्याधितस्य कदर्यस्य ऋणग्रस्तस्य सर्वदा। क्रियाहीनस्य मूर्खस्य स्त्रीजितस्य विशेषतः। व्यसनासक्तचित्तस्य पराधीनस्य नित्यशः। श्राद्धत्यागहीनस्य भस्मान्तं

[1]—जैसे विवाह में मधुपर्क के समय में अर्घ्यप्रदान के प्रसंग में (न त्वेवामांसोऽर्घः स्यात्) मांस के बिना अर्घ्य नहीं हो सकता है। इस वाक्य से मांस का विधान होने पर भी लोक में निन्दनीय अकल्याणकारण होने से पशुवध के स्थान पर तृणच्छेदन किया जाता है।

सूतकं भवेत्॥) निन्दा से अर्थवाद है। अन्यथा--नामधारक (व्यासः--ब्रह्मबीजसमुत्पन्नो मन्त्रसंस्कार-वर्जितः। जातिमात्रोपजीवी च स भवेन्नामधारकः॥ न कर्मविन्न चाधीते स भवेन्नामधारकः॥ ब्राह्मण को तो दशदिन का आशौच होता है। इससे विरोध होगा--ऐसा कहा है।

यत्तु देवलः—दशाहादित्रिभागेन कृते सञ्चयने क्रमात्। अङ्गस्पर्शनमिच्छन्ति वर्णानां तत्त्व-दर्शिनः॥ इति।

जो देवल ने कहा है--दशाह आदि आशौच के क्रम से तीनभाग करने पर अस्थि-संचय को करने पर वर्णों के (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) अङ्ग (शरीर) स्पर्श का तत्त्व के देखनेवाले इच्छा करते हैं।

(पूर्णाशौचे स्पर्शनिर्णयकथनम्)

पूर्णाशौचे स्पृश्यतामाह। यच्चानुपनीतातिक्रान्ताशौचे त्रिरात्रादौ तेनैवोक्तम्--स्वाशौच-कालाद्विज्ञेयं स्पर्शनं तु त्रिभागतः। इति। तदपि युगान्तरेषु, अस्थिसञ्चयनादूर्ध्वमङ्गस्पर्शनमेव च। इति माधवीये कलौ तन्निषेधात्।

यह पूर्णाशौच में स्पृश्यता कहा है। और जो अनुपनीत और अतिक्रान्त (व्यतीत) आशौच में तीन-रात आदि में उसने कहा है--अपने आशौच के समय से तीसरे भाग से स्पर्श जानना चाहिये। वह भी युगान्तरों में है। अस्थिसञ्चय के बाद ही अङ्गस्पर्श ही करे। ऐसा माधवीय में कलियुग में उसका निषेध है।

यत्तु हारलतायाम्—चतुर्थेऽहनि कर्तव्यः संस्पर्शो ब्राह्मणस्य तु। इति प्रचेतसोक्तेस्त्र्यहैकाहा-शौचेऽपि चतुर्थाह एवाङ्गस्पर्श इति। तन्न, देवलादिवशेनास्य दशाहगोचरत्वात्। ये तु वर्ण-सङ्करजा मूर्धावसिक्ताद्यास्तेषामाशौचविशेषः कलौ नोपयुक्त इति नोच्यते। प्रतिलोमजानां ना-शौचम्। मलापकर्षणार्थं तु स्नानमात्रमिति विज्ञानेश्वरः।

जो हारलता में कहा है--ब्राह्मण का स्पर्श चौथे दिन में करना चाहिये। ऐसा प्रचेतस के कथन से तीनदिन और एकदिन के आशौच में भी चौथेदिन ही अंग का स्पर्श करे। यह उचित नहीं है। देवल आदि के कथन से इस वचन का दशदिन के आशौच के विषय में है। जो लोग वर्णशंकर से उत्पन्न हुए (ब्राह्मण से क्षत्रिया स्त्री में उत्पन्न क्षत्रिय, क्षत्रिय से वैश्यजातीय स्त्री में उत्पन्न वैश्य, वैश्य से शूद्रा में उत्पन्न शूद्र) मूर्धावसिक्त (ब्राह्मण द्वारा विवाहित क्षत्रिया पत्नी से उत्पन्न याज्ञवल्क्यस्मृति आचाराध्याय श्लो० ९१-९६ तक देखिये।) आदि में उनका आशौच विशेष (हारीतः—एकाहाच्छुध्यते विप्रो जन्महानौ स्वयोनिषु। षड्भिस्त्रिभिरथैकेन क्षत्रविट्शूद्रयोनिषु॥) कलियुग (हीन और उत्तम वर्ण का विवाह) में नहीं कहा है। प्रतिलोमज (जो धर्म से हीन—सूतादि) का आशौच नहीं होता है। मैल को दूर तक के लिए स्नानमात्र ही विज्ञानेश्वर ने कहा है।

माधवस्तु—शौचाशौचे प्रकुर्वीरन् शूद्रवद्वर्णसङ्कराः। इति ब्राह्मोक्तेः शूद्रवदाह। हारलताऽप्ये-वम्। दत्तक्रीतकृत्रिमादिपुत्रेषु अहीनवर्णगासु स्त्रीषु च सपिण्डत्वेऽपि प्रसवे मरणे च। पूर्वापर-पित्रोर्भर्त्रोश्च त्रिरात्रमेव न दशाहादि,

माधव ने तो कहा है--शौच और आशौच में शूद्र की तरह वर्णशंकर करें। ऐसा ब्रह्मपुराण के वचन से शूद्र की तरह (जिस निमित्त में सूतकादि शूद्र को है वही यहाँ पर करे।) कहा है। हारलता में भी यही है।

दत्तक (स्वयंदत्त), क्रीत (खरीदा हुआ), कृत्रिम आदि पुत्रों में और प्रतिलोम से भिन्न स्त्रियों में सपिण्ड के रहने पर भी प्रसव (जन्म) तथा मरण में पूर्वापर (पहले और बाद के) पिता माताओं को (अर्थात्-बीजि और क्षेत्री को) और पति को तीन रात का ही आशौच होता है। दशदिन का नहीं होता है।

अनौरसेषु पुत्रेषु जातेषु च मृतेषु च। परपूर्वासु भार्यासु प्रसूतासु मृतासु च॥ इति त्रिरात्रानुवृत्तौ विष्णूक्तेः। सपिण्डानां त्वेकाहः। परपूर्वासु भार्यासु पुत्रेषु कृतकेषु च। भर्तृपि-त्रोस्त्रिरात्रं स्यादेकाहस्तु सपिण्डतः॥ इति माधवीये हारीतोक्तेः।

अपनी धर्मपत्नी से भिन्न उत्पन्न अनौरस क्षेत्रज-दत्तक आदि पुत्रों के उत्पन्न होने पर तथा मरने पर दूसरे पास स्त्रियों के जाने पर (और अपने पति के पास रहने पर) उन स्त्रियों में उत्पन्न पुत्रादि के होने पर या मरने पर तीनदिन का आशौच होता है। विष्णु ने तीन रात की अनुवृत्ति कही है। सपिण्डों को तो एकदिन कहा है। पर तथा पूर्वा स्त्रियों में अशास्त्रीय पुत्रों के मरने पर पति तथा माता-पिता को तीनदिन का आशौच होता है। एकदिन का सपिण्डों को होता है—यह माधवीय में हारीत ने कहा है।

सूतके मृतके चैव त्रिरात्रं परपूर्वयोः। एकाहस्तु सपिण्डानां त्रिरात्रं यत्र वै पितुः॥ इति मरीच्युक्तेश्च।

और मरीचि ने कहा है—सूतक और मरण में पहले और बाद के पिता (पति) को तीन दिन का आशौच होता है। सपिण्डों को (अर्थात्—पहले और बाद के) एकदिन का आशौच होता है।

(अनौरसेषु पुत्रेषु)

शङ्खः—अनौरसेषु पुत्रेषु भार्यास्वन्यगतासु च। परपूर्वासु च स्त्रीषु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते॥ परपूर्वा= पुनर्भूः। इदं सवर्णासु।

शंख ने कहा है—धर्मपत्नी से भिन्न पुत्रों में, अन्य में आसक्त स्त्रियों में और पुनर्भू स्त्रियों में तीनरात में शुद्धि कही है। यह सवर्णा में है। परपूर्वा का अर्थ पुनर्भू है। फिर से विवाह करनेवाली।

हीनवर्णासु तु शङ्खलिखितौ—परपूर्वासु भार्यासु पुत्रेषु कृतकेषु च।
नानध्यायो भवेत्तस्य नाशौचं नोदकक्रिया॥

हीनवर्णों में तो शंख और लिखितस्मृति में कहा है—परपूर्वा (पुनर्भू) भार्याओं और अशास्त्रीय पुत्रों के मरने पर अनध्याय, आशौच, उदकक्रिया तथा जलदान उनका नहीं होता है।

ब्राह्मेऽपि—आशौचं तु त्रिरात्रं स्यात्समवर्णेषु निश्चितम्।

ब्रह्मपुराण में भी कहा है—समान वर्णों में निश्चित तीनरात का आशौच होता है।

यत्तु षडशीतौ—अन्यपूर्वावरुद्धासु त्रिदिनाच्छुद्धिरिष्यते। तास्वेवानन्यपूर्वासु पञ्चाहोभिर्विशुद्ध्यति॥ इति। तत्र पञ्चाहे मूलं चिन्त्यम्।

जो षडशीति में कहा है—अन्यपूर्वा (जिनका वाग्दान किसी औरों के साथ हो चुका हो) उन अवरुद्धों की अर्थात्-रुके हुवों की तीनदिन में शुद्धि कही है। उनमें से ही अनन्यपूर्वाओं (दूसरे की ओर न जानेवालियों) की शुद्धि पांचदिन में होती है। पांचदिन में शुद्धि जो कही है उसमें मूल विचारणीय है।

यत्तु याज्ञवल्क्यः (प्रा. श्लो. २५)—अनौरसेषु पुत्रेषु भार्यास्वन्यगतासु च। इत्येकाहमाह। तदसन्निधौ ज्ञेयम्। यदा पितुरेकाहस्तदा सपिण्डानां स्नानम्।

औरस के अतिरिक्त (क्षेत्रज, दत्तक आदि) पुत्रों के जन्म और मरण में दूसरे पुरुष पर आश्रित रहनेवाली पत्नियों की प्रसूता में और मरण में एकदिन (अहोरात्र) आशौच होता है। (अर्थात्—दशदिन का नहीं होता है।) उसकी असन्निधि (यस्य यदाशौचं तावत्कालमध्ये तच्छ्रोता स सन्निधिः। इसीप्रकार त्रिरात्रादि में प्रथमदिन श्रवण में पूर्ण आशौच होता है। दूसरे दिन आदि में सुनने पर अवशिष्टदिन से शुद्धि होती है। चतुर्थदिनादि में आशौच नहीं ही होता है।) में जानना चाहिये। जब पिता को एकदिन का आशौच होता है तो सपिण्डों को स्नानमात्र कहा है।

(अन्याश्रितपत्नीनां परपत्नीसुतानां चाशौचकथनम्)

अन्याश्रितेषु दारेषु परपत्नीसुतेषु च। गोत्रिणः स्नानशुद्धाः स्युस्त्रिरात्रेणैव तत्पिता॥ इति प्रजापत्युक्तेः। पितेति वोढुरुपलक्षणम्, तथोपक्रमात्।

प्रजापति ने कहा है—अन्य पुरुष के आश्रित स्त्रियों में और दूसरे की पत्नी के पुत्रों में गोत्री स्नान से शुद्ध होते हैं। उनके पिता तीनरात में ही शुद्ध होते हैं। पिताशब्द से वहन करनेवाले का उपलक्षण है। वैसा ही उपक्रम है।

(दत्तकमृते पूर्वापरपित्रोराशौचकथनम्)

यत्तु दत्तके पालकप्रतियोगिकपुत्रत्वात् र्वपितुर्न त्रिरात्रम्, पूर्वसम्बन्धनिवृत्तेश्च न दशाहादीति कश्चित् । तन्न, जनकेऽपि—वैजिकादभिसम्बन्धादनुरुन्ध्यादघं त्र्यहम् । इति वाचनिकाशौचस्यानिवार्यत्वात् । पितृमरणेऽपि दत्तकादीनां त्रिरात्रम् ।

जो किसी ने कहा है--दत्तक में पालक प्रतियोगिकपुत्रत्व से पहले पिता को तीनरात का आशौच नहीं होता है और पूर्वसम्बन्ध की निवृत्ति से दशदिन आदि का आशौच नहीं होता है--यह किसी ने कहा है। यह उचित नहीं है। क्योंकि जनक पिता में (उपनीत दत्तक मरण में भी) भी बीज के संबन्ध से तीनदिन पाप का अनुरोध है--यह वाचनिक (वचन) से आशौच का निवारण नहीं हो सकता। पिता के मरने पर भी दत्तक आदियों को तीन रात का आशौच होता है।

शुद्धितत्त्वे ब्राह्मे—दत्तकश्च स्वयं दत्तः कृत्रिमः क्रीत एव च । इति उपक्रम्य—सूतके मृतके चैव त्र्यहाशौचस्य भागिनः । इत्युक्तेः ।

शुद्धितत्त्व में ब्रह्मपुराण का मत है--दत्तक, स्वयंदत्त, कृत्रिम, और क्रीत (खरीदा हुआ) ऐसा उपक्रम कर सूतक और मरण में तीनदिन आशौच के भागी होते हैं।

(दत्तकसापिण्ड्यकथनम्)

स्मृतिकौमुद्यां हारलतायामप्येवम् । दत्तकस्य पुत्रपौत्राणां जनने मरणे वा सपिण्डानामेकाहः 'बीजिनश्च' इति गौतमेन साप्तपौरुषसापिण्ड्योक्तेः सपिण्डानां चैकाहस्योक्तत्वात् । सपिण्डे तु पुत्रीकृते दशाह एव । तत्राकांक्षाभावात् सपिण्डत्वेन दशाहप्राबल्याच्च ।

स्मृतिकौमुदी में और हारलता में भी यही है। दत्तक के पुत्र-पौत्रों के उत्पन्न या मरने पर सपिण्डों को एकदिन का आशौच कहा है। बीजिनश्च—इस गौतम वचन से सात पीढ़ी तक सापिण्ड्य कहा है और सपिण्डों का एकदिन कहा है। सपिण्ड में तो पुत्र करने पर दशदिन का ही आशौच होता है। वहाँ तो आकांक्षा (इच्छा) का अभाव होने से सापिण्ड्य से दशाह का प्राबल्य है।

(पूर्वापरभर्त्रोरुत्पन्नपुत्रयोः)

पूर्वापरभर्त्रुत्पन्नयोः पुत्रयोस्त्वाह माधवीये मरीचिः—मातुरैक्यात् द्विपितृकौ भ्रातरावन्यगोत्रजौ । एकाहं सूतकं तत्र त्रिरात्रं मृतके तयोः ॥ इति दिक् ।

पूर्वापर के पति से उत्पन्न पुत्रों का तो माधवीय में मरीचि ने कहा है—जिसकी माता एक हो और पिता दो हों, भाई अलग अलग गोत्र के हों तो वहाँ पर एकदिन का आशौच होता है। उन दोनों के मरने पर तीनरात का आशौच होता है।

(ऊढकन्यानामाशौचविचारः)

ऊढकन्यायां तु विष्णुराह—'संस्कृतासु स्त्रीषु नाशौचं पितृपक्षे, तत्प्रसवमरणे चेत्पितृगृहे स्यातां तदेकरात्रं त्रिरात्रं च' इति । प्रसवे एकरात्रं मरणे त्रिरात्रमिति विज्ञानेश्वरापरार्कौ ।

विवाहित कन्याओं के विषय में तो विष्णु ने कहा है--विवाहित कन्याओं का आशौच पितृपक्ष में नहीं होता है। उन कन्याओं का प्रसव (गर्भमोचनोत्पत्ति) पिता के घर हो तो एकदिन का आशौच पितृपक्ष में होता है। यदि मरण हो तो तीन रात का आशौच होता है। विज्ञानेश्वर और अपरार्क ने कहा है—कन्या के प्रसव में एकरात तथा मरण में तीनरात का आशौच होता है।

(माधवमते विचारः)

माधवस्तु—प्रसवेऽपि त्रिरात्रं पित्रोः, एकरात्रं भ्रात्रादिबन्धुवर्गस्य, दत्ता नारी पितुर्गेहे सूयेताथ म्रियेत वा । तद्बन्धुवर्गस्त्वेकेन शुचिस्तज्जनकस्त्रिभिः ॥ इति ब्राह्मोक्तेरित्याह ।

माधव ने कहा है—प्रसव में भी माता और पिता को तीनरात का आशौच होता है तथा एकरात का आशौच भाई आदि बन्धुवर्ग (गोती भाई या एक गोत्रवाले) को एकरात का आशौच कहा है।

ब्रह्मपुराण में भी कहा है--दान की हुई कन्या पिता के घर में प्रसव या मर जाय तो उसके बन्धुवर्ग को एकदिन और माता-पिता को तीनदिन में शुद्धि कही है।

यत्तु कश्चिदाह—पक्षपदेन भ्रातरो गृह्यन्ते। वाक्यान्तरेण भगिनीमृतौ त्रिरात्रोक्तेरिति तच्चिन्त्यम्, तदभावादेतद्विरोधाच्च। भ्रातुः प्रसवे एकाहः। मृतौ त्रिरात्रमिति केचित्। युक्ता तु पक्षिणी,

जो किसी ने कहा है--'पक्ष' पद से भाइयों को ग्रहण करना चाहिये। वाक्यान्तर से बहिन के मरने पर तीनरात का आशौच कहा है। यह विचारणीय है। वाक्यान्तर के रहते हुए इसका (ब्रह्मपुराण का) विरोध है। भाई के घर प्रसव होने पर एकदिन का आशौच होता है मरने पर तीनदिन का आशौच होता है—यह किसी का मत है। युक्त तो पक्षिणी [पदार्थस्तु--दिवामरणे स दिवसः सा रात्रिद्वितीयदिवसे नक्षत्र-पर्यन्तमिति आगामिवर्तमानाहर्द्वययुता मध्यगता रात्रिः। रात्रिमरणे सा रात्रिस्तदुत्तरेऽहोरात्रिश्चेति पक्षिणी। केचित्तु--रात्रिमरणेऽपि मरणदिनाद्वितीयदिनस्थनक्षत्रपर्यन्तमेव पक्षिणीपदार्थ इत्याहुः। एवमतिक्रान्ते विषये दिवारात्रौ वा मरणज्ञानानुसारेण पक्षिण्यव्यवस्था योज्या इति धर्मसिन्धौ) है।

परस्परमृतौ भ्रातृभगिन्योः पक्षिणी भवेत्। इति ब्राह्मात्। भ्रातृभिन्नानामेकाहः, वर्गोक्तेः। 'इतरेषां यथाविधि' इति वक्ष्यमाणवचनाच्च।

ब्रह्मपुराण में कहा है--भाई और बहन के मरने पर परस्पर (आपस) में पक्षिणी आशौच होता है। भाई से भिन्नों के मरने पर एकदिन का आशौच होता है, यह वर्ग ने कहा है। इतर (दूसरों) लोगों को यथाविधि--ऐसा वक्ष्यमाणवचन से कहा है।

यत्तु प्रधानगृहे मृतौ पित्रोः पूर्णं भ्रातुस्त्र्यह इति कश्चित्स निर्मूलत्वात् 'नाशौचं पितृपक्षे' इत्येतद्विरोधाच्च भ्रान्तः।

जो कहते हैं—प्रधानघर में (अर्थात्--पितृवासवद् घर में) मरने पर पिता और माता को पूर्ण आशौच होता है और भाई को तीनदिन का आशौच होता है वह निर्मूल है। पितृपक्ष में आशौच नहीं होता है—इससे विरोध होने से भ्रान्त है।

दत्ता नारी पितुर्गेहे प्रधाने सूयते यदा। म्रियते वा तदा तस्याः पिता शुद्ध्येत्त्रिभिर्दिनैः॥ इति कल्पतरौ शुद्धितत्त्वे च।

जब विवाहित कन्या पिता के प्रधान घर में प्रसव करे या मर जाय तो उस विवाहिता का पिता तीनदिन में शुद्ध होता है—यह कल्पतरु और शुद्धितत्त्व में कहा है।

(पतिगृहे प्रसवे विचारः)

पतिगृहे प्रसवे तु पित्रादीनामाशौचं नास्ति।

पति के घर में प्रसव (सन्तानोत्पत्ति) करे तो पिता आदियों को आशौच नहीं होता है। (क्योंकि--उन सबों को प्राप्ति का अभाव है।)।

(मृतौ पित्रोराशौचविचारः)

मृतौ पित्रोः त्रिरात्रमस्त्येव। प्रत्ताप्रत्तासु योषित्सु संस्कृतासंस्कृतासु च। मातापित्रोस्त्रिरात्रं स्यादितरेषां यथाविधि॥ अदत्तासु पित्रोरेकरात्रम् इति माधवीये शङ्खकार्ष्णाजिनिस्मृतेः 'बैजिकादभिसम्बन्धात् इत्युक्तेश्च। स्मृत्यर्थसारेऽप्येवम्। माधवस्तु इदं त्रिरात्रं जातदन्तपरम्। दन्तोत्पत्तेः प्रागेकरात्रं पित्रोः, सद्यस्त्वप्रौढकन्यायां प्रौढायां वासराच्छुचिः। प्रदत्तायां त्रिरात्रेण दत्तायां पक्षिणी भवेत्॥ इति पुलस्त्योक्तेः।

उस कन्या के मरने पर पिता और माता को तीनरात का आशौच होता ही है। वाणी के द्वारा दी हुई संस्कृत या वाणी के द्वारा न दी हुई असंस्कृत कन्याओं के मरने पर माता और पिता को तीनरात का आशौच होता है तथा इतरों का शास्त्र के अनुकूल आशौच होता है। (अर्थात्--पक्षिणी आशौच होता है। 'गृहे

यस्य मृतः कश्चित्' इस अंगिरा वचनसे अपने घरमें मरनेपर ही तीनदिन का आशौच होता है। ऐसी व्यवस्था है।) माधवीय में शंख तथा कार्ष्णाजिनिस्मृति में कहा है-अदत्त कन्याओं के मरने पर पिता-माता को एक रात्रि का आशौच होता है। बीज के सम्बन्ध में कह चुके हैं। स्मृत्यर्थसार में भी यही है। माधव ने तो कहा है यह तीनदिन का आशौच दाँत के उत्पन्न होने पर है। दन्तोत्पत्ति के पूर्व तो माता-पिता को एकरात का आशौच है। अप्रौढ कन्याओं का सद्यः आशौच और प्रौढ कन्याओं का एकदिन का आशौच होता है। प्रदत्त कन्याओं का त्रिरात्र दत्त कन्या के मरने पर पक्षिणी आशौच होता है। एसा पुलस्त्य ने कहा है।

(पित्रोः कन्यामृतौ अन्यत्र विचारः)

अन्यत्र कन्यामृतौ पित्रोः पक्षिणीत्याह।

अपने घर से अलग कन्या मरे तो पिता-माता को 'पक्षिणी' आशौच कहा है।

षडशीतावपि—पितृगेहादतोऽन्यत्र यदि पुत्री प्रमीयते। पक्षिणी तत्र पित्रोः स्यान्नान्येषामिति निश्चयः॥ ग्रामान्तरे इयमिति स्मृत्यर्थसारे। भ्रातुस्तु पक्षिणी।

षडशीति में भी कहा है--पिता के घर से अन्यत्र यदि पुत्री मर जाय तो माता-पिता को वहाँ पर पक्षिणी (डेढदिन) आशौच होता है और अन्यलोगों को नहीं होता है—यह निश्चित है। ग्रामान्तर (दूसरे गांव) में यह है—यह स्मृत्यर्थसार में कहा है। भाई को तो पक्षिणी आशौच है।

(श्वशुरादीनां मरणे विचारः)

श्वशुरयोर्भगिन्यां च मातुलान्यां च मातुले। पित्रोः स्वसरि तद्वच्च पक्षिणीं क्षपयेन्निशाम्॥ इति वृद्धबृहस्पतिस्मृतेः।

वृद्धबृहस्पतिस्मृति का वचन है—सास, श्वसुर, बहिन, मामी, मामा और पिता की बहिन के मरने पर उसी की तरह पक्षिणी रात्रि समाप्त करे।

शुद्धितत्त्वे कौर्मे—आदन्तात्सोदरे सद्यः आचूडादेकरात्रकम्।
आप्रदानात्त्रिरात्रं स्याद्दशरात्रमतः परम्॥

शुद्धितत्त्व में कूर्मपुराण का वचन है—दांत निकलने पर सोदर (सपिण्ड) को सद्यः आशौच होता है। चूडाकरण तक एकरात का, वाग्दान के बाद पिता और पति के कुल में तीनरात का तदनन्तर दशरात का आशौच पतिकुल में ही होता है।

(पित्रोर्मृतौ स्त्रीणामाशौचकथनम्)

पित्रोर्मृतौ स्त्रीणां त्रिरात्रम्, पित्रोरुपरमे स्त्रीणामूढानां तु कथं भवेत्। त्रिरात्रेणैव शुद्धिः स्यादित्याह भगवान् यमः॥ इति माधवीये वृद्धमनूक्तेः। इदं दशाहान्तः। ऊर्ध्वं तु पक्षिणी।

पिता-माता के मरने पर कन्याओं को तीनरात का आशौच होता है। माधवीय में वृद्धमनु ने कहा है—पिता-माता के मरने पर विवाहित कन्याओं को आशौच की व्यवस्था कैसे होगी। (अविवाहित कन्या तो पुत्रवत् हैं।) उनकी तीनरात से ही शुद्धि होगी एसा भगवान् यम ने कहा है। यह दशदिन के भीतर है। बाद में तो पक्षिणी है।

(ऊढाकन्यायाः भ्रातृभगिन्योरन्योन्यगृहे च मरणे आशौचकथनम्)

भ्रातुर्भगिनीगृहे, तस्या वा तद्गृहे मृतौ त्रिरात्रम्। अन्यत्र पक्षिणीति षडशीतावुक्तम्।

भाई का बहिन के घर में या बहिन का भाई के घर मरने पर तीनरात का आशौच होता है। अन्यत्र कही मरने पर तो पक्षिणी आशौच होता है यह षडशीति में कहा है।

ब्राह्मेऽपि—परस्परं मृतौ भ्रातृभगिन्योः पक्षिणी भवेत्। मातुलाशौचवत्पुत्र्याः पितृव्याशौचमिष्यते॥ इति। शिष्टास्त्वस्य निर्मूलत्वात्पितृव्ये स्नानमात्रमाहुः।

ब्रह्मपुराण में भी कहा है—भाई के घर बहिन मरे या बहिन के घर भाई मरे तो दोनों को पक्षिणी आशौच होता है। मामा के आशौच की तरह चाचा का आशौच पुत्री को होता है। शिष्ट तो इस को निर्मूल कहते हैं—चाचा के मरने पर स्नानमात्र कहते हैं।

(त्रिंशच्छलोकिमते आचार्यमातामहादीनां मरणे विचारः)

त्रिंशच्छ्लोक्याम्—प्रेतेष्वाचार्यमातामहदुहितृसुतश्रोत्रियर्त्विक्सयाज्यस्वस्रीयेषु त्रिरात्रं त्रिदिवसमशुचिः सोदकस्तूभयत्र। पक्षिण्याशौचमृत्विग्दुहितृसुतसहाध्यायिबन्धुत्रयान्तेवासिश्वश्रूमित्रश्वशुरभगिनिकाभागिनेयप्रयाणे॥ मातामह्यां च पित्रोः स्वसरि च विरता मातुले मातुलान्यां चाथो सज्योतिरेव स्वविषयनृपतौ ग्रामनाथे च नष्टे। शिष्योपाध्यायबन्धुत्रयगुरुतनयाचार्यभार्यासगोत्रानूचानश्रोत्रियेषु स्वगृहपरमृतौ मातुले चैकरात्रम्॥ रात्रिं सब्रह्मचारिण्यथ तु कथमपि स्वल्पसम्बन्धयुक्ते स्नानं वासोयुतं स्यादिदमपि सकलं सर्ववर्णेषु तुल्यम्॥ इति। अत्र मूलं मिताक्षरादौ स्पष्टम्।

त्रिंशच्छ्लोकी में कहा है—[1]आचार्य, मातामह (नाना), कन्या का पुत्र (नाती), श्रोत्रिय (वेदपाठी), [2]ऋत्विक् जिनके साथ यज्ञ किया जाता हो और बहिन का पुत्र (भानजा), इनके मरने पर तीन रात-दिन का आशौच होता है। सोदक को तो उभयत्र आशौच होता है।

ऋत्विक्, कन्यापुत्र, साथ में पढनेवाला, [3]बन्धुत्रय शिष्य, सास, मित्र (अल्पकालमैत्र्यः) श्वसुर, बहिन और बहिन पुत्र के मरने पर पक्षिणी आशौच होता है। मातामही (नानी) पिता-माता की बहिन, मामा और मामी के मरने पर अपने देश का राजा, गांव के स्वामी (मालिक) के मरने पर सज्योति (दिन में मरने पर रात में स्नान से शुद्धि होती है। रात में मरने पर दिन में शुद्धि होती है। इसी को सज्योतिपदार्थ कहते हैं) ही आशौच होता है। शिष्य, उपाध्याय, बन्धुत्रय, गुरुपुत्र, आचार्य, भार्या, सगोत्र और विद्वान् श्रोत्रियों के तथा मामा इनके अपने घर में मरने पर एकरात्रि का आशौच कहा है। साथ में पढनेवाले के मरने पर एकरात्रि का आशौच होता है। जिसका अपने से किसीप्रकार का भी थोड़ा सम्बन्ध हो उसके मरने पर सवस्त्रस्नान करना चाहिये। यह सब वर्णों में समान है। इसमें मूल मिताक्षरा आदि में स्पष्ट है।

१—आचार्य उपनीयवेदाध्यापके, मनुः—उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विजः। सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते॥ मातामहे, दुहितसुते, श्रोत्रियेऽस्खलितैकशाखाध्यायिनि, ऋत्विजि स याज्ये स यजमाने, स्वस्रीये भागिनेये च प्रेते शिष्यदौहित्रादयस्त्रिरात्रमशुचयः स्युः। दौहित्रभागिनेयावुपनीतौ। एकस्माद गुरोर्बहुकालं सह वेदमधीयानः सहाध्यायी। आत्मनः पितृष्वसुर्मातृष्वसुर्मातुलस्य च पुत्रा आत्मबान्धवाः। पितुः पितृष्वसुर्मातृष्वसुर्मातुलस्य च पुत्राः पितृबान्धवाः। मातुः पितृष्वसुर्मातृष्वसुर्मातुलस्य च पुत्रा मातृबान्धवा इति बन्धुत्रयम्। अन्तेवासी सहाध्यायिवदेव बहुकालीनः। यद्वा शिल्पशिक्षार्थी। शेषाः प्रसिद्धाः। ऋत्विगादीनां प्रयाणे मरणे मातामह्यादौ च विरतः ऋत्विक्त्वादिनिरूपकसम्बन्धिनां याज्यादीनां पक्षिण्याशौचम्। विरतपदस्य लिङ्गविपरिणामेन मातामह्यादावनुषङ्गः। स्वदेशाधिपतौ स्वग्रामाधिपतौ च नष्टे सज्योतिराशौचम्। मृतिकालीनेन सूर्यनक्षत्ररूपेण ज्योतिषा सह वर्तते तत्सज्योतिः। दिनमृते दिनं रात्रिमृते रात्रिरित्यर्थः। शिष्य एकदेशमध्यापितो वेदविद्यार्थिमात्रं वा। उपाध्याय एकदेशाध्यापकः गुरोराचार्यस्य तनयः। सगोत्रश्चतुर्दशपुरुषादूर्ध्वं यावज्जन्मनामज्ञानम्। अनूचानोऽङ्गाध्यापकः। श्रोत्रियः समानग्रामीणः। शिष्यादिषु मातुलान्तेषु नष्टेषु स्वगृहे परस्यासपिण्डस्यैतद्भिन्नस्य मृतौ च निरूपकसम्बन्धिनामेकरात्रमाशौचम्। एकाचार्योपनीतः सब्रह्मचारी। तस्मिन्नष्टे रात्रिमहोरात्रमाशौचमितरः स ब्रह्मचारी कुर्यात्। कथमपि केनचित् प्रकारेण स्वल्पेनैकाहाद्याशौचप्रयोजनकेनानुक्तेनसम्बन्धेन जामातृशालकादौ नष्टे वासोयुतं सवस्त्रं स्नानं स्यात् प्रतियोगिनाम्। इदं श्लोकत्रयोक्तमसपिण्डाशौचं वक्ष्यमाणं च सकलमपि सन्निपाताशौचादिकं सर्वेषु वर्णेषु तुल्यं भवति। उपनीताशौचवद्वर्णविशेषोपादानेनाविहितत्वात्। इति त्रिंशत्श्लोक्याम्।

२—अग्न्याधेयपाकयज्ञानग्निष्टोमादिकान् मखान्। यः करोति वृतो यस्य स तस्यर्त्विगिहोच्यते॥

३—बन्धुत्रयपदसे—आत्मबन्धुत्रय, पितृबन्धुत्रय और मातृबन्धुत्रय इन नवबन्धुओं का ग्रहण करना चाहिये। आत्मपितृष्वसुः पुत्रा आत्ममातृष्वसुः सुताः। आत्ममातुलपुत्राश्च विज्ञेया आत्मबान्धवाः। पितुः पितृष्वसुः पुत्राः पितुर्मातृष्वसुः सुताः। पितुर्मातुलपुत्राश्च विज्ञेयाः पितृबान्धवाः॥ मातुः पितृष्वसुः पुत्रा मातुर्मातृष्वसुः सुताः। मातुर्मातुलपुत्राश्च विज्ञेया मातृबान्धवाः॥ इति धर्मसिन्धौ।

(दौहित्रभागिनेयोराशौचकथनम्)

दौहित्रभागिनेययोरुपनीतयोस्त्रिरात्रम् । अनुपनीतयोः पक्षिणी । संस्थिते पक्षिणीं रात्रिं दौहित्रे भगिनीसुते । संस्कृते तु त्रिरात्रं स्यादिति धर्मो व्यवस्थितः ॥ इति वृद्धमनूक्तेः । संस्कृते दाहेन । तेन दाहे त्रिरात्रं नान्यथेति गौडाः । तन्न, विशेषवैयर्थ्यात् ।

दौहित्र और भागिनेय (भानजा) उपनीत (उपनयनसंस्कार हो चुका) हो तो तीनरात का आशौच होता है । यदि वे दोनों (दौहित्र और भागिनेय) अनुपनीत हो तो पक्षिणी आशौच होता है । वृद्धमनु ने कहा है—दौहित्र तथा भगिनी के पुत्र के मरने पर पक्षिणीरात्रि आशौच होता है। (यहाँ पर पुंस्त्व की अविवक्षा से दौहित्री और भागिनेयी के मरने पर स्नानमात्र ही कहा है ।) यदि उनका दाह हो तो तीनरात का आशौच होता है—यह धर्म की व्यवस्था है । संस्कृत का अर्थ है—जिसका दाह से संस्कार हुआ हो । इससे दाह में तीनरात का आशौच होता है । अन्यथा नहीं होता है—एसा गौड का कहना है । यह उचित नहीं है । खननपक्ष में दौहित्र और भागिनेय का दन्तोत्पत्ति के पूर्व में भी मरने पर पक्षिणी आशौच होता है । उसीतरह भाई आदि में सद्यः सूतक होता है । दाहपक्ष में इन दोनों का तीनरात का और भ्रातादि का सद्यः आशौच उचित नहीं होता है ।

(मातुलादौ सन्निधिविदेशाभ्यां मृते विचारः)

मातुलादौ सन्निधिविदेशाभ्यां पक्षिण्येकाहयोर्व्यवस्था ।

मातुल (मामा) आदि समीप में मरे तो पक्षिणी और विदेश में मरे तो एकदिन का आशौच होता है—यह व्यवस्था है । (यह मिताक्षरा का मत है ।)

मनुः—(अ० ५ श्लो० ८०) त्रिरात्रमाहुराशौचमाचार्ये संस्थिते सति ।
तस्य पुत्रे च पत्न्यां च दिवारात्रमिति स्थितिः ॥

मनु ने कहा है—आचार्य के मरने पर तीनरात का आशौच कहा है । आचार्य के पुत्र और पत्नी के मरने पर दिनरात का आशौच होता है ।

(श्रोत्रिये स्वगृहे मृते)

श्रोत्रिये स्वगृहे मृते त्रिरात्रम् , श्रोत्रिये तूपसम्पन्ने त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् । इति स्मृतेरिति माधवः । एकग्रामीणे त्वेकाहः ।

श्रोत्रिय (अस्खलित एकशाखा का पढ़ने वाला—एकां शाखामधीत्य श्रोत्रियः—यह बौधायन ने कहा है ।) अपने घर में मरने पर तीनरात का आशौच होता है । समीप में मरे तो तीनरात तक अशुचि (अपवित्र) रहता है—यह स्मृति में माधव ने कहा है । एक गांव का हो तो एकदिन का आशौच होता है (असमान ग्रामीण श्रोत्रिय में तो आशौच नहीं होता है । कृष्णभट्टी के मत से तो 'समानग्रामीणे' एसा पाठ होना चाहिये था ।)

(ऋत्विगादिविषये विचारः)

ऋत्विजि बह्वल्पकालश्रौतस्मार्तयाजनपरे त्रिरात्रैकरात्रे ज्ञेये। यद्यपि कर्म कुर्वत एष वाचकः शब्दो भवतीति शम्बराचार्यैः कर्ममध्ये ऋत्विक्त्वमुक्तम् तथापि कर्मण्याशौचनिषेधात्तदुत्तरमेवैतज्ज्ञेयम् ।

बहुत समय से या अल्पसमय से श्रौतयज्ञ को करानेवाला ऋत्विज का आशौच तीनरात (प्रचेताः-मृते चर्त्विजि याज्ये च त्रिरात्रेण विशुध्यति । मनुः-मातुले पक्षिणीं रात्रिं शिष्यर्त्विग्बान्धवेषु च ।) तक यदि वह ऋत्विज श्रौतयज्ञ को कराता हो तो उसके मरने पर तीनरात तथा स्मार्तयज्ञ को कराता हो तो एकरात का आशौच होता है । यद्यपि कर्म को करानेवाला यह वाचक ऋत्विक् शब्द होता है यह शम्बराचार्य ने कर्म के मध्य में ऋत्विक् शब्द कहा है । फिर भी कर्म में आशौच निषेध से उसके उत्तर में ही निषेध जानना चाहिये ।

गौडास्तु—समानोदकानां त्र्यहो गोत्रजानामहः स्मृतम् । मातृबन्धौ गुरौ मित्रे मण्डलाधिपतौ तथा ॥ इति जाबालोक्तेर्मातृबन्धोरेकाहमाहुः । शिष्ये तूपनीते त्र्यहः, 'शिष्यसतीर्थसब्रह्मचारिषु क्रमेण त्रिरात्रमहोरात्रमेकाहः' इति माधवीये बौधायनोक्तेः ।

गौडों ने कहा है—माता के बन्धु, गुरु, मित्र और मण्डलाधिपति (देश का राजा) के मरने पर समानोदकों को तीनदिन और गोत्रजों को एकदिन का आशौच कहा है। ऐसा जाबाल के कहने पर मातृबन्धु का आशौच एकदिन का कहा है। उपनीतशिष्य के मरने पर तीनदिन का आशौच होता है। शिष्य के मरने पर (एक गुरु से संपूर्ण वेदविद्या को पढनेवाला) तीनदिन, सतीर्थ्य (सहाध्यायी) के मरने पर अहोरात्र और ब्रह्मचारी के मरने पर एकदिन का आशौच होता है—यह माधवीय में बौधायन ने कहा है।

अन्यत्र तु मनुः (अ. श्लो. ८१)—मातुले पक्षिणीं रात्रिं शिष्यर्त्विग्बान्धवेषु च। इति।

अन्यत्र तो मनु ने कहा है-माता के मरने पर पक्षिणी रात्रि, शिष्य, ऋत्विक् तथा बान्धवों के मरने पर पक्षिणी आशौच होता है।

(बन्धुत्रये निर्णयः)

बन्धुत्रयम्–आत्मपितृष्वसृमातृष्वसृमातुलपुत्राः, पितुः पितृष्वसृमातृष्वसृमातुलपुत्राः, मातुः पितृष्वसृमातृष्वसृमातुलपुत्राश्चेति विज्ञानेश्वरः। अत्र पक्षिणी।

बन्धु तीन प्रकार के होते हैं—अपने पिता की बहिन (बूआ), माता की बहिन (मौसी) और मामा इनके लड़के (अर्थात्—अपनी माता के भाई के लड़के), पिता के पिता की बहिन (बूआ) पिता की मौसी तथा पिता के मामा इनके पुत्र, माता की फूआ, माता की मौसी तथा माता के मामा इनके पुत्र यह विज्ञानेश्वर कहते हैं। यहाँ पर (पुत्रों में) पक्षिणी आशौच होता है।

(पितृष्वस्रादिकन्यानामाशौचविचारः)

पितृष्वस्रादिकानामूढानां त्वेकाहः। 'तद्बन्धुवर्गस्त्वेकेन' इति पूर्वोक्तब्राह्मादिति केचित्।

पिता के बहिन आदि विवाहित कन्याओं के मरने पर तो एकदिन का आशौच होता है। उसके बन्धुवर्ग के मरने पर तो एकदिन का आशौच होता है। यह पूर्व में कहे हुए ब्रह्मपुराण के वचन से है—यह कोई कहते हैं।

यत्तु षडशीत्याम्—एवं पित्रोर्भगिन्यौ ये ये पितामहयोस्तथा। ये मातामहयोश्चैव भगिन्यौ तत्प्रजाश्च याः॥ मातुलाः स्वस्य पित्रोश्च पत्न्यश्चैषां प्रजाश्च याः। भ्रातरश्चेति सर्वेषु पक्षिणी स्वगृहे त्र्यहम्॥ एवं श्वशुरजामातृदौहित्रविपदि स्मृतम्।

जो षडशीति में कहा है—इस प्रकार पिता की बहिनों में, जो जो पितामह (दादा) की बहिनों में, जो मातामह (नाना) की बहिन हैं अपने पिता-माता के जो मामा, उनकी स्त्री तथा सन्तान, उनके पिता इनके मरने पर पक्षिणी आशौच होता है।

(जामातृमरणे श्यालकमरणे च निर्मूलविचारः)

यच्च यमः—जामातरि मृते शुद्धिस्त्रिरात्रेणोभयोः स्मृता। पक्षिणीशालकानां स्यादिति शातातपोऽब्रवीत्॥ इति तन्निर्मूलत्वात् मिताक्षरादिविरोधाच्चोपेक्ष्यम्।

और यम ने कहा है—जामाता के मरने पर पिता और माता दोनों की शुद्धि तीनरात में होती है। श्यालकों के मरने पर पक्षिणीरात्रि होती है ऐसा शातातप ने कहा है। यह निर्मूल होने से मिताक्षरा आदि में विरोध होने से उपेक्षणीय है।

(असपिण्डे स्वगृहे मृते विचारः)

मदनपारिजाते विष्णुः—असपिण्डे स्ववेश्मनि मृते एकरात्रम्।

मदनपारिजात में विष्णु ने कहा है—असपिण्ड अपने घर में मरे तो एकरात का आशौच होता है।

(ग्रामे शवे चेत् विचारः)

अत्र हरदत्तः—'अन्तःशवे च' इत्यापस्तम्बसूत्रतः शवे ग्रामे धनुःशतादर्वागन्नमभोज्यम्। दीपमुदकुम्भं चोपनिधाय भुञ्जीत यदि समानवंशं न गृहमेव सूतिकायामित्याह।

यहाँ पर हरदत्त ने कहा है—'अन्तः शवे च' इस आपस्तंबसूत्रमत से गांव में शव (मुर्दा) हो तो सौधनुस के पहले भोजन नहीं करना चाहिये। दीपक और जलकुंभ को रखकर भोजन करे। यदि घर अपने वंश का न हो तो। इसप्रकार सूतिका में भी कहा है।

(प्रधानगृहे असपिण्डमृते विचारः)

प्रधानगृहमृतौ तु—गृहे यस्य मृतः कश्चिदसपिण्डः कथञ्चन । तस्याप्यशौचं विज्ञेयं त्रिरात्रं नात्र संशयः ॥ इत्यङ्गिरसोक्तमिति माधवः । एतेन—त्रिरात्रमसपिण्डेषु स्वगृहे संस्थितेषु च । इति कौर्मं व्याख्यातम् ।

प्रधान घर में मरे तो अङ्गिरा ने कहा है—किसीतरह जिसके घर में कोई असपिण्ड मर जाय तो उसका भी तीनरात का आशौच जानना चाहिये । इसमें संशय नहीं है एसा माधव ने कहा है । इससे कूर्म-पुराण में व्याख्या की है—असपिण्डों के अपने घर में मरने पर तीनदिन का आशौच होता है ।

(द्विजमन्दिरे श्वशूद्रपतितादिमृतेषु विचारः)

शुद्धितत्त्वे वृहन्मनुः—श्वशूद्रपतिताश्चान्त्या मृताश्चेद् द्विजमन्दिरे ।
शौचं तत्र प्रवक्ष्यामि मनुना भाषितं यथा ॥

शुद्धितत्त्व में वृद्धमनु ने कहा है—कुत्ता, शूद्र, पतित, म्लेच्छ (गोमांसखादको यस्तु विरुद्धं बहु-भाषते । सर्वाचारविहीनश्च म्लेच्छ इत्यभिधीयते ॥) (रजकश्चर्मकारश्च नरो बुरुड एव च । कैवर्तमेदभिल्लाश्च सप्तैतेऽन्त्यावसायिनः ॥) यदि ये द्विज के मन्दिर में मर जायँ तो वहाँ पर जैसा मनु ने कहा है वैसा उनके कथनानुसार आशौच कहता हूँ ।

दशरात्राच्छुनि मृते मासाच्छूद्रे भवेच्छुचिः । द्वाभ्यां तु पतिते गेहमन्त्ये मासचतुष्टयात् ॥ अत्यन्त्ये वर्जयेद् गेहमित्येवं मनुरब्रवीत् । अन्त्यो–म्लेच्छः । अत्यन्त्यः=श्वपाक इति वाचस्पतिः ।

कुत्ते के मरने पर दशरात, शूद्र के मरने पर एकमहिना, पतित के मरने पर दोमहिना, अन्त्य-म्लेच्छ के मरने पर चार मास का आशौच रहता है और अन्त्यज के मरने पर उस घर को सर्वदा त्याग दे—एसा मनु ने कहा है । अन्त्य माने-म्लेच्छ । अत्यन्त्य का अर्थ श्वपाचक (चत्तुजतितस्थोग्रायांश्वपाक इति कीर्त्यते । वैदेहकेनत्वम्वष्ठ्यामुत्पन्नो वेण उच्यते ॥ मनु० अ० १०।१६ ।) है—यह वाचस्पति ने कहा है ।

तत्रैव यमः—द्विजस्य मरणे वेश्म विशुद्ध्यति दिनत्रयात् ।

वहाँ ही पर यम ने कहा है—द्विज के घर में मरने पर तीनदिन में शुद्धि होती है ।

सम्वर्तः—गृहशुद्धिं प्रवक्ष्यामि अन्तस्थशवदूषिते ।
प्रोत्सृज्य मृन्मयं भाण्डं सिद्धमन्नं तथैव च ॥

संवर्त ने कहा है—घर के भीतर शव के दूषित होने पर घर की शुद्धि कहता हूँ । मट्टी के बर्तन और वैसे ही पका हुआ अन्न को त्याग दे ।

गोमयेनोपलिप्याथ छागेन घ्रापयेद् बुधः । ब्राह्मणैर्मन्त्रपूतैश्च हिरण्यकुशवारिभिः ॥ सर्वमभ्यु-क्षयेद्वेश्म ततः शुद्ध्यत्यसंशयम् ।

इसके बाद गोबर से घर को लीपकर छाग (बकरा) से बुद्धिमान् सुंघा दे । कहीं पर 'प्रापयेद् बुधः' ऐसा पाठ है । अर्थात्—प्राप्त करा दे । ब्राह्मणों के द्वारा पवित्र मन्त्रों से सुवर्ण, कुशा और जल से घर में अभ्युक्षण करे । इससे शुद्धि होती है । इसमें संशय नहीं है ।

(ग्राममध्ये शवस्तिष्ठति चेत्)

बृहद्विष्णुः—ग्राममध्यगतो यावच्छवस्तिष्ठति कस्यचित् ।
ग्रामस्य तावदाशौचं निर्गते शुचितामियात् ॥

बृहद्विष्णु ने कहा है—गांव के मध्य में किसी के यहाँ जबतक शव रहता है तबतक गांव में आशौच रहता है । उसके चले जाने पर पवित्रता होती है ।

(गृहे पश्वादौ मृते)

गृहे पश्वादौ मृतेऽप्येवम् ।

पशु आदि के घर पर मरने पर भी यही (उपरोक्त) व्यवस्था है ।

यत्तु माधवीये प्रचेतसा मातृष्वस्रादिषु त्रिरात्रमुक्तम्—मातृष्वसामातुलयोः श्वश्रूश्वशुरयोर्गुरोः। मृते चर्त्विजि याज्ये च त्रिरात्रेण विशुद्धयति ॥ इति।

जो माधवीय में प्रचेता ने कहा है—माता की बहिन आदि में तीनरात का आशौच कहा है। माता की बहिन, (मौसी), मामा, सास, श्वसुर, गुरु-आचार्य, ऋत्विक् तथा यज्ञ करानेवाले यजमान के मरने पर तीनरात में शुद्धि होती है।

गुरुराचार्यः। ऋत्विक्कुलागतः। तत्स्वगृहमृतौ ज्ञेयम्। श्वशुरयोरन्यत्र मृतावपि सन्निधौ त्रिरात्रम्, असन्निधौ पक्षिणी, देशान्तरे एकरात्रम्, वक्ष्यमाणविष्णूक्तेरिति माधवगौडादयः। अन्यत्र तु मातृष्वस्रादिषु पक्षिणी, पित्रोः स्वसरि तद्वच्च पक्षिणीं क्षपयेन्निशाम्। इति वृद्धमनूक्तेः।

गुरु-माने आचार्य। ऋत्विक्-माने कुलवंशपरंपरागत प्राप्त। ये अपने घर में मरे तो जानना चाहिये। सास और श्वसुर ये अन्य जगह मरें तो—समीप में मरे तो तीनदिन का तथा समीप में न हो तो पक्षिणी आशौच तथा देशान्तर में मरें तो एकरात का आशौच होता है। यह आगे विष्णु कहेंगे—यह माधव, गौड आदि ने कहा है। अन्यत्र तो माता की बहिन आदि के मरने पर पक्षिणी आशौच होता है। वृद्धमनु ने कहा है—और उसीप्रकार पिता की बहिन के मरने पर पक्षिणीरात्रि व्यतीत करे।

यत्तु वृद्धमनुः—भगिन्यां संस्थितायां (संस्कृतायां) तु भ्रातर्यपि च संस्थिते (संस्कृते)। मित्रे जामातरि प्रेते दौहित्रे भगिनीसुते ॥ शालके तत्सुते चैव सद्यःस्नानेन शुद्धयति ॥ इति। तद्भ्रातृदौहित्रादौ देशान्तरे, शालकसुतजामात्रोः स्वदेशे ज्ञेयम्। शालके तु स्वदेशे एकाहः 'आचार्यपत्नीपुत्रोपाध्यायमातुलश्वशुरश्वश्रूश्वशुर्यसहाध्यायिशिष्येष्वेकरात्रम्' इति माधवीये विष्णूक्तेः। हरदत्तीये दशश्लोक्यामप्येवम्। श्वशुर्यः=शालकः। देशान्तरे स्नानम्। श्वशुरयोर्देशान्तरे एकाहः।

जो वृद्धमनु ने कहा है—विवाहित बहिन के मरने पर, विवाहित भाई के भी मरने पर, मित्र, जामाता, दौहित्र (लड़की का लड़का), बहिन का पुत्र (भानजा), शाला और शाले का पुत्र के मरने पर सद्यःस्नान से शुद्ध होता है। उसके भाई, दौहित्र आदि (भगिनी-भागिनेय, मिताक्षरा के मत से शालक के मरने पर आशौच नहीं ही होता है। माधवोक्त एकाहदिन का प्रचार नहीं है। आचार्य, मातामह आदि का तीनरात्र का आशौच धन्य के अन्त्येष्टि करने पर है।) के देशान्तर में मरने पर शालक पुत्र और जामाता के अपने देश में हो तो जानना चाहिये। शालक का तो अपने देश में एकदिन का आशौच होता है। आचार्य की पत्नी का पुत्र, उपाध्याय, मामा, श्वसुर, सास, श्यालक, सहाध्यायी और शिष्य के मरनेपर एकरात का आशौच होता है यह माधवीय में विष्णु ने कहा है। हरदत्तीय दशश्लोकी में भी यही है। श्वसुर्यः—माने शालक। देशान्तर में मरने पर स्नानमात्र है। देशान्तर में श्वसुर और सास के मरने पर एकदिन का आशौच होता है।

जाबालः—एकोदकानां तु त्र्यहो गोत्रजानामहः स्मृतम्। सर्वत्र मूलाभावेऽपि क्रियाकर्तुर्दशाहः ॥

जाबाल ने कहा है—एकोदकों का तीनदिन तथा गोत्रजों का एकदिन आशौच होता है। सर्वत्र मूलवचन के अभाव में भी क्रिया करनेबाले को दशदिन का आशौच होता है।

गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरेत्। प्रेताहारैः समं तत्र दशरात्रेण शुद्धयति। इति मनूक्तेः (अ० ५।६५)। शिष्य इत्युपलक्षणम्।

गुरु (आचार्य) आदि असपिण्ड के मरने पर शिष्य अन्त्येष्टि-क्रिया करके प्रेत को ले जानेवाले असपिण्डों के तुल्य दशरात में शुद्ध होता है। एसा मनुने कहा है। शिष्यपद उपलक्षण (अंकित मात्र) है।

निरन्वये सपिण्डे तु मृते सति दयान्वितः। तदशौचं पुरा चीर्त्वा कुर्यात्तु पितृवत्क्रियाम् ॥ इति माधवीये ब्राह्मोक्तेः।

अपने खानदान से भिन्न सपिण्ड के मरने पर दयावान् व्यक्ति उसके आशौच को स्वीकार कर पिता के सदृश क्रिया को करे—ऐसा माधवीय में ब्रह्मपुराण ने कहा है।

दिवोदासीये—सगोत्रो वाऽसगोत्रो वा योऽग्निं दद्यात्सखे नरः । सोऽपि कुर्यान्नवश्राद्धं शुद्धयेच्च दशमेऽहनि ॥ यत्रैकविषये पक्षिण्येकाहादिपक्षद्वयमुक्तं, तत्र सन्निधिविदेशमैत्र्यादिकृता व्यवस्था ।

दिवोदासीय में कहा है—हे सखे, मनुष्य सगोत्र हो या असगोत्र हो उसके मरने पर उसे जो अग्नि (दाहकर्म) देता है वही नवश्राद्ध (अर्थात्—दशपिण्ड) करे तथा दशवेंदिन (अर्थात्—दशवींरात्रि व्यतीत होने पर) शुद्ध होता है । जहाँ पर एक ही विषय में पक्षिणी, एकाहादि पक्षद्वय कहा है। वहाँ पर समीप, विदेश, मैत्री आदि से व्यवस्था जाननी चाहिये ।

(युद्धे मृतस्याशौचकथनम्)

त्रिंशच्छ्लोक्याम्—वानप्रस्थे यतौ चोपरमति कुलजे पण्ढके चाप्लवः स्याद्योषिद्गोविप्रगुप्त्यै मृतवति तु दिनं युद्धविद्धे च सद्यः । अत्र मूलमाकरे स्पष्टम् । युद्धमूर्ध्नि मृतस्य स्नानम् ।

त्रिंशच्छ्लोकी में कहा है—वानप्रस्थ, यति, संन्यासी और कुल का नपुंसक मर जाय तो उसीसमय स्नान करने से शुद्धि होती है । स्त्री, गौ तथा ब्राह्मण की रक्षा के हेतु मरे तो एकदिन में तथा युद्ध में मर जाय तो सद्यःशुद्धि होती है । इसका मूल आकर ग्रन्थों में स्पष्ट है। युद्धमूर्ध्नि (भूमि) में मरने पर स्नानमात्र आशौच होता है ।

उद्यतैराहवे शस्त्रैः क्षत्रधर्महतस्य च । सद्यः सन्तिष्ठते यज्ञस्तथाशौचमिति स्थितिः ॥ इति मनूक्तेः (५।९८) । यज्ञोन्त्यकर्म । सर्वं तदैवेत्यर्थः ।

युद्ध में शस्त्रों (खड्ग आदि) द्वारा (लगुड, पाषाण आदि से नहीं) और अपराङ्मुखत्वादि क्षत्रिय धर्म से युक्त हो जो संग्राम में मरता है उसको उसी समय ज्योतिष्टोमादियज्ञ का फल मिलता है—एसा मनु ने कहा है तथा सद्यःशुद्धि होती है ऐसा शास्त्र का सिद्धान्त (मर्यादा) है ।

यस्तु भारते राजधर्मेषु—अशोच्यो हि हतः शूरः स्वर्गलोके महीयते । नह्यन्नमुदकं तस्य न स्नानं नाप्यशौचकम् ॥ इति श्राद्धादिनिषेधः सपुत्राद्यभावपरः । अत एव तत्र कर्णादीनां श्राद्धमुक्तम् । अन्ये तु दशपिण्डनिषेधमाहुर्यतिवत् ।

जो महाभारत के राजधर्म में कहा है—शूरबीर के मरने पर शोक नहीं करना चाहिये । क्योंकि वह स्वर्गलोक में जाता है । उसका अन्न, जलदान, स्नान और आशौच नहीं होता है। इससे श्राद्ध आदि का निषेध कहा है, वह पुत्र आदि के अभाव में कहा है। इसलिये वहाँ पर कर्ण आदि का श्राद्ध कहा है। अन्य तो दशपिण्ड का निषेध यति (संन्यासी) के सदृश स्वीकार करते हैं ।

यत्तु पराशरः—आहवेऽपि हतानां च एकरात्रमशौचकम् । इति । तद्युद्धक्षतेन कालान्तरमृते ज्ञेयम् । असन्निधौ स्नानमितिमाधवः ।

जो पराशर ने कहा है—युद्धभूमि में मृतकों का एकरात का आशौच होता है। वह युद्धक्षत (घायल) होने से कालान्तर (दूसरे समय) में मरने पर जानना चाहिये । असन्निधि (समीप में न हो) में स्नान मात्र है—यह माधव ने कहा है ।

(शृङ्गिदंष्ट्र्यादिभिर्हतानामाशौचम्)

शुद्धितत्त्वे अग्निपुराणे—दंष्ट्रिभिः शृङ्गिभिर्वापि हता म्लेच्छैश्च तस्करैः । ये स्वाम्यर्थे हता यान्ति राजन् स्वर्गं न संशयः ॥ सर्वेषामेव वर्णानां क्षत्रियस्य विशेषतः ।

शुद्धितत्त्व में अग्निपुराण का वचन है—दांतवालों से, शींगवाले जीवों से, म्लेच्छों से, चोरों से जो मर गये हों और स्वामी के लिए जो मरे हों । हे राजन्, वे स्वर्ग में जाते हैं । इसमें संशय नहीं है । सब वर्णों में क्षत्रिय विशेषकर ही स्वर्ग में जाते हैं ।

(गो-विप्र-पालने मृतानामाशौचम्)

यत्तु बृहस्पतिः—डिम्बाहवे विद्युतां च राज्ञां गोविप्रपालने ।
सद्यःशौचं मृतस्याहुस्त्र्यहं चान्ये महर्षयः ॥

जो बृहस्पति ने कहा है–डिम्बाहव–जिस युद्ध में राजा न हो ऐसे युद्ध में मारे गये हों, जिनकी मृत्यु वज्र पात से हुई हो, राजाने जिनको प्राणदण्ड दिया हो, गौ तथा ब्राह्मण की रक्षा के लिए जिन्होंने प्राण दिया हो इनका सद्यःशौच मरने का होता है अन्य महर्षि तीनदिन का मानते हैं।

(शस्त्रं विना पराङ्मुखहते राज्ञा वध्ये हते च आशौचकथनम्)

तच्छस्त्रं विना पराङ्मुखहते च त्रिरात्रम्। राज्ञा वध्ये हते सद्यःशौचमन्यत्र त्रिरात्रम्।

शस्त्र के प्रहार से पीडित के बिना रणाङ्गण से बाहर मरने पर तीनरात का आशौच होता है। राजा के द्वारा वध्य होने पर (मरने पर) सद्यःशौच होता है। अन्यत्र तो तीनरात का आशौच कहा है।

(क्षतेन मृते विचारः)

तत्रैव व्याघ्रः—क्षतेन म्रियते यस्तु तस्याशौचं भवेद् द्विधा।
आसप्ताहात्त्रिरात्रं स्याद्दशरात्रमतः परम्॥

वहीं पर व्याघ्र ने कहा है—क्षत (घायल) होने पर जो मरे उसका आशौच दो प्रकार का है। सातदिन तक तीनरात का तथा उसके बाद दशरात का आशौच होता है।

(शस्त्राघाते त्र्यहादूर्ध्वंमृते विचारः)

शस्त्राघाते त्र्यहादूर्ध्वं यदि कश्चित्प्रमीयते। आशौचं प्राकृतं तस्य सर्ववर्णेषु नित्यशः॥ शस्त्राघाते क्षतं विना।

शस्त्राघात (शस्त्र से युद्ध में मरने पर) में तीनदिन के बाद यदि कोई मर जाय तो उसका आशौच नित्य सब वर्णों में प्राकृत होता है। शस्त्राघाते-क्षत (शृङ्गिदंष्ट्र्यादिजनित) के बिना।

(शवस्पर्शे आशौचकथनम्)

शवस्पर्शे तु हारीतः—शवस्पृशो ग्रामं न प्रविशेत्पुरा नक्षत्रदर्शनात् रात्रौ चेदादित्यस्य।

शवस्पर्श में तो हारीत ने कहा है—शव को स्पर्श करनेवाले गाँव में नक्षत्रदर्शन के पूर्व गाँव में प्रवेश न करें। यदि रात्रि में शवस्पर्श होने पर तो सूर्य के दर्शन तक गाँव (नगर) में प्रवेश न करे।

यत्तु मनुः (५।६४)—अह्ना चैकेन रात्र्या च त्रिरात्रैरेव च त्रिभिः। शवस्पृशो विशुद्धयन्ति त्र्यहादुदकदायिनः॥ इति। अह्ना रात्र्या चेत्यहोरात्रमुक्तम्। त्रिभिस्त्रिरात्रैरिति नवरात्रमेवं दशरात्रमित्यर्थः। तत्तदन्नाशने तद्गृहे वासेऽनापदि च ज्ञेयम्। अनदन्नन्नमह्नैव न चेत्तस्मिन् गृहे वसेत्। इति (मनु० अ. ५ श्लो. १०२) तेनैवोक्तेः।

जो मनुने कहा है—एक अहोरात्र से और त्रिरात्रों से शुद्ध होते हैं। (अर्थात्—नव रात मिलकर दश दिन के आशौच के अधिकारी होते हैं।) यदि स्नेह आदि से शव का स्पर्श करते हैं तो दशदिन में ही शुद्ध होते हैं। समानोदक तो तीनदिन में शुद्ध होते हैं। अह्ना रात्र्या च-अहोरात्र कहा है। त्रिभिस्त्रिरात्रैः-इससे नव रात ही अर्थात्-दशरात कहा है। मनुने ही कहा है—उसका अन्न भक्षण न करे न उनके घर में निवास करे तो एकदिन में शुद्ध होता है।

(संसर्गाशौचे कर्माधिकारः)

अङ्गिराः—आशौचं यस्य संसर्गादापतेद् गृहमेधिनः।
क्रियास्तस्य न लुप्यन्ते गृह्याणां च न तद्भवेत्॥

अंगिरा ने कहा है—जिस गृहमेधी (गृहस्थ) को संसर्ग से आशौच प्राप्त हो तो उस व्यक्ति के क्रियाओं का लोप नहीं होता है और आशौच उसके कर्मों में नहीं होता है।

(निर्हरणाद्याशौचकथनम्)

अथ निर्हरणाद्याशौचम्। स्नेहेन सवर्णनिर्हारे तदन्नाशने तद्गृहवासे च दशाहः। तदन्नानशने तद्गृहवासे त्र्यहः। गृहावासेऽन्नभक्षणे चैकाहः।

इसके बाद शव (मुर्दे) को श्मशान ले जाने पर आशौच (सूतक) कहते हैं। स्नेह (प्रेम) से सवर्ण को ले जाने पर तथा उसका अन्न भक्षण करने पर और उसके घर में निवास करने पर दशदिन का आशौच होता है। उसके अन्न भक्षण में तथा घर में रहने पर तीनदिन आशौच होता है। घर में न रहे और अन्न भक्षण में एकदिन का आशौच होता है।

(भृतिग्रहणेन निर्हारे)

भृतिग्रहणेन निर्हारदाहे च तज्जात्याशौचम्।

मजदूरी ग्रहण कर (उसका अन्न भक्षण न करने पर भी) शव को ले जाने पर तथा दाहमात्र करने पर भी उसकी जाति का आशौच होता है।

यदि निर्हरति प्रेतं प्रलोभाक्रान्तमानसः। दशाहेन द्विजः शुद्धयेद् द्वादशाहेन भूमिपः॥ मासार्द्धेन तु वैश्यस्तु शूद्रो मासेन शुद्धयति॥ इति कौर्मोक्तेः।

कूर्मपुराण में कहा है—लोभ के वशीभूत मनके कारण प्रेत को ले जाय तो दशदिन में ब्राह्मण और क्षत्रिय बारहदिन में, पन्द्रहदिन में वैश्य तथा शूद्र एक महिने में शुद्ध होते हैं।

(विजातीयनिर्हारे)

विजातीयनिर्हारे तु शवजातीयमशौचम्। अत्र भृतिग्रहे द्विगुणम्। अवरश्चेद्वरं वर्णं वरो वाप्यवरं यदि। वहेच्छवं तदाशौचं द्रव्यार्थे द्विगुणं भवेत्॥ इति व्याघ्रोक्तेः। कौर्ममेतदिति गौडाः। दाहेऽप्येवम्।

विजातीय प्रेत को श्मशान ले जाने पर तो शव (प्रेत) जातीय आशौच होता है। भृति (मजदूरी) ग्रहण पर तो दूना आशौच होता है। व्याघ्र ने कहा है—छोटा वर्णवाला बड़े वर्णवाले को, बड़ा वर्णवाला छोटे वर्णवाले शव को यदि द्रव्य ग्रहण कर ले जाय तो दूना आशौच होता है। गौड कहते हैं—यह वचन कूर्मपुराण का है। दाह में भी यही जानना चाहिये।

यत्तु ब्राह्मे—योऽसवर्णं तु मूल्येन नीत्वा चैव दहेन्नरः। आशौचं तु भवेत्तस्य प्रेतजातिसमं नृप॥ इति। तदापदि ज्ञेयम्। सोदकनिर्हारे तु दशाह इति माधवः।

जो ब्रह्मपुराण में कहा है—जो नर (मनुष्य) असवर्ण प्रेत को द्रव्य द्वारा ले जाकर (श्मशान में) दहन करता है। हे नृप, उसको प्रेत जाति के सदृश आशौच होता है। यह आपत्ति में जानना चाहिये। माधव ने कहा है—सोदक को ले जाने पर दशदिन का आशौच होता है।

(प्रेतालङ्करणे)

अलङ्करणे तु शङ्खः—कृच्छ्रपादोऽसपिण्डस्य प्रेतालङ्करणे कृते।
अज्ञानादुपवासं स्यादशक्तौ स्नानमिष्यते॥

अलंकार करने पर तो शंख ने कहा है—असपिंड प्रेत का अलंकार (दूर से अलंकार करने पर भी) करने पर कृच्छ्रपाद (याज्ञवल्क्यः—एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन), च। उपवासेन चैवायं पादकृच्छ्रः प्रकीर्तितः॥) अज्ञान से तो उपवास और अशक्ति में स्नान कहा है।

(धर्मार्थमनाथाहरणे क्रियाकरणे च)

धर्मार्थमनाथसवर्णहरणे क्रियाकरणे च द्विजस्यानन्तयज्ञफलम्। 'स्नानं प्राणायामोऽग्निस्पर्शश्च' इति माधवीये। अग्निदेऽप्येवम्,

माधवीय में कहा है—धर्मार्थ [1]अनाथ (स्वसंबन्धहीन, स्नेहाद्यभाजनमिति रघुनाथः) सवर्ण प्रेत

१—पराशरः—अनाथं ब्राह्मणं प्रेतं ये वहन्ति द्विजातयः। पदे पदे यज्ञफलमनुपूर्वं भवन्ति ते॥ न तेषामशुभं किञ्चित्पापं वा शुभकर्मणाम्। जलावगाहनात्तेषां सद्यः शौचं विधीयते॥ असगोत्रभवं ध्रुवप्रेतीभूतं द्विजोत्तमम्। वहित्वा च दहित्वा च प्राणायामेन शुध्यति। अङ्गिरा—यः कश्चिन्निर्हरेत् प्रेतमसपिण्डः कथञ्चन। स्नात्वा सचैलः स्पृष्ट्वाऽग्निं तस्मिन्नेवाह्नि वै शुचिः॥

को ले जाने पर और क्रिया करने पर द्विज को अनन्तफल होता है। माधवीय में कहा है—स्नान, प्राणायाम और अग्निस्पर्श करे। अग्नि देनेवाले को भी यही है।

प्रेतसंस्पर्शसंस्कारैर्ब्राह्मणो नैव दुष्यति। वोढा चैवाग्निदाता च सद्यः स्नात्वा विशुद्ध्यति ॥ इति अपरार्के वृद्धपराशरोक्तेः।

अपरार्क में वृद्धपराशर ने कहा है—प्रेत का स्पर्श तथा संस्कार करने पर ब्राह्मण दूषित नहीं होता है। ले जानेवाला और अग्निदाता ('च' शब्द से सकलौर्ध्वदेहिसंग्रहः) स्नान कर शीघ्र शुद्ध होता है।

मातुलत्वादिसम्बन्धे त्रिरात्रम्। 'असम्बन्धिद्विजान् वहित्वा दहित्वा च सद्यःशौचं, सम्बन्धे त्रिरात्रम्' इति पैठीनसिस्मृतेः।

मामा आदि के संबन्ध में तीनरात आशौच होता है। असंबन्धितों को ले जाने पर (अर्थात्—स्नेहादि के बिना अनाथ प्रेत को ले जाने पर) और दाह करने पर 'सद्यःशौच' होता है। सम्बन्ध में तीन रात का होता है—ऐसा पैठीनसिस्मृति में कहा है।

गौतममिताक्षरायां वृद्धात्रिः—सूतकाद् द्विगुणं शावं शावाद् द्विगुणमार्तवम्। आर्तवाद् द्विगुणा सूतिस्ततोऽपि शवदाहकः ॥ अत्र पूर्वेणोत्तरनिवृत्तिरित्यर्थः विष्णुः।

गौतम मिताक्षरा में वृद्ध अत्रि ने कहा है—सूतक (जननाशौच) से दूना मृतक सम्बन्धि तथा शाव से द्विगुण आर्तव (मासिकस्राव रजोदर्शन) का, आर्तव से द्विगुण सूतिका और उससे अधिक शव के दाह का सूतक होता है। यहाँ पर पूर्व से उत्तर की निवृत्ति है—यह अर्थ है। ऐसा विष्णु ने कहा है।

(ब्रह्मचारिणा शववाहादिकृते प्रायश्चित्तम्)

विष्णुः—मृतं द्विजं न शूद्रेण हारयेन्न शूद्रं द्विजेन देवलः—ब्रह्मचारी न कुर्वीत शववाहादिकाक्रियाम्। यदि कुर्याच्चरेत्कृच्छ्रं पुनः संस्कारमेव च ॥

मरे हुए द्विज को शूद्र और मृत शूद्र को द्विज न ले जाय। देवल ने कहा है—ब्रह्मचारी शव का वाहन आदि (आदिपद से अलंकार ही ग्रहण करे दाह नहीं) क्रिया न करे। यदि करे तो कृच्छ्रव्रत और फिर से ही संस्कार को करे।

याज्ञवल्क्यः (प्रा० श्लो० १५)—आचार्यपित्रुपाध्यायान्निर्हृत्यापि व्रती व्रती। अनुगमने तु सपिण्डे न दोषः,

याज्ञवल्क्य ने कहा है—आचार्य, पिता, माता और उपाध्याय के शव को श्मशान में ले जाने पर व्रती (ब्रह्मचारी) का व्रत भंग नहीं होता है। निर्हरणादि आशौच तो उसका होता ही है। अनुगमन में तो सपिण्ड में दोष नहीं होता है।

विहितं हि सपिण्डानां प्रेतनिर्हरणादिकम्। तेषां करोति यः कश्चित्तस्याधिक्यं न विद्यते ॥ इति देवलोक्तेः।

देवल ने कहा है—सपिण्डनों का प्रेत का निर्हरणादिक—ले जाना (आदिपद से—अनुगमन, रोदन, दाह, उदकदानादि) कहा है। जो कोई उनका करता है उससे अधिक आशौच नहीं होता है।

दोषं स्यात्त्वसपिण्डस्य तत्रानाथक्रियां विना। इति हारीतोक्तेः।

और हारीत ने कहा है-अनाथ की क्रिया के बिना वहाँपर असपिण्ड को ले जाने आदि में दोष होता है।

(समोत्कृष्टवर्णानुगमने तु)

समोत्कृष्टवर्णे तु माधवीये कण्वः—अनुगम्य शवं बुद्ध्या स्नात्वा स्पृष्ट्वा हुताशनम्। सर्पिः प्राश्य पुनः स्नात्वा प्राणायामैर्विशुद्ध्यति ॥

समान उत्कृष्टवर्ण में तो माधवीय में कण्व ने कहा है—बुद्धिपूर्वक शव के साथ जाकर स्नान, अग्निस्पर्श और घृत का प्राशन करे। फिर से स्नान कर प्राणायामों से शुद्ध होता है।

हीनवर्णे तु क्षत्रियेऽहः, वैश्ये पक्षिणी, शूद्रे त्रिरात्रं, क्षत्रियस्य वैश्येऽहः, शूद्रे पक्षिणी, वैश्यस्य शूद्रेऽहः इति विज्ञानेश्वरः। माधवस्तु विप्रस्य वैश्ये द्व्यहः, क्षत्रियस्य शूद्रेऽप्येवम्। अन्यत्प्राग्वत्। स्नानाग्निस्पर्शघृताशनानि सर्वत्रेत्याह।

हीनवर्ण में तो क्षत्रिय को एकदिन का आशौच होता है। वैश्य में पक्षिणी तथा शूद्र में तीनदिन का आशौच होता है। क्षत्रिय का वैश्यमें एकदिन का, [1]शूद्र में पक्षिणी, वैश्यका शूद्र में एकदिन का आशौच होता है--एसा विज्ञानेश्वर ने कहा है। माधव ने तो कहा है-[2]ब्राह्मण वैश्य के साथ जाय तो दो दिनका आशौच होता है। क्षत्रिय को शूद्र के साथ जाने में दोदिन का ही आशौच होता है। अन्य सब पूर्व में कहे हुए की की तरह है। (अर्थात्--ब्राह्मण को क्षत्रिय के साथ जाने में और वैश्य को शूद्र के साथ जाने में एकदिन का तथा ब्राह्मण का शूद्र के साथ अनुगमन में तीनदिन का आशौच होता है यह अर्थ है।) सचैलस्नान, अग्निस्पर्श, घृतप्राशन आदि सर्वत्र कहा है।

(हीनवर्णस्य दाहादिकरणे विचारः)

हीनवर्णस्य दाहौर्ध्वदेहिककरणे तु ब्राह्मे—ब्राह्मणो हीनवर्णस्य न कुर्यादौर्ध्वदेहिकम्। कामाल्लोभात्तथा मोहात्कृत्वा तज्जातितां व्रजेत्॥

हीनवर्ण के दाह औध्र्वदेहिक करने पर तो ब्रह्मपुराण में कहा है—ब्राह्मण हीनवर्ण का औध्र्वदेहिक न करे। इच्छा, लोभ या मोह से करता है तो उसी की जाति को प्राप्त होता है।

मनुः (११।१९७)—व्रात्यानां याजनं कृत्वा परेषामन्त्यकर्म च। अभिचारमहीनं च त्रिभिः कृच्छ्रैर्व्यपोहति॥ परेषां सवर्णानां हीनेषु तद्द्वैगुण्यत्रैगुण्यचातुर्गुण्याद्यूह्यम्।

मनु ने कहा है--व्रात्यों का याजन कराकर समान वर्णवालों का अन्य कर्म कर उत्कृष्ट वर्णों में अभिचार (मारणादि) कर ('अत ऊर्ध्वं त्रयोऽप्येते' इससे कहे हुए व्रात्यस्तोम आदि यज्ञ कर) पिता, गुरु आदि को छोड़कर निषिद्ध औध्र्वदेहिक दाह श्राद्धादि कर और अभिचार—श्येनादिक तथा [3]अहीनयाग—यागविशेष कर (अहीनयजनमशुचिकरम्--एसा श्रुति मे कहा है।) तीन कृच्छ्रों से शुद्ध होता है। हीनवर्णों में तो द्विगुणित, त्रिगुणित, चतुर्गुण आदि का ऊह करे।

(रोदने समोत्तमवर्णयोर्विचारः)

अथ रोदने समोत्तमवर्णयोः सञ्चयनात्पूर्वं सचैलस्नानमूर्ध्वमाचमनम्।

इसके बाद रुदन करने पर प्रायश्चित्त कहते हैं। समान और उत्तमवर्ण के यहाँ अस्थिसंचयन के पहले रोने पर सचैलस्नान करे, बाद में आचमन करे।

(हीनवर्णे तु विचारः)

हीनवर्णे तु सञ्चयात्प्राक् सचैलमूर्ध्वं स्नानमात्रम्।

हीनवर्ण में तो अस्थिसंचयन के पहले रुदन करने पर सचैलस्नान करे बाद में रुदन करने पर स्नानमात्र करे।

(विप्रस्य क्षत्रवैश्यविषये विचारः)

विप्रस्य क्षत्रवैश्यविषये तु ब्राह्मे--अस्थिसञ्चयने विप्रो रौति चेत् क्षत्रवैश्ययोः। तदा स्नातः सचैलस्तु द्वितीयेऽहनि शुद्ध्यति॥ कृते तु सञ्चये विप्रः स्नानेनैव शुचिर्भवेत्।

ब्राह्मण का क्षत्रिय और वैश्य के यहाँ रुदन में तो ब्रह्मपुराण में कहा है—अस्थिसंचयन के समय में

१—पराशरः—प्रेतीभूतं तु यः शूद्रं ब्राह्मणोज्ञानदुर्लभः। अनुगच्छेन्नीयमानं स त्रिरात्रेण शुध्यति॥ त्रिरात्रे तु ततश्चीर्णे नदीं गत्वा समुद्रगाम्। प्राणायामशतं कृत्वा घृतं प्राश्य विशुध्यति॥

२—क्षत्रियं मृतं ज्ञात्वा ब्राह्मणो योऽनुगच्छति। एकाहमशुचिर्भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति॥ पराशरः—शवं च वैश्यमज्ञानाद् ब्राह्मणो योऽनुगच्छति। कृत्वाशौचं द्विरात्रं च प्राणायामान् षडाचरेत्॥

३—इस यज्ञ का विवरण स्वर्गीय पिताजी की म० म० श्रीविद्याधर जी गौडकृत सरलावृत्ति—कात्यायनश्रौतसूत्र की भूमिका तथा कात्यायनश्रौतसूत्र के मूल में देखिये। तद्वत् ही व्रात्यस्तोम आदि यज्ञों को भी देखिए।

क्षत्रिय और वैश्य के यहाँ ब्राह्मण रोता है तो सचैलस्नान करके दूसरे दिन शुद्ध होता है। अस्थिसञ्चय करने पर ब्राह्मण स्नान से ही पवित्रता होती है।

(क्षत्रस्य वैश्येऽपि विचारः)

क्षत्रस्य वैश्येऽप्येवम् ।

क्षत्रिय को वैश्य के यहाँ भी यही है।

(विप्रादीनां शूद्रे विचारः)

शूद्रे तु सञ्चयात्प्राक् विप्रस्य त्रिरात्रम् । क्षत्रवैश्ययोर्द्विरात्रम् । ऊर्ध्वं तु द्विजानामेकाहः ।

शूद्र के यहाँ अस्थिसंचय के पहले ब्राह्मण के रुदन करने पर तीनरात्रि में शुद्ध होता है। क्षत्रिय और वैश्य को दोरात की अपवित्रता होती है। इसके बाद रुदन करने पर द्विजों को एकदिन आशौच होता है।

(शूद्रस्य शूद्रे विचारः)

शूद्रस्य शूद्रे स्पर्शं विना सञ्चयात्पूर्वमेकाहः । ऊर्ध्वं सज्योतिरिति माधवीये ज्ञेयम् ।

शूद्र का शूद्र के स्पर्श के बिना अस्थिसंचय के पहले एकदिन का आशौच होता है। बाद में सज्योति आशौच होता है—एसा माधवीय में जानना चाहिये।

(अस्थिसञ्चयनादूर्ध्वं द्विजातीनां सपिण्डानां च विचारः)

शुद्धितत्त्वे पारस्करस्तु—अस्थिसञ्चयनादूर्ध्वं मासं यावद् द्विजातयः। दिवसेनैव शुध्यन्ति वाससां क्षालनेन च ॥ सजातेर्दिवसेनैव त्र्यहात्क्षत्रियवैश्ययोः ॥ इत्युक्तम् । सपिण्डानां रोदन-निर्हारादावदोष इत्युक्तं प्राक् ।

शुद्धितत्त्व में पारस्कर ने कहा है—अस्थिसंचयन के पूर्व एकमहिने तक द्विजाति (ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य) रुदन करें तो एकदिन में ही और वस्त्रों को क्षालन करने से शुद्ध होते हैं। सजातीय (शूद्र के अस्थि-सञ्चयन के पूर्व स्पर्श के बिना अनुगमन में और रोने पर अहोरात्र से शुद्धि होती है। इसके बाद रात्रि में तो रात्रि से तथा दिन में हो तो दिन में) के यहाँ एकदिन में, क्षत्रिय तथा वैश्य के यहाँ तीनदिन में शुद्ध होते हैं—एसा कहा है। सपिण्डों के रुदन, लेजाने आदि में दोष नहीं है यह पहले कह चुके हैं।

विज्ञानेश्वरस्तु—मृतस्य बान्धवैः सार्द्धं कृत्वा तु परिदेवनम् । वर्जयेत्तदहोरात्रं दानश्राद्धादिकर्म च ॥ इति पारस्करोक्तेः सर्वत्रैकरात्रमाह ।

विज्ञानेश्वर ने तो कहा है—बान्धवों के साथ प्रेत का शोक (विलाप) कर अहोरात्र दान, श्राद्ध आदि कर्म को त्याग दे—यह पारस्कर ने कहा है। सर्वत्र एकरात कहा है।

(आशौचान्नभक्षणे विचारः)

अथाशौचान्नभक्षणे विष्णुः—ब्राह्मणादीनामाशौचे यः सकृदेवान्नमश्नाति तस्य तावदाशौचं यावत्तेषामाशौचव्यपगमे प्रायश्चित्तम्' इति ।

इसके बाद आशौच के अन्नभक्षण में विष्णु ने कहा है—ब्राह्मण आदियों के (यहाँ बुद्धिपूर्वक) आशौच में जो एकबार उनके अन्न का भोजन करता है उसको तबतक आशौच होता है जबतक उनको होता है और आशौच की समाप्ति पर प्रायश्चित्त होता है।

अज्ञाने त्वङ्गिराः—अन्तर्दशाहे भुक्त्वान्नं सूतके मृतकेऽपि वा ।
अस्याशौचं भवेत्तावद्यावदन्नं व्रजत्यधः ॥

अज्ञान में अङ्गिरा ने कहा है—दशदिन के भीतर जननाशौच में या मरणाशौच में जो सूतकी का अन्न भोजन करता है। उसको तबतक आशौच है जबतक खानेवाले का अन्न बाहर नहीं होता है।

प्रायश्चित्तं त्वमत्या विप्रस्य वर्णक्रमेणैकाहत्र्यहपञ्चाहसप्ताहोपवासाः, दश, विंशतिः, षष्टिः, शतं च प्राणायामाः पञ्चगव्याशनं च । अभ्यासे द्विगुणम् । आपदि तु प्राणायामशतं पञ्चशत-मष्टसहस्रं गायत्रीजपश्च । मत्यापदि तु सवर्णाशौचे त्रिरघमर्षणं गायत्र्यष्टसहस्रं च । क्षत्रियाशौचे उपवासः । वैश्याशौचे त्रिरात्रोपवासश्च । शद्राशौचे कृच्छ्रः । क्षत्रवैश्ययोः पञ्चशतमष्टशतं

गायत्रीजपः। उत्तमेषु शूद्रस्य सर्वत्र स्नानम्। सत्यानापदि विप्रस्य वर्णेषु सान्तपनकृच्छ्रमहासान्तपनचान्द्रायणि। अभ्यासे तु मासिकद्वैमासिकत्रैमासिकषाण्मासिकानीत्यादि माधवीयादौ ज्ञेयम्।

प्रायश्चित्त तो अज्ञान से (एकवार) वर्णक्रम से एकाह (एकदिन), तीनदिन, पांचदिन और सात दिन (अज्ञानाद् भुञ्जते विप्राः सूतके मृतके तथा। एकाहं च त्र्यहं पञ्च सप्तरात्रमभोजनम्॥ ततः शुद्धिर्भवेद्विप्रः पञ्चगव्यं पिबेन्नरः॥ छागलेयः—प्राणायामशतं कृत्वा शुध्यते शूद्रसूतके। वैश्ये षष्टिर्भवेद्राज्ञि विंशतिर्ब्राह्मणे दश॥) उपवास करे। दश, वीस, साठ तथा सौ प्राणायाम और [1]पञ्चगव्यप्राशन करे। अभ्यास (बारंबार) (बारंबार भोजन करने पर) में दूना प्रायश्चित्त करे। आपत्ति में तो सौ प्राणायाम, पांचसौ प्राणायाम और आठहजार गायत्रीजप करे। जानकर आपत्ति में तो सवर्णाशौच में तीनबार अघमर्षण, और आठहजार गायत्रीजप करे। क्षत्रिय के आशौच में उपवास करे और वैश्य के आशौच में तीनदिन का उपवास करे। शूद्र के आशौच में कृच्छ्र करे। क्षत्रिय पांच सौ और वैश्य को आशौच में आठ सौ गायत्री जप करे। उत्तम वर्ण में शूद्र को सर्वत्र स्नान है। जानकर विना विपत्ति के ब्राह्मण को (एकबार) भोजन करने पर वर्णक्रम से (मार्कण्डेयः—भुक्त्वा तु ब्राह्मणशौचे चरेत्सान्तपनं द्विजः। भुक्त्वा तु क्षत्रियाशौचे तथा कृच्छ्रो विधीयते॥ वैश्याशौचे तथा भुक्त्वा महासान्तपनं चरेत्। शूद्रस्य च तथा भुक्त्वा द्विजश्चान्द्रायणं चरेत्॥) सान्तपन-कृच्छ्र, महासान्तपन (पृथक्सान्तपनद्रव्यैः षडहः सोपवासकः। सप्ताहेन तु कृच्छ्रोऽयं महासान्तपनः स्मृतः। याज्ञ० प्रा० श्लो० ३१५) और चान्द्रायणव्रत करे। अभ्यास में तो एकमहिना, दोमहिना, तीनमहिना और छमहिना (शंखः—शूद्रस्य सूतके भुक्त्वा षण्मासान् व्रतमाचरेत्। वैश्यस्य तु तथा भुक्त्वा त्रीन् मासान् व्रतमाचरेत्। क्षत्रियस्य तथा भुक्त्वा द्वौ मासौ व्रतमाचरेत्। ब्राह्मणस्य तथा भुक्त्वा मासमेकं व्रती भवेत्॥) इत्यादि माधवीय आदि में जानना चाहिये।

(दासाद्याशौचविचारः)

अथ दासस्य स्वदास्युत्पन्नस्य स्वसपिण्डमृतौ स्नानमात्रेण स्वामिकार्ये स्पृश्यत्वम्। भक्तदासस्य त्र्यहोर्ध्वम्। सद्यः स्पृश्यो गर्भदासो भक्तदासस्त्र्यहाच्छुचिः। इति स्मृत्यन्तरोक्तेः।

इसके बाद दास का अपनी दासी में उत्पन्न सपिण्ड के मरने पर स्नानमात्र से (अर्थात्—सचैलस्नान से), स्वामी के कार्य में स्पर्शकरने योग्य होता है। भक्तदास का (ध्वजाहृतो भक्तदासो गृहजः क्रीतदत्रिमौ। पैतृको दण्डदासश्च सप्तैते दासयोनयः॥ (मनु० ८।४१५)। लोभ से आया हुआ) तीनदिन के बाद स्पृश्य होता है।

स्मृत्यन्तर में कहा है—गर्भदास (स्वदासी में उत्पन्न दास) का और भक्तदास (अन्न से उपात्तदास) को तीनदिन मे शुद्धि (अर्थात्—स्वामी के कार्य में) होती है। अर्थात्—स्पर्श करने योग्य होता है।

मूल्यकर्मकराः शूद्रा दासीदासास्तथैव च। स्नाने शरीरसंस्कारे गृहकर्मण्यदूषिताः॥ इति शातातपोक्तेश्च।

और शातातप ने कहा है—मूल्यद्वारा कर्मकरनेवाले शूद्र वैसे ही दासी दास आदि भी स्नान में, शरीर के संस्कार में और घर के कर्म में दूषित नहीं होते हैं।

एतच्चानन्यसाध्ये तत्कार्यमात्रे। अन्यत्र मासाद्याशौचमस्त्येव। एवं दास्या अपि। सूतिकायास्तस्या अस्पर्शत्वमपि मासमात्रम्,

और यह दूसरों के द्वारा साध्य न होने पर उस उस कार्यमात्र में। अन्यत्र (दासो दासश्च यत्कर्म कुर्वन्त्यपि च लीलया। तदन्यो न क्षमः कर्तुं तस्मात्ते शुचयः स्मृता॥) मास आदि आशौच ही होता है। इस प्रकार दासी (गर्भदासी का सचैलस्नानमात्र से और भक्तदासी का तो तीनदिन में स्पर्श होता है।) सूतिका दासी का अस्पृश्यत्व (नहीं स्पर्श करना) भी एकमास मात्र का होता है।

१—गोमूत्रं कृष्णवर्णायाः श्वेतायाश्चैव गोमयम्। पयश्च ताम्रवर्णाया रक्ताया गृह्यते दधि॥ कपिलाया घृतं ग्राह्यं सर्वं कापिलमेव वा। मूत्रमेकपलं ग्राह्यमङ्गुष्ठार्धं तु गोमयम्॥ क्षीरं सप्तपलं ग्राह्यं दधि त्रिपलमुच्यते। घृतमेकपलं ग्राह्यं पलमेकं कुशोदकम्॥ एतच्च गायत्र्या गोमूत्रमित्यादि समन्त्रकं कार्यम्। पञ्चगव्यपाने यमः—पालाशे मध्यमे पर्णे भाण्डे ताम्रमये तथा। मृन्मयेऽपि।

दासीदासश्च सर्वो वै यस्य वर्णस्य यो भवेत्। तद्वर्णस्य भवेच्छौचं दास्या मासस्तु सूतकम् ॥ इत्यङ्गिरसोक्तेः।

अङ्गिरा ने कहा है—दासी और दास जो निश्चय जिसवर्ण का होता है उसको उसीवर्ण का आशौच होता है। दासी का तो सूतक एकमहिने का होता है।

षडशीतावपि—स्वामिशौचेन दासाद्याः स्पृश्या मासात्तु कर्मसु।
योग्याः स्युर्मासतो दासी सूतिश्चेत्स्पर्शतामियात् ॥

षडशीति में भी कहा है—दास आदि स्वामी के आशौच से कार्यों को करने में एक महिने में स्पृश्य होते हैं। दासी प्रसूता हो तो एकमास में स्पर्श करने योग्य होती है।

दत्तदासादीनां स्वसपिण्डमरणादौ स्वाम्याशौचसमसंख्यदिनोर्ध्वं सत्यपि मासाद्याशौचे स्वामिकार्ये स्पृश्यतेति हरदत्तः,

हरदत्त ने कहा है—दत्त दास (दिया हुआ या खरीदा हुआ) आदियों का अपने सपिण्ड के मरणादि में स्वामी के आशौच समसंख्यदिन के बाद मासादि आशौच के होने पर स्वामी के कार्य में स्पर्श होने लायक होते हैं।

दासान्तेवासिभृतकाः शिष्याश्चैकत्रवासिनः। स्वामितुल्येन शौचेन शुद्ध्यन्ति मृतसूतके ॥ इति बृहस्पतिस्मृतेः।

बृहस्पतिस्मृति में कहा है—दास, अन्तेवासि (शिष्य), भृत्य (नौकर) एकसाथ रहनेवाले ये लोग मृतक और जननाशौच में स्वामी के सदृश आशौच में शुद्ध होते हैं।

(पञ्चदश दासभेदाः)

दासाश्चात्र—गृहजातस्तथा क्रीतो लब्धो दायादुपागतः। अन्नाकालभृतस्तद्वदाहितः स्वामिना च यः। मोक्षितो महतश्चर्णाद्युद्धप्राप्तः पणे जितः। भक्तदासश्च विज्ञेयस्तथैव बडवाहृतः ॥ तवाहमित्युपगतः प्रव्रज्यावसितः कृतः ॥ विक्रेता चात्मनः शास्त्रे दासाः पञ्चदश स्मृताः ॥ इति नारदोक्तेषु गर्भदासभक्तदासौ विना ज्ञेयाः। बडवा दासी तयाहृतस्तामुद्वाह्य दासो जात इत्यर्थः। अन्तेवास्यपि तेनवोक्तः।

यहाँ पर दास ये हैं—गृहजात (घर में अपनी दासी से उत्पन्न) क्रीत (मूल्य के द्वारा खरीदा हुआ) लब्ध (प्रतिग्रह से प्राप्त) दायाद (विभाग के द्वारा) उपागत (प्राप्त हुआ) अन्न के अकाल (दुर्भिक्ष) में दासरूप से भरण द्वारा रक्षित, धन के ग्रहण से अधीनता को स्वीकार करनेवाला, ऋण छुडाकर दासता प्राप्त करनेवाला, युद्ध में जीतकर प्राप्त करना, यदि बाद में पराजित हो जाऊँगा तो तुम्हारा दास होऊँगा एसा पण से जीतनेवाला, मैं तुम्हारा दास हूँ एसा कहने पर प्राप्त, संन्यासमार्ग से च्युत, वेतनादि द्वारा किया हुआ, सर्वदा भक्तार्थ ही दासरूप से प्राप्त, बड़वा दासी को ले आकर उसके साथ विवाह कर उसमें उत्पन्न दास और जो आत्मा को वेचनेवाला, ये पन्द्रह दास कहे हैं। नारद में कहे हुओं में गर्भ और भक्तदास को छोड़कर जानना चाहिये। बडवा-दासी को हरणकर उसके साथ विवाह कर दास उत्पन्न होता है—यह अर्थ है। अन्तेवासी (शिष्य) भी उन्होंने कहा है।

स्वशिल्पमिच्छन्नाहर्त्तुं बान्धवानामनुज्ञया। आचार्यस्य वसेदन्ते कृत्वा कालं तु निश्चितम्। आचार्यः शिक्षयेदेनं स्वगृहे दत्तभोजनम् ॥ इति। शिष्यस्तत्तुल्यो विद्यार्थी।

बान्धवों की आज्ञा से अपने शिल्प (कारीगरी) को सीखने की इच्छा से आचार्य के समीप में आकर शिष्यरूप से समय का निश्चय कर रहता है तो आचार्य उसको अपने घर में भोजन देकर शिक्षा दें। शिष्य उसके सदृश (अन्तेवासी के तुल्य आचरणवाला) विद्यार्थी है।

दासादेः स्वामितत्सपिण्डमरणे तु विष्णुः—पत्नीनां दासानामानुलोम्येन स्वामितुल्यमाशौचम्, मृते स्वामिन्यात्मीयम्। इति।

स्वामी और उसके सपिण्ड के मरने पर तो दासादि के लिए विष्णु ने कहा है—पत्नी और दासा-

दियों का आनुलोम से स्वामी के सदृश आशौच होता है। स्वामी के मरने पर आत्मीय (अपनी जाती का) आशौच होता है।

प्रतिलोमदासानामाशौचाभावः, वर्णानामानुलोम्येन दास्यं न प्रतिलोमतः। इति याज्ञवल्क्योक्तेः (व्यव० श्लो० १८३)।

प्रतिलोम दासों का आशौच का अभाव है। याज्ञवल्क्य ने कहा है—दासभाव वर्णों के आनुलोम्य (अनुक्रम—जिसका पिता उत्तम वर्ण का हो और माता उससे हीनवर्ण की हो) से होता है। अर्थात्—अपने निम्नवर्ण का ही दास होता है। प्रतिलोम (जिसका पिता हीनवर्ण का हो और माता उससे उत्तम वर्ण की हो) दास नहीं होता है।

(रात्रौ जनने मरणे वा विचारः)

अथ रात्रौ जनने मरणे वा रात्रिं त्रिभागां कृत्वाऽद्यभागद्वये चेत्पूर्वदिनम्, अन्त्ये तूत्तरमिति मिताक्षरायाम्। यत्तु प्रागर्द्धरात्रात् प्राग्वा सूर्योदयात्पूर्वं दिनमित्युक्तं तत्र तद्देशाचारतो व्यवस्था। सर्वमाशौचमाहिताग्नेर्दाहं तद्भिन्नस्य मरणमारभ्य ज्ञेयम्।

इसके बाद रात्रि में जनन या मरण में रात्रि का तीन भाग कर उसके आदि के दो भाग में तो पूर्वदिन (पहलादिन) ग्रहण करे। अर्थात्—रात्रि के दो बजे तक किसी की मृत्यु या जन्म हो तो पहलादिन ग्रहण करे। (कश्यपः—'रात्रिं त्रिभागां कुर्यात् तु द्वौ भागौ पूर्व एव तु। उत्तरांशः प्रभातेन युज्यते ऋतुसंज्ञके॥) अन्त्य में तो उत्तरदिन ग्रहण करे। (अर्थात्—रात्रि के तीन बजे से दूसरा दिन ग्रहण करे।) यह मिताक्षरा में कहा है।

जो आधीरात के पहले या सूर्योदय के पूर्व (पहला) दिन कहा है। (कश्यपः—उदिते तु यदा सूर्ये नारीणां दृश्यते रजः। जननं वा विपत्तिर्वा यस्याहस्तस्य शर्वरी॥ अर्धरात्रावधिः कालः सूतकादौ विधीयते। रात्रावेव समुत्पन्ने मृते रजसि सूतके॥ पूर्वमेव दिनं ग्राह्यं यावन्नोदयते रविः।)। वहाँ पर देशाचार से व्यवस्था है। यह सब आशौच आहिताग्निका दाह से होता है उससे भिन्न (अर्थात्—अग्निहोत्री-श्रौताग्नि से भिन्न) साधारणों का आशौच मरण से आरंभ करे-यह जानना चाहिये।

(आहिताग्नेर्दाहादिनिर्णयः)

अनग्निमत उत्क्रान्तेराशौचादिद्विजातिषु। दाहादग्निमतो विद्याद्विदेशस्थे मृते सति॥ इति पैठीनसिस्मृतेः। साग्निराहिताग्निः।

पैठीनसीस्मृति में कहा है—द्विजातियों में जो अग्निहोत्री नहीं हैं उनका आशौच आदि (तन्निमित्तक सन्ध्यावन्दनत्यागादेः त्रैपाक्षिकान्तप्रेतकर्मणश्च परिग्रहः।) मरणसमय से तथा अग्निहोत्री का आशौच दाह से विदेश में मरने पर होता है। साग्निक माने-आहिताग्नि।

आहिताग्निश्चेत्प्रवसन् म्रियेत पुनःसंस्कारं कृत्वा शववदाशौचम् इति वसिष्ठे विशेषोक्तेः।

वसिष्ठ ने विशेष कहा है—आहिताग्नि प्रवास (विदेश) करते हुए मरजाय तो फिर से संस्कार कर (अर्थात्—लकडी के सदृश लौकिक अग्नि में दाह कर संस्कार नहीं है, इसप्रकार की व्यञ्जना के लिए 'पुनः' शब्द कहा है।) शव के सदृश आशौच होता है।

दाहादेव तु कर्तव्यं यस्य वैतानिको विधिः। इति ब्राह्माच्च।

और ब्रह्मपुराण में कहा है—जिसके यहाँ वैतानिक (तीनों अग्नियों) की विधि हैं उसका दाह से ही आशौच करना चाहिये।

यत्तु धूर्तस्वामिना रामाण्डारेण चोक्तम्—आहिताग्नेरपि मरणादेव दशरात्रम् 'दशाहं शावमाशौचम्' इति मरणनिमित्तत्वात्तस्य।

१—अयमर्थः—रात्रिमात्रावशिष्टे पूर्वाशौचे यद्याशौचान्तरं सन्निपातेत्तर्हि पूर्वाशौचं समाप्यानन्तरं द्वाभ्यां रात्रिभ्यां शुद्धिः। प्रभाते पुनस्तस्या रात्रेः पश्चिमे यामे जननाद्याशौचान्तरसन्निपाते सति तिसृभी रात्रिभिः शुद्धिः न पुनस्तच्छेषमात्रेण। (मिताक्षरा टी० प्राय० श्लो० ४६)।

जो धूर्तस्वामी और रामाण्डार ने कहा है—आहिताग्नि का भी मरण से ही दशरात्रि आशौच होता है। दशाह आशौच मृतक का होता है। उसका मरणनिमित्त होने से।

यत्तु दाहादेव तस्याशौचमुक्तं तत्संस्कारनिमित्ताशौचं पृथगेव। तेन गृह्याग्नेः संस्काराङ्गं त्रिरात्रम्। श्रौताग्नेस्तु दशरात्रम्। मरणनिमित्तं तूभयोर्दशाहं दाहात्प्रागपीति। तद्वचनविरोधात्पूर्वस्यैवोत्कर्षान्मूलकल्पनालाघवाच्चिन्त्यम्।

जो उसका आशौच दाह से ही कहा है। वह उसके संस्कारनिमित्त आशौच से पृथक् (अलग) ही है। इससे गृह्याग्नि का संस्कारांग तीनदिन का आशौच होता है और श्रौताग्नि का तो दशरात्रि तक आशौच होता है। मरणनिमित्त तो दोनों को दाह के पूर्व भी दशाह आशौच होता है। वह वचन (हारीत वचन) विरोध से पूर्व का ही (मरण निमित्त का ही) उत्कर्ष से मूलकल्पना के लाघव से चिन्तनीय है।

(अतिक्रान्ताशौचे-तत्राशौचमध्ये जननादौ ज्ञाते, देशान्तरे अतिक्रान्ताशौचे, दशदिनमध्ये श्रवणे च विचारः)

अथातिक्रान्ताशौचम्। तत्राशौचमध्ये जननादौ ज्ञाते तच्छेषेण शुद्धिः।

अब अतिक्रान्त (बीता हुआ, गया हुआ) कहते है। वहाँ पर आशौच के मध्य में (दशाह आदि के मध्य में) जनन (जन्म) आदि के ज्ञान होने पर उस आशौच के शेष (अवशिष्ट) से शुद्धि होती है।

विगतं तु विदेशस्थं शृणुयाद्यो ह्यनिर्दशम्। यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवाशुचिर्भवेत्॥ इति मनूक्तेः (५।७५)। अत्र केचिदेतत्पुत्रातिरिक्तविषयम्। तेषां त्वाशौचमध्ये श्रवणेऽपि तदाद्येव दशाहादि। पितरौ चेन्मृतौ स्यातां दूरस्थोऽपि हि पुत्रकः। श्रुत्वा तद्दिनमारभ्य दशाहं सूतकी भवेत्॥ इत्यस्य सर्वापवादत्वादित्याहुः। तन्न, ज्ञातमरणस्य निमित्तत्वात्, 'अनग्निमत उत्क्रान्तेः' इत्यादिविरोधाच्च।

मनु ने कहा है—विदेश में स्थित जो समीपस्थ का विगत (मरण) जो दशदिन के भीतर सुनता है उसको जितने दिन दशरात में अवशिष्ट हैं उसी में ही अशुचि (अपवित्र) रहता है। यहाँ 'विगत' यह उपलक्षण मात्र है। जननाशौच में भी यही व्यवस्था है। यहाँ पर कोई इसको कहते हैं—वह पुत्र से अतिरिक्त (भिन्न) विषय है। उनका तो आशौच के मध्य में सुनने पर भी श्रवणदिन से ही दशरात्रि आदि आशौच होता है। यदि पिता और माता का मरण हो जाय तो दूरदेश में रहनेवाला पुत्र भी जिस दिन से सुने उसी दिनसे दशाह सूतक होता है। इस सबका अपवाद होनेसे कहा है। यह उचित नहीं है, ज्ञात-मरण का निमित्त (आशौचनिमित्त) है। और जो अग्निहोत्री नहीं है उसके मरण में—इत्यादि विरोध है।

स्मृत्यर्थसारेऽपि—जनने मरणे वा प्रथमदिनादूर्ध्वं ज्ञाते पुत्रादीनां शेषणैव शुद्धिः, इति। षडशीतावपरार्के चैवम्।

स्मृत्यर्थसार में भी कहा हैं—जन्म या मरण में प्रथमदिन के बाद जानने पर पुत्र आदियों की शुद्धि अवशिष्ट दिन से ही है। षडशीति और अपरार्क में भी यही हैं।

(दशाहादूर्ध्वं श्रुतं चेद्विचारः)

दशाहादूर्ध्वं ज्ञाते तु वृद्धवसिष्ठः—मासत्रये त्रिरात्रं स्यात् षण्मासे पक्षिणी तथा।
अहस्तु नवमादर्वागूर्ध्वं स्नानेन शुद्ध्यति॥

दशाह के बाद जानने पर तो वृद्धवसिष्ठ ने कहा है—तीनमहिने तक सुनने पर तीनरात और छमहिने पर सुनने पर पक्षिणी तथा नौ महिने के पहले सुनने पर एकदिन और बाद में सुनने पर स्नान से (अर्थात्—उदकदान करे—'प्रेते दत्वोदकं शुचिः' प्रेत को जल देकर पवित्र होता है।) शुद्धि होती है। (यदि कहें कि—मनुः—संवत्सरव्यतीते तु स्पृष्ट्वैवापो विशुध्यति। एकसाल व्यतीत होने पर तो जलस्पर्श से शुद्धि होती है। नौसाल के बाद कैसे स्नान को कहा है। उसका संवत्सर के बाद स्नान भी नहीं है—यह भ्रम निवारणार्थ कहा है। यत्तु देवलः—आशौचान्ते व्यतिक्रान्ते बन्धुश्चेच्छ्रूयते मृतः। तस्य त्रिरात्रमाशौचं पक्षिणी चार्धवत्सरे॥ ऊर्ध्वं संवत्सरार्धात्तु श्रूयते चन्मृतः स्वके। भवेदेकाहमेवात्र तच्च संन्यासिनां न तु॥ उसमें अर्धसंवत्सर के प्रथमार्ध में त्रिरात्र आशौच होता है। उत्तरार्ध में पक्षिणी और नवममासान्त में एकदिन का आशौच होता है।) जन्म में तो अतिक्रान्त (व्यतीत हुआ) आशौच नहीं ही होता है।

(जनने त्वतिक्रान्ताशौचविचारः)

जनने त्वतिक्रान्ताशौचं नास्त्येव । नाशुद्धिः प्रसवाशौचे व्यतीतेषु दिनेष्वपि । इति देवलोक्तेः । पितुः स्नानं तत्रापि भवत्येव ।

देवल ने कहा है—जनन-जन्म (उत्पत्ति) में तो अतिक्रान्त (व्यतीत हुआ) आशौच नहीं ही होता है । प्रसवाशौच के व्यतीत दिनोंके होनेपर अपवित्रता नहीं होती है । वहाँपर भी पिताको स्नान करना कहा ही है ।

निर्दशं ज्ञातिमरणं श्रुत्वा पुत्रस्य जन्म च । सवासा जलमाप्लुत्य शुद्धो भवति मानवः ॥ इति मनूक्तेः (५।७७) । तच्चातिक्रान्ताशौचं दशाहादिजात्याशौचविषयम् । न त्वनुपनीतादिनिमित्तत्रिरात्रादौ ।

मनु ने कहा है—मनुष्य दशदिन के बाद जाति (सपिण्ड) के मरण को और पुत्र के जन्म को सुनकर वस्त्र के सहित जल में प्रवेश कर शुद्ध होता है । (पुत्रजन्म में सपिण्डों को अतिक्रान्त आशौच नहीं होता है । अन्यथा 'श्रुत्वा जन्म च निर्दशम्' एसा ही कहे । पुत्र के जन्म का सुनने पर स्नान कहा है और अन्यों को स्नान भी नहीं है ।) और वह अतिक्रान्त आशौच दशाह आदि जाती आशौचविषयक है । अनुपनीत आदि के निमित्त त्रिरात्र आदि आशौच में नहीं है ।

उपनीते तु विषमं तस्मिन्नेवातिकालजम् । इति व्याघ्रोक्तेः । 'निर्दशं ज्ञातिमरणम्' (मनु० ५।७७) 'अतिक्रान्ते दशाहे तु' इति मनूक्तेश्च (५।७६) ।

व्याघ्र ने कहा है—उपनयन होने बाद मरने पर तो विषम ब्राह्मण आदियों का दशाह आदि आशौच होता है । उसी सूतक में ही उपनीत में मरने पर ही अतिकालज-अतिक्रान्त आशौच होता है । न कि वयोवस्था आशौच का अतिक्रमण होता है । और दशदिन के बाद जाति का मरण तथा अतिक्रान्त (व्यतीत हुआ) दशाह में तो मनु ने कहा है ।

माधवीये देवलस्तु—आ त्रिपक्षात्त्रिरात्रं स्यात् षण्मासात्पक्षिणी ततः । परमेकाहमावर्षादूर्ध्वं स्नातो विशुद्ध्यति ॥ इत्याह । तत्रापदनापद्विषयत्वेन व्यवस्था । इदं चैकदेशे ।

माधवीय में तो देवल ने कहा है—तीनपक्ष के भीतर तीनरात का आशौच होता है । छ महिने तक पक्षिणी आशौच होता है । उसके बाद एकवर्ष तक (अर्थात्—ऊनवर्ष तक) एक दिन का आशौच होता है । इसके बाद स्नान से शुद्धि होती है । एसा कहा है । वहाँ पर आपद (विपत्ति) और अनापद (विना विपत्ति) विषय से व्यवस्था है । और यह एकदेश में है ।

(देशान्तरे क्लीवादिमृतौ विचारः)

देशान्तरे तु स्नानमात्रम् । देशान्तरमृतं श्रुत्वा क्लीवे वैखानसे यतौ । मृते स्नानेन शुद्ध्यन्ति गर्भस्रावे च गोत्रिणः ॥ इति पराशरोक्तेरिति विज्ञानेश्वरः । स्नानं वत्सरान्ते ।

देशान्तर में तो स्नानमात्र (अर्थात्—स्नानोदकदानमात्र यह अर्थ) है । पराशर ने कहा है—देशान्तर में मरण (मृत्यु) सुनकर नपुंसक, वैखानस (वानप्रस्थ, भिक्षु) और संन्यासी के मरण में तथा गर्भस्राव (गर्भ का कच्चा गिरना, गर्भपात) में गोत्री स्नान से शुद्ध होते हैं । यह विज्ञानेश्वर ने कहा है । वत्सरान्त में स्नान को कहा है ।

अर्वाक्त्रिपक्षात्त्रिनिशं षण्मासाच्च दिवानिशम् । अहःसंवत्सरादर्वाग् देशान्तरमृतेष्वपि ॥ इति विष्णूक्तेरिति माधवः । इदं सपिण्डानां देशान्तरे स्नानं सोदकानामिति युक्तम् ।

विष्णु का वचन है—तीनपक्ष के पूर्व तीन रात्रि, छ महिने तक दिवानिश—दिन रात, साल भर के पूर्व एकदिन आशौच देशान्तर में मृतकों का भी होता है—ऐसा माधव ने कहा है । यह सपिण्डों का है । देशान्तर में सोदकों को स्नानमात्र युक्त है ।

(देशान्तरलक्षणकथनम्)

तल्लक्षणं त्वाह बृहस्पतिः—महानद्यन्तरं यत्र गिरिर्वा व्यवधायकः ।
वाचो यत्र विभिद्यन्ते तद्देशान्तरमुच्यते ॥

लक्षण तो बृहस्पति ने कहा है—जहाँ पर महानदी का अन्तर हो ,या पर्वत का व्यवधान (अवरोध) हो और जहाँ पर वाणी का भेद हो उसको देशान्तर कहते हैं ।

देशान्तरं वदन्त्येके षष्टियोजनमायतम् । चत्वारिंशद्वदन्त्यन्ये त्रिंशदन्ये तथैव च ॥ इति ।

कोई साठ योजन लंबाई को देशान्तर कहते हैं । अन्य चालीस योजन लंबाई को देशान्तर कहते हैं । अन्य तीस योजन लंबाई को देशान्तर कहते हैं ।

(दूरदेशेऽपि मातृ-पितृमरणे, स्त्रीपुंसयोः परस्परमरणे च विचारः)

एतत्सर्वं मातापितृभिन्नविषयम् । तयोस्तु 'पितरौ चेत्' इति पूर्वपैठीनसिवाक्यात्सदा पूर्वमेव दशाहादि ।

यह सब माता और पिता से भिन्न विषय में है । इन दोनों का तो 'पितरौ चेन्मृतौ स्यातां दूरस्थोऽपि हि पुत्रकः । श्रुत्वा तद्दिनमारभ्य दशाहं सूतकी भवेत् ॥ इस पूर्व पैठीनसि के वाक्य से सदा पूर्व ही दशाह आदि (दशाहशब्द का जात्यादिशौचपरक है । दूरदेश में भी एकसाल के बाद भी दोनों का पूर्ण आशौच माना जाता है ।) आशौच होता है ।

स्मृत्यर्थसारेऽपि—'मातापितृमरणे दूरदेशेऽपि संवत्सरोर्ध्वमपि पुत्रो दशाहादिकं पूर्णमाशौचं कुर्यात् । स्त्रीपुंसयोः परस्परं सपत्नीषु चैवम्' इति ।

स्मृत्यर्थसार में भी कहा है माता और पिता के मरने पर दूरदेश में भी तथा संवत्सर के बाद भी पुत्र दशाह आदि पूर्ण आशौच करे । स्त्री और पुरुष आपस में तथा सपत्नियों में भी ऐसा ही है ।

शुद्धितत्त्वादयो गौडास्तु—ऊर्ध्वं संवत्सरादाद्याद् बन्धुश्चेच्छ्रूयते मृतः । भवेदेकाहमेवात्र तच्च संन्यासिनां न तु ॥ इति देवलोक्तेः पित्रोरब्दमध्ये त्रिरात्रमूर्ध्वमेकाहः । बन्धुर्माता पिता भर्ता च । पूर्वोक्तदशाहस्तु कलिङ्गादिदेशपर इत्याहुः । ते बन्धुपदस्य पित्रादिपरत्वे मानाभावादुपेक्ष्याः ।

शुद्धितत्त्व आदि गौड तो कहते हैं—एकसाल के बाद यदि बन्धु का मरण सुन लिया हो तो एक दिन का ही आशौच होता है । वह संन्यासियों को नहीं होता है—ऐसा देवल के कथन से माता और पिता के वर्ष के मध्य में तीन रात के बाद एकदिन का आशौच होता है । बन्धुपद से माता, पिता और पति का ग्रहण होता है । पहले कहे हुए दशाहपद से कलिंग आदि देशपरक है—ऐसा कहा है । वे बन्धुपद का पुत्रादि परत्व में प्रमाण का अभाव होने से उपेक्ष्य (त्याज्य) हैं ।

(सापत्न्यमातुः हीनवर्णसापत्न-मातृषु विचारः)

सापत्न्यमातुस्तु दक्षः—पितृपत्न्यामपेतायां मातृवर्ज्यं द्विजोत्तमः ।
संवत्सरे व्यतीतेऽपि त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥

'हीनवर्णमातृषु सपत्नीषु चैवम् ॥ इति स्मृत्यर्थसारे ।

सपत्नमाता के आशौच में दक्ष ने कहा है—द्विजोत्तम माता के भिन्न पिता की पत्नी का मरण हो जाय तो एकसाल के बाद भी पुत्र तीनरात अपवित्र होता है । (आशौचकाल के बाद किसीदेश में सपत्नमाता के मरने पर जानकारी होने पर देश-काल के अविशेष से तीन रात अपवित्र पुत्र होता है) । स्मृत्यर्थसार में कहा है—माता से भिन्न हीनवर्ण सपत्नमाताओं में भी यही है ।

केचित्—पितुः पत्न्यां प्रमीतायामौरसे तनये तथा । इति ब्राह्मोक्तेस्त्वौरसेऽपीदमाहुः । षडशीतावप्येवम् । एतत्सर्ववर्णतुल्यम् । तुल्यं वयसि सर्वेषामतिक्रान्ते तथैव च । इति व्याघ्रोक्तेः ।

कोई कहते हैं—पिता की पत्नी के मरने पर औरसपुत्र को वैसा ही है। ऐसा ब्रह्मपुराण के वचन से औरसपुत्र में भी त्रिरात्र कहा है। षडशीति में भी यही है। यह सब वर्णों में तुल्य है। व्याघ्र ने कहा है—त्रिवर्षादिरूप में जब आशौच 'आदन्तजननाद् सद्यः' इत्यादि वाक्य से विहित होता है तो वह ब्राह्मण आदि वर्णों का तुल्य होता है। अतिक्रान्त दशाह आदि में जब आशौच आता है तो सब वर्णों में तुल्य होता है।

(आशौचसंपाते विचारः)

अथाशौचसंपाते उच्यते। तत्र शावे शावं, सूतके सूतकम्। शावे सूतकं, सूतके शावं वा। तत्राप्युत्तरं कालतः पूर्वेण समं न्यूनमधिकं चेति द्वादश भेदाः। यदैकदिने समन्यूनमधिकं वाऽशौचद्वयं तत्र तन्त्रेणान्यसिद्धिः, द्वयोरेककालत्वात्। यदा तु द्वितीयादिदिनेषूत्तरं सजातीयं शावे जननं वा समकालं न्यूनकालं वा परं स्यात्तदा षट्सु पक्षेषु पूर्वशेषेण शुद्धिः।

अब आशौच के संपात (मेल) में कहते हैं। उसमें—मरण में मरणाशौच और जननाशौच में जननाशौच होता है। या मरण में जननाशौच या जननाशौच में मरणाशौच होता है। उसमें भी उत्तरकाल से पूर्व से समान, न्यून अधिक ये बारह भेद हैं। जब एकदिन में समान, कम या अधिक आशौच द्वय हो तो वहाँ पर तन्त्र से अन्य की सिद्धि होती है। दोनों का एककाल होने से। यदि द्वितीयादिदिनों में सजातीय उत्तर मरणाशौच में जननाशौच होने पर सम या न्यून काल का दूसरा आशौच प्राप्त हो जाय तो छहों पक्षों में पूर्वशेष (पूर्वाशौचकाल शेष) से शुद्धि होती है।

अन्तरा जन्ममरणे शेषाहोभिर्विशुद्ध्यति। इति याज्ञवल्क्योक्तेः (प्रा० २०)। अन्तरा ज्ञाते इत्यर्थः। ज्ञातस्यैव जननादेर्निमित्तत्वात्। पूर्वाशौचोत्तरं तन्मध्योत्पन्ने ज्ञाते तूत्तरमेव कार्यम्।

याज्ञवल्क्य ने कहा है—एक आशौच के मध्य में जन्म और मरण आ जाय तो उसके बाद प्रथम आशौच के जितने दिन शेष (अवशिष्ट) हों उतने दिनों में शुद्धि होती है। मध्यमें जाननेपर यह अर्थ है। ज्ञान का ही जननादि में निमित्त है। पूर्वाशौच के बाद उसके मध्य में उत्पन्न में ज्ञान होने पर बाद ही का आशौच करे।

शुद्धितत्त्वेऽप्युक्तम् पूर्वाशौचान्तरुत्पन्नं समानं लघु वा निमित्तं तत्कालादुपरि श्रुतं स्वाशौचहेतुरेव। अज्ञातं तु न। अविज्ञाते न दोषःस्याच्छ्राद्धादिषु कथञ्चन। इत्यस्याशौचसाङ्कर्येऽपि प्रवृत्तेः। तेनाज्ञानाद् वृषोत्सर्गादौ कृते पश्चात् ज्ञातेऽपि नावृत्तिरिति।

शुद्धितत्त्व में भी कहा है—पूर्वाशौच के मध्य में उत्पन्न समान या लघुनिमित्त आशौच उसके काल से ऊपर में सुना हो तो वह अपने आशौच का कारण ही है। अज्ञात में तो कारण नहीं होता है।

श्राद्ध आदि कर्मों में कभी भी बिना ज्ञान में दोष नहीं होता है। इसकी आशौच के सांकर्य (संमिश्रण) में भी प्रवृत्ति है। इससे अज्ञानसे वृषोत्सर्ग आदिके करनेपर बाद में ज्ञान होनेपर भी आवृत्ति नहीं होती है।

माधवीये यमोऽपि—जनने जननं चेत् स्यान्मरणे मरणं तथा।

पूर्वशेषेण शुद्धिः स्यादुत्तराशौचवर्जनम् ॥

माधवीय में यम ने भी कहा है—यदि जननाशौच में जननाशौच प्राप्त हो और मरण में मरणाशौच प्राप्त हो तो पूर्व के शेष से शुद्धि होती है। उत्तर आशौच नहीं होता है।

अत्र केचित्—अन्तर्दशाहे स्यातां चेत्पुनर्मरणजन्मनी। तावत्स्यादशुचिर्विप्रो यावत्तत्स्यादनिर्दशम् ॥ इति मनु (अ० ५ श्लो० ७९) पराशराद्यैर्दशाहग्रहणात्पूर्णाशौचे एव पूर्वशेषेण शुद्धिः। त्र्यहाद्यल्पाशौचसंपाते तूत्तरेणैव शुद्धिरित्याहुः। हरदत्तोऽप्येवमाह। गौडा अप्येवम्। तन्न, याज्ञवल्क्यादिवशेन दशाहस्य तुल्यकालाशौचोपलक्षणत्वात्।

यहाँ पर कोई कहते हैं—दशदिन के भीतर फिर से मरण या जन्म हो जाय तो ब्राह्मण तब तक अपवित्र रहता है जब तक दशदिन पहले के न बीत गये हों। यह मनु, पराशर आदि वचनों में 'दशाह' पद के ग्रहण से पूर्णाशौच में ही पूर्वशेष से शुद्धि होती है। तीनदिन आदि अल्पाशौच के संपात में तो

उत्तर से ही शुद्धि कहा है। हरदत्त ने भी यही कहा है। गौडों ने भी यही कहा है। यह उचित नहीं है। याज्ञवल्क्य आदि के वश (अधीन या अनुसार) से (अन्तरा जन्ममरणे शेषाहोभिर्विशुध्यति। इस योगीश्वर के एकवचन से मूल कल्पना के अनुरोध से) 'दशाह' पद तुल्यकाल के आशौच का उपलक्षण है।

समानाशौचसंपाते प्रथमेन समापयेत्। असमानं द्वितीयेन धर्मराजवचो यथा॥ इति माधवीये शङ्खोक्तेः। अपरार्कमिताचरादिविरोधाच्च। यदा तु सूतके शावं समं न्यूनमधिकं वा तदा न पूर्वशेषाच्छुद्धिः।

माधवीय में शंख ने कहा है—समान आशौच की संपात (मेल) में पहले आशौच से समाप्त करे और असमान आशौच को धर्मराज के वचन से दूसरे आशौच से समाप्त करे। और अपरार्क मिताचरा आदि का विरोध है। जबभी सूतकमें मरणाशौच सम, न्यून या अधिक प्राप्त हो तब पूर्वशेषसे शुद्धि नहीं होती है।

तदाहाङ्गिराः—सूतके मृतकं चेत्स्यात् मृतके त्वथ सूतकम्।
तत्राधिकृत्य मृतकं शावं कुर्यान्न सूतकम्॥

उसी बात को अंगिरा ने कहा है—सूतक में मरणाशौच प्राप्त हो या मरणाशौच में जननाशौच प्राप्त हो तो वहाँ पर अधिकार करके मृतक आशौच करे जननाशौच न करे।

षट्त्रिंशन्मते—शावाशौचे समुत्पन्ने सूतकं तु यदा भवेत्।
शावेन शुद्ध्यते सूती न सूती शावशोधिनी॥

षट्त्रिंशन्मत में कहा है—मरणाशौच के उत्पन्न होने पर जननाशौच जब प्राप्त हो तो मरणाशौच से सूतकी की शुद्धि होती है। मरणाशौच की शुद्धि जननाशौच से नहीं होती है।

चतुर्विंशतिमतेऽपि—मृतेन शुद्ध्यते जातं न मृतं जातकेन तु। अतो यदा दशाहजननमध्ये तदन्ते वा त्र्यहादि शावं तदा पूर्वेण शुद्धावपि तन्निमित्तमस्पृश्यत्वं भवत्येव।

चतुर्विंशतिमत में भी कहा है—मरण से जातक शुद्ध होता है। मृत जातक से शुद्ध नहीं होता है। इसलिए जब दशाहदिन के मध्य में उत्पन्न होने पर या उसके अन्त में तीनदिन का मृतक आशौच हो जाय तो पूर्व शेष से शुद्धि होनेपर भी तन्निमित्त अस्पृश्यत्व होता ही है।

मरणोत्पत्तियोगे तु गरीयो मरणं भवेत्। इति कौर्माच्च।

और कूर्मपुराण में कहा है—मरण और उत्पत्ति के योग में तो मरण श्रेष्ठ होता है।

गौतमव्याख्यायां वृद्धात्रिरपि—सूतकाद् द्विगुणं शावं शावाद् द्विगुणमार्तवम्। आर्तवाद् द्विगुणासूतिस्ततोऽपि शवदाहकः॥ अत्र पूर्वपूर्वेण नोत्तरोत्तरनिवृत्तिरस्पर्श्यत्वाधिक्यादित्यर्थः।

गौतमव्याख्या में वृद्ध अत्रि ने भी कहा है—सूतका (सद्यःप्रसूता) से दूना मृताशौच, मृताशौच दूना आर्तव (मासिकस्रावं नोपगच्छेत्प्रमत्तोऽपि स्त्रियमार्तवदर्शने। मनु० ४।४०), आर्तव से दूना सूति उससे भी दूना शव (लाश, मुर्दा) का दहन करनेवाला होता है। यहाँ पर पूर्व-पूर्व सेउत्तर की निवृत्ति नहीं होती है। क्योंकि—अस्पृश्यत्व का आधिक्य है—यह अर्थ है।

षडशीतावपि—स्वभावबहुसूतिस्तु न्यूनशावविशोधिनी। इति।

रात्रिशेषादौ वर्धितद्वित्रिदिनैरागन्तुकैः सूतेर्बहुत्वं न स्वभावेन। अतस्तत्र न्यूनशावस्यापि न पूर्वेण शुद्धिरिति वक्तुं स्वभावे त्युक्तम्।

षडशीति में भी कहा है—स्वभाव से अधिक सूतिका का तो न्यून मृताशौच की विराधिनी होती है। रात्रिशेष आदि में बढ़े हुए दो और तीन आनेवाले दिनों से सूति अधिक होती है स्वभाव से नहीं होती है। इसलिये वहाँ पर न्यून मरण की भी पूर्व से शुद्धि नहीं होती है यह कहने के लिए 'स्वभाव' ऐसा कहा है।

ब्राह्मेऽपि—नागन्तुकैरथाहोभिराशौचमनुपद्यते। न च पातनिमित्तेन शावस्यान्यस्य शोधनम्॥

इति । एवं नव पक्षाः । यदा तु त्र्यहाद्यल्पाशौचमध्ये सजातीयं विजातीयं वा दीर्घकालमुत्तरं तदाप्युत्तरं पूर्णं कार्यं न पूर्वेण शुद्धिः ।

ब्रह्मपुराण में भी कहा है—इसके बाद आगन्तुकपाप के दिनों से आशौच को हटाया नहीं जा सकता और पातके निमित्त से शाव—आशौच अन्य का शोधन नहीं होता है । इसप्रकार नौ पक्ष हैं । जब तीनदिन आदि अल्प आशौच के मध्य में सजातीय या विजातीय दीर्घकालवाला उत्तर आशौच आ जाय तो उत्तर पूर्ण करे । पूर्वशेष से शुद्धि नहीं होती है ।

(स्वल्पाशौचमध्ये दीर्घाशौचविचारः)

स्वल्पाशौचस्य मध्ये तु दीर्घाशौचं भवेद्यदि । न पूर्वेण विशुद्धिः स्यात्स्वकालेनैव शुद्ध्यति ॥ इति उशनसोक्तेः । तेन त्र्यहादिशावमध्ये दशाहादिसूतकेऽपि न पूर्वेण शुद्धिरित्यपरार्कः । शावनिमित्तमस्पृश्यत्वं च भवत्येव ।

स्वल्पाशौच के मध्य में यदि दीर्घाशौच हो जाय तो पूर्व (पहले के) आशौच से शुद्धि नहीं होती है, अपने समय से ही शुद्धि होती है—ऐसा उशना ने कहा है । इससे त्र्यहादि मृत के मध्य में दशाह आदि सूतक में भी पूर्व से शुद्धि नहीं होती है—एसा अपरार्क ने कहा है । मरण का निमित्त अस्पृश्यत्व होता ही है ।

शुद्धिविवेके तु—'शावेन शुद्ध्यते सूतिः' इति प्रागुक्तेस्तत्राप्युत्तराशौचनिवृत्तिरुक्ता । तन्न, उत्तरस्य कालाधिक्येन बलवत्त्वात् ।

शुद्धिविवेक ने तो कहा है—सूतका की शुद्धि मृताशौच से होती है, यह पूर्व कहा है । उसमें भी उत्तर आशौच की निवृत्ति कही है । यह उचित नहीं है, उत्तर का (शावेन शुध्यते सूतिः) इत्यादि से विजातीय समकाल आशौच के सन्निपात में मरण से शुद्धि होती है—इस अर्थ से विरोध नहीं होता है ।) कालाधिक्य से बलवत्ता है ।

माधवीये यमोऽपि—अघवृद्धिमदाशौचं पश्चिमेन समापयेत् । यथा त्रिरात्रे प्रक्रान्ते दशाहं प्रविशेद्यदि ॥ आशौचं पुनरागच्छेत्समाप्य विशुद्ध्यति ॥ इति ।

माधवीय में यम ने भी कहा है—पाप की वृद्धिवाले आशौच को पीछेवाले से समाप्त करे । जैसे तीनरात्रि के आशौच में दशाह आशौच के प्रवेश हो जाने पर फिर से आशौच आजाय तो उसको समाप्त कर शुद्ध हो जाता है ।

हारीतोऽपि—'गुरुणा लघु शुध्येत्तु लघुना नैव तद् गुरु । इति । गुरुत्वं च लघुत्वं च कालकृतमेव, पूर्वानुरोधात् । एतच्च हरदत्तेन स्पष्टमुक्तम् । मिताक्षरायामप्येवम् ।

हारीत में भी कहा है—गुरु से लघु आशौच शुद्ध होता है । लघु आशौच से गुरु आशौच शुद्ध नहीं होता है । गुरुत्व और लघुत्व कालकृत ही है । क्योंकि पूर्व में एसा ही कहा है और इसको हरदत्त ने स्पष्ट कहा है । मिताक्षरा में भी यही है ।

(यत्तु—अघानां यौगपद्ये तु—अस्याभिप्रायकथनम्)

यत्तु—अघानां यौगपद्ये तु ज्ञेया शुद्धिर्गरीयसी । मरणोत्पत्तियोगे तु गरीयो मरणं भवेत् ॥ इति हारीतकौर्मादि । तत्रास्पृश्यत्वाभिप्रायं शावस्य गुरुत्वं ज्ञेयम् ।

जो कहा है—पापों का एकसाथ योग हो जाय तो शुद्धि श्रेष्ठ से होती है । मरण और उत्पत्ति के योग में तो मरण श्रेष्ठ होता है—यह हारीत, कूर्मपुराण आदि में है । वहाँ पर अस्पृश्यत्व के अभिप्राय को मरणाशौच को गुरुत्व जानना चाहिये ।

(क्वचिदल्पकालेनापि दीर्घकालाशौचनिवृत्तिमाह)

क्वचिदल्पकालेनापि दीर्घकालाशौचनिवृत्तिमाह । देवलः—परतः परतोऽशुद्धिरघवृद्धौ विधीयते । स्याच्चेत्पञ्चतमादह्नः पूर्वेणैवात्र शिष्यते ॥ अस्यार्थः—अघवृद्धौ दीर्घाशौचे परतोऽशुद्धिः परमाशौचम् । यदि पूर्वाशौचमुत्तरस्य पञ्चदिनात्परतोऽनुवर्तते तदा पूर्वेणैव शुद्धिः । पूर्वस्योत्तराशौचा-

र्धाधिककालव्यापित्वे पूर्वशेषाच्छुद्धिरित्यर्थः। यथा षष्ठे मासे गर्भपातनिमित्तषडहाशौचमध्ये दशाहपाते पूर्वेणोत्तरनिवृत्तिः। यथा वा त्र्यहमध्ये स्रावपातनिमित्तचतुरहपञ्चाहयोरिति कश्चित्। तन्न, दशाहावधि पूर्वशेषशुद्ध्यादेकवाक्यविरोधात्। षष्ठादिदिने पूर्णाशौचमन्त्यरात्रौ तु द्व्यह इत्यनौचित्याच्च। अस्मद्गुरवस्तु पञ्चतमादह्न आशौचं ततो न्यूनं त्र्यहादि चेत्स्यादत्रास्मिन् विषये पूर्वेणैवाशुद्धिः शिष्यते। दशाहादिरात्रिशेषे त्र्यहादल्पाशौचानां परस्परं रात्रिशेषे संपाते च न द्व्यहादिवृद्धिरित्यर्थमाहुः। क्वचित्पूर्वशेषेण शुद्धेरपवादमाह गौतमः—रात्रिशेषे सति द्वाभ्यां, प्रभाते तिसृभिः, इति। प्रभातेऽन्त्ययामे।

कहीं अल्पकाल से भी दीर्घकालीन आशौच की निवृत्ति देवल ने कही है—इसका अर्थ यों है—पाप की वृद्धि में दीर्घकालीन आशौच में पर से अशुद्धि-आशौच होता है। यदि पूर्वाशौच उत्तर के पाँचवे दिन से बाद से प्रवृत्त हो तो पूर्व से ही शुद्धि होती है। पूर्व का उत्तराशौच के अर्धाधिक कालव्यापित्व में पूर्वशेष से शुद्धि होती है यह अर्थ है। जैसे—छठे मास में गर्भपात निमित्त छठे दिन के आशौच के मध्य में दशदिन के प्राप्त होने पर पूर्व से उत्तर की निवृत्ति होती है। अथवा जैसे तीनदिन के मध्य में स्रावपात निमित्त चारदिन और पांचवेंदिन को कहा है यह किसी का मत है। यह उचित नहीं है। जैसे—दशाह अवधि पूर्वशेष शुद्धि आदिमें एक वाक्य का विरोध है। छठे आदि दिन में पूर्णाशौच के अन्त्यरात्रि में तो दो दिन की वृद्धि उचित नहीं है। हमारे गुरुदेव ने तो पांचवें दिन के भीतर आशौच होने से उससे न्यून तीन दिन आदि हो तो उस विषय में पूर्व से ही अशुद्धि शेष (बचती) होती है। दशाहादिरात्रिशेष में तीनदिन आदि शेष में तीनदिन से कम अल्पशौचों का परस्पर रात्रिशेष में और संपात में दोदिन आदि की वृद्धि नहीं होती है—यह अर्थ कहा है। कहीं पर पूर्वशेष से शुद्धि का अपवाद कहा है। गौतम ने कहा है—रात्रिशेष में दोदिन प्रभात में तीनदिन की वृद्धि होती है। प्रभात माने—अन्त्ययाम में।

रात्रिशेषे द्व्यहाच्छुद्धिर्यामशेषे शुचिस्त्र्यहात्। इति शातातपोक्तेः। इदं शावान्ते सूतकपाते सजातीये वा तुल्यम्।

शातातप ने कहा है—रात्रिशेष में दोदिन से शुद्धि होती है। और यामशेष में तीनदिन में शुद्धि होती है। यह मरणाशौच के अन्त में सूतक के प्राप्त होने पर या सजातीय में तुल्य है।

अत्र केचित्। रात्रिशब्दोऽहोरात्रपरः। 'अहःशेषे द्वाभ्यां प्रभाते तिसृभिः' इति शङ्खलिखितोक्तेः।

यहाँ पर कोई कहते हैं—रात्रिशब्द अहोरात्रपरक है। दिन के शेष में दोदिन और प्रभात (सुबह) में तीनदिन में शुद्धि होती है—यह शंखलिखित में कहा है।

'अथ यदि दशरात्राः सन्निपतेयुराद्यं दशरात्रमाशौचमानवमाद्दिवसादत ऊर्ध्वं द्विरात्रेण व्युष्टायां त्रिरात्रेण' इति बौधायनोक्तेः।

इसके बाद यदि (किसी को) दशरात्रि के आशौच के मध्य में दूसरा आशौच प्राप्त हो जाय तो प्रथम आशौच के नवमदिन की समाप्ति तक प्रथमाशौच से शुद्धि होती है। इसके बाद अर्थात्—दशवें दिन दूसरा आशौच प्राप्त हो तो दोरात्रि का आशौच होता है। रात्रि के समाप्त होने पर अर्थात् प्रातःकाल आशौच प्राप्त हो तो तीनदिन की वृद्धि होती है।

पुनः पाते दशाहात् प्राक् पूर्वेण सह गच्छति। दशमेऽह्नि पतेद्यस्याहर्द्वयात्स विशुद्ध्यति॥ प्रभाते तु त्रिरात्रेण दशरात्रेष्वयं विधिः। इति देवलोक्तेश्च।

और देवल ने भी कहा है—दशदिन के पहले फिर (दूसरे) आशौच की प्राप्ति हो तो पहले आशौच से दूसरा आशौच समाप्त हो जाता है। दशवेंदिन दूसरा आशौच प्राप्त हो जाय तो दोदिन के आशौच की वृद्धि होती है। प्रातःकाल में प्राप्त आशौच हो तो तीनदिन की वृद्धि होती है। यह दशरात्रियों में यह विधि है।

नवमदशमशब्दौ चोपान्त्यान्त्यदिनपरौ। तेन क्षत्रियादावपि तथेत्याहुः। माधवीयेऽप्येवम्।
नवम और दशमशब्द से अन्त्य का समीपदिन तथा अन्त्यदिन परक हैं। इससे वैसे क्षत्रियादि में भी कहा है। माधवीय में भी यही है।

अन्ये त्वाहुः। अन्तर्दशाहे स्यातां चेत् पुनर्मरणजन्मनी। तावत्स्यादशुचिर्विप्रो यावत्तत्स्यादनिर्दशम्॥ इति मनु (अ० ५।७९) पराशराद्यैर्दशमदिनेनोत्तरस्य शुद्धेरुक्तत्वाद्विरोधः स्पष्ट एव। विरोधे च 'यद्वै किञ्चन मनुरवदत्तद्भेषजम्' 'कलौ पाराशरस्मृतिः' इत्यनेन च पूर्ववचसां बाधः। अतएव वाचस्पतिना तेषामनाकरत्वमुक्तम्। साकरत्वेऽपि जातिमात्रविप्रादिविषयं देशान्तरविषयं युगान्तरविषयं वास्तु। तेन गौतमीये रात्रिशब्देनाहोरात्रपरः। 'रात्रिमात्रावशिष्टे' इति मिताक्षरोक्तेश्च न कुकविकृतेरिवान्यथा व्याख्या युक्ता।

अन्य तो कहते हैं—दशरोज (आदि) के मध्य में यदि मरण या जन्म हो जाय तो ब्राह्मणादि तबतक अपवित्र होता है जबतक उसके पहले के दशदिन नहीं बीत जाते हैं। इस मनु, पराशर आदि ने दशवें दिनसे उत्तर की शुद्धि कही है, इससे विरोध स्पष्ट है और विरोध में जो कुछ मनु ने कहा है वह औषध (दवा) रूप है। कलि में पाराशरस्मृति का महत्व है इससे भी पहले कहे हुए वचनों का बाध (दवाना) है। इसलिए वाचस्पति ने इन वचनों का अनाकरत्व (आकर ग्रन्थों में नहीं हैं) कहा है साकार मानने पर भी जातिमात्र ब्राह्मणादि विषयक है। देशान्तरविषयक या युगान्तर विषयक हो। इससे गौतमीय वाक्य में रात्रिशब्द से [1]अहोरात्र-परक नहीं है। रात्रिमात्र के अवशिष्ट में एसा मिताक्षरा ने कहा है। वह कुकविकृत (अविचारशील कवि की निर्मित रचना की तरह) अन्यथा व्याख्या युक्त नहीं है।

माधवस्तु 'अनिर्गतदशाहम्' इति पूर्वस्वग्रन्थविरोधादुपेक्ष्य इति। अस्मत्पितृचरणास्तु बौधायनीये 'आनवमाद्दिवसात्' इति द्वितीयाशौचस्य नवमं दिनं प्रथमस्य दशममेवाहुः। द्व्यहादिवृद्धेः पूर्वशेषापवादत्वात् तस्य च न्यायतो द्वितीयदिनादेव प्रवृत्तेः अत ऊर्ध्वमिति दशमरात्रिपरम्। शङ्खलिखितोक्तौ देवलोक्तौ चाहःशेषे दशमेऽह्नि चातीते रात्रौ पतेदित्यर्थः, दशम्यां पिता नाम कुर्यादितिवत्। तेन न मन्वाद्यैर्विरोधो नापि मिताक्षराद्यैरित्याहुः। अपरार्के निर्णयामृते स्वरसोऽप्येवम्।

माधव ने तो कहा है—दशदिन व्यतीत न होने से इस पहले कहे हुए अपने ग्रन्थके विरोधसे त्यागने योग्य है। हमारे पितृचरणों (पिताजी) ने तो बौधायन में नवमदिन के भीतर दूसरे आशौच का नवमदिन पहले का दशवाँ दिन ही कहा है। क्योंकि दोदिन आदि की वृद्धि का पूर्वशेष का अपवाद है और उसका (दूसरे आशौच का) न्याय से दूसरेदिन से ही प्रवृत्ति होती है इसलिए बाद में दशरात्रिपरक कहा है। शंख और लिखितस्मृति में और देवल ने कहा है—दशवेंदिन के अवशिष्ट रात्रि में सूतक आजाय—यह अर्थ है। जैसे दशवेंदिन पिता नामकरण पुत्र का करे—इसकी तरह (अर्थात् दशरात्रि बीतने पर ग्यारहवें-दिन पिता पुत्र का नामकरण करे।) इससे मनु आदि द्वारा विरोध नहीं होगा न मिताक्षरा आदि भी विरोध कहते हैं। अपरार्क और निर्णयामृत में यही तात्पर्य है।

(आशौचे समयविभागस्य व्यवस्थाकथनम्)

यत्तु तत्रैव ब्राह्मे—आद्यं भागद्वयं यावत्सूतकस्य तु सूतके।
द्वितीये पतति त्वाद्यात्सूतकाच्छुद्धिरिष्यते॥

जो वहीं पर ब्रह्मपुराण में कहा है—आदि के दो भाग तक सूतक में दूसरा आशौच आजाय तो

१—रात्रिशेषे सति द्वाभ्यां प्रभाते तिसृभिः। इति। अयमर्थः—रात्रिमात्रावशिष्टे पूर्वाशौचे यदा शौचान्तरं सन्निपतेत्तर्हि पूर्वाशौचं समाप्यानन्तरसन्निपाते सति तिसृभी रात्रिभिः शुद्धिः न पुनस्तच्छेषमात्रेण। यह याज्ञवल्क्य प्रायश्चित्ताध्यायके २२ श्लोक का पूर्वार्ध मिताक्षरा है।

पहले आशौच से शुद्धि कही गयी है। इसके बाद दूसरा आशौच प्राप्त हो जाय तो दूसरे आशौच से शुद्धि कही गयी है।

अत ऊर्ध्वं द्वितीयात्तु सूतकान्ताच्छुचिः स्मृतः। एवमेव विचार्यं स्यान्मृतके मृतकान्तरम्॥ मृतकस्यान्तरे यत्र सूतकं यत्र विद्यते। सूतकस्यान्तरे वाथ मृतकं यत्र विद्यते॥ मृतकान्ते भवेत्तत्र शुद्धिर्वर्णेषु सर्वशः॥ इति।

दो भाग के बाद मरण में दूसरा मरण प्राप्त हो जाय तो या मृतक के अन्त में सूतक प्राप्त हो या सूतक के मध्य में जहाँ मरण हो जाय वहाँ पर मृतक अन्त में शुद्धि सब वर्णों में होती है।

अस्यार्थस्तत्रैवोक्तः। पूर्वाशौचपरमहोरात्रस्य दिनरूपे आद्यभागद्वयेऽन्याशौचपाते पूर्वेण शुद्धिः। भागद्वयोर्ध्वं रात्रौ सूतकान्तरे द्वितीयात्पूर्वभिन्नात्सूतकान्ताद् द्व्यहादिरूपाच्छुद्धिरिति।

इसका अर्थ वहाँ पर ही कहा है। पहले आशौच के समाप्ति (आखिरी) में अहोरात्र (दिनरात) के दिनरूप में आद्यभागद्वय में दूसरा आशौच के आने पर पूर्वाशौच से शुद्धि होती है। दो भाग के बाद रात्रि में सूतकान्तर में दूसरे से शुद्धि होती है। पूर्वभिन्न सूतक के अन्त के दोदिन आदिरूप से शुद्धि होती है।

अपरार्के त्वाशौचकालं त्रेधा विभज्य निर्गुणविषयत्वेनेदमुक्तम्। अस्य वचनस्य निर्मूलत्वोक्तिरज्ञोक्तिरेव। अतः पूर्वाशौचान्त्यरात्रावन्याशौचेऽहोरात्रद्वयमधिकं रात्रेरन्त्ययामे तु दिनत्रयमिति भट्टचरणोपदिष्टः पन्थाः। एतत्सम्पूर्णाशौचसम्पाते एव। रात्रिशेषे त्रिरात्रादिसम्पाते तु पूर्वशेषेणैव शुद्धिः। द्विरात्रादिवृद्धेः पूर्ववाक्यैर्दशाहविषयत्वादपवादाभावे शेषशुद्धेरेव सामान्यतः प्रवृत्तेः।

अपरार्क में तो आशौच के समय का तीन भाग विभागकर निर्गुण के विषय में यह वचन कहा है। इस वचन की निर्मूलता और अज्ञानता ही कहा है। इसलिये पूर्वाशौच के अन्त्य (अहोरात्र) आशौच में दोदिन अहोरात्र अधिक आशौच कहा है। रात्रिके अन्त्ययाममें तो तीनदिन आशौच होता है-एसा भट्टचरणों द्वारा कहा हुआ मार्ग है। यह संपूर्ण आशौच को संपात (आपस में मिलना) में ही है। रात्रि के शेष में में (अहोरात्र के शेष में) तीन त्रिरात्रि आदि के संपात में पूर्वशेष से ही शुद्धि को कहा है। दो रात्रि आदि की वृद्धि का पूर्ववाक्यों से दशाहविषय होने से अपवाद के अभाव में अवशिष्ट शुद्धि से ही सामान्य से प्रवृत्त है।

षडशीतौ तु दशाहान्ते त्र्यहपातेऽपि द्वित्रिदिनवृद्धिरुक्ता। रात्रिशेषे यदाशौचं पूर्वानधिकमापतेत्। ऊर्ध्वं दिनद्वयं पूर्वाद्यामशेषे दिनत्रयम्॥ इति। अनधिकं समं न्यूनं वा। तत्तुच्छम्। निर्मूलत्वाद्न्ते पक्षिण्यादिपातेऽपि द्विरात्रादिवृद्धापत्तेश्च। पूर्वाशौचान्तर्वर्द्धितद्वित्रिदिनमध्येऽधिकाशौचान्तरपाते तु वर्द्धितस्याल्पत्वादधिकेनैव शुद्धिः। न च वर्द्धितस्य पूर्वशेषत्वं शङ्कनीयम्। रात्रिशेषे पूर्वशेषशुद्ध्यपवादे नैमित्तिकवृत्तिन्यायोज्जीवनात्। अपवादाभावे उत्सर्गस्य प्राप्तेः।

षडशीति में तो दशाह के अन्त में तीनदिन के आशौच में दो तीनदिन की वृद्धि कही है। रात्रि के शेष में जब पहले के सदृश न्यून (कम) या बराबर आशौच आ जाय तो पूर्वसे दो दिन की वृद्धि होती है रात्रि के शेषमें तीनदिनकी वृद्धि होती है। अनधिकृत माने-सम या न्यून कहा है। यह उचित नहीं है। क्योंकि वह वचन निर्मूल होने से और अन्त में पक्षिणी आदि के पात में भी दोरात्रि आदि की वृद्धि में आपत्ति हो जायगी। पूर्वाशौच के मध्य में बढ़े हुए दो तीनदिन के मध्य में अधिक आशौचान्तर के पात में तो बढ़े हुए का अल्प होने से अधिक आशौच से ही शुद्धि होती है। ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये—बढ़े हुआ पूर्व का शेष है। रात्रिशेष (अहोरात्रशेष) पूर्वशेष की शुद्धि का अपवाद में नैमित्तिक वृत्ति न्याय का आश्रयण करने से अपवाद के अभाव में उत्सर्ग की प्राप्ति होती है।

(पित्राशौचे मात्राशौचविचारः)

अपवादान्तरमाह शङ्खः—मातर्यग्रे प्रमीतायामाशुद्धौ म्रियतेऽपि वा। पितुः शेषेण शुद्धिः स्यान्मातुः कुर्यात्तु पक्षिणी॥ पादत्रयं स्पष्टम्। तुर्यस्य त्वयमर्थः—पित्राशौचमध्ये मातृमृतौ पित्राशौचान्ते मातुः पक्षिणीमधिकां कुर्यादिति। तत्राशुद्धावित्युक्तेरात्महादेः पितुराशौचाभावान्मातृमरणे न पक्षिणी किन्तु पूर्णमेवाशौचम्। इयं च पक्षिणी तृतीयादिपरा, नाद्यदिनद्वये प्रतिनिमित्तनैमित्तिकावृत्तिन्यायापवादपूर्वशेषापवादत्वादिति पितृचरणाः। सपिण्डाद्यशौचेन मातापित्रोराशौचोपरमो नास्त्येव। एवं भर्तुरपीति। इयं च पक्षिणी दशमदिनात्पूर्वमातृमरणे ज्ञेया। दशम्यां रात्रौ तत्प्रभाते वा मातृमरणे द्व्यहत्र्यहसमुच्चिता पक्षिणीति कश्चित्। तन्न, संख्यान्तरोपजननापत्त्या त्र्यहादिश्रुतिबाधापत्तेः। अत एवैका देया षट् देया इत्यादौ श्रुतसंख्याबाधापत्तेः समुच्चयो निरस्तो द्वादशे। गुरुणि लघोरन्तर्गतेः 'गुरुणा लघु शुद्ध्येत' इत्युक्तेश्च।

अपवादान्तर शंख ने कहा है—पहले माता के मरने पर उसके आशौच में पिता का निधन (मरण) हो जाय तो पिता (पितृमरणनिमित्तक आशौच) के शेष से शुद्धि होती है। माता के तो पक्षिणी आशौच की वृद्धि करे। इस श्लोक का तीन पाद (मातुर्यग्रे प्रमीतायामशुद्धौ म्रियते पिता। पितुःशेषेण शुद्धिः स्यात्।) का तो अर्थ स्पष्ट है। चौथे पाद का तो यह अर्थ है–पिता के आशौच के मध्य में माता का मरण हो जाय तो पिताके आशौचान्त में माता के आशौचमें पक्षिणी वृद्धि अधिक करे। वहाँ पर 'अशुद्धौ' एसा कहने पर आत्महत्या करनेवाला पिता के आशौच का अभाव होने से माता के मरने पर पक्षिणी वृद्धि न करे। किन्तु संपूर्ण आशौच ही करे और यह पक्षिणी तृतीय आदि दिनपरक है आदि के दो दिन में नहीं है। निमित्त (माता का मरण) नैमित्तिक (पितृमरण) आवृत्तिन्याय का अपवाद (आत्महत्या) रूप पूर्वशेष का अपवाद (मातुः कार्या तु पक्षिणी–अर्थात्–पिता के आशौच न होने पर पक्षिणी वृद्धि नहीं होगी।) है–एसा पितृचरण कहते हैं—यह कमलाकरभट्ट का कहना है। सपिण्डादि आशौच से माता और पिता का आशौच दूर नहीं ही हो सकता है। इसीप्रकार पति का भी। यह पक्षिणी दशवेंदिन से पहले माता के मरने में जानना चाहिये। दशमीरात में या उसके सुवह में माता के मरने पर दो या तीनदिन की पक्षिणी करे, यह कोई कहते हैं। यह उचित नहीं है। संख्यान्तर के उत्पन्न हो जाने से (किसी भी संख्या का अनुष्ठान नहीं होगा।) तीनदिन आदिकी श्रुतिका बाध होगा। इसलिये एक ही दे, छ दे इत्यादि में सुनी संख्या का बाधा होगा। समुच्चय का निराश जैमिनी [1]न्यायमाला के द्वादश अध्याय में किया है। गुरु में लघु का अन्तर्गत होने से 'गुरु से लघु शुद्ध होता है–एसा कहा है।

(अन्वारोहणे विशेषः)

मातुरन्वारोहणे तु न पक्षिणी। यदा नारी विशेदग्निं प्रियस्य प्रियवाञ्छया। तदाशौचं विधातव्यं भर्तृशौचक्रमेण हि॥ इति पृथ्वीचन्द्रोदये लघुहारीतोक्तेः।

माता के अन्वारोहण में पक्षिणी की नहीं होती है। पृथ्वीचन्द्रोदय में लघुहारीत ने कहा है—पति के प्रिय की इच्छा (कामना) से जब स्त्री अग्नि में प्रवेश करे तो पति के आशौच के क्रम से ही आशौच का विधान करे।

(मृतं पतिं ज्ञात्वा अन्वारोहणे विचारः)

तत्रैव षडशीतिमतेऽपि—मृतं पतिमनुव्रज्य पत्नी चेदनलं गता।
न तत्र पक्षिणी कार्या पैतृकादेव शुद्ध्यति॥

वहीं पर षडशीतिमत से भी कहा है—मृत पति के बाद पत्नी अग्नि में प्रवेश करे तो वहाँ पक्षिणी की वृद्धि न करे पिता के आशौच से ही शुद्धि होती है।

१—एका देया समुच्चेयं विकल्प्यं वाऽऽद्य आनतेः। सौलभ्यादान्तिमो नैरपेक्ष्यात्संख्यान्तरादपि॥ (जैमिनी न्या० अ० १२ पा० ४ अधि० ६) इस श्लोक से पूर्वपक्ष में समुच्चय माना है। उत्तरपक्ष में विकल्प माना है।

पुत्रोऽन्योवाग्निदस्तस्यास्तावदेवाशुचिस्तयोः। नवश्राद्धं च पिण्डं च युगपत्तु समापयेत् ॥

पुत्र या अन्य कोई उसको अग्नि को देनेवाला तबतक अशुचि रहता है। जबतक नवश्राद्ध और सपिण्डन को एकसाथ समाप्त करे।

गृहीताशौचानां पुत्राणां पितुः संस्कारे मातुः सपिण्डस्य वा मरणे नायं निर्णयः। अतिक्रान्तकालाद्विद्यमाननिमित्तस्य च बलवत्वात्। द्वादशवर्षोत्तरं संस्काराशौचमध्ये सपिण्डमरणेऽप्येवम्।

ग्रहण किये हुए आशौचवाले पुत्रों का—पिता के संस्कार में, माता के या सपिण्डन के मरण में यह निर्णय नहीं है। काल के बीत जाने से, विद्यमान निमित्त के बलवान् होने से बारह वर्ष के बाद संस्काराशौच के मध्य में सपिण्डन के मरण में भी यही है।

यत्तु अपरार्के ब्राह्मे—ऋग्वेदवादात् साध्वी स्त्री न भवेदात्मघातिनी। त्र्यहाशौचे तु निवृत्ते श्राद्धं प्राप्नोति शास्त्रवत् ॥ इति, तद्भर्तुराशौचोत्तरमन्वारोहणे त्रिरात्राशौचपरमिति पृथ्वीचन्द्रः। ब्राह्मणादेः क्षत्रियाद्यनुगमनेऽल्पाशौचपरमित्यपरार्कः। शुद्धितत्त्वादयो गौडास्तु—भर्त्रशौचोत्तरमन्वारोहणे त्रिरात्रम्। सहगमने तु सम्पूर्णम्। युद्धहतस्य सद्यःशौचेऽन्वारोहणे ब्राह्मोक्तेस्त्रिरात्रत्वाद्। भर्तुरपि त्र्यहेण पिण्डदानम्। एकचितौ तु सद्यःशौचम् इत्याहुः। अन्यत्प्रागुक्तम्।

जो अपरार्क में ब्रह्मपुराण का मत है–[1]ऋग्वेद के विवाद में साध्वी स्त्री आत्मघातिनी (आत्महत्या करनेवाली) न हो। तीनदिन के आशौच के समाप्त होने पर शास्त्र की तरह श्राद्ध प्राप्त करती है। पृथ्वीचन्द्र ने कहा है—वह वचन पति के आशौचोत्तर अन्वारोहण में त्रिरात्र आशौचपरक है। अपरार्क ने कहा है—ब्राह्मण आदि का क्षत्रियादि के अनुगमन में पति के आशौचोत्तरपरक है। (क्षत्रियादि की पृथक् चिति ही है। अन्त्येष्टिकर्ता भी अन्य होता है)। शुद्धितत्त्व आदि गौड तो कहते हैं–पतिके आशौचके अन्तर अन्वारोहण में तीनदिन का आशौच है। सहगमन में तो संपूर्ण आशौच होता है। युद्ध में मृतक का सद्यःशौच अन्वारोहण में ब्रह्मपुराण मत से तीनदिन का आशौच होता है। पति को भी तीनदिन में ही पिण्डदान (युगपत्तु समापयेत्—इति वचनात्) करे। एकचिति (पिता) में तो सद्यःशौच कहा है। अन्य बातें तो पहले कह चुका हूँ।

(पूर्वशेषेण शुद्धेरपवान्तरकथनम्)

**पूर्वशेषेण शुद्धेरपवादान्तरमुक्तं षडशीत्याम्—पूर्वाशौचेन या शुद्धिः सूतके मृतकेऽपि च।
सूतिकामग्निदं हित्वा प्रेतस्य च सुतानपि ॥**

षडशीति में पहले के शेष से शुद्धि का अपवादान्तर कहा है। सूतक और मृतक में जो पूर्वाशौच से शुद्धि कही है। वह सूतिका को, अग्निदाता को और प्रेत के पुत्रों को त्याग कर है।

निर्णयामृते स्मृतिसङ्ग्रहेऽपि—इत्यं विशुद्धिरुदिता सूतिकामग्निदं विना। इदं मूल्येन दाहकरणे मातुलादिसम्बन्धे दाहमात्रकरणे तु त्रिरात्रमेवेत्युक्तं प्राक्।

निर्णयामृत और स्मृतिसंग्रह में भी कहा है—यह शुद्धि सूतिका और अग्नि के देनेवाले को त्यागकर कही है। इसको मूल्य के द्वारा दाहकरण में मातुल (मामा) आदि के सम्बन्ध से दाहमात्र के करने में तीनरात का ही आशौच होता है, यह पहले कह चुके हैं।

१—इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं विशन्तु। अनश्र वाऽनमीवाः सुरत्ना आरोहन्तु जनयो योनिमग्रे ॥ उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गता सुमेतमुप शेष एहि। हस्तग्रामस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ ॥ धनुर्हस्तादाददानो मृतस्याऽस्मे क्षत्राय वर्चसे बलाय। अत्रैव त्वमिह वयं सुवीरा विश्वः स्पृधो अभिमातीर्जयेम ॥ उपसर्प मातरं भूमिमेतामुरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवाम्। ऊर्णम्रदा युवतिर्दक्षिणायत एषा त्वा पातु निर्ऋतेरुपस्थात् ॥ (ऋ० १०। १८।७ –१०)।

वृद्धात्रिः—सूतकाद् द्विगुणं शावं शावाद् द्विगुणमार्तवम्। आर्तवाद् द्विगुणा सूतिस्ततोऽपि शवदाहकः॥ तथाशौचसम्पातेऽपि न शावजननर्निमित्तकार्यप्रतिबन्धः।

वृद्ध अत्रि का वचन है—सूतिका से दूना शाव (मरण), शाव से दूना आर्तव (रजोधर्म), आर्तव से दूना सूति और उससे भी दूना शव (मुर्दे) का दाह करनेवाले को है और आशौच के संपात (आपस में मिलना) में शावजनन निमित्त कार्य का प्रतिबन्ध (रुकावट) नहीं होता है।

आशौचे तु समुत्पन्ने पुत्रजन्म यदा भवेत्। कर्तुस्तात्कालिकी शुद्धिः पूर्वाशौचेन शुद्ध्यति॥ इति प्रजापतिस्मृतेः।

प्रजापति ने कहा है—आशौच के उत्पन्न होने पर जब पुत्र का जन्म हो जाय तो कर्ता के लिए तात्कालिकी शुद्धि होती है वह पूर्वाशौच से शुद्ध होता है।

(आशौचे तु द्विविधेऽपि)

आशौचे द्विविधेऽपि शातातपः—अन्तर्दशाहे जननात्पश्चात्स्यान्मरणं यदि।
प्रेतमुद्दिश्य कर्तव्यं पिण्डदानं यथाविधि॥

दो प्रकार के आशौच में भी शातातप ने कहा है—दशदिन के मध्य में जन्म होने से यदि बाद में मृत्यु हो जाय तो प्रेत को उद्देश्यकर यथाविधि पिण्डदान करना चाहिये।

प्रारब्धे प्रेतपिण्डे तु मध्ये चेज्जननं भवेत्। तथैवाशौचपिण्डांस्तु शेषान्दद्याद्यथाविधि॥

प्रेतपिण्ड के प्रारंभ होने पर मध्य में यदि जन्म हो जाय तो वैसे ही यथाविधि आशौचजन्यशेष (अवशिष्ट) पिण्डों को दे।

मातुःपक्षिणीमध्ये पितुरेकादशाहं च कुर्यात्—आद्यं श्राद्धमशुद्धोऽपि कुर्यादेकादशेऽहनि। इति स्मृतेः। केचित्त्विदं क्षत्रियादिपरम्, विप्रादेस्त्वाशौचान्तर एकादशाहश्राद्धं नेत्याहुः। अत एव विज्ञानेश्वरेण—दशमं पिण्डमुत्सृज्य रात्रिशेषे शुचिर्भवेत्। इति शुचित्वं महैकोद्दिष्टाङ्गविप्रनिमन्त्रणपरमिति वदता तत्र शुद्धेरङ्गत्वं दर्शितम्। एवं वृषोत्सर्गशय्यादावपि। देवयाज्ञिकेन त्वाशौचान्तरेऽपि भवत्येवेत्युक्तम्।

माता के पक्षिणी के मध्य में पिता का एकादशाह भी करे। स्मृति में कहा है—आद्यश्राद्ध को अशुद्धता रहने पर भी ग्यारहवें दिन करे। कोई इसको क्षत्रिय आदि के विषय में कहते हैं। ब्राह्मण आदि का तो आशौच के बाद एकादशाह श्राद्ध नहीं है ऐसा कहते हैं। इसलिए विज्ञानेश्वर ने कहा है—दशवें पिण्ड को देकर रात्रि के शेष में पवित्र (शुद्ध) होता है। यह पवित्रता महैकोदिष्ट विप्रनिमन्त्रणपरक है—एसा कहते हुए वहाँ शुद्धि का अंगत्व दिखाया है। इसप्रकार वृषोत्सर्ग और शय्यादान में भी है। देवयाज्ञिक ने तो कहा है—आशौचान्तर में भी होता ही है—यह कहा है।

(आशौचापवादः पञ्चधा)

अथाशौचापवादः। स पञ्चधा। कर्तृतः कर्मतः द्रव्यतः मृतदोषतः विधानाच्च। आद्यो ब्रह्मचारियत्यादिषु।

अब आशौच का अपवाद कहते हैं। वह अपवाद पाँचप्रकार का है। कर्ता से, कर्म से, द्रव्य से, मृतदोष से और विधान से। पहला ब्रह्मचारी और यति आदि में है।

(नैष्ठिकादीनामाशौचविचारः)

नैष्ठिकानां वनस्थानां यतीनां ब्रह्मचारिणाम्। नाशौचं कीर्तितं सद्भिः पतिते च मृते तथा॥ इति कौर्मोक्तेः। तुर्यपादे 'शावे वापि तथैव च' इति देवलपाठः। आशौचमन्त्यकर्मोपलक्षणम्,

कूर्मपुराण में कहा है—नैष्ठिक (जो आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए निर्धारित समय के बाद भी सदा ही गुरुजी की सेवा में रहे और जिसने आजन्म ब्रह्मचारी तथा जितेन्द्रिय रहने की प्रतिज्ञा की है।)

वानप्रस्थ (अपने धार्मिक जीवन से तीसरे आश्रम में प्रविष्ट ब्राह्मण) यति (संन्यासी) ब्रह्मचारी और पतित के मरने पर अच्छे पुरुषों ने आशौच को नहीं कहा है। चौथे पाद में—शावे वापितथैव च।

देवल ने एसा पाठ कहा है—नैष्ठिकानां वनस्थानां यतीनां ब्रह्मचारिणाम्। नाशौचं कीर्तितं सद्भिः शावे वापि तथैव च॥ आशौचपद अन्त्यकर्म का उपलक्षण है।

ब्रह्मचारी न कुर्वीत शवदाहादिकाः क्रियाः। यदि कुर्याच्चरेत् कृच्छ्रं पुनः संस्कारमेव च॥ इति देवलोक्तेः। एतत्पित्राद्यतिरिक्तविषयम्।

ब्रह्मचारी शव की दाह आदि क्रिया को न करे। यदि करे तो कृच्छ्रव्रत तथा फिर से संस्कार करे—एसा देवल ने कहा है। यह पिता आदि से अतिरिक्त विषय में है।

(आचार्यादीनां मरणे व्रतस्थपुरुषस्य पिण्डदानादिकरणे विचारः)

आचार्यं स्वमुपाध्यायं मातरं पितरं गुरुम्। निर्हृत्य तु व्रती प्रेतं न व्रतेन वियुज्यते॥ इति मनूक्तेः (५।९१)।

मनु ने कहा है—अपने आचार्य (उपनयनपूर्वकसंपूर्ण वेद को पढ़ानेवाला), अपना उपाध्याय (वेद के एक देश या अंग का अध्यापक), माता, पिता और गुरु इनके ले जानेपर दाह, दशाह, पिण्ड, षोडशश्राद्ध आदि सब करने से ब्रह्मचारी के व्रत का लोप नहीं होता है। (इनसे अतिरिक्तों को ले जाने पर व्रत का लोप होता है। इससे उपाध्योपाध्याय के जाने पर भी व्रत का लोप होता ही है।) ब्रह्मचारी (वेद और वेदों के व्याख्याता) व्रत से हीन नहीं होता है।

(हारीतः—मातापित्रोस्तु यत्प्रोक्तं व्रतचारी तु पुत्रकः। व्रतस्थोऽपि हि कुर्वीत पिण्डदानोदकक्रियाम्॥ भवत्यशौचं नैवास्य नैवाग्निस्तस्य लुप्यते। स्वाध्यायं च प्रकुर्वीत पूर्ववद्विधिदर्शितम्॥

हारीत ने कहा है—माता और पिता के लिए जो कहा है कि ब्रह्मचारी पुत्र को व्रत में रहने पर भी पिण्डदान तथा उदकक्रिया करे। उसको आशौच नहीं ही होता है और उसके अग्नि का लोप नहीं होता है। स्वाध्याय को करे पहले की तरह विधि में कहा है।

संवर्तः—अन्यगोत्रोपसम्बन्धः प्रेतस्याग्निं ददाति यः।
पिण्डं चोदकदानं च सदशाहं समाचरेत्॥)

संवर्त ने कहा है—अन्यगोत्र से उपसम्बन्ध जो प्रेत की अग्नि को देता है वह पिण्ड और उदकदान को दशदिन में समाप्त करे।

निर्हरणमन्त्यकर्मपरम्। एवं मातामहस्य, यथा व्रतस्थोऽपि सुतः पितुः कुर्यात्क्रियां नृप। तथा मातामहस्यापि दौहित्रः कर्तुमर्हति॥ इति अपरार्के भविष्योक्तेः।

निर्हरण का अर्थ—अन्त्यकर्मपरक है। इसप्रकार मातामह का भी करे।

अपरार्क में भविष्यपुराण का वचन है—हे नृप, जैसे व्रत में स्थित भी पुत्र पिता की क्रिया (अन्त्यकर्म) को करे। वैसे मातामह (नाना) की क्रिया को दौहित्र (लड़की का लड़का) करने योग्य होता है।

मातापित्रोरुपाध्यायाचार्ययोरौर्ध्वदेहिकम्। कुर्वन्मातामहस्यापि व्रती न भ्रश्यते व्रतात्॥ इति कालादर्शाच्च। तत्रान्त्यकर्मनिमित्तमस्पृश्यत्वं दशाहमस्त्येव,

और कालादर्श में कहा है—माता और पिता की, उपाध्याय तथा आचार्य की और्ध्वदेहिकक्रिया को और मातामह की क्रिया को करने पर ब्रह्मचारी व्रत से भ्रष्ट नहीं होता है। वहाँ पर अन्त्यकर्मनिमित्त अस्पृश्यत्व दशदिन तक ही है।

सगोत्रो वाऽसगोत्रो वा योऽग्निं दद्यात्सखे नरः। सोऽपि कुर्यान्नवश्राद्धं शुध्ये तु दशमेऽहनि॥ इति दिवोदासोक्तवचनात्। अत एव 'ब्रह्मचारिणः शवकर्मणो व्रतान्निवृत्तिरन्यत्र मातापित्रोर्गुरोश्च' इति गौतमीये व्रतनिवृत्तेरेव पर्युदासो नाशौचस्य।

दिवोदास का वचन है—हे सखे, हे नरः, सगोत्र या असगोत्र जो अग्नि दे वही ही नवश्राद्ध करे तथा दशवेंदिन शुद्ध होता है। इसलिए शव के कर्म को करनेवाला (जो जिसको अग्नि देता है वह उसके जातीय का आशौच न करे। इसप्रकार ब्रह्मचारी का अनापाद्यनिमित्तक आशौच के निषेध में भी निर्हरण औध्वदेहिकक्रिया के प्राप्त होने पर उसके निषेध में अभाव होने से पिता आदि के अन्त्येष्टिकर्म के करने पर और उसके अन्नभक्षण में भी ब्रह्मचारी को तन्निमित्तक पूर्णाशौचमात्र है। सपिण्ड या असपिण्ड का अन्त्येष्टि कर्म करने पर तो पूर्णाशौच, प्रायश्चित्त तथा फिर से उपनयन ये तीनों प्राप्त होते हैं।) ब्रह्मचारी का शव कर्म के माता, पिता और गुरु को छोड़कर अन्यत्र व्रत से निवृत्ति है। गौतमस्मृति में तो कहा है व्रत निवृत्ति ही [1]पर्युदास है, आशौच का नहीं है।

(सन्ध्यादिकर्मलोपाभावकथनम्)

सन्ध्यादिकर्मलोपस्तु नास्ति, न त्यजेत्सूतके कर्म ब्रह्मचारी स्वयं क्वचित्। इति छन्दोगपरिशिष्टात्,

छन्दोगपरिशिष्ट में कहा है—सन्ध्या आदि कर्म का लोप तो नहीं होता है। सूतक में ब्रह्मचारी को अपने कर्म का कभी भी त्याग नहीं करना चाहिये।

पित्रोर्गुरोर्विपत्तौ तु ब्रह्मचार्यपि यः सुतः। सव्रतश्चापि कुर्वीत अग्निपिण्डोदकक्रियाम् ॥

चन्द्रिका में संवर्त ने कहा है—माता, पिता और गुरु के निधन में ब्रह्मचारी पुत्र भी व्रतावस्था में स्थित अग्निसंस्कार और पिण्डोदकक्रिया को करे।

तेनाशौचं न कर्तव्यं सन्ध्या चैव न लुप्यते। अग्निकार्यं च कर्तव्यं सायं प्रातश्च नित्यशः ॥ इति चन्द्रिकायां संवर्तोक्तेश्च।

इससे आशौच को नहीं करना चाहिये और सन्ध्या का भी लोप नहीं होता है। ब्रह्मचारी सायंकाल और प्रातःकाल नित्य अग्निकार्य—समिदाधान अग्नि में करे।

अत्र कर्मानधिकाररूपाशौचनिषेध एव। अपरार्कमाधवादयस्तु एकाहमाशौचमाहुः—

यहाँ पर कर्म के अनधिकाररूप आशौच का निषेध ही है। अपरार्क माधव आदि ने तो एकदिन का आशौच कहा है।

आचार्यं वाप्युपाध्यायं गुरुं वा पितरं च वा। मातरं वा स्वयं दग्ध्वा व्रतस्थस्तत्र भोजनम् ॥ कृत्वा पतति नो तस्मात्प्रेतान्नं तत्र भक्षयेत्। अन्यत्र भोजनं कुर्यान्न च तै सह संवसेत्। एकाहम-

---

१—शास्त्र में निषेधस्थल में दो प्रकार माने जाते हैं—एक पर्युदास दूसरा प्रतिषेध। इसको प्रसज्यप्रतिषेध भी कहते हैं। अर्थात् नञर्थ दो प्रकार का होता है पर्युदास और प्रतिषेध। इसका यह अभिप्राय है कि जहाँ नञ् का आख्यातार्थ क्रिया (आर्थी भावना) के साथ अन्वय होगा उसे प्रतिषेध या प्रसज्यप्रतिषेध कहते हैं। जैसे—'न कलञ्जं भक्षयेत्' 'न ब्राह्मणो हन्यात्' इत्यादि। यहाँ कलञ्ज भक्षणादि राग से प्राप्त है उसको न करे। इसीप्रकार ब्राह्मण हनन न करे। प्रतिषेध मानने में बाधक है उपक्रम तथा विकल्प प्रसक्ति। पहले का उदाहरण है नेक्षेत्सोद्यन्तमादित्यं नास्तयन्तं कदाचन' इति यहाँ नञ् का ईक्षति के साथ सम्बन्ध मानकर दोनों पदों से ईक्षणपद का अन्वय मानकर (अनेक्षणसंकल्पे न भावयेत्) अनीक्षण संकल्प से प्राप्त करना। यथानञर्थ का आख्यातार्थ के साथ सम्बन्ध नहीं है धात्वर्थ के साथ है इसे पर्युदास कहते हैं। दूसरा है विकल्प प्रसक्ति—उदाहरण है—जैसे—यजतिषु ये यजामहं करोति नानुयाजेषु—इति। इसका यह अर्थ है यजति से विहित यागों में ये यजाम मन्त्र पढ़े अनुयाज में नहीं। ऐसा अर्थ मानने पर ये यजामह विहित और निषिद्ध भी है इसलिये विकल्प प्रसक्त होता है। विकल्प महान् दोष है वह अगतिकगतित्व में (लाचारी से) माना जाता है। अतः इस दोष को हटाने के लिए नञ् और अनुयाज दोनों शब्दों से लक्षणा से अनुयाज भिन्न यह अर्थ माना जाता है। यहाँ नञ् का नामार्थ से सम्बन्ध है इसीलिए इसको पर्युदास कहते हैं। एवं च नञ् का आख्यातार्थ के साथ संबन्ध होने से प्रतिषेध कहा जाता है। नामार्थ या धात्वर्थ के साथ नञ का संबन्ध होने से पर्युदास कहते हैं। इसका विवेचन न्यायप्रकाश में नञर्थविचार में देखिये।

शुचिर्भूत्वा द्वितीयेऽहनि शुद्धयति॥ इति ब्राह्मोक्तेः। तदन्नभोजने तु प्रायश्चित्तं पुनरुपनयनमाशौचं च। दिवोदासादयस्तु ब्राह्मोक्तेः प्रथमेऽह्नि सन्ध्यादिलोपः,

ब्रह्मपुराण में कहा है—आचार्य, उपाध्याय, गुरु, पिता और माता को स्वयं दग्ध (जला) कर व्रत में संलग्न मनुष्य वहाँ भोजन कर पतित हो जाता है। इसलिए वहाँ पर प्रेतान्न का भक्षण न करे। अन्यत्र (दूसरे के यहाँ) भोजन को करे और उनके साथ (सूतकी के साथ) शयन भी न करे। एकदिन अशुचि (अपवित्र) रहकर दूसरे दिन शुद्ध होता है। उसके अन्न के भोजन करने पर तो प्रायश्चित्त (तीन-कृच्छ्र प्रायश्चित्त), फिर से उपनयन तथा आशौच होता है। दिवोदास आदि तो ब्रह्मपुराण के वचन से कहते हैं। प्रथमदिन में सन्ध्या आदि का लोप होता है।

ब्रह्मचारी यदा कुर्यात्पिण्डनिर्वपणं पितुः। तावत्कालमशौचं स्यात्पुनः स्नात्वा विशुद्धयति॥ इति प्रजापतिवचनात् द्वितीयाहादौ पिण्डदानकाले एवास्पृश्यत्वमात्रं नान्यदेत्याहुः। दशाहमस्पृश्यत्वेऽपि कर्माङ्गस्नानविधानार्थमेतदिति युक्तम्। अन्त्यकर्माकरणे तु ब्रह्मचारिणः पित्रादिमरणेऽप्याशौचाभाव एव। सोऽपि ब्रह्मचर्यकाल एव समावर्तनोत्तरं तु पूर्वमृतानां त्र्यहाशौचं भवत्येव,

जब ब्रह्मचारी पिता का पिण्डदान करे तो उतने ही समय तक आशौच होता है, फिर स्नान कर शुद्ध होता है—इस प्रजापति के वचन से दूसरे दिन आदि में पिण्डदान के समय में ही अस्पृश्यतामात्र है अन्य समय में नहीं है-यह कहते हैं। दशदिन-रूप पिण्डदानकाल के अस्पृश्यत्व में भी कर्माङ्गस्नान के विधान के लिए ही यह कहा है-यह युक्त है। पिता आदि के मरने पर अन्त्यकर्म के न करने पर तो ब्रह्मचारी को आशौच का अभाव ही है। वह भी ब्रह्मचर्यकाल में ही है। समावर्तन के बाद तो पूर्व में मरे हुओं का तीनदिन का आशौच होता ही है।

आदिष्टी नोदकं कुर्यादाव्रतस्य समापनात्। समाप्ते तूदकं दत्त्वा त्रिरात्रमशुचिर्भवेत्। इति मनूक्तेः (५।८८)।

मनु ने कहा है--व्रत की समाप्ति तक आदिष्टी (ब्रह्मचारी) उदकदान न करे। समाप्त व्रत के होने पर तो प्रेत का उदकदान (जलदान-षोडशश्राद्ध आदि सब प्रेतकार्य कर) देकर तीनरात तक अशुचि-अपवित्र होता है।

तत्रापि विकल्पः, पितर्यपि मृते नैषां दोषो भवति कर्हिचित्। आशौचं कर्मणोऽन्ते स्यात् त्र्यहं वा ब्रह्मचारिणाम्॥ इति छन्दोगपरिशिष्टात्।

उसमें (अन्त्यकर्म में) भी विकल्प है। छन्दोगपरिशिष्ट में कहा है--पिता के मरने पर भी इन ब्रह्मचारियों को कभी दोष नहीं होता है। या कर्म के अन्त में (समावर्तन के अन्त में) आशौच तीनदिन का होता है।

तथा कृतजीवच्छ्राद्धेन किमप्याशौचं न कार्यमिति हेमाद्रिः।

हेमाद्रि ने कहा है--जीवच्छ्राद्ध को करने पर कुछ भी आशौच न करे।

शुद्धितत्त्वे कौर्मे—सद्यःशौचं समाख्यातं दुर्भिक्षे चाप्युपद्रवे।

डिम्भाहवहतानां च विद्युता पार्थिवैर्द्विजैः। उपद्रवेऽत्यन्तमरके।

शुद्धितत्त्व में कूर्मपुराण का वचन है—दुर्भिक्ष, उपद्रव (महामारी, संक्रामकरोग प्लेगप्रसारणरोग आदि) शस्त्रकलह, बिजली, राजा और द्विजों के द्वारा मरने पर उनका सद्यः आशौच होता है।

उपसर्गमृते चैव सद्यःशौचं विधीयते। इति पराशरोक्तेः। उपसर्गोऽत्यन्तमरक इति शूलपाण्यनिरुद्धभट्टादयः।

पराशर ने कहा है--विस्फोट (बिमारी) आदि में मरनेपर सद्यःशौच होता है। शूलपाणि, अनिरुद्ध भट्टाचार्य आदि ने कहा है--उपसर्ग माने अत्यन्तमरक (महामारी, संक्रामकरोग, प्लेगप्रसाररोग)।

याज्ञवल्क्योऽपि (प्राय० श्लो० २९)—आपद्यपि च कष्टायां सद्यःशौचं विधीयते । इति मरणसमयेऽपि नाशौचम् ।

याज्ञवल्क्य ने भी कहा है--आपत्ति (रोग-व्याधि) (व्याधि आदि के कारण मुमूर्षावस्था में अकल्याण नाश के लिए दान देने में) और कष्ट में भी सद्यःशौच (तत्कालशुद्धि) होती है । मरणसमय में भी आशौच नहीं होता है ।

तथा च शुद्धिरत्नाकरे दक्षः—स्वस्थकाले त्विदं सर्वं सूतकं परिकीर्तितम् । आपद्गतस्य सर्वस्य सूतकेऽपि न सूतकम् ॥ अतः सति वैराग्ये संन्यासोऽप्यातुरस्य भवतीति केचित् ।

और शुद्धिरत्नाकर में दक्ष ने कहा है--स्वस्थकाल में तो यह सब सूतक कहा है । आपत्तिकाल होने पर सबको सूतक में भी सूतक नहीं होता है । इसलिए भी वैराग्य होनेपर आतुर को संन्यास भी होता है--यह कोई कहते हैं ।

(कर्मतः आशौचम्)

अथ कर्मतः त्रिंशत्श्लोक्याम्—तत्तत्कार्येषु सत्रिव्रतिनृपवद्दीक्षितर्त्विक्स्वदेशभ्रंशापत्स्वप्यनेकश्रुतिपठनभिषक्कारुशिल्प्यातुराणाम् । संप्रारब्धेषु दानोपनयनयजनश्राद्धयुद्धप्रतिष्ठाचूडातीर्थार्थयात्राजपपरिणयनाद्युत्सवेष्वेतदर्थे ॥ नाशौचमिति शेषः । सत्री अन्नसत्रवान् मुख्यसत्रस्य दीक्षितपदात्सिद्धेः । व्रती अनन्तव्रतादिनियमवान्, 'न व्रतिनां व्रते' इति विष्णूक्तेः ।

अब कर्म से आशौच त्रिंशत्श्लोकी में कहा है–उन उन कार्यों में–सत्रि (अन्नक्षेत्रवाला), व्रती (अनन्तव्रतोद्यापन आदि में नियम से रहे), राजा, राजा की तरह यज्ञ दीक्षा लिया हुआ, होता, अपने देश के भ्रंशादि (नाश) आपत्तियों में अनेक श्रुतियों का पाठ करनेवाला भिषक्, कारु (चित्रकार), शिल्प (कारीगर), आतुरों (रोगियों) के प्रारंभ किये हुए दान, उपनयन, यजन, श्राद्ध, युद्ध, प्रतिष्ठा, चूडाकरण, तीर्थ की यात्रा, जप और विवाह आदि उत्सवों में आशौच नहीं होता है । सत्रीशब्द से अन्नक्षेत्र, मुख्य सत्र का दीक्षितपद से ही सिद्धि हो जायगी । व्रती माने–अनन्तव्रतादि नियमवान् होकर रहे ।

(वैद्यदासादीनां सद्यःशौचकथनम्)

प्रचेताः—कारवः शिल्पिनो वैद्या दासी दासास्तथैव च । राजानो राजभृत्याश्च सद्यःशौचाः प्रकीर्तिताः ॥ कारवः सूपकाराद्याः । शिल्पिनश्चैलनिर्णेजकाद्याः । आतुरस्य व्याधिनाशार्थे दानादौ । तुलादानादेः प्रारम्भो नान्दीश्राद्धं सङ्कल्पो वा । यजनं तडागोत्सर्गकोटिहोमादि ।

प्रचेता ने कहा है--कारु (कलाकार, (तथा तन्त्रवायश्च नापितो रजकस्तथा । पञ्चमश्चर्मकारश्च कारवः शिल्पिनो मताः ॥) शिल्पी, वैद्य, दासी, दास, राजा और राजा के नौकरों को सद्यःशौच होता है । कारु माने--अपने शरीर से कर्म करने वाला--सूपकार (रसोईया) आदि करनेवाले आदिपद से चैल चैलनिर्णेजक (धोवी) आदि, शिल्पी माने--वसुला कूची आदि व्यवहार से काम लेनेवाले, आतुर माने—व्याधि के नाश के लिए दान आदि करनेवाले, तुलादान[1] आदि में या नान्दीश्राद्ध या संकल्प के प्रारंभ में और यजन माने (होम और याजन को कहते हैं ।) तडागोत्सर्ग, [2]कोटिहोमादि में आशौच सद्यःशौच होता है ।

१—ईशानाय नमः १ शशिने नमः २ मारुताय नमः ३ रुद्राय नमः ४ सूर्याय नमः ५ विश्वकर्मणे नमः ६ गुरवे नमः ७ अङ्गिरोऽग्निभ्यां नमः ८ प्रजापतये नमः ९ विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः १० जगद्विधात्रे नमः ११ पर्जन्यशंभुभ्यां नमः १२ पितृभ्यो नमः १३ सोम्याय नमः १४ धर्माय नमः १५ अमरराजाय नमः १६ अश्विभ्यां नमः १७ जलेशाय नमः १८ मित्रावरुणाभ्यां नमः १९ मरुद्गणेभ्यो नमः २० धनेशाय नमः २१ गन्धर्वाय नमः २२ जलेशाय नमः २३ विष्णवे नमः २४ प्रान्तयोः–अनन्ताय नमः । मध्यश्रृंखलायाम्–वासुकये नमः । फलकयोरधः–भूम्यै नमः । फलकमध्ये–भूम्यधिपतये नमः । श्रृंखलासु–सर्पेभ्यो नमः । ये देवता दक्षिणोत्तर तुला की लंबी दण्डी में आवाहित सुवर्ण, गिन्नी, असर्फी आदि में किये जाते हैं । विशेषपद्धति नवीन–आह्निकसूत्रावली, परिशिष्टदीपक, शान्तिकमलाकर आदि में देखिये ।

२—दशमुख (कुण्ड) कोटिहोम की पद्धति मेरे द्वारा प्रकाशित है । शतमुख (कुण्ड) कोटिहोम की पद्धति और तडागोत्सर्ग की मेरे पास लिखित है ।

(दशमुखकोटिहोम)

(शतमुखकोटिहोम)

विशेष प्रकारान्तरपत्त कुण्डों का शान्तिमयूख में देखिये ।

(व्रतयज्ञविवाहादिषु आशौचविचारः)

लघुविष्णुः—व्रतयज्ञविवाहेषु श्राद्धे होमेऽर्चने जपे । आरब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु सूतकम् ॥ प्रारम्भो वरणं यज्ञे सङ्कल्पो व्रतसत्रयोः । नान्दीश्राद्धं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रिया ॥ इति पाकस्य परिसमन्तात् क्रिया पाकप्रोक्षणमिति शुद्धिप्रदीपस्तन्मन्दम् , रूढेर्योगाद्बलवत्त्वात् ।

लघुविष्णु का वचन है—व्रत, यज्ञ, विवाह, श्राद्ध, होम, अर्चन (पूजा) और जप में आरंभ होने पर सूतक नहीं होता है । अनारंभ में तो सूतक होता है । यज्ञ में वरण के प्रारंभ में तथा व्रत और सत्रयाग में, विवाह के आदि में नान्दीश्राद्ध होने पर तथा श्राद्ध में पाक के बन जाने पर सूतक नहीं होता है। पाक का अर्थ है संपूर्ण क्रिया होने से पाक का प्रोक्षण करे यह शुद्धिप्रदीप कहते हैं । यह मूर्खता है । (विवाहादौ– यहाँ पर आदि शब्द से नान्दीश्राद्ध की तरह कर्ममात्र का ग्रहण करे ।) क्योंकि योगसे रूढी बलवान् होती है ।

(आशौचे आकस्मिकतीर्थप्राप्तौ विचारः)

तीर्थेति आशौचे आकस्मिकतीर्थप्राप्तौ, विवाहदुर्गयज्ञेषु यात्रायां तीर्थकर्मणि । न तत्र सूतकं तद्वत्कर्मयज्ञादि कारयेत् ॥ इति पैठीनसिस्मृतेः । अत्र विशेषः प्रागुक्तः । जपः पुरश्चरणादिः स्तोत्रपाठः अविच्छेदेन सङ्कल्पितहरिवंशश्रवणादिश्च ।

तीर्थपत्त का अर्थ है–आशौच में आकस्मिक तीर्थ की प्राप्ति में । पैठीनसिस्मृति में कहा है—विवाह, दुर्ग (शत्रु से वेष्टित दुर्ग संरक्षण अर्थों में), यज्ञ (शान्तिक उच्चाटन आदि में) और तीर्थकर्म में (इसी से ही तीर्थयात्रा की सिद्धि है फिर से यात्रापद तो अर्थयात्रापरक है । मनु ने कहा है—पूर्वसंकल्पितं द्रव्यं दीयमानं न दुष्यति ।) सूतक नहीं होता है । तद्वत् ही यज्ञ आदि कर्म करे । यहाँ पर 'कारयेत्' का अर्थ 'कुर्यात्' से है । यहाँ पर विशेष पहले कह चुके हैं । जप माने—पुरश्चरण आदि स्तोत्रपाठ और अविच्छेद (जिनका विच्छेद बीच में नहीं हुआ है) से संकल्पित हरिवंशश्रवण–आदि ।

अत एवोक्तं ब्राह्मे—गृहीतनियमस्यापि न स्यादन्यस्य कस्यचित् । इति । एवं देवपूजादि ।

इसलिये ब्रह्मपुराण में कहा है—ग्रहण किये हुए किसी नियम को करने पर अन्य सूतक कुछ नहीं होता है । इसप्रकार देवपूजा आदि में जानना चाहिये ।

श्रीशिवशक्त्यात्मक रुद्रहोम धंवली (जयपुर)

दक्षिण

पूर्व

पश्चिम

मण्डप का शिखर

उत्तर

**मदनपारिजाते यमोऽपि—शिवविष्णवर्चनं दीक्षा यस्य चाग्निपरिग्रहः ।
श्रौतकर्माणि कुर्वीत स्नातः शुद्धिमवाप्नुयात् ॥**

मदनपरिजात में यम ने भी कहा है—जो दीक्षित है और अग्निहोत्री है वह शिव, विष्णु आदि का अर्चन करे। श्रौतकर्मों को करे और स्नान करने से शुद्धता को प्राप्त होता है।

(दीक्षावतां जपपूजादावाशौचाभावकथनम्)

**गौडशुद्धितत्त्वे मन्त्रमुक्तावल्याम्—जपो देवार्चनविधिः कार्यो दीक्षान्वितैर्नरैः ।
नास्ति पापं यतस्तेषां सूतकं वा यतात्मनाम् ॥**

गौडशुद्धितत्त्व में मन्त्रमुक्तावली ने कहा है—दीक्षा से युक्त मनुष्य जप और देवार्चनविधि को करें। इसलिए चित्त को वश में करनेवालों को पाप तथा सूतक नहीं होता है।

(सूतकिनः पूजाधिकारकथनम्)

राघवभट्टीये नारदः—अथ सूतकिनः पूजां वक्ष्याम्यागमचोदिताम् । स्नात्वा नित्यं च निर्वृत्य मानस्या क्रियया तु वै ॥ बाह्यपूजाक्रमेणैव ध्यानयोगेन पूजयेत् । यदि कामो न चेत्कामी नित्यं पूर्ववदाचरेत् ॥

राघवभट्टीय में नारद ने कहा है—अब आगम-शास्त्र में कही हुई सूतकवाले की पूजा को कहता हूँ। नित्यस्नान और नित्यकर्म से निवृत्त होकर मानसीक्रिया से ही बाह्यपूजा के क्रम से ही ध्यान-योग से पूजा करे। इच्छावाले को यदि कामना न हो तो पूर्व की तरह आचरण करे।

यत्तु नृसिंहकल्पे—सदा मन्त्रजपं मुक्त्वा यदि स्यादशुचिर्नरः । मनसावहितस्तत्र स्मरेन्मन्त्रं न तूच्चरेत् ॥ तन्मूत्राद्यशौचपरम् ।

जो नृसिंहकल्प में कहा है—निरन्तर मन्त्रजप को त्यागकर यदि मनुष्य अशुचि होता है तो मन से वहाँ पर आवाहन कर स्मरण करे और मन्त्र का उच्चारण न करे। वह मूत्रादि आशौच परक है।

रामार्चनचन्द्रिकायाम्—अशुचिर्वा शुचिर्वापि गच्छंस्तिष्ठन्स्वपन्नपि । मन्त्रैकस्मरणं विद्वान् मनसैव सदाभ्यसेत् ॥ कालनियमाभावे तु स्तोत्रहरिवंशादि हेयमेव । उत्सवो रथयात्रादि । एषु नाशौचम् । अयमाशौचाभावोऽनन्यगतित्वे आर्तौ च ज्ञेयः । अत्र मूलमाकरे स्पष्टम् ।

रामार्चनचन्द्रिका में कहा है—अपवित्र (पिसाब या पैखाना आदि) या पवित्र (उच्चारण के असंभव में मन्त्रस्मरण की विधि करे) हो, चलता या खड़ होकर या शयन करते हुए विद्वान् केवल मन्त्र का स्मरण मन से ही सदा करे। कालनियम के अभाव में भी (सूतक में तो हरि का स्मरण करे। इससे हरि आदि का स्मरणपूर्वकमननरूपपूजा का त्याग है।) स्तोत्र, 'हरिवंश' आदि का त्याग ही है। उत्सवपद से रथयात्रा आदि का ग्रहण करे। इनमें आशौच नहीं होता है। यह आशौच का अभाव अन्य गति न हो तथा रुग्णावस्था में (राजा, वैद्य आदि के कार्यों में आवश्यकता पड़ने पर सद्यःशौच के बिना गत्यन्तर के अभाव में, अध्ययन, अपवाद आदि में) जानना चाहिये। यहाँ पर मूल ('न राज्ञां राजकर्मणि' इत्यादि कह चुके हैं।) आकर (प्राचीन ग्रन्थों) में स्पष्ट है।

(श्रौते कर्मणि स्मार्तकर्मणि च आशौचविचारः)

अत्र दीक्षितस्यावभृथात्पूर्वमेवाशौचाभावः । तदादि त्वाशौचमस्त्येव । 'तेन वैतानोपासनाः कार्या' इति वैतानत्वेऽप्यवभृथादि न भवत्येव । अत एवोक्तं माधवीये ब्राह्मे—तद्वद्गृहीतदीक्षस्य त्रैविद्यस्य महामखे । स्नानं त्ववभृथे यावत्तावत्तस्य न सूतकम् ॥ इति । वैतानोपासनाः कार्याः, इत्यनेनैव सिद्धेर्ऋत्विजां दीक्षितानां चेति पुनर्दीक्षितग्रहणं यजमाने स्वयं कर्तृत्वार्थं स्नानप्राप्त्यर्थं वेति विज्ञानेश्वरः । वस्तुतस्तु दीक्षणीयासंस्कृतस्य प्रागवभृथात्कर्मप्राप्त्यर्थं दीक्षितग्रहणम् । तेन ततः पूर्वं निषेध एव । यत्तु 'प्रारम्भो वरणं यज्ञे' इति तदात्वकपरम् ।

यहाँ पर दीक्षित का अवभृथस्नान (श्रौतयज्ञ के अन्त में नदी आदि में स्नान) के पूर्व में ही आशौच का अभाव है। उसके आदि में तो आशौच है ही। इससे वैतान अग्नि (आधानसंस्कृत-गार्हपत्य-आहवनीय और दक्षिणाग्नि) में उपासना करनी चाहिये। वैतान होने पर भी अवभृथ आदि नहीं होते हैं। इसलिए माधवीय में ब्रह्मपुराण का वचन है—ऋत्विक् के सदृश दीक्षा ग्रहण करनेवाले तीनों वेद के जानकार ने महायज्ञ में अवभृथ का स्नान जबतक नहीं किया है तबतक उसको सूतक नहीं होता है। वैतान अग्नि की उपासना करे—इससे ही सिद्ध है कि—ऋत्विज और दीक्षितों को सूतक नहीं होता है। तो फिर से दीक्षितपद का ग्रहण यजमान के स्वयं कर्तृत्वार्थ या स्नानप्राप्त्यर्थ है यह विज्ञानेश्वर ने कहा है। सिद्धान्त तो यह है कि—दीक्षणीया इष्टि में संस्कृत का अवभृथ से पूर्व कर्म की प्राप्ति के लिए दीक्षित पद का ग्रहण है। तदनन्तर इससे पूर्व निषेध ही है। जो यह कहा है कि–यज्ञ में वरण के प्रारंभ में-वह ऋत्विक् परक है।

तथा च छन्दोगपरिशिष्टे—न दीक्षिण्याः परं यज्ञे न कृच्छ्रादि तपश्चरन्। इति। शुद्धितत्त्वेऽप्येवम्। ऋत्विजां च मधुपर्कोत्तरमाशौचाभावः,

और वैसे छन्दोगपरिशिष्ट में कहा है—केवल दीक्षणीया इष्टिरूपयज्ञ (सवृत्तिक कात्यायनश्रौतसूत्र अ० ७।२।२२ से है) में तथा कृच्छ्रादितप को करते हुए आशौच नहीं होता है। शुद्धितत्त्व में यही है और ऋत्विजों का मधुपर्कानन्तर आशौच का अभाव है।

गृहीतमधुपर्कस्य यजमानात्तु ऋत्विजः। पश्चादशौचे पतिते न भवेदिति निश्चयः॥ इति ब्राह्मात्।

अत एव रामाण्डारः—'चतुर्णां वरणपक्षेऽन्येषामाशौचेऽन्य आगमयितव्यः, इत्याह। एवं स्मार्तेऽपि तुलाकोटिहोमादौ मधुपर्के सति दोषाभावो ज्ञेयः। यत्तु 'प्रारम्भो वरणं यज्ञे' इति, तत्रापि मधुपर्कान्तं ज्ञेयम्। तेनाधानेष्टिपशुबन्धादौ तदभावादन्ये भवन्तीति सिद्धम्।

ब्रह्मपुराण का कथन है—यजमान के द्वारा मधुपर्क का ग्रहण करने पर ऋत्विजों को बाद में आशौच के प्राप्त होने पर सूतक नहीं होता है यह निश्चित मत है। इसलिए रामाण्डार ने कहा है—चार ब्राह्मणों के वरणपक्ष में अन्यों को आशौच प्राप्त होने पर अन्य ब्राह्मणों का आह्वान करे—ऐसा कहा है। इसप्रकार स्मार्तकर्म में भी तुला-कोटिहोम आदि में मधुपर्क के हो जाने पर दोष का अभाव जानना चाहिये। जो यह कहा कि–यज्ञ के प्रारंभ में वरण है। वहां पर भी मधुपर्कान्त जानना चाहिये। इससे आधानेष्टि, पशुबन्ध आदि में मधुपर्क के अभाव से अन्य ब्राह्मण होते हैं—यह सिद्ध है।

अपवादान्तरमाह याज्ञवल्क्यः (प्राय० श्लो० १७)—वैतानोपासनाः कार्याः क्रियाश्च श्रुतिचोदनात्। तत्र त्यागमात्रं स्नानोत्तरं स्वयं कर्तृत्वम्।

अपवादान्तर याज्ञवल्क्य ने कहा है—श्रुति के आदेश से अग्निहोत्र आदि वैतानिक तथा गृह्याग्नि से किये जानेवाले उपासनकर्म और सायं-प्रातः होम की क्रिया को करना चाहिये। वहाँ पर त्यागमात्र तो स्नान के बाद स्वयं करना चाहिये।

श्रौतकर्मणि तत्कालं स्नातः शुद्धिमवाप्नुयात्। इति स्मृतेः।

स्मृति में कहा है—श्रौतकर्म में उसीसमय स्नान कर शुद्धि को प्राप्त करता है। यहाँ पर श्रौतशब्द से औपासन का भी ग्रहण करना चाहिये।

त्यागातिरिक्ते तु श्रौते स्मार्ते चान्यस्यैव कर्तृत्वम्। सूतके मृतके चैव अशक्तौ श्राद्धभोजने। प्रवासादिनिमित्तेषु होवयेन्न तु होपयेत्॥ इति बृहस्पत्युक्तेः।

त्याग के अतिरिक्त में तो श्रौत और स्मार्त में अन्य का ही कर्तृत्व है। बृहस्पतिस्मृति का कथन है—सूतक, मृतक और श्राद्ध के भोजन में अशक्त और प्रवास (विदेशगमन) आदि निमित्तों में किसी अन्य से कराये स्वयं न करे।

'नित्यानि निवर्त्तेरन्वैतानवर्ज्यम्, शालाग्नौ चैकेऽन्य एतानि कुर्युः' इति पैठीनसिस्मृतेश्चेति विज्ञानेश्वरः। एकग्रहणं पूजार्थम्। तेन स्मार्तं कार्यमेवेति हारलतायाम्। दाक्षिणात्यास्तु विकल्पमाहुः। अपरार्कादिनिबन्धास्तु—श्रौतं सर्वं स्वयं कार्यं, स्मार्ते तु त्यागातिरिक्तेऽन्यस्यैव कर्तृत्वम्। त्यागमात्रे तु स्वस्य—कर्म वैतानिकं कार्यं स्नानोपस्पर्शवान्स्वयम्। इति हारीतोक्तेः,

पैठीनसिस्मृति में विज्ञानेश्वर ने कहा है--वैतानिककार्यों को त्याग कर अन्यकार्यों का त्याग करे। कोई (अनाशौची) कहते हैं कि—शालाग्नि में इन (त्याग के अतिरिक्तों को) को करे। यहाँ एक का ग्रहण पूजा के लिए है। इससे स्मार्तकर्म करे ही यह हारलता में कहा है। दाक्षिणात्य तो विकल्प कहते हैं। अपरार्क आदि (आदिपद से कल्पसूत्र, भाष्यकार आदि का ग्रहण है।) निबन्धग्रन्थ तो कहते हैं--सब श्रौत कर्म स्वयं करना चाहिये। स्मार्त में तो त्याग से अतिरिक्त में अन्य का ही कर्तृत्व है। त्यागमात्र में तो अपना अधिकार है। हारीतस्मृति में कहा है--वैतानिक कर्म को स्नान तथा स्पर्श कर स्वयं करे।

दर्शं च पूर्णमासं च कर्म वैतानिकं च यत्। सूतकेऽपि त्यजन्मोहात्प्रायश्चित्तीयते द्विजः॥ इति मरीच्युक्तेः।

मरीचिस्मृति में कहा है—अमावास्या, पूर्णिमा तथा वैतानिककर्म को जो द्विज सूतक में भी मोह से त्यागता है वह प्रायश्चित्ती होता है।

जन्महान्योर्वितानस्य कर्मत्यागो न विद्यते। शालाग्नौ केवलो होमः कार्य एवान्यगोत्रजैः॥ इति जाबालोक्तेश्चेत्याहुः। अपरार्केऽप्येवम्। याज्ञिका अप्येवम्।

जाबाल में भी कहा है—जन्म तथा मृत्यु में वितान (गार्हपत्यादि अग्नि) का कर्मत्याग नहीं होता है। शालाग्नि में केवल होम अन्य गोत्रवाले ही करें। अपरार्क में भी यही कहा है। याज्ञिक भी यही कहते हैं।

सूतके तु समुत्पन्ने स्मार्तं कर्म कथं भवेत्। पिण्डयज्ञं चरुं होममसगोत्रेण कारयेत्॥ इति जातूकर्ण्ये च। चरुः=स्मार्तस्थालीकः। श्रवणाकर्मादिश्चेति विज्ञानेश्वरः। प्रारब्धं तु सपिण्डेनापि कार्यम्,

और जातूकर्ण्य ने भी कहा है—सूतक के तो उत्पन्न होने पर स्मार्तकर्म कैसे होगा। पिण्ड-पितृयज्ञ तथा चरुहोम का अपने से अन्यगोत्रवाले से करा दे। चरु माने—स्मार्तस्थालीपाक। विज्ञानेश्वर ने कहा है—श्रवणाकर्म आदि। प्रारब्ध (प्रारंभ) तो सपिण्ड से भी करा दे।

न च तत्कर्म कुर्वाणः सनाभ्योऽपि शुचिर्भवेत्। इति मनूक्तेः। (अ० ५ श्लो० ८४)

मनु ने कहा है—उस कर्म को करता हुआ पितृसपिण्ड अपवित्र नहीं होता है।

छन्दोगपरिशिष्टेऽपि—होमः श्रौते तु कर्तव्यः शुष्कान्नेन फलेन वा। अकृतं हावयेत् स्मार्ते तदभावे कृताकृतम्॥ अकृतं व्रीह्यादि। कृताकृतं तण्डुलादि। स्मार्तहोमादौ तु विकल्पो ज्ञेयः। 'शालाग्नौ चैके' इति प्रागुक्तेः। यदा करणं तदाऽन्यद्वारा।

छन्दोगपरिशिष्ट में भी कहा है—शुष्कान्न या फल से होम तो श्रौतकर्म में करना चाहिये। (कृतमोदनसक्त्वादि तण्डुलादि कृताकृतम्। व्रीह्यादि त्वकृतं प्रोक्तमिति हव्यं त्रिधा स्मृतम्॥) या स्मार्तकर्म में उसके अभाव में तण्डुल आदि से हवन करे। अकृत माने—व्रीहि आदि। कृताकृत, माने—तण्डुल आदि। स्मार्तहोम आदि में तो विकल्प जानना चाहिये। किसी का मत है—शालाग्नि में करे—यह पहले कह चुके हैं। जब करे तो अन्य के द्वारा करे।

अत्रेदं तत्त्वम्। येषां बह्वृचादीनां द्वादशरात्रमहोमेऽपि नाग्निविच्छेदस्तैर्न कार्यम्। तैत्तिरीयाद्यैः कार्यम्, 'चतूरात्रमहूयमानोऽग्निर्लौकिकः सम्पद्यते' इति सुदर्शनभाष्ये वचनात्। समारूढे त्वग्नौ तेनापि न कार्यम्, किन्तु पुनराधानमेव समारोपप्रत्यवरोहयोराशौचापवादाभावादनन्यकर्तृकत्वाच्च। अन्यथा पुनराधानमपि स्यात्।

यहाँ पर यह तत्त्व है (स्मार्तकर्म में व्यवस्था कहते हैं) जिन बह्वृच आदियों का बारहरात होम के न होने से अग्नि का विच्छेद नहीं होता है वे लोग न करें। तैत्तरीय आदि शाखावालों को करना चाहिये। शुदर्शनभाष्य में वचन है कि चार रात तक होम न होने से अग्नि लौकिक हो जाता है समारूढ (स्थित) अग्नि में तो वह भी न करे। किन्तु पुनराधान ही करे। [1]समारोप और प्रत्यवरोहण में आशौच के अपवाद के अभाव से अन्य कोई कर्ता नहीं होता है। अन्यथा (प्रत्यवरोहोपगम में आशौच का अभाव है) फिर से आधान भी होता है।

यत्त्वाश्वलायनः—तौ वापि सूतके शावे पर्वणीष्टिं महापदि। पुष्पवत्यां च भार्यायां न कुर्यात्तु कदाचन॥ स्मार्ताग्निः सूतके शावे स्वयं न जुहुयाद् द्विजः। श्रौताग्निस्तु सकृद्धुत्वा समाप्ते वा स्वयं हुनेत्॥ इति।

जो आश्वलायन ने कहा है—श्रौत और स्मार्ताग्नि में सूतक (जननाशौच) तथा शाव (मरणाशौच) में, महापत्ति में पर्व में होनेवाली इष्टि में स्त्री के रजस्वला होनेपर कभी भी न करे। स्मार्ताग्नि द्विज तो सूतक और शाव में स्वयं हवन न करे। श्रौताग्निवाला हो तो सूतक और मरण में एकबार हवन करा दें या समाप्ति में स्वयं हवन करे।

तदपि समारूढपरम्। तदाह स एव—स्मार्ताग्निरात्मनोऽन्येषामभावे सूतकादिषु। समारोप्य तदन्ते तु विहृत्य जुहुयात्स्वयम्॥ इति।

वह भी समारूढ परक है उसी बात को उसने ही कहा है—सूतक आदि में अपने से अन्योंके अभाव में स्मार्ताग्नि का समारोप कर उसके अन्त में स्वयं स्थापन कर हवन स्थापन करे।

तथा मनुः—(५।८४)'प्रत्यूहेन्नाग्निषु क्रियाः' इति वैश्वदेवस्य त्वग्निसाध्यत्वेऽपि वचनान्निवृत्तिः।

मनु ने कहा है—अग्निहोत्र की क्रिया में बाधा नहीं डालना चाहिये। वैश्वदेव का तो अग्नि के साध्यत्व में भी वचन से निवृत्ति होती है।

विप्रो दशाहमासीत वैश्वदेवविवर्जितः। इति संवर्तोक्तेः।

संवर्त ने कहा है—ब्राह्मण दशदिन तक वैश्वदेव का त्याग करे।

यद्यपि—पञ्चयज्ञविधानं तु न कुर्यान्मृत्युजन्मनोः। इति तेनैवोक्तेः पूर्वनिषेधो व्यर्थः तथाप्यापस्तम्बादीनां वैश्वदेवस्य पञ्चयज्ञभिन्नत्वात्पृथङ्निषेधः। हरदत्तस्त्वाशौचेऽपि बह्वृचैर्वैश्वदेवः कार्यः, 'तस्य द्वावनाध्यायौ यदात्माऽशुचिर्यद्देशः' इति ब्रह्मयज्ञस्यैवाशौचे विशिष्य निषेधात्।

यद्यपि पञ्चयज्ञ का विधान सूतक (मृत्यु) और जन्म में न करे—यह उसी ही कथन से पूर्वनिषेध व्यर्थ है। फिर भी आपस्तम्ब आदि के मत से वैश्वदेव का पञ्चयज्ञ से भिन्न होने से पृथक् निषेध है। हरदत्त तो आशौच में भी बह्वृच (ऋग्वेद) शाखावाले वैश्वदेव को करें। उसकी दो अनध्याय होती है जब कि आत्मा और देश अपवित्र हो। ब्रह्मयज्ञ का ही आशौच में विशेष कर निषेध है।

(सन्ध्यादीनामप्यपवादमाह)

सन्ध्यादीनामप्यपवादमाह अपरार्के पुलस्त्यः—सन्ध्यामिष्टिं चरुं होमं यावज्जीवं समाचरेत्।
न त्यजेत्सूतके वापि त्यजन् गच्छेदधो द्विजः॥

सन्ध्या आदि का भी अपवाद अपरार्क में पुलस्त्य ने कहा है—सन्ध्या, इष्टि, चरु और होम को यावज्जीवन करे। सूतक में कभी भी त्याग न करे। द्विज त्याग करे तो अधोगति को प्राप्त होता है।

(सूतकादौ सन्ध्याविचारः)

सूतके मृतके चैव सन्ध्याकर्म समाचरेत्। मनसोच्चारयेन्मन्त्रान् प्राणायाममृते द्विजः॥

सूतक और मृतक में तो द्विज सन्ध्याकर्म को करे। प्राणायाम को छोड़कर मन में मन्त्रों का उच्चारण करे।

१—अहिताग्नि यजमान को किसीकार्य से बाहर जाने पर अग्नि का मन्त्र पाठ से अरणी में समारोप किया जाता है। आने के बाद मथन से उसको निकाला जाता है इन दोनों में आशौच का अपवाद नहीं है।

यत्तु चन्द्रिकायां जाबालः—सन्ध्यां पञ्चमहायज्ञा नैत्यकं स्मृतिकर्म च ।
तन्मध्ये हापयेत्तेषां दशाहान्ते पुनः क्रिया ॥ इति ।

जो चन्द्रिका में जाबाल ने कहा है—सन्ध्या, पञ्चमहायज्ञ और स्मृति में कहा हुआ नित्य कर्म उनका सूतक के मध्य में त्याग दे। दशदिन बाद फिर से करे।

यच्च संवर्तः—सूतके कर्मणां त्यागः सन्ध्यादीनां विधीयते ।

और जो संवर्त ने कहा है—सूतक में सन्ध्या आदि सब कर्मों का त्याग करे।

यच्च विष्णुपुराणे—सर्वकालमुपास्या तु सन्ध्ययोः पार्थिवेष्यते ।
अन्यत्र सूतकाशौचविभ्रमातुरभीतितः ॥ इति, तत्पूर्णसंध्यापरम् ,

और जो विष्णुपुराण का वचन है—हे पार्थिव, सब समय सन्ध्या की उपासना करे। सूतक, आशौच, विभ्रम (पागलपन) रोग और भय को छोड़कर। वह संपूर्ण सन्ध्यापरक है।

अर्घ्यान्ता मानसी सन्ध्या कुशवारिविवर्जिता । इति शुद्धिदीपे च्यवनोक्तेः,

शुद्धिदीप में च्यवन ने कहा है—कुशा और जल का त्याग कर अर्घ्यान्त मानसी सन्ध्या (प्राणायाम से अतिरिक्त सब मानस मन्त्रों से करे।) का करे।

पैठीनसिस्त्वर्घ्ये मन्त्रोच्चारणमाह—'सूतके सावित्र्याञ्जलिं प्रक्षिप्य सूर्यं ध्यायन्नमस्कुर्यात् ।'

पैठिनसि ने तो अर्घ्य में मन्त्र का उच्चारण कहा है—सूतक में सावित्री-गायत्री से अञ्जलिका प्रक्षेप कर सूर्य का ध्यान कर नमस्कार करे।

प्रयोगपारिजाते भरद्वाजोऽपि—सूतके मृतके कुर्यात् प्राणायाममन्त्रकम् ।
तथा मार्जनमन्त्रांस्तु मनसोच्चार्य मार्जयेत् ॥

प्रयोगपारिजात में भारद्वाज ने भी कहा है—सूतक और मृतककर्म में प्राणायाम को अमन्त्रक करे। और मार्जनमन्त्रों को मन से उच्चारण कर मार्जन करे।

गायत्रीं सम्यगुच्चार्य सूर्यायार्घ्यं निवेदयेत् । मार्जनं तु न वा कार्यमुपस्थानं न चैव हि ॥

गायत्री का अच्छीतरह उच्चारण कर सूर्य को अर्घ्य निवेदन करे। मार्जन को करे या न करे। उपस्थान को नहीं ही करे।

(ग्रहणे श्राद्धादावप्याशौचापवादमाह)

ग्रहणे श्राद्धादावप्याशौचापवादमाह व्याघ्रः—स्मार्तकर्मपरित्यागो राहोरन्यत्र सूतके । इति ।

ग्रहण और श्राद्ध आदि में भी आशौच का अपवाद व्याघ्र ने कहा है—स्मार्तकर्म का परित्याग राहु से अन्यत्र सूतक में होता है।

लैङ्गेऽपि—सूतके मृतके चैव न दोषो राहुदर्शने । तावदेव भवेच्छुद्धिर्यावन्मुक्तिर्न दृश्यते ॥

लिंगपुराण में भी कहा है—सूतक और मृतक में राहुदर्शन में दोष नहीं होता है। तबतक ही शुद्धि होती है जबतक मुक्ति नहीं दिखती है।

(कन्याविवाहे संक्रान्तौ च सूतकविचारः)

प्रयोगपारिजाते बृहस्पतिः—कन्याविवाहे संक्रान्तौ सूतकं न कदाचन ।

प्रयोगपारिजात में बृहस्पति ने कहा है—कन्या के विवाह (मुहूर्तान्तर के अलाभ से आवश्यक में) और संक्रान्ति में सूतक कभी नहीं होता है।

(भोजनकाले आशौचप्राप्तौ विचारः)

वृद्धशातातपः—यदा भोजनकाले तु अशुचिर्भवति द्विजः ।
भूमौ निक्षिप्य तं ग्रासं स्नात्वा विप्रो विशुद्ध्यति ॥

वृद्धशातातप ने कहा है—जब भोजनकाल में द्विज अशुचि (अपवित्र) होता है तो मुख के उस ग्रास को भूमि पर गिराकर स्नान कर ब्राह्मण शुद्ध होता है।

भक्षयित्वा तु तं ग्रासमहोरात्रेण शुध्यति । अशित्वा सर्वमेवान्नं त्रिरात्रेण विशुध्यति ॥ इदमविशेषात् सूतकादिपरमपीति शुद्धितत्त्वे शूलपाणौ च ॥

उस ग्रास को भक्षण करके अहोरात्र (एकदिन रात) में शुद्ध होता है। सब अन्न को ही भक्षण कर तीनरात में शुद्ध होता है। अविशेष से यह वचन सूतक आदि परक है—यह शुद्धितत्त्व और शूलपाणि में कहा है।

(द्रव्यतः शुद्धिकथनम्)

अथ द्रव्यतः। मरीचिः—लवणे मधुमांसे च पुष्पमूलफलेषु च। शाककाष्ठतृणेष्वप्सु दधिसर्पिःपयःसु च ॥ तिलौषधाजिने चैव पक्वापक्वे स्वयङ्ग्रहः। पण्येषु चैव सर्वेषु नाशौचं मृतसूतके ॥ स्वयमेव स्वाम्यनुज्ञया ग्राह्यं न तद्धस्तादित्यर्थः। क्रये तु तद्धस्तादपि न दोषः। पक्वं लड्डुकादि। अपक्वं तण्डुलादि। एतदन्नसत्रपरम्।

अब द्रव्य से आशौच का अपवाद कहते हैं। मरीचि ने कहा है—लवण (निमक), मधु (सहत), मांस, पुष्प, मूल (मूली, भक्ष्य-जड), फल, शाक (साग), काष्ठ (लकड़ी), तृण (घास), जल, दधि, घृत, दूध, तिल (तैल) (ब्रह्मपुराणे—लवणं मधुमांसं च पुष्पं मूलं फलानि च। काष्ठं लोष्ठं तथा पर्णं दधि क्षीरं घृतं तथा ॥ औषधं तैलमजिनं शुष्कमन्नं च नित्यशः। आशौचिनो हि तद् ग्राह्यं स्वयं पण्यं च मूलजम् ॥ मूलजम्—आकरजम्। औषध (दवा), अजिन (मृगचर्म), पक्व (मोदक-लड्डू) और अपक्व (चावल आदि) इनको मरणाशौच तथा जननाशौच में ग्रहण स्वयं करने में दोष नहीं है। दूकान की विक्रय वस्तु में दोष नहीं है। स्वयं ही स्वामी की आज्ञा से ग्रहण करे, उसके हाथ से ग्रहण न करे—यह अर्थ है। पक्व का अर्थ है—लड्डू आदि। अपक्व का अर्थ है—चावल आदि। यह अन्नसत्र (अन्नक्षेत्र) परक है।

अन्नसत्रे प्रवृत्तानामाममन्नमगर्हितम्। भुक्त्वा पक्वान्नमेतेषां त्रिरात्रं तु व्रती भवेत् ॥ इत्यङ्गिरसोक्तेः। पक्वान्नं मोदकादि, नतु भक्ष्यम्।

आंगिरस ने कहा है—अन्नसत्र में लगे हुओं का आम-अन्न निन्दित नहीं है। उनका पक्वान्न भोजन करने पर तीनरात व्रत करे। पक्वान्न मोदक आदि, इतर भक्ष्य नहीं होता है।

षट्त्रिंशन्मते—उभाभ्यामपरिज्ञाते सूतकं नैव दोषकृत्। एकेनापि परिज्ञाते भोक्तुर्दोषमुपावहेत् ॥

षट्त्रिंशन्मत से कहा है—दोनों (जिसको आशौच है और जो उसका ग्रहण करता है) की जानकारी न होने पर सूतक का दोष नहीं होता है। एक की भी जानकारी होने पर भोक्ता (भोजन करनेवाले) को दोष होता है। भोक्ता को आशौच के अज्ञान में भी देनेवाले को आशौच का ज्ञान होने पर भी ग्रहण करनेवाले को स्वामी का दिया हुआ अन्न निषिद्ध नहीं होता है। दाता को जानकारी न होने पर भोक्ता की जानकारी होने पर दाताका ग्रहण किया हुआ द्रव्य निषिद्ध होता है। (ब्रह्मपुराणे—अपि दातृगृहीतोस्तु सूतके मृतके तथा। अविज्ञाते न दोषः स्याच्छ्राद्धादिषु कथञ्चन ॥ विज्ञाते भोक्तुरेव स्यात्प्रायश्चित्तादिकं क्रमात्।)

(विवाहादौ सूतकप्राप्ते विचारः)

विवाहोत्सवयज्ञेषु त्वन्तरा मृतसूतके। परैरन्नं प्रदातव्यं भोक्तव्यं च द्विजोत्तमैः ॥

विवाह, उत्सव और यज्ञ के मध्य में मरणाशौच तथा जननाशौच प्राप्त हो जाय तो दूसरे गोत्रवाले उस पक्वान्न या अपक्वान्न अन्न को उन उत्तम ब्राह्मणों को दे तो भोजन करना चाहिये।

भुञ्जानेषु तु विप्रेषु त्वन्तरा मृतसूतके। अन्यगेहोदकाचान्ताः सर्वे ते शुचयः स्मृताः ॥

ब्राह्मणों के भोजन करते समय मध्य में मृतक या जननाशौच प्राप्त हो जाय तो दूसरे के घर जल से आचमन करने से वे पवित्र (ब्रह्मपुराणे—भोजनार्थे तु संभुक्ते विप्रैर्दातुर्विपद्यते। यदि कश्चित्तदोच्छिष्टं शेषं त्यक्त्वा समाहिताः। आचम्य परकीयेन जलेन शुचयो द्विजाः ॥) हो जाते है।

बृहस्पतिः—'विवाहोत्सव' इत्याद्युक्त्वा—पूर्वसङ्कल्पितान्नेषु न दोषः परिकीर्तितः।

बृहस्पति ने कहा है—विवाह तथा उत्सव आदि के मध्य में आशौच (जनना और मरणाशौच)

प्राप्त होने पर पूर्व संकल्पित अन्नों में (अर्थात्—आशौच की संभावना होने से पहले ही ब्राह्मणों के लिए अलग सिद्धान्न को रखने पर) दोष नहीं कहा है।

षडशीतौ—संसर्गाद्यस्य वाशौचं यस्यातिक्रान्तकालता। तदीयस्य पदार्थस्य नाशौचं विद्यते क्वचित् ॥

षडशीति में कहा है—जिसके संसर्ग से आशौच होता है या जिसका समय व्यतीत हो गया हो तो उसके पदार्थ में आशौच कभी नहीं होता है।

(प्रोक्षणेन पुस्तकस्य शुद्धिकथनम्)

शुद्धितत्त्वे—'शुध्येत्' इत्यनुवृत्तौ विष्णुः—'प्रोक्षणेन च पुस्तकम्' इति।

शुद्धितत्त्व में 'शुध्येत्' इसकी अनुवृत्ति करने पर विष्णु ने कहा है—प्रोक्षण से पुस्तक शुद्ध होती है।

(मृतदोषे विचारः)

अथ मृतदोषे हेमाद्रौ षट्त्रिंशन्मते कौर्मे च—व्यापादयेद्य आत्मानं स्वयमग्न्युदकादिभिः। विहितं तस्य नाशौचं नापि कार्योदकक्रिया ॥

अब मरणदोष को हेमाद्रि में षट्त्रिंशन्मत में और कूर्मपुराणमत से कहा है—जो स्वयं अपनी आत्मा का अग्नि या जल आदि से हत्या करता है। उसके आशौच का विधान नहीं है और न उसकी उदकक्रिया (जलदान) होती है।

शवदर्शनं यावदाशौचमस्त्येव, हतानां नृपगोविप्रैरन्वक्षं चात्मघातिनाम्। इति याज्ञवल्क्योक्तेः (प्राय० श्लो० २१)।

जबतक शव दर्शन होता है तबतक आशौच होता ही है। याज्ञवल्क्य ने कहा है—राजा (अभिषिक्त क्षत्रियादि), गौ (सींग, बड़े दाढवाले आदि), ब्राह्मण (यहाँ विप्रपद चाण्डाल का उपलक्षण है) द्वारा मारे गये तथा स्वयं बुद्धिपूर्वक आत्महत्या करके मरे हुए व्यक्तियों के सपिण्डों की शुद्धि तत्काल होती है।

शुद्धितत्त्वे कौर्मे—सद्यः शौचं समाख्यातं शापादिमरणे तथा। आदिपदादभिचारहते।

शुद्धितत्त्व में कूर्मपुराण का मत है—शाप आदि से मरने पर सद्यःशौच कहा है। आदिपद से अभिचार (मारण-हत्या आदि द्वारा) से मरने पर।

भविष्ये—स्वेच्छया मरणं विप्राच्छृङ्गिदंष्ट्रिसरीसृपैः। अन्त्यान्त्यजविषोद्बन्धैरात्मना चैव ताडनैः॥ पाखण्डमाश्रिताश्चैव महापातकिनस्तथा। स्त्रियश्च व्यभिचारिण्य आरूढपतितास्तथा॥ न तेषां स्नानसंस्कारो न श्राद्धं न सपिण्डनम् ॥

भविष्यपुराण में कहा है—अपनी इच्छा से मरे (अर्थात्—अपने आप अपने प्रयोग द्वारा मरने पर) हुओं का, ब्राह्मण, शींग और दाढवाले पशु, सर्प, अन्त्य (अधमजाति का मनुष्य), अन्त्यज—चाण्डालादि द्वारा मरे हुए का, विष, बन्धनों तथा आत्मा की ताडना से मरे हुए का, पाखण्डी मत को ग्रहण करनेवाले, महापातकी (याज्ञवल्क्यः—ब्रह्महा मद्यपस्तेनस्तथैव गुरुतल्पगः। एते महापातकिनो यश्च तैः सह संवसेत् ॥ एभिस्तु संवसेद्यो वै वत्सरं सोऽपि तत्समः ॥) व्यभिचारिणी स्त्रियाँ तथा वृक्षादि पर चढकर गिरनेवालों का स्नान, संस्कार, श्राद्ध और सपिण्डन नहीं होता है।

गौतमः—प्रायोऽनाशकशस्त्राग्निविषोदकोद्बन्धनप्रपतनैश्चेच्छताम्' इति। नाशौचमिति शेषः।

गौतम ने कहा है—महाप्रस्थान, अनशन, शस्त्र, अग्नि, विष, जल, बन्धन (गले में पाश आदि बाँधना), पर्वत और शिखर आदि से गिरने से जिनका मरण होता है, उनका आशौच नहीं होता है—यह शेष है। (अत्र चेच्छताम्—इति विशेषणोपादानात् प्रमादकृते दोषो नास्तीत्यवगन्तव्यम्—इति स्मृतिसन्दर्भे पृ० २१७)।

अङ्गिराः—चण्डालादुदकात्सर्पाद् ब्राह्मणाद्वैद्युतादपि। दंष्ट्रिभ्यश्च पशुभ्यश्च मरणं पाप-

कर्मणाम् ॥ उदकं पिण्डदानं च प्रेतेभ्यो यत्प्रदीयते । नोपतिष्ठति तत्सर्वमन्तरिक्षे विनश्यति ॥ षट्त्रिंशन्मतेऽप्येवम् ।

अंगिरा ने कहा है—चाण्डाल, जल, सर्प, ब्राह्मण, विजली, दाँतोंवाले और पशुओं से पापियों का मरण होता है। उनको जल तथा पिण्डदान जो प्रेतों के लिए मरने पर दिया जाता है वह उनको नहीं प्राप्त होता है वह सब अन्तरिक्ष में नाश हो जाता है। षड्त्रिंशन्मत में भी यही कहा है।

ब्राह्मेऽपि—शृङ्गिदंष्ट्रिनखिव्यालविषवह्निक्रियाजलैः । व्यालो-गजः ।

ब्रह्मपुराण में भी कहा है—शींग, दाढ, नखवाले, व्याघ्र आदि, व्याल (खूनी हाथी) या दुर्व्यसनी, विष, अग्नि, जलक्रिया द्वारा मरने पर पिण्डदान तथा जलदान देने पर अन्तरिक्ष में ही नष्ट हो जाता है। उनको नहीं प्राप्त होता है। व्याल माने–हाथी।

सुदूरात्परिहर्तव्यः कुर्वन् क्रीडां मृतस्तु यः । नागानां विप्रियं कुर्वन् हतश्चाप्यथ विद्युता ॥ निगृहीतः स्वयं राज्ञा चौर्यदोषेण कुत्रचित् । परदारान् हरन्तश्च द्वेषात्तत्पतिभिर्हताः ॥ असमानैश्च सङ्कीर्णैश्चाण्डालाद्यैश्च विग्रहम् । कृत्वा तैर्निहतास्तद्वच्चाण्डालादीन् समाश्रिताः ॥ शस्त्राग्निगरदाश्चैव पाखण्डाः क्रूरबुद्धयः । क्रोधात्प्रायं विषं वह्निं शस्त्रमुद्बन्धनं जलम् ॥ गिरिवृक्षप्रपातं च ये कुर्वन्ति नराधमाः । कुशिल्पजीविनो ये च सूनालङ्कारधारिणः । मुखे भगास्तु ये केचित् क्लीबप्रायनपुंसकाः । ब्रह्मदण्डहता ये च ये चापि ब्राह्मणैर्हताः ॥ महापातकिनो ये च पतितास्ते प्रकीर्तिताः । पतितानां न दाहः स्यान्नान्त्येष्टिर्नास्थिसञ्चयः ॥ न चाश्रुपातं पिण्डो वा कार्यं श्राद्धादिकं क्वचित् । एतानि पतितानां तु यः करोति विमोहितः ॥ तप्तकृच्छ्रद्वयेनैव तस्य शुद्धिर्न चान्यथा ।

जो क्रीडा को करता हुआ मरता है उसे दूर से त्याग दे। जो सर्पों का अप्रिय करता हुआ मरता है और विजली द्वारा मरता है, जिसको राजा ने स्वयं चोरी के दोष में कहीं पकड़ लिया हो, जो दूसरे की स्त्रियों का हरण करते हैं या 'हरन्तः' इसके स्थान मे 'रमन्तः' एसा भी पाठ है—जो उनके साथ रमण करते है। जो द्वेष से उनके पतियों को मार डाला हो, जो असमान—समानता से हीन, संकीर्ण—न्यून, चाण्डाल आदि से वैमनस्य करते हैं तथा वैर से उन्होंने मार दिया हो, चाण्डाल के आश्रित हों, शस्त्र, अग्नि, बन्धन, पाखण्ड, क्रूरबुद्धि, (नौका,कूप आदि द्वारा मरना) प्रायः क्रोध (शोक आदि का उपलक्षण है) से,विष, अग्नि, शस्त्र बन्धन, जल, पर्वत और वृक्ष से जो नराधम गिरकर मरते हैं। कुत्सित शिल्पविद्या से जो जीते हैं। (आपत्तिकाल में—निषिद्ध चर्मकारादि द्वारा शिल्पकारी करते हों), जो प्राणिवधस्थान में उसे अलंकार, उसके उपकरण शस्त्र आदि हरण को करनेवाले और जो अधिकृत हैं। जो अयोनि में वीर्य को गिराने वाले, क्लीबप्राय नपुंसक, उत्पादित क्रोध शापादि द्वारा मरे हों जो ब्राह्मणों द्वारा मरे हों, और जो महापातकी हो वे सब पतित हैं। पतितों का न दाह होता है, न अन्त्येष्टि होती है, न अस्थिसंचय होता है, न रुदन होता है। न पिण्डदान होता है न कभी श्राद्धादिक भी होता है। जो पतितों का मोह के द्वारा करता है उसकी शुद्धि तप्तकृच्छ्रद्वय से होती है। अन्यप्रकार से नहीं होती है।

(एतद्बुद्धिपूर्वं सर्वेषां करणे तु)

एतद्बुद्धिपूर्वं सर्वेषां करणे तु माधवीये वसिष्ठः—यः आत्मत्यागिनां कुर्यात् स्नेहात्प्रेतक्रियां द्विजः । स तप्तकृच्छ्रसहितं चरेच्चान्द्रायणं व्रतम् ॥

यह बुद्धिपूर्वक सबों के करने पर तो माधवीय में वसिष्ठ ने कहा है—जो द्विज स्नेह से आत्मत्यागियों की प्रेतक्रिया को करता है वह [1]तप्तकृच्छ्रद्वय सहित [2]चान्द्रायण व्रत को करे।

१—मनुस्मृतौ—तप्तकृच्छ्रः द्वादशाहसाध्यः—तप्तकृच्छ्रं चरन् विप्रो जलक्षीरघृतानिलान् । प्रतित्र्यहं पिबेदुष्णान् सकृत्स्नायीसमाहितः ॥ क्षीरादिपरिमाणम् पराशरेणोक्तम्—अपां पिबेत्तु त्रिपलं द्विपलं तु पयः पिबेत् । पलमेकं पिबेत्सर्पिस्त्रिरात्रं चोष्णमारुतम् ॥ त्रिरात्रमारुतस्य पूरणे उष्णोदकबाष्पं पिबेदित्यर्थः । इत्यादि । तप्तक्षीरघृताम्बूनामेकैकं प्रत्यहं

(अज्ञाने तु)

अज्ञाने तु—कृत्वाऽग्निमुदकं स्नानं स्पर्शनं वहनं कथाम्। रज्जुच्छेदाश्रुपातं च तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति ॥ इति ज्ञेयम्। प्रत्येकं बुद्धिपूर्वे एतदिति मदनपारिजातः।

अज्ञान में तो कहा है—अग्नि, जल, शवस्नान, स्पर्श, श्मशान में ले जाना, कथा (कहानी), रस्सी का छेदन और रुदन करने पर तप्तकृच्छ्र से शुद्धि होती है—यह जाना चाहिये। यह बुद्धिपूर्वक प्रत्येक कर्म करने पर है—यह मदनपरिजात में कहा है।

प्रत्येकं तु स्पर्शाश्रुणोर्मिताक्षरायाम् (टीका श्लो. ६)—तच्छवं केवलं स्पृष्टमश्रु वा पतितं यदि। पूर्वोक्तानामकारी चेदेकरात्रमभोजनम् ॥

प्रत्येक का स्पर्श या अश्रुपात किया हो तो मिताक्षरा में कहा है—पूर्व कहे हुओं को न करने पर यदि उस शव का केवल स्पर्श या अश्रुपात किया हो तो एकरात भोजन न करे।

एकरात्रं तु नाश्नीयात्त्रिरात्रं बुद्धिपूर्वकम् ॥ इति माधवीये उत्तरार्द्धम्।

माधवीय में उत्तरार्ध यों कहा है—अज्ञात में एकरात्रि भोजन न करे बुद्धिपूर्वकस्पर्श में तो तीनरात्रि भोजन न करे।

अन्येषु सम्वर्तः—एषामन्यतमं प्रेतं यो वहेत दहेत वा। कटोदकक्रियां कृत्वा कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ॥ अज्ञाने त्वर्धम्। एतदनाहिताग्नेः कृच्छ्र एवेति माधवः।

दूसरों में तो संवर्त ने कहा है—इनमें से किसी प्रेत को ढोता है या दाह करता है वह कटोदक—शववहन साधक खट्वादि, (मिताक्षरा पृ० ३६७—प्रेतवहनसाधके खट्वादि 'कट' शब्देनोच्यते।) क्रिया को कर [1]सान्तपनकृच्छ्रव्रत करे। अज्ञान में तो आधा करे—यह अनाहिताग्नि को है। आहिताग्नि को तो कृच्छ्र ही है—यह माधव ने कहा है।

मिताक्षरायाम् (श्लो० ६ की टीका में)—आत्मनस्त्यागिनां नास्ति पतितानां तथा क्रिया। तेषामपि तथा गङ्गातोये संस्थापनं हितम् ॥

मिताक्षरा में कहा है—आत्मत्यागियों की और पतितों की क्रिया नहीं होती है। (संभव हो तो) उनका गंगा के जल में स्थापन हितकर होता है।

(आहिताग्नेस्तु विशेषः)

आहिताग्नेस्तु विशेषो हेमाद्रौ भविष्ये—वैतानं प्रक्षिपेदप्सु आवसथ्यं चतुष्पथे। पात्राणि तु दहेदग्नौ साग्निके पापकर्मणि ॥

आहिताग्नि का तो विशेष हेमाद्रि में भविष्यपुराण के वचन से कहा है—वैतानिक अग्नि को जल में प्रक्षेप करे। आवसथ्य—(स्मार्ताग्नि) अग्नि को चौराहे पर रख दे और साग्निक को पाप करने पर (आहिताग्नि और स्मार्ताग्नि में आत्मघात करने पर) पात्रों को तो अग्नि में जला दे। (आत्मघातः 'यजमाने वृथा मृते' ऐसा पाठ मानने पर—अविहितमार्ग से मरने पर)

पिबेत्। एकरात्रोपवासश्च तप्तकृच्छ्र उदाहृतः ॥ (या. प्रा. श्लो. ३१७)। अतिकृच्छ्रे गोद्वयम। सान्तपने गोद्वयम्। पराके तप्तकृच्छ्रे च गोत्रयम्। कृच्छ्रातिकृच्छ्रे गोचतुष्टयं गोत्रयं वा। चान्द्रायणे अष्टौ पञ्च चतस्रस्तिस्रो वा गावः। मासं पयोव्रते यावकव्रते मासोपवासे च पञ्चगावः। मासं गोमूत्रयावकव्रते षड्गावः। इत्यादि धर्मसिन्धौ।

२—यथा कथञ्चित्पिण्डानां चत्वारिंशच्छतद्वयम्। मासेनैवोपभुञ्जीत चान्द्रायणमथापरम् ॥ (या. प्रा. श्लो. ३२४)। मनुः—एकैकं ह्रासयेत्पिण्डं कृष्णे शुक्ले च वर्धयेत्। उपस्पृशंस्त्रिसवनमेतच्चान्द्रायणं स्मृतम्। एतच्च पञ्चविधम्।

१—जाबालः—गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्। एकैकं प्रत्यहं पीत्वा त्वहोरात्रमभोजनम् ॥ कृच्छ्रं सान्तपनं नाम सर्वपापप्रणाशनम्।

छन्दोगपरिशिष्टेऽपि—महापातकसंयुक्तो दौरात्म्यादग्निमान् यदि। पुत्रादिः पालयेदग्नीन् युक्त आदोषसंक्षयात् ॥ प्रायश्चित्तं न कुर्याद्यः कुर्वन् वा म्रियते यदि। गृह्यं निर्वापयेच्छ्रौतमप्स्वस्येत्सपरिच्छदम् ॥ पात्राणि दद्याद्विप्राय दहेदप्स्वेव वा क्षिपेत्।

छन्दोगपरिशिष्ट में भी कहा है—दुरात्मा होजाने से यदि अग्निहोत्री महापातक से युक्त हो जाय तो दोष के नाश तक अग्नियों का पुत्रादि पालन करे। जो प्रायश्चित्त को न करे या करते हुए यदि मर जाय तो गृह्याग्निको चतुष्पथ में शान्त करे और श्रौताग्नि को जल में सब वस्तु सहित गिरा दे और पात्रों को ब्राह्मण को दे या जला दे या जल में गिरा दे।

माधवीये पराशरः—आहिताग्निर्मृतो विप्रश्चाण्डालेनात्मघातकः।
दहेत ब्राह्मणं विप्रो लौकाग्नौ मन्त्रवर्जितम् ॥

माधवीय में पराशर ने कहा है—आहिताग्नि ब्राह्मण चाण्डाल के द्वारा या आत्मघात (उद्बन्धन आदि द्वारा) से मरा हो तो ऐसे ब्राह्मण को ब्राह्मण मन्त्र से वर्जित लौकिक अग्नि में दाह करे।

प्राजापत्यं चरेत्पश्चाद्विप्राणामनुशासनात् ॥ दग्ध्वास्थीनि पुनर्गृह्य क्षीरेण क्षालयेत्ततः। स्वेनाग्निना स्वमन्त्रेण पृथगेनं पुनर्दहेत् ॥

तदनन्तर ब्राह्मणों की आज्ञा से प्राजापत्य (शक्त हो तो दो चान्द्रायण। अन्यथा पुत्र तीन चान्द्रायण—यह आगे के वचन के विरोध से।) करे। जली हुई अस्थियों को फिर से ग्रहण कर फिर दूध से प्रक्षालन करे। फिर अपनी अग्नि से अपने मन्त्र से फिर उन अस्थियों को अलग से दाह करे।

हेमाद्रौ तु—दाहयित्वा शवं तेषां शूद्रैरविधिपूर्वकम्। इत्युक्तम्। एतद्दर्पादिना मरणे ज्ञेयम्। तांस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः। (यजु० ४०।३) इति श्रुतावात्महनने एव दोषोक्तेः।

हेमाद्रि में तो कहा है—उनके शव को शूद्रवर्णों (वर्णशंकर से नहीं) से अविधिपूर्वक दाह करावे। (यह ब्राह्मण के अप्राप्त पर जानना चाहिये) ऐसा कहा है। यह (चाण्डाल द्वारा मरने पर अर्थात्—आत्मघातक द्वारा मरने पर। अभिमान आदि द्वारा मरने पर जानना चाहिये। जो कोई मनुष्य आत्मा का हनन करते हैं मरकर (शरीर को छोड़कर) उन नर को (लोकों को) प्राप्त करते हैं। यह वेद में आत्महत्या करने पर दोष कहा है।

(प्रमादमरणे त्वाशौचविचारः)

प्रमादमरणे त्वाशौचादि सर्वं भवत्येव।

यदि प्रमाद से मरने पर तो आशौच आदि सब होता ही है।

तदाहाङ्गिराः—अथ कश्चित्प्रमादेन म्रियेताग्न्युदकादिभिः।
तस्याशौचं विधातव्यं कर्तव्या चोदकक्रिया ॥

उसी बात को अंगिरा ने कहा है—कोई प्रमाद से अग्नि, जल आदि से मर जाय तो उसका आशौच और उदक (जल) क्रिया करना चाहिये।

ब्राह्मेऽपि—प्रमादादपि निःशङ्कस्त्वकस्माद्विधिचोदितः। शृङ्गिदंष्ट्रिनखिव्यालविषविद्युज्जलादिभिः ॥ चाण्डालैरथ वा चौरैर्निहतो वापि कुत्रचित्। तस्य दाहादिकं कार्यं यस्मान्न पतितस्तु सः ॥ इति।

ब्रह्मपुराण में भी कहा है—प्रमाद से अकस्मात् विधिप्रेरित—प्रारब्धवश निःशंक हो सींग, दाँत, नख, व्याल (हाथी), विष, बिजली, जल आदियों से या चाण्डाल और चोरों से कहीं भी मर जाय तो उसका दाह आदि करे। क्योंकि वह पतित नहीं है।

प्रमादमरणे त्रिरात्रमाशौचमिति गौडाः शुद्धितत्त्वादयः। दशाहादीति दाक्षिणात्याः।

प्रमाद से मरने पर तीनरात का आशौच होता है—यह गौड कहते हैं—ऐसा शुद्धितत्त्व आदि में कहा है। दाक्षिणात्य तो दशदिन का आशौच कहते हैं।

(सर्पद्वारामृते विशेषः)

अस्यापवादो हेमाद्रौ भविष्ये—प्रमादादिच्छया चापि न कुर्यात्सर्पतो मृते ।
नागपूजां विना न कुर्यादित्यर्थः ।

इसका अपवाद हेमाद्रि में भविष्यपुराण का वचन है—प्रमाद या इच्छा से सर्प के द्वारा मर जाने पर तो नागपूजा के बिना उसकी क्रिया न करे ।

बौधायनोऽपि—बुद्धिपूर्वात्महन्तॄणां क्रियालोपो विधीयते । क्रियामऽन्त्यकर्म ।

बौधायन ने भी कहा है—बुद्धिपूर्वक आत्मा का हनन करनेवालों की क्रिया के लोप का विधान कहा है । क्रिया माने—अन्त्यकर्म ।

(व्याघ्र-सर्प-राजा-चौर-शय्या-शौचहीन-संस्कारहीन-अश्व-श्वान-सूकर-कृमि-वृक्ष-शृङ्गि-शकट-भृगुपात-अग्नि-दारुण-शस्त्र-अश्म-विष-उद्बन्धन-जल-विषूचिका-कण्ठान्नकवल-कासरोग-अतिसार-शाकिन्यादिना तथा विद्युत्पात-अन्तरिक्ष-अस्पृश्यस्पर्शन-पतित-अपत्यनिमित्तकमरणे महत्त्वपूर्णविचारः)

तत्र दुर्मरणनिमित्तं दानादिकार्यम् । तच्च विश्वप्रकाशादौ शातातपीये च—व्याघ्रेण निहते विप्रे विप्रकन्यां विवाहयेत् । सर्पदष्टे नागबलिर्देयः सर्पश्च काञ्चनः ॥

वहाँपर दुर्मरणनिमित्त दान आदि करे । वह विश्वप्रकाश आदि और शातातपीय में कहा है—व्याघ्र के द्वारा ब्राह्मण के मरने पर ब्राह्मण की कन्या का विवाह करे । (यह सर्वसाधारण के विषय में है । या सजातीय कन्या के विषय में है । इन सब को स्त्री के दुर्मरण में भी योजना करे ।) सर्प के काटने पर जो मरे उसके लिए नागबली और सुवर्ण का सर्प देना चाहिये ।

(व्याघ्र)

चतुर्निष्कमितं हैमं गजं दद्याद् गजैर्हते । राज्ञा विनिहते दद्यात्पुरुषं तु हिरण्मयम् ॥

हाथी से मरने पर चार निष्क स्वर्णमुद्रा (भिन्न-भिन्न मूल्य की, परन्तु सामान्यरूप से सोलह माशे या एककर्ष के तोल का सुवर्ण) का हाथी निर्माण कराकर दान करे । राजा से मरनेपर सुवर्ण का पुरुष दे ।

चौरेण निहते धेनुं वैरिणा निहते वृषम् । वृषेण निहते दद्याद्यथाशक्त्या च काञ्चनम् ॥

चोर से मरने पर दूधवाली गौ दे और शत्रु द्वारा मरने पर बैल का दान करे । बैल से मरने पर यथाशक्ति सुवर्णदान करे ।

शय्यामृते प्रदातव्या शय्या तूलिसमन्विता । निष्कमात्रसुवर्णस्य विष्णुना समधिष्ठिता ॥

शय्यापर मरने पर गद्दा और रजाई आदि से युक्त विष्णु की एकनिष्क सोने की प्रतिमा के सहित शय्या देनी चाहिये ।

(हाथी) (गौ)

शौचहीने मृते चैव द्विनिष्कं स्वर्णजं हरिम् । संस्कारहीने च मृते कुमारमुपनाययेत् ॥

पवित्रतारहित मरने पर दो निष्क वाली सोने के विष्णु की प्रतिमा दे। संस्कारहीन मरने पर कुमार का उपनयन करा दे। (अष्टवर्षादिरूपमुख्य उपनयन का काल है। स्त्रियों का विवाह हैं। शूद्र को सोलह वर्ष के बाद दो वस्त्र कहा है।)

(बैल)

निष्कत्रयं स्वर्णमितं दद्यादश्वं हयाहते । शुना हते क्षेत्रपालं स्थापयेन्निजशक्तितः ॥

घोड़े से मरने पर तीन निष्क परिमित सुवर्ण का घोड़ा बनवाकर दे। कुत्ते से मरने पर अपनी शक्ति के अनुसार क्षेत्रपाल का स्थापन करे।

सूकरेण हते दद्यात् महिषं दक्षिणान्वितम् । कृमिभिश्च मृते दद्याद् गोधूमान् पञ्चखारिकाः ॥

सूअर द्वारा मरने पर दक्षिणा के सहित भैसा दे। कीडों द्वारा मरने पर पांच खारी (प्राचीनमत से दो सो साठ सेर को एक खारी कहते हैं) गेहूँओं को दे।

(घोड़ा)

वृक्षं वृक्षहते दद्यात्सौवर्णं वस्त्रसंयुतम् । शृङ्गिणा निहते दद्याद् वृषभं वस्त्रसंयुतम् ॥

वृक्ष से मरने पर सुवर्ण का वृक्ष वस्त्र के सहित दे । सींगवाले जीव द्वारा मरने पर वस्त्र के सहित बैल को दे ।

(कुत्ता)

(सुअर)

शकटेन हते दद्याद् द्रव्यं सोपस्करान्वितम् । भृगुपातमृते चैव प्रदद्याद्धान्यपर्वतम् ॥

शकट (गाड़ी) द्वारा मरने पर उपस्कर (सामग्री) के सहित द्रव्य को दे। भृगुपात (पर्वत) से मरने पर धान्य का पर्वत दे।

अग्निना निहते कार्यमुदपानं स्वशक्तितः । दारुणा निहते चैव कर्तव्या सदने सभा ॥

अग्नि से मरने पर यथाशक्ति जल का पान करावे। काष्ठ से मरने पर तो घर में सभा करे।

शस्त्रेण निहते दद्यान्महिषीं दक्षिणान्विताम् । अश्मना निहते दद्यात्सवत्सां गां पयस्विनीम् ॥

शस्त्रद्वारा मरनेपर दक्षिणासे युक्त भैंसा दान करे। पत्थरसे मरनेपर सवत्सा दूधवाली गौका दान करे।

वृषेण च मृते दद्यात् मेदिनीं हेमनिर्मिताम् । उद्बन्धनेन च मृते कपिं कनकनिर्मितम् ॥

वृष से मरने पर सुवर्ण की पृथ्वी का दान करे। रज्जु आदि के बन्धन से मरने पर सुवर्ण का बन्दर (लंगूर) दे।

मृते जलेन वरुणं हैमं दद्याद् द्विनिष्कजम् । विषूचिकामृते स्वादु भोजयेच्च शतं द्विजान् ॥

जल से मरने पर दो निष्क सुवर्ण का वरुण बनवाकर दे। शीतला से मरने पर मधुर-स्वादु अन्न से सौ ब्राह्मण का भोजन करावे।

घृतधेनुः प्रदातव्या कण्ठान्तकवले मृते । कासरोगेण च मृते अष्टकृच्छ्रं व्रतं चरेत् ॥

कण्ठ में ग्रास रुककर (अटक जाने पर) मरने पर घी की धेनु (दानमयूखोक्त घृतधेनु) देना चाहिये। खांसी के रोग द्वारा मरने पर अष्टकृच्छ्रव्रत करे।

अतिसारमृते लक्षं गायत्र्याः प्रयतो जपेत् । शाकिन्यादिग्रहग्रस्ते जपेद्रुद्रं यथोदितम् ॥

अतिसार (दस्त लगकर) से मरने पर सावधानता से एकलाख गायत्री जप करे। शाकिनी (दुर्गा देवी की सेविका, जो पिशाचिनी या परी समझी जाती है) आदि ग्रहद्वारा मरने पर शास्त्रीयविधि से रुद्र का जप (रुद्रीपाठ) करे।

विद्युत्पातेन निहते विद्यादानं समाचरेत् । अन्तरिक्षमृते कार्यं वेदपारायणं तथा ॥

बिजली के गिरने से मृत्यु हो जाय तो विद्यादान (शाखा का अध्यापन) करे। अन्तरिक्ष में मरने पर वेदपारायण करे।

सच्छास्त्रपुस्तकं दद्यादस्पृश्यस्पर्शतो मृते । पतिते च मृते कुर्यात्प्राजापत्यांस्तु षोडश ॥

अस्पृश्य के स्पर्श से मरने पर उत्तम शास्त्र की पुस्तक का दान करे और पतित के मरने पर सोलह प्राजापत्यव्रत करे।

मृते चापत्यरहिते कृच्छ्राणां नवतिं चरेत् । एवं कृते विधाने तु विदध्यादौर्ध्वदेहिकम् ॥

पुत्रहीनके मरनेपर नब्बे कृच्छ्र प्रायश्चित्त करे। इसप्रकार विधान करनेपर तो और्ध्वदेहिकका विधान करे।

(वैधमरणेऽपि विचारः)

तथा वैधमरणेऽपि न दोषः ।

और विधि (नियम के अनुरूप) से मरने पर भी दोष नहीं होता है।

(तत्र सूतकादिविचारः)

तदाहतुर्मनुवृद्धगार्ग्यौ—वृद्धः शौचमृते लुप्तप्रत्याख्यातभिषक्क्रियः । आत्मानं घातयेद्यस्तु भृग्वग्न्यनशनाम्बुभिः ॥ तस्य त्रिरात्रमाशौचं द्वितीये त्वस्थिसञ्चयः । तृतीये तूदकं कृत्वा चतुर्थे श्राद्धमाचरेत् ॥ इति ।

उसी बात को मनु और वृद्धगार्ग्य ने कहा है—वृद्ध (जिसका मृत्युकाल समीप है) व्यक्ति के पवित्र की विस्मृति (वायु, वृद्धावस्था आदि के वश में होने पर शौच, आचमन आदि आवश्यक कर्मों के अनुष्ठान में असमर्थ) में तथा वैद्य भी चिकित्सा न कर सके एसा वह मनुष्य, पहाड़, अग्नि, अनशन और जल द्वारा आत्मा का नाश कर दे तो उसका तीनरात का आशौच होता है। दूसरे दिन अस्थिसञ्चय करे। तीसरेदिन जलदान कर चौथेदिन श्राद्ध को करना चाहिये।

(व्याधिरहितमरणे विचारः)

हेमाद्रौ विष्णुधर्मेऽपि—नरस्तु व्याधिरहितो न त्यजेदात्मनस्तनुम्। असूर्या नाम ये लोका अन्धेन तमसा वृताः ॥ तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥ (यजु० अ० ४०।३)।

हेमाद्रि में विष्णुपुराण का वचन है—मनुष्य तो व्याधि से रहित होकर अपने शरीर का त्याग न करे। जो आत्मा को हनन करते हैं ऐसे मनुष्य उन लोकों में जाते हैं—जो सूर्य से रहित हैं और अन्धकार से आच्छादित किये हुए हैं।

(मृत्युकालागते सति विचारः)

अरिष्टैरात्मनो ज्ञात्वा मृत्युकालमुपस्थितम्। व्याधितो भिषजा त्यक्तः पूर्णे वायुपि चात्मनः॥ यथायुगानुसारेण सन्त्यजेदात्मनस्तनुम्। तस्मिन्काले तनुत्यागाद्यथेष्टं फलमाप्नुयात्। आयुषस्तु पुरा दृष्टं मरणं ब्राह्मणस्य च॥ नेति गौडानामपपाठः। उत्तरार्द्धे असङ्गतेः। क्षत्रियस्य तु सङ्ग्रामे मृते भर्तरि योषितः।

अरिष्टों से अपनी आत्मा के मृत्युकाल की समीपता को जानकर वैद्य के द्वारा त्यागा हुआ रोगी, अपनी आयु की पूर्णता पर युग के अनुसार से अपने शरीर का त्याग करे। उससमय में शरीर के त्याग से यथेष्ट फल को प्राप्त करता है। अवस्थाके पहले ब्राह्मणका मरण देखा गया है। नहीं देखा, यह गौडों का पाठ युक्त नहीं है। यह उत्तरार्ध में असंगत है। क्षत्रिय का तो संग्राम (युद्ध) में और पति के मरने पर स्त्री की मृत्यु देखी है।

(महाव्याधिपीडितोऽपि जीवितुं न शक्नोति तदा विचारः)

अपरार्के ब्रह्मगर्गः—यो जीवितुं न शक्नोति महाव्याध्युपपीडितः।
सोऽग्न्युदकं महायात्रां कुर्वन्वा न प्रदुष्यति॥

अपरार्कमें ब्रह्मगर्गका वचन है–जो व्यक्ति महाव्याधि (भयानक बीमारी) की पीडा से जीने में समर्थ नहींहै वह अग्नि, जल तथा महायात्रा (बड़ी तीर्थयात्रा काशीयात्रा आदि)को करताहुआ दोषी नहीं होता है।

अत्रोक्तवक्ष्यमाणवचोनिचयात्प्रयागातिरिक्तेऽचिकित्स्यरोगाद्युपहतानामधिकारः। सोऽपि जीर्णवानप्रस्थस्यैवेति विज्ञानेश्वरदेवयाज्ञिकादयः। अत एव मिताक्षरादौ भृगुपातानशनादिकं वानप्रस्थस्यैवोक्तम्।

यहाँ पर कहे हुए और आगे कहे हुए वचनों के समूह से प्रयाग से अतिरिक्त में चिकित्सा के अयोग्य रोग आदि से पीडितोंका अधिकार है। वह भी जीर्ण वानप्रस्थका ही है—यह विज्ञानेश्वर, देवयाज्ञिक आदि कहते हैं। इसलिए मिताक्षरा आदि में भृगुपात, (पर्वत की चोटी से गिरना) अनशन आदि वानप्रस्थ को ही कहा है। (आदि शब्द से—अग्न्यम्बुप्रवेश महाप्रस्थानपरिग्रहः। 'वानप्रस्थो वीराध्वानं ज्वलनाम्बुप्रवेशनं भृगुपतनं वाऽनुतिष्ठेत्')।

मनुरपि (अ० ६ श्लो० ३२)—आसां महर्षिचर्याणां त्यक्त्वान्यतमया तनुम्। वीतशोकभयो विप्रो ब्रह्मभूयाय कल्पते॥ इति। तेनान्यत्रापि तद्विषयतैव। मूलैक्यादिति केचित्। तन्न, वानप्रस्थमरणे आशौचनिषेधात्। तेन गृहस्थादिपरमेवेदम्। तेन यतेर्नाधिकारः। काम्येऽनधिकाराच्च। नैमित्तिकत्वे त्वकरणे दोषो नित्यता च स्यात्। प्रयागे त्वरोगिणां रोगिणां च।

मनु ने भी कहा है—पूर्व अनुष्ठान में से किसी एक अनुष्ठान से शरीर को त्याग कर (ब्राह्मण) दुःख से (शोकमय से) दूर हो ब्रह्मलोक में पूजा को प्राप्त करता है (अर्थात्—मोक्ष प्राप्त करता है) केवल कर्म को करता हुआ वानप्रस्थ से कैसे मोक्ष होगा। कहते हैं—श्रुति कहती है—'विविधाश्चौपनिषदीदात्मसंशुद्धये श्रुतीव' इससे अन्यत्र भी उसकी विषमता ही से मूल की एकता है यह कोई कहते हैं। यह उचित नहीं है। वानप्रस्थ के मरने पर आशौच का निषेध है। इससे गृहस्थादि परक ही यह है। इससे यति (संन्यासी) को अधिकार नहीं है और काम्य में अधिकार नहीं है। नैमित्तिकत्व में तो न करने में दोष और नित्यता होती है। प्रयाग में तो अरोगियों और रोगियों के लिए कहा है

यत्तु—शूद्राश्च क्षत्रिया वैश्या अन्त्यजाश्च तथाधमाः। एते त्यजेयुः प्राणान्वै वर्जयित्वा द्विजं नृप॥ पतित्वा ब्राह्मणस्तत्र ब्रह्महा चात्महा भवेत्। इति, तन्निर्मूलमिति भट्टाः। तत्त्वं तु हेमाद्रौ व्रतकाण्डेऽलिखनान्निर्मूलत्वं चिन्त्यमेव। प्रक्रमात्तु पतित्वेति भृगुपातमात्रपरं युक्तम्। ब्राह्मणस्याप्यनुज्ञातमिति वक्ष्यमाणविरोधाच्च।

जो यह कहा है—हे नृप, शूद्र, क्षत्रिय, वैश्य, अन्त्यज और अधम ये सब ब्राह्मण को त्याग कर प्राणों को त्याग करते हैं। वहाँ पर ब्राह्मण पतित होकर हत्यारा और आत्महत्यारा होता है। यह निर्मूल है—यह भट्ट कहते हैं। तत्त्व तो यह है कि हेमाद्रि के व्रतकाण्ड में लेख न होने से निर्मूल होने से चिन्तनीय ही है। प्रकरण से तो गिरकर भृगुपातमात्र परक (पर्वत के शिखर की चोटी से गिरना मात्र) युक्त है। ब्राह्मण की भी आज्ञा कही है यह आगे कहे हुए वचनों का विरोध भी है।

यत्त्वादित्यपुराणे—अब्राह्मणो वा स्वर्गादिमहाफलजिगीषया। प्रविशेज्ज्वलनं तोयं करोत्यनशनं तथा। इति, तत्प्रयागातिरिक्तपरमिति केचित्। हेमाद्रौ त्वेतदग्रे 'प्रयागवटशाखाग्रात्' इत्युक्तेर्ब्राह्मणस्य प्रयागेऽपि नेति प्रतीयते।

जो आदित्यपुराण में कहा है—अब्राह्मण भी स्वर्ग आदि महाफल की इच्छा से अग्नि या जल में प्रवेश करे या अनशनव्रत करे। वह प्रयाग से अतिरिक्त परक है—यह कोई कहते हैं। हेमाद्रि में तो इसके आगे कहा है—प्रयाग में वटशाखा के अग्रभाग से गिरे—एसा कहा है। इससे तो ब्राह्मण का भी प्रयाग में गिर पड़े एसा नहीं प्रतीत होता है।

माधवीयेऽपरार्के चादित्यपुराणे—दुश्चिकित्स्यैर्महारोगैः पीडितस्तु पुमानपि। प्रविशेज्ज्वलनं दीप्तं करोत्यनशनं तथा॥ अगाधतोयराशिं च भृगोः पतनमेव च। गच्छेन्महापथं वापि तुषारगिरिमादरात्॥ प्रयागवटशाखाग्राद् देहत्यागं करोति च। स्वयं देहविनाशस्य काले प्राप्ते महामतिः॥ उत्तमान् प्राप्नुयाल्लोकान्नात्मघाती भवेत् क्वचित्। महापापक्षयात्स्वर्गे दिव्यान् भोगात्समश्नुते॥ एतेषामधिकारस्तु सर्वेषां सर्वजन्तुषु। नराणामथ नारीणां सर्ववर्णेषु सर्वदा। ईदृशं मरणं येषां जीवतां कुत्रचिद्भवेत्॥

माधवीय और अपरार्क में आदित्यपुराण का वचन है—चिकित्सा—(वैद्य, डाक्टर, होम्योपैथ आदि) के अयोग्य महारोगों से दुःखी प्रज्वलित अग्नि में पुरुष प्रवेश करे। अनशनव्रत करे। अथाह जलराशि में प्रवेश करे या पर्वत से गिर ही पड़े या महारास्ते में (हिमालय आदि) जाय। तुषार (हिमपात जहाँ होता हो वहाँ पर) वाले पर्वत पर श्रद्धा से चला जाय। प्रयाग की वटशाखा के अग्रभाग में देहत्याग को करता है (—यह आदेश है)। स्वयं (अपने आप) शरीर के नाश के समय महाबुद्धिमान् उत्तम (इच्छा से उपयुक्त) लोकों को प्राप्त करता है वह कभी आत्मघाती नहीं होता है। महापाप के क्षयसे (प्रायश्चित्तार्थ नैमित्तिक विधि है।) स्वर्ग में दिव्यलोकों को प्राप्त करता है। इनका अधिकार तो सब जन्तुओं को है। सब वर्णों में सदा (रोगी या अरोगी) मनुष्य और स्त्रियों को है। इसप्रकार जीवितवालों का मरण कहीं भी होता है।

आशौचं स्यात्त्र्यहं तेषां वज्रानलहते तथा। वाराणस्यां म्रियेद्यस्तु प्रत्याख्यातभिषक्क्रियः॥ काष्ठपाषाणमध्यस्थो जाह्नवीजलमध्यगः। अविमुक्तोन्मुखस्तस्य कर्णमूलगतो हरः॥ प्रणवं तारकं ब्रूते नान्यथा कुत्रचित् क्वचित्। हेमाद्रौ चैवम्।

उनका आशौच तीनदिन का होता है और वज्रानल (बिजली) से मरने पर भी तीनदिन का आशौच होता है। (अभिमान या प्रमाद से मरने पर पूरा आशौच होता है।) प्रसिद्ध वैद्य की क्रिया से त्यागा हुआ वाराणसी में जो मरता है। काष्ठ (लकड़ी) पत्थर और गंगाजी के जल के मध्य में जो मरता है वह

अविमुक्त के सामने शंकर उनके कान के मूल में तारक प्रणवमन्त्र कहते हैं। कभी भी इससे अन्यथा नहीं होता है और हेमाद्रि में भी यही है।

अत्र प्राप्तकाले इत्युक्तेरप्राप्तमरणकालायाः स्त्रिया अन्वारोहणे सम्पूर्णमेवाशौचम्। पृथ्वीचन्द्रस्त्वत्रापि त्र्यहमाह। शुद्धितत्त्वादि गौडग्रन्थेष्वप्येवम्। एतच्च वृद्धादिमरणं कलौ निषिद्धम्। भृग्वग्निपतनैश्चैव वृद्धादिमरणे तथा। इति माधवेन पृथ्वीचन्द्रेण च कलिवर्ज्येषूक्तेनः चात्र यावदुक्तनिषेधः विशिष्टोद्देशे वाक्यभेदात्। न च कलौ वानप्रस्थाश्रमनिषेधादेव सिद्धेर्मरणनिषेधो व्यर्थ इति वाच्यम्, सर्ववर्णेष्वित्यादिभिस्तद्भिन्नस्यापि प्राप्तेः। काम्यं भवत्येव "[1]ये वै तन्वं विसृजन्ति इति श्रुतेः' स्मृत्या सङ्कोचायोगात्। न चेयं स्वाभाविकमृत्युपरा, धीरपदोक्तेः।

यहाँ पर प्राप्त समय (अग्नि आदि से मरने पर) में ऐसा कहने पर अप्राप्त मरणकाल का (अर्थात् जिसका मरण समय न आया हो) ऐसी स्त्री के अन्वारोहण में संपूर्ण ही आशौच होता है। पृथ्वीचन्द्र ने तो वहाँ पर भी तीनदिन का आशौच कहा है। शुद्धितत्त्व आदि गौड ग्रन्थों में भी यही है और यह वृद्ध आदि का मरण कलि में निषिद्ध है। भृगु, अग्नि और गिरकर मरने का वृद्ध आदि का माधव और पृथ्वीचन्द्र ने निषेध कलिवर्जप्रकरण में किया है। कोई शंका करे—यहाँ पर कहा हुआ निषेध नहीं है। विशिष्टोद्देश में (भृगु आदि पातप्रयुक्त अन्यविशिष्टमरणोद्देश) में वाक्यभेद (आत्मानं घातयेद्यस्तु भृग्वग्न्यशनाम्बुभिः) होता है। कोई कहे कि—कलियुग में वानप्रस्थ आश्रम के निषेध से ही सिद्ध था तो मरण का निषेध व्यर्थ हो जायगा ऐसा कहे, क्योंकि सब वर्णों में इत्यादियों से वानप्रस्थ से भिन्न की भी प्राप्ति होने से काम्य (प्रयाग) में होता ही है। जो ही शरीर को छोड़ते हैं ऐसी श्रुति (वेद) है। स्मृति (यद्यपि कलिवर्ज में कहा हुआ प्रमाण वेदवत् होता है श्रुति में भी संकोच कहा है फिर भी जहाँ तक श्रुति में संकोच के विना अगति है जबतक ही संकोच होता है। यहाँ नहीं है।) संकोचका अयोग (अलगाव) है। यह स्वाभाविक मृत्युविषयक है। यह उचित नहीं है, क्योंकि धीरपद कहा है।

मात्स्यभारतादिषु—न लोकवचनात्तात न वेदवचनादपि। मतिरुत्क्रमणीया ते प्रयागमरणं प्रति॥ इत्युक्तः।

मत्स्यपुराण और भारत आदि में तो कहा है—वे लोग लौकिकवचन से और वेद के वचन से भी प्रयाग में मरने की मति (बुद्धि) का उत्क्रमण (विचलित) न करे।

अत एव विष्णुधर्मे रोग्यादिमरणमुक्त्वोक्तम्—यथायुगानुसारेण सन्त्यजेदात्मनस्तनुम्। इति।

इसलिए (मुख्यफल की अनिच्छा से वृद्धों के भी रोग की निवृत्ति तथा स्वर्ग आदि के निमित्त कलि में भी प्रयाग में मरण होता है) विष्णुधर्म में रोग आदि के मरण को कहकर कहा है—जैसे युग के अनुसार अपने शरीर का त्याग करे।

(काश्यामग्निप्रवेशफलकथनम्)

काश्यामप्युक्तं मात्स्ये—अग्निप्रवेशं ये कुर्युरविमुक्ते विधानतः।
प्रविशन्ति मुखं ते मे निःसन्दिग्धं वरानने॥

काशी में भी मत्स्यपुराण के वचन से कहा है—अविमुक्त (वाराणसी) क्षेत्र में विधान से जो अग्नि में प्रवेश करते हैं। हे वरानने, वे लोग निःसन्दिग्ध मेरे मुख में प्रवेश करते हैं।

(स्वव्यापाराद्यसमर्थस्य तीर्थे प्राणविमोक्षणकथनम्)

हेमाद्रौ विवस्वान्—सर्वेन्द्रियविमुक्तस्य स्वव्यापाराक्षमस्य च। प्रायश्चित्तमनुज्ञातमग्निपातो

---

[1]—सितासिते सरिते यत्र सङ्गथे तत्राप्लुतासो दिवमुत्पतन्ति। ये वै तन्वं १ विसृजन्ति धीरास्ते जनासो अमृतत्वं भजन्ते॥ (ऋ० अखिल० १०।७५।१)।

महापथः ॥ धर्मार्जनासमर्थस्य कर्तुः पापाङ्कितस्य च । ब्राह्मणस्याप्यनुज्ञातं तीर्थे प्राणविमोचनम् ॥ अपरार्के चैवम् ।

हेमाद्रि में विवस्वान् ने कहा है—जिनकी सब इन्द्रियां शिथिलतावस्था में है, अपने व्यापार को करने में समर्थ नहीं है उनका प्रायश्चित्त अग्निपात और महामार्ग है। धमाजन में असमर्थ और पापों से युक्त ब्राह्मण का तीर्थ में प्राण का त्याग करना कहा है। और अपरार्क में भी यही है।

(सहगमनं कलौ भवति)

सहगमनं कलौ भवत्येव, कलौ नान्या गतिः स्त्रीणां सहानुगमनादृते । इति ब्रह्मवैवर्तात् । एतेन मरणान्तिकप्रायश्चित्तं काशीखण्डादौ चातुर्वर्ण्यस्य तनुत्यागविधयश्च युगान्तरपरा एव ।

सहगमन तो कलि में होता ही है। कलियुग में स्त्रियों के सहगमन को छोड़कर अन्य गति नहीं है—एसा ब्रह्मवैवर्तपुराण में कहा है। इससे मरणान्तिक प्रायश्चित्त काशीखण्ड आदि में और चारों वर्ण के शरीर के त्याग की जो विधि है वह युगान्तर विषयक ही (अन्य युगों में ही) है, एसा कहा है।

(प्रयागादौ प्राणत्यागे महत्फलकथनम्)

प्रयागेऽपि त्रिस्थलीसेतौ स्कान्दे—यथाकथञ्चित्तीर्थेऽस्मिन् प्राणत्यागं करोति यः ।
तस्यात्मघातदोषो न प्राप्नुयादीप्सितान्यपि ॥

त्रिस्थलीसेतु के प्रयागमाहात्म्य में भी स्कन्दपुराण का वचन है—जो यथाकथञ्चित् इस तीर्थ में प्राण का त्याग करता है। उसको आत्मघात दोष नहीं होता है और वह इच्छित फलों को प्राप्त करता है।

पाद्मे विष्णुः—देहत्यागं तथा धीराः कुर्वन्ति मम सन्निधौ ।
मत्तनुं प्रविशन्त्येव न पुनर्जन्म ते नराः ॥

पद्मपुराण में विष्णु का वचन है—धीर मनुष्य मेरे समीप में शरीर का त्याग करते हैं वे मेरे शरीर में प्रवेश करते ही हैं और वे मनुष्य फिर से जन्म नहीं ग्रहण करते हैं।

कौर्मे—व्याधितो यदि वा दीनो (क्रुद्धो) वृद्धो वापि भवेन्नरः । गङ्गायमुनमासाद्य यस्तु प्राणान् परित्यजेत् ॥ ईप्सितान् लभते कामान् वदन्ति मुनिपुङ्गवाः ।

कूर्मपुराण में कहा है—व्याधि से युक्त दीन या वृद्ध मनुष्य गंगा और यमुना के संगम (स्थान) को प्राप्त कर जो प्राणों को त्याग करता है वह इच्छित फलों को प्राप्त करता है—एसा मुनियों में श्रेष्ठ कहते हैं।

(गंगायमुनसंगमे प्राणत्यागे फलकथनम्)

तथा—या गतिर्योगयुक्तस्य सत्त्वस्थस्य मनीषिणः ।
सा गतिस्त्यजतः प्राणान् गङ्गायमुनसङ्गमे ॥

और जो गति योगयुक्त (योगदर्शन के सिद्धान्तों का अनुयायी) की है तथा सत्वगुणीमनीषि (विद्वान् पुरुष) की जो गति है वह गतिगङ्गायमुना के संगम में प्राणों के त्यागने से होता है।

(वटमूलेषु प्राणत्यागे फलम्)

बाराहे—तत्र यो मुञ्चति प्राणान् वटमूलेषु सुन्दरि ।
सर्वलोकानतिक्रम्य मम लोकं प्रपद्यते ॥

बाराहपुराण में कहा है—हे सुन्दरि, जो वहाँ पर वटवृक्ष के मूल (जड़) में प्राणों को छोड़ता है। वह सब लोकों को अतिक्रमण (लाघकर) कर मेरे लोक को प्राप्त करता है।

तथा—अकामो वा सकामो वा वटमूलेषु सुन्दरि ।
शीघ्रं प्राणान् प्रमुञ्चेत यदीच्छेत्परमां गतिम् ॥

और हे सुन्दरि, वटवृक्ष की जड़ में बिना इच्छावाला या इच्छावाला यदि उत्तमगति की इच्छा करे तो शीघ्र प्राणों का त्याग करे।

(पञ्चयोजनविस्तीर्णे प्रयागे मरणफलकथनम्)

तथा——पञ्चयोजनविस्तीर्णे प्रयागस्य तु मण्डले। व्यतीतान् पुरुषान् सप्त भविष्यांश्च चतुर्दश॥ नरस्तारयते सर्वान् यस्तु प्राणान् परित्यजेत् ॥

और प्रयाग के पांच योजन विस्तारित मण्डल में जो प्राणों का त्याग करता है वह सात पीढ़ी बीती हुई और भविष्य की चौदह पीढ़ियों के सब मनुष्यों को तारता है।

(प्रयागे माघमासे विष्णुं ध्यात्वा मरणे फलकथनम्)

ब्राह्मे——ध्यात्वा विष्णुपदाम्भोजं प्रयागे विष्णुतत्परः।
तनुं त्यजति वै माघे तस्य मुक्तिर्न संशयः॥

ब्रह्मपुराण का वचन है—प्रयाग में विष्णु के चरणों का ध्यान कर और विष्णु में तत्पर हो निश्चय माघमास में शरीर का त्याग करता है उसकी मुक्ति होने में संशय नहीं है।

(ब्रह्महत्यादिपातकयुक्तस्य प्रयागतीर्थे मरणे फलकथनम्)

दुष्कृतोऽपि दुराचारो ब्रह्महत्यादिपातकी।
हरिं ध्यात्वा त्यजेद्देहं प्रयागे (प्रायशो) मुक्तिमान् भवेत् ॥

निन्दितकर्म करने वाला, दुराचारी और ब्रह्महत्या आदि पातककर्म को करनेवाला प्रयाग में हरि का ध्यान कर शरीर का त्याग करता है वह मुक्त (सांसारिक वासनाओं और पापों से मुक्त आत्मावाला) हो जाता है।

(जलादौ प्राणत्यागे फलकथनम्)

भविष्योत्तरे—समाः सहस्राणि तु सप्त वै जले दशैकमग्नौ पतने च षोडश। महाहवे षष्टिरशीतिगोग्रहे अनाशके भारत चाक्षया गतिः॥ इति सामान्यतोऽपि फलम्। एवमन्येऽपि विधयो ज्ञेयाः।

भविष्योत्तरपुराण में कहा है—हे भारत, जल में प्राण के त्यागने पर बराबर सातहजार साल, ग्यारहहजार अग्नि में, सोलहसाल गिरने पर, महायुद्ध (महासंग्राम) में साठहजार साल और गोशाला में अस्सीहजारवर्ष और अनशन में अक्षय गति होती है। यह सामान्य से भी फल है। इसप्रकार अन्य भी विधि जानना चाहिये। ('समाः सहस्राणि तु सप्त वै जले' यह तो प्रयाग से इतर परक है।)

(यत्तु प्रयागादिमरणं ब्राह्मणभिन्नविषयमितिविषये विचारः)

यत्तु गौडाः—प्रयागादिमरणं ब्राह्मणभिन्नविषयम् इत्याहुः, तद्दूषणं पितामहचरणैः प्रयागविधौ कृतमिति नात्रोच्यते।

जो गौड कहते हैं—प्रयाग आदि में मरण (मृत्यु) ब्राह्मण से भिन्नविषय में है—एसा कहते है, उसका दूषण (खण्डन) पितामहचरण ने प्रयागविधि में किया है इससे यहाँ नहीं कहते हैं।

(अत्राशौचविचारः)

अत्र दशाहमाशौचम्। त्रिरात्रस्य प्राप्तकालगोचरत्वादिति भट्टाः। युक्तं तु त्रिरात्रम्। दिवोदासीयेऽप्येवम्।

यहाँ पर दशदिन का आशौच कहा है। तीनरात के आशौच के प्राप्तकाल का गोचर (विषय) है—यह भट्ट कहते हैं। युक्त तो त्रिरात्र है। दिवोदासीय में भी यही है।

शुद्धितत्त्वेऽपि काश्यपः——'अनशनमृतानामशनिहतानामग्निजलप्रविष्टानां भृगुसङ्ग्रामदेशान्तर-

मृतानां जातदन्तानां च त्रिरात्रम्' इति । एवं मरणान्तप्रायश्चित्तेऽपि । पूर्वोक्तस्यात्महादेर्दाहाशौचादिनिषेधस्तदानीमेव, वत्सरान्ते तु सर्वमौर्ध्वदेहिकं कुर्यात्,

शुद्धितत्त्व में कश्यप ने कहा है—अनशन से मरों का, अशन (बिजली) से मरों का, अग्नि या जल में प्रवेश हुओं का भृगु, (पहाड़ की समतल चोटी) संग्राम और देशान्तर में मरों का और उत्पन्न दांत वालों का तीनरात का आशौच होता है।

इसप्रकार मरणान्त प्रायश्चित्त में भी जानना चाहिये। पूर्व में कहे हुए आत्महत्यारे आदि के दाह और आशौच आदि का निषेध तो इसीसमय ही है। साल के अन्त में तो सब औध्वदेहिक करे।

(गो-ब्राह्मण-पतितादि द्वारा मरणे औध्वदेहिकस्य विचारः)

गोब्राह्मणहतानां च पतितानां तथैव च। ऊर्ध्वं सम्वत्सरात्कुर्यात्सर्वमेवौर्ध्वदेहिकम् ॥ इति हेमाद्रौ षट्त्रिंशन्मतात् ।

गौ, ब्राह्मण और पतितों द्वारा मरने पर साल भर के बाद सब औध्वदेहिक (अन्त्येष्टिसंस्कार-प्रेतकर्म) करे—यह हेमाद्रि में षट्त्रिंशत् का मत है।

(म्लेच्छीकृतानामपि गयाश्राद्धकथनम्)

एवं म्लेच्छीकृतानामपि गयाश्राद्धमपि कार्यम् । ब्रह्महा च कृतघ्नश्च गोघाती पञ्चपातकी । सर्वे ते निष्कृतिं यान्ति गयायां पिण्डपातनात् ॥ इत्यग्निपुराणात् ।

इसप्रकार म्लेच्छ हो जाने पर भी गयाश्राद्ध भी करे। ब्रह्महत्यारा, कृतघ्नी, गौघाती (गौ को मारने वाला) पांचप्रकार (मनुः—(११।५४)—ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः। महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह ॥) के पातकी ये सब गया में पिण्डदान करने से मुक्ति को प्राप्त करते हैं-यह अग्निपुराण में कहा है।

एवं ब्राह्मेऽपि—क्रियते पतितानां तु गते सम्वत्सरे क्वचित् । देशधर्मप्रमाणत्वात् गयाकूपे स्वबन्धुभिः ॥ मार्तण्डपादमूले वा श्राद्धं हरिहरौ स्मरन् । सूर्यपद इत्यर्थः ।

इसप्रकार ब्रह्मपुराण में भी कहा है—पतितों का भी एक साल के व्यतीत होने पर देशधर्म के प्रमाण से गयाकूप में या मार्तण्ड के पादमूल में हरि और हर का स्मरण करते हुए अपने बान्धव श्राद्ध को करे। सूर्यपद यह अर्थ है।

(तत्र वर्षमध्ये कृत्यमुक्तम्)

**तत्र वर्षमध्ये कृत्यमुक्तमपरार्के वायुपुराणे—शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां कुर्याच्छ्राद्धं तु वत्सरम् ।
द्वादशाहनि वा कुर्यात् शुक्ले च प्रथमेऽहनि ॥**

वहाँ पर साल के मध्य में कृत्य को अपरार्क में वायुपुराण का वचन है—शुक्लपक्ष की द्वादशीतिथि में साल भर तक श्राद्ध करे या शुक्लपक्ष के [1]प्रथमदिन से बारह दिन तक श्राद्ध करे।

१—वीरभोजनप्रयोगः—नारायणबलिदिनात् पूर्वदिने तद्दिने वा अमुकगोत्रनाम्नः—आत्मघानाद्यन्यतमदोष-निवृत्तिपूर्वकं नारायणबल्यधिकारार्थं क्रियाधिकारार्थं वा वीरभोजनविधिं करिष्ये। इति सङ्कल्प्य द्वादशाष्ट चतुरो वा विप्रान् निमन्त्र्य तेभ्यः भोवीररूप ब्राह्मण इदं ते पाद्यमिति पाद्यं दत्वा एषामासनगन्धाक्षतपुष्पसिन्दूरपिष्टान्तकमालाधूपदीपा-सनादिपदोहेन पूर्वमन्त्रेण दत्वा मधुरान्नानि परिविष्य 'इदं विष्णुः' इति मन्त्रानन्तरं पृथिव्यादिस्थवीरेभ्य इदमन्नं परिविष्टं परिवेद्यमाणं चाऽऽतृप्तेः स्वाहा हव्यं न ममेति सजलं त्यक्त्वा प्रार्थयेदेभिर्मन्त्रैः—पृथिव्यां ये स्थिता वीराः प्रेतमोक्ष-प्रदायकाः। प्रलयानलमुखयास्ते गृह्णन्त्वन्नादि कल्पितम्। येऽन्तरिक्षे स्थिता वीराः प्रेतपिण्डविघातकाः। यातुधानास्तु ते प्रेतं मुञ्चन्तु सुरपूजिताः ॥ ततः भुक्तवत्सु द्विजेषु सोदकुंभां दक्षिणां ताम्बूलं च दत्वा प्रेतमुक्त्याशीस्तेभ्यो गृहीत्वा विष्णुं स्मरेदिति कृष्णंभट्टयाम् ।

(संक्षिप्त आशौच विचार)

१—प्रथममास में गर्भस्राव हो जाने पर माता को दो दिन का आशौच होता है। दाक्षिणात्यमत से माता को तीनदिन का आशौच होता है। पिता और अन्यों को केवल स्नानमात्र करना कहा है। मैथिल तो पिता को क्षौर कराना चाहिए—एसा यहाँ पर कहते हैं। २—दूसरे मास में और तीसरे मास में गर्भस्राव होजाय तो सूतिका को तीनदिन का आशौच होता है। ३—चौथे महीने में गर्भस्राव होने पर चारदिन का आशौच माता को होता है। पिता और अन्य कुटुम्बों को स्नानमात्र कहा है। मैथिल तो पिता को क्षौर भी कराना चाहिये--एसा विशेष कहते हैं। ४—पाँचवें और छठे मास में गर्भपात होने पर सूतिका को क्रम से पाँचदिन तथा छदिन का आशौच होता है। पिता और अन्यों को स्नानमात्र कहा है। मैथिल तो पिता को क्षौर कराना विशेष कहते हैं। ५—सात महीने से लेकर जीव आने तक गर्भपात में और प्रसव में माता को दशरात का पूरा आशौच होता है। पुत्रोत्पत्ति में तो माता को एक महीने बाद और कन्या के जन्म में तो चालीस दिन के बाद कर्मों में अधिकार प्राप्त होता है। गौडमत से तो पुत्रोत्पत्ति में बीसरात और कन्योत्पत्ति में एक महीने बाद अधिकार होता है। पिता और अन्यों को भी पूर्णाशौच होता है। पिता को क्षौर भी विहित है। ६—जन्म से पूर्व पुत्र के मरने पर मृत उत्पन्न होने पर मरणाशौच नहीं होता है। जननाशौच तो माता को दशदिन का होता है। अन्यों को आशौच नहीं होता है। ७—उत्पन्न होने पर नालच्छेदन के पहले शिशु के मरने पर मरणाशौच नहीं होता है। माता को जननाशौच दशदिन का होता है। पिता को तीन दिन होता है। अन्य सपिण्डों को जननाशौच नहीं होता है। ८—नालच्छेदन के बाद दशदिन के पूर्व शिशु के मरने पर माता, पिता और सपिण्डनों को मृताशौच नहीं होता है। जननाशौच तो माता तथा पिता को दशदिन का होता है और सपिण्डनों को भी दशदिन का आशौच होता है। ९—दशदिन के बाद नामकरण के पहले पुत्र के मरने पर माता और पिता को एकरात या तीनरात का आशौच होता है। सपिण्डनों को स्नानमात्र कहा है। नामकरणशब्द से नामकरणकाल कहा है--मैथिलमत में। ग्यारहवें दिन या बारहवें दिन नामकरणपक्ष में ही यह आशौच प्रवृत्त होता है। बारहवें दिन बाद नामकरण करने में नहीं होता है। नामकरण से काल का उपलक्षण नहीं है। दाक्षिणात्यमत से तो बारहवीं रात या महीने भर बाद जब भी नाम करेंगे तब भी आशौच की प्रवृत्ति होती है। १०—नामकरण के बाद छः मास के पहले जिसको दांत नहीं निकला है ऐसे पुत्र के मरने पर माता और पिता को एकरात का आशौच होता है। दांत के उत्पन्न होने पर मरण में तीनदिन का आशौच दाक्षिणात्यमत से होता है। सपिण्डनों को स्नानमात्र कहा है। ११—छः महीने के बाद दन्तोत्पत्ति के पहले पुत्र के मरने पर दाह या खनन में माता और पिता को तीनदिन का आशौच होता है। सपिण्डनों को तो दाह में एकदिन का और खनन में सद्यःशौच होता है। १२--छः महीने के बाद दो वर्ष के पूर्व पुत्र के मरने पर दाह करने पर माता और पिता को तीनदिन का तथा अन्यों को एकदिन का आशौच होता है। खनन में तो माता, पिता और सपिंडों को एकरात का आशौच होता है। १३—तीनसाल में चूडाकरण के पूर्व पुत्र के मरने पर माता और पिता को तीनरात तथा सपिण्डनों को एकदिन का आशौच होता है। १४—तीनसाल के बाद उपनयन के पहले या जिसका चूडाकरण हो गया हो तो उसके मरने पर माता-माता और सब सपिण्डनों को तीनदिन का आशौच होता है। १५--छः साल के बाद अनुपनीत के मरने पर सबों को तीन दिन का आशौच होता है—यह दाक्षिणात्य कहते हैं। उपनयन शब्द का कालवाचित्व होने से छ साल के बाद अनुपनीत के मरने पर सम्पूर्णाशौच की प्रवृत्ति होती है। १६—उपनयन होने के बाद मरने पर सम्पूर्णाशौच सबों को होता है। १७—माता और पिता के मरने पर दशदिन के भीतर सुनने पर विवाहित कन्या को तीन रात्रि का आशौच होता है। दशदिन के बाद जब कभी भी माता और पिता की मरण सूचना सुनने पर कन्या को पक्षिणी (डेढ दिन) आशौच होता है। १८--कन्या का जन्म से दन्तोत्पत्तिपर्यन्त मरण में दाह या खनन में माता तथा पिता को एकदिन का आशौच होता है। १९—कन्या के दांत निकलने के बाद तीन वर्ष

तक कन्या के मरने पर माता और पिता को तीनरात का आशौच होता है। सपिण्डनों को सद्यःशौच होता है। अन्यों को आशौचाभाव होता है। २०—तीनसाल के बाद वाग्दान के पूर्व कन्या के मरने पर माता तथा पिता को तीनदिन का आशौच होता है। तीनपीढी तक सपिण्डनों को एकदिन का आशौच होता है और अन्यों को आशौच का अभाव कहा है। २१—बाग्दान के बाद विवाह के पूर्व कन्या के मरने पर पिता के वंश में और पति के कुल में पिता आदि सबों को सात पीढी तक सपिण्डनों को एकदिन का आशौच होता है। कोई तीनदिन का भी कहते हैं। गौड तो कहते हैं—कन्या का जन्मावधि दो वर्ष के भीतर मरने पर सब वर्णों के पिता आदि सपिण्डनों को सद्य.शौच होता है। दो साल के बाद वाग्दान के पूर्व एकदिन का होता है। वाग्दान के बाद विवाह के पहले कन्या के मरने पर पति के कुल में तीन दिन का आशौच होता है। जहाँ पर वाग्दान नहीं हुआ है वहाँ पर दो साल के बाद विवाहपर्यन्त अहोरात्र-एक दिन का आशौच होता है। दाहकर्ता को यहाँ पर भी तीनदिन का ही आशौच होता है। २२—विवाह के बाद पिता के घर में या स्वामी (पति) के घर में मरने पर माता-पिता, सपत्नमाता और सहोदर भाई को तीनदिन का आशौच होता है। भाई को पक्षिणी आशौच होता है। एकाश्रमवासियों के विमाता के भाई, चाचा, उनके पुत्र आदियों को तो एकदिन का आशौच होता है। पिता के भिन्नाश्रमवासी भाई आदियों को आशौच नहीं होता है। पिता आदियों को भी आशौच नहीं होता है यह किसी का मत है। पति के कुल में तो स्ववर्णोचित सम्पूर्ण आशौच होता है। २३—मामा के मरने पर भागिनेय को पक्षिणी आशौच होता है। अपने घर में मरने पर तीनदिन का आशौच होता है। २४—विमाता के मामा के मरने पर भागिनेय को एकदिन का आशौच लगता है। २५—मामा की लडकी के मरने पर भागिनेय पुत्र को एकदिन का आशौच होता है। २६—अनुपनीत (जिसका उपनयन नहीं हुआ है) भागिनेय के मरने पर मामा, मामा की कन्या और मामा की बहिन को तीनरात का आशौच होता है। अनुपनीत भागिनेय के मरने पर मामा के अन्य मामा तथा बहिन को पक्षिणी आशौच होता है। किसी का मत है कि सर्वत्र भागिनेय के मरने पर पक्षिणी आशौच होता है। २७—मातामह (नाना) के मरने पर दौहित्र को तीनदिन का आशौच होता है। मातामही (नानी) के मरने पर तो पक्षिणी आशौच होता है। २८—उपनीत दौहित्र के मरने पर मातामह और मातामही को तीनरात का आशौच होता है। अनुपनीत दौहित्र के मरने पर तो पक्षिणी आशौच होता है। किसी का मत है कि—सर्वत्र दौहित्र के मरने पर पक्षिणी आशौच होता है। २९—सास और श्वसुर के सन्निधि में मरने पर जामाता को तीन रात का आशौच होता है। असन्निधि में तो पक्षिणी जामाता को होता है। दूसरे ग्राम में दोनों के मरने पर अहोरात्र आशौच होता है या सास और श्वसुर के मरने पर पक्षिणी आशौच होता है। ३०—जामाता के मरने पर सास और श्वसुर को एकदिन का या सद्यःशौच होता है। ३१—श्यालक के मरने पर बहिन के पति को एकदिन का आशौच होता है। श्यालक के पुत्र के मरने पर स्नानमात्र कहा है। ३२—पिता की सास के मरने पर भाई के पुत्र को पक्षिणी आशौच होता है। भाई के पुत्र के घर में पिता के पुत्र को तीन रात का आशौच होता है। ३३—माता की सास के मरने पर अपनी पत्नी को पक्षिणी आशौच होता है। भगिनी पुत्र के घर में मरने पर माता की स्वसा के मरने पर तो भगिनीपुत्र को तीनरात का आशौच होता है। ३४—पिता की स्वसा के पुत्र के मरने पर, माता की स्वसा के पुत्र के मरने पर, मामा के पुत्र के मरने पर, पितामह भगिनी के पुत्र के मरने पर, पितामही भ्रातृपुत्र के मरने पर, मातामह भगिनी पुत्र के मरने पर और मातामही भातृपुत्र के मरने पर पक्षिणी आशौच होता है। पितृष्वसादि विवाहित कन्याओं के मरने पर तो एकदिन का आशौच होता है। ३५—दत्तक के मरने पर दोनों पिताओं को तीनदिन का आशौच होता है। सपिण्डों को एकदिन का होता है। दोनों तरह के पिता के मरने पर दत्तकपुत्र को दशदिन का आशौच होता है। देशान्तर में मरने पर तीनरात का आशौच होता है। ३६—असपिण्ड कुल से दत्तक पुत्र के ग्रहण करने पर पुत्र-पौत्र आदि के मरने पर सपिण्डों को एकदिन का आशौच होता है। सपिण्डन में तो पुत्र के ग्रहण करने पर सपिंडों को दशदिन का आशौच होता है। ३७—क्षेत्रज आदि ग्यारहप्रकार के पुत्रों के मरने पर माता और पिता को-तीन

दिन का आशौच होता है। क्षेत्रज आदि के माता और पिता के मरने पर तीनदिन का आशौच होता है। ३८—आचार्य के मरने पर आचार्य की क्रियाकर्ता शिष्य को दशरात का आशौच होता है। जो संस्कार नहीं करता उसको तीन दिन का आशौच होता है। ३९—आचार्य की पत्नी और आचार्य के पुत्र के मरने पर गुरुकुल में रहने वाले शिष्य को तीनरात का आशौच होता है। ४०—समावर्तन के बाद गृहस्थशिष्य को आचार्य पुत्र और पत्नी के मरने पर एकदिन का आशौच होता है। ४१—गुरुपत्नी के मरने पर पक्षिणी आशौच होता है। ४२—उपनयन कर वेदाध्यायक के बिना उपनयन किए सम्पूर्ण वेदाध्यापक के गुरु के मरने पर पक्षिणी आशौच होता है। ४३—अध्यापक के मरने पर एकरात का आशौच होता है। उसके पुत्र के मरने पर दिनमात्र या रात्रिमात्र आशौच होता है। ४४—घर में स्थित शिष्य के मरने पर आचार्य को तीनरात का आशौच होता है। ४५—वेदसहाध्यायी के मरने पर पक्षिणी आशौच होता है। ४६—सहाध्यायी कुछ एक साथ पढने पर उसके मरने पर एकदिन का आशौच होता है। ४७—मित्र का अपने घर में मरने पर तीनरात का आशौच होता है। दूसरे घर में मरने पर एकरात का आशौच होता है। ४८—राजा के मरने पर एकरात का आशौच होता है। ४९—अपने घर में ऋत्विक् के मरने पर यजमान को अहोरात्र आशौच होता है। ५०—यजमान के मरने पर ऋत्विजों को एक-अहोरात्र आशौच होता है। ५१—ब्राह्मण आदियों के घर में जाकर रुदन करने पर एकाह आशौच होता है। ५२—दिन में शव को स्पर्श करने पर नक्षत्र दर्शन से शुद्धि होती है। ५३—रात्रि में शवस्पर्श में सूर्यदर्शन से शुद्धि होती है। ५४—असजातीय शवस्पर्श में शवजातीय कथित आशौच होता है। ५५—असपिण्ड प्रेत के अलंकार करने पर ज्ञान से पादकृच्छ्र और अज्ञान से अलंकार करने पर उपवास या स्नान करे। ५६—सपिण्ड शव के साथ जाने में दोष नहीं है। ५७—अनाथ की क्रिया करने में दोष नहीं होता है। ५८—तुल्यवर्ण के या उत्कृष्टवर्ण के शव के साथ जाने पर सचैल स्नान करे। क्षत्रिय के शव के साथ जाने पर एक दिन, वैश्य के शव के साथ जाने पर पक्षिणी और शूद्रशव के साथ जाने पर तीनदिन का आशौच होता है। ५९—मामा, माता की बहिन, पिता की बहिन आदि के वहन और दहन में तीनरात का आशौच होता है। ६०—सवर्णों के निर्हरण में एकरात का आशौच होता है। ६१—लोभ के वशीभूत होकर निर्हरण आदि में दशदिन का आशौच होता है। ६२—अनाथ के निर्हरण आदि में सद्यःशौच होता है। ६३—दशदिन के मध्य में पर्णशरदाह में पत्नी और पुत्र को शेषदिनों से ही शुद्धि हो जाती है। दशदिन के बाद तो तीनदिन में शुद्धि होती है। पत्नी के संस्कार में पति को भी यही है। सपिण्डों को स्नानमात्र कहा है। ६४—रजस्वला को सत्रहदिन के पहले फिर से रजोदर्शन में सद्यःशौच होता है। अठारहवें दिन रजोदर्शन में तो एकरात का आशौच होता है। उन्नीसदिन में रजोधर्म के होने पर दोदिन और तीसदिन के बाद रजोधर्म के होने पर तीनदिन में शुद्धि कही है। ६५—दशदिन के आशौच से दो दिन से लेकर पांचवी रात्रिपर्यन्त सजातीय दशदिन के आशौच के आने पर पूर्वाशौच से ही शुद्धि कही है। छठे दिन से नवम रात पर्यन्त दूसरे आशौच की प्राप्ति हो तो दूसरे आये हुए आशौच से शुद्धि कही है। दशवें दिन अहोरात्र में पूर्णाशौचानन्तर आशौच की प्राप्ति हो तो उसदिन के बाद से दो दिन की अधिक वृद्धि शुद्धि के लिए करे। दशवें दिन रात के शेष में अरुणोदय के समय में पूर्वाशौचानन्तर पात में सूर्योदयानन्तर तीनरात्रि के अधिक से शुद्धि होती है। ६६—बढे हुये दिन के आशौच में सम्पूर्णाशौचान्तर के उपनिपात में गुरुतर से पश्चिमाशौच के हटने से शुद्धि होती है। तीन दिन आदिखण्डाशौच के मध्य में तीनदिन आदि समकाल आशौच के पात में दूसरे आशौच के हटने से शुद्धि कही है। विषमकाल व्यापक आशौचों के सन्निपात में अधिक दिन व्यापी आशौच के वीतने पर शुद्धि कही है। ६७—जननाशौच के मध्य में मरणाशौच प्राप्त हो जाय या मरणाशौच के मध्य में जननाशौच प्राप्त हो जाय तो मरणाशौच से ही शुद्धि होती है। इससे अल्पकालिक मरणाशौच से बहुतकाल व्यापी भी जननाशौच बाधित होता है। दाक्षिणात्य तो स्वल्पाशौच के मध्य में दीर्घाशौच के पात होने पर पूर्वाशौच से शुद्धि की इच्छा नहीं करते हैं। स्त्रियों का प्रसव निमित्तक शौच अन्यमरणाशौचादि से बाधित नहीं होता है। ६८—पिता, माता और पति के मरने पर आशौचान्तर पात में भी दशाह ही आशौच

होता है—यह दाक्षिणात्य कहते हैं। पंचगौड नहीं मानते हैं। यहाँ पर दाक्षिणात्य मत ही समीचीन मालुम होता है। ६६—अपने पुत्र के जननाशौच के पूर्वार्द्ध में या परार्ध में जाति के जनन में पूर्वाशौच से शुद्धि होती है। जातिजनना-शौच के पूर्वार्द्ध में स्वपुत्र जनन में जातिजननाशौचकाल से शुद्धि होती है। परार्ध में हो तो स्वपुत्र जननाशौचकाल से शुद्धि होती है। ७२—माता के मरने पर बाद पिता के मरने पर पिता के शेषदिन से शुद्धि होती है। पिता के मरने पर उसके आशौच के बाद माता के मरने पर पिता के आशौच के अन्त में माता की पक्षिणी वृद्धि अधिक करे। सपत्नी माता के मरने पर तो पक्षिणी वृद्धि नहीं होती है। ७३—जननाशौचद्वय के सन्निपात में पहले उत्पन्न आदि के आशौच के मध्य में मर गया हो तो सपिण्डों को सद्यःशौच होता है। जननिमित्त स्पर्शाशौच तो माता और पिता को रहता ही है। ७४—सपिण्ड के जनन और मरण के सुनने में अवशिष्ट दिनतक आशौच होता है। ७५—माता और पिता की मृत्यु श्रवण में श्रवणदिन से दशदिन का आशौच होता है—यह दाक्षिणात्य मत है। गौड इस बात को नहीं स्वीकार करते हैं। ७६—माता और पिता के मरण में दशदिन के मध्य में मरण के सुनने में विवाहित कन्या को तीन रात्र का आशौच होता है—यह दाक्षिणात्य कहते हैं। ७७—आशौच का समय व्यतीत होने पर जननाशौच नहीं लगता है। ७८—त्रिरात्रादि खण्डाशौच में अतिक्रान्त आशौच नहीं होता है। पूर्णाशौच के अतिक्रान्त में भी तीनदिन आदि का आशौच प्रवृत्त होता है। ७९—माता और पिता के मरने पर दशदिन बाद या एकसाल बाद भी मरण सुनने पर विवाहित कन्या को पक्षिणी आशौच दाक्षिणात्यमत से होता है। ८०—मरण में महीना आदि के अज्ञान में श्रवणदिन से आरम्भ कर दशाहादि आशौच मानना चाहिये। ८१—दशाह आशौच का दशाहानन्तर सुनने पर और छ मास के पहले सुनने पर तीनरात का आशौच होता है। तदनन्तर एकसाल तक एकाहोरात्र आशौच होता है। ८२—नैष्ठिक ब्रह्मचारी और अमुकामुक वर्णों के संन्यासियों का आशौच नहीं होता है। ८३—ब्रह्मचारी को माता और पिता के मरने पर कर्म करने पर आशौच नहीं होता है। कर्म करते समय आशौचान्न का भक्षण करने पर एकदिन का आशौच होता है। अन्नभक्षण में तो फिर से उपनयन करे। समावर्त्तन के बाद पहले मरे हुए माता पिता आदि का आशौच ब्रह्मचारी को करना चाहिये। ८४—जीते हुए जिसने अपना जीवच्छ्राद्ध कर लिया है उसके मरने पर आशौचादि करे या न करे। इसमें विकल्प है। ८५—योगियों के मरने पर आशौच नहीं लगता है। ८६—पतितादि के मरने पर आशौच नहीं होता है। ८७—आसुरों का, आपग्रस्तों का, शिल्पियों का और वैद्यों का आशौच नहीं होता है। ८८—अपूर्व तीर्थ प्रवेश में उसके निमित्त स्नान, दान, श्राद्ध आदि के आरम्भ में, रथयात्रादि उत्सव के आरम्भ में और युद्ध के प्रारम्भ में, आशौच नहीं होता है। चान्द्रायणादि व्रत के आरम्भ में, अन्नसत्रादि के आरम्भ में, दर्शपूर्णमादियज्ञ, प्रतिष्ठा, तडागोत्सर्ग, कोटिहोम, गायत्रीपुरश्चरण, व्रतबन्ध, विवाह आदि श्राद्धकर्मादि के प्रारम्भ में यजमान को उतने कर्म तक आशौच नहीं होता है। आशौचि के कर्म के करने पर मध्य में भय की उपस्थिति में कर्म की रुकावट होने पर आशौच की निवृत्ति पर फिर से अनुष्ठान करे। ८९—मधुपर्क के बाद ऋत्विजों को भी आशौच नहीं लगता है—यह दाक्षिणात्य कहते हैं। पर यह पक्ष इससमय नहीं चलता है। ९०—काम्यकर्म के प्रारम्भ होने पर उसकी समाप्ति कर ही देनी चाहिये। ९१—निष्कामकर्म के आरम्भ में आशौच नहीं होता है। श्रौतकर्म के नित्य होमादि में आशौच नहीं होता है। स्मार्त नित्यहवन तो दूसरे के द्वारा सम्पादन करा दे। ९२—आशौच काल के मध्य में श्राद्ध की प्राप्ति में आशौचान्त के दूसरे दिन या कृष्णपक्ष की एकादशी या अमावास्या को करे। उसी ही दिन मलमास की प्राप्ति में उसके बाद कृष्णपक्ष को एकादशी में करे। ९३—प्रेतश्राद्ध मलमास में भी करे। ९४—आशौच में मानसी सन्ध्या कुशवारि वर्जित करे। उसमें गायत्री का उच्चारण कर जल से अर्घदान करे। शास्त्र से सिद्ध होते हुए भी इस अर्घदान को बहुत शिष्टलोग नहीं करते हैं। प्राणायाम, मार्जन और जप करे या न करे। तर्पण और पञ्चमहायज्ञ न करे। ९५— राजा, राजा का नौकर, वैद्य, शिल्पी कारु, दासी, दास आदि को अपने कार्य में आशौच नहीं होता है। ९६— भोजन के समय दूसरे के यहाँ भोजन करते हुए आशौच की प्राप्ति मालुम होने पर मुख के उस ग्रास को भूमि में प्रक्षेप कर दूसरे के जल से आचमन करने पर दोष नहीं

होता है। ९७—आशौची दुकानदार की दूकान में फैले हुए दधि, मधु, घृत, निमक, तृण, साग, फल, पुष्प आदि द्रव्यों को उसकी आज्ञा से अपने हाथ से ग्रहण करने पर दोष नहीं है, उसके हाथ से ग्रहण करने पर दोष है। ऐसे द्रव्य को उसके हाथ से लेने पर देवकार्य में उपयोग न करे। ९८—भोजन कराने वाले और भोजन करने वाले को आपस में आशौच के अपरिज्ञान में अशौचान्नभक्षण में दोष नहीं है। इन दोनों में किसी एक को भी मालुम होने पर भोजन करने वाले को दोष लगता है। ९९—विवाह आदि के प्रवृत्त होने पर जनन या मरण की जानकारी पर आशौचान्न भिन्न गोत्रवालों से अन्नपरिवेषण करावे। पूर्वसंकल्पित अन्न में दोष का अभाव होने से उस अन्नभक्षण में भोक्ताओं को दोष नहीं होता है। १००—महापातकी, कुष्ठी, विष और अग्नि देने वाला या इनके द्वारा पाखण्डी, विष, अग्नि, शस्त्र, अनशन, जल, पर्वत आदि से मरने वालों का ब्राह्मण तथा चाण्डादि द्वारा मरने पर श्राद्ध और आशौच नहीं होता है। प्रायश्चित्त करने पर इनका श्राद्ध और आशौच होता है। स्वामी के लिए युद्ध में मरने पर गौ और ब्राह्मण की रक्षा के निमित्त मरने पर, चोर आदि द्वारा मरने पर श्राद्ध और आशौच होता है। १०१—कुमार के प्रसव के समय नालच्छेदन के पूर्व हिरण्य, धान्य आदि प्रतिग्रह में दोष नहीं होता है। १०२—पुत्रोत्पत्ति में नालच्छेदन के पूर्व आमान्न से श्राद्ध कर सकता है। इसीप्रकार छठे दिन रात्रि के योग में दोष नहीं है। १०३—जननाशौच में भी जातसंस्कार और जातेष्टि कर सकते हैं। जननाशौच में या मरणाशौच में या अन्य मरण में उसके संस्कार करने में दोष नहीं होता है। १०४—पिण्डदान के प्रारम्भ होने पर जननाशौच में भी पिण्डदान आदि यथावत् होता ही है। १०५—पिता के आशौच के मध्य में माता के मरने पर पिता के आशौचानन्तर पक्षिणी की वृद्धि करे। उस पक्षिणी के मध्य में भी पिता का श्राद्ध करे—यह देवयाज्ञिक ने कहा है। पक्षिणी आशौच की समाप्ति बाद करे—यह मिताक्षरा का मत है। इससे यहाँ विकल्प प्राप्त है।

(आशौचप्रकरण में गये हुए वाक्यों पर विचार)

१—अनुवाद उसे कहते हैं जो प्रमाणान्तर अर्थ से दुबारा कहा जाता है।

२—एक वाक्य से एक ही अर्थ का विधान होता है। क्योंकि वाक्य उद्देश्यविधेयभावरूप संबन्ध का बोधक है। अर्थात्—वाक्य से जो वाच्यार्थ का ज्ञान होता है उसमें एक विधेय होता है दूसरा उद्देश्य होता है। जहाँ उद्देश्य दो है वहाँ भी वाक्यभेद होता है। जहाँ विधेय अनेक होते हैं वहाँ भी वाक्यभेद होता है। प्रकृत में स्त्री जन्म को उद्देश्य कर त्रिपुरुष सापिण्ड्य का विधान और त्रिरात्र का विधान अनेकार्थ का विधान होने से वाक्यभेद होता है। इससे स्त्री उत्पत्ति में सोदकत्व का विधान कर उन्हीं का त्रिरात्र आशौच का विधान करने से उसी का विधान भी होता है उसी का अनुवाद भी होता है। यह दोनों दोष होने से यह स्मृति त्याज्य है।

३—एक ही वाक्य में विधि तथा अनुवाद दोनों नहीं हो सकते। विधि अज्ञातविषय का ज्ञापक होता है। जो ज्ञातविषय का ज्ञापक होता है उसे अनुवाद कहते हैं। अनुपश्चाद् वादः अनुवादः—यह अनुवाद शब्द की व्युत्पत्ति है। एक भावविषयक है अर्थात्—अनुवाद भावविषयक होता है। विधि अभाव विषयक होता है। एकसमय में भाव और अभाव एकविषय में नहीं हो सकते हैं इसलिए प्रकृत में जहाँ विधान भी करें और अनुवाद भी करें यह संभव नहीं है। इस दोष को परिहार करने के लिए ग्रन्थकार अकृत चूड को उद्देश्य विशेषण माना है तथा दाह को विधेय माना है।

४—सापिण्ड्य तीन पुरुषों में होता है और तीनदिन का आशौच होता है। ये दो वाक्य करने से वाक्यभेद होगा। इसलिए यहाँ अनुवाद माना गया है। एक का अनुवाद मानने पर एक ही का अर्थ होता है तो वाक्य भेद नहीं होगा। इस अभिप्राय से कहते हैं।

५—दीर्घ आयु की इच्छावाला आहिताग्नि यजमान आयुष्मती इष्टि करे। प्राजापत्यं घृते चरुं निर्वपेत् शतकृष्णलमायुष्कामः। इति। जिस इष्टि में प्रजापतिदेवता है घृत में गुञ्जाफल (नीचे लाल ऊपर काला गुञ्जाफल) के समान सौ सुवर्ण की गोलियों को पकाकर आहुति दे।

अथ निर्णयसिन्धुः

(भाषा-टीका-सहित)

श्लोकसूची

दौलतराम गौड

अथ निर्णयसिन्धुः

(भाषा-टीका-सहित)

आशौचप्रकरण

(नारायणबलिपर विचार, पतित के मरने पर विचार, हेमाद्रि आदि मत से पद्धति के क्रम में विचार, सर्प से मरने पर शान्तिकथन, संन्यासी आदि मरने पर और्ध्वदेहिक कर्मों पर विचार, जीवच्छ्राद्धानन्तर मरने पर आशौचविचार, आहिताग्नि के विदेश में मरने पर विचार, अस्थियों की अप्राप्ति में शरीरान्तर की कल्पना करना, विदेश में गये हुए प्राणी की बारहवर्षादि तक वार्ता न सुनने पर विचार, देशान्तर में गये हुए की मृततिथि आदि के अज्ञान में विचार, प्रेतसंस्कार में काल का विचार, जिसकी मृत्यु सुनी हो वह फिर से आ जाय तो उसपर विचार, सर्प के संस्कार में आशौचविचार और सर्पसंस्कार की विधिकथन, मोक्षादिधेनुदान, दशदानादिकथन, दुर्मरणादि-निरूपण, आशौच में साग्निक के मरने पर विशेषकथन, मृताग्निहोत्र, साग्निक के अन्त्येष्टि का कथन, मरने पर छ पिण्डदान का कथन, माता और पिता के एकसाथ मरने पर विचार, प्रेतोदकदान, प्रेत के लिए अञ्जलिदान, आशौच में उदकदान, आशौच में नियम, आशौच में प्रेतपिण्ड आदि पर विचार, दशाहक्रिया पर विचार, आशौच के दशदिन के मध्य में अमावास्या प्राप्त होने पर विचार, अस्थिसञ्चयन का विचार और तीर्थ में अस्थियों का प्रक्षेपकरने पर महत्त्वपूर्ण विचार)

दौलतराम गौड़

(प्राचीन व्यवस्थाओं का संग्रह)

(स्वर्गीय-महामहोपाध्याय श्री पं० विद्याधर जी गौड़ द्वारा लिखित)

(कार्पटीवेषः)

गयाश्राद्धार्थं यात्रायाः समारम्भे ताम्रमुद्रा-ताम्रकङ्कणकाषायवस्त्रधारणम्। इदं च यात्रायामेव न तु कर्मकाले 'न नग्नः श्राद्धमाचरेत्' इति निषेधात्। 'नग्नः काषायवसाः स्यात्' इत्यनेन काषायधारिणो नग्नत्वावगमात्।

(पञ्चकमरणशान्तिः)

पञ्चके मृतस्य पञ्चकानन्तरं दाहे एकादशे सपिण्डीकरणानन्तरं त्रयोदशेऽहनि वा पुण्याहं वाचयित्वा मध्ये होमवेदिं निर्माय तदीशाने कलशे ग्रहान् सम्पूज्याग्निं संस्थाप्य कलशादुत्तरतश्चतुर्दिक्षु मध्ये पञ्चकलशेषु पञ्चसौवर्णीषु धनिष्ठादिनक्षत्र-प्रतिमासु तदधिष्ठातृदेवान् वसु-वरुण-अजैकपत्-अहिर्बुध्न्य—पूष्णः सम्पूज्य तत्पार्श्वे यमान् मृत्युञ्जयं च सम्पूज्य पञ्चसु कलशेषु 'कृणुष्वपाजः' (१३।९–१२) विभ्राट् (३३।३०–४३) आशुः (१७।३३-४९) नमस्ते (१६–६३) ऋचं-वाचम् (१–२४) इति सूक्तपञ्चकजपार्थं पञ्चब्राह्मणान् एकं वा वृत्वाऽग्निं संस्थाप्य समिच्चरुतिलैः प्रत्येकं प्रतिद्रव्यं १०८, २८, ८, वा हुत्वा षड् ब्राह्मणान् संभोज्य यजमानमभिषिञ्चेत्। इयं शान्तिः पञ्चकशान्तिरित्युच्यते। पञ्चकात्पूर्वं मृतस्य पञ्चके दाहप्राप्तौ पुत्तलविधिरेव, न शान्तिकम्। पञ्चके मृतस्य पञ्चकानन्तरं दाहे शान्तिकमेव, न पुत्तलविधिरिति विवेको धर्मसिन्धौ। पञ्चके मृतस्य पञ्चके दाहे उभयमिति सांप्रदायिकाः।

(नारायणबलिः)

यस्य आत्मघातादिना दुर्मरणं जातं तस्य पुत्रादिशुक्लैकादश्यां तदीयात्मघातादिपापानुसारेण प्रायश्चित्तं कृत्वा दुर्मरणदोषनिवारणार्थं कलशद्वये हैमप्रतिमयीविष्णुं च सम्पूज्य तत्पूर्वभागे दशवेदीः कृत्वा तत्रावनिज्य यमं दश ओदन-पिण्डान् दक्षिणसंस्थान् अपसव्येन श्राद्धविधिना दक्षिणामुखो दद्यात्। ततोऽपरेऽह्नि मध्याह्ने विष्णुं सम्पूज्य उदङ्मुखान् प्राक्संस्थान् पञ्चदर्भवटून् संस्थाप्य स्वयं दक्षिणामुखः आसनचतुष्टये सव्येन विष्णु-ब्रह्म शिव-सानुचरयमान् पञ्चमे आसने च विष्णुरूपं प्रेतं चापसव्येनावाह्य एकोद्दिष्टविधिना पादप्रक्षालनादितृप्तिप्रश्नान्तं कृत्वा पञ्चवेदीः कृत्वा सव्येन चतुर्भ्यः अपसव्येन विष्णुरूपाय प्रेताय पिण्डं दत्वा श्राद्धं समापयेत्। इदमेव दिनद्वयसाध्यं श्राद्धद्वयं नारायणबलिरित्युच्यते। अद्यत्वे एकस्मिन्नहनि अनुष्ठीयते। (मिताक्षरा) अयं नारायणबलिर्दुर्मरणे एव कार्यो नान्यथा। आत्मघातादौ पुत्रादिः सद्यःस्नानेन शुद्धिं सम्पाद्य प्रायश्चित्तं कृत्वा नारायणबलिमनुष्ठाय पर्णशरदाहं कृत्वा दाहमारभ्याशौचं कृत्वौर्ध्वदेहिकं कुर्यात्।

आदौ कृत्वा धनिष्ठार्धमेतन्नक्षत्रपञ्चकम्। रेवत्यन्तं सदा दुष्यमशुभं दाहकर्मणि। 'तत्रानिष्टविनाशार्थं विधानं समुदीर्यते। दर्भाणां प्रतिमाः कार्याः पञ्चोर्णासूत्रवेष्टिताः। यवपिष्टेनानुलिप्तास्ताभिः सह शवं दहेत्। प्रेतवाहः प्रेतसखः प्रेतपः प्रेतभूमिपः। प्रेतहर्ता पञ्चमस्तु नामान्येतानि च क्रमात्। अत्र प्रतिमां गन्धपुष्पैः पूजयित्वा प्रथमां शिरसि, द्वितीयां नेत्रयोः, तृतीयां वामकुक्षौ, चतुर्थीं नाभौ, पञ्चमीं, पादयोर्न्यस्य तदुपरि नाममिधृतं जुहुयात्। सूतकान्ते ततः पुत्रः कुर्याच्छान्तिकपौष्टिकम्। कांस्यपात्रस्थितं तैलं वीक्ष्य दद्याद् द्विजन्मने। ब्रह्मविष्णुमहेशेन्द्रवरुणप्रीतये ततः। माषमुद्गयव-व्रीहिप्रियंग्वादि प्रयच्छति। स्वर्णदानं रुद्रजाप्यं लक्षहोमो द्विजार्चनम्। गोभूमिदानं षडंशेन कुर्याद्दोषोपशान्तये।

रजस्वलादाहः--रजस्वलामरणे तामुद्धृतजलेन संस्नाप्यानन्तरं घटं जलेन पूरयित्वा तत्र पञ्चगव्यं क्षिप्त्वा "आपो हि ष्ठेति तिसृभिः, पुनन्तु मेति नवभिः (य० सं० १९।३७–४५) "आपो अस्मान्" (४।२) इतिमन्त्रैर्जलमभिमन्त्र्य तेन जलेन शूर्पोदकेन च शतकृत्वस्तां स्नापयित्वा नववस्त्रेण वेष्टयित्वा दहेत्, पञ्चदश नव वा धेनूश्च दद्यात्। अयं दाहो रजस्वलादाह इत्युच्यते।

श्री विद्याधरशर्मा गौड़

(मतमतान्तरेण नारायणबलिकर्मणि विचारः)

छागलेयः—नारायणबलिः कार्यो लोकगर्हाभयान्नरैः ।
तथा तेषां भवेच्छौचं नान्यथेत्यब्रवीद्यमः ॥

छागलेय ने कहा है—लोकनिन्दा के भय से मनुष्यों को [1]नारायणबलि को करना चाहिये । उससे उन (पाखण्ड्य आदि जो बुद्धिपूर्वक आत्मघात करते हैं ।) की शुद्धि होती है । अन्यथा नहीं हो सकती है—ऐसा यम ने कहा है ।

व्यासः—नारायणं समुद्दिश्य शिवं वा यत्प्रदीयते । तस्य शुद्धिकरं कर्म तद्भवेन्नतदन्यथा ॥ इति । स चात्मघातादिप्रायश्चित्तं कृत्वा कार्यः ।

व्यास ने कहा है—नारायण या शिव को उद्देश्य कर जो दिया जाता है वही उसकी शुद्धि को करनेवाला कर्म है । अन्यथा कोई प्रकार नहीं है । वह आत्मघात (आत्महत्या) आदि का प्रायश्चित्त करके करना चाहिये ।

तदुक्तं हेमाद्रौ षट्त्रिंशन्मते—कृत्वा चान्द्रायणं पूर्वं क्रिया कार्या यथाविधि । नारायणबलिः कार्यो लोकगर्हाभयान्नरैः ॥ पिण्डोदकक्रियाः पश्चाद् वृषोत्सर्गादिकं च यत् । एकोद्दिष्टानि कुर्वीत सपिण्डीकरणं तथा ॥

उसी बात को हेमाद्रि में षट्त्रिंशन्मत से कहा है—प्रथम चान्द्रायणव्रत करके यथाविधि क्रिया को

१—मिताक्षरायाम्—एकादशीं समासाद्य शुक्लपक्षस्य वै तिथिम् । विष्णुं समर्चयेद्देवं यमं वैवस्वतं तथा ॥ दशपिण्डान् घृताभ्यक्तान् दर्भेषु मधुसंयुतान् । तिलमिश्रान् प्रदद्याद्वै संयतो दक्षिणामुखः । विष्णुं बुद्धौ समासाद्य नद्यम्भसि ततः क्षिपेत् ॥ नामगोत्रग्रहं तत्र पुष्पैरभ्यर्चनं तथा ॥ धूपदीपप्रदानं च भक्ष्यं भोज्यं तथा परम् । निमन्त्रयेत विप्रान् वै पञ्च सप्त नवापि वा ।। विद्यातपः समृद्धान् वै कुलोत्पन्नान् समाहितान् । अपरेऽहनि संप्राप्ते मध्याह्ने समुपोषितः ॥ विष्णोरभ्यर्चनं कृत्वा विप्रांस्तानुपवेशयेत् । उदङ्मुखान् यथाज्येष्ठं पितृरूपमनुस्मरन् । मनो निवेश्य विष्णौ वै सर्वं कुर्यादतन्द्रितः । आवाहनादि यत्प्रोक्तं देवपूर्वं तदाचरेत् ॥ तृप्तान् ज्ञात्वा ततो विप्रान् तृप्तिं पृष्ट्वा यथाविधिः । हविष्यव्यञ्जनेनैव तिलादिसहितेन च ॥ पञ्च पिण्डान् प्रदद्याच्च दैवं रूपमनुस्मरन् । प्रथमे विष्णवे दद्यात् ब्रह्मणे च शिवाय च । यमाय सानुचराय चतुर्थं पिण्डमुत्सृजेत् । मृते संकीर्त्य मनसा गोत्रपूर्वमतः परम् ॥ विष्णोर्नाम गृहीत्वैवं पञ्चमं पूर्ववत्क्षिपेत् । विप्रानाचम्य विधिवद्दक्षिणाभिः समर्चयेत् । एकं विद्वत्तमं (वृद्धतमं) विप्रं हिरण्येन समर्चयेत् । गवा वस्त्रेण भूम्या च प्रेतं तं मनसा स्मरन् । ततस्तिलाम्भो विप्राश्च तस्मै दद्युः समाहिताः । मित्रभृत्यजनैः सार्धं पश्चाद्भुञ्जीत वाग्यतः । एवं विष्णुमते स्थित्वा यो दद्यादात्मघातिने । समुद्धरति तं क्षिप्रं नात्र कार्या विचारणा ॥

विधानमालायाम्—शस्त्रघातमृता ये च गोवृषैः कुञ्जरैस्तथा । वृक्षेभ्यः पतिता ये च मृता ये च चतुष्पथे ॥ व्याघ्रैः सर्पैर्वराहैश्च भक्षिताः श्वापदैस्तथा । कुष्ठव्याधिमृता ये च मञ्चकोपरि ये मृताः । तूलिकायां मृता ये च कम्बलोपरि ये मृताः । गोघ्नश्च ब्रह्महा यश्च तथा स्त्रीबालघातकाः ॥ वर्णशंकरकर्तारो ब्रह्मसूत्रविवर्जिताः । ब्राह्मणानां गुरूणां च तथा ये लिङ्गभेदकाः ॥ जलाग्निबन्धनभ्रष्टास्तथैवाऽऽत्मप्रहिंसकाः । विषं यैर्भक्षितं विप्रैः प्रेतसंस्कारलोपकाः ॥ सन्तानरहिता ये च क्षयरोगेण ये मृताः । कण्ठे ग्रासविलग्नाश्च विष्टिविद्युन्निपातिताः ॥ हता ये कारकावातैः शीतपातैर्मृताश्च ये । अनाहारमृता ये च मार्गश्रमनिपीडिताः ॥ स्खलनान्मरणं प्राप्ता शूलारोपणतो हताः । विषाग्निना मृता ये च मृताः कण्टकपीडनैः ॥ एकादशाहे वृषोत्सर्गादिश्राद्धविवर्जिताः । देशान्तरमृता भ्रष्टा अग्निदाहादिवर्जिताः ॥ एतैश्चान्यैश्च बहुभिर्म्रियन्ते चापमृत्युभिः । अपमृत्युमृतानां च स्थानं दालभ्य हि तच्छृणु ॥ गच्छन्ति नरके घोरे पूयशोणितसंकुले । बहुचञ्चुखगाकीर्णे लोहकण्टकदुर्गमे ॥ अधोमुखाश्च तिष्ठन्ति नराः पापसमाकुलाः । गङ्गायां यमुनायां च पुष्करे नैमिषे तथा । कुरुक्षेत्रे सरस्वत्यां तीर्थेऽन्यस्मिन् शुभेऽपि वा । नद्यामब्धौ तडागे वा सङ्गमे निर्झरेऽपि वा । दालभ्य वै जलपूर्णे च ह्रदे वा विमले जले ॥ वापीकूपे (वापीकूले) गवां गोष्ठे कुण्डे वा प्रतिमाश्रये । मन्नाम्ना कारयेदाद्यं बलिं नारायणं शुभम् ॥ 'चातुर्वर्ण्येन कर्तव्यो बलिर्नारायणाभिधः । षण्मासाद् ब्राह्मणे दाहस्त्रिमासात्क्षत्रिये स्मृतः ॥ अर्धस्यार्धेन मासेन सद्यः शूद्रे विधीयते । यद्यग्निहोत्रिणो मृत्युर्जायते निन्द्य एव च । त्रिभिर्मासैस्त्रिभिः पक्षैर्न तु षाण्मासिकोऽवधि ॥ अपमृत्युविनष्टानां नारायणबलिः शुभः ।

करे। लोकनिन्दा के भय से मनुष्यों को नारायणबलि करना चाहिये। बाद में पिण्ड, उदकदान, वृषोत्सर्ग आदि एकोद्दिष्ट और सपिण्डीश्राद्ध करें।

दिवोदासोये वृद्धशातातपस्तु—पतिते च मृते शुद्ध्यै प्राजापत्यांस्तु षोडश। मृते चापत्यरहिते कृच्छ्राणां नवतिं चरेत् ॥ इत्याह। इदं प्रायश्चित्तार्हपित्रादिविषयम्।

दिवोदासीय में वृद्धशातातप ने कहा है—पतित के मरने पर उसकी शुद्धि के लिए सोलह प्राजापत्य करे। पुत्ररहित मरने पर नव्वें कृच्छ्र करे—एसा कहा है। यह प्रायश्चित्त योग्य पिता आदि के विषय में है।

इन्द्रियैरपरित्यक्ता ये च मूढा विषादिनः। घातयन्ति स्वमात्मानं चाण्डालादिहताश्च ये ॥ तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च दयया समभिप्लुताः। यथा श्राद्धं प्रतन्वन्ति विष्णुनामप्रतिष्ठितम् ॥ तथा ते सम्प्रवक्ष्यामि नमस्कृत्य स्वयंभुवे। इति हेमाद्रौ तेनैवोक्तेः।

हेमाद्रि में उन्हीं ने कहा है—जो इन्द्रियों से अपरित्यक्त है, जो मूर्ख और दुःखी हैं, जो अपनी आत्मा की हत्या करते हैं, जो चाण्डाल आदि से मारे गये हैं। उनके पुत्र और पौत्र दया से डूबकर विष्णु-नाम प्रतिष्ठित (नारायणबलि) श्राद्ध का जिसप्रकार विस्तारित करते हैं उसप्रकार मैं ब्रह्मा को नमस्कार कर तुमसे कहूँगा।

तत्रैव बौधायनोऽपि—नारायणबलिं व्याख्यास्यामः (चण्डालादुदकात्सर्पाद् ब्राह्मणाद्वैद्युतादपि। दंष्ट्रिभ्यश्च पशुभ्यश्च मरणं पापकर्मणाम्। विषशस्त्ररज्जुपाषाणदेशान्तरमृते वा) अभिशस्तपतित-सुरापात्मत्यागिनां ब्राह्मणहतानां च द्वादशवर्षाणि त्रीणि वा यत्र मरणं यस्य तत्र तत्र कुर्वीत, इति।

वहीं पर बौधायन ने भी कहा है—नारायणबलि की व्याख्या करते है-(चाण्डाल, जल, सर्प, ब्राह्मण, विजली, दांत वाले पशुओं से और पापकर्मों से मरने पर, विष, शस्त्र, रज्जु, पाषाण या देशान्तर में मरने पर) शापयुक्त हो, पतित होने से, मद्यपी होने से आत्महत्या का और ब्राह्मण से मरों का बारहसाल या तीनसाल जिसका जहाँ मरण हों वहाँ करे। (किसी किसी पुस्तक में-'यत्र मरणं यस्य यस्य तत्र तत्र कुर्वीत') एसा पाठ नहीं है)।

गृह्यपरिशिष्टे तु चाण्डालादित्याद्युक्त्वा—दग्ध्वा शरीरं प्रेतस्य संस्थाप्यास्थीनि यत्नतः।

प्रायश्चित्तं तु कर्तव्यं पुत्रैश्चान्द्रायणत्रयम् ॥ इत्युक्तम्।

गृह्यपरिशिष्ट में तो कहा है—चाण्डाल आदियों को कहकर कहा है—प्रेत के शरीर को जलाकर यत्न से अस्थियों का स्थापन कर पुत्र तीन चान्द्रायण प्रायश्चित्त करें। एसा कहा है।

मदनरत्ने—'ब्राह्मणहतानां द्वादशवर्षाणि त्रीणि वा कुर्वीत' इति।)

(मदनरत्न में कहा है—ब्राह्मण से मृतकों का बारहवर्ष या तीनवर्ष का प्रायश्चित्त कहा है।)

मदनरत्ने ब्राह्मे—प्रमादादपि निःशङ्कस्त्वकस्माद्विधिचोदितः। चाण्डालैर्ब्राह्मणैश्चौरैर्निहतो यत्र क्वचित् ॥ तस्य दाहादिकं कार्यं यस्मान्न पतितस्तु सः। चान्द्रायणं तप्तकृच्छ्रं द्वयं तस्य वि-शुद्धये ॥ यद्वा कृच्छ्रान्पञ्चदश कृत्वा तु विधिना दहेत्। बुद्धिपूर्वमृतानां तु त्रिंशत्कृच्छ्रं समा-चरेत् ॥ इत्युक्तम्।

मदनरत्न में ब्रह्मपुराण का वचन है—प्रमाद (चाण्डाल आदि प्रमाद से मरों का एकसाल तक प्रतीक्षा करने तक नारायणबलि नहीं होती है। किन्तु प्रायश्चित्त करने के बाद ही उसका और्ध्वदेहिक होता है) से भी न डरनेवाला, अकस्मात् विधि से प्रेरित हो चाण्डाल, ब्राह्मण या चोरों द्वारा जहाँ कहीं भी मर गया हो उसका दाह आदि करना चाहिये। क्योंकि वह पतित नहीं है। चान्द्रायण और तप्तकृच्छ्रद्वय उसकी शुद्धि के लिए करे या पन्द्रह तप्तकृच्छ्र करके विधि से दाह करे। ज्ञानकर पूर्वक मरों का तीसकृच्छ्र प्रायश्चित्त करे—एसा कहा है।

स्मृतिरत्नावल्यां तु 'द्विगुणं प्रायश्चित्तं कृत्वाऽर्वागप्यब्दात्सर्वं कार्यम्' इत्युक्तम्। आत्मनो घातशुद्ध्यर्थं चरेच्चान्द्रायणद्वयम्। तप्तकृच्छ्रचतुष्कं च त्रिंशत् कृच्छ्राणि वा पुनः ॥ अर्वाक्

संवत्सरात्कुर्याद्दहनादि यथोदितम् । कृत्वा नारायणबलिमनित्यत्वात्तदायुषः ॥ इति ।

स्मृतिरत्नावलि में तो कहा है—बुद्धिपूर्वक मरनेवालों का प्रायश्चित्त द्विगुणित (दूना) करके संवत्सर के पूर्व यथोचित दहनादि सब किया करे। आत्महत्या की शुद्धि के लिए दो चान्द्रायण करे और चार तप्तकृच्छ्र करे या तीस कृच्छ्र करे। साल भर के भीतर कही हुई नारायणबलि आयु के अनित्य होने से करे।

इदं चात्मवधनिमित्तं तज्जातिवधप्रायश्चित्तेन समुचितं कार्यम् । अतएव बौधायनेनोक्तं 'द्वादश वर्षाणि त्रीणि वा' इति ।

और यह आत्मवधनिमित्त को जातिवध प्रायश्चित्त से समुचित (इकट्ठा) करे। इसलिए बौधायन ने कहा—बारहवर्ष या तीनवर्ष में करे।

मदनपारिजाते स्मृत्यर्थसारे च—'ब्रह्महादीनां तद्योग्यं प्रायश्चित्तं कृत्वा नारायणबलिः कार्यः' इत्युक्तम् । एवं म्लेच्छीकृतानामपि ।

मदनपरिजात और स्मृत्यर्थसार में कहा है—ब्रह्महत्यारों का उसके योग्य प्रायश्चित्त कर नारायणबलि करे—एसा कहा है। इसप्रकार म्लेच्छ हो जाने पर उनका भी करे।

यत्तु कश्चिदाह—'पुत्रकृतेन प्रायश्चित्तेन पितुः पापनाशे मानाभावः, आत्मघाते तु वचनादस्तु, महापातके तु कथं स्यात्' इति । स स्वयमेवात्मवधप्रायश्चित्तस्य जातिवधनिमित्तेन समुच्चयं वदन् हृदयशून्य एव । नहि जातिवधनिमित्तं पुत्रैः कार्यमिति वचनमस्ति । पुत्रकर्तृकसर्वप्रायश्चित्तादिविप्लवापत्तेः प्रागुक्तबौधायनवचनाच्चेति दिक् ।

जो किसी ने कहा है—पुत्र के किये हुए प्रायश्चित्त से पिता के पाप के नाश में प्रमाण का अभाव है। आत्मघात में तो वचन (शस्त्रघातहताश्च ये) हो महापातक में कैसे होगा। वह स्वयं ही आत्मवधप्रायश्चित्त का जातिवधनिमित्त से समुच्चय को कहते हुए हृदय शून्य ही है। जातिवधनिमित्त प्रायश्चित्त पुत्र करे—एसा वचन नहीं है। पुत्रकर्तृक सर्वप्रायश्चित्त आदि की विप्लवापत्ति (उपद्रव के आ जाने से) हो जायगी। यह पहले बौधायन वचन से कहा है।

'इदं प्रायश्चित्तार्हाणामेव । प्रायश्चित्तानर्हाणां तु पतितोदकमात्रं कार्यम् इति केचित् । मदनपारिजातादिष्वरसोऽप्येवम् ।

यह प्रायश्चित्त योग्यों के लिए ही है। जो प्रायश्चित्त अयोग्यों का तो पतितोदकमात्र करना चाहिये—यह कोई कहते हैं। मदनपारिजात आदि का भी यही अभिप्राय (तात्पर्य) ही है।

वस्तुतस्तु तदर्हानर्हयोर्वचनेऽनुपादानादविशेषात्तत्रापि नारायणबलिर्गयाश्राद्धं चेति युक्तम् ।

उचित तो यह है—वह योग्य और अग्योग के वचन में अनुपादान के विशेष हेतु के न होने के कारण वहाँ पर भी नारायणबलि और गयाश्राद्ध को करना युक्त है।

(पतितोदकविधिः)

पतितोदकविधिस्तु 'पित्राद्यतिरिक्तविषयः' इत्यपरे ।

पतितोदकविधि तो पिता से अतिरिक्त (भिन्न) विषयक है—यह दूसरे कहते हैं (आदि शब्द से माता और पति का ग्रहण है)।

स यथा हेमाद्रौ ब्राह्मे—पतितस्य तु कारुण्याद्यस्तृप्तिं कर्तुमिच्छति ।

स हि दासीं समाहूय सर्वगां दत्तवेतनाम् ॥

वह विधि यों है—हेमाद्रि में ब्रह्मपुराण का वचन है—करुणा (दया) से जो पतित की तृप्ति करने की इच्छा करता है वह सबके साथ संगम (दुराचार) करनेवाली को वेतन देकर आहूत करे।

अशुद्धघटहस्तां तां यथावृत्तं ब्रवीत्यपि । हे दासि, गच्छ मूल्येन तिलानानय सत्वरम् ॥

अशुद्ध घड़े को उसके हाथ में यथा चार देकर कहता है। हे दासि, तुम जाओ मूल्य के द्वारा तिलों को जल्दी लेकर आओ।

तोयपूर्णघटं चेमं सतिलं दक्षिणामुखी । उपविष्टा तु वामेन चरणेन ततः क्षिप ॥

तिल के सहित जल से भरे हुए उस घड़े को दक्षिणदिशा की तरफ मुख कर बैठकर बायें चरण से फेंक दो ।

कीर्तयेः पातकीसंज्ञां त्वं पिबेति मुहुर्वद । निशम्य तस्य वाक्यं सा लब्धमूल्या करोति तत् ॥ एवं कृते भवेत्तृप्तिः पतितानां न चान्यथा ॥ इति ।

पातकी का नाम लेकर कहो–हे पातकि, तू इस जल को पीओ–इसको बारंबार कहो । वह उसके इस वाक्य को सुनकर मूल्य प्राप्त की हुई वह करती है । एसा करने पर पतितों की तृप्ति होती है । अन्यथा नहीं होती है ।

इदं च मृताहे कार्यम्, 'पतितस्य दासी मृताह्नि यदा घटमपिवर्जयेद्तावताऽयमुपचरितो भवति' इति मदनरत्ने विष्णूक्तेः । इदं चात्मत्यागिविषयम्, 'आत्मत्यागिनः पतितास्ते नाशौचो-दकभाजः स्युः' इत्युपक्रम्य विष्णुना एतस्याभिधानादिति गौडाः । (उपलक्षणत्वात्सर्वेषामिति तु युक्तम् ।)

यह पतितोदकविधि मरणदिन में करनी चाहिये । मदनरत्न में विष्णु ने कहा है–दासी पतित के मरणदिन में जब घट को भी त्याग करतो है । इससे ही वह पतित कृतार्थ होजाता है । यह आत्मत्यागी के विषय में है । आत्मत्यागी जो पतित हैं वे आशौच और जल के भागी नहीं होते हैं । एसा प्रारंभ कर विष्णु ने इसका नाम नहीं कहा है—यह गौड कहते हैं । युक्त तो यह है सबों का उपलक्षण होने से युक्त है ।

(यत्तु कश्चिदाह)

यत्तु कश्चिदाह—'यः पतितो घटस्फोटेन बान्धवैर्बहिष्कृतस्तद्विषयाणि क्रियानिषेधवाक्यानि । जीवत्येव तस्मिन्नन्त्यकर्मणः कृतत्वात्तत्पुनःकरणाभावात्' इति स स्वबन्धुत्यागेन जातवैराग्यस्य कृतप्रायश्चित्तस्याप्यकरणापत्तेर्मिताक्षरादिविरोधमपश्यन्मूर्ख इत्युपेक्षणीयः । न च कृतघट-स्फोटस्य सङ्ग्रहविधिर्नेति वाच्यम् । मनुनाऽकृतस्य घटस्फोटस्य त्यागमुक्त्वा—प्रायश्चित्ते तु चरिते पूर्णकुम्भमपां नवम् । तेनैव सार्द्धं प्रास्येयुः स्नात्वा पुण्ये जलाशये ॥ इत्युक्तेः (मनुः–११।१८६) । अन्यथा प्रायश्चित्तमात्रे एतत्प्रसङ्गात् । अतो घटस्फोटेन बहिष्कृतस्यापि पित्रादे-रब्दान्ते नारायणबलिः कार्यः । निषेधास्तु पितृव्यादिपरा इति तत्त्वम् । केचित्तु नारायणबलौ कृतेऽप्यन्त्यकर्मसपिण्डनवर्जं कार्यम्,

जो किसी ने कहा है—जो पतित घट के फोड़ने से बान्धवों ने बहिष्कृत किया है उस विषय के लिये क्रियानिषेध वाक्य हैं । जीते हुए ही उसके अन्त्य कर्म के करने पर उसको फिर से करने का अभाव है । वह अपने बन्धु त्याग से उत्पन्न वैराग्य का प्रायश्चित्त करने बाद भी अकरणापत्ति होती है—यह मिताक्षरा आदि के विरोध को नहीं देखते हुए मूर्ख ही है इसलिए उपेक्षणीय (त्यागने योग्य) है । कोई कहे कि घटस्फोटन करने पर संग्रहविधि नहीं है—एसा कहे । मनु ने जिसका घटस्फोटन नहीं किया है उसके त्याग को कहकर पतित के प्रायश्चित्त के करने पर सपिण्ड और बान्धव उसके साथ नवीन जल से भरे मूतन घड़े को जलाशय में स्नान कर फेंक दे । अन्यथा प्रायश्चित्तमात्र में इसका प्रसंग हो जायगा । इसलिए घटस्फोटन से बहिष्कृत का भी पिता आदि को नारायणबलि को वर्ष के अन्त में करे । निषेध तो (क्रियानिषेध) पितृव्य आदि के विषय में है—यह तत्त्व है । कोई तो कहते हैं—नारायणबलि के करने पर भी सपिण्डन का त्याग कर करे ।

गोब्राह्मणहतानां च पतितानां तथैव च । व्युत्क्रमाच्च प्रमीतानां नैव कार्या सपिण्डता ॥ इति वचनात् । ब्राह्मणादिहते ताते पतिते सङ्गवर्जिते । इति श्राद्धप्रकारोक्तेश्चेत्याहुः । ते हेमाद्रि-स्थपूर्वोक्तषट्त्रिंशन्मतविरोधानिर्मूलत्वाच्छ्राद्धप्रकारस्य वृद्धिश्राद्धविषयत्वादुपेक्ष्या ।

वचन यों है—गौ और ब्राह्मण से मरनेवालों का वैसे ही पतितों का तथा विपरीतक्रम से मरनेवालों का सपिण्डन नहीं करनी चाहिये। श्राद्धप्रकार में भी कहा है—ब्राह्मण आदि द्वारा मरने पर पतित निषिद्ध कर्मों से मरों का सपिण्डन श्राद्ध न करे। वे हेमाद्रि से लिखे हुए पूर्वोक्त षट्त्रिंशत् मत के विरोध होने से और निर्मूल होने से (व्युत्क्रमाच प्रमीतानां नैव कार्या सपिण्डता। यदि माता यदि पिता भर्ता नैव विधिः स्मृतः॥ इस वचने से कैसे निर्मूल कहते हैं। पित्रादिभिन्नस्य सर्वथाकरणपक्षाभिप्रायकत्वात्।) श्राद्धप्रकार का वचन वृद्धिश्राद्ध के विषय में है—इसलिये उपेक्षणीय (त्यागने योग्य) है।

(हेमाद्र्याद्यनुसारेण नारायणबलिप्रयोगः)

नारायणबलिस्तु हेमाद्र्याद्यनुसारेणोच्यते। तत्रादौ क्रियानिबन्धे गारुडे तर्पणमुक्तम्—कार्यं पुरुषसूक्तेन मन्त्रैर्वा वैष्णवैरपि। दक्षिणाभिमुखो भूत्वा प्रेतं विष्णुमिति स्मरन्।

नारायणबलि तो हेमाद्रि आदि के अनुसार कहता हूँ। उसके आदि में क्रियानिबन्ध में गरुडपुराण पुराण के वचन से तर्पण कहा है। पुरुषसूक्त से या विष्णु के मन्त्रों से भी दक्षिणाभिमुख होकर विष्णुरूपी प्रेत का स्मरण करता हुआ कहे—

अनादिनिधनो देवः शङ्खचक्रगदाधरः। अक्षयः पुण्डरीकाक्षः प्रेतमोक्षप्रदो भव। इति।

आदि और अन्त से रहित देव, शंख, चक्र और गदा को धारण करनेवाले पुण्डरीकाक्ष, अक्षय्य (क्षय न होनेवाले), प्रेत को मोक्ष देनेवाले हो।

शुक्लैकादश्यां देशकालौ सङ्कीर्त्यामुकगोत्रस्यामुकस्य दुर्मरणात्मघातजदोषनाशार्थमौर्ध्वदेहिक-सम्प्रदानत्वयोग्यतासिद्ध्यर्थं नारायणबलिं करिष्ये—इति सङ्कल्प्य ब्रह्माणं विष्णुं शिवं यमं प्रेतं पञ्चकुम्भेषु—विष्णुः स्वर्णमयः कार्यो रुद्रस्ताम्रमयस्तथा। ब्रह्मारौप्यमयस्तत्र यमो लोहमयो भवेत्॥ प्रेतो दर्भमयः कार्य इति देवप्रकल्पना॥ इति गारुडोक्तासु सर्वासु हैमीषु वा प्रतिमासु षोडशोपचारैः पुरुषसूक्तेनाभ्यर्च्याग्निं प्रतिष्ठाप्य चरुं पुरुषसूक्तेन प्रत्यृचं नारायणायेद-मिति हुत्वा देवानामग्रे दक्षिणाग्रदर्भेषु विष्णुरूपं प्रेतं स्मरन्—नामगोत्राभ्यां मधुघृततिलयुतान् दश पिण्डान् यज्ञोपवीत्येव 'अमुकगोत्र अमुकशर्मन् प्रेत विष्णुरूपाऽयं ते पिण्ड उपतिष्ठताम्' इति दत्त्वा पुरुषसूक्तेनाभिमन्त्र्य 'यत्ते यमम्' इति सूक्तेन पिण्डाननुमन्त्र्य शङ्खोदकेन चाभिषिच्याभ्यर्च्या-मुकशर्माणममुकगोत्रं विष्णुरूपं प्रेतं तर्पयामि इति पुरुषसूक्तेन प्रत्यृचं तर्पयित्वा एकमामान्नं ब्रह्मा-दिपञ्चभ्यो दद्यात्।

शुक्लपक्ष की एकादशीतिथि (एकादश्यां तु शुक्लायां पञ्चम्यां श्रवणेन वा। तथा मृतानां शुध्यर्थं कार्यो नारायणो बलिः। इति वचनात् पञ्चम्यां श्रवणे वा कार्यः।) में—'देशकालौ संकीर्त्य—अमुकगोत्रस्या-मुकस्य दुर्मरणात्मघातजदोषनाशार्थमौर्ध्वदेहिकसंप्रदानत्वयोग्यतासिध्यर्थं नारायणबलिं करिष्ये। ऐसा संकल्प कर पाँच कलशों पर क्रम से [1]ब्रह्मा, विष्णु, शिव, यम और प्रेत का स्थापन करे। उसमें-विष्णु की प्रतिमा सोने की, शिव (रुद्र) की [2]प्रतिमा तांबे की, ब्रह्मा की प्रतिमा चांदी की, यम की प्रतिमा लोहे की और प्रेत

१—ब्रह्मा—हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ (ऋ० १०।१२१।१)। रुद्र—कद् रुद्राय प्रचेतसे मीढुष्टमाय तव्यसे। वोचेम शंतमं हृदे॥ (ऋ० १।४३।१) यम—यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः। यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः॥ (ऋ० १०।१४।१३)। इति टीकायाम्। अन्यत्र—ब्रह्मा—ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्तात् विसीमतः सुरुचो वेन आवः। स बुध्निया उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनि मसतश्च विवः॥ तैत्त० ब्रा० २।८।८)। विष्णु—इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्य पांसुरे॥ (ऋ० १।२२।१७)। यमाय मधुमत्तमं राज्ञे हव्यं जुहोतन। इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः॥ (ऋ०१०।१४।१५)। प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु। उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ॥ (ऋ० १०।१०३।१३)। साम० १८६२। अथर्व० ३।१६।७। यजु० १७।४६। तै० स० ४।६।४४।

२—प्रतिमासु—पुरुषसूक्तेन विष्णुः, हिरण्यगर्भ इति ब्रह्मा, कद्रुद्रायेति रुद्रः, यमाय सोम इति यमः, नाममन्त्रेण प्रेतश्च पूज्यः।

की कुशा की प्रतिमा करे। इसप्रकार देवताओं की कल्पना करे। या गरुडपुराण में कहे हुए के अनुसार सब प्रतिओं को सोने की बनवाकर षोडशोपचारों से पुरुषसूक्त से पूजन कर अग्नि की प्रतिष्ठा कर चरु का पुरुष सूक्त की प्रत्येक ऋचा से नारायण के लिये यह है यों हवन कर देवताओं के आगे दक्षिणाग्र दर्भों (कुशाओं) में विष्णुरूप प्रेत का स्मरण करता हुआ नाम और गोत्र से सहत, घृत और तिल के सहित दशपिण्डों को यज्ञोपवीती (सव्य से) ही होकर 'अमुकगोत्रामुकशर्मन् प्रेत विष्णुरूपाऽयं ते पिण्ड उपतिष्ठताम्' इससे देकर पुरुषसूक्त से अभिमन्त्रण कर [1]'यत्ते यमम्' इस सूक्त से पिण्डों का अनुमन्त्रण (मन्त्रों द्वारा आवाहन या प्रतिष्ठा) कर शंखोदकजल से अभिषेक कर पूजन कर 'अमुकशर्माणममुकगोत्रं विष्णुरूपं प्रेतं तर्पयामि' यों कहकर पुरुषसूक्त की प्रत्येक ऋचा से तर्पण कर एक आमान्न (सीधा) ब्रह्मा आदि पांच के लिये दे।

मन्त्रस्तु—ब्रह्मविष्णुमहादेवा यमश्चैव सकिङ्करः।
बलिं गृहीत्वा कुर्वन्तु प्रेतस्य च शुभां गतिम् ॥ इति।

मन्त्र यों है—ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, किंकर सहित यम बलि ग्रहण कर प्रेत की शुभ गति को करो।

मिताक्षरायां तु होमबल्यादिनोक्तम्। ततः प्रतिदैवतं त्रिविधं फलं शर्करामधुघृतगुडानि च निवेद्य पिण्डानभ्यर्च्य नद्यां क्षिप्त्वा रात्रौ नव सप्त पञ्च वा विप्रान्निमन्त्र्योपोषितेन जागरणं कृत्वा श्वोभूते पुनर्विष्णुं यमं सम्पूज्यैकोद्दिष्टविधिना श्राद्धपञ्चकं करिष्य इत्युक्त्वा ब्रह्मविष्णुशिवयमप्रेतान् स्मरन् विप्रान् उपविश्य प्रेतस्थाने चैकं विष्णुं स्मरन्नावाहनार्घ्ययुतं तृप्तिप्रश्नान्तं कृत्वोल्लेखनादिकृत्वान्नशेषेण ब्रह्मणे विष्णवे शिवाय यमाय सपरिवाराय चतुरः पिण्डान् दत्त्वा प्रेतनामगोत्रे स्मृत्वा विष्णुनाम्ना पञ्चमं दत्त्वाऽभ्यर्च्याचान्तेभ्यो दक्षिणां दत्त्वैकं प्रेतं स्मृत्वा विशेषतः सन्तोष्य विप्रैः प्रेताय 'इदं तिलोदकमुपतिष्ठताम्'इति सतिलमुदकं दापयित्वा भुञ्जीतेति। अत्र विशेषान्तरं भट्टकृतान्त्येष्टिपद्धतौ ज्ञेयम्।

मिताक्षरा में तो होम, बलि आदि नहीं कहा है। तदनन्तर प्रत्येक देवता को तीनप्रकार के फल, चीनी, सहत, घो और गुड़ का निवेदन कर पिण्डों की पूजा कर नदी में फेंककर रात्रि में नौ, सात या पांच ब्राह्मणों को निमन्त्रण कर उपवास के सहित जागरण कर प्रातःकाल फिर विष्णु और यम का पूजन कर एकोद्दिष्टविधि से 'श्राद्धपञ्चकं करिष्ये' यों संकल्प कर ब्रह्मा, विष्णु, शिव, यम और प्रेत का स्मरण कर ब्राह्मणों को वैठाकर प्रेत के स्थान में एकमात्र विष्णु का स्मरण कर पाद्य, आवाहन और अर्घ्य के सहित तृप्ति प्रश्नान्त कर उल्लेखन आदि कर अन्न शेष से ब्रह्मा, विष्णु, शिव और यम परिवारवाले के लिए चार पिण्डों को देकर प्रेत का नाम और गोत्र का स्मरण कर विष्णु के नाम से पाँचवाँ पिण्ड देकर [2]पूजन कर आचमन करा कर उनको दक्षिणा देकर ब्राह्मणों को सन्तुष्ट कर विशेष से एक प्रेत का स्मरण कर 'प्रेताय इदं तिलोदकमुपतिष्ठताम्' यों कहकर तिल के सहित जल को देकर भोजन करे। यहाँ पर विशेषान्तर बात [3]भट्टकृत अन्त्येष्टिपद्धति में जानना चाहिये।

(सर्पद्वारामृते मतमतान्तरेण विचारः)

सर्पहते तु वर्षपर्यन्तं पूर्वेऽह्न्येकभक्तपूर्वं शुक्लपञ्चम्यामुपवासनं नक्तं वा कृत्वा पिष्टमयं नागमनन्तवासुकिशङ्खपद्मकम्बलकर्कोटकाश्वतरधृतराष्ट्रशङ्खपालकालियतक्षककपिलेति नामभिः प्रतिमासं

१—यत् ते यमं वैवस्वतं मनो जगाम दूरकम्। तत् त आवर्तयामसीह क्षयाह जीवसे १ यत् ते दिवं यत् पृथिवीं मनो जगाम दूरकम्। तत्० २ यत ते भूमिं चतुर्भृष्टिं मनो जगाम दूरकम्। तत्० ३ यत् ते चतस्रः प्रदिशो म० ४ यत् ते समुद्रमर्णवं म० ५ यत् ते मरीचीः प्रवतो म० ६ यत् ते अपो यदोषधीर्म० ७ यत्ते सूर्यं यदुषसं म०८ यत्ते पर्वतान् बृहतो म० ९ यत्ते विश्वमिदं जगन्मनो १० यत्ते पराः परावतो म० ११ यत्ते भूतं च भव्यं च म० १२ (ऋ० १०।५८।१-१२)।

२—भट्टों ने कुशाओं के द्वारा पुरुषसूक्त से अभिषेक कहा है। पूजन के बाद पिण्डों को प्रवाहवाली नदी में प्रक्षेप करे पत्नी को न दे। यह भट्टों ने नहीं कहा है। २—स्नान कर गुड, शर्करा, पायस आदि के सहित स्वजनों के साथ भोजन करे—यही पद्धति में कहा हुआ विशेषान्तर है। ३—प्रेत विप्र ब्राह्मण को प्रसन्न कर बाद में अक्षय्यस्थान में तिल, दर्भ, तुलसी, पुष्प और शंखोदक की धारा दे।

सम्पूज्य पायसेन विप्रान् सम्भोज्य वत्सरान्ते हैमं नागं गां च प्रत्यक्षां च दत्त्वा नारायणबलिं कुर्यात् । मूलं तु हेमाद्रौ ज्ञेयम् ।

[1]सर्प से मरने पर तो एकसाल तक एकसमय भोजन कर शुक्लपक्ष की पञ्चमीतिथि में उपवास या नक्तव्रत (दिनभर व्रत रखना और रात को भोजन करना) को करके पिष्टमय (पिसा हुआ चूर्ण) नाग, (भट्टमत से लकड़ी या मट्टी का पांच फणोंवाला नाग बनावे), अनन्त, वासुकी, शंख, पद्म, कम्बल, कर्कोटक, अश्वतर, धृतराष्ट्र, शंखपाल, कालीय, तक्षक और कपिल इन नामों से प्रति महिने पूजन कर खीर से ब्राह्मणों को भोजन कराकर साल के अन्त में [2]सुवर्ण का नाग और गौ को देकर नारायणबलि करे। इसका मूल हेमाद्रि में देखना चाहिये ।

बौधायनसूत्रे सर्पमृतानां 'नमोऽस्तु सर्पेभ्यः' इति तिस्र आहुतीर्हुत्वा, उदके मृतानां 'समुद्राय वयुनाय' इति हुत्वेति क्रियां कुर्यादिति शेषः ।

बौधायनसूत्र में कहा है--सर्प से मरे हुओं के लिए 'नमोऽस्तु [3]सर्पेभ्यः' इस मन्त्र से तीन आहुति हवन कर तथा जल से मरों का [4]'समुद्राय वयुनाय' इस मन्त्र से हवन कर क्रिया को करे—यह शेष है ।

व्यासः---सौवर्णभारनिष्पन्नं नागं कृत्वा तथैव गाम् ।
व्यासाय दत्त्वा विधिवत्पितुरानृण्यमाप्नुयात् ॥

व्यास ने कहा है—सुवर्ण के भार (पलसहस्रद्वय) (तुला स्त्रियां पलशतं भारः स्याद्विंशतिस्तुला । अम० को० ६७३ ।) से युक्त नाग को कर और गौ का निर्माण कर विधिवत् व्यास को देकर पिता के ऋण से मुक्त हो जाता है ।

हेमाद्रौ भविष्ये---पञ्चम्यां पन्नगं हैमं स्वर्णेनैकेन कारयेत् । क्षीराज्यपात्रमध्यस्थं पूज्य विप्राय दापयेत् ॥ प्रायश्चित्तमिदं प्रोक्तं नागदष्टस्य शम्भुना ॥ इति ।

हेमाद्रि में भविष्यपुराण का वचन है–[5]"पञ्चमीतिथि को फण वाला सुवर्ण का एक नाग कराकर दूध के सहित घृत पात्रमें नाग को रखकर नाग की पूजा कर ब्राह्मण को दे । शंभु ने नाग से काटे (डसे) हुए का यह प्रायश्चित्त कहा है । (अशक्ति में प्रकारान्तर भी कहा है-दोनों पक्ष की पञ्चमीतिथि में भूमि में पिष्ट (पीसे एहु आंटे से) नाग का लेखन कर सफेद गन्ध, पुष्प आदि से तिल तथा चावलों से पूजन कर गव्य, क्षीर, मोदक (लड्डू) को भूमि में निवेदन कर खड़े होकर इसको छोड़ो, छोड़ो एसा कहे । इसप्रकार एकसाल कर नाग की पूजा कर तब सुवर्ण का नाग और गौ को दे) ।

१—अन्यत्र--सर्पव्याघ्रहता ये च ये च शस्त्रहता नराः । जले मग्ना विषं पीत्वा मृता ये शृङ्गिभिर्हताः ॥ उपलैस्ताडिता ये च लगुडैर्निहिता भृशम् । रज्ज्वा नियन्त्रिता ये च शृङ्खलायन्त्रिताश्च ये ॥ अश्वादीनां पदाघातैर्ये मृता गजपोथनैः । वृक्षाग्रात्पतिता ये च ये च पर्वतमूर्धतः ॥ शूलेन निहिता ये च वह्निना ये मृता नराः । विसूचिका गदव्याप्त्या ये मृताः क्षयपीडनात् । उत्पाद्य मरणं ये च मृतानिस्खलनादपि । ये मृता बन्धनागारे येऽज्ञानौषधसेवनात् । क्रव्यात्कृमिनिपातेन जर्जरीभूतविग्रहाः ।। इत्याद्यसदृशैर्दोषैर्मृता ये भुवि मानवाः । तेषां गत्यर्थमादिष्टो बलिर्नारायणीयकः ।

२—अनन्तो वासुकिस्तक्षकः शङ्खः पद्मकम्बलौ कर्कोटकश्चाश्वतरः धृतराष्ट्रः शङ्खपालः कालीयः कपिलश्चेति क्रमोभट्टैरुदाहृतः । इसलिए अन्त्येष्टिपद्धति के अनुसार शिष्टलोग अनुष्ठान करते हैं ।

३—नमो अस्तु सर्वेभ्यो ये के च पृथिवी मनु । ये अन्तरिक्षे ये दिवितेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ।। (ऋ० प०) !

४—समुद्राय वयुनाय सिन्धूनां पतये नमः । नदीना ँ सर्वासां पित्रे जुहुता विश्वकर्मणे विश्वाहाऽमर्त्यं ँ हविः ॥ (तैत्त० स० ४।६।२।६ पृ० १८३—बौधायनगृ० अ० ४ पृ० ११०) ।

५—गारुडे—प्रमादादिच्छया वापि नागाद्वै म्रियते यदि । पक्षयोरुभयोर्नागं पञ्चमीषु प्रपूजयेत् ॥ कुर्यात् पिष्टमयीं लेख्यां नागाभोगाकृतिं भुवि । अर्चयेत् तां सितैः पुष्पैः सुगन्धैश्चन्दनेन वा । प्रदद्यात् धूपदीपौ च तण्डुलांश्च तिलान् क्षिपेत् । आमपिष्टं च नैवेद्यं क्षीरं च विनिवेदयेत् । सौवर्णं शक्तितो नागं गां च दद्यात् द्विजन्मने । कृताञ्जलिस्ततो भूयात् प्रीयतां नागराडिति ॥ पुनस्तेषां प्रकुर्वीत नारायणबलिक्रियाम् । तया लभन्ते स्वर्वासं मुच्यन्ते सर्वपातकैः ॥

अपरार्के स्मृत्यन्तरेऽपि—तदैव शुद्ध्यति प्रेतो नारायणबलौ कृते। यो ददाति क्रियापिण्डं तस्मै प्रेताय वै सुतः॥ तस्यैवाशौचमुद्दिष्टं त्र्यहमेव न संशयः। विष्णुश्राद्धसमाप्तौ तु त्रयोदश्यां दिनत्रयम्॥ आशौचं पिण्डदः कुर्यान्न तु तद्बन्धुगोत्रजाः।

अपरार्क में स्मृत्यन्तर का भी वचन है–नारायणबलि करने पर ही प्रेत शुद्ध होता है। जो ही पुत्र क्रिया कर पिण्ड उस प्रेत के लिये देता है। उसके लिये आशौच तीनदिन का ही होता है इसमें संशय नहीं है। [1]विष्णुश्राद्ध की समाप्ति में त्रयोदशी (द्वादशाहनि—इस पूर्वोक्त पक्ष को कहकर जिसका जन्मान्तर से ब्राह्मणवध आदि से इसजन्म में प्रेत से किया हुआ सन्तत्यादिप्रकृति रूप वध या उसका नाश हो गया है इससे उसकी निवृत्ति के लिए भी नारायणबलि करे। उसमें प्रतिबन्धनिवृत्ति के सन्देह में बीर भोजन पूर्वक नारायणबलि करके उसके बाद पांचदिन के मध्य में प्रेत का और्ध्वदेहिक करे।) तिथि में पिण्ड देनेवाला तीनदिन का आशौच करे। उसके बन्धु तथा गोत्री न करे—

(व्युच्छिन्नसन्ततिमृते विचारः)

यस्य वै मृत्युकाले तु व्युच्छिन्ना सन्ततिर्भवेत्॥ स वसेन्नरके नित्यं पङ्कमग्नः करी यथा।

इत्युपक्रम्य—

मृत्युकाल में जिसको ही सन्तति नहीं हैं वह नरक में जैसे कीचड़ में धसे हाथी की दशा होती है तद्वत् ही नित्य निवास करता है। एसा उपक्रम (प्रारंभ) कर—

(गरुडपुराणादिमतेनापुत्रस्य नारायणबलिकर्मणि विचारः)

बलिं नारायणं कुर्यात्तस्योद्देशेन भक्तिमान्। इति गारुडोक्तेरपुत्रस्यापि पत्न्याद्यैः कार्य इत्युक्तं देवयाज्ञिकेन।

भक्तिमान् पुरुष उसके उद्देश्य से नारायणबलि को करे—इस गरुड़पुराण के वचन से अपुत्र की भी पत्नी आदि करे—एसा देवयाज्ञिक ने कहा है।

(त्रयाणामाश्रमाणां यतीनां च युद्धमरणे दाहादिक्रियाकरणे विचारः)

अथ विधानादाशौचाभावः। यथा यतियुद्धमृतादिषु—त्रयाणामाश्रमाणां च कुर्याद्दाहादिकाः क्रियाः। यतेः किञ्चिन्न कर्तव्यं न चान्येषां करोति सः॥ इति ब्राह्मात्।

अब विधान से आशौच का अभाव कहते हैं—जैसे संन्यासी और युद्ध में मरों का आशौच नहीं होता है। ब्रह्मपुराण में कहा है—तीन आश्रमों में रहनेवालों की दाह आदि क्रियाओं को करे और संन्यासी का कुछ भी न करना चाहिये। क्योंकि वह दूसरों का कुछ नहीं करता है।

(यतीनामेकोद्दिष्टादिश्राद्धे विचारः)

उशनाः—एकोद्दिष्टं न कुर्वीत यतीनां चैव सर्वदा।
अहन्येकादशे प्राप्ते पार्वणं तु विधीयते॥

उशना ने कहा है—संन्यासियों का सर्वदा ही एकोदिष्ट न करे। ग्यारहवें दिन के प्राप्त होने पर पार्वण का विधान करे।

१—पद्धतिः—देशकालौ संकीर्त्य–विष्णुश्राद्धाङ्गत्वेन विष्णोः पूजनं करिष्ये—इति संकल्प्य विष्णुं संपूज्य अमुककर्माङ्गत्वेन विष्णुश्राद्धं करिष्य इति संकल्प्य उदङ्मुखान् ब्राह्मणान् कुशवटून् वोपवेश्य धूरिलोचनसंज्ञकानां विश्वेषां देवानामिदमासनम्, प्रद्युम्नसङ्कर्षणवासुदेवानामेतदासनम्, धूरिलोचनौ विश्वेदेवाः दत्तं गन्धाद्यर्चनमक्षय्यं वा स्वाहा नमः। प्रद्युम्नसंकर्षणवासुदेवाः दत्तं गन्धाद्यर्चनमक्षय्यं वः स्वाहा नमः। धूरिलौचनौ विश्वेदेवाः यथाकालं दास्यमानं युग्मब्राह्मणभोजनपर्याप्तमन्नमक्षय्यं वः स्वाहा नमः, एवमन्येभ्यः। अथवाऽऽमान्नं द्विगुणं त्रिगुणं चतुर्गुणं वा तन्निष्क्रयं वा हिरण्यं वाऽक्षय्यं वा स्वाहा नमः। सकृत्सकृदपोदानम्। अश्नत्सु जपः—शिवा आपः सन्त्वित्यादि। अघोराः प्रद्युम्नसङ्कर्षणवासुदेवाः सन्तु—इति प्रार्थना। गोत्रन्नो वर्द्धतामित्यादि। धूरिलोचनौ विश्वेदेवाः इदं हिरण्यं तन्निष्क्रयं वा दक्षिणामक्षय्यं वः स्वाहा नमः। विश्वेदेवाः प्रीयन्ताम्। ॐ वाजे वाजे। ॐ आमावाजस्येत्यनुगमनमिति विष्णुश्राद्धं मयूखे नारायणभट्टैस्तु मूलपद्धत्यनुसारेणोक्तम्।

सपिण्डीकरणं तेषां न कर्तव्यं सुतादिभिः । त्रिदण्डग्रहणादेव प्रेतत्वं नैव जायते ॥

संन्यासियों का पुत्र आदि सपिण्डीकरण न करे । क्योंकि—त्रिदण्ड के ग्रहण से ही प्रेतत्व नहीं होता है ।

पूर्व

(अष्टशक्तियों का स्थापन)

ईशान

आग्नेय

रुक्मिण्यै नमः १

सत्यभामायै नमः २

कलश सत्येश

उत्तर

दक्षिण

(हवन वेदी)

तत्संस्कारं वक्ष्यामः । दत्तात्रेयः—एकोद्दिष्टं जलं पिण्डमाशौचं प्रेतसत्क्रियाम् । न कुर्याद्वार्षिकादन्यत् ब्रह्मीभूताय भिक्षवे ॥ वार्षिकादिति पूर्वभाविमासिकादिनिषेधो न तु दर्शादेः ।

संन्यासी के संस्कार को आगे कहेंगे । दत्तात्रेय ने कहा है—ब्रह्मीभूत भिक्षुक के लिए वार्षिकश्राद्ध त्याग कर एकोद्दिष्ट, जल, पिण्ड, आशौच तथा प्रेत की क्रिया को न करे । वार्षिकश्राद्ध से पहले होनेवाले मासिकश्राद्ध आदि का निषेध है दर्शश्राद्ध आदि (अमावास्याश्राद्ध) का निषेध नहीं है ।

संन्यासिनोऽप्याब्दिकादि पुत्रः कुर्याद्यथाविधि । इति वायवीयोक्तेः ।

क्योंकि वायुपुराण का वचन है—संन्यासी का भी यथाविधि (महालये तु यच्छ्राद्धं द्वादश्यामेव तद्भवेत् । इत्युत्तरार्धम्) आब्दिक आदि श्राद्ध पुत्र करे ।

पृथ्वीचन्द्रोदये प्रजापतिः—अहन्येकादशे प्राप्ते पार्वणं तु विधीयते । सपिण्डीकरणं तस्य न कर्तव्यं सुतादिभिः ॥

पृथ्वीचन्द्रोदय में प्रजापति ने कहा है—ग्यारहवें दिन के प्राप्त होने पर पार्वण का विधान करे । पुत्र आदियों को उसका सपिण्डीकरण नहीं करना चाहिये ।

एषु सपिण्डनादिनिषेधानुवादेन पार्वणोक्तेः तत्स्थानापन्नत्वं पार्वणस्य गम्यते । न गिरागिरेति ब्रूयादैरं कृत्वोद्गेयम् । इतिवत् । इदं वार्षिकादिविधानं च त्रिदण्डिपरम् । एकदण्डि-

पूर्व

(नारायणबलि में एकादश विष्णु-श्राद्ध)

सव्य-विष्णु ११ (अपसव्य-प्रेत १०, तत्पुरुष ६ रुद्र ८ मृत्यु ७ कव्यवाहन ६ हव्यवाहन ५ सोमराज ४ यम ३ शिव २ विष्णु १—सव्यसे)

*	*	*	*	*	*	*	*	*	*	*	(आसन)
*	*	*	*	*	*	*	*	*	*	*	(भोजनपात्र)
*	*	*	*	*	*	*	*	*	*	*	(अर्घपात्र)
*	*	*	*	*	*	*	*	*	*	*	(जलपात्र)
*	*	*	*	*	*	*	*	*	*	*	(घृतपात्र)
*	*	*	*	*	*	*	*	*	*	*	(पिण्डाधारवेदी)
*	*	*	*	*	*	*	*	*	*	*	(अवनेजनपात्र, यही पात्र प्रत्यनेजन बादमें हो जाते हैं।)

उत्तर — दक्षिण

नोट—प्रेत की महातृषा के निवारणार्थ प्रत्येक पिण्ड पर एक-एक वैदिक मन्त्र को पढ़कर दो-दो जल की अञ्जलि दे।
फिर एकतन्त्र से तीन बार जलधारा देना चाहिये।

पश्चिम

पूर्व

(नारायणबलि में पञ्चश्राद्ध)

(सब द्रव्यों के अभाव में सुवर्ण की मूर्ति बनवावे)

(अपसव्य) प्रेत ५, (कुशा)	यम ४ (लोहा)	रुद्र ३ (ताँबा)	विष्णु २ (सुवर्ण)	ब्रह्मा १—सव्य) (चाँदी)	(मूर्ति)
❋	❋	❋	❋	❋	(कलश)
❋	❋	❋	❋	❋	(आसन)
❋	❋	❋	❋	❋	(भोजनपात्र)
❋	❋	❋	❋	❋	(अर्घपात्र)
❋	❋	❋	❋	❋	(जलपात्र)
❋	❋	❋	❋	❋	(घृतपात्र)
❋	❋	❋	❋	❋	(पिण्डाधारवेदी)
❋	❋	❋	❋	❋	(अवनेजनपात्र ही बाद में प्रत्यवनेजन हो जाते हैं)

उत्तर — दक्षिण

नोट—प्रेत की महातृषा की निवृत्ति के लिए प्रत्येक पिण्डपर दो-दो वैदिक मन्त्रों को पढ़कर एक-एक अञ्जलि देना चाहिए।

पश्चिम

परमहंसादीनां तु न किमपि कार्यम् । पूर्वोक्तोशनोवाक्ये त्रिदण्डिग्रहणादिति शूलपाण्यादयो गौडाः । त्रिदण्डिशब्देन मनोदण्डादिदण्डत्रयोक्तेः । यस्यैते नियता दण्डाः सत्रिदण्डीति चोच्यते । इति स्मृतेः ।

इन वचनों में सपिण्डन आदि के निषेध के अनुवाद से पार्वण कहा है । सपिण्डीश्राद्ध के स्थानापन्न पार्वण को जानना चाहिये । 'न [1]गिरा गिरेति ब्रूयादैरं कृत्वोद्गेयम्' इसकी तरह । और यह वार्षिक आदि का विधान त्रिदण्डियों के लिए ही है । एकदण्डि, परमहंस (उत्तम कोटि का संन्यासी) आदियों का कुछ भी नहीं करना चाहिये । क्योंकि--पहले कहे हुए उशना के वाक्य में त्रिदण्डी का ग्रहण है—यह शूलपाणी आदि गौड कहते है । [2]त्रिदण्डीशब्द से मनोदण्ड आदि तीनदण्ड कहा है। क्योंकि स्मृति में कहा है--जिसके ये नियत दण्ड हैं वह त्रिदण्डी कहा जाता है ।

(यतेर्नारायणबलिः)

बौधायनः—नारायणबलिश्चास्य कर्तव्यो द्वादशेऽहनि । अस्य पार्वणेन समुच्चयो ज्ञेयः ।

बौधायन ने कहा है--इसकी नारायणबलि बारहवें दिन (तेरहवें दिन आदि में न करे ।) करनी चाहिये । इसका पार्वण के साथ समुच्चय (इकट्ठा) जानना चाहिये ।

तं च स एवाह—कृत्वा विष्णोर्महापूजां पायसं विनिवेदयेत् ।
अग्नौ हुत्वा तु तच्छेषं व्याहृतीभिः समाहितः ॥

इसको भी बौधायन ने भी कहा है--श्रीविष्णु की महापूजा कर पायस (खीर) का निवेदन करे । समाहित (सावधान) मन से व्याहृतियों से अग्नि में हवन करे ।

यतीन् गृहस्थान् साधून्वा निमन्त्र्य द्वादशावरान् । अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैर्मन्त्रैर्द्वादशनामभिः ॥ सम्भोज्य हव्येनान्नेन दक्षिणां च निवेदयेत् । त्रयोदशं द्विजश्रेष्ठमात्मसंज्ञं यतेन्द्रियम् ॥ विष्णुं यथा तथाऽभ्यर्च्य पाद्याद्यैश्च विधानतः । दद्यात्पुरुषसूक्तेन गन्धपुष्पादिकं क्रमात् ॥

संन्यासी, गृहस्थ या साधु श्रेष्ठ बारह पुरुषों को निमन्त्रण कर बारह [3]नामों के मन्त्रों से गन्ध, पुष्प आदि से पूजन कर हव्यान्न से भोजन कराकर दक्षिणा निवेदन करे और तेरहवें आत्मज्ञ, संयतेन्द्रिय, (जितेन्द्रिय) उत्तम विष्णुरूप द्विज को यथायोग्य विधान द्वारा पाद्य आदि से पूजन कर पुरुषसूक्त से गन्ध, पुष्प आदियों को क्रम से दे ।

१—ज्योतिष्टोमयज्ञ में 'यज्ञायज्ञ' से साम का गान होता है, वहाँ यह ऋचा है—'यज्ञा यज्ञा वोऽग्नये गिरा गिरा च दक्षसे' आदि वहाँ यह वैदिक पाठ है । अनुष्ठानकाल में समय में ऐरा पद को रखकर गान करना चाहिये 'ऐरा ऐरा च दक्षसे' इति ऐरा पद का विधान होने से ही गिरा पद का निषेध होता है अतः वह नित्य अपवाद है अर्थात्—अनुष्ठान समय में गिरा पद को नहीं करे, 'ऐरा पद' को ही करना चाहिये । इसलिये गिरा पद के निषेध का नित्य अनुवाद है एसा नवें अध्याय के प्रथम पाद के अन्त में है । उसी दृष्टान्त से संन्यासियों का पार्वण का विधान होने के कारण सपिण्डन आदि का निषेध नित्य अनुवाद है । उपरोक्त बचनों से एकोदिष्ट सपिण्डन आदि के स्थानापन्न होने के कारण सपिण्डन आदि का निषेध अनुवाद है । अर्थात्—संन्यासियों को पार्वणश्राद्ध ही करना चाहिये सपिण्डन आदि नहीं एसा समझना चाहिये ।

२—धर्मनिष्ठ साधु या संन्यासी जिसने सांसारिक विषयवासनाओं का त्याग कर दिया है तथा जो अपने दहिने हाथ में तीन दण्ड (एक जगह मिलाकर बँधे हुए) को रखता है । जिसने अपने मन, वाणी तथा शरीर को वश में कर लिया है । वाग्दण्डोऽथ मनोदण्डः कायदण्डस्तथैव । यस्यै ते निहिता बुद्धौ त्रिदण्डीति स उच्यते ॥ (मनु० अ० १२ श्लो० १०) । शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां तरः । वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैरन्त्यजातिताम् ॥ त्रिदण्डमेतन्निक्षिप्य सर्वभूतेषु मानवः । कामक्रोधौ तु संयम्य ततः सिद्धिं नियच्छति ॥ (मनु० अ० १२।१०,११)

३—केशवाय नमः १ नारायणाय नमः २ माधवाय नमः ३ गोविन्दाय नमः ४ विष्णवे नमः ५ मधुसूदनाय नमः ६ त्रिविक्रमाय नमः ७ वामनाय नमः ८ श्रीधराय नमः ९ हृषीकेशाय नमः १० पद्मनाभाय नमः ११ अनिरुद्धाय नमः १२ ।

वस्त्रालङ्करणादीनि यथाशक्ति प्रदापयेत् । उच्छिष्टसन्निधौ तस्य दर्भानास्तीर्य भूतले ॥ भूर्भुवः-स्वःस्वधायुक्तैस्तस्मै दद्याद् बलित्रयम् । अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च ॥ यत्फलं तल्लभेदेवं यत्करोति यतिक्रियाम् ।

यथाशक्ति वस्त्र, अलंकार आदि दे । उस ब्राह्मण के उच्छिष्ट के समीप पृथ्वी पर कुशाओं का आस्तरण कर (बिछाकर) भूः स्वधा, भुवः स्वधा, स्वः स्वाहा, इनको स्वधा के सहित उसके लिये तीन बलि दे । हजार अश्वमेधयज्ञ (एवं यः कुरुते विद्वान् नारायणबलिं द्विजः । विष्णुलोकमवाप्नोति पुरुषो नात्र संशयः ।।) और सौ वाजपेय का जो फल होता है वही फल जो संन्यासी की क्रिया को करता है उसको प्राप्त होता है ।

(शौनकमते नारायणबलिविचारः)

शौनकस्तु--शौनकोऽहं प्रवक्ष्यामि नारायणबलिं परम् । चाण्डालादुदकात् सर्पात् ब्राह्मणाद्वैद्युतादपि ॥ दंष्ट्रिभ्यश्च पशुभ्यश्च रज्जुशस्त्रविषाश्मभिः । देशान्तरमृतानां च मृतानां वाऽन्यसाधनैः ॥ जीवच्छ्राद्धमृतानां च कनिष्ठानां तथैव च । यतीनां योगिनां पुंसामन्येषां मोक्षकाङ्क्षिणाम् ॥ पुण्यायाघक्षयार्थाय द्वादशेहनि कारयेत् । द्वादश्यां श्रवणेऽब्दान्ते पञ्चम्यां पर्वणोस्तु वा ॥ इत्युक्त्वा पूर्वोक्तं सर्वं विधिमुक्त्वा अतो देवेतिषड्भिः पुरुषसूक्तेन च प्रत्यृचं पायसं हुत्वा केशवादिद्वादशनामभिस्तद्रूपिणे पित्रे द्वादश विप्रान् सम्भोज्य तैरेव द्वादशपिण्डान् दद्यादित्यधिकमाह । युद्धमृते तु प्रागुक्तम् ।

शौनक ने तो कहा है—मैं शौनक उत्तम (श्रेष्ठ) नारायणबलि को कहता हूँ । चाण्डाल, जल, सर्प, ब्राह्मण, बिजली, दांतवाले पशु, रस्सी, शस्त्र, विष और पत्थर से देशान्तर में मरों का या अन्य साधनों से मरनेवालों का, जीवच्छ्राद्ध कर मरनेवालों का, वैसे ही छोटों के मरों का श्राद्ध यतियों (संन्यासियों का–जिसने संसार को त्याग दिया है और अपनी इन्द्रियों को वश में कर लिया हो) का, योगियों (चिन्तनशील महात्माओं) का और अन्य मोक्षाभिलाषि पुरुषों का, पुण्य के लिये और पापक्षय के लिए बारहवें दिन श्रवण नक्षत्र युक्त द्वादशी में, वर्ष के अन्त में या पञ्चमीतिथि में या पर्व में नारायणबलि करावे । एसा कहकर पूर्वोक्त सब विधि को कहकर [1]'अतो देवा' इस छ ऋचाओं से और पुरुषसूक्त की प्रत्येक ऋचा द्वारा खीर से हवन कर केशव आदि बारह नामों से तद्रूप पिता के लिए बारह ब्राह्मण को भोजन कराकर उन्हीं नामों से बारह पिण्डों को दे यह अधिक कहा है । युद्ध में तो मरने पर तो पहले कह चुके हैं ।

(कृतजीवच्छ्राद्धे मृते सपिण्डैराशौचादिकविचारः)

कृतजीवच्छ्राद्धे मृते सपिण्डैराशौचादिकार्यं न वा । तदुक्तं हेमाद्रौ लैङ्गे--मृते कुर्यान्न कुर्याद्वा जीवन्मुक्तो यतः स्वयम् । काले गते द्विजे भूमौ खनेद्वापि दहेत वा ॥ पुत्रकृत्यमशेषं च कृत्वा दोषो न विद्यते ।

जीवच्छ्राद्ध करके मरने पर तो सपिण्ड आदि आशौच आदि करें या न करें । उसी बात को हेमाद्रि में लिंगपुराण का वचन कहा है—वह स्वयं जीवनमुक्त है । इसलिए मरने पर आशौच आदि करें या न करें । द्विज के मरने पर भूमि में गाड़ दे या दाह करे । पुत्र के संपूर्णकृत्य करने पर दोष नहीं है ।

(कृतजीवच्छ्राद्धे बान्धवानां मरणे विचारः)

जीवत्यपि विशेषस्तत्रैवोक्तः--नित्यं नैमित्तिकं यत्तु कुर्याद्वा सन्त्यजेत वा । बान्धवेऽपि मृते तस्य नैवाशौचं विधीयते । सूतकं च न सन्देहः स्नानमात्रेण शुद्ध्यति । एतद्योगिविषयं, 'योगमार्गरतोऽपि च' इति तस्याप्युक्तेः ।

१—अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे । पृथिव्याः सप्त धामभिः १ इदं विष्णुर्विक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूल्हमस्य पांसुरे २ त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः । अतो धर्माणि धारयन् ३ विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा४ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ५ तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते । विष्णोर्यत्परमं परम् ॥ (ऋ० म० सू० २२। म० १६-२१) ।

जीते हुए के विषय में वहीं पर कहा है—नित्य और नैमित्तिक कर्म को करे या त्याग दे। उसके मरने पर बान्धवों के आशौच का विधान नहीं ही होता है। उसका सूतक का सन्देह नहीं होता है। स्नानमात्र से शुद्ध होता है। यह योगी के विषय में (यह योगियों को नित्य है और नैमित्तिकद्वय कृताकृत (विकल्प) है। सपिण्ड के मरने पर सद्यःशौच ही होता है यह अर्थ है। (क्योंकि—चाहे योगमार्ग में भी रत हो। उसका भी कहा है)।

(आहिताग्नौ प्रोषितमृते तदस्थिदाहात्पूर्वं पुत्रादीनामाशौचादिविचारः)

तथा आहिताग्नौ प्रोषितमृते तदस्थिदाहात्पूर्वं पुत्रादीनामाशौचम्। सन्ध्यादिकर्मलोपश्च नास्ति।

और आहिताग्नि के परदेश में मरने पर उसके अस्थिदाह के पूर्व पुत्र आदि (आदि शब्द से पत्नी, कन्या दौहित्र आदि) को आशौच और सन्ध्या आदि के कर्म का लोप नहीं होता है।

अनग्निमत उत्क्रान्तेराशौचादिद्विजातिषु। दाहादग्निमतो विद्याद्विदेशस्थे मृते सति ॥ इति स्मृतेः।

स्मृति में कहा है—बिना अग्निहोत्री के मरने पर द्विजातियों को आशौच होता है और अग्निहोत्री के विदेश में मरने पर दाह से आशौच होता है।

आहिताग्नेर्दाहात्प्रागपि दशाहः संस्काराङ्गं च भिन्नो दशाह इति धूर्तस्वामीरामाण्डारश्च। तच्चिन्त्यम्, मूलैक्याद्वचोविरोधाच्च। एतत् प्रागुक्तम्।

आहिताग्नि का दाह से पहले भी मरने पर दशदिन का आशौच होता है। क्योंकि संस्कार के अंग का आशौच दशदिन का भिन्न होता है—यह धूर्तस्वामी तथा रामाण्डार कहते हैं। वह विचारणीय है। क्योंकि मूल एक है और वचन का विरोध है। यह पहले कह चुके हैं।

(आहिताग्निमरणे विचारः)

अत्र देहस्यैव सम्भवे दाहः, आहिताग्नौ विदेशस्थे मृते सति कलेवरम्। निधेयं नाग्निभिर्यावत्तदीयैरपि दह्यते ॥ इति ब्राह्मोक्तेः।

यहाँ पर शरीर के ही संभव में ब्रह्मपुराण में दाह कहा है। आहिताग्नि के विदेश में मरने पर कलेवर (शरीर) को तैल की कढाई आदि में (पर्युषितदोष के अपवाद के भय से) रखे। क्योंकि जबतक उसकी ही अग्नि से दाह नहीं होता है तबतक कोई दूसरा मार्ग नहीं है।

(मृतशरीरस्याप्राप्ते विचारः)

तदभावे छन्दोगपरिशिष्टे—विदेशमरणेऽस्थीनि आहृत्याभ्यज्य सर्पिषा। दाहयेद्बर्हिषाच्छाद्य पात्रन्यासादि पूर्ववत् ॥

उसके अभाव में छन्दोगपरिशिष्ट में कहा है—देशान्तर में मरने पर (पराक छ या आठ कृच्छ्र कर अस्थियों का दाह करे। (पराक माने बारहदिन का उपवास या उसके प्रत्याम्नाय एक उपवास में एक ब्राह्मण भोजन, पराक में पांच या तीन प्राजापत्य करे) अस्थियों को ले आकर घी लगाकर कुशाओं से आच्छादित (ढक) कर दाह करावे। पात्रों का न्यास आदि पहले की तरह करे।

(अस्थ्याद्यलाभे पलाशादिना दाहविधि कथनम्)

अस्थ्नामलाभे पर्णानि शकलान्युक्तयावृता। दाहयेदस्थिसंख्यानि ततः प्रभृति सूतकम् ॥

[1]अस्थि के अलाभ में पलाश के सब पत्तों से (कल्पतरु में कहा है—अस्थीनि चेन्न लभ्यन्ते प्रोषितस्याग्निहोत्रिणः। पलाशपत्रवृन्तानां षष्ट्यधिकशतत्रयम् ॥ कृष्णाजिने नराकारं कृत्वा वेष्ट्याऽऽजिनेन तम्। ऊर्णासूत्रेण बध्वैव यवपिष्टैः प्रलेपयेत् ॥ निर्दिश्य दद्यात्तत्तोयं नाम्नेत्याश्वलायनः। अङ्क्त्वाऽऽज्येन दहेत्कृत्वा [2]मृद्दिग्धं तं च [3]पार्श्वतः।) स्वशाखोक्त अनुष्ठान पद्धति के द्वारा दाह करे। तदनन्तर उसीसमय सूतक होता है।

१—यदि अस्थियों को चाण्डाल आदि ने स्पर्श किया है तो पञ्चगव्य और गंगाजल से प्रक्षालन कर विधि से दाह करे। अन्य तो पञ्चगव्यादिप्रोक्षण अविशेष (विशेष हेतु के न रहने से) इच्छा करते हैं।

२—यवपिष्टलेपन के बाद मृत्ति का आदियों से आलेपन कर दग्ध कर हड्डी के स्थान में उसका दग्ध कर मृत्तिका को इकट्ठा करे—यह अर्थ है।

३—शिरोमणि में कहा है—पुनन्तु मा, और इमं मे वरुण इन दो मन्त्रों से प्रेत का धारण करे।

हेमाद्रौ षट्त्रिंशन्मते—कुर्याद्दर्भमयं प्रेतं दर्भैस्त्रिशतषष्टिभिः ।
पालाशोभिः समिद्भिर्वा संख्या चैवं प्रकीर्तिता ॥

हेमाद्रि में षट्त्रिंशत् का मत है—तीनसौ साठ कुशाओं से प्रेत बनावे और पालाश या समिधाओं की उतनी ही संख्या कही गयी हैं ।

(तत्र पलाशादिना प्रेतरूपीदेहस्य कल्पना)

भविष्ये—चत्वारिंशत् शिरःस्थाने ग्रीवायां च दशैव तु । बाह्वोश्चैव शतं दद्याद्विंशतिं च तथोरसि ॥ उदरे विंशतिं दद्यात्त्रिंशतं कटिदेशयोः । ऊर्वोश्चैव शतं दद्यात्त्रिशतं जानुजङ्घयोः ॥ पादाङ्गुलीषु दश वै एषा च प्रेतकल्पना ।

भविष्यपुराण का वचन है—शिर के स्थान में चालीस, ग्रीवा में दश ही, दोनों भुजाओं सौ (अर्थात्—प्रत्येक भुजा में पचास पचास) छाती में बीस, उदर में बीस, कटिदेशों में तीस, ऊरु के दोनों भागों में सौ, जानु और जंघाओं में तीस (अर्थात्—दोनों जंघाओं में क्रम से पन्द्रह-पन्द्रह) पैरों की अंगुली में दश (दोनों पैर में क्रम में पांच पांच) इसतरह प्रेत की कल्पना करे ।

मदनरत्ने यज्ञपार्श्वः—शिरस्यशीत्यर्द्धं दद्यात् ग्रीवायां तु दशैव तु । बाह्वोश्चैव शतं दद्यात् दश चैवाङ्गुलीषु च ॥ उरसि त्रिंशतं दद्याद्विंशति जठरोदरे । द्वादशार्द्धं वृषणयोरष्टार्द्धं शिश्न एव तु ॥ ऊर्वोश्चैकशतं दद्यात्त्रिंशतं जङ्घयोर्द्वयोः । पादाङ्गुलीषु द्वे दद्यादेतत्प्रेतस्य कल्पनम् ॥

मदनरत्न में यज्ञपार्श्व ने कहा है—शिर में चालीस, गर्दन में दश, प्रत्येक बाहु में पचास पचास इस प्रकार सौ, हाथों की अंगुलियों में दश, छाती में तीस, पेट में बीस, प्रत्येक अण्डकोष में तीन-तीन, लिंग में चार, प्रत्येक ऊरु (जंघा) में पचास इसतरह एक सौ, जंघा से पैर के तलुए तक प्रत्येक में पन्द्रह इसतरह-तीस और पैर की अंगुली में दो, यह प्रेत की कल्पना कही है ।

(निर्मितप्रेतस्य मस्तकादौ नारिकेलादिकानां स्थापने विचारः)

मस्तके नारिकेरं तु अलाबुं तालुके तथा । पञ्चरत्नं मुखे न्यस्य जिह्वायां कदलीफलम् ॥ चक्षुषोस्तु कपर्दौ द्वौ नासिकायां तु कालकम् । कर्णयोर्ब्रह्मपत्राणि केशे वटप्ररोहकाः ॥ नालकं कमलानां तु आन्त्रस्थाने विनिर्दिशेत् । मृत्तिका तु वसा धातुर्हरितालकगन्धकौ ॥ शुक्र तु पारदं दद्यात् पुरीषे पित्तलं तथा । सन्धीषु तिलपिष्टं तु मांसे स्याद्यवपिष्टकम् ॥ मधु स्याल्लोहितस्थाने त्वचास्थाने मृगत्वचा । स्तनयोर्गुञ्जके (जम्बीरे) देये नासायां शतपत्रकम् ॥ कमलं नाभिदेशे स्याद् वृन्ताके वृषणाश्रिते । लिङ्गे च रक्तमूलं तु परिधानं दुकूलकम् ॥ गोमूत्रं गोमयं गन्धं सर्वौषध्यादि सर्वतः ॥ इति ।

मस्तक में—नारिकेल,[१] तालूमें—अलाबू (तुंबी), मुखमें—पञ्चरत्न, जिह्वा में-केलेका फल, नेत्रों में—दो कौडी, नासिका में—कालक (औषधी विशेष), कानों में—ब्रह्मपत्र (ब्राह्मी), केश में—वटरोह, आंतों में कमल की नाली, वसा (चर्बी) के स्थान में—मृत्तिका, धातु के स्थान में—हरिताल तथा गन्धक, वीर्यस्थान में—पारा, पुरीष (विष्ठा) के स्थान में—पीतल, सन्धियों में—तिल की खली,

---

१—धर्मसिन्धौ—शिरसि नारिकेरफलं वर्तुलालांबु वा, ललाटे कदलीपत्रम्, दन्ते दाडिमबीजानि, कर्णयोः कङ्कणं ब्रह्मपत्रं वा, चक्षुषोः कपर्दौ, नासिकायां तिलपुष्पम्, नाभावब्जम्, स्तनयोर्जम्बीरफलद्वयम् वाते मनः-शिलाम्, पित्ते हरितालम्. कफे समुद्रफेनम्, रुधिरे मधु, पुरीषे गोमयम्, मूत्रे गोमूत्रम्, रेतसि पारदम्, वृषणयोर्वृन्ताकम्, शिश्ने गृञ्जनम्. केशेषु वनसूकरसटा वटप्ररोहा वा, लोमसु ऊर्णाम्, मांसे माषपिष्टलेपः, पञ्चगव्यः पञ्चामृतैश्च सर्वतः सिञ्चतम् । पुनर्नो असुम्, असुनीते, इत्यृग्भ्यां प्राणप्रवेशं भावयेत् । यद्वा 'यते यम्' इति सूक्तेन । 'शुक्रमसि' इति पारदं क्षिप्त्वा 'अश्मीम्याम्' इति शरीरं स्पृशेत् ।

मांस में—यव की पिट्ठी, रुधिर में—सहत, त्वचा स्थान में—मृग की त्वचा, स्तनों में—जम्बीरफल (चकोतरा, निम्बू की जाती का) (गुंजा—गुंजा नाम की एक छोटी भाडी होती है जिसके लाल बेर जैसे फल लगते हैं), नासिकाओं में शतपत्र (गेंदा), नाभिदेश में—कमल, वृषणों में—भण्टा, लिंग में—लालमूली, ढकने के लिए दुपट्टा, गोमूत्र, गोबर, गन्ध और सर्वौषधी को सब तरफ लगा दे।

क्रियानिबन्धे गारुडेऽप्येवमुक्त्वान्यदपि—घृतं नाभ्यां तु देयं स्यात्कौपीने च त्रपु स्मृतम्। मौक्तिकं स्तनयोर्मूर्ध्नि कुङ्कुमेन विलेपनम्॥ सिन्दूरं नेत्रकोणेषु ताम्बूलाद्युपहारकैः। सर्वौषधियुतं कृत्वा पूजां चैव यथोदिताम्॥ इदं निरग्नेरपि।

क्रियानिबन्ध और गरुडपुराण में भी इसीप्रकार कहकर अन्य भी कहा है—नाभी में घृत दे, कौपीन में—त्रपु (रांगा), स्तनों में—मोती और कुंकुम (केसर) का लेपन करे।

नेत्र के कोनों में सिन्दूर लगा दे। तांबूल आदि उपहार (सामग्री) तथा सर्वौषधि से प्रेत को युक्त कर कही हुई पूजा को करे। यह निरग्निक को भी है।

(प्रोषितस्य द्वादशाब्दातिक्रमे विचारः)

तत्रैव वृद्धमनुः—प्रोषितस्य तथा कालो गतश्चेद्द्वादशाब्दिकः।
प्राप्ते त्रयोदशे वर्षे प्रेतकर्माणि कारयेत्॥

वहीं पर वृद्धमनु ने कहा है—यदि परदेश (देशान्तर) में गये बारह साल का समय हो गया हो तो तेरहवें साल में प्रेत के कार्यों को करा दे।

बृहस्पतिः—यस्य न श्रूयते वार्ता यावद् द्वादशवत्सरात्।
कुशपत्रकदाहेन तस्य स्यादवधारणा॥

बृहस्पति ने कहा है—बारह साल तक जिसकी कोई बात न सुनी हो तो कुशपत्रक (पुत्तल) दाह से उसको क्रिया निश्चित करा दे।

भविष्ये—पितरि प्रोषिते यस्य न वार्ता नैव चागमः। ऊर्ध्वं पञ्चदशाद्वर्षात्कृत्वा तत्प्रतिरूपकम्॥ कुर्यात्तस्य तु संस्कारं यथोक्तविधिना ततः। तदादीन्येव सर्वाणि प्रेतकार्याणि कारयेत्॥ द्वादशाब्दप्रतीक्षा पितृभिन्नविषयेति मदनरत्ने उक्तम्।

भविष्यपुराण में कहा है—पिता के देशान्तर में जाने बाद जिसकी बात और आगमन हुआ न सुना हो तो पन्द्रह साल के बाद उसका प्रतिरूप (पुत्तल) कर उसका संस्कार पूर्व में कहे हुए विधान से सब प्रेत कर्मों को करा दे। बारहवर्ष की प्रतीक्षा पिता से भिन्न विषयक है—यह मदनरत्न में कहा है।

गृह्यकारिकायां तु—तस्य पूर्ववयस्कस्य विंशत्योर्ध्वं ततः क्रिया। ऊर्ध्वं पञ्चदशाब्दात्तु मध्यमे वयसि स्मृता॥ द्वादशाद्वत्सरादूर्ध्वमुत्तरे वयसि स्मृता। चान्द्रायणत्रयं कृत्वा त्रिंशत्कृच्छ्राणि वा सुतैः॥ कुशैः प्रतिकृतिं दग्ध्वा कार्या शौचादिका क्रिया॥ इत्युक्तम्।

गृहकारिका में तो कहा है (यह पक्ष अच्छे लोगों द्वारा ग्रहण किया गया है।) पूर्ववयस्क (पहली अवस्था) हो तो बीससाल के बाद, मध्यावस्था में तो पन्द्रह साल बाद, उत्तर अवस्थावाला हो तो बारह साल बाद क्रिया करे। पुत्र तीन चान्द्रायण या तीस कृच्छ्र करें। कुशाओं से आकृतिरूप पुत्तल बनाकर उसको जलाकर शौच आदि क्रिया करें—एसा कहा है।

(देशान्तरमृतस्य दिनाद्यज्ञाने)

पराशरः—देशान्तरगतो नष्टस्तिथिर्न ज्ञायते यदि। कृष्णाष्टमी ह्यमावास्या कृष्णा चैकादशी तथा॥ उदकं पिण्डदानं च तत्र श्राद्धं च कारयेत्। इदं मासज्ञाने।

पराशर ने कहा है—देशान्तर में जाकर मरने पर यदि जिसकी तिथि का ज्ञान न हो तो कृष्णपक्ष की अष्टमी, अमावास्या और कृष्णपक्ष की जो एकादशीतिथि है उसमें उदकदान, पिण्डदान और श्राद्धकर्म करा दे। यह मास के ज्ञान में है।

(आहिताग्न्यादीनामाशौचविचारः)

तत्राहिताग्नेः पूर्णाशौचम् । अनाहिताग्नेस्तु त्रिरात्रम्, अनाहिताग्नेर्देहस्तु दाह्यो गृह्याग्निना स्वयम् ।

वहाँ पर आहिताग्नि का पूर्ण आशौच होता है । अनाहिताग्नि का दो तीनरात का होता है । अनाहिताग्नि की देह को गृह्याग्नि से स्वयं दहन करे ।

(शरीरस्याप्राप्ते विचारः)

तदलाभे पलाशानां वृन्तैः कार्यः पुमानपि ॥ वेष्टितव्यस्तथा यत्नात् कृष्णसारस्य चर्मणा । ऊर्णासूत्रेण बद्ध्वा तु प्रलेप्तव्यो यवैस्तथा ॥ सुपिष्टैर्जलसम्मिश्रैर्दग्धव्यश्च तथाग्निना । असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेत्युक्त्वा स्वबान्धवैः ॥

उसके अभाव में पलाश के पत्तों के समूहों से पुरुषाकृति का निर्माण करे । कृष्णसारमृग (स्वभाव से काले रंग का मृग, मनु—२।२३, याज्ञ० आचा० २) के चमड़े से यत्न से उसको वेष्टन करना चाहिये । ऊन के सूत से बांधकर जल से मिश्रित अच्छीतरह से पीसे हुए यव के आंटे का लेपन करे और 'असौ 'स्वर्गाय लोकाय स्वाहा' इसको कहकर बान्धव के सहित अग्नि में जला दे ।

(पर्णशदाहानन्तरं सूतकविचारः)

एवं पर्णशरं दग्ध्वा त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥ इति ब्राह्मोक्तेः ।

इसप्रकार पर्णशर (पर्णः—पलाशः, तस्य शरः, पर्णत्रयवृन्तं तन्निमित्तं प्रतिरूपकम्) को जलाकर तीनरात अशुचि रहता है । यह ब्रह्मपुराण में कहा है ।

(पर्णशरस्य दशाहमध्ये दाहे विचारः)

इदं त्रिरात्रं न दशाहमध्ये दाहे, तत्र 'प्रोषिते कालशेषः स्यात्' इत्युक्तेः, किन्तु तदूर्ध्वम् । तत्र पत्नीपुत्रयोः पूर्वमगृहीताशौचयोर्दशाहाद्येव । गृहीताशौचयोस्तु त्रिरात्रम् । पत्नीमृतौ भर्तुश्चैवं सपत्न्योश्चैवमिति स्मृत्यर्थसारे । अन्यसपिण्डानां तु सर्वत्र पर्णशरदाहे त्रिरात्रम् ।

यह तीन रात्रि का आशौच दशदिन के भीतर दाह में नहीं होता है । वहाँ पर देशान्तर में मरने पर कालशेष—अवशिष्टकाल शुद्धि का हेतु होता है-एसा कहा है । (यदि कथञ्चित् शरीर आदि का लौकिक अग्नि में दाह जलादि प्रक्षेपादि के अलाभसे दशदिनके मध्य में पर्णशरदाह करनेपर भी वहाँ त्रिरात्र नहीं होता है । क्योंकि प्रोषितत्व अविवक्षित है ।) वहाँ पर पत्नी और पुत्र का पहले अगृहीत (बारहसाल आदि प्रतीक्षास्थल में उसके पूर्व मरण के सन्देह से या अन्यत्र मरण के सन्देह से आशौच का आग्रह है तो दशदिन आदि ही होता है ।) मरण के निश्चय में तो तीनरात का आशौच होता है । स्त्री के मरने पर भर्ता को भी यही है । क्योंकि सपत्नियों को भी इसीतरह है—यह स्मृत्यर्थसार में कहा है । अन्य सपिण्डों को तो सर्वत्र (आशौचग्रहाग्रहयोः) पर्णशरदाह में तीनरात का आशौच होता है ।

तदाहाङ्गिराः—देशान्तरमृतं श्रुत्वा नाशौचं चेत्कथञ्चन । गृहीतमिति शेषः ।

कालात्ययेऽपि कुर्वीत दाहकाले दिनत्रयम् । इति ।

उसको अंगिरा ने कहा है—देशान्तर में मरण को सुनकर कदाचित् आशौच का ग्रहण नहीं होता है । गृहीतम्—यह शेष है । समय के बीतने पर दाहकाल में तीनदिन का करे ।

स्मृत्यर्थसारे तु—गृहीताशौचानां स्नानमात्रमुक्तम् ।

स्मृत्यर्थसार में तो कहा है—ग्रहण किये हुए आशौचियों को स्नानमात्र कहा है ।

१—पूरा मन्त्र यों है—अस्मा त्वमधि जातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः ॥ असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा ॥ (यजु० अ० ३६ । म० २२) ।(तै० आ० ४।४) ।

(अतीतसंस्कारे आशौचनिर्णयः)

बह्वृचपरिशिष्टेऽपि—अथातीतसंस्कारः स चेदन्तर्दशाहं स्यात्तत्रैव सर्वं समापयेदूर्ध्वमाहिताग्नेर्दाहात्सर्वमाशौचं कुर्यात्कर्म च यथाकालमन्येषु पत्नीपुत्रयोः पूर्वमगृहीताशौचयोः कर्माङ्गं त्रिरात्रमिति । षडशीतावप्येवम् ।

बह्वृचपरिशिष्ट में भी कहा है—अब अतीतसंस्कार कहते हैं। वह संस्कार तो दशदिन के भीतर हो तो उसी में ही सब समाप्त करे। बाद में आहिताग्नि के दाह से सब आशौच और कर्म को यथासमय करे। अन्यों में पत्नी, पुत्र के पहले अगृहीत (न ग्रहण किया हुआ) कर्मांग त्रिरात्र आशौच होता है। षडशीति में भी यही है।

(प्रतिकृतिदाहे द्वादशवर्षादिप्रतीक्षोत्तरं दाहे च पुत्रादीनामाशौचविचारः)

विश्वादर्शे तु—'प्रतिकृतिदहने त्वग्निदे स्यात्त्रिरात्रम्' इत्युक्तम् । द्वादशवर्षादिप्रतीक्षयोत्तरं दाहे तु पुत्रादीनां सर्वेषां त्रिरात्रमेवेति कल्पतरुदिवोदासादयः ।

विश्वादर्श में तो प्रतिकृति के दहन में तो अग्नि देने से त्रिरात्र आशौच होता है—ऐसा कहा है। बारहसाल आदि की प्रतीक्षा के बाद दाह में तो पुत्र आदि (सपिण्डों) सबों को तीनरात का आशौच होता है—यह कल्पतरु, दिवोदास आदि ने कहा है।

(प्रेतसंस्कारे कालविचारः)

अथ प्रेतसंस्कारे कालः । हेमाद्रौ गार्ग्यः—प्रत्यक्षशवसंस्कारे दिनं नैव विशोधयेत् ।
अशौचमध्ये संस्कारे दिनं शोध्यं तु सम्भवे ॥

अब प्रेत के संस्कार का समय कहते हैं। हेमाद्रि में गार्ग्य ने कहा है—प्रत्यक्ष शव के संस्कार में दिन का शोधन नहीं ही करे। आशौच के मध्य में संस्कार में तो सति संभव दिन का शोधन करे।

आशौचविनिवृत्तौ चेत्पुनः संस्क्रियते मृतः । संशोध्यैव दिनं ग्राह्यमूर्ध्वं संवत्सराद्यदि ॥ प्रेतकार्याणि कुर्वीत श्रेष्ठं तत्रोत्तरायणम् । कृष्णपक्षश्च तत्रापि वर्जयेत्तु दिनक्षयम् (दिनत्रयम्) ॥

आशौच की निवृत्ति में यदि फिर से मृतक का संस्कार करे तो दिन का संशोध कर ही ग्रहण करे। यदि एकसाल बाद प्रेत के कार्यों को करे तो उसमें उत्तरायण श्रेष्ठ है और उसमें भी कृष्णपक्ष के दिनक्षय (तीनदिन) छोड़कर करे। कहीं पर 'दिनत्रयम्' यह भी पाठ है।

वाराहे—चतुर्थाष्टमगे चन्द्रे द्वादशे च विवर्जयेत् । प्रेतकृत्यं व्यतीपाते वैधृतौ परिघे तथा ॥ करणे विष्टिसंज्ञे च शनैश्चरदिने तथा । त्रयोदश्यां विशेषेण जन्मताराত्रये तथा ॥ जन्मदशमैकोनविंशानि जन्मताराः ।

वाराहपुराण में कहा है—चतुर्थ, अष्टम और बारहवाँ चन्द्र को त्याग दे। व्यतीपात, वैधृति और परिघ इन योगों में, विष्टि (भद्रा) संज्ञककरण में और शनिवारदिन को प्रेतकार्य में त्याग दे। विशेषकर त्रयोदशीतिथि में तीनों जन्मताराओं में न करे। जिस नक्षत्र में जन्म हो वह और उससे दशवाँ तथा उन्नीसवाँ नक्षत्र।

भारते—नक्षत्रे तु न कुर्वीत यस्मिन् जातो भवेन्नरः । न प्रौष्ठपदयोः कार्यं तथाऽऽग्नेये च भारत ॥ दारुणेषु सर्वेषु प्रत्यरे च विवर्जयेत् ।

भारत में कहा है—जिस नक्षत्र में मनुष्य उत्पन्न हुआ है उस नक्षत्र में न करे। हे भारत, प्रौष्ठपद (पूर्वाभाद्रपद तथा उत्तराभाद्रपद) और आग्नेय (कृत्तिका) में न करे। दारुण (आर्द्रा, आश्लेषा, ज्येष्ठा और मूल) इन सब नक्षत्रों में और प्रत्यरि (जन्मनक्षत्र से पञ्चम, चतुर्दश और त्रयोविंशति) तारा में त्याग करे।

कश्यपः—भरण्यार्द्रामघाश्लेषा मूलं द्विचरणानि च । प्रेतकृत्येऽतिदुष्टानि धनिष्ठाद्यं च

पञ्चकम् ॥ फाल्गुनीद्वितयं रोहिण्यनुराधापुनर्वसू । आषाढे द्वे विशाखा च भानि द्विचरणानि च ॥ एतानि किञ्चिद्दुष्टानि सम्भवे सति वर्जयेत् ।

कश्यप ने कहा है—भरणी, आर्द्रा, मघा, आश्लेषा, मूल और द्विचरणनक्षत्र, द्विपुष्करयोग कृत्तिका, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, विशाखा, उत्तराषाढ़ा और पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र (द्वितीया, सप्तमी तथा द्वादशी तिथि, मंगलवार, शनि और रविवार इन तीनों के योग में त्रिपुष्कर[1] तथा पूर्वोक्त तिथि और वार में मृगशिरा और धनिष्ठा नक्षत्र के योग हो जाने पर त्रिपुष्करयोग होता है ।) और धनिष्ठा आदि पाँच नक्षत्र प्रेतकृत्य में अतिदुष्ट हैं । दोनों फाल्गुनी (पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी), रोहिणी, अनुराधा, पुनर्वसु, दोनों आषाढ़ (पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा) विशाखा और दो चरण वाले नक्षत्र ये कुछ दुष्ट होते हैं सति संभव में त्याग दे ।

ज्योतिर्नारदः—चतुर्दशीं तिथिं नन्दां भद्रां शुक्रारवासरौ । सितेज्ययोरस्तमयं द्वयङ्घ्रिभं त्रिपदाङ्घ्रिभम् ॥ शुक्लपक्षं च सन्त्यज्य पुनर्दहनमुत्तमम् । वसूत्तरार्धतः पञ्चनक्षत्रेषु त्रिजन्मसु ॥ पौष्णब्रह्मर्क्षयोश्चैव दहनात् कुलनाशनम् ।

ज्योतिर्नारद का वचन है—चतुर्दशीतिथि, नन्दा (प्रतिपदा, षष्ठी और एकादशी) भद्रा (द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी) शुक्रवार, मंगलवार, गुरु तथा शुक्र का अस्त, द्विपुष्करयोग और त्रिपुष्करयोग और शुक्लपक्ष को छोड़कर दाह करना उत्तम है । धनिष्ठा से उत्तरार्ध के पांच नक्षत्रों में (कुम्भ और मीन के चन्द्रमा में), तीनों जन्मताराओं (पहला, दशवाँ और उन्नीसवां) पौष्ण (रेवती तथा रोहिणी) इनमें जलाने से कुल का नाश होता है ।

अस्यापवादमाह तत्रैव वैजवापः—प्रेतस्य साक्षाद्दग्धस्य प्राप्ते त्वेकादशेऽहनि ।
नक्षत्रतिथिवारादि शोधनीयं न किञ्चन ॥

इसका अपवाद वहीं वैजवाप में कहा है—साक्षात् प्रेत के दाह के करने बाद ग्यारहवें दिन नक्षत्र, तिथि, वार आदि का शोधन कुछ न करे ।

युगमन्वादिसंक्रान्तिदर्शे प्रेतक्रिया यदि । दैवादापतिता तत्र नक्षत्रादि न शोधयेत् ॥

प्रेतक्रिया में दैववश युगादि, मन्वादि, संक्रान्ति और अमावास्या दैवयोग से प्राप्त हो तो वहाँ नक्षत्र आदि का शोधन न करे ।

विश्वप्रकाशेऽपि—गुरुभार्गवयोर्मौढ्ये पौषमासे मलिम्लुचे ।
नातीतः पितृमेधः स्याद् गयां गोदावरीं विना ॥

विश्वप्रकाश में भी कहा है—गुरु और शुक्र का अस्त, पौष तथा मलमास में गया तथा गोदावरी को छोड़कर अतीत (व्यतीत) पितृमेध (प्रेत का संस्कार) नहीं होता है ।

(भद्रादौ दाहे दानादिकथनम्)

दानमपि तत्रैवोक्तम्—भद्रायां भूमिदानं स्यात्त्रिपादर्क्षे हिरण्यदः ।
वारेषु तत्तद्वर्णं तु वासोदानं विधीयते ॥

दान भी वहीं पर कहा है—भद्रा में भूमिदान, त्रिपादनक्षत्र में, सुवर्णदान, वारों में उसी उसी वर्ण के वस्त्र के दान का विधान किया है ।

१—नक्षत्रों में भरणी कृत्तिका आर्द्रा आश्लेषा मघा ज्येष्ठा मूल तथा धनिष्ठा का उत्तरार्ध और शतभिषा से चार नक्षत्र तथा त्रिपुष्करयोग ये अतिदुष्ट हैं, इनका त्याग करे । 'कृत्तिका, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, विशाखा, उत्तराषाढा, पूर्वाभाद्रपदा ये त्रिपादनक्षत्र हैं । द्वितीया, सप्तमी तथा द्वादशीतिथि, मंगल, शनि और रविवार इनके योग में त्रिपुष्कर योग होता है इन्हीं तिथि तथा वारों में मृगशिरा, चित्रा तथा धनिष्ठा के योग में द्विपुष्करयोग होता है । इत्यादि धर्मसिन्धु में देखिये ।

(धनिष्ठापञ्चकमृते पञ्चरत्नादिकथनम्)

धनिष्ठापञ्चकमृते पञ्चरत्नानि दापयेत् । एकाशीतिपलं कांस्यं तदर्द्धं वा तदर्द्धकम् ॥ नवषट्त्रिपलं वापि दद्याद्विप्राय शक्तितः ॥ इत्यलं प्रसङ्गेन ।

धनिष्ठापञ्चक में मरने पर पञ्चरत्न[1] का दान करे। इक्यासी पल कांसा या उससे आधा या उससे भी आधा या नौ, छ या तीनपल कांसा शक्ति से ब्राह्मण को दे। इस प्रसंग को यहीं समाप्त करते हैं।

हेमाद्रौ वृद्धमनुः—अमृतं मृतमाकर्ण्य कृतं यस्यौर्ध्वदेहिकम् ।
प्रायश्चित्तमसौ स्मार्तं कृत्वाग्नीनादधीत च ॥

हेमाद्रि में वृद्धमनु ने कहा है—जो मरा न हो उसका मरण सुनकर उसकी औध्वदेहिकक्रिया कर दी गयी हो तो वह स्मार्त प्रायश्चित्त कर अग्नियों का आधान करे।

(कृतौर्ध्वदेहिके जीवन्नाच्छति चेत् विचारः)

जीवन्यदि समागच्छेत् घृतकुम्भे निमज्ज्य तम् । उद्धृत्य स्नापयित्वाऽस्य जातकर्मादि कारयेत् ॥

यदि जीवित आ जाय तो घी के घड़े में उसको डुबोकर फिर उसे निकाल कर स्नान कराकर उसका जातकर्म आदि संस्कार करावे।

द्वादशाहं व्रतचर्या त्रिरात्रमथवास्य तु । स्नात्वोद्वहेत्तो भार्यामन्यां वा तदभावतः ॥ अग्नीनाधाय विधिवद् व्रात्यस्तोमेन वा यजेत् । अथेन्द्राग्नेन पशुना गिरिं गत्वा च तत्र तु । इष्टिमायुष्मतीं कुर्यादीप्सितांश्च क्रतूंस्ततः । अनाहिताग्नेस्तु चरुः ।

या बारहदिन या तीनरात उसकी व्रतचर्या करे। फिर स्नानकर उसी स्त्री से या उसके अभाव में अन्य स्त्री से विवाह करे। अग्नियों का विधिवत् आधान करे या 'व्रात्यस्तोमयज्ञ' (कात्या० श्रौ० अ० २२।४) से यजन करे। इसके बाद इन्द्राग्नि पशु से गिरि में (पर्वत में) जाकर वहाँ पर 'आयुष्मती इष्टि' आयुः कामेष्टि को और ईप्सित यज्ञों को करे। अनाहिताग्नि तो चरु से करे।

(मृतवार्ताश्रवणे विचारः)

मृतवार्ताश्रवणे त्वाश्वलायनः—'सुरभय एव यस्मिन् जीवे मृतशब्दः' इति। यस्य तु जीवत एव मृतिवार्तां श्रुत्वा स्त्रिया सहगमनं कृतं तदा तद्वैधमेव, भर्तृमरणज्ञानस्यैव निमित्तत्वात्प्रमात्वस्य गौरवेणायुक्तत्वाच्चेति केचित् । तन्न, मरणज्ञानस्य निमित्तत्वेऽतीतानागतयोरपि तथात्वापत्तेः, भर्तुर्वैधदाहाभावेन तस्याः सहगमनाभावाच्च । तस्मादाशौचवत् ज्ञातमरणस्यैव निमित्तत्वम् । न चात्र तदस्ति । परं काम्यं मरणमस्तु । अत आत्महननदोषोऽस्तीति तातपादाः ।

जिस जीवितवाले के मरे की बात सुननेमें तो आश्वलायन ने कहा है कि जिस जीव (इसका विधान पहले कह चुके हैं) में मृतशब्द है। जिसके जीवित रहते हुए ही मृत्युकी बात सुनकर स्त्री सती हो गयी हो तब वह शास्त्रीय ही है। पति का मरण ज्ञान ही निमित्त है, और प्रमाण के गौरव से अयुक्त है यह कोई कहते हैं। यह उचित नहीं है। मरणज्ञान का निमित्त माननेपर तो भूत और भविष्य की भी वहाँ आपत्ति होगी। पति के वैध दाह के अभाव से उसका सती होना असंभव है। इसकारण से आशौच के सदृश ज्ञात मरण का ही निमित्त है। वह यहाँ नहीं है। पर काम्य मरण हो। इससे आत्महत्या दोष है यह हमारे पिताजी कहते हैं।

(सर्पसंस्कारविधिकथनम्)

तथा सर्पसंस्कारकृते त्रिरात्रमाशौचम् । तद्विधिं चाह शौनकः—अथ वक्ष्यामि सर्पस्य संस्कारविधिमुत्तमम् । सिनीवाल्यां पौर्णमास्यां पञ्चम्यां वापि कारयेत् ॥ कृतसर्पवधो विप्रः पूर्वजन्मनि

१—कनकं कुलिशं मुक्ता पद्मरागं च मौक्तिकम् । एतानि पञ्चरत्नानि । अभावे सर्वरत्नानां हेम सर्वत्र योजयेत् ।

वा यदि । वधं प्रख्यापयेत् पापी चरेत्कृच्छ्रांश्चतुर्दश ॥ विप्राय लोहदण्डं च तन्मूल्यं वापि दापयेत् ॥ याज्ञवल्क्योऽपि (प्राय० २७३) 'उरगेष्वायसो दण्डः' इति ।

वैसे सर्पसंस्कार करने पर तीनरात का आशौच होता है। उसकी विधि को शौनक ने कहा है—अब सर्प के उत्तम संस्कारविधि को कहता हूँ। अमावास्या, पूर्णिमा या पञ्चमी में करावे।

यदि इस जन्म में या पूर्वजन्म में ब्राह्मण ने सर्प का वध किया है तो [1]पापी सर्प वध को सबों से कहे और चौदह कृच्छ्र करे। ब्राह्मण के लिए लोहदण्ड (सुवर्ण, सुवर्ण पर्यायों में उसका पाठ है इस शंका के वारण के लिए) या उसका मूल्य दे। याज्ञवल्क्य ने भी कहा है—सर्पों के मारने पर आयस (नकीली लोहे की छड़) की छड दे। (मनु.—अभ्रिं कार्ष्णायसीं दद्यात्सर्पं हत्वा द्विजोत्तमः। पराशरः—हत्वा मूषकमार्जारसर्पाजगरडुण्डुभान्। कृसरं भोजयेद्विद्वान् लोहदण्डश्च दक्षिणा ॥)

मूल्यमाह—निष्कत्रयं द्विनिष्कं वा निष्कमेकं कनीयसम्। अनुमत्यादिकर्तॄणां निष्कमर्धं तदर्धकम् ॥ इदं स्वर्णरूप्ययोः शक्त्या ज्ञेयम् ।

मूल्य को कहा है—तीन निष्क, (सोलह चांदी की चवन्नी का एक निष्क कभी माना जाता था।) दो निष्क, एक निष्क, आधानिष्क या उससे भी आधानिष्क कर्ताओं की अनुमति दे। शक्ति से इनको सुवर्ण और चांदी के जानना चाहिये।

संस्कारमाह—प्रियङ्गुव्रीहिगोधूमैस्तिलपिष्टेन वा पुनः ।
कृत्वा सर्पाकृतिं शूर्पे निधाय प्रार्थयेदहिम् ॥

संस्कार कहा है—प्रियंगु (पीलीसरसो), व्रीहि (छसाल के पुराने यव), गोधूम (गेहूँ) या तिल की खली से सर्प के आकार की प्रतिमा बनाकर शूप में रखकर सर्प की प्रार्थना करे।

एहि पूर्वमृतः सर्प अस्मिन् पिष्टे समाविश । संस्कारार्थमहं भक्त्या प्रार्थयामि समाहितः ॥

हे सर्प, पहले मरे हुए सर्प यहाँ आकर इस पिष्ट (पीसे हुए आंटे) में प्रवेश करो। संस्कार के लिए सावधान मन द्वारा मैं भक्ति से प्रार्थना करता हूँ।

वस्त्रोपवीतगन्धाद्यैः सम्पूज्य च हरेद् बहिः । कुर्यात्संस्कारसङ्कल्पं प्राणायामपुरःसरम् ॥

वस्त्र, यज्ञोपवीत, गन्ध आदिसे पूजन कर बाहर ले जाय। प्राणायामपुरःसर-संस्कार का संकल्प करे।

यज्ञोपवीतिना कार्यं सर्पसंस्कारकर्म च । लौकिकाग्निं प्रतिष्ठाप्य समिदाधानमाचरेत् ॥

सर्पका संस्कारकर्म तो यज्ञोपवीति होकर करे और लौकिक अग्निकी प्रतिष्ठाकर समिधाका आधान करे।

ततोऽग्नेरग्निदिग्भागे भूमिं सम्प्रोक्ष्य वारिभिः । चितिं कृत्वाथ संस्तीर्य कुशैराग्नेयकाग्रकैः ॥ पर्युक्ष्याग्निं परिस्तीर्य परिषिच्य समर्चयेत् । कृत्वेध्माधानमाघारौ चक्षुषी च यथाविधि ॥ सर्पं गृहीत्वा यत्नेन चितिमारोपयेत्सुधीः । स्रुवेण जुहुयादाज्यमग्नौ व्याहृतिभिस्त्रिभिः । सर्पास्ये जुहुयादाज्यं व्याहृत्या च समग्रया । आज्यशेषं स्रुवेणैव सर्पदेहे निषेचयेत् ॥

तदनन्तर अग्नि का अग्नि की दिशा के भाग में जल से भूमि का प्रोक्षण कर चिता को कर कुशाओं का अग्निकोण में अग्रभाग बिछाकर पर्युक्षण कर अग्नि रखकर जल से सेचन कर पूजन करे। इन्धन रखकर आघार (प्रजापतये स्वाहा और इन्द्राय स्वाहा—'प्राञ्चावाघारौ' कात्या० श्रौ० १।८।४१) और चक्षुषी (दो आज्यभाग—अग्नये स्वाहा और सोमाय स्वाहा) का यथाविधि आहुति कर सर्प को यत्न से ग्रहण कर चिता में रखे। स्रुव से अग्नि में घी के द्वारा तीन व्याहृतियों से हवन करे और सर्प के मुख में समग्र व्याहृतियों से आज्य द्वारा हवन करे। आज्य शेष को स्रुव से ही सर्प के शरीर में सेचन करे।

१—योगियाज्ञवल्क्यः—कृत्वा पापं न गूहेत गूहमानं विवर्धते। स्वल्पं वाऽपि प्रभूतं वा धर्मविद्भ्यो निवेदयेत् ॥ प्रायश्चित्ते समुत्पन्ने धीमान् सत्यपराक्रमः। महुरार्तवसंयुक्तः शुद्धिं याचेत मानवः। प्रायश्चित्तमकुर्वाणाः पापेषु निरता जनाः। अपश्चात्तापिनः कष्टान् नरकान् यान्ति दारुणाम् ॥ विधे प्राथमिकादस्माद् द्वितीये द्विगुणं भवेत्। तृतीये त्रिगुणं प्रोक्तं चतुर्थे नास्ति निष्कृतिः ॥ इत्यादि ।

चमसस्थैर्जलैः सर्पं व्याहृत्याभ्युक्ष्य पाणिना । अग्ने रक्षाण इत्यनया सर्पायाग्निं प्रदापयेत् ॥

चमसस्थजलों से (चमचे के आकार के पात्रों के जल से) सर्प को हाथ से व्याहृतियों द्वारा अभ्युक्षण करे । 'अग्नेरक्षाण'[1] इस ऋचा से सर्प के लिए अग्नि को दे ।

उपतिष्ठेद्दह्यमानं नमोऽस्तु सर्पमन्त्रतः । ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि कृतः सर्पवधो मया ॥ पूर्वजन्मनि वा सर्प तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि । क्षीराज्येन ततश्चाग्निं प्रोक्ष्य व्याहृतिभिर्जलैः ॥

जब सर्प जलने लगे तो 'नमोऽस्तु[2] सर्पेभ्यः' इस मन्त्र से खड़े होकर कहे कि—हे सर्प, इस जन्म में ज्ञान से या अज्ञान से जो मैंने या पूर्वजन्म में सर्पवध किया है उस सबको क्षमा करने योग्य हो। तदनन्तर दूध तथा घृत से और व्याहृतियों से जल द्वारा अग्नि का प्रोक्षण करे ।

नास्थिसञ्चयनं कुर्यात्स्नात्वाचम्य गृहं व्रजेत् । ब्रह्मचर्यादिकं कार्यं त्रिरात्राशौचमिष्यते ॥ सचैलं तु चतुर्थेऽह्नि स्नात्वा विप्रान् समर्चयेत् । सर्पोऽनन्तस्तथा शेषः कपिलो नाग एव च ॥ कालिकः शङ्खपालश्च भूधरश्चेति नामभिः । गन्धपुष्पाक्षतैर्धूपदीपाद्यैरर्चयेद् द्विजान् ॥ घृतपायसभक्ष्यैश्च द्विजानष्टौ च भोजयेत् । एवं कृते विधानेन सर्पसंस्कारकर्मणि ॥ सर्पहिंसाकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ इति सर्पसंस्कारः ।

अस्थिसञ्चयन न करे । स्नान और आचमन कर घर में आ जाय । ब्रह्मचर्य आदि करे और तीन-रात का आशौच कहा है । चौथे दिन सचैल स्नान कर ब्राह्मणों का अर्चन करे । सर्प, अनन्त, शेष, कपिल, नाग, कालिक, शंखपाल और भूधर इन नामों से गन्ध, पुष्प, चावल, धूप, दीप आदि से ब्राह्मणों का पूजन करे । घृत, पायस तथा भक्ष्य वस्तुओं द्वारा आठ ब्राह्मणों को भोजन करावे । इसप्रकार सर्प का विधान करने पर सर्पहिंसा किया हुआ पाप छूट जाता है । इसमें संशय नहीं है । यह सर्पसंकार है ।

(जीवितोप्यन्त्यकर्मशौचकथनम्)

क्वचित्तु जीवतोप्यन्त्यकर्माशौचं कार्यम् । यथा प्रायश्चित्तानिच्छोः पतितस्य घटस्फोटे, पतितस्योदकं कार्यं सपिण्डैर्बान्धवैर्बहिः । निन्दितेऽहनि सायाह्ने ज्ञात्यृत्विग्गुरुसन्निधौ ॥ दासी घटमपां पूर्णं पर्यस्येत्प्रेतवत्पदा । अहोरात्रमुपासीरन्नाशौचं बान्धवैः सह ॥ इति मनूक्तेः (अ० ११ श्लो० १८२, १८३) निन्दिते—रिक्तादौ ।

कहीं तो जीते हुए का भी अन्त्यकर्म का आशौच करना कहा है । जैसे—प्रायश्चित्त की इच्छा नहीं करता हुआ पतित के घटस्फोट में—मनु ने कहा है—सपिण्ड बान्धवों के सहित पतित के उदककार्य को निन्दितदिन में (रिक्तादि में) सायंकाल में (दिन के पांचवें भाग में) जाति, ऋत्विक् और गुरु की सन्निधि में दासी (प्रेष्या) (घटानिनयन जातिवाले करें ।) जल से भरे [3]घड़े को प्रेत के सदृश (अपसव्य और दक्षिणामुख हो) पैर से बाहर फेंक दे । बांधवों के साथ अहोरात्र (दिनरात) बैठा रहे इससे आशौच नहीं होता है । निन्दित माने—रिक्तादितिथि में ।

अपरार्के वसिष्ठोऽपि—'वेदविप्लावकशूद्रयाजकोत्तमवर्णावर्णपतितास्तेषां पात्रनिनयनमपात्रसंस्कारादकृत्स्नं पात्रमादाय दासोऽसवर्णपुत्रो वा बन्धरसदृशो वा गुणहीनः सव्येन पादेन प्रवृत्ताग्रान् दर्भान् लोहितान् वोपस्तीर्यापः पूर्णं पात्रमस्मै निनयेत् निनेतारं चास्य प्रकीर्णकेशा ज्ञातयोऽन्वाल-

---

१—अग्ने रक्षा णो अंहसः प्रति ष्म देव रीषतः । तपिष्ठैरजरो दह ॥ (ऋ० ७।१५।१३) सा० २४, तै० ब्रा० २।४।१।६) ।

२—नमो अस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु । ये अन्तरिक्षे ये दिवितेभ्यः सर्पेभ्यो नमः (ऋ० प०) ।

३—घड़े को ले आना यह कार्य जातिवालों को करना चाहिये । योगि याज्ञवल्क्यः—दासी कुंभं बहिर्ग्रामान्निनयेरन् स्वबान्धवाः । पतितस्य बहिष्कुर्युः सर्वकार्येषु चैव तम् । जीते हुए ही पतित का अपने जातिवाले बान्धव और मातृपक्षवाले मिलकर सपिण्डों द्वारा भेजी हुई दासी द्वारा ले आए हुए अपूर्ण घट को ग्राम के बाहर ले जावें ।

भेरन्नपसव्यं कृत्वा गृहेषु स्वैरमापद्येरन्नत ऊर्ध्वं तेन तं धर्मयेयुस्तद्धर्माणस्तं धर्मयन्तः' इति। उत्तमवर्णा—ब्राह्मणादयः तेषां वर्गः समूहस्तस्मात्पतिता ब्रह्महादयः। अपात्रसंस्कारः—कुत्सितपात्रसमूहः। प्रवृत्ताग्राः—छिन्नाग्राः। स्वैरं—यथेच्छं धर्मादिकार्यं कुर्युः। अस्माद्वचनसामर्थ्यात्पात्रनिनयनात् प्राक्पतितज्ञातीनां धर्मकार्येष्वधिकारो नास्तीत्यपरार्कः।

अपरार्क में वसिष्ठ ने कहा है—वेद का नाश करनेवाला, शूद्र को यज्ञ करानेवाला, ब्राह्मणादि उत्तम वर्ण के समूह में पतित हो जाने पर, उनके पात्र को ले जाना अपात्रसंस्कार (कुत्सित्पात्रसमूह) होने से सब पात्र को लेकर दास (सेवक-मिताक्षरा के व्यवहाराध्याय में दास आदि के भेद देखिये—पृ० ३२८) या असवर्ण (एक जाती का न हो) पुत्र, बन्धु (अयोग्य ब्राह्मण, जो केवल जाती से ब्राह्मण हो नाम मात्र का ब्राह्मण) (ब्रह्मबन्ध्वादि के सदृश भी निन्द्य है।) के सदृश या गुणहीन सव्य (बायें) पैर से छिन्न अग्रभागवाली कुशा या लालवर्णों की कुशा बिछाकर जल से भरे उस पात्र को उसके लिए ले जाय। पात्र को ले जानेवाले का केशों को खोलकर जातिवाले स्पर्श करें। अपसव्य होकर—यथेच्छ वाद में उसके साथ धर्म आदि का व्यवहार करें। व्यवहार करनेपर वह उन्हींके सदृश होता है। उत्तम वर्ण—ब्राह्मण आदियों का वर्ग समूह इससे पतित ब्रह्महादि होते हैं। अपात्रसंस्कार माने—कुत्सितपात्रों का समूह। प्रवृत्ताग्राः का माने—छिन्न है अग्रभाग जिन कुशाओं का। स्वैर माने—यथेच्छ धर्मादि कार्य को करें। इसवचन के सामर्थ्य से पात्रनिनयन (पात्र उलटना) के पूर्व पतित जातियों के धर्म कार्यों में अधिकार नहीं है—यह अपरार्क ने कहा है।

'तस्य विद्यागुरून् योनिसम्बन्धांश्च सन्निपात्य सर्वाण्युदकादिप्रेतकार्याणि कुर्युः, पात्रं चास्य विपर्यस्येयुर्दासः कर्मकरो वाऽवकरादमेध्यं पात्रमानीय दासीघटात्पूरयित्वा दक्षिणामुखः पदा विपर्यस्येदमुदकं करोमीति नामग्राहं सर्वेऽन्वालभेरन् प्राचीनावीतिनो मुक्तशिखा विद्यागुरवो योनिसम्बन्धाश्च वीक्षेरन्। अप उपस्पृश्य ग्रामं प्रविशेयुः' इति गौतमोक्तेश्च।

उसके विद्यागुरु तथा योनिसम्बन्ध, (चाचा, पिता आदि), सब इकट्ठे होकर उदक आदि (जलदान आदि) सब प्रेत के कार्यों को करें और इसके पात्र को विपर्यय (औंधा करना) करें दास या कर्मकर (भाडे का मजदूर—वह सेवक जो दास न हो) गांव से अपवित्र पात्र को ले आकर दासी (नौकरानी शूद्र पत्नी, वेश्या) के घड़े से भरकर दक्षिणामुख हो बायें पैर से जल को गिराता हूँ। नाम ग्रहण कर सब स्पर्श करते हैं। प्राचीनानीति होकर शिखा खोलकर विद्यागुरु और योनिसंबन्ध वाले देखते हुए जल का स्पर्श कर गाँव में प्रवेश करें—यह गौतम ने कहा है।

उदकादीत्युक्तेर्दाहनिवृत्तिः। प्रेतकार्याण्येकादशाहश्राद्धान्तानि। दास्याहृतोऽम्बुघटो दासीघटः। तेनोदकेनामेध्यं पात्रं पूरयित्वा दासादिर्न्युब्जं वामपादेन कुर्यादिति हरदत्तः। अत्र नामग्राहवचनमुदकादिप्रेतकार्ये तद्वत्त्वार्थम्। तेन तत्तूष्णीं भवति। एतच्च प्रायश्चित्तानिच्छोः। तस्य गुरोर्बान्धवानां राज्ञश्च समक्षं दोषानभिख्याप्य तमनुभाष्य पुनः पुनराचार्यं लभस्वेति स यद्येवमप्यनवस्थितमतिः स्यात्ततोऽस्य पात्रं विपर्यस्येत्॥ इति शङ्खोक्तेः।

उदकादि को कहने से दाह की निवृत्ति है। प्रेतकार्य माने—एकादशाहश्राद्ध तक दासी द्वारा ले आया हुआ जल के घड़े को दासी घट कहते हैं। उस जल से अमेध्य (अपवित्र) पात्र को भरकर दास आदि जातिवाले वह बायें पैर से न्युब्ज (उलटा) करें—हरदत्त ने कहा है। यहाँ पर नाम ग्रहण का वचन प्रेतकार्य में उदकादि का नाम ग्रहण न करे-यह अर्थ है—इससे वह तूष्णीं करे। यह भी उसके लिए है जो प्रायश्चित्त की इच्छा नहीं रखता है। क्योंकि उसके गुरु, बन्धवों और राजा के समक्ष दोषों को कहकर उसको संबोधन करके फिर फिर कहे तुम आचार को प्राप्त करो, वह यदि इसप्रकार भी व्यवस्थित न हो तो उसका पात्र विपर्यय करे—यह शंख ने कहा है।

जीवन्तमेवोद्दिश्य पिण्डोदकश्राद्धानि नाम्ना दद्यादित्यपरार्कः।

अपरार्क ने कहा है—जीते हुए को ही उद्देश्य कर पिण्डोदक और श्राद्धों को नाम से दे।

(कृतप्रायश्चित्तस्य घटस्फोटेकृतेऽपि सङ्ग्रहविधिकथनम्)

कृतप्रायश्चित्तस्य घटस्फोटे कृतेऽपि सङ्ग्रहविधिमाह गौतमः—यस्तु प्रायश्चित्तेन शुद्ध्येत्तस्मिन् शुद्धे शातकुम्भमयं पात्रं पुण्यह्रदात्पूरयित्वा स्रवन्तीभ्यो वा, तत एनमुपस्पर्शयेयुरथास्मै तत्पात्रं दद्युस्तत्प्रतिगृह्य जपेत्—शान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी शान्तं विश्वमन्तरिक्षं यो रोचनस्तमिह गृह्णामि' इत्येतैर्यजुर्भिः पावमानीभिस्तरत्समन्दीभिः कूष्माण्डीश्चाज्यं जुहुयाद्धिरण्यं दद्याद् गां चाचार्याय। यस्य तु प्राणान्तिकं प्रायश्चित्तं स मृतः शुध्येत् सर्वाण्येव तस्मिन्नुदकादीनि प्रेतकर्माणि कुर्युरेतदेव शान्त्युदकम् सर्वेषूपपातकेषु (गौतमधर्मसू० १६।१०।१७) इति।

प्रायश्चित्त को करने पर घटफोटन करने पर भी संग्रहविधि को गौतम ने कहा है—जो कि प्रायश्चित्त से शुद्ध हो उसकी शुद्धि में [1]शातकुंभमयपात्र (पर्वतीय सुवर्ण का पात्र) को पुण्य तलाब से भरकर या स्रवन्ती (नदियों) के जल से भरकर फिर इसको स्पर्श करें। [अर्थात्–तलाब आदि में स्नान करावे] इसके बाद इसके लिए उस पात्र को दें। उसको ग्रहणकर जप करे—'शान्ता[2] द्यौः, इस यजुर्मन्त्रों से पावमानी, तरत्समन्दी और कूष्माण्डी ऋचाओं से घी से हवन करे। सुवर्ण और गौ आचार्य को दे। जिसका मरणान्त प्रायश्चित्त हो वह मरकर शुद्ध होता है। सब उदकदान आदि प्रेतकर्मों को करे। यही ही शान्त्युदक सब उपपातकों में है।

घटस्फोटोत्तरं प्राणान्तिकप्रायश्चित्ते कृते तु मृत एव शुद्ध्येन्न तत्र सङ्ग्रहविधिः। अतस्तेन विनापि प्रेतकर्म कुर्यादित्यर्थः। उपपातकेष्वपि घटस्फोटे कृते एवं कार्यमित्यर्थः।

घटस्फोट के बाद प्राणान्तिक प्रायश्चित्त करने पर तो मरकर शुद्ध होता है। वहाँ पर संग्रहविधि (ग्रहण करने की) नहीं है। इसलिए उसके बिना भी प्रेत कर्म करे—यह अर्थ है। उपपातकों में भी घटस्फोट के करने पर इसको करे—यह अर्थ हैं।

याज्ञवल्क्यः (प्रा० श्लो० २९५)—चरितव्रत आयाते निनयेरन्नवं घटम्। जुगुप्सेरन्न चाप्येनं संवसेयुश्च सर्वशः॥ कृतघटस्फोटस्यैवायं परिग्रहविधिरिति मिताक्षरायामपरार्के च। अन्यथा प्रायश्चित्तमात्रे एतत्प्रसङ्गात्।

प्रायश्चित्त व्रत करने बाद यदि बन्धुओं के समीप में आने पर सपिण्डादि उसके साथ नवीन बिना फूटे घड़े में अन्य जल भरकर (पुण्यवाले तालाब आदि में स्नान कर उसी के जल को भरकर) ले आवें। और उसकी निन्दा न करें तथा उसे सब प्रकार से सम्मिलित करें। (इसप्रकार प्रायश्चित्त करने पर उसकी निन्दा न करें और सब कार्यों में—क्रय-विक्रय आदि में उसके साथ व्यवहार करें।) किये हुए घटस्फोट की ही यही परिग्रह (स्वीकार करने की) विधि है—यह मिताक्षरा और अपरार्क में कहा है। अन्यथा प्रायश्चित्तमात्र में इस विधि का प्रसंग हो जायगा।

मनुरपि घटस्फोटमुक्त्वा–निवर्तेरंस्ततस्तस्मात्तु सम्भाषणसहासनैः॥ (मनु. अ. ११ श्लो. १८४) इत्युक्त्वा प्रायश्चित्ते तु चरिते पूर्णं कुम्भमपां नवम्। तेनैव सार्द्धं प्रास्येयुः स्नात्वा पुण्ये जलाशये॥ (म० अ० ११, श्लो० १८६) इति तच्छब्दं प्रायुङ्क्त।

मनुने भी घटस्फोट को कहकर पतित से सपिण्ड आदियों के संभाषण और एकासन पर बैठना त्याग दें। एसा कहकर पतित के प्रायश्चित्त करने पर सपिण्ड तथा बान्धव (समानोदक) वाले उसके प्रायश्चित्त करने वाले के साथ पवित्र जलाशय में स्नान कर जल से भरे घड़े को फेंक दें। (नवीन घड़े के ग्रहण से—अर्थात् दासी घड़े को) यहाँ पर तत् शब्द का प्रयोग किया है।

१—न तेन वाहेषु विवाहदक्षिणीकृतेषु संख्यानुभवेऽभवत्क्षमः। न शातकुंभेषु न भक्तकुम्भिषु प्रयत्नवान्कोऽपि न रत्नराशिषु॥ शातकुंभेषु–अनेकभूषण भूतघटिताघटितकाञ्चनेषु। (नैषध–सर्ग १६।३४ और शिवपुराण ५।६)।

२—परिवर्तन रूप यों हैं—शान्ता द्यौ शान्ता पृथिवी शान्तमिदमुर्वन्तरिक्षम्। शान्ता उदन्वतीरापः शान्ता नः सन्त्वोषधीः॥ (अथर्व०—१९।९।१)

(पतितानां चरितव्रतानां प्रत्युद्धारकथनम्)

अपरार्के वसिष्ठोऽपि—पतितानां चरितव्रतानां प्रत्युद्धारोऽथाप्युदाहरन्ति—अग्रेप्युद्धरतां गच्छेत् क्रीडन्निव हसन्निव । पश्चात्पातयतां गच्छेच्छोचन्निव रुदन्निव ॥ इत्याचार्यमातृपितृहन्तारस्तत्प्रसादादपगतपापा एषा तेषां प्रत्यापत्तिः । पूर्णह्रदात्प्रवृत्ताद्वा काञ्चनं पात्रं माहेयं वाऽद्भिः पूरयित्वापोहिष्ठीयाभिरेनमद्भिरभिषिञ्चेयुः, 'सर्व एवाभिषिक्तस्य प्रत्युद्धारः पुत्रजन्मना व्याख्यातः' इति । प्रत्युद्धारः परिग्रहः । तत्रोद्धरतां हसन्निवाग्रेसरः स्यात् । पातयतां घटस्फोटं कुर्वतां शोचन्निव पश्चाद् गच्छेत् । मातापित्रादिहन्तॄणां परिग्रहो न कार्यः । तत्प्रसादे सति चीर्णव्रतानां कार्यः । प्रवृत्तं निर्झरः । पुत्रजन्मनेत्यभिषेकोत्तरम् । जातकर्मादयः संस्काराः पुत्रजन्मवत्कार्या इत्यपरार्के व्याचख्यौ ।

अपरार्क में वसिष्ठ ने भी कहा है—जिन पतितों ने प्रायश्चित्त किया हो उनके प्रत्युद्धार (स्वीकार) को कहते हैं । उद्धार करने वालों के आगे भी क्रीडा करते हुए की तरह और हँसते हुए की तरह पतितों के पीछे शोक करते हुए की तरह और रोते हुए की तरह चले । यह आचार्य या माता-पिता के मारनेवालों की उनके प्रसाद से पाप की निवृत्ति हो जाने पर यह उनकी प्रत्यापत्ति (पुनः स्वीकार) है । भरे तलाव से सुवर्ण के सहित पात्र को या मूँगे के पात्र को जल भरकर 'आपो हि ष्ठा' आदि ऋचाओं से इसके जल से अभिषेक करें । सबका ही अभिषेक का प्रत्युद्धार (परिग्रह) पुत्रजन्म से व्याख्या किया है । (इसके सब संस्कार जातकर्मादि पुत्र संस्कार के सदृश करे) प्रत्युद्धार माने—परिग्रह । वहाँ पर उद्धार करनेवालों के आगे हसते हुए की तरह आगे हो जाय । पाप करने वालों के घटस्फोट को करते हुए शोक होने पर जिन्होंने प्रायश्चित्त किया उनका संग्रह करना चाहिये) की तरह पीछे चले । माता पिता आदि को मारने वालों का परिग्रह न करे । उनके प्रसन्न होने पर चीर्णव्रतों (प्रायश्चित्तविवेके—पृ० २१—चीर्णव्रतानपि सदा कृतघ्नसहितानिमाम् । कृतनिर्णेजकांश्चैव न जुगुप्सेत कर्हिचित् ॥ इत्यादि) । प्रवृत्त माने झरना । 'पुत्रजन्म से' यह कहनेपर अभिषेक बाद जातकर्म आदि संस्कार पुत्रजन्म की तरह करे—यह अपरार्क में व्याख्या किया है ।

अत एव विज्ञानेश्वरः—घटेऽपवर्जिते ज्ञातिमध्यस्थो यवसं गवाम् । प्रदद्यात्प्रथमं गोभिः संस्कृतस्य हि सत्क्रिया ॥ इत्यत्र गवां भक्षणाभावे पुनर्व्रतं चरेदित्येतत्प्रकृते, एवं चरितव्रतविधौ विशेषोऽयमिति वदन् घटस्फोटोत्तरं परिग्रह एवैतन्न सर्वत्रेत्याह । तस्मात्कृतेऽपि घटस्फोटे प्रायश्चित्तं परिग्रह विधिः पुनः संस्कारो भवतीति सिद्धम् । तथा जीवच्छ्राद्धे कृते हेमाद्रौ बौधायनः—'तत्राशौचं दशाहं स्यात्' इत्यलं प्रसङ्गेन ।

इसलिये विज्ञानेश्वर ने कहा है—तलाब आदि से जलपूर्ण कुंभकों देने बाद जाति में मध्यस्थ हो गौवों को यवस (घास अपने शिर से ले आकर गौवों के लिए दे) प्रथम दे । गौवों के सत्कार करने से उसका भी सत्कार होता है ।

यहाँ पर गौवों के भक्षणाभाव में फिर से व्रत करे—यह प्रकृति में है । इसप्रकार चरित व्रतविधि में यह विशेष है यह कहता हुआ घटस्फोटनोत्तर परिग्रह ही है यह सर्वत्र नहीं है यह कहा है । उससे करने पर भी घटस्फोट में प्रायश्चित्त परिग्रहविधि और फिर से संस्कार होता है यह सिद्ध है । वैसे ही जीवच्छ्राद्ध करने पर हेमाद्रि में बौधायन ने कहा है वहाँ पर दशाह आशौच होता है । इस प्रसंग को यहीं समाप्त करते हैं ।

(अन्त्यकर्मणि साधारणं किञ्चित्कथनम्)

एवं सापवादे आशौचे उक्ते प्रतिशाखं भिन्नेप्यन्त्यकर्मणि साधारणं किञ्चिदुच्यते । तत्राधिकारिणः श्राद्धप्रकरणे प्रागुक्ताः ।

इस प्रकार सापवाद (निन्दित) आशौच के करने पर प्रत्येक शाखा के भिन्न होने पर भी अन्त्यकर्म में साधारण कुछ कहते हैं । वहाँ पर अधिकारी श्राद्धप्रकरण में पहले कह चुके हैं ।

(सर्वाभावे धर्मपुत्रद्वारापिण्डदानादिकथनम्)

सर्वाभावे धर्मपुत्रो वा कार्यः, अपुत्रेण सुतः कार्यो यादृक् तादृक् प्रयत्नतः । पिण्डोदकक्रिया-हेतोर्नामसङ्कीर्तनाय च ॥ इति व्यासवचनात् ।

सबके अभाव में धर्मपुत्र करे । क्योंकि व्यास का वचन है—जिसके पुत्र न हो वह पिण्ड तथा उदकक्रिया और नाम के चलाने के लिये जैसा तैसा (पतितादि भिन्न) पुत्र को प्रयत्न से ग्रहण करे ।

(प्रथमेऽहनि यो दद्यात् स दशाहं कुर्यात्)

गृह्यपरिशिष्टे—असगोत्रः सगोत्रो वा यदि स्त्री यदि वा पुमान् । प्रथमेऽहनि यो दद्यात्स दशाहं समापयेत् ॥ दद्यात्पिण्डमिति शेषः ।

गृह्यपरिशिष्ट में कहा है—असगोत्र, सगोत्र, स्त्री या पुरुष जो पहले दिन में पिण्ड दे वह दशदिन तक पिण्ड दे । (जो सन्निकृष्ट सगोत्री समीप न होने से पहले दिन जो पिण्ड प्रेत के लिये देगा वही ही बाद में उसके सम्बन्धियों के आने पर भी देगा । सम्बन्धि नहीं दे सकेंगे यह अर्थ है । आजकल मखेता बश मारवाड़ी आदि में पुत्र के समीप न होने से अन्य कुटुम्बवाले उसके पिता आदि का जो दाह करते हैं तो मध्य में ही पुत्र आकर मृतकदाह कर्ता के वस्त्र पहलकर अशिष्टदिन का श्राद्ध करता है । यह एकदम शास्त्र से विरुद्ध है ।)

भविष्ये—यत्राद्ये दीयते पिण्डस्तत्र सर्वं समापयेत् ।

भविष्यपुराण में कहा है—जो पहले दिन जहाँ पर पिण्ड देता है वहीं पर सब पिण्ड समाप्त करे ।

ब्राह्मेऽपि—प्रथमेऽहनि यो दद्यात्प्रेतायान्नं समाहितः । अन्नं नवसु चान्येषु स एव प्रददात्यपि ॥

ब्रह्मपुराण में भी कहा है—जो सावधानी से पहले दिन प्रेत के लिये अन्न देता है वही ही नौदिन में अन्न को दे । (कुछ देहाती दशवें दिन अन्य द्रव्य से गरुडपुराण मत से पिण्ड देते हैं वह भी हेय है ।)

विज्ञानेश्वरादयस्तु—'केचित्तु अग्निं दद्यात्' इति व्याचक्षते । सगोत्रो वाऽसगोत्रो वा योऽग्निं दद्यात्सखे नरः । सोऽपि कुर्यान्नवश्राद्धं शुद्ध्येत्तु दशमेऽहनि ॥ इति दिवोदासीये वचनाच्च ।

विज्ञानेश्वर आदि ने तो कहा है—कोई तो कहते हैं कोई अग्नि को दे—ऐसी व्याख्या करते हैं । (अधिक कार्य के रहते हुए अन्य के दाह करने पर प्रथमपिण्ड के प्रारंभ से पूर्व पुत्र आदि के आने पर भी दाह कर्तृक भिन्नता से निषेध है । यदि दाहकर्ता दशाहकृत्य को बिना समाप्त किये ही मर जाय तो दशाहकर्ता दाह को भी आवर्तन करना चाहिये । तब देशाहान्तर में प्रथम दाह के साथ आई हुई को भी दूसरे दाह में साथ गमन होता है—एसा कहा है ।)

और दिवोदासीय में वचन है—जो मनुष्य सगोत्र हो या असगोत्र हो जो अग्नि देता है वही नव-श्राद्ध करे और हे सखे, दशवें दिन (अर्थात्—दशवीं रात वीतने पर) में शुद्ध होता है ।

(आसन्नमरणे दानादिकथनम्)

तत्रैव—दृष्ट्वा स्थानस्थमासन्नमर्धोन्मीलितलोचनम् । भूमिष्ठं पितरं पुत्रो यदि दानं प्रदापयेत् । तद्विशिष्टं गयाश्राद्धादश्वमेधशतादपि ।

वहीं पर कहा है—अपने स्थान में स्थित आसन्न आधे नेत्र मिचे भूमिस्थ पिता को देखकर यदि पुत्र दान देता है तो वह दान गयाश्राद्ध और सौ अश्वमेध से भी विशिष्ट होता है ।

(मोक्षधेनुदानकथनम्)

तानि यथा—मोक्षं देहि हृषीकेश मोक्षं देहि जनार्दन । मोक्षधेनुप्रदानेन मुकुन्दः प्रीयतां मम ॥ इति मोक्षधेनुमन्त्रः ।

वे दान यों हैं—हे हृषीकेश, मोक्ष दो, हे जनार्दन, मोक्ष दो, मोक्षधेनु के प्रदान से मुझ पर मुकुन्द प्रसन्न हों । यह मोक्षधेनुमन्त्र है ।

(ऋणधेनुदानकथनम्)

ऐहिकामुष्मिकं यच्च सप्तजन्मार्जितं ऋणम् । तत्सर्वं शुद्धिमायातु गामेतां ददतो मम ॥ इति ऋणधेनोः ।

ऐहिक (इसलोक), आमुष्मिक (परलोक) और सातजन्म से अर्जित जो ऋण है वह सब मेरा इस गौ के देने से शुद्धि को प्राप्त हो । यह ऋणधेनु का मन्त्र है ।

(पापधेनुदानकथनम्)

आजन्मोपार्जितं पापं मनोवाक्कायकर्मभिः । तत्सर्वं नाशमायातु गोप्रदानेन केशव ॥ इति पापधेनोः ।

मन, वाणी, शरीर और कर्म से जो आजन्मसञ्चित पाप हैं वह सब गौ के देने से केशव, सब नाश को प्राप्त हो । यह पापधेनु का मन्त्र है ।

(शुक्लपक्षादौ मृतस्य पुण्यकालकथनम्)

भारते—शुक्लपक्षे दिवा भूमौ गङ्गायां चोत्तरायणे । धन्यास्तात मरिष्यन्ति हृदयस्थे जनार्दने ॥

भारत में कहा है—शुक्लपक्ष, दिन, भूमि, गंगा और उत्तरायण में हृदय में जनार्दन का ध्यान कर हे तात, मरेगें वे धन्य हैं ।

हेमाद्रौ वाराहे—व्यतीपातोऽथ संक्रान्तिस्तथैव ग्रहणं रवेः ।
पुण्यकालास्तदा सर्वे यदा मृत्युरुपस्थितः ॥

हेमाद्रि में वाराहपुराण का वचन है—जब मृत्युकाल उपस्थित हो तो यदि व्यतीपात, संक्रान्ति और वैसे ही सूर्यग्रहण हो तो पुण्यकाल होते हैं ।

(वैतरणीधेनुदानम्)

व्यासः—आसन्नमृत्युना देया गौः सवत्सा तु पूर्ववत् ।
तदभावे तु गौरेव नरकोत्तारणाय वै ॥

व्यास ने कहा है—मृत्यु की समीपता में सवत्सा गौ (वैतरणी) को (प्रदत्तासि मया देवि ततुं दुस्तरकाम्यया । तावत्कालं प्रतीक्षस्व यावदागमनं मम ॥) पहले की तरह दे । उसके अभाव में तो नरक के तारण के लिए गौ को ही निश्चय दे ।

तदा यदि न शक्नोति दातुं वैतरणीं तु गाम् ।
शक्तोऽन्योऽरुक्तगां दत्त्वा दद्याच्छ्रेयो मृतस्य तु ॥

यदि उससमय (मरणावस्था) में वैतरणी[1] गौ को देने में समर्थ न हो तो अन्य समर्थ मृतक के कल्याणार्थ पूर्वोक्त गौ का दान करे ।

(उत्क्रान्त्यादिदशदानकथनम्)

मदनरत्ने जातूकर्ण्यः—उत्क्रान्त्यादीनि दानानि दश दद्यान्मृतस्य तु । गोभूतिलहिरण्याज्यं वासो धान्यं गुडानि च ॥ रौप्यं लवणमित्याहुर्दशदानान्यनुक्रमात् । एतानि दशदानानि नराणां मृत्युजन्मनोः ॥ कुर्यादभ्युदयार्थं तु प्रेतेऽपि हि परत्र वै ।

१—देशकालौसङ्कीर्त्य—मम (पित्रादेः) वैतरणीनदीसन्तरणार्थमिमां कृष्णां रक्तमाल्याद्यलंकृतां रुद्रदैवताम् (तन्निष्क्रयद्रव्यममुकदैवतम्) अमुकगोत्राय ब्राह्मणाय दातुम० । 'सुखेन प्राणोत्क्रमणप्रतिबन्धकोक्तनिष्कृत्यनुक्तनिष्कृतिसकलपापक्षयद्वारा सुखेन प्राणोत्क्रमणसिद्धये इमां गां रुद्रदैवताम् (मूल्यद्रव्यमुकदैवतम्) अमुकगोत्राय ब्राह्मणाय० । ऐहिकामुष्मिकानेकजन्मार्जितदेवर्षिपितृमनुष्यादिसमस्तपापक्षयद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीतये इमां ऋणापनोदधेनुं रुद्रदैवताम् (इदमृणापनोदधेनुमूल्यममुकदैवतम्) अमुकगोत्राय ब्राह्मणाय० । 'ज्ञाताज्ञातमनोवाक्कायकृतसकलपापक्षयद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीतये इमां पापापनोदधेनुं रुद्रदैवतां (निष्क्रयद्रव्यममुकदैवतम्) अमुकगोत्राय ब्राह्मणाय० । 'भगवत्प्रसादान्मोक्षप्राप्तये इमां मोक्षधेनुं रुद्रदैवताम् (तन्मूल्यद्रव्यममुकदैवतम्) अमुकगोत्राय ब्राह्मणाय० ।

मदनरत्न में जातूकर्ण्य का वचन है—मृत्यु के समय मरणवाले के लिए (अर्थात्–मरण समय के पूर्व) दश दानों को क्रम से दे—गौ, भूमि, तिल, सुवर्ण, घृत, वस्त्र, धान्य, गुड, चांदी और निमक ये दशदान मनुष्यों के मृत्यु तथा जन्म में अभ्युदय (कल्याण) के लिए और प्रेत के लिए परलोक में सुख के लिए निश्चय दे। (मरणसमय के पूर्व प्रायश्चित्त करे। क्योंकि कलियुग में निष्पापी पुरुषों का अभाव है। उसके न करने पर उसके मरने पर तो पुत्र आदि अवश्य करें।)

(तिलपात्रदानम्)

ब्राह्मे—ताम्रपात्रं तिलैः पूर्णं प्रस्थमात्रं द्विजाय तु। सहिरण्यं च यो दद्याच्छ्रद्धावित्तानुसारतः॥ सर्वपापविशुद्धात्मा लभते गतिमुत्तमाम्। उत्क्रान्तिवैतरिण्यौ च दश दानानि चैव हि॥ प्रेतेऽपि कृत्वा तं प्रेतं शवधर्मेण दाहयेत्।

ब्रह्मपुराण में कहा है—तांबे के पात्र में प्रस्थमात्र (बत्तीस पलों के बराबर) तिलों से परिपूर्ण सुवर्ण के सहित श्रद्धा तथा धन के अनुसार ब्राह्मण के लिये जो देता है वह सब पापों से शुद्ध आत्मावाला हो जाता है और उत्तम गति को प्राप्त करता है। मृत्यु के समय उत्क्रान्ति, वैतरणी गौ और दशदानों को दे। प्रेत के लिए भी करे। शवधर्म के धर्म से उस प्रेत का दाह करे।

(म्रियमाणस्य कर्णे पुण्यमन्त्राणां कथनम्)

तत्रैव परिशिष्टे—म्रियमाणस्य कर्णे तु पुण्यमन्त्रान् जपेत्ततः।

वहीं पर परिशिष्ट में कहा है—मरनेवाले के कान में पुण्यवाले मन्त्रों को (नानानं[1] वा इत्यादि वैदिकमन्त्र और अन्य गीता, विष्णुसहस्रनाम, भागवत आदि) का जप करे।

(गरुडपुराणादिमते त्वष्टौ दानानि)

क्रियानिबन्धे गारुडे त्वष्टौ दानान्युक्तानि—तुलसीसन्निधौ कृत्वा शालग्रामशिलां तथा। तिललोहं हिरण्यं च कार्पासं लवणं तथा। सप्तधान्यं क्षितिर्गाव एकैकं पावनं स्मृतम्॥ इति। दशदानवैतरणीधेनूत्क्रान्तिधेनुदानादि भट्टकृतान्त्येष्टिपद्धतौ ज्ञेयम्।

क्रियानिबन्ध और गरुडपुराण में तो आठ दान कहे हैं—तुलसी तथा शालग्राम की शिला को समीप में करके तिल, लोहा, सुवर्ण, रुई, निमक, सप्तधान्य,[2] पृथ्वी और गौ ये एक से एक पवित्र कहे गये हैं। दशदान, वैतरणीधेनु, उत्क्रान्तिधेनु आदि को भट्टकृत अन्त्येष्टिपद्धति में जानना चाहिये।

(कर्तुरधिकारार्थं प्रायश्चित्तकथनम्)

कर्तान्त्यकर्माधिकारार्थं त्रीन् कृच्छ्रान् कुर्यादिति तत्रैवोक्तम्।

वहीं पर ही कहा है—कर्ता अन्त्यकर्म के अधिकार के लिए (प्रेत के धन को ग्रहण करनेवाले प्रेत का अन्त्यकर्म न करें तो शंख ने कहा है—प्रेतस्य तु प्रेतकार्याण्यकृत्वा धनहारकः। वर्णानां तद्वधे प्रोक्तं तद्व्रतं प्रयतश्चरेत्॥) तीन कृच्छ्रों को (अत्यन्त अशक्ति परक है, शक्ति में तो बारह कृच्छ्र करे। अशक्ति में तो छ कृच्छ्र करे।) करे।

(देवयाज्ञिकमतेन मुमूर्षोर्मधुपर्कदानकथनम्)

अत्र देवयाज्ञिकेन मुमूर्षोर्मधुपर्कदानमुक्तम्। तदुक्तं वाराहे—दृष्ट्वा सुविह्वलं ह्येनं यममार्गानुसारिणम्। प्रयाणकाले तु नरो मन्त्रेण विधिपूर्वकम्॥ मधुपर्कं त्वरन् गृह्य इमं मन्त्रमुदाहरेत्।

१—नानानं वा उ नो धियो वि व्रतानि जनानाम्। तक्षा रिष्टं रुतं भिषग्ब्रह्मा सुन्वन्तमिच्छतीन्द्रायेन्दो परिस्रव १ जरतीभिरोषधीभिः पर्णेभिः शकुनानाम्। कार्मारो अश्मभिर्द्युभिर्हिरण्यवन्तमिच्छतीन्द्रायेन्दो परिस्रव २ कारुरहं ततो भिषगुपलप्रक्षिणीनना। नानाधियो वसूयवोऽनु गाइव तस्थिमेन्द्रायेन्दो परिस्रव ३ अश्वो वोळहा सुखं रथं हसनामुपमन्त्रिणः। शेपो रोमण्वन्तौ भेदौ वारिन्मण्डूक इच्छतीन्द्रायेन्दो परिस्रव॥ (ऋ० ९। सू० ११२। म० १–४)।

२—यवगोधूमधान्यानि तिलाः कङ्गुस्तथैव। श्यामकाश्चणकाश्चैव सप्तधान्यानि तं विदुः। या–यवधान्यतिलाः कङ्गुः मुद्गचणकश्यामकाः। एतानि सप्त धान्यानि सर्वकार्येषु योजयेत्॥

ॐ गृहाण चेमं मधुपर्कमाद्यं संसारनाशनकरं त्वमृतेन तुल्यम्। नारायणेन रचितं भगवत्प्रियाणां दाहे च शान्तिकरणं सुरलोक ज्यम्॥ अनेनैव सुमन्त्रेण दद्याच्च मधुपर्ककम्। नरस्य मृत्युकाले तु परलोकसुखावहम्॥

यहाँ पर देवयाज्ञिक ने मरनेवाले के लिए मधुपर्कदान कहा है। उसको वाराहपुराण में कहा है—यममार्ग में जानेवाले जीव को विह्वल देखकर मृत्यु के समय मनुष्य मन्त्र से विधिपूर्वक शीघ्र मधुपर्क को ग्रहण कर इस मन्त्र को कहे—आद्य, संसारनाशक, अमृत के तुल्य नारायण से रचित भगवत्प्रियों के दाह में शान्ति करने वाले तथा सुरलोक में पूज्य इसीमन्त्र से ही मधुपर्क को दे। मनुष्य के परलोक में सुख देने वाले मधुपर्क[1] को मृत्युकाल में निश्चित दे।

(चाण्डादिमृते विचारः)

अथ दुर्मरणे दिवोदासीये—चण्डालादिमृते विप्रे त्वन्तरिक्षे मृतेऽपि वा।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रचान्द्रैस्तु शुद्धिस्तत्र प्रकीर्तिता॥

दुर्मरण मे दिवोदास ने कहा है—(प्रमाद से) चाण्डाल आदि के द्वारा मरने पर या अन्तरिक्ष[2] में मरने पर भी कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र और चान्द्रायण आदि से शुद्धि कही है।

(शूद्रेण दग्धे प्रायश्चित्तम्)

देवजानीये जाबालिः—शूद्रेण दग्धो यो विप्रो न लभेच्छाश्वतीं गतिम्। प्रायश्चित्तं प्रकुर्वीत ब्राह्मणः पापशुद्धये॥ चान्द्रायणं पराकं च प्राजापत्यं विशोधनम्।

देवजानीय में जाबालि का वचन है—जो शूद्र से जलाया हुआ ब्राह्मण उत्तम गति को नहीं प्राप्त होता है। उसके पाप की शुद्धि के लिये चान्द्रायण,[3] पराक[4] और प्राजापत्य[5] प्रायश्चित्त करे। (उत्तरार्थ श्लोक यों है—विप्रेभ्यो दक्षिणां दद्यात्ततः स्यादौर्ध्वदेहिकम्।)।

(प्रेतस्य अस्पृश्यस्पर्शे प्रायश्चित्तम्)

गृह्यकारिकायाम्—उदक्या सूतिका वापि यदि प्रेतं स्पृशन्ति हि।
तस्यैष विधिरादिष्टो वात्स्येनैव महात्मना॥ एषः सूतिकोक्तः।

गृह्यकारिका में कहा है—यदि रजस्वला या सूतिका स्त्री प्रेत का स्पर्श करती है तो उसके लिए ही महात्मा वात्स्यमुनि ने ही प्रायश्चित्तविधि का आदेश किया है। यह सूतिका के लिए कहा है।

(ऊर्ध्वोच्छिष्टाधरोष्टोभयोच्छिष्टमरणे, अस्पृश्यमरणे, खट्वादिमरणे, श्वानक्रव्यादादिसंस्पर्शे,
कृमिकीटोद्भवादिमरणे च प्रायश्चित्तकथनम्)

मदनरत्ने स्मृत्यन्तरे—ऊर्ध्वोच्छिष्टाधरोच्छिष्टोभयोच्छिष्टस्तथैव च। अस्पृश्यस्पर्शने चैव खट्वादिमरणेऽपि च॥ श्वानक्रव्यादसंस्पर्शे कृमिकीटोद्भवेऽपि च। एतद्दोषानुसारेण प्रायश्चित्तं समाचरेत्॥

१—स्मृतिः—आज्यमेकपलं ग्राह्यं दध्नस्त्रिपलमेव च। मधुनः पलमेकं तु मधुपर्कं स उच्यते॥ 'दधिमधुघृतमेकस्मिन् काँस्यपात्रे कृतमपरेण कांस्यपात्रेणापिहितं मधुपर्कशब्देनोच्यते। मधुपर्के दध्यलाभे पयो जलं वा प्रतिनिधिः। मध्वलाभे घृतं गुडो वेत्याश्वलायनः। इति गदाधरभाष्ये।

२—आकाश और भूमि के मध्य का मध्यवर्ती प्रदेश।

३—तिथिवृध्या चरेत्पिण्डान् शुक्ले शिखण्डसम्मितान्। एकैकं ह्रासयेत्कृष्णे पिण्डं चान्द्रायणं चरन्॥ (याज्ञ० स्मृ०)।

४—द्वादशाहोपवासेन पराकः परिकीर्तितः (या० स्मृ०)।

५—यथा कथञ्चित् त्रिगुणः प्राजापत्योऽयमुच्यते (या० स्मृ०)।

मदनरत्न में स्मृत्यन्तर का वचन है—ऊर्ध्वोच्छिष्ट, अधरोच्छिष्ट और उभयोच्छिष्ट के मरने पर, अस्पृश्य[1] के स्पर्श में, खटिया आदि पर मरने पर, कुत्ता, मांसभक्षक के स्पर्श में और कृमि-कीट को उत्पन्न होने पर जो मरे हों उनके दोष के अनुसार प्रायश्चित्त करे।

कृच्छ्रांस्त्रिषट्पञ्चदशांश्चान्द्रत्रयमथापि वा। शुद्ध्यै तदानीं सम्पाद्य शवधर्मेण दाहयेत्॥

उससमय तीन, छ (बाहर), पांच, दश कृच्छ्र या तीन चान्द्रायण शुद्धि के लिए संपादन कर शव धर्म से दाह करे।

गृह्यकारिकायाम्—खट्वायां मरणे चैव त्रींस्त्रीन् कृच्छ्रान् प्रकल्पयेत्। सप्तान्त्यजैस्तु संस्पृष्टो मृतो दैवात् कथञ्चन॥ एकत्रिंशता कृच्छ्रैस्तु शुद्धिरुक्ता मनीषिभिः। कुणपे त्वर्द्धदग्धे तु चिता स्पृष्टान्त्यजादिभिः॥ तत्स्पर्शनं दूषणं च त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुद्ध्यति॥

गृह्यकारिका में कहा है—खटिया में मरने पर तीनकृच्छ्रों की कल्पना करे। (ऊर्ध्वोच्छिष्टाधरोच्छिष्टोभयोच्छिष्टे तथैव च। अस्पर्शस्पर्शने चैव अन्तरालमृते तथा। खट्वायां मरे चैव तथा निगडवन्धने। सप्तस्वेतेषु कृच्छ्रांस्त्रीन् षण् नव द्वादश क्रमात्। पञ्चदश क्रमेणैव यथासंख्यं प्रकल्पयेत्॥) सात अन्त्यजों के (स्मृतिः—रजकश्चर्मकारश्च नटो वुरुड एव च। कैवर्तमेदभिल्लाश्च सप्तैतेत्त्यावसायिनः॥) स्पर्श से दैवयोग कदाचित् मर गया हो इकतीस कृच्छ्रों से बुद्धिमानों ने शुद्धि कही है। कुणप (शव) के आधे शरीर के दग्ध होने बाद चिता को अन्त्यज आदि स्पर्श करें तो उसके दूषण में तीनकृच्छ्रों से शुद्ध होता है।

धर्मप्रदीपे तु—चाण्डालसूतिकोदक्या स्पृष्टे प्रेते तथैव च। तस्य पापविशुद्ध्यर्थं कृच्छ्रान् पञ्चदशाचरेत्॥ इत्युक्तम्।

धर्मप्रदीप में तो कहा है—वैसे ही चाण्डाल, सूतिका और रजस्वला ये प्रेत का स्पर्श करें तो उस पाप की शुद्धि के लिए पन्द्रहकृच्छ्रों को करे। ऐसा कहा है।

मनुः (अ० ५ श्लो० १०४)—अस्वर्ग्या ह्याहुतिः सा स्यात् शूद्रसम्पर्कदूषिता।

अत्रापि कृच्छ्रत्रयम् 'अस्पृश्यस्पर्शने चैव' इत्युक्तेः।

मनु ने कहा है—शूद्र के संपर्क से दूषित मरने वाले का वह जलता हुआ शरीर स्वर्ग के लिए नहीं होता है। अर्थात् मरा हुआ व्यक्ति स्वर्ग को नहीं प्राप्त करता है। यहाँ पर भी तीन कृच्छ्र करे। 'अस्पश्यस्पर्शने चैव—(यह मदनरत्न में स्मृत्यन्तर ने पहले कहा है) और अस्पृश्य के स्पर्श में—ऐसा कहा है।

(रात्रौ रात्रिशेषे च प्रेतदाहे निर्णयः)

तत्रैव कर्मप्रदीपे—रात्रौ वा रात्रिशेषे वा म्रियन्तेऽथ द्विजातयः। दाहं कृत्वा यथान्यायं द्वौ पिण्डौ निर्वपेत्सुतः॥ रजस्वलागर्भिण्याद्यौ मृतौ तु वक्ष्याम्यः।

वहीं पर कर्मप्रदीप में कहा है—रात्रि या रात्रि के शेष में यदि द्विजाति मरते हैं तो यथोचित दाह कर दो पिण्डों को (परदिन में प्रथम और दूसरा पिण्ड दे) पुत्र दे। रजस्वला, गर्भिणी आदि के मरने पर तो आगे कहेंगे।

(नवश्राद्धप्रकरणे विचारः)

निर्णयामृते पारिजाते च यमः—सन्ध्यायां वा तथा रात्रौ दाहः पाथेयकर्म च। नवश्राद्धं च नो कुर्यात्कृतं निष्फलतां व्रजेत्॥ एतद्दिने मृतस्य रात्रिनिषेधार्थम्।

निर्णयामृत में और पारिजात में यम ने कहा है—सन्ध्या या रात्रि में दाह, पाथेयकर्म (रास्ते की भोज्य सामग्री) और नवश्राद्ध नहीं करता है तो निष्फल होता है। यह दिन में मरे का रात्रि निषेधार्थ है।

यत्तु स्कान्दे—यदि रात्रौ दहेत्तस्य समाप्तिर्दहनस्य तु। परेऽहन्युदिते सूर्ये कार्या तस्योदकक्रिया॥ दग्धस्य तु न वै कार्या रात्रौ जातूदकक्रिया॥ इति। तन्निर्मूलम्।

१—स्थापयन्त्यभिप्रेतमेकाग्निं च कटादिषु। शिविकायां विमाने वा प्रचेतोवचनादिह॥ इति विहितवहनस्य साक्षात् स्पर्शं विनाऽपि संभवात्परम्परोक्तिः। इति टीकायाम्।

जो स्कन्दपुराण का वचन है—यदि उसका रात्रि में दाहसंस्कार हो गया हो और दहन की समाप्ति हो गयी हो तो दूसरे दिन सूर्य के उदय होने पर उसकी उदकक्रिया करे। दग्ध की रात्रि में उदकक्रिया नहीं ही करे। यह निर्मूल है।

(रात्रौ वपननिर्णयः)

रात्रिमृतस्य तु तत्रैव सङ्ग्रहे–रात्रौ दग्ध्वा तु पिण्डान्तं कृत्वा वपनवर्जितम्। वपनं नेष्यते रात्रौ श्वस्तनी वपनक्रिया ॥ इति। वपनं तु प्रातः। तच्च सर्वैः पुत्रैः कार्यम्।

रात में मरने पर तो उसका वहीं पर ही संग्रह में कहा है—वपन (मुण्डन) को त्याग कर रात्रि में जलाकर पिण्डान्तकर्म करे। रात्रि में मुण्डनक्रिया न करे। वपन तो प्रातःकाल करे। वह सब पुत्र करें।

(कुत्र कुत्र वपनं कार्यमितिकथनम्)

गयायां भास्करक्षेत्रे मातापित्रोर्गुरोर्मृते। आधाने सोमयागे च वपनं सप्तसु स्मृतम् ॥ इति मिताक्षरायां (प्रा० श्लोक १७ की टीका पृ० ४५) स्मृतेः।

मिताक्षरा में स्मृति ने कहा है—गङ्गा और भास्करक्षेत्र (प्रयाग) में, माता, पिता और गुरु के मरने पर, आधान तथा सोमयाग इन सात में वपन (मुण्डन) करना कहा है।

मरणस्यानङ्गित्वान्नैमित्तिकमिदम्। तदेव सङ्ग्रहवचनेन परेद्युरुत्कृष्यते तीर्थवत्। तेन कस्यचिद्दाहाङ्गत्वोक्तिश्चिन्त्या।

यह मरण का अंगी नहीं है, किन्तु यह नैमित्तिक है। उसी को ही संग्रह वचन से दूसरे दिन तीर्थ की तरह उत्कृष्यता (समानता) कहा है। इससे किसी ने जो दाह का अंग कहा है वह चिन्तनीय (विचारणीय) है।

(आशौचे पुनर्वपनकथनम्)

मदनरत्ने गालवः—प्रथमेऽहनि कर्तव्यं वपनं चानुभाविनाम्। प्रेतस्य केशश्मश्र्वादि वापयित्वाऽथ दाहयेत्। आशौचान्ते तु पुनः कार्यं विधिबलात्। मदनपारिजातेऽप्येवम्। तेन सर्वस्यास्य निर्मूलत्वोक्तिरज्ञोक्तिरेव।

मदनरत्न में गालव ने कहा है—प्रेत से छोटे भाई आदि को मुण्डन[1] पहले दिन करना चाहिये। प्रेत का केश, श्मश्रु (दाढ़ी) आदि मुण्डन कराकर दाह करे। आशौच के अन्त में। (देवलः—क्रियां च कुरुते यस्तु तद्दिने तस्य मुण्डनम्। लघीयसां दशाहे तु पुत्राणां वपनं भवेत् ॥ यथाचारमिति भट्टाः। वपनं चादौ वामश्मश्रुणः। 'वामकर्णकेशवापनम्'। प्रेतकर्मणोऽप्रादक्षिण्यात्) तो फिर से विधिवत् से करे। मदनपारिजात में भी यही है। इससे इस सबका निर्मूल और अज्ञानता ही कहा है।

(शवं रात्र्युषितं चेत् विचारः)

स्मृतिरत्नावल्याम्—शवं रात्र्युषितं चेत्त्रीन् कृच्छ्रान् कृत्वा दहेत्सुतः।

स्मृतिरत्नावली में कहा है—शव रात में रह जाय तो तीन कृच्छ्र प्रायश्चित्त कर पुत्र दाहसंस्कार करे। (गालवः—दिवा वा यदि वा रात्रौ शवस्तिष्ठति कर्हिचित्। तत्पर्युषितमित्याहुर्दहने तस्य का गतिः ॥ पञ्चगव्येन संस्नाप्य प्राजापत्यत्रयं चरेत्। पञ्चगव्य से स्नान भी करा दे।)

(ऊर्ध्वोच्छिष्टादिमरणे प्रायश्चित्तकथनम्)

मदनरत्नेऽङ्गिराः—ऊर्ध्वोच्छिष्टाधरोच्छिष्टे ह्यन्तश्छिन्नमृतेऽपि च।
कृच्छ्रत्रयं प्रकुर्वीत आशौचे मरणेऽपि च ॥

१—दशमे दिवसे क्षौरं बान्धवानां समुण्डनम्। क्रियाकर्ता मृतश्चापि पुनर्मुण्डनमाचरेत्। गारुडोक्तेः 'अनुभाविनां च परिवापनम्' इत्यापस्तम्बोक्तेश्च। परिवापनमिति परित्यज्य शिखां वापनं परिवापनमित्यर्थः। अनुभाविनः प्रेत कनिष्ठा इत्येके। प्रेतदुःखानुभाविनः सर्वे एवेत्यन्ये। पुत्रः, पत्नी, पिण्डदानोचितेऽन्योऽपि इत्येते एवेत्यपरे। जननाशौचेऽपि मुण्डनमिति रत्नमालायामत्र सर्वत्र समाचाराद् व्यवस्था' इति अन्त्यकर्मदीपके।

मदनरत्न में अंगिरा का वचन है—ऊर्ध्वोच्छिष्ट, अधरोच्छिष्ट, अन्तरिक्ष और आशौचावस्था में मरने पर भी तीन कृच्छ्र करे।

(साग्नेर्विशेषः)

अथ साग्नेर्विशेषः। कारिकायाम्—कृष्णपक्षे प्रमीयेत यद्यह्नि प्रातराहुतीः। शेषास्तु जुहुयाद्दर्शपर्यन्ताः पक्षहोमवत्॥ प्रतिपत्प्रातर्होमान्ता इत्यर्थः। 'यद्याहिताग्निरपरपक्षे म्रियेताहुतिभिरेनं पूर्वपक्षं हरेयुः' इत्याश्वलायनोक्तेः।

अब साग्निक के लिए विशेष कहते हैं। कारिका में कहा है-कृष्णपक्ष[1] में मरे तो प्रातःकाल आहुतियाँ देकर शेष आहुतियाँ पक्षहोम के सदृश अमावास्या पर्यन्त हवन करे। प्रतिपद् माने—प्रातःकाल होमान्तक्रिया करे—यह अर्थ है। यदि आहिताग्नि कृष्णपक्ष में मरे तो आहुतियों से इसको पूर्वपक्ष में ले जाय—यह आश्वलायन ने कहा है।

तदानीमेव जुहुयात्प्रातःकालाहुतीरपि। सायं म्रियेत चेत्सायमाहुतीर्जुहुयादथ। तदानीमेव जुहुयात्प्रातःकालाहुतीरपि॥ सकृद्गृहीतमन्त्रेष्टं भिन्नं तन्त्रं च होमयोः॥ दर्शं चापि प्रकुर्वीत स्थालीपाकं तदैव तु।

उसी समय ही प्रातःकालीन आहुतियों का भी हवन करे। सायंकाल मरे तो सायंकालीन आहुतियों का हवन करे। उसीसमय हो प्रातःकाल की आहुतियों का भी हवन करे। (सायंकालहोम हो जाने बाद या उसीसमय में प्रातःकाल होमपर्यन्त यदि मरण की शंका हो जाय तो यजमान या उसके पुत्र आदि देश-काल को कहकर 'तदुत्तरदिनसायं होमं तत्सायं होमं वा आरभ्य तदुत्तरदर्शसायं होमान्तानवशिष्टानौपासनहोमान् तथा प्रातर्होमप्रभृतिदर्शोत्तरशुक्लप्रतिपत्प्रातर्होमान्तानवशिष्टान् प्रातरौपासनहोमांश्चेदानीं तण्डुलैः पयसा वा होष्यामि) ऐसा संकल्प कर उसीसमय से अमावास्या से सायं होमान्त औपासनहोम कर उसी समय ही प्रातः होम को आरंभ कर प्रतिपदा के प्रातःकाल होमान्त औपासन होमों को करे।) यहाँ पर दोनों होम का तन्त्र और भेद इष्ट है। अमावास्या और वैसे ही स्थालीपाक (वटलोही में पके हुए चरु से हवन करना) भी करे।

छन्दोगपरिशिष्टे—हुतायां सायमाहुत्यां दुर्बलश्चेद् गृही भवेत्। प्रातर्होमस्तदैव स्याज्जीवेच्च स पुनर्न वा॥ इदं शुक्लपरम्। दुर्बलो मुमूर्षुः।

छन्दोगपरिशिष्ट में कहा है—सायंकाल की आहुति देने के बाद मरने की शंकावाला गृहस्थ हो तो प्रातःकाल होम वैसे ही करे यदि वह जीवित रहे तो फिर से करे या न करे। (शुक्लपक्ष में रात्रि में मरण की शंका में प्रातर्होम का ही अपकर्ष होता है। यदि होम के बिना मर जाता है तो कृष्णपक्ष में दिन में मरने पर प्रातःकाल की आहुति से आरंभ कर, रात्रि में मरने पर सायंकालीन आहुति से आरंभ कर पक्षहोम के सदृश मरणदिनादि से दर्शपर्यन्त दिनसंख्या से चार आहुती हवन कर दर्श तथा स्थालीपाक को करे। शुक्लपक्ष में रात्रि में मरे हुए का प्रात आहुति का हवन करे। अपकृष्ट में होम और दर्श को यजमान के जीवित रहने पर फिर से न करे।) यह शुक्लपरक है। [2]दुर्बल माने—मुमूर्षु।

१—कृष्णपक्ष में प्रातःकाल होम के हो जाने पर उसीसमय में या सायंकाल होमपर्यन्त यदि मरण की शंका हो तो यजमान या उसके पुत्र आदि देश-काल का उच्चारण कर 'तदुत्तरदिनप्रातर्होमप्रभृतितत्प्रातर्होमप्रभृतिवाऽऽगामिदर्शोत्तरप्रतिपत्प्रातर्होमान्तानवशिष्टान् सायमौपासनहोमांश्चेदानीं तण्डुलैः पयसा वा होष्यामि' यों सङ्कल्प कर उसीसमय से प्रतिपदा से होमान्त औपासनहोमों को पक्षहोमवत् कर उसीसमय ही सायंहोम से प्रारम्भ कर अमावास्या के सायंकाल होमान्त औपासनहोमों को करे।

२—सायमाहुत्याँ ्हुतायां चेत् दुर्बलः स्यात्तदैव प्रातराहुतिस्तत्सँ ्स्याश्रुतेरग्निहोत्रस्य। जीवेच्चेत्पुनः काले। न कृतत्वात्। (कात्यायनश्रौतसूत्र अ० २५ क० ६ सू० १–३) इनकी टीका सरलावृत्ति कात्यायनश्रौतसूत्र में देखिये।

त्रिकाण्डमण्डनः—दर्शेष्टिं च तदा कुर्यादिष्टिर्यदि न सम्भवेत्। देवतानां प्रधानानामेकैकस्य हुनेत् पृथक्॥ पुरोनुवाक्याज्याभ्यां चतुरात्तघृताहुतीः।

त्रिकाण्डमण्डन ने कहा है—यदि मुमूर्षु दर्शेष्टि न कर सके तो दर्शेष्टि करे। प्रधान देवताओं के लिए एक एक की आहुति अलग करे। [1]पुरोनुवाक्या (देवता को बुलाने के लिए जो मन्त्र है—अग्निर्मूधा—इत्यादि जिसको होता पढता है) और याज्या[2] (आहुति देने के लिए 'यज' इस प्रैष के बाद होता जिस मन्त्र को पढता है उसको याज्या कहते हैं) मन्त्रों से घी से चार आहुति दे।

तथा—अग्न्यारण्योरारूढे प्रमीयेत पतिर्यदि। प्रेतं स्पृष्ट्वा मथित्वाग्निं जप्त्वा चोपावरोहणम्॥ घृतं च द्वादशोपात्तं तूष्णीं हुत्वा शवक्रिया।

और अग्नि में अरणी और अधरारणि के आरूढ होने पर पति यदि मर जाय तो प्रेत का स्पर्श कर अग्नि का मन्थन कर [3]'उपावरोहणम्' इस मन्त्र का जप कर घी से बारह आहुति मौनी होकर देकर शव की क्रिया को करे।

(विच्छिन्नश्रौताग्नेर्मृतौ प्रेताधानकथनम्)

विच्छिन्नश्रौताग्नेर्मृतौ तु प्रेताधानं तत्रैवोक्तम्, प्रेतं स्वाग्न्यालये क्षिप्त्वा मथिताग्न्यानलेऽरणी। सन्निधाप्यारणीं मन्थेद् यस्येति यजुषा ततः॥

विच्छिन्न (नष्ट) श्रौताग्नि के मरने पर प्रेताधान वहीं पर कहा है। प्रेत को अपनी अग्नि के स्थान में प्रक्षेप कर अरणी मथित अग्न्यानल में स्थापन कर 'यस्य' इस यजु से मन्थन करे।

(यस्येति मन्त्रकथनम्)

यस्याग्नयो जुह्वतो मांसकामाः सङ्कल्पयन्ते यजमानमांसम्। जायन्तु ते हविषे सादिताय स्वर्गं लोकमिमं प्रेतं नयन्तु॥ इति मन्त्रतः॥

मांस की इच्छाओं से जिसकी अग्नियों से हवन करता हूँ यजमान के मांस का वे संकल्प करते हैं। वे हवि के लिए प्राप्त हों। इसलोक से स्वर्गलोक में प्रेत को ले जाय—इस मन्त्र से।

प्रणीय पावकं तूष्णीं द्वादशोपात्तसर्पिषा। तूष्णीं हुत्वा ततः कुर्यात्प्रेते माल्या इति क्रियाम्॥

अग्नि का प्रणयन तूष्णीं बारह बार ग्रहण किये हुए घृत से मौन होकर हवन कर प्रेतक्रिया करे।

(नष्टेषु अग्निष्वथारण्योर्नाशे निर्णयः)

नष्टेष्वग्निष्वथारण्योर्नाशे स्वामी म्रियेत चेत्। आहरेदरणीद्वन्द्वं मनोज्योतिर्ऋचा ततः॥

अग्नियों के नाश होने पर और अरणी तथा अधरारणि के नाश होने पर यदि स्वामी (पति) मर जाय तो मनो[4] ज्योति—इस ऋचा से अरणीद्वय को ले आवे।

(वृष्ट्यादिनाऽग्निनाशे विचारः)

यज्ञपार्श्वः—यजमाने चितारूढे पात्रन्यासे कृते सति।

वर्षाद्यभिहते वह्नौ कथं कुर्वन्ति याज्ञिकाः॥

यज्ञपार्श्व ने कहा है—यजमान के चिता पर चढ जाने पर और पात्रों के स्थापन करने के बाद वर्षा आदि से अग्नि का नाश हो जाय तो याज्ञिक कैसे करें।

१—देवतायै हविः प्रदानकाले देवताया आवाहनार्थं या ऋक् पुरः यागात्पूर्वं देवतामनुकूलयितुमनुच्येत सा देवतास्मरणार्था 'पुरोनुवाक्या' इत्युच्यते। सरलावृत्तिकात्यायनश्रौतसूत्रभूमिकायाम् पृ० २५।

२—आवाहनानन्तरं यया ऋचा देवता इज्यते, सा देवतायै हविः समर्पणार्था ऋक् 'याज्या' इत्युच्यते। 'सर्वेषामग्रेऽनुवाक्यास्ततो याज्या' (आश्व० श्रौ० ३।७।३)। सरलावृत्ति कात्यायनश्रौतसूत्रभूमिकायाम् पृ० २५।

३—उपावरोह जातवेद इमं प्रेतः स्वर्गाय लोकाय जनय प्रजानन्। आयुः प्रजां रयिमस्मासु धेहि प्रेताहुतीश्चास्य जुषस्व स्वाहा॥

४—मनो ज्योतिर्जुषतामाज्यं विच्छिन्नं यज्ञ ँ समिमं दधातु। बृहस्पतिस्तनुतामिमं नो विश्वे देवा इह मादयन्ताम्॥ (तै० स० १।५।७) और बौधायनगृह्यसूत्र।

तदर्धदग्धकाष्ठेन मन्थनं तत्र कारयेत्। तच्छेषालाभतोऽन्येन दग्धशेषेण वा पुनः॥ हुत्वाज्यं लौकिके वह्नौ दग्धशेषं दहेत्तु वा॥

तब अधजली लकड़ी से वहाँ मन्थन करावें। उसके शेष के अलाभ से (अर्थात्—उसका शेष न मिले तो) या दग्ध शेष (भस्म शेष) से फिर करे।

अत्राग्निषु सत्सु पर्णशरैः शरीरोत्पत्तिः। शरीरे वा सति प्रेताधानेनाग्न्युत्पत्तिः। उभयाभावे तु प्रेताधानेऽनधिकाराद्दाहादिसंस्कारलोपः। उदकदानाद्येव कार्यमिति केशवीकारशतद्वयीप्रमुखाः। तन्न, निषेकाद्याः श्मशानान्ता येषां वै मन्त्रतः क्रिया। इति विरोधात्, क्रियालोपगता ये च इति निषेधात्, तदभावे पलाशानां वृन्तैः कार्यः पुमानपि। इत्यभावे विधानस्याग्न्यभावेऽपि साम्याच्च। तेन प्रातराहुत्यभावेऽपि स्विष्टकृद्द्रव्यान्तरोक्तेरदृष्टार्थत्वात् प्रेताधानं दाहोऽपि भवत्येव। प्रतिकृतेरग्नीनां च प्रेताधानप्रयोजकत्वाद्धतेः।

यहाँ पर अग्नियों के रहने पर [1]पर्णशरों से शरीर की उत्पत्ति (निर्माण) करे। या शरीर हो तो प्रेत के आधान से अग्नि की उत्पत्ति करे। दोनों के अभाव में प्रेताधान में अधिकार के अभाव से दाहादिसंस्कार का लोप है। उदकदान आदि करे यह केशवीकारशतद्वयी आदि प्रमुख कहते हैं। यह उचित नहीं है। क्योंकि गर्भाधान से लेकर श्मशानान्त क्रियाओं की मन्त्र से क्रिया होती है—यह विरोध है और जिनकी क्रिया का लोप है इस निषेध से, उसके अभाव (शरीर के अभाव में) में पलाश के ठंढलों (पत्तों) से पुरुष के शरीर का निर्माण करे। इसके अभाव में इस विधान को अग्नि के अभाव में भी मानने की मुख्यता है। इससे प्रेतकी आहुति के अभाव में भी स्विष्टकृद् के लिए (जैसे हुतशेष के नाश में घी से स्विष्टकृद्याग करे। वैसे ही मृतशरीर के नाश में पर्णशराहुति दे।) द्रव्यान्तर कहा है क्योंकि अदृष्टार्थ है। अतः प्रेताधान और उसका दाह भी होता ही है। क्योंकि प्रतिकृति और अग्नियों के प्रेताधान प्रयोजक (निमित्त बनने वाला) है इसमें क्षति नहीं है।

(पत्नीमरणेऽप्येवम्)

पत्न्या अप्येवम्, दाहयित्वाग्निहोत्रेण स्त्रियं वृत्तवतीं पतिः। इति याज्ञवल्क्योक्तेः (आचा० श्लो० ८९)।

पत्नी का भी यही है। याज्ञवल्क्य ने कहा है—उत्तम आचार वाली स्त्री की मृत्यु हो जाय तो पति अग्निहोत्र अग्नि से या उसके अभाव में स्मार्ताग्नि से दाह करे। (स्त्रियम्–माने—स्त्रीमात्र) यह कमलाकर भट्ट का मत है।

(प्रथमायां जीवन्त्यां द्वितीयायां मृतायां दाहनिर्णयः)

यत्तु—द्वितीयां चैव यो भार्यां दहेद्वैतानिकाग्निभिः। जीवन्त्यां प्रथमायां तु सुरापानसमं स्मृतम्॥ इति तदाधाने सहानधिकृताविषयमिति विज्ञानेश्वरः।

जो यह वचन है—जो व्यक्ति दूसरी पत्नी का वैतानिक अग्नि से प्रथमा स्त्री के जीवित रहते हुए दाह करता है वह सुरा (मदिरा) पान के सदृश कहा है। विज्ञानेश्वर ने कहा है—यह बचन आधान में जिस पत्नी का साथ में अधिकार न किया हो उस विषयक है।

(दम्पत्योर्मध्ये प्रथममृतस्य दाहनिर्णयः)

मदनरत्ने ब्राह्मेऽपि—आहिताग्न्योश्च दम्पत्योर्यस्त्वादौ म्रियते भुवि।
तस्य देहः सपिण्डैश्च दग्धव्यस्त्रिभिरग्निभिः॥

१—शरीराण्याहृत्य कृष्णाजिने पुरुषविधिं विधायोर्णाभिः प्रच्छाद्याज्येनाभिघार्य पूर्ववद्दाहः। 'शरीरनाशे त्रीणि षष्टिशतानि पलाशवृन्तानां कृष्णाजिने पूर्ववत्। (का० श्रौ० अ० २५ कं० ८ सूत्र १३, १४)।

मदनरत्न में ब्रह्मपुराण का भी वचन है—आहिताग्नि (दम्पति)-स्त्री और पुरुष में जो प्रथम भूमि पर मर जाय उसके शरीर को सपिण्डगण तीनों[1] अग्नियों (गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि) से दग्ध करें।

(पश्चान्मृतस्य दाहनिर्णयः)

पश्चान्मृतस्य देहस्तु दग्धव्यो लौकिकाग्निना । अनाहिताग्निदेहस्तु दाह्यो गृह्याग्निना द्विजैः ।

बाद में मरे हुए के शरीर को तो लौकिक अग्नि (अधिकार के अभाव में या उसके रहने पर भी आलस्य आदि से अग्नि के अस्वीकार में या विच्छेद में पूर्व असंस्कृत अग्नि से) से और अनाहिताग्नि के शरीर को तो द्विज गृह्याग्नि (शालाग्नि, आवसथ्याग्नि, औपासन इत्यनर्थान्तरम्) से दाह करें।

(त्रिकाण्डमण्डनमते विचारः)

त्रिकाण्डमण्डनस्तु विकल्पमाह—ज्येष्ठायां विद्यमानायां द्वितीयायै स्वयोषिते ।
काम्यं नित्याग्निहोत्रं वा न कथञ्चित्प्रयच्छति ॥

त्रिकाण्डमण्डन ने तो विकल्प कहा है—ज्येष्ठा पत्नी के रहते हुए दूसरी पत्नी से काम्य या नित्य-अग्निहोत्र को कभी न करे।

स्त्रीमात्रमविशेषेण दग्ध्वान्यैर्वैदिकाग्निभिः । विवाह्यादधते यद्वाधानमेवास्ति चेद्वधूः ॥ इति ।

स्त्रीमात्र के अविशेष से अन्यवैदिक अग्नियों से जलाकर विवाह कर आधान करे। यदि वधू (ज्येष्ठा या अन्य) हो तो आधान ही करे।

(अत्रेदं तत्त्वम्)

अत्रेदं तत्त्वम् । साग्नेः पत्नीमृतौ द्वौ पक्षौ । पुनर्विवाहेच्छायां पूर्वाग्निभिर्दहेदित्येकः पक्षः, भार्यायै पूर्वमारिण्यै दत्त्वाग्नीनन्त्यकर्मणि । पुनर्दारक्रियां कुर्यात्पुनराधानमेव च ॥ इति मनूक्तेः (५।१६८)।

यहाँ यह तत्त्व है—साग्निक की पत्नी के मरने पर दो पक्ष है। फिर से विवाह करने की इच्छा में पहले की अग्नियों से दाह करे—यह एक पक्ष है। मनु ने कहा है—पति से पहले मरने वाली स्त्री के अन्त्य-कर्म में दाह के निमित्त अग्नियों को समर्पण कर गृहस्थाश्रम की इच्छा करता हुआ जिसके पुत्र हों या न हों वह फिर से विवाह करे तो वह स्मार्ताग्नि या श्रौताग्नियों का आधान करे।

दाहयित्वाग्निहोत्रेण स्त्रियं वृत्तवतीं पतिः । इति याज्ञवल्क्योक्तेश्च (आचा० श्लो० ८९) ।

और याज्ञवल्क्य ने कहा है—पति पूर्वोक्त आचारवाली स्त्री को श्रौताग्नियों से (अभाव में स्मार्ताग्नि से) दाहकर पति (भर्ता) पुनः (अविलम्ब) विवाह (श्रौत या स्मार्त अग्नि से) करे।

पुनर्विवाहाशक्तौ निर्मन्थ्येन तां दग्ध्वा पूर्वाग्निष्वेवाग्निहोत्रादि कार्यमित्यन्यः । 'आहार्येणा-नाहिताग्निं पत्नीं च' इत्याश्वलायनोक्तेः ।

फिर से विवाह की अशक्ति में निर्मथ्याग्नि (मन्थनवाली अग्नि) से उसको दग्ध कर पहले की अग्नियों में अग्निहोत्र इष्टि आदि करे—यह अन्यपक्ष है। क्योंकि आश्वलायन ने कहा है—आहार्य (निर्मन्थ्य) अग्नि से आहिताग्नि तथा पत्नी का दाह करे।

भरद्वाजोऽपि—'निर्मन्थ्येन पत्नीम्' इति । पूर्वाग्न्येकदेशेन दहेदिति यज्ञपार्श्वदेवयाज्ञिकादयः ।

भरद्वाज ने भी कहा है—मन्थनाग्नि से पत्नी का दाह करे। यज्ञपार्श्व, देवयाज्ञिक आदियों का कहना है—पूर्वाग्नि के एकदेश से (कारिका ने कहा है—तस्मान्नयैकदेशेन दग्धव्या पूर्वमारिणी। पत्नी ज्येष्ठेतरा वाऽपि यज्ञपार्श्वे निरूपितम् ॥ दाह[2] करे।

१—न पञ्चभिरित्यर्थः । सभ्यावसथ्ययोस्तु उत्तरतः सप्तसु पञ्चसु वा प्रक्रमेषूत्सर्गः । वपया मुखमवच्छाद्याग्निभिरा दीपयन्ति (का० श्रौ० अ० २५ क० ७ सू० ३६, ४०) ।

२—और इसीप्रकार एकसाथ श्रौत और स्मार्ताग्नियों से पहले ज्येष्ठा पत्नी के मरने पर स्मार्ताग्नि से दाह करे। कनिष्ठापत्नी फिर से सन्धान करे। कनिष्ठा पत्नी के मरने पर तो लौकिक अग्नि से या स्मार्ताग्नि के एकदेश से करे यह यज्ञपार्श्व के अनुयायियों का मत है। दक्षिणपूर्व में आहवनीय, उत्तरपश्चिम में गार्हपत्य, दक्षिणपश्चिम में दक्षिणाग्नि होती है। इन तीन को ही कहा है। सभ्य और आवसथ्य दाह के साधन योग्य नहीं होते है। चिताप्रदेश से प्रागुदीच्य दिशा में पाँचपक्रम अतिक्रम कर त्याग करता है। यह शाट्यायनि का वचन है।

(मतमतान्तरेण अपत्नीकस्याधानकथनम्)

यानि च—"'तस्मादपत्नीकोऽप्यग्निहोत्रमाहरेत्' इति श्रुतिः ।

जो ये वचन हैं--इससे अपत्नीक भी अग्निहोत्र को करे--यह श्रुति (वेद) कहती है ।

विष्णुः छन्दोगपरिशिष्टे च—मृतायामपि भार्यायां वैदिकाग्निं नहि त्यजेत् । उपाधिनापि तत्कर्म यावज्जीवं समाचरेत् ॥ उपाधिर्हेमकुशपत्न्यादिः ।

विष्णु और छन्दोगपरिशिष्ट में कहा है--पत्नी के मरने पर भी वैदिक अग्नि का त्याग न करे । सुवर्ण कुश आदि की पत्नी से यावज्जीवन उस कर्म को करता रहे । उपाधि माने—सुवर्ण, कुश आदि द्वारा निर्मित पत्नी ।

अन्ये कुशमयीं पत्नीं कृत्वा तु गृहमेधिनः । अग्निहोत्रमुपासन्ते यावज्जीवमनुव्रताः ॥ इत्यपरार्के स्मृत्यन्तरात् ।

अपरार्क में स्मृत्यन्तर का वचन है--अन्य गृहस्थ कुशा की पत्नी को कर यावज्जीवन व्रत में स्थित हो अग्निहोत्र की उपासना करते हैं ।

कात्यायनोऽपि—रामोऽपि कृत्वा सौवर्णीं सीतां पत्नीं यशस्विनीम् । ईज्ये बहुविधैर्यज्ञैः सह भ्रातृभिरच्युतः ॥ इत्यादीनि, तानि, पूर्वाग्निष्वेवाग्निहोत्रादिपराणि नत्वपत्नीकस्याधानार्थानि, क्रतुविधीनामाधानाप्रयोजकत्वात् । अपत्नीकस्याधानाप्रवृत्तिरिति मानवपरिशिष्टाच्च । सोमो न भवत्येव, 'अपत्नीकोऽप्यसोमपः' इति श्रुतेः ।

कात्यायन ने भी कहा है—भगवान् श्रीरामचन्द्र जी ने भी सुवर्ण की यशस्विनी सीता पत्नी को बनाकर भाइयों के साथ बहुत प्रकार के यज्ञों को किया–इत्यादि वचन हैं–वे पूर्व अग्नियों में ही अग्निहोत्र आदि के विषय में हैं अपत्नीक आधान के अर्थ में नहीं हैं क्योंकि यज्ञविधियों का आधान अप्रोजक है । अपत्नीक का आधान में प्रवृत्ति नहीं होती है–यह मानवपरिशिष्ट में कहा है । सोम नहीं ही होता है । जो पत्नी के रहित है वह साम[२] का पान नहीं कर सकता—एसी श्रुति है ।

यत्तु भारद्वाजापस्तम्बसूत्रम्—'दारकर्मणि यद्यशक्त आत्मार्थमग्न्याधेयम्' इति । अस्यार्थः—पुनर्विवाहाशक्तौ यदग्न्याधेयं पूर्वंकृतमस्ति तदात्मार्थमेव न पत्न्यै दद्यादिति । ब्राह्मणभाष्यापरार्कशार्करामाण्डारादितत्त्वमप्येवम् ।

जो भारद्वाज और आपस्तम्बसूत्र ने कहा है--पत्नीकर्म में जो अशक्त है वह अपनी आत्मा के लिए अग्न्याधान करे । इसका अर्थ यों है–फिर से विवाह करने की अशक्ति में जिसने अग्न्याधान पहले किया है वह अपनी आत्मा के लिए ही किया है पत्नी के लिए नहीं किया है । ब्राह्मण, भाष्य, अपरार्क, रामाण्डाण्डार आदियों का तत्त्व भी यही है ।

(अत्र कमलाकरभट्टमतम्)

त्रिकाण्डमण्डनस्तु पक्षद्वयमाह । अन्येऽप्यपत्नीकस्याधानमाहुस्तदाशयं न विद्मः ।

त्रिकाण्डमण्डन ने दो पक्ष कहा है । अन्य लोगों ने भी अपत्नीक को आधान कहा है, उसके आशय को हम नहीं जानते हैं । (इसी पक्ष को अन्य निबन्धकार भी स्वीकार करते हैं)

(आहिताग्न्यादीनां दाहे अग्निविचारः)

वृद्धयाज्ञवल्क्यः—आहिताग्निर्यथान्यायं दग्धव्यस्त्रिभिरग्निभिः ।
अनाहिताग्निरेकेन लौकिकेनापरो जनः ॥

वृद्धयाज्ञवल्क्य ने कहा है--यथोचितरूप से आहिताग्नि का तीन अग्नियों (गार्हपत्य,आहवनीय और दक्षिणाग्नि) से दग्ध करना चाहिये । अनाहिताग्नि का एक अग्नि (स्मार्ताग्नि) से और दूसरे मनुष्य का लौकिक अग्नि में दग्ध करे ।

१, २—ऐतरेय ब्राह्मण ७।६।१५ (वी) ।

(पूर्वमाहिताग्निस्त्रीमरणे अग्न्यादिविचारः)

मनुः—(५।१६७) एवं वृत्तां सवर्णां स्त्रीं द्विजातिः पूर्वमारिणीम् ।
दाहयेदग्निहोत्रेण यज्ञपात्रैश्च धर्मवित् ॥

ऋतु ने कहा है—ऐसो पहले मृत्यु को प्राप्त हुई आचरणवाली सवर्णा स्त्री को धर्म के जानकर द्विजाति अग्निहोत्र-अग्नियों से और यज्ञ के पात्रों से दाह करें।

(भर्तुः पूर्वं पत्नीमरणे विचारः)

कारिकायाम्—पत्नीमपि दहेदेवं भर्तुः पूर्वं मृता यदि । अनग्निकां दहेदेवं कापालेन हविर्भुजा ॥

कारिका में कहा है—यदि पति के पहले पत्नी मर गयी हो तो उसीप्रकार ही दाह करें। अनग्निका के मरने पर तो कपाल (गोहरी से उत्पन्न अग्नि) से हविर्भुक् (अग्नि) से दाह करे।

(छन्दोगानामेव विषये विशेषः)

(छन्दोगपरिशिष्टे—अनयैवावृता नारी दग्धव्या या व्यवस्थिता । अग्निप्रदानमन्त्रोऽस्या न प्रयोज्य इति स्थितिः ॥ इदं छन्दोगानामेव ।

छन्दोगपरिशिष्ट में कहा है—जो स्त्री व्यवस्थितरूप से रहती हो उसीप्रकार से उसको दग्ध करना चाहिये। उसके लिए [1]अग्निप्रदान मन्त्र को न पढ़ें—यह नियम है। यह छन्दोगों के लिये ही है।

तथा—अग्निनैव दहेद्भार्यां स्वतन्त्रां पतिता न चेत् । तदुत्तरेण पात्राणि दाहयेत्पृथगन्तिके ॥ इदमपि तेषामेव ।)

और स्त्री पतित न हो ऐसी स्वतन्त्र भार्या को अग्नि से ही दहन करे। उसके शरीर के समीप में उत्तर दिशा में पात्रों का अलग दाह करे। यह भी उन्हीं लोगों के लिये ही है।

(विधुर-विधवा-ब्रह्मचारी-यति-कन्यका-बालकादीनां मरणे अग्निविचारः)

आशौचप्रकाशे ऋतुः—विधुरं विधवां चैव कपालस्याग्निना दहेत् । ब्रह्मचारी यती चैव दह्येतोत्तपनाग्निना ॥ तुषाग्निना च दग्धव्यः कन्यका बाल एव च । अग्निवर्णं कपालं तु कृत्वा तत्र विनिक्षिपेत् ॥ करीषादि ततो वह्निर्जातो यः स कपालजः । अनुपनीते यद्यपि जातारण्यग्निः कैश्चिदुक्तस्तथापि तस्य कलौ निषिद्धत्वोक्तेरयमेव ज्ञेयः ।

आशौचप्रकाश में ऋतु का वचन है—विधुर (अपत्नीक) और विधवा स्त्री को कपालाग्नि से दाह करे। (स्त्री और पुरुष में जो पहले मरे का गृह्याग्नि से दाह करे। बाद में मरे का तो कापालाग्नि से दाह करे।) ब्रह्मचारी तथा यति को उत्तपन अग्नि (कुशा के अग्रभाग में अग्नि को जलाकर फिर से कुशाओं का योग करें। फिर दूसरी कुशाओं को मिलाने से यह तीसरी अग्नि उत्तपन होती है) से दाह करे। कन्या (अविवाहित कन्या) और बाल (अनुपनीत बालक) का तुषाग्नि (अनल-अनाज की भूसी या बुरकी आग) से दाह करना चाहिये। वहाँ पर अग्नि से लालकर कपाल (गोबर की गोहरा) को फेंक दे। करीष (सूखा गोबर) आदि द्वारा जो अग्नि उत्पन्न होता है वही कपालज है। यद्यपि अनुपनीत का (जिसका यज्ञोपवीत न हुआ हो) जंगल से उत्पन्न अग्नि को किसी ने कहा है। फिर भी उसका कलि में निषेध है। इसलिये त्याज्य ही है यह जानना चाहिये।

स्मृत्यन्तरे—गृहस्थो ब्रह्मचारी च विधुरो विधवाः स्त्रियः। औपासनश्चोत्तपनस्तुषाग्निश्च कपालजः ॥

स्मृत्यन्तर में कहा है—गृहस्थ, ब्रह्मचारी, पत्नी से रहित और विधवा स्त्री इनको क्रम से—गृहस्थ को

१—अस्मात्त्वम् यजु० ३५।२२ किन्तु 'कृत्वा तु दुष्कृतं कर्म' यह वाराहपुराण मन्त्र का ही प्रयोग करे। पारस्करगृह्यसूत्रमत से अमन्त्रक अग्निदान कहा है। कात्यायनश्रौतसूत्र में 'अग्निभिरा दीपयन्ति' (२५।७।३६) इससे अग्नि दानानन्तर आहुति का 'अस्मात्त्वमधि' (२५।२२) से विधान किया है। सूत्र में भी यह मन्त्र पाठ घृताहुति में ही है। अग्निदान में यह मन्त्र नहीं है। विशेष—अन्त्यकर्म दीपक में पृ० २०,२१ की टिप्पणी में देखिये। और 'श्मशानं कुर्वन्ति—शतपथ० का० १३।८ पृ० १३७४ से देखिये।

औपासन, ब्रह्मचारी को—उत्तपन (कुशा के अग्रभाग में अग्नि जलावे) विधुर को तुषाग्नि (अनाज की भूसी की अग्नि) और विधवा स्त्रियों को कपालाग्नि (गोहरी की अग्नि) होती है।

(उत्तपनाग्निलक्षणकथनम्)

उत्तपनस्तु—दर्भाग्रेऽग्निं तु प्रज्वाल्य पुनर्दर्भैस्तु संयुतः।
पुनर्दर्भैस्तृतीयोऽग्निरेष उत्तपनः स्मृतः॥

उत्तपन का स्वरूप यों है—कुशा के अग्रभाग में अग्नि का प्रज्वालन कर फिर से कुशों का संयोग करे। फिर दूसरी कुशाओं को मिलाने से यह तीसरी अग्नि उत्तपन होती है।

(दाहसमये—शूद्रद्वारा तृण-काष्ठ-हविरग्न्यादीनां ग्रहणे विचारः)

यमः—यस्यानयति शूद्रोऽग्निं तृणं काष्ठं हवींषि च।
प्रेतत्वं च सदा तस्य स चाधर्मेण लिप्यते॥

यम ने कहा है—जिस प्रेत के लिए शूद्र अग्नि, तृण, काष्ठ और हवि को ले आता है उसका सदा प्रेतत्व रहता है तथा वह अधर्म से लिप्त रहता है।

(दाहे निषिद्धाग्निः)

देवलः—चण्डालाग्निरमेध्याग्निः सूतिकाग्निश्च कर्हिचित्।
पतिताग्निश्चिताग्निश्च न शिष्टग्रहणोचितः॥

देवल ने कहा है—चाण्डाल की अग्नि, अमेध्याग्नि (अपवित्र अग्नि), सूतिकाग्नि, पतिताग्नि और चिताग्नि को कभी भी अच्छे लोग ग्रहण न करें।

(शवनिर्हरणे दिङ्नियमः)

मनुः (५।९२)—दक्षिणेन मृतं शूद्रं पूर्वद्वारेण निर्हरेत्। पश्चिमोत्तरपूर्वैस्तु यथासंख्यं (यथायोगं) द्विजातयः (द्विजन्मनः)। अत्र प्रातिलोम्येन क्रमः।

मनु ने कहा है—मरे हुए शूद्र को दक्षिण द्वार से, वैश्य को पश्चिम द्वार से, क्षत्रिय को उत्तरद्वार से तथा ब्राह्मण को पूर्वद्वार से श्मशान पर ले जाना चाहिये। यहाँ पर प्रातिलोम्य से (उलटापन या प्रतिकूल-क्रम) क्रम है।

पूर्वामुखस्तु नेतव्यो ब्राह्मणो बान्धवैर्गृहात्। उत्तराभिमुखो राजा वैश्यः पश्चान्मुखस्तथा॥ दक्षिणाभिमुखः शूद्रो निर्हर्तव्यः स्वबान्धवैः। इत्यादिपुराणादित्यपरार्कः। तेन त्रिंशत्श्लोक्युक्तोऽनुलोमक्रमो हेयः।

आदिपुराण में कहा है—ब्राह्मण को बान्धवगण घर से पूर्वामुख ले जाना चाहिये। उत्तराभिमुख राजा को, वैश्य को पश्चिमाभिमुख और दक्षिणाभिमुख शूद्र को उनके बान्धवों को ले जाना चाहिये—ऐसा अपरार्क कहते हैं। इससे त्रिंशत् श्लोकी में कहा हुआ अनुलोमक्रम (ऊपर से नीचे की ओर आनेवाला) त्यागने योग्य (पूर्व, उत्तर और पश्चिम भी यह पाठान्तर से विरोध भी जानना चाहिये। दरवाजे के रहने पर ही दिशाओं का नियम है। अभाव में नहीं होता है। द्वार के एक रहने पर भी नियम नहीं होता है। जीते हुए को ले जाने का नियम दिशाओं से नहीं हो सकता क्योंकि मरे का ही ग्रहण है। हारीत ने विशान्तर कहा है—नगराभिमुख प्रेत को जाना चाहिये—'नगराभिमुखं प्रेतं हरेयुः।) है।

(ज्येष्ठक्रमेण गमनकथनम्)

आश्वलायनः—'ज्येष्ठप्रथमाः कनिष्ठजघन्या गच्छेयुः।'

आश्वलायन ने कहा है—ज्येष्ठ—जो जो बड़े हैं वह आगे चले और कनिष्ठ (छोटे) हैं वह पीछे-पीछे चले।

(आधानोत्तरं द्वितीयविवाहे कृते यजमानमरणे विचारः)

अथाधानोत्तरं द्वितीयविवाहे कृते यजमानमरणे श्रौतस्मार्ताग्न्योः संसर्गः।

आधान के बाद दूसरे विवाह के करने पर यजमान के मरने पर श्रौत और स्मार्त अग्नियों का संसर्ग (मेलापक) होता है।

बौधायनसूत्रे ४ प्रश्ने १५ अध्याय पृ० ३४२-३४४—अथ यद्याहिताग्निर्द्वे भार्ये विन्देत प्राक्संयोगात् म्रियेत (परिश्रिते किं तर्हि कुर्यादिति) औपासनं सम्परिस्तीर्याज्यं विलाप्योत्पूय स्रुचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वा समिद्धत्यग्नौ जुहोति 'समितं सङ्कल्पेथाम्' इति मिन्दाहुती व्याहृतीश्च हुत्वा तमग्निम् 'अयं ते योनिर्ऋत्विज' इति समिधि समारोप्य गार्हपत्ये समिधमभ्यादधाति—'भवतं नः समनसौ' इति । गार्हपत्य आज्यं विलाप्य (उत्पूय स्रुक्स्रुवं निष्टप्य संमृज्य) स्रुचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वा गार्हपत्ये जुहोति 'अग्नावग्निश्चरति प्रविष्टः' इति। अपरं चतुर्गृहीत्वा गार्हपत्य एव 'चित्तिः स्रुक्' इति । अथ गार्हपत्ये स्रुवाहुतीर्जुहोति 'ब्राह्मण एकहोता' इति दशभिः । अथ प्राचीनावीतं कृत्वाऽन्वाहार्यपचने जुहोति 'ये समानाः', ये सजाताः, इति द्वाभ्याम् । अथ (अन्वाहार्यपचन एव) तत्रैव स्रुवाहुतीर्जुहोति अग्नये कव्यवाहनाय स्विष्टकृते स्वधा नमः स्वाहा इति । अथ यज्ञोपवीतं कृत्वा द्वादशगृहीतेन स्रुवं पूरयित्वा पुरुषसूक्तेनाहवनीये जुहोति । अथ स्रुवाहुतीर्जुहोति अग्नये विविचये स्वाहाऽग्नये व्रतपतये स्वाहाऽग्नये पवमाना अन्वाऽग्नये पाहवकाय स्वाहाऽग्नये शुचये स्वाहाऽग्नये पथिकृते स्वाहाऽग्नये तन्तुमतेऽग्नये वैश्वानराय स्वाहा इति । अथ (स्रुचि) चतुर्गृहीतं जुहोति 'मनोज्योति' रित्यत ऊर्ध्वं पैतृकं कर्म प्रतिपद्यते । इति ।

बौधायन सूत्र में कहा है—इसके बाद यदि आहिताग्नि दो स्त्रियों को प्राप्त करे । पहले संयोग से मर जाय तो औपासन अग्नि का स्थापन कर घृत को पिघलाकर चार बार घृत को स्रुचिमें ग्रहण कर प्रदीप्त अग्नि में हवन करे । [1]'समितं संकल्पेथाम्' और [2]मिन्दाहुति और व्याहृतियों से हवन कर बाद में उस अग्नि में [3]'अयं ते योनिर्ऋत्विजः' इस मन्त्रसे समिधा में समारोप कर गार्हपत्यकुण्ड में समिधा का आधान करता है-[4]भवतं नः समनसौ, आज्य को गार्हपत्यकुण्ड में टिघराकर चार बार स्रुचि में ग्रहणकर गार्हपत्यकुण्ड में हवन करता है-'अग्नावग्निश्चरति [5]प्रविष्ट' से । दूसरी बार ग्रहणकर गार्हपत्यकुण्ड में आज्यको टिघराकर 'चितिः [6]स्रुक्' से हवन करे । अब गार्हपत्यकुण्ड में स्रुवसे हवन करता है [7]'ब्राह्मण एक होता'—इससे दशतक ।

१—समितँ संकल्पेथाँ संप्रियौ रोचिष्णू सुमनस्य मानौ । इषमूर्जमभि संवसानौ सं वां मनाँसि सं व्रता समु चित्तान्याऽकरम् ॥ (तै० स० ४।२।५।१)।

२—यन्म आत्मनो मिन्दाऽभूदग्निस्तत् पुनराऽहार्जातवेदा विचर्षणिः । पुनरग्निश्चक्षुरदात् पुनरिन्द्रो बृहस्पतिः । पुनर्मे अश्विना युवं चक्षुरा धत्तमक्ष्योः ॥ इष्टयजुषस्ते देव सोम स्तुतस्तोमस्य शस्तोक्थस्य हरिवत इन्द्रपीतस्य मधुमत उपहूतस्योपहूतो भक्षयामि ॥ आपूर्याः स्थाऽऽना पूरयत प्रजया च धनेन च । एतत् ते तत ये च त्वामन्वे तत् ते पितामह प्रपितामह ये च त्वामन्वत्र पितरो यथाभागं मन्दध्यम् ॥ इत्यादि ॥ (तैत्तरीय सं० ३।२।५।११ पृ० १२०)

३—अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः । तं जानन्नग्न आ रोहाथा नो वर्धया रयिम् ॥ (तै.स.१।५।७।१)।

४—भवतं नः समनसौ समोकसावरेपसौ । मा यज्ञँ हिँसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः ॥ (तै० स० १।३।७।)

५—अग्नावग्निश्चरति प्रविष्ट ऋषीणां पुत्रो अधिराज एषः । स्वाहाकृत्य ब्रह्मणा ते जुहोमि मा देवानां मिथुया कर्भागधेयम् ॥ (तै० स० १।३।७।१४)।

६—चित्ति स्त्रुक् । चित्तमाज्यम् । वाग्वेदिः । आधीतं बर्हिः । के तो अग्निः । विज्ञातमग्निः । वाक्पतिर्होता । मन उपवक्ता । प्राणो हविः । सामाध्वर्युः ॥ वाचस्पते विधे नामन् । विधेम ते नाम विधेत्वमस्माकं नाम । वाचस्पतिः सोमं पिबतु । आस्मासु नृम्णन्धात् स्वाहा ॥ (तैत्तरीय आरण्यक ३ प्रपाठके १ अनुका०)

७—ब्राह्मण एक होता । स यज्ञः । स मे ददातु प्रजां पशून् पुष्टिं यशः । यज्ञश्च भूयात् । अग्निर्द्विहोता । स भर्ता । स मे ददातु प्रजां पशून् पुष्टिं यशः । भर्ता च मे भूयात् । पृथिवी त्रिहोता स प्रतिष्ठा । स मे ददातु प्रजां पशून् पुष्टिं यशः । प्रतिष्ठा च मे भूयात् । अन्तरिक्षं चतुर्होता । स विष्ठाः । स मे ददातु प्रजां पशून् पुष्टिं यशः । विष्ठाश्च मे भूयात् । वायुः पञ्च होता । स प्राणः । स मे ददातु प्रजां पशून् पुष्टिं यशः । प्राणश्च मे भूयात् । चन्द्रमाः षड्होता । स ऋतून्

अब प्राचीनावीति हो अन्वाहार्य के पकने पर हवन करे—'ये [1]समानाः, ये सजाताः। इन दो मन्त्रों से। इसके बाद वहीं पर स्रुवा से आहुति का हवन करता है 'अग्नये कव्यवाहनाय स्विष्टकृते स्वधा नमः स्वाहा'। फिर यज्ञोपवीति (सव्य) होकर बारह बार ग्रहण किये हुए स्रुव को भरकर पुरुषसूक्त से अहवनीय-कुण्ड में हवन करता है। फिर स्रुवा से हवन करता है—अग्नये विविचये स्वाहा १ अग्नये व्रतपतये स्वाहा २ अग्नये पवमानाय स्वाहा ३ अग्नये पावकाय स्वाहा ४ अग्नये शुचये स्वाहा ५ अग्नये पथिकृते स्वाहा ६ अग्नये तन्तुमते स्वाहा ७ अग्नये वैश्वानराय स्वाहा ८ फिर बारबार घृत को ग्रहण कर हवन करता है-'मनो [2]ज्योतिः' इस मन्त्र से। इसके बाद पैतृककर्म सिद्ध हो जाता है।

(आहिताग्नौ विदेशमरणे विचारः)

आहिताग्नौ विदेशमृते पथिकृतीष्टिर्मृताग्निहोत्रं तद्दाहः पात्रयोजनश्च कल्पसूत्रादिभ्योऽस्मत्पितामहकृतपद्धतेश्च ज्ञेयमिति बहुवक्तव्येऽप्युपरम्यते।

आहिताग्नि के विदेश में मरने पर पथिकृत इष्टि (स्मार्ताग्नेस्तु-यस्मिन्देशे स्थिते वह्निस्ततोऽन्यत्र मृतो यदि। चरुः पथिकृतः कार्यः पूर्णाहुतिरथापि वा॥ इति वचनात् पथिकृतः चरुः। प्रधानदेवतापूर्णाहुतिर्वा।) [3]मृताग्निहोत्र (मरने पर अग्निहोत्र) (मरणानन्तरं पुत्रादिर्देशकालौ संकीर्त्य-प्राचीनवीती अहर्मरणे

कल्पयाति। स मे ददातु प्रजां पशून् पुष्टिं यशः। ऋतवश्च मे कल्पन्ताम्। अन्नँ सप्त होता। स प्राणस्य प्राणः। स मे ददातु प्रजां पशून् पुष्टिं यशः। प्राणस्य च मे प्राणो भूयात्। द्यौरष्ट होता। सोनाधृष्यः। स मे ददातु प्रजां पशून् पुष्टिं यशः। अनाधृष्यश्च भूयासम्। आदित्यो नव होता। स तेजस्वी। स मे ददातु प्रजां पशून् पुष्टिं यशः॥ तेजस्वी च भूयासम्। प्रजापतिर्दश होता। स इदँ सर्वं। स मे ददातु प्रजां पशून् पुष्टिं यशः। सर्वञ्च मे भूयात् ४ प्रतिष्ठा, प्राणश्च मे भूयात्, अनाधृष्यः, सर्वञ्च मे भूयात्। ब्राह्मणः, यज्ञः, अग्निः, भर्ता, पृथिवी, प्रतिष्ठा, अन्तरिक्षं, विष्ठा, वायुः, प्राणः, चन्द्रमा, ऋतून्, अन्नँ स प्राणस्य, प्राणः द्यौः, अनाधृत्यः, आदित्यः, स तेजस्वी, प्रजापतिः, स इदँ सर्वं, च मे भूयात्। अनु. ७। ब्राह्मण एक होता-इति अनुवाकम्। एतदनुवाकगतेषु दशसु पर्यायेषु प्रथमं पर्यायमाह ब्राह्मण० मे भूयात्। अग्निर्द्विहोता० भूयात् २ पर्यायः। तृतीयमाह—पृथिवी त्रिहोता० प्रतिष्ठा च मे भूयात्। चतुर्थमाह—अन्तरिक्षं चतुर्होता० विष्ठाश्च मे भूयात्। पञ्चममाह—वायुः पञ्च होता प्राणश्च मे भूयात्। षष्ठमाह—अन्नँ सप्त० प्राणो भूयात्। अष्टममाह—द्यौरष्ट० अनाधृष्यश्च भूयासम्। नवममाह—आदित्यो० तेजस्वी च भूयासम्। दशममाह—प्रजापतिः मे भूयात्। (तैत्तरीय आरण्यके ३ प्रपा० ७ अनुवाके)

१—ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये। तेषां लोकः स्वधा नमः यज्ञो देवेषु कल्पताम्॥ ये सजाताः समनसः जीवा जीवेषु मामकाः। तेषाँ श्रीर्मयि कल्पनामस्मिल्लों के शतँ समाः॥ (तैत्तरीयब्रा २ का० ६।३,)

२—मनो ज्योतिर्जुषतामाज्यं विच्छिन्नं यज्ञँ समिमं दधातु। बृहस्पतिस्तनुतामिमं नो विश्वेदेवा इहमादयन्ताम्॥ (तै० स० १।५।७)। २—मनो ज्योतिर्जुषतामाज्यं विच्छिन्नं यज्ञं समिमं दधातु। या इष्टा उषसो निम्रुचश्च सास्संदधामि हविषा घृतेन स्वाहा॥ (बौधायनगृह्यसूत्र अ० १५ पृ० ३४४)। ३—मनो ज्योतिर्जुषतामाज्यम्। विच्छिन्नं यज्ञँ समिमं दधातु। बृहस्पतिस्तनुतामिमं नः। विश्वे देवा इह मादयन्ताम्॥ (तै० ब्रा० ३ का० पृ० ११००)

३—तद्विधिर्ब्राह्मे—तावत्कालं दक्षिणाग्रैः कुशैरास्तीर्य वेदिकाम्। अधोमुखं च समिधं धारयित्वा विधानवत्॥ परकीयेन वत्सेन दुग्ध्वा तां गां च तद्गृहे। गोक्षीरेणाथ तेनैव जुहुयादग्निहोत्रकम्॥ पश्चादग्नि समारोप्य यज्ञकाण्डानि तान्यपि। अपयच्छेत विप्राय तनो वृषभमेव च॥ मथित्वाऽग्निं प्रणयनं कृत्वा तस्कुणपं दहेत्। तत्प्रकारः कारिकायाम्—मृताग्निहोत्रं होतव्यं प्राग् दाहात्तत्र कथ्यते। प्राचीनावीतिना सर्वं शंस्यमेवोद्धरेत् खरेत्॥ साधनाभावतः कूर्चस्थापनं न भवेदिह। प्रागग्रैर्दक्षिणाग्रैश्च तृणैः शंसपरिस्तृतिः॥ पर्युक्षणं च तस्यैव कार्यमत्राप्रदक्षिणम्। नयेदक्षिणतो भस्म निरुह्योल्मं च सन्धिनीम्॥ दुग्ध्वा भस्मन्यधिश्रित्याभिद्योतासनवर्जितम्। उद्वासयेत्तदासाद्य दक्षिणास्त्रुक् स्त्रुवं ततः॥ प्रतप्य प्रैषरहितं तत्पयः सकृदुन्नयेत्। धारयेत्समिधं चाधो नयेदक्षिणतो नयेत्॥ तूष्णीं समिधमादाय सव्यं जानु निपात्य च। अपसव्यं स्रुचं कृत्वा सकृत्सर्वं विनिक्षिपेत्। ततः कृष्णाजिनेऽस्थीनि पुरुषाकारवत् न्यसेत्॥ स्वर्णादि स्थापयेत्तत्र घृतेनाभ्यज्य पूर्ववत्। पात्राणि योजयित्वा तं दहेत्त्रेताग्निभिस्ततः॥ 'देशान्तरकलेवरागमानन्तरमिदं प्रेताग्निहोत्रं हुत्वा कलेवरं दग्धव्यमित्येके। वस्तुतस्तु प्राकृताग्निहोत्रस्थाने मृताग्निहोत्रविधानात् कलेवरस्यास्थ्नां वा गृहागमनपर्यन्तं प्रत्यहं सायं प्रातर्यथोपदिष्टं होतव्यम्, अन्यदीयेन वत्सेन या गौः स्नुतपयोधरा। आशरीराद्दतेस्तस्याः

प्रातर्होममारभ्येत्यादि च पूर्ववद् उक्त्वा रात्रिमरणे वैपरीत्येन च तदुभयमुक्त्वा पयसा तूष्णीं होष्यामि' इति संकल्प्य पर्युक्षणान्ते एकपात्र एव प्रातः सायं आहुतिद्वयपर्याप्तं सकृद् गृहीतं गृहीत्वौपासनदक्षिणार्थे तूष्णीमधिश्रित्योल्मुकेनावज्वल्य त्रिः पर्यग्निं कृत्वा तत्रैव यकर्शवन्निव (?) दक्षिणत् उद्वास्य तत् पात्रं किञ्चित्कालमाकाशे धृत्वा भूमौ निधायाधस्तात्समिधं पालाशीं धृत्वाऽग्नेः पश्चात्कुशेषु समिधा सह निधाय सकृदेव तूष्णीं सर्वं जुहुयात्। प्रजापतिं मनसा ध्यात्वा प्रजापतये न मम इति त्यजेत्। अन्यत्सर्वं लुप्यत इति। होमश्च विद्यमानाग्नावेव सर्वविधः। मरणोत्तरं पुनः सन्धाने तु हौम्यद्रव्यदानमात्रम् इति निर्णयसिन्धुटीकायाम्)। उसका दाह और पात्रों की योजना कल्पसूत्र आदि के अनुसार तथा हमारे श्री पितामहकृत पद्धति से जानना चाहिये। यहाँ बहुत कुछ कहना था पर यहाँ ही इसविषय को समाप्त करते हैं।

(स्मार्ताग्निमरणे विचारः)

स्मार्ताग्नेस्तूक्तं मदनरत्ने छन्दोगपरिशिष्टे च—दुर्बलं स्नापयित्वा तु शुद्धचैलाभिसंवृतम्। दक्षिणाशिरसं भूमौ बर्हिष्मत्यां निवेशयेत्॥

स्मार्ताग्नि का दाह तो मदनरत्न और छन्दोगपरिशिष्ट में कहा है। दुर्बल (मरने की शंकावाला) को स्नान कराकर शुद्धवस्त्र से ढककर दक्षिणदिशा की ओर शिरकर भूमि में कुशाओं के ऊपर लिटा दे।

घृतेनाभ्यक्तमाप्लाव्य शुद्धवस्त्रोपवीतिनम्। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं सुमनोभिर्विभूषयेत्॥

घृत को शरीर में अच्छी तरह मलकर स्नान कराकर शुद्ध वस्त्र तथा यज्ञोपवीत पहना दे। शरीर के सारे अंग पर चन्दन छिड़क दे और सुन्दर पुष्पों से विभूषित करे।

हिरण्यशकलान्यस्य क्षिप्त्वा छिद्रेषु सप्तसु। मुखेष्वथापिधायैनं निर्हरेयुः सुतादयः॥

सोनेके टुकड़ोंको उसके शरीरके सात छिद्रोंमें रख दे। फिर मुखको ढककर पुत्र आदि बान्धव श्मशान ले जायँ।

आमपात्रेऽन्नमादाय प्रेतमग्निपुरःसरम्। एकोऽनुगच्छेत्तस्यार्धमर्धपथ्युत्सृजेद्भुवि॥

आमपात्र (कच्चे पात्र) में अन्न को ग्रहण कर प्रेत और अग्नि को आगे कर एक व्यक्ति चले। उस प्रेत के आधे मार्ग में जाने पर उस अन्न में से आधे अन्न को पृथ्वी पर त्याग करे।

ऊर्ध्वमादहनं कार्यमासीनो दक्षिणामुखः। सव्यं जान्वाच्य शनकैः सतिलं पिण्डदानवत्॥

बाद में दहन पर्यन्त दक्षिणाभिमुख हो पिण्डदान की तरह सव्य जानु होकर धीरे-धीरे तिलके सहित दाह करे।

अथ पुत्रादिराप्लुत्य चरुद्दारुचयं महत्। तत्रोत्तानं निपात्यैनं दक्षिणाशिरसं मुखे॥ आज्यपूर्णं स्रुवं दद्याद् दक्षिणाग्रां नसि स्रुवम्। पादयोरधरां प्राचीमरणीमुरसीतराम्॥ पार्श्वयोः शूर्पचमसौ सव्यदक्षिणयोः क्रमात्। सुसमे तु न्यसेन्न्युब्जमन्तरूर्वोरुलूखलम्॥ चात्रोविलीढमत्रैव अनग्नेरप्ययं विधिः। अपसव्येन कृत्वैतद्वाग्यतः पितृदिङ्मुखः॥ अथाग्निं सव्यमावृत्को दद्याद्दक्षिणतः शनैः। 'अस्मात्त्वमधिजातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः॥ असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहे'ति परिकीर्तयन्। (यजु० अ० ३५।२२)

फिर पुत्र आदि स्नान कर बहुत लकड़ी इकट्ठी करें। वहाँ पर दक्षिणदिशा की तरफ शिर कर उत्तान (सीधा) लिटाकर उस प्रेत के मुखमें स्रुवा को घी से भरकर दाहिने नाक में स्रुवा को दे। पैरों के नीचे अधरार्णी को और छाती पर उत्तरार्णी दे। क्रम से—बायें पार्श्व में शूर्प तथा दाहिने पार्श्व में चमस को दे। समभाग में न्युब्ज (उलटा) ऊरु के मध्य में उलूखल को रखे। वहीं पर चात्र-तर्कु से युक्त—(विशेष पारस्कर का० ३।१५।४, गोभिल गृ० ३।७।७ कात्यायन श्रौत सूत्र में देखिये।) [1]अनग्निक की यही विधि

पयसा होम इष्यते॥ अन्यस्या अपि होतव्यं पयसा तदसंभवे॥ इत्यन्त्येष्टौ वचनात्। इति निर्णयसिन्धुटीकायाम्। पुरोडाशोऽग्नये पथिकृते–कात्या० श्रौ०अ० २० क० १ सू० २१ और मृताग्निहोत्र आदि का विचार कात्यायन श्रौ० सरलावृत्ति अ० २५ क. ७ सूत्र ३–१० पृ. २६७, २६८ तक है। और शतपथ ब्राह्मण का. १३।५ पृ. १२४६ को भी देखिये।

१—आहितानाहिताग्न्यादेर्विशेषो वक्ष्यतेऽधुना। विगुल्फं बर्हिराज्यं चेत्येवमन्तं समं भवेत्॥ नास्यानुस्तरणी कार्या पात्राणां न च योजनम्। पृषदाज्यं तथा चर्यादिति गृह्यविदो मतम्॥ तां दिशं तु नयेदग्निमेतं चापि ततः परम्। अयुजो मिथुना वृद्धाः पीठचक्रेण भावतः॥ प्रेतस्य पृष्ठतो भूत्वा ईयुः पूर्ववदेव च। भूमिभागं ततः प्राप्य कर्ता प्रोक्षति पूर्ववत्॥ इति।

है। अपसव्य और मौन होकर दक्षिणाभिमुख हो फिर सव्य हो अग्नि को लेकर धीरे धीरे दक्षिणदिशा में [1]"अस्मात्त्वमधिजातोऽसि' इस मन्त्र को कहता हुआ अग्नि दे। (मन्त्र का यों अर्थ है—हे अग्ने, तुम इस यजमान से आधानसमय में उत्पन्न हुए हो। यह यजमान फिर तुम से प्रकट हो। यह अमुक स्वर्गलोक की प्राप्ति के लिए तुमसे उत्पन्न हो तुम्हारे वंश में ही हो यह आहुती अच्छीप्रकार से ग्रहण करो।)

तथा—एवमेवाहिताग्नेश्च पात्रन्यासादिकं भवेत्। कृष्णाजिनादिकं चात्र विशेषोऽध्वर्युचोदितः॥

और इसीप्रकार आहिताग्नि के पात्रों का आसादन होता है। अध्वर्यु से कथित विशेष कृष्णार्जन (मृगचर्म) आदि यहाँ होता है।

(छन्दोगानां विषये विचारः)

तत्रैव-अनयैवावृता नारी दग्धव्या या व्यवस्थिता। अग्निप्रदानमन्त्रोऽस्या न प्रयोज्य इति स्थितिः॥

वहीं पर कहा है—जो स्त्री व्यवस्थितरूप (शुद्ध आचरणवाली है) वाली है उसको भी इसीप्रकार दग्ध करना चाहिये। उस स्त्री के लिए अग्निप्रदान के मन्त्र का प्रयोग नहीं करना चाहिये। ऐसी मर्यादा है।

इदं छन्दोगानामेव। पात्रन्यासोक्तेरुत्तानदेहत्वं साग्निकपरम्, निरग्निस्तु पुमानधोमुखः स्त्री तूत्ताना दाह्या, सगोत्रजैर्गृहीत्वा तु चितामारोप्यते शवः॥ अधोमुखो दक्षिणदिक्चरणस्तु पुमानिति॥ उत्तानदेहा नारी तु सपिण्डैरपि बन्धुभिः॥ इत्यादित्यपुराणादिति शुद्धितत्त्वहारलतादयः। उत्तरशिरस्त्वं सामगेतरपरम्।

यह (दक्षिणदिशा की तरफ शिर करना) छन्दोगों के लिये है। पात्र का न्यास (पात्रों का स्थापन) करने से उतान (सीधा) देह (शरीर) रखना साग्निकपरक है। निरग्निक पुरुष को तो अधोमुख और स्त्री को उतान कर (सीधा कर) दहन करे। सगोत्रवाले लोग शव को ग्रहण कर चिता में रख दें। अधोमुख दक्षिणदिशा में पुरुष का पैर रखें। सपिण्ड तथा बान्धव स्त्री के शव को उतानदेह रखें—यह आदित्यपुराण में कहा है—यह शुद्धितत्व, हारलता आदियों का कहना है। उत्तरदिशा की तरफ शिर को करे—यह सामवेदियों के भिन्न विषय में है।

(वाराहपुराणमते अग्निदानमन्त्रकथनम्)

वाराहे त्वग्निदानेऽन्यो मन्त्रः—कृत्वा तु दुष्कृतं कर्म जानता वाप्यजानता। मृत्युकालवशं प्राप्य नरं पञ्चत्वमागतम्॥ धर्माधर्मसमायुक्तं लोभमोहसमावृतम्। दहेयं सर्वगात्राणि दिव्यान् लोकान् स गच्छतु॥ ज्वलमानं महावह्निं शिरःस्थाने प्रदापयेत्। चतुर्वर्णेषु संस्थानमेवं भवति पुत्रके॥

वाराहपुराण में तो अग्निदान का मन्त्र अन्य कहा है-जानते हुए या न जानते हुए दुष्कृत (पाप कर्म) कर्म को करके मृत्युकाल के वश में प्राप्त होकर मनुष्य पञ्चत्व को प्राप्त होकर धर्म तथा अधर्म से युक्त-लोभ और मोह से युक्त इसके सब शरीर को जला रहा हूँ। वह दिव्यलोकों को जाय। जलती हुई महान् अग्नि को शिर के स्थान में (पैर के देश में) दे। इसीप्रकार ही चार वर्णों में संस्थान (विधि) पुत्र के रहने पर होती है।

(मृत्योरन्तरं षट्पिण्डदानदेशकथनम्)

अत्र क्रियानिबन्धे गारुडे षट्पिण्डदानमुक्तम्—मृतस्योत्क्रान्तिसमये षट्पिण्डान् क्रमशो ददेत्। मृतिस्थाने तथा द्वारि चत्वरे तार्क्ष्य कारणात्॥ विश्रामे काष्ठचयने तथा सञ्चयने च षट्।

यहाँ पर क्रियानिबन्धमें गरुडपुराण के वचनसे छ पिण्डों का दान कहा है-हेतार्क्ष्य, मृतक के उत्क्रान्ति-मरनेके छ पिण्डों को क्रम से दे। मरने के स्थान में, द्वारदेश (दरवाजे) में, चौराहे पर, विश्रामस्थान (आधे रास्ते पर) में, काष्ठ के चयन (चितास्थान) में और अस्थिसंचयन (हड्डियों को इकट्ठा करने) में दे। (मारवाडियों के यहाँ कुछ भिन्न प्रकार है)।

१—अस्मात्त्वमधिजातोऽस्यं त्वदधिजायतान्। अग्नये वैश्वानराय सुवर्गाय लोकाय स्वाहा॥ (बौ० गृ० १६ पटले तै० सा० ३।२।८)

(गरुडपुराणमत से मरने के बाद छ पिण्डों का देने का क्रम)

(चत्वर में खेचर नाम का तीसरा पिण्ड)	(द्वारदेश में पान्थ नाम का दूसरा पिण्ड)	(मरणस्थान में शव नाम का प्रथम पिण्ड)
भूतकोटिपलायनकामः चत्वरे खेचरनाम	गृहवास्त्वधिदेवतातुष्ट्यर्थं द्वारदेशे पान्थ नाम	अमुकगोत्र, अमुकप्रेत, मृतिस्थाननिमित्तक शवो नाम एष पिण्डस्ते मया दीयते तवोपतिष्ठताम्।

(अस्थिसञ्चयननिमित्त छठा पिण्ड)	(काष्ठचयन में पांचवा पिण्ड)	(विश्रामस्थान गांव और श्मशानके बीचका भागमें चतुर्थ पिण्ड)
मोक्षकामः, अस्थिसञ्चयननिमित्तकप्रेतनाम	मोक्षकामचितायां साधक नाम	दाहकाले पिशाचादिभ्यः, अविघ्नकामः विश्रामस्थाने भूतनाम।

नोट—काशी, हरिद्वार आदि में प्रत्यक्ष गङ्गा के सान्निध्य में तो प्रवाहानन्तर उसी चिता स्थान में छठे पिण्ड को देते हैं। १७४ आदि भी उसी भूमि में लिखते हैं और मट्टी के भरे घड़े को दाहकर्ता विमुख हो फेंकता है। इत्यादि आचार है। इन छ पिण्डों के देने में महानिबन्धों में बहुमत मालूम होता है।

तथा——आदौ देया तु षट् पिण्डा दश देया दशाहिकाः। स्थाने चार्द्धपथेऽतीते चितायां शवहस्तके ॥ श्मशानवासिभूतेभ्यः षष्ठं सञ्चयने तथा ॥

और आदि में छ पिण्ड दे तथा दश पिण्ड दशदिन में दे। क्रम यों है छ पिण्डों का—स्थान (मरण के स्थान) में, आधे रास्ते के न बीतने पर, चिता में, शव के हाथ में, श्मशान में रहनेवाले भूतों के लिए और छठा संचयन के समय (अस्थि के इकट्ठा करने पर) दे।

(अग्निदानमन्त्रेण तथा 'अस्मात्त्वम्' इति मन्त्रेण च अर्धदग्धानन्तरमाज्याहुतिकथनम्)

ततः——त्वं भूतकृज्जगद्योने त्वं लोकपरिपालकः। उक्तः संहारकस्तस्मादेनं स्वर्गं मृतं नय ॥ इत्यग्निं दत्त्वा अस्मात्त्वमिति मन्त्रेणार्द्धदग्धे आज्याहुतिरुक्ता।

तदनन्तर हे जगद्योने (संसार के कारण अग्निदेव) तुम प्राणियों को उत्पन्न करनेवाले, तुम संसार के पालन करनेवाले और संहार करने वाले हो ऐसा कहा है—इससे इस मरे हुए को स्वर्ग में ले जाओ। इससे अग्नि को देकर (अस्मात्त्वम्) इस मन्त्र से आधे शरीर के जलने पर घी से आहुति कहा है।

(मृताहिताग्निशरीरे यज्ञीयपात्राणां स्थापनकथनम्)

आहिताग्नौ पराशरः——शम्यां शिश्ने विनिक्षिप्य अरणी मुष्कयोरपि। जुहूं च दक्षिणे हस्ते वामे तूपभृतं न्यसेत् ॥ ओष्ठे तूलूखलं दद्यात्पृष्ठे च मुसलं न्यसेत्। उरसि क्षिप्य दृषदं तण्डुलाज्यतिलान्मुखे ॥ श्रोत्रे च प्रोक्षणीं दद्यादाज्यस्थालीं च चक्षुषोः। कर्णे नेत्रे मुखे घ्राणे हिरण्यशकलं न्यसेत् ॥ अग्निहोत्रोपकरणमशेषं तत्र निक्षिपेत्।

आहिताग्नि के लिए पराशर ने कहा है-शम्यापात्र को शिश्न (लिंग) में, अरणीपात्रों को मुष्क (अण्डकोश) में, जुहूपात्र को दाहिने हाथ में, उपभृतपात्र को बायें हाथ में, ओठ में उलूखलपात्र को, पीठ में-मुसलपात्र को, छाती पर दृषद (शिला) को, चावल, घी और तिल को मुख में, श्रोत्र (कानों) में प्रोक्षणीपात्र, नेत्रों में—आज्यस्थाली (घी रखने का कांसे का कटोरा), कान, नेत्र, मुख और नासिका में सोने के टुकड़े रखे। अग्निहोत्र की सब उपकरण (सामग्री) वहाँ पर रख दे।

(पात्रोंका निर्माण प्रकार)

(१) अन्तर्धानिकट—वारणकाष्ठका अर्धचन्द्रकार बारह अंगुलका आधा अंगुल मोटापात्र अन्तर्धानिकट होता है। दर्शपूर्णमासादियागमें पत्नीसंयाजमें अपना अपना भाग लेनेके लिए देवपत्नियाँ आती हैं, उन्हें देवताओंसे लज्जा होती है। इसलिए आड़ करनेके लिए गार्हपत्यकुण्ड के ऊपर पत्नीसंयाजके समय इसको रखा जाता है। बौधायन शाखामें यह पीपलका होता है। (२) पशुरशना—बारहहाथकी तीन मुखवाली कुशाकी रस्सी पशु बाँधनेके लिए पशुरशना कही जाती है। अश्वमेधमें १२ या १३ हाथकी पशुरशना होती है। (३) मयूख—बारह अंगुलका एक अंगुल मोटा गूलरका वत्सबन्धनके लिए शङ्कुमयूख होता है। (४) वसाहवनी-मांसपाक भाण्डस्थितस्नेहको वसा कहते हैं। उसका हवन जिसमें हो उस जुहुसदृशी विकङ्कतकाष्ठकी स्रुक्को वसाहवनी कहते हैं। (५) वेद— दर्शपूर्णमास आदि से पुरोडाशमें लगे हुए भस्मको दूर करनेके लिए ५१ कुशाओं से बना हुआ वेणीके आकार का गूंथा हुआ बैठे हुए बछड़ेके जानुके सदृश कुशमुष्टि वेद कहलाता है। (६) कपूर— मृत्तिका का बड़े गर्तवाला अर्धपरिमाणपात्र कपूर (अथरी) होता है। चतुर्मास्य—आदि यज्ञमें इसमें धान भूँजा जाता है। (७) अनुष्टुब्धि—जुहुसदृशी आश्वत्थी स्रुक्, आपस्तम्बोंकी अनुष्टुब्धि होती है। (८) पूर्णपात्र—दर्शादि इष्टिमें स्मार्त प्रोक्षणीपात्र के सदृश यजमानका मुख धोनेके लिए जिसमें जल रखा जाता है, वह पूर्णपात्र कहलाता है। (९) विष्टुति—वारणकाष्ठकी दस-दस अङ्गुलकी एक अङ्गुल मोटी नीचेके हिस्सेमें कुछ चतुरस्र और मोटी—जैसी ऊपरके हिस्सेमें कुछ गोल और पतली—शलाका (सलाई) को विष्टुति कहते हैं। सोमयाग में उद्गाता ऋत्विक् गान करनेके समय साममन्त्रोंकी गिनती इसके द्वारा करता है। (१०) शराव—मृत्तिका का बड़े मुखका थोड़े गर्तवाला गृहमेधीयादि इष्टिमें पायस रखनेके लिए पात्र (परई) शराव कहलाता है। (११) शकट—वारणकाष्ठका अढाईहाथ लम्बा त्रिकोण डेढ़हाथ चौड़ा दो हाथ ऊँचा बैठनेकी जगह में एकहाथ लम्बी-चौड़ी काठकी जिसमें पटिया हो, ऊपर भी काठकी पटियासे शिखर बना हो एक-एक हाथ ऊँचे दो जिसमें चक्र हों, सोमको रखनेके लिए शकट होता है। दूसरा शकट पूर्वशकटकी अपेक्षासे कुछ छोटा होता है और इसमें शिखर नहीं होता है। आश्वलायनशाखामें स्मार्तकर्ममें भी बारह अङ्गुल का शकट होता है।

(१२) परिप्लवा—वरनाकाष्ठकी दस अङ्गुल लम्बी हंसमुखके सदृश नालीदार पाँच अंगुलकी गोलाईमें एक अंगुलवाली बिना दण्डकी स्रुक् द्रोणकलश आदिसे सोमरसग्रहणके लिए होती है। (१३) पशुकुम्भी—पशुश्रवणके लिए तैजसपात्रको पशुकुम्भी कहते हैं। (१४) मूसल-खैरका दस अंगुल लम्बा अथवा इच्छाप्रमाण मध्यमें कुछ अधिक स्थूल दर्शपूर्णमासादिमें व्रीह्यादिकण्डनोपयोगी मूसल होता है। आपस्तम्बशाखावाले ३६ अंगुलका वारणकाष्ठका मूसल मानते हैं। (१५) ऋतुग्रहपात्र—काश्मरीकाष्ठ के या पीपल के बने हुए प्रोक्षणीपात्र के सदृश दोनों तरफ जिनमें हंसमुख नालिकाएँ होती हैं सोमरस के ग्रहण और होम आदि के उपयोग में आनेवाले ऋतुयाज के साधनभूत दो पात्र ऋतुपात्र या ऋतुग्रह कहे जाते हैं (१६) आज्यस्थाली—अर्थपरिमाण धातुकी मृन्मयी हस्तमित हो ऊपर मुँह चौड़ा नोचेसे क्रमसे छोटी होती जाय, घृतको गरम करनेके लिए कटोरा आज्यस्थाली होती है। (१७) उपवेष—वारणकाष्ठसे बना हुआ एकहाथका पाँच अंगुलवाले हाथके सदृश हाथके नीचे दो अंगुल मोटे गोल दण्डवाला तप्त अङ्गारोंको दूर करनेके लिए उपवेषपात्र होता है। आपस्तम्बशाखामें उपवेष नहीं होता है, किन्तु धृष्टि होती है। (१८) स्थाली—उक्थ्यस्थाली, आग्रयणस्थाली, ध्रुवस्थाली और आदित्यस्थाली ये चार स्थालियाँ धातु या मृन्मयकी चरुस्थालीके सदृश होती हैं। इनमें सोमरस रखा जाता है, इनमें उक्थ्यस्थालीका ढकना भी होता है। जिसका मुख और मूल दोनों चौड़ा हो उसको स्थाली कहते हैं। (१९) इडापात्री—वारणकाष्ठकी एकहाथ लम्बी आठ अंगुल चौड़ी कुछ गोल आकारकी चार अंगुल दण्ड जिसमें हो, दो अंगुल ऊँची, एक अंगुल विस्तृत और चौड़ी जिसकी परिधि-किनारी हो, ब्रह्मा, होता, अध्वर्यु, अग्नीत् और यजमान—इनका भाग जिसमें रखा जाता हो, इसको इडापात्री कहते हैं। तैत्तरीशाखावालोंकी इडापात्री चौकोर प्रणीताके सदृश आकृतिवाली होती है। आपस्तम्बशाखामें इस इडापात्रीके सदृश दारुपात्री होती हैं। (२०) मेक्षण—वैकङ्कतकाष्ठका दस अंगुल लम्बा आगेके हिस्सेमें दो अंगुलकी गोलाई कलछीकी तरह मुख हो और बचे हुए हिस्सेमें कनिष्ठा अंगुलीके अग्रभागके समान स्थूलदण्ड हो, चरुइष्टिमें चरुका ग्रहण और होम जिससे होता है उसको मेक्षण कहते हैं। आपस्तम्बशाखाके श्रौतकर्ममें गूलरका धृष्टिके सदृश एकहाथका मेक्षण होता है और स्मार्तकर्ममें गूलरका दस अंगुल मेक्षण होता है। (२१) पृषदाज्यग्रहणी—पृषदाज्यधानी दधिमिश्रित आज्यपृषदाज्य होता है वह जिस स्रुक्के द्वारा गृहीत हो, उपभृत्के सदृश पीपलकी स्रुक् पृषदाज्यग्रहणी अथवा पृषदाज्यधानी कही जाती है यह आपस्तम्बशाखामें है। माध्यदिनशाखामें पृषदाज्यग्रहण तैजसपात्र (कटोरे) में होता है। (२२) प्रचरणी— वैकङ्कतकाष्ठकी जुहूके सदृश होमकरनेके लिए सोमयागमें स्रुक्प्रचरणी कही जाती है। आपस्तम्बशाखामें यह पलाशकी विहित है॥ (२३) परशु—बर्हिके छेदनके लिये एकहाथका दण्ड जिसमें हों, परशुके आकारका खदिर आदि काष्ठका कुठार परशु है। यह बौधायनशाखावालोंके लिये ही है। (२४) अग्निहोत्रहवणी विकङ्कतकाष्ठकी जुहूके सदृश बाहुमात्रलम्बी स्रुक्को अग्निहोत्रहवणी कहते हैं, इसीसे श्रौत अग्निहोत्रहोम होता है, आपस्तम्ब आदि शाखामें चौबीस अंगुल लम्बी अग्निहोत्रहवणी होती है। (२५) अभ्रि—वारणकाष्ठकी एकहाथकी अग्रभागसे तीखी मूलभागमें एक अंगुलकी गोलाईमें मोटी और मूलभागमें अग्रतक क्रमसे पतली दर्शपूर्णमासादियागमें वेदिखनन— यूपादिगर्तपरिलेखसमें उपयुक्त अभ्रि होती है। महावीरसंभरणमें विकङ्कतकी अभ्रि होती है। सचयनसोमयागमें चित्रविचित्र वांसकी दोनोंतरफसे तीखी मध्यमें छिद्रवाली अथवा सुवर्णकी अभ्रि होती है। (२६) दोहनपात्र—वैकङ्कतका प्रणालीरहित सदण्ड प्रोक्षणीपात्रसदृशपात्र दोहनपात्र होता है। सोमयागमें इसकी आवश्यकता होती है। (२७) दर्वी—विकङ्कतकाष्ठकी चार अंगुलकी गोलाईमें एक अंगुल खातवाली बचे हुए हिस्सेमें एक अंगुठे मोटे दण्डसहित दर्वी होमादिमें उपयुक्त (कलछी) दर्वी होती है। अपस्तम्बशाखामें स्मार्तकर्मसे बारह अङ्गुलकी दर्वी होती है। श्रौतमें तो एकहाथकी होती है। आपस्तम्बशाखामें मेक्षण भी दर्वीके सदृश होता है। (२८) अधिषवणफलक—वारणकाष्ठके एक-एक हाथके बारह बारह अंगुल चौड़े एक-एक अङ्गुल मोटे दो काष्ठपीठ परस्पर काष्ठके शंकुसे सटे हुए अधिषवणफलक होते हैं। इनके ऊपर सोमलता कूटी जाती है। सूत्रान्तरमें गूलर और पलाशके भी विहित हैं। (२९) असिद-दस अङ्गुलका खैर या लोहका छुरा असिद होता है, इससे कुशा काटी जाती है। बौधायनशाखावाले इसका उपयोग करते हैं। (३०) अन्वाहार्यपात्र— दर्शपूर्णमासमें ब्रह्मा, होता, अध्वर्यु और आग्नीध्रको दक्षिणाके निमित्त दक्षिणाग्निमें पका हुआ ओदन दिया जाता है, उसको अन्वाहार्य कहते हैं। पकानेके लिए जो ताम्रादि अर्थपरिमाणपात्र है उसको अन्वाहार्यपात्र कहते हैं। (३१) ग्रावा—पाषाणके सोलह अङ्गुल या बारह अङ्गुलके मूलमें स्थूल ऊपरके हिस्सेमें कुछ पतले मुष्टिसे पकड़ने लायक ग्रावा होते हैं। इनसे सोमलता कूटी जाती है। (३२) उपभृत्—पीपलकी जुहूके सदृश स्रुक् उपभृत् होती है। दर्शपूर्णमासादियज्ञमें अध्वर्यु दक्षिणहस्तसे जुहूद्वारा होम करता है और होमके समय वामहस्तमें जुहूके समीप इसको रखता है। इसलिये इसका नाम उपभृत् है आपस्तम्बशाखामें २४ अङ्गुल इसका प्रमाण है। आपस्तम्बशाखावाले इसको अनुष्टुब्‌ कहते हैं। (३३) उत्तरनरात्र–

आपस्तम्बशाखावालोंके यहाँ प्रोक्षणीपात्रसदृश एक उत्पवनपात्र होता है। (३४) उपांशुसवन—उपांशुनामक सोमरसके हवनके लिये जिस पाषाण (लोहे) सोमलता कूटी जाती है उस प्रादेशपरिमितप्र ाषाणको उपांशुसवन कहते हैं। (३५) उलूखल—पलाश या खैर अथवा वारणकाष्ठकी दस अङ्गुल या जानुप्रमाण अथवा इच्छाप्रमाण चार अङ्गुली गोलाईमें मोटा, ऊपर एक अङ्गुल खात मध्यमें कुछ संकुचित चरु पुरोडाशसंबंधि व्रीहि आदिके कण्डनमें उपयोगी उलूखल होता है। आश्वलायन तथा आपस्तम्बशाखावालोंके यहाँ स्मार्तकर्ममें उलूखल छः अङ्गुलके होते हैं। आपस्तम्बके यहाँ खैरका होता है। (३६) एकधन—सोमरसको बढ़ानेवाले जल एकधन कहे जाते हैं। एकमात्र सोम ही है धन जिनका, यह इसका अर्थ है। वे जल जिन कलशोंसे निकाले जायँ, वे छोटे छोटे धातुके मृत्तिकाके या कश भी एकधन कहे जाते हैं। सोमयागमें ३ से १३ तक यषमसंखयाके ये कलश होते हैं। (३७) मूसल—वारणकाष्ठ खैर या पलाशका दश अङ्गुल लम्बा एक अङ्गुल में मोटा या इच्छाप्रमाण मध्यमें कुछ ज्यादा स्थूल दर्शपूर्णमासादियज्ञमें व्रीहि आदिके कण्डनमें उपयोगी मूसल होता है। आश्वलायनशाखामें स्मार्तकर्ममें खैरका छः अङ्गुल लम्बा यह होता है। (३८) जुहूः—पलाशकी बाहुप्रमाण लम्बी मूलभागमें एक अङ्गुल मोटी फिर वहाँसे अग्रभाग तक क्रमसे कुछ स्थूल दण्डयुक्त अग्रभागमें पाँच अङ्गुल वृत्त हथेलीप्रमाण मुखवाली त्र्यंगुलखात हंसमुखसदृश नालीसे युक्त श्रौतकर्ममें जिससे हवन किया जाय, ऐसी स्रुक्को जुहू कहते हैं। कृष्णयजुर्वेदियोंके यहाँ कौवेके सदृश पुच्छवाली चौबीस अङ्गुल लम्बी या बयालीस अङ्गुल की जुहू होती है। कात्यायनके अतिरिक्त २४ अङ्गुलकी जुहू होती है। (३९) चमस—विकङ्कत-काष्ठके बारह अङ्गुलके छ अङ्गुल चौड़े चार अङ्गुल ऊँचे तीन अङ्गुल गर्तवाले तीन अङ्गुल दण्डवाले चौकोर प्रणीतापात्रके सदृश सोमरसको रखने, होम करने और पानीके लिए चमस होते हैं। ये चमस दस होते हैं। इनके दण्डोंमें पृथक् पृथक् चिह्न होते है। जैसे—होताके चमसके दण्डमें गोल चिह्न, ब्रह्माके चमस के दण्डमें चतुरस्र, उद्गाताके चमस के दण्डमें त्रिकोण, यजमान चमसके दण्ड के अग्र में चौड़ा, प्रशास्ताके चमसके दण्डका नीचेका भाग टेढ़ा, ब्राह्मणाच्छंसीके दण्डका ऊपरका भाग टेढ़ा, नेष्टाके चमसका दंड दो टुकड़ेका, आच्छावाक चमसका दंड आगेसे तीखा, पोताके दंड द्विशाख। आपस्तम्बशाखामें नेष्टाका चमस दक्षिणावृत और अच्छावाक चमस समावृत होता है। (४०) यजमानामिषेकासन्दी—गुलरकी एक-एक हाथ पैरवाली चतुष्कोण एकहाथ लम्बी-चौड़ी मूंजकी रस्सीसे बीनी हुई वाजपेययागमें यजमान अभिषेकके समय इस पर बैठता है इसलिए यह यजमानाभिषेकासन्दी कही जाती है। (४१) यूपरशना—आठ हाथ लम्बी दूनी कुशाकी रस्सी यूपमें लपटनेके लिए यूपरशना होती है। (४२) शृतावदान—विकङ्कतकाष्ठके अग्रभाग में अङ्गुष्ठपर्वमात्र चौड़ा और लम्बा, तीखे अग्रवाला, दस अङ्गुल लम्बा, अग्रभागसे बचे हुए हिस्सेमें एक अङ्गुल गोल दण्डवाला पक्वपुरोडाशके तोड़नेमें उपर्युक्त होता है। यह शृतावदान आपस्तम्बशाखामें नहीं होता है। पितृयज्ञमें अग्रभागमें अर्थात् अङ्गुष्ठपर्वमात्रमें गोकर्णके सदृश होता है। आपस्तम्बशाखामें पितृयज्ञमें बारह अङ्गुलका शृतावदान होता है। उसमें भी मूलमें दो अङ्गुल दण्ड और दश अङ्गुल गौके कानके समान होता है। (४३) पूर्णपात्र—दर्शयागादिमें स्मार्त प्रोक्षणीपात्रके सदृश अर्थात् वारणकाष्ठका द्वादशांगुल दीर्घ एक अङ्गुल दण्ड मध्यमें हथेली बराबर गोल तीन अङ्गुल गोल गहरा किनारे किनारे में एक अङ्गुल मोटा, अग्रभागमें हंसके मुख सदृश नालीदार-पात्र होता है। (४४) पूतभृत्—सुवर्ण आदि धातुका अथवा मृन्मय पन्द्रह अङ्गुल चौड़ा, आठ अङ्गुलकी बैठकी सोलह अङ्गुल ऊँचा अथवा इच्छाप्रमाण पवित्र सोमको धारण करनेवाला कलश होता है। आधवनीयकलश—जिसमें सोमका अच्छीतरहसे प्रक्षालन हो उस कलशके सदृश वृहन्मुख कलशका नाम है। (४५) पुरोडाशपात्री—वारणकाष्ठकी दस अङ्गुल चौकोर एक अङ्गुल मोटी मध्यभाग में छः अङ्गुल वृत्त यवमात्र खातवाली मूलमें दो अङ्गुल दण्ड पुरोडाशके स्थापनमें उपयुक्त होनेवाली पात्री है। (४६) पिन्वन—वारणकाष्ठका स्रुक्के मुखके आकारके सदृश दस अङ्गुलका बिना दण्डका पात्र होता है। (४७) पान्नेजन कलश—पशुके अङ्गोंका जिन जलोंसे प्रक्षालन होता है उन जलोंको पान्नेजन कहते हैं। पान्नेजन जल जिस कलशमें रखे जाते हैं उस इच्छाप्रमाण तैजसपात्रको पान्नेजन कलश कहते हैं (४८) परीशास—दो हाथ लम्बे दो अङ्गुल मोटे दो अङ्गुल चौड़े गुलरके मध्यभागसे कलछी मुँहके सदृश महावीरपात्रको पकड़ने लायक परीशास कहे जाते हैं। आपस्तम्बशाखावाले इनको 'शफ' कहते हैं। (४९) सन्नहन—लम्बी-लम्बी नव कुशाओंके वेणयाकार गूँथकर इध्म—और बर्हि बांधनेके लिए जो रज्जु बनायी जाती है उसको सन्नहन कहते हैं। (५०) होतृषदन—वरणाकाष्ठका एकहाथ लम्बा एक अङ्गुल मोटा चारों कोनेमें एक-एक अङ्गुल ऊँचे पावें जिसमें हों ऐसा अठारह अङ्गुल चौड़ा मूल तीन अङ्गुल लम्बा एक अङ्गुल मोटा और चौड़ा दण्ड जिससे हो वह दर्श-पूर्णमासादियज्ञमें होताके बैठनेके लिए पीठको होतृषदन कहते हैं। (५१) सोमासन्दी—गूलरकी दो हाथ चौड़ी यजमान की नाभीप्रमाण ऊँची चार पावोंवाली मूंजकी रस्सीसे बीनी हुई सोमरखनेके लिए आसन्दी सोमासन्दी कही

जाती है। सौत्रायणीयज्ञमें सोमासन्दी जानुमात्रप्रमाणकी होती है। (५२) सोमपर्याणहन—वस्त्रसे बँधे हुये सोमको ढाकनेके लिए जो वस्त्र होता है उसको सोमपर्याणहन कहते हैं। (५३) संभरणी—वारणकाष्ठकी बारह अङ्गुल वृत्त मुख चार अङ्गुल खात बिना दण्डका सोम रखनेका पात्र (कटोरा) संभरणी होती है। (५४) शङ्कुः—गूलर आदि दस अङ्गुल लम्बा स्थूलमुख अग्निष्टोमादियज्ञमें दीक्षिता पत्नीके कण्डूयनादिमें उपयुक्त शङ्कु कहा जाता है। (५५) उदञ्चन—सोमयागमें अम्भृणपात्रोंसे जल निकालनेके लिए जो छोटा मृत्तिका का पात्र (पुरवा) होता है, उसको उदञ्चनपात्र उदञ्चनचमस कहते हैं। आपस्तम्बशाखामें यह उदञ्चनपात्र प्रणीतापात्रके सदृश वारणकाष्ठका होता है। (५६) उपयमनी—उदुम्बरकी दो हाथ लम्बी सुचीके मुखसे दूने मुखकी जुहूसदृश स्रुक्को उपयमनी कहते हैं। आपस्तम्बशाखामें यह बाहुप्रमाण होती है। (५७) इध्म—पलाशकी एकहाथ लम्बी एक अङ्गुल मोटी फटी हुई घुनीं हुई नहीं द्विधाभिङ्ग, दो शाखावाली नहीं, सीधी और त्वचाके सहित समिधाको इध्म कहते हैं। (५८) बर्हि—असंस्कृत और असख्यात कुशाको बर्हि कहते हैं। (५९) सम्भरणपात्र—वाजपेययज्ञमें १७ प्रकारके अन्नका हवन होता है ये अन्न जिस पात्रमें रखे जाते हैं वह अर्थपरिमाणपात्र संभरणपात्र होता है। (६०) वाजिनभाण्ड—गरमदूधमें दधि के छोड़नेसे दूध फट जाता है उसमें कठिनभागको आमिक्षा और द्रवभागको वाजिन कहते हैं इनके रखनेके योग्य अर्थपरिमाण कांस्यादि तैजसपात्रका वाजिनभाण्ड कहते हैं। (गिड्डईवाला गिलास)। (६१) उपसर्जनीपात्र—दर्शपूर्णमासादियज्ञमें पुरोडाशके लिये चावलका यवके आटेमें मिलाये जानेवाले गार्हपत्य अग्निमें गरम किये हुये गरम जलको उपसर्जनी कहते हैं। उनको गरम करनेके लिये अर्थपरिमाण ताम्रादिपात्रको उपसर्जनीपात्र कहते हैं। सोमयागमें दीक्षित सपत्नीक यजमानको उदकसाध्य सब कर्म गरम जलसे करने चाहिये—ऐसा विधान है। यजमानकेलिये गार्हपत्याग्निमें और तन्निमित्त यजमानपत्नीके लिये दक्षिणाग्निमें जल गरम किये जाते हैं। उन गरम जलको मदन्ती कहते हैं। उन जलोंको गरम करनेके तैजसपात्र को उपसर्जनीपात्र कहते हैं। (६२) रौहिणकपाल—छः अङ्गुल वृत्त आधा अङ्गुल ऊँचा मृत्तिका से बनाकर पकाया हुआ रौहिणपुरोडाशके पकानेके लिये पात्रको रौहिणकपाल कहते हैं। (६३) योक्त्र—मूंजसे बना हुआ तीन लड़ी चारहाथकी वेण्याकार दर्शपूर्णमासादियज्ञ में यजमानपत्नीके कटिप्रदेशमें बांधनेके लिये रज्जु (मेखला) योक्त्र कहलाता है। (६४) उद्गात्रासन्दी—गूलरके प्रादेशमात्रको दस अङ्गुलके चार पावे वाली एकहाथ लम्बी चौड़ी मूंजकी रज्जुसे बिनी हुई 'गवामयनयज्ञ' में उद्गाताके बैठनेके लिये पीठको उद्गात्रासन्दीकी कहते हैं। (६५) विघन—वरनाका या पीपलका एकहाथका शङ्कु (खूँटी) गाडनेके उपयोगी मुद्गरको विघन कहते हैं। कात्यायनसूत्रमें विघनशब्दसे मुद्गरका व्यवहार नहीं है। (६६) विकङ्कतशकल—विकङ्कतकाष्ठकी दस-दस अङ्गुलकी समिधा विकङ्कत-शकल कही जाती हैं। (६७) दण्ड—गूलरकाष्ठकी यजमानके मुखके बराबर मुष्टिमात्रस्थूल सोमयागमें यजमान और मैत्रावरुणके धारण करनेके योग्यदण्ड होता है। (६८) दधिधर्म—प्रवर्ग्यमें होमोपयोगी दधिका जिसपात्रसे ग्रहण हो और हवन हो वह गूलरका प्रादेशमात्रका दस अङ्गुलका पात्र मूलसे लेकर अग्रतक चार-चार अङ्गुल चौकोर ऊपर मध्यमें दो अङ्गुल वृत्त एक अङ्गुल खात दधिधर्म कहा जाता है। (६९) दारुपात्री—कात्यायनोंकी इडापात्रीको आपस्तम्बवाले दारुपात्री कहते हैं। (७०) धवित्र—मृगचर्मसे बने हुए पंखेको धवित्र कहते हैं। महावीरको हवा करनेमें यह काम आता है। (७१) धृष्टि—विकङ्कतकाष्ठकी एकहाथ लम्बी अग्रभागमें चार अङ्गुल चौड़ी तीक्ष्णाग्र, अग्रसे बचे हुये हिस्सेमें दो अङ्गुलके गोल स्थूल दण्डसे युक्त अङ्गार, भस्म आदिको हटानेके लिये पात्रविशेषको धृष्टि कहते हैं। इसका उपयोग आपस्तम्बशाखावाले दर्शपूर्णमासमें करते हैं। कात्यायनशाखावाले सोमयागमें धर्ममें इसका उपयोग करते हैं, यहाँ केवल यह उदुम्बरकी होती है। (७२) कृष्णविषाणा—तीन या पाँच स्थानमें ऊँची दस अङ्गुलका अग्रभागके सहित कृष्णमृगके शृङ्गको कृष्णविषाणा कहते हैं। सोमयागमें दीक्षित यजमानके शरीरमें खाज होने पर इसीसे खजुवाना चाहिये। (७३) वाजिनचमस—प्रणीतासदृश पात्र वाजिनचमस आपस्तम्बशाखामें है, यह वाजिन रखनेके लिये है। गरम दूधमें दहि छोड़कर फाड़ दिया जाता है. उसमें कठिन भागको आमिक्षा और द्रव भागको वाजिन कहते हैं। (७४) गलग्राही—तैजस, ताँबा, पीतल आदिकी इकहाथकी सड़सी गलग्राही होती है (७५) स्रुक्—विकङ्कत-काष्ठकी बाहुमात्र लम्बी मूलभागमें एक अंगूठेके बराबर मोटी फिर वहाँ से अग्रभागतक क्रमशः कुछ कुछ स्थूल दण्ड वाली अग्रभागमें पाँच अङ्गुलकी गोलाईका मुख और मुखमें तीन अङ्गुल खात हंसमुखके सदृश चोंचदार होम करनेका पात्र स्रुक् होता है। स्मार्तकर्ममें यह बारह अङ्गुलोंकी बौधायन और आश्वलायनशाखामें होती है। बौधायन, आपस्ततंब और हिरण्यकेशि शाखामें २४ अङ्गुलकी होती है। किसीके मतमें कौवेके सदृश पूंछवाली ४२ अङ्गुलकी होती है। (७६) यूप—सोमयागमें खैरका पांच हाथ लम्बा अष्टकोण बहुत मोटा न बहुत पतला किन्तु लम्बाईके माफिक मोटा अग्रभागके बीचमें एक अंगुल मोटा बारह अंगुल लम्बा शङ्कु जो चषालमें घुसने लायक चषालके सहित हो उसको यूप

कहते हैं। निरूढपशुमें पलाशका यूप होता है। अग्निष्टोमादियज्ञमें ग्यारह यूप बनाना यह भी पक्ष है इसपक्षमें ग्यारह यूप १६ हाथसे २६ गजतक के होते हैं एक उपशययूप भी बारहवाँ बिना छीला-छाला होता है। वाजपेययागमें १७ यूप १७ हाथके होते हैं। अश्वमेधमें २१-२१ हाथ के २१ यूप होते हैं। उनमें एक रज्जुदाल का दो देवदारुके छ बेलके, छ खैरके और छ पलाशके होते हैं। श्येनयागमें यूप चषालरहित होता है और साँपकी तरह तीखे अग्रवाला होता है। वह यूप हलका दण्ड होता है, इस यूपको खलेवाली कहते हैं। (७७) ग्रह—माध्यन्दिनोंके विकङ्कतके और आपस्तम्बोंके गुलरके उलूखलके सदृश चार अंगुलकी गोलाईके मोटे ऊपरके हिस्सेमें एक अंगुल खातवाले मध्यमें कुछ संकुचित सोमरसको रखने तथा होमके उपयोगी पात्र ग्रह कहे जाते हैं। इसमें अश्विनग्रहमें ऊपरके हिस्सेमें ओष्ठके सदृश, मैत्रावरुणग्रहमें अजागलस्तनके सदृश और ऐन्द्रावायवग्रहमें मेखलाके सदृश चिह्न होता है। सौत्रामणीमें आश्विनग्रह पीपलका, सारस्वती-ग्रह गुलरका तथा ऐन्द्रग्रहका वटका होता है। अश्वमेधमें सुवर्ण और रजतके एक एक ग्रह होते हैं। षोडशियागमें षोडशिग्रह खैरका होता है और यह ग्रह मूलसे अग्रतक चतुष्कोण होता है। शुक्रग्रह सर्वत्र बेलका होता है। आपस्तम्ब-शाखामें उपांशुग्रह, अन्तर्यामग्रह, ऐन्द्रावायवग्रह, मैत्रावरुणग्रह, आश्विन, शुक्र, मन्थी, उक्थ्य, अतिग्राह्यग्रह तीन, दधिग्रह, अदाभ्य, आदित्य, षोडशग्रह, ऋतुपात्रग्रह दो, ये १७ ग्रह होते हैं। (७८) स्फ्य—खैरका एक हाथ लम्बा चार अंगुल चौड़ा खड्गके सदृश मूलमें चार अंगुलका दण्ड तीखा, अग्र-वेदीको खोदना, रेखा करना आदि कार्यमें उपयोगी वज्र या स्फ्य कहा जाता है। यह स्फ्य माध्यन्दिनशाखामें सीधा होता है और शाखामें मध्यमें कुछ टेढ़ा होता है। आश्वलायनशाखामें स्मार्तकर्ममें बारह अंगुलका स्फ्य होता है। हिरण्यकेशीशाखामें वरनाका भी स्फ्य होता है। भारद्वाज और आपस्तम्बशाखामें बाहुके बराबर भी वज्र विहित है, यह पक्ष अब नहीं चलता है। आश्वलायनशाखामें स्मार्तकर्ममें स्फ्य नहीं होता है। (७९) स्रुव—खैरका एकहाथ लम्बा अंगूठेके पर्वकी मोटाईमें गोल बिलयुक्त मूलमें कनिष्ठिकाके अग्रके बराबर स्थूल फिर अग्रतक कुछ-कुछ और मोटा होमकरनेके लिए स्रुव होता है। अग्निहोत्रका स्रुव वैकङ्कतका होता है। राजसूय में अपामार्ग-तण्डुल होमके लिए पलाशका स्रुव होता है। सचयनसोमयागमें गुलरका स्रुव चौकोरमुखवाला होता है। घर्ममें भी गूलरका स्रुव होता है और विनायकशान्तिमें भी पितृमेध में वारणकाष्ठका स्रुव होता है। आश्वलायनशाखामें स्मार्तकर्ममें बारह अंगुलका स्रुव होता है। श्रौतकर्ममें आश्वलायनोंको भी एक हाथका स्रुव होता है। (८०) ऋतुपात्रग्रह—काष्मर्य (गंभारी) या पीपलके प्रोक्षणीपात्रके सदृश दोनों तरफ हंसमुख की तरह नालीके सहित ऋतुओंके यागके लिए सोमरस ग्रहण और होमके उपयोगी दोपात्र ऋतुपात या ऋतुग्रह कहे जाते हैं। आपस्तम्बशाखामें ऋतुग्रह भी उलूखलाकार होते हैं। (८१) प्रोक्षणधानी—जुहूके सदृश स्रुव आपस्तम्बशाखावालोंके यहाँ प्रोक्षणधानी होती है। (८२) शूल—वारणकाष्ठका अग्निके सदृश शूल होता है। (८३) प्राशित्रहरण—वारण-काष्ठका चार अंगुल लम्बा-चौड़ा चौकोर एक अंगुल मोटा मध्यमें तीन अंगुल गोलाईमें यवमात्र खात प्राशित्रहरण होता है। ब्रह्माको हुतशेष भाग दिया जाता है उसका नाम प्राशित्र है, वह जिसपात्रके द्वारा दिया जाय, वह प्राशित्रहरण कहलाता है। आपस्तम्बशाखावाले खैरका दस अंगुलका गोकर्णाकृति श्रृतावदान मानते हैं। आजकल खैरका प्रोक्षणी-पात्रके सदृश प्राशित्रहरण आपस्तम्बशाखावाले बनाते हैं। (८४) निश्रेणी—वाजपेययज्ञमें सत्रह हाथका यूप होता है। सपत्नीक यजमान जिस सीढ़ीके द्वारा यूपसे ऊपर जाते हैं वह ऊंचा होता है, वारणकाष्ठकी उस सीढ़ीका नाम निश्रेणी है। (८५) नेत्र—सन और गौके पूँछके बालोंसे बनाई गई चार हाथकी तीन लरकी वेणीके समान गूँथी हुई अरणिमन्थन-रज्जुको नेत्र कहते हैं। (८६) निदान—सोमयागमें गौको और बछड़ेको बाँधनेके लिए रज्जुको आपस्तम्बशाखावाले निदान कहते हैं। (८७) चात्र—उपमन्थ-अरणिमन्थनके लिए आठ अंगुलका एक काष्ठशंकु जिस मन्थनदण्डमें तक्षाके द्वारा लगाया जाता है वह मन्थनदण्ड खैरका बारह अंगुल लम्बा दो अंगुलके लोहकीलके सहित तीन अंगुलकी गोलाई-वाला रज्जुके लपेटने (घुमाने) के लिये अनेक वलययुत चात्र और उपमन्थ भी कहा जाता है। (८८) चषाल—सोमयागमें पलासका दस अंगुल लम्बा आर-पार एक अंगुल गोलछिद्रवाला होता है। मोटाई उसकी यूकके बराबर होती है। राजसूययज्ञमें गेहूंके आटेका चषाल बनता है। (८९) शम्या—वरणा लकड़ीकी मूलभागमें एक अंगूठे भर गोल दस अंगुल भर गोल दस अंगुल लम्बी फिर क्रमसे अग्रभाग तक सूक्ष्म, तीक्ष्ण अग्रवाली दर्शपूर्णमास आदिमें सिललोढ़ी के कुट्टन आदिमें उपयुक्त होनेवाला पात्रविशेष है। चातुर्मास्य आदि यज्ञमें यही शम्या वारणकाष्ठकी छत्तीस अंगुल लम्बी दो अंगुल चौड़ी ए[illegible] अंगुल मोटी मूल और अन्तमें दो-दो [illegible]ंगुल छोड़कर मध्यमें बत्तीस अंगुलकी लम्बाईमें आधा अंगुल [illegible]वाली चात्वालमान और उत्तरवेदिमान आदिमें उपयुक्त [illegible]ी होती है। आपस्तम्बके मतमें शम्याका प्रमाण बाहु-[illegible]त्र है। तिनि[illegible]शाखामें शम्या खैरकी छत्तीस अंगुलकी बिना गर्तकी श्रौतकर्ममें होती है और स्मार्तकर्ममें बारह अंगुलकी होती है। (९०) षडवत्तपात्र—वारणकाष्ठका बारह अंगुल लम्बा चार अंगुल चौड़ा उसमें एक अंगुल दण्ड उसके बाद

चार अंगुल चौकोर एक अंगुल ऊँचा मध्यमें दो अंगुलकी गोलाईमें यवके बराबर खात होता है। उसके बाद एक अंगुलका दण्ड फिर पूर्ववत् चार अंगुल चौकोर एक अंगुल ऊँचा, मध्यमें दो अंगुलकी गोलाईमें यवमात्र खात अग्नीध्र ऋत्विकको भाग देनेके लिये होता है। आपस्तम्बशाखामें षड्वत्तपात्र नहीं होता है। (९१) सगर्तपुरोडाशपात्री—वैकङ्कतकाष्ठकी दस-दस अंगुल चौकोर आठ अङ्गुल ऊँची छ अङ्गुलकी गोलाईमें छ अङ्गुल खातवाली मूलमें दो अङ्गुल लम्बा एक अङ्गुल मोटा दण्ड सर्वहुत पुरोडाशके स्थापन और होम आदिमें उपयुक्त होनेवाला पात्र होता है। (९२) स्वरु—यूपकाटनेके समय जो प्रथम काष्ठ खण्ड गिरता है वह दस अङ्गुलका खड्गाकार वशुला स्पर्श और होमादिमें उपयुक्त होनेवाला पात्रविशेष है। किसीशाखामें पीपल और वरणकाष्ठका भी यह होता है। (९३) स्थूण—बारह अङ्गुल लम्बी गूलर की द्विशाख गौ बाँधनेके लिये खूँटी होती है। (९४) सोमोपनहन—जिस वस्त्रमें सोमलता बाँधी जाती है वह दोहरा चौहरा वस्त्र कहा जाता है। (९५) दृषत् उपला—पाषाणकी दश अङ्गुल लम्बी आठ अङ्गुल चौड़ी दो अङ्गुल मोटी अथवा इच्छाप्रमाण पुरोडाशसम्बन्धी व्रीहि आदिके पेषणमें उपयुक्त दृषत् और दृषत् के अनुरूप लोढ़ो को उपला कहते हैं। (९६) करम्भपात्री—दधि और दक्षिणाग्निपक्व सत्तुको करम्भ कहते हैं, (करम्भवो दधिसक्तव इति कोशात्) उस बने हुये कटोरीके सदृश छोटे-छोटे गोलपात्रको करम्भपात्र कहते हैं। इनको चातुर्मास्ययज्ञमें गार्हपत्यमें पकाकर प्रतिप्रस्थातासे वेदिस्थ दक्षिणा आहवनीय अग्निमें सूपसे पत्नी हवन करती है। इन चार पात्रोंको रखनेके लिये बीस अङ्गुल लम्बी एक अङ्गुल ऊँची चार अङ्गुल चौड़ी करम्भपात्री होती है। इसमें चार-चार अङ्गुलके चार टुकड़े होते हैं। इन चारोंमें दो अङ्गुलकी गोलाईमें एकएक यवके बराबर खात होता है। इसीमें करम्भपात्र रखे जाते हैं। हरएक टुकड़ेके बाद एक-एक अङ्गुल लम्बा चौड़ा मोटा दण्ड रहता है अर्थात् एक एक अङ्गुल जगह छूटी रहती है और मूलमें भी पकड़ने के लिए एक अङ्गुलका दण्ड होता है। यह करम्भपात्री आपस्तम्बशाखामें नहीं होती है। (९७) पञ्चबिलापात्री—एक ओर सोलह अङ्गुल लम्बी, दश अङ्गुल चौड़ी दूसरी ओर आधे हिस्सेमें १५ अङ्गुल चौड़ी और पीछेके हिस्सेमें दश अङ्गुल चौड़ी पाँच-पाँच अङ्गुल चौड़ी पाँच हिस्से जिसमें दो चार अङ्गुल मोटी चार हिस्सेमें दो अङ्गुलकी गोलाईमें एक-एक यव गड्ढा हो, पाँच हिस्सेमें तीन अङ्गुल गर्त हो, ऐसे पात्रको पञ्चबिलापात्र कहते हैं। यह कृष्णयजुर्वेदियोंके कार्यमें आती है। (९८) पिशीलक—बड़े मुख के बड़े गर्तवाला धातुका अर्थपरिमाण पायस आदिके रखनेके लिए पात्र (बहुगुणा) पिशीलक होता है। चातुर्मास्ययागान्तर्गत गृहमेधीया इष्टिमें इसका उपयोग होता है। (९९) परिषेचन घट—घृतभृत और आधवनीय कलशके सदृश घटको परिषेचनघट कहते हैं। यह केवल आपस्तम्बके लिए है। (१००) त्रिविलापात्री—वारणकाष्ठकी चार अङ्गुल ऊँची एकतरफ पूर्व-पश्चिम बारह अङ्गुल लम्बी दूसरी तरफ दक्षिण उत्तर (प्रथम टुकड़ेके साथ) दश अङ्गुल लम्बा उसमें भी दूसरे भागमें तीन अङ्गुलका गढ़ा बनाना, दो अङ्गुल के दण्डवाली, दण्डके बाद दश अङ्गुलके चौकोर हिस्सेमें पाँच—पाँच अङ्गुलके दो टुकड़े करके दोनों टुकड़ोंमें आठ आठ अङ्गुलकी गोलाईमें यवमात्र गढ़ा करना, इसको त्रिपलापात्री कहते हैं। (१०१) दशापवित्र—एक हाथ दश अङ्गुल चौड़ा जीवित भेड़के ऊनसे बना एकतरफ जिसमें दशा हो वह एक तो दशापवित्र कहा जाता है और दोनों ओर जिसमें दशा हो वह उभयतो दशदशापवित्र कहा जाता है। इसमें सोमलता का रस छाना जाता है। (१०२) कूर्च—बाहु के बराबर लम्बा चार अङ्गुल चौड़ा आधा अङ्गुल मोटा मूल और अग्रमें एक-एक अङ्गुल मोटा पावा जिसमें लगा हो वह वारणकाष्ठका कूर्च होता है। सायं-प्रातः अग्निहोत्रके समय में इसके ऊपर स्रुक् रखी जाती है। (१०३) ओविली—अरणिमन्थन के लिए एक मन्थन दण्ड होता है, उस मन्थन दण्डके ऊपर दो अङ्गुलका लोहकील जड़ा हुआ होता है। उस लोहकील के बारह अङ्गुल का दो अङ्गुल गोलाई की मोटी खेर का ओविली होती है। उसको उपमन्थ भी कहते हैं। यह ओविली मन्थनदण्ड को दबानेके लिए होती है। (१०४) समिध—पलास आदि की कनिष्ठा अङ्गुलीके अग्रभागके सदृश स्थूल त्वचा वाली दश अङ्गुलकी बिना धुनो बिना फटा आर्द्रशाखा लकड़ी को समित् कहते हैं। सचयन अग्निष्टोम में सुपारी, शमी, विकङ्कत और गूलर की समित् होती है। (१०५) महावीर—सोमयागमें घृत रखने के लिये मृत्तिकासे बना हुआ बारह अङ्गुल लम्बा ६ अङ्गुल गोल मध्यमें सङ्कुचित नव अङ्गुलके ऊपर एकमेखला जिसमें हो, मूलसे लेकर अग्रतक गर्त हो इसको महावीर कहते हैं। (१०६) मेखला—मूँजसे बनाई गई वेणीके समान तीनलड़ी गूँथी हुई सोमयागमें यजमानके कटिप्रदेशमें बाँधी जानेवाली चार हाथ रस्सीको मेखला कहते हैं। (१०७) सोमयागमें आतिथ्या इष्टके अनन्तर यजमान और सोलह ऋत्विक् घृतस्पर्श करके शपथ करते हैं कि हम परस्पर आजसे द्रोह न करेंगे। उस घृतस्पर्श को 'तानूनप्त्र' कहते हैं। यह घृत जिस पात्रमें रहता है उस प्राणीतासदृश पात्रको तानूनप्त्रचमस कहते हैं। यह पात्र केवल आपस्तम्बशाखियोंके लिये विहित है। माध्यन्दिनशाखावाले मृन्मयरहित धातुपात्रको तानूनप्त्रचमस कहते हैं। (१०८) यमासन्दी—यजमान के कन्धे के बराबर अर्थात् तीन हाथ ऊँची गूलरकी एक हाथ चौड़ी

बल्वजकी तीन लड़ी रस्सी से बनी हुई (बल्वज त्रिगुणरज्जुग्यूता) चार पावे वाली घर्मासन्दी होती है। इसमें घर्म-सम्बन्धी सब पात्र रखे जाते हैं। सोमयागमें एक कर्म विशेषको घर्म कहते हैं। (१०६) ध्रुवा—वारणकाष्ठ की देवयाज्ञिक के मत में विकङ्कतकाष्ठ की जुहू के सदृश बाहुप्रमाण स्रुक् ध्रुवा होता है। इसमें चार स्रुव घृत छोड़कर समिष्ट यजु नामक होम के लिए रखा जाता है और यज्ञसमाप्ति तक यह स्थिररूप से रखी रहती है, इसका नाम ध्रुवा है। आपस्तम्बादिशाखामें इसकी लम्बाई २४ अङ्गुल की है। चयनयाग में गंभारी (काश्मर्यमयी) बाहुप्रमाण जुहू के सदृश एक स्रुक् और गूलर की बारह अंगुल की दूसरी स्रुक् होती है। इष्टकाओं के साथ यह भी रखी जाती है। आपस्तम्बादिशाखा में पहली स्रुक् का १४ अङ्गुल का प्रमाण है। (११०) परिधि—दर्शपौर्णमासादियाग में आहवनीय कुण्ड के दक्षिण, पश्चिम, उत्तर तरफ पलाश की बाहुप्रमाण समित् रखी जाती है। इसको परिधि कहते हैं। (१११) द्रोणकलश—वारणकाष्ठ का अठारह अङ्गुल लम्बा बारह अङ्गुल चौड़ा आठ अङ्गुल ऊँचा सात अङ्गुल गहरा चार अङ्गुल दण्डवाला सोमयागादि में सोमरस रखने के लिये पात्र को द्रोणकलश कहते हैं। आपस्तम्बशाखावाले कोई आचार्य द्रोणकलश को वृत्त मानते हैं। (११२) उखा—सचयनसोमयाग में मृत्तिका की दस अङ्गुल ऊंची दस-दस अङ्गुल लम्बी चौड़ी चौकोर नीचे से आठ अङ्गुल के ऊपर चारो तरफ मेखला हो और चारों दिशाओं में नीचे मेखला तक मृत्तिका से चार बत्ती बनी हो, बत्ती के अग्रभाग में स्तन के सदृश चिह्न बने हो उसको कहते हैं। इसमें अग्नि रखी जाती है। अथवा ५० अङ्गुल लम्बी दस अङ्गुल ऊँची और १० अङ्गुल चौड़ी चौकोर उखा होती है। दर्शपूर्णमासादि याग में जिस मृत्तिका या तैजसपात्र में दुग्ध गरम करते हैं, उसको भी उखा कहते हैं। (११३) प्रमन्थ—उत्तरारणि का आठ अङ्गुल का दो अङ्गुल चौड़ा और दो अङ्गुल ऊँचा काष्ठखण्ड प्रमन्थ कहलाता है। (११४) फलीकरणपात्र—वारण का एक अङ्गुल मोटा चार अङ्गुल चौड़ा बारह अङ्गुल लम्बा यवमात्र खात चौकोर फलीकरणपात्र होता है। दर्शपूर्णमासादियज्ञ में पुरोडाशसम्बन्धी व्रीहि आदि को उलूखल में मूसल से कूटकर शूर्प से पछाड़ते हैं, उससे जो तुषादि गिरते हैं, उनको फलीकरण कहते हैं, उन्हें रखने के लिए पात्र फलीकरणपात्र कहे जाते हैं। यह पात्र केवल आपस्तम्बशाखा में विहित है। कोई आपस्तम्बशाखावाले इसपात्र को मध्य से दो करके एकभाग में फलीकरण रखते हैं। दूसरे में पिष्टलेप रखते हैं। पुरोडाश बनानेके समय जो अङ्गुलियों में आटा लगता है वह पिष्टलेप है, उसका यज्ञान्त में हवन होता है। (११५) उखासन्दी—गूलर की दश अङ्गुल के पाँव वाली एकहाथ लम्बी-चौड़ी मूञ्ज की रस्सी से बनी हुई चौकोर उखा को रखने के लिए मँचिया को उखासन्दी कहते हैं। (का० श्रौ० १६।५।५)। (११६) अंभृण—बड़े मुखका मृत्तिका का घट अम्भृण (कंडा) होता है। इसको मणिक भी कहते हैं। (११७) अभिषेकपात्र—राजसूयज्ञमें राजाके अभिषेक के लिए पलाश, बड, गूलर और पीपल के अर्थप्रमाणपात्र को अभिषेक कहते हैं। (११८) संदंश—धातु का बना हुआ तप्त चमसपात्र आदिको उतारने में उपयोगी एकहाथ का चिमटा या सडसी संदंश है। (११६) यव या चावलके आटे का चोंचदार पेड़ा या लिट्टीके सदृश जो पिष्ट पिण्ड अग्न्यादिदेवताओं के निमित्त होमकरने के लिए बनाया जाता है उसको पुरोडाश कहते हैं। उस पुरोडाश का पाक भूमिमें अङ्गारों पर लिट्टी की तरह नहीं होता है, किन्तु गार्हपत्यकुण्ड में अङ्गारों के ऊपर मृत्खण्ड रख कर उसपर अङ्गार रख के उसके ऊपर पुरोडाश पकाया जाता है उस मृत्खण्ड को कपाल कहते हैं वह तेरह प्रकार का है—एक कपाल, द्विकपाल, त्रिकपाल, चतुःकपाल, पञ्चकपाल, षट्कपाल, सप्तकपाल, अष्टकपाल, नवकपाल, दशकपाल, एकादशकपाल, द्वादशकपाल और त्रयोदशकपाल। छ अङ्गुल की गोलाई में दो अङ्गुल ऊंचा मृत्खण्ड एककपाल होता है। छःअङ्गुल की गोलाई दो अङ्गुल की ऊंचाई बराबर के दो टुकड़े कर दिये जावें तो द्विकपाल होता है। बराबर के तीन टुकड़े होने से त्रिकपाल, दक्षिण की तरफ के हिस्से में दो और ऊपर के दोनों हिस्से में एक एक होने से चतुष्कपाल होता है। दक्षिण के तरफ तीन और बाकी दो टुकड़े एक एकरहने से पञ्चकपाल। बराबर के छ टुकड़ों से षट्कपाल। दक्षिण के टुकड़े का तीन हिस्सा बाकी के दो टुकड़ों का दो दो हिस्सा होने से सप्तकपाल। दक्षिण और बीच के टुकड़ों का तीन तीन हिस्सा उत्तर के टुकड़े का को खण्ड करने से अष्टकपाल। तीनों टुकड़ों का तीन तीन हिस्सा करने से नवकपाल। दक्षिणभाग में पांच मध्यभाग में में तीन उत्तर भाग २ हिस्सा करने से दशकपाल। दक्षिण में पांच मध्यम में तीन उत्तर में तीन हिस्सा करने से एकादशकपाल। दक्षिण में पांच मध्यम में तीन उत्तर में चार हिस्सा करने से द्वादशकपाल। दक्षिण में ५ मध्यमें ३ उत्तर में ५ हिस्सा करने से त्रयोदशकपाल होता है। अष्टाकपाल से त्रयोदशकपालतक। बीच के तीन और दक्षिण में एकटुकड़ा बीच का ये चार टुकड़े एक नाप के होते हैं। यह शुक्लयजुर्वेद के लिये विधान है। (११६) रोहिणहवनी—सोमयाग में घर्मनामक एककर्म है, उसमें गूलरकाष्ठ की खातरहित जुहूके सदृश स्रुक्को रोहिणहवनी कहरते हैं। इससे रोहिणपुरोडाशका हवन होता है। आपस्तम्बादिशाखामें यह २४ अङ्गुल की होती है। (१२०) आकर्षफलक—

(प्रेतस्य स्नानवस्त्रालङ्करणादिकथनम्)

प्रचेताः—स्नानं प्रेतस्य पुत्राद्यैर्वस्त्राद्यैः पूजनं ततः ॥
नग्नदेहं दहेन्नैव किञ्चिद् देयं परित्यजेत् ॥

प्रचेता ने कहा है—तदनन्तर पुत्र आदि प्रेत का स्नान कराकर वस्त्र आदि से पूजन करें। नग्न शरीर का दाह नहीं हो करे। कुछ देकर (शव के वस्त्र का एकदेश हिस्सा, श्मशानवासी के लिये देना चाहिये) वस्त्र का त्याग करे।

यमः—'प्रेतं दहेच्छुभैर्गन्धैः स्नापितं स्रग्विभूषितम् ।

यम ने कहा है—प्रेत का शुभ गन्धों से (धूप, सुगन्धचूर्ण आदियों से) दाह करे। स्नान कराकर मालाओं से विभूषित करे।

(प्रेतस्य वपनं तथा नलदानुलेपनादिकथनम्)

आश्वलायनसूत्रे (अ. ४ ख. १।४ पृ. ११४)–संस्थिते (तीर्थेन निर्हृत्यावभृते) प्रेताऽलङ्कारान् कुर्वन्ति 'केशश्मश्रुलोमनखानि वापयन्ति नलदेनानुलिम्पन्ति नलदमालां प्रतिमुञ्चन्ति' इति ।

आश्वलायनसूत्र में कहा है—मरने के बाद प्रेत को अलंकृत करते हैं। केश (प्रेत का मुण्डन कारिका में नहीं कहा है शिष्ट लोग करते हैं।), दाढ़ी, बाल और नख को कटवाते हैं। नलद (उशीर) से अनुलेपन करते हैं। नलदमाला (उशीर की माला) को पहनाते हैं।

(नग्नप्रेतस्य दाहे विचारः)

माधवीये ब्राह्मे—दरिद्रोऽपि न दग्धव्यो नग्नः कस्याञ्चिदापदि ।

माधवीय में ब्रह्मपुराण का वचन है—किसी भी आपत्ति में रहकर और दरिद्र होने पर भी नग्न (नवीन वस्त्र से आच्छादन करे—एसा आश्वलायन ने कहा है।) प्रेत का दग्ध नहीं करना चाहिये।

एकहाथ लम्बा विकङ्कतकाष्ठ अग्रभागमें सर्प के फण के सदृश और कुछ गर्तयुक्त मूलभाग में सर्पपुच्छसदृश सर्पाकार अग्रभाग में अढ़ाई अङ्गुल चौड़ा और फिर मूलभागतक क्रम से कुछ सङ्कुचित पात्र आकर्षफलक है। उपाकर्म में इसके द्वारा तिलहोम किया जाता है। (१२०) अरणी–शमीवृक्षके साथ पीपल पैदा हो उसके पूर्वके ओरसे या उत्तरके ओर की या ऊपरको गयी हुई शाखासे २४ अङ्गुल ६ अङ्गुल चौड़ा चार अङ्गुल ऊँची मूल और अग्रणी को जतानेवाला चिन्ह जिसमें लगा हो ऐसे काष्ठको अरणी कहते हैं। यह अरणी दो प्रकारकी होती है। अधरारणी तथा उत्तरारणी। जिसमें मन्थन के द्वारा अग्नि उत्पन्न हो उसे अधरारणी कहते हैं। और जिससे मन्थन किया जाय उसको उत्तरारणी कहते हैं। हिरण्यकेशी शाखामें अरणी चौबीस अङ्गुल लम्बी, आठ अङ्गुल चौड़ी और चार अङ्गुल ऊँची होती है। आपस्तंब और आश्वलायन शाखामें बारह अङ्गुल चौड़ी, सोलह अङ्गुल लम्बी और चार अङ्गुल ऊँची होती है। उत्तरारणी भी पूर्वप्रमाण की होती है। परन्तु उसमें दो दो अङ्गुल चौड़े आठ आठ अङ्गुल लम्बे दो दो अङ्गुल ऊँचे अठारह टुकड़े होते हैं। इसमें से एक शंकुको मन्थन दण्डमें लगाकर अरणीमन्थन किया जाता है। (१२१) प्रणीतापात्र-वारणकाष्ठका दो अङ्गुलका दण्ड हो, बारह अङ्गुल दीर्घ, चार अङ्गुल विस्तार, तीन अङ्गुल खात, एक अङ्गुल की परिधिवाला पात्र प्रणीतापात्र कहलाता है। यज्ञके आरंभमें जलका संस्कार कर रख दिया जाता है यज्ञमें जलसे जितना प्रयोजन हो इसी जलोंसे होता है। इन संस्कृत जलों को प्रणीता कहते हैं और ये जल जिसपात्रमें रखे जाते हैं वह प्रणीतापात्र होता है। आश्वलायन शाखामें स्मार्त कर्ममें प्रणीतापात्र उक्त प्रणीतापात्रके आधे परिमाणका होता है। छः अङ्गुल चौड़ा, चार अङ्गुलका तीन अङ्गुलका दण्ड प्रणीता पात्र होता है–यह आपस्तंब मत है। आठ अङ्गुल बिल हो दस अङ्गुलका पीपलका हो यह बौधायनमत है। ऋतपेययागमें तर्जनी के मूलपर्व प्रमाणके समान चौड़ा और लम्बा उतना ही गहरा दण्डके सहित प्रणीतापात्र होता है। एवं मध्यमांगुलि प्रथम पर्व प्रमाण दूसरा और अनाभिकांगुलिके पर्वप्रमाण तीसरा प्रणीतापात्र होता है। इनसे ऋतपेययागमें घृत भक्षण किया जाता है। (१२२) प्रोक्षणीपात्र बारह अङ्गुलका पाणिमात्र बिल, तीन अङ्गुल खात, दो अङ्गुलका दण्ड हंस मुखके समान नालीदार मध्यमें पाँच अङ्गुल की गोलाई वारणकाष्ठका प्रोक्षणीपात्र होता है। जिन संस्कृत जलोंसे यज्ञमें पात्र आदिका प्रोक्षण होता है उन जलोंको प्रोक्षणी कहते हैं। उन जलोंका रखनेका पात्र प्रोक्षणीपात्र होता है। आश्वलायन शाखामें–स्मार्त कर्ममें उक्त प्रमाणसे आधे प्रमाणका प्रोक्षणीपात्र होता है। प्रणीतापात्र ही प्रोक्षणीपात्र होता है। यह आश्वलायनशाखियोंका मत है। इस पक्षमें वे दो प्रणीतापात्र रखते हैं। —श्री दौलतराम गौड

(निःशेषदग्धे विचारः)

तथा—निःशेषस्तु न दग्धव्यः शेषं किञ्चित् त्यजेन्नरः ।

प्रेत का दाह निःशेष नहीं करना चाहिये । कुछ शेष (शव के वस्त्र का एकदेश श्मशान में रहनेवालों को देना चाहिये) छोड़ देना चाहिये ।

(दाहकाले अग्निनाशे विचारः)

दाहकालेऽग्निनाशे तु मदनरत्ने यज्ञपार्श्वः—यजमानो मृतः क्वापि चितादौ वा प्रवेशितः । वर्षाद्यभिहतेऽग्नौ तु कथं प्रेतविकल्पना ॥ शेषं दग्ध्वा प्रदग्धेषु निर्मन्थ्यैव तु कारयेत् ।

दाहकाल में अग्नि के नाश में तो मदनरत्न में यज्ञपार्श्व का बचन है—यजमान के मरने पर कहीं भी चिता आदि में प्रवेश किया हो तो वर्षा आदि से अग्नि का नाश हो जाय तो प्रेत की कल्पना कैसे हो अवशिष्ट का दाह अग्नि को मथकर ही करावे ।

(क्रियानिबन्धे—उदधारामविच्छिन्नां सिञ्चेत्कर्ता प्रदक्षिणम् ।
स्कन्धावसिक्तकुम्भेन पादतः परितश्चितेः ॥)

क्रियानिबन्ध में कहा है—प्रदक्षिणक्रम से कर्ता अविच्छिन्नरूप से जल की धारा का सेचन करे । कन्धे पर स्थित सेचन कुंभ से पैरों के चारों तरफ चिता की तरफ छोड़ दे ।

(पर्णशरदाहाग्निनाशे पश्चाद्देहलाभे च विचारः)

अथ पर्णशरादिदाहेनाग्निनाशे पश्चाद्देहलाभे मदनरत्ने ब्राह्मे—अथ पर्णशरे दग्धे पात्रन्यासे कृते सति । गतेष्वग्निषु तद्देहो यद्यूर्ध्वं लभते क्वचित् ॥ तदाऽर्द्धदग्धकाष्ठानि तानि निर्मथ्य तं दहेत् । यद्यर्धदग्धकाष्ठं तु तदीयं वै न लभ्यते ॥ तदा तदस्थिखण्डं तु निःक्षिप्तव्यं महाजले ।

अब पर्णशर (पुत्तल) आदि के दाह में अग्नि के नाश में बाद में उसके शरीर लाभ में मदनरत्न में ब्रह्मपुराण का वचन है—अब पर्णशर के जलने पर और पात्रों के स्थापन करने पर अग्नियों के जाने पर (नाश होने पर) उसका शरीर बाद में कभी प्राप्त हो तो उस आधे जले हुए काष्ठों को ही मथकर उसका दाह करे । यदि आधी जली लकड़ी उसकी नहीं ही प्राप्त हो तो उसको अस्थियों के खण्ड को अथाह जल में प्रक्षेप करना चाहिये ।

(दम्पत्योरेकदा मृतौ विशेषकथनम्)

दम्पत्योरेकदा मृतौ विशेषमाह आपस्तम्बः—तथैव प्रेते सहैव पितृमेधो द्विवचनलिङ्गान्मन्त्रान् सन्धारयति । पितृमेधो दाहान्तं कर्म, 'दाहान्तमेकतन्त्रत्वम्' इति बौधायनोक्तेः । अस्थिसञ्चयनमप्येकम् । उदकपिण्डदानादि पृथगेव । सहगमनेऽप्येवम् ।

एकसमय स्त्री पुरुष के मरने पर आपस्तंब ने विशेष कहा है—उसीसमय एक साथ मरने पर पितृमेध (दाहादि कर्म) करे । उसके द्विवचन लिंगों के मन्त्रों को पढ़ना चाहिये । पितृमेध शब्दसे दाहान्तकर्म कहा है । बौधायन ने कहा है—दाहान्त एकतन्त्र है । अस्थिसंचय भी एक होता है । उदक (जल) और पिण्डदान आदि अलग ही होते हैं । सहगमन (एक साथ जाने में) भी यही है ।

तदाह मदनरत्ने भाष्यार्थसङ्ग्रहकारः—एककालमृतौ भार्या भर्ता च यदि चेद् द्वयोः ।
तन्त्रेण दहनं कुर्यात्पिण्डश्राद्धं पृथक् पृथक् ॥

उसी बात को मदनरत्न में भाष्यार्थसंग्रहकार ने कहा है—एकसमय में पत्नी और उसका पति यदि ये दोनों मर जायँ तो तन्त्र से दाह करे और अलग अलग पिण्डदान करे ।

एककाले मृतौ जायापती यदि तदा पितुः । विभज्याग्निं क्रियां कुर्यादिति यत्तदसाम्प्रतम् ॥

एकसमय में यदि स्त्री और पुरुष मर जायँ तो पिता का जो अलग अग्नि से क्रिया करते हैं, वह उचित नहीं है ।

दाहान्तमेकतन्त्रत्वमिति याज्ञिकसम्मतम् । मृतं पतिमनुव्रज्य या नारी ज्वलनं गता ॥ अस्थिसञ्चयनान्तोऽस्या भर्तुः संस्कार एव हि । कीकसानां तु संस्कारोन्यायसिद्धोऽपि यो मतः ॥

याज्ञिकों की संमति है कि दाहान्तकर्म एकतन्त्र से करे। मरे हुए पति के बाद जो स्त्री चिता में चली गयी है। अस्थिसञ्चयनान्त कर्म उस स्त्री का पति के संस्कार से ही है।

एककाले मृतेऽप्येवं कीकसानां विधिः स्मृतः । नवश्राद्धं सपिण्डान्तं भिन्नकालमृतौ यथा ॥

कीकसों (अस्थियां) का तो संस्कार न्याय सिद्ध भी है। एकसमय में मरने पर भी यही कीकसों (अस्थियों) की विधि कही है। जैसे भिन्नसमय में मरने पर नवश्राद्ध से सपिण्डपर्यन्त कर्म होता है।

कपर्दिकारिकापि--मृते भर्तरि तद्दाहात्प्राक् पत्नी म्रियते यदि । पत्न्यां वा प्राक् प्रमीतायां दाहादर्वाक् पतिर्मृतः ॥ तत्र तन्त्रेण दाहःस्यान्मन्त्रेषु द्वित्वमूह्यते । कीकसानां तु संस्कारः पृथगेव तयोर्भवेत् । एकाहमृत्यौ युगपन्नवश्राद्धादिकं तयोः । मृतं पतिमनुव्रज्य पत्नी चेदनलं गता । तत्रापि दाहस्तन्त्रेण पृथगस्थिक्रिया भवेत् ॥ अस्थिसञ्चयनपृथक्त्वे विकल्पः ।

कपर्दिकारिका में भी कहा है—पति के मरने पर उसके दाहसंस्कार के पूर्व यदि उसकी पत्नी मर जाय तो या पत्नी के पहले मर जाने पर दाह के पूर्व पति मर जाय तो वहाँ पर तन्त्र से दाह करे। पर मन्त्रों में द्विवचन का ऊह करे। कीकसों का तो संस्कार अलग ही दोनों का होता है। एकदिन में मरने पर एक साथ दोनों का नवश्राद्ध आदि होता है। मरे हुए पति के बाद पत्नी अग्नि में गयी हो तो वहाँ पर भी दाह तन्त्र से होता है पर अस्थिक्रिया अलग होती है। अस्थिसञ्चयन के अलग में विकल्प कहा है।

सहगमने सर्वत्र पाकैक्यमाह प्रचेताः--एकचित्यां समारूढौ म्रियेते दम्पती यदि ।
तन्त्रेण श्रपणं कुर्यात्पृथक्पिण्डं समाचरेत् ॥

एक साथ जानेपर सर्वत्र एक पाक ही प्रचेताने कहा है--यदि एक चिता में आरूढ होकर दम्पती मर गये (दग्ध हो गये) हों तो तन्त्र से पाक करे और पिण्ड को अलग अलग करे।

(उदकदानविधिः)

अथोदकदानं वसिष्ठः--'शरीरमग्नौ संयोज्यानवेक्ष्यमाणा अपोभ्यवयन्ति सव्योत्तराभ्यां पाणिभ्यामुदकक्रियां कुर्वन्त्ययुग्मान् ।

अब जलदान वशिष्ठ ने कहा है--शरीर को अग्नि में मिलाकर नहीं देखते हुए जल के समीप में जाकर बायें तथा दाहिने हाथों से अयुग्म उदकक्रिया (जलदान) करे।

आपस्तम्बः--'मातुश्च योनिसम्बन्धेभ्यः पितुश्चासप्तमात्पुरुषाद्यावतां वा सम्बन्धो ज्ञायते तेषां प्रेतेदूषकक्रिया' इति ।

आपस्तंब ने कहा है-और माता के योनिसम्बन्धों के लिए तथा पिता के सात पीढ़ियों तक या जितनों का संबन्ध मालुम हो उतनों की प्रेतकर्मों में जलक्रिया होती है।

याज्ञवल्क्यः (प्रा० श्लो० ३,५)--सप्तमाद्दशमाद् वापि ज्ञातयोभ्युपयन्त्यपः । अप नः शोशुचदघमनेन पितृदिङ्मुखाः ॥ सकृत्प्रसिञ्चन्त्युदकं नामगोत्रेण वाग्यताः ।

याज्ञवल्क्य ने कहा है-सातवें या दशवें दिन से पहले समान गोत्रवाले या सपिण्डपुरुष जल के पास जाकर (स्नानकर) [1]'अप नः शोशुचदघम्' इस मन्त्र से पितरों की दिशा दक्षिण की तरफ मुख को कर

१—प्रजापतौ त्वा देवतायामुपोदके लोके निदधाम्यसौ ॥ अपनः शोशुचदघम् ॥ (यजु० ३५।६।) ॥ यह अमुक नाम वाला मरा व्यक्ति उदकसमीपवर्ती स्थान में प्रजापति देवता के याद में तुमको स्थापन करता हूँ। वह प्रजापति हमारे पापों का अधिक नाश करे। या इस जल के आक्रम [illegible] पाप धोये जाँय ॥ ऋ० १।६१।१ अथर्व० ४ ३३।१। तै० ६।१०।११।१) । इति मन्त्रेण दक्षिणमुखाः अपः अभ्युपयन्ति। अभ्युपगमनेन तत्प्रयोजनभूतोदकदानविशिष्टमभ्युपगमनं लक्ष्यते ।

उदकदान करें। ('अमुकनामा अमुकगोत्रः प्रेतस्तृप्यतु' ऐसा प्रयोग करे)। (सपिण्ड गण) मौन होकर गोत्र-सहित प्रेतका नाम लेकर ए बार (या तीन बार) अञ्जलि दें।

सप्तमाद् दशमाद् वा दिवसादर्वागिति विज्ञानेश्वरः। कातीयास्तु सप्तमाद् दशमाद् वा पुरुषा-दित्याहुः, 'सप्तमाद् दशमाद् वा पुरुषात्समानग्रामवासे यावत्सम्बन्धमनुस्मरेयुः' इति पारस्करोक्तेः। मन्त्रस्नानाङ्गमेवेति हेमाद्रिः।

विज्ञानेश्वरने कहा है-सातवें या दशवें दिनके पहले जलदान करें। कातीयोंने तो कहा है—सातवें या दशवें पुरुष से (जलके समीपमें जाकर जल देता है)। पारस्करने कहा है—सातव या दशवें पुरुषसे एक गाँव में निवास करनेवालों का जबतक संबन्ध मालुम हो उतने का स्मरण करे। हेमाद्रि ने कहा है—(जन्म, नाम के ज्ञानपर्यन्त) या मन्त्रस्नानांग (सव्यानामिकयाऽपनोघापनः शोशुचदघमिति दक्षिणामुखानिमर्जति—इति पारस्करः। इसीप्रकार मन्त्र में विकल्प या समुच्चय है। उदकदानमें नामादि युक्त ही का विस्तार है। मन्त्र-'असावेतत्ते उदकम्' ऐसा उसने कहा है। 'असौ' यह प्रेत संबुद्धि है।) ही है—यह हेमाद्रि का कहना है।

प्रचेताः—प्रेतस्य बान्धवा यथावृद्धमुदकमवतीर्य नोद्धर्षयेयुरुदकान्ते प्रसिञ्चेयुरपसव्ययज्ञोपवीत-वाससो दक्षिणामुखा ब्राह्मणस्योदङ्मुखाः प्राङ्मुखाश्च राजन्यवैश्ययोः।

प्रचेता ने कहा है—प्रेत के बान्धव वृद्धों के क्रम से जलमें उतर कर स्नान करें तथा जलके समीप में बैठकर यज्ञोपवीत और वस्त्र को अपसव्य कर शूद्र दक्षिणाभिमुख, ब्राह्मण उत्तरमुख, क्षत्रिय और वैश्य पूर्व मुख हो जलदान करें। (शंख ने कहा है—वस्त्र से उत्तरीय (दुपट्टा) वस्त्र क्षत्रिय तथा वैश्य के लिए है। क्षत्रिय और वैश्य तो अपसव्य हो वस्त्र और यज्ञोपवीत करें। ब्राह्मणों को तो एक वस्त्र है—यह बैजवाप ने कहा है। योगीश्वर ने कहा है—दक्षिणाभिमुख ब्राह्मण के लिये ही है। शूद्र का तो कोई नियम नहीं है। उदकदान तो सब वर्णों को बराबर ही है। उसमें कोई अंग वर्णविशेष में नियन्त्रित हैं। कोई तो सब वर्णों के लिए समान होते हैं।)

स एव 'नदीकूलं ततो गत्वा' इत्युक्त्वा—सचैलस्तु ततः स्नात्वा शुचिः प्रयतमानसः। पाषाणं तत आदाय विप्र दद्याद् दशाञ्जलीन्॥ द्वादश क्षत्रिये दद्याद् वैश्ये पञ्चदश स्मृताः। त्रिंशत् शूद्राय दातव्यास्ततस्तु प्रविशेद् गृहम्॥ ततः स्नानं पुनः कार्यं गृहशौचं च कारयेत्।

वहीं ही (प्रचेता ही) कहते हैं—नदी के (भागीरथी आदि, 'धर्म्यास्वप्सु' यह बैजवाप ने कहा है।) किनारे पर जाकर सचैल (पूरे वस्त्रों सहित) स्नान करके फिर शुद्ध तथा सावधान मन से मनुष्य पत्थर को ग्रहण कर उसपर दश अञ्जली, क्षत्रिय बारह अञ्जली, वैश्य पन्द्रह अञ्जली और शूद्र तीस अञ्जली को देकर घर में प्रवेश करे। तदनन्तर स्नान कर फिर घर की शुद्धि करे।

(प्रेतस्नाने विशेषः)

प्रेतस्नाने विशेषः शुद्धितत्त्वे आदिपुराणे—आदौ वस्त्रं च प्रक्षाल्य तेनैवाच्छादितैस्ततः। कर्तव्यं तैः सचैलं तु स्नानं सर्वमलापहम्॥ पूर्वं परिहितं वस्त्रं प्रक्षाल्य पुनः परिधाय स्नायादित्यर्थः। 'अपनः' इति मन्त्रेण वामहस्तानामिकया जलालोडनम्। अवतरणे वृद्धपुरः सरत्वोक्तेः। यथाबालं पुरस्कृत्य इति बौधायनीयं जलादुत्थानपरमिति हारलतादयः।

प्रेत स्नान में विशेष शुद्धितत्त्व में आदित्यपुराण के वचन से कहा है—आदि (प्रथम) में वस्त्र को प्रक्षालन कर उसी ही वस्त्र से आच्छादित होकर सब मल को दूर करनेवाले सचैल स्नान करें। पहले पहने हुए वस्त्र का प्रक्षालन कर फिर से पहनकर स्नान करे—यह अर्थ है। [1]'अपनः' (यजु० ३५।६) इस मन्त्र से बायें हाथ की अनामिका अंगुली से जल का आलोडन (हिलाना, मिश्रण करना) करे। उतरने में वृद्धजनों को आगे कर कहा है। बालकों को आगे करके इस बौधायनीय वचन है। जल से निकलने में है—यह हारलता आदि कहते हैं।

१—अपनः शोशुचदघमग्ने शुशुग्ध्यारयिम्। अपनः शोशुचदघम्॥ (ऋ० १।९७।१ अथर्व० ४।३३।१ तै० आ० ६।१०।१।११।१)।

(अञ्जलिदाननिर्णयकथनम्)

आश्वलायनः (अ० ४ ख० ४ पृष्ठ ११२-११३)--सव्यावृतो व्रजन्त्यनवेक्षमाणाः, यत्रोदकमवहद्भवति तत्प्राप्य सकृदुन्मज्य एकाञ्जलिमुदकाञ्जलिमुत्सृज्य तस्य गोत्रं नाम गृहीत्वा' इति ।

आश्वलायन ने कहा है—सव्य होकर (संस्कारानन्तर चिता को अप्रदक्षिणक्रम से प्रदक्षिणा कर) प्रेत को नहीं देखता हुई जहाँ पर स्थिरजल तडाग आदि होता है वहाँ जाकर स्नानकर एकबार जल की अञ्जलि को ग्रहण कर उसके नाम और गोत्र से त्याग करें ।

प्रचेतसाऽन्वहमञ्जलित्रयमप्युक्तम् । तत्र 'त्रिःप्रसेकं कुर्युः प्रेतस्तृप्यतु' इति ।

प्रचेता ने तो प्रतिदिन तीन अञ्जलि भी कहा है । तीन बार सेवन करें—प्रेत तृप्त हो ।

तथा—दिने दिनेऽञ्जलीन् पूर्णान् प्रदद्यात्प्रेतकारणात् । तावद्वृद्धिश्च कर्तव्या यावत्पिण्डं समाप्यते । एकवृद्धिस्त्रिकवृद्धिर्वेत्यर्थः ।

और प्रतिदिन प्रेत के लिए जल से भरकर अञ्जलियों को दे । तब तक वृद्धि करे जब तक पिण्ड समाप्त न हो । एक की वृद्धि करे या तीन की वृद्धि करे—यह अर्थ है । (अर्थात्—पहले दिन एक, दूसरे दिन दो और तीसरे दिन तीन, इस क्रम से वृद्धि करे । तीन की वृद्धि में तो—पहले दिन तीन, दूसरे दिन छ तथा तीसरे दिन नौ इस क्रम से वृद्धि करे । ये उपरोक्त पक्ष स्मृत्यन्तर से जानना चाहिये । इत्यादि)

मदनरत्ने भारद्वाजगृह्ये तु द्विकवृद्धिरप्युक्ता—आशौचान्ते प्रदद्यात्तु प्रेतपुत्रस्तिलाञ्जलीन् । प्रथमेऽह्नि सकृद्दद्यात् पिण्डयज्ञावृता दिवा ॥ त्रींश्च दद्याद् द्वितीयेऽह्नि तृतीये पञ्च एव च । चतुर्थे सप्तसंख्यास्तु पञ्चमे नव चोत्सृजेत् ॥ षष्ठेऽह्नि चैकादशकाः सप्तमे तु त्रयोदश । अष्टमे पञ्चदशका नवमे दश सप्त च ॥ एकोनविंशतिं चाग्रे शताञ्जलिमतं स्मृतम् । केचिद्दशाञ्जलीन् प्रोचुः केचिदाहुः शताञ्जलीन् । पञ्चपञ्चाशतं चान्ये स्वशाखोक्तव्यवस्थया ॥

मदनरत्न तथा भारद्वाजगृह्य में तो दो की वृद्धि भी कहा है—आशौच के वाद प्रेत का पुत्र तिलाञ्जलियों को दे । पहले दिन पिण्डयज्ञ की प्रक्रिया से प्राचीनावीति होकर दिन में (रात्रि में नहीं) एक बार दे । दूसरे दिन में तीन, तीसरे दिन में पांच, चतुर्थ दिन में सात, पांचवें दिन नौ संख्या से छोड़ दे । छठे दिन में-ग्यारह, सातवें दिन में-तेरह, आठवें दिन में—पन्द्रह, नवें दिन में—सत्रह, दशवें दिन में-उन्नीस और उसके आगे सौ अञ्जली संख्या से दे । कोई दश अञ्जलियों को कहते हैं । कोई सौ अञ्जलियों को कहते हैं और अन्य पचपन अञ्जलि को अपनी अपनी शाखा की व्यवस्था से कहते हैं ।

छन्दोगपरिशिष्टे—अथानवेक्षयन्त्यापः सर्वे चैव शवस्पृशः । गोत्रनामपदान्ते तु तर्पयामीत्यनन्तरम् ॥ दक्षिणाग्रान् कुशान् कृत्वा सतिलं तु पृथक् पृथक् ॥

छन्दोगपरिशिष्ट में कहा है—अनन्तर शवको स्पर्श करनेवाले सब शवको न देखते हुए गोत्र तथा नाम पद के अन्त में 'तर्पयामि' को कहकर तिल के सहित दक्षिणाग्र कुशाओं को कर अलग अलग जल दें ।

विष्णुपुराणे—सपिण्डीकरणं यावदृजुदर्भैः पितृक्रिया ।
सपिण्डीकरणादूर्ध्वं द्विगुणं विधिवद्भवेत् ॥

विष्णुपुराण में कहा है—सपिण्डीकरणतक सीधी कुशाओं से पितरों की क्रिया करे । सपिण्डीकरण के बाद द्विगुण कुशाओं से विधिवत् करे ।

रामायणे—इदं पुरुषशार्दूल विमलं दिव्यमक्षयम् । पितृलोकेषु पानीयं मद्दत्तमुपतिष्ठताम् ॥ दानवाक्ये विकल्पः ।

रामायण में कहा —हे पुरुषशार्दूल, यह विमल ([illegible]) दिव्य [illegible] में होनेवाल [illegible] (जिसका नाश न हो) मेरे से दिया हुआ यह जल पितृलोकों में प्राप्त हो । दानवाक्य में—विकल्प है । (प्रेतस्तृप्यतु । प्रचेतामत से अमुष्मै स्वधा । बैजवापमत से—असावेतत्ते उदकम् । पारस्करमत से—असौ तृप्यताम् । हारीत मत से गोत्र नाम पद के अन्त में तर्पयामि कहे । कात्यायन ने भी यही कहा है) ।

याज्ञवल्क्यः (प्रा० ४)—कामोदकं सखिप्रत्तास्वस्रीयश्वशुरर्त्विजाम् । काम-इच्छा । प्रेत-तृप्तीच्छायां देयमन्यथा नेत्यर्थः ।

याज्ञवल्क्य ने कहा है—इच्छानुसार सखा-मित्र, प्रत्ता-विवाहिता कन्या या बहिन, भागिनेय, श्वसुर, ऋत्विज, तथा याजक के लिए भी उदकदान करे। (मिताक्षरा में कहा है—काम-इच्छा, कामेनोदकदानं कामोदकं, प्रेताभ्युदयकामनायां सत्यामुदकं देयम्, असत्यां न देयमिति अकरणे प्रत्यवायो नास्तीत्यर्थः) प्रेत के तृप्ति की इच्छा में दे अन्यथा न दे—यह अर्थ है।

शङ्खपारस्करौ—'आचार्ये चैवं मातामहयोश्च स्त्रीणां चाप्रत्तानां कुर्वीरंस्ताश्च तेषाम्' इति । द्विवचनान्मातामह्या अपि ।

शंख और पारस्कर ने कहा है—आचार्य, नाना, नानी और अविवाहित कन्याओं को जल दें वे भी उनको दें। यहाँ पर मातामहयोः—इस द्विवचन से मातामही का भी ग्रहण है।

शङ्खलिखितौ—'उदकक्रिया कामं श्वशुरमातुलयोः शिष्ये सहाध्यायिनि राजनि च' इति ।

शंख और लिखित स्मृतियों का वचन है-इच्छा से जल की क्रिया को श्वसुर, मामा, शिष्य, सहाध्यायी और राजा को भी दे।

(क्लीबाद्या नोदकं कुर्युः)

वृद्धमनुः—क्लीबाद्या नोदकं कुर्युस्तेना व्रात्या विधर्मिणः ।
गर्भभर्तृद्रुहश्चैव सुराप्यश्चैव योषितः ॥

वृद्धमनु ने कहा है—क्लीव (नपुंसक), आदि पद से ब्रह्महत्यारा सुवर्ण या उसके सम द्रव्य को हरनेवाले, व्रात्य (समय में जिसका उपनयनसंस्कार न हुआ हो), विधर्मी (पाखण्डी), गर्भ (गर्भ-पात करानेवाला) (पुत्र और कन्या का उपलक्षण है) पति से द्रोह करनेवाली और सुरापान करनेवाली स्त्रियाँ जलदान न करें।

याज्ञवल्क्यः (प्रा० ५)—न ब्रह्मचारिणः कुर्युरुदकं पतितास्तथा ।

याज्ञवल्क्य ने कहा है—ब्रह्मचारी (समावर्तनपर्यन्त) और पतित जलदान न करें। (ब्रह्मचर्य के बाद पूर्वमृत सपिण्डनों का उदकदान और आशौच करता ही रहे)।

षडशीतौ—स्वीयाचारादपि भ्रष्टाः पतिताश्चैव दूषिताः ।
न कुर्युरुदकं ते वै तेभ्योप्यन्येन चैव हि ॥

षडशीति में कहा है-अपने आचरणों से भी भ्रष्ट पतित और दूषित हैं वे जलदान न करें उनके लिए अन्य भी जलदान न करें।

मदनरत्ने हारीतः—पतितानामपविद्धानां चरन्तीनां च कामतः ।
प्रत्तानां चैव कन्यानां निर्वर्त्य सलिलक्रिया ॥

मदनरत्न में हारीत ने कहा है—पतित और बिना वृद्धावस्था के अपनी इच्छा से भ्रमण करती हुई और विवाहित बहिन कन्याओं को जल की क्रिया (उदकदान) को त्याग करे।

अपरार्के शङ्खलिखितौ—अपपात्रितस्य रिक्थपिण्डोदकानि व्यावर्तन्ते । अपपात्रितः-कृतघट-स्फोटः । तस्यापि सङ्ग्रहविधौ कृते आशौचोदकादि कुर्यादेवेत्याशौचप्रकाशः ।

अपरार्क में शंख और लिखित स्मृतियों में कहा है-जिसका घटस्फोट हो चुका हो उसका रिक्थ (धन) और पिण्डोदक नहीं होते हैं। उसका भी संग्रहविधि के करने पर आशौच, उदक आदि करे ही—ऐसा आशौचप्रकाश में कहा है।

(आशौचे नियमाः)

अथाशौचे नियमाः । याज्ञवल्क्यः (प्राय० श्लो० १२-१६)—इति संश्रुत्य गच्छेयुर्गृहं बाल-

पुरः सराः । विदश्य निम्बपत्राणि नियता द्वारि वेश्मनः ॥ आचम्याग्न्यादिसलिलं गोमयं गौरसर्षपान् । प्रविशेयुः समालभ्य कृत्वाऽश्मनि पदं शनः ॥

मरणाशौच में नियम कहते हैं । याज्ञवल्क्य ने कहा है—(इसप्रकार कुल के वृद्धों के) वचनों को अच्छीप्रकार से सुनकर (शोक को त्याग कर) बालकों को आगे कर घर में जावें । (वहाँ जाकर) घर के दरवाजेपर खड़े होकर संयत मन से नीम की पत्तियों को दांतों से टुकड़े (कूचकर) कर अर्थात्—(भक्षण न करे) और आचमन कर अग्नि, जल, गोबर तथा पीलीसरसों का स्पर्श कर और आदि शब्द से दूर्वाङ्कुर तथा बैल का भी स्पर्श कर पत्थर पर पैर रखकर धीरे-धीरे घर में प्रवेश करें । (आश्वलायन ने कहा है—पत्थर, अग्नि, गोबर, चावल, तेल और जल का स्पर्श करें । नियताः—का अर्थ मूत्र और पुरीष से बाद विहित आशौच से पवित्र होने पर) शंख के मत से अर्थ—दूर्वा, प्रवाल और वृषभ कहा है ।) (आशौचवाला मनुष्य) । कोई आलंभन में मन्त्रों को भी कहते हैं ।

प्रवेशनादिकं कर्म प्रेतसंस्पर्शिनामपि । क्रीतलब्धाशना भूमौ स्वपेयुस्ते पृथक् चितौ । इदं चाद्येऽह्नि ।

यह पूर्वोक्त निम्बपत्र दशनादिवेश्मप्रवेशकान्तकर्म प्रेत का स्पर्श करनेवालों को (शवनिर्हरण-स्नान-अलंकार करनेवाले सपिण्डों का) पराशरः—अनाथं ब्राह्मणं प्रेतं ये वहन्ति द्विजातयः । पदे पदे यज्ञफलमानुपूर्व्या लभन्ति ते ॥ न तेषामशुभं किञ्चित्पापं चाशुभकर्मणि । जलावगाहनात्तेषां सद्यः शौचं विधीयते ॥ स्नेहादिनानिर्हरणे तु मनुः—(५।१०१, १०२) असपिण्डं द्विजं प्रेतं विप्रो निर्हृत्य बन्धुवत् । विशुध्यति त्रिरात्रेण मातुराप्तांश्च बान्धवान् । यद्यन्नमत्ति तेषां तु दशाहमेव शुध्यति ॥ अनदन्नन्नमह्नैव न चेत्तस्मिन् गृहे वसेत् । विशेष—याज्ञवल्क्यस्मृति की टीका देखिये) भी है ।

खरीदकर या बिना मांगे हुए अन्न का भोजन करे । तथा (पत्ते आदि से आच्छादित या चटाई पर) भूमि पर (खटिया कम्बल आदि पर न करे) अलग (एकाकी) शयन करें । और यह पहले दिन में है ।

वसिष्ठः—अधः प्रस्तरे त्र्यहमनश्नन्त आसीरन् क्रीतोत्पन्नेन वा वर्तेरन् ।

वसिष्ठ ने कहा है—आशौचवालों का शयनानार्थ निर्मित चटाई या पत्थर पर तीनदिन भोजन त्याग कर रहे या खरीदकर अन्न का भक्षण करे ।

शुद्धितत्त्वे (पृ. ३१९) बैजवापः—शमीमालभन्ते शमी पापं शमयत्विति । अश्मानमालभन्तेऽश्मेव स्थिरो भूयासमिति, अग्निमग्निर्नः शर्म यच्छत्विति, ह्योगित्यन्तरा गामजमुपस्पृशन्तः क्रीत्वा लब्ध्वा वा प्राप्य गृहमेकान्नमलवणमेकरात्रं दिवा भोक्तव्यं त्रिरात्रं कर्मोपरमणम्, क्रीताद्यशनमुपवासाशक्तस्य ।

शुद्धितत्त्व में बैजवाप का वचन है—शमी पाप को शमन (दूर) करो—एसा कहकर शमी का स्पर्श करते हैं । पत्थर के सदृश स्थिर रहूँ यों कहकर पत्थर का स्पर्श करते हैं । हमलोगोंको अग्नि सुख दो यों कहकर अग्निका स्पर्श करें । 'ह्योगिति' मन्त्र को कहकर गौ और बकरी का स्पर्श करें । खरीदकर या प्राप्त होने पर दूसरे घर से उदक और अन्न को बिना निमक के एकरात-एकदिन में भोजन करें या तीनरात संवाहन, तैलाभ्यंग मार्जन आदि न करे । तीनरात तक भोजन खरीदकर उसके लिए है जो उपवास करने में अशक्त है ।

आश्वलायनस्तु (अ० ५ ख० ३ पृ० १४–१७ पृ० १०४–११४ का० ८६)—नैतस्यां रात्र्यामन्नं पचेरन्, क्रीतोत्पन्नेन वा वर्तेरन्, त्रिरात्रमक्षारलवणाशिनः स्युः, द्वादशरात्रं वा' इत्याह ।

आश्वलायन ने कहा है–उस रात में अन्न को न पकावे । या खरीदकर भोजन करे । (कोई इस सूत्रको नहीं पढते हैं ।) तीनरात या बारह रात क्षार (यवक्षार आदि या निमक, इससे सैन्धव निमक का निषध नही है । वैसे क्षारों का परिगण यों है–तिलमुद्गाधृते शैव्यं सस्ये गाधूमकोद्रवौ । धान्याक दवधान्यं च शमाधान्यं तथैत्तवम् ॥ स्विन्नधान्यं तथा पण्यं मूलं क्षाराः स्मृताः ॥ और निमक का भक्षण न करे—ऐसा कहा ह ।

अशक्तौ रत्नाकरे आपस्तम्बः—'भार्या परमगुरुसंस्थायां चाकालभोजनानि कुर्वीरन् ।'

यदा मृतिः, परदिने तावत्कालमित्यर्थः ।

अशक्ति में रत्नाकर में आपस्तम्ब का वचन है—स्त्री तथा परमगुरु के मरने पर उस समय से दूसरे दिन तक भोजन न करे।

बृहस्पतिः—अधःशय्यासना दीना मलिना भोगवर्जिताः। अक्षारलवणान्नाः स्युर्लब्धक्रीताशनास्तथा॥ भोगोऽभ्यङ्गताम्बूलादिः। क्षाराः परिभाषायामुक्ताः।

बृहस्पति ने कहा है—भूमि पर शयन करे। दीन (मंगलहर्षरहस्यादि का निषेध), मलिन—(मार्जन वस्त्रक्षालन आदि), भोगवर्जित-अभ्यङ्ग (उबटन) तांबूल आदि पद से—माला, चन्दन, व्यसन, उच्चासनादियों को), क्षार और निमक से रहित प्राप्त या खरीदा हुआ अन्न भक्षण करें। क्षार पदार्थों का परिगणन परिभाषा प्रकरण में कह चुके हैं।

(मार्कण्डेयपुराणमते विचारः)

यत्तु मार्कण्डेयपुराणे—तैलाभ्यङ्गो बान्धवानामङ्गसंवाहनं च यत्।
तेन चाप्यायते जन्तुर्यच्चाश्नन्ति सबान्धवाः॥

जो मार्कण्डेयपुराण में कहा है—तेल से स्नान, बान्धवों के अंग संवाहन (मालिश करना, मुट्ठी भरना) और जो बान्धवगण भोजन करते हैं, उससे प्रेत पुष्ट होता है।

प्रथमेऽह्नि तृतीये च सप्तमे नवमे तथा। वस्त्रत्यागं बहिःस्नानं कृत्वा दद्यात्तिलोदकम्॥ इति, तदन्त्यदिनपरम्।

पहले दिन, तीसरे दिन, सातवे दिन और नवमें दिन वस्त्र का त्यागकर बाहर स्नान कर तिलोदक दे। यह अन्त्यदिन परक है।

(आशौचान्ते विचारः)

'अशौचान्ते तिलकल्कैः स्नात्वा गृहं प्रविशेयुः' इति विष्णूक्तेः।

विष्णु ने कहा है—आशौच के अन्त में तिल की खली से स्नान कर घर में प्रवेश करे।

(अस्थिसञ्चयनोर्ध्वं विचारः)

विष्णुपुराणे त्वस्थिसञ्चयोर्ध्वं भोगोऽप्युक्तः—शय्यासनोपभोगस्तु सपिण्डानामपीष्यते। अस्थिसञ्चयनादूर्ध्वं संयोगस्तु न योषिताम्॥

विष्णुपुराण में तो अस्थिसञ्चयन के बाद भोग (अभ्यङ्गादि) भी कहा है—शय्या और आसन का उपभोग तो सपिण्ड को भी कहा है। (बौधायनस्मृति में कहा है—माता और पिता के मरने पर पुत्र को जब तक आशौच है तब तक चटाई पर शयन करना चाहिये। (दशाहं कटमुपासीरन्मातापित्रोर्मरणे) और उतने ही काल तक भोग का भी निषेध है) अस्थिसंचयन के बाद स्त्रियों के साथ मैथुन सपिण्डों को नहीं करना चाहिये।

(ज्ञातिभिः सह भोजनविचारः)

भारते—तिलान् ददतु पानीयं दीपं ददतु जाग्रतु।
ज्ञातिभिः सह भोक्तव्यमेतत्प्रेतेषु दुर्लभम्॥

भारत में कहा है—तिल, जल और दीपक को दो तथा जागरण करो तथा जातियों के साथ भोजन करे। ये प्रेतों में दुर्लभ है।

(मांसाशनादौ विचारः)

मनुः (अ० ५।७३)—मांसाशनं च नाश्नीयुः शयीरंश्च पृथक् क्षितौ।

मनु ने कहा है—ब्रह्मचारी एकादशाह आदि श्राद्ध के समय तक (मार्जनरहित स्नान) मांस का भक्षण न करे और अलग (एकान्त में) भूमि पर शयन करे। (मनु ने कहा है—त्र्यहं मांसाशनं च नाश्नीयुः) तीन दिन तक मांस का भक्षण न करे—यह कहना मांस लोलुपता परक है।)

देवजानीये कारिकायाम्—लवणक्षीरमाषान्नापूपमांसानि पायसम् । वर्जयेदाहृतान्नेषु बालवृद्धातुरैर्विना ॥ उपवासो गुरौ प्रेते पत्न्याः पुत्रस्य वा भवेत् ।

देवजानीय में कारिका का वचन है—निमक, क्षीर (दूध), उडद, मालपूडा, मांस और खीर इनको बालक, वृद्ध और आतुर (रोगी) के विना मँगवाये हुए अन्नों में त्याग करे । गुरु के मरने पर पत्नी या पुत्र को उपवास करना चाहिए ।

(ज्ञातिभिः दिवाभोजने दिननियमकथनम्)

मरीचिः—प्रथमेऽह्नि तृतीयेऽह्नि चतुर्थे सप्तमे तथा । ज्ञातिभिः सह भोक्तव्यमेतत्प्रेतेषु दुर्लभम् ॥ भोजनं च दिवैव ।

मरीचि ने कहा है—पहले दिन, तीसरे दिन, सातवें दिन और दशवें दिन बान्धवों के साथ भोजन करना चाहिये । ये प्रेतों को दुर्लभ होता है । भोजन दिन में ही करना चाहिये । (वैजवाप ने तो कहा है-खरीदकर या दूसरे घर से प्राप्त बिना निमक के अन्न को एकरात्रि में भोजन करे ।)

दिवा चैव तु भोक्तव्यममांसं मनुजर्षभ । इति विष्णुपुराणात् ।

विष्णुपुराण में कहा है—हे मनुष्यों में उत्तम, अमांस भोजन दिन में ही करना चाहिये ।

(क्रीत्वा लब्ध्वा वा अन्नभक्षणकथनम्)

क्रीत्वा लब्ध्वा वा दिवान्नमश्नीयुः' इति पारस्करोक्तेश्च ।

और पारस्करगृह्यसूत्र में कहा है—खरीदकर या प्राप्त होने पर अन्नों को दिन में भोजन करे ।

(अन्नभक्षणे पात्रादिविचारः)

मदनरत्ने हारीतः—'पाणिषु मृन्मयेषु पर्णपुटकेषु वाश्नीरन् ।

मदनरत्न में हारीत का बचन है—हाथों में, मट्टी के पात्रों में या पत्तों के दोनों में भोजन करे ।

(आशौचमध्ये यत्नेन स्वगोत्रादीनां भोजनकथनम्)

देवजानीये ब्राह्मे (शुद्धितत्त्वे आदिपुराणे च) आशौचमध्ये यत्नेन भोजयेच्च स्वगोत्रजान् ।

और देवजानीय में ब्रह्मपुराण का बचन है—(शुद्धितत्त्व में आदिपुराण का वचन है) आशौच के मध्य में अपने गोतियों को यत्न से भोजन करावे ।

(आशौचान्ते गृहादिशुद्धिकथनम्)

अन्त्यदिने तु मदनरत्ने ब्राह्मे—यस्य यस्य तु वर्णस्य यद्यत्स्यात्पश्चिमं त्वहः ।
स तत्र गृहशुद्धिं च वस्त्रशुद्धिं करोत्यपि ।

अन्त्यदिन में तो मदनरत्न में ब्रह्मपुराण का बचन है—जिस जिस वर्ण का जो जो अन्तिम दिन (सूतक का दिन) है वह वहाँ पर घर की शुद्धि और वस्त्र की शुद्धि करे । अर्थात्—धोबी आदि के द्वारा शुद्धि करावे ।

(ग्रामाद्बहिर्गत्वा प्रेतस्पर्शवस्त्राणि त्यक्त्वा स्नानं कथनम्)

अन्त्यकर्मकालीनवस्त्रयोस्तत्रैवोक्तम्—ग्रामाद् बहिस्ततो गत्वा प्रेतस्पृष्टे तु वाससी ।
अन्त्यानामाश्रितानां च त्यक्त्वा स्नानं करोत्यथ ॥ इति ।

अन्त्यकर्मकालीनवस्त्रों का (अन्त्यकर्मकरनेवाले वस्त्रों का) वहीं पर कहा है—तदनन्तर गाँव के बाहर जाकर प्रेत से स्पर्श किये हुए वस्त्रों को अन्त्यज और आश्रित (सेवक आदि) के लिए त्याग कर बाद में स्नान करे ।

(आशौचमध्ये दान-प्रतिग्रह-होम-स्वाध्याय-पितृकर्मादीनां त्यागकथनम्)

शङ्खः—दानं प्रतिग्रहो होमः स्वाध्यायः पितृकर्म च ।
प्रेतपिण्डक्रियावर्जमाशौचे विनिवर्तते ॥

शंख ने कहा है—आशौचकाल में—प्रेतपिण्ड की क्रिया को त्याग कर दान, प्रतिग्रह, होम, स्वाध्याय और पितृकर्म त्याग करे।

(यत्र प्राणोत्क्रमणं जातं तत्र महाबलिकथनम्)

काठकगृह्ये—'यत्र प्राणोत्क्रमस्तत्रान्वहं महाबलिं कुर्यात्' इति ।

काठकगृह्यसूत्र में कहा है—जहाँ पर प्राण निकले हों वहाँ पर प्रतिदिन महाबलि करे।

पारस्करः—'तदानीमेव वस्त्रं तण्डुलं दीपं कांस्यभाजनं प्रेताय दद्यात् ।

पारस्करगृह्यसूत्र में कहा है—उसीसमय ही वस्त्र, चावल, दीपक और कांसे का पात्र प्रेत के लिये दे।

(नग्नप्रच्छादनश्राद्धे वस्त्रादिदानम्)

आशौचप्रकाशे भरद्वाजः—वासोऽन्नं च जलं कुम्भं प्रदीपं कांस्यभाजनम् ।
नग्नप्रच्छादने श्राद्धे ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥

आशौचप्रकाश में भरद्वाज ने कहा है—वस्त्र, अन्न, जल, कुंभ, दीपक, कांसे का पात्र और नग्नप्रच्छादन (धोती, उत्तरीय ओढनी) श्राद्ध में ब्राह्मण के लिये दे। (विकच्छः कच्छशेषश्च मुक्तकच्छस्तथैव च। एकवासा अवासाश्च नग्नः पञ्चविधः स्मृताः ॥ शुद्धितत्त्वे पृ० ३०५ ।)

(तिलोदकादिकं रात्रौ सन्ध्यायां वा करणे विचारः)

भृगुः—तिलोदकं तथा पिण्डान्नग्नप्रच्छादनादिकम् ।
रात्रौ न कुर्यात्सन्ध्यायां यदि कुर्यान्निरर्थकम् ॥

भृगु ने कहा है—तिलोदक, पिण्ड और नग्न-(नग्नक्षपणके देशे रजकः किं करिष्यति—चाण० ११०) प्रच्छादन आदि का दान रात में न करे। यदि सन्ध्या में करता है तो निरर्थक होता है।

(ब्राह्मणादिवर्णक्रमेण प्रेतपिण्डनिर्णयकथनम्)

अथ प्रेतपिण्डः । यद्यपि हेमाद्रौ पारस्करेण—ब्राह्मणे दशपिण्डास्तु क्षत्रिये द्वादश स्मृताः । वैश्ये पञ्चदश प्रोक्ताः शूद्रे त्रिंशत्प्रकीर्तिताः ॥ इत्युक्तम् ।

अब प्रेतपिण्ड (तिलमन्नं च पानीयं धूपं दीपं तथैव च। मधुः सर्पिः खण्डयुतं पिण्डमष्टाङ्गमुच्यते ॥) को कहते हैं। यद्यपि हेमाद्रि में पारस्कर ने कहा है—ब्राह्मण के लिये दशपिण्ड, क्षत्रिय के लिये बारह पिण्ड, वैश्य के लिए पन्द्रह पिण्ड और शूद्र के लिए तीस पिण्ड कहा है।

तथापि—प्रेतेभ्यः सर्ववर्णेभ्यः पिण्डान् दद्याद्दशैव तु । इति तेनैवोक्तेः सर्वेषां दशैव ज्ञेयः मदनरत्नेऽप्येवम् ।

फिर भी वहीं ही कहा है—सब वर्णों के प्रेतों के लिए तो दश ही पिण्डों को दे। सब वर्णों के लिए दश ही पिण्ड जानना चाहिये। मदनरत्न में भी यही है।

तथा च हेमाद्रौ ब्राह्मपाद्मयोः—जात्युक्ताशौचतुल्यांस्तु वर्णानां क्वचिदेव हि । देशधर्मान् पुरस्कृत्य प्रेतपिण्डान् वपन्त्यपि ॥ इत्युक्त्वा विप्रान्येषु दशपिण्डोत्कर्ष उक्तः । देयस्तु दशमः पिण्डो राज्ञां वै द्वादशेऽहनि । वैश्यानां वै पञ्चदशे देयस्तु दशमस्तथा । शूद्रस्य दशमः पिण्डो मासे पूर्णेऽह्नि दीयते ॥ इति ।

और वैसे ही (सबों का दश ही पिण्ड होता है एसी स्थिति में तो यही अर्थ है।) हेमाद्रि में ब्रह्मपुराण तथा पद्मपुराण का वचन है—वर्णों के जाति में कहा हुआ जो आशौच है उसके सदृश कहीं ही पिण्ड देते हैं। देशधर्मों के (पहले कही हुई संख्या से देशविशेष के विषय में विरोध नहीं है।) अनुसार प्रेतपिण्डों को देते हैं। ऐसा कहकर ब्राह्मणों से अन्य जातियों में दशवें पिण्ड में उत्कर्ष (प्रमुखता) कहा है। राजाओं के बारहवें दिन में ही दशवें पिण्ड को देना चाहिये। पन्द्रहवें दिन में ही वैश्यों का दशवाँ पिण्ड दे और शूद्र का दशवाँ पिण्ड एक महिने के समाप्त होने पर दे।

(युद्धमृतादेराशौचे त्र्यहादौ च पिण्डदाननिर्णयकथनम्)

युद्धमृतादेराशौचे त्र्यहादौ च तेनैवोक्तम्—सद्यःशौचे प्रदातव्या सर्वेऽपि युगपत्तथा । त्र्यहाशौचे प्रदातव्यः प्रथमेऽन्ह्येक एव हि । द्वितीयेऽहनि चत्वारस्तृतीये पञ्च चैव हि ॥ त्र्यहे प्रकारान्तरं प्रागुक्तम् ।

युद्ध में मरने पर तो सद्यःशौच में और तीन दिन के आशौच में उन्हीं ने ही कहा है—सद्यःशौच में सब पिण्डों को एक साथ देना चाहिये । तीन दिन के आशौच में पहले दिन में एक ही पिण्ड दे । दूसरे दिन में चार पिण्ड और तीसरे दिन पांच ही पिण्ड दे । तीनदिन में प्रकारान्तर पहले (प्रथमे दिवसे देयास्त्रयः पिण्डाः समाहितैः । द्वितीये चतुरो दद्यादस्थिसञ्चयनं तथा ॥ त्रींस्तु दद्यात्तृतीयेऽह्नि वस्त्रादिक्षालयेत्ततः ॥) कह चुके हैं ।

(आशौचस्य ह्रासेऽपि पिण्डदानविचारः)

शातातपः—आशौचस्य च ह्रासेऽपि पिण्डान् दद्याद्दशैव तु । तत्रैकपात्रे सकृत्पक्त्वा दश पिण्डान् दद्यात्,

शातातप ने कहा है—आशौच के ह्रास (कमी) में भी दश ही पिण्डों को दे । वहाँ पर एकपात्र में एक बार पकाकर दश पिण्डों को दे ।

(उत्तरीयशिलापात्रादिविपर्यये विचारः)

उत्तरीयशिलापात्रकर्तृद्रव्यविपर्यये । पूर्वदत्ताञ्जलीन् दद्यात् पूर्वपिण्डांस्तथैव च ॥ इति गृह्यकारिकायां पात्रविपर्यये दोषोक्तेः । शिलाविपर्यये घटस्फोटादेर्नावृत्तिः । अक्षाभ्यञ्जनादिपदकर्मणः एकहायनीनयनवदप्रयोजकत्वात् । तद्वचात्र लौकिकग्रहणम् ।

उत्तरीय (दुपट्टा) शिला (पत्थर चट्टान) पात्र, कर्ता और द्रव्य इनके विपर्यय (विपरीत) में पहले दी हुई अञ्जलियों को तथा वैसे ही पहले दिये हुए पिण्डों को दे । यह गृह्यकारिका में [1]पात्रविपर्य में दोष कहा है । शिला के विपर्यय में घटस्फोट आदि की आवृत्ति नहीं होती है । [2]अक्षाभ्यञ्जनादिपदकर्मका एकहायनी नयन के सदृश अप्रयोजक है । उसी की तरह लौकिक ग्रहण करे ।

(पात्राणामनेकत्वकथनम्)

केचित्तु—नवान्यादाय भाण्डानि आरुकं चरुकं तथा' । इति प्रचेतसोक्तेः पात्रानेकत्वमाहुः ।

कोई तो नये पात्रों को तथा आरुक (आडू का पात्र) और चरुक (जिस पात्रमें यज्ञीयचरु बनता है वह पात्र-बहुगुना, टोकनी आदि) पात्र को ग्रहण कर इस प्रचेता के वचन से अनेक पात्रों को कहा है ।

१—धर्मसिन्धौ—प्रथमेऽहनि यो देशो यश्च कर्ता यच्च तण्डुलादिद्रव्यं यच्चोत्तरीयशिलापाकपात्रादि तदेव दशाहान्तम् । एतदन्यतमव्यत्यये यतो व्यत्ययस्ततः पुनरावृत्तिः । शिलाविपर्ययेऽपि घटस्फोटादेर्नावृत्तिरित्युक्ते लौकिकशिलाग्रहणम् । तेन पिण्डदानतिलाञ्जल्यादिकस्यैवावृत्तिर्न दाहस्य । केचिदाचार्यविपर्ययेऽप्यावृत्तिमाहुः । निर्णयसिन्धुटीकायाम्—आचार्यविपर्ययेऽप्येवम्—इतिवदतामयभिप्रायः—आचार्यस्यापिकारयितृत्वेन प्रयोजककर्तृत्वमिति ।

२—ज्योतिष्टोम में एकसाल की बछिया जिसकी आँख पीली हो उससे सोम को खरी दे । उस गाय को सोम को खरीदने के लिए गोशाला से ले आवे । लाते समय छ पद गाय रखती है उसीके पीछे अध्वर्यु आवें । सातवें पद में सुवर्ण को रखकर आहुति दें । वहाँ जो धूली है उसको हाथ में ले लेवें । उसीसे हविर्धान शकट (गाडी) के जो अक्ष है उसमें लगावें । यह विहित है । यहाँ एक शयनी नयन से खरीदना (क्रय) होता है । पदहोम तथा अक्षाभ्यञ्जन होता है । इसमें प्रधान है सोमक्रय यही एकहायनी नयन का अनुष्ठापक (प्रयोजक) होता है । पदहोम अक्षाभ्यञ्जन आदि अप्राधान है अर्थात् अप्रोजक हैं । अक्षभ्यञ्जनपदहोम आदि कर्म एकहायनी नयन का प्रयोजक नहीं होता है । वैसा प्रकृत में शिलानयन का और्ध्वदेहिक ही प्रयोजक होता है घटस्फोट नहीं । विशेष सरलावृत्ति कात्यायनश्रौतसूत्र के सोमयाग अ० ७ पृ. २६३ से देखिये ।

(क्रियाकर्तुर्नाशे विचारः)

क्रियाकर्तुर्नाशेऽन्येन शेषः समापनीयः। एवं क्रियाप्रवृत्तानां यदि कश्चिद्विपद्यते। तद्बन्धुना क्रिया कार्या सर्वैर्वा सहकारिभिः ॥ इति शुद्धितत्त्वे बृहस्पतिस्मृतेः।

क्रिया करनेवालों में यदि किसी का नाश होने पर अन्य (दूसरे) से अवशिष्ट कर्म को समाप्त कराना चाहिये। शुद्धितत्त्व में बृहस्पतिस्मृति का वचन है—इसप्रकार यदि क्रिया में लगे हुओं में से कोई मर जाय तो उसके बन्धु या सब सहायक क्रिया (पिण्डदान आदि) को करें।

(पत्न्याः कर्तृत्वे रजोदर्शने च विचारः)

पत्न्याः कर्तृत्वे रजोदर्शने च तदन्ते कुर्यात्। 'शावाद् द्विगुणमार्तवम्' इत्युक्तेः।

पत्नी के कर्ता होने पर उसको रजोधर्म होने पर उसके अन्त में करे। क्योंकि शव के आशौच से द्विगुणित रजोधर्म का आशौच होता है—ऐसा कहा है।

(आशौचमध्ये कर्तुरस्वास्थ्ये विचारः)

आशौचान्ते आर्तवे कर्तुरस्वास्थ्ये वान्येन क्रिया सर्वा वर्तनीया। कर्तुर्विपर्ययात् कालातिक्रमायोगाच्च।

आशौच के अन्त में रजोधर्म होने पर या शरीर की अस्वस्थता में दूसरे से सब क्रियाओं की आवृत्ति करावे। कर्ता[1] के विपर्यय से समय का अतिक्रमण नहीं हो सकता।

(स्थण्डिले प्रेतभागं पूर्वाह्णकाले कथनम्)

वाराहे—स्थण्डिले प्रेतभागं तु दद्यात्पूर्वाह्ण एव तु।
कृत्वा तु पिण्डसङ्कल्पं नामगोत्रेण सुन्दरि ॥

वाराहपुराण में कहा है—स्थण्डिल पर प्रेत के भाग को पूर्वाह्णकाल में ही दे। हे सुन्दरि, नाम और गोत्र का उच्चारण कर पिण्ड का संकल्प कर दे।

(प्रेतपिण्डं कुत्र देयम्)

मरीचिः—प्रेतपिण्डं बहिर्दद्यात् दर्भमन्त्रविवर्जितम्। प्रागुदीच्यां चरुं कृत्वा स्नातः प्रयतमानसः ॥ दर्भवर्जनमनुपनीतपरम्,

मरीचि ने कहा है—कुशा और मन्त्र से रहित (वर्जित) ईशानकोण में चरु को पकाकर स्नान और सावधानीमन से प्रेतपिण्ड को बाहर[2] दे। दर्भ का त्याग तो अनुपनीत परक है।

(असंस्कृतानां संस्कृतानां च मरणे पिण्डदानविचारः)

'असंस्कृतानां भूमौ पिण्डं दद्यात् संस्कृतानां कुशेषु' इति। प्रचेतसोक्तेः।

क्योंकि प्रचेता ने कहा है—असंस्कृतों (जिनका संस्कार नहीं हुआ है) का भूमि में पिण्ड दे। संस्कारवालों का कुशाओं पर पिण्ड दे।

मिताक्षरायां स्मृत्यन्तरे—'भूमौ माल्यं पिण्डं पानीयमुपले वा दद्युः।

१—पिता और माता के दशाहकर्म को करते हुए पुत्र का स्वर्गवास हो जाय तो दूसरा पुत्र अवशिष्ट पिण्ड को दे। उसके न रहने पर उसका पुत्र प्रतिदिन आदि में अपने पिता को पिण्ड देकर स्नान कर पितामह का अवशिष्ट पिण्ड दे। क्योंकि दूसरे को अधिकार का अभाव है। दत्तक के रहने पर तो यथाचार या पौत्र शेष पिण्ड को दे। इसीप्रकार अन्य कर्ता में भी है। अपकर्ष कर शेष का समाप्त न करे। इसको दाक्षिणात्य नहीं मानते हैं। सपिण्डन में पितामह के मरने पर दशदिन के अन्त में पिता के मरने पर पिता का संस्कार कर पितामह का फिर से सब करे। दशाह में न करे।

२—ब्रह्मपुराणे—ग्रामाद् बहिश्च कर्तव्यं जलाशयसमीपतः। पिण्डदानं दशाहानि प्रेतायारण्यमाश्रितैः।

मिताक्षरा में स्मृत्यन्तर का वचन है—भूमि[1] (संपूर्णस्मृति और पुराणों में कहा है—कि भूमि पर कुशाओं को बिछाकर घर के दरवाजे पर प्रेत के लिए पिण्ड दे तथा भूमिको लीपकर माला और जल को दे) में माला, पिण्ड और जल को दे या उपल (पाषाणमयदेश) पर दे।

(हारीतः—अक्लृप्तचूडा ये बाला ये च गर्भाद्विनिःसृताः। मृता अनुपनीता ये अनूढा अपि कन्यकाः॥ ये मृताश्चाप्यसंस्कारास्तेभ्यो भूमौ प्रदीयते।

(हारीत ने कहा है—जिन बालकों का चूडाकरणसंस्कार नहीं हुआ है, जो गर्भ से निकल गये हैं, जो अनुपनीत मर गये हैं और जो कन्यायें अमूढ (अविवाहित) मर गयी हैं तथा जिनका संस्कार भी नहीं हुआ है उनके लिए भूमि में पिण्ड दे।)

(फलमूलादिना पिण्डदानम्)

पैठीनसिः—शालिनां सक्तुभिर्वापि पिण्याकैर्वापि निर्वपेत्॥

पैठीनसि ने कहा है—चावल, सत्तु या पिण्याक (खली) से पिण्डदान करे।

शुनःपुच्छः—फलमूलैश्च पयसा शाकेन च गुडेन च।
तिलमिश्रं तु दर्भेषु पिण्डं दक्षिणतो हरेत्॥

शुनःपुच्छ का वचन है—फल, मूल, दूध, शाक और गुड को तिल से मिश्रित कर कुशाओं पर पिण्ड को दक्षिणतरफ दे। (इनमें घृत का भी सेचन आवश्यक है और दूध का भी सेचन सति संभव में करे। मधु के स्थान में गुड कहा है।)

तूष्णीं प्रसेकं पुष्पं च धूपं दीपं तथैव च। शालिना सक्तुभिर्वापि शाकैर्वाप्यथ निर्वपेत्॥

सेचन, अर्घ्य, पुष्प, धूप तथा दीप, बिना मन्त्र का दे। साठी का चावल, सत्तू या साग का पिण्ड दे।

(प्रथमेऽहनि यद् द्रव्यं तदेव दशाहिकं श्राद्धे कर्तव्यम्)

प्रथमेऽहनि यद्द्रव्यं तदेव स्याद्दशाहिकम्॥

जिस द्रव्य से प्रथम दिन पिण्ड दिया गया हो उसी से दशदिन तक करे। (कुछ मारवाड़ी अनपढ ब्राह्मण दशवें दिन साधारण वचन से द्रव्यान्तर से पिण्ड कराते हैं। वह निर्मूल है)।

(लौकिकाग्नौ नूतनमृन्मयादिसंशोधितपात्रे पिण्डान्नं स्थापनम्)

मदनरत्ने मात्स्ये—तैजसं मृन्मयं चाथ पात्रं संशोध्य यत्नतः। लौकिकाग्नाविधिश्रित्य पचेदन्नं घृतप्लुतम्॥ स्नात्वाथ तिलसम्मिश्रं प्रदद्याद् दर्भसंस्तरे।

मदनरत्न में मत्स्यपुराण का वचन है—तैजस (सुवर्णादि धातु का पात्र), या मृत्ति के पात्र को यत्न से शुद्ध कर लौकिक अग्नि में रखकर घृत से मिश्रित कर अन्न को पकावे और स्नान कर तिल से युक्त बिछी हुई कुशा पर पिण्ड को दे।

(प्रेतश्राद्धेषु पिण्डे अन्नादिविचारः)

शुद्धितत्त्वे देवजानीये ब्राह्मे—प्रथमेऽहनि यो दद्यात् प्रेतायान्नं समाहितः।
अन्नं नवसु चान्येषु स एव प्रददात्यपि॥

शुद्धतत्त्व तथा देवजानीय में ब्रह्मपुराण का वचन है—प्रथमदिन में सावधानीमन से जो अन्न प्रेत के लिए दे। वही ही अन्य नौ दिनों में ही दे।

१—सब स्मृति और पुराणों में कहा है—भूमि में कुशाओं को बिछाकर घर के दरवाजे पर उस प्रेत के लिए पिण्ड को दे। उपलिप्त भूमि में माला तथा जल दे। कोई तो असंस्कृत भूमि में दे—इस परक मानते हैं। उसपरक मानने पर तो उपल (पाषाणमयदेश) में दे। स्मृत्यन्तर में कहा है—भूमौ पिण्डप्रदानं च कर्षूं कृत्वा विधानतः। ऐसा कहा है। 'प्रादेशमात्रदीर्घश्चतुरङ्गुलविस्तारस्तावदेव निम्नो गर्तः कर्षूः।

(नूतनमृन्मयभाण्डे त्रिप्रक्षालिततण्डुलानां पाकनिर्माणकथनम्)

मृन्मयं भाण्डमादाय नवं स्नातः सुसंयतः । तण्डुलप्रसृतिं तत्र त्रिःप्रक्षाल्य पचेत्स्वयम् ॥

मृत्तिका के नूतनपात्र को ग्रहण कर स्नान कर जितेन्द्रिय होकर वहाँ पर एक अंजलि चावल को तीन बार प्रक्षालन कर (किसी के मत से 'द्विः प्रक्षाल्य पचेत्' ऐसा पाठ है—दो बार धोकर पका दे ।) स्वयं पकावे ।

(पिण्डदानार्चनादिकथनम्)

सपवित्रैस्तिलैर्मिश्रं कृमिकेशविवर्जितम् । द्वारोपान्ते ततः क्षिप्त्वा शुद्धां वा गौरमृत्तिकाम् ॥
भूपृष्ठे संस्तरे दर्भान् याम्याग्रान् देशसम्भवान् । ततोऽवनेजनं दद्यात् संस्मरन् गोत्रनामनी ॥

पवित्र के सहित तिलों से मिश्रित (युक्त) और कृमि-केश से वर्जित [1]दरवाजे के अन्त में [2]शुद्ध सफेद मृत्तिका को प्रक्षेप कर पृथ्वी के पीठ पर दक्षिणाग्र कुशाओं को बिछा दे । फिर गोत्र और नाम का स्मरण कर अवनेजन दे ।

तिलसर्पिर्मधुक्षीरैः संसिक्तं तप्तमेव हि । दद्यात्प्रेताय पिण्डं तु दक्षिणाभिमुखस्थितः ।

तिल, घृत, सहत और दूधको मिलाकर तप्त (गरम) (ब्रह्मपुराणे—न याति यावदाकाशं पिण्डाद्बाष्पमयी शिखा । तावत्तत्संमुखं तिष्ठेत्सर्वं तोये क्षिपेत्ततः ॥ यहाँ पर चावल ही मुख्यकल्प है, फल, मूल आदि अनुकल्प है ।) ही पिण्ड को दक्षिणमुखस्थित होकर प्रेत के लिये पिण्ड को दे ।

अर्घ्यैः पुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैस्तोयैश्च शालिभिः । ऊर्णातन्तुमयैः शुद्धैर्वासोभिः पिण्डमर्चयेत् ॥

अर्घ्य, पुष्प, धूप, दीप, शीतल जल और शुद्ध ऊन के तन्तुमय वस्त्रों से पिण्ड की पूजा करे ।

(सद्यःशौचादिदिनेषु पिण्डदानस्य क्रमकथनम्)

दिवसे दिवसे देयः पिण्ड एवं क्रमेण तु । सद्यःशौचं प्रदातव्या सर्वेऽपि युगपत्तथा ॥

इसीप्रकार ही क्रमसे प्रतिदिन में पिण्ड को देना चाहिये । सद्यःशौच में सभी पिण्डों को एक साथ दे ।

त्र्यहाशौचेऽपि दातव्यास्त्रयः पिण्डाः समाहितैः । द्वितीये चतुरो दद्यादस्थिसञ्चयनं तथा ॥
त्रींस्तु दद्यात्तृतीयेऽह्नि वस्त्रादि क्षालयेत्ततः । दशाहेऽपि च दातव्यः प्रथमे त्वेक एव हि ॥
एकस्तोयाञ्जलिस्त्वेवं पात्रमेकं च दीयते । द्वितीये द्वौ तृतीये त्रीन्" इत्याद्युक्त्वा—एवं स्युः पञ्चपञ्चाशत्तोयस्याञ्जलयः क्रमात् । तोयपात्राणि तावन्ति संयुक्तानि तिलादिभिः ॥ इति । पात्रं—कुम्भः ।

तीनदिन से आशौच में भी सावधानीमन से (पहले दिन में) तीन पिण्ड दे । दूसरे दिन चार पिण्ड दे और अस्थिसंचय करे । तीसरे दिन तीन पिण्ड दे और वस्त्र आदि धो दे । दशवें दिन भी दे । पहले दिन एक ही दे । एक जल की अंजलि दे और एक ही पात्र दे । दूसरे दिन दो तथा तीसरे दिन तीन दे । इत्यादि कहकर (चौथे दिन चार, पांचवें दिन पांच, छठे दिन छ, सातवें दिन सात, आठवें दिन आठ, नवें दिन नौ और दशवें दिन दश) पचपन जल की अंजलियों का क्रम इसीप्रकार होता है । उतने ही तिल आदि के सहित जल के पात्र-कुंभ भी होते हैं । पात्र माने—कुंभ ।

(अत्र पिण्डदाने गौड-मैथिलमिताक्षराणामतकथनम्)

अत्राहःपदमहोरात्रपरम् । तेन रात्रावपि देय इति गौडाः । दिवसपदाद्रात्रौ नेति मैथिलाः । स एवेत्युक्तेः सपिण्डेन दशपिण्डे प्रक्रान्ते पुत्रागमेऽपि स न दद्यात् । 'असगोत्रः सगोत्रो वा' इति प्रागुक्तेः । दाहकर्तैव दशाहं कुर्यादिति मिताक्षरायाम् ।

१—शुनःपुच्छोऽपि—द्वारेदशे प्रदातव्यो देवतायतनेषु च ।
२—गौरमृत्तिकाप्रक्षेपस्तु स्थण्डिलार्थः, 'स्थण्डिले' इत्युक्तवाराहात् । मधुक्षौद्रं कलिवर्जमित्याहुः ।

यहाँ पर 'अहः' पद अहोरात्रपरक है। इससे रात्रिमें भी देना चाहिये—यह गौड कहते हैं। दिवसपद से रात में न दे—यह मैथिल कहते हैं। वही ही दे—ऐसा कहने पर सपिण्डन दश पिण्ड के प्रारंभ होने पर पुत्र के आने पर भी वह न दे। असगोत्र हो या सगोत्र हो—यह पहले कह चुके हैं। (जो पुत्र के समीप में न होनेपर अन्य किसी ने प्रथम दिन पिण्ड दिया है वही दशों पिण्ड देगा। मध्य में पुत्रादि के आने पर भी नहीं दे सकेगा—यह भाव है। जो मैत्रायणीयपरिशिष्ट में कहा है—स्वगृहे विद्यते पुत्रः पिता ग्रामान्तरे मृतः। केनापि तत्र चारब्धमग्निपिण्डोदकादिकम्॥ पुत्रः सञ्चयनात्प्राक् चेद् गच्छेदूर्ध्वं स आचरेत्। स्वगृहे तत्र वा सर्वं प्रेतकार्यं सपिण्डनम्॥ इससे कर्ता का नियम कैसे होगा यह उचित नहीं है। क्योंकि यह निर्मूल है। यदि कर्ता पुत्र के द्वारा रोकने पर दशाहकर्म को त्यागता है तो पुत्र दशाह की आवृत्ति करे। पुत्र के आने पर तो संचयन के पूर्व वही करे—यह भाव है। संचयन यदि कर दिया हो तो पुत्र क्रिया न करे। भयस्थान में या मार्ग में मर गया हो और वहाँ संस्कार कर दिया हो तो जहाँ मनुष्य नहीं रहते वहाँ पिण्ड न करे। इस वाक्य से अस्थिसंचयन संस्कार किये गए हों वहाँ भयादि के कारण रहना न बनता हो जहाँ प्रेतकार्य करनेवाला जाय वहीं पर पिण्डदान से प्रारम्भ कर सपिण्डनान्त क्रिया करे—यह आपत्ति है। दशाहक्रिया के देश का भेद होने पर भी भेद नहीं माना जा सकता। यदि माता और पिता के दशाह करनेवाला पुत्र रोग से या किसी प्रतिबन्धक से क्रिया को समाप्त करने में असमर्थ हो जाय तो उसका पुत्र ही पितामह के दशाह को करे। यदि अन्य पुत्र हो तो वही करेगा। दत्तकपुत्र रहने पर भी अपने-अपने मतानुसार दत्तक करे या पौत्र करे—यह मिताक्षरा में कहा है।)

शुद्धितत्त्वे वायवीये—असगोत्रः सगोत्रो वा यदि स्त्री यदि वा पुमान्। यश्चाग्निदाता प्रेतस्य पिण्डं दद्यात्स एव हि॥ इति।

शुद्धितत्त्व में वायुपुराण का भी वचन है—असगोत्री हो या सगोत्री हो, स्त्री या पुरुष हो जो प्रेत का अग्निसंस्कार करे वही ही दश पिण्डदान करे।

(पुनः पिण्डदाने विचारः)

तत्रैव—पूरकेण तु पिण्डेन देहो निष्पद्यते यतः।
कृतस्य करणायोगात् पुनर्नावर्तयेत्क्रियाम्॥

वहीं पर ही कहा है—(आद्यपिण्ड के अनन्तर पुत्र आदि के आ जाने पर शरीर के प्रारंभ होने से) पूरक पिण्ड से शरीर बनता है। इससे किये हुए का फिर से क्रिया को करना अयुक्त है। आवर्तन (आवृत्ति) न करे।

शुद्धिप्रकाशे वायवीयेऽपि—निवर्तयति यो मोहात् क्रियामन्यनिवर्तिताम्।
विधिघ्नस्तेन भवति पितृहा चोपजायते॥

शुद्धिप्रकाश में वायुपुराण का भी वचन है—जो व्यक्ति मोह के कारण से अन्य द्वारा चलती हुई क्रिया को समाप्त करता है। वह विधि का नाश करनेवाला और पिता का नाश करनेवाला होता है।

तस्मात्प्रेतक्रिया येन केनापि च कृता यदि। न तां निवर्तयेत्प्राज्ञः सतां धर्ममनुस्मरन्॥ इति।

इससे जिस किसी ने प्रेत क्रिया को किया है तो बुद्धिमान् व्यक्ति अच्छे लोगों के धर्म का स्मरण करता हुआ उस क्रिया को समाप्त न करे।

(प्रेतपिण्डदाने पितृ-स्वधादिशब्दानामुच्चारणे विचारः)

आदिपुराणे—पितृशब्दं स्वधां चैव न प्रयुञ्जीत कर्हिचित्। अनुशब्दं तथा चेह प्रयत्नेन विवर्जयेत्॥ उपतिष्ठतामयं पिण्डः प्रेतायेति समुच्चरेत्।

आदिपुराण में कहा है—कभी भी पितृशब्द और स्वधाशब्द का प्रयोग न करे। अनुशब्द (ये च त्वामत्रानु) को यहाँ पर प्रयत्न से त्याग दे। यह पिण्ड प्रेत के लिए प्राप्त हो—ऐसा उच्चारण करे।

क्रियानिबन्धे व्यासः—प्रेताय पिण्डं दत्त्वा तु ततोऽश्नायाद्दिनात्यये।

क्रियानिबन्ध में व्यास ने कहा है—प्रेत के लिए पिण्ड को देकर दिन की समाप्ति पर (सूर्यास्त के बाद) भोजन करे।

(दशाहदिनपर्यन्तमोदन-शाकादीनां द्रव्याणां पिण्डदाने विचारः)

भविष्ये—ओदनामिषसक्तूनां शाकमूलफलादिषु ।
प्रथमेऽहनि यद्द्यात्तद्द्याद्दुत्तरेऽहनि ॥

भविष्यपुराण में कहा है—चावल, आमिष (कच्चा मांस) सतुआ, साग, मूल (नानाप्रकार के फल और कन्द) फल आदियों में से पहले दिन जिस द्रव्य से पिण्ड दे उसी हो द्रव्य से उसके बाद के दिनों में दे ।

(प्रेतपिण्डदाने गृहद्वार-श्मशानादिविचारः)

गृहद्वारे श्मशाने वा तीर्थे देवगृहेऽपि वा । यत्राद्यैर्दीयते पिण्डस्तत्र सर्वं समाचरेत् ॥

घर के दरवाजे पर, श्मशान पर, तीर्थ में और देवमन्दिर में जहाँ पर पहले दिन पिण्ड दिया गया है वहाँ पर सब पिण्डों को करना चाहिये । कहीं पर 'समापयेत्' एसा पाठ है—वहीं पर समाप्त करे ।

(प्रथमदिनाद्यारभ्य दशदिनपर्यन्तं प्रेतपिण्डदाने शरीरस्य प्रादुर्भावकथनम्)

ब्राह्मे—शिरस्त्वाद्येन पिण्डेन प्रेतस्य क्रियते सदा। द्वितीयेन तु कर्णाक्षिनासिकाश्च समासतः ॥ गलांसभुजवक्षांसि तृतीयेन यथाक्रमम् । चतुर्थेन तु पिण्डेन नाभिलिङ्गगुदानि च ॥ जानू जङ्घे तथा पादौ पञ्चमेन तु सर्वदा । सर्वमर्माणि षष्ठेन सप्तमेन तु नाडयः ॥ दन्तलोमान्यष्टमेन वीर्यं तु नवमेन च । दशमेन तु पूर्णत्वं तृप्तता क्षुद्विपर्ययः ॥ इति ।

ब्रह्मपुराण में कहा है—संक्षेप से–पहले दिन पिण्ड से प्रेत का शिर बनता है । दूसरे दिन प्रेत के पिण्ड से—कान, नेत्र और नासिका बनती है । तीसरे दिन प्रेत के पिण्ड से–कण्ठ, कन्धा, भुजा और छाती बनती है । चौथे दिन प्रेत के पिण्ड से—नाभी, लिंग तथा गुदा का निर्माण होता है । पांचवें दिन प्रेत के पिण्ड से—जानु, जंघा और पैरों का निर्माण होता है । छठे दिन प्रेत के पिण्ड से सब मर्मस्थान बनते हैं । सातवें दिन प्रेत के पिण्ड से नाडियाँ बनती हैं । आठवें दिन प्रेत के पिण्ड से दांत और लोम बनते हैं । नवमें दिन प्रेत के पिण्ड से वीर्य बनता है तथा दशवें दिन प्रेत के पिण्ड से पूर्णता और क्षुधा का नाश होता है ।

याज्ञवल्क्येन तु (प्राय० श्लो० १७)—पिण्डयज्ञावृता देयं प्रेतायान्नं दिनत्रयम् । इत्युक्तेः । अत्र फलतारतम्यं ज्ञेयमिति विज्ञानेश्वरः । तेन त्र्यहाशौचपरत्वं देवयाज्ञिकोक्तं चिन्त्यम् ।

याज्ञवल्क्य ने कहा है—पिण्डपितृयज्ञ की विधि (अनुष्ठानप्रकार) से (दाहिने कन्धे पर यज्ञोपवीत करके) तीनदिन प्रेत के लिए अन्न को (भूमि) में दे—ऐसा कहा है । यहाँ पर फल की कमी वेशी को जानना चाहिये–यह विज्ञानेश्वर ने कहा है । इससे तीन दिन के आशौच में ·यह वचन कहा है यह देव याज्ञिक का कहना चिन्तनीय है ।

आशौचस्य च ह्रासेऽपि पिण्डान् दद्याद्दशैव तु । इति वचनाच्च दिनत्रयावश्यकत्वार्थमिति हारलतादयः ।

आशौच के ह्रास (न्यूनता) में भी दश ही पिण्ड को दे—यह वचन भी है । हारलता आदि में कहा है—तीन दिन में दे—यह आवश्यकता के लिये है ।

(मृन्मयपात्रे अपक्वमृन्मये वा रात्रौ जलं दुग्धं च देयम्)

शातातपः—जलमेकाहमाकाशे स्थाप्यं क्षीरं च मृन्मये ।

शातातप ने कहा है—एकदिन जल को आकाश (भूमि पर नहीं छिक्का आदि) में और मृत्तिका के पात्र में दूध को रख दे । (यहाँ पर द्रव्यद्वय के विधान के सामर्थ्य से दो शराव (सकोरा) के भेद से विधान किया है । 'मृन्मये' यह एक वचन होने से एक ही जगह दो का विधान युक्त नहीं है । गरुडपुराण में कहा है—पृथक्शरावयोर्दद्यादेकाहं क्षीरमम्बु च ।)

पारस्करः—मृन्मये तां रात्रिं क्षीरोदकैः विहायसि निदध्युः, प्रेतात्र स्नाहीत्युदकं, पिब चेदं क्षीरम् । इदं रात्राविति गौडाः ।

पारस्कर ने कहा है—उस रात में मृत्तिका के पात्र में दूध और जल को छोडकर रखे। रखने का प्रकार यों है—उसमें मन्त्र में भेद है—'प्रेतात्र स्नाहि-इस मन्त्र से उदक (जल) रखे और 'पिब चेदमिति क्षीरम्' इस मन्त्र से दूध का पान करो। यह रात में ही होता है—यह गौड कहते हैं।

गारुडे तु—अपक्वे मृन्मये पात्रे दुग्धं दद्याद्दिनत्रयम्। इति उक्तम्।

गरुडपुराण में तो कहा है—बिना पके मट्टी के पात्र में तीन दिन दूध दे—एसा कहा है।

हेमाद्रौ पाद्मे तु दशाहमुक्तम्—तस्मान्निधेयमाकाशे दशरात्रं पयो जलम्।
सर्वतापोपशान्त्यर्थमध्वश्रमविनाशनम्॥

हेमाद्रि में तो पद्मपुराण के वचन से दशदिन तक दूध दे एसा कहा है। [1]इससे सब तापों (सन्तापों) की शान्ति के लिए और मार्ग के श्रम के नाश के लिए आकाश (छिक्के) में दश रात तक दूध तथा जल को रख दे।

(अत्र तिलतैलादिना दीपदानविचारः)

देवजानीये कारिकायाम्—तत्र प्रेतोपकृतये दशरात्रमखण्डितम्। कुर्यात्प्रदीपं तैलेन वारिपात्रं च मार्तिकम्॥ भोज्याद्भोजनकाले तु भक्तमुष्टिं च निर्वपेत्। नामगोत्रेण सम्बुद्ध्या धरित्र्यां पितृयज्ञवत्॥

देवजानीय में कारिका का वचन है—वहाँ पर प्रेत के उपकार के लिए लगातार दशरात्रि तक—तेल का दीपक जला दे और मट्टी का जलपात्र (एकप्रकार का घडा) में रख दे। भोजन के समय में तो भोजन के पदार्थ में से एक मुट्ठी भक्त-उबाला हुए भात को नाम, गोत्र के संबोधन से पृथ्वी पर पितृयज्ञ की तरह दे।

(मृतस्य मनुजस्य पाथेयश्राद्धलक्षणकथनम्)

शातातपः—भूलोकात्प्रेतलोकं तु गन्तुं श्राद्धं समाचरेत्।
तत्पाथेयं हि भवति मृतस्य मनुजस्य तु॥

शातातप ने कहा है—भूलोक से प्रेतलोक में जाने के लिए श्राद्ध को करना चाहिये। वही मरे हुए मनुष्य का निश्चित पाथेय (रास्ते का भोजन) होता है।

(दशाहमध्ये दर्शपाते निर्णयः)

अथ दशाहमध्ये दर्शपाते निर्णयः। भविष्ये—प्रवृत्ताशौचतन्त्रस्तु यदि दर्शो प्रपद्यते।
समाप्य चोदकं पिण्डान् स्नानमात्रं समाचरेत्॥

अब दशदिन के मध्य में अमावास्या प्राप्त हो तो निर्णय करते हैं—भविष्यपुराण में कहा है—यदि अमावास्यातिथि आशौच के बीच में आ जाय तो जल और पिण्डों को समाप्त कर स्नानमात्र उतने दिन करता रहे।

ऋष्यशृङ्गः—आशौचमन्तरा दर्शो यदि स्यात्सर्ववर्णिनाम्।
समाप्तिं प्रेततन्त्रस्य कुर्यादित्याह गौतमः॥

ऋष्यशृङ्ग ने कहा है—ब्राह्मणादि वर्णों के आशौच के मध्य में यदि अमावास्या आ जाय तो प्रेततन्त्र की समाप्ति करे—यह गौतम ने कहा है।

पैठीनसिः—आद्येन्दावेव कर्तव्या प्रेतपिण्डोदकक्रिया।
द्वितीयेन्दवे तु कुर्वाणः पुनः शावं समश्नुते॥

पैठीनसि में कहा है—प्रथम चन्द्रमा में (अमावास्या तक) प्रेतपिण्ड और उदकक्रिया करे। दूसरे चन्द्रमा (अमावास्या बाद दूसरा ही चन्द्रमा उदय होगा) में करने से फिर से शावसूतक प्राप्त होता है।

१—तस्मात् प्रेतपुरं प्रेतो द्वादशेऽहनि नीयते। गृहं पुत्रकलत्रं च द्वादशाहं स पश्यति॥

(मातापित्रोस्तु विशेषः)

मातापित्रोस्तु श्लोकगौतमः—अन्तर्दशाहे दर्शश्चेत्तत्र सर्वं समापयेत्। पित्रोस्तु यावदाशौचं दद्यात्पिण्डान् जलाञ्जलीन् ॥ इदमपि त्र्यहमध्ये दर्शपाते। तदूर्ध्वं दर्शे तु पित्रोरपि तन्त्रं समाप्यमेव।

माता और पिता के लिए गौतम ने श्लोक कहा है—दशदिन के भीतर अमावास्या आ जाय तो वहाँ सब (पिण्डदान आदि) समाप्त करे। पिता और माता का जब तक आशौच होता है तब तक पिण्ड और जलाञ्जलियों को दे। यह भी तीन दिन के मध्य में अमावास्यातिथि के आने पर है। उसके बाद तो अमावास्या के आने पर पिता और माता का भी तन्त्र से समाप्त ही होता है।

पित्रोराशौचमध्ये तु यदि दर्शः समापतेत्। तावदेवोत्तरं तन्त्रं पर्यवस्येत् त्र्यहात्परम् ॥ इति गालवोक्तेः। अन्येषां तु त्र्यहमध्येऽपि समाप्तिरिति पराशरमाधवीये निर्णयामृते चोक्तम्।

यदि पिता और माता के आशौच के मध्य में अमावास्यातिथि आ जाय तो तीनदिन के बाद उत्तरतन्त्र को समाप्त करे—यह गालव ने कहा है। दूसरों के मत से तो तीनदिन के मध्य में भी समाप्ति करे—यह पराशरमाधव और निर्णयामृत में कहा है।

कालादर्शेऽपि—दर्शो दशाहमध्ये स्यादूर्ध्वं तन्त्रं समापयेत्।
त्रिरात्रादुत्तरं पित्रोर्मृताविति विनिश्चयः ॥

कालादर्श में भी कहा है दशाह के मध्य में अमावास्या हो तो उसीदिन उत्तर तन्त्र को समाप्त करे। पिता और माता के मरने पर तीन रात के बाद समाप्त करे—यह निश्चय है।

मदनपारिजाते तु गालवीयमापदनौरसपुत्रादिविषयम्। त्र्यहोर्ध्वमपि पित्रोर्न तन्त्रसमाप्तिरित्युक्तम्। मदनरत्नेऽप्येवम्।

मदनपारिजात में तो गालव का वचन आपद् कालीन तथा औरस पुत्र आदि से भिन्न विषयक है। तीनदिन के बाद भी पिता तथा माता के तन्त्र की समाप्ति नहीं होती है-एसा कहा है। मदनरत्न में यही है।

(अस्मिन् विषये कमलाकरमतम्)

मम तु देशाचाराद्व्यवस्थेति प्रतिभाति।

मुझे तो देशाचार से व्यवस्था है-यह प्रतीत होता है।

(अस्थिसञ्चयने कालकथनम्)

अथास्थिसञ्चयः। तत्राश्वलायनेन कृष्णपक्षे एकादशीत्रयोदशीदर्शेषु आषाढाफाल्गुनीप्रौष्ठपदाभिन्नर्क्षे उक्तम्, तदाशौचमध्येऽसंभवे तत ऊर्ध्वं च प्रागब्दात्करणे ज्ञेयम्।

अब अस्थिसंचय को कहते हैं। वहाँ पर आश्वलायन ने कृष्णपक्ष में एकादशी, त्रयोदशी और अमावास्या में तथा पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ, पूर्वाफाल्गुनी उत्तराफाल्गुनी, और पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद इन नक्षत्रों से भिन्न नक्षत्र में कहा है। वह आशौच के मध्य में असंभव में उसके बाद एक साल के पूर्व सपिण्डीकरण में जानना चाहिये।

आशौचमध्ये तु मदनरत्ने संवर्तः—प्रथमेऽह्नि तृतीये वा सप्तमे नवमे तथा। अस्थिसञ्चयनं कार्यं दिने तद्गोत्रजैः सह ॥

आशौच के मध्य में तो मदनरत्न में संवर्त ने कहा है—पहले दिन, तीसरे दिन, सातवें दिन और नवमें दिन अपने गोत्रियों के साथ अस्थिसंचयन (अंगिरास्मृतौ–अनग्निमत उत्क्रान्ते साग्नेः संस्कारकर्मणः। शुद्धिः सञ्चयनं दाहान्मृताहस्तु यथाविधि ॥ इससे दिन की गणना की है। वर्णविशेष से समय व्यवस्था को ब्रह्मपुराण में कहा है—कहीं ब्राह्मण को तीसरे दिन, क्षत्रिय को चौथे दिन, वैश्य जाती को पांचवें दिन और शूद्र को दशवें दिन प्रेत की अस्थियों का इकट्ठा करना कहा है। यहाँ पर कोई कहते हैं कि–चौथे दिन ब्राह्मणों को, पाँचवें दिन क्षत्रिय को, नवमें दिन वैश्य को तथा दशवें दिन के बाद शूद्रों को अस्थिसञ्चयन कहा है। यह प्रमाद से पाठ है। बारहवें दिन सपिण्डनपक्ष में तो आशौच के मध्य में ही अस्थिसञ्चयन करना चाहिये। उसके बाद तो उसके लिए श्राद्ध को करे। सपिण्डनान्तर तो निषेध है) करे।

छन्दोगपरिशिष्टे—अपरेद्युस्तृतीये वा अस्थिसञ्चयनं भवेत्। इति द्वितीयेऽप्युक्तम्। विष्णु-कात्यायनौ—'सञ्चयनं चतुर्थ्याम्' इति।

छन्दोगपरिशिष्ट में तो कहा है। दूसरे दिन या तीसरे दिन अस्थिसञ्चय करे। इससे दूसरे दिन भी अस्थिसञ्चयन करना कहा है। विष्णुस्मृति और कात्यायनस्मृति में कहा है—चौथे दिन अस्थिसञ्चयन करे।

माधवीये यमः—भौमार्कमन्दवारेषु तिथियुग्मे विवर्जयेत्। वर्जयेदेकपादर्क्षेऽद्विपादर्क्षेऽस्थि-सञ्चयम्॥ प्रदातृजन्मनक्षत्रे त्रिपादर्क्षे विशेषतः।

माधवीय में यम ने कहा है—मंगलवार, रविवार और शनिवार को तथा [1]युग्मतिथि (अष्टमीविद्धा नवमी) एकपाद (कृत्तिका उत्तराफाल्गुनी तथा उत्तराषाढा) और द्विपाद (मृगशिरा, चित्रा और धनिष्ठा) नक्षत्र में अस्थिसञ्चयन त्याग दे। पिण्डदान देनेवाला जन्मनक्षत्र तथा [2]त्रिपादनक्षत्र में विशेषकर त्याग दे।

ब्राह्मे—चतुर्थे ब्राह्मणानां तु पञ्चमेऽहनि भूभृताम्। नवमे वैश्यजातीनां शूद्राणां दशमात्परम्॥ 'दशमेऽहनि' इति वा पाठः।

ब्रह्मपुराण में कहा है—ब्राह्मणों को चौथे दिन, राजाओं को पांचवें दिन, वैश्यजातियों को नवमें दिन तथा शूद्रों को दशदिन बाद अस्थिसञ्चय करना चाहिये। या 'दशमेऽहनि' यह भी पाठ है।

(पलाशेष्वस्थिदाहे अस्थिसञ्चयनविचारः)

शौनकः—पलाशेष्वस्थिदाहे च सद्यः सञ्चयनं भवेत्।

शौनक ने कहा है—पालाशों में अस्थिदाह के होने पर सद्यः अस्थिसञ्चयन करे।

(त्र्यहाशौचे अस्थिसञ्चयनकथनम्)

काम्यमरणे तु—तस्य त्रिरात्रमाशौचं द्वितीये त्वस्थिसञ्चयः। इत्युक्तम्।

काम्य (इच्छा) से मरण में तो उसका तीन रात का आशौच होता है और दूसरे दिन अस्थि-संचयन होता है—एसा कहा है।

अङ्गिराः—प्रेतीभूतं तथोद्दिश्य यः शुचिर्न करोति चेत्। देवतानां तु यजनं तं शपन्त्वथ देवताः॥ तद्विधिः स्वस्वसूत्रे भट्टकृतौ ज्ञेयः।

अंगिरा ने कहा है—प्रेत के रूप को उद्देश्यकर जो मनुष्य पवित्र होकर देवताओं का याग (पूजा) (अस्थिसञ्चयने यागे देवानां परिकीर्तितः। यह पूर्वार्ध है।) नहीं करता है उसको श्मशान में रहनेवाले शवों के देवता (श्मशानवासिनो देवाः शवानां परिकीर्तिताः) शाप देते हैं। उसकी विधि को अपने-अपने सूत्र में और भट्ट के द्वारा निर्मित सूत्र में जानना चाहिये।

हेमाद्रौ नागरखण्डे—त्रीणि सञ्चयनस्यार्थे तानि वै शृणु साम्प्रतम्। यत्र स्थाने भवेन्मृत्युस्तत्र श्राद्धं प्रकल्पयेत्॥ एकोद्दिष्टं ततो मार्गे विश्रामो यत्र कारितः। ततः सञ्चयनस्यार्थे तृतीयं श्राद्धमिष्यते॥

हेमाद्रि के नागरखण्ड में कहा है—संचयन के निमित्त तीन श्राद्ध हैं—उनको इससमय ही सुनो। जिस स्थान में मृत्यु हो वहाँ पर श्राद्ध करे। जहाँ पर विश्राम किया है उस मार्ग (रास्ते) में एकोद्दिष्ट करे। फिर संचयन के लिये तीसरे श्राद्ध को कहा है।

अपरार्के मदनरत्ने च ब्राह्मे—सद्यःशौचे तथैकाहे सद्यःसञ्चयनं भवेत्।
त्र्यहाशौचे तृतीयेऽह्नि कर्तव्यस्त्वस्थिसञ्चयः॥

अपरार्क तथा मदनरत्न में ब्रह्मपुराण का वचन है—सद्यःशौच में और एकाहदिन के आशौच में सद्यःसंचयन (अस्थिसञ्चयन) होता है तथा तीनदिन के आशौच में तीसरे दिन अस्थिसंचयन करना चाहिये।

१—धर्मसिन्धौ—युग्माग्नि युगभूतानां षण्मुन्योर्वसुरन्ध्रयोः। रुद्रेण द्वादशी युक्ता चतुर्दश्यां तु पूर्णिमा॥ प्रतिपद्यप्यमावास्यातिथ्योर्युग्मं महाफलम्।

२—कृत्तिका, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, विशाखा, उत्तराषाढा और पूर्वाभाद्रपदा ये त्रिपादनक्षत्र हैं।

(सञ्चयने श्मशानदेवता)

तत्रैव—श्मशानदेवतायागं चतुर्थे दिवसे चरेत्। मृन्मयेषु च भाण्डेषु कुम्भेषु रुचकेषु वा ॥ सुपक्वैर्भक्ष्यभोज्यैश्च पायसैः पानकैस्तथा। फलैर्मूलैर्वनोत्थैश्च पूज्याः क्रव्याददेवताः ॥

वहीं पर (श्मशान देवता का प्रकार) कहा है—चौथे दिन श्मशान देवता का याग (पूजा) करे। मृत्तिका के भाण्डों (पात्रों) में, कुम्भों में या रुचकों (जिस पात्र में हवनीय चरु बनता है उस बहुगुना-टोकनी आदि पात्र) में अच्छीतरह से सुपक्व भक्ष्य (मोदक आदि) भोज्य (पायस आदि), पायस (खीर) पानक (पेय), फल, मूल (मूली आदि) तथा वन में होनेवाले फल-मूलों से [1]क्रव्याद (कच्चा मांस खानेवाले) देवताओं का अर्चन करे।

(श्मशानदेवानां बलिदानादिकथनम्)

धूपो दीपस्तथा माल्यमर्घ्यं देयं त्वरान्वितैः। तत्र पात्राणि पूर्णानि श्मशानाग्नेः समन्ततः॥ निवेदयद्भिर्वक्तव्यं तैः सर्वैरनहंकृतैः। नमः क्रव्यादमुख्येभ्यो देवेभ्य इति सर्वदा॥ येऽत्र श्मशाने देवाः स्युर्भगवन्तः सनातनाः। तेऽस्मत्सकाशाद् गृह्णन्तु बलिमष्टाङ्गमक्षयम्॥

धूप, दीप, माला और अर्घ्य को त्वरान्वित होकर दें। वहाँ पर उन पूर्णपात्रों को श्मशान की अग्नि के चारों तरफ रख दें। सबलोग अहंकार का त्याग कर निवेदन कर कहें—क्रव्यादमुख्य देवताओं को सर्वदा नमस्कार है। जो यहाँ पर श्मशान में सदा रहनेवाले आपलोग देवता हैं। वे लोग हमलोगों की दी हुई अष्टांग अक्षयबलि को ग्रहण करें। (कैश्चिद्देयानि सर्वाणि पानीयान्यक्षतानि च। यह उत्तरार्ध है। पुष्प, माला, धूप, दीप, चावल आदि से भरे पूर्णपात्र, किन्हीं पात्रों में जल तथा यवाक्षत को अलग-अलग पुरुष दे। इसलिए 'त्वरान्वितैः निवेदयद्भिः' यह बहुवचन कहा है)।

प्रेतस्यास्य शुभान् लोकान् प्रयच्छन्तु च शाश्वतान्। अस्माकमायुरारोग्यं सुखं च ददतां चिरम्॥

इस प्रेत को निरन्तर शुभ लोकों को दें और हमलोगों को आयु, आरोग्यता और सुख चिरकाल तक दें।

एवं कृत्वा बलिं सर्वान् क्षीरेणाभ्युक्ष्य वाग्यतः। एवं दत्त्वा बलिं चैव दद्यात्पिण्डत्रयं बुधः॥

इसप्रकार सब बलि को कर मौन होकर दूध से अभ्युक्षण कर इसतरह बलि को देकर सब (उत्तरार्ध है—विसर्जनं च देवानां कर्तव्यं च समाहितैः।) देकर विद्वान् तीन पिण्ड दे।

एकं श्मशानवासिभ्यः प्रेतायैव तु मध्यमम्। तृतीयं तत्सखिभ्यश्च दक्षिणासंस्थमादरात्॥

एक श्मशान में रहनेवालों के लिए, दूसरा प्रेत के लिये और तीसरा उनके मित्रों के लिए अपसव्य होकर आदर से दें।

(प्रेतस्य प्रधानाङ्गानामस्थिग्रहणकथनम्)

ततो यज्ञियवृक्षोत्थां शाखामादाय वाग्यतः। प्रेतस्यास्थीनि गृह्णाति प्रधानाङ्गोद्भवानि च॥

फिर यज्ञियवृक्षकी शाखा को ग्रहणकर मौन होकर (अपसव्यं क्रमाद्वस्त्रं कृत्वा कश्चित्सगोत्रजः॥ यह उत्तरार्ध है।) प्रेत के प्रधान अंगों में होनेवाली अस्थियों को ग्रहण करे।

(ग्रहणानन्तरं वृक्षमूलादौ स्थापनकथनम्)

शिरसो वक्षसः पाण्योः पार्श्वाभ्यां चैव पादतः॥ पञ्चगव्येन संस्थाप्य क्षौमवस्त्रेण वेष्टयेत्॥ प्रक्षिप्य मृन्मये भाण्डे नवे साच्छादने शुभे। आरण्ये वृक्षमूले वा शुद्धे संस्थापयत्यपि॥

शिर, छाती, हाथ, पार्श्व (अगल-बगल) और पैरों की अस्थियों को ग्रहण कर (अप्रदक्षिणमस्थीनि गृह्णातीत्यादिगोभिलः। यह उत्तरार्ध है।) पञ्चगव्य से स्नान कराकर रेशमी वस्त्र से वेष्टन (लपेट) कर

---

[1]—क्रव्यं मांसमत्तीति क्रव्यादः। व्याघ्रादिहिंस्रपशुभेदः। ग्राम्यक्रव्यादो मार्जारादि। मनुः—५।१३१ श्वभिर्हतस्य यन्मांसं शुचि तन्मनुरब्रवीत्। क्रव्याद्भिश्च हतस्यान्यैश्चण्डालाद्यैश्चरैश्च दस्युभिः॥ मनुः—११।१९९-श्वसृगालखरैर्दष्टो ग्राम्यैः क्रव्याद्भिरेव च। नराश्वोष्ट्रवराहैश्च प्राणायामेन शुध्यति॥ भागवत ५।२६।११—एवमेव महारौरवो यत्र निपतितं पुरुषं क्रव्यादा नाम रुरवस्तं क्रव्येण घातयन्ति यः केवलं देहम्भरः॥ क्रव्यादमग्निम्—यह ऋग्वेद और यजुर्वेद आदि में प्रसिद्ध मन्त्र है।

मट्टी के नूतन शुद्धपात्र में (कोई मन्त्र से हड्डियों को मट्टी के पात्र में रखते हैं) प्रक्षेप कर सुन्दर आच्छादन कर जंगल या पेड के मूल में स्थापन करे।

(तद्भस्म नीत्वा तोये निक्षेपकथनम्)

गृहीत्वास्थीनि तद्भस्म नीत्वा तोये विनिक्षिपेत् ।

उन अस्थियों की भस्म को ग्रहण कर जल में फेंक दे।

(ततः गोमयादिना भूमिसंशोधनकथनम्)

ततः सम्मार्जनं भूमेः कर्तव्यं गोमयाम्बुभिः । पूजा च पुष्पधूपाद्यैर्बलिभिः पूर्ववत्क्रमात् ॥ इति।

फिर भूमि का गोबर और जल से संमार्जन करना चाहिये। फिर पूर्ववत् क्रम से पुष्प, धूप आदि बलियों से पूजा करे (कहीं 'तोये' के स्थान में 'गर्ते' यह पाठ है। तोये पाठ रखने में बर्षाकाल से अन्यत्र जल में प्रक्षेप करे। भूमेराच्छादनार्थं च वृक्षः पुष्करकोऽपि वा। पट्टिका प्रकर्तव्यः तत्र सर्वविधानतः ॥ यह ग्रन्थान्तर में है। पुष्कर माने पुष्करणी। पदिक माने चत्वर।)

(तीर्थे अस्थिक्षेपविधिविचारः)

अथ तीर्थेऽस्थिक्षेपविधिः । तत्रैव—तत्स्थानाच्छनकैर्नीत्वा कदाचिज्जाह्नवीजले । कश्चित् क्षिपति सत्पुत्रो दौहित्रो वा सहोदरः ॥

अब तीर्थ में अस्थि प्रक्षेपकीविधि को कहते हैं। वहाँ पर कहा है-वैधनिखातस्थान से धीरे से ले जाकर जान्हवीजल (गंगाजल में) कोई उत्तम पुत्र, दौहित्र (लड़की का लड़का) और सहोदर (भाई) प्रक्षेप करे।

(अस्थीन्यन्यकुलस्थस्य नीत्वा चान्द्रायणव्रतकथनम्)

मातुः कुलं पितृकुलं वर्जयित्वा नराधमः । अस्थीन्यन्यकुलस्थस्य नीत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥

मातृकुल और पितृकुल को छोडकर जो नराधम व्यक्ति अन्य कुल की अस्थियाँ लेजानेपर चान्द्रायण व्रत करे।

तत्रैव ब्रह्माण्डपुराणे—अस्थीनि मातापितृपूर्वजानां नयन्ति गङ्गामपि ये कथञ्चित् ।
सद्बान्धवस्यापि दयाभिभूतास्तेषां तु तीर्थानि फलप्रदानि ॥

वहाँ ही पर ब्रह्माण्डपुराण में कहा है—किसीप्रकार माता तथा पिता पूर्वज और अच्छे बान्धवों की अस्थियों को जो गंगा में दयालु होकर ले जाते हैं। उनको तो [1]तीर्थों का फल मिलता है।

स्नात्वा ततः पञ्चगव्येन सिक्त्वा हिरण्यमध्वाज्यतिलैश्च योज्यः । ततस्तु मृत्पिण्डपुटे निधाय पश्यन् दिशं प्रेतगणोपरूढाम् ॥ नमोऽस्तु धर्माय वदत्प्रविश्य जलं स मे प्रीत इति क्षिपेच्च । उत्थाय भास्वन्तमवेक्ष्य सूर्यं सदक्षिणां विप्रमुख्याय दद्यात् । एवं कृते प्रेतपुरःस्थितस्य स्वर्गे गतिः स्यात्तु महेन्द्रतुल्या ॥

स्नान कर पञ्चगव्य से (तीर्थपात्र में प्रक्षेप) सेचन कर सुवर्ण, मधु, घृत और तिल मिलाकर फिर मृत्तिका के पिण्डपुट में रखकर दक्षिणदिशा को देखते हुए 'नमोऽस्तु धर्माय'—इससे-धर्म के लिए नमस्कार हो—एसा कहकर जल में प्रवेश कर कहे कि—'स मे प्रीतः' वह प्रेत मुझसे प्रसन्न हो यों कहकर फेंक दे। उठकर (सेतुः—स्नात्वा तथोत्तीर्य दिवाकरं च दृष्ट्वा प्रदद्यादथ दक्षिणां तु।) भगवान् श्री सूर्य को देखकर दक्षिणायुक्त सूर्य को मुख्य ब्राह्मण को दे। इसप्रकार करने पर प्रेत की स्वर्ग में (अन्यत्र—यस्मिन् काले नृणामस्थि गङ्गायां क्षिप्यते नृभिः। तं कालमादितः कृत्वा स्वर्गलोके भवेत्स्थितिः ॥) इन्द्र के सदृश गति होती है।

(गङ्गातोयेषु यस्यास्थि क्षिप्यते तस्य पुनरावृत्तिर्न भवति)

यमः—गङ्गातोयेषु यस्यास्थि क्षिप्यते शुभकर्मणः । न तस्य पुनरावृत्तिर्ब्रह्मलोकात्सनातनात् ॥

यम ने कहा है—शुभकर्म से जिसकी अस्थि गंगा के जलों (भविष्ये—कावेरी तुङ्गभद्रा च कृष्ण-

[1]—पुराणान्तरे—एवमस्थीनि निक्षिप्य वंशस्य जनकस्य वा। पुत्रारोग्यधनैश्वर्ययुक्तो भवति नान्यथा ॥ दत्वा द्रव्यं बाहकाय पितृणामनृणो भवेत्।

वेणी च गौतमी) जान्हवी चेति विख्याताः पञ्चगङ्गाः प्रकीर्तिताः ॥) में प्रक्षेप होती है उसकी सनातन ब्रह्मलोक (प्रयाग-आदिक्षेत्र विशेष में ब्रह्मलोक होता है अन्यथा स्वर्ग होता है) से पुनरावृत्ति नहीं होती है।

(अस्तादौ गङ्गायामस्थितिक्षेपस्य निषेधकथनम्)

तथा——अस्तं गते गुरौ शुक्रे तथा मासे मलिम्लुचे।
गङ्गायामस्थिनिक्षेपं न कुर्यादिति गौतमः ॥

और अस्तंगत गुरु तथा शुक्र के हो जाने पर तथा मलमास में गंगा में अस्थि का प्रक्षेप न करे—एसा गौतम ने कहा है।

(दशाहाभ्यन्तरे गङ्गातोयेऽस्थिप्रक्षेपे फलकथनम्)

दशाहान्तर्न दोषः—दशाहाभ्यन्तरे यस्य गङ्गातोयेऽस्थि मज्जति। गङ्गायां मरणं यादृक् तादृक् फलमवाप्नुयात् ॥ इति मदनरत्ने वृद्धमनूक्तेः।

दशदिन के भीतर दोष नहीं होता है—दशदिन के भीतर जिनकी गंगा के जल में अस्थि डूबती है। उसको गंगा में मरने का जो फल होता है वह फल प्राप्त करता है—यह मदनरत्न में वृद्धमनु ने कहा है। (गंगा से रहित गांव आदि में मरे का तो गंगा के किनारे दाह के संभव में वहाँ पर शव को ले जाना चाहिये। उसके न ले जाने पर तो पिण्डदान आदि का आरंभ कर प्रक्षेप करे। दशदिन के मध्य में गंगा की प्राप्ति के असंभव में तो सपिण्डनोत्तर ही ले जाय। प्रारंभ प्रेत कर्म का देशैक्य नियम है। द्वादशाहोत्तर सपिण्डन में तो एकादशाहोत्तरही ले जाय।)

(शुद्धिकरणे पदार्थानां कथनम्)

शौनकः—शौनकोऽहं प्रवक्ष्यामि अस्थिक्षेपविधिं क्रमात्। आदौ ग्रामाद्बहिर्गत्वा स्नानं कृत्वा सचैलकम् ॥ प्रोक्षयेत् पञ्चगव्येन भुवं मन्त्रैर्विचक्षणः। गायत्र्याद्यैः पञ्चगव्यं मन्त्रैर्निखातास्थिभूमिं प्रोक्षयेत्यर्थः।

शौनक ने कहा है—मैं शौनक क्रम से [1]अस्थिप्रक्षेप विधि को कहता हूँ। पहले गाँव से बाहर जाकर सचैलस्नान करे। विद्वान् मन्त्रों से भूमि को पञ्चगव्य से प्रोक्षण करे। [2]गायत्री आदि से ([3]गन्धद्वाराम्, [4]आप्यायस्व, [5]दधिक्राव्णः, [6]घृतं मिमिक्षे) पञ्चगव्यमन्त्रों से निखात (गढ़े में) में स्थित अस्थिभूमि का प्रोक्षण करे—यह अर्थ है।

उपसर्पादिभिर्मन्त्रैः प्रार्थनं खननं तथा ॥ मृत्तिकोद्धरणं चास्थ्नां ग्रहणं च यथाक्रमम्। उपसर्पेति चतुर्भिर्मन्त्रैः क्रमेण प्रार्थनादि ज्ञेयम्।

[7]उपसर्प आदि मन्त्रों से प्रार्थना कर फिर खनन (खोदना) करे। मृत्तिका उद्धरण कर यथाक्रम से अस्थियों को ग्रहण करे। उपसर्प—इन चार मन्त्रों से क्रम से प्रार्थना आदि करे एसा जानना चाहिये।

१——श्राद्धमञ्जर्याम्—एतन्मध्यस्थि तास्थीनि न दुष्यन्त्यपवित्रकैः। रजस्वलादि काकादिस्पर्शेनोपहतानि वा ॥ मार्गे वाहकदोषैश्च नोपहन्युः कदाचन ॥ मार्गे विशेषः——मार्गे सम्पुटमुत्तार्य शौचमाचमनं चरेत्। स्नात्वा पाकादिकं कृत्वा भोजनादि समाचरेत् ॥ देवान्पितृन्समभ्यर्च्य गच्छेत्तीर्थं यथाविधि ॥

२——तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ (ऋ० ३।६२।१० । साम० १६६२ । यजु० ३।३५।२२।९।३०।२।३६।३ तै० स० १।५।६।४।, ४।१।११।१ तै० आ० १।११।२)।

३—गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्। ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥ (ऋ० प०)।

४—आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम्। भवा वाजस्य संगथे ॥ (ऋ० १।६१।१६।६।३१।४ यजु० १२। ११२, तै० स० ३।२।५।३।४।२।७।४ ता० ब्रा० १।५।८)।

५——दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः। सुरभि नो मुखा करत् प्रण आयूंषि तारिषत् ॥ (ऋ० ४। ३६।६ । सा० ३५८। अथर्व० ७।४।१६।४। ताण्ड्य ब्रा० १।६।१७)।

६——घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम। अनुष्वधमा वह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम् ॥ (ऋ० २।३।११ । यजु० १७।८८। तै० आ० १०।१०।२)।

७——ॐ उपसर्प मातरं भूमिमेतामुरुव्यचसं पृथिवी सुशेवाम्। ऊर्णम्रदा युवतिर्दक्षिणावत एषा त्वा पातु निर्ऋते-

स्नात्वाऽस्थिशुद्धिं कुर्वीत एतोन्विन्द्रेति सूक्ततः ॥ स्पृष्ट्वा स्पृष्ट्वा ततः स्नानं पञ्चगव्येन शुद्ध्यति । दश स्नानानि कुर्वीत तत्तन्मन्त्रैर्विचक्षणः ॥

स्नान कर अस्थि की शुद्धि [1]'एतोन्विद्र' इस सूक्त से स्पर्श कर-स्पर्श कर [2]पञ्चगव्य से शुद्ध होता है । बुद्धिमान् दश स्नान के मन्त्रों से स्नान करे ।

(दशस्नानमन्त्राः)

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् । भस्म मृन्मधु वारीणि मन्त्रतस्तानि वै दश ॥

गायत्री मन्त्र से गोमूत्र, गन्धद्वाराम्-इस मन्त्र से गोमय, आप्यायस्व-इस मन्त्र से दूध, दधिक्राव्ण-इस मन्त्र से-दधि, घृतं मिमिक्षे-इस मन्त्र से घृत और [3]आपो हि ष्ठा-इस मन्त्र से कुशोदक (कोई आपो हि ष्ठा की जगह 'देवस्य त्वा' इस मन्त्र को कहते हैं ।) [4]मानस्तोके इस मन्त्र से [5]भस्म, बलित्था पर्वतानाम् (ऋ० ५।८४।१, तै० स० २।२।१२।२) या [6]अश्वक्रान्ते इत्यादियों से मृत्तिका, [7]मधुवाता मन्त्र से-सहत और आपो हि ष्ठा-इससे कुशोदक, इन मन्त्रों से । ये दश हैं ।

कुशैः सम्मार्जयेदस्थीन्यतो देवेति मन्त्रतः । एतोन्विन्द्रं शुचीवेति नतमंह इतीति च । पावमानीर्मभाग्ने च रुद्रसूक्तं यथाक्रमम् ॥ एतैः कुशैर्मार्जनम् ।

[8]अतो देवा—इस मन्त्र से अस्थियों को कुशाओं से मार्जन करे । [9]एतोन्विन्द्रम्, [10]शुचीव,

---

रूपस्थात् ॥ उच्छ्वञ्चस्व पृथिवि मा नि बाधथाः सूपायनास्मै भव सूपवञ्चना । माता पुत्रं यथा सिचा ऽभ्येनं भूम ऊर्णु हि ॥ उच्छ्वञ्चमाना पृथिवी सु तिष्ठतु सहस्रं मित उप हि श्रयन्ताम् । ते गृहासो घृतश्चुतो भवन्तु विश्वाहास्मै शरणाः सन्त्वत्र ॥ उत् ते स्तभ्नामि पृथिवीं त्वत् परीमं लोगं निदधन्मो अहं रिषम् । एतां स्थूणां पितरो धारयन्तु तेऽत्रा यमः सादना ते मिनोतु ॥ (प्रतीचीने मामहनीष्वाः पर्णमिवा दधुः । प्रतीचीं जग्रभा वाचमश्वं रशनया यथा । (१०।१८।१०-१४)

१—एतो न्विन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना । शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वांसं शुद्ध आशीर्वान् ममत्तु ॥ इन्द्र शुद्धो न आग हि शुद्धः शुद्धाभिरूतिभिः । शुद्धो रयिं नि धारय शुद्धो ममद्धि सोम्यः । इन्द्र शुद्धो हि नो रयिं शुद्धो रत्नानि दाशुषे । शुद्धो वृत्राणि जिघ्नसे शुद्धो वाजं सिषाससि ॥ (ऋ० मं० ८ क० ९५, ७-९ ।)

२—गोमूत्रगोमयपयोदधिसर्पींषि पञ्चगव्यम् । सेतौ तु पयोदधिगोमूत्रगोमयसर्पींषि तत्तन्मन्त्रैरुक्तानि ।

३—आपो हि ष्ठा मयोभुवस्तानऽ ऊर्जे दधातन । महेरणाय चक्षसे ॥ (ऋ० १०।९।१) ।

४—मा नस्तोके तनये मान आयौ मा नो गोषु मानो अश्वेषु रीरिषः । वीरान् मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदभित् त्वा हवामहे ॥ (ऋ० १।११४।८) यजु० १६।१६ तै० स० ३।४।११।२, ४।५।१०।३) ।

५—प्रसद्य भस्मना योनिमपश्च पृथिवीमग्ने । स ँ सृज्य मातृभिस्त्वं ज्योतिष्मान् पुनराऽसदः ॥ (तै० स० छ० पृ० १५४) ।

६—अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे । मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम् ॥ स्योना पृथिवि भवानृक्षरा निवेशनी । यच्छा नः शर्म सप्रथः ॥ (ऋ० १।२२।१५) अथर्व० १८।२।१९ । यजु० ३५।२१।३६।१३, तै० आ० १०।१।१० । नि० ९।३२ ।

७—मधुवाता ऋतायते मधुक्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥ (ऋ० १।९०।६। यजु० १३।२७। तै० सं० ४।२।९।३। तै० आ० १०।१०।२ । शत० ब्रा० १४।९।३।११) । मधु नक्तमुतोषसो मधुमत् पार्थिवं रजः । मधुद्यौरस्तु नः पिता ॥ (ऋ० १।९०।७ यजु० १३।२८ । तै० स० ४।२।९।३। तै० १०।१०।२ । शत० ब्रा० १४।९।३।१२) । मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥ (ऋ० १।९०।८ । य० १३।२९ । तै० सं० ४।२।९।३। तै०आ० १०।१०।२ शत० ब्रा० १४।९।३।१३) ।

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया । इन्द्राय पातवे सुतः ॥ (ऋ० ९।१।१ । साम० ४६८।९८९ । यजु० २६।२५ । नि० ११।३) ।

८—अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे । पृथिव्याः सप्त धामभिः ॥ (ऋ० १।२२।१६। साम० । १६७४) ।

९—एतो न्विन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना । शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वांसं शुद्ध आशीर्वान् ममत्तु ॥ (ऋ. म. ८।९५।७) ।

१०—शुची वो हव्या मरुतः शुचीनां शुचिं हिनोम्यध्वरं शुचिभ्यः । ऋतेन सत्यमृतसाप आयञ्छुचिजन्मानः शुचयः पावकाः ॥ (ऋ० ७।५६।१२) ।

¹नतमंह, 'इति मे मनः' ये तेरह ऋचा, पावमानी, ²ममाग्ने और रुद्रसूक्त को यथाक्रम से प्रतिमन्त्र से कुशाओं से मार्जन करे।

(अस्थिक्षेपाङ्गहेमश्राद्धकथनम्)

हेमश्राद्धं ततः कुर्यात्पितॄनुद्दिश्य यत्नतः। पिण्डदानं प्रकुर्वीत ततश्च तिलतर्पणम् ॥ अस्थिक्षेपाङ्गं चेदम्।

तदनन्तर पितरों को उद्देश्य कर यत्न से ³हेमश्राद्ध (सुवर्णश्राद्ध), पिण्डदान और तिलतर्पण करे। (सपिण्डन करने पर पार्वण होता है। पुरूरवार्द्रव विश्वेदेव होते हैं। सत्तु या चावल से अग्नौकरण होता है। सत्तू या पायस (खीर) से पिण्डदान होता है। सपिण्डन के न करने पर तो एकोद्दिष्ट होता है। नमो वः पितरः—इस मन्त्र में 'इषे' के पद स्थान में 'हेम्ने' यह ऊह होता है। स्मृत्यर्थसार में तो ⁴'उशन्तस्त्वा' इत्यादि मन्त्रों में ऊह करना कहा है। श्राद्ध के अन्त में जिस देवता का श्राद्ध होता है उसी देवता का तर्पण होता है। यक्षकर्दमादि का लेप होता है और पुष्पों से पूजा होती है।) यह अस्थिक्षेप का अंग है।

१—न तमंहो न दुरितं देवासो अष्ट मर्त्यम्। स जोषसो यमर्यमा मित्रो नयन्ति वरुणो अति द्विषः १ तद्धि वयं वृणीमहे वरुण मित्रार्यमन्। येना निरंहसो यूयं पाथ नेथा च मर्त्यमति द्विषः २ ते नूनं नोऽयमूतये वरुणो मित्रो अर्यमा। नयिष्ठा उ नो नेषणि पर्षिष्ठा उ नः पर्षन्त्यति द्विषः ३ यूयं विश्वं परि पाथ वरुणो मित्रो अर्यमा। युष्माकं शर्मणि प्रिये स्याम सुप्रणीतयोऽतिद्विषः ४ आदित्यासो अति स्रिधो वरुणो मित्रो अर्यमा। उग्रं मरुद्भी रुद्रं हुवेमेन्द्रमग्निं स्वस्तयेऽति द्विषः ५ नेतार ऊ षु णस्तिरो वरुणो मित्रो अर्यमा। अति विश्वानि दुरिता राजानश्चर्षणीनामति द्विषः ६ शुनमस्मभ्यमूतये वरुणो मित्रो अर्यमा। शर्म यच्छन्तु सप्रथ आदित्यासो यदीमहे अति द्विषः। ७ यथा ह त्यद्वसवो गौर्यं चित् पदि षितामुमुञ्चता यजत्राः। एवो ष्व १ स्मनमुञ्चता व्यंहः प्रतार्यग्ने प्रतरं न आयुः ८। (ऋ० १०.१२६।१—८)।

२—ममाग्ने वर्चो विहवेष्वस्तु वयं त्वेन्धानास्तन्व पुषेम। मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रस्त्वयाध्यक्षेण पृतना जयेम १ मम देवा विहवे सन्तु सर्व इन्द्रवन्तो मरुतो विष्णुरग्निः। ममान्तरिक्षमुरुलोकमस्तु मह्यं वातः पवतां कामे अस्मिन् २ मयि देवा द्रविणमा यजन्तां मय्याशीरस्तु मयि देव हूतिः। दैव्या होतारो वनुषन्त पूर्वे ऽरिष्टाः स्याम तन्वा सुवीराः ३ मह्यं यजन्तु मम यानि हव्याऽऽकूतिः सत्या मनसो मे अस्तु। एनो मा निगां कतमच्चनाहं विश्वे देवासो अधि वोचता नः ४ देवीः षडुर्वीरुरु नः कृणोत विश्वे देवास इह वीरयध्वम्। मा हास्महि प्रजया मा तनूभिर्मा रधाम द्विषते सोम राजन् ५ अग्ने मन्युं प्रतिनुदन् परेषामदब्धो गोपाः परि पाहि नस्त्वम्। प्रत्यञ्चो यन्तु निगुतः पुनस्तेऽमैषां चित्तं प्रबुधां वि नेशत् ६ धाता धातॄणां भुवनस्य यस्पतिर्देवं त्रातारमभिमातिषाहम्। इमं यज्ञमश्विनोभा बृहस्पतिर्देवाः पान्तु यजमानं न्यर्थात् ७ उरुव्यचा नो महिषः शर्म यंसदस्मिन् हवे पुरुहूतः पुरुक्षुः। स नः प्रजायै हर्यश्व मृडयेन्द्र मा नो रीरिषो मा परा दाः ८ ये नः सपत्ना अप ते भवन्त्विन्द्राग्निभ्यामव बाधामहे तान्। वसवो रुद्रा आदित्या उपरिस्पृशं मोग्रं चेत्तारमधिराजमक्रन् ॥ (ऋ० १०।१२८।१—९)। 'कद् रुद्राय प्रचेतसे मीळ्हुष्टमाय तव्यसे। वोचेम शंतमं हृदे १ यथा नो अदितिः करत् पश्वे नृभ्यो यथा गवे। यथा तोकाय रुद्रियम् २ यथा नो मित्रो वरुणो यथा रुद्रश्चिकेतति। यथा विश्वे सजोषसः ३ गाथपतिं मेधपतिं रुद्रं जलाषभेषजम्। तच्छंयोः सुम्नमीमहे ४ यः शुक्र इव सूर्यो हिरण्यमिव रोचते। श्रेष्ठो देवानां वसुः ५ शं नः करत्यर्वते सुगं मेषाय मेष्ये। नृभ्यो नारिभ्यो गवे ६ अस्मे सोम श्रियमधि नि धेहि शतस्य नृणाम्। महि श्रवस्तु विनृम्णम् ७ मा नः सोमपरिबाधो मारातयो जुहुरन्त। आ न इन्द्रो वाजे भज ८ यास्ते प्रजा अमृतस्य परस्मिन् धामन्नृतस्य। मूर्धा नाभा सोम वेन आभूषन्तीः सोम वेदः ॥ (ऋ० १।४३।१—९)। यदन्ति यच्च दूरके भयं विन्दति मामिह। पवमान वि तज्जहि ॥ (ऋ० ९।६७।२१)।

३—अस्मत्पितुरमुकशर्मणोऽमुकगोत्रस्यास्थ्युद्धारशुद्धिनिमित्तमस्मत्पितृपितामहप्रपितामहानाममुकशर्मणाममुकगोत्राणां वसुरुद्रादित्यस्वरूपाणां पार्वणेन विधिना हिरण्यश्राद्धं करिष्ये। निर्णयसिन्धौ—समग्रं यस्तु शक्नोति कर्तुं नैवेह पार्वणम्। अपि सङ्कल्प विधिना काले तस्य विधीयते ॥ अन्यान्यपि निमित्तान्युक्तानि हेमाद्रौ—सङ्क्रान्तौ ग्रहणे पाते युगमन्वन्तरादिषु। भरण्यां चापि कुर्वीत श्राद्धं पिण्डं विनैव तु। इत्यादि। स्मृतिकौस्तुभादौ तु श्राद्धगोदानादेरनुक्तत्वा-द्विकल्पः।

४—ऋ० १०।१६।१२, अथ० १८।१।५६। यजु० १९।७०। तै० स० २।६।१२।१।

(सप्तधा प्रकारेण वेष्टनकथनम्)

अजिनं कम्बला दर्भा गोकेशाः शाणमेव च । भूर्जपत्रं ताडपत्रं सप्तधा वेष्टनं स्मृतम् ॥

[1]अजिन (मृगचर्म), नेपाल—कंबल, कुशा, गौ के बाल, शाण (सन), भोजपत्र और ताडपत्र इन सात चीजों से वेष्टित करे। (कोई एसा पाठान्तर मानते हैं—अजिनं कम्बला दर्भा गोकेशाः भूर्जपत्रकम्। ताडपत्रं च नेत्रं चेत्यस्थनां वेष्टनसप्तकम् ॥)

(अस्थिमध्ये मौक्तिकादिनिक्षेपकथनम्)

हेमं च मौक्तिकं रूप्यं प्रवालं नीलकं तथा । निक्षिपेदस्थिमध्ये तु शुद्धिर्भवति नान्यथा ॥

[2]सुवर्ण, मोती, चांदी, प्रवाल, मूंगा और नीलम (नोलम) को अस्थि के मध्य में प्रक्षेप करे तो शुद्धि होती है। अन्यथा शुद्धि नहीं होती है।

(अस्थिक्षेपाङ्गं होमादिकथनम्)

ततो होमं प्रकुर्वीत तिलाज्येन विचक्षणः । उदीरतेति सूक्तेन हुनेदष्टोत्तरं शतम् ॥ ततो गत्वा क्षिपेत्तीर्थे स्पर्शदोषो न विद्यते । मूत्रं पुरीषाचमनं कुर्वन्नस्थीनि धारयेत् ॥ अत्र दशदानं वैतरणी-ऋणमोक्षपापधेनुदानमुक्तम् ।

तदनन्तर तिल और आज्य से बुद्धिमान् व्यक्ति हवन करे। [3]'उदीरता' इस सूक्त से एक सौ आठ बार हवन करे। तदनन्तर तीर्थ में जाकर प्रक्षेप करे—स्पर्श दोष नहीं होता है। मूत्र (लघुशंका) पुरीष-पैखाना और आचमन करते हुए अस्थियों को धारण न करे। यहाँ पर दशदान, वैतरणीदान, ऋणधेनु, मोक्षधेनु और पापधेनु के दान को कहा है।

(मातुरस्थिसंचयने धनञ्जयस्य कथावर्णनम्)

दिवोदासीये काशीखण्डे—धनञ्जयोऽपि धर्मात्मा मातृभक्तिपरायणः ।
आदायास्थीन्यथो मातुर्गङ्गामार्गस्थितोऽभवत् ॥

दिवोदासीय में काशीखण्ड का वचन है—माता की भक्ति में परायण धर्मात्मा [4]धनञ्जय भी माता की अस्थियों को ग्रहण कर गंगाजी के रास्ते में चल दिया।

१—अन्यत्र—अजिनं कम्बलं दर्भा गोकेशा भूर्जपत्रकम्। शाणसूत्रं ताडपत्रं ताम्रपत्रं च वेष्टनम् ॥

२—सुवर्णं मौक्तिकं रौप्यं प्रवालं नीलकं तथा। एतानि पञ्चरत्नानि अस्थिमध्ये विनिक्षिपेत् ॥

३—उदीरतामवर उत् परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः। असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥ इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपरास ईयुः। ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु विक्षु ॥ आहं पितॄन् त्सुविदत्राँ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः। बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः ॥ बर्हिषदः पितर ऊत्य १ र्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम्। त आ गतावसा शन्तमेनाऽथा नः शं योररपो दधात ॥ उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु। त आ गमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥ आ च्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभि गृणीत विश्वे। मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद्व आगः पुरुषता कराम ॥ आसीनासो अरुणी नामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय। पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्रयच्छत त इहोर्जं दधात ॥ ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासो ऽनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः। ते भिर्यमः संरराणो हवींष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाम-मत्तु ॥ ये तातृषुर्देवत्रा जेहमाना होत्राविदः स्तोमतष्टासो अर्कैः। आग्ने याहि सुविदत्रेभिरर्वाङ् सत्यैः कव्यैः पितृभिर्घर्म-सद्भिः ॥ ये सत्यासो हविरदो हविष्पा इन्द्रेण देवैः सरथं दधानाः। आग्ने याहि सहस्रं देववन्दैः परैः पूर्वैः पितृभिर्घर्मसद्भिः ॥ अग्निष्वात्ता पितर एह गच्छत सदःसदः सदत सुप्रणीतयः। अत्ता हवींषि प्रयतानि बर्हिष्यथा रयिं सर्व-वीरं दधातन ॥ त्वमग्न ईळितो जातवेदो ऽवाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वी। प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि। ये चेह पितरो ये च नेह याँश्च विद्म याँ उ च न प्रविद्म। त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञं सुकृतं जुषस्व ॥ ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते। तेभिः स्वराडसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयस्व ॥ (ऋ० १०।१५।१-१४)। सूक्तग्रहण से सूक्त की एक सौ आठ आवृत्ति होती है। 'एक मन्त्राणि कर्माणि' इस न्याय से ऋचा के अन्त में होम होता है। एसा टीका में सविस्तार से है।

४—काशीखण्ड के अध्याय तीस में श्लोक ४२ से लिखा है कि—धनञ्जय ब्राह्मण अपनी माता की अस्थि को काशीकी गंगा में प्रक्षेप करने के लिए चला। इत्यादि कथा विस्तृत वहाँ से ही देखिए।

पञ्चगव्येन संस्नाप्य तथा पञ्चामृतेन वै । यक्षकर्दमलेपेन लिप्त्वा पुष्पैः प्रपूज्य च ॥ आवेष्ट्य तत्र वस्त्रेण ततः पट्टाम्बरेण च । ततः सुरसवस्त्रेण ततो माञ्जिष्ठवाससा ॥ नेपालकम्बलेनाथ मृदा चाथ विशुद्धया । ताम्रसम्पुटके कृत्वा मातुरङ्गान्यथो वहेत् ॥

अस्थियों को पञ्चगव्य से और पञ्चामृत से स्नान कराकर [1]यक्षकर्दम के लेप से लेपन कर तथा पुष्पों से पूजन कर वस्त्र और पट्टाम्बर (रेशमी वस्त्र) से वेष्ठित कर फिर सुरसवस्त्र (मजेदार वस्त्र-रसीले वस्त्र) से, माञ्जिष्ठ (मजीठ) से रक्त वस्त्र से, नेपाल कम्बल से फिर शुद्ध मृत्तिका से लेपनकर तांबे के [2]संपुट (डिब्बा) में रखकर माता के अंगों को ले चले ।

व्यासः—पट्टवस्त्रं च कौशेयं माञ्जिष्ठं श्वेतवस्त्रकम् । कम्बलं शाणपत्रं च अजिनं च तथोत्तरम् ॥ एषां विकल्पः । अन्यश्चात्र विशेषस्त्रिस्थलीसेतौ दिवोदासीये च ज्ञेयः ।

व्यास ने कहा है—पट्टवस्त्र (रेशमी वस्त्र) [3]कौशेय (रेशमी कपडा), माञ्जिष्ठ (मजीठ), सफेद वस्त्र, कंबल, शाणपत्र (सन का वस्त्र) और मृगचर्म को लपेटने में विकल्प है । अन्य विशेष कुछ त्रिस्थलीसेतु और दिवोदासीयस्मृति में जानना चाहिये । (यह विधि तीर्थमात्र में है । प्रयाग में अत्यावश्यक है । दिवोदास ने कहा है–अस्थिप्रक्षेप के बाद ही तीर्थविधि है । अन्य तो कहते हैं तीर्थकृत्य के बाद ही अस्थियों का प्रक्षेप है । तीर्थ श्राद्धादि में विलम्ब का निषेध है । 'आगन्तूनामन्ते निवेशः' इस न्यास से कहा है । उचित तो यह है कि अस्थिप्रक्षेप फलोद्देश से यदि गया है । इससे आदि में उसको ही करे । जो तीर्थफल के उद्देश्य से जाते हुए अनुषंग से अस्थियों को ले जाता है वह संपूर्ण तीर्थकृत्यों को कर बाद में अस्थियों का प्रक्षेप करे—यह मयूख में कहा है ।)

(सञ्चयनोत्तरं श्राद्धकथनम्)

सञ्चयनोत्तरं श्राद्धमाहाश्वलायनः—'श्राद्धमस्मै दद्युः' इति ।

सञ्चयन के बाद श्राद्ध आश्वलायन ने कहा है—इसके लिए श्राद्ध को दे ।

स्मृत्यर्थसारे—सञ्चयने कृते मनुष्यलोकात्प्रेतलोकं गच्छतः पाथेयश्राद्धमामेन कार्यमिति ।

यह स्मृत्यर्थसार में कहा है—सञ्चयन करने पर मनुष्यलोक से प्रेतलोक में जाते हुए पाथेयश्राद्ध को आम (कच्चे अन्न) से करना चाहिये ।

(अनुपनीतस्य न सञ्चयनम्)

अनुपनीतस्य न सञ्चयनम् ।

अनुपनीत का सञ्चयन नहीं होता है ।

१--कर्पूरमगरुश्चैव कस्तूरी चन्दनं तथा । कक्कोलं च भवेदेभिः पञ्चभिर्यक्षकर्दमः ॥ धर्मसिन्धौ—द्वादशकर्षं (बारहतोला) चन्दनं कुङ्कुमं च षट्कर्षः कर्पूरश्चतुःकर्षा कस्तूरी चैतेषां मेलनाद्यक्षकर्दमः । अष्टगन्धं तु चन्दनागरुकर्पूर-कस्तूरी रोचनं तथा । उशीरं केशरं चैव दवदार्वित्यनुक्रमात् । रोचनम्–गोरोचनम् । उशीरम्–बालकम् ।

२—ततस्तीर्थे सास्थि स्नात्वा पलाशपत्रपुटके (ताम्रपुटे) ऽस्थीनि निधाय 'अमुकगोत्रस्यामुकशर्मणोऽपुरावृत्ति-ब्रह्मलोकावाप्तये गङ्गायां मोक्षप्राप्तये तीर्थान्तरे अस्थिप्रक्षेपं करिष्ये । इति संकल्प्यास्थीनि तूष्णीं पञ्चगव्येन प्रक्षाल्य शुद्धोदकेन संस्थाप्य हिरण्यशकलमधुघृततिलैर्मिश्रीकृत्य मृत्पेटिकायां संस्थाप्य दक्षिणतोऽवेक्ष्यमाणोनाभिमात्रजलस्थो 'नमोऽस्तु धर्मराजाय स मे प्रीतोऽस्तु' इति मन्त्रेण निक्षिप्य जलाद् बहिरागत्य सूर्यं दृष्ट्वा नत्वा च हरिं स्मृत्वा यज्ञोपवीति अमुकगोत्रशर्मणः कृतास्थिनिक्षेपस्य साद्गुण्यायेदं रजतं पितृदैवत्यं चन्द्रदैवत्यं संप्रददे--इति यथाशक्ति दक्षिणां ब्राह्मणाय दद्यात् । पितृकृत्यत्वाद्व्रतम् । अस्थिग्रहणादि प्रश्नोपान्तं दक्षिणावर्तं प्राचीनावीति कुर्यात् ।

३—कौशेयाविकयोरूषैः कुतपानामरिष्टकैः । श्रीफलैरंशुपट्टानां क्षौमाणां गौरसर्षपैः ॥ (मनु—५।१२०) ।

(प्राचीन व्यस्थाओं का संग्रह)

(स्वर्गीय–महामहोपाध्याय श्री पं० विद्याधर जी गौड द्वारा लिखित)

हरिहरयागस्य यागत्वमस्ति न वा

पवित्रतमोऽयं भारतदेशो देशान्तराण्यतिशय्य विराजत इति न केवल-मस्माभिरुच्यते, किन्तु देशान्तरस्थैरपि निर्विचिकित्समभ्युपेयते। तत्कस्य हेतोः? देशान्तरेषु हि द्वितीय-तृतीयपुरुषार्थयोरेवार्थकामयोः प्राधान्यमवलम्बमानास्तत्रत्याः स्व-स्व-समाजस्य स भ्यतायाश्च विवृद्धये प्रयतमाना यथावत्स्वस्वसमीहितं साधयितुं न प्रभवन्ति। य एव हि देशः विलासितायामत्यन्तं निमग्नः धर्ममार्गाच्च विमुखः, तस्याचिरादेव नाश इत्यत्र सुलभान्युदाहरणा न। अस्माकं भारतदेशः पुनरा च परमेष्ठिनः प्रथमायास्सृष्टेः आ चैतन्निमेषात् धर्मोत्तर एवावतिष्ठत इति देशान्तरापेक्षया उत्कृष्टत्वे निदानम्। धर्मपथं विहाय स्वेच्छाचारेण वर्तमानानां जनानां पशुभिस्सह तुल्यतैवेत्यत्र न संशयः कस्यापि, प्रत्युत पशव एव श्रेयांसः, यतश्च ते प्रत्यवायभागिनो न भवन्ति। अत एवोक्तम्—'पशुतैव वरं तेषां प्रत्यवायाप्रवर्तनात्।' इति। पशुप्रायवृत्तयश्च देशान्तरस्थाः, भारतनिवासिनश्च न तथा। एकैकस्यापि जनुष्मतो भारतीयस्य यथारूपं स्व-स्व-धर्मेऽभिरतिर्नियता आसीदिति प्राचीनेतिहासतोऽवगच्छामः। अतएव प्राज्ञस्सुमतयो महर्षयः वेदाम्नायाद्यपरपर्यायां भगवतीं श्रुतिं सेवमानास्तत्र सञ्जातसमधिकगौरवाः—सत्यं सत्यं पुनः सत्यमुद्धृत्य भुजमुच्यते। न वेदाच्च परं शास्त्रं न दैवं शङ्करात्परम्॥ इत्युद्घोषयन्तः, तदुदितधार्मिकपदार्थान् जगत्कल्याणधायकानां प्रचाराय सुपरिश्रम्य नैकविधान् धार्मिकान् स्मृतिपुराणग्रन्थान् प्रवर्तयाम्बभूवुः। एवं ग्रन्थप्रवर्तनेऽमीषां प्राचीनानामपरोऽभिप्रायः—यदुक्तं भारतवर्षस्योत्कर्ष आध्यात्मिकाधिदैविकशक्त्यधीनः, आध्यात्मिकशक्तिराधिदैविकशक्तिश्च धर्मानुष्ठानाधीने। अतो धर्मप्रचारोऽत्यावश्यक इति। अतएव चोभे अपीमे शक्ती उत्सृजन्तो देशान्तरीया आधिभौतिकीमेव शक्तिं समाश्रित्य परस्परं निधनमुपयन्तीत्यनुमातुं शक्यते। पूर्वोक्तशक्तिद्वयविवृद्धये निदानभूतस्य धर्मस्य वेदोदितस्य स्वरूपं विवरीतुमेव दर्शनानि न्यभान्त्सुर्व्यास-जैमिनिप्रभृतयो महर्षयः। तत्र धर्मस्य स्वरूपं वेदबोधितश्रेयस्साधनमिति कथयन्तः शास्त्रकारा न केवलं याग-दान-होम-द्रव्यगुणानामेव धर्मत्वमभिप्रयन्ति, किन्तु 'अयन्तु परमो धर्मः यद्योगेनात्मदर्शनम्' इत्यादि-याज्ञवल्क्यस्मृतिप्रमाणजातेनात्मज्ञानस्यापि धर्मत्वमाशेरते। एवं वदतां ग्रन्थकाराणामयमाशयः प्रतिभाति यद् वेदे कर्मज्ञानोपासनारूपेण विभक्तानां काण्डानां प्रतिपाद्यविषयेषु सत्यपि भेदे तेषां परस्परमस्ति महान् सम्बन्ध इति। अतएव कर्मणां ज्ञानस्य भक्तेश्च धर्मशब्देन व्यवहारस्तत्र तत्र ग्रन्थकाराणां सङ्गच्छते। तत्र कर्माण्याधानसिद्धगार्हपत्याहवनीयदक्षिणाग्निरूपत्रेताग्नि-साध्याग्निहोमदर्शपूर्णमास-चातुर्मास्य ज्योतिष्टोमादीनि श्रौतान्यनन्तानि, वैवाहिकाग्नि-(औपासनाग्नि) साध्यान्युपनयन-विवाहप्रभृतीनि बहूनि, कुशकण्डिकादिसंस्कारसंस्कृताग्निसाध्यानि पौराणिकानि रुद्र-विष्णु-चण्डी-हरिहरात्मकयागरूपाणि विविधानि यदा चाग्रे श्रौतानां स्मार्तानां वा कर्मणामनुष्ठाने लोकानां श्रद्धाया न्यूनता भविष्यतीत्यपश्यन् ज्ञानचक्षुषो महर्षयः, तदा पुराणाभिहितकर्मानुष्ठानेन स्वस्वाभिलषितं सम्पादयन्तु लोका इति मनीषया तानि प्रवर्तयाम्बभूवुः। यैव देवता समाराध्यत्वेन स्वसमीहितफलप्रदत्वेन वा येन निश्चीयते यथा केनचन रुद्रः, अपरेण विष्णुः, अन्येन देवी, इतरेण हरिहरात्मको देवः स तां तां देवतां कर्मभिः सन्तोष्य फलभोक्ता भवत्विति पुराणप्रवर्तकानामृषीणामाशयः प्रतिभाति। तत्र हरिहरात्मक-यागानुष्ठाने केषाञ्चनैवं शङ्का भवति—'हरिहरनामको यागः' क्व विहितः, कथं वेदं नाम प्रसिद्ध्यति, देवताद्वयस्यैकस्मिन् कुण्डे आहुतयः केन प्रमाणेन हूयन्ते, किं वास्य फलम्, के वात्र मन्त्राः, कथञ्च तेषां विभागः, का वेतिकर्तव्यता? इति। अत्र ब्रूमः—पौराणिकानां यागानां श्रौत-स्मार्तकर्मणामिव प्रत्यक्षविधिबलादेवानुष्ठानमिति न नियमः। श्रौतेष्वपि कर्मसु बहुत्र प्रत्यक्षविध्यभावेऽपि कल्पितविधिबलादनुष्ठानं स्व क्रियते। यथा दर्शपूर्णमासयोः आग्नेययागस्य। तस्य चोत्पत्तिवाक्यम्—'यदाग्नेयोऽष्टाकपालोऽमावास्यायां पौर्णमास्यां चाच्युतो भवति' इति। अत्र न यागबोधकः शब्दः, नापि कापि विधिविभक्तिः, सत्यप्येवं विधिं परिकल्प्य यागोऽनुष्ठीयत इति सम्प्रतिपन्नमिदं सर्वेषाम्। एवंप्रायाण्युदाहरणानि श्रौतेषु कर्मसु "अग्निहोत्रं जुहोति, सूक्तवाकेन प्रस्तरं प्रहरति, यस्य पर्णमयी जुहूर्भवति, यस्य खादिरः स्रुवो भवति, अक्ताश्शर्करा उपदधाति, तां चतुर्भिरभ्रिमादत्ते" इत्यादीनि बहूनि। एषां वर्तमानकालबोधकलकारघटितानामपि कल्पितविधिद्वारा विधायकत्वमिष्यते शास्त्रकारैः। क्वचनार्थवादवाक्यानामेवानर्थक्यानुपपत्त्या विधिकल्पकत्वमिष्टं शास्त्रकाराणाम्। यथा—'औदुम्बरो यूपो भवति ऊर्ग्वा उदुम्बरः, ऊर्क्, पशवः, ऊर्जैवास्मा ऊर्जं पशूनाप्नोति, ऊर्जोऽवरुध्यै' इत्यस्य समुदितस्य स्तावकत्वपक्षेऽविहितस्य स्तुत्यनुपपत्तेरौदुम्बरविधायकत्वं वाक्यानां परिकल्प्यते। तेन च यदौदुम्बरत्वं विहितं, तदनेन समस्तेन वाक्येन स्तूयत इति मीमांसकानां सिद्धान्तः। एवञ्च 'हरिहरदेवतया यजेत' इति वाक्यश्रवणाभावेऽपि हरिहरदेवतायाः स्तुतिबोधकैर्वाक्यैः हरिहरदेवताकर्मविधायकवाक्यं परिकल्प्य तस्यानुष्ठानं न विवादाय कल्प्येत। अन्यथा देवतास्तावकानां वाक्यानां पुराणेषु तत्र तत्रोपलभ्यमानानामानर्थक्यमेव स्यात्। तत्तद्देवता-

समाराधनेन जपेन ध्यानेन पूजया तर्पणेन होमेन च भवतीति कर्मकाण्डिकानामविप्रतिपन्नमिदम्। हरिहरदेवताविषयकं ध्यानं पूजनं च कूर्मपुराणादिषु समुपलभ्यते। इदञ्च विलोक्यास्मत्पूर्वजाः शिष्टाः कतिपये हरिहरात्मकयागमपि स्वीयाविगीताचारेण प्रवर्तयाञ्चक्रुः। ये हि हरिं हरञ्चोभयात्मिकां देवतामभिन्नां समुपासते, तेषामिदमनुष्ठानं कथमिव निन्दाविषयः स्यात्, एवं च पुराणादिषु समपलभ्यमानहरिहरविषयकध्यान-स्तुति-पूजन-प्रतिपादकैः श्लोकैः हरिहरात्मकयागविधायकवाक्यं परिकल्प्यते, हरिहरात्मकयागेन स्वसमीहितं सम्पादयेदिति, अथवा शिष्टाचारेणानुमीयते तादृशो विधिः। यावच्च शिष्टाचारविघातकं स्मार्तं श्रौतं वा प्रमाणं नोपलभ्यते तावत्स आचारः प्रमाणमिति शास्त्रोन्नीतः पन्थाः। न क्वापि स्मृतिषु पुराणेषु वा 'हरिहरात्मकयागं न कुर्यात्' इति निषेधः समुपलभ्यते। नापीदं कर्म केनापि दृष्टेन कारणेन गर्हितं प्रतीयते। किञ्च यावन्तः सम्प्रति पौराणिका यागा अनुष्ठीयन्ते, अनुष्ठाप्यन्ते वा रुद्र-विष्णु-चण्डीप्रभृतीनाम्, अमीषाञ्च विधानं पौराणिकवचनेभ्यः कल्पितैरेव विधिवाक्यैः स्वीकर्तव्यम्, स्मृतीना पुराणानाञ्च श्रुतिमूलकत्वेनैव प्रामाण्यात्। न हि क्वापि प्रत्यक्षो विधिः समुपलभ्यते 'रौद्रेण यजेत', 'वैष्णवेन यजेत' इति येन प्रत्यक्षश्रुतिमूलकत्वममीषां स्यात्। यद्यपि 'शतरुद्रियं जुहोति' इति विधिः उपलभ्यते, तथापि यादृशपद्धत्या साम्प्रतं रुद्रादयो यागा अनुष्ठीयन्ते, तेषां तन्मूलकत्वमेवेति वक्तुं न शक्यते, किन्त्वनुमितश्रुतिमूलकत्वमपीति स्वीकर्तव्यम्। तथा च हरिहरदेवतास्तावकपुराणवचनेभ्योऽनुमितं यद्विधिवाक्यं, तदेव शिष्टैरनुष्ठितहरिहरात्मकयागस्य मूलमिति सिद्ध्यति। यागस्यास्य नामविषये एवं प्रष्टारो भवन्ति—केन प्रमाणेनास्य 'हरिहर' इति नामेति। तत्रेदमुच्यते-मीमांसायां निमित्तचतुष्टयान्नाम्नः सिद्धिरभिहिता मत्वर्थलक्षणाभीत्या 'उद्भिदा यजेत पशुकामः' इत्यादिषु, वाक्यभेदभीत्या 'चित्रया यजेत पशुकामः' इत्यादिषु, तत्प्रख्यशास्त्रात् 'अग्निहोत्रं जुहोति' इत्यादिषु, तद्व्यपदेशात् 'श्येनेनाभिचरन् यजेत' इत्यादिषु, एवं श्रौतेषु कर्मसु सत्यपि नियमे 'सोमयागः', 'आग्नेययागः', 'उपांशुयागः'—इत्यादीनि कर्मनामानि याज्ञिका व्यवहरन्ति। इमानि च नामानि न पूर्वोक्तप्रमाणैः साधयितुं शक्यन्ते। ज्योतिष्टोमशब्दस्य तत्प्रख्यशास्त्रान्नामत्वं साधयितुं शक्यते, न 'सोमशब्दस्य', तथा सति 'सोमेन यजेत' इत्यत्र विनैव मत्वर्थलक्षणया शाब्दबोधः स्यात्। एवमेव 'यदाग्नेयोऽष्टाकपालः' इत्यत्रापि मन्त्रवर्णरूपतत्प्रख्यशास्त्रेणाग्नेः प्राप्तिमङ्गीकृत्याग्नेयशब्दस्य नामत्वं यद्युच्येत, तर्हि 'आग्नेय' शब्दस्याग्नेयाधिकरणे गुणसमर्पकत्वसिद्धान्तो भग्नः स्यात्। अत एवमादिनामव्यवहारस्य मूलं याज्ञिकानां प्रसिद्धिरित्येव वक्तव्यम्। सोमद्रव्यकत्वात् सोमयागः, अग्निदेवताकत्वात् आग्नेययागः, उपांशुक्रियमाणत्वात् उपांशुयागः, इत्येवं याज्ञिकप्रसिद्धेरुपपत्तिः। एवमेव 'रुद्रयागः' इति नाम रुद्रदेवताकत्वात्। न चात्र तत्प्रख्यशास्त्रेणैव नाम्नः सिद्धिरिति वक्तुं शक्यते, तत्प्रख्यशास्त्रत्वेनाभिमतरुद्रमन्त्रे रुद्रशब्दवत् शङ्कर-मयस्करादिशब्दानामपि सत्त्वात् 'शङ्करयागः', मयस्करयागः' इत्यपि व्यवहारापत्तेः। तत्तु नेष्यते, व्यवहाराभावस्य तत्र प्रतिबन्धकत्वात्। अतो रुद्रदेवताकत्वात् 'रुद्रयागः' इति प्रसिद्धिः। एवमेव विष्णुदेवताकत्वात् 'विष्णुयागः' इति, तथैव हरिहरदेवताकत्वात् 'हरिहरात्मको यागः' इति नामापि सिद्ध्यति। एवञ्च क्वचन द्रव्यमादाय, कुत्रचिद् देवतामादाय क्वचनान्यगुणमादाय याज्ञिकव्यवहारस्योपपत्तिः सिद्ध्यति, न तु मीमांसाभिहितप्रमाणचतुष्टयेनैव। एतेन 'पुरोडाशयागः', 'पशुयागः' इत्यादिव्यवहारोऽपि व्याख्यातः। वस्तुतस्तु मीमांसादृष्ट्या यदि पर्यालोच्यते, तर्हि साम्प्रतं क्रियमाणानां रुद्रादिदेवताकानां कर्मणां यागशब्देन व्यवहारोऽसङ्गत एव, अमीषां यजतिचोदनाचोदितत्वाभावात्। अत्र च वैदिकानां प्रसिद्धिरेव शरणीकरणीया। न हि वैदिका मीमांसका वोपनयने विवाहे च क्रियमाणान् होमान् सत्यपि तेषूद्देशत्यागे यागशब्देन व्यवहरन्ति 'उपनयनयागः', 'विवाहयागः' इति। श्रौतस्यापि कर्मणोऽग्निहोत्रस्य देवतोद्देशेन द्रव्यत्यागरूपयागपदार्थविशिष्टस्य 'अग्निहोत्रयाग-शब्देन' व्यवहारो न केषामपि सम्मतः। अतश्चैवमादिषु स्थलेषु 'रुद्रयागः', 'विष्णुयागः' इत्यादीनां यथोपपत्तिस्तथैव 'हरिहरात्मको यागः' इत्यस्याप्युपपत्तिरिति न नामधेयस्यासङ्गतिरिति सिद्धम्। एकस्मिन् कुण्डे हरिहरात्मकयागस्यानुष्ठानं कथम्? हरिर्यदा होमेन समाराध्यते, तदा पुरुषसूक्तमन्त्रेण, हरश्च यदा होमेन समाराध्यते, तदा रुद्राध्यायमन्त्रेण। तथा रुद्रयागो विष्णुयागश्च स्याताम्। तयोश्चैककुण्डानुष्ठेयत्वं कथं भवेदिति केचनाक्षेप्तारो भवन्ति। अत्र वदामः—दर्शपूर्णमासयोराग्नेययागोऽस्ति, स च प्रकृतिः। यद्यस्य विकृतिरप्यग्निदेवताका तदा आग्नेययागीययाज्यापुरोनुवाक्यामन्त्रैरेव वैकृताग्नेये क्रियमाणे दार्शपूर्णमासिकाग्नेयः कृत इति व्यवहारः किं कस्यापि सम्मतो वा? न कोऽप्येवं व्यवहरति। तथैव प्रकृतमपि हरिहरात्मकं कर्म रुद्राध्यायेन पुरुषसूक्तेन च क्रियमाणं न रुद्रयागो विष्णुयागो वा भवेत्, किन्तु ततो विलक्षणमेवेदं कर्म। तथा सत्येककुण्डानुष्ठेयत्वमस्य कथं नाम न भवेत्? विभिन्नदेवतयोरेकस्मिन् कुण्डे कथं होमो भवितुमर्हतीति न शङ्कितुं शक्यम्; पौर्णमास्यां दर्शे वा नानादेवतानामेकस्मिन्नाहवनीये होमानां सम्पद्यमानत्वात्। अत्र हरिहरयोर्देवतात्वस्य व्यासज्यवृत्तित्वादग्नीषोमादिवन्नानुपत्तिः काचन। इयांस्तु विशेषः—श्रौतेषु कर्मसु विधिप्रतिपाद्या देवता स्वीक्रियते। क्वचित्तद्धितेन देवताया विधिः, क्वचिच्च चतुर्थ्या, क्वचिच्च मान्त्रवर्णिकदेवताया विधिः। नैतादृशविधानं हरिहरयोरुपलभामहे, किन्तु हरिहरक्षेत्रादिषु हरिहरात्मकदेवतायाः प्रसिद्धत्वात्, तस्याश्च पूजनादिकस्य वर्त्तमानत्वात् तदाराधनाय यागोऽपि शिष्टैः प्रवर्तित इति

हरिहरयोर्देवतात्वस्य व्यासज्यवृत्तित्वं स्वीक्रियते । यद्येतादृशं देवतात्वं नाभविष्यत्, तर्हि हरिहरमण्डलम्, हरिहरध्यानम्, हरिहरस्तुतिः, हरिहराष्टोत्तरशतनामावलिः—इत्यादिकमपि नाभविष्यत् । सर्वतोभद्र-लिङ्गतोभद्रादिवत् हरिहरमण्डलमेव हरिहरयोर्व्यासज्यवृत्तिदेवतात्वमवगमयति । किञ्च मीमांसका इव याज्ञिका न देवतास्वरूपमभ्युपयन्ति । मीमांसका हि शब्दैकसमधिगम्यं देवतात्वं स्वीकुर्वन्तः देवतानां करचरणाद्यवयववत्त्वं नाभ्युपगच्छन्ति, नापि तासां फलप्रदातृत्वशक्तिं वा स्वीकुर्वन्ति । याज्ञिकास्तु देवतानां विग्रहादिमत्त्वं फलप्रदातृत्वञ्च स्वीकृत्य स्वस्वाभिलषितफलप्राप्तये तां तां देवतां जप-होमादिभिस्तर्पयन्ति । अतश्च मीमांसकानां मते विधिविहितस्यैव देवतात्वम्, याज्ञिकानां तु विधितदतिरिक्तप्रमाणगम्यस्य देवतात्वमिति सिद्ध्यति । एवञ्च हरिहरयोर्व्यासज्यवृत्त्यैव देवतात्वं स्वीकृत्यैकस्मिन् कुण्डे रुद्राध्यायेन पुरुषसूक्तमन्त्रेण च हरिहरात्मकयागे क्रियमाणे न कोऽपि दोष इति सिद्धम् । किञ्च 'फलकर्मदेशकालद्रव्यदेवतागुणसामान्ये' (का० श्रौ० सू० १।७।३) 'तद्भेदे भेदः' (का० श्रौ० सू० १।७।४) इति कात्यायनश्रौतसूत्राभ्यां फलकर्मादीनां भेदे कर्मणो भेदः, तदभेदे चाभेद इत्युक्तम् । प्रकृते च हरिहरयोर्विद्यमानस्य देवतात्वस्यैकत्वात् भेदाभावाच्चैककुण्डानुष्ठेयत्वे न कस्यापि विप्रतिपत्तिः । कस्मिंश्च कर्मणि हरिहरयोस्तन्त्रेण कथमनुष्ठानमिति प्रश्नस्येदमुत्तरम्—तन्त्रं हि नामानेकोद्देशेन सकृदनुष्ठानम् । यथा दर्शपूर्णमासयोरनेकान्याग्नेयादिषट्प्रधानान्युद्दिश्य प्रयाजानुयाजादीनां सकृदनुष्ठानं तत्तत्पर्वणि भवति । तत्र सम्भवतामङ्गानां तन्त्रमसम्भवतान्त्वावृत्तिरिति न्यायोन्नीतः पन्थाः । यदुच्यते कैश्चित् 'अप्रवृत्तकर्मा लौकिकोऽर्थसंयोगात्' (का० श्रौ० सू० १।३।२८) इति कात्यायनीयं सूत्रमादाय प्रकृतिकर्मणि रुद्राध्यायेन होमे समाप्ते पुनः पुरुषसूक्तहोमकरणेऽग्नेर्लौकिकत्वमापाद्यत इति । तत्र ब्रूमः—हरिहरात्मकयागप्रयोगस्यासमाप्तत्वात्कथमप्रवृत्तकर्मा जातः ? हरिहरयोर्व्यासक्तदेवतात्वेऽपि तथाविधमन्त्राणामनुपलम्भाद् रुद्र-विष्णुयागीयमन्त्रान् तदङ्गानि चात्रातिदिश्यायं प्रयोगः कर्तव्यः इत्यस्मत्पूर्वजानामेतत्कर्मानुष्ठातॄणां शिष्टानामाशयः । तत्र रुद्रहोमे समाप्तेऽपि प्रकृतप्रयोगस्यासमाप्तत्वादग्नेर्लौकिकत्वं कथमापादयितुं शक्यते ? किञ्च—"शृणु देवि महाभागे यागं हरिहरात्मकम् । कुर्वन् सिद्धिमवाप्नोति पुत्र-पौत्रप्रदायनीम् ॥" इत्यादितन्त्रान्तरवचनाद् हरिहरात्मकयागस्य तत्रानुष्ठानप्रतीतेः कथं कात्यायनश्रौतसूत्रस्य प्रकृते प्रवृत्तिः ? तस्मात् हरिहरात्मकयागस्य निर्दुष्टत्वात्, शास्त्रीयत्वात्, शिष्टाचारपरिगृहीतत्वात्, स्वस्वाभिलषितसाधकत्वाद्, अगर्हितत्वाच्च स्वीकर्तव्यत्वमुचितमेव । ये हि हरिहरञ्चैकेनैव प्रयोगेण सन्तोष्य स्वस्वसमीहितं सर्वमपि फलं साधयितुमभिलषन्ति, तेषां समभावेन देवताद्वयमेकीकृत्य समाराधयतां सौकर्याय शिष्टैः प्रवर्तितस्य हरिहरात्मकयागस्यौचित्यं प्रतीयते । 'न हि कल्याणकृत्कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति' इति न्यायमनुसृत्य हरिहरयागस्यानुष्ठानेऽनुष्ठापने चानुष्ठातॄणामनुष्ठापयितॄणाञ्च सद्गतिरेव स्यादिति निश्प्रचमेव ।

(ग्रहहोम-निर्णयः)

प्रतिष्ठाभास्कर-प्रतिष्ठासरण्यादिमते—अर्कादिसमित्, तिलाः, चरुः, आज्यं चेति चत्वारि हवनीयद्रव्याणि । मयूखे तु—समित्, चरुः, आज्यमिति द्रव्यत्रयमेव विहितम्, न तिलाः अतो मयूखमनुसरद्भिर्द्रव्यत्रयेणैव होमः कार्यः । साम्प्रदायिकास्तु द्रव्यचतुष्टयमेव जुह्वति । अथैककुण्डीपक्षे ग्रहहोमक्रमः । तत्र द्रव्यत्रयेण होमपक्षे त्रयो होतारः, द्रव्यचतुष्टयेन होमपक्षे चत्वारो होतारः सूर्यादिनवग्रहेभ्यः प्रतिदैवतं अर्कादिसमिच्चर्वाज्यैः, पक्षे अर्कादिसमित्तिल-चर्वाज्यैः प्रतिद्रव्यमष्टाष्टसङ्ख्यया अष्टवारमावृत्तैर्नाममन्त्रैस्तत्तदावाहनमन्त्रैर्वा जुहुयुः । यदा षट् होतारस्तदा चतुरावृत्तमन्त्रैर्होमः । द्रव्यचतुष्टयपक्षे अष्टौ होतारस्तदापि चतुरावृत्तैरेव मन्त्रैर्होमः । अस्मिन् पक्षे स्रुवाहुतिद्वयम्, पात्रासादने स्रुवद्वन्द्वस्यासादनादिकार्यम् । ततस्तावन्त एव होतारस्तावद्भिरेव द्रव्यैश्चतुश्चतुःसङ्ख्यया अधिदेवताभ्यः प्रत्यधिदेवताभ्यः जुहुयुर्नाममन्त्रैस्तत्तदावाहनमन्त्रैर्वा चतुर्वारमावृत्तैः । ततस्तावन्त एव होतारस्तावद्भिरेव द्रव्यैः प्रतिद्रव्यं द्विद्विसङ्ख्यया विनायकादिलोकपालान्तेभ्यः (लोकपालाश्चाष्टौ दश वा) देवताभ्यो जुहुयुर्द्विवारमावृत्तैर्मन्त्रैः । पञ्चकुण्डीपक्षे—अष्टाहुतिपक्षे ग्रहहोमक्रमः । पञ्चसु कुण्डेषु द्रव्यत्रयपक्षे त्रयस्त्रयो होतारः, द्रव्यचतुष्टयपक्षे चत्वारश्चत्वारो होतारः सूर्यादिनवग्रहेभ्यः प्रतिदैवतमर्कादिसमिच्चर्वाज्यद्रव्यैः (पक्षे—अर्कादिसमित्-तिल-चरु-आज्यैः) प्रतिद्रव्यमष्टाष्टसङ्ख्यया प्रथमावृत्तौ पञ्चसु कुण्डेषु, द्वितीयावृत्तौ आचार्यादिकुण्डत्रये जुहुयुस्तत्तदावाहन-

मन्त्रैः। द्वितीयावृत्तौ पश्चिमोत्तरकुण्डयोर्न होमः, किन्तु तयोः कुण्डयोर्होतारस्तूष्णीमासीनाः स्युः। ततः पञ्चसु कुण्डेषु तावन्त एव होतारस्तावद्भिरेव द्रव्यैः प्रतिद्रव्यं चतुश्चतुःसङ्ख्यया अधिदेवताभ्यः प्रत्यधिदेवताभ्यश्च जुहुयुराचार्यादीनां चतुर्षु कुण्डेषु। उत्तरकुण्डे अधिदेवता-प्रत्यधिदेवतानां न होमः। ततः पञ्चसु कुण्डेषु तावन्त एव होतारस्तावद्भिरेव द्रव्यैः प्रतिद्रव्यं द्विद्विसङ्ख्यया विनायकादिलोकपालान्ताभ्यो देवताभ्यः प्रतिदैवतमाचार्यकुण्डे पूर्वकुण्डे च जुहुयुः। दक्षिणादिकुण्डत्रये विनायकादिलोकपालान्तानां न होमः, लोकपालाश्चाष्टौ दश वेत्युक्तं प्राक्। इत्यष्टाहुतिपक्षे होमक्रमः। अष्टाविंशत्याहुतिपक्षे तु—पञ्चभिरावृत्तिभिः पञ्चसु कुण्डेषु हुत्वा षष्ठावृत्तकुण्डत्रये जुहुयुर्नवग्रहेभ्यः। षष्ठावृत्तौ पश्चिमोत्तरकुण्डयोर्न होमः। अधिदेवताभ्यः प्रत्यधिदेवताभ्यश्चास्मिन्पक्षे अष्टाष्टसङ्ख्यया होमः, तेन प्रथमावृत्तौ पञ्चसु कुण्डेषु, द्वितीयावृत्तौ आचार्यादि कुण्डत्रये होमः। पश्चिमोत्तरकुण्डयोरधिदेवता-प्रत्यधिदेवतानां न होमो द्वितीयावृत्तौ। विनायकादिलोकपालान्तेभ्यश्च चतुश्चतुःसङ्ख्यया होमः आचार्यादिकुण्डचतुष्टये। उत्तरकुण्डे विनायकादीनां न होमः। इत्यष्टाविंशत्याहुतिपक्षः। अथाष्टोत्तरशतपक्षः। अष्टोत्तरशतपक्षे तु पञ्चसु कुण्डेषु एकविंशत्यावृत्तिभिर्होमः। द्वाविंशावृत्तौ आचार्यादिकुण्डत्रये एव होमो नवग्रहाणाम्, न पश्चिमोत्तरकुण्डयोः। ग्रहाणामष्टोत्तरशताहुतिपक्षे अधिदेवताभ्यः प्रत्यधिदेवताभ्यश्च अष्टाविंशत्यष्टाविंशतिसङ्ख्यया होमः। तेन पञ्चसु कुण्डेषु पञ्चभिरावृत्तिभिर्होमं कृत्वा षष्ठावृत्तौ आचार्यादिकुण्डत्रये एव होमः कार्यः, न पश्चिमोत्तरकुण्डयोः। विनायकादिलोकपालान्तेभ्यस्तु अष्टाष्टसङ्ख्यया होमोऽस्मिन्पक्षे। सोऽपि होमः प्रथमावृत्तौ पञ्चसु कुण्डेषु द्वितीयावृत्तौ तु कुण्डत्रय एवेति सङ्क्षेपः। एवमष्टोत्तरसहस्रपक्षेऽप्यूह्यम्। इत्यष्टोत्तरशतपक्षः। नवकुण्डीपक्षे—अष्टाविंशत्याहुतिहोमपक्षे ग्रहहोमक्रमः। नवकुण्ड्यामष्टाहुतिपक्षो नास्तीत्युक्तं प्राक् नवसु कुण्डेषु त्रयस्त्रयो होतारः। आर्कादिसमिच्चर्वाज्यैः प्रतिद्रव्यं सूर्यादिनवग्रहेभ्यः प्रतिदैवतं प्रथमावृत्तौ द्वितीयावृत्तौ तृतीयावृत्तौ च जुहुयुर्मन्त्रैः। चतुर्थावृत्तौ तु आचार्यकुण्ड एव त्रयो होतारो जुहुयुः। अन्येष्वष्टसु कुण्डेषु न होमः, इत्थमष्टाविंशतिसङ्ख्यो होमो निष्पद्यते। ततः आचार्यादीनामष्टसु कुण्डेषु त्रयस्त्रयो होतारः समिच्चर्वाज्यैरेव प्रतिद्रव्यं अधिदेवता-प्रत्यधिदेवताभ्यः प्रतिदैवतमष्टाष्टसंङ्ख्यया जुहुयुः। ईशानकुण्डे अधिदेवतानां प्रत्यधिदेवतानां च न होमः। ततः त्रयस्त्रयो होतारः तैरेव द्रव्यैः प्रतिद्रव्यं चतुश्चतुःसङ्ख्यया विनायकादिलोकपालान्तदेवेभ्यः आचार्यादीनां चतुर्षु कुण्डेषु जुहुयुः। नैर्ऋत्यादिकुण्डेषु विनायकादीनां न होमः। इत्यष्टाविंशतिहोमपक्षः। समित्तिलचर्वाज्यैरिति द्रव्यचतुष्टयपक्षे तु चत्वारश्चत्वारो जुहुयुः सर्वत्रेति विशेषः। अष्टोत्तरशतपक्षे तु—नवसु कुण्डेषु त्रयस्त्रयश्चत्वारश्चत्वारो वा होतारः द्रव्यत्रयेण द्रव्यचतुष्टयेन वा द्वादशावृत्तिभिः नवग्रहेभ्यो जुहुयुः। अधिदेवताभ्यः प्रत्यधिदेवताभ्यश्च तावन्त एव होतारस्तैरेव द्रव्यैः प्रतिद्रव्यमष्टाविंशत्यष्टाविंशतिसङ्ख्यया नवसु कुण्डेषु आवृत्तित्रयेण जुहुयुः। चतुर्थावृत्तौ तु—आचार्यकुण्डे एव होमः। अन्येष्वष्टसु कुण्डेषु अधिदेवता-प्रत्यधिदेवतानां न होमश्चतुर्थावृत्तौ। ततः विनायकादिलोकपालान्तेभ्यस्तावन्त एव होतारस्तैरेव द्रव्यैः प्रतिद्रव्यमष्टाष्टसङ्ख्यया आचार्यादीनामष्टसु कुण्डेषु जुहुयुः। ईशानकुण्डे विनायकादीनां न होमः। इत्यष्टोत्तरशतहोमपक्षः। एवमष्टोत्तरसहस्रपक्षेऽप्यूह्यमिति।

अथ निर्णयसिन्धुः

(भाषा-टीका-सहित)

श्लोकसूची

दौलतराम गौड

अथ निर्णयसिन्धुः

(भाषा-टीका-सहित)

आशौचप्रकरण

(नवश्राद्धविचार, आशौचान्यदिनकृत्यकथन, एकादशाहकृत्यकथन, वृषोत्सर्गविचार, शय्यादान और उदककुम्भादिदान, मासिकादिश्राद्ध, सपिण्डीकरणविचार, पिता-माता आदि के मरने पर प्रथम वर्ष में कर्तव्याकर्तव्यविचार, पञ्चक में मरने पर विचार, त्रिपादादिनक्षत्र में मरने पर विचार, ब्रह्मचारी, कुष्ठी, रजस्वला और गर्भिणी स्त्री आदि के मरने पर विचार, सहगमन में विचार, अनुगमननिषेध कथन, अनुप्रवेशाशक्ति में विचार और विधवाधर्म आदि विषयों का महत्त्वपूर्ण विचार)

दौलतराम गौड

(प्राचीन व्यस्थाओं का संग्रह)

(स्वर्गीय–महामहोपाध्याय श्री पं० विद्याधर जी गौड़ द्वारा लिखित)

याग-पदार्थनिरूपणम्

देवतोद्देशेन अग्नौ प्रक्षेपविशिष्टो द्रव्यत्यागो यागः। सर्वत्र हि यजति-चोदना-चोदितस्थले अर्थात् 'सोमेन यजेत' इत्यादौ यजिधात्वर्थः कश्चित्प्रतीयते। तस्मिन्नेव वाक्ये तदुद्देशेन किञ्चिद् द्रव्यमपि विधीयते। वाक्यान्तरेण च देवताया अपि विधानमस्ति। तत्र तां देवतामुद्दिश्य तस्य द्रव्यस्य यस्त्यागः 'इदमिन्द्राय न मम' इत्यादिरूपो मानसिकव्यापारः स एव यागपदार्थः। स च त्यागरूपत्वाद्यजमानेनैव कर्तव्यो न तु ऋत्विगादिभिः। तेषां यजमानद्रव्ये स्वत्वाभावेन त्यागकरणेऽसामर्थ्यात्। ते च यागाः प्रकृतिभूता विकृतिभूताश्च सन्ति। तत्र यस्य कर्मणः सन्निधाने तदपेक्षितं सर्वमप्यङ्गजातं पठितम् अन्यतश्चाङ्गापेक्षा नास्ति सा प्रकृतिः। अथवा यतो विकृतिरङ्गानि गृह्णाति सा प्रकृतिः। यथा दर्शपूर्णमासौ। तत्र हि अन्वाधानादिब्राह्मणतर्पणान्तानि सर्वाण्यङ्गानि स्वसन्निधान एवाम्नातानि। नान्यतोऽङ्गान्यागच्छन्ति। अस्मादेव सर्वास्विष्टिषु धर्मा अतिदेशेन गच्छन्ति, अतो दर्शपूर्णमासयागः सर्वासामिष्टीनां प्रकृतिरुच्यते। इयं प्रकृतिर्द्विधा—मूलप्रकृतिः, अवान्तरप्रकृतिश्च। यत्कर्म सर्वथा स्वाङ्गविषये कर्मान्तरं नापेक्षते स्वापेक्षितसर्वाङ्गविशिष्टमेव पठितं सा मूलप्रकृतिरित्युच्यते, यथा दर्शपूर्णमासादिः। यत्तु कर्म स्वाङ्गविषये किञ्चित्कर्मान्तरमपेक्षते साऽवान्तरप्रकृतिरित्युच्यते। यथाऽग्नीषोमीयः पशुः। अयं च प्रयाजानुयाजाद्यङ्गविषये दर्शपूर्णमासावपेक्षते। सवनीयादीनां पशुयागानां यूपादिविषये अपेक्षा भवति। तत्र तिस्रो मूलप्रकृतयः—दर्शपूर्णमासौ, अग्निहोत्रम्, अग्निष्टोमसंस्थाको ज्योतिष्टोमश्च। एषु च न कुतश्चित्कर्मणोऽङ्गान्यतिदिश्यन्ते। विकृतिः—यत्र कानिचिदेवाङ्गानि पठितानि इतराणि तु अपेक्षितानि अन्यत आनीयन्ते सा विकृतिः। यथा 'सौर्यं चरुं निर्वपेद् ब्रह्मवर्चसकामः' इति विहिता सौर्येष्टिः। तत्र हि स्वसन्निधाने न समग्राङ्गापदेशः, किन्तु 'प्रयाजे-प्रयाजे कृष्णलं जुहोति' इत्यादिकतिपयानामेवाङ्गानाम्। इतराणि तु दर्शपूर्णमासत एवानीयन्ते। त्यक्तस्य हविषो विहितदेशे आहवनीयादौ यः प्रक्षेपः स होम इत्युच्यते। स द्विविधः—प्रधानहोमः, अंगहोमश्चेति। 'अग्निहोत्रं जुहोति' इत्यादयः प्रधानहोमाः तत्तत्फलोद्देशेन विहिताः। तत्र न प्रक्षेपमात्रं धात्वर्थः, किन्तु प्रक्षेपः, उद्देशः, त्याग इति त्रितयमपि। यद्यपि एतदंशत्रयं यागेऽप्यविशिष्टं देवतोद्देशेन द्रव्यत्यागस्य प्रक्षेपविशिष्टस्यैव यागपदार्थत्वात्, होमेऽपि देवतोद्देश्यकद्रव्यत्यागस्य सत्त्वात्। तथापि त्रयाणामंशानां समप्राधान्यं होमस्थले, यागस्थले तु प्रक्षेपस्यांगत्वम्, इतरयोः समप्राधान्यमिति विशेषः। अयमेव प्रक्षेपो यागांगभूतोऽङ्गहोम इत्युच्यते। [illegible] प्रभेदः सूत्रकारेण जैमिनिना 'यजतिचोदना द्रव्यदेवताक्रियं समुदायं कृतार्थत्वात्', 'तदुक्तं श्रवणाज्जुहोतिरासेचनाधिकः स्यात्' (जै० सू० ४।२।२८, २९) इति सूत्राभ्यां प्रकटीकृतः। 'यज्ञं व्याख्यास्यामः', 'द्रव्यं देवतात्यागः' (का० श्रौ० सू० १।२।१-२) इति कात्यायनोऽपि।

याग-होमयोर्भेदनिरूपणम्

यागहोमयोः को भेद इति विचारे प्रथमं तावदिदं निर्णीयते—यत्र यजेतेति यजधातुना क्रियाभिधानं जुहोतीति हुधातुना च होमविधानम्, तत्र उभयत्रापि अंशत्रयमस्ति। उद्देशांशः, त्यागांशः, प्रक्षेपांशश्च। यत्र देवतामुद्दिश्य 'इदं न मम' इति द्रव्यं त्यज्यते तत्र देवतागत उद्देशांशः, द्रव्यगतस्त्यागांशः, देवतामुद्दिश्य त्यक्तस्य द्रव्यस्य कुत्र प्रक्षेप इत्याकांक्षायां "यदाहवनीये जुहोति" (तै० ब्रा० १०।१०।१०) इत्यादिना आहवनीयादिष्वग्निषु यः प्रक्षेपः क्रियते स प्रक्षेपांशः। एतत् त्रितयमपि यागे होमे च विद्यत एव, तथापि प्रक्षेपांशस्य अंगत्वम्, उद्देशांशस्यागांशयोः प्राधान्यं च यत्रास्ति स यागपदार्थः। उद्देशांशत्यागांशप्रक्षेपांशानां यत्र समं प्राधान्यं स होमपदार्थः। अयं च विभागो याज्ञिकैः जैमिन्यादिभिः सूत्रकारैश्चांगीकृतः। अत एव जैमिनिः—'यजति चोदनाद्रव्यदेवताक्रियं समुदाये कृतार्थत्वात्, तदुक्ते श्रवणाज्जुहोतिरासेचनाधिकः स्यात्' (४।२।२७।२८) इति सूत्रयामास। व्याख्यातारश्च "देवतोद्देश्यद्रव्यत्यागप्रक्षेपेषु समप्रधानेषु जुहोतिपदप्रयोगः। अतश्च प्रक्षेपांगकक्रियाद्वयवृत्तिजातिर्यागत्वम्, क्रियात्रयवृत्तिजातिश्च होमत्वम्" इति (भाट्टदीपिकायाम् ३।४।१८) स्पष्टमूचिरे। अतश्च यजिधातुना विहितो यागः, स च एतादृशस्वरूपः। हुधातुनाऽभिहितश्च होमः, स च एवंरूप इति फलितम्। एवं च यत्र शान्तिक–पौष्टिकादिषु कर्मसु यजिधातुना विधानाभावः, तत्र यागत्वं नास्ति इति शतरुद्रियादौ जुहोतिचोदनाचोदितत्वात् होमत्वमेव तेषाम्, इति तत्र सङ्कल्पादौ होमपदस्यैवोल्लेखः कार्यः, न तु याग पदस्य। अत एव अग्निहोत्रे प्रातरग्निहोत्रं 'होष्यामि' इत्येवोल्लेखः, न तु 'यक्ष्ये' इति। एवं च नवग्रहहोमादिषु होमस्यैव विशेषतोऽभिधानात्तेषां होमत्वमेव, न तु यागता। अत एव शान्तिक-पौष्टिकादिहोमेषु नवग्रहधर्मातिदेशोक्तिस्तत्र तत्र ग्रन्थकृतां सङ्गच्छते। यदि नवग्रहहोमस्य यागत्वं स्यात्तर्हि यागीयानां धर्माणां होमे अतिदेशाभावकथनं विरुद्ध्येत। निर्णीतं हि पूर्वमीमांसायाम् (४।२) यागहोमयोः वैसादृश्यं परस्परं धर्मानतिदेश इति। एवं च नवग्रहहोमादिषु मख-यज्ञादिशब्दप्रयोगो गौणः। यथा—'स एष यज्ञः पञ्चविधः–अग्निहोत्रम्, दर्शपूर्णमासौ, चातुर्मास्यानि, पशुः, सोमः' इति (ऐत० ब्रा०)। अग्निहोत्रेऽपि यज्ञशब्दप्रयोगो गौणः तद्वत् इति।

(नवश्राद्धविचारः)

अथ नवश्राद्धम् । पृथ्वीचन्द्रोदये अङ्गिराः—प्रथमेऽह्नि तृतीये च पञ्चमे सप्तमे तथा ।
नवमैकादशे चैव तन्नवश्राद्धमुच्यते ॥

अथ नवश्राद्ध को कहते हैं। पृथ्वीचन्द्रोदय में अंगिरा ने कहा है—प्रथमदिन, तीसरे दिन, पांचवें दिन, सातवें दिन, नवमें दिन और ग्यारहवें दिन नवश्राद्ध को कहा है।

शिवस्वामी—नवश्राद्धानि पञ्चाहुराश्वलायनशाखिनः । आपस्तम्बाः षडित्याहुर्विभाषा त्वितरेषु हि ॥ पञ्च एकादशाहिकं विना, 'मरणाद्विषमेषु दिनेष्वेकैकं नवश्राद्धं कुर्यादानवमात्' यदि नवमं विच्छिद्येतैकादशे तत्कुर्यात् ।' इति मदनरत्ने बौधायनोक्तेः ।

शिवस्वामी ने कहा है—आश्वलायन शाखावालों के लिए नवश्राद्ध पांच कहा है। आपस्तंबशाखा-वाले छ कहते हैं और इतर लोग तो (ऐतरेयशाखावाले यह रघुनाथ कहते हैं।) विभाषा (विकल्प) कहते हैं।

मदनरत्न में बौधायन ने कहा है—मरण से विषम दिनों में नवमदिन पर्यन्त एक-एक नवश्राद्ध करे। यदि नवमदिन का विच्छेद हो तो ग्यारहवें दिन उसको करे।

भविष्ये—नव सप्त विशां राज्ञां नवश्राद्धान्यनुक्रमात् ।
आद्यन्तयोर्वर्णयोस्तु षडित्याहुर्महर्षयः ॥

भविष्यपुराण में कहा है—वैश्यों के लिए नौ और क्षत्रियों के लिए सात इस अनुक्रम से नवश्राद्ध होते हैं। आदि और अन्त वर्णों के छ होते हैं—ऐसा महर्षियों ने कहा है।

हेमाद्रौ वृद्धवसिष्ठः—अलब्ध्वा तु नवश्राद्धं प्रेतत्वान्नैव मुच्यते । अर्वाक् तु द्वादशाहस्य लब्ध्वा तरति दुष्कृतम् ॥ अतः षडेव । एतान्येव विषमश्राद्धानीत्युच्यन्ते ।

हेमाद्रि में वृद्धवसिष्ठ ने कहा है—नवश्राद्ध को न प्राप्त कर प्रेतत्वयोनि से मुक्त नहीं होता है। द्वादशाह से पूर्व तो नवश्राद्ध को प्राप्त कर दुष्कृत (पापकर्म) से तरता है। इसलिए छ ही है इसी को ही विषमश्राद्ध कहते हैं।

नागरखण्डे तु—पञ्चमे सप्तमे तद्वदष्टमे नवमे तथा । दशमैकादशे चैव नवश्राद्धानि तानि च । इत्युक्तम् ।

नागरखण्ड में तो कहा है—पांचवें दिन, सातवें दिन, तद्वत् आठवें दिन, नवें दिन, दशमें दिन और ग्यारहवें दिन जो श्राद्ध किया जाता है वह नवश्राद्ध कहा जाता है।

कात्यायनस्तु—चतुर्थे पञ्चमे चैव नवमैकादशे तथा । यदत्र दीयते जन्तोस्तन्नवश्राद्धमुच्यते ॥ प्रथमे सप्तमे चैवेत्याद्यपादे व्यासपाठः ।

कात्यायन ने कहा है—चौथे, पांचवें, नवें और ग्यारहवें दिन जो यहाँ प्रेत को दिया है उसी को नवश्राद्ध कहा जाता है। प्रथम में और सातवें मे है—हम आद्यपाद में व्यास का पाठ है।

बह्वृचानां तु—नवश्राद्धं दशाहानि नवमिश्रं तु षड्ऋतून् । इत्युक्तं नारायणवृत्तौ ।

बह्वृचों ने तो कहा है—नवश्राद्ध दशदिनतक नवमिश्र (मासिक आदि) छ ऋतुओं में करे। यह नारायणवृत्ति में कहा है।

दीपिकायाम्—अथ तनुयादाद्ये चतुर्थे दिने श्राद्धं पञ्चमसप्तमाष्टनवदिरुद्रेषु युग्मद्विजैः ।

दीपिका में कहा है—अब पहला श्राद्ध चतुर्थदिन में, पांच, सात, आठ, नौ, दश और ग्यारह दिनों में [1]युग्मब्राह्मणों से करे।

१—ब्रह्माण्डपुराणे—नवश्राद्धानि कुर्वीत प्रेतोद्देशेन यत्नतः । एकोद्दिष्टविधानेन नान्यथा तु कदाचन ॥ कौर्मे—पंचमे नवमे चैव तथैवैकादशेऽहनि । युग्मांस्तु भोजयेद्विद्वान् नवश्राद्धं तु तद्विदुः ॥ शूलपाणिः—अयुग्मान् भोजये-द्विप्रांस्तन्नवश्राद्धमुच्यते ।

प्रथमेऽह्नि तृतीयेऽह्नि पञ्चसप्तनवस्वपि । द्वौ द्वौ पिण्डौ प्रदातव्यौ शेषेष्वेकैकं तु विन्यसेत् ॥ एको विषमश्राद्धे अवयवपिण्डश्चैक इति द्वावित्यर्थः । अत्र शाखाभेदाद्व्यवस्था ।

पहले दिन, तीसरे दिन, पांचवें, सातवें और नवमें दिन में दो-दो पिण्डों को और अवशिष्ट[1] दिनों में एक पिण्ड को दे । एक विषमश्राद्ध में और अवयवपिण्ड एक इसतरह दो हुए यह अर्थ है । यहाँ पर शाखाभेद से व्यवस्था है । (यदि गृह्यसूत्रों में नवश्राद्धों को कहा है तो इन्हीं को ही करे । अन्यथा आंगिरस के कहे हुओं को आचार से करे । नागरखण्डोक्त में कहे हुओं का तो जहाँ पर उनका आचार है वहाँ पर ही करे—यह अर्थ है ।)

अपरार्के भविष्ये—नवश्राद्धं त्रिपक्षं च षण्मासं मासिकानि च ॥
न करोति सुतौ यस्तु तस्याधः पितरो गताः ॥

अपरार्क में भविष्यपुराण का वचन है—नवश्राद्ध, त्रिपक्ष, षाण्मासिक और मासिकश्राद्ध को जो पुत्र नहीं करता है तो उसके पिता अधः (नीचे नरक) जाते हैं ।

वाराहे—गतोऽसि दिव्यलोकं त्वं कृतान्तविहितात्पथः । मनसा वायुभूतेन विप्र त्वाहं नियोजये । पूजयिष्यामि भोगैस्त्वामेवं विप्रं निमन्त्रयेत् ।

वाराहपुराण में कहा है—यमराज के विहित मार्ग से दिव्यलोक में तुम वायुरूप मन से गये हो हे विप्र, तुमको मैं नियोजित करता हूँ । भोगों द्वारा मैं अर्चन करूँगा । इसप्रकार ब्राह्मण को निमन्त्रित करे ।

आवाहनेऽपि तत्रैव—इहलोकं परित्यज्य गतोऽसि परमां गतिम् ।
मनसा वायुभूतेन विप्र त्वाहं नियोजये ॥ इति ।

आवाहनमें भी वहींपर कहा है—इसलोक को त्याग कर परमगति को वायुरूप मनसे प्राप्त हो रहे हो । हे विप्र, तुमको मैं नियोजित (नियुक्त) करता हूँ ।

तत्रैव बह्वृचपरिशिष्टे—अनूदकमधूपं च गन्धमाल्यविवर्जितम् । नवश्राद्धममन्त्रं च पिण्डोदकविवर्जितम् ॥ उदकमर्घ्यः । पिण्डोदकं 'शुन्धतां पितरः' इत्यवनेजनादि ।

वहीं पर बह्वृचपरिशिष्ट में कहा है—उदक (अर्घ्य) धूप, गन्ध, माल्य, मन्त्र तथा पिण्डोदक नवश्राद्ध में त्याज्य हैं । उदक माने—अर्घ्य । पिण्डोदक माने—'शुन्धन्तां पितरः' इससे अवनेजन । आदि शब्द से प्रत्यवनेजन का ग्रहण है ।

एकोद्दिष्टेषु सर्वेषु न स्वधा नाभिरम्यताम् । नाग्नौकरणमन्त्रश्च एकं वाथ तिलोदकम् ॥

एकोद्दिष्ट सबश्राद्धों में—स्वधा, अभिरम्यताम् , अग्नौकरणमन्त्र तथा एक तिलोदक नहीं होते हैं ।

अनपत्येषु सर्वेषु न स्वधा नाभिरम्यताम् । स्वस्त्यस्तु विसृजेदेवं सकृत्प्रणववर्जितम् ॥

सन्तानहीन सबों के श्राद्ध में स्वधा, और 'अभिरम्यताम्' नहीं होते हैं और सकृत प्रणव से रहित स्वस्त्यस्तु कहकर यों विसर्जन करे ।

एकोद्दिष्टस्य पिण्डे तु अत्र शब्दो न विद्यते । पितृशब्दं न कुर्वीत पितृहा चोपजायते ॥ सपिण्डनात् प्रागिति हेमाद्रिः । तेन—न च स्वधां प्रयुञ्जीत प्रेतश्राद्धे दशाहिके । इति ऋष्यशृङ्गोक्तौ दशाहिकोक्तेरेकादशाहे स्वधाप्रयोग एवेति हारलता परास्ता ।

एकोद्दिष्ट के पिण्ड में तो 'अत्र पितरो मादयध्वं यथा भागमा वृषायिषत' यह मन्त्र नहीं होता है । ('अनुशब्दो न विद्यते' इस पाठ में 'ये च त्वामत्रान्तु' यह मन्त्र है ।) पितृशब्द न कहे कहने पर पितरों को मारने वाला होता है ।

हेमाद्रि ने कहा है—सपिण्डन के पहले है । इससे दशदिन के प्रेतश्राद्ध दशाहिक में स्वधाशब्द का प्रयोग न करे—इस ऋष्यशृङ्ग की उक्ति पर दशाहदिन के कहने पर एकादशाह में 'स्वधा' का प्रयोग होता ही है । इससे हारलता परास्त हो गया ।

१—प्रथमेऽह्नि तृतीयेऽह्नि पंचमे सप्तमे तथा । द्वौ द्वौ पिण्डौ प्रदातव्यौ शेषास्तु दशमेऽहनि ॥

(प्रेतश्राद्धे अष्टादशपदार्थानां वर्जनम्)

रत्नावल्याम्—आशिषो द्विगुणा दर्भा जयाशीः स्वस्तिवाचनम्। पितृशब्दः स्वसम्बन्धः शर्मशब्दस्तथैव च। पात्रालम्भोऽवगाहश्च उल्मुकोल्लेखनादिकम्। तृप्तिप्रश्नश्च विकिरः शेषप्रश्नस्तथैव च॥ प्रदक्षिणाविसर्गश्च सीमान्तगमनं तथा॥ अष्टादशपदार्थाश्च प्रेतश्राद्धे विवर्जयेत्।

रत्नावली में कहा है—आशीर्वाद, द्विगुणित कुशा, जय का आशीर्वाद, स्वस्तिवाचन, पितृशब्द, स्वसंबन्ध, शर्मशब्द, पात्रालंभ (पात्र का स्पर्श), द्विजाङ्गुष्ठनिवेशन, उल्मुक (ज्वलदङ्गार, जलती हुई लकड़ी या कोयला), उल्लेखन, वचा भोजन क्या करे ऐसा ब्राह्मणों से पूछना आदि, तृप्तिप्रश्न, [1]विकिर, शेषप्रश्न, श्राद्ध की प्रदक्षिणा, विसर्जन और सीमान्तगमन ये अठारह पदार्थ प्रेतश्राद्ध में त्याग दे।

अत्र स्वधापितृनमः शब्दानां 'तिलोसि' इति मन्त्रे प्रेतशब्दोहेन तूष्णीं वा तिलावपनम्। तूष्णीमर्घ्यदानम्। अमुष्मै स्वाहेति प्रेतनाम्ना पाणिहोमः। नाम्ना एकः पिण्डः। निनयनमन्त्रे ऊहः। अनुमन्त्रणादि त्वमन्त्रकम्। अभिरम्यतामिति विसर्जनम्। एवं नवश्राद्धवर्जैकोद्दिष्टेषु। 'नवश्राद्धे त्वमन्त्रकं सर्वम्' इति नारायणवृत्तिः।

यहाँ पर स्वधा, पितृ और नमः शब्दों का 'तिलोऽसि' इस मन्त्र में प्रेतशब्द के ऊह से (इसके स्थान में 'प्रेत प्रेतम्' का ऊह करे) या तूष्णीं तिल का प्रक्षेप करे। तूष्णीम्—(अमुकगोत्रामुकप्रेत म हैकोद्दिष्टे इदमर्घ्यं तवोपतिष्ठताम्' ऐसा संकल्प कर अपोशान आदि दे।) अर्घ्यदान दे। खनन, सम्मार्जनोपाञ्जनेन सेकेनोल्लेखनेन च। गवां च परिवासेन भूमिः शुध्यति पञ्चभिः। (मनु ५।१ ४)।

अमुष्मै स्वाहा—इससे प्रेत नाम से हाथ से होम करे और नाम से—(अमुकगोत्रामुकप्रेताऽयं ते पिण्डमुपतिष्ठताम्—इति मन्त्रः)। एक पिण्ड दे। निनयनमन्त्र में ऊह करे। अनुमन्त्रण (अनुमन्त्रणं मन्त्रपाठः।) (मन्त्राचारपूर्वकसंस्कारादिकथन) आदि तो अमन्त्रक करे। अभिरम्यताम्-इससे विसर्जन करे। इसप्रकार नवश्राद्ध से भिन्न एकोद्दिष्टों में है। नवश्राद्ध में तो सब अमन्त्रक है—यह नारायणवृत्ति में कहा है।

(एकोद्दिष्टादिश्राद्धेषु उत्तानादिपात्रस्थापने विचारः)

क्रियानिबन्धे—उत्तानं स्थापयेत्पात्रमेकोद्दिष्टे सदा बुधः।
न्युब्जं तु पार्वणे कुर्यात्तस्योपरि कुशान् न्यसेत्॥

क्रियानिबन्ध में कहा है—बुद्धिमान् मनुष्य सदा एकोद्दिष्ट में अर्घ्यपात्र को सीधा रखे और पार्वण श्राद्ध में तो उलटा अर्घ्यपात्र को रखे तथा उसके ऊपर कुशाओं को रखे।

(प्रेतश्राद्धानि लौकिकाग्नौ गृहे कार्याणि)

नवश्राद्धं गृहे कुर्याद् भार्या यत्राग्नयोऽपि वा। सपिण्डीकरणान्तानि प्रेतश्राद्धानि यानि वै। तानि स्युर्लौकिके वह्नावित्याह त्वाश्वलायनः।

नवश्राद्ध को घर में करे जहाँ स्त्री और अग्नि हों वहाँ करे। सपिण्डीकरणान्त जो प्रेतश्राद्ध हैं उनको लौकिक अग्नि में करे—यह आश्वलायन ने कहा है।

(प्रेतश्राद्धं सम्भवेऽन्नेन कार्यम्)

इदं सम्भवेऽन्नेन कार्यम्।

यह संभव में अन्न (सक्तु आदि से न करे) से करना चाहिये।

१—तन्त्रसार में लिखा है—लावा, चन्दन, पीलीसरसो, भस्म, दूर्वा, कुशा और चावल ये सब विकिर कहलाते हैं। श्राद्धकाल में 'अग्निदग्धा' के उद्देश्य से जो पिण्ड दिया जाता है उसको विकिर कहते हैं। पित्रादि का पिण्ड जिस तरह हाथ के पितृतीर्थ से दिया जाता है, इस अग्निदग्ध का पिण्ड इसप्रकार नहीं दिया जाता है। इसलिए इसका नाम विकिर नाम है। पूजाकाल में विघ्नोत्सारणार्थं तण्डुल आदि का चारों तरफ प्रक्षेप होता है। जिससे पूजा के समय भूत आदि विघ्नबाधा न करें इसलिए मन्त्र पढ़कर चावल आदि फेंकते हैं। इसको भी विकिर कहते हैं।

(नवश्राद्ध-ग्रहण-दम्पत्यादिशेषभोजने विचारः)

नवश्राद्धेषु यच्छिष्टं ग्रहपर्युषितं च यत् । दम्पत्योर्भुक्तशेषं च न तद् भुञ्जीत कर्हिचित् ॥ इति अङ्गिरोवचनलिङ्गात् ।

अंगिरा का वचन प्रमाण है--नवश्राद्धो में जो शेष, जो ग्रहण का पर्युषित (बासी) अन्न तथा दम्पत्ति के शेष भोजन को कभी भी न करे ।

द्वाभ्यां तदा तु कृच्छ्राभ्यां शुद्धिः स्यात्तु विवेकिनाम् । इति ब्राह्मे उक्तम् ।

ब्रह्मपुराण में कहा है—विवेकियों (समझदारों) की तो दो कृच्छ्रों से शुद्धि होती है ।

(नवश्राद्धविघ्ने निर्णयः)

विघ्ने तु निर्णयामृते कण्वः—नवश्राद्धं मासिकं च यद्यदन्तरितं भवेत् ।
तत्तदुत्तरसातन्त्र्यादनुष्ठेयं प्रचक्षते ॥

विघ्न में तो निर्णयामृत में कण्व ने कहा है—नवश्राद्ध और मासिकश्राद्ध में विघ्न उपस्थित हो तो उत्तरतन्त्र (उत्तरश्राद्ध) से अनुष्ठान करना कहा है ।

हेमाद्रौ गालवः—शावे तु सूतकं चेत्स्यान्निशायां च मृतौ तथा । नवश्राद्धानि देयादि यथाकालं यथाक्रमम् ॥ निशायामाशौचान्ते द्व्यहवृद्धौ ।

हेमाद्रि में गालव ने कहा है—शाव (मरण) में यदि सूतक हो जाय और रात्रि में मरण होने पर नवश्राद्धों को यथाकाल--यथाक्रम से करे । निशायाम्–माने अशौच के अन्त में दो दिन की वृद्धि करे—यह अर्थ है ।

(अन्वारोहणे तु)

अन्वारोहणे तु—नवश्राद्धानि सर्वाणि सपिण्डीकरणं पृथक् ।
एक एव वृषोत्सर्गो गौरेका तत्र दीयते ॥

अन्वारोहण में तो सब नवश्राद्ध और सपिण्डीकरणश्राद्ध अलग-अलग होते हैं। वहाँ एक ही वृषोत्सर्ग होता है तथा एक ही गौ दी जाती है ।

(आशौचान्त्यदिनकृत्यम्)

आशौचान्त्यदिने कार्यमुक्तं ब्राह्मे—यस्य यस्य तु वर्णस्य यद्यत्स्यात्पश्चिमं त्वहः ।
स तत्र वस्त्रशुद्धिं च गृहशुद्धिं करोत्यपि ॥

अशौचान्त्यदिन में कार्य को ब्रह्मपुराण में कहा है--जिस-जिस वर्ण का जो-जो पश्चिम (पिछला) दिन है वह उसमें वस्त्र की शुद्धि और घर की भी शुद्धि करे ।

समाप्य दशमं पिण्डं प्रेतस्पृष्टे तु वाससी । अन्त्यानामाश्रितानां च त्यक्त्वा स्नानं करोति च ॥

दशमपिण्ड को समाप्त कर प्रेतस्पर्श वस्त्रों को अन्त्यज और आश्रितों को देकर स्नान करे ।

श्मश्रुलोमनखानां च यत्त्याज्यं तज्जहात्यपि । गौरसर्षपकल्केन तिलकल्केन संयुतम् ॥ शिरः स्नानं ततः कृत्वा तोयेनाचम्य वाग्यतः । वृषभं गां सुवर्णं च स्पृष्ट्वा शुद्धो भवेन्नरः ॥

श्मश्रु (दाढ़ी), लोम और नखों को जो त्यागने योग्य हैं उनका त्याग करे । सफेदसरसों और तिल की खली से युक्त हो शिर से स्नान कर जल से आचमन कर मौन होकर बैल, गौ तथा सुवर्ण स्पर्श कर मनुष्य शुद्ध होता है ।

क्रियानिबन्धे गृह्यकारिकायाम्—अत्र पिण्डत्रयं दद्युस्तत्सखिभ्यस्तथादिमम् ।
प्रेताय मध्यमं तद्वत्तृतीयं च यमाय वै ॥

क्रियानिबन्ध में गृह्यकारिका का वचन है--यहाँ पर तीन पिण्ड दे--प्रथमपिण्ड उसके सखाओं के लिए, मध्यम पिण्ड प्रेत के लिए तद्वत् तीसरा पिण्ड यम के लिए निश्चित दे । (यहाँ पर पांच कुम्भों का

स्थापन करे--उसमें मध्य में प्रेत के लिए, पूर्व में प्रेत सखाओं के लिए, दक्षिण में यम के लिए, पश्चिम में वायस के लिये और उत्तर में प्रेताधिप के राजा के लिए पांच पिण्ड दे--यह प्रकारान्तर पक्ष अन्त्येष्टि में कहा है।)

तथा—कर्त्राऽत्र प्रार्थिताः सन्तो ज्ञातिसम्बन्धिबान्धवाः। दद्युरभ्यङ्गतः पूर्वं त्रींस्त्रीन् धर्मोदकाञ्जलीन् ॥ पूर्ववन्नामगोत्राभ्यां नियमो नेह कश्चन।

यहाँ पर कर्ता की प्रार्थना से अच्छे लोग जाति, सम्बन्धि-बान्धव अभ्यंग के पूर्व तीन-तीन धर्म की उदक अञ्जलियों को दें। पहले की तरह नाम तथा गोत्र कहने का यहाँ कोई नियम नहीं है।

मदनरत्ने विष्णुहारीतौ—आशौचान्ते कृतश्मश्रुकर्माणस्तिलकल्कैः सर्षपकल्कैर्वा स्नाताः शुक्लवाससो गृहं प्रविशेयुस्तत्र शान्तिकं कृत्वा ब्राह्मणपूजनं कुर्युः। इति।

मदनरत्न में विष्णु और हारीत ने कहा है--आशौच के बाद दाढ़ी बनवा कर तिल की खली से या सरसों की खली से स्नान कर सफेद वस्त्र धारण कर घर में प्रवेश करें। वहाँ शान्ति को (सपिण्डनोत्तर-पाथेयश्राद्ध के बाद) कर ब्राह्मण पूजन करें।

(दशमदिने वपनादिविचारः)

देवलः—दशमेऽहनि संप्राप्ते स्नानं ग्रामाद् बहिर्भवेत्।
तत्र त्याज्यानि वासांसि केशश्मश्रुनखानि च ॥

देवल ने कहा है--दशवें दिन (अन्त्यदिन में-यह अर्थ है।) के प्राप्त होने पर गांव के बाहर स्नान कर केश, श्मश्रु, नख तथा वस्त्रों का त्याग करे।

अपरार्के बृहस्पतिः—नवमे वाससां त्यागो नखरोम्णां तथान्तिमे।

अपरार्क में बृहस्पति ने कहा है—नवमें दिन वस्त्रों का त्याग (धोबी आदि के देने के लिए) करे और अन्तिम दिन नख तथा रोम का त्याग करें।

तत्रैव व्यासः—आशौचान्त्यादिने चौरं जनन्यां च गुरौ मृते।

वहीं पर व्यास ने कहा है—आशौच के अन्तिमदिन में माता और गुरुदेव के मरने पर चौरकर्म करे।

एतत्प्रेताल्पवयसामित्याह आपस्तम्बः। 'अनुभाविनां च परिवपनम्' इति। अनुभाविनः कनिष्ठा इति विज्ञानेश्वररत्नाकरादयः। आशौचमनुभवतां पुंसां सर्वाशौचे तु मुण्डनम्। आज्ञया नरपतेर्द्विजन्मनां दारकर्ममृतसूतकेषु च। बन्धमोक्षमखदीक्षणेष्वपि चौरमिष्टमखिलेषु चोडुषु॥ इति रत्नमालोक्तेर्जननाशौचेऽपीति शुद्धितत्त्वादयः। अत्र देशाचारतो व्यवस्था। परं शिखावर्जम् 'केशश्मश्रुलोमनखानि वापयीत शिखावर्जम्' इति गोभिलोक्तेः।

यह अल्पावस्था वाले प्रेतों के लिए आपस्तंब ने कहा है। छोटों का मुण्डन होता है। [1]अनुभाविनः—माने कनिष्ठ—यह विज्ञानेश्वर, रत्नाकर आदि कहते हैं। जिन छोटों को आशौच हो उन सबका आशौच में मुण्डन होता है। राजा की आज्ञा, द्विजातियों का विवाह, मरण तथा सूतकों में, बन्ध से मुक्त होने पर, यज्ञ की दीक्षाओं में सभी नक्षत्रों में चौरकर्म इष्ट है। इस रत्नावली के कथन से जननाशौच में भी मुण्डन होता है—यह शुद्धितत्त्व आदि कहते हैं। यहाँ पर देशाचार से व्यवस्था है। पर शिखा का त्याग कर करे। गोभिल ने कहा है—शिखा को छोड़कर केश, श्मश्रुलोम तथा नख का वपन (मुण्डन) करावे।

१—अयमर्थः—शावं दुःखमनुभवन्तीत्यनुभाविनः सपिण्डाः, तेषां चाविशेषेण वपनमुताल्पवयसामित्यपेक्षायामिदमेवोपतिष्ठते—'अनुभाविनां च परिवापनम्' इति। अनुपश्चाद्भवन्तीत्यनुभाविनोऽल्पवयसस्तेषां वपनमिति। अनुभाविनः पुत्रा इति केचिन्मन्यन्ते' 'गंगायां भास्करक्षेत्रे मातापित्रोर्गुरोर्मृतौ। आधानकाले सोमे च वपनं सप्तसु स्मृतम्॥ इति नियमात्। इति मिताक्षरायाम्। शुद्धिमयूखे—अनुभाविनः कनिष्ठाः सर्वे सपिण्डाः। पुत्र एवेति मिताक्षरायाम्।

यत्त्वापस्तम्बः—'न समावृत्ता वपेयुरन्यत्र विहारादित्येके।' विहारो दर्शादियागः तेन विना समावृत्ता गृहस्था न वपेयुरित्यर्थः।

जो आपस्तंब ने कहा है—दर्शादियाग के बिना गृहस्थ वपन न करावें—यह अर्थ है।

यच्च—वृथा छिनत्ति यः केशान् तमाहुर्ब्रह्मघातिनम्। इति, तत्—केशश्मश्रु धारयतामग्र्या भवति सन्ततिः। इति दानधर्मोक्तकाम्यपरम्। अनुभाविनः पुत्रादय एवेत्येके,

जो व्यर्थ में बालों को कटाता है उसको ब्रह्मघाती कहते हैं। वह–केश और श्मश्रु को धारण करते हैं उनकी सन्तान मुख्य होती है। यह दानधर्म में कहा हुआ काम्यपरक है। अनुभावि—माने पुत्र आदि ही होतेहैं—यह कोई कहते हैं।

पुत्रः पत्नी च वपनं कुर्यादन्ते यथाविधि। पिण्डदानोचितोऽन्योऽपि कुर्यादित्थं समाहितः। इत्यपरार्के व्यासोक्तेः।

पुत्र और पत्नी आशौचान्त में यथाविधि वपन (मुण्डन) करावें अन्य भी पिण्ड देने योग्य मनुष्य इसप्रकार सावधानी से वपन करावें—यह अपरार्क में व्यास ने कहा है।

(जो यह कहा है—सूतके मृतके क्षौरं न कुर्याद्दशमेऽह्नि यः। तस्याशौचं भवेन्नित्यं पितरो नरके स्थिताः॥—यह वचन निर्मूल है। समूलपक्षमें तो अनुभाविविषयता से संकुचित है। सूतके मृतके-इसका अर्थ यों है—सूतक और मरणनिमित्त आशौच में।)

यत्तु मिताक्षरायाम् (प्राय० श्लो० ४०५ श्लो० १६)—द्वितीयेऽहनि कर्तव्यं क्षुरकर्म प्रयत्नतः। तृतीये पञ्चमे वापि दशमे वाऽऽप्रदानतः॥ इति। आप्रदानतः इति चतुर्थादीनि। तत्प्रथमदिनेऽसंभवे ज्ञेयम्।

जो मिताक्षरामें कहा है—दूसरे रोज प्रयत्न से क्षुरकर्म करे। तीसरे, पांचवे या दशमदिन पिण्ड दान की समाप्तितक करे। आप्रदानतः—माने चतुर्थ दिन आदि में (एकादशाहतक करे)। वह भी प्रथमदिन असंभव में जानना चाहिये।

अलुप्तकेशो यः पूर्वं सोऽत्र केशान्प्रवापयेत्। द्वितीयेऽह्नि तृतीयेऽह्नि पञ्चमे सप्तमेऽपि वा॥ यावच्छ्राद्धं प्रदीयेत तावदित्यपरं मतम्॥ इति माधवीये मदनरत्ने बौधायनोक्तेः। मदनपारिजाते तु दशमे प्रथमे समुच्चय उक्तः।

दाहाङ्गभूत जिसने केशों को पहले नहीं मुण्डवाया हो वह बालों को कटवा दे। दूसरे दिन, तीसरे दिन, पांचवें दिन या सातवें दिन जब श्राद्ध दिया जाय तब तक ही मुण्डवा दे-यह दूसरा मत है-यह माधवीय में और मदनरत्न में बौधायन ने कहा है। मदनपारिजात में तो दशवें और पहले दिन में समुचय कहा है।

यत्तु—दशमं पिण्डमुत्सृज्य रात्रिशेषे शुचिर्भवेत्। इति तदेकादशाहश्राद्धाङ्गविप्रनिमन्त्रणार्थं ज्ञेयम्।

जो यह कहा है—दशवें पिण्ड का त्याग कर रात के शेष में शुद्ध होता है। वह एकादशाहश्राद्धांग विप्रनिमन्त्रार्थ जानना चाहिये।

(एकादशाहकृत्यनिरूपणम्)

अथैकादशाहः। मनुः (५।९९)—विप्रः शुध्यत्यपः स्पृष्ट्वा क्षत्रियो वाहनायुधे।
वैश्यः प्रतोदं रश्मीन्वा यष्टिं शूद्रः कृतक्रियः॥

मनु ने कहा है—(ब्राह्मण आदियों को जितना आशौच होता है उतने समय को बिता कर स्नान करे। तदनन्तर) ब्राह्मण (हाथ से) जल का स्पर्श कर शुद्ध होता है। क्षत्रिय हस्त्यादिवाहन और खड्गादिअस्त्र का स्पर्श करे। वैश्य प्रतोद (बलीवर्दादिताडनरज्जु, चाबुक, कोडा) या रश्मी (घोडा बांधने की रस्सी) को और शूद्र लाठी का स्पर्श करे तो शुद्ध होता है।

(दशगात्रश्राद्धक्रम)

अन्धतामिश्रनामकनरक०	तामिस्त्रनरकतार०	महारौरवनरकता०	योनिपुंसनामकनरकतार०	रौरवनामकनरकतारणार्थ	
जानुजंघापादपूरक	नाभिलिंगगुदपूरक	गलांसभुजवक्षःपूरक	कर्णाक्षिनासिकापूरक	शिरःपूरकप्रथमपिण्ड	
(पांचवेंदिन)	(चतुर्थदिन)	(तीसरेदिन)	(दूसरेदिन)	(प्रथमदिन)	
✳	✳	✳	✳	✳	वेदी–पिण्ड के लिये
✳	✳	✳	✳	✳	अवनेजनपात्रही प्रत्यवनेजन बाद में होते हैं
✳	✳	✳	✳	✳	पिण्डदान ।

कुंभीपाकनामकनरक	स्वमांसभक्षणनामकनरक	पुरीषभक्षणनामकनरक	अमेध्यकृमिसंपूर्णनामकनरक	संभ्रमनामकनरक	
पूर्णत्वतृषतातुद्विपर्ययपूरक	वीर्यपूरक	दन्तलोमादिपूरक	सर्वनाडीपूरक	सर्वमर्मपूरक	
(दशवेंदिन)	(नवेंदिन)	(आठवेंदिन)	(सातवेंदिन)	(छठेंदिन)	
✳	✳	✳	✳	✳	(वेदी)
✳	✳	✳	✳	✳	अवनेजनपात्र बादमें प्रत्यवनेजन हो जाते हैं ।
✳	✳	✳	✳	✳	पिण्ड

नोट—प्रथम दिन पिण्डपर एक तिलतोयाञ्जलि (अर्थात्—तिलमिश्रितजल की अंजलि) दे । दूसरे दिन दो, तीसरेदिन तीन, चौथेदिन चार, पांचवेंदिन पांच, छठेदिन छः, सातवेंदिन सात, आठवेंदिन आठ, नवेंदिन नौ और दशवें दिन दश दे । उसीप्रकार—तिलतोयपूर्णपात्र (सकोरे में तिलमिश्रितजल) दे । उसका क्रम यों है—प्रथमदिन एक, दूसरेदिन दो, तीसरेदिन तीन, चौथेदिन चार, पांचवेंदिन पांच, छठेंदिन छः, सातवेंदिन सात, आठवेंदिन आठ, नवेंदिन नौ और दशवें दिन दश दे । तदनन्तर आजकल दुग्धपात्र, जलपात्र, माल्य और दीपक भी देते हैं । ये पिण्ड सद्यःशौच में भी 'आशौचस्य ह्रासेऽपि पिण्डान् दद्याद्दशैव तु' दश ही होते हैं । तीनदिन की प्रक्रिया में भी दश ही होते हैं । ये पिण्ड विषमदिन में होते हैं । इसमें वार आदि का भी विचार किया जाता है ।

१—कुछ मारवाड़ी समाज में ऐसी प्रथा है कि—दशवें दिन ही (अर्थात्—आशौचावस्था में ही) ब्राह्मण-भोजन के लिए कारीगरों के द्वारा मिष्टान्नादि को बनवाना प्रारम्भ करा देते हैं । बाद में सूतककाल से निर्मित उसी अन्न से ब्राह्मणों को भोजन करवाते हैं । इसका मूल वही जानते होंगे । वे लोग दशवें दिन या और पक्षान्तर के सूतक में ऐसा ही कुत्सित व्यवहार करते हैं । २ – और सूतकावस्था में (अर्थात्—दशदिन के भीतर ही) कुछ हरियाणा आदि प्रान्त के बिखरे हुए मारवाड़ी ब्राह्मणों द्वारा गायत्री आदि का जप भी करवाते हैं । ब्राह्मण भी लोभ के वशीभूत होकर करते हैं । इसका शास्त्रीय मूल करानेवाले तथा करनेवाले जानते होंगे । ३—आजकल किसी गृहस्थ आदि के मरने पर पांचं आदमी मिलकर अलग अलग लौकिकाग्नि को मृतक के शरीर पर देते हैं । तदनन्तर उसका पिण्डदान आदि भी नहीं करते हैं । इसका मूल मैंने अपने पूज्यतम स्वर्गीय श्री पिताजी से पूछा था उन्होंने कहा था कि इसका मूल महानिबन्ध आदि में मिलता नहीं है । मैंने भी निबन्धों में देखा फिर भी मैं अन्वेषण में तत्पर हूँ । आपलोग भी अन्वेषण करें ।

शुद्धितत्त्वे देवलः—अघाहःसु निवृत्तेषु सुस्नाताः कृतमङ्गलाः ।
आशौचाद्विप्रमुच्यन्ते ब्राह्मणान् स्वस्तिवाच्य च ॥

शुद्धितत्त्व में देवल ने कहा है—पापों के दिन हट जाने पर स्नान और मंगल को कर ब्राह्मणों से स्वतिवाचन कराने से अशौच से ब्राह्मण छूट जाते हैं।

याज्ञवल्क्यः (आ० चा० श्लो० २५६)—(मृतेऽहनि तु कर्तव्यं प्रतिमासं तु वत्सरम् । प्रतिवत्सरं चैव) आद्यमेकादशेऽहनि ॥ क्षत्रियाद्यैराशौचेऽप्येकादशेह्नि श्राद्धं कार्यम् । आद्यं श्राद्धमशुद्धोऽपि कुर्यादेकादशेऽहनि । कर्तुस्तात्कालिकी शुद्धिरशुद्धः पुनरेव सः ॥ इति हेमाद्रौ शङ्खोक्तेः ।

याज्ञवल्क्य ने कहा है—आद्यश्राद्ध को ग्यारहवें दिन करे। क्षत्रिय आदि को भी आशौच में भी ग्यारहवें दिन श्राद्ध को करना चाहिये। हेमाद्रि में शंख ने कहा है—अशुद्धावस्था में भी मनुष्य आद्यश्राद्ध को ग्यारहवें दिन करे। कर्ता की तात्कालिक शुद्धि होती है फिर वही मनुष्य अशुद्ध हो जाता है।

पैठीनसिः—एकादशेऽह्नि यच्छ्राद्धं तत्सामान्यमुदाहृतम् ।
चतुर्णामपि वर्णानां सूतकं तु पृथक् पृथक् ॥

पैठिनसि का वचन है—ग्यारहवें दिन जो श्राद्ध होता है वह सामान्य कहा जाता है। चारों वर्णों का सूतक भी अलग-अलग होता है।

यत्तु मरीचिः—आशौचान्ते ततः सम्यक् पिण्डदानं समाप्यते । ततः श्राद्धं प्रदातव्यं सर्ववर्णेष्वयं विधिः ॥ इति । तत्सर्ववर्णानां दशाहाशौचपरम् ।

जो मरीचि में कहा है—तदनन्तर आशौच की समाप्ति के अन्त में अच्छीतरह से पिण्डदान को समाप्त करता है। फिर श्राद्ध को देना चाहिये—यह सब वर्णों में विधि है। वह सर्वों का दशाह आशौच परक है।

यत्तु विष्णुः—'अथाशौचापगमे' इति । यच्च गौडग्रन्थे हारीतः—'श्वोभूते एकोद्दिष्टं कुर्यात् ।' यच्च बैजवापः—ऊर्ध्वं दशम्या अपरेद्युः' इति, तद्विप्रविषयम् । एतेन दशमपिण्डोत्कर्षपक्षे अवयवपिण्डासमाप्तौ कथमेकादशाहे श्राद्धमिति मूर्खोक्तिः परास्ता । वचनादाशौचमध्य इव तत्राप्यविरोधात् ।

जो विष्णु ने कहा है—आशौच की समाप्ति पर दे। जो गौडग्रन्थ में हारीत ने कहा है—प्रातःकाल होने पर एकोद्दिष्ट करे। जो बैजवाप ने कहा है दशवीं रात के बाद दूसरे दिन करे—यह ब्राह्मण विषयक है। इससे दशवें [1]पिण्ड के उत्कर्ष (अपकर्ष) पक्ष में अवयव पिण्ड की असमाप्ति में कैसे ग्यारहवें दिन श्राद्ध होगा—यह मूर्ख की उक्ति परास्त हुई। बचन से आशौच के मध्य के सदृश वहाँ पर भी विरोध नहीं है।

भविष्ये—एकादशेभ्यो विप्रेभ्यो दद्यादेकादशेऽहनि ।
भोजनं तत्र चैकस्म ब्राह्मणाय महात्मने ।

भविष्यपुराण में कहा है—वहाँ पर ग्यारहवें दिन एकादश ब्राह्मणों के लिए दान दे और एक महात्मा ब्राह्मण के लिये भोजन दे।

१—ब्राह्मणे दशपिंडाः स्युः क्षत्रिये द्वादश स्मृताः । वैश्ये पंचदश प्रोक्ताः शूद्रे त्रिंशत्प्रकीर्तिताः । इत्येको गात्रपूरकपिंडपक्षः । अपरश्च—सर्वेभ्यः प्रेतवर्णेभ्यः पिंडान् दद्याद्दशैव तु । पारस्करमते—राज्ञस्तु दशमः पिंडो द्वादशेऽहनि दीयते । वैश्यस्य पञ्चदशमे ज्ञेयस्तु दशमस्तथा ॥ शूद्रस्य दशमः पिंडो मासे पूर्णेऽह्नि दीयते ।

यत्तु मात्स्ये—एकादशेऽहनि तथा विप्रानेकादशैव तु। क्षत्रादिः सूतकान्ते तु भोजयेदयुजो द्विजान्॥ इति। तद् रुद्रगणश्राद्धपरमिति मदनपारिजातः। गौडास्त्वस्माद्वचनात्क्षत्रियादीनामाशौचान्त एवेत्याहुः।

जो मत्स्यपुराण में कहा है—ग्यारहवें दिन में एकादश ब्राह्मणों को ही और क्षत्रिय आदि सूतकान्त में अयुग्म ब्राह्मणों को भोजन करावें। वह रुद्रगणश्राद्धपरक है—यह मदनपारिजात में कहा है। (उचित तो यह है—यह वचन आद्यश्राद्ध पर कही है। ब्राह्मण एकादशाह के आद्यश्राद्ध में ग्यारह ब्राह्मणों को भोजन करावे ही। क्षत्रिय आदि तो पक्के अन्न से ब्राह्मण भोजन न करावे-आमान्न दे। सूतकान्त में पकाकर भोजन करावें।) गौड कहते हैं—इस वचन (मत्स्यपुराणवचन) से क्षत्रिय आदियों का आशौचान्त में ही भोजन कहा है।

रामायणेऽपि—समतीते दशाहे तु कृतशौचो यथाविधि। चक्रे द्वादशिकं श्राद्धं त्रयोदशिकमेव च॥ द्वादशिकं द्वादशाहेन निर्वर्त्यं त्रयोदशाहश्राद्धम्। त्रयोदशिकं चतुर्दशाहविधेयं सपिण्डनपाथेयादि। क्षत्रियाणां द्वादशाहाशौचे त्रयोदशे महैकोद्दिष्टम् चतुर्दशे सपिण्डनम्। द्विविधवाक्यादेकादशाहाशौचान्तरयोर्विकल्प इत्येके। सद्यःशौचादौ युद्धहतादेरेकादशाहे अन्येषामाशौचान्त इति वयम्।

रामायण में भी कहा है—दशदिन व्यतीत होने पर यथाविधि शौच को कर द्वादशिक (द्वादशाह) और त्रयोदशिक (त्रयोदशाह) श्राद्ध ही किया। यहाँ द्वादशिकपद से बारहदिन के व्यतीत होने पर त्रयोदशाहश्राद्ध करे। त्रयोदशिकम् से चौदहवें दिन करने योग्य सपिण्डन, पाथेय आदि। क्षत्रियों का तो बारहदिन के आशौच बीतने पर तेरहवें दिन में महैकोद्दिष्ट और चौदहवें दिन सपिण्डन करे। दो प्रकार के वाक्य से एकादशाह आशौच अन्तर में विकल्प है—यह कोई कहते हैं। हम कहते हैं—सद्यःशौच के आदि में (आदिपद से तीन और एक का ग्रहण है—तृतीये तूदकं दत्त्वा चतुर्थे श्राद्धमाचरेत्।) युद्धमें मरों का ग्यारहवें दिन और अन्यों का तो आशौच के अन्त में करे—यह हम (कमलाकर भट्ट) कहते हैं।

कौर्मे—एकादशेऽह्नि कुर्वीत प्रेतमुद्दिश्य भावतः। द्वादशे वाऽह्नि कर्तव्यमनिन्द्येऽप्यथवाऽहनि॥ निन्द्यं प्रेतक्रियाकाले उक्तम्। एकादशे तु न निषेध इत्युक्तं प्राक्।

कूर्मपुराण में कहा है—प्रेत के उद्देश्य की भावना (निमित्त) से ग्यारहवें दिन, बारहवें दिन या अनिन्द्य दिन में श्राद्ध करे। निन्द्य तो प्रेतक्रिया के समय को कहा है। ग्यारहवें दिन निषेध नहीं है यह पहले कह चुके हैं।

बृहस्पतिः—वस्त्रालङ्कारशय्यादि पितुर्यद्वाहनादिकम्।
गन्धमाल्यैः समभ्यर्च्य श्राद्धभोक्त्रे तदर्पयेत्॥

बृहस्पति ने कहा है—पिता के वस्त्र, अलंकार, शय्या-वाहन आदियों की गन्ध और मालाओं से पूजन कर श्राद्धभोक्ता को अर्पण करे।

श्रोत्रिया भोजनीयास्तु नव सप्त त्रयोदश। ज्ञातयो बान्धवा निःस्वास्तथा चातिथयोऽपरे॥

नौ, सात या तेरह वेदपाठी ब्राह्मणों को भोजन करावे और जातिवाले, बान्धव, निर्धन तथा अतिथियों को भोजन करावे। कहीं 'ज्ञातयः' की जगह—'जातयः' ऐसा भी पाठ मिलता है।

देवयाज्ञिकनिबन्धे—एकादशसु विप्रेषु प्रेतमावाह्य भोजयेत्।
तत्राद्याय च शय्यादि दद्यादाद्यमिति स्मृतम्॥

देवयाज्ञिकनिबन्ध में कहा है—ग्यारह ब्राह्मणों में प्रेत का आवाहन कर भोजन करावे। उसमें पहले को शय्या आदि दे–इसलिए 'आद्य' कहा है। (औरों को यथाशक्ति दक्षिणा ही दे।)

विष्णुः—'एकवन्मन्त्रानूहेतैकोद्दिष्टे' बहुवचनान्तानेकवचनान्तान् वदेदित्यर्थः। एतद्दृष्टार्थत्वे।

विष्णु ने कहा है—एकोद्दिष्टश्राद्ध में मन्त्रों में एक वचन से ऊह न करे। अर्थात्—बहुवचनान्त को बहुवचन और एक वचन को एक वचन कहे—यह अर्थ है। यह दृष्टार्थ में है।

(विघ्ने गौणकालकथनम्)

अस्य विघ्ने गौणकालमाह हेमाद्रौ बौधायनः--एकोद्दिष्टं श्व एव स्याद् द्वादशेऽहनि वा पुनः । अत ऊर्ध्वमयुग्मेषु कुर्वीताहःसु शक्तितः ॥ अर्धमासेऽथवा मासि ऋतौ संवत्सरेऽपि वा ॥ इति ।

इसके विघ्न में गौणकाल हेमाद्रि में बौधायन ने कहा है-एकोद्दिष्ट कल ही होता है या बारहवें दिन होता है। इसके बाद अयुग्म दिनों से अपनी शक्ति से करे। या छ मास में, ऋतु (दो महिने की एक ऋतु होती है) में या एक साल में करे।

(एकोद्दिष्टश्राद्धे पाकस्य विचारः)

तत्रैव लघुहारीतः--एकोद्दिष्टं तु कुर्वीत पाकेनैव सदा स्वयम् ।
अभावे पाकपात्राणां तदहः समुपोषणम् ॥

वहीं पर लघुहारीत ने कहा है—सदा स्वयं पाक से ही एकोद्दिष्ट करे। पाकपात्रों के अभाव में उस दिन उपवास करे।

(ब्राह्मणं भोजयेत्-अस्मिन् श्लोके विचारः)

गोभिलः--ब्राह्मणं भोजयेदाद्ये होतव्यमनलेऽथवा ।
पुनश्च भोजयेदेकं द्विरावृत्तिर्भवेदिति ॥

गोभिल ने कहा—आद्यश्राद्ध में ब्राह्मण को भोजन करा दे या अग्नि में होम करे। फिर एक-एक ब्राह्मण को भोजन करा दे—इससे द्विरावृत्ति होती है।

एतदाद्यमासिकाद्याब्दिकयोः सिद्ध्यर्थमिति भट्टाः । (तेन महैकोद्दिष्टं षोडशश्राद्धाद्भिन्नमेव । अत एवाद्यम् सर्वैकोद्दिष्टप्रकृतिभूतमेकादश इति विज्ञानेश्वरः । अन्ये त्वाद्यमासिकाद्विकयोः 'आद्यमेकादशेऽहनि' इति नियमादभेदमाहुः । द्वयोस्तन्त्रत्वबाधार्थं गोभिलीयमित्यन्ये ।)

भट्टों ने कहा है—यह आद्यमासिकश्राद्ध और आब्दिक (वार्षिक) श्राद्धों की सिद्धि के लिए है। इससे महैकोद्दिष्टश्राद्ध षोडशश्राद्ध से भिन्न ही है। इसलिये आद्यश्राद्ध सब एकोद्दिष्टप्रकृतिभूत (मूल) एकादश है-यह विज्ञानेश्वर ने कहा है। अन्य तो आद्यमासिक और आद्बिक को आद्य को ग्यारहवे दिन करे-इस नियम से अभेद कहते हैं। दोनों का तन्त्रत्व-बाधार्थ है यह गोभिलीय में कहा है-यह अन्य कहते हैं।)

(युद्धहतादौ विचारः)

युद्धहतादौ तु हेमाद्रौ पृथ्वीचन्द्रोदये पैठीनसिः—सद्यःशौचेऽपि दातव्यं प्रेतस्यैकादशेऽहनि । स एव दिवसस्तस्य श्राद्धशय्यासनादिषु ॥ एवमेकाहादौ । अतोऽत्र द्वितीयेऽह्नि एकादशाहं वदन् ढोण्ढुः शूलपाणिः स्मर्तगौडाश्च परास्ताः । एतेन 'आद्यमेकादशेऽहनि' इत्याशौचानन्तरदिनपरमिति विष्णूक्तेः प्रागुक्तशङ्खादिवचनानां चानाकरत्वादिति वदन्तः कल्पतरुवाचस्पतिप्रमुखाः सर्वे निबन्धविरोधादुपेक्ष्याः ॥

युद्ध आदि में मृतकों का तो हेमाद्रि में पृथ्वीचन्द्रोदय में पैठीनसि ने कहा है—सद्यःशौच में भी प्रेत का ग्यारहवें दिन दे। वही उस प्रेत का दिन श्राद्ध, शय्या, आसन आदियों में है।

इसीप्रकार एकदिन आदि में जानना चाहिये। इसलिए यहाँ पर दूसरे दिन एकादशाह को कहता हुआ ढौण्ढु, शूलपाणि और स्मार्तगौड परास्त हो गये। इससे आद्यश्राद्ध को ग्यारहवेंदिन करे। यह वचन आशौच के बाद का दिन परक है-यह विष्णु के कहने से और पहले कहे हुए शंख आदि के वचनों का अनाकरत्व है—यह कहते हुए कल्पतरु, वाचस्पति आदि प्रमुख-सब महानिबन्धकारों के विरोध से उपेक्षणीय हैं।

उशनाः--त्र्यहाशौचेऽपि कर्तव्यमाद्यमेकादशेऽहनि ।
अतीतविषये सद्यस्त्र्यहोर्ध्वं वा तदिष्यते ॥

उशना ने कहा है–तीनदिन के आशौच में भी ग्यारहवें दिन आद्यश्राद्ध को करना चाहिये। अतीत विषय (व्यतीत विषय) में सद्यः या तीन के बाद आद्यश्राद्ध करे।

(एकोद्दिष्टे दैवहीनमेकार्घ्यादिविचारः)

याज्ञवल्क्यः (आ० चा० श्लो० २५१, ५२)––एकोद्दिष्टं दैवहीनमेकार्घ्यैकपवित्रकम्।
आवाहनाग्नौकरणरहितं त्वपसव्यवत्॥

एकोद्दिष्ट (एक उद्दिष्टो यस्मिन् श्राद्धे तदेकोद्दिष्टमिति कर्मनामधेयम्) नाम का श्राद्ध वैश्वदेव से रहित एक अर्घ्यपात्र और एक कुशपवित्र से होता है। आवाहन तथा अग्नौकरण नहीं होता है और अपसव्य के सदृश होता है।

उपतिष्ठतामित्यक्षय्यस्थाने विप्रविसर्जने। अभिरम्यतामिति वदेद् ब्रुयुस्तेऽभिरताः स्म ह॥

अक्षय्योदक के समय 'उपतिष्ठताम्'––कहे। ब्राह्मण विसर्जन के समय––'अभिरम्यताम्'––कहें। ब्राह्मण भी 'अभिरताः स्मः' यों कहें।

इत्यग्नौकरणनिषेधोऽन्यपरः। बह्वृचानां सर्वैकोद्दिष्टेषु तद्भवत्येवेत्युक्तं प्राक्। स्वदितमिति तृप्तिप्रश्न इति कात्यायनः।

प्रथमे पात्रे संस्रवानित्यस्य तृतीयेनापिधानस्य च बाधान्न पात्रन्युब्जतेति शूलपाणिः। प्रचेताः–नात्र पात्रालम्भो नाशिषः प्रार्थयेत्।

यह अग्नौकरण निषेध अन्यपरक है। बह्वृच-आश्वलायनसूत्रानुसारियों के यहाँ तो सब एकोद्दिष्टों में अग्नौकरण होता है यह पहले (अर्थात्––पार्वणे श्राद्धं काम्ये आभ्युदयिके एकोद्दिष्टे च इति चत्वारि श्राद्धानि प्रक्रम्याग्नौकरणादीनां समानविधानादित्यादि) कह चुके हैं। स्वदितम्—यह तृप्तिप्रश्न कात्यायन ने कहा है। पहले पात्र में संश्रवों को रखे इसका तीसरे से ढकने की बाधा से पात्र को औंधा न करे यह शूलपाणि ने कहा है। प्रचेता ने कहा है–पात्र का आलंभन (स्पर्श) न करे और आशीर्वाद की प्रार्थना न करे।

(अत्र विशेषो हेमाद्रौ)

अत्र विशेषो हेमाद्रौ वाराहे––श्मश्रुकर्म तु कर्तव्यं नखच्छेदस्तथैव च।
स्नपनाभ्यञ्जनं दद्याद्विप्राय विधिपूर्वकम्॥

यहाँ पर विशेष हेमाद्रि में वाराहपुराण के वचन से कहा है–श्मश्रुकर्म और वैसे ही नखच्छेदन को करना चाहिये। स्नपन तथा अभ्यञ्जन को विधिपूर्वक ब्राह्मण के लिए दे।

तथा––उपवेश्यासने भद्रे छत्रं तत्र प्रकल्पयेत्। पश्चादुपानहौ दद्यात्सर्वाण्याभरणानि च॥

और हेभद्रे, आसन पर बैठाकर वहाँ पर छत्र को दे। बाद में जूतों को और सुवर्णादि के आभरण आदि को दे।

विष्णुः—'दक्षिणान्तं श्राद्धमुक्त्वा दत्ताक्षय्योदकेषु चतुरङ्गुलपृथ्वीस्तावदन्तरालास्तावदधः खाता वितस्त्यायतास्तिस्रः कर्षूः कुर्यात्। कर्षूणां समीपेऽग्नित्रयमाधाय परिस्तार्यैकैकस्मिन्नाहुतित्रयं जुहुयात् सोमाय पितृमते स्वधा नमोऽग्नये कव्यवाहनाय यमायाङ्गिरस्वते इति।' स्थानत्रये प्राग्वत् पिण्डनिर्वपणं दधिमधुघृतमांसैः कर्षूत्रयं पूरयित्वैतत्त इति जपेत्। शेषं नवश्राद्धवत्। अत्र साग्नेरप्यन्ते वैश्वदेव इत्युक्तं प्राक्। इदं दशाहकर्त्रा पुत्रेण वा कार्यमित्युक्तम्।

विष्णु ने कहा है—दक्षिणान्तश्राद्ध को करके दिए हुए अक्षय्योदकों के स्थानों में चार अंगुल पृथ्वी के बीच की दूरी से उतना ही नीचे बिलस्तभर चौडा खोद कर तीन कर्षू करे। कर्षुओं के समीप में तीन अग्नियों का स्थापन कर कुशाओं से परिस्तरण कर एक-एक में तीन आहुति दे। प्रथम आहुति-सोमाय पितृमते स्वधा। नमोऽग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा। यमायाङ्गिरस्वते स्वाहा-पूर्ववत् तीनों

स्थानों में पिण्ड निर्वपण (पिण्डदान) करे। दधि, मधु, घृत और मांसोमें तीन कर्षूओं को पूरण कर [1]'एतत्ते' इस मन्त्र का जप करे। अवशिष्ट नवश्राद्धवत् होता है। यहाँ पर साग्निक को भी अन्त में वैश्वदेव कहा है—यह पहले कह चुके हैं। यह दशाहकर्ता या पुत्र करे-ऐसा कहा है।

क्रियानिबन्धे गृह्यकारिकायाम्—तिलोऽसि प्रेतदैवत्यः प्रेतं लोकान् हिनोन्तकम्।
मन्त्रमुक्त्वा तिलानेवं प्रक्षिपेदर्घ्यपात्रतः ॥

क्रियानिबन्ध में गृह्यकारिका का वचन है—'तिलोऽसि' इस मन्त्र को कहकर अर्घ्यपात्र से तिलों का ही प्रक्षेप करे।

दक्षिणामुदकुम्भं च सान्नं दत्त्वा तथैव गाम्। तस्मै दद्याद्भुक्तशेषं तद्भाण्डान्यपि भाजनम्।

अन्न के सहित दक्षिणा तथा जल का घड़ा दे। वैसे ही गौ को उसके लिए दे। भुक्तशेष (श्राद्धशेष भोजन का अभाव है) भोजन का शेष (बचा हुआ) उसके भाण्ड (पात्र, बर्तन, थाली, कटोरी, गिलास आदि) और भोजन भी ब्राह्मण को दे।

विप्राभावेऽग्नावेकोद्दिष्टम्, अग्नौ पायसं श्रपयित्वाऽऽज्यभागान्ते तदग्रे श्राद्धप्रयोगं कृत्वाऽग्नौ प्रेतमावाह्य गन्धाद्यैः संपूज्य 'पृथिवी ते पात्रम्' इत्यादिनाऽन्नं सङ्कल्प्य 'उदीरतामवर' इत्यष्टाभिश्चतुरावृत्त्या द्वात्रिंशदाहुतीर्हुत्वा पिण्डदानादिश्राद्धं समापयेत्। इति।

ब्राह्मण के अभाव में अग्नि में ही एकोद्दिष्ट करे। अग्नि में खीर को पकाकर आज्यभाग के अन्त में उसके आगे श्राद्धप्रयोग को कर अग्नि में प्रेत का आवाहन कर गन्ध आदियों से पूजन कर (पृथिवी ते पात्रम्) इत्यादि से अन्न का संकल्प कर [2]'उदीरतामवर' इस आठ मन्त्रों से चार-चार आवृत्तियों से बत्तीस वार आहुतों को देकर पिण्डदान आदि श्राद्ध को समाप्त करे।

याज्ञवल्क्यः (आ० या० श्लो० २५४)—एतत्सपिण्डीकरणमेकोद्दिष्टं स्त्रिया अपि।

याज्ञवल्क्य ने कहा है-यह सपिण्डीकरण और एकोद्दिष्ट स्त्रियों के लिये भी है।

(वृषोत्सर्गे विचारः)

अथ वृषोत्सर्गः। स च नित्यः काम्यश्च, न करोति वृषोत्सर्गं सुतीर्थे वा जलाञ्जलिम्। न ददाति सुतो यस्तु पितुरुच्चार एव सः॥ उच्चारः=पुरीषम्।

अब [3]वृषोत्सर्ग कहते हैं। वह नित्य और काम्य है। मत्स्यपुराण और कूर्मपुराण में कहा है—

१—एतत् त इन्द्र वीर्यं गीर्भिर्गृणन्ति कारवः। ते स्तोभन्त ऊर्जमावन् घृतश्चुतं पौरासो नक्षन् धीतिभिः॥ (ऋ० ८।५४।१)।

२—उदीरतामवर उत् परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः। असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु १ इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपरास ईयुः। ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु विक्षु २ आहं पितॄन् त्सुविदत्राँ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः। बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः ३ बर्हिषदः पितर ऊत्य१र्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम्। त आ गतावसा शन्तमेनाऽथा नः शं योररपो दधात ४ उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु। त आ गमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ५ आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभि गृणीत विश्वे। मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद्व आगः पुरुषता कराम ६ आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय। पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्र यच्छत त इहोर्जं दधात ७ ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासो ऽनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः। तेभिर्यमः संरराणो हवींष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु (ऋ० १०।१५।१-८)। एकोद्दिष्टे तु संप्राप्ते विप्राभावे कथं भवेत्। उदीरतामिति मन्त्रेण जुहुयाद् घृतपायसम्॥ 'स्वगृह्योक्तविधानेन सूक्तेन पुरुषस्य च' इति। 'उदीरतामवर उत्परास' इत्यादीनामष्टानामृचां चतुरावृत्त्या द्वात्रिंशदाहुतयो भवन्ति। पुरुषसूक्तस्य षोडशर्चस्य द्विरावृत्त्या तथा भवन्ति। यथास्वकुलाचारमिह मन्त्रव्यवस्था—इति स्मृतिमुक्ताफले पृ० ६५०।

३—प्रचेता—विहिते च वृषोत्सर्गे त्वलाभे शक्त्यसंभवे। प्रेतत्वस्य विमोकार्थं रुद्रानेकादशाशयेत्॥ बौधयनश्च (३।१७।११) 'तासां पयसि पायसं श्रपयित्वा पृथगेकादश ब्राह्मणान् भोजयेत्। व्यासोऽपि—एकादशभ्यो विप्रेभ्यो दद्यादेकादशेऽहनि। रुद्रानुद्दिश्य कर्तव्यं रुद्रप्रीतिकरं हि तत्॥ शातातपः—एकादशस्तु विप्रेषु रुद्रानुद्दिश्य भोजयेत्। प्रेतत्वस्य विमोकार्थं मधुक्षीरघृतान्नैः॥

जो पुत्र वृषोत्सर्ग को या अच्छे तीर्थ में जल की अञ्जलि नहीं देता है वह पिता का विष्ठा ही है। उच्चार माने—पुरीष।

एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत्। यजेत वाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत्॥ इति मात्स्यकौर्मोक्तेः,

मत्स्यपुराण और कूर्मपुराण में कहा है—बहुत से पुत्रों की इच्छा करे उनमें यदि एक भी पुत्र गया में जाता है या अश्वमेधयज्ञ या नीलबैल का उत्सर्ग (त्याग) करता है वही पुत्र माना जाता है।

(वृषोत्सर्गाकरणे महद्दोषकथनम्)

एकादशेऽह्नि प्रेतस्य यस्य नोत्सृज्यते वृषः। प्रेतत्वं सुस्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि॥ इति षट्त्रिंशन्मते निन्दाश्रुतेः।

षट्त्रिंशन्मत में निन्दा सुनी है-ग्यारहवें दिन जिस प्रेतके लिए वृषका त्याग नहीं किया जाता है उसका सौ श्राद्ध करने पर भी प्रेतत्व बना रहता है।

(वृषोत्सर्गे महत्फलम्)

एवं कृत्वा ह्यवाप्नोति फलं वाजिमखोदितम्। यमुद्दिश्योत्सृजेन्नीलं स लभेत परां गतिम्॥ वृषोत्सृष्टः पुनात्येव दशातीतान् दशापरान्॥ इति देवीपुराणे भविष्यादौ फलश्रुतेश्च।

जो इसप्रकार करता है उसको निश्चित अश्वमेधयज्ञ का फल प्राप्त होता है जिसके उद्देश्य से नीलवृष का त्याग करता है वह परमगति को प्राप्त करता है---वृषोत्सर्ग करने से दश पीढी पिछली और दश पीढी आगे वाली पुरुषों की पवित्र ही होती है। यह देवीपुराण, भविष्यपुराण आदि में फलश्रुति है।

(वृषोत्सर्गकालः)

अयं द्वादशाहे उक्तो भविष्ये—चैत्र्यां वापि तृतीयायां वैशाख्यां द्वादशेऽह्नि वा। इति।

इसको बारहवें दिन भविष्यपुराण में कहा है-चैत्रमास की तृतीया या वैशाखमास की तृतीया या बारहवें दिन वृषोत्सर्ग करे। (कार्तिक्यामथवा माघ्यामयने वा युधिष्ठिर)।

विष्णुधर्मे तु मृताहेऽप्युक्तः—विषुवत् द्वितये चैव मृताहे बान्धवस्य च। इति।

विष्णुधर्म में तो मरणदिन में भी कहा है—दोनों विषुवत् (तुला और मेष) (उत्सृजेन्नीलकण्ठं वै कौमुद्याः समागमे। कौमुदी-आश्वयुजी-पूर्णिमा) की संक्रान्तियों में और बान्धवों के मरणदिन में वृषोत्सर्ग[1] करे।

(अयं गृहे न कार्यः)

अयं गृहे न कार्यः।

न गृहे मोचयेन्नीलं कामयन् पुष्कलं फलम्। इति कालिकापुराणात्।

इसको घर में न करे।

कालिकापुराण का वचन है—अधिक फल की इच्छा करता हुआ प्राणी घर में नील (चरणाश्च मुखं पुच्छं यस्य श्वेतानि गोपतेः। लाक्षारससवर्णं तु तं नीलमिति निर्दिशेत्॥) वृष का त्याग न करे।

(अत्र वृद्धिश्राद्धविचारः)

कामधेनौ—वत्सराभ्यन्तरे पित्रोर्वृषस्योत्सर्गकर्मणि। वृद्धिश्राद्धं न कुर्वीत तदन्यत्र समारभेत्॥

कामधेनु में कहा है—एकसाल के मध्य में माता और पिता के वृषोत्सर्गकर्म में वृद्धिश्राद्ध न करे। उसको अन्यत्र प्रारंभ करे।

(नीलवृषलक्षणकथनम्)

तल्लक्षणं तु ब्राह्मे—लोहितो यस्तु वर्णेन मुखे पुच्छे च पाण्डुरः। श्वेतः खुरविषाणाभ्यां स नीलो वृष उच्यते॥ श्वेतवर्णस्य मुखादीनि श्यामानि श्यामस्य वा श्वेतानि यस्य सोऽपि नील उक्तो मात्स्यादौ।

१—पारस्करे— कृष्णताल्वोष्ठदशना रूक्षशृङ्गशफाश्च ये। अव्यक्तदन्ता ह्रस्वाश्च व्याघ्रभस्मनिभाश्च ये॥ ध्वांक्षगृध्र-सवर्णाश्च तथा मूषकसन्निभाः। कुब्जाः काणाश्च खञ्जाश्च केकराक्षास्तथैव॥ अत्यन्तश्वेतपादाश्च उद्भ्रान्तनयनास्तथा। नैते वृषाः प्रमोक्तव्या गृहे धार्याः कथञ्चन॥ तथा वत्सतर्योऽपि त्रिहायन्य एव।

उसका लक्षण ब्रह्मपुराण में कहा है—जिसका रंग लाल हो, मुख और पूँछ पाण्डु रंग हो खुर और सींग सफेद हों वह नीलवृष कहा जाता है। सफेद वर्ण के मुख आदि श्याम (काला) हों या श्याम मुख आदि जिसके सफेद हों वह भी नीलवृष मत्स्यपुराण आदि में कहा है।

(चतस्रो वत्सिकादिविचारः)

देवीपुराणे—चतस्रो वत्सिका भद्रा द्वे वा संभवतोऽपि वा।

देवीपुराण में कहा है—चार, (अयं हि गोपो मद्दत्तः सर्वासां पतिरुत्तमः। तुभ्यं च ता मया दत्ताः पत्न्यः सर्वा मनोरमाः॥) दो या जितनी संभव हो उतनी सुन्दर बछियाँ हों।

(वृषाभावे मृदादिना वृषोत्सर्गस्य निर्मूलत्वकथनादिकम्)

यत्तु पठन्ति—वृषोत्सर्जनवेलायां वृषाभावे कथञ्चन। मृद्भिः पिष्टैश्च दर्भैर्वा वृषं कृत्वा विमोचयेत्॥ न शक्यते वृषोत्सर्गो होमं वा तत्र कारयेत्॥ इति, तन्निर्मूलम्। तद्विधिर्हेमाद्रौ भट्टकृतौ च ज्ञेयः।

जो यह पढ़ते हैं—वृषोत्सर्जन के समय में किसीतरह वृष के अभाव में मृत्तिका, पिष्ट[1] (आंटा आदि) या कुशाओं से वृष को बनाकर त्याग करे। या वृषोत्सर्ग न कर सके तो वहाँ हवन ही करा दे। यह निर्मूल है। उसकी विधि हेमाद्रि और भट्टकृत ग्रन्थों में जानना चाहिये।

(वृषोत्सर्गात्पूर्वं विष्णुतर्पणे विचारः)

अत्र देवयाज्ञिकेन वृषोत्सर्गात्पूर्वं पुरुषसूक्तेन विष्णुरूपिप्रेतोद्देशेन विष्णुतर्पणमुक्तम्। तत्र मूलं चिन्त्यम्।

यहाँ पर देवयाज्ञिक ने वृषोत्सर्ग के पूर्व 'पुरुषसूक्त' से विष्णुरूपी प्रेत के उद्देश्य से विष्णुतर्पण कहा है। वहाँ पर मूल विचारणीय है।

(वृषोत्सर्गविधिकथनम्)

पारस्करः—सव्येन पाणिना पुच्छं समालभ्य वृषस्य तु। दक्षिणेनाप आदाय सतिलाः सकुशास्ततः॥ प्रेतगोत्रं समुच्चार्य अमुकस्मै इति ब्रुवन्। वृष एष मया दत्तस्तं तारयतु सर्वदा॥ सहेम सतिलं भूमावित्युच्चार्य विनिक्षिपेत्॥

पारस्कर ने कहा है—बायें हाथ से बैल की पूँछ को पकड़ कर दाहिने हाथ में जल, तिल और कुशाओं को ग्रहण कर प्रेत के गोत्र को उच्चारण कर अमुक के लिए यों कहता हुआ इस वृष को मैंने दिया उस प्रेत को सर्वदा तार दो। यों उच्चारण कर सुवर्ण और तिल को भूमि में छोड़ दे।

तथा—विधारयेन्न तं कश्चिन्न च कश्चन वाहयेत्। न दोहयेच्च ता धेनूर्न च कश्चन बन्धयेत्॥

और उस वृष को कोई न रखे न कोई लादे या हल आदि में जोत के कार्य में न ग्रहण करे और गौओं को कोई दोहन न करे न कोई बांधे।

(स्त्रीषु विशेषः)

स्त्रीषु विशेषः सङ्ग्रहे—पतिपुत्रवती नारी भर्तुरग्रे मृता यदि। वृषोत्सर्गं न कुर्वीत गां तु दद्यात्पयस्विनीम्॥ पतिपुत्रयोः साहित्यं विवक्षितम्। अन्वारोहणेऽपि गोदानमेवेत्युक्तं प्राक्। आशौचान्तरेऽपि वृषोत्सर्गाद्यमासिकशय्यादि दद्यादेवेत्युक्तम्।

स्त्रियों के लिए विशेष संग्रह में कहा है—पति और पुत्रवाली स्त्री यदि पति के आगे मर जाय तो वृषोत्सर्ग न करे किन्तु दूधवाली गौ को दे। यहाँ पर पति और पुत्र का साहित्य (समीपता) विवक्षित है। (पुत्र और पति के समक्ष मरने पर तो वृषोत्सर्ग नहीं होता है। पुत्र के अभाव में, पति के समक्ष मरने पर ही वृषोत्सर्ग न करे। अपि पुत्रवती नारी। यह पाठान्तर है। इसलिए साहित्य विवक्षित नहीं है।) अन्वारोहण में भी गोदान होता है—यह पहले कह चुके हैं। आशौच के मध्य में भी वृषोत्सर्ग, आद्यमासिक, शय्या आदि दे ही—यह कह चुके हैं।

१—धर्मसिन्धौ—केचित् वृषाभावे मृद्भिः पिष्टैर्वा वृषं कृत्वा होमादिविधिना वृषोत्सर्गं इत्याहुः।

क्रियानिबन्धे स्मृत्यन्तरे—सूतके मृतके चैव द्वितीयं मृतकं यदि। पिण्डदानं प्रकुर्वीत वृषोत्सर्गं तथैव च॥ न हन्यात्सूतकं कर्म द्वादशैकादशाहिकम्। शुद्धो वा यदि वाऽशुद्धः कुर्यादेवाविचारयन्॥ इति।

क्रियानिबन्ध में स्मृत्यन्तर का वचन है—जननाशौच या मरणाशौच में यदि दूसरा मरणाशौच आ जाय तो पिण्डदान और वैसे ही वृषोत्सर्ग भी करे। एकादशाह और द्वादशाह के सूतककर्म को न त्याग करे। शुद्ध हो या अशुद्ध हो बिना विचार करते हुए ही करे।

(पददानकथनम्)

अथ पददानमुक्तं देवजानीये गारुडे एकादशाहं प्रक्रम्य—तदह्नि दीयते सर्वं द्वादशाहे विशेषतः। पदानि सर्ववस्तूनि वरिष्ठानि त्रयोदश॥ यो ददाति मृतस्येह जीवतोऽप्यात्महेतवे। सुखी भूत्वा महामार्गे वैनतेय स गच्छति॥

अब पददान को कहते हैं—देवजानीय तथा गरुड़पुराण में एकादशाह के प्रकरण के प्रारंभ में कहा है—उसदिन विशेषकर द्वादशाहवाले दिन में सब पदों की वस्तुओं सहित रमणीय बहुमूल्य अतिसुन्दर तेरह पदों को जो मनुष्य मरे हुए के लिए और जीते हुए अपनी आत्मा के निमित्त देता है। हे वैनतेय, वह महामार्ग में सुखी होकर जाता है।

(पददानवस्तूनि)

तथा—आसनोपानहौ छत्रं मुद्रिका च कमण्डलुः। भोजनं भोजनाधारो वस्त्राण्यष्टविधं पदम्॥

और वचन है—आसन, जूता, छाता, अंगुठी, कमण्डलु, भाजन (भोजन) भोजनाधार (थाली, बटलोही, आदि) और वस्त्र ये आठ प्रकार के पद कहे गये हैं।

तथा—भाजनासनदानेन मुद्रिकाभोजनेन च। महिषीरथगोदानात्सुखी भवति निश्चितम्॥

और भी—भाजन (पात्र) और आसनदान से, अंगूठी तथा भोजन से, महिषी, रथ और गोदान से निश्चित सुखी होता है।

सर्वोपस्करयुक्तानि पदान्यत्र त्रयोदश। यो ददाति मृतस्येह जीवन्नप्यात्महेतवे॥ स गच्छति परं स्थानं महाकष्टविवर्जितः॥

सब सामग्रियों के सहित तेरह पद यहाँ होते हैं। जो इनको मरे हुए के लिए और जीवित अपनी आत्मा के निमित्त देता है वह महाकष्ट के रहित उत्तमस्थान को जाता है। (यह पाठ कहीं अधिक है—चतुःषष्टिपदान्याद्ये द्वात्रिंशन्मध्यमे पदम्। षोडशापि कनिष्ठे स्युस्त्रयोदश त्वनाद्यके॥)

त्रयोदशपदानीत्थं प्रेतायै द्वादशेऽहनि। दातव्यानि यथाशक्ति तेनासौ प्रीणितो भवेत्॥

इसप्रकार तेरह पदों को प्रेत केलिए बारहवें दिन यथाशक्ति देता है तो इससे वह प्रेत प्रसन्न होता है।

(चतुर्दशोपदानानि)

अन्नं चैवोदकं चैवोपानहौ च कमण्डलुः। छत्रं वस्त्रं तथा यष्टिं लोहदण्डं तथाष्टमम्॥ अग्नीष्टकां च दीपं च तिलांस्ताम्बूलमेव च। चन्दनं पुष्पदानं चोपदानानि चतुर्दश॥

अन्न, जल, जूता, कमण्डलु, छाता, वस्त्र, छडी, आठवां लोहे का दण्ड, अंगीठी, दीपक, तिल, तांबूल, चन्दन और पुष्प ये चौदह उपदान हैं।

(अत्र मलं चिन्त्यम्)

योऽश्वं रथं गजं वापि ब्राह्मणे प्रतिपादयेत्। स्वमहिम्नानुसारेण तत्तत्सुखमवाप्नुयात्॥ इति। अत्र मूलं चिन्त्यम्।

जो घोड़ा, रथ या हाथी को ब्राह्मण को देता है। वह अपनी महिमा के अनुसार उन-उन सुखों को प्राप्त करता है। इसमें मूल चिन्तनीय है।

(शय्यादाने संभारादिकथनम्)

अत्र शय्यादानम् । हेमाद्रौ भविष्ये—तस्माच्छय्यां समासाद्य सारदारुमयीं दृढाम् । दन्तपत्रचितां रम्यां हेमपादैरलङ्कृताम् ॥ हंसतूलीप्रतिच्छन्नां शुभगण्डोपधानिकाम् । प्रच्छादनपटीयुक्तां गन्धधूपादिवासिताम् ॥ तस्यां संस्थापयेद्धैमं हरिं लक्ष्म्या समन्वितम् । अथ हरिस्थाने प्रेतम् ।

अब [1]शय्यादान कहते हैं । हेमाद्रि में भविष्यपुराण का वचन है—सारदारु की लकड़ी की (सारमय काष्ठ, वह लकड़ी जिसमें सारभाग अधिक हो) सुदृढ़ शय्या को हाथी दांत से निर्मित सुन्दर सुवर्ण के पायों से शोभित हंस के वर्ण की तरह रुई से भरी तोषक और तकिया से भूषित ऊपर से सफेद चादर से बिछी, सहत, गन्ध धूप आदि से सुगन्धित ऐसी शय्या पर लक्ष्मी के सहित नारायण की मूर्ति का स्थापन करे । यहाँ पर हरि के स्थान में प्रेत का स्थापन करे ।

उच्छीर्षके घृतभृतं कलशं परिकल्पयेत् । ताम्बूलं कुङ्कुमं क्षौद्रं कर्पूरागुरुचन्दनम् ॥ दीपिकोपानहच्छत्रचामरासनभाजनम् । पार्श्वेषु स्थापयेद्भक्त्या सप्तधान्यानि चैव हि ॥

एवं सिरहाने की ओर घी से भरा कलश स्थापित हो, तांबूल, कुङ्कुम–रोली-केशर का क्षोद–चूर्ण, कर्पूर, अगरु (अगर), चन्दन, दीपक, जूता, छत्र, चामर, आसन भोजनपात्र को और भक्ति से अगल-बगल में सप्त धान्यों का भी स्थापन करे ।

शयनस्थस्य भवति यदन्यदुपकारकम् । भृङ्गारकरकाद्यं तु पञ्चवर्णं वितानकम् ॥

जो आवश्यक वस्तु हो उनको शयन करने वाले मनुष्य के लिए दे । भृङ्गार (सुवर्णका बना कमण्डलु), करक (करुवा) आदि—और पांच वर्ण का चंदवा दे ।

(शय्यादानमन्त्रः)

मन्त्रस्तु—यथा न कृष्णशयनं शून्यं सागरजातया । शय्या ममाप्यशून्यास्तु तथा जन्मनि जन्मनि ॥ यस्मादशून्यं शयनं केशवस्य शिवस्य च । अर्द्धं तदैव ।

मन्त्र यों है—जैसे कृष्ण की शय्या, सागर से उत्पन्न लक्ष्मी से सूनी नहीं रहती है । वैसे ही मेरी शय्या जन्म-जन्म तक सूनी न हो । जैसे केशव (विष्णु) और शिव की शय्या सूनी नहीं रहती है । आधा श्लोक पूर्ववत् है ।

दत्त्वैवं तस्य सकलं प्रणिपत्य विसर्जयेत् । एकादशाहेऽपि तथा विधिरेष प्रकीर्तितः ॥

इसप्रकार उसके लिए सब देकर प्रणाम कर विसर्जन करे । वैसे एकादशाह में भी यही विधि कही है ।

(मृतकशय्यादाने विशेषः)

विशेषं चात्र राजेन्द्र कथ्यमानं निशामय । तेनोपभुक्तं यत्किञ्चिद्वस्त्रवाहनभाजनम् ॥ यद्यदिष्टं च तस्यासीत्तत्सर्वं परिकल्पयेत् । तमेव पुरुषं हैमं तस्यां संस्थापयेत्तदा ॥ पूजयित्वा प्रदातव्या मृतशय्या यथोदिता ।

और हेराजेन्द्र, यहाँ पर कहे हुए को विशेष सुनो—प्रेत के कार्य में जो कुछ उपयोग किये हुए वस्त्र, वाहन, भोजन पात्र जो उसको प्रिय था वह सब दे । उसकी सुवर्ण की मूर्ति शय्यापर स्थापित करे और पूजन कर यथोचित मृतशय्या को देना चाहिये ।

पाद्मे—मृतकान्ते द्वितीयेऽह्नि शय्यां दद्यात्सुलक्षणाम् । काञ्चनं पुरुषं तद्वत् फलवस्त्रसमन्वितम् ॥ संपूज्य द्विजदाम्पत्यं नानाभरणभूषितम् । उपवेश्य तु शय्यायां मधुपर्कं ततो ददेत् ॥

१—अमुकगोत्रस्यामुक (अमुकगोत्राया अमुकीप्रेतायाः) सकलनरकयातना-धर्मशीतादि-बाधा-याम्यपुरुषप्रहारनिवृत्ति-पूर्वकानेककल्पान्तपुरन्दरादिसकललोकप्राप्त्यर्थं घृतकुंभ-जलकलश-ताम्बूलकुङ्कुमागरुकर्पूरचन्दनदीपिकापादुकोपानच्छत्रचामरासननानाविधभाजनसुवर्णरजतभूषणविविधभक्ष्यभोज्यादर्श (कङ्कतकाचमणिसूत्रकाचकङ्कणनासिकाभूषणसिन्दूरादिसौभाग्य-द्रव्यं) यथासंभवपट्टकौशेयक्षौमौर्णकार्पासवस्त्र (वाहनायुध) हैमलक्ष्मीनारायणप्रतिमायुतामिमां शय्यां प्रजापति दैवतां सुवास्यां संप्रददे । ॐ तत् सन्न मम । इति अन्त्यकर्मदीपके ।

पद्मपुराण में कहा है—मृतक के सूतकान्त में-दूसरे दिन में शुभलक्षणों वाली शय्या को दे तद्वत् फल, वस्त्र से युक्त काञ्चन पुरुष (सुवर्ण का बना हुआ पुरुष) प्रेत को दे अनेक आभूषणों से युक्त ब्राह्मण दम्पत्ति का पूजन कर शय्या में बैठाकर मधुपर्क दे।

(रजतपात्रे ललाटास्थिभोजनस्य पर्वतीयानामेवाचारः)

रजतस्य तु पात्रेण दधिदुग्धसमन्वितम्। अस्थि लालाटिकं गृह्य सूक्ष्मं कृत्वा सपायसम् ॥ भोजयेद् द्विजदाम्पत्यं विधिरेष सनातनः। एष एव विधिर्दृष्टः पार्वतीयैर्द्विजोत्तमैः ॥

चांदी के पात्र में दधि और दुग्ध से युक्त और सिर की अस्थि को ग्रहण कर उसको महीन कर खीर में मिलाकर द्विजदम्पत्ति को भोजन करा दे। यह सनातन विधि है। यह विधि पर्वत के निवासी द्विजोत्तमों में देखी गयी है। (यह पर्वतीयों का आचार है। अन्य देशों में रहनेवालों के लिए निन्दनीय है। धार्मिकों का कहना है कि इन बचनों का कहना निराधार है। और धर्मसिन्धुकार ने कहा है महाराष्ट्र आदि देश के शिष्ट नहीं आदर करते हैं।) (यह कुछ राजाओं में आज के पचास वर्ष पहले प्रकारान्तर से प्रचलित था।)

(मृतशय्याग्रहणे पुनःसंस्कारत्वकथनम्)

एतत्प्रतिग्रहे तत्रैवोक्तम्—गृहीतायां तु तस्यां वै पुनः संस्कारमर्हति।

इसके प्रतिग्रह में वहीं कहा है—शय्या को ग्रहण करने के बाद फिर से संस्कार करे। कहीं ऐसा भी पाठ है—गृहीत्वा मृतशय्याम्।

(शय्यादानफलकथनम्)

शय्यादानफलं भविष्ये—स्वर्गे पुरन्दरपुरे सूर्यपुत्रालये तथा। सुखं वसत्यसौ जन्तुः शय्यादान-प्रभावतः ॥ आभूतसंप्लवं यावत्तिष्ठत्यातङ्कवर्जितः ॥ इति।

भविष्यपुराण में शय्यादान का फल कहा है—इन्द्र पुर स्वर्ग में और सूर्यपुत्र (यमराज) के स्थान में वह जीव शय्यादान के प्रभाव से सुख से निवास करता है और प्रलयपर्यन्त आतंक (भय) से वर्जित रहता है।

(उदकुम्भदानम्)

अथोदकुम्भः। हेमाद्रौ स्मृतिसमुच्चये—एकादशाहात्प्रभृति घटस्तोयान्नसंयुतः।

दिने दिने प्रदातव्यो यावत्संवत्सरं सुतैः ॥

अब जलकुंभ[1] को कहते हैं। हेमाद्रि में स्मृतिसमुच्चय का वचन है—एकादशाह (वर्षान्तसपिण्डन पक्ष में) से लेकर जल तथा अन्न के सहित घड़े को प्रतिदिन एकसाल तक पुत्र (प्रेतलोके तु वसतिर्नृणां वर्षं प्रकीर्तिता। क्षुत्तृष्णे प्रत्यहं तत्र यतो हि भृगुनन्दन ॥ तदर्थमिह दातव्यं जलान्नमभिवत्सरम्) दें।

लौगाक्षिः—यस्य संवत्सरादर्वाक् सपिण्डीकरणं भवेत्।

मासिकं चोदकुम्भं च देयं तस्यापि वत्सरम् ॥

लौगाक्षि ने कहा है—जिसका एक साल के पूर्व सपिण्डन श्राद्ध हो गया है। उसको भी एक साल तक मासिकश्राद्ध और जल का घड़ा देना चाहिये।

उत्तरार्द्धे—तस्याप्यन्नं सोदकुम्भं दद्यात्संवत्सरं द्विजे। इति याज्ञवल्क्यपाठः (आचा० श्लो० २५५) सपिण्डनापकर्षेऽस्यापकर्षप्राप्तेर्बाधकमिदमिति शूलपाणिः। तन्न प्रकृतिविकाराभावेन तदन्तन्यायाविषयत्वात्।

उत्तरार्ध में याज्ञवल्क्य का पाठ है—उसके लिए भी अन्न तथा जलकुम्भ को एकसाल तक द्विज के

१—मरणदिनमारभ्य तिथिवद्धचान्द्रमानेन संवत्सरपूर्तिपर्यन्तं जायमानप्रात्यहिकक्षुत्पिपासानिवृत्यर्थं षष्ट्यधिकत्रिशतसंख्याकान् (अधिकमासपाते तु नवत्यधिकत्रिशतसंख्याकान्) सान्नान् सदीपान् सदन्तभावनान् उदकुंभान् ब्राह्मणाय दास्ये। ॐ तत्सन्न मम। इति अन्त्यकर्मदीपके।

लिए दे। सपिण्डन के अपकर्ष में इसका भी अपकर्ष प्राप्ति का बाधक यह है—यह शूलपाणि ने कहा है। यह उचित नहीं है, प्रकृतिविकार के अभाव से तदन्तन्याय[1] का विषय नहीं है।

मात्स्ये—यावदब्दं च यो दद्यादुदकुम्भं विमत्सरः। प्रेतायान्नसमायुक्तं सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥ केचित्त्रयोदशाहमारभ्याहुस्तन्निर्मूलम्।

मत्स्यपुराण में कहा है—जो विमत्सर (ईर्ष्यारहित) एकसाल तक जल-कुम्भ को अन्न के सहित प्रेत के लिए देता है वह अश्वमेधयज्ञ के फल को प्राप्त करता है। कोई त्रयोदशाह से आरंभ करते हैं—यह कहना निर्मूल है।

अत्र देवयाज्ञिकः—'सपिण्डनापकर्षे संवत्सरं यावदुदकुम्भमर्वागेव दद्यान्नोर्ध्वम्'

यहाँ पर देवयाज्ञिक ने कहा है—सपिण्डनश्राद्ध के अपकर्ष में एकसालतक जलकुम्भ दे बाद में न दे।

प्रेतलोकगतस्यान्नं सोदकुम्भं प्रयच्छत ॥ इति गोविन्दराजधृतविष्णूक्तेः।

गोविन्दराज में विष्णु ने कहा है—प्रेतलोक में गये हुए के लिए जल सहित कुम्भ अन्न के सहित दे।

अन्नं चैव स्वशक्त्या तु संख्यां कृत्वाऽब्दिकावधि। दातव्यं ब्राह्मणे स्कन्द घटादौ निष्क्रयं तु वा ॥ अपि श्राद्धशतैर्दत्तैरुदकुम्भं विना नराः। दरिद्रा दुःखिनस्तात भ्रमन्ति च भवार्णवे ॥ तेनापकृष्य दातव्यं प्रेतस्याप्युदकुम्भकम् ॥ इति गोभिलभाष्ये स्कान्दाच्च सपिण्डनात्प्रागेव तस्य विधानादूर्ध्वं निषेधादित्याह। तन्न, उदकुम्भे पार्वणविधानानुपपत्तेरेवं व्याख्यायां मानाभावान्मिताक्षरादिविरोधाच्च। वचनं यदि समूलं तदा वृद्धापकर्षं विधत्ते,

एकसाल तक अपनी शक्ति के अनुसार गिनती कर अन्न को हे स्कन्द, ब्राह्मण के लिए देना चाहिये या घट आदि का निष्क्रय दे। जो सौ श्राद्धके करनेपर जलकुम्भ के बिना मनुष्य दरिद्र और दुःखी होते हैं। हे तात, वे लोग दुःखरूपी समुद्र में भ्रमण करते हैं। इससे अपकर्ष कर प्रेत के लिए उदकुम्भ को दे। यह गोभिलभाष्य में स्कन्दपुराण का वचन है। सपिण्डीकरण के पहले उसका विधान है बाद में निषेध है—यह कहा है। यह उचित नहीं है। जल के घड़े में पार्वणविधि की अनुपपत्ति से ही व्याख्या में प्रमाणाभाव से मिताक्षरा आदि से विरोध है। वचन यदि समूल है तो वृद्धि में अपकर्ष का विधान किया है।

प्रेतश्राद्धानि सर्वाणि सपिण्डीकरणं तथा। इति हेमाद्रौ शाट्यायनोक्तेः। 'तस्याप्यन्नं सोदकुम्भम्' इति याज्ञवल्क्यविरोधाच्च। (आचा० श्लो० २५५)

सब प्रेतश्राद्ध और सपिण्डीकरण करे—यह हेमाद्रि में शाट्यायन ने कहा है। उसका भी अन्न तथा जल सहित कुंभ को दे-यह याज्ञवल्क्य का विरोध है।

मदनरत्ने गौतमः—अदैवं पार्वणं श्राद्धं सोदकुम्भमधर्मकम्। कुर्यात्प्रत्याब्दिकात् श्राद्धात् सङ्कल्पविधिनाऽन्वहम् ॥ अधर्मकं ब्रह्मचर्यादिनियमहीनम्। एतन्मासिकवदेकोद्दिष्टं पार्वणं वा कार्यम्।

मदनरत्न में गौतम ने कहा है—बिना विश्वेदेव का पार्वणश्राद्ध अधर्मक (ब्रह्मचर्य आदि नियमों से हीन) जलकुंभ तथा प्रतिवर्ष के श्राद्धों को संकल्पविधि से प्रतिदिन में करे। अधर्मक माने—ब्रह्मचर्य आदि नियम से रहित। इसको मासिकश्राद्ध के सदृश एकोद्दिष्ट या पार्वण करे।

अपरार्कस्तु—सपिण्डीकरणे वृत्ते पृथक्त्वं नोपपद्यते।

पृथक्त्वे तु कृते पश्चात्पुनः कार्या सपिण्डता ॥ इति।

१—जहाँ प्रकृति-विकृतिर्भाव होता है वहीं पर तदन्त का अपकर्ष होता है जहाँ नहीं है वहाँ 'तदन्त' का अपकर्ष नहीं होता है। प्रकृत में जिसका सपिण्डीकरण साल भर के भीतर होता है। अर्थात्—द्वादशाह में सपिण्डन करने पर षोडशश्राद्ध का अपकर्ष होता है। सोदकुंभ श्राद्ध में षोडशश्राद्ध का अपकर्ष नहीं होता है। क्योंकि इसमें प्रकृति-विकृति भाव नहीं है। अतः तदन्तरापकर्षन्याय भी नहीं होता है।

अपरार्क ने तो कहा है—सपिण्डी करने के बाद अलग से नहीं होता है। अलग से करने पर तो फिर से सपिण्डन करे।

(अन्नदानादिदानम्)

लघुहारीतोक्तावपि—तस्याप्यन्नं सोदकुम्भं देयं संवत्सरं द्विजे।

लघुहारीत में भी कहा है—उसके भी निमित्त अन्न और जल कुम्भ को संवत्सर में ब्राह्मण के लिए देना चाहिये।

इति याज्ञवल्कीये तस्येत्येकत्वोक्तेः सपिण्डनोत्तरमप्येकोद्दिष्टमेवेत्याह। अत्र पिण्डदानं कृताकृतम्। 'अहरहरन्नमस्मै ब्राह्मणायोदकुम्भं च दद्यात्पिण्डमप्येके निपृणन्ति' इति हेमाद्रौ पारस्करोक्तेः। श्राद्धाशक्तौ पिण्डमात्रमिति गौडाः। तन्न, अपिशब्दबाधापत्तेः।

इस याज्ञवल्क्य के वचन ने 'तस्य' इसका एकत्व कहा है। सपिण्डनोत्तर भी एकोद्दिष्ट ही कहा है। यहाँ पर पिण्डदान कृताकृत (वैकल्पिक) है। हेमाद्रि में पारस्कर का वचन है—प्रतिदिन उस ब्राह्मण के लिए (प्रेत के लिए) (सपिण्डन के पूर्व प्रेतशब्द से बाद में पितृशब्द दे प्रेतशब्द से न दे।) अन्न तथा जलकुम्भ दे। कोई कहता है—पिण्डको भी दे। गौड कहते हैं-श्राद्धकी अशक्ति में पिण्डदानमात्र करे। यह उचित नहीं है। 'अपि' शब्द से बाधा की आपत्ति हो जायगी।

हारीतः—मृते पितरि वै पुत्रः पिण्डमब्दं समाचरेत्। अन्नं कुम्भं च विप्राय प्रेतनिर्देशधर्मतः॥ प्रेतशब्दोच्चारणेनेति हलायुधः। यद्वा प्रेतस्य निर्देशो यत्र तदेकोद्दिष्टं तद्धर्मत इत्यर्थः। अत्राशौचान्तदिनाद्यावदब्दान्तं यावद्वत्सरपूर्तेः शौचं नाधिकारिविशेषणम्। तेन मृतिदिनमारभ्यैतत्कार्यमिति केचित्। तन्न, हेमाद्रिधृतवचोविरोधात्। मध्ये आशौचादिना बाधे तु लोप एव दार्शवत्।

हारीत ने कहा है—पिता के मरने पर ही पुत्र पिण्डशब्द को कहे। अन्न और कुम्भ को प्रेत के उद्देश्यस्वरूपधर्म से ब्राह्मण के लिए दे। प्रेतशब्दका उच्चारण करके दे-यह हलायुध कहते हैं। अथवा-प्रेतके निर्देश जिसमें हो उसको एकोद्दिष्टधर्म से करे-यह अर्थ है। यहाँ पर अशौचान्त दिन से-अब्दान्त तक जबतक संवत्सरपूर्ति का शौच अधिकारी का विशेषण नहीं है। इससे मरणदिन से आरंभ कर इसको करे-यह किसी का मत है। यह उचित नहीं है, हेमाद्रि में कहे हुए वचन का विरोध है। मध्य में आशौचादि से बाध में तो लोप ही दर्श[1] (अमावस्या) की तरह है।

(प्रथमाब्दे दीपदानम्)

तथा प्रथमाब्दे दीपदानमुक्तम्। देवजानीये गारुडे—प्रत्यहं दीपको देयो मार्गे तु विषमे नरैः। यावत्संवत्सरं वापि प्रेतस्य सुखलिप्सया॥

और प्रथमवर्ष में दीपदान कहा है। देवजानीय में गरुडपुराण का वचन है—विषम रास्ते में प्रेत के सुख की इच्छा के लिए एकसाल तक प्रतिदिन दीपक को देना चाहिये।

प्राङ्मुखोदङ्मुखं दीपं देवागारे द्विजालये। कुर्याद्याम्यमुखं पित्र्ये अद्भिः सङ्कल्प्य सुस्थिरम्॥

सुस्थिर हो पूर्वमुख या उत्तरमुख दीपक को देवमन्दिर में या ब्राह्मण के घर में दे और दक्षिणमुख पितरों के लिये जल से संकल्प कर स्थिर करे।

(अथ मासिकानि)

अथ मासिकानि। तानि च कृत्वैव सपिण्डनं कार्यम्।

अब मासिक (प्रत्येक महिने के) श्राद्धों को कहते हैं। उन (मासिक) श्राद्धों को कर (नवश्राद्ध आदि के किये बिना मासिक आदि श्राद्धों में अधिकार नहीं होता है। 'नवश्राद्धादिश्राद्धानि न कृतानि तु यस्य वै। नाधिकारो भवेत्तत्र मासषाण्मासिकाब्दिके॥') ही सपिण्डनश्राद्ध को करना चाहिये।

१—अमावास्यायां प्रातरिष्टेरारम्भो विहितः। यदि कश्चिद्भ्रान्त्या अमाबुद्ध्या चतुर्दश्यामिष्टिमारभेत, तदानीं चन्द्रस्याभ्युदितत्वात् तन्निमित्तजन्यदोषनिर्घातार्था इयमिष्टिः 'अभ्युदयेष्टिः अभ्युद्दृष्टेष्टिरिति चोच्यते। (सरलावृत्तिकात्यायन श्रौतसूत्र की टिप्पणी पृ० ६६ अ० २, क० ३)।

पूर्व

दक्षिण

(बारह महीनों के मासिक आदि श्राद्धों का एकतन्त्र प्रयोग)

आब्दिक	ऊनाब्दिक	एकादश-मासिक	दशम-मासिक	नवम-मासिक	अष्टममासिक	सप्तम-मासिक	षाण्मासिक	ऊन-षाण्मासिक	पञ्चम-मासिक	चतुर्थ-मासिक	तृतीय-मासिक	द्वितीय-मासिक	त्रिपाक्षिक	प्रथम-मासिक	
१५	१४	१३	१२	११	१०	९	८	७	६	५	४	३	२	१	
❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	आसन
❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	भोजनपात्र
❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	अर्घपात्र
❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	जलपात्र
❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	घृतपात्र
❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	पिण्डाधारवेदी
❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	❀	अवनेजन पात्र ही बाद में प्रत्यवनेजनपात्र हो जाते हैं।

❀

श्राद्धकर्ता का आसन

पश्चिम

नोट—१—अधिकमास के प्राप्त होने पर क्रम से ग्यारहवें मासिकश्राद्ध के बाद द्वादशमासिक, ऊनवार्षिक (ऊनाब्दिक) फिर त्रयोदशमासिक श्राद्ध होता है। २—इन मासिकादि श्राद्धों को एक साथ सपिण्डनश्राद्ध के पूर्व करने पर देश, काल और कर्ता के एक होने से एक ही पाक बनता है। भट्ट लोग पाक भेद मानते हैं। यह पक्ष अब नहीं चलता है। ३—सपिण्डनश्राद्ध के पूर्व इन श्राद्धों को करने पर प्रेतशब्द का उच्चारण होता है। पिण्डमेलन के बाद प्रेतशब्द का उच्चारण शास्त्रीय दृष्टि से नहीं होता है। ४—आद्यश्राद्ध को ग्रहण करने से सोलह श्राद्ध होते हैं। यही पक्ष उत्तम है। ५—सपिण्डनश्राद्ध करने के बाद मासिकादिश्राद्ध फिर से हर महीने करने का विधान शास्त्रों में मिलता है। यदि आशौचादि की प्राप्ति हो जाय तो पूर्वश्राद्ध को उत्तरश्राद्ध के साथ करना चाहिये। ६—इन मासिकादि श्राद्धों के करते समय विवाह आदि की प्राप्ति हो तो मासिकादि श्राद्धों का अपकर्ष करना चाहिये। वृद्धिश्राद्ध के बाद इन श्राद्धों को फिर से नहीं करना चाहिये। ७—मारवाड़ी आदि इन श्राद्धों में केवल छः महीनेवाला एक षाण्मासिकश्राद्ध करते हैं और वार्षिकश्राद्ध का पिण्ड साढ़ेग्यारह महीने में देते हैं। बाकी के सब त्याग देते हैं। इन सब बातों का मूल वही जानते होंगे। 'पारणे मरणे नृणां तिथिस्तात्कालिकी स्मृताः' इत्यादि वचनों में विचार नहीं करते हैं। ८—बुरसेला, दरभंगा आदि प्रान्तों में मैथिल और सरयूपारीण ब्राह्मण मासिक आदि श्राद्धों को द्वादशाह दिन में पृथक् पाक से अलग-अलग व्यर्थ में समय का अपव्यय करते हुए श्राद्ध करते और कराते देखे गये हैं। उनकी यह प्रक्रिया केवल बाह्याडम्बर से युक्त प्रतीत सी होती है। ९—पर्वतीय (पहाड़ी) लोग ऊनमासिकादि श्राद्धों को फिर से नहीं करते हैं। उनका कहना है कि—'ततः सपिण्डनादूर्ध्वमर्वाक् संवत्सरादपि। प्रतिमासं प्रदातव्यो जलकुंभः सपिण्डकः ॥' इस गरुडपुराण मत से सपिण्डनोत्तर हर महीने में ही पिण्ड के सहित जल कुंभदान करना कहा है। ऊनमासिकादि में कुछ करना नहीं कहा है। इसलिये सपिण्डन के बाद हर मास में ही मासिकश्राद्ध करे—यह पर्वतीयों का आचार है। यह पक्ष विचारणीय है। नेपाल में निवास करनेवाले कौर्माचलों का तो ऊनमासिकादि श्राद्ध सपिण्डनश्राद्ध के बाद होता ही है। १०—मरणदिन से बारह महीने के भीतर यदि कोई अधिकमास आ जाय तो उसमें अधिकमास का और शुद्धमास का दो बार श्राद्ध करना चाहिये।

उत्तर

तथा च गोभिललौगाक्षी—श्राद्धानि षोडशादत्त्वा नैव कुर्यात्सपिण्डनम् ।
श्राद्धानि षोडशापाद्य विदधीत सपिण्डनम् ॥

गोभिल और लौगाक्षि ने कहा है—सोलह श्राद्धों को न देकर सपिण्डन न करे। सोलह श्राद्धों को कर सपिण्डन करे।

(षोडशश्राद्धानि)

तानि त्वाह जातूकर्ण्यः—द्वादश प्रतिमास्यानि आद्यषाण्मासिके तथा। त्रैपक्षिकाब्दिके चेति श्राद्धान्येतानि षोडश ॥ आद्यषाण्मासिकाब्दिकशब्दाः ऊनमासिकोनषष्ठोनाब्दिकपराः ।

उन सोलह श्राद्धों को जातूकर्ण्य ने कहा है—बारह महिने के बारह श्राद्ध, आद्य और षाण्मासिक श्राद्ध, त्रैपाक्षिक और आब्दिक (वर्ष में होने वाला श्राद्ध) ये सोलह श्राद्ध हैं। आद्यश्राद्ध, षाण्मासिक और आब्दिकशब्द ऊनमासिक, ऊनषाण्मासिक और आब्दिकपरक हैं।

हेमाद्रौ तु—सपिण्डीकरणं चैव इत्येतच्छ्राद्धषोडशम् । इत्युत्तरार्द्धे पाठः । तदा आद्यमूनमासिकं द्वादशाहे, षाण्मासिके ऊनषष्ठोनाब्दिके इत्यर्थः ।

हेमाद्रि में तो कहा है—सपिण्डनश्राद्ध तक ही सोलहश्राद्ध हैं। यह उत्तरार्ध का पाठ है। तब आद्य और ऊनमासिक द्वादशाह में षाण्मासिक में ऊनषाण्मासिक तथा ऊनाब्दिक यह अर्थ है।

(कात्यायनमते षोडशश्राद्धम्)

कात्यायनस्त्वन्यथाह—द्वादश प्रतिमास्यानि आद्यषाण्मासिके तथा ।
सपिण्डीकरणं चैव इत्येतच्छ्राद्धषोडशम् ॥

कात्यायन ने तो अन्यथा कहा है—बारह महिने को बारह, आद्य, षाण्मासिक और सपिण्डीकरण ये सोलह श्राद्ध हैं।

एकाहेन तु षण्मासा यदा स्युरपि वा त्रिभिः । न्यूनः संवत्सरश्चैव स्यातां षाण्मासिके तदा ॥

एकदिन में, छ महिने या तीनदिन में जब होते हैं तो न्यून संवत्सर हो तो षाण्मासिक में होते हैं।

द्विवचनादूनषष्ठोनाब्दिके इत्यर्थमाह पृथ्वीचन्द्रः ।

पृथ्वीचन्द्र ने कहा है—द्विवचन से तो ऊनषाण्मासिक और आब्दिक यह अर्थ कहा है—

(व्यासमते विचारः)

व्यासस्त्वन्यथाह—द्वादशाहे त्रिपक्षे च षण्मासे मासिकाब्दिके। श्राद्धानि षोडशैतानि संस्मृतानि मनीषिभिः ॥ द्वादशाहपदमूनमासिकपरं तस्य द्वादशाहेऽप्युक्तेरिति कालादर्शः ।

व्यास ने तो अन्यथा कहा है—द्वाददिन, त्रिपक्ष, षाण्मासिक, मासिक और आब्दिकश्राद्ध ये सोलह श्राद्ध बुद्धिमानों ने कहे हैं। द्वादशदिनपद ऊनमासिक परक है। उसका द्वादशाह में भी कहा है—यह कालादर्श ने कहा है।

(मदनरत्नादिमते विचारः)

मदनरत्ने ब्राह्मे त्वन्यथोक्तम्—नृणां तु त्यक्तदेहानां श्राद्धाः षोडश सर्वदा। चतुर्थे पञ्चमे चैव नवमैकादशे तथा ॥ ततो द्वादशभिर्मासैः श्राद्धाः द्वादशसंख्यया ॥ इति । चतुर्थादीनि दिनानि ।

मदनरत्न में ब्रह्मपुराण के वचन से तो विपरीत कहा है—शरीर को त्यागने वाले मनुष्यों का सर्वदा सोलह श्राद्धों को कहा है। चौथे, पांचवें, नवें तथा ग्यारहवें दिन में और बारह महिनों में होने वाले गिनती में बारह श्राद्ध होते हैं। चतुर्थ आदि पद से दिनों का ग्रहण करे।

भविष्ये त्वन्यथोक्तम्—अस्थिसञ्चयनं श्राद्धं त्रिपक्षे मासिकानि तु । रिक्तयोश्च तथा तिथ्योः प्रेतश्राद्धानि षोडश ॥ इति । रिक्तयोस्तिथ्योरित्यूनषष्ठोनाब्दिकपरमिति हेमाद्रिः । अत्र देशकुल-शाखाभेदाद्व्यवस्थेति सर्वनिबन्धाः ।

भविष्यपुराण में तो विपरीत कहा है—अस्थिसंचयनश्राद्ध, त्रिपक्ष, बारह महिनों के मासिकश्राद्ध, रिक्ता तिथियों में सोलह प्रेतश्राद्ध होते हैं। रिक्तयोरितथ्योः से—ऊनषाण्मासिक और ऊनाब्दिकपरक है—यह हेमाद्रि कहते हैं। यहाँ पर देश, कुल और शाखाभेद से व्यवस्था है यह सब निबन्धों का मत है।

गालवः—ऊनषाण्मासिकं षष्ठे मासे वाप्यूनमासिकम्।
त्रैपाक्षिकं त्रिपक्षे स्यादूनाब्दं द्वादशे तथा॥

गालव ने कहा है—छठे महिने में ऊनषाण्मासिक, या महिने में ऊनमासिक, त्रिपक्षमें-त्रैपाक्षिक, और बारह महिने में ऊनाब्दिक करे।

(ऊनमासिके विचारः)

ऊनमासिके तु गोभिलः—मरणाद्द्वादशाहे स्यान्मास्यूने चोनमासिकम्।

ऊनमासिक में तो गोभिल ने कहा है—मरण से द्वादशाह में या महिने के ऊनमें ऊनमासिक होता है।

मदनरत्ने कालादर्शे च श्लोकगौतमः—एकद्वित्रिदिनैरूने त्रिभागेनोन एव वा।
श्राद्धान्यूनाब्दिकादीनि कुर्यादित्याह गौतमः॥

मदनरत्न और कालादर्श में गौतम का श्लोक है—एक, दो और तीन दिनों के ऊन में या त्रिभाग से ऊन में ही आब्दिक, ऊनाब्दिक आदि श्राद्धों को करे-ऐसा गौतम ने कहा है।

क्रियानिबन्धे क्रतुस्तु—सार्द्ध एकादशे मासे सार्द्धे वै पञ्चमे तथा। ऊनाब्दमूनषण्मासं भवेतां श्राद्धकर्मणि॥ इत्युक्तं तत्र मूलं चिन्त्यम्।

क्रियानिबन्ध में क्रतु ने तो कहा है—श्राद्धकर्म में साढ़े ग्यारह महिने में और साढ़े पांचमास में ऊनाब्द तथा ऊनषाण्मासिक श्राद्ध होते हैं—ऐसा कहा है। वहाँ पर मूल चिन्तनीय है।

(ऊनेषु वर्ज्यानि)

ऊनेषु वर्ज्यान्याह मरीचिः—द्विपुष्करे च नन्दासु सिनीवाल्यां भृगोर्दिने।
चतुर्दश्यां च नोनानि कृत्तिकासु त्रिपुष्करे॥

[1]ऊनों में त्याज्यों को मरीचि में कहा है—द्विपुष्कर, नन्दा, सिनीवाली (अमावास्या जिसमें चन्द्रदर्शन न हो), शुक्रवार, चतुर्दशी, कृत्तिका और त्रिपुष्कर (कृत्तिका, पुनर्वसु, उत्तरा फाल्गुनी, विशाखा, उत्तराषाढा और पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र, द्वितीया, सप्तमी तथा द्वादशी, मंगल, शनि, रविवार इनके योग हो जाने पर त्रिपुष्कर तथा पूर्वोक्त तिथि, वार में मृगशिरा, चित्रा और धनिष्ठा के योग हो जाने पर द्विपुष्कर योग होता है।) में ऊनश्राद्ध नहीं होता है।

गालवः—त्रिभिर्वा दिवसैरूने त्वेकेन द्वितयेन वा। आद्यादिषु च मासेषु कुर्यादूनाब्दिकादिकम्॥ एकन्यूनपक्षे पञ्चम्यां मृतस्य तृतीयायां त्रिभिर्न्यूने प्रतिपदि द्व्यूने द्वितीयायामिति केचित्।

गालव ने कहा है—तीनदिन, एकदिन या दोदिन कम में प्रथम आदि महिनों में ऊनाब्दिक आदि श्राद्धों को करे। एक न्यूनपक्ष में पञ्चमी में मरे का तृतीया में, तीनदिन से न्यून मरण में प्रतिपदा में, दो दिन न्यून में मरने पर द्वितीया में होता है—यह कोई कहते हैं।

माधवस्तु—षाण्मासिकाब्दिके श्राद्धे स्यातां पूर्वेद्युरेव ते। मासिकानि स्वकीये तु दिवसे द्वादशेऽपि वा॥ इति पैठीनसिवाक्ये ऊनषाण्मासिकं सप्तममासगत मृताहात् पूर्वेद्युः कार्यम्, ऊनाब्दिकं तु द्वितीयाब्दे मृताहदिनात्पूर्वेद्युः कार्यमित्यर्थः। पूर्वेद्युर्मृताहादित्यर्थः। 'मासिकानि स्वकीये तु दिवसे' इत्युक्तेः। दमेव युक्तम्। मदनरत्नेऽप्येवम्।

माधव ने तो कहा है—षाण्मासिक और आब्दिकश्राद्ध तो पूर्वदिन में ही करे। मासिक आदि श्राद्धों को तो अपने दिन में या बारहवें दिन करे—यह पैठीनसिवाक्य में ऊनषाण्मासिक को सप्तममास गत मरण दिन से पहले दिन करना चाहिये। ऊनाब्दिक तो दूसरे वर्ष में मरणदिन से पहले दिन में करे—यह अर्थ कहा है। मरणदिन से पहले दिन करे—यह अर्थ है। मासिक आदि श्राद्ध तो अपने ही दिन में करे—ऐसा कहा है। यही उचित है। मदनरत्न में भी यही है।

१—गार्ग्यः— नन्दायां भार्गवदिने चतुर्दश्यां त्रिपुष्करे। नवश्राद्धं न कुर्वीत गृहीधनक्षयात्॥

याज्ञवल्क्यः (आचा० श्लो० २५६)—मृतेऽहनि तु कर्तव्यं प्रतिमासं तु वत्सरम्। अत्राद्य-मासिकमाद्याब्दिकं चैकादशेऽह्नीति निर्णयामृतादयः।

याज्ञवल्क्य ने कहा है—(एकोदिष्ट) साल तक हर महीने में मरणतिथि को करे और प्रत्येक साल में करे। यहाँ पर आद्यमासिक और आद्य आब्दिक ग्यारहवें दिन (अर्थात्—आशौचोत्तरदिन) में करे—यह निर्णयामृत आदि में कहा है।

(मरे दिन के अज्ञान में अमावस्या या श्रवणदिन में करे। जिसदिन प्रवास किया हो उसदिन में या उसीमास की अमावस्या में श्राद्ध करे। हरसाल में जो श्राद्ध माता और पिता का मरणतिथि में किया जाता है—वह एकोदिष्ट श्राद्ध होता है। व्यास ने कहा है—जो एकोद्दिष्ट का त्याग कर पार्वण करता है, वह नहीं किये के बराबर होता है और पितृघातक होता है। दाक्षिणात्यों में इसतरह से व्यवस्था जमदग्नि के मत से की है—माता और पिता का क्षयाहदिन में औरस और गोत्रज पार्वण ही करे तथा दत्तक आदि एकोद्दिष्ट श्राद्ध करें। यह पक्ष उचित नहीं है। क्योंकि यहाँ पर क्षयाह का वचन नहीं है। पर 'अब्द' शब्द है। जो पराशर ने कहा है—सपिण्डीकरण श्राद्धोत्तर पिता की ओर से पुत्र त्रिपुरुषात्मकपार्वण करे और भिन्न गोत्र मातुल आदियों का क्षयाहदिन में जो श्राद्ध होता है वह एकोद्दिष्ट ही होता है। और पैठिनसि ने कहा है—औरस पुत्र सपिण्डीकरण के बाद माता और पिता का क्षयाह में पार्वण न करें। उदीच्याः पुनरेवं व्यवस्थापयन्ति—अमावास्यां भाद्रपदकृष्णे मृताहे पार्वणम्, अन्यत्र मृताहे एकोद्दिष्ट-मेव। 'अमावास्याक्षयो यस्य प्रेतपक्षेऽथवा पुनः। पार्वणं तत्र कर्तव्यं नैकोद्दिष्टं कदाचन' इसको भी वृद्ध आदर नहीं करते हैं। अन्त में यही मिताक्षरा ने कहा है कि—पार्वण और एकोद्दिष्ट में व्रीहि और यववत् विकल्प ही है। फिर भी वंश समाचार व्यवस्थायां सत्यां व्यवस्थिते, असत्यामैच्छिकः। याज्ञवल्क्यस्मृति मत से और श्री पूज्य पिताजी की व्यवस्था से यजुर्वेदियों को एकोदिष्ट का विधान करना चाहिये।)

ब्राह्मणं भोजयेदाद्ये होतव्यमनलेऽथ वा। पुनश्च भोजयेद्विप्रं द्विरावृत्तिर्भवेदिति॥ इति गोभिलीयं च तद्विषयमाहुः। अन्ये तु 'मासपक्षतिथिस्पृष्टे' इत्यादि विरोधादाब्दिकं वर्षान्ते एव। मासिकं तु मासादौ। द्विरावृत्तिस्तु एकादशाहिकाद्यमासिकपरा। देवयाज्ञिकोऽप्येवमाह।

आद्यश्राद्ध में ब्राह्मण को भोजन करा दे या अग्नि में हवन करे। फिर से भोजन ब्राह्मण को करा दे—यों द्विरावृत्ति होती है—इस गोभिल के वचन को भी उसी विषय में कहते हैं। अन्य तो कहते हैं—मास, पक्ष और तिथि से युक्त इत्यादि वचन के विरोध से आब्दिक वर्षान्त में ही होता है। मासिकश्राद्ध तो महिने के आदि में होता है। द्विरावृत्ति तो एकादशाह तथा आद्यमासिक के विषय में है। देवयाज्ञिक ने भी यही कहा है।

लौगाक्षिरपि—मासादौ मासिकं कार्यमाब्दिकं वत्सरे गते।
आद्यमेकादशे कार्यमधिके त्वधिकं भवेत्।

लौगाक्षि ने भी कहा है—महिने के आदि में मासिकश्राद्ध, आब्दिक को एक साल के बीतने पर, आद्यश्राद्ध को ग्यारहवें दिन और अधिक[1] मास में अधिक करे।

दीपिकायां तु—आद्यं रुद्रमितेर्कसंमितदिने वा स्यात् इत्युक्तम्।

१—मलमास में मरने पर तो मरण से ग्यारहवें दिन में अधिक आद्यश्राद्ध को कर अपने समय में अन्नश्राद्ध करे। 'षष्ठ्या तु दिवसैर्मासे' साठ दिन का एक महीना होता है। एसा कहने पर भी 'अधिके त्वधिकं भवेत्' अधिक में अधिक होता है—एसा देखा गया है। मासिक आदियों में तो तीस तिथियों का ही एक महीना होता है। तदनन्तर शुद्ध-मासादि में द्वितीय आद्यश्राद्ध को कर त्रैपाक्षिक फिर द्वितीयमासिक करे। ऐसा करने पर 'मलमासमृतानां तु सौर म सं समाश्रयेत्' इस वचन से आब्दिक की व्यवस्था ठीक रहेगी। दूसरे मलमास में तो ग्यारहवें दिन आद्यमासिक और अपने काल में ऊनमासिक को कर मल में अधिक मासिकश्राद्ध कर त्रैपाक्षिक फिर द्वितीयमासिक करे। इसप्रकार जहाँ छः और बारहवाँ मलमास हो वहाँ पर उन दोनों का अधिकमासिक कर उसके बाद षष्ठ और द्वादशमासिक फिर ऊन षाण्मासिक, ऊनाब्दिक करे।

दीपिका में तो कहा है—आद्यश्राद्ध को ग्यारहवें दिन या बारहवें दिन करे-ऐसा कहा है।

गौडास्तु मृततिथ्यवधिके एकदिनाधिके। माससंवत्सरपदं गौणम्। पूर्णेऽब्दे इति ईषदसमाप्तपरत्वमिति शूलपाणिः। तेन द्वितीयमासादावाद्यमासिकादीति तन्मौर्ख्यकृतम्।

गौडों ने कहा—मरणतिथि से अधिक में एकदिन के अधिक में। मास और संवत्सपद गौण है। (प्रथममासिक, प्रथम सांवत्सरिक आदि प्रकृतिभूत मास-संवत्सर-आदि प्रकृति भूतमास संवत्सरादिपद उस मास में और उस साल में लाक्षणिक है—यह अर्थ है।) शूलपाणि ने कहा है-पूर्ण अब्द में कुछ असमाप्त परक है। इससे दूसरे महिने के आदि में आद्यमासिक आदि होते हैं, वह मूखता से कहा है।

अशक्तौ तु हारीतः—मुख्यं श्राद्धं मासि मासि अपर्याप्तावृतुं प्रति। द्वादशाहेन वा भोज्या एकाहे द्वादशापि वा॥ ऋतुं प्रति द्वे द्वे इत्यर्थः। यदा पितुर्मरणात् त्रयोविंशतितमे दिने दर्शो वृद्धिर्वा स्यात्तदा द्वादशदिनेषु द्वादशमासिकानि कार्याणीत्यर्थः।

अशक्ति में तो हारीत ने कहा है-महीने-महीने पर जो श्राद्ध होता है वह मुख्य होता है अपर्याप्ति में ऋतु ऋतु में होता है। बारहवें दिन या ग्यारहवें दिन बारह ब्राह्मण भोजन करा दे। ऋतुमान—प्रत्येक ऋतु में श्राद्ध दो होता है। (मुख्यचन्द्र का या सौर का यहाँ ग्रहण नहीं है। क्योंकि असंभव है। लेकिन मरणतिथि से आरंभकर तीसतिथि रूप दो महिना है। एक मरणदिन को अतिक्रमण उसके उत्तर मरणदिन के अतिक्रान्त प्राप्तकाल में दो श्राद्धों को करे-यह भाव है। ऐसा करने पर कभी तीन भी होते हैं। जैसे—एकादशाह में आद्यश्राद्ध, स्वकाल में ऊन, द्वितीयमासिक और त्रैपाक्षिक के साथ तृतीयमासिक, चतुर्थमासिक के साथ पञ्चममासिक, षष्ठ तथा ऊनषाण्मासिक के साथ सप्तममासिक, अष्टममासिक के साथ नवम मासिक, दशममासिक के साथ एकादशमासिक, द्वादशमास के साथ ऊनाब्दिक करे। सपिण्डन के अपकर्ष में दो पक्ष है या बारहवें दिन करे-ऐसा कहा है।) जब पिता के मरने से तेइस दिन में अमावस्या (आहिताग्नि को पितृयज्ञार्थ सपिण्डन करना आवश्यक होने से) या वृद्धि हो तो बारहदिनों में द्वादश मासिकश्राद्धों को करे-यह अर्थ है। (एकादशाह में आद्यश्राद्ध, उसके बाद के दिन में ऊन और द्वितीयमासिक करे। उसके बाद के दिन में त्रैपाक्षिक और तृतीयमासिक करे। उसके बाद के दिनोंमें क्रमसे चतुर्थमासिक, पञ्चममासिक और षष्ठमासिकश्राद्ध करे। उसके बाद के दिन में ऊनषाण्मासिक और सप्तममासिक करे। उसके बाद के दिनों में क्रम से-अष्टममासिक, नवममासिक, दशममासिक और एकादशमासिकश्राद्ध करे। उसके बाद के दिन में द्वादशमासिक और ऊनाब्दिकश्राद्ध करे। ये श्राद्ध मरणदिन से करने पर बाइसदिन व्यतीत हो जाते हैं। तेइसवें दिन सपिण्डन कर पितृयज्ञ या वृद्धि करे। द्वादशाहसपिण्डन में तो एकादशाह में अर्थात् एकाह में करे-यह अर्थ है। वहाँ पर तो द्वादशाह में ही मासिकश्राद्धों को भी करते हैं। इत्यादि)

त्रैपक्षिकं तु त्रिपक्षेऽतीते मृताहे कार्यम्, त्रैपक्षिकं भवेद्वृत्ते त्रिपक्षे तदनन्तरम्। इति भविष्योक्तेरिति मदनरत्ने उक्तम्।

त्रैपाक्षिकश्राद्ध तो त्रिपक्ष के बीतने पर मरणदिन में करना चाहिये। तदनन्तर त्रिपक्ष में त्रैपाक्षिक होता है। यह भविष्यपुराण का वचन मदनरत्न में कहा है।

पृथ्वीचन्द्रकालादर्शनिर्णयामृतादयस्तु—ऊनान्यूनेषु मासेषु विषमाहे समेऽपि वा। त्रैपक्षिकं त्रिपक्षे स्यान्मृताहं त्वितराणि तु॥ इति कार्ष्णाजिनिस्मृतेः पूर्वत्र वृत्ते प्रवृत्ते इत्यर्थमाहुः। ते तदनन्तरशब्दविरोधात् त्रैपक्षिकद्वितीयमासिकयोः संकरापत्तेरेवं व्याख्यायां मानाभावाच्चोपेक्ष्याः। त्रिपक्षसपिण्डने त्वेवंशब्दाभावादधिकरणत्वमेव ज्ञेयम्।

पृथ्वीचन्द्र, कालादर्श, निर्णयामृत आदि तो कहते हैं—ऊन, अन्यून महीनों में, विषमदिन या सम दिन में भी त्रैपाक्षिकश्राद्ध को त्रिपक्ष में करे और मरणदिन तो इतर श्राद्धों को करे—यह कार्ष्णाजिनिस्मृति से पूर्व कहे हुए वृत्त का अर्थ प्रवृत्त कहा है। वे 'तदनन्तर' शब्द से विरोध से त्रैपक्षिक तथा द्वितीयमासिक की संकरापत्ति (मेल) ही हो जाने से व्याख्या में मानाभाव से उपेक्षणीय है। त्रिपक्ष सपिण्डन में तो एवं शब्द के अभाव से अधिकरणत्व ही जानना चाहिये।

यत्त क्रियानिबन्धे गारुडे—त्रैपक्षिकं त्रिपक्षे तु प्रवृत्ते विषमे दिने। मासिकान्यपि चोनानि अष्टाविंशतिमे दिने ॥ इति तन्निर्मूलम्।

जो क्रियानिबन्ध में गरुडपुराण का वचन है—त्रैपक्षिक तो तीनपक्ष के प्रवृत्त होने पर विषमदिन में होता है। मासिकश्राद्ध और ऊनमासिकश्राद्ध तो अठाइसवें दिन होते हैं। यह निर्मूल है।

स्मृतिरत्नावल्याम्—द्वादशाहे यदा कुर्यात्पितुः पुत्रः सपिण्डनम्।
एकादशेऽह्नि कुर्वीत प्रेतश्राद्धानि षोडश ॥

स्मृतिरत्नावली में कहा है—जब पुत्र बारहवें दिन पिता का सपिण्डन करता है तो ग्यारहवें दिन सोलह प्रेतश्राद्ध करे।

पैठीनसिः—सपिण्डीकरणादर्वाक्कुर्वञ्छ्राद्धानि षोडश।
एकोद्दिष्टविधानेन कुर्यात्सर्वाणि तानि तु ॥

पैठीनसि में कहा है—सपिण्डीश्राद्ध के पूर्व उन सब सोलह श्राद्धों को एकोद्दिष्टविधान से करे।

सपिण्डीकरणादूर्ध्वं यदा कुर्यात्तदा पुनः। प्रत्यब्दं यो यथा कुर्यात्तथा कुर्यात्स तान्यपि ॥

सपिण्डीकरण के बाद प्रतिवार्षिकश्राद्ध जैसे वह करता है वैसा ही उनको भी करे।

मदनरत्ने कात्यायनः—श्राद्धमग्निमतः कार्यं दाहादेकादशेऽहनि। ध्रुवाणि तु प्रकुर्वीत प्रमीताहनि सर्वदा ॥ ध्रुवाणि—त्रैपक्षिकादूर्ध्वानि।

मदनरत्न में कात्यायन ने कहा है—आहिताग्नि का श्राद्ध दाह से ग्यारहवें दिन (शंखः—मरणादेव कर्तव्यं संयोगो यस्य नाग्निभिः। दाहादूर्ध्वमशौचं स्याद्यस्य वैतानिको विधिः ॥ एकादशपद नवश्राद्ध आदि का भी उपलक्षण है) करे। त्रैपाक्षिक के आगे के श्राद्धों को मरणदिन से सदा करे। ध्रुवाणि का अर्थ है—त्रैपक्षिक के आगे वालों को।

क्रियानिबन्धे गारुडे—त्रिपक्षात्पूर्वतः साग्नेर्भवेत्संस्कारवासरे।
ऊर्ध्वं मृतदिनेऽनग्नेः सर्वाण्येव मृताहतः ॥

क्रियानिबन्ध में गरुडपुराण का वचन है—आहिताग्नि के त्रैपक्ष से पूर्व के श्राद्ध दाहसंस्कार के दिन से आरम्भ करे और अनग्निक के सब श्राद्ध मरणदिन से प्रारम्भ होते है। (जातूकर्ण्यः—ऊर्ध्वं त्रिपक्षाद्यच्छ्राद्धं मृताहन्येव तद्भवेत्। अधस्तु कारयेद्दाहादाहिताग्नेर्द्विजन्मनः ॥)

एतानि च यदा सपिण्डनात् पूर्वं युगपत्कुर्यात्तदादेशकालकर्त्रैक्ये तन्त्रत्वादेकः पाक इति केचित्। पाकभेद इति भट्टचरणाः। अत्र केचिदाहुः—देशकालकर्तृदैवतैक्ये तन्त्रत्वाच्छ्राद्धकालातिक्रमापत्तेः,

इन (सोलह श्राद्धों) को जब सपिण्डन से पहले एक साथ करे तब देश, काल और कर्ता के एक होने से तन्त्र से एकपाक से करे यह कोई कहते हैं। भट्टचरण कहते है—पाकभेद है। यहाँ पर कोई कहते है—देश, काल, कर्ता और देवता के एक होने से तन्त्र से श्राद्धकाल के अतिक्रम की आपत्ति हो जायगी।

(आधानेऽपकर्षमाह)

द्वादशाहेऽथ सर्वाणि संक्षेपेण समापयेत्। तान्येव तु पुनः कुर्यात् प्रेतशब्दं न कारयेत् ॥ इति कात्यायनोक्तेः।

कात्यायन ने कहा है—बारहवें दिन सब श्राद्धों को संक्षेप से समाप्त करे। उनको ही फिर से करे पर प्रेत शब्द का उच्चारण न करे।

(अन्तरतानां नवश्राद्धमासिकादीनां तन्त्रकथनम्)

नैकः श्राद्धद्वयं कुर्यात्समानेऽहनि कुत्रचित्। इत्यस्य दैवतैक्यपरत्वेऽप्यत्र तत्सत्त्वात्—श्राद्धं कृत्वा तु तस्यैव पुनः श्राद्धं न कारयेत्। इति जाबाल्युक्तेः।

एक व्यक्ति समान दिन (एकदिन) में दो श्राद्धों को कहीं भी न करे। इस वचन के देवता एक होने पर भी हो। एक देवता है और श्राद्ध को कर फिर उसी का ही फिर श्राद्ध न करे—यह जाबाल ने कहा है।

षोडशसंख्यायाश्च वाजपेये प्राजापत्ययागसप्तदशत्ववत्सान्नाय्ययागद्वित्ववच्चदर्शपातसंक्रान्तिश्राद्धवद्युगपदनुष्ठानेप्युपपत्तेः—आद्यमासिकाद्यूनाब्दिकान्तेषु षोडशश्राद्धेषु च क्षणः क्रियताम्' इत्येवं प्रयोगेणैको विप्रः पिण्डोऽर्घ्यश्चेति। विरुद्धविधिध्वंसेऽप्येवं तन्मन्दम्,

और सोलहसंख्या का वाजपेययाग में प्राजापत्ययाग में सप्तदशत्व की तरह सान्नाय्ययाग में दो की तरह दर्श में पातसंक्रान्ति श्राद्धवत् युगपत् अनुष्ठान में आपत्ति हो जायगी। आद्यमासिक आदि ऊनाब्दिक पर्यन्त सोलह श्राद्धों में क्षणःक्रियताम् (पधारिये) यही प्रयोग से एकब्राह्मण, एकपिण्ड और एक अर्घ होता है। विरुद्धविधिविध्वंश में भी यही है—यह मूर्खता है।

(वाजपेययाग में प्राजापत्यपशुयाग होते हैं। उसमें प्रजापति देवता है। पशु द्रव्य है। एसे सत्रह याग हैं। इन पशुओं का संस्कार अलग-अलग होने पर भी प्रक्षेप एक बार होता है। इसीप्रकार सान्नाय्य याग में दो हैं—दूध और दधि उसमें भी संस्कार अलग-अलग होते हैं। प्रक्षेप एकबार होता है। क्योंकि देवता एकहोने के कारण (सम्प्रतिपन्नदेवता होने से)। इसीप्रकार से प्रकृत में आद्यमासिक से लेकर ऊनाब्दिक तक सोलह श्राद्धों में 'क्षणः क्रियताम्' ऐसा प्रयोग होता है। इसके अनुसार एक ब्राह्मण, एक पिण्ड और एक अर्घ्य होता है।)

द्वादशाहेन वा भोज्या एकाहे द्वादशापि वा। इति हेमाद्रौ हारीतवचोविरोधात्। तेन विप्रभेदात्पिण्डाद्यर्घ्यावपि भिन्नमिति सिद्धम्।

एतानि द्वादशाहादौ सपिण्डनात्पूर्वं कृतान्यपि वृद्धिं विनाऽपकर्षे पुनः स्वकाले कार्याणि,

हेमाद्रि में हारीतस्मृति के वचन का विरोध है—बारहवें दिन या ग्यारहवें दिन बारह ब्राह्मण भोजन करा दे। इससे ब्राह्मणभेद से पिण्ड, अर्घ्य आदि भी भिन्न होंगे—यह सिद्ध हुआ। इनको बारहदिन आदि में सपिण्डन के पूर्व करने पर भी वृद्धि के बिना अपकर्ष में फिर से अपने समय में करे।

यस्य संवत्सरादर्वाक् सपिण्डीकरणं कृतम्। मासिकं चोदकुम्भं च देयं तस्यापि वत्सरम्॥ इति मदनरत्नेऽङ्गिरसोक्तेः। न चेदं मासिकानापकर्षं विधत्ते किन्तु सपिण्डनोर्ध्वं स्वकालेऽनुष्ठानमेवेति वाच्यम्। श्राद्धानि षोडशादत्वा न तु कुर्यात्सपिण्डताम्। इति विरोधात्।

मदनरत्न में आंगिरस का कथन है—जिसका सालभर के पहले सपिण्डीश्राद्ध किया हो उसका भी मासिक और जल का घडा साल भर तक देना चाहिये। यह वचन मासिकश्राद्धों का अपकर्ष नहीं करता है। (अन्यथा उदककुम्भों का भी अपकर्ष हो जायगा।) किन्तु सपिण्डन के बाद अपने समय में ही अनुष्ठान को करे—यह कहता है। सोलह श्राद्धों को न देकर सपिण्डन न करे—इससे विरोध है।

यस्य संवत्सरादर्वाग्विहिता तु सपिण्डता। विधिवत्तानि कुर्वीत पुनः श्राद्धानि षोडश॥ इति माधवीये गोभिलोक्तेश्च।

जिसका साल भर के पूर्व सपिण्डन हो गया हो वह फिर उन सोलह श्राद्धों को विधिवत् करे—यह माधवीय में गोभिल ने भी कहा है।

अर्वाक् संवत्सराद्यस्य सपिण्डीकरणं कृतम्। षोडशानां द्विरावृत्तिं कुर्यादित्याह गौतमः॥ इति तत्रैव गोभिलोक्तेः। षोडशत्वं चैकादशाहसपिण्डनपक्षे तत्राद्यमासिकस्य कालसत्वात्, अन्यपक्षेषु यथासंभवं ज्ञेयम्।

जिसका सालभर के पूर्व सपिण्डनश्राद्ध हो गया हो उस सोलह श्राद्धों की द्विरावृत्ति करे—यह गौतम ने कहा है। यह वहीं पर गालव ने कहा है। सोलहश्राद्ध भी एकादशाह में सपिण्डनपक्ष में है। वहाँ पर आद्यमासिक का काल (समय) है। अन्यपक्षों में तो यथा सम्भव जानना चाहिये।

यत्तु दीपिकायाम्—'अनुमासिकानि तु चरेत्तान्येव सापिण्ड्यतः पश्चाद् द्वादश' इत्युक्तेरूनानां न पुनः कृतिरित्युक्तं तदेतद्विरोधाच्चिन्त्यम् ।

जो दीपिका में कहा है—अनुमासिकश्राद्धों को तो फिर से ही करे सपिण्डनश्राद्ध के बाद में 'द्वादश' एसा कहने पर ऊनश्राद्धों को फिर से न करे—एसा कहा है। यह इससे विरोध होने से चिन्तनीय है।

यत्तु गौडाः—सपिण्डीकरणान्ता तु ज्ञेया प्रेतक्रिया बुधैः ॥ इति शातातपोक्तेर्मासिकानां प्रेतत्वविमोचार्थत्वात् सपिण्डनापकर्षे तदन्तन्यायेन तेषामप्यपकर्षान्मासिकानां न पुनः कृतिः ।

जो गौड कहते हैं—बुद्धिमानों को सपिण्डनश्राद्धपर्यन्त प्रेत की क्रिया (प्रेत का कर्म) जानना चाहिये—इस शातातप के कहने से मासिकश्राद्धों का तो प्रेतत्व दूर करने के लिये है। सपिण्डन के अपकर्ष में 'तदन्तन्याय' से मासिकश्राद्धों का भी अपकर्ष से मासिकश्राद्धों को फिर से न करे।

यत्तु 'मासिकं चोदकुम्भं च' इति लौगाक्ष्यादिवचनं, तन्निर्मूलम् । समूलत्वेऽपि दार्शपरं चेत्याहुः । त उक्तवक्ष्यमाणवचोनिबन्धविरोधान्मूर्खा इत्युपेक्ष्याः ।

जो कहा—'मासिकं चोदकुंभम्—मासिकश्राद्ध और जलकुम्भ को दे—यह लौगाक्षि आदि का वचन हैं वह निर्मूल है। समूल भी हो तो दर्श (अमावास्या) के विषय में है—ऐसा कहते हैं। वे कहे जाने वाले वचन निबन्ध ग्रन्थों के विरोध से मूर्ख हैं—इसलिए उपेक्षणीय (त्यागने योग्य) हैं।

यत्तु मिताक्षरायां सपिण्डनोर्ध्वं स्वकाले एव कार्याणि अपकर्षस्त्वनुकल्प इत्युक्तम्, तदपि पूर्वविरोधाच्चिन्त्यम् । तेन वृद्धिं विनाऽपकर्षे पुनः कृतिः ।

जो मिताक्षरा में कहा है—सपिण्डन के बाद अपने समय में ही करे। अपकर्ष तो अनुकल्प है—एसा कहा है, वह भी पूर्व के विरोध से विचारणीय है। इससे वृद्धि के बिना अपकर्ष में फिर से करे। (प्रेत के परिहार के लिए ही इसको करे।)

अर्वाक् संवत्सराद्यस्य सपिण्डीकरणं भवेत् । प्रेतत्वमिह तस्यापि ज्ञेयं संवत्सरं नृप ॥ इत्यग्निपुराणात् । वृद्धिनिमित्तापकर्षे त्वस्त्येव तन्निवृत्तिः, अन्यथा वृद्ध्यसंभवादिति शूलपाणिः ।

अग्निपुराण में कहा है—हे नृप, जिसका सालभर के पूर्व सपिण्डनश्राद्ध हो जाय उसका भी एक सालतक प्रेतत्व यहाँ पर रहता है। वृद्धिनिमित्त अपकर्ष में तो उसकी निवृत्ति होती ही है, अन्यथा वृद्धि का असम्भव है—यह शूलपाणी कहते हैं।

कार्ष्णाजिनिः—सपिण्डीकरणादर्वागपकृष्यकृतान्यपि ।
पुनरप्यपकृष्यन्ते वृद्ध्युत्तरनिषेधनात् ॥

कार्ष्णाजिनि ने कहा है—सपिण्डीश्राद्ध के पूर्व अपकर्ष करके भी श्राद्ध किए जाते हैं फिर भी अपकर्ष कर श्राद्धों को करे। क्योंकि वृद्धि के बाद निषेध है। (सपिण्डीकरणादूर्ध्वं न दद्यात्प्रतिमासिकम् । सांवत्सरविधानेन दद्यादित्याहशौनकः ॥ यह छन्दोगपरिशिष्ट वचन तो जिनकी उत्तरक्रिया अनावश्यक है उनका फिर से करना निषेध है। अन्यों के प्राप्ति के लिए है।)

निषेधं चाह कात्यायनः—निर्वर्त्य वृद्धितन्त्रं तु मासिकानि न तन्त्रयेत् । अयातयामं मरणं न भवेत्पुनरस्य तु ॥ इति द्विरनुष्ठानं चोत्तरेषामेव, न पूर्वेषां स्वस्वकालकृतानाम् ।

और निषेध को कात्यायन ने कहा है—वृद्धि के तन्त्र को निवृत्त कर मासिकश्राद्धों को तन्त्र से न करे। नूतन मरण फिर इसका न हो। (वृद्धिश्राद्ध के उत्तर मासिक के न करने में इसका मरण नूतन नहीं है अन्यथा तो नूतन है।) और दो बार अनुष्ठान भी उत्तरवालों का ही है, अपने अपने समय में किये हुए पहलों का नहीं है।

तदाह माधवीये कार्ष्णाजिनिः—अर्वादब्दाद्यत्र यत्र सपिण्डीकरणं कृतम् ।
तदूर्ध्वं मासिकानां स्याद्यथाकालमनुष्ठितिः ॥

उसी बात को माधवीय में कार्ष्णाजिनि ने कहा है—सालभर के पहले जहाँ-जहाँ पर सपिण्डनश्राद्ध किया है वहाँ-वहाँ पर बाद में मासिकश्राद्धों का यथासमय में अनुष्ठान करे ।

हेमाद्रौ शाठ्यायनिः—प्रेतश्राद्धानि शिष्टानि सपिण्डीकरणं तथा ।
अपकृष्यापि कुर्वीत कर्तुं नान्दीमुखं द्विजः ॥

हेमाद्रि में शाठ्यायनि ने कहा है—शिष्ट प्रेतश्राद्धों को और सपिण्डनश्राद्ध को अपकर्ष से भी जो द्विज नान्दीश्राद्ध को करने की इच्छा करे कर सकता है ।

वृद्धिं विनापकर्षे दोषमाहोशनाः—वृद्धिश्राद्धविहीनस्तु प्रेतश्राद्धानि यश्चरेत् ।
स श्राद्धी नरके घोरे पितृभिः सह मज्जति ॥ इति ।

वृद्धि के बिना अपकर्ष में दोष उशना ने कहा है—वृद्धिश्राद्ध विहीन (उस श्राद्ध की उपस्थिति के विहीन) जो प्रेतश्राद्धों को करता है वह श्राद्ध करने वाला पितरों के साथ घोर नरक में गिरता है ।

(आधानेऽपकर्षमाह)

आधानेऽपकर्षमाह हेमाद्रावुशनाः—पितुः सपिण्डीकरणं वार्षिके मृतिवासरे । आधानाद्युपसंप्राप्तावेतत्प्रागपि वत्सरात् ॥ विशेषस्तु उक्तो विवाहनिर्णये ।

आधान में अपकर्ष हेमाद्रि में उशना ने कहा है—पिता का सपिण्डनश्राद्ध वार्षिक मरणदिन में होता है आधान आदि (आदिपद से इष्टापूर्ति का ग्रहण है) का काल आजाय तो सालभर के पहले भी श्राद्ध होता है । विशेष तो विवाहनिर्णय में कह चुके हैं ।

कण्वः—नवश्राद्धं मासिकं च यद्यदन्तरितं भवेत् ।
तत्तदुत्तरसातन्त्र्यादनुष्ठेयं प्रचक्षते ॥

कण्व ने कहा है—नवश्राद्ध और मासिकश्राद्ध जो अन्तरित (व्यवहित) में हो उसका उत्तरतन्त्र उसके बाद मरण महिने में (तदुत्तरमाससंबन्धि मासिकमृताहे कुर्यात् ।) अनुष्ठान करना कहा है ।

गारुडेऽपि—आपदाद्यकृतं तत्तु कुर्यादूर्ध्वं मृतेऽहनि ।

गरुडपुराण में भी कहा है—आपत्ति आदि के द्वारा नहीं किया है वह बाद में मरणदिन में करे ।

(सपिण्डीकरणम्)

अथ सपिण्डीकरणम् । माधवीये हारीतः—या तु पूर्वममावास्या मृताहाद्दशमी भवेत् । सपिण्डीकरणं तस्यां कुर्यादेवं सुतोऽग्निमान् ॥ मृताहादूर्ध्वं दशमी एकादशीत्यर्थः ।

अब सपिण्डीकरण कहते हैं । माधवीय में हारीत ने कहा है—जो अमावस्या मरणदिन से दशमी के पहले हो उसी अमावस्या में ही सपिण्डनश्राद्ध अग्निहोत्री का पुत्र करे । मरणदिन से बाद दशमी अर्थात्—एकादशी—यह अर्थ (यदि तु मृताहाद्दशमी या रात्रिस्ततः परो दर्श इति व्याख्यायते तद् दशाहात् परो दर्शः कालो लभ्यते नान्यथा दर्शात्मकैकाद्शाहस्यानियतत्वात् इति कृष्ण०) है ।

सपिण्डीकरणं कुर्यात्पूर्वे दर्शेऽग्निमान् सुतः । परतो दशरात्राच्चेत्कुहुरब्दोपरीतरः । इति कार्ष्णाजिनिस्मृतेः । आहिताग्नेस्तेन विना श्रौतपिण्डपितृयज्ञासिद्धेः ।

कार्ष्णाजिनिस्मृति में कहा है—अग्निहोत्री पुत्र पहले की तरह अमावास्या में सपिण्डनश्राद्ध करे । दश रात के बाद अमावास्या हो तो साल भर में करे । पहले हो तो अनाहिताग्नि पूर्व करे । आहिताग्नि का उसके विना श्रौत-[1]पिण्डपितृयज्ञ की सिद्धि नहीं हो सकती ।

१—पिण्डपितृयज्ञ सरलावृत्ति—कात्यायनश्रौतसूत्र के चतुर्थ अध्याय के प्रारम्भ में और महीधरभाष्य के दूसरे अध्याय के अन्त में है । तद्वत् शतपथ ब्राह्मण आदि में भी है । वहाँ से देखिये ।

दक्षिण

(पिता का सपिण्डन)

पश्चिम

विश्वेदेव (पितामह, प्रपितामह और वृद्धप्रपितामह)

आसन
भोजनपात्र
अर्घपात्र
जलपात्र
घृतपात्र

कर्ता का आसन

वृद्धप्रपितामह

प्रपितामह

पितामह

प्रेत (पिता)

आसन
भोजनपात्र
अर्घपात्र
जलपात्र
घृतपात्र

पिण्डाधारवेदी

प्रेतपिण्डाधारवेदी

(अवनेजनपात्र ही प्रत्यवनेजन होते हैं)

अवनेजनपात्र

पूर्व

कर्ता का आसन

उत्तर

नोट—१—कोई 'प्रेत' का आसन पितामहादि के बाद में रखते हैं। वह पक्ष युक्त नहीं है। २—मारवाड़ी चौथे साल के आश्विन कृष्णपक्ष में अपने मृत पिता की तिथि में विशेष पार्वणश्राद्ध करते हैं। जिसको 'पिण्डमिलौनी' कहते हैं। सारस्वतादि इसी को 'शुद्धश्राद्ध' कहते हैं। जो युक्त है। ३—जिसका पिता जीवित हो मृत पितामह का सपिण्डन प्रपितामह, वृद्धप्रपितामहादि में होगा। तद्वत् माता के मरने पर दादी (पितामही) के जीवित रहने पर उसके बाद प्रपितामही आदि से सपिण्डनश्राद्ध होगा। ४—कोई व्युत्क्रम से मरने से सपिण्डन नहीं मानते हैं। यह माता और पिता से भिन्न विषयक है। उचित तो यों है कि—शिष्टाचार से सबका सपिण्डन परम्परा से होता आया है। निर्णयसिन्धु ने 'केचित् सर्वत्र सपिण्डनमाहुः' को स्वीकार किया है। वह युक्ततम पक्ष है। ५—आधुनिक पद्धतिकारों ने माता आदि के मरने पर मन्त्रों में ऊह किया है वह युक्ति निराधार है। कर्कादिभाष्यकार नहीं मानते हैं। ६—सपिण्डनश्राद्ध को सतिसम्भव में ज्येष्ठपुत्र को ही करना चाहिये। लौकिकाचार से कनिष्ठ पुत्र के करने पर ज्येष्ठ पुत्र प्रवासादि के आने पर सपिण्डन करे तो 'प्रेत' शब्द का उच्चारण और मासिकादिश्राद्ध में अधिकार नहीं है। ७—राजकीय आदि आपत्ति में सपिण्डनश्राद्ध को कालान्तर में करे। प्रेत के पात्र के जल को अलग तीन दूनों में समभाग कर पितामहादि के पात्रों में क्रम से मिला दे। तद्वत् प्रेतपिण्ड (जो बारह अंगुल लम्बा होता है) को ये समानाः समनसः, ये समानाः समनसो (यजु० अ० १९, मन्त्र ४५, ४६) इन दो मन्त्रों से दो विभाग (सुवर्णरौप्यदर्भैस्तु तस्मिन् पिण्डं ततस्त्रिधा। कृत्वा पितामहादिभ्यः पितृभ्यः प्रेतमर्पयेत् ॥) क्रम से प्रेत के त्रिधाविभाजित पिण्डों को पितामह, प्रपितामह और वृद्धप्रपितामह में मिला दे। ८—कुछ महामूर्ख कहते हैं कि हमने गया में अपने पितरों को बैठा दिया। अब हमको श्राद्ध, भोजन आदि उनके क्षयाह तिथियों में नहीं कराना चाहिये। ऐसा वहाँ के पण्डों ने उनसे कहा है। यह युक्ति उनकी उचित नहीं है। क्योंकि जो लोग गया आदि में अपने पितरों को बैठाकर आये हैं उनके यहाँ फिर से किसी की अवश्य ही मृत्यु होगी ही—ऐसी स्थिति में पिण्डमेलन (सपिण्डनश्राद्ध) किसके साथ करेंगे और गयाश्राद्धादि हरसाल करना लिखा है। अतः उन मूर्खों की युक्ति उचित नहीं है।

तदाह गालवः—सपिण्डीकरणात्प्रेते पैतृकं पदमास्थिते ।
आहिताग्नेः सिनीवाल्यां पितृयज्ञः प्रवर्तते ।

उसी बात को गालव ने कहा है—सपिण्डनश्राद्ध करने पर प्रेत पितर के पदपर स्थित हो जाता है । आहिताग्नि का सिनीवाली (अमावास्या जिसमें चन्द्रमा दिखाई दे) में पितृयज्ञ होता है ।

मदनरत्ने प्रजापतिः—नासपिण्ड्याग्निमान् पुत्रः पितृयज्ञं समाचरेत् ।

मदनरत्न में प्रजापति ने कहा है—अग्निहोत्री पुत्र सपिण्डनश्राद्ध विना किये पिण्डपितृयज्ञ न करें । (पापी भवत्यकुर्वन् हि पितृहा चोपजायते—यह इस श्लोक का उत्तरार्ध है ।)

अपरार्के कात्यायनः—एकादशाहं निर्वर्त्य पूर्वं दर्शाद्यथाविधि । प्रकुर्वीताग्निमान्विप्रो मातापित्रोः सपिण्डताम् ॥ आशौचान्तप्रथमदर्शयोर्मध्ये कस्मिंश्चिदहनीत्यर्थः । पित्रादीनां सपत्नीकानां देवतात्वेन मातुरपि तत्रानुप्रवेशान्मातुरपि प्राग् दर्शात्सपिण्डनं युक्तमित्यपरार्कः । एवं पितामहादेरपि सपिण्डनं प्राग्दर्शात्कार्यम् । तेन विना पार्वणायोगात् ।

अपरार्क में कात्यायन ने कहा है—विधिपूर्वक अमावस्या के पूर्व एकादशाहश्राद्ध को समाप्त कर अग्निहोत्री पुत्र माता और पिता का सपिण्डनश्राद्ध करे । आशौच के अन्त में प्रथम अमावस्या के मध्य में किसीदिन करे—यह अर्थ है । सपत्नीक पिता आदि का देवतात्व होने से माता का (मातामही आदि भी उपलक्षण है—अनुप्रवेश होने से) भी अनुप्रवेश (मिलना) होने से माता का भी अमावस्या के पहले सपिण्डनश्राद्ध युक्त है—यह अपरार्क ने कहा है । इसप्रकार पितामह आदि का भी अमावस्या के पूर्व सपिण्डनश्राद्ध करना चाहिये । क्योंकि उसके बिना पार्वण नहीं हो सकता है ।

द्वादशाहे वा कार्यम् । साग्निकस्तु यदा कर्ता प्रेतश्चानग्निमान् भवेत् । द्वादशाहे भवेत्कार्यं सपिण्डीकरणं सुतैः । इति गोभिलोक्तेः ।

या द्वादशाह को करना चाहिये । गोभिल ने कहा है—जब साग्निक कर्ता हो और प्रेत अग्निहोत्री न हो तो पुत्रों को बारहवें दिन सपिण्डनश्राद्ध करना चाहिये ।

साग्नेः प्रेतस्य तु त्रिपक्षे, प्रेतश्चेदाहिताग्निः स्यात् कर्ताऽनग्निर्यदा भवेत् । सपिण्डीकरणं तस्य कुर्यात्पक्षे तृतीयके ॥ इति सुमन्तूक्तेः ।

सुमन्तु ने कहा है—साग्निक प्रेत का तो तीन पक्ष (डेढ मास) में करे । प्रेत आहिताग्नि हो कर्ता अनग्निक हो तो उसका सपिण्डनश्राद्ध तीसरे पक्ष में करे ।

मदनरत्ने लघुहारीतोऽपि—अनग्निस्तु यदा वीर भवेत्कुर्यात्तदा गृही ।
प्रेतश्चेदग्निमांस्तु स्यात्त्रिपक्षे वै सपिण्डनम् ॥

मदनरत्न में लघुहारीत ने भी कहा है—हे वीर, जब गृहस्थ आहिताग्नि न हो और प्रेत आहिताग्नि हो तो उसका सपिण्डनश्राद्ध त्रिपक्ष में ही होता है ।

द्वयोः साग्निकत्वे द्वादशाह एव, साग्निकस्तु यदा कर्ता प्रेतो वाप्यग्निमान् भवेत् । द्वादशाहे तदा कार्यं सपिण्डीकरणं पितुः ॥ इति तेनैवोक्तेः ।

दोनों साग्निक हों तो बारहवें दिन ही होता है । उसी ने ही कहा है—जब साग्निक कर्ता हो या प्रेत भी साग्निक हो तो पिता का सपिण्डनश्राद्ध बारहवें दिन करे । (पिता आदि से भिन्न साग्निक कर्ता का भी द्वादशाह का नियम नहीं है ।)

द्वयोरनग्निमत्वे तु भविष्ये—सपिण्डीकरणं कुर्यात् यजमानस्त्वनग्निमान् ।
अनाहिताग्नेः प्रेतस्य पूर्णेऽब्दे भरतर्षभ ॥

दोनों अग्निहोत्री न हों तो भविष्यपुराण में कहा है—हेभरतर्षभ, अनाहिताग्नि प्रेत का सपिण्डश्राद्ध पूरे साल की समाप्ति पर अनग्निक यजमान करे ।

द्वादशेऽहनि षण्मासे त्रिपक्षे वा त्रिमासि वा । एकादशेऽपि वा मासि मङ्गलस्याभ्युपस्थितौ ॥

मंगल की भी उपस्थिति में तो बारहवें दिन, छठे महिने, त्रिपक्ष, तीन महिने या ग्यारह महिने में करे।

कात्यायनगोभिलौ—'यदहर्वा वृद्धिरापद्येत' इति। तच्च वृद्धिदिन एवेति वाचस्पतिः। तन्न, 'प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम्' इति नियमात्सपिण्डनस्य चापराह्णकालीनत्वेन पूर्वत्वबाधापत्तेः। वृद्धिदिने तत्पूर्वदिने वेति श्रीदत्तः। स्मार्तगौडस्तु—'वृद्धिपूर्वो वर्षान्त्यश्च क्षणः सपिण्डस्य तत्पूर्वदिने प्रेतत्वनाशे सहकारी। तेन परेद्युर्विघ्नाद्वृद्ध्यभावेऽपि तत्कर्तव्यतानिश्चयसहितमेव कालान्तरक्रियमाणवृद्धिपूर्वक्षणसहकृतं प्रेतत्वनाशकम्, इत्याह। तन्न, अकाले कृतस्य फलाजनकत्वात्। एतेन निमित्तनिश्चयवत एवाधिकाराद् वृद्ध्यभावेऽपि न क्षतिरिति मिश्रोक्तिः परास्ता। वृद्धिपूर्वदिनस्य वर्षान्तस्य च कालस्याङ्गत्वेन निमित्तत्वाभावात्। तेन पुनः कार्यमित्यन्ये।

कात्यायन और गोभिल ने कहा है—या जिसदिन वृद्धि हो उसदिन करे। उसको वृद्धिदिन में ही करे—यह वाचस्पति का कहना है। यह उचित नहीं है, क्योंकि वृद्धिनिमित्तक श्राद्ध प्रातःकाल होता है—इस नियम से और सपिण्डनश्राद्ध का समय अपराह्न (या मध्याह्नकालीन है) काल होने से पहले करने का बाध हो जायगा। वृद्धिदिन (जहाँ पर नान्दीश्राद्ध अपराह्न में होगा वहाँ वृद्धिदिन में, जहाँ कहीं प्रातःकाल होगा वहाँ पूर्वदिन में होगा—यह अर्थ है।) में या उसके पूर्वदिन में करे—यह श्रीदत्त कहते हैं। स्मार्तगौड तो कहते हैं कि वृद्धि का पूर्व तथा वर्ष का अन्त्यक्षण सपिण्डन का प्रेतत्व के नाश में सहकारी है। इससे दूसरे दिन विघ्न से वृद्धि के अभाव होने पर भी उसके करने का निश्चय सहित ही कालान्तर में करने योग्य वृद्धि के पूर्वक्षण में युक्त प्रेतत्व का नाशक है—यह कहा है। यह उचित नहीं है, क्योंकि असमय में करने से फल का देने वाला नहीं होता है। इससे निमित्त के निश्चय वाले को ही अधिकार होने से वृद्धि के अभाव में भी क्षति नहीं है—ऐसी मिश्र की उक्ति परास्त हो गयी। वृद्धि के पूर्वदिन का और वर्षान्त का अंगत्व से निमित्त का अभाव है। इससे फिर करे—यह अन्य कहते हैं।

मदनरत्ने पुलस्त्यः—निरग्निकः सपिण्डत्वं पितुर्मातुश्च धर्मतः।
पूर्णे संवत्सरे कुर्याद् वृद्धिर्वा यदहर्भवेत् ॥

मदनरत्न में पुलस्त्य ने कहा है—निरग्निक पुत्र धर्म से पिता और माता का (चकार से मातामह आदि का ग्रहण किया है।) सपिण्डनश्राद्ध को पूरे साल में करे यदि वृद्धि हो तो उसीदिन करे।

चतुर्विंशतिमते—सपिण्डीकरणं चाब्दे सम्पूर्णेऽभ्युदयेऽपि वा।
द्वादशाहे तु केषांचिन्मतं चैकादशे तथा ॥

चतुर्विंशतिमत में कहा है—सपिण्डनश्राद्ध को पूरे साल में करे या अभ्युदय में करे बारहवें दिन करे या किसी के मत से ग्यारहवें दिन करे।

पृथ्वीचन्द्रोदये बौधायनः—'अथ सपिण्डीकरणं त्रिपक्षे वा तृतीये वा मासि, षष्ठे वैकादशे वा द्वादशाहे वैकादशे वा' इति।

पृथ्वीचन्द्रोदय में बौधायन ने कहा है—अब सपिण्डनश्राद्ध को तीनपक्ष में, तीसरे महिने में, छठे मास में, ग्यारहवें मास में या बारहवें महिने में करे। या बारहवें दिन या ग्यारहवें दिन करे।

एतत्प्रक्रमे विष्णुः—'मासिकार्थं द्वादशाहं श्राद्धं कृत्वा त्रयोदशेऽह्नि वा कुर्यात्। मन्त्रवर्ज्यं हि शूद्राणाम्। द्वादशेऽह्नि संवत्सराभ्यन्तरे यद्यधिमासो भवेत्तदा मासिकार्थं दिनमेकं वर्धयेत्' इति।

उसीप्रकरण में विष्णु ने कहा है—मासिकश्राद्ध के लिए बारहवें दिन श्राद्ध करे या तेरहवें दिन करे। शूद्रों का तो मन्त्र रहित सपिण्डन होता है बारहवेंदिन। एकसाल के भीतर यदि अधिकमास हो तो मासिक के लिए एकदिन बढ़ा दे।

आशौचोत्तरं द्वादशस्वहःसु मासिकानि। तेष्वेवाद्यषष्ठद्वादशदिनेषूनमासिकादीनि कृत्वा त्रयोदशेऽह्नि सपिण्डनं कुर्यात्। अधिमासे तु चतुर्दशेऽह्नि कुर्यात्। शूद्रेस्त्रयोदशे द्वादशेऽह्नि इत्यस्य मासिकान्त्यदिनपरत्वादिति पृथ्वीचन्द्रः।

आशौचोत्तर बारहदिनों में मासिकश्राद्धों को करे। उनमें ही आद्य, छठा तथा बारहदिनों में ऊनमासिक आदि-(त्रैपाक्षिक, ऊनषाण्मासिक, ऊनाब्दिक) कर तेरहवें दिन में सपिण्डन करे। अधिक मास में तो चौदहवें दिन करे। शूद्र तेरहवें दिन में करे। बारहवें दिन इसका अभिप्राय है कि—मासिक के अन्त्यदिन पर है-यह पृथ्वीचन्द्र ने कहा है। (इसका यों अर्थ है-द्विजातियों का आशौच के हटने के बाद तेरहवें दिन अधिक मास के पातमें चौदहवें दिन अपकर्ष करे शूद्रों का उसीदिन न करे किन्तु बारहवें दिन ही अधिक पातमें तेरहवें दिन ही कर मासिक कर सपिण्डन का अपकर्ष करना चाहिये।)

पैठीनसिः—'संवत्सरान्ते सपिण्डनं नवमे मासीत्येके।' अत्र साग्नेरनग्नेर्वोक्तकालाभावे त्रिपक्षादिसंवत्सरान्ता अनुकल्पा ज्ञेयाः। कल्पतरुस्त्वग्रे वृद्धिनिश्चय एव सर्वेऽपकर्षप्रकारा इत्याह। तन्न, 'यदहर्वा' इति स्वातन्त्र्यश्रुतेः। यद्यपि वृद्धिनिमित्तोपकर्षो निरग्नेरेवोक्तस्तथापि साग्नावपि ज्ञेयः। उक्तकालासंभवे वर्षान्तादिगौणकालवद्वृद्धेरपि प्राप्तेः, वक्ष्यमाणगोभिलवचनात्, अयातयामं मरणं न भवेदित्युत्तरस्य तु। इति दोषश्रुत्यविशेषाच्च। अपरार्कपृथ्वीचन्द्रादिस्वरसोऽप्येवम्। अत्र वृद्धिपदं चूडोपनयनविवाहमात्रपरम्। सीमन्तादौ तु वृद्धिश्राद्धलोप एवेत्याचार्यचूडामणिः। पुंसवनाद्यन्नप्राशनान्तेष्वावश्यकेष्वपकर्ष इति श्राद्धविवेकः।

पैठीनसि ने कहा है-संवत्सर के अन्त में सपिण्डन करे किसी के मत से नवमें महिने में करे। यहाँ पर साग्निक या निरग्निक का उक्तकाल के अभाव में त्रिपक्ष से प्रारंभ कर संवत्सरान्त अनुकल्प जानना चाहिये। कल्पतरु ने कहा है-आगे वृद्धि का निश्चय हो जाने से ही सब अपकर्ष प्रकारों को कहा है। यह उचित नहीं है। जो दिन हो उसी में करे-यह स्वातन्त्र्यश्रुति है। यद्यपि वृद्धिनिमित्त अपकर्ष निरग्नि को ही कहा है फिर भी साग्निक को भी जानना चाहिये। कहे हुए समय के असंभव में वर्षान्त आदि गौणकाल के सदृश वृद्धि भी प्राप्त हो जायगी कहे हुए गोभिल के वचन से। आयातयाम (नूतन) मरण फिर उसका नहीं होगा। इस दोष श्रुति के अविशेष से। अपरार्क, पृथ्वीचन्द्र आदि में भी यही तात्पर्य है। यहाँ पर वृद्धिपद चूडा, उपनयन और विवाह मात्रपरक है। सीमन्त आदि में वृद्धि का लोप ही है-यह आचार्य चूडामणि ने कहा है। पुंसवन आदि अन्नप्राशनान्तों में आवश्यकता में तो अपकर्ष होता है-यह श्राद्धविवेककार कहते हैं।

स्मृतिसागरेऽपि बृहस्पतिः—प्रत्यवायो भवेद्यस्मिन्नकृते वृद्धिकर्मणि।
तन्निमित्तं समाकृष्य पित्रोः कुर्यात्सपिण्डनम्॥

स्मृतिसागर में भी बृहस्पति ने कहा है—जिस वृद्धिश्राद्ध के न करने पर प्रत्यवाय होता हो उसके निमित्त अपकर्ष से माता और पिता का सपिण्डनश्राद्ध करे।

गर्भाधानस्य तु ऋत्वन्तरेऽपि संभवात्।

अन्यश्राद्धं परान्नं च गन्धमाल्यं च मैथुनम्। इति देवलेन प्रथमाब्दे मैथुननिषेधाच्च न तत्रापकर्ष इति श्राद्धकौमुद्यादयः। तन्न, 'ऋतुस्नातां तु यो भार्याम्' इति निषेधात्, 'ब्रह्मचार्येव पर्वाण्याद्याश्चतस्रश्च वर्जयेत्' इति मैथुने दोषाभावाच्च। पितामहमरणे पौत्रस्य वृद्धौ नापकर्षः तस्य महागुरुत्वाभावात्। तत्र तदूर्ध्वेभ्यो वृद्धिश्राद्धमिति श्राद्धचन्द्रिका। तन्न, भ्राता च इत्यादौ तदभावेऽप्यपकर्षोक्तेः। तेन निर्देशोऽप्युपलक्षणम्।

गर्भाधान का तो अन्य ऋतु में भी संभव है। अन्यश्राद्ध, परान्न, गन्ध (चन्दन), माल्य (माला), और मैथुन को देवल ने प्रथम वर्ष में मैथुन निषेध से वहाँ पर अपकर्ष नहीं होता है यह श्राद्ध-

कौमुदी आदि में कहा है। यह उचित नहीं है, ऋतुस्नानवाली पत्नी के समीप जो नहीं जाता है। उसको भ्रूणहत्या लगती है-इससे निषेध है, पर्व में आदि की चाररात्रि ऋतुकाल में त्याग करता है, वह ब्रह्मचारी ही रहता है। इससे मैथुन में दोष का अभाव है। पितामह के मरने पर पौत्र के वृद्धि में अपकर्ष न करे। क्योंकि महागुरुत्व का (महागुरौ प्रेतभूते वृद्धिकर्म न चाचरेत्।) अभाव है। वहाँ पर उससे आगे वालों के लिए वृद्धिश्राद्ध होता है-यह श्राद्धचन्द्रिका में कहा है। यह उचित नहीं है, भाई-इत्यादि में उसके अभाव में भी अपकर्ष कहा है। इससे निर्देश (महागुरु का) भी उपलक्षण है।

(शरीरस्यायुषः क्षये)

व्याघ्रः—आनन्त्यात्कुलधर्माणां पुंसां चैवायुषः क्षयात्।
अस्थितत्वाच्छरीरस्य द्वादशाहः प्रशस्यते॥

व्याघ्र ने कहा है-कुलधर्मों के अनन्त होने से और पुरुषों की आयु के क्षय होने से, शरीर की स्थिति अस्थिर होने से बारहवें दिन सपिण्डनश्राद्ध करना उत्तम कहा है।

एतदाशौचान्तोपलक्षणम्—सर्वेषामेव वर्णानामाशौचान्ते सपिण्डनम्। इति निर्णयामृते कात्यायनोक्तेः। सर्वेषामिति त्रैवर्णिकपरम्।

यह आशौचान्त का उपलक्षण है। सब वर्णों का ही आशौचान्त में सपिण्डन होता है—यह निर्णयामृत में कात्यायन ने कहा है। सर्वेषाम्-यह त्रैवर्णिकपरक है।

शूद्राणां त्वाशौचमध्ये—मन्त्रवर्जं हि शूद्राणां द्वादशेऽहनि कीर्तितम्। इति विष्णुक्तेः। एतद्दर्शश्राद्धकारिशूद्रविषयमित्यपरार्के कल्पतरौ च।

शूद्रों का तो आशौच के मध्य में होता है-विष्णु ने कहा है-बारहवें दिन शूद्रों का सपिण्डनश्राद्ध मन्त्र रहित होता है। यह दर्शश्राद्ध के अधिकारी शूद्रविषयक है-यह अपरार्क और कल्पतरु में कहा है।

वृद्धमनुः—द्वादशेऽहनि विप्राणामाशौचान्ते तु भूभुजाम्।
वैश्यानां तु त्रिपक्षादावथ वा स्यात्सपिण्डनम्॥

वृद्धमनु ने कहा है-ब्राह्मणों का बारहवें दिन, क्षत्रियों का तो आशौचान्त में और वैश्यों का त्रिपक्ष के आदि में सपिण्डनश्राद्ध होता है।

निर्णयामृते गोभिलः—द्वादशाहादिकालेषु प्रमादादननुष्ठितम्। सपिण्डीकरणं कुर्यात् कालेषूत्तरभाविषु। इदं साग्नेरुक्तकालासम्भवे गौणकालविधानार्थमिति मदनपारिजातः। मदनरत्नेऽप्येवम्।

निर्णयामृत में गोभिल ने कहा है-बारहवें दिन आदि समयों में प्रमाद से सपिण्डनश्राद्ध को न किया गया हो तो उत्तर समयों में करे। यह साग्निक को कहे हुए काल के असंभव में गौणकाल के विधान के लिए है-यह मदनपारिजात में कहा है। मदनरत्न में भी यही है।

(पुनःकरणे प्रेतशब्दस्य विचारः)

ऋष्यशृङ्गः—सपिण्डीकरणं श्राद्धमुक्ते काले न चेत्कृतम्।
भाद्रे हस्ते च रोहिण्यां मैत्रभे वा समाचरेत्।

ऋष्यशृंग ने कहा है—सपिण्डनश्राद्ध को कहे हुए समय में न किया हो तो आर्द्रा, हस्त, रोहिणी या अनुराधा में करे।

(सपिण्डनकरणे अष्टौ कालाः)

कालादर्शेऽपि—एकादशेऽह्नि द्वादशे त्रिपक्षे वा त्रिमासि वा। षष्ठे चैकादशे वाब्दे सम्पूर्णे वा शुभागमे॥ सपिण्डीकरणस्येत्थमष्टौ कालाः प्रकीर्तिताः।

कालादर्श में भी कहा है-ग्यारहवें दिन, बारहवें दिन, त्रिपक्ष, तीनमास, छठे और ग्यारहवें मास में, सपूर्ण वर्ष में या शुभ के आगमन में ये आठ काल सपिण्डनश्राद्ध में कहे गये हैं।

(सप्तकालादिकथनम्)

साग्नौ कर्तर्युभावाद्यौ प्रेते साग्नौ तृतीयकः ॥ अनग्नेस्तु द्वितीयाद्याः सप्त काला मुनीरिताः । रोहिणीरौद्रहस्तेषु मैत्रभे वापि तच्चरेत् ॥

कर्ता साग्निक हो तो पहले दो काल ग्राह्य हैं। प्रेत साग्निक हो तो तीसरे समय (त्रिपक्ष) करे। अनग्निक को द्वितीय आदि सात कालों को मुनियों ने कहा है। या रोहिणी, रौद्र, (आर्द्रा) हस्त या मैत्र (अनुराधा) में करे।

नारदसंहितायां तु—सपिण्डीकरणं कार्यं वत्सरे वार्धवत्सरे । त्रिमासे वा त्रिपक्षे वा मासि वा द्वादशेऽह्नि वा ॥ इत्युक्तं, तच्च वत्सरेऽतीते ज्ञेयम् ।

नारदसंहिता में तो कहा है–सपिण्डनश्राद्ध को एकसाल में या आधे साल में, त्रिमास में, त्रिपक्ष में या बारहवें दिन करे–ऐसा कहा है। वह साल बीतने पर जानना चाहिये।

ततः सपिण्डीकरणं वत्सरात्परतः स्थितम् । इति भविष्योक्तेः,

भविष्यपुराण में कहा है–एक साल के बाद सपिण्डनश्राद्ध करे।

पितुः सपिण्डीकरणं वत्सरादूर्ध्वतः स्थितम् । इति नागरखण्डोक्तेः ।

नागरखण्ड में कहा है पिता का सपिण्डनश्राद्ध साल के बाद करे।

पितुः सपिण्डीकरणं वार्षिके मृतवासरे । इत्युशनसोक्तेश्च ।

और उशना ने कहा है–पिता का सपिण्डनश्राद्ध साल की मरणतिथि में करे।

पूर्णे संवत्सरे पिण्डः षोडशः परिकीर्तितः । तेनैव च सपिण्डत्वं तेनैवाब्दिकमिष्यते ॥ इति हेमाद्रौ वचनाच्च । अस्यानाकरत्वोक्तिर्मूर्खोक्तिरेव ।

और हेमाद्रि में वचन है–साल के पूर्ण होने पर सोलहवां श्राद्ध करे। उसी को ही सपिण्डत्व और उसी को ही आब्दिक कहते हैं। यह वचन निराधार है एसा कहना मूर्खता ही है।

यत्तु—पूर्णे संवत्सरे कुर्यात्सपिण्डीकरणं सुतः । एकोद्दिष्टं च तत्रैव मृताहनि समापयेत् ॥ इति धवलनिबन्धे जाबाल्युक्तेः ।

जो यह कहा है–पूरे साल में पुत्र सपिण्डनश्राद्ध को करे। वहीं पर कहा है—मरणदिन में एकोद्दिष्ट श्राद्ध को समाप्त करे–यह धवलनिबन्ध में जाबालि ने कहा है।

पुत्रः सपिण्डनं कृत्वा कुर्यात् स्नानं सचैलकम् । एकोद्दिष्टं ततः कुर्यात्कुतपं न विचारयेत् ॥

पुत्र सपिण्डनश्राद्धकर सचैलस्नान (पूरे पहने हुए वस्त्रों सहित स्नान) करे। फिर एकोद्दिष्ट श्राद्ध करे। कुतुप (दिनका आठवां मुहूर्त कुतुप होता है। अह्नो मुहूर्ता विख्याता दश पञ्च च सर्वदा। तत्राष्टमो मुहूर्तो यः कालः कुतुपः स्मृतः ॥) का विचार न करे।

इति स्वल्पमात्स्योक्तेश्चाब्दिकं तद्दिने पुनः कार्यमिति केचित् । ते निर्मूलत्वाद्धेमाद्रिविरोधाच्चोपेक्ष्याः । षोडशत्वं च सपिण्डनस्य षोडशश्राद्धान्तर्भावपक्षे ।

यह स्वल्प मत्स्यपुराण के कथन से उसीदिन ही आद्रिक फिर से करे यह कोई कहते हैं। वे निर्मूल होने से हेमाद्रि के विरोध होने से उपेक्ष्य (छोड़ देने जाने लायक) है। सपिण्डन को सोलहवाँ कहना तो षोडशश्राद्ध के अन्तर्गत स्वीकार करने पर।

स्मृत्यर्थसारे तु वर्षान्त्यदिने संवत्सरविमोक्षश्राद्धं सपिण्डनं च कृत्वा परेद्युर्मृताहे वार्षिकं कार्यमित्युक्तम् । गौडाः अप्येवमाहुः । तत्पूर्वविरोधाच्चिन्त्यम् ।

स्मृत्यर्थसार में तो साल के अन्तिमदिनमें संवत्सरविमोक्षश्राद्ध को और सपिण्डनश्राद्ध को कर दूसरे दिन मरणदिन में वार्षिकश्राद्ध करे—एसा कहा है। गौड भी यही कहते है। वह पूर्वविरोध से चिन्तनीय है।

तच्च पुत्रे सति नान्यः कुर्यात्। श्राद्धानि षोडशादत्त्वा न तु कुर्यात्सपिण्डताम्। प्रोषितावसिते पुत्रः कालादतिचिरादपि॥ इति वायवीयोक्तेः।

वह भी पुत्र के रहने पर दूसरा न करे। सोलह श्राद्धों को न कर सपिण्डनश्राद्ध को न करे। प्रवास (परदेश) से आने पर पिता के मरण को जानकर चिरकाल (बहुतकाल) में भी करे। यह वायुपुराण में कहा है।

षोडशश्राद्धानां वर्षादूर्ध्वं कालाभावेऽपि तान्यदत्वा न कुर्यात्, किन्तु दत्त्वैव। तानि यदि कनिष्ठभ्रात्रादिना कृतानि तदा सपिण्डनमेव कुर्यादित्यपरार्कः। सपिण्डने तु कनिष्ठानां नैवाधिकार इत्यर्थः।

उन सोलह श्राद्धों को साल के बाद समय के अभाव में बिना किये सपिण्डनश्राद्ध न करे किन्तु देकर ही करे। यदि कनिष्ठ (छोटा) भ्राता (भाई) आदि ने किया है तो सपिण्डनश्राद्ध ही करे यह अपरार्क ने कहा है। सपिण्डन में तो कनिष्ठों को (छोटे भाइयों को) अधिकार नहीं है—यह अर्थ है।

तत्रैव—अज्ञानादथवा मोहान्न कृता चेत्सपिण्डता। तत्रापि विधिवत्कार्या कालादतिचिरादपि॥

वहीं पर कहा है—अज्ञान से या मोह से सपिण्डनश्राद्ध को न किया हो तो यहाँ पर भी विधि से बहुत काल के बाद भी करे।

तेष्वपि ज्येष्ठस्यैवाधिकारः, ज्येष्ठेन जातमात्रेण पुत्री भवति मानवः। इति मनुक्तेः (९।१०६)।

उनमें भी ज्येष्ठ पुत्र को ही अधिकार है। मनु ने कहा है—ज्येष्ठ पुत्र के होने मात्र से पुत्र वाला मनुष्य होता है।

अपरार्के प्रचेता अपि—एकादशाद्याः क्रमशो ज्येष्ठस्तु विधिवत्क्रियाः।
कुर्यान्नैकैकशः श्राद्धमाब्दिकं तु पृथक् पृथक्॥

अपरार्क में प्रचेता ने भी कहा है—एकादशाह आदि क्रियाओं को क्रम से विधिवत् ज्येष्ठपुत्र करे। अलग-अलग न करें। आब्दिकश्राद्ध तो अलग अलग करें।

मरीचिः—सर्वेषां तु मतं कृत्वा ज्येष्ठेनैव तु यत्कृतम्।
द्रव्येण चाविभक्तेन सर्वैरेव कृतं भवेत्॥

मरीचि ने कहा है—अविभक्तद्रव्य से अनुमति के द्वारा ज्येष्ठ पुत्र ने जो किया जाता है वह सब ही ने किया।

यत्तु वाचस्पतिशूलपाणिभ्यामुक्तं द्रव्यदानानुमत्यभावे कनिष्ठैः पृथक् कार्यमिति। तन्न, एवकारस्य तदभावेऽपि पृथक्करणाभावार्थत्वात् अन्धादेरिव ज्येष्ठे सति कनिष्ठानामनधिकाराच्च। अतस्तेषां प्रत्यवायमात्रम्। आहिताग्निः कनिष्ठस्तु कुर्यादेव। अन्यथा पितृयज्ञासिद्धेः। एवमावश्यकवृद्धावपि कनिष्ठोऽन्यः सपिण्डो वा कुर्यात्।

जो वाचस्पति और शूलपाणि ने कहा है—द्रव्यदान की अनुमति के अभाव में कनिष्ठ पुत्र अलग करें। यह उचित नहीं है। एवकारका उसके अभाव में भी पृथक्करण का अभावार्थ होने से अन्धादि के सदृश ज्येष्ठ के होने पर कनिष्ठोंका अधिकार का अभाव है। इसलिए उनको प्रत्यवायमात्र है। आहिताग्नि हो तो कनिष्ठ ही करे। अन्यथा पितृयज्ञ की असिद्धि होगी। इसप्रकार आवश्यक वृद्धिमें भी कनिष्ठ या अन्य सपिण्ड करे।

भ्राता वा भ्रातृपुत्रो वा सपिण्डः शिष्य एव च। सहपिण्डक्रियां कृत्वा कुर्यादभ्युदयं ततः॥ तथैव काम्यं यत्कर्म वत्सरात्प्रथमादृते॥ इति मदनरत्ने लघुहारीतवचनात्।

भाई, भाई का पुत्र, सपिण्ड या शिष्य पिण्डक्रिया (सपिण्डनश्राद्ध) को कर आभ्युदयिकश्राद्ध करें। वैसे ही जो काम्यकर्म है प्रथम संवत्सर में त्यागकर करे यह मदनरत्न में लघुहारीत का वचन है।

वृद्धयनन्तरं प्रथमाब्दमध्येऽपि काम्यं कुर्यात्। वृद्धयभावे तु प्रथमाब्दादूर्ध्वमेवेत्यर्थः। काम्योक्तेरनावश्यकेष्टापूर्तादौ नापकर्षः। एतद्भ्रातृपुत्रादिसंस्कारे प्राप्ताधिकारस्य नान्दीश्राद्धाधिकारार्थम्। अभ्युदयपदं च नान्दीश्राद्धनिमित्तकर्ममात्रपरमिति हेमाद्रिः। तेन ज्येष्ठे देशान्तरस्थे कनिष्ठः सपिण्डनं विनैव वृद्धिं कृत्वा पुत्रसंस्कारं कुर्यादिति श्रीदत्तोक्तिः परास्ता। भ्रातृशिष्याद्युक्तेर्नान्दीश्राद्धेज्यदेवतामात्रपरोऽपकर्ष इत्यपास्तम्। अस्य क्रममात्रपरत्वादवृद्धिकर्तैव सपिण्डनं कुर्यादिति न नियम इति गौडाः। अत एव कन्याया मातृमरणे भ्रात्रा सपिण्डने कृते पितुर्दानाधिकारः।

वृद्धिश्राद्ध के बाद प्रथम वर्ष में भी काम्यकर्म करे। वृद्धि के अभाव में तो प्रथमवर्ष के बाद ही करे यह अर्थ है। काम्य के कहने से अनावश्यक इष्टापूर्त आदि में अपकर्ष नहीं होता है। यह (अशक्त्य आदि से अनुकल्पकाल में उसके अनुष्ठानमें तो अनुमासिक का अपकर्ष होता ही है।) भ्रातृपुत्र ('पितैवोपनयेत्पुत्रम्' इत्यादि। पिता पितामहो भ्राता' इत्यादि क्रम से जो अधिकार है, इसकी तरह) आदि के संस्कार में जिसको प्राप्त अधिकार है उसको नान्दीश्राद्ध के अधिकारार्थ है और अभ्युदयपद नान्दीश्राद्ध के निमित्त जितने कर्म हैं उनका बोधक है—यह हेमाद्रि का कहना है। इससे ज्येष्ठ भाई देशान्तर में हो तो कनिष्ठपुत्र सपिण्डनश्राद्ध के बिना ही वृद्धिश्राद्ध को कर पुत्र का संस्कार करे—यह श्रीदत्त का कहना परास्त हुआ। भाई, शिष्य आदिके कहने से नान्दीश्राद्ध में अर्चन योग्य देवतामात्र में अपकर्ष होता है यह अपास्त है। इसका क्रममात्रपरत्व होने से वृद्धिकर्ता ही सपिण्डन करे यह नियम नहीं है—यह गौड कहते। इसलिए कन्या की माता के मरने पर भाई के सपिण्डन करने पर पिता को कन्यादान का अधिकार है।

शूलपाणिस्तु—महागुरौ प्रेतभूते वृद्धिकर्म न युज्यते। इति निषेधात् मृतस्य भ्रात्रादिः सपिण्डनं कृत्वा तत्पुत्रकन्यादेरभ्युदयं कुर्यान्न तु स्वपुत्रसंस्कारे संस्कार्यपितुः सपिण्डनं विना वृद्धौ देवतात्वाभावादित्याह। तन्न, देवताप्रयुक्तापकर्षस्य निरस्तत्वात्। वृद्धिं विना कनिष्ठेन कृते तु विदेशस्थेन ज्येष्ठेन पुनः कार्यम्,

शूलपाणि ने कहा है—महागुरु के प्रेत होने पर (मरने पर) वृद्धिश्राद्ध का योग नहीं होता है यह निषेध से मरे हुए का भाई आदि सपिण्डनकर उसके पुत्र, कन्या आदि का आभ्युदयकार्य करें न कि अपने पुत्र के संस्कार में करने योग्य पिता का सपिण्डनश्राद्ध के बिना वृद्धि में देवतात्व का अभाव कहा है। यह उचित नहीं है। देवताप्रयुक्त अपकर्ष का खण्डन किया है। वृद्धिश्राद्ध के बिना कनिष्ठ के (सपिण्डनश्राद्ध) करने पर तो विदेश स्थित ज्येष्ठ पुत्र फिर से सपिण्डनश्राद्ध करे।

यवीयसा कृतं कर्म प्रेतशब्दं विहाय तु। तज्ज्यायसापि कर्तव्यं सपिण्डीकरणं पुनः॥ इति स्मृतेः।

स्मृति में कहा है—छोटे भाई के किये हुए सपिण्डनश्राद्ध को प्रेतशब्द त्यागकर ज्येष्ठ भाई फिर से सपिण्डीश्राद्ध करे।

ज्येष्ठेन वा कनिष्ठेन सपिण्डीकरणे कृते। आद्यपादे 'मातापित्रोः कनिष्ठेन' इति वा पाठः।

ज्येष्ठ या कनिष्ठ भाई सपिण्डनश्राद्ध करे। पहले बाद में अर्थात्—ज्येष्ठेन वा कनिष्ठेन—इसकी जगह में 'मातापित्रोः 'कनिष्ठेन' यह पाठ है। माता और पिताका सपिण्डीश्राद्ध कनिष्ठ करे।

(देशान्तरे पितरि मृते पुत्रैः किं कार्यम्)

देशान्तरगतानां च पुत्राणां तु कथं भवेत्। श्रुत्वा तु वपनं कार्यं दशाहान्तं तिलोदकम्॥ ततः सपिण्डीकरणं कुर्यादेकादशेऽहनि। द्वादशाहेन कर्तव्यमिति शातातपोऽब्रवीत्॥ इति वचनाच्चेति भट्टाः। सिद्धाभट्टीयेऽप्येवम्। पूर्ववचनेऽत्र च मूलं चिन्त्यम्।

देशान्तर (दूसरे प्रदेश) में गये हुए पुत्र कैसे करें। वे—सुनने पर मुण्डन करावें और दशदिन तक

तिलोदक दे। फिर सपिण्डनश्राद्ध को ग्यारहवें दिन करें बारहवें दिन नहीं करना चाहिये—यह शातातप ने कहा है। इस वचन से यह भट्ट कहते हैं। सिंगाभट्टीय में भी यही है। यहाँ पर पहले के वचन में मूल विचारणीय है। (पहले के वचन (यवीयसा कृतं कर्म प्रेतशब्दं विहाय तु। तज्ज्यायसामपि कर्तव्यं सपिण्डीकरणं पुनः॥ और पितृयज्ञार्थ कनिष्ठपुत्र के सपिण्डनश्राद्ध करने पर भी ज्येष्ठपुत्र को सपिण्डन श्राद्ध की आवृत्ति प्रेतशब्द के सहित हो करे। इससे वृद्धि के लिए अपकर्षकरने पर तो वहाँ पर ज्येष्ठपुत्र के द्वारा आवृत्ति नहीं होगी—यह नव्यमत है।)

स्मृत्यर्थसारे तु—'विभक्ता ऋद्धिकामाश्चेत्पुत्राः पृथक्सपिण्डीकरणं कुर्युः' इत्युक्तम्। अत्र दत्तकस्य तत्पुत्रादीनां च विशेषः प्रागुक्तः।

स्मृत्यर्थसारमें तो कहा है—विभक्त पुत्र (नवश्राद्धं सपिण्डत्वं श्राद्धान्यपि च षोडश। एकेनैव तु कार्याणि संविभक्तधनेष्वपि॥ इसका यहाँ अपवाद है वृद्धिकी इच्छा से प्राप्त अधिकार से कनिष्ठ पुत्र के करने पर तो ज्येष्ठ पुत्र 'प्रेतशब्द' से रहित ही आवृत्ति करे।) समृद्धि की इच्छा करें तो अलग अलग सपिण्डन श्राद्ध करें—एसा कहा है। यहाँ पर दत्तक का और उसके पुत्र आदियों का विशेष पहले कह चुके हैं।

केचित्तु वृद्धिं विनाऽपि कनिष्ठस्य सपिण्डनमाहुः। मातापित्रोर्मृते काले ज्येष्ठे देशान्तरस्थिते। कनिष्ठेन प्रकर्तव्यं सपिण्डीकरणं तदा॥ इति कार्ष्णाजिनिस्मृतेः।

कोई तो वृद्धि के बिना भी कनिष्ठपुत्र को सपिण्डनश्राद्ध करना कहते हैं। कार्ष्णाजिनिस्मृति में कहा है—माता और पिता के मरने के समय पर ज्येष्ठपुत्र देशान्तर में स्थित हो तो सपिण्डनश्राद्ध कनिष्ठपुत्र को करना चाहिये।

गते वा रोधिते ज्येष्ठे पित्रा वा प्रेषिते सति। षण्मासान्न निवर्तेत तदा कार्यं कनीयसा॥

ज्येष्ठपुत्र के (अपनी इच्छा से) जाने पर, बन्धन होने पर या पिता ने कहीं भेजा हो तो वह छ महिने तक न आवे तो छोटा पुत्र सपिण्डनश्राद्ध करे।

संवर्तः—पुनः सपिण्डीकरणं श्राद्धं पार्वणवच्चरेत्। अर्घ्यसंयोजनं नैव पिण्डसंयोजनं न च॥ इति। तेषां वचसां निर्मूलत्वात् 'प्रोषितावसिते पुत्रः' इत्यादि विरोधाच्चोपेक्ष्याः।

संवर्त ने कहा है—फिर से सपिण्डनश्राद्ध को पार्वणश्राद्ध की तरह करे। उसमें अर्घ्यका संयोजन (प्रेत के अर्घ्यपात्र जलको पितामहादि में मिलाना) और पिण्डका संयोजन (प्रेतपिण्ड को पितामह, प्रपितामह और वृद्धपितामह में मिलाना) न करे। (काश्यादिषु गयायां च प्रेतकार्यं तु यत्कृतम्। सपिण्डैरसपिण्डैर्वा पुत्रैरेव कृतं भवेत्॥ वचन निर्मूल हैं या तीर्थप्रशंसापरक है।) 'प्रोषितावसिते पुत्रः कालादतिचिरादपि' इत्यादि पूर्व में कहे हुए इन वचनों के विरोध से उपेक्षा करने योग्य हैं।

(व्युत्क्रममृतौ सपिण्डीकरणविचारः)

व्युत्क्रममृतौ तु हेमाद्रौ ब्राह्मे—मृते पितरि यस्याथ विद्यते च पितामहः। तेन देयास्त्रयः पिण्डाः प्रपितामहपूर्वकाः॥ तेभ्यस्तु पैतृकः पिण्डो नियोक्तव्यस्तु पूर्ववत्।

विपरीतक्रम से मरने पर हेमाद्रि में ब्रह्मपुराण का वचन है—अब जिसका पिता मर गया हो पितामह (दादा) जीवित हो तो इससे प्रपितामहपूर्वक तीन पिण्ड दे। उनमें से पिताके पिण्ड को पहले की तरह नियोजित करे। अर्थात्—मिलावे।

(मातृमरणे सपिण्डीकरणविचारः)

मातर्यथ मृतायां च विद्यते च पितामही॥ प्रपितामहीपूर्वस्तु कार्यस्तत्राप्ययं विधिः॥ एवं प्रपितामहे जीवति तत्पित्रादिभिर्ज्ञेयम्।

माता के मरने पर पितामही (दादी) जीवित हो तो प्रपितामही (पड़दादी) से ग्रहणकर पहले की तरह तीनपिण्ड को मिला दे। वहाँ पर भी यही विधि है। इसप्रकार प्रपितामह (पड़दादा) के जीवित रहने पर उसके पिता आदि में जानना चाहिये।

तदाह सुमन्तुः—त्रयाणामपि पिण्डानामेकेनापि सपिण्डने ।
पितृत्वमश्नुते प्रेत इति धर्मो व्यवस्थितः ॥

इसी बातको सुमन्तु ने कहा है—तीन पिण्डों का एक के साथ भी सपिण्डन होने पर प्रेत पितृत्व को प्राप्त करता है—यह धर्म में व्यवस्था है।

यत्तु—व्युत्क्रमात्तु प्रमीतानां नैव कार्या सपिण्डता। इति, तन्मातापितृभर्तृभिन्नविषयम्,

जो यह कहा है—विपरीत क्रम से मरने वालों का सपिण्डन नहीं करना चाहिये। यह माता, पिता और पतिसे भिन्न विषयक है।

व्युत्क्रमेण मृतानां न सपिण्डीकृतिरिष्यते। यदि माता यदि पिता भर्ता नैष विधिः स्मृतः॥ इति माधवीये स्कान्दोक्तेः। मदनरत्नादौ चैवम्। अत्र 'प्रपितामहादिभिः पितुः सपिण्डने कृते पितामहे मृते तत्सपिण्डने सति पुनस्तेन सह पितुः सपिण्डनं कार्यम्, इति हेमाद्रिमतमाह। अन्ये नैतन्मन्यन्ते।

माधवीय में स्कन्दपुराण का वचन है—विपरीतक्रम से मरने वालों का सपिण्डनश्राद्ध नहीं होता है। माता, पिता और पतिके मरने पर तो यह निषेधरूपविधि नहीं होती है। मदनरत्न आदि में भी यही है। यहाँ पर प्रपितामह आदियों के साथ पिता का सपिण्डन करने पर पितामह के मरने पर पितामह के सपिण्डन करने पर फिर पितामहके साथ पिता का सपिण्डन करना चाहिये यह हेमाद्रिमतको कहा है। दूसरे लोग इसको (पिता का फिर से सपिण्डन वचन के न होने से) नहीं मानते हैं।

तत्त्वं तु—पितुः सपिण्डनाभावे पितामहेन सह पुनः कार्यं, न तत्सत्त्वे, त्रयाणामपि पिण्डानामेकेनापि सपिण्डने। पितृत्वमश्नुते प्रेत इति धर्मो व्यवस्थितः॥ इति विष्णुधर्मोक्तेः। पितामहे प्रपितामहे वा पुत्रान्तरैरसंस्कृतेऽप्यसंस्कृताभ्यामेव पितुः सपिण्डनं कुर्यात्,

तत्त्व तो यह है—पिता के सपिण्डन के अभाव में पितामहके साथ फिर से करना चाहिये उसके न होने पर, विष्णुधर्म में कहा है—तीनों पिण्डों का भी एक के साथ सपिण्डन करे तो प्रेत पितृत्व को प्राप्त करता है—यह धर्म की व्यवस्था है। पितामह या प्रपितामह का पुत्रान्तरों ने संस्कार न किया हो तो असंस्कृतों के साथ पिता का सपिण्डन करें।

असंस्कृतौ न संस्कार्यौ पूर्वौ पौत्रप्रपौत्रकैः। पितरं तत्र संस्कुर्यादिति कात्यायनोऽब्रवीत्॥ इति छन्दोगपरिशिष्टात्। असंस्कृतौ दाहाद्यैरिति केचित्। असपिण्डीकृताविति तु तत्त्वम्।

छन्दोगपरिशिष्ट में कहा है—असंस्कृत पितामह और प्रपितामह का पौत्र और प्रपौत्र संस्कार न करें। वहाँ पर पिता का संस्कार करें—यह कात्यायन ने कहा है। असंस्कृतौ—इसपद से दाह आदि कहते हैं यह किसी का मत है सपिण्डन न हुआ हो—यह तत्त्व है।

अत एवोक्तं तत्रैव—पापिष्ठमपि शुद्धेन शुद्धं पापकृताऽपि वा। पितामहेन पितरं संस्कुर्यादिति निश्चयः॥ पापिष्ठमकृतसपिण्डनं न तु पतितादि, 'अभिशस्तपतितभ्रूणघ्नाः स्त्रियश्चातिचारिणीर्न संसृजेत्' इति बैजवापोक्तेः। 'पापकर्मिणो न संसृजेरन्' इति गौतमोक्तेश्चेत्युक्तं निर्णयामृते।

इसलिए वहाँ पर ही कहा है—पापिष्ठ (अकृत सपिण्डन न कि पतितादि) भी शुद्ध से (पितामह और प्रपितामह से हो तो जानना चाहिये। अकृतसपिण्डन से पितामहादि के साथ अच्छीतरह शुद्धि करे यह भाव है। मातामह आदि तीनों का सपिण्डन के असत्व में तो चौथे के साथ सपिण्डन होना असंभव हैं।) या पापी के साथ शुद्धकर संस्कार होने से शुद्ध हो जाता है। इससे पितामह के साथ पिता का संस्कार करे। बैजवाप ने कहा है—शापित, पतित, भ्रूणहत्यारा और व्यभिचारिणी स्त्री का सपिण्डन न करे। गौतम ने कहा है—पाप कर्म को करने वाले का सपिण्डन न करे यह निर्णयामृत में कहा है।

पूर्वयोः पुत्राभावे तु पौत्रः कुर्यादेव, पितामहः पितुः पश्चात्पञ्चत्वं यदि गच्छति। पौत्रेणैकादशाहादि कर्तव्यं श्राद्धषोडशम्॥ नैतत्पौत्रेण कर्तव्यं पुत्रवांश्चेत्पितामहः। पितुः सपिण्डतां कृत्वा कुर्यान्मासानुमासिकम्॥ इति कात्यायनोक्तेः। अपरार्के शूलपाणौ चैवम्। तेन सपिण्डनस्यानित्यत्वादकृतसपिण्डनयोरेव पार्वणानुप्रवेश इति मूर्खोक्तिः परास्ता।

पितामह और प्रपितामह के पुत्र के अभाव में मरने पर पौत्र सपिण्डन करे ही। पिता के बाद पितामह यदि पञ्चत्वको प्राप्त करता है तो पौत्र एकादशाह आदि सोलह श्राद्ध को करे। पितामह पुत्रवाला हो तो पौत्र इस कार्य को न करे। पिताका सपिण्डन कर मासिक आदि श्राद्ध करे—यह कात्यायन ने कहा है। अपरार्क और शूलपाणि में भी यही है। इससे सपिण्डन के अनित्वत्व होने से जिसका सपिण्डनश्राद्ध नहीं ही हुआ है उनका पार्वण में प्रवेश है यह मूर्ख का कथन परास्त हुआ।

कृते सपिण्डीकरणे प्रेतः पार्वणभाग्भवेत्। इति हारीतविरोधाच्च। केचित् पुत्रान्तराभावे पितामहवार्षिकमप्याहुः। तन्न, श्राद्धषोडशमिति नियमात्। इच्छया भवत्येव।

सपिण्डनश्राद्ध करने पर प्रेत पार्वणश्राद्ध का भागी (हिस्सेदार) होता है। इस हारीत के वचन का विरोध है। कोई कहते हैं—पुत्रान्तर के अभाव में पितामह का वार्षिक भी करे। यह उचित नहीं है। सोलह श्राद्ध होते हैं—यह नियम है। इच्छासे होता ही है।

पितामहस्य चेद्दद्यादेकोद्दिष्टं न पार्वणम्। इति वाचस्पतिधृतगर्गोक्तेः। त्रयाणां यौगपद्ये तु प्राधान्यात्पितुः सपिण्डनं कृत्वा पूर्वयोः कुर्यात्। पितामहे मृतौ दशाहान्तः पितृमृतौ पितुः संस्कारं कृत्वा पितामहस्य पुनः सर्वमावर्तयेत्। वृत्ते दशाहे नैवम्। अशक्त्या पित्रानुज्ञातेन पौत्रेण पितामहश्राद्धे प्रक्रान्ते पितृमृतौ तदाशौचं वहन्नेव पौत्रः पितामहकर्म कुर्यात्प्रक्रान्तत्वादिति मदनपारिजातपृथ्वीचन्द्रौ।

वाचस्पति में गर्ग का वचन है—पितामह का श्राद्ध करे तो एकोद्दिष्ट करे पार्वणश्राद्ध न करे। तीनों का एक साथ मरने पर तो प्राधान्य होने से पिता का सपिण्डन कर पितामह तथा प्रपितामहका सपिण्डनश्राद्ध करे। पितामह के मरने पर दशदिन के भीतर पिता के मरनेपर पिता का संस्कार कर पितामह का फिर से सब आवृत्ति (सब कर्म) करे। दशदिन के व्यतीत होने पर न करे। (क्रियाकर्ता के नाशमें क्रिया की आवृत्ति नहीं होती है यह पहले कहा हुआ शुद्धितत्त्व का मत त्यागने योग्य है।) किसी के मत से अग्निसंस्कार की आवृत्ति होती है।) अशक्ति से पिता की आज्ञा से पौत्र के पितामहका श्राद्ध प्रारंभ करने पर पिता के मरने पर उस आशौच को वहन करता हुआ ही पौत्र पितामह के कर्म को करे। क्योंकि उसका प्रारंभ हो चुका है—यह मदनपारिजात और पृथ्वीचन्द्र में कहा है।

यत्तु—उत्तरात्रितये रौद्ररोहिणी याम्यसर्पपितृभेषुचाग्निभे।
श्मश्रुकर्म सकलं च वर्जयेत्प्रेतकार्यमपि बुद्धिमान्नरः॥

जो यह कहा है—तीनों उत्तरा, आर्द्रा, रोहिणी, भरणी, श्लेषा, मघा और कृत्तिका में बुद्धिमान् मनुष्य श्मश्रुकर्म और सब प्रेतकार्य को भी त्याग दे।

इति सपिण्डनप्रकरणे पाठान्मुख्यकाले निषिद्धर्क्षे सपिण्डनापकर्षः। सर्वकालेषु तद्धत्त्वे तद्वर्ज्यान्येव। पूर्वोक्तब्राह्मोक्तानि षोडशश्राद्धानि कार्याणीति वाचस्पतिमिश्राः। तन्न, अस्य परिभाषात्वेन वाक्यात्सावकाशकर्मपरत्वात्, अस्य प्रेतमात्रदैवत्याभावाच्च।

यह सपिण्डनप्रकरण में पाठ होने से मुख्यकाल (वर्षान्त) में निषिद्ध नक्षत्र में सपिण्डन का अपकर्ष होता है। सबकाल में निषिद्ध नक्षत्र होने पर उनका त्याग ही करे। पहले कहे हुए ब्रह्मपुराण में हुए सोलह श्राद्धों को करे—यह वाचस्पति-मिश्र कहते हैं। यह उचित नहीं है। इसका परिभाषा में होने से वाक्य से सावकाश (जिस कर्म को अन्य समय में भी किया जा सकता है उस कर्म में तात्पर्य है। क्योंकि इसका प्रेतमात्र ही विषय नहीं है।) कर्मपरत्व है। इसका प्रेतमात्र में देवता का अभाव है।

(स्त्रीणां सपिण्डीकरणनिर्णयः)

अथ स्त्रीषूच्यते। हेमाद्रौ बृहस्पतिः—भर्तृगोत्रेण नाम्ना च मातुः कुर्यात्सपिण्डनम्।

अब स्त्री के बारे में कहते हैं। हेमाद्रि ने बृहस्पति ने कहा है—पति के गोत्र और नाम से माता का सपिण्डनश्राद्ध करे।

यत्तु भविष्ये—पितृगोत्रं समुत्सृज्य न कुर्याद्भर्तृगोत्रतः। इति, तदासुरादिविवाहोढापरम्।

जो भविष्यपुराण में कहा है—पिता के गोत्र को त्यागकर पति के गोत्र से न करे। वह आसुर आदि विवाह से विवाहित परक है

आसुरादिविवाहेषु पितृगोत्रेण धर्मवित्। इति वृद्धशातातपोक्तेः। तच्चानेकवचनेषु पितामह्याः पत्या मातामहेन वा सहोक्तम्।

वृद्धशातातप ने कहा है—धर्म का जानकार आसुर आदि विवाहों में पितृगोत्र से करे। वह अनेक वचनों में पितामही के साथ, पति के साथ या मातामह के साथ कहा है।

तत्र व्यवस्थोक्ता भविष्ये—जीवत्पिता पितामह्या मातुः कुर्यात्सपिण्डनम्। प्रमीतपितृकः पित्रा तत्पित्रा पुत्रिकासुतः। तत्पित्रा मातुः पित्रा।

वहाँ पर व्यवस्था भविष्यपुराण में कही है—जिसका पिता जीवित हो वह माता का सपिण्डन पितामही के साथ करे। जिसका पिता मर गया हो वह पिता के साथ माता का सपिण्डन करे। दौहित्र माता के पिता के साथ करे।

लौगाक्षिः—पितामह्यादिभिः सार्धं मातरं तु सपिण्डयेत्। पितरि म्रियमाणे तु तेनैवोपरते सति॥

लौगाक्षि ने कहा है—पितामही आदि के साथ माता का सपिण्डन करे। पिता के मरने पर तो पिता के साथ ही माता का सपिण्डन करे।

शङ्खः—मातुः सपिण्डीकरणं कथं कार्यं भवेत्सुतः। पितामह्यादिभिः सार्द्धं सपिण्डीकरणं स्मृतम्॥ येन केनापि मातुः सापिण्ड्ये यत्रान्वष्टकादौ मातुः श्राद्धं पृथगुक्तं तत्र पितामह्या सह कार्यम्।

शंख ने कहा है—पुत्र माता का सपिण्डनश्राद्ध कैसे करे। पितामही आदि से साथ सपिण्डनश्राद्ध करना कहा है। जिस किसी के साथ माता के सापिण्ड्य में जहाँ अन्वष्टका आदि में माता का श्राद्ध अलग कहा है वहीं पर पितामही के साथ करे।

नान्दीमुखेऽष्टकाश्राद्धे गयायां च मृतेऽहनि। पितामह्यादिभिः सार्द्धं मातुः श्राद्धं समाचरेत्॥ इति शातातपोक्तेः।

शातातप ने कहा है—नान्दीमुख में, अष्टकाश्राद्ध में, गया में और मरणदिन में पितामही आदि के साथ माता का श्राद्ध करे।

(अपुत्रायाः सापिण्ड्यनेविचारः)

अपुत्रायां तु पैठीनसिः—अपुत्रायां मृतायां तु पतिः कुर्यात्सपिण्डनम्।
श्वश्र्वादिभिः सहैवास्याः सपिण्डीकरणं भवेत्॥

अपुत्रामें तो पैठीनसिमें कहा है—पुत्र के बिना मरने पर पति ही सपिण्डन करे। उस स्त्री का सास आदि के साथ ही सपिण्डनश्राद्ध करे।

यत्तु लघुहारीतः—पुत्रेणैव तु कर्तव्यं सपिण्डीकरणं स्त्रियाः।
पुरुषस्य पुनस्त्वन्ये भ्रातृपुत्रादयोऽपि ये॥ इति।

जो लघुहारीत में कहा है—माता का सपिण्डनश्राद्ध पुत्र ही को करना चाहिये। पुरुष का तो अन्य भाई के पुत्र आदि जो हैं वे करें।

यच्च मार्कण्डेयपुराणे—सपिण्डीकरणं स्त्रीणां पुत्राभावे न विद्यते। इति, तत्पुत्रपत्यभावे ज्ञेयम्। अत्र सपत्नीपुत्रोऽपि ज्ञेयः,

जो मार्कण्डेयपुराण में कहा है—पुत्रों के अभाव में स्त्रियों का सपिण्डीश्राद्ध नहीं होता है वह पुत्र और पति के अभाव में जानना चाहिये। यहाँ पर सपत्नीपुत्र को भी जानना चाहिये।

बह्वीनामेकपत्नीनामेका चेत्पुत्रिणी भवेत्। सर्वास्तास्तेन पुत्रेण प्राह पुत्रवतीर्मनुः॥ इति मनूक्ते-(पृ० ३७१) रेतत्परत्वात्।

जिस पुरुष के बहुत सी स्त्रियाँ हो उनमें से एक भी स्त्री पुत्रवाली हो तो उस पुत्र से सब पुत्रवाली होती हैं—ऐसा मनु ने कहा है। यह उस परक है।

यत्तु शातातपः—मृते पितरि मातुस्तु न च कार्या सहपिण्डता। पितुरेव सपिण्डत्वे तस्या अपि कृतं भवेत्॥ इति, तदशक्तपरम्। केषाञ्चिद्वा मतमिति हेमाद्रिः।

जो शातातप ने कहा है—पिता के मरने पर माता का सपिण्डन न करे। क्योंकि पिता के सपिण्डन से माता का भी सपिण्डन हो जाता है। यह अशक्तपरक है। या किसी का मत है—यह हेमाद्रि ने कहा है।

अन्वारोहणे तु भर्त्रैव सापिण्ड्यम्, मृता यानुगता नाथं सा तेन सहपिण्डताम्। अर्हति स्वर्गवासं च यावदाभूतसंप्लवम्॥ इति शातातपोक्तेः।

अन्वारोहण में पति के साथ ही सपिण्डन होता है। जो मरे हुए अपने पति के साथ सती हो गयी है उसका सपिण्डन पति के साथ होता है। वह प्रलयकाल तक स्वर्ग में निवास करने योग्य होती है।

पत्या चैकेन कर्तव्यं सपिण्डीकरणं स्त्रियाः। सा मृतापि हि तेनैक्यं गता मन्त्राहुतिव्रतैः॥ इति यमोक्तेश्च। अत्रैकशब्दः पितामह्यादिपक्षनिवृत्त्यर्थः। पतिपदं वर्गपरम्। सापिण्डनस्य पार्वणैकोद्दिष्टरूपत्वादिति माधवकल्पतरुमदनरत्नादयः।

और यम ने कहा है—पति के साथ स्त्री का सपिण्डन करना चाहिये। वह मर कर भी मन्त्र की आहुतियों और व्रतों से उसके साथ एकता को प्राप्त हो गयी है। यहाँ पर एकशब्द पितामही आदि पक्ष की निवृत्ति के लिये है—यह अर्थ है। पतिपद-पति के वर्ग (कुल) का जानकारी कराने वाला है। सपिण्डन का पार्वण और एकोद्दिष्टरूप है—यह माधव, कल्पतरु, मदनरत्न आदि कहते हैं।

अन्ये तु भर्त्रैवैकेनाहुः—स्वेन भर्त्रा सहैवास्याः सपिण्डीकरणं भवेत्। इत्येवकारश्रवणात्।

अन्य तो पति के साथ ही कहते हैं—अपने पति के साथ इसका सपिण्डनश्राद्ध होता है। यहाँ पर 'एव' शब्द सुना है।

पृथ्वीचन्द्रोदयेऽपि विकल्प उक्तः। इदं तु तत्त्वम्। यदा हेमाद्र्यादिमते द्वयोरेकः पिण्डस्तदा वर्गेण सह। यदा माधवपृथ्वीचन्द्रादिमते पृथक्पिण्डस्तदैकेन पत्यैकवचनाच्चैकेनापि। अतो मातृपिण्डमसपिण्डीकृतेनैव पतिपिण्डेन संयोज्यैकीकृतं पिण्डद्वयं तत्पित्रादिभिः संयोजयेत्। अन्त्यपक्ष एव युक्तः।

पृथ्वीचन्द्रोदय में विकल्प कहा है। यहाँ यह तत्त्व है—जब हेमाद्रि आदि के मत में दोनों का एक पिण्ड दे तो पति के कुल के साथ। यदि माधव, पृथ्वीचन्द्र आदि मत से अलग पिण्ड दिया जाय तो केवल पति के साथ सपिण्डन करे और वचन से भी एक के साथ आता है। इसलिए माता के पिण्ड को असपिण्ड करने पर तो पति के पिण्ड के साथ मिलाकर एक करने पर पिण्डद्वय को उसके पितामह आदियों से मिला दे। यहाँ अन्त्यपक्ष ही युक्त है।

स्मृत्यर्थसारे तु— अन्वारोहणेनैकदिनमरणे स्त्रियाः पृथक् सपिण्डनं नास्ति। भर्तुः कृते स्त्रिया अपि कृतं भवति इत्युक्तम्, तन्मतान्तरमस्तु। इदं ब्राह्मादिविवाहेषु ज्ञेयम्।

स्मृत्यर्थसार में तो कहा है—अन्वारोहण (स्त्री का अपने पति के शव के साथ चिता पर बैठना) से एकदिन में स्त्री का अलग सपिण्डन नहीं होता है। पति के सपिण्डन करने पर स्त्री का भी सपिण्डन हो जाता है—ऐसा कहा है–वह मतान्तर हो। यह ब्राह्म आदि विवाहों में जानना चाहिये।

(आसुरादिषु विवाहितायाः सापिण्डीनिर्णयः)

आसुरादिषु तु शातातपः—तन्मात्रा तत्पितामह्या तच्छ्वश्र्वा वा सपिण्डनम्। आसुरादिविवाहेषु विन्नानां योषितां भवेत्॥ मातामह्या मातुः पितामह्या तत्प्रपितामह्या वेत्यर्थः।

आसुर आदि विवाहों में तो शातातप ने कहा है—उसकी माता से उसकी पितामही से और उसकी सास से सपिण्डन करे जो आसुर आदि विवाहों में विवाहित स्त्री हैं। मातामही, (नानी) माता की पितामही या माता की प्रपितामही से यह अर्थ है।

सुमन्तुः—पिता पितामहे योज्यः पूर्णे संवत्सरे सुतैः। माता मातामहे तद्वदित्याह भगवाञ्छिवः॥ इदमासुरादिपरं पुत्रिकापुत्रपरं चोक्तं प्राक्।

सुमन्तु ने कहा है—पिता को पितामह (दादा) में पुत्र पूरे साल में योग करें। उसीप्रकार माता को मातामह में मिला दे यह भगवान् शिव ने कहा है। यह आसुर आदि परक है पुत्रिका पुत्र परक है—यह पहले कह चुके हैं।

(सर्वत्र देशभेदाद्विकल्पकथनम्)

हेमाद्रिस्तु ब्राह्मादिष्वपि सर्वत्र देशभेदाद्विकल्पमाह।

हेमाद्रि ने तो ब्राह्म आदियों में भी देशभेद से सर्वत्र विकल्प कहा है।

(गुर्जरेषु कोकिलमतानुसारिणां मतम्)

अत एव गुर्जरेषु कोकिलमतानुसारिणां मातृमातामहप्रमातामहा इति श्राद्धप्रयोगः सपिण्डनं च दृश्यते।

इसलिए गुर्जरों में कोकिलमतानुसारियों का माता, मातामह और प्रमातामह का श्राद्ध प्रयोग है और सपिण्डन (मातामह के साथ) भी देखते हैं।

हेमाद्रावापस्तम्बोऽपि—कोकिलस्य यथा पुत्रा अन्यसश्रयजीविनः।
पुष्टास्ते स्वकुलं यान्ति एवं नारी मृता सती॥

हेमाद्रि में आपस्तम्ब ने भी कहा है—अन्य (दूसरे) के सम्श्रय से जैसे जीवित कोकिल के वे पुत्र पुष्ट हुए अपने कुल में जाते हैं। इसीप्रकार मरकर सती स्त्री जाती है।

यदपि विज्ञानेश्वरो मातामहेन मातुः सापिण्ड्ये पितृश्राद्धवन्मातृश्राद्धं नित्यमित्याह,

और जो विज्ञानेश्वर ने मातामह के साथ माता के सापिण्ड्य में पिता के श्राद्ध के सदृश माता का श्राद्ध नित्य (पृथक्) कहा है।

यच्च वृद्धिश्राद्धे छन्दोगपरिशिष्टम्—षड्भ्यः पितृभ्यस्तदनु श्राद्धदानमुपक्रमेत्। इति, तदेतद्विषयमेव, मातुः पृथक्श्राद्धाभावात्।

और जो वृद्धिश्राद्ध में छन्दोगपरिशिष्ट का वचन कहा है—सपिण्डनश्राद्ध के बाद छ पितरों को श्राद्धदान का उपक्रम (प्रारम्भ) करे। यह उसीविषय में ही हैं, माता का श्राद्ध पृथक् करने के वचन का अभाव (अन्यत्र पतिना सह) है।

अत एव हेमाद्रौ भविष्ये मातुः सपिण्डनं प्रक्रम्य—उदितेऽनुदिते चैव होमभेदो यथा भवेत्। तथा कुलक्रमायातमाचारं च चरेद् बुधः॥ इत्युक्तम्।

इसलिए हेमाद्रि में भविष्यपुराण का वचन है कि—माता के सपिण्डन को प्रारम्भ कर कहा है—उदित (उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा। सर्वथा वर्तते यज्ञ इतीयं वैदिकी श्रुतिः॥ (मनु० २।१५)

और अनुदित में होम का जैसे भेद होता है, वैसे ही कुल के क्रम से आये हुए आचार को विद्वान् करे। ऐसा कहा है।

अस्य वृद्धावपवादमाह तत्रैव व्याघ्रपात्—कुर्यान्मातामहश्राद्धं सर्वदा मातृपूर्वकम्। विधिज्ञो विधिमास्थाय वृद्धौ मातामहादिवत् ॥ केचिदेतत् पुत्रिकापुत्रपरमाहुः।

इसका वृद्धि में अपवाद को वहीं पर व्याघ्रपाद ने कहा है—सर्वदा मातामह का श्राद्ध मातृपूर्वक करे। विधि का जानकार विधि को ग्रहण कर वृद्धि में मातामह आदि के क्रम से करे। कोई इस वचन को पुत्रिका के पुत्र परक कहते हैं।

(पत्युः सापिण्ड्यमाह)

पत्युः सापिण्ड्यमाह लौगाक्षिः—सर्वाभावे स्वयं पत्न्यः स्वभर्तॄणाममन्त्रकम्। सपिण्डीकरणं कुर्युस्ततः पार्वणमेव च ॥ इति।

लौगाक्षि में पति के सापिण्डय को कहा है—सबों के अभाव में स्वयं पत्नी अपने पतियों का अमन्त्रक सपिण्डीश्राद्ध करें। फिर पार्वणश्राद्ध को ही करें।

यत्तु वचनम्—अपुत्रस्य परेतस्य नैव कुर्यात्सपिण्डताम्। इति।

जो यह वचन कहा है—पुत्रहीन के मरने पर सपिण्डनश्राद्ध नहीं ही करे।

(अपुत्राणां सपिण्डनाभावविचारः कथनम्)

यच्चापस्तम्बः—अपुत्रा ये मृताः केचित्पुरुषा वा स्त्रियोऽपि वा। तेषां सपिण्डनाभावादेकोद्दिष्टं न पार्वणम्। इति, तत्पुत्रोत्पादनविधिप्रशंसार्थमिति माधवः।

जो आपस्तंब ने कहा है—जो कोई पुत्रहीन पुरुष या स्त्री मरें तो उनके सपिण्डन के अभाव से उनका एकोद्दिष्ट श्राद्ध होता है पार्वणश्राद्ध नहीं होता है। वह वचन पुत्र के उत्पादन करने की विधि में प्रशंसार्थ हैं—यह माधव ने कहा है।

सपिण्डीकरणादूर्ध्वमेकोद्दिष्टं विधीयते। अपुत्राणां च सर्वेषामपत्नीनां तथैव च ॥ इति हेमाद्रौ प्रचेतसोक्तेश्च। अन्ये तु द्विविधवाक्यदर्शनाद्विकल्पमाहुः।

हेमाद्रि में प्रचेता ने कहा है—जो पुत्रों से हीन हैं वैसे ही जो पत्नियों से रहित हैं उनका सपिण्डी श्राद्ध के बाद एकोद्दिष्ट का विधान है। अन्य तो कहते हैं कि—अनेकप्रकार के वाक्यों के देखने से विकल्प कहा है।

(ब्रह्मचारिणामनपत्यानां च सपिण्डनविचारः)

स्मृत्यर्थसारेऽपि—ब्रह्मचारिणामनपत्यानां च सपिण्डनं नास्ति, तेषां सदैकोद्दिष्टमेव व्युत्क्रममृतानां सापिण्ड्यं कार्यं न वा। केचित्सर्वत्र सपिण्डनमाहुरिति।

स्मृत्यर्थसार में भी कहा है—ब्रह्मचारियों का और जिनको पुत्र नहीं है उनका सपिण्डनश्राद्ध नहीं होता है, उनका सदैव एकोद्दिष्ट ही होता है। व्युत्क्रम (क्रमरहित) (मनुः—पिता यस्य तु वृत्तः स्याज्जीवेचापि पितामहः। पितुः स नाम संकीर्त्य कीर्तयेत्प्रपितामहम् ॥ 'पित्रे पिण्डं निधाय पितामहात् पराभ्यां द्वाभ्याम्।') से मरनेवालों का सपिण्डनश्राद्ध करे या न करे। कोई सर्वत्र (इससमय के शिष्ट ग्रहण करते हैं।) सपिण्डश्राद्ध को कहते हैं।

(अपुत्रे व्युत्क्रममृते विशेषः)

अपुत्रे व्युत्क्रममृते विशेषो रेणुकारिकायाम्—भ्राता वा भ्रातृपुत्रो वा सपिण्डः शिष्य एव वा। सर्वबन्धुविहीनस्य पत्नी कुर्यात्सपिण्डताम् ॥

अपुत्र के व्युत्क्रम से मरने पर विशेष रेणुकारिका में कहा है—भाई, भाई का पुत्र, सपिण्ड या शिष्य ही करे। सब बन्धु-बान्धव के विहीन का सपिण्डन पत्नी करे।

ऋत्विजं कारयेद्वापि पुरोहितमथापि वा ।। वसुरुद्रादितिसुतैः कार्या तेषां सपिण्डता। व्युत्क्रमाच्च प्रमीता ये तद्विना प्रेतता ध्रुवम् ॥ पुनः सपिण्डनं तेषां कुर्यात्प्रेते पितामहे ॥ इति। अत्र मूलं मृग्यम् ।

ऋत्विज या पुरोहित से सपिण्डनश्राद्ध करा दे। वसु, रुद्र और अदिति के पुत्र से उनका सपिण्डन पुत्र करें। जो विपरीत क्रम से मर गए हैं सपिण्डन के बिना वे निश्चित प्रेतत्व को प्राप्त होते हैं। फिर से उनका सपिण्डन पितामह प्रेत के साथ करे। यहाँ पर (फिर से सपिण्डनकाल) मूल विचारणीय है।

(यतीनां सपिण्डनं नास्तीतिकथनेमतत्मतान्तरकथनम्)

यतीनां सपिण्डनं नास्ति किन्त्वेकादशेऽह्नि पार्वणं कार्यम्। तदपि त्रिदण्डिनः। एकदण्ड्यादीनां तदपि नेत्युक्तं प्राक्—दण्डग्रहणात्पूर्वं मृते तु दाहादिसपिण्डनान्तं सर्वं कार्यमिति भट्टचरणाः।

संन्यासियों का सपिण्डनश्राद्ध नहीं होता है। पर ग्यारहवें दिन पार्वणश्राद्ध को करना चाहिये। यह भी त्रिदंडी के लिए है। एकदंडी आदियों का वह भी नहीं है यह पहले कह चुके हैं। दंडग्रहण के पूर्व मरने पर तो दाह आदि से सपिण्डनान्त सब कार्य को करना चाहिये—यह भट्टचरण कहते हैं।

(सपिण्डनविधिमाह)

सपिण्डनविधिमाह बैजवापः—समाप्ते संवत्सरे चत्वार्युदपात्राणि प्रयुनक्ति एकं प्रेताय, त्रीणि पितृभ्यः प्रेतपात्रं पितृपात्रेष्वासिञ्चति 'ये समाना' इति द्वाभ्यामेवं पिण्डोऽथाभिमृशति।

सपिण्डनविधि[1] को बैजवाप ने कहा है—साल के बीत जाने पर जल के चारपात्रों का प्रयोग करे। उनमें एक प्रेत के लिए और तीन पात्र पितरों के लिए प्रेतपात्र को पिता आदि के पात्रों में 'ये समानाः'[2] इन दो मन्त्रों से जल को मिला दे। (उसमें क्रम आधुनिक कर्मकाण्डी यों करते हैं—प्रेत के जलपात्र के जल को अलग से तीन दूनों में बराबर का विभाग कर उस प्रेतजल को क्रम से—पितामह, प्रपितामह और वृद्धप्रपितामह के जल में मिलाते है) इसप्रकार पिण्डों का (पिण्डोत्थानपर्यन्त पिण्डदान के प्रयोग को करके पिण्ड का संयोजन करे। दत्वा पिण्डान्, निरूप्य चतुरः पिण्डान्, इत्यादि पिण्डदान की भावना के बाद उसका विधान है। विष्णु ने तो विसर्जनोत्तर कहा है 'उच्छिष्टसन्निधौ पिण्डत्रयं दद्यात्, देवपूर्वक ब्राह्मणों का विसर्जन करे। फिर प्रेतपिण्ड को अर्घ्यपात्रोदक के सदृश पिण्डत्रय (पितामह, प्रपितामह और वृद्धप्रपितामह के पिण्डों में) समविभाग कर रखे। अर्थात् मिला[3] दे। कोई तो संयोजित तीन पिण्डों को फिर से पार्वण के सदृश नाम गोत्र का उच्चारण कर देते हैं—वह ग्रन्थ सम्मत नहीं है और वचन का अभाव है। अक्षय्य आदि में तो प्रेतशब्द का उच्चारण होता है' क्योंकि पिण्डमात्र से पितृत्व की अप्राप्ति है।) स्पर्श कर कहे—

एष वोऽनुगतः प्रेतः पितरस्तं ददामि वः। शिवं भवतु शेषाणां जायतां चिरजीविनः ॥ 'समानी वः' 'सङ्गच्छध्वं संवदध्वम्' इति द्वाभ्याम् ।

१—ब्रह्मपुराणे—सुवर्णरौप्यदर्भैस्तु तस्मिन् पिण्डं ततस्त्रिधा। कृत्वा पितामहादिभ्यः पितृभ्यः प्रेतमर्पयेत् ॥ सुवर्तुलांस्ततस्तांस्तु पिण्डान् कृत्वा प्रपूजयेत्।

२—ये समानास्समनसः। पितरो यमराज्ये। तेषां लोकस्स्वधा नमः। यज्ञो देवेषु कल्पताम्।। ये समानास्समनसः। जीवा जीवेषु मामकाः। तेषा ँ श्रीर्मयि कल्पताम्। अस्मिन् लोके शत ँ समाः ॥ (तै० ब्रा० २।६।१२,१३)

३—ये समाना इति मन्त्रद्वयं पठित्वा अमुकगोत्रस्यामुकप्रेतस्य पिण्डः अमुकगोत्रस्य प्रेतस्य पितुरमुकशर्मणः पिंडेन सह संयुज्यतामित्युक्त्वा प्रथमं पिण्डं संयोज्य प्रथमं पिण्डं वर्तुलं कुर्यात्। ततो वसुलोकप्राप्तिरस्त्विति वदेत्। एवमितराभ्यां पिण्डाभ्यां संयोजनम्। अनन्तरं रुद्रलोकप्राप्तिरस्तु। आदित्यलोकप्राप्तिरस्तु। इति यथाक्रमं वदेत्। इति पारस्करगृह्यसूत्रे तृतीयकाण्डे सपिण्डीश्राद्धप्रकरणे।

हे पितरः, यह प्रेत प्राप्त हुआ है उसको तुम लोगों को देता हूँ। अवशिष्टों का कल्याण हो और चिरजीवि हो। समानी[1] वः, [2]संगच्छध्वं संवदध्वम्, इन दोनों मन्त्रों से।

यद्यपि—तत्रापि दैवरहितमेकार्घ्यैकपवित्रकम्। नैवाग्नौकरणं तत्र तच्चावाहनवर्जितम्॥ इति मार्कण्डेयेनोक्तम्,

यद्यपि मार्कण्डेयपुराण में कहा है—वह भी विश्वेदेव के रहित एक अर्घ्यपात्र और एक पवित्र से करे। वहाँ पर अग्नौकरण तथा आवाहन वर्जित करे।

तथापि—सपिण्डीकरणं श्राद्धं दैवपूर्वं नियोजयेत्। इत्यादिविरोधाद्विकल्पः, प्रेतांशे वा ज्ञेयम्।

फिर भी विश्वेदेव से युक्त सपिण्डीश्राद्ध को करे। इत्यादि से विरोधहोने से विकल्प है या प्रेत-भाग में जानना चाहिये।

(सपिण्डने कामकालौ देवौ)

अत्र कामकालौ, विश्वेदेवावित्युक्तं प्राक्।

यहाँ पर काम और काल विश्वेदेवा होते हैं, यह पहले कहा है।

मैत्रायणीयपरिशिष्टे—पित्र्यविप्रकरे होमः साग्नेरपि भवेदिह।

मैत्रायणीयपरिशिष्ट में कहा है—पितृब्राह्मण के हाथ में साग्निक (आहिताग्नि) भी यहाँ होम करे।

(व्युत्क्रमेण मृतावपि हेम्नादिना सपिण्डनविचारः)

यत्तु गोभिलः—अनुक्तकालेऽपि तु व्युत्क्रमेण मृतावपि। आमेन वापि सापिण्ड्यं हेम्ना वापि प्रकल्पयेत्॥ इति, तदापदि मातापितृभिन्नपरम्,

जो गोभिल ने कहा है—अनुक्तकालों (बिना कहे हुए समय) में भी विपरीतक्रम से मरने पर भी आम (अन्न) से या सुवर्ण से सपिण्डनश्राद्ध करे। वह आपत्ति में माता और पिता से भिन्नपरक है।

आपन्नोऽपि न कुर्वीत श्राद्धमामेन कर्हिचित्। इति तेनैवोक्तेः।

उसने ही कहा है—आपत्ति में भी आम (अन्न) से कभी श्राद्ध को न करे।

(सपिण्डीकरणं पक्वान्नेनैव कर्तव्यम्)

शुद्धितत्त्वे कामधेनौ च लघुहारीतः—सपिण्डीकरणं यावत् प्रेतश्राद्धं तु षोडश।
पक्वान्नेनैव कर्तव्यं सामिषेण द्विजातिभिः॥

शुद्धितत्त्व और कामधेनु में लघुहारीत का वचन है—सापिण्डनश्राद्ध से सोलह प्रेत श्राद्धपर्यन्त को मांस के सहित पक्वान्न से ही द्विजातियों को करना चाहिये।

(सपिण्डनानन्तरं पाथेयश्राद्धकथनम्)

विश्वप्रकाशे—प्रेतः सपिण्डनादूर्ध्वं पितृलोकेऽनुगच्छति। कुर्यात्तस्य तु पाथेयं द्वितीयेऽह्नि सपिण्डनात्॥ स्मृत्यर्थसारेऽप्येवम्।

विश्वप्रकाश में कहा है—सपिण्डनश्राद्ध के बाद प्रेत पितृलोक में जाता है। सपिण्डनश्राद्ध के दूसरे दिन उसका पाथेय (मार्ग का श्राद्ध) करे। स्मृत्यर्थसार में भी यही है।

(वृद्धिश्राद्धे विचारः)

ततो वृद्धिश्राद्धं कुर्यात्। एतन्मलमासेऽपि कार्यम्, अधिमासे न कर्तव्यं श्राद्धमाभ्युदयं तथा। तथैव काम्यं यत्कर्म वत्सरात्प्रथमादृते॥ इति हेमाद्रौ हारीतोक्तेः।

१—समानी व आकुतिः समाना हृदयानि वः। समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥ (ऋ० १०।१९१।४)।

२—सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्। देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥ (ऋ० १०।१९१।२)।

दक्षिण

(पिता के जीवित रहते हुए माता का सपिण्डन)

वृद्धप्रपितामही	प्रपितामही (पड़दादी)	पितामही (दादी)	प्रेत (माता)	
*	*	*	*	आसन
*	*	*	*	भोजनपात्र
*	*	*	*	अर्घ्यपात्र
*	*	*	*	जलपात्र
*	*	*	*	घृतपात्र

(पिण्डाधारवेदी) (प्रेतपिण्डाधारवेदी)

□ □ □ (अवनेजनपात्र ही बाद में प्रत्यवनेजन होते हैं) □ अवनेजनपात्र

कर्ता का आसन

कर्ता का आसन

पश्चिम

पितामही, प्रपितामही वृद्धप्रपितामही (विश्वेदेव)

* आसन
* भोजनपात्र
* अर्घ्यपात्र
* जलपात्र
* घृतपात्र

पूर्व

(स्त्रीयां सपिण्डनं तु जीवति पितरि पितामह्यादिभिरेव । जीवन्त्यां पितामह्यां प्रपितामह्यादिभिः । प्रपितामह्यां जीवन्त्यां वृद्धप्रपितामह्यादिभिः । मृते पितरि अन्वारूढायां मातरि केवलेन पत्या सह । तत्र मतद्वयम्—मातुः पिण्डं पितृपिण्डे संयोज्य पितृपिण्डं पितामहादिषु संयोजयेत् । अथवा पितृपिण्डं त्रिषु संयोज्य पश्चान्मातृपिण्डं केवलेन भर्त्रा सह संयोजयेत् । भर्त्रादिभिस्त्रिभिः संयोजयेदित्येके । इति लिखित दायाशंकर श्रौर्ध्वदेहिकप्रकरणे पृ० ८८ ।

(१) पिता के मरने पर पितामह (दादा) के जीवित रहते हुए प्रपितामह से तीन पीढ़ीतक पिण्ड की योजना करे । (२) माता के मरने पर पितामही (दादी) के जीवित रहते हुए प्रपितामही से (प्रेतावृद्धश्वश्रूवृद्धतरश्वश्रूवृद्धतमश्वश्रूणाम्) इत्यादि योजना करे । (३) किसी का मत है कि—पिता का सपिण्डन करके बाद पितामह की मृत्यु होने पर पितामह के सपिण्डन के साथ पिता का सपिण्डन फिर से करे—यह हेमाद्रि में किसी का मत है । इसको नहीं मानते हैं । किसी निमित्त से पिता के सपिण्डना-भाव में मध्य में पितामह के मरने पर उनका सपिण्डन हो जाने पर बाद में पिता का सपिण्डन पितामह के साथ करे । न कि पिता के सपिण्डन में प्रपितामह आदियों के करने पर फिर से पितामह के साथ करे । 'त्रयाणामपि पिण्डानामेकेनाऽपि सपिण्डने । पितृत्वमश्नुते प्रेत इतिधर्मोव्यवस्थितः ॥' ऐसा निर्णयसिन्धु आदि महानिबन्धों में स्पष्ट कहा है । (४) धर्मसिन्धुकार और श्राद्धविवेककार आदि ने कहा है कि—पिता के मरने बाद माता का मरण हो तो पिता के साथ पिण्डमेलन करे ।

उत्तर

यह किसी का मत है। स्मृत्यर्थसार का कहना है कि माता का पिण्डमेलन पिता के साथ हो सकता है। पर पति वर्ग (पितामह, प्रपितामहादि) के साथ नहीं हो सकता (स्मृत्यर्थसारे तु पत्यैव सह न तु पतिवर्गेणेत्युक्तम्। युक्तं चैतत्। 'पुरुषस्यार्धं देहं तु भार्याविदेषु गीयते। अर्धाङ्गमात्मनो ह्येष यज्जायेति ह वै नृप॥ तस्मात्पत्या सहैवास्याः सपिण्डीकरणं स्मृतम्। इति भविष्यपुराणे हेतुनिर्देशात्।) है। ऐसा शुद्धिप्रकाश में पृ० २३८ में कहा है। निबन्धकारों ने 'पत्या सह पिण्डमेलनम्' लिखा है। यहाँ तृतीया विभक्ति का निर्देश है। मूल में ऐसा ही पाठ है। एसी स्थिति में 'पत्या' से पतिवर्ग की कल्पना करना युक्त प्रतीत नहीं होता है। और माता का श्वसुर, परश्वरादि के साथ पिण्डमेलन का क्रम लोकव्यवहारादि से भी असंगत ही है। ऐसी स्थिति में स्त्रियों का स्त्री के साथ और पुरुष का पुरुष के साथ पिण्डमेलन करना उत्तमोत्तम प्रतीत होता है। (५) षोडशश्राद्ध न कर केवल सपिण्डन श्राद्ध करना उचित नहीं है। 'दर्शपूर्णमासाभ्यामिष्ट्वा सोमेन यजेत' इतिवत्। न तु वाजपेयबृहस्पतिसवनयेरिमङ्गिभावः॥ (६) मिताक्षराकार ने कहा है कि—माता के सपिण्डनश्राद्ध आदि में दो तरह के वचन उपलब्ध हैं—पति के गोत्र से और माता के गोत्र से। ('स्वगोत्राद् भ्रश्यते नारी विवाहात्सप्तमे पदे। स्वामिगोत्रेण कर्तव्या तस्या पिण्डोदकक्रिया॥' 'पितृगोत्रं समुत्सृज्य न कुर्याद् भर्तृगोत्रतः। जन्मन्येव विपत्तौ च नारीणां पैतृकं कुलम्॥) जहाँ पर ब्राह्मविवाह विधिद्वारा कन्यादान न किया हो वहाँ पर पिता के गोत्र से ही करे। ब्राह्मादि विवाहों में व्रीहियव और 'बृहद्रथन्तरसामवत् विकल्प ही है। मनु (४।१७८) ने कहा है कि—('येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः। तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न दुष्यति॥) इस वचन से वंशपरम्परा से चली हुई व्यवस्था होती है। इसीसे श्रीमाली आदि विवाहके अनन्तर अपनी माताका सपिण्डन उसके पिता के गोत्रसे ही करते हैं। पर जहाँ शास्त्र से तथा आचार से व्यवस्था युक्त प्रतीत न हो तो वहाँ 'आत्मनस्तुष्टिरेव वा' पर तो आत्मा की साक्षी ही व्यवस्थापिका में युक्त होती है। अतः विवाहोत्तर माता का सपिण्डनश्राद्ध पति के गोत्र से ही करना युक्ततम प्रतीत होता है। क्योंकि मरण और जनन में मुख्यतम पतिगोत्र ही माना जाता है। (७) कोई सहगमन में या एकदिन में मरने पर स्त्री का सपिण्डन पृथक् से नहीं स्वीकार करते हैं। पति के सपिण्डन से स्त्री का सपिण्डन हो जाता है। स्मृत्यर्थसार में विशेष कहा है—'अन्वारोहणैकदिनमरणे स्त्रियाः पृथक् सपिण्डनं न कार्यं पत्युः कृते स्त्रियाश्च कृतं भवति। दिनान्तरमृते पुत्रः स्वपितृपितामहपिण्डमध्ये कुशान्तरधाय पित्रैकेन मातुः सापिण्ड्यं कुर्यात्सर्वत्र भर्त्रा पत्न्याः सापिण्ड्यमेकैकेन श्वशुरेण निषिद्धम्)। (८) मैथिल शास्त्रीयविधि द्वारा पिण्डमेलन के बाद (विभाजित प्रेतपितृपिण्ड को पितामह, प्रपितामह और वृद्धप्रपितामह में अलग अलग मिश्रण करने बाद) उन तीनों पिण्डों को एक में ही वर्तुलाकर मिलाकर निर्माण करते हैं। यह अशास्त्रीय है। महानिबन्धों और निबन्धों में इसका मूल मिलता नहीं है। वे यों वाक्य की कल्पना स्वपद्धतिमें आजकल करते हैं—('पितामहादिपिण्डत्रयं प्रेतपिण्डत्रयं प्रेतपिण्डभागेन सममेकीकृत्य वर्तुलं कुर्यात्। ततः पित्रादीन् चतुर उद्दिश्य तूष्णीमेव तत्रार्घचतुष्टयं दत्वा तथैव गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलानि दद्यात्।) यह उनकी निर्मित आधुनिक पद्धतियों में जोड़ा गया वाक्य मिलता है यह वाक्य किस प्रामाणिक धर्मशास्त्र महानिबन्ध का है इसका उल्लेख भी नहीं है। जहाँ शास्त्रीयवचन न हो वहाँ वंशपरम्परागत लोकव्यवहार माना जा सकता है। जब शास्त्रीय विधि से पिण्डमेलन होता है तो उसी से सपिण्डनत्व की प्राप्ति हो जाती है फिर वर्तुलाकार कर तूष्णीम् अर्घादि दे इससे किस लोकादि के पुण्य की योजना वे मानते हैं। वे ही जानते होंगे। ऐसी स्थिति में उनका यह असङ्गत व्यवहार सर्वत्र निन्दनीय और हास्यास्पद ही प्रतीत होता हैं। तथा उनके आचार्यों के निर्मित श्राद्ध के निबन्धों में भी वर्तुलाकार पिण्ड करे—इसकी कोई प्रामाणिक विधि उपलब्ध भी नहीं है। अतः यह स्वकल्पित कल्पना पद्धतिकारों ने की है यही प्रतीत होता है। हमारे पूज्यतम श्रीपूज्य पितामह जी (म० म० पं० प्रभुदत्तजी शास्त्री अग्निहोत्री) और पिता (म० म० श्री पं० विद्याधरजी गौड) जी के बहुतसे मैथिल वैदिकछात्र हैं। जिनकी ख्याति सर्वप्रसिद्ध है उन महाविद्वान् मैथिल वेदाचार्यों से भी पक्षपात रहित शास्त्रीय जानकारी करना चाहिए। (९) श्रद्धालु मारवाड़ी आदि सपिण्डनके पूर्व तीनसौसाठ पिण्डों को बनाकर पिण्डपूजनादि कर और तीन सौ साठ जलसहित पात्रों को देते हैं—'अमुकप्रेतस्य संवत्सरपर्यन्तं परलोके महाक्षुधातृषानिवारणार्थं मरणादिदिनमारभ्य प्रतिदिनं श्राद्धनिमित्तिकषष्ठ्यधिकशतत्रयपिण्डानि ते मया दीयन्ते तवोपतिष्ठताम्। तद्वत् अन्त्यकर्मदीपक में कहा है—मरणदिनमारभ्य तिथिबद्धचान्द्रमानेन संवत्सरपूर्तिपर्यन्तं जायमानप्रात्यहिकक्षुत्पिपासानिवृत्त्यर्थं षष्ठ्यधिकत्रिशतसंख्याकान् (अधिकमासपाते तु नवत्यधिकत्रिशतसंख्याकान्' सान्नान् सदीपान् सदन्तधावनान् उदकुंभान् ब्राह्मणाय दास्ये। ॐ तत्सन्न मम इति संकल्प्य—'कृतस्य सान्नोदककुम्भदानस्य प्रतिष्ठासिध्यर्थमिमां दक्षिणां ब्राह्मणाय दास्ये। हेमाद्रौ—'एकादशाहात्प्रभृति घटतोयान्नसंयुतः। दिने-दिने प्रदातव्यो यावत्संवत्सरं सुतैः। 'गारुडे प्रत्यहं दीपको देयो मार्गे तु विषमे नरैः। यावत्संवत्सरं वापि प्रेतस्य सुखलिप्सया॥

तदनन्तर वृद्धिश्राद्ध करे। इसको मलमास में भी करे। हेमाद्रि में हारीत ने कहा है—अधिकमास में आभ्युदयश्राद्ध को नहीं करना चाहिये। वैसे ही काम्य जो कर्म है उसको प्रथम साल में त्याग कर करे।

(प्रथमाब्दे निषिद्धानि)

अथ प्रथमाब्दे निषिद्धानि। हेमाद्रौ—स्नानं चैव महादानं स्वाध्यायं चाग्नितर्पणम्। प्रथमेऽब्दे न कुर्वीत महागुरुनिपातने ॥ अन्यतर्पणमिति शुद्धितत्त्वे पाठः। अग्नितर्पणं लक्षहोमादि नत्वाधानम्। तत्तु प्रथमाब्दे भवत्येव।

अब प्रथमवर्ष में निषिद्ध कर्मों का परिगणन करते हैं। हेमाद्रि में कहा है—स्नान (समावर्तन या कामनापरक स्नान) [1]महादान, स्वाध्याय (कामनापरक वेद का अध्ययन), अग्नितर्पण (पाठान्तर है-पितृतर्पण) और लक्षहोम आदि, महागुरु (पुरुषके-माता, पिता और आचार्य, अविवाहित कन्या के पिता माता और विवाहित कन्या का स्वामी महागुरु एकमात्र होता है) के मरने पर प्रथमवर्ष में न करे। शुद्धितत्त्व में अन्यतर्पण कहा है—यह पाठ है। अग्नि-तर्पण माने—लक्षहोम आदि को कहा है, आधान को नहीं कहा है। वह तो प्रथम वर्ष में होता ही है।

तदाह हेमाद्रावुशनाः—पितुः सपिण्डीकरणं वार्षिके मृतवासरे। आधानाद्युपसंप्राप्तावेतत्प्रागपि वत्सरात् ॥ आदिपदं वृद्धिनिमित्तनित्यकर्मपरम्।

उसी बात को हेमाद्रि में उशना ने कहा है—पिता के वार्षिक मरणदिन में सपिण्डनश्राद्ध करे। आधान (पुनराधान) आदि साल के पूर्व प्राप्त हो तो उसको (सपिण्डन) करे। आदिपद—वृद्धिनिमित्त नित्यकर्मपरक है। (अर्थात्—आवश्यक विवाह, चूड़ाकरण, उपनयन, इष्टापूर्त कर्मों में वर्ष के मध्य में भी अधिकार है)।

दिवोदासीये—महातीर्थस्य गमनमुपवासव्रतानि च। संवत्सरं न कुर्वीत महागुरुनिपातने ॥ इदं श्राद्धकौमुद्यां देवीपुराणस्थमुक्तम्।

दिवोदासीय में कहा है—महातीर्थ (प्राचीन तीर्थविशेष, वर्तमान समय में महेतो नाम से प्रसिद्ध है) में जाना, उपवास और व्रत को महागुरु के मरने पर एकसाल तक न करे। यह श्राद्धकौमुदी में देवीपुराण का वचन कहा है।

गौडनिबन्धे मात्स्ये—सपिण्डीकरणादूर्ध्वं प्रेतः पार्वणभुग्भवेत्। वृद्धीष्टापूर्तयोग्यश्च गृहस्थश्च सदा भवेत् ॥ वर्षान्तसपिण्डनाभावे नाधिकारीत्यर्थः। गृहस्थः सपिण्डोऽपीत्यर्थः।

गौडनिबन्ध में मत्स्यपुराण का वचन है—सपिण्डनश्राद्ध के बाद प्रेत पार्वणभुक् होता है। और गृहस्थ (गृहे दारेषु तिष्ठति अभिरमते। जो बिवाहादि कर घर में निवास करे। घरबार वाला बालबच्चों वाला आदमी) वृद्धिश्राद्ध, इष्टापूर्त के योग्य सदा होता है। साल के अन्त में सपिण्डन न करने पर तो अधिकारी नहीं होता है—यह अर्थ है। गृहस्थ माने सपिण्ड भी होता है—यह अर्थ है।

अत एव—प्रेतकर्माण्यनिर्वर्त्य चरेन्नाभ्युदयक्रियाम्। आचतुर्थं ततः पुंसि पञ्चमे शुभदं भवेत् ॥ इति ज्योतिषे उक्तम्।

इसलिए प्रेतकर्मों को समाप्त न कर आभ्युदयिकश्राद्ध की क्रिया को चारपीढी तक न करे, तदनन्तर पाँचवीं पीढ़ी में शुभ को देने वाला होता है—यह ज्योतिष में कहा है।

१—मत्स्यपुराण और मलमासतत्त्व में लिखा है—आद्यन्तु सर्वदानानां तुलापुरुषसंज्ञितम्। हिरण्यगर्भदानं च ब्रह्माण्डः तदनन्तरम् ॥ कल्पपाददानं च गोसहस्रं तु पञ्चमम्। हिरण्यकामधेनुश्च हिरण्याश्वस्तथैव च ॥ पञ्चलाङ्गलकं तद्वद्धरादानं तथैव ॥ हिरण्याश्वरथस्तद्वद्धेमहस्तिरथस्तथा ॥ द्वादशं विष्णुचक्रं च ततः कल्पलतात्मकम्। सप्तसागरदानं च रत्नधेनुस्तथैव च ॥ महाभूतघटस्तद्वत् षोडशः परिकीर्तितः। कूर्मपुराणे—कनकाश्वतिला गावो दासी रथ महीगृहाः। कन्या च कपिलाधेनुर्महादानानि वै दश ॥ विशेष हेमाद्रि को देखिये।

माधवीये देवलः—प्रमीतौ पितरौ यस्य देहस्तस्याशुचिर्भवेत् । न दैवं नापि वा पित्र्यं यावत्पूर्णो न वत्सरः ॥ इदं वर्षान्तसपिण्डनपरम् ।

माधवीय में देवल ने कहा है—जिसके पिता और माता मर गये हों उसका शरीर जब तक एक साल पूरा नहीं होता है तब तक अपवित्र रहता है। देवकर्म तथा पितृकर्म (सपिण्डन) में उसका अधिकार नहीं होता है। यह वर्षान्त सपिण्डनपरक है।

तथैव काम्यं यत्कर्म वत्सरात्प्रथमादृते । इति लघुहारीताद्येकवाक्यत्वात् । वृद्धिनिमित्तापकर्षे तु वर्षमध्येऽपि काम्यादि भवत्येवेति गौडाः । पित्र्यं=सपिण्डनम् ।

उसीप्रकार जो काम्यकर्म है उसको प्रथम साल में त्याग कर करे। यह लघुहारीत आदि के एक वाक्य से कहा है। वृद्धिनिमित्त अपकर्ष में तो साल के मध्य में भी काम्य आदि कर्म होता ही है—यह गौड कहते हैं। पित्र्य माने—सपिण्डन।

अत एव लौगाक्षिः—अन्येषां प्रेतकार्याणि महागुरुनिपातने । कुर्यात्संवत्सरादर्वाक् श्राद्धमेकं तु वर्जयेत् ॥ दाहाद्येकादशोहान्तं कार्यम् । तत्राशौचान्तरस्याप्रतिबन्धकत्वात् ।

इसलिए लौगाक्षि में कहा है—महागुरु के मरने पर अन्यों के प्रेत कार्यो को सालभर के भीतर करे और एकश्राद्ध (सपिण्डन) को त्याग करे। दाह से प्रारम्भ कर एकादशाहश्राद्धान्त करे। वहाँ पर आशौचान्तर के अप्रतिबन्धक होने से।

आद्यं श्राद्धमशुद्धोऽपि कुर्यादेकादशेऽहनि । इत्युक्तेश्च । एकं सपिण्डनम् ।

और कहा है—अशुद्ध व्यक्ति आद्यश्राद्ध को ग्यारहवें दिन करे। एकमाने—सपिण्डन।

पत्न्यादौ त्वपवादमाह माधवीये ऋष्यशृङ्गः—पत्न्याः पुत्रस्य तत्पुत्रभ्रात्रोस्तत्तनयस्य च । स्नुषाश्वश्र्वोश्च पित्रोश्च संघातमरणं यदि ॥ अर्वागब्दान्मातृपितृपूर्वं सापिण्ड्यमाचरेत् ।

पत्नी आदि में तो अपवाद माधवीय में ऋष्यशृंग ने कहा है—पत्नी पुत्र का, पौत्र भाई, भाई के पुत्र, वधू सास, माता और पिता का यदि एकसमय मरण हो जाय तो साल के मध्य में माता तथा पिता के क्रम से सपिण्डनश्राद्ध करे।

लौगाक्षिः—पत्नी पुत्रस्तथा पौत्रो भ्राता तत्पुत्रका अपि । पितरौ च यदैकस्मिन् म्रियेरन्वासरे तदा ॥ आद्यमेकादशे कुर्यात्त्रिपक्षे तु सपिण्डनम् ॥

लौगाक्षि ने कहा है—पत्नी पुत्र, पौत्र भाई, भाई के पुत्र, पिता तथा माता एकदिन में मर जाँय तो आद्यश्राद्ध को ग्यारहवें दिन करे और तीनपक्ष में सपिण्डनश्राद्ध करे।

धवलनिबन्धे—महागुरुनिपाते तु प्रेतकार्यं यथाविधि। कुर्यात्संवत्सरादर्वागेकोद्दिष्टं न पार्वणम् ॥

धवलनिबन्ध में कहा है—महागुरु के मरण में तो यथाविधि प्रेतकार्य को करे। पर वर्ष के पहले एकोद्दिष्ट करे पार्वणश्राद्ध न करे।

भृगुः—माता चैव तथा भ्राता भार्यापुत्रस्तथा स्नुषा । एषां मृतौ चरेच्छ्राद्धमन्यस्य न पुनः पितुः ॥ एतदपि सपिण्डनपरम् । पितुर्मृतावन्यस्य श्राद्धं न चरेदित्यर्थः ।

भृगु ने कहा है—माता, भाई, स्त्री, पुत्र, और वधु—इनके मरने पर अन्य का श्राद्ध करे। पिता के मरने पर तो श्राद्ध दूसरे का न करे। यह भी सपिण्डनपरक है। पिता के मरने पर दूसरे का श्राद्ध न करे—यह अर्थ है।

(गुरुपाते अन्यश्राद्धादौ विचारः)

शुद्धितत्त्वे श्राद्धकौमुद्यां च देवलः—अन्यश्राद्धं परान्नं च गन्धमाल्यं च मैथुनम् । वर्जयेद्गुरुपाते तु यावत्पूर्णो न वत्सरः ॥

शुद्धितत्त्व और श्राद्धकौमुदी में देवल ने कहा है—श्री गुरुदेव के मरने पर तो दूसरे का श्राद्ध, दूसरे का अन्न, गन्ध, माला और मैथुन का त्याग करे। जब तक पूरा साल व्यतीत न हो।

पारस्करभाष्ये बृहस्पतिः—पितर्युपरते पुत्रो मातुः श्राद्धान्निवर्तते। मातर्यपि च वृत्तायां पितृश्राद्धादृते समम्॥ समं पितरं विनाऽन्यश्राद्धं नेत्यर्थः।

पारस्करभाष्य में बृहस्पति ने कहा है—पिता के मरने पर पुत्र माता का श्राद्ध न करे। माता के मरने पर भी पिता के श्राद्ध के बिना अन्य श्राद्ध न करे। यह अर्थ है। (जहाँ पर माता की मृत्यु के बाद पिता का स्वर्गवास हो जाय वहाँ पर माता के सपिण्डन की आवश्यकता नहीं है।)

(महागुरुनिपाते विचारः)

शुद्धितत्त्वे देवलः—महागुरुनिपाते तु काम्यं किञ्चिन्न चाचरेत्। आर्त्विज्यं ब्रह्मचर्यं च श्राद्धं देवक्रियां तथा॥ एतत्सपिण्डनात्प्रागिति केचित्। तदुत्तरमपीत्यन्ये।

शुद्धितत्त्व में देवल ने कहा है—महागुरु के मरने पर कुछ भी काम्यकर्म, आर्त्विज्य, (यज्ञ का करना) ब्रह्मचर्य, श्राद्ध और देवक्रिया (देवपूजा) का आरंभ न करे। कोई कहते हैं—यह सपिण्डनश्राद्ध के पहले है। दूसरे महाशय कहते हैं—उसके बाद भी न करे।

श्राद्धकौमुद्यां कालिकापुराणे पूर्वार्धे—विशेषतः शिवपूजां प्रमीतपितृको नरः।
यावद्वत्सरपर्यन्तं मनसापि न चाचरेत्॥

श्राद्धकौमुदी में कालिकापुराण के पूर्वार्ध का वचन है—जिस मनुष्य के पिता और माता मर गये हैं वह जब तक एक साल पूरा न हो तब तक विशेषकर शिवपूजा को मन से भी न करे।

(पित्रादीनामाशौचविचारः)

केचित्तु—पित्रोरब्दमशौचं स्यात्षण्मासं मातुरेव च। त्रैमासिकं तु भार्यायास्तदर्धं भ्रातृपुत्रयोः॥ इति स्मृतेः। सपत्नमातुरब्दार्धमाहुः।

कोई कहते हैं—पिता का एक साल का, माता का छ महिने का, स्त्री का तीन महिने का, डेढ महिने का भाई और पुत्र का आशौच होता है—एसा स्मृति में कहा है। सपत्नमाता का तो छ महिने का आशौच कहा है।

श्राद्धकौमुदीकारस्तु—द्वयोरेव महागुर्वोरब्दमेकमशौचकम्। नान्येषामधिकाशौचं स्वजातिविहितात्किल॥ इति समूलजातूकर्ण्यविरोधान्निर्मूलमाह।

श्राद्धकौमुदीकार ने तो कहा है—दोनों ही महागुरुओं का एक साल का आशौच होता है। और अन्यों का अधिक आशौच नहीं होता है पर अपनी अपनी जाती के अनुसार होता है—यह समूलवचन जातूकर्ण्य के विरोध से निर्मूल कहा है।

(प्रथमाब्दे गयाश्राद्धादिविचारः)

हेमाद्रौ भविष्ये—गयाश्राद्धं मृतानां तु पूर्णे त्वब्दे प्रशस्यते।

हेमाद्रि में भविष्यपुराण का वचन है—मरे हुओं का गयाश्राद्ध पूरा साल व्यतीत होने पर प्रशक्त (उत्तम) कहा है।

त्रिस्थलीसेतौ गारुडे—तीर्थश्राद्धं गयाश्राद्धं श्राद्धमन्यच्च पैतृकम्। अब्दमध्ये न कुर्वीत महागुरुविपत्तिषु॥ इदं वृद्ध्यर्थसपिण्डनाभावे। वृद्धौ सपिण्डनापकर्षेऽब्दमध्ये दर्शादि कार्यमेव,

त्रिस्थलीसेतु में गरुडपुराण का वचन है—तीर्थश्राद्ध, गयाश्राद्ध तथा अन्य पितृश्राद्ध इनको महागरुओं के मरने पर साल (वर्ष) के मध्य में न करे। यह वचन वृध्यर्थसपिण्डन के अभाव में है। वृद्धिश्राद्ध में सपिण्डन के अपकर्ष में वर्ष के मध्य में दर्श आदि करना ही चाहिये।

पितुः सपिण्डनं कृत्वा कुर्यान्मासानुमासिकम् । इति छन्दोगपरिशिष्टात्,

छन्दोगपरिशिष्ट का वचन है—पिता का सपिण्डनश्राद्ध कर मासिक और अनुमासिकश्राद्ध करे।

सपिण्डीकरणादूर्ध्वं प्रेतः पार्वणभुग्भवेत् । इति मात्स्यात्,

मत्स्यपुराण में कहा है—सपिण्डीश्राद्ध के बाद प्रेत पार्वणश्राद्ध का भोक्ता होता है।

ततः प्रभृति वै प्रेतः पितृसामान्यमश्नुते । विन्दते पितृलोकं च ततः श्राद्धं प्रवर्तते ॥ इति हारीताच्चेति शूलपाणिः ।

हारीत ने भी कहा है—सपिण्डनश्राद्ध के बाद ही प्रेत पितरों के समान होता है और पितृलोक को प्राप्त करता है और तभी श्राद्ध की प्रवृत्ति होती है—यह शूलपाणि ने कहा है।

यत्तु कातीयम्—सपिण्डीकरणादूर्ध्वं न दद्यात्प्रतिमासिकम् । एकोद्दिष्टविधानेन दद्यादित्याह शौनकः ॥ इति । तत्रैकोद्दिष्टविधिना न दद्यादित्यन्वयः । तुर्यपादेन पार्वणे विकल्प उक्तः ।

जो कात्यायन का वचन है—सपिण्डनश्राद्ध के बाद हर महीने के श्राद्ध को न दे। शौनक ने कहा है—एकोद्दिष्टविधान से दे। वहाँ पर एकोद्दिष्टविधि से न दे—यह अन्वय है। चतुर्थ पाद से (प्रत्यब्दं यो यथा कुर्यात्तथा कुर्यात्स तान्यपि। यह पहले कह चुके हैं।) पार्वणश्राद्ध में विकल्प कहा है।

'ब्रह्मवैवर्ते—उद्वाहश्चोपनयनं प्रथमेऽब्दे महीपते । कृते सपिण्डनेऽप्यूर्ध्वमस्थ्नां चोद्धरणं त्यजेत् ॥ तथापि कर्तुमिच्छन्ति त्रीणि चैतानि वै सुताः । मासिकान्यवशिष्टानि चापकृष्य चरेत्पुनः ॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण में वचन है—हे महीपते, प्रथमवर्ष में सपिण्डनश्राद्ध को करने पर विवाह और उपनयन को करे। सपिण्डन करने के बाद अस्थियों का उद्धरण (निस्सारण) का त्याग करे। फिर भी पुत्र इन तीनों को करने की इच्छा करते हैं—अन्य मासिक आदि अवशिष्टों का अपकर्ष कर फिर से करे।

अत्रेदं तत्त्वम् । वृद्धिं विनाऽर्वागपि सपिण्डनापकर्षे पितृत्वप्राप्तिर्वर्षान्त एव,

कृते सपिण्डीकरणे नरः संवत्सरात्परम् । प्रेतदेहं परित्यज्य भोगदेहं प्रपद्यते ॥ इति विष्णुधर्मोक्तेः—

यहाँ पर यह तत्त्व है—वृद्धि के बिना पहले भी सपिण्डन के अपकर्ष में पितृत्व की प्राप्ति वर्ष के अन्त में ही है। विष्णुधर्म में कहा है—मनुष्य के सपिण्डनश्राद्ध करने पर वर्ष के बाद प्रेत देह को त्यागकर भोगदेह को प्राप्त करता है।

अर्वाक् संवत्सराद्यस्य सपिण्डीकरणं भवेत् । प्रेतत्वमिह तस्यापि विज्ञेयं वत्सरं नृप ॥ इत्यग्निपुराणाच्च । तेन तत्सत्त्वेऽपि वृद्धिदैवपित्र्येष्वनधिकारः । वृद्धिनिमित्ते त्वनन्तरमेव ।

और अग्निपुराण में कहा है—हे नृप, जिसका सालभर के पूर्व सपिण्डनश्राद्ध किया है उसका भी यहाँ प्रेतत्व वर्षपर्यन्त रहता है। इससे सपिण्डनश्राद्ध के करने पर भी वृद्धि, देव और पितृकार्यों में अधिकार नहीं होता है। वृद्धिनिमित्त सपिण्डन में तो सपिण्डन कर (पितृत्व प्राप्ति) ही अधिकार हो जाता है।

अर्वाक् संवत्सराद्वृद्धौ पूर्णे संवत्सरेऽपि वा । ये सपिण्डीकृता प्रेता न तेषां तु पृथक् क्रिया ॥ इति शातातपोक्तेः । तथैव काम्यमिति हेमाद्रिधृतहारीतादिवशाच्चैवमिति ।

शातातप ने कहा है—वृद्धि के लिए सालभर के पूर्व या पूरे वर्ष में जो प्रेत सपिण्ड हो गये हैं उन प्रेतों की पृथक् क्रिया नहीं होती है। वैसे ही काम्यकर्म करे—यह हेमाद्रि में कहे हुए वचन से भी यही ही है।

तथा—अस्थिक्षेपं गयाश्राद्धं श्राद्धं चापरपक्षिकम् । प्रथमेऽब्दे न कुर्वीत कृतेऽपि तु सपिण्डने ॥

और पिता का सपिण्डनश्राद्ध करने पर अस्थिप्रक्षेप, गयाश्राद्ध और अपरपक्ष का श्राद्ध (आश्विन कृष्ण पक्ष में होनेवाला श्राद्ध) प्रथमवर्ष में न करे।

अस्यापवादः—अस्थिक्षेपं गयाश्राद्धं श्राद्धं चापरपक्षिकम् । प्रथमेऽब्देऽपि कुर्वीत यदि स्याद्भक्तिमान् सुतः ॥ भक्त्याख्यं श्राद्धं तद्वानिति मदनपारिजातादयः । अन्ये यथाश्रुतमाहुः । तत्त्वं तु यदीदं समूलं तदा वृद्धिं विनापकर्षे पूर्वं वृद्ध्यर्थे तु परमिति योज्यम् ।

इसका अपवाद (निन्दा) कहा है--यदि (जिसका और्ध्वदेहिक क्रिया है--यह किसी का मत है।) भक्ति को रखने वाला पुत्र हो तो अस्थिप्रक्षेप, गयाश्राद्ध और अपरपक्ष का श्राद्ध प्रथमवर्ष में करे। मदनपारिजात आदि ने कहा है कि--भक्तिनामक श्राद्ध को करनेवाला पुत्र ही भक्तिमान् है। दूसरे लोग तो यथाश्रुत—जैसा सुना है—उसको कहते हैं। तत्त्व तो यह है यदि यह समूल है तो वृद्धि के बिना अपकर्ष में पहले और वृद्धि के लिए बाद में योजना करे।

(पतितानां गयायां विशेषः)

पतितानां गयायां विशेषो ब्राह्मे—क्रियते पतितानां च गते संवत्सरे क्वचित्।
देशधर्मप्रमाणत्वाद् गयाश्राद्धं स्वबन्धुभिः॥

पतितों का गया में विशेष ब्रह्मपुराण में कहा है—कहीं पर वर्ष के व्यतीत होने पर पतितों का देशधर्म प्रमाण से अपने बान्धव गयाश्राद्ध को करते हैं।

(पञ्चकमृते दाहविचारः)

अथ विधानानि तत्र पञ्चकमृते मदनरत्ने गारुडे—आदौ कृत्वा धनिष्ठार्धमेतन्नक्षत्रपञ्चकम्।
रेवत्यन्तं सदा दूष्यमशुभं दाहकर्मणि॥

अब विधियों[1] को कहते हैं। वहाँ पर पञ्चक के मरने पर मदनरत्न में गरुडपुराण का वचन है—धनिष्ठानक्षत्र के आधे से (अतिनिषिद्ध धनिष्ठानक्षत्र ही का निषेध है।) रेवतीपर्यन्त पाँच नक्षत्र तक दूषित तथा दाहकर्म में सदा अशुभ होता है।

(पञ्चकमृते विधिकथनम्)

शवस्य तु समीपे तु क्षेप्तव्याः पुत्तलास्तदा। दर्भमयास्तु चत्वार ऋक्षमन्त्राभिमन्त्रिताः॥

शव के समीप में कुशा के चार पुतले (चार जो कहे हैं वे नक्षत्र के अभिप्राय से है। इससे कुशाओं की प्रतिमा करे—इत्यादि कोई विरोध नहीं है।) नक्षत्र के मन्त्रों[2] से अभिमन्त्रित (संस्कार युक्त) कर प्रक्षेप करे।

१—ब्रह्माण्डपुराणे—स्वगृह्योक्तविधानेन कृत्वाऽग्निस्थापने ततः। अभिध्यानं निर्वपणं देवतानां तथा शृणु॥ वसवो वरुणश्चैव अजैकपात्तृतीकः। अहिर्बुध्न्यश्चतुर्थश्च पूषा वै पञ्चमस्तथा॥ यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च। वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च॥ औदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने। वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै नमः॥ अघोररुद्रं मन्त्रैश्च निर्वापयेत्क्रमेण च। विधिना श्रपणं कृत्वा एकैकामाहुतिं हुनेत्॥ कुण्डादीशानदिग्भागे स्थण्डिलं हस्तमात्रकम्। तत्र वस्त्रं समास्तीर्य स्थापयेद्वस्वादिपञ्चकम्॥ चतुर्दश यमांश्चैव अघोरं स्थापयेत्पुनः। अव्रणान् कलशान् दिक्षु चतुरो विन्यसेत् क्रमात्॥ कलशं पञ्चमं मध्ये स्थापयेद्विधिपूर्वकम्। उच्चार्य वारुणं मन्त्रं पूरयेत्तीर्थवारिणा॥ मध्ये सर्वौषधीः क्षिप्त्वा मृद्दूर्वापञ्चपल्लवान्। हिरण्यं फलसंयुक्तं वस्त्रेणावेष्टयेत्ततः॥ कलशोपरि न्यसेन् मूर्तीः पञ्च स्वर्णमयीस्तथा। प्रतिष्ठापूजनं कार्यं पञ्चसूक्तान् जपेत्ततः॥ श्रपयित्वा चरुं विद्वान् दद्यादग्निमुखं ततः। आघारावाज्यभागौ च ततो वह्निं समर्चयेत्। समित्तिलैश्च चरुभिः होमं कुर्यात्पृथक् पृथक्। अघोरेणैव मन्त्रेण ततो होमं चरोः क्रमात्॥ पूर्णाहुतिं च विधिवत्। पूजयेद्देवतास्ततः। इत्थं समाप्य हवनं धेनुं दद्यात्पयस्विनीम्॥ सहिरण्यांस्तिलान् दद्यात् महिषीं सप्तधान्यकम्। सहिरण्यं घृतं दद्यात् कृष्णवस्त्रसदक्षिणम्। अभिषेकं ततः कुर्यात् कलशोदकतस्तथा। कलशैः स्नपनं तस्य कुर्यादाज्यावलोकनम्॥ वस्त्रं चैव परित्याज्यं रुद्रभक्तिविशेषतः। ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चात् पायसं मधुसर्पिषा॥ एवं यः कुरुते पुत्र शुभं तस्य प्रजापते। विधानं यो न कुर्वीत्त विघ्नस्तस्य भवेत् सदा। तस्मात् सर्वप्रयत्नेन शान्तिं कुर्यात् यथाविधि।) संकल्पप्रकारः-अमुकगोत्रस्यास्मत्पित्रादेर्धनिष्ठादिपञ्चकदुर्मरणजनितदोषोपशान्त्यर्थं मम गृहे सर्वेषां बालादीनां दीर्घायुरारोग्यसुखप्राप्त्यर्थं ब्रह्माण्डपुराणोक्तां पञ्चकशान्तिं करिष्ये।

२—(क) ज्मया अत्र वसवो रन्त देवाः उरावन्तरिक्षे मर्जयन्त शुभ्राः। अर्वाक् पथ उरुज्रयः कृणुध्वं श्रोता दूतस्य जग्मुषो नो अस्य॥ (ऋ० ७।३९।३)। (ख) तत् त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस् तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः॥ (ऋ० १।२४।११)। (ग) उतनोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वज एकपात् पृथिवी समुद्रः। विश्वे देवा ऋतावृधो हुवानाः स्तुता मन्त्राः कविशस्ता अवन्तु॥ (ऋ० ६।५०।१४)

ततो दाहः प्रकर्तव्यस्तैश्च पुत्तलकैः सह । सूतकान्ते ततः पुत्रैः कार्यं शान्तिकपौष्टिकम् ॥

तदनन्तर उन पुतलों के साथ दाहसंस्कार करे । फिर पुत्र सूतक के बाद शान्तिक-पौष्टिककर्म को करे ।

पञ्चकेषु मृतो यो वै न गतिं लभते नरः । तिलांश्चैव हिरण्यं च तमुद्दिश्य घृतं ददेत् ॥

जो पञ्चक[1] में मनुष्य[2] मरता है उसकी गति नहीं ही होती है । अतः उस प्रेत के उद्देश्य से तिल, सुवर्ण और घृत को दे ।

क्रियानिबन्धे—भाजनोपानहच्छत्रं हैममुद्रां च वाससी । दक्षिणा दीयते विप्रे सर्वपातकमोचनी ॥

क्रियानिबन्ध में कहा है—भाजन (पात्र) जूता, छाता, साने की मुद्रा (अंगूठी) वस्त्र और सब पातकों से मुक्त करनेवाली दक्षिणा को दे । (इसके बाद का श्लोक कहते हैं—बालवृद्धस्य यूनश्च पञ्चकेषु मृतस्य च । विधानं यो न कुर्वीत विघ्नस्तस्य प्रजायते ॥)

(त्रिपादनक्षत्रादौ मृते विचारः)

मदनरत्ने गार्ग्यः—यदि भद्रातिथीनां स्याद्भानुभौमशनैश्चरैः । त्रिपादर्क्षैश्च संयोगो द्वयोर्योगे द्विपुष्करः ॥ द्वित्रिपुष्करयोगे तु मृतिर्मृत्यन्तरावहा । दहने मरणे चैव त्रिगुणं स्यात्त्रिपुष्करे ॥ खननेऽप्येवमेव स्यादेतद्दोषोपशान्तये । तिलपिष्टैर्यवैर्वापि शरीरं कारयेत्ततः ॥ शूर्पे निधायालङ्कृत्य दाहयेत् पैतृकोपरि ॥

मदनरत्न में गार्ग्य ने कहा है—यदि भद्रातिथि, रविवार, मंगलवार, शनिवार, तथा [3]त्रिपादनक्षत्र इन तीनों के योग में त्रिपुष्कर और दो के योग में द्विपुष्कर योग होता है । इन दोनों योग में तो मरना दूसरी मृत्यु कर्ता की होती है इनमें दहन और मरण हो तो दूना तथा त्रिपुष्कर में तिगुना होता है । खनन (गाडने) में भी यही ही है । अतः दोष की शान्ति के लिए तिलपिष्ट (तिल के चूर्ण या यव आटे से शरीर का निर्माण करे फिर शूप में रखकर अलंकारों से युक्तकर पिता के ऊपर रखकर दाह करे ।

तद्दाहे मन्त्रमाह बौधायनः—अस्मात्त्वमिति मन्त्रेण तिलपिष्टं प्रदाहयेत् । द्वित्रिपुष्करयोर्दोषस्त्रिभिः कृच्छ्रैर्व्यपोहति ॥

उसके दाह में मन्त्र बौधायन ने कहा है—'अस्मात्वम्' इस मन्त्र (पूर्व में कहे हुए) से तिलपिष्ट को दहन करे और त्रिपुष्कर और द्विपुष्कर का दोष कृच्छ्रों से हट जाता है ।

वासवे मरणं चेत्स्याद् गृहे चापि पुनर्मृतिः । सुवर्णं दक्षिणां दद्यात्कृष्णवस्त्रमथापि वा ॥ वासवं=धनिष्ठा ।

धनिष्ठा में मरण हो तो घर में फिर से मृत्यु होती है । उसके निमित्त सुवर्ण दक्षिणा या काला वस्त्र दे । वासव माने—धनिष्ठा नक्षत्र ।

ब्राह्मे—कुम्भमीनस्थिते चन्द्रे मरणं यस्य जायते । न तस्योर्ध्वगतिर्दृष्टा सन्ततौ न शुभं भवेत् ॥

ब्रह्मपुराण में कहा है—कुंभ और मीन के चन्द्रमा में जिसकी मृत्यु होती है उसकी ऊर्ध्वगति (उच्चगति, स्वर्गारोहण) नहीं देखी है तथा सन्तान का शुभ नहीं होता है ।

(घ) कद् रुद्राय प्रचेतसे मीढुष्टमाय तव्यसे । वोचेम शंतमं हृदे ॥ (ऋ० १।४३।१) । (ङ) पूषा गा अन्वे तु नः पूषा रक्षत्वर्वतः । पूषा वाजं सनो तु ॥ (ऋ० ६।५४।५) ।

(—क—वसोः पवित्रम्—(यजु० १।२) ख—वरुणस्योत्तम्भनमसि (यजु० ४।३६। ग—उतनोऽहिर्बुध्न्यः (३४।५३) शिवोनामासि (यजु० ३।६३) पूषन् तव व्रते (यजु० ३४।४१)

१—अमुकस्य धनिष्ठापञ्चकादिमरणसूचितवंशारिष्टविनाशार्थं पञ्चकविधिं करिष्ये—इति धर्मसिन्धौ ।

२ –नक्षत्रान्तरे मृतस्य पञ्चके दाहप्राप्तौ पुत्तलविधिरेव न शान्तिकम् । पञ्चकमृतस्याश्विन्यां दाहप्राप्तौ शान्तिकमेव न पुत्तलविधिः । शान्तिश्च लक्षहोमरुद्रजपान्यतररूपा यथा विभवं कार्या—इति धर्मसिन्धौ ।

३—त्रिपादनक्षत्राणि—पुनर्वसूत्तराषाढा कृत्तिकोत्तरफाल्गुनी । पूर्वाभाद्रा विशाखा च ज्ञेयमेतत्त्रिपादभम् ॥ द्विपादः मृगचित्राधनिष्ठा च ज्ञेयमेतद् द्विपादभम् । इति धर्मसिन्धौ ।

न तस्य दाहः कर्तव्यो विनाशात्स्वेषु जन्तुषु । अथवा तद्दिने कार्यो दाहस्तु विधिपूर्वकम् ॥

अपने प्राणियों के नाश के भय से उसका दाह नहीं करना चाहिये । (पञ्चक के बाद दाह आदि करे मध्य में न करे—यह अर्थ है ।) या उसीदिन में विधिपूर्वक दाह करे ।

धनिष्ठापञ्चके जीवो मृतो यदि कथञ्चन । त्रिपुष्करे याम्यभे वा कुलजान्मारयेद् ध्रुवम् ॥

यदि धनिष्ठा आदि पांच नक्षत्रों में, त्रिपुष्कर या भरणीनक्षत्र में प्राणी किसी तरह मर जाता है तो वंश में उत्पन्न हुओं को निश्चित हनन करता है ।

तत्रानिष्टविनाशार्थं विधानं समुदीर्यते । दर्भाणां प्रतिमाः कार्याः पञ्चोर्णासूत्रवेष्टिताः ॥ यवपिष्टेनानुलिप्तास्ताभिः सह शवं दहेत् ।

वहाँ पर अनिष्ट के विनाश के लिए विधान को कहता हूँ । कुशाओं की पांच प्रतिमा करे । उनको ऊनसे वेष्टित करे । यव के आंटे से उन प्रतिओं को अनुलिप्त (लेपन युक्त) कर उन प्रतिमाओं के साथ शव का दाह करे ।

प्रेतवाहः प्रेतसखः प्रेतपः प्रेतभूमिपः ॥ प्रेतहर्ता पञ्चमस्तु नामान्येतानि च क्रमात् ।

प्रेतवाह, प्रेतसखा, प्रेतप, प्रेतभूमिप और प्रेतहर्ता इन प्रतिमाओं का क्रम से नाम ग्रहण करे ।

अत्र प्रतिमा गन्धपुष्पैः पूजयित्वा प्रथमां शिरसि, द्वितीयां नेत्रयोः, तृतीयां वामकुक्षौ, चतुर्थीं नाभौ, पञ्चमीं पादयोर्न्यस्य तदुपरि नामभिर्घृतं हुत्वा 'यमाय सोमं' 'त्र्यंबकम्' इति मन्त्राभ्यां प्रत्येकं तास्वाज्यं हुनेदिति भट्टाः ।

यहाँ पर प्रतिमाओं का गन्ध तथा पुष्पों से पूजन कर पहली-प्रतिमा को प्रेत के शिर पर, दूसरी-नेत्रों में, तीसरी-बायें कुक्षि में, चतुर्थी-नाभि में और पांचवीं-पैरों पर रखकर ऊपर नामों से घी का हवन कर (तथा उदक की धारा को भी देकर—यह अन्त्येष्टि में कहा है ।) यमाय[1] सोमम् और त्र्यम्बकं[2] यजामहे इन दोनों मन्त्रों से प्रत्येक पर उन प्रतिमाओं में घी से हवन करे—यह भट्ट कहते हैं ।

सूतकान्ते ततः पुत्रः कुर्याच्छान्तिकपौष्टिकम् । कांस्यपात्रस्थितं तैलं वीक्ष्य दद्याद् द्विजन्मने ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशेन्द्रवरुणप्रीतये ततः । माषमुद्गयवव्रीहिप्रियंग्वादि प्रयच्छति ॥ स्वर्णदानं रुद्रजाप्यं लक्षहोमो द्विजार्चनम् । गोभूदानं षडंशेन कुर्याद्दोषोपशान्तये ॥

तदनन्तर पुत्र सूतक के बाद शान्तिक-पौष्टिककर्म को करे । कांसे के पात्र में रखे हुए तेल को देखकर ब्राह्मण के लिए दे । ब्रह्मा, विष्णु, महेश (शंकर), इन्द्र और वरुण की प्रसन्नता के लिए । उडदी, मूंग, यव, व्रीहि, (यव-ऊ वर्ष पुराना) प्रियंगु (पीलीसरसों), आदि देता है । सोने का दान, रुद्र का जप, लक्षहोम, ब्राह्मण पूजन, गा तथा पृथ्वी का दान अपने धन के छठे भाग से दोषों की शान्ति के लिए करे ।

अपरार्के—धनिष्ठापञ्चकमृते पञ्चरत्नानि तन्मुखे । प्रास्याहुतित्रयं तत्र हुनेद्वहवपामिति ॥

अपरार्क में कहा है—धनिष्ठा आदि पञ्चक में मरने पर उसके मुँह में पञ्चरत्न रखे । 'वहव्वपाम्'[3] इस मन्त्र से तीन बार हवन करे ।

१—यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः । यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः ॥ (ऋ० १०।१४।१३) ।

२—त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥ (ऋ० ७।५९।१२) ।

३—वह वपाञ्जातवेदः पितृभ्यो यत्रैनान्वेत्थ निहितान् पराके । मेदसः कुल्याऽउपतान्स्रवन्तु सत्याऽ एषामाशिषः सन्नमन्ताम् स्वाहा ॥ (यजु० अ० ३५ म० २०) ।

ततो निर्हरणं कुर्यादेष साग्नेर्विधिः स्मृतः । इतरं निखनेदेव जले वा प्रतिपादयेत् ॥

तदनन्तर शव को श्मशान पर ले जाय—यह साग्निक का विधान कहा है। दूसरे को गाड दे या जल में गिरा दे।

त्रिपादृक्षमृते तद्वद्धिरण्यशकलं मुखे । तस्य पिष्टमयं कुर्यात्पुरुषं त्रितयं ततः ॥ होमं प्रतिमुखं कुर्यात्तथा वहवपामिति ।

उसीप्रकार त्रिपादनक्षत्र में मरने पर सोने का टुकड़ा उसके मुँह में रखें और पिष्ट का तीन पुरुष करे। फिर प्रत्येक के मुख में 'वहवपाम्' इस (पूर्वोक्त) मन्त्र से हवन करे।

कार्ष्णायसं च कार्पासं कुसुम्भं प्रतिपाद्य च ॥ निर्यात्य साग्निं संस्कुर्याद् भुव्यग्नौ वान्यमुत्सृजेत् ॥

काला लोहा, रुई, कुसुंभ का मुख में रख दान कर साग्निक को श्मशान ले आकर दाहसंस्कार करे। या पृथ्वी और अग्नि में छोड दे।

(पञ्चरत्नकथनम्)

तत्रैव—कनकं हीरकं नीलं पद्मरागं च मौक्तिकम् । पञ्चरत्नमिदं प्रोक्तं ऋषिभिः पूर्वदर्शिभिः ॥

वहीं पर कहा है—कनक (सुवर्ण) हीरा, नीलम, पद्मराग और मोती इनको प्राचीन ऋषियों ने पंचरत्न कहा है।

(रत्नानामभावे विचारः)

रत्नानां चाप्यभावे तु स्वर्णं कर्षार्धमेव वा । सुवर्णस्याप्यभावे तु आज्यं ज्ञेयं विचक्षणैः ॥ मदन-रत्नेऽप्येवम् ।

रत्नों के अभाव में तो आधाकर्ष सुवर्ण दे। या सोने के अभाव में विद्वान् पुरुष को घृत जानना चाहिये। मदनरत्न में यही है।

तथा—एकाशीतिपलं कांस्यं तदर्द्धं वा तदर्द्धकम् ।
नवषट्त्रिपलं वापि दद्याद्विप्राय शक्तितः ॥

वैसे ही—इक्यासी पल या उसका आधा या उससे भी आधा या नौ, छ या तीन पल के कांसे को अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मण के लिए दे।

(पञ्चकमृते विधानम्)

तथान्यत्र–स्वगृह्योक्तविधानेन कृत्वाग्नेः स्थापनं ततः । अन्वाधानं निर्वपणं देवतानां तथाहुतिः ॥

और अन्यत्र (बौधायनीयसर्वस्व) लिखा है—अपने गृह्यसूत्र के विधान से (पञ्चके ये मृता-विप्रास्तेषां शान्ति विधानतः । अतीते सूतके कुर्यात्केचित्तद्दृक्षयोगतः ॥ इत्यादि कहा है।) अग्नि का स्थापन कर अन्वाधान (होमाग्नि स्थापन कर उसमें दो चार समिधा देना) निर्वाप (वह दान जो पितरों के उद्देश्य से किया जाता है) और देवताओं की आहुति दे।

यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च । वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च ॥ औदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने । वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै क्रमात् ॥ विधिना श्रपणं कृत्वा एकैकामाहुतिं हुनेत् ।

यम, धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल, सर्वभूतक्षय, औदुम्बर, दध्न, नील, परमेष्ठी, वृकोदर, चित्र और चित्रगुप्त को क्रम से आहुति दे। विधि से श्रपण (गरम) कर एक एक आहुति दे।

(त्रिपादृक्षे मृतौ विचारः)

त्रिपादर्क्षेऽप्येतदेव ।

त्रिपादनक्षत्र में भी यही ही विधि है।

(पञ्चक (धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद और रेवती) नक्षत्र में मरने पर पुत्तल विधान कथन)

कुशा की पाँच प्रतिमा को बनाकर ऊन से लपेट कर जलमिश्रित यव के पिसान का अनुलेपन कर 'अमुकगोत्रस्य अमुकस्य पञ्चकमरणजनितवंशानिष्टपरिहारार्थं पञ्चकविधिं करिष्ये' यों ऊहपूर्वक सङ्कल्प कर मन्त्रों से या नाम मन्त्रों से प्रेतवाहनाय नमः, १ प्रेतसखाय नमः, २ प्रेतपाय नमः, ३ प्रेतभूमिपाय नमः, ४ प्रेतहर्त्रे नमः, ५ गन्धादि द्वारा अर्चन कर मृत प्रेत के ऊपर क्रम से प्रथम सिर में, दूसरी नेत्रों में, तीसरी बायें कुक्षी में, चतुर्थ को नाभी में तथा पांचवीं को पैरों पर रखकर पूर्वोक्त नाममन्त्रों से ही स्थापनक्रम से घृताहुति देकर अग्निप्रदान करे।

पञ्चक के पहले मरने पर पञ्चक में दाह करे तो पुत्तलविधान ही करे। शान्ति न करे। पञ्चक में मरने पर पञ्चक के बाद दाह करने पर शान्ति का ही विधान है, पुत्तल की विधि नहीं प्राप्त है—यह धर्मसिन्धु में स्पष्ट कहा है।

(पञ्चकशान्तिकथन)

'अमुकगोत्रस्यास्मत्पित्रादेर्धनिष्ठादिपञ्चकदुर्मरणजनितदोषोपशान्त्यर्थं मम गृहे सर्वेषां बालादीनां दीर्घायुरारोग्यसुखप्राप्त्यर्थं ब्रह्माण्डपुराणोक्तां पञ्चकनिधनशान्तिं करिष्ये। यों सङ्कल्प कर गणेशादि पूजन कर होमवेदी के ईशानकोण में ग्रहों का अर्चन कर ग्रहकलश के उत्तर चारदिशाओं और मध्य में पांच कलशों का स्थापन कर धनिष्ठादि नक्षत्र देवता की पांच प्रतिमाओं का प्राणप्रतिष्ठा पूर्वक स्थापन कर उसके समीप में यमादि का स्थापन करे। उसके उत्तर मृत्युंजय का स्थापन करे। कलश के मन्त्रों का कथन—वसुभ्यो नमः १ वरुणाय नमः २ अजैकपदे नमः ३ अहिर्बुध्न्याय नमः ४ पूष्णे नमः ५ यमादि के मन्त्र—यमाय नमः १ धर्मराजाय नमः २ मृत्यवे नमः ३ अन्तकाय नमः ४ वैवस्वताय नमः ५ कालाय नमः ६ सर्वभूतक्षयाय नमः ७ औदुम्बराय नमः ८ दध्नाय नमः ९ नीलाय नमः १० परमेष्ठिने नमः ११ वृकोदराय नमः १२ चित्राय नमः १३ चित्रगुप्ताय नमः १४ मृत्युञ्जयमन्त्र—मृत्युञ्जयाय नमः १ तदनन्तर पांचकलशों के सूक्त जप के लिए पांच ब्राह्मणों का या अत्यन्त असम्भव में एक ब्राह्मण का वरण करे। प्रथम कलश में 'कृणुष्व पाजः' यजुर्वेद अध्याय १३। म० ९-१३ मन्त्र का, दूसरे कलश में 'बिभ्राट्' इस अध्याय का तीसरे में 'आशुःशिशान' इस अध्याय का, चतुर्थ में 'नमस्ते' इस सोलह मन्त्रों को तथा पांचवे कलश में 'ऋचं वाचम्' इस शान्ति अध्याय का पाठ करे। तदनन्तर हवनादि विधि करे।

१—त्रिपुष्कर योग में यही शान्ति है। उसमें विशेष यही है—तीन कुशा की प्रतिमा बनाकर मृतितिथ्यधिष्ठातृदेवतायै नमः १ मृतिवाराधीशाय नमः २ मृतित्रिपान्नक्षत्राधिपतये नमः ३ इनका पूजन कर प्रथम को शिर में, दूसरी को नेत्रों में और तीसरी को बायें कुक्षी में मृत शरीर पर रखे। २—कुष्ठी के मरने पर शव को गोशालाभूमि में गाड़ दे। बाद में गोदान १८० या ९० गोदान कर गंगा में छोड़ दे। तदनन्तर सब श्राद्धादिकार्य करे—यह निर्णयसिन्धु मत है। भविष्यपुराणमत से शव को तीर्थ में या वृक्षमूल में कुछ काल रखकर जल में त्याग कर पुत्तलविधि कर सब कार्य करे। ब्रह्मपुराणादि मत से पुत्र कुष्ठी का प्रायश्चित्त कर दाह कर सकता है परन्तु आजकल प्रायः सब लोग कुष्ठी को जल में प्रक्षेप कर पुत्तलदाह कर सब क्रिया को करते हैं—यही लोक में सम्प्रदाय चल रहा है। ३—रजस्वला के मरने पर संस्कार आदि न करे। तीन रात बाद उद्धृत जल से स्नान कराकर एक घडे में जल को भर कर पञ्चगव्य छोडकर 'आपो हि ष्ठा' इत्यादि निर्णयसिन्ध्वादि कथित मन्त्रों से या केवल 'आपो हि ष्ठा' इन तीन मन्त्रों से जल का अभिमन्त्रण कर शूर्पोदक से सौ वार स्नान करा कर नूतन वस्त्र से वेष्टन कर दाह करे। पन्द्रह या नौ धेनु का निष्क्रय करे। ४—सूतिका के मरने पर यही विधि है। ५—गर्भिणी स्त्री के मरने पर कुक्षी का भेदन करे। इत्यादि विधि निर्णय सिंन्धु में स्पष्ट है। ६—अन्वारोहण— अरुन्धतीसमाचारत्वस्वर्गलोकमहीयमानत्वमनुष्यलोमसमसंख्याब्दावच्छिन्नस्वर्गवासभर्तृसहितचतुर्दशेन्द्रावच्छिन्नकालिकक्रीडमानत्वमातृपितृश्वसुरकुलत्रयपूतत्वब्रह्मघ्नमित्रकृतघ्नपतिपूतत्वपत्यवियोगकामाभर्तृज्वलच्चितारोहणं करिष्ये। अनुगमन में तो—फल का उल्लेख कर 'अन्वारोहणं करिष्ये' कहे।

(त्रिपादनक्षत्राणि)

अपरार्के—पुनर्वस्वुत्तराषाढाकृत्तिकोत्तरफाल्गुनी ।
पूर्वाभाद्रा विशाखा च ज्ञेयमेतत्त्रिपादभम् ॥

अपरार्क में कहा है—पुनर्वसु, उत्तराषाढा, कृत्तिका, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपद और विशाखा ये त्रिपाद नक्षत्र जानना चाहिये ।

(मृतः श्मशानाज्जीवन्पुनरागच्छेचेत्)

मयूरचित्रे गर्गः—मृतः श्मशानं यो नीत उपजीवति मानवः । गृहे यस्य प्रविष्टोऽसौ तिष्ठेदथ कदाचन । अचिरान्मृत्युमायाति हृतदारपरिग्रहः ।

मयूरचित्र में गर्ग ने कहा है जो प्राणी मरा हुआ श्मशान में जाकर फिर कदाचित् जीवित हो जाता है वह जिसके घर में प्रवेश हुआ रहता है वह स्त्री-सकुटुम्ब के सहित शीघ्र मृत्यु को प्राप्त करता है ।

तत्र शान्तिं प्रवक्ष्यामि धर्मराजमतं यथा ॥ सक्षीराणां घृताक्तानामग्नेर्हुत्वा मुखे बुधः । औदुम्बराणां विधिवत्ततः शान्तिः कृता भवेत् ॥ सावित्र्यष्टसहस्रेण क्षीरशान्तिं च कारयेत् । कपिलां तिलकांस्यं च हुतान्ते भूरिदक्षिणा ॥ इति ।

वहाँ पर धर्मराज के मत से शान्ति को कहता हूँ—विद्वान् दूध मिश्रित घृत से सिक्त औदुम्बरों (गूलर) का अग्नि के मुख में विधिवत् हवन करे तब शान्ति होती है । आठ हजार गायत्रीमन्त्र से दूध से शान्ति करावे । कपिला गौ, तिल कांसा और हवन के अन्त में बहुत ही दक्षिणा दे ।

(ब्रह्मचारिमृतौ विचारः)

अथ ब्रह्मचारिमृतौ शौनकः—ब्रह्मचारिमृतौ रीतिं कथयामि समासतः । तत्रावकीर्णदोषस्य प्रायश्चित्तं प्रशान्तये ॥ द्वादशाब्दं षडब्दं वा त्र्यब्दं शक्त्याथवा चरेत् ।

अब ब्रह्मचारी के मरने पर शौनक ने कहा है—ब्रह्मचारी के मरने पर संक्षेप से रीति (रिवाज) को कहता हूँ । वहाँ पर अवकीर्ण (अवकीर्णी तु काणेन गर्दभेन चतुष्पथे । पाकयज्ञविधानेन यजेत निर्ऋतिं निशि ॥ मनु अ० ११।११८) दोष के शान्ति के लिए प्रायश्चित्त द्वादशाब्द, षडब्द या त्र्यब्द यथा शक्ति से करे ।

स्नातको ब्रह्मचारी च निधनं प्राप्नुयाद्यदि ॥ संयोज्य चार्कविधिना संयोज्यौ तौ ततः परम् ।

स्नातक और ब्रह्मचारी यदि मर जाय तो अर्कविधि (मदारविधि) से संयोग कर फिर दोनों का संयोग करे ।

'देशकालौ स्मृत्वा—अमुकगोत्राऽमुकनाम्नो मृतस्य ब्रह्मचारिणो व्रतविसर्गं करिष्ये, इत्युक्त्वा हेम्ना नान्दीश्राद्धं कृत्वाऽग्निं प्रतिष्ठाप्याघारान्ते चतसृभिर्व्याहृतिभिः—'अग्नये व्रतपतये स्वाहा । अग्नये व्रतानुष्ठानसम्पादनाय स्वाहा । विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा—इति तिस्रश्चाज्यं हुत्वा स्विष्टकृदादि समाप्य 'पुनर्देशकालौ स्मृत्वा और्ध्वदेहिकाधिकारार्थमर्कविवाहं करिष्ये, इत्युक्त्वा हेम्ना नान्दीश्राद्धं कृत्वाऽर्कशाखां शवं च हरिद्रया लिप्त्वा पीतसूत्रेण वस्त्रयुग्मेन चावेष्ट्याऽग्निं प्रतिष्ठाप्याघारान्तेऽग्नये स्वाहा । बृहस्पतये स्वाहा । विवाहविधियोजकाय स्वाहा । यस्मै त्वा कामकामाय वयं सम्राड्यजामहे । तमस्मभ्यं कामं दत्वाथेदं त्वं घृतं पिब स्वाहा । कामायेदं० । ततो व्यस्ताभिः समस्ताभिर्व्याहृतिभिश्चाज्यं हुत्वा स्विष्टकृदादि समाप्यार्कशाखां शवं च दहेत् ।

देशकाल का स्मरण कर 'अमुकनामवाले अमुकगोत्रवाले, अमुक नामवाले मरे हुए ब्रह्मचारी का व्रतविसर्जन करता हूँ—ऐसा कहकर सुवर्ण से नान्दीश्राद्ध को कर अग्नि का स्थापन कर आघाराहुति के अन्त में चार व्याहृतियों से और अग्नये व्रतपतये स्वाहा, अग्नये व्रतानुष्ठानसंपादनाय स्वाहा, विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा—इस तीन मन्त्रों से घृत से हवन कर स्विष्टकृद् आदि की आहुति समाप्त कर फिर देशकाल का

उच्चारण कर 'औध्र्वदेहिकाधिकारसिध्यर्थमर्कविवाहं करिष्ये' यों कहकर सुवर्ण से नान्दीश्राद्ध को कर अर्कशाखा और शव (मुर्दे) को हलदी से लेपनकर पीले सूत्र से और वस्त्रयुग्म से लपेटकर अग्नि का स्थापन कर आधार के अन्त में अग्नये स्वाहा और बृहस्पतये स्वाहा, 'यस्मै त्वाकामकामाय वयं सम्राड्य-जामहे। तमस्मभ्यं कामं दत्त्वाथेदं त्वं घृतं पिब स्वाहा' इस मन्त्र से अग्नि में आहुति दे। फिर कामायेदम् कहे। फिर अलग अलग और समस्त व्याहृतियों से घी से हवन कर स्विष्टकृद् आदि आहुतियों को समाप्त कर अर्कशाखा (मदार) और शव का दाह करे।

विधानमालायाम्—येषां कुले ब्रह्मचारी निधनं प्राप्नुयाद्यदि।
तत्कुलं क्षयमाप्नोति सोऽपि दुर्गतिमाप्नुयात्॥

विधानमाला में कहा है—जिनके वंश में यदि ब्रह्मचारी का मरण (मृत्यु) हो जाय तो उस वंश का क्षय होता है और ब्रह्मचारी भी दुर्गति को प्राप्त करता है।

मृतस्य म्रियमाणस्य षडब्दं व्रतमाचरेत्। त्रिंशद्भ्यो ब्रह्मचारिभ्यो दद्यात्कौपीनकान्नवान्॥ हस्तमात्रान्कर्णमात्रान्दद्यात्कृष्णाजिनानि च। पादुकाछत्रमाल्यानि गोपीचन्दनमेव च॥ मणि-प्रवालमालाश्च भूषणादि समर्पयेत्। एवं कृते विधाने च विघ्नः कोऽपि न जायते॥ अत्र मूलं मृग्यम्।

मरे हुए का और मरनेवाले का षडब्दव्रत का आचरण करे। तीस ब्रह्मचारियों को (जो एक बार रात्रि में संयोग करते-मिलते हैं वही ही ब्रह्मचारी हैं। दूसरे कहते हैं साधु गृहस्थ) कौपीन (लंगोटी) अन्न, एक हाथ या कान भर कृष्णाजिन (मृगछाला), खडाऊँ, छाता, पुष्पमाला, गोपीचन्दन, मणि, प्रवालमाला, भूषण (सजावट का सामान) आदि दे। एसा विधान करने पर कोई भी विघ्न नहीं होता है। (अन्त्येष्टि में कहा है—मणिप्रबालमालाश्च ब्रह्मसूत्राणि चार्पयेत्। ब्रह्मसूत्रों को दे।) यहाँ पर मूल विचारणीय है।

(कुष्ठिमरणे विधानकथनम्)

कुष्ठिमृतौ तु यमः—मृतस्य कुष्ठिनो देहं निखनेद् गोष्ठभूमिषु। वासरत्रितयं पश्चादुद्धृत्यान्यत्र तं दहेत्॥ न गङ्गाप्लवनं कार्यं निक्षेपे विधिरुच्यते। षडब्दव्रतपूर्णेन विधिनान्त्यं क्रतुं चरेत्॥

कुष्ठि के मरने पर तो यम ने कहा है—मरे हुए कोढी के शरीर को गोष्ठ (गोशाला) की भूमि में तीन दिन तक गाड दे। तदनन्तर उसे निकालकर अन्यत्र दाह करे। उसे गंगा में न बहावे। निक्षेप (फेंकना) की विधि को कहते हैं। षडब्दव्रत के पूर्ण होने से विधि से अन्त्यकर्म करे।

ततोऽस्थिसञ्चयं तस्य गङ्गायां प्रक्षिपेत्सुधीः। मासिमासि ततः कुर्यान्मासि श्राद्धानि पार्वणान्। इत्येतत्कुष्ठिमरणे कथितं शास्त्रकोविदैः॥

फिर अस्थिसंचय कर उसके अस्थियों को बुद्धिमान् गंगा में फेंक दे। तदनन्तर महिने महिने में पार्वण श्राद्धों को करे। यही विधि कुष्ठी के मरने पर शास्त्रों के जानकारों ने कही है।

(कुष्ठिभेदादिकथनम्)

शुद्धितत्त्वे भविष्ये—शृणु कुष्ठगणं विप्र उत्तरोत्तरतो गुरुम्। विचर्चिका तु दुश्चर्मा चर्चरीय-स्तृतीयकः॥ विकर्चूर्व्रणताम्रौ च कृष्णश्वेते तथाष्टकम्॥ इत्युक्त्वा—

शुद्धितत्त्व में भविष्यपुराण का वचन है—हे विप्र, उत्तरोत्तर कुष्ठी के समूहों[1] को सुनो—विचर्चिका (एक्जिमा), दुश्चर्मा (खराब चर्म), चर्चरीय, विकर्चू, व्रण (घाव), ताम्र (तांबे के रङ्ग का), कृष्ण (शरीर में कालापन होना) और श्वेत (सफेद रङ्ग) ये आठ कुष्ठियों को कह कर कहा है—

१—कुष्ठ के अठारह प्रकार होते हैं। उसमें सात प्रकार के महाकुष्ठ और ग्यारह प्रकार के क्षुद्र कुष्ठ होते हैं। कापाल, उदुम्बर, मण्डल, सिध्म, काकणक, पुण्डरीक और ऋक्ष जिह्वानामक। ताम्रकुष्ठ, गजचर्म, चर्मदल, विचर्चिका, विपादिका, पामा, कच्छु, दद्रु, विस्फोट, किमिट तथा अलस ये ग्यारह क्षुद्र कुष्ठ होते हैं। ये सब त्रिदोष से उत्पन्न होते हैं। इन पर विशेष हिन्दीविश्वकोष में देखिये।

मृते च प्रापयेत्तीर्थमथवा तरुमूलकम् । न पिण्डं नोदकं कार्यं न च दानक्रियां चरेत् ॥ षण्मासी यस्त्रिमासीयो मृतः कुष्ठी कदाचन ॥ यदि स्नेहाच्चरेद्दाहं यतिश्चान्द्रायणं चरेत् ॥ अकृतप्रायश्चित्त-कुष्ठयादिदाहे इदं प्रायश्चित्तम् । अत एव कुनख्यादिवत्कुष्ठिनोऽपि द्वादशरात्रं शूलपाणिनोक्तम् ।

मरने पर तो तीर्थ में या वृक्ष की जड़ में पहुँचा दे । उसके लिए पिण्डदान, उदकदान और दानक्रिया (देने का काम दानमेव कर्म) न करे । कभी छः महीने या तीन महीने का कोढी मरे तो यदि स्नेह से दाह को करता है तो [1]यतिचान्द्रायण करे । जिसका प्रायश्चित्त नहीं हुआ है एसे कुष्ठी आदि के दाह में यही प्रायश्चित्त है । इसलिए कुनखी (खराब नाखूनवाला) आदि के सदृश कुष्ठी का भी द्वादशरात्र का प्रायश्चित्त[2] शूलपाणि ने कहा है ।

अत एवान्यदीयकुष्ठिनो मरणान्तमाशौचमुक्तं कौर्मे—क्रियाहीनस्य मूर्खस्य महारोगिण एव च ।
यथेष्टाचरणस्याहुर्मरणान्तमशौचकम् ॥

इसलिए अन्य कुष्ठी का मरणान्त आशौच कूर्मपुराण में कहा है—क्रियाहीन, मूर्ख, महारोगी और अपनी इच्छा के अनुसार आचरण करने वाले का मरणान्त आशौच होता है ।

(अष्टौ महारोगाः)

महारोगास्तु—वातव्याध्यश्मरीकुष्ठमेहोदरभगन्दराः ।
अर्शांसि ग्रहणीत्यष्टौ महारोगाः प्रकीर्तिताः ॥ इति ।

महारोग कहे हैं—वातव्याधि, अश्मरी (पथरी), कुष्ठ, मेह-(प्रमेह), उदररोग, भगन्दर, अर्श (बवासीर) और ग्रहणी ये आठ महारोग कहे गये हैं ।

(रजस्वलामरणे विचारः)

रजस्वलायास्तु शातातपः—रजस्वलायाः प्रेतायाः संस्कारादीनि नाचरेत् । ऊर्ध्वं त्रिरात्रात्स्नातां तां शवधर्मेण दाहयेत् ॥ अतः प्रक्षाल्य काष्ठवत् त्र्यहोर्ध्वं दहेत् ।

रजस्वला में शातातप ने कहा है—रजस्वला प्रेत का संस्कार आदि न करे । तीन रात के बाद उसको स्नान कराकर शवधर्म से दाह करे । इसलिए काष्ठ की तरह प्रक्षालन कर तीनदिन के बाद दग्ध करे ।

सङ्कटे तु मदनरत्ने स्मृत्यन्तरे—उदक्या सूतिका वापि मृता स्याद्यदि तां तदा । आशौचे तु अतिक्रान्ते दाहयेदन्तरा यदि ॥ उद्धृतेन तु तोयेन स्नापयित्वा तु मन्त्रतः । आपो हि ष्ठेति तिसृभिर्हिरण्यवर्णाश्चतसृभिः ॥ पवमानानुवाकेन यदन्तीति च सप्तभिः । ततो यज्ञपवित्रेण गोमूत्रेणाथ ते द्विजाः । स्नापयित्वाऽन्यवसनेनाच्छाद्य शवधर्मतः । दाहादिकं ततः कुर्यात्प्रजापतिवचो यथा ॥ यज्ञपवित्रमापो अस्मानिति ।

संकटमें तो मदनरत्नमें स्मृत्यन्तर का वचन है-रजस्वला या सूतिका यदि मर जाय तो उसको आशौच के व्यतीत होनेपर दाह करे । यदि आशौचके मध्य में करना हो तो निकाले हुए जलमें मन्त्र से स्नान कराकर 'आपो हि[3] ष्ठा'—इन तीन मन्त्रोंसे, 'हिरण्यवर्णा'-इन पूर्वोक्त चारमन्त्रोंसे, पवमान इस पूर्वोक्त अनुवाकसे,

---

१—अष्टावष्टौ समश्नीयात् पिण्डान् मध्यन्दिने स्थितः । नियतात्मा हविष्याशी यतिचान्द्रायणं स्मृतम् ॥ मासमिति शेषः । एतच्च प्राजापत्यचतुष्टयसममिति बृहद्विष्णुः ।

२—धर्मप्रबोधिन्याम्—मृतस्य कुष्ठिनो देहं तीर्थे वा भुवि वा क्षिपेत् । न दाहं नोदकं पिण्डं न च दानक्रियां चरेत् ॥ शक्त्यानुसारेण षडब्दापि प्रायश्चित्तं कृत्वा कुष्ठादिमहारोगमृतस्य दाहादि कुर्यान्नान्यथेति ।

३—आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥ यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥ तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः (ऋ० १०।९।१-३) ।

'यदन्ती'[1] इस सात मन्त्रों से फिर 'यज्ञपवित्रम्'[2]—(आपो अस्मान्) और गोमूत्र से वे ब्राह्मण स्नान कराकर दूसरे वस्त्र से आच्छादन कर शवधर्म से प्रजापति के वचनानुसार दाह आदि करे।

मिताक्षरायाम्—पञ्चभिः स्नापयित्वा तु गव्यैः तु प्रेतां रजस्वलाम्।
वस्त्रान्तरावृतां कृत्वा दाहयेद्विधिपूर्वकम् ॥

मिताक्षरा में कहा है—रजस्वला प्रेत को पञ्चगव्यों से स्नान करा कर दूसरे वस्त्र से ढक कर विधि पूर्वक दाह करे।

(अन्तरिक्षादौ मरणे प्रायश्चित्तकथनम्)

गृह्यकारिकायाम्—अन्तरिक्षमृता ये च वह्नावप्सु प्रमादतः।
उदक्या सूतिका नारी चरेच्चान्द्रायणत्रयम् ॥

गृह्यकारिका में कहा है—जो अन्तरिक्ष में मरे हों, जो अग्नि और जल में मरे हों, रजस्वला और सूतिका स्त्री मरी हो तो तीन चान्द्रायण करे।

ततो यवपिष्टेनालिप्याष्टोत्तरशतशूर्पोदकः संस्नाप्य भस्मगोमयमृत्कुशोदकपञ्चगव्यशुद्धोदकैरापो हि ष्ठा पावमानीभिः संस्नाप्यान्यवस्त्रे धृते दहेदिति भट्टाः।

तदनन्तर यव के पिसान से लेपन कर (स्वयं स्नान करे-यह शेष है।) एक सौ आठ वार [3]शूप के जल से स्नान करा कर (प्रेत का प्रक्षालन कर) भस्म, (भस्म से स्नान कर), गोबर, मट्टी, कुशोदक, पञ्चगव्य, शुद्धोदक से—'आपो हि ष्ठा और [4]पावमानीऋचाओं से स्नान करा कर अन्य वस्त्र पहनाकर दहन करे—यह भट्ट कहते हैं।

अत्र प्रायश्चित्तमाह बौधायनः—उदक्यासूतिकामृत्यौ चरेच्चान्द्रायणत्रयम्। इति।

यहाँ पर प्रायश्चित्त बौधायन ने कहा है—रजस्वला और सूतिका के मरने पर तीन चान्द्रायण करे।

(सूतिकामरणे विधिः)

सूतिकायास्तु मिताक्षरायाम्—सूतिकायां मृतायां तु कथं कुर्वन्ति याज्ञिकाः। कुम्भे सलिलमादाय पञ्चगव्यं क्षिपेत्ततः ॥ पुण्यर्गिभरभिमन्त्र्यापो वाचा शुद्धिं लभेत्ततः। तेनैव स्नापयित्वा तु दाहं कुर्याद्यथाविधि ॥

सूतिका के लिए तो मिताक्षरा में कहा है—सूतिका के मरने पर याज्ञिक कैसे करे। घड़े में जल लेकर फिर पञ्चगव्य का प्रक्षेप करे। फिर पुण्यजनक मन्त्रों से जल को अभिमन्त्रण कर वाणी से शुद्धि को प्राप्त करे। उसी जल से ही स्नान कराकर विधि-पूर्वक दाह करे।

१—यदन्ति यच्च दूरके भयं विन्दति मामिह। पवमान वि तज्जहि ॥ पवमानः सो अद्य नः पवित्रेण विचर्षणिः। यः पोता स पुनातु नः ॥ यत्ते पवित्रमर्चिष्यग्ने विततमन्तरा। ब्रह्म तेन पुनीहि नः ॥ यत्ते पवित्रमर्चिवदग्ने तेन पुनीहि नः। ब्रह्मसवैः पुनीहि नः। उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च। मां पुनीहि विश्वतः ॥ त्रिभिष्ट्वं देव सवितर्वर्षिष्ठैः सोम धामभिः। अग्ने दक्षैः पुनीहि नः ॥ पुनन्तु मां देवजनाः पुनन्तु वसवो धिया। विश्वे देवाः पुनीत मा जातवेदः पुनीहि मा ॥ प्र प्यायस्व प्र स्यन्दस्व सोम विश्वेभिरंशुभिः। देवेभ्य उत्तमं हविः ॥ उप प्रियं पनिप्नतं युवानमाहुतिवृधम्। अगन्म बिभ्रतो नमः ॥ अलाय्यस्य परशुर्ननाश तमा पवस्व देव सोम। आखुं चिदेव देव सोम ॥ यः पावनीरध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम्। सर्वं सपूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना ॥ पावमानीर्यो अध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम्। तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् ॥ (ऋ० ९।६७ २१-३२)।

२—आपो अस्मान् मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु। विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि ॥ (ऋ० १०।१७।१०)।

३—अमुकगोत्राया रजस्वलावस्थामरणनिमित्तप्रत्यवायपरिहारार्थमौर्ध्वदेहिकयोग्यत्वार्थं चान्द्रायणत्रयं प्रायश्चित्तपूर्वकं शूर्पेणाष्टोत्तर-शतस्नानार्थमौर्ध्वदेहिकयोग्यत्वार्थं च चान्द्रायणत्रयप्रायश्चित्तपूर्वकं शूर्पेणाष्टोत्तरशतस्नानानि कारयिष्ये। इति धर्मसिन्धौ।

४—धर्मप्रबोधिन्याम् तु-'यदन्ति यच्च दूरके' इत्यादि, पावमानीः स्वस्त्ययनीः, आपो हि ष्ठेतितृचेन, कया न इत्यादिभिश्च संस्नाप्य।

अब्लिङ्गाभिमन्त्रिताभिर्वामदेव्याभिरेव च। अन्यैश्च वारुणैर्मन्त्रैः संस्नाप्य विधिना दहेत् ॥

प्रेत रजस्वला का पञ्चगव्यों से स्नान कराकर दूसरे वस्त्र से ढककर विधिपूर्वक दाह करे। अब्लिङ्ग[1] मन्त्रों (आपो हि ष्ठा) से मन्त्रित कर और वामदेव्यादि (पूर्वोक्त) मन्त्रों से अन्य वारुणसंज्ञक (पूर्वोक्त) मन्त्रों से स्नान कराकर विधि से दाह करे।

गृह्यकारिकायाम्—सूतिकामरणे प्राप्ते सर्वौषध्यनुलेपनम्।
अस्तूतकी तु संस्पृष्टः शूर्पाणां तु शतं क्षिपेत् ॥

गृह्यकारिका में कहा है—सूतिका का मरण समय प्राप्त होने पर सर्वौषधी से लेपन करे। जिसको सूतक नहीं है वह स्पर्श करे तो सौ सूप का प्रक्षेप करे।

प्रायश्चित्ते विशेषस्तत्रैव—सूतिका तु यदा साध्वी विस्नाता मरणं गता। त्रिवर्षपूर्णपर्यन्तं शुध्येत्कृच्छ्रेण सर्वदा ॥ इदं चाद्यत्र्यहे।

प्रायश्चित्त में विशेष वहीं पर कहा है—यदि सूतिका साध्वी स्त्री बिना स्नान के मर गयी हो तो तीन साल पर्यन्त कृच्छ्र से सदा शुद्ध होती है। यह आदि से तीन दिन में मरने पर है।

सूतिका तु यदा नारी रजसा तु परिप्लुता। म्रियते चेत्तु सा नारी द्विवर्षं कृच्छ्रमाचरेत् ॥ इदं द्वितीयत्र्यहे।

यदि सूतिका स्त्री रजोधर्म से युक्त होकर मर जाय तो दो वर्षवाले कृच्छ्र से शुद्ध होती है। यह दूसरे तीन दिन में है।

सूतिका तु यदा साध्वी विस्नाता मरणं गता। अब्दं कृच्छ्रेण शुध्येत व्यासस्य वचनं यथा। इदं तृतीयत्र्यहे।

सूतिका साध्वी स्त्री बिना स्नानके मर जाय तो अब्दकृच्छ्रसे शुद्ध होती है—यह व्यास का वचन है।

अत्राशक्तौ पक्षान्तरमुक्तं तत्रैव—सूतिका तु यदा नारी विस्नाता मरणं गता।
त्रिषण्णवदिनादर्वागेकाब्देन विशुद्ध्यति ॥

यहाँ पर अशक्ति में पक्षान्तर वहाँ पर ही कहा है—यदि साध्वी सूतिका स्त्री बिना स्नान के तीन, छ और नौ दिन के पूर्व मर गयी हो तो एक कृच्छ्र से शुद्ध होती है। (अन्य कहते हैं—'एककृच्छ्रेण' ऐसा पढकर दशदिन के बाद एक कृच्छ्र करे। सूतिका तु यदा नारी प्राणांश्चैव परित्यजेत्। मासमेकावधिर्यावत्त्रिभिः कृच्छ्रैर्व्यपोहति ॥ यह वचन दशाह के बाद है और सब प्रायश्चित्त प्रत्याम्नाय द्वारा सूतक से अन्त में करे।)

ऊर्ध्वं तु—सूतिका तु यदा नारी प्राणांश्चैव परित्यजेत्।
मासमेकावधिं यावत्त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुद्ध्यति ॥

बाद में तो—जब सूतिका स्त्री प्राणों का परित्याग करती है तो एकमहिने की अवधि तक तीन कृच्छ्रों से शुद्ध होती है।

(गर्भिणीमरणे विचारः)

गर्भिणीमृतौ तु मदनरत्ने शौनकः—गर्भिण्युदक्यासंस्कारं शिशुसंस्कारमेव च।
प्रवक्ष्यामि समासेन शौनकोऽहं द्विजन्मनाम् ॥

गर्भिणी के मरने पर तो मदनरत्न में शौनक ने कहा है—गर्भिणी, रजस्वला और शिशु के संस्कार में ही संक्षेप से द्विजन्मों का मैं शौनक कहता हूँ।

गर्भिणीमरणे प्राप्ते गोमूत्रेण जलैः सह। आपो हि ष्ठादिभिर्मन्त्रैः प्रोक्ष्य भर्ता समास्थितः ॥ प्रेतं श्मशाने नीत्वाऽथोल्लिख्य सव्योदरं ततः। पुत्रमादाय जीवंश्चेत्स्तनं दत्त्वा सुताय तु ॥ यस्ते

---

[1]—अब्लिङ्गानि—'आपो हि ष्ठा (ऋ० १०।९।१-३) इत्येवमादीनि त्रीणि मन्त्रवाक्यानि पठेत्।

स्तनः शशय इत्यृचा ग्रामे निधाय च । उदरं चाव्रणं कुर्यात्पृषदाज्येन पूर्य च ॥ मृद्भस्मकुशगोमूत्रै-रापो हि ष्ठादिभिस्त्रिभिः । स्नाप्य चाच्छाद्य वासोभिः शवधर्मेण दाहयेत् ॥

गर्भिणी के मरणावस्था प्राप्त होने पर जल के साथ गोमूत्र से 'आपो हि[1] ष्ठा' इत्यादि मन्त्रों से प्रोक्षण कर पति सावधानी से प्रेत को श्मशान में ले जाकर वायीं कुक्षी के उदर का भेदन करे और पुत्र को ग्रहण करे। यदि जीवित हो तो 'यस्ते स्तनः[2] शशयो' इस ऋचा से गांव में रखकर उदर को अव्रणी करे तथा पृषदाज्य (दधिमिश्रितमाज्यं पृषदाज्यमुच्यते—सरलावृत्ति कात्यायन पृ० १८ परिभाषायाम्) से पूर्णकर मट्टी, भस्म, कुशा और गोमूत्र से 'आपो हि ष्ठा' इन तीन ऋचाओं से स्नान कराकर तथा वस्त्रों से आच्छादन (ढककर) शवधर्म से दाह करे।

तत्रैव षडशीतिमते गद्यानि—गर्भिण्यां मृतायां दक्षिणशिरसं निधाय तस्या नाभिरन्ध्रात्सव्य-मुदरं चतुरङ्गुलं 'हिरण्यगर्भः समवर्तत' इति छित्त्वा गर्भश्चेदप्राणस्तं प्रक्षाल्य निखनेत्स यदि 'जीव त्वं मम पुत्रक' इत्युक्त्वा 'क्षेत्रिये त्वा' इति पञ्चभिः स्नापयित्वा हिरण्यमन्तर्धाय भूमौ निधाय व्याहृतिभिरभिमन्त्र्य 'यस्ते स्तनः शशय' इति स्तनं पाययित्वा शिशुं ग्रामं प्रापयेत्। गर्भच्छेदस्थले 'शतायुधाय' इति पञ्चाहुतीर्हुत्वा 'प्राणाय स्वाहा' 'पूष्णे स्वाहा' इत्यनुवाकाभ्यां व्याहृत्या च वाऽऽज्यं हुत्वा भिन्नमुदरं सूत्रेण संग्रथ्य घृते नानुलिप्य ब्राह्मणाय तिलान् गां भूमिं सुवर्णं दद्यादथ यथो-क्तेन कल्पेन दहेत् ।

वहीं पर षडशीतिमत से गद्य कहे हैं—गर्भिणी के मरने पर दक्षिण शिर को रख उसके नाभी छिद्र से बायें भाग में चार अंगुल पर 'हिरण्यगर्भः[3] समवर्तत' इस मन्त्र से छेदन कर गर्भ में प्राण न हो तो उसको प्रक्षालन कर गाड़ दे। यदि वह 'जीव त्वं मम पुत्रक' हे जीव–'तुम मेरे पुत्र हो' ऐसा कहकर क्षेत्रिये[4] त्वा, इन पांच ऋचाओं से स्नान कराकर सुवर्ण को बीच में रख भूमि में रखे व्याहृतियों से अभिमन्त्रण कर 'यस्ते स्तनः[5] शशय' इससे स्तनपान कराकर शिशु को गांव में पहुँचा दे। गर्भच्छेदन स्थल में 'शतायुधाय'[6] इस मन्त्र से पांच आहुतीयों का हवन कर प्राणाय स्वाहा और पूष्णे स्वाहा, इन अनुवाकों से और

१—आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे। यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयते ह नः। उशतीरिव मातरः ॥ तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः ॥ (ऋ० १०।९।१-३)।

२—यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि। यो रत्नधा वसुविद् यः सुदत्रः सरस्वति तमिह धातवे कः ॥ (ऋ० १।१६४।४९)।

३—हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ (ऋ० १०।१२१।१, अथर्व० ४।२।७। यजु० १३।४।,२३।१।,२५।१०।, तै० सं० ४।१।८।३।३।२।८।२। ता० ब्रा० ९।९।१२। नि० १०।२३।)

४—क्षेत्रियै त्वा निर्ऋत्यै त्वा द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात्। अनाशसं ब्रह्मणे त्वा करोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे इमे ॥ शं ते अग्निः सहाद्भिरस्तु शं द्यावापृथिवी सहौषधीभिः। शमन्तरिक्षꣳ सह वातेन ते। शं ते चतस्रः प्रदिशो भवन्तु ॥ या दैवीश्चतस्रः प्रदिशः वात पत्नीरभिसूर्यो विचष्टे। तासां त्वा जरस आदधामि प्र यक्ष्म एतु निर्ऋतिं परा चैः ॥ अमोचि यक्ष्माद् दुरितादवर्त्यै। द्रुहः पाशां निर्ऋत्यै चोदमिचि। अहा अवर्तिमविदस्योनम्। अप्यभूद्भद्रे सुकृतस्य लोके ॥ सूर्यमृतं तमसो ग्राह्या यत्। देवा अमुञ्चन्नसृजन्व्येनसः। एवमहमिमं क्षेत्रियाज्जामि शꣳसात्। द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात् ॥ (तै० ब्रा० २।५।३-७)।

५—यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि। यो रत्नधा वसुविद् यः सुदत्रः सरस्वति मिह धातवे कः ॥ (ऋ० १।१६४।४९)।

६—शतायुधाय शतवीर्याय शतोतयेऽभि मातिषाहे। शतं यो नः शरदो अजीतानिन्द्रो नेषदति दुरितानि विश्वा ॥ (तै० सं० ५।७।२।७)।

व्याहृतियों से घी से हवन कर भेदन हुए उदर को सूत्र से ग्रन्थिबन्धन कर घृत से अनुलेपन कर ब्राह्मण के लिए तिल, गौ, भूमि तथा सुवर्ण को दे। फिर कहे कल्प (विधि) से दाह करे।

बौधायनेन तु 'शतायुधाय'इति पञ्चहोमानन्तरं प्रयासाय यासाय वियासाय संयासायोद्यासाय शुचे शोकाय तप्यते तपत्यै ब्रह्महत्यायै सर्वस्मै इति स्वाहान्तैराहुतयोऽप्यधिका उक्ताः।

बौधायन ने तो कहा है—'शतायुधाय' इस मन्त्र से पांच बार हवन के बाद प्रयासाय स्वाहा, यासाय स्वाहा, वियासाय स्वाहा। संयासाय स्वाहा, उद्यासाय स्वाहा, शुचे स्वाहा, शोकाय स्वाहा, तप्यते स्वाहा, तपत्यै स्वाहा। ब्रह्महत्यायै स्वाहा और सर्वस्मै स्वाहा, इन स्वाहान्त मन्त्रों से आहुति अधिक कही है।

गृह्यकारिकायाम्—यदा गर्भवती नारी सशल्या संस्थिता भवेत्। कुक्षिं भित्त्वा ततः शल्यं निर्हरेद्यदि जीवति ॥ प्रमीतं निखनेत्तं तु प्रायश्चित्तमतः परम्। सा त्रयस्त्रिंशता कृच्छ्रैः शुद्ध्यते शल्यदोषतः ॥

गृह्यकारिका में कहा है—गर्भवती स्त्री शल्य-पीडा के सहित मर जाय तो कुक्षि (जठर, पेट, कोख) को भेदन करे तो पुत्र जीवित हो तो गर्भ को निकाल ले। यदि मर गया हो तो जमीन में गाड दे तदनन्तर प्रायश्चित्त करे। वह शल्य के दोष से तेतीस कृच्छ्र को करने से शुद्ध होती है।

(सगर्भदहने प्रायश्चित्तकथनम्)

सगर्भदहने तस्या वर्णजं वधपातकम्। प्रायश्चित्तं चरित्वा तु शुद्ध्यन्ति पापकारिणः ॥ दग्ध्वा तु गर्भसंयुक्तां त्रिरब्दं कृच्छ्रमाचरेत् ॥

गर्भ के सहित उसका दाह करने पर वर्ण के वधका पातक होता है। पाप करने वाले प्रायश्चित्तको कर शुद्ध होते हैं। गर्भ से युक्त स्त्री का दाह करने पर त्रिरब्दकृच्छ्र को करे।

(अन्वारोहणे प्रयोगकथनम्)

अथान्वारोहणं स्त्रीणामात्मनो भर्तुरेव च। सर्वपापक्षयकरं निरयोत्तारणाय च। अनेकस्वर्गफलदं मुक्तिदं च तथैव च। जन्मान्तरे च सौभाग्यधनपुत्रादिवृद्धिदम् ॥

अब स्त्रियों का अन्वारोहण कहते हैं। जो अपना और पति के ही सब पापों का शमन करने वाला तथा नरक से पार करने वाला है। अनेकतरह के स्वर्ग का फल देने वाला वैसे ही मुक्तिको देने वाला है और जन्मान्तर में सौभाग्य, धन, पुत्र आदिकी वृद्धि करने वाला है।

देशकालौ [1]स्मृत्वाऽरुन्धतीसमाचारत्वस्वर्गलोकमहीयमानत्व-मनुष्यलोकसमसंख्याब्दावच्छिन्न-स्वर्गवास-भर्तृसहितचतुर्दशेन्द्रावच्छिन्नकालिकक्रीडमानत्वमातृपितृश्वशुरकुलत्रयपूतत्व-ब्रह्मघ्नमित्रघ्नकृतघ्नपतिपूतत्व-पत्यवियोग-कामा भर्तृज्वलच्चितारोहणं करिष्ये। अनुगमने तु फलमुल्लिख्या-न्वारोहणं करिष्ये—इत्युक्त्वा हरिद्राकुङ्कुमाञ्जनादियुतशूर्पाणि सुवासिनीभ्यो दद्यात्।

देशकाल का उच्चारणकर "अरुन्धतीसमाचारत्वस्वर्गलोक (भर्त्रा स्वरोमसमिताब्दानां सहस्त्रं स्वर्गमाचरेत्) महीयमानत्वमनुष्यलोमसमसंख्याब्द-इत्यादि निर्णयसिन्धु में कहे हुए संकल्प को—जलचितारोहणं (स्वर्गगमनम्) करिष्ये—पढे। अनुगमन में तो [2]फल का उल्लेख कर अन्त में—'अन्वारोहणं करिष्ये' एसा कहकर-हरिद्रा (हलदी), कुंकुम (केशर) अञ्जन आदि के सहित शूर्पोंको सुवासिनीयों के लिये दे।

१—देशकालौ स्मृत्वा—मातृपितृश्वसुरादिकुलपूतत्वब्रह्महत्यादिदोषदूषितपतिपूतत्वपत्यवियोगारुन्धतीसमाचारत्व-सार्धकोटित्रयसहस्रसम्वत्सरस्वर्गमहीयमानत्वादिपुराणोक्तामेकफलप्राप्तये श्रीलक्ष्मीनारायणप्रीतिद्वारा विमुक्तिफलप्राप्तये वा पतिचितान्वारोहणं करिष्ये—इति धर्मसिन्धौ।

२—शुद्धिमयूखे—आत्मनो भर्तुश्चानेकजन्मोपाचसर्वपापक्षयपूर्वकस्वरोममिताब्दसहस्त्रावधिभर्तृसाहित्येन स्वर्गवासमातृपितृकुलोद्धारकामाभर्त्रनुगमनं करिष्य इति संकल्प्य-देवैः संपादितो मह्यं पतित्वे सार्वदैवतः। त्वया सह गमिष्यामि भर्ता त्वं चान्यजन्मनि ॥ इत्युक्त्वा स्नात्वा कुसुमकुङ्कुममादिना स्वशरीरमलङ्कृत्य पुत्रादिभ्यो बन्धुभ्यश्चाशिषो दत्वा-चितिस्थो

मन्त्रस्तु—लक्ष्मीनारायणो देवो बलसत्त्वगुणाश्रयः। गाढं सत्त्वं च मे देयाद्वायनैः परितोषितः॥

मन्त्र यों है—बल, सत्त्व और गुणों के आश्रय (सहारा देने वाले) लक्ष्मीनारायण देव वायनों (उपहारों) से प्रसन्न होकर मुझको महान् सत्त्व दें।

सोपस्कराणि शूर्पाणि वायनैः संयुतानि च। लक्ष्मीनारायणप्रीत्यै सत्त्वकामा ददाम्यहम्॥

उपस्करों (सामग्री) से युक्त शूर्पों को और वायनों से संयुक्त लक्ष्मीनारायण की प्रीति के लिये सत्त्व-कामना वाली मैं देती हूँ। (कहीं पर 'वायनैः संयुतानि च' की जगह बाणकैः—संयुतानि च—यह पाठ है)।

अग्नेः समीपमागत्य पञ्चरत्नानि पल्लवे। नीलाञ्जनं तथा बध्वा मुखे मुक्ताफलं न्यसेत्॥

अग्नि के समीप में आकर पञ्चरत्न और नीलाञ्जन (सुरमा) को वस्त्र के किनारे में बाधकर मुख में मोती रखे।

ततोऽग्निं प्रार्थनं कृत्वा मन्त्रेणानेन निश्चितम्। स्वाहासंश्लेषनिर्विण्ण सर्वगात्र हुताशन॥
सत्त्वमार्गप्रदानेन नय मां पत्युरन्तिकम्।

तदनन्तर इस मन्त्र से प्रार्थना करे—हे हुताशन, तुम स्वाहा हो और उसके संयोग से निर्विण्ण (विरक्त) हो तथा सब तुम्हारा गात्र है। सत्वमार्ग के देने से मुझे पति के समीप में ले चलो।

ततोऽग्नावाज्येन अग्नये तेजोधिपतये स्वाहा, विष्णवे सत्त्वाधिपतये स्वाहा, कालाय धर्माधिपतये स्वाहा, पृथिव्यै लोकाधिष्ठात्र्यै स्वाहा, अद्भ्यो रसाधिष्ठात्रीभ्यः स्वाहा, वायवे बलाधिपतये स्वाहा, आकाशाय सर्वाधिपतये स्वाहा, कालाय धर्माधिष्ठात्रे स्वाहा, अद्भ्यः सर्वसाक्षिणीभ्यः स्वाहा, ब्रह्मणे वेदाधिपतये स्वाहा, रुद्राय श्मशानाधिपतये स्वाहा, इति हुत्वाग्निं प्रदक्षिणीकृत्य दृषदुपलां च सम्पूज्य पुष्पाञ्जलिं गृहीत्वाग्निं प्रार्थयेत्—

फिर अग्निमें घृत से—अग्नये तेजोऽधिपतये स्वाहा, विष्णवे सत्त्वाधिपतये[1] स्वाहा,[2] कालाय धर्माधिपतये स्वाहा, पृथिव्यै लोकाधिष्ठात्र्यै स्वाहा, अद्भ्यो रसाधिष्ठात्रीभ्यः स्वाहा, वायवे बलाधिपतये स्वाहा, आकाशाय सर्वाधिपतये स्वाहा, कालाय धर्माधिष्ठात्रे स्वाहा, अद्भ्यः सर्वसाक्षिणीभ्यः स्वाहा, ब्रह्मणे वेदाधिपतये स्वाहा और रुद्राय श्मशानाधिपतये स्वाहा—इन मन्त्रों से हवन कर अग्नि की प्रदक्षिणाकर शिल और लोढीका अर्चनकर पुष्पाञ्जलिको ग्रहण कर अग्नि[3] की प्रार्थना करे—

त्वमग्ने सर्वभूतानामन्तश्चरसि साक्षिवत्। त्वमेव देव जानीषे न विदुर्यानि मानुषाः॥

हे अग्ने आप सब प्राणियों के मध्य में साक्षी के सदृश रहते हो! हे देव, आप ही जिन बातों को मनुष्य नहीं जानते हैं उन बातों को आप जानते हैं।

अनुगच्छामि भर्तारं वैधव्यभयपीडिता। सत्त्वमार्गप्रदानेन नय मां भर्तुरन्तिकम्॥ मन्त्रमुच्चार्य शनकैः प्रविशेच्च हुताशनम्। गौडास्तु—'इमा नारीरविधवाः' इति,

---

भगवानग्निर्विष्णुरूपी सनातनः। पतिलोकसमावाप्त्यै गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥ इति विष्णुरूपिणेऽग्नयेऽर्घ्यं दत्वा-एष चार्घ्यो मया दत्तः सूर्यसाक्षिंस्त्वदग्रतः। प्रसादं कुरु मे देव गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥ इति सूर्याय च दत्वा—त्वं ब्रह्मा त्वं च वै रुद्रस्त्वं रविस्त्वं प्रजापतिः। त्वमिन्द्रो वसवश्चाष्टौ परमात्मा त्वमेव हि॥ त्वमेव शरणं विष्णो शरणं त्वं पतिर्मम। स्वर्गे वा नरके वापि यत्र यत्र गमिष्यसि॥ तत्र तत्र अयं पृष्ठे गमिष्यामि तवाशु वै। ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मोक्ष्यामि यमालयात्॥ अहं ब्रह्मा ह्यहं विष्णुरहं सूर्यश्च दिक्पतिः। आदित्यचन्द्रावनिलोऽनलोश्च द्यौर्भूमिरापोथ अहर्निशा च॥ एते च सर्वे मम साहसेन तुष्यन्तु ते देववराश्च सर्वे॥ इति पठित्वा हरिद्राकुङ्कुमाञ्जनकं कञ्चुक्यादियुतानि पञ्चशूर्पाणि सुवासिनीभ्यो-दद्यात्।

१—शुद्धिमयूखकारमत से ये मन्त्र नहीं हैं।

२—शुद्धमयूखने विष्णवे सत्त्वाधिपतये स्वाहा—को नहीं लिखा है।

३—अग्नि की तीन प्रदक्षिणा करे—ऐसा शुद्धिमयूख में है।

विधवापन के भय से दुःखी मैं पति के पीछे जाती हूँ। आप सात्त्विकवाले रास्ते से मुझको पति के समीप में ले चलिये। इस आशय से मन्त्र का उच्चारण कर धीरे से अग्नि में प्रवेश करे। गौड़ तो—'इमा नारीरविधवाः'[1] इन मन्त्रों से कहते हैं।

ॐइमाः पतिव्रताः पुण्याः स्त्रियोऽपापाः सुशोभनाः। सह भर्तुः शरीरेण संविशन्तु विभावसुम्॥ इति विप्रः पठेदित्याहुः।

ये पतिव्रता स्त्री पुण्य और पाप से रहित तथा सुशोभित हैं इनको पति के शरीर के सहित अग्नि में प्रवेश करो। यह ब्राह्मण पढ़े—यह कहते हैं।

कातरां तु—प्रेतोत्तरे सुप्तां देवरः शिष्यो वा उदीर्ष्वेति द्वाभ्यामुत्थापयेत्। एतन्महिमा मिताक्षरादौ ज्ञेयः।

कातरा (भय मानने वाली) को तो—प्रेत के उत्तर शयन करने वाली को देवर या शिष्य 'उदीर्ष्व'[2] इन दो मन्त्रों से उठाले। इसकी महिमा मिताक्षरा आदि में जानना चाहिये।

(सहगमनमहिमाकथनम्)

पृथ्वीचन्द्रोदये स्कान्दे—अनुव्रजन्ती भर्तारं गृहात्पितृवनं मुदा।
पदे पदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम्॥

पृथ्वीचन्द्रोदय में स्कन्दपुराण का वचन है—जो स्त्री प्रसन्न होकर घर से पितृवन (मरघट) में (मृत) पति के पीछे जाती है वह पद पद (एक एक कदम) पर उत्तमोत्तम अश्वमेधयज्ञ के फल को प्राप्त करती है (मृते भर्तरि या नारी धर्मशीला दृढव्रता। अनुगच्छति या नारी शृणु तस्यास्तु तत्फलम्॥ तिस्त्रः कोट्योऽर्धकोटी च यावन्त्यङ्गरुहाणि वै। तावन्त्यब्दसहस्त्राणि स्वर्गलोके महीयते॥ मातृकं पैतृकं चैव यत्र कन्या प्रदीयते। कुलत्रयं पुनात्येषाभर्तारं याऽनुगच्छति॥ व्यासः—यदि प्रविष्टोनरकं बद्धः पाशैः सुदारुणैः। संप्राप्तो यातनास्थानं गृहीतो यमकिङ्करैः॥ तिष्ठते विवशो दीनश्चेष्टमानः स्वकर्मभिः। व्यालग्राही यथा व्यालं बिलादुद्धरते बलात्॥ तद्वद्धृत्य ता नारी तेनैव सह मोदते॥)

यत्त्वङ्गिराः—या स्त्री ब्राह्मणजातीया मृतं पतिमनुव्रजेत्।
सा स्वर्गमात्मघातेन नात्मानं न पतिं नयेत्॥ इति।

जो अंगिरा ने कहा है—जो स्त्री ब्राह्मण जाति की स्त्री मरे हुए पति के पीछे जाती है। वह आत्महत्या के दोष से न अपनी आत्मा को और न पति को स्वर्ग में ले जाती है।

(ब्राह्मण्याः पृथक्चित्तारोहणे निषेधकथनम्)

यच्च व्याघ्रपात्—न म्रियेत समं भर्त्रा ब्राह्मणी शोककर्शिता। न ब्रह्मगतिमाप्नोति मरणादात्मघातिनी॥ इति। तत्पृथक्चितिपरम्,

जो व्याघ्रपादन ने कहा—शोक से दुःखी हुई ब्राह्मणी पति के साथ नहीं मरती है। क्योंकि—वह मरने से आत्महत्या करने वाली ब्रह्मगति (मुक्ति) को नहीं प्राप्त होती है। वह पृथक् चितिपरक है।

१—इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं विशन्तु। अनश्रवोऽनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे। उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि। हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि संबभूथ॥ धनुर्हस्तादाददानो मृतस्याऽस्मे क्षत्राय वर्चसे बलाय। अत्रैव त्वमिह वयं सुवीरा विश्वाः स्पृधो अभिमातीर्जयेम॥ उप सर्प मातरं भूमिमेतामुरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवाम्। ऊर्णम्रदा युवतिर्दक्षिणावत एषा त्वा पातु निर्ऋतेरुपस्थात्॥ (ऋ० १०।१८।७–१०)।

२—उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि। हस्तग्राभस्य दधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ॥ धनुर्हस्तादाददानो मृतस्याऽस्मे क्षत्राय वर्चसे बलाय। अत्रैव त्वमिह वयं सुवीरा विश्वाः स्पृधो अभिमातीर्जयेम॥ (ऋ० १०।१८।८, ९)।

(चितावारोहणे विचारः)

पृथक्चितिं समारुह्य न विप्रा गन्तुमर्हति । अन्यासां चैव नारीणां स्त्रीधर्मोऽयं परः स्मृतः ॥ इत्युशनसोक्तेः ।

उशना ने कहा है—ब्राह्मण जाति की स्त्रियाँ अलग चिता में चढकर जाने योग्य नहीं होती है। अन्य स्त्रियों का ही यह परमधर्म कहा है।

पृथक्चितिस्तु क्षत्रियादिपरा । तद्विधिर्ब्राह्मे—देशान्तरे मृते पत्यौ साध्वी तत्पादुकाद्वयम् ।
निधायोरसि संशुद्धा प्रविशेज्जातवेदसम् ॥

अलग चिति तो क्षत्रिय आदि परक है—उसकी विधि को ब्रह्मपुराण में कहा है—देशान्तर (अर्थात्–दूसरे देश-शहर आदि) में पति के मरने पर उसकी दोनों शुद्ध खडाऊ को छाती पर रखकर शुद्धचित्त से अग्नि में प्रवेश करे।

ऋग्वेदवादात्साध्वी स्त्री न भवेदात्मघातिनी । त्र्यहाशौचे निवृत्ते तु श्राद्धं प्राप्नोति शास्त्रवत् ॥

ऋग्वेदवाद से साध्वी स्त्री आत्मघातिनी नहीं होती है। तीन दिन के आशौच के समाप्त होने पर शास्त्र की तरह श्राद्ध को प्राप्त करती है।

इमा नारीरविधवा इति ऋग्वेदवादः । त्र्यहाशौचमन्वारोहणपरमिति स्मार्ताः । निषेधवाक्यानि प्रायश्चित्तार्थं मृतेन पतितेन वा सह मरणनिषेधपराणीत्यप्याहुः । अस्थिदाहे पलाशदाहे वा न पृथकचितिदोषः । अङ्गत्वेन स्थानापत्त्या वा शरीरतुल्यत्वात् ।

'इमा नारीरविधवा' इत्यादि पूर्वमें गये हुए ऋग्वेद के मन्त्र हैं। तीनदिन का आशौच तो अन्वारोहण परक है—यह स्मार्त कहते हैं। निषेधवाक्यों को प्रायश्चित्तार्थ मरे हुए या पतित के साथ मरणनिषेध परक हैं—यह भी कहा है। अस्थिदाह में या पलाश के दाह में अलग चिति का दोष नहीं है। अंगत्वहोने से या उसके स्थान में होने से शरीर तुल्य है।

यत्तु—ब्रह्मघ्नो वा कृतघ्नो वा मित्रघ्नो वा भवेत्पतिः । पुनात्यविधवा नारी तमादाय मृता तु या ॥ इति हारीतीयम् ,

जो हारीत ने कहा है—जो पति ब्रह्मघ्न (ब्रह्माणं-ब्राह्मणं हन्ति, ब्राह्मण की हत्या करनेवाला) कृतघ्न,[1] (कृतघ्नी) या मित्रघ्न (मित्र की हत्याकरने वाला) हो उस पति को ग्रहण कर जो अविधवा नारी मरती है उसे पवित्र करती है।

तत्पतितदाहादिनिषेधेन सहगमनस्य दूरतोऽपास्तत्वादर्थवादमात्रमिति पृथ्वीचन्द्रः । जन्मान्तरीयपापवता सह मरणे नोद्धार इति स्मार्तगौडाः ।

वह वचन पतित दाह आदि निषेध से सहगमन का दूर से अपास्त होने से अर्थवादमात्र है—यह पृथ्वीचन्द्र ने कहा है। स्मार्तगौड कहते हैं—जन्मान्तरीय पापी के साथ मरने पर उद्धार नहीं होता है।

शुद्धितत्त्वे व्यासः—दिनैकगम्यदेशस्था साध्वी चेत्कृतनिश्चया ।
न दहेत्स्वामिनं तस्या यावदागमनं भवेत् ॥

शुद्धितत्त्व में व्यास ने कहा है—जो साध्वी स्त्री एकदिन में जाने योग्य स्थान में रहनेवाली यदि सहगमन का निश्चय कर चुकी है तो जब तक वह आ न जाय तब तक उसके मरे पति का दाहसंस्कार न करे।

१—कृतं कृतोपकारादिकं हन्ति । पहले के किये हुए उपकार को भूल जाने वाला। प्रायश्चित्तविवेक में लिखा है—भर्तृपिण्डापहर्ता च पितृपिण्डापहारकः । यस्मात् गृहीत्वा विद्यां च दक्षिणां न प्रयच्छति ॥ पुत्रान् स्त्रियश्च यो द्वेष्टि यश्चैतान् घातयेन्नरः । कृतस्य दोषं वदति सकामान्न करोति यः ॥ न स्मरेच्च कृतं यस्तु आश्रमान् यस्तु दूषयेत् । सर्वांस्तान्नृषिभिः सार्धं कृतघ्नान् ब्रवीन्मनुः ।

तत्रैव भविष्ये—तृतीयेऽह्नि उदक्याया मृते भर्तरि वै द्विजाः ।
तस्यानुमरणार्थाय स्थापयेदेकरात्रकम् ॥

वहीं पर भविष्यपुराण में कहा है—द्विजाः, रजस्वला पत्नी का पति तीसरे दिन मर जाय तो उसके पति को उसके सहगमन के लिए मरे हुए पति को एक रात तक रखे दाह न करे ।

एकां चितां समासाद्य भर्तारं याऽनुगच्छति । तद्भर्तुर्यः क्रियाकर्ता स तस्याश्च क्रियां चरेत् ॥ एतद्दशाहान्तम्,

एकचिता में बैठकर जो स्त्री पति के साथ जाती है । जो उसके पति के क्रिया का करने वाला जो हो वही उसकी स्त्री के क्रिया करने वाला होना चाहिये । यह दशदिन पर्यन्त हैं (अर्थात्—एकादशाह आदि से भिन्न है—यह अभिप्राय है ।)

यश्चाग्निदाता प्रेतस्य पिण्डं दद्यात्स एव हि । इति वायवीयोक्तेः ॥

वायुपुराण में कहा है—जो प्रेत को अग्नि देने वाला है वही ही पिण्ड को दे ।

(चितिभ्रष्टास्त्रीविषये विचारः)

आपस्तम्बः—चितिभ्रष्टा तु या नारी मोहाद्विचलिता भवेत् ।
प्राजापत्येन शुद्ध्येत तस्माद्वै पापकर्मणः ॥

आपस्तंब ने कहा है—चिता से भ्रष्ट जो स्त्री मोह से विचलित हो गयी है वह उस पापके कर्म से प्राजापत्यव्रत से शुद्ध होती है ।

(अन्वारोहणे नारीणां पिण्डदानादिविचारः)

तथा—अन्वारोहे तु नारीणां पत्युश्चैकोदकक्रियाम् । पिण्डदानक्रियां तद्वत् श्राद्धं प्रत्याब्दिकं तथा ॥ अन्वारोहे कृते पत्न्या पृथक्पिण्डांस्तिलाञ्जलीन् । पृथक्शिले न कुर्वीत दद्यादेकशिले तथा ॥ अन्यत्प्रागुक्तम् ।

और अन्वारोहण में स्त्रियों का और पतिका एक जलदान क्रिया, पिण्डदानक्रिया, तद्वत् श्राद्ध और प्रत्याब्दिक होता है ॥ अन्वारोहण करने पर पत्नीका अलग पिण्डदान और तिलाञ्जलि अलग शिला पर न करे एकशिला पर करे । अन्य बातें पहले (नवश्राद्धानि सर्वाणि सपिण्डीकरणं पृथक् । एक एव वृषोत्सर्गो गोरेका तत्र दीयते ॥) कह चुके हैं ।

इदं गर्भिणीबालापत्यासूतिकारजस्वलाव्यभिचारिणीभिर्न कार्यम्,

स्वैरिणीनां गर्भिणीनां पतितानां च योषिताम् । नास्ति पत्याऽग्निसंवेशः पतितौ हि तथा उभौ ॥ इति मदनरत्ने स्मृतिसङ्ग्रहोक्तेः ।

यह गर्भिणी, बालक सन्तानवाली, सूतिका, रजस्वला, व्यभिचारिणी आदि का नहीं करना चाहिये । मदनरत्न में स्मृतिसंग्रह का वचन है—व्यभिचारिणी, गर्भवाली तथा पतित स्त्रियों का पति के साथ अग्नि प्रवेश नहीं होता है । प्रवेश होने पर दोनों पतित हो जाते हैं ।

(गर्भिण्यादिविषये विचारः)

मदनरत्ने बृहस्पतिः—बालसंवर्द्धनं त्यक्त्वा बालापत्या न गच्छति । व्रतोपवासनियता रक्षेद्गर्भं च गर्भिणी ॥ तृतीयपादे 'रजस्वला सूतिका च' इति पृथ्वीचन्द्रोदये गौडीयशुद्धितत्त्वे च पाठः ।

मदनरत्न में बृहस्पति ने कहा है—बालक की रक्षार्थ कार्य को त्याग कर बालकवाली को नहीं जाना चाहिये । व्रत, उपवास के नियम से गर्भिणी गर्भ की रक्षा करें । पृथ्वीचन्द्रोदय में और गौडीय शुद्धितत्त्व में एसा पाठ है—तीसरे चरण में—बालसंबर्धनं मुक्त्वा बालापत्या न गच्छति । रजस्वला सूतिका च'।

तत्रैव बृहन्नारदीयेऽपि—बालापत्याश्च गर्भिण्यो ह्यदृष्टऋतवस्तथा ।
रजस्वलाराजसुते नारोहन्ति चितां तु ताः ॥ इति ।

वहीं पर बृहन्नारदपुराण भी कहा है—जिस स्त्री की सन्तान बालक हो, गर्भिणी हो, जो ऋतु वाली न हो, और जो रजस्वला हो और राजपुत्री, एसी स्त्रियाँ चिता में आरोहण न करे ।

अत्र—पतिव्रता सुसंदीप्तं प्रविशेद्या हुताशनम् । इति भारतात्, 'ऋग्वेदवादात्साध्वी स्त्री' इति ब्राह्माच्च पतिव्रतानामेवाधिकारो न दुर्वृत्तानाम् ।

यहाँ पर भारत में कहा है—पतिव्रता स्त्री प्रज्वलित अग्नि में प्रवेश करे । और ब्रह्मपुराण में कहा है ऋग्वेदवाद साध्वी स्त्री । इससे पतिव्रताओं का ही अधिकार है दुराचारिणियों का नहीं है ।

यत्तु—अवमत्य च याः पूर्वं पतिं दुष्टेन चेतसा । वर्तते याश्च सततं भर्तॄणां प्रतिकूलतः ॥ तत्रानुमरणं काले याः कुर्वन्ति तथाविधाः । कामात्क्रोधाद् भयान्मोहात्सर्वैः पूता भवन्त्युत ॥ इति भारतम्, तत्कैमुतिकन्यायेन स्तावकमिति पृथ्वीचन्द्रः । ब्राह्मण्या एकचितिरेव न पृथक्चितिः । क्षत्रियादीनां पृथगेका वेति कल्पतरुरत्नाकरमदनपारिजातादयः । शुद्धिचिन्तामणौ चैवम् । तत्रान्वारोहणे भर्तृशौचमध्ये तदूर्ध्वं वा कृते त्रिरात्रमध्ये एव दशपिण्डाः । सहगमने तु भर्तृशौचतुल्यमाशौचं पिण्डदानं च ।

जो भारत में कहा है—जिन स्त्रियों ने पहले पतिका दुष्टमन से अपमान किया है, जो निरन्तर पतियों के प्रतिकूल रहती हैं, यदि वे स्त्रियां वहाँ पर पति के मरने पर उसके साथ मरती हैं तो काम, क्रोध, भय और मोह से सब पवित्र होती है । वह कैमुतिकन्याय[1] से स्तुतिपरक है यह पृथ्वीचनु ने कहा है । ब्राह्मणी की एक चिता ही होती है अलग चिता नहीं होती है । क्षत्रिय आदियों की अलग या एक चिता होती है—यह कल्पतरु, रत्नाकर, मदनपारिजात, आदि कहते हैं । शुद्धिचिन्तामणि में भी यही है । वहाँ पर अन्वारोहण में पतिके आशौच के मध्य में या उसके बाद करने पर तीन दिन के मध्य में ही दश पिण्ड दे । एक साथ मरने पर तो पति के आशौच के सदृश आशौच और पिण्डदान होता है ।

अन्वितायाः प्रदातव्या दशपिण्डास्त्र्यहेण तु । स्वाम्याशौचे व्यतीते तु तस्याः श्राद्धं प्रदीयते ॥ इति शुद्धितत्त्वे शूलपाणौ च पैठीनसिस्मृतेः ।

शुद्धितत्त्व और शूलपाणि में पैठीनसिस्मृति का वचन है—बाद में जाने वाली पत्नी का तीनदिन में दश पिण्ड दे । स्वामी के आशौच व्यतीत होने पर उसका श्राद्ध करे ।

संस्थितं पतिमालिङ्ग्य प्रविशेद्या हुताशनम् । तस्याः पिण्डादिकं देयं क्रमशः पतिपिण्डवत् ॥ इति शूलपाणिशुद्धितत्त्वधृतव्यासोक्तेश्च । अन्यत् प्रागुक्तम् ।

शूलपाणि, शुद्धितत्त्व में व्यास का वचन है—पति का आलिंगन कर जो स्त्री अग्नि में स्थित होती है उसका पिण्ड आदि क्रम से पतिपिण्ड के सदृश देना चाहिये । अन्य तो पहले कह चुके हैं ।

यदा तु रजस्वलाऽपि पत्नी मृते पत्यौ देशकालवशात्तदैवानुगच्छति न शुद्धिं प्रतीक्षते तत्र देवयाज्ञिकनिबन्धे—यदा स्त्रियामुदक्यायां पतिः प्राणान् समुत्सृजेत् । द्रोणमेकं तण्डुलानामवहन्याद्विशुद्धये ॥ मुसलाघातैस्तदसृक् स्रवते योनिमण्डलात् । विरजस्कां मन्यमाना स्वे चित्ते तदसृक्क्षयम् ॥ दृष्ट्वा शौचं प्रकुर्वीत पञ्चमृत्तिकया पृथक् । त्रिंशद्विंशतिर्दश च गवां दत्त्वा त्र्यहः क्रमात् ॥ विप्राणां वचनाच्छुद्धा समारोहेद्धुताशनम् । नारीणां सरजस्कानामियं शुद्धिरुदाहृता ॥ अत्र श्राद्धादौ निर्णयः पूर्वमुक्तः ।

१—इसका यह अभिप्राय है कि—जहाँ दण्ड ही भक्षित है यह कहा जाता है वहाँ अपूप का भक्षण हो गया है यह प्रसिद्ध है इसी को कैमुतिकन्याय कहते हैं ।

जो रजस्वला पत्नी[1] भी पतिके मरने पर देश और कालके वशसे उसीसमय पीछे जाती है तो शुद्धि की प्रतीक्षा न करे—वहाँपर देवयाज्ञिकनिबन्ध में कहा है—जब स्त्री मासिकधर्म में हो उस समय पति प्राणों का त्याग करता हो तो वह स्त्री एक द्रोण चावलों को शुद्धि के लिए कूटे। मूसल की चोट से उसकी योनि मण्डल से खून गिर जाने से विरजस्का मानती हुई अर्थात् अपने मन में खून से रहित मानती हुई पांच बार मृत्तिका से अलग अलग पवित्रता करे। उसीदिन तीस, बीस या दश गोदान कर ब्राह्मणों के वचन से शुद्ध हो अग्नि में प्रवेश करे। रजस्वला स्त्रियों की यही शुद्धि कही है। यहाँ पर श्राद्ध आदि का निर्णय पहले कह चुके हैं।

(अग्निप्रवेशाशक्तौ तु)

अग्निप्रवेशाशक्तौ तु विष्णुः—'मृते भर्तरि ब्रह्मचर्यं तदन्वारोहणं वा'इति।

अग्नि में प्रवेश होने की अशक्ति में तो विष्णु ने कहा है—पति के मरने पर ब्रह्मचर्य से रहे या उसके साथ अन्वारोहण करे।

ब्रह्मवैवर्ते—सहानुगमनं शस्तं वैधव्यस्याथ पालनम्।

ब्रह्मवैवर्तपुराण में कहा है—स्त्री पति के साथ अनुगमन करे या वैधव्यधर्म का पालन करे।

यत्तु तत्रैव—कलौ नान्या गतिः स्त्रीणां सहानुगमनादृते। इति, तद्ब्रह्मचर्याशक्यत्वपरम्।

जो वहाँ पर कहा है—कलियुग में स्त्रियों के सहगमन को त्याग कर और रास्ता नहीं है। वह ब्रह्मचर्य को धारण करने में अशक्ति परक है।

तथा च मनुः—ब्रह्मचर्यं चरेद्वापि प्रविशेद्वा हुताशनम्।

और मनुने कहा है—ब्रह्मचर्य का पालन करे या अग्नि में प्रवेश करे।

काशीखण्डेऽपि—पत्यौ मृतेऽपि या योषिद्वैधव्यं पालयेत्क्वचित्। सा पुनः प्राप्य भर्तारं स्वर्गलोकं समश्नुते॥

काशीखण्ड में भी कहा है—पति के मरने पर भी कभी जो स्त्री विधवाधर्म की रक्षा करती है वह पुनः पति को प्राप्तकर स्वर्गलोक को प्राप्त करती है।

अनुयाति न भर्तारं यदि दैवात्कथञ्चन। तत्रापि शीलं संरक्षेच्छीलभङ्गात्पतत्यधः॥

यदि प्रारब्धवश कभी पति के साथ नहीं जाती है। फिर भी शील की रक्षा करे शील के भंग होने से नीचे गिरती है।

तद्दौर्गुण्यादपि स्वर्गात्पतिः पतति नान्यथा। तस्याः पिता च माता च भ्रातृवर्गस्तथैव च॥

उसके दोष से भी स्वर्ग से पति गिरता है और उस स्त्री के पिता, माता, और वैसे ही भाई वर्ग भी गिरते हैं। अन्यथा नहीं गिरते हैं।

(अथ विधवाधर्माः)

अथ विधवाधर्माः। मदनरत्ने स्कान्दे—विधवाकबरीबन्धो भर्तृबन्धाय जायते।
शिरसो वपनं तस्मात्कार्यं विधवया सदा।

अब विधवाधर्मों को कहते हैं। मदनरत्न में स्कन्दपुराण का वचन है—विधवा, कबरी (केशबंधनः कबरी केशवेशः' इत्यमरः।) बन्धन (चोटीबन्धन) पति के बन्धन के लिए होता है इसलिए शिर का मुण्डन सदा विधवा को करना चाहिये।

एकाहारः सदा कार्यो न द्वितीयः कदाचन। मासोपवासं वा कुर्याच्चान्द्रायणमथापि वा।

१—अन्त्येष्टिपद्धतौ—यदा स्त्रियामुदक्यायां पतिः प्राणान् परित्यजेत्। द्रोणमेकं तण्डुलानामवहन्याद्विशुद्धये॥ मुसलाघातैस्तदसृक् स्रवते योनिमण्डलात्। विरजस्कां मन्यमानास्वेचित्ते तदसृक्क्षयम्। दृष्ट्वाशौचं प्रकुर्वीत पञ्चमृत्तिकया तथा। त्रिंशद्विंशति दश च गवां दद्यात्स्वहः क्रमात्॥ विप्राणां वचनाल्लब्ध्वा समारोहेद् हुताशनम्। नारीणां सरजस्काणामियं शुद्धिरुदाहृता। तन्मूलं मृग्यम्। 'अत्रावहननेन रजोनिवृत्तिरतीन्द्रियतीदं युगान्तरपरं योज्यमिति भाति—इति धर्मसिन्धौ।

सदा एकबार भोजन करे दूसरी बार भी न करे। महिने महिने उपवास सदा करे या चान्द्रायणव्रत करे।

पर्यङ्कशायिनी नारी विधवा पातयेत्पतिम्। नैवाङ्गोद्वर्तनं कार्यं स्त्रिया विधवया क्वचित्॥

पलङ्ग पर शयन करने वाली विधवा स्त्री पति को स्वर्ग से गिराती है। विधवा को शरीर में उबटन कभी नहीं लगाना चाहिये।

गन्धद्रव्यस्य सम्भोगो नैव कार्यस्तया पुनः। तर्पणं प्रत्यहं कार्यं भर्तुस्तिलकुशोदकैः॥ तत्पितुस्तत्पितुश्चापि नामगोत्रादिपूर्वकम्। इदमपुत्रापरमिति मदनपारिजातः।

फिर विधवा को सुगन्धित द्रव्य का उपयोग नहीं करना चाहिये। प्रतिदिन पति के लिए तर्पण तिल और कुशोदकों से करना चाहिये। उसका क्रम यों है—पतिके पिता और उसके पिता का नाम, गोत्र आदि उच्चारणपूर्वक करे। यह अपुत्रपरक है—यह मदनपारिजात ने कहा है।

नाधिरोहेदनड्वाहं प्राणैः कण्ठगतैरपि। कञ्चुकं न परीदध्याद्वासो न विकृतं वसेत्॥ वैशाखे कार्तिके माघे विशेषं नियमं चरेत्।

प्राणों के कंठ में आने पर भी बैल पर न चढ़े। कञ्चुक (चोली) को धारण न करे और विकार उत्पन्न करनेवाले वस्त्रको धारण न करे। विशेष नियम वैशाख, कार्तिक और माघमास में कहे हैं उनको करे।

प्रचेता:—ताम्बूलाभ्यञ्जनं चैव कांस्यपात्रे च भोजनम्। यतिश्च ब्रह्मचारी च विधवा च विवर्जयेत्॥ श्राद्धादौ विशेषः प्रागुक्तः।

प्रचेता ने कहा है—ताम्बूल (पान), अभ्यञ्जन (चिकने पदार्थों से उबटन—शरीर की मालिस करना) आँखों में काजल और कांसे के पात्र में भोजन यति (संन्यासी), ब्रह्मचारी और विधवा को त्याग देना चाहिये। श्राद्धादि में तो विशेष पहले कहा है।

यत्तु बौधायनः—संवत्सरं प्रेतपत्नी मधु मांसं विवर्जयेत्। अधः शयीत षण्मासानिति मौद्गल्यभाषितम्॥ इति तदसवर्णापरमित्यपरार्कः।

जो बौधायन ने कहा है—एक साल तक प्रेत की पत्नी को मधु-सहत और मांस का त्याग करे। जमीन में छ महिने तक शयन करे—यह मौद्गल्य ने कहा है। यह असवर्णा परक है—यह अपरार्क ने कहा है।

(नक्षत्र आदि में जन्म लेने पर विचार)

(१) मूल, आश्लेषा, ज्येष्ठा और मघा नक्षत्र में जन्म होने पर गोमुखप्रसवशान्ति करनी चाहिये। यह शान्ति धन आदि के अरिष्टों में नहीं होती है। (२) कृष्णपक्ष की चतुर्दशी में प्रसव होने पर शान्ति करे। उसका प्रकार यों है कि—चतुर्दशी के छः भाग करे। उसमें पहला भाग शुभदायक होता है। दूसरे भाग में जन्म होने से पिता को मारता है। तीसरे भाग में माता, चतुर्थ भाग में मामा, पाँचवे भाग में वंश का नाश और छठे भाग में धन की हानि तथा अपने वंश का नाश होता है। (३) सिनीवाली में जिसकी पत्नी, पशु, हथिनी, घोड़ी और भैंस का प्रसव हो तो लक्ष्मी का हरण होता है। तद्वत् गौ, पक्षी का प्रसव भी धन का नाश कारण होता है। जिसके पास हाथी, घोड़े आदि हैं। उनके मालिक की आयु और धन का नाश होता है। यदि वह इन्द्र भी हो तो उसकी भी लक्ष्मी का नाश होता है। (४) कुहू में जन्म ग्रहण करने पर भी गोमुखप्रसवशान्ति करे। ऐसा भी मत है। (५) दर्श में जन्म लेने पर पिता और माता को दरिद्रता प्राप्त होती है। (६) मूलनक्षत्र के प्रथम पाद में पिता का मरण, दूसरे में माता का, तीसरे में धन-धान्य का और चौथे में कुल का नाश होता है। अतः शान्ति करे। किसी के मत से मूल का चौथा चरण शुभ होता है। (७) मूलनक्षत्र में कन्या उत्पन्न हो तो पिता और माता को हानि नहीं करती है। श्वसुर का नाश करती है। आश्लेषा में उत्पन्न कन्या सास की हानि करती है। ज्येष्ठा में उत्पन्न कन्या पति के बड़े भाई की हानि करती है। विशाखा में उत्पन्न कन्या देवर का नाश करती है। (८) अभुक्त मूल (ज्येष्ठा के अन्त वाली एक घड़ी और मूल के आदि के दो घड़ी या दोनों नक्षत्रों के सन्धि की चार घड़ी को अभुक्तमूल कहते हैं।) में गोमुखप्रसवशान्ति करे। (९) व्यतिपात में बालक का जन्म होने पर अंग की हानि होती है। परिघ में उत्पन्न की मृत्यु, वैधृति में पिता की हानि, अमावास्या में अन्धा, मूल में समूल नाश, धृति में कुल का नाश, दोनों सन्ध्याओं में उत्पन्न बालक विकृतांग तथा हीनांग होता है। दांत के सहित जन्मग्रहण करने वाला बालक, पैर की तरफ से जन्मग्रहण करने वाला बालक अंगहीन होता है। (१०) आश्लेषा नक्षत्र में जन्म होने से पहला पाद तो शुभ होता है। दूसरे पाद में धन, तीसरे पाद में माता और चौथे पाद में पिता नाश करता है। आश्लेषा के अन्त्य के तीन पाद में कन्या का जन्म हो तो सास का और वर भी

सास का नाश करता है। इसमें गोमुखप्रसवशान्ति आदि करे। (११) ज्येष्ठानक्षत्र में जन्म होने से—१ भाग में नानी, २ भाग में नाना, ३ भाग में मामा, ४ भाग में अपनी माता, ५ भाग में अपना नाश करता है। ६ भाग में गोत्र-जों का, ७ भाग में दोनों कुलों का, ८ भाग में अपने बड़े भाई का, नवें में श्वसुर का, १० में सबका नाश करता है। ज्येष्ठानक्षत्र में उत्पन्न कन्या पति के बड़े भाई का शीघ्र नाश करती है। ज्येष्ठा के तीन चरण में उत्पन्न बालक अकेला ही रहता है। ज्येष्ठा के अन्तिम चरण में उत्पन्न बालक अपना और पिता का भी नाश करता है। इसमें गोमुखप्रसवशान्ति आदि करे। (१२) चित्रादि नक्षत्र में उत्पन्न बालक की शान्ति अवश्य ही करे। चित्रा के आदि के आधे पाद में, पुष्य नक्षत्र के दो पाद में, पूर्वाषाढ़ा के तीसरे पाद में और उत्तराफाल्गुनी के आदि के चरण में उत्पन्न बालक माता, पिता और अपने भाई का नाश करता है। इसमें गोमुखप्रसवशान्ति आदि करे। (१३) पूर्वाषाढ़ा के तीसरे चरण में जन्म होने से और मघा के प्रथम पाद में जन्म होने से मूलशान्ति करे। मघा की प्रथम दो घड़ी में जन्म होने से, रेवती की अन्त की दो घड़ियों में जन्म होने से मघा की पहली दो घड़ी में जन्म होने से शान्ति करे। (१४) रेवती और अश्विनी के अन्त भागों में तथा मघा के अन्तिम तीन चरणों में दोष महत्वपूर्ण के न होने से शान्ति आवश्यक नहीं है। (१५) जन्म के समय व्यतीपात और वैधृति हो तथा उसी में सूर्य की संक्रान्ति हो तो दरिद्रता होती है। स्त्रियों को शोक और कष्ट होता है। वह सबका नाश का कारण बनता है। उसमें गोमुखप्रसवशान्ति आदि करे। वैधृतिशान्ति में तो संक्रान्ति के दिन वैधृति योग में उत्पन्न होने से देवतादि से अलग-अलग दो शान्ति करनी चाहिये। (१६) एक ही नक्षत्र में भाई भाई का, पिता और पुत्र का जन्म हो तो मरण फल होता है। उसमें गोमुखप्रसवशान्ति आदि करे। (१७) चन्द्रमा या सूर्यग्रहण में प्रसूति हो तो उसमें बालक की मृत्यु का भय होता है और व्याधि, पीडा, दरिद्रता, शोक तथा कलह होता है। इसमें गोमुखप्रसवशान्ति आदि करे। (१८) वेधकाल में जन्म होने में शान्ति की आवश्यकता नहीं है। किन्तु दुष्ट समय होने से रुद्राभिषेक करे। (१९) रेवती, आश्लेषा तथा ज्येष्ठानक्षत्र के अन्तवाली दो घड़ी, अश्विनी, मघा और मूल की आदि की दो घड़ी इसतरह चार घड़ी के तीन प्रकार का नक्षत्र गण्डान्त होता है। अश्विनी, मघा तथा मूल के पूर्वार्ध में उत्पन्न शिशु पिता का नुकसान करता है। गण्डान्त में उत्पन्नों का छः महिने तक दर्शन न करे। इसलिए गोमुखप्रसवशान्ति आदि करे। (२०) पञ्चमी, षष्ठी, दशमी, एकादशी तथा पूर्णिमा प्रतिपदा की सन्धि की दो घड़ी को तिथि गण्डान्त कहा जाता है। कर्क, सिंह, धनु, वृश्चिक, मीन और मेष लग्न की सन्धि की एक घड़ी को लग्न गण्डान्त कहते हैं। तिथि गण्डान्त के पूर्वार्ध में जन्म बालक का हो तो उसीसमय स्नान कर बैल का या उसका मूल्य का निश्चय कर दान करे। सूतकान्त में शान्ति करे। लग्न गण्डान्त के पूर्वार्ध में जन्म हो तो सोने का दान करे। उत्तरार्ध में जन्म हो तो शान्ति करे। (२१) दिनक्षय आदि दोषों में रुद्रैकादशनी से रुद्राभिषेक करावे। एक साथ दो तीन दोष उपस्थित हो जाय तो पीपल की परिक्रमा आदि समुच्चय से करे। शिवालय में दीपदान घृत का करे। गणपतिसूक्त, पुरुषसूक्त, सूर्यसूक्त, मृत्युञ्जय का जप तथा मृत्यु को जीतने वाला रुद्रजप भी करे। (२२) विषघड़ी में उत्पन्न बालक माता, पिता, धन और अपना नाश करता है। क्रूरग्रह और लग्नांश जन्म होने से विष तथा शस्त्र आदि द्वारा भय होता है इसमें भी शान्ति करे। रुद्राभिषेक, छायापात्र दान आदि करे और रुद्र, यम, अग्नि तथा मृत्यु देव की पूजा सविधि करे। (२३) यमलजनन (एक साथ दो बच्चों का जन्म) हो तो निरग्निक कात्यायनी शान्ति करे। इसीतरह दासी, महिषी (भैंस) घोड़ी, गौ और हथिनी के जोडुवां बच्चे हो तो कात्यायनीशान्ति ही करे। (२४) ग्रहों के उत्पात में, उल्लू, कबूतर, गीध तथा बाज पक्षी के घरमें घुसने पर, खंभों में चढ़ने पर, वल्मीक के बनाने पर, सहत का छत्ता लगाने पर, आसन, खटिया और सवारी के टूटने पर, पल्ली (भिसतिया) के गिरने पर, गिरगिट के चढ़ने पर, छत्ता तथा ध्वजा के विनाश होने पर एवं अन्य उत्पातों में कात्यायनीशान्ति करे। (२५) तीन कन्याओं के बाद पुत्र का जन्म हो या तीन पुत्रों के बाद कन्या का जन्म हो तो पिता, माता, और कुल का महान् अनिष्ट हो जाता है। ज्येष्ठ की हानि, धन का नाश, या भयंकर कष्ट होता है। गोमुखप्रसवपूर्वक शान्ति करे। (२६) जिस बालक का जन्म दाँत के साथ हो या जिस बालक के पहले ऊपर के दाँत उत्पन्न हों, दूसरे, तीसरे, चौथे या पांचवें महिने में दाँत उत्पन्न हों तो वे बड़े भय को देनेवाले होते हैं। उससे माता का नाश करता है या स्वयं ही नष्ट हो जाता है। जिसके छठे और आठवें महिने में दाँत उत्पन्न हों तो उसके माता या पिता का मरण होता है। या स्वयं ही दुःखी होता है। कोई आठवें महिने में दाँत का निकलना शुभ मानते हैं। उसकी शान्ति के लिए धाता, अग्नि, सोम, वायु, पर्वतों और केशव इनकी पूजा आदि करे। (२७) प्रसव के विकृतावस्था, अधिक कानवाला, बिना कान का, एक सींग का, तीन भुजा का, चार भुजा का, बड़े कानवाला, हाथी के सदृश कानवाला, अधिक शिर वाला, बिना शिर वाला, भिन्न जीवों में, मिल जाती का पैदा होनेवाला, यदि जन्म हो तो देश में विप्लव होता है। ऐसी स्थिति में शान्ति करे और जन्म के समय बालक हसता हो तो शान्ति करे।

अथ निर्णयसिन्धुः

(भाषा-टीका-सहित)

श्लोकसूची

दौलतराम गौड

अथ निर्णयसिन्धुः

(भाषा-टीका-सहित)

संन्यासप्रकरण

(संन्यास में ब्राह्मण को ही कषायवस्त्र के धारण का अधिकार कथन, संन्यास के भेदों का कथन, वैराग्य बिना संन्यास ग्रहण में विचार, अष्टकाश्राद्ध में विचार, संन्यासपद्धति का निरूपण, यतिधर्म, आतुरसंन्यासविधि, यतिसंस्कार, त्रिदण्डियों का ही पार्वणश्राद्ध कथन और वन्दना ।)

दौलतराम गौड

(प्राचीन व्यवस्थाओं का संग्रह)

(स्वर्गीय-महामहोपाध्याय श्री पं० विद्याधर जी गौड़ द्वारा लिखित)

(संन्यासाधिकारविचारः)

'आत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद् गृहात्' । 'चत्वारो ब्राह्मणस्योक्ता आश्रमाः श्रुतिचोदिताः । क्षत्रियस्य त्रयः प्रोक्ता द्वावेको वैश्यशूद्रयोः । 'चत्वार आश्रमाश्चेते ब्राह्मणस्य प्रकीर्तिताः । गार्हस्थ्यं ब्रह्मचर्यं न वानप्रस्थं त्रयश्च ते । क्षत्रियस्यापि कथिता य आचारा द्विजस्य हि । ब्रह्मचर्यं न गार्हस्थ्यमाश्रमद्वितयं विशः । गार्हस्थ्यमुचितं त्वेकं शूद्रस्य क्षणदाचर (वायु पु०) इत्यादिवचनेषु ब्राह्मणश्रवणात् ब्राह्मणस्यैव चतुर्विधेऽपि संन्यासेऽधिकारः ।

केवलं माधवाचार्यस्तु—'सन्नियम्येन्द्रियग्रामं रागद्वेषौ प्रहाय च । भयं हत्वा च भूतानाममृती भवति द्विजः ॥ (या० स्मृ०) ऋणत्रयमपाकृत्य निर्ममो निरहंकृतिः । ब्राह्मणः क्षत्रियो वाऽथ वैश्यो वा प्रव्रजेद् गृहात् । 'अग्नीनात्मनि संस्थाप्य द्विजः प्रव्रजितो भवेत् । इत्यादिवचनेषु द्विजशब्दप्रयोगात् त्रैवर्णिकाधिकारे संन्यासमिच्छन्ति । तत्रापि—'मुखजातानामयं धर्मो यद्विष्णोर्लिङ्गधारणम् । बाहुजातोरुजातानां नायं धर्मः प्रशस्यते ॥ ब्राह्मणानामयं धर्मो यद् विष्णोर्लिङ्गधारणम् । राजन्यवैश्ययोर्नेति दत्तात्रेयमुनेर्वचः ॥ इत्यादिवचनबलात् 'कषायदण्डादिलिंगधारणं क्षत्रियवैश्ययोर्निषिद्धम्' 'ब्राह्मणः प्रव्रजेद् गृहात्' इत्यादीनि पूर्वोक्तवचनानि क्षत्रियवैश्ययोः कषायदण्डनिषेधपराणि' इति माधवाचार्याः । एवं च ब्राह्मण एव संन्यासाऽधिकारीतिमुख्यः पक्षः । यदि पक्षान्तरपरिग्रहेण तयोरप्यधिकारः स्वीक्रियते तदा केवलं संन्यासग्रहणे तयोरधिकारः । कषायवस्त्रधारणे तु नाधिकारः । शूद्रस्य तु न संन्यासेऽधिकारो नापि कषायवस्त्रधारणे ।

श्री विद्याधरशर्मा गौड़

(संन्यासनिर्णयः)

अथ संन्यासः । याज्ञवल्क्यः (प्राय० श्लो० ५६, ५७)--वनाद् गृहाद्वा कृत्वेष्टिं सार्ववेदसदक्षिणाम् । प्राजापत्यां तदन्ते तानग्नीनारोप्य चात्मनि ॥ अधीतवेदो जपकृत्पुत्रवानन्नदोऽग्निमान् । शक्त्या च यज्ञकृन्मोक्षे मनः कुर्यात्तु नान्यथा ॥ एतदाश्रमसमुच्चयपक्षे ।

अब संन्यास[1] को कहते हैं—याज्ञवल्क्यस्मृति में कहा है—वानप्रस्थ या गृहस्थाश्रमोपरान्त संपूर्ण वेद से सम्बन्ध दक्षिणा वाली प्राजापत्य (प्रजापति देवता की इष्टि को कर (मनुः-(६।३८) प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम् । आत्मन्यग्नीन् समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद् गृहात् ।। जिस प्राजापत्ययज्ञ में सर्वस्व दक्षिणा दी जाती है ।) इष्टि को कर उसकी समाप्ति पर उन्हीं इष्टियों का अपनी आत्मा में (श्रुति के अनुसार) (यहाँ च शब्द से—उदगयने पौर्णमास्यां पुरश्चरणमादौ कृत्वा–उत्तरायण की पूर्णिमा में आदि में पुरश्चरण[2] कर, 'शुद्धेन ये कायेनाष्टौ श्राद्धानि निर्वपेत् । द्वादश वा इति बौधायनायुक्तं पुरश्चरणादिकं च कृत्वा—शुद्ध शरीर से आठ या बारह श्राद्धों का निर्वाप करे—यह बौधायन आदि में कहे हुए पुरश्चरणादिक को कर) । समारोप कर, वेदों का अध्ययन कर जपपरायण होकर पुत्रवान् होने पर (यथाशक्ति दीन-अन्ध-कृपणों को) अन्न देकर अग्नि में हवन तथा शक्ति के अनुसार यज्ञकर मन को मोक्षप्राप्ति में (ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत् । अनपाकृत्य मोक्षं तु सेव्यमानो व्रजत्यधः ।। (मनु ६।३५) लगा दे । अन्यथा मोक्ष की इच्छा न करे । यह आश्रम समुच्चयपक्ष में है ।

१—वृद्धवशिष्ठः—यतीनां तु न संसर्गः कर्तव्योऽत्र सुतैः सदा । त्रिदण्डग्रहणादेव प्रेतत्वं नोपपद्यते ।। संसर्गः पिण्डसंसर्गः । सपिण्डीकरणमिति यावत् । वसिष्ठः—चतुर्विधानां भिक्षूणां ज्ञातिबन्धुसुतादिभिः । द्वादशेऽहनि कर्तव्यं तेषां श्राद्धं तु पार्वणम् ॥ शङ्खः—एकादशे द्वादशेऽह्नि नारायणबलिक्रिया । प्रतिसंवत्सरं चैव मृततिथ्यादिकं भवेत् ॥ तत् शिष्यकर्तृकविषयम् । पुत्रकर्तृकत्वेऽपि विकल्प इत्यन्ये । 'मृततिथ्यादिके भवेत्' इति विशेषस्मरणात् ।

२—शान्त्यादिलक्षणं गुरुं संशोध्य तन्निकटे त्रिमासं यतिधर्मान् संवीक्ष्य गायत्रीजप-रुद्रजपकूष्माण्डहोमादिभिः शुद्धिं लब्ध्वा रिक्तातिथौ—देशकालौ स्मृत्वा—'अमुकस्य मम करिष्यमाणसंन्यासेऽधिकारार्थं चतुःकृच्छ्रात्मकं प्रायश्चित्तं तत्प्रत्याम्नायैकैकगोनिष्क्रयद्वाराहमाचरिष्ये । कृच्छ्रप्रत्याम्नायगोनिष्क्रयद्रव्यं विप्रेभ्यो दातुमहमुत्सृज्ये । इति धर्मसिन्धौ ।

जाबालश्रुतौ त्वन्येऽपि पक्षा उक्ताः—यदि चेतरथा ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेद् गृहाद्वा वनाद्वा। अथ पुनरव्रती वा व्रती वा स्नातको वाऽस्नातको वोत्सन्नाग्निरनग्निको वा यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत् ॥ इति।

जाबालश्रुति में तो अन्यपक्ष भी कहा है—यदि वैराग्यता ही मालुम हो तो ब्रह्मचर्य से ही, घर से या वन से संन्यास ग्रहण करे। फिर (संन्यास को ब्रह्मचारी आदि ग्रहण करें—यह नियम नहीं है। परन्तु स्नातक, विधुर आदि भी ग्रहण करे—यह अर्थ है।) अव्रती या व्रतधारी, स्नातक या अस्नातक, जिसकी अग्नि नाश हो गयी हो, या अनग्निक जिस दिन में विरक्तता मालुम हो उसीदिन ही संन्यास ग्रहण करे।

अङ्गिराः—प्रव्रजेद् ब्रह्मचर्याद्वा प्रव्रजेच्च गृहादपि। वनाद्वा प्रव्रजेद्विद्वानातुरो वाथ दुःखितः॥ आतुरो मुमुर्षुः। दुःखितश्चौरव्याघ्रादिभीतः।

अंगिरा ने कहा है—ब्रह्मचर्यावस्था में ही संन्यास ग्रहण करे, घर से, वन से, आतुर होने से और दुःखी होने से संन्यास ग्रहण करे। आतुर माने—मरण की इच्छावाला। दुःखित माने—चोर, (महाभारते—उत्पन्ने संकटे घोरे तथा व्याघ्रादिसङ्कटे। भयभीतस्य संन्यासमङ्गिरा मनुरब्रवीत्॥) व्याघ्र आदि (आदि शब्द से नदी आदि द्वारा भय होने पर) से भीत।

भारते—आतुराणां तु संन्यासे न विधिर्नैव च क्रिया।
प्रैषमात्रं समुच्चार्य संन्यासं तत्र पूरयेत्॥

भारत में कहा है—आतुरों के (मरने वालों के) संन्यास में न विधि है न क्रिया (संन्यास का कर्म) है। वहाँ पर प्रैष मात्र का उच्चारण कर संन्यास की पूर्ति करे।

जाबालश्रुतावपि—यद्यातुरः स्यान्मनसा वाचा वा संन्यसेत्—इति।

जाबालश्रुति में भी कहा है—यदि आतुर (रोगी) हो तो मनसा या वाणी से संन्यास ग्रहण करे।

(अत्र ब्राह्मणस्यैवाधिकार उक्तः)

अत्र विप्रस्यैवाधिकारः 'ब्राह्मणाः प्रव्रजन्ति' इति जाबालश्रुतेः,

यहाँ पर ब्राह्मण का ही अधिकार है। जाबालश्रुति में कहा है—ब्राह्मण संन्यासी हो सकते हैं।

आत्मन्यग्नीन् समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद् गृहात्। इति मनूक्तेश्चेति विज्ञानेश्वरादयः।

मनु (६।३८) ने भी कहा है—आत्मा में अग्नियों का आरोप कर घर से ब्राह्मण संन्यास ग्रहण करे। यह विज्ञानेश्वर आदि ने कहा है।

(वर्णक्रमेणाश्रमाः)

वृद्धयाज्ञवल्क्योऽपि—चत्वारो ब्राह्मणस्योक्ता आश्रमाः श्रुतिचोदिताः। क्षत्रियस्य त्रयः प्रोक्ता द्वावेको वैश्यशूद्रयोः॥ इति।

वृद्धयाज्ञवल्क्य ने भी कहा है—वेद में कथित ब्राह्मण को चार आश्रम कहे हैं। क्षत्रिय को तीन, वैश्य को दो और शूद्र को एक कहा है।

माधवस्तु—ब्राह्मणः क्षत्रियो वाऽथ वैश्यो वा प्रव्रजेद् गृहात्॥ इति कौर्माद्युक्तेर्वर्णत्रयस्याप्यधिकारः। पूर्ववाक्यं तु काषायदण्डादिनिषेधार्थम्,

माधव ने कहा है—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य घर से चलें। यह कर्मपुराण आदि के वचन से तीनों वर्णों का भी अधिकार है। पूर्व में कहे हुए वाक्य का तो कषायवस्त्र, दण्ड आदि में निषेध के लिए है।

मुखजानामयं धर्मो यद्विष्णोर्लिङ्गधारणम्। राजन्यवैश्ययोर्नेति दत्तात्रेयमुनेर्वचः॥ इति बौधायनोक्तेरिति पक्षान्तरमाह।

क्योंकि बौधायन ने कहा है—विष्णु के लिंग (संन्यास) का धारण करना ब्राह्मणों का यह धर्म है। क्षत्रिय और वैश्य के लिए नहीं है यह दत्तात्रेय मुनि का वचन है। यह पक्षान्तर कहा है।

तत्त्वं तु कुटीचकादिपरमेव तदिति। योऽपि 'संन्यासं पलपैतृकम्' इति कलौ निषेधः सोऽपि त्रिदण्डादिपर इत्युक्तं प्राक्।

तत्त्व तो यह है कि—यह वचन कुटीचक आदि परक ही है। जो भी यह वचन है वह संन्यास और श्राद्ध में मांस का ग्रहण यह कलिवर्ज में पठित होने से कलियुग में निषेध है। वह भी त्रिदण्ड आदि के सम्बन्ध में है—यह पहले कह चुके है।

(संन्यासश्चतुर्धा)

स च संन्यासश्चतुर्धेत्याह हारीतः (१०।१३,१४)—कुटीचको बहूदको हंसश्चैव तृतीयकः।
चतुर्थः परमो हंसो यो यः पश्चात्स उत्तमः॥

और वह संन्यास चार प्रकार का हारीतस्मृति ने कहा है—पहला कुटीचक, दूसरा बहुदक, तीसरा हंस और चतुर्थ परमहंस। इनमें उत्तरोत्तर वाला उत्तम होता है।

आद्यः पुत्रादिना कुटीं कारयित्वा तत्र गृहे वा वसन् काषायवासाः शिखोपवीतत्रिदण्डवान् बन्धुषु स्वगृहे वा भुञ्जान आत्मज्ञो भवेत्। एतदत्यन्ताशक्तपरम्।

इसमें पहला (कुटीचक) पुत्र आदि से कुटी (घर) का निर्माण कराकर उसमें या घर में रहते हुए कषायवस्त्र को धारण कर शिखा, यज्ञोपवीत और त्रिदण्ड को धारण करे। बन्धुओं के घर में या अपने घर में भोजन कर आत्मज्ञानी (स्कन्दपुराणे—कुटीचकश्च संन्यस्य स्वे स्वे सद्मनि नित्यशः। भिक्षामादाय भुञ्जीत स्वबन्धूनां गृहेऽथवा॥ शिखा यज्ञोपवीती स्यात्त्रिदण्डः स कमण्डलुः।) होता है। यह अत्यन्त अशक्तपरक है।

द्वितीयस्तु बन्धून् हित्वा सप्तागाराणि भैक्षं चरन् पूर्वोक्तवेषः स्यात्। हंसस्तु पूर्वोक्तवेषोऽप्येकदण्डः। एकं तु वैणवं दण्डं धारयेन्नित्यमादरात्। इति स्कान्दात्।

दूसरा—बहूदक वह अपने बन्धुओं को त्यागकर सात घरों से भिक्षा को ग्रहण करे और पूर्वोक्त वेष का धारण करे। (स्कन्दपुराणे—सप्तागारे चरेद्भैक्ष्यमेकान्नं तु परित्यजेत्। गौवालरज्जुसंबद्धं त्रिदण्डं शिक्यमुद्धृतम्॥ जलपात्रं पवित्रं च खनित्रीं च कृपाणिकाम्। शिखां यज्ञोपवीतं च देवताराधनं चरेत्।) तीसरा—हंस का तो पूर्वोक्त वेश ही है और दण्ड एक है। स्कन्दपुराण में कहा है—एक ही बांस का दण्ड होता है उसे आदर से नित्य धारण करे। (हंसःकमण्डलुं शिक्यं भिक्षापात्रं तथैव च। कन्थां कौपीनमालाद्यमङ्गवस्त्रं बहिः पटम्॥)

विष्णुरपि—यज्ञोपवीतं दण्डं च वस्त्रं जन्तुनिवारणम्।
तावान् परिग्रहः प्रोक्तो नान्यो हंसपरिग्रहः॥

विष्णु ने भी कहा है—यज्ञोपवीत, दण्ड और जन्तुनिवारण वस्त्र को ही ग्रहण करना कहा है, अन्य वस्तु का हंस को ग्रहण करना नहीं कहा है।

चतुर्थोऽपि स्कान्दे—परहंसस्त्रिदण्डं च रज्जुं गोवालनिर्मिताम्। शिखां यज्ञोपवीतं च नित्यकर्म परित्यजेत्॥ अयमप्येकदण्ड एव। ये तु शिखोपवीतादित्यागनिषेधास्ते कुटीचकादिपराः।

चतुर्थ—परमहंस का भी स्कन्दपुराण में कहा है—त्रिदण्ड, गौ के बाल से निर्मित रज्जु (रस्सी), शिखा, यज्ञोपवीत, नित्यकर्म (सन्ध्यावन्दन गायत्रीजप आदि और कौपीनाच्छादनं वस्त्रं कन्थां शीतनिवारिणीम्। अक्षमालां च गृह्णीयाद् वैष्णवं दण्डमव्रणम्॥ माधूकरमथैकान्नं परमहंसः समाचरेत्॥) यह भी एक दण्डी के लिये है। जो शिखा, यज्ञोपवीत आदि के निषेध हैं वे कुटीचक आदि परक हैं।

यत्तु मेधातिथिः—यावन्न स्युस्त्रयो दण्डास्तावदेकेन वर्तयेत् । इति तदपि तत्परमेव ।

जो मेधातिथि ने कहा है—जब तक तीन दण्ड न हों तबतक एकदण्ड से व्यवहार करे। वह भी एक दण्डी परक ही है।

यच्चात्रिः—चतुर्धा भिक्षवः प्रोक्ताः सर्वे चैव त्रिदण्डिनः। इति, तद्वाग्दण्डादिपरं न यष्टिपरम् ॥

जो अत्रि ने कहा है—चार प्रकार के भिक्षु कहे गये है। वे सब ही त्रिदण्डी होते हैं। वह वाग्दण्ड आदि परक हैं यष्टि (लाठी) परक नहीं है।

वाग्दण्डोऽथ मनोदण्डः कर्मदण्डस्तथैव च । यस्यैते निहिता बुद्धौ स त्रिदण्डीति चोच्यते ॥ इति मनूक्तेः (अ० १२।१०) । तस्मात्परमहंसस्यैकदण्ड एव। सोऽप्यविदुषः । विदुषस्तु सोऽपि नास्ति,

मनु ने कहा है—वाग्दण्ड, मनोदण्ड और कायदण्ड जिसकी बुद्धि में अवस्थित है वही त्रिदण्डी कहा जाता है। (अर्थात्—वाणी, मन और शरीर से निषिद्ध संकल्पव्यापारादि कार्यों को रोकता है वही त्रिदण्डी है। केवल दण्डग्रहण मात्र से त्रिदण्डी नहीं हो सकता है।) इसलिए परमहंस का एक ही दण्ड होता है। वह भी मूर्ख (अर्थात्—अज्ञानी) को है। ज्ञानी को तो वह भी नहीं है।

न दण्डं न शिखां नाच्छादनं चरति परमहंसः । इति महोपनिषदुक्तेः ॥ 'ज्ञानमेवास्य दण्डः' इति वाक्यशेषाच्च ।

महोपनिषद् में कहा है—दण्ड, शिखा, आच्छादन वस्त्र का परमहंस आचरण नहीं करता है। ज्ञान इसका दण्ड है—यह वाक्य शेष है।

(वैराग्यं विना संन्यासे दोषः)

यत्तु यमः—काष्ठदण्डो धृतो येन सर्वाशी ज्ञानवर्जितः । स याति नरकान् घोरान्महारौरवसंज्ञकान् ॥ इति, तद्वैराग्यं विना जीवनार्थसंन्यासपरम् ।

जो यम ने कहा है—जिसने लकड़ी का दण्ड धारण किया है, सब के अन्न का भक्षण किया है और ज्ञान से रहित है वह महारौरव नाम के भयंकर नरकों को जाता है। वह वैराग्य के बिना जीवन के लिए संन्यास ग्रहण करते हैं उनके लिये है।

एकदण्डं समाश्रित्य जीवन्ति बहवो नराः । नरके रौरवे घोरे कर्मत्यागात्पतन्ति ते ॥ इति स्मृतेः ।

स्मृति में कहा है—बहुत से मनुष्य 'एकदण्ड' को ग्रहण कर जीते हैं। अर्थात्—एकदण्ड को स्वीकार कर उसके सहारे अपना उदर पोषण करते हैं। वे लोग कर्म के त्याग से घोर रौरव नामक नरक में गिरते हैं।

(यतेः पूज्यत्वकथनम्)

यच्चाश्वमेधिके—एकदण्डी त्रिदण्डी वा शिखी मुण्डित एव वा । काषायमात्रसारोऽपि यतिः पूज्यो युधिष्ठिर ॥ इति, तस्यापि पूर्वोक्तव्यवस्था ज्ञेया ।

और जो महाभारत के अश्वमेध प्रकरण में कहा है—हे युधिष्ठिर, एकदण्डी, त्रिदण्डी, शिखाधारी और मुण्डी ही केवल काषायवस्त्र को धारण करनेवाला यति भी पूज्य होता है। उसकी भी पूर्व में कही हुई व्यवस्था जानना चाहिये।

(श्राद्धविचारः)

अथ तद्विधिः । बौधायनः—कृत्वा श्राद्धानि सर्वाणि पित्रादिभ्योऽष्टकं पृथक् । वापयित्वा च केशादीन् मार्जयेन्मातृका इमाः ॥ सर्वाणीति स्वस्य नवश्राद्धषोडशश्राद्धादि कृत्वेत्यर्थः ।

अब उसकी विधि को कहता हूँ। बौधायन ने कहा है—सब श्राद्धों को कर पिता आदियों के लिए

अलग अष्टकाश्राद्ध कर केशों का मुण्डन कराकर इन मातृकाओं का मार्जन करे। सर्वाणि का अर्थ है—अपने का नवश्राद्ध, सोलह श्राद्ध[1] आदि को करे—यह अर्थ है।

स्मृत्यर्थसारेऽपि—एकोद्दिष्टविधानेन कुर्याच्छ्राद्धानि षोडश।
अग्निमान् पार्वणेनैव विधिना निर्वपेत्स्वयम्॥ इति।

स्मृत्यर्थसार में भी कहा है—एकोद्दिष्ट विधान से सोलह श्राद्धों को करे। आहिताग्नि (श्रौताधानी) स्वयं पार्वणविधि से ही पिण्डदान करे।

(प्रायश्चित्तकथनम्)

कात्यायनः—कृच्छ्रांस्तु चतुरः कृत्वा पावनार्थमनाश्रमी।
आश्रमी चेत्तप्तकृच्छ्रं तेनासौ योग्यतां व्रजेत्॥

कात्यायन ने कहा है—अनाश्रमी (बिना आश्रम वाला) पवित्रता के लिए चार[2] कृच्छ्रों को करे। आश्रमी हो तो तप्तकृच्छ्र करे। इससे यह योग्यता को प्राप्त हो जाता है।

बौधायनः—'सदैवमार्षकं दिव्यं पित्र्यं मातृकमानुषे। भौतिकं चात्मनश्चान्ते अष्टौ श्राद्धानि निर्वपेत्॥ अत्र क्रममाह हेमाद्रौ शौनकः—'देवश्राद्धे–ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा देवताः। आर्षे–देवर्षि-ब्रह्मर्षिक्षत्रर्षयः, देवर्षिक्षत्रर्षिमनुष्यर्षयो वा। मरीच्यादिऋषय इति संन्यासपद्धतौ। तच्चिन्त्यम्। दिव्ये–वसुरुद्रादित्याः। मानुषे–सनकसनन्दनसनातनाः। भूतश्राद्धे–पृथिव्यादिभूतानि चक्षुरादि-करणानि चतुर्विधो भूतग्रामश्चेति तिस्रः। पित्र्ये–पित्र्यादित्रयो मातामहाश्च। मातृके–मात्रादय-स्तिस्रः। आत्मश्राद्धे—आत्मपितृपितामहा देवताः। आत्मश्राद्धं परमात्मदैवत्यमिति संन्यास-पद्धतौ। तच्चिन्त्यम्। सर्वत्र च नान्दीमुखत्वं विशेषणं ज्ञेयम्। सर्वत्र पिण्डदानम्। युग्मा विप्राः। दक्षक्रतु सत्यवसू वा विश्वेदेवौ। अन्यत्र नान्दीश्राद्धवदिति हेमाद्रिः।

बौधायन ने कहा है—यहाँ पर क्रम शौनक ने हेमाद्रि में कहा है—देवश्राद्ध में—ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर देवता हैं। आर्ष में—देवर्षि, ब्रह्मर्षि और क्षत्रर्षि या देवर्षि, क्षत्रर्षि या मनुष्यऋषि हैं। संन्यास-पद्धति में मरीच्यादि ऋषि कहा है। यह विचारणीय है। दिव्य में—वसु, रुद्र और आदित्य। मानुष में—सनक, सनन्दन और सनातन। भूतश्राद्ध में—पृथिवी आदि भूत, चक्षु आदि करण चार प्रकार और भूतग्राम ये तीन। पिता के श्राद्ध में पित्रादि तीन और मातामह आदि तीन। माता के श्राद्ध में माता आदि तीन। आत्मश्राद्ध में—आत्मा, पितृ पितामह देवता, आत्मश्राद्ध में परमात्मा देवता है यह संन्यासपद्धति में कहा है। यह विचारणीय है। सब जगह नान्दीमुख को विशेष जानना चाहिये। सर्वत्र पिण्डदान होता है। युग्म ब्राह्मण होते हैं। दक्ष-क्रतु या सत्य-वसु विश्वेदेव होते हैं। अन्यत्र नान्दीश्राद्धवत् होता है—यह हेमाद्रि ने कहा है।

१—ब्रह्माण्डपुराणे—अदत्वा दक्षिणां श्राद्धे दास्यामीति यो वदेत्। दिने-दिने भवेद् वृद्धिर्दक्षिणापरिमाणतः॥ तस्मादवश्यं दातव्यमदाता रौरवं व्रजेत्। श्राद्धभुक् श्राद्धकर्तारं सवृद्धिं दक्षिणां ततः॥ एकवारं त्रिवारं वा पृच्छेच्च दिनपञ्चकम्। ततः परं न पृच्छेत्तु कर्तारं हन्ति दक्षिणा। लक्षं लक्षपतिर्दद्यात् दरिद्रस्तु वराटिकाम्। वित्तशाठ्यं न कुर्वीत श्राद्धकाले समाहितः॥ सत्यां संपदि लोभाद्यः श्राद्धं न कुरुते द्विजः। स विज्ञेयो नरपशुर्गार्दभीं योनिमाविशेत्॥ तस्य पङ्क्तौ न भोक्तव्यं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्।

२—'अमुकगोत्रस्यामुकशर्मणो मम करिष्यमाणसंन्यासयोग्यताप्राप्त्यर्थं चतुःकृच्छ्रात्मकं प्रायश्चित्तं मौल्याध्यायपरि-शिष्टोक्तान्यतममानेन प्रत्याम्नायगोनिष्क्रयद्वाराहमाचरिष्ये' इति संकल्प्य—तिलकुशतुलसीयुतं गोचतुष्टयनिष्क्रयद्रव्यं हस्ते-गृहीत्वा मत्संकल्पितकृच्छ्रचतुष्टयात्मकप्रायश्चित्तस्य सिध्यर्थमिदं गोचतुष्टयभूतं द्रव्यं ब्राह्मणेभ्यो दातुमहमुत्सृज्ये—इति लिखित संन्यासपद्धतौ।

(संन्यासग्रहण करने के पूर्व संन्यास-पद्धति के क्रम से अष्टश्राद्ध)

तर्पणं विधाय गृहमागत्य गोमयोपलिप्ते शुचौ देशे वैश्वदेविकब्राह्मणयोर्द्वे आसने प्राङ्मुखे उदङ्संस्थे निधेये। दैवाद्यष्टश्राद्धसम्बन्धिषोडश ब्राह्मणानामुदङ्मुखानि प्रत्यक्संस्थानि षोडशासनानि निधेयानि। ततः स्वयं प्राङ्मुखः स्वासने उपविश्य—'अमुकगोत्रोऽमुकशर्माऽशेषदुःखनिवृत्तिनिरतिशयानन्दप्राप्त्या परमपुरुषार्थप्राप्तये करिष्यमाणपरमहंस-संन्यासाङ्गत्वेनाष्टौ श्राद्धानि सदैवानि पार्वणेन विधिना तन्त्रेण करिष्ये—इति संकल्प्य आसनेषु दर्भानास्तीर्य यथापूर्वं प्राङ्मुखानुदङ्मुखानुपवेश्य प्रार्थयेत्—'संन्यासार्थमहं श्राद्धं कुर्वे ब्रूत द्विजोत्तमाः। अनुज्ञां प्राप्य युष्माकं सिद्धिं प्राप्स्यामि शाश्वतीम्॥ गर्भवासभयाद्भीतस्तथा तापत्रयादिति। गुहां प्रवेष्टुमिच्छामि परं पदमनामयम्॥

❀ ❀
नान्दीमुखान् सनकसनन्दनसनातनानावाहयिष्ये
नान्दीमुख सनक एषतेऽर्घः ❀
सनन्दन एष तेऽर्घः ❀
सनातन एष तेऽर्घः ❀

❀ ❀
नान्दीमुखानात्मनात्मपितृपितामहानावाहयिष्ये
नान्दीमुखआत्मन् एषतेऽर्घः ❀
पितः एष तेऽर्घः ❀
पितामह एष तेऽर्घः ❀

❀ ❀
नान्दीमुखान् वसुरुद्रादित्यानावाहयिष्ये
नान्दीमुखा वसव एषवोऽर्घः ❀
रुद्रा एष वोऽर्घः ❀
आदित्या एष वोऽर्घः ❀

❀ ❀
ना॰दीमुखीर्मातृपितामहीप्रपितामहीरावाहयिष्ये
नान्दीमुखी मातः एषतेऽर्घः ❀
पितामही एष तेऽर्घः ❀
प्रपितामही एष तेऽर्घः ❀

❀ ❀
नान्दीमुखान् देवर्षिब्रह्मर्षिक्षत्रर्षीनावाहयिष्ये
नान्दीमुखादेवर्षय एषवोऽर्घः ❀
ब्रह्मर्षयः एष वोऽर्घः ❀
क्षत्रर्षय एषवोऽर्घः ❀

❀ ❀
नान्दीमुखान् पितृपितामहप्रपितामहानावाहयिष्ये
नान्दीमुख पितः एष तेऽर्घः ❀
पितामह एष तेऽर्घः ❀
प्रपितामह एष तेऽर्घः ❀

(आसन सोलह ब्राह्मणोंके लिए)
❀ ❀
नान्दीमुखान् ब्रह्मविष्णु महेश्वरानावाहयिष्ये— (आवाहन)
नान्दीमुख ब्रह्मन् एषतेऽर्घः ❀
विष्णो एष तेऽर्घः ❀
महेश्वर एष तेऽर्घः ❀
(अर्घपात्राणि)

(आसन ब्राह्मणों के लिए)
❀ ❀
नान्दीमुखान् पृथिव्यादिपञ्चमहाभूतैकादशचक्षुरादिकरणचतुर्विधभूतग्रामानावाहयिष्ये (आवाहन)
नान्दीमुखानि पृथिव्यादिपञ्चमहाभूतानि एष वोऽर्घः ❀
एकादशचक्षुरादिकरणानि एषवोऽर्घः ❀
नान्दीमुखचतुर्विधभूतग्राम एषतेऽर्घः ❀
(अर्घपात्राणि)

(आसन विश्वेदेव के लिए दो ब्राह्मणों के लिए)
❀ ❀
नान्दीमुखान् सत्यवसू विश्वान्देवानावाहयिष्ये — आवाहन
❀ ❀
सत्यवसू विश्वेदेवा एष वोऽर्घः — अर्घपात्र

सत्यवसू विश्वेदेवा गन्धपुष्पधूपदीपयज्ञोपवीतफलवासांसि वो नमः - इति भूमौ जलं क्षिपेत्। — गन्धादिदान

विप्रद्वयमालभ्य—ॐ सत्यवसू विश्वेदेवा इदमन्नं सोपकरणं परिविष्टं परिवेक्ष्यमाणं युग्मब्राह्मणतृप्तिक्षमममृतरूपेण वो नमः। — भोजनपात्र, जलपात्र, घृतपात्र

(ततः प्रथमे पात्रे स ॅ भवात्समवनीयेत्यनेनाद्ये ब्रह्मार्घपात्रे सर्वेषामर्घपात्राणां संस्रवजलं समवनीय तत्पात्रं षोडशानामाद्यस्य दक्षिणपार्श्वे किञ्चिद्दूरे सञ्चरप्रदेशे भूमिमभ्युक्ष्य कुशत्रयं निधाय तस्मिन् 'पितृभ्यः स्थानमसि' इति न्युब्जं निदधाति । तदुपरि स्वाहावाचनीय संककानां साग्राणां प्रादेशमात्राणां कुशत्रयाणां निधानम् । अर्घपवित्राणां विप्रकरे प्रतिपन्नत्वान्नात्र निधानमिति कर्कः । भवतीति हलायुधः ।)

सनकसनन्दनसनातना इमानि गन्ध० वः स्वाहा	वसुरुद्रादित्या इमानि गन्ध० वः स्वाहा ।	देवर्षिब्रह्मर्षिराजर्षय इमानि गन्ध० वः स्वाहा ।	नान्दीमुखा ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा इमानि गन्धपुष्पधूपदीपयज्ञो- (गन्धादिदान) पवीत वासांसि वः स्वाहा ।
नान्दीमुखा आत्मपितृपितामहा इमानि गन्ध० वः स्वाहा ।	नान्दीमुख्यो मातृपितामहीप्रपितामह्य इमानि गन्ध० वः स्वाहा ।	नान्दीमुखाः पितृपितामहप्रपितामहा इमानि गन्ध० वः स्वाहा ।	नान्दीमुखाः पृथिव्यादिपञ्चभूतै-कादशचक्षुरादिकरण चतुर्विधभू- (गन्धादिदान) तग्रामा इमानि गन्ध० वः स्वाहा ।

अञ्जलिं बध्वा प्रार्थयेत्—'मयाचरिताष्टभाद्धाङ्गब्राह्मणार्चनविधौ यन्न्यूनातिरिक्तं तत्परिपूर्णमस्तु । द्विजाग्रपतितानां यवादीनां निरसनम् । ततो देवपूर्वं सर्वेषां ब्राह्मणानामग्रतो चतुरस्रमण्डलकरणम् । नात्र भाजननिधानम् । अग्नौकरणहोमः—ॐ अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा । ॐ सोमाय पितृमते स्वाहा ।

सनकसनन्दनसनातना इदमन्नं० वः स्वाहा ।	वसुरुद्रादित्या इदमन्न० वः स्वाहा ।	देवर्षिब्रह्मर्षिराजर्षय इदमन्नं सोप० वः स्वाहा ।	नान्दी० इदमन्नं सोपकरणं परिविष्टं परिवेक्ष्यमाणं युग्मब्राह्मणतृप्तिक्षममभृतरूपेण वः स्वाहा । (भोजनपात्र जलपात्र घृतपात्र)
आत्मपितृपितामहा इदमन्नं० वः स्वाहा ।	नान्दीमुख्यो मातृपितामहीप्रपितामह्य इदमन्नं वः स्वाहा ।	पितृपितामहप्रपितामहा इदमन्नं० वः स्वाहा ।	पृथिव्यादिपञ्चमहाभूतैकादशचक्षुरादिकरणचतुर्विध भूतग्रामा इदमन्नं० वः स्वाहा । (भोजनपात्र जलपात्र घृतपात्र)

(पिण्डाधारवेदी)

			(अवनेजन पात्र ही बाद में प्रत्यवनेजन हो जाते हैं ।)
चतुर्थरेखायां मूले—नान्दीमुखसनक अवनेनिक्ष्व ।	तृतीयरेखायाम मूले— नान्दीमुखा वसव अवनेनिढ्व्म् ।	द्वितीयरेखायां मूले—नान्दीमुखा देवर्षय अवनेनिढ्वम् ।	प्रथमरेखायां मूले—नान्दीमुख ब्रह्मन् अवनेनिक्ष्व ।
मध्ये—नान्दीमुख सनन्दन अवनेनिक्ष्व ।	मध्ये—नान्दीमुखा रुद्रा अवनेनिढ्वम् ।	मध्ये—नान्दीमुखा ब्रह्मर्षय अवनेनिढ्वम् ।	मध्ये—नान्दीमुख विष्णो अवनेनिक्ष्व ।
अग्रे—नान्दीमुख सनातन अवनेनिक्ष्व ।	अग्रे—नान्दीमुखा आदित्या अवनेनिढ्वम् ।	अग्रे— राजर्षय अवनेनिढ्वम् ।	अग्रे—नान्दीमुख महेश्वर अवनेनिक्ष्व ।

* * *	* * *	* * *	* * * (पिण्डाधार वेदी) (अवनेजन पात्र ही बाद में प्रत्यवनेजन हो जाते हैं)
अष्टमरेखायाम् मूले—नान्दीमुखात्मन्नव-नेनिक्ष्व ।	सप्तमरेखायाम् मूले—नान्दीमुखी मातः अवनेनिक्ष्व ।	षष्ठरेखायाम् मूले—नान्दीमुख पितः अव-नेनिक्ष्व ।	पञ्चमरेखायाम् मूले—नान्दीमुखानि पृथिव्यादि-पञ्चमहाभूतानि अवनेनिग्ध्वम् ।
मध्ये—नान्दीमुख पित अवनेनिक्ष्व ।	मध्ये—नान्दीमुखी पितामही अवनेनिक्ष्व ।	मध्ये—नान्दीमुख पितामह अवनेनिक्ष्व ।	मध्ये— नान्दीमुखान्येकादशचक्षुरादिकरणानि अवनेनिग्ध्वम् ।
अग्रे—नान्दीमुख पितामह अवनेनिक्ष्व !	अग्रे—नान्दीमुखी प्रपितामही अवनेनिक्ष्व ।	अग्रे—नान्दीमुख प्रपितामह अवनेनिक्ष्व ।	अग्रे—नान्दीमुखचतुर्विधभूतग्राम अवनेनिक्ष्व ।

ततो दधिबदराक्षतमिश्रौदनस्य बिल्वफलमात्रं पिण्डं निर्माय दद्यात् । अवनेजनक्रमेण देवतीर्थेन ।

नान्दीमुख सनक एतत्तेऽन्नं स्वाहा ।	नान्दीमुखा वसवः एतद्वोऽन्नं स्वाहा ।	नान्दीमुखा देवर्षयः एतद्वोऽन्नं स्वाहा ।	नान्दीमुख ब्रह्मन् एतत्तेऽन्नं स्वाहा ।
नान्दीमुख सनन्दन एतत्तेऽन्नं० ।	नान्दी० रुद्राः एतद्वोऽन्नं० ।	नान्दीमुखा ब्रह्मर्षयः एतद्वोऽन्नं स्वाहा ।	नान्दीमुख विष्णो एतत्तेऽन्नं स्वाहा ।
नान्दीमुख सनातन एतत्तेऽन्नं० ।	नान्दीमुखाः आदित्या एतद्वोऽन्नं० ।	नान्दीमुखा राजर्षयः एतद्वोऽन्नं स्वाहा ।	नान्दीमुख महेश्वर एतत्तेऽन्नं स्वाहा ।
			नान्दीमुखानि पृथिव्यादिपञ्चमहाभूतानि एतद्वोऽन्नं स्वाहा ।
नान्दीमुख आत्मन्नेतत्तेऽन्नं स्वाहा ।	नान्दीमुखी मातः एतत्तेऽन्नं स्वाहा ।	नान्दीमुख पितः एतत्तेऽन्नं स्वाहा ।	नान्दीमुखानि एकादशचक्षुरादिकरणानि एतद्वोऽन्नं स्वाहा ।
नान्दीमुख पितः एतत्तेऽन्नं० ।	नान्दी० पितामहि एतत्तेऽन्नं स्वाहा ।	नान्दीमुख पितामह एतत्तेऽन्नं स्वाहा ।	
नान्दीमुख पितामह एतत्तेऽन्नं० ।	नान्दी० प्रपितामहि एतत्तेऽन्नं स्वाहा ।	नान्दीमुख प्रपितामह एतत्तेऽन्नं स्वाहा ।	नान्दीमुख चतुर्विधभूतग्राम एतत्तेऽन्नं स्वाहा ।

(ततः लेपभागभुजस्तृप्यन्तु । 'अत्र पितर' इत्युक्त्वा 'अमीमदन्तेति सस्वरं जपः । पूर्ववदुदपात्रेण देवतीर्थेन यथाक्रमं प्रतिपिण्डोपरि प्रत्यवनेजनम् । नीवीविस्रंसनम् । 'ॐ नमो वः पितरो रसाय' इत्यादिक्रमेण पद्धत्योक्तप्रकारेण कथयित्वा 'गृहान्न' इति सस्वरजपः । 'एतद्वः पितरो वासः' इति मन्त्रेण प्रतिपिण्डं त्रयाणां त्रयाणां सूत्राणां दानम् । पिण्डान् सम्पूज्य—कुशयवजलान्यादाय—'नान्दीमुखेभ्यो ब्रह्मादिभ्यः इमानि गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यद्राक्षामलकार्द्रकमूलयवपूगफलताम्बूलानि स्वाहा । ततोऽञ्जलिं बध्वा मयाचरिते पिण्डार्चनविधौ यन्न्यूनातिरिक्तं तत्परिपूर्णमस्तु । ततः पुष्पाक्षतानर्घ्योदकं च दद्यात् ।)

नान्दीमुखा मनुष्याः प्रीयन्ताम् ।	नान्दीमुखाः दिव्याः प्रीयन्ताम् ।	नान्दीमुखा ऋषयः प्रीयन्ताम् ।	नान्दीमुखाः देवाः प्रीयन्ताम् ।
नान्दीमुखा आत्मनः प्रीयन्ताम् ।	नान्दीमुख्यो मातरः प्रीयन्ताम् ।	नान्दीमुखाः पितरः प्रीयन्ताम् ।	नान्दीमुखानि भूतानि प्रीयन्ताम् ।

(तत आशिषः प्रार्थनम् । 'ऊर्जं वहन्ति' इति मन्त्रेण जलादिधारां दद्यात् । न्युब्जमर्घपात्रमुत्तानं कृत्वा दक्षिणां दद्यात् । पिण्डान् नमस्कृत्य पिण्डोद्धरणम् । अवघ्राणम् । विश्वेदेवाः प्रीयन्ताम् । प्रार्थना—अद्य मे सफलं जन्म भवत्पादाब्जदर्शनात् । अद्य मे सफलोच्छ्रितिर्दुस्तराद् भवसागरात् ।। पत्रशाकादिदानेन क्लेशितायूयमीदृशाः । तत्क्लेशजातं चित्तात्तु विस्मृत्य क्षन्तुमर्हथ ।। ततः—'मया करिष्यमाणसंन्यासाङ्गभूतान्येतानि दैवादीनि सदैवानि पार्वणविधिनाष्टौ श्राद्धानि कृतानि तन्मध्ये यन्न्यूनातिरिक्तो यो विधिः सः ब्राह्मणवचनाच्छ्रीमद्विश्वेश्वरप्रसादात् परिपूर्णोऽस्तु । ततः षोडशब्राह्मणानां यथाक्रमं कुशाग्रेण संस्पृशन् 'वाजे वाजे' इति मन्त्रेण प्रतिविप्रं विसृज्य अनेनैव क्रमेण वैश्वदेविकयोर्विसर्जयेत् । ततो ब्राह्मणानग्रतः कृत्वा 'आमा वाजस्य' इति सकृदेवमन्त्रेण सीमान्तमनुगमनम् । ततः प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कृत्य चोपविश्य प्रार्थयेत्—संन्यासार्थं मया श्राद्धं कृतमेतत् द्विजोत्तमाः । अनुज्ञां प्राप्य युष्माकं सिद्धिं प्राप्स्यामि शाश्वतीम् ।। गर्भजन्मजराभीतः सन्तापत्रयतस्तथा । गुहां प्रवेष्टुमिच्छामि परंपदमनामयम् ।। इति ।)

स्मृत्यर्थसारे—केशश्मश्रुलोमनखान् वापयित्वोपकल्पयेत् । दण्डं जलं पवित्रं च शिक्यं पात्रं कमण्डलुम् ॥ आसनं कौपीनमाच्छादनं कन्थां पादुके इति दशपञ्च वा । एतच्च पूर्वेद्युर्नान्दीमुखं कृत्वा परेद्युः पुण्याहवाचनं कृत्वा कार्यमिति शौनकः ।

स्मृत्यर्थसार ने कहा है—केश, श्मश्रु (दाढ़ी, मूँछ), लोम (बाल), नख को कटवाकर दण्ड, पवित्र जल, शिक्य (छीका), कमण्डलु पात्र, आसन, कौपीन (लंगोटी), आच्छादन, कन्था (कथरी), खडाऊ ये दश या पाँच को धारण करे। यह पहले दिन नान्दीश्राद्ध को कर दूसरे दिन पुण्याहवाचन को करे—यह शौनक ने कहा है।

बौधायनः—त्रीन् दण्डानङ्गुलीस्थूलान् वैणवान्मूर्ध्नि सम्मितान् । एकादश नव द्वित्रिचतुः सप्तान्यपर्वकान् ॥ वेष्टकान् कृष्णगोवालरज्ज्वा तु चतुरङ्गुलान् । एको वा तादृशो दण्डो गोबालसदृशो भवेत् ॥ अनग्निरग्निमुत्पाद्य नित्येन विधिना ततः । पृष्टोदिविविधानेनेत्यर्थः ।

बौधायन ने कहा है—अङ्गुलियों से सदृश स्थूल मस्तक पर्यन्त बांस के तीन दण्ड रखे। जिसमें ग्यारह, नौ, दो, तीन या सात पर्व (ग्रन्थि) हों और काली गौ के बालों की रस्सी से चार अंगुल या एक अंगुल का वेष्टन हो वैसा दण्ड गोबाल सदृश होता है। जो अनग्निक है वह अग्नि का उत्पादन नित्य विधान से करे। अर्थात्—'पृष्टो दिवि'[1] विधान से करे—यह अर्थ है।

स्वाग्नावेवाग्निमान्कुर्यादपवर्गोक्तमादितः । आज्यं पयो दधीत्येतत्त्रिवृद्वा जलमेव वा ॥ ॐ-भूरित्यादिना प्राश्य रात्रिं चोपवसेत्ततः । अथादित्यास्तमयात् पूर्वमग्नीन्विहृत्य सः ॥ आज्यमग्नौ गार्हपत्ये संस्कृत्यैतेन च स्रुचा । पूर्णयाहवनीये तु जुहुयात्प्रणवेन तत् ॥

अग्निहोत्री अपनी ही अग्नि में आदि में कहे हुए अपवर्ग में कहे हुए को (मोक्ष) करे। घृत, दूध और दधि ये तीनों या जल से ही 'ॐ भूः' इत्यादि से प्राशन कर रात में उपवास करे। फिर सूर्य के अस्त हो जाने से पूर्व वह (अग्निहोत्री) अग्नियों को स्थापनकर गार्हपत्यकुण्डाग्नि में आज्य का संस्कारकर घृत से भरी स्रुचि से आहवनीयकुण्ड में प्रणव से हवन करे।

ब्रह्मान्वाधानमेतत्स्यादग्निहोत्रे हुते ततः । संस्तीर्य गार्हपत्यस्य दर्भानुत्तरतोऽत्र तु ॥ पात्राण्यासाद्य दर्भेषु ब्रह्मायतन एव तु । जागृयाद्रात्रिमेतां तु यावद्ब्राह्मो मुहूर्तकः ॥

फिर यह [2]ब्रह्मान्वाधान है। अग्निहोत्र में हवन करने पर गार्हपत्य के कुण्ड के उत्तरोत्तर कुशाओं का आस्तरण कर कुशाओं में पात्रों का आस्तरण करे वही ब्रह्मा का स्थान है। जबतक ब्राह्ममुहूर्त है तबतक उस रात में जागरण करे।

अग्निहोत्रं स्वकाले तु हुत्वा प्रातस्तनं ततः । इष्टिं वैश्वानरीं कुर्यात्प्राजापत्यामथापि वा ॥

अपने समय में ही अग्निहोत्र का प्रातःकाल हवन करे वैश्वानरी[3] इष्टि या प्रजापति[4] इष्टि करे।

१—यद्देवा देवहेडनं देवासश्च कृमा वयम् । अग्निर्मातस्मादेनसो विश्वान् मुञ्चत्व ँ् हसः ॥ यदि दिवा यदिनक्तमेना ँ् सि च कृमा वयम् । वायुर्मा तस्मादेनसो विश्वान् मुञ्चत्व ँ् हसः ॥ यदि जाग्रद्यदिस्वप्न एना ँ् सि च कमा वयम् । सूर्यो मातस्मादेनसो विश्वान् मुञ्चत्व ँ् हसः ॥ (यजु० य० २०।म० १४–१६)। विशेष तैत्तरीयारण्यक दूसरे प्रपाठक में देखिये।

२—संस्कारभास्करे—भूरादिनवस्तु स्विष्टकृत्याज्यभागयोः । आघारयोश्च विहितः सोऽन्वारंभः वुशेन वै ॥

३—वैश्वानर– पार्जन्येष्टिः– सवृत्तिकात्यायनश्रौतसूत्र पृ० १७८ चातुर्मास्यनिरूपणे—'वैश्वानर-पर्जन्यौ निरूप्येत्कन् । अ० ५।क० १।सू० २ ।

४—धर्मसिन्धौ—संन्यासपूर्वाङ्गतयाप्राजापत्येष्ट्या वैश्वानर्येष्ट्या च समानतन्त्रया यक्ष्ये । इति सङ्कल्प्य समुच्चयेनेष्टिद्वयम् । अत्र वैश्वानरो द्वादशकपालः पुरोडशः । प्राजापत्यश्चरुर्वैष्णवो नवकपालः पुरोडाशः । अथवा केवलप्राजापत्येष्टिः । अत्र प्रयोगः स्वस्वसूत्रानुसारेणोह्यः ।

जाबालोपनिषदि—तद्धैके प्राजापत्यामेवेष्टिं कुर्वन्ति तदु तथा न कुर्यादाग्नेयीमेव कुर्यात्पश्चात् त्रैधातवीयामेव कुर्यात् इत्युक्तम् । तेनात्र विकल्पः ।

जाबालोपनिषद् में कहा है—कोई प्राजापति इष्टि को करते हैं। उसको न करे आग्नेयीइष्टि को ही करे—बाद में 'त्रैधातवी'[1] इष्टि को ही करे—ऐसा कहा है। इससे विकल्प है।

आवसथ्यः
पू०
सभ्यः
आहवनीयः
उ०
द०
प्रणीतास्थानम्
उत्करः
यजतिस्थानम्
प०
गार्हपत्यः
दक्षिणाग्निः

विशेष बात—सवृत्तिकात्यायनश्रौतसूत्र पृ० ८६, ८७ की टिप्पणी देखिए। इस यज्ञ की महत्त्वपूर्ण जानकारी कात्यायनश्रौतसूत्र की भूमिका श्रीपूज्य पिता जी (स्वर्गीय महामहोपाध्याय श्रीपं० विद्याधरजी गौड) की देखिये।

अत्राहुः—त्रेताग्नेः प्राजापत्या, तद्वाक्यशेषेऽग्नीनिति बहुत्वश्रुतेः, एकाग्नेस्त्वाग्नेयी इति। अनाहिताग्नेरिष्टिस्थाने वैश्वानर आग्नेयो वा चरुरिति माधवः।

यहाँ पर कोई कहते हैं—अग्निहोत्री (जिसके पास तीन अग्नि हैं) प्राजापति इष्टि करे। क्योंकि उसके वाक्य शेष से 'अग्नीन्' यह बहुत्व सुना गया है। एक अग्निवाला (स्मार्ताग्नि) आग्नेयो इष्टि करे। माधव ने कहा है—अनाहिताग्नि (जो अग्निहोत्री नहीं है) को इष्टि स्थान में वैश्वानर या आग्नेयचरु होता है।

कात्यायनः—आत्मन्यग्नीन्समारोप्य वेदिमध्यस्थितो हरिम्।
ध्यात्वा हृदि त्वनुज्ञातो गुरुणा प्रषमीरयेत् ॥

कात्यायन ने कहा है—आत्मा में अग्नियों का आरोप कर वेदी के मध्य में स्थित हरि को हृदय में ध्यान कर गुरु की आज्ञा से प्रैष (मन्त्र का उच्चारण करे।) को करे।

१—सवृत्तिकात्यायनश्रौतसूत्र पृ० ७४ राजसूयनिरूपणे 'त्रैतातव्युदवसानीया' अ० १५। क० ७ सू० २६ में कहा है।

कपिलः—विधिवत्प्रैषमुक्त्वाऽथ त्रिरुपांशु त्रिरुच्चकैः। अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहेत्यपो भुवि॥ निनीय दण्डशिक्यादि गृहीत्वाऽथ बहिर्व्रजेत्॥ (अभयमिति मन्त्रेणापां पूर्णमञ्जलिं निनीयेत्यर्थः।)

कपिल ने कहा है—अनन्तर विधिवत्प्रैष को कहकर तीन बार उपांशु और तीन बार उच्चस्वर से कहे—'अभयं[1] सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहा—सब प्राणियों से मुझको अभय करो—यों कहकर भूमि में जल को गिरा कर दण्ड, शिक्य आदि ग्रहण कर बाहर चला जाय। 'अभयम्'[2] इस मन्त्र से जल से अञ्जलि को पूर्ण कर गिरा दे—यह अर्थ है।

बौधायनः—सखे मेत्यादिना दण्डं येन देवाः पवित्रकम्। यदस्य पारे शिक्यं तु पात्रं व्याहृतिभिस्तथा॥ युवा सुवासाः कौपीनं गृहीत्वा बान्धवांस्त्यजेत्।

बौधायन ने कहा है—सखे[3] मे—इत्यादि से दण्ड, येन [4]देवाः—इस मन्त्र से पवित्री, यदस्य[5] पारे—इस मन्त्र से शिक्य, व्याहृतियों से पात्र, युवा [6]सुवासा—इस मन्त्र से कौपीन को ग्रहण कर बान्धवों को त्याग करे।

(संन्यासग्रहणक्रमः)

अथ क्रमः। तत्र संन्यासेऽधिकारसिद्ध्यर्थं स्वस्य नवश्राद्धषोडशश्राद्धसपिण्डनानि साग्निः पार्वणान्यनग्निस्त्वेकोद्दिष्टविधिना कृत्वाऽनाश्रमी चेत्कृच्छ्रचतुष्टयम्, अन्यस्तु तप्तकृच्छ्रं कृत्वोदगयने एकादश्यां द्वादश्यां वा साग्निरमावास्यायां पौर्णमास्यां चतुर्दश्यां वा यथापर्वणि प्राजापत्यं स्यात्। तत्र देशकालौ स्मृत्वा—परमहंसादिसंन्यासग्रहणं करिष्य इति संकल्प्य गणेशं सम्पूज्य पुण्याहं वाचयित्वा मातृकापूजां वृद्धिश्राद्धं च कृत्वाऽस्तमयात्प्रागौपासनं समिध्याहिताग्निस्तु गार्हपत्यां विधुरोऽग्निहोत्री तु त्रिकाण्डमण्डनोक्तदिशा कुशपत्न्या सह पवमानेष्ट्यन्तं पूर्णाहुत्यन्तं वाधानं कुर्यात्। ब्रह्मचारी चेल्लौकिके विधुरश्चे द्व्याहृतिभिः प्रणवेन चाग्निमाधायान्वग्निरुषसामित्यानीय पृष्टोदिवीति निधाय तेनैव समिध्य तत्सवितुः, तां सवितुः, विश्वानि देव, इति तिस्रः समिधोऽभ्यादध्यात्। एवमग्नौ सिद्धे कक्षोपस्थवर्जं वपनं कृत्वा पयोदधियुतमाज्यमपो वा—ॐ भूः सावित्रीं प्रविशामि 'ॐ तत्सवितुर्वरेण्यम् इति प्राश्याचम्य पुनरादाय 'ॐ भुवः सावित्रीं प्रविशामि ॐ भर्गो देवस्य धीमहि इति द्वितीयम्, ॐ स्वः सावित्रीं प्रविशामि 'ॐ धियो यो नः प्रचोदयात्' इति तृतीयम्, समस्तया चतुर्थम्—ॐ भूर्भुवः स्वः सावित्रीं प्रविशामि ॐ तत्सवितु० यात्—इति।

१—'अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहा' इति प्राच्यां दिशि अपां पूर्णाञ्जलिं क्षिप्त्वा शिरसि स्थापितकेशानुत्पाट्य यज्ञोपवीतमप्युद्धृत्यैकीकृत्य करे गृहीत्वा 'वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्वाः। ते ब्रह्मलोके तुपरान्तकाले परामृतात्परिमुच्यन्तु सर्वे। ॐ आपो वै सर्वा देवताः सर्वाभ्यो देवताभ्यो जुहोमि। 'ॐ भूः स्वाहा इत्यप्सु जलैः सह हुत्वा प्रार्थयेत्—इत्यादि लिखितसंन्यासपद्धतौ विशेषः।

२—अभयं ते न क्षीयते वसव्यं दिवेदिवे जायमानस्य दस्म। कृधि क्षुमन्तं जरितारमग्ने कृधि पतिं स्वपत्यस्य रायः। (२।८।५)।

३—'ॐ सखे मां गोपायौजः सखायोऽसि' इति मन्त्रः।

४—येन देवाः पवित्रेण आत्मानं पुनते सदा। तेन सहस्रधारेण पावमान्यः पुनान्तु मा। (तैत्त० ब्रा० १। ४।८।६)।

५—यदस्य पारे रजसः शुक्रं ज्योतिरजायत। तं नः पर्षदति द्विषोऽग्ने वैश्वानर स्वाहा॥ (तैत्तरीय सं० ४।२।५।६)।

६—युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः। तं धीरा सः कवय उन्नयन्ति स्वाधियो मनसा देवयन्तः॥ (तै० ब्रा० पृ० ६६०, ऋ० ३।८।४)।

अब क्रम को कहते हैं—उस संन्यास में अधिकार की सिद्धि के लिए अपना नवश्राद्ध, सोलह श्राद्ध और सपिण्डन को साग्निक पार्वणविधि से तथा निरग्निक एकोद्दिष्टविधि से कर, अनाश्रमी हो तो चार कृच्छ्र, अन्य तो 'तप्तकृच्छ्र'[1] कर उत्तरायण की एकादशी या द्वादशीतिथि में, साग्निक अमावास्या, पूर्णिमा या चतुर्दशी को पर्व में प्राजापत्य करे। वहाँ पर—देशकाल का स्मरण कर 'परम[2]हंसादिसंन्यासग्रहणं करिष्ये' इसप्रकार संकल्प कर गणेश का अर्चन कर पुण्याहवाचन कराकर षोडशमातृकापूजन और वृद्धिश्राद्ध को कर सूर्यास्त के पूर्व औपासन अग्नि को प्रदीप्त कर आहिताग्नि तो गार्हपत्य, विधुर अग्निहोत्री तो त्रिकाण्डमण्डन में कही हुई कुशपत्नी के साथ पावमानेष्टिपर्यन्त या पूर्णाहुतिपर्यन्त तक आधान करे। ब्रह्मचारी तो लौकिक अग्नि में विधुर व्याहृतियों से और प्रणव (ओंकार) से अग्नि का स्थापन कर 'अन्वग्निरुषसाम[3]' इस मन्त्र से ले आकर 'पृष्ठो दिवि' इस मन्त्रों से स्थापन कर उसी से ही प्रज्वलित कर 'तत्सवितुः[4]' 'तां सवितुः[5]' और विश्वानि[6] देव—इन तीन मन्त्रोंसे समिधाओं को रखे। इसप्रकार अग्निके सिद्ध हो जाने पर कक्ष (कांख), और उपस्थ (लिंग) को त्याग कर मुण्डन कर दूध और दही से युक्त आज्य या जल से 'ॐ भूः सावित्रीं प्रविशामि तत्सवितुर्वरेण्यम्—इस मन्त्र से प्राशन और आचमन कर फिर से ग्रहण करे—'ॐ भुवः सावित्रीं प्रविशामि भर्गो देवस्य धीमहि—इस मन्त्र से दूसरी बार, 'ॐ स्वः सावित्रीं प्रविशामि धियो यो नः प्रचोदयात्' इस मन्त्र से तीसरी बार फिर समस्त से चतुर्थ बार ॐ भूर्भुवः स्वः सावित्रीं प्रविशामि—तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्—इस मन्त्र से प्राशन करे। (लिखितपद्धति में—ॐ परोरजसे सावदोम्' इसका जप करे।)

संन्यासपद्धतौ तु त्रिवृदसीति प्रथमं, प्रवृदसीति द्वितीयम्, विवृदसीति तृतीयं, प्राश्यापः पुनन्त्विति जलं प्राश्य सावित्रीप्रवेश उक्तः। तत आहवनीयं विहृत्य ब्रह्माणमुपवेश्याज्यं संस्कृत्य चतुर्द्वादश वा गृहीत्वा समित्पूर्वम्—'ॐ स्वाहा' परमात्मन इदम् इति हुत्वोपवसेत्। (इदं ब्रह्मान्वाधानम्।) ततः सायंहोमं वैश्वदेवं च कृत्वा अग्नेरुदक्कुशानास्तीर्य दण्डादीनि दश पञ्च वाऽऽसाद्य ब्रह्मासने कृष्णाजिनोपविष्टो रात्रौ जागरं कृत्वा प्रातर्होमानन्तरं प्राजापत्यां वैश्वानरीं वा कृत्वा ऋत्विग्भ्यः सर्वस्वं ब्रह्मणे च मधुपूर्णं तैजसपात्रं दत्वा दारुपात्राण्याहवनीयेऽश्म-

---

१—मनुः—तप्तकृच्छ्रं चरन् विप्रो जलक्षीरघृतानिलान्। प्रतित्र्यहं पिबेदुष्णान् सकृत् स्नायी समाहितः॥ जलादिपरिमाणमुक्तं ब्रह्मपुराणे—तप्तकृच्छ्रव्रतं कुर्वंस्त्र्यहं सा यं पिबेच्छुचिः। षट्पलानि सुतप्तस्य तोयस्य सुसमाहितः। प्रभाते ऽपि दुग्धस्य सुतप्तस्य पिबेत्त्र्यहम्। पानं घृतस्य तप्तस्य मध्याह्ने त्रिदिनं पिबेत्। वायुभक्षस्त्र्यहं चान्त्यं निर्दहेत् पातकं द्विजः॥ याज्ञवल्क्यः—तप्तक्षीरघृताम्बुनामेकैकं प्रत्यहं पिबेत्। एकरात्रोपवासश्च तप्तकृच्छ्रस्तु पावनः॥ एतच्चतुरहसाध्यम्।

२—अशेषदुःखनिवृत्तिनिरतिशयानन्दप्राप्तिपरमपुरुषार्थप्राप्तये परमहंसाख्यसंन्यासं करिष्ये। तदङ्गतया गणपतिपूजनपुण्याहवाचनमातृकापूजननान्दीश्राद्धानिकरिष्ये—इति धर्मसिन्धौ।

३—अन्वग्निरुषसामग्रमक्ख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः। अनुसूर्यस्य पुरुत्रा च रश्मीननु द्यावा पृथिवीऽआततन्थ॥ (यजु० सं० ११।१७।) (मैत्रायणीसंहिता—१।८।६।,, १२८।११,, ३।१।४,, ५।१,, (अथर्ववेद—७।८२।४ ए, १८।१।२७ ए, तै० सं० ४, १, २, १,, ५।१।२।५,, काठकसंहिता—१६।२,, १६।३०, कौशिकसूत्र अथर्ववेद—६।३।३।६। तैत्तरीयब्राह्मण—१।२।१।२३, आपस्तंबश्रौतसूत्र—६।१।११,, ७।६,, ६।१,, १६।२।८,, मानवश्रौतसूत्र ३।३।६,, ६।१।१,, शतपथब्राह्मण ६।३।३।६।

४—तत् सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम्। श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि १ (ऋ० ५।८२।१। तै० आ० १।५।६।४)।

५—ता ँ सवितुर्वरेण्यस्य चित्रामाऽहं वृणे सुमतिं विश्वजन्याम्। यामस्य कण्वो अदुहत् प्रपीना ँ सहस्रधारां पयसा महीं गाम्॥ (तैत्त० स० ४।६।१३ पृ० १८६)।

६—विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद् भद्रं तन्न आसुव॥ (ऋ० ५।८२।५। यजु० ३०।३। तै० ब्रा० २।४।६।३। तै० आ० १०।१०।२)।

मृन्मयानि च जले क्षिपेत्। कृष्णाजिनं त्वाददीत। अनाहिताग्निस्तु वैश्वानरमाग्नेयं वा चरुं हुत्वा पात्राण्यग्नौ क्षिप्त्वा भूर्भुवः स्वरित्यपः स्पृष्ट्वा 'तरत्स मन्दी' इति सूक्तं जप्त्वा विप्रान् संभोज्य पुण्याहं वाचयित्वा अत्र वा वपनं कृत्वा हैमरूप्यकुशजलैः स्नात्वा पुरुषाय चरुं कृत्वा प्राणाय स्वाहेति पञ्चाज्याहुतीर्हुत्वा पुरुषसूक्तेन प्रत्यृचमाज्यं चरुं च जुहुयात्।

संन्यासपद्धति में तो कहा है—"त्रिवृदसि[1]" इस मन्त्र से प्रथम बार, प्रवृदसि—इस मन्त्र से दूसरी बार, त्रिवृदसि—इस मन्त्र से तीसरी बार प्राशन कर 'आपः पुनन्तु[3]' इस मन्त्र से जल का प्राशन[4] कर सावित्री (गायत्री) का प्रवेश कहा है। तदनन्तर आहवनीयकुण्ड की अग्नि को ले आकर ब्राह्मण को बैठाकर घी का संस्कार कर चार बार या बारह बार ग्रहण कर समित्पूर्वक 'ॐ स्वाहा'—परमात्मन इदम्—इससे हवन कर बैठे। (यह ब्रह्मणान्वाधान है।) तदनन्तर सायंकालीन हवन और वैश्वदेव को कर अग्नि के उत्तरदिशा में कुशाओं को बिछाकर दण्ड आदि दश या पांच का स्थापन कर ब्रह्मा के आसन में कृष्णाजिन में बैठकर रात्रि में जागरण कर प्रातःकाल होम के बाद प्राजापत्य या वैश्वानरी इष्टि को कर ऋत्विजों के लिए सर्वस्व और ब्रह्मा के लिए सहत भरा तैजसपात्र को देकर लकड़ी के पात्रों को आहवनीय कुण्ड में पत्थर और मट्टी के पात्रों को जल में प्रक्षेप करे। कृष्णाजिन को तो धारण करे; अनाहिताग्नि तो वैश्वानर या आग्नेयचरु से हवन कर पात्रों को अग्नि में गिराकर 'भूर्भुवः स्वः, इससे जल का स्पर्श कर 'तरत्समन्दी[5]' इस सूक्त का जपकर ब्राह्मणों को भोजन कराकर पुण्याहवाचनकरा कर या यहाँ पर मुण्डन कराकर सुवर्ण, चाँदी कुश जलोंसे स्नान कर पुरुष के लिए चरु को कर 'प्राणाय[6] स्वाहा'—इत्यादि मन्त्र से पाँच बार आहुतियों से हवन कर पुरुषसूक्त के प्रत्येक ऋचा से आज्य और चरु से हवन करे।

(अत्र विरजाहोमं केचिदिच्छन्ति)

अत्र विरजाहोमं केचिदाहुः। यथोक्तं शिवगीतासु (अ० ३ श्लो० २७-३०)—जुहुयाद्विरजामन्त्रैः प्राणापानादिभिस्ततः। अनुवाकं तमेकाग्रं समिदाज्यचरून्पृथक्॥ आत्मन्यग्निं समारोप्य या ते अग्नेति मन्त्रतः। भस्मादायाग्निरित्याद्यैर्विमृज्याङ्गानि संस्पृशेत्॥ पापैर्विमुच्यते नित्यं मुच्यते नात्र संशयः।

१—त्रिवृदसि त्रिवृते त्वा प्रवृदसि प्रवृते त्वा विवृदसि विवृते त्वा सवृदसि सवृते त्वा क्रमोस्या क्रमाय त्वा संक्रमोऽसि संक्रमायत्वोत्वोमोस्युत्क्रमायत्वोत्क्रान्तिरस्युत्क्रान्त्यै त्वाधिपतिर्मार्जोर्जञ्जिन्व॥ (यजुर्वेद अ० १५।६)।

२—इसके पूर्व विशेष धर्मसिन्धु और लिखित संन्यासपद्धति में जप लिखा है—ब्रह्मणे नमः १ विष्णवे नमः २ रुद्राय नमः ३ सूर्याय नमः ४ सोमाय नमः ५ आत्मने नमः ६ अन्तरात्मने नमः ७ परमात्मने नमः ८ अग्निमीडे पुरोहितम्—इषे त्वोर्जे त्वा, अग्न आयाहि, शन्नो देवी इन मन्त्रों का जपकर सत्तु (पिष्टं) मुष्टित्रयं प्रणवेन त्रिः प्राश्य नाभिमालभेत्—आत्मने स्वाहा १ अन्तरात्मने स्वाहा २ परमात्मने स्वाहा ३ प्रजापतये स्वाहा ४।

३—आपः पुनन्तु पृथिवीं पृथ्वी पूता पुनातु माम्। पुनन्तु ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्मपूता पुनातु माम्। यदुच्छिष्टमभोज्यं च यद्वादुश्चरितं मम सर्वं पुनन्तु मामापो सतां च प्रतिग्रहं स्वाहा॥ तदनन्तर लिखित संन्यासपद्धति में विशेष कहा है—आचम्य 'उपवासं करिष्ये' इति संकल्प्य किमपि न प्राश्नीयात्। अशक्तश्चेद् दुग्धादिनात्मानं गोपायेत्।

४—व्याहृतीः प्रणवेन प्रवेशयेत्—ॐ भूः प्रणवेन प्रविशामि। भुवः प्र०। स्वः प्र०। ॐ भूर्भुवः स्वः प्र०। इति प्रणवे प्रवेश्य प्रणवस्वरूपमात्मानं ध्यात्वा।

५—तरत् स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः। तरत् स मन्दी धावति॥ उस्रा वेद वसूनां मर्तस्य देव्यवसः। तरत् स मन्दी धावति॥ ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योरा सहस्राणि पद्महे। तरत् स मन्दी धावति॥ आ ययोस्त्रिंशतं तना सहस्राणि च पद्महे। तरत् स मन्दी धावति॥ (ऋ० म० ९।१-४)।

६—अन्वारब्धः—प्रधानाहुतीर्जुहुयात्—प्राणादिपञ्चमन्त्रैः समिच्चर्वाज्यानि प्रतिद्रव्यं सकृत् सकृत्—ॐ प्राणाय स्वाहा—इदं प्राणाय न मम। ॐ अपानाय स्वाहा—इदमपानाय०। ॐ व्यानाय स्वाहा—इदं व्यानाय०। ॐ उदानाय स्वाहा—इदमुदानाय०। ॐ समानाय स्वाहा—इदं समानाय०।

यहाँ पर कोई विरजाहोम[1] को कहते हैं। इसको शिवगीता में कहा है—तदनन्तर प्राणापान आदि विरजा मन्त्रों से एकाग्र स्वस्थचित्त हो समिधा, आज्य और चरु से अलग अलग अनुवाक की समाप्ति तक हवन करे। आत्मा में अग्नियों का 'या ते[2] अग्ने' इस मन्त्र से समारोप करे। तदनन्तर हुत अग्नि की भस्म को ग्रहण कर 'अग्नि[3]' इत्यादि मन्त्रों से अभिमन्त्रण कर उस भस्म से अंगों में (ललाटादि में) स्पर्श करे। अर्थात्—उनमें भस्म धारण करे। इससे पापों से मुक्ति मिल जाती है इसमें सन्देह नहीं है।

यथा नारायणोपनिषदि—ॐ प्राणापानव्यानोदानसमाना मे शुध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासँ स्वाहा १ सर्वत्र लिङ्गोक्तदेवताभ्य इदमिति त्यागः। ॐ वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्र-जिह्वाघ्राणरेतोबुद्ध्याकूतिसङ्कल्पा मे शुध्यन्तां ज्योतिः० २ त्वक्चर्ममांसरुधिरमेदोमज्जास्नायवो-ऽस्थीनि मे शुध्यन्तां ज्योति० ४ ॐ शिरःपाणिपादपार्श्वपृष्ठोरूदरजङ्घाशिश्नोपस्थपायवो मे शुध्यन्तां ज्योति० ४ ॐ उत्तिष्ठ पुरुष हरितपिङ्गललोहिताक्षि देहि देहि ददापयिता मे शुध्यन्तां ज्योति० ५ ॐ पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशो मे शुध्यन्तां ज्योति० ६ शब्दस्पर्शरूपरसगन्धा मे शुध्यन्तां ज्योति० ७ मनोवाक्कायकर्माणि मे शुध्यन्तां ज्योति० ८ अव्यक्तभावैरहङ्कारैर्ज्योतिरहं मे शुध्यन्तां ज्योति० ९ आत्मा मे शुध्यन्तां ज्योति० १० अन्तरात्मा मे शुध्यन्तां ज्योति० ११ परमात्मा मे शुध्यन्तां ज्योति० १२ क्षुधे स्वाहा इदं क्षुते न मम १३ ॐ क्षुत्पिपासाय स्वाहा इदं क्षुत्पिपासाय० १४ ॐ विविट्यै स्वाहा इदं विविट्यै न मम १५ ॐ ऋग्विधानाय स्वाहा इदं ऋग्विधानाय० १६ ॐ कषोत्काय स्वाहा इदं कषोत्काय० १७।

जैसे—नारायणोपनिषद् में कहा है—मेरे प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान शुद्ध हों, मैं ज्योति हूँ रजोरहित पाप से शून्य हो जाऊँ। 'ॐ स्वाहा' यह पाप आदि के लिए है १ सर्वत्र लिंगोक्त देवताओं के लिये यह त्याग[4] करे। मेरी वाणी, मन, चक्षु, श्रोत्र, जिह्वा, नासिका, वीर्य, बुद्धि, आकृति और संकल्प शुद्ध हों मैं ज्योति हूँ यह स्वाहा वाणी के लिये है मेरे नहीं हैं २ मेरे त्वक्, चर्म, मांस, रुधिर, मेदा, मज्जा, स्नायु और अस्थि शुद्ध हों मैं ज्योति हूँ० यह त्वक् आदि के लिए है मेरे लिये नहीं है ३ मेरे शिर, हाथ, पैर, पार्श्व, पीठ, उरु, पेट, जाँघ, मूत्रेन्द्रिय, उपस्थ, गुदा शुद्ध हों, यह शिर आदि के लिये है ४ मेरे उत्तिष्ठ पुरुष, हरित, पिंगल, लोहिताक्षि, देहि देहि और दापयिता शुद्ध हों, यह पुरुष आदि के लिए है ५ मेरे पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश शुद्ध हो, यह पृथिवी आदि के लिए हैं. मेरे० ६ मेरे शब्द, रूप, रस, स्पर्श और गन्ध शुद्ध हों, यह शब्द आदि के लिए हैं, मेरे० ७ मेरे मन, वाणी, कार्य और कर्म शुद्ध हों, यह मन आदि कर्मों के लिए हैं, मेरे० ८ अव्यक्तभावों तथा अहङ्कारों से मैं ज्योतिरूप हूँ, यह अव्यक्त आदि के लिये है ९ मेरी आत्मा शुद्ध हो मैं ज्योतिरूप हूँ, मेरे० १० मेरी आत्मा शुद्ध हो मैं ज्योतिरूप हूँ। मेरे०। यह आत्मा के लिये है।

मेरी आत्मा शुद्ध हो, यह अन्तरात्मा के लिये है ११ मेरी परमात्मा शुद्ध हों, यह परमात्मा के लिये है० १२ क्षुधे स्वाहा—यह भूख के लिए है १३ क्षुत्पिपासाय स्वाहा, यह भूख प्यास के लिए है १४ विविट्यै

१—संन्यासाङ्गत्वेन विहितं प्राणादिहोमपूर्वकं पुरुषसूक्तहोमं तथा ज्ञानयोग्यताप्राप्त्यर्थमुपपातकादिसकलपापनिवृत्ति-पूर्वकस्वावयवशुध्यर्थं विरजाहोमं करिष्ये। अयं होमोऽनग्नेरपि भवत्येव पुरुषार्थत्वात्।

२—या ते अग्ने पर्वतस्येव धारासश्चन्ती पीपयद् देव चित्रा। तामस्मभ्यं प्रमतिं जातवेदो वसोरास्व सुमतिं विश्व-जन्याम्॥ (ऋ० ३।५७।६)।

३—अग्निरिति भस्म वायुरिति भस्म जलमिति भस्म स्थलमिति भस्म व्योमेति भस्म सर्वँ ह वा इदं भस्म मन इत्येतानि चक्षूंषि भस्मानि तस्माद् व्रतमिदं पाशुपतं यद् भस्मनाङ्गानि संस्पृशेत्तस्माद् ब्रह्म तदेतत् पाशुपतं पाशुपाश वि-मोक्षाय (अथर्वशिर उपनिषदि)। 'स्त्रियं नपुंसकं गृध्रं बिडालं बकमूषिकम्। स्पृष्ट्वा तथाविधानन्यान्भस्मस्नानं समा-चरेत्॥ देवाग्निगुरुवृद्धानां समीपेऽन्त्यजदर्शने। अशुद्धभूतले मार्गे कुर्यान्नोद्धूलनं व्रती॥ (बृहज्जाबालोपनिषदि)।

४—प्राणादिभ्य इदं न मम। क–वागादिभ्य इदं०। ख–त्वचादिभ्य इद०। ग–शिर आदिभ्य इद०। घ–पुरुषा-दिभ्य इद०। ङ–पृथिव्यादिभ्य इद०। च–शब्दादिभ्य इद०। छ–मन आदिकर्मभ्य इद०। ज–अव्यक्तादिभ्य इद०। झ–आत्मन इद०। ञ–अन्तरात्मन इद०। ट–परमात्मन इद०।

स्वाहा, यह विविधा के लिये है १५ ऋग्विधानाय स्वाहा—ऋग्विधान के लिये है १६ कषोत्काय स्वाहा—कषोत्के लिये है १७।

ॐ क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीर्नाशयाम्यहम्। अभूतिमसमृद्धिं च सर्वान्निर्णुद मे पाप्मान ँ स्वाहा॥ इदमग्नये न मम १८ ॐ अन्नमयप्राणमयमनोमयविज्ञानमयानन्दमयात्मा मे शुध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा० इदमन्नमयादिभ्यो० १९ ततः स्विष्टकृदादि हुत्वा ब्रह्मणे हिरण्यमाज्यपात्रं धेनुं च दत्त्वा 'संमासिञ्चतु' इत्युपतिष्ठेत। अत्र केचिदनग्नेः सावित्रीप्रवेशं पूर्णाहुतिं चाहुः।

भूख तथा प्यास से मलिन लक्ष्मी से पूर्व उत्पन्न ज्येष्ठा अलक्ष्मी को मैं नाश करता हूँ। सब प्रकार के अनैश्वर्य तथा असमृद्धि को मेरे घर से और पापों को दूर करो १८ अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय आत्मा शुद्ध हो, यह अन्नमय आदि के लिए है १९।

तदनन्तर स्विष्टकृद् आदिका हवन कर ब्रह्माके लिए सुवर्ण, घी का पात्र और गौ को देकर 'समञ्जन्तु'[1] इस मन्त्र से खड़ा हो जाय। यहाँ पर कोई अनग्निक सावित्री प्रवेश और पूर्णाहुति चाहते हैं।

ततो 'या ते अग्ने यज्ञिया तनूः' इति त्रिभिस्त्रिभिरेकैकं जिघ्रन्नात्मन्यग्नीन् समारोप्य गुरवे सर्वस्वं दत्त्वा—यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदाँश्च प्रहिणोति तस्मै। तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये[2]॥

तदनन्तर 'या ते[3] अग्ने यज्ञिया तनूः' इन तीन मन्त्रों में एक एक मन्त्र से सूँघते हुए अग्नियों का समारोप कर गुरु के लिए सर्वस्व देकर जो पहले ब्रह्मा को बनाता है, जो पूर्व में वेदों को उसके लिए देता है। आत्मा की बुद्धि का प्रकाश करने वाले उस मुमुक्षु की शरण में मैं मुमुक्षु प्राप्त होता हूँ।

इति गुरुमुपस्थाय दक्षिणं जान्वाच्य पादावुपसंगृह्याधीहि भगवो ब्रह्मेति वदेत्। ततो गुरुरात्मानं ब्रह्मरूपं ध्यात्वा शङ्खं द्वादशप्रणवैरभिमन्त्र्य तेन शिष्यमभिषिच्य 'शन्नो मित्रः' इति शान्तिं पठित्वा तच्छिरसि हस्तं दत्त्वा पुरुषसूक्तं जप्त्वा 'मम व्रते हृदयं ते दधामि' इति च जप्त्वोदङ्मुखः प्रणवार्थमनुसन्दधन्दक्षिणे कर्णे प्रणवमुपदिश्य तदर्थं च पञ्चीकरणाद्यवबोध्य अयमात्मा ब्रह्म, ॐ तत्त्वमसि, ॐ प्रज्ञानं ब्रह्म, ॐ अहं ब्रह्मास्मि। इत्याद्युपदिशेत्। तदर्थं च वदेत्।

इससे[4] गुरुका उपस्थान कर दाहिने पैर के जानु को झुकाकर पैरों को स्पर्श कर कहे—मैं भगवान् ब्रह्म का ध्यान करता हूँ। फिर ब्रह्मरूप गुरु की आत्मा का ध्यान कर शंख को बारह प्रणव मन्त्रों से अभिमन्त्रण कर उससे शिष्य का अभिषेक कर 'शन्नो[5] मित्रः' इस मन्त्र से शान्तिको पढ़कर उसके शिर में हाथ को देकर पुरुषसूक्त का जपकर 'मम[6] व्रते हृदयं ते दधामि' इस मन्त्र को जपकर उत्तरमुख हो ओंकार के अर्थ का

१—समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ। संमातरिश्वा संधाता समुदेष्ट्री दधातु नौ॥ (ऋ० १०।८५।४७)।

२—शुकरहस्योपनिषदि।

३—या ते अग्ने यज्ञिया तनूस्तयेह्यारोहात्मात्मानमच्छा वसूनि कृण्वन् अस्मे नर्या पुरूणि। यज्ञो भूत्वा यज्ञमासीद स्वां योनिं जातवेदो भुव आजायमानस्सक्षय एहीति हस्तं प्रताप्य मुमायाहरते। (आप० श्रौत० ६।२८। सू० ११। पृ० १२०) 'या ते अग्ने यज्ञिया तनूस्तयेह्यारोहात्माऽऽत्मानम्। अच्छावसूनि वृण्वन्नस्मे नर्यापुरूणि। यज्ञो भूत्वा यज्ञमासीद स्वं योनिम्। जातवेदो भुव आजायमानस्सक्षय एहि॥ 'उपावरोह जातवेदः पुनस्त्वम्। देवेभ्यो हव्यं वह नः प्रजानन्। आयुः प्रजा ँ रयिमस्मासुधेहि। अजस्रोदीदिहिनो दुरोणे॥ तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रम्। सत्रादधानमप्रतिष्कुत ँ शवा ँ सि। म ँ हिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्तत्। रायेनोविश्वासुपथा कृणोतु वज्री॥ तै० ब्रा० २।५।८ गोपथब्राह्मण २।४।६।

४—आनन्दमानन्दकरं प्रसन्नं ज्ञानस्वरूपं निजबोधरूपम्। योगीन्द्रमीड्यं भवरोगवैद्यं श्रीमद्गुरुं नित्यमहं नमामि।

५—शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा। शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः॥ (ऋ० १।९०।९। यजु० ३६।९। अथर्व० १९।९।६)।

६—मम व्रते ते हृदयं ते दधामि मम चित्तमनु चित्तं ते अस्तु। मम वाचमेकव्रतो जुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम्॥ (आश्वला० गृ० १।२१।७। शांखायनगृ० २।४१। साममन्त्र ब्राह्मण १।२।२१। मानवगृह्यसूत्र १।१०।१३।

स्मरण कर दाहिने कान में प्रणव का उपदेश देकर उसके अर्थ को और पञ्चीकरणादि[1] का ज्ञान कराकर अयमात्मा, तत्त्वमसि, प्रज्ञानं[2] ब्रह्म, इत्यादि का उपदेश दे और उसके अर्थ को कहे।

ततो नाम दद्यात्। ततः शिष्यस्तेनोपदिष्टो हरिं स्मरन्नूर्ध्वबाहुस्तिष्ठन् देवान्साक्षिणः कृत्वा (ॐभूः संन्यस्तं मया। ॐभुवः संन्यस्तं मया। ॐस्वः संन्यस्तं मया। ॐभूर्भुवः स्वः संन्यस्तमया'इति त्रिर्मन्दमध्यमोच्चस्वरेण उक्त्वा) ॐभूर्भुवःस्वः संन्यस्तं मयेति त्रिरुपांशु त्रिरुच्चैश्चोक्त्वा जलसमीपं गत्वा स्नात्वा 'ॐअभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहा' इति त्रिरञ्जलिं क्षिप्त्वा 'युवासुवासा' इति काषायं कौपीनं वासश्च परिधाय 'ॐसखे मां गोपाय' इति मुख्यं वैणवं पालाशं बैल्वमौदुम्बरं वा दण्डं गृह्णीयात्। अत्र पुत्रकामो गृहस्थः शङ्खेन पुरुषसूक्तेन दण्डमभिषिच्य दद्यादित्याचारः।

फिर गुरु शिष्य का नामकरण करे। तदनन्तर गुरु के उपदेश वाला शिष्य हरि का स्मरण कर ऊपर को बाहुकर देवताओं की साक्षी कर 'ॐ भूर्भुवः स्वः संन्यस्तं मया' इस मन्त्र को तीन बार उपांशु, तीन बार ऊँचे स्वर से और तीन बार अति ऊँचे स्वर से कहकर जल के समीप में जाकर स्नान कर 'अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहा'—इस मन्त्र से तीन बार अञ्जलि का प्रक्षेप कर 'युवासुवासा'इस मन्त्र से गेरु के रंग से रंगीन कौपीन (लंगोटी) और वस्त्र को धारण कर 'ओंसखे मे गोपाय' इस मन्त्र से मुख्य बांस, पालाश, बिल्व या उदुम्बर (गूलर) का दण्ड[3] ग्रहण करे। यहाँ पर पुत्र की इच्छावाला गृहस्थ शंख के द्वारा पुरुषसूक्त से दण्ड का अभिषेक कर दे—यह आचार है।

ततः शिखामुत्पाट्य ॐभूः स्वाहेत्यग्नौ जले वा हुत्वा तथैवोपवीतं हुत्वा 'येन देवाः पवित्रेण' इति जलपवित्रं, 'यदस्य पारे' इति शिक्यम् सावित्र्या कमण्डलुं, सप्तव्याहृतिभिर्भोजनपात्रम् 'इदं विष्णुः' इत्यासनं बृसीं वा गृहीत्वा ॐभूस्तर्पयामीति व्यस्तसमस्ताभिर्महर्नम इति तर्पयित्वा ॐभूः स्वधों भुवः स्वधों स्वः स्वधों भूर्भुवः स्वर्महर्नमः स्वधेति पितॄंस्तर्पयित्वा उदुत्यं, चित्रम्, 'तच्चक्षुः' 'हंसः शुचिषद्, 'नमो मित्रस्य, इति स्नात्वा सुरभिमतीभिः आपो हि ष्ठेति हिरण्यवर्णाभिः पावमानीभिर्व्याहृतिभिश्च मार्जयित्वाष्टोत्तरशतमघमर्षणं प्राणायामांश्च कृत्वा ॐभूर्भुवः स्वरिति पठित्वा 'नमः सवित्रे' इति च सूर्यमुपस्थाय पुनः स्नात्वा जङ्घे चालयित्वा ॐइति ब्रह्मोमितीदं सर्वमोमिति ब्रह्म वा एष ज्योतिर्य एष तपति वेद्यमेवैतद्य एष वेदो यदवनमस्तीति जपित्वा अष्टसहस्रं गायत्रीं जपेदिति।

१—आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी इन प्रत्येक भूतों के दो भाग किये जायँ। प्रत्येक का एक भाग पृथक् तथा दूसरे भाग का चार भाग करके अपने से इतर भूत के अर्द्धभाग में सम्मेलन होने से सभी पाँच-पाँच तत्त्व हो जाते हैं। जैसे—आकाश का आधा भाग तथा वाय्वादिके द्वितीय भाग का चतुर्थांश भाग मिलने से उसका अर्द्धभाग वाय्वादि के सम्मिश्रण से सम्पन्न होता है। पञ्चीकृत आकाश में आधाभाग तो शुद्धआकाश तथा अधोभाग में वाय्वादि का अंश है। इसतरह से भी भूतों का पञ्चीकरण होता है। द्विधाविधाय चेकैकं चतुर्धा प्रथमं पुनः। स्वस्वेतरद्वितीयांशैर्योजनात्पञ्च पञ्च ते॥ (पञ्चदशी)।

२—येनेक्षते शृणोतीदं जिघ्रति व्याकरोति च। स्वादस्वादु विजानाति तत्प्रज्ञानमुदीरितम् १ चतुर्मुखेन्द्रदेवेषु मनुष्याश्वगवादिषु। चैतन्यमेकं ब्रह्मातः प्रज्ञानं ब्रह्मम्प्यपि २ परिपूर्णः परात्मास्मिन् देहे विद्याधिकारिणि। बुद्धेः साक्षितया स्थित्वा स्फुरन्नहमितीर्यते ३ स्वतः पूर्णः परात्मात्र ब्रह्मशब्देन वर्णितः। अस्मीत्यैक्यपरामर्शस्तेन ब्रह्म भवाम्यहम् ४ (शुकरहस्योपनिषद्) 'अहं ब्रह्मास्मि' इस वाक्य पर 'तेजोबिन्दूपनिषद्' में भी महत्वपूर्ण श्लोक हैं।

३—दण्डप्रार्थना—वार्त्रघ्न शर्म मे भव यत्पापं तन्निवारय विष्णुहस्ते यथा चक्रं शूलं शिवकरे यथा। इन्द्रहस्ते यथावज्रं तथा दण्ड भवाद्य मे॥

वैष्णवं दण्डं सत्वं च शिरो भ्रूललाटान्यतमप्रमाणं समूलमङ्गुलस्थूलं विप्रेणानीतमेकादशनवचतुःसप्तान्यतमपर्वकं पर्वग्रन्थियुतं सम्पाद्य शङ्खोदकेनाष्टोत्तरशतवारं प्रणवेन पुरुषसूक्तेन केशवादिचतुर्विंशतिनामभिश्चाभिषिच्य स्थापयेदितिलिखितसंन्यासपद्धतौ।

तदनन्तर शिखा को उखाड़कर 'ॐ भूः स्वाहा' इस मन्त्र से अग्नि में या जल में हवन कर वैसे ही यज्ञोपवीतका होमकर 'येन[1] देवाः पवित्रेण' इस मन्त्र से पवित्र जल को, यदस्य[2] पारे—इस मन्त्रसे शिक्य, का गायत्री[3] मन्त्र से कमण्डलु[4] को सप्तव्याहृतियों[5] से भोजनपात्र को 'इदं विष्णुः[6]—इस मन्त्र से आसन या वृषी (व्रतधारियों का आसन) को ग्रहण कर 'ॐ भूस्तर्पयामि' इससे व्यस्त तथा समस्त व्याहृतियों से 'महर्नमः' इससे तर्पण कर ॐ भूः स्वधा, ॐ भुवः स्वधा, ॐ स्वः स्वधा, 'ॐ भूर्भुवः स्वः महः नमः स्वधा' इस मन्त्रसे पितरोंका तर्पणकर 'उदुत्यम्[7]' चित्रं देवानाम्[8], तच्चक्षुः[9], हंसः शुचिषद्[10], और नमो मित्रस्य[11]—इनसे स्नानकर सुरभिमतीसंज्ञक आपो[12] हि ष्ठा, हिरण्यवर्णाः शुचयः—इत्यादि चारमन्त्रों (तै॰ सं॰ ५।६।१-४) से पावमान[13]संज्ञकमन्त्रोंसे और व्याहृतियों[14] से मार्जनकर एकसौआठ बार अघमर्षण[15] और प्राणामाम कर 'ॐ भूर्भुवः स्वः' इसको पढ़कर 'नमः सवित्रे[16]' इस मन्त्र से सूर्य का उपस्थान कर फिर से स्नानकर जंघाओं का प्रक्षालन कर कहे—यह सब ब्रह्म है। यह सब ब्रह्म है। ॐ यह ब्रह्म का वाचक है। जो यह वेद है वह भी ब्रह्म है रक्षण भी ब्रह्म है। जो यह तप रहा है वह ज्योति स्वरूप भी ब्रह्म है। वही वेद्य है। इसको जपकर आठहजार गायत्री जप करे।

१—येन देवाः पवित्रेण आत्मानं पुनते सदा। तेन सहस्रधारेण पावमान्यः पुनन्तु मा॥ (तैत्त॰ ब्रा॰ १।४।८।६)।

२—यदस्य पारे रजसः शुक्रं ज्योतिरजायत। तं नः पर्षदति द्विषोऽग्ने वैश्वानर स्वाहा॥ (तैत्त॰ सं॰ ४, २, ५, ६)।

३—ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥ (ऋ॰ ३।६२।१०, तै॰ स॰ १।५।६।४ तै॰ आ॰ १।११।२, यजु॰ ३।३५।२२।६।३०।२।३६।३ साम॰ १४।६२)।

४—'वारुत्रघ्नः शर्म मे भवत्पापं यत्पापं तन्निवारय। प्रणवेन गायत्र्या वा कमण्डलुम्॥—इति धर्मसिन्धौ।

५—ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम् ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्। ॐ आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्॥ (तै॰ आ॰ प्र॰ १० अ॰ २७)।

६—इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्। समूढमस्य पांसुरे॥ (ऋ॰ १।२२।१७)।

७—उदुत्यं जातवेदसं देव वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम्॥ (ऋ॰ १।५०।१)।

८—ॐ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥ (ऋ॰ १।११५।१)।

९—ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम्॥ (ऋ॰ ७।६६।१६)।

१०—हंसः शुचिषद् वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्। नृषद् वरसदृत सद् व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम्॥ (ऋ॰ ४।४०।५)।

११—नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे महो देवाय तदृतं सपर्यत। दूरेदृशे देवजाताय केतवे दिवस्पुत्राय सूर्याय शंसत॥ (ऋ॰ १०।३७।१)।

१२—आपो हि ष्ठा मयोभुवस्तान ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे। यो वः शिवतमोरसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः॥ तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः॥ (ऋ॰ १०।६।१-३)

१३—स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया। इन्द्राय पातवे सुतः १ रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहतम्। द्रुणा सधस्थमासदत् २ इत्यादि-मन्त्र ऋ॰ ९।१ मं॰ १।५। पृ॰ निर्णय॰ १००५ में देखिये।

१४—ॐ भूः स्वाहा। ॐ भुवः स्वाहा। ॐ स्वः स्वाहा। ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा।

१५—ॐ ऋतञ्च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः। समुद्रादर्णवादधिसंवत्सरो अजायत। अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी। सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्। दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः॥ (ऋ॰ अ॰ ८८ व ४८)।

१६—नमः सवित्रे जगदेकचक्षुषे जगत्प्रसूतिः स्थितिनाशहेतवे। त्रयीमयाय त्रिगुणात्मधारिणे विरञ्चिनारायणशङ्करात्मने॥

(यतिधर्माः)

अथ यतिधर्माः—प्रातरुत्थाय 'ब्रह्मणस्पते' इति जपित्वा दण्डादीनि मृदं च निधाय मूत्रपुरीषयोर्गृहस्थचतुर्गुणं शौचं कृत्वाऽऽचम्य पर्वद्वादशीवर्जं प्रणवेन दन्तधावनं कृत्वा तेनैव मृदा बहिः कटिं प्रक्षाल्य जलतर्पणवर्जं स्नात्वा पुनर्जङ्घे प्रक्षाल्य वस्त्रादीनि गृहीत्वा प्रणवेन मार्जनान्तं कृत्वा केशवादिनमोन्तनामभिस्तर्पयित्वा ॐ भूस्तर्पयामीत्यादिव्यस्तसमस्तव्याहृतिभिर्महर्जनस्तर्पयामीति तर्पयेत् । ॐ भूः स्वाहेति स्वाहाशब्दान्तैः स्वधाशब्दान्तैश्चैभिरेव पुनस्तर्पयेदिति केचित् ।

अब यति[1] के धर्म कहते हैं। प्रातःकाल उठकर 'ब्रह्मणस्पते[2]'—इस मन्त्र को जपकर दण्ड आदि तथा मृत्तिका रखकर मूत्र और पुरीष में गृहस्थ से चौगुनी पवित्रता कर पर्व तथा द्वादशीतिथि को त्याग कर प्रणवमन्त्र से दन्तधावन और उसीसे मृत्तिका से बाहर के कटिभाग को प्रक्षालन कर जलतर्पणवर्जित स्नान कर फिर से जंघाओं का प्रक्षालनकर वस्त्र आदि ग्रहणकर मार्जनकर केशवाय[3] नमः—इत्यादि नमोन्त नामों से तर्पण कर ॐ भूस्तर्पयामि इत्यादि व्यस्त तथा समस्त व्याहृतियों में 'महर्जनस्तर्पयामि' कहकर तर्पण करे। ओं भूः स्वाहा—इस स्वाहा शब्द के अन्त में और स्वधा शब्द के अन्त में इनका ही फिर से तर्पण करे—यह कोई कहते हैं।

तत आचम्याञ्जलिना प्रणवेन जलमादाय व्याहृतिभिरुद्धृत्य गायत्र्या त्रिःक्षिप्त्वा गायत्रीं जपेत् । उदिते सूर्ये प्रणवेन व्याहृतिभिर्वार्घ्यं त्रिर्दत्त्वा 'मित्रस्य चर्षणी' इत्याद्यैः पूर्वोक्तसौरिभिः, 'इदं विष्णुः' 'त्रिर्देवो' 'ब्रह्म जज्ञानम्' इति चोपस्थाय सर्वभूतेभ्यो नम इति प्रदक्षिणमावर्तते । ततो नत्वा ॐ आदित्याय विद्महे सहस्राक्षाय धीमहि । तन्नः सूर्यः प्रचोदयात् ॥ इति त्रिर्जपेत् । एवं त्रिकालं विष्णुपूजां ब्रह्मयज्ञं च कुर्यात् ।

तदनन्तर आचमन कर अञ्जलि द्वारा प्रणव से जल को लेकर व्याहृतियों से उद्धरण कर गायत्री से तीनबार प्रक्षेप कर गायत्री जप करे। सूर्य के उदय होने पर प्रणव या व्याहृतियों से अर्घ को तीन बार देकर 'मित्रस्य[4] चर्षणी' इत्यादि सूर्य की पूर्वोक्त ऋचाओं से, 'इदं विष्णुः' त्रिर्देवः[5] और ब्रह्मजज्ञानम्[6], इन मन्त्रों से उपस्थान कर 'सर्वभूतेभ्यो नमः' इस मन्त्र से प्रदक्षिण आवर्तन करे। फिर प्रणाम कर 'ओं आदित्याय[7] विद्महे सहस्राक्षाय धीमहि। तन्नः सूर्यः प्रचोदयात् ॥ इस मन्त्र को तीन बार जप करे। इसप्रकार तीनों समय में विष्णुपूजा और ब्रह्मयज्ञ करे।

१—संन्यासोपनिषदि—घृतं श्वमूत्रसदृशं मधु स्यात्सुरयासमम्। तैलं सूकरमूत्रं स्यात्सूपं लशुनसंमितम् ॥ माषपूपादि गोमांसं क्षीरं मूत्रसमं भवेत् । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन घृतादीन् वर्जयेद्यतिः ॥

२—ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधितनयं च जिन्व। विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ (ऋ० २।२३।१९, ऋ० २।२४।१६, यजु० ३४।५८, तैत्तरीय ब्रा० २।८।५।१) ।

३—केशवाय नमः । नारायणाय नमः । माधवाय नमः । गोविन्दाय नमः । विष्णवे नमः । मधुसूदनाय नमः । त्रिविक्रमाय नमः । वामनाय नमः । श्रीधराय नमः । हृषीकेशाय नमः । पद्मनाभाय नमः । दामोदराय नमः ।

४—मित्रस्य चर्षणीधृतो ऽवो देवस्य सानसि । द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम्। अभि नो महिना दिवं मित्रो बभूव सप्रथाः । अभि श्रवोभिः पृथिवीम् ॥ मित्राय पञ्च येमिरे जना अभिष्टिशवसे । स देवान् विश्वान् बिभर्ति ॥ मित्रो देवेष्वायुषु जनाय वृक्तबर्हिषे । इष इष्टव्रता अकः ॥ (ऋ० ३।५९।६–९) ।

५—त्रिर्देवः पृथिवीमेष एतां वि चक्रमे शतर्चसं महित्वा। प्र विष्णुरस्तु तवसस्तवीयान् त्वेषं ह्यस्य स्थविरस्य नाम ॥ (ऋ० ७।१००।३, तै० ब्रा० २।४।३।५) ।

६—ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्तात् । वि सीमतः सुरुचो वेन आवः । स बुध्निया उपमा अस्य विष्ठाः । सतश्च योनिमसतश्च विवः ॥ (तै० ब्रा० २।८ पृ० ८३९) ।

७—नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि । तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् ॥ वागीश्वराय विद्महे हयग्रीवाय धीमहि । तन्नो हंसः प्रचोदयात् ॥ वज्रनखाय विद्महे तीक्ष्णदंष्ट्राय धीमहि । तन्नो नृसिंहः प्रचोदयात् ॥ सुदर्शनाय विद्महे हेति राजाय धीमहि । तन्नश्चक्रः प्रचोदयात् ॥ दामोदराय विद्महे वासुदेवाय धीमहि । तन्नः कृष्णः प्रचोदयात् ॥ दाशरथाय विद्महे सीतावल्लभाय धीमहि । तन्नो रामः प्रचोदयात् ॥ (त्रिपाद्विभूतिनारायणोपनिषद्) ।

(शुक्लपक्ष में बारहवें दिन संन्यासी की नारायणबलि)

दामोदराय नमः	पद्मनाभाय नमः	हृषीकेशाय नमः	श्रीधराय नमः	वामनाय नमः	त्रिविक्रमाय नमः	मधुसूदनाय नमः	विष्णवे नमः	गोविन्दाय नमः	माधवाय नमः	नारायणाय नमः	केशवाय नमः	
*	*	*	*	*	*	*	*	*	*	*	*	कुशरूप ब्राह्मणोपवेशन आसन
*	*	*	*	*	*	*	*	*	*	*	*	(पिण्डाधार वेदी)

'केशवरूपगुरो इदमासनं ते नमः' इसतरह ऊहकर दे।

(स्थण्डिल हवनार्थ)

श्रीशालग्राम में विष्णुपूजन

कर्ता का आसन

तदनन्तर अर्घ्य दे। फिर गन्ध, पुष्प, तुलसी, धूप, दीप, फल, वस्त्र और यज्ञोपवीत आदि से पूजन करे। फिर सबों के आगे जल से मण्डल करे। जलों के पात्र रखे। भोजनपात्रों को रखे। उसमें पक्वान्न भोजन सामग्री रखे। सब भोजनपात्रों में घृत का स्पर्श करा दे। गायत्री से सब भोजनीय पात्रों का प्रोक्षण करे। फिर बायें हाथ से प्रत्येक भोजनपात्र का स्पर्श कर दाहिने हाथ से कुश, यव और जल को ग्रहण कर कहे—'ॐ केशवरूप गुरो इदमन्नं सोपस्करं यत्परिविष्टं परिवेद्यमाणं तृप्तिरूपममृतस्वरूपं ते स्वधा' यों कहकर दाहिने हाथ का जल भूमि में छोड़ दे। इसीतरह नारायणादि में ऊहकर पात्रस्थ अन्न का त्याग करे। तद्वत् विष्णु के लिए भी करे। इसतरह तेरह ब्राह्मण को भोजन करावे। भोजन करने के पूर्व अपोशान—'ॐ अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा' इससे प्रत्येक के हाथ में जल दे। भोजनान्त में—उत्तरापोशन दे—'ॐ अमृतापिधानमसि स्वाहा' इस मन्त्र से दे। फिर केशवादि स्थानीय बारह ब्राह्मणों को दक्षिणा, वस्त्र, ताम्बूल आदि देकर प्रदक्षिणा कर विसर्जन करे—'मया यः कृतो नारायणबलिः तन्मध्ये न्यूनातिरिक्तो यो विधिः स नारायणप्रसादाद् ब्राह्मणवचनाच्च परिपूर्णोऽस्तु।

'केशवरूप गुरो एष ते पिण्डः स्वधा न मम' इत्यादि ऊह प्रयोग द्वारा गुरु के लिए बारह पिण्डों को दे। फिर पिण्डों के ऊपर अक्षतोदक देकर पिण्डों पर विष्णु को गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, फल, ताम्बूल, दक्षिणा आदि से पूजन कर पुरुषसूक्त से स्तुति और नमस्कार कर विसर्जन करे।

कृष्णपक्ष में तो—ॐ सङ्कर्षणाय नमः १, वासुदेवाय नमः २, प्रद्युम्नाय नमः ३, अनिरुद्धाय नमः ४, पुरुषोत्तमाय नमः ५, अधोक्षजाय नमः ६, नारसिंहाय नमः ७, अच्युताय नमः ८, जनार्दनाय नमः ९, उपेन्द्राय नमः १०, हरये नमः ११, श्रीकृष्णाय नमः १२। ये बारह नाम केशवादि के स्थान में होंगे। यही विशेष है।

दक्षिण

(पुत्रकर्तृक संन्यासी पिता का पार्वणश्राद्ध)

श्राद्धकर्ता का आसन ↑

वृद्ध प्रमातामह	प्रमातामह	मातामह	प्रपितामह	पितामह	संन्यासी पिता	
*	*	*	*	*	*	आसन
*	*	*	*	*	*	भोजनपात्र
*	*	*	*	*	*	अर्घ्यपात्र
*	*	*	*	*	*	जलपात्र
*	*	*	*	*	*	घृतपात्र

(पिण्डाधार वेदी) □ □ □

(पिण्डाधारवेदी) □ □ □ (अवनेजनपात्र ही बाद में प्रत्यवनेजनपात्र हो जाते हैं।)

↓ श्राद्धकर्ता का आसन

पूर्व

पश्चिम

(विश्वेदेव) ब्रह्मीभूत-अस्मत्पितृ, पिता मह, प्रपितामह, मातामहादि

*	*	आसन
*	*	भोजनपात्र
*	*	अर्घ्यपात्र
*	*	जलपात्र
*	*	घृतपात्र

(सङ्कल्प—अमुकगोत्रस्य ब्रह्मीभूतस्य अस्मत्पितुरमुकशर्मणः करिष्यमाणदर्शादिसर्वश्राद्धाधिकारसिध्यर्थमेकादशाहे आद्यपार्वणश्राद्धमर्घपिण्डसहितं करिष्ये। शिष्यादि के करने पर—'ब्रह्मीभूतस्य गुरोः सांवत्सरिकादिश्राद्धसिध्यर्थम्' यही वाक्यविशेष है। पुत्रकर्तृक पार्वणश्राद्ध में सम्बन्ध, नाम और गोत्र का उल्लेख होता है। शिष्यादिकर्तृक में तो आत्मा, अन्तरात्मा तथा परमात्मा का उल्लेख होता है। साधुरुरुसंज्ञक विश्वेदेव होते हैं। तिल के स्थान में यव का ग्रहण है। अग्नौकरण नहीं होता है। देवश्राद्धवत् होता है—यही विशेष है।

उत्तर

(गुरु आदि का आराधन क्रम)

गोविन्दाय नमः ८ माधवाय नमः ७ नारायणाय नमः ६ केशवाय नमः ५ परात्परगुरवे नमः ४ परमेष्ठिगुरवे नमः ३ तद्गुरवे नमः २ ब्रह्मीभूतगुरवे नमः १

❋ ❋ ❋ ❋ ❋ ❋ ❋ ❋ (आसन)

दामोदराय नमः १६ पद्मनाभाय नमः १५ हृषीकेशाय नमः १४ श्रीधराय नमः १३ वामनाय नमः १२ त्रिविक्रमाय नमः ११ मधुसूदनाय नमः १० विष्णवे नमः ६

❋ ❋ ❋ ❋ ❋ ❋ ❋ ❋ (आसन)

या केशवादि दामोदरान्त द्वादश के निमित्त एक का ही स्थापन और भोजन करावे। अर्थात् गुरु आदि मिलकर कुल पाँच ब्राह्मण या पाँच यतियों को भोजन करा दे।

कृष्णपक्ष में—

अनिरुद्धाय नमः ८ प्रद्युम्नाय नमः ७ वासुदेवाय नमः ६ सङ्कर्षणाय नमः ५ परात्परगुरवे नमः ४ परमेष्ठिगुरवे नमः ३ तद्गुरवे नमः २ ब्रह्मीभूतगुरवे नमः १

❋ ❋ ❋ ❋ ❋ ❋ ❋ ❋ (आसन)

श्रीकृष्णाय नमः १६ हरये नमः १५ उपेन्द्राय नमः १४ जनार्दनाय नमः १३ अच्युताय नमः १२ नारसिंहाय नमः ११ अधोक्षजाय नमः १० पुरुषोत्तमाय नमः ९

❋ ❋ ❋ ❋ ❋ ❋ ❋ ❋ (आसन)

सोलह ब्राह्मणों को या यतियों को भोजन अर्चनपूर्वक करा दे। या कुल पाँच ब्राह्मण-साधु या ब्राह्मणों को भोजन करा दे। उसका क्रम—सोलहों ब्राह्मण या साधुओं के आगे भोजनपात्र स्थापन कर उसमें मिष्टान्नादि को एवं जलपात्र रखकर गायत्री मन्त्र से प्रोक्षण कर प्रतिपात्र को बायें हाथ से आलम्भन कर दाहिने हाथ में कुश, यव, जल लेकर सङ्कल्प करे—'अद्य ब्रह्मीभूताय गुरवे इदमन्नं सोपस्करं परिविष्टं परिवेक्ष्यमाणं च तृप्तिक्षमं ते नमः' कहकर सङ्कल्पित जल को भूमि में छोड़ दे। इसीतरह उनके गुरु आदि में कहकर क्रम से जल छोड़ता जाय। तदनन्तर एक कलश में जल भरकर उसका अर्चन करे। इत्यादि विधि अन्त्यकर्मदीपक और संन्यासधर्मपद्धति आदि में स्पष्ट है। वहीं से देखिये।

(भिक्षा)

अथ भिक्षा (मनुः—६।५६)—विधूमे सन्नमुसले व्यङ्गारे भुक्तवर्जने।
कालेऽपराह्णे भूयिष्ठे नित्यं भिक्षां यतिश्चरेत्।

अब भिक्षा का प्रकार कहते हैं। जब अग्नि में धूआँ न हो, मूसल का शब्द न सुनाई दे, अंगार न हो, सब लोग भोजन कर चुके हों, अपराह्णसमय में यति प्रतिदिन भिक्षा के लिए चले।

इत्युक्ते काले 'उदयम्' इति चतसृभिरादित्यमुपस्थाय तेनैक्यं ध्यात्वा 'आ कृष्णेन' इति प्रदक्षिणं कृत्वा 'ये ते पन्थानः' इति जप्त्वा—

ऐसे कहे हुए समय में 'उद्वयम्[1]' इन चार ऋचाओं से सूर्य का उपस्थान कर और उस सूर्य की एकता का ध्यान कर 'आ[2] कृष्णेन' इस मन्त्र से प्रदक्षिणा कर 'ये ते[3] पन्थाः' इसको जपकर—

योऽसौ विष्णवाख्य आदित्य पुरुषोन्तर्हृदि स्थितः।
सोऽहं नारायणो देव इति ध्यात्वा प्रणम्य तम्॥

जो यह विष्णु नाम वाला आदित्य पुरुष भीतर हृदय में स्थित है। वही मैं 'नारायण देव' हूँ। ऐसा ध्यान और प्रणाम उसको करे।

त्रिदण्डं दक्षिणे स्वङ्गे ततः सन्धाय बाहुना। पात्रं वामकरे क्षिप्त्वा श्लेषयेद्दक्षिणेन तु॥

त्रिदण्ड को अपने दाहिने अंग में बाहु से पकड़ कर बायें हाथ में पात्र को रखकर दाहिने हाथ से स्पर्श करे।

इति बौधायनोक्तदिशा त्रीन्पञ्च सप्त वा गृहान् गत्वा भवत्पूर्वां भिक्षां याचित्वा 'पूर्णमसि पूर्णं मे भूयाः' इत्यागत्य शुचिरन्नं प्रोक्ष्य ॐ भूः स्वधा नम इत्यादि व्यस्तसमस्तव्याहृतिभिः सूर्यादि-देवेभ्यो भूतेभ्यश्च भूमौ क्षिप्त्वा भुक्त्वा प्रणवेन षोडशप्राणायामान्कुर्यादिति संक्षेपः।

इसप्रकार बौधायन के कहे हुए तीन, पाँच या सात घरों में जाकर भवत् शब्द पूर्व में कर भिक्षा को मांगकर 'पूर्णमसि पूर्णं मे भूयाः' इस मन्त्र से आकर पवित्र अन्न का प्रोक्षण कर 'ओं भूः स्वधा नमः' इत्यादि से व्यस्त-समस्त व्याहृतियों से सूर्यादि देवताओं के लिये और भूतों के लिए भूमि में प्रक्षेप कर भोजन कर प्रणव (ओं) से सोलह प्राणायामों को करे, यह संक्षेप है।

गौतमव्याख्यायां भृगुः—यतिहस्ते जलं दत्वा भैक्ष्यं दद्यात्पुनर्जलम्। भैक्ष्यं पर्वतमात्रं स्यात्तज्जलं सागरोपमम्॥ अत्र सर्वत्र मूलं माधवापराकमदनरत्नस्मृत्यर्थसारादौ ज्ञेयम्।

गौतम व्याख्या में भृगु ने कहा है—संन्यासी के हाथ में जल को देकर भिक्षा दे फिर जल दे। वह भिक्षा पर्वत के समान होती है तथा वह जल सागर के समान होता है। यहाँ पर मूल माधव, अपरार्क, मदनरत्न, स्मृत्यर्थसार आदि में जानना चाहिये।

(यतेर्ग्रामादौ वासदिनानि)

कण्वः—एकरात्रं वसेद् ग्रामे नगरे पञ्चरात्रकम्।
वर्षाभ्योऽन्यत्र वर्षासु मासांस्तु चतुरो वसेत्॥

१—ॐ उद् वयं तमसस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥ उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम्। हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय॥ शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि। अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं नि दध्मसि॥ उदगादयमादित्यो विश्वेन सहसा सह। द्विषन्तं मह्यं रन्धयन् मो अहं द्विषते रधम्॥ (ऋ० १।५०।१०–१३)।

२—आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च। हिरण्ययेन सविता रथेनाऽऽदेवो याति भुवनानि पश्यन्॥ (ऋ० १।३५।२)।

३—ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासो ऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे। तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगेभी रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव॥ (ऋ० १।३५।११, यजु० ३४।२७। तै० सं० ७।२४।१)।

कण्व ने कहा है—एक रात गाँव में, नगर में पाँच रात वर्षाऋतु को त्याग कर रहे। वर्षा में तो चार महिने निवास करे।

जाबालश्रुतौ—'शून्यागारदेवगृहतृणकुटीवल्मीकवृक्षमूलकुलालशालाग्निहोत्रगृहनदीपुलिनगिरिकुहरनिर्झरस्थण्डिलेष्वनिकेतनः' इति।

जाबालश्रुति में कहा है—शून्य घर, देवता का घर, तृण की कुटी (तिनके का घर), बल्मीक (बींबी), पेड़ की जड़, कुलाल की शाला (कुंभकार का घर), अग्निहोत्री का घर, नदी का किनारा, पर्वत की गुफा और झरना और स्थण्डिलों पर गृह रहित होकर निवास करे।

मात्स्ये—अष्टौ मासान् विहारः स्याद्यतीनां संयतात्मनाम्। एकत्र चतुरो मासान् वार्षिकान् निवसेत्पुनः। अविमुक्ते प्रविष्टानां विहारस्तु न विद्यते।

मत्स्यपुराण में कहा है—आठ महिने तक संयतात्मा यतियों का विहार (भ्रमण) कहा है। वर्षा ऋतु के चार मास तक एक जगह निवास करना कहा है। अविमुक्त में प्रवेश वालों का बिहार (भ्रमण) नहीं कहा है।

अत्रिः—भिक्षाटनं जपं स्नानं ध्यानं शौचं सुरार्चनम्।
कर्तव्यानि षडेतानि सर्वथा नृपदण्डवत्॥

अत्रि ने कहा है—भिक्षाटन, जप, स्नान, ध्यान, शौच तथा देवार्चन[1] इन छ को सर्वथा राजदण्ड के सदृश करे।

(यतेः पतनकारणम्)

मञ्चकं शुक्लवस्त्रं च स्त्रीकथां लौल्यमेव च। दिवास्वापं च यानं च यतीनां पतनानि षट्॥

मञ्चक (खटिया), सफेदवस्त्र, स्त्री की कथा (बातचीत), चपलता, दिन में शयन और यान (सवारी), ये छ संन्यासियों के पतन के कारण है।

(यतेर्बन्धकराणि षट्)

आसनं पात्रलोभश्च सञ्चयः शिष्यसङ्ग्रहः। दिवास्वापो वृथाजल्पो यतेर्बन्धकराणि षट्॥

आसन, पात्र का लोभ, धन, मकान, सम्पति (चल-अचल का संग्रह, शिष्यों का संग्रह, दिन में शयन) और व्यर्थ में बात करना ये छ संन्यासी के बन्धन के कारण हैं।

दक्षः—नाध्येतव्यं न वक्तव्यं न श्रोतव्यं कदाचन।

दक्ष ने कहा है—न पढ़ना चाहिये, न बोलना चाहिये और न कभी सुनना चाहिये।

(यतिपात्राणि)

यतिपात्राणि मृद्वेणुदार्वलाबुमयानि च॥

संन्यासी के पात्र—मट्टी, बांस, लकड़ी और अलाबू (लौकी) के कहे हैं।

(यतेर्निषिद्धभिक्षा)

मदनरत्ने अत्रिः—पित्रर्थं कल्पितं पूर्वमन्नं देवादिकारणात्।
वर्जयेत्तादृशीं भिक्षां परबाधाकरीं तथा॥

मदनरत्न में अत्रि ने कहा है—जो पहले अन्न पितरों के लिए और देवताओं के लिए निर्माण किया हो ऐसी भिक्षा को त्याग दे और दूसरे को बाधा देने वाली भिक्षा को त्याग दे।

(यतेर्निषिद्धकर्माणि)

बृहस्पतिः—न तीर्थवासी नित्यं स्यान्नोपवासपरो यतिः। न चाध्ययनशीलः स्यान्न व्याख्यानपरो भवेत्॥ एतद्वेदार्थभिन्नपरम्।

१—चण्डीविनायकादि नैवेद्यं न भुञ्जीत—इति धर्मसिन्धौ।

बृहस्पति ने कहा है—संन्यासी तीर्थ में नित्य न रहे, उपवास में रत न हो, अध्ययन में लगा न हो और व्याख्यान में संलग्न न हो। यह वेदार्थ से भिन्नपरक है।

अत्रिः—स्नानं सुरार्चनं ध्यानं प्राणायामो बलिः स्तुतिः॥ भिक्षाटनं जपः सन्ध्यां त्यागः कर्मफलस्य च॥ एते यतिधर्मा इत्यर्थः। अन्येऽपि माधवमिताक्षरादौ ज्ञेयाः।

अत्रि ने कहा है—स्नान, देवार्चन, ध्यान, प्राणायाम, बलि, स्तुति, भिक्षाटन, जप, सन्ध्या और कर्मफल का त्याग करे। ये संन्यासी के धर्म है। अन्य भी माधव, मिताक्षरा आदि में जानना चाहिये।

(यतेः पित्रादिमरणे विचारः)

यतिधर्मसमुच्चये—न स्नानमाचरेद्भिक्षुः पुत्रादिनिधने श्रुते।
पितृमातृक्षयं श्रुत्वा स्नात्वा शुध्यति साम्बरः॥

यतिधर्मसमुच्चय में कहा है—पुत्र आदि की मृत्यु को सुनकर भिक्षु स्नान न करे। पिता और माता की मृत्यु सुनकर वस्त्र के सहित संन्यासी स्नान कर शुद्ध होता है।

(यतिसंस्कारः)

अथ यतिसंस्कारः। स्मृत्यर्थसारे—संन्यसेद् ब्रह्मचर्याद्वा संन्यसेच्च गृहादपि।
वनाद्वा प्रव्रजेद्विद्वानातुरो वाऽथ दुःखितः॥

अब यतिसंस्कार कहते हैं। विद्वान् ब्रह्मचर्यावस्था से संन्यास ग्रहण करे या घर से संन्यास ग्रहण करे य। वन से संन्यास ग्रहण करे आतुर या दुःखी होकर वन में जाय।

(आतुरसंन्यासे विचारः)

आतुराणां च संन्यासे न विधिर्नैव च क्रिया। प्रैषमात्रं च संन्यास आतुराणां विधीयते॥

आतुरों के संन्यास में न विधि है न क्रिया है। आतुरों का तो प्रैषमात्र ही संन्यास है।

उत्पन्ने सङ्कटे घोरे चौरव्याघ्रादिगोचरे। भवभीतस्य संन्यासमङ्गिरा मनुरब्रवीत्॥

चोर, व्याघ्र आदि से भयंकर संकट के उत्पन्न होने पर संसार से डरे हुए का भी संन्यास को अंगिरा तथा मनु ने कहा है।

यद्यातुरः स्यान्मनसा वाचा वा संन्यसेद् द्विजः॥ इति जाबालश्रुतिः।

जाबालश्रुति में कहा है—ब्राह्मण यदि आतुर हो तो मन और वाणी से संन्यासग्रहण करे।

आतुराणां च संन्यासे न विधिर्नैव च क्रिया। प्रैषमात्रं समुच्चार्य संन्यासं तत्र कारयेत्॥

आतुरों के संन्यास में न विधि है न क्रिया है। प्रैषमात्र का उच्चारण कर संन्यास ग्रहण करावे।

संन्यस्तोऽहमिति ब्रूयात्सवनेषु त्रिषु क्रमात्। त्रिवारं च त्रिलोकात्मा शुभाशुभसुधाद्रवे॥

तीन सवनों (प्रातः सवन, माध्यन्दिनसवन और अन्तिम सवन) में क्रम से तीन बार त्रिलोकात्मा मैं संन्यस्त हूँ यों कहे शुभ अशुभरूप अमृतप्रवाह में।

यत्किञ्चिद्बाधकं कर्म कृतमज्ञानतो मया। प्रमादालस्यदोषाद्यत्तत्संन्त्यक्तवानहम्॥

मैंने बाधक कर्म को अज्ञान से, प्रमाद या आलस्यदोष से जो जो किया है उन सबको मैं छोड़ देता हूँ।

पद्भ्यां कराभ्यां विहरन्नाहं वाक्कायमानसैः। करिष्ये प्राणिनां हिंसा प्राणिनः सन्तु निर्भयाः॥

पैरों से या हाथों से बिचरता हुआ मैं वाणी, शरीर और मन से प्राणियों की हिंसा नहीं करूगा प्राणीगण निर्भय हों।

इत्यातुरस्य स्वशक्त्याऽवस्थानुरूपमङ्गलभूतप्रैषोच्चारणादियथाशास्त्रं मनसा वाचा वा कुर्वतस्तावतैव कृच्छ्रचान्द्रायणनान्दीश्राद्धनखकृन्तनादीनि कृत्वा संन्यासपूर्तिरिति प्रतीयते।

इसतरह आतुर का अपनी शक्ति से अवस्था के अनुरूप मंगलभत प्रैष का उच्चारण आदि यथाशास्त्र

मन या वाणी से करते हुए उतना ही कृच्छ्रचान्द्रायण, नान्दीश्राद्ध, नखकृन्तन आदि कर संन्यास की पूर्ति प्रतीत होती है।

(संन्यासग्रहणे फलकथनम्)

अङ्गिराः—षष्टिः कुलान्यतीतानि षष्टीनामधिकानि च।
कुलान्युद्धरते प्राज्ञः संन्यस्तमिति यो वदेत्॥

अंगिरा ने कहा है—साठ कुल व्यतीत और साठ कुल के अधिक कुलों का उद्धार करता है जो बुद्धिमान् 'मैंने संन्यास लिया है' यों कहता है।

विष्णुः—एकरात्रोषितस्यापि यतेर्या गतिरुच्यते।
न सा शक्या गृहस्थेन आतुरोऽपि च संन्यसेत्॥

विष्णु ने कहा है—एक रात उपवास करने से जो गति संन्यासी की कही है। वह गति गृहस्थ को प्राप्त नहीं होती है अतः रोगी होकर भी संन्यास ग्रहण करे।

संन्यस्तमिति यो ब्रूयात्प्राणैः कण्ठगतैरपि। न तत्क्रतुशतैः पुण्यं प्राप्तुं शक्नोति मानवः॥

जो कण्ठगत प्राणों के होने पर संन्यास को ग्रहण किया यों कहता है। वह पुण्य सौ यज्ञ करने पर भी मनुष्य को प्राप्त नहीं होता है।

मनुः—(६।३९) यो दत्वा सर्वभूतेभ्यः प्रव्रजत्यभयं गृहात्।
तस्य तेजोमया लोका भवन्ति ब्रह्मवादिनः॥

मनु ने कहा है—जो स्थावर और जंगमों को अभय देकर गृहाश्रम से प्रव्रजित होता है उस ब्रह्मवादी को तेजोमय लोक प्राप्त होते हैं।

अथ श्रौतातुरस्य विलम्बितस्य—प्रैषमात्रं समुच्चार्य संन्यासं तत्र पूजयेत्। इति॥

अब श्रौतातुर (श्रौताधानी) विलम्बित (मृत्यु के विलंब) का—प्रैषमात्र का उच्चारण कर वहाँ पर संन्यास का पूजन करे।

अत्र मात्रत्वोपसंभवादङ्गकलापाव्यापकत्वेनाप्युपपत्तौ कर्तुर्यागत्यागकलापव्यावृत्तस्यैकत्वानुपपत्तेः कृच्छ्रनान्दीश्राद्धविरजाहोमादिकर्तुमशक्तस्यातुरस्य विद्यमानाग्नेरिष्टदेवतायै पूर्णाहुतिं हुत्वा 'असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा' इति आहवनीये दारुमयानि पात्राणि प्रज्वाल्य मृन्मयान्यप्सु प्रक्षिप्य समाप्तिं च 'मरुत' इत्युपस्थाय 'या ते अग्ने' इत्यनेन हस्तं प्रताप्य आत्मन्यग्निं समारोप्य सर्वप्रायश्चित्तपूर्वकं सप्तपञ्चकेशान् विसृज्य वापयित्वा यथाविधि स्नात्वा आतुरसंन्यासं कुर्यात्॥

यहाँ पर प्रैष मात्रत्व के उपसंहार से अंगकलाप के अव्यापकत्व से भी उत्पत्ति होने पर कर्ता के याग त्याग कलापव्यावृत्त के एकत्व की अनुपपत्ति से कृच्छ्र, नान्दीश्राद्ध, विरजाहोम आदि करने में अशक्त आतुर का विद्यमान अग्नि के रहते हुए इष्ट देवता के लिए पूर्णाहुति हवन कर 'असौ स्वर्गाय[1] लोकाय स्वाहा' इससे आहवनीय कुण्ड में लकड़ी के पात्रों को प्रज्वलित कर मट्टी के पात्रों को जल में प्रक्षेप कर समाप्ति को 'मरुत'[2] इस मन्त्र से उपस्थान कर 'या ते[3] अग्ने' इस ऋचा से हाथ को तपाकर आत्मा में अग्नि का समारोप

१—अस्मात्त्वमधि जातोऽसि त्वदयञ्जायतां पुनः। 'असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा' (यजु० सं० ३५।२२)।

२—मरुतो यस्य हि क्षये पाथादिवो विमहसः। स सुगोपातमोजनः॥ (ऋ० १।८६।१, यजु० ८।३१, अथर्व० २०।१।२, तै० सं० ४।२।११।१)।

(३—या ते ऽअग्ने यः शया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा। उग्रं वचो ऽअपावधीत्त्वेषं वचोऽ अपावधीत्स्वाहा। या ते ऽअग्ने-रजः शया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठाः। उग्रं वचोऽ अपावधीत्वेषं वचोऽ अपावधीत्स्वाहा। या तेऽ अग्ने हरिशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा। उग्रं वचोऽ अपावधीत्त्वेषं वचोऽ अपावधीत्स्वाहा॥ (यजु० ५।८)।)

या ते अग्ने यज्ञिया स्तनूस्तयेह्यारोहाऽऽत्मानम्। अच्छा वसूनि कृण्वन्नस्मे नर्या पुरूणि। यज्ञो भूत्वा यज्ञमासीद स्वां योनिम्। जातवेदो भुव आजायमानः सक्षय एहि॥ (तै० ब्रा० २।५।८।२०)।

कर सर्वप्रायश्चित्तपूर्वक सात, पांच को केशों को छोड़कर कर वपन कराकर यथाविधि स्नान कर आतुर संन्यास करे।

(आतुरसंन्यासविधिः)

अथातुरसंन्यासविधिः—अपां समीपे गत्वा तिथ्याः स्मरणपूर्वकं स्नानसन्ध्यावन्दनादि कृत्वा देशकालौ सङ्कीर्त्य–ममाशेषदुःखनिवृत्तिनिरतिशयानन्दप्राप्तिपरमपुरुषार्थप्राप्तये च परमहंससंन्यासं करोमीति संकल्पयेत्। तत्र प्रधानानि प्रैषोच्चारप्रणवोपदेशमहावाक्यानि। ततः संन्यासोचितं क्षौरं कृत्वा पूर्ववत्सप्तपञ्चकेशान् विसृज्य स्नात्वाचम्य पात्रेण तोयमादाय उपस्पृश्य दक्षिणेन पाणिनाऽप्सु जुहोति। एष वोऽग्नेर्योनिर्यः प्राणं गच्छ स्वाहा—इति प्रथमाहुतिः। आपो वै सर्वा देवताः सर्वाभ्य एवैनं देवताभ्यो जुहोमि स्वाहा—इति द्वितीया।

अब आतुरसंन्यास विधि को कहते हैं। जल के समीप में जाकर तिथि का स्मरणपूर्वक स्नान, सन्ध्यावन्दनादि कर देश-काल का उच्चारण कर 'ममाशेषदुःखनिवृत्तिनिरतिशयानन्दप्राप्तिपरमपुरुषार्थप्राप्तये च परमहंससंन्यासं करोमि' ऐसा संकल्प करे। वहाँ पर प्रधान प्रैषोच्चारण, प्रणव का उपदेश महावाक्यों को कहे। तदनन्तर संन्यासोचित पूर्ववत् क्षौरकर कर सात, पाँच केशों को त्यागकर स्नानकर पात्रसे जल को ग्रहण कर स्पर्श कर दाहिने हाथ से जल में हवन करे। यह जो आपका अग्नि का योनि है वह प्राण को प्राप्त हो इससे पहली आहुति दे। जल ही सब देवता हैं सब देवताओं के लिए ही इसको हवन करता हूँ। इससे दूसरी दे।

ततो हुतशेषं 'आशुःशिशान' इत्यनुवाकेनाभिमन्त्र्य पुत्रैषणा वित्तैषणा लोकैषणा मया त्यक्ताः स्वाहेति प्रथमां पिबेत्। ॐ भूर्भुवः स्वरोम् मया संन्यस्तं स्वाहेति द्वितीयां पिबेत्। 'अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहा'इति तृतीयां पिबेत्।

तदनन्तर हवन के शेष को 'आशुः 'शिशानः' इस अनुवाक से अभिमन्त्रण कर पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणा को मैंने त्याग दिया इससे प्रथम का पान करे। 'ओं भूर्भुवः स्वरोम् मया संन्यस्तं स्वाहा' इस मन्त्र से दूसरे का पान करे। 'अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहा' इससे तीसरी का पान करे।

ततोऽन्यत्तोयमञ्जलिपूर्णमादाय प्रागादिदिक्षु प्रत्येकं निनयेत्। ॐ भूः सावित्रीं प्रवेशयामि, ॐ भुवः सावित्रीं प्रवेशयामि, ॐ स्वः सावित्रीं प्रवेशयामि, ॐ भूर्भुवस्वः सावित्रीं प्रवेशयामि, इति सावित्रीप्रवेशं कृत्वा अथोर्ध्वबाहुः सूर्याभिमुखो भूत्वा ॐ भूः संन्यस्तं मया, ॐ भुवः संन्यस्तं मया, ॐ स्वः संन्यस्तं मया, ॐ भूर्भुवः स्वः संन्यस्तं मयेति प्रैषोच्चारं ब्रूयात्। एवं मन्द्रमध्योच्चैस्त्रिरुक्त्वा तूष्णीं शिखां निकृत्य स्नात्वाचम्य यज्ञोपवीतमुद्धृत्याञ्जलिना गृहीत्वा भूः स्वाहेति

१—आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम्। सङ्क्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना। तदिन्द्रेण जयत तत् सहध्वं युधो नरऽ इषुहस्तेन वृष्णा॥ स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन। संसृष्टजित् सोमपाबाहुशर्ध्युं १ ग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता॥ बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्रां अपबाधमानः। प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम्॥ बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः। अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमातिष्ठ गोवित्॥ गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा॥ इमं सजाता अनुवीरयध्वमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम्॥ अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः। दुश्च्यवनः पृतनाषाडयुध्यो ३ ऽस्माकं सेना अवतु प्रयुत्सु॥ इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः। देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम्। इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञऽ आदित्यानां मरुतां शर्धऽ उग्रम्। महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात्॥ उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत् सत्वनां मामकानां मनांसि। उद्वृत्रहन् वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषाः॥ अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजे ष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु। अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्मों उ देवा अवता हवेषु॥ अस्माकं चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि॥ अभिप्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम्॥ प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु। उग्रा वः सन्तु बाहवो ऽनाधृष्या यथासथ॥ (ऋ० १०।१०३।१–१३)।

अप्सु हुत्वा दिगम्बरो भूत्वा पुत्रेषणावित्तेषणालोकेषणातो मुक्तोऽहमिति ब्रूयात्। अत ऊर्ध्वं न पुत्रगृहं गच्छेत्। मृते च पुरुषसूक्तेन विष्णुबुद्ध्याभिषिञ्चति संस्कारमेव कुर्यात्। एवं विरक्तस्यातुरस्य स्वस्थस्य संन्यासविहिताङ्गेषु यन्मन्त्रानुष्ठाने शक्तिर्यथाविधिस्तदनुष्ठानपूर्वकं प्रधानं प्रैषोच्चारणमात्रं मत्वा संन्यासयुक्तिरिति श्रवणात्। तदुत्तरकालमेव मृतस्योपदेशविकलस्यापि खननसंस्कारमेव कुर्यात्। जीवतश्चेच्छिखां यज्ञोपवीतं च नित्यक्रियाविधिवद्विसृज्य दण्डकाषायवस्त्रादीनि चाऽऽदाय यतिधर्मानेवानुतिष्ठेत्। सद्गुरुमन्विष्य तदुपदेशं गृहीत्वा स्वधर्मनिष्ठो भवेत्। अयमर्थो विद्वत्संमतः प्रयोक्तव्यः। इत्यातुरसंन्यासः।)

तदनन्तर अन्य जल से अञ्जलि को पूर्ण ग्रहण कर पूर्वादिदिशाओं में प्रत्येक को गिरा दे—ओं भूः स्वावित्रीं प्रवेशयामि १ ॐ भुवः सावित्रीं प्रवेशयामि २ ॐ स्वः सावित्रीं प्रवेशयामि ३ ॐ भूर्भुवः स्वः सावित्रीं प्रवेशयामि ४ इन मन्त्रों से साबित्री का प्रवेश कर बाद में ऊपर को बाहुकर सूर्य के अभिमुख होकर 'ॐ भूः संन्यस्तं मया १ ॐ भुवः संन्यस्तं मया २ ॐ स्वः संन्यस्तं मया ३ ओं भूर्भुवः स्वः संन्यस्तं मया ४ इन प्रैष का उच्चारण करे। इसप्रकार मन्द्र, मध्यम और उच्चस्वर से तीन बार कहकर मौन होकर शिखा का छेदन कर स्नान और आचमन कर यज्ञोपवीत उतार कर अञ्जलि से ग्रहण कर 'ओं भूः स्वाहा' इस मन्त्र से जल में हवन कर दिगम्बर होकर पुत्रेषणा, वित्तेषणा और लोकेषणा से मुक्त हो जाऊँ ऐसा कहे। इसके बाद पुत्र के घर में न जाय। और मरने पर पुरुषसूक्त से विष्णु की बुद्धि से अभिषेक करे—संस्कार ही करे। इसतरह विरक्त आतुर स्वस्थ का संन्यास विहित अंगों में जो मन्त्रों के अनुष्ठान में शक्ति हो तो यथाविधि से उसका अनुष्ठानपूर्वक प्रधान प्रैष का उच्चारणमात्र कर 'संन्यासयुक्तिः' ऐसा श्रवण करे। उसके उत्तर समय में ही मृत का उपदेश विकल का भी खनन संस्कार ही करे। जीवित हो तो शिखा, यज्ञोपवीत और नित्यक्रिया को विधिवत् त्याग कर दण्ड, काषायवस्त्र आदि को ग्रहण कर संन्यासियों के धर्मों का ही अनुष्ठान करे। अच्छे गुरु का अन्वेषण कर उसके उपदेश को ग्रहण कर अपने धर्म में तत्पर रहे। यह अर्थ विद्वानों का संमत प्रयोग करे। यह आतुरसंन्यास है।

(मृते निर्णयः)

सर्वसङ्गनिवृत्तस्य ध्यानयोगरतस्य च। न तस्य दहनं कार्यं नाशौचं नोदकक्रिया ॥

सब संगों से निवृत्त का और ध्यान-योग में तत्पर संन्यासी का दाह, आशौच तथा उदकक्रिया नहीं करना चाहिये।

(कुटीचकादीनां मरणे निर्णयः)

तथा—कुटीचकं तु प्रदहेत्पूरयेत्तु बहूदकम्। हंसो जले तु निःक्षेप्यः परहंसं प्रपूरयेत् ॥

और कुटीचक (इस समय समय के प्रभाव से कुटीचक, बहूदक, हंस और परमहंस नहीं मिल रहे हैं ऐसी किंवदन्ती है। उसमें भी अनेक वर्ण के लोगों ने कषायवस्त्र धारण किया है। 'बंगाल में दाह का आदेश है—यह भी जनश्रुति है।) का दाह करे, बहूदक को मृत्तिका[1] पूरण करे। हंस को जल में फेंक दे तथा परमहंस को मट्टी के दबा दे।

१—ब्रह्मीभूतं नारायणरूपिणं भिक्षुं शौनकोक्तप्रकारेण संस्करिष्ये—इति संकल्प्य अव्रणं नवं कलशमानीय तीर्थोदकेनापूर्य तदुदकम्—गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति। नर्मदे सिन्धुकावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥ नारायणं परं ब्रह्म तत्त्वं नारायणः परः। नारायणं परो ध्यात्वा ध्यानं नारायणः परः ॥ यच्च किञ्चिज्जगत्सर्वं दृश्यते श्रूयतेऽपि वा। अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः ॥ देवदत्ततया कश्चिदस्यैव विकृतिं गतः। पूर्णं ब्रह्मैव संप्राप्तस्तस्माद् ब्रह्म स उच्यते ॥ इत्येतैर्मन्त्रैरभिमन्त्र्य 'नमस्ते रुद्र' इति षोडशभिः 'विष्णोर्नुकम्' इति चतुर्भिः, 'विष्णोः कर्माणि' इति द्वाभ्यां 'त्रीणि पदा' इति द्वाभ्याम् 'आ पो हि ष्ठे' ति तिसृभिश्च कलशोदकेन यतिशरीरं स्नापयित्वा वस्त्र-चन्दन-पुष्प-धूप-दीपाद्युपचारैरभ्यर्च्य शिक्ये शरीरमारोप्य पुष्प-मालादिभिरभ्यर्च्य मन्त्रघोषैर्जयशब्दादिभिः शंखदुन्दुभिनादैरपि ग्रामात्प्राची-

पलाशमूले नदीतीरेऽन्यत्र वा गन्धपुष्पालङ्कृतं शवं वाद्यघोषेण नीत्वा दण्डमात्रं व्याहृतिभिः खात्वा सप्तव्याहृतिभिस्त्रिः प्रोक्ष्य दर्भानास्तीर्य नवघटे पञ्चरत्नोदकं क्षिप्त्वा 'नारायणः परं ब्रह्म' इत्यभिमन्त्र्य तेनैव संस्नाप्याष्टाक्षरेण वस्त्रगन्धपुष्पधूपदीपान् दत्त्वा 'विष्णो हव्यं रक्षस्व' इति शवं गर्ते निधाय 'इदं विष्णुरिति दक्षिणहस्ते दण्डं 'यदस्य पारे' इति सव्ये शिक्यं 'येन देवाः पवित्रेण' इतिमुखे जलं पवित्रं सावित्र्योदरे भिक्षापात्रं 'भूमिः श्वभ्र' इति गुह्ये कमण्डलुं निधाय 'चितिः स्रुक्' इति दशहोत्राभिमन्त्रयेदिति विश्वादर्शटीकायां स्मृत्यर्थसारे च ।

पालास के मूल में या नदी के किनारे पर या अन्यत्र गन्ध, पुष्पों से अलंकृत कर शव को बाजे गाजे के साथ ले जाकर दण्डमात्र व्याहृतियों से खोदकर सात व्याहृतियों से तीन बार प्रोक्षण कर कुशाओं को

मुदीचीं वा दिशं नीत्वा शुद्धदेशे स्थापयित्वा---'नदीतीरेऽश्वत्थमूले देवतायतनेऽथवा' अधस्तद्ब्रह्मवृक्षस्य गर्भं कुर्याद्यथाविधि ॥ ततो भूमिं व्याहृतिभिः संप्रोक्ष्य दण्डप्रमाणामधोगर्तां चतुरस्रां देवयजननाम्नीं भूमिं खात्वा तन्मध्ये सूक्ष्मगर्भसार्धहस्तपरिमितं कृत्वा तत्र सप्तव्याहृतिभिः पञ्चगव्यं प्रक्षिप्य जलसमाधिपक्षे गर्तस्थाने महानदीं परिकल्प्य तत्र पञ्चगव्यं प्रक्षिप्य नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि । तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् ॥ इति मन्त्रेण प्रागग्रान्कुशानास्तीर्य सावित्र्या शरीरं संप्रोक्ष्य पुरुषसूक्तेन शंखोदकेन संस्नाप्य प्रणवेनाष्टोत्तरशतवारं शंखोदकेन संस्नाप्य च पुरुषसूक्तेन षोडशोपचारैरभ्यर्च्य तुलस्यादिमिश्रितपुष्पमालादिभिरलङ्कृत्य 'ॐ विष्णो हव्यं रक्ष' इति शरीरं गर्ते उदङ्मुखं निधाय इमा आपः सर्वेषां भूतानामध्वासामपा ँ सर्वाणि भूतानि मधु पश्चायमास्वप्सुतेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्म ँ रेतसस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोयमेव वसवो यमात्मदेममृतमिदं ब्रह्मेद ँ सर्वम् । इति वामभागे कमण्डलुं स्थापयित्वा दण्डं त्रेधा कृत्वा 'इदं विष्णुः' इति मन्त्रेण दक्षिणहस्ते निधाय जलसमाधिपक्षे तु---कमण्डलुनिधानादिशिरोभेदनान्तं षोडशोपचारपूजनान्तं तत्रैव कुर्यात् । अथ हृदये हस्तं दत्त्वा जपेत्---ॐ ह ँ सः शुचिषद् । परेण नाकं निहितं गुहायां विभ्राजदेतद्यतया विंशति । वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः ॥ ते ब्रह्मलोके तु परान्तकाले परामृताः सरिमुच्यन्ति सर्वे ॥ भ्रुवो मध्ये पुरुषसूक्तम् । मूर्ध्नि-ब्रह्मयज्ञानम् । नाभौ-विष्णोरराटमसि । कर्णाभिर्मन्त्रावृत्त्या देवस्य त्वा० । ॐ भूमिर्भूमिमगान्मातामातरमप्यगात् । भूयास्मपुत्रैः पशुभिर्योनो द्वेष्टि स भिद्यताम् ॥ इति मन्त्रेण मूर्धानम् । अश्मना परशुना शंखेन नारिकेलेन वा भिन्द्यात् । शिरोभेदेन कर्तुमशक्तश्चेत् शिरसि गुडपिण्डं नारिकेलं वा निधाय भिन्द्यात्---इत्याचारः । 'ॐ भूर्भुवः स्वरोम्' इति यतिशरीरमभिमन्त्र्य दर्भैराचाद्यदेवयजने लवणं दत्त्वा प्रणवेन सिकतादिना पूरयेत् । जलसमाधिपक्षे तु शिरोभेदनोत्तरं 'भूरसि भूमिः' । इत्यभिमन्त्र्य कुशैराच्छाद्य पाषाणं दृढं बध्वा 'विष्णो हव्य ँ रक्ष' इति प्रणवेन स्वाहान्तेन च नद्यां ह्रदे क्षिपेत् । भिक्षुदेहं मोचयेदुच्चैर्हरिः स्मरणपुरःसरम् । ततः कर्तृसहिताः सर्वे ब्राह्मणा अनेकजन्मसञ्चितार्यैर्विमुक्ता वयमश्वमेधाफलं सहस्रगुणितं प्राप्त इति भावयन्तः, समाधिदेशं नमस्कृत्य अवभृथबुध्या स्नात्वा तिलकं धृत्वा नैवेद्यशेषं गृहीत्वा उच्चैर्हरिः स्मरणपूर्वकं सोत्साहा आगच्छेयुः । ततः कर्ता स्नात्वा जानुमात्रजले स्थित्वा---सिद्धिंगतस्य ब्रह्मीभूतस्य नारायणरूपिणः तृप्त्यर्थं तर्पणं करिष्ये---इति सङ्कल्प्य सव्येन देवतीर्थेन तर्पयेत्---आत्मा तृप्यताम् । अन्तरात्मा तृ० । परमात्मा० । गुरुस्तृ० । इत्यावृत्त्या चतुर्वारं सन्तर्प्य शुक्लपक्षे गतस्य केशवादि द्वादशनामभिस्तर्पयेत्---केशवस्तृप्यताम् । नारायण० । माधवस्तृ० । विष्णुस्तृ० । मधुसूदनस्तृ० । त्रिविक्रमस्तृ० । वामनस्तृ० । श्रीधरस्तृ० । हृषीकेशस्तृ० । पद्मनाभस्तृ० । इत्यादिशुक्ले । कृष्णपक्षे सिद्धिंगतस्य तु---संकर्षणस्तृ० । वासुदेवस्तृ० । प्रद्युम्न० । अनिरुद्धस्तृ० । अधोक्षज० । पुरुषोत्तम० । नारसिंह० । अच्युत० । जनार्दन० । उपेन्द्र० । हरि० । श्रीकृष्ण० । इति कृष्णे । इदं तर्पणं क्षीरेणेत्याचारः । धौते वाससी परिधाय---सिद्धिंगतस्य ब्रह्मीभूतस्य परमहंसस्य नारायणरूपिणस्तृप्त्यर्थं नारायणपूजां करिष्ये । इति सङ्कल्प्य नदीतीरे चतुरस्रां वेदिकां सम्पाद्य तत्र मृन्मयं लिङ्गं संस्थाप्यालंकृत्य अशक्तो नदीजल एव तत्स्वरूपं विचिन्त्य पुरुषसूक्तेन 'ॐनमो नारायणाय' इति उक्त्वातन्मन्त्रसहित प्रत्यृचा आवाहनादिषोडशोपचारपूजां कृत्वा घृतमिश्रपायसबलिं घृतदीपं च । नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि । तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् ॥ विष्णवे इदं बलिं समर्पयामीतिनिवेद्य तन्निवेदितबलिं नद्यादिजले प्रक्षिप्य आचम्य शंखे शुद्धजलमादाय तत्र गन्ध-पुष्प-तुलसीदलफलं च प्रक्षिप्य 'ब्रह्मणे नमः' इदमर्घ्यं समर्पयामि । इत्यर्घं दत्वा गृहं गच्छेत् । इति प्रथमदिनकृत्यम् । एवं दशदिनपर्यन्तं तर्पणपूजापायसबलिदीपार्घदानानि प्रत्यहं कुर्यात् । संन्यस्तानां मृते देहे नाशौचं नोदकक्रिया । पदे-पदेऽश्वमेधस्य वाहकस्य फलं लभेत् ॥ विष्णुबुध्या यतिं त्यज्य स्नात्वा गच्छेद् गृहं ततः ।

बिछाकर नवीन घड़े में पञ्चरत्नोदक गिराकर [१]"नारायणः परं ब्रह्म' इससे अभिमन्त्रण कर उसीसे स्नान कराकर 'अष्टाक्षर मन्त्र–(ओं नमो नारायणाय) से वस्त्र, गन्ध, पुष्प, धूप, दीपों को देकर 'विष्णो हव्यं रक्षस्व' (यजु० सं० १।४) इस मन्त्र से गढे में शव को रखकर 'इदं विष्णुः' इस मन्त्र से दाहिने हाथ में दण्ड को 'यदस्य[२] पारे' इस मन्त्र से सव्य में शिक्य को 'येन देवा[३] पवित्रेण' इस मन्त्र से मुखमें पवित्र जल को 'सावित्री' मन्त्रसे उदर में भिक्षापात्र को 'भूमिः स्वभ्र' इस मन्त्र से गुह्यस्थान में कमण्डलु को रखकर 'चिति [४]स्रुक्' इत्यादि दश होता आदि मन्त्र को कहे। यह विश्वादर्श की टीका में और स्मृत्यर्थसार में कहा है।

बृहच्छौनकस्तु—यतिं पुरुषसूक्तेन स्नापयित्वा घटं ततः। प्रणवेनाष्टवारं तं प्रोक्षयेदथ सर्वतः॥

बृहच्छौनक ने तो कहा है—संन्यासी पुरुषसूक्त से स्नान कराकर घड़े को जल से भरकर प्रणव से आठ बार उसका प्रोक्षण सब तरफ से करे।

विष्णो हव्यं रक्षस्वेति यजुषा प्रणवेन च। गर्ते प्रेतं विनिःक्षिप्य चेदं विष्णुर्विचक्रमे॥ इति मन्त्रेण दण्डं तु दद्याद्दक्षिणहस्तके। मूर्द्धानं भूर्भुवः स्वश्चेत्युक्त्वा शङ्खेन भेदयेत्॥ गर्तं पुरुषसूक्तेन लवणेन प्रपूरयेत्। शृगालश्वादिरक्षार्थं सम्यक् गर्तं प्रपूरयेत्॥ इति।

'विष्णो हव्यं रक्षस्व' (यजु० सं० १।४) इस यजुसे और प्रणव से करे। गढे में प्रेत को छोड़कर 'इदं विष्णुः'[५] इस मन्त्र से दाहिने हाथ में दण्ड दे। शिर को 'ओं भूर्भुवः स्वः' इस मन्त्र को कहकर शंख से भेदन करे। [६]पुरुषसूक्त से गढे को और निमक से भर दे। सियार; कुत्ता आदि से रक्षार्थ अच्छी तरह गढे को भर दे।

१—नारायणः परं ज्योतिरात्मा नारायणः परः। नारायणः परं ब्रह्म नारायण नमोऽस्तु ते॥ नारायणः परो देवो दाता नारायणः परः। नारायणः परो ध्याता ध्यानं नारायणः परम्॥ नारायणः परो धर्मो नारायण नमोऽस्तु ते। नारायणः परो वैद्यो विद्या नारायणः परः॥ नारायणः परं दानं विधिर्नारायणः परः। नारायणः परं धाम नारायण नमोऽस्तु ते॥ विश्वं नारायणं साक्षान्नारायण नमोऽस्तु ते॥ नारायणाद्विधिर्जातो जातो नारायणाच्छिवः। जातो नारायणादिन्द्रो नारायण नमोऽस्तु ते॥ रविर्नारायणस्तस्माचन्द्रो नारायणो महः। वह्निर्नारायणः साक्षान्नारायण नमोऽस्तु ते॥ नारायण उपास्यः स्याद् गुरुर्नारायणः परः। नारायणः परो बोधो नारायण नमोऽस्तु ते॥ नारायणः फलं मुख्यं सिद्धिर्नारायणः सुखम्। सर्वं नारायणः शुद्धो नारायणः नमोऽस्तु ते॥ इति स्तोत्रं पठेत्।

२—यदस्य पारे रजसः शुक्रं ज्योतिरजायत। तं नः पर्षदति द्विषोऽग्ने वैश्वानर स्वाहा॥ (तैत्त० सं० ४। २।५।६)।

३—येन देवाः पवित्रेण आत्मानं पुनते सदा। तेन सहस्रधारेण पावमान्यः पुनन्तु मा॥ (तैत्त० ब्रा० १। ४।८।६)।

४—चित्ति स्रुक्। चित्तमाज्यम्। वाग्वेदिः। अधीतं बर्हिः। केतो अग्निः। विज्ञातमग्निः। वाक्पतिर्होता। मन उपवक्ता। प्राणो हविः। सामाध्वर्युः। वाचस्पते विधे नामन्। विधेम ते नाम। विधे त्वमस्माकं नाम। वाचस्पतिः सोमं पिबतु। आस्मासु नृम्णन्धात् स्वाहा॥ (तैत्त० आर० ३।१) । ब्रह्मण एक होता। स यतः—इत्यादि मन्त्र पृ० ११६६ गये हुए हैं। वहीं से देखिये।

५—इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्। समूढमस्य पांसुरे॥ (ऋ० १।२२।१७)।

६—सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्। स भूमिं विश्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥ पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्। उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति॥ एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायाँश्च पूरुषः। पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥ त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः। ततो विश्वङ्व्यक्रामत् साशनानशने अभि॥ तस्माद्विराडजायत विराजो अधि पूरुषः। स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः॥ यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत। वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः॥ तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः। तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये॥ तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम्। पशून् ताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान् ग्राम्याश्च ये॥ तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे। छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत॥ तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः। गावो ह जज्ञिरे तस्मात् तस्माज्जाता अजावयः॥ यत् पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्। मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते॥

कुटीचकस्य तु दाहः कार्यः। यथा सर्वं प्राग्वत्कृत्वाग्निं प्रज्वाल्य साग्नेर्दक्षिणकरे 'उपावरोह' इत्यवरोह्य निर्मथ्य वा गर्ते चितिं कृत्वा 'अग्निनाऽग्निः समिध्यते' इत्यग्निं दत्त्वा सावित्र्या प्रणवेन वा दहेत्। ततोऽष्टशतं प्रणवं 'नारायणः परं ब्रह्म' इति च जप्त्वा सशिरः प्रणवव्याहृत्या गायत्र्या तद्भस्मास्थीनि च तीर्थे क्षिप्त्वा स्नानाच्छुचिः नास्यान्यदौर्ध्वदेहिकम्।'

कुटीचक का तो दाह करना चाहिये। सारे कार्य को पहले के सदृश कर अग्नि को प्रज्वलित करे। साग्निक के तो दाहिने हाथ में [1]'उपावरोह' इस मन्त्र से अवरोहण कर या अग्निमन्थन कर गढे में चिता का

(कुत्ता)

(कौआ)

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः। ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥ चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत। मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत॥ नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत। पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात् तथा लोकाँ अकल्पयन्॥ सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः। देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम्। यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्। ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥ (ऋ० १०।९०।१-१६)।

१—उपावरोह जातवेदः पुनस्त्वं देवेभ्यो हव्यं वह नः प्रजानन्। आयुः प्रजां रयिमस्मासु धेहि। अजस्रो दीदिहि नो दुरोणे॥ (तै० ब्रा० २।५।८।२१)।

निर्माण कर अग्नि से 'अग्निनाऽग्निः[1] समिध्यते' इस मन्त्र से अग्नि को देकर गायत्री या प्रणव 'ओंकार' से दाह करे। तदनन्तर आठ सौ ओंकार और 'नारायणः परं ब्रह्म' इसको जपकर शिर के सहित प्रणव व्याहृति गायत्री से उसकी भस्म को तीर्थ में गिराकर स्नान से शुद्ध हो जाता है और दूसरे का और्ध्वदेहिक नहीं है।

त्रिदण्डग्रहणादेव प्रेतत्वं नैव जायते। इत्युशनसः स्मृतेः।

त्रिदण्ड ग्रहण से ही प्रेतत्व नहीं होता है—एसा उशनसस्मृति में कहा है।

एकादशेऽह्नि पार्वणं तदपि त्रिदण्डिनः। हंसपरमहंसादीनां पार्वणादिकमपि न कार्यम्, इति शूलपाणिः।

शूलपाणि ने कहा है—ग्यारहवें दिन जो पार्वणश्राद्ध होता है वह भी त्रिदण्डो का ही होता है। हंस, परमहंस आदियों का पार्वणश्राद्ध आदि भी नहीं करना चाहिये।

श्राद्धचिन्तामणौ दत्तात्रेयः—एकोद्दिष्टं जलं पिण्डमाशौचं प्रेतसत्क्रियाम्। न कुर्याद्वार्षिकादन्यद् ब्रह्मीभूताय भिक्षवे॥

श्राद्धचिन्तामणि में दत्तात्रेय ने कहा है—एकोद्दिष्ट, जल, पिण्ड, आशौच और प्रेत का सत्कर्म ब्रह्मीभूत संन्यासी को छोड़कर न करे।

प्रेतक्रिययैकोद्दिष्टनिषेधे सिद्धे पुनस्तद्ग्रहणमाब्दिकपरम्। तेन तत्पार्वणमेव। त्रिदण्डिनां द्वादशे नारायणबलिः। तद्विधिरन्यश्च विशेषः प्रागुक्त इत्यलं बहुना।

प्रेतक्रिया से एकोद्दिष्ट निषेध की सिद्धि में फिर से उसका ग्रहण आब्दिकपरक है। इससे उसका पार्वण ही है। त्रिदण्डियों का तो बारहवें दिन नारायणबलि करे। उसकी विधि और अन्य विशेष यह पहले कह चुके हैं।

१—अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा। हव्यवाड्जुह्वास्यः॥ (ऋ० १।१२।६, साम० ८।४४, तै० स० १।४।४६।३, ५।११, ९, तै० ब्रा० २।७।१२।३)।

(गुर्वाराधनाङ्गभूतं तीर्थपूजनम्)

देशकालौ सङ्कीर्त्य—'गुर्वाराधनाङ्गभूततीर्थपूजनं करिष्ये' इति सङ्कल्प्य गोमयेन चतुरस्रं मण्डलं कृत्वा रङ्गवल्यादिभिरलङ्कृत्य तन्मध्ये धान्यराश्युपरि कलशं स्थापनविधिना संस्थाप्य—पुष्कराद्यानि तीर्थानि गंगाद्याः सरितस्तथा। गुरुपादोदके तीर्थे ध्यायाम्यभ्युदयाय नः॥ इति तीर्थानि भावयित्वा पुरुषसूक्तेन प्रत्यृचं तीर्थराजाय नमः—इत्यन्तेन षोडशोपचारैरभ्यर्च्य अर्चितकलशं शिरसि धृत्वा—'ॐ पञ्चनद्यः सरस्वती०' इत्यादिना।

ततो हरिकीर्तनपुरःसरं पुनः कलशस्य गन्धाक्षतपुष्पादिना संपूज्य—आनन्दमानन्दकरं प्रसन्नं ज्ञानस्वरूपं निजबोधरूपम्। योगीन्द्रमीड्यं भवरोगवैद्यं श्रीमद्गुरुं नित्यमहं नमामि॥ गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः। गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ अखण्डं मण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्। तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ इति तीर्थराजं नमस्कृत्य गुर्वर्थविप्रहस्ते पादोदकपात्रं दत्वा तदाज्ञया तत्तीर्थमन्त्रेण गृह्णीयात्—अविद्यामूलशमनं सर्वपापप्रणाशनम्। गुरुपादोदकं तीर्थं संसारद्रुमच्छेदनम्॥ इति। पुत्रादिकामनायां तु—शोषणं पापपङ्कस्य दीपनं ज्ञानतेजसः। गुरुपादोदकं पीतं पुत्रपौत्रप्रवर्धनम्॥ ततः यस्य स्मृत्येति—उक्त्वा विष्णुं स्मरेदिति।

(अष्टकाश्राद्ध)

इसमें—गोमांसद्रव्य होने से 'अश्वालंभं गवालंभम्' इस नियम से कलि में निषेध है और उसका प्रतिनिधि द्रव्यान्तर का विधान न होने से यजुर्वेद शाखावालों में विधान नहीं है। इसका विशेष विवरण कात्यायनश्रौतसूत्र की भूमिका पृ० ३२ में देखिये—जो पूज्यतम श्री पिताजी की प्रकाशित है।

(अन्वष्टकाश्राद्ध)

(सपत्नीक) वृद्धप्रमातामह	प्रमातामह	मातामह	प्रपितामही	पितामही	माता	प्रपितामह	पितामह	पिता	
✳	✳	✳	✳	✳	✳	✳	✳	✳	आसन
✳	✳	✳	✳	✳	✳	✳	✳	✳	भोजनपात्र
✳	✳	✳	✳	✳	✳	✳	✳	✳	अर्घपात्र
✳	✳	✳	✳	✳	✳	✳	✳	✳	जलपात्र
✳	✳	✳	✳	✳	✳	✳	✳	✳	घृतपात्र

ब्रह्माण्डपुराणे—पितॄणां प्रथमं दद्यान्मातॄणां तदनन्तरम्। ततो मातामहानां च अन्वष्टक्ये क्रमः स्मृतः॥ केवलास्तु क्षये कार्या वृद्धावादौ प्रकीर्तिताः। अन्वष्टकासु मध्यस्था नान्त्याः कार्यास्तु मातरः। दीपिका के मत से मातृश्राद्ध को आदि में करे। यहाँ पर शाखाभेद से व्यवस्था है। बह्वृचोंको पितृपूर्वक और अन्यों को मातृपूर्वक है।

अन्वष्टका में, गया में और मरणदिन में माता का श्राद्ध पिता के जीवित भी पुत्र कर सकता है। किसी का मत है कि पिता के जीवित न करे। यह निर्मूल है—यह कमलाकर मत है। विधवा का भी करे—यह चन्द्रिकाकार का मत है। पर यहाँ आचार से व्यवस्था है। सपत्नमाताओं को भी अपनी माता के जीवितावस्था में भी दे सकता है। निर्णयसिन्धु-कारादि मत है।

दर्भबटुश्राद्धविधिः—सर्वथा ब्राह्मण के अलाभ में उसके प्रतिनिधित्व से आसनों पर दर्भबटुको रखकर उन्हीं में ब्राह्मणों का ध्यानकर सब श्राद्धप्रयोग को करे। दर्भबटुमाने दर्भ का समूह। ब्राह्मण सम्बन्धी मन्त्र प्रतिवचनों को स्वयं ही कहे।

देवलः—निधाय वा दर्भबटूनासनेषु समाहितः। प्रैषानुप्रैषसंयुक्तं विधानं प्रतिपादयेत्॥ यज्ञवस्तुनि मुष्टौ च स्तम्बे दर्भबटौ तथा। दर्भसंख्या न विहिता विष्टरास्तरणेषु च॥

(नित्यश्राद्ध)

वृद्धप्रमातामह	प्रमातामह	मातामह	प्रपितामह	पितामह	पिता	
✳	✳	✳	✳	✳	✳	आसन
✳	✳	✳	✳	✳	✳	भोजनपात्र
✳	✳	✳	✳	✳	✳	(अर्घपात्र)
✳	✳	✳	✳	✳	✳	जलपात्र
✳	✳	✳	✳	✳	✳	घृतपात्र

नोट—आमन्त्रण, होम, आवाहन, अर्घ, विसर्जन, पिण्डदान, दक्षिणा (इसमें विकल्प मत है।) विश्वेदेव, ब्रह्मचर्यादि नियम (धर्मप्रदीपे—आमे हैमे तथा नित्ये नान्दीश्राद्धे तथैव च। व्यतीपातादिके श्राद्धे नियमान् परिवर्जयेत्॥) दाता और भोक्ता के नियम, आदि नित्यश्राद्ध में नहीं होते हैं। इसकी पूर्णविधि श्राद्धविवेक के अन्त में मुद्रित है। विशेष विधान निर्णयसिन्धु में देखिये।

(वृद्धिश्राद्ध में पार्वणत्रयविचार)

वृद्धिश्राद्ध में तीन पार्वण होते हैं। प्रथम मातृपार्वण (मातृ, पितामही और प्रपितामही), दूसरा पितृ (पितृ, पितामह, प्रपितामह) पार्वण और तीसरा सपत्नीक मातामह (मातामह, प्रमातामह, वृद्धप्रमातामह) पार्वण होता है। उसका काल कर्मदिन के पूर्वदिन में मातृपार्वण होता है। उसमें विश्वेदेवा नहीं होते हैं। कर्मदिन में पितृपार्वणश्राद्ध देवपूर्वक होता है। कर्मोत्तर दिन में देवपूर्वक सपत्नीक मातामह का पार्वणश्राद्ध होता है। असम्भव में प्रथमदिन में ही पूर्वाह्ण में मातृश्राद्ध, मध्याह्न में पितृपार्वण, अपराह्ण में मातामह का पार्वण होता है। यदि यह भी असम्भव हो तो पहले ही दिन पूर्वाह्ण में सबों का 'तन्त्रं वा वैश्वदेविकम्' इस श्राद्धकाशिका सूत्र १६ मत से तन्त्र से विश्वेदेवपूर्वक एक साथ अनुष्ठान करे। स्कन्दपुराणे—पार्वणं कुरुते यस्तु केवलं पितृहेतुतः। मातामहं न कुरुते पितृहा चोपजायते॥

अतिक्रान्तश्राद्धप्रयोगः—आशौचादिना मृताहातिक्रमे देशकालकथनान्ते तद्वर्गस्य षष्ठ्यन्तपदमुच्चार्य कृत्वातिक्रान्तमाब्दिकश्राद्धं करिष्ये—इति सङ्कल्प्य सर्वं कृत्वा श्वोभूते तिलतर्पणं कुर्यात्।

(महालयादि में विधवाकर्तृक पार्वणश्राद्ध)

श्राद्धकर्ता का आसन

(सपत्नीक-वृद्धप्रमातामह, प्रमातामह, मातामह) प्रपितामह, पितामह, पिता, प्रपितामही पितामही माता, परश्वसुर, श्वसुर, पति

आसन

भोजनपात्र

अर्घपात्र

जलपात्र

घृतपात्र

(पति०)   (मातृ०)   (पितृ०)   (मातामह०)

आसन   भोजनपात्र   अर्घपात्र   जलपात्र   घृतपात्र

पिण्डाधारवेदी   (पिण्डाधारवेदी)   पिण्डाधारवेदी   (पिण्डाधारवेदी)

श्राद्ध करनेवाली का आसन

नोट—विधवा स्त्री पति, श्वसुर, परश्वसुर और अपने पितृपितामह तथा प्रपितामह (स्मृतिरत्नावल्याम्—स्वभर्तृप्रभृतित्रिभ्यः स्वपितृभ्यस्तथैव च । विधवा कारयेच्छ्राद्धं यथाकालमतन्द्रिता ॥) का करे । यह षड्दैवत्य दर्शश्राद्धादि परक है । विधवाकर्तृक नान्दीश्राद्ध तो अपनी सास, परसास आदि, अपने पति-श्वसुरादि और अपने पिता आदि नव को ही दे । पुत्र करे तो अपने माता-आदि, पित्रादि और मातामहादि को दे ।

(तीर्थश्राद्ध)

सपत्नीक—वृद्धप्रमातामह   प्रमातामह   मातामह   प्रपितामह   पितामह   पिता (सपत्नीक)   आसन भोजनपात्र

कर्ता का आसन   प्रत्यवनेजन

कर्ता का आसन   विश्वेदेव   भोजनपात्र   आसन

तीर्थस्नान, तर्पण, श्राद्धादि मलमास में भी करे। रात्रि में भी भोजन करने पर भी करे। मुण्डन दूसरे दिन करे। इस श्राद्ध को रात में आमान्न, कन्दमूल फल या हेम से करे। अन्न से न करे। अन्न से तो रात्रि में या भोजनोत्तर तीर्थप्राप्त में दूसरे दिन करे। आशौच में न करे—यह आकस्मिक तीर्थप्राप्ति में है। बुद्धिपूर्वक आशौच में तीर्थ में न जाय। विवाहोत्तर भी निषिद्ध दिन में सतिल तर्पण करे। प्रथम स्नानाङ्ग तर्पण करे। फिर देवर्षि तर्पण करे। तदनन्तर पितरों का तर्पण करे। संन्यासियों को तो तीर्थ में भी तर्पण, श्राद्ध आदि नहीं करना चाहिए। स्नान आदि अवश्य करें। मलमास में तीर्थप्राप्ति में श्राद्ध करने पर शुद्धमास में फिर से करें—यह भट्टोजिदीक्षित मत है। घर में तीर्थश्राद्ध करे तो अन्न से ही करे—यह किसी की व्यवस्था है। तीर्थ में ब्राह्मण की परीक्षा न करे। यह श्राद्धीयब्राह्मण के न मिलने पर है। पतितादि दोषयुक्त ब्राह्मण का त्याग ही करे—यह स्मृतिरत्नावली का मत है। इसमें अर्घ्य, आवाहन, विप्राङ्गुष्ठनिवेशन तृप्तिप्रश्न, विकिर, दिग्बन्ध, अवनेजन, विसर्जन आदि नहीं होते हैं। अग्नौकरण नहीं होता है यह स्मृतिरत्नावली का मत है। बहुतों के मत से होना चाहिये। पिण्डों को तीर्थ में प्रक्षेप करे। दक्षिणाभिमुख करे। पुत्रवाली विधवा को निषेध है। किसी का मत है कि पुत्रवाली विधवा को भी पुत्र के असन्निधान में ब्राह्मण द्वारा कराना चाहिये। अपुत्रविधवा को तो करना ही चाहिये। संन्यासी को श्राद्ध-पिण्डदान निषेध है। श्री कमलाकर के मत से अनुपनीत भी करे। जीवत्पितृक को भी करना चाहिए—वृद्धौ तीर्थे च संन्यस्ते ताते च पतिते सति। येभ्य एव पिता दद्यात्तेभ्यो दद्यात्स्वयं सुतः॥ अशक्ति में तर्पणमात्र करे। अविभक्त भाई एक साथ तीर्थ में जायँ तो ज्येष्ठ भाई ही करे। विभक्त में अलग-अलग करें। तीर्थश्राद्ध में—काम्यत्व में धूरिलोचन, नित्यत्व में पुरूरवार्द्रव ही विश्वेदेव होते हैं। कोई धनुर्धरी को कहते हैं। यह विचारणीय है। सपत्नीक गृहस्थ को ही तीर्थयात्रा में अधिकार है। प्रायश्चित्त निमित्त तो बिना स्त्री के जा सकता है। विधवा को पुत्र की आज्ञा से ही अधिकार है। सधवा स्त्री को पति के बिना अधिकार नहीं है। ब्रह्मचारी को गुरु-नियुक्त में ही अधिकार है। क्षत्रिय और वैश्य—ब्राह्मण को साथ लेकर ही अधिकार है। तीर्थ में त्रिकाल सन्ध्या करनी चाहिये—एकदिन अवश्य ही रहे। आशौच के आने पर शुद्धि-पर्यन्त वहीं पर ही रहे। रजोधर्म में भी पाँचवें दिन चले। वाणिज्य, सेवा आदि के लिए तीर्थ में जाय तो स्नान अवश्य करे—इससे स्नान का फल होता है। तीर्थयात्रा का फल नहीं होता है। दूसरे से वेतन को ग्रहण कर जाने से सोलहवां भागका फल मिलता है। परान्न भोजन में भी सोलहवां भागफल होता है। तीर्थान्तरमें प्रसङ्गसे जाते हुए मध्य में तीर्थ की प्राप्ति हो जाय तो आधाफल होता है। तीर्थ में जाते हुए यदि भाग्यवश वापस आ जाय तो प्रायश्चित्त करे। तीर्थ में मरने पर तो ऋषियों के मण्डल में जाता है। मार्ग में नदी आदि के प्राप्त होने पर उसपार स्नान, उपवास, मुण्डन, श्राद्ध आदि करे—यह कमलाकर मत है। वाणिज्य के लिए जाय तो मुण्डन, उपवास आदि न करे यह त्रिस्थलीसेतु में भट्टों का मत है। करना ही चाहिये—यह कमलाकर मत है। सरस्वती नदी के मिलने पर इसी पार ही स्नानादि करे। तीर्थश्राद्ध के बाद अपने विभवानुसार तीर्थ की पूजा करे। तीर्थ के उद्देश्य से ब्राह्मण, सधवा स्त्रियों तथा दरिद्रों को भोजनादि करावे। यदि कर्ता का उसदिन उपवास हो तो श्राद्धशेष का अवघ्राण करे। यात्रा से आने बाद शुभ मुहूर्त में घर में प्रवेश करे। पुनः सब पितरों के लिए घृतप्रधान द्रव्य से श्राद्ध करे। अर्थात्—घृतश्राद्ध करे। उसमें सङ्कल्प यों करे—'सर्वान् पितॄन् उच्चार्य—एतेषां तृप्त्यर्थममुकतीर्थप्रत्यागमननिमित्तं घृतश्राद्धं करिष्ये। कोई दधिश्राद्ध को कहते हैं। उसपक्ष में 'दधिश्राद्धं करिष्ये' यों कहे। इसमें दधि की प्रधानता रहेगी। अन्य व्यञ्जनादि भी दे। तीर्थश्राद्ध छः पुरुषों के उद्देश्य से होता है। छः पुरुषों को पिण्ड देने के बाद कुछ हटकर हवि के शेष से मातृ, पितामही, प्रपितामही को पिण्डदान मात्र दे। फिर मात्रादि पिण्ड के पूर्व कुशाओं पर ज्ञातिवर्गों के लिए एक बृहत्पिण्ड देना चाहिए। ऐसा निबन्धों में लिखा है।

एवं निरूपितमिदं गहनं तु धर्मतत्त्वं विचार्य वचनैश्च नयैश्च सम्यक्।
तद्दोषदृष्टिमपहाय विवेचनीयं विद्वद्भिरित्यविरतं प्रणतोऽस्मि तेषु।

इस गहन धर्मतत्त्व का मैंने आचार्यों के वचनों तथा युक्तियों से भलीभांति विचार कर इस प्रकार निरूपण किया है। मेरा बार बार प्रणतिपूर्वक विद्वानों से निवेदन है कि दोष दृष्टि का त्याग कर आप सब इसका विवेचन करने की कृपा करें।

मया सद्वाऽसद्वा यदिह गदितं मन्दमतिना किमेतच्छक्यं वाऽऽध्यवसितुमपि स्वल्पमतिना।
तदेवं यत्किञ्चिद् गदितमिह विख्यातमहिमा प्रतापोऽयं सर्वो विकसति तु पित्रोश्चरणयोः॥

मैं मन्दमति हूँ। मैंने इस ग्रन्थ में सत् अथवा असत् जो कहा है। क्या वह मन्दमति द्वारा कहा जा सकता है? कथमपि नहीं। अतः इस प्रकार जो कहा गया है वह सब पूज्य माता पिता के श्रीचरणों के सुविख्यात प्रताप का ही प्रभाव है।

यो भाट्टतन्त्रगहनार्णवकर्णधारः शास्त्रान्तरेषु निखिलेष्वपि मर्मभेत्ता।
योऽत्र श्रमः किल कृतः कमलाकरेण प्रीतोऽमुनास्तु सुकृती बुधरामकृष्णः॥

इस ग्रन्थ के निर्माण में कमलाकर ने जो परिश्रम किया है उससे कुमारिलभट्ट प्रणीत तन्त्ररूपी (पूर्वमीमांसारूपी) अगाध सागर के कर्णधार (अर्थात् मीमांसा शास्त्र के अध्यापन में अत्यन्त निष्णात), अन्यान्य सभी शास्त्रों की गुत्थियां सुलझानेवाले महान् विद्वान् पुण्यात्मा श्रीरामकृष्ण प्रसन्न हों।

श्रीभट्टरामेश्वरसूरिसूनुश्रीभट्टनारायणसूरिसूनोः।
श्रीरामकृष्णस्य सुतः कृतीमं व्यधान्निबन्धं कमलाकराख्यः॥

श्री भट्ट रामेश्वर सूरि के प्रपौत्र, श्री भट्ट नारायण सूरि के पौत्र तथा श्री भट्ट रामकृष्ण के पुत्र कृती श्री कमलाकर ने इस निबन्ध की रचना की।

नानानिर्णयत्वान्निर्णयसिन्धुः प्रोच्यतां विबुधाः। निर्णयसरोजवत्त्वान्निर्णयकमलाकरोऽप्यस्तु॥

हे विद्वज्जनो, इसमें बहुत विषयों का निर्णय होने से आप चाहे इसे निर्णय कहें, निर्णयरूपी कमलों से पूर्ण होने से चाहे इसका नाम निर्णय कमलाकर रखें।

वसुऋतुऋतुभूमिते १६६८ गतेऽब्दे नरपतिविक्रमतोऽथ याति रौद्रे।
तपसि शिवतिथौ समापितोऽयं रघुपतिपादसरोरुहेऽर्पितश्च॥

नृपतिविक्रमादित्यसे सोलहसौ अड़सठ वर्ष व्यतीत होनेपर 'रौद्र' नामक वर्षमें माघ महीनेकी चतुर्दशी तिथि को यह ग्रन्थ कमलाकर ने समाप्त किया और भगवान् रामचन्द्र के चरणकमल में अर्पित कर दिया।

जगति सकलविद्यासिन्धुमुष्टिन्धयानां परभणितिपरीक्षा युज्यते सज्जनानाम्।
तदिह मम निबन्धे दूषणं भूषणं वा यदि भवति विदग्धैस्तद्ध्यवश्यं विमृश्यम्॥

जगत् में संपूर्ण विद्याओं के समुद्र में मुष्टिपान करनेवाले (संपूर्ण विद्याओं में पारंगत) सज्जन ही दूसरों के वचनों की परीक्षा करने में योग्य हैं। इसलिये इस मेरे निबन्ध में जो दोष या अच्छाई हो पण्डितों को उसे अवश्य विचार करना चाहिये।

स्वर्गीय-महामहोपाध्याय-श्री पं० प्रभुदत्तजी शास्त्री आहिताग्नि पौत्र-स्वर्गीय-महामहोपाध्याय-
श्री पं० विद्याधरजी गौड आहिताग्नि पुत्र श्री दौलतराम गौड ने श्री कमलाकर भट्ट
विरचित निर्णयसिन्धु महानिबन्ध की 'सरस्वती' नाम की हिन्दी टीका और 'मनोजाञ्जना'
नाम की टिप्पणी संवत् २०२७ (रुधिरोद्गारी) माघकृष्ण तृतीया गुरुवार
मकरार्क में (१४।१।७१) को समाप्त की।

(प्राचीन व्यवस्थाओं का संग्रहः)

(स्वर्गीय-महामहोपाध्याय श्री पं० विद्याधर जी गौड़ द्वारा लिखित)

मरणानन्तरसूतक विचारः

१—अथेदानीं मरणाशौचस्य निमित्तमधिकृत्य किञ्चिद्विचार्य निर्णीयते। द्विविप्रकारमुपलभ्यतेऽनुष्ठानं लोके—क्वचिन्मरणसमयानन्तरमेवाशौचम्, क्वचिच्च दाहसमयानन्तरम्। यदि प्रथमः कल्पः तर्हि तस्मिन् दिने मरणं पितुरन्यस्य वा तद्दिनमारभ्यैव पुत्रादीनां दशाहाद्याशौचम्। यदि च द्वितीयः कल्पः तर्हि दाहदिनादारभ्य। प्रथमकल्पस्य मरणं निमित्तम्, द्वितीयस्य च दाहो निमित्तम्। निमित्तं प्राप्य नैमित्तिकमवश्यमनुष्ठेयमिति पूर्वन्यायसिद्धः पन्थाः। दिने प्रातश्चेत्कश्चिन्मृतः तस्य प्रतिबन्धकाभावे सति तद्दिन एव दाहस्यापि सम्भवान्निमित्तयोर्वैलक्षण्यं तादृशं किमपि नास्ति। परन्तु प्रातर्मृतस्य दैववशात् तत्परदिने दाहस्य चेत्प्रसक्तिः, तर्हि प्रथमकल्पवतां मरणदिनादारभ्याशौचम्, द्वितीयकल्पवताञ्च परदिनादारभ्यस्येति भवति वैलक्षण्यमनुष्ठाने अथवा रात्रौ चेन्मरणं, तदा—'अर्धरात्रावधिः कालः सूतकादौ विधीयते। रात्रिं कुर्यात् त्रिभागां तु द्वौ भागौ पूर्व एव तु। उत्तरोंऽशः प्रभातेन युज्यते ऋतुसूतके। रात्रावेव समुत्पन्ने मृते रजसि सूतके। पूर्वमेवं दिनं ग्राह्यं यावन्नाभ्युदितो रविः—इति मिताक्षरोद्धृतकश्यपवचनेभ्यः प्रतीयमानपक्षावलम्बनेनापि निमित्तयोरनयोर्भवति वैलक्षण्यम्। तदत्र किमुभयोः कल्पयोरव्यवस्थयानुष्ठानम्? उतव्यवस्थामाश्रित्यानुष्ठानमिति 'संशये—अव्यवस्थायामेव केचन पूर्वपक्षयन्ति, द्वेधाप्याचारस्य दृश्यमानत्वात्। तदिदमसङ्गतमिव। यत्र हि व्यवस्थया निमित्तमुपपादयितुं शक्यते, न तत्राव्यवस्थायास्समाश्रयणं युक्तम्। दाहस्य मरणस्य च व्यक्तिभेदेन निमित्तत्वस्वीकारे व्यवस्थाया उपपत्तेः। तथाहि—'अनग्निमत उत्क्रान्तेः, साग्नेस्संस्कारकर्मणः। शुद्धिः सञ्चयनं दाहान्मृताहस्तु यथाविधिः—इत्यङ्गिरोवचनात्। अनाहिताग्नेर्मरणे मरणदिवसमारभ्याशौचं पुत्रादिनाम्, आहिताग्नेर्मरणे दाहमारभ्य तदिति व्यवस्था कार्या। विज्ञानेश्वरोऽपि—'साग्नेः संस्कारकर्मणः' इति व्याख्यास्यन्नेवमाह—'साग्नेसंस्कारकर्मण इति श्रवणादाहिताग्नौ पितरि देशान्तरमृते तत्पुत्रादीनामासंस्कारात्सन्ध्यादिकर्मलोपाभावं प्रतिपादयन् विज्ञानेश्वरः आहिताग्निविषयकाशौचे दाह एव निमित्तमिति स्वीकरोति। पैठीनसीवचनादप्येवमेव प्रतीयते—अनग्निमत उत्क्रान्तेराशौचं हि द्विजातिषु। दाहादग्निमतो विद्याद्विदेशस्थे मृते सति ॥ इति। अत्र धूर्तस्वामीरामाण्डारश्च आहिताग्नेरपि मरणादेव दशरात्रं दशाहं शवमाशौचम्, मरणनिमित्तत्वात्तस्य। तत्तु दाहस्याशौचनिमित्तत्वं तत्र तत्रोच्यते, तत् संस्कारनिमित्ताशौचं पृथगेव इत्यूचतुः। तदिदं बहुग्रन्थविरोधात्, मरणनिमित्तस्यैवाशौचस्य संस्कारोत्तरमुत्कर्षात्, निमित्तकल्पनालाघवाच्च न युक्तम्। मरणारभ्यमाशौचं संयोगो यस्य नाग्निभिः। आदाहात्तस्य विज्ञेयं यस्य वैतानिको विधिः ॥ इति लघुहारीतशंखापस्तम्बोशनसां वचनेनाहिताग्नेर्मरणे दाहमारभ्यैवाशौचं प्रतिपाद्यते। अत्र 'वैतानिको विधिः, इत्यस्यायमर्थः—यश्चाधानाख्येन कर्मणा गार्हपत्याद्यग्नित्रयं सम्पादयति, तस्य मरणे "आहिताग्निमग्निभिर्दहन्ति यज्ञपात्रैश्च" इति विधिना यो दाहप्रकारो विहितः स वैतानिको विधिरिति। तथा च शुद्धितत्त्वे—'वैतानिकः श्रौतो होमः इति। अत्र 'संयोगो यस्य नाग्निभिः' इति बहुवचनेन स्मार्ताग्निमान् व्यावर्त्यते, स्मार्ताग्नेरेकत्वात्। अतश्च योऽनग्निः स्मार्ताग्निश्च, तस्य मरणादाशौचम्, यश्चाहिताग्निः तस्य दाहात् इति निगदितम्। हारलताकारोऽप्येवमेवैतद्वचनं व्याचक्षाण आह—'वैतानिकः श्रौताग्निसम्बन्धी, तेन संयोगो यस्य। नाग्निभिरिति श्रौताग्निभिर्यस्य न सम्बन्ध इत्यर्थः। एवञ्च केवलस्य स्मार्ताग्निमतोऽपि मरणात्प्रभृत्येवाशौचम्' इति। अत्रकात्यायनवचनमप्यानुकूल्यमावहति—श्राद्धमग्निमतः कार्यं दाहादेकादशेऽहनि। प्रत्याब्दिकं तु कुर्वीत प्रमीतेऽहनि सर्वदा' इति। आहिताग्नेरपि मरणमेव यदि निमित्तं, तर्हि दाहादारभ्यैकादशेऽहनि श्राद्धं विदधतः कात्यायनवचनस्य कथं सङ्गतिः स्यात्। अयमेव धर्मसिन्धुकारोऽप्याह—'आहिताग्नेर्मन्त्रवद्दाहमारभ्य पुत्रादिभिराशौचम्। अत्राहिताग्निः अग्नित्रयवान् ग्राह्यः, तद्भिन्नोगृह्याग्निमानप्यनाहिताग्निरिति'। आशौचपञ्जिकायामप्ययं विषयसाधुनिर्णीतः—मरणाशौचं तु मृत्युकालात्, दाहकालात्, मृत्युश्रवकालाद्वा प्रवर्तते। तत्रानाहिताग्नेर्मृत्युकालादारभ्याशौचदिनगणना कार्या, न तु दाहादारभ्य। तेषां मरणस्याशौचे निमित्तत्वात् आहिताग्नेस्तु दाहकालादारभ्य दिनगणना कार्या न तु मृत्युकालात्। तेषां दाहस्याशौचेनिमित्तत्वात्' इति। अत्र 'न तु दाहादारभ्य' न तु मृत्युकालात् इति निषेधेन स्पष्टं व्यवस्थितविषयत्वं निमित्तयोरवगम्यते। निर्णयसिन्धुकारोऽप्येवमेव निर्णयामास—'सर्वं चाशौचमाहिताग्नेर्दाहं, तद् भिन्नस्य मरणमारभ्य ज्ञेयम्। 'अनग्निमत उत्क्रान्तेः' इति पैठीनसिस्मृतेः। साग्निरहिताग्निः। आहिताग्निश्चेत्प्रवसन् म्रियेत् पुनः संस्कारं कृत्वा शववदाशौचम्' इति वासिष्ठे विशेषोक्तेः, 'दाहादेव तु कर्तव्यं यस्य वैतानिको विधिः' इति ब्राह्माच्च' इति। एवञ्च पूर्वाभिहितप्रमाणजातेनाशौचनिमित्तभूतयोर्दाहमरणयोः आहिताना हिताग्निविषयकत्वेन व्यवस्थयैव प्रवृत्तिरित्यभ्युपगन्तव्यम्।

२—गयाश्राद्धे चिकीर्षिते घृतश्राद्धं पार्वणविधिना कृत्वा गयां प्राप्य तत्र तीर्थप्राप्तिनिमित्तकं फल्गुतीर्थे श्राद्धं तीर्थविधिना अर्घावाहनादिवर्जं कुर्यात्। ततः प्रेतपर्वतश्राद्धमारभ्य सर्वाणि श्राद्धानि पार्वणविधिना कार्याणि न तु तीर्थश्राद्धविधिना। तथाहि गयाश्राद्धपद्धतौ 'इदं प्राप्तिनिमित्तकमेव कार्यम्' न तु तदन्तर्गतप्रेतशिलादितीर्थान्तरेषु दिनान्तरेषु वा

कर्तव्यम्, व्यवहाराभावात् तन्त्रादिन्यायात्, प्रधानन्यायाच्च। एवमेकसकलशिष्टाचारोऽपि। तथैव प्रामाणिकग्रन्थसिद्ध-व्यवहारोऽपि। एवं च प्रेतशिलादौ पार्वणविधिनैव अविकृतेनैव पार्वणं वक्ष्यमाणरीत्या षोडशदैवं करणीयम्। तीर्थचिन्तामणौ—'गयाप्राप्त्यनन्तरमेवार्घावाहनादिरहितपार्वणेतिकर्तव्यताकं श्राद्धं कुर्यात्' प्रेतशिलादौ तु पार्वणेतिकर्तव्यताकमेव 'न त्वर्घावाहनादिसहितम्' गयाश्राद्धस्य प्रकृतिश्राद्धं प्रेतशिलाश्राद्धं तत्र सर्वांगोपदेशात्। एवमेव ढोढुमिश्रपद्धतौ मैथिलपद्धतौ जीवानन्दपद्धतौ रघुनन्दनाचार्यकृतपद्धतौ अनन्तदेवादिपद्धतौ वाचस्पतिपद्धतौ नारायणभट्टपद्धतौ च। लघुत्रिस्थलीशेतौ—तच्च श्राद्धं प्राप्तिदिने फल्गुनद्यामर्घ्यावाहनवर्जं तीर्थश्राद्धवत्कार्यमित्यविवादम्। प्रेतपर्वत—पदवटादावपि तथैव। तेषां स्थलतीर्थत्वादिति केचित्। वयं तु तेषां स्वतन्त्रतीर्थत्वं गयाकृत्यान्तर्गतत्वेत्यन्यदेतत्। तत्त्वतस्तु सप्तपञ्चादिदिनसाध्यं गयाकृत्यमेकं कर्म। तथोऽथ शब्ददिभिः क्रमोक्तेः। अथ जिह्वाया अथ वक्षस इतिवत्। नवभिन्नप्रयोगविधिग्रहे क्रमोऽङ्गं भवतीत्येकं कर्म। तत्र च तीर्थप्राप्तेः सकृन्निमित्तत्वादादावेवतीर्थम्। अन्यानि तु भिन्नानीत्यावाहनादि तत्र कार्यमेवेत्ययं पन्थाः। गयामाहात्म्ये—प्रेतशिलायामावाहनादिसहितसकलं पार्वणं कृत्वा 'सर्वस्थानेषु चैवं स्यात्पिण्डदानं तु नारद' इति प्रेतपर्वतश्राद्धस्य तदग्रिमश्राद्धेष्वतिदेशः। एवं च गयाश्राद्धं सर्वं पार्वणविधिनैव न तु तीर्थविधिनेतिनिरवद्यमिति।

स्वप्नविचार—नदी, समुद्रमें तैरना, आकाशमें चलना, घरका देखना, नक्षत्र, सूर्य और चन्द्रमण्डल का देखना, महल पर चढना, छतपर चढना, शराब का पान करना, चर्बी तथा मांस का भक्षण करना, कीडे और विष्ठा का शरीर में लेपन करना, रक्तसे स्नान करना, दहीभात का भोजन करना, सफेद कपडा पहनना, रत्न तथा आभरणों को देखने से कार्य की शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है। देवता, ब्राह्मण, राजा, सुन्दर आभूषण, उत्तम स्त्री का दर्शन, बैल, हाथी, पर्वत, दूध तथा फल वाले पेडों पर चढना, सीसा, मांस और माला की प्राप्ति होना, सफेद पुष्प और सफेद वस्त्रधारी पुरुष को स्वप्न में देखने से धन की प्राप्ति होती है।

जो स्वप्न में राजा, हाथी, घोडा, सुवर्ण, बैल या गौ को देखता है उसका कुटुम्ब बढता है। जो बैल या वृक्ष पर चढकर ही जाग जाता है उसे धन मिलता है। सफेद सर्प के दाहिने हाथ में काटने से दसदिन के भीतर एक हजार रुपया मिलता है। जल में रहने पर बिच्छू या सर्प के काटने का स्वप्न देखे तो धन, पुत्र तथा जयी होता है। कोठा, पर्वत पर चढने पर और समुद्र में तैरने पर राज्य की प्राप्ति होती है। तालाब के बीच में कमल के पत्तों पर घी और खीर का भोजन करने पर राज्य मिलता है। बलाका, मुर्गी तथा कुकरी को स्वप्न में देखने पर स्त्री की प्राप्ति होती है। हथकडी से बन्धने या बहुत रस्सियों के बन्धन से पुत्र तथा धनादि की प्राप्ति होती है। आसन, पलंग, सवारी, शरीर वाहन और घर इनको स्वप्न में जलते हुए देखकर जाग जाय तो देखनेवाले को सब तरफ से लक्ष्मी मिलती है। सूर्यमण्डल तथा धनुमण्डल को देखने पर रोगी को रोग का नाश तथा निरोगी को देखने से धन का लाभ होता है। मदिरा तथा रक्त पान देखने से स्वप्न में ब्राह्मण को विद्या का लाभ और शूद्रादि को धन का लाभ होता है। सफेद वस्त्र तथा गन्ध धारण करनेवाली सौभाग्यवती स्त्री से स्वप्न में आलिङ्गन करने पर सम्पत्ति की प्राप्ति होती है। छाता, खडाऊ जूता तथा तलवार यदि स्वप्न में प्राप्त हो तो धन की प्राप्ति होती है। बैल से युक्त रथ पर चढना स्वप्न में देखने पर धन प्राप्त होता है। स्वप्न में दही देखने पर वेद की प्राप्ति होती है। दही तथा दूध का पान और घी की प्राप्ति हो तो यश प्राप्त होता है। घृत का भक्षण स्वप्न में हो तो क्लेश होता है। आंतों में लिपटा हुआ अपने को देखे तो राज्य की प्राप्ति होती है।

स्वप्न में—मनुष्य के पैर के मांस को भक्षण देखने में सौ रुपये का, बाहु के मांस का भक्षण देखने में एक हजार रुपये का, सिर के मांस भक्षण में राज्य की प्राप्ति या हजार रुपया मिले। फेनयुक्त दूध दान में सोमदान का फल, गेहूँ देखने में धन का लाभ, यव को देखने में यज्ञ होता है। सफेद सरसों के देखने में लाभ होता है। नागपत्र की प्राप्ति होना, कपूर का आना, चन्दन तथा पाण्डुवर्ण का पुष्प प्राप्त होना ये सब सब तरफ से लक्ष्मी की प्राप्ति कराते हैं। रुई, भस्म, भात और मट्ठी इनको छोडकर सारी सफेद वस्तु स्वप्न में देखे तो सुन्दर फल मिलता है। गौ, हाथी, देवता तथा घोडा—इनको छोडकर सभी काली वस्तु स्वप्न में देखे तो खराब है।

१—शरीर में तेल मर्दन कर ऊँट, सर्प या हिंसक पशु, गधा, सुअर या भैंस पर दक्षिणदिशा की तरफ जाना। २—लाल वस्त्र पहनी हुई काली, हसती हुई खुले बालवाली नाचती हुई स्त्री दक्षिण दिशा की तरफ पुरुष को घसीटे। ३—या जिसे चाण्डाल आदि अन्त्यज दक्षिण दिशा की तरफ घसीटे या मरे हुए आदमी या संन्यासी जिसका आलिंगन करे। ४—जिसे स्वप्न में वमन या दस्त हो, जिसके दांत टूट जाय और जो मनुष्य सेमर, ढाक, यूप, सांप की बींवी, नीम का पेड, फूलों से लदा कचनार का पेड देखे या जो स्वप्न में चिता पर बैठे। जो रुई, तेल, खली, लोहा, निमक और तिल प्राप्तकर पक्वान्न भक्षण करें या मदिरा पान करें वह रोगी हो और मृत्यु को प्राप्त हो।

रात के प्रथम प्रहर में देखा स्वप्न साल भर के बाद फल को देता है। दूसरे पहर का देखा स्वप्न आठ महिने बाद फल देता है। तीसरे पहर का देखा स्वप्न तीन महीने बाद फल देता है। चौथे पहर का देखा स्वप्न महिने भर के बाद फल देता है। अरुणोदय में देखा स्वप्न दस दिन बाद शुभाशुभ फल देता है। सूर्योदय में देखा स्वप्न तुरन्त फल देता है।

अथ निर्णयसिन्धुः

(भाषा-टीका-सहित)

श्लोकसूची

दौलतराम गौड

निर्णयसिन्धु-भाषाटीका सहित समाप्त।

मुद्रक—बम्बई प्रेस, वाराणसी।

निर्णयसिन्धु का परिशिष्ट

(प्राचीन व्यवस्थाओं का संग्रह)

(स्वर्गीय-महामहोपाध्याय **श्री पं० विद्याधर जी गौड** द्वारा लिखित)

(छायादानविचारः)

दीयतां राजशार्दूल छायादानं विशेषतः। दद्यात्ते प्रीतये राजन् कृष्णां धेनुं पयस्विनीम् ॥ इति शनिग्रहशान्तिकर्मणि विहितं छायादानं यद्यङ्गत्वेन विहितं यद्वा कर्मसमृद्ध्यर्थम्, उभयथापि तदाज्येनैव कर्तव्यं छायादानमिति। कांस्यपात्रे स्थिताज्यं च आत्मरूपं निरीक्ष्य तु। ससुवर्णं तु यो दद्यात्सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ इत्यादिवचनात्कांस्यपात्रं सुवर्णमाज्यम्, तत्र च स्व-स्वरूपनिरीक्षणमित्यङ्गचतुष्टयमाज्यस्थाने, तैलग्रहणे आज्यरूपाङ्गाभावादङ्गहीनं छायादानं भवेत्। यथा सोमयागाद्यङ्गभूतदीक्षणीयेष्टेः स्वाङ्गसहिताया एवानुष्ठानम्, तत्र केनाप्यङ्गेन न्यूनायां दीक्षणीयेष्टौ ज्योतिष्टोमाद्यङ्गत्वं न सेत्स्यतीति यथा सिद्धं तद्वदेवात्रापि स्वाङ्गसहितस्यैव छायादानस्य प्रधानोपकारकत्वं भवति। अतः शनिप्रीत्यर्थं तैलस्यावश्यकत्वेऽपि पृथगेव तस्य दानं कर्तव्यम्, नतु छायादाने तदन्तर्भाव्यम्। अतएव शनिग्रहदानविधौ छायादानात्पृथगेव तैलदानं शनिमूर्तिसहितं पृथक्त्वेन च विहितम्। अतश्च शनिग्रहशान्तावाज्येन यच्छायादानं परम्परागतमनुष्ठीयते तदेव साधु, नान्यदिति निर्णयामः।

(स्वयं पाठं वाचयित्वा पाठश्रवणे फलविचारः)

एकस्मादपि पाठात् स्वनाम्ना सङ्कल्प्य श्रवणे फलं न भवतीति न वक्तुं शक्यते, किन्तु फलस्य न्यूनता भवत्येव। अतः समर्थो यः सः स्वमेव पाठसङ्कल्पं विधाय तदर्थं कमपि विद्वांसं नियोज्य यदि शृणोति तदा समग्रफलभाग्भवतीति मन्यते। सुतरामयमेव पक्षः श्रेयानिति।

(सन्दिग्धास्पष्टानुपदिष्टधर्मनिर्णये विचारः)

अनाम्नातेषु अभ्याख्यातेषु वा धर्मेषु सञ्जाते धर्मसंशये के निर्णेतारो भवितुमर्हन्तीति प्रश्ने तत्र भगवती श्रुतिराह— "अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात्। ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनः युक्ता आयुक्ताः। अलूक्षा धर्मकामाः स्युः। यथा ते तत्र वर्तेरन् तथा तत्र वर्तेथाः। अथाभ्याख्यातेषु। ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनः युक्ता आयुक्ताः। अलूक्षा धर्मकामाः स्युः। यथा ते तेषु वर्तेरन् तथा तेषु वर्तेथाः।" (तैत्तिरीयोपनिषत् १।११।३-४) अत्र कर्म श्रौतं स्मार्तं च, वृत्तमाचारः। अभ्याख्यातेष्विति सन्दिह्यमानेन दोषेण संयोजितेषु—इति शङ्कराचार्याः। मनुरप्याह (१२।१०८) अनाम्नातेषु धर्मेषु कथं स्यादिति चेद् भवेत्। यं शिष्टा ब्राह्मणा ब्रूयुः स धर्मः स्यादशङ्कितः। अनाम्नातेषु सामान्यविधिप्राप्तेषु विशेषेणानुपदिष्टेष्विति कुल्लूकभट्टः। के शिष्टा इति प्रश्ने मनुः (१२।१०९-११३)—धर्मेणाधिगतो यैस्तु वेदः सपरिबृंहणः। ते शिष्टा ब्राह्मणा ज्ञेयाः श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः ॥ दशावरा वा परिषद्यं धर्मं परिकल्पयेत्। त्र्यवरा वापि वृत्तस्था तं धर्मं न विचालयेत् ॥ त्रैविद्यो हैतुकस्तर्की नैरुक्तो धर्मपाठकः ॥ त्रयश्चाश्रमिणः पूर्वे परिषत् स्याद्दशावरा ॥ ऋग्वेदविद् यजुर्विच्च सामवेदविदेव च। त्र्यवरा परिषज्ज्ञेया धर्मसंशयनिर्णये ॥ एकोऽपि वेदविद् धर्मं यं व्यवस्येद् द्विजोत्तमः। स विज्ञेयः परो धर्मो नाज्ञानामुदितोऽयुतैः ॥ इति। यमश्च—एको द्वौ वा त्रयो वापि यं ब्रूयुर्धर्मपाठकाः। स धर्म इति विज्ञेयो नेतरेषां सहस्रशः ॥ इति। पराशरश्च—"चत्वारो वा त्रयो वापि यं ब्रूयुर्वेदपारगाः। सधर्म इति विज्ञेयो नेतरैस्तु सहस्रशः ॥" "चत्वारो वा त्रयो वापि वेदवन्तोऽग्निहोत्रिणः। ब्राह्मणानां समर्था ये परिषत् साऽभिधीयते ॥ अनाहिताग्नयो येऽन्ये वेदवेदाङ्गपारगाः। पञ्च त्रयो वा धर्मज्ञाः परिषत्सा प्रकीर्तिता ॥" इति। बृहस्पतिश्च—वेदवेदाङ्गधर्मज्ञाः पञ्च सप्त त्रयोऽपि वा। यत्रोपविष्टा विप्राः स्युः सा यज्ञसदृशी सभा ॥ इति। शिष्टलक्षणं महाभाष्येऽप्युक्तम् (६।३।१०९)—"कः पुनरार्यावर्तः? प्रागादर्शात् प्रत्यक् कालकवनाद्दक्षिणेन हिमवन्तमुत्तरेण पारियात्रम्। एतस्मिन्नार्यावर्ते आर्यनिवासे ये ब्राह्मणाः कुम्भीधान्या अलोलुपा अगृह्यमाणकारणाः किञ्चिदन्तरेण कस्याश्चिद्विद्यायाः पारङ्गतास्तत्रभवन्तः शिष्टाः।" इति। कलियुगे पूर्वोक्तलक्षणा ब्राह्मणाः सुदुर्लभाः, अतः परिषदः सङ्घटनं न सम्भवतीति शङ्का पराशरभाष्ये माधवाचार्येण निवर्तिता। तथा चेयं माधवाचार्याणामुक्तिः—"नहि पापप्रवृत्तानां परिषत्त्वं युक्तम्।" "स्वधर्मरतविप्राणाम्" (पाराशरस्मृ० ८।२) इति तल्लक्षणात्। न चाभक्ष्य-भक्षणादिभ्यः पापेभ्यो निवृत्तानां शिष्टानां परिषत्त्वं स्यादिति शङ्कनीयम्; तादृशस्य कस्याप्यदृष्टचरत्वात्। अतः कलियुगे सर्वेषां निन्द्यत्वादेतदेव युगमुद्दिश्य प्रवृत्तस्य पराशरधर्मशास्त्रस्य निर्विषयत्वं स्यादित्याशङ्क्याह—युगे युगे तु ये धर्मास्तेषु तेषु च ये द्विजाः। तेषां निन्दा न कर्तव्या युगरूपा हि ते द्विजाः ॥ (पारा० स्मृ० ११।५२) तत्र युगप्रयुक्तायाः प्रवृत्तेरपरिहार्यत्वान्न तन्निवृत्तये पाराशरस्योद्यमः। या तु प्रमादालस्यादिप्रयुक्ता तत्र सावकाशं धर्मशास्त्रम्। स्वरूपलोपादरं यथासम्भवानुष्ठानमित्यभिप्रेत्य युगवृत्तां सर्वैरप्यवर्जनीयामधर्मप्रवृत्तिमदोषत्वेनाभ्युपगम्य तेषां निन्दा न कर्तव्या इत्युक्तमिति।

दक्षिण

(त्रिपिण्डीश्राद्ध का स्वरूप)

पूर्व

(शालग्राम की पूजा)

(यथा देवे तथा देहे न्यासं कुर्यात् प्रयत्नतः) पुरुषसूक्त से अपने शरीर के अङ्गों में न्यास करे। हृदयादिन्यास–'अद्भ्यः संभृतः' इन छ मन्त्रों से करे। तदनन्तर भगवान् शालग्राम का अर्चन करे। उसमें विशेषता यही है––अन्त में कहे––अनादिनिधनो देव शङ्खचक्रगदाधर। अक्षय्यपुण्डरीकाक्ष प्रेतमोक्षप्रदो भव ॥

तामस (रुद्र) राजस (ब्रह्मा) सात्विक (विष्णु)

❋ ❋ ❋ (कलश)

कलशस्थापन विधि से कलशों का स्थापन करने बाद विष्णु, ब्रह्मा और रुद्र की मूर्तियों का प्राणप्रतिष्ठापूर्वक स्थापन कर क्रम से पश्चिमवाले प्रथम कलश में सात्विक (अज्ञातनामगोत्रं सात्विकं प्रेतं विष्णुमयमावाहयामि) प्रेतका ऊहपूर्वकस्थापन करे। मध्य के कलश में राजसप्रेत ब्रह्मा का और तामसकलश में रुद्र का ऊहपूर्वक स्थापन करे। तदनन्तर षोडशोपचार से पूजा करे। तदनन्तर ब्राह्मणों या ब्राह्मण द्वारा क्रम से विष्णुसूक्त (पुरुषसूक्त १–१६), ब्रह्मसूक्त (तेजोऽसि + १–३४ मन्त्र) और रुद्रसूक्त १ नमस्ते रुद्र १–६६ मन्त्र) का जप (पाठ) करे।

पश्चिम

❋	❋	❋	आसन
(अज्ञा० तामसप्रेताः, भूमिस्था, रुद्रमया०)	(अज्ञा० राजसप्रेता अन्तरिक्षस्था ब्रह्ममयाः, त्रि०)	(अज्ञातनामगोत्राः सात्विकप्रेता दिविस्था विष्णुमयाः, त्रिपिण्डीश्राद्धे इदमासनं मया दीयन्ते युष्माकमुपतिष्ठताम्)	
❋	❋	❋	भोजनपात्र
(तिल)	(अक्षत)	(यव)	
❋	❋	❋	अर्घपात्र
❋	❋	❋	जलपात्र
❋	❋	❋	घृतपात्र

पिण्डाधारवेदी	पिण्डाधारवेदी	पिण्डाधारवेदी
❋ (अवनेजनपात्र)	❋ (अवनेजनपात्र)	❋ (अवनेजनपात्र)
(तिल का पिण्ड)	(चावल का पिण्ड)	(यव का पिण्ड)
(खर्जूरफल)	(जंबीरफल)	(मातुलिंगफल)

तदनन्तर पात्र में जल, दूध, तिल, यव, तुलसी, सर्वौषधी, चन्दन, पुष्प और फलों का प्रक्षेप कर शङ्ख के द्वारा विष्णु की प्रतिमा (शालग्राम) पर पुरुषसूक्तादि मन्त्रों से तर्पण (अज्ञातनामगोत्राणां महातृषोपशमनार्थं जलं दुग्धधारा मया दीयन्ते युष्माकमुपतिष्ठन्ताम्) कर गोदान करे। फिर स्थापित क्रम से कलशोदक से पिण्डों के ऊपर मन्त्रों को पढ़कर अभिषेक करे। पिण्डों का स्पर्श (अनादिनिधनो देव शंखचक्रधरः प्रभुः। अक्षय्यपुण्डरीकाक्ष प्रेतमोक्षप्रदो भव ॥ अतसीपुष्पसंकाशं पीतवाससमच्युतम्। ये नमस्यन्ति गोविन्दं न तेषां विद्यते भयम् ॥ कृष्ण कृष्ण कृपालोत्वमगतीनां गतिर्भव। संसारार्णवमग्नानां प्रसीद परमेश्वर ॥) कर नम्र हो पिण्डों को सूँघकर उस जगह से हटा दे। तदनन्तर क्रम से––वस्त्र, सजलोदकमण्डलु और जूते का सङ्कल्प करे। गोदान करे। तिलपात्रदान करे। घृत से भरा कांसे का पात्र, खीचड़ी, खीर, पूरी, मिठाई आदि का भोजन करावे। भूयसी दे और पीपल की जड़ में तिल या दूध की धारा दे।

उत्तर

ब्रह्मार्पणविधिना श्राद्धम्—

यथाशक्ति ब्राह्मणान् निमन्त्र्य संकल्पे—पितॄन् उद्दिश्य 'एतेषां तृप्त्यर्थममुकश्राद्धं सदैवं ब्रह्मार्पणेन विधिना सद्यः करिष्ये' इत्युक्त्वा विप्राणां पादप्रक्षालनं कृत्वा पीठेषु उपवेश्य अर्घ्यावाहनवर्जं देवपितृपूजां विधाय अन्नं परिविष्य सावित्र्या प्रोक्ष्य 'विश्वेभ्यो देवेभ्य इदमन्नममृतरूपं परिविष्टं परिवेश्यमाणं चाऽऽतृप्तेः स्वाहा हव्यं नमो न मम' इत्येवं तत्तन्नामाद्युच्चारणपूर्वकं पितृभ्यो निवेदयेत्। कव्यं नमो न मम' इति मन्त्रे विशेषः। ततः—ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविः ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणाहुतम्। ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्म समाधिना॥ हरिर्दाता हरिर्भोक्ता हरिरन्नं प्रजापतिः। हरिर्विप्रशरीरस्थो भुंक्ते भोजयते हरिः॥ चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पञ्चभिरेव च। हूयते च पुनर्द्वाभ्यां स मे विष्णुः प्रसीदतु॥ पितृस्वरूपीजनार्दनवासुदेवः प्रीयताम्' इत्यन्तं वाक्यमुच्चार्य भुक्तवद्भ्यो यथाशक्ति ताम्बूलं दक्षिणादि च दत्वा—गोविन्दं पुण्डरीकाक्षं गंगां काशीं गयां ततः। गदाधरं स्मरेद्भक्त्या श्राद्धसाद्गुण्यहेतवे॥ इति श्लोकं पठेत्।

उपनयने गायत्र्युपदेशप्रकारः

सर्वस्मृतिपर्यालोचनया सर्वगृह्यपर्यालोचनया च उपनये गायत्र्युपदेशे अयं क्रमः प्रतीयते। ओङ्कारपूर्वं व्याहृतिपूर्वं च आचार्यः प्रथमं पादं स्वयमुक्त्वा ततस्तं वाचयेत्। द्वितीयपादमर्द्धर्चमुक्त्वाऽथ वाचयेत्। यदि माणवकः पादं पादम् अर्द्धर्चमर्द्धर्चं सर्वां च वक्तुं न शक्नुयात् तर्हि यथाशक्ति तं वाचयेत्। तृतीयस्मिन्वारे माणवकेन सहैव सर्वामृचम् आचार्यो ब्रूयात्, न तु पूर्वस्मिन्वारद्वये इव प्रथममाचार्यस्योक्तिः, अनन्तरं माणवकस्योक्तिः। "अथास्मै सावित्रीमन्वाह पच्छोऽर्द्धर्चशः सर्वां च तृतीयेन सहानुवर्त्तयन्" इति पारस्करगृह्यात्।

तृतीयेनेति हेतौ तृतीया, न तु सहयोगे। तथा सति 'पुत्रेण सहागतः पिता' इत्यस्य यथा पुत्रेण सह पितुरागमनमर्थः तथा अत्रापि तृतीयस्यैवावर्तनं स्यात्। अतस्तृतीयस्मिन्वादे आचार्यो माणवकेन सहैव अनुवदेदिति सूत्रार्थः। अयमेवार्थः अत्र तु सहपाठो विशेष इति ब्रुवतां पद्धतिकाराणामपि अभिप्रेतः। अत्रापि यदि समग्रं मन्त्रमभिधातुं न शक्नुयात् माणवकस्तर्हि यथाशक्त्येवाभिधानम्। परन्तु उभाभ्यां सहैव वक्तव्यम्, न तु पूर्ववद्वचनानुवाचने। एवं सति ये प्रणवव्याहृतिरहितामेव गायत्रीमुपनयने उपदिशन्ति तृतीयस्मिन्नपि वारे प्रथमद्वितीयोपदेशवत् अनुवचनं च कुर्वन्ति न सहानुवचनम्, तेषामनुष्ठाने न किञ्चित्प्रमाणं पश्यामः। अत्र प्रमाणमाश्वलायनगृह्ये—"बान्वाच्योपसंगृह्य ब्रूयादधीहि भोः सावित्रीं भो अनुब्रूहीति। पाणिभ्यां च पाणी संगृह्य सावित्रीमन्वाह पच्छोऽर्द्धर्चशः सर्वां यथाशक्ति वाचयीत।" आश्वलायनकारिकायाम्—"ओंभूर्भुवःस्वःपूर्वान्तु सावित्रीं वाचयेदथ। पादं पादं च सावित्र्याः स्वयमुक्त्वाऽथ वाचयेत्॥ ततस्त्वर्द्धर्चमर्द्धर्चं सर्वां तामथ वाचयेत्। एवं वक्तुमशक्तं तु तं यथाशक्ति वाचयेत्॥" आपस्तम्बसूत्रे—"सावित्रीं भो अनुब्रूहीति तस्माऽअन्वाह तत्सवितुरिति पच्छोऽर्द्धर्चशस्ततः सर्वां व्याहृतीर्विहृताः पादादिष्यन्तेषु वा तदार्द्धर्चयोरुत्तमां कृत्स्नायाम्।" पारस्करगृह्ये—"अथास्मै सावित्रीमन्वाहोत्तरतोऽग्नेः प्रत्यङ्मुखायोपविष्टायोपसन्नाय समीक्षमाणाय समीक्षिताय।", "पच्छोऽर्द्धर्चशः सर्वां च तृतीयेन सहानुवर्त्तयन्॥" गोभिलगृह्ये—"तस्माऽ अन्वाह पच्छोऽर्द्धर्चश ऋक्कश इति महाव्याहृतयश्च ओंकारान्ताः।" (२।१०।३९-४०) लौगाक्षिः—"ओं भूर्भुवः स्वरित्युक्त्वा तत्सवितुरिति सावित्रीं त्रिरन्वाह पच्छोऽर्द्धर्चशः सर्वामन्ततः।" शौनकः—"सावित्रीं स्वयमाचार्यः पूर्वं पच्छस्तथैव तम्। शिष्यं च वाचयेत्पश्चादुच्चार्यार्द्धर्चशः स्वयम्॥ तथैव वाचयेच्छिष्यमथोक्त्वा तु कृतां स्वयम्। पूर्वं तथैव शिष्यश्च वाचयेदित्ययं क्रमः॥ त्रिष्वप्येतेषु पक्षेषु यथा शिष्यस्तु शक्नुयात्। वक्तुं तथैव आचार्यो वाचयेदवधानतः॥" यमः—"ओङ्कारपूर्विकास्तिस्रः सावित्रीं यश्च विन्दति। चरति ब्रह्मचर्यं च स वै श्रोत्रिय उच्यते॥" तिस्रः व्याहृतीरिति शेषः। स्मृत्यन्तरे—"ओंपूर्वा व्याहृतीस्तिस्रः समस्तास्तु समस्तास्तु सकृद्वदेत्। पच्छस्त्वर्द्धर्चशः सर्वां सावित्रीं त्रिर्वदेदथ॥" अत्र सावित्रीं वाचयन् सन्धिकृतं वर्णविकारं नान्यथा कुर्वीतेति स्मृतिकौस्तुभे।

मन्त्र-ब्राह्मण-सूत्र-स्वरसञ्चारविचारः

यजुर्वेदमन्त्रेषु असंयुक्तस्य रेफइकाराभ्यामृकारेण पदादियकारस्य द्वित्वयकारस्य च सर्वत्र जकारोच्चारणं भवति। उपसर्गपरस्य यकारस्य तु न जकारोच्चारणम्। एवं "न यत्" (शु० य० २०।८१), "वि यत्" (शु० य० १२।३४) "स योजते" (शु० य० १४।३३) इत्यादौ तथा "यजुषे, यजुषे" (शु० य० १।३०) इत्यादावपि न जकारोच्चारणम्, विशेषविधानात्। एवमाम्रेडितेऽपि न जकाराद्युच्चारणम्। "अनु योज" (शु० य० ३।५२), "अभि यज्ञम्" (शु० य० २६।२१) इत्यादौ तु उपसर्गपरस्यापि पदादियकारस्य जकारोच्चारणं भवति, विशेषविधानात्। एवं पदादिवकारस्य सर्वत्र द्वित्वोच्चारणम्। "वा, वाम्, वः, वै" एषु न द्वित्ववकारोच्चारणं भवति। रेफस्य असंयुक्तान्यहला ऊष्मणा

ऋकारेण च संयुक्तस्य सर्वत्र रेकारोच्चारणं भवति। ॠकारस्यापि सर्वत्र रेकारोच्चारणं भवति। एवं ऌकारस्यापि ऊष्मणा संयुक्तस्य लेकारोच्चारणं कार्यम्। षकारस्य टवर्गं विना सर्वत्र खकारोच्चारणं कर्तव्यम्। अनुस्वारस्य दीर्घात्परस्य ह्रस्वगुंकारोच्चारणम्। ह्रस्वात्परस्य तु दीर्घगूंकारोच्चारणम्। "देवाना ँ हृदयेभ्यः" (शु० य० १६।४६) इत्यत्र दीर्घात्परस्यापि ह्रस्वोच्चारणं भवति। एवं संयोगे परेऽपि ह्रस्वात्परस्य अनुस्वारस्य न दीर्घगूंकारोच्चारणम्। अत्र केचित् 'गुं गूं' इत्यनयोः स्थाने 'ग्वम्' इति पठन्ति, तन्न समीचीनम्; तथाऽविधानात्। प्रतिज्ञापरिशिष्टे—'गुम्' इत्याकारिकाया वर्णानुपूर्व्याः स्पष्टमुल्लेखाच्च। 'ग्वम्' इत्युच्चारणे ह्रस्व-दीर्घयोः स्पष्टतया भेदोऽपि न स्यात्। एवं "गर्भधम्" (शु० य० २३।४६), "सहस्रपात्" (शु० य० ३१।१), "रश्मीन्" (शु० य० ३४।४६) इत्यादौ अर्धमात्रिक-मकाराद्युच्चारणानन्तरं द्वयोरोष्ठयोर्विश्लेषं कृत्वा तादृशस्यैव मकारादेरुच्चारणे अवसानादिनियमेन मात्रात्रयादिविरामेऽर्धमात्रिको मकारादिः सस्वर इवोच्चारितः प्रतीयते, न तु वस्तुतस्तत्र समाचरो मकारादिर्ज्ञेयः। अवसानगतमकारादीनुच्चार्य तत ओष्ठविश्लेषः कर्तव्य इत्यत्र प्रमाणन्तु पाणिनीयशिक्षायाम्—अनुस्वारे विवृत्यां तु विरामे चाक्षरद्वये। द्विरोष्ठ्यौ तु विगृह्णीयात्॥ एवं निर्ऋतिरित्यत्र रेफ ऋकारयोर्योगे स्वरभक्तिप्रयोगो भवति नवेति विचारे याज्ञवल्क्यशिक्षायाम्—करिणी कुर्विणी चैव हरिणी हरिता तथा। तद्वत् हंसपदा नाम पञ्चैताः स्वरभक्तयः॥ इत्यादिना पञ्चानामेव स्वरभक्तीनां विधानात् तत्र चास्यानन्तर्भावात् दाक्षिणात्यसम्प्रदाये स्वरभक्तिपाठाभावाच्च तत्र स्वरभक्तिर्नास्तीति केचित्कथयन्ति। परन्तु वयं मन्यामहे तत्रापि स्वरभक्तिप्रयोगः शास्त्रीय एव। यद्यपि शिक्षायां नोक्तं तथापि "अथापरान्तस्य रेफोष्मऋकारैरेकारसहितोच्चारणम्" इति कात्यायनपरिशिष्टे प्रतिज्ञासूत्रे निर्ऋतिरित्यादावपि स्वरभक्तेर्विधानात्। न चैवं वाच्यम्, याज्ञवल्क्यशिक्षाया मन्त्रमात्रविषयकत्वेन तद्विषये तस्या एव प्राबल्यात्, प्रतिज्ञासूत्रं च ब्राह्मणविषयकमिति, तथा कथने प्रमाणाभावात्; प्रत्युत तत्रैव "माध्यन्दिनीयके मन्त्रे स्वरप्रक्रिया" इत्येवोपक्रमात् तस्य च ये मन्त्रा 'इषे त्वादि खं ब्रह्मान्तास्तेषु' इत्यनन्तरं व्याख्यानात् प्रतिज्ञासूत्रस्यापि मन्त्रविषयत्वस्य स्पष्टतोऽवगमात्। एवं "चानुक्तमविरोध्यन्यतो ग्राह्यम्" इति न्यायेन प्रतिज्ञासूत्रानुसारेण षष्ठ्यपि स्वरभक्तिरवश्यं स्वीकार्येति प्रतीयते। शिक्षास्थं पञ्चपदं तु उपलक्षणतया नेयम्। यथैव हि प्रातिशाख्येऽनुक्तानपि विषयानविरोधिनः शिक्षादितः स्वीकुर्मस्तथैव शिक्षानुक्तस्यापि परिशिष्टतः स्वीकरणे न कश्चिद्दोषः। अतएव विकल्पमन्तरा पञ्चानामिव षष्ठ्यपि स्वरभक्तिः प्रतिज्ञासूत्रबलान्नियमेन प्राप्नोति। न च सम्प्रदायविरोधः, गौडीयसम्प्रदायेऽपि स्वरभक्तिप्रयोगस्य नियमेन दर्शनात्। अतो वेदे पाठभेदस्यानुचितत्वात्प्रमाणसिद्धोऽयं निर्ऋतिरित्यादौ स्वरभक्तिपाठ एकरूपेण सर्वैरेव कर्तव्य इति प्रतिभाति। एवं यज्ञ इत्यादावपि एकरूपपाठेनैव भाव्यमिति। उदात्ते तर्जन्याः, अनुदात्ते कनिष्ठायाः प्रक्षेपः। स्वरिते ह्रस्वे दीर्घे वा वकारे संयुक्तेऽसंयुक्ते वा जात्ये वा सर्वत्र अङ्गुलिद्वयप्रक्षेपः। इतरत्र स्वरिते एकस्याः कनिष्ठायाः प्रक्षेपः। ह्रस्वे गूंकारेऽङ्गुष्ठाकुञ्चनम्, दीर्घे गूंकारे रंगे च तर्जन्याः प्रसारः। वेदेषु तत्र तत्र "वितृणाम्, प्रतृणाम्, स्वयमातृणाम्, शतातृणाम्, असन्तृणाम्" इत्येवं पदानि श्रूयन्ते। इमानि सर्वाण्यपि पदानि हिंसानादरार्थकतृदिरधातोः निष्पन्नानि भवन्ति। तैत्तिरीयसंहितायां षष्ठद्वितीयैकादशेऽनुवाके वाक्यमिदमुपलभ्यते—"हनू वाऽ एते यस्य यदधिषवणे न सन्तृणत्ति असन्तृणे हि हनू" वाक्येनानेन स्पष्टमवगम्यत एव तृदिरधातोरेवायं शब्दो निष्पन्न इति। धातोरस्य हिंसानादरार्थकत्वेऽपि "उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते" इति-अभियुक्तोक्तेर्विभिन्नेष्वर्थेषु पदानीमानि प्रयुक्तानि वेदे। वेदेषु यत्र यत्रायं शब्दः प्रयुक्तस्तत्र तत्र णकारद्वित्वघटित एवोपलभ्यते। अत्र च प्रमाणम्—"ऋवर्ण षवर्ण ष्णा म्णा राण्णा च", "इति प्राकृताः" (१३।१३-१४) इति तैत्तिरीयप्रातिशाख्यगतं सूत्रद्वयमेव। य 'ऋवर्ण' शब्दस्योदाहरणत्वेन तदपि व्याख्यायामिमान्येव पूर्वोक्तानि पदानि उल्लिखितानि। सति चैवं 'प्रतृण्ण' शब्दमशुद्धं मन्वानः कश्चन पण्डितम्मन्यः 'प्रतृणा' इति पाठेन भाव्यमित्युल्लिलेख। तन्न समीचीनम्। 'यन्मे छिद्रम्' (शु० य० ३६।२) इति मन्त्रे 'अतितृण्णम्' इति णकारद्वयपाठे अतिहिंसितार्थरूपार्थलाभो भवति। केवलमेकणकारघटितपाठे तु वास्तविकार्थो न संगच्छते। अतः पूर्वोक्तेषु सर्वेष्वपि पदेषु णकारद्वयस्योच्चारणं सर्वथा सर्वसम्मतं प्रतिभाति। एवं वेदेषु प्रमादवशतो यत्र कुत्रापि 'वेष्योऽसि' (शु० य० १।३०), 'मनोऽसि' (शु० य० ४।१६), 'चप्यम्' (शु० य० १६।८८), 'भस्मसा' (शु० य० ११।८०) इत्यादीनि अशुद्धवाक्यान्युट्टङ्कितानि सन्ति।। वस्तुतस्तत्र 'वेष्योऽसि', 'मनासि', 'चप्यम्', 'मस्मसा' एवंविधाः शुद्धाः पाठा विधेयाः। ये परशाखीया मन्त्राः सूत्रकारेण संगृहीतास्तेऽपि जकार-द्वित्व-वकार-रेकार-षकार-गूंकाराद्युच्चारणरूपेण यजुर्वेदधर्मेणैव पठनीयाः, स्वशाखीये गृह्यसूत्रादौ तेषां पाठात्। सूत्रकारेण परशाखीयमन्त्राणां स्वररहितानामेव पाठात् एकश्रुत्यैव ते पठनीयाः, न तु त्रैस्वर्यं तत्र। परन्तु तत्र यकारादिस्थाने जकाराद्युच्चारणं न कर्तव्यम; स्वशाखायां कुत्राप्यपाठात्। शुक्लयजुर्वेदीयमाध्यन्दिनशतपथब्राह्मणे उदात्तानुदात्तौ द्वावेव स्वरौ, न स्वरान्तरम्। यकारस्य जकारोच्चारणम्, षकारस्य खकारोच्चारम्, [अ]नुस्वारस्य ँ कारोच्चारणम्, पदादिस्थवकारस्य द्वित्ववकारोच्चारणम्, रेफस्योष्म-ऋकारैः संयुक्तस्य रेकारोच्चारणम्,

लकारस्योष्मसंयुक्त लेकारोच्चारणम्, माध्यन्दिनसंहितावदेव भवति। विसर्गेऽङ्गुलिप्रक्षेपणं तु न क्रियते। यत्र द्वयोरक्षरयोस्त्रयाणां वाऽनुदात्तता तत्र सर्वाण्यक्षराणि हस्तेन कण्ठेन च अनुदात्तानि उच्चारणीयानि। कृष्णयजुर्ब्राह्मणेऽपि त्रयः स्वराः सन्ति। ब्राह्मणान्तरेषु स्वराणामभाव एव। सामवेदे गाने मध्यम-गान्धार-ऋषभ-षड्ज-धैवत निषाद-पञ्चमेति क्रमेण सप्त स्वराः क्रियन्ते। तत्र मध्यमे हस्तो रिक्त एव स्थाप्यते। गान्धारे अङ्गुष्ठेन तर्जन्या मध्यं पर्व स्पृश्यते। ऋषभेऽङ्गुष्ठेन मध्यमाङ्गुलिमध्यपर्व, षड्जेऽनामिकामध्यपर्व, धैवते कनिष्ठामध्यपर्व, निषादे कनिष्ठामूलम्, पञ्चमे तर्जन्यग्रं स्पृश्यते। यस्य वर्णस्योपरि, एतच्चिह्नं तस्य दीर्घमुच्चारणं तर्जनीमध्यस्पर्शो हस्तस्य तिर्यक्करणं च भवति। यत्र— एतद्दण्डसदृशं चिह्नं तत्र तर्जनीमारभ्य कनिष्ठिकापर्यन्तं स्पृशेत्। यत्र उ एतच्चिह्नं भवेत् तत्र पूर्ववत् तर्जनीमारभ्य कनिष्ठान्तं कनिष्ठामारभ्य तर्जनीं यावत् स्पृष्ट्वा मध्यमामन्तः क्षिपेत् ब्राह्मतीर्थसंस्पृष्टां कुर्यादिति। यत्र क एतच्चिह्नं भवेत् तत्र-मध्यमामग्रमारभ्य मूलं यावत् स्पृशेत्। यत्र वर्णस्योपरि ६ लिखितं स्यात्तत्र तर्जनीमूलमारभ्य मूलं यावत् स्पृशेत्। विरामे विसर्गं सानुनासिकमुच्चरेत्। अनुनासिकस्य चोच्चारणं ङकारतुल्यं भवति। दीर्घमृकारं रे इत्युच्चरेत्। ऋकारस्य च रे इत्युच्चारणं षकार-हकारयोर्योगे विधेयम्। सामसंहितायां मध्यम-गान्धार-ऋषभास्त्रय एव स्वराः क्रमेण स्वरितोदात्तानुदात्ता भवन्ति। पारस्करादिगृह्यसूत्राणां तदीयमन्त्राणां चोच्चारणं तु "छन्दोवत्सूत्राणि भवन्ति" (प्राति० परि०) इति शास्त्रात् तत्तच्छाखानुसारेण कार्यमिति।

(चित्यां प्रेतस्थापनविधानम्)

लेखकः—जयपुर-राजगुरु-कथाभट्टवंश्य-श्रीनन्दकिशोरशर्मा, साहित्याचार्यः।

(म० म० श्री पं० विद्याधरजी गौड की आज्ञा से यह निबन्ध लिखा गया था)

चित्यां प्रेतस्थापनस्य प्रचलितानां बहूनां विधानां विलोकनेन साधारणी जनता संशीत्याक्रान्ता किंकर्तव्यताविमूढा चेति तदर्थं शास्त्रपर्यालोचनविधया प्रमाणपुरःसरमत्र तन्निर्णीयते। धर्मशास्त्रग्रन्थेषु दक्षिणशिरा उत्तरशिरस्कः प्राचीशिरस्को वा प्रेतश्चितौ निवेयः पुमान् अधोमुखः उत्ताना च नारीति पक्षाः प्रस्फुरन्ति। ततोऽत्र निबन्धे-श्रौताग्नि-शालाग्नि-निरग्नीन्, स्त्रीपुंसौ, ऋग्वेदिकृष्णयजुर्वेदिशुक्लयजुर्वेदिसामवेद्यथर्ववेदीन्, कुटीचकं संन्यासिनं च समवलम्ब्य भिन्नाः भिन्नाः प्रकाराः प्रस्तूयन्ते। येन स्वस्वशाखीय सूत्रोक्त प्रकारविभेदेन अनेके दृश्यमाना इमे पक्षाः मुख्या इति विज्ञाते चितौ प्रेतस्थापने संजायमानः संशयो दूरं गमिष्यति। तथा हि सामवेदाध्यायिनां प्रेतानां साग्निकानां निरग्निकानां च चितौ दक्षिणशिरस्त्वम्। ऋग्वेद्यथर्ववेदिनामपि तथैव। यजुर्वेदिनां तूत्तराशिरस्त्वं निरग्निकानाम्। साग्निकानां च वाजसनेयिनां प्राचीशिरस्त्वम्। यथा निर्णयसिन्धौ—'आहिताग्नौ विदेशमृते पथिकृतीष्टिर्मृताग्निहोत्रं तद्दाहः पात्रयोजनं च कल्पसूत्रादिभ्योऽस्मत्पितामहकृतपद्धतेश्च ज्ञेयमिति बहुवक्तव्येऽप्युपरम्यते। स्मार्ताग्नेस्तूक्तं मदनरत्ने छन्दोगपरिशिष्टे च—दुर्बलं स्नपयित्वा तु शुद्धचैलाभिसंवृतम्। दक्षिणाशिरसं भूमौ बर्हिष्मत्यां निवेशयेत्॥ घृतेनाभ्यक्तमाप्लाव्य शुद्धवस्त्रोपवीतिनम्। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं सुमनोभिर्विभूषयेत्॥ हिरण्यशकलान्यस्य क्षिप्त्वा छिद्रेषु सप्तसु। मुखेष्वथापिधायैनं निर्हरेयुः सुतादयः॥ आमपात्रेऽन्नमादाय प्रेतमग्निपुरःसरम्। एकोऽनुगच्छेत्तस्यार्धमर्धं पथ्युत्सृजेद् भुवि। ऊर्ध्वमादहनं कार्यमासीनो दक्षिणामुखः। सव्यं जान्वाच्य शनकैः सतिलं पिण्डदानवत्॥ अथ पुत्रादिराप्लुत्य कुर्याद् दारुचयं महत्। तत्रोत्तानं निपात्यैनं दक्षिणाशिरसं मुखे॥ आज्यपूर्णं स्रुवं दद्याद् दक्षिणाग्रं नसि स्रुचम्। पादयोरधरां प्राचीमरणीमुरसीतराम्। पार्श्वयोः शूर्पचमसौ सव्यदक्षिणयोः क्रमात्। मुसले तु न्यसेन्न्युब्जमन्तरूर्वोरुलूखलम्॥ चात्रौविलीकमत्रैव अनश्रुनयनो विधिः। अपसव्येन कृत्वैतद् वाग्यतः पितृदिङ्मुखः। अथाग्निं सव्यमावृत्को दद्याद् दक्षिणतः शनैः॥ अस्मात्त्वमधि जातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः। असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेति परिकीर्तयेत्॥ तथैवमाहिताग्नेश्च पात्रन्यासादिकं भवेत्। कृष्णाजिनादिकं चात्र विशेषोध्वर्युचोदितः॥ तत्रैव—अनयैवावृता नारी दग्धव्या या व्यवस्थिता। अग्निप्रदानमन्त्रोऽस्या न प्रयोज्य इति स्थितिः॥ इदं छन्दोगानामेव। पात्रन्यासोक्तेरुत्तानदेहत्वं साग्निपरम्। निरग्निपुमानधोमुखः। स्त्री तूत्ताना दाह्या। सगोत्रैर्गृहीत्वा तु चितामारोप्यते शवः। अधोमुखो दक्षिणादिक्चरणस्तु पुमानिति॥ उत्तानदेहा नारी तु सपिण्डैरपि बन्धुभिः। इत्यादिपुराणादिति शुद्धितत्त्वहारलतादयः। उत्तरशिरस्त्वं सामगेतरपरम्। वराहे त्वग्निदानेऽन्यो मन्त्रः—कृत्वा तु दुष्कृतं कर्म जानता वाप्यजानता। मृत्युकालवशं प्राप्य नरं पञ्चत्वमागतम्॥ धर्माधर्मसमायुक्तं लोभमोहसमावृतम्। दहेयं सर्वगात्राणि दिव्यान् लोकान् स गच्छतु॥ ज्वलमानं महावह्निं शिरःस्थाने प्रदापयेत्। चातुर्वर्ण्येषु संस्थानमेवं भवति पुत्रके॥" इति सविस्तरमुक्तम्। कृष्णंभट्टीनामिकायां निर्णयसिन्धुव्याख्यायां च "दक्षिणाशिरस्त्वं छन्दोगानामेव" इतिस्पष्टमुक्तं वर्तते। ननु 'पुरुषस्य चितायामारोपणमधोमुखतया कार्यम्' तत्तु न केनापि क्रियते इति चेदुच्यते। कृष्णंभट्टीटीकायां "शुद्धीति— उत्तानत्वस्य ललाटादिपिण्डादिस्थापनाद्यनुगुणतयाधो-

मुखत्वं कैमुतन्यायलाभार्थमित्यस्वरसः" इत्यनेन सन्दर्भेणाधोमुखत्वस्य निरस्तत्वात्। गोविन्दानन्दकृतायां शुद्धिकौमुद्यामपि—"ततो गयादीनि च तीर्थानि" इत्यादिमन्त्रेण तीर्थमावाह्य पूर्वस्नपितं शवं शुचिवस्त्रद्वययज्ञोपवीतधरं गन्धमाल्याद्यलङ्कृतं दारुचयरचितायामास्तीर्णकुशायां यजुर्वेदिनमुत्तरशिरसं छन्दोगिनं दक्षिणाशिरसं पुरुषमधोमुखं स्त्रियमुत्तानदेहामारोपयेत्। यथादिपुराणे—सगोत्रजैर्गृहीत्वा तु चितामारोप्यते शवः। अधोमुखो दक्षिणादिक्चरणस्तु पुमानिति॥ उत्तानदेहा नारी तु सपिण्डैश्चैव बन्धुभिः। दक्षिणादिक्चरण इत्यनेनोत्तरशिरस्त्वमुक्तम्। छन्दोगस्य तु 'दक्षिणाशिरसं तथा' इति साग्निदाहे उक्त्वा पश्चात् 'एष एवाहिताग्नेः प्रेतस्य विधिरिष्यते' इत्यादिना छन्दोगपरिशिष्टकृता निरग्नेरप्युपसंहाराद् दक्षिणाशिरस्त्वमेव" इत्युक्तम्। रघुनन्दनभट्टाचार्यकृते शुद्धितत्त्वेऽपि—"ततः पुत्रादिः स्नानं कृत्वा तत्र दारुचयं कुर्यात्। तदुपरि वस्त्रद्वयसहितं दक्षिणाशिरसं सामगमधोमुखं पुमांसं न्यसेत्। नार्यास्तूत्तानदेहत्वम्। सामगेतरेषामुत्तराशिरस्त्वमिति।" अनिरुद्धकृतायां हारलतायामपि तथैव प्रतिपादितम्—"आदिपुराणे सगोत्रजैर्गृहीत्वा तु'... 'दक्षिणादिक्चरणः' इत्यनेनोत्तराशिरस्त्वमुक्तम्। यच्च वराहपुराणे दक्षिणाशिरस्त्वमुक्तम्। तत्र दक्षिणाशिरस्त्वं छन्दोगानामेव। लिखिष्यमाण छन्दोगपरिशिष्टवचनात्। अन्येषां तूत्तराशिरस्त्वम्। रुद्रधरेण श्राद्धविवेकेऽपि यजुर्वेदिनामुत्तराशिरस्त्वमेवोक्तम्—यथा—"शुचिदेशे यथामिलितदासवर्गपरिचितदारुचयपरिचितायास्तीर्णकुशायामुत्तरशिरसोऽधोमुखस्य सवस्त्रस्य, स्त्रियाश्चोत्तानदेहाया उत्तरशिरसः स्थापनं कुर्यात्" इति। गरुडपुराणेऽपि उत्तराशिरस्त्वमेवोपदिश्यते यजुर्वेदिनां कृते—यथा—"ततो नीत्वाश्मशानेषु स्थापयेदुत्तरामुखम्। तत्र देहस्य दाहार्थं स्थलं संशोधयेद् यथा॥ चितामारोप्य तं प्रेतं पिण्डौ द्वौ तत्र दापयेत्। चितायां शवहस्ते च प्रेतनाम्ना खगेश्वर॥ चितामोक्षप्रभृतिकं प्रेतत्वमुपजायते॥ केऽपि तं साधकं प्राहुः प्रेतकल्पविदो जनाः। चितायां तेन नाम्ना वा प्रेतनाम्नाऽथवा करे॥ मृतकस्थानमालिप्य दक्षिणाभिमुखं ततः। द्वादशाहकपर्यन्तं दीपं कुर्यादहर्निशम्"॥ इति। अत्र—"उत्तरामुखम्" पदस्य "उत्तरशिरस्कम्" इत्यर्थं इङ्गलिशानुवादे आर्नेस्ट बुड महाशयेन एस० बी० सुब्रह्मण्यमहाभागेन च तत्रैव स्वीकृतः। गदाधरकृतौ कालासारेऽपि निरग्निदाहप्रकरणे—"चितायां कुशानास्तीर्य उत्तानं दक्षिणशिरसमुत्तरशिरसं वा निपात्य ज्वलमानमग्निं कृत्वा...शिरःस्थाने आसीनो दद्यात्......"इति। तत्रैव केवलस्मार्ताग्निमद्दाहे—"चितौ प्राग्ग्रीवमजिनमास्तीर्योत्तरलोमकम्। तत्र प्राक्शिरसं प्रेतं निधायोत्तानशायिनम्"॥ इत्यादि। तत्रैव च साग्नि दाहप्रकरणे "ततस्तं पूर्ववन्नववस्त्रादिभिरलङ्कृत्य प्राग्ग्रीवं कृष्णाजिनमास्तीर्यास्मिन् प्रेतं प्राक्शिरसमुत्तानं निवेशयेत् (३४६ पृ०)। एवमुपर्युक्तग्रन्थतात्पर्यालोचनेन यजुर्वेदिनां निरग्निकाणां प्रेतानां चितावुत्तरशिरस्तया स्थापनं स्पष्टमवगम्यते। यच्चैतेषामधोमुखतया स्थापनं विहितं तदपि लिखितपूर्वेण कृष्णंभट्टी (निर्णयसिन्धुटीका) वचनेन, देवणभट्टकृतस्मृतिचन्द्रिकोक्तेन—"नाधोमुखं न नग्नं च दहेयुर्मलदूषितम्। अयज्ञियसमिद्भिश्च चाण्डालपतिताहृतैः"॥ (आशौचकाण्डे ६४ पृष्ठे) इति वाक्येन चाकिञ्चित्करमेव मन्तव्यम्। साग्निकानां शुक्लयजुर्वेदिनां तु "केशादि निखाय सर्पिषान्तरक्त्वा चितावेनमादधाति कृष्णाजिनमास्तीर्य प्राक्शिरसम्" (२५ अ० १६६ सू०) इति कात्यायनश्रौतसूत्रेण प्राचीशिरस्तया चितौ स्थापनं निर्विवादमेव। श्राद्धसूत्रभाष्ये गदाधरेण तु यजुर्वेदिनः स्मार्ताग्निमतो दक्षिणाशिरस्त्वमभिहितम्। यथा—"भूप्रदेशे शुचौ युक्ते पश्चाच्चित्यादिलक्षणम्। तत्रोत्तानं निपात्यैनं दक्षिणाशिरसं मुखे॥ (४कण्डिका) इत्यादि। साग्निकनिरग्निकानां सामवेदिनां कृते तु दक्षिणाशिरस्त्वमुत्तानत्वं च सर्वत्र पठितं ज्ञेयम्। यथा म० प०पर्वतीयनित्यानन्दमहाभागैरन्त्यकर्मदीपकटिप्पण्यामभिहितम्। यद्यपि—'अधोमुखो दक्षिणादिक्चरणस्तु पुमानिति। सगोत्रजैर्गृहीत्वा तु चितामारोप्यते शवः। उत्तानदेहा नारी तु सपिण्डैरपि बन्धुभिः॥ इत्यादित्यपुराणात् पुंसोऽधोमुखत्वम्, उत्तरशिरस्त्वं च दाहे शुद्धितत्त्वादावुक्तम्, तथापि—'तत्रोत्तानं निपात्यैनं दक्षिणाशिरसं मुखे' इति पूर्वोक्तछन्दोगपरिशिष्टवचनेन कात्यायनानुयायिनामुत्तानत्वं दक्षिणाशिरस्त्वमेव स्वीकर्तुमुचितम्। "एवमेवागृहीताग्नेः प्रेतस्य विधिरिष्यते" इत्युत्तरत्र छन्दोगपरिशिष्टे कात्यायनेनानग्निमतोऽपि पात्रन्यासादिभिन्नकर्मणोऽतिदेशात्। एतेन छन्दोगपरिशिष्टं पात्रन्यासाद्युक्तेरग्निमत्परमेवेति केषांचिदुक्तिः परास्ता। पूर्वोक्तादिपुराणं तु कातीयव्यतिरिक्तपरमेव।' यथा वा पितृदयितायामनिरुद्धभट्टेन छन्दोगानामन्त्येष्टिप्रक्रियाविवेचने तेषां (सामवेदिनाम्) दक्षिणाशिरस्त्वमेवाम्नायते। यथा वा—अन्त्येष्टिकर्मदीपिकायाम्—"यथासंभवं स्नानप्रोक्षणवस्त्रान्तरधारणादिकं कारयित्वा गोमयेनोपलिप्तायां भूमौ दक्षिणाग्रकुशे दक्षिणाशिरसमुदक्पादमुपवेश्य गोहिरण्यादिदानानि कारयेत्। "तदग्नितौ दक्षिणाशिरसमुदक्पादमुत्तानं शवं संस्थाप्य कर्ता प्राचीनावीती वाग्यतो दक्षिणामुखः सव्यंजान्वाच्य लौकिकाग्निमादाय शिरसि दक्षिणशिरोभागे तूष्णीं दद्यात्। यथा वा हरिहरकृते पारस्करगृह्यसूत्रभाष्ये (३ काण्डे १० कण्डिका)। निर्हरणपक्षे आमपात्रे संतापाग्निमादायाग्निपुरःसरं प्रेतं यमगाथां यमसूक्तं वा जपन्तः पुत्रादयः श्मशानं नयन्ति। तत्राधिकारी पुत्रादिराप्लुत्य भूमिशोषणपूर्वकं दक्षिणोत्तरायतं दारुचयं विधाय चितौ कृष्णाजिनं प्राग्ग्रीवमुत्तरलोमास्तीर्य तत्रोत्तानं दक्षिणाशिरसमेनं निपात्य दक्षिणनासारन्ध्रे आज्यपूर्णं स्रुवं निधाय पादयोरधरारणिं प्रागग्रामुरस्युत्तरां पार्श्वयोः सव्यद-

क्षिणयोः शूर्पचमसौ मुसलसहितमुलूखलं न्युब्जपूर्वोरन्तराले तत्रैवं चात्रमोविलीं चरुदन भयरहितो निदध्यात्—इति। इदं साग्निकनिरग्निकसामवेदिविषयम्। यथा वा बौधायनगृह्यसूत्रे—"तस्मिन् दक्षिणाशिरसमुत्तानं प्रेतं निधायाम्लैः परिस्तीर्य चितामूर्णासूत्रेणायसलैः परिवेष्टयति" (पृष्टे ४१६)। एवमेव ऋग्वेदनामपि साग्निनिरग्निकानां दक्षिणाशिरस्त्वमेवाम्नायते। यथा ऋग्वेदीयब्रह्मकर्मसमुच्चये दक्षिणाशिरस्कं चितौ निवेश्य इति। एवमथर्ववेदिनामपि दक्षिणाशिरस्त्वमेव। संन्यासिनां कृते तु तत्तद्वेदानुसारितयैव बोध्यम्। संन्यासिनः कुटीचकबहूदकहंसपरमहंसतया चत्वारो भेदाः। तेषु कुटीचकस्यैव प्रेतस्य दाहो नान्येषाम्। यथोक्तम्—कुटीचकं तु प्रदहेत् पूरयेत्तु बहूदकम्। हंसो जले तु निक्षेप्यः परंहंसः प्रपूरयेत्॥ इति। यथा वा विश्वेश्वरतीर्थस्य यतिधर्मसंग्रहे—"अथ कुटीचकस्य विधिः। पुत्रैः कुटीचकस्य स्वज्ञातिनो दहनादिकः क्रियाकलापः कार्य एव, कुतः—संनिकृष्टे यतौ तेषां पितर्युपरते सुतैः। दहनं तस्य कर्तव्यं श्राद्धपिण्डोदकक्रियाः॥ इति स्मृतेः। अनग्नेर्दहनं कार्यं पूर्ववत्पिण्डोऽर्ययाविधि। विदुषस्तु न तत्कार्यं नैकोद्दिष्टादि कर्हिचित्॥ इत्यादि। तत्र कुटीचकलक्षणं तावत्—"पुत्रादिना कुटीं कारयित्वा तत्र गृहे वा वसन् कषायवासा शिखोपवीतत्रिदण्डवान् बन्धुषु स्वगृहे वा भुञ्जानः आत्मज्ञो भवेत् कुटीचकः॥" एषोऽत्यन्ताशक्तः। बहूदकः—बन्धून् हित्वा सप्तागाराणि भैक्षं चरन् पूर्वोक्तवेषः स्यात्। हंसः—पूर्वोक्तवेषोऽप्येकदण्डः। यथोक्तं स्कान्दे—एकं तु वैणवं दण्डं च वस्त्रं जन्तुनिवारणम्। तावत्परिग्रहः प्रोक्तो नान्यो हंसपरिग्रहः॥ परमहंसस्तावत्—परंहंसस्त्रिदण्डं च रज्जुं गोबालनिर्मिताम्। शिखां यज्ञोपवीतं च नित्यं कर्म परित्यजेत्॥ इति लक्षितलक्षणो ज्ञेयः। अयं त्वेकदण्डः। शुक्लयजुर्वेदिनां निरग्निकानां प्रेतानां चितावुत्तरशिरस्त्वम्, साग्निकानां च प्राचीशिरस्त्वम्, केवलोपासनाग्निकानां च केषांचिन्मते दक्षिणाशिरस्त्वम्। अन्येषां सामादिवेदिनां प्रेतानां चितौ दक्षिणाशिरस्त्वमिति स्पष्टं प्रतीयत उपर्युक्तग्रन्थालोचनेनेत्यलमतिदूरं गत्वेति निबन्धसारांशः।

(सर्वतोभद्रपीठादौ देवतास्थापने विचारः)

एतदतिरिक्तानां देवतानां रुद्रकल्पद्रुमादिषु सर्वेषु निबन्धेषु भद्रमार्तण्डादौ च कुत्राप्युपलम्भाभावात् शिष्टसम्प्रदायाननुगृहीतत्वाच्च न तासां स्थापनमिति निर्विवादम्। हरिहरमण्डलेऽपि द्वादशलिङ्गतोभद्राख्ये एतेषामेव देवतानामावाहनम्। हरिहरगर्भरत्नेऽपि द्वादशलिङ्गतोभद्रमण्डले रुद्रकल्पद्रुमादौ द्वादशलिंगतोभद्रेऽपि मण्डले सर्वतोभद्रदेवतानामेव स्थापनविधानात्। अतो रुद्रकल्पद्रुम-नारायणभट्टादिमते लिंगतोभद्रेऽपि षट्पञ्चाशत् पञ्चाशद्वा सर्वतोभद्रदेवानामेवावाहनं न तदधिकानामिति। भद्रमार्तण्डे सर्वतोभद्रदेवताभ्योऽधिका ये द्वादशलिंगतोभद्रमण्डलदेवा उक्तास्तेऽपि स्कन्दपुराणोक्तरुद्रयन्त्रस्यावरणदेवतातोऽभिन्ना एव। अतस्तेषां भद्रमार्तण्डोक्तदेवानां रुद्रयन्त्र एवावाहनं न द्वादशलिंगतो भद्रमण्डले। अत एव सर्वत्र महारुद्रादिपद्धतौ रुद्रयन्त्रे आवरणदेवतात्वेन स्कन्दपुराणीयभद्रमार्तण्डोक्तदेवतानामावाहनमुक्तं न तु लिंगतोभद्रमण्डले। भद्रमार्तण्डे प्रतिष्ठाप्रकाशादौ च यल्लिङ्गतोभद्रे तासामावाहनमुक्तं तत्प्रामाण्यादिकं स्कन्दपुराणे यन्त्रपूजायामावरणदेवतात्वेन तासां विधानात्। तस्मात्सर्वतोभद्रादिमण्डलमात्रे रुद्रकल्पद्रुमादिमते सप्तपञ्चाशदेव देवता आवाह्याः। लिंगतोभद्रे पञ्चषष्टिरित्याधुनिकसम्प्रदायः। एतदधिकानां तु स्थापनं सर्वथाऽप्रमाणिकमिति दिक्।

(अत्र कल[illegible]स्थापनादौ विचारः)

ततस्तन्मध्ये ताम्रकलशं संस्थाप्य पूर्णपात्रोपरि कृताग्न्युत्तारणां सप्राणप्रतिष्ठां सौवर्णीं स्थाप्यदेवतानां सर्वासां प्रतिमां तत्तत्स्थाप्यदेवमन्त्रेण संस्थाप्य पूजयेत्। ततो ब्रह्मादिभ्यो नाममन्त्रैः पायसबलिं दद्यादित्युक्तं प्रतिष्ठाभास्करे रुद्रकल्पद्रुमादौ च। आधुनिकैस्तु वचनानुपलम्भाद् ब्रह्मादिभ्यो बलिर्नैव क्रियते। युक्तं चैतत्। अत्र मण्डलमध्ये कलशस्थापनं तत्र स्थाप्यदेवस्थापनं च मयूखादौ नोक्तमतस्तदकरणेऽपि न क्षतिरित्याहुः। रुद्रयागादौ तु रुद्रकल्पद्रुमादावुक्तमतस्तथैवानुष्ठेयम् प्रतिष्ठायां कुत्रापि नोक्तम्। वस्तुतस्तु "स्थापनं यस्य देवस्य क्रियते पद्मलोचन। कृत्वा तस्य तनुं हैमीं मण्डले सम्प्रपूजयेत्" इति ब्रह्मयामलोक्तेः स्थाप्यदेवपूजनं कलशे कार्यमेव। सम्प्रदायोऽप्येवम्। मयूखशरण्यादौ अपि निद्रावाहनोत्तरं "शय्यातः प्राच्यां सर्वतोभद्रे देवं निवेश्य" इति ग्रन्थेन यावत्यः स्थाप्यदेवतास्तावतीनां सौवर्णप्रतिमासु स्थापनमुक्तं तदेव सम्प्रदायानुरोधेन साम्प्रदायिकैरत्र क्रियतेऽस्माभिः। तस्मिन्नवसरे तु पूजनमात्रमेव कार्यं नावाहनमत्रावाहनपक्षे।

(ग्रहस्थापने शेषादिदेवतादेवतास्थापने विचारः)

खण्डदीक्षितकृतपद्धतौ शेषादीनामप्यावाहनं तच्च सति सम्भवे एव कार्यं रुद्रकल्पद्रुमे तु नोक्तम् ॐ शेषाय नमः [illegible] १ ॐ वासुकये नमः सोमस्याग्रे २ ॐ कर्कोटकाय नमः बुधोत्तरे ३ ॐ पद्माय नमः बृहस्पत्यग्रे ४ ॐ महापद्माय [illegible] ॐ शङ्खपालाय नमः शनिपश्चिमे—६ ॐ कालाय नमः राहुपुरतः ७ ॐ कुलीशाय नमः केत[illegible]

८ ॐ [illegible] ॐ [illegible] नक्षत्रेभ्यो नमः ९ तत्रैव ॐ विष्कुम्भादिसप्तयोगेभ्यो नमः १० तत्रैव ॐ बवबालव-कर[illegible] ११ तत्रैव ॐ सप्त[illegible]भ्यो नमः १२ तत्रैव ॐ ऋग्वेदाय नमः १३ बहिर्दक्षिणे--ॐ पुष्यादिसप्तनक्षत्रेभ्यो नमः १४ दक्षिणे एव ॐ धृत्यादि सप्तयोगेभ्यो नमः १५ तत्रैव ॐ कौलवतैतलकरणाभ्यां नमः १६ तत्रैव ओं सप्त-सागरेभ्यो नमः १७ तत्रैव ओं यजुर्वेदाय नमः १८ पश्चिमे--ओं स्वात्यादिसप्तनक्षत्रेभ्यो नमः १९ तत्रैव--ओं वज्रादि-सप्तयोगेभ्यो नमः २० तत्रैव--ओं गरवणिजकरणाभ्यां नमः २१ तत्रैव--ओं सप्तपातालेभ्यो नमः २२ तत्रैव--ओं सामवेदाय नमः २३ अथोत्त[illegible]--ओं अभिजिदादिसप्तनक्षत्रेभ्यो नमः २४ ओं साध्यादिषड्योगेभ्यो नमः २५ ओं विष्टि-करणाय नमः २६ ओं [illegible]लोकेभ्यो नमः २७ ओं अथर्ववेदाय नमः २८ अथ वायव्यम्--ओं ध्रुवाय नमः २९ ओं सप्तऋषिभ्यो नमः ३० ।

अथ यथावकाशम्--ओं गङ्गादिनदीभ्यो नमः ३१ ओं सप्तकुलाचलेभ्यो नमः ३२ ओं अष्टवसुभ्यो नमः ३३ ओं एकादशरुद्रेभ्यो नमः ३४ ओं द्वादशादित्येभ्यो नमः ३५ ओं एकोनपञ्चाशन्मरुद्भ्यो नमः ३६ ओं षोडशमातृभ्यो नमः ३७ ओं षड्ऋतुभ्यो नमः ३८ ओं द्वादशमासेभ्यो नमः ३९ ओं द्वयनाभ्यां नमः ४० ओं पञ्चदशतिथिभ्यो नमः ४१ ओं षष्टिसम्वत्सरेभ्यो नमः ४२ ओं सुपर्णेभ्यो नमः ४३ ओं नागेभ्यो नमः ४४ ओं सर्पेभ्यो नमः ४५ ओं यक्षेभ्यो नमः ४६ ओं गन्धर्वेभ्यो नमः ४७ ओं विद्याधरेभ्यो नमः ४८ ओं अप्सरेभ्यो नमः ४९ ओं रक्षोभ्यो नमः ५० ओं मनुष्येभ्यो नमः ५१ इति सम्पूज्य प्रार्थयेत्- यत्कृतं पूजनं देव भक्तिश्रद्धाविवर्जितम् । परिगृह्णन्तु तत्सर्वं सूर्याद्याग्रहनायकाः १ आदित्यादि-ग्रहाः सर्वे नानावर्णाः पृथग्विधाः । सुप्रसन्ना प्रयच्छन्तु सौभाग्यं मम सर्वदा ।। इति ।

(ग्रहस्थापनादिविचारः)

तत्र मात्स्ये प्रतिष्ठाकालविधानप्रसङ्गे उक्तम् । ग्रहताराबलं लब्ध्वा ग्रहपूजां विधाय चेति । प्रतिष्ठारम्भात्पूर्वं नवग्रह-मखः कार्य इति केचित् । मुख्यं व्यादाय स्त्रपितेत्यादाविव समानकालत्वस्य क्त्वार्थत्वप्रयोगान्तवर्तिग्रहपूजापरमित्यन्ये । अस्मि-न्पक्षेऽग्निस्थापनोत्तरमेव ग्रहावाहनादि । अग्निप्रणयनं कृत्वा तस्यामावाहयेत्सुरानिति मात्स्ये ग्रहयागे एवोक्तेरिति प्रति-ष्ठेन्दौ । मयूखादौ त्वग्निस्थापनोत्तरं वास्तुपूजाहोमावुक्तौ तत्र मूलं त एव जानन्तु । ग्रहाश्चोक्ता मात्स्ये--"सूर्यः सोम-स्तथा भौमो बुधजीवसितार्कजाः । राहुः केतुरिति प्रोक्ता ग्रहा लोकहितावहा इति । अत्र केतुशब्द एकवचनान्तः । केतवः स्युर्वरप्रदाः, केतवो धूम्ररूपिण इति तत्रैव बहुवचनान्तश्चोक्तोऽत्र विकल्पः । एषां स्थापनदेशस्तु स्कान्दे--मध्ये तु भास्करं विद्याच्छशिनं पूर्वदक्षिणे । दक्षिणे लोहितं विद्याद् बुधः पूर्वोत्तरेण तु । उत्तरे तु गुरुं विद्यात्पूर्वेणैव तु भार्गवम् । पश्चिमे च शनिं विद्याद्राहुं पश्चिमदक्षिणे । पश्चिमोत्तरतः केतुः स्थाप्यो वै शुक्लतण्डुलैः । अथवा वर्णकैः कार्याः स्वर्ण-वर्णादिधातुभिरिति । स्थापयेच्छुक्लतण्डुलैरित्यस्मिन्पक्षे मण्डलाद्याकारेषु स्थापनमिति हेमाद्रिः । प्रतिमापक्षे द्रव्याण्याह—याज्ञवल्क्यः—ताम्रकात्स्फाटिकाद्रक्तचन्दनात्स्वर्णकावुभौ । राजतादयसः सीसात्कांस्यात्कार्या नवग्रहाः" इति । ब्रह्मयामले तु—ताम्रेण कारयेद्भानुं रजतेन निशाचरम् । कुब्जजीवरूपाणि सुवर्णेन तु कारयेत् । रजतेन ततः शुक्लं कृष्णलोहेन सूर्यजम् । सीसेन कारयेद्राहुं केतुं कांस्येन कारयेदित्युक्तम् । सति सम्भवे तु मात्स्ये--पद्मासनः पद्मकरः पद्मगर्भसमद्युतिः । सप्ताश्व-रथसंस्थश्च द्विभुजः स्यात्सदा रविः १ श्वेतः श्वेताम्बरधरो दशाश्वः श्वेतभूषणः । गदापाणिर्द्विबाहुश्च कर्तव्यो वरदः शशी २ रक्तमाल्याम्बरधरः शक्तिशूलगदाधरः । चतुर्भुजो मेषगमो वरदः स्याद्धरासुतः ३ पीतमाल्याम्बरधरः कर्णिकारसमद्युतिः । खड्गचर्मगदापाणिः सिंहस्थो वरदो बुधः ४ देवदैत्यगुरूतद्वत्पीतश्वेतौ चतुर्भुजौ । दण्डिनौ वरदौ कार्यौ साक्षसूत्रं कमण्डलू ५ इन्द्रनीलद्युतिः शूली वरदो गृध्रवाहनः । बाणबाणासनधरः कर्तव्योऽर्कसुतः सदा ५ करालवदनः खड्गचर्म शूलीवरप्रदः । नीलसिंहासनस्थश्च राहुरत्र प्रशस्यते ७ धूम्रादिवाहनाः सर्वे गदिनो विकृताननाः । गृध्रासनगता नित्यं केतवः स्युर्वरप्रदा" इति मात्स्यानुसारेण प्रतिमाः कार्याः ।

इति ।